gari Pracharini Granthamala Series No. 22.

अनन्य-ग्रन्थावली

(राजयोग, ज्ञानयोग, विज्ञानयोग और विज्ञान-बोध)

ठाकुर सूर्यकुमार वर्म्मा —

द्वारा सम्पादित

और
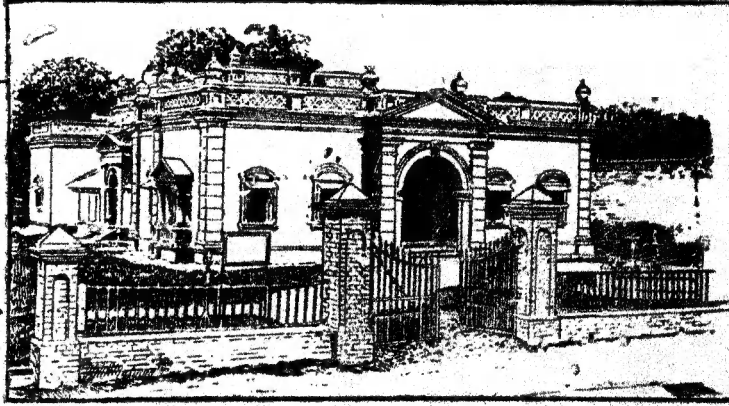
काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

१९१३

समर्पण

जिनकी कृपा और सहायता से मैं

आज यह काम कर सका उन

अपने पूज्य पिता, कविताप्रेमी,

ठाकुर गणपतिसिंह जी

की सेवा में

सादर

समर्पित ।

सूर्यकुमार वर्म्मा

परिचय

बाल्यावस्था में जब हमने राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत गुटका पढ़ा था उस समय, उसमें हमने अनन्य कवि की राजयोग कविता का कुछ अंश भी पढ़ा था। वह कविता हमें बहुत पसन्द आई थी। हमारी इच्छा थी कि हमें अनन्य कविकृत और भी कविता पढ़ने को मिले परन्तु अब तक हमें वह कहीं भी प्राप्त न हो सकी। दो तीन वर्ष हुए जब एक दिन एक साधु हमारे पास आए। बात चीत में अनन्य का भी ज़िक्र निकला। आपने कहा अनन्य के ४ ग्रंथ हमारे पास हैं। हम आपको देंगे। आपने ही कृपाकर अनन्य की यह कविता हमें लिखा दी। कविता रोचक, हृदयग्राही, सरल, सबके समझने योग्य और भावमय है। कविता तो साधु महाराज से प्राप्त हो गई परन्तु अनन्य कवि का परिचय बहुत खोज करने पर भी हमें बहुत समय तक न मिल सका।

शिवसिंहसरोज में अनन्य कवि तीन हुए ऐसा लिखा है। एक तो अक्षर अनन्य संवत् १७१० में हुए। दूसरे अनन्य कवि १७९० में हुए। तीसरे अनन्य के सन् संवत् का पता नहीं चलता। अनन्य ने अपनी कविता में "राजा प्रथीचन्द" का सम्बोधन करके कविता की है। परन्तु इस बात का ठीक ठीक पता नहीं चलता कि ये राजा प्रथीचन्द कैान थे। हमारे एक मित्र ने हमें सूचना दी है कि मैाज़ा गिरवासा परगना सोंढ़ा रियासत दतिया निवासी राजा प्रथीचंद के लिये ही यह कविता अनन्य कवि ने बनाई थी। उनके कथन और कविता की भाषा देखकर जाना जाता है कि अनन्य कवि बुन्देलखंडवासी ज़रूर थे। अनन्य कवि ने अपनी कविता में अपने निवासस्थान का कहीं पर भी परिचय नहीं दिया और न अपने ग्रंथों के बनाने का समय ही दिया है। सुना जाता है आप जाति के कायस्थ थे और राजा प्रथीचन्द

के दीवान थे। एक दिन वे राजा के व्यवहार से विरक्त होकर घर से निकल साधु हो गए। जब आप घर पर कई दिन हो गए वापस न आए तब राजा ने तलाश करवाई। आपका पता लगने पर राजा स्वयं लेने गए। जिस समय राजा आपके पास गये आप पैर पसारे लेटे थे। आपने राजा के आने पर न तो उनका स्वागत किया और न उठकर बैठे। राजा ने अपना अनादर समझकर पूछा! "पैर पसारे कब से?" आप ने उत्तर दिया—"हाथ समेटा तब से" अर्थात् जब से हाथ समेट लिया, माँगना या लेना छोड़ दिया तब से पैर फैला दिए। राजा जवाब सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें समझा बुझाकर फिर वापस ले गए। उसी समय राजा के लिये आपने राजयोग ग्रंथ बनाया।

पहले तो हमने सोचा था कि अनन्य का पूरा परिचय मिल जाने पर ही पुस्तक छपाने के लिये भेजते परन्तु दो तीन वर्ष की खोज पर भी जब कोई विशेष पता न चला और न पता चलने का कोई भरोसा पाया गया तब यही निश्चय किया कि अनन्य की जीवनी के अभाव से उनकी कविता से हिन्दी कविता के प्रेमियों को वंचित रखना उचित नहीं। सम्भव है पुस्तक प्रकाशित होने पर अनन्य की कविता का प्रचार बढ़ने से उनकी जीवनी का पाठकों द्वारा ही पता चल जाय। अतएव यह अनन्यग्रंथावली प्रकाशित की जाती है। अगर हमारे पाठकों में से किसी को अनन्य के विषय में कुछ ज्ञान हो तो वे सूचना दें दूसरे संस्करण में वह छाप दिया जायगा।

सूर्यकुमार वर्म्मा।

ग्वालियर—२१—६—१३

—:o:—

मेरा अनुमान है कि जिन अनन्यकवि के चार ग्रंथ इस पुस्तक में दिए हैं उनका दूसरा नाम अक्षर-अनन्य था। ये दतिया राज्य के

सेंहुड़ा ग्राम के रहनेवाले थे और जाति के कायस्थ थे। इनका जन्म सन् १६५३ में हुआ था। दतिया के राजा दलपतराय (१६९७ से १७०९ ई०) के पुत्र पृथीराज या पृथीचंद के ये गुरु थे। ये बुंदेलखंड के प्रसिद्ध महाराज छत्रसाल के समकालीन थे। इनके गई ग्रंथों का पता लगा है जिनके नाम ये हैं—

(१) अनुभव तरंग। (२) राजयोग, जो इस पुस्तक में सम्मिलित है। (३) प्रेमदीपिका, जिसमें उद्धव का मथुरागमन वर्णित है। (४) ज्ञानबोध, जो विज्ञान योग नाम से इस पुस्तक में प्रकाशित है। (५) ज्ञान पचासा, जो ज्ञानयोग नाम से प्रकाशित है। (६) दैवशक्तिपचीसी जिसे शक्तिपचीसी या अनन्यपचीसी भी कहते हैं। (७) भवानीस्तोत्र। (८) वैरागतरङ्ग। (९) योगशास्त्र। (१०) कविता संग्रह। एक ग्रन्थ जो विज्ञानबोध नाम से प्रकाशित है उसका पता अब तक नहीं चला था।

सन् १९०६—०८ की हिन्दी पुस्तकों की खोज की रिपोर्ट में मैंने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है—

"Akṣara Ananya (Fl. 1653 A. D.). He was a Kâyastha of Senhurâ, a village in the Datia State. He was a Sannyâsi well-versed in the Vedantic system of philosophy. He was so skilled in metrical composition that he often spoke in verse. Once Mahârâja Chhattrasâla of Pannâ invited him to his court, but he declined to attend. He was the first man to translate the Durga Saptaśati into Hindi verse. His descendants are still found in the Datia State, Being the spiritual preceptor of Kunwar Prithirâja, he received from him some villages in the way of a *jagir*, which he handed over to his brother."

इसी रिपोर्ट में राजा पृथीचन्द्र या पृथीराज के विषय में यह लिखा है—

"Kunwar Prithirâja, son of Dalpat Rai (1697-1709) of Datia. He was himself a good poet and wrote under the *non-de-plume* Rasanidhi. The poet Akṣara Ananya flourished at his court."

श्यामसुन्दर दास।

१८—७—१९१३

अनन्य-ग्रंथावली

——:०:——

अथ राजयोग ।
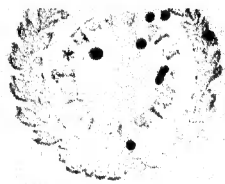
आत्मा ज्ञान सो ज्ञान वहै परमात्मा ध्यान सो ध्यान सुरेश्वर
वेद विधान विधान वहै सतपात्रहि दान सुदान धनेश्वर ॥
अन्तर भक्ति सुभक्ति वहै गति अंतर की परखे परमेश्वर ।
वेद प्रमाण अनन्य भने यह भेद सुनो पृथिचन्द्र नरेश्वर ॥ १ ॥

त्रोटकछंद ॥

यह भेद सुनो प्रथिचंदराय । फलचारिहु को साधन उपाय ।
यह लोक साध लोकीक लोग । खानहु कमान रुचि कामभोग ॥१॥
यह लोक सधे सुत सुक्ख बाम । परलोक नसे बसि नर्क धाम ।
परलोक साध यक है अतीत । तप तीरथ ब्रत करि कष्ट नित्त ॥२॥
यह लोक न तिनको सुख बिलास । परलोक सधे सुख स्वर्गबास ।
परलोक लोक दोउ सधें जाहि । सुई राजयोग सिद्धांत आहि ॥३॥
निज राजयोग ज्ञानी करंत । हठि धर्म्म मूँठ साधत अनंत ।
यक पवन खेंचि आसननि जोरि । यक हाथ पांउ कटि ग्रीव तोरि ॥४॥
यक धाम शीत जल सहत अंग । यक पंच-अग्नि तपि देह भंग ।
एक लँघत फिरत रोगरा खात । यक भ्रमत फिरत तीरथनि जात ॥५॥
यह बिविध पंथ काया कलेश । दुर्लभ करि पावत पद प्रवेश ।
जैसे भुजंग बामी मझार । यक मूढ़ खोदि काढहि प्रचार ॥६॥
ते हठि करि पकरें फारि खाई । त्यों हठि साधनि के पंथराई ।
यक ऊपर नहि खोदन करंत । पढि मंत्र खेंचि पवारहि तुरंत ॥७॥
त्यों राजयोग सुख-सहज माहि । सिद्धांत लहत तन कष्ट नाहि ।
ऊपर बिलास बिलसे समस्त । निज ज्ञान ध्यान मनसा दुरुस्त ॥८॥
अपनो करि कछु रहिये न मानि । सब ईश्वरही को बिभव जानि ।
करि त्रकुटि बीच ध्वनि शब्द मूल । सुइ मनसा सुमिरन ध्यान कूल॥९॥

बैठे तबमें रहिये सुचैन । दिखिये सब कुछ मुँदिये न नैन ।
करिये सब कुछ करिबे जु होइ । मनसा सुमिरन धुनि ध्यान लोइ १०
बातें करिये तै। चारि उक्ति । यक धर्म्म अर्थ की काम मुक्ति ।
इन चारिहु में जो सधै न एक । तै मिथ्या जन्म बिना विवेक ॥११॥
हाँसी चबाउ गिल्ला विवाद । काइन बातनि में है सवाद ।
कहिबो सुनिबो मतलब प्रमान । करि सेवा सुमिरन सुरति ध्यान १२
बैठत उठत चितवत चलंत । खातहु कमात सुमिरन करंत ।
जो अन्तर सुमिरन सुरति आहि । तै बाहिर कर्म्मन लगै ताहि १३
यह मनसा गति यह कहत वेद । मति गति साधत यह ज्ञान भेद ।
जो मति न सधै मन कर्म्म भोइ । तै टोपी दिये नहि मुक्ति होइ ॥१४
जो मति गति साधन सुरति ज्ञान । तै पाग नहीं रोकत ध्यान ।
यह मनही को कारन विचार । सुत बंधु मैत परिवार नार ॥१५॥
का होत मुँडाये मूंड़ बार । का होत रखाये जटाभार ।
का होत भामिनी तजें भोग ? जोलैं न जगे थिर चित्त योग ॥१६॥
थिर चित्त रहै सुमिरन मझार । ऊपर साधे परलोक चार ।
यह राजयोग सुख को निधान । कोइ ज्ञानवंत जानत सुजान ॥१७॥
अर्जुन जनकादिक आदि लोग । इन राजनि साधे राजयोग ।
सुख राजयोग करो अरु सिद्ध । को अतिथ भयो इनतें प्रसिद्ध ॥१८॥
यह अतिथन तनहूँ में अति अनूप । सुनु राजयोग सिद्धांत भूप ।
सुखमारग यह प्रथिचंदराइ । इहि सम न आहि दूजो उपाइ ॥१९॥
यह राजयोग कै भक्ति ज्ञान । सेवा सुमिरन सुरति ज्ञान ।
जो यह न सधै बिन ज्ञान मूढ । तै अजपा साधे स्वाँस रूढ ॥२०॥
जो यह न सधै अजपा उचार । तै इष्टदेव धरि ध्यान सार ।
जो ध्यान न आवे बिना देख । तै प्रतिमा थापहु अष्टभेख ॥२१॥
निज प्रतिमा थापहु दरस नित्त । सुइ मूरति राखहु हृदय चित्त ।
यहि भाँति ज्ञान उर बसे आन । यह ईश ध्यान नरनाह जान ॥२२॥

जो ध्यान सधे नहि लगे चित्त । तौ नेम सहित जप मंत्र नित्त ।
जो मंत्रहु विधि नहि सधे राउ । तौ पावन प्रभु को लेइ नाउ ॥२३॥
तन शुद्ध होइ मुख शुद्धवान । मन शुद्ध होइ सर्वज्ञ जान ।
मन को स्वभाव भ्रमिवो अकत्थ । तौ सुमिरन साधन ज्ञान गत्थ २४
मुख को स्वभाव बकिवो नरेश । तौ करे ज्ञान चरचा सुवेश ।
करि भक्ति भजन सुमिरन सुबुद्धि । मेटे मन की भ्रमना कुबुद्धि २५
जित जित मनसा भरमें अनंत । तित तित सुमिरन मन में करंत ।
कछुक दिननि करिये उपाइ । परि आइ बहुरि मंसा सुभाई ॥ २६॥
मनसा सुमिरन ध्वनि ध्यान लीन । यह राजयोग जानहु प्रवीन ।
जो राजयोग यह सधे राज । तौ मनवांछित सब होइ काज ॥२७॥
अरु कर्म्म लिप्त कबहूं न होइ । जग जीवन मुक्त सदा सुहोइ ।
यह ज्ञानभेद अरुभेद साखि । अक्षर अनन्य सिद्धांत भाषि ॥२८॥

दोहा ॥

राजयोग सिद्धांत यह, सुनो राज प्रथिचंद ।
या सम और न दूसरो, सोधि शास्त्र स्वच्छंद ॥ १ ॥
जो चाहो संसार सुख, अरु सिद्धांत प्रकास ।
तौ साधो सरवज्ञ यह, राजयोग अनयास ॥ २ ॥

इति राजयोग सम्पूर्णम् ।

अथ ज्ञानयोग ।

सवैया ॥

विधि भेद निषेधन जाने कछू मति के अनुसार लही सो लही ।
समुझाये नहीं समुझे गुरु के मन के अनुमान कही सो कही ॥
नहीं वेद पुरान की रीति गुने अनरीति सो टेक ठई सो ठई ।
यह तामस ज्ञान अनन्य भने हठि मूरख गांठि गही सो गही ॥१॥
जु करे सुविवेक विचारि करे फल चारि विषे हित साजत है ।
करि सेवहि देव रिझाव भले वरु पाइ भुवा पर गाजत है ॥
... ...
यह राजस ज्ञान अनन्य भने ति धर्म सो राज विराजत है ॥२॥
शील संतोष सुबुद्धि सुलक्षन धीर गँभीर भने जग न्यारे ।
धर्म्म दया निर्लोभ निरासक निर्भय भक्ति अराध न हारे ॥
धर्म्म करे सुकरे प्रभु अर्पण नहीं फल चाहत बोध उजारे ।
सात्विक ज्ञान अनन्य भने यह संत सदा भगवंत पियारे ॥३॥
राग न दोष न हर्ष न शोक न बंधन मोक्ष की आस रही है ।
बैर न प्रीति न हार न जीति न गारि न गीत सुरीत गई है ॥
रक्त विरक्त न मान कछू शिव शक्ति निरंतर जोति लही है ।
पूरन ज्ञान अनन्य भने अवधूत अतीत की रीति यही है ॥४॥
का हरि का हर का सुर का नर का तर का वरु मैार न आसो ।
का घर का वन का प्रभु का जन निर्गुन सर्गुन भर्म्म विनासो ॥
का पुनि संत असंत गने सबसो समिता व्रत रूप प्रकासो ।
पूरन ज्ञान अनन्य भने परिपूरन ज्ञान अखंडित भासो ॥५॥
मूरख के प्रतिमा परमेश्वर बालक रीति गही सुलही है ।
उत्तम जोति स्वरूप विचार सुआत्मा ध्यान में बुद्धि दई है ॥
एक बेतत्व की मूँड़ सबे कहि केवल ब्रह्म बसे सुवही है ।

पूरन ज्ञान अनन्य भने सरवज्ञनि कों शिवशक्ति मई है ॥६॥
कोऊ कहे बैकुंठ बसें प्रभु कोइ कहे निज धाम दुलीचे।
कोऊ कहे ब्रह्माण्ड परे परब्रह्म सबे कहे सो अवधीचे॥
वस्तु प्रत्यक्ष अनन्य भने जिमि आपुहि गोप्य करें दृग मीचें।
व्योम समान अखंडित ईश्वर तै सोइ ऊपर तै मुई नीचे ॥७॥
प्रभु जो बरनों बैकुण्ठहि में कहि व्यापक कौन चराचर है?
स्वरमंडल खंडल दुष्ट कहो तो अखंड समस्त बराबर है॥
हरि राधिक कुञ्ज बिहारी कहो तौ बिहारु तौ तासु चराचर है।
तत सर्वस्व रूप अनन्य भने परिपूरन ब्रह्म परापर है ॥८॥
हरि में हरी सो स्वर में स्वर सो हर में हरसो सुखदायक है।
नर में नर सो तर में तर सो घुर में धर सो धुर घायक है॥
बड़ में बड़ सो सुअनन्य भने घर में घर सो घट नायक है।
हम में हम सो तुम में तुम सो सब सों सब में सब लायक है ॥९॥
जल में जल सो थल में थल सो तल में तल सो जग जोति छई।
बन में बन सो घन में घन सो तन में तन सो तम माहि दई॥
सुर में सुर सो सुअनन्य भने यह भेद लहैं सरवज्ञ मई।
बहु रूप अनेक सुभाई सुहै जित देखि तितें शिव शक्ति मई ॥१०॥
सब रूप को रूप स्वरूप वहै अनरूप को रूप सबै लहिये।
सब सार को सार विचार यहै सब सार असार सबे गहिये॥
सब भेद को भेद अभेद मतो अनभेद को भेद वहै यहिये।
सब नाम सुनाम अनन्यभने अननाम को नाम कहा कहिये ॥११॥
निर्गुन सर्गुन नाम अभेद यह भेद सनातनही चलि आयो।
निर्गुन रूप है एक चिदात्मा सर्गुण रूप अनेक है छायो॥
वाही तै भेद कहों जग में जिहि जोई सुनो तिहि सो ठहरायो
संग असंग अनन्य भने सरवज्ञनि सों सरवज्ञ बतायो ॥१२॥
आपुहि निर्गुन आपही सर्गुन आपुहि निर्भय भेद बतायो।
आपुहि शून्य है आपुहि ज्योति है आपही व्यापी चराचर कायो॥

आपुहि मंत्र अनन्य भने शिवशक्ति अखंड परापर छाया ।
आपुहि जीव है आपुहि ईश है आपुहि ईश्वर आपुहि माया ॥१३॥
माटी की भूमि है भूमि सो माटी मांटिहि भूमि न भेद न माया।
पानी को सिंधु है सिंधु सुपानी है पानिहि सिंधुहि द्वै न बताया ॥
यों अनभेद अनन्य भने कहिवे मँह भेद गुरु समझाया ।
दीपक ज्वाल है ज्वाल सुदीपक माया सुब्रह्म है ब्रह्म सुमाया ॥१४॥
ज्वाल कहं कोउ ज्योति लहे वै सादर में पुरुषारथ आया ।
देह कहै नर नाम लहैं अरु नारि कहें जबही कहै काया ॥
यों अनभेद अनन्य भने हठि मूढनि वाद विवाद बढ़ाया ।
एकवै तत्व की माह सबै भल वाहि कहं सो कहें मलमाया ॥१५॥
ब्रह्म कहो ब्रह्म माया कहो कहिवे में कहा है कहा कहि कीजे ।
वस्तु है एक अभास अनेक हैं सर्व विषे निहचै मन लीजे ॥
एक अनेक अनन्य भने सुअनेक में एक विवेक धरीजे ।
एकही साधे सधें सबही सुवरी दुवरी प्रति भेद न दीजे ॥१६॥
अन्न अभाव अनन्न सुभावही पूरन ब्रह्म प्रभाव अखंडित ।
रूप विराट निराट निराटक फाटक कोटिक घोट कदंडित ॥
आपुही झझके बिझुके गुर भेद यहै सब जानत है मतिमंडित ।
आपमें आप अनन्य भने सुवहे तनज्ञान कहें सत पंडित ॥१७॥
छोटे बड़े सब पंथ उपासक ग्रंथ उपासक बहुधा है ।
ब्रह्म वहै सर्वज्ञ अखंडित व्यापक सर्व समान उदा है ॥
वेद है तेई प्रमान यहै मसजिद यहै नहीं तत्व जुदा है ।
ईशतश आगि अनन्य भने जग सोइ सदा शिव सोई खुदा है ॥१८॥
कोऊ राम कहै पर नाम कहै कोऊ कान्ह गुपालजु बानत है ।
अरिहंत कोऊ भगवंत कहे कोउ दूत अलेख बखानत है ॥
वह ईश्वर एक अनेक मते अपने अपने उर आनत है ।
जग पंचन ग्रंथ अनन्य भने यह भेद सुजान सुजानत है ॥ १९ ॥
यक निर्गुन रूप निरूपत है यक सगुन रूपही देखत है ।

यक ज्योति स्वरूप बखान करें यक शून्य स्वरूपही लेखत है ।
यक मानत है अवतारिन कौ करता विधि एक विशेखत है ॥
सरवज्ञ सो धन्य अनन्य भने प्रभुमय सबको सब देखत है ॥ २० ॥
धर्म्म विना सतसंग नहीं सतसंग बिना नहि भक्ति हुलासे ।
भक्ति बिना नहि शुद्ध हियो हिय शुद्ध बिना नहि बुद्धि विलासे ॥
बुद्धि बिना अनुमान नहीं अनुमान बिना नहीं ज्ञान प्रकासे ।
ज्ञान बिना जु अनन्य भने परमात्मा तत्त्व स्वरूप न भासे ॥ २१ ॥
भूषन हाटक सागर घाटक काटक पाटक नाम कहे हैं ।
भूमि सो भौननि भांड खिलोननि पौननि के उनमान कहे हैं ॥
... ...
आनि वस्तु अनन्य भने शिव शक्ति समस्त स्वरूप सुआप लहे हैं ॥२२॥
हाटक के बहु भूषण है तिन भूषण में नहीं हाट कहानी ।
सागर में लहरें लहिये लहरेनि बिषे वह सागर पानी ॥
योंतत रूप अनन्य भने न विना ततरूप यहै उर आनी ।
एक ते रूप अनेक लहैं सुअनेक में एक लखे सुई ज्ञानी ॥ २३ ॥
ब्रह्म स्वरूप वेदांत कहैं अरु न्याय कहे करता उर सूरे ।
बोध कहै प्रभु बोध स्वरूप पातञ्जलि योग सुभाव गरूरे ॥
जैनि कहै अरहंस स्वरूप विषई प्रकृति नरोत्तम रूरे ।
तत्व स्वरूप अनन्य भने प्रभु सर्व प्रभा पुरुषारथ पूरे ॥ २४ ॥
बिधि रूप रचो-रचना विधि सो हरि रूप प्रजे प्रतिपालत है ।
शशि सूरज रूप पकाश करें धरि रुद्र स्वरूप सँघारत है ॥
शिव शक्ति विलास अनन्य भने मकरी जिमि जाल पसारत है ।
नहीं दूसरो कारन कारज में प्रभु आपुहि आप विहारत है ॥२५॥
आपुहि पूरन ब्रह्म अखंडित आपु भरे जग जीव विहारे ।
ज्यों निधि में लहरें लहरें निधि एक अनेक सुभाव सो धारे ॥
यों कहि मित्र अनन्य भने अपकर्म्म के बंधन फंदन पारे ।
भेद कहा यह भेद कहैं सुई भेद कहैं सुई भेद हमारे ॥ २६ ॥

जनि वेद पुराननि में भरमो जनि संत असंतन सों उरझो।
जनि इन्द्रिन के वश भूलि रहो जनि राजस तामस सों खुरजो॥
लहि आतम ब्रह्म प्रमोद रहो जनि जीव दशा गहि के उरझो।
करि तत्व विचार अनन्य भने क्रम ते इन कर्मनि तै सुरझो॥ २७॥

आहत कर्मनि ते सुरझौ तौ तजो फल कर्मनि की अभिलाषे।
पूरन ब्रह्म लहो सबमें निज आपु में ईश्वर भिन्न न भाषो॥
बंधन मानि ना मुक्ति की आशा को पूरन ज्ञान सुधारस चाखो।
आपु अपान अनन्य भने करतूति सबै कर तापर राखो॥ २८॥

तनु गर्भ बनावत जन्म जनावत कर्म्म कमावत कै अपनो।
प्रति स्वांस खिझावत बुद्धि रमावत भक्ति पचावत है तपनो॥
दृग ज्योति जगावत रैनि सुआवत सुतनि दिखावत है सपनो।
करता करतूति अनन्य भने न करो कत होत कछू अपनो॥ २९॥

तारन बोरन बंधन छोरन मारन पालन हार रहे है।
सोषन पोषन तोष बितोषन दूषन भूषन लोक लहे है॥
रक्षन भक्षन यो सब लक्षन वेद विचक्षन टेरि कहे है।
कारन कर्म्म अनन्य भने सरवज्ञ मतैं सरवज्ञ वहे है॥ ३०॥

वहे स्वरलोक वहे नरलोक वहे तरलोक अलोक भयो है।
वहे बन बाट वहे घर घाट वही पुर हाट बिराट छयो है॥
वही सब ठौरन दूसर और वही सब कोटिक ठौर ठयो है।
व्यापक सर्व अनन्य भने यह भेद विचारत भेद भयो है॥ ३१॥

वाही की रैनि है वाही को वासर वाही की ग्रीष्म वाही को सावन।
वाही की शून्य है वाही की जोति है वाही की भूमि प्रकाश उपावन॥
वाही को माठ अनन्य भने बड़ छोट बराबर रूप उपावन।
वाही को कंस है वाही को कान्हरा वाही को राम है वाही को रावन॥३२॥

वाही स्वरूप को रूप लखै तब आपु कहा पर वाही रहे।
कहि काहि को देखन ध्यान करो तब होयु इतैं मन मारि रहे॥

अमनस्कखण्डम् - योगविषयकम् -
Ed. & pub. by Pt. ज्येष्ठाराम शर्मा at
गुर्जर प्रेस.
Mumbai, 1958 Vikram era.

॥ श्रीः ॥

अमनस्कखण्डम्

योगविषयकम् ।

तदिदम्

पण्डितज्येष्ठारामशर्मणा

गुर्जरमुद्रायन्त्रे मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

मुम्बई.

शके १८२३ सं० १९५८

अमनस्कखण्डम् ।

तत्र प्रथमोऽध्यायः-

लययोगपरिच्छेदनामा ।

ॐ

वामदेव उवाच ।

प्रणम्य शिरसा देवं वामदेवः कृताञ्जलिः ।
जीवन्मुक्तपदोपायं कथयस्वेति पृच्छति ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच ।

परं ज्ञानमहं वच्मि येन तत्त्वं प्रकाशते ।
येन संछिद्यते सर्वं मायापाशादिबन्धनम् ॥ २ ॥
आधारादिषु पत्रेषु सुषुम्णादिषु नाडिषु ।
प्राणादिषु शरीरेषु परं तत्त्वं न तिष्ठति ॥ ३ ॥
तत्प्रयोगरताः केचित्केचिद् ध्यानविमोहिताः ।
जपेन केचित्क्लिश्यन्ति नैव जानन्ति तारकम् ॥ ४ ॥

न मीमांसातर्कग्रहगणितसिद्धान्तपठनै-
र्न वेदैर्वेदान्तैः स्मृतिभिरभिधानैरपि न च ।
तथापि च्छन्दोव्याकरणकविताल‌ङ्कृतिमयै-
र्मुने तत्त्वावाप्तिर्निजगुरुमुखादेव विदिता ॥ ५ ॥
काषायग्रहणं कपालधरणं केशावलीलुञ्चनं
पाषण्डावृतभस्मचीवरजटाधारित्वमुन्मत्तता ।
नग्नत्वं निगमागमादिकविता गोष्ठी सभाभ्यन्तरे
सर्व्वं चोदरपूरणाय पठनं न श्रेयसः कारणम् ॥ ६ ॥
द्वेषोच्चाटनमारणादिकुहकैर्मन्त्रैः प्रपञ्चोद्गमः
सर्व्वाभ्यासविचित्रबन्धकरणान्न ज्ञानबोधः परम् ।
ध्यानं देहपदेषु नाड़िषु षडाधारेषु चित्तभ्रम-
स्तस्मात्तत्सकलं मनोविरचितं त्यक्त्वामनस्कं भजेत् ॥ ७ ॥
अन्ये च जगतो भावा ये च तिष्ठन्त्यनेकधा ।
तेषां तु लक्षणेनापि परं तत्त्वं न गीयते ॥ ८ ॥

अन्तश्चेतो बहिश्चक्षुरधः स्थाप्य सुखासनम् ।
समत्वं च शरीरस्य ध्यानमुद्रेति कथ्यते ॥ ९ ॥

अथाहं वच्मि मोक्षाय ज्ञानं रागजितां नृणाम् ।
निष्कलं निष्प्रपञ्चं यत्परं तत्त्वं तदुच्यते ॥ १० ॥
व्योमादिभूतनिर्मुक्तं बुद्धीन्द्रियविवर्जितम् ।
त्यक्तं चिन्तादिभावैर्यत्परं तत्त्वं तदुच्यते ॥ ११ ॥

यस्मादुत्पद्यते सर्वं यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
यस्मिन्विलीयते सर्वं परं तत्त्वं तदुच्यते ॥ १२ ॥
भावाभावविनिर्मुक्तं नाशोत्पत्तिविवर्जितम् ।
सर्वसङ्कल्पनातीतं परं तत्त्वं तदुच्यते ॥ १३ ॥
अनाकारमविच्छिन्नमग्राह्यमचलं ध्रुवम् ।
सर्व्वोपाधिविनिर्मुक्तं सर्वकामविवर्जितम् ॥ १४ ॥

प्रथमं पृथिवीतत्त्वं जलतत्त्वं द्वितीयकम् ।
तेजस्तत्त्वं तृतीयं स्याद्वायुतत्त्वं चतुर्थकम् ॥ १५ ॥
आकाशं पञ्चमं तत्त्वं मनः षष्ठमुदीरितम् ।
सप्तमं परमं तत्त्वं यो जानाति स मोक्षभाक् ॥ १६ ॥
परं तत्त्वं समाख्यातं जन्मबन्धविनाशनम् ।

तस्याभ्यासं प्रवक्ष्यामि येन संजायते लयः ॥ १७ ॥
विविक्तदेशेषु च सन्निविष्टः समासतः किञ्चिदुपेत्य पश्चात् ।
बहुप्रमाणःस्थिरदृक् श्लथाङ्गश्चिन्ताविहीनोऽभ्यसनं कुरुष्व ॥ १८ ॥
सुखासने समासीनस्तत्त्वाभ्यासं समाचरेत् ।
सदाभ्यासेन तत्कुर्यात् परं तत्त्वप्रकाशनम् ॥ १९ ॥
ब्रह्माण्डं पञ्चभूतेषु पञ्चभूतमयी तनुः ।
सर्वभूतमयं चेति त्यक्त्वा नास्तीति भावयेत् ॥ २० ॥
न किञ्चिन्मनसा ध्यायेत्सर्वचिन्ताविवर्जितः ।
स बाह्याभ्यन्तरे योगी जायते तत्त्वसन्मुखः ॥ २१ ॥

तत्त्वस्य सन्मुखे जाते त्वमनस्कं प्रजायते ।
चिन्तादिविलये जाते पवनस्य लयो भवेत् ॥ २२ ॥
मनःपवनयोर्नाशादिन्द्रियार्थान्विमुञ्चति ।
इन्द्रियार्थैर्यदा मुक्तो बाह्यज्ञानं न जायते ॥ २३ ॥
बाह्यज्ञाने विनष्टे च ततः सर्वसमो भवेत् ।
यदा सर्वसमो जातो भवेद्व्यापारवर्जितः ॥ २४ ॥
परे ब्रह्मणि सम्बद्धो योगी प्राप्तलयस्तदा ।

सदाभ्यासकृतां चैव यः परो जायते लयः ॥ २५ ॥
तस्याहं कथयिष्यामि लक्षणं युक्तचेतसः ।
सुखं दुःखं न जानाति शीतोष्णं च न विन्दति ॥ २६ ॥
विचारं चेन्द्रियार्थानां न वेत्ति हि लयं गतः ।
न च जीवन्मृतो वापि न पश्यति न मीलति ॥ २७ ॥
निर्जीवः काष्ठवत्तिष्ठेल्लयस्थश्चाभिधीयते ।
निर्वातस्थापितो दीपो भासते निश्चलो यथा ॥ २८ ॥
जगद्व्यापारनिर्मुक्तो निश्चलो निर्मलः परः ।
शब्दाद्यैर्विषयैस्त्यक्तो लयस्थो दृश्यते तदा ॥ २९ ॥
प्रक्षिप्तं लवणं तोये क्रमाद्वै लीयते यथा ।
लवणं तोयसम्पर्काद्यथा तोयमयं भवेत् ॥ ३० ॥
मनोऽपि ब्रह्मसम्पर्कात्तथा ब्रह्ममयं भवेत् ।
यथा क्षारमयत्वेन प्राप्यते लवणं स्वकम् ॥ ३१ ॥
ब्रह्मज्ञानमयत्वेन निर्वाणं मनसस्तथा ।

घृतात्पृथग्विरहितं घृतं लीनं घृते यथा ॥ ३२ ॥
तत्त्वे लीनस्तथा योगी पृथग्भावं न विन्दति ।
निमेषश्वासपलकैर्नाडीभिः प्रहरैर्दिनैः ॥ ३३ ॥
मासैः संवत्सरैः कालैर्लयस्थो यत्पदं व्रजेत् ।

श्वासोच्छ्वासात्मकः प्राणः षड्भिः प्राणैः पलं स्मृतम् ॥ ३४ ॥
पलैः षष्टिभिरेव स्याद्घटिका कालसम्मिता ।

योगी निमेषमात्रेण लयेन लभते ध्रुवम् ॥ ३५ ॥
स्पर्शनं परतत्त्वस्यचोत्थानं च पुनःपुनः ।
घर्मशान्तिः प्रजायेत मुहुर्निद्रा च मूर्च्छना ॥ ३६ ॥
निमेषषट्कमात्रेण लयेनान्तःस्थयोगिनः ।
श्वासमात्रं लयेनापि तेन प्राणादिवायवः ॥ ३७ ॥
श्वासप्रवाहसम्बन्धाः स्वस्वस्थाने वहन्ति ते ।
श्वासद्वयं लयेनापि कूर्मवातादिवायवः ॥ ३८ ॥
निवर्त्तन्ते च धातूनां बन्धं कुर्वन्ति धातवः ।
चतुःश्वासं लयेनापि सप्तधातुगता रसाः ॥ ३९ ॥
समे पुष्टिं प्रकुर्वन्ति धातूनां समवायवः ।
लयेन पलमात्रेण आसनस्थो न खिद्यते ॥ ४० ॥
स्वल्पश्वासो भवेद्योगी स्वल्पोन्मेषयुतस्तथा ।
पलद्वयं लयेनापि हृन्नाड्याश्चालनं भवेत् ॥ ४१ ॥
अव्याहतः स विज्ञेयो न तत्रैव न्यसेन्मनः ।

चतुःपलप्रमाणेन लयेनानुभवो भवेत् ॥ ४२ ॥
अकस्मान्निपतन्त्येव शब्दः कर्णे शुभाशुभः ।
पलाष्टकं लयेनापि कामस्तस्य निवर्त्तते ॥ ४३ ॥
तथापि नैव जायेत कामिन्यालिङ्गितस्य च ।
कलापादं लयेनापि सुषुम्णामार्गवाहिनी ॥ ४४ ॥
कला पश्चिममार्गेण तस्य भागेन गच्छति ।
घटिकार्द्धं लयेनापि शक्तिः संचलते ध्रुवम् ॥ ४५ ॥
ऊर्ध्वं पश्चिममार्गेण वातरोधेन गच्छति ।
कलाद्वयं लयेनापि शक्तेः सञ्चालनेन च ॥ ४६ ॥
क्षणादुत्पद्यते तस्य मनसः कल्पनं सकृत् ।
चतुःकलालयेनापि निद्राभावोनुवर्तते ॥ ४७ ॥
हृदि स्फुलिङ्गवद्योगी तेजोबिन्दुं प्रपश्यति ।
दिनपादं लयेनापि स्वल्पाहारो भवेन्नरः ॥ ४८ ॥
स्वल्पमूत्रपुरीषत्वं लघुता स्निग्धता तनोः ।
वासरार्द्धं लयेनापि स्वात्मज्योतिः प्रकाशते ॥ ४९ ॥
सूर्यो गोभिरिवोद्दीप्तो योगी विश्वं प्रकाशते ।
दिनमात्रं लयेनापि स्वात्मतत्त्वं प्रकाशते ॥ ५० ॥
इन्द्रियज्ञानविस्तारो ब्रह्माण्डेऽप्यनुवर्त्तते ।
अहोरात्रलयेनापि योगी चर्मासने स्थितः ॥ ५१ ॥
चित्तवृत्तिनिरोधेन गन्धं जानाति दूरतः ।
अहोरात्रद्वयेनापि लयादानन्दमूर्च्छितः ॥ ५२ ॥
दूरादपि रसं वेत्ति योगी सङ्कल्पवर्जितः ।

अहोरात्रत्रयेणापि लयेनान्तःस्थयोगिनः ॥ ५३॥
दूराद्दर्शनविज्ञानं स्वभावेनैव वर्तते ।
अहोरात्रचतुष्केण लयभावसमन्वितः ॥ ५४ ॥
स्पर्शं जानाति योगीन्द्रो दूरादपि न संशयः ।
पञ्चरात्रलयेनापि तस्याप्युत्पद्यते ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
दूरश्रवणविज्ञानं मनसाश्चर्य्यकारणम् ।
एतत्पञ्चेन्द्रियज्ञानं महत्स्वानुभवात्मकम् ॥ ५६ ॥
जानाति तेन योगीन्द्रो सकलं विश्ववर्तनम् ।
रात्रिषट्कलयेनापि महाबुद्धिः प्ररोहति ॥ ५७ ॥
यावत्तर्कमयं तस्य विज्ञानं संप्रवर्तते ।
सप्तरात्रलयेनापि परे लीनस्य योगिनः ॥ ५८ ॥
आब्रह्म विश्वनेतृत्वं श्रुतिज्ञानं च वर्तते ।
अष्टरात्रलयेनापि भवेद्योगी निरामयः ॥ ५९ ॥
क्षुत्पिपासादिभिश्चैव सहजस्थो न पीड्यते ।
नवरात्रलयेनापि निर्भेदस्वात्मवर्तनम् ॥ ६० ॥
वाचा सिद्धिर्भवेत्तस्य शापानुग्रहकारिणी ।
दशरात्रलयेनापि योगीन्द्रः स्वात्मनि स्थितः ॥ ६१ ॥
यानि कानि सुगुप्तानि महाचित्राणि पश्यति ।
ततश्चैकादशाहेन लयस्थस्य जयोदयात् ॥ ६२ ॥
मनसा सहितस्यापि गन्तुमिच्छति विग्रहः ।
द्वादशाहलयेनापि भूचरत्वं च सिद्ध्यति ॥ ६३ ॥
निमेषार्द्धप्रमाणेन पर्यटत्येव भूतलम् ।

ततस्त्रयोदशाहेन लयेनापि महाद्भुताम् ॥ ६४ ॥
योगीन्द्रः खेचरीं सिद्धिं लभते चिन्तनादपि ॥
चतुर्दशदिनान्तं च लयस्थो यत्र तिष्ठति ॥ ६५ ॥
अणिमा चैव सिद्धिः स्यादणुत्वं प्राप्यते यथा ।
आत्मन्येवात्मना लीनो योगी षोडश वासरान् ॥ ६६ ॥
लभते महिमासिद्धिं स महारूपधृग्यथा ।
अष्टादशदिनान्तं च लयस्थो यदि तिष्ठति ॥ ६७ ॥
गरिमाख्यां लभेत्सिद्धिं यथा भूभारधृग्भवेत् ।
अभिन्नार्थो लयेनापि पञ्चविंशतिवासरान् ॥ ६८ ॥
लघिमाख्या भवेत्सिद्धिर्यथाणुत्वमभारधृक् ।
द्वाविंशतिदिनान्येवं खलक्ष्ये यो लयं गतः ॥ ६९ ॥
प्राप्तिसिद्धिर्भवेत्तस्य प्राप्नोत्येव जगत्स्थितम् ।
परे लयं गतो योगी चतुर्विंशतिवासरान् ॥ ७० ॥
तस्य प्राकाम्यसिद्धिः स्यादीप्सितं लभते यथा ।
तत्रैवास्तं गतं चित्तं षड्विंशतिदिनानि वै ॥ ७१ ॥
लभते जगदीशत्वं येन विश्वगुरुर्भवेत् ।
अष्टाविंशत्यहं यस्य लयस्तिष्ठेत्स्थिरासने ॥ ७२ ॥
वशित्वसिद्धिप्राप्तिः स्याद्येन वश्यं भवेज्जगत् ।
गन्तुमिच्छन्ति ये केचित्परं ब्रह्मपदे लयम् ॥ ७३ ॥
भवन्ति सिद्धयः सर्वास्तेषां विध्वंसकारिकाः ।
मासमेकं लयो यस्य लग्नस्तिष्ठेदखण्डितः ॥ ७४ ॥
न जागर्ति स योगीन्द्रो यावन्मोक्षं स गच्छति ।

पृथ्वीतत्त्वे तु संसिद्धे योगीन्द्रो योगसन्निभः ॥ ७५ ॥
सार्द्धसंवत्सरेणापि लयस्थस्यापि योगिनः ।
तोयतत्त्वस्य सिद्धिः स्यात्तोयतत्त्वमयो भवेत् ॥ ७६॥
संवत्सरत्रयेणापि लयस्थस्यापि योगिनः ।
तेजस्तत्त्वस्य सिद्धिः स्यात्तेजस्तत्त्वमयो भवेत् ॥ ७७ ॥
षड्भिः संवत्सरैरेवमखण्डलयमास्थितः ।
वायुतत्त्वस्य सिद्धिः स्याद्वायुतत्त्वमयो हि सः ॥ ७८ ॥
तथा द्वादशभिर्वर्षैर्लयस्थस्य निरन्तरम् ।
व्योमतत्त्वस्य सिद्धिः स्याद्यथा व्योममयो भवेत् ॥ ७९ ॥
चतुर्विंशत्या हि वर्षैर्लयस्थस्य निरन्तरम् ।
शक्तितत्त्वस्य सिद्धिः स्याद्यथा शक्तिमयो हि सः ॥ ८० ॥
ब्रह्माण्डं सकलं पश्येत्पाणिस्थमिव मौक्तिकम् ।
आत्मकायस्वरूपं च निर्धार्याथ यथास्थितम् ॥ ८१ ॥
कायस्थे दृश्यते लोकस्तत्त्वचर्यां समाचरेत् ।
तत्र चर्यां करोत्येवं शक्तितत्त्वक्षयाय च ॥ ८२ ॥
इत्थं क्रमाद्विवृद्धेन लयाभ्यासेन योगिना ।
भुज्यते परमानन्दं भृशं त्वादिमहात्मवत् ॥ ८३ ॥
महाविष्णुमहेशानां प्रलयेष्वपि योगिनाम् ।
नास्ति पातो लयस्थानां महातत्त्वे विवर्तिनाम् ॥ ८४ ॥ ॐ ॥

इति श्रीमहेश्वरप्रोक्तेऽमनस्कखण्डे लययोगपरिच्छेदो नाम

प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः—

अमनस्कविवरणंनामा ।

ॐ

वामदेव उवाच ।

भगवन्देवदेवेश परमानन्द सुन्दर ।
त्वत्प्रसादान्मया लब्धः पूर्वयोगः सविस्तरः ॥ १ ॥
अपरं किं तदाख्याहि भवता यदुदीरितम् ।
बहिर्मुद्रान्वितं पूर्वं बहिर्योगं च तन्मनः ॥ २ ॥

श्रीमहेश्वर उवाच ।

अन्तर्मुद्राख्यमपरमन्तर्योगं तदेव हि ।
राजयोगः स कथितः स एव मुनिपुङ्गव ॥ ३ ॥
राजत्वात्सर्वयोगानां राजयोग इति स्मृतः ।
राजन्तं दीप्यमानं तं परमात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥
प्रापयेद्देहिनां यस्तु राजयोगः स कीर्तितः ।
राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वतः ॥ ५ ॥
ज्ञानान्मुक्तेः सिद्धिरिति गुरोर्ज्ञानं च लभ्यते ।

अन्तर्योगं बहिर्योगं यो जानाति विशेषतः ॥ ६ ॥
मया त्वयाप्यसौ वन्द्यः शेषैर्वन्द्यस्तु किं पुनः ।
चित्तं बुद्धिरहङ्कारो ऋत्विजः सोमपं मनः ॥ ७ ॥
इन्द्रियाणि दश प्राणा जुहोति ज्योतिर्मण्डले ।
तन्मूलादिन्दुपर्यन्तं विभाति ज्योतिर्मण्डलम् ॥ ८ ॥
योगिभिः सततं ध्येयमणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ।
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्या गणिका इव ॥ ९ ॥
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ।
अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता ॥ १० ॥
एषा हि शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ।
अन्तर्लक्ष्या बहिर्दृष्टिः सर्व्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ११ ॥
आदिशक्तिरुमा चैतां मुद्रां लब्धवती पुरा ।
अधुना जन्मसंस्कारात्त्वमेको लब्धवानिति ॥ १२ ॥
गुह्याद् गुह्यतरा विद्या न देया यस्य कस्यचित् ।
एतज्ज्ञानी वसेद्यत्र स देशः पुण्यभाजनम् ॥ १३ ॥
दर्शनादर्च्चनात्तस्य त्रिःसप्तकुलसंयुताः ।
जना मुक्तिपदं यान्ति किं पुनस्तत्परायणाः ॥ १४ ॥
ऊर्द्धाधःकुण्डलीभेद उन्मन्या चैव संक्रमः ।
अनुसन्धानमात्रेण योगोऽयं सिद्धिदायकः ॥ १५ ॥
ऊर्द्धदृष्टिरधोदृष्टिरूर्द्धवेधस्त्वधःशिराः ।
राधायन्त्रविधानेन जीवन्मुक्तो भविष्यति ॥ १६ ॥

कुलाचाररताः सन्ति गुरवो बहवो मुने ।
कुलाचारविहीनस्तु गुरुरेको हि दुर्लभः ॥ १७ ॥
पुष्पात्प्रकाशते यद्वत्फलं पुष्पप्रणाशनम् ।
देहात्प्रकाशते तद्वत्तत्त्वं देहप्रणाशनम् ॥ १८ ॥
आत्मनस्तत्त्वमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति ।
गोपः कक्षगते छागे कूपं पश्यति दुर्मतिः ॥ १९ ॥
नमोस्तु गुरवे तुभ्यं सहजानन्दरूपिणे ।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति संसारविषमोहनम् ॥ २० ॥
अमृतोद्दीपिनी विद्या निरपाया निरञ्जना ।
अमनस्कैव सा कापि जयत्यानन्ददायिनी ॥ २१ ॥
प्रणष्टोच्छ्वासनिःश्वासप्रध्वस्तविषयग्रहः ।
निश्चेष्टो निर्गतारम्भो ह्यानन्दं याति योगवित् ॥ २२ ॥
उच्छिन्नसर्वसङ्कल्पो निःशेषाशेषचेष्टितः ।
स्वावगम्यो लयः कापि जायते वागगोचरः ॥ २३ ॥
वदन्तो वा परं ब्रह्म बुद्धिमन्तो हि सूरयः ।
स्वावबोधकलालापकुशला दुर्लभा भुवि ॥ २४ ॥
वदन्तो वात्मनो भावं वदन्त्युपनिषद्गिरः ।
रहस्युपदिशन्त्यन्ये स्वयं नानुभवन्ति ते ॥ २५ ॥
विहाय योगशास्त्राणि नानागुरुमतानि च ।
विद्वत्वः स्वात्मबोधोऽयं सद्यः प्रत्ययकारकः ॥

सकलं समनस्कं च निराभासं सदा भज ॥ २६ ॥
दुग्धाम्बुवत्संचलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ च ।
यावन्मरुद्वापि मनःप्रवृत्तिस्तत्रैकनाशादपरस्य नाशः ॥ २७ ॥
एकप्रवृत्तावपरप्रवृत्तिरध्यस्तयोश्चेन्द्रियवर्गबुद्धिः ।
विध्वस्तयोर्मोक्षपदप्रसिद्धिस्तत्राप्यसाध्यः पवनस्य नाशः ॥ २८ ॥
षडङ्गयोगस्य निषेवणेन मनोविनाशस्तु गुरुप्रसादात् ।
निमेषमात्रेण तु साध्य एव तस्मान्मनो नाशयतेऽमनस्कात् ॥२९॥
अनश्यतो नश्यति वायुरुग्रस्तस्मात्सुबुद्धीन्द्रियदेहनाशात् ।
अद्वैतबुद्धिः सहजस्थितस्य प्रकाशते सा स्वत एव तस्य ॥ ३० ॥
जित्वा वायुं विविधकरणैः क्लेशमूलैः कथञ्चि-
त्कृत्वा यत्नं निजतनुगताशेषनाडीप्रवाहान् ।
अश्रद्धेयां परपुरगतिं साधयित्वापि नूनं
विज्ञानैकव्यसनसुखिनो नास्ति मोक्षस्य सिद्धिः ॥ ३१ ॥

केचिन्मूत्रं पिबन्ति स्वमलमपिहिताः के च लालां गिलन्तः
केचित्कोष्ठप्रतिष्ठा युवतिभगगतं बिन्दुमूर्द्ध्वं नयन्ति ।
केचिद्ग्रासं चरन्तो निखिलतनुशिखा वायुसञ्चारदक्षाः
नैतेषां देहसिद्धिर्विगतिनिजमनोराजयोगादृते स्यात् ॥ ३२ ॥
केचित्तर्कवितर्ककर्कशधियोऽहङ्कारदर्पोद्धताः
केचिज्ज्ञातजटा निरन्तरमपि ध्यानैककर्माकुलाः ।
प्रायः प्राणिविमर्दनैकमनसो नानाविकारान्विता

दृश्यन्ते न हि निर्विकारमनसानन्दैकभाजो भुवि ॥ ३३ ॥
एकदण्डत्रिदण्डादि जटाभस्मादिकं तथा ।
केशलुञ्चननग्नत्वं दशाविविधधारणा ॥ ३४ ॥
उन्मत्तत्वत्वामभोज्यत्वपाषण्डव्रतवर्तिनः ।
इत्यादिलिङ्गग्रहणं नानादर्शनदर्शितम् ॥ ३५ ॥
उत्पन्नस्वात्मबोधस्य ह्युदासीनस्य सर्वदा ।
सदाभ्यासरतस्यैव नैकत्र ह्युपपद्यते ॥ ३६ ॥

तदा दृष्टिविशेषाश्च विविधान्यासनानि च ।
अन्तःकरणभावाश्च योगिनामुपयोगिनः ॥ ३७ ॥

अहङ्कारस्टताः केचिज्ज्ञात्वा शास्त्रसमुच्चयम् ।
उपदेशं न जानन्ति न च ग्रन्थशतैरपि ॥ ३८ ॥
सङ्कल्पमूलध्यानादिचिन्ताशतसमाकुलाः ।
क्लेशेनापि न विन्दन्ति प्राप्तव्यं स्थानमिच्छताम् ॥ ३९ ॥

वेदान्ततर्कोक्तिभिरागमैश्च नानाविधैः शास्त्रकदम्बकैश्च ।
ध्यानादिभिः सत्करणैर्न गम्यं चिन्तामणिं त्वेकगुरुं विहाय॥४०॥
तस्मान्नूनं सकलविलयो निष्कलाध्यात्मयोगा-
द्वायोर्नाशस्तदनु मनसस्तद्विनाशाच्च मोक्षः ।
सच्चिदेवं सहजममलं निष्कलं निर्विकारं
प्राप्तुं यत्नं कुरुत कुशलाः पूर्वमेवामनस्कम् ॥ ४१ ॥

अभ्यस्तैः किमु दीर्घकालमनिलैर्व्याधिप्रदैर्दुःखदैः
प्राणायामशतैरनेककरणैर्दुःखात्मकैर्दुर्जयैः ।
यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुः स्वयं तत्क्षणा-
त्प्राप्तुं तत्सहजस्वभावमनिशं सेवध्वमेकं गुरुम् ॥ ४२ ॥
दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्याद्वायुः स्थिरो यस्य विनोवरोधात् ।
चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात्स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ४३
समनस्कं सुशिष्येषु संक्रम्येन्द्रियजं सुखम् ।
निवारयन्ते ते वन्द्या गुरवोऽन्ये प्रतारकाः ॥ ४४ ॥
गुरुणा दर्शिते तत्त्वे दर्शनात्तन्मयो भवेत् ।
विविक्तम्पश्य आत्मानं मन्यते नात्र संशयः ॥ ४५ ॥
यथा सिद्धरसस्पर्शात्ताम्रं भवति काञ्चनम् ।
गुरूपदेशश्रवणाच्छिष्यस्तत्तन्मयो भवेत् ॥ ४६ ॥

विविक्ते विजने देशे पवित्रेऽतिमनोहरे ।
सुखासने समासीनः पश्चात्किञ्चित्समाश्रितः ॥ ४७ ॥
सुखस्थापितसर्वाङ्गः सुस्थिरात्मा सुनिश्चलः ।
लोहदण्डप्रमाणेन कृतदृष्टिः समभ्यसेत् ॥ ४८ ॥
शिथिलीकृतसर्वाङ्ग आनखाग्राशिखाग्रतः ।
स बाह्याभ्यन्तरं सर्वचिन्ताचेष्टाविवर्जितः ॥ ४९ ॥
यथा भवेदुदासीनस्तथा तत्त्वं प्रकाशते ।
स्वयं प्रकाशिते तत्त्वे स्वानन्दस्तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ५० ॥

आनन्देन च सन्तुष्टः सदाभ्यासरतो भवेत् ।
सदाभ्यासे स्थिरीभूते न विधिर्नैव च क्रमः ॥ ५१ ॥
न किञ्चिच्चिन्तयेद्योगी सदा शून्यपरो भवेत् ।
नकिञ्चिच्चिन्तनादेव स्वयं तत्त्वं प्रकाशते ॥ ५२ ॥
वाङ्मनःकायसंक्षोभान्प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।
दिशाऽऽचान्तमिवात्मानं सुस्थिरं धारयेत्सदा ॥ ५३ ॥
यावत्प्रयत्नलेशोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ।
श्रेयस्त्वमनसा प्राप्तं तावत्तत्त्वस्य का कथा ॥ ५४ ॥
औदासीन्यामृतैर्येन वर्द्धमानेन योगिना ।
उन्मीलितमनोमूलो जगद्वृक्षः पतिष्यति ॥ ५५ ॥
सदा जाग्रदवस्थायां सुप्तवद्योऽवतिष्ठते ।
श्वासोच्छ्वासविहीनस्तु निश्चितं मुक्त एव सः ॥ ५६ ॥
स्वप्नजागरणोपेता जन्तवो मुक्ततां गताः ।
योगिनस्तत्त्वसम्पन्ना न जाग्रति न शेरते ॥ ५७ ॥
स्वप्ने चिदंशशून्यत्वं जागरे विषयग्रहः ।
स्वप्नजागरणातीतमतस्तत्त्वं विदुर्बुधाः ॥ ५८ ॥
भावाभावद्वयातीतं स्वप्नजागरणातिगम् ।
मृत्युजीवननिर्मुक्तं तत्त्वं तत्त्वविदो विदुः ॥ ५९ ॥
यथा सुप्तोत्थितः कश्चिद्विषयान्प्रतिपद्यते ।
जागर्ति च तथा योगी योगनिद्रेक्षितो तदा ॥ ६० ॥
सर्वतो विवृता दृष्टिः समुद्भूता शनैःशनैः ।

परं तत्त्वंविनिर्देश्यं पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ ६१ ॥
निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपजायते ।
तं भावं भावयेद्योगी निश्चितं मुक्त एव सः ॥ ६२ ॥
प्रथमं निभृता दृष्टिः संलग्ना यत्रकुत्रचित् ।
स्थिरीभूता च तत्रैव विनश्यति शनैःशनैः ॥ ६३ ॥
प्रसह्य संकल्पपरम्पराणां संछेदने सन्ततसावधाना ।
आलम्बनाशादपचीयमाना शनैःशनैः शान्तिमुपैति दृष्टिः ॥ ६४ ॥
यथायथा समभ्यासान्मनसः स्थिरता भवेत् ।
वायुवाक्कायदृष्टीनां स्थिरता च तथातथा ॥ ६५ ॥
दृश्यं पश्यति येन पश्यति शनैराघ्रेयमाजिघ्रति
भक्ष्यं भक्षयति श्रुतिप्रियकरं श्राव्यं तथा शृण्वते ।
स्पर्शं स्पर्शयते गिरीन्वनशिखाप्रख्यं मनोज्ञक्रमाद्
द्वैताख्यस्य पदस्य तत्त्वपदवीं प्राप्तस्य सद्योगिनः ॥ ६६ ॥
यदा यच्च यथा यस्मात्स्थिरं भवति मानसम् ।
तदा तत्र तथा तस्मान्न तु चान्यं कदाचन ॥ ६७ ॥
यत्रयत्र मनो याति न निवार्यं मनस्ततः ।
निवारितं लयं याति वार्यमाणं तु वर्त्तते ॥ ६८ ॥
यथा निरङ्कुशो हस्ती कामं प्राप्य निवर्तते ।
अवारितं मनस्तद्वत्स्वयमेव विलीयते ॥ ६९ ॥
निवार्यमाणं यत्नेन धर्त्तुं यन्न हि शक्यते ।
तन्निष्ठता क्रमेणैव मारुतस्य जयोदयात् ॥ ७० ॥

दुर्निवार्यं मनस्तावत्तत्त्वं यावन्न विन्दति ।
विदिते तु परे तत्त्वे मनो नौस्तम्भकाकवत् ॥ ७१ ॥
यथातूली तुलाधारं चञ्चलं कुरुते स्थिरम् ।
जाते सौख्ये सदाभ्यासान्मनोवृत्तिस्तथात्मनि ॥ ७२ ॥
निष्पन्नाखिलभावशून्यनिभृतस्वात्मस्थितिस्तत्क्षणा-
न्निश्चेष्टः शवपादपाणिकरणो लीनाविकारस्थितिः ।
निर्मूलप्रविनष्टमारुततया निर्जीवकाष्ठोपमो
निर्वातस्थितदीपवत्सहजवान्पार्श्वस्थितैर्दृश्यते ॥ ७३ ॥
निक्षिप्ते कतके विहाय कलुषं यद्वद्द्रवेन्निर्मलं
निर्वातस्थितनिस्तरङ्गमुदकं स्वस्थस्वभावं परम् ।
तद्वत्सर्वमिदं विहाय सकलं देदीप्यते निष्कलं
तत्त्वं तत्सहजस्वभावममलं जाताऽमनस्कं ध्रुवम् ॥ ७४ ॥
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तौ निर्विषयं स्मृतम् ॥ ७५ ॥
मनोदृश्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित्सचराचरम् ।
मनसोऽप्युन्मनीभावो द्वैतभावं प्रचक्षते ॥ ७६ ॥
जायमानमनस्कं स्यादुदासीनस्य तिष्ठतः ।
मृदुत्वं च परत्वं च शरीरस्योपजायते ॥ ७७ ॥
अमनस्केक्षणं लोभकामक्रोधादिबन्धनम् ।
नष्टान्तःकरणस्तम्भे देहगेहं श्लथं भवेत् ॥ ७८ ॥
सहजेनामनस्केन मनःशल्यं वियोजयेत् ।

आतपत्रमिवास्तम्भं शरीरं शिथिलायते ॥ ७९ ॥
अमनस्कखनित्रेण समूलोन्मूलने कृते ।
अन्तःकरणशल्ये तु सुखी संजायते मुने ॥ ८० ॥
कदलीव महामाया समनस्केन्द्रियच्छिदा ।
अमनस्कफलं सूत्वा सर्वदैव विनश्यति ॥ ८१ ॥
इन्द्रियग्रामपदयोः श्वासनिःश्वासपक्षयोः ।
संछिन्नयोर्मनःपक्षी स्थिरः सन्नावसीदति ॥ ८२ ॥
श्वाससूत्रसमोपेतमिन्द्रियालयसङ्कुलम् ।
त्रोटयित्वा मनोजालं मीनवज्जायते सुखी ॥ ८३ ॥
प्रशान्तेन्द्रियसंघाते शुद्धबुद्धिसमन्वितः ।
प्राणापानौ ततो जित्वा मनःशक्रः सुखी भवेत् ॥ ८४ ॥
गुणत्रयमयीं रज्जुं सुदृढामात्मबन्धनीम् ।
अमनस्कक्षुरेणैव छित्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ८५ ॥
यथा संह्रियते सर्वमस्तं गच्छति भास्करे ।
कर्मजालं तथा सर्वममनस्के विलीयते ॥ ८६ ॥
इन्द्रियग्राहनिर्मुक्ते निर्धूते निर्मलामृते ।
अमनस्कह्रदे स्नातः परामृतमुपाश्नुते ॥ ८७ ॥

इत्युक्तमेतत्सहजामनस्कं शिष्यप्रबोधाय शिवेन साक्षात् ।
नित्यं ततो निष्कलनिष्प्रपञ्चं वाचामवाच्यं स्वयमेव वेद्यम् ॥८८॥
चित्ते च निश्चलीभूते यस्मान्मोक्षः प्रजायते ।
तस्मान्मोक्षं स्थिरीकुर्यादौदासीन्यपरायणः ॥ ८९ ॥

चतुर्विधा मनोऽवस्था विज्ञातव्या मनीषिभिः ।
विक्षिप्तं च गतायातं सुश्लिष्टं च सुलीनकम् ॥ ९० ॥
विक्षिप्तं तामसं प्रोक्तं राजसं तु गतागतम् ।
सुश्लिष्टं सात्विकं प्रोक्तं सुलीनं गुणवर्जितम् ॥ ९१ ॥
विक्षिप्तं च गतायातं विकल्पं विषयग्रहम् ।
सुश्लिष्टं च सुलीनं च विकल्पविषयापहम् ॥ ९२ ॥
ततोऽभ्यस्तेन योगेन निरालम्बो भवेद्यदि ।
तदा समरसीभूय परमानन्द एव सः ॥ ९३ ॥
अभ्यासतो मनः पूर्वं विक्षिप्तं चलमुच्यते ।
ततश्चलाचलं किञ्चित्स्वानन्दं च गतागतम् ॥ ९४ ॥
स्वानन्दनिश्चलं चेतस्ततः सुश्लिष्टमुच्यते ।
अतीव निश्चलीभूतं स्वानन्दे च सुलीनकम् ॥ ९५ ॥

———

एवम्भूतस्य कर्माणि पुण्यापुण्यानि सर्वशः ।
प्रयान्ति नैव लिम्पन्ति क्रियमाणानि साधुना ॥ ९६ ॥
उत्पन्नसहजानन्दसदाभ्यासरतः स्वयम् ।
सर्वसंकल्पसंयुक्तः स विद्वान्कर्म संत्यजेत् ॥ ९७ ॥
ये तु विद्यार्थविज्ञाने विद्वांस इति कीर्तिताः ।
आत्मतत्त्वं न जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा ॥ ९८ ॥
सांसारिकक्रियासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम् ।
कर्मब्रह्मोभयोर्भ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥ ९९ ॥

———

वृथा चैव परित्यक्तकर्मकाण्डवितन्त्रिताः ।
पाषण्डाः पण्डितम्मन्याः न ते किमपि जानते ॥ १०० ॥
न कर्माणि त्यजेद्योगी कर्मभिस्त्यज्यते ह्यसौ ।
कर्मणां मूलभूतस्य संकल्पस्यैव नाशतः ॥ १०१ ॥
यथायथा समभ्यासात्सङ्कल्पविलयो भवेत् ।
योगिनो भवति श्रेयान्कर्मत्यागस्तदातदा ॥ १०२ ॥

दातॄणां वै कुशलिनां सततं मोक्षमिच्छताम् ।
श्रद्धावतां सुशिष्याणां शास्त्रमेतत्प्रकाशयेत् ॥ १०३ ॥
शास्त्रमेतत्प्रयत्नेन सदाभ्यस्यं मुमुक्षुभिः ।
यस्य धारणमात्रेण स्वयं तत्त्वं प्रकाशते ॥ १०४ ॥
ॐकारत्रिविधैर्विचित्रकरणैः प्राप्यश्च वायोर्जय-
स्तेजश्चिन्तनमन्तरालकलनाच्छून्याम्बरालम्बनम् ।
त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं सत्त्वा मनोविभ्रमं
देहातीतमवाच्यमेकममनस्काख्यं बुधैः सेव्यताम् ॥ १०५ ॥
न दिवा जागर्त्तव्यं सुप्तव्यं नैव रात्रिभागेऽपि ।
[illegible]तावहनि च सततं [illegible]व्यं योगिना[illegible] नित्यम् ॥ १०६ ॥
[illegible]सहजसुस्थितपुरुष[illegible] हि कालभेदोऽस्ति
[illegible]यनवर्जितचिन्मात्रानन्दघनस्थानात् ॥ १०७ ॥
[illegible]यासात्स्वयं तत्त्वं प्रकाशते ।
[illegible]उपदेशादिना विना ॥ १०८ ॥

शुद्धाभ्यासस्य शान्तस्य सदैव गुरुसेवनात् ।
गुरुप्रसादात्तत्रैव तत्त्वज्ञानं प्रकाशते ॥ १०९ ॥

प्रकाशात्मिकया शक्त्या स्वप्रकाशः प्रभाकरः ।
प्रकाशयति यो विश्वं काशतेऽसौ प्रकाशकः ॥ ११० ॥

सर्वमेतच्चिदाकाशं ब्रह्मेति घननिश्चये ।
स्थितिं याति शमं याति जीवो निःस्नेहदीपवत् ॥ १११ ॥

एतत्परावारविदो वदन्ति तपस्विनो ज्ञानसमाधियुक्ताः ।
अनादिविज्ञानमजं पुराणं सोऽहं परं ब्रह्म जगत्समस्तम् ॥ ११२ ॥

ॐ

इत्यमनस्कखण्डे महेश्वरवामदेवसंवादेऽमनस्क-
विवरणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

सरस्वतीभवन-ग्रन्थमाला

(११०)

गोरक्षसंहिता

[प्रथमो भागः]

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

सरस्वतीभवन-ग्रन्थमाला

(११०)
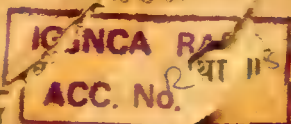
गोरक्षसंहिता

[प्रथमो भागः]

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

SARASVATĪBHAVANA-GRANTHAMĀLĀ

(Vol. 110)

General Editor

DR. BHĀGĪRATHA PRASĀDA TRIPĀṬHĪ 'VĀGĪŚA ŚĀSTRĪ'

Director, Research Institute,

Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya

Varanasi

GORAKṢASAṂHITĀ

(Part I)

Edited by

JANĀRDANA PĀṆDEYA

Sarasvati Bhavana Pustakalaya

Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya

VARANASI

1976

Published by—
Director, Research Institute,
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya,
Varanasi.

Available at-
Publication Section
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya
Varanasi-221002. (U. P.)

First Edition : 500 Copies
Price Rs. 50-10

Printed by—
Ghanashyama Upadhyaya,
Manager,
Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalaya Press
Varanasi.

सरस्वतीभवन-ग्रन्थमाला
(११०)

प्रधानसम्पादकः
डॉ० भागीरथप्रसादत्रिपाठी 'वागीशः शास्त्री'
अनुसन्धानसंस्थाननिदेशकः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये

गोरक्षसंहिता

(प्रथमो भागः)

सम्पादकः
श्रीजनार्दनपाण्डेयः
सरस्वतीभवनपुस्तकालयस्थः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये

वाराणस्याम्
२०३३ तमे वैक्रमाब्दे १८९८ तमे शकाब्दे १९७६ तमे खैस्ताब्दे

प्रकाशकः —
निदेशकः, अनुसन्धानसंस्थानस्य,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये,
वाराणसी ।

प्राप्तिस्थानम्—
प्रकाशनविभागः
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः,
वाराणसी–२२१००२ (उ० प्र०)

प्रथमं संस्करणम् : ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम् : ५०-१० रूप्यकाणि

मुद्रकः—
घनश्याम उपाध्यायः
व्यवस्थापकः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयीयमुद्रणालयस्य
वाराणसी ।

प्रास्ताविकम्

भारते वर्षे गोरक्षनाथस्य सिद्धस्यावधूतस्य नामधेयं महता समादरेण स्मृतं स्मर्यते स्मरिष्यते च। तदीयाः सिद्धिकथाः सन्ति प्रथिता ग्रामे ग्रामे जने जने। तदानीन्तना बहवो राजानो राज्ञ्यश्च तच्छिष्यत्वं प्रपन्ना इति तस्य प्रभावोऽनुमातुं शक्यते। भर्तृहरिस्तच्छिष्यत्वमङ्गीकृत्य वैराग्यसम्प्रदायप्रवर्तको जातः। वङ्गदेशाधिपतिर्गोपीचन्द्रस्तन्माता च भर्तृहरिभगिन्यपि तन्मार्गमनुजग्मतुः। एकादशखीस्ताब्दात् पञ्चदशखीस्ताब्दं यावद् व्यराजत प्रभावः सिद्धसम्प्रदायस्य। पश्चात् षट्कर्मभ्य उद्विग्नो जनस्तन्मार्गमनास्थाय भक्तिमार्गे मतिं दधौ। रसायनेन हठयोगसाधनेन चायमजरत्वममरत्वं चावापेति प्रसिद्धिः— 'इत्यादयो महासिद्धा हठयोगप्रभावतः, खण्डयित्वा कालदण्डं ब्रह्माण्डे विचरन्ति ते' (हठयोगप्रदीपिका १, ५–६)।

मीननाथापराभिधानस्य मत्स्येन्द्रनाथस्य शिष्यताङ्गीकारात् प्रागेष बौद्ध आसीदिति प्रवादः। तन्मतानुसारेण बौद्धमार्गदीक्षितस्य गोरक्षनाथस्य नामधेयमासीद् अनङ्गवज्रो रमणवज्रो वेति। यद्यपि शक्तिसङ्गमतन्त्रस्य ताराखण्डे (१, ३१) जैनागमस्य, द्विशतसंख्यानां चीनभेदानां बौद्धभेदानां चोल्लेखो विद्यते, तथापि बौद्धानां कालचक्रयाने शैवशाक्ततान्त्रिकप्रभावः सुस्पष्टः। सिद्धानां हठयोगो बौद्धैरङ्गीकृतः। द्वादशखीस्ताब्दे पर्याप्तं समादरं प्रचारं च प्राप्तवद्भ्यो हठयोगिभ्यः सिद्धेभ्यो मान्यता बौद्धैरर्पितेति तेषां नामानि बौद्धतन्त्रे समावेशितानि। गोरक्षनाथस्य तद्गुरोश्च प्रभावभूयिष्ठता नेपालदेशेषु न कस्याप्यविदिता।

इदानीमपि गोरक्षनाथप्रभावात् तत्र 'गोरखा' इत्याख्यो विश्वप्रथितो बलिष्ठो जनसंमर्दो विद्यत एव। नेपालेन सह त्रिविष्टपदेशस्य सम्बन्धो नेदीयान् इति नेपालीयबौद्धैरवलोकितेश्वरत्वेन पूजितो मत्स्येन्द्रनाथस्तत्सम्प्रदायसिद्धाश्च त्रिविष्टपीयबौद्धसिद्धपरम्परायां संनिवेशिताः। लुईपादापरपर्यायो मत्स्येन्द्रनाथश्चतुरशीतिसंख्याकेषु बौद्धसिद्धेषु प्राचीनतमसिद्धत्वेन संमतः। तारानाथकृतस्येतिहासस्य महामुद्रासिद्धयाख्ये चतुर्थ उच्छ्वासे गोरक्ष-भर्तृहरि-गोपीचन्द्रादीनां तान्त्रिकसाधकानां परिचयो दृश्यते। सिद्धान्तप्रमुखे क्रियाव्याख्याप्रधाने च पातञ्जलयोगदर्शने हठयोगिनां सिद्धानां नामानि नावाप्यन्ते। नैतावन्मात्रेण सिद्धसम्प्रदायस्यार्वाचीनता शक्यते साधयितुम्।

सिद्धसम्प्रदायोऽयं पुरातन आदिनाथाच्छङ्करादुद्गतः। साध्यानाम् (अद्यतनानां 'साध' इत्याख्यानाम्), सिद्धानां च प्रख्या पुरातनी। मत्स्येन्द्रनाथात् प्रभृति पुरातनोऽयं सिद्धसम्प्रदायो नाथसम्प्रदायतया प्रथामगात्। काश्मीराणां केरलानां च देशभेदात् कादि-

हादि-सादीत्याख्यानि त्रीणि मतानि नाथसम्प्रदाये प्रचलितानि। तत्रोपास्यदेव्यः सन्ति क्रमशः काली, तारा, सुन्दरी चेति।

शतसाहस्र्या गोरक्षसंहिताया इदं तावत् प्रकाश्यमानं कादिप्रकरणं विराजते भवतां हस्तगतम्। इह यन्त्राणां लेखनस्य, मन्त्रजपस्य, पूजायास्तत्फलभूतानां सिद्धीनां च विस्तरशो वर्णनं विद्यते। शाक्ततन्त्रस्योपदेशः सर्वेषां कर्तव्यो न भवति स्मेति शाक्ततन्त्रं सर्वदा गोपनीयतामभजत। तदीयानां क्रियाणामनुष्ठानं मन्त्राणां च जपनं परम्परागतेषु शिष्येष्वेव प्रवर्तते स्म। अपात्रेषूपदेशेन गुरुद्रोहः, शिवद्रोहः, आत्मद्रोहश्च मन्यते स्म। उपदेष्टा खलु दुःखी बुभुक्षापीडितः, व्यसनी, व्याधितश्च जायते स्म (गोरक्षसंहितायाम् ८, २१७–१९) इति प्रसिद्ध्या कादितन्त्रमिदं सुगुप्तमतिष्ठत्। 'निन्दका गर्दभाः प्रोक्ताः सर्वगुह्यप्रकाशकाः' (गो० सं० १०,१०६) इत्यत्रापि सर्वगुह्यप्रकाशकता निषिद्धा। कुतस्तरां नाम पुनर्भवेत् सुशक्यं तत्सिद्धान्तानां मुद्रणम्।

आधुनिके वाणिज्यप्रधाने युगे सिद्धसम्प्रदायपरम्परायां जातेन केनचिदसाधकेन ग्रन्थमातृकेयं नाशभयात् कस्मिंश्चित् पुस्तकालये समर्प्य महदुपकृतास्तान्त्रिका जिज्ञासवश्च। सत्यप्येवम्, कौलभाषाभाषिताः सिद्धान्ता मन्त्रादयश्च न भवेयुः सर्वेषां सुबोधाः (गो० सं० १०, १८८; १९६)—

> वर्णैर्द्वादशभिर्नेत्रम् अस्त्रं चैव चतुर्दशैः।
> एतत् कौलिकभाषायां कथितं तु सप्रत्ययम्॥ इति।
> कौलभाषोदितेयं तु सा च सिद्धा कुलान्वये।
> अशेषार्थप्रदा देवि अनेकार्थप्रबोधिका॥ इति।

अत एव—मांसपूर्णमुखो भूत्वा बलिना मार्जितं तनुम् (११, ५), अलिना पूरयेद् वक्त्रं मांसपूर्णं वरानने (११, २५), पिशितासवसंयुक्तः (११, ४२), पिशितासवमिश्रैश्च पुष्पधूपसमन्वितैः (११ ६७), आममांसेन नैवेद्यं तृथग्रूपं प्रदापयेत् (११, ६५), अर्घ्यं देयं तु रक्तेन स्वस्वबीजैर्वरानने (११, ६९), सदन्तमानयेच्छिरम् (११, ७७); प्रथमेऽहनि छागान्त्रं रक्तमिश्रं च होमयेत्, पश्चाद् घातं प्रकुर्वीत कृष्णवस्त्रस्तु दारुणम् (११, ८१) इत्यादयः प्रयोगाः कौलभाषाज्ञानेनैव वेदितव्याः, न तु लौकिकभाषया। ग्रन्थस्यास्य लौकिकसंस्कृतभाषा त्वपप्रयोगपूर्णा। तत्र—खानपानैरनेकधा (४, ६०), खानपानान्यनेकधा (२७ २१), असिकट्टारिकोज्ज्वला (७, ११९) इत्येतादृशा अपभ्रंशदेशीभाषामयाः खानपान-कट्टारिकादिशब्दप्रयोगा ग्रन्थस्यास्य रचनाकालादिनिर्णये नूनं साहायकमर्पयिष्यन्ति।

१८९७ तमे शकसंवत्सरे पण्डितप्रसन्नकुमारकविरत्नेन सम्पादितो गोरक्षसंहिताया योगखण्डः। तस्या इदं कादिप्रकरणमद्यावधि कुतोऽपि न प्रकाशितम्। यद्यपि सरस्वती-

भवनपुस्तकालयेऽस्याः संहितायाः षष्ठपटलं यावद् मातृकाऽऽसीत् समुपलब्धा, तथापि तस्या अपूर्णात्वात् कीटभक्षितत्वाच्च श्रीजनार्दनपाण्डेयो महतायासेन कादिप्रकरणस्य सम्पूर्णां विंशतिपटलात्मिकां मातृकां समधिगम्य तत्सम्पादनार्थमधान्मनः। लिपिभ्रंशात्, लेखकप्रमादात्, भाषादोषाच्च विहितानामसंगतीनामपाकरणाय संपादकेन तस्मिन्नेव श्लोके कोष्ठमध्ये तदीयस्य शुद्धस्य रूपस्य निवेशाय प्रयत्तम्। तस्यायं भूरिश्रमः प्रतिपृष्ठम् अवश्यं निरीक्षणीयः। यद्यपि पाठालोचनाय मातृकान्तरोपस्थितिर्नितराम् आवश्यकी मन्यते, तथापि मातृकान्तराभावेऽपि विधिमिमं समास्थाय सम्पादकेन प्रायशोंऽशतस्तत्पूर्तिर्विहितैव। किन्तु तन्त्रग्रन्थत्वात् कीटभक्षितांशस्त्रुटितांशो वेह नोहापूर्वकं पूर्तिमानीतः, बहुत्र प्रतिपन्ना व्याकरणदोषाश्छन्दोदोषाश्चापि नापाकृताः।

इतः पूर्वं विश्वविद्यालयेनानेन 'सिद्धसिद्धान्तसंग्रहः' 'गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहः' चेति ग्रन्थद्वयी प्रकाशिता सिद्धसम्प्रदायस्य। द्वितीयग्रन्थस्य द्वितीयमुपबृंहितं संस्करणमपि हायनात् पूर्वमेवेतः प्राकाश्यमानीतम्। अयं तावदस्य सम्प्रदायस्य प्रकाशितस्तृतीयो ग्रन्थो जिज्ञासूनां मनोमोदाय बाढं सम्पत्स्यते। सिद्धसम्प्रदायस्य बहवोऽज्ञातचराः सिद्धान्ताः प्रकाशमायास्यन्ति सहैवास्य प्रकाशनेनेति ध्रुवं विश्वसिति।

कोजागर्याम्,
२०३३ वैक्रमाब्दे
(७-१०-७६ खीस्ताब्दे)

भागीरथप्रसादत्रिपाठी 'वागीशः शास्त्री'
अनुसन्धानसंस्थाननिदेशकः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये

॥ श्रीः ॥

* त्र्यक्ष गोरक्ष रक्ष माम् *

उपोद्‌घातः

भारतीयैर्मनीषिभिर्युगभेदेनाचारभेदोऽपि विहितः। यथा चोक्तं कुलार्णवे—

कृते श्रुत्युक्त आचारस्त्रेतायां स्मृतिसंभवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसंमतः॥ इति।

एवं कलौ शक्ति-साधनहीनानां जनानां कल्याणायागमसंमत एवाचारोऽभिहितः। आगमशब्दस्य निरुक्तिः श्रीमद्भिर्वाचस्पतिमिश्रैरेवं कृता—"आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्मादभ्युदयनिःश्रेयसोपायाः स आगमः" (तत्त्ववैशारदी १०७)। अर्थात् यच्छास्त्रं भोगोपायान् मोक्षोपायांश्च बुद्धावारोहयति-प्रस्फुरयति तदागमपदेनाभिधीयते। उपास्यदेवताभेदेन ते आगमाः प्रायस्त्रिधा विभक्ताः सन्ति। वैष्णवागमाः, शैवागमाः, शाक्तागमाश्च। दार्शनिकभूमिकायां त्विमे द्वैतप्रधाना द्वैताद्वैतप्रधाना अद्वैतप्रधानाश्च वक्तुं शक्यन्ते। एतेषु च तत्तदुपास्यदेवतायाः स्वरूपं गुणाः कर्माणि च विविच्यन्ते, तद्विषयकमन्त्राणामुद्धारः क्रियते, तानेव मन्त्रान् यन्त्रेषु संयोज्य तत्र तद्देवताया ध्यानमुपासनाप्रकारश्चाभिधीयते। यथा वैदिक्यां स्मार्तायां पौराणिक्यां चोपासनायां प्रायः सर्वेऽधिकृता भवन्ति न तथास्यामागमोक्तायाम्। अत्र तु क्रियाया वैशिष्ट्यं भवति गुरोश्च प्राधान्यम्। गुरुर्यमुपासकं दीक्षायै अधिकृतं मनुते तस्यैव शक्तस्य साधना सफला भवति नान्यस्य।

एते चागमग्रन्थाः केचन तन्त्रशब्देनान्ये संहितापदेनापरे च यामलाभिधानेन व्यवह्रियन्ते। तदित्थमेतेषां परिगणनम्—

कुमारी योगिनी काली वाराही कुब्जिका परा।
नारायणी मुण्डमाला चामुण्डा भुवनेश्वरी॥

गौतमी समया सौत्रामणिर्विजयमालिनी।
लीलावती गुह्यसिद्धिर्मालिनी परमेश्वरी॥

प्रचण्डचण्डिका शम्भुर्नित्या कात्यायनी तथा।
फेत्कारी भैरवी भूतसिद्धिः सिद्धेश्वरीति च॥

मेरुनीलमतङ्गाश्च शक्तिसङ्गमभैरवौ।
साङ्ख्यायनं किरणाख्यं गन्धर्वभूतभैरवौ॥

वीरार्दनं वीरभद्रं रुद्रकालानलोत्तरे ।
सिद्धसारस्वतं हाहारावो मन्थानभैरवः ॥
सिद्धेश्वरी विश्वसारस्तथा बौधायनं पुनः ।
माहेश्वरमहाहारौ कालाग्निश्च मृडान्यपि ॥
एतेषामन्ततो ज्ञेयस्तन्त्रशब्दः पृथक्पृथक् ।
आदिनाथो महाकालो दक्षिणामूर्तिरेव च ।
सुरेन्द्रब्रह्मगोरक्षा वैशम्पायन एव च ॥
नन्दिकेश्वरवायव्यौ वाराही शाम्भवीति च ।
सनत्कुमारः श्रीकण्ठो ह्यगस्त्यतत्त्वसारकौ ॥
वसिष्ठः पुनरेतेषामन्ते स्यात् संहिताभिधा ॥
ब्रह्मविष्णुरुद्रसिद्धदेव्युमाचन्द्रशक्तयः ।
एतेषामन्ततो ज्ञेयं यामलं चाष्टसंज्ञकम् ॥

[आगमोत्पत्त्यादिवैदिकतान्त्रिकनिर्णयः[१]]

एतेष्वागमग्रन्थेषु संहितान्तत्वेन गोरक्षपदस्याप्युक्तत्वादस्या गोरक्ष-संहितायाः प्रामाण्यं निर्विवादम् । मन्ये संहितापदेन ग्रन्थस्यार्षत्वं वैपुल्यं च सूच्यते । यथा अस्या एव गोरक्षसंहितायाः पुष्पिकायां "शतसाहस्र्यां गोरक्ष-संहितायां" मिति "शतसहस्रखण्डान्तर्गतश्रीमतोत्तरखण्डे" इति च दृश्यते, एतेनास्य ग्रन्थस्य विशदत्वमनुमातुं शक्यते ।

ग्रन्थकृद्विषये किञ्चित्

अस्याः संहिताया गोरक्षपदेन संपृक्तत्वादियं गोरक्षनाथप्रणीतेति सुवचम । अयं च गोरक्षनाथो नाथसम्प्रदायस्य विश्रुत आचार्यो भारतीयमहाविभूतिष्वन्य-तमश्चेत्यत्र न कस्यापि सन्देहलेशः । यद्यपि नाथसंप्रदायस्य प्रवर्तक आदिनाथः साक्षाच्छिव एव तथापि मत्स्येन्द्रनाथ-गोरक्षनाथ-जालन्धरनाथप्रभृतयो नवनाथाः ८४ सिद्धास्तत्र महाप्रभावा बभूवुः, येषां नामानि भारतीयजनजिह्वास्वद्यापि वरीवृतति, येषां चोपदेशा भारतीयसंस्कृतेरभिन्नाङ्गत्वमुपगताः ।

मत्स्येन्द्रनाथः

गोरक्षनाथविषये विवेचनात्पूर्वं मत्स्येन्द्रनाथविषयकं विवेचनमा-वश्यकं यतो ह्यनयोः संबन्धो गुरुशिष्यरूपः प्रथितो बहुचर्चितश्च । आकश्मीरात्

---

१. द्रष्टव्यम्—म० म० हरप्रसाद शास्त्रिसंपादितं रायलएशियाटिक सोसाइटी कैटलाग Vol. III Part II, सं० ६२२३ ।

कुमारीपर्यन्तं सहस्रश आख्यायिका मत्स्येन्द्रसंबन्धिन्यो विविधरूपाः प्रचलिताः सन्ति, प्रायः सर्वत्रैव गोरक्षनाथस्तासु संबद्धो दृश्यते। अयं च मत्स्येन्द्रनाथः, मच्छन्दः, मच्छन्दरनाथः, मत्स्यघ्नः, मत्स्येन्द्रः, मीननाथ इत्यादिभिर्बहुभिराख्याभिर्जनैर्ज्ञायते स्तूयते च। अस्य चैतान्यभिधानानि किंमूलकानीत्यत्रापि विदुषां नैकमत्यम्। कौलज्ञाननिर्णये चोक्तम्—"कदाचित् कार्तिकेयेन कौलागमशास्त्रमपहृत्य समुद्रे प्रक्षिप्तम्, तच्चैकेन मत्स्येन निगीर्णम्, तदा स्वयं भैरवो मत्स्येन्द्ररूपेणावतीर्य समुद्रं प्रविश्य तस्य मत्स्यस्योदरं विदार्य तच्छास्त्रं समुद्धार, स एवायं मत्स्येन्द्रनाथः मत्स्यघ्न इत्यप्युच्यते" इति। कश्मीरशैवागमस्य सुप्रसिद्धेनाचार्येणाभिनवगुप्तपादेन स्वकीये तन्त्रालोके "मच्छन्द" नाम्नायं स्तूयते, इयं च तदीया व्युत्पत्तिः—

रागारुणं ग्रन्थिविलावकीर्णं यो जालमातानवितानवृत्ति-
कलोम्भितं बाह्यपथे चकार स्यान्मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः॥
(तन्त्रालोके १।१७)

नेपालदेशे चायमवलोकितेश्वरावतार इति प्रसिद्धः। यत्किमपि स्यादिदं तु निर्विवादं यदादिनाथानन्तरं सर्वाधिकप्रसिद्धोऽयमस्मिन् संप्रदाये। उक्तञ्च वज्रयोगिनी-शिलालेखे—

आदिनाथो गुरुर्यस्य गोरक्षस्य च यो गुरुः।
मत्स्येन्द्रं तमहं वन्दे महासिद्धं जगद्गुरुम्॥ इति।

स्थितिकालः

सिद्धानां महापुरुषाणां कालो न निर्णेतुं शक्य इत्यस्माभिः गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहस्य भूमिकायां प्रतिपादितं तत्तु तत्रैव द्रष्टव्यम्, विवदन्तां नामैतिहासिकाः कालविषये, न वयं क्षणैकमपि कल्पनाकाशे चङ्क्रमितुं समीहामहे, इदं तु ब्रवीतुं शक्नुमो यदभिनवगुप्तपादैः स्वकीयग्रन्थे सादरं स्मर्यमाणत्वान्न ततोऽर्वागस्य स्थितिकालः कथमपि निर्धारयितुं शक्यते। ते चाभिनवगुप्तपादा ९९१ ईसवीयवत्सरे क्रमस्तोत्रं विनिर्ममुः। नेपाले चावलोकितेश्वरो मत्स्येन्द्र इति मन्यते। तत्रत्ये शिलालेखे च वर्तते—

अतीतकलिवर्षेषु शून्यद्वन्द्वरसाग्निषु। (३६२०)
नेपाले जयति श्रीमानार्यावलोकितेश्वरः॥ इति।

एतेन सिद्ध्यति यत् ५२० ईसवीये वत्सरे कदलीदेशस्थो मायावशंगतो गोरक्षनाथेन कृतोद्धारो मत्स्येन्द्रनाथः नेपालमागतस्तत्र च प्रथमं जनैरवलोकित इत्यवलोकितेश्वर इत्युच्यते। एवमीसवीयषष्ठशत्याः प्रारम्भे पूर्णसिद्धस्य तस्य स्थितिः सिद्ध्यति। संभाव्यते चैतत्।

रचनाः

मत्स्येन्द्रनाथविरचितेषु ग्रन्थेष्वेते प्रसिद्धाः—

१. मत्स्येन्द्रसंहिता
२. कौलज्ञाननिर्णयः
३. कौलावलीनिर्णयः
४. अकुलवीरतन्त्रम्
५. कुलानन्दः
६. कुलार्णवः
७. कौलार्णवः
८. महाकौलार्णवः
९. शाबरचिन्तामणिः
(पञ्चद्रविड़भाषात्मकमन्त्रयुतः)

इतः परमपि बहवो ग्रन्था एतत्प्रणीता नेपालदरबारग्रन्थसंग्रहे जोधपुर-राजसंग्रहे च सन्तीति श्रूयते। अन्या चैका मत्स्येन्द्रसंहिता बृहदाकारा मुक्तापुर-मङ्गलूरतः प्रकाशिता वर्तते सा च यद्यपि मत्स्येन्द्रप्रणीतसंहितातो भिन्ना तथापि मत्स्येन्द्रसंबन्धिनी प्रचुरा सामग्री तत्र दृश्यते।

मत्स्येन्द्रप्रवर्तितं योगिनीकौलमतम्

किं तावत्कौलज्ञानमिति विचारणायां कुलं नाम शक्तिः, अकुलं च शिवः। यथा च गोरक्षसंहितायाम्—

अकुलं शिवमित्युक्तमादिभूतमनामयम्।
अव्यक्तं च निराभासं निस्तरङ्गं निराकुलम्॥
सुसूक्ष्मं च निरालम्बं जगद्व्यापि निरञ्जनम्।
अव्यक्तं व्यक्तिमायातं तस्याऽव्यक्तस्वरूपतः॥
तस्य देहात्समुद्भूता इच्छाशक्तिः पराऽव्यया।
तेन जाता वरारोहे पञ्चाशत्कुलनायिकाः॥

[गो० सं० कादिप्रकरणे १२।१०३-१०५]

कुलेनाकुलस्य संबन्धकरणमेव कौलज्ञानम्, कुलाकुलयोः सामरस्यमिति यावत्, एतच्च यत्र प्रवर्तते स कौलो मार्गः। यथाह सौभाग्यभास्करे—

कुलं शक्तिरितिप्रोक्तमकुलं शिव उच्यते।
कुलेऽकुलस्य संबन्धः कौलमित्यभिधीयते॥ इति।

यद्यपि नाथमार्गो विशुद्धयोगमार्ग एव तथापि कौलकापालिकादिमार्गाणा-मपि प्रवर्तयिता श्रीआदिनाथ एवेति गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहे (पृ० १४) प्रतिपादि-तम्। एतेनायाति यत् मत्स्येन्द्रनाथोऽपि पूर्वं नाथमार्गीयविशुद्धयोगाभ्यासपर एवाऽसीत् किन्तु यथा लोकवादेषु प्रसिद्धिरस्ति यत् कामरूपं गतेन तेन योगिनीनां

वशङ्गतेन कौलो मार्गः स्वीकृतः, स एव च तेन पूर्वप्रवर्तितात्कौलमार्गात् भिन्नरूपो योगिनीकौलनाम्ना प्रवर्तितः।

कौलज्ञाननिर्णये चोक्तम्—

तस्य मध्यादिदं शास्त्रं सारभूतं समुद्धृतम्।
कामरूपे त्विदं शास्त्रं योगिनीनां गृहे गृहे॥ इति।

एतेनाप्यनुमातुं शक्यते यत्तेन कामरूपं गतेनैवेदं मतं गृहीतमिति। द्विविधो हि मोक्षमार्गः, प्रवृत्तिमार्गो निवृत्तिमार्गश्च। कुलसाधनायां विहितेन विधिना कुलद्रव्याणि संस्कृत्य तत्सेवनेन सिद्धिलाभपूर्वकसप्तविधोल्लासावस्थानां क्रमशः प्राप्तिस्ततश्च ब्रह्मानन्दानुभव इत्येष प्रवृत्तिमार्गः कौलानाम्। विषय-विरागपूर्वकं यमनियमाद्यष्टाङ्गयोगसाधनद्वारा समाध्यनन्तरं निर्विकल्पकानन्दानु-भूतिरित्येषो निवृत्तिमार्गो योगिनाम्। प्रकारान्तरेणेदं वक्तुं शक्यते यत् योगी प्रथममेवान्तरङ्गोपासनायां प्रवृत्तो भवति कौलश्च बहिरङ्गोपासनयान्तरङ्गोपासनो-न्मुखीभूय प्रवर्तत इति। कौलानामयं विश्वासो यत् निर्विकल्पकानन्दानुभवात्पूर्वं योगी यमनियमादिसाधनायां केवलं कष्टमेवानुभवति। योगस्य भोगवर्जित-त्वात्। किन्तु कौलस्तु भोगान्भुक्त्वैव योगं लभत इति श्रेष्ठतमः कौलमार्गः, इति। यथा—

यत्रास्ति भोगो न तु तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न तु तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसाधकपुङ्गवानां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

अस्याश्च कौलसाधनायाः प्रस्तुतया गोरक्षसंहितया कः संबन्ध इति तु वर्ण्य-वस्तुनिरूपणे प्रतिपादयिष्यते।

जालन्धरनाथः

यद्यपि नवनाथविषयकं किमपि कथनमत्राप्रासङ्गिकमिव प्रतिभाति तथापि गोरक्षसंहितायां नवमपटले जालन्धरनाथस्य तन्त्रविधानमुक्तमतस्तद्विषयकं किञ्चिद् विवेचनमुचितम्। अयं जालन्धरनाथः पूर्णसिद्धः सिद्धिप्रदश्चेति त्वेतेनैव प्रतीयते यदेतस्य स्तोत्रं मन्त्रो यन्त्रश्च जनैः पठ्यते जप्यते पूज्यते च। अयं च त्रिगर्तदेशीये सुप्रसिद्धे जालन्धरपीठे प्रादुर्बभूव, अतएवास्य नाम जालन्धर-नाथ इति जनैरुच्यते, इत्येका परम्परा। योगिसम्प्रदायाविष्कृतौ तु हस्तिनापुरस्थस्य राज्ञो बृहद्रथस्य यज्ञाग्नेः प्रकटीभूय ज्वालेन्द्रनाथाभिधेयोऽयं जालन्धरपीठे साधनामकरोदतः जालन्धरनाथेति विश्रुतोऽभूदित्यपरा। परन्तु गोरक्षसंहितायां साक्षान्महाकालगेहिन्या आदिशक्तेः पुत्रोऽयमुक्तः। इयं च तन्निरुक्तिस्तत्र—

सर्पकञ्चुकवद्देहं त्यक्त्वा त्यक्त्वा पुनर्युवा।
स सदैव युवा तिष्ठेत् समयाविषयीकृतः॥

श्रीमज्जालन्धरो नाथस्तस्याः पुत्रो हि कुब्जिके ।
मायाजालावृतो यस्मात् करालवदनादभूत् ॥
तस्माज्जालन्धरो नाथो लोके ख्यातो भविष्यति ॥
[गो० सं० कादिप्रकरणे ९।१०-१२]

यः कोऽपि वा भवेदयमेतत्तु निश्चितमेव यत् सुप्रसिद्धेन जालन्धरपीठेन सहास्य कश्चित् संबन्धोऽस्त्येव। तन्त्रमहार्णवे नवनाथानां या वासभूमयो निर्दिष्टास्तत्रोक्तम् ।

जालन्धरो वसेन्नित्यमुत्तरापथमाश्रितः ।
ज्वालामुखी पञ्चक्रोशवनमुत्तरमाश्रितः ॥ इति ।

इदं च ज्वालामुखीक्षेत्रं जालन्धरपीठान्तर्गतमेव। हठयोगप्रक्रियायां सुप्रसिद्धो जालन्धरो नाम बन्धो मन्ये एतेनैव प्रवर्तितः स्यात्। भोटदेशीय-परम्परायामयं मत्स्येन्द्रनाथस्य गुरुरुच्यते। क्वचिच्च आदिनाथस्य शिष्यो मत्स्येन्द्रनाथस्य सतीर्थ्य इति। यः कोऽपि वा भवतु मत्स्येन्द्रनाथगोरक्षनाथाति-रिक्तोऽयमेव विपुलं विश्रुतो नाथसिद्धेषु।

गोरक्षनाथः

नवनाथानां चतुरशीतिसिद्धानां च या नामावल्यः प्राचीनग्रन्थेषु दृश्यन्ते तासु प्रायः गोरक्षनाथस्य नामावलोक्यते। यथा महार्णवतन्त्रे, वर्ण-रत्नाकरे, हठयोगप्रदीपिकायां, कौलावलीतन्त्रे, श्यामारहस्ये, सुधाकरचन्द्रिकादिषु च। यत्र च गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहादिषु न दृश्यते तत्र गोरक्षनाथस्तदुपरिवर्ती साक्षादीश्वरसंतानरूपो वा महेश्वरावताररूपो वा स्वीक्रियते। वस्तुतोऽस्मिन् देशे गोरक्षनाथो यादृशीं विपुलां प्रसिद्धिमाप न तादृशीमन्यः कोऽपि महापुरुष इत्यसन्दिग्धं वक्तुं शक्यते। गोरक्षशब्दस्य निरुक्तिविषये गोरक्षनाथस्तोत्रे कथ्यते—

गकारो गुणसंयुक्तो रकारो रूपलक्षणः ।
क्षकारेणाक्षयं ब्रह्म श्रीगोरक्ष नमोऽस्तुते ॥ इति ।

गोरक्षोपनिषदि च "गाः इन्द्रियाणि रक्षतीति गोरक्षः" इति। योगप्रचा-रिणीसभाकाशीतः प्रकाशिते "गोरक्षशब्दनिरुक्ति" नामके ग्रन्थे तु "रक्षतीति रक्षः गवां रक्षः गोरक्षः, अर्थात् यावत् गोपदवाच्यं यो रक्षति स गोरक्षः" इति लभ्यते। अत्रैवेदमपि दृश्यते यत् गोरक्षपदम् अथर्ववेदे, शिवपुराणे, ब्रह्माण्ड-पुराणे, स्कन्दपुराणीये केदारखण्डे, मार्कण्डेयपुराणे, महाकालसंहितायां, योगशास्त्र-कल्पद्रुमादौ च लभ्यते। एतेन तदाख्यानकं प्रमाणितं भवति यत् चतुर्ष्वपि युगेषु गोरक्षावतारः समभूदिति।

यद्यपि गोरक्षनाथस्य जीवनवृत्तविषये प्रामाणिकसामग्र्यभावात् न किमपीदमित्थन्तया वक्तुं शक्यते, तथापि लोकप्रचलितैराख्यानैः किंवदन्तीभिर्विश्वासैर्गोरक्षनाम्नोपलब्धामी रचनाभिश्च किञ्चित्तु प्रवर्त्यत एवानुमातुम्।

नेपाले कथेयं प्रचलति यत् कस्यैचित्पुत्रार्थिन्यै भगवान् महेश्वरो विभूतिं ददौ, तया च तत्राविश्वस्तया सा गोमयराशौ प्रक्षिप्ता, द्वादशवर्षानन्तरं तत्रैव गोरक्षः प्रादुर्बभूव। कदाचित्तत्र पर्यटन् मत्स्येन्द्रनाथो विलक्षणप्रतिभाशालिनं दृष्ट्वा तं शिष्यत्वेनोपनीतवान् इति। क्वचिच्च श्रूयते दक्षिणदेशे गोदावरीतटे काचिद्ब्राह्मणी पुत्रमसूत स च द्वादशवर्षं यावत् गाश्चारयन् मत्स्येन्द्रनाथेन संगतस्तत एव गोरक्षाख्यां विपुलां योगसिद्धिं च लेभे इति। योगिसम्प्रदायाविष्कृतावपि गोदावरी तटे चन्द्रगिरिनामके स्थाने गोरक्षसहस्रनामस्तोत्रे च दक्षिणदेशस्थे बड़वसंज्ञके स्थाने तस्योत्पत्तिर्वर्णिता। एवमेव वङ्गीयाः वङ्गदेशं, सौराष्ट्राश्च कच्छदेशं केचन पञ्चालप्रदेशमपि तस्य जन्मभुवं वदन्ति।

अहं तु मन्ये भगवता गोरक्षनाथेन बाल्य एव संन्यस्तम्। संन्यासग्रहणानन्तरं पूर्वाश्रमस्य नामादि सर्वं परिवर्तितं भवति तच्च जन्मान्तरवन्न कदापि स्मर्यते। अयमपि यदा लोकैर्ज्ञातस्तदा सिद्धरूप एव। अतोऽस्य जन्मादिविषये न किमपि निश्चेतुं शक्यते। तथापि चरित्रस्य परमोन्नततया, साधनायाः पवित्रतया, जीवनस्य संयमवत्तया, निराडम्बरतया च, एतन्नाम्नोपलब्धग्रन्थानां पाण्डित्यपूर्णतया चैतदवश्यं वक्तुं शक्यते यदयं जन्मना ब्राह्मणः संस्कृतस्य संस्कारसंपन्नो ज्ञाताऽसीदिति। प्राचीनतान्त्रिकसाधनापरम्पराणामवस्थागतं क्रमिकविकासं स सम्यक्तया बुबोध। बौद्धादिभिः साधनाया यद्विगर्हितं रूपं प्रकटितमासीत् तत्तेन परिमार्जितम्। शैवसम्प्रदायानां लिङ्गायत-पाशुपत-कापालिक-कालमुखादीनां लोकेऽनादृतानामपि तेन सिद्धसम्प्रदायरूपेण सदाचारपरायणं संयमपूर्णजीवनमयं संघठनं प्रवर्तितम्। आदर्शानुकूलं स्वजीवनचरितं परिदर्शयता तेन साधनागतपूर्णतया सह चारित्रिकी पूर्णतापि प्रकटिता। श्रूयते कथासु चतुर्णां तेषां सिद्धानां महादेव्या यदा परीक्षणं कृतं तदा गोरक्षनाथ एव तेषु सफलीभूतः। तेन चाप्रतिमसुन्दर्यास्तस्या मातृरूपं स्वीकृत्य तदुत्सङ्गस्थेन बालरूपेण तदीयस्तन्यामृतमाकाङ्क्षितम्। मत्स्येन्द्रोद्धारकाले कामरूपं गतः सः स्वगुरुवन्न तासु रेमे। कामिनीमोहं परित्याजितोऽपि यदा मत्स्येन्द्रः काञ्चनमोहं न परिजहौ सुवर्णमुद्रामयीं कन्थां दधार तदा गोरक्षनाथेन स्वयोगसिद्धया मार्गे स्वर्णमयः पर्वतो निर्मितः, तं दृष्ट्वा स्वमोहं विगर्हयन् मत्स्येन्द्रस्तत्क्षणं कन्थां तत्याज। तेन योगसिद्धिजन्यचमत्काराणामपि यत् प्रदर्शनं कृतं तदपि किञ्चित्कल्याणमुद्दिश्यैव। श्रूयते एकदायं नेपालं गतः, तत्रानादृतेनानेन समग्रं मेघमण्डलं योग-

सिद्धया सञ्चितं तदुपरिचायमासनं बद्ध्वोपविवेश। द्वादशवर्षाणि यावत् मेघानवरुध्योपविशतोऽस्य तत्र देवो न ववर्ष। अनावृष्ट्या क्षीणप्राया जनता नृपश्च मत्स्येन्द्रं शरणं ययौ। यदा मत्स्येन्द्रस्तत्रागतस्तदा गुरुं दृष्ट्वा तत्पादयोः प्रणमितुं गोरक्षनाथ आसनं जहौ, तदैवासनत उन्मुक्ता मेघास्तत्र ववृषुः। अद्यापि मृगस्थलीनामके तत्र स्थाने शिलोत्कीर्णोऽयं श्लोकः—

मृगस्थली स्थली पुण्या भालं नेपालमण्डले।
यत्र गोरक्षनाथेन मेघमालाऽऽसनीकृता॥

एतदसन्दिग्धतया वक्तुं शक्यते यद् गोरक्षनाथस्तदानीन्तनः प्रमुखतमो धर्मगुरुरासीत्। तस्य स्फटिकावदातं चरितम्, भावावेशेन नितरामनाविला कुशाग्रा च बुद्धिः, शुद्धं जीवनम्, सात्त्विकी वृत्तिः, अखण्डं ब्रह्मचर्यम्, शास्त्रेषु बहुमुखी प्रतिभा, निर्भीकं व्यक्तित्वं च तं भारतीयमहापुरुषेषु प्रथमगणनायामास्थापयन्। तेन सर्वाभिः साधनाभिः साररूपं सर्वं गृहीतं केवलं ज्ञानोपासकेन भक्तिर्नैव गृहीता, "गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग" इति तत्कृते प्रसिद्धमभवत्।

गोरक्षदर्शनम्

यद्यपि नाथसंप्रदायस्य सर्वमपि दार्शनिकं तत्त्वं गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहे विस्तरेण प्रतिपादितम्, तथापि गोरक्षनाथेन तस्य यद्विशदीकरणं कृतं तत्तस्य रचनासु स्पष्टतया परिदृश्यते, विशेषेण सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ। पिण्डब्रह्माण्डयोः समतत्त्वतैवास्य दर्शनस्याधारभित्तिः, तत्प्रतिपादनाय षट्त्रिंशत्तत्त्वानां क्रमशो विकासोऽत्र दर्शितः। अयमेव विकासः सिद्धसिद्धान्तपद्धतौ पिण्डोत्पत्तिप्रकरणे विवृतः। स एव परपिण्डम्, आद्यपिण्डम्, साकारपिण्डम्, प्राकृतपिण्डम्, अवलोकनपिण्डश्चेति क्रमेण सूक्ष्मात् परमशिवात् स्थूलतमं यावत् सृष्टिप्रक्रियाया विकासः। प्रलयावस्थायां शिवोऽव्यक्तरूपेण तिष्ठति। इयं च तस्य स्वयमवस्थोच्यते। अस्मिन्नेव शिवे सिसृक्षोत्पद्यते, इयमेव सिसृक्षा शक्तिरित्याख्यायते। स च शिवस्तदानीं सगुण इत्युच्यते। यद्यपि सिसृक्षायां सत्यामेवेमौ शक्तिशिवौ कुलाकुलाख्यया द्वे तत्त्वे भवतस्तथापि तयोर्भेदो नैव मन्यते। उच्यते च—

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेरभ्यन्तरे शिवः।
अन्तरं नैव पश्यामि चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥ इति।

एकमेवाद्वितीयं तत्त्वं दृष्टिभेदेन शिवरूपतां शक्तिरूपतां वा भजते।

प्रसरं भासते शक्तिः संकोचं भासते शिवः।
तयोः संयोगकर्ता यः स भवेद्योगयोगिराट्॥

अनयोः प्रसारसंकोचयोर्य आदिरन्तश्च सैव साम्यावस्था वा निराभासो वा शिवावस्था वा।

इयं च शक्तिश्चित्स्वरूपा न तु वेदान्तिनां मायेव जड़ात्मिका। यतो हि चेतनस्य शिवस्य शक्तिरपि चेतनैव भवति। अत एव चिच्छक्तेरेव विकासमिदं जगद्रूपं दृश्यते।

एवं शिवोऽपि द्विविधो निर्गुणः, सगुणश्च। यदा सोऽक्रियो भवति तदा निर्गुणः, यदा च सक्रियो भवति तदा सगुण इत्युच्यते। अनयोरेव सगुणनिर्गुणयोः सङ्गमभूश्च नाथरूपा। अयं च नाथः सगुणनिर्गुणयोरतीतः, द्वैताद्वैतविवर्जितश्चास्ति। विश्वकर्तृत्वं शिवस्य वर्तते न तु नाथस्य। नाथस्वरूपेणावस्थानमेव कैवल्यम्। इदमेव परमं पदम्। जीवन्मुक्तिरेव यथार्था न विदेहमुक्तिः। इयं च पिण्डसिद्धियुता जीवन्मुक्तिरानुषङ्गिकं लक्ष्यम्, पिण्डपदस्य परमपदेन समरसीकरणं च मुख्यं लक्ष्यम्। देहपातानन्तरं संभाव्या मुक्तिस्तु देहपातरूपप्रतिबन्धकेन बाधितत्वादयथार्था। येन देहेन परमं पदं लभ्यते तस्य देहस्य रक्षणमजरीकरणममरीकरणं चावश्यं कर्तव्यम्, उक्तं च योगबीजे—

अजरामरपिण्डो यो जीवन्मुक्तः स एव हि। इति।

इयमेव कायसिद्धिरिति देहसिद्धिरिति वोच्यते। इयं च कायसिद्धिः तान्त्रिकसाधनया भवतु योगसाधनया वा रससाधनेन वा। एवमणिमाद्यष्टविधैश्वर्यसंपन्नेन तेन देहेन, यतः प्राणा नोत्क्रामन्ति, नाथस्वरूपेणावस्थानं वा पिण्डपदस्य परमपदे समरसीकरणं वा कैवल्यमित्युच्यते।

अस्मिन् साधनापथे गुरोः सर्वाधिकं महत्त्वं वर्तते। गुरुकृपां विना चरमलक्ष्यप्राप्तिर्न संभाव्यते। सिद्धा अदैहिकानि यानि साधनान्याश्रित्य परमं पदं प्राप्नुवन्ति, तेषु साधनेषु स्थितिर्गुरुकृपाकटाक्षपातेनैव भवितुं शक्नोति। गुरुरेवाष्टविधान् पशुपाशांश्छेत्तुं प्रभवति नान्यः। अयं च गुरुः षट्त्रिंशल्लक्षणसंपन्नो भवति।

संक्षेपेणेदमेव गोरक्षदर्शनस्य तत्त्वं यत् योगयुक्तं ज्ञानमेव मोक्षोपायः पिण्डसिद्धिश्च परमपदप्राप्तेरनिवार्यं सोपानम्। जीवन्मुक्तिसहितेन सिद्धदेहेन नाथस्वरूपेऽवस्थानमेव पिण्डपदस्य परमपदे समरसीकरणम्, इति।

गोरक्षकृता ग्रन्थाः

श्रीगोरक्षनाथप्रणीता निम्नाङ्किता ग्रन्थाः श्रूयन्ते—

गोरक्षगीता	महार्थमञ्जरी
गोरक्षबोधः	सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः
गोरक्षदीक्षा	षट्चक्रचिन्तामणिः
गोरक्षगणेशगोष्ठी	षट्चक्रबोधः
गोरक्षावधूतगोष्ठी	त्रिपुरसुन्दरीपद्धतिः
गोरक्षयोगमञ्जरी	योगसिद्धान्तपद्धतिः
गोरक्षशतकम् (ज्ञानशतकं वा)	विवेकमार्तण्डः
गोरक्षज्ञानमन्त्रा	अमरौघशासनम्
गोरक्षागमः	अमनस्कयोगः
गोरक्षतत्त्वप्रकाशः	अमरौघप्रबोधः
गोरक्षोपनिषद्	प्राणश्रृङ्खला
गोरक्षशब्दी	नृपबोधः
गोरक्षपद्धतिः	हठसंहिता
गोरक्षसंहिता	हठसङ्केतः

एतदनन्तरं बहवो देशीभाषामया ग्रन्था इति "गोरखबानी" सम्पादयता स्व० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल महाशयेन भूमिकायां निर्दिष्टम् । अमरौघशासने "श्रीमन्महामाहेश्वराचार्य श्रीसिद्धगोरक्षनाथविरचितम्" इति, महार्थमञ्जर्यां च "गोरक्षापरपर्याय–श्रीमन्महेश्वरानन्दनाथविरचिता" इति दृश्यते, एतेन महेश्वरानन्दनाथ इत्यप्यस्य नामान्तरमित्यनुमीयते । "लोकैर्गोरक्ष इत्युक्तो दैशिकैस्तु महेश्वरः" इत्यपि प्रसिद्धिः, दैशिका नाम साम्प्रदायिका वृद्धाः ।

उपरिनिर्दिष्टान् ग्रन्थानधीत्य मया वैयक्तिकरूपेणेदं निश्चीयते यत् सिद्धसिद्धान्तपद्धतितो हठसङ्केतपर्यन्ता ग्रन्था गोरक्षनाथेन स्वयं प्रणीता विद्यन्ते, अन्ये तु गोरक्षप्रणीतेभ्यो ग्रन्थेभ्यस्तदुपदेशेभ्यश्च संकलय्य तदनुयायिभिरन्यैस्तन्नाम्ना प्रवर्तिताः । यतो हि केचन सम्पूर्णरूपेण किंचित्पौर्वापर्येण वा तत्प्रणीतग्रन्थेषु समुपलभ्यन्ते । अन्येषां भाषागतं शैथिल्यं तान् संस्कृतभाषायां पूर्णाधिकारवतो गोरक्षनाथस्य कृतित्वेन स्वीकर्तुं सहृदयहृदयवशीकारे न प्रभवति ।

गोरक्षसंहिता

इयं च गोरक्षसंहिता शतसाहस्री (लक्षश्लोकात्मिका) प्रोच्यते। किन्त्वस्माभिस्तु बहुप्रयासवद्भिरपि खण्डितप्रायं प्रकरणद्वयमेवास्या लब्धम्। अपरं चैकं योगप्रकरणं नेपालदरबारग्रन्थालयस्थमातृकामनुसृत्य श्रीप्रसन्नकुमारबन्द्योपाध्यायैः बङ्गानुवादेन सह १८९७ ईसवीये प्रकाशितम्। यद्यपि विषयदृष्ट्या महत्त्वपूर्णं तत्तथापि तत्रत्या बहवः श्लोका गोरक्षनाथकृतेषु ग्रन्थान्तरेषु यथायथमवलोक्यन्त एव तदितरप्रणीतेषु हठयोगप्रदीपिका-अकुलवीरतन्त्रादिष्वपि तथैव दृश्यन्ते। पूर्वप्रकाशितमिदं संस्करणमिति कृत्वा नास्माभिरत्र सन्निवेशितम्। प्रस्तुतप्रकरणद्वयविषयेऽपि ममेयं धारणा—महामुनिना पाणिनिना 'तेन प्रोक्तम्' (४।३।१०१) इति "कृते ग्रन्थे" (४।३।११६) इति च सूत्रद्वयं पृथक् प्रकरणयोः संबद्धं रचितम्। मन्ये "विद्याप्रवचनकर्त्ता प्रवक्तृपदेन ग्रन्थप्रणेता च कर्तृपदेनोच्येत" इति तदभिप्रायः स्यात्। विद्याप्रवचनेऽर्थस्य प्राधान्यं भवति न तत्राक्षरानुपूर्वी विचार्यते (यथाऽऽधुनिकविश्वविद्यालयेषु कृतानि व्याख्यानानि—लेक्चर्स) ग्रन्थप्रणयने तु अक्षरानुपूर्वी प्रथमं विचारणीया भवति, अर्थस्तु पश्चात्। तात्पर्यमेतद् यदस्यप्रकरणद्वयस्य विषयाणामतीवरहस्यात्मकत्वे गूढाभिप्रायत्वे महत्त्वशालित्वेऽपि गोरक्षप्रणीतग्रन्थान्तरापेक्षया भाषागतं शैथिल्यमवलोक्यायं सन्देहो भवति यद् गोरक्षनाथोऽस्य प्रवक्तैवेति। सर्वज्ञेन तेन भगवता इमे विषया व्याख्यातास्तदनुयायिभिश्च साधकैस्तदभिप्रायज्ञैः स्वभाषया ग्रन्थरूपेण संकलिताः स्युः। अत एवोक्तमुप संहारे—

> नाथगोरक्षसंप्रोक्तः सरसं कालकूटवत्।
> पूर्वं विज्ञायते सम्यक् साक्षादमृतवद् भवेत् ॥इति॥
>
> (गोरक्ष सं० भूतिप्रकरणम् ४।२६)

इदमप्युक्तम्—

> पञ्चखण्डमिदं शास्त्रं नाम संज्ञा पृथक् पृथक्।
> गुरूपदेशाज्जानीयात् सत्यं सत्यं न संशयः ॥
>
> (गो० सं० भूति प्र० ९।२३)

कानि तानि पञ्चखण्डानीति तु न स्पष्टीकृतं क्वापि।

यद्यपि गोरक्षनाथेन स्वीकृतः प्रवर्तितश्च शुद्धो योगमार्गः। स च यमनियमयोः सर्वसाधारणोपयोगित्वात्सामान्यतया तद्विहाय महर्षिपतञ्जलिना विहित एव राजयोगः। स च तत्प्रणीतग्रन्थेषु गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहे च विस्तरेण प्रतिपादितस्तथापि तेन योगस्य हठादयोऽन्ये प्रकाराः कौल-कापालिकादयोऽपि

सिद्धान्ताः स्वयमनुभूय व्याख्याताश्चेन्नात्र किमप्याश्चर्यं परमसिद्धस्य सर्वज्ञस्य च तस्येति मन्यामहे ।

एतदप्यत्र विचारणीयं यत् तस्य गुरुणा मत्स्येन्द्रनाथेन कामरूपे योगिनीनां वशङ्गतेन योगिनीकौलाख्यं यन्मतं प्रवर्तितं तदजानन् स कथं तं ततो विमोचयेत् । अतोऽत्र गोरक्षसंहितायां तेन प्रोक्तं कादिप्रकरणं मन्ये तत्सूचकमेव ।

कादिप्रकरणम्

भूतिप्रकरणविषये यद्वक्तव्यं तत्तस्याः संहिताया द्वितीयभागस्योपोद्घाते वक्ष्यामः । संप्रति प्रथमभागं कादिप्रकरणमुद्दिश्य किमप्युच्यते ।

किं तावत्कादिप्रकरणमिति जिज्ञासायाम्, तन्त्रशास्त्रे कादिरिति हादिरिति च प्रसिद्धौ पारिभाषिकौ शब्दौ । अत्र म० म० हरप्रसादशास्त्रिभिरुक्तम्—

"तन्त्रशास्त्रं द्विधा विभक्तं शैवं शाक्तं च । तत्र शैवं हरात्मकत्वेन हादिरिति शाक्तं च काल्यात्मकतया कादिरित्युच्यते । यथा षोडशनित्यातन्त्रे—

कथं कादिमतं नाम्ना तन्मे ब्रूहि महेश्वर ।
काली कादीति शक्तीशः पुरोक्ता तन्मतान्मया ।
प्रोक्ते तन्त्रे कादिकाली मतान्येतेन नामतः ।
कादिसंज्ञा भवेद्भूयः सा शक्तिः सर्वसिद्धये ॥" इति[१] ।

वस्तुतस्तु तन्त्रस्येयमेका शाखा या च कादिमतम्, कुब्जिकामतम्, कुलालिकाम्नायः, श्रीमतम्, दिव्यौघसद्भावः, विद्यापीठम्, मन्थानभैरवेत्यादिभिर्बहुभिराख्याभिरुच्यते स्म । अस्यैव च पूरकोंऽश उत्तरपदेन व्यवह्रियतेस्म, यथा श्रीमतोत्तरं कुब्जिकामतोत्तरमिति । अक्षराणां ककार आद्यक्षरो हकारश्चान्त्यः, येषु बीजाक्षरेषु ककारस्य प्राधान्यं ते कादयो येषु च हकारस्य प्राधान्यं ते हादयः । तेषां बीजानां ये देवास्तत्प्रतिपादका ग्रन्थाश्च कादिपदेन हादिपदेन च व्यवह्रियन्ते ।

प्रस्तुते कादिप्रकरणे प्रायश्चत्वारिंशत्स्थलेषु श्रीमतं मतोत्तरं चेदं शास्त्रमुच्यते मतोत्तरमाहात्म्यं चात्र भूरिशो वर्णितम्, म० म० हरप्रसादशास्त्रिभिः सम्पादिते नेपालदरवारग्रन्थालयसूचीपत्रे (२ २९९ संख्यायां २५५-२५८ पृष्ठेषु) श्रीमतोत्तरग्रन्थस्य या विषयसूची दृश्यते सैव प्रायोऽस्यापि कादिप्रकरणस्य । ग्रन्थारम्भे ग्रन्थान्ते ऽपि त एव श्लोकाः, केवलमिदमेवान्तरं यत्तत्र २५ पटलाः सन्ति अत्र तु २७ पटलाः । विदुषां विवेकाय पटलक्रमेणोभयोर्विषयसूची निर्दिश्यते । येषु पटलेषु यत्र विषयनिर्देशो नास्ति तत्र रेखामात्रं दत्तम्—

---

१. द्र. नेपाल दरबार ग्रन्थालय सूची भूमिकायां ।

गोरक्षसंहितायाम्		श्रीमतोत्तरे	
पटले	विषयः	पटले	विषयः
१—	संवर्तासूत्रकथनम्	१—	———
२—	पीठोपपीठवर्णनम्	२—	हिमवत्पीठवर्णनम्
३—	क्षेत्रोपक्षेत्रसन्दोहोत्पत्तिः	३—	क्षेत्रोपक्षेत्रसन्दोहोत्पत्तिः
४—	मातराणां प्रतिष्ठालक्षणनिर्णयः	४—	मातराणां प्रतिष्ठालक्षणनिर्णयः
५—	———	५—	———
६—	———	६—	मालिन्याः चक्रप्रस्तारनिर्णयः
७—	———	७—	———
८—	मुद्राणामधिकारनिर्णयः	८—	मुद्राधिकारनिर्णयः
९—	जालन्धरनाथविधानम्	९—	अङ्गवक्त्रहृद्दूती
१०—	समयोद्धारे अङ्गवक्रनिर्णयः	१०—	———
११—	शिरोदूतीनिर्णयसाधनम्	११—	———
१२—	शिखास्वच्छन्दनिर्णयः	१२—	शिखास्वच्छन्दनिर्णयः
१३—	शिखास्वच्छन्दनिर्णयः	१३—	आज्ञाधिकारः
१४—	आज्ञाधिकारः	१४—	श्लोकद्वादशनिर्णयः
१५—	द्वादशश्लोकनिर्णयः	१५—	देवीचक्रनिर्णयः
१६—	द्वादशश्लोकनिर्णयः	१६—	द्वितीयचक्रनिर्णयः
१७—	———	१७—	गुह्यमातृचक्रनिर्णयः
१८—	———	१८—	योगिनीचक्रनिर्णयः
१९—	योगिनीचक्रनिर्णयः	१९—	कालज्ञानचक्रनिर्णयः
२०—	खेचरीचक्रनिर्णयः	२०—	———
२१—	कालज्ञानचक्रनिर्णयः	२१—	समस्तविद्यानिर्णयः
२२—	वज्रगह्वरोद्धारे समस्तविद्यानिर्णयः	२२—	षोढान्यासनिर्णयः
२३—	षोढान्यासः	२३—	छोम्मासंवाचलक्षणमङ्गप्रत्यङ्ग-योगिनीसंचारस्वरसाधनाधिकारः
२४—	छोम्मासंवाचलक्षणम्	२४—	रुद्रशतार्धनिर्णयः
२५—	पञ्चाशद्रुद्रध्यानवर्णनम्	२५—	———
२६—	चतुस्त्रिंशद्द्वीपद्वीपाधिपक्षेत्रपालध्यानविधानक्रमः		
२७	———		

कादिप्रकरणस्य वर्ण्यवस्तुनिर्देशः

अस्मिन् प्रकरणे सप्तविंशतिपटलाः सन्ति। दुर्दैवतः पत्राणां मध्ये मध्ये-ऽनुपलब्धतया विच्छिन्नत्वात् वर्ण्यवस्तुप्रवाहोऽवरुध्यते। तथापि यावानंशो लब्धस्तावत एव वस्तुनिर्देशः क्रियते।

तत्र तावत् प्रथमे पटले मङ्गलरूपो भैरवाय नमस्कारो विहितः। तन्त्रशास्त्रे भैरवस्य यत्स्थानं यादृशं च स्वरूपं तत्सर्वं स्तुतिव्याजेनात्र प्रकटितम्। ततो देव्याः प्रश्नरूपेण समग्रस्य ग्रन्थस्य वर्ण्यवस्तुनो सूत्ररूपेण निर्देशः कृतः भैरवस्योत्तरक्रमे दीक्षाप्रकारः भैरवशब्दनिरुक्तिश्च कृता।

द्वितीयपटले केवलं पत्रद्वय (७, १७) मेव लब्धम्। अत्र मन्ये पीठोप-पीठानां वर्णनं स्यात्। उपलब्धे तु हिमवतः पीठाधारत्वेन स्थितिः पूर्णपीठस्य काम-रूपपीठस्य चापूर्णं वर्णनं विद्यते। पीठानां च 'ओ जा पू का' अयं क्रमो गृहीत इति प्रतीयते।

तृतीयेऽपि प्रारम्भिकांशो न प्राप्तः, मन्ये तत्र क्षेत्राणां वर्णनं स्यात्। प्राप्ते त्वंशे—कर्दमाल-गोकर्ण-विन्ध्याद्रि-विमलेश्वर-सिन्धुमाल-महासेन-मातङ्ग-कुब्जेत्यष्टा-नामुपक्षेत्राणाम्, त्रिकूट-त्रिपुर-गोपुर-भद्रकर्ण-किरात-कश्मीर-शैवाल-सिन्धुदेशेत्यष्ट-सन्दोहानाम्, श्री-जयन्ती-कुल्लता-मालव-काञ्चीपुर-कुरुक्षेत्र-वर्वर-शाम्बरेत्यष्टाना-मुपपीठानां निर्देशः कृतः, ततश्च क्रौञ्चोत्पत्तिः कामदाहश्च वर्णितः।

चतुर्थे पटले कामदाहानन्तरं पार्वतीग्रहणाय देवैः कृता शिवस्तुतिः, शिव-परिणयः, पश्चिमाम्नायसिद्धानां सन्तानविषयकः पार्वतीप्रश्नः, माहेश्वर्यादिकानां मातृमूर्तीनां स्वरूपवर्णनम्, शवसाधनप्रकारो मालिनीचक्रपूजनविधिश्च वर्णितः।

पञ्चमे च कौमारी-वैष्णवी-वाराही-ऐन्द्री-चामुण्डा-आग्नेयीनां मातॄणां पदसंख्या वर्णसंख्या च, कूटानि, षड्विधो न्यासमार्गः, स्वाभाविकन्यासेन चक्र-भेदनम्, चलचक्रभेदनप्रकारश्च वर्णितः।

अतः परं सप्तपत्राणि नोपलब्धानि तेष्वेव पञ्चमपटलस्य समाप्तिः षष्ठस्य प्रारम्भश्च।

अवशिष्टे षष्ठे पटले देवीचक्राणि, वर्णन्यासानामुपक्रमश्चास्ति।

सप्तमे-देव्या द्विचत्वारिंशन्मूर्तीनां स्वरूपप्रदर्शनं कृतम्। ताश्च मूर्तयः— १. प्रतिष्ठा, २. विद्या, ३. शान्तिः, ४. चामुण्डा, ५. प्रियदर्शिनी, ६. गुह्यशक्तिः, ७. नारायणी, ८. मोहिनी, ९. प्रज्ञा, १०. वज्रिणी ११. कङ्कटा, १२. कालिका, १३. शिवा, १४. छिर्वरा, १५. वागीशी, १६. भीमा, १७. रामा, १८. महाचण्डा, १९. विनायकी, २०. पूर्णिमा, २१. डङ्कारिणी, २२. कुर्दनी, २३. जयन्ती,

२४. दीपिनी, २५. कपालिनी, २६. पावनी, २७. इच्छाशक्तिः, २८. अम्बिका, २९. पूतना, ३०. क्षीराम्ना ३१. लम्बिका, ३२. संहारी, ३३. महाकाली, ३४. कुसुमा, ३५. शुक्रा, ३६. तारा, ३७. ज्ञानी, ३८. क्रिया, ३९. गायत्री, ४०. सावित्री, ४१. दहनी, ४२. फेत्कारी इति । ततश्च मालिनीचक्रविन्यासक्रमेणाधारचक्रवर्णनम् ।

अष्टमे पटले—त्रिशिखा-पद्म-योनीति मुद्रात्रयस्य प्रत्येकं त्रिविधत्वेन नवभेदाः, त्रिशिखायाः स्वरूपं साधनक्रमस्तत्फलं च वर्णितम् । अत्रैव योग-रोध-संपुट-ग्रथन-विदर्भेति षड्विधो मन्त्रनिर्णयश्च कथितः । ततः पद्ममुद्रास्वरूपं साधनक्रमस्तत्फलं च वर्णितम्, एतत्प्रसङ्गेन कामराजस्य साधनं तत्फलमपि । एवं योनिमुद्रास्वरूपादिवर्णने खेचरीमाहात्म्यं प्रयोगराजसाधनविधिस्तदधिकारिनिर्णयः, मृत्तिराजस्य विधिः षड्विधं कुलरत्नं च वर्णितम् ।

नवमे-जालन्धरनाथस्योत्पत्तिः, मन्त्रो यन्त्रं ध्यानं पूजाविधिश्च कथितः ।

दशमे—परायोन्याः समस्याथः प्रस्तारभेदेन पदभेदप्रमाणं तदुद्धारश्च, समयाचारपालकापालकनिर्णयः, वक्राङ्कोद्धारः, वर्णप्रस्तारभेदेन दूतीनां मुद्राध्यानादिकं च वर्णितम् ।

एकादशे—हृद्दूत्याः शिरोदूत्याश्च जपादिप्रमाणे क्रमेणोद्धारश्च कथितः ।

द्वादशे—शिखादूतीसमुद्धारः कामनाभेदेन कुण्डादिस्वरूपं, होमकाल-संख्यादि भेदः, कुलाकुलनिर्णयश्च वर्णितः ।

त्रयोदशे—अघोरस्य तत्कीलानां च वर्णनमुत्कीलनप्रकारश्च, ततो द्वात्रिंशदक्षरात्मकस्वच्छन्दस्य चक्रं ध्यानं दूत्यादिप्रकारो यन्त्रविधानं च विवृतम् ।

चतुर्दशे—कवच-नेत्र-मुखाख्यदूतीनां यन्त्रमन्त्रादि, गुह्यकालीस्वरूपं अकोलासननिरूपणं, षडक्रम-षडाकार-षड्योगिनी-षडीश्वर-षट्पुर-षट्सिद्धानां चाज्ञादिषट्कनिरूपणम्, शक्ता-शाम्भवीति द्विविधदीक्षाया अष्टौ प्रकाराश्च वर्णिताः ।

पञ्चदशे—हिरण्यभैरवोत्पत्तिः, ब्रह्मविष्णुभ्यां शिवस्तवनम्, लिङ्गदर्शनम्, चक्रमर्जनं स्वरूपनिरूपणं च, लिङ्गदर्शनसाधननिरूपणम्, षट्चक्रनिरूपणम्, लिङ्गाधारवर्णनम्, ध्यानभेदेन फलभेदः, द्वादशचक्रेषु द्वादशात्मिकायाः कुलवागीश्वर्याः स्वरूपस्य द्वादशश्लोकनिर्णयाख्यया वर्णनम् ।

षोडशे—आत्मा-शक्तिः-हंसः-बिन्दुः-पदं-खश्चेतिषट्पदार्थनिर्णयः, ध्यान-योगधारणायोगयोः स्वरूपनिरूपणे आज्ञा-मणिपूरचक्रवर्णनम्, नादस्य संयोग-वियोगौ पिण्डसृष्टिः षट्सिद्धपुरनिर्णयश्च ।

सप्तदशे—आद्यन्तविहीनेऽत्र पटले परमादूतीनां षोडशदिव्ययोगिनीनाञ्च वर्णनं लभ्यते ।

अष्टादशस्तु पटलो नोपलब्धः।

ऊनविंशे—राकिनी-लाकिनी-काकिनी-शाकिनी-हाकिनी-याकिनी-कुसुमाकुलसंभूतयोगिनीनां वर्णनम्।

विंशे—खेचरीणां समूहो वर्णितः विशेषेणैताः चतुःषष्टियोगिन्यः १ अक्षोभ्या. २. ऋक्षपर्णा. ३. राक्षरी, ४. क्षपा, ५. क्षया, ६. चिपिटा, ७. कृष्णा, ८. सुलालसा, ९. हेला, १०. लोला, ११. लोला, १२. सुप्ता, १३. लुब्धा, १४. लम्पटा, १५. लङ्केश्वरी, १६. विमला, १७. हुताशनी, १८. विडालाक्षी, १९. हुङ्कारी, २०. बड़वामुखी, २१. सिंहनादा, २२. रेवती, २३. क्रोधना, २४. भयानना, २५. सर्वज्ञा २६. देवकी, २७. शान्ता, २८. ऋग्वेदा, २९. शुभानना, ३०. सारा, ३१. विश्वरूपा, ३२. सरस्वती, ३३. तालजङ्घा, ३४. बृहत्कुक्षिः, ३५. विद्युज्जिह्वा, ३६. भयङ्करी, ३७. मेघनादा, ३८. प्रचण्डा, ३९. कालवर्णा, ४०. रूपदा, ४१. चम्पा, ४२. चम्पावती, ४३. प्रपञ्चा, ४४. प्रलयांशकी ४५. पिचुवक्त्रा, ४६. पिशाची, ४७. प्रेताक्षी। ४८. लोलुपा, ४९. वामा, ५०. वामनी, ५१. वक्रनासा, ५२. विकृतानना, ५३. ५३. वायुवेगा, ५४. उग्रा, ५५. विचित्रा, ५६. विश्वरूपिणी, ५७. यमजिह्वा ५८. जयन्ती, ५९. दुर्जया, ६०. यमान्तिका, ६१. प्रलयी, ६२. विडाली, ६३. अशनी, ६४. पूतना चेति।

अत्रैवासिताङ्गभैरवस्वरूपं, तत्कृतसृष्टिवर्णनम्, तस्य नवात्मता, मण्डलानां तद्व्याप्तीनां च विस्तृतं विवरणमपि दत्तम्।

एकविंशे पटले—मन्त्रबीजानां निदर्शनम्, गुरुशिष्यलक्षणानि, कुलपिण्डकुललक्षयोर्विवरणं, दशवायुस्वरूपं तद्विकृतिनिदर्शनं, जीवलक्षणं तत्स्थितिस्तन्निर्गमप्रकारश्च, श्रीमतोत्तरतन्त्रमाहात्म्यम्, तद्बोधकान्यतन्त्राणां नामानि, कालचक्रवर्णनम्, पूषोदयनिरूपणं तेन शुभाशुभनिर्णयज्ञानप्रकारश्च वर्णितः।

द्वाविंशे च—कालवञ्चनं मृत्युञ्जयत्वप्राप्तिश्च, कालकर्षणी-मृतोत्थापिनी-मृतसंजीविनीविद्यानां मन्त्रोद्धारः, परा-अपरा-परापराविद्यानां निरूपणम्, कामेश्वरीत्रिपुरशेखरयोर्विद्ययोर्वर्णनम्।

त्रयोविंशे—सविधिषोढान्यासो वर्णितः।

चतुर्विंशे—साधनाक्रमे भूतशुद्धिः, गुरुमण्डलम्, क्रमपूजनप्रकारः, चतुःषष्टिक्रमवर्णनम्, वज्रकुब्जि-सिद्धकुब्ज्योर्निरूपणम्, छोम्मासंवाचलक्षणं दिव्यभाषाज्ञानप्रकारः, छोम्माकमुद्राभेदेन सङ्केतग्रहणं च वर्णितम्।

पञ्चविंशे—पञ्चाशद्रुद्राणां स्वरूपं शक्तयो ध्यानादिश्च वर्णितः।

षड्विंशे—चतुस्त्रिंशद्द्वीपतदधिपतत्क्षेत्रपालानां च स्वरूपं ध्यानादिश्च, द्वीपानां पीठानां च देहे स्थितिर्गायत्रीनिर्णयश्च वर्णितः।

सप्तविंशे पटले—चक्राम्नायवर्णने ब्रह्माणी-माहेशी-कौमारी-वैष्णवी-ऐन्द्री-चामुण्डा-चण्डिका-महालक्ष्मी-यामल-नवात्म-दूती-नित्यक्लिन्ना-एकवीरा-निग्रहा-दुर्गेतिषोडशचक्राणां स्थानानि निर्माणप्रकारः पूजाविधानं तत्फलं च वर्णितम्, ततो महत्तारीस्वरूपं तन्मन्त्रोद्धारः तत्पूजाविधिस्तत्फलञ्च, अष्टविधचर्या, चरुकलक्षणं तत्प्राशनफलञ्च, पवित्रारोपणप्रकारः, ग्रन्थमाहात्म्यवर्णनं चेति संक्षेपेणेदमेवास्य प्रकरणस्य वर्ण्यवस्तु।

आत्मनिवेदनम्

प्रायः पञ्चविंशतिवर्षात् पूर्वं मदीयेनैकेन मित्रेणावलोकनार्थमेकं पुस्तकं मह्यमदायि। तत्र कानिचित्पत्राणि ग्रन्थान्तरस्यासन् तान्यपसार्य मयावलोकितं यत् प्रारम्भतः सप्तमपटलस्य किंचिदंशं विहाय, सप्तविंशति पटलं यावत् गोरक्षसंहितायाः पुस्तकमेतदासीत्। मध्येऽपि कानिचित्पत्राणि नासन्। ततो मया श्रीयोगिनरहरिनाथमहोदयानां साहाय्येन यावन्ति नाथमतानुयायिनां प्रसिद्धप्राचीनस्थानान्यासन् तेषु, हस्तलिखितग्रन्थानां संग्रहालयेषु च कचित् पत्रद्वारा कचित्स्वयं गत्वाप्यन्विष्टं कथंचिदयं ग्रन्थः पूर्ण उपलभ्येत इति, किन्तु दुर्दैववशात् न कुतोऽप्यलभम्। १९६३ ईसवीये यदा सरस्वतीभवनपुस्तकालये नियुक्तोऽभवम् तत्रैका मातृका (२५५७२) मयोपलब्धा सापि जीर्णा कीटभक्षिता प्रायः खण्डिता च। किन्तु तस्यां तानि पत्राण्यधिगतानि येषु प्रथमपटलादारभ्य षष्ठं पटलं यावत् पुष्पिकांश आसीत्। अग्रिमेष्वपि पटलेषु बहुत्र खण्डितोंऽशस्ततः पूरितः। एवं प्रायः षट्सहस्रपरिमिताः श्लोका उपलब्धाः। एतदन्वेषणप्रसङ्ग एव पूज्यैः भूतपूर्वोपकुलपतिभिः डा० श्रीगौरीनाथशास्त्रिभिरेतद् दृष्ट्वाऽऽदिष्टोऽहं "अतीवमहत्त्वपूर्णमिदं पुस्तकं यावद् यादृशं चोपलब्धं तावत्तादृशमेव संप्रति प्रकाशनीयं प्रकाशमुपगते सति यत्र कुत्रापि स्यात्तल्लभ्येत" इति। ततोमया संपाद्य मुद्रणाय प्रदत्तम्, अस्मिन् कादिप्रकरणेऽर्धे मुद्रिते भूतिप्रकरणमपि प्रथमतः षष्ठपटलार्धं यावदधिगतम्, ततोऽग्रिमोंऽशः काशिराज डा० श्रीमद्विभूतिनारायणसिंह देवानां कृपया तेषां सरस्वतीभण्डारस्थ ग्रन्थात् पूरितम्। तदपिपुस्तकं मध्ये मध्ये विच्छिन्नमेव। एवं क्रमेणास्याः शतसाहस्र्याः संहिताया प्रकरणद्वयं (कादिप्रकरणम्, भूतिप्रकरणं च) विदुषां पुरत उपस्थाप्यते। एतस्य संपादने मया मूलमात्रिकास्थः पाठो यथावद् गृहीतः भाषादृष्ट्या व्याकरणदृष्ट्या विषयदृष्ट्या वा न तत्र किमपि परिवर्तनं कृतम्। खण्डितेष्वपि स्थलेषु तान्त्रिकाणामेव

विदुषामधिकार इति कृत्वा न किमपि सन्निवेशितम्। केवलं यत्र प्रचुरासम्बद्धताऽनुमिता तत्र [ ] कोष्ठान्तर्गतः स्वेप्सितपाठो दत्तः। एतद्ग्रन्थवर्णितविषयेषु नितरामल्पज्ञस्यापि मम सम्पादनधार्ष्ट्ये एक एवाभिलाष आसीत् यत् कथञ्चिदपि ग्रन्थोऽधिकारिविपश्चितां दृग्गोचरीभूयादिति।

एतत्सम्पादनेऽस्मत्सुहृद्वर्यैः श्रीव्रजवल्लभद्विवेदिभिः (संस्कृतविश्वविद्यालयीययोगतन्त्रविभागप्राध्यापकैः) कृतं साहाय्यं मुहुरनुस्मरन् गुणैकपक्षपातिनः कृपाधनान् विदुषः भूयो भूयः साञ्जलिबन्धं प्रार्थये यन्मातृकैकतया लिपिकदोषेण ममाल्पज्ञतया मुद्रणादिदोषेण वोपगतानां त्रुटीनां कृते ममानवधानमिति मत्वा क्षाम्यन्तो मान्याः यत्र काप्यस्या मातृकान्तरमुपलभ्येत तत्सूचयन्तु येनाग्रिमे संस्करणे खण्डितोंऽशः पूर्येत।

विद्वच्चरणचञ्चरीकः

जनार्दनशास्त्री पाण्डेयः

सरस्वतीभवनम्

मकरसंक्रान्तिः २०२२

॥ श्रीः ॥

गोरक्षसंहितायाः कादिप्रकरणस्य

विषय-सूची

टि०—× चिह्नमिदं खण्डितपत्रसूचकम् ।

गोरक्षसंहिता

(१) कादिप्रकरणम्

गोरक्षसंहिता

प्रथमः पटलः

(तृतीयं पत्रम्*)

.........रहितं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
शून्याच्छून्यतरं शून्यं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

अ[आ]पादतलमूर्द्धस्थं कन्दनालसमास्वृतम् ।
हंसरूपं निराभासं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

आकाशज्योतिमारूढं व्योमातीतं निरामयम् ।
व्योमव्यापि परंव्योम भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

चन्द्रार्कवह्निमध्यस्थं दृष्टादृष्टैकगोचरम् ।
अनाख्यं च निराभासं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

सर्वप्रपञ्चरहितं मरणव्ययवर्जितम् ।
रूपारूपविनिर्मुक्तं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

नाडिकार्णवसंभूतं मन्त्रजालप्रकाशकम् ।
अतीतगोचरं शम्भुं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

हकारोर्ध्वपरं सूक्ष्मं परानन्दं परात्परम् ।
परस्यान्ते परे लीनं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

---

*अस्याः संहितायाः षष्ठपटलं यावदेकैव मातृका सरस्वतीभवनग्रन्थालये २५५७२ संख्याका उपलभ्यते, सा च मध्ये मध्ये खण्डिता कीटभक्षिता च । प्रारम्भे तस्य यावन्ति पत्राण्युपलब्धानि मातृकान्तराभावादविकलं मुद्रितानि तानि । विशेषस्तु भूमिकायां द्रष्टव्यः ।

घण्टिकान्ते परं शान्तं ब्रह्मरन्ध्रविनिर्गतम् ।
आकाशं निर्मलं सूक्ष्मं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

अखण्डनिर्मलं शुद्धं कला[ल्पा]कल्पविवर्जितम् ।
नित्यं प्रमेयरहितं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

यथा भानुगता[तो] रश्मिर्व्यापयेन्निखिलं जगत् ।
तथा सर्वगतं देवं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

नादान्तविन्दुसंलीनं शक्त्यातीतमगोचरम् ।
मालिन्यङ्गसमुद्भूतं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

अनिलानलसंयुक्तं व्यापकं परमेश्वरम् ।
भुवनत्रयसंलीनं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

अकारादिचकारान्तं कुलपिण्डसमुद्भवम् ।
वर्णराशिस्वरूपस्थं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

यथा जलगतः सूर्यश्चन्द्रश्चाप्सु व्यवस्थितः ।
तथा सर्वगतं देवं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

यथा चाग्निगतं तेजो यथा वायुः स्वरूपतः ।
तथा सर्वगतं देवं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।
पञ्चभूतगतं देवं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धतन्मात्रपञ्चकम् ।
एतद्व्याप्य स्थितं देवं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

वाक्पाणिपादपायूपस्थपञ्चकसंस्थितम् ।
पञ्चकर्मेन्द्रियैः संस्थं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं चैव तु पञ्चमम् ।
पञ्चेन्द्रियसुसंभूतं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चैव चतुष्टयम् ।
अन्तःकरणसंभूतं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

पक्षिकीटैस्तथा वृक्षैर्लतागुल्मसरीसृपैः ।
सर्वं व्याप्य स्थितं शम्भुं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥

विकल्पकल्परहितं कल्पनातीतगोचरम् ।
विकल्परहितं शान्तं भैरवं तं नमाम्यहम् ॥
..............................'आचारपालक ॥

× × ×

(पञ्चमं पत्रम्)

चतुःषष्टिक्रमं दिव्यं दिव्यादिव्यं तथैव च ।
गृहं गोत्रं च संतानं वृक्षं वल्ली फलं तथा ॥

मण्डलं चाभिषेकं च दीक्षा समयमण्डलम् ।
अधिकारपदं दिव्यं ज्ञानविज्ञानसाधनम् ॥

एतत् सर्वं मया[मा]ख्याहि जानीमो निश्चयं यथा ।
कथयस्व प्रसादेन भक्त्याहं तव वल्लभा ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महाभागे प्रष्णा[श्ना]चोद्यविकल्पिनि ।
अतिगूढतरं देवि न कथ्यं यत् सुरैरपि ॥

सुगोप्यं परमं देवि सुप्रकाश्यं महोदयम् ।
वीरभैरवरुद्राश्च गुह्यका गणनायकाः ॥

मातरश्चापि सर्वास्ताः क्षेत्रपाला महाबलाः ।
स्कन्दाद्याश्च गणा ये च शाकिन्यो बलवत्तराः ॥

ब्रह्माद्याश्च सुरा ये च ये चान्ये च महोरगाः ।
दैत्याश्च दानवा उग्राः सिद्धा ऋषितपोत्कटाः ॥

भ्रामितास्ते मया देवि श्रीमतार्थे तु वञ्चिताः ।
न मया कस्यचित् ख्यातं दिव्यज्ञानं महोदयम् ॥

योगिनीगुह्यसद्भावं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ।
दिव्यवर्षसहस्रं च तपसाऽऽराधितस्त्वया ॥

तुष्टोऽहं तव देवेशि गुह्यं कीलं वदाम्यहम् ।
मतोत्तरं महादिव्यं श्रीमतार्थप्रका[शकम्] ॥

निःसन्दिग्धं स्फुटार्थं च सर्वभ्रान्ति[वि]नाशनम् ।
सुसमे भूप्रदेशे तु गोमयेनोपलेपिते ॥

[पु]ष्पप्रकरशोभाढ्ये दिव्यागरुसुधूपिते ।
हेमकुम्भं तु संस्थाप्य अलिद्रव्यप्रपूरितम् ॥

चूतपल्लवसंच्छन्नं दिव्यवस्त्रावगुण्ठितम् ।
चर्चितं चन्दनाद्यैश्च दिव्यधूपसुधूपितम् ॥

दीपोत्सवं सनैवेद्यं घण्टाशब्दसुनादितम् ।
कुमारीः पूजयेत्तत्र कुमारा[न्] योगिनीस्तथा ॥

गुरुं च गुरुतश्चैव ये चान्ये गुरुभ्रातरः ।
अन्वये क्रमिकज्येष्ठा ये चान्ये प्रतिचारकाः ॥

पूजयेद् विविधैर्वस्त्रैर्नानालङ्कारकादिभिः ।
गुरुं संपूजयेत् पूर्वं दिव्यवस्त्रैः सुशोभनैः ॥

कटकङ्कणकेयूरैः काञ्चीमुद्राङ्गुलीयकैः ।
पूजयेत् परया भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥

आगमं पूजयेद् भक्त्या मणिरत्नप्रवालकैः ।
कनकाब्जमयैर्दिव्यैः पुष्पाञ्जलित्रयं ददेत् ॥

वेष्टयेच्छुक्लवस्त्रेण कृष्णेन च द्वितीयकम् ।
तृतीयं रक्तवस्त्रेण पीतेन च चतुर्थकम् ॥

पञ्चमं नीलवर्णेन सर्ववर्णेन षष्ठकम् ।
सुवर्णखचितैर्दिव्यैर्दिव्यपीठोपरि स्थितम् ॥

नेत्रपट्टानि दिव्यानि मालामुक्ताफलानि च ।
रत्नमाला[न्या]नि दिव्यानि भूष.......... ॥

× × ×

(सप्तमं पत्रम्)

भरत्यमृतरूपेण रमते शक्तिना[भिः] सह ।
वमते ज्ञानसद्भावं भैरवस्तेन चोच्यते ॥
व्यापितं तु जगत्सर्वं पराकाशे रमेत्तु यः ।
वमते खेचरीं व्याप्तिं भैरवस्तेन चोच्यते ॥
यत्रोत्पन्नं परं विश्वं लयीभूतं च यत्र वै ।
यत्रस्था परमा व्याप्तिर्भैरवस्तेन चोच्यते ॥
संवर्त्तानलमध्यस्थः संवर्त्तानलसंस्थितः ।
संवर्त्ता[र्त्त]सृष्टिरूपस्थो भैरवस्तेन चोच्यते ॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठ-नाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये
संवर्त्ता[र्त्त]सूत्रकथनं नाम
प्रथमः पटलः ॥१॥

द्वितीयः पटलः

अथातः संप्रवक्ष्यामि मिह[हिम]वन्तं यथास्थितम् ।
योजनायुतविस्तीर्णं महाशृङ्गाटकाकृतिम् ॥ १ ॥
मेखलात्रयसंयुक्तं तस्य बाह्ये तु पञ्चकम् ।
अष्टौ षोडश विन्यस्य द्वात्रिंशद्द्विगुणीकृतम् ॥ २ ॥
तद्बाह्ये मेखलास्तिस्रश्चतुष्कं तदनन्तरम् ।
तदूर्ध्वं च भगाकारं द्वारत्रयविभूषितम् ॥ ३ ॥
द्वारतोरणसंयुक्तं कपाटार्गलभूषितम् ।
त्रिसन्ध्यावेष्टितं दिव्यं द्वारपालत्रयान्वितम् ॥ ४ ॥
ते च ते कथयिष्यामि मूर्तिमन्तो यथाश्रयाः ।
लम्बोदरो बृहत्कुक्षिर्घण्टाकर्णस्तृतीयकः ॥ ५ ॥
त्रिनेत्राश्च महाकाया महाबलपराक्रमाः ।
चतुर्भुजा महावीर्याः खड्गखेटकधारिणः ॥ ६ ॥
काद्यत्रिशूलहस्ताश्च विकटोत्कटभीषणाः ।
वडमालाधरा दिव्या वज्रदीप्तिसमुज्ज्वलाः ॥ ७ ॥
नानारूपधरा देवि द्वारपाला महाबलाः ।
रक्षन्ति सततं द्वारं हिमवत्पीठमुत्तमम् ॥ ८ ॥
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री सन्ध्यात्रयविभूषितं[ता] ।
रक्ता श्वेता तथा कृष्णा त्रिनेत्रा च शिवा परा ॥ ९ ॥
चतुर्भुजा महावीर्याः शक्तितोमरधारिणी ।
वामे कपालं संयुक्तं त्रिशूलं दक्षिणे करे ॥ १० ॥
वडमालाधरा दिव्या किरीटकुण्डलान्विता ।
दिव्याम्बरधरा देव्यः सर्वाभरणभूषिताः ॥ ११ ॥

षष्टिकोटिसहस्राणि परिवेष्टि[ष्ट्य]समन्ततः ।
हिमवत्पृष्ठमाश्रित्य क्रीडानन्दैकनिर्भराः ॥ १२ ॥

फेत्कारकिलकिलारावैर्नानाशब्दरवैस्तथा ।
क्रीडन्ति विविधाकारैर्योगिन्यो बलवत्तराः ॥ १३ ॥

ह रः सं त प्रभेदेन क्रूरानन्देन भूषितम् ।
का ल ई मं वरारोहे अर्द्धेन्दुकल[यान्वितम्] ॥ १४ ॥

श[शी]तरश्मिस्तथा बीजं चन्द्रार्धकृतशेखरम् ।
सन्ध्याबीजं मयाख्यातं दुर्लभं प्रकटीकृतम् ॥ १५ ॥

त्रिसन्ध्या कथिता देवि त्रिकपाटार्गलां शृणु ।

× × ×

(सप्तदशं पत्रम्)

किञ्चिल्लम्बोदरा देवी पूर्णपीठे व्यवस्थिता ।
यथा देवी तथा सर्वे परिवृत्य समन्ततः ॥

पूर्णचन्द्रमयं दिव्यं तेजस्तत्त्वे व्यवस्थितम् ।
वृत्ताकारसुसंपूर्णं त्रि[त्र्य]स्रं वै तस्य मध्यतः ॥

तदूर्ध्वे च द्विधा भिन्नं तद्बाह्ये चतुरस्रकम् ।
चतुरस्रस्य बाह्ये तु चतुर्द्वारं लिखेत्प्रिये ॥

उपद्वारत्रयोपेतं पूर्णपीठं महोदयम् ।
पूर्णपीठेऽधिकारत्वं पुत्रापुत्रीशपालकैः ॥

वेदवह्निरविश्चैव मातरो वेदमेव च ।
अधिकारं प्रकुर्वन्ति दिव्याज्ञा वीरवन्दिते ॥

एवमुक्त्वा गता तूर्णं यत्रोच्छूष्मं महावनम् ।
उच्छूष्मा नाम संज्ञा च नदरूपा व्यवस्थिता ॥

पूर्णकामा जगामासौ यत्रोच्छूष्मा महानदी ।
तत्क्षणात् सहजोच्छूष्मा सर्वावयवसुन्दरी ॥

तत्प्रभाव[वात्] कला देवी बभूवाग्रे कृताञ्जलिः ।
प्रत्युवाच ततो देवी हर्षोत्कर्षितमानसा ॥

कामरूपधरां देवीं नानारूपमनोरमाम् ।
सर्वावयवसंपूर्णां सर्वलक्षणशोभिताम् ॥

अधिकारं कुरु त्वं हि अत्रैव वरवर्णिनि ।
चन्द्रानन्दः समागत्य नवनाथो भविष्यति ॥

कामरूपत्वमापन्ना तेन त्वं कामरूपकम् ।
कामरूपे त्वया सार्धमधिकारं करिष्यति ॥

२

तव पुत्रा भविष्यन्ति त्रयोदश महाबलाः ।
दुहितरस्तथाप्येवं सप्तैव तु गणेश्वराः ॥
अनन्तो चानुमन्तश्च सुराजा सुन्दरस्तथा ।
शिवार्जुनस्तथा इन्द्रो भीमा[मो] वै द्रोणकस्तथा ॥
केतुध्वजो विशालाक्षः कल्याणश्चतुराननः ।
एते पुत्राः महावीर्याः कुलकौलप्रकाशकाः ॥
प्रभा प्रसूतिः शान्ता च भानुवत्यथ श्रीबला ।
हरिणी हारिणी चैव शालिनी कन्दुकीति च ॥
मुक्तावली गौतमी च कौशिकी कोटरामुखी ।
एता दुहितरश्चोग्रा निग्रहानुग्रहं प्रति ॥
लम्पटो घण्टाकर्णश्च स्थूलदन्तो गजाननः ।
बृहत्कुक्षिः सुरानन्दः सप्तमस्तु बलोत्कटः ॥
एतेषां चैव संतानं भविष्यन्ति[ति] युगे युगे ।
सिंहासनाधिपा ह्येते कोटयश्च चतुर्दश ॥
नीलस्योत्तरदिग्भागे हृदयस्य [हृदस्य] परमेश्वरि ।
महोच्छूष्मच[व]नान्तस्था कामपीठाधिकारिणी ॥
नीलोत्पलदलश्यामा बिम्बोष्ठी चारुहासिनी ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च द्विभुजा कामरूपिणी ॥
वरदाभयहस्ता च नानाकेयूरमण्डिता ।
मुकुटेन विचित्रेण कर्णौ कुण्डलभूषितौ ॥
रत्नमाला सुतेजाढ्या कण्ठस्था च विराजते ।
मुक्ताफलमयी माला आपादतललम्बिता ॥
मध्यक्षामा नितम्बाढ्या पीनवृत्तपयोधरा ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा ईषत्प्रहसितानना ॥
सर्वाभरणसम्पन्ना सर्वावयवसंयुता ।

× × ×

(विंशैकविंशे पत्रे)

..................धिकारिण्यः पूजिताश्च वरप्रदाः ।
नानाभेदगता देवी अष्टधा कुलभेदतः ॥

उपक्षेत्रं ततो देवी[व्याः] संगृह्णेत प्रयत्नतः ।
कर्दमालं च गोकर्णं विन्ध्याद्रि विमलेश्वरम् ॥

सिन्धुमालं महासेनं मातङ्गं कुब्जमेव च ।
उपक्षेत्राणि संगृह्य सम्यग्दृष्ट्यावलोकनात् ॥

देवी संगृह्य संदोहो[हं] योगिनीनां समागता ।
त्रिकूटं त्रिपुरं चैव गोपुरं तु ततः प्रिये ॥

भद्रकर्णं किरातं च काश्मीरं मण्डलं तथा ।
शैवालं सिन्धुदेशं च संदोहानि सृजेत्प्रिये ॥

श्रीर्जयन्ती कुल्लता च मालवेन महौजसा ।
काञ्चीपुरं कुरुक्षेत्रं बर्बरं शाम्बरं तथा ॥

उपपीठानि देवेशि क्षेत्रतीर्थानि संसृजेत् ।
नानाप्रकारं संगृह्य नार नात्र (?) कृतालयम् ॥

कृत्वैतानि पुनश्चक्रे संदोहानि समन्ततः ।
स्थापयेत्क्रतुयोगिन्यो ये[या] यत्रैव समागताः ॥

एवं कृत्वा निजां कीर्तिं वर्षे भारतसंज्ञके ।
उद्यमं च पुनश्चक्रे शेषं कर्तुं समुद्यता ॥

भ्रमत्यासुः[श्च] सुरेशान्याः पीठक्षेत्राद् वनाद्वनम् ।
प्रक्रमन्त्याः पपातोर्व्यां प्रस्वेदः श्रमसंभवः ॥

ततो जातः प्रचण्डात्मा क्रौञ्चनामा महासुरः ।
तेन तीव्रप्रतापेन पीडितं भुवनत्रयम् ॥

ततो ब्रह्मास[ण]मासाद्य सर्वे देवाः सवासवाः ।
पप्रच्छुः क्रौञ्चनाशाय ततः पापं हन प्रभो ॥

ब्रह्मा प्रोवाच देवानां दुर्द्धर्षोऽयं महासुरः ।
न श्रीकण्ठे न वैकुण्ठे न वै शक्त्याश्च निग्रहे ॥

सत्यं वच्मि भवात् पुत्रं पार्वती जनयिष्यति ।
तस्यासावसुरो वध्यो यस्मात्सोऽपि तदुद्भवः ॥

संप्राप्ते समये तेषां पार्वती हरसंनिधौ ।
वर्तते साम्प्रतं प्रीत्या परिचर्यापरायणा ॥

तत्र कामो वसन्तश्च उभौ प्रस्थापि[प्य]तां वने ।
संयोगो घटते येन भवतां शत्रुनिग्रहे ॥

इति संचिन्त्य मनसा ब्रह्मोक्तं चक्रिरे वचः ।
गृहीतं समयज्ञेभ्यः कामं प्राप्तहराश्रयम् ॥

वसन्तेन सहायेन रतिप्रीतिसहायवान् ।
प्रविवेश वनं कामः स्थितो यत्रेश्वरः स्वयम् ॥

पुन्नागाः कर्णिकाराश्च कदम्बाशोकपाटलाः ।
सहकारार्जुनास्तत्र चम्पकाश्च महाद्रुमाः ॥

कन्दर्पसंगमास्त[त्र]त्र दधिरे पुष्पसम्पदः ।
देवमुत्कर्षयामास पुष्पैरेभिर्हरं नवैः ॥

समादाय प्रभूतानि देवी प्राह[प] हरान्तिकम् ।
कामोऽपि तत्क्षणात्प्राप्य दृष्ट्वा सानन्दमीश्वरम् ।

बाणं संमोहनं नाम प्रेषयामास लीलया ।
सविकारं ततस्त्र्यक्ष्यः[क्षः] संलक्ष्य च निजं मनः ॥

दिशोऽवलोकयामास देवदेवस्त्रिलोचनः ।
इषुचापधरं दृष्ट्वा सकोपं मदनं प्रति ॥

तृतीयनयनस्थेन तेजसा जातवेदसम् ।
भस्मावशेषतां कामं प्रापयामास भैरवः ॥

हाहा कोलाहलं जातं देवानां गगनान्तरे।
रतेव व्यर्थनाशाय तत्क्षणान्तर्हितः शिवः॥

हिमाचलस्तामुपलभ्य वार्ता
सविस्त [रामागत] देवताभ्यः।
व्यक्षाश्रमं प्राप्य सुतां गृहीत्वा
जगाम तत्रावसरे स्वगेहे॥

इति श्रीमन्महामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे कादि-भेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे श्रीकण्ठनाथा-वतारे विद्यापीठे योगिनी गुह्ये

क्षेत्रोपक्षेत्रसंदोहोत्पत्तिर्नाम

तृतीयः पटलः॥३॥

चतुर्थः पटलः

अनन्तरं समागत्य ब्रह्माच्युतपुरन्दराः।
देवं विज्ञापयामासुः स्तुतिं कृत्वा त्रिलोचनम्॥ १॥

जयदेव जगन्नाथ सुरासुरगुरो हर।
त्राहि त्राहि त्रिलोकेश त्रैलोक्यमङ्गलाय च॥ २॥

स्मर देव पुराकल्पं त्रैलोक्यशरणादिते।
त्वयैवास्य कृता चिन्ता पुनश्चिन्तयसे प्रभो॥ ३॥

अद्रिजास्वेदसंभूतः क्रौञ्चनामा महासुरः।
तत्सुतस्यैव वध्योऽसौ तस्मात्पाणौ गृहाण ताम्॥ ४॥

ब्रह्मादीनां वचः श्रुत्वा तथेति प्रति[त्य]पद्यत ।
हिमाद्रितनयां देवः पाणौ जग्राह सादरम् ॥ ५ ॥

सब्रह्माणस्ततो देवाः कृतार्थाः प्रागमन् दिवम् ।
देवदेवोऽपि कन्दर्पमनुजग्राह लीलया ॥ ६ ॥

अङ्गीकृतस्ततोऽनङ्गैरनङ्गाकारभूषणैः ।
पार्वत्या सह सानन्दस्तदा रेमेऽनुरागतः ॥ ७ ॥

अनुरञ्जितवान् शम्भुः प्रोवाच गिरिगोत्रजाम् ।
देवि तुष्टोऽस्मि सद्भावात् वरं प्रार्थय सुव्रते ॥ ८ ॥

श्रीदेव्युवाच

पश्चिमाम्नायसिद्धानां संतानं पश्चिमं वदेत्[वद] ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि मतानां मतमुत्तमम् ॥ ९ ॥

कल्पे कल्पे त्वयाख्यातं बहुधा च मया श्रुतम् ।
सर्वस्यापि प्रमेयस्य न मे शक्योऽवधारितुम् ॥ १० ॥

गूढप्रमेया बाहुल्या अल्पबुद्ध्यामहं[बुद्धिरहं] प्रभो ।
प्रमेयं वद मे नाथ येन विज्ञा भवाम्यहम् ॥ ११ ॥

येनोपलक्षिमात्रेण ....।

× × ×

(सप्तविंशं पत्रम्)

....नता प्रिये ।
वृषभासनमारूढा सर्वलक्षणसंयुता ॥

सर्वाभरणसंपन्ना माहेशी मूर्तिरुत्तमा ।
कौमारी परमा देवी नीललोहिततेजसा ॥

जटाजूटधरा देवी अन्यच्चोर्ध्वप्रलम्बिता ।
विशालनयना दिव्या पूर्णचन्द्रनिभानना ॥

सौम्यं च कुण्डलं दिव्यं दक्षिणेन प्रलम्बितम् ।
द्वौ भुजौ कामभोजिन्याश्चश्वत्कङ्कणमण्डितौ ॥

मध्यक्षामा सुतन्वङ्गी समोन्नतपयोधरा ।
दक्षिणे च गदा दिव्या नानारत्नविभूषिता ॥

वामोत्सक्तिगता दिव्या बालमादाय शोभनम् ।
वामा च पतिता जङ्घा दक्षिणा चोन्नता प्रिये ॥

मयूरवाहना देवी सर्वज्ञा शाङ्करी परा ।
अतिरूपा सुसिद्धा च कौमारी मूर्तिः सिद्धिदा ॥

वैष्णवी च महातेजा कृष्णवर्णा चतुर्भुजा ।
मुकुटेन विचित्रेण जटाजूटेन्दुमण्डिता ॥

कर्णकुण्डलसंपूर्णा विशालनयना शुभा ।
पूर्णेन्दुमुखवर्णाभा कम्बुग्रीवा सुशोभना ॥

वरदा चक्रदा सूर्ये[सव्ये] गदाकम्बुधरापरे ।
सर्वलक्षणसंपन्ना वडमालाविभूषिता ॥

वामोन्नता महेशानि दक्षिणा च प्रलम्बिता ।
सुपर्णस्था महादिव्या दिव्याभरणभूषिता ॥

वृत्ताकारोन्नतापीनगजकुम्भोपमा शुभा ।
हारकेयूरशोभाढ्या वैष्णव्या मूर्तिरुत्तमा ॥

वाराही च महाघोरा नीलजीमूतसंनिभा ।
ऊर्ध्वजूटधरा देवी अधश्चोर्ध्वंप्रलम्बिता ॥

कर्णकुण्डलसूर्येन्दुदीप्ताभा सूकरानना ।
दंष्ट्राकरालदीप्ता च पीनोन्नतपयोधरा ॥

वामे काद्येन संयुक्ता मीनं वै दक्षिणे करे ।
लम्बोदरा बृहत्कुक्षिः कौलस्था चोत्कटासना ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वाभरणभूषिता ।
घर्घरानादगम्भीरा महाबलपराक्रमा ॥

वाराह्याः कथिता मूर्तिरैन्द्र्याश्च शृणु साम्प्रतम् ।
हेमाभा गौरदीप्ता च पूर्णेन्दुवदना शुभा ॥

विशालनयना दीप्ता कर्णकुण्डलभूषिता ।
जटाजूटान्विता देवि किरीटकृतशेखरा ॥

चतुर्भुजा महातेजा पीनोन्नतपयोधरा ।
धनुश्चर्मधरा वामे असिर्बाणस्तथा परे ॥

दक्षिणोन्नतजङ्घा च वामजङ्घा प्रलम्बिता ।
मत्तवारणमारूढा दिव्यरूपा महाबला ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वाभरणभूषिता ।
ऐन्द्राण्याः कथिता मूर्तिश्चामुण्डां सप्तमीं शृणु ॥

चामुण्डा चण्डवदना कोटराक्षी सुभीषणा ।

× × ×

(एकत्रिंशं पत्रम्)

.........स्वरसंदीप्तं कर्णकुण्डलभूषितम् ।
पञ्चवर्णधरं वक्त्रं ईषद्दंष्ट्राविराजितम् ॥

ताम्राक्षं हास्यमधुरं कटाक्षं तीक्ष्णलोचनम् ।
दशबाहुर्महातेजा नागयज्ञोपवीतिनम् ॥

कपालं खेटकं चापं खट्वाङ्गं दर्पणं प्रिये ।
वामे चैवायुधान् दिव्यान् दक्षिणे च ततः शृणु ॥

खड्गं बाणं तथा सर्पं त्रिशूलं वरदं तथा ।
दक्षिणेन [च] करे देवि दीप्यमानायुधा[धं] प्रिये ॥

नानाभरणसंयुक्तं नानालङ्कारभूषितम् ।
पद्मासनसमासीनं वृषारूढं सुतेजसम् ॥

एवं ध्यात्वा महादेवं भैरवं मातृमध्यगम् ।
पूजयित्वा विधानेन अलिफलवा[पला]दिसिह्लकैः ॥

गन्धपुष्पादिभिर्धूपैर्नानानैवेद्यसंकुलैः ।
षडङ्गपूजनाद्देवि भैरवं पूजयेत् प्रिये ॥

सं वं[शवं] समानयेद्देवि सर्वलक्षणलक्षितम् ।
पञ्चविंशत्प्रमाणेन द्वात्रिंशद्दशनान्वितम् ॥

अक्षतं निर्व्रणं श्रेष्ठं सर्वावयवशोभनम् ।
पूतिगन्धविनिर्मुक्तं सद्य मा[आ] नयते शवम् ॥

स्नापयेच्च प्रयत्नेन मन्त्रयुक्तेन वारिणा ।
दिव्याम्भसेन[सा च]दिव्येन अर्घ्ययुक्तेन मन्त्रिणा ॥

काश्मीरचन्दनैर्दिव्यैरर्चयेच्छवकं प्रिये ।
स्थाप्य मण्डलमध्ये च भैरवं मन्त्रमुच्चरेत् ॥

ख फ रेफमहामन्त्रमर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
कूर्मदारुकवर्णानि उमा कालेन संयुता ॥
द्विरण्डं बीजमादाय भूतेशेन विभेदितम् ।
भुजङ्गं केवलं देवि खङ्गीशानन्दसंयुतम् ॥
वालीशं केवलं गृह्य वकीशं खङ्गसंयुतम् ।
अम्बिका[कां] चान्तिमे योज्य अनन्तीशद्वयं कुरु ॥
भैरवस्य इदं मन्त्रं सर्वसिद्धिफलप्रदम् ।
जपेन्मन्त्रं वरारोहे शवस्यैवाग्रतः प्रिये ॥
अर्धरात्रे तु संप्राप्ते तच्छवं एवमुच्चरेत् ।
फेत्कारभीषणं रौद्रं सर्वभूतभयंकरम् ॥
दृढचित्तः स्थिरो भूत्वा भयशङ्काविवर्जितः ।
केवलं प्रजपेन्मन्त्रं भैरवध्यानं संस्मरेत् ॥
जिह्वाप्रसारणं दीर्घं शववक्त्रं सुभीषणम् ।
दृढचित्तो मनोत्साही शौर्यधैर्यसमन्वितः ॥
छेदयेत् कर्तृकां लोलां तच्छवं पतते ध्रुवम् ।
तस्य लोलां क्षिपेद्वक्त्रे खेचरं गुरुशिष्ययोः ॥
मातरान् (?) पश्यते सर्वान् गगनस्थान्न संशयः ।
अणिमादिगुणान् देवि लभते साधकोत्तमः ॥
नानारूपधरत्वश्च नानाविज्ञानसंयुतम् ।
खेचरीसंगमाश्रित्य क्रीडते स्वेच्छया स्वयम् ॥
खङ्गेन चक्रवर्तित्वं भुञ्जते सकलां महीम् ।
रोचना यक्षिणी सिद्धे[द्धिं] कामैकं ददते ध्रुवम् ॥
पादुका भूचरीं सिद्धिमदृश्यत्वमनेन वा ।
वीणा सारस्वतीं सिद्धिं नाना सिद्धीस्तु मातराः[रः] ॥
ददती·······························

× × ×

(पञ्चत्रिंशं पत्रम्)

दिव्यचन्दनकर्पूरैः कुङ्कुमाद्यैर्विलेपनैः ।
सुधूपधूपितान् सर्वान् सर्वालङ्कारभूषितान् ॥

नानावस्त्रैस्तु संच्छाद्य पुष्पमालोपशोभितान् ।
स्थापयेच्चक्रमध्ये तु पूर्वादौ च यथाक्रमम् ॥

एकैकं स्थापयेद्देवि उपहारैरनेकधा ।
महिषैर्मेषच्छागाद्यैर्मद्यमांसैरनेकधा ॥

भक्ष्यैर्भोज्यैश्च नैवेद्यैर्नानास्वननिनादितैः ।
योगिन्य[नीः] पूजयेत्तत्र नानालङ्कारकादिभिः ॥

वस्त्रैर्हिरण्यकैर्दिव्यैः खानपानैरनेकधा ।
कुमारीः पूजयेत्तत्र कुमारांश्च तथापरे[रान्] ॥

वस्त्रालङ्कारकैर्दिव्यैः यथावित्तानुरूपतः ।
वीरचक्रं प्रकुर्वीत अलिफलवा[पला]दिभिस्तथा ॥

एकरात्रं त्रिरात्रं वा. सप्तरात्रमथापि वा ।
चक्रानन्दं प्रकर्तव्यं यथालाभेन सुन्दरि ॥

गावो भूमिं हिरण्यं च ग्रामादि नगराणि च ।
रत्नकाञ्चनदानानि दीपमाल्यानि सुन्दरि ॥

दीनानाथांश्च संतर्प्य ब्राह्मणांश्च तपस्विनः ।
संतर्पयेत् प्रयत्नेन यथावित्तानुसारतः ॥

अ··········माप्नोति मातृचक्रप्रतिष्ठनात् ।
भूमिदानाच्च यत्पुण्यं यज्ञदानात्सहस्रु[स्रशः] ॥

······ति मया देवि पुण्यं कोटिगुणं स्मृतम् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम् ॥

आरोग्यं पुष्टिकामश्च ईप्सितं फलमश्नुते ।
राजा प्रणततां याति शत्रुनाशं तथैव च ॥

अन्यजन्मनि देवेशि जायते योगिनां कुले ।
ज्ञानं सर्वज्ञतां देवि कौलज्ञानं च विन्दति ॥

एतत्ते कथितं सर्वं मातराणां प्रतिष्ठनम् ।
नान्यतन्त्रे मयाख्यातमाख्यानं[तं] श्रीमतोत्तरे ॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

मातराणां प्रतिष्ठालक्षणयोर्निर्णयो नाम

चतुर्थः पटलः ॥ ४ ॥

●

पञ्चमः पटलः

प्रोत्फुल्लनयना देवी हृष्टरोमा उवाच ह ।
पूर्वं मया तपस्तप्तं वर्षकोटिशतानि च ॥
तत्फलं चाद्य मे प्राप्तं त्वत्प्रसादेन भैरव ।
अद्यापि न मया ज्ञातं देहस्थं मातृपूजनम् ॥
बृहन्नया न मे ज्ञाता यथाभेदैर्व्यवस्थिताः ।
कथयस्व प्रसा······················ ॥

× × ×

(सप्तत्रिंशं पत्रम्)

ॐ अघोरे अमोघे विमले वरदे कौमारी विच्चे नमः ।
तृतीयं पदमाख्यातं मातराणां वरानने ॥

एकविंशतिवर्णानां कथितं च मया तव ।
ॐ अघोरे अमोघे विमले वरदे वैष्णवी विच्चे नमः ॥

चतुर्थं पदमाख्यातं वर्णसंख्यां वदाम्यहम् ।
एकविंशति वर्णानि चतुर्थस्य पदस्य च ॥

ॐ अघोरे अमोघे विमले वरदे वराही विच्चे नमः ।
पञ्चमं पदमाख्यातं वाराह्याश्च वरानने ॥

वर्णविंशाधिकं देवि कथितं च गुणावहम् ।
ॐ अघोरे अमोघे विमले वरदे ऐंद्री विच्चे नमः ॥

षष्टमं [षष्ठं च] पदमाख्यातं वर्णान्येकोनविंशति ।
ॐ अघोरे अमोघे विमले वरदे चामुण्डे विच्चे नमः ॥

सप्तमं च पदं देवि वर्णानां विंशति प्रिये ।
ॐ अघोरे अमोघे विमले वरदे आग्नेयी विच्चे नमः ॥

अष्टमं च समाख्यातं वर्णानां विंशति प्रिये ।
पदाष्टकं समाख्यातं मध्यखण्डे वरानने ॥

वर्णसंख्यां च देवेशि कथयामि यथा तव ।
शतमेकं वरारोहे पञ्चषष्ठाधिकं प्रिये ॥

तृतीयस्य च खण्डस्य पदसंख्यां वदाम्यहम् ।
वर्णसंख्यां वरारोहे संक्षेपेण वदाम्यहम् ॥

ऐं चामुण्डे पदे पूर्वं ऊर्ध्वकेशी द्वितीयकम् ।
ज्वलितशिखे तृतीयं तु विद्यु[जिह्वे] चतुर्थकम् ॥

तारकाक्षि तथा देवि पञ्चमं परिकीर्तितम् ।
क्रुद्धेति च तथा देवि अष्टमं शुभलक्षणम् ॥
मांसशोणितसुरासवप्रिये एतद्धि नवमं पदम् ।
दशमं तु हशद्धेति कथितं तव शोभने ॥
नृत्यद्द्वयं तथा चोक्तं दशैकं तु वरानने ।
विजृम्भेति तथा युग्मं द्वादशं तु प्रकाशितम् ॥
मायात्रैलोक्यरूपेति दशत्रितयमुत्तमम् ।
सहस्रोपरि वर्तनीनां द्विसप्तमं महेश्वरि ॥
तुदयुग्मं पञ्चदशं त्रुटयुग्मं द्विरष्टकम् ।
वीरियुग्मं तथा भद्रे दश सप्तमकं भवेत् ॥
हितिद्वितयमेतद्धि दशाष्टौ च शुभेक्षणे ।
मिति चैव द्विरभ्यासं विंशमे .... नसंख्यया ॥
त्रासनीद्वितयं चैव पदं विंशमकं भवेत् ।
भ्रामणीयुग्मकं चैव विंशत्येकाधिकं भवेत् ॥
विद्राविणिद्विरभ्यासा[द्व्] द्वात्रिंशं समुदाहृतम् ।
क्षोभिणीति द्विरभ्यासं विंशं चत्वारि संख्यया ॥
संजीवनिपदे द्वे तु पञ्चविंशमकं भवेत् ।
हरियुग्मं स्मृतं भद्रे षड्विंशत्समुदाहृतम् ॥
गेरियुग्मं तथैवोक्तं सप्तविंशतिमं पदम् ।
घुरि चैव द्विरभ्यासात् अष्टाविंशद्वरानने ॥
घुरुद्वे[द्वे]ति तथाप्येवं ऊनत्रिंशमुदाहृतम् ।
नमो मा........ ॥

× × ×

(चत्वारिंशं पत्रम्)

······न संस्थं हि अर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
क्रूरानन्देन संभिन्नं कूटं परमदुर्लभम् ॥
नवमं कूटमाख्यातं कण्ठस्थं विन्यसेत् प्रिये ।
पिनाकी च महाकालं पिनाकी खड्गसंयुतम् ॥
भुजङ्गं चैव वालीशं अर्घीशासनसंस्थितम् ।
अर्द्धेन्दुकलया युक्तं कूटमेकादशं प्रिये ॥
लम्बकस्थं च विन्यस्य यत्र वाचामृता कला ।
वकीशं च महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ॥
भुजङ्गं चैव वालीशं अर्घीशासनसंस्थितम् ।
अर्द्धेन्दुबिन्दुसंभिन्नं शिखाक्रान्तं ततः प्रिये ॥
नासिकाग्रे च विन्यस्य यत्र देवो निरामयः ।
श्वेतं चैव महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ॥
भुजङ्गं चैव वालीशं अर्घीशासनसंस्थितम् ।
क्रूरानन्देन संभिन्नं अर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ॥
भ्रूमध्ये विन्यसेद्देवि कूटं चैव त्रयोदशम् ।
शुक्रं चैव महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ॥
भुजङ्गं चैव वालीशं अर्घीशासनसंस्थितम् ।
अर्द्धेन्दुकलया भिन्नं ललाटस्थं च विन्यसेत् ॥
लकुलीशं महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ।
भुजङ्गं चैव वालीशं अर्घीशासनसंस्थितम् ॥
अर्द्धेन्दुकलया भिन्नं रन्ध्रस्थं विन्यसेत् प्रिये ।
संवर्तकं महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ॥
भुजङ्गं चैव वालीशं अर्घीशं चासने स्थितम् ।
क्रूरानन्दसमाक्रान्तमर्द्धेन्दुकलया युतम् ॥

शिखा···तु विन्यस्य षोडशं कूटनायकम् ।
इदं न्यासं वरारोहे पञ्चप्रणवसंपुटम् ॥
त्रिखण्डया वरारोहे हृदयं परिकीर्तितम् ।
न्यस्त्वा[स्य] षोडशवाराणि ऊर्ध्वाधस्तात्पुनः पुनः ॥
ज्वालामालाकुलं ध्यात्वा हनेत्कालं न संशयः ।
क्षोभकृत्सर्वसत्त्वानां जीवभूतं परापरम् ॥
गोपितं सर्वतन्त्रेषु संस्फुटं च मतोत्तरे ।
तव भक्त्या वरारोहे अप्रकाश्यं प्रकाशितम् ॥
त्वया गोप्यं प्रयत्नेन भक्तिहीने तु वञ्चके ।
मायाविने[नि] शठे क्रूरे कोपिने[नि] कलहप्रिये ॥
दूषके गुरुलोपज्ञे अहङ्कारबलान्विते ।
दाम्भिके पिशुने क्षुद्रे न देयं समयोज्झि[ज्झि]ते ॥
गोपनीयं सदाकालमित्याज्ञा पारमेश्वरी ।
समयज्ञे सुगुप्ते च गुरोर्भक्तिरते सदा ॥
आज्ञाश्रवणसंपन्ने मायादम्भविवर्जिते ।
तस्य देयमिदं ज्ञानमन्यथा न कदाचन ॥
स्वाभाविकचलं दीप्तं स्थिरं द्रवनभोयुतम् ।
न्यासमार्गं मयाख्यातं अन्यथा न कदाचन ॥
······················श्रीमते गोपितं पुरा ।
लाकुलं च स्वभावस्थं वालीशं चल उच्यते ।
भुजङ्गं दीप्तमित्युक्तं स्थिरं वै वाक्यसुन्दरि ॥
द्रवाख्यं खड्गमित्युक्तं नभो श्वग्वाख्य उच्यते ।
न्यासमात्रं मयाख्यातं पीठा द्वादश भेदतः ।
एकैकं चक्रमुद्दिष्टं षट्कद्वादशभेदतः ॥
एकैकं भेदयेच्चक्रं पीठद्वादशभिः क्रमात् ।
संवर्तकर्णिके योज्य महाकाला··· ॥

× × ×

(पञ्चचत्वारिंशं पत्रम्)

......कृत्य .... लक्षभेदः स उच्यते ।
बिन्दुर्वै रन्ध्रसंस्थानं कोदण्डद्वयमध्यगम् ॥
तत्रस्था चाणुरूपेण भिन्नं[न्न] वैदूर्यसंनिभम् ।
स्रवन्ती चामृतौघं च अकस्मात् कर्षयेत् प्रिये ॥
बिन्दुस्थं हृदये कृत्वा कोटिभेदस्तदुच्यते ।
आधारे शतभेदं तु सहस्रं मणिपूरके ॥
एतज्जपविधानं तु कथितं तव शोभने ।
मुक्तकः शतभेदेन युक्तं शतगुणं शतम् ॥
चलचक्रविभागेन लक्षभेदमुदाहृतम् ।
चलचक्रपदान्ते तु कोटिभेदो वरानने ॥
एतत्ते कथितं भद्रे आध्यात्मिकमतः शृणु ।
भैरवस्य वचः श्रुत्वा हृष्टाङ्गा प्रणिपत्य च ॥
उवाच भैरवी देवी परमानन्दनन्दिता ।
देवदेव महादेव भैरवीश महाप्रभो ॥
संस्फुटं च न मे ज्ञातं चलचक्रं वद प्रभो ।
येन विज्ञान[त]मात्रेण सर्वज्ञानं प्रवर्तते ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु भद्रे वदिष्यामि चलचक्रं यथास्फुटम् ।
चला शक्तिरिति ख्याता चक्रभेदे व्यवस्थिता ॥
विद्यायाः पदभेदेन चक्रमेकैकभेदनम् ।
पादौ जानू तथा ऊरू नाभिर्हृत्कण्ठमेव च ॥
स्थानषट्कगताश्चक्रा अष्टारा सूर्यसंनिभाः ।
वज्रलाञ्छनसंयुक्ता[स्]त्रिधा लाञ्छनलाञ्छिता[ः] ॥

कर्णिकास्थं वरारोहे वज्रषट्कगताः प्रिये।
षट्कमध्यगता शक्तिस्तप्तचामीकरप्रभा॥

एता अष्टौ न्यसेच्चक्रे पत्रैकैके च सुन्दरि।
सप्तवर्णसमायुक्ता आद्यन्तपदभेदिता॥

पदद्वयमिदं देवि विसर्गस्थं वरानने।
षोडशारं महाचक्रं सूर्यबिन्दुसमायुतम्॥

चक्रषट्कगतं मध्ये कर्णिक[ा]स्थं सुदीपितम्।
वज्रलाञ्छनसंयुक्तं त्रिधा लाञ्छनलाञ्छितम्॥

ध्यायेच्चक्रं वरारोहे विद्या यत्र गता प्रिये।
भ्रमता चक्रवेगेन सूर्यतेजःसमप्रभा॥

विद्युत्कोटिसमप्रख्या भिन्नवैदूर्यसंनिभा।
भ्रमन्ती वायुवेगेन प्रेरिता प्राणवायुना॥

पादादौ मस्तकं यावत् ध्यायमाना वरानने।
एकैकं चिन्तयेच्चक्रं चलचक्रविभागतः॥

ऊर्ध[र्ध्व]स्थामभ्यसेद्देवि साधकश्च महामनाः।
षण्मासाभ्यासयोगेन खेचरत्वं प्रपद्यते॥

सद्यः प्रत्ययकर्तारं वश्याकर्षणमेव च।
स्तम्भमोहकरं देवि सैन्यस्तम्भकरं परम्॥

अणिमाद्यष्टकं चैव विज्ञानानि अनेकधा।
सृष्टिसंहारकर्तारं सर्वज्ञानप्रकाशकम्॥

कर्ता हर्ता स्वयं देवि अभ्य..........

× × ×

(त्रिपञ्चाशं पत्रम्)

..........ने देयं अमरीशाधयोजितम् ।
खड्गीशं झं[झिं]टिना युक्तं लोहितं तदनन्तरम् ॥
सूक्ष्मीशेन समायुक्तं क्रूरानन्दविभूषितम् ।
प्रचण्डानन्तसंभिन्नं वागीशं भूतिनायकम् ॥

श्रीकण्ठं केवलं देवि वक्रीशं च ततः पुनः ।
आषाढी चासनं तस्य भुजङ्गमासनस्थितम् ॥
अनन्तेन समाक्रान्तं वागीशं केवलं ततः ।
चूलिकं चैव सामेशं पतितं कारयेद् बुधः ॥

अस्त्रमुग्रं समाख्यातं वर्णैश्चैव त्रयोदशैः ।
सर्वरक्षाकरं दिव्यं सर्वविघ्नविनाशनम् ॥
अस्त्रं कालानलच्छायं सर्वभूतभयङ्करम् ।
अङ्गषट्कमिदं ख्यातं न्यसेद्देवि दिने दिने ॥

तस्य पापाः क्षयं यान्ति आज्ञा तीव्रतरा भवेत् ।
प्रणवाः पञ्च आद्यन्ते[न्ते] कृत्वा न्यासं समारभेत् ॥
देव्या अङ्गा[नि] समाख्याता[नि] वक्त्राणि शृणु सांप्रतम् ।
खड्गीशं च ततो गृहय सूक्ष्मीशेन विभेदितम् ॥
क्रोधीशं च ततः पश्चाद् भारभूतीशमासनम् ।
आषाढी केवलं देवि धात्रीशं क्रूरभेदितम् ॥
श्वेतं चैव वरारोहे सोमेशं चासनस्थितम् ।
भुजङ्गं तस्य वै योज्य झ[झि]ण्टीशेन समन्वितम् ॥

प्रचण्डं च द्विधा कृत्वा केवलं वरवर्णिनि ।
......चानन्तसंयुक्तं वागीशं भूतिना युतम् ॥
अर्घीशं केवलं देवि धात्रीशं मीनसंयुतम् ।
भुजङ्गं चोर्द्ध[र्ध्व]संदीप्तं खड्गीशं केवलं प्रिये ॥

क्रोधं चैवाषाढीशं एकत्र समयोजितम् ।
भुजङ्गमासनं तस्य अनन्तेन विभेदितम् ॥
वागीशं चैव मेषाख्यं महाकालं तृतीयकम् ।
महासेनेन संरुद्धं प्रथमं वक्त्रमूर्धजम् ॥
क्रोधीशं च ततः पश्चात् भुजङ्गं तस्य चासनम् ।
अर्घीशेन समायुक्तं धात्रीशं तदनन्तरम् ॥
मीनं तत्रैव संयोज्य झ[झि]ण्टीशेन समन्वितम् ।
कूर्मं क्रूरेण संभिन्नं दारुकानन्तसंयुतम् ॥
वागीशं भूतिना भिन्नं लोहितं चार्घिणा युतम् ।
खड्गीशं च द्विधा योज्यं भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम् ॥
खड्गीशं केवलं तस्य क्रोधीशं तदनन्तरम् ।
आषाढी चासनं तस्य भुजङ्गासनसंस्थितम् ॥
अनन्तीशेन संभिन्नं वागीशं केवलं ततः ।
मेषं चैव महाकालं महासेनसमन्वितम् ॥
द्वितीयं पूर्ववक्त्रं तु सर्वापदनिवारणम् ।
वक्त्रमध्ये न्यसेद्देवि शिरादारभ्य सुन्दरि ॥
महाकालं ततोद्धृत्य अनन्तीशेन संयुतम् ।
क्रूरानन्देन संभिन्नं भृग्वीशं केवलं प्रिये ॥
व ....

× × ×

(षट्पञ्चाशं पत्रम्)

·········पेतां नानालङ्कारमण्डिताम् ।
चापं शक्तिस्तथा कम्बु अभयं दर्पणं प्रिये ॥
·········रे तस्य दिव्यास्त्रं च विराजते ।
वज्रं बाणं तथा सर्पं वरदं चाक्षसूत्रकम् ॥
······था देवि दिव्यास्त्रं दिव्यरूपिणम् ।
त्रिवलीतरङ्गमध्यस्थां वृत्तोन्नतपयोधराम् ॥
हारकेयूरशोभाढ्यां मणिरत्नविभूषिताम् ।
वज्रासनगतां देवि प्रेतपर्यङ्क[सं]स्थिताम् ॥
स्वरमाला शिरे दिव्या वर्णहारावलम्बिनी ।
एवं ध्यात्वा वरारोहे मालिनीं दिव्यतेजसम् ॥
सर्वव्याप्तमयीं[प्तिमतीं] देवीं भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ।
अस्याङ्गानि [च] चक्राणि शृणु त्वं वीरनायिके ॥
येन विज्ञान[त]मात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ।
अणिमादिगुणान् देवि लभते नात्र संशयः ॥
भृग्वीशं च ततो देवि लकुली तस्य चासनम् ।
भुजङ्गं च ततोऽधस्तादनन्तीशसमायुतम् ॥
क्रूरेण शिरसाक्रान्तमर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
मेषं क्रूरेण संयुक्तं धात्रीशानन्तसंयुतम् ॥
वालीशं भूतिना युक्तं लकुलीशं ततः पुनः ।
मारभूती ततोऽधस्ताद्धात्रीशं केवलं ततः ॥
वालीशानन्तसंभिन्नं वालीशं के[वलं] पुनः ।
मेषं चैव महाकालं महासेनेन संयुतम् ॥
मालिन्या हृदयं देवि सर्वकामफलप्रदम् ।
भृग्वीशं च ततोद्धृत्य लकुलीशकृतासनम् ॥

भुजङ्गं चासनं तस्य त्रिमूर्तीशेन संयुतम् ।
क्रूरानन्दशिराक्रान्तमर्द्धेन्दुकलया युतम् ॥
प्रचण्डं च भुजङ्गस्थं भृग्वीशं केवलं ततः ।
मेषं चानन्तसंयुक्तं वालीशं भूतिना युतम् ॥
वकीशं सूक्ष्मसंयुक्तं भुजङ्गं केवलं ततः ।
भृग्वीशं झ[झि]ण्टिना युक्तं भृग्वीशं खड्गसंयुतम् ॥
अनन्तेन समाक्रान्तं शिरसं दिव्यरूपिणम् ।
सृष्टिरन्ध्रं समाख्यातं विंशद्वर्णम[यं] प्रिये ॥
भृग्वीशं लाकुलस्थं च भुजङ्गं तस्य चासनम् ।
अर्घीशेन समायुक्तं क्रू[रानन्देन] मेदितम् ॥
अर्द्धेन्दुकलया युक्तं तृतीयं बीजमुत्तमम् ।
मेषं सूक्ष्मसमायुक्तं··· अतः परम् ॥
तृतीयं वर्णमाख्यातं भारभूतिकृतासनम् ।
आषाढीशं·······लीशं तस्य चासनम् ॥
अनन्तीशेन संयुक्तं वालीशं भूतिना युतम् ।
·······सूक्ष्मसंभिन्नं चण्डं चानन्तसंयुतम् ॥
वालीशं भूतिना युक्तं खड्गीशं श्वे·······।

× × ×

(एकषष्टितमं पत्रम्)

·······वक्रा सुरूपा च त्रिनेत्रा वर्तुलानना ॥
दिव्यकुण्डलसंपूर्णा मुकुटं रत्नभूषितम् ।
चतुर्भुजा वरारोहे दिव्यरूपा महोदरा ॥
अभयकम्बुसंयुक्ता वाममार्गे विराजते ।
अक्षसूत्रा··संयुक्ता दक्षिणेन विराजते ॥

सर्वालङ्कारसंपूर्णा दिव्यवस्त्रोपशोभिता ।
सुप्रतिष्ठितजङ्घोरूः सारसस्यासने स्थिता ॥

प्रतिष्ठा परमा देवी, विद्यामूर्तिं वदाम्यहम् ।
रक्ताभा रक्तदीप्ता च रक्तान्तायतलोचना ॥

एकवक्त्रा त्रिनेत्रं[त्रा] मुकुटकुण्डलभूषिता ।
वरदाभयसंयुक्ता नानाभरणमण्डिता ॥

चक्रवाकासनस्था च दिव्याभरणशोभिता ।
वडमाला शिरे [?] तस्या वर्णहारावलम्बिनी ॥

विद्यामूर्त्तिः समाख्याता, शान्त्या मूर्त्तिं वदाम्यहम् ।
श्वेता कुन्देन्दुदीप्ताभा संपूर्णेन्दुनिभानना ॥

त्रिनेत्रा वर्तुला दीप्ता भून्नता दिव्यतेजसा ।
दिव्यकुण्डलशोभाढ्या नानारत्नसमुज्ज्वला ॥

मुकुटेन तु दिव्येन सर्वज्ञानमयेन च ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ॥

पद्मासना च पद्मस्था दिव्यतेजा महाबला ।
शान्त्या मूर्तिः समाख्याता, चामुण्डां कथयाम्यहम् ॥

कृष्णाभातीव शोभाढ्या निर्मांसा स्नायुदीपिता ।
कोटराक्षी महाभीमा कपालकृतशेखरा ॥

मुद्राकर्णकृता देवी जटाजूटोर्ध्वमण्डिता ।
भुजाष्टकसमोपेता भुजङ्गाभरणान्विता ॥

काद्यं मुण्डं तथा शूलं कम्बु वामे विराजते ।
कर्तृकां डमरुं पाशं वरदं चैव दक्षिणे ॥

शवयानोपरिस्था च महारौद्रा भयानना ।
मुण्डमाला प्रलम्बा च गजचर्मपरिच्छदा ॥

चामुण्डायास्त्विमा[यं]मूर्त्तिः, प्रियदर्शिनि[नी] कथ्यते ।
पीताभा पीतवर्णा च पीतारुणसुदीपिता ॥

अक्षरक्ता विशाला च कर्णकुण्डलभूषिता ।
ईषद्धास्यधरा देवी काञ्चनं मुकुटोज्ज्वलम् ॥

वरदं च त्रिशूलं च दक्षिणेऽस्या विराजते ।
अङ्कुशं च महापाशं वाममार्गे विराजते ॥

हारनूपुरशोभाढ्या दिव्यवस्त्रैरलंकृता ।
सिंहारूढा महादेवी सर्वलक्षणसंयुता ॥

प्रिय[दर्शिनी] समाख्याता, गुह्यशक्तिं वदाम्यहम् ।
गुह्यस्था गुह्यरूपा च रक्ताभा रक्तसन्निभा ॥

रक्तोत्पलनिभा दीप्ता त्रिनेत्रा चारुहासिनी ।
विशालनयना देवी मुकुटकुण्डलभूषिता ॥

मुद्रापुष्पधरा वामे वरदा दक्षिणेन तु ।
वज्रायुधधरा दिव्या तन्वङ्गी हसितानना ॥

कुचभारनितम्बाढ्या क्षोभयन्ती चराचरम् ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥

पद्मस्था दिव्यरूपा च सर्वज्ञानप्रकाशिनी ।
नारायण्याः परा मूर्त्तिरतसीपुष्पसन्निभा ॥

चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च कुण्डलैर्मुकुटोज्ज्वला ।
वडमालाधरा दिव्या वैनतेयासनस्थिता ॥

शङ्खे[ङ्खं] चक्रं धृतं वामे वरदं दक्षिणे करे ।
अपरे च गदा दिव्या सुदीप्ता कनकोज्ज्वला ॥

कुचभारोन्नता देवी साधकस्य वरप्रदा ।
मोहिनी मोहयेत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

श्यामा सुस्निग्धवर्णा च एकवक्त्रा त्रिलोचना।
धनुर्बाणधरा देवी मोहयन्ती चराचरम्॥

हारप्रलम्बशोभाढ्या पीनोन्नतपयोधरा।
दिव्यजूटधरा देवी कर्णौ कुण्डलभूषितौ॥

मकरस्था सुरूपा च सर्वावयवशोभिता।
मोहिनी कथिता देवी, प्रज्ञामूर्तिं वदाम्यहम्॥

कुङ्कुमाभा सुदीप्ता च पूर्णचन्द्रनिभानना।
त्रिनेत्रा वर्तुलाकारा कुण्डलैर्मुकुटोज्ज्वला॥

चतुर्भुजा महादीप्ता नानालङ्कारमण्डिता।
वृत्ताकारौ स्तनौ तस्याः कण्ठे हारावलम्बिनी॥

वरदा वज्रहस्ता च दक्षिणेन विराजिता।
अक्षसूत्रं च पाशं च वामेनैव वरानने॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता।
पद्मासना महादिव्या नानारत्नविभूषिता॥

प्रज्ञा च कथिता देवी प्रज्ञाबुद्धिविवर्धिनी।
वज्रिणी वज्ररूपा च वज्रदीप्तिधरा शुभा॥

आकाशोल्कप्रभा दिव्या उदयादित्यसन्निभा।
त्रिनेत्रा दीप्तवक्त्रा च किञ्चिदुन्मीलितेक्षणा॥

कर्णकुण्डलशोभाढ्या मुकुटं रत्नमण्डितम्।
चतुर्भुजा महादिव्या नानाभरणशोभिता॥

वज्रं च वरदं देवीदक्षिणेन विराजते।
कार्यं चैव त्रिशूलं च वामेनैव सुशोभितम्॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था सौम्योन्नतपयोधरा।
वज्रस्था वज्रमारूढा वज्रपद्मोपरि स्थिता॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ।
वज्रिण्याः कथिता मूर्तिः, कङ्कटां शृणु सांप्रतम् ॥

कङ्कटा धूम्रवर्णाभा त्रिनेत्रा वर्तुलानना ।
विशालनयना दिव्या कर्णौ कुण्डलमण्डितौ ॥

मुकुटेन विचित्रेण नानारत्नमयेन तु ।
चतुर्भुजा महादेवी नानाभरणभूषिता ॥

त्रिशूलं डमरुं वामे कादर्यं [च] वरदक्षिणे ।
काकस्था काकवर्णाभा पिशितासवलम्पटा ॥

मध्यस्था[क्षा]मा तु तन्वङ्गी समुन्नतपयोधरा ।
नानाभरणसंयुक्ता सुरूपा प्रियदर्शिनी ॥

कृष्णजीमूतवर्णाभा नीलाञ्जनसमप्रभा ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च रक्तान्तायतलोचना ॥

दंष्ट्राकरालवदना कर्णकुण्डलभूषिता ।
षड्भुजा भीमरूपा च सर्पाभरणमण्डिता ॥

कादर्यं त्रिशूलं दण्डं च वामेऽस्याश्च विराजते ।
कर्तृकां चैव खट्वाङ्गं मीनमक्षं च दक्षिणे ॥

कपालमालाभरणा क्रीडन्ती शवसंस्थिता ।
लम्बस्तनी बृहत्कुक्षिः कृष्णवासःसुसंवृता ॥

कालिका कथिता देवी, शिवामूर्तिं वदाम्यहम् ।
रोचनाभा सुदीप्ता च त्रिनेत्रा च शिवापरा ॥

एकवक्त्रा सुरूपा [च] शिवारावा भ[य]ङ्करी ।
ऊर्द्ध[र्ध्व]जूटधरा देवी कर्णौ मुद्राप्रलम्बितौ ॥

चतुर्भुजा महाभीमा नानालङ्कारमण्डिता ।
कादर्यं पिशितखण्डं च वामस्था करशोभिता ॥

त्रिशूलं वरदं चैव दक्षिणेन विराजते ।
पुष्पमालाधरा देवी लम्बोदरसुविक्लवा ॥

लम्बस्तनी महाभीमा जम्बुकासनसंस्थिता ।
घोषा[रा] च घोररूपा च नीलमेघसमप्रभा ॥

घूर्म्मं[र्ण]न्ती च मदोन्मत्ता एकवक्त्रा सुभीषणा ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च जटामुकुटमण्डिता ॥

कर्णकुण्डलसंयुक्ता कण्ठे हारावलम्बिनी ।
उन्नतौ च कुचौ तस्यास्त्रिवलीमध्यभूषिता ॥

काद्यं चैवं तु मुण्डश्च वाममार्गे विराजते ।
त्रिशूलं कर्तरी चैव दक्षिणे चोन्ता[न्नता] प्रिये ॥

नानालङ्कारसंयुक्ता नीलवस्त्रपरिच्छदा ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा लोकस्था च विराजते ॥

रक्तपीतारुणच्छाया सुदीप्तिश्छिर्वराननाः ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च कुण्डलैर्मुकुटोज्ज्वला ॥

मणिरत्नकृता माला शिरःस्था च विराजते ।
नानाभरणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ॥

शङ्खं च कलशं वामे वरदं चाक्षसूत्रकम् ।
पीतवस्त्रावृता देवी पर्यङ्कस्था विराजते ॥

कथिता छिर्व्वरामूर्तिर्वागीशीं शृणु साम्प्रतम् ।
गोक्षीराभा सुदीप्ता च त्रिनेत्रा वर्तुलानना ॥

मौति[मुक्ता]माला शिरे तस्याः कर्णकुण्डलमण्डिता ।
त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था समुन्नतपयोधरा ॥

चतुर्भुजा महासौम्या नानालङ्कारमण्डिता ।
पाशाङ्कुशधरा वामे अभयं दक्षिणे प्रिये ॥

अपरे चाक्षसूत्रं च श्वेतवस्त्रपरिच्छदा ।
पद्मासना पद्मनिभा सर्वलक्षणलक्षिता ॥

चन्द्राभा चन्द्रकैर्दीप्ता चन्द्राननशुभेक्षणा ।
मध्यक्षामा नितम्बाढ्या वृत्ताकारौ पयोधरौ ॥

चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च सर्वाभरणमण्डिता ।
दक्षिणेन स्थिता वीणा वामे पुस्तकधारिणी ॥

दक्षिणे स्वक्षमालां च स्फाटिकां च सुवर्चसम् ।
पद्मासनस्थिता देवी रक्तवस्त्रपरिच्छदा ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ।
मयूरचन्द्रिकाभासा सुदीप्ता किरणोज्ज्वला ॥

षड्वक्त्रा द्वादशभुजा नेत्रैरष्टादशैः प्रिये ।
मुकुटेन विचित्रेण गोनासा कर्णकुण्डला ॥

मयूरस्था महादेवी सर्पाभरणमण्डिता ।
काद्यं खट्वाङ्गपाशं च अङ्कुशं शक्तितोमरम् ॥

वामेऽस्याश्च वरारोहे दक्षेऽस्याः शृणु साम्प्रतम् ।
त्रिशूलं डमरुं पाशं वरदं सर्पं अक्षकम् ॥

नानालङ्कारसंयुक्ता सर्पकञ्चुकवाससा ।
भीमां च कथयिष्यामि शृणुष्वेकमनाः प्रिये ॥

भीमा च ताम्रवर्णाभा त्रिनेत्रा दीर्घमानना ।
नीला मणिकृता माला शिरःस्था च विराजते ॥

कुण्डलैर्मुकुटैर्दिव्यैर्नरास्थिकृतभूषणा ।
चतुर्भुजा महातेजा लम्बोदरभयानना ॥

काद्यं खेटकं वामेन खड्गं वरदं च दक्षिणे ।
किंकरस्था वरारोहे क्षोभयन्ती चराचरम् ॥

भीमा च कथिता देवी, रामामूर्तिं वदाम्यहम् ।
रामा चम्पकवर्णाभा तप्तकाञ्चनसन्निभा ॥

मुक्तकेशा त्रिनेत्रा च वक्राननभयङ्करी ।
चतुर्भुजा च प्रेतस्था चश्रुकर्णविभूषिता ॥

कादर्थं मुण्डं कृतं वामे मीनं कत्र[र्त्तरी] च दक्षिणे ।
मौक्तिकमाला गले तस्या रक्तवस्त्रपरिच्छदा ॥

वायुवेगा महाचण्डा धूम्राभा धूम्रवर्च्चसा ।
त्रिनेत्रा दीर्घनासा च ऊर्द्ध[र्ध्व]केशा भयानना ॥

कर्णकुण्डलसंलग्ना ललाटे हेमपट्टिका ।
स्फाटिकेन कृता माला कण्ठे तस्य[ा] विराजते ॥

लम्बोदरी लम्बस्तनी लम्बबाहुश्चतुर्भुजा ।
कादर्थं ध्वजं कृतं वामे दक्षिणे पाशकाभयम् ॥

मृगपृष्ठसमारूढा नानालङ्कारमण्डिता ।
दिव्यवस्त्रावृता देवी पादौ नूपुरमण्डितौ ॥

नीलाभा नीलवर्णा च नीललोहितपिङ्गला ।
गजवक्त्रा महाकाया त्रिनेत्रा मुकुटोज्ज्वला ॥

लम्बोदरा स्थूलह्रस्वा चतुर्भुजकृतायुधा ।
मोदकं दशनं वामे पर्शुसूत्रं च दक्षिणे ॥

वड[र]माला शिरे तस्या वर्णहारावलम्बिनी ।
आखुपृष्ठसमारूढा सर्वाभरणमण्डिता ॥

विनायकी महादेवी गजचर्मपरिच्छदा ।
पूर्णिमा पूर्णचन्द्राभा त्रिनेत्रा वर्तुलानना ॥

रत्नकुण्डलसंदीप्ता मुकुटोज्ज्वलशोभिता ।
महारत्नकृता माला कण्ठसंस्था विराजते ॥

वामे कादग्रधरा देवी दक्षिणे चाक्षसूत्रकम् ।
त्रिवलीतरङ्गशोभाढ्या पीनोन्नतपयोधरा ॥

सिंहपृष्ठसमारूढा सर्वालङ्कारमण्डिता ।
डंकारिणी महादेवी सुषिराभा सुवर्चसा ॥

मेदया[मेघा]भसन्निभाकारा मृणालतन्तुसन्निभा ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च हारकेयूरमण्डिता ॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था समौ पीनपयोधरौ ।
शङ्खं च कलशं वामे पल्लवं चाक्षसूत्रकम् ॥

चतुरस्रसमारूढा नानारत्नविभूषिता ।
सर्वालङ्कारसंयुक्ता श्वेतवस्त्रपरिच्छदा ॥

कुर्द्धनी कुङ्कुमाभा च पीतारुणसुदीपिता ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च कुण्डलैर्मुकुटोज्ज्वला ॥

चतुर्भुजा महाकाया महागोलांसमण्डिता ।
कापपाशधरा वामे खड्गं चाभयं दक्षिणे ॥

वृषभस्था महादीप्ता सर्वावयवशोभिता ।
जयन्ती परमा देवी नीललोहितवर्चसा ॥

त्रिनेत्रा सौम्यवक्त्रा च रत्नकुण्डलमण्डिता ।
रत्नमरकतसंयुक्ता कण्ठे माला प्रलम्बिता ॥

महोदरा महाकाया विद्युज्ज्वलिततेजसा ।
षड्भुजा वरदा देवी त्रिशूलं चाक्षसूत्रकम् ॥

काद्यं कुम्भं तथा वामे पात्रं तस्या विराजते ।
कुम्भासनसमारूढा पीतवस्त्रपरिच्छदा ॥

दीपिनी वह्निरूपाभा वह्निज्वालासमप्रभा ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च रत्नकुण्डलभूषिता ॥

पिङ्गभ्रू[ः] पिङ्गकेशा च मौक्तमालाप्रलम्बिता ।
चतुर्भुजा महादीप्ता नानालङ्कारमण्डिता ॥

कायकुम्भधरा वामे वरदं शूलं [च] दक्षिणे ।
मेषासनसमारूढा पीतवस्त्रपरिच्छदा ॥

सर्वावयवसंपूर्णा सर्वलक्षणलक्षिता ।
रकारवर्णसंभूता महातेजा महाबला ॥

कपालिनी कपालाभा कपालाभरणान्विता ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च पीनोन्नतपयोधरा ॥

कायवज्रधरा वामे त्रिशूलं पात्रं [च] दक्षिणे ।
कपालं चासनं तस्याः कृष्णवस्त्रपरिच्छदा ॥

पावनी पवनवेगस्था पद्माभा पद्मवर्चसा ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च नानारत्नविभूषिता ॥

गदा कार्यं स्थितं वामे चक्रं चाभयं दक्षिणे ।
पुष्पमाल्यैः प्रलम्बाभिरापादतललम्बिनी ॥

खरासनसमारूढा धूम्रवस्त्रपरिच्छदा ।
भिन्नवैदूर्यवर्णाभा मौक्तदीप्तिधरा प्रिये ॥

चारुवक्त्रा त्रिनेत्रा च दिव्यकुण्डलमण्डिता ।
चतुर्भुजा महादीप्ता मौक्तिकाभरणोज्ज्वला ॥

वामदक्षकराभ्यां च कमलौ च सुशोभनौ ।
अपरे चाक्षसूत्रं च वरदा दक्षिणे प्रिये ॥

पद्मासना पद्मसस्था शुक्लवस्त्रपरिच्छदा ।
सर्वावयवसंपूर्णा सर्वलक्षणलक्षिता ॥

इच्छाशक्तिः समाख्याता, अम्बिकां च वदाम्यहम् ।
अम्बिका चाप्यधोवक्त्रा त्रिनेत्रा मदघूर्णिता ॥

प्रसन्नवदना देवी हंसस्था च चतुर्भुजा ।
रत्नमाला करे दिव्या वामे पुस्तकधारिणी ॥

पद्मं च दक्षिणे पार्श्वं प्राणस्था प्राणवासिनी ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वावयवशोभिता ॥

मुकुटेन विचित्रेण सर्वरत्नमयेन तु ।
वज्रकुण्डलशोभाढ्या अम्बिकामूर्त्तिः सिद्धिदा ॥

छागस्था कृष्णवर्णाभा कृष्णवर्णपरिच्छदा ।
अजवक्त्रा त्रिनेत्रा च लम्बकर्णामिषप्रिया ॥

चतुर्भुजा महावीर्या लम्बचूचुकशोभिता ।
धनुर्बाणधरा देवी काद्यखट्वाङ्गधारिणी ॥

महादीप्तिधरा देवी सर्वावयवभूषिता ।
पूतना विकृता रौद्रा शुष्काङ्गा रक्तसंनिभा ॥

रक्तनेत्रा त्रिनेत्रा च मुक्तकेशा दिगम्बरा ।
प्रलम्बदशना देवी अस्थिमालाप्रलम्बिता ॥

कर्णमुद्राधरा देवी सर्वावयवशोभिता ।
चतुर्भुजा महादिव्या असिकट्टारिकोज्ज्वला ॥

काद्यपिशितखण्डेन वामस्था च विराजते ।
बालासनगता देवी पूतना च भयावहा ॥

क्षीराभा क्षीरवर्णा च ह्रस्वाङ्गी च महोदरा ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च वरदं चाक्षसूत्रकम् ॥

काद्यसर्पकरा वामे सर्वाभरणमण्डिता ।
स्त्रियः स्कंद[न्ध]समारूढा दिव्यवस्त्रपरिच्छदा ॥

भा[हा]रकुण्डलशोभाढ्या सर्वालङ्कारमण्डिता ।
लम्बिकां कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाधुना ॥

अतिदीर्घा प्रचण्डा च त्रिनेत्रा च चतुर्भुजा ।
एकवक्त्रा प्रसन्नास्या रक्तारुणनिभेक्षणा ॥

पीतपुष्पनिभाकारा सुदीप्ततेजभासुरा ।
दिव्यकुण्डलसंयुक्ता किरीटमुकुटोज्ज्वला ॥

काद्यं खट्वाङ्गं वामे त्रिशूलं पात्रा [त्रं]च दक्षिणे ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा मकरस्था विराजते ॥

नीलपीतेन वस्त्रेण शोभिता च सुतेजसा ।
लम्बिका कथिता देवी, संहारीं शृणु चाम्बिके ॥

कृष्णवर्णा सुतेजाढ्या एकवक्त्रा महोदरा ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च पिङ्गकेशा सुवर्चसा ॥

रक्तनेत्रा महारौद्रा ईषद्घूर्णितलोचना ।
दंष्ट्राकरालवदना पीतकुण्डलमण्डिता ॥

ऊर्ध्वजूटं फणिबद्धं नागयज्ञोपवीतिनी ।
दण्डपाशधरा दक्षे काद्यशूलधरा प्रिये ॥

रक्तपुष्पकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
पीतवस्त्रावृता देवी राक्षसस्यासने स्थिता ॥

संहारी मूर्तिराख्याता, महाकालीमतः शृणु ।
महाकाली महाकाया लाजावर्तकसन्निभा ॥

अतसीपुष्पसंकाशा त्रिनेत्रा च महोदरा ।
आताम्रनयना दीप्ता मदिरानन्दलालसा ॥

चतुर्भुजा महातेजा सर्पकुण्डलमण्डिता ।
जटाजूटधरा देवी कपालकृतशेखरा ॥

कपालमालाभरणा काद्यखेटकधारिणी ।
दण्डखड्गधरा दक्षे पीतवस्त्रोपसेविता ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा वृषारूढा विराजते ।
कथिता च मया देवी महाकाली सुसिद्धिदा ॥
कुसुमा च कुसुम्भाभा कुसुमोदकसन्निभा ।
त्रिनेत्रा दिव्यरूपा च दिव्यकुण्डलमण्डिता ॥
जटाजूटधरा देवी अर्द्धेन्दुकृतशेखरा ।
त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था पीनोन्नतपयोधरा ॥
चतुर्भुजैकवदना हारनूपुरमण्डिता ।
पुष्पचापधरा वामे बाणश्चाङ्कुशं दक्षिणे ॥
रक्तवस्त्रावृता देवी पद्मस्था च विराजते ।
कथिता कुसुमामूर्त्तिः, शुक्रादेवीं वदाम्यहम् ॥
शशिकुन्दनिभा दीप्ता त्रिनेत्रा पूर्णिमानना ।
रत्नकुण्डलशोभाढ्या किरीटमुकुटोज्ज्वला ॥
रत्नमाला शिरे तस्या हारकेयूरमण्डिता ।
चतुर्भुजा महादीप्ता नानालङ्कारभूषिता ॥
काद्यचक्रधरा वामे खड्गं पाशं च दक्षिणे ।
त्रिवलीतरङ्गशोभाढ्या पीनवृत्तपयोधरा ॥
हंसासनसमारूढा शुक्लवस्त्रपरिच्छदा ।
शुक्रादेवी समाख्याता, तारां च शृणु साम्प्रतम् ॥
तारा तारनिभा दीप्ता ताराभा तारवर्च्चसा ।
त्रिनेत्रा च त्रिवक्त्रा च दिव्यकुण्डलमण्डिता ॥
शुक्लपुष्पकृता माला शिरःस्था च विराजते ।
किरीटरत्नसंदीप्ता मौक्तमालाप्रलम्बिनी ॥
षड्भुजा दिव्यदेहा च नानाभरणभूषिता ।
काद्यं खेटकं पाशं च वाममार्गे[भागे] विराजते ।

खड्गं दण्डं तथा सूत्रं दक्षिणे वीरनायिके ।
नीलवस्त्रावृता देवी पर्यङ्कासनसंस्थिता ॥

तारा च कथिता देवी, ज्ञानीं च शृणु साम्प्रतम् ।
बन्धूकपुष्पसंकाशा दाडिमीकुसुमप्रभा ॥
त्रिनेत्रा चैकवक्त्रा च किरीटकुण्डलोज्ज्वला ।
मणिरत्नप्रवालाद्ये[दि]रत्नमालाप्रलम्बिता ॥
त्रिवलीतरङ्गशोभाढ्या पीनवृत्तपयोधरा ।
चतुर्भुजा महातेजा नानालङ्कारमण्डिता ॥
वामदक्षौ करौ देव्याः संस्थितौ ऊरुकोपरि ।
वामहस्ते स्थितं काद्यं दक्षिणे चाक्षसूत्रकम् ॥
पद्मस्था पद्ममध्यस्था पद्मासनगता शुभा ।
ज्ञानी च कथिता देवी, क्रियां च कथयाम्यहम् ॥

एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च जटामुकुटधारिणी ।
चतुर्भुजा महातेजा कृष्णाभा कृष्णवर्च्चसा ॥

कुण्डलाभरणोपेता हारकेयूरमण्डिता ।
काद्यपाशधरा वामे दक्षे दण्डकमण्डलू ॥

कृष्णाजिनस्थिता देवी पद्मासनव्यवस्थिता ।
क्रियामूर्तिश्च कथिता ध्याता मोक्षफलप्रदा ॥
गायत्रीं कथयिष्यामि मूर्तिरूपा यथा स्थिता ।
चतुर्वक्त्रा त्रिनेत्रा च किरीटकुण्डलोज्ज्वला ॥

भुजाष्टकसमोपेता श्वेताभा श्वेतवाससा ।
मध्यक्षामा नितम्बाढ्या समपीनपयोधरा ॥
काद्यश्रुवर्चखट्वाङ्गवामस्था चाभयप्रदा ।
वरदं चाक्षसूत्रं च पाशं चैव कमण्डलुम् ॥

दक्षिणे चैव देवेशि दिव्यरूपा महबाला ।
हंसपृष्ठसमारूढा सर्वलक्षणसंयुता ॥

गायत्र्याः कथिता मूर्त्तिः, सावित्रीं च वदाम्यहम् ।
श्यामा च श्यामवर्णाभा रक्तारुणनिभेक्षणा ॥

एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च किरीटकुण्डलोज्ज्वला ।
रत्नमाला शिरे तस्या दिव्यहारप्रलम्बिता ॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था वृत्तपीनपयोधरा ।
चतुर्भुजा महातेजा काद्यशूलधरा प्रिये ॥

दण्डशक्तिधरा देवी दक्षिणेन विराजते ।
नानालङ्कारसंयुक्ता पीतवस्त्रसमावृता ॥

पर्यङ्कासनमारूढा सर्वालङ्कारभूषिता ।
सावित्री कथिता देवी, दहनीं कथयाम्यहम् ॥

दहनी च महातेजा वह्निज्वालासमप्रभा ।
त्रिनेत्रा च त्रिवक्त्रा च षड्भुजा च महाबला ॥

पिङ्गाक्षी पिङ्गकेशी च रत्नकुण्डलभूषिता ।
वर्णमाला शिरे तस्या वर्णहारावलम्बिनी ॥

काद्यं खड्गं गदा पाशं वामेनैव विराजते ।
नागं त्रिशूलं दण्डं च दक्षमार्गे[भागे] विराजते ॥

मध्यक्षामा सुतेजाढ्या किञ्चिल्लम्बस्तनी प्रिये ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ॥

कङ्कालासनसंस्था च दहते सचराचरम् ।
दहन्या मूर्त्तिमा[रा]ख्याता, फेत्कारीं शृणु साम्प्रतम् ॥

शिवामुखी त्रिनेत्रा च शिवारावा भयङ्करी ।
धूम्राभा धूम्रवर्णा च मुकुटकुण्डलमण्डिता ॥

चतुर्भुजा महादीप्ता नानालङ्कारमण्डिता ।
कार्यं पिशितखण्डं च वामस्था[स्थं] वीरनायिके ॥

त्रिशूलं च तथा दण्डं दक्षिणेन विराजते ।
लम्बोदरा बृहत्कुक्षी रत्नमालाप्रलम्बिनी ॥

लम्बस्तनी लम्बकेशी रौद्ररूपा महाबला ।
जम्बुके तु समारूढा दिव्याभरणमण्डिता ॥

फेत्कार्या मूर्तिराख्याता सर्वसिद्धिफलप्रदा ।
देवीनां मूर्त्तिभेदोऽयं मालिन्या वर्णभेदतः ॥

नादिफान्तस्वरूपेण कथितं वीरवन्दिते ।
नान्यतन्त्रे मयाख्यातमाख्यातं श्रीमतोत्तरे ॥

चक्रमध्यगताः पूज्या देहस्थाः स्थानभेदतः ।
मालिनीचक्रविन्यासं यथा भवति तच्छृणु ॥

अष्टारं द्वादशारं च षोडशारं वरानने ।
पुनर्द्वादशभेदेन चक्रस्था च परापरा ॥

नादविन्दुकलारूपा परापरव्यवस्थिता ।
क्रमेण चालिखेन्मूर्त्तिमष्टपत्रादितः क्रमात् ॥

ऊर्ध्वसंस्थाद्वये भेदा परा चापरभेदतः ।
चक्रमध्यगता लेख्या वृत्ताकारेण सुन्दरी ॥

एवं परापरा लेख्या चक्रस्था परमेश्वरी ।
आदिचक्रगता देवी वज्रषट्ककमध्यगा ॥

पूर्वोक्ता तु मया देवी मूर्त्तिस्था मालिनी परा ।
पटे तु संलिखेच्चक्रं यथावर्णस्वरूपतः ॥

पूजयेच्च प्रयत्नेन अलिफल्वा[पला]दिभिः क्रमात् ।
नवपञ्चविधैर्द्रव्यैः पूजयेद् वृत्तिगोचरे ॥

भृग्वीशं षड्विधं देवि त्रिपादेन पुनः प्रिये ।
क्रूरानन्देन संभिन्नं अर्धेन्दुकलयान्वितम् ॥

अनेन बीजषट्केन जातिनामप्रभेदितम् ।
यथा बाह्ये तथा देहे हृच्चक्रस्थां प्रपूजयेत् ॥

पूर्वोक्तं मालिनीबीजं शत्रुनामविदर्भितम् ।
षण्मासाज्जाप्ययोगेन शृणु वक्ष्यामि ये गुणाः ॥

शत्रवः प्रलयं यान्ति यदि शक्रसमाः प्रिये ।
मारणोच्चाटनं देवि वश्याकर्षणमोहनम् ॥

स्तम्भनं जृम्भणं चैव प्लवनं द्रावणं क्षोभणं तथा ।
परचक्रमर्दनावेशमतीतज्ञानजल्पनम् ॥
परपुरप्रवेशं च कवित्वं च मनोहरम् ।
स्फोटनं शैलवृक्षाणां कुरुते नात्र संशयः ॥

अस्य[एतच्]चक्रप्रभावेण यच्चैव हृदि संस्थितम् ।
अन्यानि यानि कर्माणि तानि सर्वाणि कारयेत् ॥
न देयं दुष्टबुद्धीनां समयद्वेषकारका[रिणा]म् ।
न देयं देवदेवेशि शठे क्रूरे च वर्जयेत् ॥
इदं वै चक्रराजानं यदि भक्तिर्ममोपरि ॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठ-नाथावतारिते विद्यापीठे योगिनीगुह्ये
सप्तमः पटलः ॥७॥

अष्टमः पटलः

प्रोत्फुल्लनयना देवि[वी] हृष्टसन्तुष्टमानसा ।
प्रणिपत्य महादेवि[वी] इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव शशाङ्ककृतशेखर ।
श्रुतं मे मालिनीचक्रं दिव्यज्ञानप्रकाशकम् ॥ २ ॥

मुद्राभेदं न मे ज्ञातं दूतीनां लक्षणं तथा ।
पूजनं न्यासविन्यासं साधनं च वद प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु मानिनि देवेशि वस्तुचोद्यविकल्पिनि ।
भक्तासि कथयिष्यामि निःसन्दिग्धं यथा भवेत् ॥ ४ ॥

संस्फुटं कथयिष्यामि साधकानां हितावहम् ।
वि[त्रि]शिखा पद्ममुद्रा च योनिमुद्रा तृतीयका ।
त्रीण्येतानि त्रिभेदेन नवभेदा यथा स्थिता ॥ ५ ॥

त्रिशिखां कथयिष्यामि त्रिभिर्भेदैर्यथा स्थिता ।
देहस्था च यथा ते वै सबीजा देहमध्यगा ॥ ६ ॥

त्रिपुटा च शिखा ज्ञेया द्वादशान्तविसर्पिणी ।
सुषुम्णामध्यसंलीना ब्रह्मरन्ध्रविनिर्गता ॥ ७ ॥

भ्रूमध्ये बिन्दुसंलीना नादान्ते नादगोचरे ।
खगस्था खगमध्यस्था त्रिशिखा खेचरी परा ॥ ८ ॥

त्रिमार्गपथसंलग्ना सर्वातीता निरामया ।
ऊर्ध्वस्था परमा शक्तिस्त्रिशिखा सा परापरा ॥ ९ ॥

ऊर्ध्वशक्तिनिरोधेन अधःशक्तिप्रबन्धात् ।
मध्यशक्तिप्रलग्ना तु त्रिशिखा खेचरीप्रदा ॥ १० ॥

अस्या बीजं प्रवक्ष्यामि येन सा खेचरीप्रदा ।
अम्बिका दीपनी संस्था त्रिधारूपा व्यवस्थिता ॥ ११ ॥

अ······· कुसुमायुक्ता अर्द्धेन्दुकलया स्थिता ।
प्रथमं कथितं बीजं द्वितीयं शृणु सुन्दरि ॥ १२ ॥

गुह्यशक्त्या क्रूरतमा[1] मेदितं तद्विनायकम् ।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं[2] तृतीयं शृणु सुन्दरि ॥ १३ ॥

सावित्री कुसुमा चैव प्रज्ञा चैव तृतीयका ।
अर्द्धेन्दुकलया भिन्नं त्रिशिखाबीजमुत्तमम् ॥ १४ ॥

अनेन रहिता मुद्रा निर्बीजा मुक्तिवर्जिता ।
सबीजां पूजयेन्नित्यं जपेद् ध्यायेद् वरानने ॥ १५ ॥

शृङ्गाटक्रममध्ये तु वामदक्षिण अग्रतः ।
बीजत्रयं तु विन्यस्य मध्ये मूर्त्तिं परां स्मरेत् ॥ १६ ॥

नीलोत्पलदलश्यामां त्रिवक्त्रां च त्रिलोचनाम् ।
षड्भुजां दिव्यरूपां च सर्वाभरणमण्डिताम् ॥ १७ ॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्थां समपीनपयोधराम् ।
पाशाङ्कुशं तथा पद्मं वाममार्गे[भागे] विराजते ॥ १८ ॥

वरदं दर्पणं शूलं दक्षिणस्था[स्थं] वरानने ।
सिन्दूरारुणसंकाशा दिव्यवस्त्रपरिच्छदा ॥ १९ ॥

---

१. च क्रुरतमा–ख.

२. नादे–क.

नानारत्नकृता माला शिरःस्था च विराजते ।
वर्णमाला गले देव्या वर्णहारावलम्बिनी ॥ २० ॥

एवं ध्यात्वा महादेवीं शृङ्गाटपुरमध्यगाम् ।
सबीजां पूजयेद्देवीं जपेत्त्रिकूटमुत्तमम् ॥ २१ ॥

वाग्भवेत[न] वरारोहे आद्यन्तं[न्ते] संपुटीकृता ।
जप्तव्या च त्रिभेदेन इडापिङ्गलमध्यगा ॥ २२ ॥

नवलक्षकृते जाप्ये खेचरत्वं व्रजत्यसौ ।
खेचरीणां पतिर्भूत्वा क्रीडते गगनान्तरे ॥ २३ ॥

हर्त्ता कर्त्ता भवेद्देवि कुलकौलप्रकाशकः ।
पूजनात्सिद्धिमाप्नोति त्रिशिखा यस्य देहगा ॥ २४ ॥

स्फोटयेच्छैलवृक्षांश्च शोषयेज्जलधीश्वरान् ।
नानाविज्ञानकर्ता च आज्ञा तीव्रतरा भवेत् ॥ २५ ॥

[1]यस्य नाम तु गृह्णीयात् तद् यथा संमुखे स्थितः ।
सप्ताहाद्वशमायान्ति[ति] यदि शक्रसमः प्रिये ॥ २६ ॥

स्त्रियो वा पुरुषा वापि राजा वा राजमन्त्रिणः ।
वशमायान्ति देवेशि दासत्वं यान्ति सर्वदा ॥ २७ ॥

फलं पुष्पं च ताम्बूलं सप्तवाराभिमन्त्रितम् ।
हस्ते यस्य प्रदीयन्ते स वश्यो यावदायुषः ॥ २८ ॥

श्रीमते च मया प्रोक्तं[क्तः] षड्विधं[धो] मन्त्रनिष्पयम्[र्णयः]।
पल्लवो योगरोधश्च[धौ च] संपुटो ग्रथनस्तथा ॥ २९ ॥

विदर्भश्च महादेवि षड्विधं[धः] समुदाहृतम्[तः] ।
पल्लवो आदिदेशे तु योगो मध्ये विजानथ ॥ ३० ॥

---

१. विदर्भेद्यस्य नामं तु—क.

रोधस्तु आदिमध्यान्ते संपुटश्चादिरन्तगः ।
अधश्चोर्द्ध्वं पुनर्देवि संपुटं समुदाहृतम् ॥ ३१ ॥

अक्षरान्तरितं देवि ग्रथनं परिकीर्त्तितम् ।
आद्यन्ते च वरारोहे विदर्भः परिकीर्त्तितः ॥ ३२ ॥

पल्लवो मन्त्रबोधस्तु[धे तु] मोहो[हे] योगः प्रकीर्त्तितः ।
रोधस्तु निग्रहे प्रोक्तः संपुटो जीवरक्षणे ॥ ३३ ॥

ग्रथनं मोक्षणं[णे] प्रोक्तं रूपकार्य्ये प्रशस्यते ।
विदर्भः कर्षणे प्रोक्तः सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ ३४ ॥

एवमभ्रगतिं ज्ञात्वा सर्वकर्माणि कारयेत् ।
यन्त्रकर्माणि सर्वाणि नानाकर्मप्रसिद्धयेत्[ये] ॥ ३५ ॥

षड्विधेन तु योगेन ज्ञात्वा कर्म समारभेत् ।
योगहीना न सिद्धयन्ति आगमार्थविवर्जितम्[ताः]॥ ३६ ॥

गुरूपदेशनिर्मुक्तिहेतुका　　　नष्टबुद्धयः ।
रञ्जिकाक्षरनिर्मुक्ता बीजहीना मृतास्तु ते ॥ ३७ ॥

मृतकस्योपचारेण किं तेषां जीवितं भवेत् ।
तेषां हि मन्त्रिणः सर्वे रञ्जिकाक्षरवर्तिनः ॥ ३८ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन उपास्य च गुरुं प्रिये ।
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधेनान्तरात्मना ॥ ३९ ॥

त्रिकालं मण्डलं कृत्वा गुरोरग्रे वरानने ।
प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ ४० ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्वस्वं च निवेदयेत् ।
त्वं नाथ मम देवेश प्रभुस्त्वं मन्त्रनायकः ॥ ४१ ॥

दीनोऽहं दुःखितोऽहं च संसारभयभीतकः ।
त्वत्प्रसादाद् गुरोरद्य उत्तीर्णो भवसागरात् ॥ ४२ ॥

अनेन विधिना देवि उपास्य च गुरुं प्रिये ।
तस्याज्ञानं च मोक्षं च मुक्तिराज्ञाप्रवर्तनम् ॥ ४३ ॥

गुरोर्हीने कुतो मुक्तिगुरुर्हीने कुतः क्रिया ।
गुरुहीने न च ज्ञानं सर्वमेव निरर्थकम् ॥ ४४ ॥

पक्षिणः पञ्जरस्थे च [स्थस्य] न मुक्तिरिह दृश्यते ।
गुरुहीनस्य शिष्यस्य न मुक्तिर्भवपञ्जरात् ॥ ४५ ॥

गर्वितस्य कुतो ज्ञानं शास्त्रकोटिशतैरपि ।
नैवमुत्पद्यते ज्ञानं जात्यन्धो वस्तुरूपतः ॥ ४६ ॥

शृणु चान्यद् वरारोहे पद्ममुद्रा यथा भवेत् ।
हृच्चक्रमध्यसंलीनं नालकन्दान्तरानुगम् ॥ ४७ ॥

देहे चात्मनि संभिन्नं पुटाकारं हृन्मध्यगम् ।
रम्भाब्जपुटमध्यस्थं अधोमुखप्रलम्बितम् ॥ ४८ ॥

तस्य प्रकाशमानन्दात् पद्ममुद्रा विधीयते ।
अनया[अस्यां च]बद्धमात्राया[यां] खगतिर्वीरवन्दिते ॥ ४९ ॥

चन्द्रसूर्यपुटान्नेतुं वह्निस्था दीप्तिमध्यमा ।
हृत्कण्ठनिलयं बद्ध्वा खगतिर्नात्र संशयः ॥ ५० ॥

आधारगुदमध्यस्था हृत्कण्ठान्तरमध्यगा ।
बद्धा खेचरणे नित्यं पद्ममुद्रा प्रभावतः ॥ ५१ ॥

अम्बिका आत्मसंस्था च दीपनी तस्य चासनम् ।
त्रिकमेतत्समुद्धृत्य क्रमेणैव वरानने ॥ ५२ ॥

आमोदी कुसुमा देवी अर्द्धेन्दुकृतशेखरा ।
प्रथमं बीजमेतद्धि द्वितीयं भेदयेत्ततः । ५३ ॥

१-१. नास्ति—ख० ।

तृतीयं कुसुमा देवी अर्द्धचन्द्रकलान्विता ।
द्वितीयं चोद्धृतं देवि तृतीयं भेदयेत्ततः ॥ ५४ ॥

सावित्री च तथा प्रज्ञा कुसुमा च तृतीयका ।
अर्द्धेन्दुकलया भिन्ना तृतीयं बीजमुद्धृतम् ॥ ५५ ॥

शृङ्गाटपुटमध्यस्था[स्थं] वामदक्षतथायतः[यायतम्] ।
न्यसेद्बीजत्रयं देवि मध्ये मूर्त्तिं स्मरेत्प्रिये ॥ ५६ ॥

पद्माभा पद्मसंस्था च पद्ममालाविभूषिता ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ ५७ ॥

चतुर्भुजा महातेजा ताराभा कुन्दसन्निभा ।
मध्यक्षामा सुतेजाढ्या त्रिवलीतरङ्गमध्यगा ॥ ५८ ॥

वृत्ताकारौ कुचौ तस्या नितम्बाढ्या सुशोभना ।
वरदाभयसंयुक्ता पाशाङ्कुशधरा प्रिये ॥ ५९ ॥

जटामुकुटशोभाढ्या अर्द्धेन्दुकृतशेखरा ।
नानालङ्कारसंयुक्ता नानाभरणमण्डिता ॥ ६० ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ।
एवं ध्यात्वा वरारोहे शृङ्गाटपुरमध्यगा ॥ ६१ ॥

जप्तव्या संपुटीकृत्य वाग्भवेनादिरन्ततः ।
नवलक्षकृते जाप्ये एकाग्रमनसा स्थितः[ते] ॥ ६२ ॥

उत्पन्ना नात्र संदेहो यस्य देहे तु पद्मजा ।
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूरादर्शनमेव च ॥ ६३ ॥

पुरक्षोभं तथावेशं स्तम्भनं शकटादिषु ।
निग्रहानुग्रहं देवि निर्विषीकरणं प्रिये ॥ ६४ ॥

नानाविज्ञानकर्त्तासौ पद्ममुद्राप्रभावतः ।
साध्यस्य संमुखे भूत्वा यस्य नाम विदर्भितम् ॥ ६५ ॥

१–१. नास्ति–ख० ।

स [च] वश्यो भवेत् तस्य यौवनेन धनेन च ।
तावत्स वशमायाति भवेच्च यावदायुषम् ॥ ६६ ॥

पत्रपुष्पादिभक्षाद्यं दृष्ट्वा चाकर्षयेत्क्षणात् ।
स्त्रियो वा पुरुषा वाथ वश्यतां यान्ति नान्यथा ॥ ६७ ॥

वस्त्रचन्दनकाश्मीरं सप्तवाराभिमन्त्रितम् ।
धार्यमात्मनि देहस्थं व्रजेद्राजकुलं ततः ॥ ६८ ॥

वशमायाति राजा तं सभृत्यो मन्त्रिसंयुतः ।
सप्तभिर्मन्त्रितं कृत्वा चन्दनेनानामिकया ॥ ६९ ॥

ललाटे तिलकं कृत्वा वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ।
भूर्जे रोचनया देवि लिखेच्छृङ्गाटकं पुरम् ॥ ७० ॥

वृत्ताकारं तदूर्ध्वे तु तद्बाह्ये चाष्टपत्रकम् ।
मायाबीजेन संवेष्ट्य अङ्कुशेन निरोधयेत् ॥ ७१ ॥

शृङ्गाटस्याग्रकोणेषु त्रीणि बीजानि लेखयेत् ।
मध्यस्थं च लिखेन्नाम पल्लवेन समन्वितम् ॥ ७२ ॥

तदूर्ध्वे कामराजानं कामनाम[1]समन्वितम् ।
कामराजं वदिष्यामि येन सिद्धिः प्रजायते ॥ ७३ ॥

क्रोधीशं च पिनाकाख्यमासनस्थं वरानने ।
ड[झि]ण्टीशेन शिरःस्थेन महासेनासनं ततः[2] ॥ ७४ ॥

कामराजमिदं देवि अर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
ये चान्ये पशवो मूढा बहुशास्त्रार्थमोहिताः ॥ ७५ ॥

कामराजं न जानन्ति तन्त्रार्थे मोहिताः प्रिये ।
कामराजं समाख्यातं कामनामसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

---

१. मान–क० ।
२. सगंततः–ख० ।

अङ्कुशेन निरोधं तु दिक्षु चैव विदिक्षु च ।
दीपैर्धूपैस्तथा गन्धैरलिना चन्दनैः प्रिये ॥ ७७ ॥

कुमारी योगिनी पूज्या गुरुं गुरुसुतं तथा ।
वस्त्रालङ्कारसंयुक्तं पुष्पाभरणभूषितम् ॥ ७८ ॥

काश्मीरचन्द्रसंयुक्तं चर्चितं धूपितं प्रिये ।
संवेष्ट्य रक्तसूत्रेण त्रिलोहपरिवेष्टितम् ॥ ७९ ॥

भुजे वाप्यथ कण्ठे च धार्यते च प्रयत्नतः ।
रणे राजकुले द्यूते विवादे शत्रुमध्यतः ॥ ८० ॥

अग्निचौरभये देवि नावादौ जलमध्यतः ।
ग्रहभूतपिशाचादिडाकिनीशाकिनीषु च ॥ ८१ ॥

न तस्य भयमायाति संग्रामे तु जयो भवेत् ।
दुष्टाश्च प्रलयं यान्ति न च हिंसन्ति हिंसकाः ॥ ८२ ॥

दुष्टसत्त्वाश्च देवेशि लूताविस्फोटकादयः ।
ज्वराश्चतुर्थका देवि कुष्टश्वित्रा[1]दिकं तथा ॥ ८३ ॥

नश्यन्ते नात्र संदेहो य[2]स्य विद्या शरीरणा[गा] ।
आयुरारोग्यता चैव सौभाग्यं लभते स्फुटम् ॥ ८४ ॥

व्याधयश्च क्षयं यान्ति धनं धान्यं श्रियं लभेत् ।
सर्वपापक्षयं तस्य यस्य विद्या शरीरगा ॥ ८५ ॥

कर्म्मणा मनसा वाचा यत्पापं समुपार्जितम् ।
भस्मसाद् याति देवेशि वह्निदग्धा यथाहुतिः ॥ ८६ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि योनिमुद्रा यथा त्रिधा ।
योनिं योनौ समाक्रम्य षोडशारं प्रपीडयेत् ॥ ८७ ॥

---

१. °श्वित्रा°–ख० ।
२. यान्ति तस्य–ख० ।

पीडनादद्भुतं[?] यान्ति खगमार्गेण सुन्दरि ।
कूर्मस्थानगतं लक्ष्यं शृङ्गाटाकृति मध्यगम् ॥ ८८ ॥

प्रेरयेत् मध्यमार्गेण खगतिर्वीरनायिके ।
लिङ्गत्रयगते लक्ष्ये शृङ्गाटाकृतिमध्यगे ॥ ८९ ॥

त्रिभिः स्थानैः प्रबद्धा च बन्धनात् खगतिः प्रिये ।
अस्या बीजं प्रवक्ष्यामि येन सिद्धिर्वरप्रदा ॥ ९० ॥

परादेवीं च संगृह्य अम्बिका तस्य चासनम् ।
अधस्ताद्दीपनी देया त्रयमेकत्र योजयेत् ॥ ९१ ॥

अ आन्तं क्रूरसंयुक्तमर्धचन्द्रकलान्वितम् ।
प्रथमं कथितं बीजं द्वितीयं भेदयेत्ततः ॥ ९२ ॥

त्रिमूर्त्तिं क्रूरसंभिन्नमर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
द्वितीयं कथितं कूटं तृतीयं भेदयेत्प्रिये ॥ ९३ ॥

अनुग्रहेशं प्रथममर्घीशं च अधःस्थितम् ।
क्रूरानन्देन संभिन्नमर्धचन्द्रकलान्वितम् ॥ ९४ ॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु वामे दक्षे तथाग्रतः ।
तन्मध्ये संस्थितं ध्यात्वा खेचरत्वं भवेद् ध्रुवम् ॥ ९५ ॥

वाचां सिद्धिं कवित्वं च दूराच्छ्रवणमेव च ।
पुरक्षोभं तथा देशं स्तम्भमोहकरं प्रिये ॥ ९६ ॥

सैन्यस्तम्भं कवित्वं च अणिमादिगुणं लभेत् ।
कामनाम तु देवेशि कूटराजं विभेदयेत् ॥ ९७ ॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु लाक्षालक्तकसन्निभम् ।
सप्ताहाद्वशमायाति यदि शक्रसमो नरः ॥ ९८ ॥

मुद्रामध्यगतं नाम नीलवर्णं विचिन्तयेत् ।
निःशेषश्च भवेच्छत्रुः[1] सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ ९९ ॥

योनिमध्यगतं नाम धूम्रवर्णं यदा स्मरेत् ।
सप्ताहाच्च कुलोच्छेदो भवते नात्र संशयः ॥१००॥

काकवद् भ्रमते सो हि यावज्जीवति नान्यथा ।
गुह्यमध्ये स्मरेन्नाम कृष्णवर्णं विचिन्तयेत् ॥ १०१॥

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा मुक्तकेशो दिगम्बरः ।
तस्य देहगता शक्तिः कोदण्डान्ते[2] विचिन्तयेत् ॥१०२॥

देह्यन्ते[3] अस्थिसंधीनि पादादौ चूलिकावधि ।
एवं संस्मर्यते देवि सप्ताहान्म्रियते ध्रुवम् ॥१०३॥

गुदमध्यगता योनिस्त्रिदण्डं च त्रिमेखलम् ।
प्रथमे ब्रह्मदैवत्यं द्वितीये विष्णुरुच्यते ॥१०४॥

तृतीये रुद्रदैवत्यं तेन सा त्रिपथा स्मृता ।
परा च प्रथमा देवी द्वितीया चापरा स्मृता ॥१०५॥

परापरा तृतीया च शक्तित्रयमधिष्ठिता ।
अधोर्ध्वमध्यसंस्था च विसर्गान्तविसर्पिणी ॥१०६॥

चारस्था चाररूपस्था खचराचरवर्त्तिनी ।
चरते चररूपेण तेन सा खेचरी परा ॥१०७॥

वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री विभृताभ्यां तु मध्यगा ।
तस्य मध्यगतं देवं सादाख्यं परमेश्वरम् ॥१०८॥

---

१. विशिष्टं भवते शत्रुं–क० ।

२. कोदण्डाग्रेय–क. ।

. दह्यताम्–ख. ।

तस्येच्छानिर्गता सृष्टिर्नानारूपा च सुन्दरि।
सृजते मातृरूपेण अवर्णा वर्णरूपिणी ॥१०९॥

पिण्डिन्यादौ वरारोहे शतार्द्धं मातृकां पराम्।
मेखला वा परा देवि षोडशारं ततः प्रिये ॥११०॥

दलमध्यगता देवि पीठवर्णानि षोडश।
ब्रह्मस्थानगतं लर्क्षं तप्तचामीकरप्रभम् ॥१११॥

ध्यात्वा चात्मनि संलीनं खगतिर्नात्र संशयः।
भृङ्गाटपुरमध्ये तु ध्यायेद्देवीं परापराम् ॥११२॥

उदयार्कप्रभां दीप्तां दाडिमीकुसुमोपमाम्।
रक्तवस्त्रपरीधानां जटाजूटेन्दुभूषिताम् ॥११३॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्थां रोमराजीविभूषिताम्।
सर्वलक्षणसंपूर्णां पीनोन्नतपयोधराम् ॥११४॥

चतुर्भुजामेकवक्त्रां त्रिनेत्राञ्च शिखां पराम्।
पाशाङ्कुशधरां दिव्यां वरदामभयप्रदाम् ॥११५॥

वर्णमाला शिरे बद्धा वर्णहारावलम्बिनी।
सर्वावयवशोभाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ॥११६॥

मुद्रापञ्चकसंयुक्तां पीठत्रयसमन्विताम्।
एवं ध्यात्वा महादेवि ब्रह्मरन्ध्रस्य मध्यगाम् ॥११७॥

तत्र स्थाने जपं कुर्यात् पञ्चप्रणवसंपुटम्।
नवलक्षकृते जाप्ये खगतिर्वीरवन्दिते ॥११८॥

१-१. नास्ति-क.।

त्रि[1]कालमेककालं वा अभ्यसेच्चाप्यहर्निशम्[1] ।
सतताभ्यासयोगेन दिव्यज्ञानं प्रवर्तते ॥११९॥

वाचां सिद्धिः पुरक्षोभं कवित्वं च मनोहरम् ।
इच्छासिद्धिस्तु कामित्वं सर्वज्ञानप्रबोधनम् ॥१२०॥

[2]आणवं शाक्तगं चैव शम्भवश्च तृतीयकम् ।
आज्ञात्रितयवेत्तारो भवन्ते नात्र संशयः ॥१२१॥

नानाविज्ञानकर्त्तारो नानाशास्त्रार्थचिन्तकाः ।
कादयं समानयेद्देवि निर्वाणं च त्रिबिन्दुकम् ॥१२२॥

तस्य मध्ये लिखेच्चक्रं पूर्वोक्तं यन्मया प्रिये ।
कामनाम लिखेन्मध्ये विदर्भं च प्रयत्नतः ॥१२३॥

मायाबीजेन संवेष्ट्य चाङ्कुशेन निरोधयेत् ।
पीतद्रव्यैर्लिखेद्देवि चक्रमेतद्वरानने ॥१२४॥

निर्धूमैः खदिराङ्गारैस्त्रिसन्ध्यं ताप्य योगवित् ।
सप्ताहात्कर्षयेद्देवि योजनानां शतैरपि ॥१२५॥

वशमानयते देवि यौवनेन धनेन च ।
वल्मीकस्य मृदं गृह्य स्वमूत्रालोडितं प्रिये ॥१२६॥

प्रकृतिं कारयेत्तेन चक्रं हृदि विनिःक्षिपेत् ।
ललाटे च तथा गुह्ये हृन्मध्ये वदनान्तरे ॥१२७॥

भेदयेच्च वरारोहे कण्टकैर्मर्द[द]नोद्भवैः ।
षोडशारे वरारोहे कामराजं समालिखेत् ॥१२८॥

कामनामसमायुक्तमादावन्ते विदर्भितम् ।
शरावसंपुटे कृत्वा देहव्याधौ निधापयेत् ॥१२९॥

१-१. नास्ति-क. ।
२. आवणं-क. ।

पूजयेद् गन्धधूपैश्च पुष्पैश्चैव मनोहरैः ।
जप्त्वा त्रिरक्षरं देवं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ॥१३०॥
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा ततः पश्चान्निधापयेत् ।
निर्गमे च प्रवेशे वा वामपादं न्यसेत्प्रिये ॥१३१॥
अनेन योगराजेन वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ।
शत्रुतो न भयं तस्य राजानं वशमानयेत् ॥१३२॥
यस्य पादतले न्यस्ता ये चान्ये शत्रुकण्टकाः ।
किंकरास्तस्य ते सर्वे गरुडस्येव पन्नगाः ॥१३३॥
पूर्वचक्रं समालिख्य विषेण रुधिरेण वा ।
नृचर्मणि पटे वापि नरास्थिकृतलेखनि ॥१३४॥
आर्द्रामूले मघायां वा[1] भरण्यां च विशेषतः ।
परिघे गण्डशूले च व्याघाते वज्रयोगके ॥१३५॥
अनेन विधिनालिख्य निशासु च प्रयत्नतः ।
प्रचण्डबीजमालिख्य षोडशारे वरानने ॥१३६॥
कामनामसमायुक्तं रोधयोगेन चालिखेत् ।
लकुलीशं समुद्धृत्य अर्घीशासनसंस्थितम् ॥१३७॥
क्रूरानन्देन चाक्रान्तमर्द्धचन्द्रकलान्वितम् ।
शिखीशं केवलं देवि सोमेशं पतितं पुनः ॥१३८॥
पूर्वादौ क्रमयोगेन बाह्यचक्रे समालिखेत् ।
पूजयेत्कृतपुष्पैस्तु धूपितं सर्पकञ्चुकैः ॥१३९॥
कुण्डमध्ये ततो देवि निधातव्यं प्रयत्नतः ।
कण्टकस्य च पुष्पाणि सहस्रं होमयेत्प्रिये ॥१४०॥
कृष्णछागस्य रक्ताक्तान् होमयेत्सप्तरात्रकम् ।
एकवृक्षे श्मशाने वा नदीतीरेषु चत्वरे ॥१४१॥

१. मघे वापि–ख. ।

मातृस्थाने वरारोहे संगमेषु अथापि वा ।
येषु स्थानेषु कर्तव्यं निग्रहं शत्रुसाधनम् ॥१४२॥

पशुत्वं याति देवेशि यदि ब्रह्मसमो रिपुः ।
म्रियते नात्र संदेहो समित्रपशुबान्धवः ॥१४३॥

प्रयोगराजं सुभगे न वदेद् यस्य कस्यचित् ।
समयेषु च यो द्वेष्टा यो द्वेष्टा कुलशासने ॥१४४॥

आगमेषु च यो द्वेष्टा कुमार्यो योगिनीषु च ।
लिङ्गिषु च तापसेषु ये चान्ये गुरुद्वेषकाः ॥१४५॥

निग्रहं तेषु कर्तव्यं न दोषो विद्यते प्रिये ।
अन्यथा नैव कर्त्तव्यं लिङ्गभेदो भविष्यति ॥१४६॥

महापातकिनो देवि अविदित्वा तु कारयेत् ।
आज्ञाहानिर्भवेत्तस्य सिद्धिहानिश्च पुत्रकाः ॥१४७॥

नरके पतनं तस्य कृमियोनिशतं व्रजेत् ।
समयान् पालयेद्देवि आगमार्थं न रोषयेत् ॥१४८॥

गुरुयोगिनिसिद्धानां लिङ्गिनां च विशेषतः ।
पूजा कार्या प्रयत्नेन यथावित्तानुसारतः ॥१४९॥

क्रमं च पूजयेन्नित्यं तथा च गुरुमण्डलम् ।
एकं त्रीणि तथा पञ्च नवधा च प्रपूजयेत् ॥१५०॥

पूजनात्सिद्धिमाप्नोति अणिमादिगुणाष्टकम् ।
सबीजा चैव निर्बीजा स्थितिमेदालयं तथा ॥१५१॥

यश्च यो योजितातीतस्तस्य देयं कुलागमम् ।
अन्यं च [न्यच्च]परमं वक्ष्ये रहस्यं योगमुत्तमम् ॥१५२॥

वृत्तिराजं वरारोहे निवेश्य चक्रमध्यतः ।
स्थिरं कृत्वा तु देवेशि अभ्यस्ये[से]च्च पुनः पुनः ॥१५३॥

वृत्तिराजस्य संयोगात् कवित्वं भवते ध्रुवम् ।
वृत्तिप्राणसमाख्यातं रेफराजं तथासनम् ॥१५४॥

चक्रं शृङ्गाटकं प्रोक्तं तस्य मध्ये सबिन्दुकम् ।
मूर्त्तिचन्द्रकलाभिन्नं पुष्पं बन्धूकसन्निभम् ॥१५५॥

आत्मा मनश्च मन्त्रं च शिवशक्तिरभेदतः ।
वृत्तिराजसमायोगात् वाग्विलासः प्रवर्तते ॥१५६॥

ऊर्ध्वपङ्क्तिस्थिता देवी शिखारूपा तु तेजसा ।
बिन्दुरूप[1]ः शिवः प्रोक्तस्तस्याधस्तात् स्थितः प्रिये ॥१५७॥

बिन्द्व[न्दु]स्थानं मनश्चैव इन्दुरूपं व्यवस्थितम् ।
वृत्तिराजं तथात्मानमेकत्वं मन्त्रवाचकम् ॥१५८॥

चक्रमध्ये तु संचिन्त्य शुक्लाम्बरधरां पराम् ।
पुस्तकव्यग्रहस्तां च ज्ञानमुद्राधरां तथा ॥१५९॥

स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण सर्वाभरणभूषिताम् ।
स्रग्दामलम्बितगलां प्रभामण्डितमण्डलाम् ॥१६०॥

द्विबाहुमेकवदनां चन्द्रकोटिसमप्रभाम् ।
उद्गिरन्ति[न्तीं] महौघेन शास्त्रकोटि[टी]रनेकधा ॥१६१॥

एवं ध्यानसमाविष्टो साक्षाद्वागीश्वरो भवेत् ।
संस्कृतं प्राकृतं चैव वेदसिद्धान्तगह्वरम् ॥१६२॥

ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव उद्गिरेन्नात्र संशयः ।
पीठमध्यगताभ्यासात् पीठद्वारेऽथवा प्रिये ॥१६३॥

संप्रदा[य]मिदं कौलं शम्भुशक्तिपदानुगम् ।
पीठं शृङ्गाटकं प्रोक्तं तत्राभ्यासं तु मध्यगम् ॥१६४॥

---

१. रूपी–क.

पीठद्वारमिदं मन्त्रं संप्रदायं वदाम्यहम् ।
सान्तं वर्णं समादाय शक्तिस्तस्य पदानुगा ॥१६५॥

मायायोगेन देवेशि मुद्राबन्धस्तु कारयेत् ।
सा मात्रा गीयते चात्र उच्चारवशवर्तिनी ॥१६६॥

त्रिपादं च वरारोहे विन्द्वर्द्धेन्दुकला तथा ।
आक्रान्तं च समायोगं कीटं तस्यैव आसनम् ॥१६७॥

मात्रायोगमिति ख्यातमुच्चारात्कर्षयेद् ध्रुवम् ।
उच्चारसहजं देवि देहमध्ये व्यवस्थितम् ॥१६८॥

शवसङ्ख्याप्रमाणेन यावदुच्चरते पराम् ।
तावदाविष्टदेहे तु शास्त्रार्थं वदते सुधीः ॥१६९॥

चारोचारौ समौ कृत्वा तस्यै जपतये[तज्जपते] तदा ।
मात्रायोगमिति ख्यातं ज्ञातव्यं मन्त्रवादिभिः ॥१७०॥

नित्यरूपेण तामत्र ध्यायेदुल्कासमप्रभाम् ।
लाक्षालक्तकसंकाशां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम् ॥१७१॥

मूर्त्तित्रयसमोपेतां त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिताम् ।
त्रिस्थां त्रिमार्गगां देवीं त्रिनाडीसमभागता[गा]म् ॥१७२॥

नित्यक्लिन्नां च देवेशि त्रितत्त्वां च मदद्रवाम् ।
देव्या रूपधरां सर्वामेकवक्त्रां द्विबाहुकाम् ॥१७३॥

पाशाङ्कुशधरां सर्वां[१] मदविभ्रान्तलोचनाम् ।
यौवनस्थां मदोन्मत्तां मदिरानन्दनन्दिताम् ॥१७४॥

स्मरेद्देव्याः स्वरूपं तु तत्प्रयोगव्यवस्थया ।
तडित्सहस्रबन्धूकदाडिमीकुसुमत्विषाम् ॥१७५॥

---

१. धराः सर्वाः—क० ख० ।

पञ्चशृङ्गाटकाकारामपरां परारूपिणीम् ।
शृङ्गाटकं च प्रथमं तस्य मध्ये तृतीयकम् ॥१७६॥
स च ऊर्ध्वमुखं देवि त्रितत्त्वगुणभूषितम् ।
वामे दक्षे तथा चाग्रे शृङ्गाटत्रयभूषितम् ॥१७७॥
महायोगविलासं च शिवाद्यवनिगोचराम् ।
व्यापयित्वा स्थिता देवि रविनक्षत्रमण्डलम् ॥१७८॥
शृङ्गाटकं चोर्ध्वमुखं तिर्यग्रेखात्रिशूलगम् ।
शिखोर्द्ध[र्ध्वे]कुण्डलाकारां कामशक्तिरितिस्थिताम् ॥१७९॥
पञ्चशृङ्गाटकासीनां स्थितां तत्र वरानने ।
देव्या रूपधरां चक्रं ध्यायेद्देवं न संशयः ॥१८०॥
एवं बन्धं तु मुद्रायाः कथितं ते कुलेश्वरि ।
त्रितत्त्वेन तु मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन कारयेत् ॥१८१॥
अम्बिका शुक्रसहिता भुजङ्गासनसंस्थिता ।
भूतेशेन समायुक्ता क्रूरानन्देन दीपिता ॥१८२॥
अर्द्धेन्दुकलया युक्ता प्रथमं बीजमुत्तमम् ।
अम्बिका शुद्धसहिता क्रोधीशं तस्य चासनम् ॥१८३॥
पिनाकी च वरारोहे क्रोधीशासनसंस्थिता ।
भुजङ्गं चोर्द्ध[र्ध्व]संयुक्तं नादबिन्दुकलान्विता ॥१८४॥
वामे दक्षे कराग्रे तु मध्ये शृङ्गाटकं न्यसेत् ।
खड्गीशं च वरारोहे पिनाकी तस्य चासनम् ॥१८५॥
ड[झि]ण्टीशेन समायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ।
तत्र शृङ्गाटमध्ये तु बीजं विन्यस्य योगवित् ॥१८६॥
क्रोधीशं च पिनाकाख्यं भुजङ्गं च त्रिमूर्त्तिकम् ।
एकत्र योजितं कृत्वा नादबिन्दुकलान्विताम् ॥१८७॥

अग्रपीठे तु विन्यस्य शृङ्गाटपुरमध्यगाम् ।
अम्बिकाक्रोधसंयुक्तो पिनाकासनसंस्थितः ॥१८८॥

सूक्ष्मीशेन समाक्रान्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ।
दक्षपीठे तु विन्यस्तं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ॥१८९॥

अम्बिका खङ्गसंयुक्ता पिनाकासनसंस्थिता ।
ड[झि]ण्टीशेन शिराक्रान्तं नादबिन्दुविभूषितम् ॥१९०॥

वामपीठे तु विन्यस्य शृङ्गाटपुरमध्यगम् ।
द्रावणं क्षोभणं चैव आकर्षं वश्यमेव च ॥१९१॥

पूजाविधानं देवेशि देव्याश्च वीरवन्दिते ।
पञ्चशृङ्गाटका देवि ज्ञातव्या तत्त्ववेदिना ॥१९२॥

अतिगूढतरं ज्ञानमप्रकाश्यं महोदयम् ।
श्रीमते च मया गुप्ता आख्याता च मह्यो[तो]त्तरे ॥१९३॥

मोदितं गोपितं देवि तेन मुद्रा प्रकीर्त्तिता ।
सुभक्तेऽपि सुगुप्ते च रक्ते च विनयान्विते ॥१९४॥

मायादम्भविनिर्मुक्ते छद्मशाठ्यविवर्जिते ।
तस्य देयमिदं ज्ञानमन्यथा न कदाचन ॥१९५॥

अपरीक्षितेषु यो दद्याद्देशिको[1] नरकं व्रजेत् ।
विघ्नास्तस्यैव बाध्यन्ते कुप्यन्ते च मरीचयः ॥१९६॥

योगिनीगुह्यसद्भावं प्रकाश्यं नेतरे जने ।
प्रकाशाद् भ्रंशमायाति कुलशापं भविष्यति ॥१९७॥

जप्तव्या च परा देवी पञ्चशृङ्गाटमध्यगा ।
पूर्वोक्तं जपमुद्दिष्टं सोच्चारं मानसं प्रिये ॥१९८॥

---

१. दिक्षिको–क० ।

उच्चारोपांशुभूतस्तु मानसो मनवर्जितः ।
जपं पूर्वसमाख्यातं शास्त्रे शास्त्रे सुरार्चितम् ॥१९९॥

सशब्दोच्चारयोगेन शुद्धयर्थं कथितं स्फुटम् ।
सिद्धयर्थोपांशुरेवाऽत्र प्रवृत्तो हृदि संस्थितः ॥२००॥

मानसो योगहेत्वर्थे उभयोऽत्र विवर्जितः ।
मनोऽतीतो भवेद्देवि मोक्षदस्तु न संशयः ॥२०१॥

एतद्देवि समाख्यातं जपं प्राणसमं कुरु ।
जपं प्राणसमं कार्यं दृष्टादृष्टफलार्थिना ॥२०२॥

अवर्णाविर्णसंयोगान्मया ते समुदाहृता[तम्] ।
निरालम्बे परे शून्ये यत्तेज उपजायते ॥२०३॥

तद् गार्भे चाभ्यसेन्नित्यं भाग्यहीनोऽपि सिद्धयति ।
योग[गो]मूली विशुद्धी च सार्णवी च सहैकता ॥२०४॥

ऐक्येन संस्थितानन्दं कुलरत्नं त्रिधा प्रिये ।
षड्विधं यो विजानाति स भवेत्कुलनन्दनः ॥२०५॥

योगं[गः] शिवः समाख्यातं[तो] मूली शक्तिरिहोच्यते ।
सार्णव्यात्मानमि[तये]त्युक्तं कुलरत्नमिदं प्रिये ॥२०६॥

प्रथमं भेदमाख्यातं द्वितीयं कथयाम्यहम् ।
लकुलीशो भवेद् योगो भृगुमू[मू]ली प्रकीर्तितः ॥२०७॥

भुजङ्गं चार्णवं देवि कुलरत्नं त्रिधा भवेत् ।
रत्नत्रयसमायोगाज्जायते समरसं पदम् ॥२०८॥

[1]नादविन्दुकला योगो भृगु[ः]मूली तथा प्रिये ।
विशुद्धिः प्राणमाख्यातं सार्णवं कीटमासनम्[1] ॥२०९॥

१–१. नास्ति–क.

एकत्र संस्थिता यत्र कुलरत्नं स उच्यते ।
योगं[गो] ब्रह्मा इति प्रोक्तं[तो] मूली विष्णुः प्रकीर्त्तितः ॥२१०॥
सार्णवं रुद्रमाख्यातं कुलरत्नं चतुर्थकम् ।
योगः सूर्यमिदं देवि मूली सोमः प्रकीर्त्तितः ॥२११॥
विशुद्धं प्राणमित्युक्तं एकत्र सार्णवं स्थितम् ।
कुलरत्नमिदं देवि भुक्तिदं मुक्तिदं प्रिये ॥२१२॥
योगं चाधारमित्युक्तं मूली कुण्डलिनी प्रिये ।
विशुद्धानाहतं प्रोक्तं सार्णवं बिन्दुमध्यतः ॥२१३॥
एकत्र समना यत्र कुलरत्नं तु मुक्तिदम् ।
हृत्पद्मान्तरसंलीनं शिवशक्तिस्तथात्मकम् ॥२१४॥
एकत्र क्रीडनं यत्र संमुखं परमाद्भुतम् ।
अमृतास्वादसंतृप्तो तेन मन्त्रो न विन्दते ॥२१५॥
शङ्खकाहलनिर्घोषं तडिन्मेघसमस्वनम् ।
ज्ञानरत्नप्रभिन्नस्तु न शृणोति न पश्यति ॥२१६॥
शाम्भवज्ञानसद्भावं न वदेद् यस्य कस्यचित् ।
गुरुद्रोही स विज्ञेयो मम द्रोही महेश्वरि ॥२१७॥
आत्मद्रोह[ः]कृतं[तः] तेन कुलरत्नप्रकाशनात् ।
दुःखी सदा बुभुक्षी च व्यसनी व्याधितः प्रिये ॥२१८॥
श्वानवद्विचरेन्नित्यं विद्विष्टो योगिनीकुले ।
कुलशापं ददन्तीह योऽपरीक्ष्य प्रदापयेत् ॥२१९॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये
मुद्राणामधिकारनिर्णयो नाम
अष्टमः पटलः ॥४॥

●

नवमः पटलः

श्रीदेव्युवाच

त्वत्प्रसादाच्छ्रुतं सर्वं मालिनीचक्रमुत्तमम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि नाथजालन्धरस्य च ॥ १ ॥

यन्त्रं मन्त्रं तथा ध्यानं पूजनस्य विधानकम् ।
कथयस्व प्रसादेन यदि तुष्टोऽसि भैरव ॥ २ ॥

श्रीभैरव उवाच

नराणां परमं वृद्धेरायुः सौराः शतं समाः ।
तदब्दं देवयोनीनां दिनमायुश्च तच्छ्रुतम् ॥ ३ ॥

वर्द्धते परमं तस्य मानं कलियुगस्य तत् ।
धर्मार्थसार्द्धसंपूर्णं धर्माणां तत्प्रमाणतः ॥ ४ ॥

इदं तु शैलनिहतमैन्द्रायुर्मानवं परम् ।
कृतप्रमाणमब्दं तु समयः कायपूरकः ॥ ५ ॥

एवमिन्द्रैरिन्द्रसंस्थैर्ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
या ध्यायते महामाया मायातच्छ्वासनिर्गतः ॥ ६ ॥

प्रपञ्चो ब्रह्मदिवसः कुम्भको रात्रिरस्य तु ।
एवं तस्या[तया] घटिकया वर्षमेकं विधेः स्मृतम् ॥ ७ ॥

घटीशतमितं तस्या ब्रह्मा जीवति कीटवत् ।
पक्षमेकं सतीरूपा शुक्लं कृष्णं तु पार्वति ॥ ८ ॥

ऋतुमात्रं हरिर्जीवेद् वर्षमात्रमहं शिवः ।
एवं सा शतवर्षा वै महाकालस्य गेहिनी ॥ ९ ॥

सर्पकञ्चुकवद्देहं त्यक्त्वा त्यक्त्वा पुनर्युवा ।
सा सदैव युवा तिष्ठेत् स मया विषयीकृतः ॥ १० ॥
श्रीमज्जालन्धरो नाथस्तस्याः पुत्रो हि कुब्जिके ।
मायाजालावृतं[तो] यस्मात् करालवदनादभूत् ॥ ११ ॥
तस्माज्जालन्धरो नाथो लोके ख्यातो भविष्यति ।
तस्य यन्त्रं तथा मन्त्रं ध्यानं वक्ष्यामि सुन्दरि ॥ १२ ॥
शृणु गोपय यत्नेन शठे दुष्टे च नास्तिके ।
आधारादिक्रमेणैव षट्चक्रं परि भावयेत् ॥ १३ ॥
षट्चक्रोपरि संध्यायेत् सहस्रच्छदपङ्कजम् ।
सर्ववर्णमयं दीप्तमधोवक्त्रं महाप्रभम् ॥ १४ ॥
कर्णिकाकेशरैर्युक्तं सहस्रादित्यवर्च्चसम् ।
सहस्रारे महापद्मे मध्ये शृङ्गाटकाकृति ॥ १५ ॥
रजः सत्त्वं तमो रेखा इच्छाज्ञानक्रियात्मिका ।
अकथादिक्रमेणैव हलक्षैः कोणमण्डिताः ॥ १६ ॥
तन्मध्ये पादुकायुग्मं चिन्तयित्वा प्रपूजयेत् ।
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य अक्षरत्रितयात्मकम् ॥ १७ ॥
चतुराननं ततः पश्चादामोदि शक्तिसंयुतम् ।
क्रूरानन्दशिराक्रान्तं द्वितीयं बीजमुत्तमम् ॥ १८ ॥
अजितेशमहाकालौ पिनाकी खड्गमेव च ।
वालीशानन्दनाथं च भुजङ्गेनोर्ध्वदीपितम् ॥ १९ ॥
क्रूरानन्दशिराक्रान्तमर्घीशासनसंस्थितम् ।
तृतीयं बीजमेतद्धि कूटरूपं वरानने ॥ २० ॥
द्वितीयार्णं चतुर्थं स्यात्क्रूरेण रहितं प्रिये ।
पिनाकीशं समुद्धृत्य वागीशीशक्तिसंयुतम् ॥ २१ ॥

मीननाथं ततः पश्चाच्छुक्राशक्तिसमन्वितम् ।
दीपिनी परमा देवी श्रीकण्ठोपरि संस्थिता ॥ २२ ॥

तं देवनादिनी देवी अनन्तासनसंस्थिता ।
अनन्तभैरवारूढा ग्रसनी तद्वदेव च ॥ २३ ॥

बालीशानन्दनाथं च शुक्रादेवीसमन्वितम् ।
लोहितानन्दनाथाख्यं भुजङ्गासनसंस्थितम् ॥ २४ ॥

श्रीकण्ठनाथसंयुक्तं वर्णमेकादशाभिधम् ।
आषाढी चैव बालीशो द्वयमेकत्र योजयेत् ॥ २५ ॥

श्रीकण्ठनाथसंयुक्तं द्वादशं वर्णमुत्तमम् ।
संवर्त्तानन्दनाथं च शुक्लादेव्युपरि स्थितम् ॥ २६ ॥

वज्रिणीदीपिनीदेव्यौ श्रीकण्ठोपरिसंस्थितौ[ते] ।
लकुलीशमहाकालौ शुक्रादेव्युपरिस्थितौ ॥ २७ ॥

तारा तथा नादिनी च श्रीकण्ठाख्यसनाथितौ[ते] ।
शिखिवाही महादेवी ड[झि]ण्टीशेन समन्विता ॥ २८ ॥

नमोऽन्तमुद्धरेन्मन्त्रं विंशद्वर्णात्मकं प्रिये ।
धन्यः सोऽपि नरो लोके यः सकृत्प्रोच्चरेन्मनुम् ॥ २९ ॥

महिमा वर्णितुं देवि न शक्योऽस्य कथंचन ।
ध्यायेज्जालन्धरं नाथं सहस्रादित्यसन्निभम् ॥ ३० ॥

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गं रुद्राक्षाभरणान्वितम् ।
पिङ्गबर्बरकेशं च कर्णौ मुद्राविभूषितौ ॥ ३१ ॥

ताम्राक्षं हास्यमधुरं दीप्त[प्य]मानं सुतेजसम् ।
दक्षिणावर्तिता जङ्घा वामा चैवोन्नता शुभा ॥ ३२ ॥

वराभयकरं शान्तं साक्षाद्रुद्रस्वरूपिणम् ।
प्रसन्नवदनं सिद्धं सिद्धानामधिपं प्रभुम् ॥ ३३ ॥

मध्ये तु बैन्दवे चक्रे पञ्चाशद्वर्णसंयुते ।
यजेज्जालन्धरं नाथं स्वात्मध्यानसमायुतम् ॥ ३४ ॥

उपचारैः षोडशभिर्गुरुपङ्क्तिं ततो यजेत् ।
द्वितीयार्णेन षड्दीर्घात् षडङ्गं परिपूज्य च ॥ ३५ ॥

इच्छाशक्तिं ज्ञानशक्तिं क्रियाशक्तिं त्रिकोणके ।
पूजयेद् दक्षिणादिश्च यजेद्दिक्षु विदिक्षु च ॥ ३६ ॥

ततः शृङ्गाटचक्राख्ये पूजयेद्वर्णभैरवम् ।
भैरवीशक्तिसहितं स्वस्वस्थाने पृथक् पृथक् ॥ ३७ ॥

यद्यत्स्थाने तु यद्वर्णं तद्वर्णध्यानसंयुतम् ।
आदिक्षान्तक्रमेणैव नादिकान्तं नियोजयेत् ॥ ३८ ॥

वर्णध्यानं तथा लक्षं मुद्रा मूर्तिस्तथैव च ।
ज्ञात्वा ध्यात्वा पूजयित्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ३९ ॥

इति श्रीमन्महामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे कादि-भेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे श्रीकण्ठनाथा-वतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

जालन्धरनाथविधानकथनं नाम

नवमः पटलः ॥९॥

दशम पटलः

देव्युवाच

या सा देवि परा योनिः समया कुब्जिनी परा।
प्रस्तारभेदतो[देना]ख्याहि पदभेदप्रमाणकः[तः] ॥ १ ॥
स्फुटमाख्याहि यत्नेन यथा वै व्याप्तिलक्षणम्।

भैरव उवाच

शृणु देवि यथार्थेन देव्या उद्धारमुत्तमम् ॥ २ ॥
प्रस्तारक्रमयोगेन विधानेन यथा शृणु।
पूर्वं गह्वरमुद्धृत्य पञ्चाशद्वर्णभूषितम् ॥ ३ ॥
स्थापयित्वा वरारोहे कुमारीं पूज्य भक्तितः।
ए ओ मध्यगतं गृह्य अं अः मध्येन भूषितम् ॥ ४ ॥
कैलाशबीजमादाय प द मध्यं तु आसनम्।
खपूर्वेण तु संभिन्नं जपूर्वालङ्कृतं प्रिये ॥ ५ ॥
ल ऋ मध्ये ततोद्धृत्य ट र रन्ध्रमथासनम्।
ग ऊर्ध्वेन तु संभिन्नं ड ऊर्द्धे[र्ध्वे]न प्रदीपितम् ॥ ६ ॥
न उ मध्ये वरारोहे द ल मध्ये कृतासनम्।
ए ह मध्येन चाक्रान्तं अः औ मध्ये प्रदीपितम् ॥ ७ ॥
प्रसादबीजमादाय णमध्ये च कृतासनम्।
अं ओ मध्ये समाक्रान्तं डान्तं बीजेन रोधितम् ॥ ८ ॥
अर्धचन्द्रकलायुक्तं उद्धरेत्त विलोमतः।
त ओं मध्यगतं गृह्य द्विधाभूतं तथासनम् ॥ ९ ॥

---

१. क्रान्तं–ख०।

ऌ अन्तेन समायुक्तं ल ष मध्यं द्वितीयकम् ।
कादिस्वरेण संभिन्नं प्रथमं पदमुद्धृतम् ॥ १० ॥

श ष मध्यं समादाय ख ऊर्द्धें[र्ध्वे]न विभूषितम् ।
इ ट मध्यं ततो गृह्य कादिस्वरविभूषितम् ॥ ११ ॥

द्विधाभूतं च कर्तव्यं द्वितीयं पदशोभनम् ।
थ औ मध्यं द्विधा भिन्नं स्वादिवर्णविभेदितम् ॥ १२ ॥

लं चादौ च द्वितीयं तु जकारान्तविभूषितम् ।
तृतीयं पदमाख्यातं चतुर्थं शृणु साम्प्रतम् ॥ १३ ॥

इ व मध्यस्थितं गृह्य क राद्येन विभूषितम् ।
न अ मध्यं समादाय गादौ स्वरविभूषितम् ॥ १४ ॥

थ व मध्यं ततो वर्णं क ऊर्द्धें[र्ध्वे]न विभूषितम् ।
ऊ ठ मध्ये वरारोहे चान्तस्वरविभूषितम् ॥ १५ ॥

ऌ आदौ केवलं देवि पदेदं तु चतुर्थकम् ।
ड ण मध्यं समादाय ए ह मध्येन भूषयेत् ॥ १६ ॥

प स मध्यं ततो वर्णं थ स[1] मध्यं द्वितीयकम् ।
र म मध्यं तृतीयं तु ऋ प्र मध्यं चतुर्थकम् ॥ १७ ॥

केवलं कथितं देवि पञ्चमं पदमुत्तमम् ।
प्रसादं वह्निमारूढं छकारान्तेन भूषितम् ॥ १८ ॥

जकारान्तेन संदीप्तं प्रसादं च पुनः प्रिये ।
कर्त्तरी त्रासनं तस्य खादिकान्तविभूषितम् ॥ १९ ॥

ऌ ऊर्द्धं[र्ध्वं] बीजमादाय कीटं तस्य च आसनम् ।
ऌ आदिवर्णमादाय नान्तेनैव विभूषितम् ॥ २० ॥

---

१. प स–क० ।

अर्धचन्द्रकलायुक्तं ष टं च पदमुत्तमम् ।
ड थ मध्ये परं बीजं क्र अन्तेन समन्वितम् ॥ २१ ॥

आ ट मध्यं समादाय ऋ आदौ स्वरभूषितम् ।
ल ष मध्यं ततो वर्णं ओ म मध्यकृतासनम् ॥ २२ ॥

कादिस्वरेण संभिन्नं इ ट मध्यगतं पुनः ।
गादौ स्वरेण संयुक्तं प्रसादं ष ततः पुनः ॥ २३ ॥

उद्धृत्य च पराबीजं ण भ मध्यकृतासनम् ।
ढ भ मध्यं तत उद्धृत्य पुनस्तस्यैव चासनम् ॥ २४ ॥

ल प रन्ध्रं ततो योज्य ए ह मध्यविभूषितम् ।
जान्तस्वरेण संदीप्तमर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ॥ २५ ॥

श्रीलोपेन नियोक्तव्यं जीवितं वक्त्रिके मम ।
सप्तमं पदमित्युक्तमष्टमं शृणु साम्प्रतम् ॥ २६ ॥

ऋ प मध्यं समादाय ल अन्तेन विभूषितम् ।
ष ल मध्यं ततो देवि इ उ मध्यगतं पुनः ॥ २७ ॥

स व मध्यं तत उद्धृत्य न अ मध्यं ततोद्धरेत् ।
चान्तस्वरसमायुक्तं ग ल मध्यं तु केवलम् ॥ २८ ॥

अष्टमं पदमाख्यातं विलोमेनोद्धृतं प्रिये ।
प्रणवपञ्चका ह्येता[ति] नियुक्ता लक्षणान्विताः ॥ २९ ॥

आदिकूटावसाने तु चत्वारिंशद्द्विरा[द्वया]धिका ।
विलोमेनोद्धृता विद्या गुरुवक्त्रोपदेशतः ॥ ३० ॥

रेफ सहमिदं कूटं विद्यासप्तमकं प्रिये ।
श्रीलोपे सन्नियोक्तव्यं जीवितं कौलिकं मम ॥ ३१ ॥

अन्यथा यो वदेद्देवि विद्विष्टः स मरीचिभिः ।
यस्माद्भाण्डारमित्युक्ता सर्वसंयोगिनी कुले ॥ ३२ ॥

यथाऽर्च्चेत्सर्वपीठेषु मातेयं समयाम्बिका ।
अस्याः स्मरणमात्रेण विह्वलं भुवनत्रयम् ॥ ३३ ॥

अस्या मण्डलकं वक्ष्ये सेवनाज्जपकर्म्मणि ।
पीठे वाप्यथवा क्षेत्रे तत्र मण्डलमारुहेत् ॥ ३४ ॥

पश्चिमाभिमुखं दिव्यं ओङ्कारं यत्र निर्गम[त]म् ।
एकान्ते विजने रम्ये पशुदृष्टिविवर्जिते ॥ ३५ ॥

मण्डलं कारयेत्तत्र हस्तमात्रप्रमाणतः ।
गोमयोदक[केन] कर्तव्यं मण्डलं चतुरस्रकम् ॥ ३६ ॥

तन्मध्ये सूर्यं वह्निं च वृत्ताकारं कुरु प्रिये ।
अलिचन्दनकाश्मीरं पञ्चप्रणवमन्त्रितम् ॥ ३७ ॥

क्षिप्त्वा तन्मध्यतो देवि भ्राम्यं दक्षकरोपरि ।
कर्तव्यं वामहस्ते तु वामावर्तक्रमेण तु ॥ ३८ ॥

अङ्कुण[ष्ठ]मग्रतो न्यस्त्वा[स्य] मध्ये पुष्पं प्रदापयेत् ।
व्यापकं मध्यतो न्यस्य पञ्चप्रणवसंपुटम् ॥ ३९ ॥

दिग्विदिग्विन्यसेत्कूटान् नवात्मानं महाप्रभोः ।
अक्षरान्तरितं कूटं विन्यसेन्मण्डलोपरि ॥ ४० ॥

तन्मध्ये च लिखेच्छक्तिं भृङ्गाटाकृतिमुत्तमाम् ।
अधोमुखी च प्रथमा द्वितीयोर्ध[र्ध्व]मुखी स्थिता ॥ ४१ ॥

मेखलात्रितयं बाह्ये पराबीजं तु मध्यतः ।
ऌ ण मध्यगतं गृह्य प्रसादं तस्य चासनम् ॥ ४२ ॥

छकारान्ते नियोक्तव्यं जकारान्तेन भूषितम् ।
नादयुक्तं कलाक्रान्तं पराबीजं तु मध्यतः ॥ ४३ ॥

श्रीकण्ठादौ[द्याः] च ये सिद्धास्तत्र मध्ये प्रपूजयेत् ।
आनयेद्धेमकलशं अलाभाद्रौप्यजं प्रिये ॥ ४४ ॥

ताम्रजं मृण्मयं वाथ शुभलक्षणभूषितम् ।
कम्बुग्रीवं सुशोभाढ्यं क्षालयेदम्बिवारिणा ॥ ४५ ॥
[गन्धा]द्यैश्चर्चितं कृत्वा पूरयेदलिना ततः ।
स्थापयेत् कवचास्त्रेण कवचेनावगुण्ठयेत् ॥ ४६ ॥
चूतपल्लवसंयुक्तं पुष्पमालाविभूषितम् ।
वस्त्रताम्बूलसंयुक्तं दीपोत्सवसमुज्ज्वलम् ॥ ४७ ॥
ईशानकोणगं स्थाप्य पञ्चप्रणवमन्त्रितम् ।
मध्यस्थं च क्रमं पूज्य पीठादौ च यथाक्रमम् ॥ ४८ ॥
आदौ पीठानि चत्वारि योगिनीपञ्चकं तथा ।
ज्ञानषट्कं पुनर्देवि चत्वारः[चतस्रः] पीठदेवताः ॥ ४९ ॥
वृद्धपञ्चकसंयुक्तास्तथा सिद्धचतुष्टयम् ।
पूज्यान्येतानि देवेशि स्थापयित्वा यथाक्रमम् ॥ ५० ॥
वीरपानं तु पात्रस्थं स्थाप्यं समयाभिमन्त्रितम् ।
यथाशक्ति अगकारा[?]त्रिपथा च त्रिकस्वराः ॥ ५१ ॥
त्रिप्रकारावली देवी इच्छाज्ञानक्रियात्मिका ।
मध्ये ओङ्कारपीठे[ठं] तु जालाख्यं चैव दक्षिणे ॥ ५२ ॥
वामे वै पूर्णपीठं तु कामाख्या तु तदग्रतः ।
ओडी वा मध्यपीठे तु जालाद्या[ख्या] चैव दक्षिणे ॥ ५३ ॥
वामे तु पूर्णसंज्ञा च कामाख्या चाग्रपीठगा ।
मध्ये परापरं पीठं तत्र मध्ये तु कुब्जिका ॥ ५४ ॥
ईशानसहिता पूज्या मातङ्गीशसमन्विता ।
शैलं महेन्द्रं कैलाशमुपपीठत्रयं प्रिये ॥ ५५ ॥
अर्बुदं चोर्ध्व[चार्ध]पीठं तु.................. ।
.............वर्व्वरादेवी महेन्द्रे महतारिका ॥
कैलाशे कमला देवी पूर्णमध्ये तु वज्रिका ॥ ५६ ॥

योगिनीपञ्चकं मध्ये षट्कं षट्कं प्रपूजयेत् ।
चतुष्कं पञ्चकं देवि तथा वै च चतुष्टयम् ॥ ५७ ॥

मध्यस्थाश्च क्रमे पूज्या अङ्गवक्त्रादितः क्रमात् ।
सबाह्याभ्यन्तरे पूज्या क्रमयोगात्क्रमेण तु ॥ ५८ ॥

नवपञ्चविधैर्द्रव्यैस्तत्र पूजां समाचरेत् ।
न [सु] खाद्यैर्विविधाकारैः गोधूमकृतसंस्कृतैः ॥ ५९ ॥

मांसैश्च त्रिप्रकारैश्च नानापानवरैस्तथा ।
नवाङ्गुष्ठप्रमाणेन अलिना मिश्रितं[ते]न तु ॥ ६० ॥

त्रिकोणा दीपकाः कार्यास्तिथ्यादौ च क्रमेण तु ।
तत्रैव सप्तदश च दीपा दिक्षु व्यवस्थिताः ॥ ६१ ॥

चत्वारि[रः] पूर्वतो न्यस्य[स्याः] चत्वारो दक्षिणे प्रिये ।
पश्चिमेचाथ चत्वारि[रः] चत्वारश्चोत्तरे पुनः ॥ ६२ ॥

शुक्लवर्त्तिस्तु पूर्वे स्यात्कृष्णा चैव तु दक्षिणे ।
पश्चिमे पीतका ज्ञेया रक्तवर्त्तिस्तथोत्तरे ॥ ६३ ॥

मीनाद्यैः पिशितैर्देवि पूरिता घृतबोधिता ।
सुधूपधूपिता दिव्या अलिकर्पु[पू]रमिश्रिता ॥ ६४ ॥

कुमार्योऽष्टौ ततः पूज्या वस्त्रालङ्करणादिभिः ।
योगिन्यश्च विशेषेण कुमाराश्च तथा प्रिये ॥ ६५ ॥

यथाशक्त्या प्रपूज्यन्ते वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
वित्तशाठ्ये कृते देवि सिद्धिहानिः प्रजायते ॥ ६६ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
ततः क्षमापयेत् पीठं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ ६७ ॥

अम्ब माते[त]र्महासिद्धे देहि मां परमेश्वरि ।
दीनोऽहं कृपणं[णोऽ]नाथे[थः] त्वत्पादशरणं गतः ॥ ६८ ॥

सकारान्तासनं तस्य न ग मध्यं ततोद्धरेत् ।
ण थ मध्यासनं तस्य ट ठ मध्यं ततः पुनः ॥ ६९ ॥

भान्तेन मस्तकाक्रान्तं ह क्ष मध्यं ततोद्धरेत् ।
चकाराधःसमायुक्तं ष ह मध्यं ततः प्रिये ॥ ७० ॥

मकारादिसमायुक्त छ ऊ मध्ये समुद्धरेत् ।
अकारान्तं वरारोहे तस्याधस्तात् कृतासनम् ॥ ७१ ॥

उ ओ मध्यगतं वर्णं यकारान्तं स्वरान्वितम् ।
अं लृ मध्यगतं वर्णं केवलं वीरवन्दिते ॥ ७२ ॥

ए फ मध्यगतं गृह्य रकारोर्द्धे[र्ध्वे]न भूषितम् ।
भान्ताक्रान्तं च देवेशि उ ज मध्यगतं प्रिये ॥ ७३ ॥

अ ड मध्यं समादाय क ज मध्यं तु केवलम् ।
टकारादौ ततो देवि यकारान्तेन भूषितम् ॥ ७४ ॥

श क्ष मध्यगतं गृह्य ए ठ मध्यं ततः प्रिये ।
ब्रह्मचर्यव्रतं कुर्यात् कामक्रोधविवर्जितः ॥ ७५ ॥

सहस्रादि च लक्षान्ताज्जपनात् सिद्धिरीक्षते ।
सहस्रेण तु जप्तेन प्राप्तशत्रुः पराङ्मुखः ॥ ७६ ॥

द्विभिः[द्वाभ्यां] प्रवर्तते योगं त्रिभिरैश्वर्यसंपदः ।
चतुर्भिः सुखमारोग्यं आयुरारोग्यं पञ्चभिः ॥ ७७ ॥

ज्ञानप्राप्तिर्भवेत् षड्भिरवस्था सप्तभिर्भवेत् ।
अष्टभिः पश्यते किञ्चिद्दिव्यरूपं कुलात्मकम् ॥ ७८ ॥

नवभिर्गुह्यकां[की] सिद्धिं[ः] जायते वीरवन्दिते ।
दशभिः प्राप्नुयात्सिद्धिं निर्वाणं खेचरं क्रमम् ॥ ७९ ॥

मारणं विश्वभिश्चैव द्वात्रिंशै[ः]स्तम्भनं भवेत् ।
रणे राजकुले द्यूते विवादे शत्रुमध्यतः ॥ ८० ॥

शैलानां भञ्जनं पारं वृक्षाणां स्फोटनं प्रिये ।
पञ्चाशद्भिः सहस्रैस्तु जप्यते नात्र संशयः ॥ ८१ ॥

षष्टिभिश्च सहस्रैस्तु वेतालाष्टौ च साधयेत् ।
सप्तत्यास्तु[च] सहस्रैस्तु राक्षसं[सीं] सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ८२ ॥

अशीतिभिः सहस्रैस्तु नागकन्याश्च साधयेत् ।
नवत्या च सहस्रैस्तु वैष्णवं प्राप्नुयात् पदम् ॥ ८३ ॥

पृथिव्यधिपतिर्भूत्वा एकच्छत्रेण युज्यते ।
लक्षैकेन भवेद्रुद्रो स्वयमेव च नान्यथा ॥ ८४ ॥

अणिमादिगुणाधारो इच्छाशक्तिमवाप्नुयात् ।
विज्ञानं तस्य चायाति पञ्चचामरभूषितम् ॥ ८५ ॥

देव्यष्टकसमोपेतं चतुःषष्टिप्रवेष्टितम् ।
तन्मध्यसंस्थितः सिद्धः क्रीडते खेचरैः सह ॥ ८६ ॥

नानारूपधरो भूत्वा तिष्ठते विश्वमध्यतः ।
क्षणेन शाङ्करं रूपं क्षणाद्रूपं च वैष्णवम् ॥ ८७ ॥

क्षणाद् ब्रह्मा च शक्रश्च स्कन्दो वैश्रवणः क्षणात् ।
क्षणेन सूर्यरूपं स्यात् सोमरूपं क्षणाद् भवेत् ॥ ८८ ॥

ताराचक्रनिभं रूपं नानारूपधरं प्रिये ।
क्षणेन वाग्भवं रूपं क्षणाद्रूपं च वारुणम् ॥ ८९ ॥

वृषभश्च उलूकश्च क्षणेन च मृगस्तथा ।
क्षणाभ्यन्तर्गमाकाशे निजरूपधरः क्षणात् ॥ ९० ॥

क्षणेन वारुणं रूपं खग उष्ट्रः क्षणाद्भवेत् ।
क्षणात् सिंहश्च व्याघ्रश्च श्वानमार्जाररूपकः ॥ ९१ ॥

जलेन जलतां याति स्थलेन स्थलतां व्रजेत् ।
नानारूपधरो देवि साधको विद्यया युतः ॥ ९२ ॥

यस्य विद्या च वक्त्रस्था दुर्लभा महतारिका ।
तस्य सिद्धिः करे बद्धा स सिद्धो नात्र संशयः ॥ ९३ ॥

श्मशाने एकवृक्षे वा न[दी] तीरेऽथ च चत्वरे ।
शून्यागारे च देवेशि संगमे वीरनायिके ॥ ९४ ॥

पीठे क्षेत्रे च संदोहे विद्याजाप्यं समारभेत् ।
निराचारेण योगेन जपेद्विद्यां वरानने ॥ ९५ ॥

निराचारं भवेच्छक्तिस्तस्य गर्भगतां जपेत् ।
दण्डाकारां नयेत्तावद्यावद् ब्रह्मबिलान्तगा ॥ ९६ ॥

निराचारपदाभ्यासान्निराचारपदं लभेत् ।
परार्थं च परस्त्रीं च दिव्याभरणसंयुताम् ॥ ९७ ॥

पररूपं च सौभाग्यं परशास्त्रं च विद्यया ।
पराज्ञां च तथा ज्ञानं परसिद्धिं रसायनम् ॥ ९८ ॥

कर्षयेत् स्मरणाद्वापि विद्या यस्य शरीरगा ।
तन्नास्ति चात्र लोकेऽस्मिन्यन्न सिध्यति भूतले ॥ ९९ ॥

देव्युवाच

यत्त्वया कथितं देव विद्यामाहात्म्यमुत्तमम् ।
जपहोमादिभिः क्लिष्टा दृश्यन्ते बहवो जनाः ॥ १०० ॥

न च सिद्धिर्भवेत्तेषां जप्त्वा कोटिशतैरपि ।

भैरव उवाच

दुर्भगाश्च नराः क्रूराः समयाचारलोपकाः ॥१०१॥

तपोभ्रष्टा निराचारास्तेषां संख्या न विद्यते ।
मद्यं मांसं च निन्दन्ति मैथुनं[नाद्] विरमन्ति च ॥१०२॥

कुकर्म च प्रकुर्वन्ति निन्दारागं परस्परम् ।
कलहं च प्रकुर्वन्ति द्विपन्ति च परस्परम् ॥१०३॥

पिबन्ति स्वेच्छया मद्यं मांसं भक्षन्ति चेच्छया ।
निन्दन्ति च कुमारीणां क्षुद्रकर्मरताः प्रिये ॥१०४॥

बहुपानात् कुतो मुक्तिरिच्छा भुक्ति कदाचन ।
भ्रमन्ति समयभ्रष्टा यथा ते श्वानकुत्सिताः ॥१०५॥

सर्वसिद्धिविनिर्मुक्ता[ः] तेषां मुक्तिः कुतो भवेत् ।
गुरुयोगिनिसिद्धानां विशेषागमनिन्दकाः ॥१०६॥

निन्दका गर्दभाः प्रोक्ताः सर्वगुह्यप्रकाशकाः ।
भक्षाद्वैतं क्रियाद्वैतं ज्ञानाद्वैतं तृतीयकम् ॥१०७॥

त्रिण्येते[त्रयस्ते] सिद्धिनिर्मुक्ता अद्वैता नष्टचेतनाः ।
मानवा दुर्भगा येन विद्याहङ्कारगर्विताः ॥१०८॥

जातिशीलविनिर्मुक्ता अगम्ये च कृतोद्यमाः ।
अभक्ष्यं नित्यं भक्षन्ति कलहन्ति यतस्ततः ॥१०९॥

प्राणिभङ्गं प्रकुर्वन्ति अतिलौल्यपरायणाः ।
बहुकामप्रसक्ताश्च बहुशास्त्रार्थचिन्तकाः ॥११०॥

ग्राहयन्ति च तर्कार्थं द्विषन्ति च परस्परम् ।
महामायाविमोहेन अर्थसंग्रहणेन च ॥१११॥

एवंभूतगुणाः शिष्या आचार्याश्चाथ साधकाः ।
विद्याराधनशीलास्तु न च ते सिद्धिभाजनाः ॥११२॥

मद्यपानप्रसक्ताश्च परदारां रमन्ति च ।
समयद्रोहं कुर्वन्ति गुरुद्रोहं वरानने ॥११३॥

तदा सिद्धिविनिर्मुक्ता विद्यामभ्यसनाद्यदि ।
तपोभ्रष्टा नरा ये च तेषां संख्या न विद्यते ॥११४॥

तृप्ता ये मद्यमांसेन कुकर्मनिरतास्तथा ।
अगम्यागमने देवि न युक्तिर्विद्यते क्वचित् ॥११५॥

श्वपचाश्चैव चाण्डालाः प्राकृताः श्वानकुक्कुटाः ।
अगम्या-गमनाचारे अभक्षस्यैव भक्षणे ॥११६॥

कुकर्मणा कुतो मुक्तिरर्थलाभात्कुतो गतिः ।
पापिष्ठानां नराणां च दर्प्पिष्ठानां च वादिनाम् ॥११७॥

अमार्गगामिनां चैव न मुक्तिर्विद्यते प्रिये ।
तपोभ्रष्टा नरा ये च समयाचारनिन्दकाः ॥११८॥

ते न मुच्यन्ति संसारे न च ते मोक्षकाः स्मृताः ।
गुरुभक्ता विनीताश्च समयाचारपालकाः ॥११९॥

द्वैताचारपदारूढा मकारत्रयवर्जिताः ।
निर्लोभाः सदयाः शुद्धा नित्यानन्दरताः सदा ॥१२०॥

शान्तात्मानो जितक्रोधाः पशुशास्त्र उपेक्षकाः ।
अनिन्दकाश्च सी[सा]चाराः परनिन्दाविवर्जिताः ॥१२१॥

पशुपाशविनिर्मुक्ताः संसारस्य उपेक्षकाः ।
अपेक्षाः सर्वभावेषु सर्वजीवदयापराः ॥१२२॥

गुरुयोगिनिभक्ताश्च सदाचारप्रपालकाः ।
त्रिकालं[ल-] गुरुपूजां[जाश्] च ज्ञानाधारप्रपूजकाः ॥१२३॥

कुमारीपूजका नित्यं कुलागमरताः सदाः ।
एवंगुणविशिष्टाश्च आचार्याः साधकास्तथा ॥१२४॥

सिध्यन्ति नात्र संदेहो सत्यं सत्यं महातपे ।
एतेषां सिध्यते विद्या अन्यथा च कदाचन ॥१२५॥

पारम्पर्यक्रमं विद्यामन्त्रसंस्कारमण्डलम् ।
स्फुटं विद्या च न ज्ञाता तावत्सिद्धिः कुतो भवेत् ॥१२६॥

तत्र भाषान्यतन्त्रोक्तं जातियुक्तो जपेत्तु यः ।
तस्य सिद्धिर्न ज्ञा[जा]येत अन्वये पश्चिमे गृहे ॥१२७॥

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं देव मया सर्वं विद्या[-] उद्धारमुत्तमम् ।
माहात्म्यं मण्डलं चैव विधानं जपमेव च ॥१२८॥
वक्त्राङ्गानां न मे ज्ञानं प्रसादेन वद प्रभो ।

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि महाप्राज्ञे कथयामि समासतः ॥१२९॥
येन विज्ञानमात्रेण कुलाम्नायः प्रवर्तते ।
एकले विजने गत्वा गुरुं संपूज्य भक्तितः ॥१३०॥
शिष्यस्तु शृणुयाद्देवि सर्वशास्त्रविशारदः ।
वेदसिद्धान्ततत्त्वज्ञः कुलागमप्रबोधकः ॥१३१॥
सर्वलक्षणसंयुक्तो निर्लोभश्च दयान्वितः ।
प्रियवक्ता महाधीशे दम्भमायाविवर्जितः ॥१३२॥
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः सर्वव्याधिविवर्जितः ।
दयादाक्षिण्यसंयुक्तोऽक्रूरो व्यसनवर्जितः ॥१३३॥
ईदृशं तु गुरुं देवि शिष्यश्चैव तु तादृशः ।
प्रसन्नवदनो भूत्वा गुरुपादार्चने रतः ॥१३४॥
सुसमे भूप्रदेशे तु निम्नोन्नतविवर्जिते ।
पुष्पप्रकरशोभाढ्ये गन्धधूपाधिवासिते ॥१३५॥
ताम्बूलपूर्णगण्डूषो मदिरानन्दनन्दितः ।
पिशितासवसंयुक्तो वटुकस्य बलिं ददेत् ॥१३६॥
प्रस्तारं प्रस्तरेद्देवि गह्वरं कुलगह्वरम् ।
उद्धरेद् वक्त्राङ्गानि यथा वै तच्छृणुष्वतः ॥१३७॥
ष य मध्यगतं गृह्य केवलं वरवर्णिनि ।
म य मध्यं ततोधृत्य औ ट मध्येन भूषितम् ॥१३८॥

व म मध्यं तृतीयं तु ख घ मध्यं चतुर्थकम् ।
ल स मध्यं वरारोहे थ ण मध्यं ततोद्धरेत् ॥१३९॥

आ ष मध्येन संभिन्नं ऋकारोर्द्ध[र्ध्व]गतं प्रिये ।
उ च मध्यं ततो गृह्य कुरु तस्यैव चासनम् ॥१४०॥

आ प मध्येन संभिन्नं ऋकारोर्द्ध[र्ध्व]गतं प्रिये ।
उवाच[उ च] मध्यं ततो गृह्य कुरु तस्यैव चासनम् ॥१४१॥

टकाराधः समादाय अः ख मध्ये कृतासनम् ।
प्रसादं तु ततोद्धृत्य ग छ मध्यं कृतासनम् ॥१४२॥

थ घ मध्यं वरारोहे केवलं वीरवन्दिते ।
लकाराधः समादाय ऌ इ मध्यकृतासनम् ॥१४३॥

र भ मध्यं पुनर्देवि केवलं चोद्धरेत्ततः ।
हृदयं कथितं तुभ्यं प्रथमं पदमुत्तमम् ॥१४४॥

वर्णसंख्या वरारोहे दशपञ्च उदाहृताः ।
द्वितीयं कथयिष्यामि शिरसं वीरनायिके ॥१४५॥

प्रसादं जीवमारूढं य व मध्यकृतासनम् ।
यकारान्तर्गतं वर्णं तस्याधः सन्नियोजयेत् ॥१४६॥

आ ढ मध्येन संभिन्नं ओ अः मध्येनालङ्कृतम् ।
अर्धेन्दुकलया युक्तं कूटेदं जीवितं मम ॥१४७॥

प उ मध्यगतं वर्णं इ ज मध्यकृतासनम् ।
चकारान्तं समुद्धृत्य ऋ ष मध्यं कृतासनम् ॥१४८॥

अं प मध्यं वरारोहे भूषयित्वा तृतीयकम् ।
इ क रन्ध्रं समादाय इ ऌ रन्ध्रं विभूषितम् ॥१४९॥

मकारान्तं ततोद्धृत्य इ उ मध्येन भूषयेत् ।
न ज रन्ध्रगतं देवि आ ख रन्ध्रेण चासनम् ॥१५०॥

उकारान्तं समुद्धृत्य केवलं शुभलोचने ।
ओ अ वर्णं समुद्धृत्य षष्ठरन्ध्रेण भूषयेत् ॥१५१॥

ककाराधस्ततो गृह्य ऌ इ रन्ध्रेण भूषितम् ।
रकारादिं समादाय औ च मध्येन भूषयेत् ॥१५२॥

फकारान्तं ततो गृह्य आ औ रन्ध्रेण भूषितम् ।
यकारान्तं ततो गृह्य केवलं वरवर्णिनि ॥१५३॥

चकारोर्ध्वं समादाय वकारान्तेन भूषितम् ।
द्वितीयं पदमाख्यातं वर्णनं च त्रयोदश ॥१५४॥

तृतीयं शृणु कल्याणि शिखायां च यथा शृणु ।
प्रसादे च त्रिधा देवि यकारान्तं कृतासनम् ॥१५५॥

ल अधः आढ्यघ[?]श्चैव अनुस्वाराद्यनुक्रमात् ।
ऐ ष मध्येन संभिन्नं त्रितयं च वरानने ॥१५६॥

अर्धचन्द्रकलायुक्तं रुद्रबीजं त्रिकण्टकम् ।
चकारान्तं समुद्धृत्य केवलं वीरवन्दितम्[ते] ॥१५७॥

पुनरेवं द्विधा कृत्वा रेफस्योर्ध्वप्रदीपितम् ।
यकारान्तं ततो देवि केवलं कथितं तव ॥१५८॥

छकारान्तं ततो वर्णं ए आऽधस्ताद्विभूषितम् ।
ड प रन्ध्रगतं गृह्य टकारान्तेन भूषितम् ॥१५९॥

छकारान्तं ककारान्तं द्वयमेतत्समुद्धरेत् ।
य अन्तं च वरारोहे एकारान्तं ततः पुनः ॥१६०॥

क्रमेण भूषयेद् देवि मकारान्तं नियोजयेत् ।
उद्धृतं परमं बीजं भकारान्तेन भूषयेत् ॥१६१॥

तृतीयं पदमाख्यातं वर्णमेकादशं प्रिये ।
चतुर्थं शृणु देवेशि सर्वदुष्टनिवारणम् ॥१६२॥

घ ल मध्यं ततो गृह्य ह ट रन्ध्रगतं प्रिये ।
तकारादौ पुनर्देवि प घ मध्यं तथा प्रिये ॥१६३॥

भकारान्तं ततो गृह्य टकारान्तेन भूषयेत् ।
ऋ आ मध्यगतं गृह्य केवलं कुलनायिके ॥१६४॥

भ च मध्यगतं वर्णं इ य मध्ये स्वराहतम् ।
वकारान्तं समादाय प्रसादं तदनन्तरम् ॥१६५॥

अं ए मध्यसमारूढं यकारान्तं ततः प्रिये ।
इ उ मध्यासनारूढं न फ मध्यं ततः पुनः ॥१६६॥

ॡ इ मध्येन चाक्रान्तं र म मध्यं ततः पुनः ।
ठ ओ मध्येन संभिन्नं उ प मध्यं तु केवलम् ॥१६७॥

चकारान्तं पुनर्देवि स घ मध्यं ततः प्रिये ।
ॡ उ मध्येन चाक्रान्तं र म मध्यं तु केवलम् ॥१६८॥

चतुर्थं पदमाख्यातं वर्णान्न[श्चै]कोनविंशतिः ।
नेत्रं च शृणु कल्याणि सर्वसिद्धिकरं परम् ॥१६९॥

ऋ ष मध्ये गतं वर्णं द्विधाभूतं प्रकल्पयेत् ।
पकारान्तं समादाय उकारादिस्तथैव च ॥१७०॥

भेदयेत् क्रमशो देवि इ घ मध्येन भूषितम् ।
उकाराधः समादाय प्रसादं बिन्दुभूषितम् ॥१७१॥

ण थ मध्यं ततो वर्णं ॡ इ मध्येन भूषयेत् ।
पकारान्तम् इकारादौ भूषितं वरवर्णिनि ॥१७२॥

इ ष मध्यं ततो गृह्य आ ढ मध्येन भूषयेत् ।
ध प मध्यं गतं वर्णं छ ढ मध्येन भेदितम् ॥१७३॥

ण थ मध्ये द्विधा भूतं यकारान्तं समं ततः ।
र म मध्यद्वयं देवि एकारान्तेन भेदयेत् ॥१७४॥

पञ्चमं पदमेतद्धि वर्णसंख्या तु द्वादश ।
षष्ठं च कथयिष्यामि शृणु त्वं वीरवन्दिते ॥१७५॥
खकारादौ समादाय तकारादि ततः प्रिये ।
पुनस्ते च द्विधा कृत्वा चकारान्तं च पञ्चमम् ॥१७६॥
इकारादौ स्वरे भिन्नाः पञ्चवर्णाः क्रमेण तु ।
ऋ व मध्यगतं वर्णं पुनरस्यैव चासनम् ॥१७७॥
लृ ए रन्ध्रगतं देवि भूषयित्वा वरानने ।
उपरन्ध्रगतं वर्णं ठ ओ मध्येन भूषयेत् ॥१७८॥
औ अन्तेन तु संभिन्नं खकारादौ च केवलम् ।
तकारादौ ततो वर्णं पकारान्तेन भूषितम् ॥१७९॥
चकारान्तः[तं] ततो गृह्य पुनस्तेनैव चासनम् ।
एकारान्तेन संयुक्तं र म मध्य ततोद्धरेत् ॥१८०॥
इ ड मध्येन संयुक्तं लृ उ मध्यं तु केवलम् ।
छकारान्तं समादाय ण थ मध्यासनं प्रिये ॥१८१॥
यकारान्तं ततोऽधस्तात् एकारान्तेन भूषितम् ।
.... र म मध्यं तथोद्धरेत् ॥१८२॥
इ ड मध्येन संयुक्तं लृ उ मध्यं तु केवलम् ।
छकारान्तं समादाय ण थ मध्यासनं प्रिये ॥१८३॥
रान्ते ततोऽधस्तात् एकारान्तेन भूषितम् ।
र म मध्यं ततो देवि केवलं वीरवन्दिते ॥१८४॥
षष्ठं पदं समाख्यातं वर्णसंख्या चतुर्दश ।
अस्त्रं कालानलं घोरं सर्वदुष्टभयावहम् ॥१८५॥
छेदनं कालपाशानां शत्रूणां च निकृन्तनम् ।
अङ्गन्यासं समाख्यातं वक्त्रन्यासमतः शृणु ॥१८६॥

पञ्चदशाक्षरं हृदयं शिरश्चैव त्रयोदश ।
शिखा चैकादश ज्ञेया कवचमेकोनविंशति ॥१८७॥

वर्णैर्द्वादशभिर्नेत्रं अस्त्रं चैव चतुर्दशैः ।
एतत्कौलिकभाषायाः[यां]कथितं तु सप्रत्ययम् ॥१८८॥

संस्फुटं गुरुवक्त्रस्थं त्रिलोमस्थं न सिद्ध्यति ।
कौलिकं च समाख्यातं वाममार्गं तु दुर्लभम् ॥१८९॥

सर्वसाधारणं कौलं भूमि सव्रणे[वर्णो]पदेशतः ।
...पञ्च पदान्तस्थं हृदयं तु दशाक्षरम् ॥१९०॥

शिरे नवाक्षरं विद्धि द्वादशार्धं शिखा पुनः ।
द्विसप्तकं च कवचं नेत्रं सप्ताक्षरं स्मृतम् ॥१९१॥

अस्त्रं नवाक्षरं विद्धि जातिरेषां पृथक्पृथक् ।
अथ संज्ञा च वक्त्राणां पञ्च वक्त्रादितः क्रमात् ॥१९२॥

हृदयादि चतुर्वक्त्रं पञ्चमं च तथा परम् ।
परिघादिस्तु वक्त्राणामूर्ध्ववक्त्रादितः क्रमात् ॥१९३॥

प्रसादं द्वादशं विद्धि कलैर्द्वादशभिःशिरम् ।
ह्रस्वो वक्त्रे नियोक्तव्यो दीर्घश्चाङ्गे वरानने ॥१९४॥

एषां सा लब्धिका [चैव] कुलमार्गे व्यवस्थिता ।
सकलस्था तु शौर्यस्था अशेषार्थविरोधिका ॥१९५॥

कौलभाषोदितेयं:तु सा च सिद्धा कुलान्वये ।
अशेषार्थप्रदा देवि अनेकार्थप्रबोधिका ॥१९६॥

यात्यनेनैव देहेन खेचरत्वं तदा भृता ।
अक्षराक्षरसंतानं यो जपेल्लक्षसंख्यया ॥१९७॥

लब्धीस[श]गुणतुल्योऽसौ कर्ता हर्ता स्वयं प्रभुः ।
खेचरीणां प्र[प]दं सो हि पश्यते ह्यविचारतः ॥१९८॥

निराचारेण योगेन चिन्तयन्तः[यंश्च] कुलेश्वरीम् ।
अथ सामान्यरूपेण तदा भूचरतां व्रजेत् ॥१९९॥

कुपितः पातयेच्छैलाञ्छोषयेज्जलधीश्वरान् ।
स्फोटयेच्छैलवृक्षांश्च तदर्द्धेन गुणान्वितम्[तः]॥२००॥

भूचरीणां परत्वं च क्षेत्रकर्मोपजीविनाम् ।
कुरुते विविधाश्चर्यं पूज्यतेऽसौ यथा शिवः ॥२०१॥

यत्र तिष्ठत्यसौ देशे तत्र विघ्नान् प्रलापयेत् ।
निर्दहंस्त्रिविधं पापं विद्या यस्य शरीरगा ॥२०२॥

श्रीदेव्युवाच

दूत्यश्च वद देवेश वर्णप्रस्तारभेदतः ।
मुद्रां ध्यानं च पूजां च कर्म यस्यैव यादृशम् ॥२०३॥

तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व प्रसादतः ।

श्रीभैरव उवाच

एकान्ते विजने गत्वा गोमयेनोपलेपयेत् ॥२०४॥

पुष्पप्रकरगन्धाढ्ये मृष्टा[ष्टा]धूपेन धूपिते ।
मांसपूर्णमुखो भूत्वा अलिनानन्दमोदितः ॥२०५॥

गह्वरं तु समालिख्य सुसूत्रं शोभनं शुभम् ।
अकारादिहकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत् ॥२०६॥

श्रीकुब्जायास्तु यादूती कालिका नाम विश्रुता ।
कालिकाख्ये महातन्त्रे स्वतन्त्रात् समुदाहृता ॥२०७॥

शृणुष्वैकमना भद्रे ज्ञानविज्ञानदायिनी ।
सर्वसिद्धिकरी देवी सर्वकार्यार्थसाधिनी ॥२०८॥

व्याघ्रसिंहगजव्यालभूतवेतालशत्रवः ।
स्मरणान्नाशमायान्ति विघ्नसंघान्यनेकशः ॥२०९॥

प्रश्नकाले परीक्षेत कुमार्यावेशपूर्विका ।
शुभाशुभं वदत्याशु यद्भूतं यद्भविष्यति ॥२१०॥

अस्योद्धारं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
अश्वमध्यगतं गृह्य ॠ पूर्वेण समन्वितम् ॥२११॥

प्रथमं चोद्धृतं बीजं द्वितीयं ण ह रन्ध्रगम् ।
भेदितं तु ऌ पूर्वेण एतद्वर्णद्वयं पुनः ॥२१२॥

आसनं ए ततो गृह्य य त मध्यगतं पुनः ।
द्वितीयेन तु संभिन्नं षष्ठं वै बीजमुत्तमम् ॥२१३॥

प्रथमं सप्तमं ज्ञेयं द्वितीयस्य द्वितीयकम् ।
अष्टमं चोद्धृतं बीजं नवमं म ज मध्यगम् ॥२१४॥

ड त रन्ध्रसमायुक्तं शून्यमस्तकभूषितम् ।
म प मध्यगतं गृह्य दशमं केवलं प्रिये ॥२१५॥

ष व संविलपूर्वं च औ पूर्वेण तु भेदितम् ।
अ छ रन्ध्रगतं गृह्य ड ट पूर्वेण भेदितम् ॥२१६॥

ड प मध्यगतं देवि आ इ रन्ध्रेण भूषयेत् ।
य स मध्यगतं देवि त्रयमेतत् समुद्धरेत् ॥२१७॥

ल ट मध्यगतं गृह्य आसनस्थं त्रये[यं] कुरु ।
ड पूर्वेण र पूर्वेण अ पूर्वेण ततः पुनः ॥२१८॥

अनुस्वारं ततो देवि भेदयेत् क्रमशः क्रमात् ।
औ अः मध्यगतं देवि भूषितं त्रितयं क्रमात् ॥२१९॥

ल ढ मध्यं ततोद्धृत्य केवलं वीरवन्दिते ।
अ ख मध्यगतं गृह्य ए व रन्ध्रकृतासनम् ॥२२०॥

एकाराधः समादाय ॠ पूर्वेण कृतासनम् ।
न श रन्ध्रगतं गृह्य त ट मध्यकृतासनम् ॥२२१॥

ड ह मध्यं ततोद्धृत्य ट पूर्वेण कृतासनम् ।
ग क मध्यकृतं वर्णं अ पूर्वेण तु भेदितम् ॥२२२॥

औ अः मध्यशिराक्रान्तं घ न मध्यं तु केवलम् ।
ष व मध्यं ततो देवि ड ह मध्यं कृतासनम् ॥२२३॥

अनुस्वारहतं मूर्द्ध्नि न त रन्ध्रगतं पुनः ।
र पूर्वेण तु संयुक्तं व ष मध्यं तु केवलम् ॥२२४॥

य ण मध्यगतं गृह्य इ त रन्ध्रकृतासनम् ।
ह थ मध्यं ततोद्धृत्य अ क मध्यनिरोधितम् ॥२२५॥

पञ्चत्रिंशः[शत्] स्मृता वर्णाः पञ्चप्रणवसंपुटाः ।
योजितव्या महाविद्या कालिका सिद्धिकाङ्क्षिणा ॥२२६॥

अदृश्यकरणी ह्येषा सर्वसंपत्प्रदायिनी ।
न देया दुष्टबुद्धीनां देव्या दूती महाबला ॥२२७॥

हृद्दूती कथिता ह्येवं मुद्राबन्धमतः शृणु ।
पद्मासनस्थितो योगी समकाय ऋजुशिराः ॥२२८॥

रुध्य[द्ध्वा] वायुं स्वकाद्देहात्पुनराकृष्य धारयेत् ।
हृद्देशसंस्थितो ग्रन्थिस्तस्य नाभौ क्षिपेन्मनः ॥२२९॥

मन्त्रं चैव तथात्मानं एकीकृत्य त्रयं बुधः ।
दण्ड[ा]कारा[रं] नयेत्तावद्यावद् ब्रह्मबिलं गतः ॥२३०॥

तत्स्थानात्प्रलये[च यजेत्] तूर्णं महायानेन सुन्दरि ।
दण्डाकारा भवेच्छक्तिर्घण्टि ब्रह्मबिलं प्रिये ॥२३१॥

ततोर्धे[र्ध्वे] प्रेरयेच्छीघ्रं त्रिघटं यत्र सुन्दरि ।
महायानं स[तु] विज्ञेयं शृङ्गाटाकृतिमु[उ]त्तमम् ॥२३२॥

तत्र सृष्टिर्लयं तत्र तस्मिन्मुक्तिर्न संशयः ।
कराभ्यां चैव तर्जन्या पीठयन्तः पुनः पुनः ॥२३३॥

लालना घण्टिके योज्य पञ्चमं स्थानमाक्रमेत् ।
आक्रमेद् गुह्यचक्रं तु करणं चोर्ध[र्ध्व]मूलिकम् ॥२३४॥

पुटद्वयगतो[तं] वायोः पञ्चकं यत्र संस्थितम् ।
तेन संज्ञाविधानेन पञ्चमस्थानमुच्यते ॥२३५॥

आधारस्थं तु यच्चक्रं शृङ्गाटाकृतिमु[उ]त्तमम् ।
तद्बाह्ये षोडशारन्तु कलैः[ला]षोडशनिर्वृतम् ॥२३६॥

चक्रमध्यगता शक्तिः भुजङ्गाकृतिकुण्डली ।
तस्याः क्रमणमात्रेण दण्डाकारा प्रजायते ॥२३७॥

ग्रन्थित्रितयसंलग्ने खगतिर्नात्र संशयः ।
स्वयंभूर्बाणनामा च वाचकं नाम नामतः ।
ग्रन्थिसंज्ञा भवेल्लिङ्गं भेदनात् खगतिः प्रिये ॥२३८॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठ-नाथावतारिते विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

श्रीसमयोद्धारे अङ्गवक्त्रनिर्णयो नाम

दशमः पटलः ॥१०॥

एकादशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

हृदयस्य च या दूती कुब्जिकायाः महाप्रभो ।
तस्या जपप्रमाणं तु यत्र स्थाने कृता सती ॥ १ ॥

तस्य[स्याः] मूर्त्तिं महादेव कथयस्व प्रसादतः ।

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि जपस्थानं शृणु प्रिये ॥ २ ॥

एकवृक्षे श्मशाने वा नदीतीरेषु संगमे ।
उद्याने भग्नकूपेषु मरुस्थाने तथा प्रिये ॥ ३ ॥

शून्यागारे वरारोहे लिङ्गे वै दक्षिणामुखे ।
तत्र स्थितो जपेन्मन्त्रं मुक्तकेशो दिगम्बरः ॥ ४ ॥

केशकौपीनसंयुक्तः कृष्णाजिनपरिच्छदः ।
मांसपूर्णमुखो भूत्वा बलिना मार्जितं तनुम् ॥ ५ ॥

भस्मना मण्डलं कृत्वा चैलाजिनोपरि स्थितम् ।
काद्यपात्रं समादाय द्रव्यपञ्चप्रपूरितम् ॥ ६ ॥

षोढान्यासं न्यसेद्देहे मालिन्यादौ षडन्तिमम् ।
न्यासषट्कं प्रयत्नेन ततो ध्यानं समारभेत् ॥ ७ ॥

कृष्णाञ्जननिभा देवी नीलजीमूतसन्निभा ।
इन्दीवरदलश्यामा नीलोत्पलसमप्रभा ॥ ८ ॥

अतसीपुष्पसंकाशा लाजावर्तसमप्रभा ।
दंष्ट्राकरालवदना गोनासाकृतकुण्डला ॥ ९ ॥

जटाजूटधरा दिव्या कवीन्द्रमुकुटस्थिता ।
भुजाष्टकसमोपेता नानापन्नगमण्डिता ॥ १० ॥

काद्यं खट्वाङ्गं नागं च पाशं वामे व्यवस्थितम् ।
त्रिशूलं वरदं चैव अक्षसूत्रं तथैव च ॥ ११ ॥

डमरुर्वाद्यनामा च दक्षिणेन विराजते ।
नागहारप्रलम्बेन समुन्नतपयोधरा ॥ १२ ॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था नितम्बाढ्या सुशोभना ।
शवयानस्थिता देवी कृष्णवस्त्रपरिच्छदा ॥ १३ ॥

एवं ध्यात्वा वरारोहे शृङ्गाटपुरमध्यगाम् ।
नवलक्षकृते जाप्ये एकचित्तः समाहितः ॥ १४ ॥

दशांशेन च होमं तु महाफल्गु सगुग्गुलुम् ।
वरदा भवते देवी साधकस्य महात्मनः ॥ १५ ॥

खड्गं पातालगुटिकां पादुकां पटरोचनाम् ।
दण्डं कमण्डलुं देवि अणिमादिगुणाष्टकम् ॥ १६ ॥

खेचरादिमहासिद्धिं साधकस्य ददाति सा ।
खेचरादिपतिर्भूत्वा क्रीडते चक्रमध्यतः ॥ १७ ॥

सामान्यजपहोमेन भूचरीं सिद्धिमाप्नुयात् ।
हृदयेन तु देव्याः [वै] क्षोभयेच्चासुरीगणम् ॥ १८ ॥

नवलक्षकृते जाप्ये राजिकालवणे[णैः] हुते ।
राजराजेश्वराणां च मर्त्यलोकेऽथ भूपतिः ॥ १९ ॥

सामान्यजपयोगेन संपदां चाचलीभवेत् ।
स्त्रीजनं क्षोभयेत् सर्वं बालवृद्धयुवादिकम् ॥ २० ॥

आकर्षं मोहनं वश्यं दूरश्रवणदर्शनम् ।
सैन्यस्तम्भं पुरःक्षोभं अग्निस्तम्भाम्भःशोषणम् ॥ २१ ॥

नानारूपधरत्वं च वाग्विलासः प्रवर्तते ।
नानाविज्ञानकर्ता च हृद्दूती यस्य देहगा ॥ २२ ॥

प्रथमा क[थि]ता दूती, द्वितीयां कथयामि ते ।
प्रस्तारमध्यगां विद्यां कथयामि तवाधुना ॥ २३ ॥

एकान्ते विजने गत्वा गोमयोदकलेपिते ।
पुष्पप्रकरगन्धाढ्ये सुधूपामोदवासिते ॥ २४ ॥

अलिफल्गुसमायुक्ते वलित्रयं प्रकल्पयेत् ।
अलिना पूरयेद्वक्त्रं मांसपूर्णं वरानने ॥ २५ ॥

ततोद्धरेच्च प्रस्तारं सुसूत्रं निर्व्रणं शुभम् ।
मेरुप्रस्तारं देवेशि पूर्वोक्तं यन्मया प्रिये ॥ २६ ॥

तन्मध्यादुद्धरेद्विद्यां शिरोदूतीं महाबलाम् ।
फकारान्तं समादाय भान्तेन शिरसा हतम् ॥ २७ ॥

इ ड मध्यगतं वर्णं फान्तस्वरविभूषितम् ।
त ज मध्यगतं चैव नकारादिद्वितीयकम् ॥ २८ ॥

छ ज मध्यं पुनर्विद्यात्तंवर्णं तं तथैव च ।
लाद्येन भूषितं कृत्वा व स मध्यगतं पुनः ॥ २९ ॥

× × ×

चकाराधःसमायुक्तं ए आदौ चैव केवलम् ।
क्षकारान्तं ततो वर्णं अ ट मध्यं ततः पुनः ॥ ३१ ॥

उ घ मध्यं ततो देवि तस्याधःस्थं कृतासनम् ।
चाधो भान्तसमाक्रान्तां षकारादि ततोद्धरेत् ॥ ३२ ॥

ट छ मध्यं ततो गृह्य चाधस्ताद् भूषितं प्रिये ।
छ ज मध्यगतं वर्णं यकारान्तेन भूषितम् ॥ ३३ ॥

हकारादि यकारान्तं भूषितं वरवर्णिनि ।
छ ल मध्यगतं वर्णं ष स मध्यं ततः पुनः ॥ ३४ ॥

द्विधाभूतं प्रकर्तव्यं अ ड मध्यगतं प्रिये ।
छ ल मध्यं ततोद्धृत्य द्विधा भिन्नं प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥

छ ठ मध्यं ततो गृह्य इ ड मध्यं ततोद्धरेत् ।
द्विधाभूतं वरारोहे अ ण मध्यं ततः पुनः ॥ ३६ ॥

त ट मध्यं ततो गृह्य द्विधा तं परिकल्पयेत् ।
क च मध्यगतं वर्णं चान्तं चैव ततोद्धरेत् ॥ ३७ ॥

रादिस्वरसमायुक्तं रा ग मध्यं ततोद्धरेत् ।
चकाराधःसमायुक्तं अ छ मध्यं तु केवलम् ॥ ३८ ॥

ध ओ मध्यं वरारोहे केवल च द्विधा स्थितम् ।
ल क्ष मध्यं द्विधा कृत्वा रादिं चैवासने दहेत् ॥ ३९ ॥

भकारान्तशिराक्रान्तं ठ ड मध्यं तु केवलम् ।
ल थ मध्यं तु येनीतं[नान्तं] द्विधाभूतं प्रकल्पयेत् ॥ ४० ॥

न प मध्यं समादाय छ ज मध्यकृतासनम् ।
चकाराधःसमायुक्तं ल छ मध्यं तथा पुनः ॥ ४१ ॥

वारुणेन समायुक्तं शिरोदूती महाबला ।
वर्णसंख्या वरारोहे षष्टिरेकाधिकं प्रिये ॥ ४२ ॥

संगमे च जपेन्नित्यं लक्षमेकं वरानने ।
पिशितासवसंयुक्तं[क्तो] निशि चरेत्तु साधकः[नाम्] ॥ ४३ ॥

षोढान्यासेन सन्नद्धो ध्यानयुक्तश्च तत्परः ।
रक्तारुणा महादिव्या ऊर्द्ध[र्ध्व]केशी भयङ्करा ॥ ४४ ॥

अस्थिमाला गले बद्धा कर्णौ चास्थिप्रलम्बितौ ।
त्रिनेत्रा स्तब्धताराक्षी भ्रून्नता कुपितानना ॥ ४५ ॥

दंष्ट्राकराला चात्युग्रा वर्त्तयन्ती शिरोत्तमम् ।
चतुर्भुजा महातेजा कालानलसमप्रभा ॥ ४६ ॥

काद्यमुण्डधरा वामे त्रिशूलं कर्त्[कर्त्तरी] दक्षिणे ।
कपालमालाभरणा नृचर्म्मणि[सु-]परिच्छदा ॥ ४७ ॥

कङ्कालस्था महा उग्रा ग्रसन्ति[न्ती]व चराचरम् ।
एवं ध्यात्वा महादेवि प्रेतस्य पुरमध्यगा[म्] ॥ ४८ ॥

अस्या मुद्रां प्रवक्ष्यामि बद्ध्वा येन प्रसिद्ध्यति ।
आक्रमेन्मूलचक्रं तु ऊर्द्ध[र्ध्व]माकृष्य मारुतम् ॥ ४९ ॥

हृन्मध्यसंस्थितं चक्रं शृङ्गाटाकृतिमुत्तमम् ।
वृत्ताकारं ततोर्द्धं[र्ध्वं] तु तत्रोर्द्धं[र्ध्वं] चाष्टपत्रकम् ॥ ५० ॥

चण्डा प्रचण्डा क्रूरा च भीमा कङ्कालिनी परा ।
केकरी कपिला चैव कङ्कटा चाष्टमी प्रिये ॥ ५१ ॥

पूर्वाद्यं तु क्रमेणैव पत्रमध्ये विचिन्तयेत् ।
चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च कृष्णपिङ्गललोहिताः ॥ ५२ ॥

यथा देवीस्वरूपं तु तथैवाष्टौ विचिन्तयेत् ।
कर्णिकास्थां महादेवीं पूर्वरूपां विचिन्तयेत् ॥ ५३ ॥

अङ्गुल्यौ[लीः] ग्रन्थयेत्सर्वान्[र्वाः] कनिष्ठौ[ष्ठे] चोन्नतौ[ते]प्रिये ।
तर्जन्यौ च ततोर्द्धं[र्ध्वं]न अङ्गुष्ठौ तु समौ ततः ॥ ५४ ॥

नाभिमध्ये तु संलग्ना खगतिर्वीरवन्दिते ।
एवमभ्यस्यमानस्तु साधकः सिद्धिभाग् भवेत् ॥ ५५ ॥

नानाविज्ञानकर्ता च नानासिद्धिप्रसाधकः ।
शिरोऽधिष्ठितयोगेन भूतवेतालराक्षसान् ॥ ५६ ॥

यक्षिणीर्यक्षकन्याश्च पिशाचानां तु साधनम् ।
कुरुते विविधाश्चर्यं फलपुष्पादिकर्षणम् ॥ ५७ ॥

'पक्षिणां कर्षणं देवि मृतकोत्थापनादिकम् ।
शाकिनीकुलसामान्यपशुच्छेदं पशुग्रहम्' ॥ ५८ ॥'

कुरुते विविधाश्चर्यं शिरःसिद्धो ह्यनेकधा ।
असिद्धस्य तु कर्माणि कर्मयोगं वदाम्यहम् ॥ ५९ ॥

असक्तः साधने वीरः तश्येदद्वेषिणां [?] प्रिये ।
शिरोरुहसमुत्पन्ना चाण्डाली जुष्टपूर्विका ॥ ६० ॥

रक्षणार्थं च सा दूती शासने संप्रतिष्ठिता ।
विलोमेन कृताभ्यासादुद्धरेदुपदेशतः ॥ ६१ ॥

अस्याः कर्म प्रवक्ष्यामि येन सा प्रत्ययात्मिका ।
एकान्ते विजने गत्वा दक्षिणाभिमुखः स्थितः ॥ ६२ ॥

सुसमे भूप्रदेशे तु गोमयोदकलेपिते ।
चतुरस्रं समं शुद्धं तन्मध्ये मण्डलं प्रिये ॥ ६३ ॥

रुधिरेण तु कर्तव्यं कृष्णछागस्य सुन्दरि ।
मुण्डहस्तप्रमाणेन रुधिरेणावर्तयेत्प्रिये ॥ ६४ ॥

तन्मध्ये षट्ग[ता] लिख्य विलोमेन प्रपूजयेत् ।
पूर्वे तु याकिनी पूज्या स्वबीजाधिष्ठिता प्रिये ॥ ६५ ॥

दक्षिणे हाकिनी पूज्या वायव्ये शाकिनी तथा ।
उत्तरे काकिनी देवी आग्नेय्यां राकिनी प्रिये ॥ ६६ ॥

पश्चिमे लाकिनी पूज्या डाकिनी मध्यतो प्रिये ।
पिशितासवमिश्रैश्च पुष्पधूपसमन्वितैः ॥ ६७ ॥

आममांसेन नैवेद्यं पृथग्रूपं प्रदापयेत् ।
रक्तपुष्पैस्तु संपूज्या निशाकाले वरानने ॥ ६८ ॥

१-१. नास्ति-क० ।

त्वचादिधातुवृन्देन पूजयित्वा पृथक् पृथक् ।
अर्घ्यं देयं तु रक्तेन स्वस्वबीजैर्वरानने ॥ ६९ ॥

भूसुतेनाष्टमतिथौ आर्द्रायोगेन वा प्रिये ।
लि[ले]खनमारभेत्तत्र यन्त्रकर्म सप्रत्ययम् ॥ ७० ॥

संपूज्य योगिनीषट्कं रामाणी (?) शिरसान्वितम् ।
दीर्घमुत्पादयेत् प्रथमं ल ष मात्रा न संशयः ॥ ७१ ॥

षडस्रपुरमध्यस्थं रकारेण अधोद्धृतः [तम्] ।
रोधयोगेन नाम स्यात्कोणमध्ये तथा पुनः ॥ ७२ ॥

रकारं तु तदेवं स्याद् बहिः कोणैः पृथक् पृथक् ।
षट्प्रकारेण दातव्यं ज्वालालाञ्छनलाञ्छितम् ॥ ७३ ॥

अनेनैव प्रयोगेण ज्वरो भवति दारुणम्[णः] ।
कोपकाले समुत्पन्ने चितिवस्त्रे नृचर्मणि ॥ ७४ ॥

लेखितव्यं सुकृद्धेन विषोन्मत्तरसेन च ।
श्मशानाङ्गारसंयुक्तं साध्यनाम तु मध्यतः ॥ ७५ ॥

लिखित्वा ताडयेत् पश्चाज्ज्वरो भवति दारुणः ।
ज्वरमुत्पादयेत् पश्चान्निग्रहं तु समारभेत् ॥ ७६ ॥

ज्वरमुत्पादयित्वा तु सदन्तमानयेच्छिरम् ।
पूर्वद्रव्यैर्लिखित्वा तु नाम तस्य गले क्षिपेत् ॥ ७७ ॥

विपरीतमुखं कृत्वा ऊर्ध्वग्रीवं यथा भवेत् ।
तथा तं स्थापयेद् भूमौ कपालं मन्त्रवित् सुधीः ॥ ७८ ॥

श्मशाने वा नदीतीरे कृत्वा वेदीं ततोऽर्ध्वतः ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत उग्रद्रव्यैः समाहितैः ॥ ७९ ॥

विषेण गन्धकेनैव मनद्या(?)तो[ता]लकेन च ।
राजिकालवणेनैव निम्बपत्रैस्तु सप्तकम् ॥ ८० ॥

प्रथमेऽहनि छागान्त्रं रक्तमिश्राणि[श्रं च] होमयेत् ।
पश्चाद्घातं प्रकुर्वीत कृष्णवस्त्रस्तु दारुणम् ॥ ८१ ॥

ज्वलन्तं पादसंधीनि[ध्यादि] मस्तकान्तं विचिन्तयेत् ।
रेफं चैव ललाटस्थं जपेन्मन्त्रं पुनः पुनः ॥ ८२ ॥

तुरस्तं (?) होम कुर्यात्तु वज्रलाञ्छनलाञ्छितम् ।
एवं वै भवते कालो यदि साक्षाच्छचीपतिः ॥ ८३ ॥

एवं निग्रहमाख्यातं शिरोदेव्या अधिष्ठितम् ।
चाण्डालिनीप्रयोगोऽयं गोपितव्यः प्रयत्नतः ॥ ८४ ॥

शासनस्य तु यो द्वेष्टा द्वेष्टा चैव गुरूपरि ।
तेष्वमोघिनिचाण्डालीं योजयेत् परमार्थतः ॥ ८५ ॥

लक्षमेकं कृतं जाप्यं वाचा मात्रेण मारयेत् ।
अतोर्ध्वं यो जपेद्देवि सिद्धाज्ञा मोघचण्डिका ॥ ८६ ॥

शिरोदूती वरा ह्येषा क्षुद्रकर्मण्यनेकधा ।
सर्वस्वच्छन्ददेवेशी करिष्यति शिखोज्ज्वला ॥ ८७ ॥

इति श्रीमन्महामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

शिरोदूतीनिर्णयसाधनं नाम

एकादशः पटलः ॥ ११ ॥

द्वादशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं सर्वं मया देव अशेषार्थं सुविस्तरम् ।
कथं देव्याः शिखासंस्थं स्वच्छन्दं कतिरूपधृक् ॥ १ ॥

प्रयोगं विपुलं देव सर्वोपाधिविवर्जितम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि सारात्सारतरं विभो ॥ २ ॥

आप्यायनं शरीरस्य आकाशादिप्रसाधनम् ।
अर्चनं चैव संक्षेपात् ग्रहमर्दकरं यथा ॥ ३ ॥

रिपुमर्दकरं चैव वीरयन्त्रप्रसाधनम् ।
ज्वरदुःखविषादीनां सद्यो दुःखविमर्दनम् ॥ ४ ॥

यस्य स्मरणमात्रेण व्याधितो मुच्यते क्षणात् ।
धर्मकामार्थसंसिद्धिम[र]र्थमोक्षप्रसाद[ध]नम् ॥ ५ ॥

वशीकरणकार्येषु आकर्षणविधिक्रिया ।
दिव्य[।]दिव्येषु कार्येषु नानाकार्येषु शङ्कर ॥ ६ ॥

शरीरस्थो यथा वह्निर्नाडिस्थं मुद्रया सह ।
संक्षेपार्चनकार्यं च सिद्धिभोगप्रसाधनम् ॥ ७ ॥

व्रतयागविहीनं च चित्रोपायविवर्जितम् ।
स्मरणात् केवलं मन्त्रं सुखमुत्पादयेद्यथा ॥ ८ ॥

भैरव उवाच

साधु त्वं लघ्विके देवि कथयामि यथा शृणु ।
शिखागुणकलापस्य स्वच्छन्दस्यामितद्युतेः ॥ ९ ॥

लघ्विकायाः शिखा रौद्री रौद्रसिद्धिप्रदायिका।
यस्मिन्काले नमो[तमो]घोरे नेमे स्थावरजङ्गमे ॥ १० ॥

तत्र काले समुद्भूता देव्या मूर्तिर्महाबला।
अनन्ता सा पराशक्तिर्जगद्व्याप्य व्यवस्थिता ॥ ११ ॥

अनेकचक्रतपना भुजानेकयु[कोद्य]तायुधा।
अनेकदिव्याभरणा अनेकाद्भुतदर्शना ॥ १२ ॥

तस्याः शिखा समुद्भूता सिद्धारुणमहाबला।
भैरवी कालरूपस्था वर्णरूपा व्यवस्थिता ॥ १३ ॥

तेन सृष्टं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
लाकुलं च भुजङ्गाख्यं त्रिधाभेदैर्व्यवस्थितम् ॥ १४ ॥

भुजङ्गासनमारूढा शक्तिभिर्भेदयेत्ततः।
आमोदी कुसुमा देवी अर्द्धेन्दुकलयान्विता ॥ १५ ॥

प्रथमं घोरविख्यातं सर्वेषां हृदि संस्थितम्।
सरस्वती च कुसुमा अर्धचन्द्रकलान्विता ॥ १६ ॥

द्वितीयं घोरमूर्त्तिस्थं सर्वजीवप्रकाशकम्।
सावित्रीकुसुमायुक्तं द्वितीयेन्दुकलान्वितम् ॥ १७ ॥

तृतीयं कथितं घोरं शिखादेवी महाद्भुता।
अघोरं नाम विख्यातं यस्माच्चूलीगतस्तु सः ॥ १८ ॥

शमनं सर्वदुःखानां व्याधीनां च निकृन्तनम्।
सर्वानुग्राहकं देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १९ ॥

कालनिर्णाशनं देवि ज्वरसंघविनाशनम्।
दरिद्रा[दारिद्र्य]दमनं चैव अचिरेण गणाम्बिके ॥ २० ॥

आसां संशोधयित्वा तु देव्या न्यासं च पूर्ववत्।
हृदयादिप्रभेदेन अस्त्रान्तं यावदेव हि ॥ २१ ॥

लाकुलं षड्विधं कृत्वा भुजङ्गासनदीपितम् ।
आमोदी कुसुमा देवी कुसुमा च सरस्वती ॥ २२ ॥

प्रज्ञा च कुसुमा देवी क्रिया या कुसुमा प्रिये ।
सावित्री कुसुमा चैव इच्छाशक्तिम[र]तः परम् ॥ २३ ॥

शक्तियुक्ता क्रमाद्धेया ह्रस्वस्वरविवर्जितम् ।
षडङ्गं च समाख्यातं शिखासान्निध्यकारकम् ॥ २४ ॥

स्वस्थाने न्यासविन्यासं पूर्ववच्च यथास्थितम् ।
जातियुक्तो न्यसेद्देवि हृदयादिष्वथ क्रमात् ॥ २५ ॥

शिखास्वच्छन्ददेवेशं तन्मन्त्रं परमेश्वरम् ।
षडङ्गजपनाद्वाथ निराकारेण सिद्ध्यति ॥ २६ ॥

ततो मुद्रां परां बद्ध्वा चिन्तयेद् योनिमध्यगाम् ।
करपल्लवयोगेन मुद्राबन्धं तु कारयेत् ॥ २७ ॥

गुदमेढ्रान्तरे योनिः शृङ्गाटाकृतिमुत्तमम्[रुत्तमा] ।
तन्मध्ये संस्थितं बिन्दुं तन्मध्ये चात्मना प्रिये ॥ २८ ॥

देवीद्वात्रिंशकोपेतं दीप्यमानं सुवर्च्चसम् ।
महामुद्रेति विख्याता नाख्याता कस्यचिन्मया ॥ २९ ॥

ऐक्यं ध्यात्वा स्वके देहे पुनर्वाह्ये विचिन्तयेत् ।
परमध्ये स्थितं प्रेतं ध्यायमानं सुतेजसम् ॥ ३० ॥

सदाशिवं तु विज्ञेयं प्रेतरूपं महाप्रभुम् ।
महायोगी महासिद्धः सर्वलोकधरः प्रभुः ॥ ३१ ॥

सर्वज्ञगुणसंयुक्तं पद्मं तस्योपरि स्थितम् ।
कर्णिकोपरि दीप्यन्तं प्रज्वलन्तं महोज्ज्वलम् ॥ ३२ ॥

अनन्तं तद्विजानीयात्तस्योर्ध्वं तु शिखाशिखम् ।
अष्टपत्रं ततो लिख्य सुसूत्रं निर्मलं शुभम् ॥ ३३ ॥

मेखलात्रयसंयुक्तं द्वात्रिंशारं ततोर्द्ध[र्ध्व]तः ।
द्वात्रिंशार्चिसमोपेतं दीप्त[प्य]मानं सुतेजसम् ॥ ३४ ॥

त्रिनेत्राश्चैकवदना नानालङ्कारमण्डिताः ।
चतुर्भुजा महादीप्ता नानावर्णविभूषिताः ॥ ३५ ॥

वरदं चाक्षसूत्रं च दक्षिणेन विराजते ।
पाशाङ्कुशधरा [वामे] हारनूपुरमण्डिताः ॥ ३६ ॥

यौवनस्था मदोन्मत्ता मदिरानन्दमोदिताः ।
जटाजूटधराः सर्वे[र्वाः] दिव्यकुण्डलभूषिताः ॥ ३७ ॥

चण्डादौ[द्याः] चैव योगिन्यो द्वात्रिंशारे प्रपूजयेत् ।
पाशा तु परमा शक्तिरादिभूता मनोन्मनी ॥ ३८ ॥

आधारशक्तिर्विख्याता भैरवस्य महात्मनः ।
दशबाहुधरां देवीं चतुर्वक्त्रां सुलालसाम् ॥ ३९ ॥

सर्वत्रमधरां देवीमथ श्यामां विचिन्तयेद् ।
कपालं चैव खट्वाङ्गं परशुं शूलं वामके ॥ ४० ॥

डमरुं चाक्षमालां च कर्त्तरीं चैव दक्षिणे ।
गजचर्मधरौ चोभौ हस्तौ च परिकीर्त्तितौ ॥ ४१ ॥

गर्जन्ति[न्तीं] भीषणं नादं सर्वभूतभयङ्करम् ।
भक्षन्ति[न्तीं] चिन्तयेद्व्याधिं विश्वेश्वरमहेश्वरीम् ॥ ४२ ॥

खाद्यमानां रटन्तीं तां ताड्यमानां विचिन्तयेत् ।
भेदयन्ति[न्तीं] त्रिशूलेन छेदयन्ति[न्तीं] महासिना ॥ ४३ ॥

क्रुद्धभावां धुनन्तीं तां पूर्वव्याधिं विचिन्तयेत् ।
अस्योपरि महादेवं शिवं परमकारणम् ॥ ४४ ॥

शैवं ध्यात्वा वरारोहे अनादिनिधनं परम् ।
अव्यक्तं व्यक्तिसंभूतं तस्य मूर्त्ति वदाम्यहम् ॥ ४५ ॥

पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिपञ्चनयनोज्ज्वलम् ।
जटाजूटधरं दिव्यं कर्णकुण्डलमण्डितम् ॥ ४६ ॥

त्रिशूलं वरदं पाशं खड्गं कर्त्तरी च दक्षिणे ।
अभयं दर्पणं सर्पं बीजपूरं सहाचसम्[?] ॥ ४७ ॥

वामेन चायुधान् दिव्यान्नानालङ्कारसंयुतम् ।
सर्वाभरणशोभाढ्यं नानारत्नैस्तु मण्डितम् ॥ ४८ ॥

गोक्षीरवर्णसंकाशं हिमकुन्देन्दुसंनिभम् ।
सर्पराजोपवीतं च रत्नमालाप्रलम्बितम् ॥ ४९ ॥

सर्वावयवसंपूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
एवं ध्यात्वा वरारोहे शिवं परमकारणम् ॥ ५० ॥

शिखास्वच्छन्ददेवेशं तत्स्थाप्य परिपूजयेत् ।
स्वकीयाङ्गसमुद्भूतं एकवीराङ्गपञ्चकम् ॥ ५१ ॥

आग्नेय्यां हृदयं पूज्य शिरस्त्वीशानगोचरे ।
शिखां वै नैर्ऋते पूज्य कवचं चैव वायवे ॥ ५२ ॥

अस्त्रं दिशासु विन्यस्य भ्रुवोर्मध्ये प्रपूजयेत् ।
शशिनी अङ्गदा इष्टा मरीचिर्ज्वालिनी तथा ॥ ५३ ॥

एवं वै मध्यतो पूज्य कलाः पश्चात् प्रपूजयेत् ।
मध्ये तु पूजयेद्देवि पुरुषादौ क्रमेण तु ॥ ५४ ॥

निवृत्तिश्चा[श्च] प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिकरी तथा ।
पश्चिमेन प्रपूज्येत कलाश्चत्वारि[श्चतस्रः] सुन्दरि ॥ ५५ ॥

तमा मोहाशयानिष्टा व्याधिर्मृत्युः क्षुधा तृषा ।
दक्षिणस्था प्रपूज्येत[ज्यन्ते] कलाश्चाष्टौ वरानने ॥ ५६ ॥

सिद्धीरिद्धिर्द्युतिर्लक्ष्मीर्मेधा कान्ता स्वधा प्रभा ।
कलाश्चाष्टौ वरारोहे पूर्णस्यांशं प्रपूजयेत ॥ ५७ ॥

रजोरक्षा रतिः पाल्या कामा संजननी क्रिया ।
बुद्धिः कार्या च धात्री च भ्रामिणी मोहिनी जरा ॥ ५८ ॥

कलास्त्रयोदश ख्यातास्तत्रावस्थाः प्रपूजयेत् ।
गायत्र्यार्घ्यं ततो दद्यादलिना उदकेन वा ॥ ५९ ॥

ॐ शिखानाथाय विद्महे स्वच्छन्दाय च धीमहि ।
तन्नो वीरः प्रचोदयात् ॥ ६० ॥

गायत्र्या तर्पयेद्देवं यथाविधिरनुक्रमात् ।
पूज्य स्वच्छन्ददेवेशं क्रमाग्रे मण्डलोपरि ॥ ६१ ॥

एवं जपेच्छिखानाथमघोरं परमेश्वरम् ।
प्रणवाद्यं नमोऽन्तं च सिद्धानां च प्रपूजनम् ॥ ६२ ॥

सिद्धार्थयोगयुक्तानां एष[एतत्] पादार्घ्यकीर्तनम् ।
ततोऽग्निपूजनं कुर्याद्यथा भवति तच्छृणु ॥ ६३ ॥

चतुरस्रं तथा वृत्तं त्रिकोणं धनुषाकृति ।
पद्महस्तं भवेन्मानं अध ऊर्ध्वं समन्ततः ॥ ६४ ॥

अङ्गुलत्रयमानेन मनोत्रितयचक्रमात् ।
अश्वत्थपत्रसदृशं कुण्डयोनिं प्रकल्पयेत् ॥ ६५ ॥

हृदयेन तु मन्त्रेण अग्निं तत्रैव स्थापयेत् ।
इन्द्राद्यांश्चैव दिक्पालान् मेष[ख]लायां प्रपूजयेत् ॥ ६६ ॥

पश्चाद्ध्यानं प्रयुञ्जीत यथा पूर्वं प्रचोदितम् ।
ज्वाल[ा]मालाकुलं ध्यात्वा त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥ ६७ ॥

वरदं शक्तिर्दक्षस्थे वामे श्रुवकमण्डलुम् ।
सप्तजिह्वं महादीप्तं मेषारूढं विचिन्तयेत् ॥ ६८ ॥

एवं ध्यात्वा वरारोहे ततो ह्यग्निं प्रपूजयेत् ।
कुण्डस्य दक्षिणे भागे चतुरस्रं च मण्डलम् ॥ ६९ ॥

तन्मध्ये वर्तुलं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः ।
तन्मध्ये पूजयेदग्निं सव्यादङ्गानि[ङ्गैश्च] संयुतम् ॥ ७० ॥

अष्टारं च लिखेत्पद्मं केशरालं सकर्णिकम् ।
सहस्रं वा शतं वाथ पञ्चाशत्पञ्चविंशति ॥ ७१ ॥

शिखानाथेन मन्त्रैर्वा ह्यघोरेण वरानने ।
चतुरश्रे आयुर्वृद्धिः पुष्टिकामं[मे] च दुर्वलं[वर्तुलम्] ॥ ७२ ॥

वश्यार्थे योनिकुण्डे[ण्डं] तु अभिचारे धनुषाकृति ।
प्रत्यूषे आयुष्कामाय मध्याह्ने पुष्टिवर्धनम् ॥ ७३ ॥

पराह्ने वश्यकार्यार्थे रात्रौ चैवाभिचारके ।
एवं ज्ञात्वा वरारोहे तस्य सिद्धिः प्रजायते ॥ ७४ ॥

विधिहीना न सिध्यन्ति जन्मकोटिशतैरपि ।
अग्निं च पूजयेन्नित्यं यथाविधिमनुक्रमात् ॥ ७५ ॥

तिलैर्होमं प्रकर्तव्यं दधिमध्वाज्यसंयुतैः ।
घृतं शक्तुं च मधुना सर्वदुःखप्रमर्दकम् ॥ ७६ ॥

व्याधिनिर्णाशनं गौरि शेषहोमं तु भुक्तिदम् ।
सहस्रेण महाभूतिः शतेन व्याधिनाशनम् ॥ ७७ ॥

शतमष्टोत्तरं गौरि देवतुल्यो भविष्यति ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः सर्वत्रैवापराजितः ॥ ७८ ॥

शतमष्टसहस्रेण त्रिकालेन तु सुन्दरि ।
षण्मासाज्जायते सिद्धिः साक्षात्पश्यति भैरवीम् ॥ ७९ ॥

यथेष्टा जायते सिद्धिः सम्यक् चाग्निप्रपूजनात् ।
सहस्रेण ज्वरं याति छागस्य पिशिते हुते ॥ ८० ॥

त्रिकालं मासमेकं तु सहस्रं होमयेत्तु यः ।
सिद्ध्यते मांसमद्येन क्षीराज्यैर्मधुसंयुतैः ॥ ८१ ॥

यवक्षीराज्यहोमेन शालितण्डुलसंयुतैः ।
प्रीयते तु शिखादेवः स्वच्छन्दो घोररूपधृक् ॥ ८२ ॥

दधिहोमात्परा पुष्टिः क्षीरहोमेन शान्तिकम् ।
षण्मासं च घृतं हुत्वा सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ८३ ॥

राजयक्ष्मा तिलैर्होमादायुर्वृद्धिर्यवैर्हुतैः ।
कुष्ठक्षयं सदा होमात् त्रिमध्वाक्तैश्च तण्डुलैः ॥ ८४ ॥

श्यामाकैर्घृतयुक्तैस्तु नाशयेच्च भगन्दरम् ।
तिलैर्होमं प्रकुर्वीत दधिमध्वाज्यसंयुतैः ॥ ८५ ॥

व्याधिनिर्णाशनं गौरी[रि] शेषहोमं तु भूतिदम् ।
केवलं घृतहोमेन सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ८६ ॥

पूर्णोदये[यं] वरारोहे हृदि मन्त्रेण पुष्कलम् ।
त्रिशिखां बद्धयेन्मुद्रां वस्त्रान्तरित[तां] सुन्दरि ॥ ८७ ॥

सुप्रीतो ध्यायमानंतु[नस्तु] अर्घमाचमनं ददेत् ।
श्राम्यमाणस्त्रयागारात् प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥८८ ॥

पुनश्च प्रार्थयेद्भक्त्या वह्निं चाघोररूपिणम् ।
संहारं दर्शयेन्मुद्रां अङ्गुष्ठानामिकायुताम् ॥ ८९ ॥

प्रयोगं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं ते पुरा मया ।
तव लब्धि प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाधुना ॥ ९० ॥

सर्वव्याधिहरं ध्यानं परपुष्टिविवर्धनम् ।
हृदिस्थं चाष्टपत्रं तु शृङ्गाटाकृतिमध्यगम् ॥ ९१ ॥

तत्र मध्यस्थितो ह्यात्मा[तात्मानं] अण्डरूपं व्यवस्थितम् ।
हिमकुन्देन्दुसंकाशं गोक्षीरसदृशोपमम् ॥ ९२ ॥

विप्रुषैः सिच्यमात्मानं प्लाव्यमानं विचिन्तयेत् ।
तावद्ध्यायेद्वरारोहे यावत्समरसं पदम् ॥ ९३ ॥

आसां संशोधयत्यर्धं न्यासं कृत्वा तु पूर्वकम् ।
पूर्वन्यासं च मन्त्रेण आद्यकूटैः षडक्षरैः ॥ ९४ ॥

अधश्रोत्रं[अधोगतं] तु वामेन दक्षिणेनोर्द्ध[र्ध्व]गं प्रिये ।
न्यासं कृत्वा शरीरे तु मन्त्रराजमनुस्मरेत् ॥ ९५ ॥

पञ्चप्रणवमाद्येन अघोरेण सुराधिपे ।
अद्धर्युष्टमात्रयोत्तीर्णं ज्ञात्वा मन्त्रमनुस्मरेत् ॥ ९६ ॥

प्रणवाद्यं च एकारं नादबिन्दुकलान्वितम् ।
दण्डं चैव तथा बिन्दुमर्द्धेन्दुं च तृतीयकम् ॥ ९७ ॥

अर्धमात्रा कला ज्ञेया सार्धत्रयप्रकीर्तिता ।
अद्धर्युष्टमात्रा विज्ञेया प्रणवेदं शिखाशिवम् ॥ ९८ ॥

आद्यन्तं संपुटं कृत्वा जपेद् घोरं वरानने ।
अकुलादित्रिमध्यस्थं कुलादेश्च त्रिमध्यमम् ॥ ९९ ॥

मध्यमादि त्रिमध्यस्थं पिण्डादिन्या त्रिमध्यगम् ।
त्रयोऽर्द्धमात्रया युक्तं प्रणवेदं शिखाशिवम् ॥ १०० ॥

श्रीदेव्युवाच

अकुला च कथं देव कुलनामा कथं भवेत् ।
एतेषां निर्णयं देव जानीमो निश्चयं यथा ॥१०१॥

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि महाभागे कथ्यमानं न बुद्ध्यसे ।
तन्त्रे तन्त्रे मयाख्यातमनेकार्थप्रभेदतः ॥१०२॥

संक्षेपात् कथयिष्यामि यथा जानासि भैरवि ।
अकुलं शिवमित्युक्तमादिभूतमनामयम् ॥१०३॥

अव्यक्तं च निराभासं निस्तरङ्गं निराकुलम् ।
सुसूक्ष्मं च निरालम्बं जगद्व्यापि निरञ्जनम् ॥१०४॥

अव्यक्तं व्यक्तिमायातं तस्याव्यक्तस्वरूपतः ।
तस्य देहात्समुद्भूता इच्छाशक्तिः पराव्यया ॥१०५॥

तेन जाता वरारोहे पञ्चाशत्कुलनायिकाः ।
वर्णरूपाश्च ते[ताः]सर्वे[र्वाः] कुलपिण्डे व्यवस्थिताः ॥१०६॥

तासां नाम प्रवक्ष्यामि येन जानासि सुन्दरि ।
पिण्डिनी प्रथमा देवी पद्मिनी च द्वितीयका ॥१०७॥

रूपिणी च तृतीया च अमूर्त्तिस्तु चतुर्थिका ।
शान्ता तु पञ्चमी ख्याता कौलिनी षष्ठमी प्रिये ॥१०८॥

अकुला सप्तमी ज्ञेया खण्डिनी चाष्टमी स्मृता ।
रतिश्च नवमी प्रोक्ता अकुला दशमी स्मृता ॥१०९॥

एकादशी चार्थदाता शुभगा द्वादशीति च ।
त्रयोदशी वरारोहे वेदनामा प्रकीर्तिता ॥११०॥

चतुर्दशी करालिन्या मध्यमा च त्रिपञ्चिका ।
अन्त[न्त्य]चारी महादेवी षोडशी परिकीर्तिता ॥१११॥

अन्तिमी त्वि[ति]च सा प्रोक्ता अन्तश्चरति सर्वदा ।
अन्त्यजा सा च विख्याता विसर्गान्ता विसर्पिणी ॥११२॥

एताः षोडश चाख्याता पीठभेदैर्व्यवस्थिताः ।
डो[ओ]जपूकक्रमेणैव चतुष्कलसमन्विताः ॥११३॥

पूजयेद्रन्ध्रमध्यस्था भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।
चतुस्त्रिंशति द्वीपानि द्वीपभेदात् व्यवस्थिता ॥११४॥

तेषां नामानि वक्ष्यामि तव स्नेहाद्वरानने ।
कमला खेचरी चैव गगना च तृतीयका ॥११५॥

घोरघोषा प्रचण्डा च चञ्चला षष्ठमी स्मृता ।
विनता सप्तमी ज्ञेया जयन्ति[न्ती] चाष्टमी प्रिये ॥११६॥

जया च नवमी प्रोक्ता विजया दशमी तथा ।
सोमा च पूर्णिमा चैव डंवरी संवरी प्रिये ॥११७॥

अश्वी च सुभगा देवी मन्थरा द्रविणी तथा ।
कण्टका विकटा चैव कुमारी च तथापरा ॥११८॥

अजरा मध्यमा चैव पश्या पूषा तथापरे ।
गजजिह्वा बलादेवी पिङ्गाङ्गा धारिणी तथा ॥११९॥

पावनी भानुमत्या च शनि[शि]नी च कुला प्रिये ।
अकुला च तथा देवि चतुस्त्रिंशन्महाबलाः ॥१२०॥

अस्या भेदद्वयं प्रोक्तं पीठैर्द्वीपाक्षरैः प्रिये ।
पीठाः षोडश भेदेन चतुस्त्रिंशतिद्वीपकाः ॥१२१॥

संज्ञाभेदाः[दात्] समुद्भूता अकुलाद्या वरानने ।
आसां पार्श्वोद्धरिष्यामि मन्त्रमेतत्सदाशिवम् ॥१२२॥

सृष्टिमार्गेण पीठानां द्वीपानां तत्क्रमेण तु ।
अकुलाद्या वरारोहे षोडशैव अनुक्रमात् ॥१२३॥

पिण्डिनी पद्मिनीरूपा शात्या[न्ता]तीता च कौलिनी ।
अकुला चार्थदाता च सुभगा वेदवादिनी ॥१२४॥

कराला मध्यमा चेति अन्त्यचारी तथापरा ।
अकुलादि त्रिमध्यस्थं त्रिभिर्भागैस्तु कारयेत् ॥१२५॥

कीटं तु आसने दद्यात् त्रयाणां परमेश्वरि ।
प्रथमं पद्मिनीं भेद्य अमूर्त्यां च द्वितीयकम् ॥१२६॥

तृतीयं च करालिन्या मध्यमायास्तु भूषयेत् ।
अर्धचन्द्रकला देव्या सार्द्धैषां चार्द्धमात्रिका ॥१२७॥

एतद्देवि तवाख्यातं मन्त्रमक्षरमुत्तमम् ।
त्रयार्धमात्रया युक्तं प्रणवादौ शिखाशिवम् ॥१२८॥

त्रिनाडिपिण्डसंभूतं मुद्रया चोर्द्ध [र्ध्व]दीपितम् ।
त्रिपक्षक्षयकर्तारं त्रिधावर्द्ध[वर्द्धं] त्रिशूलिनम् ॥१२९॥

त्रिमूर्तिगुणसंभूतं तेनासौ त्रिदिवेश्वरः ।
त्रिमार्गविहितं सर्वं त्रिपथान्तःसमुद्भवम् ॥१३०॥

त्रिपथेन विना देवि भ्राजते योनिमण्डले ।
पानौ[नं] विना न निष्यन्ति[पत्ति] र्दिव्यादिव्येषु वस्तुषु॥१३१॥

उत्तमाधममध्यस्था कन्या सा तु व्यवस्थिता ॥
बिन्दुः शक्तिस्तथा नादं मात्रात्रयमुदाहृतम् ॥१३२॥

त्रयाणामपि संयोगान्निष्पद्येत भगालयम् ।
परार्द्धमात्रासंभिन्नं प्रणवोऽयं कुलागमे ॥१३३॥

अ उ मकारसंयोगात् प्रणवेदं क्रियात्मकम् ।
अ उ मकार संयुक्तं प्रणवेदं कुलात्मकम् ॥१३४॥

शून्यव्यापीव तेजःस्थं जीवं तु वह्निसंयुतम् ।
शिखीशं कीटसंयुक्तं प्रसादं जीवसंयुतम् ॥१३५॥

चतुर्थेन द्विराक्रान्तं चतुर्थं सप्तमेन तु ।
पञ्चमं तु वरारोहे दशमेन विभूषयेत् ॥१३६॥

एकादशेन संयुक्ता अर्द्धचन्द्रकलान्विता ।
सादाख्येश्वररूपाणां विष्णुब्रह्माद्यनुक्रमात् ॥१३७॥

एतत्ते प्रणवाः पञ्च क्रियाकारेण गोचरे ।
प्रणवादिसमुद्भूताः पञ्चैते गुणवत्तराः ॥१३८॥

पञ्चप्रणवमाद्यन्तं ततोर्द्धेतु[तत ऊर्ध्वे] शिखाशिवम् ।
एतत्ते प्रणवं दिव्यं सुगोप्यं प्रकटीकृतम् ॥१३९॥

एतद्देवि स्फुटं तुभ्यं भ्रान्तिर्नात्र जगत्त्रयम् ।
ज्ञात्वा देवं स्मरेद्यस्तु सन्निधानस्तु तस्य वै ॥१४०॥

दुर्लभस्तु प्रयोगोऽयं संस्फुटं तु मतोत्तरे ।
यत्रोत्पन्नं ततो याति लयं कृत्वा सुराधिपे ॥१४१॥

आदौ योन्यां समुत्पन्नं लयं तत्रैव गच्छति ।
उत्पत्तिश्च लयं ज्ञात्वा ततो मन्त्रं च सिद्ध्यति ॥१४२॥

यत्किञ्चित्कुरुते कार्यं साधकः साधनात्मकम् ।
उच्चरेत लयान्तस्थं तर्जन्या च व्यवस्थितम् ॥१४३॥

विसर्गान्ते लयं प्रोक्तं नासाग्रे तर्जनी प्रिये ।
नाडिसूत्रेण विन्यस्तास्तावद्भिरन्तरे च मातरः ॥१४४॥

इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका ।
नाडिवर्णं समाख्यातं वामदक्षिणमध्यगम् ॥१४५॥

नाडीशब्दः स्वरं[रो] ज्ञेयं[यः] द्विचतुर्दशमं[मः] प्रिये ।
तथा नाड्यस्तु संभिन्नं बिन्दुसाक्यास्तु(?) वेष्टितम् ॥१४६॥

चक्रद्वयमिदं देवि सोमसूर्यौ वरानने ।
षोडशारं महाचक्रं द्वात्रिंशत्तस्य चोर्द्ध[र्ध्व]तः ॥१४७॥

शृङ्गाटं कर्णिकामध्ये शक्तिस्थं च व्यवस्थितम् ।
अमृता मानसी तुष्टिः पुष्टिः प्रीति[ती]रतिस्तथा ॥१४८॥

ह्री च श्रीश्च स्वधा रात्रिर्ज्योत्स्ना हैमवती तथा ।
छाया च रूपिणी वामा अमा वै षोडशी कला ॥१४९॥

षोडशैताः कलाः शक्तेः षोडशारे व्यवस्थिताः ।
अजा चक्रेश्वरी रौद्रा सुभगा प्रियदर्शना ॥१५०॥

व्योमा व्योमवती शुक्ला यवती षावनी प्रिये ।
हृदिनी क्लेदिनी सौम्या विरजा कौलिनी शुभा ॥१५१॥

असिता च पिनाकी च चञ्चला चपला प्रिये ।
शङ्खिनी कुमुदा क्रोडा हल्लेखा ललिता तथा ॥१५२॥

रेवती रञ्जिका रङ्गा भूतिदा सुखदा प्रिये ।
क्षीरधारोद्यतफेना ज्योत्स्नाद्युतिसमप्रभा ॥१५३॥

वर्षत्यन्ते महौघेन क्षीराद्यैर्विप्रुषैस्तनुम् ।
तत्र मध्यस्थितश्चात्मा[तात्मानं] क्षीराभं च विचिन्तयेत् ॥१५४॥

सोमचक्रमिदं देवि यदा वहति मारुतः ।
तदासौ जपते मन्त्री अव्यु[वि]च्छिन्नं निरन्तरम् ॥१५५॥

सूर्यो वा वहते यत्र तच्चक्रं चिन्तयेत् प्रियम् ।
द्वादशारं महापद्मं कलै[ला]र्द्वादशभिर्वृतम् ॥१५६॥

चिन्तयेत्तत्र तद्देवि शृङ्गाटपुरमध्यगम् ।
तेजिनी तपनी चैव शोधिनी बोधिनी तथा ॥१५७॥

शोषिणी क[फ]लिनी चैव रेवत्याकर्षिणी तथा ।
सुषुम्णा च वियत्या च ज्येष्ठा चैव हिरण्यदा ॥१५८॥

द्वादशैव वरारोहे द्वादशारे विचिन्तयेत् ।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्चतुर्थिका ॥१५९॥

शृङ्गाटपुरमध्यस्था वामदक्षाग्रमध्यगा ।
उदयार्कसमप्रख्या दाडिमीकुसुमप्रभा ॥१६०॥

बन्धूकपुष्पसदृशा द्रवल्लाक्षासमप्रभा ।
सहस्रकिरणोपेता स्रवन्तिश्च[न्ती च] परा कला ॥१६१॥

तन्मध्ये स्थितमात्मानं प्लाव्यमानं विचिन्तयेत् ।
द्रवल्लाक्षारसं देवि वर्षन्तं रक्तबिन्दुभिः ॥१६२॥

सिद्ध्यते तेन चात्मानं विश्वरूपा[पं] विचिन्तयेत् ।
सूर्यचक्रं वहेद्यत्र तत्र जप्यं समारभेत् ॥१६३॥

सोमचक्रं यदा न्यस्तं सृजत्येवं चराचरम् ।
सूर्यचक्रं यदाभ्यस्तं संहरेत चतुर्थकम् ॥१६४॥

सोमसूर्यगतिं ज्ञात्वा सिद्धयते ह्यविचारतः ।
यस्य यद्वहते वायुस्तत्र तन्मध्य आत्मनि ॥१६५॥

तत्र मध्ये स्वयं स्थित्वा विश्वोऽहमिति चिन्तयेत् ।
अहं ब्रह्मा ह्यहं विष्णुरहं देवो महेश्वरः ॥१६६॥

भैरवोऽहं महादेवि चिन्तयित्वा तु साधकः ।
हृन्मध्ये चिन्तयेच्चक्रं नादिवर्णैस्तथाक्षरैः ॥१६७॥

द्वादशारं महाचक्रं शृङ्गाटाकृतिमध्यगम् ।
सोममादौ शिखाश्चैव द्वादशैवं विचिन्तयेत् ॥१६८॥

नादबिन्दुकलाक्रान्तं मध्ये कूटचतुष्टयम् ।
दारुकं च महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ॥१६९॥

वालीशं च ततोऽधस्तादर्घीशं तत्र चासनम् ।
भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]संदीप्तं नानाबिन्दुकलान्वितम् ॥१७०॥

शृङ्गाटमध्यविन्यस्तं दीप्यमानं सुतेजसम् ।
चतुराननं महाकालं पिनाकीखड्गमेव च ॥१७१॥

वालीशमाननं तस्य अर्घीशमथ योजितम् ।
भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]संदीप्तं क्रूरानन्देन भूषितम् ॥१७२॥

अर्द्धेन्दुकलया भिन्नं ज्वालामालासमाकुलम् ।
लोहितं च महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ॥१७३॥

वालीशमासनं तस्य अर्घीशासनसंयुतम् ।
भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]संदीप्तं क्रूरानन्देन संयुतम् ॥१७४॥

तप्तहाटकवर्णाभं वामस्थं च विराजते ।
क्रोधीशं च महाकालं पिनाकीखड्गसंस्थितम् ॥१७५॥

वालीशं चार्घिणा युक्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ।
उदयादित्यसंकाशं कामतत्त्वमनुत्तमम् ॥१७६॥

डो[ओ]जपूकक्रमं देवि पीठभेदं विचिन्तयेत् ।
नाडीत्रयसमायुक्तं वामदक्षिणमध्यगम् ॥१७७॥

सूक्ष्मीशं लोहितं देवि वामदक्षिणसंस्थितम् ।
शृङ्गाटपुरमध्यस्थं आत्मानं च विचिन्तयेत् ॥१७८॥

ओरीशं चैव तत्रस्थं शिवं शक्तिश्च तत्र च ।
आत्मा मनश्च मन्त्रश्च एकीकृत्वा जपेद् बुधः ॥१७९॥

आद्यक्षरं जपेन्मत्रं पुनश्चान्ते नियोजयेत् ।
एवं संस्मृत्य विधिवत् .... ॥१८०॥

स एव मन्त्रमुच्चार्य आद्यादौ यावदन्तिमे ।
नादेन तु गतिं कुर्यात् स्वच्छन्दगतिभाषितम् ॥१८१॥

ब्रह्माणी[ण]श्च ततो विष्णुं रुद्रमीश्वरमेव च ।
आधारे तु स्थितो ब्रह्मा नाभौ विष्णुर्व्यवस्थितः ॥१८२॥

रुद्रं च हृदिमध्ये तु ईश्वरं कण्ठकूपके ।
भेदयेच्च परा शक्त्या नादरूपव्यवस्थया ॥१८३॥

सेतुमध्ये तु गमनं कुश्चिकोद्घाटयेद् बिलम् ।
उत्पाद्य परमं स्थानमघोरं यत्र संस्थितम् ॥१८४॥

प्राजापत्यं भवेत् सेतुं[तुः] कुश्चिका शक्तिरग्रणीः ।
बिलं ब्रह्मबिलं नाम अघोरं यत्र संस्थितम् ॥१८५॥

अष्टाकपाली विज्ञेयं त्र्यक्षरं तु अनुस्मरेत् ।
सर्वतत्त्वेषु हृदयं यत्र लध्वीशिखाक्रमम् ॥१८६॥

मनसा स्मृतमात्रेण खेचरत्वं प्रजायते ।
सर्वविघ्नोपशमनं मन्त्रं त्र्यक्षरमुत्तमम् ॥१८७॥

शेषयव्हं[?] तु यद्देवि तदङ्गान्यस्य कल्पयेत् ।
जप्तव्यं च शिखामन्त्रं सकृत्सिद्धिः प्रजायते ॥१८८॥

अकाशादिप्रसिद्ध्यर्थमन्यसिद्धिषु का कथा ।
मन्त्रसन्नद्धदेहस्तु सर्वावस्थोऽपि साधकः ॥१८९॥

तिष्ठन् जाग्रन् स्वपन् गच्छन् भुञ्जानो मैथुने रतः ।
चर्याधारी निराचारो मन्त्रसंस्मरणाच्छुचिः ॥१९०॥

सामान्यस्मरणाद्देवि व्याधिभिन्नः सभूतये[यते] ।
ज्वलन्तं[न्त्स] दृश्यते भूतैः यस्येदं तु शरीरगम् ॥१९१॥

अथ किं बहुनोक्तेन सिंहस्यैव यथा मृगाः ।
गन्धेन प्रलयं यान्ति सत्यं सत्यं महातपे ॥१९२॥

जप्येन साधयेत् सर्वं व्रतस्थो यस्तु साधकः ।
पूर्वमेव जपेल्लक्ष्यं[क्षं] सिद्ध्यते घोरमूर्द्धजम् ॥१९३॥

अविदित्वा विधानं तु स विघ्नैश्चाभिभूयते ।
तस्मात् पदार्थनवकं ज्ञातव्यं तु कुलेश्वरि ॥१९४॥

क्षेत्रस्थानानि सुश्रोणि ज्ञातव्यानि सुनिश्चितम् ।
क्षेत्रव्रतानि मन्त्राश्च अक्षसूत्रं जपं तथा ॥१९५॥

ध्यानं पूजा तथा द्रव्यं वर्णं मुखसमन्वितम् ।
नवधा कथितं पूर्वं श्रीमते च मया तव ॥१९६॥

नवधा यो न जानाति न चासौ सिद्धिभाजनः ।
मुखहीना न सिध्यन्ति अग्निहोत्रविवर्जिताः ॥१९७॥

मुखमाहवनीयं स्यात्तस्मिन्मन्त्राः प्रतिष्ठिताः ।
अघोरं कालमित्युक्तं अघोरं विष्णुरुच्यते ॥१९८॥

अघोरोऽहं महेशानि अघोरा त्वं वरानने ।
बहुरूपधरो ह्यग्निः प्रचण्डकालमन्तकः ॥१९९॥

स शिवः परमो[मं] ब्रह्म निर्वाणं च सदाशिवम् ।
स एव परमो नित्यः अस्मात्परतरो नहि ॥२००॥

अनेन स्मृतमात्रेण सर्वदुःखैः प्रमुच्यते ।
दारिद्रसिंहो घोरीशो व्याधिसिंहो महेश्वरि ॥२०१॥

प्रचण्डदुःखसिंहश्च महापातकनाशनः ।
सर्वतीर्थाभिषेकं च शतजप्तेन जायते ॥२०२॥

शतजप्तेन देवेन सर्वयज्ञफलं लभेत् ।
दीक्षानिर्वाणकारि स्यात्त्रिजप्तपरिवर्तनात् ॥२०३॥

दशावर्तेन दुरितं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
दशावर्त्तात् गुरो[रू]पेक्षी स्मरणादेव मुच्यते ॥२०४॥

विधिहीनो तथा याने पञ्चभिः सोपपातकी ।
शतेनैकेन त्रिकालं वर्षात्सिद्धिर्यथेप्सितम् ॥२०५॥

रिपूणां बलवतां च व्यस्तमावर्तयेत् प्रभुम् ।
दक्षिणास्यो महादेवि सहस्रेण निपातयेत् ॥२०६॥

संग्रामकाले स्मर्तव्यो असिपत्रगतो हृदि ।
वेष्टयन्तं मातृभिः सैन्यं भक्षयन्तश्च भावयेत् ॥२०७॥

हतदर्पाः प्रजायन्ते न पुनः संहरन्ति च ।
दुःस्वप्ने द्विगुणं जाप्यं ब्रह्मष्टवं(?) चतुर्गुणम् ॥२०८॥

लूतानां दशगुणं चैव .... तु विंशतिः ।
दिने दिने शतं जप्त्वा विभूतिर्वर्द्धते चिरम् ॥२०९॥

प्राङ्मुखो यस्य नाम्ना तु साध्यारूढो हृदि स्थितः ।
वशीभवति[करोति]राजानं शतजप्तेन धीमता ॥२१०॥

सप्ताहात्स बलोपेतो वश्यो भवति नान्यथा ।
प्रयोगं कथयिष्यामि शृणु सुन्दरि तत्त्वतः ॥२११॥

भूर्जपत्रे लिखेन्मन्त्रं त्र्यारेण [च] विदर्भितम् ।
कर्पूरं कुङ्कुमं देवि लाक्षारससमन्वितम् ॥२१२॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु नाम यस्य विदर्भितम् ।
कोणस्थं चाङ्कुशं देवि मायाबीजेन वेष्टयेत् ॥२१३॥
वामपादेन चाक्रान्तं जपेत्तन्मुखसंस्थितः ।
सप्ताहाद्वशमायाति आत्मना च घनेन वा ॥२१४॥
अनेन योगराजेन वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ।
दिने दिने सहस्रात्तु विभूतिर्वर्द्धते चिरात् ॥२१५॥
यत्किञ्चिद्विहितं चित्ते सप्ताहात् साधयिष्यति ।
न्यस्तं सर्वाङ्गिकं मन्त्रं भैरवासनसंस्थितः ॥२१६॥
स तु भोजनकाले तु संचिन्त्य साधकोत्तमः ।
संपूर्णं शशिनं ध्यात्वा भुञ्जानोऽमृतमश्नुते ॥२१७॥
संपूर्णचन्द्रमध्यस्थं अधोर्द्ध[र्ध्वे] संपुटीकृतम् ।
पर्यटेत् साधको नित्यं सर्वं श्रेयमवाप्नुयात् ॥२१८॥
यदिच्छेत्साधकः सिद्धिं हृदि कृत्वा महेश्वरम् ।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं स्वच्छन्दगतिभावितः ॥२१९॥
तत्प्रविष्टो विचिन्तेत तदन्ते तु परापरम् ।
यावत्परस्परं चिन्त्य यावद् ब्रह्मबिलं गतः ॥२२०॥
प्रथमं कथितं भेदं घोरदेवस्य सुन्दरि ।
स्वच्छन्दं परमं देवं द्वात्रिंशाक्षरमुत्तमम् ॥२२१॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये
शिखास्वच्छन्दनिर्णयो नाम

द्वादशः पटलः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः पटलः

देव्युवाच

तृप्ताहं देवदेवेश त्वत्प्रसादेन भैरव !
शिखानाथं मया ज्ञातं त्र्यक्षरं भुवनत्रयम् ॥ १ ॥

अघोरं वद मे नाथ द्वात्रिंशाक्षरमुत्तमम् ।
पूर्वमेव त्वयाख्यात[तः] स्वच्छन्दोऽघोररूपधृक् ॥ २ ॥

माहात्म्यं वर्णितं देव नानागुणसुविस्तरम् ।
जपध्यानैकतन्निष्ठा होमसाधनतत्पराः ॥ ३ ॥

न ते सिद्धिमवाप्यन्ते[माप्नुवन्ति] व्रतनिष्ठापरायणाः ।
भ्रामितास्तु त्वया लोके त्रिदशाद्यान्य[द्य]नेकशः ।
कथयस्व प्रसादेन यदहं तव वल्लभा ॥ ४ ॥

भैरव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि[म्य]घोरदेवस्य निर्णयम् ।
कीलितं तु पुरा देवि भयभीतेन मे प्रिये ॥ ५ ॥

दैत्याश्च दानवा उग्रा राक्षसा बलदर्पिताः ।
अघोरस्य प्रसादेन सिद्धास्ते बलदर्पिताः ॥ ६ ॥

निर्जिताश्च सुराः सर्वे ब्रह्माद्याश्च[स्स]पुरन्दराः ।
कम्पिता भयसंत्रस्ता ब्रह्माणं शरणं गताः ॥ ७ ॥

इन्द्रः प्रोवाच देवेशि ब्रह्माणं प्रणिपत्य च ।
केन देवन्निमितेन[निमित्तेन] असुरा बलदर्पिताः ॥ ८ ॥

अजेया दुर्द्धराः सर्वे न मृत्युवशगोचराः ।
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच सुन्दरि ॥ ९ ॥

देवदेवो महादेवो भैरवः परमेश्वरः ।
पञ्चवक्त्रो महादेवः सर्वव्यापि[पी] जगद्गुरुः ॥ १० ॥
न तेन रहितं किञ्चिज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तस्यैव दक्षवक्त्रं हि अघोरं नाम नामतः ॥ ११ ॥
तद्वक्त्रान्निःसृतं मन्त्रं स्वच्छन्दं सर्वसिद्धिदम् ।
मन्त्रराज इति ख्यातं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १२ ॥
तस्याराधनसंयुक्ता दानवाश्च तपोत्कटाः ।
मन्त्रराजेन संसिद्धास्तेन ते बलवत्तराः ॥ १३ ॥
अजेया सर्वदेवेषु कालो मृत्युर्न बाधते ।
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा विस्मितश्च शतक्रतुः ॥ १४ ॥
पर्यालोच्य ततो देवा ब्रह्माद्याः सपुरन्दराः ।
देवाश्च भयमुद्विग्ना आगता शरणं मम ॥ १५ ॥
स्तुतोऽहं विविधैस्तोत्रैर्ब्रह्माद्यैश्च दिवौकसैः ।
तुष्टोऽहं देवदेवेशि स्तोत्रानन्देन निर्भरम् ॥ १६ ॥
साधु साधु महाभागा ब्रह्माद्याश्च[स्स]पुरन्दराः ।
वरं ब्रूहि[त] महासत्त्वास्तुष्टोऽहं परमार्थतः ॥ १७ ॥
देवस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ।
त्राहि देव सुरेशान दानवैर्भयपीडिताः ॥ १८ ॥
त्वामेव शरणं प्राप्ता रक्षास्मांस्त्रिपुरान्तक ।
वरमेतन्महादेव रक्षास्मान् दानवाद्भयात् ॥ १९ ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा [स] महाभैरवोऽब्रवीत् ।
गच्छ ब्रह्मन् महाभाग सह देवपुरन्दरैः ॥ २० ॥
भयस्थानं न ते चास्ति निर्भयं गच्छ स्वालयम् ।
अद्य प्रभृति त्वं ब्रह्मन् सुखी भव निराकुलः ॥ २१ ॥

देवस्य वचनं श्रुत्वा मुदा युक्ता दिवं गताः ।
तदा प्रभृति देवेशि त्रैलोक्ये गोपितं मया ॥ २२ ॥
कीलितो मन्त्रराजोऽयं पञ्चकीलाश्च दारुणाः ।
मुद्रितश्च प्रयत्नेन दुष्टदैत्यस्य कारणात् ॥ २३ ॥
तेन ते सिद्धिनिर्मुक्ता जह्या कोटिशतैरपि ।
न ते सिद्धिमाप्नुवन्ति अदृष्टगुणवर्जिताः ॥ २४ ॥

श्रीदेव्युवाच

कास्ताः कीला महादेव मन्त्रराजस्य मुद्रकाः ।
उत्कीलनं च तेषां वै यथा भवति तद्वद ।
निःसंदिग्धं भवत्येवं वद मे शूलपाणिनः ॥ २५ ॥

भैरव उवाच

साधु देवि वदिष्यामि मन्त्रराजस्य कीलनम् ।
त्रपातं च त्रपातं च (?) सप्तमं चाष्टमातिकम् ॥ २६ ॥
आज्ञा मम वरारोहे मन्त्रराजं च हृद्गतम् ।
एभिः स्थानैर्वरारोहे मन्त्रराजश्च मुद्रितः ॥ २७ ॥
दुष्टानां वञ्चनार्थाय पापकर्मरतात्मनाम् ।
नार्णेन कीलका दत्ता तेनासौ नैव सिद्ध्यति ॥ २८ ॥
सकीलं जपते यस्तु तस्य दोषं वदाम्यहम् ।
कलहोद्वेगर्ध्वस[सा]श्च स्थानभ्रंशो विडम्बना ॥ २९ ॥
ज्वरः शूलं तथा दाहो विद्वेषं मरणान्तिकम् ।
व्रतभ्रंशो भवेद्देवि सिद्धिहानिर्न संशयः ॥ ३० ॥
मलवृद्धिर्भवेत्तस्य तत्त्वशुद्धिर्न जायते ।
न मुक्तिर्विद्यते तस्य जप्त्वा कोटिशतैरपि ॥ ३१ ॥
प्राङ्मुखं मन्त्रराजानं सिद्धिर्मुक्तिः कथं भवेत् ।
संसारपञ्जरे बद्धा[ः] न मुक्ति विद्यते क्वचित् ॥ ३२ ॥

पापिष्ठानां नराणां च ये प्रबुद्धाश्च देशिकाः ।
तेन ते सिद्धिभ्रष्टास्तु मन्त्रराजमजानता ॥ ३३ ॥

म[मृ]तकस्योपचारेण कुर्वन्ते मन्दबुद्धयः ।
मलमायाप्रलुब्धास्ते विहङ्गाः पञ्जरैरिव ॥ ३४ ॥

भ्रमन्ति भवचक्रे तु अज्ञानपटलावृताः ।
गुरुहीना न सिद्ध्यन्ति शास्त्रकोटिशतैरपि ॥ ३५ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुं शरणमाश्रयेत् ।
तस्याराधनं कर्तव्यं येन सिद्धिं लभेद्ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

अर्थैः प्राणैस्तथोपायैः वाङ्मनःकर्मभिस्तथा ।
दिवाप्रेषणतन्निष्ठा रात्रौ ज्ञानपरायणाः ॥ ३७ ॥

नित्यं भक्तिरता ये च शान्ताः दान्ता क्षमापराः ।
तावदाराधयेद्देवि प्रसन्नो यावदसौ गुरुः ॥ ३८ ॥

प्रसन्नो हि वदेन्मन्त्रं स्वच्छन्दं घोररूपिणम् ।
तस्मात्संजायते सिद्धिर्मनसा यत्समीहितम् ॥ ३९ ॥

अणिमादिगुणैर्युक्तो नाना सिद्धेस्तु भाजनः ।
उत्कीलनं च कुरुते गुरुवक्त्रोपदेशतः ॥ ४० ॥

त्रिविधोत्कीलनं तस्य स्वच्छन्दस्य वरानने ।
पञ्चधा भेदनं तस्य प्रसादेन वरानने ॥ ४१ ॥

द्वितीयं च चतुर्थं हि षष्ठं सप्तमं[च] सुन्दरि ।
दशमं पञ्चमे योज्य द्वादशं पुरतःस्थितम् ॥ ४२ ॥

नादबिन्दुकलाक्रान्ताश्चत्वारो वरवर्णिनि ।
प्रथमोत्कीलनं तस्य घोरदेवस्य शूलिनि[नः] ॥ ४३ ॥

द्वितीयं शृणु कल्याणि येन सिद्धिमवाप्स्यसे ।
प्रसादे भेदयित्वा तु पञ्चधा वीरनायिके ॥ ४४ ॥

अधः कीटासनं तस्य द्वितीये च चतुर्थके ।
षष्ठसप्तमके देवि दशमेन विभूषयेत् ॥ ४५ ॥

षष्ठं च तदधो योज्य विसर्गे[र्गं] पुरतः स्थितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्ताश्चत्वारो वीरवन्दिते ॥ ४६ ॥

द्वितीयोत्कीलनं तस्य तृतीयं शृणु सुन्दरि ।
पूर्वं च कथितं तुभ्यं प्रणवं कौलिकं प्रिये ॥ ४७ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च ।
पञ्चधा प्रणवो देवि स्वच्छन्दस्य च जीवितम् ॥ ४८ ॥

जीवो भूत्वा च देवस्य सर्वसिद्धिफलप्रदः ।
तृतीयोत्कीलनं देवि चतुर्थं महदद्भुतम् ॥ ४९ ॥

भेदयित्वा परं ब्रह्म हकारं नाम नामतः ।
अष्टधा भेदनं तस्य कपालाष्टैर्निगद्यते ॥ ५० ॥

प्रसादं द्वादशोत्तीर्य्यं पीठद्वादशभेदितम् ।
तन्मध्ये वर्जयेद्देवि चत्वारो वरवर्णिनि ॥ ५१ ॥

अष्टानां भेदनं कृत्वा नादबिन्दुकलान्वितम् ।
तृतीयं पञ्चमं देवि सप्तमं नवमं प्रिये ॥ ५२ ॥

वर्जयित्वा प्रयत्नेन वर्णाश्चत्वारो मानिनि ।
अष्टौ कपाला विख्याता स्वच्छन्दस्यापि तत्पुनः ॥ ५३ ।

गोपितव्यं प्रयत्नेन भक्तिहीने च नास्तिके ।
न धूर्तेषु न मूर्खेषु नाख्येयं क्रूरकर्मिणे ॥ ५४ ॥

अपरीक्षिते न देयं स्याद् ममाज्ञा हे महेश्वरि ।
कुप्यंति[न्ती] योगिनी तस्य कुलशापं ददाति च ॥ ५५ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सुपरीक्ष्य प्रदापयेत् ।
तस्य ज्ञानं च मोक्षं च नानाकर्मप्रसिद्धिदम् ॥ ५६ ॥

भुक्तिदं मुक्तिदं देवि इमं नित्यं प्रगोपयेत् ।
सन्निधाना भवत्येव पच[पञ्ज]रस्था श्र[च]योगिनी ॥ ५७ ॥
ददाति मलकं दिव्यं यस्तु नित्यं प्रगोपयेत् ।
भाषामुद्राश्चतुष्षष्टिविज्ञानानि अनेकधा ॥ ५८ ॥
ददाति योगिनी तस्य यस्तु नित्यं प्रगोपयेत् ।

श्रीदेव्युवाच

स्वच्छन्दं वद मे नाथ येन भक्तया वदाम्यहम् ॥ ५९ ॥
द्वात्रिंशदक्षरं दिव्यं सर्वपापप्रमोचनम् ।
चक्रं ध्यानं तथा दूतीं वद मे कुलनायक ॥ ६० ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु देवि वदिष्यामि स्वच्छन्दं परमाद्भुतम् ।
प्रस्तारादिप्रभेदेन महापीठस्य मध्यतः ॥ ६१ ॥
एकान्ते विजने गत्वा पशुदृष्टिविवर्जिते ।
भूप्रदेशे समे शुद्धे गोमयोदकलेपिते ॥ ६२ ॥
पुष्पप्रकरसंकीर्णे सुधूपामोदवासिते ।
चूतपल्लवसंयुक्ते सितवस्त्रावगुण्ठिते ॥ ६३ ॥
पुष्पमालासुशोभाढ्ये शुभ्रचन्दनचर्चिते ।
स्वस्तिकोपरि संस्थाप्य शिवकुम्भवरं प्रिये ॥ ६४ ॥
तत्रस्थं पूजयेद्देवं स्वच्छन्दं परमेश्वरम् ।
पिशितासवसंयुक्तं बटुकस्य बलिं ददेत् ॥ ६५ ॥
योगिनी क्षेत्रपालस्य[लेभ्यो] बलित्रितयं दापयेत् ।
विघ्ननिर्णाशनार्थाय बलिकर्म यथोदितम् ॥ ६६ ॥
प्रसन्नवदनो भूत्वा कोपलोभविवर्जितः ।
मायादम्भविनिर्मुक्तः सत्त्वावस्थो जितेन्द्रियः ॥ ६७ ॥

भैरवीमूर्त्तिमास्थाय अलिना पूरितं मुखम् ।
सानन्देनैव मनसा गुरुः शिष्यः प्रसन्नधीः ॥ ६८ ॥

ततः संलिख्य प्रस्तारं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
महापीठं सुरेशानि यदुक्तं पूर्ववन्मया ॥ ६९ ॥

ई शादौ वर्णमादाय ई तन्मध्यगतं प्रिये ।
ल ह मध्येन संभिन्नं व म मध्यं तृतीयकम् ॥ ७० ॥

टकाराद्येन संभिन्नं ष स मध्यं चतुर्थकम् ।
व म मध्यासनारूढं स्वकारान्तेन भेदितम् ॥ ७१ ॥

ये[ए]ह मध्येन संयुक्तं चतुर्थं बीजमुत्तमम् ।
व र मध्यगतं गृह्य त ई मध्यं ततः पुनः ॥ ७२ ॥

षकारादौ समायुक्तं फ ऋ मध्यं वरानने ।
छकारोर्द्धे[र्ध्वे] न संभिन्नं ओ अं मध्यगतं प्रिये ॥ ७३ ॥

गकारादौ समाक्रान्तं वकारोर्द्धे[र्ध्वे]न भूषितम् ।
न म मध्यं मनोः शीले अनुमं बीजमुत्तमम् ॥ ७४ ॥

ई त मध्यन्तु देवेशि षकाराद्येन भूषयेत् ।
द ध रन्ध्रगतं गृह्य केवलं वीरनायिके ॥ ७५ ॥

मन्त्रस्य परमं चैव दशमं तत्र योजयेत् ।
घ भ मध्यं ततो वर्णं कवचं च समुद्धरेत् ॥ ७६ ॥

द थ रन्ध्रं समुद्धृत्य अक्र[ज्ञ]मध्येन भेदयेत् ।
अं रन्ध्रगतं देवि व म मध्यकृतासनम् ॥ ७७ ॥

चकारान्तासनं तस्य सकारादौ विभूषयेत् ।
टं ट मध्यं समुद्धृत्य म ख मध्यकृतासनम् ॥ ७८ ॥

---

१. अं—ख ।

ह स मध्यं समुद्धृत्य केवलं वीरवन्दिते ।
य ण मध्यगतं वर्णं द्विधाभूतासनस्थितम् ॥ ७९ ॥

रेफोर्ध्वं दीपितं देवि घ भ मध्यं विसर्गजम् ।
अं अः मध्यगतं गृह्य र स मध्यं द्विधा स्थितम् ॥ ८० ॥

रेफदीप्तं प्रकर्तव्यं ह स मध्यगतं पुनः ।
ण य मध्ये द्विधा भिन्नं रेफोर्ध्वे दीपितं प्रिये ॥ ८१ ॥

टकाराद्येन संभिन्नं ष स मध्यगतं तथा ।
म व मध्यासनारूढं ढकारोर्धे[र्ध्वे]न भेदितम् ॥ ८२ ॥

टकारोर्द्धे[र्ध्वे]न संभिन्नं कपालाष्टौ ततो ददेत् ।
ट ट युक्ता वरारोहे स्वच्छन्दं परमाद्भुतम् ॥ ८३ ॥

द्वात्रिंशदक्षरं देवि न म रुद्रविवर्जितम् ।
प्रकटीकृतं सुगोप्येदं चतुर्भेदेन सुन्दरि ॥ ८४ ॥

तस्मात्संजायते सृष्टिः सा च सृष्टिर्हृदि स्थिता ।
अस्य दूतीः प्रवक्ष्यामि चक्रारूढा विचिन्तयेत् ॥ ८५ ॥

द्वात्रिंशन्मातरो देवि शक्तिरूपा व्यवस्थिताः ।
द्वात्रिंशत्कर्णिकोपेताः शृङ्गाटाकृतिमध्यतः ॥ ८६ ॥

दलमध्यगता देव्यो द्वात्रिंशच्च महाबलाः ।
चतुर्भुजैकवदना जटाजूटेन्दुभूषिताः ॥ ८७ ॥

पाशाङ्कुशधराः सर्वा वरदा कम्बुपाणयः ।
हारकुण्डलसंयुक्ता रत्नमालाविभूषिताः ॥ ८८ ॥

पद्मासनस्थिताः सर्वा दीप्यमानाः सुतेजसा ।
सर्वा यौवनसंपूर्णा द्विरष्ट[द्व्यष्ट]वर्षोपमाः प्रिये ॥ ८९ ॥

त्रिवलीतरङ्गशोभाढ्या मदिरानन्दनन्दिताः ।
तप्तचामीकरप्रख्या उदयादित्यसन्निभाः ॥ ९० ॥

एवं संचिन्तयेत्सर्वांश्चक्रमध्यगताः प्रिये ।
स्वच्छन्दं मध्यतो देवि शृङ्गाटपुरसंस्थितम् ॥ ९१ ॥

पञ्चवक्त्रं महातेजः त्रिपञ्चनयनोज्ज्वलम् ।
दशबाहुं महाभीमं नानास्रग्दाममण्डितम् ॥ ९२ ॥

नानाभरणसंयुक्तं हारनूपुरमण्डितम् ।
जटाजूटधरं दिव्यं चन्द्रार्धकृतशेखरम् ॥ ९३ ॥

गोक्षीरधवलं दिव्यं फेनाभं शुक्लवर्चसम् ।
पूर्ववक्त्रदृशं ध्यायेद् महादीप्तिकरं प्रिये ॥ ९४ ॥

दाडिमीकुसुमाकारं वन्धूकपुष्पसन्निभम् ।
तरुणादित्यसंकाशं वामवक्त्रं विचिन्तयेत् ॥ ९५ ॥

पीताभं पीतसंकाशं कुङ्कुमाभं सरोचनम् ।
महादीप्तिकरं दिव्यं पश्चिमेदं तु सुन्दरि ॥ ९६ ॥

दंष्ट्राकरालं रौद्रं च किञ्चिद्रक्तायतेक्षणम् ।
नीलोत्पलदलश्यामं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥ ९७ ॥

मणिसर्पकृताटोपं पिङ्गकेशं सुभीषणम् ।
अघोरमिति विख्यातं ध्यानं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ९८ ॥

ईशानं पूर्ववक्त्रं तु सृष्टिरूपं परापरम् ।
हिमकुन्देन्दुसंकाशं शुद्धस्फटिकनिर्म्मलम् ॥ ९९ ॥

आप्यायन्तं जगत्सर्वं चन्द्रांशुनिकरेण तु ।
वर्षन्तं सुमहौघेन पीयूषद्रवसन्निभम् ॥१००॥

ईशानं ध्यायमानं तु[नस्तु] अणिमादिगुणांल्लभेत् ।
त्रिशूलं कर्तरी खड्गं नागराजाक्षसूत्रकम् ॥१०१॥

दक्षिणेन वरारोहे विराजन्त्यायुधानि मे ।
कपालं डमरुं शक्तिं पाशाङ्कुशधरं प्रिये ॥१०२॥

वामे ते आयुधा दिव्या दीप्यमाना सुशोभने ।
सर्पराजकृतस्कन्धे वर्णमालेव सुन्दरि ॥१०३॥

कण्ठे वृश्चिकहारं वै कर्णौ गोनासमण्डितौ ।
महापद्मासनासीनं कटिमेखलमण्डितम् ॥१०४॥

क्षुद्रघण्टिकशोभाढ्यं रत्नमालाविभूषितम् ।
पादौ नूपुरसंयुक्तौ मुक्तामालास्वलङ्कृतौ ॥१०५॥

अनन्तासनमासीनं तप्तहाटकसन्निभम् ।
सप्तकोटिस्तु मन्त्राणामनन्तासनसंस्थितः ॥१०६॥

ताराहिमनिभं दिव्यं शशाङ्कमिव शोभते ।
एवं ध्यात्वा महादेवि स्वच्छन्दं चक्रमध्यतः ॥१०७॥

दूतीनां च वरारोहे नाम वक्ष्यामि तेऽधुना ।
चण्डघण्टा महानासा सुमुखी दुर्मुखी बला ॥१०८॥

रेवती प्रथमा घोरा सौम्या भीमा महाबला ।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥१०९॥

महोत्कटा विरूपाक्षी शुष्का चाकाशमातरः ।
संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती ॥११०॥

पिपीलिका पुष्पहारा असनीरास्यहारिका ।
भद्रकाली सुभद्रा च भद्रभीमा सुभद्रिका ॥१११॥

मनसा पूजयेत्तत्स्थां भक्ष्यभोज्यादिभिः क्रमात् ।
पुष्पैर्नानाविधैर्देवि नानालङ्कारकादिभिः ॥११२॥

स्रवन्तीं चिन्तयेन्मध्ये अमृतं सर्वतोमुखम् ।
तेनाप्यायितदेहस्तु भक्षणाद्विरजो भवेत् ॥११३॥

योगं तु मानसं कृत्वा कस्य सिद्धिर्न जायते ।
संपूर्णमण्डलं ध्यात्वा अघोरं नाम नामतः ॥११४॥

सोऽष्टाकपालप्रवरं तत्त्वञ्चापि निरन्तरम् ।
स एव चन्द्ररूपी स्यात् कर्णिकायां विचिन्तयेत् ॥११५॥

तद्वक्त्रं तु महानादं हकारं नाम नामतः ।
षट्पदार्थयुता देवि नवकेन प्रसिद्ध्यति ॥११६॥

स एव लीयते विष्णोर्विष्णू रुद्रं समाश्रितः ।
स एव कालो विज्ञेयः सर्वभक्षो हुताशनः ॥११७॥

स एव लीयते माया सा च विष्णुः प्रकीर्तितः ।
सा शक्तिर्निर्मला गौरी कालो वै येन भक्षितः ॥११८॥

सा विष्णुः शिवमायाति सेतुं भित्त्वा महेश्वरि ।
स च तुर्यपदं प्राप्य उन्मनस्त्वं हि जायते ॥११९॥

आश्रयं देवदेवस्य अघोरस्य महातपे ।
निर्वाणं तु पदं दिव्यं सशिवं परिकीर्त्तितम् ॥१२०॥

स ध्रुवो वासुदेवश्च अजातः परिकीर्त्तितः ।
तत्र शक्तिं सदा कुर्यात्तत्त्वासक्तो यदा भवेत् ॥१२१॥

न पापैर्लिप्यते देवि महापापैः सुदारुणैः ।
न कालस्य वशं गच्छेन्न जरा न च दुःखितः ॥१२२॥

सर्वतीर्थफलं चैव सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
इ[ह]न्नादं मनसा प्राप्य व्रजेन्निर्वाणदं पदम् ॥१२३॥

चेतसा त्वमृतं गृह्य आगच्छेद् घण्टिकाश्रयम् ।
तदूर्द्धं[र्ध्वे] भारतीमूले कृत्वासौ [अ] मृतमश्नुते ॥१२४॥

आपूर्य वदनं तेन स्वच्छन्देन कुलेश्वरि ।
अनङ्गनादबिन्दुः स्यात् तत्त्वस्यापीश्वरेण तु ॥१२५॥

अघोरं पञ्चमं मध्ये आत्मतत्त्वं विचिन्तयेत् ।
अग्निर्ज्वलतिरापेत(?) एकस्तिष्ठति पञ्चधा ॥१२६॥

त्रैलोक्यं व्यापितं तेन यजन्ते ब्रह्मवादिनः।
तस्यै वयः शिखीवन्ति आहिताग्निः स उच्यते ॥१२७॥

योऽग्निर्देवमुखं विद्यादघोरं सर्वतोमुखम्।
मुखेषु च मुखे देवि त्रैलोक्ये यस्य गीयते ॥१२८॥

विना तेन वरारोहे न होमं नैव पूजनम्।
शुचिरग्निर्भवेद्देवो बहुरूपो महेश्वरि ॥१२९॥

तदन्ते तु जपः[प] कुर्यात् कृत्वा हृत्स्थं तु केवलम्।
अधस्तात् स तु मार्गस्य तिष्ठते परमेश्वरम् ॥१३०॥

स चासनवरस्तस्य सेव्यते किं न मन्त्रराट्।
विद्याराजेति विख्यातो मन्त्रराजेति कथ्यते ॥१३१॥

मुद्राराजेति महता मण्डलाधिपतिः स्मृतः।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु यदि देवि प्रचक्षते ॥१३२॥

नानेन सदृशो देवि मन्त्रः कोटिशतैरपि।
हृदयं सर्वमन्त्राणां परमं परिकीर्तितम् ॥१३३॥

अनेन हीना महता न सिद्ध्यन्ति हि पार्वति।
ग्रहयन्त्रेषु सर्वेषु व्याधितेषु महेश्वरि ॥१३४॥

रिपुनाशे च बलवान् दारिद्र्यभयनाशनः।
तमाराधय यत्नेन दुःखसंघः प्रकीर्तितः ॥१३५॥

नानेन सदृशः कश्चिदन्योऽस्ति सचराचरे।
देवासुरमनुष्याणां तत्त्वरूपो महेश्वरि ॥१३६॥

मूर्द्धनि पादतलं यावत्तत्वं चरति देहिनाम्।
निष्कलात् सकलं याति सकलान्निष्कलं पदम् ॥१३७॥

एकेनानेन देवेशि सर्वथा किमतः परम्।
स भैरवः शिवश्चैव सर्वज्ञः सर्वजन्तुषु ॥१३८॥

यावत्तिष्ठत्यसौ गात्रे तावज्जीवन्ति जन्तवः ।
विना तेन वरारोहे नास्ति नास्तीति कथ्यते ॥१३९॥

तस्य देवाधिदेवस्य सर्वव्यापिमयस्य च ।
सर्वदेवमयी देवि कथं भक्त्या न सिद्ध्यति ॥१४०॥

येन विज्ञान[त]मात्रेण स्मृतिं स च महेश्वरि ।
अक्षयां लभते लोकान्मुक्तिस्थानं गमिष्यति ॥१४१॥

सर्वलक्षणहीनोऽपि स्मरणात् कल्मषापहः ।
अहो मन्त्रस्य माहात्म्यं जप्यमानस्य नित्यशः ॥१४२॥

विनापि लययोगेन योगिनीसमतां व्रजेत् ।
साधकाय प्रयच्छन्ति त्रैलोक्यज्ञानमुत्तमम् ॥१४३॥
आकाशादि प्रयच्छन्ति दिव्यं दृष्टिश्रुतागमम् ।
सर्वे भूताः वशं यान्ति ग्रहाश्चैव विशेषतः ॥१४४॥

विषं च निर्विषं कुर्याद्दर्शनादेव सर्वतः ।
न तस्य तिष्ठते गात्रे विषं स्थावरजङ्गमम् ॥१४५॥
कृत्वा[त्या]लूताश्चापमृत्युर्नैव तिष्ठन्ति निश्चितम् ।
गरजः कृत्रिमो दोषो प्रलयं याति दूरतः ॥१४६॥
चूर्णलेपाञ्जनादीनि कुहुकानि तु यानि वै ।
ये करिष्यन्ति रिपवः स्त्रियो वा पुरुषोपिवा[षास्तथा] ॥१४७॥
भक्षणात् प्रलयं यान्ति तेषां प्रत्यङ्गिरा भवेत् ।
स्मरणादेव देवस्य इन्द्रं यान्ति नरोत्तमम् ॥१४८॥
ज्वलन्तो[लंश्च] दृश्यते भूतैर्द्दिश्चक्रविधिसंस्थितम्(?) ।
दुष्टाश्च प्रलयं यान्ति सिंहस्यैव यथा मृगाः ॥१४९॥
एको दोषो हि मन्त्रस्य जप्यमानस्य जायते ।
जरा मृत्युश्च दारिद्र्यं व्याधयो विविधाः प्रिये ॥१५०॥

स्मरणात् प्रलयं यान्ति तुहिनं तु रवेरिव ।
जप्यते येषु राष्ट्रेषु देशे वा सुरसुन्दरि ॥१५१॥

न भयं जायते तत्र स्वामी चैव विवर्धते ।
एकेनापि सुपुत्रेण वीरदेवस्य पूजनात् ॥१५२॥

घोरीशं तु यदा ज्ञानं सकुलं स्म[ता]रयिष्यति ।
पशवश्च न नश्यन्ति सदा वर्द्धति[ते] गोकुलम् ॥१५३॥

बन्ध्या न जायते नारी न म्रियन्ते च बालकाः ।
ज्वररोगादिभिस्तस्य कुटुम्बं नैव सीदते[ति] ।
सर्वलोकस्य पूज्योऽसौ जायते राजवल्लभः ॥१५४॥

श्रीदेव्युवाच

त्वया पूर्वं ममाख्यातं यन्त्रराजमनुत्तमम् ।
संस्फुटं च न मे ज्ञातं भ्रान्तिरद्यापि मे प्रभो ॥१५५॥

धारणीयं यथा गात्रे धारिते तत्फलं वद ।
मुहूर्तं द्रव्यमाख्याहि येन तत्फलदं भवेत् ॥१५६॥

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महादेवि कथयामि सुनिश्चितम् ।
धारणीयं यथा गात्रे स्वच्छन्दं परमेश्वरम् ॥१५७॥

पुष्यार्के तु करार्के वा मूलार्के तु मृगेऽपि वा ।
सिद्धियोगा इमे ख्याताः सर्वसिद्धिफलप्रदाः ॥१५८॥

एकस्मिन् वासरे देवि गुटिकां कारयेत्प्रिये ।
एकान्ते विजने गत्वा गोमयोदकलेपिते ॥१५९॥

पुष्पप्रकरसंकीर्णे सुधूपामोदवासिते ।
शिवकुम्भं तु संस्थाप्य पूर्ववद् विधिना प्रिये ॥१६०॥

कुमारीं पूजयेत्तत्र कुमारा-[रान्] योगिनीगणः[णम्] ।
अनेन विधिना देवि यन्त्रराजं लिखेत्ततः ॥१६१॥

आहरेन्निर्व्रणं भूर्जं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
कुङ्कुमं रोचनायुक्तं मृगनाभि सचन्दनम् ॥१६२॥

कुण्डगोलकसंयुक्तमृशग्तम[भृशं नाग] मदान्वितम् ।
द्रव्येणानेन संलिख्य भूर्ज्जे चक्रं वरानने ॥१६३॥

चतुरस्रपुरं कृत्वा सुसमं शोभनं प्रिये ।
प्राकार[रान्] चतुरो दद्यात् पूर्वदक्षिणपश्चिमे ॥१६४॥

उत्तरे च तथा देवि अनेन क्रमयोगतः ।
पुरमध्ये लिखेन्नाम आत्मनस्तु परस्य वा ॥१६५॥

जीवमध्यगतं नाम दशैकादशसंयुतम् ।
मन्त्रेण वेष्टयेन्नाम अघोरेण द्विषोडशैः ॥१६६॥

विदिक्षु चाङ्कुशं दद्यात् आँ क्रौं ह्रीं च समालिखेत् ।
मेखलां च ततो दद्यात्तद्बाह्ये मातृकां लिखेत् ॥१६७॥

नादबिन्दुकलाक्रान्तं वेष्टयेद्यावत्पूर्यते ।
यकारस्याष्टमं गृह्य षष्ठारूढं सबिन्दुकम् ॥१६८॥

तच्छिवं तु वरारोहे चतुराश्रमपूजितम् ।
सर्वक्षस्थ(?) परं मन्त्रं सर्वरक्षाकरं परम् ॥१६९॥

अष्टधा दापयेद्देवि अष्टपत्रेषु योजयेत् ।
सान्तं नाम तु कर्तव्यं तस्यान्तं तस्य चासनम् ॥१७०॥

विसर्गान्तं ततो योज्यं रेफान्तं तस्य चासनम् ।
डो[ओ]कारस्वरसंयुक्तं षष्ठारूढं ससृष्टिगम् ॥१७१॥

चक्रस्योपरि दातव्यं त्रिधा लाञ्छनलाञ्छितम् ।
पूजयेद्गन्धधूपेन रक्तपुष्पैस्तु सुन्दरि ॥१७२॥

संवृत्य यन्त्रं भूर्जस्थं रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ।
मदनस्य मध्ये निक्षिप्य गुटिकां कारयेत् प्रिये ॥१७३॥

त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा ताम्रे तारे सुवर्णके ।
नाम्ना तु गुटिका ह्येषा सर्वत्रासविमर्दिनी ॥१७४॥

यस्तु धारयते देवि गुटिकां शिवपूजिताम् ।
तस्य वक्ष्यामि सुश्रोणि गुणान्नानाविधान् प्रिये ॥१७५॥

सर्वतीर्थेषु स स्नातः सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।
न भयं विद्यते तस्य धारणादजरामरः ॥१७६॥

सर्वव्रतानि चीर्णानि सर्वदेवनमस्कृतः ।
अवनीं विचरेत् सर्वां भैरवस्तु यथा हि सः ॥१७७॥

सर्वतो दर्शनात्तस्य साधकस्य महात्मनः ।
दुष्टाश्च प्रलयं यान्ति व्याधयो विद्रवन्ति च ॥१७८॥

अब्रह्मचारी चारी स्यात् अस्नातो स्नानमाप्नुयात् ।
न भयं विद्यते तस्य संग्रामे तु सदा जयः ॥१७९॥

अभक्षभक्षणं कृत्वा अगम्यागमनं तथा ।
नासौ लिप्यति पापेन पङ्केनाकाशवद्यथा ॥१८०॥

गुटिका तु सदासिद्धा महाभैरवधारिता ।
योगेश्वरीभिर्मुनिभिः सर्वदेवैर्नमस्कृता ॥१८१॥

बहुनापि किमुक्तेन सत्यं सत्यं यशस्विनि ।
ज्वलंतो[श्च] दृश्यते भूतैः यथा रुद्रो मखान्तकृत् ॥१८२॥

सुप्तो भुक्तः प्रबुद्धश्च अथ मैथुनमागते ।
महाहवे महादेवि दुष्टसिंहगजेषु च ॥१८३॥

विद्युद्वज्राशनेश्चैव उत्पाते व्यसनेषु च ।
शत्रुनाशे च गोनाशे विषशङ्कागतेषु च ॥१८४॥

आर्णवेषु च दिग्दाहे नराणां न भयं भवेत् ।
शाकिन्यो वशमायान्ति दुष्टवेतालराक्षसाः ॥१८५॥

शुचिर्वा[चौ वा]प्यशुचिवा[चौ वा]पि विद्रवन्ति दिशो दश ।
गुटिका सा समाख्याता त्रिलोहपरिवेष्टिता ॥१८६॥

धारणीया प्रयत्नेन शिवलोकमवाप्नुयात् ।
सर्वावस्थागतो वापि मुक्तिं याति सुराधिपे ॥१८७॥

मत्समो धारणाद्देवि सत्यं सत्यं सुराधिपे ।
मयापि धारिता ह्येषा ब्रह्मणा च विशेषतः ॥१८८॥

विष्णुना देवराजेन युद्धे दैत्यास्तु निर्जिताः ।
अग्निवायुकुबेरेण[रैश्च] यमेन वरुणेन च ॥१८९॥

मातृभिश्च शुकैश्चैव वरुणेन च श्रीमता ।
दधीचिना च शुक्रेण दुर्वाससा च धीमता ॥१९०॥

ऋषिभिश्च तथा सर्वैर्देवतैश्च महेश्वरि ।
ततश्च राजभिश्चैव बलिना नहुषादिभिः ॥१९१॥

युद्धे जयार्थिभिर्देवि उग्रव्याधिजयार्थिभिः ।
प्रजावश्यार्थिभिश्चैव धारिता गुटिका प्रिये ॥१९२॥

अनया सदृशी देवि गुटिकान्या न विद्यते ।
पिण्डं प्रथममामन्त्र्य अघोरेण सुमन्त्रितम् ॥१९३॥

भुञ्जीयाद्देवि निःशङ्कं ततस्तेनामृतायते ।
दिशा चन्द्रपुरे गच्छेद्वामं चाग्रे पदं न्यसेत् ॥१९४॥

उभयोश्चन्द्रमध्ये तु पर्यटेत्तु यथासुखम् ।
भुञ्जानः शयने चैव वनमध्ये सदा स्थितः ॥१९५॥

चन्द्रारूढेन स्थातव्यं सततं वरवर्णिनि ।
नाघोरसदृशो मन्त्रो यस्मान्मन्त्रा विनिर्गताः ॥१९६॥

गुरुवक्त्रात्तु विज्ञेयमघ ऐकारमध्यगम् ।
स एव तादृशं लीनो यावद्ब्रह्मबिलं गतः ॥१९७॥
धारणाद्धारितं कृत्वा त्रिभिः प्राणैरलङ्कृतम् ।
स्वच्छन्दसहितं देवं वर्णान्तपरिवेष्टितम् ॥१९८॥
मुखेन गां ततो दुग्ध्वा धेनवीं चापरां प्रिये ।
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं त्रिशूलं वडवामुखम् ॥१९९॥
कुश्चिका घण्टिका चैव राजदन्तामृतागमम् ।
ज्ञानमार्गे समुक्तिस्थमघोरस्य वशे स्थिता[तम्] ॥२००॥
नाघोरसदृशो मन्त्रो मन्त्रकोटिशतैरपि ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं पुनः सत्यं पुनः पुनः ॥२०१॥
सर्वज्ञः परमो मन्त्रो मुक्तितो व्याधिनाशनः ।
राजमृत्युहरो देवो विद्याराजेति कीर्त्तितः ॥२०२॥
विपु[भ]वं च सदा तत्र स्वच्छन्दं यत्र संस्थितम् ।
उत्पत्तिस्थितिकर्तारं यत्र सर्वे लयं गताः ॥२०३॥
किन्न सेव्येत देवेशि बहुरूपः कुजेश्वरि ।
देवाधिदेवं परमं यत्तत्कारणमव्ययम् ॥२०४॥
तत्त्वव्यापीति परमं व्योमव्यापीति कथ्यते ।
ब्रह्मविष्णुसुरादीनामुत्पत्तिप्रलयान्तिकम् ॥२०५॥
अघोरो घोररूपेति घोराणां च इति स्मृतः ।

इति श्रीमन्महामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

शिखास्वच्छन्दनिर्णयो नाम

त्रयोदशः पटलः ॥१३॥

चतुर्दशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

तृप्ताहं देवदेवेश शिखानाथं[थः] श्रुतं[तो] मया ।
अद्य मे गहनं नष्टमज्ञानं तिमिराभिधम् ॥ १ ॥

कवचस्य तु या दूती तन्त्रमन्त्रमनुक्रमात् ।
कथयस्व प्रसादेन यथा भवति तद्वद ॥ २ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महाभागे कथयामि तवाधुना ।
वज्रगह्वरसंभूता महाबलपराक्रमा ॥ ३ ॥

कवचस्य तु या दूती सा दूती सर्वकामदा ।
येन[यया] संरक्ष्यते सर्वं क्रुद्धशत्रुं निपातयेत् ॥ ४ ॥

आगतं वञ्चयेत् कालं क्रुद्धकालं निपातयेत् ।
एकान्ते विजने रम्ये गोमयोदकलेपिते ॥ ५ ॥

पुष्पप्रकरशोभाढ्ये अलिनानन्दमोदितः ।
वज्रगौहर[गह्वरं] प्रस्तार्य सुछत्रं च सुशोभनम् ॥ ६ ॥

मात्रिकां विन्यसेत्तत्र यथापूर्वं विधानतः ।
पश्चात् समुद्धरेद्विद्यां कवचाख्यां महाबलाम् ॥ ७ ॥

घादिवर्णं समादाय केवलं वरवर्णिनि ।
र द मध्यगतोद्धृत्य सकारान्तेन भूषयेत् ॥ ८ ॥

छ ज मध्यगतं वर्णं विसर्गादि अलंकृतम् ।
वारुणस्थं ततो गृह्य डो[ओ]ष मध्यं वरानने ॥ ९ ॥

विसर्गाद्येन संयुक्तं पञ्चमं वर्णमुत्तमम् ।
ल प मध्यगतं देवि केवलं वरवर्णिनि ॥ १० ॥

अकारादौ ततो गृह्य विसर्गाद्येन भूषयेत् ।
वारुणस्थं ततोद्धृत्य अष्टमं कौलिनि प्रिये ॥ ११ ॥

ए क मध्यगतं गृह्य केवलं त्रिदशार्चिते ।
ऐ य मध्यं समुद्धृत्य गुरुत्वं कारयेत्प्रिये ॥ १२ ॥

य व मध्यं ततो ग्राह्यं वकाराद्ये तु संस्थितम् ।
उ ट मध्यगतं वर्णं ढ व मध्यगतं पुनः ॥ १३ ॥

ककारोर्द्धे[र्ध्वे]न संभिन्नं ए फ मध्यं ततः पुनः ।
ऋ ऐ मध्येन संभिन्नं प म मध्यं ततः प्रिये ॥ १४ ॥

सा ऋ वर्णं समादाय अ इ रन्ध्रेण भूषितम् ।
वारुणस्थं समादाय न त मध्यगतं प्रिये ॥ १५ ॥

कारयेद्देवदेवेशि विसर्गाद्येन भेदितम् ।
दकारान्तं ततो देवि ककारोर्द्धे[र्ध्वे]न भूषितम् ॥ १६ ॥

वारुणं च पुनस्तत्र ऐ क मध्यं ततः पुनः ।
अ इ रन्ध्रगतं भिन्नं षादिवर्णं तु केवलम् ॥ १७ ॥

छ ज मध्यं समुद्धृत्य एतद्बीजकृतासनम् ।
वकाराद्येन संभिन्नं उ ड मध्यं ततोद्धरेत् ॥ १८ ॥

विसर्गाद्येन संभिन्नं वारुणं च तथैव च ।
उ ष मध्यगतं देवि ल थ मध्ये द्विधा प्रिये ॥ १९ ॥

न त मध्यं ततोद्धृत्य द्य[घ]काराद्येन संस्थितम् ।
लान्तं वर्णं समुद्धृत्य गुरुत्वं कारयेत्प्रिये ॥ २० ॥

फट् चों वर्णं समुद्धृत्य वादिना भूषितं कुरु ।
षाठे तु केवलं वर्णं केवलं वरवर्णिनि ॥ २१ ॥

स ऊर्द्धं[र्ध्वं] वर्णमादाय यकारोर्द्धं[र्ध्वे]न तु भेदितम् ।
वारुणं च वरारोहे द्वाविंशाक्षरमुत्तमम् ॥ २२ ॥

प्रणवाद्यन्तसंयुक्ता कवचस्था महाबला ।
काले च कुलसिद्धोऽसौ तनुत्राणावलम्बकः ॥ २३ ॥

शाकिनीभूतवेतालाः[लान्] साधयेन्नाशयेति च ।
मायारूपधरो मन्त्री महेन्द्रगुणशालिनः ॥ २४ ॥

कुरुते विविधाश्चर्यान् पिच्छकभ्रामणेन तु ।
एतत्कवचमाख्यातमसिद्धं भेदकृद्भवेत् ॥ २५ ॥

मूर्त्तिमस्याः प्रवक्ष्यामि चक्रारूढां विचिन्तयेत् ।
एकवक्त्रां त्रिनेत्रां च ईषद्दंष्ट्राकरालिनीम् ॥ २६ ॥

जटाजूटधरां दिव्यां कर्णौ गोनासकुण्डलौ ।
भुजाष्टकसमोपेता नानाभरणमण्डिता ॥ २७ ॥

त्रिशूलं डमरुं सर्पं शक्तिं च दक्षिणे प्रिये ।
काद्यं खट्वाङ्गं पाशं च कर्तृका वाम आश्रिता ॥ २८ ॥

इन्द्रगोपकवर्णाभा पीनोन्नतपयोधरा ।
त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था नितम्बाढ्या सुशोभना ॥ २९ ॥

नीलवस्त्रावृता देवी किष्किन्धासनसंस्थिता ।
मुण्डमालाधरा दिव्या तर्जयन्ती परा शिवा ॥ ३० ॥

एवं ध्यात्वा महादेवि शृङ्गाटपुरमध्यगा[गाम्] ।
अस्याश्चक्रं वरारोहे निग्रहार्थं समुद्धरेत् ॥ ३१ ॥

पटं प्रेतस्य संगृह्य चिश्वास्थिफललेपितम् ।
काकस्य शोणितं गृह्य विषोन्मत्तरसैः प्रिये ॥ ३२ ॥

कण्टकस्य च लेखिन्या लिखेच्चक्रं वरानने ।
द्वादशारं महाचक्रं वज्रलाञ्छनलाञ्छितम् ॥ ३३ ॥

ककारान्ते[न्तं] तु यद्वर्णं विसर्गेणाग्रभूषितम् ।
अनेनैव तु बीजेन कामनाम विदर्भयेत् ॥ ३४ ॥

प्रचण्डं च महाकालं पिनाकी खड्गमेव च ।
वालीशमासनं तस्य भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम् ॥ ३५ ॥

क्रूरानन्देन संभिन्नं अर्घीशासनसंस्थितम् ।
अनेन कूटराजेन यन्त्रमध्ये विदर्भितम् ॥ ३६ ॥

योनिकुण्डे त्वधः स्थाप्य समिधं होमयेत्प्रिये ।
खदिरस्य च रक्तार्कं होमयित्वापि सप्तकम् ॥ ३७ ॥

पशवो(?) यद्भवेद्देवि गुदे लिङ्गे च भैरवि ।
रुधिरस्य प्रवाहोऽस्य जायते दारुणं प्रिये ॥ ३८ ॥

पूर्वमेव जपेल्लक्षं दशांशेन तु गुग्गुलम् ।
सर्वकर्मकरं देवि यदीच्छेत् साधकः प्रिये ॥ ३९ ॥

श्यामाकं रोचनायुक्तं अनामारक्तसंयुतम् ।
सत्याभिमन्त्रितं कृत्वा कवचदूत्या वरानने ॥ ४० ॥

ललाटे तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।
दुष्टसत्त्वा वशं यान्ति शत्रवो विद्रवन्ति च ॥ ४१ ॥

राजानो राजपुत्राश्च राजपुत्री पुरोहितः ।
सर्वे ते वशमायान्ति किंकरत्वे भवन्ति च ॥ ४२ ॥

श्वेतदूर्वा वचा कुष्टं स्वकीयबीजसंयुतम् ।
कवचेन मन्त्रितं देवि तिलकं वश्यकारकम् ॥ ४३ ॥

मोहयेत् सर्वदुष्टानि पश्यन्नपि न पश्यति ।
भीतां च द्विविधां गृह्य जटां चैव शिखां तथा ॥ ४४ ॥

पुष्येनोद्धृत्य देवेशि स्त्रीजनेन तु पेषयेत् ।
तेनैव तिलकं कृत्वा कवचदूत्याभिमन्त्रितम् ॥ ४५ ॥

न भयं जायते तस्य दुर्गे चौरपथि प्रिये ।
दंष्ट्रिभिर्न भयं तस्य सिंहव्याघ्रगजेष्वपि ॥ ४६ ॥

सर्वे सत्त्वा वशं यान्ति मोहिता नात्र संशयः ।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा पिच्छकं भ्रामयेत् प्रिये ॥ ४७ ॥

भूताश्च प्रलयं यान्ति राक्षसा विद्रवन्ति च ।
नागाश्च भयसंत्रस्ता ग्रहा लूताश्च दारुणाः ॥ ४८ ॥

कुरुते विविधाश्चर्यं ननु[तनु]त्राणप्रसादतः ।
गुरुवक्त्रप्रसादेन उद्धार्या जनमध्यतः ॥ ४९ ॥

वर्म्मदूती समाख्याता, नेत्रं च शृणु साम्प्रतम् ।
नेत्रसिद्धो महायोगी लोकालोकं चराचरम् ॥ ५० ॥

पश्यते विमलं सर्वं शिवाद्यावनिगोचरम् ।
क्रुद्धः संशोषयेत् सर्वं सागरांश्च नदीनदान् ॥ ५१ ॥

आप्यायने परावस्थां पश्च व्याप्तं न गोचरम् ।
निराचारपदस्थोऽसौ तत्त्वस्थो जायते यदि ॥ ५२ ॥

नेत्रदूती परा दिव्या परादृष्टिसमुद्भवा ।
सद्यः सिद्धिकरी देवि सद्यः प्रत्ययकारिका ॥ ५३ ॥

वज्रगह्वरसंभूता तिथिसंख्याक्षरा प्रिये ।
विलोमेनोद्धरेद्देवि गुरुवक्त्रोपदेशतः ॥ ५४ ॥

व ह मध्यगतं वर्णं इ स मध्यं द्वितीयकम् ।
र द मध्यासनारूढं वकाराद्येन भूषितम् ॥ ५५ ॥

ऋ प मध्यं ततोद्धृत्य र ल मध्यगतं पुनः ।
वारुणेन समाक्रान्तं ड फ मध्यं गतं प्रिये ॥ ५६ ॥

इ श मध्यगतं वर्णं ट फ[1] मध्यकृतासनम् ।
वकाराद्येन संभिन्नं[2] उ [3]ऋ मध्यं ततः पुनः ॥ ५७ ॥

वारुणेन समायुक्तं ऋ ष मध्यगतं प्रिये ।
कारयेत पुनर्देवि घकारादौ कृतासनम् ॥ ५८ ॥

र थ मध्यगतं वर्णं ण छ मध्यकृतासनम् ।
वकाराद्येन संयुक्तं ङो[ओ] ष मध्यं ततः पुनः ॥ ५९ ॥

प फ मध्यासनारूढं ढ प रन्ध्रं ततः पुनः ।
ककाराद्येन संयुक्तं वकाराद्यं वरानने ॥ ६० ॥

टकाराद्येन संयुक्तं वर्णं वै द्वादशं प्रिये ।
ष ङो[ओ] मध्यगतं वर्णं प फ मध्यासनस्थितम् ॥ ६१ ॥

र ज मध्यगतं देवि वारुणेन विभेदितम् ।
सकारान्तं समुद्धृत्य रो ऋ मध्येन भूषितम् ॥ ६२ ॥

प्रणवं चादिमं दद्यान्नादविन्दुकलान्वितम् ।
तिथिसंख्याक्षरैः प्रोक्ता नेत्रदूती महाबला ॥ ६३ ॥

लक्षमेकं जपेद्यस्तु किं न सिद्ध्यति भूतले ।
कुरुते विविधाश्चर्यं ध्यानयुक्तो यदा भवेत् ॥ ६४ ॥

श्वेतनीलाञ्जनाभासा महादीप्ता सुतेजसा ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च ईषत्प्रहसिताननना ॥ ६५ ॥

दिव्यकुण्डलशोभाढ्या जटामुकुटमण्डिता ।
चतुर्भुजा महातेजा नानाभरणमण्डिता ॥ ६६ ॥

---

१. ण छ--ख० ।
२. संयुक्तं—ख० ।
३. उ ष—ख० ।

पाशाङ्कुशधरा देवी कम्बुसूत्रधरा प्रिये।
हारनूपुरसंयुक्ता पीनोन्नतपयोधरा ॥ ६७ ॥

त्रिवलीतरङ्गशोभाढ्या रत्नमालाविभूषिता।
पद्मासनगता देवि पद्मपीतोपरिस्थिता ॥ ६८ ॥

श्वेतरूपधरा देवी शृङ्गाटपुरमध्यगा।
विसर्गस्थां परां ध्यात्वा सर्वसिद्धिफलप्रदाम् ॥ ६९ ॥

ध्याता च पूजिता देवी दिव्यज्ञानप्रदायिनी।
कुङ्कुमं रोचनायुक्तं समभागेन पेषयेत् ॥ ७० ॥

नागस्य मदमालोड्य छायाशुष्कां च वर्तिकाम्।
सप्ताभिमन्त्रितां कृत्वा नेत्रदूत्या वरानने ॥ ७१ ॥

तेनैवाञ्जितनेत्रस्तु छिद्रां पश्यति मेदिनीम्।
शत्रवः प्रलयं यान्ति दुष्टाश्च विद्रवन्ति च ॥ ७२ ॥

सर्वे भूता वशं यान्ति द्विपदाश्च चतुष्पदाः।
सर्वे ते किंकरास्तस्य नेत्रदूत्याः प्रभावतः ॥ ७३ ॥

अन्यच्च परमं वक्ष्ये यन्त्रराजोत्तमोत्तमम्।
काश्मीरं रोचनायुक्तं लाक्षारससमन्वितम् ॥ ७४ ॥

पुष्पयोगेन देवेशि लिखेद् भूर्ज्जे सुशोभने।
षोडशारं लिखेच्चक्रं दूर्वादण्डेन चेश्वरि ॥ ७५ ॥

वज्रषट्कगतं मध्ये तन्मध्ये कामनामकम्।
अङ्कुशैर्दी[र्द]भितं नाम नेत्रदूत्या तु वेष्टयेत् ॥ ७६ ॥

आत्मनामसमायुक्तं लिखेदेवं वरानने।
तत्र कोणक्रमेणान्यं नाम तस्य विदर्भयेत् ॥ ७७ ॥

मायाबीजेन देवेशि कोणमध्ये विदर्भितम्।
पत्रमध्यगतं नाम नेत्रदूतीविदर्भितम् ॥ ७८ ॥

प्रणवं मायया युक्तं पूर्वयन्त्रे विदर्भयेत् ।
एकेन[नैव] तु बीजेन आद्यन्तेन विदर्भितम् ॥ ७९ ॥

अस्योपरि वरारोहे मायालाञ्छनलाञ्छितम् ।
अङ्कुशेन निरोधः स्याद् दिशासु विदिशासु च ॥ ८० ॥

अनेन विधिना देवि लिखेत् पूज्य विधानतः ।
सिक्थकेन वरारोहे वेष्टयित्वा प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥

मधुभाण्डे विनिक्षिप्य अङ्कुशेन तु मुद्रितम् ।
पूजयेद् गन्धपुष्पैस्तु तन्मुखे स्थाप्य सुन्दरि ॥ ८२ ॥

अङ्कुशं जपते नित्यं शतमष्टोत्तरं प्रिये ।
रक्तपुष्पेण संपूज्य त्रिसन्ध्यं वीरवन्दिते ॥ ८३ ॥

तस्य वश्यं जगत् सर्वं भाषितेदं सुनिश्चितम् ।
इन्द्राद्या देवताः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८४ ॥

यक्षाश्च राक्षसा रौद्राः पिशाचा डाकिनीगणाः ।
सर्वे ते वशमायान्ति किं पुनर्मर्त्यजातयः ॥ ८५ ॥

पुंस्त्रियो बालवृद्धाश्च सर्वे यान्ति हि वश्यताम् ।
राजराजेश्वरा देवि सर्वे तस्य च किंकराः ॥ ८६ ॥

नेत्रदूत्याः प्रसादेन तन्नास्ति यन्न साधयेत् ।
गुरुवक्त्रोपदेशेन पारम्पर्यक्रमेण तु ॥ ८७ ॥

तिथिसंख्याक्षरा प्रोक्ता कुलभाषा सुरक्षिता ।
अस्योपचारं कर्तव्यं कुमार्यौ द्वे समाहरेत् ॥ ८८ ॥

गन्धं पुष्पं पयःपानं शुचौ स्थानं नयेत्तु ताम् ।
श्वेतवस्त्रपरीधानां देवीं ध्यायेद्यथा पुरा ॥ ८९ ॥

श्मशानाङ्गारजं देवि मर्दयेद्दारिकाननम् ।
शिखिनोच्छिष्टयोगेन शरीरं तस्य लाञ्छितम् ॥ ९० ॥

स्वस्तिकोपरि कुम्भं तु शितवस्त्रावगुण्ठितम् ।
कुर्यात् स्नानन्तु तैलाक्तं भुञ्जानस्तिलपिष्टकान् ॥ ९१ ॥

तृप्तास्ताः संप्रपश्यन्ति दारिकाननमध्यतः ।
भूतभव्यार्थनिर्देशं तत्पश्यति त[न]तोदरे ॥ ९२ ॥

एषा नेत्रगता दूती सद्यः सिद्धिफलप्रदा ।
कालवेलाविनिर्मुक्ता साधिता सर्वकामदा ॥ ९३ ॥

दशांशेन तु होमेन जातिपुष्पैश्च पद्मजैः ।
ततः सिद्धिमवाप्नोति नेत्रदूती प्रसिद्धिदा ॥ ९४ ॥

अस्त्रं प्रचण्डदण्डोग्रं साधितं विधिना यदि ।
हृदादिक्रमशो वृद्धया क्रुद्धः संहरतेऽखिलम् ॥ ९५ ॥

अशुद्धं शोधयेत्सर्वं सकृदुच्चारणाच्च तम् ।
तन्न वस्तुतरं किञ्चिद्यन्न सिद्धयति भूतले ॥ ९६ ॥

अस्य दूती महामाया श्रीमद्गुह्येश्वरी [स्मृता] ।
[से]व कालीति नाम्ना हि सर्वयुद्धविमर्दिनी ॥ ९७ ॥

रक्षिणी कालपाशानां शत्रूणां च निकृन्तनी ।
छेदनी परमंमन्त्रा[परमन्त्राणां] यन्त्रमन्त्रध्रुवादिना ॥९८॥

यस्यैषा तिष्ठते कण्ठे महाकृत्या सुदारुणा ।
तस्य यः कुरुते किञ्चित्तत्तस्यैव पुनर्भवेत् ॥ ९९ ॥

अशुभे वा शुभे वाथ कर्मवृत्तौ नियोजयेत् ।
साधकेन्द्रस्य यत्किञ्चित्तस्य प्रत्यङ्गिरा भवेत् ॥१००॥

महाभये समुत्पन्ने शितगन्धान् वरान्वितः ।
चिन्तयतो निशाभागे शत्रुयुद्धं परस्परम् ॥१०१॥

एवमन्यानि कर्माणि साधयेत् परमेश्वरी ।
दिव्यास्त्रशस्त्रधारेण अमोघोत्कटवर्चसा ॥१०२॥

श्रुतायान्तं[ति] कुलेशानि कालस्य कालरूपिणी ।
अमोघा शक्तिर्वि..याता संवर्ताङ्गसमुद्भवा ॥१०३॥

तामहं कथयिष्यामि प्रस्तारेण यथोद्धृता ।
समसत्यपुरे देवि उद्धरेत् परमेश्वरीम् ॥१०४॥

एकान्ते विजने रम्ये दुष्टसत्त्वविवर्जिते ।
गोमयोदकसंलिप्ते पुष्पप्रकरशोभिते ॥१०५॥

सुगन्धधूपसंयुक्ते अलिपानसुनन्दिते ।
मांसपूर्णमुखो देवीं पुष्पगन्धैः सुचर्चितैः ॥१०६॥

प्रस्तारं प्रस्तरेद्धीमान् सर्वसिद्धिकरप्रदम् ।
समसप्तपुरं दिव्यं समसूत्रं समुद्धरेत् ॥१०७॥

मातृकां विन्यसेत्तत्राकारादि क्षुवनान्तिकाम् ।
तत्रोद्धरेत् परां देवीमस्त्रदूतीं महाबलाम् ॥१०८॥

विलोमेनोद्धरेद्देवि गुरुवक्त्रोपदेशतः ।
डो[ओ]पश्चिमे समादाय बिन्दुनादा[दै]लंकृतम् ॥१०९॥

य श मध्यगतं वर्णं अ इ मध्येन भूषितम् ।
व ह मध्यं समादाय श त मध्यकृतासनम् ॥११०॥

अ इ मध्येन संयुक्तं ह ट मध्यं ततः पुनः ।
अं ऐ मद्धे[ध्ये]न संभिन्नं अः ख मध्ये ततः प्रिये ॥१११॥

अ पश्चिमेन संभिन्नं द ल मध्यं ततोद्धरेत् ।
अ छ मध्यसमारूढं आ इ मध्येन भूषितम् ॥११२॥

अः ख मध्यगतं गृह्य इ उ मध्यकृतासनम् ।
श य मध्यं ततो गृह्य र म मध्यकृतासनम् ॥११३॥

खकारादौ ततो देवि इ ज मध्येन भूषयेत् ।
र ष रन्ध्रगतं देवि अ उ मध्यकृतासनम् ॥११४॥

एष एव[एतदेव] पुनर्देवि अ आ मध्येन भूषितम् ।
व स रन्ध्रगतं देवि त्रिधा चैव समुद्धरेत् ॥११५॥

इ ज मध्ये द्विधारूढं ल व मध्यं तृतीयकम् ।
एतच्चैव समुद्धृत्य इ उ मध्येन भूषितम् ॥११६॥

बिन्दुनादसमायुक्तं व य मध्यं ततोद्धरेत् ।
य द मध्यासनारूढं तकारान्तेन भूषितम् ॥११७॥

नादबिन्दुकलाक्रान्तं ण ह मध्यगतं पुनः ।
इकारोर्द्धे[र्ध्वे]न संभिन्नं त ट रन्ध्रगतं प्रिये ॥११८॥

इकारोर्द्धे[र्ध्वे]न संभिन्नं अः ख मध्ये तु केवलम् ।
न स मध्यं ततो गृह्य अ ट मध्यं कृतासनम् ॥११९॥

ल ट मध्यासनारूढं अ इ मध्येन चाहतम् ।
ध व मध्यगतं वर्णं बिन्दुना मस्तके कृतम् ॥१२०॥

क ष मध्यगतं वर्णं ल स मध्यं तथा पुनः ।
द्विधा चैव तु कर्तव्यं क व[ष] मध्यं ततोद्धरेत् ॥१२१॥

पतितं कारयेद्देवि द ल मध्यं द्विधा स्थितम् ।
अ द मध्येन चाक्रान्तं ल ट मध्योर्द्ध[र्ध्वं] दीपितम् ॥१२२॥

एवं कृत्वा तु देवेशि ष म मध्ये तु केवलम् ।
क ष मध्यं ततो देवि पतितं कारयेत् प्रिये ॥१२३॥

ए व मध्यं ततोद्धृत्य सकारोर्ध्वेन भूषितम् ।
ण थ मध्यगतं वर्णं अकारोर्द्धे[र्ध्वे]न भूषितम् ॥१२४॥

न स मध्यगतं गृह्य ह ड मध्यासनस्थितम् ।
बिन्दुनादकलाक्रान्तं उ ह रन्ध्रगतं प्रिये ॥१२५॥

आपश्चिमसमायुक्तं अः ख मध्यं तु केवलम् ।
ए ल रन्ध्रगतं वर्णं बिन्दुमस्तकभूषितम् ॥१२६॥

घ म मध्यं ततो गृह्य आ इ मध्येन संयुतम् ।
उ ल रन्ध्रगतं वर्णं पिकारोर्द्धे[र्ध्वे]न भूषितम् ॥१२७॥

नकारान्तं समादाय जकारान्तकृतासनम् ।
प दं मध्यं ततो देवि केवलं वरवर्णिनि ॥१२८॥

ट स रन्ध्रगतं गृह्य तकारान्तेन भूषितम् ।
नकाराधः समादाय बिन्दुमस्तकभूषितम् ॥१२९॥

अं व मध्यगतं वर्णमाकारान्तेन भूषयेत् ।
खकारादौ समादाय ओकाराधो[रोर्ध्वे]न भूषितम् ॥१३०॥

र म मध्यं समादाय ओकारान्तेन भूषितम् ।
ख फ मध्यगतं वर्णं य ट मध्यकृतासनम् ॥१३१॥

त ट मध्यं ततोद्धृत्य ल ट मध्योर्ध्वदीपितम् ।
छ ड मध्ये समादाय उ ड मध्यकृतासनम् ॥१३२॥

ए व मध्यं समादाय य ट मध्यं कृतासनम् ।
थ ण मध्यं ततो वर्णं बिन्दुमस्तकभूषितम् ॥१३३॥

ए ल रन्ध्रगतं देवि ट न रन्ध्रकृतासनम् ।
भ य मध्यं समुद्धृत्य बिन्दुना लाञ्छितं प्रिये ॥१३४॥

ए व मध्यं समादाय ल ट मध्यकृतासनम् ।
ट ह मध्यं ततोद्धृत्य क्रूरमस्तकभूषितम् ॥१३५॥

य ध मध्यं समादाय पतितं तत्र कारयेत् ।
श त मध्यं समुद्धृत्य इकाराद्येन संयुतम् ॥१३६॥

ध थ मध्यं समादाय उ ह रन्ध्रकृतासनम् ।
ध न मध्यं वरारोहे केवलं वर्णनायकम् ॥१३७॥

श त मध्यं द्विधा युक्तं त न रन्ध्रोर्ध्वदीपितम् ।
ओकारान्तेन संयुक्तं म ष मध्यं तु केवलम् ॥१३८॥

भ य मध्यं द्विधा कृत्वा सोमेशं पातितं प्रिये।
व य मध्यं समादाय केवलं वीरनायिके ॥१३९॥

क्ष स मध्यं ततोद्धृत्य क्रय उ मध्यं कृतासनम्।
बिन्दुमस्तकसंयुक्तं नकाराधः समुद्धरेत् ॥१४०॥

तकारान्तेन संयुक्तं द ल मध्यं ततः पुनः।
अ छ मध्यासनारूढं आ इ मध्येन भूषितम् ॥१४१॥

ना धो वर्णं समादाय इ ज मध्यं कृतासनम्।
य स मध्यगतं वर्णं र म मध्यं कृतासनम् ॥१४२॥

अः ख मध्यं समुद्धृत्य टकारोर्ध्वे कृतासनम्।
धकारान्तं समुद्धृत्य बिन्दुनादैरलङ्कृतम् ॥१४३॥

वर्णसंख्या वरारोहे षष्टाष्टकसमाधिका।
पाठसिद्धा महाविद्या अनेकाश्चार्थ[श्चर्य]कारिका ॥१४४॥

खादकास्त्रेति विख्यातं सर्वार्थगुणदायकम्।
खादकास्त्रं महातत्त्वं स्वतन्त्रं सिद्धिसागरम् ॥१४५॥

दशकोटिप्रमाणं तु अस्य तन्त्रं वरानने।
तत्र मध्योद्धृतं सारं सपादं लक्षपूरकम् ॥१४६॥

तन्मध्यादुद्धृता दूती गुह्यकाली महाबला।
समसप्तपुरे दिव्ये तन्मध्ये तु समुद्धृता ॥१४७॥

पञ्चवक्त्रा महारौद्रा त्रिपञ्चनयनोज्ज्वला।
आरक्तस्तब्धनयना कर्णौ गोनासमण्डितौ ॥१४८॥

श्वेताभं पूर्ववक्त्रं तु रक्ताभं चोत्तराननम्।
पीताभं पश्चिमं देवि कृष्णाभं दक्षिणाननम् ॥१४९॥

दंष्ट्राकरालं रौद्रं च पिङ्गाक्षं घोररूपिण[पक]म्।
शङ्खेन्दुतुहिनाभासं ऊर्ध्ववर्ण[क्त्रं] तु मुक्तिदम् ॥१५०॥

गगनावर्ति विख्यातं सृष्टिसंहारकारकम् ।
ज्येष्ठानाम तु पूर्वेण वामवक्त्रं ततोत्तरम् ॥१५१॥

वामेति[बिम्बीति] पश्चिमं वक्त्रं रौद्री दक्षिणसंस्थितम् ।
अष्टत्रिंशत्कलोपेता वक्त्रस्था तु विराजते ॥१५२॥

सिद्धा शुद्धा प्रभा दीप्ता कामदा पञ्चमी स्मृता ।
उर्ध्ववक्त्रं[क्त्रे] तु देवेशि कला[ः] पञ्चैव, सृष्टिदा ॥१५३॥

सिद्धिदा कर्षणी रौद्रा सौम्या भीमा तु सिद्धिदा ।
भोगदा[च तथा] देवि कलाश्चाष्टौ प्रकीर्त्तिताः ॥१५४॥

षट[ज्येष्ठा] वक्त्रं[क्त्रे] वरारोहे विराजन्त[न्ते] च तत्रगा ।
सूक्ष्मा सूक्ष्मावति[ती] रक्ता अतिरक्ता च पञ्चका ॥१५५॥

सुप्रथा विमला वर्णा शुषिरा तपनी तथा ।
चामणी शोषणी चैव क्रिया चैव त्रयोदशी ॥१५६॥

वामवक्त्रे कला देवि दीप्यमाना सुतेजसा ।
भुवना वेगिका नीला कृष्णा चैव चतुर्थिका ॥१५७॥

बिम्बीवक्त्रे कला देवि ज्ञातव्याश्च प्रयत्नतः ।
क्रूरा च क्रोधिनी क्रोधा तमा मूर्छा क्षया परा ॥१५८॥

मृत्युघोरा वरारोहे रौद्रीवक्त्रे कलाष्टकम् ।
अष्टत्रिंशत्कलायुक्ता ध्याता काली सुसिद्धिदा ॥१५९॥

द्विपञ्चकभुजोपेतां नानालङ्कारमण्डिताम् ।
त्रिशूलं च गदां पाशमङ्कुशं खड्गमुत्तमम् ॥१६०॥

दक्षिणे च वरारोहे अस्त्राः कालानलप्रभाः ।
काद्यं खेटकं शक्तिश्च मुण्डं मुशलधारिणी ॥१६१॥

वाममार्गायुधा दिव्या दिव्यानलसमप्रभाः ।
आपादलम्बिनीं दिव्यां काद्यमालां सुग्रथिताम् ॥१६२॥

ज्योत्स्नाकिरणसंकाशां तारकाभ्रनिभां शुभाम् ।
शिरे कपालमालां तु लम्बचूचुकशोभिताम् ॥१६३॥

चित्रकाहिकृताहारां नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
महोदरां नीलवर्णामतसीपुष्पसन्निभाम् ॥१६४॥

कृष्णवस्त्रपरिधानां सिंहपृष्ठसमाश्रिताम् ।
नानारक्त[त्न]कृतां मालां कटिबद्धां प्रलम्बिताम् ॥१६५॥

यन्त्रमन्त्रकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
नूपुरौ विमलौ तस्या हेमपारदसन्निभाम् ॥१६६॥

सर्वावयवसंपूर्णां सर्वाभरणमण्डिताम ।
एवं ध्यात्वा वरारोहे शृङ्गाटपुरमध्यगाम् ॥१६७॥

सततं ध्यायमानं तु[मानस्य] तस्य पापं न विद्यते ।
सर्वतीर्थफलं तस्य सर्वकामफलं लभेत् ॥१६८॥

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः ।
यदर्थं चिन्तितं किञ्चित् तत्सर्वं साधयिष्यति ॥१६९॥

गुह्यकाल्याः परा मूर्तिराख्याता श्रीमतोत्तरे ।
नाख्याता चा[च]परातन्त्रे सत्यं सत्यं शुभानने ॥१७०॥

अनया रहिता देवि गुह्यकाली न सिद्ध्यति ।
गोपिता सर्वतन्त्रेषु तव स्नेहात् प्रकाशिता ॥१७१॥

नान्यस्य कस्यचित् ख्याता ब्रह्मादिसुरसत्तमैः ।
तपसाराधितो देवि तेन ते कथिता मया ॥१७२॥

लघ्विकायास्तु या दूती कुलालीतन्त्रनिर्गता ।
पारम्पर्यक्रमाम्नायस्योपदेशसमन्विता ॥१७३॥

विलोमेन कृताभ्यासा तत्सर्वं साधयिष्यति ।
खादकास्त्रस्य देवेशि लक्षमेकं जपेद् बुधः ॥१७४॥

दशांशं विहितं होमं नृमांसगुग्गुलान्वितम् ।
ततः सिद्धिः प्रजायेत नानारूपं करोति च ॥१७५॥

मांसाहाररतो देवि रूपस्य परिवर्तनम् ।
कुरुते नात्र संदेहो अस्या देव्याः प्रभावतः ॥१७६॥

वल्मीकमृत्तिकां गृह्य विष्णुनालोड्य सुन्दरि ।
गुह्यकाल्या ततो देवि सप्तवाराभिमन्त्रितम् ॥१७७॥

लेपनाद्रूपहानिस्तु सिंहरूपो भवत्यसौ ।
नारसिंहस्य रूपं तु यत्पुरा विष्णुना कृतम् ॥१७८॥

विष्णुनाराधिता देवी उग्रेण तपसा प्रिये ।
तस्य तुष्टा महादेवि[वी] गुह्यकाली महाबला ॥१७९॥

तस्या दूत्याः प्रसादेन बहुरूपधरो हरिः ।
अवध्यो देवदैत्यानामसुराणां च रक्षसाम् ॥१८०॥

विष्णुना समतां याति जपमानस्तु साधकः ।
माहात्म्यं गोपितं चास्याः सिद्धैर्भृगुपुरःसरैः ॥१८१॥

महास्त्रदूती ह्येषा वै कुलालीतन्त्रनिर्गता ।
सिद्धविद्या महादीप्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥१८२॥

लघ्विकागमसंभूता सुप्रतापा गुणोज्ज्वला ।
गोपिता सर्वतन्त्रेषु प्रकटा श्रीमतोत्तरे ॥१८३॥

अस्या यन्त्राणि वक्ष्यामि येन सा निग्रहात्मिका ।
त्रिकोणं च क्रमाल्लिख्य विषोन्मत्तरसेन तु ॥१८४॥

भीमाङ्गारेण संयुक्तं मृतवस्त्रे तु लेखयेत् ।
त्रिकोणं बाह्यतो देवि मेखलैकां प्रदापयेत् ॥१८५॥

तस्योपरि लिखेद्देवि चतुष्कं तु वरानने ।
मेखलैकां ततो दद्याच्चतुःषष्टिदलं ततः ॥१८६॥

एकैकेन तु जीवेन[बीजेन] शत्रुनाम विदर्भयेत् ।
वर्णानां च चतुष्कं तु चतुष्कोणेषु दापयेत् ॥१८७॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु चण्डबीजं विसर्गजम् ।
शत्रुनामसमायुक्तं आद्यन्तेन विदर्भितम् ॥१८८॥

भेदनं तत्र दातव्यं विदिक्षु दिक्षु संस्थितम् ।
वज्रलाञ्छनसंभिन्नं योनिकुण्डे निधापयेत् ॥१८९॥

श्मशाने होमयेद्देवि समिधां कण्टकोद्भवाम् ।
रक्ताक्तां होमयेत्तां तु सप्ताहं तु दिवानिशि ॥१९०॥

सप्ताहान्म्रियते शत्रुर्यदि शक्रसमो भवेत् ।
एवं निग्रहमाख्यातं दुष्टानां तु वरानने ॥१९१॥

रक्षयित्वा स्वकं देहं न्यस्त्वा[स्य] वाराणि षोडश ।
यन्त्रमन्त्रकृता दोषा डाकिनीव्यभिचारकम् ॥१९२॥

तत्तस्य[न तस्य]संक्रमेद्देहे यस्य काली हृदि स्थिता ।
एता देवि महादूत्यो लघ्विकाङ्गसमुद्भवाः ॥१९३॥

नित्यातन्त्रसमुद्भूता देव्या दूतीसमुद्भवाः ।
तेन नित्या समाख्याता कालिका नाम विश्रुता ॥१९४॥

सिद्धातन्त्रं तु विख्यातं शिरोदेवीसमुद्भवम् ।
सर्वसिद्धिकरी देवी महाबलपराक्रमा ॥१९५॥

सिद्धयोगेश्वरी नाम रुद्रशक्तिर्गुणोज्वला ।
अनाहता समायुक्ता रौद्री देवी महाबला ॥१९६॥

सिद्धयोगेश्वरीतन्त्रे अस्याः कीर्तिरनेकधा ।
देव्याः शिखासमुद्भूता शिखादूती महाबला ॥१९७॥

मणिभेदान्तराले तु स्वच्छन्दाद्यविनिर्मिता ।
स्वतन्त्रा सहजा शान्ता स्वच्छन्दगतिगामिनी ॥१९८॥

मणिपूरं पूरयन्ती स्वच्छन्दार्थप्रबोधिका ।
स्वच्छन्देन तु रूपेण शिखासूत्रं प्रवर्तते ॥१९९॥

स्वच्छन्दो घोररूपस्य तस्येदं तन्त्रमुत्तमम् ।
तनुत्राणसमुद्भूतं तन्त्रं संमोहनादिकम् ॥२००॥

विशुद्धभावनातीतं दूत्यनेकसमाकुलम् ।
अनेकाश्चर्यकर्तारं संमोहध्वंसकारकम् ॥२०१॥

तेन संमोहनं तन्त्रं माहात्म्यं कथितं मया ।
देव्या नेत्रसमुद्भूतं ज्योतिःशास्त्रं स्वरोदयम् ॥२०२॥

आज्ञाधारगतं ह्येतत् सामर्थ्यानेकसंकुलम् ।
अनेकाश्चर्यकर्तारं सर्वज्ञत्वं प्रवर्तते ॥२०३॥

कैवल्या[द्]द्योतयेत्किञ्चिन्नेत्रदूत्याः समुद्भवम् ।
अस्याङ्गस्य च माहात्म्यं ज्योतिषेश्वरगोचरम् ॥२०४॥

परमास्त्रस्य मध्ये तु खादकास्त्रं महाबलम् ।
तस्य व्यावर्णितं पूर्वं तन्त्रं स्वाभावलक्षणम् ॥२०५॥

अभिषेकं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।
सर्वसिद्धिकरं देवं सर्वज्ञानप्रकाशकम् ॥२०६॥

सर्वसामर्थ्यसंयुक्तं सर्वतन्त्राश्रयं परम् ।
संवर्तकं समुद्धृत्य भुजङ्गस्यासनस्थितम् ॥२०७॥

अर्घीशं च महादेवि तस्याधस्तान्नियोजयेत् ।
अनुग्रहीशसंभिन्नं क्रूरानन्देन लाञ्छितम् ॥२०८॥

इदं कूटं वरारोहे देव्यास्त्रं परमं प्रिये ।
पुण्यहीना न जानन्ति गुरुहीना वरानने ॥२०९॥

भाग्यावरोहणी यस्मादभिषेकं हि तस्य वै ।
शुभेऽहनि सुनक्षत्रे सिद्धियोगे यशस्विनि ॥२१०॥

स्नानं कृत्वा शुचिर्भूत्वा शुक्लवस्त्रसुसंवृतः ।
एकान्ते विजने रम्ये क्रमं पूज्य विधानतः ॥२११॥

दीपमालाभिरुद्द्योतं दिव्यधूपाधिवासितम् ।
एव कृत्वा विधानज्ञो यथाविभवविस्तरैः ॥२१२॥

शङ्खं वा कलशं वापि अभिमन्त्र्य च विद्यया ।
उत्तमाधममध्यस्थं कर्मसेवानुसारतः ॥२१३॥

यथाविद्याभिषेकं तु न्यस्तव्या कलशे तु सा ।
शिष्यहस्ते प्रदातव्यं पूर्वकूटं तु विन्यसेत् ।।२१४॥

चलन्ति[ति] तत्क्षणाद्धस्तात् स्वयमेव वरानने ।
शिरे तु पतते तोयं तत्क्षणाद्विरजो भवेत् ।।२१५॥

दग्धपापः प्रजायेत नात्र कार्या विचारणा ।
नाशिष्याय प्रदातव्यं न धूर्ताय न निन्दके ॥२१६॥
भक्ताय श्रद्दधानाय गुरुभक्ताय सुन्दरि ।
तस्य[स्मै] देयमिदं ज्ञानं अभिषेकं वरानने ।।२१७॥

तदासौ साधयेद्देवि यदुक्तं कर्म निश्चयम् ।
अघोरास्त्रं प्रवक्ष्यामि पूर्वोक्तं यन्मया तव ॥२१८॥

स्वच्छन्दस्य महास्त्रं तु स्वच्छन्दे तु विनिर्गते ।
विलोमेनोद्धरिष्यामि यथागमप्रचोदितम् ॥२१९॥

"टटट ३ फट् हुँ २ यतया २ मव २ हक २ टचप्र २
यरूनु[२ य ट चा तु त्रू श]तर घोर २ घोर २ रस्फुप्र
ह्रौं ह्रीं ह्रां ॐ" ॥२२०॥

विलोमं कथितं देवि अघोरास्त्रं सुदुर्जयम् ।
देवस्य दक्षिणे मूर्तौ लक्षमेकं जपेत्प्रिये ॥२२१॥

दशांशेन च होमं तु गुग्गुलुमाज्यसंयुतम् ।
ततः सिद्धिमवाप्नोति सर्वकर्मसु पार्वति ।।२२२॥

कुरुते विविधाश्चर्यं यद्यच्च मानसेप्सितम् ।
भूताश्च प्रलयं यान्ति राक्षसा विद्रवन्ति च ॥२२३॥

पूतना लाकिनी रामा डाकिन्यः प्रेतगुह्यकाः ।
स्मरणात्प्रलयं यान्ति सिंहस्यैव मृगा यथा ॥२२४॥

सैन्यस्तम्भं पुरध्वंसो आवेशाकर्षणं तथा ।
शान्तिः पुष्टिर्वशित्वं च अस्त्रराजप्रसादतः ॥२२५॥

शत्रुनाम समुच्चार्य राजिकालवणं हुनेत् ।
सप्ताहाद्यमायान्ति[ति] सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥२२६॥

विशेषरुधिरेणैव उत्तमस्य रसेन तु ।
भीमाङ्गारसमायुक्तं कपाले लिख्य सुन्दरि ॥२२७॥

षोडशारे महाचक्रे शत्रुनाम विदर्भितम् ।
द्वौ द्वौ बीजौ महादेवि शेषं मध्ये विदर्भयेत् ॥२२८॥

योनिकुण्डे त्वधः स्थाप्य खदिराग्नौ प्रतापयेत् ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा मुक्तकेशो दिगम्बरः ॥२२९॥

खादिरां समिधां गृह्य रक्ताक्तां तैलसिञ्चिताम् ।
आर्द्रा-ऋक्षे तु देवेशि होमयेत् क्रुद्धमानसः ॥२३०॥

सममष्टोत्तरं देवि त्रिसप्तं होमयेत् प्रिये ।
शत्रुः पञ्चत्वतां[मा]याति यदि ब्रह्मसमो भवेत् ॥२३१॥

म्रियते नात्र संदेहो सभृत्यपशुबान्धवः ।
अस्त्रं कालानलं ध्यायेद् दीप्यमानं सुतेजसम् ॥२३२॥

नीलजीमूतसंकाशं महाघोरं सुदारुणम् ।
लेलिहानं महाभीमं ग्रसन्तं सचराचरम् ॥२३३॥

एकवक्त्रं च दंष्ट्रालं त्रिनेत्रं रक्तवर्चसम् ।
तर्जयन्तं महाउग्रं गर्जन्तं भीषणं रवम् ॥२३४॥

अष्टबाहु महाभीमं खड्गखेटकधारिणम् ।
त्रिशूलं चैव खट्वाङ्गं पाशमुद्गरधारिणम् ॥२३५॥

कायदण्डधरा देवि मुण्डमालाविभूषितम्[ता] ।
चर्वयन्ती महास्थीनि रुधिरारुणलेपितम्[ता] ॥२३६॥

पिबन्तं[न्ती] रुधिरौघानि शत्रुगात्रात्तु सुन्दरि ।
त्रिशूल[शूलेन] वक्षो निर्भिन्नं दण्डेन शिरसाहतम् ॥२३७॥

पतितं पादमूले तु शिरश्छित्वा महासिना ।
एवं ध्यात्वा वरारोहे शत्रुनिग्रहकारणात् ॥२३८॥

कोपकाले समुत्पन्ने शत्रुतो भयपीडिते ।
तत्र तेन प्रकर्तव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥२३९॥

षडङ्गं षडथकारं च षड्योगिन्यः षडध्वरम् ।
षट्पुराणि च षट् सिद्धा ज्ञातव्या भिन्नदृष्टिना ॥२४०॥

षडङ्गं च समाख्यातं षट्[ड्य]कारं च शृणु प्रिये ।
चतुष्कं च पुनर्भद्रे पुरतः कथयामि ते ॥२४१॥

डकारादि पुरा प्रोक्ता षड्योगिन्यो महाबलाः ।
षट्कौशिकं च यत्ख्यातं षद्य[ट्पु]रन्तेन कथ्यते ॥२४२॥

षडीशादौ पुरा देवि षट्सिद्धा ये उदाहृताः ।
चक्रं चाधारदेवेशि सिद्धषट्कं पुरोदितम् ॥२४३॥

यो जानाति वरारोहे स चाम्नायस्य पारगः ।
अन्यथा न भवेत् सिद्धिः किञ्चिज्ज्ञः पश्चिमाम्नये ॥२४४॥

आज्ञापूर्वं मया प्रोक्ता षडभेदेन सुन्दरि ।
भूतं भावं तथा शाक्तं मात्रं[न्त्रं] रौद्रं च शाम्भवम् ॥२४५॥

षद्य[षड्य]कारमिदं देवि संक्षेपात् कथयामि ते ।
भूतं भुवनावरणं पदं भावमुदाहृतम् ॥२४६॥

शाक्तं वर्ण[ाः]समाख्याता मन्त्रा द्वादश कीर्तिताः ।
रौद्रं कलाधरं प्रोक्तं शाम्भवं तत्त्वलक्षणम् ॥२४७॥

आज्ञाद्वारेण मुक्तिः स्याद्दीक्षा निर्वाणदा परा ।
सा दीक्षा वि[द्वि]विधा प्रोक्ता शाक्ता च शाम्भवी प्रिये ॥२४८॥

अजपा नलवती दीक्षा मन्त्राणां साधने हिता ।
सा चाज्ञापूर्विका सिद्धा अन्यथानिलघातकी ॥२४९॥

सा च तत्त्वरतानां च तत्त्वेवं शांभवं पदम् ।
तत्पदं विद्यते यस्य सामर्थ्यज्ञः स सर्वदा ॥२५०॥

ज्ञानमार्गप्रसिद्धा[द्ध्य]र्थं दीक्षा वेद[ध]वती शुभा ।
योग्यता यस्य देवेशि स मुक्तः कुलशासने ॥२५१॥

तस्य वेधवती देया अन्यथा न प्रदापयेत् ।

श्रीदेव्युवाच

कथं सा देव कर्तव्या प्रत्यक्षेण परोक्षतः ॥२५२॥
कथं सा कुलपिण्डस्य मुक्तिदा पाशछेदनी ।
कथयस्व प्रसादेन संक्षेपान्न तु विस्तरात् ॥२५३॥

श्रीभैरव उवाच

भूतावेशं महादेवि शक्त्यावेशं तथा परम् ।
रौद्र्यावेशं वरारोहे भावावेशं वरानने ॥२५४॥

मन्त्रावेशं च देवेशि शाम्भवं च तथाष्टमम् ।
अस्यैव बहवो भेदा श्रीमते संप्रकाशिताः ॥२५५॥

चर्चिता नैकरूपेण पदपिण्डस्वरूपतः ।
संक्षेपात् कथयिष्यामि आज्ञामानन्ददायिनीम् ॥२५६॥

ध्यात्वा विद्युल्लताकारां शृङ्गाटपुरमध्यगाम् ।
विशंति[शन्तीं] ब्रह्मरन्ध्रेण परदेहेऽनुभावयेत् ॥२५७॥

अनेन ध्यानयोगेन वेधमुत्पद्यते क्षणात् ।
परेदेहे पराशक्तिर्नादेनाक्रम्य वेधयेत् ॥२५८॥

तेन वेधो भवेद्देवि योजनानां शतैरपि ।
गुदमेढ्रान्तरे योनिं तप्तचामीकरप्रभाम् ॥२५९॥

विशन्तीं परदेवे[हे] तु विसर्गान्तं तु भावयेत् ।
तत्क्षणात्पतते[पातयेद्] देवि कम्पमानं सुविद्ध[वेधि]तम् ॥२६०॥

ध्यात्वा दीपशिखाकारां विशन्तीं हृदि मध्यतः ।
पद्मकोशगता देवी पर्वतानपि पातयेत् ॥२६१॥

भ्रमच्चक्रमहावेगां मूलचक्रे विचिन्तयेत् ।
परदेहगतां देवि भ्रममाणां विचिन्तयेत् ॥२६२॥

आपादतलसंलग्नां बीजरूपां विचिन्तयेत् ।
परदेहगतां ध्यात्वा पातयेन्नात्र संशयः ॥२६३॥

प्र तपोण(?) वदा[हा] नाद्यो[ङ्गो] अङ्गुष्ठौ द्वौ च मन्त्रिते ।
पीडनाद् घर्षमायाति दह्यते पाशपञ्जरम् ॥२६४॥

मन उन्मत्ततां याति निःशब्दो पतते भुवि ।
बीजाष्टकं प्रवक्ष्यामि येन वेधः प्रजायते ॥२६५॥

लकुलीशं वरारोहे क्रूरानन्देन भूषितम् ।
वकीशं च पुनर्देवि महासेनहतं कुरु ॥२६६॥

प्रथमं बीजमाख्यातं द्वितीयं कथयामि ते ।
चतुराननं वरारोहे अर्घीशासनसंस्थितम् ॥२६७॥

लकुलीशं ततो देवि महासेनेनालङ्कृतम् ।
बिन्दुना भूषितं कृत्वा चतुर्वक्त्रं वरानने ॥२६८॥

मेषं पिनाकमारूढं अर्घीशासनसंस्थितम् ।
संहारमूर्छितं कृत्वा तृतीयं बीजनायकम् ॥२६९॥

संवर्तकं ततो देवि महासेनहतं प्रिये ।
महाकालं वरारोहे अर्घीशासनसंस्थितम् ॥२७०॥

क्रूरमस्तकेनाक्रान्तं वकीशं तनुसंयुतम् ।
पिनाकी बिन्दुसंयुक्तं लकुलीशं विसर्गजम् ॥२७१॥

लोहितं बिन्दुसंयुक्तं वकीशं च विसर्गजम् ।
भुजङ्गं बिन्दुसंभिन्नं वकीशं तु विसर्गजम् ॥२७२॥

एते चाष्टौ महाबीजा अष्टस्थानगताः स्मरेत् ।
गुह्यं नाभिं च हृत्कण्ठं वक्त्रं नासा च रूपिणम् ॥२७३॥

ब्रह्मरन्ध्रान्तगा देवि क्रमशश्चिन्तयेत् प्रिये ।
वेधं च भवते क्षिप्रं सर्वपातकनाशनम् ।
नानाप्रकारवेधोऽयं आख्यातं च महेश्वरि ॥२७४॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

आज्ञाधिकारो नाम

चतुर्दशः पटलः ॥ १४ ॥

पञ्चदशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं देव मया सर्वमाज्ञागुणमहोदयम् ।
अन्यं देवेश व[प्र]क्ष्यामि द्विरण्डं भैरवं प्रभो ॥ १ ॥

कस्मिन् काले त्वया देव द्विरण्डं मूर्तिदर्शितम् ।
एतन्मे संशयं देव कथयस्व प्रसादतः ॥ २ ॥

श्रीभैरव उवाच

कथयामि यथा देवि द्विरण्डं भैरवं प्रिये ।
युगान्ते तु पुरा प्राप्ते तमोमूर्ते[भूते] जगत्त्रये ॥ ३ ॥

अण्डमुत्पादयामास दीप्यमानं सुतेजसम् ।
दिव्यवर्षसहस्रं तु करसंपुटरक्षितम् ॥ ४ ॥

द्विधा कृतं तदण्डं तु ब्रह्मविष्णुरजायत ।
तेन सूचितब्रह्माण्डं सप्तधा परिकीर्तितम् ॥ ५ ॥

तेनैवाराधितो देवि ब्रह्मविष्णुर्वरानने ।
तेन तप्तं त[पो] घोरं दिव्यवर्षसहस्रकम् ॥ ६ ॥

स्तुतोऽहं विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्मविष्ण्वादिभिः प्रिये ।
मम तेजःसमुद्भूताः सृष्टिसंहारकारकाः ॥ ७ ॥

तपसाराधितो देवि तुष्टोऽहं वरवर्णिनि ।
साधु साधु महाकृष्ण तुष्टोऽहं परमार्थतः ॥ ८ ॥

वरं ब्रूहि महाभाग यत्ते मनसि संस्थितम् ।
देवस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमा बभूव ह ।
प्रणिपत्य महादेवमनादिं परमेश्वरम् ॥ ९ ॥

श्रीब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव सृष्टिसंहारकारक ।
सृजसे विश्वरूपेण जगद्व्यापी नमोस्तु ते ॥ १० ॥

हर्ता कर्ता प्रभुस्त्वं हि व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ।
परात्परतरः शुद्धो निष्कलः परमेश्वरः ॥ ११ ॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरः सूक्ष्मो निराभासश्च केवलः ।
कुलाकुलसमुद्भूतं कुलोत्पत्तिविवर्जितम् ॥ १२ ॥

मातृकावर्णसंभूतं मन्त्रगर्भप्रकाशकम् ।
भैरवं भैरवाकारं ग्रसन्निव चराचरम् ॥ १३ ॥

प्रदीप्तभुवनाधारं नाडीरन्ध्रसमुद्भवम् ।
प्राणापानसमुद्भूतं निराधार नमोस्तु ते ॥ १४ ॥

निष्पदं निष्कलं शुद्धं व्योमातीतं जगद्गुरुम् ।
मलमायाविनिर्मुक्तं निष्प्रपञ्चं निरामयम् ॥ १५ ॥

वामदक्षिणमार्गस्थं शिखोद्भूतं शिखाकुलम् ।
स्वच्छन्दं परमेशानं निरानन्द नमोस्तुते ॥ १६ ॥

हृत्कण्ठतालुसंभूतं भूतेन्द्रियमनोद्भवम् ।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहाद्यं च चतुष्टयम् ॥ १७ ॥

क्रीडसे शक्तिमध्यस्थं रागदोषैर्न बाध्यसे ।
त्वं हि देव जगद्व्यापी नान्यो देवश्चराचरे ॥ १८ ॥

त्वमग्निस्त्वं च वै आपो वायुः पृथ्वी त्वमेव हि ।
आकाशः केवलं त्वं हि सोमः सूर्यस्त्वमेव हि ॥ १९ ॥

तारा ग्रहास्तथा रुद्रा ऋषयो वसवस्तथा ।
नागगन्धर्वयक्षाश्च किन्नराद्या महोरगाः ॥ २० ॥

सर्वमूर्तिधरस्त्वं हि इन्द्रो वैश्रवणो यमः ।
पतिस्त्वं सर्वभूतानां त्राता त्वं हि जगत्प्रभुः ॥ २१ ॥

त्वया विना न किञ्चित् स्याद्बीजभूतोऽसि ईश्वरः ।
श्रीकण्ठः शङ्करस्त्वं हि अनन्तः सद्यः पिङ्गलः ॥ २२ ॥

पञ्चमूर्तिधरस्त्वं हि आनन्दो विमलस्तथा ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वरस्त्वं सदाशिवः ॥ २३ ॥

अनन्तो सूक्ष्मरूपस्त्वं त्रिमूर्तिः परमेश्वरः ।
वली[की]शो चार्घिरूपस्त्वं भारभूत्यतिथीश्वरः ॥ २४ ॥

स्थाणुनामा हराख्यो हि झिण्टिनामा त्वमेव हि ।
भूतीशश्च महादेव सद्योजातस्त्वमेव हि ॥ २५ ॥

अनुग्रहीशो क्रूरश्च महासेनस्त्वमेव हि ।
क्रोधश्चण्डः प्रचण्डश्च शिवरूप्येकपादकः ॥ २६ ॥

कूर्मश्चैवैकनेत्रश्च चतुर्वक्त्रस्त्वमेव च ।
अजेशः शर्मरूपस्त्वं सोमेशानो वरानने ॥ २७ ॥

लाङ्गली त्वं हि देवेश दारुकस्त्वं च व्यापकः ।
अर्धनारीश्वरस्त्वं हि उमाकान्तस्त्वमेव च ॥ २८ ॥

आषाढी दण्डिरूपश्च धात्रीशो मीन एव च ।
मेषरूपधरस्त्वं हि [1]लोहिताख्यस्त्वमेव च ॥ २९ ॥

चूलिकाख्यो महारूपश्छगलण्डस्त्वमेव हि ।
द्विरण्डं भैरवं रूपं त्वया पूर्वं च दर्शितम् ॥ ३० ॥

महाकालस्य रूपं तु कालरूपी जगत्त्रये ।
वालीशस्त्वं भुजङ्गश्च पिनाकी खड्ग एव च ॥ ३१ ॥

---

१. लोहिताक्षः—ख० ।

वकीशो श्वेतनामा च भृगुरूपी त्वमेव हि ।
लकुलीशस्वरूपं हि संवर्तकमहाद्भुतम् ॥ ३२ ॥

आ दीक्षान्तस्वरूपेण शब्दराशिर्महेश्वरः ।
विश्वमूर्तिधरस्त्वं हि सर्वव्यापी जगद्गुरुः ।
त्वामेव शरणं प्राप्ताः संसारभयपीडिताः ॥ ३३ ॥

विष्णुब्रह्माणावूचतुः

भ्रान्तिज्ञानविमूढाश्च पशुभावजडान्विताः ।
दर्शयस्व महान्याप्तिं येन मुक्तिर्भविष्यति ॥ ३४ ॥

एवं ते श्रू[स्तू]यमाण[ना]स्तु ब्रह्मविष्णुपुरःसराः ।
तेष्वहं कृपया युक्तः स्तोत्राराधनतोषितः ॥ ३५ ॥

ततोऽहं रूपमापन्नस्तेषु भक्त्या तु वर्तिनम् ।
षडस्रं चतुरस्रं तु आत्मानं च समर्पितम् [समर्पयम्] ॥ ३६ ॥

तेन ते कारणत्वं हि सृष्टिकृत्कारणेश्वराः ।
हर्ता कर्ता स्वतन्त्रश्च मद्रूपगुणचेतसः ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वा स्तोत्रं समारब्धं पुनर्नाथैः स्तुतो ह्यहम् ।
तथानेकविधानेन तावत्तेषां वरप्रदः ॥ ३८ ॥

पुनरुक्तं मया तेषां व[व्रि]यन्तां वरपुष्कली ।
तैरुक्तं देवदेवेश लिङ्गेदं सर्वतोमुखम् ॥ ३९ ॥

येन पूज्यो भवानीश तद्वरं दद आवयोः ।
अस्य लिङ्गस्य माहात्म्यं व्याप्तिभूतं यथास्थितम् ॥ ४० ॥

तथा कुरु महेशान जानीमो निश्चयं यथा ।
ततस्तेषां महादेवि व्याप्तिरूपं प्रदर्शितम् ॥ ४१ ॥

व्यक्तं लिङ्गं कृतं पश्चात् षडच्च[ध्व]गुणगोचरः ।
षडघ[ध्व]रोपदेशेन तत्र तेषां प्रदर्शितम् ॥ ४२ ॥

द्विरण्डेन कृतं[तो] देहं [हः] शेषाद् वक्त्राणि चोर्द्ध[र्ध्व]तः ।
वामादिक्रमयोगेन सर्जितानि विदुर्बुधाः ॥ ४३ ॥

छगलण्डोत्तरं वक्त्रं महाकालोर्द्ध[र्ध्व]संस्थितम् ।
बालिवक्त्रं भवेत्पूर्वं पुरुषं जीवरूपिणम् ॥ ४४ ॥

भुजङ्गं दक्षिणे क्रूरं नागरूपं महाद्भुतम् ।
पश्चिमं तु पिनाकाख्यं निवृत्तिस्थं नियामकम् ॥ ४५ ॥

अविद्याख्यं पुरा प्रो[क्तं] तममोहान्धकारकम् ।
अत्र मध्ये त्रयं सारं अविनाश्यक्षयाव्ययम् ॥ ४६ ॥

माया शम्भुस्तत्पुरुषं[षः] क्षीयन्ते न कदाचन ।
शशिन्यादौ[द्याः] वरारोहे कलाः पञ्च उदाहृताः ॥ ४७ ॥

ऊर्द्ध[र्ध्व]वक्त्रे स्थिता देवि बीजयुक्ता यथा शृणु ।
भूतीशं च समादाय क्रूरानन्देन संयुतम् ॥ ४८ ॥

सृष्टिभूतं महादेवि त्रैलोक्ये सचराचरे ।
निवृत्त्यादिचतुष्कं तु तत्पुरुषकलाः स्थिताः ॥ ४९ ॥

चूलिकं च समादाय भुजङ्गासनसंस्थितम् ।
क्रूरानन्दशिराक्रान्तम् अर्धचन्द्रकलान्वितम् ॥ ५० ॥

एवं बीजं महाबीजं योगिनीहृदयं परम् ।
तत्पुरुषाख्यं महाबीजं दिव्यज्ञानसुसिद्धिदम् ॥ ५१ ॥

रजोपूर्वा वरारोहे कलाश्चैव त्रयोदश ।
अस्य बीजं प्रवक्ष्यामि मया गोप्यं कृतं पुरा ॥ ५२ ॥

लकुलीशं समादाय भुजङ्गासनसंस्थितम् ।
त्रिमूर्तिना समाक्रान्तं क्रूरानन्दशिरोहतम् ॥ ५३ ॥

अर्धेन्दुकलया युक्तं नादनादान्तसंयुतम् ।
सर्वाश्चर्यकरं बीजं वश्याकर्षणकारकम् ॥ ५४ ॥

तमा[स्या]दौ च महादेवि कलाष्टकमुदाहृतम् ।
अघोरस्य च वक्त्रस्य घोरसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५५ ॥

लाकुलं शुक्रसहितं भुजङ्गासनसंस्थितम् ।
अनुग्रहीशसंयुक्तं महासेनयुतं कुरु ॥ ५६ ॥

नादबिन्दुकलायुक्तं सर्वं शिवकरं परम् ।
सिद्धादिभिः कलैर्युक्तं दा[बा]लिवक्त्रं कलाष्टकम् ॥ ५७ ॥

शुक्रं भुजङ्गसहितं त्रिमूर्तिगुणभूषितम् ।
नादबिन्दुकलायुक्तं सिद्धिदं सर्वकामदम् ॥ ५८ ॥

षड्योगिन्यो महादिव्या बीजरूपा व्यवस्थिताः ।
षट्कोणाग्रे महारौद्राः कथयामि तवानघे ॥ ५९ ॥

दारुकं च महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ।
वालीशाटी[र्षी]श आरूढं क्रूरानन्दशिरोहि[हि]तम् ॥ ६० ॥

नादबिन्दुकलायुक्तं कथितं ते वरानने ।
अग्निकोणगतं देव बीजरूपा महाबलाः ॥ ६१ ॥

भुजङ्गं च महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ।
वालीशं चार्षिणा युक्तं भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम् ॥ ६२ ॥

क्रूरानन्देन संभिन्नं अर्धेन्दुकलया युतम् ।
क्रोधीशं च महाकालकूटं पश्चिमकोणगम् ॥ ६३ ॥

कूटरूपा महादेवि नैर्ऋत्यां कोणसंस्थितम् ।
पिनाकीशं महाकालं खड्गीशं वालिसंयुतम् ॥ ६४ ॥

भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]संदीप्तं क्रूरानन्देन भूषितम् ।
अर्द्धचन्द्रकलायुक्तं कूटं पश्चिमकोणगम् ॥ ६५ ॥

क्रोधीशं च महाकालं पिनाकी खड्गमेव च ।
वालीशार्पिस[र्षीश]मारूढं भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम् ॥ ६६ ॥

क्रूरानन्देन संभिन्नं अर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
कूटेदं च महादेव्या वायव्यां दिशि संस्थितम् ॥ ६७ ॥

वकीशं च महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ।
वालिचा[लीशा]र्घिसमारूढं भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम् ॥ ६८ ॥

क्रूरानन्दशिराक्रान्तम् अर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
कूटरूपा महादेवी उत्तरेण व्यवस्थिता ॥ ६९ ॥

लाकुलं च महाकालं पिनाकीखड्गसंवृतम् ।
वालिचा[लीशा]र्घीशसंयुक्तं भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम् ॥ ७० ॥

क्रूरानन्दं महेशानि अर्धेन्दुकलयान्वितम् ।
कूटरूपा परा देवी पूर्वारे[ग्रे] तु समाश्रिता ॥ ७१ ॥

या देवी सप्तमी ख्याता वायुलाञ्छनसंस्थिता ।
श्रीकण्ठादौ[द्याः] च ये सिद्धाश्चक्रे चक्रे व्यवस्थिताः ॥ ७२ ॥

क्रोधाद्याश्चैव ये सिद्धाः स्कन्धादौ नामके भुजे ।
सोममादौ ततो भद्रे स्फिचादौ दक्षपादयोः ॥ ७३ ॥

आषाढानि[द्याः] पुनर्भद्रे स्फिचादौ वामपादयोः ।
लोहिताकृतिको रुद्रः कुक्षौ वै वामदक्षयोः ॥ ७४ ॥

खड्गीशश्च वकीशश्च स्नायु-अस्थिषु संश्रिताः[तौ] ।
श्वेतो भृगुर्वरारोहे मज्जाशुक्रसमाश्रितौ ॥ ७५ ॥

लाङ्गलानन्दनं वर्णं प्राणक्रोधसमाश्रितौ ।
द्विरण्डं भैरवं देहं व्याप्तिभूतं च दर्शितम् ॥ ७६ ॥

महादेदीप्यतेजाढ्यं नीलजीमूतसन्निभम् ।
कालानलसमप्रख्यं दीपयन्तं नभस्तलम् ॥ ७७ ॥

द्योतयन्तं जगत्सर्वं सूर्यकोटिसमप्रभम् ।
पातालाकाशसंलग्नं ग्रसन्निव चराचरम् ॥ ७८ ॥

पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिपञ्चनयनोज्ज्वलम् ।
काद्यं खट्वाङ्गं नागं च दर्पणं चरुकौलिकम् ॥ ७९ ॥

वामभागस्थिता देव्या आयुधा दिव्यरूपिणः ।
त्रिशूलं शक्तिश्चक्रं च शूलं वज्रं च दक्षिणे ॥ ८० ॥

अस्त्रं कालानलं दीप्तं लेलिहानं सुदुःसहम् ।
व्याप्तिभूतं जगन्नाथं षडस्रं कौलनायकम् ॥ ८१ ॥

तेषां प्रदर्शितं रूपं षडश्च[स्रं] कुलनायकम् ।
दृष्ट्वा महाद्भुतं रूपं ब्रह्मविष्ण्वादिकाः प्रिये ॥ ८२ ॥

मुदया परया युक्ता हृष्टरूपा बभूविरे ।
त्राहि देव सुरेशान संसारभयनाशन ॥ ८३ ॥

रक्षास्मान् परमेशान त्वत्पादशरणं गतान् ।
ब्रह्मविष्ण्वोर्वचः श्रुत्वा उवाचेदं तु भैरवः ॥ ८४ ॥

साधितोऽहं त्वया विष्णो निश्चलेनान्तरात्मना ।
भावाधिष्ठानयोगेन तेनेदं दर्शितं मया ॥ ८५ ॥

स्वाधिष्ठानं परं लिङ्गं प्रविश्य मम सर्वदा ।
लिङ्गं प्रविश मेधाविन् येन पूज्यारिहावुभौ ॥ ८६ ॥

भविष्यथ न संदेहो ब्रह्म[न्] विष्णो स्वयंवरम् ।
एवं देवि मयाख्यातं पूर्वचक्रवरः सुधीः ॥ ८७ ॥

लिङ्गे स्वाधिष्ठिता येन स्वाधिष्ठानं तु तेन वै ।
माया शम्भोश्च संस्थानं कलाधिष्ठानशासनम् ॥ ८८ ॥

पुरुषेण समायुक्तं स्वाधिष्ठानमतोऽर्थतः ।
पुरुषः शिव इत्युक्तो अण्डः शक्तिर्विधीयते ॥ ८९ ॥

तत्र मध्यस्थिता देवी स्वाधिष्ठानान्तवर्तिनः ।
रागेण रञ्जितात्मा वै नियम्या तु नियामिनम्[तः] ॥ ९० ॥

नियामिका चतुष्केण प्रमाणं सावगच्छति ।
कामं क्रोधस्तथा लोभो मोहाद्यं च चतुष्टयम् ॥ ९१ ॥
अविद्या तु भवेन्माया तेनासौ प्रेरितो भवेत् ।
स्वर्गपातालमर्त्यादि सरांसि सरितार्णवम् ॥ ९२ ॥
वनानि गिरिवृक्षाणि अविद्याप्रेरितो भ्रमेत् ।
त्रितयं शुभमुद्दिष्टं अशुभं च तथा त्रिकम् ॥ ९३ ॥
षाट्कौशिकमिदं स्थानं व्याप्तिभूतं मया तव ।
शाक्तेयं तु समाख्यातं शाम्भवं पुरतो[तु मतो]त्तरे ॥ ९४ ॥
कथयिष्यामि सुश्रोणि इदानीं प्रत्ययाच्छृणु ।
साधनं लोकविख्यातं षड्विद्याधिष्ठितं तनुम् ॥ ९५ ॥
द्विरण्डं छगलण्डं च महाकालं तृतीयकम् ।
वालीशं च भुजङ्गाख्यं पिनाकी षष्ठमं प्रिये ॥ ९६ ॥
षड्विधाधिष्ठितं स्थानं स्वाधिष्ठानं तदुच्यते ।
स्वाधिष्ठानं तु लिङ्गेदं यथास्थानगतं शृणु ॥ ९७ ॥
द्विरण्डेन तनुस्तस्य छगलण्डादितः क्रमात् ।
यत्र स्थाने स्थिता माया महाकालं मुखाग्रतः ॥ ९८ ॥
वालीश्वरं तु रन्ध्रस्थं भुजङ्गं मणिमस्तके ।
माया तु लम्बिका प्रोक्ता वक्त्रे वै राजदन्तसु ॥ ९९ ॥
रन्ध्रं तु नासिकामध्ये भ्रूमध्ये मणिमस्तके ।
त्रिग्रक[षट्क]स्थं तु सीमन्या पञ्चस्थाननियामकम् ॥१००॥
अत्र योगं प्रवक्ष्यामि योगिनां शुभदायकम् ।
येन द्रक्ष्यामि[द्रक्ष्यसि] तल्लिङ्गं पूर्वोक्तं गुणशालिनम् ॥१०१॥
द्वीपं द्वीपेश्वरं नाथं द्वादशार्चिसमन्वितम् ।
मासान्मासावध्येकैकं यस्याभ्यासगुणांल्लभेत् ॥१०२॥

पूजितं श्रेय आप्नोति षडस्रादिक्रमात्क्रमात् ।
षोडशारं महाचक्रं मध्ये शृङ्गाटकाकृति ॥१०३॥

तन्मध्ये चिन्तयेत् सिद्धान् वामदक्षिणमध्यतः ।
द्विरण्डं तु स्थितं वामे खड्गीशं दक्षिणे प्रिये ॥१०४॥

अर्द्धेश्वरं च यत्रायमग्रभागस्थितं प्रिये ।
तन्मध्ये देवदेवेशि द्वादशार्चिःसमन्वितम् ॥१०५॥

गर्भा च गर्भिणी सौम्या मङ्गला विरजा प्रिये ।
योगा च योगजा शान्ता कौलिकी कुलसंभवा ॥१०६॥

कुलोद्भवा च कौलेशी द्वादशार्चिःक्रमे स्थिताः ।
नपुंसकविनिर्मुक्ता हकारादौ स्वरार्चिषु ॥१०७॥

सर्वे[र्वाः] चतुर्भुजा देव्यस्त्रिनेत्राश्च शुभाननाः ।
बन्धूकपुष्पसंकाशा उदयादित्यसंनिभाः ॥१०८॥

कटु तिक्तं कषायं च अम्लं क्षारं मधु प्रिये ।
वर्षा[न्तं] तु महौघेन प्लाव्यमानं विचिन्तयेत् ॥१०९॥

तन्मध्ये संस्थितात्मानं शक्त्यारूढं विचिन्तयेत् ।
मुखे तु मुखसंलग्नं देहान्दोलैकतत्परम् ॥११०॥

भावानन्देन संभिन्नं लीलया संव्यवस्थितम् ।
नाथं द्वीपं तु द्वीपार्चिर्द्वीपाधिपसमायुतम् ॥१११॥

स्थानध्यानसमायोगात्तन्नास्ति यन्न साधयेत् ।
एवं ध्यात्वा वरारोहे मायाचक्रं यशस्विनम् ॥११२॥

वलीपलितनाशं च दूराक्रमणमायुषम् ।
वश्याकर्षणकामित्वं पुरक्षोभं वपुःश्रियम् ॥११३॥

मासमेकं यदाभ्यस्तं सर्वसौख्यस्य भाजनम् ।
मुखचक्रगतं चक्रं द्वादशारं गुणोज्ज्वलम् ॥११४॥

श‍ृङ्गाटं कर्णिकामध्ये द्वादशार्चिःसमुज्ज्वलम् ।
महाकालं च वामस्थं कूर्मदेवं च दक्षिणे ॥११५॥

षष्ठनाथं तथा चाग्रे शक्तयस्तु यथा क्रमात् ।
चक्रिणी च यदा घोरा पवनी पावनी प्रिये ॥११६॥

शुभगा शोभना क्रूरा शकुनी रेवती तथा ।
आह्लादिनी मनोवेगा द्वादशैता महाबलाः ॥११७॥

अकारादिस्वरोद्भूता योगिन्यः कामदाः प्रिये ।
एकवक्त्रास्त्रिनेत्राश्च वरदाभयपाणयः ॥११८॥

शारदाम्बुदसंकाशाश्चन्द्राभा ज्योत्स्निसन्निभाः ।
वर्षयन्त्यो महौघेन क्षीरधारासमप्रभाः ॥११९॥

पुरमध्यगतात्मानं प्लाव्यमानं विचिन्तयेत् ।
मासमेकं यदाभ्यस्तं सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥१२०॥

शान्तिपुष्टिवशाकर्षं निर्विषीकरणं तथा ।
मृतकोत्थापनं देवि कम्पमोहादिकं प्रिये ॥१२१॥

द्वितीयं कथितं देवि तृतीयं श‍ृणु साम्प्रतम् ।
रन्ध्रचक्रं तु नासाग्रे द्वादशारं ततः प्रिये ॥१२२॥

श‍ृङ्गाटपुरमध्ये तु वामं दक्षिणं चाग्रतः ।
वालीशं भैरवं वामे मेषनामा च दक्षिणे ॥१२३॥

चक्रनाथं वरारोहे अग्रकोणे विचिन्तयेत् ।
तदूर्ध्वे मातरः सर्वा अकारादिसमुद्भवाः ॥१२४॥

अरुणा घोषदेवी च भोगदा कामदा प्रिये ।
स्तम्भनी जम्भनी वेगा कुसुमा भुवना तथा ॥१२५॥

नीला च लम्बिनी सूक्ष्मा द्वादशैते[ताः] महाबलाः ।
चक्रमध्यगता देवी त्रिनेत्रा च चतुर्भुजा ॥१२६॥

पाशाङ्कुशधराः सर्वे[र्वाः] वरदाः कम्बुधारिकाः ।
ध्यात्वा विद्युल्लताकारा उल्काभा ज्योतिःसन्निभाः ॥१२७॥

तत्र मध्यगतात्मानं तद्रूपं भावयेत् प्रिये ।
षण्मासाभ्यासयोगेन स्फोटयेत् पर्वतानपि ॥१२८॥

अष्टैकेन तु देवेशि कामदेवः स्वयं भवेत् ।
चतुर्थी शृणु कल्याणि मणिचक्रं यथास्थितम् ॥१२९॥

द्वादशारं महाचक्रं त्रिकोणपुरमध्यगम् ।
भुजङ्गं वामभागे तु मीनदेवं तु दक्षिणे ॥१३०॥

कामेश्वरं तदग्रे तु ततोर्ध्वे मातरं प्रिये ।
रक्ता रक्तेश्वरी रम्भा भुजङ्गी भुवनाभिधा ॥१३१॥

भोगा भोगवती रङ्गा ज्वाला दीप्ता तथा परा ।
धूम्रा धूम्रेश्वरी देवी द्वादशैते[ताः] वरप्रदा ॥१३२॥

एकवक्त्रास्त्रिनेत्राश्च चतुर्बाहुसुशोभिताः ।
वरदाभयपाणिन्यः शक्तिशूलधराः पराः ॥१३३॥

रक्ताम्बरधराः सर्वा रक्तारुणा विचिन्तयेत् ।
तन्मध्ये चिन्त्यमात्मानमुदयादित्यसन्निभम् ॥१३४॥

कोदण्डद्वयमध्यस्थमभ्यसेत् तदहर्निशम् ।
मर्त्यजान् खेचरान् यक्षान्रक्षःपैशाचराक्षसान् ॥१३५॥

क्षोभयेद् द्वारदेशस्थः पुरं साधकपुङ्गवः ।
तत्रैव क्रमयोगेन चक्रावर्तेन चक्षुषा ॥१३६॥

कर्षयेन्निखिलं सर्वं फलपुष्पादिकं तथा ।
मर्त्यलोकादितः कृत्वा पातालादि दिवौकसाम् ॥१३७॥

चतुर्थं कथितं देवि पञ्चमं शृणु साम्प्रतम् ।
सीमन्योर्ध्वगतं चक्रं त्रिकूटस्थं वरानने ॥१३८॥

द्वादशारं महाचक्रं मात्राद्वादशभूषितम् ।
तदुद्भवा महादेव्यश्चक्रमध्ये विचिन्तयेत् ॥१३९॥

तारा तारेश्वरी लीना खेचरी क्षपिणी क्ष या ।
चञ्चला चर्चिका चण्डा अम्बराऽम्बरवासिनी ॥१४०॥

रुक्मिणी च वरारोहे द्वादशैतास्तु सिद्धिदाः ।
यत्र मध्यगता देव्यस्त्रिनेत्रैकचतुर्भुजाः ॥१४१॥

शङ्खपद्मधरा देवि वरदा चाक्षसूत्रकम् ।
रोचनाभाः सुदीप्ताश्च मध्ये शृङ्गाटगाः प्रिये ॥१४२॥

पिनाकी वामभागे तु मदध्नीशं[ततोऽर्घीशं] च दक्षिणे ।
चण्डनाथं वरारोहे अग्रभागे व्यवस्थितम् ॥१४३॥

तन्मध्ये संस्थितात्मानं तद्रूपं तु विचिन्तयेत् ।
स्तम्भयेता[दुग्र]गनाम्भोभिर्विमानपवनो महान् ॥१४४॥

नावादिशकटादीनां गजानां वाजिनां तथा ।
चौरादिपन्नगानां च स्तम्भमोहादिकं च यत् ॥१४५॥

पुनस्तत्क्रमयोगेन कृष्णवर्णं विचिन्तयेत् ।
मारयेद्यस्य संक्रुद्धो यः कपे[कोऽपि]म्रियते तु सः ॥१४६॥

सदेवासुरत्रैलोक्यं द्विपदं च चतुष्पदम् ।
चतुर्विधविघ[ष]स्यापि क्रुद्धः संहरणे क्षमः ॥१४७॥

षष्ठमोर्ध्वे परं स्थाने ब्रह्माधारेति कीर्तितम् ।
अप्रसिद्धेन मार्गेण हेलादोलैकतत्परः ॥१४८॥

विद्युल्लताघटाटोपं वारं वारं मुहुर्मुहुः ।
अभ्यसेद्यावद्योगीन्द्रस्तावदानन्दतां व्रजेत् ॥१४९॥

त्यजेत् स्वाभाविकं सर्वं संसारपथगोचरम् ।
निःसंज्ञो मृतवद्योगी 'काष्ठवदुपलक्षयेत् ॥१५०॥

सात्त्विकं राजसं भावं तामसं तु यदा भवेत् ।
त्रयावस्थागतो योगी[1] पूर्वलिङ्गसमो भवेत् ॥१५१॥
पूज्यते स सुरैः सर्वैः खेचरैस्तु तथा परैः ।
षट्प्रकारगतं लिङ्गं यो जानाति [च] तत्त्ववित् ॥१५२॥
एतत्ते कथितं सर्वं सरहस्यं तु गोपितम् ।
न देयं दुष्टबुद्धीनां ज्ञानचौरेषु शासनम् ॥१५३॥
यावन्तः सर्वभावेन कायक्लेशसहा नराः ।
ततश्चैवं प्रदातव्यं अन्यथा नरकं द्वयोः ॥१५४॥
एतत्कुलेश्वरं लिङ्गं प्रलयोत्पत्तिकारकम् ।
यो जानाति वरारोहे स सिद्धोत्ष[स्त्य]त्र शासने ॥१५५॥
तस्माल्लिङ्गं न निन्देत यावत्तावत्तनौ स्थितम् ।
सर्वेषां विद्यते ह्येष[ह्येतत्] कल्पनाप्यत्र कारणम् ॥१५६॥
पुरुषं मन्त्रजं लिङ्गं रौप्यं हैमं च मणिमयम् ।
मन्त्रमूर्तिं कुलेशानमावाह्याप्यत्र रोपितम् ॥१५७॥
स्वाधिष्ठानं तु तत्तस्य पूजनात्तत्पदं लभेत् ।
प्रथमं नहि सर्वस्य यतः सर्वज्ञता भवेत् ॥१५८॥
तस्मान्न निन्दयेल्लिङ्गं तन्मूर्तिगुणशालिनम् ।
सर्वज्ञत्वेऽपि संप्राप्ते समयानि प्रलापयेत् ॥१५९॥
तमोरजःप्रविष्टानामहङ्कारवशानुगाम् ।
न तेषां साधने सिद्धिर्जायते पतनं पुनः ॥१६०॥
ब्रह्मणे दर्शितं पूर्वं तल्लिङ्गं शृणु शाश्वतम् ।
श्रीकुलेश्वरदेवस्य लिङ्गाधारं शृणु प्रिये ॥१६१॥

१–१. नास्ति–क० ।

शृङ्गाटपुरमध्ये तु वृत्ताकारं त्रिमण्डलम् ।
चतुष्कं तु ततो बाह्ये प्रवाहं तत्र संस्थितम् ॥१६२॥

पिण्डिकोपरि दीप्यंतं[दिव्यं तत्] जगद्योनि महाम्बिके ।
चतुष्कलासमोपेतं चतुःपीठसमन्वितम् ॥१६३॥

चतुःसिद्धसमायुक्तं ज्ञात्वा सिद्धिफलप्रदम् ।
[ख]ङ्गीशं प्रथमे वृत्ते जलपट्टनिवेशितम् ॥१६४॥

वकश्रोत्तरमध्यस्थं रन्ध्रसन्धौ व्यवस्थितम् ।
श्वेतप्रणालके द्विस्थं प्रवाहे संव्यवस्थितम् ॥१६५॥

भृगुमेखलरूपेण समन्तात् परिमण्डलम् ।
शृङ्गाटके तु पीठानि खातस्याग्रे तु लेखयेत् ॥१६६॥

ओजापूकामं ततं तु मध्यदक्षिणवामतः ।
अग्रदेशे तु कोटिस्थं शृङ्गाटं चतुरस्रकम् ॥१६७॥

वृत्तोद्धारक्रमादेकमाधारं चतुरङ्गुलम् ।
तत्राभ्यासं प्रकुर्वीत अभिषेकगुणान्वितः ॥१६८॥

आज्ञालब्धगुरोर्भक्तं[क्तः] चतुर्मासात्फलं लभेत् ।
जलपट्टगतं चक्रं षोडशारं सकर्णिकम् ॥१६९॥

शृङ्गाटपुरमध्यस्थमादिपीठं तु मध्यगम् ।
दलमध्यगतं चिन्त्यं खङ्गीशं तु वरानने ॥१७०॥

कलाषोडशकैर्भिन्नमेकैकं तु पृथक् पृथक् ।
तन्मध्ये संस्थितात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥१७१॥

शुक्लवर्णं यदा ध्यायेत् शान्ति पुष्टिं परां व्रजेत् ।
तत्पूज्य वकनाथाख्यं द्वादशारे व्यवस्थितम् ॥१७२॥

कलै[ला]द्वादशभिर्भिन्नं वकीशं बीजं सुन्दरि ।
दक्षपीठं तु मध्यस्थं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ॥१७३॥

आत्मान सहितं ध्यायेत् क्षीराभं क्षीरवर्चसम् ।
पुष्टिं श्रियं तथारोग्यं पूर्वाभ्यासफलं लभेत् ॥१७४॥

श्वेतं मृणालं रन्ध्रस्थं षोडशारं सुवर्चसम् ।
कलै[ला]षोडशभिर्युक्तं वामपीठं तु मध्यगम् ॥१७५॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु तत्रात्मानं विचिन्तयेत् ।
अभ्यसेत् क्रमयोगेन वश्याकर्षणमारणम् ॥१७६॥

रक्तवर्णं यदा ध्यायेद् वश्यकर्मणि शस्यते ।
सिन्दूराभं यदा ध्यायेत् कर्षयेद्योजनाच्छतात् ॥१७७॥

कृष्णवर्णं यदा ध्यायेत् संहरेत् सचराचरम् ।
रोगव्याधिजयो पुष्टिः क्रमात् खेचरतां व्रजेत् ॥१७८॥

भृगुबीजं वरारोहे द्वादशारे व्यवस्थितम् ।
कलैर्द्वा[लाद्वा]दशभिर्युक्तमेकैकं पत्रमध्यतः ॥१७९॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु कामबीजं तु मध्यगम् ।
आत्मना सहितं ध्यात्वा अभ्यसेत् क्रमयोगतः ॥१८०॥

शान्तिपुष्टिवशाकर्षं पुरक्षोभं पृथुश्रियम् ।
बलीपलितनाशं च वागीशत्वं प्रवर्तते ॥१८१॥

संजीवनं मृतात्मनां द्रुमाकृष्टिर्जलप्लवम् ।
वातमेघनदीनां च स्तम्भः कृत्यापहारिणाम् ॥१८२॥

वाचां सिद्धिः प्रभुत्वं च स्तोभकृत् पर्वतादिषु ।
स्तम्भयेत् सर्वसैन्यानि आधारगतचेतसः ॥१८३॥

आधारं क्रममित्युक्तं नदीनां साधनं नहि ।
न मोक्षो नैव भुक्तिश्च यावदात्मा न वेदितः ॥१८४॥

एतदाधारमाख्यातं आज्ञाभेदं शृणुष्व मे ।
चक्रमष्टारं देवेशि कलाश्चाष्टौ दले स्थिताः ॥१८५॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु स्थाणुं रुद्रं व्यवस्थितम् ।
अकारादौ कला देवि नादबिन्दुकलान्विता ॥१८६॥

तप्तचामीकरप्रख्यमात्मना सहितं स्मरेत् ।
दक्षसंधौ वरारोहे ध्यायमानमहर्निशम् ॥१८७॥

स्तम्भमोहवशाकृष्टिः खेचरत्वं पृथुश्रियम् ।
वामे शङ्खगतं चक्रं द्वादशारं सुवर्चसम् ॥१८८॥

आदि ओकारपर्यन्तं कलान्येनापि चिन्तयेत् ।
शृङ्गाटपुरमध्ये तु भूतीशमात्मना सह ॥१८९॥

हिमपारदसंकाशं ध्यायमानमहर्निशम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन शाम्भवं पदमाप्नुयात् ॥१९०॥

अणिमादिगुणान् देवि आज्ञासिद्धिः प्रवर्तते ।
कुरुते विविधाश्चर्यं सृष्टिसंहारकारकः ॥१९१॥

अनेन ज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ।
क्रमं शाम्भवमित्याहुर्यस्मात् संभवतेऽखिलम् ॥१९२॥

वाचां सिद्धिः पुरक्षोभं सर्वा आज्ञा प्रवर्तते ।
शाम्भवाभ्यासमात्रेण क्रमं दिव्यं प्रवर्तते ॥१९३॥

स्थाणुं रुद्रं तु शक्तिस्थं भारभूतेशशाम्भवम् ।
अधिकारात्मिका ह्येषा विशेषगुणदायिका ॥१९४॥

न मोक्षो विद्यते तस्य प्रसादान्ता विवर्जिता ।
प्रसादं क्रममित्युक्तं क्रमज्ञानं तु शाम्भवम् ॥१९५॥

शाम्भवेन समस्तार्थान् वेत्ति पश्यति चाग्रतः ।
यदा दृष्टसमस्तार्थान् गुरुतः शास्त्रतः स्वतः ॥१९६॥

तदासौ क्रमिकः प्रोक्तः क्रमतुल्योऽथ चाहि[स्ति] सः ।
आज्ञाभ्यासेन सुक्रि[-यः] स्या[द्] यावदात्मा न वेदितः ॥१९७॥

सबाह्याभ्यन्तरं भद्रे अतीर्श[तिसं]तोषयेद् गुरुम् ।
सर्वाङ्गभक्तियुक्तस्य विशुद्धेनान्तरात्मना ॥१९८॥
भक्त्या चाराधयेन्नाथं तस्य सर्वं प्रवर्तते ।
या भक्तिः सा भवेच्छक्तिः शक्त्या संक्रमते क्रमम् ॥१९९॥
क्रमात्संभवते वाचा[क् च] वाचा चाज्ञा प्रवर्तते ।
यादृशेन तु भावेन गुरुदेवमुपासते ॥२००॥
यादृग्भावेन तस्याज्ञा किञ्चिच्चासनं संक्रमेत् ।
उपरोधप्रसङ्गेन उक्तकालादवान्तरे ॥२०१॥
किञ्चिच्चाज्ञा भवेत्तस्य भूतोऽस्मि गुणसंकुलम् ।
परिपक्वफलं यद्वत् सुस्वादुगुणसंयुतम् ॥२०२॥
तद्वच्छिष्योऽपि कालेन [स] समस्तार्थविद् भवेत् ।
अदृशो हिततत्त्वेदं यथाम्रफलभक्षणम् ॥२०३॥
तथा चापक्वशिष्याणां वृथा ज्ञानं परिश्रमः ।
सामर्थ्येनाविदत्ताज्ञा भूतांशेन समाविशेत् ॥२०४॥
कर्मग्रस्तो ह्यहङ्कारी अहङ्काराद्विनश्यति ।
एकपक्षः समाख्यातः साम्प्रतं वैदिकं[1] शृणु ॥२०५॥

स्थूलमार्गेण सूक्ष्मत्वं क्रमादेव प्रजायते ।
भेदो रन्ध्रस्तथा छिद्रमेका संज्ञा यशस्विनि ॥२०६॥
सबीजा चेति निर्बीजा स्थितिभेदो द्विधा स्थितः ।

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव तमोऽन्धपटछेदक ॥२०७॥
त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं चक्रभेदमनेकधा ।
आधारं लिङ्गभेदं तु षट्प्रकारं तथा पुरम् ॥२०८॥

---

१. चैत्तिकं—ख० ।

त्वत्प्रसादान्मया ज्ञानं[तं] षट्पर्वं षट्पदं विभो ।
अधुना परिपृच्छामि कुलवागेश्वरीं पराम् ॥२०९॥

पदद्वादशसंयुक्तां[1] स्थानं ध्यानं वद प्रभो ।
यथा[स्यां] विज्ञातमात्राया[यां] कृतकृत्या भवाम्यहम् ॥२१०॥

भैरव उवाच

साधु साधु महाभागे कथयामि तव प्रिये ।
यथा विज्ञातमात्राया[यां] भुक्तिमुक्तिफलं लभेत् ॥२११॥

चामुण्डा पूतना देवी महाकाली तृतीयका ।
चामुण्डा च पुनर्देवी मोहन्यासनसंस्थिता ॥२१२॥

पूतना पुनरादाय ज्ञानदेव्या विभेदि[द]तः ।
कुलवागेश्वरी देवी पञ्चाक्षरा उदाहृता ॥२१३॥

प्रणवपञ्चकमाद्यन्ता चतुरक्षरसंयुता ।
भवते देवदेवेशि आज्ञासिद्धिफलप्रदा ॥२१४॥

श्रीकण्ठं चोष्मणा युक्तं लाकुलस्यादिमं पुनः ।
उपदेशेन ज्ञातव्यं शाम्भवं भृगुरावधिः ॥२१५॥

कोदण्डं नासिकाग्रं च वाक्ये कण्ठे हृदि क्रमात् ।
नाभिराधारमेढ्रं च लिङ्गमूलं तथा परे ॥२१६॥

जानू पादौ वरारोहे द्वादशैतान् समभ्यसेत् ।
वज्ररन्ध्रान्तरे ध्यात्वा कोदण्डद्वयमध्यगम् ॥२१७॥

द्वादशारं महाचक्रं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ।
वागेश्वर्या समायुक्तं पत्र[2]मध्ये विचिन्तयेत् ॥२१८॥

---

१. यद्यदा द्वादशं गुक्ता—क० । २. यंत्र०—क० ।

शृङ्गाटपुरमध्ये तु प्रणवं कौलिकं प्रिये ।
चकाराज[दीन्] क्रमाद्वर्णान् चतुःपत्रेषु दापयेत् ॥२१९॥

निर्वाहयेत् क्रमेणैव यावत् शोकः[श्लोकः] समाप्यते ।
आकारादौ विसर्गान्तं पत्रमध्ये विचिन्तयेत् ॥२२०॥

ओजपूकामसंयुक्तं हिमकुन्देन्दुसन्निभम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं ताराभं तारकाकृतिम् ॥२२१॥

एवमभ्यस्यमानस्य साधकस्य महात्मनः ।
षण्मासाभ्यासयोगेन खेचरीसमता व्रजेत् [भवेत्] ॥२२२॥

खे गतिर्भवते तस्य शाम्भवं विन्दते गुणम् ।
हर्ता कर्ता स्वतन्त्रोऽसावणिमादिगुणाश्रयः ॥२२३॥

प्रथमं चक्रयोगं तु द्वितीयं शृणु साम्प्रतम् ।
द्वादशारं महाचक्रं शृङ्गाटाकृतिमध्यगम् ॥२२४॥

विद्यापदं ततोर्द्धं[र्ध्वं] तु प्रणवस्य तु मध्यगम् ।
अमोघासहितं तच्च नादबिन्दुकलान्वितम् ॥२२५॥

प्रमेयसहितं भद्रे मोहन्या मध्ययोजितम् ।
आत्मना सहितं ध्यायेत् सर्वकामफलप्रदम् ॥२२६॥

नासाग्रे चिन्तयेद्देवि शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ।
भ्रमन्तं चिन्तयेच्चक्रं प्राणानिलसमन्वितम् ॥२२७॥

षण्मासाभ्यासयोगेन छिद्रां पश्यति मेदिनीम् ।
अदृष्टमश्रुतं वापि पृष्टोऽसौ कथयिष्यति ॥२२८॥

वाग्विलासं प्रवर्तेत दिव्यदृष्टिः श्रुतागमम् ।
कुरुते विविधाश्चर्यं यदा तद्गतमानसः ॥२२९॥

वक्त्रचक्रं तथा चान्यं यथाविधि व्यवस्थितम् ।
द्वादशारं महाचक्रं शृङ्गाटं तत्र मध्यगम् ॥२३०॥

विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजं च मध्यगम् ।
गुह्यशक्त्या तु संभिन्नं नादबिन्दुकलान्वितम् ॥२३१॥

ओजपूकसमायुक्तमात्मना सहितं स्मरेत् ।
नीलाञ्जननिभाकारं स्रवन्तमिव चिन्तयेत् ॥२३२॥

वर्षन्तं च महौघेन सिद्धि[द्धिं] स्वेदाम्बुबिन्दुभिः ।
षण्मासाभ्यासयोगेन वलीपलितवर्जितः ॥२३३॥

स्तम्भमोहादिकान् देवि मारणोच्चाटनादिकम् ।
कुरुते विविधाश्चर्यं वक्त्रचक्रे तु ध्यानकृत् ॥२३४॥

कण्ठकूपगतं चक्रं द्वादशारं सुवर्चसम् ।
शृङ्गाटं तत्र मध्ये तु ओजपूकसमन्वितम् ॥२३५॥

विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजं च मध्यगम् ।
जिह्वाबीजसमायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ॥२३६॥

आत्मना सहितं ध्यायेद् इन्द्रचापनिभं प्रिये ।
षण्मासलययोगेन दिव्यदेहः प्रवर्तते ॥२३७॥

अतीतानागतं चैव पृष्टोऽसौ कथयिष्यति ।
वश्याकर्षणमासेन कूपचक्रे ल[ये] स्थितः ॥२३८॥

हृच्चक्रं द्वादशारे तु शृङ्गाटपुरमध्यगम् ।
ओजपूकामुकैर्भेदैर्विद्यापदसमन्वितैः ॥२३९॥

प्राणवर्णस्थितं मध्ये मोहिनीशक्तिसंयुतम् ।
नादबिन्दुकलाक्रान्तमात्मानं[त्मना] सहितं प्रिये ॥२४०॥

तप्तचामीकरप्रख्यं दीप्यमानं सुतेजसम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥२४१॥

वश्याकर्षणं मोहं च स्तम्भनं शत्रुसंगरे ।
सैन्यस्तम्भं पुरक्षोभं चावेशं दिव्यजल्पनम् ॥२४२॥
कुरुते विविधाश्चर्यं हृच्चक्रगतमानसः ।
नाभिस्थं तु पुनश्चक्रं द्वादशारं सकर्णिकम् ॥२४३॥
शृङ्गाटाकृतिमध्यस्थं ओजपूकसमन्वितम् ।
विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजं तु मध्यगम् ॥२४४॥
प्रज्ञारूपं च देवेशि नादबिन्दुकलान्वितम् ।
आत्मानं[त्मना] सहितं देवि चक्रमध्यगतं स्मरेत् ॥२४५॥
ध्यात्वा विद्युल्लताकारं दीप्यमानं सुतेजसम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन शृणु वक्ष्यामि ये गुणाः ॥२४६॥
निग्रहानुग्रहं देवि परकायप्रवेशनम् ।
प्रतिमाचालनं चैव जल्पायनं च[जलयानस्य] स्तम्भनम् ॥२४७॥
स्फोटनं शैलवृक्षाणां द्रुमाकृष्टिर्जलप्लवम् ।
विविधाश्चर्यकर्तारं नाभिचक्रं यदाभ्यसेत्[1] ॥२४८॥
चक्रमाधारसंज्ञं तु द्वादशारं सकर्णिकम् ।
शृङ्गाटपुरसंयुक्तं ओजपूकसमन्वितम् ॥२४९॥
विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजं तु मध्यगम् ।
ज्ञानशक्तिसमायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ॥२५०॥
आत्मानं[त्मना] सहितं ध्यायेत् सिन्दूरारुणवर्चसम् ।
महादीप्तिकरं दिव्यं द्योतयन्तं नभस्थलम् ॥२५१॥
ध्यायमानं वरारोहे नित्यमेवमहर्निशम् ।
षण्मासाभ्यासयोगेन शृणु तेषां च ये गुणाः ॥२५२॥

---

१. भवेत्—क० ।

कम्पनं धूननं मूर्छा वश्याकर्षणस्तम्भनम् ।
सौभाग्यमतुलं देवि दिव्यरूपं महाद्भुतम् ॥२५३॥

वाचां सिद्धिं पुरक्षोभं दिव्यदृष्टिश्रुतागमम् ।
कुरुते विविधाश्चर्यं आधाराभ्यासयोगतः ॥२५४॥

मेढ्चक्रं वरारोहे द्वादशारं सकर्णिकम् ।
मध्ये शृङ्गाटकं तस्य ओजपूकसमन्वितम् ॥२५५॥

विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजसमन्वितम् ।
कारयेद् देवदेवेशि क्रियाशक्तिसमन्वितम् ॥२५६॥

नादबिन्दुकलाभिन्नमात्मानं सहितं स्मरेत् ।
दाडिमीकुसुमप्रख्यं जवाहिङ्गुलवर्चसम् ॥२५७॥

ध्यायेच्चात्मनि संलीनमापादतलमस्तकम् ।
दिव्यकान्तिप्रभं देवि दिव्यदृष्टिः प्रवर्तते ॥२५८॥

वश्याकर्षणमावेशं कालसंहरणं प्रिये ।
मृत्युनाशं पुरक्षोभं मेघवृष्टिजलप्लवम् ॥२५९॥

अकालफलनं देवि फलपुष्पादिकर्षणम् ।
विज्ञानं कुरुते देवि षण्मासाभ्यासयोगतः ॥२६०॥

लिङ्गचक्रं वरारोहे द्वादशारं सकर्णिकम् ।
शृङ्गाटपुरमध्यस्थं ओजपूकाद्युकं[युतं] प्रिये ॥२६१॥

विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजसमन्वितम् ।
गायत्रीभेदितं कृत्वा नादबिन्दुकलान्वितम् ॥२६२॥

आत्मानं[त्मना] सहितं ध्यायेत् कृष्णाञ्जननिभं प्रिये ।
आपादतलसंलग्नं भिन्नाञ्जनतनुस्थितम् ॥२६३॥

अनेनाभ्यासयोगेन वलीपलितवर्जितः ।
क्रुद्धः संहरते सर्वं क्रुद्धः कालं विनाशयेत् ॥२६४॥

मारणोच्चाटनं देवि विद्वेषाकर्षणं प्रिये ।
षण्मासध्यानयोगेन नानारूपधरो भवेत् ॥२६५॥

ऊरुचक्रं यदाभ्यस्तं द्वादशारं सकर्णिकम् ।
शृङ्गाटतट[पुर]मध्यस्थमोजपूकामलङ्कृ[संयु]तम् ॥२६६॥

विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजसमन्वितम् ।
सावित्रीबीजसंयुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ॥२६७॥

आत्मानं तत्रगं ध्यात्वा पीताभं पीतवर्चसम् ।
अभ्यासक्रमयोगेन नित्यमेवमहर्निशम् ॥२६८॥

षण्मासाभ्यासयोगेन प्रत्ययान् कुरुते बहून् ।
स्तम्भनं मोहनं कम्पं कीलनं जृम्भणं प्रिये ॥२६९॥

शत्रुसैन्यनिपातं तु आत्मसैन्यस्य रक्षणम् ।
कीलनं शत्रुसंघानां मुखस्तम्भकरं परम् ॥२७०॥

मूकत्वं बधिरत्वं च प्रतिमानां च स्तम्भनम् ।
कुरुते विविधाश्चर्यं ऊरुचक्रं यदाभ्यसेत् ॥२७१॥

जानुचक्रं वरारोहे द्वादशारं सकर्णिकम् ।
शृङ्गाटपुरमध्यस्थं दीप्यमानं सुतेजसम् ॥२७२॥

ओजपूकाममध्यस्थं विद्यापदसमन्वितम् ।
प्राणबीजगतं मध्ये कुसुमाख्यविभेदितम् ॥२७३॥

नादबिन्दुकलाक्रान्तमात्मानं[त्मना] सहितं स्मरेत् ।
रक्तारुणप्रतीकाशं दीप्ति[प्त]सूर्यसमप्रभम् ॥२७४॥

कुरुते विविधाश्चर्यं यस्येदं हृदि संस्थितम् ।
द्रव्याकृष्टिर्जलाकृष्टिः फलपत्रादिकर्षणम् ॥२७५॥

अन्तर्ध्यानं कवित्वं च मूकस्यापि हि जल्पनम् ।
विज्ञानानि बहूनि स्युर्ज्ञानचक्रं यदा स्मरेत् ॥२७६॥

पादचक्रं यदाभ्यस्तं द्वादशारं सकर्णिकम् ।
शृङ्गाटमध्यगं देवि ओजपूकसमन्वितम् ॥२७७॥
विद्यापदसमायुक्तं प्राणबीजं च मध्यगम् ।
इच्छाशक्तिसमायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम् ॥२७८॥
ध्यात्वा वज्रप्रतीकाशं बिनु[द्यु]माभं सुवर्चसम् ।
आत्मानं[त्मना] सहितं ध्यात्वा नित्यमेवमहर्निशम् ॥२७९॥
षण्मासानि यदाभ्यस्तं पादचारी भवेद् ध्रुवम् ।
योजनानां सहस्रैकं गत्वा च पुनरागमेत् ॥२८०॥
अदृश्यो भवते क्षिप्रं देवैः सिद्धि[द्धै]र्महोरगैः ।
अणिमादिगुणावाप्तिः शाम्भवाज्ञाप्रकाशकः ॥२८१॥
क्रीडते विविधाकारैः सिद्धकन्यादिभिः प्रिये ।
भ्रमते च यथेच्छं वै आब्रह्मभुवनान्तिकम् ॥२८२॥
पादचक्रं महाचक्रं खेचरादिगुणप्रदम् ।
श्लोकद्वादशकोपेतं चक्रद्वादशकान्वितम् ॥२८३॥
गुरुवक्त्रसमोपेतं ध्यात्वा वाचा प्रसाधयेत् ।
स्मरणं मात्रयोगेन कालक्षेपो न चात्र वै ॥२८४॥
अथ चेदभ्यसेद्देवं वज्रकोदण्डकान्तरे ।
सर्वज्ञत्वं भवेत्तस्य क्रियाख्यं यावत् सुन्दरि ॥२८५॥
क्रियामावर्तते वाचा वाचाज्ञा मोहशालिनी ।
वागीशत्वं पुनः पश्चाद्वाङ्मयं सृजतेऽखिलम् ॥२८६॥
ज्वलन्तं स्वैश्च तेजोभिः कुलालीवाममार्गगः ।
स ज्येष्ठः कुलसंताने रौद्रशक्तिभिरावृतः ॥२८७॥
त्रयस्त्रिंशतिमे तत्त्वे अधिकारो लयः परे ।
संवर्तः केवलो नाथः सबीजो बीजवर्जितः ॥२८८॥

अस्वरन्ध्रान्तरे स्थानं आज्ञा ध्यानं तु शाम्भवम् ।
न मन्त्रोच्चारणं ज्ञानं मुद्रा ध्यानं न किञ्चन ॥२८९॥

नायामो न निरोधश्च ग्रन्थिभेदो न धारणा ।
सर्वायामविहीनोऽसौ किन्तु स्थानविकल्पना ॥२९०॥

अर्द्धोर्द्धे[ऊर्ध्वाधो] रोमसंस्थाने तत्र भावं विनिःक्षिपेत् ।
ऊर्द्धं[र्ध्वं]ग्रन्थिरधः स्कन्धो मध्ये किञ्चिन्न विद्यते ॥२९१॥

तत्स्थानं शाम्भवं विद्धि शम्भुरन्ध्रोपलक्षितम् ।
न किञ्चिच्चिन्तनं तत्र ईषेद् (?) रोपणं चितौ ॥२९२॥

एवं संस्मरणादेव ज्ञानानन्दः प्रवर्तते ।
वाचामात्रेण चान्येषां कुरुते प्रत्ययान् बहून् ॥२९३॥

सकृत् संस्मरणादेवमभ्यसंश्च श्रियं लभेत् ।
विज्ञानानि च सर्वाणि षण्मासाभ्यासयोगतः ॥२९४॥

चतुस्त्रिंशपदेशान विद्यते वत्सराष्टकम् ।
तत्स्थानं सहजं तस्य संयोगं यदि तस्य वै ॥२९५॥

भुजङ्गानुग्रहीशे[ते]न मन्त्रयुक्तेन तत्प्रिये ।
उच्चारन्तो[यन्] हनेत्सृष्टिं लकुलीशान्स कारकः ॥२९६॥

भोगश्चास्य हि नादान्ते लयः स्याद्व्यापिनीपदे ।
आज्ञाभेदे द्वयं नाथ एतत्तत्परमार्थतः ॥२९७॥

'शक्तिमार्गगतं विद्धि शेषास्यं चोत्तरे पुनः ।
एतत्षत्तं[न्मतं] परं शान्तं दक्षिणं परिकीर्तितम्' ॥२९८॥

योनिषट्कसमायुक्तं सद्यो मेलकदायकम् ।
त्वया मह्यं मया तुभ्यं त्वया मह्यं पुनर्मया ॥२९९॥

१-१. नास्ति-क० ।

कथितं तव सुश्रोणि त्वत्संगान्येषु मोक्षदम् ।
पशुपक्षिमृगा वृक्षास्तृणगुल्मसरीसृपाः ॥३००॥

द्विपदाश्चतुष्पदा देवि क्रव्यादाश्च मृगादयः ।
व्याख्यानं यत्र मार्गस्य मुच्यन्ते तेऽपि नान्यथा ॥३०१॥

येन वर्षसहस्रं तु भक्त्या चाराधितो ह्यहम् ।
जन्मन्यपश्चिमे पुंसां जायेतेदं सुदुर्लभम् ॥३०२॥

चेतश्चिन्ताविहीनानां प्रसङ्गान्मुक्तिदं प्रिये ।
किं पुनर्भक्तियुक्तानां संगादेव न मुक्तिदम् ॥३०३॥

अतोर्ध्वं[र्ध्वं] सहसंयोगं खानपानं (?) सहासनम् ।
वस्त्रमाल्योपहाराणि स्वजुष्टान्नं न दापयेत् ॥३०४॥

असत्संगं न कर्तव्यं सत्संगं न परित्यजेत् ।
शुद्धासप[शय]समाचारो ज्ञानाधारं प्रपूजयेत् ॥३०५॥

विशुद्धं काञ्चनं यद्वन्नागसंगाद्विनश्यति ।
एवं विशुद्धतत्त्वोऽपि असत्संगाद्विनश्यति ॥३०६॥

योगिनां गर्भसंभूतो कुले वीरांशसंभवः ।
सिद्धोऽसौ सिद्धसंताने षट्पदार्थं स[र्थस्य] विन्दकः ॥३०७॥

एतत्ते कथितं सर्वं दक्षिणेदं सलक्षणम् ।
योगषट्कं कुलाधारं पृच्छ चान्यं[न्यद्] यदिच्छसि ॥३०८॥

इति श्रीमन्महामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

द्वादशश्लोकनिर्णयो नाम

पञ्चदशः पटलः ॥१५॥

षोडशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

दया च परद्या[मा] मह्यं मण्डलीशं कुलाकुलम् ।
षट्पदार्थं मया ज्ञातं श्लोकद्वादशकं तथा ॥ १ ॥

मन्त्रं तन्त्रं त्वया नाथ श्रामितो[ता]हं क्रियादिभिः ।

ध्यानधारणयोगश्च इदानीं कथय स्फुटम् ॥ २ ॥

पूर्वतन्त्रे त्वया देव सूचितं न प्रकाशितम् ।
अधुना श्रोतुमिच्छामि षट्पदार्थस्य निर्णयम् ॥ ३ ॥

श्रीभैरव उवाच

महानन्दकरं वाक्[क्यं] महदाश्चर्यकारकम् ।
गोपितं सर्वदेवानां तथापि कथयाम्यहम् ॥ ४ ॥

अनादिनिधनेशानाच्छिवात् परमकारणात् ।
दिव्याज्ञायाः क्रमो जातः पारम्पर्यक्रमं यथा ॥ ५ ॥

अकुलं च कुलं चैव कुलाकुलविनिर्णयम् ।
अधुना कथयिष्यामि नवधा निर्णयो यथा ॥ ६ ॥

परस्य परमा सिद्धिर्योनिमा[रा]द्या महाम्बिका ।
रूपातीतादियोगेन परीक्षेयं चतुर्विधा ॥ ७ ॥

रूपातीतं तु कामाख्यं रूपपूर्णं महागिरिः ।
पदं जालन्धराख्यं तु पिण्डोत्तमं[ड्याणं] प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥

अन्तिमामृतगं सूक्ष्मासुषुम्णादिचतुष्टयम् ।
दलाकृतिः सुषुम्णा च सूक्ष्मा बिन्दुस्वरूपिणी ॥ ९ ॥

अर्द्धेन्दुरमृता प्रोक्ता नपुंसकपदे स्थिता ।
अकुलेश्वरदेवस्य संवर्तः प्रथमः स्मृतः ॥ १० ॥

रूपातीतात्परो बिन्दुः शाक्ता[शक्त्या]धिष्ठितभास्वरः ।
ततो नादो निरोधश्च अर्द्धचन्द्रमनुक्रमात् ॥ ११ ॥

एतत्ते पञ्चकं प्रोक्तं ज्ञानरत्नं महोदयम् ।
सा योनिः परमा ज्ञेया क्रियाज्ञानमहोदधिः ॥ १२ ॥

विन्दुतत्त्वात्परो बिन्दुर्मकारोऽकार एव च ।
उकारस्तु समाख्यातः षट्पदार्थविभेदकः ॥ १३ ॥

रूपात्पदं समुद्भूतं कालरूपं षडध्वरम् ।
षड्विधार्थप्रयोगेन सृजते सुन्दरं तथा ॥ १४ ॥

आधाराधारयोगेन षट्पदार्थक्रमेण च ।
अकारं चैव आधारं स्वाधिष्ठानमुकारकम् ॥ १५ ॥

मकारं मणिपूराख्यं बिन्दुरूपमनाहतम् ।
विशुद्धं कालरूपं स्याद् आज्ञा बिन्दुसमाश्रितम् ॥ १६ ॥

कुरुते विविधां सृष्टिं येन ते कथ्यते पुनः ।
पुनरन्यं[न्यत्] प्रवक्ष्यामि षट्प्रकारस्य निर्णयम् ॥ १७ ॥

आत्मा धारयते शक्तिः नो चेद् द्वेधा परिस्थितः ।
हंसः समीरणान्तस्थः स च नाभिपदे स्थितः ॥ १८ ॥

नाभ्यः[भेः] पिण्डं समासाद्य मलमायासमन्वितः ।
आत्मा विन्दुः समाख्यातः शक्तिर्विश्वाण्डरूपिणी ॥ १९ ॥

हंसो हलाकृतिर्भद्रे बिन्दुरूपं समीरणम् ।
पथं[दं] चार्द्धकला प्रोक्ता पिण्डिनी खस्वरूपिणी ॥ २० ॥

एतत् षट्कं समाख्यातं कुलमार्गप्रबोधकम् ।
अत्र जातं जगत्सर्वं क्रियाकारणगोचरम् ॥ २१ ॥

परं च शाम्भवं तत्त्वं ज्ञानविज्ञानसंकुलम् ।
विशुद्धिर्बोधजननी षोडशान्तमथोर्द्ध[र्ध्व]तः ॥ २२ ॥

मणिपूरकशब्दस्थपदं पञ्चावतारकम् ।
सा तु माया परा ज्ञेया चतुर्योनिर्वरानने ॥ २३ ॥

शब्दसूत्रेण ये नीताः पञ्चाशन्मणयो महान् ।
आपूरितास्तु मदनी तेनेदं मणिपूरकम् ॥ २४ ॥

अस्याधारं तु विज्ञेयं कान्यकुब्जं महापुरम् ।
त्रिभिः पदैस्तु विज्ञानैः पूरितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥ २५ ॥

मणिपूरकमालायां ग्रन्थिर्जाता चतुर्विधा ।
मुद्रा मण्डलं मन्त्रश्च विद्याग्रन्थिश्चतुर्विधा ॥ २६ ॥

मात्रान्यत्रोदरे चान्या पुंसां सृष्टिमनाहते ।
नन्दते दशधा सा तु दिव्यानन्दप्रदायिका ॥ २७ ॥

चिणीति प्रथमं शब्दं चिंचिणीति द्वितीयकम् ।
चिरवाकी तृतीयं स्याच्छङ्खशब्दं (?) चतुर्थकम् ॥ २८ ॥

पश्चिमं तन्त्रनिर्घोषं षष्ठं वंशरवं प्रिये ।
सप्तमं कांसतालं च मेघशब्दं तथाष्टमम् ॥ २९ ॥

नवमं दाद्यनिर्घोषं दशमं दुन्दुभिस्वनम् ।
नवशब्दान् परित्यज्य दशमं मोक्षदायकम् । ३० ॥

हननेन विना देवि व्याहरेद्दशधा रवम् ।
उपशब्दे पदप्राप्तं समाधिविषये स्थितः ॥ ३१ ॥

अष्टधा रवते देवि अष्टपत्रोपरि स्थितः ।
दशधा गुणवेत्तारो अनाहतपदे स्थिताः ॥ ३२ ॥

प्रमाणपदभेदेन भेदयित्वा मनो बहून् ।
कलाकल्पसमायोगात् स्वाधिष्ठानं विनिर्मितम् ॥ ३३ ॥

शतकोटिसुविस्तीर्णं भुवनानेकसंकुलम् ।
मायाजालकलाकीर्णमाधारं ब्रह्मणः स्तुतम् ॥ ३४ ॥
चतुष्कलसमोपेतं शिवशक्तिसमन्वितम् ।
षट्प्रकारमिदं लब्धि स्वाधिष्ठानं पृथक् पृथक् ॥ ३५ ॥
षट्पदार्थविशेषोऽयं दुर्लभः प्रकटीकृतः ।
क्रियातत्त्वार्थनिर्देशं लब्धि चान्यत्र गोपितम् ॥ ३६ ॥
कुलाकुलमिदं षट्कमुत्तरं ते प्रकाशितम् ।
दक्षिणस्यापि षट्कस्य साम्प्रतं निर्णयं शृणु ॥ ३७ ॥
मणिपूरकदेवस्य तत्त्वं ज्योतिःपुरं च यत् ।
तत्र ते दक्षिणं षट्कमाज्ञापूर्वं कुलोद्भवम् ॥ ३८ ॥
सृष्टिमार्गक्रमायातं शिवशक्तिकुलाकुलम् ।
संहारक्रमषट्कं तु कुलशक्त्याश्च दक्षिणम् ॥ ३९ ॥
गुदमाधारमित्युक्तं स्वाधिष्ठानं तु लिङ्गजम् ।
मणिपूरकनाभिस्थं हृत्स्थं देवमनाहतम् ॥ ४० ॥
विशुद्धिः कण्ठदेशे तु आज्ञा नेत्रद्वयान्तरम् ।
आनन्दश्चावणिश्चैव प्रभुर्योगी तथैव च ॥ ४१ ॥
अतीतश्चैव पादश्च षट् प्रकाराः प्रकीर्तिताः ।
विशुद्धिः षोडशैर्भेदैर्द्वादशारमनाहतम् ॥ ४२ ॥
मणिपूरकं विज्ञेयं भेदैस्तु दशभिः स्थितम् ।
अनेकार्थगणोपेतं स्वाधिष्ठानं तु षड्दलम् ॥
चतुर्दलं तु आधारम् आज्ञाभेदद्वयं विदुः ॥ ४३ ॥

श्रीकुब्जिकोवाच

आज्ञाभेदद्वयं नाथ वद मे[1] परमेश्वर ।
आज्ञाचक्रं प्रयत्नेन येन भ्रान्तिर्विनश्यति ॥ ४४ ॥

१. कथिता–ख० ।

श्रीभैरव उवाच

लक्षवारसहस्रैस्तु वारं वारं पुनः पुनः ।
एष सांकेतिको ह्रत्थः[ह्यर्थः] कथ्यमानं[नो] न बुद्ध्यसे ॥ ४५ ॥

शाम्भवं कथितं ज्ञानं सृष्टिमार्गेण शाक्तगम् ।
इच्छाशक्तिसमायोगादुत्तरं ते प्रकाशितम् ॥ ४६ ॥

इच्छाज्ञानं परित्यज्य शम्भुस्तत्रापि दक्षिणम् ।
क्रियाशक्तिरधोभागैः संयोगात् प्रत्ययाय ते ॥ ४७ ॥

ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन स्वात्मशक्तिनिकुञ्चनात् ।
कुरुते विविधां सृष्टिमनेकाकाररूपिणीम् ॥ ४८ ॥

न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तिरहितः शिवः ।
क्रियाधारस्य मार्गोऽयं परेच्छा शंभुः केवलम् ॥ ४९ ॥

उत्तरस्य तु मार्गस्य चतुष्कं च सुसूक्ष्मगम् ।
क्षोभते तेन चात्मानं पुनः षोडशधा कृतम् ॥ ५० ॥

विशुद्धं परमं तत्त्वं तेनात्मानं विसंधितम् ।
चतुस्त्रिंशतिभेदेन तस्मादेतदनेकधा ॥ ५१ ॥

मप्रत्यय श्रु[गु]णाधार या[म]वस्थागुणदायकम् ।
लंकृता येन सुश्रोणि तच्छृणुष्व यथार्थतः ॥ ५२ ॥

मुक्ताहारनिभाकारं क्वचिज्ज्वालावलीप्रभम् ।
क्वचिन्मर्कटिजालाभं मृगतृष्णेव चापरम् ॥ ५३ ॥

रूपातीतस्वरूपं तु पदपिण्डं चतुष्टयम् ।
विशुद्धितत्त्वं देवस्य आद्यमेवं चतुष्टयम् ॥ ५४ ॥

सरहस्यं प्रबुद्धानामप्रबुद्धैः क्रियाधरम् ।
तस्मात पीठचतुष्कं तु संजातं कुण्डलीकुलम् ॥ ५५ ॥

कणिहत्तनु देवस्य कलाम्भोपरि संस्थितम् ।
त्रिशृङ्गं षडधकारं च अष्टपत्रोपरि स्थितम् ॥ ५६ ॥

षोडशारं ततश्चोर्द्धे[र्ध्वे] द्वादशारं चतुष्टयम् ।
चतुरस्रं ततो बाह्ये यथावस्थं शृणु प्रिये ॥ ५७ ॥
क्रोधीशं चैव चण्डेशं प्रचण्डं शिवमेव च ।
एकपादं वरारोहे कूर्मासनं तथा परम् ॥ ५८ ॥
एकनेत्रं ततो भद्रे चतुराननमेव च ।
पत्राष्टके वरारोहे व्याप्तिभूता व्यवस्थिताः ॥ ५९ ॥
श्रीकण्ठं च अनन्तीशं सूक्ष्मीशं च तथैव च ।
त्रिमूर्त्तिश्च वलेशानं मज्जीशानं तथा पुनः ॥ ६० ॥
भारभूतीशं देवेशि तिष्वीशं (?) च तथा परम् ।
स्थाणुभैरवं देवेशि हराख्यश्च ततः प्रिये ॥ ६१ ॥
डं[झिं]टीशं देवि भूतीशं सद्योजातं ततः पुनः ।
अनुग्रहानन्दं क्रूरेशं महासेनं वरानने ॥ ६२ ॥
षोडशैव महरुद्राः षोडशारस्य मध्यतः ।
चतुष्काद्यं समुद्भूतं महाव्याप्तिकरं परम् ॥ ६३ ॥
अजेशं शर्मदेवेशं सोमेशं लाङ्गलं प्रिये ।
दारुकं चार्द्धनारीशमुमाकान्तं ततः प्रिये ॥ ६४ ॥
आषाढीं डिण्डिमं चैव धात्रीशं मीनमेव च ।
मेषनामा ततो रुद्रो[द्राः] द्वादशारे व्यवस्थिताः ॥ ६५ ॥
लोहितं चूलिकं भद्रे छगलण्डं तथा परे ।
द्विरण्डं चैव देवेशि महाकालं ततः पुनः ॥ ६६ ॥
वालीशं चतुज[र]ज्ञाख्यं पिनाकीशं ततः प्रिये ।
अष्टारे संस्थिता भद्रे रुद्राश्चैव महाबलाः ॥ ६७ ॥
खड्गीशं च वकीशं च श्वेतनाभं ततः प्रिये ।
भृग्वीशं लाकुलं भद्रे संवर्त्तं च ततः पुनः ॥ ६८ ॥

षडस्रे च स्थिता देवि कैलाशपरिवारितम् ।
रुद्रपञ्चाशकोपेतं चतुःपीठसमन्वितम् ॥ ६९ ॥

षडस्रपुरमध्यस्थं षट्सिद्धौ[द्धैः] वेष्टितं पुरम् ।
चतुष्कं त्रिकमध्यं तु ओकारं यत्र निर्गमम् ॥ ७० ॥

मध्यदेशे तु यन्त्रस्य श्रीमता तु महेश्वरम् ।
प्रथमं पीतवर्णं तु सशैलवनकाननम् ॥ ७१ ॥

वनोपवनसंयुक्तं हेमप्राकारमण्डितम् ।
नदीनदसमायुक्तमनेकार्थसमाकुलम् ॥ ७२ ॥

सर्वबीजसमाकीर्णं चतुरस्रं समन्ततः ।
वज्रार्गलसमोपेतं वज्रहस्ता च मालिनी ॥ ७३ ॥

खड्गीशं च महाकालं पिनाकी च अधःस्थितम् ।
भुजङ्गं चैव वालीशं अर्घीशासनसंस्थितम् ॥ ७४ ॥

क्रूरानन्देन संभिन्नं नादबिन्दुस्वलङ्कृतम् ।
वज्रार्गलनिभं भद्रे चतुर्दिक्षु अलङ्कृतम् ॥ ७५ ॥

तत्राधिपत्ययोगेन पीठं पीठेश्वरीयुतम् ।
तस्यैव दक्षिणे कोणे चन्द्राभं चन्द्रवर्चसम् ॥ ७६ ॥

अर्द्धचन्द्रप्रतीकाशं सरित्सरसमाकुलम् ।
कुलकल्लोलवृन्दाभं गम्भीरं षड्रसार्णवम् ॥ ७७ ॥

विचित्र[वीचीत]रङ्गकल्लोलैस्तदास्फालनभीषणैः ।
चतुराननं पिनाकाख्यमर्घीशासनसंस्थितम् ॥ ७८ ॥

नादबिन्दुकलोपेतं तत्त्वनाथोपरि स्थितम् ।
तत्त्वनाथेन संयुक्तं स्फुरन्तं पारमेश्वरम् ॥ ७९ ॥

हिमचन्द्रशिलाभिश्च समन्ताद्रचितं तु तम् ।
प्राकारेण विचित्रेण सपुराट्टालशोभितम् ॥ ८० ॥

अनेकगुणसंच्छन्नमनेकाश्चर्यसंकुलम् ।
तत्र तत्त्वेश्वरं देवं देव्या वेष्टितविग्रहम् ॥ ८१ ॥

शोणवर्णं सुतेजाढ्यं पाशहस्तं सुशोभनम् ।
आधारः[रं] सर्वसृष्टीनां महापीठोपरि स्थितम् ॥ ८२ ॥

कैलाशे दक्षिणे श्रृङ्गे अनेकगुणसंकुलम् ।
श्रीमज्जालन्धरं नाथं तत्रस्थं लक्षयेत् प्रिये ॥ ८३ ॥

कैलाशस्योत्तरे श्रृङ्गे अनेकार्चिःसमोज्ज्वलम् ।
ग्रसन्तमिव त्रैलोक्यं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ८४ ॥

तत्त्वनाथोपरिस्थं तु तत्त्वानां व्यापकं परम् ।
भुजङ्गं च महाकालं वालीशमर्चिणा युतम् ॥ ८५ ॥

भुजङ्गेनोर्ध्वसंदीप्तं नादविन्दुकलान्वितम् ।
पिङ्गलं दहनावस्थं लेलिहानं सुदारुणम् ॥ ८६ ॥

मयापि देवि दुष्प्रेक्ष्यं किं पुनस्त्वितरैर्जनैः ।
त्रिकोणपुरमध्यस्थं वज्रप्राकारमण्डितम् ॥ ८७ ॥

वज्रस्तम्भमयं दिव्यं स्फुरन्तं परमेश्वरम् ।
कालाग्निगोपुरज्वालं समन्ताद् द्वारवेष्टितम् ॥ ८८ ॥

वहुरूपसमाकीर्णं विद्यागुणविभूषितम् ।
अनेकाश्चर्यसम्पन्नं जीवभूतं जगत्त्रये ॥ ८९ ॥

आपूरितमिदं येन तेन तत्पूर्णसंज्ञकम् ।
सप्तजिह्वासमोपेतं कालरूपं षडाननम् ॥ ९० ॥

पूर्णमायासमायुक्तं राजते चारुरूपिणम् ।
शक्तिहस्तं महावीर्यं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ ९१ ॥

नपुंसकगुणान्तस्थं व्याप्तिभूतं विनिर्गतम् ।
मध्यपीठस्य पूर्वेण अग्रश्रृङ्गे व्यवस्थितम् ॥ ९२ ॥

पद्मिनीदलसंकाशं धूम्राभं ताम्रवर्चसम् ।
महाप्रचण्डदा[का]द्यैश्च स्फालनोल्लाललालसैः ॥ ९३ ॥

धूप[य]मानं समन्तात्तु शोषयन्तं वरानने ।
षडस्रमण्डलान्तःस्थं तत्त्वव्यापिमहेश्वरम् ॥ ९४ ॥

क्रोधीशं च महाकालं पिनाकीखड्गसंयुतम् ।
वालीशं च भुजङ्गा यमघींशासनसंस्थितम् ॥ ९५ ॥

नादबिन्दुकलोपेतं नादमध्ये व्यवस्थितम् ।
न तेन रहितं किञ्चित् सृष्टिसंहारगोचरे ॥ ९६ ॥

इन्द्रनीलमयैः स्तम्भैः समन्ताद्रुचिरं पुरम् ।
प्राकारगोपुराद्येन ध्वजाशतधनुर्धरम् ॥ ९७ ॥

पञ्चबाणधरं देवं कामदेव्या समन्वितम् ।
द्योतयन्तं जगत्सर्वं श्रुतिरूपं तनुर्जितम् ॥ ९८ ॥

चतुर्दशविधिस्थोऽपि नायको दण्डपालकः ।
तस्येच्छापूरितं सर्वं कामौघं संप्रवर्तते ॥ ९९ ॥

तेनेदं चाग्रकोटिस्थं मनोन्मन्याद्व्यवस्थितम् ।
स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन पीठव्याप्तिपरो विदुः ॥१००॥

परन्तु पञ्चमं पीठं कैलाशोपरि संस्थितम् ।
स्त्रियः चन्द्रकलाः प्रोक्ताः पुमान् बिन्दुस्वरूपिणी ॥१०१॥

नपुंसकं वरारोहे तत्र व्याप्तहलाकृतिः ।
तस्यौघं व्यापकस्थानं सालङ्कारं व्यवस्थितः[तम्] ॥१०२॥

कामेन क्षुभितं स्थानं स्थाणुसंज्ञा मनोन्मना ।
मनोन्मना तु शमनः द्वावेतौ तु नपुंसकौ ॥१०३॥

पुटरूपो समाख्यातो तस्यान्यो व्यापितो परः ।
योनौ पुटसमाख्याता[तौ] वामदक्षिणसंस्थितौ ॥१०४॥

बिन्दुद्वेषु[द्वंयोः] च या माया सा माया व्यापिनी कला ।
सा तु माया परा देवी अभेद्या च क्षये व्यये ॥१०५॥

व्यापिनी सर्वभूतानां आत्मादौ तु परिष्ठितम् ।
नादान्ते नादमध्यस्थे प्रविचार्य विशेषतः ॥१०६॥

माया किं निजंचा[मा]त्मानं स्वरूपे चाध्वनिर्मितम् ।
उर्ध[ऊर्ध्व] काये अधोभागे नादान्तं तं निवासितम् ॥१०७॥

उन्मनः समनश्चैव व्यापिनी ध्वनिरेव च ।
पीठं चतुष्कमेवं तु स एवान्योन्यतः क्रमात् ॥१०८॥

ध्वनेर्नादः समुत्पन्नः स चानेकविधः स्मृतः ।
सूक्ष्मश्चैव सुसूक्ष्मश्च व्यक्ताव्यक्ताद्यकृत्रिमम् ॥१०९॥

आत्मनाप्यर्द्धको ह्येतत् परस्थाने निवेशितः ।
तस्मात् स कुरुते सृष्टिमनेकाकाररूपिणी[म्] ॥११०॥

सूक्ष्मनादो गुहावासी क[ा]लाग्नौ[1] तु सुसूक्ष्मगः ।
स्वस्थानस्थं तु अव्यक्तं यदा तद्व्यक्तमाश्रितम् ॥१११॥

कृत्रिमश्चैव संयोगः परान्तं संव्यवस्थितः ।
तस्मादक्षरसंतानो वाग्विलासः प्रवर्तते ॥११२॥

तेन संचोभ्य चात्मानं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणम् ।
नि[वि]रोधितं तु तेनेदं सूक्ष्मभावस्य संभवः ॥११३॥

तेन वैरोधिका नाम नानाकारा व्यवस्थिताः ।
आत्मानार्थस्वरूपेण प्रतिमूर्तिं द्वितीयकम् ॥११४॥

तेनायं क्षोभ्य चात्मानं अर्द्धचन्द्रविनिर्गतम् ।
स्रवन्तममृतं दिव्यं सर्वस्य जगतः स्थितम् ॥११५॥

---

१. कलाग्नौ–क० ।

तस्य संप्लावनात्यर्थं विसर्गाभिरतस्तु यः ।
तत्रादित्यः समुत्पन्नो वर्णानां प्रभुरीश्वरः ॥११६॥

बिन्दुरूपं जगन्नाथं क्रियाकालगुणान्वितम् ।
वर्णरूपं तु कर्तारं देदीप्यन्तं सुवर्चसम् ॥११७॥

उन्मनादिचतुष्कस्य संज्ञातेदं चतुष्कलम् ।
[1]शोभितं क्रमयोगेन विशुद्धं तत्र शाम्भवम् ॥११८॥

स्थिता षोडशभेदेन चतुष्केण पृथक् पृथक् ।
कलातीतशरीरस्य पिण्डमाद्यं चतुष्कलम्[1] ॥११९॥

द्वादशार्द्धकुलेशस्य आत्मत्वे संव्यवस्थितम् ।
चतुष्कलं द्वितीयं तु पीठरूपं महाम्बिके ॥१२०॥

नादान्तोर्द्धं[र्ध्वे] च मायाख्यं विज्ञेयं च पुटद्वयम् ।
ललाटोर्धं[र्ध्व]कुले यस्मात्तस्मात्तं च कुलेश्वरि ॥१२१॥

तत्राधो यत्र पानादं कृत्रिमं मुखमण्डले ।
निरोधस्तत्समं[मो] ज्ञेयं[यो] चन्द्रसूर्यतनूदरे ॥१२२॥

एवं विशुद्धभावेषु षोडशारं प्रकीर्तितम् ।
अकलेशा महाभागे विभज्य विनिवेशितम् ॥१२३॥

अत्र योगाभिपन्नानामवस्था तां शृणु प्रिये ।
रोमाञ्चमश्रुपातं च विपुकं च सुदर्शनम् ॥१२४॥

पिपीलिकापर्शने द्वि[स्पर्शनं हि] रात्रौ सूर्यनिरीक्षणम् ।
उद्यते गगनाश्चो[म्भो]धिं शब्दं मुञ्चति दारुणम् ॥१२५॥

वागीशत्वं प्रपद्येत कंधवधप्रलापितम् (?) ।
लोभः क्षुधाजयो निद्रा उन्मनस्त्वं क्षणात् क्षणात् ॥१२६॥

१-१. नास्ति-क० ।

स्तम्भमोहादिकं सर्वं वाचासिद्धिः प्रवर्तते ।
षोडशैतो[ताः] महावस्था ज्ञा[जा]यन्ते तु यदा प्रिये ॥१२७॥

तदानेन तु देहेन खेचरीकुलनन्दनः ।
एतत्ते सरहस्यं तु विशुद्धं कथितं मया ॥१२८॥

इदानीं कथयिष्यामि यथावस्थमनाहतम् ।
कण्ठावस्था कुलेशस्य उदरोर्ध्वे[र्ध्वे] व्यवस्थितम् ॥१२९॥

क्रोधीश आदिभिः सिद्धैः चक्रवर्तिदशान्वितः ।
एको रुद्रश्च संभावे ग्रन्थिर्नाभौ व्यवस्थितः ॥१३०॥

क्रोधीशादौ[द्याः] च ये सिद्धाश्चक्रवर्तिदले स्थिताः ।
पूर्वेशे शो[खे]चरी तामध्ये तेषां सदाशिवः ॥१३१॥

चारोचारो विकारश्च एभिः सार्द्धं रमेत्तु सः ।
राज्यक्रीडामथोद्वेगं संहरामो जगत्त्रयम् ॥१३२॥

मांसादपि च पैशुन्यं ह्यभिलाषोऽथवा पुनः ।
आप्यायितमनोहृष्टस्तुष्टचित्तस्तु वत्सलः ॥१३३॥

पृथ्वीं नमामि निखिलां व्रजामि गिरिगह्वरम् ।
उव्यमावर्जयामास (?) विलसामि ददाम्यहम् ॥१३४॥

परं वैराग्यमापन्नो मोक्षान्वेषन[न्वेषण]तत्परः ।
गुरुमन्वेषयिष्यामि येन भूयो न संभवः ॥१३५॥

संधिनालान्तरंस्था[रस्थोऽ]सौ यो तारमनु काङ्क्षिभिः ।
दिव्यः सिद्धाः[द्धो] भविष्यामि क्रीडामः[मि] कामिनीजनम् ।१३६

मध्यदेशान्तरस्थोऽसौ न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
सुखावस्थो जितक्रोधः सत्त्वावस्थो जितेन्द्रियः ॥१३७॥

तिष्ठत्यनाहते देवि चक्रवाह्येषुकैर्वृतः ।
दशधावस्थितं भद्रे भावाभावसमन्वितम् ॥१३८॥

गुरुवक्षगतो देवश्चक्रवर्तिसमन्वितः ।
स्वभावगुणसंयुक्ता[क्त]श्चिन्तयन्तो[-न्त्र]पदेशतः ॥१३९॥

अभ्यसंस्तस्य देवेशि अवस्थाः संभवन्ति हि ।
पुंसां भेदं[दा] न जायन्ते सत्त्वराजसतामसः[साः] ॥१४०॥

उत्तमं शृणु कल्याणि येषु योगस्य साधनम् ।
तमो महारजः शोको चतुष्कं कन्यसा[का]दिकम् ॥१४१॥

लोलुपा रागवत्या च कामुका च पलालिनी ।
मध्यमाया म[अ]वस्थेयं कन्या सा तु द्वितीयका ॥१४२॥

प्रभावती सुतारा च विम्बा विम्बखगेश्वरि[री] ।
ज्येष्ठादिमध्यमे द्विस्था त्रिस्था मध्यमगोचरे ॥१४३॥

उदयन्ति क्रमादेतत्[ता] समाधिविषये स्थिताः ।
अन्तिमैका द्विमध्यस्था त्रयावस्था तु कन्यसे[कथ्यते] ॥१४४॥

किन्तु ज्येष्ठचतुष्टस्य द्वेऽवस्थो[स्थे] भवतो न हि ।

श्रीदेव्युवाच

कुलाकुलपदव्याप्तिः कैलाशस्य च संभवम् ॥१४५॥
अवस्थालक्षणं देव ज्ञानं[तं] सर्वमशेषतः ।
आज्ञाभेदं न मे ज्ञातं तमा[दा]दौ यत[त्र]वा स्थितम् ॥१४६॥
तामसं राजसं चैव सात्त्विकं च यथास्थितम् ।
तद्विकारस्य भावोऽयं वद नाथ ! पृथक् पृथक् ॥१४७॥

श्रीभैरव उवाच

साधु भद्रे वदिष्यामि अवस्थालक्षणं प्रिये ।
अक्रमाद्या भवेद्यस्य रंभसो वा प्रकाशितम् ॥१४८॥
सामर्थ्यतोऽथ दयया उक्तः कालो द[द्व]वान्तरः ।
तामस[स्य]स्तु समाख्यातास्ताम[ता अ]वस्थान्तरान्विताः ।१४९।

तेषां लक्षणं देवशि कथ्यमानं निबोधसे [मे] ।
समयानि न मन्यन्ते गुर्वाज्ञालोपकारकाः ॥१५०॥

करिद्वन्द्वप्रिया नित्यं छिद्रान्वेषणतत्पराः ।
गुरवे वादनिरता निरपेक्षा मुहुर्मुहुः ॥१५१॥

अपवादं वदित्वा तु गुरु[रुं] याति पराङ्मुखः ।
येनासौ निधनं यान्ति[ति] तत्करोति तमोऽन्वितः ॥१५२॥

मोहाविष्टो न जानाति आत्मसंभावितः कुधीः ।
अहङ्कारतमोमन्धः[न्धः] पूर्वजातिमनुस्मरेत् ॥१५३॥

गुरुं विचारयेद्यस्तु शोकेनान्तरितात्मना ।
प्रयाति गृहसायुज्यं तमोना[तमसा] कुलितेक्षणः ॥१५४॥

तेनाधमपदं यान्ति[ति] जीवन्नपि मृतस्तु सः ।
बुद्धिस्तु यदा प्रज्ञा आगमार्थविशारदः ॥१५५॥

ततः क्षमापयेन्नाथ तद्विदाम्नायपूर्वकम् ।
सप्तकत्रयमानेन सर्वोपस्करणैः सह ॥१५७॥

अवस्थाश्चैव सा[शा]म्यन्ते तमोऽवस्थाचतुष्टयम् ।
लोलुपादौ तु चत्वारि क्रमादेवं व्यपोहयेत् ॥१५८॥

स्नापयेच्छुद्धचेतास्तु दासत्वेन तु रञ्जयेत् ।
रक्तकालार्द्धमानेन रञ्जिते तु नुहेद् गुरुम् ॥१५९॥

तीव्रत्वे षि[खि]दि संप्राप्ते मन्दत्वे च प्रवर्त्तते ।
उपदेशोपचारेण अवस्थालक्षणं भवेत् ॥१६०॥

राजसोऽयं समाख्यातः अहङ्कारगुणान्वितः ।
पण्डितोऽहं सुभक्तोऽहं बोधोऽहं बोधको ह हम् ॥१६१॥

ज्ञानिनो[नी चा]हं समर्थोऽहं वयं सर्वगुणेश्वराः ।
करोति गुरुणा सार्धं वादमज्ञानचेतसः ॥१६२॥

इदं तत्त्वमिदं तत्त्वं भोगं मोक्षं न जानथ ।
एवं स तमसा लुब्धो यदात्मानं न विन्दति[1] ॥१६३॥

तदावस्थाचतुष्केण लोलुपाद्येन गृह्यते ।
परस्त्रियं हसन् दृष्ट्वा धावयित्वा विलग्यत (?) ॥१६४॥

स शृङ्गारी मदस्रावी नित्यमेव गजो यथा ।
आत्मानं विक्रयित्वा तु मद्यं मांसं समाचरेत् ॥१६५॥

वेधको[कं] यदि चित्तं स्यात्तदाराध्यं समाश्रयेत् ।
अथ चेत्पूर्वविहितं[तां] क्रमपूजां समाचरेत् ॥१६६॥

मध्यमस्य ततः पश्चादवस्था शुभदायिका ।
उत्तमः परया भक्त्या आविद[आविद्ध]स्तु यदा गुरुः ॥१६७॥

उक्तकालेन वा देशानुग्रहं प्रति योजयेत् ।
[2]त्रिशुद्ध्यान्तरभावेन(?) यस्य भावो न चान्यथा ॥१६८॥

तस्य वाचान्तरे मार्गं दक्षिणाम्नायपूर्वकम् ।
विन्दते निखिलं ज्ञानं निरहङ्कारो दृढव्रतः ॥१६९॥

उदयन्ति स्वभावस्था प्रभावत्याद्यनुक्रमात् ।
षट्कमाश्रति[श्रित्य] याः प्रोक्ताः शुभास्ता उदयन्ति वै ॥१७०॥

प्रभाभी रञ्जितात्मानं पश्यते भुवनत्रयम् ।
तारकान्तस्थमात्मानं देदीप्यन्तं सुवर्चसम् ॥१७१॥

चन्द्ररूपं यदा पश्येत्तारामण्डलमध्यतः ।
तारावतीति सा प्रोक्ता अवस्था सिद्धिदायिका ॥१७२॥

अभ्यसंतः[संश्च] स्वरूपेण समाधिस्थः स पश्यति ।
आत्मबिम्बे पुरस्थे तु बिम्बा सा वश्यसिद्धिदा ॥१७३॥

---

१. एवं सततमा लुब्धो यद्यात्मानं न विंदति—ख० ।
२. त्रिड्मुद्यां—ख० ।

समाधिस्थं स्वबिम्बं तु आसनेन समन्वितम् ।
उत्पतन्तो[न्तं] यदा पश्येत्तदा सा बिम्बखेचरी ॥१७४॥

दृष्टं[पश्यन्]तास्तु महावस्थाः सिद्धो भ्रान्तिं न कारयेत् ।
अवश्यं याति खे चक्रम् उक्तकाले महेश्वरि ॥१७५॥

एतावस्थाः समासाद्य दशावस्था भजेत् पुनः ।
गुणानुत्पादयित्वा तु अनाहतं परं व्रजेत् ॥१७६॥

अवस्थाभेदमित्युक्तं लक्षपादाधिके मते ।
अत्र सारतरं भद्रे संस्फुटं च मतोत्तरे ॥१७७॥

श्रीदेव्युवाच

अवस्थालक्षणं ज्ञातं त्वत्प्रसादात्कुलेश्वर ।
मणिपूरकयोगस्थं न मे ज्ञातं महाप्रभो ॥१७८॥

कथयस्व प्रसादेन जानीमो निश्चयं यथा ।

श्रीभैरव उवाच

साधु भद्रे महाभागे कल्याणानन्ददायिनि ॥१७९॥

कथयामि न संदेहो मणिपूरं यथास्थितम् ।
तथा त्वं शृणु कल्याणि भावानन्दप्रदायिनि ॥१८०॥

स्थितं द्वादशभेदेन लाङ्गलादौ शिखान्तरम् ।
नाभ्योदरं नितम्बोरू जङ्घोरू तनुतत्क्रमात् ॥१८१॥

कुलनाथमहेशस्य संस्थिते मणिपूरके ।
तत्र चक्रे समाश्रित्य यथावस्थास्तथा शृणु ॥१८२॥

लाङ्गलीशोदरस्थं तु द्वादशार्चिःसमप्रभम् ।
द्वीपक्षेत्रसमायुक्तं तदेवाद्यं विलक्षयेत् ॥१८३॥

सोमेशं दक्षिणे कुक्षौ वामे दारुकसंज्ञकम् ।
अर्धनारीश्वरं नाम स्वचक्रे परिपालितः[तम्] ॥१८४॥

दक्षिणे तु उमाकान्तं नितम्बे वामतः पथि ।
दण्डिधात्री ऊरुभ्यां च जङ्घाभ्यां मीनमेषकौ ॥१८५॥

लोहिताख्यः शिखी नाम्ना दक्षिणं वाममाश्रितौ ।
पीठनाथं तथा क्षेत्रं द्वीपं द्वीपाधिपैः सह ॥१८६॥

मणिवद्द्योतयन्तं हि पूरयन्तं दिशो दश ।
सूर्यकान्तमणिप्रख्यं भास्करे[च] प्रयास्यति ॥१८७॥

कलासंख्याकरं देवं कलै[ला-]द्वादशभिर्वृतम् ।
पीठनाथं तु दीपस्थं मासमासादितः क्रमात् ॥१८८॥

पूरयेद्वर्षसन्तानं युगमन्वन्तराणि च ।
कल्पं चेति न वा कल्पं मणिद्वादशभिः खिलम् ॥१८९॥

यत्[तः] पूरयते विश्वं तेनेयं[दं] मणिपूरकम् ।
शक्तिमार्गप्रपन्नानां भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१९०॥

एकैकं चिन्तयेच्चक्रं नाथाज्ञामुपदेशतः ।
भवन्ति सर्वसिद्धा हि उत्तमाधममध्यमाः ॥१९१॥

मणिपूरकपादस्थं पीठेश्वरसमन्वितम् ।
द्वीपं द्वीपार्चिःसंयुक्तं मासमेकं यदाभ्यसेत् ॥१९२॥

पादचारी जगत्सर्वं क्षोभयेदविचारतः ।
पूजाध्यानसमाधिस्थः शक्तिमार्गेण योगवित् ॥१९३॥

षण्मासेन अवश्यं हि वत्सरान्नात्र संशयः ।
अन्या क्षिप्रगतिस्तस्य आत्मनः संप्रवर्तते ॥१९४॥

पादुका पादलेपश्च मनोवेगः प्रजायते ।
एवं जानुनि चाभ्यासाद् भूतवेतालराक्षसाः ॥१९५॥

कुरुते विविधाश्चर्यं कल्पस्थायी भवेत्तु सः ।
आत्मैवं भाम[व]नोत्साही उरुण्या सुरगेश्वरः ॥१९६॥

किन्तु तद्द्विगुणेनैव कालेन प्रथमादितः ।
क्रमेण सिद्ध्यते सर्वं शिवाद्येव लिलक्षयेत् ॥१९७॥

नितम्बाभ्यासयोगेन गुह्यकानां पतिर्भवेत् ।
यक्षविद्याधराणां च पिशाचप्रेतराक्षसान् ॥१९८॥
क्रीडते नायको भूत्वा सर्वमार्गपथे[थि] स्थितः ।
कुक्षिमार्गे गले चक्रे अभ्यसंस्तु श्रियं लभेत् ॥१९९॥
किन्नरेन्दु[न्द्रैः] सगन्धर्वैर्लोकालोकैः स पूज्यते ।
वायुवद् भ्रमते सो हि सर्वत्रैव स[स्व]शक्तितः ॥२००॥
मध्यनाभिगते चक्रे मूलमेढ्रं यदाभ्यसेत् ।
शान्तिपुष्टिवशाकर्षं सर्वज्ञत्वं वपुःश्रियम् ॥२०१॥
सकृत्संस्मरणाद्देवि अभ्यसंस्तु खगेश्वरः ।
ब्रह्महान्तरनिःशेषं भ्रमते कामरूपिणः[पगः] ॥२०२॥
सांख्यज्ञानविदो भूत्वा विचरेच्च पुनः पुनः ।
अथास्येपूत्तरं देवि शक्तित्यागं शृणुष्व मे ॥२०३॥
यते हं परमं बीजं हंसाख्यं हृदि संस्थितम् ।
विना तेनोपलब्धेतु[न] न जानाति कदाचन ॥२०४॥
तस्य रूपत्रयं भद्रे नानासंयोगमेव च ।
वियोगं वित्त सुश्रोणि लक्षणीयं प्रयत्नतः ॥२०५॥
चैतन्यत्रितयं चात्र आत्मशक्तिशिवात्मकम् ।
अविनाम[भा]वयोगेन चैतन्यत्रितयं स्थितम् ॥२०६॥
हनायचर्य[हकारेणोच्चार्य]ते देवी[वि] हंसो देवः परापरः ।
सकारे तु[ण] पराशक्तिर्विकाशे भैरवः स्थितः ॥२०७॥

---

१. नले—ख

मध्य आत्मा सदा तिष्ठेत् पूरकश्च समन्वितः ।
विकाशश्चोर्ध्व''''संकोचो नि[रो]धः प्रकीर्तितः ॥२०८॥

मध्यनाभिरिति प्रोक्तं त्रयमेतच्च दुर्लभम् ।
ऊर्ध्वनाडीनिरोधेन अधोनाडीनिबन्धनात् ॥२०९॥

योनिमध्यगतं लिङ्गं योन्योदरपुटीकृतम् ।
तन्मध्ये त्रा[चा]त्मनो रूपं लक्षयेत पुनः पुनः ॥२१०॥

मध्यमं ह्येतदाख्यातं अज्ञानमलनाशनम् ।
मध्यमध्यानयोगेन ज्ञानाग्निर्ज्वलते किल ॥२११॥

ज्वलिते तु तदा वह्नौ ज्योतिस्तत्र प्रवर्तते ।
प्रवर्धनान्महाज्योति[ते]रानन्द उपजायते ॥२१२॥

मर्दनाद् भगलिङ्गाभ्यां यथानन्दः प्रजायते ।
मथनात्सर्वशक्तेस्तु तथानन्दः प्रजायते ॥२१३॥

निश्चयत्वं भवेद्देवि शिवशक्त्योरभेदतः ।
मथनं हि तदेवोक्तममृतोत्पादकं प्रिये ॥२१४॥

तेनामृते परानन्दं शक्तित्यागमिति स्मृतम् ।
एतत्ते मणिपूरं तु सरहस्यं प्रकाशितम् ॥२१५॥

गोपितं सर्वतन्त्रेषु कुब्जि तुभ्यं प्रकाशितम् ।
द्वीपमार्गविभागेन पीठनाथक्रमेण तु ॥२१६॥

दुर्लभं सिद्धमार्गस्य किं पुनरितरे वचः ।
उक्तजालेन सिध्यन्ते[न्ति] नान्यथा ह्यनु[नृ]तं वचः ॥२१७॥

श्रीदेव्युवाच

नादसंयोगो देवेश वियोगश्च कथं प्रभो ।
आत्मशक्तिः शिवश्चैव न मे ज्ञातं महाप्रभोः ॥२१८॥

श्रीभैरव उवाच

अनेकोपायभेदेन कथ्यमानं न बुद्धयसे ।
संकेतार्थं मया उक्तं पुनरेव वदाम्यहम् ॥२१९॥

प्राणेन संस्थितो हंसो वायुरूपी हलाकृतिः ।
ऊर्द्धे[र्ध्वे] अकारसंभिन्ने अधोदन्तेन दीपितम् ॥२२०॥

मकारं स्वरसंयुक्तं अर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
अन्तःशक्तिविसर्गस्थं तेन हंसेति गीयते ॥२२१॥

अर्धचन्द्रं भवेन्नादं संयोगं बिन्दुरुच्यते ।
कला[ल]योर्द्ध[र्ध्व]वियोगं हि येन ज्ञानं चराचरम् ॥२२२॥

आत्मबिन्दुसमाख्यातं शक्तिश्चैव कलात्मकम् ।
शिवं बिन्दुर्वरारोहे जीवभूतं चराचरम् ॥२२३॥

तेन जीवति[न्ति] भूतानि जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
संयोगे संस्थितो हंसो वियोगे नैव किंचन ॥२२४॥

सकलं चैव साचारं कुलरूपं महेश्वरम् ।
उच्चाररहितं भद्रे निष्कलं च उदाहृतम् ॥२२५॥

निष्कलं सूक्ष्ममित्युक्तं योगिनो ध्यानगोचरम् ।
शृङ्गाटपुरमध्यस्थं ओजपूकसमन्वितम् ॥२२६॥

वालीशं च भुजङ्गाख्यं पिनाकी खड्गमेव च ।
वकीशं च महाकालं श्वेतसंवर्तका[कं] प्रिये ॥२२७॥

वालीशं वायुकोणस्थं भुजङ्गं वह्निसंयुतम् ।
पिनाकी पूर्वपत्रे तु खड्गीशं दक्षिणे स्थितम् ॥२२८॥

नैर्ऋते तु महाकालं वकीशं मध्यतः प्रिये ।
श्वेतं चोत्तरसंस्थं वै ईशे संवर्तकं स्थितम् ॥२२९॥

पूर्वपूर्वमिदं भद्रे तेन हंसोपचर्यते ।
नीयते तु मते नित्यं मलमायासमन्वितम् ॥२३०॥

कामं क्रोध[धं]स्तथा लोभं मोहं भयं विनिर्दिशेत् ।
वेष्टितं चैव पैशुन्यं इष्टा चैवाष्टमे प्रिये ॥२३१॥

विषयैरुपभुञ्जीत देहदेहान्तरः प्रभुः ।
गन्धलुब्धो यथा भृङ्गो पुष्प[ष्पात्]पुष्पान्तरं व्रजेत् ॥२३२॥

हंसोऽपि विषया[यैः]लुब्धो देहाद्देहान्तरं व्रजेत् ।
विषमध्यगतं कीटं न विषैरपि बाध्यते ॥२३३॥

तथा हंसो वरारोहे विषयेषु न बाध्यते ।
रमते क्रीडते नित्यं वलति नृत्यते प्रिये ॥२३४॥

स्वपति जाग्रति भद्रे आहारमनुकांक्षिभिः ।
विकारं सृजत्यनेकं प्रविष्टो भूतपञ्जरे ॥२३५॥

शक्ति[क्त्य]भ्यासं च हंसाख्यं संक्षेपेण उदाहृतम् ।
श्रीमते च मया गुप्तं संस्फुटं च मतोत्तरे ॥२३६॥

श्रीदेव्युवाच

दयया परया मह्यं मण्डलीकं कुलाकुलम् ।
षट्पदार्थं मया ज्ञातं श्लोकद्वादशं[शकं] तथा ॥२३७॥

चतुष्कं वद मे नाथ तथा वै चक्रपूजनम् ।
पञ्चचक्रपदव्याप्तिर्यथास्थानं क्रमेण तु ॥२३८॥

पृथिव्यादिक्रमेणैव एकैकस्य तु निर्णयम् ।

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महादुर्गे वस्तुचोद्यविकल्पिनि ॥२३९॥

अनेकार्थं मयाख्यातं चतुष्कं क्रमभेदतः ।
तथापि कथयिष्यामि अधिकारे यथास्थितम् ॥२४०॥

अधिकारपदव्याप्तिः[प्तिं] पदपिण्डस्वरूपतः ।
पीठांश्च कथयिष्यामि संकेतार्थं यशस्विनि ॥२४१॥

उन्मनः समनश्चैव व्यापिनी ध्वनिरेव च ।
बिन्दुनादकलाश्चैव निरोधी च चतुर्थकम् ॥२४२॥

ज्योतिर्ध्वनिस्तथा नादं विसर्गं च चतुर्थकम् ।
पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं चतुष्टयम् ॥२४३॥

सूक्ष्मभेदमिदं प्रोक्तं स्थूलं च कथयामि ते ।
पीठाधिस्थं यथा भद्रे तथा ते कथयाम्यहम् ॥२४४॥

क्षेमरत्नं तथा मध्ये कथितं पीठनायकम् ।
ओजपूकामुकं भद्रं दृष्टाक्षरविनिश्चयम् ॥२४५॥

अकारादिविसर्गान्ता एकैकं तु चतुष्टयम् ।
मुद्राचतुष्टयं देवि संकेतात् कथितं प्रिये ॥२४६॥

कर्षणी क्षोभणी चैव खेचरी सुन्दरी तथा ।
मुद्राचतुष्टयं भद्रे गोपितं न प्रकाशितम् ॥२४७॥

चतुर्भेद्यं चतुःपीठं चतुःस्रोतायनः[नम्] प्रिये ।
पीठं युगं तथा मुद्रा योगिन्यश्च चतुष्टयम् ॥२४८॥

सबाह्याभ्यन्तरेः[रं] सर्वं कथयामि यथार्थतः ।
नाभ्युदरं च हृत्कण्ठं कलाद्वारमनुक्रमात् ॥२४९॥

ओजपूकामरूपिण्याश्चत्वार्येवं व्यवस्थिताः ।
क्रमेण पूजयेद्देवि गुरोराज्ञापदेशतः ॥२५०॥

वामे वा दक्षिणे वापि नासाग्रे सूक्ष्ममण्डले ।
कर्णौ चक्षुः क्रमेणैव पूजनात्तत्फलं लभेत् ॥२५१॥

दन्तपङ्क्तौ तथा ऊर्द्धे[र्ध्वे] लम्बकस्थं प्रपूजयेत् ।
आधारं नाभिहृत्कण्ठे भ्रूमध्ये तु तथा परम् ॥२५२॥

सबाह्याभ्यन्तरेणैव चतुष्कं परिकीर्तितम् ।
संक्षेपेण मयाख्यातं पीठभेदं वरानने ॥२५३॥

गुरूपदेशसंयुक्तं पञ्चकं कथयाम्यहम् ।
दिव्यदूत्यस्तथामाद्यो[द्यो] योगिन्यश्चैव योगणाः ॥२५४॥

पञ्चधा ह्यधिकारः स्यात् चक्रे व्याप्ते कुलाकुले ।
देव्याश्चक्रं प्रवक्ष्यामि व्याप्तिभूतं यथा स्थितम् ॥२५५॥

सबाह्याभ्यन्तरे देवि तथाहं कथयामि ते ।
चतुष्कादौ वरारोहे बाह्यषट्कं विनिर्ममे ॥२५६॥

द्वादशारं महाचक्रं पुनर्द्वादशकं प्रिये ।
ततोर्द्धं[र्ध्वे] द्वादशारं तु पुनर्द्वादशकान्वितम् ॥२५७॥

तस्योपरि द्वादशारं पुनर्द्वादशं[शकं] स्मृतम् ।
सप्तमं तु वरारोहे तस्योपरि व्यवस्थितम् ॥२५८॥

रन्ध्रकामशिखिर्गोलं ध्वजकन्दान्तकावधि ।
सप्तमं तत्त्वमुद्दिष्टं ब्रह्मणः पदमुत्तमम् ॥२५९॥

अत्र सृष्टिः समुत्पन्ना षट्कोशकुलसंभवा ।
देव्याधिष्ठितमीशानं स्वाधिष्ठानगुणाश्रयम् ॥२६०॥

प्रथमे द्वादशारे तु रन्ध्रनाथो व्यवस्थितः ।
द्वादशार्चिसमायुक्तं तेषां नामानि मे शृणु ॥२६१॥

धात्री धामा तथा धौम्या नीला नीलावती शुभा ।
द्रवणी द्रावणी चैव कंपनी भ्रमिणी समा ॥२६२॥

सुतेजा द्वादशी प्रोक्ता चक्रं व्याप्य व्यवस्थिता ।
चतुर्भुजाः त्रिनेत्राश्च हिमकुन्देन्दुसन्निभाः ॥२६३॥

ज्योत्स्नादीप्तिनिभाः सर्वे[र्वाः] पारदाभाः सुतेजसः ।
पद्मकम्बुधरा वामे दक्षे चाभयमालिकाः ॥२६४॥

जटाजूटधराः सर्वे[र्वाः] शंशाङ्ककृतशेखराः ।
रत्नमाला शिरे दिव्या कर्णकुण्डलमण्डिताः ॥२६५॥

हारकेयूरशोभाढ्याः पीतोन्नतपयोधराः ।
त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था रोमराजिविराजिताः ॥२६६॥

रन्ध्रद्वादशके देवि योगिन्यो द्वादश स्थिताः ।
ततोर्द्धे[र्ध्वे] कामचक्रं तु कामनाथं व्यवस्थितम् ॥२६७॥

द्वादशार्चिसमोपेतं योगिनी कामरूपिणी ।
कामा कामवती श्यामा सुन्दरी मदनावती ॥२६८॥

निरञ्जना रागवती तथान्या कामविह्वला ।
मदद्रवा क्लेदनी च क्षोभणी द्वादशी स्मृता ॥२६९॥

चतुर्भुजैकवक्त्राश्च त्रिनेत्राश्च शुभाननाः ।
पाशाङ्कुशधरा वामे दक्षे सूत्रवरप्रदाः ॥२७०॥

सिन्दूरारुणसंकाशा जवाबन्धूकसन्निभाः ।
उदयादित्यसंकाशाः किरीटानेकदीपिताः ॥२७१॥

द्विरष्टवर्षाकाराश्च पीनोन्नतपयोधराः ।
पुष्पमाला शिरे दिव्या दाडिमीकुसुमप्रभाः ॥२७२॥

जटाजूटधराः सर्वे[र्वाः] रत्नकुण्डलमण्डिताः ।
अर्द्धेन्दुशेखराङ्गाश्च नितम्बाढ्या मनोहराः ॥२७३॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा नानाभरणमण्डिताः ।
कामनाथसमुद्भूताः योगिन्यश्च वरप्रदाः ॥२७४॥

वह्नीश्वरास्तथाप्येवं चक्रं वै द्वादशारकम् ।
शिखानाथसमुद्भूता द्वादशैते[ताः] गुणोज्वलाः ॥२७५॥

ज्वलिनी ज्वालिनी दीप्ता धूम्रा कृष्णा तथापरा ।
रक्ता सूक्ष्मा विधूमा च दहनी दाहनी तथा ॥२७६॥

शोषणी तापनीत्येवं द्वावशा[दशा]र्चिः प्रकीर्तिताः ।
तप्तचामीकरप्रख्याः पीताभा[ः]पीतवर्चसः ॥२७७॥

चतुर्भुजाः त्रिनेत्राश्च ह्रस्वदेहा महाबलाः ।
कम्बुशक्तिधरा वामे वरदा सूत्रं दक्षिणे ॥२७८॥

रत्नशेखरसंपूर्णा दिव्यकुण्डलमण्डिताः ।
हारकुण्डलशोभाढ्याः समपीनपयोधराः ॥२७९॥

मध्यक्षामा नितम्बाढ्याः सर्वावयवशोभिताः ।
दिव्यकुण्डलशोभाढ्याः सर्वाभरणभूषिताः ॥२८०॥

वह्नीश्वरस्य योगिन्यो साधकस्य वरप्रदाः ।
ध्वजनाथस्य देवेशि द्वादशान्या महाबलाः ॥२८१॥

ध्वजाङ्गादिसमुद्भूता योगिन्यो बलवत्तराः ।
तेषां[तासां] नामानि वक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये ॥२८२॥

कृष्णाञ्जननिभाः सर्वे[र्वाः] त्रिनेत्राश्च चतुर्भुजाः ।
ध्वजाकम्बुधरा वामे वज्रः सूत्रं च दक्षिणे ॥२८३॥

जटाजूटधरा दिव्या रत्नकुण्डलमण्डिताः ।
नागस्कन्धधराः सर्वे[र्वाः] पीनोन्नतपयोधराः ॥२८४॥

मध्यक्षामा नितम्बाढ्याः किंचिद्दंष्ट्राकरालिनी ।
हारकेयूरसंयुक्ताः सर्वलक्षणसंयुताः ॥२८५॥

वज्रासनस्थिताः सर्वे[र्वाः] सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ।
ध्वजनाथाङ्गसंभूता द्वादशैव शृणु प्रिये ॥२८६॥

पताकाध्वजिनी सौम्या ऊर्द्ध[र्ध्व]रोमा महाबला ।
भ्रमणी भ्रामणी वेगा कङ्काली कलहप्रिया ॥२८७॥

कंकटा विकटा घोरा द्वादशा वरवर्णिनि ।
कृष्णाञ्जननिभाः सर्वे[र्वाः] पूर्वैव कथिता यथा ॥२८८॥

कन्दनाथाङ्गसंभूता द्वादशार्चिमहाबलाः ।
कन्दा कन्दवती मूला बीजिनी बीजसंभवा ॥२८९॥

बीजमाता तथा वीरा वीरेशी वीरमातरा ।
पिङ्गाक्षी पिङ्गला देवी नितम्बा द्वादशी स्मृताः ॥२९०॥

नीलाभा नीलवर्णाश्च नीलजीमूतसन्निभाः ।
चतुर्भुजा महादीप्ताः त्रिनेत्राश्च शिवापराः ॥२९१॥

जटाजूटधराः सर्वे[र्वाः] रत्नकुण्डलमण्डिताः ।
कम्बुकुम्भधरा वामे पद्मं सूत्रं च दक्षिणे ॥२९२॥

नानालङ्कारसंपूर्णा नानाभरणमण्डिताः ।
मध्यस्थूला नितम्बाढ्याः समपीनोन्नतस्तनाः ॥२९३॥

सर्वावयवसंपूर्णाः सर्वलक्षणसंयुताः[1] ।
कन्दोद्भवा महादेव्यः साधके सिद्धिदायिकाः ॥२९४॥

गोलान्वये तु महादेवि व्याप्तिस्तु कथयाम्यहम् ।
गोलनाथ[2]............................ ॥२९५॥

× × ×

× × ×

.......................शुभाशुभनिबन्धनम् ॥३१६॥

भूर्लोकं[के] च भुवर्ल्लोके विविधा सृष्टिर्वर्त्तते ।
जरायुजा च सा ज्ञेया बहुदुःखसमाकुला ॥३१७॥

कन्दात्संजायते सृष्टिः कन्दं वै साप्तलौकिकम् ।
रन्ध्रादौ ग्रन्थिपर्यन्तं विज्ञेयं साप्तधातुकम् ॥३१८॥

त्वग्रक्तमांसमेदोऽस्थि मज्जा शुक्रस्तु सप्तमः ।
कन्दात् संजायते ऽङ्कुरमङ्कुरान्मूलसंभवाः[वः] ॥३१९॥

---

१. अतः परं क. मातृकायाः ३० पत्राणि (२६१–२९०) खण्डितानि । १९ पटलस्यान्तिम ८६ श्लोकेभ्य पू र्वांशः खण्डितः ।

२. अतः परं २१ श्लोकात्मकं पत्रमेकं (१६९ संख्यकम्) त्रुटितम्—ख० पुस्तकेऽपि ।

मूलाद्वर्णलवाच्छाखा ततः पुष्पफलादिकम् ।
फलं शरीरमित्युक्तं धातुवृक्षसमुद्भवम् ॥३२०॥

पिण्डं कन्दोद्भवं तच्च शुभाशुभनिबन्धनात् ।
त्वग्रक्तमांसरन्ध्रादौ अशुभं कामवह्निगम् ॥३२१॥

शुभं मेदोऽस्थि मज्जान्तर्गोलच्छन्दध्वजान्तिमम् ।
अशुभं तु रजः साक्षात्वि[त्त्रि]शक्तिगुणमातृजम् ॥३२२॥

पितृजं शुभमुद्दिष्टं रेतो ह्यात्मा च ईश्वरः ।
पिण्डं सर्वत्र सामान्यमुभयोरपि कुब्जिनि ॥३२३॥

संगमे शिवशक्तीनां पिण्डबन्धो भवेत्तदा ।
यत्किंचिच्चिन्तयेन्माता यत्किंचिच्चिन्तयेत्पिता ॥३२४॥

उभयोर्भावसंयोगात्तद्भावः सहजो भवेत् ।
विश्वरूपो मणिर्यद्वदुपाधिविषयो यथा ॥३२५॥

तत्कालावधि संचिन्त्य सरागः सहजो भवेत् ।
एतदन्तरमासाद्य पिण्डं करणरूपधृक् ॥३२६॥

पञ्चैते पञ्चधात्मानं पञ्चपञ्चादिभिः क्रमात् ।
पुरुषं[षः] प्रकृतिश्चैव गुणोऽहंकार धीमतः[र्मनः] ॥३२७॥

षण्मुखस्तु परो ह्यात्मा चतुष्कपरिवेष्टितः ।
ऊर्ध्वाधो नीयते जीवो कोषकारकृतिर्यथा ॥३२८॥

प्रकाशयति चात्मानं बध्नाति च पुनः पुनः ।
नियामिका भवेत् पृथ्वी प्रतिष्ठाशब्द[वाचिक] ॥३२९॥

सात्र पूर्वा भवेद् विद्या शान्तिर्वागे[गी]श्वरी स्मृता ।
पूर्वादौ क्रमशश्चैव चतुष्कपरिवारिता ॥३३०॥

क्षेणी[क्षोणी] तु प्रथमा देवी शब्दा देवी द्वितीयका ।
त्रितीया होत्रिणी नाम वाचा देवी चतुर्थिका ॥३३१॥

षट्कपीठस्थिता देवी चतुःकोणे व्यवस्थिता ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च चतुर्भुजा शुभानना ॥३३२॥

पद्मस्था पद्मवर्णाभा पद्ममालाविभूषिता ।
पद्मवज्रधरा दक्षे ज्ञानं सूत्रं च वामके ॥३३३॥

सर्वाभरणशोभाढ्या सर्वलक्षणलक्षिता ।
पीतापीता तथा कृष्णा रक्ष्या[क्ता]चैव चतुर्थिका ॥३३४॥

नियामिका डकारेण पूर्ववद्दिशि संस्थिता ।
वामे[म]दक्षिणतो भद्रे कैङ्कणादौ च विन्यसेत् ॥३३५॥

कङ्कपा कालिका चैव वामभागे व्यवस्थिता ।
निम्ना निरञ्जना चैव दक्षिणे च विराजते ॥३३६॥

बोधिनी आपिनी चैव तेजनी चैव तेमनी ।
चञ्चला पञ्चमी प्रोक्ता मोचाकाशपदे स्थिता ॥३३७॥

प्रतिष्ठा दक्षिणे प्रोक्ता लकाराक्षरसंभवा ।
चामुण्डा च तथा भद्रे च्छगलण्डं च वामतः ॥३३८॥

जयन्ती च परा देवी झङ्कारी दक्षिणे स्थिता ।
शब्दावती तथा स्पर्शा रोमस्था रूपिणी तथा ॥३३९॥

संधिश्चैव परा देवी सा च वायुपुटे स्थिता ।
विद्या च पश्चिमे ख्याता णकाराक्षरसंभवा ॥३४०॥

कपालिनी तथा पूर्णा दक्षिणेन व्यवस्थिता ।
रामा विनायकी देवी वामे तस्या व्यवस्थिता ॥३४१॥

गोत्रिणी तोषिणी चैव नेत्रिणी लोलिनी तथा ।
ध्यानिनी पञ्चमी देवी मध्यस्था शक्तिरूपिणी ॥३४२॥

माता तु उत्तरे प्रोक्ता नकाराक्षरसंभवा ।
तारा च ग्रसिनी देवी वामभागे व्यवस्थिता ॥३४३॥

वाचेश्वरी प्राणिनी च योगिनी योगि[जि]नी तथा ।
जपस्थिनी वरारोहे पञ्चमी परिकीर्तिता ॥३४४॥

पवनी पूतनान्यस्य फेत्कारा दक्षिणा प्रिये ।
वज्रिणी.........स्य मिषणी चोत्तर[रा] प्रिये ॥३४५॥

संवर्तलाकुलद्वितीयं महाकालं तृतीयकम् ।
कूटरूपा स्थिता भद्रे मध्यस्थं............ ॥३४६॥

[वाली]गं[शं] च भुजङ्गाख्यं पिनाकी खड्गमेव च ।
वकीशश्वेतभूतश्च[भृग्वीशाः] सप्तधा तु व्यवस्थिता[ः] ॥३४७॥

वालीशं रन्ध्रसंस्थाने भुजङ्गं कामगे पुरा ।
पिनाकी वह्निपुरे भद्रे खड्गीशं गोलके पुरे ॥३४८॥

वकीशं ध्वजपुरे देवि श्वेत[तं]कन्दे व्यवस्थितम् ।
भृग्वीशं मध्यतो देवि पिण्डाख्यपुरसंस्थितम् ॥३४९॥

देवीचतुष्क[ष्ट]यं ह्येतत् एकैकाया[कस्याः]चतुष्टयम् ।
अकारादि विसर्गान्ता एकैकाया[कस्या]श्चतुष्टयम् ॥३५०॥

एतच्चतुष्टयं देवि संसारपथि वर्तितम् ।
आपस्तेजस्तथा वायुराकाशं च चतुर्थकम् ॥३५१॥

क्षोणी च संस्थिता देवि प्रथमं च चतुष्टकं[यम्] ।
स्पर्शश्चैव रसं चैव रूपं गन्धस्तथैव च ॥३५२॥

चतुष्टयं वरारोहे शब्ददेवी व्यवस्थिता ।
चक्षुर्जिह्वास्तथा स्तो[श्रो]त्रं घ्राणं चेति चतुष्टयम् ॥३५३॥

एतच्चतुष्टयं देवेशि श्रोत्रदेवी व्यवस्थिता ।
पाणिपादं तथा पायूपस्थं चैव चतुष्टयम् ॥३५४॥

चतुष्टयमिदं देवि वाचादेवी व्यवस्थिता ।
अनेन क्रमयोगेन स्वरषोडशनिर्णयम् ॥३५५॥

चतुष्टयं तु भूतानां तन्मात्राणां चतुष्टयम् ।
बुद्धीन्द्रियचतुष्कन्तु चतुष्कं कर्मसंज्ञकम् ॥३५६॥
पञ्चमं तत्र विज्ञेयं पुंसः षड्गुणसंयुतम् ।
एवं निपातने पिण्डं पञ्चधा पञ्चविंशकम् ॥३५७॥
षाट्कौशिकं[कस्] तु मार्गोऽयं आदिदेवीचतुष्टयम् ।
कथितं सरहस्यं तु षट्सि[द्ध]पुरनिश्चयम् ॥३५८॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव सर्वज्ञ परमेश्वर ।
कथयस्व प्रसादेन षट्सिद्धपुरनिश्चयम् ॥३५९॥
नाम रूपं च वर्णश्च यथास्थाने व्यवस्थितम् ।
न मे ज्ञातं महेशान संस्फुटं कथयस्व मे ॥३६०॥

श्रीभैरव उवाच

कथयामि च ते भद्रे यथा जानासि निश्चयम् ।
कथिता सप्तधा सृष्टिः सिद्धाः सप्त वदाम्यहम् ॥३६१॥
नवतत्त्वेश्वरो नाथो नवचक्रेश्वरेश्वरः ।
भृगुलाकुलसंवर्ता महाकालं[लम्] ततः प्रिये ॥३६२॥
पिनाकी खड्गनाथश्च भुजङ्गश्च ततः पुनः ।
वालीशश्चार्घिणा युक्तो नवैते चक्रवर्तिनः ॥३६३॥
ब्रह्माण्डे शिवसिद्धोऽसौ हर्ता कर्ता स्वयं प्रभुः ।
स नाथः सर्वसिद्धानां पतित्वे संव्यवस्थितः ॥३६४॥
कन्दभूतोऽङ्कुरा सा वै षट्पुराधिपतीश्वरः ।
पुंपुरं प्रथमं प्रोक्तं प्राकृतं तु द्वितीयकम् ॥३६५॥
गुणानन्दपुरं देवि वीपुरं (?) तु चतुर्थकम् ।
कामाख्यं पुरं विज्ञाय पञ्चमं परिकीर्तितम् ॥३६६॥

म[प]रानन्दपुरं देवि षष्ठमं[षष्ठश्च] वीरवन्दिते ।
श्वेतं रक्तं तथा कृष्णं धूम्रं पीतं च नीलकम् ॥३६७॥

पं[पुं]रादौ क्रमेणैव वर्णैकैकमुदाहृतम् ।
खङ्गीशं पुंपुरे देवि सर्वज्ञानप्रकाशकम् ॥३६८॥

हिमकुन्देन्दुवर्णाभं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ।
जटाजूटधरं देवमर्द्धेन्दुकृतशेखरम् ॥३६९॥

विशालनयनं देवं दिव्यकुण्डलमण्डितम् ।
त्रिशूलं वरदं दक्षे काद्यं सूत्रं च वामके ॥३७०॥

विस्तीर्णं वर्णभोगाढ्यं नितम्बोरुसुविस्तरम् ।
ज्योत्स्नाकिरणतेजाढ्यं नानाभरणमण्डितम् ॥३७१॥

हारनूपुरकेयूरै रत्नमाला प्रलम्बिता ।
स्वशक्त्यानन्दसंभिन्नं खङ्गीशं सिद्धनायकम् ॥३७२॥

प्राकृते तु पुरा[रे] देवि खङ्गीशं दिव्यरूपधृक् ।
उदयादित्यसंकाशं दाडिमीकुसुमप्रभम् ॥३७३॥

चतुर्भुजैकवदनं त्रिनेत्रं मुकुटोज्ज्वलम् ।
शशाङ्कशेखरं दिव्यं रत्नकुण्डलमण्डितम् ॥३७४॥

कण्ठे हारधरः श्रीमान् स्कन्धे भोगमणीयुतम् ।
काद्यशक्तिधरं वामे वरदं शूलं दक्षिणे ॥३७५॥

नानालङ्कारसंपन्नं नानापानाभिनन्दितम् ।
सर्वावयवसंपूर्णं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥३७६॥

नानाभरणसंपूर्णं दिव्याम्बरपरिच्छदम् ।
स्वशक्त्यानन्दसंयुक्तं दिव्यज्ञानप्रकाशकम् ॥३७७॥

गुणानन्दपुरे देवि विश्वनाथं महाद्युतिम् ।
किंचित् श्वेतं च कृष्णाभं भिन्नाञ्जननिभं प्रिये ॥३७८॥

आताम्रनयनाभासं मदिरानन्दनन्दितम् ।
पिङ्गजूटधरं देवं शशाङ्काङ्कितशेखरम् ॥३७९॥
चतुर्बाहु[1]··································।

× × ×
× × ×

[2]·································भूषितम् ॥४०१॥
स्वशक्त्यानन्दितमनं नानासृष्टिप्रवर्तकम् ।
नानासि··································॥४०२॥
································प्रकाशकम् ।
म[ना]नानन्दकरं देवं नानासिद्धिप्रदायकम् ॥४०३॥
षट्पु·······························कुलनायकम् ।
कुलसिद्धाः समाख्याताः षट्क्रमाश्च[णां] प्रकाशकाः ॥४०४॥
························त्ये मर्त्यलोकमुपागताः ।
प्रभुरानन्दयोगाख्य मावली···················॥४०५॥
··············रे कल्पे कुलसिद्धाः कुले स्थिताः ।
कुलसिद्धाधिपा देवि···························॥४०६॥
षट्कुलानां त्वसौ नाथस्तस्मात्सर्वं कुलान्वयम् ।
न·································सौ प्रभुः ॥४०७॥

---

१. अतः परं पत्रमेकं (१७३ संख्यकं) खण्डितम्—ख०
२. अस्य पत्रस्य (१७४ संख्यकस्य) मध्यांशो नष्टः—ख पुस्तके

तस्मात्प्रवर्तते सृष्टिर्ब्रह्माद्याः कुल············ ।
························कर्तारः कुलपर्वताः ॥४०८॥

शास्तारं ब्रह्मपर्यन्तं देवि···················· ।
················ष्टौ यत्किञ्चिद्वाङ्मयं खिलम् ॥४०९॥

तत्सर्वं देविभिर्व्या························ ।
·········तु मुखेश्वरस्यान्ते कन्दः सप्तविधं प्रिये ॥४१०॥

तत्रजा·································· ।
देवीचतुष्टयाधारं[रो] मार्गोऽयं कथितोऽखिलः ॥४११॥

दे··························भलक्षणम् ।
यथास्थानगतं देवि वर्ण्यरूपं यथो·········· ॥४१२॥

··························च मतोत्तरे ।
न मया कस्यचित्ख्यातं तव स्नेहात्प्र[काशितम्] ॥४१३॥

इति श्री[मन्महामन्थान]विनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्या[वतारिते
गोरक्षसंहितायां शत]साहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे [कुलकौलिनीमते नवको]ट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

······निर्णयो नाम

षोडशः पटलः ॥ १६ ॥

●

सप्तदशः पटलः[1]

× × ×

.... डिमनिभा जवाहिङ्गुलकोपमाः ॥४०॥
एकवक्त्रास्त्रिनेत्राश्च समपीनपयोधराः ।
चतुर्भुजा महादीप्ताः सर्वावयवशोभिताः ॥४१॥
सर्वलक्षणसंपूर्णाः सर्वाभरणमण्डिताः ।
त्रिशूलाक्षधरा वामे पाशं वरदं दक्षिणे ॥४२॥
मध्यक्षामा नितम्बाढ्याः पीनोन्नतपयोधराः ।
महाव्याप्तिकरा देव्यः योगेशोत्सङ्गगामिनीः ॥४३॥
पूर्वं पयस्यदिग्भागे एकैकदलसंस्थिताः ।
योगेशं कर्णिकामध्ये देदीप्यन्तं व्यवस्थितम् ॥४४॥
हिरण्या च सुवर्णा च काञ्चनी हाटकी तथा ।
रुक्मिणी च मनस्वी च सुभद्रा जम्बुनायिका ॥४५॥
व्यापिनी पदमापन्ना लोकदूत्यो महाबलाः ।
व्याप्यव्यापकभावेन व्यापयन्ति चराचरम् ॥४६॥
तप्तहाटकवर्णाभा दीप्यमाना महाबलाः ।
चतुर्भुजैकवदना[ः] त्रिनेत्रा[ः] च स्मिताननना[ः] ॥४७॥
कम्बुं दर्पणं वामेन वरदा[दं] सूत्रं दक्षिणे ।
ईषद्वै हास्यमानास्तु पीनोन्नतपयोधराः ॥४८॥
सर्वाभरणसंपूर्णा नानालङ्कारमण्डिताः ।
यौवनस्था मदोन्मत्ता हारनूपुरमण्डिताः ॥४९॥

---

१. अत्रापि पटले पत्रद्वयं (१७५-१७६ संख्याकं) विनष्टं—ख० पुस्तके ।

किरीटकुण्डलयुता मदिरानन्दलालसाः ।
सर्वावयवशोभाढ्या लोकेशोत्सङ्गमाश्रिताः ॥५०॥

उत्तरस्यां च दिग्भागे पद्ममाश्रित्य संस्थिताः ।
वाग्वती वाक्कथा वाणी भीमा चित्ररथा सुधीः ॥५१॥

देवमाता हिरण्या च योगेशी नवमी स्मृता ।
वाणीश्वरपदान्तस्था हृद्केशसमन्विता[ः] ॥५२॥

मन्त्रवेधाङ्गसंभूताः सर्वार्थप्रतिपादिकाः ।
स्फटिकवर्णप्रतीकाशाः शुद्धशङ्खनिभाननाः ॥५३॥

त्रिनेत्राश्चैकवदनाः कर्णकुण्डलमण्डिताः ।
चतुर्भुजा महादीप्ताः सर्वाभरणमण्डिताः ॥५४॥

किरीटरत्नसंयुक्ता मुक्ताहारावलम्बिताः ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा हाटकोत्सङ्गमाश्रिताः ॥५५॥

ईशकोणाश्रिता देव्यः पद्ममाश्रित्य संस्थिताः ।
वज्रिणी शक्तिनी चैव दण्डिनी खड्गिनी तथा ॥५६॥

पाशिनी ध्वजिनी चैव गदिनी शूलिनी तथा ।
मुद्रेश्वरसमायुक्ता मुद्रेशाङ्गसमुद्भवाः ॥५७॥

पिङ्गदूत्यो महावीर्याः कलाः कालविधायिनीः ।
तेजोरूपा महावीर्या अनन्तगुणसंभवाः ॥५८॥

धूम्रवर्णा महादीप्ताः त्रिनेत्राश्च चतुर्भुजाः ।
शक्तिसूत्रधरा दक्षे वामे ज्ञानकमण्डलुम् ॥५९॥

पद्मासनस्थिता देव्यः सर्वाभरणमण्डिताः ।
सर्वलक्षणसंपूर्णाः सर्वावयवशोभिताः ॥६०॥

किरीटरत्नखचिता वर्णहारावलम्बिनी ।
मध्ये कृशा नितम्बाढ्या मृदेशोत्सङ्गगामिनी (?) ॥ ६१ ॥

अग्निकोणाश्रिता देव्यः पद्मपत्रे व्यवस्थिताः ।
लम्बा लम्बस्तनी शुष्का पूतिवक्त्रा महानना ॥ ६२ ॥

गजवक्त्रा महानासा विद्युत्क्रव्यादनायिका ।
कालानलाङ्गसंभूताः संहारपदमाश्रिताः ॥ ६३ ॥

अनन्तगुणवीर्यास्ताः संहरन्ति चराचरम् ।
कृष्णाभा[ः] कृष्णवर्णाभा लाजावर्तसमप्रभाः ॥ ६४ ॥

नीलिकाञ्जनसंकाशा नीलोत्पलसमप्रभाः ।
एकवक्त्रास्त्रिनेत्राश्च चतुर्भुजाभरणान्विताः ॥ ६५ ॥

खड्गसूत्रधरा दक्षे कम्बु खेटकं वामके ।
नानालङ्कारसंपन्ना नानालङ्कारशोभिताः ॥ ६६ ॥

रक्तनेत्रा महारौद्रा किञ्चिद् दृष्टौ च भीषणाः ।
पिङ्गकेशा महादीप्ता[ः] कर्णकुण्डलमण्डिताः ॥ ६७ ॥

सर्वावयवसंपूर्णाः समपीनपयोधराः ।
मध्ये स्थूला नितम्बाढ्या हारनूपुरमण्डिताः ॥ ६८ ॥

सर्वार्थगुणसम्पन्नाः क्रव्यादोत्सङ्गमाश्रिताः ।
नैर्ऋत्यसंस्थिता देव्यः पद्मपत्रे व्यवस्थिताः ॥ ६९ ॥

सुप्रबुद्धा प्रबुद्धा च चण्डी मुण्डी कपालिनी ।
मृत्युहन्त्री विरूपाक्षी कपर्दी कलनात्मिका ॥ ७० ॥

कपालीशसमुद्भूता शुभाशुभनियामिका ।
लोहिताम्बुदसंकाशा भिन्नरोचनसंनिभाः ॥ ७१ ॥

अतिदीप्ता महास्फीता महाबलपराक्रमाः ।
चतुर्भुजैकवदना[ः] त्रिनेत्राभरणान्विताः ॥ ७२ ॥

कम्बुध्वजधरा वामे प्रासं मुद्गरं दक्षिणे ।
नानाभरणशोभाढ्या नानालङ्कारसंयुताः ॥ ७३ ॥

सौम्यरूपसमापन्ना[ः] त्रिवलीमध्यशोभिताः ।
सर्वयौवनसंपन्नाः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥ ७४ ॥

सर्वावयवसंपूर्णाः किरीटकुण्डलान्विताः ।
रत्नमाला शिरे दिव्या सर्वालङ्कारमण्डिताः ॥ ७५ ॥

मनोवेगरता देव्यः कपालीशपदाश्रिताः ।
वायव्यकोणगा देव्यो व्याप्य पद्मोपरि स्थिताः ॥ ७६ ॥

एकाशीतिविभागेन दूत्यो ह्येवं महाबलाः ।
नवकेश्वरदेवस्य उदरायं[दयार्थं] प्रकीर्तितम् ॥ ७७ ॥

एकाशीतिपदैर्व्याप्तं अनेकाश्चर्यसंकुलम् ।
पदरूपसमायुक्तं रूपातीतादिसंयुतम् ॥ ७८ ॥

पदमार्गविधायिन्यः त्रितत्त्वपदवीं लभेत् ।
अतोर्द्धं[र्ध्वं] दिव्ययोगिन्यः षोडशैव महाबलाः ॥ ७९ ॥

षोडशारे महापद्मे योगिन्यो बलवत्तराः ।
तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु ह्येकमना प्रिये ॥ ८० ॥

अश्वजाकर्षिणी सौम्या विधूमा धूम्यशेषतः[षिता] ।
बिन्दुका बिन्दुगर्भा च नादिनी नादगर्भजा ॥ ८१ ॥

शक्तिश्च गर्भिणी चान्या परा गर्भावधारिणी ।
निराचारपदावस्था मध्यस्थानन्तवर्चसा ॥ ८२ ॥

नानावर्णधराः सर्वे[र्वाः] नानाभरणमण्डिताः ।
चतुर्भुजैकवक्त्राश्च त्रिनेत्राश्च शुभाननाः ॥ ८३ ॥

वाममार्गगता देव्यो वरदाः कम्बुपाणयः ।
पाशाङ्कुशधरा दक्षे पद्ममध्ये व्यवस्थिताः ॥ ८४ ॥

द्योतयन्ति जगत्सर्वम् उदयादित्यसंनिभाः ।
सर्वलक्षणसंपूर्णाः सर्वावयवशोभिताः ॥ ८५ ॥

कुचोन्नता नितम्बाढ्या अनन्तोत्सङ्गगामिनी[गास्तथा]।
अधिकारं प्रकुर्व्वन्ति कुलाकुलसमन्विताः ॥ ८६ ॥

चण्डा चण्डमुखी चण्डा चण्डवेगा मनोजवा।
चण्डाक्षी चण्डनिर्घोषा भ्रूकुटीचण्डनायिका ॥ ८७ ॥

चण्डीशनायकोपेता अकुलीशपदे स्थिताः।
नीलजीमूतवर्णाभा महाकाया महाबलाः ॥ ८८ ॥

चतुर्भुजास्त्रिनेत्राश्च वरदा दण्डपाणयः।
दक्षिणेन महादेवि वामेन कथयाम्यहम् ॥ ८९ ॥

काद्यं डमरुकं वामे तथाक्षा रक्तलोचनाः।
सर्वाभरणसंपन्नाः सर्वावयवशोभिताः ॥ ९० ॥

महोदरा नितम्बाढ्या लम्बस्थूलस्तनाः प्रिये।
दिव्यकुण्डलशोभाढ्याः किरीटमुकुटोज्ज्वलाः ॥ ९१ ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णाश्चण्डस्योत्सङ्गगामिनी [गास्तथा]।
दक्षिणस्य च दिग्भागे पद्ममाश्रित्य संस्थिताः ॥ ९२ ॥

तस्मात्परात्परा सृष्टिर्मनोन्मन्यादिसंभवा ।
मनोजवा मनोऽध्यक्षा मानसी मननायिका ॥ ९३ ॥

मनोहारी मनोह्लादी मनःप्रीतिर्म्मनेश्वरी।
मनोन्मनसमायुक्ता उन्मनापदमाश्रिताः ॥ ९४ ॥

नवैव परमा दूत्यो मनश्चोन्मनकारिकाः।
शरदम्बुदसंकाशा महादीप्तिर्महाम्बुदाः ॥ ९५ ॥

नानालङ्कारसंपन्ना हारकेयूरमण्डिताः।
यौवनस्था मदोन्मत्तास्त्रिनेत्राश्च चतुर्भुजाः ॥ ९६ ॥

अभयं कम्बुकं वामे वरदं पाशं दक्षिणे।
त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था वज्रासनगता शुभा ॥ ९७ ॥

मनोह्लादकरी देवी मननाथोत्सङ्गगामिनी।
पश्चिमाम्बुजदिग्भागे पद्ममाश्रित्य संस्थिताः॥ ९८॥
ऐन्द्री हुताशपार्श्वादिर्नैर्ऋती वारुणी तथा।
वायवी चैव कौबेरी ऐशानी च कुलेश्वरी॥ ९९॥
समनो[सुमनौ]घपटान्तस्था पराकाशे व्यवस्थिता।
जनयन्त्यः परां सृष्टिं योगाख्या व्यापिनीपदे॥१००॥
नवैव परमा देव्य उदयार्कसमप्रभाः।
बन्धूकदा[1]—

× × ×

× × ×

---

१. अतः परं विंशतिपटलस्य द्वितीयं श्लोकं यावत् (पत्र सं० १८०-१९३) पाठः खण्डितः—ख पुस्तके।

...खेटकं खट्वाङ्गं घण्टा शक्तिस्तु मुद्गरम् ॥
वाममार्गे वरारोहे अस्त्रसंघातभीषणम् ।
काद्यमाला प्रलम्बा च हेमसूत्रेण ग्रन्थिता ॥
सिंहारूढं महारौद्रं गर्जन्तं भैरवं स्वरम् ।
प्रयागपुरमध्यस्थं क्रीडते योगिनी सह ॥
वाराणस्यां तु मध्यस्था रुद्रभैरवसंयुताः ।
कुर्वन्ति विविधां सृष्टिमापदं मोचयन्ति ताः ॥
तृष्णा रागवती मोहा कामोत्कोचा तमोत्कटा ।
ईषोशौ[षच्छो]कवतीत्यष्टौ वह्निकोणाश्रिताः स्थिताः ॥
राकिनीकुलसंभूता योगिन्यो बलवत्तराः ।
तद्रूपगुणसंयुक्ताः स्वायुधाः स्वस्ववाहनाः ॥
नानालङ्कारसंपूर्णा नानावस्त्रपरिच्छदाः ।
युवत्यश्च मदोन्मत्ता अष्टारे पञ्जरे स्थिताः ॥
कर्णिकोदरसंभूताः शृङ्गाटपुरमध्यगाः ।
रुद्रं नाम महाभीमं ताम्राभं ताम्रवर्चसम् ॥
सूर्यबिम्बप्रतीकाशं इन्द्रगोपकसन्निभम् ।
किरीटरत्नखचितं वज्रकुण्डलमण्डितम् ॥
हारकेयूरशोभाढ्यं महापाणिविभूषितम् ।
भुजाष्टकसमोपेतं नानालङ्कारमण्डितम् ॥
त्रिशूलं डमरुं पाशं नागराजं च दक्षिणे ।
मुद्रां वीणां तथा सूत्रं मुसलं वाममाश्रितम् ॥
रुद्रमालाविचित्राढ्या आपादतललम्बिनी ।
गर्जमानं महाभीमं श्वानारूढं महाबलम् ॥
क्रीडन्तं योगिनीसार्धं वरुणापुरमध्यगम् ।
महाकल्पान्तमध्यस्थाश्चण्डभैरवसंयुताः ॥

क्रीडन्ति परमा हृष्टा योगिन्यो बलवत्तराः ।
स्पर्शा स्पर्शवती गन्धा प्राणाघाता समानिनी ॥

उदानी व्यानी कृकरा यमांशाः परिकीर्तिताः ।
कोल्हापुरस्य मध्यस्था क्रीडन्त्यमिततेजसः ॥

लाकिनीकुलसंभूतास्तद्रूपगुणलालसाः ।
तद्धर्मधर्मिणी चान्या स्वायुधैर्वाहनैर्युता ॥

नानाभरणशोभाढ्या नानादिव्याम्बरावृताः ।
यौवनस्था मदोन्मत्ताः मदिरानन्दनन्दिताः ॥

कर्णिकोदरमध्यस्थं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ।
चण्डनाथं महारौद्रं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥

लाजावर्तप्रतीकाशं नीलमेघसमप्रभम् ।
मुकुटेन विचित्रेण सर्वरत्नमयेन तु ॥

रत्नकुण्डलशोभाढ्यं दीप्यमानं महौजसम् ।
हेमररत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥

द्विपञ्चकभुजैर्युक्तै[क्ताः] नानालङ्कारमण्डिताः ।
कार्यं खट्वाङ्गं दण्डं च पाशं शक्तिश्च वामके ॥

वज्र परिघं शूलं च डमरुं सूत्रं दक्षिणे ।
बृहद्वक्षस्थलाभोगं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥

सर्वावयवशोभाढ्यं कोलपृष्ठसमाश्रितम् ।
क्रीडमानं विशालास्यं योगिनीचक्रमध्यगम् ॥

कोला[ल्हा]पुरं समासाद्य क्रीडमानं महौजसम् ।
क्रीडते योगिनीसार्धं नानारूपधरेच्छया ॥

दिव्यकल्पे पुरा मात्र्यो क्रीडन्त्यमिततेजसः ।
अट्टहासपुरान्तस्थाः चक्रमध्ये व्यवस्थिताः ॥

तमोहन्त्री प्रभा मोहा तेजिनी दहनी तथा[पा] ।
ज्वालिनी शोषिणीत्यष्टौ[?] नैऋत्यांशसमुद्भवाः ॥

सर्वज्ञाः सर्वगा देव्यो दिव्यादिव्यनिषेविताः ।
काकिनीकुलसंभूतास्तद्रूपगुणसंभवाः ॥

स्वायुधैर्वाहनैर्युक्ताः स्वशक्तिबलदर्पिताः ।
नानालङ्कारसंयुक्ता नानाभरणमण्डिताः ॥

सर्वावयवसंपूर्णाः सर्वावयवशोभिताः ।
क्रोधसिद्धं महारौद्रं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ॥

नीलोत्पलदलश्यामं वीरभस्मसमप्रभम् ।
किरीटकुण्डलैर्युक्तं वज्ररत्नप्रदीपितम् ॥

महारत्नाङ्किता माला कण्ठस्था च विराजते ।
भुजै[जा]षोडशकोपेतं नानाकेयूरमण्डितम् ॥

वरदं शूलं सूत्रं च नागं बाणं सवज्रकम् ।
कम्बुशक्तिधरं दक्षे तदा[था] वामे वदाम्यहम् ॥

कार्यं पिनाकं परिघं घण्टां पाशं समुद्गरम् ।
कर्तृकां दर्पणं वामे दीप्यमानं सुतेजसम् ॥

विस्तीर्णवक्षःसुभगं विशालनयनोज्ज्वलम् ।
त्रिनेत्रवदनं देवं नानाभरणमण्डितम् ॥

कपालमालाभरणं दंष्ट्राशतव्यवस्थितम् ।
अट्टहासपुरान्तस्थं क्रीडमानं व्यवस्थितम् ॥

रमते[न्तं] योगिनीसार्धं स्वशक्तिबलदर्पितम् ।
दिव्यादिव्यपरे कल्पे जयन्तीपुरमध्यगाः ॥

उन्मत्तनाथसंयुक्तास्तेन सार्धं रमन्ति ताः ।
शाकिन्यङ्गसमुद्भूतास्तासां नामानि मे शृणु ॥

निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिस्तथैव च ।
शान्त्यतीता च पृथिवी वज्रिणी कामधेनवी ॥

वारुणांशाश्च योगिन्यश्चक्रं व्याप्य व्यवस्थिताः ।
शाकिन्यङ्गसमुद्भूतास्तद्रूपगुणचेतसः ॥

नानालङ्कारसंपन्ना नानाभरणमण्डिताः ।
सर्वलक्षणसंपूर्णाः सर्वावयवशोभिताः ॥

मदिरानन्दचेतस्का यौवनोन्मत्तलालसाः ।
शृङ्गाटपुरमध्ये तु नाथं चोन्मत्तसंज्ञकम् ॥

शरदंकुन्द[-दाम्बुद] वर्णाभं दीप्यमानं सुतेजसम् ।
किरीटिनं महाभीमं वज्रकुण्डलधारिणम् ॥

स्फाटिकैर्मणिमालाभिः शिरस्थाभिर्विराजते ।
त्रिनेत्रं द्वादशभुजं नानालङ्कारमण्डितम् ॥

सूत्रं खेटकं नागं च पिनाकं यष्टिदर्पणम् ।
वाममार्गे तु संस्थाश्च दिव्यास्त्रा दिव्यरूपिणः ॥

वक्षं विपुलमाभोगं हेमपट्टविभूषितम् ।
दिव्यरत्नकृता माला आपादतललम्बिनी ॥

नूपुरैः कटिसूत्रैश्च हैमैर्घोणसमन्वितैः ।
हंसयानसमारूढं जयन्ति[न्ती]पुरमध्यगम् ॥

रमते योगिनी सार्धं क्रीडमानं महाबलम् ।
दिव्यादिव्यपरे कल्पे क्रीडन्त्यमिततेजसः ॥

आदित्य[व्य] कल्पमध्यस्था अष्टौ मात्र्यश्चरित्रगाः ।
काद्यभैरवसंयुक्ताश्चक्रारूढा सुतेजसः ॥

तेन सार्धं रमन्तीति योगिन्यो बलवत्तराः ।
हाकिन्यङ्गसमुद्भूता योगिन्यः प्राणहाः प्रिये ॥

ताश्च ते कथयिष्यामि यथानामानि मे शृणु ।
पयोष्णी वारुणी शान्ता अमृता व्यापिनी तथा ॥

प्लवनी जलमाता च बलिनी चाष्टमी स्मृता ।
मरुताङ्गसमुद्भूता योगिन्यो बलदर्पिताः ॥

हाकिनीकुलसंभूतास्तद्रूपगुणसंयुताः ।
यौवनस्था मदोन्मत्ता मदिरानन्दलालसाः ॥

सर्वाभरणसंयुक्ताः सर्वावयवशोभिताः ।
सर्वलक्षणसंयुक्ता दिव्यरूपाः सुतेजसः ॥

कर्णिकास्थं महातेजं काद्यनाथं महाबलम् ।
तप्तकाञ्चनवर्णाभं द्रुतपारदसन्निभम् ॥

महाप्रचण्डदण्डोग्रं कपालाभरणोज्ज्वलम् ।
दंष्ट्राकरालं रौद्रं च त्रिनेत्राष्टभुजं प्रिये ॥

मुकुटेन विचित्रेण बहुरत्नमयेन च ।
मणिरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥

ध्वजं काद्यं तथा नागं शक्तिं वामेन चोत्तमम् ।
सूत्रं शूलं तथा पाशमङ्कुशं दक्षिणे स्थितम् ॥

नानाभरणशोभाढ्यं नानालङ्कारमण्डितम् ।
मृगारूढं महातेजश्चक्रमध्ये व्यवस्थितम् ॥

रमते योगिनीसार्धं चरित्रपुरमध्यगम् ।
स्वशक्तिबलमाश्रित्य क्रीडमानं महौजसम् ॥

आदिव्यकल्पमध्यस्था योगिन्यो बलदर्पिताः ।
एकाम्रपुरमध्यस्था भीमेशानसमन्विता ॥

क्रीडन्ति विविधाकारैर्नानारूपेण चेच्छया ।
याकिनीगर्भसंभूता कौबेरांशसमुद्भवाः ॥

तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं वीरमातरे ।
सौम्या सौम्यवती सिद्धा योगजा योगसंभवा ॥
चण्डा चण्डमुखी भीमा योगिन्यो बलवत्तराः ।
यक्षिण्यङ्गसमुद्भूता तद्रूपगुण चेतसः ॥
नानाभरणतेजाढ्या नानालङ्कारमण्डिताः ।
सर्वावयवसंपूर्णाः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥
भीमेशं कर्णिकामध्ये त्रिकोणपुरमध्यगम् ।
ह्रस्वं स्थूलं महाकायं रक्ताभं रक्तवर्चसम् ॥
किरीटिनं सुतेजाढ्यं रत्नकुण्डलमण्डितम् ।
नीलवज्रकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥
शङ्खशुक्तिकमालाभिरापादतलशोभितम् ।
दशबाहुं महाभीमं नानाभरणमण्डितम् ॥
खड्गं पाशं तथा शूलं सूत्रं वरदं दक्षिणे ।
खेटकं डमरुं पाशं मुद्गरं मुसलं प्रिये ॥
वामपार्श्वे स्थिताश्चास्त्राः कालानलसमप्रभाः ।
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वावयवशोभितम् ॥
नानारत्नमयी माला कटिबद्धा विराजते ।
अश्वारूढं सुतेजाढ्यं क्रीडते चक्रमध्यतः ॥
स्वशक्तिबलमाश्रित्य क्रीडन्त्यमिततेजसम् ।
एकाम्रपुरमध्यस्थं चक्रमाश्रित्य तिष्ठति ॥
अनादियुगपर्यन्तं दिव्यादिव्ये व्यवस्थिताः ।
आदिव्यकल्पमध्यस्था देवि कोटान्तसंस्थिताः ॥
रौद्रांशांशसमुद्भूता योगिन्यो बलदर्पिताः ।
कुसुमाकुलसंभूता त्वद्रूपगुणमाश्रिताः ॥

स्वस्ववाहनसंयुक्ताः स्वायुधैर्बलदर्पिताः ।
नानालङ्कारशोभाढ्या नानाभरणमण्डिताः ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णाः सर्वावयवशोभिताः ।
संवर्तकं महानाथं कर्णिकोपरि संस्थितम् ॥

कृष्णपारदसंकाशं वीरभस्मसमप्रभम् ।
महातेजं महाकायं सर्वावयवशोभितम् ॥

भुजैः[जा]षोडशसंयुक्तं नानाकेयूरमण्डितम् ।
किरीटिनं महाघोरं रत्नकुण्डलमण्डितम् ॥

हेमरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
आताम्रनयनं तीव्रं सून्नतं दिव्यरूपिणम् ॥

कलशं कम्बु पाशं च नागं शूलं च दर्पणम् ।
कर्तरीडमरुं वामे दीप्यमाना तडिद्यथा ॥

काद्यं सूत्रं तथा वज्रं शक्तिमङ्कुशं तोमरम् ।
पिनाकपाणिं वरदं दक्षिणेन विराजते ॥

शवयानसमारूढं देवि कोटान्तसंस्थितम् ।
रमते योगिनीसार्धं नानारूपधरं प्रभुम् ॥

स्वशक्तिबलमाश्रित्य क्रीडते योगिनी सह ।
क्षेत्राष्टकसमुद्भूता चतुःषष्टि महाबलाः ॥

योगिनीषट्कगर्भस्था संभूताश्च बलोत्कटाः ।
एतद्योगिनि चक्रं ते वायुतत्त्वं चतुर्थकम् ॥

न कस्यचिन्मयाख्यातं दिव्यज्ञानं महोदयम् ।
योगिनीगर्भसंभूता वीरांशाश्चैव मानवाः ॥

ते लभन्ति महाज्ञानमन्यथा न कदाचन ।
गुरुप्रसादाल्लभ्येत भक्तियुक्तेन चेतसा ॥

गुरुभक्तिविहीना ये समयाचारलोपकाः ।
हेतुका दाम्भिकाः क्षुद्रा निन्दकाश्चुम्बकाः प्रिये ॥

न तेषां कथ्यते देवि दिव्यज्ञानं महोदयम् ।
सुगोप्यं चैव कर्तव्यं यदीच्छेत्सिद्धिं शाश्वतीम् ॥

सर्वभावेन ये भक्ता त्रिकालं गुरुमण्डले ।
गुरुपादार्चनरता विद्याभाण्डारपूजकाः ॥

गुप्तलिङ्गी मनोत्साहाः तपस्विजनवत्सलाः ।
योगिनीपूजनरताः कुमारीणां च पूजकाः ॥

तेषां देयमिदं ज्ञानं वाञ्छितार्थफलप्रदम् ॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

योगिनीचक्रनिर्णयो नाम

ऊनविंशः पटलः ॥ १९ ॥

विंशः पटलः

श्रीकण्ठ उवाच

प्रणिपत्य महादेवि[वी] हृष्टरोमा बभूव ह ।
प्रोत्फुल्लनयना भूत्वा वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

दयया परया मह्यं मण्डलीकं कुलाकुलम् ।
त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं भ्रान्तिमोहं विनाशितम् ॥ २ ॥

योगिनीचक्रं विदितं सुस्फुटं चातिलक्षणम् ।
येन विज्ञातमात्रेण खे गतिं लभते ध्रुवम् ॥ ३ ॥

कथयस्व प्रसादेन खेचरीचक्रनिर्णयम् ।
कथं केन प्रकारेण का कस्य तनुसंभवा ॥ ४ ॥

तत्सर्वं वद मे नाथ निःसंदिग्धकरं स्फुटम् ।
येन विज्ञातमात्रेग खे गतिर्लभ्यते ध्रुवम् ॥ ५ ॥

श्रीभैरव उवाच

अत्यन्तगोपितं नाथे अप्रकाश्यं सुरक्षितम् ।
सर्वसिद्धिकरं देवि ज्ञानरत्नं महोदयम् ॥ ६ ॥

येन विज्ञातमात्रेण अणिमादिगुणं लभेत् ।
तदहं कथयिष्यामि रहस्यं पूर्वगोपितम् ॥ ७ ॥

भुवनाङ्कुरसंयुक्तं पदपत्रविभूषितम् ।
वर्णकण्टकसंकीर्णं मन्त्रच्छिद्रसमन्वितम् ॥ ८ ॥

कलासूत्रान्वितं दिव्यं तत्त्वग्रन्थपरिस्थितम् ।
कोटिकोटिसुविस्तीर्णं चतुर्विंशदलायतम् ॥ ९ ॥

व्योमोदार्णवमध्यस्थं नीलाञ्जनसमप्रभम् ।
सहस्रादित्यसंकाशं कालाग्निरिव वर्चसम् ॥ १० ॥

कर्णिकोदरमध्यस्थं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ।
प्रचण्डभैरवं देवं दीप्यमानं व्यवस्थितम् ॥ ११ ॥

स्वशक्त्यानन्दचेतस्कं सृजत्येवं चराचरम् ।
नीलाञ्जननिभाकारं नीलवैदूर्यसन्निभम्[1] ॥ १२ ॥

नीलजीमूतसंकाशं प्रलयानलवर्चसम् ।
पञ्चवक्त्रं महाकायं त्रिनेत्रं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ १३ ॥

नानारत्नमयी दिव्या कण्ठे माला विराजते ।
हेमरत्नमयैर्दिव्यैः कर्णौ कुण्डलमण्डितौ ॥ १४ ॥

विंशद्वाहुं महाघोरं नानालङ्कारमण्डितम् ।
नानाभरणशोभाढ्यं नानारत्नप्रदीपितम् ॥ १५ ॥

नानास्रग्दामशोभाढ्यं परमानन्दनन्दितम् ।
वरदं शूलं सूत्रं च नागं पाशं तथाङ्कुशम् ॥ १६ ॥

शक्तिवाणधरं देवं परिघं मुद्गरोद्धृतम् ।
दक्षमार्गे तु देवेशि अस्त्रं कालानलप्रभम् ॥ १७ ॥

अभयं च पिनाकाद्यं खड्गं खेटकदर्पणम् ।
वीजपूरकखट्वाङ्गं घण्टावज्रध्वजायुधम् ॥ १८ ॥

वाममार्गकरे लग्नम् अस्त्रज्वालासमप्रभम् ।
प्रलयानलसंकाशं दीप्यमानं महोत्कटम् ॥ १९ ॥

बृहद्वक्षस्थलाभोगं नागराजोपवीतिनम् ।
चित्रनागैः कटीसूत्रं व्याघ्रचर्मपरिच्छदम् ॥ २० ॥

---

१. °संभवम्—क०

पादौ नूपुरसंयुक्तौ क्षुद्रघण्टिकमण्डितौ ।
महारत्नकृता माला आपादतललम्बिनी ॥ २१ ॥

महोदरं महाभीमं स्वशक्त्युत्सङ्गधारिणम् ।
चतुर्भुजा महातेजा त्रिनेत्रा चारुहासिनी ॥ २२ ॥

पाशाङ्कुशधरा देवी वीणाशूलधरा प्रिये ।
नानाभरणसंपूर्णा नानालङ्कारमण्डिता ॥ २३ ॥

रोचनारुणसंकाशा पीनवृत्तपयोधरा ।
रत्नकुण्डलशोभाढ्या किरीटमुकुटोज्ज्वला ॥ २४ ॥

हारकेयूरशोभाढ्या सर्वावयवभूषिता ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा नानादिव्याम्बरान्विता ॥ २५ ॥

यौवनस्था मदोन्मत्ता मदिरानन्दलालसा ।
चण्डभैरवसंशक्ता वामजङ्घासनान्विता ॥ २६ ॥

शृङ्गाटपुरमध्यस्था क्रीडानन्दैकनिर्भरा ।
तस्यैवे[स्या इ]च्छा समुद्भूता योगिन्यो बलवत्तराः ॥ २७ ॥

महाव्याप्तिधरा देवी आकाशान्तरगामिनी ।
द्वादशैते[ताः] महा उग्राः सृष्टिसंहारकारिणी[काः] ॥ २८ ॥

द्वादशारे महाचक्रे पदपत्रस्य मध्यगाः ।
तेषां[तासां]नामानि वक्ष्यामि योगिन्यो या महाबलाः ॥२९॥

सभ्रमा विभ्रमा रौद्रा कुम्भिका कौशिका शुका ।
सुशुका च खगा बिम्बा मृगारम्भा महोत्कटा ॥ ३० ॥

द्वादशैते[ताः] महातेजाः खेचरीचक्रमध्यगाः ।
नानावर्णसमायुक्ता नानालङ्कारशोभिताः ॥ ३१ ॥

नानाभरणशोभाढ्याः केयूरपरिमण्डिताः ।
हारकुण्डलसंयुक्ताः किरीटमुकुटोज्ज्वलाः ॥ ३२ ॥

त्रिनेत्राश्च त्रिवक्त्राश्च भुजद्वादशकान्विताः ।
खड्गं सूत्रं त्रिशूलं च पाशं परिघं मुद्गरम् ॥ ३३ ॥

दक्षमार्गेण देवेशि दिव्यास्त्राणि महोज्ज्वलाः ।
कार्द्य खेटकं खट्वाङ्गं वीणां दण्डं कमण्डलुम् ॥ ३४ ॥

वामेन च महास्त्राणि कालानलसमप्रभाः ।
सर्वास्ता यौवनोन्मत्ता मदिरानन्दघूर्णिताः ॥ ३५ ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णाः सर्वावयवशोभिताः ।
सर्वैर्गुणैः समोपेताः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ॥ ३६ ॥

वैनतेयस्थिताः सर्वा दिव्यरूपा महौजसः ।
द्वादशारे महाचक्रे आरूढाः स्वस्ववाहनैः ॥ ३७ ॥

स्वेच्छया बलमाश्रित्य क्रीडन्त्येव बलोत्कटाः ।
ताश्च क्षुब्धा यदा काले मृतं मुञ्चन्ति भाविताः ॥ ३८ ॥

तदा प्रवर्तिता सृष्टिर्द्विविधा वीरनायिके ।
चतुर्विंशत्समुद्भूता कदम्बाद्या महाबलाः ॥ ३९ ॥

चतुर्विंशद्दले चक्रे द्वादशार्द्धे व्यवस्थिताः ।
तेषां[तासां] नामानि वक्ष्यामि क्रमेणैव शृणुष्व मे ॥ ४० ॥

कदम्बा सिद्धिदा चैव लक्ष्मीनामा तृतीयका ।
ज्वालामुखी तथा माया प्रशमा वायुवेगिका ॥ ४२ ॥

पवना च महा उग्रा ऊर्द्ध[र्ध्व]केशी तथा परा ।
कर्ममोटी वरारोहे अम्बिका ह्यम्बिकेश्वरी ॥ ४३ ॥

अग्निवक्त्रा च पिङ्गाक्षी गोकर्णी क्रमर्णा तथा ।
चामुण्डा च प्रसन्नास्या विद्युत्तेजा महाबला ॥ ४४ ॥

महाकेशी अग्निज्वाला लोकमाता च कम्पिनी ।
भग्ननासान्तिमे देवी चतुर्विंशन्महाबलाः ॥ ४५ ॥

खेचरीचक्रमारूढा महातेजा महाबलाः ।
मूर्तिभूताः स्थिता देव्य आयुधैर्वाहनैर्युताः ॥ ४६ ॥

सितकुन्देन्दुवर्णाभा गोक्षीरसदृशोपमाः ।
अक्षाश्चैवैकवदनाः किरीटकुण्डलैर्युताः ॥ ४७ ॥

नीलरत्नमयी माला शिरःस्था च विराजते ।
हेमरत्नकृता माला सर्वासां कण्ठभूषणा ॥ ४८ ॥

पीनस्तना विशालाक्षी[क्ष्यो] हारनूपुरमण्डिताः ।
भुजषोडशकोपेता नानारत्नविभूषिताः ॥ ४९ ॥

नानालङ्कारसंपन्नाः सर्वलक्षणलक्षिताः ।
काद्यं कम्बु तथा वीणा खेटकं परिघं पुनः ॥ ५० ॥

ज्ञानं मुद्रा त्रिशूलं च वाममार्गानुगा इमे ।
सूत्रं खड्गं तथा पाशमङ्कुशं शक्ति तोमरम् ॥ ५१ ॥

घण्टाखट्वाङ्गसंयुक्ता दक्षिणेन कृतायुधाः ।
सिंहारूढा महातेजाः कदम्बाद्या मरीचयः[1] ॥ ५२ ॥

इन्द्रगोपकसंकाशा जवाकुसुमसन्निभा ।
त्रिनेत्रा च प्रसन्नास्या हारकुण्डलमण्डिता ॥ ५३ ॥

मुकुटेन विचित्रेण शशाङ्केन विराजितम्[ता] ।
मुक्ताफलमयी माला कण्ठस्था च विराजते ॥ ५४ ॥

मध्यक्षामा नितम्बाद्या[ढ्या] वृत्तपीनपयोधरा ।
भुजद्वादशकोपेता नानाकेयूरमण्डिता ॥ ५५ ॥

पाशाङ्कुशं तथा कम्बु सूत्रं शूलं तथा प्रिये ।
परिघं चायुधं दक्षे दीप्यमाना व्यवस्थिता ॥ ५६ ॥

---

१. अतः परं १७३ श्लोकं यावत् (पत्र सं० ३०१–३१०) खंडितं क—पुस्तके ।

काद्यं वीणां तथा शक्तिं नीलपद्मं च दर्पणम् ।
वामस्थाश्चायुधा ह्येते सर्वशत्रुनिवारिणी ॥ ५७ ॥

यौवनस्था मदोन्मत्ता ईषत्प्रहसितानना ।
प्रेतारूढा महादेवी सुसिद्धा नाम विश्रुता ॥ ५८ ॥

तप्तचामीकरप्रख्या रोचनाभा सुदीपिता ।
हेमरत्नमयी दिव्या किरीटकुण्डलान्विता ॥ ५९ ॥

हेमरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
पीनोन्नता प्रसन्नास्या विशालनयनोज्ज्वला ॥ ६० ॥

भुजाष्टकसमोपेता नानालङ्कारमण्डिता ।
पद्मं पाशं तथा शूलं खड्गमुद्यम्य दक्षिणे ॥ ६१ ॥

काद्यं कम्बु तथा सूत्रं मुद्रा वामे व्यवस्थिता ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ॥ ६२ ॥

यौवनोन्मत्तचेतस्का सर्वकामफलप्रदा ।
वारुणस्था महादीप्ता लक्ष्मीनामा तृतीयका ॥ ६३ ॥

कृष्णाञ्जननिभा देवो कृष्णजीमूतसन्निभा ।
कालानलसमप्रख्या ज्वालास्या तीक्ष्णदंष्ट्रका ॥ ६४ ॥

त्रिनेत्रा रक्तकोपान्ता किरीटकुण्डलान्विता ।
नानारत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥ ६५ ॥

षड्भुजा च महादीप्ता नानालङ्कारमण्डिता ।
ध्वजं पाशं तथा शूलं दक्षिणेन सुदीपिता ॥ ६६ ॥

काद्यं घण्टां तथा दण्डं वाममार्गोद्यता शुभम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा महाभीमा महाबला ॥ ६७ ॥

यौवनोन्मत्तभोगाढ्या नानामेखलमण्डिता ।
नूपुरारावझाङ्कारा गर्जन्ती मेघसन्निभा ॥ ६८ ॥

[1]ख .... समारूढा तर्जमाना बलोत्कटा ।
विघ्नानुत्सादयन्तीं तां ज्वालास्यां तामन .... ॥ ६९ ॥
.... महामाया महाचण्डा नीलजीमूतसन्निभा ।
नीलरत्नकृता माला कण्ठस्था .... ॥ ७० ॥
हेमरत्नप्रदीप्ताद्या[ढ्या] किरीटकुण्डलान्विता ।
शङ्खशुक्तिकमालाभिरापा[दतललम्बि]नी ॥ ७१ ॥
वज्रमायाधरी देवी नानारूपकृतालया ।
चतुर्भुजा महादी .... मण्डिता ॥ ७२ ॥
खड्गं बाणं तथा दक्षे दीप्यमानं सुतेजसम् ।
पिनाकं खेटकं .... करदीपिता ॥ ७३ ॥
नानाभरणशोभाढ्या सर्वलक्षणशोभिता ।
म .... ढ्या पीनवृत्तपयोधरा ॥ ७४ ॥
क्रीडितैर्विविधाकारैरुलूकस्था .... ।
....महादेवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ ७५ ॥
धूम्राभा धूम्रवर्णा च भस .... ।
सर्वावयवशोभाढ्या नानारत्नैरलङ्कृता ॥ ७६ ॥
मुकुटेन विचि .... न तु ।
रत्नवैडूर्यरचितं कुण्डलाभरणान्विता ॥ ७७ ॥
स्फाटिका च .... स्था च विराजते ।
द्विभुजा षड्भुजा देवी नानालङ्कारमण्डिता ॥ ७८ ॥
.... ध्या शूलं दक्षिणे करदीपिता ।
काद्यं घण्टा तथा पाशं .... ॥ ७९ ॥
[सर्व]लक्षणसम्पूर्णा सर्वाभी ...... मण्डिता ।
सर्वावयवसंपूर्णा यौ .... ॥ ८० ॥

१. पत्रमेकं (१९७ संख्यकं) कीटभक्षितत्वात्खण्डितम्–खपुस्तके ।

जम्बुके तु समारूढा क्षोभयन्ती चराचरम् ।
प्रसवानामवि .... क्रमा ॥ ८१ ॥

श्वेतारुणप्रभा दीप्ता भिन्नाञ्जनसमप्रभा ।
अक्षामृग .... रत्नदीपिता ॥ ८२ ॥

रत्नकुण्डलदीप्ताभा वायुवेगा बलोत्कटा ।
भुजा .... नानामणिमण्डिता ॥ ८३ ॥

परिघं शूलं ध्वजं घण्टा वामेन करदीपिता ।
.... वज्रं च पाशं दक्षिणतः स्थितम् ॥ ८४ ॥

यौवनस्था मदोन्मत्ता सर्वावय .... ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा दीप्यमाना महौजसा ॥ ८५ ॥

मृगासनसमारूढा वायु .... बला ।
कृष्णाभा कृष्णदीप्ता च कृष्णपिङ्गललोहिता ॥ ८६ ॥

करालवदना दे .... दंष्ट्रोग्रभीषणा ।
स्तब्धदृष्टिः सुरक्तान्ता रुधिरासवलम्पटा ॥ ८७ ॥

भुजद्वादश[कोपे]ता नाना......... नासमंडिता ।
शूलं खड्गं तथा पाशं मुद्गरं परिघाङ्कुशम् ॥ ८८ ॥

दक्षिणस्था प्रदीप्यंतं[न्ती] दिव्यास्त्रा सुमहोत्कटा ।
काद्यं खेटकं शक्तिश्च[श्च] वज्रं दण्डं सयष्टिकम् ॥ ८९ ॥

वाममार्गस्थितास्त्राणि कालानलसमप्रभा ।
महामुण्डकृता माला आपादतललम्बिनी ॥ ९० ॥

यौवनोन्मत्तशोभाद्या[ढ्या] स्थूला ह्रस्वा महाबला ।
नूपुरैः पादशोभाढ्या घण्टाटङ्कारमण्डिता ॥ ९१ ॥

महाव्याघ्रासनारूढा पूतना नाम विश्रुता ।
रक्तारुणा सुदीप्ताभा ऊर्ध्वकेशा महाबला ॥ ९२ ॥

त्रिनेत्रा कोटराक्षी च अस्थिमालाप्रलम्बिता ।
विशालवदना देवी जिह्वाललनभीषणा ॥ ९३ ॥

अस्थिखण्डैः कृता मुद्रा श्रवणाभ्यां प्रलम्बिता ।
लम्बस्तनी बृहन्मध्या वक्रस्नायुसमाकुला ॥ ९४ ॥

भुजाष्टका महारौद्रा शङ्खाभरणमण्डिता ।
काद्यं शूलं तथा पाशं शस्त्राणि धारिताबला ॥ ९५ ॥

वामस्था करसंदीप्ता दक्षिणेन वदामि ते ।
खट्वाङ्गं कर्त्तरीं सूत्रवस्त्रां तां चोर्ध्वगोन्नताम् ॥ ९६ ॥

उग्ररूपा महारौद्रा सर्वावयवशोभिता ।
प्रेतारूढा महाभीमा ऊर्ध्वकेशा भयङ्करी ॥ ९७ ॥

अतसीपुष्पसंकाशा नीलवैडूर्यसन्निभा ।
अक्षयवक्रा महा उग्रा तीक्ष्णदंष्ट्रा भयानना ॥ ९८ ॥

किरीटकुण्डलयुता रत्नवैडूर्य्यभूषिता ।
महारत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥ ९९ ॥

लम्बोदरा सुतेजा[ढ्या] पीनवृत्तपयोधरा ।
भुजैर्द्विपञ्चकयुता नानालङ्कारमण्डिता ॥१००॥

काद्यं शूलं तथा नागं पाशं परिघं मुद्गरम् ।
दक्षिणस्था प्रदीप्यन्ते अस्त्रा कालानप्रभाः ॥१०१॥

कम्बु सूत्रं तथा वज्रं दण्डं खट्वाङ्गं वामके ।
दिव्यायुधानि देवेशि तर्ज्जमाना सुभीषणा ॥१०२॥

सर्व्वावयवसंपूर्णा - सर्व्वलक्षणशोभिता ।
रूक्षपृष्ठसमारूढा कर्णमोटी महाबला ॥१०३॥

हरितारुणवर्णाभा नीलकाश्च[च]समप्रभा ।
दीप्यमाना सुतेजाद्या[ढ्या] शुक्लवक्त्रा महाबला ॥१०४॥

आताम्रनयना दीप्ता किरीटकुण्डलान्विता ।
रक्तरत्नकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ॥१०५॥
अपरा मणिमयी माला आपादतललम्बिनी ।
चतुर्भुजा महाभीमा सर्वाभरणमण्डिता ॥१०६॥
पद्मकम्बुधरा दक्षे काद्यं शूलं च वामके ।
भीमा हुंकारसम्पन्ना सर्वावयवशोभिता ॥१०७॥
यौवनोन्मत्ततेजाद्या[ढ्या] मूर्धदारुणशोभिता ।
मयूरस्था महातेजा अम्बानाम्नी महाबला ॥१०८॥
श्वेतारुणप्रतीकाशा महादीप्तिशशिप्रभा ।
रत्नकुण्डलदीप्ताभा किरीटी[टे] वज्रदीपिता ॥१०९॥
नीलरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
विशालनयना देवी त्रिनेत्रा वर्तुलानना ॥११०॥
भुजाष्टकसमोपेता नानालङ्कारमण्डिता ।
शूलं वरदं सूत्रं च इषुदक्षिणमाश्रिता ॥१११॥
काद्यं पाशं तथा कम्बु वज्रं वामे समाश्रिता ।
नानालङ्कारसंयुक्ता नानाभरणमण्डिता ॥११२॥
यौवनोन्मत्तशोभाढ्या मदघूर्णितलोचना ।
सर्व्वावयवसम्पूर्णा सर्व्वलक्षणलक्षिता ॥११३॥
हंसयानस्थिता देवी अम्बिकानाम विश्रुता ।
पीतारुणसुतेजाद्या[ढ्या] दीप्यमाना महाबला ॥११४॥
करालवदना देवी ज्वालाजिह्वा भयङ्करी ।
त्रिनेत्रवदना घोरा रक्तान्तायतलोचना ॥११५॥
मुकुटेन विचित्रेण रत्नकुण्डलमण्डिता ।
शङ्खशुक्तिकमालाभिः कण्ठस्था च प्रदीप्यते ॥११६॥

काद्यमाला शिरे दिव्या कुन्दाभा सितवर्च्चगा।
भुजैः[जा]षोडशकोपेता नानालङ्कारभूषिता ॥११७॥
अस्त्रं च शूलं सूत्रं च पिनाकं परिघं प्रिये।
पाशाङ्कुशं तथा कम्बु वामस्था करदीपिका ॥११८॥
काद्यं खट्वाङ्गं शक्तिश्च[श्च] नागं मुद्रां च दर्पणम्।
वज्रं दण्डं तथा प[द]क्षे दीप्यमाना महोज्ज्वला ॥११९॥
नानालङ्कारशोभाढ्या सर्वावयवभूषिता।
मेषारूढा महोग्रा च अग्निजिह्वा च विश्रुता ॥१२०॥
पिङ्गलाभा सुदीप्ता च महामेघाभवर्च्चसा।
गर्ज्जन्ती भीषणं नादं प्रलयाम्बुदनिस्स्वना ॥१२१॥
पिङ्गाक्षी च त्रिनेत्रा च किरीटकुण्डलान्विता।
मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥१२२॥
नीलरत्नसुतेजाद्या[ढ्या] शिरोमालासुवर्च्चसा।
मध्यक्षामा नितम्बाढ्या समपीनपयोधरा ॥१२३॥
चतुर्दशभुजोपेता नानालङ्कारमण्डिता।
काद्यं मीनं तथा कम्बु पाशं परिघमङ्कुशम् ॥१२४॥
खट्वाङ्गं चोद्यता वामे अस्त्राः कालानलप्रभाः।
शूलं सूत्रं तथा नागं खड्गं खेटकं मुद्गरम् ॥१२५॥
वज्रोन्नतं वरारोहे देशे देशे विराजते।
नानालङ्कारशोभाढ्या सर्वलक्षणलक्षिता ॥१२६॥
यौवनस्था मदोन्मत्ता मन्दि[दि]रानन्दनन्दिता।
वृषारूढा सुतेजाद्या[ढ्या] पिङ्गाक्षी नाम विश्रुता ॥१२७॥
गोक्षीरधवला दीप्ता हिमकुन्देन्दुसन्निभा।
गोमुखी च त्रिनेत्रा च मुकुटकुण्डलमण्डिता ॥१२८॥

मणिरत्नकृता माला कण्ठस्था च प्रदीपिता।
मध्यक्षामा नितम्बाढ्या पोनवृत्तपयोधरा ॥१२९॥

भुजद्वादशकोपेता नानास्रग्दाममण्डिता।
सूत्रं शूलं तथा शक्तिं पाशं दण्डं कमण्डलुम् ॥१३०॥

दक्षिणेन करे देव्या दिव्यास्त्रा दिव्यरूपिणः।
खड्गखेटकमुद्रा च दर्पणं कुलिशाङ्कुशम् ॥१३१॥

वामेन करमाश्रित्य दिव्यास्त्रा ज्वलनप्रभा।
सर्वलक्षणसम्पूर्णा सर्वावयवशोभिता ॥१३२॥

खगारूढा महाभीमा गोकर्णी नाम नामतः।
सुनीलाम्बुदसङ्काशा कृष्णाञ्जनसमप्रभा ॥१३३॥

गर्ज्जन्ती भीषणं नादं मदोन्मत्तगजो यथा।
विशालनयना देवी त्रिनेत्रा वर्तुलानना ॥१३४॥

त्रैलोक्यं क्रमतो देवी प्रेतारूढा महाबला।
मुकुटेन विचित्रेण सर्वरत्नमयेन तु ॥१३५॥

हेमरत्नसुदीप्ताद्या[ढ्या] कर्णकुण्डलमण्डिता।
दिव्यरत्नकृता माला कण्ठलग्ना विराजते ॥१३६॥

नीलवस्त्रमयी माला आपादतललम्बिनी।
भुजाष्टकसमोपेता हारकेयूरमण्डिता ॥१३७॥

खड्गं चापं तथा पाशं कम्बु दक्षिणसंस्थितम्।
खेटकं परिघं शूलं सूत्रं वामे विराजते ॥१३८॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवसुन्दरी।
क्रमणी नाम विख्याता मरुत्पथनिवासिनी ॥१३९॥

चामुण्डा चण्डवदना कृष्णाञ्जननिभा प्रिये।
तीक्ष्णदंष्ट्रा महाभीमा शुष्काङ्गी कोटरेक्षणा ॥१४०॥

चन्द्रसूर्यमयी दीप्ता मुद्रा कर्णे विराजते ।
जटाजूटधरा देवी रक्तान्तायतलोचना ॥१४१॥

महाशङ्खकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
भुजद्वादशकोपेता नानास्थिभरणान्विता ॥१४२॥

शूलं खड्गं तथा पाशं पिनाकं वज्रमङ्कुशम् ।
दक्षिणेन करे देव्या अस्त्राः कालानलप्रभाः ॥१४३॥

काद्यं खेटकं मुण्डं च कर्तरी मुशलं ध्वजम् ।
वाममार्गे वरारोहे दीप्यमाना महायुधा ॥१४४॥

पिशितासवसंयुक्ता रुधिरौघं पिबन्ति ताः ।
रूक्षारूढा महा उग्रा महाभीमा महाबला ॥१४५॥

ग्रसन्ती सकलं विश्वं शोषयन्ती चराचरम् ।
चामुण्डा नाम सा देवी सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥१४६॥

कुङ्कुमारुणवर्णाभा दीप्यमाना सुतेजसा ।
मुकुटेन विचित्रेण रत्नकुण्डलमण्डिता ॥१४७॥

विशालनयना देवी ईषत्प्रहसितानना ।
हेमरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥१४८॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था पीनोन्नतपयोधरा ।
हारकेयूरशोभाढ्या सर्वावयवभूषिता ॥१४९॥

सर्व[1]..............................

× × ×

× × ×

... ... पीनवृत्तपयोधरा ॥१७०॥

---

१. अतः परं पत्रमेकं (२०१ संख्यकं) खण्डितं–ख पुस्तकेऽपि ।

युवाना मदनोन्मत्ता सर्वावयवशोभिता ।
मकरासनमारूढा अग्निजिह्वा महाबला ॥१७१॥
पिङ्गला भस्मवर्णाभा महादीप्ता महौजसा ।
विशालनयना देवी चन्द्रोदयनिभानना ॥१७२॥
सृजन्ती सकलं विश्वं अमृतानन्दनन्दिता ।
त्रिनेत्रा स्फारवदना रत्नकुण्डलमण्डिता ॥१७३॥
हेमरत्नमयं दिव्यं किरीटकिरणोज्वलम् ।
सर्वावयशोभाढ्या भुजद्वादशमण्डिता ॥१७४॥
नानालङ्कारसंपन्ना रत्नमालाप्रलम्बिता ।
काद्यं सूत्रं तथा पाशं शक्ति शूलं तथाङ्कुशम् ॥१७५॥
दक्षिणे च करे देव्या दीप्यमाना महायुधा ।
कम्बु दण्डं च नागं च खट्वाङ्गं दर्पणं प्रिये ॥१७६॥
वरदं दक्षिणे देव्याः सर्वकामफलप्रदा ।
मध्यक्षामा नितम्बाढ्या यौवनोन्मत्तलालसा ॥१७७॥
सिंहासनस्थिता देवी लोकमाता विजानता ।
नीलाम्बुदनिभाकारा नीलाञ्जनसमप्रभा ॥१७८॥
कपालमालाभरणा किरीटमुकुटोज्ज्वला ।
रत्नकुण्डलशोभाढ्या त्रिनेत्रा कोटरानना ॥१७९॥
ईषद्दंष्ट्रोग्रनिष्क्रान्ता किञ्चिज्जिह्वा प्रसारिता ।
शङ्खमौक्तिकमालाभिः कण्ठस्था च प्रदीपिता ॥१८०॥
भुजाष्टकसमोपेता नानालङ्कारमण्डिता ।
लम्बस्तना मध्यक्षामा त्रासयन्ति[न्ती] जगत्त्रयम् ॥१८१॥
काद्यं खट्वाङ्गं पाशं च कर्तरी वाममाश्रिताः ।
कम्बु शूलं तथा नागं परिघं दक्षिणोद्यता ॥१८२॥
शवयानस्थिता देवी कम्पिनी नाम विश्रुता ।
पिङ्गाभा पिङ्गनेत्रा च छिर्वरा वर्तुलानना ॥१८३॥

किरीटरत्नखचिता हेमकुण्डलमण्डिताः ।
नीलवज्रकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥१८४॥

षड्भुजाश्च महाकाया सर्वाभरणमण्डिताः ।
काद्यं शूलं तथा पाशं वाममार्गे विराजते ॥१८५॥

कम्बु खट्वाङ्गं सूत्रं च दक्षिणस्थाः प्रदीपिताः ।
सर्वलक्षणसंपूर्णाः सर्वाभरणमण्डिताः ॥१८६॥

यौवनोन्मत्ततेजाढ्या मदिरानन्दविह्वलाः ।
अश्वपृष्ठसमारूढा भग्ननासा महाबलाः ॥१८७॥

चतुर्विंशतियोगिन्यो चतुर्विंशद्दले स्थिताः ।
आदिकल्पस्य मध्यस्थाः क्रीडन्त्यमिततेजसः ॥१८८॥

ताश्च क्षुब्धा यदा काले मृतं मुञ्चन्ति भाविताः ।
तदा काले समुद्भूता योगिन्यो बलवत्तराः ॥१८९॥

द्वात्रिंशान्यबलोन्मत्ताः सञ्जाताः कामरूपिणी[गाः] ।
नानारूपधरा देव्यो नानालङ्कारशोभिताः ॥१९०॥

सर्वावयवसंपूर्णाः सर्वलक्षणलक्षिताः ।
सर्वे[र्वाः] चाष्टभुजा दिव्या नानाभरणमण्डिताः ॥१९१॥

काद्यं खट्वाङ्गं सूत्रं च शक्तिर्वामे प्रदीपिता ।
त्रिशूलं परिघं पाशं वज्रं दक्षिणतो मताः ॥१९२॥

नानावाहनमारूढा द्वात्रिंशैवं महाबलाः ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं वीरनायके ॥१९३॥

चण्डघण्टा महानामा[सा] सुमुखी दुर्मुखी बला ।
रेवती प्रथमा घोरा सौम्या भीमा महाबला ॥१९४॥

जया च विजया चैव जयन्ति[न्ती] चापराजिता ।
महोत्कटा विरूपाक्षी शुष्का चाकाशमातरः ॥१९५॥

संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती।
पिपीलिका पुष्पहारी ग्रसनी शस्यहारिका ॥१९६॥

भद्रकाली सुभद्रा च भद्रभीमा सुभद्रिका।
द्वात्रिंशतिबलोन्मत्ता मदिरानन्दलालसाः ॥१९७॥

सर्वास्ता यौवनोन्मत्ताः किरीटकुण्डलान्विताः।
लम्बोदरा नितम्बाढ्याः स्थूला ह्रस्वा बलोत्कटाः ॥१९८॥

हारनूपुरशोभाढ्या नानालङ्कारमण्डिताः।
षोडशारे महाचक्रे द्वादशोर्द्धे[र्ध्वे] व्यवस्थिताः ॥१९९॥

खेचरीचक्रमध्यस्थाः क्रीडन्त्यमिततेजसः।
दिव्यादिव्यपरे कल्पे कुब्जिकातनुसंभवाः ॥२००॥

स्वशक्तिबलमाश्रित्य सृजन्त्येते[ताः] चराचरम्।
स्वशक्त्यानन्दचेतस्का मृतं मुञ्चन्ति भाविताः ॥२०१॥

षोडशार्द्धे महाचक्रे चतुःषष्टिदले स्थिताः।
सृजन्ति विविधाकाराः चतुःषष्टिर्यथा क्रमात् ॥२०३॥

अक्षोभ्या ऋक्षवर्णा च राक्षसी च क्षपा तथा।
क्षया च विविता[चिपिटा] कृष्णा तथा चैव सुलालसा ॥२०४॥

हेला लीला तथा लोला सुप्ता लुब्धा च लम्पटा।
लङ्केश्वरी च विमला तथा चैव हुताशनी ॥२०५॥

विडालाक्षी च हुँकारी तथा च वडवामुखी।
सिंहनादा च रेवत्या क्रोधना च भयानना ॥२०६॥

सर्वज्ञा पेचकी शान्ता ऋग्वेदा च शुभानना।
सारा च विश्वरूपा च तथा चैव सरस्वती ॥२०७॥

तालजङ्घा बृहत्कुक्षिर्विद्युज्जिह्वा भयङ्करी।
मेघनादा प्रचण्डा च कालकर्णी च रूपहा ॥२०८॥

पश्वा पश्वावती चैव प्रपश्वा प्रलयांशकी ।
पिचुवक्त्रा पिशाची च पिशितासवलोलुपा ॥२०९॥

वामा च वामनी चैव वक्रनासा विकृतानना ।
वायुवेगा तथा चोग्रा विचित्रा विश्वरूपिणी ॥२१०॥

यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च यमान्तिका ।
प्रलयीति विडाली च अशनी पूतना प्रिये ॥२११॥

चतुःषष्टि महा उग्राः सम्भूता बलवत्तराः ।
अस्यां[आसां] वर्णपरं वक्ष्ये यथाक्रमविभागशः ॥२१२॥

अक्षोभ्या रक्तवर्णा च क्षपणी रक्तवर्णिका ।
राक्षसी नीलवर्णा च क्षपा वै कृष्णवर्णिका ॥२१३॥

पीतवर्णा क्षया चैव पीताभा चिपिटा तथा ।
नीलमेघाञ्जना देवी कृष्णवर्णा उदाहृता ॥२१४॥

सुलालसा महादेवी श्वेतारुणसमप्रभा ।
ताम्रारुणा महादीप्ता हेला वै नाम नामतः ॥२१५॥

पीतारुणाभा वलनी लोला कृष्णारुणा प्रिये ।
सुप्ता वै धूम्रवर्णा च लुब्धा नीलाञ्जनप्रभा ॥२१६॥

लम्पटा रक्तवर्णा च लङ्केशी कृष्णवर्णिका ।
विमला स्फटिकवर्णाभा विद्युद्वर्णा हुताशनी ॥२१७॥

विडालाक्षी भवेत् पिङ्गा हुङ्कारी नीलवर्णिका ।
बाडवास्या महारौद्रा लोहिताभा सुवर्चसा ॥२१८॥

सिंहवक्त्रा महानादा श्वेता पिङ्गललोहिता ।
रेवती काकवर्णाभा क्रोधा वै धूम्रवर्णिका ॥२१९॥

भयानना भवेत्कृष्णा सर्वज्ञा पीतवर्णिका ।
पेचकी भस्मवर्णाभा शान्ता श्वेताभवर्चसा ॥२२०॥

ऋग्वेदा नीलवर्णाभा श्वेतवर्णा शुभानना ।
विचित्रा कुन्दवर्णाभा विश्वरूपा शशिप्रभा ॥२२१॥

विश्वेशी नीलवर्णा च तालजङ्घाऽम्बुदप्रभा ।
बृहत्कुक्षी[क्षिः] च कृष्णाभा अग्निजिह्वाऽरुणप्रभा ॥२२२॥

लाजावर्तप्रतीकाशा नाम्ना या च भयङ्करी ।
मेघाम्बुदप्रभा दीप्ता मेघनादा महाबला ॥२२३॥

कृष्णारुणनिभाकारा प्रचण्डा नाम नामतः ।
नीलाञ्जनमहादीप्ता कालवर्णा बलोत्कटा ॥२२४॥

धूम्राप्यंशुनिभा देवी रूपहा नाम विश्रुता ।
चम्पका चम्पकाभा च दिव्यरूपा महाबला ॥२२५॥

तप्तहाटकवर्णाभा चम्पावत्या महोत्सहा ।
प्रलयानलदीप्ताभा प्रलया नाम नामतः ॥२२६॥

कृष्णारुणनिभा देवी प्रलयान्ता च विश्रुता ।
रुधिरारुणवर्णा च षिचुवक्त्रा महाबला ॥२२७॥

नीलवर्णा पिशाची च प्रेताक्षी धूम्रवर्णिका ।
इन्द्रगोपकवर्णाभा लोलुपा नाम विश्रुता ॥२२८॥

किञ्चिन्नीलारुणा देवी वामनामा प्रकीर्तिता ।
श्यामवर्णा महातेजा कामनीनाम विश्रुता ॥२२९॥

शुकपिच्छकवर्णाभा वक्रनासा महाबला ।
कृष्णजीमूतवर्णाभा कृष्णास्या[नाम] नामतः ॥२३०॥

नीलधूम्रसुदीप्ताभा वायुवेगा महाबला ।
रक्तारुणा सुदीप्ताभा उग्रा नाम बलोत्कटा ॥२३१॥

... ... विचित्रा नाम नामतः ।
शरदम्बुदवर्णाभा नाम्ना वै विश्वरूपिणी ॥२३२॥

कृष्णवर्णा महादीप्ता ग्रसन्तीव चराचरम् ।
यमजिह्वा महादेवी प्रलयानलसन्निभा ॥२३३॥

चन्द्राभा चन्द्रदीप्ताभा चन्द्राननसमप्रभा ।
जयन्ति[न्ती] नाम विख्याता महाबलपराक्रमा ॥२३४॥

प्रलयानलदीप्ताभा संहरन्ति[न्ती] चराचरम् ।
प्रलयान्तिका महादेवी विडाली कृष्णवर्णिका ॥२३५॥

अतसीपुष्पसंकाशा · महादीप्ता महौजसा ।
अशनी नाम विख्याता पूतना नीलवर्चसा ॥२३६॥

पृथग्वर्णधरा ह्येताः सर्वाश्चैव चतुर्भुजाः ।
काद्यपाशधरा वामे सूत्रं शूलं च दक्षिणे ॥२३७॥

एते चैवायुधा दिव्या एकैकायाः स्वरूपतः ।
वाहनानि पृथक् तेषां[तासां] कथयामि समासतः ॥२३८॥

राक्षसी राक्षसारूढा चया[पा] वानरसंस्थिता ।
गृध्रारूढा क्षमा[या] देवी त्रिपिटा बर्हिसंस्थिता ॥२३९॥

वाराहपृष्ठमारूढा कृष्णा देवी महाबला ।
सुलालसा परा देवी मेषारूढा बलोत्कटा ॥२४०॥

नकुलस्था ततो हेला लीला चित्रकसंस्थिता ।
उलूकस्था ततो लोला लुप्ता चिह्न[न्ह] समाश्रिता ॥२४१॥

लुब्धा च खगमारूढा गजारूढा च लम्पटा ।
लङ्केशी राक्षसारूढा विमला काकसंस्थिता ॥२४२॥

हुताशनी च मेषस्था विडाला व्याघ्रसंस्थिता ।
हुङ्कारी वैनतेयस्था अश्वस्था बड़वामुखी ॥२४३॥

सिंहनादा तु सिंहस्था रेवती जम्बुकाश्रिता ।
क्रोधा चैव वृकस्था च महिषस्था भयानना ॥२४४॥

सर्वज्ञा हंसमारूढ़ा पेचकी श्वानसंस्थिता ।
शान्त्या च पङ्कजारूढ़ा ऋग्वेदा क्रौञ्चमाश्रिता ॥२४५॥

चक्रवाकसमारूढ़ा शुभानना महाबला ।
सारा च पिङ्गलारूढा विश्वरूपा शुकस्थिता ॥२४६॥

सरस्वती तु चित्रस्था तालजङ्घा च रासभे ।
वृषारूढ़ा बृहत्कुक्षी[क्षिः] प्रेतस्था विद्युज्जिह्विका ॥२४७॥

भयङ्करी च गृध्रस्था मेघनादान्त[तु] कच्छपे ।
मार्जारे तु समारूढ़ा प्रचण्डा नाम मातरः ॥२४८॥

कालकर्णी तु उष्ट्रस्था ऋक्षारूढ़ा तु रूपहा ।
सिंहारूढ़ा तु चम्पा वै चम्पावती गजासना ॥२४९॥

प्रपञ्चा प्रेतमारूढ़ा कपोलस्था लयान्तिका ।
पिचुवक्त्रा चटकस्था पिशाची शूकरस्थिता ॥२५०॥

प्रेताक्षी चैव प्रेतस्था लोलुपा वानरस्थिता ।
वामा च वेसरारूढ़ा वामनी गरुडस्थिता ॥२५१॥

ग्राहस्था वक्रनासा च सल्लकस्था कृतानना ।
वायुवेगा मृगारूढ़ा उग्रनागसमाश्रिता ॥२५२॥

विचित्रा चित्रकारूढ़ा विश्वरूपी अजानुगा ।
यमजिह्वा तु कोलस्था जयन्ति[न्ती] शशकस्थिता ॥२५३॥

दुर्जया खरमारूढ़ा रौद्रारूढ़ा जयन्तिका ।
प्रलयान्तिका महाघोरा आरूढ़ा शवकोपरि ॥२५४॥

विडाली च विडालस्था असनी वाममास्थिता ।
पूतना बलयारूढा चतुःषष्टिमहाबलाः ॥२५५॥

सर्वलक्षणसम्पूर्णा नानाभरणमण्डिताः ।
मुकुटैः कुण्डलैर्युक्ता नानालङ्कारमण्डिताः ॥२५६॥

सर्वावयवसंपूर्णाः चतुःषष्टिदले स्थिताः ।
खेचरीचक्रसंभूता अणिमादिगुणान्विताः ॥२५७॥

ददन्ति मानसीं सिद्धिं पूजिता ध्यायिताः प्रिये ।
न मया कस्यचित्ख्याताः[तं] खेचरीव्याप्तिलक्षणम् ॥२५८॥

अन्यतन्त्रे मया गुप्तं कथितं श्रीमतोत्तरे ।
श्रीमते पूर्वमाख्यातं समस्तव्यस्तभाषितम् ॥२५९॥

सोमसूर्यो[र्य]तयो[या]ख्यातं वह्निस्थं च तृतीयकम् ।
नेत्रेदं दुर्लभं देवि सुगोप्यं प्रकटीकृतम् ॥२६०॥

वेदसिद्धा पशुश्चोर्द्ध्वं वाम व्यमुत्वता १ ।
वामदक्षिणमार्गस्य दक्षिणे कुलशासने ॥२६१॥

संतु योन्यर्णवे लीनं योनिश्रीसृष्टिकायति ।
अतोर्द्ध्वं गोपितं तन्त्रे न कस्यचिन्मयोदितम् ॥२६२॥

रभसा विषुभावेन तवाद्य प्रकटीकृतम् ॥

श्रीदेव्युवाच

सोम[सूर्य] गतिः प्रोक्ता वह्निस्थानाद्यवारिता ।
कथं स कुरुते सृष्टिं कोऽसिताङ्गः कुलेश्वरः ॥२६३॥

श्रीभैरव उवाच

स्त्रीस्वभावासि देवेशि कथ्यमानं न बुध्यसे ।
कुजेशि श्रूयतां सृष्टिं यथावस्थः प्रपद्यते ॥२६४॥

असिताङ्गमहेशो यो तस्त्रोर्द्ध्वे[र्ध्वे] मण्डलोपरि ।
सोममध्ये रविस्थानं सोममध्ये शिखि[खी] स्थितः ॥२६५॥

तत्र मध्याङ्कुरं दिव्यमसिताङ्गसमुद्भवम् ।
तत्र निष्पद्यते सृष्टिः विचित्रानेकरूपिणी ॥२६६॥

तत्वानि च कला वर्णा मन्त्रविद्या पदानुगम् ।
विसृज्यते महानादं शक्तिभैरवमण्डलम् ॥२६७॥
पञ्चविंशति मध्यादौ षोडशैश्चाष्टमानिमाः[श्च तथान्तिमैः] ।
भैरवानन्दशक्तिस्थं असिताङ्गकुलेश्वरम् ॥२६८॥
आदिमण्डलमध्यस्थं सिद्धैः षोडशभिर्वृतम् ।
आदियोनिपुरस्थं तु मण्डलं खेचरात्मकम् ॥२६९॥
तस्य पूजाविधानेन आज्ञासिद्धिफलं लभेत् ।
आदिमण्डलकं ह्येतत् प्रवरमुत्तमोत्तमम् ॥२७०॥
अत्रोत्पन्नानि सर्वाणि मण्डलानि अनेकधा ।
पञ्चविंशात्मकं तच्च मण्डलानां तदादिमम् ॥२७१॥
चतुःसिद्धान्वितैकैकं विज्ञेयं पञ्चविंशकम् ।
बलादौ खड्गपर्यन्तं मण्डले मण्डले तु [तत्] ॥२७२॥
शेषोन्यत्पञ्चकं देहात् पूर्वोक्तेन क्रमेण तु ।
चतुर्भिः सहिता देवी सृजते वर्णसागरम् ॥२७३॥
ककारादौ यपर्यन्तं पकारादौ हमुत्तमम् ।
अत्र मन [illegible]ः समुत्पन्ना विद्यामुद्रागणो महान् ॥२७४॥
देवीदे[illegible]त्समुत्पन्नं सा देवी मण्डलोद्भवा ।
चतुर्विंशकमध्यस्था षट्चतुष्कविभूषिता ॥२७५॥
वह्निमण्डलमध्यस्था बहुरूपा स्वरूपिणी ।
बर्बरोरुहपिङ्गाक्षी दन्तुरा बृंहितोदरा ॥२७६॥
नीलमेघप्रभा भीमा गम्भीरकिरणोज्ज्वला ।
वेदैः कृतशिरोमाला सषडङ्गपदक्रमात् ॥२७७॥
ब्रह्मसूत्रं महेशान्याः पुराणोद्बद्धमेखला ।
ज्योतिःशास्त्रं जिताक्षीणि कर्णावतंसिका किल ॥२७८॥

विलम्बितमहाहारो[रा] विज्ञानकटकोज्वला ।
शब्दपद्मरजोभिन्ना मण्डितं मुखमण्डलम् ॥२७९॥
विचित्रवसनानेका शास्त्रपद्मसुकोमला ।
आवसुकपर्यन्तो[न्ता] प्रमेयासनसंस्थिता ॥२८०॥
ईदृग्रूपधरा देवी पञ्चविंशान्तमध्यगा ।
अपरा सृष्टिकर्त्री च परा षड्विंशयादिमो[वादिनी] ॥२८१॥
आदिमण्डलमध्यस्था असितासङ्गगामिनी ।
द्विभुजाभरणोपेता एकवक्त्रा सुलोचना ॥२८२॥
चारुबिम्बोष्ठवदना अनेकगुणशालिनी ।
अरूपा रूपसंपन्ना तस्यान्तो रूपसम्भवः ॥
इच्छारूपपरा देवी नवात्मानं न लभ्यते ॥२८३॥

श्रीदेव्युवाच

नवात्मानमयं सर्वं तस्यैव परमालयम् ।
सा परा लभते येन नवात्मानं वद प्रभो ॥२८४॥

श्रीभैरव उवाच

साधु भैरवि यत्नेन पृच्छितं निर्मलार्थतः ।
न तेन रहितं किञ्चिन्मत्पदं परमार्थतः ॥२८५॥
प्रसह्य पूज्यते यत्र तत्र सिद्धक्रमेण हि ।
यत्र सिद्धक्रमं देवि तेनेदं साधितं मया ॥२८६॥
आज्ञालघ[ब्ध]रसास्वाद[ः] त्यजत्येवं सुदुर्लभम् ।
विशुद्धमण्डलाद्यन्तं मण्डलं तेन ईरितम् ॥२८७॥
पञ्चविंशकला देवि पूर्वविद्या समुद्धृता ।
तस्यैवाद्यं द्विकश्चायं नैषान्ये केवलाक्षरः ॥२८८॥
भृगुलाकुलसंवर्ति त्रीण्येतान्यतुतः[न्येव तु] क्रमात् ।
ततो लाकुलभृग्वीशं भुजङ्गासनसंस्थितम् ॥२८९॥

संवर्तकमहोपेतं पिनाकीगुणसंयुतम् ।
ख ज वर्णासनासीनमर्घीशमुपरि स्थितम् ॥२९०॥

अनुग्रहं मृतिस्थं [च] क्रूरानन्दसमन्वितम् ।
परानन्दसमायुक्तं कूटेदं पारमेश्वरम् ॥२९१॥

यस्य .... ।
तस्यैधो[बो]पमिदं[तं] देवि उपेयस्य महात्मनि[नः] ॥२९२॥

एष कौलेश्वरो देवः कूटसंस्थो महेश्वरम्[रः] ।
नानेन रहिता सिद्धिः साधनं खेचरीपदे ॥२९३॥

मतान्तरगतं पूज्यं मण्डलं तदवस्थितम् ।
येन पूजितमात्रेण सर्वव्यापि फलं लभेत ॥२९४॥

[1]महेतोक्षं च वृक्षस्य.... णारफलश्चति पय्योप(?) ।
शोभावियेन हरया निन परिपज्यं रसोनन्द(?) ॥२९५॥

मोक्षतृसिकरद्रुत्तम प्रायाते येनम देमया(?)[1] ।
चन्द्रशक्तिसमायुक्तं एकैकं पञ्चविंशकम् ॥२९६॥

अग्निका रौद्रिका ज्येष्ठा.................. ॥

श्रीदेव्युवाच

न मे ज्ञातं महादेव मण्डलं व्याप्तिलक्षणम् ॥२९७॥

मण्डलानां पृथक् पूज्या[जा] सिद्धा[द्ध्य]र्थे साधकस्य तु ।
व्याप्तिस्थानं यथा सर्वं तथा वद कुलेश्वर ॥२९८॥

श्रीभैरव उवाच

कथयामि वरारोहे देव्या देहगतं यथा ।
व्याप्तिनामविभेदेन ज्ञानं तज्ज्ञानिनो यथा ॥२९९॥

१–१. अस्य पादत्रयस्य मूलमात्रिकायां यादृशः पाठोऽस्ति तादृश एवात्रोद्धृतः अतीवाशुद्धः प्रतिभाति ।

काममण्डलकं चोर्द्धं[र्ध्वे] खेचरं मुखमण्डलम् ।
गुरुमण्डलकं कृत्वा बाहुमध्याद्धनोज्ज्वलम् ॥२००॥

रुद्रमण्[डल]कं दक्षे बाशौ[हौ]तच्च नखाग्रतः ।
आत्ममण्ड[ल]कं वामे छायामण्डलकं पुनः ॥२०१॥

जयन्तमण्डललसत्पाक्षकारं (?) करक्रमात् ।
ज्ञानमण्डलकं वामे अङ्गुल्यग्रे व्यवस्थितम् ॥३०२॥

वरं चोर्द्ध[र्ध्व]नितम्बाधो दक्षिणेऽमृतमण्डलम् ।
सोममण्डलकोरुभ्यां संधौ डामरमण्डलम् ॥२०३॥

कन्या मण्ड[ल]कं स्त[ह]स्ते उमामण्ड[ल]कं नखे ।
तारामण्ड[ल]कं वामे कुलं दिव्योरुमध्यतः ॥२०४॥

अनन्तमण्डलं सन्धौ पादान्ते मित्रमण्डलम् ।
अङ्गुल्यग्रे समाख्यातं मण्डलं मेरुपूर्वकम् ॥२०५॥

परं रक्तमण्ड[ल]कं कुक्ष्यै[क्षौ] दक्षिणवामतः ।
शिखीअकुलं लडकं पृष्ठौ वज्रं सवामतः ॥२०६॥

.... कालमण्डलकं हृदि ।
श्रीमन्नाथादितः कृत्वा उपेता तु क्रमेण तु ॥२०७॥

एकैकश्चैव विंशानां मण्डलानां पतीश्वराः ।
पञ्चविंशतियोगस्य चतुष्कं पतिरूपिणम् ॥२०८॥

समुद्राय पतीनां च पतिरेको विशुद्धिराट् ।
रन्ध्रमण्डलकं कूपे रोमकोटिषु संस्थितम् ॥२०९॥

सर्वाङ्गसुन्दरी देवी शरीरं मण्डलोद्भवम् ।
शाम्भवीयं धरा मूर्तिः स्वयं संधृतमण्डलम् ॥२१०॥

मण्डलैर्भृतदेहा सा सा च मण्डलमध्यगा ।
स्वयंहर्त्री स्वयंकर्त्री मण्डलानां कुलेश्वरी ॥२११॥

अस्या भेदं द्वितीयं तु तच्छृणुष्व समासतः ।
वडवानलरूपेण त्रिशून्यासनसंस्थिता ॥३१२॥

कङ्कालेश्वरमूर्द्धिनस्था षट्पदार्थोपरि स्थिता ।
चतुर्भुजैकवदना साक्षसूत्रकरोभया ॥३१३॥

सर्वा[र्व]ज्ञानावबोधेन पुस्तकान्ये वरप्रदा ।
पञ्चमोर्द्ध्वक्रमे देव्या मण्डलैर्भूतविग्रहा ॥३१४॥

चतुरशीतिप्रमाणेन कोटीनां मूर्द्धतः स्थितः[ता] ।
शरीरं श्रीकुजेशस्य तस्याः कुम्भाब्जमण्डलम् ॥३१५॥

स्थिता संहरते सर्वं तेन कुब्जेश्वरी स्मृता ।
मण्डलैर्भू[र्भृ]तदेहा सा मण्डलोपरि संस्थिता ॥३१६॥

मण्डलान्तर्गता देवी ध्यात्वा[ता] मण्डलदायिनी ।
निराचारेण योगेन अभावेनाकुलं लभेत् ॥३१७॥

चाराचारविभागेन चरतः स्थापिणि[नी] चरा ।
निराचारः स विज्ञेयो निराचारं तु नेतरः ॥३१८॥

यत्राचारा निवर्तन्ते चात्मनः कायकर्मभिः ।
उत्पद्यन्ते निर्मलाभा निराचारः स उच्यते ॥३१९॥

व्याप्तिभावमनो मत्वा भुक्त्वा चाण्डालजां तनुम् ।
स पश्यति परं चक्रं खेचरं मण्डलोद्भवम् ॥३२०॥

तद्भावभावनां कृत्वा गुरुं नत्वाऽवधारयेत् ।
यत्किञ्चित्पुरतस्तस्य तत्सर्वं मण्डलं विदुः ॥३२१॥

यदि स्यान्मण्डली देही पूजयेन्मण्डलादिभिः ।
वडवानलयोगेन एकैकं मानवावधि ॥३२२॥

कुलविद्यासमायुक्तं चतुष्कलसमन्वितम् ।
कुलेशानसमायुक्तं स्वस्थानस्थोपदेशतः ॥३२३॥

एवं संचिन्त्य मनसा शक्तियुक्तो जितेन्द्रियः ।
पञ्चविंशतिमे मासे प्रकृतो रमते गुणान् ॥३२४॥

द्विगुणेन तु कालेन दैवत्यं भजते तु सः ।
चतुर्गुणेन कालेन कामित्वं च सुराधिपे ॥३२५॥

पञ्चमावस्थयोगेन सभां लोकावधिर्व्रजेत् ।
षष्ठेनैव तु कालेन विष्णुत्वं जायते ध्रुवम् ॥३२६॥

सप्तमेन तु योगेन ब्रह्माणमनुसंव्रजेत् ।
अष्टमेन तु योगेन पिङ्गेशपदमाप्नुयात् ॥३२७॥

नवमेन वरारोहे सुरेन्द्रस्य प्रभुर्भवेत् ।
मण्डली समयावस्थाः खेचरः खेचराधिपः ॥३२८॥

मण्डलाकारयोगेन निराचारेण योगिनः ।
वडवानलमध्ये तु वडवानलपूरितः ॥३२९॥

वडवानलयोगेन निराचारव्रतं चरेत् ।
वडवानलमारूढो वायवीयं पदं लभेत् ॥३३०॥

एतत्सर्वमयं तत्त्वं जगदम्ब तवोदरे ।
अज्ञाय सकलां देवीं दिव्यज्ञानाय संभवः ॥३३१॥

षट्पदार्थं चान्य···श्रद्धा···नं वडवानलम् ।
वटबीजोपमं भद्रे सूक्ष्मबीजप्ररोहकम् ॥३३२॥

तेषां तद्वयस्यास्य सर्वमेवोदरे जगत् ।
खेचराधिपतिर्देवि वर्णमालावलम्बिनी ॥३३३॥

आज्ञात्रितयोपेता चतुरशीतिगुणोज्ज्वला ।
गुरुवक्त्रात्तु लभ्येत मालेयं वाडवानली ॥३३४॥

एतत्तु पञ्चकं प्रोक्तं सर्वव्याप्तिफलोदयम् ।
क्रमेणैव समाख्यातं देव्यादौ चक्रपञ्चकम् ॥३३५॥

पृथ्वीचक्रं तु प्रथमं आपश्चक्रं द्वितीयकम् ।
तृतीयं तैजसं चक्रं वायुचक्रं चतुर्थकम् ॥३३६॥

खचक्रं पञ्चमं देवि चक्रपञ्चकमुदाहृतम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन जननीजारगर्भवत् ॥३३७॥

न देयं च शठे क्रूरे भक्तिहीने च नास्तिके ।
निन्दके व्यसनि[-नि] क्रूरे ज्ञानचौरे[र्य]परायणे ॥३३८॥

परशिष्ये न दातव्यं चुम्बके समयद्विषे ।
भक्षयन्ति गुरोर्द्रव्यं योगिनीद्रव्यभक्षकाः ॥३३९॥

वञ्चका मूर्खकारूढा दर्शनस्य तु निन्दकाः ।
वर्जनीयाः प्रयत्नेन यदीच्छेच्चिरजीवितम् ॥३४०॥

अन्यथा कुरुते यस्तु स विद्विष्टो मरीचिभिः ।
ज्वरं शूलं क्षयं कुष्ठं वज्रपातं च जायते ॥३४१॥

सर्पवृश्चिकलूताभिः ग्रहदुष्टव्रणैस्तथा ।
अभिघातानि तस्यैव विद्विष्टो योगिनोकुले ॥३४२॥

आज्ञाहानिर्भवेत्तस्य मृते घोरं भविष्यति ।
तस्मात्परीक्ष्य दातव्यं यदीच्छेच्चिरजीवितम् ॥३४३॥

लक्षजप्तेन शुद्धिः स्यादन्यथा नरकं व्रजेत् ।
गुरुभक्ते विनीते च समयव्रतपालकैः[के] ॥३४४॥

गुरोर्ज्येष्ठे विनीते च दम्भमायाविवर्जिते ।
कर्मणा मनसा वाचा त्रिशुद्धिर्भक्तिविह्वला ॥३४५॥

भार्यां पुत्रं तथा द्रव्यं वस्तु वा कर्णभूषणम् ।
छत्रं पटं तथा शय्यामात्मानं कर्मकारिकाम् ॥३४६॥

उपपन्नं गुरोरग्रे पादाग्रे प्रतिपादयेत् ।
निवेद्य गुरवे सर्वं विशुद्धेनान्तरात्मना ॥३४७॥

एवं भक्तिपरे देवि चक्रजातं प्रकाशयेत् ।
अन्यथा चैव[नैव] कर्तव्यमित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥३४८॥

इति श्रीमन्महामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

खेचरीचक्रनिर्णयो नाम

विंशतितमः पटलः ॥२०॥

एकविंशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलाः क्रियाः ।
पूर्वं यत्र तपस्तप्तं वर्षकोटिशतानि मे ॥ १ ॥

तपसस्तत् फलं चाद्य त्वया तुष्टेन भैरव ।
चक्रपञ्चकव्याप्तिस्तु संस्फुटं त्वत्प्रसादतः ॥ २ ॥

मया ज्ञाता महादेव किञ्चित्पृच्छाम्यतः परम् ।
मन्त्रबीजानि चक्राणां यथा वै चक्रपूजनम् ॥ ३ ॥

लक्षणं गुरुशिष्याणां वद मे त्रिपुरान्तक ।

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महाभागे साधु त्वं वीरनायिके ॥ ४ ॥
कथयामि न संदेहो मन्त्रबीजस्य लक्षणम् ।
पिनाकीशं महाकालं पिनाकी खड्गमेव च ॥ ५ ॥

भुजङ्गं चैव वालीशमर्घीशासनसंस्थितम् ।
भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]संदीप्तं क्रूरानन्देन मेदितम् ॥ ६ ॥

बीजमेतन्महादेवि कूटरूपेण संस्थितम् ।
पृथ्वीचक्रं वरारोहे कूटेनानेन पूजयेत् ॥ ७ ॥

खड्गीशं च महाकालं पिनाकी खड्गमेव च ।
भुजङ्गं चैव वालीशमर्घीशं चासनं प्रिये ॥ ८ ॥

क्रूरानन्देन चाक्रान्तं भुजङ्गेनोर्ध्वदीपितम् ।
आपश्चक्रस्य कूटेदं बीजेनानेन पूजयेत् ॥ ९ ॥

भुजङ्गं च महाकालं पिनाकी खड्गमेव च।
भुजङ्गं वालिना युक्तमर्घीशासनसंस्थितम् ॥ १० ॥
क्रूरानन्देन चाक्रान्तं भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम्।
अनेन कुलराजेन तेजश्चक्रं प्रपूजयेत् ॥ ११ ॥
वालीशं च महाकालं पिनाकी खड्गमेव च।
भुजङ्गं चैव वालीशमर्घीशासनसंस्थितम् ॥ १२ ॥
क्रूरानन्देन चाक्रान्तं भुजङ्गेनोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम्।
वायुचक्रस्य बीजोऽयं पूजयेद्विधिना प्रिये ॥ १३ ॥
संवर्तकं महाकालं पिनाकी खड्गमेव च।
भुजङ्गं वालिना युक्तं अर्घीशासनसंस्थितम् ॥ १४ ॥
क्रूरानन्देन चाक्रान्तं भुजङ्गेनोर्ध्वदीपितम्।
खचक्रस्य त्विदं कूटमनेनैव तु पूजयेत् ॥ १५ ॥
कूटपञ्चकमेतद्धि सुगोप्यं प्रकटीकृतम्।
नानेन रहिता पूजा नानेन रहितं क्रमम् ॥ १६ ॥
नानेन रहिता सिद्धिर्नानेन रहितं परम्।
ज्ञातव्यं निश्चयं देवि येन सिद्धिं लभेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥
गुरुप्रसादाल्लभ्येत नान्यथा तु कदाचन।
गुरुमन्वेषयेद्यत्नात् सर्वशास्त्रविशारदः[दम्] ॥ १८ ॥
श्रीमतोत्तरतत्त्वज्ञः[ज्ञं] स्फुटवाक्सत्यवादिनः[नम्]।
शुभदेशसमुत्पन्नः[न्नं] शुभजातिसमुद्भवः[वम्] ॥ १९ ॥
ककाराष्टकसंभूतो[तं] न गुरुं कारयेत्प्रिये।
कच्छकोशलकाश्मीरं कार्णाटं कोङ्कणोद्भवम् ॥ २० ॥
कामरूपं न वा देवी[वि] काञ्चीकं कोलदेशजम्।
एषु देशेषु ये जाता आचार्या वर्जयेत्प्रिये ॥ २१ ॥

अतिदीर्घं चातिकृष्णं केकरं श्यामदन्तकम् ।
अधं चाणं[काणं] च खल्वाटं द्विचर्म च सकर्कशम् ॥ २२ ॥
कुष्ठिनं विकलं सच्चं शठं मूर्खं च क्रोधितम् ।
कामातुरं तथा लुब्धं दाम्भिकं कलहप्रियम् ॥ २३ ॥
अगम्यागमने सक्तं मिथ्यावादिप्रलापितम् ।
बहुयानप्रसक्तं च[चा]बीरभार्याभिगामिनम् ॥ २४ ॥
असत्यं जल्पते यस्तु परनिन्दारतः सदा ।
अनेक व्यसनासक्तं परमर्मप्रकाशकम् ॥ २५ ॥
अप्रियं निष्ठुरं दुष्टं कुत्सितं समयच्युतम् ।
विज्ञानिनं सकूटस्थं अन्यवादरतं तथा ॥ २६ ॥
एवं गुणसमायुक्तं न गुरुं कारयेत्प्रिये ।
आत्मा न्वि[वि]डम्बितस्तेन येनैवं गुरुः सेवितः॥ २७ ॥
नेह लोके सुखं तस्य परत्र च न विद्यते ।
कलहोद्वेगं शोकं च संतापं जायते प्रिये ॥ २८ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुपरीक्ष्य गुरुं कुरु ।
यादृशो हि गुरुर्देवि शिष्योऽपि यदि तादृशः ॥ २९ ॥
सिद्ध्यन्ति च वरारोहे गुरुशिष्यैर्न चान्यथा ।
सुभक्तं च विनीतं च समयाचारपालकम् ॥ ३० ॥
संसारभयभीतं च गुरुपादार्चने रतम् ।
शान्तं दयान्वितं शुद्धं मलमायाविवर्जितम् ॥ ३१ ॥
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं दम्भपैशुन्यवर्जितम् ।
गुरुयोगिकुमारीणां तपस्विजनपूजकम् ॥ ३२ ॥
आक्रोशितस्तुदितो वा गुरुणापि विवासितः ।
विरागं यस्य वै नास्ति स शिष्यः सिद्धिभाजनः ॥ ३३ ॥

एवमादि गुणो[णा] यस्य स शिष्यो मुक्तिभाग्भवेत् ।
दीक्षयित्वा विधानेन अभिषेकं प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥

सुमुहूर्ते सुलग्ने च सिद्धयोगो यदा भवेत् ।
सर्वसंभारसंपन्नं खानपानैरनेकधा ॥ ३५ ॥

क्रमोच्चारं प्रकर्तव्यं विद्यापीठस्य चाग्रतः ।
शालितन्दुलचूर्णेन श्रृङ्गाटपुरमुद्धरेत् ॥ ३६ ॥

तद्बाह्ये कारयेत् षट्कं चतुरस्रं तथोपरि ।
द्वात्रिंशारं महापद्मं पीतकर्णिकमुज्ज्वलम् ॥ ३७ ॥

ततोर्द्धे[र्ध्वे] चतुरस्रं तु चतुर्हस्तप्रमाणकम् ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुर्वर्णसमन्वितम् ॥ ३८ ॥

षड्विधेनैव रजसा षट्कोणं पूरयेत्प्रिये ।
चतुर्भी रजसा देवी अष्टपत्रं प्रपूरयेत् ॥ ३९ ॥

पद्मं च पूरयेत् पश्चाद्वर्णैश्च विविधैः प्रिये ।
ईदृशं क्रममालिख्य दर्पणे स्थालकेऽपि वा ॥ ४० ॥

दिग्विभागेषु संस्थाप्य कुम्भाष्टकं सुलक्षणम् ।
चूतपल्लवसंयुक्तं दिव्यतोयप्रपूरितम् ॥ ४१ ॥

सहिरण्याक्षतैर्युक्तं श्रीखण्डेन सुचर्चितम् ।
भूषितं स्रङ्मालाभिः दिव्यवस्त्रावगुण्ठितम् ॥ ४२ ॥

वितानोपरि संच्छन्नं सुधूपामोदवासितम् ।
पूजयित्वा क्रमं दिव्यं अलिफल्गवादिपुष्पकैः ॥ ४३ ॥

दीपदानादिनैवेद्यैर्यथावित्तानुसारतः ।
अभिषेकं प्रदातव्यं गुर्वाद्यं संप्रपूज्य च ॥ ४४ ॥

आज्ञां प्रार्थ्य च सिद्धानां सुविनीते सुवत्सले ।
मुद्राष्टकं ततो दद्यान्मन्त्रयुक्तेन भैरवि ॥ ४५ ॥

अजिनं दण्डं पट्टं च उष्णीषं कुलघोषकम् [कञ्चुकं तथा]।
पादुके चाक्षसूत्रं च कौपीनं चाष्टमं स्मृतम् ॥ ४६ ॥

अष्टावेते[ता] महामुद्राः प्रसन्नो दापयेद् गुरुः ।
लघ्वीं विद्यां समुच्चार्य अजिनं संप्रदापयेत् ॥ ४७ ॥

नवात्मानं महादेवि योज्य दण्डे प्रयत्नतः ।
त्रिविद्याया ददेत्य[चा]र्थं योगपट्टमनुत्तमम् ॥ ४८ ॥

अघोराष्टकमुच्चार्य उष्णीषं च प्रदापयेत् ।
वर्णराश्या च मालिन्या न्याययुक्तेन कञ्चुकम् ॥ ४९ ॥

रत्नपञ्चकवीर्यैश्च अभिमन्त्र्य च पादुके ।
अघोरास्त्रेण दिव्येन अक्षसूत्रं प्रदापयेत् ॥ ५० ॥

गुह्याङ्गेन च कौपीनं सूत्रयुक्तं मनोहरम् ।
अनेन विधिना देवि मुद्राष्टौ च प्रदापयेत् ॥ ५१ ॥

ततोधिकारी देवेशि मुद्राव्रतप्रपालनात् ।
ग्रामस्याग्रे नदीतीरे गुहाकन्दरनिर्झरे ॥ ५२ ॥

एषु स्थानेषु देवेशि मुद्राधारं प्रपूजयेत् ।
भिक्षापर्यटनं कृत्वा मौनयुक्तेन तत्प्रिये ॥ ५३ ॥

स्वस्थानागमनं कृत्वा त्वाचम्य च प्रयत्नतः ।
मण्डलं कारयेत्तत्र वामावर्तपरिभ्रमात् ॥ ५४ ॥

मण्डलत्रिकमुद्धृत्य पुष्पपञ्चकमन्त्रितम् ।
पञ्चप्रणवमुच्चार्य क्रमेण पुष्पपञ्चकम् ॥ ५५ ॥

बटुकं क्षेत्रपालं च योगिनीनां बलिं ददेत् ।
योगिनीनां बलिं दत्त्वा बटुकं तदनन्तरम् ॥ ५६ ॥

बटुकस्य बलिं दत्त्वा क्षेत्रपालबलिं ददेत् ।
एवं बलिमदत्त्वा तु अन्यथा नैव भक्षयेत् ॥ ५७ ॥

अन्यथा भुञ्जते यस्तु स विघ्नैश्चाभिभूतये[यते] ।
तपोभ्रंशं प्रजायेत सिद्धिहानिं विनिर्दिशेत् ॥ ५८ ॥

अनेन विधिना कृत्वा ततो योगं समभ्यसेत् ।
हृत्पद्मसंस्थितं देवं पुर्यष्टकसमन्वितम् ॥ ५९ ॥

कदम्बगोलकाकारं इन्द्रगोपकसन्निभम् ।
कर्णिकास्थं महादिव्यं तत्रस्थं च विराजते ॥ ६० ॥

परापरविभागेन सशक्तिं च समं रसम् ।
समसत्त्वं विजानीयाल्लोलीभूतं विचिन्तयेत् ॥ ६१ ॥

तावत्संचिन्तयेद्योगि[गी] यावद्वै उन्मनं पदम् ।
न शृणोति न पश्येत नोच्छ्वसेज्जिघ्रते प्रिये ॥ ६२ ॥

योगारूढो विजानीयात् समया योगिने स्थिता ।
योगं विना जपेन्मन्त्रं मन्त्रखिन्नो व्रतं चरेत् ॥ ६३ ॥

अनेन विधिना देवि मुद्राव्रतं समाचरेत् ।
द्वादशाब्दं चरेद्धीमान् एकचित्तो दृढव्रतः ॥ ६४ ॥

आज्ञा तीव्रतरा यस्य अणिमादिगुणांल्लभेत् ।
ततोऽधिकारं कर्तव्यं आज्ञाबलं समाश्रयेत् ॥
भूषणं भूषयेद्देवि गुरोराज्ञां प्रपालयेत् ॥ ६५ ॥

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं देव अशेषं तु मुद्राव्रतमनुत्तमम् ।
कुलपिण्डं कथं नाथ कुललक्षं कथं भवेत् ॥ ६६ ॥

कालस्य लक्षणं चैव तथा तस्य च वञ्चनम् ।
एतदाख्याहि मे नाथ प्रसादं कुरु भैरव ॥ ६७ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु दुर्गे महाभागे साधु त्वं चीर[वीर]वन्दिते ।
कथयामि महागुह्यं येन बुद्ध्यसि भामिनि ॥ ६८ ॥

पञ्चविंशतिबिन्दुस्थं पञ्चकं पञ्चधा पृथक् ।
नाडीदण्डेन संभिन्नं नाम्ना वै भूतपञ्जरे ॥ ६९ ॥

ग्रन्थिषोडशसंयुक्तं पुनश्चाष्टैरलङ्कृतम् ।
सूर्यद्वादशकोपेतं ग्रन्थिसोमसमाश्रितम् ॥ ७० ॥

अष्टारं पङ्कजं मध्ये कर्णिकास्थं महेश्वरम् ।
इडा च पिङ्गला नाडी सुषुम्णा मध्यसंस्थिता ॥ ७१ ॥

चक्षुःकर्णौ तथा नासा ललाटं च शिखावधि ।
वामदक्षिणबाहू च कराङ्गुलिनखावधि ॥ ७२ ॥

वामदक्षिणस्कन्धादौ ऊरू चैव वरानने ।
कादिपञ्चकसिद्धं च स्कन्धादौ च नखावधि ॥ ७३ ॥

चकारादौ च ये वर्णा वामस्कन्धनखावधि ।
टकारादौ वरारोहे स्फिचाङ्गुलिनखावधि ॥ ७४ ॥

तकारादिनकारान्तं वामस्फिचनखावधि ।
पकारादिमकारान्तं विभज्य मध्यसंस्थिता ॥ ७५ ॥

त्वचा रक्तं तथा मांसं स्नातु[यु]अस्थि समज्ञकम् ।
शुक्रं प्राणं च रोमाणि यकारादिव्यवस्थिता ॥ ७६ ॥

पञ्चाशद्वर्णसंभूतं विभज्य कुलपिण्डकम् ।
पञ्चाशत्तत्त्वमुत्पन्नं रुद्रपञ्चाशकावृतम् ॥ ७७ ॥

श्रीकण्ठानन्तसूक्ष्मीशत्रिमूर्तीशं वरानने ।
बली[की]शमर्घिणा युक्तं भारभूतिं तथा परम् ॥ ७८ ॥

अतिथि[थी]शस्तथा स्थाणुर्हराख्यो झिण्टीशस्तथा ।
भूतीशः सद्यदेवेशोऽनुग्रहीतस्तथा पुनः ॥ ७९ ॥

क्रूरश्चैव महासेनः षोडशैते शिरस्थिताः ।
ह्रस्वदीर्घक्रमेणैव वामदक्षिणतः स्थिताः ॥ ८० ॥

क्रोधीशश्चण्डदेवेशः प्रचण्डश्च शिवस्तथा।
एकपादो वरारोहे दक्षबाहौ व्यवस्थिताः ॥ ८१ ॥

ककारादौ समुद्भूता महाबलपराक्रमाः।
कूर्मश्चैवैकनेत्रश्च चतुरानन एव च ॥ ८२ ॥

अजेशः शर्मदेवश्च वामबाहौ समुद्भवाः।
चकारादिसमुद्भूता पञ्चैते बलवत्तराः ॥ ८३ ॥

सोमश्च लाङ्गलीशश्च दारुकश्च अतः परम्।
अर्धनारी ह्युमाकान्तो दक्षजङ्घासमुद्भवाः ॥ ८४ ॥

तकारादौ समुद्भूता महातेजा बलोत्कटाः।
आषाढीशश्च दण्डीशो धात्रीशो मीन एव च ॥ ८५ ॥

मेषनामा वरारोहे वामजङ्घासमुद्भवाः।
तकारादिसमुत्पन्ना उग्ररूपा महोत्कटाः ॥ ८६ ॥

लोहितश्च शिखीशश्च छगलण्डो द्विरण्डकः।
महाकालस्तथा देवि पञ्चमः परिकीर्तितः ॥ ८७ ॥

पिण्डमध्ये समुद्भूताः पञ्चैते सृष्टिकारकाः।
वालीशश्च भुजङ्गाख्यः पिनाकी खड्ग एव च ॥ ८८ ॥

वकीशः श्वेतदेवेशो भृगुनाथस्तथा परम्।
लकुलीशश्च देवेशो नवैते भास्करेश्वराः ॥ ८९ ॥

देहं व्याप्य स्थिताः सर्वे स्थावरस्य चरस्य च।
बद्धपञ्जरनाडीभिः पृथग्भावेन सुन्दरि ॥ ९० ॥

बाहौ विंशत्सहस्राणि ऊरू[र्वोः] पादान्ते चापरे।
हत्पृष्ठ उदरे देवि सहस्रैविंशतिः प्रिये ॥ ९१ ॥

अयुतेन शिरो व्याप्तं नाडीसंधानगोचरम्।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका ॥ ९२ ॥

सहस्रद्वयसंयुक्ता व्याप्य पिण्डं व्यवस्थिता ।
नाडीसंचारयोगेन पुद्गलं भूतपञ्जरम् ॥ ९३ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशः पञ्चमः ।
पञ्चभूतेन्द्रियैर्व्याप्तं शब्देन्द्रियं च पञ्चभिः ॥ ९४ ॥

शब्दः स्पर्शो रसश्चैव रूपं चैव तु पञ्चमम् ।
शब्देन्द्रियाणि ख्यातानि पुद्गलं व्याप्य संस्थिताः ॥ ९५ ॥

वाक्पाणिपादाः पायुश्च उपस्थं चेति पञ्चमम् ।
कर्मेन्द्रियाणि ख्यातानि पुद्गलं संव्यवस्थिताः ॥ ९६ ॥

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं पञ्चमकं तथा ।
बुद्धीन्द्रियाणि सृज्यन्ते धर्माधर्मपदे स्थिताः ॥ ९७ ॥

कामं क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चेति चतुष्टयम् ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि पुरुषं[षः] पञ्चविंशकम्[कः] ॥ ९८ ॥

ततोऽधिका पराशक्तिर्नादार्थे व्यापिनी कला ।
द्वौ[द्वे]द्वारौ[रे]चक्षुषी युग्मे द्वौ[द्वे]द्वारौ[रे]श्रवणौ स्थितौ ॥९९॥

द्वौ द्वारौ[द्वे द्वारे]नासिके प्रोक्ते वक्त्रद्वारं तथा प्रिये ।
द्वौ द्वारौ[द्वे द्वारे]स्तनयुग्मं तु नाभौ द्वारं तथा परम् ॥१००॥

शिश्नद्वारं वरारोहे गुदद्वारं प्रकीर्तितम् ।
ब्रह्मरन्ध्रं ततश्चोर्द्धं[र्ध्वं] चतुर्दश उदाहृताः ॥१०१॥

स्थूलद्वाराणामेतेषां कुलपिण्डे व्यवस्थितिः ।
रोमरन्ध्रेषु द्वाराणि रोमसंख्याप्रमाणतः ॥१०२॥

दशवायुसमुद्भूतविकारैर्बहुभिस्तथा ।
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥१०३॥

नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ।
दशवायु[यवः] समुत्पन्नाः पिण्डं व्याप्य व्यवस्थिताः॥१०४॥

प्राणं[णः] तु शिव उद्दिष्टो द्वादशान्ते लयं परम् ।
अपानः शक्तिरूपस्तु नवैते व्यापिनः पराः ॥१०५॥

उदानो जृम्भते देवि समानश्छिक्कमेव च ।
व्यानश्च पचते अन्नं अधोवायुं समानयेत् ॥१०६॥

नाग उत्सृजते शुक्रं कूर्मो मूत्रं तथैव च ।
कृकरः कुरुते क्षोभं देवदत्तोऽतिसारकः ॥१०७॥

धनञ्जयो पूरणे च नानाभेदेन संस्थिताः ।
हृत्पद्मे संस्थितं[तो] देवं[वो] पुर्यष्टकसमन्वित[तः] ॥१०८॥

क्रीडते विविधाकारैः शृङ्गाटपुरमध्यगः ।
वातपित्तकफाक्रान्तो मलमायासमावृतः ॥१०९॥

वायुभूतं यदात्मानं भ्रमते चाखिलं जगत् ।
स्वर्गं वा पश्यते जीवो नानादेशसमाश्रितः ॥११०॥

वनोपवनसोद्यानपर्वतानि वनानि च ।
महावातप्रभग्नानां[ग्नांश्च] जीवो पश्यति सुव्रते ॥१११॥

वायुना प्रेरितो गच्छेदाकाशपथमाश्रितः ।
पित्तेन केवलाक्रान्तो जीवो पश्यति अद्भुतम् ॥११२॥

सर्वरत्नमयी भूमिः सर्वहेममयी प्रिये ।
नानालङ्कारयुक्तानि नानावस्त्राणि भूषणम् ॥११३॥

पश्यते विविधाकारं जीवः पित्तसमाश्रितः ।
कफमिश्रो यदा जीवः पश्यते वरुणालयम् ॥११४॥

नदीनदतडागानि कूपं निर्झरकन्दरम् ।
पद्मिनी कदली वल्ली मेघवृष्टिर्महाद्भुता ॥११५॥

कफभारभराक्रान्तो जीवः पश्यति मानिनि ।
पित्तवातभराक्रान्तो यं यं[यद्यत्] पश्यति तच्छृणु ॥११६॥

गजस्कन्धसमारूढमश्वारूढं मनोरमम् ।
स्त्रीणां संगमसंवादमिष्टगोष्ठीं शुभां कथाम् ॥११७॥

गन्धर्वनगरं दिव्यं महायानपथस्थितः ।
पश्यते विविधाकारं वातपित्तसमाश्रितः ॥११८॥

कफपित्तभराक्रान्तो जीवः पश्यति चाद्भुतम् ।
उष्ट्रजम्बुकवाराहगृध्रश्वानाश्च रासभम् ॥११९॥

चिन्हं काकमुलूकादि कृष्णपुच्छं च वानरम् ।
स्त्रिय उग्रा महारौद्रा नग्नं रत्नं तपस्विनम् ॥१२०॥

भूतप्रेतपिशाचांश्च पैशाचं राक्षसानि च ।
दुर्निमित्तानि पश्येत कफपित्तसमाश्रितः ॥१२१॥

कफवातभराक्रान्तो जीवः पश्यति औषधम् ।
हरितानि च धान्यानि यवगोधूमकानि च ॥१२२॥

गुल्मं वल्ली तथा रम्भा शस्यानि विविधानि च ।
फलितानि च वृक्षाणि चूताद्यैः सुमनोहरैः ॥१२३॥

दाडिमीमातुलिङ्गानि फलानि विविधानि च ।
कफवातभराक्रान्तो जीवः पश्यत्यनेकधा ॥१२४॥

कामं क्रोधं तथा लोभं मोहं मायां तथा पराम् ।
ईषा[र्ष्या]पैशुन्यरागांश्च पुर्यष्टकसमन्वितः ॥१२५॥

भ्रमते चक्रवज्जीवो मलमायाप्रपूरितः ।
कुरुते च विकाराणि प्रविष्टो भूतपञ्जरे ॥१२६॥

हास्यं वर्णं च नृत्यं च रोदनं भयं मर्दनम् ।
विषादं हर्षं निद्रां च तमो मूर्छा भ्रमं श्रमम् ॥१२७॥

क्षुधितस्तृषितो भूत्वा कोपाक्रान्तः क्षणाद्भवेत् ।
क्षणात् कांक्षयते कामं क्षणान्निद्रां करोति च ॥१२८॥

कलहो द्वेषरागश्च[गौ च] मोहो ग्लानिः पराभवम् ।
धर्माधर्मपरिज्ञानं सत्त्वरजःसमाश्रयात् ॥१२९॥

तमोभावस्थितो जीवो ह्यगम्यां गमते[गच्छति] प्रिये ।
एवमादिविकाराणि नैकानि विविधानि च ॥१३०॥

विकारान् कुरुते जीवः प्रविष्टो भूतपञ्जरे ।
पुर्यष्टकेन संबद्धः कोशकारकृमिर्यथा ॥१३१॥

सुखदुःखानि सर्वाणि विषयान् विविधांस्तथा ।
पुर्यष्टकेन चाक्रान्तो जीवो दुःखेन बाध्यते ॥१३२॥

न विन्दति परं तत्त्वं मलमायासमन्वितः ।
तावद् भ्रमति संसारे यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥१३३॥

विदिते तु परे तत्त्वे जीवो मुक्तिपदे स्थितः ।

श्रीदेव्युवाच

कोऽसौ जीव इति ख्यातः किं वा जीवस्य लक्षणम् ॥१३४॥

कथं निःक्रमते जीवो स्थितिं तस्यैव कुत्र च ।
एतदाख्याहि मे नाथ मन्दबुद्ध्यल्पचेतसा ॥१३५॥

श्रीभैरव उवाच

पृच्छसे निपुणं भद्रे अतिगुह्यतरं परम् ।
वारंवारं मयाख्यातं अनेकार्थेन कुब्जिके ॥१३६॥

त्वं च शक्तिरहं जीवः प्राणिनां प्राणसंज्ञकः ।
अग्निवायुमयो जीवः कुलपिण्डे व्यवस्थितम्[तः] ॥१३७॥

अग्निरूपा च त्वं देवि वायुरूपी त्वहं प्रिये ।
प्राणवायुर्वहेद्यावत्तावज्जीवन्ति जन्तवः ॥१३८॥

तेन जीव इति ख्यातस्तेन मुक्तो मृतो भवेत् ।
निर्गमेद् द्वादशं प्राणं प्रविशेच्च द्विपञ्चकम् ॥१३९॥

नवैते कुटिलाकारा कुब्जिका विश्वनायिका ।
नास्यधस्तात्परं दिव्यं शृङ्गाटाकृतिमुत्तमम् ॥१४०॥

वृत्ताकारत्रयं तत्र अष्टौ द्वादश षोडश ।
रक्ता चण्डा कराला च शृङ्गाटपुरमध्यगाः ॥१४१॥

वामदक्षिणभागे तु व्याप्तिरूपा व्यवस्थिताः ।
मध्ये तु कुटिलाकारा तेजोरूपा परा कला ॥१४२॥

तमा मोहा क्षयानिष्टा व्याधिर्मृत्युः क्षुधा तृषा ।
अष्टारे पङ्कजे देव्यः कलारूपा व्यवस्थिताः ॥१४३॥

रजो रक्षा रतिः पाल्या कामा संजीवनी क्रिया ।
बुद्धिः कार्या च धात्री च भ्रामणी मोहनी तथा ॥१४४॥

द्वादशारे महाचक्रे कलारूपाः परापराः ।
सोमदा सोमगा सौम्या अमृताप्यायनी शुभा ॥१४५॥

प्रभा प्रभावती रम्या कामिनी कामविभ्रमा ।
ज्योत्स्ना रागवती मोहा रतिः प्रीतिर्मनोद्भवा ॥१४६॥

षोडशारे महापद्मे कलारूपा मरीचयः ।
षोडशान्ते परादेवी कला सप्तदशी परा ॥१४७॥

द्वादशान्ते स्थिता देवी बिन्दुरूपा च मालिनी ।
मयूरचन्द्रिकाकारा प्रस्फुरत्युग्रसंस्थिता ॥१४८॥

चक्षुरग्रे स्थिता नित्या नाना इच्छति विभ्रमाः[मान्] ।
क्षणेन जनते चेच्छां बिन्दुरूपमनेकधा ॥१४९॥

तत्राहं संस्थितो लब्धि हंसरूपी सुसूक्ष्मगः ।
पक्षपादविनिर्मुक्तो देहचक्षुविवर्जितः ॥१५०॥

चरते प्राणगो भूत्वा कलारूपी महेश्वरः ।
नैव पश्यन्ति ते मूढाः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥१५१॥

तत्रस्थं कलते प्राणमहोरात्रं तु प्राणिनाम् ।
एकविंशत्सहस्राणि षडैतेन समाधिकाः ॥१५२॥
अहोरात्रेण प्राणस्य कलास्ते प्राणरूपिणम् ।
निर्गमे द्वादशान्तस्थः प्रवेशे च ह्विपञ्चकम् ॥१५३॥
अनेन क्रमयोगेन अहं कालः कुजाम्बिके ।
सृजामि सकलं विश्वं संहरामि पुनर्ह्यहम् ॥१५४॥
सर्वेषां व्यापकः शंभुर्व्यापि तस्य न विद्यते ।
व्यापकत्वे स्थितः सो वै यथा क्षीरे घृतं प्रिये ॥१५५॥
अदृश्यं तत्परं सूक्ष्मं सर्वव्यापि निरञ्जनम् ।
अव्यक्तममलं शुद्धं रूपातीतं परापरम् ॥१५६॥
अजं विश्वेश्वरं नित्यं जगद्व्यापि परं शिवम् ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ॥१५७॥
उपचारेण गीयन्ते नानारूपेण स्वेच्छया ।
भ्रान्तिज्ञानरता रूढा बहुशास्त्रार्थचिन्तकाः ॥१५८॥
न विदन्ति परं तत्त्वं कुलज्ञानविवर्जिताः ।
श्रीमतं ये न जानन्ति न ते जानन्ति तत्पदम् ॥१५९॥
मतोत्तरं विना देवि वृथा ज्ञानपरिश्रमम्[मः] ।
यथा जत्तस्त्यजेदन्नं वृद्धः कामं यथा त्यजेत् ॥१६०॥
तथा सर्वाणि तन्त्राणि त्यजेद्देवि पलालवत् ।
नानेन रहितं ज्ञानं नानेन रहितं परम् ॥१६१॥
नानेन रहिता मुक्तिर्जन्मकोटिशतैरपि ।
श्रीमतेन विना ज्ञानं श्रीमतेन विना क्रमम् ॥१६२॥
श्रीमतेन विना सिद्धिः सर्वमेतन्निरर्थकम् ।
जयद्रथमहातन्त्रं असितातन्त्रमेव च ॥१६३॥

---

१. जत्तः=पेषणी, "चक्की" इति भाषायाम्, जॉत" इति पदेनैव व्यवहरन्ति कूर्माचलीयाः ।

पिचुनामा महातन्त्रं नित्यातन्त्रं तथा प्रिये ।
उड्डामरं महातन्त्रं तन्त्रं वै पारमेश्वरम् ॥१६४॥
एकवीरामहातन्त्रं अघोर्या डामरं प्रिये ।
सिद्धयोगेश्वरीतन्त्रं स्वच्छन्दं पारमेश्वरम् ॥१६५॥
शासनं च महातन्त्रं तथा वै वामकेश्वरम् ।
कुलसारं महातन्त्रं उद्यानं[उड्याणं] भैरवं प्रिये ॥१६६॥
गौह्वरं च महातन्त्रं कुलरत्नं महोदयम् ।
यामलाख्यं महातन्त्रं तन्त्रं वै सुन्दरीमते ॥१६७॥
योन्यर्णवं महातन्त्रं वासुकीतन्त्रमुत्तमम् ।
मन्थानभैरवं तन्त्रं हंसाख्यं तन्त्रमुत्तमम् ॥१६८॥
कौलार्णवं महातन्त्रं कालाख्यं तत्र चोत्तरम् ।
एते तन्त्रा महातन्त्रा पशुत्वे संव्यवस्थिताः ॥१६९॥
वामदक्षिणमार्गस्य दक्षिणं कुलशासने ।
कुब्जिका कुलमार्गस्य योनिभूता व्यवस्थिता ॥१७०॥
शैवं पाशुपतं बौद्धं मौशलिन्यः क्रियापदाः ।
दण्डाजिनं तथा नग्नं ये चान्ये चान्त्यजातयः ॥१७१॥
सर्वे ते कुलमाश्रित्य कुलं वै श्रीकुजामतम् ।
कलौ युगे महाघोरे दुःपारे भवसागरे ॥१७२॥
मज्जमाना महामूढाः श्रीमतोत्तरवर्जिताः ।
भवसागरमग्नाश्च कथं पारं तरन्ति ते ॥१७३॥
ये पुनर्ज्ञानसंसिद्धाः श्रीमतोत्तरबोधकाः ।
तरन्ति लीलया लब्धि मतज्ञानं तदम्बिके ॥१७४॥

श्रीदेव्युवाच

प्रोत्फुल्लनयना देवी हृष्टरोमा बभूव ह ।
अद्य मे तिमिरं नष्टमज्ञानतिमिरं हतम् ॥१७५॥

श्रुतं ज्ञानमशेषं तु आत्मानं[च] लक्षितं[तो] मया ।
त्वत्प्रसादेन श्रीनाथ अशेषं कुलनिर्णयम् ॥१७६॥
ज्ञातमद्य समस्तं तु निःसंदिग्धं कुलाकुलम् ।
कथं च लक्षते कालः स्वयमेवात्मनात्मनि ॥१७७॥
कथं केन प्रकारेण देहो[हि]नां काललक्षणम् ।
कालचक्रं महाचक्रं वद मे शूलधारक ॥१७८॥
निःसंदेहं परं दिव्यं यथा जानामि तत्त्वतः ।

श्रीभैरव उवाच

साधु कुब्जि महाभागे किं न बुद्धयसि भामिनि ॥१७९॥
कथयामि च ते भद्रे यथा कालं प्रबुद्धयसे ।
देहमध्यस्थितः कालः कलते प्राणिनां प्रिये ॥१८०॥
स्थूलसूक्ष्मविभागेन देहे चरति नित्यशः ।
मूर्ध्नि स्थाने स्थिता वर्त्तिर्धूम्रवर्त्तिः प्रकीर्तिता ॥१८१॥
यदा न पश्यते देहे षण्मासात्कालनिश्चयम् ।
चन्द्रसूर्यस्थिता ज्योतिर्दीप्यमाना चतुर्दले ॥१८२॥
सूर्ये चतुर्दले नष्टे यदा ज्योतिं न पश्यति ।
त्रिमासिकस्तदा कालः कालज्ञैः काललक्षणम् ॥१८३॥
सोमे चतुर्दले नष्टे ज्योतिहीनं प्रपश्यति ।
तदा संग्रथितः कालः षण्मासान्मृत्युनिश्चयम् ॥१८४॥
दक्षिणं स्फुरते चक्षुर्दक्षे वहति मारुतम् ।
अर्थलाभो भवेत्तस्य क्षेमं प्रियसमागमम्[मः] ॥१८५॥
वामं वा बहते वायुर्वामं स्फुरति लोचनम् ।
विपं[भं]गं च विजानीयाद्व्याधिभिः परिभूयते ॥१८६॥
दक्षिणं स्फुरते चक्षुर्वामे वहति मारुतम् ।
ज्वरो व्याधिस्तथा रोगः अतिसारं विसूचिका ॥१८७॥

भवते नात्र संदेहो ज्ञातव्यं कालचिन्तकैः ।
दक्षिणे वहते वायुर्वामं स्फुरति लोचनम् ॥१८८॥

चिरनष्टे भवेल्लाभो चिरनष्टे समागमम्[मः] ।
अचिन्तितानि लाभानि जायन्ते नात्र संशयः ॥१८९॥

वामनासापुटे वायुर्दशाहाद्विनिवर्तते ।
तं विद्यात्कालसंयोगं कालं चैवाब्दिकं प्रिये ॥१९०॥

दक्षिणस्थं वहेद्वायुर्दशाहाद् विनिवर्त्तते ।
संहारं तु विजानीयात् संहरेत्सचराचरम् ॥१९१॥

वामकर्णे यदा शब्दो वामे वहति मारुतः ।
व्याधी रोगं ज्वरं शूलं सोऽपि कालेन पीड्यते ॥१९२॥

दक्षिणेन यदा शब्दं घण्टानादं महाद्भुतम् ।
मारुतं दक्षिणे देवि तीव्रं वै वहते यदा ॥१९३॥

षण्मासान्मृत्युमाप्नोति तदा कालेन भूयते ।
स्वस्थावस्थस्य देहस्य यदा शब्दं प्रवर्त्तते ॥१९४॥

हतकांस्यसमं शब्दं वामे वा दक्षिणेऽपि वा ।
वैयोगं कलहं शोकं कालस्यागमनं ध्रुवम् ॥१९५॥

सीमाछायां न पश्यन्ति नासाग्रं च न पश्यति ।
तदा कालं विजानीयात् षण्मासान्मृत्युनिश्चयम् ॥१९६॥

विपरीतां यदा छायां आत्मदेहे प्रपश्यते ।
कालस्यागमनं देवि मासैकं निश्चयावधि ॥१९७॥

जिह्वाग्रं च यदा कृष्णं हीनं वा पश्यति प्रिये ।
ततः कालं विजानीयान्मासोर्द्धं[र्ध्वे] निश्चयं प्रिये ॥१९८॥

स पूर्वे च यदा राष्ट्रे दिग्दाहो यस्य जायते ।
कथ्यते चागतः कालः षण्मासान्म्रियते ध्रुवम् ॥१९९॥

अकस्मात्पतते देवि पथि वा गृहमध्यतः ।
तदासौ ज्ञायते कालो भवते च त्रिमासिकम् ॥२००॥

सोमे सूर्ये यदा पश्येच्छिद्रं वै बिम्बमध्यतः ।
तदासौ निश्चयः कालो मासैर्द्वादशभिः प्रिये ॥२०१॥

खण्डपादं प्रपश्यन्ति पङ्के वा पांशुमध्यतः ।
तस्य कालं विजानीयादब्दैकेन न संशयः ॥२०२॥

पादोर्द्धे[र्ध्वे] संस्थितं चक्रं प्रस्फुरन्तं प्रदृश्यते ।
चक्रं यदा न पश्येत कालं वै सप्तरात्रिकम् ॥२०३॥

अकस्मात् शुष्यते यस्य बिन्दुस्था कामधेनवी ।
तस्य मृत्युर्विजानीयान्मासैकेन यशस्विनि ॥२०४॥

हस्तयोरुभयोर्देवि चन्द्रसूर्यौ व्यवस्थितौ ।
पर्वान्तरगता रेखा यदा कृष्णा प्रदृश्यते ॥२०५॥

तदा कालं तु विज्ञेयं पर्वसंख्या वरानने ।
हृदयं शुष्यते यस्य स्वरभङ्गं च जायते ॥२०६॥

तदासौ ज्ञायते कालं स्वयमेवात्मनात्मनि ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि यथा कालं च ज्ञायते ॥२०७॥

मार्गशीर्षस्य मासस्य शुक्ला या पूर्णिमा प्रिये ।
सुस्नातश्च शुचिर्भूत्वा एकचित्तः समाहितः ॥२०८॥

क्रमं च पूजयेद्देवि गुरुपङ्क्तिकुलागमम् ।
गुरुमण्डलपूर्वं च कुमारीं वटुकं तथा ॥२०९॥

एवं विधिं समाश्रित्य बहिर्भूमिं व्रजेत्ततः ।
स्निग्धे मनोरमे देशे फलपुष्पसमाकुले ॥२१०॥

तडागे निर्झरे रम्ये नद्यास्तीरे शिवालये ।
तस्मिन् स्थाने समाश्रित्य उत्तराभिमुखः स्थितः ॥२११॥

ततो न्यासं प्रकर्तव्यं नवात्मनां नवाक्षरैः ।
अनुलोमविलोमेन न्यसेद्वारत्रयं प्रिये ॥२१२॥

अष्टाधिकशतं जप्त्वा द्वादशान्ते निरीक्षयेत् ।
ततोऽवलोकयेच्छायां स्तब्धदृष्टिः प्रसन्नधीः ॥२१३॥

ततोऽवलोकयेद्देवि आकाशं दिव्यरूपिणम् ।
पश्यते पुरुषं दिव्यं शुद्धस्फटिकवर्चसम् ॥२१४॥

सर्वावयवसंपूर्णं बुद्धाकारं मनोरमम् ।
ईदृशं च यदा पश्येत् सुचिरं जीवति प्रिये ॥२१५॥

आयुरारोग्यकल्याणं सुखप्रीतिकरं तथा ।
पीतवर्णं यदा पश्येत्तदा व्याधिं विनिर्दिशेत् ॥२१६॥

रोगं शूलं ज्वरं दाहो जायते नात्र संशयः ।
रक्तवर्णं यदा पश्येत्पशुवृत्तिधनक्षयम् ॥२१७॥

देशोच्छेदं कुलोच्छेदं छत्रभङ्गं विनिर्दिशेत् ।
देशत्यागं यशोहानिं वियोगः स्वजनादपि ॥२१८॥

धूम्रवर्णं यदा पश्येत्तदा चाग्निभयं भवेत् ।
परचक्रागमं देवि देशभङ्गं कुलक्षयम् ॥२१९॥

दहेच्च नगरान् ग्रामान् महाभयं विनिर्दिशेत् ।
कृष्णवर्णं यदा पश्येत् तदा मृत्युर्न संशयः ॥२२०॥

अब्दार्धेनाब्देनैकेन तदा कालं विनिर्दिशेत् ।
पुरुषं नीलवर्णं च यदा पश्यति पार्वति ॥२२१॥

दुर्भिक्षं प्रलयं ज्ञात्वा विस्फोटकरुजा भयम् ।
प्रजा पीडाकरं घोरं क्षुत्पिपासार्दिता जनाः ॥२२२॥

ईदृशं लक्षयित्वा तु वर्णरूपं शुभाशुभम् ।
शिरश्छायां न पश्येत षण्मासात्कालनिश्चयम् ॥२२३॥

दक्षबाहुविहीनां च यदा पश्येद् वरानने ।
बन्धुनाशं विजानीयात्षण्मासान्नात्र संशयः ॥२२४॥

वामबाहुविहीनां च यदा पश्यति सुन्दरि ।
इष्टा भार्या विनश्येत षण्मासान्नात्र संशयः ॥२२५॥

कटिहीनं यदा पश्येत्पुत्रवृत्तिधनक्षयम् ।
उदरं यदि नो पश्येद् विदेशगमनं ध्रुवम् ॥२२६॥

पादौ यदि न पश्येत भृत्यवर्गं विनश्यति ।
एवमादीन्यनेकानि छायारूपे विलक्षयेत् ॥२२७॥

ज्ञातव्यं च प्रयत्नेन कालज्ञैः काललक्षणम् ।
अथान्यं[न्यत्] संप्रवक्ष्यामि स्वप्नेऽपि काललक्षणम्॥२२८॥

बाहुनाकर्षयेत्तीव्रं स्वप्ने दृष्ट्वा भयावहम् ।
तदा कालं विजानीयात्षण्मासं मृत्युनिश्चयम् ॥२२९॥

उर्द्ध[ऊर्ध्व]केशा यदा नारी कृष्णपिङ्गललोहिता ।
कृष्णाम्बरधरा रौद्रा स्वप्ने दृष्टा भयावहा ॥२३०॥

तस्य मृत्युर्विजानीयान्मासे चैवाष्टमे प्रिये ।
व्यामोहं बुद्धिभ्रंशं च पूर्वदृष्टं न ज्ञायते ॥२३१॥

तदा कालं तु संप्राप्तं ज्ञातव्यं कालचिन्तकैः ।
कृशश्च स्थूलतां याति स्थूलः कृशतरो भवेत् ॥२३२॥

अनेन ज्ञायते कालं विपरीतेन चात्मनि ।
तीव्रधातुर्मृदुश्चैव मृदुस्तीव्रतरो भवेत् ॥२३३॥

अनेन ज्ञायते कालं[लो] विपरीतेन धातुना ।
श्वानवानरउष्ट्रादि जम्बु व्याघ्रं च वायसम् ॥२३४॥

उलूकं गृध्रऋक्षादि श्मशानादि भयावहम् ।
भूतप्रेतपिशाचादि डाकिन्यान्ये[न्यश्च] भयावहाः ॥२३५॥

महिषं शूकरं चैव मार्जारं सिंहं गर्दभम् ।
यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते कालं तस्य विनिर्दिशेत् ॥२३६॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि कालचक्रं यशस्विनि ।
द्वादशारं लिखेच्चक्रं वृत्ताकारं ततोपरि ॥२३७॥

भूर्जे वाथ पटे वाथ रोचनाकुङ्कुमैः प्रिये ।
आदिमासस्य पक्षस्य शुक्ला या पञ्चमी भवेत् ॥२३८॥

तस्मिन्दिने वरारोहे सुस्नातः शुक्लवाससः ।
ज्ञानाधारं प्रपूज्येत गुरुपादान्मरीचयः ॥२३९॥

बटुकं क्षेत्रपालं च विघ्नेशं च कुमारिकाः ।
ततो लिखेन्महाचक्रं दूर्वाकाण्डेन शोभने ॥२४०॥

कर्णिकस्थं लिखेद्बीजं नामाख्यं च कलान्वितम् ।
दलमध्ये ततो लिख्य प्रसादं द्वादशधा प्रिये ॥२४१॥

मात्राद्वादशसंभिन्नं नादबिन्दुकलान्वितम् ।
एवं कृत्वा विधानज्ञः सितसूत्रेण वेष्टयेत् ॥२४२॥

शरावसंपुटे स्थाप्य जातिपुष्पैस्तु पूजयेत् ।
धूपदीपादिनैवेद्यैरलिफल्वादिभिः प्रिये ॥२४३॥

पूजयित्वा विधानेन जागरं जननी प्रिये ।
द्वादशाक्षरसंभूता जायेद्विद्या सुसिद्धिदा ॥२४४॥

परापरविभागेन जपेद्विद्यां महोदयाम् ।
प्रत्यूषे विमले प्राज्ञः पूजयित्वा पुनः क्रमम् ॥२४५॥

ततो निरूपयेच्चक्रं मात्राबिन्दुस्तथाक्षरम् ।
अक्षरोऽप्यधिको यत्र तत्र राज्यं विनिर्दिशेत् ॥२४६॥

हीनाक्षरे भवेन्मृत्युरब्देनैकेन सुन्दरि ।
तद्दिनं तन्मुहूर्तं [तं] च सा तिथिस्तत्प्रमाणकम् ॥२४७॥

नक्षत्रं करणं योगं तत्प्रमाणं विनिःक्रमेत् ।
तीर्थाभिगमनं कुर्यात्तत्र पिण्डं निपातयेत् ॥२४८॥

मात्राहीनं यदा दृष्ट्वा[पश्येत्] तदा व्याधी[धिः]प्रपीड्यते ।
बिन्दुहीनं यदा पश्येदर्थहानिर्न संशयः ॥
पूषोदयेन द्रष्टव्यं यथा निःसंशयं भवेत् ॥२४९॥

श्रीदेव्युवाच

कथं पूषोदयं नाथ य[क]स्मिन्काले परीक्ष्यते ।
यथा जानासि देवेश तथा कथय भैरव ॥२५०॥

श्रीभैरव उवाच

समसप्तगते सूर्ये जन्मऋक्षे तु चन्द्रमाः ।
मकरोदयवेलायां पूषाकालं[लः] स लक्षिकै ॥२५१॥

यस्मिन् स्थाने स्थिते[तः]सूर्ये[र्यः]सा राशिस्तत्र उच्यते ।
सा तिथिस्तच्च नक्षत्रं स योगः स च चन्द्रमाः ॥२५२॥

एकीकृत्वा विधानज्ञः पञ्चधा गणयेत् प्रिये ।
त्रिंशद्भिः स हरेद्भागं शेषं पूषोदयं विदुः ॥२५३॥

तत्र कालं विजानीयादन्यथा न कदाचन ।
पूषाशब्देन चादन्यं स च कालः प्रकीर्तितः ॥२५४॥

यस्मिन्नासौ[न् राशौ] क्रमे सूर्यः समसप्तो यदा भवेत् ।
तदा निरूपयेत् सर्वं गणितं काललक्षणम् ॥२५५॥

गुरुवक्त्रप्रसादेन प्राप्यते ज्ञानदुर्लभम् ।
गुरूपदेशहीनानां वृथा ज्ञानपरिश्रमम् ॥२५६॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन उपास्य च गुरुं प्रिये ।
गुरोरस्य प्रसादेन प्राप्यते परमं पदम् ॥२५७॥

मिथ्याज्ञानविमूढा ये तर्कशास्त्रार्थदर्पिताः ।
न विन्दन्ति परं ज्ञानं भारवाहीव गर्धवः[र्दभः] ॥२५८॥

गर्वितस्य कुतो ज्ञानं शास्त्रकोटिशतैरपि ।
न जायते वरारोहे विद्याहङ्कारगर्वितैः ॥२५९॥

गुरूपदेशस्तन्निष्ठा गुरुवक्त्रावलम्बकाः ।
ते विदन्ति परं तत्त्वं कुलपिण्डं सुदुर्लभम् ॥२६०॥

कुलवृक्षं महारत्नं तत्त्वशाखावृतं प्रिये ।
बीजाङ्कुरसमुद्भूतं धातुपल्लवशोभितम् ॥२६१॥

विज्ञानपुष्पसंपन्नं ज्ञानरत्नफलोदयम् ।
ते[स] विन्दति परं वृक्षं गुरुर्यस्य प्रदीपकः ॥२६२॥

पञ्चधा वर्तते यस्तु तत्र ज्ञात्वा पराजयम् ।
लाभालाभं सुखं दुःखं जीवितं मरणं प्रिये ॥२६३॥

समागमं च बन्धूनां वियोगस्तत्र दृश्यते ।
वायुपञ्चकभेदेन ज्ञातव्यं ज्ञानिभिः प्रिये ॥२६४॥

बाल्यं कौमार्यं तारुण्यं वृद्धो मृत्युश्च पञ्चमः ।
वर्णरूपा स्थिता देवि पञ्चैते ह्रस्वरूपिणः ॥२६५॥

तिथिरूपाः स्थिताः पञ्च ग्रहाः पञ्च स्वरूपिणः ।
नक्षत्राणि च पञ्चैव योगरूपेण च प्रिये ॥२६६॥

ऊर्ध्वरेखा भवेत्षट् च तिर्यग्रेखात्रयं ततः ।
प्रतिपदादिक्रमेणैव तिथींस्तत्र च विन्यसेत् ॥२६७॥

द्वीपाक्षराणि विन्यस्य द्वीपत्रयविवर्जितम् ।
अधोभागे तु दातव्या नेष्टाधस्ताद् ग्रहाः प्रिये ॥२६८॥

तदधस्तात्तु नक्षत्रं योगोऽधस्तात्ततः प्रिये ।
स्वरा[न्]ऊर्द्ध[र्ध्व]गता[न्]न्यस्य उदयाद्यस्तमन्तिकम्॥२६९॥

नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा चैव तु पञ्चमी ।
मन्दं सोमसुतं चैव गुरुं शुक्रं शनिभास्करयोगतः ॥२७०॥

एते ग्रहा महा उग्रा ज्ञात्व[तव्या]श्च स्वरोदये ।
वज्रं शूलं वरीयांश्च परिघं गण्ड एव च ॥२७१॥

कृत्तिका भरणी आर्द्रा मघा मूलं वरानने ।
क्रमेणैव तु ज्ञातव्या गणितं च बुधेन च ॥२७२॥

तिथित्रयं शुभं ज्ञेयं त्रितयं मध्यमं प्रिये ।
मध्यमादधमं प्रोक्तं चतुर्थं चातिमध्यमम् ॥२७३॥

पञ्चमे च त्रिभिर्मृत्युर्ज्ञातव्यः कालचिन्तकैः ।
उदरे[ये] न स्वरे देवि यदा रोगं प्रदृश्यते ॥२७४॥

दिनद्वयं तथा पञ्च तत्र क्लेशं विनिर्दिशेत् ।
भ्रमते पक्षमेकं तु भ्रामिते पञ्चविंशतिः ॥२७५॥

सन्ध्यागते महादेवि मासमेकं प्रपीड्यते ।
स्वरे चास्तमिते भद्रे मरणं तु विनिर्दिशेत् ॥२७६॥

कुशे कण्टकविद्धे वा मूषकैर्दर्दुरेण वा ।
सर्पवृश्चिकलूताभिर्ग्रहविस्फोटकादिभिः ॥२७७॥

कालदंष्ट्रं विजानीयात् क्षणमेकं न जीवति ।
धनागमं व्यवहारं राजानं सहृदर्शनम् ॥२७८॥

विवाहमुत्सवं भद्रे ऋतुयोगश्च भार्यया ।
उदयस्वरेण कर्तव्यं तदा सिद्धिर्भविष्यति ॥२७९॥

भ्रामिते बन्धनं ज्ञेयं भ्रामिते त्वर्थनाशनम् ।
संध्यागतेन संदेहं अष्टमे मरणं ध्रुवम् ॥२८०॥

अनेन विधिना देवि ज्ञातव्यं च शुभाशुभम् ।
कथितं ज्ञानसद्भावं यत् सुरैरपि दुर्लभम् ॥२८१॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

कालज्ञानचक्रनिर्णयो नाम

एकविंशः पटलः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः पटलः

प्रणिपत्य ततो देवी हृष्टरोमा च कुब्जिका ।
उवाच देवदेवेशं नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ १ ॥

श्रीदेव्युवाच

कालचक्रं मया ज्ञातं निश्चलं त्वत्प्रसादतः ।
कालस्य वञ्चनं देव न ज्ञातं च मया प्रभो ॥ २ ॥

मन्त्रध्यानेन योगेन यथा कालं न बाधते ।
तथा च वद मे नाथ संक्षेपान्न तु विस्तरात् ॥ ३ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु भद्रे महाभागे कथ्यमानं न बुद्ध्यसे ।
ऊर्द्ध[र्ध्व]शक्तिनिपातेन अधःशक्तिनिकुञ्चनात् ॥ ४ ॥
मध्यशक्तिस्थसंलग्नममृतं स्वादयेत् परम् ।
अनेनाभ्यासयोगेन हनेत् कालं न संशयः ॥ ५ ॥

या सा कुण्डलिनी देवी कुण्डलाकाल[र]संस्थिता ।
तस्य मध्यस्थितात्मानममृताधारवर्षणम् ॥ ६ ॥

परामृतेन दिव्येन सिञ्च्यमानमनुस्मरेत् ।
अनेनाभ्यासयोगेन अमरत्वं यशस्विनि ॥ ७ ॥

क्षीरोदार्णवमध्यस्थं सितपद्मोपरि स्थितम् ।
अधोर्ध्वसंपुटे देवि मध्ये चात्मनि निःक्षिपेत् ॥ ८ ॥

सिञ्च्यमानं स्मरेत्तत्र क्षीराद्यैश्छिन्नबिन्दुभिः ।
सतताभ्यासयोगेन कालो हनति तत्क्षणात् ॥ ९ ॥

अध ऊर्ध्वं निपीड्येत पूरकं पूरयेत् प्रिये ।
ललनाघण्टिके योज्य अभ्यसेच्च अहर्निशम् ॥ १० ॥

अनेनाभ्यासयोगेन न कालः कलते प्रिये ।
ऊर्ध्वमार्गस्थितं पद्मं वर्षमानं विचिन्तयेत् ॥ ११ ॥

परामृतेन दिव्येन अव्युच्छिन्नप्रवाहतः ।
आपादतलनंलग्नं स्मरेद्देवं पुनः पुनः ॥ १२ ॥

अनेनाभ्यासयोगेन तस्य कालं न बाधते ।
अध ऊर्ध्वनिरोधेन हृद्ग्रन्थिं च निपीडयेत् ॥ १३ ॥

घूर्मते हृदि मध्यस्थं यावदुन्मत्ततां गतः ।
अनेनाभ्यासयोगेन दुष्टकालं विनाशयेत् ॥ १४ ॥

श्रीदेव्युवाच

ध्यानं कर्णं समाधिश्च दुर्विज्ञेयं महाप्रभो ।
अशक्ता मानवा लोके आलस्योपहता भुवि ॥ १५ ॥

चञ्चलं हि मनो देव दुर्विज्ञेयं शरीरिणाम् ।
मन्त्रानुष्ठानयोगोऽयं कालनिर्णाशनं परम् ॥ १६ ॥

तन्मे ब्रूहि सुरेशान जानीमो येन निश्चयम् ।

श्रीभैरव उवाच

पृच्छितं निपुणं भद्रे सारात्सारतर परम् ।
कथयामि न संदेहो मन्त्रं कालहरं परम् ॥ १७ ॥

सद्येशं क्रूरसंभिन्नं अर्द्धेन्दुकलयान्वितम् ।
चतुराननं च देवेशि अर्घीशासनसंस्थितम् ॥ १८ ॥

क्रूरानन्देन संभिन्नं अर्द्धचन्द्रकलान्वितम् ।
भृग्वीशं चैव तस्यान्ते महासेनहतं कुरु ॥ १९ ॥

नानेन सदृशं मन्त्रं मन्त्रकोटिशतैरपि ।
अस्य स्मरणमात्रेण कालमृत्युविनाशनम् ॥ २० ॥

आत्मनामसमायुक्तं त्रिसन्ध्यं जपते तु यः ।
शतं वाथ सहस्रं वा पञ्चाशत्पञ्चविंशति ॥ २१ ॥

जपते चैव[क]चित्तात्मा तस्य कालो न विद्यते ।
अनेन विद्यमानेन मन्त्रराजेन सुन्दरि ॥ २२ ॥

राजानो मोहिताः सर्वे मानवा मृत्युगोचराः ।
यतात्मनो यस्य मन्त्रं मृत्युञ्जयं हृदि स्थितम् ॥ २३ ॥

किं तस्य कुरुते कालो मृत्युर्वा चाग्रवर्त्तिनी ।
एतन्मन्त्रप्रसादेन अमरत्वे सुसंस्थिताः ॥ २४ ॥

ब्रह्माद्या देवताः सर्वे रुद्राद्याश्च मरुद्गणाः ।
चन्द्राद्याश्च ग्रहाः सर्वे स्कन्दो नन्दिर्यमस्तथा ॥ २५ ॥

गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा ये चान्ये च महोरगाः ।
मृत्युञ्जयप्रसादेन अमरं पदमाश्रिताः ॥ २६ ॥

पूर्वसिद्धश्च मन्त्रोऽयं आदिसिद्धिः सुगोपितम् ।
सर्वगं सर्वसंसा[सिद्धं] च सर्वं व्याप्य व्यवस्थितम् ॥ २७ ॥

सर्वतन्त्रार्णवे सिद्धं प्रसिद्धं च कुलागमे ।
विषनिर्णाशनो ह्येष अपमृत्युज्वरादिषु ॥ २८ ॥

क्षते कुष्ठे तथा रोगे ग्रहदुष्टविनाशने ।
कालनिर्णाशनो देवि सर्वदुःखविनाशने ॥ २९ ॥

ध्यायेन्मूर्तिं महादेवि येन कालं विनाशयेत् ।
हिमकुन्देन्दुसंकाशां गोक्षीरसदृशोपमाम् ॥ ३० ॥

एकवक्त्रां त्रिनेत्रां च किरीटकुण्डलोज्ज्वलाम् ।
मुक्ताग[फ]लकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥ ३१ ॥

चतुर्भुजां महादीप्तां नानालङ्कारमण्डिताम् ।
पद्मसूत्रं तथा दक्षे चन्द्रांशुमिव दीपिताम् ॥ ३२ ॥

दिव्यामृतेन संपूर्णं वामहस्ते कमण्डलुम् ।
बीजपूरकसंयुक्तं दिव्यरत्नप्रपूरितम् ॥ ३३ ॥

मध्यक्षामा नितम्बाढ्या पीनोन्नतपयोधरा ।
त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था सर्वावयवशोभिता ॥ ३४ ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा नानालङ्कारमण्डिता ।
वडमाला शिरे तस्या वर्णहारावलम्बिनी ॥ ३५ ॥

पद्मासना महादीप्ता ऊर्ध्वपद्ममधोमुखम् ।
परामृतेन दिव्येन वर्षमानं तु विप्रुषैः ॥ ३६ ॥

तेनामृतेत चात्मानं प्लाव्यमानं विचिन्तयेत् ।
अनेन ध्यानयोगेन हनेत् कालं दुरासदम् ॥ ३७ ॥

ध्यात्वा देवि परां मूर्तिं कालमृत्युविनाशिनीम् ।
जप्यते सततं ह्येषा सर्वकालं वरानने ॥ ३८ ॥

आयुःक्षीणो नरो यो वै गतायुश्चापि यो भवेत् ।
अयुतं जपते यस्तु दशवर्षाणि जीवति ॥ ३९ ॥

अयुतद्वयेन देवेशि विंशद्वर्षाणि जीवति ।
अनेन विधिना देवि लक्षमेकं जपेद्यदि ॥ ४० ॥

तदा वर्षशतं जीवेत् सर्वरोगविवर्जितः ।
शशिचन्दनकाश्मीरं भूर्जपत्रे मनोहरे ॥ ४१ ॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु आत्मनामसमन्वितम् ।
संपुटस्थं प्रकर्तव्यं मायाबीजं च कोणगम् ॥ ४२ ॥

ततोर्द्धे[र्ध्वे] शशिबीजं तु सुषिरेण प्रवेष्टितम् ।
प्रपूज्य गंधपुष्पाद्यैः श्रीखण्डाद्यैस्तथासवैः ॥ ४३ ॥

गुटिकां कारयेद्देवि सितसूत्रेण वेष्टयेत् ।
वामबाहुधृता देवि दक्षिणे तु वरानने ॥ ४४ ॥

सर्वरोगविनिर्मुक्तः सर्वव्याधिविवर्जितः ।
अपमृत्युं क्षयं कुष्ठं ज्वररोगं च नाशयेत् ॥ ४५ ॥

भूतग्रहपिशाचेभ्यो राजयक्ष्मादिभिस्तथा ।
राजप्रसादं कामित्वं ईप्सितं लभते फलम् ।। ४६ ।।
वशित्वं सर्वसौभाग्यं सर्वदुःखनिवारणम् ।
अन्या च परमा विद्या कालमृत्युविनाशिनी ।। ४७ ।।
मृतस्योत्थापिनी विद्या तथा वै कालकर्षणी ।
अस्याः स्मरणमात्रेण कालो नाशं गमिष्यति ।। ४८ ।।

श्रीदेव्युवाच

मृतस्योत्थापनी देवी कालनिर्णाशनी परा ।
कथयस्व प्रसादेन निःसंदिग्धं स्फुटं प्रभो ।। ४९ ।।

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि महाभागे वस्तुचोद्यविकल्पिनि ।
विद्यां च कथयिष्यामि पूर्वसिद्धा यथा प्रिये ।। ५० ।।
भृगुपुत्रो महात्मा च सर्वशास्त्रविशारदः ।
सर्वतन्त्रस्य तत्त्वज्ञः सर्वज्ञानप्रकाशकः ।। ५१ ।।
तेन तप्तं तपस्तीव्रं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।
ममाराधनसंयुक्तो मम ध्यानैकचेतसः ।। ५२ ।।
ऊर्ध्वपादमधोवक्त्रं धूम्राशी वायुभक्षकः ।
कायक्लेशेन बहुना शिवध्यानैकतत्परः ।। ५३ ।।
तुष्टोऽहं तस्य देवेशि भक्तानन्देन तोषितः ।
स्तुतः स्तवेन बहुना तुष्टोऽहं तत्र पार्वति ।। ५४ ।।
साधु शुक्र महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ।

शुक्र उवाच

देवदेव महादेव गिरीशाय कपर्दिने ।। ५५ ।।
प्रार्थयामि वरं तुभ्यं यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ।
विद्यां संजीवनीं नाम तथा वै कालकर्षणीम् ।। ५६ ।।

कथयस्व प्रसादेन यदि तुष्टोऽसि शङ्कर।
ततोऽभिषेचितः शुक्रो विद्यास्नानेन कुब्जिके॥ ५७॥

कालाख्ये च महातन्त्रे तत्र मध्यान्मयोद्धृता।
वज्रगौह्वरविन्यासं मातृकावर्णमध्यतः॥ ५८॥

उद्धृता च मया तन्त्रे भार्गवाया च भक्तितः।
कथितं सरहस्यं तु मया गुप्तेन ते प्रिये॥ ५९॥

एतद्विद्याप्रसादेन शुक्रः सिद्धिमवाप्नुयात्।
मृतमुत्थापयेच्छीघ्रं विद्यायाः स्मरणेन तु॥ ६०॥

अनेन विधिना तुभ्यं मया ख्याता तु पूर्वतः।
विद्यामाहात्म्यगानं च तथा ख्यातं न बुध्यसे॥ ६१॥

मातृकागर्भसंभूता वज्रगौह्वरतोद्धृता।
दशकोट्या च विद्यानां रागीसा[शा] परमेश्वरी॥ ६२॥

तस्याः स्मरणमात्रेण कालक्षयो न विद्यते।
शरदम्बुदवर्णाभा चन्द्रांशुमि[रि]व निर्मला॥ ६३॥

महादीप्तिकरा दिव्या महातेजा महाबला।
जटाजूटधरा दिव्या अर्धेन्दुकृतशेखरा॥ ६४॥

हिमकुन्देन्दुसंकाशा कण्ठे माला विराजते।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च रत्नकुण्डलमण्डिता॥ ६५॥

भुजद्वादशकोपेता नानालङ्कारमण्डिता।
कम्बुसूत्रं तथा पाशं दर्पणं परिघं तथा॥ ६६॥

शङ्खपातं शितं चैव वाममार्गे विराजते।
वरदं मुद्गरं शूलमङ्कुशं चरु कौलिकम्॥ ६७॥

पुस्तकं च वरारोहे दिव्यज्ञानं च दक्षिणे।
मध्यक्षामा नितम्बाढ्या वृत्तपीनपयोधरा॥ ६८॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्था सर्वाभरणशोभिता ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा सर्वावयवशोभिता ॥ ६९ ॥

दिव्यरत्नकृता माला आपादतललम्बिनी ।
सिंहारूढा महातेजा महाव्याप्तिकरा परा ॥ ७० ॥

परमामृतचेतस्का परमानन्दनन्दिता ।
वर्षयन्ति[न्ती] महौघेन परमामृतनिर्झरम् ॥ ७१ ॥

एवं ध्यात्वा[ता] महादेवी महाञ्जवनमध्यगा ।
सर्वदुःखहरा देवि[वी] दारिद्र्यौघविनाशिनी ॥ ७२ ॥

कालनिर्णाशनी चैव व्याधिरोगापहारिणी ।
वज्रगौह्वरसंभूता मातृकायाश्च मध्यगा ॥ ७३ ॥

कथयामि परा माता यथा गौह्वरनिश्चि[श्रि]ता ।
चन्द्ररामा तथा भूता मातरो ह्यचलास्तथा ॥ ७४ ॥

अग्नयो ऋषयश्चैव मातरो भूत एव च ।
रामैकं च पुनर्देवि वज्रगौह्वरमुत्तमम् ॥ ७५ ॥

प्रसादं पूर्वमालिख्य सकारं वारुणे तथा ।
प्रसादाधः सकारो वै सकारोर्द्धे[र्ध्वे] कमालिखेत् ॥ ७६ ॥

सकाराधः खकारं वै क ऊर्द्धे[र्ध्वे] ग समालिखेत् ।
खकाराधो जमालिख्य ग ऊर्द्धे[र्ध्वे] ऋ समालिखेत् ॥७७॥

जकारोर्द्धे[र्ध्वे] दकारं वै ऋकारोर्द्धे[र्ध्वे] घमालिखेत्।
वह्निमध्ये षमालिख्य ततोः स्वरं समालिखेत् ॥ ७८ ॥

शकारादौ अकारं स्यात् शान्ते आकारमेव च ।
ककारादौ इकारं च कान्ते ईकारमेव च ॥ ७९ ॥

खकारादौ घमालिख्य छादौ उकारमेव च ।
खान्ते ङकारं देवेशि ङान्ते ऊकारमेव च ॥ ८० ॥

गकारादौ चमालिख्य चकारादौ ऋमालिखेत् ।
गान्ते छकारं देवेशि छान्ते ॠं च समालिखेत् ॥ ८१ ॥

जकारादौ टकारश्च टादौ त्र च समालिखेत् ।
आदौ ऋकारमालिख्य जकारान्ते ठमालिखेत् ॥ ८२ ॥

ऋकारादौ णमालिख्य णकारादौ ढमालिखेत् ।
ढादि एकार संज्ञं च ऋकारान्ते तमालिखेत् ॥ ८३ ॥

नकारान्ते थकारश्च थान्ते ऐकारमेव च ।
दकारादौ मकारं हि मकारादौ त्रमालिखेत् ॥ ८४ ॥

भकारादि दकारं च दकारान्ते यमालिखेत् ।
यकारान्ते रमालिख्य रान्ते औं च समालिखेत् ॥ ८५ ॥

धादौ पकारमालिख्य पकारादौ नमालिखेत् ।
नकारादौ अनुस्वारं धकारान्ते फमालिखेत् ॥ ८६ ॥

फकारान्ते बमालिख्य बान्ते एव विसर्गकम् ।
ख[ष]कारादौ लमालिख्य षकारान्ते वमालिखेत् ॥ ८७ ॥

वज्रगौह्वरमेतद्धि स्वरव्यञ्जनसंयुतम् ।
एतस्मादुद्धरेद्विद्यां परमामृतनिर्झराम् ॥ ८८ ॥

मृतसंजीवनी नाम तथा वै कालकर्षणी ।
कामेश्वरी महाविद्या तथा वै त्रिपुरेश्वरी ॥ ८९ ॥

वज्रगौह्वरनिष्क्रान्ता कालमृत्युविनाशिनी ।
श्रूयतां च महादेवि यथा उद्धारमुत्तमम् ॥ ९० ॥

भादिस्वरं समादाय नकाराद्येन भूषितम् ।
प्रसादवर्णमादाय ए ऊर्ध्वेन विभूषितम् ॥ ९१ ॥

प्रसादं च पुनः पश्चात् [?] ऊर्द्धे[र्ध्वे]न विभूषयेत् ।
ह्रस्वमध्यगतं वर्णं नकाराद्यैरलङ्कृतम् ॥ ९२ ॥

ट व मध्यं ततोद्धृत्य वकारान्तेन भूषयेत् ।
फ य मध्यगतं वर्णं केवलं वरवर्णिनि ॥ ९३ ॥
ढकारोर्द्धं[र्ध्वं] समादाय ककारान्तेन भेदितम् ।
ख द मध्यगतं देवि ङकारान्तासनस्थितम् ॥ ९४ ॥
ए ऊर्ध्वेन तु सः[सं]भिन्नं ढ द मध्यगतं पुनः ।
ककारान्तेन चाक्रान्तं षकारान्तं समुद्धरेत् ॥ ९५ ॥
न ठ मध्यगतं वर्णं य ओ मध्येन दीपयेत् ।
सकारान्तेन वर्णेन कारयेद् वृषणं ततः ॥ ९६ ॥
नकारादिसमाक्रान्तं य ओ मध्यगतं प्रिये ।
य ओ मध्यासनं तस्य सकारान्तेन भूषितम् ॥ ९७ ॥
ढ झ मध्ये तु किं वर्णं क झ मध्यगतं पुनः ।
य औ मध्यासनारूढं स ऊर्ध्वेन विभूषितम् ॥ ९८ ॥
त ए मध्यगतं वर्णं ककाराद्येन भूषितम् ।
वारुणं वर्णमादाय अः छ रन्ध्रकृतासनम् ॥ ९९ ॥
......................ए ऊर्ध्वेन विभूषितम् ।
इ द मध्यगत वर्णं धकाराद्यकृतासनम् ॥१००॥
ब औ मध्यगतं गृह्य ऊर्ध्वेन तु कृतासनम् ।
वारुणं च पुनर्देवि विसर्गान्तं समाहृतम् ॥१०१॥
चकारान्तेन संरुद्धं काकाराधस्तथा पुनः ।
षकारान्तासनं तस्य सकारान्तेन भूषितम् ॥१०२॥
प्रसादं वर्णमुद्धृत्य सकारान्तेन संस्थितम् ।
मृतस्योत्थापनी विद्या विंशत्येकनमोऽक्षरा ॥१०३॥
त्रिरक्षरन्तु हृदयं शिरश्च चतुरक्षरम् ।
एकाक्षरा शिखा ज्ञेया कर्णकं चतुरक्षरम् ॥१०४॥

पञ्चाक्षरं भवेन्नेत्रं अस्त्रं चैव तु द्वयक्षरम् ।
विद्याङ्गानि न्यसेद्देवि मूर्तिस्थानमतः परम् ॥१०५॥

ततो जपेन्महादेवि एकचित्तः समाहितः ।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वा च सुन्दरि ॥१०६॥

जपसंख्या प्रकर्तव्या नवलक्षाणि सुन्दरि ।
दशांशेन च होमं तु सितपद्ममयं प्रिये ॥१०७॥

प्रसन्ना च भवेद्देवि[वी] साधकस्य वरप्रदा ।
खड्गपातालगुटिका रोचनाञ्जनपादुकाः ॥१०८॥

आकाशगमनं देवि अमरत्वं प्रयच्छति ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि कालस्य दमनिं[नीं] पराम् ॥१०९॥

यस्याः स्मरणमात्रेण कालो वै दासतां व्रजेत् ।
तामहं कथयिष्यामि विद्यां वै कालकर्षणीम् ॥११०॥

मकारादि समादाय नकाराद्येन भूषितम् ।
चन्द्रमध्यगतं गृह्य औ प मध्यासनस्थितम् ॥१११॥

ककारान्तेन चाक्रान्तं कालाद्येन विभूषितम् ।
ट ल मध्यगतं गृह्य औ प मध्यासनस्थितम् ॥११२॥

ककारान्तेन चाक्रान्तं कालाद्येन विभूषितम् ।
ट ल मध्यगतं वर्णं केवलं वीरवन्दिते ॥११३॥

चन्द्रकोष्ठकमध्यस्थं सकारान्तेन भेदितम् ।
ग स मध्यगतं वर्णं सकारान्तेन भूषितम् ॥११४॥

षकाराद्यं तु संगृह्य अ आ मध्यं च तत्पुनः ।
र द मध्यासनं तस्य ग स मध्यं तु केवलम् ॥११५॥

ल व मध्ये तु यद्वर्णं रेफोर्द्धे[र्ध्वे]न प्रदीपितम् ।
ढ ण मध्यगतं वर्णं ककाराद्येन भेदितम् ॥११६॥

ह व मध्यगतं वर्णं ढकाराद्येन भेदितम् ।
पूर्ववर्णं समादाय द्या[घा]दिमासनसंस्थितम् ॥११७॥

व छ मध्यगतं वर्णं म घ मध्यं ततः पुनः ।
घकाराद्यासनं तस्य वारुणं षान्तसंस्थितम् ॥११८॥

सकारान्तेन संभिन्नं ऽसादं सा न भेदितम् ।
कालसंकर्षणी विद्या वर्णैः षोडशभिः प्रिये ॥११९॥

अस्याङ्गानि प्रवक्ष्यामि सान्निध्यं भवते यथा ।
त्रिभि[द्वाभ्यां]तु हृदयं प्रोक्तं शिरः पञ्चाक्षरं प्रिये ॥१२०॥

चतुर्भिस्तु शिखा ज्ञेया कवचमेकाक्षरं भवेत् ।
द्विरक्षरं[द्व्यक्षरं तु] भवेन्नेत्रं अस्त्रं चापि द्विर[हि द्व्य]क्षरम् ॥१२१।

षडङ्गदं भवेन्न्यासं पदजातिसमन्वितम् ।
न्यसेत्सर्वाङ्गिकं न्यासं ततो मूर्तिमनुस्मरेत् ॥१२२॥

नीलजीमूतसंकाशां नीलाञ्जनसमऽभाम् ।
अतसीपुष्पसंकाशां लाजावर्तसमप्रभाम् ॥१२३॥

ईषत्करालवदनां किञ्चिद्दंष्ट्रोग्रभीषणाम् ।
चन्द्रसूर्यसमौ दीप्तौ विद्युज्ज्वलितकुण्डलौ ॥१२४॥

किरीटरत्नखचितं जटाजूटोरगान्वितम् ।
त्रिनेत्रा चैव[क]वदना घूर्णिता रक्तलोचना ॥१२५॥

मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ।
भुजाष्टकसमोपेता नानालङ्कारमण्डिता ॥१२६॥

काद्यं खट्वाङ्गं पाशं च नागराजं तथा प्रिये ।
वाममार्गेण संदीप्ता कालानलसमप्रभा ॥१२७॥

कम्बु शूलं तथा खत्रमङ्कुशं तेजदीपितम् ।
दक्षमार्गेण देवेशि अस्त्राः कालानलप्रभाः ॥१२८॥

लसत्कञ्चुकसंदीप्ता ह्रस्वा स्थूला महाम्बिका।
लम्बोदरा नितम्बाढ्या सर्वावयवशोभिता ॥१२९॥
सर्वलक्षणसंपूर्णा कालप्रेतासनस्थिता।
महाशङ्खकृता माला आपादतललम्बिनी ॥१३०॥
कर्षयन्ति[न्ती] च त्रैलोक्यं कालं मृत्युं ग्रसत्यपि।
एवं ध्यात्वा महादेवीं कालसंकर्षणीं पराम् ॥१३१॥
शिरसा पूजयेद्देवीमलिपुष्पादिफल्गुकैः।
ततो जपेन्महाविद्यां नवलक्षान्महाम्बिके ॥१३२॥
मातृस्थाने जपेद्धीमान् शून्यागारे तथा प्रिये।
दशांशं होमयेद्देवि पिशितं माहिषं प्रिये ॥१३३॥
पुराज्यमधुसंयुक्तं लक्षमेकमथापि वा।
होमान्ते दृश्यते देवि वरदा साधके भवेत् ॥१३४॥
रुधिरासवसम्मिश्रं ददेदर्घं वरानने।
खड्गाञ्जनपदं चैव वीणादण्डकमण्डलुम् ॥१३५॥
पातालं खेचरत्वं च अमरत्वं प्रयच्छति।
अभीष्टां कामिकीं सिद्धिं ददते साधकस्य तु ॥१३६॥
अनेन विधिना देवि हनेत्कालं सुदुर्जयम्।
तस्याः स्मरणमात्रेण कालमृत्युं[त्युर्] विनश्यति ॥१३७॥

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव श्रुता मे कालनाशिनी।
मृत्युसंजीवनी विद्या तथा वै कालकर्षणी ॥१३८॥
निश्चयेन मया ज्ञाता त्वत्प्रसादान्महाप्रभो।
परा च अपरा चैव तथा चैव परापरा ॥१३९॥
कामेश्वरी महाविद्या तथा त्रिपुरशेखरा।
कथयस्व प्रसादेन पूजाध्यानं यथाविधि ॥१४०॥

सर्वकामार्थसंसिद्धिं भोगमोक्षप्रसाधनम् ।
तन्मे ब्रूहि प्रसादेन यद्यहं तव वल्लभा ॥१४१॥

श्रीभैरव उवाच

साधु दुर्गे महाभागे कथयामि सुदुर्लभाम् ।
विद्यां गुह्यतरां गुह्यां गोपनीयां प्रयत्नतः ॥१४२॥

सुगुप्तसिद्धिदां देवा अन्यथा च विलोमकृत् ।
ध्यात्वा च पूजिता माता सर्वकामफलप्रदा ॥१४३॥

ह ख मध्यगतं वर्णं चन्द्रमध्यकृतासनम् ।
एकारान्तेन संयुक्तं नकाराद्येन भूषितम् ॥१४४॥

अर्द्धेन्दुकलया युक्तं अपरानाम विश्रुता ।
श्वेतकुन्देन्दुसंकाशां शशिरश्मिसमप्रभाम् ॥१४५॥

रत्नकुण्डलशोभाढ्यां किरीटरत्नभूषिताम् ।
जटाजूटधरां देवीमर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ॥१४६॥

पूर्णेन्दुवदनां देवीं पद्मपत्रनिभेक्षणाम् ।
त्रिनेत्रां च सुदीप्ताभामीषत्प्रहसिताननाम् ॥१४७॥

नीलरत्नकृता माला कण्ठलग्ना विराजते ।
मध्यक्षामां नितम्बाढ्यां समपीनपयोधराम् ॥१४८॥

त्रिवलीतरङ्गमध्यस्थां सर्वावयवशोभिताम् ।
सर्वलक्षणसंपूर्णां नानालङ्कारमण्डिताम् ॥१४९॥

चतुर्भुजां महादीप्तां नानाभरणमण्डिताम् ।
वरदं सूत्रं दक्षस्थामभयं ज्ञान[वाम]दीपिताम् ॥१५०॥

पद्मासनस्थितां दिव्यां द्वादशान्ते सदोदिताम् ।
एवं ध्यात्वा महादेवीं शिवतत्त्वसमन्विताम् ॥१५१॥

या सा कुण्डलिनी शक्तिः कुटिला कालरूपिणी ।
तया संक्षोभ्य चात्मानं एकीभूतं परापरे ॥१५२॥

लोलीभूतं यदा देवि तदा क्षोभं करोति सा ।
जपेत्तत्परमां विद्यां शिवतत्त्वगतां प्रिये ॥१५३॥

भुक्तिदा मुक्तिदा विद्या साधकस्य महात्मनः ।
गङ्गास्रोतःप्रवाहेव वाणी तस्य प्रवर्तते ॥१५४॥

अश्रुतान्यपि शास्त्राणि ग्रन्थतश्चार्थतः प्रिये ।
उद्ग्राहयेन्न संदेहो रुद्रशक्तिप्रमाणतः ॥१५५॥

अपरा च मया ख्याता परादेवीं शृणु प्रिये ।
शान्तस्वरं समादाय नकाराद्येन भूषितम् ॥१५६॥

चन्द्रमध्यगतं गृह्य चतुर्द्धा संव्यवस्थिता ।
औ य मध्यसमारूढं कारयेद्वरवर्णिनि ॥१५७॥

सान्तं कान्तं वरारोहे रान्तं डान्तं चतुर्थकम् ।
क्रमेण भूषयेद्देवि नकाराद्यैरलङ्कृतम् ॥१५८॥

त व मध्यगतं गृह्य मध्यमध्यं ततः प्रिये ।
घकाराद्येन संयुक्तं विद्या सप्ताक्षरी परा ॥१५९॥

इन्द्रगोपकसंकाशां जवाबन्धूकसन्निभाम् ।
रक्तवस्त्रावृतां देवीं सर्वाभरणमण्डिताम् ॥१६०॥

जटाजूटधरां दिव्यामर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ।
किरीटरत्नखचितां कुण्डलौ रत्नदीपितौ ॥१६१॥

दिव्या च स्फाटिकी माला कण्ठस्था च विराजते ।
षड्भुजां परमां दीप्तां नानालङ्कारमण्डिताम् ॥१६२॥

वरदं सूत्रं पाशं च दक्षिणेन विराजते ।
पद्ममङ्कुशं ज्ञानं च वाममार्गे व्यवस्थिता ॥१६३॥

स्थूला ह्रस्वा नितम्बाढ्या पीनवृत्तपयोधरा ।
मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥१६४॥

रक्तपद्मासनासीना वर्णहारावलम्बिनी ।
स्फुरत्किरणतेजाढ्या मुण्डमालाविराजिता ॥१६५॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा उदयार्कसमप्रभा ।
सर्वावयवशोभाढ्या आत्मतत्त्वोपरिस्थिता ॥१६६॥

एवं ध्यात्वा महादेवीं हृत्पद्मे संव्यवस्थिताम् ।
सर्वकामप्रदा देवी भवते नात्र संशयः ॥१६७॥

क्षोभयेत् सर्वसत्त्वानि जीवभूता परापरा ।
अणिमादिगुणावाप्तिर्वाचां सिद्धिः प्रवर्तते ॥१६८॥

दूरान्छ्रवणविज्ञानं पुरक्षोभं पृथुश्रियम् ।
प्रतिमाचलनं भद्रे खे पथादिप्रसाधनम् ॥१६९॥

विज्ञानानि अनेकानि यस्य विद्या हृदि स्थिता ।
पूजिता ध्यायिता देवी साधकस्य वरप्रदा ॥१७०॥

सततं जपते यस्तु हृद्गुहान्तरसंस्थिताम् ।
सर्वकामैः सुसंपन्नो भवते सिद्धिभाजनः ॥१७१॥

परापरा महादेवी पञ्चाशाक्षरसंभवा ।
तामहं कथयिष्यामि शृणु त्वं वीरवन्दिते ॥१७२॥

विसर्गाधः स्थितं वर्णं ए ऊर्ध्वेन विभूषितम् ।
सान्तं स्वरं समादाय त ख मध्यं ततः पुनः ॥१७३॥

भकाराद्येन संयुक्तं य ओ मध्यं ततः पुनः ।
ढकाराद्येन संभिन्नं चन्द्रमध्यगतं प्रिये ॥१७४॥

डाधो आसनमेतस्य ककारान्तेन संयुतम् ।
नकाराद्येन संभिन्नं न ध मध्यस्थकेवलम् ॥१७५॥

य ओ मध्यं पुनर्देवि द य मध्यं ततः प्रिये ।
अ ढ मध्यं ततो गृह्य भकाराद्येन भूषयेत् ॥१७६॥

ल व रन्ध्रगतं वर्णं ढकाराद्येन भूषितम्।
चन्द्रमध्यगतं वर्णं तुकारोर्द्धे[र्ध्वा]सनस्थितम् ॥१७७॥

नकाराद्येन संभिन्नं स अ रन्ध्रगतं प्रिये।
भकाराद्येन संयुक्तं य ओ मध्येन केवलम् ॥१७८॥

ल व मध्यगतं वर्णं ल का रन्ध्रासनस्थितम्।
ष ढ रन्ध्रगतं गृह्य ढकाराद्येन भूषितम् ॥१७९॥

प्रसादं च ततो गृह्य वकारान्तेन संयुतम्।
साद्यं खाद्यं ततो वर्णं चकाराद्येन भूषितम् ॥१८०॥

यकारान्तं ततो वर्णं सकारान्तेन भूषितम्।
दा घ घाद्येन संयुक्तं डा घ कान्तेन भूषितम् ॥१८१॥

माद्यं कान्तेन संयुक्तं भ द मध्यस्थकेवलम्।
माद्यं कान्तेन संभिन्नं ल व मध्यं तु केवलम् ॥१८२॥

ऋकाराद्यं तु यद्वर्णं ढकाराद्येन भूषितम्।
फकारान्तं भकारान्तं द्विधाभूतं वरानने ॥१८३॥

विसर्गाद्यं दकाराद्यं केवलं चतुरक्षरम्।
धकारादि समुद्धृत्य ककाराद्येन भूषितम् ॥१८४॥

षान्तं वर्षा[र्णं] ततो देवि नान्तं काद्येन संयुतम्।
षान्तं वर्णं समादाय केवलं वीरनायिके ॥१८५॥

ओ य मध्यगतं वर्णं चतुर्द्धा संव्यवस्थितम्।
घकाराद्यासनारूढं नकाराद्येन भूषितम् ॥१८६॥

प्रसादं ढान्तमारूढं ए ऊर्द्धे[र्ध्वे]न विभूषितम्।
प्रसादाच्च ततो गृह्य खकारोर्ध्वासनस्थितम् ॥१८७॥

रकारान्तेन संयुक्तं वकारान्तेन रोधितम्।
वकारान्तं जकाराद्यं पतितं सुरसुन्दरि ॥१८८॥

ऋकाररन्ध्रगतं गृह्य ढकाराद्येन भूषितम् ।
प्रसादं च ततो गृह्य नकारान्तेन संयुतम् ॥१८९॥
साद्यं खान्तं ततो वर्णम् उकारान्तासनस्थितम् ।
रकाराद्येन संभिन्नं त ढ मध्यगतं प्रिये ॥१९०॥
एषा परापरा देवी वर्णपञ्चाशकान्विता ।
शृङ्गाटपुरमध्यस्थं विद्यातत्त्वे निवेशितम् ॥१९१॥
नीलजीमूतवर्णाभां नीलाञ्जनसमप्रभाम् ।
जटाजूटधरां दिव्यां किरीटरत्नभूषिताम् ॥१९२॥
रत्नकुण्डलसंदीप्तां त्रिनेत्रां मुकुटोज्ज्वलाम् ।
शङ्खशुक्तिकमालाभिः कण्ठस्था च विराजते ॥१९३॥
हारकेयूरशोभाढ्यां सर्वलक्षणसंयुताम् ।
भुजाष्टकसमोपेतां नानालङ्कारमण्डिताम् ॥१९४॥
कम्बु शङ्खं तथा सूत्रं बाणं दक्षिणतः स्थिताम् ।
पिनाकं खेटकं काद्यं पाशं वामे विराजते ॥१९५॥
अस्त्राः कालानला दीप्ता लेलिहानाः सुदुःसहाः ।
नानालङ्कारसंयुक्तां नानाभरणभूषिताम् ॥१९६॥
यौवनस्थां मदोन्मत्तां पीनवृत्तपयोधराम् ।
मध्यक्षामां नितम्बाढ्यां मदिरानन्दनन्दिताम् ॥१९७॥
महाकाद्यैः कृता माला आपादतललम्बिनी ।
महाप्रेतासनारूढाम् अमृतानन्दनन्दिताम् ॥१९८॥
तर्जयन्ति[न्तीं] महाघोरां सर्वलक्षणलक्षिताम् ।
एवं परापरां ध्यात्वा शृङ्गाटपुरमध्यगाम् ॥१९९॥
विद्यातत्त्वसमायुक्ताम् आधारपदसंस्थिताम् ।
ध्यात्वा च पूजितां देवीं सर्वकामप्रसाधिनीम् ॥२००॥

अणिमादिगुणावाप्तिः खेचरादिप्रसाधिनीम् [घनम्] ।
पुरक्षोभादिमावेशं प्रतिमाजल्पनादिकम् ॥२०१॥

नावादिसंकटं सं[स्तं]भं पुरक्षोभं पृथुश्रियम् ।
जलाग्निपठनस्तम्भं गजोन्मत्तवृषे च मे ॥२०२॥

धारानित (?) तथा वज्रं पर्वतस्फोटनं प्रिये ।
शिलानां चालनं स्तोभं वृक्षाणां पातनं तथा ॥२०३॥

तरणं च समुद्राणां नदीनां च महाप्लवम् ।
वादिनः स्तम्भयेद्देवि दुष्टतस्करतार्किकान् ॥२०४॥

दंष्ट्रिणः स्तम्भयेत् सर्वान् वशित्वं च जगत्त्रये ।
परापरा महाविद्या यस्य देहे व्यवस्थिता ॥२०५॥

दहते सर्वपापानि सप्तजन्मकृतानि च ।
मातृहा पितृहा वापि ब्रह्महा गोघ्न एव च ॥२०६॥

समयद्रोहकृत्पापान् वीरदाराभिगामिनः ।
ब्रह्महत्यादिपापानि स्तेयं गुर्वङ्गनादि च ॥२०७॥

पातकानि वरारोहे तथा च समयच्युतान् ।
पातकानि महाघोरदुस्तराणि कृतान्यपि ॥२०८॥

विद्यास्मरणमात्रेण भस्मसात्कुरुते क्षणात् ।
न्यस्त्वा[स्य]षोडश वाराणि त्रितत्त्वपथसंस्थिताम् ॥२०९॥

सर्वपातकनिर्मुलो[क्तः] त्यक्तकञ्चूरगो यथा ।
सुतप्तं च यथा हेम सर्वदोषविवर्जितम् ॥२१०॥

तथा सर्वाणि पापानि त्यक्त्वा निर्मलतां व्रजेत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन विद्यां ध्यायेत् प्रपूजयेत् ॥२११॥

अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि विद्यां कामेश्वरीं पराम् ।
यया व्याप्तं जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥२१२॥

सृजते सकलं विश्वं नानारूपैरनेकधा ।
विश्वमध्यगता देवी विश्वं तन्मध्यसंस्थितम् ॥२१३॥

एकाक्षरा महावीर्या दूतीषट्कसमन्विता ।
षट्कमध्यगता देवी संभूता कुलनायिका ॥२१४॥

प्रसादपूर्वं संगृह्य ग स मध्यकृतासनम् ।
षकाराद्यं ततो गृह्य दत्त्वा तस्यैव चासनम् ॥२१५॥

ककारान्तेन संयुक्तं नकाराद्येन भूषितम् ।
अर्द्धेन्दुकलया युक्तं बीजं त्रैलोक्यमोहनम् ॥२१६॥

कूटमेकाक्षरं देवि कामेश्वर्याः प्रपूजयेत् ।
नन्दा च सुभगा रक्ता रतिः प्रीतिर्मनोद्भवा ॥२१७॥

दूति[ती]षट्कं प्रपूज्येत षट्कोणपुरमध्यगम् ।
स्वकीयेन तु बीजेन पूजयित्वा प्रयत्नतः ॥२१८॥

पाद्यवर्णं समादाय नकाराद्येन भूषितम् ।
कादिवर्णं समादाय नकाराद्यैरलङ्कृतम् ॥२१९॥

औ य मध्यगतं गृह्य नकाराद्येन भूषितम् ।
डाधो वर्णं समादाय नकाराद्येन भूषितम् ॥२२०॥

ध न मध्यगतं वर्णं नकाराद्यैरलङ्कृतम् ।
त भ मध्यगतं गृह्य नकाराद्येन भूषितम् ॥२२१॥

अनेनैव तु बीजेन दूतीषट्कं प्रपूजयेत् ।
मूलबीजेन देवेशि आत्माङ्गेन च विन्यसेत ॥२२२॥

ततो ध्यायेन्महाविद्यां स्थिरचित्तः समाहितः ।
दाडिमीपुष्पवर्णाभां सिन्दूरारुणसन्निभाम् ॥२२३॥

किरीटरत्नसंकाशां दिव्यकुण्डलभूषिताम् ।
जटाजूटधरां देवीमर्द्धेन्दुकृतशेखराम् ॥२२४॥

दिव्यरत्नकृता माला शिरःस्था च विराजते ।
चतुर्भुजां महादीप्तां नानालङ्कारमण्डिताम् ॥२२५॥

पाशाङ्कुशधरां वामे कम्बु सूत्रं च दक्षिणे ।
मध्यक्षामां नितम्बाढ्यां समपीनपयोधराम् ॥२२६॥

हारकेयूरसंयुक्तां नानाभरणमण्डितम् ।
सर्वावयवसंपूर्णां सर्वलक्षणलक्षिताम् ॥२२७॥

रक्तपद्मासनासीनामूर्द्ध[र्ध्व]स्थं रक्तपङ्कजम् ।
वर्षन्तं च महौघेन द्रवं लाक्षारसप्रभम् ॥२२८॥

यथा देवी तथा दूती वर्णरूपं विचिन्तयेत् ।
एवं ध्यात्वा महादेवीं षट्कमध्ये प्रपूजयेत् ॥२२९॥

हृच्छिरश्च शिखा वर्ण[र्म] नेत्रमस्त्रमनुक्रमात् ।
क्रमेण पूजयेद्देवि ततो मूर्तिं प्रपूजयेत् ॥२३०॥

योनिमुद्रां ततो बद्ध्वा कामेश्वर्यां[रीं] प्रपूजयेत् ।
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसंयुतैः ॥२३१॥

एवं पूज्य प्रयत्नेन मूलबीजं जपेत्ततः ।
शतं वाथ सहस्रं वा नवलक्षं जपेत्प्रिये ॥२३२॥

योनिकुण्डं ततः कृत्वा पूर्वलक्षणलक्षितम् ।
दशांशेन च होमं तु पुष्पैस्तु करवीरजैः ॥२३३॥

ब्रह्मवृन्दोद्भवैर्वाथ मध्वाज्येन परिप्लुतैः ।
होमान्ते पश्यते देवि काममूर्तिधरां पराम् ॥२३४॥

भो साधक महासत्त्व वरं ब्रूहि मनेप्सितम् ।
खड्गपातालसंसिद्धिं खेचरत्वं च पादुकाम् ॥२३५॥

अञ्जनं रोचनं दण्डं वीणां चैव कमण्डलुम् ।
गुटिकाञ्जनसिद्धिं च तालपत्रं च सूत्रकम् ॥२३६॥

एवमादीनि सिद्धानि देवि[वी] तुष्टा ददेत्प्रिये ।
अभीष्टा कामिकी सिद्धिः साधकस्य वरप्रदा ॥२३७॥

त्रैलोक्यं क्षुभ्यते तस्य यस्य विद्या शरीरगा ।
सौभाग्यमतुलं तस्य पुरःक्षोभं वशित्वता ॥२३८॥

विद्यास्मरणमात्रेण तत्क्षणादुपजायते ।
रम्भां वा उर्वशीं वाथ चम्पकां मेनकामपि ॥२३९॥

यक्षिणीं नागकन्यां वा गान्धर्वीं सिद्धकन्यकाम् ।
शतजप्तेन देवेशि कर्षयेन्नात्र संशयः ॥२४०॥

पतन्ति साधकस्याग्रे क्षुभ्यमानास्तु ताः स्त्रियः ।
साधकस्य समायान्ति मानुषीषु[णां] च का कथा ॥२४१॥

क्रीडते विपुलैर्भोगैर्विद्याराज्ञीप्रसादतः ।
न कालं[ला] न च वा मृत्युर्भयदुःखविनाशिनी ॥२४२॥

श्रीदेव्युवाच

श्रुता देव मया विद्या नाम्ना कामेश्वरी परा ।
कथयस्व प्रसादेन विद्यां त्रिपुरशेखराम् ॥२४३॥

पूजा ध्यानं च वै तस्या जपमुद्रा यथा भवेत् ।
यस्या विज्ञातमात्राया जगत्क्षोभः प्रजायते ॥२४४॥

दुर्भगा च नरा ये वै स्त्रियो वाथ महाप्रभो ।
सौभाग्यं लभते येन लीलया भुक्तिमुक्तिदा ॥२४५॥

कथयस्व प्रसादेन सर्वसौभाग्यदायिका ।

श्रीभैरव उवाच

कथयामि च ते भद्रे कौलिकीं कुलनायिकाम् ॥२४६॥
यस्या विज्ञातमात्रायाः पुरक्षोभं प्रजायते ।

वाग्भवं प्रथमं बीजं कामराजं द्वितीयकम् ॥२४७॥

सान्तान्तं च वरारोहे कूटं बीजं तृतीयकम् ।
तदा हंसं प्रवक्ष्यामि यथा जानामि तत्त्वतः ॥२४८॥

वारुणं बीजमादाय चन्द्रमध्ये कृतासनम् ।
थकारान्तेन संभिन्नं नकाराद्येन भूषितम् ॥२४९॥

वाग्भवं कथितं देवि वाग्विलासप्रवर्तकम् ।
वारुणं चन्द्रसंस्थं च ग स मध्यकृतासनम् ॥२५०॥

षकाराद्यं ततोऽधस्तात् य औ मध्ये कृतासनम् ।
ककारान्तेन संयुक्तं नकाराद्येनालंकृतम् ॥२५१॥

अर्द्धेन्दुकलया युक्तं कामराजं विनिर्दिशेत् ।
क्षोभकृत्सर्वजन्तूनां जीवभूतं परापरम् ॥२५२॥

वारुणं चन्द्रसंस्थं च उकाराधःकृतासनम् ।
रकारान्तेन संयुक्तं वकारान्तेन रोधितम् ॥२५३॥

तृतीयं बीजराजानं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
वाग्भवं चत्वरं देवि कामराजं च षण्मुखम् ॥२५४॥

सान्तान्तं तु शिवं ज्ञेयं तेन सा शेखरा स्मृता ।
नवदूतीसमायुक्तं वाग्भवं पूजयेत् प्रिये ॥२५५॥

वाग्वती वाक् तथा वाली[णी] शारदा च सरस्वती ।
सुभगा नन्दिनी कामा नवमी शाश्वती प्रिये ॥२५६॥

अष्टारे पङ्कजे देवि पूर्वादौ पूजयेत् क्रमात् ।
शृङ्गाटपुरमध्ये तु नवमीं पूजयेत् प्रिये ॥२५७॥

एकवक्त्रास्त्रिनेत्राश्च चतुर्बाहुः[हु] सुशोभितम्[ताः] ।
किरीटरत्नखचिता लसत्कुण्डलमुज्ज्वलाः ॥२५८॥

यौवनेन मदोन्मत्ता हारकेयूरमण्डिताः ।
शरदम्बुदवर्णाभा नितम्बाढ्याः कुचोन्नताः ॥२५९॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा वज्रासनव्यवस्थिताः ।
आप्यायन्ति[न्त्यो] जगत्सर्वममृतस्य करेण तु ॥२६०॥
पाशाङ्कुशधराः सर्वे[र्वाः] ज्ञानसूत्रं च दक्षिणे ।
वाग्भवेन वरारोहे दूतीचक्रं प्रपूजयेत् ॥२६१॥
पश्चिमाभिमुखं लिङ्गं ततो जपं समारभेत् ।
वाग्भवं बीजराजानं जपेदेकमनाः प्रिये ॥२६२॥
लक्षजापेन देवेशि कवित्वं तस्य जायते ।
अव्युच्छिन्ना भवेद्वाणी सुरसर्याः प्रवाहवत् ॥२६३॥
ये केचिद्वादिनो लोके पण्डितास्तर्कवर्जिताः ।
तिष्ठन्ति किंकराः सर्वे मूकवन्नात्र संशयः ॥२६४॥
उद्ग्राह्य सर्वशास्त्राणि तर्कव्याकरणानि च ।
गारुडं पञ्चरात्रं च शिवसिद्धान्तदक्षिणम् ॥२६५॥
वामं लाकुलसोमं च तथा सिद्धान्तडामरम् ।
बौद्धं साङ्ख्यं च तत्त्वार्थं भाष्यं मीमांसकं तथा ॥२६६॥
वेदान्तं शैवसिद्धान्तं तथा पातञ्जलं परम् ।
अष्टादश पुराणानि स्मृतिं चैव तु गौह्वरम् ॥२६७॥
उद्ग्राहयेन्न संदेहो वाग्भवस्य प्रसादतः ।
कुमाराणि[रांश्च] कुमारीं वा हलगोपाङ्गनाः प्रिये ॥२६८॥
द्विपदे चतुःपदे वाथ न्यस्त्वा[स्य] बीजं शरीरतः ।
उद्ग्राहयन्ति तर्कार्थं वादिवादं च भञ्जते ॥२६९॥
काष्टपाषाणधातूनां मूर्तीनां देवताः प्रिये ।
न्यस्ता प्रसाधयेद्वाचम् अव्युच्छिन्नप्रवाहणम् ॥२७०॥
कुरुते विविधाश्चर्यं बीजराजप्रभावतः ।
वाग्भवस्य प्रभावं तु नाहं शक्ष्यामि वर्णितुम् ॥२७१॥

कथयामि वरारोहे यथाकामं प्रपूजयेत् ।
द्वादशारे महापद्मे मध्ये शृङ्गाटकाकृतिः ॥२७२॥

दूतीद्वादशकं तत्र कामबीजेन पूजयेत् ।
अनङ्गकुसुमा देवी तथा चानङ्गमेखला ॥२७३॥

अनङ्गमदना चैव तथा वै मदनातुरा ।
अनङ्गस्य मनोवेगा पञ्चमी कथिता तव ॥२७४॥

शशिरेखा वरारोहे भुवना वायुवेगिका ।
गगनवेगा महादेवी तथा कामप्रदीपिनी ॥२७५॥

कामसंजननी चैव द्वादशैताः वरानने ।
द्वादशारे प्रपूज्यन्ते कामराजेन सुन्दरि ॥२७६॥

त्रिनेत्राः षड्भुजाः सर्वे[र्वाः] किरीटमुकुटोज्ज्वलाः ।
पाशाङ्कुशं च शूलं च दक्षिणेन विराजते ॥२७७॥

ज्ञानं कम्बु तथा सूत्रं वामस्था च प्रदीपिताः ।
नानालङ्कारसंपन्नाः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥२७८॥

सर्वावयवशोभाढ्या मदिरानन्दनन्दिताः ।
युवाना[वत्यो] मदनोन्मत्ताः परमामृतघूर्णिताः ॥२७९॥

मध्यक्षामा नितम्बाढ्या उदयादित्यवर्चसः ।
बन्धूकपुष्पवर्णाभा जपाकुसुमसन्निभाः ॥२८०॥

ऊर्ध्वमार्गे स्थितं पद्मं रक्तकिंजल्कसन्निभम् ।
वर्षन्तं सुमहौघेन रसं लाक्षासमप्रभम् ॥२८१॥

एवं ध्यायेच्च देवेशि कामराजस्य शक्तयः ।
शृङ्गाटपुरमध्ये तु कामं ध्यायेच्च लब्धिके ॥२८२॥

उदयादित्यसंकाशं किरणानेकसंकुलम् ।
सिन्दूरारुणवर्णाभं प्रदीप्तमिव भास्करम् ॥२८३॥

रक्तपारदसंकाशं त्रिनेत्रं हसिताननम् ।
किरीटरत्नखचितं हेमकुण्डलमण्डितम् ॥२८४॥

दिव्यरत्नमयी माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ।
बृहद्वक्षस्थलाभोगं वज्रासनव्यवस्थितम् ॥२८५॥

विशालनयनं देवं परमानन्दनन्दितम् ।
इषुचापधरं वामे पुष्पबाणं च दक्षिणे ॥२८६॥

द्रावणं दीपनं देवि उन्मादं क्लेदनं तथा ।
मोहनं पञ्चमं देवि मोहयेच्च चराचरम् ॥२८७॥

द्रावयन्तं जगत्सर्वं दीपयन्तं महौजसम् ।
सृजन्तं सकलं विश्वं महाह्लादकरं परम् ॥२८८॥

एवं ध्यात्वा वरारोहे कामं त्रैपुरमध्यगम् ।
पूजयित्वा विधानज्ञः क्रमेण वरवर्णिनि ॥२८९॥

सकारं हृदये न्यस्य हकारं शिरसि तथा ।
ककारं च शिखायां तु लकारं कवचं प्रिये ॥२९०॥

रकारं नेत्रमुद्दिष्टं दीप्यमानं सुतेजसम् ।
ईकारं चास्त्रमाख्यातं फडन्तेन प्रदीपितम् ॥२९१॥

जातियुक्तो न्यसेद्धीमान् ततः पूजां समारभेत् ।
कामराजेन देवेशि कामचक्रं प्रपूजयेत् ॥२९२॥

गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसंयुतैः ।
करवीरकुसुम्भैश्च तथा रक्तोत्पलादिभिः ॥२९३॥

जपाबन्धूकैर्देवेशि पलाशोद्भवपुष्पकैः ।
रक्तचन्दनमिश्रेण रोचनाकुङ्कुमेन वा ॥२९४॥

सुगन्धधूपदिव्येन कर्पूरागुरुचन्दनैः ।
सुगन्धपुष्पैः संपूज्य दीपका घृतपूरिताः ॥२९५॥

रक्तवर्तिः सुतेजाढ्या दीपकाश्च त्रयोदश ।
रक्तचन्दनपट्टे तु निश्छिद्रे दर्पणेऽथवा ॥२९६॥

सुलिप्ते कुङ्कुमेनैव लिखेच्चक्रं प्रपूजयेत् ।
पट्टाग्रे पूजयेद्देवि निश्चलेनान्तरात्मना ॥२९७॥

कामराजं जपेद्धीमान् परापरतनौ स्थितः ।
क्षोभयित्वा परां शक्तिं निरालम्बां तु पञ्चमीम् ॥२९८॥

विद्युत्पुञ्जनिभाकारां मदयन्तीं परापराम् ।
स्वयंभूर्बाणलिङ्गं च इतरे च[रच] तृतीयकम् ॥२९९॥

लिङ्गत्रयं ततो भित्त्वा षोडशारं विशेत्प्रिये ।
अनेनाभ्यासयोगेन कामराजश्च सिद्ध्यति ॥३००॥

लक्षैकेन तु जप्तेन वाचां सिद्धिः प्रवर्तते ।
द्वितीयेन तु लक्षेण क्षोभयेद्योषितां गणम् ॥३०१॥

त्रिभिस्तु हाटकेशस्य चतुर्भिर्यक्षिणीः प्रिये ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव पञ्चभिः क्षोभयेत्प्रिये ॥३०२॥

अष्टाभिः सर्वकामित्वं नवभिश्चक्रवर्तिनः[ता] ।
नानारूपधरो देवि दशलक्षं जपेद्यदि ॥३०३॥

एकादशैर्भवेद्रुद्रो द्वादशैर्मकरध्वजः ।
त्रयोदशभिर्जप्तैश्च स्वयं कामो भविष्यति ॥३०४॥

सृजते संहरेद्देवि त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तस्य दृष्टिनिपातेन क्लिद्यन्ते सर्वयोषितः ॥३०५॥

कुरुते विविधाश्चर्यं मनसा चिन्तनेन तु ।
कामराजमजानंश्चेत् कामतत्त्वं प्रसाधयेत् ॥३०६॥

वृथा परिश्रमं तस्य वृद्धस्य तरुणी यथा ।
कामस्थं काममध्यस्थं कामोदरपुटीकृतम् ॥३०७॥

कामेन कामयेत्कामं कामं कामे नियोजयेत् ।
कामसंलग्नचित्तस्तु कामस्थं क्षोभयेद् ध्रुवम् ॥३०८॥

गुरुप्रसादाज्ञानीयादन्यथा न कदाचन ।
शास्त्रभारेण ये खिन्ना गुरुहीना निरर्थकाः ॥३०९॥

कामषष्ठं भवेद्योनिः कामकूटं प्रकीर्तितम् ।
कामोदरं भवेद्योनिः पुटितं तेन सुन्दरि ॥३१०॥

तेन कामेन देवेशि कामनाम तु कामयेत् ।
ददाति विपुलान् भोगान् स्त्रियो वा पुरुषोऽपि वा ॥३११॥

सान्तान्तं कथयिष्यामि तथा पूजार्चने यथा ।
नवदूतीसमायुक्तं अष्टारे पङ्कजे यजेत् ॥३१२॥

शृङ्गाटपुरमध्ये तु सान्तं बीजं प्रपूजयेत् ।
श्वेतकुन्देन्दुवर्णाभाः त्रिनेत्रमुकुटोज्ज्वलाः ॥३१३॥

हारकुण्डलशोभाढ्याः सर्वावयवशोभिताः ।
चतुर्भुजैकवक्त्राश्च नानालङ्कारमण्डिताः ॥३१४॥

पाशाङ्कुशधरा दिव्या ज्ञानसूत्रधराः प्रिये ।
यौवनोन्मत्तचेतस्काः परमामृतनन्दिताः ॥३१५॥

मध्यक्षामा नितम्बाढ्याः त्रिवलीमध्यभूषिताः ।
सर्वावयवसंपूर्णाः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥३१६॥

दिव्यरूपधराः सर्वे[र्वाः] नानाभरणमण्डिताः ।
ध्यायेद् दूत्यो वरारोहे सर्वकामार्थसाधिनी[धिकाः]॥३१७॥

तेषां[तासां] नामानि वक्ष्यामि यथा पूज्यानि पार्वति ।
सान्ता च सर्वगा गौरी सौम्या च शबरी तथा ॥३१८॥

ज्योत्स्ना च अमृता चैव पावनी अष्टमी मता ।
ऐन्द्रादीशानपर्यन्ता पूजयित्वा क्रमेण तु ॥३१९॥

सान्तानुबीजसंयुक्ता दूतीनाम्ना च संयुता ।
पूजयेच्चक्रमध्ये तु श्रीखण्डे दर्पणे प्रिये ॥३२०॥

जातीपुष्पैश्च दिव्यैश्च श्वेतपद्मेऽथवा प्रिये ।
शशिचन्दनसंयुक्तं सुधूपामोदवासितम् ॥३२१॥

घृतप्रदीपकान् दद्याच्छ्वेतवर्तिसुदीपितान् ।
गुडखण्डैः शुभैर्भक्ष्यैर्दधिक्षीररसमन्वितैः ॥३२२॥

अलिफल्गुसमायुक्तैः पूजयेत् परमेश्वरि ।
स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण शक्तिगर्भे जपेत् सुधीः ॥३२३॥

षडङ्गेन जपेद्देवीमात्मानं च तथा परम् ।
सान्तं बीजेन देवेशि षडङ्गेन प्रसिद्ध्यति ॥३२४॥

नवलक्षं जपेद्यस्तु एकचित्तो दृढव्रतः ।
या सा कुण्डलिनी देवी द्वादशान्ते च संस्थिता ॥३२५॥

बिन्दुरूपा परा देवी इच्छाशक्तिं सृजेत सा ।
शून्याच्छून्यगतात्मानमप्रबुद्धा पराश्रिता ॥३२६॥

तेनैव सहितात्मानं लोलीभूतं विचिन्तयेत् ।
अनेनाभ्यासयोगेन सान्तं बीजं जपेत्सदा ॥३२७॥

नवलक्षकृते जाप्ये किं न सिद्ध्यति भूतले ।
मालतीलक्षहोमेन मधुनाज्ययुतेन तु ॥३२८॥

रसं रसायनं दिव्यं गुटिकाञ्जनपादुके ।
पाताले खे गतिश्चैव दिव्यमुक्तिश्च शाश्वती ॥३२९॥

अणिमादिगुणान् देवि शाम्भवीयं पदं लभेत् ।
अभीष्टा कामिकी सिद्धिर्मनसा चिन्तितं लभेत् ॥३३०॥

त्रिभिर्भेदैः स्थिता देवी तस्मात्त्रिपुरशेखरा ।
नान्यतन्त्रे मयाख्याता आख्याता श्रीमतोत्तरे ॥३३१॥

गोपनीया प्रयत्नेन अप्रकाश्येतरे जने ।
रक्षितव्या प्रयत्नेन शठे दुष्टे च निन्दके ॥३३२॥

योगिनीगुह्यभाण्डारं कुलपुत्रेण गोपितम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यम् अलक्ष्मीमलनाशनम् ।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं योगिनीवल्लभो भवेत् ॥३३३॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

वज्रगह्वरोद्धारे समस्तविद्यानिर्णयो नाम

द्वाविंशः पटलः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं देव मया सर्वं विद्यागुह्यं महोदयम् ।
षोढान्यासं न मे ज्ञातं शब्दराशिस्तु भैरव ॥ १ ॥

क्रमेण वद मे नाथमूर्तिव्याप्तिर्यथा स्थिता ।

श्रीकण्ठ उवाच

साधु कुब्जि महाभागे साधु त्वं वीरमातरे ॥ २ ॥

कथयामि न संदिग्धं यथा बुध्यसि भामिनि ।
प्रातरुत्थाय देवेशि मैत्रीं निर्वर्त्य मन्त्रवित् ॥ ३ ॥

प्रथमं तु न्यसेद् भूमौ मनसा वज्रमण्डलम् ।
तदूर्द्धे[र्ध्वे] विन्यसेद् भूयः सर्वपापविनाशिनीम् ॥ ४ ॥

छादयत्रि[न्तीं] ध्रुवस्थानं सूर्यमण्डलभेदिनीम् ।
पर्यङ्कबन्धनं कृत्वा स्थिरकायो मृगाजिनम् ॥ ५ ॥

प्रत्यङ्गिरां करे कृत्वा दक्षिणे गुह्यकालिकाम् ।
पार्श्वे दूतीगणं न्यस्य दिशासु विदिशासु च ॥ ६ ॥

हृदयाद्यस्त्रपर्यन्तं न्यसेद् दूतीगणं प्रिये ।
ग्रन्थिन्यादि तथा घोरं तादि कान्ता च मालिनी ॥ ७ ॥

शब्दराशिस्त्रिविद्या च तथा घोराष्टकं प्रिये ।
द्वादशाङ्गं षडङ्गाख्यमस्त्रं पाशुपतं परम् ॥ ८ ॥

श्लोकद्वादशके माला तद्ग्रहावलिमुत्तमम् ।
रत्नानां पञ्चकं देवि बीजानां पञ्चकं तथा ॥ ९ ॥

नवात्मानं महादेवि द्वादशाङ्गगतं पुनः ।
षडङ्गं शय्यया[च तथा] भूयः षोढा न्यासक्रमं न्यसेत् ॥ १० ॥

ग्रन्थिन्यासं वरारोहे षोडशैतास्तु दीपिताः ।
उदयार्कनिभां ध्यायेद्दीप्यमानां सुतेजसा ॥ ११ ॥

स्थानस्थानगतं ध्यानं ग्रन्थिषोडशदीपितम् ।
अनेन ग्रन्थिन्यासेन अमरत्वं प्रसाधयेत् ॥ १२ ॥

वाचासिद्धिः पुरक्षोभमाज्ञा तीव्रतरा भवेत् ।
अघोरं शृणु कल्याणि न्यासमार्गे यथा स्थितम् ॥ १३ ॥

अघोरस्य इदं न्यासं न्यस्त्वा[स्य] पापं व्यपोहति ।
ज्वालामालाकुलं रौद्रं दक्षे मूर्त्तिमनुस्मरेत् ॥ १४ ॥

मालिन्याः कथयिष्यामि विलोमेन यथा स्थिता ।
यथास्थानान्तरे वर्णा यस्त्वां[था] मुच्येत पातकात् ॥ १५ ॥

पञ्चाशानुक्रमं न्यस्य मालिन्या न्यासपञ्चकम् ।
त्रिकालमेककालं वा ध्यानयुक्तः स्मरेद्यदि ॥ १६ ॥

ज्वालामालाकुलं ध्यायेत् पूर्वमूर्तिमनुस्मरेत् ।
गोहत्यादि च यत्पापं ब्रह्महत्यादिकं प्रिये ॥ १७ ॥

गुरुद्रव्यविनाशी च प्रमादात् समयच्युतः ।
न्यस्त्वा[स्य] षोडश वाराणि भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥ १८ ॥

यथा वह्निः समृद्धस्तु शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत् ।
तथा सर्वाणि पापानि मालिनी दहते क्षणात् ॥ १९ ॥

प्रलयानलसंकाशा युगान्तानलदीपिता ।
चतुर्वक्त्रा महाघोरा दीप्यमाना महौजसा ॥ २० ॥

जटाजूटधरा दिव्या किरीटकुण्डलोज्ज्वला ।
दीप्तकुण्डलशोभाढ्या सूर्यरश्मिसमप्रभा ॥ २१ ॥

विचित्रनागाभरणा रत्नमालाप्रदीपिता ।
मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥ २२ ॥

बृहद्वक्षस्थलाभोगा भुजाषोडशशोभिताः ।
नानाभरणतेजाढ्या नानालङ्कारमण्डिताः ॥ २३ ॥

कादर्थं खट्वाङ्गं पाशं च नागं घण्टा च दर्पणम् ।
अङ्कुशं डमरुं चैव वामस्थाः करदीपिताः ॥ २४ ॥

कम्बुं सूत्रं तथा शूलं परिघं वज्रखेटकम् ।
खड्गं च मुद्गरं दिव्यं दक्षिणस्थं विराजते ॥ २५ ॥

अस्त्रकालानलां दीप्तां लेलिहानां विचिन्तयेत् ।
नागराजकृता हारां वक्षस्थलसुदीपिताम् ॥ २६ ॥

पादौ नूपुरशब्दाढ्यौ गुरुघण्टानिनादिता ।
क्रीडन्तीं मातृभिः सार्द्धं हृत्पद्मे तु विचिन्तयेत् ॥ २७ ॥

एवं ध्यानमनुस्मृत्य शब्दराशिं ततो न्यसेत् ।
त्रिकालं च न्यसेद्यस्तु ध्यानयुक्तः सदा प्रिये ॥ २८ ॥

अणिमादिगुणास्तस्य षण्मासात् संभवन्ति हि ।
दहते सर्वपापानि सप्तजन्मार्जितानि तु ॥ २९ ॥

दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य सर्वपापं विनश्यति ।
सप्तजन्मार्जितं यस्तु नानायोनिप्रपीडनम् ॥ ३० ॥

तद्दुःखं नाशमायाति यस्य रुद्राः शरीरगाः ।
भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ज्वरं दाहं क्षयं तथा ॥ ३१ ॥

कुष्ठं पिटकं लूताश्च रौद्रदुष्टग्रहेषु च ।
न भयं विद्यते तस्य यस्य न्यासं शरीरगम् ॥ ३२ ॥

अकालमृत्युशमनं दुष्टसिंहविनाशनम् ।
सर्वरोगप्रशमनं शान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ३३ ॥

त्रिविद्याः परमा दिव्याः यथा न्यासं वदाम्यहम् ।
पूर्वसिद्धा महाविद्या कल्मषौघविनाशिनी ॥ ३४ ॥

कर्मणा मनसा वाचा यत्पापं समुपार्जितम् ।
विद्यान्यासेन देवेशि भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥ ३५ ॥

निराचारेण योगेन खेपथं वरवर्णिनि ।
अणिमादिगुणावाप्तिः शाम्भवीयं पदं भवेत् ॥ ३६ ॥

ध्यायेद्देवि प्रयत्नेन पूर्वमुक्तं मया प्रिये ।
परापरविभागेन लोलीभूतं विचिन्तयेत् ॥ ३७ ॥

कालानलसमप्रख्यां तडित्कोटिसमप्रभाम् ।
पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं त्रिपञ्चनयनोज्ज्वलाम् ॥ ३८ ॥

किरीटरत्नखचितां वज्रकुण्डलमण्डिताम् ।
अष्टकपालमालासु बद्धनागेन्द्रजूटिकाम् ॥ ३९ ॥

नीलरत्नकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ।
दंष्ट्राकरालरौद्रा च ग्रसन्तीव चराचरम् ॥ ४० ॥

दशबाहुर्महारौद्रा नागगोनासमण्डिता ।
कार्यं खेटकं सूत्रं च वज्रखट्वाङ्गधारिणी ॥ ४१ ॥

अस्त्रकालानलच्छाया वामस्था सुप्रदीपिता ।
शूलं खड्गं तथा कम्बु पाशमङ्कुशं दक्षिणे ॥ ४२ ॥

प्रलयानलसंकाशा वडवानलदीपिता ।
लम्बोदरा नितम्बाढ्या वृत्तपीनपयोधरा ॥ ४३ ॥

कार्यरत्नकृता माला आपादतललम्बिनी ।
मेखला रत्नसंबद्धा प्रदीप्तकिरणोज्ज्वला ॥ ४४ ॥

पादौ नूपुरसंलग्नौ शवयानोपरिस्थिता ।
ध्यात्वा पञ्च रमाघोरा वाडवानलदीपिता ॥ ४५ ॥

महारौद्रा महातेजा महाभीमा महाबला ।
सर्वावयवसंपूर्णा सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ४६ ॥

एवं ध्यात्वा महारौद्रां पापौघं च विनाशयेत् ।
अघोर्यष्टमिदं न्यासं कालमृत्युविनाशनम् ॥ ४७ ॥

निराचारेण योगेन वाडवानलमध्यगम् ।
न्यस्त्वा[स्य] षोडशवाराणि पर्वतानपि पातयेत् ॥ ४८ ॥

स्फोटयेच्छैलवृक्षांश्च असत्यौघं निवारयेत् ।
त्रिकालन्यासयोगेन यमलोकं न पश्यति ॥ ४९ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो ह्यणिमादिगुणांल्लभेत् ।
द्वादशाङ्गं वरारोहे जगत्संजीवनं परम् ॥ ५० ॥

सप्तकोटिप्रमाणेन तन्मध्याच्च मयोद्धृतम् ।
आत्मसंरक्षणार्थाय द्वादशाङ्गेन पञ्जरम् ॥ ५१ ॥

दुष्टकालस्य रक्षार्थममेद्यं वज्रवद्दृढम् ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि न्यासमार्गे यथा स्थितम् ॥ ५२ ॥

द्वादशाङ्गमिदं न्यासं पापकञ्चुकमोचनम् ।
सर्वदुःखहरं न्यासं कालमृत्युविनाशनम् ॥ ५३ ॥

महारोगप्रशमनं शान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ।
मृतस्योत्थापनं देवि न्यसन् वाराणि षोडश ॥ ५४ ॥

ज्योत्स्नाकिरणसंकाशं हिमकुन्देन्दुसन्निभम् ।
किरीटहेमखचितं शशिकुण्डलदीपितम् ॥ ५५ ॥

षट्चक्रं द्वादशभुजं त्रिनेत्रनयनोज्ज्वलम् ।
जटाजूटधरं दिव्यमर्द्धेन्दुकृतशेखरम् ॥ ५६ ॥

कम्बु सूत्रं तथा पाशमङ्कुशं शक्तिदर्पणम् ।
षडेते वामतो दीप्ता अमृतौघं स्रवन्ति च ॥ ५७ ॥

वरदं शूलं परिघं शङ्खपालं च पुस्तकम् ।
अमृताख्येन संपूर्णं दिव्यकुम्भं च दक्षिणे ॥ ५८ ॥

दिव्यामृतपरानन्दं वर्षन्तं च महौघवत् ।
युवानन्दं मदोन्मत्तं परमानन्दनन्दितम् ॥ ५९ ॥

नानालङ्कारसंयुक्तं नानाभरणमण्डितम् ।
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वावयवशोभितम् ॥ ६० ॥

मध्यक्षामनितम्बाढ्यं नूपुरारावनादितम् ।
श्वेतपद्मासनासीनं महाव्याप्तिकरं परम् ॥ ६१ ॥

त्रिकालं ध्यायमानस्तु न्यासं न्यस्य प्रयत्नतः ।
तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्विज्ञानानि बहून्यपि ॥ ६२ ॥

दूराच्छ्रवणविज्ञानं पुरक्षोभं पृथुश्रियम् ।
पुरप्रवेशमावेशं द्रव्याकृष्टिं जलप्लवम ॥ ६३ ॥

प्रतिमाजल्पनस्तोभं नौकादिशकटेषु च ।
विविधं च विषं घोरं न्यासं न्यस्य न विद्यते ॥ ६४ ॥

द्वादशाङ्गं न्यसेन्नित्यं येन भूयो न संभवः ।
अस्त्रं कालानलं घोरं सर्वदुष्टविनाशनम् ॥ ६५ ॥

परयन्त्रप्रमथनं दुष्टसिंहविनाशनम् ।
क्षुद्रकालोपशमनं महामृत्युविनाशनम् ॥ ६६ ॥

राजदुःखप्रशमनं दुष्टमन्त्रव्यपोहनम् ।
सर्वास्त्राणां प्रशमनं सर्वव्याधिनिकृन्तनम् ॥ ६७ ॥

तदहं कथयिष्यामि अस्त्रं पाशुपतं महत् ।
षडङ्गं पाशुपतं घोरं कालानलसमप्रभम् ॥ ६८ ॥

त्र्यक्षं चतुर्भुजं रौद्रं जटाकुण्डलमण्डितम् ।
त्रिशूलं च तथा खड्गं खट्वाङ्गं खेटकं प्रिये ॥ ६९ ॥

ज्वालामालाकुलं रौद्रं नागगोनासमण्डितम् ।
कायरत्नैः कृता माला आपादतललम्बिता ॥ ७० ॥

स्वशक्त्यानन्दचेतस्कं प्रसन्निव चराचरम् ।
द्रावयन्तं जगत्सर्वं विश्वसंहारकारकम् ॥ ७१ ॥

ध्यात्वा चास्त्रं महाघोरं षडङ्गं घोरदारुणम् ।
षट्कलान्यासयोगेन अमरत्वं प्रजायते ॥ ७२ ॥

दुष्टकार[ल]स्य रौद्रस्य बाधा तस्य न विद्यते ।
छेदयेत् परयन्त्राणि सर्वकीलानि पातयेत् ॥ ७३ ॥

छेदयेत् परसैन्यानि दुष्टशत्रुं विमोहयेत् ।
दुष्टास्त्रान् कीलयेद्देवि ग्रहान् भूतान् विदारयेत् ॥ ७४ ॥

नानेन सदृशं चास्त्रं नानेन सदृशः प्रभुः ।
अस्त्रं पाशुपतं घोरं सर्वदुःखविनाशनम् ॥ ७५ ॥

द्वादशाङ्गमिदं गुह्यं पूर्वमीशानभाषितम् ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि न्यासमार्गे यथा स्थितम् ॥ ७६ ॥

श्लोकद्वादशकं ह्येतत्पञ्चप्रणवसंपुटम् ।
न्यसनीयं वरारोहे सर्वसिद्धिसमीहकैः ॥ ७७ ॥

ज्वालामालाकुलं ध्यायेद्वाडवानलमध्यगम् ।
सहस्रादित्यसंकाशं दीप्यमानं सुतेजसम् ॥ ७८ ॥

ध्यात्वा च परमां शक्तिमक्षोभ्यां परमां कलाम् ।
तया सहितमात्मानमेकीभूतं विचिन्तयेत् ॥ ७९ ॥

अनेनाभ्यासयोगेन न्यसेद्वाराणि द्वादश ।
पादजानूरुके चैव गुदे नाभौ हृदि तथा ॥ ८० ॥

कण्ठे वक्त्रे भ्रुवोर्मध्ये कर्णनेत्रशिरःसु च ।
द्वादशस्थानभेदेन पृथगेकैकशोभने ॥ ८१ ॥

ध्यानयुक्तो न्यसेद्धीमान् त्रिकालं द्वादशं प्रिये ।
अकालमृत्युशमनं कालमृत्युविनाशनम् ॥ ८२ ॥

सर्वरोगप्रशमनम् आकाशादिप्रसाधनम् ।
अणिमादिगुणावाप्तिः सर्वकामप्रसाधनम् ॥ ८३ ॥

दिव्यवाचा श्रुतज्ञानं पुरक्षोभं पृथुश्रियम् ।
दिव्यकौलागमं भाषा दिव्याज्ञामोघशालिनी ॥ ८४ ॥

नानाविज्ञानसम्पत्तिर्यस्य न्यासं शरीरगम् ।
वर्णमालाधरं न्यासं देव्या देहं महाबलम् ॥ ८५ ॥

तत्त्वतः कथयिष्यामि यथोक्तं श्रीमते पुरा ।
विद्युत्कोटिसहस्राभं कालानलसमप्रभम् ॥ ८६ ॥

सूर्यायुतप्रतीकाशं शृङ्गाटपुरमध्यगम् ।
शिवान्ता परमा शक्तिश्चिद्रूपा परमा कला ॥ ८७ ॥

तया सहितमात्मानं लोलीभूतं विचिन्तयेत् ।
एकैकपदविन्यासं ध्यानयुक्तं न्यसेत् प्रिये ॥ ८८ ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाथ सुन्दरि ।
दहते सर्वपापानि काष्ठकूटं यथानलम् ॥ ८९ ॥

सप्तजन्मकृतं पापं कर्मणा मनसापि वा ।
तत्सर्वं नाशमायाति यथा सर्पस्तु कञ्चुकम् ॥ ९० ॥

वाचासिद्धिः पुरक्षोभं खेचरादिप्रसाधनम् ।
भवते नात्र संदेहो न्यासयुक्तो यदा भवेत् ॥ ९१ ॥

तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुत्वं वीरमातरे ।
मातृका मालिनी माया दक्षवामोभयात्मिका ॥ ९२ ॥

रौद्री संग्रथितास्तासां संग्रहोऽयं स तद्गृहम् ।
वामा रौद्री तु दक्षस्था दक्षरौद्री च वामगा ॥ ९३ ॥

रौद्ररौद्री समायोगात्त्रिरौघा तद्गृहो भवेत् ।
ग्रथनं त्रिभिः संयोगात्पञ्चाशत्पदसंख्यया ॥ ९४ ॥

अक्षराणां प्रमाणोऽयं शतं सार्द्धमुदाहृतम् ।
पञ्चाशत्पदसंयुक्तं तद्‍गृहं घोररूपिणम् ॥ ९५ ॥

महान्तकं परं रौद्रं सर्वदुष्टभयावहम् ।
डाकिनी पूतना घोरा भूताःप्रेताश्च राक्षसाः ॥ ९६ ॥

तद्‍ग्रहस्य भयत्रस्ता दह्यमाना प्रयान्ति च ।
अभिचारकृता दोषा भस्मसाद्यान्ति तत्क्षणात् ॥ ९७ ॥

वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री अन्तिमा परमा कला ।
तया संयुक्तमात्मानं लोलीभूतं विचिन्तयेत् ॥ ९८ ॥

तप्तचामीकरप्रख्यं दीप्तपारदसुप्रभम् ।
शृङ्गाटपुरमध्ये तु अणुरूपात्मनः[ना] स्थितम् ॥ ९९ ॥

ध्यात्वा तु परमाशक्तिः[क्तिं] योनिरूपां मनोन्मनीम् ।
सतताभ्यासयोगेन योगिनीसमतां व्रजेत् ॥१००॥

दहते सर्वपापानि किल्विषौघं विनाशयेत् ।
नानेन सदृशं वर्णं कालमृत्युनिवारणम् ॥१०१॥

सर्वदुःखोपशमनं सर्वविघ्नविनाशनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि रत्नन्यासमनुत्तमम् ॥१०२॥

रत्नानां दीपकं देवि रत्नन्यासं वदाम्यहम् ।
येन वै न्यस्तमात्रेण पशुपाशैर्विमुच्यते ॥१०३॥

दहते सर्वपापानि तूलराशिमिवानलम् ।
पञ्चरत्नसमुद्‍भूतं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१०४॥

पृथिव्यादिसमुद्भूताः पञ्चैते गुणवत्तराः ।
ग स प म न समायोगात् पिनाकीशासनस्थिताः ॥१०५॥

प्रज्ञया भूषिताः सर्वे शुक्रदेव्या त्वलङ्कृताः ।
अर्द्धचन्द्रकलायुक्ता ह्रीं पादौ पञ्चके स्थिताः ॥१०६॥

श्वेतं पीतं तथा रक्तं कृष्णं नीलं च पञ्चमम् ।
पञ्चशृङ्गाटकोपेतं मध्यस्थं च प्रदीपितम् ॥१०७॥

तप्तहाटकदीप्ताभम् उदितार्कसमप्रभम् ।
हिमकुन्देन्दुसंकाशं कृष्णजीमूतसन्निभम् ॥१०८॥

नीलाञ्जनसमप्रख्यं देदीप्यन्तमनुस्मरेत् ।
गर्भमध्यगता शक्तिश्चिद्रूपा परमा कला ॥१०९॥

तया सहितमात्मानं लोलीभूतं विचिन्तयेत् ।
स्वस्थानपदयोगेन त्रिकालं न्यस्य सुन्दरि ॥११०॥

खे पदं विमलं तस्य अणिमादिगुणाष्टकम् ।
दिव्यभाषागमं दाभं वीरयन्त्रप्रसाधनम् ॥१११॥

अमृतीकरणं दिव्यं कालमृत्युनिवारणम् ।
सतताभ्यासयोगेन तन्नास्ति यन्न साधयेत् ॥११२॥

योगिनीहृदयं दिव्यं सर्वकामार्थसाधकम् ।
योगिनीकुलसामान्यो यस्य न्यासं शरीरगम् ॥११३॥

नवात्मानमयं न्यासं शृणु वीरेशनायिके ।
यस्य देहगतं न्यासं नवात्मानं महौजसम् ॥११४॥

यस्य स्मरणमात्रेण दह्यते पापपञ्जरम् ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते शाश्वतं पदम् ॥११५॥

अचिरात् खेचरीसिद्धिर्योगिनीसमतां व्रजेत् ।
देहस्थनवबीजानि यथास्थानेषु विन्यसेत् ॥११६॥

आधारपुरमध्यस्थं शृङ्गाटोदरमध्यगम् ।
वाडवानलमध्यस्थं वाडवानलदीपितम् ॥ ११७ ॥

वाडवानलयोगेन वाडवीयं पदं लभेत् ।
तत्रस्थं च नवात्मानं भैरवाकाररूपिणम् ॥११८॥

स्वशक्त्यानन्दचेतस्कं मदिरानन्दनन्दितम् ।
नवात्मानं त्रिनेत्राक्षं किरीटकुण्डलान्वितम् ॥११९॥

दिव्यगोनासकण्ठस्थं मणिमालाप्रलम्बितम् ।
भुजाष्टकसमोपेतं नानालङ्कारमण्डितम् ॥१२०॥

कादर्यं कम्बु तथा पाशमङ्कुशं कर्त्तरीं धनुः ।
खेटकं परिघं चोर्ध्वाद्वाममार्गे विराजते ॥१२१॥

त्रिशूलं डमरुं खड्गं खट्वाङ्गं मुद्गरं तथा* ।
घण्टां सूत्रं तथा बाणं वरदं दक्षिणे प्रिये ॥१२२॥

अस्त्रं कालानलं घोरं लेलिहानं विचिन्तयेत् ।
नीलजीमूतसंकाशं प्रलयानलदीपितम् ॥१२३॥

कपालमालाभरणं सर्वावयवशोभितम् ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णं योगिनीगणमध्यगम् ॥१२४॥

बृहद्वक्षस्थलाभोगं लम्बोदरं महाबलम् ।
शवं पादतले न्यस्तं दीप्यमानं महौजसम् ॥१२५॥

श्वेतं तु प्रथमं वक्त्रं रक्तवक्त्रं ततोपरि ।
तदूर्द्धे[र्ध्वे] पीतवक्त्रं तु दक्षिणं कृष्णवर्णकम् ॥१२६॥

तस्योर्ध्वे धूम्रवर्णं तु नीलवक्त्रं ततोद्ध*[रेत्] ।

× × ×
× × ×

---

*ख. पुस्तकेऽत्र २४६ पत्रं समाप्यते अतः परं च २५५ पत्रं यावत् पत्राणि खण्डितानि। क. पुस्तके च १२७ श्लोकस्य पूर्वार्धानन्तरं (३७६ तः ३८१ यावत्) पत्राणि न सन्ति ।

अत्रैव खण्डितेंऽशे त्रयोविंशपटलस्य समाप्तिश्चतुर्विंशस्य प्रारम्भश्चापतति । श्लोकानामुभयोरपि मातृकयोः सर्वत्र निरङ्कुत्वात् नैतन्निर्णेतुं शक्यते यत् कियानंशः कस्य पटलस्य खण्डित इति ।

इतोऽग्रे तु सुविधार्थं ग्रन्थोपलब्ध्यनुसारमनुमानेनैव चतुर्विंशपटले श्लोकाङ्का दीयन्ते ।

······ ···परं स्थानम् उन्मनन्त्यपरान्तिकम् ।
शिवशक्ति सचैकत्वं(?) मन्थनं चाद्भुतोपमम् ॥ १ ॥

मध्यमध्यान्तयोगेन प्रविष्टस्तत्त्वमण्डले ।
न शृणोति न पश्येत नोच्छ्वसेत्तु कदाचन ॥ २ ॥

पुनस्तेनैव मार्गेण आनयेद्वादिमध्यतः ।
विकाशयेदूर्ध्वनालेन शोधनं गुह्यमध्यतः ॥ ३ ॥

अपानं रोधयेद्वायुं प्राणं तत्र निरोधयेत् ।
रोधनाद्दजुतां याति प्रविशेच्चन्द्रमण्डलम् ॥ ४ ॥

ऊर्णातन्तुनिभाकारा वर्षयन्ती परा कला ।
तेन[तया] शोधितमात्मानं तृप्तिलौकिकलौकिकम् ॥ ५ ॥

तेन वामृतयोगेन सेव्यमानमनुस्मरेत् ।
पात्रं सूर्योदयं ध्यायेद् मध्यं चन्द्रोदयं प्रिये ॥ ६ ॥

तन्मध्ये भावयेद्देवि त्रिकालं वह्निमण्डलम् ।
वह्निमध्ये स्थिताचात्मा[त्मानं]अणुरूपं विचिन्तयेत् ॥ ७ ॥

रक्तपारदसंकाशं स्फुरन्तं दीप्ततेजसम् ।
आत्मानं भैरवं रूपं स्मृत्वा यजनमारभेत् ॥ ८ ॥

पराकाशे परा दिव्या बिन्दुरूपेण सुदन्मनि[सुन्दरि] ।
तया सार्द्धं रमेद्धीमान् त्रुटिमात्रं तु योगवित् ॥ ९ ॥

रक्ताशक्तो न लिख्येत स्वधर्मेण तु सुन्दरि ।
दहते सर्वदुःखानि सप्तजन्मकृतान्यपि ॥ १० ॥

अनेन विधिना देवि भूतशुद्धिं तु कारयेत् ।
भूतशुद्धौ भवेच्छुद्धिर्भूतोपकृतमारभेत् ॥ ११ ॥

अशुद्धेन तु भूतेन यस्तु पूजां समाचरेत् ।
न तस्य फलमाप्नोति वृथा तस्य क्रमार्चनम् ॥ १२ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भूतशुद्धिं प्रकारयेत् ।
गुरुं नवात्मकं भद्रे नवभावैर्विभज्यते ॥ १३ ॥

वाग्भवं वायुना देवि पूजयेद् गुरुमण्डलम् ।
गुरुमण्डलनिर्मुक्तः कारयेद् गुरुमण्डलम् ॥ १४ ॥

न तेन सह संभाषं तेषां संगं तु वर्जयेत् ।
कृते तु आज्ञाहरणं प्रायश्चित्तं भवेत्तदा ॥ १५ ॥

लक्षजापेन संशुद्धिः ततश्चाज्ञा प्रवर्तते ।
तस्मात सर्वप्रयत्नेन ज्ञातव्यं गुरुमण्डलम् ॥ १६ ॥

भृगुलाकुलसंवर्तं महाकालं पिनाकिनम् ।
खड्गीशं च भुजङ्गाख्यं वालीशमर्विणा युतम् ॥ १७ ॥

अर्द्धेन्दुबिन्दुसंयुक्तं कलयाधोर्द्ध[र्ध्व]दीपितम् ।
एतन्नवात्मकं देवि गुरुं च त्रिषु दे[ओ]लिषु ॥ १८ ॥

गुरुणा भ्रामयेत्तत्र गुरुरेको हि पञ्चधा ।
एकैकगह्वरं भद्रे विन्यसेच्च पृथक् पृथक् ॥ १९ ॥

उत्तरे विन्यसेत्सोमं सूर्यमीशानमण्डले ।
नैर्ऋते विन्यसेत् कूटं बिन्दुचक्रं तु दक्षिणे ॥ २० ॥

पूर्वे पुरन्दरं देवं वरुणं पश्चिमे दि[शि] ।
वह्निकोणे न्यसेद्वह्निं वायुकोणे चलं न्यसेत् ॥ २१ ॥

ऊकारं मध्यदेशे तु पूजयेद् गुरुमण्डलम् ।
गुरुमण्डलमेवोक्तं सामान्यं त्रिषु ओलिषु ॥ २२ ॥

गुरुमण्डलकं भद्रं नवमण्डलमन्त्रितम् ।
तत्र पूजा प्रकर्तव्या यथोक्तं श्रीमते पुरा ॥ २३ ॥

श्रीनाथं पूजयेन्मध्ये पुष्पाञ्जलिभिः पञ्चभिः ।
श्रीकण्ठः शङ्करोऽनन्तस्तस्य बाह्ये विचिन्तयेत् ॥ २४ ॥

श्रीकण्ठश्चोर्ध्वचक्रं तु शङ्करः सद्य उच्यते ।
अनन्तं वाममित्युक्तं सादाख्यं पुरुषस्तथा ॥ २५ ॥

ईशानदेवं घोरं च पञ्चवक्त्रं सदाशिवम् ।
सिद्धान्ते तु मयाख्याताः सिद्धरूपाः कुलान्वये ॥ २६ ॥

प्रथमं घुर्मनामा च श्रीनाथं च द्वितीयकम् ।
तृतीयं कमला व्याप्ति न्योग(?) चनर्थिका[चतुर्थिका]॥ २७ ॥

अव्यक्तं पञ्चमं नाम नादिन्या षट्क उच्यते ।
मन्थानं सप्तमं प्रोक्तं अंशुमदरु[द्रुरु] भैरवम् ॥ २८ ॥

नवमं च मयाख्यं च दशमं जंभलं भवेत् ।
एकादशं कुलाश्रायं द्वादशं नादिभैरवम् ॥ २९ ॥

त्रयोदशं अघोरेशं त्रिपुरेशं चतुर्दशम् ।
अमा पञ्चदशी प्रोक्ता कमला षोडशी स्मृता ॥ ३० ॥

सप्तदशं च श्रीनाथं घुर्मं चाष्टादशं भवेत् ।

श्रीकुब्जिकोवाच

गुर्वाद्यं च श्रुतं देव त्वत्प्रसादेन मे प्रभो ॥ ३१ ॥

क्रमस्य पूजनं नाथ ज्येष्ठं मध्यमकं न्यसन् ।
कथयस्व प्रसादेन येन जानामि निश्चयम् ॥ ३२ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु भद्रे वदिष्यामि क्रमस्य पूजनं यथा ।
सुगोप्यं कथयिष्यामि त्रिशुद्धं क्रमपूजनम् ॥ ३३ ॥

ज्येष्ठं मध्यं कनिष्ठं च त्रिःप्रकारं यथास्थितम् ।
सप्तत्रिनवभेदैश्च कथितं पीठपूजनम् ॥ ३४ ॥

अष्टाविंशच्च प्रथमं सप्तविंशद्द्वितीयकम् ।
षट्त्रिंशं त्रितयं देवि क्रमभेदमुदाहृतम् ॥ ३५ ॥

वामदक्षिण अग्रे च मध्ये चैव प्रपूजयेत् ।
हृत्कण्ठनासाभाले च [षु] पूजयेत् परमेश्वरि ॥ ३६ ॥

ओजापूका क्रमं व्याप्तिः कथितं च सुदुर्लभम् ।
पञ्चकं कथयाम्येष गसपवनमुदाहृतम् ॥ ३७ ॥

चतुष्कं शृणु कल्याणि यथा पूज्या कुलक्रमे ।
तथाहं कथयिष्यामि सबाह्याभ्यन्तरक्रमम् ॥ ३८ ॥

आ ष च मि चतुष्कं तु चत्वारः सिद्धनाथकाः ।
गुदे लिङ्गे तथा नाभौ हृदये च प्रपूजयेत् ॥ ३९ ॥

चतुष्कं पञ्चकं षट्कं चतुष्कं पञ्चकं चतुः ।
षट्प्रकारं मयाख्यातं अष्टाविंशपदक्रमम् ॥ ४० ॥

वृद्धक्रममिदं ख्यातं ज्ञातव्यं क्रमिकैर्नरैः ।
यस्तु पूजयते नित्यं अलिफल्ग्वादिसंयुतम् ॥ ४१ ॥

तस्य ज्ञानं च मोक्षं च ज्ञानज्ञास्यं च शाम्भवम् ।
क्रमैकः स तु विज्ञेयो अन्यथा नामधारकः ॥ ४२ ॥

पुनश्चान्यं प्रवक्ष्यामि क्रमं ज्ञानं च मध्यमम् ।
पञ्च पञ्च तथा पञ्च षट् चत्वारि तथैव च ॥ ४३ ॥

एतत्क्रमं मयाख्यातं गोपितं यत्पुरा मया ।
तदहं कथयिष्यामि सबाह्याभ्यन्तरक्रमम् ॥ ४४ ॥

चतुष्कं तु वरारोहे चतुरस्रे तु पूजयेत् ।
भ्रूहृभाभि[हृन्नाभि]आधारमध्ये चतुष्कं तु शरीरगम् ॥ ४५ ॥

क्रमं षड्विंशकं भद्रे मध्यक्रममुदाहृतम् ।
अन्यत् संशृणु कल्याणि सप्तविंशक्रमं शुभम् ॥ ४६ ॥

येन विज्ञातमात्रेण मुक्ति भुक्ति लमेत् स्फुटम् ।
चतुष्कं पञ्चकं षट्कं चतुष्कं पञ्चकं त्रिकम् ॥ ४७ ॥

षट्प्रकारमिदं भद्रे ज्ञातव्यं कन्यसंक्रमे ।
त्रिकोणं षट्प्रकारश्च त्रिकोणं च त्रिमेखलम् ॥ ४८ ॥

द्वात्रिंशद्दलसंयुक्तं चतुरस्रं ततोपरि ।
एवं क्रमं महादिव्यं षट्पदार्थं प्रपूजयेत् ॥ ४९ ॥

वामे दक्षे तथाग्रे च सृक्कमध्ये चतुर्थकम् ।
पूजयेत् परया भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलार्थिना ॥ ५० ॥

कर्णे नासापुटे देवि शरीरे पूजयेत् प्रिये ।
रत्नानां पञ्चकं भद्रे शृणु त्वं सर्वकामदम् ॥ ५१ ॥

शिरे चैव तु भ्रूमध्ये कण्ठहृन्नाभिमध्यतः ।
षट्कमेव गुदे पूज्यं ज्ञातव्युत्क्रमके नरः ॥ ५२ ॥

षट्कमेतन्मयाख्यातं चतुष्कं कथयाम्यहम् ।
खरत्नमरुतो मेघा चतुष्कं कामदं प्रिये ॥ ५३ ॥

पञ्चकं त्रिकमध्ये तु पूजयेद्धार्मिकैर्बुधैः ।
कर्णौ दृशौ तथा नासा पञ्चकं देहमध्यतः ॥ ५४ ॥

पञ्चकं कथितं भद्रे त्रिकमेतमिवोद्धतः ।
त्रिकं तु पूजयेन्मध्ये जेष्ठा रौद्री क्रमेण तु ॥ ५५ ॥

सप्तविंशक्रमेणैव बाल्यौघं पूजयेत् प्रिये ।
कन्य[नीय]सं तु क्रमे ख्यातं गोपितव्यं प्रयत्नतः ॥ ५६ ॥

अस्योर्ध्वे मातराः पूज्या द्वात्रिंशान्या महाबलाः ।
गन्धपुष्पं तथा दीपं धूपं नैवेद्यसंयुतम् ॥ ५७ ॥

अलि पुष्पं तथा मीनं पिशितं कुण्डगोलकम् ।
पूजयित्वा विधानेन नित्यं नैमित्तिकं प्रिये ॥ ५८ ॥

भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामार्थसाधनम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं आज्ञा तीव्रा प्रवर्तते ॥ ५९ ॥

क्रमत्रयस्य यो वेत्ता क्रियाभेदप्रकाशकः ।
स ज्येष्ठः कुलसंताने स च भैरववत् स्वयम् ।
तस्य पूजा प्रकर्तव्या वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ ६० ॥

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं देव् मया सर्वं क्रमभेदविभेदिषु ।
त्वत्प्रसादेन मे ज्ञातं क्रमाम्नायं सुदुर्ल्लभम् ॥ ६१ ॥

चतुःषष्टिक्रमं दिव्यं न मे ज्ञातमहं[मिदं] प्रभो ।
कथयस्व प्रसादेन यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ॥ ६२ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु कुब्जि महाभागे साधु त्वं वीरवन्दिते ।
गोपितं सर्वतन्त्रेषु दुर्लभं यत्सुरैरपि ॥ ६३ ॥

त्वया पूर्वं तपस्तप्तं वर्षकोटिशतैरपि ।
तेन तुष्टो ह्यहं भद्रे कथयामि पुनः पुनः ॥ ६४ ॥

दिव्यं चैव क्रमाम्नायं दिव्यादिव्यनिषेवितम् ।
तमहं कथयिष्यामि तव भक्त्या महातपे ॥ ६५ ॥

त्रिकोणं षट्प्रकारं च अष्टारं पङ्कजं प्रिये ।
चतुरस्रं ततोर्द्धे[र्ध्वे] तु पुनरेव विभज्यते ॥ ६६ ॥

मेखलात्रयसंयुक्तं चतुःषष्टिदलान्वितम् ।
एकं क्रमं महादिव्यं दिव्यादिव्यैर्निषेवितम् ॥ ६७ ॥

तमहं कथयिष्यामि शृणु त्वं वीरमातरे ।
क्षोभिन्याकर्षणी चैव मोहनी जंभनी[जृम्भणी] तथा ॥ ६८ ॥

स्तम्भनी च वरारोहे क्षुद्रा तत्सादनी तथा ।
सर्वा जनपदा युक्ता नामादौ कूटसंयुता ॥ ६९ ॥

दूतीषट्कं प्रपूज्येत पादौ पूज्य ततो यजेत् ।
वज्रकुब्जि ततो मध्ये पूजयेत् षट्कसंयुतम् ॥ ७० ॥

चतुःषष्टिमहादेव्यः पूजयेत् क्रममध्यतः ।
पूजनात् सर्वमाप्नोति भुक्तिमुक्तिफलं लभेत् ॥ ७१ ॥

अणिमादिगुणा[दीं]स्तु शाम्भवीयपदं लभेत् ।
तुष्टा तु मातरस्तस्य कामिकं च फलं लभेत् ॥ ७२ ॥

चतुःषष्टिः क्रमाद्दिव्यं सुगोप्यं प्रकटीकृतम् ।
न वदेद्यस्य कस्यापि अभक्ते चुम्बके न च ॥ ७३ ॥

दर्पिष्ठे गुरुहीने च तवो[वा]र्चनमयीछते[मनिच्छते]।
परशिष्ये न दातव्यं नास्तिके च विशेषतः ॥ ७४ ॥

मुद्रितं सर्वतन्त्रेषु प्रकाशाच्च मतं यथा ।

श्रीकुब्जिकोवाच

चतुःषष्टिक्रमं दिव्यं त्वत्प्रसादावधारितम् ॥ ७५ ॥

वज्रकुब्जि मनोज्ञां तां सिद्धकुब्जि तथा प्रभो ।
कथयस्व प्रसादेन जानामि निश्चयं यथा ॥ ७६ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु दुर्गे महाभागे साधु त्वं वीरमातरे ।
कथयामि महाभागे सुगोप्यं प्रकटामि ते ॥ ७७ ॥

वज्रिणी दृष्टिभेदेन व्यक्तिश्च सिद्धकुब्जिनी ।
वज्रगह्वरनिष्क्रान्ता महागुप्ता सुरक्षिता ॥ ७८ ॥

चतुःषष्टि स्मृता वर्णा उद्धरामि सलक्षणम् ।
वज्रगह्वरसंभूताः सर्वकामफलप्रदाः ॥ ७९ ॥

सुक्षमे भूप्रदेशे तु निम्नोन्तर[न्नत]विवर्जिते ।
पुष्पप्रकरशोभाढ्ये सुपू[धू]पामोदवासिते ॥ ८० ॥

स्वस्तिकोपरि संस्थाप्य कलशं द्रव्यपूरितम् ।
हैमं राजतं ताम्रं वा अभावान्मृन्मयं न्यसेत् ॥ ८१ ॥

कम्बुग्रीवं सुशोभाढ्यं पर्णवेशं सुशोभितम् ।
श्रीखण्डचर्चितं दिव्यं पुष्पमालोपशोभितम् ॥ ८२ ॥

रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य दीपाक्षतसमन्वितम् ।
वलित्रयं समुद्धृत्य योगिनी बटुकस्य च ॥ ८३ ॥

क्षेत्रपालस्य देवेशि वलिं बाह्ये नियोजयेत् ।
मीनाद्यपिशितैर्युक्तैरासवेन प्रपूरितम् ॥ ८४ ॥

संस्मर्य च क्रमं दिव्यं पूजयेद् द्रव्यसंयुतम् ।
गुरुं गुरुतरं चैव कुमारं च कुमारिकाः ॥ ८५ ॥

अवतार्य क्रमं दिव्यं चतुःषष्टे[ष्टिं] प्रपूजयेत् ।
दीपकान् बोधयेद्दिव्यान् चतुःषष्टिक्रमेण तु ॥ ८६ ॥

नीराज्य च घृतेनापि पूरितं सिद्धिहेतवे ।
अनेन विषये तत्र सेवकस्य क्रमाग्रतः ॥ ८७ ॥

प्रत्यादेशो भवेत् स्वप्ने शिष्याय गुरवेऽपि वा ।
यद्यादेशो न जायेत पुनः पूजां समारभेत् ॥ ८८ ॥

एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं सप्तमेव वा ।
पूजां प्रकारयेद्दिव्यां सुपुष्पामोदवासिताम् ॥ ८९ ॥

प्रत्यादेशो भवेद्देवि रात्रौ वा शुभदर्शनम् ।
ततोद्धरेत्परादेवीं वज्रकुब्जाः[ब्जिं]सुसिद्धिदा[दाम्]।। ९० ॥

सिद्धकुब्जिं ततो भद्रे क्षिप्रसिद्धिफलप्रदाम् ।
ततोद्धरेत् प्रयत्नेन वज्रगह्वरमध्यतः ॥ ९१ ॥

चन्द्राग्निभूतशैलाद्येनाम्भसो वह्निरेव च ।
शिलाश्च ऋषयो भूता रामाश्चन्द्रं पुनः प्रिये ॥ ९२ ॥

एकोनपञ्चाशत्कोष्ठाः कथिता वज्रगह्वरे ।
वर्णास्तु विन्यसेत्तत्र यथाहं कथयामि ते ॥ ९३ ॥

अंकारं पूर्वतो न्यस्य ऋकारं वारुणे तथा ।
अकारादिस्वरा ये तु न्यसेत् कोणक्रमेण तु ॥ ९४ ॥

उभौ शृङ्गेषु दातव्यं पूर्वपश्चिमतः प्रिये ।
अकाराधः ककारं हि ककाराधः समालिखेत् ॥ ९५ ॥

खकारादौ समालिख्य ककारान्ते ङमालिखेत् ।
खकाराधो गमालिख्य स्वरादौ षमालिखेत् ॥ ९६ ॥

टकारादौ ठकारं हि गकारान्ते डमालिखेत् ।
डान्ते ढकारमालिख्य गकारादौ घमालिखेत ॥ ९७ ॥

तकारादौ णमालिख्य धान्ते दकारमेव च ।
दकारान्ते धमालिख्य धान्ते नकारमेव च ॥ ९८ ॥

घाघो[दौ] हकारमालिख्य हादौनुस्वारमेव च ।
हान्ते विसर्गमालिख्य हकाराधो डमालिखेत् ॥ ९९ ॥

डादौ वकारमालिख्य चकारादौ फमालिखेत् ।
फकारादौ पकारं हि डान्ते भकारमालिखेत् ॥१००॥

मान्ते मकारं देवेशि मान्ते पकारमेव च।
डकाराधश्चकारादौ रकारान्ते समालिखेत् ॥१०१॥

लकारादौ रकारं हि चान्ते वकारमेव च।
वकारान्ते सकारं हि वकाराधो छमालिखेत् ॥१०२॥

छकारादौ थमालिख्य ककारान्ते समालिखेत्।
ककाराधो जमालिख्य सिद्धं प्रस्तारमुत्तमम् ॥१०३॥

वजगह्वरमाख्यातं देवानामपि दुर्लभम्।
ऋ उ मध्यगतं गृह्य हकाराद्येन भूषितम् ॥१०४॥

ल व मध्ये समादाय सकारान्तेन भूषयेत्।
त फ मध्ये गतोद्धृत्य च स मध्ये तथा पुनः ॥१०५॥

ऐ ऌ मध्यगतं वर्णं ल औ मध्यासनस्थितम्।
तकाराद्यं समादाय ऌकारान्तेन भूषयेत् ॥१०६॥

आ उ मध्ये समादाय अ उ मध्यासनं कृतम्।
ऊर्द्धे[र्ध्वे] वर्णं समादाय रान्ते व तु विभूषयेत् ।'१०७॥

ऋ र मध्यगतं वर्णम् ऌ ऐ मध्यासनस्थितम्।
आ इ मध्येन संयुक्तं मकारादौ पुनः प्रिये ॥१०८॥

टकारोर्द्धे[र्ध्वे]न संयुक्तं धकारान्ते ततोद्धरेत्।
पुनर्लान्तसमायुक्तम् आ उ मध्ये ततोद्धरेत् ॥१०९॥

आ इ मध्ये स्वराक्रान्तं वर्णं द्वादशमुद्धृतम्।
द्यु[घ] ऊ मध्ये समादाय ऌ च मध्ये कृतासनम् ॥११०॥

प र मध्यासनारूढम् लकाराद्यकृतासनम्।
ढकारान्तेन संयुक्तम् अ ख मध्ये ततः प्रिये ॥१११॥

मकारान्तेन संरूढं ककारान्तेन भूषितम्।
भ य मध्ये ततोद्धृत्य ककाराद्येन संयुतम् ॥११२॥

अ ख मध्ये ततोद्धृत्य केवलं वरवर्णिनि ! ।
ओ फ मध्ये समादाय ककारान्तेन भूषयेत् ॥११३॥

क उ मध्यं समादाय फ ओ मध्योर्द्ध[र्ध्व] संस्थितम् ।
थ द मध्ये समुद्धृत्य षकारादौ विभूषयेत् ॥११४॥

तकारादौ समादाय रान्तस्वरविभूषितम् ।
ककारोर्द्धं[र्ध्वं] समादाय केवलं वरवर्णिनि ॥११५॥

ब्रह्मस्थानगतं गृह्य ल औ मध्यकृतासनम् ।
ढान्तस्वरसमायुक्तं हादौ ऊर्ध्वेन भूषितम् ॥११६॥

त व मध्ये समादाय सकारान्तेन भूषयेत् ।
अ ख मध्ये समादाय ककारान्तेन भूषयेत् ॥११७॥

धकारान्ते समादाय ह ग मध्ये ततोद्धरेत् ।
ककारान्तेन संयुक्तं नकारादौ समुद्धरेत् ॥११८॥

द्य[घ] ख मध्ये समुद्धृत्य केवलं वीरनायिके ।
इत्य[श]मध्ये समादाय ध घ मध्ये ततः पुनः ॥११९॥

ल ओ मध्यासनारूढं ककारान्तेन भूषयेत् ।
ह व मध्ये वरारोहे च स मध्ये ततोद्धरेत् ॥१२०॥

ब्रह्मस्थानगतं गृह्य ल ओ मध्यासनस्थितम् ।
ढकारान्तं हकारादौ भूषितं कुरु पार्वति ॥१२१॥

आ उ मध्ये समुद्धृत्य र व मध्यासने स्थितम् ।
ढकारान्तं हकारादौ भूषयेद् वरवर्णिनि ॥१२२॥

ब्रह्मस्थाने समुद्धृत्य ल ओ मध्ये कृतासनम् ।
ककारान्ते हकारादौ भूषितं कुरु पार्वति ॥१२३॥

ल म मध्यं समादाय ण श मध्यकृतासनम् ।
लकारानां[न्तं] हकारादौ भूषितं वीरनायिके ॥१२४॥

ल औ मध्ये कृतं तस्य आसनस्थं नियोजयेत् ।
अ ख मध्ये ततोद्धृत्य सकारान्तेन भूषितम् ॥१२५॥

भ (१) मध्ये ततोद्धृत्य केवलं च समुद्धरेत् ।
ल फ मध्ये ततो वर्णम् ऐ ल मध्येषु चासनम् ॥१२६॥

आ इ मध्यस्वरा अन्तं ब्रह्मस्थानगतं पुनः ।
ककाराह्व[न्ते]न संयुक्तं आ उ मध्ये ततोद्धरेत् ॥१२७॥

आ उ मध्यासनं तस्य मन्दिरश्च ततः प्रिये ।
ऐ उ मध्येन चाक्रान्तं कर्तव्यं वरवर्णिनि ॥१२८॥

ब्रह्मस्थानं ततोद्धृत्य भ ल मध्यासनस्थितम् ।
प त मध्यासनं तस्य ल ओ मध्यकृतासनम् ॥१२९॥

सान्तं दादिसमायुक्तं ह स रन्ध्रं समुद्धरेत् ।
भ ष रन्ध्रगतं गृह्य र ऊर्द्धे[र्ध्वे] तस्य चासनम् ॥१३०॥

त ऊर्ध्वे च पुनर्देयं आसनं तस्य दापयेत् ।
ढान्तं दादिसमायुक्तम् अ ख मध्ये पुनः प्रिये ॥१३१॥

ककारान्तेन संयुक्तं ण थ मध्यगतः पुनः ।
णान्तं स्वरसमाक्रान्तं ल ओ मध्यं समुद्धरेत् ॥१३२॥

ढ ऊर्ध्वे च स्वराक्रान्तं च स मध्ये तु केवलम् ।
तकारादौ समुद्धृता आ ई मध्येन भूषितम् ॥१३३॥

ख घ[घ] मध्ये समादाय जकारादौ ततः पुनः ।
हादिस्वरसमाक्रान्तम् उ म मध्ये तु केवलम् ॥१३४॥

ल म मध्यं समुद्धृत्य रकारादौ विभूषयेत् ।
हान्तस्वरं पुनस्तस्य ल य मध्ये ततोद्धरेत् ॥१३५॥

षकारादौ समादाय भूषयेत् परमाक्षरम् ।
ए व मध्ये समुद्धृत्य ल ओ मध्य कृतासनम् ॥१३६॥

टान्ते हादि समाक्रान्तं धकारान्ते तु केवलम् ।
एतत्ते कथितं भद्रे रहस्यं तव सुव्रते ॥१३७॥

चतुःषष्टिस्तथा वर्णाः सिद्धिवज्री उदाहृता ।
न मया कस्यचित् ख्यातं सत्यं सत्यं कुजाम्बिके ॥१३८॥

षड्दूती च[भिः] समायुक्तं[क्ता] वज्रकुब्जिः कलौ युगे ।
क्षुभ्यते सकलं विश्वं बालवृद्धयुवानपि[त्मकम्] ॥१३९॥

राजानं[वा] राजपुत्रो वा राजमन्त्रिपुरोहितम्[तौ] ।
सर्वे तस्यैव वशगा वज्रकुब्जिप्रभावतः ॥१४०॥

ध्यात्वा च परमां देवीं वज्रहस्तां महाबलाम् ।
वरदाभयसंयुक्तां पाशहस्तोद्यतां प्रिये ॥१४१॥

रक्ताम्बरधरां देवीमुदयादित्यसंनिभाम् ।
सर्वलक्षणसंपूर्णां सर्वाभरणमण्डिताम् ॥१४२॥

वज्रपद्मासनासीनां वर्णहारावलम्बिनीम् ।
मुकुटेन विचित्रेण त्रिनेत्रां कुण्डलान्विताम् ॥१४३॥

उदयादित्यवर्णाभामीषत्प्रहसिताननाम् ।
एवं ध्यात्वा महादेवीं वज्रकुब्जी प्रसिद्ध्यति[प्रसीदति]॥१४४॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाथ सुन्दरि ।
जपेद् ध्यायेत् सदाकालं तस्य क्षुभ्यति भूतलम् ॥१४५॥

वाचासिद्धिः पुरःक्षोभमणिमादिगुणाष्टकम् ।
भूत्यागं च कवित्वं च विनाशं परमेश्वरी[रि] ॥१४६॥

लावादिसकटे स्तम्भे बहुलं पुष्पकर्षणम् ।
स्फोटनं शैलवृक्षाणां प्रतिमाजल्पनं प्रिये ॥१४७॥

जल्पावेषं कुमारीश्च द्रुमाकृष्टिं जलप्लवम् ।
कुरुते विविधाश्चर्यं यस्य कुब्जी हृदि स्थितम् [ता]॥१४८॥

एतत्ते कथितं सर्वं तव स्नेहात् प्रकाशितम् ।
किमन्यत् पृच्छसे देवि कथयामि तवाधुना ॥१४९॥

श्रीदेव्युवाच

पीठजाः क्षेत्रजाश्चैव योगजाः सहजापि वा ।
कुलजा गर्भजा ये च मन्त्रजाश्चान्त्यजास्तथा ॥१५०॥

दिव्यभाषोदितां वाचं कथं जानन्ति साधकाः ।
तन्मे कथय देवेश दिव्यज्ञानोद्भवा शिवाः ॥१५१॥

दिव्यभाषोदिताः सर्वे कौलभाषोदिताः प्रभो ।

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महाभागे कथयामि तव प्रिये ॥१५२॥

पीठे क्षेत्रे च संदोहे एकवृक्षे चतुःपथे ।
लक्ष्मीवने महारम्ये एकलिङ्गे तु सङ्गमे ॥१५३॥

गिरौ मनोरमे देशे तत्स्थानमुपलेपयेत् ।
चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां बाह्ये निःक्रम्य मन्त्रिणः[मन्त्रवित्] ॥१५४॥

तत्र गत्वा निशामध्ये कृत्वा मण्डलकं भुवि ।
अप्सुना[अपोभिः]प्रोक्षयेद्भूमिं गोमयेनाथ सुव्रते ॥१५५॥

तद्दिशारभ्य तच्चक्रं षष्ठायोज्ये ततोर्द्ध[ध्र्व]तः ।
पीतकर्णिकसंयुक्तमष्टारं पञ्चकं लिखेत् ॥१५६॥

शृङ्गाटं मध्यतस्तस्य सितकुन्देन्दुसन्निभम् ।
मध्ये रक्तं लिखेद् विन्दुं चतुर्वर्णदलैर्युतम् ॥१५७॥

चतुरस्रं सुतेजाढ्यं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
एवं मण्डलमालिख्य पीठमादौ प्रपूजयेत ॥१५८॥

पीठजान् क्षेत्रजांश्चैव द्वारजान् योनिजांस्तथा ।
सिद्धयोगीश्वरीमध्ये नाभिनामाङ्कितान् यजेत् ॥१५९॥

पुष्पगन्धोपहारैश्च बलिवल्युपचारकैः ।
यब्दा[ष्ट्वा]चैव शतं ज[प्त्वा]हुत्वा वै फल्गुसंशुभे ॥१६०॥

कृत्वा रावं बलिं क्षिप्त्वा दिशाभिर्दशभिः क्रमात् ।
तद्ध्यानाविष्टचित्तस्तु तिष्ठेत्तत्र मुहूर्तकम् ॥१६१॥

शृणोति यद्दिशा शब्दं क्षिपेत्तस्यां बलिं बहु ।
यद्यागच्छेद् ददेदर्घं प्रीणयेदलिफल्गुपैः ॥१६२॥

सुप्रीताय वदेत् कार्यं कर्तव्यं तत्तथैव च ।
आतिथ्येन विना तत्र स्वयं वै प्राश्य तच्चरुम् ॥१६३॥

एकाकी वा सशक्तीकः प्राशयेत्तत्र संस्थितः ।
गृहीत्वा सोपयुक्तं तु कारयेद्वा गृहागतः ॥१६४॥

जपध्यानात्तु बन्धेन तिष्ठत्यसुरसंस्पृशन् ।
तद्दिनारभ्य तत्स्थानान्यावसन्ति कुलाङ्गनाः ॥१६५॥

सुप्रसन्नेन रूपेण सलज्जाः प्रावृतशिराः ।
निरीक्षयन्ति तं वीरं तत्रागत्य मिषान्तरात् ॥१६६॥

तासां किञ्चिन्न वक्तव्यं छोम्माकैः छोम्मका वदेत् ।
एवं प्रतिदिनं कुर्यान्मासैकात् संगमं लभेत् ॥१६७॥

तत्क्षणात्तत्समो जायेद् गुणैश्वर्यसमन्वितः ।
ब्रह्मामो[ण्डो]दरचारी च वाचा वै सर्वकर्मकृत् ॥१६८॥

सुगुप्ते च गुहावासे विधिनानेन संयमी ।
देहल्याङ्गणके पूज्य मध्यरात्रौ बलिं क्षिपेत् ॥१६९॥

लभते प्रियमेलापं षण्मासात् स्वगृहे स्थितम् ।
अणिमादिगुणोपेतं तत्समानं स मोदति ॥१७०॥

अतः प्रकीर्तयेत्तासां सङ्केतोक्ति परस्परम् ।
वर्णछोम्मकलालापैः मुद्राभेदाङ्गचेष्टितैः ॥१७१॥

व्यवहारात्तु संवादं कुलमेलापकोचितम् ।
नरो वा यदि वा नारी ज्ञात्वा चेष्टन्ति तत्समम् ॥१७२॥

ना नरः स्त्री भवेन्नारी सा माता सौ पितुर्वदेत् ।
पिण्डो भर्तारमाः चक्रं तथार्थं तु स्वश्वरकम् ॥१७३॥

घूघू ज्येष्ठः समुद्दिष्टो घार्घी दैवतमुच्यते ।
यो भायो[र्या] सालिका रामा जीति भग्नीषु भाषयेत् ॥१७४॥

वीं सखी नाष्ट्रिका दूती पताका दुहितां वदेत् ।
भ्रातरं भ्रातृ वक्तव्यं भ्राजं ब्रूयात्तु भ्रातृजम् ॥१७५॥

भाग्नेयो जीजशब्देन छात्रं पुत्रं विनिर्दिशेत् ।
छात्रजं नप्तृणं ब्रूयाद्दौहित्रं तु पिनाकिनम् ॥१७६॥

जेष्ठं महल्लकं वाच्यं छपालं तु कनीयसम् ।
रण्डा च योगिनी वेश्या युगा भर्त्तरि संयुता ॥१७७॥

रोहा रजस्वला प्रोक्ता सुतरूरपि कीर्तयेत् ।
रोहहं रितुजं विद्धि रेत्रं चन्द्रं विनिर्दिशेत् ॥१७८॥

मिलितं कुण्डगोलं तु योनिस्थं वापि तं वदेत् ।
लौलं गर्भस्थितं ब्रूयात् पतितं खसितं वदेत् ॥१७९॥

तत्स्थितं वर्तमानं तु पूर्णं निष्पन्नमुच्यते ।
त्वक्समृद्धं सृतं रक्तं कल्कं मांसमुदाहरेत् ॥१८०॥

म्लू मेदं वी भवेदस्थि किश्व केशं प्रकीर्तितम् ।
स्थ मज्जा ब्लै वदेद् बीजं संपन्नं भ्रातरं वदेत् ॥१८१॥

जातं समागतं ब्रूयात प्रत्यग्रं बालकं वदेत् ।
कुमारं च किलं वाच्यं युवानं तीव्र उच्यते ॥१८२॥

निश्चापं वृद्धकं ब्रूयात् चातुर्वर्ण्यं तु याज्ञिकम् ।
श्रेष्ठं च श्मल्लकं ब्रूयात् प्राकृतं हीनलक्षणम् ॥१८३॥

अजाग्निकं प्रवक्तव्यं रपशुश्चैवेतरेतरम् ।
कंसं स्रुकं वचा केसा नेत्रौ चन्द्रिककं वदेत् ॥१८४॥

घ्राणं छिद्रं हड़ा गल्ला कर्णौ दिग्वतरौ वदेत् ।
द्री मुखं फ्रू वदेज्जिह्वां खादका दशनाः स्मृताः ॥१८५॥

ग्री गलं कं स्वीति बाहू हस्तौ मित्रौ प्रभाषयेत् ।
आह्लादं हृदयं वाच्यं कालेजं कन्दमुच्यते ॥१८६॥

कुसुमान्तर्गतं वृष्टं पृष्ठं दूरं विनिर्दिशेत् ।
स्तनौ कुचौ प्रवक्तव्यौ स्कन्धरौ कञ्चुकौ वदेत् ॥१८७॥

कक्षग्राहं कुच्छ कुक्षि जठरं घृणमब्रवीत् ।
नाति नालं फिक स्फिजौ गुह्यं प्लुजयेन्द्रं प्रभाषयेत् ॥१८८॥

वृषणौ नोलकौ वाच्यौ द्रवं सूत्रं प्रकीर्तितम् ।
अपानं ही प्रवक्तव्यं गू विष्ठामभिभाषयेत् ॥१८९॥

पिघा जङ्घा कटी जानुः पादौ भवति भूतकौ ।
संख्यं समयिनं ब्रूयाद् वीरं वाच्यं तु साधके ॥१९०॥

आचार्यं चागलिं ब्रूयात् श्रीगुरुं परमेश्वरम् ।
अलंघ्या तापसी वाच्या योगिनीं भगिनीं वदेत् ॥१९१॥

धराधरं तु राजानं दारिका तु कुमारिका ।
व[अ]लंबुकं च कापालं खट्वाङ्गं राजसं वदेत् ॥१९२॥

कुन्तकी क्षुरिका वाच्या मुद्रिकं तु कपालिनम् ।
लोहं पाशुपते लिङ्गी पात्री कालामुखं वदेत् ॥१९३॥

निचूलं भगवं वाच्यं स्नातकं तुंबकं वदेत् ।
ब्राह्मणं भाषयेदग्रं काषाय[यं] वन्दकं वदेत् ॥१९४॥

मलिनं क्षपणं वाच्यं तुलाकूतं वलिं[णिग्] वदेत् ।
खेयहा स्वर्णकारं तु सेवकं हतजन्मिनम् ॥१९५॥

कल्पयं ध्वजपीठं तु कौलिकं नतुकं वदेत् ।
कारुकं शिल्पिनं वाच्यं प्राकृतं तु कुरुष्मनम् ॥१९६॥

अडजगंत लोकं तु चौरं ब्रूयात्तु मूषकम् ।
असारं दुर्बलं वाच्यं सुसारं पृष्ठ[पुष्ट]देहकम् ॥१९७॥

वृषं क्ष्यामक्षमा गावो महिषं शूलमुच्यते ।
छाग[गं]वस्तं हुण्ड[डं]मेषं अश्व[श्वं]वेगं गजा घटम् ॥१९८॥

वर्कशोष्ट्रे खुरं रोटं केसरं वेटरोटकम् ।
विडालं मद्रकं वाच्यं हूली भृङ्गाल उच्यते ॥१९९॥

पक्षिणं चंबुकं वाच्यं मारुषं पटुरुच्यते ।
थजी देवकुलं ब्रूयाद् वाच्यं रमणकं मठम् ॥२००॥

गृहं वासं प्रवक्तव्यं हरिः पन्थामुदाहरेत् ।
वृक्षं विश्रामकं ब्रूयात्तटिनी तु नदीं वदेत् ॥२०१॥

तडागं धरलं वाच्यं पर्वतं नगमुच्यते ।
निपातं[नं] खलकं ब्रूयाद् भीमं श्मशानमुच्यते ॥२०२॥

डामरं चिवनं वाच्यं रौरवं तु महाहवम् ।
प्रीतिः क्षेत्रं ततिः पीठं संदोहं वीरमुच्यते ॥२०३॥

आवेशं तु वदेद् द्वारं भृङ्गाटं कर्कटोच्यते ।
संतोषं नदनोघाटं (?) संभोगं तु चतुष्पथम् ॥२०४॥

कोषावासं निधिस्थानं बलिद्वारं तु कामिकम् ।
यज्ञवाटं वटच्छाया कौवेरं वटपादपम् ॥२०५॥

प्राकारं काष्ठकं वाच्यं प्रतोली निर्गमोच्यते ।
प्रणालकं प्रवाहं तु कपाटं तु वि[पि]धानकम् ॥२०६॥

मदत्रं तर्पणं वाच्यं सुरां प्रमुदितां वदेत् ।
सील्यं मांसं तु वक्तव्यं झषा मीनाः प्रकीर्तिताः ॥२०७॥

पक्वं मांसं तु सालीनं सुसालीनं सुसंस्कृतम् ।
पक्वा मीनाश्च झोटानि सुझोटा संस्कृतानि तु ॥२०८॥
ओदनं व्यञ्जनं वाच्यं भक्ष्यं भोज्यमुदाहृतम् ।
तीक्ष्णं सुदीपनं ब्रूयाद् रोचकं भक्षणं वदेत् ॥२०९॥
गोल्यं मधुकरं ब्रूयाच्चमालं कटुकं तथा ।
सामानिकं विभक्तं तु हीनं क्लीबं प्रभाषयेत् ॥२१०॥
अधिकं पुष्करं[लं] ब्रूयात् सुस्वादं च रसोत्तरम् ।
क्लिन्नं कुषितमुद्दिष्टं प्रष्टं दीप्तं प्रभाषते ॥२११॥
हृदयं सुगन्धकं ब्रूयुः हीही ब्रूयाद्विरूपकम् ।
गोलकं मद्यभाण्डं तु सुराभाण्डं तु किञ्जरम् ॥२१२॥
भूषणं पुष्पमाल्यं तु धूपं देवान्नमुच्यते ।
सारं नैवेद्यकं ब्रूयुः शिरं यागगृहं वदेत् ॥२१३॥
पूजा संभारमुद्दिष्टं पूर्णनासं तृतं वदेत् ।
मृतं विलीनकं ब्रूयात् क्षारितं रणहारितम् ॥२१४॥
शास्त्रं कीर्तिः प्रवक्तव्यं लघं शस्त्रहतं वदेत् ।
शूरं घूरं प्रवक्तव्यं भीतमन्नं प्रभाव्यषेत्[षयेत्] ॥२१५॥
गतायुषं हतं वाच्यं हा वदेत् प्रबलायुषम् ।
निपातितं भवेत् सिद्धं श्रूशब्देन मृतालयम् ॥२१६॥
पिशाचं भूषणं वाच्यं क्रूरं वाच्यं निशाचरम् ।
अनुरक्तं वदेत् क्षुग्रं घूमन्तं परिकीर्तयेत् ॥२१७॥
अजी तु भाषयेत् प्रीतिं मनुजा विरतिं वदेत् ।
संगतं मिलितं भाष्यं नमितं तद्विसंगतम् ॥२१८॥
शोभनं नंदनं ब्रूयात् समासन् गोन्निलो वदेत् ।
नष्टं क्षिप्तं हृतं नीतं त्रीस्तमावेदितं वदेत् ॥२१९॥

हृष्टं द्रव्यं प्रवक्तव्यं लघ्वमब्रूयुरज्वरा ।
चूषितं चुंबितं वाच्यं पीतं वन्दितमब्रवीत् ॥२२०॥

समाप्तं भक्षितं ब्रूयाच्छर्दितं तु विसर्जितम् ।
जीर्णं विगतणं ब्रूयादजीर्णं स्थिरमुच्यते ॥२२१॥

रात्री छादनिका वाच्या चारं मध्यनिशिं वदेत् ।
प्रभातं सुषिरं वाच्यं जातेमस्तमनं वदेत् ॥२२२॥

मध्याह्नं प्राप्तसमयं दण्डकं प्रहरं वदेत् ।
गोलं गोलवटं शौचं धातुजं कार्मुजं पट्टम् ॥२२३॥

नारं सिद्धचव्य [?] ···सप्तजन्मावधिः क्रमात् ।
सदा शुद्धं क्षमादीनां चरुमेलापकोचितम् ॥२२४॥

संमतं प्राप्तसमयं भ्रमरं च तथेतरम् ।
रिपुं गुणहरं ब्रूयाद् मित्रं हितकरं वदेत् ॥२२५॥

पतितं गुरु सप्तं तु कलभष्टं तु वाचकम् ।
तत्संगिनं विनष्टं तु तामसं क्रूरकर्मिणम् ॥२२६॥

भ्रष्टाचारं प्रवक्तव्यं कायव्रतोपजीवनम् ।
हीनाचाराः पशुः सर्वे वक्तव्याः कुलशासने ॥२२७॥

इति संक्षेपतो दृष्ट्वा विस्तरं तु पुरागमे ।
ज्ञातव्या तद्विदैर्भाषा मुद्राभेदमतोच्यते ॥२२८॥

एकाङ्गुल्या शिरं स्पृश्य आगतं तु ततो वदेत् ।
द्विभिः[द्वाभ्यां] सुखागतं तद्वत् क्षमाङ्गुष्ठनिपीडने ॥२२९॥

स्तनौ वा गृह्य बाहुभ्यां सुक्षेमं तु ततो वदेत् ।
हुंकारोच्चार्य वामाङ्गे तर्जन्या योज्य वन्दनम् ॥२३०॥

शिरः स्पृष्ट्वा त्वरामाभ्यां हा स्मरेत् प्रतिवन्दने ।
वामांघ्रितलकृद्धस्तं कुत्राणन्तेति पृच्छति ॥२३१॥

भालं स्पृष्ट्वा दिशां वीक्ष्य तदर्थप्रतिपादने ।
पृष्टिना दर्शनाद् ब्रूते यामो वीसर्जयस्वमी ॥२३२॥

भालं दर्श[र्श्य] हनुं चाल्य वज्रस्वं वं भवेद्वचः ।
वक्त्रस्था लालयेद्या तु चञ्चलामृतलोलुपा ॥२३३॥

हौंजुं[जूं]सः पुटितं हाणं तस्यां हृत्संस्मरेद्व[द्व्र]ती ।
लालाललनयोगेन चिन्तयेदमृतप्लुतिम् ॥२३४॥

तेन प्रीता तु सा देवी हृष्टा भवति साधके ।
उदरं ताडयेद्या तु भोजनं सा समीहते ॥२३५॥

ललाटं स्पृशते जङ्घां खिन्ना विश्राममिच्छति ।
अङ्गुल्या स्पृश्य वामोरुं कुरुष्ठे[ष्वे]ति वचोऽब्रवीत् ॥२३६॥

जिह्वां च दर्शयेद्या तु भोजनं सा समीहते ।
हस्तौ संपुटकृन्मन्त्री करोम्येवं विनिर्दिशेत् ॥२३७॥

केशान्विकिरते या तु दरिद्रो[द्रा]स्मीति चाब्रवीत् ।
हंसः करेण तत्सृष्टा[स्पृष्ट्वा]वीतस्तस्यास्तु संश्यते[स्पृश्यते]॥२३८॥

गुह्यकं दूती कामार्ता मन्त्री लिङ्गं तु संस्पृशेत् ।
मैथुनं प्रार्थयेद्या सा लिङ्गकमिति दर्शनात् ॥२३९॥

ईषत्कटाक्षं कुर्वन्ति[न्ती] कुरुष्वेवं तु साब्रवीत् ।
पार्श्वयोः स्पर्शनाद् ब्रूते सहैव शयनं कुरु ॥२४०॥

पादाङ्गुष्ठेन वा भूमिं समुल्लिख्य त्वधोमुखी ।
प्रीतिश्चादरतोऽस्माकं गुरुवर्णं स रक्षति ॥२४१॥

दिशां वीक्ष्य ब्रवीत्येवं सूचयामि सुसंकटम् ।
वदेद्विमोचयाङ्गुल्यां वामहस्तस्य मोक्षणे ॥२४२॥

स्तनान्तं स्पृशते या तु पुत्रस्त्वं मनसाऽब्रवीत् ।
बाह्वोः संस्पृशते या तु भ्राता मे त्वं तु साधकः ॥२४३॥

नितम्बं स्पृशते या तु मित्रस्त्वं मामकः सुखी ।
मूर्ध्ना संस्पृशते या तु पिता त्वमिति साब्रवीत् ॥२४४॥

हृदयं मर्दयेद्या तु कलहं तु समीहते ।
ओष्ठं संदर्शयेत्तस्याः प्रतिमुद्रा विधीयते ॥२४५॥

नासां विमोटयेद् दृष्ट्वा मंत्री ग्रीवां तु संस्पृशेत् ।
हा हेत्यष्टौ समुच्चार्य सा च तुष्टिं समानयेत् ॥२४६॥

हस्ताभ्यां वा स्पृशेद् ग्रीवां दर्शयेदुदकप्लुतिम् ।
मुष्टिना दक्षहस्तेन फट्कृत्याग्निभयं भवेत् ॥२४७॥

ललाटं साधकेन्द्रेण स्प्रष्टव्यं हंसमुच्चरेत् ।
बाह्वोः संमर्दयेद्या तु दुर्बलाऽस्मीति साब्रवीत् ॥२४८॥

उक्तसप्ताक्षरोच्चारात् पूर्ववत्साभिषिञ्चयेत् ।
भ्रुकुटी संदर्शयेद्या तु लुप्ताचारोऽसि साब्रवीत् ॥२४९॥

सदर्श्य संपुटौ हस्तौ स्वेष्टा चास्ति समानयेत् ।
वामाङ्गं स्पृशते या तु साचारोऽसि महात्मने ॥२५०॥

तद्वत् सप्ताक्षरं स्मृत्वा मंत्री मस्तकं संस्पृशेत् ।
पादाङ्गुष्ठेन सव्येन यावद्भूमिं विलेखयेत् ॥२५१॥

अर्थनाशं समाख्याति जप्तविद्यः प्रवञ्चते ।
वामाङ्घ्रिपार्ष्णिघातेन या विहस्य हनेत्क्षितिम् ॥२५२॥

वाञ्छितार्थं समाख्याति शत्रुनाशं यशोदयम् ।
वन्दनं तेन कर्तव्यं हृच्छिरः पाणिना स्पृशेत् ॥२५३॥

तर्जन्यां[नीं] या हनुर्देशे कृत्वा चालयते शिरम् ।
विलोमं सा समाख्याता गुरुसप्तस्य संगतौ ॥२५४॥

तद्वद्वन्दनकृत्तस्याः स्वेष्टा चास्ति जयं कुरु ।
कणकं ह्रियमाणा या दृष्ट्वा याति पराङ्मुखी ॥२५५॥

लोकापवादमाख्याति पशुसंसर्गतां मुने ।
तद्वदिष्टोपचारेण रक्षणीयं स्ववर्चसा ॥२५६॥

कुले विरुद्धमाचारं क्रियमाणस्य मन्त्रिणे ।
या कक्षान्भक्तता दृष्टिं वीक्षमाणा नभस्थलम् ॥२५७॥

दक्षिणेन व्रजेत्तस्य भक्षस्त्वमिति साब्रवीत् ।
शिर[रः]कंप्र[ङ्क]यमाना तु तस्य वामे व्रजेत्तथा ॥२५८॥

व्याधिसंक्रमणं देहे साब्रवीत् साधकस्य च ।
स्वेष्टोपास्ति समाधौ च शाम्यते मुनिः संयमी ॥२५९॥

उत्तानं तु करं वाम दक्षिणे तु कपोलगम् ।
या प्रदर्शयते मन्त्री मद्यं मासं समीहते ॥२६०॥

असंस्पृष्ट्वा च वामं तु ददामीत्येवमब्रवीत् ।
जिह्वां वीक्ष्य घृषेद्दन्तान् रक्तमांसाभिलाषिणी ॥२६१॥

सप्ताक्षरप्रयोगेण यदा तृप्तिं न गच्छति ।
दृष्ट्वा हास्यं प्रकुरुते तदायं विधिमाचरेत् ॥२६२॥

आमेन खिन्नमांसेन मद्येन प्रीणयेच्च ताम् ।
प्रीतादेशं प्रकुरुते साधके सिद्धिकारिणी ॥२६३॥

आत्मानं गूहयेद्या तु बन्धनं तु समादिशेत् ।
वामहस्तं पदा भ्राम्य हनुदेशे तु विन्यसेत् ॥२६४॥

अशुभं साधके सर्वमतिक्रान्ते समादिशेत् ।
या च दृष्ट्वा स्पृशेद् गुह्यं सा व्रती द्विचरः सुखी ॥२६५॥

या च दृष्ट्वा स्पृशेन्नासां कार्यनिष्पत्तिं साब्रवीत् ।
या च धूलीं क्षिपेन्मूर्ध्नि स्थानभ्रंशं वदेत्तु सा ॥२६६॥

अन्धरास्त स्पृशेद् या तु प्रीता चुम्बनमिच्छति ।
ग्रीवामालिखते या तु स्नेहालिङ्गनमिच्छति ॥२६७॥

नासां मोटयते या तु सा तु रुष्टा विजा तथा ।
उक्तसप्ताक्षरीं जप्त्वा वीरः प्रसन्नतां नयेत् ॥२६८॥

बुंबाकारं मुखं कृत्वा मन्त्रपानं समीहते ।
जिह्वां प्रसारयेद्या तु झषमिच्छति भक्षितुम् ॥२६९॥

पद्माकारौ करौ कृत्वा तिष्ठते या सुनिश्चला ।
सा च गोत्रस्य सर्वस्य क्षेमं पृच्छति देशिके ॥२७०॥

उत्तरास्थमहस्तेन सुक्षेमं निमिषं वदेत् ।
स्तब्धाङ्गुष्ठं कृतं वामं दर्शयेद्भयमादिशेत् ॥२७१॥

परस्परनखान् घृश्य दर्शयेत् कन्दलं महत् ।
यदि ग्रीवां स्पृशेत्पश्चात्तदा विजयमादिशेत् ॥२७२॥

सव्यमुष्टिं क्षि[ष्टयक्षि] चिबुकं स्पृशते च पुनः पुनः ।
अभयं सा समाख्याति रक्षितः पुत्रकाम्यया ॥२७३॥

भूम्यां मण्डलमावर्त्य यदि हस्तेन ताडयेत् ।
तदा तद्देशराजानं मृद्यते तु समादिशेत् ॥२७४॥

तर्जन्या या ह्युलेद्भूमिं महाराज्ञी क्षमं वदेत् ।
भस्ममण्डलकृन्मध्ये तर्जन्यां लिखते तु या ॥२७५॥

परराष्ट्रेण तद्देशं विनश्यत्येवमादिशेत् ।
धूली तत्रैव संगृह्य प्रक्षिपेद्यदि वाध्य[ह्य]तः ॥२७६॥

तद्देशेऽनिष्टमाख्याति तत्र किंचिद्भयं भवेत् ।
हस्तेन छादयेत्तुष्टा कृत्वा मण्डलमाकृतिम् ॥२७७॥

ख्यातस्तद्देशराजा स्याद् विजयी नन्दते चिरम् ।
बाह्यान्मृदा[दं] समादाय मण्डले वा क्षिपेद्यदि ॥२७८॥

अस्त्युन्नतिं समाख्याति देशे देशाधिपस्य च ।
मण्डलस्थां मृदं गृह्य स्ववक्त्रे प्रक्षिपेद्यदा ॥२७९॥

तत्र स्थाने तु उत्कृष्टः पशुं चाख्याति सिद्धिदः ।
ऊरुं विलिखते या तु मण्डले प्रविशाम्यहम् ॥२८०॥
हस्तौ प्रलम्ब्य या चोर्द्ध्वे नयते मस्तकोपरि ।
पशुप्राप्तिरिति ब्रूते मेलकोऽत्र प्रजायते ॥२८१॥
अनुषेध्योपचारैस्तैः रात्रौ स्थानविधिज्ञकैः ।
यस्य चोर्द्ध्वे मुखाङ्गुल्यः कृत्वा व्योम समीक्षते ॥२८२॥
देवीनां चक्रमेलापं साब्रवीदर्द्धरात्रिषु ।
नितम्बस्थौ करौ कृत्वा या विन्यस्य सुविस्मिता ॥२८३॥
षड्देवीनां तु मेलापं तद्रौ[द्रात्रौ] सा प्रकीर्तयेत् ।
हृत्प्रदेशे यदा हस्तौ कृत्वा भ्रामयते मुहुः ॥२८४॥
तदा सप्तकमेलापं साब्रवीदर्धरात्रके ।
नाभिदेशे यदा हस्तं कृत्वा भ्राम्य मुहुर्मुहुः ॥२८५॥
अष्टकस्य तु मेलापं ज्ञातव्यं तत्र तद्विदैः ।
नासास्थितौ यदा हस्तौ कृत्वा वीक्षति विस्मिता ॥२८६॥
देवीनवकमेलापं तत्राख्याति निशान्तरे ।
सव्यहस्तं धृतं गुह्ये वामं भ्रामयते पुनः ॥२८७॥
द्वादशपरिसंख्याति[नां] देवीनां मेलकं वदेत् ।
वामबाहुं यदा हृष्टा भ्रामयेद्गगने भृशम् ॥२८८॥
भूचरीणां तु सर्वासां ख्यापयेत्तत्र मेलकम् ।
अधोमुखं करं वामं भ्रामयेद्यदि सस्मिता ॥२८९॥
पातालवासिनीनां तु मेलकं तत्र आदिशेत् ।
ऊर्द्ध्वाधस्तिर्यग्गौ हस्तौ हृष्टा भ्रामयते यदा ॥२९०॥
खे दिग्द्वारं च मातृणां तदा सा मेलकं वदेत् ।
या च पुष्पोदकं गृह्य प्रक्षिपेद् दिग्दिशं गतम् ॥२९१॥

अर्धरात्रे समाख्याति सरित्संगे सुसंगमम् ।
पुष्पितां फलितां शाखां भ्रामयेद्या दिशान्तरे ॥२९२॥

मेलकं वनराजीनां वटाधः संप्रकीर्तयेत् ।
इति संकेतकः प्रोक्तो भाषामुद्राङ्गचेष्टितम् ॥२९३॥

यात्राप्रवेशसमये रुदन्ति[न्ती] दृश्यते यदि ।
तद्दिने तत्र निश्रुत्य पूजां कृत्वा प्रिये व्रजेत् ॥२९४॥

चेष्टन्ती शुभसंस्थाना विज्ञेया कार्यसिद्धिदा ।
आगन्तुकनिमित्तेऽर्थे यष्ट्वा श्रीकुलशासनम् ॥२९५॥

कुलक्षेत्राधिपो देव्यः स्वाधिष्ठानाधिवास्य ताम् ।
निद्रागमे तु लोकानां तत्र गृह्य बलिं व्रजेत् ॥२९६॥

अन्योक्तिभिः प्रवादेन तत्कार्यं कुरुते यदा ।
इष्टाभिर्यस्य युक्तस्य कुलसंगाग्रमस्य च ॥२९७॥

उत्तरोत्तरचेष्टाभिर्निष्कर्षन्ति कुलाङ्गनाः ।
अनामां दर्शमानायाः दर्शयेत्तु कनीयसीम् ॥२९८॥

कनीयसीं दर्शमानाया दर्शयेन्मध्यमाङ्गुलिम् ।
मध्यमां दर्शमानाया दर्शयेत्तु प्रदेशिनीम् ॥२९९॥

तर्जनीं दर्शमानाया ज्येष्ठां तस्याः प्रदर्शयेत् ।
अङ्गुष्ठं दर्शमानायाः मूलं तस्याः प्रदर्शयेत् ॥३००॥

मूलं प्रदर्शमानाया जिह्वां तस्याः प्रदर्शयेत् ।
जिह्वां प्रदर्शमानाया नासिकाग्रं निरीक्षयेत् ॥३०१॥

नासां निरीक्षमाणाया वीक्षयेच्च स्तनान्तरम् ।
स्तनाग्रं दर्शमानाया भी[सी]मंतं दर्शयेत्ततः ॥३०२॥

भी[सी]मंतं दर्शमानाया ग्रीवां तस्याः प्रदर्शयेत् ।
ग्रीवां च दर्शमानाया वक्त्रं तस्याः प्रदर्शयेत् ॥३०३॥

मुखं वै दर्शमानाया भालं तस्याः प्रदर्शयेत् ।
ललाटं दर्शमानाया दर्शयेद् दृष्टिसंमुखम् ॥३०४॥
दृष्टिं प्रदर्शमानाया भूमिं तस्याः प्रदर्शयेत् ।
भूमिं दिदृक्षमाणाया दर्शयेद्व्योममण्डलम् ॥३०५॥
नभः संवीक्ष्यमाणाया दर्शयेच्च दिशान्तरम् ।
दिशां प्रदर्श्यमानाया भैरवं बीजमुच्चरेत् ॥३०६॥
ततः सा कृष्णतां भूता पूर्वं यदभिषिञ्चयेत् ।
एवं चेष्टानुवादेन सा च तुष्टिं समानयेत् ॥३०७॥
प्रीणयेत् फल्गुणैः[जैः] पानैर्भक्षैर्भोज्यैर्यथान्वितैः ।
प्रीता प्रयच्छते ज्ञानं स्थानं वास्य समादिशेत् ॥३०८॥
अतः प्रियतरी तासां कथयामि महासुराम् ।
स्वयमुत्कण्ठतापेन यांति[ती] तत्प्रीतिसंगमम् ॥३०९॥
पथ्या बिभीतकं धात्री विशाला तु कपित्थकम् ।
पञ्चमं च पलान्येते भूषणस्य पलानि षट् ॥३१०॥
त्वगेला बालकं लोध्रं दापयेद् द्विपलांशकम् ।
चतुर्विंशतिमानेन पलानां चैव धातकी ॥३११॥
तदर्थं खादिरं चूर्णं तेन मानेन रोहिणी ।
द्रोणाष्टके जले सर्वं क्वाथं प्रस्थावशेषकम् ॥३१२॥
सुशीले घृतभाण्डे तु शतत्रयगुणान्वितम् ।
महागोलान्विते भूमौ स्थापयेत् सघृतान्वितम ॥३१३॥
दिने दिने तु तत्रस्थां पूजयेत् कुलशासनः ।
बहिर्बलिं चतुःकालं प्रक्षिपेत् सामिषासवम् ॥३१४॥
एवं मासार्द्धतस्तत्र भाण्डे वाचा प्रजापते ।
शासनस्योपयोगाय सिद्धास्मि तव सुव्रते ॥३१५॥

इति श्रुत्वा ददेदर्घं स्मृत्वा विद्यामहंतराम् ।
उद्धृत्य तत्र तत्किंचिद् यष्ट्वा श्रीकुलशासनम् ॥३१६॥
प्रसाद्यास्वाद्य तद्दिव्यं देवीनां वर्णभो भवेत् ।
देवता दर्शनं यान्ति तद्दिनारभ्य नित्यशः ॥३१७॥
न वदेत् कस्यचिन्मोहात्कथनाद् भ्रंशमाप्नुयात् ।
योनिजादिक्रमेणैव ददन्ति[न्ती] प्रियसंगमम् ॥३१८॥
षष्ठे मासे तु संपूर्णे प्रत्यक्षा कुलशासने ।
तदा महत्तरा देवी स्वयं तस्य ददेच्चरुम् ॥३१९॥
यथेष्टं तत्प्रभावेण रमते भुवनी वसात् ।
लभेत्सिद्धिं सुरापीतो गृहेऽपि कुलमेलकम् ॥३२०॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

छोम्मासंवाचलक्षणं नाम

चतुर्विंशतितमः पटलः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

धन्याहं परमेशान त्वत्प्रसादेन भैरव ।
दिव्यवाचोद्भवा वाचा योगिनीनां च मेलकम् ॥ १ ॥
त्वत्प्रसादेन मे ज्ञातं निरवद्यमशेषतः ।
रुद्रपञ्चाशका मूर्तिर्न मे ज्ञाता महाप्रभो ॥ २ ॥
शक्तिस्थं वद मे नाथ वर्णं वाहनमायुधम् ।
कथयस्व प्रसादेन जानीयां निश्चयं यथा ॥ ३ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु दुर्गे महाभागे साधु त्वं वीरमातरे ।
रुद्रस्यानेकभेदानि नानारूपकृतानि च ॥ ४ ॥
नान्यतन्त्रे समाख्याता सुगोप्यं कृतनिश्चयम् ।
तदहं संप्रवक्ष्यामि संक्षेपान्मूर्तिलक्षणम् ॥ ५ ॥
आदीक्षातः [आदि क्षान्तं]क्रमेणैव सावधानावधारय ।
सितकुन्देन्दुसंकाशं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥ ६ ॥
जटाजूटधरं दिव्यं दिव्यकुण्डलमण्डितम् ।
काद्यं त्रिशूलं वामेन वरदं शूलं दक्षिणे ॥ ७ ॥
नानालङ्कारसंयुक्तं नानाभरणमण्डितम् ।
सर्वावयवसंपूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ८ ॥
नादिनीशक्तिर्वामस्था क्रीडानन्दाकुलेक्षणा ।
वृषभासनमारूढं दीप्यमानं महौजसम् ॥ ९ ॥
मूर्तिः श्रीकण्ठनाथस्य साधकाय वरप्रदा ।
बन्धूकपुष्पवर्णाभम् उदयादित्यवर्चसम् ॥ १० ॥

त्र्यक्षं चाष्टभुजं देवं दिव्यकुण्डलदीपितम् ।
मुकुटेन विचित्रेण नानाभरणमण्डितम् ॥ ११ ॥

कार्यं खट्वाङ्गं पाशं च खेटकं वाममाश्रितम् ।
वरदं शूलं सूत्रं च नागराजं च दक्षिणे ॥ १२ ॥

नानालङ्कारसंदीप्तं सर्वावयवशोभितम् ।
नागहारकृताटोपं ईषत्प्रहसितानम् ॥ १३ ॥

निवृत्त्या[त्तिः] सह संयुक्तं[क्ता] वामाङ्गोत्संगगामिनी ।
सिंहपृष्ठसमारूढं दीप्यमानं सुतेजसम् ॥ १४ ॥

अनन्तस्य इयं मूर्तिः मुखमण्डलसंस्थितम् ।
रोचनारुणवर्णाभं तप्तचामीकरप्रभम् ॥ १५ ॥

त्रिनेत्रं खड्गजं दिव्यं हारकुण्डलमण्डितम् ।
किरीटरत्नखचिता कण्ठे माला प्रलम्बिता ॥ १६ ॥

कार्यं सूत्रं तथा कंबु वामस्थाः[स्थं] करदीपितम् ।
त्रिशूलं कर्तरी खड्गं दक्षिणेन विराजते ॥ १७ ॥

नानालङ्कारसंयुक्तं रत्नमालाविभूषितम् ।
बृहद्वक्षस्थलाभोगं नूपुरारुणहर्षितम् ॥ १८ ॥

वामभागस्थिता देवी यौवनोन्मत्तविग्रहा ।
प्रतिष्ठा नाम सा देवी तिष्ठत्युत्सङ्गगामिनी ॥ १९ ॥

सूक्ष्मीशं भैरवं नाम क्रीडानन्दैकनिर्भरम् ।
विनतासनमारूढं विद्युत्पुञ्जसमप्रभम् ॥ २० ॥

त्रिवक्त्रं षड्भुजं रौद्रं कालानलसमप्रभम् ।
मुकुटेन विचित्रेण अर्धचन्द्रेण दीपितम् ॥ २१ ॥

कपालमालाभरणं कर्णौ मुद्राविभूषितौ ।
पाशं खड्गं तथा सूत्रं कंबु चापं समुद्गरम् ॥ २२ ॥

दीप्यमानानि चास्त्राणि लेलिहाना सुदुस्सहा ।
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वावयवशोभितम् ॥ २३ ॥

विद्याशक्तिसमोपेतं क्रीडमानं सुतेजसम् ।
त्रिमूर्तिं भैरवं देवं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ २४ ॥

व्याघ्रासनसमारूढं ग्रसन्निव चराचरम् ।
नीलमेघप्रतीकाशं नीलवैदूर्यसन्निभम् ॥ २५ ॥

त्र्यक्षं चाष्टभुजं दीप्तं ऊर्द्ध[र्ध्व]जूटेन्दुभूषितम् ।
दिव्यकुण्डलसंपूर्णं दिव्यकिरीटभूषितम् ॥ २६ ॥

कर्तृकां डमरुं पाशं शूलं दक्षिणतः स्थितम् ।
काद्यं शङ्खं तथा सूत्रं वामे खट्वाङ्गशोभितम् ॥ २७ ॥

सर्वालङ्कारसंयुक्तं सर्वावयवभूषितम् ।
दिव्यरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥ २८ ॥

वली[की]शो भैरवो नाम शान्त्या शक्त्या समन्वितः ।
क्रीडमानः सुहृष्टात्मा दिव्यानन्दैकनिर्भरम् ॥ २९ ॥

हंसयोनसमारूढं दीप्यमानं सुतेजसम् ।
कुंकुमारुणदीप्ताभं मदिरानन्दनन्दितम् ॥ ३० ॥

ईषद्वक्त्राब्जसंकाशं त्रिनेत्रं मुकुटोज्ज्वलम् ।
दीप्तमूर्तिकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ॥ ३१ ॥

चतुर्भुजं महाभीमं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
त्रिशूलं वरदं दक्षे काद्यं खट्वाङ्गं वामके ॥ ३२ ॥

दीप्यमानमहास्त्राणि सूर्यायुतसमप्रभम् ।
नानालङ्कारशोभाढ्यं नूपुरारावनादितम् ॥ ३३ ॥

ग्रसनीशक्तिसंयुक्तं क्रीडमानं मुदान्वितम् ।
मृगासनसमारूढमघीशं नाम नामतः ॥ ३४ ॥

कृष्णाञ्जननिभाकारं कृष्णपिङ्गललोहितम् ।
त्र्यक्षं चाष्टभुजं रौद्रं ऊर्ध्वजूटं महोत्कटम् ॥ ३५ ॥

कर्णौ कुण्डलसंयुक्तौ दीप्यमानं महौजसम् ।
खड्गं बाणं तथा पाशमभयं चैव दक्षिणे ॥ ३६ ॥

खेटकं धनुषं कम्बु सूत्रं वामे विराजते ।
नानाशङ्खकृताभूयं[षं] नानास्रग्दाममण्डितम् ॥ ३७ ॥

चामुण्डादिसमायुक्तं क्रीडमानं महोत्कटम् ।
प्रेतासनसमारूढं भूतीशं भूतव्यापकम् ॥ ३८ ॥

शरदम्बुदसंकाशं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ।
दिव्यकुण्डलसंयुक्तं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ३९ ॥

नानारत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
शूलं सूत्रं स्थितं दक्षे काद्यं दण्डं तु वामके ॥ ४० ॥

नानालङ्कारसंयुक्तं नानाभरणमण्डितम् ।
नानारत्नकृतोद्द्योतं हारकेयूरमण्डितम् ॥ ४१ ॥

सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वावयवशोभितम् ।
प्रियदर्शनिसंयुक्तं क्रीडमानं मुदान्वितम् ॥ ४२ ॥

मयूरासनसंस्थं च अतिथीशं महाबलम् ।
नीलजीमूतवर्णाभं त्रिनेत्रं षड्भुजं प्रिये ॥ ४३ ॥

वज्रकुण्डलसंयुक्तं जटाजूटेन्दुमण्डितम् ।
दिव्यतेजप्रभं दीप्तं रत्नमालासुदीपितम् ॥ ४४ ॥

ह्रस्वं स्थूलं महाबाहुं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
काद्यं खट्वाङ्गं सूत्रं च वामस्थाः करदीपिताः ॥ ४५ ॥

वरदं परिघं पाशं दक्षिणेन विराजते ।
नानाभरणशोभाढ्यं नानागन्धादिलेपितम् ॥ ४६ ॥

नारायण्या समायुक्तं क्रीडमानं शुभेक्षणम् ।
स्थाणुनाम महारुद्रं वृकपृष्ठासनस्थितम् ॥ ४७ ॥
दीप्तपारदसंकाशं ज्वलन्तं दिव्यतेजसम् ।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं दीप्तं रत्नकुण्डलमण्डितम् ॥ ४८ ॥
दिव्यं किरीटशोभाढ्यं जटाजूटेन्दुमण्डितम् ।
नीलरत्नैः कृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥ ४९ ॥
काद्यं खेटकं वामस्थं शूलं खड्गं च दक्षिणे ।
दीप्यमानमहास्त्राणि नानालङ्कारमण्डितम् ॥ ५० ॥
सर्वावयवसंपूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
सार्द्धं शक्त्या च मोहन्या क्रीडमानं तु स्वेच्छया ॥ ५१ ॥
मकरासनमारूढं हरं नाम महाबलम् ।
नीलरत्ननिभं दीप्तं रूक्षवक्त्रं महाबलम् ॥ ५२ ॥
त्रिनेत्रं षड्भुजं दीप्तं किरीटकुण्डलान्वितम् ।
महाशङ्खकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥ ५३ ॥
अङ्कुशं काद्यं सूत्रं च वामस्थं च सुदीपितम् ।
अभयं शूलं पाशं च दक्षिणेन महोज्ज्वलम् ॥ ५४ ॥
नानास्रग्दामशोभाढ्यं नानालङ्कारमण्डितम् ।
प्रज्ञाशक्तिधरानन्दं क्रीडमानं मुदेक्षणम् ॥ ५५ ॥
कच्छपासनमारूढं झंटीशं भैरवं प्रिये ।
कालानलप्रतीकाशं निर्मांसं चास्थिमण्डितम् ॥ ५६ ॥
त्रिनेत्रं विकटं घोरं तीक्ष्णदंष्ट्रं भयानकम् ।
भुजाष्टकसमोपेतं मदिरानन्दनन्दितम् ॥ ५७ ॥
खेटकं परिघं पाशं काद्यं वामे सुरान्वितम् ।
खड्गं सूत्रं तथा शूलं नागराजं च दक्षिणे ॥ ५८ ॥

क्रीडमानं सुहृष्टात्मा गुह्यशक्तिसमावृतम् ।
वराहासनमारूढं भूतीशं नाम भैरवम् ॥ ५९ ॥

हिमकुन्देन्दुवर्णाभं त्रिवक्त्रं नयनोज्ज्वलम् ।
किरीटकुण्डलयुतं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ ६० ॥

हेमरत्नकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ।
षड्भुजं त्र्यक्षं वरदं कृष्णपीतारुणोज्ज्वलम् ॥ ६१ ॥

कम्बुचापाङ्कुशं वामे दक्षे कार्यं महोज्ज्वलम् ।
त्रिशूलं च तथा बाणं दीप्यमानं महोत्कटम् ॥ ६२ ॥

नानालङ्कारकृद्द्योतं नानास्रग्दाममण्डितम् ।
वज्रिणीशक्तिचेतस्कं क्रीडानन्दैकनिर्भरम् ॥ ६३ ॥

गजस्कन्धसमारूढं सद्योजातं तु भैरवम् ।
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वावयवशोभितम् ॥ ६४ ॥

तप्तहाटकवर्णाभमुदयादित्यसन्निभम् ।
त्रिनेत्रं चैकवदनं रत्नकुण्डलमण्डितम् ॥ ६५ ॥

जटाजूटेन्दुसंयुक्तं किरीटं दिव्यभूषितम् ।
चतुर्भुजं महादीप्तं नानालङ्कारमण्डितम् ॥ ६६ ॥

कालं नागं तथा वामे शूलं सूत्रं च दक्षिणे ।
करालीशक्तिसहितं क्रीडानन्दसुनन्दितम् ॥ ६७ ॥

महिषासनमारूढम् अनुग्रहि महाबलम् ।
कृष्णाञ्जननिभाकारं लाजावर्तसमप्रभम् ॥ ६८ ॥

करालवदनं घोरं दंष्ट्रोग्रं रक्तलोचनम् ।
पिङ्गजूटोर्ध्वसंयुक्तं मुद्राकुण्डलमण्डितम् ॥ ६९ ॥

भुजाष्टकसमोपेतं नागगोनासमण्डितम् ।
कार्यं खट्वाङ्गं पाशं च मुद्गरं वाममास्थितम् ॥ ७० ॥

सूत्रं शूलं तथा दण्डं तोमरं दक्षिणोद्यतम् ।
कपाली शक्तिसहितं मदिरानन्दनन्दितम् ॥ ७१ ॥

अश्वारूढो महातेजा क्रूरनामा महाबलः ।
सिन्दूरारुणप्रख्यं तु षड्वक्त्रं शिखिवाहनम् ॥ ७२ ॥

किरीटकुण्डलयुतं त्रिनेत्रं च करालिनम् ।
भुजद्वादशकोपेतं नानाकेयूरमण्डितम् ॥ ७३ ॥

शक्ति पाशं तथा दण्डं शूलं सूत्रं च तोमरम् ।
दक्षिणेन महास्त्राणि दीप्यमानं महाबलम् ॥ ७४ ॥

चापं पाशं तथा नागं काद्यं कर्त्रिकमण्डलुम् ।
वामेन करसंदीप्तमहास्त्राणि महोज्ज्वलम् ॥ ७५ ॥

शिवशक्तिरसैर्भिन्नं महासेनं महाबलम् ।
म[प्र]लयाम्बुदसंकाशं दीप्यमानं महाबलम् ॥ ७६ ॥

त्रिनेत्रं चैकवदनं वज्रकुण्डलमण्डितम् ।
जटाजूटेन्दुशोभाढ्यं काद्यमालाप्रलम्बितम् ॥ ७७ ॥

चतुर्भुजं महारौद्रं काद्यं शूलं च दक्षिणे ।
दण्डं खट्वाङ्गं वामेन दीप्तास्त्रं दीप्तिवर्चसम् ॥ ७८ ॥

घोरघोषाभराक्रान्तं क्रीडामथनलालसम् ।
जम्बुकासनमारूढं क्रोधीशं नाम भैरवम् ॥ ७९ ॥

पीतारुणनिभं दीप्तं त्रिनेत्रं मुकुटोज्ज्वलम् ।
शङ्खं कुण्डलदीप्तं च रत्नमाला प्रलम्बिता ॥ ८० ॥

षड्भुजं च महातेजं नानालङ्कारमण्डितम् ।
काद्यं शक्ति तथा पाशं वामस्थाः करदीपिताः ॥ ८१ ॥

शूलं सूत्रं तथा नागं दक्षिणेन विराजते ।
सर्वालङ्कारसंपूर्णं सर्वाभरणमण्डितम् ॥ ८२ ॥

चिर्वराशक्तिभोगाङ्गं क्रीडमानं महोत्कटम् ।
उष्ट्रपृष्ठसमारूढं रुद्रं नाम महाबलम् ॥ ८३ ॥

अतसीपुष्पसंकाशं स्निग्धदीपाभवर्च्चसम् ।
दिव्यकुण्डलशोभाढ्यं त्रिनेत्रं मुकुटोज्ज्वलम् ॥ ८४ ॥

चतुर्भुजं महादीप्तं नानालङ्कारमण्डितम् ।
दक्षस्थं खड्गं पाशं च खेटकं काद्यवामगम् ॥ ८५ ॥

वागेशीशक्तिसंयुक्तं क्रीडमानं सुविह्वलम् ।
गृध्रासनसमारूढं प्रचण्डं नाम भैरवम् ॥ ८६ ॥

नीलोत्पलदलश्यामं नीलवैदूर्यसन्निभम् ।
वज्रकुण्डलसंयुक्तं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ ८७ ॥

प्रसन्नवदनं दिव्यं द्रंष्ट्रैः कुन्देन्दुसन्निभैः ।
भुजाष्टकं महाभीमं नानारत्नविभूषितम् ॥ ८८ ॥

काद्यमङ्कुशं पद्मं च पाशं वामे विराजते ।
शूलं सूत्रं तथा नागं परशुं दक्षिणोद्यतम् ॥ ८९ ॥

सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वावयवशोभितम् ।
घोरघोषा च उत्सङ्गं क्रीडमानं सुलालसम् ॥ ९० ॥

पद्मासनसमारूढं शिवं नाम महाबलम् ।
धूम्राभं धूम्रवर्णं च नीलजीमूतसन्निभम् ॥ ९१ ॥

त्र्यक्षं चतुर्भुजं देवं दिव्यकुण्डलमण्डितम् ।
किरीटरत्नशोभाढ्यं दीप्यमानं सुतेजसम् ॥ ९२ ॥

वरदं च तथा शूलं दक्षिणस्था प्रदीपिताः ।
काद्यं वामे तथा सूत्रं दीप्यमानं महौजसम् ॥ ९३ ॥

वीराशक्तिसमोपेतं क्रीडानन्दभरालसम् ।
कपोतासनमारूडम् एकपादं च भैरवम् ॥ ९४ ॥

पीतारुणेन वर्णेन चन्द्रमण्डलसन्निभम् ।
त्रिनेत्रं षड्भुजं देवं रत्नकुण्डलभूषितम् ॥ ९५ ॥

मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
खट्वाङ्गं पाशमभयं दक्षिणस्था महोत्कटाः ॥ ९६ ॥

त्रिशूलं डमरुं सूत्रं वामेन करदीपितम् ।
नानाभरणशोभाढ्यं नानास्रग्दाममण्डितम् ॥ ९७ ॥

भीषणाशक्तिर्वामाङ्के क्रीडानन्दा बलोत्कटा ।
श्वानासनसमारूढं कूर्मनामानं भैरवम् ॥ ९८ ॥

अश्ववक्त्रं महाभीमं किरीटकुण्डलान्वितम् ।
चतुर्भुजं महारौद्रं सर्वावयवशोभितम् ॥ ९९ ॥

शङ्खकुन्देन्दुवर्णाभं ज्योत्स्नाकिरणदीपितम् ।
खड्गखेटकसंयुक्तं सूत्रदण्डसमुद्यतम् ॥१००॥

दिव्यहेमकृताभरणं हेमसूत्रं प्रलम्बितम् ।
वायुवेगकृतोत्सङ्गे क्रीडानन्दसुविह्वलम् ॥१०१॥

ऋक्षपृष्ठासनारूढं एकनेत्रं च भैरवम् ।
चतुर्वक्त्रं सुतेजाढ्यं त्रिनेत्रं मुकुटोज्ज्वलम् ॥१०२॥

किरीटरत्नसन्दीप्तं वज्रकुण्डलमण्डितम् ।
दिव्यरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥१०३॥

षड्भुजं च महारौद्रं नानालङ्कारमण्डितम् ।
काद्यं ज्ञानं तथा सूत्रं वामस्थवरदीपितम् ॥१०४॥

त्रिशूलं वरदं पाशमुद्यतं दक्षिणे करे ।
रामाशक्तिसमायुक्तं क्रीडानन्दमुदान्वितम् ॥१०५॥

वृषभासनमारूढं भैरवं चतुराननम् ।
लोहितारुणवर्णाभं दीप्यमानं महौजसम् ॥१०६॥

रत्नकुण्डलसंयुक्तं त्रिनेत्रं च किरीटिनम् ।
भुजाष्टकसमोपेतं नानाभरणमण्डितम् ॥१०७॥
सर्वावयवशोभाढ्यं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
त्रिशूलं कर्तरी खड्गं नागराजं च दक्षिणे ॥१०८॥
काद्यं खेटकं सूत्रं च इषु वामे विराजते ।
विनायकीशक्तियुक्तं रत्यानन्दाकुलेक्षणा ॥१०९॥
वेसरासनमारूढम् अजितं नाम नामतः ।
शशिकुन्दनिभं दीप्तं सर्वावयवशोभितम् ॥११०॥
त्र्यक्षं चतुर्भुजं भीमं किरीटकुण्डलैर्युतम् ।
सर्वाभरणशोभाढ्यं दिव्यस्रग्दाममण्डितम् ॥१११॥
अङ्कुशं परिघं पाशं दक्षिणे च प्रदीपितम् ।
काद्यं सूत्रं तथा शूलं करे वामे तथोद्यतम् ॥११२॥
पूर्णाशक्त्या समोपेतं रतिक्रीडामनोत्सुकम् ।
शशकासनमारूढं शर्मनामानं भैरवम् ॥११३॥
श्वेतारुणं महादीप्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं भीमं किरीटजूटमण्डितम् ॥११४॥
हेमकुण्डलदीप्ताभम् अर्धेन्दुकृतशेखरम् ।
मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ॥११५॥
काद्यं परिघं वामेन शूलं सूत्रं च दक्षिणे ।
नानाभरणशोभाढ्यं पद्ममालाविभूषितम् ॥११६॥
झङ्कारीशक्तिसंयुक्तं क्रीडानन्दैकलालसम् ।
सितकाकसमारूढं सोमेशं नाम भैरवम् ॥११७॥
नीलाम्बुदप्रतीकाशं गर्जमानं सुभीषणम् ।
त्रिनेत्रं षड्भुजं रौद्रं वज्रकुण्डलमण्डितम् ॥११८॥

जटाजूटधरं दिव्यं रत्नशेखरमण्डितम् ।
मुक्ताफलकृता माला आपादतललम्बिता ॥११९॥

सर्वावयवसंपूर्णं सर्वाभरणमण्डितम् ।
काद्यं खट्वाङ्गं मुण्डं च करे वामे सुदीपितम् ॥१२०॥

त्रिशूलं चाङ्कुशं पाशं दक्षिणेन विराजितम् ।
कूर्दनीशक्तिर्वामस्था क्रीडानन्दैकनिर्भरा ॥१२१॥

उलूकासनमारूढं लाङ्गलीशं महाबलम् ।
रुचिरारुणतेजाढ्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥१२२॥

दिव्यकुण्डलशोभाढ्यं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।
शङ्खरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥१२३॥

काद्यं खट्वाङ्गं वामस्थाः शूलं सूत्रं च दक्षिणे ।
सर्वाभरणशोभाढ्यं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥१२४॥

इच्छाशक्तिसमोपेतं क्रीडारतिसुलालसम् ।
चक्रवाकासनारूढं भैरवं दारुकं प्रिये ॥१२५॥

श्वेतारुणसुदीप्ताभं त्रिनेत्रं षड्भुजं महत् ।
रत्नकुण्डलसंयुक्तं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥१२६॥

महाशङ्खकृता माला कण्ठस्था च सुदीपिता ।
काद्यं कर्त्रिस्तथा शूलं वामेन करदीपितम् ॥१२७॥

सूत्रं खट्वाङ्गं पाशं च दक्षस्थं च विराजते ।
सर्वलक्षणसंपूर्णं सर्वाभरणमण्डितम् ॥१२८॥

कपालीशक्तिसहितं क्रीडानन्दाकुलेक्षणम् ।
कङ्कालासनमारूढम् अर्धनारीशनामतः ॥१२९॥

नीलोत्पलदलश्यामं नीलजीमूतसन्निभम् ।
त्र्यक्षं चाष्टभुजं दीप्तं सर्वावयवशोभितम् ॥१३०॥

मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च विराजते।
किरीटकुण्डलयुतं रत्नदीप्त्या समुज्ज्वलम् ॥१३१॥

त्रिशूलं कर्तरीं पाशं काद्यं वामे विराजते।
अक्षसूत्रं तथा गन्धं चापं बाणं च दक्षिणे ॥१३२॥

नानाभरणशोभाढ्यं सर्वलक्षणसंयुतम्।
दीपनीशक्तिचेतस्कं क्रीडानन्दं सुनिर्भरम् ॥१३३॥

मेषासनसमारूढम् उमाकान्तं च भैरवम्।
पीतारुणेन वर्णेन सर्वलक्षणसंयुतम् ॥१३४॥

किरीटरत्नखचितं दिव्यकुण्डलमण्डितम्।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं दीप्तं नानाभरणमण्डितम् ॥१३५॥

काद्यखेटकवामस्थं दक्षे सूत्रं कमण्डलुम्।
जयन्ति[न्ती]शक्त्या वामे च क्रीडानन्दसुविह्वलम् ॥१३६॥

सिंहासनसमारूढमाषाढीभैरवं प्रिये।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं देवं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥१३७॥

स्निग्धश्यामेन वर्णेन रत्नकुण्डलमण्डितम्।
दिव्यपद्मकृता माला आपादतललम्बिनी ॥१३८॥

काद्यं सूत्रं तथा वामे शूलं दण्डं च दक्षिणे।
सर्वलक्षणसंपन्नं नानाभरणमण्डितम् ॥१३९॥

पावनीशक्तिसहितं क्रीडानन्दैकनिर्भरम्।
छागपृष्ठसमारूढं दण्डीशं[शं] नाम भैरवम् ॥१४०॥

धूम्राम्बुदप्रतीकाशं दीप्यमानं सुतेजसम्।
त्रिनेत्रं षड्भुजं भीमं रत्नकुण्डलदीपितम् ॥१४१॥

मुकुटेन विचित्रेण हारनूपुरमण्डितम्।
काद्यं खेटं तथा घण्टा वामस्थाः करदीपिताः ॥१४२॥

त्रिशूलं वज्रं परिघं दक्षिणेन करायुधम् ।
पराशक्त्या कृतानन्दं क्रीडमानं सुनिर्भरम् ॥१४३॥
धात्रीशभैरवं नाम नागभोगासनस्थितम् ।
मुक्ताफलनिभाकारं दीप्यमानं सुतेजसम् ॥१४४॥
नीलवज्रकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ।
हेमकुण्डलशोभाढ्यं पद्मरागकिरीटिनम् ॥१४५॥
त्र्यक्षं चतुर्भुजं देवं सर्वावयवशोभितम् ।
सर्वलक्षणसंपूर्णं नानालङ्कारमण्डितम् ॥१४६॥
काद्यं मीनं कृतं वामे शूलं शक्तिश्च दक्षिणे ।
अम्बिकाशक्तिश्चोत्सङ्गे परानन्दाकुलेक्षणा ॥१४७॥
क्रौञ्चासनसमारूढं मीनेशं नाम भैरवम् ।
नीलधूम्रप्रतीकाशं दीप्यमानं सुतेजसम् ॥१४८॥
मेषवक्त्रं त्रिनेत्रं च किरीटकुण्डलान्वितम् ।
वर्णमाला गले बद्धा रत्नमाला प्रलम्बिता ॥१४९॥
सर्वाभरणशोभाढ्यं षड्बाहुं च महाबलम् ।
काद्यं वज्रं तथा शूलं वामेन करदीपितम् ॥१५०॥
सूत्रं दण्डं तथा पाशं दक्षिणेन विराजते ।
छागलीं च कृतोत्सङ्गे क्रीडानन्दसुनिर्भरम् ॥१५१॥
पेचकासनमारूढं मेषरुद्रं महाबलम् ।
गैरिकावर्णदीप्ताङ्गं दीप्यमानं सुभीषणम् ॥१५२॥
त्र्यक्षं चतुर्भुजं दीप्तं गोमुखं च किरीटिनम् ।
रत्नमाला शिरे दिव्या हेममुद्राविभूषिता ॥१५३॥
काद्यखेटकवामस्थं शूलं सूत्रं च दक्षिणे ।
नानाभरणसंयुक्तं पूतनोत्सङ्गशोभितम् ॥१५४॥

व्याघ्रासनसमारूढं लोहितं नाम भैरवम् ।
भस्मोद्धूलितवर्णाभं तारामिव सुदीपितम् ॥१५५॥

षड्भुजं चोग्रवदनं कर्णौ तालकमण्डितौ ।
किरीटिनं महातेजं वर्णहारावलम्बितम् ॥१५६॥

काद्यं पिशितं खड्गं च अङ्कुशं वाममाश्रितम् ।
त्रिशूलं मुद्गरं घण्टां दक्षिणेन करोद्यतम् ॥१५७॥

आमोदीशक्तिरानन्दं क्रीडानिर्भरमानसम् ।
मृगपृष्ठसमारूढं शिखीशं नाम भैरवम् ॥१५८॥

काककोकिलवर्णाभं कृष्णाम्बरसमप्रभम् ।
छागवक्त्रं त्रिनेत्रं च लम्बकर्णं किरीटिनम् ॥१५९॥

दिव्यशङ्खकृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
चतुर्भुजं महाकायं वडमालाविभूषितम् ॥१६०॥

काद्यखट्वाङ्गवामस्थं त्रिशूलं खड्गं दक्षिणे ।
सर्वलक्षणसंपूर्णं लम्बिकाशक्तिनिर्भरम् ॥१६१॥

कोकिलासनमारूढं छगलण्डं महाबलम् ।
श्वेतारुणनिभं दीप्तं त्रिनेत्रं द्विभुजं प्रिये ॥१६२॥

वज्रकुण्डलशोभाढ्यं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।
काद्यत्रिशूलसंयुक्तं नानालङ्कारमण्डितम् ॥१६३॥

संहारीशक्तिसहितं क्रीडारतिसुनिर्भरम् ।
शवयानसमारूढं द्विरण्डं नाम भैरवम् ॥१६४॥

नीलजीमूतवर्णाभं दुन्दुभिस्वरगर्जितम् ।
महाशङ्खकृता मुद्रा कर्णस्था च विराजते ॥१६५॥

त्र्यक्षं चतुर्भुजं भीमं दंष्ट्रालं रक्तलोचनम् ।
किरीटरत्नसंकाशं वर्णमालाप्रलम्बितम् ॥१६६॥

काद्यं खट्वाङ्गं वामस्था शूलं चक्रं[1] च दक्षिणे।
नानालङ्कारसंयुक्तं सर्वावयवशोभितम् ॥१६७॥

महाकालीसमोपेतं मदिरानन्दनन्दितम्।
प्रेतपृष्ठसमारूढं महाकालं च भैरवम् ॥१६८॥

पीततालकवर्णाभं दीप्यमानं सुतेजसम्।
त्रिनेत्रं षड्भुजं देवं नानालङ्कारमण्डितम् ॥१६९॥

किरीटकुण्डलयुतं हारकेयूरमण्डितम्।
काद्यं घण्टा तथा शक्तिर्वामे करे सुदीपितम् ॥१७०॥

शूलं पाशं च परिघं दक्षिणेन [च] करायुधम्।
कुसुमायुधसमोपेतं रतिकामं बलोत्कटम् ॥१७१॥

गोधासनसमारूढं वालीशं नाम भैरवम्।
रक्तारुणप्रतीकाशं वह्निकालानलप्रभम् ॥१७२॥

षड्भोगशिरसाक्रान्तं मणिरत्नप्रदीपितम्।
हेमकुण्डलसम्पूर्णं वनमालाविभूषितम् ॥१७३॥

भुजाष्टकसमोपेतं नानालङ्कारमण्डितम्।
काद्यं वज्रं तथा शक्तिं नागं वामेन संयुतम् ॥१७४॥

शूलं सूत्रं तथा पाशं दक्षिणे दण्डमुत्तमम्।
शुक्राशक्तिभरानन्दं भुजङ्गं मेषसंस्थितम् ॥१७५॥

गौरं स्निग्धेन वर्णेन ह्रस्वं स्थूलं बृहोदरम्।
किरीटरत्नवद्दीप्तं वज्रकुण्डलमण्डितम् ॥१७६॥

मुक्ताफलकृता माला कण्ठस्था च प्रदीपिता।
त्रिनेत्रं षड्भुजं रौद्रं नानालङ्कारमण्डितम् ॥१७७॥

---

१. वज्रं-ख०।

काद्यं शूलं च परिघं वामेन करदीपितम् ।
खट्वाङ्गं पाशं दण्डं च दक्षिणस्थं करोद्यतम् ॥१७८॥

ताराशक्तिः कृतोत्सङ्गे क्रीडानन्दैकलालसम् ।
पिनाकीशं महाकायं वानरासनमाश्रितम् ॥१७९॥

भिन्नवैदूर्यदीप्ताभं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ।
सर्वकुण्डललम्बन्तं किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥१८०॥

कपालं चैव खट्वाङ्गं त्रिनेत्रं कर्त्रिदक्षिणे ।
नानालङ्कारशोभाढ्यं सर्वावयवसंयुतम् ॥ १८१ ॥

ज्ञानी शक्तिर्मदोन्मत्ता खड्गीशोत्सङ्गगामिनी ।
सितकुन्देन्दुवर्णाभं दीर्घग्रीवं वृकोदरम् ॥१८२॥

विस्तीर्णास्यं त्रिनेत्रं च किरीटकुण्डलैर्युतम् ।
जपाकुसुममालाढ्यं षड्भुजं पीतवाससम् ॥१८३॥

कादर्यं कम्बु तथा सूत्रं दक्षिणे च करोद्यतम् ।
त्रिशूलं कर्तरीं खड्गं वामस्थाः करदीपिताः ॥१८४॥

सर्वलक्षणसंपूर्णं क्रियाशक्त्याभिनन्दितम् ।
वकीशं नाम रुद्रेशं चिन्हासनव्यवस्थितम् ॥१८५॥

श्वेतारुणं सुदीप्ताभम् अस्थिस्नायुरलङ्कृतम् ।
कोटराक्षं वृकदंष्ट्रं त्रिनेत्रं च किरीटिनम् ॥१८६॥

लम्बकर्णं सुतेजाढ्यं नूपुरारावनादितम् ।
चतुर्भुजं महा उग्रं नानाभरणमण्डितम् ॥१८७॥

काद्यं घण्टा स्थिता वामे दर्पणं शूलं दक्षिणे ।
गायत्र्यो[त्र्यु]त्सङ्गसंहृष्टं क्रीडानन्दमनोत्सुकम् ॥१८८॥

वृषभासनमारूढं श्वेतरुद्रं महाबलम् ।
नीलाञ्जननिभं दीप्तं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥१८९॥

रत्नकुण्डलसंदीप्तं त्रिनेत्रं षड्भुजं प्रिये।
विशालनयनं सौम्यम् ईषत्प्रहसिताननम् ॥१९०॥

कपालं चैव खट्वाङ्गं पाशं वामे कृतायुधम्।
कर्तरी शूलं परिघं दक्षिणेन विराजते ॥१९१॥

नानालङ्कारशोभाढ्यं सर्वावयवशोभितम्।
सावित्री शक्तिर्वामाङ्के क्रीडानन्दैकनिर्भरम् ॥१९२॥

भृगुं नामा [म] महारुद्रं पद्मयानासनस्थितम्।
शङ्खकुन्देन्दुवर्णाभं दीर्घकायं दिगम्बरम् ॥१९३॥

किरीटिनं महातेजं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम्।
दिव्यरत्नकृता माला कण्ठस्था च विराजते ॥१९४॥

काद्यं नागं स्थितं वामे शूलं खट्वाङ्गं दक्षिणे।
दहनी शक्तिस्तेजस्था क्रीडानन्दा सुविह्वला ॥१९५॥

लकुलीशं महारुद्रं पर्यङ्कासनसंस्थितम्।
कालानलप्रतीकाशं युगान्तदहनोपमम् ॥१९६॥

त्रिनेत्रं स्तब्धपिङ्गाक्षं दंष्ट्रालं घोररूपिणम्।
कपालमालाभरणं सर्वावयवशोभितम् ॥१९७॥

नागयज्ञोपवीतश्च भुजाष्टकमहोत्कटम्।
काद्यं खट्वाङ्गं पाशं च मुण्डं वामान्वितं प्रिये ॥१९८॥

शूलं वज्रं तथा शक्तिं खड्गं दक्षे समुद्यतम्।
विस्तीर्णवक्षोभोगाढ्यं लम्बोदरं भयाननम् ॥१९९॥

सर्वावयवसंपूर्णं सर्वलक्षणसंयुतम्।
नानालङ्कारसंपन्नं गजचर्मकृताम्बरम् ॥२००॥

फेत्कारीशक्तिसहितं क्रीडानन्दभरालसम्।
संवर्तकं महारुद्रं स्व[क]ङ्कालासनसंस्थितम् ॥२०१॥

एते रुद्रा महावीर्याः सृष्टिसंहारकारकाः ।
मातृकार्णव[वर्ण]संभूता महाव्याप्तिकरास्त्विमे ॥२०२॥
पञ्चाशद्वर्णसंभूताः शक्तिवाहनसंयुताः ।
नान्यतन्त्रे मयाख्याता आख्याताः श्रीमतोत्तरे ॥२०३॥

ध्यात्वा मूर्तिं न्यसेद्यस्तु षण्मासात् खेचरो भवेत् ।
योन्यर्णवे कृतं चक्रं पटे लिख्य प्रयत्नतः ॥२०४॥
एकैकयोनिमध्यस्था रुद्राः पञ्चाशमूर्तिमान् ।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैरलिफल्गुसदीपकम् ॥२०५॥

अभीष्टा कामिकी सिद्धिः षण्मासात् साधको भवेत् ।
न मया कस्यचित् ख्यातमिदं गुह्यं महोदयम् ।
रक्षितव्यं प्रयत्नेन शठे मूर्खे च दूषके ॥२०६॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये

पञ्चाशद्रुद्रध्यानवर्णनं नाम

पञ्चविंशः पटलः ॥ २५ ॥

षड्विंशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

प्रोत्फुल्लनयना देवी हृष्टरोमा उवाच ह ।
अद्य मे सफलं सर्वं त्वया तुष्टेन मे प्रभो ॥ १ ॥

रुद्रपञ्चाशके ज्ञातं द्वीपाम्नायं वद प्रभो ।
निःसंदिग्धकरं दिव्यं सर्वसंशयछेदकम् ।
कथयस्व प्रसादेन यद्यहं तव वल्लभा ॥ २ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु साधु महाभागे साधु त्वं वीरमातरे ।
पृच्छितं शृणु कल्याणि निरवद्यं वदामि ते ॥ ३ ॥
पूर्वं देवि तवाख्यातं श्रीमतार्णवमध्यतः ।
त्रिंशत्कोट्या प्रमाणेन तन्मध्याच्च मयोद्धृतम् ॥ ४ ॥
सारात्सारतरं सारं दध्नो घृतमिवोद्धृतम् ।
संक्षेपात् कथयिष्यामि यथा जानासि तत्त्वतः ॥ ५ ॥

आदौ षोडशपीठानि पीठैर्द्वीपाः समुद्भवाः ।
तानि द्वादशधा विद्धि एकैकं तु पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥

कुलचक्रसमायुक्तं त्रिःप्रकारं विलक्षयेत् ।
पीठोपपीठसंयुक्तं क्षेत्र संदोहलक्षितम् ॥ ७ ॥

उपक्षेत्रोपसंदोहे द्वे द्वे पीठे समाश्रिते ।
लक्षितव्या प्रयत्नेन उपास्य च गुरुं प्रिये ॥ ८ ॥

चतुस्त्रिंशतिद्वीपानि द्वीपस्थं त्रिचतुष्टयम् ।
मातॄणां तु वरारोहे एकैकाया व्यवस्थितम् ॥ ९ ॥

दूरस्थानि पुरस्थानि देहस्थानि विलक्षयेत् ।
तैर्विना साधने सिद्धिर्यत्नेनापि न जायते ॥ १० ॥

इतरस्य बहिःस्थाने क्षेत्रस्थानि तु साधके ।
देहस्थानि तु तस्यैव किं त्वेवं हि स मुक्तिभाक् ॥ ११ ॥

कुरु[र्व]ते यत्र संस्थानं केचित् साधकपुङ्गवाः ।
साधनं मन्त्रयोगस्य लिङ्गसंस्थापनेऽपि वा ॥ १२ ॥

प्रतिमा चाधिकारार्थं ज्ञात्वा स्थानं समाचरेत् ।
अन्यथा नैव मुक्तिस्तु द्वन्द्वद्वेषरुजान्विताः ॥ १३ ॥

द्वीपं द्वीपाधिपं देव्या द्वीपनाथसमन्वितम् ।
पीठभिन्नं क्रमं ज्ञात्वा सिद्ध्यते ह्यविचारतः ॥ १४ ॥

क्षेत्रग्रामपुरस्यैव पीठस्य नगरस्य च ।
ज्ञात्वा पञ्च सुसंस्थानं प्रकारं कारयेत् प्रिये ॥ १५ ॥

चतुरस्रं पुरं कृत्वा नवधा च विभाजयेत् ।
द्वीपानि विन्यसेत्तत्र पूर्वादीशानगोचरम् ॥ १६ ॥

यथासङ्ख्यानि न्यसेद्देव[वि] तथाहं कथयामि ते ।
पञ्च पञ्च तथा पञ्च पञ्चमान्ते जलान्तिकम् ॥ १७ ॥

चलसौम्ये चतुष्कं तु ईश्वरैका दिशादितः ।
पूर्वादिक्रमशो दुर्गे द्वे द्वे पीठानि[ठे तु] विन्यसेत् ॥ १८ ॥

पीत[ठ]व्यूहक्रमं मध्ये द्वीपव्यूहं बहिःस्थितम् ।
पुरनाम भवेद्यत्र तां दिशां तु समाश्रयेत् ॥ १९ ॥

अस्थिगूढावृतं वापि दोषैर्दुष्टं यदा भवेत् ।
तथापि भोगमाप्नोति तत्स्थानाभ्यासयोगतः ॥ २० ॥

नाक्षरेण भवेन्मन्त्रो न संयोगगुणान्वितः ।
अक्षरेणापि मन्त्रःस्यात् किन्तु स्थाने नियोजितः ॥ २१ ॥

मन्त्रस्थापितलिङ्गानि विस्फुराणि यशस्विनि ।
दृश्यन्ते स्थानहीनानि सिद्धैः संस्थापितान्यपि ॥ २२ ॥

स्थानकैवल्यभावेन पश्याश्चर्यं कुलेश्वरि ।
स्वतेजोद्दीपितं शम्भुं क्वचित् पश्यति निस्फुरम् ॥ २३ ॥

सर्वज्ञं सर्वदं मन्त्रमजं स्वाभावपूर्वकम् ।
सर्वदं सर्वकालस्थं कालरूपामृतात्मकम् ॥ २४ ॥

गोपितं सर्वतन्त्रेषु द्वीपाम्नायेन गोपितम् ।
द्वीपाक्षरं तथा वारं तिथिनक्षत्रसंयुतम् ॥ २५ ॥

साधकाक्षरसंयुक्तं मन्त्रमेतत् सुरार्चितम् ।
पीठयुक्तं प्रमेयोक्तं मेद्यं पीठेन चेतरम् ॥ २६ ॥

दशमेकादशे नैव कूटस्थं वासमेव तत् ।
पुरस्याद्याक्षरं वापि स्वस्थाने क्षोभकृद् भवेत् ॥ २७ ॥

सर्वस्यापि हि क्षेत्रस्य प्रवेशे जपमारभेत् ।
स्वस्थानात्मकमन्त्रेण स्वस्थानेन पुरं वशेत् ॥ २८ ॥

दिशमालोक्य जप्तव्यं सप्तवारावधि प्रिये ।
तावत् संक्षुभ्यते क्षेत्रं बालवृद्धयुवानकम् ॥ २९ ॥

स्थितिर्वै यत्र मन्तव्या तत्रैवं विधिमाचरेत् ।
सकृदन्यत्र चोच्चारं जपमानः पुरं विशेत् ॥ ३० ॥

तत्रान्नपानशयनैर्दुःखं किञ्चिन्न जायते ।
यः पुनः सर्वभावेन भक्तियुक्तः समभ्यसेत् ॥ ३१ ॥

द्वीपस्थानं समास्थाय स्वेष्टमन्त्रस्य साधनम् ।
करोति तस्य सिद्धीनां भवत्यष्टविधा प्रिये ॥ ३२ ॥

द्वीपाधिपमजानन्तो वर्षपूर्णशतेन वा ।
तथापि नैव सिद्ध्यन्ति योगध्यानाच्च मन्त्रिणः ॥ ३३ ॥

पीठाधिपतयः प्रोक्ताः षोडशैव वरानने ।
तैस्तु व्याप्तमिदं सर्वं चतुस्त्रिंशान्तगोचरम् ॥ ३४ ॥

द्वीपाधिपतयः प्रोक्ताश्चतुस्त्रिंशति केवलाः ।
पीठाधिपतिभिर्युक्ताः पञ्चाशत् पतयस्तु ते ॥ ३५ ॥

आद्यन्तसंस्थिता भद्रे मध्ये लिङ्गस्य लक्षयेत् ।
पीठग्रामपुरस्यापि लक्षयित्वा निराकुलम् ॥ ३६ ॥

पालकस्याक्षरं यस्तु यदिदं नता [तदा] दिमम् ।
कस्मात् पीठेषु अधिपाः पीठभिन्नं न पूजयेत् ॥ ३७ ॥

न गुरुर्नादिमं चान्तं न मध्यं पीठसंयुतम् ।
केवलं यदि लभ्येत तदाद्यं तु सुराधिपैः ॥ ३८ ॥

लिङ्गसंज्ञा भवेन्नाम तत्सर्वमधि वा वृतम् ।
तस्मादेकतमं गृह्य लिङ्गमूलं यदक्षरम् ॥ ३९ ॥

भं तु गृह्याविकल्पेन मध्यान्तं वर्जयेत् प्रियम् ।
एवं ज्ञात्वा ततः सिद्धिर्जायते नान्यथा प्रिये ॥ ४० ॥

अविज्ञाता न पूज्यन्ते येति कुर्वेति [र्वन्ति] साधनम् ।
मम तुल्येऽपि कुर्वन्ति विघ्नं वै पालकाः प्रिये ॥ ४१ ॥

अत्र सारतरं प्रोक्तं निश्चयमधिपां [पान्] प्रति ।
स्पष्टं देवी [वि] मया सर्वं नाम पञ्चाशकेष्वपि ॥ ४२ ॥

अघोर्या डामरे तन्त्रे सूचितोऽप्यस्य निर्णयः ।
सर्वभावेन निर्णीतं संस्फुटं श्रीमतोत्तरे ॥ ४३ ॥

श्रीदेव्युवाच

कथं देहे स्थिता देव पीठद्वीपाश्रयं च यत् ।
क्व स्थाने संस्थिता नाथ तमाचक्ष्व सुनिश्चयम् ॥ ४४ ॥

श्रीभैरव उवाच

कथयामि च ते देवि पीठैः षोडशभिः शिरः।
आवृत्तं च सगुह्यान्तं द्वीपैः कोदण्डकावधि ॥ ४५ ॥
ग्रीवाधो वंशमार्गेण कण्ठोर्द्धं[ध्वं] पावसं स्थितम्।
पञ्चद्वीपानि देवेशि ब्रह्मण्यधिष्ठितानि तु ॥ ४६ ॥
पञ्चनाभिगते भद्रे महेशालंकृतास्तु ते।
जठरे पञ्च वैष्णव्या कुमार्येव हृदि स्थिता ॥ ४७ ॥
पञ्चद्वीपान्विता काली कण्ठान्ते संव्यवस्थिता।
ऐन्द्राण्याकाशसंस्था तु चतुष्कपरिवारिता ॥ ४८ ॥
पञ्चद्वीपसमायुक्ता चामुण्डा च भ्रुवोऽन्तरे।
महाकाली तु कोपस्था संहारपथवर्तिनी ॥ ४९ ॥
देव्यधिष्ठानद्वीपेषु यो यत्रार्णव्यवस्थितः।
स बाह्याभ्यन्तरं मत्वा ततोऽसौ सिद्धिभाजनः॥ ५० ॥
एतद्देवि समासेन द्वीपाम्नायः प्रकाशितः।
शेषोऽन्यद्विस्तरोऽप्यस्य पुनरेत्र वदाम्यहम् ॥ ५१ ॥
विज्ञानसिद्धिसंपन्नं ज्ञानमण्डलपूरितम्।
तेनेदं श्रीमतं प्राप्तं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ५२ ॥
शक्तिज्ञानप्रदीपस्तु मायाज्ञाननिकृन्तनः।
तमध्वं सविनिर्मुक्तं तेनेदं श्रीमतं प्रिये ॥ ५३ ॥
ज्ञानेन तन्त्रसारेण अनुष्ठानं विना प्रिये।
भाजनं भुक्तिमुक्तीनां यद्येदं[वं] गोपयेत्प्रिये ॥ ५४ ॥
कथयामि प्रभेदेन द्वादशैव यथा स्थिताः।
धरामण्डलगर्भे तु द्वीपदेशान्तरैर्यजेत् ॥ ५५ ॥
द्वादशैव[शस्तु] तु कोणेषु द्वादशैव प्रपूजयेत्।
कर्णिकायां यजेद्देवं शब्दराशिं सलक्षणम् ॥ ५६ ॥

कुमारीं सिंहद्वीपं [च] सुवर्णं च तृतीयकम् ।
कर्णप्रावरणं चान्यत् स्वामुखं देशमुत्तमम् ॥ ५७ ॥

कुल्लूतमोड्डियानं च एभिर्देशैर्यजेत् सुधीः ।
जालन्धरं च विख्यातमेकपादं तथा परम् ॥ ५८ ॥

पारशैलं च विख्यातं कुशद्वीपं च शाल्मली ।
जीर्णद्वीपं यवद्वीपं कामरूपं तथा परम् ॥ ५९ ॥

पुष्करद्वीपं देवेशि कडाहं च तथा परम् ।
चन्द्रद्वीपाञ्जनद्वीपं रत्नद्वीपं सुशोभितम् ॥ ६० ॥

शरद्वीपश्च गोमेदं गर्भोदं सूर्यद्वीपकम् ।
आसर्वद्वीपमाख्यातं मरुदेशं तथा परम् ॥ ६१ ॥

वसन्तं च महाद्वीपममृतद्वीपं तथा परम् ।
द्वीपमानन्दगन्धर्वमग्निद्वीपं महाबलम् ॥ ६२ ॥

अङ्गारद्वीपपर्यन्तं कुलद्वीपं तथा परम् ।
नग्नद्वीपं वरारोहे चतुस्त्रिंशत्क्रमे स्थिताः ॥ ६३॥

एषां द्वीपाधिपानां तु नाम वक्ष्यामि पार्वति ।
क्षेत्रपाला महारौद्रा रक्षां कुर्वन्ति साधके ॥ ६४ ॥

विक्रमे[मोऽ]गस्तिकश्चण्डो रक्षो गणपतिस्तथा ।
महाभृगुंजयो नाम महाजिह्वस्त्रिविक्रमः ॥ ६५ ॥

ध्वांक्षो जयश्च भद्रश्च दधीचिश्च तथापरः ।
कुमारीशो महादंष्ट्रः करालश्च श्रुतीधरः ॥ ६६ ॥

महाध्वांक्षो महानन्दी सुगन्धी बालकस्तथा ।
पुष्पदन्तो घनाढ्यश्च विपुलानन्दकारकः ॥ ६७ ॥

शुक्रविडालकावेतौ शुकारुणशुभाननौ ।
सुरप्रियश्च चित्राङ्गो रसानन्दस्तु दुर्जयः ॥ ६८ ॥

प्रद्युम्नश्च महाकायः क्षेत्रपालाः क्रमे स्थिताः ।
दूत्यश्च कथयिष्यामि एकैकस्याप्यनुक्रमात् ॥ ६९ ॥

मनोहरा रूपिणी च चित्रा चित्ररता तथा ।
चित्राङ्गी चित्ररेखा च विचित्रा चित्रदा शुभा ॥ ७० ॥

ककारस्य इमा देव्यः कन्याद्वीपाधिकारिणी ।
क्षेत्रपालो महारौद्रो विक्रमो नाम नामतः ॥ ७१ ॥

चतुर्भुजो महातेजो नीलजीमूतसन्निभः ।
चित्राक्षी चित्ररूपा च शुभदा कामदा शुभा ॥ ७२ ॥

त्र्यक्षः किरीटी भीमश्च वडमालाविभूषिता ।
गदा काद्यं स्थितं वामे शूलं चक्रं च दक्षिणे ॥ ७३ ॥

तादृश्यः शक्तयः सर्वे[सर्वाः] दलग्ने[तदग्रे] पूजयेत्प्रिये ।
पालकं कर्णिकामध्ये गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥ ७४ ॥

संतर्प्य विधिवद्देवि पिशिताद्यासवं ददेत् ।
ततः सिद्धिं लभेन्मन्त्री वाञ्छितार्थं ददन्ति ताः ॥ ७५ ॥

क्रूरा च पिङ्गला दंष्ट्रा राक्षसी च तथा परा ।
ध्वांक्षी च लोलुपा देवि तथा वै लोहितामुखी ॥ ७६ ॥

बह्वाशी च विरूपा च चञ्चला चपला तथा ।
आमिषासा [शा] महादेवी द्वादश परिकीर्तिताः ॥ ७७ ॥

खकारस्य इमा देव्यः सिंहलद्वीपमाश्रिताः ।
क्षेत्रपालो महायोगी आस्तिकश्च महाबलः ॥ ७८ ॥

चतुर्भुजो महारौद्रो त्रिनेत्रो भासुराननः ।
कपालमालाभरणो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ ७९ ॥

काद्यं घण्टा धृता वामे मीनं खड्गं च दक्षिणे ।
तादृश्यः शक्ति[क्तयः] सर्वे[सर्वाः] द्वादशारे प्रपूजयेत् ॥ ८० ॥

सुप्रकीर्णा प्रकीर्णा च लम्बा लम्बमुखी तथा ।
लम्बोष्ठी दीर्घदंष्ट्रा च तथा वै प्राणहामुखी ॥ ८१ ॥

गजकर्णी सुकर्णी च महाकाली सुभीषणा ।
वातवेगारवा घोरा गकारे देवताः स्थिताः ॥ ८२ ॥

हेमद्वीपाधिकारिण्यश्चण्डनाथो महाबलः ।
कृष्णाञ्जननिभाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो महाबलम् ॥ ८३ ॥

त्र्यक्षं कपालिनं भीमं मुण्डमालाप्रलम्बिनम् ।
चतुर्भुजं महाकायं खड्गखेटकधारिणम् ॥ ८४ ॥

काद्यं शूलं धृतं दिव्यं कर्णिकस्थं प्रपूजयेत् ।
दूत्यश्च सर्वास्तादृश्यो द्वादशारे प्रपूजयेत् ॥ ८५ ॥

गन्धधूपादिभिश्चैव अलिफल्ग्वादिचन्दनैः ।
धूपदीपादिनैवेद्यैः पूजिताः सिद्धिदायकाः ॥ ८६ ॥

घनरवा घोरघोषा महाघोषातिघोषका ।
घण्टा घण्टेश्वरी घोरा अतिघण्टा सुघण्टिका ॥ ८७ ॥

घोरामुखी तथा भीमा कलकलारावमेव च ।
घकारे देवता ह्येता कर्णप्रावृतमण्डले ॥ ८८ ॥

यक्षराजो महाभीमः स्थूलो ह्रस्वो बलोत्कटः ।
त्रिनेत्र ऊर्ध्वकेशश्च पद्ममालाप्रलम्बितः ॥ ८९ ॥

चतुर्भुजो महाकायः काद्यं मीनं धृतं करे ।
गदा शूलोद्यता दक्षे सर्वालङ्कारमण्डितः ॥ ९० ॥

दूत्यश्च सर्वास्तादृश्यो द्वादशारे प्रपूजयेत् ।
अलिपुष्पादिनैवेद्यैर्धूपदीपादिभिः क्रमात् ॥ ९१ ॥

पालकं कर्णिकामध्ये पूजयित्वा यथाक्रमम् ।
विभूतिर्भोगदा कान्तिः शङ्खिनी पद्मिनी तथा ॥ ९२ ॥

गान्धारी योगमाता च तथा रत्नोज्ज्वला प्रिये ।
संहारी मांसाहारी च प्राणाहारी तथा परा ॥ ९३ ॥

गृध्रतुण्डी च देवेशि ! द्वादशैता महाबलाः ।
ङकारे संस्थिताः स्वाभिमुखे च मण्डले स्थिताः ॥ ९४ ॥

क्षेत्रपालो गणाध्यक्षो गजवक्त्रो महाबलः ।
नीलगौरवपुच्छायं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥ ९५ ॥

काद्यं सूत्रं धृतं वामे परशुं शूलं दक्षिणे ।
नागयज्ञोपवीतं च वडमाला प्रलम्बिता ॥ ९६ ॥

दूत्यश्च सर्वास्तादृश्यो द्वादशारे प्रपूजयेत् ।
पालकं कर्णिकामध्ये गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥ ९७ ॥

ईप्सितान् लभते कामान् सर्वद्वन्द्वविवर्जितान् ।
निर्विघ्नस्तु ततो मन्त्री क्षिप्रं भवति सिद्धिभाक् ॥ ९८ ॥

चण्डा चण्डमुखी चण्डा चण्डवेगा महारवा ।
भ्रुकुटी चण्डवीर्या च चण्डभ्रूश्चण्डनायिका ॥ ९९ ॥

चञ्चला चलवेगा च चलजिह्वा च द्वादशी ।
चकारे देवता ह्येता कुलूते ह्यधिकारिणः ॥१००॥

रक्षां कुर्वन्ति देवेशि क्षेत्रपालो महाभृगुः ।
शरदम्बुदसंकाशं तडित्कोटिसमप्रभम् ॥१०१॥

त्र्यक्षं चतुर्भुजं भीमं रत्नमाला प्रलम्बिता ।
काद्यं खट्वाङ्गं वामस्थं सूत्रं शूलं च दक्षिणे ॥१०२॥

शक्तयस्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] द्वादशारे व्यवस्थिताः ।
बालकं कर्णिकामध्ये गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१०३॥

ददन्ति कामिकां सिद्धिं साधको यत्समीहते ।
कालरात्री च वेताली कङ्काली च करङ्किणी ॥१०४॥

किङ्किणी चण्डवेगा च अट्टहासा महारवा ।
चण्डमातङ्गिश्चाण्डाली शूकरी श्वामुखी प्रिये ॥१०५॥

छकारे देवता ह्येता ज्ञातव्या वरवर्णिनि ।
नायकानुङ्घियाने तु क्षेत्रपालो महाजयः ॥१०६॥

इन्द्रनीलप्रतीकाशं दीप्तज्वालासुवर्चसम् ।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं रौद्रं शङ्खमाला प्रलम्बिता ॥१०७॥

काद्यं दण्डोद्यतं दक्षे शूलं सूत्रं च वामके ।
शक्तयस्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] द्वादशारे प्रपूजयेत् ॥१०८॥

मध्ये तु पालकं देवं भैरवाकाररूपिणम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्देवि पूजयित्वा यथाक्रमम् ॥१०९॥

ध्यात्वा तु पूजितो देवि साधकस्य वरप्रदः ।
ज्वलिनी ज्वालिनी चैव महाज्वालावलिः प्रभा ॥११०॥

तेजा तेजवती वह्निः स्वतेजा निर्मलोज्ज्वला ।
ज्वालावती कराली च विस्फुलिङ्गा शिखा परा ॥१११॥

जकारे देवता राज्ञः सर्वसत्त्ववशंकरी ।
क्षेत्रपालो महाजिह्वो पीठे जालन्धरे स्थितः ॥११२॥

दंष्ट्राकरालं रौद्रं च कोकिलाभं सुभीषणम् ।
महाशङ्खकृता माला आपादतललम्बिता ॥११३॥

त्रिनेत्रं खड्गजं भीमं सर्वालङ्कारमण्डितम् ।
काद्यं मीनं तथा कर्तृ वामस्थाः करदीपिताः ॥११४॥

शूलं सूत्रं तथा पाशं दक्षिणस्था विराजते ।
शक्तयस्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] द्वादशैताः प्रपूजयेत् ॥११५॥

पालकं कर्णिकस्थं च गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ।
सर्वविघ्नविनिर्मुक्तः सिद्धिं प्राप्नोति मानसीम् ॥११६॥

सुभद्रा भीमभद्रा च भद्रा चैव शुभानना ।
भीमा भीमावती कान्तिः कङ्काली च कपालिनी ॥११७॥

भद्रकाली सुकाली च विकटा कङ्कते[टे]ति च ।
झकारे संस्थिता देव्यः महाबलपराक्रमाः ॥११८॥

मण्डले एकपादे तु महामाया बलोत्कटा ।
त्रिविक्रमो महावीरः क्षेत्रपालो महाबलः ॥११९॥

श्यामवर्णो महाकायस्त्रिनेत्रश्च चतुर्भुजः ।
सर्वाभरणशोभाढ्यः पीतवासा महातनुः ॥१२०॥

कम्बु कार्यं धृतं वामे गदा चक्रं तु दक्षिणे ।
वडमालाधरं दिव्यं तादृशीशक्तिभिर्वृतम् ॥१२१॥

कर्णिकस्थं प्रपूजेत गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
ध्यात्वा[ता]श्च पूजिताः सर्वे सर्वकामफलप्रदाः ॥१२२॥

शुभंकटा च विकटा कुटिला चैव कण्कटा ।
वीरमाता सुवीरा च खड्गिनी शूलिनी परा ॥१२३॥

छछुन्दरी विडाली च सुभगा द्वादशी मता ।
भकारे देवताः सर्वे[सर्वाः] सर्वकामफलप्रदाः ॥१२४॥

पारशैले महाद्वीपे अधिकारः प्रवर्तते ।
ध्वांक्षो नाम्ना च विख्यातः क्षेत्रपालो भयानकः ॥१२५॥

कृष्णकाकप्रतीकाशस्त्र्यक्षश्चैव चतुर्भुजः ।
ऊर्ध्वकेशो महादंष्ट्रो रक्तान्तायतलोचनः ॥१२६॥

शङ्खमाला गले बद्धा शूलं खड्गं च दक्षिणे ।
कार्यं खेटकवामेन सर्वाभरणमण्डितः ॥१२७॥

शक्तीश्च तादृशीः सर्वे[र्वाः] द्वादशारे प्रपूजयेत् ।
पालकं कर्णिकामध्ये गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१२८॥

प्राप्नुवन्ति महासिद्धिं मनसा यत्समीहते ।
मृगा च शशिरेखा च हरिणी रोहिणीति च ॥१२९॥

अमृतोद्भवा सुवर्णा च जीवरक्षा सुरक्षिका ।
हरिणाक्षी सुजीवा च चन्द्ररेखा सुधा तथा ॥१३०॥

रकारे देवता ह्येताः कलद्वीपे व्यवस्थिताः ।
क्षेत्रपालो जयो भद्रः कुशद्वीपप्रपालकः ॥१३१॥

स्थूलो ह्रस्वो महाकायस्त्रिनेत्रः शूलपाणिनः [कः] ।
कार्यं वामे स्थितं देवि मीनासवप्रपूरितम् ॥१३२॥

भिन्नवैदूर्यतेजाभं मदिरानन्दनन्दितम् ।
क्रीडन्तं शक्तिभिः सार्द्धं कर्णिकस्थं प्रपूजयेत् ॥१३३॥

सर्वान् कामानवाप्नोति साधकस्तु न संशयः ।
व्योमिनी व्योमरूपा च व्योमव्यापी शुभोदया ॥१३४॥

ग्रहचारी सुचारी च विषहारी विषान्तिका ।
जम्भला चैव फेत्कारी देवकी दुर्जया तथा ॥१३५॥

ठकारे चन्द्रमा देव्यः शाल्मलीद्वीपमाश्रिताः ।
क्षेत्रपालो दधीचिस्तु महाबलपराक्रमः ॥१३६॥

निर्मांसो दीर्घकायश्च तारा इव सुदीपितम् ।
त्र्यक्षं चतुर्भुजं रौद्रमस्थिमाला प्रलम्बिता ॥१३७॥

कार्यं चापं धृतं वामे शूलं बाणं च दक्षिणे ।
शक्तयस्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] द्वादशारे प्रपूजयेत् ॥१३८॥

पालकं कर्णिकामध्ये बली[लि]पुष्पोपहारकैः ।
ददन्ति ईप्सितां सिद्धिं साधकाय महात्मनः [ने] ॥१३९॥

चञ्चला चपला चण्डा डमरी डामरी शुभा ।
दण्डिनी मुण्डिनी मुण्डा शक्तिनी डाकिनीति च ॥१४०॥

कर्त्तिनी काकिनी देवी डकारे देवताः स्थिताः ।
अधिकारं प्रकुर्वन्ति चीणद्वीपे व्यवस्थिताः ॥१४१॥

क्षेत्रपालः कुमारीशो महाबलपराक्रमः ।
दिगम्बरोर्ध्वजूटस्तु रोचनारुणसन्निभः ॥१४२॥

त्रिनेत्रं द्विभुजं भीमं काद्यं दण्डोद्यतं प्रिये ।
पुण्डरीककृता माला आपादतललम्बिनी ॥१४३॥

क्रीडन्तं दूतिभिः सार्द्धं कर्णिकस्थं प्रपूजयेत् ।
धनकामार्थसौभाग्यं ददते साधकस्य च ॥१४४॥

यमदंष्ट्रा महादंष्ट्रा अन्त्रमाली करालिका ।
विकराली कराली च कालजङ्घा सुजङ्घिका ॥१४५॥

लोहजङ्घा सुजङ्घा च महावेगा निवेगिका ।
ढकारे देवता देवि यवद्वीपं समाश्रिताः ॥१४६॥

क्षेत्रपालो महादंष्ट्रो रक्षां कुर्वन्ति साधकम् ।
वज्रनीलमहादीप्तं त्रिनेत्रमुग्ररूपिणम् ॥१४७॥

चतुर्भुजं शवारूढं कपालकृतशेखरम् ।
काद्यं सर्वं धृतं वामे त्रिशूलं दण्डं दक्षिणे ॥१४८॥

तादृश्यः शक्तयः सर्वे[र्वाः] द्वादशारे प्रपूजिताः ।
पालकं कर्णिकामध्ये पूजिताश्च फलप्रदाः ॥१४९॥

बला चातिबला चैव अजिता चापराजिता ।
जया च विजया देवी जम्भनी स्तम्भनी तथा ॥१५०॥

अन्वनी मोहिनी माया निगडा द्वादशी मता ।
कामरूपे स्थिता देवी कुर्वन्ति[न्ती] चाधिकारकम् ॥१५१॥

विडालः क्षेत्रपालस्तु क्षेत्रं पालयते सदा ।
दीर्घाननो महाकायो विशालनयनो महान् ॥१५२॥

काद्यं खट्वाङ्गं वामस्थं शूलं दण्डं च दक्षिणे ।
अतसीपुष्पसंकाशं नानाभरणमण्डितम् ॥१५३॥

क्रीडन्तं शक्तिभिः सार्द्धं कर्णिकस्थं प्रपूजयेत् ।
ददन्ति महतीं लक्ष्मीं विघ्नसंघान् व्यपोहति ॥१५४॥

णकारे देवताः सर्वे[र्वाः] साधकाय वरप्रदाः ।
दन्तुरा रोषभीमा च अभ्रमालाकुला शुभा ॥१५५॥

चलजिह्वाग्रनेत्रा च रुरुहुङ्कारिका तथा ।
खादका रूपनामा च संहारी च क्षयान्तिका ॥१५६॥

कण्डनी पेषिणी चैव महाग्रासी कृतान्तिका ।
तकारे देवता ह्येताः पुष्करद्वीपमाश्रिता ॥१५७॥

क्षेत्रपालः शुचिर्नाम महाबलपराक्रमः ।
श्वेतारुणनिभाकारः सर्वलक्षणसंयुतः ॥१५८॥

त्र्यक्षो विशालनयनो दीर्घभ्रूर्दीर्घनासिकः ।
बर्टेन्दीवरमालाभिः माला कण्ठे विराजते ॥१५९॥

काद्यं दक्षे धृतं दीप्तं खड्गखेटकधारितम् ।
क्रीडन्तं सह दूतीभिः द्वादशारे प्रपूजयेत् ॥१६०॥

कर्णिकस्थं यजेद्देवि पालकं सिद्धिदायकम् ।
डम्भको डिमिडिम्मा वै कैवर्ती कज्जलोहिका ॥१६१॥

द्रवणी द्रावणी क्षोभा स्रवनी स्रावनीति च ।
महोत्कटा मदोन्मत्ता मदवाहा मदाम्बिका ॥१६२॥

थकारे देवताः ख्याताः कटाहद्वीपमाश्रिताः ।
क्षेत्रपालो महाध्वांक्षस्त्रिनेत्रः कृष्णभासुरः ॥१६३॥

चतुर्भुजो महाकायो अस्थिमाला प्रलम्बिता ।
काद्यं घण्टा स्थिता वामे त्रिशूलं दण्डं दक्षिणे ॥१६४॥

शक्तयस्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] क्रीडमानं विचिन्तयेत् ।
पालकं कर्णिकामध्ये गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१६५॥

ददन्ति ईप्सितान् भोगान् साधकस्य महात्मनः ।
अरुणा घोषदेवी च रेवती भोगदायिका ॥१६६॥

स्तम्भनी घोरघोषा च घोररूपा च धारिणी ।
घोरा घोरतरा घोरा अतिघोरा भयानका ॥१६७॥

दकारे देवता राजा चन्द्रद्वीपे व्यवस्थितः ।
क्षेत्रपालो महानन्दी त्रिनेत्रो वपुलिङ्गलः ॥१६८॥

कपिवक्त्रश्चतुर्बाहुः पीतमाला प्रलम्बिता ।
काद्यं मुण्डं धृतं वामे शूलं पट्टिशं दक्षिणे ॥१६९॥

दूतय[त्यश्च]स्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] द्वादशारे प्रपूजयेत् ।
पालकं कर्णिकामध्ये गन्धपुष्पादिपूजिते ॥१७०॥

ईप्सितान् ददते कामान् पालकस्य प्रसादतः ।
भीमरावा सुरावा च शास्तनी च सुरावका ॥१७१॥

स्तम्भनी रोषणी रौद्री रुद्रावल्या कलापहा ।
महाशक्तिस्तथा क्षान्तिर्वज्रतुण्डी बृहन्मुखी ॥१७२॥

धकारे देवता श्वेता पूजनीयाः सदा बुधैः ।
क्षेत्रपालः सुगन्धी च गन्धर्वः पीठहस्तकः ॥१७३॥

अञ्जनद्वीपवासिन्य आर्तानामार्तिनाशकाः ।
नीलाञ्जननिभा दीप्तं त्र्यक्षं वै शूलपाणिनम् ॥१७४॥

पारिजातकृता माला कण्ठस्था च प्रलम्बिता ।
काद्यं वीणां तथा सूत्रं विस्फुरन्तं महाबलम् ॥१७५॥

शक्तयस्तत्स्वरूपाश्च द्वादशारे प्रपूजयेत् ।
पालके सहिताः देव्यः पूज्यमानः श्रियं लभेत् ॥१७६॥

कौलिनी कृन्तनी काली कालसर्वातिनी कला।
अन्तेष्टी च प्रतिष्ठा च शान्तिपुष्टिकरी तथा ॥१७७॥

जाया धृतिकरी सौम्या कामदा च शुभानना।
नकारे देवताः ख्याता रत्नद्वीपाधिकारिणः ॥१७८॥

क्षेत्रपालो महादीप्तो अतिदीर्घो भयाननः।
पीतगौरेण वर्णेन रत्नमाला प्रलम्बिता ॥१७९॥

काद्यं वामे तथा यष्टिं भ्रामयन्तं महाबलम्।
क्रीडन्तं शक्तिभिः सार्द्धं कर्णिकस्थं प्रपूजयेत् ॥१८०॥

पूजनात् सर्वकामानि लभते साधकोत्तमः।
धर्मा धर्मवती शीला पापहा धर्मवर्द्धिनी ॥१८१॥

धर्मरक्षी च माता च धर्माधर्मवतीति च।
पकारे देवता राजा शौरद्वीपनिवासकृत् ॥१८२॥

पुष्पदन्तेति विख्यातः क्षेत्रपालो महाबलः।
नीलगौरेण वर्णेन खरास्यं च चतुर्भुजम् ॥१८३॥

जपापुष्पैर्वृता माला आपादगलकाश्रिता।
काद्यं वेणुं धृतं वामे शूलं पाशं च दक्षिणे ॥१८४॥

पूजयेत् कर्णिकामध्ये पालकं शक्तिभिः सह।
गन्धपुष्पादिभिः पूज्य भुक्तिं मुक्तिं ददन्ति ताः ॥१८५॥

सुगतिर्दुर्मतिर्मेधा विमला सुविकाशिनी।
सिद्धिर्बुद्धिर्मतिः कान्तिर्बलोत्साहा सुवर्द्धनी ॥१८६॥

निर्लेपा च परा देवी फकारे देवतास्त्विमाः।
गोमेदद्वीपवासिन्यो धनदो नाम पालकः ॥१८७॥

लम्बोदरो नीलरक्तो दीर्घास्यो रक्तलोचनः।
मुक्ताफलकृता माला आपादतललम्बिता ॥१८८॥

त्र्यक्षश्चतुर्भुजो भीमः खड्गकाद्यधृतायुधः ।
गदाशूले धृते दक्षे रक्तवस्त्रपरिच्छदः ॥१८९॥
पूजितः शक्तिभिः सार्द्धं गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ।
धनमारोग्यमायुष्यं ददते साधकस्य तु ॥१९०॥
रक्ता चैव विरक्ता च उद्वेगा शोकवर्द्धिनी ।
कामा तृष्णा क्षुधा मोहा निद्रालस्यामया ज्वरा ॥१९१॥
सुतृष्णा रोदिनी कुत्सा मला चोच्छिष्टवाससी ।
बकारे देवता राजा गर्भोदद्वीपवासकृत् ॥१९२॥
विपुलो नाम क्षेत्रेशो महाबलपराक्रमः ।
सर्वलक्षणसम्पूर्णः पुष्कराद्यश्चतुर्भुजः ॥१९३॥
नीलमेघवपुः श्रेष्ठः काद्यं कम्बु धृतं करे ।
त्रिशूलं दक्षिणे पाशं वडमालाविभूषितम् ॥१९४॥
शक्तयस्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] पालके च प्रपूजयेत् ।
ददन्ति मानसीं सिद्धिं साधकाय वरप्रदाः ॥१९५॥
तृष्णा च कामदा भोगा विदुषी शोकदा तथा ।
आनन्दा च सुनन्दा च महानन्दा शुभङ्करी ॥१९६॥
वीतरागा महोत्साहा जितरागा मनोरमा ।
भकारे देवता राजा सूर्यद्वीपनिवासकृत् ॥१९७॥
सुनन्दो नाम विख्यातः क्षेत्रपालो महाबलः ।
सर्वावयवसम्पूर्णस्त्रिनेत्रश्च वृकोदरः ॥१९८॥
नागसूत्रं धृतं कण्ठे काद्यं शूलं च दक्षिणे ।
शक्तिः कम्बु धृतं वामे तद्रूपशक्तिभिर्वृतम् ॥१९९॥
गन्धपुष्पादिभिः पूज्यो द्वादशारे सकर्णिके ।
विपुलां ददते सिद्धिं साधकाय वरप्रदाम् ॥२००॥

मनोन्मनी मनःक्षोभा मदोन्मत्ता मदालसा ।
मदोगजा मदोनामा कामानन्दा सुविह्वला ॥२०१॥

महावेगा सुवेगा च अतिवेगा क्षयापहा ।
मकारस्य इमा देव्य आसवद्वीपमाश्रितः ॥२०२॥

एकनेत्रो महाशुक्रो दीप्ताक्षश्च चतुर्भुजः ।
कुम्भे काद्यं धृतं वामे त्रिशूलं सूत्रं दक्षिणे ॥२०३॥

शक्तयस्तादृश्यो ज्ञेया द्वादशारे प्रपूजयेत् ।
क्षेत्रेशं कर्णिकामध्ये पूजनात् कामिकं लभेत् ॥२०४॥

हयवेगा सुवेगा च महावेगवती महान् ।
चक्रवेगातिरौद्रा च चलचिन्त्यावती मती ॥२०५॥

रोदनी क्षोदनी बाला अतीवकलहप्रिया ।
यकारे देवताः ख्याता मरुद्देशसमाश्रितः ॥२०६॥

विडालो नाम विख्यातो क्षेत्रपालो बलोत्कटः ।
चित्राङ्गश्चित्रवर्णाभो विडालवदनो महान् ॥२०७॥

चतुर्भुजो महादंष्ट्रो महादीप्ताक्षः सूर्यधृक् ।
काद्यं दण्डं धृतं वामे शूलं चक्रं च दक्षिणे ॥२०८॥

शक्तयस्तादृश्य सर्वे[र्वाः] द्वादशारे प्रपूजयेत् ।
क्षेत्रेशं कर्णिकामध्ये वरदानोद्यतं शुभम् ॥२०९॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं साधकाय प्रयच्छति ।
विद्युज्जिह्वा महाजिह्वा भृङ्गाटा कुटिलानना ॥२१०॥

स्फुरज्ज्वाला सुतेजा च महाकाली तथैव च ।
भस्मान्तकी क्षयान्ती च ज्वलिनी विस्फुलिङ्गिका ॥२११॥

रेफस्था च इमा देव्यो वसन्तद्वीपवासिनीः ।
शुकारुणश्च नाम्ना वै क्षेत्रपालो महाबलः ॥२१२॥

नीलस्फटिकवर्णाभः शु[क]तुण्डो वर्तुलाननः ।
चतुर्भुजो महादक्षो नागाभरणमण्डितः ॥२१३॥

काद्यं नागं धृतं वामे शूलं खड्गं च दक्षिणे ।
शक्तयस्तादृशीर्ध्यायेत् पूजिताश्च फलप्रदाः ॥२१४॥

उल्लेखा च पताका च भोगा भोगवती महान् ।
महाभोगातिभोगा च भोगाढ्या भोगपारगा ॥२१५॥

ऋद्धिर्वृद्धिर्धृतिः कान्तिः लकारे देवताः शुभाः ।
अमृतद्वीपवासिन्यः क्षेत्रपालः शुभाननः ॥२१६॥

महाबलो महामौनी त्रिनेत्रः शूलपाणिकः ।
रत्नमाला शिरे दिव्या काद्यं वामे परिस्थितम् ॥२१७॥

सर्वालङ्कारसंपन्नो नीलवस्त्रपरिच्छदः ।
तद्रूपाः शक्तयः पूज्याः सर्वकामफलप्रदाः ॥२१८॥

वरिष्ठा च गरिष्ठा च अमृता च पलाशिनी ।
हरिणाक्षी सुवर्णा च हेमरेणुः सुपिङ्गला ॥२१९॥

रत्ना च रत्नद्वीपा च सुद्वीपा रत्नमालिनी ।
वकारे देवता ह्येते आनन्दद्वीपवासिनः ॥२२०॥

क्षेत्रपालस्तु विख्यातो नाम्ना चैव सुरप्रियः ।
सन्ध्यारुणप्रतीकाशो मदविभ्रान्तलोचनः ॥२२१॥

सितपुष्पैः कृता माला कण्ठस्था च विराजते ।
काद्यं खट्वाङ्गं वामस्था पिशितं शूलं दक्षिणे ॥२२२॥

सर्वाभरणसपन्नो रत्नवस्त्रपरिच्छदः ।
पूजयेत् कर्णिकामध्ये धूपदीपादिभिः प्रिये ॥२२३॥

सर्वकामानवाप्नोति मनसा यत्समीहते ।
संवरी वर्वरी भृङ्गी घण्टाकर्णा स्वरानना ॥२२४॥

हयग्रीवा च जङ्घा च सर्वग्रासी कृतान्तिका ।
सर्वाशी च महाभक्षा महादंष्ट्रातिभैरवा ॥२२५॥

शकारे देवताश्चेमाः कथिताश्च महायशे ।
गन्धर्वद्वीपवासिन्यश्चिदा[त्रा]ङ्गो नाम पालकः ॥२२६॥

विचित्राभरणो दिव्यो गौरवर्णो महाद्युतिः ।
त्र्यक्षश्चतुर्भुजः सौम्यः शशाङ्ककृतशेखर[रः] ॥२२७॥

काद्यं सूत्रं धृतं वामे शूलं खट्वाङ्गं दक्षिणे ।
ध्यानयुक्तो जपेन्मन्त्री शक्तिभिः कर्णिकास्थितम् ॥२२८॥

विचित्रांश्च भवे भोगान् स्वेच्छया यत्समीहते ।
रागा रागवती क्रोधा महाक्रोधा च भैरवा ॥२२९॥

क्रन्दनी रोदनी कलहा कङ्काली कलहाम्बिका ।
दुर्भेद्या दुर्भया चैव दुर्निरीक्ष्या सुभीषणा ॥२३०॥

षकारे देवता देवि अग्निद्वीपनिवासिनः ।
सुरानन्दो महादीर्घः क्षेत्रपालो महाबलः ॥२३१॥

लाजावर्तनिभो दीप्तस्त्रिनेत्रश्च त्रिशूलधृक् ।
काद्यं वामे धृतं देवि सर्वालङ्कारमण्डितम् ॥२३२॥

शक्तयस्तादृश्यः सर्वे[र्वाः] पालकेन समं यजेत् ।
प्रापयन्ती महालक्ष्मीः साधकस्य वरप्रदाः ॥२३३॥

नटी नाटी कुनाटी च वाटकी हाटकी चटी ।
कङ्कटा त्रिकटा चैव सुभटा च भटोद्भटा ॥२३४॥

सकारे देवता ह्येता अङ्गारद्वीपवासिनः ।
दुर्जयो नाम विख्यातः क्षेत्रपालो महाबलः ॥२३५॥

चतुर्भुजो महाकायो नीलजीमूतसन्निभः ।
नानालङ्कारसंयुक्तः काद्यखट्वाङ्गधारकः ॥२३६॥

शूलं पाशं धृतं दक्षे दीप्यमानं महौजसम्।
तद्रूपाः शक्तयः पूज्याः साधकाय वरप्रदाः ॥२३७॥

नानाक्षी नादरूपा च सर्वकारी गमा तथा।
अनुचारी सुचारी च चन्द्रनीला प्रवाहिणी ॥२३८॥

संयोक्त्री च वियोक्त्री च हंसाख्या च विलासिनी।
कुलद्वीपे तु वासिन्यो हकाराक्षरसम्भवाः ॥२३९॥

प्रद्युम्नो नाम विख्यातः क्षेत्रपालो महाबलः।
हिमकुन्देन्दुवर्णाभं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम् ॥२४०॥

किरीटिनं कुण्डलिनं वडमालाविभूषितम्।
गदां कम्बुं धृतं वामे शूलं चक्रं तु दक्षिणे ॥२४१॥

नानावर्णकृताटोपं महादीप्तिसमुज्ज्वलम्।
शक्तयस्तद्विधाः सर्वे[र्वाः] पालके सहितार्चयेत् ॥२४२॥

ध्याता च पूजिता देव्यः साधकाय फलप्रदाः।
सर्वग्रासी कृतान्ती च पवनी पावनी तथा ॥२४३॥

मेदिनी छेदिनी चैव सर्वकाली क्षुधाशनी।
उच्छूष्मा देवगान्धारी भस्मान्ता वाडवानला ॥२४४॥

क्षकारे देवता राजा[एता] नग्नद्वीपाधिवासिनः।
क्षेत्रपालो महाकायो महाबलपराक्रमः ॥२४५॥

कृष्णाञ्जननिभाकारो महादीप्तः करालिकः।
त्र्यक्षश्चतुर्भुजो भीमो ग्रसन्निव चराचरम् ॥२४६॥

कपालमालाभरणः काद्यखट्वाङ्गधारकः।
त्रिशूलं दक्षिणे पाशं शक्तयस्तस्य तादृशाः ॥२४७॥

पूजयेत् कर्णिकामध्ये साधकाय वरप्रदाः।
चतुस्त्रिंशतिद्वीपानि क्षेत्रपालाः क्रमे स्थिताः ॥२४८॥

पूजा ध्यानं च देवेशि कथितं गूढगोचरम् ।
सर्वमन्त्रे मया गुप्तं संस्फुटं श्रीमतोत्तरे ॥२४९॥

अतीव सरहस्यं तु पृच्छस्वान्यं यथारुचि ।
भैरवस्य वचः श्रुत्वा हृष्टरोमा च पार्वती ॥२५०॥

पृच्छते च महादेवं प्रणम्य शिरसा पुनः ।

श्रीदेव्युवाच

त्वत्प्रसादान्मया ज्ञातं क्षेत्रपालादिनिर्णयम् ॥२५१॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्र्यादिविनिर्णयम् ।

श्रीभैरव उवाच

षट् सिद्धाः षट्पुराश्चैव पूर्वं च कथिताः प्रिये ॥२५२॥

गायत्रीं च वदिष्यामि षटसिद्धस्य सुरेश्वरि ।
शिखानाथस्य गायत्री पूर्वं च कथिता प्रिये ॥२५३॥

वदेन्मत्स्येन्द्रनाथाय विद्महे तदनन्तरम् ।
महासिद्धायेति पदं धीमहीति ततः परम् ॥२५४॥

तन्नः सिद्धिः प्रचोदेति याच्छब्दं च समुच्चरेद् ।
वदेद् गोरक्षनाथाय विद्महे च ततः परम् ॥२५५॥

चतुर्थ्यन्तं श्रीनाथ धीमहीति ततो वदेत् ।
तन्नो योगीपदं प्रोच्य प्रचोदयात्ततः परम् ॥२५६॥

श्रीनाथाय पदं ब्रूयाद्विद्महे तदनन्तरम् ।
वदेज्जालन्धरायेति धीमहीति ततोच्चरेत् ॥२५७॥

तन्नो नाथः पदं प्रोक्ता[क्त्वा] प्रपूर्वं चोदयाद्वदेत् ।
मित्रनाथाय विद्महे तत्त्वज्ञाय च धीमहि ॥२५८॥

तन्नो नाथ प्रचोदेति याच्छब्दं ब[त]दनन्तरम् ।
वदेदुत्कण्ठनाथाय विद्महे तदनन्तरम् ॥२५९॥

शिवप्रियाय धीमेति हीति शब्दं ततः परम्।
तन्नो योगी प्रेति पदं चोदयात्तदनन्तरम् ॥२६०॥

इति श्रीमहामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गते श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये
चतुस्त्रिंशतिद्वीपद्वीपाधिपक्षेत्रपाल-
ध्याननविधानक्रमनिर्णयो नाम

षड्विंशतितमः पटलः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः पटलः

श्रीदेव्युवाच

देवदेव कुलेशान संसारार्णवतारक ।
श्रुतं मे निखिलं सर्वं द्वीपाम्नायं सुविस्तरम् ॥ १ ॥

अद्यापि कथ्यतां नाथ चक्राम्नायं यथाक्रमम् ।
कति चक्राः क्रमे ख्याताः कासां[केषां]तत्र प्रपूजनम् ।
पूजितैश्च फलं किं च एतदाख्याहि मे प्रभो ॥ २ ॥

श्रीभैरव उवाच

साधु दुर्गे महाभागे साधु त्वं वीरवन्दिते ।
कथयामि च ते भद्रे चक्राम्नायस्य पूजनम् ॥ ३ ॥

परचक्रस्य मथनं सदा विजयवर्द्धनम् ।
सर्वशान्तिकरं हृद्यमिच्छासिद्धिप्रदायकम् ॥ ४ ॥

फाल्गुनस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां वरानने ।
चैत्रे कृष्णे चतुर्दश्यां ज्येष्ठे मासि चतुर्थिका ॥ ५ ॥

आषाढस्य चतुर्दश्यां नभे शुक्ला तथाष्टमी ।
आश्विनस्य तु मासस्य शुक्ला चैव तु अष्टमी ॥ ६ ॥

कार्तिके सितचतुर्दश्यां मार्गशीर्षस्य पञ्चमी ।
पौषे शुक्लाष्टमी प्रोक्ता माघे कृष्णचतुर्दशी ॥ ७ ॥

वैशाखे चाष्टमी शुक्ला चक्राम्नायं यजेत् सुधीः ।
एतान् सर्वान् समासाद्य पूजयेद्विधिवत्सुधीः ॥ ८ ॥

वाञ्छितार्थनिमित्तेन चक्रं पूज्यं यथाक्रमम् ।
ब्रह्मणः[ह्माण्याः] प्रथमं चक्रं माहेश्वर्या द्वितीयकम् ॥ ९ ॥

कौमार्याश्च तृतीयं तु वैष्णव्यास्तु चतुर्थकम् ।
वाराह्याः पञ्चमं प्रोक्तम् ऐन्द्र्या षष्ठं वरानने ॥ १० ॥

चामुण्डायाः सप्तमं चक्रं चण्डिकायास्तथाष्टमम् ।
महालक्ष्म्यास्तु नवमं यामलं तु द्विपञ्चकम् ॥ ११ ॥

नवात्मानं महादेवि द्वादशं परिकीर्तितम् ।
दूतीचक्रं वरारोहे नित्यक्लिन्ना तथापरम् ॥ १२ ॥

एकवीरामहाचक्रं निग्रहं च त्रिपञ्चकम् ।
दुर्गाचक्रं ततो देवि षोडशं परिकीर्तितम् ॥ १३ ॥

हेला लीला तथा दोला उच्छुष्मा च चतुष्टयम् ।
उपचक्रा मयास्था[ख्या]ताश्चक्रबाह्ये प्रपूजयेत् ॥ १४ ॥

हेला कापालिकीचक्रं लीला वागेश्वरीमतम् ।
दोला वै सौगतं चक्रं उच्छूष्मं मातङ्गिनी मतम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मीचक्रं तु पूर्वेण माहेशी दक्षिणे प्रिये ।
कौमारी पश्चिमे पूज्या वैष्णवी चान्तरे तथा ॥ १६ ॥

वाराही अग्निदिग्भागे ऐन्द्री नैर्ऋत्यगोचरे ।
चामुण्डा वायवे पूज्या चण्डिका ईशगोचरे ॥ १७ ॥

महालक्ष्मी तु मध्यस्था चक्राणां च क्रमो ह्ययम् ।
हेला तु दक्षिणे पूज्या लीला पश्चिमगोचरे ॥ १८ ॥

लीला तु उत्तरे देवि उच्छुष्मां पूर्वतो यजेत् ।
वेदीं कृत्वा यजेद्देवि एकैकास्तु यथा क्रमात् ॥ १९ ॥

त्रयोदशकरं रम्यं नवहस्ता चतुष्टिका ।
चतुर्द्वारं चतुष्कोणं पताकातोरणान्वितम् ॥ २० ॥

मण्डलं सर्वतोभद्रं सर्वेषां चक्रमध्यतः ।
एकाशीति च योगिन्यो मूलचक्रे प्रपूजयेत् ॥ २१ ॥

दशमं भैरवं पूज्य शक्तिस्थं यामलं प्रिये ।
विघ्नेशं बटुकं देवि कुमारौ द्वौ प्रपूजयेत् ॥ २२ ॥

महोत्सवस्तु कर्तव्यः शङ्खदुन्दुभिनादितः ।
नाना भक्ष्याणि दिव्यानि खानपानान्यनेकधा ॥ २३ ॥

नानालङ्कारसंयुक्ता नानावस्त्रविभूषिताः ।
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं पञ्चरात्रिकम् ॥ २४ ॥

षट्सप्ताष्टनवरात्रं वा यजेदात्मार्थसिद्धये ।
आँ ह्राँ ब्रह्माणि योगिनीं पूजयेत्क्रमशः प्रिये ॥ २५ ॥

इँ ह्रीं चैव माहेशीं योगिनीं च समर्चयेत् ।
ऊँ ह्रूँ च इति कौमारीं योगिनीं पूजयेत्प्रिये ॥ २६ ॥

ऋँ हूँ च एव वैष्णव्या नवैते पूजयेत्क्रमात् ।
लृँ हैँ वाराह्य[हि] देवेशि नवैते कामदा यजेत् ॥ २७ ॥

एँ ह्रीँ इन्द्राणि संपूज्य नानायोगिनि पूजयेत् ।
ओँ ह्रौँ चामुण्डा आद्यस्तु नवभिः संप्रपूजयेत् ॥ २८ ॥

अँः हँ चण्डिका पूज्या क्रमेण नवभिः प्रिये ।
उँ लौँ क्षाँ ह्रीँ नमः······················ ॥ २९ ॥

मध्यचक्रं प्रपूज्येत लक्षादौ क्रमशः प्रिये ।
उँकारादि नमश्चान्ते मूलं चक्रं प्रपूजयेत् ॥ ३० ॥

ब्राह्मी चैव तु अक्षोभ्या ऋक्षकर्णी च राक्षसी ।
क्षयाक्षया च चिपिटा कृष्णा वै कृष्णलालसा ॥ ३१ ॥

ब्रह्माण्या योगिनी पूज्या नवभिर्भैरवैर्युता ।
असिताङ्गसमायुक्ता स्वसिद्धिफलकाङ्क्षया ॥ ३२ ॥

हेला लीला तथा गुप्ता लुप्ता लङ्का तथा परा ।
लङ्केशी लालसा देवी विमला माहेश्वरी परा ॥ ३३ ॥

रुरुनाथसमायुक्ता नवमीं मध्यतो यजेत् ।
हुताशनी विडालाक्षी हुँकारी वडवामुखी ॥ ३४ ॥
सिंहला भैरवी चैव क्रोधनामा भयावहा ।
कौमार्या च समायुक्ता चण्डनाथसमन्विता ॥ ३५ ॥
मध्यदेशे प्रपूज्येत चक्राधिष्ठितनायिकाः ।
सर्वज्ञा रेवती शान्ता ऋग्वेदा च भयानना ॥ ३६ ॥
विक्रान्ता विश्वरूपा च तथा चैव सरस्वती ।
वैष्णव्या सहिता देवी क्रोधनाथसमन्विता ॥ ३७ ॥
तालजङ्घा बृहत्कुक्षिर्विद्युज्जिह्वा भयङ्करी ।
मेघनादा प्रचण्डा च कालकर्णी तु रूपहा ॥ ३८ ॥
वाराह्या च समायुक्ता भैरवोन्मत्तसंयुताः ।
चक्रमध्ये प्रपूज्यैता इच्छासिद्धिप्रदायिकाः ॥ ३९ ॥
चम्पा चम्पावती चैव प्रलया प्रलयान्तिका ।
पश्चानना पिशाची च पिशिताशी च लोलुपा ॥ ४० ॥
ऐन्द्री च नवमी देवी कपालीशसमन्विता ।
मध्यचक्रे प्रपूज्यैताः शत्रुनिर्नाशिनीः पराः ॥ ४१ ॥
वामा च रामणी चैव वामना विकृतानना ।
वायुवेगा परा उग्रा चित्तानन्दा स्वरूपिणी ॥ ४२ ॥
चामुण्डा नवमी देवी भीमनाथेन संयुता ।
मध्यचक्रे प्रपूज्यैताः शत्रुनिर्नाशिनीः पराः ॥ ४३ ॥
कालहन्त्री कुला चण्डा प्रचण्डा चण्डनायिका ।
पिशिताशी च फेत्कारी सिंहनादा तथाष्टमी ॥ ४४ ॥
चण्डिका नवमी देवी मेघनाथसमन्विता ।
यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया तु जयन्तिका ॥ ४५ ॥

उल्हका रेवती चैव पूतना च तथाष्टमी ।
महालक्ष्मी तु नवमी संहारभैरवान्विता ॥ ४६ ॥

चक्रमध्यस्थिता पूज्या सर्वकामार्थसिद्धिदा ।
एकाशीतिक्रमं पूज्य देशिकेन वरानने ॥ ४७ ॥

पुत्रकामी वरारोहे ब्राह्मीचक्रं प्रपूजयेत् ।
महेश्याः सिद्धिकामाय कौमार्या रिपुनाशने ॥ ४८ ॥

वैष्णवी[व्याः] राज्यकामाय वाराह्याः सैन्यदारणे ।
परराष्ट्रजयार्थाय ऐन्द्रीचक्रं प्रपूजयेत् ॥ ४९ ॥

उपसर्गेषु रौद्रेषु देशभङ्गे कुलक्षये ।
महाभये समुत्पन्ने चामुण्डाचक्रं पूजयेत ॥ ५० ॥

संग्रामे दुर्गमे घोरे परराष्ट्रेण पीडने ।
चण्डीचक्रं प्रपूज्येत प्रयत्नात् जयकाङ्क्षिभिः ॥ ५१ ॥

राष्ट्रभ्रष्टे श्रियाहीने शत्रुवर्गेण पीडिते ।
पूजयित्वा[येच्च] वरारोहे लक्ष्म्याश्चक्रं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

सौभाग्यार्थनिमित्तेषु क्लिन्नाचक्रं प्रपूजयेत् ।
शत्रुनिग्रहकार्येषु दूतीचक्रं यजेत्सुधीः ॥ ५३ ॥

महासिद्धिनिमित्तार्थम् एकवीरां प्रपूजयेत् ।
पापसंदहनार्थाय मुक्तिकामजिगीषया ॥ ५४ ॥

नवात्मानं प्रपूज्येत यथा च दिग्विभागशः ।
गन्धपुष्पादिभिर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसंयुतैः ॥५५॥

चन्दनाक्षतकाश्मीरैरगरुमृगनाभिकैः ।
पुष्पमालाम्बरैर्दिव्यैर्हारकुण्डलकङ्कणैः ॥ ५६ ॥

आसवैर्विविधाकारैः भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ।
हेमकुम्भैः सुसंपूर्णैं रक्तवस्त्रादिना युतैः ॥ ५७ ॥

ताम्रजैर्मृण्मयैर्वापि चूतपल्लवशोभितैः ।
पञ्चरत्नसगर्भैश्च सुगन्धैर्वारिपूरितैः ॥ ५८ ॥

वितानोपरि संछन्ने चक्रपीठे मनोहरे ।
काद्यकम्बुकृतैः पात्रैः क्रमं त्वत्रावतारयेत् ॥ ५९ ॥

पूजयेत्तत्क्रमात् सायमुद्धरित्वा महामतिः ।
महादुर्गनिमित्त्य[त्ते]र्थे सङ्कटे शत्रुपीडिते ॥ ६० ॥

संग्रामे दुर्जये घोरे महाव्याधिप्रपीडिते ।
दुर्भिक्षे देशभग्ने च गजअश्वप्रपीडिते ॥ ६१ ॥

दुर्गाचक्रं प्रपूज्येत सर्वशान्तिनिमित्तये ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः सर्वकामसमन्वितः ॥ ६२ ॥

प्राप्नोति ईप्सितान्कामान्मनसा यत्समीहते ।
सर्वकामसमापन्नः सर्वरोगविवर्जितः ॥ ६३ ॥

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः सर्वसत्त्वविवर्जितः ।
अनेन विधिना देवि यस्तु देवीं प्रपूजयेत् ॥ ६४ ॥

शत्रवो विलयं यान्ति इच्छासिद्धिः प्रवर्तते ।
वर्णान्तस्थौ समुद्धृत्य कीटं तस्यासने स्थितम् ॥ ६५ ॥

क्रमशो भेदयेद्देवि स्वरैकैकमनुक्रमात् ।
बिन्दुना भूषितं कृत्वा वाग्भवादौ प्रपूजयेत् ॥ ६६ ॥

ब्रह्माण्यसिताङ्गयुक्ता पूर्वादौ यामलं यजेत् ।
सर्वोपचारसंयुक्तं सबलिं यस्तु पूजयेत् ॥ ६७ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति वाञ्छितार्थं लभेद् ध्रुवम् ।
प्रथमं योगिनीचक्रं द्वितीयं यामलं स्मृतम् ॥ ६८ ॥

तृतीयं भैरवं चक्रं चक्राम्नायप्रकाशितम् ।
एका तु योगिनी यत्र वीराश्चैव असंख्यकाः ॥ ६९ ॥

योगिनीतंतु[चक्रं] विज्ञेयं चक्राम्नाये वरानने ।
भैरवोऽप्येको यत्रास्ते योगिन्यश्च असंख्यकाः ॥ ७० ॥

भैरवं तत्तु विज्ञेयं चक्रं वै वीरनायिके ।
भैरवं भैरवीयुक्तं यामलं तत्तु कीर्तितम् ॥ ७१ ॥

सर्वकाले प्रपूज्येत देशिकः सिद्धिमिच्छता ।
चक्राम्नायमजानंश्च यस्तु चक्रं प्रपूजयेत् ॥ ७२ ॥

निष्फला तु क्रिया तस्य उक्तार्थं नैव सिद्ध्यति ।
विपरीतफलं तस्य देवतानां प्रकोपनम् ॥ ७३ ॥

व्याधिः शूलं ज्वरं दाहं देशोच्छेदं कुलक्षयम् ।
आचार्यस्य भवेद्देवि साधकः सिद्धिहानिकृत् ॥ ७४ ॥

विधियुक्तं प्रकुरुते आगमार्थविदस्तु यः ।
स प्राप्नोत्युत्तमां सिद्धिं यथोदितं मया पुरा ॥ ७५ ॥

सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थमभीष्टफलमाप्नुयात् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रदारार्थसिद्धिदम् ॥ ७६ ॥

महाक्लेशोपशमनं सर्वदुःखविनाशनम् ।
संक्षेपेण मया तुभ्यं चक्राम्नायं प्रकाशितम् ॥ ७७ ॥

संस्फुटं विधिसंयुक्तम् अप्रज्ञस्य प्रबोधनम् ।
वीरभोज्यं प्रकर्तव्यं बहिर्बलिं ततः क्षिपेत् ॥ ७८ ॥

यक्षराक्षसभूताश्च वेतालाः क्षेत्रपालकाः ।
डाकिन्यश्च तथा रामाः पूतनाः कठपूतनाः ॥ ७९ ॥

पीठजाः क्षेत्रजाश्चैव कुलजाश्च विशेषतः ।
नानारूपधराश्चान्ये योगिन्यो बलवत्तराः ॥ ८० ॥

नानादेशनिवासिन्यो अस्मिंश्चक्रे समागताः ।
समयार्थिन्य येचान्ये[याश्चान्याः]तथा च बलिकांक्षिणीः ॥८१॥

तृप्यन्तु आसवैर्दिव्यैर्गन्धपुष्पादिफल्गुपैः ।
तृप्ता ददन्तु कामानि वाञ्छितार्थप्रदाः शुभाः ॥ ८२ ॥
इति भूपबलिं दद्याद् यावच्चक्रं प्रवर्तते ।
चक्राम्नायमिदं गुह्यं मयाख्यातं सुदुर्लभम् ।
किमन्यत् पृच्छसे देवि तदहं कथयामि ते ॥ ८३ ॥

श्रीदेव्युवाच

अथ मे गहनं नष्टम् अज्ञानतिमिरापहम् ।
त्वत्प्रसादेन मे नाथ चक्राम्नायं श्रुतं मया ॥ ८४ ॥
कथं देवी परा सूक्ष्मा महंतारी महाद्भुता ।
कथयस्व प्रसादेन स्थूला सूक्ष्मा यथा स्थिता ॥ ८५ ॥

श्रीभैरव उवाच

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा अनन्ता व्यापिनी कला ।
अवर्णा वर्णसंभूता द्वादशान्ता तु वर्तिनी ॥ ८६ ॥
मयूरचन्द्रिकाकारा चक्षुरग्रे व्यवस्थिता ।
भ्रमन्ती परमा व्योम्नि इच्छाकारैः परापरैः ॥ ८७ ॥
अनन्तविग्रहा देवी महंतारी च मुक्तिदा ।
वर्णदा वर्णरूपा सा विद्या पञ्चदशाक्षरा ॥ ८८ ॥
अवर्णा वर्णसंभूता वर्णान्ता वर्णसंस्थिता ।
मातृकावर्णसंभूता विद्या पञ्चदशाक्षरा ॥ ८९ ॥
तामहं कथयिष्यामि वर्णरूपा यथा स्थिता ।
सद्योजातं समुद्धृत्य क्रूरानन्देन भूषितम् ॥ ९० ॥
भुजङ्गं सूक्ष्मसंयुक्तं क्रूरानन्दशिरोहता[त]म् ।
प्रचण्डं सूक्ष्मसंभिन्नं सोमेशं सूक्ष्मसंयुतम् ॥ ९१ ॥
महाकालीं ततोद्धृत्य क्रूरानन्देन भूषितम् ।
प्रचण्डं सूक्ष्मिणा भिन्नं सोमेशं सूक्ष्मसंयुतम् ॥ ९२ ॥

क्रोधीशं च वरारोहे बालीशानन्दसंयुतम् ।
दारुकं च ततः पश्चाद्बालीशस्यासनस्थितम् ॥ ९३ ॥

युग्ममेतत् प्रकर्तव्यं क्रोधीशं क्रूरसंयुतम् ।
अनन्तेन समाक्रान्तं बीजमेकादशं प्रिये ॥ ९४ ॥

दारुकानन[न्त]संयुक्तं बालीशं केवलं विदुः ।
वकीशं च समुद्धृत्य खड्गीशासनसंयुतम् ॥ ९५ ॥

अनन्तेन समाक्रान्तं लकुलीशमतः परम् ।
अनन्तेन समाक्रान्तं प्रणवाद्यं च षोडशम् ॥ ९६ ॥

महंतारी महाविद्या लक्षपादाधिके मते ।
वर्णिता तत्र ते सम्यग् अत्र स्वल्पमुदाहृतम् ॥ ९७ ॥

नीलोत्पलदलश्यामा सिन्दूरारुणविग्रहा ।
दीपयन्ति[न्ती] जगत्सर्वमुदयादित्यवर्चसम् ॥ ९८ ॥

षड्वक्त्रा च त्रिनेत्रा च किरीटमुकुटोज्ज्वला ।
वज्रकुण्डलसंयुक्ता द्वादशैश्च भुजैर्युता ॥ ९९ ॥

लम्बोदरा लम्बस्तनी हारनूपुरमण्डिता ।
कपालमालाभरणा सर्वावयवशोभिता ॥१००॥

सर्वलक्षणसंपूर्णा नितम्बाढ्या विरलद्विजा ।
शूलं च कर्तरी खड्गं नागराजं च कार्मुकम् ॥१०१॥

वरदं दक्षिणे देवि वामे चैव यथा शृणु ।
कपालं डमरुं पाशं शक्तिं खट्वाङ्गतोमरम् ॥१०२॥

रत्नमाला गले बद्धा वर्णहारावलम्बिनी ।
एवं ध्यात्वा महामाया शृङ्गाटपुरमध्यगा ॥१०३॥

नव पञ्च विधि[धै]र्द्रव्यैरर्चिता पूजिता प्रिये ।
बटेन्दुकुसुमैर्दिव्यैर्धूपदीपादि चासवैः ॥१०४॥

नवलक्षकृते जाप्ये महंतार्या सदोदितम् ।
दशांशेन तु होमेन तृप्ता सासवमिश्रितैः ॥१०५॥
ततः सिद्धिं लभेन्मन्त्री सेवनाद्गतचेतसाः ।
पातयेच्छैलवृक्षांश्च शोषयेज्जलधीश्वरम् ॥१०६॥
वाचासिद्धिं पुरक्षोभं सैन्यस्तम्भं जलप्लवम् ।
नावादिशकटस्तम्भं अग्निस्तम्भाशनिस्तथा ॥१०७॥
राजोन्मत्तवृषं वाथ गजोन्मत्तहयं तथा ।
शोषयेत् सर्व बीजानि फलपुष्पादिकर्षणम् ॥१०८॥
निर्बीजीकरणं स्तम्भं मोहनं कीलनं प्रिये ।
प्रतिमाजल्पनं स्तोभं भूत्यागं च कवित्वता ॥१०९॥
पुरप्रवेशमावेशं दूराच्छ्रवणमेव च ।
अतीतानागतं देवि पृष्टोऽसौ कथयिष्यति ॥११०॥
नानारूपधरत्वं च नानाविज्ञानकारकम् ।
सृष्टिसंहारकर्तासौ खेचरादिप्रसाधनम् ॥१११॥
सर्वज्ञत्वं कवित्वं च सर्वस्याकृतिकारकम् ।
कुशेश्वरपदं याति महंतार्या हृदि स्थिता ॥११२॥
अनेकाश्चर्यकर्तारं सेवनात्सिद्धिरिष्यते ।
विद्या कामदुघा धेनुरनेकार्थप्रदायिनी ॥११३॥
सकृत्स्मरणमात्रेण सर्वावस्थासु सिद्ध्यति ।
अप्रकाश्या शठे क्रूरे भक्तिहीने अनार्यवे ॥११४॥
अशक्ते व्यसनी[ने] क्रूरे गुरुहीने समयच्युते ।
अपरीक्षितेषु यो दद्याद् द्रव्यलाभेन वा प्रिये ॥११५॥
पतिते नरके घोरे इत्याज्ञा पारमेश्वरी ।

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं देव मया सर्वं महंतार्या गुणोदयम् ॥११६॥

चर्याधरो गुणानन्दः कथं पर्यटते महीम् ।
केषु स्थानेषु आश्रित्य चर्याधारणतत्परम्[रः] ॥११७॥

श्रीभैरव उवाच

साधु देवि समाख्यामि चर्याधारणलक्षणम् ।
चर्या चाष्टविधा प्रोक्ता ज्ञातव्या देशिकेन तु ॥११८॥
खड्गं शूलं च खट्वाङ्गम् अट्टहासं च मुद्गरम् ।
जयन्ती पाशं विज्ञेयं चरित्रा चाङ्कुशं प्रिये ॥११९॥
चक्रमेकाम्रकं प्रोक्तं देविकोदं[ट्टं] धनुःश[स]रम् ।
प्रयागं शिर इत्युक्तं वरणा भ्रुवमण्डलम् ॥१२०॥
कोल्हापुरं नासिकाग्रम् अट्टहासं हृदि स्थतम् ।
जयन्ती नाभिदेशे तु चरित्रा गुह्यमण्डले ॥१२१॥
एकाम्रकं तु लिङ्गस्थं देविकोट्टं तु पादयोः ।
एतानि स्थानान्याश्रित्य भ्रमेच्चर्याधरः सदा ॥१२२॥
स्रङ्मालालङ्कृतो योगी एकाकी भ्रमते सदा ।
योगारूढस्तु तन्त्रे च मदिरानन्दनन्दितः ॥१२३॥
मदिरायाः पराशक्ती रञ्जयेच्च जगत्त्रयम् ।
आनन्दं तत्समत्वं हि मदिरानन्दचेतसः ॥१२४॥
सिद्ध्यन्ते नात्र सन्देहो यथा भैरवमब्रवीत् ।
ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ॥१२५॥
नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेता[न्न]स तत्त्ववित् ।
अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि अवस्था ज्ञानबोधिका ॥१२६॥
घोषिणी पिङ्गला चैव विद्युन्माला च चन्द्रिणी ।
मनोनुगा च सुकृता सौम्या चैव निरञ्जना ॥१२७॥
निरालम्बा तथा देवी अन्या चैव महाबला ।
हेला लीला तथा दोला बोधा बोधवतीति च ॥१२८॥

निरालम्बाः समाख्याता एताः प्रत्यक्षमातरः ।
आज्ञासिद्धिप्रदातारा आज्ञासिद्धिः कुलान्वये ॥१२९॥
घोषिणी घोषमार्गस्था शिखा धूम्रा च पिङ्गला ।
रात्रौ द्योतयते शुक्लं विद्युन्मालेति चोच्यते ॥१३०॥
चन्द्रिणी चन्द्रगर्भेण मनोबिन्दुर्मनोऽनुगा ।
उन्मीलिताक्षं यत्पीतं सुकृतेति उदाहृता ॥१३१॥
कंसध्वन्या तथा सौम्या घण्टाशब्दा निरञ्जना ।
हंसाख्या तु निरालम्बा किङ्किण्यां तु महाबला ॥१३२॥
गुददेशे तु जायेत यदा सिद्धिप्रदायिका ।
घोषमार्गे तु यो हंसो हेलानामा निगद्यते ॥१३३॥
तस्य मध्ये तु या लम्बा लोला भाव्या प्रकीर्तिता ।
लीला वै आणवा प्रोक्ता खेचरत्वप्रदायिनी ॥१३४॥
चि[ची]त्कृतं कर्णदेशे तु बोधा बोधवतीति सा ।
आचातकं समित्याहुर्मायारूपा तु बोधनी ॥१३५॥
कुण्डलीति समाख्याता रुद्रशक्तिस्तु बिन्दुगा ।
गगने दृश्यते या तु प्रभाकारे तु सुप्रभा ॥१३६॥
अखण्डमण्डलाकारं द्योतयन्तं नभस्थलम् ।
अचलं तन्मयाख्यातमचलत्वेन संस्थिता ॥१३७॥
एतावस्थाः समाख्याता उद्यन्ति क्रमेण तु ।
आज्ञा तत्परभावज्ञो सुगुरोर्गुरुपूजकः ॥१३८॥
तस्य सिद्धिर्भवत्याशु नान्यना[शा] वीरवन्दिते ।
कथितं सरहस्यं तु संक्षेपात् सुरसुन्दरि ॥१३९॥
किमन्यत्पृच्छसे दुर्गे कथयामि तव प्रिये ।

श्रीदेव्युवाच

चरुकस्य च किं पुण्यं प्रोषितेन क्षणान्वयी ॥१४०॥
प्राशितेन फलं ब्रूहि साधकस्य महात्मनः ।

श्रीभैरव उवाच

अतिगुह्यतरं प्रश्नं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥१४१॥
महासिद्धिकरं विद्ये चरुकं द्वैतलक्षणम् ।
पूजितं च क्रमं दिव्यं त्रिकालं वीरवन्दिते ॥१४२॥
एकान्ते विजने रम्ये गुरुशिष्यसमन्विते ।
अटव्यापि करं दिव्यं दिव्यादिव्यं प्रपूज[ज्य]ते ॥१४३॥
पूजिते परमे ज्येष्ठे गुरुं[रौ] कौलागमं[मे] प्रिये ।
भूमौ जानुद्वयं प्राप्य चरुकं प्राशयेत्ततः ॥१४४॥
अलिमीनाद्यपिशितैः पूर्णपात्रं तु प्राशयेत् ।
त्रिपात्रं प्राशयेद्देवि यथा पूर्वं मया कृतम् ॥१४५॥
उच्चार्य परमां विद्यां कुब्जिनीं कुलनायिकाम् ।
मुद्रां कपालिनीं बद्ध्वा भैरवाज्ञामनुस्मरेत् ॥१४६॥
श्रीनाथ त्वत्प्रसादेन भैरवी तव दुष्कृतम् ।
भस्मसाद्यान्तु देवेशि तवाज्ञया मम प्रभो ॥१४७॥
अनेन विधिना देवि चरुं प्राश्य प्रयत्नतः ।
तेन प्राशितमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥१४८॥
गोहत्यायाः सहस्रैकं लक्षैकं ब्रह्महत्यायाः ।
भस्मसात्कुरुते शीघ्रं यथारण्ये हुताशनम् ॥१४९॥
सप्तजन्मार्जितं पापं दुष्कृतं यदुपार्जितम् ।
भस्मसात्कुरुते क्षिप्रं कोटराग्निर्यथा द्रुमम् ॥१५०॥
सर्वरोगविनिर्मुक्तः सर्वदोषविवर्जितः ।
मुक्तपाशो भवत्याशु यथा सर्पेव कञ्चुकम् ॥१५१॥
अश्वमेधसहस्राणि अग्निष्टोमशतानि च ।
तत्फलं तस्य देवेशि चरुकस्य शरीरगम् ॥१५२॥

योगिन्यस्तस्य तुष्यन्ति ईप्सितं लभते ध्रुवम् ।
सर्वसौभाग्यमाप्नोति सर्वकामफलं लभेत् ॥१५३॥

आज्ञा तीव्रतरा तस्य सर्वसिद्धयोरुहो भवेत् ।
सर्वे मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति कामैव च वदन्ति ते ॥१५४॥

ममाकामतना ये च तथा सवथ वत्सले [?] ।
योगिनीगर्भसम्भूता जाता वै पश्चिमे गृहे ।
प्राप्नुवन्ति च ते भद्रे चरुकं योगिनीप्रियम् ॥१५५॥

श्रीदेव्युवाच

श्रुतं देव मया नाथ चर्यावस्था च लक्षणम् ।
चरुकस्य च माहात्म्यं श्रुत्वा पापं व्यपोहति ॥५६॥

त्वत्प्रसादेन देवेश मया ज्ञातं सुनिश्चयम् ।
कुलजानां महेशान पवित्रारोहणं कथम् ॥१५७॥

कस्मिन् काले प्रकर्तव्यं कृतेनैव तु किं फलम् ।
विधिना केन कर्तव्यं यथोक्तं वद शूलधृक् ॥१५८॥

श्रीभैरव उवाच

पुरा देवासुरैर्देवि क्षीरोदो मथितो यदा ।
तत्र नेत्रं महाभागे कश्यपस्य सुतोषणी[सुतः फणी] ॥१५९॥

मन्थानं योजितो भद्रे विषमूर्छितविग्रहः ।
नगक्षो नलस्यान्तेव [?] वर्षासु वसितुं तदा ॥१६०॥

तेन चाराधितो देवि पवित्रेण महात्मना ।
दिव्यवर्षसहस्रं तु वायुभक्षो महाबलः ॥१६१॥

तुष्टोऽहं तस्य देवेशि किंकर्तव्यं पुरोदितम् ।
ततोऽसौ दण्डवद्भूमौ मम पादाग्रतः स्थितः ॥१६२॥

प्रावृट्काले न शक्नोमि तलान्ते वसितुं हर ।
ततः सोऽपि महादेवि कराभ्यां गृह्य भूतलात् ॥१६३॥

शिरसा धारितो देवि जटाजूटे वरानने ।
ततः सर्वैस्तु देवैस्तु शिरसा धारितः शुचिः ॥१६४॥

दशकोटिस्तु पूजानां पवित्रारोहणं विना ।
वृथा दीक्षा वृथा ज्ञानं गुर्वाराधनमेव च ॥१६५॥

हरते नागराजस्तु विना देवि पवित्रिकाम् ।
वृथा परिश्रमं तस्य यो न कुर्यात्पवित्रिकाम् ॥१६६॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यं कुलजे प्रिये ।
आषाढस्य सिते पक्षे मिथुनस्थे दिवाकरे ॥१६७॥

तदलाभे तु कर्तव्यं कर्कटस्थे वरानने ।
अविरोधेन कर्तव्यं यावत् स्यात्तुलपूर्णिमा ॥१६८॥

कृतयुगे हेमसूत्रं तु त्रेतायां रौप्यजं प्रिये ।
द्वापरे ताम्रसूत्रं तु कार्पासं तु कलौ युगे ॥१६९॥

पद्मसूत्रं कौशजं च पट्टसूत्रमतः परम् ।
सर्वेषां चैवालाभे तु कर्तव्यं सूत्रमुत्तमम् ॥१७०॥

कुमारीकर्तितं शुक्लं सुसमं निर्व्रणं शुभम् ।
पञ्चविंशत्पलान्याहुः तदलाभात्तदर्द्धकम् ॥१७१॥

कर्तव्यं च प्रयत्नेन सुधौतं शुभवारिणा ।
त्रित्रिकं त्रिगुणीकृत्य नवतन्तु यथोदितम् ॥१७२॥

तन्तुभिर्देवतोद्दिष्टा तथाहं कथयामि ते ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री कालिका कालनाशिनी ॥१७३॥

अरुणा घोषदेवी च सुभगा भोगदायिका ।
नवैते[ताः] परमा देव्यस्तन्तुरूपा व्यवस्थिताः ॥१७४॥

अष्टाधिकं शतं तन्तून् षोडशाङ्गुलमानतः ।
ग्रन्थि द्वात्रिंशतिर्बद्धा सममानेन संस्थिता ॥१७५॥

ग्रन्थिभिर्देवता देवि स्थितास्ता दिव्यमातरः ।
चण्डा घण्टा तथा नासा सुमुखी दुर्मुखी बला ॥१७६॥

रेवती प्रथमा घोरा सौम्या भीमा महाबला ।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥१७७॥

महोत्कटा विरूपाक्षी शुष्का चाकाशमातरः ।
संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती ॥ १७८॥

पिपीलिका शस्यहारी असनी पुष्पहारिका ।
भद्रकाली सुभद्रा च भद्रभीमा सुभद्रिका ॥१७९॥

ग्रन्थिरूपाः स्थिता देव्यः सर्वकामफलप्रदाः ।
तदर्धे तु द्वितीयं स्यात् तदर्द्धेन तृतीयकम् ॥१८०॥

षोडशाष्टौ प्रदातव्या ग्रन्थीन् पङ्क्तिक्रमेण तु ।
रोचना कुङ्कुमैर्दिव्यैर्ग्रन्थ्यन्तरसुरञ्जिताः ॥१८१॥

तत्र तन्तुशतं कुर्यादेकाधिकगुरोर्मतम् ।
पूजापि अधिकं चास्या प्रतिपूज्य तु राधिकाम् ॥१८२॥

अष्टाधिकं शिवस्योक्तं योगिनीनां षडुत्तमम् ।
विद्यापीठस्य सर्वस्य कुर्यात्तन्तु षडुत्तरम् ॥१८३॥

पादुकानां प्रकर्तव्यं गुरुवद्यादर्शं मतम् ।
अष्टात्रिंशद्गुरोरुक्तं बटुकस्य तथैव च ॥१८४॥

अष्टविंशति विघ्नेशे कर्तव्यं च यथाक्रमम् ।
बाहुदण्डप्रमाणेन अष्टाधिकशतं प्रिये ॥१८५॥

अष्टत्रिंशद्ग्रन्थ्या चैव वडमाला सुरञ्जिता ।
अथवा रंजितं सूत्रं कार्पासिकमथापि वा ॥१८६॥

शुक्लं सूत्रं समादाय त्रिगुणं त्रिगुणी कृतम् ।
तेन तन्तुशतं कुर्याद् ग्रन्थिसंख्या च तन्तुकाः ॥१८७॥

अष्टादशां गुहां वापि कारयेदथवा प्रिये ।
श्रीकण्ठादिषोडशैश्च क्रोधादौ चतुर्विंशति ॥१८८॥

अष्टाविंशति ग्रन्था वै तन्तुसंख्यां तु कारयेत् ।
एवं निष्पादयित्वा तु यागं कृत्वा वरानने ॥१८९॥

अधिवास्य प्रयत्नेन नित्यनैमित्तिकं यजेत् ।
कुलकुम्भं प्रपूज्येत वर्द्धन्या सहितं प्रिये ॥१९०॥

चूतपल्लवसंपन्नो[न्नं] सहिरण्यो[ण्यं] सहृक्षके [?] ।
वस्त्रालङ्कारशोभाद्यैः शुक्लस्रग्दाममालितौ[नम्] ॥१९१॥

यज्ञस्थानं सुशोभाढ्यं वस्त्रैश्च परिवेष्टितम् ।
कवचेनाभिमन्त्रयित्वा पश्चात्सूत्रेण वेष्टयेत् ॥१९२॥

चूतपल्लवमालाभिः द्वारतोरणशोभितम् ।
गन्धपुष्पादिभिर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसंयुतैः ॥१९३॥

अक्षतैः शुक्लपीतैश्च रक्तकृष्णैस्तथापरैः ।
अनेन विधिना देवि पवित्राण्यधिवासयेत् ॥१९४॥

स्वयं तत्र शुचिर्भूत्वा क्षीराशी च दृढव्रतैः ।
गन्धपुष्पादिसंयुक्तं धूपदीपसमन्वितम् ॥१९५॥

नित्यपूजा प्रकर्तव्या नैमित्तिकं ततो यजेत् ।
पार्श्वपूजा प्रकर्तव्या वह्न्यादौ गुरुमण्डले ॥१९६॥

कुलकुम्भं च विघ्नेशं अस्त्रवर्द्धनिकां बटुम् ।
पूजयित्वा तथात्मानं सहितं समयैर्जनैः ॥१९७॥

अर्चयित्वा च विधिवत् पवित्रकमथाददेत् ।
स[सु]धूपधूपितां[तं] कृत्वा पुष्पाक्षतसमन्विताः [तम्] ॥१९८॥

मन्त्रयुक्तो न्यसेद्देवि विद्यापीठे पवित्रकम् ।
त्रिखण्डान्तं समुच्चार्य वडमालामधिरोपयेत ॥१९९॥

अनेन विधिना देवि कर्तव्यं च पवित्रकम् ।
गुरुं च पूजयेत् पश्चाद्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥२००॥

वाहनानि विचित्राणि शय्यापट्टासनादिकम् ।
ग्रामखेटकरत्नाद्यैरन्नपानादिसंस्कृतैः ॥२०१॥

तोषयेद् गुरुं यत्नेन सिद्धिर्भवति नान्यथा ।
तुष्टेन गुरुणा देवि तदा तुष्येत भैरवम् [वः] ॥२०३॥

गीतं नृत्यं प्रकर्तव्यं भक्त्या चैव वरानने ।
प्राप्ताः समयिनो ये वै न[ते]च पूज्याः प्रयत्नतः ॥२०३॥

सप्तवासरमेवं तु त्रीणि वाप्येकमेव वा ।
वीरक्रीडा प्रकर्तव्या संपन्नं भवति प्रिये ॥२०४॥

तत्पवित्रं वरारोहे कृत्वा चैव क्षमापयेत् ।
बहुयज्ञफलं देवि बहुतीर्थफलं लभेत् ॥२०५॥

दानधर्मास्तु देवेशि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
पवित्रं परमं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥२०६॥

तेन कार्यमिदं देवि कुलाचार्यैर्वरानने ।
लङ्घनं समयानां तु कर्मसिद्धिं विना कृतम् ॥२०७॥

ते दोषा नाशमायान्ति पवित्रेण वरानने ।
वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं यथाविभवविस्तरम् ॥२०८॥

वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं इहैव कुलशासने ।
शाठ्ये यः कुरुते कर्म न तत्सिद्धिफलं लभेत् ॥२०९॥

एवं ज्ञात्वा वरारोहे वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।
पवित्रकं मयाख्यातं संक्षेपान्न तु विस्तरात् ॥२१०॥

शुक्लपक्षे द्वितीयायां वैशाखस्य तथा पुनः ।
कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां नभस्य नवमी पुनः ॥२११॥

आश्विने शुक्लपक्षस्य पौर्णिमा फाल्गुने मता।
आषाढे श्रावणे चैव भाद्रपद्यां तथैव च ॥२१२॥
शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां कर्तव्यं तु पवित्रकम्।
आत्मवित्तानुसारेण उत्तमं मध्यमाधमम्।
गुरुपर्वमिति ख्यातं पालनीयं कुलाम्बिके ॥२१३॥
युगादयः समाख्याता अत्र पीठावतारणम्।
पीठमार्गक्रमायातं आगमोऽयं तदेव हि ॥२१४॥
आगमं पूजितं येन पूजितं ज्ञानसागरम्।
उक्तभेदक्रमाम्नायं त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥२१५॥
ज्येष्ठं मध्यं कनिष्ठं तु उक्तसंज्ञा वरानने।
अष्टाविंशं वरारोहे सप्तविंशति मध्यमे ॥२१६॥
सप्तविंशत्कनिष्ठे तु क्रमभेदं वरानने।
गगनं कुमुदं पद्मं उक्तनाथ[थाः] प्रकीर्तिताः ॥२१७॥
अनिषां[मीषां] सन्ततिर्जाता लक्षकोटिरसंख्यका।
कथितं तन्त्रमावर्ण्यं संक्षेपाच्छृणु निर्णयम् ॥२१८॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि तव भक्त्या कुलाम्बिके।
यस्त्विदं[मं] मतराजानं लिखापयति भक्तितः ॥२१९॥
आगमोक्तविधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः।
तस्य यद्भवते पुण्यं तच्छृणुष्व कुलाम्बिके ॥२२०॥
गवां कोटिप्रदानस्य यज्ञकोटिशतस्य च।
सर्वतीर्थाभिषेकेण त[य]त्पुण्यं भवते नये ॥२२१॥
तत्पुण्यं भवते तस्य श्रीमतोत्तरलेखनात्।
अश्वमेधसहस्रस्य अग्निष्टोमशतस्य च ॥२२२॥
यष्टस्य यत्फलं देवि तद्भवेन्मतलेखनात्।
पश्वश्रो[स्रो]तोद्भवा ये च तन्त्राण्युक्ता मयानघे ॥२२३॥

ते सर्वे मतराजस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
श्रीमन्मतोत्तरं देवि देशे यत्रैव तिष्ठति ॥२२४॥

तद्देशं भवते पूतं पुरं पीठसमं भवेत् ।
गृहं चन्द्रपुरं देवि मतराजप्रभावतः ॥२२५॥

त्रिकालं मण्डलोत्थानं कृत्वा भक्तिसमन्वितः ।
पूजयेद्यस्तु देवेशि लभते खेचरं पदम् ॥२२६॥

मण्डलीको नरेन्द्राणां प्रियो भवति नित्यशः ।
आरोग्यं चैव सौभाग्यं यशः कीर्तिश्च वर्द्धते ॥२२७॥

सर्वान् कामानवाप्नोति तत्फलं श्रीमतोत्तरे ।
किं वर्णितेन देवेशि वारं वारं पुनः पुनः ॥२२८॥

तिष्ठते च गृहे यस्य पूजितं चर्चितं शुभम् ।
त्रिकालमेककालं वा नानापुष्पैः सुगन्धिभिः ॥२२९॥

जातीमल्लिकरवीरैः यूथीनीलोत्पलैः शुभैः ।
वेइल्ल [?] कुन्दपुष्पैश्च श्वेतरक्तोत्पलैस्तथा ॥२३०॥

सेफालिकाभिर्यूथीभिरन्यैः पुष्पैर्मनोरमैः ।
नित्यं पूजयते देवि श्रीखण्डैः कुङ्कुमादिभिः ॥२३१॥

धूपामोदसुगन्धाद्यैः दिव्यैरगरुकादिभिः ।
पूजान्ते च कुमार्योऽष्टौ चत्वारो[चतस्रो] द्वेऽथ चैकिका॥२३२॥

तस्य श्रीर्वर्द्धते नित्यं भवते सर्वदा सुखी ।
आरोग्येण विभूतिश्च अरिष्टं नैव जायते ॥२३३॥

निर्विघ्नं जायते तस्य सर्वकार्येषु नित्यशः ।
शान्तिकं पौष्टिकं चैव न च मारी प्रवर्तते ॥२३४॥

अचिन्तितानि चार्थानि भवन्ति च न संशयः ।
खेचरीभूचरीदेव्यो योगिन्यो या व्यवस्थिताः ॥२३५॥

योगजाः कुलजाश्चैव सहजाश्च विशेषतः ।
नित्यमेव हि तिष्ठन्ति आशीर्वादपरायणाः ॥२३६॥
देवतास्तस्य तुष्यन्ति ददन्ति मनसेप्सितम् ।
यावज्जीवेत् सुखी देवि अन्ते याति परं पदम् ॥२३७॥
कथितं तव देवेशि संक्षेपात् श्रीमतोत्तरे[रम्] ।
अथान्यत्परमोपायं सिद्धपर्यायशासने ॥२३८॥
दिव्यसिद्धिप्रदातारं दिव्यभाषोदितं प्रिये ।
गोपनीयं प्रयत्नेन जननीजारगर्भवत् ॥२३९॥
तन्त्रसारमिदं गुह्यं सरहस्यं सुसिद्धिदम् ।
भुक्तिदं मुक्तिदं देवि सर्वसंशयछेदकम् ॥२४०॥
तत्र पीठानि क्षेत्राणि संदोहानि च सिद्धिदाः ।
तत्र विद्याश्च मन्त्राश्च तत्र दिव्याश्च योगिनीः ॥२४१॥
सिद्धयो विविधास्तत्र यत्र तिष्ठेन्मतोत्तरम् ।
सर्वविघ्नविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः ॥२४२॥
सर्वद्वन्द्वविहीनश्च शत्रुतो न भयं भवेत् ।
पूजनात्तन्त्रराजस्य लभते शाश्वतं पदम् ॥२४३॥
त्रिकालं मण्डलं कृत्वा तन्त्रसारं प्रपूजयेत् ।
पूजनात्सिद्धिमाप्नोति तुष्यन्ति च मरीचयः ॥२४४॥

इति श्रीमन्महामन्थानविनिर्गते सप्तकोट्यर्बुदे स्वच्छन्दशक्त्याऽवतारिते
गोरक्षसंहितायां शतसाहस्रखण्डान्तर्गत-श्रीमतोत्तरखण्डे
कादिभेदे कुलकौलिनीमते नवकोट्यवतारभेदे
श्रीकण्ठनाथावतारे विद्यापीठे योगिनीगुह्ये
सप्तविंशतितमः पटलः ॥ २७ ॥

॥ सम्पूर्णं शुभम् ॥

* श्रीः *

सङ्केतग्रहणी

(कु० ना०)	=	कुलनायिका
(यो०)	=	योगिनी
(श०)	=	शक्तिः
(क०)	=	कला
(दू०)	=	दूती
(वि०)	=	विद्या
(मु०)	=	मुद्रा
(भै०)	=	भैरवः
(मा० मू०)	=	मातृकामूर्तिः
(दे०)	=	देशः
(उ० क्षे०)	=	उपक्षेत्रम्
(उ० पी०)	=	उपपीठम्
(पी०)	=	पीठम्
(सं०)	=	संदोहः
(द्वा०)	=	द्वारपालः
(गणे०)	=	गणेश्वरः
(बी०)	=	बीजम्

गोरक्षसंहितायाः कादिप्रकरणस्य

परिशिष्टम् (क)

पारिभाषिकशब्दानुक्रमणी

—०❀०—

परिशिष्टम् (ख)

नामानुक्रमणी

—:०:—

परिशिष्टम् (ग)

समागतग्रन्थानां नामानुक्रमणी

—:○:—

परिशिष्टम् (घ)

आयुधानुक्रमणी

परिशिष्टम् (ङ)

साधनोपयुक्तोपकरणानुक्रमणी

सुसङ्ग्राह्याः तन्त्रशास्त्रीयाः पालिभाषामयाश्च ग्रन्थाः

क्रमसं० ग्रन्थनाम — मूल्यम्

१. **नित्याषोडशिकार्णवः**—ग्रन्थरत्नमिदम् ऋजुविमर्शिन्या, अर्थरत्नावल्या च व्याख्यया विभूष्य विदुषा सम्पादकेन बहु परिश्रम्य, अनुसन्धाय च सम्पादितम्। ग्रन्थोऽयं म० म० गोपीनाथकविराजमहोदयानाम् आङ्ग्लभाषालिखितोपोद्घातेन समलङ्कृतः — २५-००

२. **तन्त्रसङ्ग्रहः**—[प्रथमद्वितीयभागात्मकः] योगतन्त्रग्रन्थमालायाश्चतुर्थपुष्परूपमिदं ग्रन्थरत्नं निर्वाणतन्त्र-तोडलतन्त्र-कामधेनुतन्त्र-फेत्कारिणीतन्त्र-ज्ञानसङ्कलिनीतन्त्र-सवृत्तिकदेवीकालोत्तरागमेति षड्ग्रन्थसङ्ग्रहरूपम्। विमर्शप्रधानया भूमिकया पाठान्तरेण च विभूषितोऽयं ग्रन्थो म० म० गोपीनाथकविराजमहोदयैः सम्पादितः —
प्रथमभागस्य—१६-००
द्वितीयभागस्य—१७-००

३. **महार्थमञ्जरी**—[श्रीमहेश्वरानन्दप्रणीता] परिमलाख्यस्वोपज्ञव्याख्याविभूषितमिदं ग्रन्थरत्नं विदुषा सम्पादकेनानुसन्धानिकैः भूमिकाटिप्पणीपरिशिष्टादिभिः सनाथितम्— १७-५०

४. **त्रिपुरारहस्यम्**—ज्ञानखण्डमात्रम्। तन्त्रशास्त्रसर्वस्वभूतमिदं ग्रन्थरत्नं श्रीनिवासभट्टविरचिततात्पर्यदीपिकाख्यया व्याख्यया परिमण्डितम्, अथ च म० म० गोपीनाथकविराजमहोदयानां सम्पादनेन सनाथितम्— ६-००

५. **लुप्तागमसङ्ग्रहः**—[प्रथमो भागः] ग्रन्थोऽयं तत्तत्तन्त्रशास्त्रग्रन्थेषु तत्तद्ग्रन्थनाम्ना उद्धृतानां वचसां सङ्ग्रहरूपः, अथ च विदुषा सम्पादकेन म० म० गोपीनाथकविराजमहोदयेन विनिर्मितया टिप्पण्या भूमिकया तत्तत्परिशिष्टैश्च परिमण्डितः — १२-००

६. **विसुद्धिमग्गो**—[बुद्धघोषाचार्यविरचितः] भागत्रयात्मकोऽयं ग्रन्थो भदन्ताचारियधम्मपालत्थेरकृतपरमत्थमञ्जूषानाम — विसुद्धिमग्गमहाटीकासमेधितः, अथ च विदुषा सम्पादकेन गवेषणागर्भभूमिकया विभूषितः — प्रथमभागस्य—३६-००
द्वितीयभागस्य—३२-००
तृतीयभागस्य—२७-००

७. **अभिधम्मत्थसंगहो**—[अनिरुद्धाचार्यप्रणीतः] पालिभाषामयोऽयं ग्रन्थः अभिधर्मप्रकाशिन्या व्याख्यया हिन्दीभाषानुवादेन च समलङ्कृतः, अथ च पाठभेद-पादटिप्पणी-भावार्थ-तुलनात्मकटिप्पणीसन्निवेशेन गवेषणामूलकभूमिकाऽनुक्रमण्यादिभिश्च सुसमेधितः — प्रथमभागस्य—१५-००
द्वितीयभागस्य—२०-००

प्रकाशकः-निदेशकः, अनुसन्धानसंस्थानम्, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी-२२१००२
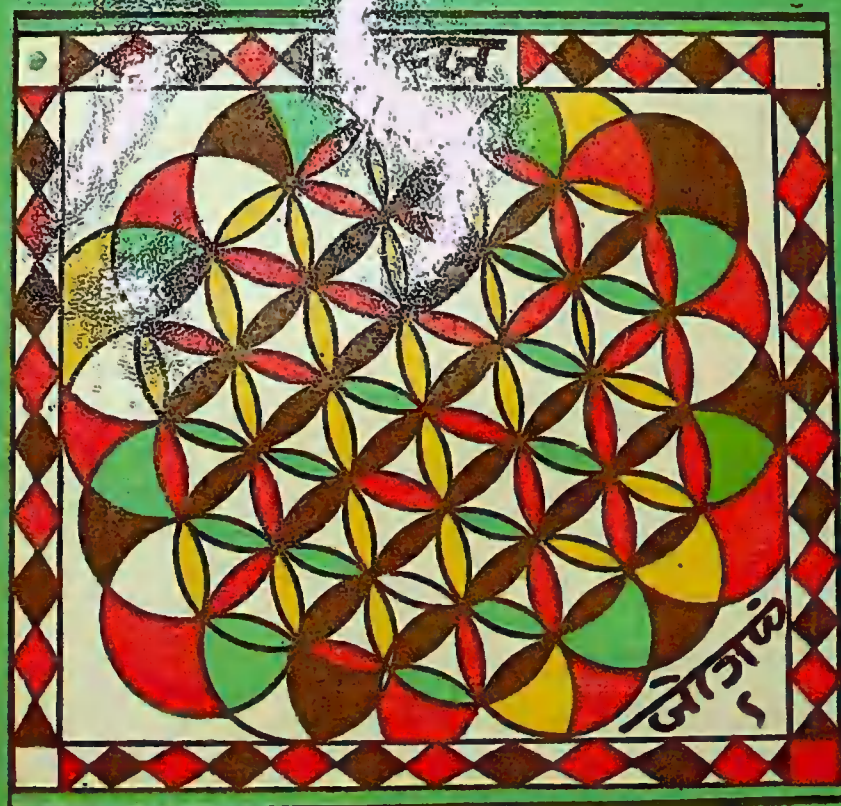
संत कबीर का सहजयोग

गंगाशरण शास्त्री

- **संत कबीर का सहजयोग** अखिल कबीर पंथ प्रधानाचार्य संत श्री गंगाशरण शास्त्री की मौलिक कृति एवं संकलन है। लेखक स्वयं साधु और साधक हैं अतः इस पुस्तक में शास्त्रीय ज्ञान और आत्मानुभव का सुन्दर संयोग उपस्थित हुआ है। इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि योग के विस्तृत किन्तु परस्पर असम्बद्ध ज्ञान को कबीर और कबीरपंथ के सन्दर्भ में नियोजित ढंग से सम्पादित किया गया है।

- सहजयोग और सहजाचार भारतीय चिन्तन के क्षेत्र में आकस्मिक चीजें नहीं हैं। सहजयानी बौद्धों से लेकर, नाथों, सिद्धों अर्थात् कबीर-पूर्ववर्ती साधकों ने 'सहज' की यथावसर व्याख्या की है। लेकिन ये सारी व्याख्याएँ और सन्दर्भ अत्यन्त अमूर्त और रहस्यमय हैं। लेखक आचार्य गंगाशरण शास्त्री ने इस अमूर्त ज्ञान को मूर्त और स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

- सहज, साधना भी है, दर्शन भी है, विचार भी है साथ ही योग की जटिलताओं का सरलीकरण भी है। प्रायः इस सरलीकरण और सर्वसुलभ साधना की ओर लोगों का ध्यान नहीं गया है। लोग कबीर को भी हठ योगी एवं कृच्छ साधना निपुण संत समझते रहे हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि संत कबीर ने योग को सर्वसुलभ बनाया। उन्होंने बताया कि अपना कर्म करते हुए श्रमिक रूप में साधना की उपलब्धियाँ सम्भव हैं। कबीर की उपलब्धि योग को रहस्यमय हठ योग और विशेष लोगों की दुनिया से बाहर निकालने में है।

संत कबीर का सहजयोग
एवं
कुण्डलिनी जागरण योग

लेखक

आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री

सम्पादक : विवेक दास

सह-सम्पादक : व्यास मुनि दास

कबीरवाणी प्रकाशन केन्द्र, वाराणसी

कबीर पंथ के पुनरुद्धारक उन विश्व वन्द्य
श्री सद्‌गुरु कबीर पथ प्रधानाचार्य
सम्मान्य श्री रङ्गी साहब को
सादर समर्पित

प्रोत्साहन

'संतकबीर का सहजयोग' आश्रम के तपस्वी साधु और अध्यवसायी विद्वान् गंगाशरणदास के विद्याभ्यास का परिणाम है। आश्रम की व्यवस्था से सम्बद्ध अनेक कार्य करते हुए भी वे अध्ययन-चिंतन का कार्य करते रहते हैं। इधर कई वर्षों से अस्वस्थ रहने के क्रम में उन्हें योग की महिमा का बराबर स्मरण आया। औषधि-उपचार के साथ योगोपचार का भी उन्होंने प्रयोग किया। यह पुस्तक उसी उपचारयात्रा के क्रम में लिखी गयी।

अनुभव और विद्या के सुन्दर संयोग के कारण यह पुस्तक, पंथ के साधकों और बाहरी विद्वानों के लिए उपकारक है। इसके प्रकाशन से मुझे प्रसन्नता है। स्नेह विश्वास और मेरे सद्भाव उनके साथ रहते ही हैं। इनमें अपनी प्रशंसा भी जोड़ता हूँ।

कबीर जयन्ती
२८ जून १९८०

आचार्य महंत अमृतदास
कबीरचौरा मठ, वाराणसी
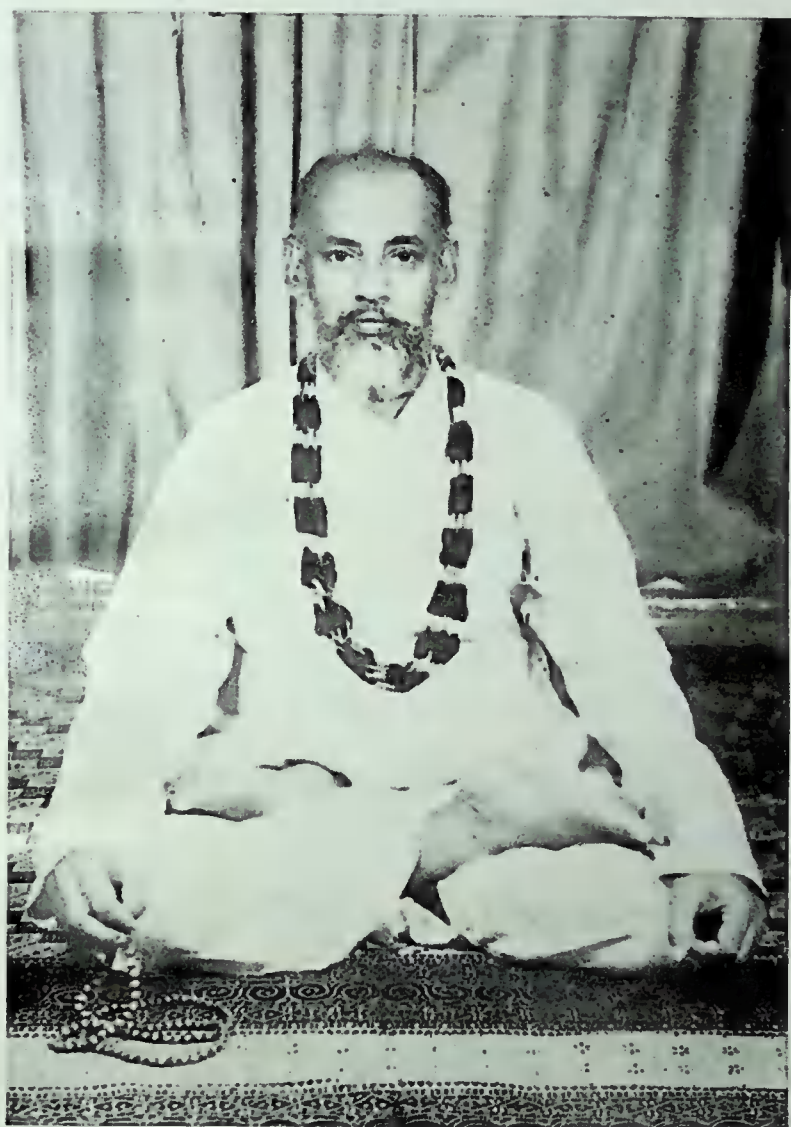
आचार्य महन्त श्री गंगाशरण शास्त्री

भूमिका

सहजयोग पुस्तक का पुनः प्रकाशन किया जा रहा है। योग के नाम पर बहुत सारी पुस्तकें लिखी गयी हैं। जन भावना को ध्यान में रखकर यह पुस्तक लिखी गयी है। पुस्तक में वे सभी वस्तुएँ लगभग आ गयी हैं, जो योग के नाम पर समाज में प्रचलित हैं।

प्राचीन युग से योग का महत्त्व बहुत रहा है। यहाँ तक कि विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद से पूर्व भी योग विद्यमान था। योग के ग्रन्थों व पुराणों में योग के प्रथम आचार्य हिरण्य गर्भ को माना गया है। वे हिरण्यगर्भ कौन थे कहना कठिन है। परन्तु वेद और पुराणों के अनुसार सृष्टि के मूलभूत प्रथम पुरुष हैं, और वेदों में बहुत से मंत्र हिरण्यगर्भ की स्तुति करते हैं। भारतीय मान्यता के अनुसार हिरण्यगर्भ ने अग्नि, वायु आदि ऋषियों को योग का उपदेश दिया था जिनके द्वारा आजपर्यन्त भारतीय समाज में योग प्रख्यात है। अथर्ववेद की संहिता में योग का उल्लेख हुआ है। जिन यौगिक क्रियाओं और यौगिक कलाओं का अन्वेषण नवीं शताब्दी में हुआ है उसका उल्लेख संक्षिप्त रूप से अथर्ववेद के कई मंत्रों में हुआ है। जैसे—अष्ट चक्र एवं नवद्वार का, हिरण्यमय कोश का, पुनः कमलों का जो अष्ट कमल के नाम से जाने जाते हैं, उल्लेख हुआ है और उस हिरण्यमयकोश में अपूर्व पुरुष यक्ष विद्यमान है जिसको ब्रह्मविद् ही जानते हैं। इसी प्रकार से अग्निपुराण, विष्णुपुराण, सौरपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, गरुड़पुराण, मार्कण्डेयपुराण, लिङ्गपुराण होते हुए योग वाशिष्ठ एवं गीता में योग का पूर्ण निखार आ गया है।

कबीर साहब ने भी योग का उल्लेख स्थल-स्थल पर किया है। यहाँ तक कि उन्होंने सहज योग एवं सहज ध्यान के साथ हठयोग की क्रियाओं का भी उल्लेख किया है। क्योंकि उनके बीजक ग्रन्थ में कई स्थान पर योग का उल्लेख हुआ है। वे बीजक के शब्द प्रकरण में कहते हैं कि 'ध्यान धनुष ज्ञान बाण योगेश्वर सर साधे' और 'सहजे मूल बाँधे खट चक्र बेधि कदल बेधि जाय उजियारी कीन्हा'। यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि मूल बेध की बात आयी है साथ ही षट्चक्र

और कमल बेधने की भी बात आयी है। इसके बाद अन्य दूसरे शब्द में गोरी मुख का उल्लेख हुआ है जो गोरी कुण्डलिनी का एक नाम है और उसके मुख में मर्दल बजने की बात कही गयी है और एक ही बाण में षट्चक्र बेधने की बात भी कही गयी है, पुनः योगी रजोगुण का नास करके गगन मण्डल में विराजमान होता है और योगी के यहाँ प्रतिदिन अमावस्या एवं ग्रहण होते रहता है और सुषुम्णारूपी राहु जो इड़ा और पिंगलारूपी सूर्य-चन्द्रमा को ग्रास कर जाता है, राहु यहाँ पर सुषम्णा का दूसरा नाम है, पुनः खेचरी मुद्रा का उल्लेख सद्गुरु कबीर करते हैं "सुरभी भक्षण करत बेद मुख"। इसी प्रकार से त्रिकुटी में जो कुण्डल है, वह मण्डलाकार है, उसके मध्य में योगी को अनाहत शब्द के श्रवण होते हैं और पुनः योगी अपान वायु को प्राण वायु में मिलाता है, जो बहुत आश्चर्यकारी है, 'पुहमी का पनिया अम्मर भरिया, ई अचरज कोई बूझे' और इसकी फलश्रुति जो है—काम, क्रोध को नास कर योगी भँवर गुफा को पार करता हुआ सहस्रार में जा पहुँचता है और 'उल्टी गंग समुद्र ही सोखे, ससि औ सूरहि ग्रासे' अर्थात् गंगारूपी कुण्डलिनी जो मूलाधार में स्थित है, जब वह जाग जाती है तो समुद्ररूपी मन के विकार को शोषण कर जाती है। पुनः इड़ा और पिंगला का ग्रास करके सुषुम्णा का द्वार खोल देती है उसी द्वार से होती हुई मेरुदण्ड को पार कर, जिसको पश्चिम दिशा भी कहा गया है, इससे होती हुई सहस्रार में जा विराजती है। इसी प्रकार से बीजक के बसन्त प्रकरण में प्राणायाम से पापनास की बात सद्गुरु ने बताया है "पनिया आदर धरनि लोय, पौन गहे कसमलिन धोय।' अर्थात् प्राण वायु को निरुद्ध करके स्थिर रखना योगी के लिए परम कर्तव्य है। प्राणायाम के द्वारा योगी के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसका मन निर्मल हो जाता है। इसी प्रकार से कहरा प्रकरण में स्पष्ट रूप से सहज योग का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं कि 'सहज ध्यान रहु सहज ध्यान रहु' ध्यान योग का ही दूसरा नाम है और अगली पंक्ति में कहते हैं कि 'भोगेहु भोग भुक्ति जनि भूलेहु, योग जुक्ति तन साधेहु हो।' उन्होंने योग युक्तियों के साथ तब मन साधने की भी बात कही है। तन साधने का दूसरा अर्थ आसन प्राणायाम आदि से है। ऊपर सारी बातों का उल्लेख करने का तात्पर्य यह कि सद्गुरु कबीर ने भी सहज योग के साथ ही शरीर स्वस्थ रहने के लिए हठयोग की प्रक्रियाओं का भी दिग्दर्शन कराया है। योग सम्बन्धी जानकारी कबीर साहब को व्यापक रूप से है यह बीजक में प्रकट हुआ है। इसी प्रकार से उनके दूसरे ग्रंथों में भी जैसे—कबीर वाणी (कबीर ग्रंथावली) में व्यापक रूप से योग का उल्लेख हुआ है 'सुन्य मण्डल में घर किया उलटि पवन कहाँ राखिए' और 'मूल द्वारे बेध्या बन्धु

रवि ऊपर गहि राख्या चन्दु, पश्चिम द्वारे सूरज तपे मेरु दण्ड सिर ऊपर बसे।
खिड़की ऊपर दसवाँ द्वार, कहि कबीर ताके अन्त न पार।

उतरे पवन खट चक्र वेधा, मेरुदण्ड सर पूरा।
गगन गरजि मन सूंनि समाना, बाजे अनहद तूरा॥

इत्यादि प्रकार के पद कबीर वाणी में भरे पड़ें हैं जिनका सम्बन्ध सहज योग और हठयोग दोनों से हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि हठयोग का कबीर साहब ने विरोध किया है। किन्तु कबीर वाङ्मय में मुझे कहीं भी विरोध दिखाई नहीं देता है।

कबीर साहब का विरोध केवल योग के द्वारा प्राप्त शक्ति के दुरुपयोग से है। कबीर साहब ने व्यावसायिक योग का विरोध किया है। जो लोग रोजी-रोटी का माध्यम बनाकर योग शक्ति का दुरुपयोग करते हैं उन्हीं लोगों पर कबीर साहब का प्रहार हुआ है। कबीर साहब ने कहीं भी योग और योगी की आलोचना नहीं की है प्रत्युत उभय की प्रशंसा ही की है। कबीर साहब स्वयं एक महान् योगी थे। इस प्रकार के योगी युगों में एकाध ही होते हैं। कबीर साहब ने कई बार मूल बंध पर जोर दिया है। मूल बंध तीनों बंधों में सर्वश्रेष्ठ है। यदि मूलबंध की सिद्धि योगी को हो जाय तो अन्य दो बन्ध अपने आप लग जाते हैं एक बात और ध्यान देने योग्य है, कि मूल बन्ध जितना सिद्धासन से लगता है उतना अन्य किसी आसन से नहीं लगता है।

मूल द्वार के ऊपर बहत्तर सहस्र नाड़ियों का एक कन्द है जो पायु एवं उपस्थ के बीच में अवस्थित है। यही सभी नाड़ियों का मूल केन्द्र है। इसी कन्द से पूरे शरीर की नाड़ियाँ निकली हैं। इन बहत्तर सहस्र नाड़ियों में विशेष कर बारह नाड़ियाँ मुख्य हैं—इनके नाम हैं, ब्रह्म, इड़ा, पिंगला, गान्धारी, हस्त, जिह्वा, अलम्बुपा, पयस्विनी, कुहु, राका, संखिनी, वज्रा, चित्रिणी और संयुक्त रूप से तेरहवीं 'नाड़ी' सुपुम्णा कही गयी है। इन त्रयोदश नाड़ियों में पाँच नाड़ी मुख्य हैं—इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, चित्रा, ब्रह्म नाड़ी और इन पाँच में तीन प्रधान हैं, इड़ा, पिंगला, सुपुम्णा। इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा समस्त प्राणियों के लिए अति महत्त्वपूर्ण हैं। इड़ा पिंगल का काम मानव को जीवन शक्ति प्रदान करना और सुपुम्णा राहु रूप होकर इन्हीं सूर्य चन्द्र नाड़ियों को भक्षण करके योगी के आत्मप्रदेश में ले जाती है। जब सुषुम्णा योगी के वश में हो जाती है तब कुण्डलिनी का मुख खुलने में सहायक होती है। इसलिए सुषुम्णा का स्थान अतिमहत्त्वपूर्ण है। इसी प्रकार दो नाड़ियाँ जो और हैं जिनका नाम ब्रह्म नाड़ी

एवं चित्रा नाड़ी है जो कुण्डलिनी के समीपस्थ मानी जाती है। ध्यान रहे कि चित्रा नाड़ी के अन्तर्गत ब्रह्म नाड़ी है और ब्रह्म नाड़ी के अन्तर्गत कुण्डलिनी है। ये नाड़ियाँ पश्चिम द्वार में अवस्थित हैं, मूल कन्द से जगी हुई कुण्डलिनी ब्रह्म नाड़ी के अन्दर होती हुई पश्चिम मार्ग से परिगमन करती हुई ब्रह्म रन्ध्र में प्रवेश कर सहस्र दल कमल पर जा विराजती है, वहीं पर आत्मा रूपी शिव से मिलकर योगी को सहजावस्था में कर देती है।

स्वानुभूति एवं योग ग्रन्थों में भी इन नाड़ियों का पूर्ण महत्त्व दर्शाया गया है। ये पाँच नाड़ियाँ जब तक योगी के अधीन नहीं होती हैं तब तक योगी को कोई सफलता नहीं मिल सकती और न योगी अपान वायु को प्राण वायु में मिलाने में समर्थ ही हो सकता है। जो योगी नित्य प्राणायाम एवं ध्यान में लगा रहता है, कुछ काल के बाद इन पाँचों नाड़ियों की गति को जान जाता है। इसके बाद ही योगी असम्प्रज्ञात समाधि अवस्था में स्थित होता है। निर्विकल्पक अवस्था होने पर योगी पूर्णत्त्व को प्राप्त कर लेता है। सभी साधनों की फलश्रुति आत्म-प्राप्ति है। जब तक आत्म-प्राप्ति नहीं होती है तब तक समस्त साधन निरर्थक हैं। इस बात को सभी योगियों ने स्वीकार किया है। इसलिए योग के सभी अंग-उपाङ्ग कर्तव्य हैं।

सद्गुरु कबीर ने कई प्रकार के योगों का दिग्दर्शन कराया है, कुछ लोग योग और ध्यान के विषय में विभिन्न प्रकार के मत प्रकट किये हैं, यह निश्चत है कि मानव का विकास योग से सम्भव है। बिना योग साधना से उन्नत नाड़ियाँ शुष्क हो जाती हैं जिसके कारण अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं, रोगों से बचने के लिए योगसाधना सबके लिए उपविहित है क्योंकि दैहिक शक्ति के विकास के लिए जितने प्रकार के साधन सम्भव होते हैं उनमें योग सर्वोत्तम है। इसलिए योग के द्वारा योगी विदेहावस्था में तथा आत्मा से परमात्मा की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है। मेरी जहाँ तक जानकारी है भारत वर्ष में ही उक्त योग का जन्म हुआ है, अन्य धर्मों एवं अन्य देशों में इस विद्या का सर्वथा अभाव था। भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ अध्यात्म ज्ञान का पूर्ण विकास हुआ है। इसीलिए इसे धर्म प्रधान देश कहा जाता है क्योंकि योग पूरे ब्रह्माण्ड को अणु और अणु को ब्रह्माण्ड में देखने के दर्शन के रूप में महत्त्व पा चुका है। इस योग दर्शन एवं साधना की सहायता से कई प्रकार की साधनाएँ एवं सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं जिसके द्वारा योगी समाज का बहुत बड़ा उपकार करता आया है। जैसे—रोग निवारण करना, संकल्प द्वारा आपत्ति को हटा देना

यह सब योग द्वारा सम्भव है, थोड़ी यह बात कठिन अवश्य है कि जन साधारण से योग थोड़ा दूर रहता है क्योंकि योग सिद्धि के लिए बहुत अधिक संयम की आवश्यकता होती है। जब तक संयम नियम में अपने को नहीं बाँधा जा सकता है तब तक योग सिद्धि बहुत दूर रहती है। योग सबको प्राप्त नहीं होता है क्योंकि उसकी भाषा और पद्धति बहुत दुरुह और गोपनीय है। गोपनीयता के ही चलते योग की अनेक साधनाएँ अब लुप्त होती चली जा रही हैं। योग एक व्यवस्थित विज्ञान है। इसके जानने एवं समझने में कुछ कठिनाई अवश्य है। इसके लिए पहुँचा हुआ गुरु होना अनिवार्य है। जब तक पहुँचा हुआ गुरु नहीं मिलता है तब तक जन-सामान्य ही नहीं प्रत्युत विद्वान् और विज्ञानी के लिए भी योग जटिल अवश्य है। योगशास्त्रों के अवलोकन से और योग की शब्दावली और भाषा को देखने से यह पता चलता है कि भारत का प्रथम श्रेणी का मस्तिक इस योगशास्त्र को विकसित करने के लिए लगातार प्रयत्नशील रहा है। इस योग के अनेक भाग तान्त्रिकों ने अलग ढंग से विकसित किया और शैव-शाक्त, बौद्ध-नाथ, जैन आदि ने दूसरे ढंग से योग के द्वारा अपनी सिद्धियों का वर्णन किया है। इस योग से केवल शरीर स्वस्थ ही नहीं, उन्मुक्त आत्मा से सम्बन्ध-साधनाएँ होती रही हैं, चाहे शव साधना हो या अष्ट-सिद्धियों की साधना, सभी योग द्वारा सम्भव बतायी जाती रही हैं। कुछ लोगों ने यन्त्र-मन्त्र को और उनके चमत्कारों को योग के अन्तर्गत ही माना है। वीराचार्यों, अघोरियों, सिद्धों, नाथों, बौद्धों, जैनों ने भी योग को अपने-अपने ढंग से प्रयोग किया है। इन्होंने अपने धर्म के प्रचार के लिए न केवल यथावसर योगियों की मण्डली खड़ी की प्रत्युत योग को धर्म के एक प्रचारक साधना की प्रतिष्ठा दी। भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कदाचित् कोई ऐसा धर्माचार धर्म गुरु हो जिसके विषय में योगी होने की बात प्रकारान्तर से नहीं कही गयी हो। इनमें भगवान् बुद्ध हों या भगवान् महावीर या मत्स्येन्द्र नाथ हों या गोरखनाथ, कबीर साहब हों या नामदेव सभी एक स्तर पर योगी थे। यह तथ्य तत् तत् सम्प्रदायों के द्वारा सिद्ध की जाती रही है। यहाँ तक कि श्री रामचन्द्र को, श्री लक्ष्मण को, श्री हनुमान जी को महान् योगी माना गया है और श्रीकृष्ण भगवान् को तो योगिराज ही कहा जाता है। भारतीय साधना तंत्र में महापुरुष या अति पुरुष होने के लिए योग अनिवार्य अवश्य है। योग के विषय में कहा गया है कि यह कई नामों से विख्यात है। इनमें हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग, क्रियायोग, तारकयोग, सूक्ष्मयोग, महाखण्डयोग, असम्प्रज्ञातयोग, सुरतियोग और लययोग आदि प्रमुख हैं। कर्मयोग, ज्ञानयोग और सहजयोग जैसे शब्दयोग प्रेरक शब्दावली

की लोकप्रियता के क्रम में आये हैं। योगियों को भी सम्प्राप्त, घटमान, सिद्ध, स्वसिद्ध, परिमित, अण्डभेदी, ब्रह्माण्डभेदी और प्रकृति अण्डभेदी नामों से स्मरण किया गया है। यह प्रसिद्ध है कि योग का कोई एक निर्धारित पथ नहीं रहा है और न योगियों का कोई एक मण्डली ही रही है।

योग की साधना के लिए अनेक प्रकार की दीक्षाएँ दी जाती रही हैं। इन दीक्षाओं के भी अनेक नाम हैं। अलौकि, दैवी, चाक्षुषी, मानसी स्पर्शवती, श्रौती, निर्वाणप्रद के साथ कला तत्त्व, पद मंत्र, वर्ण, भुवन, केवल, सकल, निष्कल, अघोरेश्वरी, लोकधर्मी, सबीज, निर्बीज, प्रायः इस प्रकार की दीक्षाएँ दी जाती रही हैं। इन दीक्षाओं के प्रभाव से मनुष्य देह की अनेक परिणतियाँ होती रही हैं जिन्हें योगशास्त्र में आत्म-देह, कर्म-देह, कारण-देह, चान्द्र-देह, दिव्य-देह, शाक्त-देह, सूक्ष्म-देह, सौर्य-देह, स्थूल-देह, काम-देह, कैवल्य-देह, भोग-देह, महासिद्ध-देह, मित्र-देह, वैन्दव-देह, ज्ञान-देह, भाव-देह, हंस-देह, लिंग-देह, विशुद्धज्ञानमय-देह आदि नामों से स्मरण किया जाता है। देह के ये सभी स्तर योग-साधना से सम्बन्धित होते हैं और योगी को अपनी साधना के अनुसार सूर्यधाम, चन्द्र-धाम, अग्नि-धाम, परम-धाम, गोलोक-धाम, परमानुत्तर-धाम आदि आवास स्थल अर्थात् भूमिकाएँ उपलब्ध होती हैं जिसमें ध्रुवपद, पशुपद, महाविश्रान्तिपद, विश्वविलयपद, शिवपद, शुद्ध महाविन्दुपद, समव्याप्तिपद, साम्यपद, उर्ध्वकुण्डलिनीपद, कैवल्यपद, समनापद, शुद्ध विद्यापद और अव्यक्तपद, क्रमानुसार योगी को प्राप्त होते हैं। योग विहित पदों की प्राप्ति के लिए साधन का माध्यम देह ही है।

मनुष्य का शरीर साधना के लिए सर्वोपयुक्त बताया जाता है कारण कि एक साथ ही भोग-देह और कर्म-देह दोनों हैं। वस्तुतः कहिए कि मिश्र-देह है। मिश्र-देहधारी मनुष्य जब योग में प्रवृत्त होता है, तो उसकी पात्रता को देखकर गुरु, साधक और योगी के रूप में वर्गीकरण करता है, पश्चात् यथोचित दीक्षाएँ देता हैं। साधक गुरु के द्वारा दिये हुए ज्ञान को अपनी सत्ता में सम्पूर्ण प्रकार से विस्तृत करता है जिससे उसके अज्ञान जन्य कर्म नष्ट हो जाते हैं। साधक की पूरी साधना इष्ट साधना की होती है, उसका इष्ट कुण्डलिनी शक्ति होती है, वह कुण्डलिनी को ही सिद्ध करता है। साधक की जहाँ साधना समाप्त होती है, अन्य दूसरों की, जो योगी नहीं है, अपनी साधना वहीं से प्रारम्भ करते हैं इसलिए योगी होने के लिए प्रथम साधक होना आवश्यक है क्योंकि योगी अति पुरुष होता है और वह जन्म-मरण से अतीत हो जाता है। जिसने पूर्ण साधना को सिद्ध नहीं किया है, केवल साधक है, तो द्वन्द्व से मुक्त तो होता है परन्तु

काल से नहीं, अपूर्ण साधक जन्म-मृत्यु के बाहर भी नहीं जा पाता, सिद्ध योगी अपने शरीर संस्थान को एक महा संस्थान में रूपान्तरित कर देता है तथा अपनी काया की विभिन्न नाड़ियों को अति लौकिक लक्ष के लिए समर्थ बनाता है। साधारण मांस-मज्जा से निर्मित उसकी सभी नाड़ियाँ साधना की भूमि में प्रवेश करते ही अपनी संज्ञा बदल देती हैं। पूर्व में कही हुई त्रयोदश नाड़ियों को धारण करने वाला व उनको वश में रखने वाला योगी साधक बन जाता है। यह योगी अनेक प्रकार की साधनाओं के साथ साधन करते हुए नाद-साधना से भी परे हो जाता है। नाद के समानान्तर तन्त्र शास्त्र के अनुसार विन्दु की भी व्याख्या श्रेष्ठतम है और पंच प्रणव और पंच समना से सम्बन्धित क्रियायें इसी साधना के अंग हैं। साधारणतः सारी साधनाएँ प्राणयाम एवं ध्यान साधना से सम्भव होती हैं परन्तु पूजा, पीठ, गुरु, प्रतिमा, प्रमाता, प्रलय, भक्ति, भाव इनके द्वारा समस्त प्रकार के कर्म भेदन व चक्र भेदन योग साधना से ही सिद्ध होते हैं वह योगी साधक तंत्र के अनुसार मणिद्वीप में वसता है। दस मण्डलों को पार कर लेता है और अनेक समाधियों में समाधिस्थ हो जाता है। यह स्पष्ट है कि योग की साधना सवके लिए अनिवार्य है, सभी को योग करना चाहिए, शरीर में स्थूल और सूक्ष्म अर्थात् इन्द्रियों और प्राण के सम्यक् समाहार से ही योग की प्राप्ति होती है। इसीलिए किसी भी दृष्टि में योग चित्त वृत्तियों का निरोधक है और अन्त में परम तत्त्व की प्राप्ति का भी कारण है। योग की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि गोपनीय और व्यक्तिगत साधना होते हुए भी इसे धर्म का बल और समाज का सामूहिक समर्थन और आकर्षण प्राप्त होता रहा है। क्योंकि योग में अपार शक्ति देखी गयी है। सिद्धों और नाथों तथा स्वयं कबीर साहब ने योग बल से ही सब पर विजय प्राप्त की है।

आध्यात्मिक सफलताओं के लिए योग मार्ग में यात्रा करना परमावश्यक है। यदि योग के व्यावहारिक पक्ष को छोड़ दिया जाय तो स्पष्ट ही योग एक अव्यावहारिक, रहस्यमय और बहुत दूर तक भयकारी जीवनादर्श हो जायेगा। इसलिए योग के दोनों पक्ष को साथ ही साथ चलाना चाहिए जिससे शरीर की स्वस्थता और आत्म-शुद्धि दोनों में सफलता मिलती है। सामान्य मनुष्य के मन में योग के प्रति श्रद्धा और भय एकत्र ही उपजते हैं। सिद्धों और नाथों ने तथा स्वयं कबीर साहब ने योग बल से ही प्रबल शक्ति अर्जित की थी जिसके बल पर क्रूर मानवीय संगठनों पर आघात कर सके और अन्य योगियों ने क्या किया उसका मूल्यांकन सम्भव नहीं है परन्तु सिद्धनाथ और सद्गुरु कबीर जैसे योगियों ने योग के द्वारा वह शक्ति प्राप्त की थी जिससे धार्मिक व्यवस्था के

प्रतिनिधि पुरोहितों या प्रशासनिक व्यवस्था के प्रत्येक शस्त्रधारी सैनिक सम्पन्न राजाओं की वे सहज ही उपेक्षा कर सके थे। उसी योग बल पर सद्‌गुरु कबीर ने लोदी सिकन्दर को पराजित किया था। यह बात बार-बार आयी है कि सद्‌गुरु कबीर सिकन्दर की परीक्षा में शुद्ध और शक्तिशाली प्रमाणित हुए थे। योगी शत्रुओं के द्वारा आग में जलाये जाने से नहीं जलता, पानी में डुबाये जाने से नहीं डूबता, हाथी के पाँव तले कुचलवाने पर नहीं कुचला जाता, और ऊँचे पर्वतों से नीचे फेंक दिये जाने पर अंग-भंग भी नहीं होता है और न ही मरता है। अर्थात् योगी का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। निश्चित रूप ने योग के द्वारा ऐसी शारीरिक शक्ति अर्जित करने की बात मान्य है जिनसे योगी प्रकृत और काल के सामान्य प्रभावों से शरीर को बचा लेता है। इसी प्रकार से एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ते, अपना शरीर छोड़ कर किसी मृतक के शरीर (परकाय) में प्रवेश भी योग के द्वारा सम्भव है। दीर्घ जीवन और अत्यन्त वृद्धावस्था में भी यौवन प्राप्त करने की महिमा तो योग के सम्बन्ध में बराबर देखी-सुनी जाती है। अतएव यह प्रमाणित है कि योग से सम्बन्धित विश्वास मनुष्य शरीर को अतिलौकिक, कालातीत बनाने में सक्षम है। योग के द्वारा अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। क्षण में सारे ऐश्वर्य एकत्र कर लेना, भोजन, शयन, आवास को योग शक्ति से उसी प्रकार से प्राप्त कर लिया जाता रहा है, जैसे यंत्र-मंत्र एवं तन्त्र के बल से सिद्ध लोग त्वरित कोई वस्तु मँगा लेते हैं। क्योंकि तन्त्र आदि का आधार ही योग है। यदि इन विश्वासों को प्रश्नांकित कर भी दिया जाय तो इतना तो स्पष्ट ही है कि योग-साधक या योगी में सामान्य व्यक्ति से अधिक बल होता ही है। शरीर को तोड़ने-मोड़ने, भूखा-प्यासा रखने में स्वस्थ और सजीव रखने की महत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके साथ ही योगी में निर्भयता, निःशंकता, सत्य बोलने की अपूर्व शक्ति देखी जाती है। अशिक्षित होने पर भी योगियों में अद्‌भुत प्रभावशाली वाणी की शक्ति पायी जाती है। वाणी का यह बल योग साधना के भीतर नादानुसन्धान से सम्भव होता है।

वाग् योग, एक प्रकार का योग ही है जिसे सुरति योग या शब्द योग कहा जाता है। मन्त्र जप योग की जो महिमा है वह नाद साधना का ही एक रूप है। सृष्टि के दो घटक जैसे—पत्थर और पत्थर-पत्थर और लोहा, ओंठ और ओंठ और बाँस की लकड़ी या बाँसुरी, हाथ और हाथ अथवा हाथ और वाद्य यन्त्र जब एक दूसरे को आहत करते हैं तो उच्चार या ध्वनन का यह रूप अनाहत नाद कहा जाता है। इसे कान के द्वारा सुना जाता है किन्तु बिना

प्रकृति के दो घटकों के टकराये कुण्डलिनी जगाकर सहस्रार की भूमि में जो ध्वनन या नाद होता है उसी को अनाहद नाद कहते हैं। योगी इसी नाद की साधना करता है। भक्ति में यही नाम जप है, तन्त्र में यही मन्त्र जप है, अनाहद नाद के 'सं-कार और 'हं'-कार दो वीज हैं', विन्दु युक्त 'ह'-कार (हं) पुरुष का विसर्ग युक्त 'स'-कार और (सः) प्रकृति का प्रतीक है, दोनों का जोड़ना ही 'हंस-सिद्धि' है। स्वाँस-प्रस्वाँस व्यापार, हंस रूप व्यापार का ही प्राण है। इसी प्राण के 'याम' से अनाहद नाद की साधना की जाती है। यह नाद साधना योग की अष्ट चक्र भेदन क्रिया से सम्पन्न होती है। मन-प्राण और कुण्डलिनी के नाड़ी-मार्ग में संचरण करने से विशेष प्रकार की ध्वनियाँ सक्रिय होती हैं और विशुद्ध चैतन्य का कपाट खुल जाता है। विशुद्ध चैतन्य के मुक्त हो जाने के पश्चात् वैखरी और मध्यमा वाक् की स्थितियाँ आती हैं। इन वाक्शक्तियों के प्रकट होने पर अविद्या समाप्त हो जाती है, वासना का अन्धकार नष्ट हो जाता है तथा चित्त भी शुद्ध हो जाता है। इसी शुद्ध चित्त से योगी जो कुछ भी बोलता है वह अत्यन्त प्रभावशाली तथा चिरकाल तक सजीव और प्रासंगिक होता है। सद्गुरु कबीर को योग की जो अन्य सिद्धियाँ प्राप्त रहीं वह आज भी जनश्रुति के रूप में प्रचलित हैं। यदि उस पर हम न भी विश्वास करें, किन्तु वाक् योग की सिद्धि तो अवश्य इसका प्रमाण है उनकी वाणी से प्राप्त होता है। वाक् योग के बिना उनकी वाणी में वह मन्त्र शक्ति आ ही नहीं सकती थी जो उसमें आज दिखाई देता है। वाक् योग की शक्ति से ही उनकी वाणी सुनकर हम निरुत्तर हो जाते हैं, उनके विरोधी आज भी कबीर नाम सुनकर घबड़ाते हैं। यह मानना पड़ेगा कि योग का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और योग के द्वारा समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। लोक में आज भी योग की महिमा अक्षुण्ण दीखती है। योग से ही समनावस्था से उनमनावस्था में योगी अपने चित्त को कर देता है और सदा सर्वदा के लिए जीवन मुक्त होकर अमर हो जाता है। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि गुरु के द्वारा योग का श्रवण करे और अपना कल्याण करके कृत-कृत्य हो जाय।

आज का मानुष समाज अति क्लान्त है, विश्राम चाहता है, परन्तु भौतिक उड़ान में बहुत आगे बढ़ जाने के कारण शान्ति प्रदायक योग से बहुत दूर हो गया है। इसलिए उसको शान्ति उपलब्ध नहीं हो रही है। हमारे अनेक योगेश्वरों, साधकों ने मानव को शान्ति प्रदान करने के लिए अनेक योग-ध्यान एवं आसन के ग्रन्थ लिखे हैं परन्तु इनमें कुछ ग्रन्थ तो अस्पष्ट हैं, कुछ ग्रन्थों की भाषा दुर्बोध्य हैं, कुछ के विषय भी अधूरे हैं। इन सब अभावों का अवलोकन कर

प्रस्तुत ग्रन्थ में यथा शक्य अनेक स्रोतों से सहायता लेकर वस्तु का प्रस्तुतीकरण हुआ है।

इस ग्रन्थ में सद्गुरु कबीर साहब के योग एवं ध्यान का विशद् वर्णन किया गया है। इसके पहले कबीर साहब का योग क्या है ? उनकी साधना की पद्धति क्या है और क्या थी ? लोग समझ नहीं पा रहे थे। यद्यपि बाहर के कुछ विद्वानों ने कबीर साहब के विचारों पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं परन्तु ये पुस्तकें तथ्यात्मक न होकर आलोचनात्मक हैं, इसलिए उन पुस्तकों से जिज्ञासुओं को समाधान नहीं हो पाता।

कबीर साहब को कुछ लोग ज्ञानाश्रयी निर्गुण वादी संत मानते हैं, कुछ लोग अद्वैतवादी मानते हैं, कुछ लोग सूफी साधना के सन्त मानते हैं, कुछ लोग समाज सुधारक मानते हैं। इस प्रकार से अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार लोगों ने कबीर साहब के विषय में कल्पना की है। कबीर पन्थ में भी कोई स्पष्ट योग और सिद्धान्त की पुस्तकें नहीं लिखी गयीं। किसी ने लिखा भी तो कबीर साहब को छोड़कर लिखा। पन्थान्तर मत में भी अद्वैतवादी, जीववादी आदि संज्ञाएँ साहब को दी गयीं और कबीर साहब को योग विरोधी भी बताया गया। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पंथ के लोगों ने भी कबीर साहब के विरुद्ध अनुचित काम न किया हो, और अपने-अपने ढंग का सिद्धान्त न खड़ा किया हो।

कबीर साहब को परखने के लिए और उन्हें जानने के लिए पूर्ण भारतीय अध्यात्म वाङ्मय देखना पड़ेगा और यह भी देखना पड़ेगा कि कबीर साहब किन स्रोतों से अधिक सहानुभूति रखते हैं क्योंकि उनका ज्ञान सर्वग्राही और अप्रतिम, दुर्गेय अवश्य है। जहाँ वे उलटवासियों का और प्रतीकों का आश्रयण लेते हैं वहाँ वे समझ से परे हो जाते हैं उस स्थिति में कबीर साहब का अध्येता परास्त होकर चुप हो जाता है। अपनी सारी क्षमता को अभाव ग्रस्त देखता है।

कबीर साहब की विचारधारा भारतीय उत्तुङ्ग विचारों का अवदान है। हमारे आत्म-द्रष्टा ऋषियों ने अपनी उदात्त भावनाओं को जिस प्रकार समाज के सामने प्रकट किया है। उसी बात को कबीर साहब ने भी प्रकारान्तर से कहा है। इस भारत भूमि पर अभी तक उपनिषद् के ऋषियों और कबीर साहब जैसे महापुरुष बहुत न्यूनतम हुए हैं क्योंकि ऋषियों और कबीर साहब ने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे मानव जाति बहुत उपकृत हुई है। अन्य विषयों की ओर

न जाकर प्रस्तुत पुस्तक में जो विचार आये हैं उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित करना अभीष्ट है। पुस्तक में योग-सम्बन्धी उन सभी विषयों का सारांश उपस्थित किया गया है।

भारतीय वाङ्मय में छिपे हुए रहस्यों जैसे ध्यान कैसे करना चाहिए, आसनों की क्या विधि है, मुद्रा और बन्ध क्या हैं, नव नाड़ियाँ क्या हैं? इन विषयों पर प्रस्तुत पुस्तक में अनेक प्रकार से प्रकाश डाला गया है। स्वास्थ्य वर्धक आसनों और बन्धों का भली प्रकार से दर्शन कराया गया है। यद्यपि उक्त विषयों का पातञ्जल योग सूत्र की व्याख्याओं में कुछ महात्मा-विद्वानों ने सभी बातों का उल्लेख किया है परन्तु अनेक विषयों के साथ प्रस्तुत होने के कारण विषय वस्तु सबके लिए सुलभ नहीं है। इस पुस्तक में अध्यात्म योग के साथ ही साथ क्रियात्मक-व्यावहारिक योग का भी प्रदर्शन किया गया है। प्रथम संस्करण में केवल अध्यात्म योग का ही प्रदर्शन हुआ था। इस द्वितीय संस्करण में व्यावहारिक योग का भी समुचित रूपेण संकलन किया गया है। व्यावहारिक योग से मन को बहुत बल मिलता है, निरुजता प्राप्ति होती है। जब निरुजता प्राप्त होगी तभी अध्यात्म योग की ओर प्रवृत्ति जगेगी, रुग्ण मनुष्य का ध्यान शरीर को निरोग करने पर होता है। इसीलिए द्वितीय संस्करण में व्यावहारिक योग का दिग्दर्शन हुआ है, साथ ही आत्म-प्राप्ति के लिए कुण्डलिनी जागरण का भी उल्लेख किया गया है। आशा है कि यह ग्रन्थ लोकोपकारी सिद्ध होगा।

कोई कार्य योजना के अनुसार हो, यह सिद्ध नहीं होता प्रत्युत अन्तःप्रेरणा भी महत्त्वपूर्ण होती है। प्रस्तुत पुस्तक सन्त कबीर का सहज योग इसी प्रकार की अन्तःप्रेरणा की परिणति है। इसमें जिस सहजयोग का विश्लेषण किया गया है, वह कबीर सिद्धान्तानुकूल होते हुए कबीर चौरा मूल गादी में प्रचलित योग-सम्बन्धी-परम्परा के पूर्णतया अनुकूल है। पुस्तक लेखन परिगमन के समय अन्य ग्रन्थों व अन्य सिद्धान्तों के ग्रन्थों का भी अनुशीलन किया गया है तथा लोकोपकारी तथ्यों को समेटने का प्रयास किया गया है। वैचारिक साम्य के आधार पर कुछ बातों का मेल अन्य सिद्धान्तों से भी सम्भव हुआ है किन्तु मूल आधार कबीर साहब की वाणी ही है। मुझे योग-सम्बन्धी और कुछ आसनों की जानकारी सत्यलोकीय गुरुवर आचार्य श्री रामविलास साहब एवं कबीर पन्थ के अनेक स्रोतों से तथा स्वानुभूति से भी हुई है। स्वानुभूति ही मेरे लिए अधिक उपयुक्त हुई है जिससे प्रेरित होकर मुझे इस योग ग्रन्थ की लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

प्रथम संस्करण के समाप्त होने पर पुस्तक की माँग भी अत्यधिक बढ़ गयी परिणामतः पुनः प्रकाशन की योजना बनी और यह समझा गया कि इस ग्रन्थ

को और अधिक लोकोपकारी एवं लोकाकर्षण की दिशा में कुछ अध्याय और जोड़े जायें। अतएव मैंने परम्परा से प्रचलित आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक योग से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन किया। अपरिहार्य कारणों से योगासनों के चित्र नहीं दिए जा सके, जिनके कारण कुछ कठिनाई अनुभव होगी। पुनः अवसर आने पर इसकी पूर्ति की जा सकेगी।

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण का दायित्व महन्त श्री विवेकदास को सौंपा गया था जिन्होंने अपने कर्तव्य का पालन पूरी निष्ठा से किया था। प्रस्तुत (द्वितीय) संस्करण का दायित्व व्यासमुनि दास को सौंपा गया जिन्होंने बड़ी निष्ठा एवं लगन के साथ इसका सम्पादन किया। इनके सहयोगी देवशरणदास भी यथा शक्य सहायक रहे। अन्य स्थान के महात्मा गण भी शुभ कामना के साथ सहायता की है। इस पुस्तक की सृष्टि का सारा श्रेय आचार्य गुरुवर्य श्री रामविलास साहब को है जो मेरे दीक्षा एवं सन्यास के गुरु थे। जिनकी कृपा के बिना कुछ जाना नहीं जा सकता वे विद्या गुरु बहुत महत्त्व के होते हैं। जिनके अक्षर बोध से ही अक्षर लिखने की शक्ति प्राप्त हुई है वे पंडित श्री त्रिवेणी उप नाम रज्जु उपाध्याय को भी मेरा नमन है, जिनका निवास लेखक की जन्मभूमि पर है, साथ ही अन्य जिन गुरुओं से अक्षर बोध की प्राप्ति हुई है उन सभी को नमस्कार है। सम्पादन एवं मुद्रण के कार्य को निष्ठापूर्वक करने के लिए व्यासमुनि दास एवं देवशरण दास को मेरी शुभ कामना, साथ ही ग्रन्थ के पूर्व रूप को निष्ठा के साथ देखने, सँवारने एवं उचित परामर्श देने के लिए श्री शिवशंकरजी मिश्र को धन्यवाद दिये बिना बचा नहीं जा सकता है। शिवम् प्रिन्टर्स के स्वामी श्री हरिप्रसादजी निगम एवं उनके सुपुत्र शिवकुमारजी एवं राजकुमारजी जिन्होंने बड़ी सावधानी और धैर्य के साथ पुस्तक को छापा है उनको भी अनेकशः धन्यवाद।

कबीर निर्वाण दिवस — **आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री**

माघ शुक्ल ११, सं० २०४८ वि०

विषय-सूची

•

संत कबीर का सहजयोग

चक्रों का भेदन करती हुई
कुण्डलिनी का पृष्ठीय रूप

दीनबन्धु गुरुदेव मम, बन्दीछोर कबीर।
जन 'गंगा' पर कृपा करो, हरो कठिन भव पीर ॥

आप समान न आन कोई, तीन लोक मँझार।
'योग' ग्रन्थ पूरा करो, होय 'धर्म' साधार ॥

योगाख्या

योग शब्द की निष्पत्ति 'युज्' धातु (युज्+घञ्) से हुई है। अर्थ होता है 'दो का एक करना' अर्थात् एक में दूसरे को जोड़ देना। दो को मिला देने से योग हो जाता है। सहज अर्थ में योग का मुख्य प्रयोजन जीव का ईश्वर में लय होना है। आत्मा में मन के लय को भी योग कहते हैं। पतञ्जलि योग दर्शन के अनुसार चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है।

संतमत में सुरति-निरति का एक होकर तादात्म्य भाव प्राप्त होना योग है। विभिन्न सम्प्रदायों में योग की व्याख्या विभिन्न प्रकार से हुई है जिसके आठ अंग हैं—**यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान** एवं **समाधि**। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अल्पाहार, दया, क्षमा, गम्भीरता, आर्जव, प्राणायाम प्रभृति पर विचार करना **यम** कहलाता है। तप सन्तोष, सात्त्विक दान, आस्तिक भाव, सत्यासत्य चिन्तन, ईश्वर की वन्दना अर्थात् जो भी दैनिक अध्यात्म प्राप्ति के लिए करना पड़ता है उसको **नियम** कहते हैं। एकान्त स्थान में किसी भी आसन पर श्वास की साधना करना, **रेचक, पूरक, कुम्भक** आदि क्रियाओं को **प्राणायाम** कहते हैं। उक्त क्रियाओं को करने के लिए बैठने का नाम **आसन** है। उक्त आसन सुस्थिर, अडिग होने चाहिए। इन्द्रियों को अनेक विषयों से रोकना और प्रत्येक इन्द्रिय विषय का त्याग करना **प्रत्याहार** कहलाता है। चित्त को अच्छी प्रकार शुद्ध कर सम सत्ता में विचरण करना एवं सद्गुणों को ग्रहण करना एवं अध्यात्म के प्रत्येक साधन को चितवृत्ति में गृहीत करना **धारणा** कहलाती है। इष्ट के ध्यान में वृत्ति दीप-शिखा सम निर्विघ्न हो जाय। किसी प्रकार की चिन्ता उसे न रह जाय। अहर्निश अपने ध्येय में लगा रहे उसी को **ध्यान** कहते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति को पार करके तुरीया अवस्था में प्रवेश होने पर जहाँ पर समसत्ता में एकीकरण हो जाता है उस अवस्था में मेरे और पराये का भाव विनष्ट हो जाता है। सारे जागतिक विषयों से मनोवृत्ति पराङ्मुखी हो जाती है और अखिल ब्रह्माण्ड को अपने में देखता है और नियन्ता में अभेद होने को समाधि कहा गया है। जहाँ पर कोई जागतिक सम्बन्ध

नहीं रह जाता है। संवेदनशीलता पूर्णरूपेण अभाव तत्त्व में विलीन हो जाती है, वही समाधि की अवस्था है।

इसी प्रकार से आर्यान्तर्गत वौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों में भी अलग-अलग योग के कुछ विधान हैं। इसके अतिरिक्त नाथ परम्परा में भी योग की बड़ो लम्बी और जटिल व्याख्या है जिसको लोग हठयोग के नाम से जानते हैं। यूँ तो योग की परम्परा वैदिक युग से ही प्रारम्भ होती है जिसका उल्लेख वैदिक संहिता तथा उपनिषदों से होकर पुराण एवं महाभारत तक चली आयो है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि विभिन्न पद्धतियों के द्वारा योग-साधना को प्रणाली साधना के विभिन्न क्षेत्र में विद्यमान है। परन्तु भारतीय योग की सर्वोत्कृष्ट अपनी विशेपता है जिसको जानने के लिए प्रत्येक भू-भाग के लोग समय-समय से भारत में आते हैं। सिकन्दर महान् के भारत आगमन के समय सुकरात या प्लेटो ने कहा था कि यदि भारत जा रहे हो तो मुझे एक योगी गुरु लेते आना। इसी प्रकार से किम्वदन्तियों के आधार पर महात्मा ईसा को भी भारत में आकर योग सीखना पड़ा था। भविष्य पुराण के आधार पर महर्षि कण्व ने पृथ्वी के अनेक भू-भागों में योग का प्रचार किया था। अस्तु, जो भी हो संसार के आध्यात्मिक एवं यौगिक ग्रन्थों को देखने से प्रत्येक अध्येता को भारतीय योग प्रणाली अधिक प्राचीन दिखेगो। इसलिए यहाँ पर भारतीय योग के विषय में ही विचार करना ध्येय है। इसमें भी संतमत द्वारा निर्दिष्ट योग पर ही विचार किया जा रहा है।

योग का वर्गीकरण

भारत में प्रायः योग की दो पद्धतियाँ विद्यमान हैं—१. हठयोग, २. राजयोग या सहजयोग। इन्हीं के अन्तर्गत भक्तियोग, जपयोग, सुरति-योग सब आते हैं। शास्त्रों में इनकी अलग-अलग व्याख्या विद्वानों द्वारा हुई है। इसलिए यहाँ पर अन्य योगों की अपेक्षा सहजयोग पर ही विचार अनुभूति के अनुसार किया जायगा।

हठयोग : हठ शब्द को निष्पत्ति[१] हठ् (हठ्+अच्) धातु से हुई है जिसका मूल अर्थ होता है बलपूर्वक किसी कार्य को करना। इसी के अन्दर

---

१. हकारः कीर्तितः सूर्य कारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्या चन्द्र मसोर्योगाद् हठयोग निगघते॥
—सिद्ध सिद्धान्त पद्धति।

अध्यात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए एक पैर से खड़ा होकर तप करना, शरीर को उपवास करके सुखा देना, हठात् कर्मानुष्ठान करना, नेती, धोती, वस्ती, न्युली, हठपूर्वक ध्यान, लम्बिका क्रिया करना, कुण्डलिनी को जगाने के लिए श्वास को बलपूर्वक अवरुद्ध करना अर्थात् हठात् दूसरे के साथ मेल करना, अपने हठ का त्याग नहीं करना इत्यादि प्रकार के क्रिया-कलापों को हठयोग समझा जाता है जिसका उल्लेख हठयोगियों के सम्प्रदाय में प्रचुर मात्रा में हुआ है। वैदिक परम्परा से लेकर नाथों तक हठयोग की परम्परा रही है। किन्तु वैदिक परम्परा में हठयोग का सीधा उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु कुछ संकेत यत्र-तत्र से निकाले जा सकते हैं। मेरा अपना मत है कि यज्ञ आदि कर्मकाण्ड सब हठयोग के ही अन्तर्गत आने चाहिए। क्योंकि स्वर्ग प्राप्ति के लिए हठात् बलि विधान किये गये हैं। इसलिए कर्मकाण्ड के प्रत्येक आयोजन को हठयोग के अन्तर्गत लेना समीचीन जँचता है। यों हठयोग का मूल प्रवर्त्तक आदिनाथ को कहा जाता है। गोरक्षनाथ सम्प्रदाय में व हठयोग प्रदीपिका में आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के गुरु का नाम था। बात जो भी हो, हठयोग की प्रणाली बौद्ध सम्प्रदाय से निर्गत सिद्धों और नाथ सम्प्रदायों से जुड़ी मिलती है जिसमें सरहपाद, कणहपा से लेकर गोरक्षनाथ भी आते हैं। क्योंकि इन योगियों के वचनों में हठयोग की जितनी सुस्थिर परिमार्जित प्रक्रिया युक्त हठयोग प्राप्त होता है उतना शुद्ध रूप पहले नहीं मिलता। इसलिए हठयोग नवीं शताब्दी की देन कहा जा सकता है, क्योंकि इन सिद्धों का काल विक्रम की ७वीं, ८वीं शताब्दी से लेकर ११वीं शताब्दी तक रहा। इनमें कुछ और प्रसिद्ध योगियों के नाम दिये बिना हठयोग का इतिहास पूरा नहीं होता। आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, साबरनाथ, भैरवनाथ, चौरङ्गीनाथ, मीननाथ, गोरक्षनाथ, विरुपाक्षनाथ, विलेशयनाथ, मन्थान, भैरव, सिद्ध, कन्थद्रि, कारन्तक, सुरानन्द, चरपति, फानेसरी, श्रीनित्य-नाथ, निरंजन, कपाली, विन्दु, काकचण्डीश्वर, अल्लाम, प्रभुदेव, घोड़ा, चोली, टिनटिणी, भानुकी, नारदेव खण्ड, कापालिक प्रभृति हठयोग के प्रधान सिद्ध माने जाते हैं। इन लोगों ने एक दूसरे की कमी को पूरा किया है। इसमें एक उपाख्यान भी सुना जाता है जो मत्स्येन्द्रनाथ से जुड़ा है, वह इस प्रकार है :

एक समय भगवान् आदिनाथ श्री शिवजी किसी एकान्त सरोवर के तट पर विराजमान थे। जहाँ पर पवित्राङ्ग शंकर अर्द्धांगिनी पार्वती जी

भी विराजमान थीं। शंकर जी को ध्यानमग्न देखकर पार्वती जी को शान्ति मिली। पार्वती जी ने सोचा इस ध्यान में कोई ऐसी वस्तु है जिसके दर्शन मात्र से शान्ति उपलब्ध हो रही है। तदुपरान्त भगवान् शंकर से पार्वती ने करबद्ध प्रार्थना की। हे प्रभो! आप जिस ध्यान में उपविशित थे मुझे भी उसका ज्ञान कराइये। भगवान् शंकर पार्वती को विनम्र जानकर तथा ऐसा समझकर कि यह योग की अधिकारिणी है, योग का उपदेश करने लगे और जिसे पार्वती जी अनवरत एकाग्रचित्त होकर सुनने लगीं। उस सरोवर के जल में एक मत्स्य रहता था। वह भी उस योगोपदेश को ध्यानस्थ सुन रहा था। कृपालु आदिनाथ जी को उसका वह श्रवण ज्ञात हो गया और उन्होंने कृपापूर्वक उसके निकट जाकर सरोवर से जल लिया और उस मत्स्य को सींचने लगे। भगवान् शिव के इस अनुग्रह को प्राप्त करके मत्स्य कृतकृत्य हो गया और उसे तुरन्त ही सिद्धि प्राप्त हो गयी। आगे चलकर वही मत्स्येन्द्रनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार कुछ आश्चर्यजनक बातें चौरंगीनाथ, गोरक्षनाथ, भर्तृहरिनाथ गोपीचन्द्रनाथ आदि को हठयोग सुनाने की सरणि अग्रसर हुई है। इस प्रकार से उपर्युक्त सभी सिद्ध हठयोग प्रवर्तक भी हुए हैं और अशेष ताप से उतप्त पुरुषों का समाश्रय मठ रूप हठयोग और अशेष योगियों का आधार कमठ रूप हठयोग कहा गया है। इसकी विशेष व्याख्या को हठयोग कहा गया है। इसकी विशेष व्याख्या हठयोग प्रदीपिका के टीकाकर डॉ० चम्मन लाल गौतम ने इस प्रकार से की है। हठयोग और कमठयोग के भेद से हठयोग दो प्रकार का माना गया है। इनमें सभी तापों का नाशक हठयोग और योगों का साधक कमठ योग है। अशेष ताप के कथन का संकेत त्रिताप की ओर है और ताप तीन प्रकार का है—आध्यात्मिक, आदिभौतिक और दैविक। इन तीन तापों के कारण तप्त मनुष्यों के लिए हठयोग मठ स्वरूप होता है। 'मठ' का अर्थ है घर। इससे हठयोग का उनके लिए आश्रयदाता समझना चाहिए। इसीलिए 'अशेष-ताप तप्तानाम्' कहकर ग्रन्थकार ने उन मनुष्यों की ओर संकेत किया है जिनके त्रितापों में से कोई भी एक शेष रह गया हो। इन तापों में भी आध्यात्मिक ताप, शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार का माना गया है। शारीरिक ताप का तात्पर्य है रोगादि और मानसिक ताप का अभिप्राय मन के अशान्त रहने से है। इनका शमन योग के आश्रय से ही सम्भव है।

इसके अतिरिक्त हठयोग की प्रशंसा में और भी बहुत सारी बातें उल्लिखित हैं। जैसे-"हठविद्या परमगोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता। भवेद्-वीर्यवतीगुप्ता निर्वीया तु प्रकाशित ॥"

अर्थात् सिद्धि के आकांक्षा वाले साधक को हठविद्या परम गोपनीय है। क्योंकि गुप्त रहने से ही यह वीर्यवती रहती है और प्रकट होने पर निर्वीर्य हो जाती है। डा० चम्मन लाल गौतम का मत है कि–"अन्य विद्याएँ चाहे प्रकट रहें या गुप्त, परन्तु हठयोग विद्या को गुप्त रखने योग्य माना गया है। सिद्धियों की इच्छा वालों के लिए तो अवश्य इसे गुप्त रखना चाहिए। तभी वह वीर्यवती अर्थात् प्रभावशालिनी रह सकती है और वीर्यवती रहने से ही सिद्धि मिल सकती है।

सिद्धियाँ आठ प्रकार की होती हैं—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व। इनमें क्रमशः शरीर का अणुवत्, सूक्ष्म, वृहदाकार, भारी, हल्का कर लेना, दूरस्थ पदार्थों को स्पर्श कर लेना, कामनाएँ पूर्ण कर लेना, आदि सामर्थ्यों की प्राप्ति हो सकती है। योग दर्शन के विभूति पाद में लगभग ३० सिद्धियों का वर्णन है। किसी से भूख प्यास पर विजय और किसी से आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। किसी से दिव्य श्रवण, दिव्य दृष्टि और किसी से लोकों, नक्षत्रों आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार की सिद्धियाँ योग द्वारा प्राप्त हो सकती हैं परन्तु उन सिद्धियों को प्राप्त करने वाली विद्या यदि प्रकट हो जाती है तो उसमें शक्ति का ह्रास हो जाता है और वह जो प्रभाव उत्पन्न कर सकती थी उसे करने में समर्थ नहीं रहती। इस प्रकार से महिमा मंडित हठयोग का विवेचन महत्त्वपूर्ण रूप से किया गया है जिससे भी जिज्ञासु साधकों का इधर आकर्षण हो और हठयोगियों के निवास के लिए भी विस्तार पूर्वक वर्णन है।

सुस्थान रथा कुटी निर्माण,
सुराज्ये धार्मिके देशे सुभिक्षे निरुपद्रेव।
धनुः प्रमाण प्रयन्तं शिलाग्नि जलवर्णिते,
कान्ते मठिकामध्ये स्थातव्यं हठ योगिना ॥

(हठयोग प्रदीपिका, पृ० १८)

अर्थात् ऐसा धार्मिक देश हो जिसमें कोई उपद्रव न हो, सुभिक्ष रहता हो, उसके चारों ओर धनुषप्रमाण पर्यन्त शिला, अग्नि और जल

न हो। श्रेष्ठ राज्य में स्थित ऐसे स्थान में मठिका वनवाकर हठयोगी को योगाभ्यास करना चाहिये।

विशेषार्थ :—धार्मिक देश और श्रेष्ठ राज्य में रहने का कथन उपयुक्त हो सकता है जहाँ अधर्म या अपवित्रता का लेश भी न हो। क्योंकि योगाभ्यास के लिए वातावरण की पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। यदि वातावरण में पवित्रता न होगी तो मनमें अधर्म रहेगा, जिससे एकाग्रता सम्भव नहीं होगी और साधना भी फलवती नहीं हो सकती।

सुराज्य का अभिप्राय ऐसे राज्य से है, जिसका राजा प्रजापालक, साधुसन्तों, योगाभ्यास का रक्षक, धार्मिक एवं न्यायशील हो। अधार्मिक, अन्यायी, क्रूर राजा से तो उस राज्य में दमन, कलह, अत्याचार आदि का आधिक्य रहेगा और उस अवस्था में यह सम्भव नहीं कि योगी की कुटिया का वातावरण भी क्षुब्ध न होने पाये। इसलिए योगी साधक को श्रेष्ठ राज्य में रहने का निर्देश है।

उस राज्य और स्थान को निरुपद्रव रहना इसलिए आवश्यक है कि उपद्रव ग्रस्त क्षेत्र में भय, शंका और आतंक का साम्राज्य छाया रहता है। योगाभ्यास में विघ्न स्वरूप सिद्ध होता है। अतः साधक को अपनी साधना के लिए निरुपद्रव प्रदेश चुनना चाहिये। 'सुभिक्षे' का अर्थ है 'सुकाल रहना'। जिस राज्य में अन्न वहुत उत्पन्न होता हो, अनावृष्टि आदि के कारण कभी अकाल न पड़ता हो जिससे कि योगी को शरीर रक्षार्थ आहार की प्राप्ति में सुभिक्ष हो वहीं रहकर साधना करना श्रेयस्कर हो सकता है। अथवा 'सुभिक्ष' का आशय श्रेष्ठ भिक्षा से भी है और जिस राज्य में श्रेष्ठ भिक्षा मिल सकती है वहीं साधक को भोजनादि की सुविधा हो सकती है। इसलिए जिस राज्य में वाधा उपस्थित न हो उसी राज्य में योगी को रहना चाहिए।

'धनुष प्रमाण' का आशय है 'चार हाथ परिमाण'। जहाँ आसन के चारों ओर चार-चार हाथ तक शिला, जल और अग्नि न हो। इस कथन का अभिप्राय यह है कि बैठने के स्थान के चारों ओर इतनी स्वच्छता हो कि कोई वस्तु पड़ी न रहे। 'शिला' अर्थात् पत्थर होने से उठने पर ठोकर लगने का भय हो सकता है और जल, अग्नि भी हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। क्योंकि इनसे सर्दी, गर्मी से होने वाले विकारों की सम्भावना हो सकती है। इस प्रकार विकार हीन वातावरण से मुक्त स्थान चुनना चाहिए।

'मठिकामध्ये स्थातव्यं' अर्थात् मठिका का अर्थ 'पर्ण वाली छोटी कुटिया' से है, मठ से नहीं। क्योंकि मठ तो बड़ा होता है और योगी, साधक को बहुत बड़ा स्थान हितकर नहीं होता। मठिका भी इसलिए बनाने का निर्देश है कि शीत, धूप, वर्षा आदि से बचाव हो सके। इस प्रकार योगी को श्रेष्ठ राज्य, सुन्दर स्थान, छोटी कुटी बनाकर सुभिक्ष युक्त एवं निरुपद्रव स्थान में रहकर अभ्यास करना चाहिए। इसी में उसका कल्याण है।

अल्पद्वारमरंध्रगर्तविवर नात्युच्चनीचायतं।
सम्यग्गोमयसांद्र लिप्तमंमल निःशेष जन्तूज्झितम् ॥
बाह्ये मण्डपवेत कूपरुचिरं प्राकारसवेष्टितं।
प्रोक्तंयोगमठस्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हंठाभ्यासिद्धिः ॥

अर्थात् उस कुटी का द्वार छोटा हो। छिद्र और गड्ढों से रहित हो। उसमें बिल भी न हो। उसका स्थान ऊँचा-नीचा न हो। गोबर से चिकना लिपा हुआ हो। जीव-जन्तुओं से वर्जित हो। कुटी के बाहर के स्थान में मंडप बना हो जिसमें वेदी, सुन्दर कूप तथा प्राकार अर्थात् भित्ति से घिरा हो। योग कुटी के यह लक्षण हठयोग के अभ्यासी सिद्धों ने बताया है।

व्याख्या:—कुटी का द्वार छोटा रखना चाहिये। यह इसलिए कि कोई विशालकाय पशु आदि का प्रवेश उसमें न हो सके। उसमें छेद अर्थात् खिड़की या झरोखे भी न हों। अन्यथा शीतकाल में ठंडी वायु, ग्रीष्म काल में उष्ण वायु और वर्षा ऋतु में वर्षा की बूँदों का कुटी के भीतर प्रवेश होने से साधक को कष्ट हो सकता है और अभ्यास में विघ्न पड़ सकता है। इस प्रकार से अनेक नियम हठयोग वाले लिखे हैं। अधिक बातें विस्तार-भय से उद्धृत नहीं की गयी हैं। अन्य ग्रन्थों में सभी बातों का उल्लेख किया गया है। यहाँ पर दिग्दर्शन मात्र कराना था। उपर्युक्त प्रकार से जहाँ-जहाँ आवश्यकता पड़ेगी वहाँ-वहाँ पर अन्य बातें उद्धृत की जायेंगी।

यह था प्राथमिक दशा में हठयोग का संक्षिप्त विवरण, अब संक्षेप में राजयोग पर विचार किया जा रहा है।

राजयोग दिग्दर्शन

दूसरी पद्धति राजयोग या सहजयोग की आती है जिसमें सुरतियोग, चिन्तनयोग, नामयोग, विचरणयोग, नादयोग, जपयोग, ध्यानयोग आदि

को शामिल किया जाता है जिसका वर्णन कुछ सन्तों, लेखकों द्वारा यत्र-तत्र हुआ है। सनकादिक से लेकर गुरुवर रामानन्द तक मानसयोग, भक्ति-योग, चिन्तन-योग, नाद-योग, ध्यान-योग की परम्परा रही है जिसको हम सहज योग में ही लेते हैं। इसका प्रचार-प्रसार एवं कार्यान्वियन आज भी वैष्णव मत में भक्ति के रूप में विद्यमान है। तद्प्रसूत सद्गुरु कबीर से लेकर आज-पर्यन्त सन्तमत में सहजयोग की भी परम्परा प्रचलित है जिसका प्रचार-प्रसार समाज में अत्यधिक होता जा रहा है। परन्तु सहज पन्थान्तर्गत दिनानुदिन दम्भत्व की बहुलता वैवृद्धत्व को प्राप्त करती जा रही है। आज सन्तमत के नाम से कुछ ऐसे मत चल पड़े हैं, जो सन्तमत और सहजयोग दोनों को कलंकित कर रहे हैं और अनेक प्रकार के मनःकल्पित विचार व्यक्त कर रहे हैं। धर्मपरायण भारत की जनता उक्त मतों की शिकार हो रही है। उक्त योगी लोग पलक मारते-मारते परमतत्त्व का दर्शन कराने का दावा करते हैं। ऐसी बात सहजयोग में शामिल करने की चेष्टा कर रहे हैं। कई नेत्र-नशों को दबाकर चिनगारियाँ उत्पन्न करके ईश्वर मानकर लोगों को दर्शन कराते हैं और पंच-पंच नामों का जप भी बताते हैं। कुछ मनुष्य-कपाल लेकर सिद्धियाँ आदि करने के लिए अहर्निश परेशान रहते हैं। कुछ नचाना-कूदाना, निर्वस्त्रता से ही सहजयोगी की उपाधि धारण करते हैं जिससे सहज-योग जानने वाले को सुनकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। आज के प्रत्येक नवीनपंथी जो अपने को सहजयोगी कहते घूमते हैं, इन लोगों को भारत की जनता जान चुकी है। अभी तक दलाली पर काम चल रहा है। भला! जिसकी मनोवृत्ति सहज चित्त में निर्दिष्ट हो जायेगी, क्या वह कभी सांसारिक भोगों की ओर उन्मुख होगा? आज के तथा-कथित संसार के भोग भोगते हुए भी सहजयोग के अनुगामी कहने में हिचक नहीं करते। परन्तु उनकी जो सहजयोग की व्याख्या है वह सन्तमत की न होकर किसी दूसरी ही ओर से आयी लगती है। जैसे पूर्वकाल में औपनिषदीय धारा को विकृत करने के लिए अनेक कपोल कल्पित मार्गों का सृजन हुआ है। उसी प्रकार से आज सद्गुरु कबीर के सहजयोग को भी विकृत बनाने का नवीनपंथियों द्वारा कुचक्र चलाया जा रहा है। जिस ईश्वर का अवतार कबीर साहब के मत से नहीं होता है उसी को सहजयोगी कहने वाले नवीनपंथियों ने स्वयं को ईश्वर का अवतार घोषित कर दिया है जिनके पीछे भारत की भोली-भाली जनता अपने मार्ग से

वंचित होकर कुमार्ग का अवलम्बन लेते जा रही है। यदि भारतीय समाज ने अपनी सही दिशा को नहीं अपनाया तो किमार्गियों के द्वारा अपने मूल स्थान से हटकर कहीं अन्यत्र जा गिरेगी। उक्त किमार्गियों से अच्छा तो हठमार्गियों का पंथ है, क्योंकि हठयोगियों की प्रणाली व प्रक्रिया क्रमवद्ध और वैज्ञानिक आधार पर अवस्थित है जिसके द्वारा शारीरिक एवं मानसिक परिशुद्धि तथा आरोग्यता प्राप्त होती है और अनेक प्रकार की सिद्धियों का उद्भव होता है।

यों कहिए हठयोग सद्गुरु कवीर से पहले वहुत लोकप्रिय था। आज भी अधिकांश लोग हठयोग की बातें वहुत चाव से सुनते और कहते हैं। हठयोग के ग्रन्थों में लिखा है कि हठयोग के वाद राजयोग या सहजयोग स्वयं प्राप्त हो जाता है। हठयोग में अनेक प्रकार के साधनों और क्रिया-कलापों द्वारा कुण्डलिनी को जगाने का प्रावधान है जिसमें षष्ठचक्र का वेधन, ब्रह्मरंध्र तक पहुँचना, त्रिवेणी का स्नान, अमृत पान आदि शामिल हैं।

शारीरिक परिशुद्धि के लिए नेती-धोती आदि का हठयोग के ग्रन्थों में वर्णन है। शारीरिक परिशुद्धि के बाद ही हठमार्गी अन्तःकरण की शुद्धि मानते हैं और उसके वाद आत्मज्ञान या परमतत्त्व का दर्शन सम्भव हो सकता है। कुछ अंश में हो भी सकता है, क्योंकि स्नान के पश्चात् स्वास्थ्य में परिवर्तन हो जाता है। आश्चर्य की वात तो यह है कि स्नान के समय में ही राम, ॐ आदि शब्द उच्चरित होने लगते हैं। वाद में वैठकर अध्यात्म चिन्तन में लगने की प्रवृत्ति हो जाती है तथा अनेक प्रकार के धार्मिक कृत्य करने की जिज्ञासा होती है। इस स्वानुभूति के आधार पर वाह्य क्रियाओं का प्रभाव आन्तरिक तत्त्व पर अधिक पड़ता है। इसलिए हठयोग की वहुत सी क्रियायें सार्थक और मानवीय कारिणी हैं।

हठयोग प्रदीपिका, शाट्योपनिषद्, ब्रह्मविद्योपनिषद्, मत्र्युपनिषद्, योगकुण्डलीयोपनिषद्, सन्यासोपनिषद्, अन्नपूर्णयोपनिषद्, मण्डलवृहमाण्डोपनिषद्, योगचूर्णामन्युपनिषद्, योगतत्योपनिषद्, अरण्यसंहिता, त्रिशिख ब्रह्माण्डोपषिद् शाण्डिलोपनिषद्, नादविन्दोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद्, योगवाशिष्ठ भागवत् आदि एवं हठयोग से सम्वन्धित ग्रन्थों तथा आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, सरहप्पा से लेकर कण्हप्पा, भर्तृहरि, गोरक्षनाथ, गोपीचन्द

आदि नाथों के वचन देखे जा सकते हैं। उपर्युक्त ग्रन्थों में योगाङ्गों की वरिष्ठ व्याख्या अनेक विद्वानों के द्वारा हुई है। मैं उधर न जाकर सद्गुरु कबीर साहब के सहजयोग पर विचार करने के लिए प्रवृत्त हो रहा हूँ, जो हमारे सद्गुरुओं द्वारा आज तक प्रचारित और प्रसारित होता आ रहा है। उसी सहजयोग को यथा मति प्रकाश डालने के लिए प्रयत्नशील होकर जन साधारण के लिए सद्गुरु कबीर की वाणियों का अनुवाद गुरुओं द्वारा बताये हुए मार्ग का तथा अपने अनुभूति द्वारा प्राप्त मत का उल्लेख कर रहा हूँ।

जो आज तक रहस्य बना हुआ है, उस परम गोपनीय सहजयोग का उल्लेख सद्गुरु कबीर के चरणों का चिन्तन करते हुए कर रहा हूँ।

सहज योग

सद्गुरु कबीर की वाणियों में स्थल-स्थल पर सहज शब्द का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर सहज शब्द हीनता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और कहीं-कहीं श्रेष्ठता के अर्थ में उपविहित है। इसी प्रकार से किसी-किसी स्थान पर ध्यान के रूप में तथा कहीं-कहीं सहजयोग के रूप में प्राप्त है। हीनता के अर्थ में अधोक्त साखी उद्धृत की जा रही है जैसे :

सहजे-सहजे सब गया, सुत-वित कामिनि काम।
राम नाम जाना नहीं, गया सो यम के धाम॥

श्रेष्ठ अर्थ में :

सहज-सहज सबही कहे, सहज न चीन्हे कोय।
जा सहजे साहिब मिलें, सहज कहिजै सोय॥

ध्यान अर्थ में :

सहज ध्यान रहु, सहज ध्यान रहु। गुरु के वचन समाई हो॥

सहजयोग के अर्थ में :

सन्तों सहज समाधि भली है,
गुरु प्रताप भई जा दिन ते, सुरति न अन्त चली है।

अनेक प्रसंग में सहज शब्द का अर्थ कबीरवाणी में प्राप्त है जिससे अपने-अपने अर्थों की उपलब्धि की जाती है। इसी प्रकार से कबीर साहब के प्रत्येक शब्दों के प्रयोग अनेक अर्थों में हुए हैं। परन्तु कबीरपंथी समाज में योग या सुरतियोग का प्रचार अत्यधिक है।

सहज शब्द का अर्थ सीधा और सरल किया जाता है। जो काम सहज में ही हो जाय जिसमें कोई विशेष परिश्रम न करना पड़े, जो थोड़े संकेत मात्र से ही सधता हो उसे ही सहज कहते हैं। लोक में भी इस शब्द का इसी अर्थ में प्रचार है। कुछ विद्वानों का मत है कि हठ के साथ जो जप किया जाय वही सहज है। उनका तर्क है कि 'स' से 'साथ' 'ह' से 'हठ', 'ज' से 'जप'। परन्तु यह अपना उनका अर्थ और तर्क है। कबीर-पंथ में सहजयोग की प्रणाली आज पर्यन्त विद्यमान है। परन्तु सहज शब्द जितना सीधा-सरल समझा जाता है, उसी प्रकार से उतना ही कठिन है। जैसे बिना रेखापट (स्केल) के सीधी रेखा खींचना। बिना स्केल के आप कितना भी सावधान होकर रेखा खींचिए, वह टेढ़ी अवश्य हो जायेगी। इसी प्रकार से सहजयोग और सुरतियोग को जानना चाहिए। सहजयोग बलिदानियों के हैं, जो जीवन-मरण का भय छोड़ देते हैं। उनके लिए जिनकी बुद्धि अति सूक्ष्म, गम्भीर, विवेकशील है। सहजयोग विषयी पामरों एवं संसारासक्तों के लिए नहीं है। इस विषय में कबीर साहब कहते हैं कि मनुष्यों को जीवन भर सांसारिक सुखों को भोगते-भोगते आयु रूपी पग थक गया। रास्ता नौ कोस ही था, नौ दरवाजों को पार कर दशवें द्वार तक पहुँचना था जहाँ पर अमूल्य वस्तुओं की खरीदारी करनी थी; परन्तु संसार में आसक्त होने के कारण वहाँ तक न पहुँच सका। अप्राप्ति दशा में ही जीवन का अन्त हो गया। भला इसमें किसका दोष है। कबीर साहब कहते हैं कि सारा संसार सुखी है। तुच्छ विषयों को पाकर मोह रूपी रात्रि में सो रहा है। मैं तो दुखी हूँ क्योंकि संसारियों के दुख को देख कर निद्रा नहीं आती। रोते-रोते दिन और रात बीत गयी है। मुझे कोई ऐसा नहीं मिलता जिसे सहजयोग की शिक्षा दूँ।

मैंने अपने घर को फूंक दिया जिसमें अशान्ति का भय था। काम-क्रोध रूपी वस्तु जल गये, जो क्रोध मुझे रुला रहा था, जो मोह मुझे संसार में अटकाये था, संसार में फँसा कर सुलाये हुए था। जो कामनायें मुझे अनेक दिशा में प्रतिबन्धित किये हुए थीं, जो अहंकार मुझे सत्य तक नहीं पहुँचने देता था, जो अपवाद मुझे निर्मल नहीं होने देता था। वे सब मेरे साथी शरीर रूपी घर में जलकर भस्म हो गये। अब मैं निर्भय हो गया हूँ। वैराग्य रूपी अरणी को ज्ञान रूपी अग्नि में प्रज्वलित कर लिया है। अब प्रतिज्ञा यही है कि जो व्यक्ति सहजयोग सीखना चाहे,

और मेरा साथी बनना चाहे, वह भी अपना घर फूँक कर चौराहे पर आ डटे, तभी उसको कुछ उपलब्ध हो सकेगा। परन्तु जिसको खोजते-खोजते कल्प बीत गये, वह वस्तु घर में ही थी। अत्यधिक गर्व-गुमान के कारण उससे दूर हो गया। इसलिए मेरे पास आने में असमर्थ रहा। मैं तो अपनी गुह्यतम् विद्या को सिखाने के लिए देश-विदेश में भी गया, गाँव-गाँव की "खोरियों" में घूमा तो भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसको मैं साफ-सुथरा कर साधना की सब बातें बतला दूँ।

चलते-चलते पगु थका, नगर रहा नौ कोस।
बीचहीं में डेरा पड़ा, कहहु कौन को दोष।।
सुखिया सब संसार है, खावे और सोवे।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे।।
हम घर जारा आपना, लिया लुकाठा हाथ।
अब घर जारों तासुका, जो चले हमारे साथ।।
जेहि खोजत कल्पो गया, घटहि माँहि सो नूर।
बाढ़ी गर्व गुमान ते, ताते परिगो दूर।।
देश-विदेशे हौं फिरा, गांव-गाँव की खोरि।
ऐसा जियरा ना मिला, लेऊँ फटकि पछोरि।।

सद्गुरु की इन वाणियों पर विचार करें, क्या कह रही हैं? क्या यह नवीन पंथियों पर नहीं घटित होतीं। जो बैठा रहे, "चला पुनि जाता" की पंक्ति चरितार्थ कर रहे हैं। सबको सहजयोग का ढोल पीटते, सुरति-योग का नारा लगाते हुए, भेड़िया धसान वाली बात क्या नहीं करते? अपने तो खारी खाते हैं, दूसरों को कपूर देने की बात करते हैं। सद्गुरु कबीर के सिद्धान्तानुसार सहजयोग का अधिकारी वही हो सकता है जो संसार के समस्त कामनाओं का परित्याग कर, सद्गुरु के शरण में जा कर, जिज्ञासु बनकर उनके समीप निवास करे, वही सहजयोग का अधिकारी हो सकता है। अन्यथा विष और मधु एक साथ चखने से अपच हो जायगा और अनुपलब्धि अवस्था में पड़ कर वंचकों के द्वारा ठगा जायगा। इसलिए जिज्ञासुओं को चाहिए कि सहजयोग को जानें। सहजयोग को जानने वाला कौन है?

सहजयोग मानव के आत्म विकास की अपनी सम्पत्ति है। बिना इनके सहजयोग का ज्ञान होना दुर्लभ है। कबीर-पंथ में अभी ऐसे लोग विद्यमान हैं जो सहजयोग को बता सकते हैं।

सहजयोगी का लक्षण सद्गुरु कबीर साहब बताते हैं कि जो अभिमान को त्याग देता है। "नख शिख तजे विकार" अर्थात् छोटे से बड़े विकारों से दूर रहता है। सभी प्राणियों से निर्वैर रहता है। अहर्निश परमतत्त्व का चिन्तन करता है। उसी को सहजयोगी, परम साधु कह सकते हैं। दूसरी बात कहना हितकर नहीं है। उपर्युक्त कथन के अनुसार यदि कोई आचरण नहीं करता है, वह न सहजयोगी है, न सन्त है।

आपा तजे हरि भजे, नखशिख तजे विकार।
सब जीव से निरवैर रहै, साधु मता है सार॥

सहज बुद्धि सहजै भई, सहज भया सब काम।
दास कबीरा मिलि रहा, सहजे-सहजे राम॥

सुरति निरति मेला भया, निरति रही निरधार।
सहज रूप में रमि रहा, निरालम्ब निरधार॥

सहजयोग की व्याख्या सद्गुरु कबीर ने अपने वाणी, वचनों के द्वारा कहा है। स्वयं उनका अर्थ न होने से विद्वानों ने अनेक तर्कों के द्वारा अपने अपने अनुसार उनका सहजयोग निरूपित किया है।

सहयोग का नाम कहीं-कहीं पर कतिपय विद्वानों ने राजयोग भी रखा है। पर दोनों में विरोध अवश्य दिखता है। राजयोग को यों कहिए 'योग-राज' जो प्रत्येक योग पद्धतियों का राजा हो, उसे योगराज या राजयोग कहते हैं। परन्तु राजयोग के कथन में हठयोग का मिश्रण भी पाया जाता है। इसलिए सहजयोग उससे पूर्णरूपेण भिन्न है। सहजयोग स्वयं सहज है वह आडम्बरविहीन सभी योग पद्धतियों का शिरोमणि सुरति-निरति का खेल है। हठयोग की पद्धति से उसका कोई मेल नहीं। क्योंकि सहजयोग की पद्धतियाँ सहज रूप में ही चलती हैं। सर्वप्रथम सहजयोग के साधन के निर्देशन से पूर्व थोड़ा उसकी ओर संकेत किया जाता है।

सहज आसन से साधक को बैठकर मन को एकाग्र कर लेना चाहिए। तदुपरान्त चित्त पर ध्यान रखिए। चित्त पर ध्यान रखने का क्रम धीरे-धीरे होता है। चित्त की वृत्ति में दो मुख होते हैं। एक अन्तर्मुखी दूसरी बाह्यमुखी। अन्तर्मुखी वृत्ति का सुप्तावस्था में परिगमन होता है और दूसरा परिगमन चिन्तन और क्रिया के द्वारा है जिसके लिए साधक को साधनारत होना पड़ता है। इसी प्रकार से बाह्य वृत्ति का प्रथम तो स्वा-भाविक परिगमन होता है दूसरा परिगमन योगी व्यवहार के लिए बाह्य-

मुखी बनाता है। इस प्रकार वृत्तियों का प्रवाह चलता रहता है। स्वाभाविक बाह्यमुखी वृत्ति का परित्याग करके साधक अन्तर्मुखी वृत्ति का आश्रयण करके सहज रूप में अन्तःपुर में प्रवेश कर सकता है। जहाँ पर स्थिर होकर सत्य शब्द का सुमिरण करना पड़ता है। इसके बाद मनोवृत्ति निर्मल हो जाती है। स्वतः शून्य सहज में विचरण करने लग जाती है। जिसके साथ सूक्ष्म शरीर की सारी सूक्ष्म तरंगे उधर ही उन्मुख हो जाती हैं। मनोवृत्ति के पूर्णरूप से स्थिर हो जाने पर एक प्रकाशपुंज का दर्शन होता है, जिसमें वृत्ति लय हो जाती है। वह प्रकाश स्वरूप आत्मा ही है। उस आत्मा में प्रवेश कर साधक परमानन्द का रसास्वादन करने लग जाता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि मैं उन साधक को धन्यवाद देता हूँ जो सहज शून्य में निरालम्ब पद को प्राप्त कर लेता है। जहाँ से अखिल ब्रह्माण्ड का द्रष्टा बनकर भूत भौतिक सृष्टि का अवलोकन करता रहता है जो कभी प्रलय के प्रवाह में विलीन नहीं होता। क्योंकि वह प्राणापान की गति को जान लेता है। वह प्रलय के समय में प्रलय कर्तृ प्रकृति के स्वरूप में अपने को तादात्म्य कर लेता है। इसलिए प्रकृति माता अथवा काल भगवान् उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। इसलिए कि वह साधक सारे प्राणियों को आत्मा को अपने में देखता है और अपने को सारे प्राणियों में देखता है। जिसकी सत्ता स्फूर्ति से जगत् की सर्जना होती है वह इस सारभूत आत्मा में अपने को लय कर लेता है। उस सर्जनात्मक तत्त्व में अभेद होकर उक्त योगी भी अपने को अखिल ब्रह्माण्ड का नायक अनुभव करने लग जाता है।

सुनि सहज मन सुमिरते, प्रगट भई एक जोति।
बलिहारी ता पुरुष की, निरालम्ब जो होति॥

निरालम्ब को प्राप्त होने पर योगी भय से मुक्त हो जाता है क्योंकि भय वियोग में होता है, भय अकेलेपन में होता है जब दो में योग हो जाता है अर्थात् तादात्म्य भाव को प्राप्त हो जाता है। तब वह भय किससे करेगा। वहाँ पर भय का स्थान ही निर्मूल हो जाता है और समसत्ताकार बनकर योगी अपने आप में रमण करने लगता है। उसमें अनन्त कलाओं एवं अनन्त शक्तियों का ढेर लग जाता है, यहाँ तक कि अनेक ब्रह्माण्डों का सर्जन और विसर्जन दोनों करने में समर्थ हो जाता है। उसके संकल्प मात्र से सारी वस्तुएँ उत्पन्न होने लगती हैं। उसमें दिव्यता आ जाती

है। वह अपने को व्यापक तत्त्व समझने लग जाता है। वह अनन्त, असीम, अछेद, अभेद और अविनासी परातत्त्व स्वरूप में अहर्निश समत्व भाव में आरूढ़ रहता है।

वह एकता को प्राप्त होने के कारण जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ता है। परन्तु वहाँ तक पहुँचने के लिए साधक को बहुत समय लग जाता है। प्रथम तो जब वह साधक आसन पर बैठता है तो मन की वृत्ति बहुत तोड़-फोड़ मचाती है और जो मन की गति है एवं प्रणयकला जिसको कहते हैं उसका दूसरा नाम सुरति भी है। स्मृति का बिगड़ा हुआ रूप सुरति के रूप में प्रयुक्त होता है। वह सुरति निःतत्त्व निरति को ओर जाने के लिए शीघ्र प्रस्तुत नहीं होती। सुरति का दूसरा अर्थ यह भी होता है—'सु' अच्छा, रति माने निष्ठा, लगना। जिस वस्तु में अच्छी रति हो वह सुरति कहलाती है। इसी अर्थ में विषयानन्द और ब्रह्मानन्द दोनों आते हैं। किसी-किसी विद्वानों के मत में स्त्री संभोग को भी सुरति कहा गया है। संसार में यह ज्यादा प्रचलित है। परन्तु परलोक-यात्रा में परमेश्वर में अनुरक्ति होने वाली प्रवृत्ति को सुरति कहते हैं। क्योंकि सद्गुरु कबीर प्रायः सुरति किसी के आश्रय बताते हैं। जैसे :

शब्द बिना सुरति आंधरी, कहौं कहाँ को जाय।
द्वार न पावे शब्द का, फिर-फिर भटका खाय॥

यहाँ सुरति को असहाय दिखाया गया है। बिना शब्द के उसको रास्ता नहीं मिला। सुरति को संकेत चाहिए। बिना संकेत के वह अन्दर प्रवेश नहीं कर पाती। यदि अगुवा नहीं है तो वह भटक जाती है। गुरु का मन्त्र ही अगुवा है, वही शब्द है बिना उसके निःतत्त्व, निरति तत्त्व उसमें प्रवेश नहीं हो पाता। सद्गुरु कबीर साहब सुरति को निरति तक पहुँचाने के लिए सत्य रूपी डोरी को ग्रहण और सुमिरण बताते हैं।

'शून्य सहज मन सुमिरते, प्रगट भई एक जोति।' वाली साखी में संकेत अंकित है। सत्य शब्द ही सहजयोग की डोरी है। उसी को पकड़कर साधक त्रिकुटी को पार कर भँवरगुफा में प्रवेश कर सत्य का दर्शन कर सकता है। साधक जब सत्य शब्द का उच्चारण प्रारम्भ करता है तो कुछ दिन तक रसना से रट लगाना पड़ता है। अधिक अभ्यास करने से वह रसना वाला जप मन से आरम्भ हो जाता है। वहाँ पर जिह्वा बन्द हो जाती है मन स्वयं सत्य शब्द उच्चारण करने

लग जाता है। सत्य शब्द का भेद गुप्त रखा गया है क्योंकि सत्य शब्द क्या है जब तक इसका जिज्ञासु न मिले तब तक गुरु की ओर से इसका भेद बताना वर्जित है।

साधक को यह ध्यान रखना चाहिए कि जब जप रसना से प्रारम्भ करता है तो समुचित प्रकारेण एकान्त और अन्धकार में बैठकर करना चाहिए। जहाँ पर प्रायः बाह्य हलचल न हो। प्रथम अवस्था में इसकी बड़ी आवश्यकता है क्योंकि मन पहले से बहिरङ्ग रहता है और पंच विषयों का रसास्वादन किये रहता है इसीलिए एकान्त तथा निर्मलता की बड़ी जरूरत है। साधक को उक्त दशा में सात्विक भोजन का ही सेवन करना चाहिए। जप करते समय अन्य शब्दों का श्रवण निरोध करें और साधक जप करते हुए श्वास क्रिया पर बहुत सूक्ष्मता से ध्यान रखे। श्वास की क्रिया ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर होती है। श्वास का सम्बन्ध पंच प्राणों से होता हुआ अंतःपुर में परमतत्त्व तक रहता है। इसलिए जब वायु की गति ऊर्ध्वारोही होने लगती है अर्थात् नीचे से ऊपर को चढ़ने लगे उसी समय जप करता हुआ साधक सुरति को श्वास के साथ लगा दे। यहाँ पर बड़ी बारीकी से काम लेना पड़ता है। जैसे विद्युत् के सूक्ष्म तारों को मूल केन्द्र में जोड़ना पड़ता है उसी प्रकार से साधक को सुरति श्वास में जोड़ना पड़ता है। जब साधक अपने मन को श्वास में लगा देता है तो मन भी श्वास के साथ-साथ ऊर्ध्वारोही होने लग जाता है। यहाँ प्राणायाम की जरूरत नहीं होती। यह सहजयोग की एक सहजकला है। इस जोड़ने की कला को वह जानता है। कुछ दिन के बाद साधक को कोई विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता।

इस क्रिया को हो सके तो साधक रात्रि बारह से ४ बजे के बीच करे। परमतत्त्व की प्राप्ति चाहने वाले साधक को दिन में अधिक सो लेना चाहिए। क्योंकि निद्रा से रात में क्रिया करने में बाधा पड़ती है। न्यून-तम से न्यूनतम ६ मास तक लगातार इस क्रिया को करना परमावश्यक होता है। जो साधक सम्पन्न नहीं है, गरीब है, दिन भर काम करता है उसको सोने का समय दिन में मिलना सम्भव नहीं है। वह साधक सूर्यास्त के बाद ही सब कार्य करके सो जाय। ६ घंटे सोने के बाद उक्त क्रिया को चालू कर दे। साधक को इस क्रिया को करने के कुछ दिन बाद मुख सूखने लग जाता है। पर साधक को भय नहीं करना चाहिए। थोड़े ही दिन में मिश्री के स्वाद के समान मीठा स्वाद मिलने लगता है उस

अवस्था तक साधक भीतर से प्रसन्न रहने लगता है। चित्त निरुद्ध होने पर रसना वाला जप बन्द हो जाता है। यह सब अजपा-जाप में ही होता है। इसलिए साधक की प्रसन्नता का कारण चित्त है। इसलिए जिस प्रकार से हो सके मन को निर्मल बनावे। किसी प्रकार से चित्त में कलुषता आने न दे। इस प्रकार से जप क्रिया ६ मास तक पूर्ण होने लगती है तो वायु के साथ-साथ जप करता हुआ मन कुण्डलिनी के समीप पहुँच जाता है, जो अधोमुख बैठी हुई है। क्रिया के प्रभाव से वह कम्पायमान होने लगती है। उस समय साधक के लिए पहुँचे हुए गुरु की परम आवश्यकता होती है। क्योंकि कुण्डलिनी सर्पाकार कुण्डली मारकर बैठी रहती है। जप के द्वारा छेड़छाड़ होने से वह उद्विग्न हो उठती है। क्योंकि जप का श्वास के साथ मिल जाने से मूलाधार से सहस्रार तक अर्थात् आकाश से पाताल तक प्रत्येक तन्तुओं को आन्दोलित कर देती है। जप वाला वायु ठीक कुण्डलिनी के मुख के ऊपर असर डालता है जिसके कारण फुफकार मारकर अपनी ओर साधक को आते याद होती है। ऐसी दशा में अनभिज्ञ साधक भयभीत होकर अपने पद से विचलित हो जाता है और जोरों से चिल्लाने लगता है। कितने साधक तो पागल हो जाते हैं। ऐसी दशा में गुरु ही बचा सकता है या जिसपर परमेश्वर की असीम कृपा रहती है वह स्वयं भयभीत नहीं होता, क्योंकि कुण्डलिनी के समीपस्थ होने पर संसार से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। इन्द्रियाँ अन्तर्मुख हो जाती हैं जिसके कारण साधक कुछ काल तक पराधीन हो जाता है। यदि साधक की उक्त दशा हो जाय तो गुरु या कोई चतुर मनुष्य उसकी रक्षा करते रहे। उस समय उसके सिर पर अधिक जल छोड़ें और शीतलतायुक्त तेल का मर्दन करें। कुछ दिन के बाद साधक स्वयं सचेत अवस्था में आ जाता है और जहाँ-तहाँ शान्त बैठे दिखाई देता है। यदि ज्यादा दिन तक पागलपन रहे तो पास के लोगों को चाहिए कि किसी जानकार सन्त महात्मा के पास पहुँचा दें। प्रथम तो साधक को संयम से काम लेना चाहिए। ताकि उक्त अवस्था को न प्राप्त होवे। भोजन आदि नियमित रूप से करे। खट्टा, मीठा एवं कड़ुआ का परित्याग कर दे। मांस, मद पूर्ण रूप से छोड़ दे। अजीर्ण भोजन न करे। इस क्रिया को करने वाले को स्त्री-प्रसंग कदापि न करना चाहिए। यदि करे तो भी एक वर्ष तक नियम बना ले। यदि अधिक कामोद्वेग हो तो ६ माह तक अवश्य मन को नियन्त्रण कर रखे। अन्यथा यह क्रिया

सफल नहीं हो सकती है और न सहजयोग ही हो सकता है। क्योंकि वीर्य की अधिकता से हृदय पुष्ट होता है तथा मस्तिष्क को बल मिलता है और मन की गति में शक्ति आ जाती है।

वीर्य की अधिकता से वृक् नामक अग्नि जो पक्वाशय में स्थिर है, वह भी प्रदीप्त हो उठती है जिसके कारण पाचन-शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि गरिष्ठ से गरिष्ठ पदार्थ पच जाते हैं। कभी-कभी इस मार्ग के योगी जहर भी पचा लेते हैं। इतिहास के अनुसार मीराबाई और कबीर साहब तथा अन्यान्य संतों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। वीर्य की गरिमा वेदों में वर्णित है। एक स्थल पर आया है कि वीर्यवान् पुरुष ही कालान्तर में ब्रह्मा होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वीर्याधिक्य से ही साधु-संत, योगी-जन शीतोष्ण सहन करने में समर्थ होते हैं। इसलिए वीर्य की रक्षा करना साधक का परम कर्त्तव्य है, जिससे कि मन, मस्तिष्क तथा हृदय तीनों सबल बनें। ये तीनों जितना ही पुष्ट रहेंगे, उतना ही सहजयोग में सफलता मिलेगी। क्योंकि निर्बल मन, निर्बल हृदय एवं निर्बल मस्तिष्क न तो लौकिक और न ही पारलौकिक कार्य कर सकते हैं। एक बात ध्यान देने योग्य है कि कभी-कभी ब्रह्मचारी को ऐसे रोग हो जाते हैं जिससे लोक में उसका उपहास होता है। इसका कारण वीर्य की अशुद्धता है। उष्ण पदार्थों के खाने से वीर्य में अधिक उष्णता आ जाती है। परिणामस्वरूप फोड़ा-फुन्सी, दाह, मधुमेह और फास्फेट दूषित वीर्य के ही परिणाम हैं। इसलिए साधक को अत्यधिक संयमपूर्ण भोजन करना चाहिए। वातज भोजन तथा विषवर्धक भोजन भी त्याज्य है। स्त्री नवयुवती हो या अर्द्ध अवस्था से पार की हो, साधक उसकी मुखाकृति एवं वक्षस्थल को न देखे तथा उसका स्पर्श भी न करे। उक्त अंगों को देखने से भी वीर्यस्राव होने लगता है तथा ब्रह्मचर्य हनन का उपक्रम भी हो जाता है। स्त्री दर्शन यदि हो भी तो अवस्था के अनुसार मातृ, भगिनि और पुत्री का भाव रखे। भरसक इनसे दूर रहे तो अच्छा है। इसी प्रकार से स्त्री साधिका हो तो उसे भी पुरुषों से बचना चाहिए। साधक पुरुष के लिए जो नियम हैं वही नियम साधिका स्त्री के लिए हैं। कामवासना दोनों के लिए घातक है। काम-वासना को लेकर ही स्त्री-पुरुष को दूर रहने को बताया गया है। अन्यथा न स्त्री बुरी है और न पुरुष अच्छे हैं। स्त्री-पुरुष दोनों में एक ही आत्मा निवास करती है। इसलिए सब सामान्य रूप से मानव हैं परन्तु

जहाँ तक ब्रह्मचर्य का प्रकरण है वह दोनों को पृथक् रहकर साधना करनी चाहिए।

इस सहजयोग को सभी जाति, सभी धर्म के लोग तथा सभी देश के लोग कर सकते हैं। पर ब्रह्मचर्य का नियम सभी के लिए अनिवार्य है। भारत उष्ण प्रधान देश है। इसलिए इसे अत्यधिक ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता है। ब्रह्मचारी के लिए कबीर साहब कहते हैं कि ब्रह्मचर्य के अभाव में पूर्णत्व को प्राप्त करना सम्भव नहीं है। वे कहते हैं कि—पूर्णरूप से कामदेव का निरोध करने पर ही कर्मकृत कश्मल नष्ट हो सकते हैं। आठ प्रकार के मैथुनों को भी जीतने का निर्देश देते हैं। उनका कहना है कि जो स्वप्न में भी विन्दु को गिरने नहीं देता है उस पुरुष का जरा-मरण नहीं होता। अर्थात् वह न तो वृद्धत्व को प्राप्त होता है और न मरणत्व को। वे कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का क्षय विशेषकर स्त्रियों के साथ होता है क्योंकि स्त्री में अग्नितत्त्व की बहुलता, और पुरुष में द्रवत्व का बाहुल्य होता है। इसलिए दोनों के आस-पास रहने से भी कामोद्वेग हो जाता है। उक्त अग्नि-तत्त्व उनके विशेष अंगों में विद्यमान होते हैं जिसके अवलोकन से भी द्रवत्व का द्रवीकरण होता है। इसलिए कबीर साहब ने योगियों के लिए उक्त बातें कही हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि जनक, याज्ञवल्क्य आदि गृहस्थ और स्त्री के साथ रहने पर भी परमतत्त्व को प्राप्त किये हैं ऐसी बात नहीं है। वे सब महापुरुष पहले गृहधर्म तथा स्त्रीसंग में रहते थे। सारी बुराइयों का त्याग करने पर ही उनको परम-तत्त्व की उपलब्धि हुई थी। इसलिए यहाँ त्याग का ही तात्पर्य है। जनक और याज्ञवल्क्य के विषय में कबीर साहब के कथनों से ही उपर्युक्त बातें सिद्ध होती हैं।

'मूदे मदन काटि कर्मकसमल सन्तत चुवत अगारी।'
तबहीं विष्णु कहा समुझाई। मैथुन अष्ट तुम जीतहु जाई॥
तब सनकादिक तत्त्व विचारा। ज्यों धन पावें रंक अपारा॥
सपनेहुँ विन्दु देइ नहि झरना। ता काजी का जरा न मरना॥

नारी नसावे तीन गुण, जेहि नर पासे होय।
ज्ञान, ध्यान और मुक्ति में, बैठ सके ना कोय॥

चतुर साधक को इन पंक्तियों पर विचार करके ही सहजयोग की ओर उन्मुख होना चाहिए। अन्यथा उसके परिश्रम निरर्थक हो जायेंगे। ऐसे

साधक कुछ पा नहीं सकते हैं। अन्त में अध्यात्म विषय एवं सहजयोग की निन्दा में लग जाते हैं। अपने तो स्वयं आत्मानुभव से वंचित हो जाते हैं और दूसरे साधकों को भी साधनापथ से विरत कर देते हैं।

निर्देशक गुरु को चाहिए कि विना पूर्ण अधिकारी जिज्ञासु को परखे बगैर उपदेश न करे। क्योंकि कबीर साहव ने उक्त प्रकार के जिज्ञासुओं के लिए निषेध किया है। सद्गुरु कवीर का कहना है कि परम अद्भुत जो सहजयोग है उसे अनधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। यदि उसका कथन करते भी हों तो छिपे तौर पर कोमल हृदय वाले निष्कपट श्रद्धालु भक्त के प्रति कथन करें। क्योंकि सहजयोग का उल्लेख वेद-पुराणों में नहीं किया गया है। इसलिए यदि अनभिज्ञ अनधिकारी के प्रति कहोगे तो वह विश्वास नहीं करेगा :

ऐसा अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय।
वेद पुराणे ना कही, कहो तो को पतियाय॥

अतः निर्देशक को चाहिए कि विना अधिकारी के इस योग को न सुनाना चाहिए और न ही वताना चाहिए। अधिकारी को भी चाहिए कि जब तक उक्त सहजयोग का रहस्य न जान जाय तव तक हठपूर्वक इस सनातन योग को न सीखे। यदि दोनों इस आज्ञा का उल्लंघन करेंगे तो पुरातन योग दोनों को नष्ट कर देगा। यह रहस्यमय आध्यात्मिक विषय है। भौतिकवादी इसे नहीं समझ सकते। जिनकी वृत्ति पराङ्मुखी है उन्हें इस योग के समीप नहीं आना चाहिए। उनके लिए भक्तिभाव के सहित वलीमुखमार्ग, पिपीलमार्ग अथवा हठयोग, योग, दान-पुण्य, परोपकार, पर-सेवा प्रभु की भक्ति ही विहित है। ऐसे ही लोग प्रतिमा के भी पुजारी हो सकते हैं। उक्त कृत्यों को करने के वाद अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह भी श्रद्धा के साथ किया जाय तभी सम्भव है। अन्यथा श्रद्धा विश्वास के बिना सव निष्फल हो जायेगा। इसीलिए वार-वार साधक और साधना कराने वाले को पात्रता, अपात्रता पर खूब विचार करना चाहिए। तभी उपर्युक्त मार्ग में प्रवृत्त होना श्रेयस्कर होगा। अन्यथा :

उपजे खेत बीज नहीं परई। ज्यों रे किसान किसानी करई॥

वाली वात हो जायेगी। अस्तु, सत्य शब्द का उच्चारण करता हुआ साधक का मन चक्राकार हो जाता है। सगर्भ प्राणायाम अर्थात् श्वास के साथ जुड़ा हुआ मन वायें से दाहिने की ओर होता हुआ ब्रह्माण्ड की

ओर चल पड़ता है। उपांसु के बाद ब्रह्माण्डगामी मन कभी-कभी दायें से बायें की ओर घूम जाता है जो साधक के लिए महान् घातक है। क्योंकि वह चन्द्रलोक की ओर ले जाने वाला मार्ग है जिसे लोक में पितृयायन के नाम से अभिहित करते हैं। पितृयायन से चलता हुआ साधक, योगी लोकों में पहुँचता है जहाँ पर बहुत काल के बाद अधोगामी हो जाता है। वह मार्ग अधिक संकटों से घिरा हुआ है। तमाच्छन्न होने से उसमें कुछ दिखाई नहीं देता है। इसीलिए उसको महातमाच्छन्न मार्ग कहा गया है। सचेष्ट साधक को चाहिए कि बायीं तरफ से मन को न जाने दे, वह सुरति को श्वास के साथ लगाकर दाहिनी तरफ अर्थात् उत्तरायण का आश्रयण करे। जो सूर्यलोक अर्थात् प्रकाशमय लोक को होता हुआ ब्रह्मलोक को पार करते हुए समसत्ता में प्रवेश करने का मार्ग है। जिस मार्ग से गया हुआ योगी पुनः नीचे के लोकों में नहीं आता है। यदि साधक को समझ में न आवे तो गुरु से परामर्श कर लेना चाहिए। दायीं तरफ से घूमता हुआ मन जब ब्रह्माण्ड की ओर ऊर्ध्वारोही हो जाता है तब साधक का सिर भी घूमने लग जाता है तथा पृष्ठ भाग की ओर कुछ टेढ़ा हो जाता है। यह भी साधक के लिए घातक है क्योंकि सिर के टेढ़ा हो जाने पर और घूमने लग जाने पर मार्ग में वक्रता आ जाती है एवं श्वास की गति भी ठीक से नहीं चलती। इस कारण नीचे की ओर मन प्रवृत्त हो जाता है। इसलिये साधक को चाहिए कि समुचित रूप से मेरुदण्ड से लेकर सिर तक शरीर दण्डाकार रखे और बन सके तो सिद्धासन से ही बैठे उसके लिए यही उत्तम होगा। सिद्धासन पर बैठने से कुण्डलिनी अर्थात् ज्ञानवाहिनी नाड़ी के मुख पर उष्णवात का दबाव पड़ता है जिसके कारण ज्ञानवाहिनी का मुख खुलने लग जाता है। इसलिए प्रत्येक साधक योगी के लिए सिद्धासन से ही बैठना उत्तम है।

सिद्धासन विधि

सिद्धासन उसे कहते हैं जो सिद्धि व आत्मप्राप्ति के लिए ऋषियों द्वारा अन्वेषित है। बायें पाँव की एड़ी को शिश्न के नीचे बीच वाली नस पर जो पोता के नीचे से लिंगद्वार तक जाती है, जिसके द्वारा वीर्योत्वाहन होता है, उसी नाड़ी के नीचे बायें पैर की एड़ी को बीचो-बीच रखना चाहिए अर्थात् शिश्न के ऊपर दाहिना पैर रखना चाहिए। तदुपरान्त दण्डाकार बैठकर शनैः शनैः उक्त आसन पर शरीर का भार देना चाहिए। कुछ

दिनों के बाद सम्पूर्ण शरीर के भार को उक्त आसन पर दे देना चाहिए। परिणाम स्वरूप कुण्डलिनी का जागरण भी सम्भव हो जाता है एवं जठरानल उद्दीप्त हो जाता है। इसके उद्दीप्त होते ही खाया हुआ अन्न शीघ्र ही पच जाता है। कब्ज आदि रोग नहीं होते और भी अनेक रोग सिद्धासन से शमन होने की बात योग के ग्रन्थों में उल्लिखित है। यदि साधक सिद्धासन से न बैठ सके तो पद्मासन, वज्रासन या योग के किसी भी सुगमासन से बैठकर साधना करे। यदि योग का कोई भी आसन साधक के लिए उपयुक्त न हो सके तो सहज आसन से ही बैठे। परन्तु मेरुदण्ड और सिर को सीधा रखना चाहिए ताकि प्राणायाम की गति ठीक से चल सके। श्वास के अर्ध-ऊर्ध्व में जाने-आने में कठिनाई नहीं होने पावे। अन्यथा कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती है। आसन पर साधक को विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि योग में आसन को ही मूलरूप में माना गया है। योग की सारी क्रियाएँ आसन पर ही आधारित हैं। यदि आसन ठीक नहीं है तो उसका योग भी ठीक नहीं हो सकता। इसलिए साधक को चाहिए कि जानकार गुरु, जो आसनों की विधि को जानता हो, उससे आसन से बैठने की विधि सीखे। अन्यथा यथोचित आसन न होने से अनेक प्रकार के मूत्रविकार एवं मलावरोध के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए साधक को चेतावनी दी जाती है कि योगध्यान करने के प्रथम आसन से बैठना सीखे।

जपक्रिया का समय

जप के विषय में जो प्रथम निर्देशन किया गया है वही काल उत्तम है। रात्रि १२ बजे से प्रातः ४ बजे का समय संतों द्वारा निर्धारित किया गया है। वैसे तो वास्तविक समय १२ बजे रात्रि से २ बजे रात्रि तक का समय विशेष श्रेष्ठ है। सायं सूर्यास्त के बाद भी साधना की जा सकती है परन्तु बहुत ही एकान्त स्थान होना चाहिए। निर्वात प्रदेश में साधना को साधक शनैः-शनैः बढ़ाते जायँ। जप आरम्भ करने के पूर्व गुरु के स्वरूप का ध्यान करना आध्यात्मिक व्यक्तियों के लिए विहित है। योग के लिए इसमें वैज्ञानिक रहस्य है जिसे विद्वान् पुरुष जानते हैं। तदुपरान्त साधक मन की वृत्ति को जहाँ पर बैठता हो वहाँ से शत वितस्ति की दूरी पर रखे। जप करता जाय और धीरे-धीरे जप के साथ मन को भी अपनी ओर केन्द्रित करता जाय। इस प्रकार से कुछ

काल के बाद मन की वृत्ति नासिका के पास चली आती है और साधक जप के द्वारा अन्तःपुर में प्रवेश कर लेता है। इसमें साधक को किसी प्रकार का किसी भी अंग में विकार उत्पन्न होने की संभावना नहीं रहती है। वृत्ति को एकाएक रोकने पर त्रिकुटी में ध्यान लगाने से कर्णेन्द्रिय एवं नेत्रेन्द्रिय पर बड़ा कुत्सित प्रभाव पड़ता है। ऐसे साधक कभी-कभी अन्धे और वहरे भी हो जाते हैं जिसके कारण शरीर में अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ जाती हैं। जैसे—चेहरे पर काले धव्वे पड़ जाना, नेत्र के आन्तरिक भाग में भी कालापन आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। मस्तिष्क में निर्वलता भो आ जाती है। इसलिए साधक को हठात् अथवा हठयोग की किसी भी प्रक्रिया को यदि करना चाहता है तो बलपूर्वक न करे। साधक को चाहिए कि सहज रूप में ही क्रिया का समारम्भ करे। सर्व-प्रथम इस प्रकार की साधना करने के पहले भोजन नहीं करना चाहिए। यदि भोजन करे भी तो अल्पाहार अथवा दूध, दही का पानी, फल का रस लेवे। साधनोपरान्त भरपेट खाने में कोई आपत्ति नहीं है। साधक को एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए कि साधना करने के पश्चात् आसन पर ही कुछ काल तक शान्तचित्त बैठा रहे। तुरन्त इधर-उधर, चलना-फिरना न करे ताकि नसों में जो उभार आ जाता है वे अपने-अपने स्थान पर ठीक रूप में स्थिर हो जाय अन्यथा रक्त के संचार में दोष आ जाता है और उदररोग, वातरोग आदि होने का भय रहता है।

इस प्रकार से साधनारत साधक जो रसना से जप करता है, कुछ दिन करने के पश्चात् वह जप, अजपाजाप के रूप में आरम्भ हो जाता है। अर्थात् रसना वाले जप को मन स्वयं करने लग जाता है और श्वास के साथ एकबद्ध तादात्म्य भाव को धारण कर लेता है। अजपाजाप जब आरम्भ होता है तो सर्वप्रथम साधक को अनाहत नाद सुनाई देता है। कभी-कभी अनाहत शब्द समुद्र की गर्जना का रूप लेता है। कभी-कभी वज्रपात जैसे शब्द भी ध्वनिपात होते हैं। ऐसी दशा में कोई-कोई साधक घबड़ा कर विक्षिप्त हो जाता है और उसकी साधना भी बिगड़ जाती है। ऐसे स्थान पर पहुँचने के बाद जब थोड़े-थोड़े शब्द सुनायी देना आरम्भ हो जाय तो साधक को चाहिए कि गुरु से सम्पर्क बना ले। गुरु उस भयंकरता को दूर करके आगे को ओर निर्देशन देता है। जहाँ पर अनाहत शब्द सुनायी पड़ता है। ब्राह्माण्ड के अन्दर ऐसे स्थान हैं जो स्वयं गतिमान रहते हैं। ये स्थान एक प्रकार

के शारीरिक यन्त्रों के केन्द्र हैं जिनकी ध्वनि को जो साधक कभी सुने और देखे नहीं रहता है। ऐसी चीजों को सुनकर या देखकर घबड़ा जाना स्वाभाविक ही है। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि कभी-कभी साधक मन्दगति वाले शब्द को ही सुनने लग जाता है और उसी को सब कुछ मानने की उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। इस पर सत्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि :

अनहद अनुभव की करि आशा, ई विपरीत जो देखहु तमासा।
इहे तमासा देखहु रे भाई, जहवाँ शून्य तहाँ चलि जाई।
शून्यहिं बच्छे शून्यहिं गयऊ, हाथा छोड़ि बेहाथा भयऊ।

सद्गुरु कबीर के ये वाक्य प्रमाण स्वरूप उद्धृत किये गये हैं। उनका कहना है कि अनहद शब्द कोई चीज नहीं है, वह केवल ध्वनि मात्र है।

शरीर के ऊर्ध्वभाग में अर्थात् ब्रह्माण्ड मण्डल में इतने यन्त्र हैं जो सदैव गतिमान रहते हैं। अनहद ध्वनियाँ उन यन्त्रों की ध्वनि हैं। यन्त्रों का मुख्य स्थान हृदय और ब्रह्माण्ड में है जहाँ से शारीरिक क्रियाओं का संचालन होता है। इन ध्वनियों में कोई सार तत्त्व नहीं है। ये पूर्णरूपेण शून्य हैं। उसे सुनने वाला साधक सत्य से वंचित हो जा है। इसलिए साधक को चाहिए कि मन्दगति वाले शब्द को त्याग कर आगे बढ़े।

इसके पश्चात् कुछ दूर जाने पर मधुर शब्दों का श्रवण होने लगता है जो इतने प्रकार के होते हैं कि जिन्हें समझना बहुत कठिन हो जाता है। ये मधुर शब्द बहुत सूक्ष्म होते हैं। ये अति एकाग्रता में ही परिज्ञात होते हैं। शब्दों की संख्या अपरिमित है। कोई-कोई साधक प्रणव की ध्वनि समझ कर उसकी उपासना करने में लग जाते हैं। यह 'अ' है, ऐसा समझ कर उसको निःअक्षर भी मानते हैं और कान बन्द कर ध्वनियों को सुनते रहते हैं। ऐसे साधक विमोहित होकर रहते हैं। ये सूक्ष्म तरंगीय शब्द सूक्ष्म यन्त्रों की आवाज हैं। पहले कहा जा चुका है कि शरीर में इतने यन्त्र हैं कि उनकी संख्या कहना कठिन है। अनेक प्रकार के यन्त्रों के अनेक प्रकार के शब्द होते हैं। सारे यन्त्र प्रकृति निर्मित हैं। इनका दर्शन दूरवेक्षण आदि यन्त्रों से नहीं किया जा सकता। क्योंकि कबीर साहब कहते हैं :

यन्त्री यन्त्र अनुपम बाजे, वाके अष्ट गगन मुख गाजे।
एक शब्द में राग छतीसो अनहद बानी बोले।
रमुरा झी-झी जन्तर बाजे, कर चरणन बिहुना नाचे। इत्यादि

शरीर यन्त्रों से भरा पड़ा है। पाश्चात्य वैज्ञानिक चिकित्सकों ने इस पर बहुत अनुसंधान किया है। जो विज्ञप्तियाँ उन वैज्ञानिक चिकित्सकों की प्रकाशित हुई हैं वे सब शारीरिक यान्त्रिक विषयों से योग-शास्त्र के वर्णनों से बहुतांश में मेल खाती हैं। परन्तु वैज्ञानिक चिकित्सकों का अन्वेषण अभी पूरा नहीं हो पाया है। वे शल्यक्रिया के द्वारा ही विशेष अन्वेषण किये हैं जो बहिरंग खोज है। इसलिए बहुत सी नाड़ियाँ और यन्त्र ऐसे हैं जिन्हें समझने के लिए वैज्ञानिकों के पास अभी यन्त्र उपलब्ध नहीं हो पाये हैं जिन पर सन्तोष किया जाय। परन्तु उनके प्रयत्न प्रशंसनीय अवश्य हैं। इधर योगीजन वहिरङ्ग अन्वेषण न करके, अन्तरङ्ग में प्रवेश करके मनरूपी नेत्र से सभी स्थलों, यन्त्रों, सभी नस-नाड़ियों की एवं उनकी गतिविधियों को देख लेते हैं। इसलिए यौगिक क्रिया वाला अन्वेषण दुस्साध्य होने पर भी कर्त्तव्य है, जिसके द्वारा सूक्ष्म वस्तुओं का भी ज्ञान होता है। पूर्वकाल में हमारे महर्षि सन्तगण कठिन परिश्रम करके अन्तरङ्ग की अनेक जानकारी प्रदान की है।

ध्वनिप्रकार

प्रथम शब्दों में अर्थात् पहली अवस्था में चिड़-चिड़। द्वितीय अवस्था में चिन-चिन अर्थात् पहले वाले शब्द से कुछ भिन्न शब्द सुनायी देता है। उसके बाद क्रम से घण्टा, तुरही, ताली, बाँसुरी, मृदंग, भेरी (नगाड़ा) आदि की ध्वनियाँ साधक को दूसरी अवस्था में सुनायी पड़ती हैं। इनको पार करने पर मेघ के समान घनघोर शब्द सुनायी देने लगता है। वहाँ पर भी मन अधिक मधुरता के कारण सुनने लग जाता है। उस समय मन की गति मयूर जैसी हो जाती है जिसको श्रवण करने के कारण आगे का मार्ग भूल जाता है। वह मेघ के समान शब्द सबसे वड़ा यन्त्र, जो ब्रह्माण्ड में स्थित है जिसके द्वारा सभी यन्त्र संचालित होते हैं, जो सहस्रार के सन्निकट के सहस्रचक्र के नाम से विख्यात है, जिसके नीचे एक जाल सा ग्रन्थिवन्धन होता है। वह जाल नाड़ियों का एक संगम है। जहाँ से रक्त का संचार चारों तरफ होता रहता है। कभी-

कभी साधक को मेघयन्त्र के पार्श्वभाग में भी किं-किं वीणा, भ्रमर कलरव आदि शब्द भी प्रतिध्वनित होते हैं जिसे सुनकर भी साधक आगे नहीं बढ़ पाता है। इसलिए उपर्युक्त ध्वनियों को भी पार करता हुआ आगे बढ़ना चाहिए। उपर्युक्त ध्वनियाँ भी पार्श्वभाग की ध्वनिमात्र हैं। इन्हें कोई विशेष वस्तु नहीं समझना चाहिए।

साधक को कुछ दूर और जाने पर ऐसे प्रकाशों का दर्शन होता है जिनके रंग लगभग पच्चीसों प्रकार के दिखाई देते हैं। यहाँ भी साधक को भटकने का भय रहता है। इसे भी पार करना साधक का कर्त्तव्य है। ये प्रकाश प्रकृति के प्रकाश हैं। इनमें भी कोई सार वस्तु नहीं है। इसके बाद कुछ दूर पर चन्द्रमा की आभा जैसा प्रकाश मार्ग में मिलता है। उसे भी पार कर साधक को आगे बढ़ना चाहिए। वह भी बाह्य चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब है। तत्पश्चात् कुछ दूर और जाने पर सूर्य जैसा एक गोलाकार प्रकाश उपस्थित हो जाता है जिससे साधक को बहुत बड़ा खतरा मोल लेना पड़ता है। वहाँ पर साधक भ्रम में पड़ने लगता है क्योंकि वह प्रकाश इतना तीव्र है कि उसकी ओर मनोवृत्ति अधिक समय तक नहीं रुक पाती। उस प्रकाश के समीप पहुँचते-पहुँचते साधक में कुछ दिव्यता आ जाती है और उसको भूत-भविष्य की भी कुछ बातें दिखायी देने लगती हैं।

उस महातेज के दर्शन से साधक को दूरदृष्टि प्राप्त होती है और वाक् सिद्धि भी हो जाती है, जो सहजयोगी के लिए बहुत बड़ा बन्धन है। इसी स्थान पर अनेक संकल्पों की भी सिद्धि होने लग जाती है। ऐसी दशा में साधक मान बड़ाई में पड़कर आगे का मार्ग भूल जाता है तथा पुनः मनोवृत्ति बहिरङ्ग होने लगती है और संसारी बनकर जन्म-मरण के चक्र में आ जाता है इसलिए उक्त प्रकाश को बायीं ओर छोड़कर दाहिने से उसकी परिक्रमा करके घूम जाय अर्थात् मन की वृत्ति को चक्राकार घुमाकर और ऊपर ले जाय जहाँ पर पूरण स्थान है। वास्तव में उक्त गोलाकार आलोक जो ब्रह्माण्ड में दृष्टिगोचर होता है वह सूर्य का प्रतिबिम्ब है। वहाँ पर एक ऐसा यन्त्र है, जब उसके पास मन जाता है तो बाहर की सारी वस्तुएँ भीतर दिखायी देने लगती हैं। आपको ध्यान होगा कि स्वप्नावस्था में भी मन उक्त यन्त्र के पास पहुँचने पर सभी देखी हुई बातों का दर्शन करता है। इसी प्रकार से साधक वहाँ पहुँचने पर बाहर के समस्त वस्तुओं को देखने लगता है। यह रहस्य आध्यात्मिक विषय

का है। इसकी विवेचना बहुत लम्बी-चौड़ी है। इसलिए उधर न जाकर अपने मार्ग की ओर जाना ही श्रेयस्कर है। शून्य स्थान से नाभिप्रदेश में जाने का एक मार्ग है जो मेरुदण्ड के पार्श्वभाग में विद्यमान है जिसको सहचरी या मूलधारा तथा वंकनाल एवं मूलपंथ भी कहते हैं। यह पश्चिम की ओर अर्थात् मेरुदण्ड के पृष्ठ में है। इसका विभाजन इस प्रकार है :

मेरुदण्ड के पार से एक भाग हृत्पिण्ड को होते हुए मूलाधारचक्र को गया है तथा ऊर्ध्व में एक भाग प्रधान अंग जो मस्तिष्क है वहाँ पर पहुँचा है। इसे प्रधान श्वास नलिका भी जानना चाहिए। इसी प्रधान श्वास नलिका के तीन स्थानों पर तीन चक्र एवं तीन जाल हैं।

प्रथम मस्तिष्क के पास में जहाँ पर पहुँचती है वहाँ पर नाड़ियों की इतनी शाखाएँ हैं जो पूरे ब्रह्माण्ड में फैली हुई हैं। यहाँ पर स्नायुमण्डल का जाल बहत्तर सहस्र समूहों का है जो शरीर के प्रत्येक अंगों को अपने प्रभाव में रखता है और दूसरा चक्र हृदयस्थान में है। हृदय स्थान में एक ऐसा यन्त्र है जो पूरे शरीर को संचालित करता है। उसी के नीचे पक्व केन्द्र है जो प्रत्येक खाये हुए पदार्थों को पचाकर ठीक करता है। उसके नीचे ऐसे यन्त्र हैं जो मल-मूत्र को अलग करते हैं। सप्तरसों को भी अलग करते हैं। इसी स्थान से सभो रसों का शरीर के प्रत्येक भागों में सम्प्रेषण होता है। इस स्थान को योगी को बहुत सुरक्षित रखना पड़ता है क्योंकि पक्वाशय की गड़बड़ी से योग-भोग कुछ नहीं होते हैं। इसी स्थान से वीर्य आदि बनकर मस्तिष्क में भेजे जाते हैं। यह स्थान एक जलता हुआ अग्निपुंज या धवनी भट्ठी के समान है। स्थूल शरीर का सर्वे-सर्वा रक्षक यही है। इसमें ऐसी चीजें नहीं डालनी चाहिए जिसके प्रकोप से शरीर में विकार उत्पन्न हो।

पक्वाशय के ऊपर वाला स्थान जो हृदयनाम से प्रसिद्ध है। जहाँ पर स्नायुमण्डल का दूसरा जाल बिछा हुआ है, जिसके पास प्रधान नलिका पहुँची है। इस प्रधान नलिका से अनेक शाखाएँ निकली हुई हैं जो पूरे शरीर में पहुँचकर एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। तीसरा चक्र मूलाधार के नीचे है जिससे भी अनेक शाखाएँ निकलकर पैर तक फैली हुई हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि तीनों मण्डलों से निकलकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म नलिकाएँ सम्पूर्ण वपुष् में विस्तृत रूप में फैली हुई तथा एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। प्रधान वायु नलिका की जितनी भी शाखाएँ हैं उन सबका कार्य

प्रत्येक स्थान पर वायु को संचालित करना तथा रक्त को सभी स्थानों पर पहुँचाना है। इनमें कुछ का कार्य विभाजित रसों को उनके स्थानों पर पहुँचाना होता है। इन नलिकाओं के बिना शरीर के किसी भी भाग के कार्य नहीं हो सकते और न शरीर ही स्वस्थ रह सकता है। यदि किसी स्थान पर इनका अवरोध हो जाय तो वातरोग, व्रणरोग एवं भयानक पक्षाघात आदि हो जाते हैं। कभी-कभी इनके अवरुद्ध होने पर विशेष स्थानों पर प्रदाह आदि उत्पन्न हो जाता है। इसलिए योगी लोग विशेषकर (हठयोगवाले) इनकी प्रत्येक गतिविधियों को शुद्ध रखते हैं। ये सब नलिकाएँ प्राणायाम के द्वारा ही सुचारु रूप से कार्यरत रहती हैं।

नाड़ियों की इतनी संख्या हैं कि जिन्हें गिनना कठिन है। बहुत सी नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म और वर्तुल होती हैं जो प्राणायाम करने वालों के द्वारा बहुत बारीकी से बरती जाती हैं। अन्यथा एकाएक श्वास छोड़ने से किसी स्नायु के फटने से वृहद् रोगों का भय हो जाता है। वे रोग बाह्यक्रिया, चिकित्सकीय क्रिया आदि से अच्छे नहीं होते। क्योंकि चिकित्सकों को पता ही नहीं चल सकता कि कहाँ क्या खराबी है। उनके पास इतने सूक्ष्मयन्त्र नहीं हैं जो विकृत नलिकाओं को जान सकें। वैद्यलोग स्थूल नलिकाओं को ही जान सकते हैं जिनका उपचार औषधि द्वारा सम्भव है। इसलिए पूरक, कुम्भक, रेचक करने वालों को सावधानी बरतनी चाहिए। श्वासक्रिया को करते समय बहुत मन्दगति से शनैः शनैः श्वास को चढ़ाना एवं उतारना चाहिए। यथाशक्य गुरु के बिना इन क्रियाओं का करना निषेध है क्योंकि पुस्तकों के द्वारा करने वाले साधकों को कभी-कभी ऐसे स्थान मिल जाते हैं जो पुस्तकों में वर्णित नहीं हैं।

प्राणायाम करने वालों के लिए ऐसी दशा में गुरु की अत्यधिक आवश्यकता होती है। यों तो बिना गुरु के कोई भी योग पद्धति का सिद्ध होना कठिन है। यहाँ पर सहजयोगान्तर्गत कुछ हठक्रियाओं का वर्णन किया गया है और कुछ नीचे भी हठयोग की क्रियाओं का दिग्दर्शन कराना समीचीन समझता हूँ कारण कि सद्गुरु कबीर ने उभयमार्गों का निर्देशन अपने ग्रंथों में किया है। तद्हेतु सहजयोग के साथ-साथ हठयोग की कुछ प्रक्रिया दिखा देना समुचित जान पड़ा है। पाठकवृन्द षट्चक्रों की ओर चलें।

जो मूलवायु नलिका है साधक उसी में प्रवेश करके मूलाधार चक्र पर पहुँचते हैं, जो गुदास्थान में विद्यमान है, जिस पर चतुर्दल का कमल है।

इसके स्वामी गणेशजी महाराज हैं। जहाँ पर लवण सागर गर्जना करते हुए दिखायी देता है। यहाँ पर कमलों का रंग लाल है। पट्सहस्र श्वासों का जाप करके उक्त मूलाधार चक्र को या कमल को वेधकर साधक आगे बढ़ता है। यहाँ से व, श, ष, स की उत्पत्ति हुई है।

वायु स्थान स्थित मूलाधार चक्र के वाद स्वाधिष्ठान नामक चक्र नाभि प्रदेश के ६ अंगुल नीचे है। जहाँ पर ब्रह्मलोक है। षट्दल का कमल है जिसका रंग पीला है। यहाँ पर मधुसागर उत्ताल तरंगित गर्जना करते हुए दिखायी देता है। इस स्थान के स्वामी स्वयंभू प्रजापति हैं। इसको भी षट्सहस्र स्वाँसों का जप करके भेदन करना पड़ता है। इस स्थान से व, भ, म, य, र, ल की उत्पत्ति हुई है। तत्पश्चात् मणिपुरक नामक चक्रनाभि प्रान्त में विद्यमान है। जहाँ पर दस दल का श्याम रंग वाला कमल है। यहाँ पर क्षीरसागर लहराता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस स्थान के स्वामी लक्ष्मीपति प्रभु भगवान् विष्णु हैं। इस चक्र का भी ६ सहस्र श्वासों का जप करने से भेदन होता है। यहाँ से ण, ढ़, त, थ, द, ध, न, प, फ अक्षरों की उत्पत्ति हुई है। इसके उपरान्त अनाहत चक्र हृदयदेश में विराजमान है। जहाँ पर द्वादश दल का श्वेत कमल विकसित रहता है। यहाँ पर अमृत संजीवनी सुरासागर की गर्जना होती रहती है। इस स्थान पर तीनों लोक के स्वामी भगवान् शंकर हैं। इस चक्र का भी ६ सहस्र श्वासों के जप द्वारा भेदन करना पड़ता है। इस स्थान से क, ख, ग, ध, ङ, च, छ, ज, थ, ट और ठ की अनुभूति हुई है। इसके वाद विशुद्धि चक्र कण्ठस्थान में विद्यमान है। जहाँ पर षोडसदल का कमल है। यह भी श्वेत रंग लिए हुए है। इस स्थान पर दधिसागर अपनी उत्ताल तरंगों से उमड़ता हुआ दृष्टिगोचर होता है। सत्यलोक नामक स्थान भी यहीं पर विवसित है। स्मरण रहे कि यह सत्यलोक शारदादेवी का है। यहाँ पर एक सहस्र श्वासों का जाप करके ऊर्ध्वोक्त चक्र का भेदन करना चाहिए। उक्त स्थान से अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः की उत्पत्ति हुई है। यहाँ से चल कर त्रिकुटीचक्र का भेदन करना पड़ता है जो दोनों भौंहों के बीच में उपस्थित है। यहाँ पर दो दल का लाल रंग वाला कमल है। निरूपित स्थान पर घृत का सागर प्रशान्तरूप में प्रदर्शित होता है। इसके स्वामी विश्वात्मा अजन्मा महाविष्णु हैं। इस चक्र को एक सहस्र श्वासों के जप द्वारा भेदन किया जाता है। यहाँ से ह, छ की उत्पत्ति हुई।

इसके आगे गगन स्थान में भँवरगुहा है। श्याम रंग का कमल खिला हुआ दिखायी देता है जिसके देवता व्यापक तत्त्व भूमा (ब्रह्म) है। अजपाजाप द्वारा इसकी प्रशुद्धि या प्राप्ति होती है। यहीं पर ब्रह्माण्ड में शुद्ध अमृत का कुण्ड है जहाँ से अमृत झरता रहता है। इसका पान अमृत का अधिकारी योगी लम्बिका क्रिया के द्वारा करते हैं अथवा अजपा होने पर आकस्मिक रूप से ऐसी बूँदें बरसने लगती हैं जो अनुभव में मधुर लगती हैं। मालूम होता है कि चारों ओर एक आनन्द का कणकुंज बरस रहा है, वह अमृत के समान ही लगता है। इसका अनुभव अति सात्त्विक वृत्ति होने पर किया जाता है। अतः उपर्युक्त स्थल के मध्य में सर्वान्तर्यामी तत्त्व चैतन्य रूप में कुण्डली मारकर सारे जगत् को अन्वेष्टित किये हुए बैठा है जहाँ से पूरे जगत् का 'संकोच' और 'विकास' करता रहता है। उसी मध्य में उसकी उत्पत्ति स्थान योनि है। यहीं से ब्रह्मांडों का निःसरण होता रहता है। उस स्थान को तत्त्वज्ञ ऋषि ही जान सकते हैं। उसी महिमावान् का दर्शन करके योगीजन जरा-मरण से परे हो जाते हैं। उस महिमा मण्डित की ओर जब यह जीव लगता है तो वह स्वयं उस जीव को अपने में कर्षण कर लेता है। साधक योगी को चाहिए कि पूर्व के सारे दृश्यों और स्थानों को छोड़ते हुए जो उसका निजस्वरूप है, उसी में अहर्निश वृत्ति को लगाये रहे। इससे ब्रह्माण्ड में बाहर से पराङ्मुखी हुई वृत्ति स्थिर हो जाती है। जहाँ पर अमरत्व की प्राप्ति होती है। इस स्थान पर पहुँचने पर सारी विघ्न-बाधाएँ समाप्त हो जाती हैं। किसी प्रकार की इच्छा, आशा, वासना, कल्पना और कलह उस योगी के लिए शेष नहीं रह जाती हैं।

परमसत्ता में विलीन होने के लिए अब उस योगी को ज्ञान की सप्त-भूमिका अर्थात् सप्त सोपानों पर चढ़ना पड़ता है जिसे तत्त्वज्ञों ने ज्ञान के सप्त सोपानों के नाम से उद्घोषित किया है। प्रथम सोपान पर पहुँचने के उपरान्त साधारण सुखानुभूति होती है। मनःवृत्ति संसार से पूर्णरूपेण अन्तर्मुखी होने लग जाती है। द्वितीय सोपान पर पहुँचने पर चित्त की स्थिति गम्भीर होने लगती है। तृतीय सोपान पर पहुँचने के बाद सांसारिक सुखों का अभाव होने लग जाता है। चतुर्थ सोपान के ऊपर पहुँचने पर मनसहित सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अन्तः को ओर स्वतः अग्रसर हो जाती हैं। तदुपरान्त पाँचवाँ सोपान आता है। उक्त सोपान पर पहुँचने पर संसार के प्रत्येक व्यवहारों में विभ्रान्तता आ जाती है। कहने का

तात्पर्य यह है कि हिताहित का रंचमात्र भाव रह जाता है। परन्तु वृत्ति की तीव्रता षष्ठ सोपान को ओर इतनी तेजी से गतिमान् हो जाती है कि अब जागतिक प्रपंच उसे निर्बंधित नहीं कर सकता है। इसलिए पाँचवें सोपान के अन्त होते-होते संसार पूर्णरूपेण विलुप्त हो जाता है। तत्पश्चात् षष्ठसोपान आता है जो ज्ञान की छठी भूमिका कहलाती है जिस पर पहुँचने पर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति को पार कर तुरीयावस्था में पहुँच जाता है। वहाँ पहुँचने पर न जगत् और न वह रहता है। अहम्-त्वम् भावाभाव, विभावना, आविभावना, ज्ञाता-ज्ञान, ध्याता-ध्यान, कर्त्ता-विकर्त्तापन आदि समान रूप से अभाववित् हो जाते हैं। मूकत्व को प्राप्त हुआ योगी कुछ करने में असमर्थ हो जाता है। अर्थात् 'मैं-तूँ तहाँ न सम्भवै' हो जाता है। इस 'विचारमाला' के अनुसार वहाँ पर सम्पूर्ण प्रपंचों का अन्त हो जाता है। निर्विकल्प समाधि लग जाती है। उक्त अवस्था में पहुँचने पर खाने पीने, सोने-जागने का कुछ भी पता नहीं रह जाता है। वृत्ति सदा स्वरूपाकार हो जाती है। सुरति का निरति में मेल होने से तादात्म्य भाव सुस्थिर हो जाता है। शरीर पराधीन हो जाता है। ऐसी दशा में योगी चित्रवत् हो जाता है। चित्रद्रष्टा की भाँति दिखायी पड़ता है। सम्पूर्ण व्यवहार भूल जाता है। मन, संसार में न होने के कारण नेत्र खुले रहने पर भी कुछनहीं देखता। सुनते हुए भी कुछ नहीं सुनता। 'खाते हुए भी कुछ नहीं पता चलता क्योंकि जानने का साधन मन है। मन अन्तःपुर में अपने स्वामी के पास पहुँचने के बाद उसकी सेवा में तल्लीन रहता है। इसलिए इन्द्रियों के द्वार खुले रहने पर भी बाहर का कुछ भी अनुभव नहीं होता। जैसे सूर्य के अस्त होने पर उक्त प्रदेशों में अन्धकार छा जाता है। उसी प्रकार योगी के छठे स्थान पर पहुँचने पर बाहर से कुछ सम्बन्ध न होने के कारण इन्द्रियों के कार्य कुछ भी नहीं बन पाते। क्योंकि देखने वाली इन्द्रियों का बहिरङ्ग से अंतरङ्ग होना कारण है। ऐसी दशा में आस-पास के लोगों को चाहिए कि उक्त योगी की अहर्निश देखभाल करते रहें। भोजन आदि किसी भी प्रकार से खिलाते रहें क्योंकि ऐसे योगी शरीर से विशेष दिन नहीं रहते। वे दस-पाँच रोज संसार में अतिथि के रूप में रह जाते हैं। आस-पास के लोगों को चाहिए कि शून्यावस्था में पहुँचने पर उक्त योगी को हाथ से स्पर्श करके जगाना चाहिए अथवा जल से स्नान कराकर सचेतावस्था में लाना चाहिए। किसी जानकार महात्मा को लाकर उसे दिखा देना चाहिए। अधिकांश योगी यहाँ से आगे नहीं बढ़ पाते हैं। परन्तु वे संसार में अब

आने के योग्य नहीं रह जाते हैं। परम भूमि निःसत्ता में एकीकृत हो जाते हैं।

ऐसी दशा में जीवनमुक्त (विदेहमुक्त) गुरु की आवश्यकता पड़ती है जो विदेहावस्था से, जिसे विमौना वाल्यावस्था मुक्तदशा कहते हैं। उक्त जीवनमुक्त गुरु उक्त योगी को उक्त अवस्था से हटा कर सुरति को मुक्त अवस्था में कर देता है। यही ज्ञान का सातवाँ अन्तिम सोपान है। उक्त स्थान पर पहुँचकर योगी अपना और सम्पूर्ण जगत् का कल्याण कर सकता है। सहजयोगी की यही अन्तिम अवस्था है। जहाँ पर पहुँच कर अब उसके लिए शेष कर्तव्य नहीं रह जाते। वह बाह्य और आन्तरिक विश्व का द्रष्टा बनकर संसार में विचरण करता रहता है स्वरूप में स्थिति एक सो बनी रहती है संसार और अध्यात्म का ज्ञान समान रूप से उसे ज्ञात रहता है। उसके लिए बाह्यान्तरिक कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती। वह उपदेश, ज्ञान, ध्यान सब बतलाने में समर्थ हो जाता है। संसार का कोई भी व्यवहार करते हुए, उसे स्पर्श नहीं कर सकते। सद्‌गुरू कबीर का यही सहजयोग है।

कमलपत्र तरंग एक माँहो, संगे रहे लिप्त पै नाहीं।
आस-ओस अण्ड महँ रहई, अगणित अण्ड न कोई कहई ॥

जैसे जल में कमल रहता है। उसके पत्ते पर जल रंचमात्र भी रुक नहीं सकता। उसी प्रकार से सहजयोगी संसार के साथ रहते हुए असंग रहता है।

सहजयोग की दूसरो प्रक्रिया

सहजयोग ब्रह्मचिन्तन को भी कहते हैं जिसे कबीरपंथ में स्वरूप चिन्तन भी कहा जाता है, चिन्तन की विधि इस प्रकार है—पदार्थों से मनोवृत्ति को अवरुद्ध कर शुद्धचित्त चिन्तन करना, मैं अमर हूँ, अचिन्त्य हूँ, मेरा नाश नहीं होता है। मुझसे मेरे से परे कोई दूसरी सत्ता नही है। मैं एक हूँ, अद्वितीय हूँ। निर्दोष हूँ। संकल्प-विकल्प से परे हूँ। न जगत है और न जीव है। मात्र चेतन ही चेतन है। जगत् कहने मात्र का है या केवल वैवत्तित प्रतिभाषित होता है। जगत् के सारे पदार्थ मुझसे ही उद्भाषित होते हैं। जो जल तरंग में बुदबुदा के समान हैं। समानाधि-करण-विशेषाधिकरण, क्षरत्व-अक्षरत्व, अजन्मा, अविनाशी अर्थात् सबसे परे अपने को समझता है। इस प्रकार से अहर्निश चिन्तन करते-करते

मनोवृत्ति तद्चिन्तनाकार हो जाती है। इस चिन्तन में किसी प्रकार के जप-तप की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसमें आँख, कान रुँधने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती है। यह केवल सुरति योग—सुरति के द्वारा चिन्तन किया जाता है। इसी को ब्रह्मयोग भी कहते हैं। यह पद्धति भी कबीरपंथ में विद्यमान है। इसके दो भेद हैं :

प्रथम समसत्ता, व्यापकत्व का चिन्तन होता है जो अपने सहित सारे जगत् को अनन्त और असीम रूप में देखता है। जगत् नाम की चीज उसके सामने कुछ भी नहीं है। सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। मृत्यु, पाताल, स्वर्ग अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड को अपने से भिन्न नहीं समझता।

जो कुछ देखता, सुनता, कहता, चलता, फिरता, बैठता, उठता, सोता, जागता, खाता, पीता, दानादान अर्थात् सम्पूर्ण जागतिक व्यवहार को अपने से भिन्न नहीं समझता है। वह वृत्ति को समसत्ता में लय करके एकाकार को प्राप्त कर जन्म-मरण से परे हो जाता है। वह उस अचिन्त्य लोक में पहुँच जाता है जो अनुपम, संज्ञाविहीन, असंगिक लोक है। वह उस तत्त्व में विलीन हो जाता है जिसके मुख मस्तक नहीं है जो रूप, अरूप भी नहीं है। जो पुष्पवास से भी सूक्ष्मतत्त्व है जिससे सारे प्राणियों का उद्भव हुआ है, होता है और होगा। उस जगत् अधिष्ठात्री शक्ति में समावृत्त हो जाता है। जिसमें उपमा उपमेय नहीं बनता :

साखी : जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुपवास से पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप॥
कथन श्रवण तहँ होत नहीं, गमनागमन भी नाँहि।
शून्याशून्य दोनों परे, दिल दरिया के माँहि॥

इस प्रकार का योगी रमण करता हुआ तद्रूप होकर लय चिन्तन से परे हो जाता है। प्राणापान की गति उसे मालूम हो जाती है। वह सृष्टिनाशक कालचक्र की आत्मा से अपनी इच्छानुसार अनन्त काल तक सशरीर विचरण कर सकता है। यह सहजयोग की दूसरी प्रक्रिया के अनुसार कहा गया है।

दूसरी पद्धति चिन्तन की अनेकत्व बाद की है। जिसे कबीरपंथ में पारखी नाम से जाना जाता है जो अनेक चेतन मानते हैं। ये व्यापक तत्त्व नहीं मानते अर्थात् व्यापक तत्त्व का चिन्तन नहीं करते। ये जगत् को दो रूपों में विभाजित करते हैं। पहला जड़ स्वरूप दूसरा चेतन

स्वरूप। वे जड़ को चेतन से भिन्न मानते हैं। उनके मत में एक दूसरे से एक दूसरे का कभी लगाव नहीं होता है। वे चेतन का चिन्तन निम्न प्रकार से करते हैं।

मेरा कहीं से आना-जाना नहीं होता है। मैं सबका ज्ञाता हूँ। मुझको कोई नहीं जान सकता। मैं सबका आदि हूँ। चेतन अपने स्वरूप में त्रिलीन हो जाता है। वह इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं पंचकोशों से परे स्वरूप है। इस प्रकार का चिन्तन पारखी सन्त करते हैं। वे षट्चक्र आदि भेदन, ध्यान धारणा, जप तप आदि करना नहीं मानते। वे अन्य दुनियाँ की योगपद्धतियों को मनःकल्पित मानते हैं। उन योगी पारखियों का मत है कि कबीर साहब से पहले इस प्रकार का चिन्तन नहीं था और न तो कोई मुक्त होता था। परन्तु अधिकांश कबीर पंथियों के अनुसार इनका कबीर साहब के सहजयोग से कोई लगाव नहीं है। बात जो भी हो पारखी संत सभी मतों को बाद करके जीव चिन्तन की मान्यता देते हैं। इसलिए मेरी समझ में वे लोग अनेकत्ववाद के उपासक कहे जा सकते हैं। उसी प्रकार से उनकी मुक्ति भी होती होगी। उपर्युक्त की प्रथम पद्धति, बाद की विशेष पद्धति दोनों सहजयोग पद्धति के अतिरिक्त एक और विद्यमान है, जो लोकान्तरवादी कहलाते हैं। विशेषतया उनकी मान्यता सत्यलोक की है जो वहाँ गाने के लिए अनेक बाह्याचारों का अनुष्ठान करते हैं आरती, चौका आदि का विधान उक्त पद्धति में विद्यमान है और सत्यनाम का जाप भी करते हैं। अपने को कबीर साहब का अंश मानकर बार-बार संसार में आना, जाना भी मानते हैं। जिनकी लोक में तथागत, सुगत प्रसूत माना जाता है जो बाद में कबीर पंथ में प्रवेश कर कुछ बोधिष्ट पद्धति, कुछ पौराणिक तथा कुछ कबीर पद्धति लेकर अपना पंथ खड़ा किये हैं। ये सत्पुरुष उपासी होते हैं तथा सत्लोक जाने लिए तत्पर रहते हैं। उनके लिए विमान आदि आते रहते हैं। वे संसार के सभी भोगों को भोगने में कोई दोष नहीं मानते। उनके यहाँ शम, दम आदि साधनों की कोई आवश्यकता नहीं है। वे आरती चौका करने मात्र एवं पान परवान खाने मात्र से सत्लोक गामी हो जाते हैं। वे पान-परवाना को सत्लोक का प्रवेश-पत्र मानते हैं। उनके यहाँ सनातन, मैमांसिक सारी कर्मपद्धतियों का अनुकरण विद्यमान है। उनका तर्क है कि सत्पुरुष के भक्तों को यम आदि नहीं पकड़ते। उनके यहाँ निः अक्षर, निःतत्त्व का भी उल्लेख है। जहाँ-जहाँ पर कबीर पद्धति

का अनुकरण किया गया है वहाँ-वहाँ पर उनके यहाँ भी सहयोग की पद्धति विद्यमान है। परन्तु लोकान्तरवादी, पौराणिक कथाओं में विश्वास तथा उनके फलों में आस्था रखते हैं। आर्ष पद्धतियों का अभाव होने के कारण आप्त पुरुषों की दृष्टि में इनका सहजयोग इनके यहाँ अपने प्रकार का है। इसलिए सद्गुरु कबीर का सहजयोग इनके यहाँ ज्यों का त्यों अनुपलब्ध है। बौद्धी पद्धति के कारण कहीं-कहीं इनके ग्रन्थों में शून्यवाद का भी उल्लेख हुआ है। निःतत्त्व का अर्थ ही होता है जहाँ कुछ नहीं है। इसलिए उक्त तथाकथित कबीरपंथी समाज की तीसरी पद्धति सम्मिश्रित है। पूर्ण कबीर-पद्धति नहीं कही जा सकती। यही तीसरी पद्धति की विशेषता है ये सब योगपद्धतियाँ और चिन्तन की धारा कबीर पंथ में अनवरत चली आ रही हैं।

सद्गुरू कबीर के मूलसाहित्य में योग की कई अन्य पद्धतियों का वर्णन मिलता है। कहीं-कहीं पर सद्गुरू कबीर पूरक, कुम्भक और रेचक की बात करते हैं। कभी-कभी कपिल, मीन, विहंगम मार्गों की भी चर्चा करते हैं जिसके अन्दर गंगा, यमुना, सरस्वती आदि के संगमों का भी उल्लेख करते दिखायी पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि योगसाधना के प्रत्येक मार्गों या अंगों से अनअवगत नहीं थे। जैसे तत्कालीन भाषा पर उनका आधिपत्य था उसी प्रकार यौगिक क्रिया-कलापों पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। 'कबीर बीजक', चौरासी अंग की साखी, कबीर वाणी (कबीर ग्रन्थावली) एवं उनके नाम पर प्राप्त पदों में अनेक स्थलों पर हठयोग की सारी प्रक्रियाएँ रख दी गयी हैं। इन्हीं ग्रन्थों और पदों में सहजयोग व राजयोग की भी व्याख्या उपलब्ध दिखायी देती है। नाम जपयोग का भी अधिक उल्लेख है। भक्तियोग, ध्यानयोग, चिन्तनयोग इत्यादि सबकी झलक सद्गुरू कबीर की वाणियों में प्राप्त होती है। उन्होंने बीजक में एक स्थल पर विहंगम और मीन मार्ग को वरिष्ठ बताया है जिसके द्वारा आत्मान्वेषण और उसकी प्राप्ति सम्भव बताया गया है। उनका कहना है कि पक्षीमार्ग एवं मीनमार्ग दोनों के द्वारा परमतत्त्व का अन्वेषण करो। क्योंकि ये दो मार्ग परमश्रेष्ठ और परमध्येय है।

'पंछिक खोज मीन को मारग कहहिं कबीर दोउ भारी।
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम मूरत की बलिहारी॥
पौ बिनु पत्र करह बिनु तुम्बा बिनु जिह्वा गुन गावै।
गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु होइ लखावै॥'

पक्षी से तात्पर्य विहंगम मार्ग से है जिसे चिन्तन के द्वारा जाना जाता है। जिस प्रकार पक्षी आकाश मार्ग में ऊपर उड़ता है उसी प्रकार से साधक तत्वचिन्तन विना अवलम्बन के करता है। जिसका उल्लेख प्रथम की पंक्तियों में हो चुका है। ब्रह्मरंध्र में स्थित होकर परातत्व का चिन्तन करने को सद्गुरु कबीर बिहंमय मार्ग कहते हैं जिसके द्वारा भी साधक पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है। चिंतन के कई भेद हैं जिसमें चार प्रधान हैं। प्रथम-एक देशीय लोक विशेष निवासी सत्ता का चिंतन, किया जाता है, जिसका सम्बन्ध द्वैतवाद से है। द्वितीय व्यापकत्व भाव का चिंतन है, जिसमें अपने सहित सम्पूर्ण जगत् अपने में देखना होता है। यह अद्वैत-वाद समसत्तावाद कहलाता है दर्शन जगत् में इस चिन्तन को अत्यधिक महत्व दिया गया है। दार्शनिक योगियों का मत है कि यही चिन्तन वास्त-विक है। कबीर पन्थ की कई शाखाएँ भी इस चिन्तन को महत्व देती हैं। तृतीय इसमें अनेकत्ववाद का सोपान अग्रसर होता है जिसे सांख्यवादियों ने माना है। यह चिन्तन भी दर्शन जगत् में बड़ा महत्व रखता है। अधिक विचार किया जाय तो अनेकत्ववाद स्वयं सिद्ध है। परन्तु वहुग्राह्य न होने से आज आध्यात्मिक संसार में इसका महत्व निम्नतम् हो गया है। चतुर्थ श्रेणी का चिन्तन ध्यान के द्वारा प्रतिमा का गुरु के स्वरूप का तथा अभिष्ठ-इष्ट का चिन्तन किया जाता है तथा गुरु के द्वारा बताये गये मंत्रों का जप करना, तदुपरान्त लोक विशेष की प्राप्ति या आत्मानुभूति माना गया है। संसार के प्रत्येक अध्यात्म वादियों ने किसी न किसी रूप में ध्यान को महत्व दिया है जिसे निरर्थक नहीं माना जा सकता। वास्तव में ध्यान के द्वारा इष्ट की सिद्धि होती है। आकर्षण आदि विद्याएँ ध्यान-के द्वारा ही सिद्धि होती है। त्राटकयोग भी ध्यान के द्वारा ही सिद्धि किया जाता है। प्रथम तो यह कहना पड़ेगा कि कोई भी योग विना ध्यान के सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए गुरु के स्वरूप का ध्यान, प्रतिमा का ध्यान, इष्ट सिद्धि के लिए सर्वोपरि है।

सद्गुरु कबीर के शब्दों में प्रथम के दो चिन्तन दिखायी पड़ते हैं और बाद के ध्यान चिन्तन भी यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं। जैसे—नाम, रूप, गुण का वर्णन जहाँ आता है उसे प्रथम चिन्तन के अन्तर्गत मानना चाहिए। इसे सगुणवाद भी कह सकते हैं। स्मरण रहे कि जहाँ पर गुणों का आरोपन होता जायेगा वहाँ सगुण बनता जायेगा। सगुण का अर्थ होता है गुणसहित वस्तु विवेचन या उसकी उपासना करना। यथा-

राम, ब्रह्म ओऽम्, उसकी महिमा, वह दयालु है, वह दया करता है, कर्मों का निर्णय देता है, प्रभृत जो-जो उसके विषय में कहा जाय वह सब सगुणवाद के अन्दर आता है। कुछ लोग शरीर धारी राम, कृष्ण आदि को भी सगुण मानते हैं। परन्तु यह रीति महत्वपूर्ण नहीं है उक्त अर्थ को मान लिया जाय तो सभी मानव सगुणवाद में हो आते हैं। इसलिए पहली पंक्तियों के विचार ही श्रेष्ठ हैं।

सगुणवाद का अवलम्बन प्रथम अवस्था में साधक के लिए अभीष्ट एवं अत्यन्त महत्व का है जिसमें नाम जप करना पड़ता है। अपने से भिन्न उपासना करनी पड़ती है। इसके पश्चात् ही वृत्ति एकाग्रत्व को प्राप्त कर सकती है द्वितीय चिन्तन में नामरूप से भिन्न अवैब एवं त्रिकुटी विहीन गुणातीत का चिन्तन निर्गुण वाद कहलाता है। यह चिन्तन सर्व साधारण के लिए सम्भव नहीं है इसके लिए पैनी दृष्टि, तीक्ष्ण बुद्धि, सूक्ष्म प्रज्ञा का होना अत्यावश्यक है। साथ ही मन, मस्तिष्क एवं हृदय भी सबल चाहिए। शरीर का भो निरुज होना परम श्रेयस्कर है।

इस चिन्तन में अपने को अखिल ब्रह्माण्ड में तथा अखिल ब्रह्माण्ड को अपने में देखना पड़ता है। यह चितन सहज भाव से किया जाता है। इसमें किसी बहिरङ्ग साधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह सारा कार्य मन के द्वारा होता है। मन के बाद प्रज्ञा इसका चिन्तन करती है। फिर चित्त इस पर चिंतन करता है। अभिमन्या इसके बाद वृत्ति में धारण होती है अभिमन्यता के बाद चारो मिलकर निश्चय करते हैं। इसलिए इसे अंतरङ्ग साधन कहते हैं, जिसके द्वारा स्वरूप की प्राप्ति होती है। जैसे-बूंद अंबुधि में मिलकर अंबुधि हो जाता है उससे पृथक् उसकी कोई सत्ता नहीं रहती। इसी प्रकार से उक्त चिन्तन के द्वारा जीव नाम की सत्ता नहीं रह जाती। वह "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" हो जाता है। यद्यपि पतंजलि योगदर्शन एवं उपनिषदों में साधनों एवं योगों के भेद कुछ और प्रकार से बतलाये गये हैं। परन्तु रूपान्तिरित लक्ष्यान्तरित होने पर इसी श्रेणी में आयेंगे। उक्त कथन योगदर्शन के यम, नियम, अष्टांग आदि प्रकरणों में देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार से हठयोग के ग्रंथों में भी अंतरङ्ग, बहिरङ्ग के अनेक भेद दिखाये गये हैं जिनका अपना क्षेत्र अलग-अलग है।

एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि जहाँ पर निर्गुण चिन्तन का महत्व अत्यधिक है वहीं पर उसमें कुछ दोष भी है। निर्गुणवाद के चिन्तन

करने वाले साधक को कष्ट आदि होने पर ईश्वरीय सहायता नहीं मिलती है क्योंकि अभेद दशा में ईश्वर भी उसकी आत्मा है। ऐसी दशा में अपने ऊपर अपनी दया होना सम्भव नहीं है। साधक को कष्टों से बचने के लिए, विघ्नों से दूर होने के लिए सर्व प्रथम द्वैतवाद अर्थात् सगुणवाद का अवलम्बन लेना चाहिए। क्योंकि सगुणवाद सुलभ, सरल, ज्ञेय, ध्येय है। उसके द्वारा निर्गुणवाद तक पहुँचने में किसी अवरोध का सामना नही करना पड़ता। सगुण की उपासना से सारे विघ्न स्वयं विनष्ट हो जाते हैं और भगत, भगवत् आश्रीण रहता है। उसे सदा प्रभु से बल मिलता रहता है तथा दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से विमुक्त रहता है। प्रभु की उपासना के समय में उसके चारो ओर अमृत की वर्षा होती रहती है। इसलिए सर्वप्रथम सगुणोपासना ही भक्तों के लिए परमोपादेय है।

सद्‌गुरु कबीर का चिन्तनयोग व विहंगम मार्ग उपनिषदों के चिन्तन से पूर्णरूपेण मिलता-जुलता है। इसका कारण यह है कि चिन्तनयोग में उपनिषदों की पद्धति सर्वोत्कृष्ट रही है क्योंकि उपनिषद् ऋषि की अनुभूति है और कबीर साहब का योग भी उनकी स्वान्तः अनुभूति का फल है। दोनों में एक जैसे विचार दिखायी देते हैं। उपनिषद् के ऋषि वैदिक थे जिनके चिन्तन में कहीं कहीं कर्मकाण्ड भी जुड़ा है। परन्तु सद्‌गुरु कबीर संतमार्ग के आचार्य थे जिनका विकास मध्ययुग के आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हुआ था। उनका चिन्तन आत्मस्वतंत्र, कर्मकाण्ड विहीन देशकाल की परिधियों से परे है। वे मुक्त स्वच्छन्द चिंतन करना चाहते हैं। उनका आत्मविचरण स्वसंवेद्य है। परसंवेद्य की कोई बात तब तक मानने हेतु प्रस्तुत नहीं हैं जब तक पूरी कसौटी पर उतर न जाय। वे कथन अध्येता से अभ्यास अध्येता को अधिक महत्व देते हैं। उनका चिन्तन विकसित मानसिक गति से प्रारम्भ होता है जिनके द्वारा निर्दिष्ट चिन्तन करते-करते मन अति निर्मल हो जाता है। कबीर साहब का चिन्तन मन, माया की संधियों को पहचान जाता है। उनका अनुगामी कभी विषय-वासना पर चोट नही करता। जैसे अनलपक्षी आकाश में ही भ्रमण करता है उसका समस्त कार्य आकाश में ही होता है। उसी प्रकार से विहंगम योगी चिदाकाश में भ्रमण करता रहता है। उसकी मार्गी मन की प्रत्येक वृत्ति विधियाँ संसार-विमुख हो जाती हैं। संसार उसको कभी स्पर्श नही कर सकता न वह ही संसार को स्पर्श करता है। तात्पर्य यह है कि संसार के जिन कार्यों से जीव अनुबन्धित होता है

विहंगम चिन्तक सहजयोगी उक्त कारणों से स्वयं मुक्त हो जाता है। अनासक्ति के कारण न संसार उसको छूता है न वही संसार को छूता है। कालान्तर में वह सहजयोगी इच्छाचारी हो जाता है। जहाँ चाहे वहाँ प्रकट हो जाता है। जहाँ चाहता है अदृश्य हो जाता है। उसके प्रत्येक संकल्प सत्य होते हैं। उसका जीवन अक्षुण्ण हो जाता है। उसे अन्न जल की कोई आवश्यकता नही होती है। उसको जीवन-शक्ति का ज्ञान हो जाता है। जिन पोषक तत्वों का प्रभाव अन्न-जल पर होता है वे पोषक तत्त्व पंचमहाभूतों की देन हैं। जैसे सूर्य में स्वाभाविक किरणों द्वारा जलशोषण की क्रिया (शक्ति) होती है। उसी प्रकार से महा-परमाणुओं को आकर्षित करने की शक्ति सहजयोगी को हो जाती है। स्मरण रहे कि अन्तरिक्ष में ऐसे परमाणु होते हैं अथवा ऐसे तत्व हैं जिनका ज्ञान होने पर योगी अनन्तकाल तक सदेह विचरण करते रहता है। अन्ततोगत्वा उक्त परमाणुओं के तद्रूप होकर योगी अमर हो जाता है। एक ऐसा तत्व है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में स्थिर रूप से चहल-पहल मचाये रहता है। वह तत्व प्रत्येक तत्वों को बल देता है। उसी के बल पर योगी अनेक विघ्नों को लाँघता हुआ, कभी-कभी सौर्यमण्डल में पहुँच जाता है। सौर्यमण्डल में सौर्य से ऐसी-ऐसी तरंगें निकलती हैं जिनसे कठिन से कठिन पदार्थ भस्म हो जाते हैं। उन सूर्य किरणों से या सूर्य-तरंगों से उस परम अणु को प्राप्त व जीवन शक्ति को जानने वाला योगी प्रभावित नहीं होता। अर्थात् आत्मा अमर है, ऐसा बोध होने पर भूख, प्यास का अभाव हो जाता है। उसके लिए सोना-जागना भी समान हो जाता है। वह अपनी इच्छानुसार शरीर भी धारण कर सकता है और चिदाकाश में विलीन भी हो सकता है। वह ब्रह्माण्ड की सारी गति-विधियों से अवगत रहता है। वह अपने शुभ संकल्प से सारी सृष्टि को मंगलमय बना सकता है। माया विशिष्ट चेतन अर्थात् माया से परे चेतन की जितनी कलाएँ हैं उन सभी से उनका सम्बन्ध हो जाता है। सम्बन्ध होने पर भी असम्बन्धित रहता है क्योंकि उक्त सहजयोगी के सारे कर्म, धर्म भस्म हो जाते हैं। संचित और क्रियमाण कर्म भी विनष्ट हो जाते हैं। जैसे बिना धूम की अग्नि अंगार मात्र रह जाता है। उसी प्रकार से चेतन को जानने वाला सत्य ही सत्य रह जाता है। उसमें अज्ञान कभी प्रवेश नहीं करता क्योंकि उक्त योगी को सदा सत्यासत्य का विवेक रहता है, जिसके कारण इच्छा शक्ति होनेपर भी कभी अनिष्ट इच्छाएँ

उसमें नहीं आतीं। वह योगी अनन्त काल तक विचरण करता रहता है। उसकी गति अप्रतिहत होती है। तदुपरान्त अपनी इच्छा का लय समसत्ता में कर अभेद हो जाता है। इस प्रकार के योगी कभी-कभी संसार के उपकारार्थ पंचभूतों को एकत्रित कर उसमें प्रवेश करके संसार में अवतीर्ण होते हैं। जो बड़े-बड़े कार्य करते हैं एवं जीवों के कल्याण के लिए उपदेश भी देते हैं। जिन्हें संसार के लोग अवतार, पैगम्बर, देवदूत आदि की संज्ञा से विभूषित करते हैं। परन्तु ये सब मुक्त योगी होते हैं। ये अपने जन्मकाल से ही अनेक घटनाओं, चमत्कारों का प्रदर्शन करते हैं। इनके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। अपनी इच्छानुसार संसार में रहते हैं और पुनः अन्तर्ध्यान भी हो जाते हैं। देखने में इनके बहुत से व्यवहार मानव जैसे लगते हैं, पर ये मनुष्य नहीं होते। ये होते हैं मुक्त योगी। इन्हीं को संसार में राम, कृष्ण, कबीर, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद और गांधी समझना चाहिए। इनके जैसे सभी नहीं होते, इसलिए इन्हें सभी अवतारी पुरुष मानते हैं। योग का संसार में बड़ा महत्त्व है। इसमें विहंगम योग कबीर पंथ में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है, जिसका दूसरा नाम सहजयोग भी है। यह विहंगम योग सर्वोत्कृष्ट होने के कारण इसका साधन सब के लिए सभी देशकाल में सुलभ है। इसमें वृत्ति अपने आप विषयों से उपराम हो जाती है। शम, दम, आदि अपने आप सिद्ध होने लगता है। इसलिए सभी मनुष्यों को चाहिए कि इसका साधन व चिंतन-मनन करें, क्योंकि इस युग में हठयोग आदि पद्धतियाँ भयानक बन गयी हैं। इनके गुरु भी अब संसार में नहीं मिलते। इसलिए सभी योगों का परित्याग कर सहजयोग का चिन्तन करना सर्वोत्तम है।

मीनमार्ग

उपर्युक्त प्रकार से ही सद्गुरु कबीर ने मीनमार्ग का भी उल्लेख किया है। मीनमार्ग की व्याख्या निम्नोक्त प्रकार से है। जैसे जिधर से जल की धारा प्रवाहित होती है उसी ओर मछली (मत्स) छलांग मारकर आगे बढ़ती है। मीनमार्गी साधक भी उसी प्रकार से संसाररूपी गंगा (नदी) की धारा जिधर से आती है, अर्थात् संसार जिस ब्रह्मयोनि से निःसृत होता है। मीनमार्गी योगी उस धारा के साथ न जाकर उधर से मुकर कर प्रसव स्थान की ओर ही बढ़ता है।

"तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तमिस्न् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा"

जो जगत् का मूल कारण है, जहाँ से जगत् प्रवाहित हो रहा है। मीनमार्गी योगी उसी निःसृत मूलकारण में जाकर ध्यानस्थ हो जाता है। संसार के निर्माण से सुरति उलटकर ऊपर को ओर अर्थात् आत्मोन्मुखी कर देता है। अर्थ यह है कि सुरति से ही जगत् का निर्माण हुआ है। जब सुरति को मीनमार्गी योगी उलटकर ऊपरी प्रदेश में कर देता है तो वहीं सुरती ब्रह्माण्डीय तत्त्वों के अन्वेषण में तल्लीन हो जाता है और निरति में निर्वसित होकर, त्रिकुटी में स्थिर होकर, जहाँ पर गंगा, यमुना, सरस्वती का संगम है, साधक वहीं पर सुरति को रखकर, वहीं पर अपना आसन जमाता है। उसी संगम में अहर्निश क्रीड़ा करता है। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी यही क्रम से गंगा, यमुना तथा सरस्वती हैं। साधक जब रेचक, पूरक, कुम्भक करके सुषुम्ना को समभाव में रख लेता है तो ऐसी दशा में :

ओछी मति चन्द्रमा गौ अथई, त्रिकुटी संगम स्वामी बसई।

मन की ओछी भावना और छिछलापन नष्ट हो जाता है। तदुपरान्त त्रिकुटी के ऊपर जो स्वामी वसता है अर्थात् साधक अपने मूलस्वरूप का निरन्तर दर्शन-पर्शन करते रहता है। वहाँ पर रज एवं तमोगति दोनों नष्ट हो जाती हैं। सत्वगति का उद्भव हो जाता है और कर्म-धर्म वाली बुद्धि भी निर्मूल हो जाती है। तत्पश्चात् ज्ञानरूपी रवि का उदय हो जाता है एवं सारे संसार के लौकिक गुण तारावत् छिप जाते हैं। योगी चर-विहर अर्थात् चराचर दोनों में जो व्याप्त सत्ता है, उसमें एकीभूत होकर विचरण करते रहता है।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि विषपान करने से विष नहीं जाता है। वह तो गुरु रूपी गारूणी से ही दूर हो सकता है। अर्थात् सांसारिक विषय संसार के द्वारा नष्ट नहीं होते। वहाँ तो अलख में दृष्टि लगानी पड़ती है। अलख में दृष्टि लगाने से पलक में ही वैराग्य रूपी सर्प डस लेता है। वैराग्य जब छू लेता है तो किसी विषहरी के मान का नही रह जाता है। गारुणी भी अब उसको संसार में नहीं उतार सकता। वहाँ पर सब यत्न फीके पड़ जाते हैं। वह समसत्ता में विलीन हो जाता है। कबीर साहब का यही मीनमार्ग है जिस पर चलकर मनुष्य अपना उद्धार कर सकता है।

उपर्युक्त दोनों ही मार्गों को कबीर साहब अति श्रेष्ठ बतलाते हैं। कपि, पिपीलमार्ग को हठयोगियों की क्रिया-कलाप मात्र कहकर टाल देते

हैं। वे उस पर विशेष विचार नही करते। यद्यपि स्थल-स्थल पर षट्चक्र आदि बेधन की बात करते हैं तो यह नहीं कि षट्चक्र वेधन हठयोग की क्रियाओं से ही सम्भव है। षट्चक्रों का वेधन सहजयोग, विहंगममार्ग एवं मीनमार्ग के द्वारा भी किया जा सकता है। जप के द्वारा भी षट्चक्रों का बेधन सम्भव है। षट्चकों के बेधन एवं किसी भी क्रिया में सुरति की ही प्रधानता होती है। इसलिए सारा खेल सुरति का ही समझना चाहिए। सुरति से ही सारा कार्य सम्भव है।

सद्गुरु कबीर ने मनुष्यों को जटिलताओं से मुक्ति दिलाने के लिए ही सहजयोग का उपदेश दिया था जिसके द्वारा परमतत्व की प्राप्ति सम्भव एवं सम्भावित है।

सहजयोग के बिना क्लेश

सहज योग की महत्ता : परम तत्त्व अति गहन गुह्य है। उसकी प्राप्ति विना गुरु के नहीं होती जिसके लिए शिवजी जैसे योगी भी वियोगी बन-कर श्मशान की खाक छानते-फिरते हैं और अंग में विभूति लगाकर सारे संसार से उदास रहते हैं। कवीर साहब कहते हैं कि श्मशान और विभूति से कोई लाभ होने वाला नहीं है। उनका कहना है कि जिसका रूप, रेख कुछ भी नहीं है जो अकथनीय है भला उसका क्या ध्यान धर रहे हो। सद्गुरु का कहना है कि जब तक गुरु शब्द रूपी बोहित पर नहीं चढ़ोगे और रहन-गहन की बात तुझमें नहीं आयेगी तब तक तुम्हें उसी प्रकार का भय बना रहेगा। जिस प्रकार जंगल के उस पार बैठा हुआ व्यक्ति अनुभव करता है कि मैं चल रहा हूँ परन्तु बिना जंगल को पार किये हुए उसे भय से मुक्ति नहीं मिलती है। अर्थात् संसार रूपी जंगल में विषय वासना रूपी भोग में जो रत है केवल स्वांग बनाकर संसार का आनन्द ले रहा है और योग-युक्ति-मुक्ति की भी बात करता है। क्या वह कभी मुक्त हो सकता है? अथवा योगी वन सकता है। 'जलयोग न्याय' के अनुसार जवतक वस्तु का पूर्णरूपेण त्याग नहीं कर देगा, तबतक दूसरी वस्तु उपलब्ध नहीं हो सकती। कबीर साहब का कहना है कि मनुष्यों को चाहिए कि संसार से मन को उदास कर जितने बनावटी स्वांग हैं उन सभी को उतार फेंके। मन को स्थिर करके किसी से अनावश्यक वाद-विवाद न करे अहर्निश अपने कार्य में तल्लीन रहे। जवतक तन-मन की एकता में अभेद नहीं हो जाता तब तक किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

तन राता मन जात है, मन राता तन जाय।
तन मन एकै होय रहे, तब हंस कबीर कहाय।।

अर्थात् जहाँ मन है वहीं पर तन को भी रखना चाहिए। दोनों को एक स्थान पर होने से हंस की गति प्राप्ति हो जाती है। अन्यथा तन-मन अलग होने से कुछ बनने का नहीं है :

महादेव मुनि अन्त न पाया। उमासहित उन जन्म गँवाया।।

वाली बात हो जायेगी। यदि तन-मन स्थिर हो जाय, और सत्य शब्द का जप करते रहें तो :

छट्ठे माह दरस सो पावै, ऐसी विधि जो मो कह ध्यावे।।
एकौ बार न होइहैं बाँको, बहुरि जन्म न होइहै ताको।।
जाय पाप सुख होइहैं घना, निश्चय बचन कबीर के माना।।

साधु सन्त तेई जना, जिन्ह मानल बचन हमार।
आदि अन्त उत्पत्ति परलय, देखहु दृष्टि पसार।।

यहाँ पर गुरु आदेश को ही विशेष महत्त्व दिया गया है। जबतक गुरु के आदेशों का पूर्ण रूपेण पालन नहीं होता है तब तक कुछ होने जाने वाला नहीं है। कबीरसाहब कहते हैं कि यदि तुम मेरे वचन से विमुख रहोगे तो तुझे हैरान रहना होगा। तुम्हारे घर में ही भारी झगड़ा उत्पन्न हो जायेगा और रात-दिन झगड़ा चलता रहेगा। पंच ज्ञानेन्द्रिय माया रूपी नारी से शरीर में ही धूम मचायेंगे एवं भिन्न-भिन्न भोगों की चाह में लगे रहेंगे क्योंकि ये पाँचों बड़े स्वादी हैं। ये किसी के मना करने से विरत नहीं होने वाली हैं। कान शब्दों का, नेत्र रूपों का पिपासा है। घ्राण सुगन्धों की ओर ध्यान लगाये है। जिह्वा सुस्वाद पदार्थों की ओर लालायित रहती है। त्वचा सुकोमल (मुलायम) वस्तुओं में अनुरक्त रहती है। यही पाँच पुरुष हैं। संसार ही इनकी स्त्री है। उसके भोग के लिए ये लोग सतत निष्ठावान् रहते हैं।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई साधो! जो यह दुर्गति दोहागिन माया है उसे अपने ऊपर आधिपत्य न जमाने दो। तुम उसके स्वामी हो। इसलिए तुम्हीं उसे प्रयत्न करके अपने वश में रखो। उस पर आधिपत्य करके, पंच ज्ञानेन्द्रियों को भी उनके विषय से विरत करो। तभी मेरा जन हो सकते हो तुम्हारे घर का झगड़ा जब तक शान्त नहीं होगा तब तक तुम मेरे दास एवं भक्त कुछ भी कहला नहीं सकते।

सन्तों घर में झगड़ा भारी।
राति दिवस मिलि उठि-उठि लागें, पाँच ढोटा एक नारी।
न्यारो-न्यारो भोजन चाहैं, पाँचों अधिक सवादी।
कोई काहू का हटा न मानैं, आपुहि आप मुरादी।
दुर्मति केर दोहागिन मेटे, ढोटहि चाँपि चपेरै।
कहहि कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरै।

क्योंकि घर का झगड़ा बहुत दुष्परिणामकारी होता है। जैसे वाह्य मतभेदों के कारण, रावण, कंस, बालि आदि धुरन्धरों का नाश हो गया। उसी प्रकार से आन्तरिक शरीरस्थ परिवार के झगड़े से तुम्हारा सर्वनाश हो जायेगा क्योंकि काम, क्रोध रूप शत्रु बड़े ही प्रवल हैं और पंच ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने भोगों के लिए लड़ती-झगड़ती रहती हैं। तुम्हारा परम शत्रु मन सभी को वर्गलाए रहता है जिसके कारण तुझे कभी आत्मानुभव नहीं होने पाता है। तुम्हें आत्मप्राप्ति के लिए जो मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है, स्वरूपप्राप्ति से बंचित होने पर जिसने तुम्हारे शरीर को बनाया है वह अति कुपित होकर तुझे अन्य योनियों में डाल देगा। क्योंकि प्रभु की गति बड़ी न्यारी है। यदि तुम उसके विरुद्ध रहोगे तो तुझे सदा-सदा के लिए आत्मानुभव से विमुक्त होना पड़ेगा और योगयुक्ति भी तुम्हारी भूल जायेगी। इसलिए उसको विस्मृत न करो। उसका ध्यान सहज मार्ग से करते रहो। उसका ध्यान करने से ऐसे चन्दन की प्राप्ति होगी जो बिना फूल का मूल उत्पन्न करता रहता है। संसार रूपी जल में जो तुम्हारो मन रूपो मछली घूम रही है वह सहस्रार रूपी जंगल में काम, क्रोध रूपी शिकार को करने लगेगी एवं तुम्हारे अन्दर जो पंच क्लेशों के उद्भावक तत्व हैं उन सभी को ज्ञान रूपी सिंह के प्रहार से निर्मूल हो जाना पड़ेगा। तुम्हारा अरण्य रूपी नीरस मन मलयागिरि के समान हो जायेगा एवं चारो ओर सुवासयुक्त गंध फैल जायेगी। रहस्य के द्वार खुल जायेंगे। उस रहस्यमयी परमात्मा के दर्शन से तूँ संतृप्त हो जायेगा। तीन लोक जो ब्रह्माण्ड में दिखायी नहीं पड़ रहा है, दीखने लग जायेगा। जिस कर्म रूपी रस्सी ने तुझे पंगु बनाया है, जो तुम्हारे हाथ पैर अर्थात् मन, बुद्धि को जकड़े हुए है एवं विवेक, वैराग्य, सद्विचारों से वंचित किये हुए हैं, तुम उस कृपामयी के दर्शन से अति शक्तिमान हो जाओगे और इन सबसे छुटकारा पा जाओगे। तुममें इतनी शक्ति आ जायेगी कि लघु से लघु वड़े से वड़े पर्वतों को अर्थात् आकाश, पाताल सबको लाँघकर त्रिभुवन

के स्वामी के साथ रमण करने लगोगे। तुम्हारी ऐसी दशा हो जायेगी कि सतत अपने को भूल जाओगे। तुम कुछ भी कहने में असमर्थ रहोगे। जैसे जिस प्रकार गूँगा व्यक्ति कुछ कहने में असमर्थ रहता है उसी प्रकार तुम इस महासुख को व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ रहोगे। सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि उक्त सुख, ज्ञानी भक्तों को ही उपलब्ध होता है जो प्रभु की अनपायिनी भक्ति में अहर्निश निमग्न रहता है उसी के लिए प्रभु का सारा वैभव प्राप्त है। प्रभु भी उसके लिए सब कुछ करने को तैयार रहता है। सद्गुरु कबीर अज्ञानियों से भी कहते हैं कि हे अज्ञानी लोग ! तुम सहज में प्राप्त होने वाले उस महासुख को नहीं प्राप्त कर सकते क्योंकि तुम लोग भौतिक सुख को ही सब कुछ मानते हो। इसलिए सहजयोग, सहजभक्ति तुमसे बड़ी दूर रहती है। तुम संसार के सुख में ही तल्लीन रहो। उस सहजयोगी के सन्निकट मत जाओ अन्यथा तुम भी घर से विरक्त होकर योगी हो जाओगे। उस योगी का ज्ञान है। वह संसार से पराङ्मुखी है। उसके घर में काम, क्रोध और मोह रूपी कालाचोला नहीं दिखायी देता। अहंकार रूपी तलवार को रखने के लिए अहंमन्यता रूपी म्यान भी उसके पास नहीं है। जिसके पास केवल शरीर रूपी कन्था (गुदड़ी) ही दृष्टिगोचर होती है। जिसमें वह ज्ञान रूपी धन को रखता है एवं उस गुदड़ी में मूलसंजीवनी संजीविका नामक अमृत तत्व रूपी बूँदों को भी रखता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि यदि कोई उस योगी की युक्ति को बूझेगा, वही साधक राम रसायन रूपी रस को क्षण-क्षण पीवेगा और उसे त्रिभुवन सूझने लगेगा।

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥

इसी को लक्ष्य करते हुए कबीर साहब कहते हैं कि उस योगी का नाश कभी नहीं होता। वह युग-युग जीता रहता है। कबीर साहब का कहना है कि कच्चे योगियों से सदा सावधान रहो क्योंकि कच्चे योगी लोग हाट-बाजार में तारी-समाधि लगाकर खूब धन-दौलत ऐंठते हैं। जो संसार के सुख के लिए भूमिगत भी हो जाते हैं जिन्हें सांसारिक लोग महायोगी, महाज्ञानी मानते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि सांसारिकों को कच्चे योगी की कला बहुत प्रिय लगती है :

"हाट बजारे लावै तारी। कच्चे सिद्धिन माया पियारी ॥"
यह योगिया का उल्टा ज्ञान। काला चोला नहिं वाके म्यान ॥

प्रकट सो कन्था घुम्राधारी। तामे मूल सजीवन भारी ॥
वे योगिया की युक्ति जे बूझै। राम रमें तेहि त्रिभुवन सूझै ॥
अमृत बेलि छिन-छिन पीवे। कहैं कबीर योगी युग-युग जीवे ॥

ऐसे योगी संसार में पुनः पुनः जन्मते रहते हैं। पंच ज्ञानेन्द्रियों के तृपिति में ही उनका जीवन-यापन होता है। वे आत्म प्रदेश से संसार रूपी देशान्तर में चले जाते हैं। वे भ्रमरगुफा में पुनः नहीं जा सकते। उनका कन्था रूपी शरीर जल जाता है। ध्वजा रूपी ध्यान टूट जाता है। वैराग्य रूपी दण्ड भग्न हो जाता। भक्ति रूपी खप्पर फूट जाता है। ज्ञान रूपी अमृत का कुण्ड नष्ट हो जाता है। विवेक रूपी मथानी ध्वस्त हो जाती है। क्षमा रूपी तप ध्वस्त हो जाता है। दया रूपी आयु भस्म हो जाती है। जितने भी उनके शुभ गुण होते हैं वे प्रतिध्वंसाभाव में प्रक्षेपित रहते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि इस कलिकाल के योगी खोटे होते हैं। वे नाटक-चाटक के द्वारा लोगों को भरमाते फिरते हैं। अन्त में जो उनके पास रहता है वह प्रकट हो जाता है क्योंकि सदा अपनी बुराइयों को छिपाने के लिए ऊपर सत्य का पर्दा ओढ़े रहते हैं जिसके कारण लोग शीघ्र ही नहीं पहचान पाते परन्तु :

"कहहिं कबीर यह कलि है खोटी। जो रहे करवा सो निकरै टोंटी ॥"

वाली बात हो जायेगी। कबीर साहब ऐसे योगियों को दुष्कर्मी (बदकर्मी) के नाम से अभिहित करते हैं। इनके पास गगन, धरणी और पाताल की गति नहीं होती है। इनको सहजयोग रूपी वृक्ष को पकड़ने के लिए भक्ति रूपी हाथ भी नहीं होते एवं उस पर चलने के लिए ज्ञान रूपी पैर भी नहीं होते। ये कुकर्म करने वाले होते हैं। इनमें कोई अच्छे लक्षण भी दिखायी नहीं देते। ये बिना हाट के ही हाट लगाते हैं अर्थात् योगयुक्ति के बिना ही लोगों को योग युक्ति सिखाते फिरते हैं और योग की शिक्षा का महत्व भी बहुत देते हैं। इनके पास योग की कोई जानकारी भी नहीं होती है और न धर्म के सही स्वरूप को ही पहचानते हैं। ये केवल मान बड़ाई में पड़कर सांसारिक सुखों के उपयोग को ही मुक्ति मानते हैं। इनके पास अनाहत नाद रूपी शृंगी पात्र भी नहीं होता और प्राणायाम श्वांस-प्रश्वांस की गति अवरुद्ध करने की क्रिया अभी नहीं जानते। लम्बिका क्रियायोग भी इनके पास नहीं है। बदकर्मी योगी अपने भक्तों को अपने तक ही सीमित रखते हैं।

ये कहते हैं कि उत्पत्ति, प्रलय कुछ भी नहीं होता। न कोई ब्रह्म है और न कोई ईश्वर। ऐसी स्थिति में तुम किसका ध्यान धरोगे ? जब तक जीवित रहो संसार का भली प्रकार से उपभोग करो। जीवनपर्यन्त मुझसे भिन्न किसी को ग्रहण मत करो। अद्वैतवादी योगियों ने अपरब्रह्म और परब्रह्म का झगड़ा आनकर खड़ा किया है। तुम मुझ चेतन से भिन्न दूसरा नहीं है। यही चेतन राम ही सब स्थानों में भरपूर है अर्थात् मैं ही सब कुछ जानता हूँ। मैं ही खुदा, ब्रह्म, राम सब कुछ हूँ। संजीवनी बूटी भी मेरे ही पास है। ये नट की भाँति अपनी कला दिखाते हैं। वास्तव में ये योगी, योगी नहीं होते, बाजीगर होते हैं। कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तों! मेरी बात को श्रवण करो। हाट-बाजार में ध्यान लगाने वाले के पास मत जाओ। नहीं तो राज विराजी हो जायेगी अर्थात् तुम्हारी अच्छी साधना भी विनष्ट हो जायेगी। जो कुछ तुम जानते हो वह भी इन बदकर्मी योगियों के चमत्कार को देखकर छूट जायेगा।

'ऐसो योगिया बदकर्मी जाके गगन आकाश न धरणी
हाथ न वाके पाँव न वाके, रूप न वाके रेखा
बिना हाट हटवाई लावै, करै बधाई लेखा
कर्म न वाके धर्म न वाके, योग न वाके युक्ति'
'मैं तोहि जाना तैं मोहि जाना मैं तोहि माँहि समाना'
'उतपति परलय एकहुँ न होते तब कहु कवन ब्रह्म को ध्याना'
जोगी आन एक ठाढ़ कियो है राम रहा भरपूरो
औषध मूल किछहू नहिं वाके राम सजीवन मूरो
नटवर बाजा पेखनि पेखै बाजीगर की बाजी
कहै कबीर सुनो हो संतों भई सो राज विराजी।

योगिया फिरि गयो नगर मँझारी। जाय समान पाँच जहाँ नारी ॥
गयेउ देसान्तर कोई न बतावै। योगिया बहुरि गुफा नहिं आवै ॥
जरि गयो कन्था ध्वजा गइ टूटी। भजि गयो डण्ड खपर गयो फूटी ॥
कहै कबीर यह कलि है खोटी। जो रहै करवा सो निकरै टोटी ॥

कबीर साहब का कहना है कि तुम्हारे अन्तःपुर में ही अनुभव यन्त्र बजाने वाले अन्तर्यामी बैठा हुआ है, जो आठ स्थानों पर अर्थात् आठ कमलों पर उसका निवास है। यहीं पर गाजता रहता है। अलमस्ती में झूमता रहता है। तुम्हारे मन में अज्ञानरूपी यवनिका लगी हुई है जिसके कारण

तुम उसे देख नहीं पा रहे हो। अज्ञान पट ही तुम्हारे और उसके मध्य की दीवार है। तुम उसके विस्मृति के कारण ही शरीर रूपी यन्त्र को लेकर योनियों से लेकर अनेक युगों तक ढोते आ रहे हो। तुम्हारे भीतर इतनी कला है, पर तुझे पता नहीं है ? तुम्हारे एक ही स्वर में छत्तीसों राग व रागनियाँ निवास करती हैं। तुम्हारे अन्दर से अनाहत नाद का उच्चारण होता रहता है। सद्गुरु – परमेश्वर तुम्हारे मानव शरीर रूपी साज को ऐसे बनाया है जो कहते नहीं बनता। शरीर रूपी यन्त्र—बाजे में मुख का नाल दण्ड लगा है और श्रवणरूपी तुम्बी उसमें लगी है। जिह्वा रूपी तार उसमें रागों को बजाने के लिए लगे हैं। नाक रूपी चरई घुमाने वाला कील चरखी लगी है। जिसे मुलायम करने के लिए पाँचों तत्त्वों का अर्थात् माया का मोम लगा है। इस प्रकार से साधक शरीरस्थ यन्त्रों से मन लगाने पर और उसमें रत होने पर गगनमण्डल में परम प्रकाश का दर्शन कर लेता है। संसार से उलट कर जिसने अपनी वृत्ति को विवेकपूर्ण यन्त्र वाले से सम्बन्ध कर लिया है, वही उसका दर्शन करने में समर्थ हो सकता है। अर्थात् इस यन्त्री एवं वस्तुओं को समझने वाला साधक कुछ कालोपरान्त आत्मज्ञान रूपी प्रकाश का दर्शन कर लेता है। परन्तु जो संसाराभिमुख हैं। वह इस प्रकाश को प्राप्त करने में सदैव असमर्थ रहता है किन्तु उसमें उलट-फेर लगा हुआ है। अर्थात् ज्ञान-वाहिनी कुण्डलनी जो है वह ऊर्ध्वारोही न होकर अधोमुखी बैठी हुई है। कबीर साहब कहते हैं, कि उसके द्वार को वही खोल सकता है जिसे सहजयोग का ध्यान है तथा सत्यासत्य का विवेक हो जाता है। क्योंकि हृदयस्थली में बैठा हुआ यन्त्री अहर्निश सचेत रहता है। वह साधक को तभी प्राप्त होता है जब साधक में अति उत्कण्ठा होती है :

'जंत्री जंत्र अनूपम बाजे बाके अष्ट गगन मुख गाजे
तूहीं बाजे तूही गाजे तूहीं लिए कर डोलै
एक शब्द में राग छतीसो अनहद बानी बोले
मुख के नाल श्रवण को तुम्बा सतगुरु साज बनाया।
जिभ्या के तार नासिका चरई माया का मोम लगाया
गगन मण्डल में भया उजियारा उलटा फेर लगाया
कहै कबीर जन भये विवेकी जिन्ह जंत्री सो मन लाया।'

और रहस्यमय ररा और ममा दो अक्षरों का उच्चारण करता है जिसके द्वारा सभी सन्तों ने अपने शरीर रूपी चुनरी का उद्धार किया

है। उस चुनरी को बनाने के लिए महर्षि वाल्मीकि ने साधन रूपी कपास बोया। जिस कपास को महात्मा शुकदेव ने चुनकर ज्ञानभक्ति का उपदेश भागवत के माध्यम से जिज्ञासुओं को दिया जो आज तक ज्ञानभक्ति रूपी एकत्रित कपास पुंज अक्षुण्ण रूप में विद्यमान है जिसे लेकर अनेक संत-महात्माओं ने अपने-अपने अनुपम भक्ति रूपी सूत कातकर संसार में प्रचार किया। विशेषकर सत्कर्म रूपी धुनकी से उस कपास को भली प्रकार से सूत के योग्य बनाया। सरस भक्ति रूपी सूत को जयदेव जी ने छन्दों में पिरोया। सन्तों के द्वारा काते हुए सूतों को ब्रह्मा, विष्णु, महेश अर्थात् इनके भक्तों ने ताना ताना। उस ताने के सूत को वैरागरूपी मार्जनी के द्वारा मननशील मुनियों ने मार्जन किया। अर्थात् जिस कपास रूपी भक्ति का शुकादिकों ने सर्जन किया था। वह ज्ञान भक्ति त्रिमूर्ति, त्रैगुण मण्डित (ज्ञान, उपासना, भक्ति) परमात्मा ने ही सर्वप्रथम वेदों में ऋषियों के द्वारा प्रवेश कराया।

अकामो धीरः अमृतः स्वयंभू रसो न तृपितो कुतश्च नोनः।
तमेव भान्ति आत्मानाम् धीरमजरम् युवानाम्॥

उच्छिष्ठे नाम रूपं चोच्छिष्ट लोकाहितः।
इन्द्रश्च अग्निश्च विश्वमन्तः समाहितः॥

यथे मां वाच कल्याणी सूर्यः चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्
दिवं च पृथ्वी च मथो श्वः त्रिगपदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः
यद् विष्णुं परमं पदम्।

इत्यादि वेद मंत्रों से स्पष्ट है। इन वेद वचनों के अनुसार पराभक्ति ज्ञान गंगा पहले से ही तीन लोक में प्रसिद्ध रही। यह पराभक्ति सर्व-शिरोमणि गति देने वाली है। बिना इसके प्राप्त हुए जीवों का उद्धार होना अति कठिन है। सद्गुरु कबीर ने इसी पराभक्ति को अति सुलभ सहजयोग की संज्ञा दिया है क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि वृत्ति को निरोध कर पराभक्ति के द्वारा परमतत्त्व में जुड़ने का नाम योग है। उस योग अथवा मिलन को कबीर साहब ने सहजयोग कहकर संबोधित किया है। विना उस सहज को प्राप्त किये अध्यात्म तत्त्व का अन्वेषण करना परम दुष्कर है। इसलिए उस पुरातन भक्ति का अवलम्बन लेना सर्वोत्कृष्ट है जिसके गुणों का गान करते हुए सुर, नर, मुनि, देवता एवं भर्तृहरि जैसे योगि भी असमर्थ रहे। क्योंकि विना जिह्वा के भगवान विष्णु ने उसको

जप करने को बताया है। वह विश्व नियन्ता, सर्वान्तर्यामी शरीर रूपी चुनरी में जिस स्थान पर बैठा हुआ है वहाँ बिल्कुल एकान्त है। उसे साधारण लोग विना परिश्रम के किसी कर्मादि द्वारा पाने की चेष्टा करते हैं, परन्तु ऐसे लोग पूर्णरूपेण भ्रम में पड़े हुए हैं, क्योंकि वह परमेश्वर अति गुह्यतम कन्दरा में बैठा हुआ है जो वहीं से सारे विश्व को संचालित करते रहता है। वहीं से अपने ताने-वाने के द्वारा संसार रूपी चुनरी को वुनते रहता है। उसने ऐसा यंत्र बनाया है जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती। जिसको माता के गर्भाशय में स्थापित कर दिया है जो अनेक प्रकार के रूपों का निर्माण करता रहता है। सांसारिक शिल्पी एक ही यंत्र को अनेक बार वनाते हैं, परन्तु परमेश्वर रूपी शिल्पी (जुलाहे) ने ऐसा यंत्र वनाया है जिसमें लड़का, लड़की, नपुंसक सभी उत्पन्न होते हैं। वह यंत्र अति विचित्र है। वह मनुष्यों के मान का नहीं है। उसकी गति-विधि वही जानता है। उस महिमावान की महिमा को वही पुरुष जान सकता है जो उसके नजदीकी होगा। उस वर्णणातीत के वारे में वह भी मौन ही रहता है। उस महिमावान ने इस चुनरी को बुनने के लिए चारों वेदों का कैड़ा अर्थात् गोड़ा वनाया है और निःतत्त्व को करघे की रस्सी बनाकर अपने हाथ में रखा है। कवीर साहव कहते हैं कि इस शरीर रूपी चुनरी को भली प्रकार से रखो ताकि इसमें दाग न लगने पाये। यदि काम, क्रोध रूपी दाग लग जायेंगे तो इसका सर्जक तुझे कभी नहीं चाहेगा, क्योंकि उसने तुम्हें नर-तन रूपी चुनरी इसलिए दिया है कि तुम उसको पहन कर सार्थक बनाओगे और उस करुणामयी की प्राप्ति के लिए सहज-योग की साधना करोगे। उसके प्रत्येक अंगों को सँजोकर रखो जिससे कि वह विकृत न होने पाये।

'ऊतो रहु ररा ममा की भाँति हो, सब सन्त उधारन चुनरी
बालमीक बन बोइया, चुनि लीन्हा सुकदेव।
कर्म बिनौरा होय रहा, सूत काते जयदेव॥

तीनि लोक ताना तनौ, ब्रह्मा, विष्णु, महेस।
नाम लेत मुनि हारिया, सुरपति सकल नरेस॥
विष्णु जिभ्या गुन गाँइया, बिन बस्ती का देस
सूने घर का पाहुना, तासों लाइनि हेत
चारि वेद कैंड़ा कियो, निराकार कियो राछ
बिने कबीरा चुनरी, मैं नहीं बाँधल बाछ।'

कबीर साहब कहते हैं कि शरीर एक पुतला मात्र है जिसका निर्माण पंचभूतों से हुआ है। उसमें से यदि एक भी बिछुड़ेंगे तो वह जहाँ की तहाँ धरी पड़ी रह जायेगी। पुनः उसी बात को निम्नोक्त वचनों से समझाते हुए कबीर साहब कहते हैं कि हे लोगों ! तुम इस प्रकार से समझो—शुद्ध मुख से जब उसका जाप करोगे तभी वह अपने संकेतों से तुम्हें अपनी ओर बुलायेगा और एक ही साथ षट्चक्रों को वेधन करने की कला भी बता-देगा। षट्चक्रों का वेधन करने में तभी तुम सफल हो सकते हो जब उसकी महती कृपा होगी। वह श्वास रूपी चक्र को मन के द्वारा स्वयं घुमाता रहता है। वैराग्य रूपी अग्नि में मन रूपी होम को ब्रह्म रूपी कुण्ड में तुमसे हवन करायेगा। तभी वृत्ति रूपी मछली विषय रूपी जाल से छुटकारा पाकर गगन में चढ़ पायेगी अर्थात् आनन्द लोक में प्रवेश कर सकेगी। जहाँ पर नित्य अमावस्या होती है तथा नित्य ग्रहण भी लगता है। अर्थात् इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना के सम होने पर अमावस्या होती है और इड़ा, पिङ्गला को जब सुषुम्ना ग्रस लेती है तभी ग्रहण भी लगता है। ऐसी दशा में ज्ञान रूपी राहु अज्ञान रूपी सांसारिक विषय-वासनाओं को ग्रस लेता है। ग्रहण शब्द का यही मुख्य प्रयोजन है। वेद ज्ञाता पण्डित सुरति रूपी (खेचड़ी मुद्रा) सुरभि को खा जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि ज्ञानमुख होकर तदाकार वृत्ति होने पर सतोगुण रूपी जो गाय है, अन्त में उसका भक्षण कर जाता है। तात्पर्य यह है कि जो सुरति संसार में फँसी हुई है उसे संसार से खींचकर आत्मोन्मुखी बनाना अभीष्ट है तथा वहाँ स्थिर होने का नाम भक्षण है क्योंकि सुरति जब निरति निःतत्त्व में लय हो जाती है तो उसका अभाव हो जाता है। उसका अभाव होने पर साधक अपने को निर्विघ्न करके उस स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ पर अमृत की वर्षा होते रहती है जिसमें साधक स्नान करके ओत-प्रोत हो जाता है। उसका सारा शरीर सराबोर हो जाता है। उसमें कभी रूक्षता नहीं आती। वह एक विरहिणी की भाँति लज्जालु होकर किसी से भेंट करना नहीं चाहता। वह शरीर रूपी यवनिका में छिप कर मात्र अपने प्रियतम को झाँकता रहता है और प्रियतम भी समझ लेता है कि यह पतिव्रता साधिका है जिसके कारण वह अपने अन्तःपुर में प्रवेश कराकर स्थिर कर लेता है। उस अन्तःपुर में अनेक प्रकार के वाद्य बजते रहते हैं। वह मन्दिर जो त्रिकुटी संगम पर स्थित है जिसमें साधक अपने प्रियतम का दर्शन करता रहता है और प्रेम के गीतों को सुनाता रहता है।

उसके आनन्द की बात को कोई दूसरा क्या कह सकता है ? पति-पत्नी के सुख को पति-पत्नी ही अनुभव कर सकते हैं। दूसरा केवल अनुमान ही कर सकता है परन्तु जबतक उसका अनुभव नहीं कर लेता तवतक उसके सारे कर्म-धर्म बेकार होते हैं। दुलहा-दुलहन को मिलाने वाला एक तीसरा होता है जो एक दूसरे के यहाँ एक दूसरे के संदेश को पहुँचाता है। जब तक मिलन की रीति को तथा दोनों के मनोभाव को नहीं समझा जाता तवतक वह बात भी नहीं करता। यहाँ पर तीसरा गुरु है। दुलहन साधक है। दुलहा परम तत्त्व है। दुलहन का चयन दुलहा स्वयं करता है। गुरु देखता है कि जबतक साधक उस योग्य नहीं है अर्थात् जबतक संसार में लगा है। सकाम कर्मों के द्वारा अपने को संसार में उलझाये रहना चाहता है तब तक उसकी अगुवाई गुरु नहीं करता। गुरु जब देख लेता है कि साधक रूपी दुलहन संसार रूपी मैके से ऊब चुकी है तब वह वर का चयन करता है और सहजयोग रूपी मार्ग से दुलहन को उस दुलहे के पास ले जाता है। एक दूसरे की पहचान एक दूसरे से करा देता है।

"तुम यहि विधि समझो लोई, गोरी मुख मन्दिर बाजै।
एक सगुण षट्चक्रहि बेधै, बिना बृषभ कोल्हू माचै॥
ब्रह्महि पकरि अगिन महँ होमे, मच्छ गगन चढ़ि गाजै।
नितै अमावस नित ग्रहण होई, राहु ग्रास नित दीजै॥
सुरभी भक्षण करत वेद मुख, घन बरसे तन छीजै।
त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बाजै, औघट अम्मर छीजै॥
पुहुमि को पनिया अम्मर भरिया, ई अचरज को बूझे।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, योगिन सिद्धि पियारी।
सदा रहे सुख संजम अपने, बसुधा आदि कुमारी।"

संसार की रीति के अनुसार तीसरे का होना अति अनिवार्य और आवश्यक है। तीसरा गुरु होता है। इसलिए विना गुरु के अर्थात् अगुवा के विना जैसे संसार का कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। उसी प्रकार आध्यात्मिक गुरु के बिना आध्यात्मिक जगत् की कोई भी जानकारी नहीं हो सकती, क्योंकि अध्यात्म विषय बहुत गहन, गम्भीर और इतना सूक्ष्म है कि निर्बल साधक का वहाँ पहुँचना कठिन ही नहीं दुस्साध्य भी है। उसके लिए दूसरे के वल की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि कोई भी साधक गुरु के बिना वहाँ जाना चाहता है तो वह उसी प्रकार से भटक जायेगा जिस प्रकार से किसी घाट पर जाने वाला व्यक्ति घाट का मार्ग बिना जाने

भटक जाता है और अनेक प्रकार की कठिनाइयों से परिपूर्ण कण्टकीय मार्ग उसके सामने उपस्थित हो जाते हैं। इसके विपरीत जिसे सद्‌गुरु मिल गये हैं उसकी सुरति संसार से उलटकर गगन की ओर उन्मुख हो जाती है। वह अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं को लाँघती हुई उस व्योम पर पहुँचती है जहाँ पर सत्य का निवास है। उक्त साधक वहाँ पहुँचकर महान आनन्द का अनुभव करता है। उस आनन्द को समझने वाला कोई विरला साधक ही हो सकता है, क्योंकि वह चर्म चक्षुओं और रसना से परे का है। वहाँ पर इन्द्रियाँ पहुँच नहीं सकतीं और न ही ये उस आनन्द का लाभ ही ले सकती हैं। वह आनन्द स्वयं को होता है सद्‌गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे सन्तों! सहजयोगी को आत्मसिद्धि प्यारी है। वह आत्मसिद्धि रूपी सुख को बहुत बड़े संयम से ही प्राप्त करता है, क्योंकि वह सिद्धि किसी के अधीन सहसा नहीं होती। वह सदा अविवाहिता (कुमारी) की भाँति अज्ञानियों के लिए दुर्लभ बनी रहती है। कारण कि उस आत्म प्रदेश का मार्ग अद्भुत और अगम्य है। अवगाहन होने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। उसे इस शरीर रूपी कंदला (गुफा) में प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि काम, क्रोध, लोभ रूपी आखेट का शरीर रूपी अरण्य में हो सांसारिक विषयानन्द रूपी मृग को बड़ी सुरुचि के साथ ज्ञान रूपी बाण को चलाकर मारना पड़ता है तभी वे वेधित होते हैं।

साहब कहते हैं कि वह साधक जो सहजयोग पर चलने वाला है और मन को स्थिर कर चेत जाता है वही शरीरस्थ स्वामी का स्थान प्राप्त कर लेता है अर्थात् उस सत्ता में तद्‌रूप होकर विचरण करने लग जाता है। सहज में ही उस मूल तत्त्व को अपने में बाँध लेता है। उस साधक का ध्यान ही धनुष है जिस पर ज्ञान रूपी बाण को चढ़ाकर अन्तःकरण के शत्रुओं का बध कर डालता है। शरीरस्थ सावजों को नष्टकर वह साधक षट्‌चक्रों को वेधकर कमलों को वेधता है। तदुपरान्त ही प्रकाशपुंज का दर्शन कर पाता है और बाहर-भीतर से अपने सभी शत्रुओं को भगाकर अपने स्वरूप में वृत्ति को सुस्थिर कर निश्चित हो जाता है। जहाँ पर न दिवस है और न रात्रि ही है, न दिशा-प्रदिशाओं का ही अन्तर है। सहज शून्य में वह साधक क्रीड़ा करते रहता है। स्वामी और सेवक में अभेदत्व की प्राप्ति हो जाती है और जो उसके साथी हैं, जो उसे विषया-नन्द की ओर ले जाते थे, प्रभु के दर्शन से उन सभी का साथ छूट जाता है।

कबीर साहब कहते हैं कि इस प्रकार उपदेश को सुनकर लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं परन्तु आश्चर्य की बात नहीं है। यह तो आत्मप्रदेश की बात है जो रहस्य से भरा पड़ा है। उस पद को कोई विरला ही बूझता है :

कबिरा तेरो बन कन्दला में, मानु अहेरा खेलै।
बपुवारी आनन्द मिरगा, रुचि रुचि सर मेलैं।।

चेतत रावल पावन खेड़ा, सहजै मूल बाँधे।
ध्यान धनुष ज्ञानबाण योगेस्वर साधे।।

षट्चक्र बेधि कमल बेधि जाय उजियारी कीन्हा।
काम क्रोध लोभ मोह हाँकि सावज दीन्हा।।

गगन मध्ये रोकिन द्वारा, जहाँ दिवस नहिं राती।
दास कबीरा जाय पहुँचे बिछुरे संग अरु साथी।।८७।। सबद।

क्योंकि धरती उलटकर आकाश में चली जाती है। चींटी के मुख में हस्ती समा जाती है। बिना पवन के पर्वत उड़ने लगते हैं। जल के जीव जन्तु सब वृक्ष पर चढ़ने लग जाते हैं। सूखे सरोवर में हिलोरा उठने लगता है, जिसमें बिना जल के चकवा किलोल करता है, बिना जल के ही लोग स्नान करते हैं। जहाँ पर खाने वाले को पकड़कर रोटी ही खाती है, जहाँ तावा जलता है, और चूल्ह चिल्लाती है, जहाँ पर सिंह को सियार खाता है, जहाँ पर हस्ति खरगोश आपस में लड़ते हैं, जहाँ पर आकाश, पाताल, मृत्युलोक के प्राणी उल्टी दिशा को जाते दृष्टि-गोचर होते हैं। जहाँ शिव, विरंचि, विष्णु परस्पर में लड़ते रहते हैं। जहाँ पर सूर्य को चन्द्रमा ग्रहण कर लेता है, जहाँ राहु केतु भी भयभीत रहते हैं। उस परम रहस्यमय तथ्य को वह पण्डित बिचारा नहीं जान पाता है जो बैठे-बैठे पुराण की बात करता है और बिना देखे हुए मार्ग में लोगों को स्वर्ग पाताल आदि में ले जाने की बात करता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि उपर्युक्त वर्णन पुराणपन्थियों के परे का है। वहाँ पर वेद, पुराण, बाइबिल, कुरान पहुँचने में असमर्थ रहते हैं। वहाँ पर मुल्ला, पादरी, पुरोहित, पोप ये सब पहुँचने के लिए प्रयत्न करते हैं, परन्तु दम्भ के कारण वहाँ जाने में और उस तत्त्व के समझने में निर्बल हैं, क्योंकि ये सब मिथ्या तत्त्व में आस्थावान् होने के कारण वर्णाश्रमाभिमानी होते हैं। ये धर्मान्ध लोग संसार को ही सत्य मानते हैं। अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए संसार के मनुष्यों को सत्य से दूर रखते हैं। जब कोई सत्य का

दर्शन करना चाहता है, और सत्य बोलना चाहता है, तो उसे नास्तिक, काफिर आदि कहकर समाज से बहिष्कृत कर देते हैं। ये पुरोहित, मुल्ला, पादरी आत्मघाती होते हैं। इनके पास सत्य की पहचान के लिए नेत्र नहीं होते। कबीर साहब कहते हैं कि उस परम सत्य को कोई विरला ही साधक समझ सकता है, जो वृत्ति को अहर्निश, ऊर्ध्वारोही ही बनाये रखता है और अन्वेषण के द्वारा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस साधक को परमतत्त्व के दर्शन हो जाते हैं। अन्त में वही सगुण से निर्गुण हो जाता है और निर्गुण होने से ढूँढ़ने पर वह दिखायी नहीं देता। तादात्म्य भाव को प्राप्तकर स्वयं वेदानुभूति की उपलब्धि हो जाती है और जन्म मरण से परे होकर निरन्तर आनन्दानुभूति प्राप्त करते रहता है। पुनः कबीर साहब कहते हैं कि परमानन्द की प्राप्ति के लिए तुझे सांसारिक विषयों से क्रीड़ा करना बन्द करना पड़ेगा। तुझे ज्ञान का गेंद बनाना पड़ेगा। सुरति रूपी दण्ड को लेकर हृदयांगन में खेलना पड़ेगा, तुझे जगत् का भरमना छोड़ देना होगा तथा भगवत् वेष को धारण करना पड़ेगा, क्योंकि भगवत् वेष को महिमा का वर्णन शेष भी नहीं कर सकते हैं। इसलिए शेष के सिर पर पैर रखकर तुझे आगे चलना पड़ेगा जो काल का दल है उसे जीत कर कमलदलों को शोधना पड़ेगा। क्रोध को मारकर ब्रह्म का बोध करना पड़ेगा। पवन परिचय के लिए तुझे प्राणायाम की गति को पद्मासन पर बैठकर समझना होगा। गगनगुहा में प्रवेश कर मदन का मर्दन करना पड़ेगा। कबीर साहब कहते हैं कि मदन को मारने वाला कोई विरला ही सन्त होता है, जो कर्म की रेख पर मेष मारता है। अपने अन्तः कषाय को भस्मीभूत कर देता है और सारे प्राणियों को भी वहाँ जाने के लिए मार्ग खोल देता है। विज्ञान रूपी अग्नि में पाप, पुण्य एवं आशा-वाशारूपी बीजों को भस्म कर देता है। जब पाप-पुण्य भस्म हो जाते हैं तब उनके करने वाले पंच चोर भी अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, आदि विज्ञान अग्नि में तिरोहित हो जाते हैं। इनके तिरोहित होने पर ही चिदानन्दकन्दपरानन्द चित्ति प्रदेश में साधक प्रवेश कर पाता है। ऐसी दशा में मन की वृत्ति को कहीं जाने का मार्ग नहीं मिलता। वह एकाकार हो जाती है। उसके एकाकार होने पर साधक भवसागर रूपी महासमुद्र को पार कर उस परम पवित्र लोक में प्रवेश कर लेता है जहाँ से पुनः लौटना नहीं होता है। उस साधक को इतनी शक्ति हो जाती है कि दूसरे को भी संसार सागर से पार उतार देता है और अनन्तकाल तक

परमधाम में विचरण करते रहता है। तत्पश्चात् लइभृत होकर परम भूमिनी में समाकार हो जाता है जिसे वेदों में विष्णु का तृतीय पाद कहा गया है और उसी को परमव्योम्नि भी कहा गया है। उस परमव्योम्नि को प्राप्त करने के लिए ही अध्यात्म वेत्ताओं ने अनेक प्रकार से वहाँ जाने के लिए साधनों और मार्गों का निर्देशन किया है। सत्गुरु कबीर साहब ने भी अपनी अनुभूति के बल पर अनेक मार्गों का उल्लेख किया है, जो सहजयोग से लेकर हठयोग आदि तक दर्शाया है। उनकी वाणियों के अन्दर कहीं-कहीं पर रेचक, पूरक, कुम्भक का विवेचन मिलता है।

रेचक, पूरक, कुम्भक का विवेचन

कबीर साहब का मत है कि यदि साधक लयचिन्तन अर्थात् सहजयोग को करने में असमर्थ है तो वह वहाँ तक पहुँचने के लिए प्राणायाम की अन्य विधियों से जा सकता है जिसके लिए कबीर साहब का आदेश है कि इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, पूरक, कुम्भक, रेचक के भेदों को जानना चाहिए। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना ये ब्रह्माण्ड कला की मुख्य तीन नाड़ियाँ हैं। इड़ा नाड़ी नासिका के बायें छिद्र द्वारा वहता हुआ वायु है। यह स्त्री का अंश मानी गयी है। इसी को यमुना की संज्ञा दी गयी है। चन्द्र नाड़ी भी इसी को कहते हैं। इसी नाड़ी में सावित्री और ब्रह्मा दोनों का निवास माना गया है। यह उत्पत्ति की नाड़ी कहलाती है। पिंगला नाड़ी नासिका के दाहिने छिद्र से निकलता हुआ वायु है। इसका नाम गंगा भी पड़ा हुआ है। इसी को सूर्य नाड़ी भी कहते हैं तथा यह पुरुष का अंग है। इसी के भीतर लक्ष्मी और विष्णु का निवास है। यह पालन की नाड़ी है। सुषुम्ना नाड़ी वह नाड़ी है जो दोनों नासिका छिद्रों से आने-जाने वाला वायु है। अर्थात् जब दोनों नासिकाओं के छिद्र वायु के समान रूप से रेचन और कर्षण होता है इसलिए इसे सुषुम्ना की संज्ञा मिली है जो एक होकर भीतर-भीतर, कभी-कभी सामान्य रूप से चलती है। यह नपुंसक का अंश है। इसी को सरस्वती भी कहा जाता है जो तीनों के समान रूप होने पर संगमा भी कहलाती है। इसका चौथा नाम राहु भी है जो चन्द्र सूर्य रूपी नाड़ियों को ग्रास कर लेती है। अर्थात् इड़ा, पिंगला को रोककर जब सामन्य रूप से चलने लगती है तो उस समय यह राहु हो जाती है क्योंकि दोनों का भक्षण कर जाती है। इसी नाड़ी में महादेव एवं पार्वती का निवास है जो संसार को प्रलय करने में समर्थ होते हैं। इसे प्रलयंकारी भी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि सुषुम्ना की गति

अवरोध होने पर मनुष्य मृतक हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि श्वास की दोनों नाड़ियों का रुकना मनुष्य के जीवन का अन्त होता है। यदि संसार में वायु का चलना बन्द हो जाय तो चन्द्रलोक की भाँति इस पृथ्वी पर भी प्राणियों का अभाव हो जायेगा। इसलिए सुषुम्ना का नाम प्रलय नाम रखना भी सार्थक है। पर यह बहुत महत्त्व की नाड़ी है। जब यह साधक के प्रयत्न से सामान्य रूप से चलने लगती है तो मनुष्य की कुण्डलिनी शक्ति स्वयं जग जाती है और अनेक दैवीय गुणों का उद्भव हो जाता है एवं साधक सिद्धावस्था में पहुँचकर सुजान बन जाता है। गुप्त-प्रकट सब कुछ दिखाई देने लगता है। इसके जागृत होने पर ऋतम्भरा शक्ति भी जागृत हो जाती है। इसके द्वारा साधक को अन्तः बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होना शेष नहीं रह जाता और वही साधक संसार में परमेश्वर का अवतार कहलाता है परन्तु सुषुम्ना के कुप्त होने पर सर्वनाश भी सम्भव है। साधक को योग, भोग दोनों से हाथ धोना पड़ता है। इसलिए साधक को चाहिए कि सुषुम्ना की आराधना बड़े प्रेम और श्रद्धा से करे। अर्थात् पूरक, कुम्भक, रेचक करते समय प्राणों की गति ठीक-ठीक ध्यान में रखे। कोई कार्य उल्टा सीधा न हो जाय अन्यथा विनाशकारी सिद्ध होगा।

रेचक, कुम्भक, पूरक करने की विधि

इड़ा नाड़ी के श्वास को नासिका के भीतर खींचने की क्रिया को पूरक कहा जाता है। इसी प्रकार से पिंगला नाड़ी से श्वास धीरे-धीरे बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहा जाता है। दोनों इड़ा, पिंगला नाड़ियों को मस्तक में छिपा कर स्थिर रखने का नाम कुम्भक है। इन तीनों क्रियाओं को नासापुट द्वारा उलट-पुलट कर अर्थात् एक बार तीनों क्रियाओं को करने से (एक) प्राणायाम कहलाता है। स्मरण रहे कि एक बार रेचक, पूरक और कुम्भक करने का नाम एक प्राणायाम तथा योग का एक अंग है जिसमें पूरक से चौगुना कुम्भक, कुम्भक से दूना रेचक को समय देना चाहिए। कुम्भक की क्रिया करने के बाद साधक को बहुत सावधानी से धीरे-धीरे श्वास को उतारना चाहिए अन्यथा एकाएक उतार देने से सुषुम्ना में विकृति आ जाती है। परिणामस्वरूप हृत्पिण्ड में भयानक रोगों के उत्पन्न होने की सम्भावना हो जाती है। कभी-कभी एकाएक श्वास को उतार देने से हृदय में धड़कन भी बढ़ जाती है और कभी-कभी हृत्पिण्ड के निकट वाली स्नायु के फट जाने का भय भी रहता

है जिसके कारण साधक को अनेक रोग हो जाने की सम्भावना रहती है। इसलिए योगी पुरुष को चाहिए कि प्रत्येक क्रिया को शनैः शनैः खाली पेट करें। यही उसके लिए श्रेयस्कर है। उपर्युक्त क्रियाओं को भरसक गुरु द्वारा सीखना चाहिए, नहीं तो कुछ का कुछ हो जाता है और कोई कार्य सफल नहीं होता है। उक्त क्रियाओं को करने के बाद साधक कम से कम दस मिनट तक नहीं उठे। ज्यों का त्यों बैठा रहे, जिससे कर्षित-आकर्षित प्राणवायुओं का अपने स्थान में शुद्ध रूप से समन्विकरण हो जाय। इस प्रकार से उपर्युक्त क्रिया निरन्तर करते रहना चाहिए। इस क्रिया को करने से आत्मवल बढ़ जाता है और मनुष्य की आयु बढ़ जाती है। यदि उक्त क्रिया में साधक सफल हो जाता है तो किसी प्रकार का रोग-शोक आदि नहीं सताते हैं। इस क्रिया से ब्रह्मचर्य की पुष्टि होती है। सभी नसें अपने कार्य को अच्छे प्रकार से करती हैं। चित्त में एकाग्रता आ जाती है। श्वास को अधिक रोकने की शक्ति होने पर योगी कम्पायमान होने लगता है। वाद में ऊपर की ओर योगी पुरुष अपने आप उठने लग जाता है। इस प्रकार अभ्यास वहुत काल तक करने से योगी में अत्यधिक शक्ति हो जाती है और प्राणों के शक्तिमान् होने से इच्छित स्थानों में आकाशमार्ग से गमन करने में सफल हो जाता है। यह कार्य तभी सम्भव है जब कि अधिक से अधिक प्राणवायु को अन्दर में स्थिर किया जाय। इसकी सफलता साधक पर निर्भर करती है। यदि साधक वर्ष पर्यन्त इस क्रिया को ठीक से करता है तो उसमें स्वयं अनेक गुणों का आभास होने लगता है। इस क्रिया के द्वारा चित्त की अति एकाग्रता हो जाती है। अति एकाग्रता होने पर आत्मोपलब्धि सम्भावित होती है। साधक की गति मन के समान होती है जहाँ मन पहुँचा, साधक भी सशरीर पहुँच जाता है। तात्पर्य यह है कि सिद्धयोगी आत्मवित् होकर इच्छाचारी हो जाता है। उसे देशकाल का वन्धन नहीं होता है। उसपर पंच तत्त्वों का प्रकोप भी नहीं होता है। वह किसी भी लोक में जा सकता है। ऐसे योगी सहस्रों वर्ष तक शरीर को धारण किए रहते हैं। ऐसे योगियों को दिव्य औषधियों का ज्ञान हो जाता है, जिसके वल पर अपने को नवीन वनाये रहते हैं। वेदों में ऐसी औषधियों का वर्णन है कि जिनके पान करने से जरावस्था के मांस आदि गल जाते हैं और पुनः उसमें नवीन तन्तुओं का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार के योगी शरीर निर्माण करने की प्रक्रिया भी जानते हैं। शास्त्रों में सुना गया

है कि भौतिक तत्त्वों को एकत्रित कर उसमें समाविष्ट हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि योगी सर्वज्ञ हो जाता है। वह सृष्टि के प्रत्येक कर्म को जान जाता है। ऐसे योगी कभी-कभी प्राणवायु को ब्रह्माण्ड में छिपाकर सैकड़ों वर्ष तक बैठे रह जाते हैं। ये योगी प्राणों को अपने अधीन कर लेते हैं जिसके कारण परकाय प्रवेश करने में समर्थ भी हो जाते हैं। ऐसे योगी सूक्ष्म शरीर को खींचकर मृतक के शरीर में समाविष्ट हो जाते हैं। उनको सूर्य के विषयुक्त किरणों से भय नहीं होता है। आकाश में विचरण करते समय प्रभाकर की प्रलयंकारी तरंगों से प्रभावित नहीं होते। उसे किसी भी आकाशीय ग्रहों से भय नहीं रहता, क्योंकि इन योगियों में इतनी कला आ जाती है कि इनके लिए प्रत्येक उपाधि से बचना सम्भव हो जाता है। ऐसे योगी अपने इच्छानुसार संसार में रहते हैं। इनकी वृत्ति चेतनाकार हो जाती है। ये संसार में, चराचर में, परमभूमिनी का दर्शन करते हैं। ऐसे योगी जड़ पदार्थों से भी बात कर लेते हैं अर्थात् प्राणियों की भाषा जान जाते हैं। स्थावर, जंगम सभी के विषय में ज्ञान रखते हैं। इनसे कोई भी बात अनवगत नहीं रहती है। ये योगी इच्छानुसार रहकर अन्त में आकाश को चीरते हुए सूर्यलोक में प्रवेश कर जाते हैं। जहाँ से आना-जाना सम्भव नहीं है। परन्तु प्रथमावस्था में इनके लिए कठिन नियम हैं। यदि इन नियमों में सफल हो जाते हैं तो ऊपर की सभी बातें सम्भव हैं अन्यथा क्रिया की असफलता में न योग होगा और न भोग ही होगा। तीसरा उत्पन्न एक रोग होगा। जो सुख के बजाय दुःख देगा। इसीलिए साधक, गुरु के द्वारा ही उपर्युक्त क्रिया को प्रारम्भ करें। साधक यह सुनकर भयभीत न हों कि इस क्रिया को करने से रोग ही हो जायेगा। यहाँ सिर्फ सावधान किया गया है ताकि सभी क्रियाओं को जानबूझकर अच्छी प्रकार से करें जिससे कि कभी भयदायी स्थिति उत्पन्न न हो। निश्चय ही इस क्रिया को करना चाहिए जो मानव-जीवन के लिए परमोपयोगी है।

इसी प्रकार कबीर-साहित्य में कहीं-कहीं पर चाचरी, भूचरी, अगोचरी, उन्मूनि, खेचरी आदि क्रियाओं का उल्लेख है। इसे भी गुरु के द्वारा जानकर साधना करनी चाहिए। आज इन क्रियाओं के करने वालों का बड़ा अभाव हो गया है। यह क्रिया अन्य पंथों से ही नहीं, कबीरपंथ से भी दूर भाग गयी है। इसके भागने के दो कारण हैं, प्रथम तो इस प्रकार के गुरुओं का अभाव होता गया। दूसरा कारण सन्तमत में अपराविद्या के

प्रति स्नेह भाव है। आज तो ये क्रियाएँ सन्तमत से अधिकांश रूप में बाहर हो चुकी हैं जिसके कारण नवीनपंथियों में इन्हीं के नाम पर ठगी भी हो रही है। आज प्रत्येक नवीनपंथी कबीर साहब की वाणियों को लेकर उल्टा-सीधा अर्थ करके जन-समूह को वर्गला रहे हैं। संसार का प्रत्येक मनुष्य परमसुख की इच्छा करता है और प्रत्येक दुःख से निवृत्ति भी चाहता है। आज लोग अध्यात्म योग के इतने पिपासु हैं कि उनको कोई बताने वाला नहीं मिलता। अन्त में वे हार कर हाट-बाजार वालों के पास चले जाते हैं जिनके द्वारा हाट-बाजार वाले बेसुमार धन कमा रहे हैं और बड़े-बड़े महल-मकान बनाकर ऐशआराममय जीवन बिताने में अनुरक्त हैं। भोली-भाली जनता को योग के नाम पर भोग की शिक्षा दे रहे हैं। एक तो योग इतना गुह्यतम है कि सबके मान का नहीं है, परन्तु हाट-बाजार वाले नवीनपंथी सभी को सन्तमत का योग सिखलाते चलते हैं। अपने को अवतार घोषित करके कोई पाताल लोक पर जाकर बसा जहाँ सुरा-सुन्दरी के अलावा कुछ नहीं है। कोई राजसत्ता पाने के लिए कारा का भी सेवन कर रहा है। कोई कारा में पाँच किलो की बेड़ियाँ पहनकर निकलने पर उसका प्रदर्शन करते दिखाई देता है, कोई छोकड़ा और छोकड़ियों को कुदाने में ही अपने को आचार्य और भगवान दोनों कहता है।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि इधर मुख अकेला है उधर अनेक मुख। इधर सीधा मार्ग है, उधर ठेलमठेला है। वे बहुत पहले ही कह चुके हैं :

ये कलि गुरु बड़े परपंची, डारि ठगोरी सब जग मारा।
घर-घर मंतर देत फिरत हैं, महिमा के अभिमाना।
गुरु सहित शिष्य सब बूड़े, अन्त काल पछिताना॥
गुरुआ तो सस्ता भये, पैसा केर पचास।
राम नाम धन बेचि के, करे शिष्य को आस॥
गुरुआ तो घर-घर फिरे, दीक्षा हमरी लेव।
कै बूड़े कै ऊबरे टका परदनी देव॥
गुरुआ तो कुत्ता भये, ज्ञान न जाने मूल।
शिष्य साखा अठई भये, रहे कान में झूल॥

इस प्रकार कबीर साहब ने अनेक चेतावनियाँ दी हैं जिनका नाम संकेत किया गया है। संसार को चाहिये कि वे लोग अपने अर्थ को गलत

जगह न फेंके, अपने जीवन को नष्ट न करें। सही गुरु का अन्वेषण कर सच्चे मार्ग का अनुसरण करें अन्यथा इन हाट-बाजार वाले अवतारों और भगवानों से उनको कुछ मिलने वाला नहीं है। यदि कोई गुरु प्रत्यक्ष में नहीं मिलता है तो लोगों को चाहिये कि आर्ष ग्रंथों एवं आर्ष सन्तों के ग्रन्थों में योग की अनेक पद्धतियाँ लिखी गयी हैं जिनमें जप योग का बड़ा महत्त्व है। यदि कोई गुरु नहीं मिलता है तो परमेश्वर के किसी भी नाम का श्रद्धापूर्वक जप करना चाहिए। जप करने वाले साधक का मार्ग-निर्देशन परमेश्वर स्वयं करते हैं। इसलिए साधक निर्भय होकर प्रभु के किसी भी नाम का अपने प्रत्येक श्वास के द्वारा जपता रहे। जप की विधि ऊपर बतलायी गयी है। यहाँ पर उसी का पुनरावर्तन थोड़ा-सा किया जा रहा है।

जप करते-करते जापक का मन अन्तर्मुखी हो जाता है और कुछ दिनों में जप के द्वारा गगनगुफा में पहुँच जाता है। जहाँ पर शान्तचित्त स्थिरभाव से आरूढ़ हो जाता है। रात-दिन, सोते-जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते उसकी मनोवृत्ति आत्माकार हो जाती है। अभ्यास करते-करते मन की गति श्वास में मिलकर एक हो जाती है जिसके द्वारा चन्द्र और सूर्य दोनों की गति भी समान हो जाती है। उसी प्रकार से जापक का मन परमतत्त्व में लगकर एक हो जाता है। जैसे चन्द्रमा की ओर चकोर का ध्यान स्थिर हो जाता है उसी प्रकार से जापक की सुरति-निरति में एक होकर परमसत्ता में रमण करने लग जाती है। परिणामस्वरूप निर्विकल्प समाधि प्राप्त हो जाती है और वह जापक संसार की गति को देखता रहता है। उक्त जापक योगी अखिल ब्रह्माण्ड की सारी बातों को बैठे-बैठे देखता रहता है। उसकी जगत् में तथा परमतत्त्व में अभेद भावना हो जाती है। जैसे समुद्र और लहर में कोई भेद नहीं होता। उसी प्रकार से वह योगी भी हो जाता है। समुद्र से उठने वाली लहर भी नीर है और सम होने पर भी नीर ही है। उसमें किसी प्रकार का द्वैतभाव नहीं है। केवल नाम और रूप भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। वास्तविकता को जानने पर सारी विपरीत भावनायें विनष्ट हो जाती हैं। उसकी पूजा पाव पलक तक ही सीमित नहीं रहती, वह अहर्निश अभेद चिन्तन में लगा रहता है। चौबीसों घण्टा चित्तरूपी ध्वजा गगन में लहराता रहता है। जहाँ पर अनहद की घंटियाँ उसको सचेत करने के लिए घनघनाती रहती हैं। जहाँ वह स्थान है वहाँ बिल्कुल एकाकी शून्य

ही शून्य है। बिना नींव की दीवार निर्मित है जिसमें निर्वाण पुरुष निवास करता है। उसकी प्राप्ति की सारो प्रक्रिया उस गगन के सिंहासन पर ही प्राप्त हो सकती हैं। कबीर साहब कहते हैं कि जिस साधक का मन वहाँ पहुँच जाता है वह साधक सतत परम तत्त्व की आरती उतारता रहता है। उसके सारे कर्म और भ्रम विनष्ट हो जाते हैं। जो सही पीव का परिचय पा जाता है वह सुरति को पकड़कर निरति में बाँधकर श्वास की गति को स्थिर करके गंगा तथा यमुना के घाट पर अर्थात् त्रिवेणी में निवास करने लग जाता है। मन को नाथकर एकीभूत कर देता है। हृदयरूपी आकाश में झूलना झूलता रहता है।

कबीर साहब कहते हैं कि वह सन्त निर्भय हो जाता है जो उन्मुनि-रहनि में स्थितप्रज्ञ होकर संसार को देखते हुये नहीं देखता। गंगा को उलट कर जब वह साधक यमुना में वास करा देता है। अर्थात् पिङ्गला को इड़ा में समावेश कर सुषुम्ना की गति में स्थिर कर एक कर लेता है और त्रिवेणी के संगम में रात-दिन स्नान करता है। जिस स्नान से उसके अन्तःकषाय धुल जाते हैं। परम सौभाग्यशाली पुरुष की आशा इस नाश-वान संसार में पुनः आने-जाने की निर्मूल हो जाती है। इस रहस्य को अज्ञानी साधक नहीं जानता, वह मनरूपी बाज के झपट्टे में पड़कर संसार में जरामरण ग्रहण करता रहता है। कबीर साहब कहते हैं कि यदि वह साधक सद्गुरु के द्वारा गंगा-यमुना-सरस्वती को एक करने की युक्ति जान लेता है तो वह साधक अविनाशी पद को प्राप्त कर पुनः भवचक्र में नहीं पड़ता है। वह अधर में सुरति की डोर पर बैठकर अहर्निश झूलना झूलते रहता है। जहाँ सावन मास की तरह बूँदों की झड़ी लगी रहती है। प्रिय-तम को रिझाने के लिए साधक अपनी मस्ती में कजली गीत गाता रहता है। गगन की गर्जना में वह मोर की भाँति नृत्य करता रहता है। वह अनहद नाद सुनता रहता है। उसकी सुरति गगन की ओर बढ़ती जाती है। मन दूसरी ओर नहीं जाता। वहाँ पर बिना सरोवर के ही जल स्थिर है जहाँ कमल खिला रहता है। मन रूपी भ्रमर अहर्निश उस कलियों की खिली पंखुड़ियों में अलमस्त रहता है। वे कमल षट्चक्रों के बीचोबीच खिले रहते हैं जिनकी सुगन्ध कोई विरला सन्त प्राप्त कर पाता है। दशों दिशाओं से मन को रोक कर श्वास में मन को लयकर बैठकर भृकुटी के भीतर जो योगी निवास करता है। वह ब्रह्माण्डीय कला के घोर शब्दों को पार करता हुआ, गगन मण्डल को भेदता हुआ आत्म प्रदेश में जा

पहुँचता है जहाँ से अमृत टपकता रहता है। वह साधक उस परम सुख को प्राप्त कर लेता है।

कबीर साहब कहते हैं कि वह अनन्त युग तक चिदानन्दस्वरूप में विचरण करता रहता है। उसका बाह्य जगत् से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। वह योगी सदा के लिए सुस्थिर हो जाता है। जहाँ पहुँचने पर पञ्च विषयों एवं पञ्च क्लेशों की गति समाप्त हो जाती है तथा तीनों तापों से भी परे हो जाता है। कबीर साहब कहते हैं कि यह अगम का खेल है जहाँ पर गैब का चाँदना, चाँद विहीन चाँदनी दिखलायी पड़ती है। जहाँ पर अलख निरंजन निवास करते हैं। जिनके मुख-माथा नहीं हैं, जो हाथ-पैर से भी रहित हैं, जो रूप-अरूप दोनों से भी परे हैं, जो पुष्पवास से भी पतला है। जो अनुमेयत्व है। साधक योगी का मन उन्हीं की परिक्रमा करता रहता है। जहाँ पर यह मन परिक्रमा करता रहता है उस हृदयाकाश में अनेक प्रकार के सुख उपलब्ध हो जाते हैं तथा पच्चीस प्रकृतियाँ उसकी सेवा में नृत्य करती रहती हैं। हृदयरूपी गढ़ में बैठा हुआ साधक अपने चित्त को इतना एकाग्र कर लेता है कि नासिका के आगे मन की गति नहीं होती है। चित्त पंगु हो जाता है। घूम फिर कर सातवें आसमान पर निवास करता है। कबीर साहब कहते हैं कि वही सन्त निर्भय होकर आत्मा तथा परमात्मा में अभेदत्व प्राप्त कर लेता है, जो सर्वश्रेष्ठ सुखालय है। ऐसे साधक अमरलोक के निवासी हो जाते हैं। दूध को मथकर जैसे घृत निकाल लिया जाता है उसी तरह इन्द्रियों को नियन्त्रित कर मनरूपी मथानी से हृदयाकाश में बैठकर प्रकृति रूपी दूध को जो मथ लेता है उसको अमरतत्व रूपी घृत की प्राप्ति हो जाती है। तदुपरान्त जन्म-मरण का भय समाप्त हो जाता है।

कबीर साहब कहते हैं कि वहाँ चन्द्र-सूर्य, वेद-कितेब अर्थात् बाह्य ज्ञान की गम नहीं है। उसको कोई गुरुमुख व्यक्ति ही समझ सकता है, क्योंकि बिना मार्ग के बेगमपुर नगर में पहुँचना होता है जहाँ अज्ञानियों के लिए जाना कठिन है और जो जाता है वह गुरु की कृपा से जाता है। वह नगर बहुत दूर है और बिना पथ का है। उस नगर में पहुँचने के लिए विहङ्गम मार्ग का आश्रयण करना पड़ता है। दूसरे मीन मार्गी भी वहाँ जा सकते हैं। वहाँ पिपील और कपिल मार्ग वाले योगी जाने में असमर्थ रहते हैं, क्योंकि उसको बिना नेत्र के देखा जाता है। वह चर्म

चक्षुओं का विषय नहीं है। वह केवल प्रातिभ ज्ञान का विषय है। ज्ञान से ही अनुगम होता है। उस अगम और अगाध के लिए कबीर साहब कहते हैं कि उसके भेद को कोई विरला ही सन्त जानता है। जो जानता है वह कहता नहीं, केवल संकेत करता है और यह भी कहते हैं कि बेगमपुर में जहाँ पर स्वामी का निवास है उस नगर में सांसारिक जीव नहीं जा सकता है। वहाँ वही जा सकता है जो पहले बेगम बन जाय।

बिनु पंखे उड़ी जाय आकाशे, जीवहिं मरण न सूझै।

वहाँ जाने के लिए न तो सांसारिक गुणों को गति है न तो सांसारिक कला के द्वारा पहुँचा जा सकता है। वह रहस्य आश्चर्यमय नगर है। जहाँ पर जाने के लिए कोई डगर नहीं है। न कोई बताने वाला है परन्तु वहाँ पहुँचे बिना विश्राम मिलना अति दुर्लभ है! वहाँ तो वही जा सकता है जो गुरु के सैन (संकेत) को पहचान लेता है। जहाँ पहुँचने पर उसकी वाणी मौन हो जाती है। वह रहस्य ही रहस्य देखता है। उसके सारे संकेत गूंगे को सैन जैसा हो जाता है। उस गूंगे की सैन को गूंगा ही पहचान सकता है, क्योंकि अधर को स्मृति और अधर की चाल है। अधर के बीच में गूंगे का गुरु मठ बनाता है। उस गूंगे गुरु का खेल उल्टा है और उसकी चाल भी उल्टी है। वह कुण्डलिनी के मुख में प्रवेश करने जब चलता है, तो इधर-उधर न देखकर आत्म प्रदेश में दृष्टिपात करता है वहाँ एक ऐसा मार्ग है, जिसके पार्श्व भाग में एक ऐसा यन्त्र लगा है, जिससे उल्टा देखने पर ही सीधा ज्ञान होता है। मार्ग भी उसका बहुत झींना है। वहाँ सुमेरु को सूई के छिद्र में डालना पड़ता है। उसके बाद जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति को पार करता हुआ तुरीयावस्था में पहुँचना होता है। यहाँ पर एक ऐसा खतरा योगी के लिए है, जो सुषुम्ना के मुख के पहले एक व्याघ्र नाड़ी है जो व्याघ्रमुखी होकर स्थित है। यदि साधक उसको पार नहीं कर लेता है, तो श्वास के सहित मन उस व्याघ्रणी के मुख में प्रवेश करने पर लौट नहीं सकता है और साधक के जीवन का अन्त हो जाता है। साधक को चाहिए कि जप के सहारे जिधर से शब्द का टङ्कार होता है, उसी मार्ग को ग्रहण करे, क्योंकि शून्याकाश में सब अदृश्य ही अदृश्य दिखाई पड़ता है। वहाँ की बड़ी विचित्र लीला है।

सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं कि हे भाई सन्तों! यह अवधूतों का खेल है। यहाँ पर निगुरा की गम नहीं है। जो अवधूत गुरु ज्ञान रूपी

प्रकाश को प्राप्त कर लेता है। वही सहज शून्य में अलख योगी का दर्शन करके स्थिर हो जाता है एवं वह स्थिर अवधूत उसके दर्शन में अर्हनिश छका रहता है। अपनी मस्ती के सामने किसी को कुछ समझता नहीं।

ज्ञान वैराग्य की महिमा

किसी भी मार्ग के लिए मनुष्य को संबल की आवश्यकता होती है। विना संवल अथवा साधन के कहीं जाना कठिन है। अध्यात्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए सबसे पहले वैराग्य भक्तिमय जीवन, गुरु, सत्संग, सन्त सेवा, वड़ों का आदर, विनम्र भावना, उदात्त भाव, परोपकार, परमावश्यक है। विना इनके अध्यात्म की चर्चा करना फिजूल है।

अध्यात्म को चाहने वाले व्यक्ति को सर्वप्रथम वैराग्य के सहारे संसार की ओर से मुड़कर मनोवृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना होता है और सुरति को चिदाकाश में लयकर ध्यानस्थ रहना पड़ता है और दसवें स्थान पर पहुँच कर मन को निमग्न करना पड़ता है। जहाँ पर न उदय है, न अस्त है। वहाँ पर सूर्य और चन्द्रमा के अभाव में रात-दिन का अभाव रहता है। वहाँ केवल प्रेम का ही आलोक रहता है। वहाँ दुःख द्वन्द्व कुछ भी नहीं व्यापता। उस स्थान पर पूर्णानन्द का दर्शन हो जाता है।

कवीर साहब कहते हैं कि उस पूर्णानन्द के दर्शन से दिव्यालोक का उदय हो जाता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थ दिखलायी देने लग जाते हैं। ब्रह्मरूपी समुद्र में मन हंस बनकर मोती चुगता है। कबीर साहब कहते हैं कि मेरा यह सत्य विचार है। यदि तू उस मार्ग पर चलेगा तो शांति मिलेगी। उस पर चलने के लिए सर्वप्रथम तुझको अपने सिर को काट कर हाथ में रखने का साहस हो तो आना। वहाँ कायरों की गति नहीं है। वहाँ कोई सूरमा ही चल सकता है। जिस हथियार से सूरमा सिर काटता है उसके हथियार निम्नोक्त हैं :

शील, सन्तोष, दया, क्षमा, सद्विचार, औदार्यता, गम्भीरता और आत्म चिन्तन। जिसके बल पर वह काम-क्रोध रूपी बैरियों को नष्ट कर अधर में झूलता है। वह सूरमा जो साधन रत रहता है आन्तरिक संग्राम को देख कर भागता नहीं है। उसकी लड़ाई रात-दिन ही सीमित नहीं है, वरन् वह जीवन पर्यन्त लड़ते रहता है। योगियों की लड़ाई तबतक चलती रहती है। जब तक पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं हो जाती है। सती की लड़ाई तबतक जारी रहती है जब तक पति का दर्शन नहीं हो जाता है। सूरमा

की लड़ाई तब तक चलती है, जब तक वैरी को नहीं जीत लेता। इसलिए सती और सूरमा की लड़ाई से सन्तों की लड़ाई में बड़ा अन्तर है। उन दोनों की लड़ाई क्षण (पलक) की है परन्तु सन्तों की लड़ाई रैन-दिन चलती रहती है। सदा चौकन्ना रहना पड़ता है। सुरति रूपी डोर जरा सी भी ढीली पड़ने पर वह आकाश से पृथ्वी पर आकर गिर पड़ता है और उसके सारे साधन विनष्ट हो जाते हैं। इसलिए सहजयोगी सदा सावधान रहते हैं।

कबीर साहब कहते हैं कि यही सहजयोग है। जिस दिन से गुरु प्रताप शिष्य पर हो गया है उस दिन से सुरति कहीं अन्यत्र नहीं गयी। जहाँ-जहाँ जाती है वहीं उसकी परिक्रमा होती है और जो कुछ करती है वही पूजा होती है। इस सहजयोग में आँख और कान को मूँदना नहीं पड़ता और न शरीर को कष्ट ही देना पड़ता है। खुले नयनों से हँस-हँस करके सभी में प्रभु के स्वरूप का दर्शन करता रहता है। गुरु कृपा वाले का मन सदा समसत्ता में विचरण करता है। उठते-बैठते हुए वह कभी भी स्वरूप से विचलित नहीं होता है। सदा स्वरूपाकार वृत्ति बनी रहती है। निर्विकल्प समाधि में सदा निमग्न रहता है। मन की समस्त वासनायें विनष्ट हो जाती हैं। सद्गुरु कबीर के अनुसार यह उन्मुनि रहनि है। जिसको स्थित-प्रज्ञावस्था भी कहते हैं। उसी को मैंने आपलोगों के समक्ष प्रकट करके गाया है, निर्भ्रान्त वर्णन किया है।

निर्विकल्प समाधि लगने से लौकिक सुख-दुःख निर्मूल हो जाते हैं। उसके परे जो परम पद है, जिसको प्राप्त कर योगी जन आध्यात्मिक अखिल सुखों के भागी बन जाते हैं। सद्गुरु कबीर के कथनानुसार सहजावस्था तभी बन सकती है, जब साधुओं के अन्दर शील, संतोष विराजने लग जाता है एवं आसुरी भाव का विनाश होकर दैवी भाव आ जाता है। सभी प्राणियों पर दया की भावना उत्पन्न हो जाती है। सबको अपने में और अपने को सब में दर्शन करने लग जाता है। इस भावना के पहले उसमें अहिंसा का आना परमावश्यक है। साथ ही विनम्र होना परम आवश्यक है और सत्यानुयायी होकर हँसी, मसखरी त्याग कर जो स्वप्न में भी झूठ नहीं बोलता। उसकी वाणी में अग्नि का अंश अधिक विराजने लगता है, उसमें वाक् सिद्धि आ जाती है।

उपर्युक्त भक्ति को प्रेम के साथ करना चाहिए तथा आत्मपूजा में निश-दिन अनुराग के साथ लगा रहना चाहिए। साधक मन को चतुर्दिक

से निरुद्ध कर स्वरूप में अभिमुख करें और शान्त भाव से आसन को सुदृढ़ रखें। धैर्य का कभी भी त्याग न करें। साधक में कभी-कभी घबराहट होती है जिसके कारण अनात्म वस्तुओं के सेवन की प्रवृत्ति हो जाती है। वृत्ति को अनात्म पदार्थों की ओर कभो न जाने दें और सत्यवादी, सत्य-वक्ता, आप्तपुरुष, गुरु का साथ न छोड़ें। क्योंकि भागते हुए मन को अन्त-रंग की ओर करता हुआ उस गुरु की सदा सेवा अर्चना में लगा रहे। निर्मल भावना से गुरु के साथ रहना चाहिए। क्योंकि अगर गुरु यह समझेगा कि शिष्य कपटी है तो वह सही बात कभी नहीं बतायेगा इसलिए शास्त्र और सन्तों ने यह शर्त रखी है कि सुधी होना चाहिए। सौम्यता को कभी त्याग न करें। यदि किसी कारणवश गुरु कभी रुष्ट हो जाय तो साधक को उन्हें प्रसन्न करने के लिए उपाय करना चाहिए। प्रसन्न होने पर गुरु जो आदेश करें उसका श्रवण-मनन करता रहे।

कबीर साहब कहते हैं जहाँ पर ऐसे विवेकी सन्त रहते हैं उसी स्थान पर मेरा निवास होता है और यह भी कहते हैं जब उस भक्त में विनम्रता आ जाती है और दासा तन का मार्ग अपना लेता है तो ऐसे पात्र को मैं वह पद देता हूँ अर्थात् उस लोक में पहुँचा देता हूँ जिस लोक को ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी प्राप्त नहीं कर सकते। एक शर्त और कबीर साहब लगाते हैं कि वह भक्त **"औरन को पूरा करि जाने, आपहि ओछ कहावे।"** अर्थात् किसी में दोष-दर्शन न करें। अपने भीतर के दोषों को खोजे कि कोई विकार तो नहीं रह गया है। यदि ऐसा भक्त मिल जाता है तो हे अवधू! तुमसे सत्य कहता हूँ कि वह मेरे को अति प्रिय लगता है। मैं उसके लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देता हूँ। मैं उसके पीछे-पीछे घूमता हूँ। उसका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। अन्त में मैं उसको अपने में समाविष्ट कर लेता हूँ और उसको ऐसी बुद्धि देता हूँ कि सभी गुणों से सम्पन्न हो जाता है। उस परम भक्त को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँचों विषयों में नहीं पड़ने देता हूँ। इन विषयों से अस्नेही बनाकर आत्मा का दर्शन कराता हूँ। उस भक्त की अभेद दृष्टि हो जाती है। वह प्रत्येक प्राणियों में एक ही समसत्ता का दर्शन करता है। वह जाति-पाँति, वर्णाश्रम का अभिमान त्याग देता है। उसका द्वैतभाव सदा के लिए विनष्ट हो जाता है। वह सत्य शब्द में निरन्तर निवास करता है। वह वेद शास्त्रों को पढ़कर विस्मृत हो जाता है। उसमें से केवल सार-भाव को ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार की बुद्धि मैं उसको साधु के मुख

से और उनकी संगति से बना देता हूँ। हे अवधू ! तुमसे पुनः कहता हूँ तुम सुनो, जो इस प्रकार की रहनी-गहनी से रहता है वह अवश्य ही परम पद को प्राप्त कर लेता है। उसमें ऐसी लगन होती है कि इसके सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अन्ततोगत्वा मनुष्य शरीर का फल उसको मिल जाता है, जिसके लिए देवता भी लालायित रहते हैं, क्योंकि देवताओं को मानव-शरीर नहीं मिलता। इसलिए आत्म-सुख से वंचित रहते हैं। जैसे स्वाती बूँद के लिए पपीहा पी-पी का रट लगाता है, उसी प्रकार से जो साधक प्रभु का भक्त बन जाता है वह किसी दूसरे देवी-देवता का ध्यान और दर्शन नहीं करना चाहता। चाहे उसके प्राण रहें या चले जायँ। वह अपने शरीर की चिन्ता नहीं करता। वह मृत्यु का वरण लेता है। अपने प्राणों को हाथ पर लेकर घर-द्वार सब छोड़कर सत्य का सौदा करने निकल पड़ता है। चाहे उसके सामने आग का अंगार ही क्यों न जलता हो। उसको रंच मात्र भी भय नहीं होता। अर्थात् यदि वह साधक गुरु ज्ञानाग्नि के घेरे में हो तो भी वह प्राणों का मोह छोड़कर कूद पड़ता है। जैसे दो दल आपस में लड़ने के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं जिसको देखकर कायर भाग जाते हैं, परन्तु सूरमा रणांगन में कूद पड़ता है। विना विजयश्री प्राप्त किए पीछे की ओर नहीं देखता। चाहे वह टूक-टूक क्यों न हो जाय। वह शत्रुओं को मारकर ही वापस होता है। जैसे मृगा मधुर नाद का प्रेमी होता है और नाद को सुनते-सुनते प्राणों का न्योछावर कर देता है। उसी प्रकार आत्म तत्त्व प्रापक साधक को भी होना चाहिए।

कबीर साहब का कहना है कि जब गुरु से लगन लगानी हो तो तन, मन, धन सबकी आशा छोड़कर निर्भय होकर प्रभु के चरणों में लिपट जाओ। तभी वे स्वयं तुमसे आकर मिलेंगे। तुम सावधान हो जाओ। इस प्रकार का शुभावसर तुझे कभी नहीं प्राप्त होगा। जो तुझसे बन सके तो मनोवाञ्छित भलाई कर लो जिसके द्वारा तुझे जन्म-जन्म आनन्द प्राप्त होता रहेगा। इन सांसारिक सुखों में कुछ भी नहीं है। ये क्षण पलक में नष्ट होने वाले हैं। कल तन छूटने पर तुम क्या कर सकोगे अर्थात् कुछ नहीं। इसलिए प्रभु का सुमिरण, भजन यावत् जीवन कर लो जिससे इनके दूत तुझे नहीं पकड़ेंगे। मन से, वचन से, कर्म से प्रत्येक श्वास में प्रभु का नाम लेते रहो। एक भी श्वास बेकार न जाने दो। तुझे कुछ भी पता नहीं कि आने वाला श्वास कब रुक जायेगा। इसलिए तुमसे बार-बार कहता हूँ। तुम प्रत्येक श्वास की सुमरणी बना लो। इसी के द्वारा

प्रभु के पावन नामों का जप करते रहो। साथ ही यह संसार क्या है ? मैं क्या हूँ ? इसका भी चिन्तन करते रहो। ऐसा चिन्तन करते-करते तुम्हारो गमनागमन करने वाली वृत्ति प्रभु के स्वरूप में लय हो जायेगी। पुनः तू जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ोगे।

ईश्वर का अस्तित्व और उसकी प्राप्ति

प्रभु के विषय में बड़ा विवाद छिड़ा हुआ है, कोई कहता है ईश्वर नहीं है, कोई कहता है निर्गुण है, कोई कहता है सगुण है, कोई कहता है जीव ही ईश्वर है, कोई कहता है, ईश्वर आदर्श शब्द है। किसी ने तो यह कहा है कि सत्य ही ईश्वर है, प्रभृति विचार देखने-सुनने को मिलते हैं। ईश्वर नहीं है, ईश्वर है, यह विवाद बहुत पुराना है। यह लड़ाई वैदिक युग से लेकर आज तक अस्तिनास्ति के सम्बन्ध में विद्यमान है। दोनों के पक्ष सबल और तर्क पूर्ण दिखायी देते हैं।

तीसरी श्रेणी वैकल्पिकों की है जो पुरुष विशेष को ही ईश्वर मानते हैं, परन्तु मुझे यह देखना है कि कबीर साहब के मत से ईश्वर है या नहीं। मेरे अन्य लेखों द्वारा कबीर साहित्य की प्रामाणिकता पर विचार किया जा चुका है, जिसमें 'बीजक' कबीरवाणी, (कबीर ग्रंथावली), बाबा मलूकदास द्वारा संग्रहीत एवं 'चौरासी अंग की साखी'। ये ग्रन्थ कबीर साहब के मान लिए गये हैं। इनकी कसौटी, भाषा-विज्ञान, भाव-व्यंजन प्रयोग तथा भावात्मक शब्दावलियों के कारण कबीर-साहित्य के रूप में निश्चित हो चुकी है। इन तीनों पुस्तकों में यदि निष्पक्ष भाव से तटस्थ होकर विचार किया जाय तो ईश्वर विषयक पद्य अधिक विद्यमान हैं।

सद्गुरु कबीर की दो कथन शैलियों के द्वारा ईश्वर की सिद्धि की गयी है। सर्वप्रथम कुछ पंक्तियों को उद्धृत किया जा रहा है जिनसे यह उप-लक्षित होता है कि एक परमतत्त्व सर्जक और संहारक के रूप में विद्यमान है। जो जीव तत्त्व से भिन्न सर्वगत और सर्वज्ञ है। जीव तत्त्व इसलिए वह नहीं है क्योंकि जीव अभावग्रस्त तत्त्व है और अल्पज्ञावस्था में विद्यमान रहता है। जीव का अपना अलग अस्तित्व है, परमात्मा का अपना अलग अस्तित्व है, परन्तु चैतन्य भाव में अभेदत्व है। दूसरी बात ईश्वर भावयुक्त पदार्थ है। ईश्वर में छः गुण—आधिपत्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य विद्यमान रहते हैं जिससे उसके ईश्वरत्व में अभिघटत्व

कल्पनाकाल का अभाव रहता है और क्षरत्व, वर्धत्व को कभी प्राप्त नहीं होता।

यहाँ ईश्वर से मेरा तात्पर्य शुद्ध चिति-भूमा से है जो व्यक्ताव्यक्त से परे है, जिसमें देश-काल का अभाव रहता है। उसी को कबीर साहब ने राम, रमैया, रमुरा, रामराई, गोविन्द, गोपाल, रघुराई आदि नामों से उद्घोपित किया है। सर्वप्रथम 'बीजक' में प्रथम रमैनी की अन्तिम साखी में राम शब्द का प्रयोग किया गया है :

कहै कबीर पुकारि के, ई लेऊ व्यवहार।
राम-नाम जाने बिना, भव बुड़ि मुवा संसार॥

उसके पहले चौपाई में अविगति भी कहा है और यह भी कहा है कि उसकी महिमा का सांगोपांग वर्णन नहीं किया जा सकता है तथा दूसरे स्थल पर अविनाशी भी कहा है :

'अब कहूँ राम-नाम अविनाशी। हरि छोड़ि जियरा कतहूँ न जासी॥'

जीवों से यह भी कहते हैं कि वह अविनाशी है उसको छोड़कर अन्यत्र न जाओ अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिए सहजयोग का अवलम्बन करो। तात्पर्य यह है कि 'बीजक' में सैकड़ों स्थानों और पदों में इस प्रकार की बातें भरी पड़ी हैं। 'चौरासी अंग की साखी' में गोविन्द का नाम, हरि-नाम एवं रामनाम सैकड़ों पदों में आया है। जैसे :

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो लखाय॥

राम-नाम के पट तरे, देवे को कछु नाँहि।
कह लौं गुरु संतोषिये, हौंस रहि मन माँहि॥

ना कछु किया न करि सका, न करने योग्य शरीर।
जो कछु किया सो हरि किया, भया कबीर-कबीर॥

हरि से जन हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहि देत॥

सपनेहुँ बरराई के, मुख से निकले राम।
ताके तन की पानहि, मेरे तन के चाम॥

कबीर वह दिन याद कर, पग ऊपर तल शीश।
मृतमण्डल में आइके, विसर गया जगदीश॥

इत्यादि प्रकार के पद कबीर साखी में भरे पड़े हैं जिसके द्वारा ईश्वर की सिद्धि सरल एवं सम्भावित है। इसी प्रकार से 'कबीरवाणी' में भी पद भरे पड़े हैं। कुछ पंक्तियों को नीचे उद्धृत किया जा रहा है :

तू निरंजन, तू निरंजन, तू निरंजन रामराया।
तेरे रूप नाहिं रेख नाहिं, मुद्रा नाहिं माया॥
राम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे।
अंजन उत्पत्ति बरतन लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई॥
अहो! गोविन्द तुम्हारा जोर।

आदि पंक्तियाँ अनेक प्रकार की भरी पड़ी हैं जिनका पूरा उदाहरण देने से पुस्तक का कलेवर अधिक बढ़ जायेगा। इसलिए विस्तार-भय से सबको उद्धृत न करके दिग्दर्शन मात्र किया गया है।

उपर्युक्त पंक्तियों से ईश्वर की सिद्धि की गयी है। उसकी प्राप्ति के लिए सद्गुरु कबीर साहब ने ज्ञान, उपासना सुकृतों का उल्लेख किया है। अन्तिम रूप उनका सहजयोग है। सहजयोग के बिना उसकी प्राप्ति वे सम्भव नहीं मानते। ईश्वर के बारे में बहुतों की धारणा यह है कि वह दिखलायी नहीं पड़ता। इसलिए उसका अस्तित्व नहीं है। इस विषय में कबीर साहब कहते हैं :

रेख रूप वै है नहीं, अधर धरो नहिं देह।
गगन मण्डल के मध्य में, निरखो पुरुष विदेह॥
धरे ध्यान गगन के माहिं, लाये बज्र किवार।
देखि प्रतीमा आपनी, तीनिऊँ भये निहाल॥

के अनुसार वह गगन मण्डल में है, उसको ध्यान के द्वारा अर्थात् चारों ओर से वज्र किवाड़ लगाना पड़ेगा और सहजयोग उसके लिए साधन है। क्योंकि परमेश्वर परमगुप्त तत्त्व है। अतीन्द्रिय पदार्थ होने के कारण सहज बुद्धि से ग्राह्य नहीं है। वह हृदय गुफा में छिपा हुआ तत्त्व है। वह दृष्टिगोचर होनेवाला नहीं है। अति सूक्ष्म रूप है। उसको न तो ऊपर ग्रहण किया जा सकता है और न नीचे ही ग्रहण किया जा सकता है। वह मध्य में भी नहीं पकड़ा जा सकता है। जैसे—पुष्प में सुगन्ध है पर दिखाई नहीं देती। उसी प्रकार से परम तत्त्व है परन्तु इन नेत्रों से दिखने वाला नहीं है। जैसे—पुष्प की गन्ध घ्राण के द्वारा अनुभव की जाती है उसी प्रकार से परमेश्वर भी अनुभव का विषय है, वह स्वानुभूति परक

है। जैसे—शरीर की वेदना का अनुभव अन्य द्वारा सम्भव नहीं है। उसी प्रकार से परमेश्वर, जिसको अनुभूत होता है, उसी को होता है अन्य केवल वेदना वाले को देखकर कह सकते हैं कि ज्ञात होता है कि इसको कष्ट है उसी प्रकार से आत्मानुभूति वाले को कुछ लक्षणों के द्वारा जाना जा सकता है। दृष्टिगत वस्तुयें नाश को अथवा परिवर्तन की ओर होती हैं। उनमें क्षरत्व, वर्धत्व भी देखा जाता है। यदि परमेश्वर दृष्टिगत होने लगे तो वह भी एक परिगामी वस्तु सिद्ध होगा। इसलिए नास्तिकों के सारे तर्क विकार भाव वाले हैं। वह अति श्रद्धा का विषय है, बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं हो सकता। कबीर साहब कहते हैं कि वह श्रद्धा, विश्वास एवं प्रेम वाले को ही प्राप्त होता है। वहाँ तर्क के द्वार बन्द हैं। तार्किकों को जगत् का ज्ञान होता है। श्रद्धावाले को प्रभु का ज्ञान होता है। प्रभु की प्राप्ति के लिए तीन ही सहयोगी होते हैं—प्रथम गुरु, दूसरा श्रद्धा, तीसरा शुद्धाचरण। इन्हीं तीनों के सहयोग से प्रभु की प्राप्ति सम्भव है, क्योंकि गुरु के द्वारा सहजयोग का ज्ञान होता या जानकारी होती है और श्रद्धा के द्वारा मन निर्मल होता है, शुद्धाचरण के द्वारा निरोगता प्राप्त होती है। साधना या प्रभु की प्राप्ति में निरोगता की आवश्यकता है। बिना उसके कार्य की सिद्धि नहीं होती। इसलिए शुद्धाचरण की बड़ी उपयोगिता है, जिसमें अन्न-जल, आहार-व्यवहार भी समाविष्ट है। सर्वप्रथम आसन पर बैठने के पहले स्नान करना परमावश्यक है। यदि शरीर कुछ रुग्ण है तो कम से कम हाथ, पैर, मुख आदि अंगों को जल से शुद्ध करने के बाद ही आसन पर उपविशित होकर गुरु के बताये हुए मार्ग से कार्य पद्धति चालू करें। विशेषकर ऐसे स्थान का चयन करें जहाँ पर साधना के लिए अत्यधिक एकान्तता हो। वहीं पर बैठकर साधना करना श्रेष्ठ है। इसकी विशेष विधियाँ पूर्व पृष्ठों पर लिखी गयी हैं। इसलिए उनका उल्लेख करना पुनः उपयुक्त नहीं है।

भक्ति योग

भक्ति की व्युत्पत्ति भज् (भज्+क्तिन्) धातु से हुई है। जिस भक्ति का अर्थ होता है सेवा, सुश्रूषा, भजन, पाद-वन्दन, अर्चन आदि। जिनका उल्लेख पूर्ववर्ती ऋषियों के द्वारा हुआ है।

भक्ति के विषय में महर्षि नारद, शाण्डिल आदि ऋषियों ने विशेष रूप से उल्लेख किया है, परन्तु कबीर साहब की भक्ति सन्तमत की भक्ति

है। इसमें किसी प्रकार का आडम्बर नहीं है, बाह्याचार भी नहीं है। कबीर साहब भक्ति-भावना से ओत-प्रोत होकर कहते हैं :

अर्ब खर्ब ले दर्ब है उदय अस्त ले राज।
भक्ति महातम ना तुले, ई सब कौने काज॥

कबीर साहब की भक्ति अतुलनीय है। उसकी बराबरी करने वाली संसार में कोई दूसरी वस्तु नहीं है। कबीर साहब भक्तियोग का लक्षण करते हुए कहते हैं :

राम-नाम जिन चिह्नया, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवै नींदरी, अंग न जामें मांसु॥

दूसरी जगह वे कहते हैं—

जो जन भींजे राम रस, विकसित कबहुँ न रूख।
अनुभव भाव न दरसये, तेहि नर सुख न दुख॥

अर्थात् राम-नाम को जिसने पहचान लिया है, उसका शरीर क्षीण हो जाता है। उसे नींद नहीं आती है और न अंग पर मांस की ही वृद्धि होती है।

जो राम रस में भींगा हुआ है, वह विकसित अवस्था को प्राप्त होता है। उसमें रूक्षता नहीं आती। सांसारिक सुख-दुख राम रसायन के आगे अनुभव नहीं होता। वह राम-भक्ति में तल्लीन रहता है। राम-भक्ति के स्वरूप का चिन्तन करने को कहते हैं। वह मानसिक रूप से अहर्निश प्रभु के नाम और स्वरूप का चिन्तन करता रहता है। यही राम की भक्ति है। इसी भक्ति के लिए सद्गुरु कबीर गुरुदेव की शरण में जाने को बार-बार निर्देशित करते हैं। उनका कहना है कि बिना इस प्रकार की भक्ति के तुम्हारा उद्धार होना सम्भव नहीं है। वे यह भी कहते हैं कि जब तक राम के वियोग में तुम विकल नहीं हो जाते तब तक तुम राम को पा नहीं सकते। इसलिए तन, मन, सब सौंपकर राम के शरणागत हो जाओ तब तुम्हारी दशा इस प्रकार हो जायेगी :

राम वियोगी विकल तन, इन दुखिवो मति कोय।
छुअत ही मर जायेंगे, ताला बेली होय॥

विरह भुवंगम पैठि के, कीन्ह करेजे घाव।
साधू अंग न मोरिहैं, ज्यों भावे त्यों खाव॥

वे कहते हैं कि राम-नाम ही मूल है। उसी को ग्रहण करने से तुम्हारे कार्यों की सिद्धि होगी। तुम अन्यत्र न भूलो। यदि अन्यत्र भूल जाओगे तो तुम्हारा मन समुद्र के समान है उसका मनसा ही लहर है। यदि कहीं अन्यत्र जाते हो तो उसी में डूब मरोगे। इसलिए मन के सारे व्यवहार को त्यागकर परमेश्वर की भक्ति करो और जन्म-मरण से पार होने के लिए राम-नाम रूपी नौका पर बैठकर समुद्र रूपी संसार से पार हो जाओ।

वाणी पर संयम

कबीर साहब कहते हैं कि जिह्वा को बन्द रखो। बहुत बोलना कम करो। आत्मवित् सन्तों से संग करो और जो गुरुदेव का दिया हुआ शब्द है उसपर विचार करो अर्थात् उसका चिन्तन करो।

जिभ्या को तो बन्द दे, बहु बोलन निरुवार।
पारखी से संग करु, गुरुमुख शब्द विचार॥

पुनः वे कहते हैं कि जिसकी जिह्वा बन्द नहीं है, जो बहुत बोलता है वह झूठ का शिकार हो जाता है। उसका हृदय कभी सच्चा नहीं होता। ऐसे लोगों की संगति नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसे लोग तुझे साधना के मार्ग में मिलकर धोखा देना चाहते हैं तो उनको बीच मार्ग में ही त्याग दो।

जाके जिभ्या बंध नहीं, हृदया नाहि साँच।
ताके संग न लागिये, घाले बटिया माँझ॥

वे कहते हैं कि बोलना अनेक प्रकार का है, जिसको विचारकर बोलना चाहिए। बिना विचारे यदि बोलते हो तो तुम असत्यवादी ठहरते हो और उसके द्वारा दूसरों को भी कष्ट पहुँचेगा। इसलिए अपने और पराये हृदय को समझाकर समान रूप से सोचकर जैसे दुख-सुख मुझे होता है उसी प्रकार एक दूसरे को भी होता है इसलिए सच्चाई और सरलता के साथ वाणी का उच्चारण करो। मैं तुझको बिल्कुल मौन होने के लिए नहीं कहता हूँ। केवल विचार करके बोलने के लिए मन्त्रणा देता हूँ :

बोलन है बहु भाँति का, नैनन किछुउ न सूझ।
कहैं कबीर बिचार के, तैं अकिल कलाले बूझ॥

सद्‌गुरु कहते हैं कि मेरा सच्चा शब्द हृदय में है, जरा विचार कर देखो। पर तुम विचारते नहीं हो कि मैं क्या कहता हूँ। मुझे बहुत दिनों से कहते हो गया, और तुम्हें सुनते भी। परन्तु तुम्हारी इन्द्रियाँ इतनी बहिर्मुखी हो गयी हैं कि तुम्हें मेरे शब्दों की ओर जाने नहीं देती हैं। यदि तुम सच्चा वणिक् बन रहे हो तो साँची हाट लगानी चाहिए। अर्थात् सत् व्यवहार करना चाहिए। पहले भीतर की सफाई करो और उस कूड़े को बाहर दूर फेंक आओ :

साँचा शब्द कबीर का, हृदया देखु विचारि।
चित्त देय समुझे नहिं, कहत भयल जुग चारि॥
जो तू साँचा बानियाँ, साँची हाट लगाव।
अन्दर झारू देइ के, कूरा दूरि बहाव॥

क्योंकि सबसे श्रेष्ठ सत्य बोलने वाला होता है। यदि उसका सत्य दिल है तो उसके समान दूसरा कोई संसार में नहीं है और बिना सत्य के सुख भी नहीं हो सकता, चाहे तू कितना भी प्रयत्न करो। सत्याभाव में दुःख ही दुःख है। इसीलिए तू सत्य वस्तु का क्रय करो। सर्वप्रथम अपने मन में उसको जमा लो कि वह सत्य है कि नहीं! यदि पहचान नहीं पाओगे तो सत्य वस्तु के क्रय से तुम्हारा अनिष्ट होगा। मैं तुझे इतना समझाता हूँ जिसको सीमा नहीं है, परन्तु तुम सुकृत वचन को मानते नहीं हो और अपने भी विचार नहीं करते हो कि मैं हीरा का क्रय कर रहा हूँ कि कोई पत्थर का अथवा कानी कौड़ी तो नहीं। तुझे पुकार-पुकार कर कहते मेरी सारी अवस्था बीत गयी, पर तुमने अनसुनी कर दिया। सांसारिक सुखों में तू इतना लिप्त हो गया कि स्वप्न के समान तुम्हारा परमानन्द सुख चला गया। अर्थात् तुम्हारा मानव जन्म बेकार हो गया :

सबते साँचा है भला, जो साँचा दिल होय।
साँच बिना सुख नाहिना, कोटि करे जो कोई॥
साँचा सौदा कीजिये, अपने मन में जानि।
साँचे हीरा पाइये, झूठे मूलहु हानि॥
सुकृत वचन माने नहिं, आपु न करै विचार।
कहहिं कबीर पुकारिके, सपने गया संसार॥

यदि तुझे बोलना ही है तो अच्छे लोगों से बोलो जिनसे बात करने पर सुख की उपलब्धि हो। वैसे लोगों से मत बोलो जिनसे बोलने पर

सारा बखेड़ा खड़ा हो और अपने मन में विच्छेद उत्पन्न हो और बोलते-बोलते इतना विकार बढ़ जाय कि मार-काट की नौबत आ जाय। इसलिए विचारवान् से बोलो, जो संत हो उसी से दो चार बातें कर लो। असंतों से मौन रहो अन्यथा बड़ी हानि होगी :

बोलना कासो बोलिये रे भाई। बोलत ही सब तत्त्व नसाई ॥
बोलत-बोलत बाढ़ विकारा, जो बोलिये जो परे विचारा।
मिलहिं संत वचन दुइ कहिये, मिलहिं असंत मौन होय रहिये ॥
पंडित से बोलिये हितकारि, मूरख से रहिये झख मारि।
कहहिं कबीर अर्ध घट डोले, पूरा होय विचार ले बोले ॥

यदि हितैषी से भी बोलते हो तो निश्छल होकर मीठा बोलो, वाणी में किसी प्रकार की वक्रता नहीं, हास-परिहास न हो, सत्य होते हुए भी :

मधुर वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल शरीर ॥

साधु भया तो क्या भया, बोले नाहिं विचार।
हते पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥

यदि तुझे कोई कुछ कड़ुवा बोलता भी है तो तुम उसका प्रत्युत्तर मीठे में दो या मौन धारण कर लो, जिससे झगड़ा का अन्त हो जाय :

जो कोई गालि देय, जवाब न दीजै।
गम अमृत तेरे पास, घोलि क्यों न पीजै ॥
आवत गारि एक है, उलटत होय अनेक।
कहहिं कबीर न उलटिये, रहे एक कि एक ॥

सद्गुरु कबीर की यह वाणी विषयक शिक्षा मनुष्यमात्र के लिए महान् औषधि है। यदि इसका पालन किया जाय तो जनसाधारण से लेकर प्रबुद्धवर्ग तक, एक परिवार से लेकर ग्राम तक, एक ग्राम से लेकर एक प्रान्त तक, एक प्रान्त से लेकर एक देश तक, एक देश से लेकर पूरे विश्व तक उपर्युक्त वाणियाँ प्रत्येक प्रकार के विवादों को सुलझाने में परमोपयोगी सिद्ध होंगी। इनके द्वारा कोई भी समस्या उत्पन्न होने पर उसके निवारणार्थ एक स्थान पर बैठकर सुलझाया जा सकता है।

संसार की असारता

सम् (सृ+घञ्) धातु से संसार की व्युत्पत्ति होती है जिसका अर्थ होता है—जगत्, मार्ग-पंथ, बार-बार जन्म लेना, पुनर्जन्म लेने की

परम्परा अर्थात् जो स्थिर न रहे जो चलता रहता है। संसरति इति संसारः। जिसमें प्रत्येक क्षणों में परिवर्तन होता रहता है वही संसार है। जो मायिक तत्त्वों से बना हुआ है वही संसार है। जिसमें कहीं स्थिरता नहीं है वही संसार है। जो इन्द्रजाल जैसा दिखलाई पड़ता हो वही संसार है। जिसमें मिथ्यात्व विद्यमान हो, जो अनादि काल से बनता-बिगड़ता हो, वही संसार है।

इसी को सद्गुरु कबीर भी संसार कहते हैं। उनका कहना है कि यह जगत् 'झूठ-झूठा करि डारहू' अर्थात् यह संसार असत्य है। इसमें कोई वास्तविकता नहीं दिखलाई दे रही है। यह विस्मृति में बना है। इसमें जो आता है वह फँसकर नष्ट हो जाता है। इसलिए सावधानी के साथ निवास करो। देखो इसमें कोई बात सुस्थिर नहीं है। इसमें न कोई सुख है और न कहीं शांति ही दिखलाई दे रही है। यह विष का वृक्ष है। जिसको करायल भी कहा गया है। जो सदा विष उगलता रहता है। इसके नीचे निवास करनेवाले इसकी हवा से निष्प्राण हो जाते हैं। इसमें जन्म लेकर तुम भूलो नहीं। चेत करो। तुमको मैं बड़ा अपराधी देखता हूँ, क्योंकि तुम इसमें मनुष्य जन्म ग्रहण कर चुक गये हो। तुम्हारे मानव तन के अनेक भागीदार हैं। माता-पिता कहते हैं—यह मेरा पुत्र है; मेरे कार्य का होगा। इसीलिए तुम्हारा प्रतिपालन करते हैं। उन्हें अपने स्वार्थों की बड़ी तुमसे अभिलाषा है। वे तुझे प्रभु के चरणों में लगने नहीं देते। जिस मार्ग से अपने अनुगमन करते हैं, उसी मार्ग पर तुमको भी चलने के लिए बाध्य कर देते हैं। जिस संसार की वे रचना कर रहे हैं, उसी में तुम्हें भी बाँध देते हैं। तुम्हारे साथ एक कामिनी सुन्दरी को लगा देते हैं। जो (कामिनी) तुम्हें अपना पीव, भरतार, अर्थात् भरण-पोषण करने वाला समझती है और तुम उसको अपनी अर्द्धांगिनी या साधिका समझने लग जाते हो, परन्तु तुम्हें जानकारी नहीं, वह तो व्याघ्रनी = बाघिनी के समान है, जो तुम्हें ग्रसन करना चाहती है। तुम उसके क्षणिक सुख के कारण अपने को भूल जाते हो, प्रभु तुमसे बहुत दूर हो जाते हैं। तुम रात-दिन उसी के भरण-पोषण में लगे रहते हो। वह तुम्हें छोड़ना नहीं चाहती है। जब तक तुमसे उसका स्वार्थ सधता रहता है तब तक वह तुम्हारे पीछे लगी रहती है। तुमको तो वह तभी छोड़ती है जब तुम नाकामयाब हो जाते हो। क्या अन्धा, लंगड़ा, विकलांग होने पर वह तुम्हें चाहती है ? क्या नपुंसक हो जाने पर वह तुम्हें चाहती है ?

क्या निर्धन हो जाने पर वह तुम्हें चाहती है ? तुम बड़े मूर्ख हो। तुम उस चूसने वाली बाघिनी को सुखदायिनी मान लिये हो। भला उसके साथ से कौन सा सुख तुम्हें प्राप्त होता है ? तुम सदा उसी की प्रसन्नता के लिए कार्य करते हो। जरा सा भी उसकी असंतुष्टि में तुझे क्लेश होता है। वह तो दुःख का घर है। परन्तु तुम समझ नहीं रहे हो, क्योंकि उससे उत्पन्न पुत्र और पुत्रियाँ भी ध्यान लगाये हुए हैं। वे भी सदा सुख की चाहना तुमसे करते हैं। तुम भी विमोहित होकर उनके लिए कुछ करने से शेष नहीं रहते हो। यावत् जीवन पुत्र-पुत्रियों के लिए अथवा उत्पन्न संतान के लिए कार्यरत रहते हो। जिसके चलते तुम्हें कभी भी प्रभु को स्मृति नहीं होती। तुझे यह मालूम नहीं है कि ये पुत्र-पुत्रियाँ तुम्हारे जन्म-मरण के हेतु हैं। ये सदा यमराज की भाँति तुम्हारी तरफ मुख फैलाये दौड़ते रहते हैं। जिसको तुम स्नेह समझते हो, वह अति दुःखदायी है। संसार में व्यर्थ का जीवन बिताने के बाद तुम्हारी वृद्धावस्था को देखकर काक, गिद्ध, कुत्ता, सियार आदि तुम्हारे मृत्यु वाले पंथ का अवलोकन करते रहते हैं कि कब यह मरेगा कि जिसको हम भक्षण करके अपनी तृप्ति करेंगे। पर तुझे यत्किंचित् इसकी चिन्ता नहीं है कि मेरा क्या कर्तव्य है। इतना ही नहीं, अग्नि देवता भी कहते हैं कि मैं इसके तन को जलाऊँगा; जल के देवता कहते हैं कि मैं अपने में मिलाऊँगा, धरती कहती है कि यह मेरे में मिल जायेगा, पवन देवता कहते हैं कि मैं अपने संग इसको उड़ा ले जाऊँगा, आकाश कहता है कि मैं परमाणु बनाकर अपने में लय कर लूँगा। अर्थात् ये चारों तत्त्व वाले पदार्थ मेरे में विलीन हो जाते हैं, क्योंकि गमनागमन की गति हमेशा आकाश में ही होती है। बिना आकाश के इनका कहीं स्थान नहीं है। ऐ मूर्ख ! जिस घर को तुम अपना मान रहे हो अर्थात् जिस संसार को तुम अपना समझ रहे हो वही तुम्हारा बैरी होकर तुम्हारे गले का फंदा बना है, जिसमें फँस कर तुम अनेक जन्मों तक दुःख के भागी बने रहते हो, तुम इतना नहीं समझ पा रहे हो जो तुम्हारा साथ कभी नहीं दे सकता। इस तन को भी तुमने अपना मान लिया है। अरे वह तो विषय स्वरूप है जिसमें तुम भूले पड़े हो। तुम्हें जरा सा भी विचार नहीं आता है, तुम्हारे इस तन के कितने भागीदार हैं, जिनके चलते तुम जीवन भर दुःख पाते हो। इस पर भी तुम चेत नहीं कर रहे हो। यह मेरा है, वह मेरा है आदि उद्घोष करते हो। इतना ही नहीं, तुम यदि कभी उपराम भी होते हो तो संसार के ही सुख में पड़े

रहते हो। घर का त्याग कर वन की ओर भी जाते हो वहाँ भी तुम्हारा संसार से सम्बन्ध नहीं छूटता। वेष तो तुम प्रभु से मिलने का बनाते हो, पर सांसारिक विषय मान-बड़ाई तुम्हें धर दबोचती हैं। तुम वेद-शास्त्र भी पढ़ते हो, तुम दूसरों को उपदेश भी करते हो, पर स्वयं धारण नहीं करते। कथा, कीर्तनों के द्वारा सम्पत्ति का अम्बार लगा देते हो, तमाम लोगों को चेला-चेली भी मुड़ते हो, किसी मठ के महन्त बन जाते हो, कहीं मण्डलेश्वर बन जाते हो, बड़े-बड़े सेठ साहूकारों के सामने विनम्र बनकर गिड़गिड़ाते रहते हो। तुझे अर्थ की भावना बनी रहती है। तुम अपने को श्रेष्ठ बनने के लिए महादेव-पंथी कहते हो और उस पंथ के बड़ा महन्त भी बनते हो। हाट-बाजार में समाधि भी लगाते हो, तुम्हें कच्ची सिद्धि बड़ी प्यारी लगती है, धन-मठ के लिए लड़ाई भी करते हो, हत्या भी करते हो। क्या जिन पंथों का नाम तुम लेते हो, क्या वे दत्तात्रेय ने मोर्चा तोड़ा था ? क्या शुकदेव जी ने तोपों का संग्रह किया था ? क्या नारद बन्दूक चलाते थे ? क्या व्यासदेव ने लड़ाई के लिए बिगुल बजाया था ? इन सबों की बड़ी महिमा गाते हो, परन्तु वे लोग उपर्युक्त काम कभी नहीं किये थे और कोई कहता भी नहीं। अरे भाई लड़ाई तो मतिमंद लोग करते हैं। परन्तु मुझे आश्चर्य है कि तुम अतीत अर्थात् संन्यासी होकर तरकस बाँधे हो, तुम्हारे हाथों में तीर-प्रत्यञ्चा दिखाई दे रही हैं। तुम अनाचार के लिए उद्यत हो, भला किसको मारोगे ? सब में तो प्रभु का निवास है। क्या तुझे उनसे भय नहीं है ? तुम विरक्त हो। तुम्हारे मन में कितना लोभ जमा हुआ है। तुम सोना पहनकर अर्थात् सोने का आभूषण धारण कर इस संत वेष को क्यों लजा रहे हो ? क्या तुम्हारे लिए यह शोभा देता है ? भला तुम इन घोड़ा-घोड़ियों, ऊँट और हस्तियों को जमात में लेकर करोड़पतियों की भाँति गाँव-गाँव घूमते रहते हो, अपने सैन्यदल के बल पर साधारण जनता को भयभीत कर चूस रहे हो। भेष तो तुम सनकादिक विरक्तों का बनाये हो, पर तुम्हारे साथ देखता हूँ कि सुन्दरी शोभा दे रही है। तुम अपने दोषों को छिपाने के लिए शिष्या कहते हो, यह गलत कहते हो। वह तुम्हारे साथ में है, कभी न कभी दाग तुझे लगायेगी क्योंकि वह अग्नि पिण्ड के समान है, तुम तृण के समान हो। दोनों एक साथ नहीं रह सकते। जैसे कालिख वाली हण्डी हाथ में लेने पर कभी न कभी तुम्हारे वस्त्रों में अवश्य कालिख लगायेगी। जो बन्धन तुझे संसार में था, परिवार में था, उसी बन्धन में तुम आज भी बँधे पड़े हो। जिन पुत्र-पुत्रियों के चलते उनकी

आसक्ति में तुझे प्रभु भूल गये थे। वही बात आज तुममें मैं यहाँ भी देखता हूँ। शिष्य-शाखाओं में बँधकर अपने स्वरूप से वंचित हो रहे हो। भला, तुझे मैं बार-बार कहता हूँ कि हे जीव! अपने दुःख को तुम संभालो, जो सारे संसार को आच्छादित किये हुए है उससे बचने का उपाय तो करो। जिस माया-मोह में समस्त लोग बँधे हुए हैं उसमें थोड़ा सा लाभ ऊपरी भाग में दिखाई दे रहा है, परन्तु उसके चलते मूल का पूर्णरूपेण अभाव देखता हूँ।

जिस मोर-तोर में सभी लोग उलझे हुए हैं, जिसके कारण माता के गर्भाशय में दस मास तक अचेतावस्था में कष्ट भोगते हैं उसी कार्य में तुम भी लगे हो। तुम तो साधु-संन्यासी हो, तुझे उससे न्यारा होना चाहिए। तुम बहुत खिलवाड़ बन्द करो, तथा अनेक प्रकार का स्वाँग बना रहे हो उसको भी बन्द करो। ये सब दुःख के हेतु हैं। ये उसी प्रकार से हैं जैसे भ्रमर घ्राणेन्द्रिय के वश में होकर कमल की पंखुड़ियों में बन्द हो जाता है और अपनी इहलीला को समाप्त कर देता है। उसी प्रकार से जो संसार में तुम्हारी आसक्ति है उसको मैं देखता हूँ तो तुम्हारे बार-बार जन्म-मरण का कारण लग रहा है। जिसमें सुख का लेश सपने में भी नहीं है। इस संसार में लगे रहने पर तुझे दुःख, संताप, विताप, कष्ट ही तो प्राप्त होंगे। अति आसक्ति होने पर तुझे बचाने वाला भी कोई नहीं मिलेगा, क्योंकि मन में अधिक सांसारिक वासनाओं के भर जाने पर गुरु का ज्ञान भी काम नहीं करता है। जिस मोर-तोर में सारा संसार जल रहा है, भला तुम साधु-संन्यासी होकर उसी में जल रहे हो, तुम्हें धिक्कार है जो तुम इस झूठे स्वार्थ के कारण स्वीकारात्मक दृष्टिकोण अपनाये हो। भला जिस झूठी आशा में जग लगा है उसी में तुम भी लगे हो, जिस अग्नि अर्थात् दैहिक, दैविक, भौतिक तापों के भय से घर से भागा था। आज साधु-संन्यासी होने पर तुझे यह भी जला रही है। जिस चीज को सभी लोगों ने हित समझा था। अर्थात् जिन सांसारिक वस्तुओं को लोग अपना हित साधन समझे थे उसी में तुम्हारे जैसे बहुत से सयाने डूब रहे हैं जिससे छुटकारा पाना दुर्लभ है। जब तक तुम अपने आप को चेत न करोगे, सत्यासत्य का विवेक नहीं करोगे, क्या सही है, क्या झूठ है, यह नहीं समझ पाओगे, तब तक मेरे वचन तुझे कष्ट देते रहेंगे और तुम रुष्ट हो जाओगे, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि संसाराभिमुख है। तुम्हें हिताहित का ज्ञान न होने पर, अविवेकावस्था में हित की बात में दुःख होता है। मैं पुकार कर कहता हूँ कि यदि तुम अपने

आप नहीं जागते हो तो न तुम्हें सुख होगा, न तुझे शांति मिलेगी और क्या सत्य है, क्या असत्य है; यह नहीं जान पाओगे।

अरे भाई ! अब भी तो चेत करो। देखते नहीं हो सारा संसार चला जा रहा है। संसार की कोई वस्तु स्थिर नहीं है। जो जन्म ले रहे हैं वे मर रहे हैं। क्या यह देखकर तुझे-सांसारिक सुखों से वैराग्य नहीं हो रहा है। बड़े-बड़े प्रतापी, शूर-वीर, योद्धा एवं चक्रवर्ती चले गये। भला तुम किस आधार पर रहने की आशा कर रहे हो। इस संसार में आकर तुमने कभी भी अच्छी संगति नहीं की। तुम्हारा मानव जन्म बेकार में ही चला गया। तुम ऐसे पवित्र मनुष्य तन को पुनः नहीं प्राप्त कर सकोगे। तुमने संतों की संगति नहीं की। अब तुम्हारा मानवेतर दुःखरूपी योनियों में निवास होगा। इसलिए कि तूने निश-दिन लबारों के साथ निवास किया है। भला तू पशुयोनि में जाओगे तुम्हारा दुःख-सुख कौन समझेगा। कण्ठ शक्ति से विहीन होने के कारण अपनी वेदना किसी से कह भी नहीं सकोगे। मैं तो इसी प्रकार से सभी लोगों को जाते देख रहा हूँ। यदि तुझे चेतना हो तो चेत लो। अन्यथा दिन में ही तुम्हारे घर में डकैती पड़ जायेगी अर्थात् मानव शरीर में होने पर भी तुझे काल भगवान् उठा ले जायेंगे। तुम्हीं को नहीं, तुम्हारे पूर्ववर्ती बड़े-बड़े चले गये। हिरण्यकशिपु, रावण, कंस, भगवान् कृष्ण, सुर-नर-मुनि ये सब आज दिखाई नहीं दे रहे हैं। भला ये सब कहाँ चले गये। संसार तो अस्थिर है। इसमें कोई कैसे रह पावेगा। यहाँ तक कि लोकपितामह ब्रह्मा जी भी चले गये जिन्होंने इस संसार को बनाया था। वे भी स्थूल शरीर से नहीं रह पाये। उनके जाने का मार्ग भी कोई नहीं जान पाया। जितने बड़े-बड़े बुद्धिमान् थे सब चले गये। प्रभु की कहानी, उनकी लीला कोई समझ नहीं सका। क्योंकि वह सर्वज्ञ, अविगति है। उसका रहस्य कोई जान नहीं पाता। क्या वह करेगा, क्या वह करना चाहता है ? जितना दूर चलना था उतना दूर नहीं चल पाया। अर्थात् जिस तत्त्व की प्राप्ति करनी चाहिए थी, वह तत्त्व अछूता ही रह गया। मानव-शरीर नरकगामी हो गया। अन्त में चल बसा। चले जाने पर दसों दिशाएँ शून्य हो गयीं। जिस ग्राम में रहता था वह भी नष्ट हो गया। चारों तरफ शून्य ही शून्य दिखाई देने लगा। इसका कारण यह है कि यह संसार जाल स्वरूप है और जीव मीन के सदृश हैं जिसमें फँसकर जीवन का अन्त कर लेते हैं। दूसरी बात यह है कि संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए सत्कर्म रूपी काष्ठ की नाव

की आवश्यकता होती है, परन्तु तुमने दुष्ट कर्मरूपी लोहे की नौका बनवायी और उसमें फलरूपी पाषाण के कण भर रखा। उसपर भी तुम दम्भ हाँकने लगा कि सभी लोग खेते हैं परन्तु मरम मेरे सिवा कोई नहीं जानता है। मैं खेने के लिए प्रस्तुत हूँ, पर पार करने वाली उतरावनी कोई देने को नहीं तैयार है। इस प्रकार के डींग हाँकने वाले वंचक लोग डूब मरे। उनकी दशा उसी प्रकार हो गयी जिस प्रकार से वंशी में केचुवे को नाथ कर मछुये लोग जल में फेंककर मछलियों को फँसाते हैं और अन्त में मछली का प्राण चला जाता है।

दूसरा दृष्टान्त सर्प और दीर्घटुण्डी (छछूँदर) का है। सर्प छछूँदर को पकड़ लेता है, परन्तु पकड़ने के बाद सर्प की दशा घातक हो जाती है। यदि सर्प छछूँदर को खा जाता है तो वह मर जायगा। यदि उसे उगल देता है तो अन्धा हो जाता है। छछूँदर को ग्रहण करने पर जिस प्रकार सर्प की किसी प्रकार भलाई नहीं होती है, उसी प्रकार से सांसारिक विषयों को ग्रहण कर लेने पर मनुष्य का उपकार होना असंभव हो जाता है। यदि अन्त में, वृद्धावस्था में छोड़ देता है तो उसमें योग, भजन, भक्ति भी नहीं हो सकती है। उनके शरीर को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है और नहीं छोड़ता है तो काल वैसे ही खा लेगा। इसीलिए मनुष्य को प्रथमावस्था में ही सब कुछ त्यागकर श्री हरि के परायण होकर सहजयोग के द्वारा आत्मतत्त्व को प्राप्त करना चाहिए। अन्यथा कुशल होना कठिन है। चाहे तुम अपने को कितना ही कुशल समझते हो, तुम्हारा अंत अवश्यम्भावी है। जिस प्रकार से कपट करनेवाले जरासंध, शिशुपाल, सहस्रार्जुन, रावण, दुर्योधन, शकुनि आदि मारे गये उसी प्रकार से छल कपट करने पर तुम्हारा भी अंत हो जायेगा। इसलिए छल-छद्म से विमुक्त होकर श्री हरि के परायण हो जाओ। मन को चतुर्दिक विषयों से हटाकर आनन्दरूप हो जाओ, सहजयोग में लग जाओ। इसी से तुम्हारा और जगत् का कल्याण हो सकता है। कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

स्वर विषयक ज्ञान : स्वर ज्ञान भी योगशास्त्र के अन्तर्गत आता है जिसका विवेचन अनेक स्वरोदय के ग्रन्थों में हुआ है। सर्वप्रथम स्वरज्ञान विषयक कथन 'शिव स्वरोदय' नामक ग्रन्थ में हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि स्वरज्ञान के ज्ञाता इससे पहले भी विद्यमान थे, परन्तु प्रसिद्धि 'शिवस्वरोदय' से ही दिखती है। तदुपरान्त अनेकानेक सन्त महात्माओं ने

प्रकथन किया है। जैसे सन्त चरणदास जी महाराज एवं कबीर साहब के नाम पर भी स्वर विषयक ग्रन्थ मिलते हैं। 'कबीर स्वरोदय', 'श्री चरण-दास जी स्वरोदय' आदि स्वर ज्ञान की साधना सरल एवं सीधी है। छः मास में ही स्वर विषयक अनेक बातों की जानकारी हो जाती है। सर्व-प्रथम स्वरज्ञान के लिए नाड़ियों की जानकारी करना अत्यावश्यक है। नाभिदेश के ऊपरी भाग में अंकुर के समान निकलने वाली बहत्तर सहस्र नाड़ियाँ देह के मध्य भाग में स्थित हैं। नाड़ीस्थ कुण्डलिनी शक्ति भुजंगा-कार में अवस्थित है, जिसके ऊर्ध्वगामी दस और अधःगामी भी दस हैं। जिनमें दो-दो नाड़ियाँ तिरछी गयी हैं जिनकी संख्या चौबीस है। उनमें दस प्रधान नाड़ियाँ हैं एवं दस पवन का उद्वाहन करने वाली हैं। तिर्यक ऊर्ध्व प्रभृति सभी नाड़ियाँ शरीर में चक्र के समकक्ष स्थित और प्राण-समाश्रित हैं। उपर्युक्त नाड़ियों में दस नाड़ियाँ अधिक श्रेष्ठ हैं। उनमें भी तीन नाड़ियाँ विशेष उत्तम हैं। वे हैं इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इनके अतिरिक्त गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, पयस्विनी, अलम्बुषा, कुहू तथा दसवीं शंखिनी है। इड़ा बायें भाग में, पिंगला दायें में, सुषुम्ना मध्य देश में और गान्धारी बायें नेत्र में निवास करती है। दायें नेत्र में हस्ति-जिह्वा, दायें कर्ण में पूषा, बायें कर्ण में पयस्विनी और अलम्बुषा मुख में रहती है। कुहू लिंग स्थान में और शंखिनी मूल देश में होती है। इस प्रकार से शरीर के दश स्थानों में दसों नाड़ियाँ निवास करती हैं। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों ही प्राणमार्ग के आश्रित हैं। उपर्युक्त दसों नाड़ियाँ शरीर के मध्य भाग में अवस्थित हैं। उक्त नाड़ियों के आश्रित निम्नोक्त प्राण भी रहते हैं, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। इनके अतिरिक्त पंच उपवायु भी है, जिनके नाम हैं—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय। वायुओं का निवास स्थान भी बता देना अधिक उपयोगी होगा। प्राणवायु हृदय में और अपानवायु गुदा में रहता है। इसी प्रकार से नाभि देश में समान वायु, कंठ देश में उदान वायु और सम्पूर्ण देह में व्यान वायु निवास करता है। यही दसों वायु प्रधान माने जाते हैं।

उद्गार में नाग, नेत्रोन्मीलन में कूर्म, छींकने में कृकल, जम्हाई लेने में देवदत्त नामक वायु कहा गया है और पूरे शरीर में धनंजय वायु परिव्याप्त है जो मृतक देह को भी नहीं त्यागता है। इस प्रकार यह जीवरूप दसों वायु सभी नाड़ियों में भ्रमण करते हैं। शरीर में जो प्राण का संचार होता है वह इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के कारण होता है ऐसा विद्वान् लोग

मानते हैं। बाम भाग में इड़ा एवं दक्षिण भाग में पिंगला नाड़ी का निवास है। शरीर के दोनों अङ्गों में एक दूसरे के विपरीत दोनों रहती हैं। इड़ा में चन्द्रमा और पिंगला में सूर्य विद्यमान है। सुषुम्ना शम्भुरूप में तथा हंसरूप में स्थित है।

श्वास के निकलने में 'हकार' और प्रविष्ट होने में 'लकार' होता है। 'हकार' शिवरूप है। इसी प्रकार से 'लकार' शक्तिरूप कहा गया है। यहाँ पर शिव से तात्पर्य परमसत्ता चैतन्य से है और शक्ति का तात्पर्य तदाश्रित चैतन्य शक्ति से है। उभय का ज्ञान स्वर साधक जानते हैं। स्वासा को वड़ी बारीकी से देखना पड़ता है जिसके द्वारा शुभाशुभ फल स्वरवेत्ता कहते हैं। स्वर का ज्ञान ठीक-ठीक से होने पर संसार की बहुत सी घट-नाओं का जाननेवाला स्वर ज्ञानी होता है इस बात को स्वर शास्त्रों में कहा गया है। यहाँ पर मैंने दिग्दर्शन मात्र कराया है। स्वर साधकों को चाहिए कि स्वरविद् गुरुओं से मिलें एवं विशेष प्रक्रिया वाले ग्रन्थों को देखें।

•

कुण्डलिनी जागरण योग

(संकलन अनेक स्रोतों से)

कुण्डलिनी जागरण योग

स्थिरसुखमासनम्

जिस रीति से स्थिरता पूर्वक विना हिले-डुले और सुख के साथ विना किसी प्रकार के कष्ट के दीर्घकाल तक वैठ सकें, वह स्थिर सुख आसन कहलाता है। हठयोग में नाना प्रकार के आसन हैं। जो शरीर को स्वस्थ, हल्का और योग साधन के योग्य वनाने में सहायक होते हैं। यहाँ उन आसनों से अभिप्राय है, जिनमें सुख पूर्वक निश्चलता के साथ अधिक से अधिक समय तक ध्यान लगा कर वैठा जा सके। उनमें से ज्यादा उपयोगी निम्न हैं—

स्वस्तिकासन, सिद्धासन, समासन, पद्मासन, वद्धपद्मासन, वीरासन, गोमुखासन, वज्रासन।

१. स्वस्तिकासन की विधि—दायें पाँव के अँगूठे और अन्य चार अँगुलियों को कैंची के सदृश फैलाकर उसके अन्दर बायें पाँव और जङ्घा के जोड़ने वाले नीचे भाग को दबायें और दायें पाँव की तली बायीं जङ्घा के साथ लगाएँ। इसी प्रकार बायें पैर को दायें पैर के नीचे ले जाकर अँगूठे और अङ्गुलियों की कैंची में दायाँ पाँव और जङ्घा के जोड़ वाले नीचे वाले भाग को दबायें और बायें पाँव की तली दायीं जाँघ के साथ लगायें। दायें पाँव के स्थान पर बायें पाँव का तथा बायें के स्थान पर दायें पाँव का भी उपयोग किया जा सकता है।

२. सिद्धासन—बायें पैर की एड़ी को सीवनी अर्थात् गुदा और उपस्थेन्द्रिय के बीच में इस प्रकार दृढ़ता से लगावें कि उसका तला दायें पैर की जङ्घा को स्पर्श करें। इसी प्रकार दाहिने पैर की एड़ी को उपस्थेन्द्रिय की जड़ के ऊपर भाग में इस प्रकार दृढ़ लगावें कि उसका तला बायें पैर की जङ्घा को स्पर्श करे। इसके पश्चात् बायें पैर के अँगूठे और तर्जनी को दायीं जाँघ और पिड़नी के बीच में ले लें। इसी प्रकार दायें पैर के अँगूठे और तर्जनी को बायीं जङ्घा और पिण्डली के बीच में ले लें। सारे शरीर का भार एड़ी और सीवनी के बीच की ही नश पर तुला रहना चाहिए।

इससे नाड़ीसमूह में आग सी जलन होने लगती है। इसलिए नितम्बों के नीचे आध इञ्च मोटी गद्दी अथवा कपड़ा लगा देना चाहिए। यह आसन वीर्य रक्षा के लिए अति उपयोगी है। इस आसन के सम्बन्ध में कुछ लोगों का ऐसा कहना है कि इससे गृहस्थियों को हानि पहुँचती है, यह भ्रम-मूलक है।

३. समासन—सिद्धासन से केवल इतना भेद है कि इसमें पहले उपस्थेन्द्रिय की जड़ के ऊपर के भाग में बायें पैर की एड़ी को, फिर उसके ऊपर दायें पैर की एड़ी को सिद्धासन की विधि से रखते हैं। इससे कमर सीधी तनी रहती है।

४. पद्मासन—चौकड़ी लगाने में दाहिने पैर को बायें पैर के दाहिने रान के मूल में जमा कर रखने से पद्मासन बनता है। इस आसन से शरीर नीरोग रहता है और प्राणायाम की क्रियाओं में सहायता मिलती है।

५. बद्ध-पद्मासन—यह पद्मासन सिद्ध होने के पश्चात् किया जा सकता है। इसमें दोनों जंघाओं को दोनों पैरों से दबाकर रखना होता है और पैरों के अँगूठे भूमितल से लगे रहते हैं।

६. वीरासन—दाहिना पैर बायीं जङ्घा पर और बायाँ पैर दाहिनी जङ्घा पर रख कर दोनों हाथों को घुटने पर रखें।

७. गोमुखासन—दाहिने पृष्ठपार्श्व (चूतड़) के नीचे बायें पैर के (गाँठ) को और बायें पृष्ठपार्श्व के नीचे दाहिने पैर के गुल्फ को रखकर दाहिने हाथ को सिर की ओर से और बायें हाथ को नीचे की ओर से पीठ पर ले जाकर दाहिनी तर्जनी (अंगूठे की बगल वाली अँगुली) से बायीं तर्जनी को दृढ़ता पूर्वक पकड़ लें।

८. वज्रासन—दोनों जंघाओं को वज्र के समान करके दोनों पावों के तलवों को गुदा के दोनों ओर पार्श्वभाग में लगाकर घुटने के बल पर वैठ जायँ जिससे कि घुटने से निचले भाग से पाँव की अङ्गुलियों का भाग भूमि को स्पर्श कर सके।

आसन के समय गर्दन, सिर और कमर को सीधी एक रेखा में रखना चाहिए और मूलबन्ध के साथ अर्थात् गुदा और उपस्थ को अंदर की ओर खींचकर वैठना चाहिए।

खेचरी मुद्रा के साथ अर्थात् जिह्वा को ऊपर की ओर ले जाकर-तालु से लगाकर वैठने से ध्यान अच्छा लगता है और आसन में दृढ़ता

आती है। एक ही आसन से शनैः शनैः अधिक समय तक बैठने का अभ्यास बढ़ाते रहना चाहिए। पैर आदि किसी अंग में एक आसन में बैठे रहने से यदि दर्द मालूम हो तो उस अंग पर नरम कपड़ा रखकर बैठना चाहिए। यदि अधिक पीड़ा हो तो रतनजोत के तेल की मालिश कर सकते हैं। एक आसन से जब ३ घंटा ३६ मिनट तक बिना हिले-डुले बैठा जा सके, तब उस आसन की सिद्धि समझना चाहिए। आरम्भ में बीच में दो-एक बार आसन को बदल सकते हैं। आसन को दृढ़ करने का सरल उपाय यह है कि जब बैठने का अवसर मिले तो उसी एक आसन से बैठने का यत्न करे। जो अभ्यासी स्थूल अथवा विकारी शरीर होने के कारण उपर्युक्त आसनों से न बैठ सके, वे अर्द्धपद्म, अर्द्धसिद्धि अथवा किसी सुख आसन से तथा दीवार का सहारा ले सकते हैं पर मेरु-दण्ड को सीधा तथा कमर, गर्दन, सिर को सम रेखा में रखना अति आवश्यक है। प्रथम तीन-अर्थात् स्वस्तिक सिद्ध और सम आसनों में हाथों को उलटा करके घुटनों पर रखकर तर्जनी अथवा अँगूठे के पास की अंगुली तथा अँगूठे को एक दूसरे ओर फेरकर दोनों के सिरे आपस में मिलाने और शेष अंगुलियों को सीधा फैलाकर रखने को ज्ञानमुद्रा कहते हैं अन्य तीन अर्थात् बद्धपद्म तथा वीरासन में दोनों हाथों को उठाकर सीने से लगाए रखना हितकर है। सब आसनों में बायाँ हाथ एड़ियों के ऊपर सीधा रखकर उसी प्रकार दायाँ हाथ उसके ऊपर रखकर अथवा जिसमें सुगमता प्रतीत हो उस विधि से हाथों को रखकर बैठ सकते हैं। मुख को पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर करके बैठना चाहिए।

अभ्यास पर बैठने से तीन घंटे पूर्व कुछ न खाय। बैठने के लिए एक चौकी होनी चाहिए, जो अधिक न ऊँची हो न अधिक नीची हो। चौकी के ऊपर कुशासन, उसके ऊपर ऊन का आसन, उसके ऊपर रेशम या (उसके अभाव में) सूत का वस्त्र होना चाहिए। अहिंसा में निष्ठा रखने वाले अभ्यासियों को किसी प्रकार के चर्म का आसन के रूप में प्रयोग न करना चाहिए। देश, काल और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए किसी किसी स्मृति में मृगचर्म की व्यवस्था दी गयी है, किन्तु वर्तमान समय में उत्तम से उत्तम ऊनी आसन सुगमता से प्राप्त हो सकते हैं और निरपराधी पशुओं की हिंसा अधिकतर चर्मप्राप्ति के लिए ही की जाती है।

अभ्यास ऐसी कोठरी या कमरे में करना चाहिए जो शुद्ध, शान्त, एकान्त और निर्विघ्न हो। हर प्रकार के शोरगुल, मच्छर, पिस्सू और

शीत आदि से रहित हो। अभ्यास से पहले अथवा पीछे हवन अथवा घी के साथ धूप-दीप आदि सुगन्धित वस्तुओं को जलाकर उसको सुगन्धित रखना चाहिए। नदी तट अथवा पाँच हजार फीट से अधिक ऊँचाई वाले पहाड़ी वाले स्थानों का वायुमंडल शुद्ध और भजन के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है, गरम मैदान वाले स्थानों में शरद और वसन्त ऋतु में भजन अच्छा हो सकता है। पहाड़ों में अथवा जमीन में खुदी हुई गुफा समाधि लगाने के लिए अति उत्तम है किन्तु उसमें शीत किंचित् मात्र भी न होने पावे और शुद्ध हो। योगाभ्यास में खान-पान संयम रखना अति आवश्यक है और शरीर तथा नाड़ी शोधन से शीघ्र सफलता प्राप्त होती है जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन विशेष विचार में कर दिया गया है। यहाँ शरीर के शुद्ध सात्विक शुद्ध स्वस्थ नीरोग आसन को दृढ़ और ध्यान को स्थिर करने तथा कुण्डलिनी को जागृत करने वाले कुछ उपयोगी बन्ध मुद्राएँ और आसन बतलाये देते हैं—

१. मूल-बन्ध—मूल गुदा एवं लिंग स्थान के रन्ध्र को बन्द करने का नाम मूल-बन्ध है। वाम पाद की एड़ी को गुदा और लिंग के मध्य भाग में दृढ़ लगाकर गुदा को सिकोड़ कर योनि स्थान अर्थात् गुदा और लिंग एवं कन्द के बीच के भाग को दृढ़तापूर्वक संकोचन द्वारा अधोगत अपान-वायु को बल के साथ धीरे-धीरे ऊपर की ओर खींचने को मूलबन्ध कहते हैं। सिद्धासन के साथ यह बन्ध अच्छा लगता है। अन्य आसनों के साथ एड़ी को सीवनी पर बिना लगाए हुए भी बन्ध लगाया जा सकता है।

फल—इससे अपानवायु का उर्ध्व गमन होकर प्राण के साथ एकता होती है। **कुण्डलिनी शक्ति सीधी** होकर ऊपर की ओर चढ़ती है। कोष्ठ-बद्ध दूर करने, जठराग्नि को प्रदीप्त करने और वीर्य को उर्ध्व-रेता बनाने में यह बन्ध अति उत्तम है। साधकों को न केवल भजन के अवसर पर किन्तु हर समय-मूल बन्ध को लगाए रखने का अभ्यास करना चाहिए।

२. उड्डीयान बन्ध—दोनों जानुओं को मोड़ कर पैरों के तालुओं को परस्पर भिड़ाकर पेट के नाभि से नीचे और ऊपर के आठ अंगुल हिस्से को बलपूर्वक खींचकर मेरुदण्ड (रीढ़ की हड्डी) से ऐसा लगा दें, जिससे कि पेट के स्थान पर गड्ढा सा दीखने लगे। जितना पेट को अंदर की ओर अधिक खींचा जायगा उतना ही अच्छा होगा। इसमें प्राण पक्षी के

सदृश सुषुम्णा की ओर उड़ने लगता है, इसलिए इस वन्ध का नाम उड्डीयान रखा गया है। यह बन्ध पैरों के तालुओं को विना भिड़ाये हुए भी किया जा सकता है।

फल—प्राण और वीर्य का ऊपर की ओर दौड़ना, मन्दाग्नि का नाश, क्षुधा की वृद्धि, जठराग्नि का प्रदीप्त और फेफड़े का शक्तिशाली होना।

३. जालन्धर-बन्ध—कण्ठ को सिकोड़कर ठोड़ी को दृढ़तापूर्वक कंठकूप में इस प्रकार स्थापित करें कि हृदय से ठोड़ी का अन्तर केवल चार अंगुल का रहे, सीना आगे की ओर तना रहे। यह बन्ध कण्ठस्थान के नाड़ी जाल के समूह को बाँध रखता है इसलिए इसका नाम जालन्धर बन्ध है।

फल—कण्ठ का सुरीला, मधुर और आकर्षक होना, कण्ठ के सङ्कोच द्वारा इड़ा, पिङ्गला नाड़ियों के वंद होने पर प्राण का सुषुम्णा में प्रवेश करना।

लगभग सभी आसन, मुद्राएँ और प्राणायाम मूलबन्ध और उड्डीयान-बन्ध के साथ किये जाते हैं। राजयोग में, ध्यानावस्था में जालन्धर-बन्ध लगाने की बहुत कम आवश्यकता होती है।

४. महाबन्ध—पहली विधि—बायें पैर की एड़ी को गुदा और लिङ्ग के मध्य भाग में जमाकर बायीं जङ्घा के ऊपर दाहिने पैर को रख, समसूत्र में हो, वाम अथवा जिस नासारन्ध्र से वायु चल रहा हो उससे ही पूरक करके जालन्धर-बन्ध लगावे। फिर मूलद्वार से वायु को ऊपर की ओर आकर्षण करके मूलबन्ध लगावे। मन को मध्य नाड़ी में लगाये हुए यथा-शक्ति कुम्भक करें। तत्पश्चात् पूरक के विपरीत वाली नासिका से धीरे-धीरे रेचन करें। इस प्रकार दोनों से अनुलोम-विलोम-रीति से समान प्राणायाम करें।

दूसरी विधि—पद्म अथवा सिद्धासन से बैठे, योनि और गुह्यप्रदेश सिकोड़, अपानवायु को ऊर्ध्वगामी कर, नाभिस्थ समान वायु के साथ मिलाकर और हृदयस्थ प्राणवायु को अधोमुख करके प्राण और अपान-वायुओं के साथ नाभिस्थल पर दृढ़ रूप से कुम्भक करें।

फल—प्राण का ऊर्ध्वगामी होना, वीर्य की शुद्धि, इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा का सङ्गम प्राप्त होना, बल की वृद्धि इत्यादि।

५. महावेध-पहली विधि—महाबन्ध की प्रथम विधि के अनुसार मूलबन्ध के पूर्व कुम्भक करके, दोनों हाथों की हथेली भूमि में दृढ़ स्थिर

करके, हाथों के बल ऊपर उठकर दोनों नितम्बों (चूतड़) को शनैः शनैः ताड़ना देवे और ऐसा ध्यान करे कि प्राण इड़ा, पिङ्गला को छोड़कर कुण्डलिनी शक्ति को जगाता हुआ सुषुम्णा में प्रवेश कर रहा है। तत्पश्चात् वायु को शनैः शनैः महाबन्ध की विधि के अनुसार रेचन करें।

दूसरी विधि—मूलबन्ध के साथ पद्मासन से बैठे, अपान और प्राणवायु को नाभि स्थान पर एक (मिला) करके दोनों हाथों को तानकर नितम्बों (चूतड़ों) से मिलते हुए भूमि पर जमाकर नितम्बों (चूतड़ों) को आसन-सहित उठा-उठाकर भूमि पर ताड़ित करते रहें।

फल—कुण्डलिनी शक्ति का जाग्रत् होना, प्राण का सुषुम्णा में प्रवेश करना। महाबन्ध, महावेध और महामुद्रा–तीनों को मिलाकर करना अधिक फलदायक है।

मुद्रा

१. खेचरी मुद्रा—जीभ को ऊपर की ओर उल्टी ले जाकर तालु कुहर (जीभ के ऊपर तालु के बीच का गड्ढ़ा) में लगाए रखने का नाम खेचरी मुद्रा है।

इसके निमित्त जिह्वा को बढ़ाने के तीन साधन किए जाते हैं—छेदन, चालन और दोहन।

पहिला साधन– छेदन-जीभ के नीचे के भाग में सूताकार वाली एक नाड़ी नीचे वाली दाँतों की जड़ के साथ जीभ को खींचे रखती है। इसलिए जीभ को ऊपर चढ़ाना कठिन होता है। प्रथम इस नाड़ी के दाँतों के निकट वाले एक ही स्थान पर स्फटिक (बिल्लौर) का धार वाला टुकड़ा प्रति दिन प्रातः काल चार-पाँच बार फेरते रहें। कुछ दिनों तक ऐसा करने के पश्चात् वह नाड़ी उस स्थान में पूर्ण कट जायगी। इसी प्रकार क्रमशः उससे ऊपर-ऊपर एक-एक स्थान को जिह्वा मूल तक काटते चले जायँ। स्फटिक फेरने के पश्चात् माजूफल का कपड़छान चूर्ण (टेरिन एसिड) जीभ के ऊपर नीचे तथा दाँतों पर मलें और उन सब स्थानों से दूषित पानी निकलने दें। माजूफल चूर्ण के अभाव में अकरकरा, नून, हरितकी और कत्थे का चूर्ण छेदन किए हुए स्थान पर लगावें। यह छेदन विधि सबसे सुगम है और इससे किसी प्रकार की हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं है। यद्यपि इसमें समय अधिक लगेगा। साधारणतया छेदन का कार्य किसी धातु, तीक्ष्ण यंत्र से प्रति आठवें दिन उस सिरा को

बाल के बराबर छेदकर घाव पर कत्था और हरड़ का चूर्ण लगा कर करते हैं। इसके छेदन के लिए नाखून काटने वाला जैसा एक तीक्ष्ण यंत्र और खाल छीलने के लिए एक दूसरे यंत्र की आवश्यकता होती है जिससे कटा हुआ भाग फिर न जुड़ने पावे। इसमें नाड़ी के सम्पूर्ण अंश के एक साथ कट जाने से वाक् तथा आस्वादन शक्ति के नष्ट हो जाने का भय रहता है।

इसलिए इसे किसी अभिज्ञ पुरुष की सहायता से न करना चाहिए। छेदन की आवश्यकता केवल उनको होती है, जिनकी जीभ और (यह) नाड़ी मोटी होती है। जिनकी जीभ लम्बी और यह नाड़ी पतली होती है, उन्हें छेदन की अधिक आवश्यकता नहीं है।

दूसरा और तीसरा साधन—चालन व दोहन—अँगूठे और तर्जनी अँगुली से अथवा बारीक वस्त्र से जीभ को पकड़ कर चारों तरफ उलट फेर कर हिलाने और खींचने को चालन कहते हैं। **मक्खन अथवा घी** लगा कर दोनों हाथों की अंगुलियों से जीभ को गाय के थन दोहन जैसे पुनः पुनः धीरे-धीरे आकर्षण करने की क्रिया का नाम दोहन है।

निरन्तर अभ्यास करते रहने से अंतिम अवस्था में जीभ इतनी लम्बी हो जाती है कि नासिका के ऊपर भ्रू-मध्य तक पहुँच जाय। इस मुद्रा का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है, इससे ध्यान की अवस्था परिपक्व करने में बड़ी सहायता मिलती है। जिह्वा के भी नाना प्रकार के भेद देखने में आए हैं। किसी की जिह्वा में सूताकार नाड़ी के स्थान में मोटा मांस होता है, जिसके काटने में अधिक कठिनाई होती है। किसी-किसी जिह्वा में न नाड़ी होती है न मांस। उसमें छेदन की आवश्यकता नहीं है। केवल चालन एवं दोहन होना चाहिए।

२. महामुद्रा—प्रथम विधि मूलबन्ध लगाकर बायें पैर की एड़ी से सीवन (गुदा और अण्डकोश के मध्य का चार अंगुल स्थान) को दबाएँ और दाहिने पैर को फैलाकर उसकी अंगुलियों को दोनों हाथों से पकड़ें। पाँच घर्षण करके बायीं नासिका से पूरक करे और जालन्धरबंध लगाये। फिर जालन्धरबंध खोलकर दाहिनी नासिका से रेचक करें। यह वामांग की मुद्रा समाप्त हुई। इसी प्रकार दक्षिणांग में इस मुद्रा को करना चाहिए।

दूसरी विधि—बायें पैर की एड़ी को सीवन (गुदा और उपस्थ के मध्य के चार अंगुल भाग) में बल पूर्वक जमाकर दायें पैर को लम्बा

फैलावें। फिर शनैः शनैः पूरक के साथ मूल तथा जालन्धरबंध लगाते हुए दायें पैर का अंगुठा पकड़ कर मस्तक को दायें पैर के घुटने पर जमा कर यथा शक्ति कुम्भक करें। कुम्भक के समय पूरक की हुई वायु को कोष्ठ में शनैः शनैः फुलावें और ऐसी भावना करें की प्राण कुण्डलिनी को जाग्रत करके सुषुम्णा में प्रवेश कर रहा है, तत्पश्चात् मस्तक को घुटने से शनैः शनैः रेचक करते हुए उठकर यथा स्थिति में बैठ जायँ इसी प्रकार दूसरे अंग से करना चाहिए। **प्राणायाम** की संख्या एवं समय बढ़ाता रहे।

फल—मंदाग्नि, अजीर्ण आदि उदर के रोगों तथा प्रमेह का नाश, क्षुधा की वृद्धि और कुण्डलिनी का जाग्रत होना।

३. अश्विनी मुद्रा—सिद्ध अथवा पद्मासन से बैठ कर योनि-मंडल को अश्व के सदृश पुनः पुनः सिकोड़ना **अश्विनी मुद्रा** कहलाती है।

फल—यह मुद्रा प्राण के उत्थान और कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत करने में सहायक होती है। अपानवायु को शुद्ध और वीर्यवाही स्नायुओं को मजबूत करती है।

४. शक्तिचालिनी मुद्रा—सिद्ध अथवा पद्मासन से बैठ कर हाथों की हथेलियाँ पृथिवी पर जमा दें। बीस-पच्चीस बार शनैः शनैः दोनों नितम्बों को पृथ्वी से उठा-उठा कर ताड़न करे। कुम्भक के समय अश्विनी मुद्रा करे अर्थात् गुह्य प्रदेश का आकर्षण, विकर्षण करता रहे। तत्पश्चात् जालन्धरबन्ध खोल कर यदि दोनों नासिका पुट से पूरक किया हो तो दोनों से अथवा पूरक से विपरीत नासिका पुट से रेचक करे और निर्विकार होकर एकाग्रता पूर्वक बैठ जाय।

घेरण्डसंहिता में इस मुद्रा को करते समय बालिस्त भर चौड़ा, चार अंगुल लम्बा, कोमल, श्वेत, और सूक्ष्म वस्त्र नाभि पर कटिसूत्र से बाँध कर सारे शरीर पर भस्म मल कर करना बतलाया है।

फल—सर्व रोग नाशक और स्वास्थ्य वर्धक होने के अतिरिक्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने में अत्यंत सहायक है। इससे साधक अवश्य लाभ प्राप्त करें।

५. योनि मुद्रा—सिद्धासन से बैठ समसूत्र हो षण्मुखी मुद्रा लगाकर अर्थात् दोनों अंगूठों से दोनों कानों को, दोनों तर्जनियों से दोनों नेत्रों को, दोनों मध्यमाओं से नाक के छिद्रों को बंद करके और दोनों अनामिका

एवं कनिष्ठिकाओं को दोनों ओठों के पास रख कर काकी मुद्रा द्वारा अर्थात् जिह्वा को कौवे की चोंच के सदृश बना कर उसके द्वारा प्राण वायु को खींच कर अधोगति अपानवायु के साथ मिलावें। तत्पश्चात् ओम् का जाप करता हुआ ऐसी भावना करें कि उसकी ध्वनि के साथ परस्पर मिली हुई वायु कुण्डलिनी को जाग्रत करके षट्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्र दल कमल में जा रही है। इससे अन्तरज्योति का साक्षात्कार होता है।

६. योग मुद्रा—मूलबंध के साथ पद्मासन से बैठ कर प्रथम दोनों नासिका पुटों से पूरक करके जालन्धरबन्ध लगावे, तत्पश्चात् दोनों हाथों को पीठ के पीछे ले जा कर बायें हाथ की और दायें हाथ से बायें हाथ की कलाई को पकड़े, शरीर को आगे झुका कर पेट के अन्दर एड़ियों को दवाये हुए सिर को जमीन पर लगा दें। इस प्रकार यथा शक्ति कुम्भक करने के पश्चात् सिर को जमीन से उठा कर जालन्धरबंध खोल कर दोनों नासिकाओं से रेचन करें।

फल—पेट के रोगों को दूर करने और कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने में सहायक होती है।

७. शाम्भवी मुद्रा—मूल और उड्डीयानबंध के साथ-साथ सिद्ध अथवा पद्मासन से बैठ कर नासिका के अग्रभाग अथवा भ्रूमध्य में दृष्टि स्थिर करके ध्यान जमाना साम्भवी मुद्रा कहलाती है।

८. तडागी मुद्रा—तडाग (तालाब) के सदृश कोष्ठ को वायु से भरने को तडागी मुद्रा कहते हैं। शवासन से चित्त लेट कर जिस नासिका का स्वर चल रहा हो उससे पूरक करके तालाब के समान पेट को फैला कर वायु से भर ले। तत्पश्चात् कुम्भक करते हुए वायु को पेट में इस प्रकार हिलावें जिस प्रकार तालाब का जल हिलता है। कुम्भक के पश्चात् सावधानी से वायु को शनैः शनैः रेचन कर दें इससे पेट के सर्व रोग समूल नाश होते हैं।

९. विपरीतकर्णी मुद्रा = शीर्षासन = कपालासन—पहिले जमीन पर मुलायम गोल लपेटा हुआ वस्त्र रख कर उस पर अपने मस्तक को रखें। फिर दोनों हाथों के तलों को मस्तक के पीछे लगा कर शरीर को उल्टा ऊपर उठा कर सीधा खड़ा कर दें। थोड़े ही प्रयत्न से मूल और उड्डीयान स्वयं लग जाता है। यह मुद्रा पद्मासन के साथ भी की जा सकती है।

इसको ऊर्ध्वपद्मासन कहते हैं। आरम्भ में इसको दीवार के सहारे करने में आसानी होगी।

फल—वीर्य की रक्षा, मस्तिष्क, नेत्र, हृदय तथा जठराग्नि का बलवान होना। प्राण की गति स्थिर और शान्त होना, कब्ज, जुकाम, सिरदर्द आदि का दूर होना, रक्त शुद्ध होना और कफ के विकार का दूर होना।

१०. वज्रोली मुद्रा—मलत्याग के समय कई बार मूत्र को बलपूर्वक ऊपर की ओर आकर्षित करे। ऐसा करते समय इस बात को ध्यान से देखें कि मूत्र धारा कितने नीचे से आकर्षित हो कर लौटती है और पुनः उतरते समय कितना समय लगता है। निरन्तर अभ्यास से जब मूलधार दस-बारह अंगुल नीचे से आकर्षित हो कर खींची जा सके और उतारने में कुछ शक्ति लगाना पड़े तो समझना चाहिए कि वज्रोली क्रिया सिद्ध हो गयी है। तत्पश्चात् क्रमशः जल, दूध, तेल अथवा घी, शहद अथवा अन्त में पारा खींचने का अभ्यास करे।

दूसरी विधि—एक चौदह अंगुल रबर की मूत्र निष्कासन (कैथिटॅर् नलिका जो कि अंग्रेजी दवाखानों में मिल सकती है) पानी में उबाल कर लिङ्ग-छिन्द्र में प्रवेश करने का अभ्यास करें। यह अभ्यास एक अंगुल से प्रारम्भ करके क्रमशः एक-एक अंगुल बढ़ाता जाय। जब बारह अंगुल प्रविष्ट होने लगे तो चौदह अंगुल लम्बी और लिंग के छिद्र के अनुसार चौड़ी जस्ते की सलाई जो दो अंगुल मुड़ी हुई ऊपर को मुँहवाली हो जिससे कि लिङ्गेन्द्रिय में प्रविष्ट कर सके उपयुक्त रबर कैथिटॅर् की रीति से लिङ्ग छिद्र में प्रवेश करने का अभ्यास करे। जब बारह अंगुल तक प्रविष्ट होने लगे, तब चौदह अंगुल लम्बो लिङ्गछिद्र के अनुसार चौड़ी अन्दर से पोली एक चाँदी की सलाई बनावें, जो दो अंगुल टेढ़ी और ऊर्ध्वमुखी हो। इस टेढ़े भाग को लिंग छिद्र में प्रविष्ट कर दो अंगुल बाहर रहने दें, फिर सुनार की धमनी के सदृश धमनी से उस पर सलाई में लगातार फूत्कार करे। इस प्रकार लिङ्ग मार्ग का अच्छी तरह शुद्ध हो जाने पर वायु को खींचने और छोड़ने का अभ्यास करे, इस अभ्यास के सिद्ध हो जाने पर लिंग छिद्र से उपर्युक्त रीति से जल, तेल, दूध, शहद और पारे के खींचने का क्रमशः अभ्यास करे।

फल—लिंगेन्द्रिय के छिद्र की शुद्धि और अपानवायु पर पूर्णतया अधिकार प्राप्त हो जाता है, पथरी को तोड़ कर निकालने में सहायता मिलती

है। इस मुद्रा का फल हठयोग में अलौकिक सिद्धियाँ बतलाई गयी हैं परन्तु जरा सी असावधानी होने पर इन्द्रिय छिद्र में विकार होने से भयंकर शारीरिक रोग उत्पन्न होने तथा स्त्री के रज खींचने की चेष्टा में ऊँचे से ऊँचे अभ्यासी के लिए भी आध्यात्मिक पतन होने की अधिक सम्भावना है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण दृष्टिगोचर हुए हैं। इन मुद्राओं आदि को किसी अनुभवी की सहायता से करना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान में हानि पहुँचने की अधिक सम्भावना है।

चित लेटकर करने के आसन

१. **पादाङ्गुष्ठ-नासाग्र-स्पर्शासन**—पृथ्वी पर समसूत्र में पीठ के बल सीधा लेट जाय। दृष्टि को नासाग्र में जमाकर दायें पैर के अँगूठे को पकड़ कर नासिका के अग्रभाग को स्पर्श करे, इसी प्रकार पुनः पुनः करे, मस्तक, बायाँ पैर और नितम्ब पृथ्वी पर जमे रहें। इसी प्रकार दायें पैर को फैलाकर बायें पैर के अँगूठे को नासिका के अग्रभाग से स्पर्श करे। फिर दोनों पैरों के अँगूठों को दोनों हाथों से पकड़कर नासिका के अग्रभाग को स्पर्श करे। कई दिन के अभ्यास के पश्चात् अँगूठा नासिका के अग्रभाग को स्पर्श करने लगेगा।

फल—कमर का दर्द, घुटने की पीड़ा, कंद-स्थान की शुद्धि एवं उदर सम्बन्धी सर्वरोगों का नाश करता है। यह आसन स्त्रियों के लिए भी लाभदायक है।

२. **पश्चिमोत्तानआसन**—दोनों पाँवों को उड्डीयान और मूल बन्ध के साथ लम्बा सीधा फैलावे। दोनों हाथों की अँगुलियों से दोनों पैरों की अँगुलियों को खींचकर शरीर को झुका कर, माथे को घुटने पर टिका दे, यथाशक्ति वहीं पर टिकाए रहें। प्रारम्भ में दस-बीस बार शनैः शनैः रेचक करते हुए मस्तक को घुटने पर ले जायँ और इसी प्रकार रेचक करते हुए ऊपर उठते चले जायँ।

फल—पाचनशक्ति का बढ़ना, कोष्ठबद्धता दूर करना, सब स्नायु कमर तथा पेट की नश-नाड़ियों को शुद्ध एवं निर्मल करना, बढ़ते हुए पेट को पचकाना इत्यादि।

इस आसन को कम से कम दश मिनट तक करते रहने से उचित लाभ प्रतीत होगा।

३. सम्प्रसारण भू-नमनासन (विस्तृत पाद भू-नमनासन)—पैरों को लम्बाकर यथा शक्ति-चौड़ा फैलाने, तत्पश्चात् दोनों पैरों के अँगूठों को पकड़ कर सिर को भूमि में टिका दे।

फल—इससे उरु और जंघा प्रदेश बन जाते हैं। टाँग, कमर, पीठ और पेट निर्दोष होकर वीर्य स्थिर होता है।

४. जानुशिरासन—एक पाँव को सीधा फैलाकर दूसरे पाँव की एड़ी को गुदा और अण्डकोष के बीच में लगाकर उसके पाद तल से फैले हुए पाँव की रान को दबावे। मूल और उड्डीयान बन्ध के साथ फैले हुए पैर की अँगुलियों को दोनों हाथों से खींचकर धीरे-धीरे आगे झुका कर माथे को घुटने पर लगा दे, इसी प्रकार दूसरे पाँव को फैलाकर माथे को घुटने पर लगावें।

फल—इस आसन से सब लाभ पश्चिमोत्तान आसन के समान हैं। वीर्य रक्षा तथा कुण्डलिनी जागृत् करने में सहायक होना, यह इसमें विशेषता है। वास्तविक लाभ प्राप्त करने के लिए कम से कम इसको भी दस मिनट करना चाहिए।

५. आकर्ण धनुषासन—दोनों पाँव एक दूसरे के साथ जमीन पर फैलाकर दोनों हाथों की अँगुलियों से दोनों पाँव के अँगूठे पकड़ लें। एक पाँव सीधा रखकर दूसरे पाँव को उठाकर उसी ओर के कान से लगावे, हाथों और पैरों के हेर-फेर से यह आसन चार प्रकार से किया जा सकता है।

(क) दाहिने हाथ से दाहिने पाँव का अँगूठा पकड़ कर, बायें हाथ का अँगूठा बायें हाथ से खींचकर बायें कान को लगावें।

(ख) बायें हाथ से बायें पाँव का अँगूठा पकड़ कर, दाहिने पाँव का अँगूठा दाहिने हाथ से खींचकर दाहिने कान में लगावें।

(ग) दाहिने हाथ से बाँयें पाँव का अँगूठा पकड़ कर उसके नीचे दाहिने पाँव का अँगूठा बायें हाथ से खींचकर बायें कान को लगावें।

(घ) बायें हाथ से दाहिने पाँव का अँगूठा पकड़ कर उसके नीचे बायें पाँव का अँगूठा दाहिने हाथ से खींचकर दाहिने कान को लगावें।

फल—बाहु, घुटने, जंघा आदि अवयवों को लाभ पहुँचता है।

६. **शीर्षपादासन**—चित लेटकर सिर के पृष्ठ भाग और पैरों की दोनों एड़ियों पर शरीर को कमान के सदृश कर दे। इस आसन को पूरक करके करे और ठहरे हुए समय में कुम्भक बना रहे, तत्पश्चात् धीरे से रेचक करना चाहिए।

फल—मेरुदण्ड का सीधा और मृदु होना सम्पूर्ण शरीर को नाड़ियों, गर्दन और पैरों का मजबूत होना।

७. **हृदयस्तम्भासन**—चित्त लेटकर दोनों हाथों को सिर की ओर और दोनों पैरों को आगे की ओर फैलावें, फिर पूरक करके जालन्धर-बन्ध के साथ दोनों हाथों और दोनों पैरों को छ-सात इञ्च की ऊँचाई तक धीरे-धीरे उठावें और वहीं पर यथाशक्ति ठहरावें, जब स्वाँस निकलना चाहे तब पैरों और हाथों को जमीन पर रखकर धीरे-धीरे रेचक करे।

फल—छाती, हृदय, फेफड़े का मजबूत और शक्तिशाली होना तथा पेट के सब प्रकार के रोगों का दूर होना।

८. **उत्तानपादासन**—चित लेटकर शरीर के सम्पूर्ण स्नायु ढीले कर दें, पूरक करके धीरे-धीरे दोनों पैरों की (अँगुलियों को ऊपर की ओर खूब ताने हुए) ऊपर उठावें, जितनी देर आराम से रख सकें रखकर पुनः धीरे-धीरे भूमि पर ले जाय और स्वाँस को धीरे-धीरे रेचक कर दे। प्रथम बार तीस डिग्री तक, दूसरी बार पैंतीस डिग्री तक, तीसरी बार साठ डिग्री तक पैरों को उठावें। इस आसन के आधुनिक अनुभवियों ने नौ भेद किये हैं—

क. **द्विपाद चक्रासन**—हाथों के पंजे नितम्वों के नीचे रख कर, चित लेट, एक पैर घुटने से मोड़कर घुटने को पेट के पास लाकर तथा दूसरा पैर किंचित् ऊपर उठाकर बिल्कुल सीधा रखें, और इस प्रकार पैर चलावें—जैसे साइकिल पर बैठकर चलाते हैं।

इससे नितम्ब, कमर, पेट, पैर और टाँगें निर्दोष होकर वीर्य शुद्ध-पुष्ट और स्थिर रहता है।

ख. **उत्थित द्विपादासन**—चित लेटकर दोनों पैर पैंतालीस डिग्री तक ऊपर उठाकर जमीन से बिना लगाये धीरे-धीरे ऊपर नीचे करें। इससे पेट के स्नायु मजबूत होते हैं और मलत्याग क्रिया ठीक होती है।

ग. उत्थित एकैकपादासन—चित लेट कर, दोनों पैर (एक पैर ३० डिग्री में और दूसरा ४५ डिग्री में) अधर में रखकर बिना जमीन में लगाए ऊपर नीचे करें।

इससे कमर के स्नायु मजबूत होते हैं, मलोत्सर्ग क्रिया ठीक होती है, वीर्य शुद्ध और स्थिर होता है।

घ. उत्थितहस्त-मेरुदण्डासन—हाथ, पैर एक सीध में फैलाकर चित लेटें। दोनों हाथ उठा कर पैरों की ओर ले जा, इस प्रकार पुनः पुनः पीठ के बल लेट कर पुनः पुनः उठें।

इससे कमर, पेट, छाती, रीढ़ निर्दोष होते हैं।

ङ. शीर्षबद्धहस्त-मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठ के बल लेट कर, सिर के पीछे हाथ बाँधे बिना पैर उठाए, कमर से शरीर ऊपर उठावे।

इससे पीठ, छाती, गर्दन और रीढ़ के दोष दूर होते हैं।

च. जानुस्पृष्टभाल-मेरुदण्डासन—उपर्युक्त आसन करके घुटना मोड़ कर बारी-बारी से धीरे-धीरे माथे में लगावें, नीचे का पैर भूमि पर टिका हुआ सीधा रहे।

इससे यकृत (जिगर), प्लीहा (तिल्ली), फेफड़े आदि नीरोग हो कर पेट, गर्दन, कमर, रीढ़, ऊरु, बलवान और निर्विकार होते हैं।

छ. उत्थित हस्तपाद मेरुदण्डासन—पूर्ववत् पीठ के बल लेट कर हाथ पैर दोनों एक साथ ऊपर उठावें और पुनः पूर्ववत् एक रेखा में ले जाएँ, चार-पाँच बार ऐसा करें।

इससे पेट, छाती, कमर, और ऊरु निर्दोष होते हैं।

ज. उत्थितपाद मेरुदण्डासन—पैर सामने को फैला कर हाथों की कोहनियों के बल धड़ को उठावें, अनन्तर पैर ४५ डिग्री तक ऊपर उठा कर ऊपर-नीचे करें।

इससे कमर, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

झ. भालस्पृष्ट द्विजानु-मेरुदण्डासन—ऊपर कहे अनुसार ही करें, किन्तु इसके अतिरिक्त सिर दोनों घुटनों में लगा दें।

इससे पीठ, छाती, रीढ़, गर्दन और कमर के सब विकार दूर होते हैं।

९. हस्तपादांगुष्ठासन—चित लेट कर दोनों नासिका से पूरक करके बायें हाथ को कमर के निकट लगाए रखें, दूसरे, दाहिने हाथ से दाहिने

पैर के अँगूठे को पकड़े और समूचे शरीर को जमीन पर सटाए रखें, दाहिना हाथ और पैर ऊपर की ओर उठा कर तना हुआ रखें। इसी प्रकार दाहिने हाथ को दाहिनी ओर कमर से लगाकर वायें हाथ से वायें पैर के अँगूठे को पकड़ कर पूर्ववत् करना चाहिए। फिर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड़ कर उपर्युक्त विधि से करना चाहिए।

फल—सव प्रकार के पेट के रोगों का दूर होना, हाथ-पैरों का रक्त संचार, वल-वृद्धि।

१०. स्नायु संचालनासन—चित लेटकर दोनों पैरों को पृथिवी से एक इंच उठाकर पूरक करके जालन्धर-वंध लगा ले और हाथों को सिर की ओर ले जाकर एक इंच ऊपर उठावे। वायें पैर तथा वायें हाथ को मोड़े और फैलावे, फिर दाहिना हाथ तथा दाहिने पैर को मोड़े और फैलावे जव तक कुम्भक रह सके। इसी प्रकार उलटफेर से हाथों और पैरों को मोड़ता और फैलाता रहे। तत्पश्चात् जालन्धर-वंध खोलकर हाथ और पैरों को जमीन पर रखकर धीरे-धीरे रेचक करे।

फल—शरीर के स्नायुओं में प्रगति उत्पन्न होना, पैर की सिराओं, घुटने एवं मेरुदण्ड का पुष्ट होना।

११. पवनमुक्तासन—चित लेटकर पहले एक पाँव को सीधा फैलाकर दूसरे पाँव को घुटने से मोड़कर पेट पर लगाकर हाथों से अच्छी प्रकार दवाये फिर इस पाँव को सीधा करके दूसरे पाँव से भी पेट को खूब इसी प्रकार दवावे। तत्पश्चात् दोनों पाँवों को इसी प्रकार दोनों हाथों से पेट पर दवावे। पूरक करके कुम्भक के साथ करने में अधिक लाभ होता है।

फल—उत्तानपाद आसन के समान इसके सव लाभ हैं। वायु को वाहर निकालने में तथा शौच शुद्धि में विशेष रूप से सहायक होता है। इसे विस्तर पर लेटकर किया जा सकता है। देर तक कई मिनट तक करते रहने से वास्तविक लाभ की प्राप्ति होगी।

१२. ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन—भूमि पर चित लेटकर दोनों पैरों को तान-कर धीरे-धीरे कंधों और सिर के सहारे से पूर्ण शरीर को ऊपर खड़ा कर दें। आरम्भ में हाथों के सहारे से उठावे, कमर और पैर सीधे रहें। दोनों पैरों के अँगुठे दोनों आँखों के सामने रहें। मस्तक कमजोर होने के कारण जो शीर्षासन नहीं कर सकते हैं उनको इस आसन से लगभग वही लाभ

प्राप्त हो सकता है। एक पाँव को आगे और दूसरे को पीछे इत्यादि करने से इसके कई प्रकार हो जाते हैं। इसमें ऊर्ध्व पद्मासन भी लगा सकते हैं।

फल—रक्त शुद्धि, भूख की वृद्धि और पेट के सब विकार दूर होते हैं। सब लाभ शीर्षासन के समान जानना चाहिये।

१३. सर्वाङ्गासन (हलासन)—चित लेटकर दोनों पाँवों को उठाकर सिर के पीछे जमीन पर इस प्रकार लगावें कि पाँव के अँगुठे और अँगुलियाँ ही जमीन को स्पर्श करें। घुटनों सहित पाँव सीधे समसूत्र में रहे, हाथ पीछे भूमि पर रहे।

दूसरा प्रकार—दोनों हाथों को सिर की ओर ले जाकर पैर के अँगूठों को पकड़कर ताने।

फल—कोष्ठ बद्ध का दूर होना, जठराग्नि का प्रदीप्त, आँतों का बलवान् होना, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत् तथा अन्य सब प्रकार के रोगों की निवृत्ति और क्षुधा की वृद्धि।

१४. कर्णपीडासन—हलासन करके घुटने कानों पर लगाने से कर्णपीडासन बनता है। इसमें दोनों हाथों को पीठ की ओर जमीन में लगाना चाहिये।

फल—सर्वांगासन के समान, पेट के रोगों के लिए इसमें कुछ अधिक विशेषता है। नादानुसंधान में भी सहायक होता है। देर तक करने से वास्तविक लाभ की प्रतीति होगी।

१५. चक्रासन—चित लेट कर हाथों और पैरों के पंजे भूमि पर लगा कर कमर का भाग ऊपर उठावें। हाथ-पैरों के पंजे जितने पास-पास आ सकें उतने लाने का यत्न करें। यह आसन खड़ा होकर पीछे से हाथों को जमीन पर रखने से भी होता है।

फल—कमर और पेट के स्थान को इससे अधिक लाभ पहुँचता है, पृष्ठवंश सदा आगे की ओर झुकता है, उसका दोष इस आसन द्वारा विरुद्ध झुकाव होने से दूर हो जाता है।

१६. गर्भासन—चित लेट कर दोनों पैरों को ऊपर उठाकर सिर की ओर जमीन में लगावे, फिर दोनों पैरों को गर्दन में एक पर दूसरे पैर को देकर फँसावे, तत्पश्चात् दोनों हाथों को पैरों के अन्दर की ओर से ले जाकर कमर का एक दूसरे हाथ से पकड़ कर बाँधे। इससे पेट के सब

प्रकार के रोग, कोष्ठबद्ध, यकृत, प्लीहा (तिल्ली) आदि के रोग दूर होते हैं।

१७. शवासन (विश्रामासन)—शरीर के सब अंगों को ढीला करके मुर्दे के समान लेट जाय। सब आसनों के पश्चात् थकान दूर करने और चित्त को विश्राम देने के लिए इस आसन को करें इससे बहुत लाभ होता है—रक्तचाप एवं नींद का दोष दूर हो जाता है।

पेट के बल लेट कर करने का आसन

१८. मस्तकपादांगुष्ठासन—पेट के बल लेट कर सारे शरीर को मस्तक और पैरों के अँगूठे के वल पर उठा कर कमान के सदृश्य शरीर को वना दे। शरीर को उठाते हुए पूरक, ठहराते हुए कुम्भक और उतारते हुए रेचक करें।

फल—मस्तक, छाती, पैर, पेट की आतें तथा सम्पूर्ण शरीर की नाड़ियाँ शुद्ध और बलवान होती हैं। पृष्ठवंश या मेरुदण्ड के दोष में इससे विशेष लाभ पहुँचता है।

१९. नाभ्यासन—पेट के बल समसूत्र में लेट कर दोनों हाथों को सिर की ओर आगे दो हाथ की दूरी पर एक दूसरे हाथ से अच्छी तरह फैलावे, दोनों पैरों को भी दो हाथ की दूरी पर ले जा कर फैलावे। फिर पूरक करके केवल नाभि पर समूचे शरीर को उठावे, पैरों और हाथों को एक या डेढ़ हाथ की ऊँचाई पर ले जाय, सिर और छाती को आगे की ओर उठाए रहें, जब स्वाँस बाहर निकलना चाहे तब हाथों और पैरों को जमीन पर रख कर रेचक करे।

फल—नाभि की शक्ति का विकास होना, मन्दाग्नि, अजीर्णता, वायु-गोला तथा पेट के अन्य रोगों तथा वीर्य दोष का दूर होना।

२०. मयूरासन—दोनों हाथों को मेज अथवा भूमि पर जमाकर दोनों हाथों की कोहनियाँ नाभि स्थान के दोनों पार्श्व से लगाकर मूल तथा उड्डीयान-बन्ध के साथ सारे शरीर को उठाये रहे। पाँव जमीन पर लगे रहने से हंसासन बनता है।

फल—जठराग्नि का प्रदीप्त होना, भूख लगना, वात-पित्तादि दोषों को तथा पेट के रोग—गुल्म-कब्जादि का दूर करना और शरीर को नीरोग रखना। वस्ती तथा एनीमा के पश्चात् इसके करने से पानी तथा आँव जो पेट में रह जाते हैं, वह निकल जाते हैं, मेरुदण्ड सीधा होता है।

२१. भुजंगासन (सर्पासन)—आधुनिक आसन व्यायाम के अनुभवियों ने भुजंगासन के निम्न तीन भेद किये हैं—

(क) उत्थितैकपाद भुजंगासन—पेट के बल लेटकर हाथ छाती के दोनों ओर से कोहनियों में से घुमाकर भूमि पर टिकावे, भुजंग के सदृश छाती ऊपर को उठाकर दृष्टि सामने रखे, एक पैर भूमि पर टिका रहे, दूसरा पैर घुटने को बिना मोड़े जितना जा सके ऊपर उठावे, इसी प्रकार बारी-बारी से पैरों को नीचे ऊपर करे। इससे कटि दोष, यकृत, प्लीहादि के विकार दूर होते हैं।

(ख) भुजंगासन—पैरों के पंजे उल्टी ओर से भूमि पर टिका कर हाथों को भी भूमि पर किंचित् टेढ़े रखकर धड़ को कमर से उठाकर भुजंगाकार होवे। इससे पेट, छाती, कमर, उरु, मेरुदण्ड आदि के सब दोष दूर होते हैं।

(ग) सरल हस्त भुजंगासन—हाथों को भूमि पर सीधा रखकर पैरों को पीछे की ओर ले जाकर दोनों हाथों के बीच कमर आ जाय इस रीति से कमर झुकाकर छाती और गर्दन भरसक ऊपर उठाकर सीधे आकाश की ओर देखें। इससे पेट की चर्बी निकल जाती है, पेट, कमर और गर्दन के सब विकार दूर होते हैं।

२२. शलभासन—शलभ टिड्डी को कहते हैं। पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को अँगुलियों की मुट्ठी बाँधकर कमर के पास लगावे, तत्पश्चात् धीरे-धीरे पूरक करके छाती तथा सिर को जमीन में लगाये हुए हाथों के बल एक पैर को यथाशक्ति एक डेढ़ हाथ की ऊँचाई पर ले जाकर ठहराए रहें, जब स्वाँस निकलना चाहे तब धीरे-धीरे पैर को जमीन पर रखकर शनैः शनैः रेचक करे। इसी प्रकार दूसरे पैर को उठावे, फिर दोनों पैरों को उठावे।

फल—जंघा, पेट, बाहु आदि भागों को लाभ पहुँचता है, आँतें मजबूत होती हैं और सब प्रकार के उदर-विकार दूर होते हैं।

२३. धनुरासन—पेट के बल लेटकर दोनों हाथों को पीठ की ओर करके दोनों पैरों को पकड़ लेवे और शरीर को वक्र-भाव से रखे। कहीं-कहीं इस आसन को वज्रासन की भाँति एड़ियों पर बैठकर पीछे की ओर झुककर करना बतलाया है।

फल—कोष्ठबद्धादि उदर के सब विकारों का दूर होना, भूख तथा जठराग्नि का प्रदीप्त होना।

बैठकर करने के आसन

२४. मत्स्येन्द्रासन—इसको पाँच भागों में विभक्त करने में सुगमता होगी—

(क) बायें पाँव का पंजा दाहिने पाँव के मूल में इस प्रकार रखें कि उसकी एड़ी टूँडी में लगे और अङ्गुलियाँ पाल्थी के बाहर न हों।

(ख) दायाँ पाँव बायें घुटने के पास, पञ्जा भूमि पर लगाकर रखें।

(ग) बाँया हाथ दाहिने घुटने के बाहर से चित डालकर उसकी चुटकी में दाहिने पाँव का अँगूठा पकड़े, उस दाहिने पाँव के पंजे को बायें घुटने के बाहर सटाकर रखें।

(घ) दाहिना हाथ पीठ की ओर से फिराकर उससे बाँयें पैर का जंघा पकड़ लें।

(ङ) मुख तथा छाती पीछे की ओर फिराकर ताने तथा नासाग्र में दृष्टि रखे। इसी प्रकार दूसरी ओर से करे।

फल—पीठ, पेट के नल, पाँद, गला बाहु, कमर, नाभि के नीचले भाग तथा छाती के स्नायुओं का अच्छा लाभ होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है और पेट के सब रोग आमवात परिणाम कुल तथा आँतों के सब रोग नष्ट होते हैं।

२५. दृष्टिकासन—कोहनी से पंजे तक का भाग भूमि पर रख कर उसके सहारे सब शरीर को सम्भाल कर दीवार के सहारे पाँव को ऊपर ले जाय तत्पश्चात् पाँव को घुटनों में मोड़कर सिर के ऊपर रख दे। दूसरे प्रकार से केवल पंजों के ऊपर ही सब शरीर को सम्भाल कर रखने से भी यह आसन किया जाता है। यह आसन कठिन है। मोर चाल से चलने वाले लड़के इस आसस को शीघ्र कर सकते हैं।

फल—बाहों में बल वृद्धि, पेट तथा आँतों का निर्दोष होना, शरीर का फुर्तीला और हल्का होना, मेरुदण्ड का शुद्ध और शक्तिशाली होना, तिल्ली, यकृत एवं पाण्डु रोग आदि का दूर होना।

२६. उष्ट्रासन—वज्रासन के समान हाथों से एड़ियों को पकड़कर बैठे। पश्चात् हाथों से पावों को पकड़े हुए चूतड़ को उठाये, सिर पीछे पीठ की ओर झुकावें और पेट भरसक आगे की ओर निकाले।

फल—यकृत, प्लीहा, आमवात आदि पेट के सब रोग दूर होते हैं और कण्ठ निरोग होता है।

२७. **सुप्त वज्रासन**—वज्रासन करके चित लेटे, सिर को जमीन से लगा हुआ रखें, पीठ के भाग को भरसक जमीन से ऊपर उठाए रखे और दोनों हाथों को बाँध कर, छाती के ऊपर रखे अथवा सिर के नीचे रखे।

फल—पेट, छाती, गर्दन और जंघाओं के रोगों को दूर करता है।

२८. **कन्द-पीड़ासन**—पृथिवी पर बैठ कर दोनों हाथों से दोनों पैरों को पकड़ कर ठीक पेट के ऊपर नाभि के पास ले जा कर इस प्रकार मिलाए कि पैरों की पीठ मिली रहे और तलुए कुक्षियों की ओर जायँ, दोनों पैर के अंगूठे और कनिष्ठिकाएँ मिली रहें, हाथ इस प्रकार जोड़ कर बैठ जाय कि हाथ की हथेली पैरों के अंगूठों पर और अंगुलियाँ छाती के ऊपर आ जायँ।

फल—पैर, घुटने तथा पेट के रोग दूर होते हैं। क्षुधा की वृद्धि, तिल्ली और वायुगोले का नाश होता है, स्कन्ध-स्थान के पवित्र होने से शरीर की सब नाड़ियों का शोधन होता है।

२९. **पार्वती आसन**—दोनों पैरों के तलुए इस प्रकार मिलावे कि अँगुलियों से अँगुलियाँ और तलुए से तलुआ मिल जायँ और मिले हुए भागों को इस प्रकार घुमावे कि अंगुलियाँ नितम्बों के नीचे आ जायँ और एड़ियाँ अण्डकोश के नीचे मिलकर सामने दिखाई देने लगें।

फल—घुटने, पैरों की अंगुलियों, मणिबन्धों, अण्डकोश और सीवनी के सब रोगों का नाश होना, वीर्यवाही नशों का पवित्र होना। ब्रह्मचारिणी स्त्रियों के लिए भी यह आसन लाभदायक है।

३०. **गोरक्षासन**—दोनों पैरों के तलुओं को पूर्ववत् मिलाकर दोनों एड़ियों को सीवनी पर जमाकर पैरों को इस प्रकार चौड़ा करें कि बायें पैर की अँगुलियाँ बायीं पिंडली की ओर आ जायँ और दायें पैर की अंगुलियाँ आ मिलें, फिर दोनों हाथों को पीठ की ओर जंघा के नीचे से लाकर घुटने के पास से पैरों की अंगुलियों को पकड़कर जालन्धर-बंध लगाकर चित्त को स्थिर करके बैठे।

फल—कण्ठ, स्कन्ध, बाहु और हृदयादि ऊपर के अंगों तथा जंघा, पिंडली, पैर, सीवनी, अण्डकोष और कटि प्रदेश की व्याधियों का दूर होना।

३१. सिंहासन—दोनों पैरों को नितम्बों के नीचे इस प्रकार जमावे की बायाँ पैर दायें नितम्ब के नीचे और दायाँ पैर बायें नितम्ब के नीचे आ जाय, फिर दोनों हाथों को पेट की ओर अंगुलियाँ करके जंघा पर जमावे, पेट को अन्दर खींचते हुए, छाती को बाहर निकाले हुए, मुख को खोलकर जिह्वा को बल पूर्वक बाहर की ओर निकाल ठोढ़ी पर जमा दे।

फल—बाहु और पैरों का शक्तिशाली होना, गर्दन का नीरोग होना, कटि और सीवनी आदि की शुद्धि, हकलाना बन्द होना।

३२. वकासन—दोनों हाथों के पंजे जमीन पर रखकर, दोनों घुटनों ो बाहुओं के सहारे ऊपर उठाकर, पाँव सहित सारे शरीर को ऊपर उठावे, केवल हाथों के पंजे भूमि पर रहें, शेष शरीर ऊपर उठाये रहें, घुटनों को अंदर रखकर भी यह आसन किया जा सकता है।

फल—भुजदण्डों में बल वृद्धि, सीने का विकास, रक्त की शुद्धि और क्षुधा की वृद्धि।

३३ लोलासन—वकासन के अनुसार दोनों पंजों को भूमि पर रख कर केवल उन पर ही सारे शरीर को उठावे, वकासन में पाँव पीछे की ओर झुकते हैं और इसमें आगे की ओर।

फल—वकासन के समान।

३४. एकपादाङ्गुष्ठासन—एक पैर की एड़ी को गुदा और अण्डकोष के बीच में लगाकर उसी के अँगुठे को अँगुलियों सहित पृथिवी पर जमा-कर दूसरे पैर को ठीक उसके घुटने पर रखकर उस पर सारे शरीर का भार सम्भाल कर बैठे, नासाग्र भाग पर दृष्टि जमाकर छाती को किंचित् उभारे रहे, दायें बायें दोनों अंग से बारी-बारी से करें।

फल—वीर्य दोष का दूर होना और वीर्यवाही नाड़ियों का शुद्ध और पुष्ट होना।

पद्मासन लगाकर करने योग्य आसन

३५. ऊर्ध्व पद्मासन—शीर्षासन और ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन के साथ।

३६. उत्थित पद्मासन—पद्मासन लगाकर दोनों हाथ दोनों ओर जमीन पर रखकर उनके ऊपर सारे शरीर को, पेट अंदर खींचे हुए और छाती को बाहर निकाले हुए भरसक पृथ्वी से ऊपर उठावे, जितना पृथिवी से ऊपर उठा रहेगा उतना ही अधिक लाभ होगा।

फल—बाहुबल की वृद्धि, छाती का विकास, पेट के रोगों का नाश और क्षुधा की वृद्धि।

३७. कुक्कुटासन—पद्मासन से बैठकर दोनों पाँवों के पंजे भीतर रहें, इस प्रकार दोनों जाँघों और पिंडलियों के बीच में से दोनों हाथ कोहनी तक नीचे निकालकर, पंजे भूमि पर टिकाकर, सारे शरीर को तोलकर रखे

फल—उत्थित पद्मासन के समान लाभ। जठराग्नि का प्रदीप्त होना, आलस्य का दूर होना आदि।

३८. कूर्मासन—कानों को न पकड़कर हाथों की अँगुलियाँ एक-दूसरे के साथ मिलाकर गला पीछे से पकड़े।

फल—आँतों के विकार का दूर होना, शौच-शुद्धि, क्षुधा-वृद्धि।

३९. मत्स्यासन—पद्मासन लगाकर चित लेटे, दोनों हाथों से दोनों पाँवों के अँगुठे पकड़े और दोनों हाथों की कोहनियाँ जमीन पर टिका दें। सिर को पीछे मोड़कर छाती तथा कमर को भरसक जमीन से ऊपर उठाये रखे।

फल—शौच-शुद्धि, अपानवायु की निम्न गति, आँतों के सब रोगों का नाश इत्यादि। दस-पन्द्रह मिनट तक करने से विशेष लाभ की प्रतीति होती है। इस आसन से देर तक जल में तैरा जा सकता है।

४०. तोलाङ्गुलासन—पद्मासन लगाकर नितम्बों के नीचे हाथों की मुट्ठियाँ रखकर उन पर तराजू के सदृश सारे शरीर को तोल रखे।

फल—मत्स्यासन के समान है।

४१. त्रिबन्धासन—मूलबंध, उड्डीयान-बंध और जालन्धर बन्ध लगाकर पद्मासन से बैठे। फिर निम्न क्रियाएँ करें—दोनों हाथों को मिलाकर भरसक ऊपर उठावें। दोनों हाथों को गोमुख करके रखें। दोनों हाथ

पीछे फेरकर दाहिने हाथ से बायें पाँव के अँगूठे को और बायें हाथ से दाहिने पाँव के अँगूठे को पकड़े। दोनों हाथों को भूमि पर जमाकर उन पर सारा शरीर अर्थात् पूरे आसन को उठावे और नितम्बों को पुनः भूमि पर ताड़न करे।

फल—तीनों बन्धों के फल के अतिरिक्त इससे कुण्डलिनी की जागृति और प्राणों के उत्थान में विशेष सहायता मिलती है किन्तु सावधानी के साथ करे।

खड़े होकर करने के आसन

४२. ताड़ासन—गला, कमर, पाँव की एड़ी आदि सबको समरेखा में करके सीधा खड़ा हो, एक हाथ को भरसक सीधा ऊपर ताने और दूसरे को जंघा से मिलाये रखे। ऊपर वाले हाथ को धीरे-धीरे तानता हुआ नीचे ले जाय और नीचे वाले को ऊपर। इसी प्रकार कई बार करे।

फल—सारे शरीर को नीरोग रखना, मेरुदण्ड का सीधा करना, शौच-शुद्धि, अर्श रोग का नाश करना इत्यादि।

४३. गरुड़ासन—सीधे खड़े होकर एक पैर को दूसरे पैर से लपेटे, तत्पश्चात् दोनों हाथों को भी उसी प्रकार लपेट कर हथेली मिलाकर दोनों हाथों को नाक के पास ले जाय।

फल—पैरों के स्नायु की शुद्धि, अण्डकोश की वृद्धि का रोकना, घुटने और कोहनियों आदि के दर्द का नाश करना।

४४. द्विपाद मध्य शीर्षासन—दोनों पैरों को भरसक फैलावे, मस्तक को आगे की ओर झुकार दोनों पैरों के बीच में ले जाकर पृथिवी पर लगावे।

फल—पेट के स्नायु, मेरुदण्ड और वीर्यवाही नसों का पुष्ट होना।

४५. पादहस्तासन—सीधे खड़े होकर धीरे-धीरे आगे की ओर झुक-कर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगुठे पकड़े, उड्डीयान और मूलबंध के साथ बिना घुटने तथा पाँव झुकाये घुटने पर सिर को लगा दे।

फल—तिल्ली, यकृत, कोष्ठबद्धता आदि का दूर होना। देर तक करने से विशेष लाभ की प्रतीति होगी।

४६. हस्तपादाङ्गुष्ठासन—सीधा समसूत्र में दोनों पैरों को मिलाकर खड़ा हो एक पैर को सीधा उठाकर कटि प्रदेश की जगह तक ले जाय,

दूसरे हाथ से इस पैर के अँगूठे को पकड़कर सीधा ताने, दूसरा हाथ कमर पर रहे। इसी प्रकार दूसरी ओर करे। जब यह आसन लगभग एक मिनट तक टिकने लगे तो मस्तक को फैलाये हुए घुटने पर लगावे।

फल—पेट, पीठ, जंघा, कमर, कण्ठ आदि अवयवों का बलवान् होना।

४७. कोणासन—टाँगों को फैलाकर समसूत्र में खड़ा हो, तत्पश्चात् एक हाथ को सीधा रखकर दूसरे हाथ से बायीं ओर झुककर बायें पैर के घुटने को पकड़े। इसी प्रकार दूसरी ओर करे।

फल—पीठ, कमर का नीरोग होना, स्नायुओं में रक्त का संचार इत्यादि।

यहाँ लगभग सभी मुख्यासन उनके फल सहित बतला दिये गये हैं, किन्तु बहुत से आसनों को करने की अपेक्षा अपने आवश्यकतानुसार थोड़े से विशेष विशेष आसनों को निम्नलिखित सूची के अनुसार विधि पूर्वक देर तक करना अधिक लाभदायक होगा। आसनों को इष्ट के मानसिक जप तथा स्थान विशेष पर ध्यान के साथ करना अच्छा रहेगा। लम्बे समय तक शीर्षासन करने के पश्चात् ऊर्ध्व सर्वांगासन अवश्य करना चाहिए।

आसन	ऊपरोक्त वर्णित आसन-क्रम	कम-से-कम समय
१. विपरीतकरणी मुद्रा (शीर्षासन)	९	२० मिनट
२. मयूरासन	२०	५ ,,
३. ऊर्ध्वसर्वाङ्गासन	१२	१० ,,
४. पश्चिमोत्तानासन	२	१० ,,
५. जानुशिरासन	४	१० ,,
६. उत्तानपादासन	८	५ ,,
७. पवन-मुक्तासन	११	५ ,,
८. भुजङ्गासन	२१	५ ,,
९. शलभासन	२२	५ ,,
१०. त्रिबन्धासन	४१	५ ,,
११. ताड़ासन	४२	५ ,,
१२. पादहस्तासन	४५	५ ,,
१३. सम्प्रसारण भू-नमनासन	३	५ ,,

१४. हृदयस्तम्भासन	७	५ मिनट
१५. शीर्षपादासन	६	५ ,,
१६. सर्वाङ्गासन (हलासन)	१३	५ ,,
१७. कर्णपीड़ासन	१४	५ ,,
१८. मस्तक-पादाङ्गुष्ठासन	१८	५ ,,
१९. नाभ्यासन	१९	५ ,,
२०. धनुरासन	२३	५ ,,
२१. उष्ट्रासन	२६	५ ,,
२२. सुप्तवज्रासन	१७	५ ,,
२३. मत्स्यासन	३७	१० ,,
२४. द्विपाद मध्यशीर्षासन	४५	५ ,,

आसन का उठना—ध्यान की अवस्था में प्राण के दबाव से सूक्ष्म और शुद्ध शरीरवाले साधकों का कभी-कभी आसन स्वयं उठने लगता है। बहुधा साधकों को प्राण के उत्थान में आसन के उठने का भ्रम हो जाता है।

आसन उठाने की विधि—वस्ती अथवा एनीमा आदि से पेट की सफाई करके मूल और उड्डीयान-बन्ध लगाकर पद्मासन से बैठे। फिर नीचे से वायु को भरना चाहिए। कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् एक विशेष अकथनीय स्वयमेव होने वाली आन्तरिक क्रिया द्वारा सूक्ष्म और शुद्ध शरीरवालों का आसन उठने लगता है। किंतु आसन का उठना केवल शारीरिक क्रिया है। इसमें आध्यामित्कता का लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं है। इसके प्रदर्शन में आध्यात्मिक हानि हो है।

गुफा में बैठना—साधारण मनुष्य अधिक समय गुफा में बैठना ही समाधि मानते हैं।

गुफा में बैठने की पहली विधि—इसमें एक लम्बे समय तक खान-पान तथा अन्य सब शारीरिक क्रियाओं को छोड़ देने का अभ्यास है। गुफा में जाने से कई दिन पूर्व वस्ती-धौती आदि यौगिक क्रियाओं द्वारा शरीर शोधन और दुग्ध तथा बादाम का छोंका आदि सूक्ष्म तथा अल्प आहार लेना होता है। गुफा में जाने वाले दिन वस्ती, धौती, नेती आदि क्रियाओं तथा कैथेटॅर् से शरीर-शोधन करना चाहिए। गुफा में नमी (शीलन) लेश मात्र भी न हो। पक्की होनी चाहिए। कई दिन पूर्व तैयार करा ली जानी चाहिए जिससे उसकी शीलन सब निकल जाय। वायु प्रवेश के लिए एक जालीदार खिड़को होनी चाहिए। दो एक अनुभवी

देख भाल करते रहें, जिससे किसी दुर्घटना की उपस्थित होने पर उसका प्रतिकार किया जा सके। युवक और पुष्ट शरीर वाले ही अपनी शक्ति से कम समय के लिए बैठने की चेष्टा करें। इसके लिए शीतकाल उपयोगी समय है।

गुफा में बैठने की दूसरी विधि—इसमें पहली बतलायी गयी बातों के अतिरिक्त किसी विशेष क्रिया से प्राण की बाह्यगति को रोककर एक ही आसन से निश्चित समय तक बैठना होता है। इसमें खेचरी मुद्रा अधिक उपयोगी होती है। बाह्य प्राण की गति के अभाव में प्राणों की केवल आन्तरिक क्रिया होती रहती है। इसलिए बाहर की हवा की आवश्यकता नहीं रहती। इसमें गुफा को बिल्कुल बन्द कर दिया जाता है। इसमें बेहोशी जैसी अवस्था रहती है। इसलिए श्रोत्र और नासिकादि के छिद्रों को विशेष रीति से बंद कर दिया जाता है, जिससे कोई जीव-जन्तु प्रवेश न कर सकें। शरीर में दीमक न लगने पावे, इसलिए गुफा में राख डाल दी जाय अथवा अन्य किसी तरह से इसका उपचार करना चाहिए। इस क्रिया में पहली विधि की अपेक्षा अधिक शारीरिक बल और देख-भाल की आवश्यकता है। कुछ अनुभवियों को पहले ही से सब बातें समझाकर नियुक्त कर देना चाहिए। अपनी सामार्थ्य से कम समय के लिए बैठना चाहिए तथा गुफा में कोई ऐसी बिजली की घण्टी आदि होनी चाहिए कि जिससे दुर्घटना के समय में सूचना दी जा सके।

वास्तविक समाधि तो तीव्र वैराग्य होने पर ध्यान द्वारा वृत्तियों के निरोधपूर्वक होती है जैसा कि योगदर्शन में बतलाया गया है। उपर्युक्त दोनों प्रकार से गुफा में बैठना न तो वास्तविक समाधि ही है और न आध्यात्मिकता से कोई विशेष सम्बन्ध ही है, पहली विधि में अति कठिन शारीरिक तप है और दूसरी विधि में उससे भी भयंकर प्राण-सम्बन्धी तप और उसकी विशेष क्रियाओं का अभ्यास है। यदि इन दोनों प्रकार की क्रियाओं में कार्य-कुशल साधक जनसमूह में प्रतिष्ठा, मान और धन प्राप्ति की अभिलाषा की उपेक्षा करके वैराग्य और ध्यान द्वारा वृत्ति निरोध की ओर प्रवृत्त हो तो बहुत शीघ्र आत्मोन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो सकते हैं। इस प्रकार की समाधि का सबसे कठिन और आश्चर्य जनक प्रदर्शन महाराजा रणजीतसिंह जी के समय में एक प्रमुख हठयोगी हरीदास ने किया था। वह प्राणों की बाह्य गति को किसी विशेष क्रिया द्वारा अन्तर्मुखी करके खेचरी मुद्रा लगाकर एक विशेष आसन से बैठ गया।

उसने नाक और कानों के छिद्रों को मोम तथा अन्य कोई औषधियों द्वारा बंद कर दिया। एक लोहे के बक्स में रखकर ताला लगा कर उसको भूमि खुदवा कर गड़वा दिया गया। तदुपरान्त उस भूमि पर चने बुन दिये गये। छः मास पश्चात् भूमि को खोदकर पेटी में से उसे निकाला गया और उसकी बतलायी हुई विधि के अनुसार होश में लाया गया। इतना सब कुछ होते हुए भी कहते हैं कि उसमें वैराग्य तथा ध्यान द्वारा वृत्ति निरोध के अभ्यास की कमी थी, जिसके फलस्वरूप (बहुत सम्भव है वज्रोली क्रिया की सिद्धि की चेष्टा में) एक क्वाँरी लड़की को भगाकर ले जाने के प्रयत्न में उसकी सारी प्रतिष्ठा और मान पर पानी फिर गया। इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के योग के नाम पर प्रदर्शन आरम्भ में जनसमूह में योगशब्द के प्रति अगाध श्रद्धा और अन्ध विश्वास उत्पन्न कर देते हैं, किन्तु उनके प्रदर्शकों की सांसारिक और स्वार्थमय चेष्टाएँ अन्त में उससे कहीं अधिक योग के सम्वन्ध में अश्रद्धा की उत्पादक हो जाती है। **जैसे आज कल के नये धर्मों के लोग करते हैं?** आसन, मुद्राएँ आदि सभी यौगिक क्रियाओं का हमने वर्णन कर दिया है। इनमें से जो जिसके अभ्यास में सहायक हों, उनको ग्रहण करना चाहिये। (किन्तु मुख्यध्येय आत्मोन्नति को छोड़कर केवल इन शारीरिक क्रियाओं और खान-पान के चिन्तन में लगा रहना अहितकर है।)

संगति—आसन की सिद्धि का उपाय बताते हैं—

प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम्

व्याख्या—सूत्र के अन्त में 'भवति' वाक्य शेष है। प्रयत्न-शैथिल्य = स्वाभाविक शरीर की शिथिलता है। इस प्रयत्न की शिथिलता से आसन सिद्ध होता है अथवा आनन्त्यसमापत्ति=आकाशादि में रहने वाली अनन्तता में चित्त की व्यवधान रहित समापत्ति अर्थात् तद्रूपता को प्राप्त हो जाने से आसन सिद्धि होती है अर्थात् शरीर को प्रयत्न शून्य और मन को व्यापक विषयी वृत्तिवाला करके आसन पर बैठना चाहिए। इस प्रकार शरीर और मन को क्रिया रहित करने से शरीर का अध्यास छूट जाता है और उससे भूला जैसा होकर बहुत समय तक स्थिरता के साथ सुख पूर्वक बैठ सकता है। आनन्त्यसमापत्ति से यह अभिप्राय है कि चित्त वृत्ति रूप में प्रतिक्षण अनेक परिच्छिन्न पदार्थों की ओर **घूमता रहता है**। उनकी परिच्छिन्नता में वह अस्थिर रहता है। अपरिच्छिन्न आकाशादि में जो

अनन्तता है, उसमें चित को तदाकार करने से चित्त निर्विषय होकर स्थिर हो जाता है।

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।

श्वास—वाहर की वायु का नासिका द्वारा अंदर प्रवेश करना श्वास कहलाता है ।

प्रश्वास–कोष्ठ–स्थित वायु का नासिकाद्वारा बाहर निकालना प्रश्वास कहलाता है । स्वाँस पर स्वाँस की गतियों का प्रवाह रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा बाह्याभ्यान्तर दोनों स्थानों में रोकना प्राणायाम कहलाता है। रेचक प्राणायाम को वहिर्गति होने के कारण उसमें श्वास की स्वाभाविक गति का तो अभाव होता ही है पर कोष्ठ की वायु का बहिर्विरेचन करके वाहर ही धारण करने से प्रश्वास की स्वाभाविक गति का भो अभाव हो जाता है। इसी प्रकार पूरक प्राणायाम में प्रश्वास की गति का तो अभाव होता ही है, पर वाह्यवायु को पान करके शरीर के अन्दर धारण करने से स्वाँस की स्वाभाविक गति का भो अभाव हो जाता है और कुम्भक प्राणायाम में रेचन-पूरण प्रयत्न के बिना केवल विचारक प्रयत्न से प्राणवायु को एकदम जहाँ के तहाँ रोक देनें से श्वास-प्रश्वास दोनों की गति का अभाव हो जाता है।

जव ठीक आसन से बैठ जाय, तव ऊपर वतलाई हुई रीति से प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम के इन तीनों भेदों का विस्तार पूर्वक वर्णन अगले सूत्र में है। आसन यम नियम की भाँति योग का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, वह प्राणायाम की सिद्धि का उपाय है। इसलिए 'तस्मिन् सति' उसके अर्थात् आसन के हो जाने पर यह शव्द लाया गया है।

संगति—सुखपूर्वक प्रणायाम की प्राप्ति के लिए उसका भेद करके स्वरूप वताते हैं—

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥

बाह्य-वृत्ति (प्रश्वास)—श्वास को बाहर निकाल कर उसको स्वाभाविक गति का अभाव करना रेचक प्राणायाम है।

आभ्यान्तर वृत्ति (स्वाँस) श्वास अन्दर खींचकर उसकी स्वाभाविक गति का अभाव पूरक प्राणायाम है। स्तम्भवृत्ति—श्वास-प्रश्वास दोनों गतियों के अभाव से प्राण को एक दम जहाँ का तहाँ रोक देना कुम्भक

प्राणायाम है। जिस प्रकार तप्त लोहादि पर डाला हुआ जल एक साथ संकुचित होकर सूख जाता है, इसी प्रकार कुम्भक प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास दोनों की गति का एक साथ अभाव हो जाता है।

इन तीनों में प्रत्येक प्राणायाम तीन-तीन प्रकार का होता है—

१. **देश-परिदृष्ट**—देश से देखा हुआ अर्थात् देश से नापा हुआ।

जैसे—(१) रेचक में नासिका तक प्राण का निकलना, (२) पूरक में मूलाधार तक श्वास का ले जाना, (३) कुम्भक में नाभि चक्र आदि में एक दम रोक देना।

२. **काल परिदृष्ट**—समय से देखा हुआ, अर्थात् समयोपलक्षित समय की विशेष मात्राओं में श्वास का निकालना, अन्दर ले जाना और रोकना। जैसे दो क्षण में रेचक और एक क्षण में पूरक और चार क्षण में कुम्भक।

३. **संख्या परिदृष्ट**—संख्या से उपलक्षित। जैसे इतनी संख्या में पहला, इतनी संख्या में दूसरा और इतनी संख्या में तीसरा प्राणायाम। इस प्रकार अभ्यास किया हुआ प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म अर्थात् लम्बा और हल्का होता है।

भाव यह है कि ज्यों-ज्यों योगी का अभ्यास बढ़ता जाता है त्यों-त्यों रेचक, पूरक, कुम्भक—यह तीनों प्रकार का प्राणायाम, देश, काल और संख्या के परिणाम से दीर्घ (लम्बा), सूक्ष्म (पतला-हल्का) होता चला जाता है, अर्थात् पहले पहल रेचक प्राणायाम में बाहर फेंकते समय जितनी दूर तक प्राण जाता है, धीरे-धीरे अभ्यास से उसका परिणाम बढ़ता जाता है। इसकी जाँच इस प्रकार की जाती है कि रेचक प्राणायाम के समय पहले-पहल नासिका के सामने रुई की पतली परत रखने से जितनी दूर वह श्वास के स्पर्श से हिलती है, कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् उससे अधिक दूरी पर हिलने लगती है। इस प्रकार जब बारह अंगुल पर्यन्त रेचक स्थिर हो जाय, तब उसको दीर्घ-सूक्ष्म समझना चाहिए।

जिस प्रकार रेचक प्राणायाम में श्वास की लम्बाई बाहर बढ़ती जाती है। अन्दर श्वास खींचने में श्वास का स्पर्श चींटी जैसा प्रतीत होता है। यह स्पर्श अभ्यास के क्रम से नीचे की ओर नाभि तथा पादतल और ऊपर की ओर मस्तिष्क तक पहुँच जाता है। नाभि पर्यन्त पूरक स्थित हो जाने पर उसको भी दीर्घ-सूक्ष्म समझना चाहिए। इस प्रकार

केवल रेचक, पूरक की परीक्षा की जाती है, कुम्भक में न बाहर कुछ हिलता है, न अन्दर स्पर्श होता है। यह देश द्वारा परीक्षा हुई।

काल द्वारा परीक्षा

इसी प्रकार तीनों प्रकार का प्राणायाम अभ्यास द्वारा काल के परिणाम में भी बढ़ता जाता है। आरम्भ में जितने काल तक प्राणायाम होता है, धीरे-धीरे उससे अधिक काल तक बढ़ता जाता है। हाथ को जानु की चारों ओर फिराकर एक चुटकी बजा देने में जितना काल लगता है, उसका नाम मात्रा है। दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त हुआ प्राणायाम जब छत्तीस मात्राओं पर्यन्त श्वास-प्रश्वास की गति के आभाव में होने लगे, तब उसको दीर्घ सूत्र जानना चाहिए।

संख्या द्वारा परीक्षा

इसी प्रकार संख्या के परिणाम से प्राणायाम बढ़ता जाता है। प्राणायाम के बल से कई स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास का एक-एक श्वास बनता जाता है। जब बाहर श्वास-प्रश्वास का एक श्वास बनने लगे, तब जानना चाहिये कि दीर्घ-सूक्ष्म हुआ। यह प्रथम उद्‌घात मृदु दीर्घ-सूक्ष्म, चौबीस श्वास-प्रश्वास एक श्वास, द्वितीय उद्‌घात मध्य दीर्घ-सूक्ष्म और छत्तीस श्वास-प्रश्वास का एक श्वास, तृतीय उद्‌घात तीव्र-दीर्घ सूक्ष्म कहलाता है। उद्‌घात का अर्थ नाभि मूल से प्रेरणा की हुई वायु का सिर में टक्कर खाना है। यह प्राणायाम में देश, काल और संख्या का परिणाम है। इस प्रकार प्राणायाम अभ्यास से लम्बा (घड़ी, पहर, दिन, पक्ष आदि पर्यन्त) और सूक्ष्म बड़ी निपुणता से जानने योग्य होता चला जाता है।

यहाँ प्राणायाम का क्रियात्मक रूप बतला देना आवश्यक है। एक स्वस्थ मनुष्य स्वाभाविक रीति से एक मिनट में पन्द्रह बार श्वास लेता है। साधारण स्थिति में श्वास की गति इस क्रम से होती है—(१) श्वास का भीतर जाना, (२) भीतर रुकना, (३) बाहर निकलना, (४) बाहर रुकना। श्वास के भीतर जाने को श्वास, बाहर निकलने को प्रश्वास और अन्दर तथा बाहर रुकने को विराम कहते हैं। इस स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की गति के वशीकरण से शरीर के भीतर प्राण की समस्त सूक्ष्म-गतियों का वशीकरण हो जाता है और नाना प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। इन दोनों गतियों के नियम पूर्वक रोक देने के अभ्यास

से आयु बढ़ती है, शरीर स्वस्थ रहता है, कुण्डलिनी जाग्रत होती है। और मन जो अति चंचल तथा दुर्निग्रह है, प्राण से संबंध रखने के कारण उसके रुकने से शीघ्र स्थिर हो जाता है। योग का अन्तिम लक्ष्य चित्त की वृत्तियों का रोकना है, इसलिए सूत्रकार ने प्राणायाम को योग का चौथा अंग मानकर उसका लक्षण (नियम पूर्वक) श्वास-प्रश्वास की गति का रोकना किया है। तीन नियमित क्रियाओं से इस गति का निरोध किया जाता है इसलिए प्राणायाम के तीन भेद पूरक = आभ्यन्तर वृत्ति, रेचक = बाह्य वृत्ति और कुम्भक = स्तम्भ वृत्ति किये हैं।

१. **पूरक**—(आभ्यन्तर वृत्ति) द्वारा श्वास को देश (नाभि, मूलाधार आदि आभ्यन्तर प्रदेश तक ले जाकर), काल (श्वास की मात्राएँ बढ़ाकर) और संख्या (कई श्वासों का एक श्वास बनाकर) के परिणाम से दीर्घ और सूक्ष्म करके उसकी गति का अभाव किया जाता है। इस प्रकार पूरक द्वारा श्वास की गति को रोक देने को पूरक सहित कुम्भक अथवा आभ्यन्तर कुम्भक कहते हैं।

२. **रेचक**—इसी प्रकार रेचक द्वारा प्रश्वास को देश, काल और संख्या के परिणाम से दीर्घ और सूक्ष्म करके उसको गति को रोक दिया जाता है। इस प्रकार प्रश्वास की गति को रोक देने को रेचक सहित कुम्भक अथवा बाह्य कुम्भक कहते हैं। जहाँ पूरक, रेचक दोनों से श्वास-प्रश्वास की गति को रोक दिया जाता है, वह सहित कुम्भक कहलाता है।

३. **बिना पूरक, रेचक किये हुए श्वास-प्रश्वास** दोनों की गतियों को कुम्भक द्वारा एकदम जहाँ का तहाँ रोक दिया जाता है। यह भी देश (हृदय की धड़कन, हाथ की नाड़ी आदि की चाल को देखकर), काल (कितनी मात्राओं में गति का अभाव रहा) और संख्या (कितनी विराम की संख्या में गति का अभाव रहा) के परिणाम से दीर्घ और सूक्ष्म होता है। इसको केवल **कुम्भक** कहते हैं।

४. इन तीनों प्रकार के प्राणायामों से भिन्न एक चौथी विलक्षण क्रिया श्वास-प्रश्वास की गति को रोकने की है। इसकी संज्ञा योग दर्शन में **चतुर्थ प्राणायाम** की है। इसमें श्वास-प्रश्वास की गति को रोके बिना केवल रेचक, पूरक किया जाता है। इसके निरन्तर अभ्यास से श्वास-प्रश्वास की गति देश, काल और संख्या के परिणाम से दीर्घ और सूक्ष्म होती हुई स्वयं निरुद्ध हो जाती है।

योग दर्शन के समाधि पाद के चौंतीसवें सूत्र में मुख्य प्राण के पाँच भेद—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान है। प्राण का निवास स्थान हृदय, अपान का मूलाधार और समान का नाभि बतला आये हैं। पूरक में प्राण समान से नीचे जाकर अपान के साथ मिलता है और रेचक में अपान समान से ऊपर जाकर प्राण से मिलता है। इसलिये कई योगाचार्यों ने प्राणायाम का लक्षण 'प्राण और अपान का मिलना' किया है। यथा—

प्राणापान समायोगः प्राणायाम इतीरितः।
प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचक पूरक कुम्भकैः॥

(योगियाज्ञवल्क्य ६।२)

'प्राण और अपान वायु के मिलाने को प्राणायाम कहते हैं, प्राणायाम कहने से रेचक, पूरक और कुम्भक की क्रिया समझी जाती है।'

वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचकपूरककुम्भकाः।
स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः॥

(योगियाज्ञवल्क्य ६।३)

'रेचक' 'पूरक' और 'कुम्भक'—यह तीनों तीन वर्ण रूप हैं अर्थात् इन तीनों में तीन-तीन वर्ण होते हैं। वहीं यह प्रणव कहा गया है। प्राणायाम प्रणव रूप ही है। अर्थात् जिस प्रकार ओम् में अ, उ, म—ये तीन वर्ण हैं, इसी प्रकार पूरक कुम्भक, रेचक तीनों में तीन-तीन वर्ण हैं, इसलिये यह तीनों प्रणव ही हैं। ऐसा जानकर इन तीनों के अलग-अलग अभ्यास में प्रणव-उपासना की भावना करनी चाहिये। प्राणायाम की क्रियाओं की भिन्नता से कुम्भक के आठ अवान्तर भेद बतलाये गये हैं। यथा—

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्टुकुम्भकाः॥

(गोरक्षसंहिता १९५, घेरण्डसंहिता)

'सहित, सूर्यभेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली भेद से कुम्भक आठ प्रकार के हैं।'

हठयोग प्रदीपिका में कुम्भक का आठवाँ भेद प्लाविनी माना है। इन सब प्रकार के उपर्युक्त कुम्भकों के वर्णन करने से पूर्व इनके सम्बन्ध में कई विशेष सूचनाएँ दे देना उचित प्रतीत होता है।

बन्धों का प्रयोग—स्थिरासन में खेचरी मुद्रा के साथ नेत्रों को बंद करके प्राणायाम अभ्यास करना चाहिये। सिर, गर्दन और मेरुदण्ड सीधे रहें, झुके न रहें। शरीर को तान कर नहीं रखना चाहिये, बल्कि ढीला छोड़ देना चाहिये। मूल बंध आरम्भ से अन्ततक तीनों प्राणायामों में लगा रहना चाहिये। उड्डीयान को भी लगाये रखने का प्रयत्न करें, रेचक में पूरा उड्डीयान करके पेट को पीठ से मिला देना चाहिये। पूरक और कुम्भक के समय पेट की नाड़ियों को फुलाकर आगे की ओर नहीं बढ़ाना चाहिये, प्रत्युत सिकोड़कर ही रखना चाहिये। पूरक करके कुम्भक के समय जालन्धर-बंध लगाकर वायु को अंदर रोकना होता है। कुम्भक की समाप्ति पर जालन्धर-बंध खोलकर रेचक किया जाता है। जालन्धर-बंध यद्यपि बहुत लाभदायक है तथापि तनिक-सी असावधानी होने पर इसमें हानि पहुँचने की भी सम्भावना रहती है तथा इसके द्वारा गर्दन झुकाने की आदत भी कई अभ्यासियों को पड़ जाती है, इसलिये राजयोग के अभ्यासियों के लिये अधिक हितकर नहीं है। बिना जालन्धर-बंध लगाये दोनों नासिका पुट को अंगुलियों से बंद करके अथवा इसके बिना भी कुम्भक किया जाता है।

२ **अंगुलियों का प्रयोग**—वाम नासिका पुट से पूरक करते समय दाहिने नासिका पुट को दाहिने हाथ के अंगूठे से दबाना होता है। कुम्भक के समय वाम नासिका पुट को भी दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्ठिका से दबाकर वायु को अंदर रोकना होता है। अर्थात् यदि जालन्धर-बंध न लगाना हो तो कुम्भक में दोनों नासिका पुट (नथुने) सीधे हाथ की नियुक्ति अंगुलियों से बंद किये जाते हैं। दक्षिण नासिका पुट से रेचक करते समय केवल वाम नासिकापुट को बन्द रखना होता है, दाहिने पर से अंगुलियाँ हटा ली जाती हैं, इसी अवस्था में दाहिने नथुने से पूरक किया जाता है और कुम्भक के समय इसको भी पूर्ववत् बन्द कर दिया जाता है। बायें नथुने से रेचक के समय उस नथुने पर से अंगुलियाँ हटा ली जाती हैं। दोनों नथुनों से रेचक तथा पूरक करते समय दोनों नथुने पर से अंगुलियाँ हटा ली जाती हैं। आरम्भ में ही अंगुलियों के प्रयोग की आवश्यकता होती है। अभ्यास परिपक्व हो जाने पर नथुनों को अंगुलियों से दबाये बिना भी रेचक, पूरक, कुम्भक किया जा सकता है। यदि कुम्भक में जालन्धर-बंध लगाया हो तो अंगुलियों द्वारा नथुनों को बन्द करने की आवश्यकता नहीं होती। आगे बतलाये जाने वाले रेचक,

पूरक, कुम्भक में अंगुलियों द्वारा नासिकापुट का खोलना, बन्द करना पाठक गण स्वयं समझ लें, हमें अब उनके बतलाने की आवश्यकता नहीं रही।

३. प्राणायाम के आरम्भ में जिस नासिका पुट से पूरक करना हो उससे प्रथम पूरा श्वास बाहर निकाल देना चाहिये।

सगर्भ (सबीज) सहित कुम्भक—

> **सहितो द्विविधः प्रोक्तः प्राणायामं समाचरेत् ।**
> **सगर्भो बीजमुच्चार्य निर्गर्भो बीज वर्जितः ।।**

'सहित-कुम्भक सगर्भ और निर्गर्भ भेद से दो प्रकार का कहा गया है। सगर्भ वीज मन्त्र के उच्चारण के साथ किया जाता है और निर्गर्भ वीज मन्त्र को छोड़कर किया जाता है।'

सगर्भ अर्थात् सबीज प्राणायाम की विधि—पूरक का वीज मंत्र 'अं' है, कुम्भक का 'उं' और रेचक का 'मं' है। इस प्रकार सहित—प्राणायाम को प्रणवात्मक समझ कर उसमें 'प्रणव' की उपासना की भावना करते हुए पूरक में 'अं' का, कुम्भक से 'उं' का और रेचक में 'मं' का जाप करते हुए अथवा पूरक, कुम्भक और रेचक तीनों को अलग-अलग प्रणवात्मक जानकर उनमें 'प्रणव' की उपासना की भावना करते हुए तीनों में 'ओम्' की निश्चित मात्रा से जाप करना सबीज अथवा सगर्भ प्राणायाम है। एक बात यह जान लेनी चाहिए कि पूर्व विधि के अनुसार प्रणव का उल्लेख किया गया है। परन्तु जिसका जो वीज मंत्र हो उसी का जाप करना चाहिए।

१. साधारण सहित अथवा अनुलोम विलोम कुम्भक—वीज मन्त्र 'अं' अथवा ओ३म् का छः वार मानसिक जाप करते हुए बायें नासिका पुट से धीमे-धीमे विना आवाज किये हुए वायु को मूलाधार तक पूरक करे। चौबीस वार वीज मंत्र 'उं' अथवा ओ३म् को मानसिक जाप करते हुए कुम्भक करे। बीज मन्त्र 'मं' अथवा ओ३म् बारह वार मानसिक जाप करते हुए धीरे-धीरे विना आवाज किये वायु को दायें पुट से रेचक करे, थोड़ी देर (एक क्षण) वायु को वाहर रोक कर पूर्ववत् वारह मात्रा में 'अं' अथवा ओ३म् का जाप करते हुए इसी नासिका से पूरक करे। पूरक के पश्चात् पूर्ववत् कुम्भक तत्पश्चात् वायें नासिका-पुट से रेचक करे, ये दो प्राणायाम हुए। इसी प्रकार दोनों नासिका पुटों से एक साथ पूरक, कुम्भक और रेचक करके प्राणायाम किया जा सकता

है। प्राणायाम की संख्या यही रहे। मात्राएँ—पूरक, कुम्भक और रेचक एक, चार, दो के हिसाब से यथा शक्ति बढ़ाते रहे।

निम्नलिखित क्रमानुसार मात्राओं को शनैः-शनैः बढ़ाया जा सकता है—

पूरक-मात्रा	कुम्भक-मात्रा	रेचक-मात्रा	दिन तक
६	८	६	१५
६	१२	९	१५
६	१८	१०	१५
६	२४	१२	१५
६	२८	१४	१५
७	३२	१६	१५
८	३६	१८	१५
९	४०	२०	१५
१०	४४	२२	१५
१२	४८	२४	१५
१३	५२	२६	१५
१४	५६	२८	१५
१५	६०	३०	१५
१६	६४	३२	१५
१७	६८	३४	१५
१८	७२	३६	१५
१९	७६	३८	१५
२०	८०	४०	१५

इसके पश्चात् यदि चाहें तो केवल कुम्भक कर सकते हैं। मात्राओं को बढ़ाने में शीघ्रता न करें, यथा शक्ति शनैः शनैः बढ़ावें।

साधारण सहित कुम्भक के अन्तर्गत कई अन्य उपयोगी प्राणायाम—

(क) **तालयुक्त प्राणायाम**—हाथ की कलाई पर अंगूठे की ओर नब्ज-वाली नाड़ी पर अंगुलियों को रखकर उसकी धड़कन (गति) की चाल को अच्छी प्रकार पहचानने का अभ्यास करने के पश्चात् इस प्रणायाम को निम्न विधि से करें—

प्रथम विधि—किसी सुखासन से विधि के अनुसार बैठकर उस नाड़ी की धड़कन को १ से ६ तक गिनते हुए पूरक १ से ३ तक गिनते हुए आभ्यान्तर कुम्भक १ से ६ तक गिनते हुए रेचक और १ से ३ तक गिनते हुए वाह्य कुम्भक करे। यह एक प्राणायाम हुआ इस प्रकार सात प्राणायाम करे, मात्राएँ इसी क्रमानुसार यथा शक्ति बढ़ाते जाय। इसी प्रकार अनुलोम विलोम रीति से यह प्राणायाम किया जा सकता है।

फल—मन की एकाग्रता तथा विना तार के तार वाले यंत्र अथवा रेडियो के सदृश दूर-दूर स्थानों में बैठे हुए दो मनुष्य एक निश्चित समय पर इस प्राणायाम द्वारा ताल युक्त होकर अपने विचार को तरंगें (धारे) एक दूसरे तक पहुँचा सकते हैं।

दूसरी विधि—उपर्युक्त विधि के परिपक्व होने पर सातों चक्रों पर क्रमानुसार ध्यान करते हुए इस प्राणायाम को करे।

मूलाधार चक्र—पूरक में ऐसी भावना करे कि श्वास उस स्थान में आ रहा है। आभ्यन्तर कुम्भक के पश्चात् रेचक में ऐसी भावना करे की श्वास वहाँ से बाहर निकल रहा है फिर बाह्य कुम्भक करे, इस प्रकार सात प्राणायाम करे इसी प्रकार क्रमानुसार स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र तथा ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करते हुए प्राणायाम करे।

फल—चक्र भेदन में सहायता, शरीर के किसी विशेष अंग के विकारी होने पर उस स्थान पर इस प्राणायाम द्वारा प्राण को भरकर विकार को हटाना।

२. सूर्यभेदी कुम्भक—बल पूर्वक सूर्य नाड़ी अर्थात् दाहिने नासिका पुट से धीरे-धीरे आवाज के साथ पूरक करें, (प्राण वायु को पूर्णतया कोष्ठ में भरकर नख से शिखा पर्यन्त फैलाकर) बल पूर्वक जब तक वायु को रोक सकें तब तक कुम्भक करें। इसके पश्चात् चन्द्र नाड़ी अर्थात् वाम नासिका पुट से धैर्य के साथ आवाज करते हुए वेग पूर्वक रेचक करें। यह एक प्राणायाम हुआ। आरम्भ में इस प्रकार पाँच प्राणायाम करे, शनैः शनैः शक्ति के अनुसार संख्या बढ़ाते जायँ। इस प्राणायाम में पुनः पुनः केवल सूर्य नाड़ो से ही पूरक और वाम नाड़ी से ही रेचक किया जाय।

सूर्यभेदी प्राणायाम से शरीर में उष्णता तथा पित्त की वृद्धि होती है। वात और कफ से उत्पन्न होने वाले रोग, रक्त दोष, त्वचा दोष,

उदर रोग, कृमि आदि नष्ट होते हैं। जठराग्नि बढ़ती है और कुण्डलिनी शक्ति के जागरण करने में सहायता मिलती है। इस प्राणायाम का अभ्यास गर्मी के दिनों में तथा पित्त प्रधान प्रकृति वाले पुरुषों के लिए हितकर नहीं है।

चन्द्रभेदी प्राणायाम सूर्यभेदी प्राणायाम से बिल्कुल उल्टा अर्थात् चन्द्र स्वर (बायें नासिका पुट) से पूरक और सूर्य स्वर (दाहिने नासिका पुट) से रेचक करने से चन्द्रभेदी प्राणायाम होता है। इससे थकावट और शरीर की उष्णता दूर होती है।

३. **उज्जाई-कुम्भक**—मुख को किसी कदर झुकाकर कंठ से हृदय पर्यन्त शब्द करते हुए दोनों नासिका पुट से (अथवा दाहिने नासिकापुट से) शनैः शनैः पूरक करे। कुछ देर तक कुम्भक करने के पश्चात् बायें नासिकापुट से इसी प्रकार रेचक करे। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्राणायाम में कुम्भक, पूरक, रेचक स्वरूप परिणाम में किये जाते हैं। कुम्भक में वायु हृदय से नीचे नहीं जाना चाहिए। रेचक में जितना हो सके शनैः शनैः वायु का विरेचन करना चाहिए। इसमें पूरक में नासिका छिद्र द्वारा वायु को बाहर से खींच कर मुख में, मुख से कण्ठ में और कण्ठ से ले जाकर हृदय में धारण किया जाता है। फिर यथा क्रम रेचक में हृदय से कण्ठ में, कण्ठ से मुख में और मुख से वायु को बाहर निकाला जाता है। पाँच से आरम्भ करके शनैः शनैः यथा शक्ति संख्या बढ़ाते जायँ।

फल—कफ प्रकोप, उदर रोग, आमवात, मन्दाग्नि, प्लीहा आदि का दूर होना, अग्नि प्रदीप्त होना एवं कण्ठ, मुख और फेफड़ों की स्वच्छता।

दीर्घसूत्री उज्जाई—इसमें कण्ठ की सहायता से लम्बी, दीर्घ और हलकी आवाज उत्पन्न करते हुए मन की एकाग्रता के लिए केवल पूरक रेचक किया जाता है।

४. **शीतली कुम्भक**—काक के चोंच की आकृति में जिह्वा ओष्ठ से बाहर निकाल कर वायु को शनैः शनैः पूरक करे। धीरे-धीरे पेट को वायु से पूर्ण करके सूर्यभेदी प्राणायाम के सदृश कुछ देर कुम्भक करने के पश्चात् दोनों नासिकापुट से रेचक करें। पुनः पुनः इसी प्रकार करे।

फल—अजीर्ण, पित्त से उत्पन्न होने वाले रोग, रक्त-पित्त, रक्त-विकार, पेचिश, अम्ल पित्त, प्लीहा, त्रीखा आदि रोग इससे दूर होते हैं, बल और

सौंदर्य की वृद्धि होती है। कफ प्रकृति वाले मनुष्यों के लिए तथा शीत काल में इस प्राणायाम का अभ्यास हितकर नहीं है।

निम्नलिखित प्राणायामों को शीतली के अन्तर्गत समझना चाहिए। इनकी विधि और फल भी लगभग उसी के समान है। शरीर में ठण्ड पहुँचाने तथा क्षय राज यक्ष्मा आदि रोगों को नाश करने में अति उपयोगी होते हैं।

(क) शीतकारी—जिह्वा को ओठों से बाहर निकाल कर और उसका बिल्कुल अगला भाग दाँतों की पंक्ति में ओष्ठों से साधारण हल्का दबाकर छिद्रों से वायु को शीत्कार पूर्वक अर्थात् शीत्कार की आवाज उत्पन्न करते हुए पूरक करे, अन्य सब विधि शीतली के समान।

(ख) काकी प्राणायाम—इसमें ओष्ठों को सिकोड़ कर काक की चोंच के समान बनाकर वायु को शनैः शनैः पूरक किया जाता है, अन्य सब विधि शीतली के समान।

(ग) कवि प्राणायाम—दोनों दाँतों की पंक्तियों को दबा कर उनके छिद्रों द्वारा वायु को शनैः शनैः पूरक करें, अन्य सब विधि पूर्ववत्। वाणी का मीठा और कण्ठ का सुरीला होना यह इसमें विशेषता है।

(घ) भुजंगी प्राणायाम—भुजंग के सदृश मुख को खोल कर वायु को पूरक करे। अन्य सब विधि पूर्ववत्। इन प्राणायामों में कहीं-कहीं पाँच बार केवल पूरक, रेचक करने के पश्चात् छठीं बार कुम्भक करना बतलाया है।

(५) भस्त्रिका कुम्भक—भस्त्रिका प्राणायाम कई प्रकार से किया जाता है। इसके मुख्य चार भेद हैं—मध्यम भस्त्रिका, वाम भस्त्रिका, दक्षिण भस्त्रिका और अनुलोम-विलोम भस्त्रिका।

(क) मध्यम भस्त्रिका—जैसे लुहार की धौंकनी से वायु भरी जाती है, इसी प्रकार दोनों नासिकापुट से वायु को आवाज के साथ धीमे-धीमे लंबा, दीर्घ और वेग पूर्वक मूलाधार तक पूरक करें। बिना कुम्भक किये इसी प्रकार दोनों नासिका पुट से रेचक करे। इस प्रकार बिना आभ्यन्तर और बाह्य कुम्भक के आठ बार पूरक-रेचक करके नवीं बार पूरक करके यथा शक्ति कुम्भक करके दशवीं बार उसी प्रकार धीमे-धीमे दोनों नासिकापुट से रेचक करें। यह प्राणायाम हुआ। इस प्रकार तीन प्राणायाम करें।

(ख) वाम भस्त्रिका—दक्षिण नासिका पुट को वंद करके उपर्युक्त रीति से वाम नासिकापुट से मूलाधार तक आठ वार पूरक, रेचक करके नवीं वार पूरक करके यथा शक्ति कुम्भक करे। तत्पश्चात् उपर्युक्त विधि के अनुसार दक्षिण नासिका पुट से रेचक करे। यह एक प्राणायाम हुआ।

(ग) दक्षिण भस्त्रिका—वाम नासिकापुट वन्द करके दक्षिण नासिकापुट से आठ वार बिना आभ्यन्तर और वाह्य कुम्भक के उपर्युक्त विधि के अनुसार पूरक रेचक करने के पश्चात् नवीं वार पूरक करके यथा शक्ति कुम्भक करे। तत्पश्चात् वाम नासिकापुट से रेचक करे। यह एक प्राणायाम हुआ।

वाम भस्त्रिका और दक्षिण भस्त्रिका को मिलाकर करने की विधि—

पहले वाम भस्त्रिका का एक प्राणायाम करे, फिर दक्षिण भस्त्रिका का एक प्राणायाम, तत्पश्चात् वाम भस्त्रिका का एक प्रणायाम। इस प्रकार इन तीन प्राणाणायों में दो बार वाम भस्त्रिका और एक वार दक्षिण भस्त्रिका होगा।

(घ) अनुलोम-विलोम भस्त्रिका—जैसे लोहार की धौंकनी से वायु भरी जाती है इसी प्रकार वायें नासिकापुट से वायु को ध्वनि के साथ धीमे-धीमे लम्बा, दीर्घ और वेग पूर्वक मूलाधार तक पूरक करे, बिना कुम्भक किये इसी प्रकार दक्षिण नासिकापुट से रेचक करें। ये चार प्राणायाम हुए। इस प्रकार आठ बार बिना कुम्भक किये केवल पूरक रेचक करते हुए नवीं वार वाम नासिकापुट से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करें। तत्पश्चात् दशवीं बार दक्षिण नासिका पुट से रेचक करे। यह दश प्राणायाम का पहला प्राणायाम हुआ। अब दक्षिण नासिकापुट से आरम्भ करके नवीं बार कुम्भक के पश्चात् दशवीं वार वाम नासिकापुट से रेचक करे। यह दूसरा प्राणायाम हुआ। अव पहले प्राणायाम की भाँति तीसरा प्राणायाम करें।

इन विधियों में पूरक की समाप्ति पर मूलाधार चक्रपर एक क्षण कुछ (कुछ देर) ध्यान के पश्चात् रेचक करें। इसी प्रकार रेचक की समाप्ति पर नासिका के अग्रभाग पर कुछ देर (एक क्षण) ध्यान के पश्चात् पूरक करें। कुम्भक के समय नाभि स्थान मणिपुर चक्रपर ध्यान लगावें। यह प्राणायाम तीन वार ही करें। अर्थात् तीन से अधिक बार कुम्भक बढ़ाने का यत्न न करें। किन्तु तीनों प्राणायामों की संख्या दस से ऊपर

शनैः शनैः यथाशक्ति चार-चार बढ़ाते हुए १४, १८, २२ इत्यादि करते चले जायँ। पूरक, रेचक और कुम्भक का समय भी यथाशक्ति बढ़ाते जायँ।

इस प्राणायाम से त्रिधातु-विकृति से उत्पन्न सब रोग नष्ट हो जाते हैं, आरोग्यता बढ़ती है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, गर्मी, सर्दी सब ऋतुओं में किया जा सकता है। कुम्भक बढ़ाने, मन के स्थिर करने और कुण्डलिनी जागृत करने में अति उपयोगी है। अभ्यासी गण ध्यान से पूर्व इसे अवश्य करें। भस्त्रिका में रेचक, पूरक अधिक लाभदायक होता है, इसलिए इनकी संख्या अधिक और कुम्भक की कम बतलायी गयी है।

(१) बलहीन या असक्त साधकों को साधारण वेग पूर्वक, (२) स्वस्थ शक्ति साधकों को लम्बा, दीर्घ वेग पूर्वक और (३) अभ्यस्त साधकों को अति वेग पूर्वक पूरक, रेचक करना चाहिए।

रेचक में पूरक से अधिक समय देना चाहिए। इसलिए पूरक और कुम्भक में उतना ही समय देना चाहिए, जिससे रेचक करने के लिए काफी दम बना रहे।

निम्नलिखित दो प्राणायामों को भस्त्रिका के अन्तर्गत समझना चाहिए।

(क) **अन्तरगमन प्राणायाम**—सिद्ध आसन से बैठकर वाम नासिका-पुट से रेचक करते हुए पूरे उड्डीयान के साथ वाम घुटने पर सिर को टेक देना तत्पश्चात् पूरक करते हुए सीधा हो जाना। इस प्रकार रेचक, पूरक करते हुए दसवीं बार पूरक करके जालन्धर-बन्ध के साथ सिर को घुटने पर रखकर यथाशक्ति बाह्य कुम्भक करना। इसी प्रकार दक्षिण की ओर करे।

(ख) **सिद्ध अथवा पद्मासन** से बैठकर वाम नासिकापुट से पूरक करें, फिर जालन्धर-बन्ध लगाकर दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में सटाकर उनको उल्टा करके सिर को दबाते हुए यथाशक्ति कुम्भक करें और ऐसी भावना करे कि प्राण ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ रहा है। तत्पश्चात् दोनों हाथों को सिर पर से हटाकर और जालन्धर-बन्ध खोल कर दक्षिण नासिकापुट से रेचक करें। इसी प्रकार कई बार करें।

६. **भ्रामरी कुम्भक**—इस प्राणायाम में पूरक और रेचक की विशेषता है। पूरक वेग से और भ्रमर के शब्द के सदृश शब्द युक्त होता है।

और रेचक भृङ्गी (भ्रामरी) के सदृश मन्द-मन्द शब्द से युक्त होता है। रेचक का महत्त्व अधिक है इसलिए इसका नाम भ्रामरी रखा गया है।

नेत्र बन्द करके भ्रूमध्य में ध्यान करते हुए दोनों नासिकापुट से भृङ्ग अर्थात् भौंरे के सदृश ध्वनि करते हुए लम्बे स्वर में पूरक करे। यथाशक्ति कुम्भक करके भृङ्गी अर्थात् भौंरी के मन्द-मन्द शब्द के सदृश ध्वनि करते हुए कण्ठ से रेचक करें। आवाज मीठी, सुरीली और एक-तान की होनी चाहिए। इसके साथ-साथ मूल और उड्डीयान-बन्ध लगाते जाना चाहिए। कहीं-कहीं साधारण रीति से वेग पूर्वक रेचक करके दृढ़ता पूर्वक जालन्धर-बन्ध लगाकर कण्ठ से उपयुक्त रीति से शब्द करते हुए रेचक करना बतलाया है।

घेरण्ड संहिता में दोनों कानों को अँगुलियों से बन्द करके शब्द सुनने को बतलाया गया है। इस प्रकार पहले झींगुर, भौंरे और पक्षियों के चहचहाने जैसा शब्द सुनाई देता है। फिर क्रमशः घुँघरु, शंख, घंटा, ताल, भेरी, मृदंग, नफीरी और नगाड़े के सदृश शब्द सुनाई देते हैं। इस प्रकार उन शब्दों को सुनते हुए 'सोहं' शब्द का श्रवण होने लगता है।

अनुलोम-विलोम भ्रामरी प्राणायाम—उपर्युक्त विधि के अनुसार वाम-नासिकापुट से पूरक करके कुछ देर कुम्भक के पश्चात् दक्षिण नासिका-पुट से उसी प्रकार रेचक, फिर दक्षिण नासिकापुट से पूरक, वाम से रेचक, वाम से पूरक, दक्षिण से रेचक यह एक प्राणायाम हुआ।

फल—इस प्राणायाम से वीर्य का शुद्ध होकर ऊर्ध्वगामी होना, रक्त एवं मज्जा-तन्तुओं का शुद्ध होना और मन का एकाग्र होना होता है।

ध्वन्यात्मक प्राणायाम—इस प्राणायाम को भी भ्रामरी के अन्तर्गत समझना चाहिए। विधि यह है कि दोनों नासिकापुट से पूरक करके, किंचित् मुँह को खोलकर जिह्वा और कण्ठ के सहारे 'सोहं' का मीठी सुरीली लगातार एक ध्वनि के साथ उच्चारण करो। आवाज के साथ-साथ मूल और उड्डीयान-बन्ध लगाते जाना चाहिए और रेचक करते जाना चाहिए। इसे प्रणवानुसंधान भी कहते हैं।

फल—भ्रामरी प्राणायाम के सदृश।

मूर्च्छा कुम्भक (षण्मुखी सर्वद्वार-बंद मुद्रा)—इस प्राणायाम में पूरक, रेचक, भ्रामरी प्राणायाम के सदृश किया जाता है। उससे इसमें केवल इतनी विशेषता है कि यह दोनों कान, नेत्र, नासिका और मुँह पर

क्रमशः दोनों हाथों के अंगुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका तथा कनिष्ठिका को रखकर किया जाता है, पूरक के समय नासिकापुट से मध्यमा को किंचित् ऊपर उठाकर पूरक किया जाता है। इसके पश्चात् नासिकापुट को मध्यमा से दबाकर कुम्भक किया जाता है। कुम्भक की समाप्ति पर फिर नासिकापुट से मध्यमा को शिथिल करके रेचक किया जाता है। यह प्राणायाम अनुलोम विलोम रीति से भी उपर्युक्त विधि के अनुसार किया जा सकता है।

फल—इससे मन मूर्छित और शान्त होता है। अतः इसका नाम मूर्छा है।

८. प्लावनी कुम्भक—यथाविधि आसन से बैठकर दोनों नासिका-पुट से पूरक करे। नाभि पर मन को एकाग्र कर सब शरीर मात्र की वायु को उदर में भरकर पेट की चारों ओर से मसक या रबड़ के गोले-सदृश फुलाकर ऐसी भावना करे कि सारे शरीर का वायु पेट में एकत्र हो गया है और शरीर के किसी अङ्ग-प्रत्यङ्ग में वायु नहीं रहा है। यथा शक्ति इस स्थिति में कुम्भक करके दोनों नासिका से शनैः शनैः रेचक कर दें।

फल—प्राणवायु पर पूर्णतया अधिकार, पेट के सब प्रकार के रोग, कोष्ठबद्धता आदि का नाश, अपान वायु की शुद्धि, जठराग्नि, शुद्ध वीर्य तथा रक्त की शुद्धि, जल में सुखपूर्वक तैरना इत्यादि।

केवल कुम्भक—केवल कुम्भक बिना पूरक, रेचक किये हुए एकदम स्वाँस की गति को जहाँ की तहाँ रोक देने से होता है।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥
(गीता ४।२९)

कोई अपान वायु में प्राण को हवन करते हैं (पूरक सहित अथवा आभ्यन्तर कुम्भक करते हैं)। कोई प्राण वायु में अपान वायु को होमते हैं। (रेचक सहित अथवा बाह्य कुम्भक करते हैं)। कोई प्राण-अपान (दोनों) की गति को रोककर (केवल कुम्भक) प्राणायाम करते हैं। सहित कुम्भक के निरन्तर अभ्यास से केवल कुम्भक होने लगता है। केवल कुम्भक की विधि हठयोग द्वारा-तीनों बन्धों के साथ प्राण को हृदय से नीचे ले जाकर और अपान को मूलाधार से ऊपर उठाकर समानवायु के स्थान नाभि पर दोनों के टक्कर देकर मिलाने से हठयोग विधि से केवल

कुम्भक किया जाता है। पर इसमें हानि पहुँचने की सम्भावना है और राजयोगियों के लिए अधिक हितकर नहीं है, उनके लिए सबसे उत्तम प्रकार निम्नलिखित है—

साधारण स्वस्थ अवस्था में मनुष्य के श्वास की गति एक दिन-रात २१६०० वार बतलायी जाती है। इस स्वाभाविक गति की संख्या गायन, भोजन, करने, चलने, निद्रा, मैथुन, व्यायाम आदि में क्रमशः बढ़ जाती है। जिस प्रकार साधारण घटनाओं को छोड़कर एक घड़ी अथवा अन्य यंत्रों की आयु उसके काम करने की शक्ति पर निश्चित कर देता है। इसी प्रकार मनुष्य की आयु उसके श्वास-प्रश्वास की गति पर निर्भर बतलायी जाती है। श्वास-प्रश्वास की संख्या जिस परिणाम से बढ़ती जायगी उसी परिणाम से आयु का क्षय और जिस परिणाम से घटती जायगी उसी परिणाम से आयु की वृद्धि होती जायगी। केवल कुम्भक में श्वास-प्रश्वास की गति का निरोध होता है। प्राण और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए प्राण के रुकने से मन का भी निरोध हो जाता है, जो योग का अंतिम ध्येय है।

केवल कुम्भक की विधि राजयोग द्वारा—श्वास-प्रश्वास की गति में प्रणव-उपासना की भावना करे, अर्थात् हर समय यह भावना रहे कि श्वास में 'ओ' और प्रश्वास में 'अम्' रूप से प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में 'ओम्' का जाप हो रहा है। इस ओम् के अजपाजाप को केवल कुम्भक में परिणत करने की विधि यह है कि 'ओ' से श्वास लेकर जितनी देर तक शान्ति पूर्वक रोक सकें रोकें, उसके पश्चात् 'अम्' से छोड़ दे। क्रमशः कुम्भक से अभ्यास बढ़ाता रहे।

इसका अभ्यास नासिका के अग्रभाग, भृकुटि, ब्रह्मरन्ध्र आदि स्थानों पर गुरु आज्ञानुसार करना चाहिए। 'ओ' और 'अम्' के उच्चारण की आवश्यकता नहीं है केवल अपने नियत स्थान पर श्वास-प्रश्वास की गति पर इस भावना से ध्यान देना होता है।

प्राणायामों को किसी विशेष अनुभवी से सीखकर उनका अभ्यास करना चाहिए, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि पहुँचने की सम्भावना है। नियमित अहार आदि जो योगियों के लिये बतलाये गये हैं और विशेष रूप से योग दर्शन में बतलाये हुए नियमों का पालन करना भी अति आवश्यक है।

यद्यपि सभी प्राणायाम स्वस्थ निरोगता, जठराग्नि, दीर्घ आयु, नाड़ी तथा रक्तशोधन और मन की स्थिरता के लिए अति उपयोगी हैं और सबकी जानकारी आवश्यक है। पर सबके अभ्यास के लिए पर्याप्त समय मिलना कठिन है, इसलिए राजयोग के साधकों के लिए चतुर्थ प्राणायाम का अभ्यास ही अधिक हितकर हो सकता है। निम्न तीन प्राणायामों को चौथे प्राणायाम और ध्यान तथा अन्य सब प्रकार के प्राणायामों का पूर्व अंग बनाने में शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है।

१. नाड़ीशोधन-प्राणायाम—वाम नासिकापुट से एकदम बाहर साँस फेंके, फिर उसी नासिकापुट से बाहर से वायु को खींचकर बिना रोके हुए एकदम दूसरे दाहिने नथुने से बाहर फेंक दे। पुनः दाहिने से वायु को खींच कर बायें से फेंके। इस प्रकार कई बार करें। रेचक, पूरक में नासिकापुट को बतलाए हुए नियमानुसार निश्चित अँगुलियों से खोलते और बन्द करते रहें।

२. कपाल भाँति—इसकी विधि घेरण्ड संघिता में विधि पूर्वक बतलाई गई है।

३. अनुलोप-विलोम भस्त्रिका प्राणायाम—इसकी विधि आठ कुम्भकों में पाँचवें प्राणायाम में बतलायी है।

संगति—चौथे प्राणायाम के लक्षण बतलाते हैं।

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—बाह्य–आभ्यन्तर–विषय आक्षेपी = बाहर अंदर के विषय को फेंकने वाला अर्थात् आलोचना करने वाला, चतुर्थः = चौथा प्राणायाम है।

अन्वयार्थ—बाहर-अंदर के विषय को फेंकने वाला अर्थात् आलोचना करने वाला चौथा प्राणायाम है।

व्याख्या व्यास भाष्य—

देशकालसंख्याभिर्बाह्यविषयपरिदृष्ट आक्षितः। तथाऽऽभ्यन्तरविषयपरिदृष्ट आक्षितः। उभयथा दीर्घसूक्ष्मः। तत्पूर्वको भूमिजयात्क्रमेणोभयोर्गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायामः। तृतीयस्तु विषयानालोचितोगत्यभावः सकृदारब्ध एव देशकालसंख्याभि परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। चतुर्थस्तु श्वासप्रश्वासयोर्विषयावधारणात्क्रमेण भूमिजयादुभयाक्षेपपूर्वको गत्यभावश्चतुर्थ प्राणायाम इत्ययं विशेष इति ॥ ५१ ॥

देश काल और संख्या से परिदृष्ट जो वाह्य-विषय (नासा द्वादशान्तादि वाह्य प्रदेश) है उसके आक्षेप पूर्वक (आलोचनपूर्वक = ज्ञानपूर्वक = विषयपूर्वक = विचारपूर्वक), ऐसे ही देशकाल और संख्या से परिदृष्ट जो आभ्यन्तर विषय (हृदय नाभि-चक्रादि आभ्यन्तर प्रदेश) है जो उसके आक्षेप पूर्वक दीर्घ और सूक्ष्म दोनों प्रकार से उत्तरोत्तर क्रम से भूमियों के जय के पश्चात् जो श्वास और प्रश्वास इन दोनों की गति का अभाव है, वह चौथा प्राणायाम है। तीसरा प्राणायाम तो (वाह्य और आभ्यन्तर) विषय के आलोचन बिना ही (श्वास-प्रश्वास की) गति के अभाव से होता है। वह एकदम ही आरम्भ होकर देश काल और संख्या से परिदृष्ट दीर्घ और सूक्ष्म हो जाता है। चौथे प्राणायाम में यह विशेषता है कि यह श्वास-प्रश्वास (आभ्यन्तर और वाह्य) विषय को अवधारण करके उन दोनों (विषयों) के आक्षेपपूर्वक क्रमानुसार भूमियों के जय से (श्वास-प्रश्वास की) गति के अभाव से होता है।

व्यास भाष्य का भावार्थ—पिछले सूत्र में प्राणायाम के तीन भेद रेचक, पूरक और कुम्भक बतलाते हैं।

१. रेचक प्राणायाम से जब स्वाँस को वाहर निकाल कर उसकी गति का प्रभाव किया जाय अर्थात् उसको अन्दर ही रोक दिया जाय, तब वह रेचक सहित कुम्भक अथवा बाह्य कुम्भक कहलाता है।

२. पूरक प्राणायाम से जब स्वाँस को अन्दर खींच कर उसकी गति का अभाव किया जाय अर्थात् उसे अन्दर ही रोक दिया जाय, तब वह पूरक सहित कुम्भक अथवा आभ्यन्तर कुम्भक कहलाता है।

३. जब प्राणवायु को जहाँ का तहाँ एक दम बिना रेचक पूरक के केवल विधारण प्रयत्न से रोक कर श्वास-प्रश्वास की गति का अभाव किया जाय, तब वह केवल कुम्भक कहलाता है।

४. चौथा प्राणायाम बाह्य तथा आभ्यन्तर कुम्भक के बिना केवल रेचक, पूरक द्वारा वाह्य तथा आभ्यन्तर विषय (प्रदेश) के केवल आलोचन पूर्वक स्वयं ही श्वास-प्रश्वास की गति विरोध से होता है। इसमें तीसरे प्राणायाम की यह विशेषता है कि जहाँ तीसरा प्राणायाम रेचक, पूरक के विना एक दोनों श्वास-प्रश्वास की गति के विषय में अभाव से होता है वहाँ चौथा प्राणायाम रेचक द्वारा बाह्य तथा आभ्यन्तर (प्रदेश) के आलोचना पूर्वक उत्तरोत्तर भूमियों के जय के क्रम से स्वयं ही श्वास-

प्रश्वास की गति के अभाव से होता है। उदाहरणार्थ उसकी चार विधियाँ बतलाये देते हैं।

पहली विधि—केवल रेचक द्वारा जहाँ तक जा सके श्वास को बाहर ले जायँ। बिना रोके हुए वहाँ से पूरक द्वारा जहाँ तक जा सके अन्दर ले जाय। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार ११, १५, २० इत्यादि की संख्या में बिना कुम्भक किए हुए केवल रेचक, पूरक देर तक करते रहने से स्वयं दीर्घ और सूक्ष्म होकर दोनों श्वास-प्रश्वास की गतियों का स्वयं अभाव हो जाता है।

दूसरी विधि—ओ३म् के मानसिक जाप के साथ यह भावना करे कि 'ओ' से स्वाँस अन्दर आ रहा है और 'अम्' से बाहर निकल रहा है। इस क्रम से श्वास-प्रश्वास द्वारा ओम् का मानसिक जाप करते रहें अर्थात् वाह्यप्रदेश तथा आभ्यन्तर प्रदेश हृदय नाभि आदि तक जहाँ तक श्वास जाय वहाँ तक उसकी गति की आलोचना पूर्वक दीर्घकाल तक ओम् का इस विधि से जाप करे तो स्वयं श्वास-प्रश्वास दीर्घ और सूक्ष्म होते निरुद्ध हो जायगा।

तीसरी विधि—नासिका के अग्रभाग भृकुटी, ब्रह्मरन्ध्र अथवा अन्य किसी चक्र पर इस भावना से ओइम् का मानसिक जाप करें कि 'ओ' से उसी प्रदेश में श्वास अन्दर आ रहा है और 'अम्' से बाहर निकल रहा है। इस प्रकार उस विशेष स्थान को श्वास-प्रश्वास का केन्द्र बनाए हुए निरन्तर अभ्यास से श्वास-प्रश्वास की गति दीर्घ और सूक्ष्म होते हुए स्वयं निरुद्ध हो जाती है।

चौथी विधि—ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करते हुए श्वास-प्रश्वास की गति में ऐसी भावना करना कि 'ओ' से श्वास मेरुदण्ड के भीतर सुषुम्णा नाड़ी में होता हुआ मूलाधार तक जा रहा है और 'अम्' के साथ वहाँ से ब्रह्मरन्ध्र में लौट रहा है।

चक्रभेदन में इस प्राणायाम का अभ्यास—इसी प्रकार निचले चक्रों— मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक इत्यादि में ध्यान करते हुए 'ओ' से श्वास और 'अम्' से प्रश्वास की गति की भावना करते हुए उसको ऊपर के चक्रों में आलोचन करने से किया जाता है।

विशेष वक्तव्य—॥ सूत्र ५१ ॥—इस सूत्र के अर्थ भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न किये हैं। 'आक्षेप' के अर्थ फेंकने से है। इससे किसी ने

उलाँघने = त्यागने = हटाने से अभिप्राय लिया है और किसी ने विषय करने = जानने = आलोचन करने से अभिप्राय लिया है। यहाँ सूत्र के आशय को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से मूल व्यासभाष्य, उसके शब्दार्थ, भावार्थ तथा चतुर्थ प्राणायाम के चार उदाहरण भी दे दिये हैं। चौथे प्राणायाम की विधियाँ राजयोग के उत्तम अधिकारी के लिए हैं तथा गोपनीय और गुरु-गम्य हैं। आक्षेपी के अर्थ उलाँघने अर्थात् त्यागने करने से सूत्र का अर्थ इस प्रकार होगा—

बाहर और अन्दर के विषय को अर्थात् रेचक और पूरक को त्यागने वाला चौथा प्राणयाम है। उसकी विधि निम्न प्रकार होगी।

पाँचवीं विधि—मूलाधार, आज्ञा, ब्रह्मरन्ध्र आदि किसी चक्र अथवा नासिका के अग्रभाग आदि किसी स्थान को रेचक, पूरक के श्वास-प्रश्वास की गति बनाते हुए अर्थात् ऐसी भावना करते हुए कि 'ओ' से विशेष स्थान पर श्वास आ रहा है और 'अम्' से छूट रहा है, ओइम् का मानसिक जाप करे। उसके निरन्तर अभ्यास से श्वास-प्रश्वास की गति निरन्तर निरोध हो जाता है। इस विधि को सबसे प्रथम स्थान देना चहिए। चक्र भेदन में इस विधि से शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है।

यदि उपर्युक्त रीति से जाप करने में कठिनाई प्रतीत हो तो उस विशेष स्थान पर केवल मानसिक 'ओऽम्' जप करें अथवा ऐसी भावना करें कि वहाँ 'ओऽम्' जाप हो रहा है या 'ओऽम्' शब्द को सुन रहा हूँ। मुख्य बात यह है कि उस विशेष ध्येय स्थान पर मन ठहरा रहे।

संगति—प्राणायाम का फल बताते हैं—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥ (योग दर्शन)

विवेक ज्ञान रूपी प्रकाश तम तथा रजोगुण के कारण अविद्यादि क्लेशों के मलों से ढका हुआ है। प्राणायाम के अभ्यास से जब यह आवरण क्षीण हो जाता है, तब वह प्रकाश प्रकट होने लगता है। जैसे पंचशिखाचार्य ने कहा है—

तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य ॥

'प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है, उससे मल धुल जाते हैं और ज्ञान का प्रकाश होता है।'

इसी प्रकार मनु भगवान् का श्लोक है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

जैसे अग्नि से धौंके हुए स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के मल नष्ट हो जाते हैं।'

संगति—प्राणायाम का दूसरा फल बताते हैं—

धारणासु च योग्यता मनसः॥ ५३॥ (पों० द०)

प्राणायाम से मन स्थिर होता है। जैसे कि 'प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्रणास्य' पाद १ सूत्र ३४ में बतलाया है और उसमें धारणा की योग्यता प्राप्त हो जाती है। योग दर्शन के सूत्रों में इस प्रकार की अनेक महत्त्व पूर्णबातें कही गई है।

संगति—प्रत्याहार का लक्षण बताते हैं—

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः॥५४॥

प्रत्याहार का अर्थ है पीछे हटना, उल्टा होना, विषयों से विमुख होना। इसमें इन्द्रियाँ अपने बहिर्मुख विषय से हट कर अन्तर्मुखी होती हैं। इस कारण इसको प्रत्याहार कहा गया है, जिस प्रकार मधु बनाने वाली मक्खियाँ रानी मक्खी के उड़ने पर उड़ने लगती हैं और बैठने पर बैठ जाती हैं, इसी प्रकार इन्द्रियाँ चित्त के अधीन होकर सभी कार्य करती हैं। जब चित्त का बाहर विषयों से उपराम होता है, तभी उनको ग्रहण करती हैं। यम, नियम, प्राणायामादि के प्रभाव से चित्त जब बाहर के विषयों से विरक्त होकर समाहित होने लगता है। तब इन्द्रियाँ भी अन्त-र्मुख होकर उस जैसा अनुकरण करने लगती हैं और चित्त के निरुद्ध होने पर स्वयं निरुद्ध हो जाती हैं। यही उनका प्रत्याहार है। इस अवस्था में चित्त तो बाह्य विषयों से विमुख होकर आत्मतत्त्व के अभिमुख होता है, पर इन्द्रियाँ केवल वाह्य-विषयों से विमुख होती हैं। चित्त के सदृश आत्मतत्त्व के अभिमुख नहीं होतीं। इसलिए 'अनुकार इव' अर्थात् नकल जैसा कहा गया है। इस प्रकार चित्त के निरुद्ध होने पर इन्द्रियों को जीतने के लिए अन्य किसी उपाय की अपेक्षा नहीं रहती।

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥

(कठोपनिषद् २।१।७)

'स्वयम्भू ने (इन्द्रियों के) छेदों को बाहर से छेदा है अर्थात् इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है। इस कारण मनुष्य बाहर देखता है, अपने अन्दर नहीं देखता। कोई विरला धीर पुरुष अमृत को चाहता हुआ आँखों अर्थात् इन्द्रियों को बंद करके (अंतर्मुखी होकर प्रत्याहार द्वारा) अन्तरात्मा को देखता है।'

प्रत्याहार का फल बताते हैं—

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

सूत्र में प्रत्याहार से इन्द्रियों की परमवश्यता बतलायी है। यह परमवश्यता किस अपरमवश्यता की अपेक्षा से है, इसको व्यास भाष्य में इस प्रकार बतलाया है—१—कोई कहते हैं शब्द आदि विषयों में आसक्त न होना अर्थात् विषयों के अधीन न होकर उनको अपने अधीन रखना इन्द्रियवश्यता अर्थात् इन्द्रियजय है।

२—दूसरे कहते हैं कि वेद-शास्त्र से अविरुद्ध विषयों का सेवन और उनके विरुद्ध विषयों का परित्याग इन्द्रियजय है।

३—तीसरे कहते हैं कि विषयों में न फँसकर अपनी इच्छा से विषयों के साथ इन्द्रियों का सम्प्रयोग होना इन्द्रियजय है।

४—चौथे कहते हैं कि राग-द्वेष के अभावपूर्वक सुख-दुःख से शून्य शब्दादि विषय का ज्ञान होना इन्द्रियजय है।

इन सब उपर्युक्त इन्द्रियजन्य लक्षणों में विषयों का सम्बन्ध बना ही रहता है, जिससे निर्णय की आशङ्का दूर नहीं हो सकती। इसलिए यह इन्द्रियों की परमवश्यता नहीं वरं अपरवश्यता है।

भगवान् जैगीषव्य का मत है कि चित्त की एकाग्रता के कारण इन्द्रियों का विषयों की विषयों में प्रवृत्ति न होना इन्द्रियजय है। उस एकाग्रता से चित्त के निरुद्ध होने पर इन्द्रियों का सर्वथा निरोध हो जाता है और अन्य किसी इन्द्रियजय के उपाय में प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसलिए यही इन्द्रियों की परमवश्यता है, जो सूत्रकार का अभिमत है।

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनंजयः॥

(गोरक्ष संहिता)

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय—ये दश प्रकार के वायु अर्थात् प्राण-वायु हैं।

श्वास का अन्दर ले जाना और बाहर निकलना, मुख और नासिका द्वारा गति करना, मुक्त अन्न-जल को पचाना और अलग करना, अन्न को पुरीष, पानी को पसीना और मूत्र रसादि को वीर्य बनाना प्राण-वायु का काम है। हृदय से लेकर नासिका पर्यन्त शरीर के ऊपरी भाग में वर्तमान है, ऊपर के इन्द्रियों का काम उसके आश्रित है।

अपान का वायु का काम गुदा से मल, उपस्थ से मूत्र और अण्डकोष से वीर्य निकालना तथा गर्भ आदि को नीचे ले जाना, कमर, घुटने और जाँघ का काम करना है। नीचे की ओर गति करता हुआ, नाभि से लेकर पादतल तक अवस्थित है, निचली इन्द्रियों का इसके अधीन हैं।

समान—देह के मध्यभाग में नाभि से हृदय तक वर्तमान है। पचे हुए रस आदि सब अंगों और नाड़ियों में बराबर बाँटना इसका काम है।

व्यान—इसका मुख्य स्थान उपस्थ-मूल स्थान से ऊपर है, सारी स्थूल और सूक्ष्म नाड़ियों में संचार करता हुआ शरीर के सब अंगों में रुधिर का संचार करता है।

उदान—कण्ठ में रहता हुआ सिर पर्यन्त गति करने वाला है, शरीर को उठाये रखना इसका काम है। उसके द्वारा शरीर के व्यष्टि प्राण का समष्टि प्राण से सम्बन्ध है। उदान द्वारा ही मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से बाहर निकलना तथा सूक्ष्म शरीर के कर्म, गुण, वासनाओं और संस्कारों के अनुसार गर्भ में प्रवेश होना होता है। योगीजन इसी के द्वारा स्थूल शरीर से निकलकर लोक लोकान्तर में घूम सकते हैं।

नागवायु—उद्गारादि (छींकना आदि) कूर्मवायु, संकोचनीय, कृकरवायु, क्षुधा, तृष्णादि, देवदत्तवायु निद्रा-तन्द्रा आदि और धनञ्जय-वायु पोषणादि का कार्य करता है।

इनमें से अगले पाँच मुख्य हैं, पिछले पाँच उन्हीं के अन्तर्गत हैं।

हृदि प्राणो वसेन्नित्यमपानो गुह्यमण्डले।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः॥
व्यानो व्यापी शरीरे तु प्रधानाः पञ्च वायवः॥

(गोरक्ष संहिता ३०)

हृदय में प्राण वायु, गुह्यदेश में अपान, नाभिमण्डल में समान, कण्ठ में उदान और सारे शरीर में व्यान व्याप्त है।

प्राणों को अपने अधिकार में चलाने वाले मनुष्य का अधिकार उसके शरीर, इन्द्रियों तथा मन पर हो जाता है। प्राणों को वश में करने का नाम प्राणायाम है।

प्राणवायु का स्थान हृदय है, यहाँ व्याप्त होकर नासिका द्वारा बाहर चलता है। अपान गुदा में व्याप्त होकर नीचे की ओर गति करता है। समान नाभि में व्याप्त होकर मुक्त अन्न आदि के रस को अङ्गों और नाड़ियों में पहुँचाता है।

पूरक में प्राण वायु को गुदास्थान तक ले जाकर अपान वायु से मिलाया जाता है, रेचक में अपान को प्राण द्वारा ऊपर की ओर खींचा जाता है। कुम्भक में प्राण और अपान दोनों की गति को समान के स्थान नाभि में रोक दिया जाता है। इससे रज और मल का दग्ध होकर सत्त्व का प्रकाश बढ़ता है और मन शीघ्र एकाग्र हो जाता है।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः॥

(गीता ४।२९)

कई योगी अपानवायु में प्राणवायु को होमते हैं (पूरक करते हैं) वैसे ही कुछ योगी जन प्राण में अपान का हवन करते हैं (रेचक करते हैं) तथा कई प्राण और अपान की गति को रोककर (कुम्भक करके) प्राणायाम के परायण होते हैं। प्राणायाम से मनुष्य स्वस्थ एवं नीरोग रहकर दीर्घायु तथा मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकता है। मन का प्राण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मन का रोकना अति कठिन है, पर प्राण के निरोध तथा वशीकरण से मन का निरोध एवं वशीकरण करना सुगम हो जाता है इसलिए प्राणायाम योग का आवश्यक साधन है।

सूक्ष्म प्राण का वर्णन—मनुष्य शरीर में प्राण-प्रवाहिनी नाड़ियाँ असंख्य हैं, इनमें से पंद्रह मुख्य हैं—(१) सुषुम्णा, (२) इड़ा, (३) पिंगला, (४) गांधारी, (५) हस्तजिह्वा। ये दोनों क्रमशः वाम और दक्षिण नेत्रों से वाम और दक्षिण पैर के अँगूठे पर्यन्त चली गयी हैं। (६) पूषा, (७) यशस्विनी क्रमशः दक्षिण और वाम कर्ण में श्रवण-साधनार्थ और (८) शूरागन्ध ग्रहणार्थ नासिका देश में भ्रूमध्यपर्यन्त जाती है, (९) कुहू मुख

में जाती है, (१०) सरस्वती जिह्वा के अग्रभाग पर्यन्त जाकर इसके ज्ञान और वाक्यों को प्रकट करती है, (११) वारुणी, (१२) अलम्वुषा, (१३) विश्वोदरी, (१४) शंङ्खिनी, (१५) चित्रा। इन पंद्रह में से भी सुषुम्णा, इड़ा, पिङ्गला—ये तीन प्रधान हैं। (जिनका योग से घनिष्ठ सम्बन्ध है) इन तीनों में सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है। यह नाड़ी अति सूक्ष्म नली के सदृश है, जो गुदा के निकट से मेरुदण्ड के भीतर होती हुई मस्तिष्क के ऊपर तक चली गयी है। इसी स्थान (गुदास्थान के निकट) से इसके वाम भाग से इड़ा और दक्षिण भाग से पिङ्गला नासिका-मूलपर्यन्त चली गयी है।

वहाँ भ्रूमध्य में ये तीनों नाड़ियाँ परस्पर मिल जाती हैं। सुषुम्णा को सरस्वती, इड़ा को गङ्गा और पिङ्गला को यमुना भी कहते हैं। गुदा के समीप जहाँ से ये तीनों नाड़ियाँ पृथक् होती हैं, उसको 'मुक्त त्रिवेणी' और भ्रूमध्य में जहाँ ये तीनों पुनः मिल गयी हैं, उसको 'युक्त त्रिवेणी' कहते हैं।

साधारणतया प्राण शक्ति निरन्तर इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों से श्वास-प्रश्वास रूप से प्रवाहित होती रहती है। इड़ा को चन्द्र-नाड़ी और पिंगला को सूर्य-नाड़ी कहते हैं। इड़ा तमः प्रधान और पिङ्गला रजः प्रधान है। श्वास कभी दायें नथुने से अधिक वेग से चलता है, कभी बायें से और कभी दोनों से समान गति से प्रवाहित होता है। जब बायें नथुने से श्वास अधिक वेग से चलता रहे तो उसे इड़ा 'चन्द्र स्वर' कहते हैं और दायें से अधिक वेग से बहे तो उसे पिङ्गला व 'सूर्यस्वर' कहते हैं। जब दोनों नथुनों से समान गति से अथवा एक क्षण एक नथुने से, दूसरे क्षण दूसरे नथुने से प्रवाहित हो तो उसे सुषुम्णा स्वर कहते हैं।

स्वस्थ मनुष्य का स्वर प्रतिदिन प्रातः काल सूर्योदय के समय से ढाई-ढाई घड़ी के हिसाब से क्रमशः एक-एक नथुने से चला करता है इस प्रकार अहोरात्र (एक दिन रात) से बारह बार (बारह वक्त) बायें और बारह बार ही दायें नथुने से क्रमानुसार श्वास चलता है। किस दिन किस नथुने से श्वास चलता है, इसका निश्चित नियम है—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे।
प्रतिपादो दिनान्याहुस्त्रीणि त्रीणी क्रमोदये ॥

(पवन विजय स्वरोदय)

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से तीन दिन की वारी से चन्द्र से (वायें नथुने से) कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से तीन-तीन दिन की वारी से सूर्य नाड़ी (दायें नथुने) से सूर्योदय के समय श्वास (ढाई घड़ी तक) प्रथम प्रवाहित होता है।

इनकी विशेष जानकारी शिवस्वरोद आदि ग्रंथों में देखी जा सकती है।

शारीरिक विकार एक रोग की अवस्था में स्वर अनियमित रूप से चलने लगते हैं। प्रतिश्याय (जुकाम) की अवस्था में सम्भवतः पाठकों को स्वयं इसका अनुभव हुआ होगा। उस अवस्था में अपने प्रयत्न-द्वारा स्वर को बदलने से रोग निवृति में बड़ी सहायता मिलती है। स्वर साधना से स्वेच्छानुसार स्वर का वदलना अति सुगम हो जाता है।

जव इड़ा (चन्द्र—वाम स्वर) चल रहा हो तव स्थायी काम करना चाहिए, जिसमें अल्प श्रम और प्रवन्ध की आवश्यकता हो तथा दूध, जल आदि तरल पदार्थों के पीने, पेशाब करने, यात्रा और भजन, साधन आदि शान्ति के कार्य करने चाहिए।

पिङ्गला (सूर्य—दायें स्वर) चलने के समय इनसे अधिक कठिन कार्य करने चाहिए, जिनमें अधिक परिश्रम अपेक्षित हो तथा कठिन यात्रा, मेहनत के कार्य (व्यायाम आदि), भोजन, शौच, स्नान और शयन आदि करने चाहिए।

सुषुम्णा (जब दोनों स्वर सम अथवा एक-एक क्षण में बदलते हुए चल रहे हों) में योग साधन तथा सात्विक धर्मार्थ कार्य करने चाहिये।

दिवा न पूजयेल्लिङ्गं रात्रावपि न पूजयेत्।
सर्वदा पूजयेल्लिङ्गं दिवारात्रनिरोधतः॥

(पवन विजय स्वरोदय)

दिन में अर्थात् जब रजो-गुण प्रधान सूर्य-स्वर चल रहा हो, तब योग-साधन न करे और रात्रि में भी अर्थात् जब तमः प्रधान चन्द्र-स्वर चल रहा हो, तब भी योगाभ्यास न करे। दिन रात दोनों अर्थात् सूर्य और चन्द्र दोनों स्वरों का निरोध करके सुषुम्णा के समय जो पिङ्गला और इडा रूपी दिन और रात दोनों का सन्धि समय है उसमें सदा योगा-भ्यास करें।

इस सूत्र की व्याख्या बताते हुए कपाल-भाँति प्राणायाम अथवा अन्य प्राणायाम करने से सुषुम्णा स्वर चलने लगता है। अतः अभ्यास के आरम्भ में (ध्यानादि के पूर्व) प्राणायाम कर लेना चाहिए।

स्वर-साधन—स्वर बदलने की क्रियाएँ

१. जो स्वर चलाना हो उस नथुने पर कुछ समय तक ध्यान करने से वह स्वर चलने लगता है।

२. जो स्वर चलाना हो उसके विपरीत करवट से लेटकर पसली के निकट तकिया दबाने से कुछ काल में वह स्वर चलने लगता है।

३. जो स्वर चलाना हो उसके विपरीत स्वर में रूई अथवा वस्त्र की गोली रखने से वह चलने लगता है।

४. बंद स्वर को अंगुठे या अंगुली से दबाकर चालू स्वर से श्वास लेकर पुनः उसे दबाकर बंद स्वर से श्वास निकाले। इस प्रकार कई बार करने से बंद स्वर चलने लगता है।

५. दौड़ने, परिश्रम करने और प्राणायाम आदि करने से स्वर बदल जाता है। ज्वर और जुकाम आदि रोगों की अवस्था में स्वर-परिवर्तन से रोग की शीघ्र निवृत्ति होती है।

स्वर साधन की सिद्धि से इच्छानुसार सुगमता से स्वर बदला जा सकता है। उसके अभ्यास की एक विधि यह है कि दिन के समय सूर्योदय से चन्द्र स्वर के निश्चित समय से चन्द्र स्वर चलायें। अपने बायें नथुने की ओर ओऽम् का जप करते हुए ध्यान करने से बायाँ (चन्द्र) स्वर चलता रहेगा, भोजन और शौचादि के समय इससे विपरोत स्वर (सूर्य-स्वर) ध्यान द्वारा चलायें। रात्रि के सयय सूर्यास्त पर सूर्य स्वर के निश्चित समय से सूर्य स्वर चलायें। दायें नथुने की ओर ओऽम् का जप करते हुए ध्यान रखने से सूर्य स्वर चलता रहेगा। जल और दूध आदि पीने तथा मूत्र त्यागादि के समय विपरोत नथुने पर ध्यान रखकर चन्द्र स्वर चलायें।

दूसरी विधि—प्रातः काल सूर्योदय के समय से ढाई-ढाई घड़ी के हिसाब से क्रमशः एक-एक नथुने से स्वाभाविक स्वर चलायें।

इसी प्रकार योगाभ्यास, भजन ध्यानादि के आरम्भ करने से पूर्व नासिका के अग्रभाग के मध्य में नोक पर ध्यान करने से सुषुम्णा स्वर चलाया जा सकता है।

तत्त्व—स्वरों का तत्त्वों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वरोदय के प्रायः सभी ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

तत्त्व पाँच हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी। ये प्रत्येक स्वर के साथ चलते रहते हैं।

प्रथमं वहते वायुर्द्वितीयं च तथानलः।
तृतीयं वहते भूमिश्चतुर्थं वारूणो वहेत॥

(७१ शिवस्वरोदय)

प्रथम वायु तत्त्व बहता है, द्वितीय बार अग्नि तत्त्व, तृतीय बार भूमि तत्त्व, चतुर्थ बार वरुण (जल) तत्त्व और पाँचवीं वार आकाश तत्त्व वहता है।

तत्त्व सम्बन्धी सामान्य बातें तथा किस समय कौन तत्त्व चल रहा है इनको दी हुई तालिका द्वारा पाठक जान सकेंगे।

तत्त्व पहचान की रीति

१. हाथ के दोनों अँगूठों से कान के दोनों छिद्र, बीच की दोनों अंगुलियों से नथुनों, दोनों अनामिका और दोनों कनिष्ठिका अंगुलियों से मुँह तथा दोनों तर्जनियों से दोनों आँखें बंद करने पर जिस तत्त्व का रंग दिखलाई दे उसी का उदय समझना चाहिए।

२. दर्पण (आईना) पर जोर से श्वास मारने पर उसकी भाप से दर्पण पर जिस तत्त्व के चिह्न बने उसी का उदय समझना चाहिये।

३. जैसा मुख का स्वाद हो उससे उसी तत्त्व का उदय समझना चाहिये।

४. शान्ति से बैठकर श्वास लें, फिर देखें जिस तत्त्व के अनुसार श्वास की गति हो और जिस तत्त्व के अनुसार श्वास का परिणाम हो, उसी तत्त्व का उदय समझना चाहिये।

तत्त्व साधन विधि—१. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश—इस क्रम से एक-एक तत्त्व का साधन करना चाहिए।

२. जो तत्त्व साधना है उस तत्त्व के आकार एवं रंग का यंत्र बनवा कर उस तत्त्व की बाह्य गति के परिणाम-अनुसार दूर रखकर ओऽम् के मानसिक जाप के साथ त्राटक करना चाहिए।

३. ऐसी भावना करनी चाहिए कि जप के श्वास-प्रश्वास की गति यन्त्रक हो रही है।

४. प्रायः २ घंटे २४ मिनट तक त्राटक करना चाहिए।

५. प्रायः छः मास अथवा परिस्थिति के अनुसार एक ही तत्त्व का साधन करते रहना चाहिए।

६. जब बराबर तत्त्व के परिणाम तक श्वास-प्रश्वास की गति लगातार होने लगे, तब उस तत्त्व की सिद्धि समझना चाहिये।

पृथ्वी तत्त्व का साधन— एक इंच लम्बा और एक इंच चौड़ा स्वर्ण, पीतल अथवा पीले कागज का चतुष्कोण यन्त्र बनाकर चन्द्र स्वर के पृथ्वी-तत्त्व उदयकाल में नसिका के अग्रभाग से १२ अङ्गुल दूर तक रखकर ओम् के मानसिक जप के साथ त्राटक करना चाहिये।

जल तत्त्व का साधन—चाँदी या काँसे का अर्धवृत्ताकार यन्त्र इतना लम्बा एवं चौड़ा कि पृथ्वी-तत्त्व के चतुष्कोण यन्त्र के मध्य में आ सके। चन्द्र स्वर के जल तत्त्व के उदय के समय नासाग्रभाग से १६ अङ्गुल दूर रख कर उपर्युक्त विधि अनुसार त्राटक करना चाहिए।

अग्नि तत्त्व साधन—ताँबे अथवा मूँगा का त्रिकोणाकार यन्त्र इतना लम्बा चौड़ा कि जल तत्त्व के अर्धवृत्ताकार यन्त्र के मध्य में आ सके। चन्द्रस्वर के अग्नितत्त्व के उदय काल में ४० अङ्गुल नासाग्रभाग से दूर रखकर उपर्युक्त विधि अनुसार त्राटक करना चाहिए।

वायुतत्त्व-साधन—स्वच्छ नीला थोथा का ऐसा गोलाकार यन्त्र या कागज पर नीलेरंग का ऐसा गोलाकार निशान बनायें कि अग्नितत्त्व के त्रिकोणाकार यन्त्र के मध्य में आ सके। यन्त्र को नाशाग्रभाग से आठ अङ्गुल दूर तक रख कर उपर्युक्त विधि अनुसार त्राटक करना चाहिए।

आकाश तत्त्व का साधन—चन्द्रस्वर में आकाश तत्त्व के उदय काल में नासाग्रभाग पर ओम् के मानसिक जाप के साथ त्राटक करना चाहिये।

सुषुम्णा नाड़ी—ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि सुषुम्णा नाड़ी सर्वश्रेष्ठ है, जो मेरु दण्ड के भीतर सूक्ष्म नली के सदृश चली गयी है।

सुषुम्णा के अन्तर्गत सूक्ष्म नाड़ियाँ—सुषुम्णा के भीतर एक वज्रनाड़ी है, वज्र के अन्दर चित्रणी है और चित्रणी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी है। ये सब नाड़ियाँ मकड़ी की जाला जैसी अतिसूक्ष्म हैं जिनका ज्ञान केवल योगियों को ही हो सकता है। ये नाड़ियाँ सत्व प्रधान, प्रकाशमय और अद्‌भुत शक्ति वाली हैं। ये ही सूक्ष्म शरीर तथा सूक्ष्म प्राण के स्थान हैं। इनमें बहुत से सूक्ष्म स्थान हैं, इसमें बहुत से सूक्ष्म शक्तियों के केन्द्र हैं, जिनमें वहुत से अन्य सूक्ष्म नाड़ियाँ मिलती हैं। इन शक्तियों के केन्द्रों को पद्म तथा कमल कहते हैं। इसमें मुख्य सात हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार।

ये चक्र पाँचों तत्त्वों, तन्मात्राओं, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों, पाँचों प्राणों, अन्तःकरण, समस्त वर्णों-स्वरों तथा सातों लोकों के मण्डल हैं और नाना प्रकार के प्रकाश तथा विद्युत् से युक्त हैं। साधारण अवस्था में ये चक्र विना खिले कमल के सदृश अधोमुख हुए अविकसित रहते हैं। ध्यान द्वारा तथा अन्य प्रकार से उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होते हैं, तव उनकी अलौकिक शक्तियों का विकास होता है।

प्रत्येक चक्र में नाना प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ हैं, तान्त्रिक तथा हठयोग के ग्रन्थों में प्रायः इनका वर्णन है। हम जिज्ञासुओं की जानकारी के लिए उनका उतना वर्णन कर देना आवश्यक समझते हैं, जितने का राजयोग से सम्बन्ध है तथा तान्त्रिक ग्रन्थों की उन वातों का भी जिनकी पाठकों को जानने की जिज्ञासा हो सकती है। यथा सत्त्व-बीज का वाहन, अधिपति देवता, देवता की शक्ति, यन्त्र-फल इत्यादि।

(आत्मोन्नति चाहने वालों को इनकी ओर विशेष ध्यान न देना चाहिए)

चित्र द्वारा दिखलाई हुई चक्रों की स्थूलाकृति उनके सूक्ष्म स्वरूप का वोध कराने के लिए केवल आनुमानिक हैं। इसी प्रकार Pelvic Plexus आदि अंग्रेजी नाम उनके वास्तविक स्थान को नहीं बतलाते हैं, केवल; संकेत मात्र हैं।

चक्रों का वर्णन

मूलाधार चक्र (Pelvic Plexus)—के स्थूल स्वरूप से इसके सूक्ष्म स्वरूप का संकेत किया जा सकता है।

(१) **चक्रस्थान**– गुदामूल से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ मूल से दो अंगुल नीचे है।

(२) **आकृति**—रक्त रंग के प्रकाश से उज्ज्वलित चार पंखुड़ी (दलों) वाले कमल के सदृश है।

(३) **दलों के अक्षर (वर्ण)**—चारों पंखुड़ियों (दलों) पर वं,शं, षं और सं–ये चार अक्षर हैं।

(४) **तत्त्व-स्थान**—चौकोण सुवर्ण रंग वाले पृथ्वी तत्त्व का मुख्य स्थान है।

(५) **तत्त्व-बीज**—'लं' है।

(६) **तत्त्व बीज-गति**—ऐरावत हाथी के समान सामने की ओर गति है।

(७) **गुण**—गंध गुण है।

(८) **वायु-स्थान**—नीचे की ओर चलने वाली अपान वायु का मुख्य स्थान है।

(९) **ज्ञानेन्द्रिय**—गंध-मात्रा से उत्पन्न होने वाली सूँघने की शक्ति नासिका का स्थान है।

(१०) **कर्मेन्द्रिय**—पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होने वाली मलत्याग-शक्ति गुदा का स्थान है।

(११)**लोक**—भूलोक है (भू)।

(१२) **तत्त्व बीज का वाहन**—ऐरावत हस्ती जिसके ऊपर इन्द्र विराजमान हैं।

(१३) **अधिपति देवता**—चतुर्भुज ब्रह्मा अपनी शक्ति चतुर्भुज डाकिनी के साथ।

(१४) **यन्त्र**—चतुष्कोण, सुवर्णरंग।

(१५) **चक्रपर ध्यान का फल**—आरोग्यता, आनन्दचित्त, वाक्य, काव्य, प्रबन्ध दक्षता। इस चक्र के नीचे त्रिकोण यन्त्र-जैसा एक

सूक्ष्म योनि-मंडल है, जिसके मध्य के कोण से सुषुम्णा (सरस्वती) नाड़ी, दक्षिण कोण से पिंगला (यमुना) नाड़ी और वाम कोण से इडा (गङ्गा) नाड़ी निकलती है। इसलिए इसे मुक्त त्रिवेणी भी कहते हैं।

तान्त्रिक ग्रन्थों में बताया गया है कि इस योनि मण्डल के मध्य में तेजोमय रक्तवर्ण क्लीं बीजरूप कन्दर्प नाम का स्थिर वायु विद्यमान है जिसके मध्य में ब्रह्मनाड़ी के मुख में स्वयंभू लिङ्ग है। इसमें कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन आगे किया जायेगा। मूलशक्ति अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति का आधार होने से इस चक्र को मूलाधार कहते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र (Hypogastric Plexus)—के स्थूल स्वरूप से इसके सूक्ष्म स्वरूप का संकेत किया जा सकता है।

(१) **स्थान**—मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेडू के पास इस चक्र का स्थान है।

(२) **आकृति**—सिंदूरी रंग के प्रकाश से प्रकाशित छः पंखुड़ी (दलों) वाले कमल के समान है।

(३) **दलों के अक्षर वर्ण**—छहों पंखुड़ियों (दलों) पर बं, भं, मं, यं, रं, लं,—ये छः अक्षर (वर्ण) हैं।

(४) **तत्त्व-स्थान**—श्वेत रंग अर्द्धचन्द्राकार वाले जल-तत्त्व का मुख्य स्थान है।

(५) **तत्त्व-बीज**—'वं' है।

(६) **तत्त्व बीज-गति**—जिस प्रकार मकर लंबी डुबकी लगाता है, इसी प्रकार इस तत्त्व की नीचे की ओर लम्बी गति है।

(७) **गुण**—रस है।

(८) **वायु-स्थान**—सर्वशरीर में व्यापक होकर गति करने वाले व्यान वायु का मुख्य स्थान है।

(९) **ज्ञानेन्द्रिय**—रस तन्मात्रा से उत्पन्न स्वाद लेने की शक्ति रसना का स्थान है।

(१०) **कर्म-इन्द्रिय**—जल तत्त्व त्याग-शक्ति उपस्थ का स्थान है।

(११) **लोक**—भुवः है।

(१२) **तत्त्व-बीज का वाहन**—मकर जिसके ऊपर वरुण विराजमान हैं।

(१३) **अधिपति देवता**—विष्णु अपनी चतुर्भुजा राकिनी शक्ति के साथ।

(१४) **यन्त्र**—अर्धचन्द्राकार श्वेत रंग।

(१५) **चक्र पर ध्यान का फल**—तान्त्रिक ग्रंथों में इस चक्र में ध्यान का फल सृजन, पालन और निधन में समर्थता तथा जिह्वा पर सरस्वती देवी का होना बतलाया गया है।

मणिपूरक चक्र—स्थूल स्वरूप द्वारा इसके सूक्ष्म स्वरूप का संकेत किया जा सकता है।

(१) **स्थान**—नाभिमूल है।

(२) **आकृति**—नीले रंग के प्रकाश से आलोकित (प्रकाशित) दस पंखड़ी (दलों) वाले कमल के तुल्य है।

(३) **दलों के अक्षर (वर्ण)**—दशों पंखुड़ियों (दलों) पर डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं,—ये दस अक्षर (वर्ण) हैं। इन दस वर्णों की ध्वनियाँ निकलती हैं।

(४) **तत्त्व स्थान**—रक्त रंग त्रिकोणाकार वाले अग्नि तत्त्व का मुख्य स्थान है।

(५) **तत्त्व-बीज**—'रं' है।

(६) **तत्त्व बीज-गति**—जिस प्रकार मेष (मेढ़ा) ऊपर को उछल कर चलता है, इसी प्रकार इस तत्त्व की ऊपर की गति है।

(७) **गुण**—रूप है।

(८) **वायु-स्थान**—खान-पान के रस को सम्पूर्ण शरीर में स्व-स्व स्थान पर समानरूप से पहुँचाने वाले समानवायु का मुख्य स्थान है।

(९) **ज्ञानेन्द्रिय**—रूप तन्मात्रा से उत्पन्न देखने की शक्ति चक्षु का स्थान है।

(१०) **कर्मेन्द्रिय**—अग्नि तत्त्व से उत्पन्न चलने की शक्ति पाद (पैर) का स्थान है।

(११) **लोक**—स्वः है।

(१२) **'तत्त्व बीज' का वाहन**—मेष (मेढ़ा) जिसके ऊपर अग्नि देवता विराजमान हैं।

(१३) **अधिपति देवता**—रूद्र अपनी चर्तुभुज-शक्ति लाकिनी के साथ।

(१४) **यन्त्र-त्रिकोण**—रक्त रंग।

(१५) **फल**—'विभूतिपाद' में इस चक्र पर ध्यान का फल शरीर व्यूह का ज्ञान बताया है। इसमें ध्यान करने से अजीर्ण आदि रोग दूर होते हैं।

अनाहत चक्र—इसके सूक्ष्म स्वरूप का संकेतक Cordial Plexus का स्थूल रूप है।

(१) **स्थान**—हृदय के पास।

(२) **आकृति**—सिंदूरी रंग के प्रकाश से भासित (उज्ज्वलित) वारह पंखुड़ी (दलों) वाले कमल के सदृश है।

(३) **दलों के अक्षर (वर्ण)**—वारह पंखुड़ियों पर कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं झं, ञं, टं, ठं ये **बारह** अक्षर (वर्ण) हैं।

(४) **तत्त्व**—स्थान धूम्र रंग षट्कोणाकार वायुतत्त्व का मुख्य स्थान है।

(५) **तत्त्व बीज**—'यं' है।

(६) **तत्त्व बीज-गति**—जिस प्रकार मृग तिरछा चलता है, इसी प्रकार इस तत्त्व की तिरछी गति है।

(७) **गुण**– स्पर्श है।

(८) **वायु स्थान**—मुख और नासिका से गति करने वाले प्राण वायु का मुख्य स्थान है।

(९) **ज्ञानेन्द्रिय**—स्पर्श-तन्मात्रा से उत्पन्न स्पर्श की शक्ति त्वचा का केन्द्र है।

(१०) **कर्मेन्द्रिय**—वायुतत्त्व से उत्पन्न पकड़ने की शक्ति कर (हाथ) का स्थान है।

(११) **लोक**—महर्लोक है। अन्तःकरण का मुख्य स्थान है।

(१२) **तत्त्व बीज का वाहन**—मृग।

(१३) **अधिपति देवता**—ईशान–रुद्र अपनी त्रिनेत्र चतुर्भुजा शक्ति काकिनी के साथ।

(१४) **यन्त्र** – षट्कोणाकार, धूम्र रंग।

(१५) **फल** —वाक्पतित्व, कवित्व शक्ति का लाभ, जितेन्द्रिय होना इत्यादि तान्त्रिक ग्रन्थों में बतलाया है। शिवसार तन्त्र में कहा है कि इस

स्थान में उत्पन्न होने वाली अनाहत ध्वनि ही सदाशिव है और त्रिगुणमय ओंकार इसी स्थान में व्यक्त होता है यथा—

शब्दं ब्रह्मेति तं प्राह साक्षाद्देवः सदाशिवः ।
अनाहतेषु चक्रेषु स शब्दः परिकीर्त्यते ॥
(परापरिमल्लोल्लासः)

जिसको शब्द ब्रह्म कहते हैं, वही साक्षात् शिव है। वही शब्द अनाहत चक्र में है। कहीं कहीं इस चक्र के समीप आठ दलों का एक 'निम्न मनश्चक्र' बतलाया गया है। स्त्रियों तथा भक्तिभाव वालों को ध्यान करने के लिए अनाहत चक्र अच्छा-उपयुक्त स्थान है।

विशुद्ध चक्र—इसका संकेतक स्थूल स्वरूप है।

(१) **स्थान**—कण्ठ देश है।

(२) **आकृति**—धूम्र अथवा धुँधरंग के से उज्ज्वल, १६ पंखुड़ी (दलों) वाले कमल जैसी है।

(३) **दलों के अक्षर**—सोलहों पंखुड़ियों पर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ ए, ऐं, ओ, औ, अं, अः—ये सोलह अक्षर हैं।

(४) **तत्त्व-स्थान**—चित्र-विचित्र आकार तथा नाना रंग वाले अथवा पूर्ण चन्द्र के सदृश गोलाकार आकाश तत्त्व का मुख्य स्थान है।

(५) **तत्त्व-बीज**—हं है।

(६) **तत्त्व बीज-गति**—जैसे हाथी घूम-घूमकर चलता है, उसी प्रकार इस तत्त्व की घुमाव के साथ गति है।

(७) **गुण**—शब्द है।

(८) **वायु स्थान**—ऊपर की गति का हेतु शरीर पर्यन्त वर्तन वाले उदान वायु का मुख्य स्थान है।

(९) **ज्ञानेन्द्रिय**—शब्द-तन्त्रमात्रा से उत्पन्न श्रवण-शक्ति श्रोत्र का स्थान है।

(१०) **कर्मेन्द्रिय**—आकाश-तत्त्व से उत्पन्न वाक्शक्ति वाणी का स्थान है।

(११) **लोक**—जन है।

(१२) **तत्त्व-बीज का वाहन**—हस्ती जिसके ऊपर प्रकाश देवता आरूढ़ हैं।

(१३) अधिपति देवता—पञ्चमुख वाले सदाशिव अपनी शक्ति चतुर्भुजा शाकिनी के साथ।

(१४) यन्त्र—पूर्णचन्द्र के सदृश गोलाकार आकाश मण्डल।

(१५) चक्र पर ध्यान का फल—कवि, महाज्ञानी, शान्तचित्त, नीरोग, शोकहीन होना बताया गया है। इसके "विशुद्ध" नाम रखने का यह कारण बताया गया है कि इस स्थान पर मन को स्थित होने से मन आकाश के सदृश विशुद्ध हो जाता है।

आज्ञा चक्र—इसका संकेतक Medulla Plexus का स्थूल रूप है।

(१) स्थान—दोनों भ्रूवों के मध्य में भृकुटी के भीतर है।

(२) आकृत के दो पंखुड़ियों (दलों) वाले कमल के सदृश है।

(३) दलों के अक्षर (वर्ण)—दोनों पंखुड़ियों पर हं, क्षं हैं। इन दोनों पंखुड़ियों के संकेतक पाश्चात्यविज्ञान के Pineal Gland और Pituitary Body समझना चाहिए, जिनको मनुष्य के मष्तिक के भीतर दो निरर्थक वालू से ढके हुए मांस-पिण्ड कहा गया है। ये दोनों मांस-पिण्ड अपने स्थान पर रहते हुए आज्ञा चक्र के ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होने पर उससे दिव्य शक्ति की प्राप्ति होती है।

(४) तत्त्व स्थान—लिङ्ग अर्थात् लिङ्ग-आकार महत्तत्त्व है।

(५) तत्त्व-बीज—ओऽम् है।

(६) तत्त्व बीज-गति—गति-वाद है।

(७) लोक—तपः है।

(८) तत्त्व बीज का वाहन—नाद जिस पर लिङ्ग देवता है।

(९) अधिपति देवता—ज्ञानदाता शिव अपनी चतुर्हस्ता षडानना (छः मुख) हाकिनी शक्ति के साथ।

(१०) यन्त्र—लिङ्गाकार।

(११) फल—भिन्न-भिन्न चक्रों के ध्यान द्वारा जो फल प्राप्त होता है वे सब एक मात्र इस चक्र पर ध्यान करने से प्राप्त हो जाते हैं। इस स्थान पर प्राण तथा मन के स्थित हो जाने पर सम्प्रज्ञात-समाधि की योग्यता होती है।

मूलाधार से इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा पृथक्-पृथक् प्रवाहित होकर इस स्थान पर मिलती है इसलिये इसको युक्त-त्रिवेणी भी कहते हैं।

इडा भागीरथी गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी।
तयोर्मध्यगता नाड़ी सुषुम्णाख्या सरस्वती॥
त्रिवेणीसंगमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(ज्ञानसंकालिनी-तन्त्र)

इडा को गङ्गा और पिङ्गला को यमुना तथा इन दोनों के मध्य में जाने वाली नाड़ी सुषुम्णा को सरस्वती कहते हैं। इस त्रिवेणी का जहाँ संगम है, उसे तीर्थराज कहते हैं। इसमें स्नान करने से सारे पापों से मुक्त हो जाते हैं।

तदेव हृदयं नाम सर्वशास्त्रादि सम्मतम्।
अन्यथा हृदि किंचास्ति प्रोक्तं यत् स्थूल विद्धिभि॥

(योगस्वरोदय)

यही अथात् आज्ञा चक्र ही सर्वशास्त्र-सम्मत हृदय है। स्थूल बुद्धिवाले ही अन्त स्थूल स्थान को हृदय कहते हैं।

यह आज्ञा चक्र शिवनेत्र दिव्यदृष्टि का यन्त्र है। प्राणतोषिणी तन्त्र में एक चौंसठ दल वाला ललना-संज्ञक चक्र की तालु में और एक शतदल वाले गुरु चक्र की अवस्थिति ब्रह्मरन्ध्र में बतलायी है तथा किसी-किसी ने सोमचक्र (गुरु चक्र) मानस चक्र, ललाट चक्र आदि का भी वर्णन किया है, किन्तु ये सब सातों चक्रों के ही अन्तर्गत हैं। क्रियात्मकरूप से इनकी उपयोगिता नहीं है।

सहस्रार व शून्य चक्र—इसका संकेतक स्थूल रूप है।

(१) **स्थान**—तालु के ऊपर मस्तिष्क में, ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर सभी शक्तियों का केन्द्र है।

(२) **आकृति**—नाना रङ्ग के प्रकाश से युक्त सहस्र पंखुड़ियों (दलों) वाले कमल जैसी है।

(३) **दलों के अक्षर**—पंखों पर 'अ' से लेकर 'क्ष' तक सब स्वर और वर्ण हैं।

(४) **तत्त्व**—तत्त्वातीत है।

(५) **तत्त्व-बीज**—विसर्ग है।

(६) **तत्त्व बीज-गति**—बिन्दु है।

(७) **लोक**—सत्यम् है।

(८) **तत्त्व-बीज का वाहन**—विन्दु है।

(९) **अधिपति देवता**—परब्रह्म अपनी महाशक्ति के साथ।

(१०) **यन्त्र**—पूर्ण चक्र चन्द्र शुभ्र वर्ण।

(११) **फल**—अमर होना मुक्ति।

इस स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर सर्ववृत्तियों के निरोधरूप असम्प्रज्ञात-समाधि की योग्यता प्राप्त होती है।

कुछ विद्वानों तथा अभ्यासियों का विचार है कि उपनिषदों में जो अगुष्ठ मात्र हृदय पुरुष का स्थान वतलाया गया है, वह ब्रह्मरन्ध्र ही है, जिसके ऊपर सहस्रचक्र है, क्योंकि यही अंगुष्ठमात्र आकाशवाला है। यही चित्त का स्थान है, जिसमें आत्मा के ज्ञान का प्रकाश अथवा प्रतिविम्व पड़ रहा है और इसी स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात् सर्ववृत्तिनिरोध होता है।

शरीर में जीवात्मा का कौन सा स्थान है? इस सम्वन्ध में कई वार प्रश्न किये जा चुके हैं। वास्तव में आत्मा के ज्ञान का प्रकाश चित्त पर पड़ रहा है। चित्त ही कारण शरीर है। इस कारण शरीर के सम्बन्ध से 'आत्मा' की संज्ञा जीव आत्मा होती है। कारण शरीर सूक्ष्म शरीर में व्यापक हो रहा है और सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर में। इस प्रकार जीवात्मा सारे ही शरीर में व्यापक हो रहा है। फिर भी कार्य भेद से उसके कई स्थान वतलाये जा सकते हैं।

सामान्यतः तथा सुषुप्ति अवस्था में जीवात्मा का स्थान हृदय देश बतलाया गया है, क्योंकि हृदय शरीर का मुख्य स्थान है। यही से सारे शरीर में नाड़ियाँ जा रही हैं। सारे शरीर का आन्तरिक कार्य यहीं से हो रहा है। हृदय की गति रुकने से सारे शरीर के कार्य वन्द हो जाते हैं, इसलिए सुषुप्ति की अवस्था में जीवात्मा का स्थान हृदय कहा जाता है, जैसा कि उपनिषद् में वताया गया है—

"यत्रैष एतत् सुप्तोऽभूद् य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञान मादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते"...।

(वृ० ह० २।१।१७)।

जव कि यह पुरुष जो यह विज्ञानस्वभाव है, गहरा सोया हुआ होता है, तव वह इन इन्द्रियों के विज्ञान के द्वारा विज्ञान को लेकर जो यह हृदय के अन्दर आकाश है, वहाँ आराम करता है।

स्वप्नावस्था में जीव का स्थान कण्ठ बतलाया गया है, क्योंकि जाग्रत अवस्था में जो पदार्थ देखे सुने और भोगे जाते हैं, उनका संस्कार वाल के हजारहवें भाग जैसी बारीक कण्ठ में स्थित एक हिता नाम की नाड़ी में रहना बतलाया गया है। इसलिये अनुभूत पदार्थ और उनका ज्ञान स्वप्न-अवस्था में कण्ठ में होता है।

जाग्रत् अवस्था में जीवात्मा बाह्य इन्द्रियों के द्वारा बाहर के विषयों को देखता है। बाह्य इन्द्रियों में नेत्र प्रधान है, इसलिए जाग्रत् में जीवात्मा की स्थिति उपनिषद् में नेत्र में बतलायी गयी है। यथा—

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मनेति। (छान्दो० ८।७।४)।
यह जो आँख में पुरुष दीखता है, यह आत्मा है।

सम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा का स्थान आज्ञाचक्र कहा जाता है, क्योंकि यही दिव्य दृष्टि का स्थान है। इसी को दिव्य दृष्टि या शिव नेत्र भी कहा जाता है।

इसी प्रकार असम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा का स्थान ब्रह्मरन्ध्र है, क्योंकि इसी स्थान पर प्राण तथा मन को स्थिर हो जाने पर असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात् सर्ववृत्तिनिरोध होता है।

कुण्डलिनी शक्ति का जाग्रत् होना—यह नाड़ी यदि किसी प्रकार से अपने लपेटों को खोलकर सीधी हो जाय और इसका मुख सुषुम्णा नाड़ी के भीतर चला जाय, तो इसको कुण्डलिनी का जाग्रत् होना कहेंगे।

कुण्डलिनी शक्ति के सुषुम्णा के मुख में प्रवेश होने पर नाना प्रकार के अनुभव होते हैं, उनका प्रकट करना वर्जित है। किन्तु हम कुण्डलिनी जाग्रत् करने के कुछ उपाय तथा साधकों के लाभार्थ कुछ चेतावनियाँ दे देना आवश्यक समझते हैं।

कुण्डलिनी जाग्रत् करने के उपाय—विशेषतया कुण्डलिनी शक्ति तो शरीर के शुद्ध और सूक्ष्म होने पर सात्त्विक विचार शुद्ध, अन्तःकरण, ईश्वर की भक्ति और परिपक्व वैराग्य की अवस्था में एकाग्रता अर्थात् निश्चल ध्यान से जाग्रत् होती है। जहाँ कहीं अकस्मात् किसी मनुष्य में अलौकिक शक्ति, अद्भुत चमत्कार तथा असाधारण ज्ञान का विकास देखने में आवे तो समझना चाहिए कि पूर्व जन्म के किन्हीं सात्त्विक संस्कारों के उदय होने अथवा हृदय पर सात्त्विक प्रभाव डालने वाली

अन्य किसी घटना से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् होकर सुषुम्णा के मुख में चली गयी है।

जिस प्रकार पृथ्वी में लगे हुए नल द्वारा पानी ऊपर जाने के लिए केवल नल के ऊपर लगी हुई मशीन को चलाने से नलों में पानी ऊपर आना स्वयं शुरू हो जाता है, इसी प्रकार से योग दर्शन के साधन पाद में चतुर्थ प्राणायाम की पाँचवीं विधि द्वारा कुण्डलिनि शक्ति को चेतन करके सुषुम्णा में लाने का यत्न किया जाता है।

निम्नलिखित प्राणायाम तथा मुद्राएँ कुण्डलिनीशक्ति को चेतन करने में सहायक हो सकती है।

१. भस्त्रिका, कपाल-भाति, सूर्यभेदी प्राणायाम, इत्यादि चतुर्थ प्राणायाम।

२. महाबन्ध, महावेध, महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, अश्विनीमुद्रा, योनि मुद्रा, शक्ति चालिनी मुद्रा इत्यादि।

किन्तु ये सब बाह्य साधन हैं, जो कुण्डलिनी को चेतन करने में सहायक होते हैं। उसके मुख का सुषुम्णा प्रवेश केवल ध्यान की परिपक्व अवस्था में हो सकता है। बिना ध्यान के केवल बाह्य साधनों से कुण्डलिनी शक्ति को क्षोभ पहुँचाने से अधिक से अधिक मूर्छा जैसी अवस्था प्राप्त हो सकती है। जो सुषुप्ति तथा बेहोशी से तो ऊँची है, किन्तु वास्तविक स्वरूपावस्थिति नहीं है और न उसमें सूक्ष्म जगत् ही का कुछ अनुभव हो सकता है। कुण्डलिनी जाग्रत् करने का सबसे उत्तम उपाय तो मूलाधार से लेकर सहस्रार तक सब चक्रों का भेदन करना है। विशेष विधि क्रियात्मक होने के कारण लेखबद्ध नहीं किया जा सकता। किसी अनुभवी निःस्वार्थ पथ दर्शक से ही सीखनी चाहिये। उसकी सामान्य विधि निम्न प्रकार है—

चक्रभेदन अर्थात् कुण्डलिनी—१. बद्धपद्म, (दोनों जंघाओं को दोनों पैरों से दबाकर), पद्म, सिद्ध, वज्र, स्वस्तिक आदि किसी आसन (२।४६, ४७) से मेरुदण्ड को सीधा किये हुए सिर, गर्दन और पीठ को सम सूत्र में करके मूलबंध लगाकर खेचरी मुद्रा के साथ बैठे।

२. स्थान एकान्त, बंद और शुद्ध हो। प्रातःकाल कम से कम तीन घंटे और सायंकाल दो घंटे ध्यान करना चाहिये।

३. कपाल भाति, भस्त्रिका आदि प्राणायाम के पश्चात् योनिमुद्रा करके खेचरी मुद्रा करें अर्थात् जिह्वा को ऊपर की ओर घुमाकर तालु के पास कण्ठ के छिद्र में लगायें और दाँतों को दवाये रखें।

४. प्राण मूलाधार चक्र में योनिमण्डल में ले जाकर ऐसी भावना करें कि वहीं श्वास-प्रश्वास चल रहा है।

५. वहीं मानसिक ध्वनि के साथ ॐ का मानसिक जाप करें। (चौथा प्राणायाम विधि ५)।

६. ध्यान करते समय ऐसी भावना करें कि कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा में प्रवेश करके मूलाधार को ऊर्ध्व मुख करती हुई विकसित कर रही है।

इस प्रकार जब छः मास, एक वर्ष अथवा दो वर्ष में इस चक्र में ध्यान पक्का हो जाय और प्राणोत्थान भली प्रकार होने लगे तो इसी भाँति अगले-अगले चक्रों को भेदन करना चाहिये। आज्ञा चक्र और सहस्रार में अधिक समय देना चाहिये। प्रथम चक्रों के ठीक-ठीक स्थान निश्चय करने में कठिनाई होगी किन्तु कुछ दिनों के अभ्यास के पश्चात् स्वयं यथा स्थान पर मन स्थिर होने लगेगा।

यह चक्र भेदन का क्रम दीर्घकाल तक धैर्य के साथ करते रहना चाहिये। सुगमता और शीघ्रसिद्धि प्राप्त करने के विचार से आज्ञाचक्र और सहस्रार-चक्र ध्यान के लिये पर्याप्त हैं। यहीं पर विधि पूर्वक ध्यान करने से कुण्डलिनी जाग्रत् हो सकती है। यद्यपि निचले चक्रों का विशेष ज्ञान और उनकी विशेष शक्तियाँ उनके अपने-अपने विशेष स्थान पर ध्यान करने के सदृश नहीं प्राप्त होतीं। डाकगाड़ी से लम्बी यात्रा पर जाने वाले यात्रियों को मार्ग में आने वाले स्टेशनों की भाँति इनका सामान्य ही ज्ञान होता है, किन्तु दोनों चक्रों पर ध्यान के परिपक्व होने के पश्चात् निचले चक्रों का भेदन अति सुगमता और शीघ्रता के साथ हो सकता है।

आत्म स्थिति के जिज्ञासु के लिये तो इन चक्रों के चक्र में अधिक न पड़कर अपने अन्तिम ध्येय को लक्ष्य में रखना ही श्रेयस्कर है।

इन चक्रों पर दो प्रकार से ध्यान किया जाता है—

१. सिद्धियों तथा शक्तियों के प्राप्त करने के उद्देश्य से चक्रों में दी हुई विशेष बातों की विशेष-विशेष चक्र पर भावना के साथ ध्यान किया जाता है। यह मार्ग तान्त्रिकों का है तथा लम्बा है।

२. आध्यात्मिक उन्नति तथा परमात्मप्राप्ति के उद्देश्य से इन सब बातों पर ध्यान न देकर केवल इन स्थानों को ध्येय बनाकर अंदर घुसना होता है। ऐसे अभ्यासियों के कुछ भी समक्ष आवे, उसको द्रष्टा रूप से देखना होता है; क्योंकि उनका लक्ष्य केवल परमात्म तत्त्व है।

कुण्डलिनी जाग्रत् करने का एक अनुभूत साधन सबसे प्रथम योग-दर्शन के साधन पाद सूत्र ५१ के विशेष वक्तव्य में दी हुई चतुर्थ प्राणायाम की पाँचवीं विधि के अनुसार प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर करने का अभ्यास परिपक्व कर लें। उपर्युक्त योग्यता की प्राप्ति के पश्चात् शरीर के पूर्ण रूप से स्वस्थ अवस्था में कार्तिक से फाल्गुन अर्थात् नवम्बर मास से मार्च तक के समय में सारे बाह्य व्यवहार से निवृत्त होकर शान्त एकान्त निर्विघ्न स्थान में साधन आरम्भ करें। वस्ती अथवा एनिमा द्वारा उदर-शोधन करते रहें। यदि आवश्यकता हो तो धौती और नेती भी करते रहें। भोजन प्रातःकाल बादाम का छौंका (बादाम की गिरी छिलके निकाली हुई), सौंफ कासनी, काली मिर्च पीस-छानकर पिसे हुए बादाम के साथ घी में छौंक लिये जाँय। उसमें मुनक्के, अंजीर आदि डाले जा सकते हैं।

चतुर्थ प्राणायाम द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्राणों की अच्छी प्रकार स्थिर करने के पश्चात् भृकुटि पर ध्यान अर्थात् अन्तर्दृष्टि से देखना आरम्भ कर दें। यदि इस प्रकार प्राणों का उत्थान न हो सके तो शवासन से लेटकर प्रक्रिया करे। प्राणों के उत्थान के समय किसी प्रकार के भय की वृत्ति न आने दें। किसी अनुभवी निःस्वार्थ पथ-प्रदर्शक की संरक्षता में साधन करें। इस प्रक्रिया में भी मुख्य वस्तु ईश्वर-प्रणिधान और तीव्र वैराग्य है।

महारन्ध्र और भृकुटि पर ध्यान करने वाले जिन साधकों को गर्मी के दिनों में इन स्थानों पर ध्यान करने से अधिक गर्मी और खुश्की प्रतीत हो, वे एक-एक मास का समय निचले चक्र भेदन में लगा सकते हैं। अर्थात् प्रथम एक मास मूलाधार चक्रभेदन सामर्थ्यानुसार एक निश्चित संख्या में अनुलोम-विलोम भस्त्रिका। एक निश्चित संख्या में मूलाधारक मध्यम भस्त्रिका। एक निश्चित संख्या में मूलाधार चक्र पर अश्वनि मुद्रा सदृश क्रिया। इसके पश्चात् चतुर्थ प्राणायाम की पाँचवीं विधि अनुसार सोहं का मानसिक जाप। मूलाधार पर जब प्राण स्थिर हो जायँ तब वहाँ केवल ध्यान अर्थात् अन्तर्दृष्टि से टकटकी लगाकर देखते रहना अथवा

वहाँ अनहद शब्दों को सुनते रहना। दूसरे मास में विशुद्ध चक्र भेदन इसी प्रकार करें तथा अन्य सब चक्रों में स्वाधिष्ठान चक्र तक इसी प्रक्रिया को रखें।

साधकों के लिये चेतावनी

महात्मा मूसा, जो यहूदी धर्म के प्रवर्तक हुए हैं, उनके संबंध में कहा गया है कि होरब पर योगसाधन के समय जब उनको प्रथम बार ईश्वर के प्रकाश के दर्शन हुए तो वे उस तेज को सहन न कर सके। इस रहस्य को उनके शिष्य योग मार्ग से अनभिज्ञ होने के कारण नहीं समझ सके हैं।

१. कुण्डलिनी शक्ति जब सुषुम्णा नाड़ी के अंदर प्रवेश होती है, तब उसकी पहिली टक्कर मूलाधार चक्र पर लगती है, इससे उपस्थ इन्द्रिय पर दबाव पड़ता है। इसलिये मूलबंध सावधानी से लगाये रहें।

२. उस समय स्थूल-जगत् से सूक्ष्म-जगत् में प्रवेश तथा स्थूल शरीर से सारे प्राणों का प्रवाह सुषुम्णा नाड़ी में जाना आरम्भ होने लगता है, सारे बाह्य प्राण हाथ पैर आदि से खिचाव के साथ अंदर जाने लगते हैं, उस समय भयभीत नहीं होना चाहिए, अन्यथा भय की वृत्ति आने के साथ ही प्राण फिर उतर जायेंगे और पछतावा रह जायगा।

३. विद्युन्मय सूक्ष्म नाड़ियों, चक्रों, तन्मात्राओं तथा तत्त्वों आदि के प्रकाश इतना अलौकिक होते हैं कि साधक को प्रथम अवस्था में उनका सहन करना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार सूक्ष्म-जगत् के शब्द भी अपरिचित होने के कारण अतिभयानक प्रतीत होते हैं। इसलिए द्रष्टा बन-कर देखता रहे, अन्यथा भय की वृत्ति आने के साथ ही कुण्डलिनी शक्ति जहाँ पहुँचती है, वह वहीं पर पुनः लौट जायगी।

४. सूक्ष्म-जगत् स्थूल-जगत् से अति विलक्षण है वहाँ की सूक्ष्मता और विलक्षणता भी प्रथम अवस्था में भय का कारण बन सकता है, उससे भय-भीत न हों।

५. कभी-कभी अप्रिय और भयंकर दृश्य भी सम्मुख आते हैं, वह कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते, स्वयं हट जाते हैं उनसे भय उत्पन्न न हो।

६. भृकुटि अथवा ब्रह्मरन्ध्र में प्राण रुक जाने के पश्चात् शवासन से लेटकर ध्यान करने से शरीर के सीधे रहने के कारण प्राणों का प्रवाह

कुण्डलिनी में खींच आने और फिर उससे सुषुम्णानाड़ी में प्रवेश होने में आसन से बैठने की अपेक्षा सुगमता से होता है परन्तु इस तरह लेट कर क्रिया करना स्वास्थ्य के लिए लाभदायक नहीं है।

चित्त लेटने की अवस्था में जब मूलाधार-चक्र पर सारे प्राणों के वेग की टक्कर लगती है और इसलिए उपस्थ इन्द्रिय पर अधिक खिंचाव पड़ता है, उस समय मूल-बन्ध पूरी दृढ़ता के साथ बँधा रहना चाहिए। अन्यथा कमजोर-क्षीण शुक्र वालों के लिए वीर्य अथवा मूत्र निकलने की सम्भावना हो सकती है।

७. ये सब प्रकार के भय उसी समय तक रहते हैं, जब तक कुण्डलिनी भृकुटी तक न पहुँच जाय। आज्ञा चक्र पर स्थिर होने के पश्चात् कोई भय नहीं रहता। उस समय सारे सूक्ष्म जगत् का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, जिस ओर वृत्ति जाती है उसी का यथार्थ स्वरूप समक्ष आने लगता है यही वास्तविक समाधि है। जब सहस्रार में पहुँचती है तो सारी वृत्तियों का निरोध होकर असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

८. एक बार कुण्डलिनी जाग्रत् होने पर यह न समझना चाहिए कि सर्वदा ऐसा ही होता रहेगा। मन तथा शरीर की स्वस्थ अवस्था, निर्मलता, सूक्ष्मता, विचारों की पवित्रता और वैराग्य का बना रहना अत्यावश्यक है। इनके अभाव में यह कार्य बन्द हो सकता है।

९. भृकुटि, ब्रह्मरन्ध्र आदि स्थानों पर प्राणों को ठहर जाने को कुण्ड-लिनी जाग्रत् न समझना चाहिए, किन्तु सारे प्राणों का प्रवाह जब स्थूल शरीर से सुषुम्णा नाड़ी में आ जाय और स्थूल शरीर तथा स्थूल जगत् से बेसुध होकर सूक्ष्म-शरीर तथा सूक्ष्म-शरीर में प्रवेश हो जाय तो कुण्डलिनी शक्ति का जाग्रत् समझना चाहिये।

१०. मांसभक्षण करने वाले योग के अधिकारी ही नहीं हो सकते इस-लिए मांस तो सदा अभक्ष्य ही है। मादक पदार्थ, शराब, भंग, सुलफा, सिग-रेट, बीड़ी आदि, लाल मिर्च, खटाई, तेल, गरिष्ठ, बादी, कोष्ठबद्धता करने वाले और कफ वर्धक तथा तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन न करें। ध्यान तथा प्राण के उत्थान से उत्पन्न होने वाली खुश्की और गर्मी को दूर करने के लिए दही, छाँछ और मट्ठे का सेवन कदापि न करें, इससे वायु आदि के कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में घृत बादाम का छौंका तथा मीठे बादाम का तेल और दूध लाभदायक होता है।

११. मैथुन, कुसंग, क्रोध, शोक, भय आदि उत्पन्न करने वाली बातों तथा शारीरिक परिश्रम वाले कार्यों से इन दिनों बचा रहे।

१२. आहार सूक्ष्म, सात्त्विक, स्निग्ध पदार्थ, दाल, मूँग, सब्जी, लौकी, पपीता आदि, घी (घृत और बादाम, काँसनी, सौंफ, कालीमिर्च का छौंका) एवं मीठे स्वास्थ्य वर्धक फल मेवे आदि खाना चाहिए।

१३. शरीर का शोधन बस्ती (एनिमा) से होता रहे, आँतों में मल न रहने पावे, न कब्ज रहे, धौती-नेती करते रहे तो अच्छा है, किसी रेचक औषधि, इतरीफल, त्रिफला, त्रिकुटा आदि का सेवन अच्छा है।

१४. कुपथ्य करने से प्रमेह, वायु विकार, शरीर कम्पन आदि रोगों से ग्रस्त हो जाने की संभावना रहती है।

१५. शारीरिक ब्रह्मचर्य के समान मानसिक तथा आध्यात्मिक ब्रह्मचर्य अतिआवश्यक है, अर्थात् आध्यात्मिक शक्तियों का शारीरिक कामों में प्रयोग तथा अपने अनुभवों को दूसरे पर प्रकट न करना चाहिए अन्यथा शक्तियों के खोये जाने की सम्भावना होती है।

१६. इस मार्ग में आडम्बर बनावट से बचते हुए अपनी शक्तियों तथा अनुभवों को छिपाये हुए साधारणावस्था में रहना कल्याणकारी है। इस में बतलाया गया गया है—

यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम्।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मणः॥
गूढ़धर्माश्रितो विद्वानज्ञातचरितं चरेत्।
अन्धवच्च जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत्॥

जिसको कोई संत या असंत, अश्रुत या बहुश्रुत, सुवृत्त या दुर्वृत्त नहीं जानता, वह ब्रह्मनिष्ठ योगी है। गूढ़ धर्म का पालन करता हुआ विद्वान् योगी दूसरे से अज्ञात चरित रहे। अन्धे के समान, जड़ के समान और मूक के समान पृथ्वी पर विचरण करे।

१७. सं० ५ में बतलाये हुए ध्यान की नीचली प्रकाशरहित अवस्था में हो सामने आते हैं और अधिकतर अपना कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं रखते हैं, मन की एकाग्रता में अपने ही पिछले संस्कार वृत्तिरूप से उदय हो जाते हैं, निर्भय होकर द्रष्टा बनकर उनको देखता रहे और यदि कोई अभ्यासी अपने पिछले संस्कार वश इनको वास्तविक रूप से ही अनुभव करे

और उनसे अपना अनिष्ट समझकर उनको हटाना चाहे तो संकल्पमात्र से ही अथवा 'सोहम्' या 'अजपा गायत्री' के जाप से तुरंत ही अदृश्य हो जायेंगे।

१८. और वे जो ज्योतिर्मय अद्भुत प्रकाश के साथ सामने आते हैं उनमें भी आसक्त न हों। केवल द्रष्टारूप से देखता रहे। वे भी अधिकतर अपने ही सात्विक संस्कार होते हैं, जो चित्त की प्रकाशमय अवस्था में वृत्तिरूप से उदय होते हैं तथा ब्रह्मलोक तक जो सात्त्विक संसार है, वह भी चित्त की वृत्तिरूप से ही द्रष्टा के सामने आता है।

१९. सम्प्रज्ञात समाधि की यह प्रकाशमय अवस्था उस सबीजमुक्ति का अनुभव कराती है, जिसका वर्णन योग दर्शन सूत्र के विशेष वक्तव्य में किया गया है।

२०. सं० १६ में बतला आये हैं कि योग की शक्तियों को सांसारिक व्यवहार की बातों में प्रयोग करना अहितकर है। इस सम्बन्ध में एक साधक ने जो अपनी प्रारम्भिक अवस्था का अनुभव बतलाया है, उसको अन्य साधकों के हितार्थ लिखते हैं। उस अभ्यासी ने बतलाया कि बड़े तप और साधन के पश्चात् जब उसको किसी एक आसन से छः सात घण्टे बैठने का अभ्यास हो गया और प्राण भी किसी विशेष स्थान पर उतनी देर तक स्थिर होने लगे, तब गुरु कृपा और ईश्वर अनुग्रह से एक रात दो बजे के समय कुण्डलिनी जाग्रत हुई। उस दिन से लगभग दो बजे रात को चाहे वह बैठा हो चाहे सोता हो, चाहे जागता हो, चाहे भजन कर रहा हो स्वयं में विचित्र सनसनाहट के साथ उसके शरीर के सारे स्थूल प्राण सुषुम्णा नाड़ी में प्रवेश कर जाते और इस स्थूल शरीर से परे होकर सूक्ष्म जगत् के नाना प्रकार के अनुभवों को वह ग्रहण करने लगता। कुछ दिनों तक इसी प्रकार से कार्यक्रम चलता रहा। उसने पाश्चात्य स्पिरिच्युअलिज्म की बातों में सुन रखा था कि सब मृतक आत्माओं से बातचीत हो सकती है। (वास्तव में यह बात ठीक नहीं है इसको योग दर्शन के साधन पाद सूत्र ३२ के विशेष वक्तव्य में सम्मोहन शक्ति के प्रकरण में समझाया गया है।) उसका एक सम्बन्धी जिसके प्रति उसका मोह था, कुछ समय पूर्व मर चुका था। एक दिन संकल्प किया कि आज रात अपने निश्चित समय पर उसको देखेंगे कि वह कहाँ है। ठीक रात के दो बजे के पश्चात् सूक्ष्म-जगत् के अनुभव का कार्य आरम्भ हुआ तो उसके समक्ष एक गर्भ आया। पूछने पर अपमान और घृणा के साथ बतलाया गया कि वह वही व्यक्ति है जिसको तुम देखना चाहते हो ! इस गर्भ रूप में अमुक घर में,

अमुक स्थान में है। वह सब बातें कई मास पश्चात् ठीक निकली, किन्तु उसी दिन से उस साधक का वह कार्य बन्द हो गया और दो वर्ष तक कई घृणित रोगों से ग्रस्त रहा, जिनके कारण अभ्यास पर बैठना असम्भव हो गया। अन्त में रॉन पर गाँठ वाले फोड़े निकलने आरम्भ हुए। जब पाँचवाँ फोड़ा निकल रहा था। तब एक दिन उसको अपनी इस अधोगति की अवस्था पर अत्यन्त शोक और दुःख हुआ। उस रात दोनों हाथों को नीचे की ओर सीधा करके दीवार का सहारा लेकर यह निश्चय कर लिया कि पिछली अवस्था को प्राप्त किये बिना न उठेगा। अधिक समय बीतने के पश्चात् उस अवस्था में प्रकाश के साथ एक आवाज आयी 'कल आयेंगे'। उसने उत्तर दिया नहीं, आज ही आना पड़ेगा, थोड़ी देर के पश्चात् उस प्रकाश में एक और अत्यन्त दिव्यप्रकाश के साथ एक विशाल दिव्य प्रकाश-मय आकृति उसके सामने आयी। उस समय वह सारी बातें वह साधक बताना नहीं चाहता था, किन्तु उस सारी रात तथा उसके पश्चात् दिन तक सुरीले मनोरंजक वेदों के मन्त्र सुनाई देते रहे। उस दिन से उसका कार्य फिर पूर्ववत् आरम्भ हो गया, किन्तु यह उससे विचित्र रूप का था। इसमें पिछली-जैसी मनोरंजकता और आकर्षण तो न था, किन्तु उससे अधिक आध्यात्मिकता की ओर ले जाने वाला था। सम्भव है कि पिछले अनुभव की सूक्ष्मता को अधिक समय तक सह न सकने के योग्य उसका स्थूल शरीर न हो और उसको कुछ विशेष भागों का भोगना और विशेष कार्यों का करना हो।

ईश्वर के तरफ से जो कुछ भी होता है, वह मनुष्य के कल्याणर्थ ही होता है किन्तु हमारा उद्देश्य केवल इतना बता देना है कि इन शक्तियों का संसारिक कार्यों में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अपने अनुभवों को दूसरों पर प्रकट करने में जहाँ अपनी इन शक्तियों का ह्रास होना तथा अभिमान और अहंकार का होना है वहाँ दूसरे के लिए भी अहितकर है। योग की रहस्यपूर्ण बातों को साधारण लोग समझने में असमर्थ होते हैं। परिणाम स्वरूप कुछ अन्ध विश्वासी बनकर धोखा खाते हैं और कुछ पाखण्ड रचकर सीधे सच्चे लोगों को धोखा देते हैं। परस्पर भी एक दूसरे को अनुभव बताने में राग-द्वेष, असंतोष और अभिमान की वृत्तियाँ उदय होकर साधन में विघ्नकारी होती हैं।

संगति—अब चित्त-स्थिति का दूसरा उपाय बतलाते हैं—

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनः स्थितिनिबन्धिनी ॥३५॥

नासिका के अग्रभाग में संयम की दृढ़ता से जो दिव्य गन्ध का साक्षात्कार होता है उसको गन्धप्रवृत्ति तथा गन्ध-संवित् कहते हैं।

जिह्वा के अग्रभाग में संयम की स्थिरता से जो दिव्य रस का साक्षात्कार होता है उसे रस प्रवृति या रस संवित् कहते हैं।

तालु में संयम की स्थिति में जो दिव्य रूप का साक्षात्कार होता है, उसको रूप प्रवृत्ति और रूप संवित् कहते हैं।

जिह्वा के मध्यभाग में संयम करने से जो दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार होता है, उसका नाम स्पर्श प्रवृत्ति और स्पर्श संवित् है।

जिह्वा के मूल में संयम की दृढ़ता से जो दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है, उसको शब्द प्रवृत्ति और शब्द संवित् कहते हैं।

इस प्रकार ये प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई चित्त की स्थिति को बाँधती हैं, संशय का नाश करती हैं, समाधि-प्रज्ञा की उत्पत्ति में द्वार रूप होती हैं। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, मणि, प्रदीप, रत्न, प्रभादि में चित्त के संयम से जो इनका साक्षात्कार होता है, वह भी विषयवती प्रवृति ही जाननी चाहिये।

योग दर्शन के भाष्यकार लिखते हैं कि शास्त्र, अनुमान और आचार्य के उपदेश से सम्यक् जाना हुआ अर्थ यथार्थ ही होता है क्योंकि शास्त्र और आचार्य यथार्थ अर्थ के प्रतिपादन में समर्थ होते हैं तथापि शास्त्रों और आचार्यों से उपदेश किये हुए पदार्थों में जब तक किसी एक सूक्ष्म पदार्थ का साक्षात्कार नहीं होता, तब तक कैवल्य-पर्यन्त सूक्ष्मतम पदार्थों में दृढ़ विश्वास नहीं होता। इसलिए शास्त्र अनुमान और आचार्य के उपदेश में दृढ़ विश्वास उत्पन्न करने के लिए किसी एक सूक्ष्म व्यवहित अथवा विप्रकृष्ट पदार्थ का साक्षात्कार संयम की दृढ़ता के लिए अवश्य करना चाहिए।

जब शास्त्रादि उपदिष्ट अर्थ का एक देश में जिज्ञासु को प्रत्यक्ष हो जाता है, तब कैवल्य पर्यन्त जितने सूक्ष्म विषय हैं, उन सबमें उनका श्रद्धा पूर्वक दृढ़ विश्वास हो जाता है। इसीलिए इन विषयवती प्रवृतियों का निरूपण किया गया है, जिनका शीघ्र साक्षात्कार हो जाता है।

इन प्रवृत्तियों में से किसी एक प्रवृत्ति के लाभ से उस शास्त्रोक्त अर्थ के प्रत्यक्ष करने में पुरुष की सहज ही आसक्ति हो जाती है और शास्त्रोक्त

अर्थ में वशीकारिता (स्वाधीनता) होने से उस शास्त्रोक्त अर्थ में श्रद्धा, वीर्य, स्मृति और समाधि का लाभ भी योगी को निर्विघ्न हो जाता है।

अतः विश्वास और श्रद्धा के लिए तथा चित्त की स्थिति के लिये पहिले इन विषयवर्ती प्रवृत्तियों में से किसी एक का संम्पादन करना चाहिए।

वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात—इन स्थानों पर यदि स्थूल ग्राह्य विषयों का अर्थात् किसी विशेष गन्ध, रस, रूप, स्पर्श अथवा शब्द का ध्यान किया जाय तो पूरी एकाग्रता होने पर उसका साक्षात्कार होने लगे तब वह वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होगी।

विचारानुगत सम्प्रज्ञात—यदि वहाँ न रुक कर एकाग्रता को और अधिक बढ़ाया जाय अथवा इनके सूक्ष्म विषय तन्मात्राओं तक का साक्षात्कार होने लगे तो वह विचारानुगत सम्प्रज्ञात-समाधि कहलाएगी।

आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात—यदि उसमें भी राग को छोड़कर ध्यान को अन्तर्मुख किया जाय तो अहंकार का साक्षात्कार होने लगेगा। यह अहंकार गंध आदि विषय-जैसी कोई ग्राह्य वस्तु नहीं है, न इसका इस प्रकार-जैसा साक्षात्कार होता है। इसमें एक विचित्र आनन्द के साथ बाहर के सारे व्यवहारों से भूली-जैसी अवस्था होती है, किन्तु यह भूलापन स्वप्न अथवा सुषुप्ति जैसा नहीं होता। इसमें अहं वृत्ति से अहंकार का साक्षात्कार होता है। यही अहंकार है और इस समाधि का नाम आनन्दानुगत सम्प्रज्ञात समाधि होगा।

अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात—यदि आनन्दानुगत में आसक्ति और लगाव को छोड़कर ध्यान को और अंदर की ओर बढ़ाया जाय तो अस्मिता (पुरुष से प्रतिबिम्बित चित्त सत्त्व) का साक्षात्कार होने लगता है, इसमें भी चित्त का किसी ग्राह्य विषय जैसा साक्षात्कार नहीं होता। इसकी प्रथम अवस्था का ही कुछ वर्णन हो सकता है। अन्तिम अवस्था का यथार्थ रूप शब्दों में नहीं आ सकता। इसमें अहंकार द्वारा आत्म तत्त्व को अहं-भाव प्रतीति कराने वाली 'अहंवृति' नहीं रहती। कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ममता, देश, दिशा, काल आदि से भिन्न आत्म तत्त्व की प्रतीति होती है। बीच-बीच में ध्यान के शिथिल होने पर जब कोई अहंकार वाली वृत्ति आकार अपने कर्तृत्व, भोक्तृत्व, और ममता की सीमा से परिछिन्न अवस्था की स्मृति कराती है तो उस दशा में बड़ा आश्चर्य होता है। इसकी

उच्चतम अवस्था विवेक ख्याति है, जिसमें चित्त से भिन्न आत्मा का साक्षात्कार होता है, किन्तु यह चित्त द्वारा आत्म साक्षात्कार वास्तविक नहीं है।

इसमें भी राग और आसक्ति के टूटने पर और अन्दर की ओर घुसने पर (वैराग्य द्वारा) जब यह वृत्ति भी नहीं रहे, तब सब वृत्तियों के निरोध होने पर स्वरूपावस्थित होती है, किन्तु ये सब बातें एक साथ अथवा सुगमता और शीघ्रता से आने वाली नहीं है। दीर्घ काल तक निरन्तर सत्कार से अभ्यास करते हुए और क्रम-क्रम से भूमियों को विजय करते हुए धैर्य के साथ उन्नति करते रहना चाहिये।

अधिकारी पाठकों की जानकारी के लिये यह भी बता देना आवश्यक है कि सम्प्रज्ञात की सिद्धि के लिये भृकुटि (आज्ञा-चक्र) और असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि के लिये ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार) ध्यान के लिए सबसे उत्तम स्थान है, किन्तु अभ्यास के लिए प्रारम्भ में अन्दर से इन स्थानों का अनुमान द्वारा पता लगाना कठिन है। यदि रूप विषय का स्थान जो तालु है, उसके समक्ष अन्दर से ध्यान किया जाय तो ध्यान स्वयं भृकुटि (आज्ञाचक्र) तक पहुँच जाता है। इसी प्रकार जिह्वामूल (ऊपर का स्थान अथवा छोटो जिह्वा) जो शब्द-विषय का स्थान है, वहाँ से तालु की ओर ऊपर को ध्यान किया जाय तो ध्यान ब्रह्मरन्ध्र तक स्वयं पहुँच जाता है। ध्यान के लिये तालु को भृकुटी द्वारा और जिह्वामूल अथवा छोटी जिह्वा को ब्रह्मरन्ध्र का द्वार समझना चाहिए। कहीं-कहीं जिह्वामूल से ऊपर तालुमूल को एक ललनाचक्र का स्थान बतलाया है।

योग शब्द की पुनर्व्याख्या

'योग' शब्द की व्युत्पत्ति—संस्कृत की 'युज समाधौ' धातु में 'धज्' प्रत्यय लगने से तथा 'युजिर्' 'योग' धातु में 'कर्तरि यज्' प्रत्यय लगने से हुई है। इस प्रकार इस शब्द का सामान्य अर्थ है—'समाधि जोड़ने वाला।'

पतञ्जलि योग-भाषा के अनुसार—**योगः समाधिः स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः** अर्थात् 'योग समाधि को कहते हैं, जो चित्त का सार्वभौम धर्म है।' दूसरे शब्दों में—'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् चित्तवृत्तियों के निरोध (एकाग्रता) का नाम ही योग है।

महात्मा याज्ञवल्क्य के शब्दों में—'संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मः परमात्मनो' अर्थात् 'जीवात्मा और परमात्मा के संग (मिलन) का नाम योग' है।

श्रीमद्भगवत्गीता के अनुसार—१. समत्व योग उच्यते अर्थात् समत्व (जीवात्मा एवं परमात्मा के एकीकरण) का नाम 'योग' है। तथा—२. योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् कर्म-कौशल का नाम ही योग है।

एक अन्य मतानुसार—**'सर्वचिन्ता परित्यक्तो निचिन्तो योग उच्यते'** अर्थात् 'सब चिन्ताओं को त्याग कर निश्चित हो जाने का नाम ही योग है।'

वेदान्त के मत में—'जीव और आत्मा के मिलन की संज्ञा ही योग है।' **'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के अनुसार**—'शिव तथा आत्मा के अभेदज्ञान का नाम ही योग है। **आगम के मत से**—'शिव तथा शक्ति का अभेद ज्ञान ही योग है।' **'योगवाशिष्ठ' के अनुसार**—'संसार सागर से पार होने की युक्ति को ही योग कहते हैं।' **श्री भारती कृष्ण तीर्थ के मत में**—'नारायण के साथ नर के एकात्म हो जाने के साधन को योग कहा जाता है।' **श्री अरविंद का कथन है**—जिसके द्वारा आभ्यन्तर तथा बाह्य जीवन का ऐसा परिपूर्ण उत्सर्ग तथा परिवर्तन हो कि उसके द्वारा भगवत चैतन्य की अभिव्यक्ति हो तथा वह स्वयं भी भगवत्-कर्म का एक अङ्ग बन सके। **स्वामी शिवानन्द सरस्वती के शब्दों में**—'योग उस साधन सारणी का नाम है, जिसके द्वारा जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता का अनुभव होता है एवं जीवात्मा का परमात्मा के साथ ज्ञान पूर्वक संयोग होता है।' **श्री नकुलेश्वर मजूमदार के मतानुसार**—'भगवान् के साथ जो जीव का मिलन होता है उसी का नाम योग है।'

शब्द कोषों में 'योग' के तीस चालीस अर्थ तक गिनाये गये हैं तथा आयुर्वेद में औषधियों के मिश्रण को 'योग' कहा जाता है।

योग शब्द की उक्त परिभाषाओं तथा ग्रन्थों एवं महापुरुषों द्वारा की गयी विभिन्न व्याख्याओं का मूल आशय एक ही है। और वह है—योग उस क्रिया का नाम है, जो जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलन करता है। अर्थात् जिस साधन द्वारा जीवात्मा और परमात्मा में ऐक्य स्थापित हो सके, वही 'योग' है। जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने के अनेक साधन मान्य किये गये हैं, इसी कारण योग के भी अनेक प्रकार माने

जाते हैं, यथा—भक्ति योग, ज्ञान-योग, बुद्धियोग, नाद-योग, शिव-योग, लय-योग, ध्यान-योग, प्रेम-योग, मन्त्र योग, तन्त्र-योग, कुण्डलिनी-योग, संकीर्तन-योग, जप-योग, ध्यान-योग, अनासक्ति-योग, कर्म-योग आदि।

श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में अठारह प्रकार के योगों का अलग-अलग वर्णन पाया जाता है। हिन्दू-धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म तथा सम्प्रदायों में भी योग के विभिन्न स्वरूप प्रचलित हैं।

योग के अंग

'साधन चतुष्टय' में योग की चार प्रमुख विधाएँ ही स्वीकार की गयी हैं—

१. मन्त्रयोग, २. हठयोग, ३. लय योग तथा ४. राजयोग।

यह सम्पूर्ण दृश्यमान—जगत् नाम रूप वाला होने के कारण जीव को अपनी ओर आकर्षित किये रहता है, अतः उसके आकर्षण से बचने के लिए ईश्वर के जिस दिव्य नाम-रूप का आश्रय लेकर चित्तवृत्ति निरोध की जो क्रियाएँ की जाती हैं, वे सब 'मन्त्र योग' के अन्तर्गत आ जाती हैं। यथा—ध्यान-योग, भक्ति-योग, संकीर्तन-योग, जप-योग, प्रेम योग आदि।

मनुष्य शरीर में षट्चक्रों की विद्यमानता है। जिन क्रियाओं द्वारा उन चक्रों का वेधन करके साधक चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा परमात्मा का सामीप्य लाभ पाता है, वे सब 'हठयोग' के अन्तर्गत आती हैं। षटचक्र वेधन द्वारा सुप्त-कुण्डलिनी को जागृत कर उसका सहस्र दल कमल में विद्यमान परमात्मा के साथ ऐक्य स्थापित करने की क्रियाओं को 'लय-योग' कहते हैं। वस्तुतः यह भी योग की ही एक चरम स्थिति है।

बुद्धि-प्रयोग द्वारा मन की क्रियाओं को नियन्त्रित कर विचारों के द्वारा चित्तवृत्ति निरोध की स्थिति प्राप्त करने को 'राज-योग' कहते हैं।

सांख्य-दर्शन के अनुसार प्रकृति तीन शक्तियों से संघटित है—१. सत्व, २. रजस् ३. तमस्। इसकी अभिव्यक्ति को—१. सन्तुलन, २. क्रियाशीलता तथा ३. निष्क्रियता भी कहा जा सकता है। 'रजस्' क्रियाशीलता तथा 'तमस्' निष्क्रियता का प्रतीक है। 'सत्त्व' इन दोनों

के सन्तुलन करने वाले सामञ्जस्य का प्रतीक है। हठयोग राजयोग तथा कर्मयोग—ये क्रमशः सत्व, रजस् एवं तमस् शक्तियों से सम्बन्धित है। इसमें पहला अर्थात् हठयोग शारीरिक पक्ष से, दूसरा अर्थात् राजयोग मानसिक पक्ष से एवं तीसरा अर्थात् कर्मयोग—दोनों पक्षों से सम्बन्ध रखता है। इससे भिन्न चौथा 'ज्ञानयोग' है, जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति है। योग की सभी विधाएँ इन्हीं में समाहित की जा सकती हैं।

हठयोग के आठ अङ्ग माने गये हैं। कुछ आचार्यों ने तथा कुछ विद्वानों ने ६ अङ्ग भी कहा है। जिन्होंने ७ अंग माने हैं उन्होंने आरम्भ के अंगों को मिलाकर एक कर दिया है तथा जिन्होंने छः अंग माने हैं उन्होंने आरम्भ के दो अङ्गों की पृथक् मान्यता स्वीकार नहीं की है। उनका कहना है कि जो छः अंगों का पालन करेगा उनके लिए आरम्भ के दो अंगों का पालन करना अनिवार्य है ही, अतः उनकी गणना पृथक् से क्यों की जाय? बहरहाल यह आचार्यों के बुद्धि- विकास युक्त तर्क है। कुछ आचार्यों ने योग के कुछ अङ्गों में नाम-भेद भो कर दिया है। अतः हम विद्वानों के तर्क-जाल में न उलझकर, यहाँ हठयोग के हठ अंङ्गों के नामों का उल्लेख मात्र कर रहे हैं, इनकी व्याख्या आगे की जायेगी। नाम इस प्रकार हैं—१. यम २. नियम ३. आसन ४. प्राणायाम ५. प्रत्याहार ६. धारणा, ७. ध्यान और ८. समाधि।

'लययोग' के ९ अंग कहे गये हैं—१. यम, २. नियम, ३. स्थूल-क्रिया, ४. सूक्ष्म-क्रिया, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. लय क्रिया तथा ९. समाधि। इनमें स्थूल-क्रिया का मन्त्र क्रिया से, सूक्ष्म क्रिया का स्वरोदय क्रिया से, प्रत्याहार का नादनुसन्धान क्रिया से तथा धारणा का षट्चक्र-वेधन क्रिया से सम्वन्ध रहता है।

राजयोग के १६ अंग कहे गये हैं, जिनमें ७ अङ्ग विचार प्रधान हैं। २ अंग धारणा विषयक हैं—प्रकृति धारणा और ब्रह्म धारणा, ३ अंग ध्यान विषयक हैं—विराड्-ध्यान, ईश-ध्यान तथा ब्रह्म-ध्यान, ४ अङ्ग समाधि के हैं—वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत इनके ज्ञातव्य विषयक क्रमशः स्थूलभूत, सूक्ष्म भूत, अहंकार तथा तादात्म्यापन्न पुरुष माने गये हैं। इन विधियों द्वारा राजयोग का अभ्यासी मन को वश में करके प्राणों पर विजय तथा योग सिद्धि प्राप्त करता है।

अष्टांग योग

यहाँ योग के ८ अङ्गों का सामान्य परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक है। इससे पाठक यह जान सकेंगे कि योग-साधन से क्या-क्या लाभ प्राप्त हो सकते हैं जिनका संक्षिप्त विचरण इस प्रकार है—

१. यम—यम के अन्तर्गत—१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य तथा ५. अपरिग्रह—इन पाँच की गणना की जाती है।

मन, वचन तथा कर्म से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का दुःख न पहुँचाने का नाम ही 'अहिंसा' है। ईर्ष्या, द्वेष तथा दुर्वचनों का परित्याग भो इसी प्रकार के अन्तर्गत आ जाता है। जो प्राणी सर्वतो भावेन 'अहिंसक' बन जाता है, संसार के सभी जीव (हिंसक पशु आदि भी) उससे प्रेम कर उठते हैं।

मन, वचन, कर्म (सब प्रकार) से 'सत्य' का पालन करने तथा प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलने से वाणी सिद्ध हो जाती है तथा शरीरस्थ सूक्ष्म शक्तियों का उत्तरोत्तर विकास होने लगता है।

किसी की वस्तु को स्वयं पाने की अनधिकार चेष्टा न करना ही 'अस्तेय' है। इसके अन्तर्गत चोरी, ठगी, रिश्वत, कम तौलना, उचित मूल्य से अधिक लेना अथवा पराई वस्तु को अपनी वताना आदि सभी बातें आ जाती हैं।

मन, वचन, तथा कर्म से सब प्रकार के मैथुनों का परित्याग करना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य पालन से सब प्रकार की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

किसी प्रकार की सम्पत्ति का संचय न करना तथा उससे बचना ही 'अपरिग्रह' है। इसके अन्तर्गत-स्वार्थपरता, मोह, ममता आदि विषय भी आ जाते हैं। अपरिग्रह से जन्म-जन्मान्तरों का ज्ञान होता है।

२. नियम—इसके अन्तर्गत—१. शौच, २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय तथा ५. ईश्वरप्रणिधान इन पाँचों की गणना की जाती है।

सब प्रकार की बाह्य तथा आभ्यन्तरिक स्वच्छता में ईर्ष्या, घृणा, मद, मत्सर, क्रोध, लोभ, मोह आदि का त्याग आता है। चित्त शुद्धि, मन की शुद्धि, एकाग्रता, जितेन्द्रिय एवं आत्म साक्षात्कार की योग्यता—इन पाँचों को आभ्यन्तर शौच माना गया है। शौच, शरीर को स्वस्थ, चित्त

को निर्मल तथा विचारों को पवित्र बना कर ईश्वरीय सामीप्य-लाभ कराने में सहायक होता है।

प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न बना रहना ही 'संतोष' है, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मृत्यु आदि किसी भी कारण से असन्तुष्ट न होना तथा कामनाओं पर 'विजयी' बना रहना ही सन्तोष का प्रमुख लक्षण है। इससे सर्वत्र सुख का अनुभव होता है।

कष्ट-सहिष्णुता ही 'तप' है। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान आदि को समभाव से सहन करते हुए, ईश्वर चिन्तन में मन लगाये रखने को 'तप' कहते हैं। तप द्वारा इन्द्रियों का असाधारण विकास होता है तथा सब प्रकार की सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं।

धर्म, वेदान्त, अध्यात्म एवं सद्‌गुणों के पोषक तथा दुर्गुणों को हटाने वाले वेद, शास्त्र, पुराणादि सद्ग्रंथों का अध्ययन करना ही स्वाध्याय है। यह आत्मोन्नति की प्रमुख सीढ़ी है। इससे इष्टदेव का साक्षात्कार होता है।

अपने शरीर के रोम-रोम में ईश्वर का अनुभव करना तथा प्रत्येक समय उन्हीं के चिन्तन तथा गुणानुवाद में संलग्न रहकर, अपने समस्त कर्म तथा उनके परिणामों को उन्हीं को समर्पित करते रहना ही ईश्वर प्रणिधान है इससे समाधि का सिद्धि होकर, ईश्वर-समीप्य प्राप्त होता है।

३. आसन—आसन एक प्रकार से व्यायाम क्रियाएं हैं जिनसे शरीर के विभिन्न अङ्गों को विभिन्न आकृतियों में बदला जाता है। ये शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग करते ही हैं, चित्त तथा विचारों को पवित्र बनाते हैं। आसनों की संख्या हजारों में पायी जाती हैं, परन्तु उन सबको ८४ आसनों में सीमित किया गया है। अतः योग के ८४ आसन ही प्रसिद्ध हैं, उनमें से कुछ ही आसन लाभदायक, सुखकर तथा सहज-साध्य हैं। इन आसनों को विभिन्न आयु के स्त्री-पुरुष कर सकते हैं तथा वांछित लाभ उठा सकते हैं।

४. प्राणायाम—श्वास लेने तथा छोड़ने की विशेष क्रिया को प्राणायाम कहा जाता है। प्राण-वायु के निरोध से चित्त की चंचलता दूर हो जाती है, वह स्थिरता प्राप्त कर लेता है। प्राणायाम का क्रिया सहज सुसाध्य तथा सभी के लिए उपयोगी है। इसके सम्बन्ध में भी आगे विस्तार पूर्वक लिखा जायगा।

५. **प्रत्याहार**—जिन क्रियाओं से वहिर्मुखी इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से विरक्त कर, अन्तर्मुखी बनाया जाता है, उन्हें प्रत्याहार कहते हैं। नेत्र, जिह्वा, नासिका, त्वचा तथा कर्ण—इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के प्रमुख विषय रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द है। नेत्र को रूप से, जिह्वा को रस से, नासिका को गन्ध से, त्वचा को स्पर्श से तथा कर्ण को शब्द से हटा लेना ही 'इन्द्रिय निग्रह' अथवा प्रत्याहार है। इस प्रकार के इन्द्रिय निग्रह से शक्ति, सिद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

६. **धारणा**—चित्त की चञ्चलता दूर करने हेतु उसे शरीर के किसी एक विशेष भाग में अथवा बाह्य प्रदेश में किसी एक बिन्दु पर स्थित करने की क्रिया को धारणा कहा जाता है। इसके लिए भृकुटी, नासिकाग्र, हृदय-कमल अथवा नाभि-चक्र आदि शरीर के आभ्यन्तरिक भाग एवं सूर्य, चन्द्र, ध्रुव आदि बाह्य-प्रदेश चुने जाते हैं। धारणा से चित्त एक स्थान पर स्थिर हो जाता है, इधर-उधर नहीं भटकता। धारणा की परिपक्वावस्था ही 'ध्यान' कहलाती है। धारणा को दूसरे शब्दों में चित्त की एकाग्रता भी कहा जा सकता है।

७. **ध्यान**—ध्यान दो प्रकार के कहे गये हैं—स्थूल तथा सूक्ष्म, किसी चित्र, मूर्ति आदि के माध्यम से ईश्वर को ध्यान करने को 'स्थूल ध्यान' तथा स्वहृदयस्थ तेजोमय आत्मा में ही ईश्वर-चिन्तन करने को 'सूक्ष्म ध्यान' कहते हैं।

८. **समाधि**—सब प्रकार के योग में इस अवस्था को अन्तिम माना गया है। अर्थात् जब सब कुछ शून्य लगता है, तथा मात्र अपने ध्येय (ईश्वर) की ही प्रतीति होती है, उस स्थिति को 'समाधि' कहा जाता है। इस अवस्था में स्वयं के अस्तित्व का भी भान नहीं रहता। समस्त यौगिक क्रियाओं की चरम परिणति ही समाधि अवस्था है।

टिप्पणी—षट्कर्मों के अन्तर्गत—१. नेति, २. धौति, ३. बस्ती, ४. कपाल भाति, ५. त्राटक तथा ६. नौलि—इन छः की गणना की जाती है। योग के विभिन्न अङ्गों-उपाङ्गों में ही ये क्रियाएँ आती हैं। इनके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा।

चित्त-वृत्तियाँ परम चंचल होती हैं। जब तक उन पर नियन्त्रण स्थापित नहीं होता, अर्थात् जव तक चित्त एकाग्र नहीं होता, तब तक जीवात्मा का परमात्मा से मिलन सम्भव नहीं हो पाता। अस्तु, चित्त-

वृत्तियों को वशीभूत करने के जो भी उपाय प्रयोग में लाये जाते हैं, उन सबको योग की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, तथापि रूढ़ अर्थ में योग से तात्पर्य 'योगासन' आदि की क्रियाएँ ही समझी जाती हैं। यथार्थ में योगासन योग के एक मात्र एक अङ्ग ही है जो शरीर को स्वस्थ एवं नीरोग बनाकर चित्त शुद्धि में सहायक होते हैं। चित्त शुद्धि से एकाग्रता की प्राप्ति होती है। जीवात्मा का परमात्मा से मिलन ही योग का अन्तिम उद्देश्य है।

योग के आठ अंङ्गों में से साधक को क्रमशः सफलताएँ प्राप्त करनी पड़ती हैं। यम-नियम से लेकर ध्यान तक के प्रारम्भिक सात अङ्ग 'साध्य' कहे जा सकते हैं। इन्हें कोई भी साधक बिना गुरु की सहायता के केवल संयम, स्वाध्याय तथा अभ्यास के बल पर भी सिद्ध कर सकता है। यदि किसी गुरु का निर्देशन भी प्राप्त हो जाय, तब तो कहना ही क्या है? परन्तु योग के अन्तिम आठवें अंग 'समाधि' तक पहुँचने के लिए गुरु निर्देश की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार कुण्डलिनी-जागरण की क्रिया जो कि साधक को समाधि अवस्था तक पहुँचा देती है उसमें भी गुरु का समीप्य तथा निर्देश आवश्यक माना गया है। उसके अभाव में लाभ के स्थान पर हानि होना भी सम्भव है।

योगाभ्यास से पूर्व

सामान्य ज्ञातव्य—किसी भी यौगिक अभ्यास (क्रिया) को करने से पूर्व कुछ सामान्य-नियमों का पालन करना आवश्यक है। योग के आठ अङ्गों में से प्रथम दो अङ्ग १. यम और २. नियम का उल्लेख किया जा सकता है। इनका जितनी अधिक दृढ़ता से पालन किया जायेगा, योगाभ्यास में उतनी ही जल्दी तथा उत्तम सफलता प्राप्त होगी।

जो लोग पूर्णतः आध्यात्मिक जीवन बिताने में सक्षम हों अथवा वीतरागी हों व समाधि अवस्था तक पहुँच कर ईश्वर का सामीप्य लाभ करना चाहते हों, यम-नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करना उन्हीं के लिए आवश्यक तथा सम्भव भी है, परन्तु जो लोग गृहस्थ हैं, सांसारिक कार्यों से विरत नहीं हो सकते उनके लिए यम-नियम का पूर्णतः पालन करना सम्भव नहीं हो सकता, ऐसी स्थिति में उन्हें निम्नानुसार आचरण करना उचित रहेगा।

'यम' के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह का पालन करना किसी गृहस्थ के लिए असम्भव नहीं माना जा सकता, अतः इन चारों का जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक गृहस्थ योगाभ्यासी को पालन करना आवश्यक है। गृहस्थों के अनजाने में हुई हिंसा को दोष नहीं माना जा सकता। उदाहरणार्थ—चींटी, मच्छर तथा अन्य अनेक सूक्ष्म जीव घर-गृहस्थी में पाँव के नीचे दबकर अथवा अन्य कारणों से मरते हैं। उनकी सुरक्षा का हर समय ध्यान नहीं रक्खा जा सकता और कभी-कभी तो ऐसे हानिकारक जीवों का जान-बूझ कर विनाश करना भी आवश्यक हो सकता है। अतः गृहस्थों के लिए ऐसी हिंसा वर्जनीय नहीं है। परन्तु उन्हें इस दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो, वे किसी पशु-पक्षी तथा मनुष्य आदि को किसी भी प्रकार से कष्ट न पहुँचाएँ।

इसी प्रकार 'सत्य' का पालन करने में सदैव सचेष्ट रहना चाहिए। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी असत्य बोलना बुरा है। परन्तु यदि कभी किसी लज्जा अथवा प्राण-रक्षा के लिए असत्य बोलना नितान्त आवश्यक अनुभव हो, तो उस स्थिति में असत्य भाषण भी 'क्षम्य' माना जा सकता है, परन्तु बिना किसी अपरिहार्य कारण के झूठ बोलना न केवल बुरा है, अपितु वह पाप होने के साथ ही पुण्य क्षय कारक भी होता है।

'अस्तेय' अर्थात् अचौर्य का पालन प्रत्येक परिस्थिति में करना चाहिए। इसी प्रकार न्यूनतम आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु का संचय न करके 'अपरिग्रह' का पालन करना भी अत्यावश्यक है।

अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर पाना न तो गृहस्थ स्त्री-पुरुषों के लिए सम्भव है और योग साधना के लिए आवश्यक ही है। अतः यहाँ 'ब्रह्मचर्य' का तात्पर्य 'संयम' समझना चाहिए। भगवान् कृष्ण को 'योगिराज' कहा जाता है, परन्तु वे भी गृहस्थ धर्म का पालन करने वाले पुत्र-पुत्रवान थे। पुराणोक्त सभी ऋषि-मुनि योगाभ्यासी रहे हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश गार्हस्थ्य जीवन ही बिताते थे। अतः योगाभ्यास कर्ता को मात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए ही रति में प्रवृत्ति होना चाहिए। मात्र दैहिक सुख के लिए वीर्यपात करना वर्जित है। शरीरस्थ सप्त धातुओं में वीर्य सबसे मूल्यवान है, एक प्रकार से वह जीवन शक्ति भी है। जो जितना

अधिक वीर्यवान होता है वह उतना ही अधिक तेजस्वी या दीर्घायु भी होता है, इसके विपरीत जो जितना अधिक वीर्य नाश करता है वह उतना ही अशक्त, रोगी तथा अल्पायु होता है। अतः संयमित मैथुन करना ही गृहस्थ के लिए यथार्थ 'ब्रह्मचर्य-पालन' है और इस व्रत को सभी स्त्री पुरुष सरलता पूर्वक कर सकते हैं।

यह तो हुई 'यम' पालन की बात। अब हम नियम पालन पर विचार करें।

'शौच' अर्थात् पवित्रता प्रत्येक मनुष्य के लिये प्रत्येक दृष्टि से शुभ तथा आवश्यक है। शरीर को स्नान, दन्त-धावन आदि से भली-भाँति स्वच्छ रक्खा जा सकता है। इसी प्रकार वस्त्र भी चाहे अल्प मूल्यवान अथवा फटे-पुराने क्यों न हों स्वच्छ रक्खे जा सकते हैं। स्वच्छ शरीर पर स्वच्छ वस्त्र धारण करने से अंग-प्रत्यङ्ग प्रफुल्ल, स्वच्छ तथा नीरोग बने रहते हैं तथा चित्त प्रसन्न रहता है।

'स्वाध्याय' अर्थात् सद्ग्रन्थों का अध्ययन बुराइयों से बचा कर सद्-गुणों का विकास करता है। उपन्यास, नौटंकी, कहानी-किस्से आदि की पुस्तकें जहाँ समय को व्यर्थ नष्ट करती हैं वहीं चित्त-वृत्तियों में क्षोभ उत्पन्न करके, उन्हें कुमार्ग पर चलने को प्रेरित भी करती हैं। अतः दुर्गुणों को जन्म देने वाली पुस्तकों को पढ़ने में अपना समय नष्ट न करें।

ईश्वर 'प्रणिधान' अर्थात् अपने रोम-रोम में तथा संसार के प्रत्येक जीव एवं प्रत्येक वस्तु के कण-कण में ईश्वर की विद्यमानता को अनुभव करना तथा अपने प्रत्येक कर्म को ईश्वर के प्रति समर्पित करते रहना यह योग की एक उच्चतम स्थिति है। इसमें अपना ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता, सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण सन्निहित है। जब आप अपने रोम-रोम में तथा अपने से भिन्न-भिन्न प्रत्येक प्राणी एवं प्रत्येक पदार्थ के कण-कण में ही ईश्वर की सत्ता का अनुभव करने लगेंगे तो ईर्ष्या, घृणा, राग, द्वेष, अहंकार, माया, मोह, लोभ, हिंसा, शत्रुता, मित्रता, सुख-दुःख आदि की सभी भावनाएँ, सभी बुराइयाँ स्वतः ही समाप्त हो जायेंगी। तब आप को अपने तथा पराये में कोई अन्तर ही नहीं प्रतीत होगा और न आप किसी की हानि पहुँचा सकेंगे, न कोई आप की ही हानि पहुँचा सकेगा। अतः जो मनुष्य अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हों, उन्हें इस भावना का अपने हृदय में अवश्य बद्धमूल कर लेना चाहिए।

उक्त यम-नियमों का परिचालन चाहे न हो, परन्तु प्राणायाम योगासन आदि के अभ्यासियों के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना परम आवश्यक है। जो लोग इन सामान्य नियमों का पालन कर पाने में भी अक्षम हों, उन्हें इस पुस्तक में वर्णित अभ्यासों को करने की सलाह नहीं दी जा सकती, क्योंकि ऐसे लोगों के लिये ये अभ्यास लाभ पहुँचाने के स्थान पर हानिप्रद भी सिद्ध हो सकते हैं।

आवश्यक रूप से पालनीय नियम

१. अभ्यास के समय शरीर स्वच्छ, अक्लान्त, हल्का तथा सामान्य होना चाहिए। यदि किसी प्रकार की थकावट अथवा शारीरिक पीड़ा (रोग) हो तो अभ्यास न करें। परन्तु जिन योगासनों का अभ्यास विशेष रूप से रोग निवारणार्थ ही किया जाना हो, उन्हें किया जा सकता है।

२. अभ्यास से पूर्व मल-त्याग, दाँतों तथा मुँह की सफाई एवं हाथ-पाँवों को धोकर स्वच्छ कर लेना आवश्यक है। यदि स्नान भी कर लिया जाय तो सर्वोत्तम रहेगा। यदि स्नान बाद में करना चाहें तो कर सकते हैं, परन्तु अभ्यास से पूर्व कोष्ठ-शुद्धि (मल-त्याग) तथा मुँह, दाँत, हाथ-पाँव आदि की सफाई अवश्य कर लेनी चाहिए।

३. अभ्यास का स्थान साफ-सुथरा, हवादार, रुचिकर तथा शान्तिपूर्ण होना चाहिए, यदि एकान्त हो तो सर्वोत्तम।

४. अभ्यास का समय सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच कभी भी किया जा सकता है, परन्तु यह नियमित एवं निश्चित होना चाहिए। एक दिन जिस समय अभ्यास किया जाय, अगले दिनों में भी ठीक उसी समय अभ्यास करना ठीक रहता है, परन्तु प्रातःकाल का समय सर्वोत्तम होता है। समय जो भी हो वह भोजन से दो घंटे पूर्व अथवा चार घंटे बाद में ही होना चाहिए। अभ्यास के समय यदि पेट खाली रहे तो सर्वोत्तम है।

५. चौवीस घण्टे में केवल एक ही बार अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास कम से कम १५ मिनट, अधिक से अधिक १ घण्टा करना उचित है। परन्तु यदि १ घण्टा का अभ्यास रखना हो तो ३० मिनट बाद १० मिनट तक विश्राम करना आवश्यक है, लगातार १ घण्टे तक अभ्यास नहीं करना चाहिए।

६. अभ्यास समाप्ति के बाद जितना समय अभ्यास में लगाया गया हो, उसका चतुर्थांश समय विश्राम में अवश्य देना चाहिए। यदि ३० मिनट अभ्यास किया गया हो, तो ७ मिनट, यदि ४० मिनट किया गया हो, तो १० मिनट तक, इसी तरह १ घण्टा आदि पर भी १५ मिनट तक विश्राम करना चाहिए।

७. अभ्यास के समय अपने मन को चिन्ता, क्रोध, घबराहट, घृणा, ईर्ष्या, भय, अहङ्कार, प्रतिशोध भावना आदि उद्वेगों से पूर्णतः मुक्त बनाए रक्खें। साथ ही मन पर किसी प्रकार का दबाव भी नहीं पड़ने देना चाहिये। यदि अभ्यास में मन न लगे अथवा कभी बीच में ही उचट जाय, तो अभ्यास-क्रिया बन्द कर देनी चाहिये। चित्त को शान्त अथवा निर्लिप्त अवस्था में किये गये अभ्यास ही फलदायक होते हैं।

८. अभ्यास-काल में ताजा, हल्का, सुपाच्य तथा अनुत्तेजक भोजन लेना आवश्यक है। शुद्ध भोजन निरामिष ही लिया जाना सर्वोत्तम रहेगा। भोजन में लाल मिर्च, मसालों का प्रयोग वर्जित है। ताजा फल, हरी सब्जियाँ, सलाद, दूध, मक्खन तथा पौष्टिक पदार्थों का सेवन अधिक लाभ कर होता है। एक समय अधिक बासी भोजन अहितकर होता है। सड़ी-गली, कसैली, दुर्गन्धयुक्त जूठी तथा कड़वी वस्तुओं का सेवन न करें। जितनी यथार्थ भूख हो, उससे २० प्रतिशत भोजन कम करना चाहिए। यदि भूख लगी हो, तो अभ्यास-काल में ६ रोटी की जगह ४ या ५ रोटी खानी चाहिये। भोजन में अन्न की मात्रा कम करके दूध, साग, सब्जी, ज्यादा सेवन करना चाहिए।

९. अभ्यास-काल में चाय तथा काफी का सेवन न किया जाय, तो अत्युत्तम रहेगा, परन्तु यदि काम न चले, तो दिन भर में दो प्याले से अधिक न पीने चाहिए।

१०. शराब, गाँजा, भाँग, अफीम, चरस तथा तम्बाकू आदि का सेवन सर्वथा त्याग करना चाहिये।

११. प्याज, लहसुन, तली हुई वस्तुएँ, उड़द, अरवी, बैंगन, काशीफल, गुड़, खटाई, तैल, लालमिर्च आदि उत्तेजक-गरिष्ठ दुष्पाच्य तथा हानिकर पदार्थों का सेवन सर्वथा त्याग दें, तो सर्वोत्तम है। अभाव में इन्हें अत्यल्प मात्रा में लें। किसी प्रकार की गिरी, यथा—नारियल की गिरी का सेवन न्यून कर दें। परन्तु काजू, बादाम, अखरोट, चिलगोजा आदि सूखे मेवों का सेवन क्षमता के अनुसार करना उत्तम है।

१२. अभ्यास के समय शरीर पर हल्के, स्वच्छ तथा सुखदायक वस्त्र ही धारण करें। वस्त्र जितने कम पहने जा सकें, उतना ही अधिक अच्छा रहेगा।

१३. भोजन कड़ी भूख लगने पर ही करें। यदि कभी कोष्ठ-बद्धता हो जाय, तो दो-तीन गिलास गुनगुने पानी में थोड़ा सा नमक डालकर पीयें, तथा कुछ देर टहलने के बाद पवनमुक्तासन, ताड़ासन, भुजङ्गासन आदि कब्ज-नाशक आसनों का (जिनका वर्णन प्रथम किया गया है), अभ्यास करने के बाद ही शौच जायें। इससे शीघ्र लाभ होगा। जब तक कब्ज दूर न हो, भोजन का सर्वथा त्याग कर दें। उस स्थिति में कभी भूख का अनुभव हो, तो फलों का रस अथवा दूध का सेवन करें। कब्ज हटाने के लिए किसी औषध का सेवन नहीं करना चाहिए।

१४. भोजन खूब चबा कर शान्तिपूर्वक करें, ताकि वह शीघ्र पच जाय। भोजन करने में जल्दी नहीं करनी चाहिए। भोजन में नमक की मात्रा यथा सम्भव कम ही रक्खें।

१५. प्रातः काल सोकर उठते ही एक गिलास ठण्डा पानी पीयें तथा बाद में प्रति दो घंटे बाद पर्याप्त मात्रा में पानी पीते रहें।

१६. भोजनोपरान्त जब भी कुछ खायें-पीयें, उसके बाद मुँह और दाँतों की सफाई भली-भाँति कर लिया करें।

१७. यदि आप रोगी हों तथा रोग निवारणार्थ आसनों का अभ्यास कर रहे हों तो उस स्थिति में खान-पानादि में उन्हीं वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिये, जिनकी अनुमति आपके चिकित्सक ने दी हो। यों दूध तथा फल प्रत्येक अवस्था में हितकर रहते हैं, परन्तु किसी-किसी बीमारी में इनका सेवन भी वर्जनीय हो सकता है।

१८. रात्रि में ९-१० बजे तक सो जायें तथा प्रातः सूर्योदय से पूर्व जगने का अभ्यास डालें। सोते समय अपने चित्त को चिन्ताओं से मुक्त कर लें ताकि नींद खूब गहरी आये। गहरी नींद के अभाव में शरीर निद्रालु रहता ही है, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आसनों के नियमित अभ्यास के कुछ दिनों बाद तो अच्छी भूख लगना तथा गहरी नींद आना आदि गुण स्वतः ही प्रकट होने लगते हैं। परन्तु यह निर्देश प्रारम्भिक स्थिति के लिए है। सोते समय मुँह, कुहनी तक हाथ तथा घुटनों तक पाँवों को धोने से नींद आती है।

१९. भोजन, निवास, शयन तथा काम करने का स्थान स्वच्छ, प्रकाशयुक्त तथा हवादार होना चाहिए। गन्दे, दुर्गन्धयुक्त, सीलन भरे तथा प्रकाश एवं वायु-रहित स्थानों में न रहें, न बैठें और न कोई अन्य काम ही करें।

२०. स्नान नित्य करें, वह भी शीतल जल से। ग्रीष्मऋतु में नित्य दो या तीन बार भी स्नान किया जा सकता है। अधिक ठण्ड के दिनों में नित्य प्रातः एक बार स्नान जरूर करना चाहिये। यदि शीतल जल सहन न हो तो स्नान के लिए सामान्य गुनगुने पानी का उपयोग किया जा सकता है, परन्तु सिर को सदैव ठण्डे पानी से ही धोना चाहिये।

२१. स्नानोपरान्त शरीर को रोएँदार तौलिया आदि से भली-भाँति रगड़ कर सुखा लेना चाहिए। ऐसा करने से शरीर के रोम-छिद्र खुल जाते हैं जिससे शरीर में शुद्ध वायु के प्रवेश तथा अशुद्ध वायु के निष्कासन में बाधा नहीं पड़ती।

२२. सदैव नाक द्वारा ही श्वास लें और छोड़ें। मुँह द्वारा श्वास लेना तथा छोड़ना वर्जित है। श्वास खूब गहरी लेनी चाहिए। प्राकृतिक श्वास सीने से नहीं अपितु पेट से ली जाती है—श्वास जल्दी-जल्दी नहीं लेनी चाहिये।

२३. सदैव मौसम के अनुकूल, परन्तु ढीले तथा स्वच्छ वस्त्रों को ही पहनना चाहिए। ओढ़ने-बिछाने तथा उपयोग में आने वाले अन्य सभी वस्त्रों का स्वच्छ होना आवश्यक है।

२४. आसन करने से पूर्व एक गिलास ठण्डा तथा ताजा पानी पी लेने से वह सन्धि-स्थलों का मल निकालने में अत्यन्त सहायक होता है।

२५. आसनों का अभ्यास समाप्त करने के तुरन्त बाद तेज अथवा ठण्डी हवा में बाहर नहीं निकलना चाहिए। जिस स्थान पर आसनों का अभ्यास किया जाय, वहाँ भी तीखी हवा का प्रवेश नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार आसनों का अभ्यास समाप्त करने के तुरन्त बाद ही स्नान करना भी वर्जित है।

२६. शीत-ऋतु में आसनों का अभ्यास करते समय छाती को खुला हुआ नहीं रखना चाहिये।

२७. आसनों का अभ्यास समाप्त करने के बाद लघुशङ्का त्याग के लिए अवश्य जाना चाहिये। इससे एकत्र मल, मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

२८. लकड़ी के तख्त पर दरी आदि बिछा कर अथवा भूतल पर चार तह वाला कम्बल बिछा कर आसनों का अभ्यास करने से शरीर में निर्मित होने वाला विद्युत्-प्रवाह नष्ट नहीं हो पाता।

२९. यदि आँतों में सूजन, अम्लत्व, खुजली, रक्तचाप आदि विषाक्त तत्वों की शिकायत हो तो शीर्षासन नहीं करना चाहिये। जिस रोग के लिए जिन आसनों को हितकर बताया गया है, उनके लिए उन्हीं का प्रयोग करना चाहिए। रोग मुक्त सामान्य स्थिति में किसी भी आसन का अभ्यास किया जा सकता है।

३०. आरम्भ में अनेक आसनों को करने में कठिनाई का अनुभव होता है तथा हाथ-पाँव आदि अङ्गों को मोड़ पाना असम्भव प्रतीत होता है परन्तु धैर्यपूर्वक निरन्तर अभ्यास करते रहने से कुछ ही दिनों में सभी रुकावटें दूर हो जाती हैं, तब विभिन्न अङ्ग इच्छानुसार बड़ी सरलता से मुड़ जाते हैं। अभ्यास के प्रारम्भिक दिनों में सरलतापूर्वक जो क्रिया जितनी सम्पन्न हो सके, उतनी ही करनी चाहिए तथा फिर बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिये।

३१. सर्व प्रथम योगासन तदुपरान्त प्राणायाम और अन्त में ध्यान का क्रम रखना उचित रहता है। परन्तु जो लोग इनमें से किन्हीं एक या दो क्रियाओं को करना ही चाहते हों वे अपने इच्छानुसार वैसा कर सकते हैं। परन्तु योगासन बाद में नहीं करने चाहिये। केवल योगासन, केवल प्राणायाम अथवा योगासन और ध्यान की जोड़ी अच्छी रहती है। यदि तीनों क्रियाओं को क्रमशः किया जा सके, तब तो कहना ही क्या है?

३२. योगासनों के लिए ३० मिनट, प्राणायाम के लिए १० मिनट तथा ध्यान के लिए १० मिनट और प्रत्येक के बीच में तथा अन्त में १०-१० मिनट का विश्राम। इस प्रकार कुल ८० मिनट का समय यदि नियमित रूप से इस कार्य में दिया जा सके, तो उसके अनेक अप्रत्याशित लाभ दिखाई देंगे।

३३. मल-मूत्रादि के वेग को कभी रोकना नहीं चाहिए। इसी प्रकार छींक आदि का रोकना भी वर्जित है। यदि अभ्यास काल में भी कभी

इनका वेग उद्वेलित हो तो सर्वप्रथम उसका निवारण करना चाहिये, अर्थात् मल, मूत्र, छींक आदि के त्याग के बाद ही अभ्यास को पुनः आरम्भ करना उचित है।

३४. सप्ताह में कम-से-कम एक बार सम्पूर्ण शरीर पर तेल की मालिश अवश्य करनी चाहिये।

३५. ग्रीष्म-ऋतु में प्रातःकाल सूर्योदय के समय तथा शीत ऋतु में मध्याह्न काल में कुछ समय तक नंगे बदन धूप में बैठना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हितकर रहता है। इस धूप स्नान से शरीर के अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं, रक्त शुद्ध होता है, तथा बल एवं स्फूर्ति का सञ्चार होता है।

३६. बारहों महीने प्रातः, सायं खुली वायु में कुछ देर तक टहलने से स्वास्थ्य को बहुत लाभ होता है।

प्राणायाम का प्रभाव

योग के आठ अङ्गों में प्राणायाम का स्थान आसनों के बाद आता है। यह लिखा भी जा चुका है कि आसनों के बाद प्राणायाम तदुपरान्त ध्यान करना चाहिये। तथापि यहाँ प्राणायाम के विषय में आसनों के साथ ही लिखा जा रहा है, इसका कारण यह है कि कुछेक आसनों का अभ्यास करते समय कतिपय प्राणायाम की क्रियाएँ (यथा गहरी श्वास लेना और छोड़ना आदि) भी की जाती हैं, अतः आसनों से पूर्व उनकी जानकारी होना आवश्यक है।

'प्राणायाम' संस्कृत के दो शब्द 'प्राण' और 'आयाम' से मिलकर बना है। 'प्राण' का अर्थ है 'जीवनी शक्ति' अर्थात् जिसके रहते शरीर जीवित बना रहता है तथा आयाम का अर्थ है—विकास अथवा नियन्त्रण। अतः 'प्राणायाम' शब्द का अर्थ हुआ—जीवन-शक्ति को विकसित अथवा नियन्त्रित करने की क्रिया।'

जीवित रहने के लिए वायु की महती आवश्यकता है—इस तथ्य से सब लोग भली-भाँति परिचित हैं। भोजन तथा जल के बिना कुछ समय तक जीवित रहा जा सकता है, परन्तु वायु के अभाव में जीना सम्भव नहीं होता। प्रत्येक जीवधारी सोते जागते यहाँ तक कि बेहोशी की अवस्था में भी अविराम गति से श्वास लेता और छोड़ता रहता है, श्वास क्रिया के बन्द होते ही मृत्यु हो जाती है।

स्वाभाविक रूप से जो श्वास लिया जाता है, वह जीवनी शक्ति को सामान्य तो बनाये रखता है, परन्तु विकसित नहीं कर पाता। अस्वाभाविक रूप में जल्दो-जल्दी अथवा अधूरी ली गयी साँस जीवनो शक्ति को क्षीण करती है। मुँह से अथवा अशुद्ध वायु में ली गयी साँस हानिकर भी सिद्ध होती है।

श्वास लेने की उचित क्रिया से अधिकांश लोग अपरिचित हैं। किस प्रकार से श्वास लेने पर जीवनी शक्ति में वृद्धि की जा सकती है, यह तो एक प्रतिशत व्यक्ति भी नहीं जानते। अस्तु, 'प्राणायाम' को उचित एवं अधिक लाभकारी ढंग से श्वास लेने की एक विशेष पद्धति भी कहा जा सकता है।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने जहाँ मनुष्य जीवन को समुन्नत वनाने हेतु ज्ञान-विज्ञान सम्वन्धी अनेक खोजें की हैं, वहीं उन्होंने जीवन शक्ति वर्द्धक प्राणायाम क्रिया का आविष्कार कर मानव मात्र पर महान् उपकार किया है।

प्रभाव—प्राणायाम की श्वास-क्रिया फेफड़े को शक्तिशाली बनाकर, उनके लचीलेपन को वढ़ाती है, जिसके कारण सम्पूर्ण शरीर में प्राण वायु का अधिकाधिक संचारण होता है और उससे वृद्धिगत उष्मा के कारण अंग-प्रत्यंग पुष्ट तथा निरोग होते हैं। प्राणायाम क्रिया से शुद्ध-प्राणवायु शरीर के भीतर पहुँचती है, उतनी ही दूषित-वायु वाहर भी निकल जाती है, जिसके कारण शरीर के भीतर दूषित-मल संचित नहीं रह पाते और वह स्वच्छ तथा निर्मल बना रहता है।

शारीरिक श्रम के कारण जिन कोशिकाओं में टूट-फूट होने से जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं, प्राणायाम द्वारा अन्दर प्रविष्ट हुई प्राण वायु उन सबकी क्षतिपूर्ति कर देती है। प्राणायाम द्वारा श्वसन-यन्त्रों के अतिरिक्त मस्तिष्क के भीतरी स्नायु, मंडल, पीयूष-ग्रन्थि, पीनियल-ग्रन्थि, आँख, नाक, कान तथा कण्ठ आदि अवयव भी स्वच्छ तथा निर्मल बने रहते हैं फलतः स्मरण-शक्ति तीव्र होगी, मस्तिष्क-सम्बन्धी विकार दूर होते हैं तथा अन्य सभी अंगों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है।

प्राणायाम से रक्त-परिभ्रमण की गति में तेजी आती है, फलतः मस्तिष्क की सूक्ष्म नाड़ियों तक वह आसानी से पहुँच जाता है। इस कारण मस्तिष्क कुछ देर के लिए निश्चेष्ट हो कर विश्राम का लाभ भी

पा लेता है तथा पुनः तरोताजा होकर अधिक क्रियाशील बन जाता है। फलतः प्राणायाम के अभ्यासी का मुख-मण्डल तेजस्वी तथा प्रसन्न दिखाई देता है और उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व आकर्षक बन जाता है।

निर्देश और नियम

प्राणायाम के नवीन अभ्यासी को अधिक ठण्ड तथा अधिक गर्मी से शरीर को बचाना चाहिए। अभ्यास का आरम्भ शरद ऋतु से करना अच्छा रहता है। दूध, मक्खन, घी, फल तथा गेहूँ की रोटी, ये सब प्राणायाम के अभ्यासी के लिए उत्तम भोजन है। परन्तु जो लोग नित्य कम से कम १५ मिनट तक प्राणायाम का अभ्यास करें, वे मादक द्रव्यों के अतिरिक्त अन्य किसी भी इच्छित पदार्थ का सेवन कर सकते हैं।

प्राणायाम को नियमित रूप से करना ही पूर्ण लाभकर होता है। यदा-कदा करने से उसका यथार्थ लाभ नहीं मिल पाता।

प्राणायाम में श्वास लेते समय मन की गतिविधियों का सूक्ष्म निरीक्षण करना तथा बाहर निकालते समय निर्विचार रहरा उचित है।

प्राणायाम के समय यदि अभ्यासी को कब्ज की शिकायत हो तो कुछ दिनों के लिए नमक तथा मसालों का सेवन बन्द कर देना चाहिये। यदि पतले दस्त हो जायँ तो दही एवं चावल का सेवन करना चाहिए।

आसनों के बाद प्राणायाम करना उचित रहता है। प्राणायाम के बाद ठहाके लगाकर हँसना भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

प्राणायाम करते समय शरीर को सीधा परन्तु शिथिल रखना चाहिए। मन में भी किसी प्रकार तनाव नहीं आने देना चाहिए। कुछ प्राणायाम बैठ कर, कुछ लेट कर तथा कुछ खड़े हो कर किये जाते हैं। बैठ कर अथवा लेटकर किये जाने वाले प्राणायाम विशेषतः आभ्यन्तरिक शुद्धि करते हैं, परन्तु बाह्य शरीर के लिए विशेष प्रभावकारी नहीं होते। खड़े होकर किये जाने वाले प्राणायाम बाह्य तथा आभ्यन्तरिक दोनों रूपों में लाभप्रद होते हैं।

प्राणायाम के अनेक प्रकार हैं उनमें से कुछ कठिन, कुछ सरल भी हैं। यहाँ कुछ प्रसिद्ध तथा विशेष उपयोगी प्राणायामों का ही उल्लेख किया गया है। इनमें से जो रुचिकर तथा साध्य प्रतीत हो, उसी का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम की सामान्य विधि

प्राणायाम की तीन विधियाँ हैं—

१. पूरक—अर्थात् श्वास को भीतर खींचना।

२. रेचक—अर्थात् श्वास को बाहर निकालना।

३. कुम्भक—अर्थात् श्वास को रोकना।

कुम्भक के दो भेद हैं—(१) अन्तः कुम्भक और (२) बहिर्कुम्भक।

(क) अन्तः कुम्भक—जब श्वास को भीतर खींच कर उसे कुछ देर तक भीतर ही रोके रखा जाता है, तो उसे 'अन्तः कुम्भक' कहते हैं।

(ख) बहिर्कुम्भक—जब श्वास को बाहर छोड़ने के बाद कुछ देर तक बिना श्वास खींचे रहा जाता है, तो उसे 'बहिर्कुंभक' कहा जाता है।

योग शास्त्र में प्राणायाम की अनेक विधियों का उल्लेख पाया जाता है उनमें से जन सामान्य के लिए उपयोगी कुछ सरल विधियों का विस्तृत वर्णन यहाँ किया जा रहा है। अन्त में मात्र परिचय कराने के उद्देश्य से, कुछ अन्य कठिन विधियों का संक्षिप्त उल्लेख मात्र भी कर दिया गया है। कठिन विधियाँ योग की कठिन साधना करने वालों के लिए है, अतः सामान्य गृहस्थों को उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

यहाँ निम्नलिखित प्राणायामों की विधियाँ लिखी जा रही हैं। इनमें अन्तिम चार कठिन हैं। वे सामान्य जन के लिए न होकर योगियों के उपयोग के हैं—

१. सरल, २. समवेत, ३. सहित, ४. अतिरिक्त, ५. नाड़ीशोधन, ६. शीतकारी, ७. शीतली, ८. भ्रामरी, ९. उज्जायी, १०. भस्त्रिका, ११. सूर्यभेद, १२. मूर्च्छा तथा १३. प्लाविनी।

टिप्पणी—उक्त प्राणायामों के अभ्यास में जहाँ कहीं जालंधर-बन्ध आदि का उल्लेख है, उनकी जानकारी के लिए 'षट्कर्म' तथा आसनों का उल्लेख हुआ है, उनके लिए 'योगासन' के पृष्ठों को देखना चाहिए।

'सरल' प्राणायाम

विधि—पद्मासन अथवा पालथी मारकर सुखदायक स्थिति में बैठ जायँ। रीढ़ की हड्डी एक दम तनी रहे अर्थात् कमर या पीठ में झुकाव न हो। अब बायें हाथ से नाक के दाँये छिद्र को बन्द करके, बाँये नासा-छिद्र

से धीरे-धीरे जितना श्वास भीतर की ओर खींच सकते हों, खींचे। जब फेफड़े वायु से भली-भाँति भर जाय, तब एक सेकेण्ड तक साँस को भीतर ही रोके रहें। फिर बायें नासा-छिद्र को बन्द करके दाँयें नासा छिद्र से भीतर की वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। जब सम्पूर्ण वायु निकल जाय तब तीन सेकेण्ड तक पुनः बहिर्कुम्भक करें अथवा श्वास न लें। तदुपरान्त बाँयें छिद्र को बन्द रखते हुए पुनः दायें नासा-छिद्र से ही धीरे-धीरे श्वास भीतर की ओर खींचें तथा एक सेकेण्ड का अंतःकुम्भक करके दाँयें नाशा-छिद्र को बन्द कर बाँयें नासा-छिद्र द्वारा धीरे-धीरे साँस को बाहर निकाल दें। इस क्रिया को १५ से २० बार तक दुहरायें।

'समवेत' प्राणायाम

विधि—नाक के दोनों छिद्रों से एक साथ ही श्वास को धीरे-धीरे भीतर की ओर खींचें अर्थात् 'पूरक' करें। फिर एक सेकेण्ड तक अंतः कुम्भक करें अर्थात् वायु को भीतर ही रोके रहें तदुपरान्त दोनों नासा छिद्रों द्वारा एक साथ ही वायु को धीरे-धीरे बाहर निकालें। इस क्रिया को १० बार दुहरायें।

'सहित' प्राणायाम

विधि—नाक के दोनों छिद्रों से एक साथ स्वाँस भीतर खींचें अर्थात् 'पूरक' करे। फिर दोनों नासा छिद्रों को बन्द करके अन्तः कुम्भक करें तथा सरलतापूर्वक जितने अधिक समय तक श्वास को भीतर रोक सकें, रोकें, परन्तु जबर्दस्ती न करें। अन्त में, दोनों नासा-छिद्रों से एक साथ वायु को बाहर निकाल दें अर्थात् 'रेचक' करें। इस क्रिया को १० बार दुहराये।

'अतिरिक्त' प्राणायाम

विधि—दोनों नासा छिद्रों से एक साथ श्वास को भीतर की ओर खींचें अर्थात् पूरक करें। फिर दोनों नाशा छिद्रों को बन्द करके श्वास को जितनी देर तक भीतर रोक सकें, रोकें, अर्थात् 'अन्तः कुम्भक' करें। पुनः दोनों नासा छिद्रों से एक साथ धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालें अर्थात् रेचक करें, फिर दोनों नासा छिद्रों को बन्द करके जितनी देर तक सम्भव हो श्वास न लें अर्थात् बहिर्कुम्भक करें। परन्तु किसी भी कुम्भक

के साथ जवर्दस्ती न करें अर्थात् सुविधा पूर्वक जितनी देर तक सम्भव हो, उतनी देर तक साँस को रोकें। उक्त क्रिया को ५ बार दोहरायें।

टिप्पणी—प्राणायाम की उक्त चारों क्रिया प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए हितकर हैं। इन चारों को क्रमशः करना चाहिये।

'नाड़ी-शोधन' प्राणायाम

विधि—रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए, परन्तु विना किसी तनाव के शिथिलावस्था में, सिद्धासन से वैठें। छाती ढकी रहनी चाहिए, मुँह उत्तर दिशा की ओर रहे।

अव दाँयें हाथ के अँगूठे से एक नाक का दायाँ छिद्र तथा अनामिका अंगुली से वायाँ छिद्र इस प्रकार दवायें कि तर्जनी तथा मध्यमा अंगुली भ्रूमध्य की ओर, ऊपर उठी रहें। अव जिस-छिद्र से श्वास चल रहा हो, उसी से श्वास लेकर उसी से वाहर छोड़ दें। ऐसा करते समय दूसरे नाशा-छिद्र को वन्द रखें। इस क्रिया को पाँच वार दुहरायें। पुनः उस नासा-छिद्र को बन्द करके दूसरे नासा छिद्र से श्वास लेने तथा छोड़ने के क्रम को पाँच वार दुहरायें तथा ऐसा करते समय पहले नासा छिद्र को वन्द रखें। श्वास लेने अथवा छोड़ते समय किसी प्रकार की ध्वनि नहीं होनी चाहिए तथा श्वास लेने तथा छोड़ने की गति (रफ्तार) भी एक जैसी ही रहनी चाहिए।

इस सम्पूर्ण अभ्यास को २५ दिन तक दुहरायें तथा १५ दिन तक नित्य नियमित रूप से केवल यही अभ्यास करना चाहिये।

सोलहवें दिन भी पूर्वोक्त स्थिति में वैठ कर उपर्युक्त विधि से करें। इसको भी प्रतिदिन २५ वार दुहरायें तथा १५ दिन तक अभ्यास नित्य करते रहें।

इकतीसवें दिन पूर्वोक्त स्थिति में वैठकर, जिस नासा छिद्र से श्वास चल रहा हो उससे अथवा यदि दोनों से चल रहा हो तो वायें नासा छिद्र से श्वास लें अर्थात् 'पूरक' करें। फिर २ से ५ सेकेण्ड तक का अंतः कुम्भक करें अर्थात् साँस को भीतर ही रोके रहें तदुपरान्त दूसरे नासा छिद्र से श्वास को वाहर निकालें अर्थात् रेचक करें।

उक्त अभ्यास में श्वास लेने-रोकने तथा छोड़ने के समय का अनुपात १ : २ : २ रखें। यदि अभ्यास पहले से ही वढ़ा हुआ हो तो यह अनुपात १ : ४ : २ अथवा १ : ६ : ४ अथवा १ : ८ : ६ भी रखा जा सकता है।

अनुपात की वृद्धि में कठिनाई का अनुभव हो तो किसी पिछले कम अनुपात पर लौट आना चाहिए।

उक्त अभ्यास को नित्य २५ बार दुहराना चाहिए। १५ दिन तक नित्य नियमित रूप से केवल यही अभ्यास करते रहना चाहिए।

उक्त प्राणायाम के तीनों अभ्यास चक्र ४५ दिन में पूरे हो जायँ तब इच्छाअनुसार पुनरावृत्ति की जा सकती है।

लाभ—यह प्राणायाम शारीरिक तथा मानसिक तन्तु-समूहों का शोधन करता है। मन के कुविचारों को निकालता है।

विशेष—यह प्राणायाम किसी हवादार, एकान्त तथा शान्त कमरे में बैठकर ही करना चाहिए। खुले मैदान, धूप, वृक्ष के नीचे अथवा नदी, समुद्रादि के तट पर नहीं करना चाहिए। अभ्यास के समय शरीर खुला हुआ न रहे।

यदि उक्त प्राणायाम को करते समय कभी श्वास अनियमित हो जाय तो अभ्यास को रोक कर तथा गहरी श्वासों को लेकर कुछ देर विश्राम कर लेना चाहिए। जब आभ्यन्तर-कुम्भक का अभ्यास परिपक्व हो जाय तभी वाह्य कुम्भक का प्रयोग प्रारम्भ कर दें अन्यथा फेफड़ों के चिपक जाने का भय उपस्थित हो सकता है।

यदि पूर्वोक्त विधि से १५–१५ दिन के क्रम से सभी अभ्यासों को यथावत् किया जाय, तो भय का कोइ कारण उपस्थित नहीं हो पाता।

'शीतकारी' प्राणायाम

विधि—ध्यान के किसी भी आसन पर बैठकर जीभ को तालु से सटा दें, दाँतों को परस्पर मिला लें तथा होठों को खुला रखें। फिर मुँह से शी····ऽ····ऽ····ऽ की आवाज निकालते हुए मुँह से ही श्वास लें अर्थात् 'पूरक' करें। फिर आभ्यन्तर कुम्भक करें अर्थात् कुछ देर तक भीतर ही साँस को रोके रहें तथा जालन्धर-बन्ध लगा लें फिर श्वास को बाहर निकालते समय मुँह को सामने सीधा सटा कर नाक से ही 'रेचक' करें।

उक्त विधि को १० से २० बार तक दुहरायें।

लाभ—इस प्राणायाम से शरीर की शक्ति, कान्ति तथा स्फूर्ति में वृद्धि होती है। शरीर का ताप घटता है तथा प्यास का अनुभव कम होता है।

विशेष—इस प्राणायाम को चलते हुए भी किया जा सकता है।

'शीतला' प्राणायाम

विधि—वज्रासन की स्थिति में, परन्तु जाँघों पर हाथ रख कर वैठें। अब जीभ को वीच में से कुछ मोड़ कर नाली जैसी बना लें। फिर शक्ति लगाकर जोर के साथ मुँह से शी ऽ····ऽ····ऽ····की ध्वनि करते हुए गहरी श्वास लें, तदुपरान्त कुम्भक करके या श्वास की कुछ देर के लिए भीतर ही रोक कर 'जालन्धर-बन्ध' लगा लें। फिर सिर ऊँचा उठाकर नाक के छिद्रों के द्वारा धीरे-धीरे वायु को वाहर निकाल दें अर्थात् रेचक करें।

इस विधि को १० से २० बार तक दुहरायें।

लाभ—इस प्राणायाम से भी शरीर का ताप घटता है तथा प्यास का अनुभव कम होता है। यह रक्त चाप में लाभकर है। शरीर तथा मन को भी आराम देता है, विष तथा संक्रामक-कीटाणुओं की वृद्धि नहीं हो पाती।

'भ्रामरी' प्राणायाम

विधि—किसी भी सुखदायक आसन में बैठकर, अपने दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों के छिद्र बन्द कर लें। फिर मुँह को बन्द रखते हुए दोनों नासा छिद्रों से श्वास लें। श्वास लेते समय मुँह के भीतर दोनों ओर के दाँत परस्पर मिले हुए न होकर, कुछ दूर रहना चाहिए। तदुपरान्त दोनों नासा छिद्रों से ही श्वास को वाहर निकाल दें।

श्वास जल्दी-जल्दी लेना तथा छोड़ना चाहिए। श्वास लेते तथा छोड़ते समय सम्पूर्ण ध्यान शरीर के भीतर होने वाली भ्रमर जैसी गुञ्जन पर ही केन्द्रित रखना चाहिए।

उक्त क्रिया को १० से २० बार तक दुहरायें।

लाभ—इस प्राणयाम से रक्तचाप में लाभ होता है तथा मानसिक उत्पात शान्त होते हैं। गायकों के लिये यह दिव्य-प्रेरणादायक है।

'उज्जायी' प्राणायाम

उज्जायी शब्द का अर्थ है—विजयी अथवा विजेता। यह सभी स्त्री-पुरुष के लिए सर्वश्रेष्ठ प्राणायाम है, क्योंकि इससे बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। उसे खड़े होकर, लेटकर तथा बैठकर तीन प्रकार से किया जाता है। विधियाँ क्रमशः निम्नानुसार हैं—

१. विधि (खड़े होकर)—सीधे खड़े होकर अपने पाँवों से ४५ डिग्री का कोण बनाये अर्थात् दोनों पाँवों की एड़ियाँ परस्पर सटी हुई तथा अँगूठे अलग-अलग रखें। अब आप की आँखें पृथ्वी से जितनी ऊँचाई पर हों, ठीक उसी सीध में सामने की ओर देखें, ऊपर नीचे न देखें। चेहरे पर प्रफुल्लता रहनी चाहिए। दोनों हाथ दोनों ओर ढीले लटकते रहें तथा एड़ियों का भार समान रूप से दोनों पैरों पर पड़े ताकि दोनों कन्धे भी सीध में रहें। इस स्थिति में आप निश्चल परन्तु आराम से खड़े हों।

विशेष—'रेचक' करते समय अर्थात् श्वास छोड़ते, समय यह भावना करनी चाहिए कि आपके शरीर से सम्पूर्ण दोष बाहर निकल रहे हैं तथा 'पूरक' करते समय अर्थात् श्वास लेते समय यह विचारना चाहिए कि आप वायु के माध्यम से ऐसी जीवनी शक्ति तथा ऊर्जा को ग्रहण कर रहे हैं, जो आपके लिए अत्यन्त हितकर है। इन भावनाओं के साथ 'रेचक' तथा 'पूरक' करने से इस प्राणायाम का लाभ अत्यधिक बढ़ जाता है।

इस प्राणायाम में कुम्भक करते समय अर्थात् श्वास को रोकते समय कुछ लोगों को सिर में चक्कर आने की शिकायत होती है। उसके प्रमुख कारण स्वच्छ वायु का अभाव, कब्ज, मादक पदार्थों का सेवन तथा पेट का भारी होना आदि हो सकते हैं। यदि इन कारणों को दूर कर दिया जाय, तो चक्कर नहीं आते। जिन लोगों को सिर में चक्कर आवें, उन्हें श्वास लेते तथा रोकने के समय में कमी कर देनी चाहिए।

२—विधि (लेटकर)—फर्श पर सीधे लेट जायँ। दोनों हथेलियों को शरीर के समीप फर्श पर रखें। दोनों एड़ियाँ परस्पर सटी रहें तथा दोनों हथेलियाँ फर्श से लगी हों। शरीर एक दम ढीला रहे एवं दृष्टि छत की ओर हो।

अब श्वास छोड़ने, रोकने तथा पुनः छोड़ने की क्रियाएँ उसी प्रकार से करें, जिस प्रकार से खड़े होने की स्थिति में करने के सम्बन्ध में बताया जा चुका है। 'रेचक' करते समय पेट संकुचित तथा शरीर ढीला रहेगा और पूरक करते समय केवल पेट ऊपर को उठेगा, शरीर ढीला रहेगा। 'कुम्भक' करते समय शरीर को नीचे से ऊपर तक की मांस पेसियों को कड़ा करना चाहिए, जितनी देर तक सुख की अनुभूति हो।

अभ्यास का एक चक्र खत्म हो जाने पर दो-तीन स्वाभाविक श्वास लेकर विश्राम प्राप्त करना चाहिए, तदुपरान्त पहले बताये अनुसार ही चक्रों का पुनरावर्तन करना चाहिए।

विशेष—जिन्हें खड़े होकर यह प्राणायाम करने से सिर चकराने की शिकायत हो, उन्हें लेटकर करने से कोई शिकायत नहीं होती। जो लोग शरीर से दुर्बल अथवा खड़े होकर अभ्यास करने में असमर्थ हों, उन्हें लेटकर ही यह प्राणायाम करना चाहिए।

३. विधि (बैठकर)—सिद्धासन अथवा वज्रासन की स्थिति में बैठकर गले के समीप श्वास नली को सिकोड़ते हुए अर्थात् सिसकने जैसी स्थिति में नासिका से गहरी श्वास (पूरक) लें। परन्तु खेचरी, मुद्रा बनाकर ऐसा अनुभव करना चाहिये कि श्वास नाक से नहीं अपितु मुँह से ली जा रही है। फिर जालन्धर-बन्ध बना कर, 'कुम्भक' करें, तदुपरान्त बायें नासा-छिद्र से धीरे-धीरे रेचक करें।

इस क्रिया को ५ से १० बार तक दुहरायें।

टिप्पणी—"उज्जायी प्राणायाम' सर्वोत्तम माना गया है। इससे शरीर के ताप का शमन होता है, जठराग्नि प्रदीप्त होती है, हृदय तथा फेफड़ों के विकार दूर होते हैं। बाह्य तथा आभ्यन्तरिक शुद्धि होकर स्नायु-मंडल अधिक क्रिया-शील बनता है। अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुष्ट होते हैं। उत्साह, स्फूर्ति, क्षमता तथा जीवनी-शक्ति की वृद्धि होतो है। शरीर सुन्दर तथा स्वस्थ बना रहता है।

विशेष—इस प्राणायाम के लिए प्रचुर मात्रा में शुद्ध वायु का होना अति आवश्यक है। अतः उसी स्थान पर करना चाहिए जहाँ शुद्ध जल, वायु उपलब्ध हो।

'भस्त्रिका' प्राणायाम

इस प्राणायाम में श्वास प्रश्वास की क्रिया लोहार की (धौंकनो) भाँथी के अनुसार जल्दी-जल्दो होती है, अतः इसका नाम 'भस्त्रिका' रखा गया है। यह अभ्यास कठिन है अतः जन सामान्य के लिए तब तक वर्जित है जब तक किसी योग्य गुरु का निर्देश प्राप्त न हो।

विधि—किसी भी आसन में बैठें, रीढ़ की हड्डी को सीधा रखें। मुँह पूरब या उत्तर दिशा की ओर रहना चाहिए।

जो नासा छिद्र खुला हो, उससे अथवा बायें नासा छिद्र से २० बार जल्दी-जल्दी श्वास लें और छोड़ें। अंतिम बार गहरी श्वास लेकर दोनों

नासा-छिद्रों को बन्द कर 'मूलवन्ध' तथा 'जालन्धर-बन्ध' लगायें। फिर एक बन्ध को छोड़ते हुए दोनों नासिका-छिद्रों से श्वास छोड़ दें।

जल्दी-जल्दी श्वास लेते तथा छोड़ते समय नासा-छिद्र फैलने अथवा सिकुड़ने नहीं चाहिये। कुम्भक से ठीक पहले का 'पूरक' तथा बाद में किया गया 'रेचक' पर्याप्त गहरा होना चाहिए, शेष हल्के रहें। चेहरा सौम्य बना रहे तथा श्वास-प्रश्वास के प्रवाह में किसी प्रकार की रुकावट न आये।

लाभ—पूर्व वर्णित 'नाड़ी-शोधन' प्राणायाम के बाद यदि यह भस्त्रिका प्राणायाम किया जाय तो शरीर एकदम हल्का हो जाता है और वह पृथ्वी से ऊपर ऊठता हुआ प्रतीत होता है, श्रेष्ठ योगी जन इस अभ्यास द्वारा अपने विचलित वीर्य को पुनः वाष्प में परिवर्तित कर लेते हैं। इस क्रिया से शरीर की ऊष्मा में वृद्धि होती है तथा नाक और छाती की बीमारी दूर होती है।

निर्देश—इस प्राणायाम के अभ्यास काल में भोजन में मक्खन, घी तथा दूध की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। गर्मी के दिनों में यह प्राणायाम नहीं करना चाहिये। यदि श्वास में रुकावट हो तो नमक मिश्रित जल से 'जल नेति' करनी चाहिए। यदि अभ्यास के समय भीतर से पसीना निकले, आँखों के आगे अन्धेरा छाने लगे अथवा चक्कर आ उठे तो अभ्यास को रोक देना चाहिए और किसी अच्छे योगी-गुरु से निर्देश प्राप्त करना चाहिये।

'सूर्य-भेदन' प्राणायाम

इस प्राणायाम के द्वारा मणिपूरक चक्र स्थिति सूर्य सहस्र चक्र तक जा पहुँचता है अतः इसे 'सूर्य-भेदन', 'सूर्य-भेदी' अथवा 'सूर्य-भेद' कहते हैं। यह भी सर्व साधारण के लिए न होकर हठ योगियों के लिए ही है अतः इसे गुरु सामीप्य एवं गुरु निर्देशन के बिना करना वर्जित है।

विधि—किसी भी आसन में सुख पूर्वक बैठ कर रीढ़ को एकदम सीधा रखते हुए, आँखें ध्यान मुद्रा से बन्द कर लें। तत्पश्चात् दाँयें नासा छिद्र (सूर्य) से गहरी श्वास (पूरक) लें, फिर, 'कुम्भक' के साथ 'मूल-बन्ध' एवं जालन्धर-बन्ध लगायें। अन्त में दाँयें नासा छिद्र से ही धीरे-धीरे 'रेचक' करें अर्थात् श्वास बाहर निकालें।

उक्त प्रक्रिया को बिना किसी अनुपात के तीन बार दुहरायें। धीरे धीरे 'कुम्भक' का समय इतना अधिक बढ़ा लेना चाहिए कि शरीर पर पसीने की बूंदें झलक उठें।

लाभ—यह प्राणायाम मनुष्य की शक्ति तथा आयु में वृद्धि करता है। बात रोग, कुष्ठ, आन्त्र-विकार, नासिका-विकार तथा गुप्त रोग को दूर करता है।

सावधान—सामान्य गृहस्थों के लिए यह प्राणायाम वर्जित है।

'प्लाविनी' प्राणायाम

विधि—इस अभ्यास में अधिकाधिक श्वास लेकर पेट को खूब फुला लिया जाता है तथा दीर्घकालीन कुम्भक किया जाता है। तदुपरान्त उड्डीयान बन्ध बनाकर धीरे-धीरे वायु को बाहर निकाला जाता है।

लाभ—इसके सफल अभ्यास से मनुष्य शव की भाँति पानी के ऊपर तैरता रह सकता है तथा बिना भोजन किये कई दिनों तक निरन्तर बना रहता है।

सावधान—यह प्राणायाम भी सामान्यजनों के लिए नहीं है। इसकी सफलता गुरु-निर्देश पर ही आश्रित है।

'मूर्च्छा' प्राणायाम

विधि—पद्मासन लगाकर बैठें अथवा शवासन की स्थिति में लेट जाय तदुपरान्त 'पूरक' तथा 'रेचक' करे। साथ ही उज्जायी प्राणायाम की भाँति 'कुम्भक' का अभ्यास इतना अधिक बढ़ा लें कि मूर्च्छा सी आ जाय।

अभ्यास के समय सिर आकास की ओर तथा दृष्टि भ्रू-मध्य की ओर उठी रहनी चाहिये। मन विचार रहित रहे तथा मूर्च्छा में भी चेतना बनी रहे।

लाभ—इस प्राणायाम से समस्त सांसारिक अनुभूतियाँ समाप्त होकर मन अन्तर्मुखी हो जाता है, जिसके फल स्वरूप सत्य तथा ज्ञान का **स्रोत फूट** पड़ता है इस प्राणायाम के फल स्वरूप शरीर के भीतर **कार्बन** की अधिकता हो जाती है, जिसके कारण हृदय गति हीनता जैसी स्थिति प्राप्त कर लेता है और अभ्यासी को मूर्च्छा आने लगती है। इस प्राणायाम के सफल अभ्यासी योगीजन एक निश्चित समयावधि के लिए अपने शरीर को मृत्यु तुल्य बना लेते हैं। सामान्यतः यह जीवनी शक्ति को बढ़ाता तथा दीर्घ आयुष्य देता है।

सावधान—यह अभ्यास भी सामान्य गृहस्थों को वर्जित है तथा गुरु निर्देश तथा सामीप्य के बिना इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

'षट्कर्म'

शरीरस्थ विपाक्त-द्रव्यों को वाहर निकाल कर उनकी अन्दरूनी सफाई के लिए षट्कर्मों का प्रयोग किया जाता है। इससे शरीर का सुचारु रूप से संचालन सम्भव होता है। ये क्रियाएँ 'हठयोग' के अन्तर्गत मानी जाती हैं।

षट्कर्मों के नाम यह है—१. नेति, २. धौति, ३. वस्ति, ४. नौलि, ५. कपाल-भाँति और ६. त्राटक।

यद्यपि ये क्रियाएँ सरल हैं, तथापि इनका अभ्यास केवल पुस्तक में पढ़कर करने से कठिनाई हो सकती है अतः इनका प्रारम्भ किसी सुयोग्य अनुभवी गुरु (हठयोगी) की देख-रेख में ही करना चाहिए।

नेति

नेति दो प्रकार की होती है—१. सूत्र नेति तथा २. जल-नेति।

१. सूत्र-नेति—कच्चे सूत का एक मुलायम, बिना गाँठ वाला तथा वटा हुआ एक लम्वा डोरा लें। उसके एक सिरे को हाथ में पकड़ रखें तथा दूसरे सिरे पर उसी की एक ऐसी मेंडुली-सी बना लें, जो नासा छिद्र में आसानी से जा सके। फिर गेंडुली को उस नासा छिद्र में रखें, जिसमें होकर श्वास चल रही हो। गेंडुली को धीरे-धीरे भीतर की ओर सिकोड़ते हुए दीर्घ श्वास लेते रहें तथा उसे छोड़ते जायँ ऐसा करने से वह सूत की मेंडुली नासा-छिद्र में प्रविष्ट होकर मुख मार्ग से वाहर निकल जायगी।

उक्तक्रिया से दोनों नासा छिद्रों तथा मास्तिष्क की सफाई होती है।

२. जल-नेति—एक टोंटीदार बर्तन में गुन-गुना पानी लेकर उसमें थोड़ा सा नमक मिलाएँ। फिर माथे को थोड़ा सा पीछे की ओर झुकाकर जिस नासा-छिद्र से श्वास चल रहा हो उसमें अपना अथवा बायें नासा छिद्र में उस वर्तन की टोंटी लगा दें तथा उससे निकलने वाले पानी को विना किसी हिचक के थोड़ा सा नाक के भीतर सीकोड़ और उसे मुख द्वारा वाहर निकाल दें। यही क्रिया दूसरे नासा-रन्ध्र से भी करें। तदुपरान्त 'भस्त्रिका प्राणायाम' करके नाक को अवश्य सुखा लें।

लाभ—नैतिकी उक्त दोनों विधियों से सर्दी, खाँसी, छींक, नाक, आँख तथा कान के समस्त रोगों में लाभ होता है तथा मस्तिष्क सक्रिय होकर, वृद्धि एवं विवेक विकसित होते हैं। इस क्रिया द्वारा नाक तथा मस्तिष्क

की भाँति-भाँति से सफाई हो जाने से सुषुम्ना को जागृत करने में भी अत्यधिक सहायता मिलती है।

धौति

विधि—लगभग पौने डेढ़ किलो गुनगुना पानी लेकर उसमें लगभग १० ग्राम नमक मिला दें। फिर उस पूरे पानी को धीरे-धीरे पी जायें। तत्पश्चात् अपने हाथ की तर्जनी तथा मध्यमा—इन दो अंगुलियों को जीभ पर रगड़े। ऐसा करने से वमन (उल्टी) होगी तथा उससे पेट का सारा पानी बाहर निकल जायेगा।

उक्त क्रिया को सात-आठ दिन के अन्तर से दुहराना चाहिए।

लाभ—धौति की उक्त क्रिया द्वारा श्वास नली, नाक, कान, आँख, पेट तथा आँतों की भली-भाँति सफाई हो जाती है तथा ववासीर, भगन्दर जैसे गुप्त रोग एवं मानसिक बीमारियों में लाभ होता है।

वस्ती

विधि—किसी बड़े वर्तन में पानी भरकर, उसमें कमर तक बैठ जाँय तथा दोनों पाँव फैलाकर एक चार इंच लम्बी तथा लगभग आधा इंच व्यास की पोली नली गुदा-मार्ग में प्रविष्ट कर अश्विनी-मुद्रा बनायें। इस क्रिया में गुदा संकुचन द्वारा पानी को ऊपर चढ़ाया जाता है। अर्थात् गुदा द्वारा पानी को बार-बार ऊपर (गुदा के भीतर) खींचने की प्रक्रिया की जाती है। फिर आगे वर्णित 'नौलि' क्रिया द्वारा पेट की आँतों को इधर-उधर घुमाते हुए मन्थन किया जाता है तथा अन्त में 'मयूरासन' द्वारा पेट पर शरीर का पूरा दवाव डालकर, सम्पूर्ण जल को 'दस्त' (मल-विसर्जन) के रूप में गुदा-मार्ग से ही बाहर निकाल दिया जाता है।

लाभ—यह क्रिया योगियों के लिए 'एनीमा' जैसी है। इससे बड़ी आँत की सफाई होकर पेट स्वच्छ तथा मुलायम हो जाता है।

'नौलि'

विधि—सीधे खड़े होकर दोनों पाँवों के पंजे, एड़ी, घुटने आदि परस्पर मिला लें। फिर अपने दोनों घुटनों पर दोनों हाथों का जोर डालकर कमर से ऊपरी भाग को थोड़ा सा सामने की ओर झुका दें फिर निम्न-लिखित क्रियाएँ क्रमशः करें—

१. पाँवों के पंजों को एक दूसरे को डेढ़ फुट की दूरी पर रखते हुए पूर्वोक्त स्थिति में खड़े हो। घुटने पर रखे हुए हाथ तने रहें, अब श्वास को पूरी तरह बाहर निकाल कर 'जालन्धर बन्ध' लगाएँ तथा पेट की समस्त नसों को पहले नाभि के समीप स्तम्भ के रूप में एकत्र करें, फिर अपनी जगह पर लौट जाने दें। इस क्रिया को जल्दी-जल्दी अनेक बार दोहरायें।

२. फिर पाँव को डेढ़ फुट की दूरी पर रखते हुए पूर्वोक्त स्थिति में खड़ें हो जायँ तथा पूरी श्वास को बलात बाहर निकाल कर, पेट की समस्त नसों को बाँयीं ओर धकेलने का प्रयत्न करें। फिर यही क्रिया दाँयीं ओर (दक्षिण नौलि) को करें। एक बाहर की निकाले हुए श्वास में पेट को दाँयें से बायें ओर ले जाने की क्रिया बारम्बार दोहराएँ। दाँयें घुटने पर दाँयें हाथ का दबाव बढ़ाकर बाँये भाग को ढील छोड़ देने से नसें सरलता पूर्वक बाँईं ओर को हट जाती हैं इसके विपरीत क्रिया करने पर दाँयीं ओर को घुम जाती हैं। नसों को दोनों ओर ले जाने की क्रिया तीन-तीन बार दुहरानी चाहिए।

३. जब पूर्वोक्त अभ्यासों में पूरी सफलता मिल जाय, तब उन नसों को क्रमशः बाँयें, ऊपर, दाँये तथा नीचे की ओर घुमाने का अभ्यास करें दूसरी बार इसी क्रम को ठीक उल्टा करके नसों को घुमाएँ। इस प्रकार एक बार उल्टा तथा दूसरी बार सीधा घुमाने पर एक चक्र पूरा हो जायेगा। इन चक्रों को तीन बार दुहराना चाहिए। प्रत्येक अभ्यास में, एक ही बाह्य कुम्भक की अवधि में नसों का संचालन तीव्रता से करना चाहिए तथा प्रत्येक अभ्यास के बीच, भरपूर श्वास लेकर, खूब पेट फुला कर आभ्यन्तर कुम्भक को करना चाहिए। अन्त में कुछ सामान्य श्वासें लेकर विश्राम करना भी आवश्यक है। 'नौलि' करने से पूर्व 'उड्डियान बन्ध' का अच्छा अभ्यास कर लेना उचित है।

लाभ—उक्त क्रिया से पेट की भली-भाँति मालिश तथा व्यायाम हो जाता है। कार्य ग्रन्थियों के विकार तथा पेट के कृमि दूर हो जाती हैं। आँतें सशक्त होती हैं तथा यकृत प्लीहा क्लोम एवं वृक्क आदि सभी अवयव पुष्ट तथा निरोग होते हैं। अजीर्ण तथा कोष्ठ-बद्धता की शिकायत भी दूर हो जाती है।

कपालभाति

विधि—पद्मासन में बैठकर जल्दी श्वास लें और छोड़ें। श्वास छोड़ने

की क्रिया को निरन्तर करते रहें। पूरक की अपेक्षा 'रेचक' में केवल एक तिहाई समय लगावें। रेचक इतनी शीघ्रता से किये जायें कि उनकी संख्या क्रमशः बढ़ती हुई एक मिनट में १२० तक जा पहुँचे। पूरक तथा रेचक के समय केवल उदर-पेशियों में ही हरकत हो तथा वक्षःस्थल की पेशियाँ संकुचित बनी रहें। इस क्रिया में, बीच में तनिक भी विराम न हो

आरम्भ में एक सेकिन्ड में एक रेचक तथा बाद में दो और तीन रेचक करना चाहिए। प्रातः सायं ११-११ रेचकों के चक्र चलाते हुए, प्रति सप्ताह एक चक्र की वृद्धि करनी चाहिए। प्रत्येक चक्र के बाद थोड़ा विश्राम (सामान्य श्वासोच्छ्वास) भी उचित है। चक्र पूरा करने से पहले रुकना नहीं चाहिए।

लाभ—इस अभ्यास से कपाल, नासा छिद्रों तथा श्वसन-संस्थान के अन्य सभी भागों की सफाई हो जाती है; प्राण वायु के अधिकाधिक प्राप्ति से शरीरस्थ विषाक्त-तत्त्व बाहर निकल जाते हैं। पेट की पेशियों तथा उनसे सम्बन्धित अङ्गों की मालिश हो जाती है, धमनी की क्रियाशीलता बढ़कर रक्त स्वच्छ हो जाता है। श्वासनली तथा मस्तिष्क की भली-भाँति सफाई हो जाती है, फलतः अन्तर्दृश्य तथा विचार स्वयमेव बन्द हो जाते हैं। इसका नियमित अभ्यास करने से कपाल चमकने लगता है।

त्राटक

इस क्रिया में रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए, पद्मासन से बैठकर बिना पलक झपकाये, नासाग्र तथा भ्रू-मध्य भाग पर एकटक देखते रहने का अभ्यास बढ़ाया जाता है। ऐसा करते समय आरम्भ में पलकें जल्दी-जल्दी झपकी जा सकती हैं। परन्तु धैर्य तथा दृढ़ आत्म-विश्वास के साथ पलक झपकने के अनन्तर आँखों को थोड़ा विश्राम देकर अभ्यास को थोड़ा बढ़ाते जाना चाहिए।

जब नासाग्र तथा भ्रू-मध्य भाग पर दृष्टि स्थिर होने लगे तब अपनी आँखों की सीध में लगभग दो फुट की दूरी पर किसी छोटे बिन्दु को निश्चित कर, उस पर ध्यान जमाने (एकटक दृष्टि से देखने) का अभ्यास करना चाहिए। फिर रात्रि के समय घृत अथवा अरण्डी के तैल का दीपक जलाकर उसकी लौ पर तब तक त्राटक (निर्निमेष-दृष्टि से देखने) का अभ्यास करना चाहिए, जब तक कि आँखों से आँसू न गिरने लगे। आँसू

निकलने पर थोड़ा विश्राम करने के बाद पुनः यही अभ्यास दुहराना चाहिए।

जब दीपक की लौ पर दृष्टि स्थिर हो जाय तब दो फुट की दूरी पर दर्पण में करना चाहिए। फिर रात्रि में चन्द्रमा पर दृष्टि जमाने का अभ्यास करें जब उसको आँख जमा कर देखने का अभ्यास हो जाय। तब उषा काल में किसी बगीचे में बैठकर किसी विकसित फूल पर दृष्टि जमाने का अभ्यास करें।

उक्त प्रकार से विना दृष्टि झपकाये दृष्टि जमाने के अभ्यास को निरन्तर बढ़ाते जाना चाहिए।

लाभ—उक्त अभ्यास से आँखों के रोग नष्ट होकर दृष्टि-शक्ति तीव्र होती है। मन शान्त होता है, इच्छा-शक्ति तीव्र होती है तथा प्राण-शक्ति सुव्यवस्थित बनी रहती है।

त्राटक का अभ्यास सिद्ध हो जाने पर, अभ्यासी व्यक्ति अपनी इच्छा-शक्ति को दृढ़ बनाकर जिस किसी प्राणी की आँख-से-आँख मिलाकर, उसे जो भी आदेश देता है उसका पालन करने के लिए, वह बाध्य हो जाता है। हिप्नोटिज्म तथा सम्मोहन क्रिया के साधकों के लिए 'त्राटक' में पारङ्गत होना आवश्यक है।

विशेष—हठयोग के उक्त षट्कर्म 'कुण्डलिनी-जागरण' में भी सहायक बनते हैं।

शंख-प्रक्षालन

यह 'धौति' का ही एक अन्य रूप है—शंख-प्रक्षालन। योग शास्त्र में इसे **वारिसार** धौति कहा गया है। इसकी विधि निम्नानुसार है—

विधि—लगभग ३ किलो शुद्ध जल लेकर, उसे किसी स्वच्छ बर्तन में उबाल लें। फिर उसमें १ किलो शुद्ध ठण्डा जल तथा २५ ग्राम नमक मिला दें और उसे ठण्डा होने दें। जब वह गुनगुना रह जाय अर्थात् उसका तापमान आप के शरीर के तापमान से केवल ५ डिग्री सेण्टीग्रेड ही अधिक रहे, तब उस गुनगुने पानी के दो तीन गिलास अर्थात् ७५० ग्राम के लगभग पीकर क्रमशः (१) तिर्यक्, ताड़ासन, (२) कटिचक्रासन, (३) तिर्यक् भुजङ्गासन तथा (४) उत्सकर्षण इन चार आसनों को ८-८ बार दुहराएँ।

उक्त प्रकार से चार-छः गिलास पानी पी लेने तथा चारों आसनों को क्रमशः ८+४=१२ बार दुहरा लेने से जब शौच की स्थिति हो जाय तब मल त्याग करें। यदि इतने पर भी मल की स्थिति न लगे तब तो मल त्याग के लिए न जायँ अपितु दो गिलास और पानी पीकर पादहस्तासन, धनुरासन तथा पवनमुक्तासन की क्रियाएँ क्रमशः ४-४ बार करें। तदुपरान्त शौच की स्थिति हो जाना आवश्यक है। तब मल-त्याग के लिए जाएँ।

पानी कितना ही क्यों न पीना पड़े परन्तु ३-४ बार शौच अवश्य जाना चाहिए जब तक मल के स्थान पर बिल्कुल स्वच्छ पानी न आने लगे, तब तक उक्त क्रियाओं को बारम्बार दुहराते रहना चाहिए। अन्त में ठण्डा पानी पीकर अंगुलियाँ जीभ पर रगड़ कर वमन कर देना चाहिए। तत्पश्चात् 'नेति' क्रिया द्वारा श्वसन-संस्थान को स्वच्छ कर 'भस्त्रिका प्राणायाम' करना तथा एक घण्टे तक 'शवासन' की स्थिति में रहकर विश्राम करने के बाद भोजन करना चाहिए। भोजन में मूँग की दाल तथा चावल से निर्मित एवं शुद्ध घी से तर की गई खिचड़ी का सेवन करना उचित है।

उक्त क्रिया में जिन आसनों के करने का निर्देश किया गया है उनका उल्लेख 'योगासन' प्रकरण में देखें। आसनों के सम्बन्ध में केवल यहाँ निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी आवश्यक है।

(१) ताड़ासन की स्थिति में, दाँई-बाईं ओर अधिकाधिक झुकने को 'तिर्यक् ताड़ासन' कहा जाता है।

(२) 'कटि-चक्रासन' में ढाई फुट को दूरी तक पाँव के पंजों को फैलाकर पहले दोनों हाथों को सामने रखा जाता है, फिर उनमें से एक को एक बार बाँईं ओर से पीछे की ओर तथा दूसरी बार दाँईं ओर से पीछे की ओर ले जाया जाता है। इस क्रिया में एक हाथ तो पीछे की ओर चला जाता है, परन्तु दूसरा उसके कन्धे को ही छूता है। यह अभ्यास झटके के साथ अर्थात् शीघ्रता पूर्वक किया जाता है।

(३) भुजङ्गासन की स्थिति में सर्प की भाँति दाँईं-बाईं ओर घुमने को तिर्यक् भुजङ्गासन कहते हैं।

(४) 'उदराकर्षण' में उकड़ू बैठकर घुटनों तथा पंजों को यथा सम्भव एक दूसरे से दूर रखते हैं। फिर बाँयें घुटने को झुका कर उसका

दाँयें पंजे से स्पर्श कराते हैं। यही क्रिया दाँयें घुटने को झुकाकर भी की जाती है। इसे भी जल्दी-जल्दी किया जाता है।

(५) 'पाद हस्तासन' में खड़े होकर, दोनों हाथों से दोनों पाँवों के पंजे छूने तथा सिर को घुटनों से लगाने का प्रयास किया जाता है तथा इस क्रिया जो चार बार दुहराया जाता है।

(६) धनुरासन 'योगासन' प्रकरण में उल्लिखित विधि के अनुसार ही किया जाता है।

(७) 'पवन मुक्तासन' में उकड़ू बैठकर दोनों हाथों से दोनों घुटनों को कसकर आठ बार पीछे की ओर लुढ़का जाता है।

विशेष—'शंख प्रक्षालन' से पूर्व योगासनों का अभ्यास कर लेना आवश्यक है तथा पहली बार इस क्रिया को भी गुरु के निर्देश से ही करना चाहिए।

लाभ—'शंख-प्रक्षालन' के अभ्यास द्वारा मुँह से लेकर गुदा तक की पूरी आँतों तथा भोजन नली की भली भाँति सफाई हो जाती है।

बन्ध और मुद्राएँ

'बंध' शब्द का अर्थ है—बाँधना अथवा कड़ा करना तथा 'मुद्रा' का आध्यात्मिक अर्थ है—सम्मिलन। हठयोग की क्रियाओं में इन दोनों का मुख्य स्थान है। शरीर में जिन षटचक्रों की स्थिति मानी गई है उन्हें खोलने तथा सुप्त-कुण्डलिनी शक्ति को जगाने की ये गुप्त विधियाँ हैं। अतः यौगिक क्रियाओं में इन्हें 'आसन' तथा 'प्राणायाम' से भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

मनुष्य शरीर में गुदा के पास ही मूलाधार चक्र है जिसमें कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में पड़ी रहती है। यह कुण्डलिनी ही गुप्त शक्तियों का केन्द्र है तथा इसके जग जाने पर जीवात्मा परमात्मा से सम्मिलित हो जाता है। कुण्डलिनी शक्ति को जगाने का वर्णन इसी पुस्तक के अन्य प्रकरण में किया गया है यहाँ केवल इतना हो समझ लेना चाहिए कि मुद्रा तथा बन्धों के अभ्यास से अचेतन-इच्छा शक्ति का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तथा ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उस शक्ति को अपने अथवा अन्य शरीरों में भी प्रविष्ट कराया जा सकता है।

अनेक प्रकार से योगासनों तथा अभ्यासों में भी 'बन्ध' लगाने की आवश्यकता पड़ती है। अतः पहले यहाँ पर बन्ध का, तदुपरान्त मुद्राओं का, उल्लेख किया जायगा।

अग्निसार-क्रिया

अग्निसार-क्रिया की विधि निम्नानुसार है—

वज्रासन में बैठ कर अथवा खड़े होकर, दोनों हथेलियों को घुटनों पर जमा लें। फिर भीतर श्वास खींचने के बाद उसे पूर्णतः बाहर निकाल दें तथा वहिर्कुम्भक करके अर्थात् श्वास को बाहर ही रोक कर 'जालन्धर-बन्ध' लगायें। अब पेट को यथा साध्य भीतर की ओर दबा कर रीढ़ की हड्डी से चिपका देने का प्रयत्न करें, फिर बाहर की ओर धकेलें। इस प्रकार पेट को फैलाने तथा सिकोड़ने की क्रिया एक मिनट में १५ बार की गति से बारम्बार दोहराएँ। अन्त में बन्ध छोड़कर स्वाभाविक श्वास लें। इस क्रिया को अनेक बार दोहराना चाहिए।

सुषुम्ना और षट्चक्र

'कुण्डलिनी जागरण' की योग सर्वोच्च उपलब्धि है। यह क्रिया षट्चक्रों के भेदन से सम्पन्न होती है। अतः सर्वप्रथम षट्चक्र तथा उससे सम्बन्धित मस्तिक एवं मेरुदण्ड आदि के विषय में जानकारी कर लेना आवश्यक है।

नाड़ी-संस्थान

मनुष्य-शरीर में ७२००० नाड़ियों की अवस्थिति मानी गयी है। इसमें से कुछ अत्यन्त सूक्ष्म तथा कुछ बड़े आकार की हैं। सम्पूर्ण नाड़ी-संस्थान के दो मुख्य भाग हैं—१. केन्द्रीय तथा २. परिधिस्थ।

'केन्द्रीय-नाड़ी संस्थान' में सुषुम्ना शीर्ष मेरुदण्ड तथा तन्त्रिका गुच्छ सम्मिलित हैं तथा परिधिस्थ नाड़ी-संस्थान में संचालक तथा संवेदन नाड़ियों की गणना की जाती है। इन नाड़ियों का कार्य मस्तिष्क को विभिन्न अङ्गों की संवेदनाओं से अवगत कराना है। मेरुदण्ड केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान का विस्तार है।

मेरुदण्ड को 'रीढ़ की हड्डी', 'मेरुरज्जु' तथा 'सुषुम्ना' भी कहा जाता है। यद्यपि सुषुम्ना एक अलग नाड़ी है जो मेरुदण्ड में हो कर नीचे से ऊपर की ओर जाती है, तथापि उसकी प्रमुख 'कार्यशीलता' के कारण ही मेरुदण्ड को 'सुषुम्ना' नाम से अभिहित करते हैं।

मेरुदण्ड 'कन्द' से लेकर 'मस्तिष्क' से जुड़ा रहता है, अतः इसकी कार्य पद्धति के सम्बन्ध में भी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

मस्तिष्क

मस्तिष्क चार भागों में बँटा है—१. वृहत् मस्तिष्क २. लघु-मस्तिष्क ३. तुनिसेत अथवा मज्जासेतु ४. सुषुम्ना-शीर्ष अर्थात् मेरुदण्ड अर्थात् सेतु को जोड़ने वाला भाग।

१. बृहत् मस्तिष्क—यह मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है जो सम्पूर्ण मस्तिष्क का लगभग ७-८ भाग होता है। यह एक केन्द्रीय तार द्वारा दो गोलार्द्धों में बँटा है। इन दोनों भागों पर उभरी हुई नालियाँ सी होती हैं जिस व्यक्ति के वृहत् मस्तिष्क में ये नालियाँ जितनी अधिक गहरी होती हैं वह उतना ही अधिक बुद्धिमान होता है। ये दोनों भाग तीन पारदर्शी झिल्लियों से ढके रहते हैं। इन झिल्लियों को क्रमशः मृदु तानिका, दृढ़ तानिका तथा जाल तानिका कहा जाता है। मृदु तानिका मस्तिष्क से एकदम सटा हुआ स्तर है, जिसमें रक्त कोशिकाओं का एक ऐसा जाल है जो मस्तिष्क में फैला हुआ है तथा सभी भागों में रक्त पहुँचा कर उसका पोषण करता है; दृढ़ तानिका दूसरी मोटी झिल्ली है जो अत्यन्त घने तन्तुओं से निर्मित तथा दृढ़ होती है एवं खोपड़ी के निम्नभाग से मिली रहती है। जाल तानिका इसी के नीचे सतह पर मस्तिष्क को आच्छादित किये फैली रहती है।

मृदुतानिका एवं जालतानिका के बीच 'मेरुद्रव्य' नामक एक तरल पदार्थ भरा रहता है जो मस्तिष्क का पोषण करता तथा उसकी बाहरी आघातों से रक्षा करता है।

बड़े मस्तिष्क के भीतर धूसर तथा श्वेत द्रव्य भरे रहते हैं। यह बाहर से भूरे (धूसर) रङ्ग का तथा भीतर से सफेद होता है। धूसर भाग तन्त्रिकाओं एवं श्वेत भाग तान्त्रिकी कोषाओं के तन्तुओं द्वारा निर्मित है। इनके द्वारा शरीर के विशेष भागों के कार्यों का संचालन होता है। तन्तु अथवा कोष में किसी भी एक के निर्जीव हो जाने पर, दोनों निर्जीव हो जाते हैं, नाड़ी-तन्तु की अनेक शाखाएँ २० इञ्च तक होती हैं।

बड़ा मस्तिष्क का बायाँ भाग शरीर के दायें भाग पर तथा दाँयाँ भाग पर शासन करता अथवा उसे नियन्त्रण में रखता है। यह विभिन्न ज्ञान इन्द्रियों के काम को नियन्त्रित करता तथा सोचने-बोलने, स्मरण करने, इच्छा-द्वेष आदि पर नियन्त्रण रखता है।

बड़े मस्तिष्क के चार भाग होते हैं—(१) ललाट खण्ड, (२) शंख खण्ड, (३) पार्श्व खण्ड तथा (४) पीछे का कपाल खण्ड। 'ललाट खण्ड' सबसे आगे का भाग है। परन्तु इसकी कार्य प्रणाली के विषय में अभी तक कुछ पता नहीं चल सका है। 'शंख खण्ड' सुनने तथा स्मरण रखने का काम करता है। 'पार्श्व खण्ड' का कार्य शरीर के विभिन्न भागों से नाड़ियों द्वारा लाये गये सन्देश को प्राप्त करना है तथा 'कपाल खण्ड' का कार्य देखना, गुनना तथा समझना है।

२. लघु मस्तिष्क—यह बृहत् मस्तिष्क के पीछे की ओर होता है। इसका अधिकांश भाग बृहत् मस्तिष्क से ढँका होता है। यह भी दाँयें और बाँयें—दो भागों में बँटा हुआ है। इसका दाँया भाग शरीर के बायें भाग पर तथा बाँया भाग दाँयें भाग पर नियन्त्रण करता है, मांस-पेशियों को वश में रखना तथा शरीर के सन्तुलन को बनायें रखना भी इसी का कार्य है। यह बड़े मस्तिष्क को सहारा भी देता है। ऊपर फेंकना, नीचे फेंकना, खींचना, फैलाना, सिकोड़ना, चलना, फिरना, चढ़ना, उतरना तथा दौड़ना आदि क्रियाएँ इसी के द्वारा नियन्त्रित होती हैं।

३. तुनि-सेत अथवा मज्जा-सेतु—छोटे मस्तिष्क के दोनों भागों के बीच यह एक पुल के समान कार्य करता है। यह भी बाहर से सफेद तथा भीतर से भूरे रंग का होता है। बड़े मस्तिष्क से जो स्नायु निकलते हैं, वे इसी में होकर शरीर के विभिन्न भागों में जाते हैं।

४. सुषुम्ना शीर्ष—यह सुषुम्ना का ऊपरी भाग है, जो लघु मस्तिष्क के एकदम नीचे होती है। यह सुषुम्ना को मस्तिष्क से मिलाने का कार्य करता है तथा बाहर से सफेद एवं भीतर से भूरा होता है। श्वसन क्रिया तथा हृदय की धड़कन आदि पर इसी का नियन्त्रण रहता है। इस पर लगी सामान्य सा चोट भी मनुष्य की मृत्यु का कारण बन जाती है। यह भाग बेलनाकार होता है तथा मनुष्य जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा आवश्यक अंग कहा जाता है। रक्त परिभ्रमण तथा भोजन निगलने की क्रिया आदि के संचालन-केन्द्र भी इसी भाग में रहते हैं। मस्तिष्क से निकली १२ तन्त्रिकाएँ भी इसी में होकर शरीर के निम्न भागों में जाती हैं तथा अन्य भागों से सम्बन्धित तन्त्रिकाएँ भी इसी में होकर मस्तिष्क-केन्द्रों तक पहुँचती हैं।

सुषुम्ना तथा मेरुदण्ड—यह लगभग १४ से २४ इञ्च तक लम्बी एवं १/२ से ३/४ इञ्च तक मोटी नाड़ी है, जो सुषुम्ना-शीर्ष से आरम्भ होकर

उस पुच्छ-हड्डी तक जाती है जिसे 'सुषुम्ना-पुच्छ' कहा जाता है। यह बाहर से सफेद व भीतर से भूरी होती है। इसमें से नाड़ियों के ३१ जोड़े निकलते हैं। प्रत्येक नाड़ी सुषुम्ना के साथ दो स्थानों पर मिली रहती हैं। ये नाड़ियाँ अनेक शाखाओं में बँटकर सम्पूर्ण शरीर में फैली रहती हैं। ये केवल मस्तिष्क को ही शासित नहीं करतीं, बल्कि शरीर के अन्य प्रत्येक मांस-पेशी पर इन्हीं का नियन्त्रण रहता है अर्थात् प्रत्येक अंग की चेष्टा इन्हीं के वश में रहती है।

सुषुम्ना का कार्य शरीर के विभिन्न भागों से आये हुए सन्देशों को मस्तिष्क तक पहुँचाना तथा मस्तिष्क द्वारा प्रेरित आदेशों को शरीर के विभिन्न भागों, अंगों तथा मांस-पेशियों तक ले जाना है। कभी-कभी आकस्मिक आवश्यकता के समय यह मस्तिष्क से बिना पूछे स्वयं भी शरीर के विभिन्न भागों को आदेश देने का कार्य कर बैठती है। जैसे—आँखों पर तीव्र प्रकाश पड़ने पर उनका अपने आप बन्द हो जाना, आँखें बन्द करने की स्थिति में किसी जीव अथवा पदार्थ का किसी अंग से स्पर्श हो जाने पर उस अंग का पीछे हटकर अपना बचाव करना अथवा निद्रावस्था की बेसुधी में यदि पाँव के तलवे पर अंगुली आदि फेरी जाय, तो निद्रित मनुष्य द्वारा अपने पाँव ऊपर की ओर खींच लेना आदि कार्य सुषुम्ना के आदेश से ही सम्पन्न होते हैं।

शरीर विज्ञान के अनुसार प्रतिपादित उक्त ५ केन्द्र योग-शास्त्र में वर्णित जिन ५ चक्रों से मिलते हैं, उन्हें निम्नानुसार समझना चाहिए।

१. सर्विकल	विशुद्ध चक्र
२. थोरेसिक	अनाहत चक्र
३. लम्बर	मणिपूरक चक्र
४. सैक्रल	स्वाधिष्ठान चक्र
५. कोजियल	मूलाधार चक्र

मनुष्य शरीर का आधार यही 'सुषुम्ना' अथवा मेरुदण्ड है। मेरुदण्ड तैंतीस अस्थि खण्डों के संयोग से बना है। वह भीतर से खोखला होता है। इसका निचला भाग नुकीला तथा छोटा होता है, जिसे 'कन्द' कहते हैं।

षटचक्र—शरीर रचना शास्त्र के अनुसार प्रतिपादित ५ चक्रों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। योग शास्त्र में षट्चक्रों का उल्लेख पाया जाता है, जिनके नाम इस प्रकार कहे गये हैं—

१. मूलाधार-चक्र, २. स्वाधिष्ठान चक्र, ३. मणिपूरक चक्र, ४. अनाहत चक्र, ५. विशुद्धि-चक्र और ६. आज्ञाचक्र। इनके अतिरिक्त दो चक्र और भी बताये गये हैं—१. बिन्दु-चक्र और २. सहस्रार चक्र। सहस्रार चक्र को ही 'सहस्र दल कमल' भी कहा जाता है। इस प्रकार चक्रों की कुल संख्या ८ हो जाती है। इन चक्रों के विषय में योगशास्त्रीय विवरण निम्नानुसार है :—

१. मूलाधार-चक्र—यह चक्र रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले भाग—'कन्द' प्रदेश (जो गुदा और लिंग के मध्य भाग में स्थित है)। इस चक्र का कमल दल रक्तवर्ण तथा चार दलों वाला है। इसके दलों पर क्रमशः 'यं' शं, पं तथा सं—इन चार अक्षरों की स्थिति मानी गयी है। इसका यन्त्र पृथ्वी तल का द्योतक तथा चतुष्कोण है। यन्त्र का रंग पीत, वीज 'लं' तथा बीज का वाहन ऐरावत हस्ती है। मन्त्र के देवता 'ब्रह्मा' तथा शक्ति 'डाकिनी' है। इस यन्त्र के मध्य में स्वयंभू-लिंग है, जिसके चारों ओर साढ़े तीन फेरे में लिपटी हुई, सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति अपनी पूँछ को अपने मुँह में दवाये हुए सुप्त पड़ी रहती है। प्राणायाम आदि साधनों से जाग्रत् होकर वह मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्म नाड़ी में प्रविष्ट होकर ऊपर की ओर चलती है।

२. स्वाधिष्ठान-चक्र—इस चक्र की स्थिति लिंग स्थान के सामने है। इसका कमल सिन्दूर वर्ण तथा ६ दलों वाला है। इसके दलों पर क्रमशः बं, भं, मं, यं, रं तथा लं, इन छ अक्षरों की स्थिति मानी गयी है। इसका यन्त्र जलतत्त्व का द्योतक तथा अर्द्धचन्द्राकार है। यन्त्र रंग चन्द्रवत्, शुद्ध वीज 'वं' तथा वीज का वाहन मकर है। यन्त्र के देवता 'विष्णु' तथा शक्ति 'राकिनी' है।

३. मणिपूरक-चक्र—यह चक्र नाभि प्रदेश के सामने मेरुदण्ड में स्थित है। इसका कमल नीलवर्ण तथा १० दलों वाला है। इसके दलों पर क्रमशः 'डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं पं तथा फं,—इन दश अक्षरों की स्थिति मानी गई है। इसका यन्त्र अग्नितत्त्व का द्योतक तथा त्रिकोण है। इसके तीनों पार्श्व के द्वार में तीन 'स्वस्तिक' स्थित है। यन्त्र का रंग बाल सूर्य के समान, वीज 'रं' तथा बीज का वाहन मेष है। यन्त्र के देवता 'वृद्ध रुद्र' तथा शक्ति 'लाकिनी' है।

४. अनाहत-चक्र—इसकी स्थिति हृदय-प्रदेश के सम्मुख, इसका कमल अरुण वर्ण तथा १२ दलों वाला है। इसके दलों पर क्रमशः कं, खं, गं,

घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं तथा ठं इन बारह अक्षरों की स्थिति मानी गई है। इसका यन्त्र वायु तत्त्व का द्योतक तथा षट्कोण है। यन्त्र का रंग धूम्र-वर्ण, बीज 'यं' तथा बीज का वाहन मृग है। यन्त्र के देवता 'ईशान रुद्र' तथा शक्ति 'काकिनी' है। इस चक्र के मध्य में शक्ति-त्रिकोण है, जिसमें विद्युत जैसा प्रकाश व्याप्त है। इस त्रिकोण से सम्बद्ध 'वाण' नामक स्वर्ण कान्ति वाला शिवलिंग है जिसके ऊपर एक छिद्र है। इस छिद्र से लगा हुआ अष्टदल वाला शिवलिंग है जिसके ऊपर एक छिद्र है। इस छिद्र से लगा हुआ अष्टदल वाला 'हृत्पुण्डरीक' नामक कमल है। इस हृत्पुण्डरीक में उपास्यदेव का ध्यान किया जाता है।

५. **विशुद्ध-चक्र**—इसकी स्थिति कण्ठ-प्रदेश में है जहाँ कि दोनों श्वास स्वर का सम्मिलन सुषुम्ना-नाड़ी से है। इसका कमल धूम्रवर्ण तथा १६ दलों वाला है। इसके दलों पर अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, ऌं, ॡं, एं, ऐं, ओं औं अं तथा अः इन सोलह अक्षरों की स्थिति मानी गईहै। इसका यन्त्र आकाश तत्त्व का द्योतक तथा पूर्ण चन्द्राकार है। यन्त्र का रंग पूर्ण चन्द्र की प्रभा से देदीप्यमान, वीज हं तथा बीज का वाहन हस्ती है। यन्त्र के देवता 'पञ्चवक्त्र' सदाशिव तथा शक्ति 'शाकिनी' है।

६. **आज्ञाचक्र**—इसकी स्थिति भ्रू-मध्य के सामने मेरुदण्ड के भीतर ब्रह्मनाड़ी में है। इसके कमल का वर्ण श्वेत है तथा वह दो दलों वाला है। इसके दलों पर क्रमशः 'हं' तथा 'क्षं' इन दो अक्षरों की स्थिति मानी गयी है। इसका यन्त्र महत्त्व का द्योतक तथा विद्युतप्रभा युक्त इतर नाम अर्द्ध-नारीश्वर लिङ्ग है। यन्त्र का बीज 'प्रणव' है, वीज का वाहन 'नाद' है तथा इसके ऊपर 'बिन्दु' भी स्थित है। यन्त्र के देवता 'इतर लिङ्ग' तथा शक्ति 'हाकिनी' है।

तत्त्वों के बीज से तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार किसी मशीन के चलते समय उसके विभिन्न भागों से अलग-अलग ध्वनियाँ प्रकट होती हैं उसी प्रकार वायु-संचार के कारण शरीरस्थ तत्त्व विशेषों के स्थान पर भी विशेष शब्द उत्पन्न होते हैं। यथा—पृथ्वी तत्त्व के स्थान पर जहाँ मल निकलता है वहाँ वायु लं········लं करता हुआ-सा प्रतीत होता है तथा मूत्राशय के स्थान पर जल तल के बहने से वं····वं इसी प्रकार अन्नादि के पाचन के समय नाभि स्थान के अग्नि तत्त्व से वायु रं····रं

शब्द करता हुआ चलता है। इन्हीं ध्वनियों के आधार पर तत्त्वों के बीजाक्षर निश्चित किये गए हैं।

बीजों के वाहन से अभिप्राय यह है कि इन इन स्थानों पर वायु की गति इन-इन पशुओं की गति जैसी होती है। जैसे पृथ्वी तत्त्व के बोझ के कारण वायु की गति हाथी जैसी मन्द हो जाती है, जल तत्त्व के बहाव से वायु मकर की भाँति डुबकी खाता हुआ चलता है। जठराग्नि के कारण वायु की गति मेष जैसी हो जाती है तथा हृदय के वायुतत्त्व में शरीरस्थ वायु मृग जैसी छलाँगे मारती हुई भागती है, आदि।

चक्रों के देवी-देवताओं का विषय ध्यान योग तथा उपसाना-भेद से सम्बन्धित है इस मार्ग को केवल साधक ही जान पाते हैं। यहाँ उल्लिखित देवी-देवताओं का वर्ण पाया जाता है यथा—बाल-पद्धति में गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीव तथा गुरु—ये ७ देवता एवं इनकी शक्तियाँ क्रमशः–सिद्ध सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, अविद्या तथा परापर ज्ञान कही गई हैं तथा परमात्मा की शक्ति मोक्ष बीजात्मक विद्या बताई गई है।

एक पाश्चात्य अनुभवी के मतानुसार कुण्डलिनी की स्थिति 'अनाहत-चक्र' (हृदय) के पास है तथा एक जर्मन दार्शनिक के मत से मूलाधार से सहस्रार तक के चक्रों का सम्बन्ध क्रमशः चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, गुरु तथा शनि इन ग्रहों से है।

कुण्डलिनी शक्ति

कुण्डलिनी शक्ति क्या है? सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है। 'यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे' के अनुसार जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। तथा 'यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे' अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है यह अखिल विश्व अण्डाकार है, अतः इसे ब्रह्माण्ड कहते हैं। इसका संचालन जिस अण्डाकार शक्ति के प्रवाह से होता है उसे अव्यक्त 'कुण्डलिनी' कहा जाता है। अस्तु, विश्वव्यापी 'अव्यक्त समष्टि कुण्डलिनी' ही मनुष्य शरीर में 'अव्यक्त व्यष्टि कुण्डलिनी' के रूप में निवास करती है। ब्रह्म-शक्ति के प्रतीक जिस जीवनी शक्ति को प्राणशक्ति कहा जाता है उसका केन्द्रीभूत रूप ही 'कुण्डलिनी शक्ति' है। जिस प्रकार पर्वत अरण्य-समुद्रादि को धारण करने वाली पृथ्वी का आधार अनन्त नाग है, उसी प्रकार शरीर की समस्त गतियों एवं क्रिया शक्ति का आधार भी

'कुण्डलिनी शक्ति' ही है। यह शक्ति एक ही स्थान पर सर्पवत् कुण्डली बना कर रहती है अतः इसका नाम कुण्डलिनी शक्ति पड़ा है।

'योग कुण्डल्युपनिषद्' के अनुसार दो कुण्डलों वाली होने के कारण इस पिण्डस्थ शक्ति को 'कुण्डलिनी' कहा जाता है। इड़ा और पिंगला नामक नाड़ियाँ इसके दो कुण्ड हैं। इन दोनों नाड़ियों के बीच 'सुषुम्ना' की स्थिति है, सुषुम्ना के अन्तर्गत और भी अनेक नाड़िया हैं जिनमें से एक का नाम 'चित्रणी' है। इस चित्रणी में होकर ही कुण्डलिनी शक्ति का उर्द्धगामी मार्ग है अतः सुषुम्ना के दोनों ओर वाली इड़ा तथा पिंगला नाड़ियाँ उसके दो कुण्डलों के समान मानी गई हैं।

मूलाधार चक्र में कुण्डलिनी आत्माग्नि के तेज में अवस्थित रहती है यही प्राणी की जीवन शक्ति तैजस् और प्राणकारक है। यह शक्ति करोड़ों विद्युत प्रकाश शक्ति एवं कोटानुकोटि सूर्य प्रकाश के समान प्रकाशित आभा वाली है, यह शक्ति एवं तेजोमय परमब्रह्म-स्वरूपिणी, शब्द ब्रह्ममयी योगियों को मोक्ष दायनी तथा मूर्खजनों के लिए वन्धन का कारण है।

जव तक कुण्डलिनी शक्ति शरीर में सोती रहती है तव तक मनुष्य परिस्थितियों का दास वना रहता है, पशु तुल्य निकृष्ट आचरण करता है तथा उसमें सत्गुणों का समुचित विकास नहीं हो पाता, परन्तु जव कुण्डलिनी शक्ति जागृत हो जाती है तब मनुष्य सद्गुणों की खान एवं ईश्वर तुल्य हो जाता है।

इस शक्ति के सम्वन्ध में कतिपय पाश्चात्य मनीषियों के मत को उद्धृत कर देना इसलिए आवश्यक समझते हैं कि भारतवासी तव तक किसी वात पर विश्वास नहीं करते जब तक विदेशियों की मुहर न लग जाय।

पाश्चात्य मनीषी 'कुण्डलिनी शक्ति' को 'सर्पेण्ट पावर' नाम से अभिहित करते हैं। उनके मत से यह सर्पाकार कुण्डलिनी शरीर की अदम्य ऊर्जा शक्ति है।

आर्थर अवेलन—अपनी 'दि सर्पेण्ट पावर' नामक पुस्तक में लिखते हैं—'कुण्डलिनी एक संग्रहीत शक्ति है। यह व्यष्टि-शरीर में उस विश्व-महाशक्ति की प्रतिनिधि है, जो विश्व को उत्पन्न एवं धारण करती है।'

सर जॉन उडरफ ने डॉ० रेले के ग्रन्थ 'दि मिस्टीरियस कुण्डलिनी' की भूमिका में लिखा है—'कुण्डलिनी एक वेगस नर्व है यह नहीं कहा जा

सकता। वह एक बड़ी संगृहीत शक्ति है।' अपने 'शक्ति ऐण्ड शाक्त' नामक ग्रन्थ में वे लिखते हैं—'शक्ति दो रूप धारण करती है—एक स्थित अथवा संगृहीत (कुण्डलिनी) और दूसरा कर्तृत्वशील, जैसे–प्राण।

सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने 'ज्ञानेश्वरी' नामक अपने गीता भाष्य में छठें अध्याय का रहस्य समझाते हुए कहा है।

कुण्डलिनी के जागरण की स्थिति का वर्णन करते हुए ज्ञानेश्वर जी कहते हैं 'कुण्डलिनी जब जागती है, तब बड़े वेग के साथ झटका देकर ऊपर की ओर अपना मुँह फैलाती है। तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह बहुत दिन की भूखी हो और अब जागने पर खाने के लिए अधीर हो उठी हो। वह अपने स्थान से नहीं हटती, परन्तु शरीर में पृथ्वी तथा जल के जो भाग हैं, उन सबको चट कर जाती है, उदाहरणार्थ हथेलियों तथा पाँव तलों का शोधन कर उनका रक्त मांसादि खाकर, ऊपर के भागों को भेदती है तथा अंग प्रत्यंग की संधियों को छान डालती है। नखों की सत्त भी निकाल देती है। त्वचा को धोकर तथा पोंछ कर स्वच्छ करती तथा उसे अस्थि-पञ्जर से सटाए रखती है। पृथ्वी तथा जल—इन दो भूतों को खा चुकने पर वह पूर्णतया तृप्त होती है और तब शान्त होकर सुषुम्ना के समीप रहती है। तब तृप्तिजन्य समाधान प्राप्त होने से उसके मुख से जो गरल निकलता है, उसी गरल रूप अमृत को पाकर प्राणवायु जीता है।

कुण्डलिनी के सुषुम्ना में प्रवेश करने पर ऊपर की ओर जो चन्द्रामृत का सरोवर है, वह धीरे-धीरे उलट जाता है और वह चन्द्रामृत कुण्डलिनी के मुख में गिरता है। कुण्डलिनी द्वारा वह रस सर्वाङ्ग में भर जाता है तथा प्राण वायु जहाँ का तहाँ स्थिर हो जाता है उस समय शरीर पर त्वचा की जो सूखी पपड़ी-सी रहती है वह भूसे की तरह निकल जाती है। तब शरीर की कान्ति केशर रंग की अथवा रत्नरूप बीज के कोपल-सी दीखती है और ऐसा लगता है, जैसे सायंकाल के आकाश से लाल रंग की लाली निकल कर, उससे वह शरीर बनाया गया हो, जब कुण्डलिनी चन्द्रामृत पान करती है, तब ऐसी देह में कान्ति होती है कि यमराज भी काँपते हैं। उस योगी की देह के प्रत्येक अंग नया और कान्तिमय बन जाता है। उसे लघिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। पृथ्वी और जल का अंश न रहने से योगी का शरीर वायु जैसा हल्का हो जाता है, वह

सागर पार की बातें जानने, वस्तु पहचानने, स्वर्ग में होने वाले विचारों, चींटी के मन की बात जान लेने में भी समर्थ हो जाता है, पाँवों को बिना भिगोये जल पर चल सकता है। ऐसी उसे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

कुण्डलिनी को जगाना

उपयुक्त विवरण से पाठकों को कुण्डलिनी की स्थिति, स्वरूप तथा उनमें महत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

षट्चक्रों में गुदा तथा लिंग के मध्यभाग में जो 'कन्द' स्थान है, कुण्डलिनी की अवस्थिति उसी में मानी गई है। वहाँ पर वह समस्त नाड़ियों की वेष्टित करती हुई, साढ़े तीन आँटें देकर, अपनी पूँछ मुँह में लिए, सुषुम्णा नाड़ी के छिद्र का अवरोध करती हुई, सर्प की भाँति निद्रावस्था में अवस्थान करती है। जब यह जग जाती है तब षट्चक्र में स्थित पद्म तथा ग्रन्थियों का भेदन हो जाता है। इस कुण्डलिनो को जगाने के लिये प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध आदि के अभ्यास किये जाते हैं। बन्ध-त्रययुक्त प्राणायाम, मुद्रा तथा भावनाओं द्वारा धीरे-धीरे कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है।

कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के अनेक उपाय 'पातञ्जलि योग दर्शन' तथा तन्त्र-ग्रन्थों में वर्णित है परन्तु उनमें प्राणायाम द्वारा कुण्ड-लिनी शक्ति को चैतन्य करके 'सुषुम्ना' में लाने का उपाय सुख साध्य है। यहाँ कुण्डलिनी जागरण की कुछ विधियों का उल्लेख किया जा रहा है।

विधि–१—सिद्धासन में बैठकर बाँयें पाँव की एड़ी को गुदा तथा जननेन्द्रिय के बीच सीवन से सटाते हुए इस प्रकार लगायें कि उसका तला सीधे दाँयें पाँव की जंघा का स्पर्श करे। इसी प्रकार दाँयें पाँव की एड़ी को शिश्नेन्द्रिय की जड़ के ऊपरी भाग में दृढ़ता पूर्वक इस प्रकार लगायें कि उसका तला बाँयें पाँव की जंघा का स्पर्श करें। फिर बाँयें पाँव के अंगूठे तथा तर्जनी को दाँयीं जाँघ तथा पिण्डली के मध्य में ले लें। सम्पूर्ण शरीर का भार एड़ी तथा सीवन के मध्य भाग की नस पर ही तुला रहना चाहिए।

अब दायें हाथ के अँगूठे से दाँये नासा छिद्र (नथुने) को दबा कर नाभि से लेकर कण्ठ तक की सम्पूर्ण वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाल दें।

इस प्रकार समस्त वायु का 'रेचन' करके श्वास को भीतर लेकर अर्थात् 'पूरक' करके बारम्बार पूर्वोक्त प्रकार से 'रेचन' करें। 'रेचन' के समय मूलबन्ध, उड्डियान तथा जालन्धर बन्धों को दृढ़ता से लगा कर, दोनों हथेलियों को दोनों घुटनों पर स्थापित कर, अपनी दृष्टि नाक के अग्रभाग पर स्थिर रखनी चाहिए।

इस प्रकार से नित्य नियमित रूप से अभ्यास करते रहने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् हो कर सुषुम्णा के द्वार को खोल देती है। तब प्राण का ऊर्द्धगमन होने लगता है तथा चींटी के रेंगने जैसा सुख अनुभव होने लगता है। ब्रह्मरन्ध्र में प्राण के प्रवेश करते ही अपरिमित आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

विधि–२—पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध आसन लगाकर बैठें। फिर दोनों नासा छिद्रों द्वारा नाभिपर्यन्त यथा शक्ति अधिकाधिक वायु को भरें तदुपरान्त जालन्धर-बन्ध लगाकर 'अन्तः कुम्भक' करें साथ ही मूलबन्ध द्वारा मूलाधार से अपानवायु का उत्थान करके, नाभि में प्राण के मिला देने की पूर्ण भावना करें। ऐसा करते समय उड्डीयान-बन्ध लगा लेना भी अधिक अच्छा रहता है। कुम्भक के समय तीनों प्रकार के बन्ध लगे रहने चाहिए।

उक्त विधि से सामर्थ्यानुसार एक निश्चित अवधि का कुम्भक करके, 'रेचक' करें तथा वायु को बाहर छोड़ दें।

प्राणायाम की इस विधि से भी प्राणोत्थान की क्रिया शीघ्र होने लगती है।

दीर्घ श्वास-प्रश्वास प्राणायाम

समकाय ग्रीवा होकर बैठे, हाथों की हथेलियाँ घुटनों पर हों, किसी भी नासिका को किसी अँगुली से बन्द नहीं करना है। दोनों नासिकाओं से तीव्र गति से लम्बे-लम्बे श्वास भीतर खींचे अर्थात् पूरक करें। खींचे हुए श्वास को भीतर रोकना नहीं है। खींचने के तुरन्त बाद उसे वेग से ही बाहर निकालना है, रेचक करना है, इस पूरक रेचक को बल से शीघ्रतापूर्वक करना है। १ से आरम्भ करें और धीरे-धीरे उसे बढ़ाते रहें। आशातीत लाभ होगा।

२. अग्नि-प्रसारण प्राणायाम—इससे अग्नि प्रदीप्त होती है, मन्दाग्नि से निवृत्ति होती है और पाचन शक्ति बढ़ती है।

सिद्धासन में हथेलियों को घुटनों पर रखकर बैठें। दीर्घ श्वास-प्रश्वास-प्राणायाम में पहले वेगपूर्वक पूरक किया जाता है, फिर बिना कुम्भक के रेचक किया जाता है। इस क्रिया में पहले पूरक न करके पहले रेचक किया जाता है, फिर पूरक। पेट को यथाशक्ति अन्दर की ओर करते हुए प्राण वायु को नाभि से लाते हुए वेग पूरक श्वास बाहर निकालें और शीघ्रता से भीतर खींचे। इस रेचक-पूरक क्रिया में अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाएँ। ५० तक नित्य प्रति करने से पूरा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त दोनों विधियों में से किसी एक विधि को ही अपनाना चाहिए।

३. फेफड़ा—वक्षःस्थल के दोनों ओर दो हृदय होता है। स्वास्थ्य की स्थिरता में इनकी महत्त्व पूर्ण भूमिका है। वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि यदि उन्हें किसी विधि से भूमि पर फैलाया जा सके तो इन्हें कम से कम दो बीघा भूमि चाहिए। तभी तो कहा जाता है कि फेफड़े में १८ करोड़ कोठरियाँ होती हैं। ये कोठरियाँ वायु में से आक्सीजन को ग्रहण करके रक्त शुद्धि के कार्य में संलग्न रहती हैं। परन्तु साधारणतः मनुष्य इन सभी कोठरियों का उपयोग नहीं कर पाता परिणाम स्वरूप यह अविकसित पड़ी रहती हैं और रक्त-शुद्धि व दूषित तत्त्वों के विसर्जन का कार्य सीधे प्रकृत रूप से नहीं हो पाता। प्राणायाम से फेफड़े की सभी कोठरियाँ सक्रिय हो उठती हैं। वे वायु में आक्सीजन तत्त्व को स्वाभाविक रूप से ग्रहण करने लगती हैं। इस क्रिया से फेफड़े व शरीर स्वस्थ रहते हैं।

फेफड़े की गतिविधियों का सक्रिय बनाए रखने के लिए 'कपाल भाति प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। इसका विवरण 'प्राणायाम से रोग निवारण' प्रकरण में कफ दोष निवारण के लिए शीर्षक दिया गया है।

रक्त-शुद्धि-क्रिया

मानव शरीर में स्नायु मंडल और प्रवाहिनी ग्रन्थियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है परन्तु उनकी सुव्यवस्थित गतिविधियाँ रक्त संचालन पर निर्भर करती हैं। रक्त संचालन तभी ठीक रहेगा जब श्वास-क्रिया और पाचन-क्रिया प्राकृतिक रूप में कार्यरत हो। शरीर के प्रत्येक भाग में शुद्ध रक्त

को पहुँचाने के लिए हृदय नसों, नाड़ियों और शिराओं की व्यवस्था की गई है। यदि शरीर में शुद्ध रक्त की कमी है तो स्नायु मण्डल व रस प्रवाहिनी ग्रन्थियाँ कमजोर पड़ जायँगी, उनका कार्य अव्यवस्थित हो जायेगा और शरीर शक्ति हीन हो जायेगा।

रक्त संचालक-क्रिया स्वाभाविक होने पर भी यदि रक्त अशुद्ध हो तो रक्त संचालक के सहायक यन्त्रों का विशेष अर्थ नहीं रह जाता क्योंकि अच्छा स्वास्थ्य शुद्ध रक्त पर निर्भर करता है और शुद्ध रक्त श्वास क्रिया व पाचन क्रिया पर आधारित है।

रक्त का शुद्ध होना इस बात पर निर्भर करता है कि हमें आक्सीजन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो रही है। रक्त को आक्सीजन मिलने का प्रमुख साधन श्वास क्रिया है। रक्त में उतनी ही आक्सीजन प्रवाहित हो सकेगी जितनी को श्वास क्रिया उसे ग्रहरण कर सकेगी। यदि श्वास क्रिया का संचालन भली प्रकार नहीं हो पा रहा हो तो रक्त में आक्सीजन की मात्रा कम हो जायेगी और शरीर के समस्त अंग-अशुद्ध रक्त ग्रहण करने पर बाध्य होंगे। परिणामस्वरूप वह रोगी हो जायँगे। उत्तम स्वास्थ्य शुद्ध रक्त पर निर्भर करता है तो शुद्ध रक्त व्यवस्थित श्वास क्रिया के संचालन पर आधारित है। श्वास क्रिया को व्यवस्थित करने की वैज्ञानिक प्राणाली प्रणायाम है।

प्राणायाम किस प्रकार से श्वास क्रिया की गतिविधियों को संचालित करके रक्त शुद्ध करता है इस पर भी विचार करना आवश्यक है। फेफड़े में प्राणवायु प्रसारण की व्यवस्था इस प्रकार से है—

फेफड़े में श्वास नलिकाओं की संख्या लगभग ६० करोड़ मानी गई है। वह वायुकोष्ठों के बिछे विस्तृत जाल तक पहुँचने का काम करती है। वायुकोष्ठों का काम यह है कि आक्सीजन को सुरक्षित रखें और कार्बन-डाइ-आक्साइड को बाहर फेंके। इस तरह से फेफड़े मल निवृति का कार्य करता है यह कार्य वायु के सहयोग से सम्पन्न हो पाता है।

मशीन किसी प्रकार की हो जब वह क्रियाशील रहती है तो उसमें मैल एकत्र होते रहते हैं। मानव शरीर में भी विभिन्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण यन्त्र कार्यरत रहते हैं। विभिन्न क्रियाओं से इसमें भी मैल उत्पन्न होता रहता है। इसकी शुद्धि की विधि-व्यवस्था इस प्रकार से है कि निरन्तर प्रवाहित होने वाला रक्त मल के अधिकांश भाग को अपने साथ लेकर

हृदय के दाँयें कोष्ठ में प्रविष्ट होता है। दूषित रक्त की शुद्धि के लिए फेफड़े में आना पड़ता है। फेफड़े में श्वास क्रिया द्वारा जो आक्सीजन आती रहती है वह रक्त के इस दूषित अंग को ग्रहण करके उसे शुद्ध कर देती है और कार्बन-डाइ-आक्साइड के रूप में परिवर्तित वायु को बाहर फेंक दिया जाता है, फेफड़े की कार्य विधि से शुद्ध हुआ रक्त पुनः हाथ के बायें कोष्ठक से प्रविष्ट होता है। इस प्रकार से रक्त शुद्धि की क्रिया निरन्तर संचालित होती रहती है। यह क्रिया भली प्रकार से तभी चलती रह सकती है जब शुद्ध वायु पर्याप्त मात्रा में हमें प्राप्त होती रहे। साधारणतः जितनी वायु हमें प्राप्त होती है वह अपर्याप्त रहती है। परिणामतः फेफड़े की प्रत्येक कोठरी में वह नहीं पहुँच पाती। वह निष्क्रिय पड़ी रहती है और निर्मल होती रहती है जिससे बाह्य वातावरण के छोटे-छोटे आघातों को भी सहन करने की क्षमता नहीं रहती।

सार यह कि स्वास्थ्य की स्थिरता शुद्ध रक्त पर निर्भर करती है। रक्त शुद्धि की क्रिया फेफड़े में आई वायु पर आधारित है। फेफड़े की प्रत्येक कोठरी क्रियाशील हो, तभी रक्त शुद्धि की क्रिया सुव्यवस्थित ढङ्ग से चलती रहती है। इस उद्देश्य की पूर्ति केवल प्राणायाम के अभ्यास द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

प्राणायाम की पूरक, कुम्भक, रेचक तीन क्रियाओं का प्रभाव इस प्रकार से होता है।

पूरक क्रिया द्वारा शुद्ध वायु को फेफड़े में ग्रहण किया जाता है। कुम्भक में जब ग्रहण की हुई वायु को रोका जाता है तो वह फेफड़े की समस्त कोठरियों में फँस जाती है। इसमें फेफड़े से अधिक क्रियाशील व सशक्त बनते रहते हैं जिससे अधिक से अधिक आक्सीजन को ग्रहण करके रक्त को शुद्ध करने और कार्बन-डाइ-आक्साइड को बाहर फेंकने की क्षमता बढ़ती रहती है। रेचक-क्रिया से ग्रहण की हुई वायु को बाहर निकाला जाता है। इस क्रिया से उन्हें विश्राम मिलने से उनमें असाधारण स्फूर्ति उत्पन्न होती है। इस तरह से प्राणायाम रक्त शुद्धि का एक श्रेष्ठ साधन सिद्ध होता है।

रक्त शुद्धि व रक्त वाहिनी नाड़ियों को पुष्ट व शुद्ध करने के लिये मुख प्रसारण पूरक-कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए। विधि इस प्रकार है—

सुखासन से बैठें। दाँयीं नासिका को बन्द करके बाँयीं नासिका से श्वास-प्रश्वास लेते हुए एक लम्बा पूरक इस प्रकार करें कि फिर शरीर के किसी स्थान में भी वायु भरने की आवश्यकता न रह जाये। पूरक के बाद कुम्भक करना चाहिए। गले को इस प्रकार सिकोड़ लेना चाहिए कि अन्दर की वायु का बाहर निकलना बिलकुल सम्भव न हो। यहाँ तक कि मुख के खोलने पर भी श्वास रुका रहे। कुम्भक को यथा शक्ति ही करना चाहिए। कुछ असुविधा अनुभव हो तो दाँयीं नासिका से प्रश्वास धीरे-धीरे निकाल दें। बार-बार करने से इसमें दृढ़ता आती है।

३. हृदय—पाइपों से नगर के विभिन्न दिशाओं में जल वितरण व्यवस्था का निरीक्षण करने से हाथ यन्त्र की कार्य पद्धति को सुविधा से समझा जा सकता है। हृदय का कार्य है—रगों व धमनियों द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग को रक्त पहुँचाना। रक्त से ही उस भाग का पोषण बना रहता है। जब हृदय गति रुकती है तो रक्त संचार भी बन्द हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप प्राण शरीर को छोड़ देते हैं। स्वास्थ्य की स्थिरता रक्त के सुचारु रूप से चलते रहने पर निर्भर करती है। हृदय गति स्वाभाविक रूप से जब तक चलती रहती है तब तक रक्त का प्रवाह भी भली प्रकार से संचालित होता रहता है।

'वक्षस्थल-रेचक-प्राणायाम' से हृदय को बल मिलता है।

४. ग्रन्थि समूह—शरीर में विद्यमान विभिन्न गुत्थियाँ किन्हीं विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाई गई हैं। उनका वास्तविक कार्य तो यह है कि उनसे एक विशिष्ट प्रकार का रासायनिक द्रव प्रवाहित होता रहता है जिनसे शरीर में स्फूर्ति व क्रियाशीलता बनी रहती है। जिगर को सबसे बड़ी ग्रन्थि माना गया है। इससे प्रवाहित होने वाला द्रव पाचन क्रिया में सहयोग देता है।

'मध्य रेचक प्राणायाम' से जिगर की सक्रियता बनी रहती है इसकी विधि इस प्रकार है—

मस्तिष्क आसन से रीढ़ की हड्डी को सीधा करके बैठें। इसमें पूरक के बजाय रेचक क्रिया करनी होती है। सर्व प्रथम पेट की वायु को बाहर निकालना होता है, फिर उड्डीयान-बन्ध लगाकर आँतों को बेलन की भाँति बनाकर स्थिर करना पड़ता है, वायु रेचन के बाद बाह्य कुम्भक करना चाहिए अर्थात् पेट की समस्त वायु को बाहर निकाल कर उसे वहीं

बाहर रोक दें। यथाशक्ति रोक कर छोड़ना आरम्भ करें। यह प्राणायाम हुआ। सुविधा से इसका अभ्यास बढ़ायें। इस क्रिया से तिल्ली व जिगर दोनों को शक्ति प्राप्त होती है।

५. **मस्तिष्क**—शरीर का सबसे अधिक चमत्कार पूर्ण यन्त्र यही है। दस अरब न्यूरोन्स से यह जितना जटिल हो गया है उतना ही यह रहस्य पूर्ण भी है। प्रमुख रूप से इसके तीन कार्य हैं—१. ज्ञानात्मक, २. क्रियात्मक, ३. संयोजनात्मक। इन तीनों क्रियाओं से निम्न तीन परिणाम उपस्थित किये जा सकते हैं—

१. साधक किसी भी स्थान पर बैठा हुआ हो, वह ब्रह्माण्ड की छोटी से छोटी वस्तु की कोई भी जानकारी प्राप्त कर सकता है।

२. किसी भी स्थान से किसी को कहीं भी इच्छित संदेश भेजे जा सकते हैं, कहीं से भी अत्यन्त भारी वस्तुओं को सुविधा से लाया जा सकता है। किसी को मूर्छित अथवा मारने की क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

३. संसार की किसी भी वस्तु पर स्वामित्व किया जा सकता है, विश्व के किसी भी प्राणी को वश में किया जा सकता है, अष्ट-सिद्धियाँ व नव-निधियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। मस्तिष्क के यह चमत्कार औषधियों द्वारा विकसित मानसिक एकाग्रता का ध्यान के सत्परिणाम हैं।

डॉ० जॉर्ज डैलगाडो ने मस्तिष्क के नियन्त्रण के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये हैं। उन्होंने लिखा है कि मस्तिष्क में दस अरब न्यूरोन्स का जो जाल बिछा हुआ है उनके नियन्त्रण के बिना तार के सन्देश व प्रेरणायें भेजी जा सकती हैं, किसी के मन की बात को जाना जा सकता है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि एक साधारण व्यक्ति के मस्तिष्क में लगभग २० वाट विद्युत शक्ति हर समय काम करती रहती है। यदि कोई ऐसी विधि अविष्कृत की जा सके जिससे इन न्यूरोन्स को जाग्रत किया जाना सम्भव हो तो दश अरब न्यूरोन्स को दश अरब डायनों में परिवर्तित किया जा सकता है, पूर्ण विकसित मस्तिष्क का सहज में अनुमान लगाया जा सकता है।

मस्तिष्क दो हैं—१. वृहत् मस्तिष्क, २. लघु मस्तिष्क। शरीर के समस्त भागों से सभी नस-नाड़ियाँ आ-आ कर वृहत् मस्तिष्क में एकत्रित होती हैं। यह शरीर का नियन्त्रण केन्द्र है, लघु मस्तिष्क में स्मृति शक्ति

का केन्द्र माना जाता है। यही वह स्थान है जहाँ से अचेतन कार्यों में विद्युत प्रवाह संचालित होते हैं।

मस्तिष्क ही मानव का वास्तविक जीवन है। यदि रोगी अविकसित अथवा सुप्तावस्था में रहता है तो यह शरीर व्यर्थ सा भार रूप ही लगता है। पागल, बेवकूफ, अनपढ़, पिछड़ा हुआ सब इन्हीं की संज्ञाएँ हैं। इनके विपरीत विकसित मस्तिष्क चमत्कारी वैज्ञानिक प्रयोगों में सफल होकर चन्द्रमा तक की असम्भव यात्राओं को भी सम्भव बना सकता है।

प्राणायाम द्वारा मस्तिष्क सबल जाग्रत विकसित क्रियाशील हो सकता है। मुख-प्रसारण-पूरक-कुम्भक प्रणायाम इसके लिए विशेष प्रकार से उपयुक्त है। इसका विवरण इसी लेख से फेफड़े के प्रकार में रक्त शुद्धि क्रिया शीर्षक में दिया जा चुका है।

दीर्घायु प्राप्ति—योग के प्रसिद्ध ग्रन्थ गोरक्ष-पद्धति में प्राणायाम से दीर्घायु प्राप्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

चले वाते चलो विन्दु निश्चले निश्चलो भवेत्।
योगी स्थाणु त्वमाप्नाति ततो वायु निरोधयेत्॥

जब प्राण वायु का नःश्वासोच्छ्वास चलता रहता है, विन्दु भी अस्थिर व चलायमान रहता है। इसके विपरीत जब प्राणवायु की गति-विधियाँ बन्द होती हैं तो बिन्दु भी स्थिर में आ जाता है। प्राणायाम क्रिया से जब प्राणवायु को स्थिर करने का प्रयत्न किया जाता है तो योगी स्थाणुभाव को प्राप्त होता है और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। अतः प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

मनुस्मृति (४–९४) में कहा है—

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।

लम्बी सन्ध्या करने से जिसमें प्राणायाम आदि अङ्ग भी सम्मिलित रहते हैं, ऋषियों ने दीर्घायु प्राप्त की थी।

प्राणायाम से दीर्घायु प्राप्ति का रहस्य यह है कि कुम्भक से प्राण की गति का निरोध किया जाता है, इसी से साधक की आयु में वृद्धि होती है। यह निश्चित व अनुभव सिद्ध सिद्धान्त है। इसमें सन्देह का कोई स्थान नहीं है। गङ्गोत्री आदि पर्वतीय स्थान व गुफाओं में आज भी ऐसे योगी निवास करते हैं जिनकी आयु २००–३०० वर्ष बताई जाती है।

यह प्राणायाम के अभ्यास का ही प्रतिफल है। ४०० वर्षों की आयु के योगियों का वर्णन प्राप्त होता है। योगीराज अरविन्द के गुरु की आयु ४०० वर्ष बताई जाती है।

यह श्वास साधन केवल योगियों के लिए ही सुरक्षित नहीं वरन् इसे हर कोई कर सकता है। इसमें अभ्यास की ही विशेषता है, आप इसका अभ्यास करके स्वयं ही देख लीजिए। साधना स्थल पर घड़ी रख कर अभ्यास करके देख लीजिए। आरम्भ में प्राणावरोध कुछ समय तक ही सीमित रहे। धीरे-धीरे इसे बढ़ाते रहें। एक मास में अभ्यास का परिणाम स्वयं ही परिलक्षित होने लगेगा। लम्बे अभ्यास से प्राणावरोध की सीमा मिनटों और घण्टों तक बढ़ाई जा सकती है। योगी तो वर्षों तक श्वासावरोध की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। इस श्वासावरोध के अभ्यास में ही लम्बी आयु का रहस्य निहित है।

दीर्घायु प्राप्ति के लिए निम्न प्राणायाम लाभदायक सिद्ध हुए हैं—

१. केवली प्राणायाम—आयु वृद्धि के लिए केवली प्राणायाम को उत्तम माना गया है। हठयोग प्रदीपिका २।७३ में केवली कुम्भक और स्तम्भ वृद्धि प्राणायाम में एकता सिद्ध की गई है और २।७४ में इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि बिना प्रश्वास बाहर निकाले व श्वास अन्दर भरे रोकने की क्रिया में सफलता प्राप्त हो जाने पर ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यही केवली प्राणायाम की विधि में रेचक पूरक करने ही आवश्यकता नहीं है प्राणों का प्रवाह जहाँ तक चल रहा है उसे वहीं रोक लेना ही केवली प्राणायाम कहलाता है। इसे आयु बढ़ाने में सहायक माना गया है।

२. सूक्ष्म श्वास-प्रश्वास प्राणायाम—इसके अभ्यास के साथ अहार-विहार में विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। अहार स्वल्प होना आवश्यक है। विधि इस प्रकार है—

सुखासन से बैठें। अपने सामने रखी तिपाई पर थोड़ी सी रूई रखें जो नासिका के बिलकुल सामने हो। आरम्भ में नासिका और रूई की दूरी एक फुट होने चाहिए। अब प्राणवायु को इस गति से बाहर निकालें, रेचक करें कि वह रूई हिलने लगे। एक सप्ताह तक इस रेचक क्रिया का अभ्यास करें। इसके बाद रूई की दूरी को एक फुट के बजाय १० इंच कर दें। प्रश्वास की गति इस प्रकार से रहे कि रूई हिलती रहे, उड़े नहीं।

इस अभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए, रूई की दूरी कम करते रहना चाहिए। जब तक रूई नासिका के पास रखकर स्थिर न हो जाय यह अभ्यास चलता रहना चाहिए। रूई नासिका से लगी रहे परन्तु रेचन क्रिया से भी वह हिले नहीं, यही इस प्राणायाम की सफल अवस्था है।

दोनों हाथों की हथेलियों को घुटनों पर रखें। दोनों नासिकाओं से तीव्र गति से शब्द करते हुए श्वास भीतर खींचे। बिना भीतर रोके उसे उसी गति से बाहर निकालते रहें। यही क्रम बार-बार चलता रहे और पूरक-रेचक की संख्या बढ़ती रहे।

इनमें से किसी भी प्राणायाम का अभ्यास करते रहने पर अभीष्ट लाभ की सिद्धि होती है।

स्फूर्ति व क्रियाशीलता के लिए—

शरीर में आलस्य व अकर्मण्यता को दूर करके स्फूर्ति व क्रियाशीलता लाने के लिए सहित कुम्भक नामक प्राणायाम लाभदायक सिद्ध हुआ है। घेरण्ड संहिता (५।४६) में दो प्रकार का वर्णन आता है—

सहिता द्विविधः प्रोक्तः प्राणायाम समाचरेत्।
सगर्भो बीजमुच्चार्य निगर्भो बीज वर्जितः॥

सहित कुम्भक दो प्रकार का होता है—सगर्भ व निगर्भ। सगर्भ वह कहलाता है जिसमें पूरक, कुम्भक व रेचक के साथ निश्चित संख्या में ओंकार का मानसिक जाप किया जाता है। निगर्भ में मन्त्र जाप का होना आवश्यक नहीं है।

यह प्राणायाम उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार का माना गया है। उत्तम प्रकार की विधि इस प्रकार है—

दाँयें अंगूठे से दाँयीं नासिका को बन्द करें और बाँयीं नासिका से श्वास भीतर खींचना आरम्भ करें। श्वास खींचने की क्रिया के साथ ३२ बार ओंकर का मानसिक जाप होना चाहिए। अब श्वास खींचना बन्द कर दें, इसे वहीं रोक दें। इसे योग की भाषा में कुम्भक कहते हैं। कुम्भक इतनी देर करें जिसमें ओंकार का १२८ बार मानसिक जप हो जाये। तत्पश्चात् दाँयें हाथ की ही अनामिका व मध्यमा से बाँयीं नासिका को बन्द करके दाँयीं नासिका से श्वास छोड़ना आरम्भ करें। इस रेचक क्रिया में ओंकार का ६४ बार मानसिक जप होना चाहिए। इसी तरह

से वाँयीं नासिका को अंगूठे से दवाकर पहले दाँयीं नासिका से पूरक करें और फिर बाँयीं नासिका से पूरक करें और फिर दाँयीं को अनामिका व मध्यमा से दबा कर वाँयीं से रेचक करें। ओंकार जप की संख्या इतनी ही रहे।

इस प्राणायाम की सिद्धि शीघ्र न हो ता निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि सफलता अभ्यास पर निर्भर करती है। इसे निरन्तर करते रहने से यह धीरे-धीरे दृढ़ होता रहता है।

मध्यम प्रकार के सहित कुम्भक की विधि उपर्युक्त प्रकार से ही है अन्तर केवल ओंकार जप का है। इसके पूरक में १६ बार, कुम्भक में ६४ बार और रेचक में ३२ बार ओंकार का जप होना चाहिए। कनिष्ठ सहित कुम्भक में भी केवल जप संख्या में अन्तर है। इसके पूरक में ८ बार, कुम्भक में ३२ बार और रेचक में १६ बार ओंकार का मानसिक जप करें।

आरम्भ में साधक को कनिष्ठ सहित कुम्भक ही करना चाहिए। इसमें दृढ़ता प्राप्त होने पर मध्यम में प्रविष्ट हों। मध्यम का पूरा अभ्यास होने पर ही उत्तम सहित कुम्भक करना चाहिए। अभ्यास धीरे-धीरे वढ़ाएँ इसमें जल्दी न करें।

इस प्राणायाम के दीर्घ कालीन अभ्यास के परिणाम स्वरूप ऐसा अनुभव होता है कि शरीर में नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है और वह निरन्तर कुछ करना चाहती रहती है अतः शरीर परिश्रम व तप चाहे वह शारीरिक या मानसिक साधक को उसमें आनन्द आता है वह काम करने में थकावट अनुभव नहीं करता। क्रियाशीलता उसके जीवन का एक अंग बन जाती है यही सफल जीवन का रहस्य है और सहित कुम्भक उसमें सहायक होता है।

प्राणायाम से रोग निवारण

प्राण चिकित्सा की श्रेष्ठता—जिस प्रकार एलोपैथी सभी प्रकार की विमारियों का कारण जीवाणु मानता है, प्राकृतिक चिकित्सा 'विजातीय तत्त्वों' को और आयुर्वेदिक प्रणाली आम रस (आहार से बनने वाला कच्चा रस) को रोगों का मूल हेतु बताती है, उसी प्रकार प्राण चिकित्सा के प्रयोक्ता सभी शारीरिक रोगों और मानसिक दोषों का निदान 'सबल प्राण' की कमी मानकर करते हैं। उनका विश्वास है, जिस व्यक्ति में

सबल प्राण की मात्रा कम हो जाती है उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ जाते हैं। वे अपना कार्य यथेष्ठ रूप से नहीं कर पाते। यकृत, आँतें, गुर्दे, हृदय, मस्तिष्क और नलिका विहीन ग्रन्थियों में सबल प्राण की कमी से शिथिलता आती है जिससे आहार ठीक तरह से नहीं पचता, पेट खराब रहता है। ठीक तरह से भोजन के पाचन न होने से आम रस (कच्चा आहार रस) अधिक मात्रा में बनने लगता है और अंग-प्रत्यंग को दूषित करता जाता है। अंग-प्रत्यंग की शिथिलता रक्त संचार को मन्दतर कर देती है जिससे छिपे हुए मृत कोषों का निर्हरण शरीर के बाहर यथा योग्य नहीं हो पाता।

रुधिर के माध्यम से शरीर में विजातीय द्रव्य अधिक हो जाते हैं परिणामतः रोग आ घेरते हैं। इस तरह से आम रस या विजातीय द्रव्य के मूल में सबल प्राण की कमी ही निहित है। वही मुख्य हेतु है, जीवाणु-वादी भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि जीवाणु उन्हीं को रोग-ग्रस्त बनाते हैं जिनकी जीवन-शक्ति जीवाणुओं को आत्म-घात करने में असफल रहती हैं। जीवाणु और जीवन-शक्ति की लड़ाई का नाम रोग है।

यदि जीवनी-शक्ति प्रवल पड़ती है तो रोगी स्वस्थ हो जाता है, निर्बल होने पर वह जीवाणु कवलित मृत हो जाता है। इसी प्रकार वे भी जीवनी शक्ति के नाम से प्राण शक्ति को ही आधि-व्याधि का प्रधान कारण मानते हैं।

प्राणायाम की विधि-व्यवस्था प्राण के आकर्षण कुदरती बहाव को स्वाभाविक बनाये रखती है जिससे प्राण का आदान-प्रदान करने वाले आन्तरिक अङ्ग स्वस्थ रहते हैं। वे अपना कार्य अहर्निश सुचारु रूप से करते रहते हैं। अतः प्राणायाम आरोग्य और बल वृद्धि का विना पैसे कौड़ी का साधन तो है ही रोग निवारण और स्वास्थ्य लाभ का भी अचूक उपाय है। उसका प्रभाव स्थायी होता है। वह औषधियों के सामने रोग या रोग के कारण को दबाता नहीं।

उपनिषद् के ऋषियों ने इस तथ्य की पुष्टि की है। जाबालदर्शनो-पनिषद् में लिखा है कि प्राणायाम से सभी रोग समूल नष्ट हो जाते हैं और भगन्दर जैसे भयङ्कर रोग भी दूर हो सकते हैं। योगकुण्डल्योपनिषद् के अनुसार प्राणायाम से गुल्म, जलोदर, प्लीहा तथा पेट सम्बन्धी अन्य

रोग निश्चय पूर्वक नष्ट हो जाते हैं, चारों प्रकार के वात दोष और कृमि-दोष नष्ट हो जाते हैं, मस्तक की उष्मता, गले की कफ, धातु सम्बन्धी रोग, पित्त ज्वर, तृषा आदि दूर होते हैं। कुछ प्रयोग नीचे दे दिया जा रहा है।

रोग निवारक उपचार

यदि आप के किसी अङ्ग में दर्द हो रहा हो, सूजन हो, हाथ-पाँव भीषण शीत के कारण सुन्न से हो रहे हों, सिर में असह्य पीड़ा हो अथवा आँख, नाक, कान आदि अङ्ग का कोई विशेष रोग हो, तो उसके निवारण के लिए प्राण से पुष्ट रुधिर का उस अवयव की ओर तीव्र गति से संचरण या प्रेषण बड़ा लाभकारी होता है। ऐसा करने से रोग निरोधिनी शक्ति प्रवल होती है और रोग बल शनैः शनैः क्षीण हो जाता है। कभी-कभी एक दो बार के अभ्यास से ही पूर्ण लाभ हो जाता है। अङ्ग विशेष की ओर रुधिर और प्राण का संचार करने के लिए पहले सीधे बैठ जाइए। यदि बैठना सम्भव न हो तो पीठ के बल सीधा लेटने में भी कोई हानि नहीं है। अब सबसे पहले पाँच से दस बार तक इस प्रकार श्वास-निश्वास कीजिए कि श्वास निकलने में जितना समय श्वास को बाहर और अन्दर रोकने में लगाया जावे। मान लीजिये—दश बार 'ॐ' कहते हुए श्वास लिया गया है, उतने ही समय तक अन्दर ही रोके रखिये जब तक आप पाँच बार 'ॐ-ॐ' कह लें। तत्पश्चात् दश बार 'ॐ' कहते हुए साँस छोड़नी चाहिए और पाँच बार 'ॐ' कहने तक की दूसरी साँस नहीं लेनी चाहिए। साँस भरने और साँस छोड़ने पर अन्दर या बाहर रोकने की मात्रा भरने और छोड़ने की मात्रा की आधी होनी चाहिए।

यह क्रिया पाँच-दश बार कर चुकने के अनन्तर साँस भरते हुए ऐसी भावना करनी चाहिए कि रुधिर संचार के साथ ही साथ मेरा सूर्य चक्र स्थित प्राण-प्रवाह रोग पीड़ित स्थान की ओर से दौड़ रहा है। साँस को अंदर रोके-रोके फिर-फिर भावना द्वारा प्राण को पीड़ित अंग की ओर प्रवाहित होने का मानस चित्र खींचिये। ऐसा तव तक करना चाहिए जब तक आप साँस को आसानी से रोक सकते हैं तत्पश्चात् धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालिये और भावना कीजिए कि निश्वास के साथ सब दोष-विकार और सूजन या दर्द भाप बनकर उड़े जा रहे हैं, साँस को बाहर रोक कर पुनः मन ही मन कहिये कि प्राण शक्ति पाकर मेरा वह अंग स्वस्थ और सबल हो गया है।

कब्ज निवारण के लिए

कब्ज निवृत्ति के लिए प्लावनी कुम्भक का प्रभाव श्रेष्ठ रहता है। पुराने से पुराने कब्ज में भी आशातीत लाभ होते देखा गया है। विधि इस प्रकार है—

स्थिरासन में बैठें। दोनों नासिकाओं से समान रूप से धीरे-धीरे पेट में श्वास इतना भीतर खींचे कि वह मसक की तरह फूल कर बिलकुल तन जाय। जब ऐसा अनुभव होने लगे कि पेट वायु से पूरा भर गया है तो श्वास को यथाशक्ति रोकें। फिर दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालें यह एक प्राणायाम हुआ। सुविधा से जितनी बार किया जा सके इसे करना चाहिए।

दक्षिण रेचक प्राणायाम से भी यह कब्ज दूर होता है।

उदर रोगों के विनाश के लिए

पेट के समस्त दोषों के निवारण के लिए मध्य रेचक-प्राणायाम को श्रेष्ठ माना गया है। विधि इस प्रकार है—

स्वस्तिक आसन से बैठें। उत्कट आसन से भी इसे किया जा सकता है। इसमें श्वास भरने के बजाय पेट में विद्यमान स्वाभाविक वायु को बाहर निकालना होता है। इस रेचक क्रिया के साथ उड्डियान-बन्ध लगाना चाहिए और आँतों को इस तरह से उठाए कि वह वेलन अथवा दण्ड की तरह आकार धारण कर लें। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रहें। उदर के दोनों भागों को दबाते हुए बाह्य कुम्भक करें अर्थात् पेट की वायु को बाहर निकाला गया था उसे वहीं रोक लें। इसे यथा शक्ति करके प्राण-वायु को धीरे-धीरे दौड़ाना चाहिए। इसका अभ्यास शनैः शनैः बढ़ाना चाहिए।

इस प्राणायाम से आँतें निश्चय रूप से प्रभावित होती हैं। अतः उनके विकारों का दूर होना स्वाभाविक है। आँतों के पुष्ट होने से कब्ज का निवारण होता है। तिल्ली व जिगर के दोष नष्ट होते हैं।

खट्टे डकारों के लिए

खट्टे डकारों को दूर करने के लिए चन्द्र-भेदी प्राणायाम करना चाहिए। बाँयीं नासिका में चन्द्र नाड़ी का स्थान है। इस ओर से पूरक करने से इसका यह नाम पड़ा। विधि इस प्रकार है—

दाँयीं नासिका को दायें हाथ के अंगूठे से बन्द करें। उच्च शब्द करते हुए वाँयीं नासिका से श्वास भीतर खींचे। यथा शक्ति उसे रोकें और फिर दाँयीं नासिका से धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ। सुविधा पूर्वक इसका अभ्यास करते रहें।

स्थूल उदर तथा शरीर को पतला करने के लिए

भस्त्रिका प्राणायाम के विधिवत् अभ्यास से शरीर की स्थूलता कम हो जाती है और पेट पचक जाता है। परन्तु इसके अभ्यास में कुछ सावधान रहने की आवश्यकता है अन्यथा हानि होने की सम्भावना रहती है। जिन साधकों ने असावधानी बरती है उन्हें थूक या खँखार में खून आते देखा गया है, दमा और खाँसी की शिकायत हो सकती है। साधक को दूध व घी की व्यवस्था करनी चाहिए। यह प्राणायाम अनुभवी गुरु की देख-रेख में ही करना चाहिए। कमजोर व्यक्ति को इसका अधिक वेग से अभ्यास नहीं करना चाहिये अन्यथा सिर में चक्कर देने का भय रहता है। इसकी विधि इस प्रकार है—

आसन पर बैठ कर वाँयें हाथ को वायें घुटनों पर रखें और दाँयें हाथ की अनामिका व मध्यमा अँगुलियों से वाँयीं नासिका को वन्द करें। कोहनी को सीधा कर लें और इतना उठा लें कि कन्धे के समान हो जाय। अब दाँयीं नासिका से वेग पूर्वक साँस बाहर फेंके। इसके बाद साँस भीतर खींचकर भीतर रोकें। सुविधा से जितना रोका जा सके उतना रोके, अब दाँयें हाथ के अंगूठे से दाँयीं नासिका को वन्द करके वाँयीं नासिका से रोकी हुई साँस बाहर निकाल दें। इसी तरह अनामिका व मध्यमा से दाँयीं नासिका से वेग पूर्वक साँस भीतर खींच लेना चाहिए व बाहर फेंकना चाहिए। यह भी कम से कम १० बार होना चाहिए। फिर अन्त में साँस भीतर खींचकर यथा शक्ति रोकें और दाँयें हाथ के अंगूठे से वाँयीं नासिका को वन्द करके दाँयीं से साँस निकाल दें। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार से तीन प्राणायाम नित्य करना चाहिए। धीरे-धीरे इसे बढ़ाना चाहिए और आहार के सम्बन्ध में विशेष सावधान रहना चाहिये।

अग्नि प्रसारण प्राणायाम, वाम-रेचक प्राणायाम और कमनीय-कुम्भक प्राणायाम से भी शरीर की स्थूलता कम की जा सकती है।

रक्तचाप शमन प्राणायाम

उच्च रक्तचाप (हाई-ब्लडप्रेशर) के शमन के लिए

रक्तचाप के शमन के लिए शीतली कुम्भक प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है। कफ प्रकृति वाले व्यक्तियों को इसे नहीं करना चाहिए। इसका अभ्यास गर्मी के मौसम में करना चाहिए। विधि इस प्रकार है—

सुखासन से बैठें। दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखें। जिह्वा को इस तरह मोड़ें कि उसके दोनों किनारे उठे हुए से हों। योग भाषा में इसे कौए की चोंच की तरह बनायें, दोनों किनारे ऊपर उठने के बीच का स्थान पोली नलकी का रूप धारण कर लेता है। इसी मार्ग से श्वास को धीरे-धीरे भीतर खींचना चाहिए। सुविधानुसार पूरी वायु भर कर उसे यथा शक्ति बाहर रोकें। अभ्यास काल में यदि घबराहट अनुभव हो तो दोनों नासिकाओं से स्वाँस बाहर निकाल देनी चाहिए। इसी तरह से इसकी पुनरावृत्ति करें। इसका अभ्यास धीरे-धीरे ही हो पायगा यह उत्तम कोटि का प्राणायाम है। घेरण्ड संहिता में अनेकों लाभ वर्णन किये हैं जिनमें पित्त-विकारों, कफ-रोगों और अजीर्ण प्रमुख हैं।

हृदय की धड़कन के लिए

हृदय की बढ़ी हुई धड़कन वक्षस्थल रेचक प्राणायाम से कम होती है। इसकी विधि इस प्रकार है—

सुखासन से बैठें। दोनों नासिकाओं से श्वास भीतर खींचे। फिर उसे धीरे-धीरे बाहर निकालें। श्वास के पूरा बाहर निकलने पर वहीं रोक लें। योग की भाषा में इसे बाह्य कुम्भक कहते हैं। अब दोनों हाथों को कन्धों पर इस तरह रखें कि कोहनियाँ ऊँची उठी हुई दृष्टिगोचर हों। इसके बाद छाती को थोड़ा-थोड़ा ढीला करने का प्रयत्न करें ताकि वह संकुचित हो जाय और कन्धों को आगे की ओर बढ़ाएँ। श्वास को सुविधापूर्वक जितना रोका जा सके उतना रोकें, फिर धीरे-धीरे छोड़ दें। यह एक वक्षस्थल रेचक प्राणायाम हुआ। अभ्यास बढ़ाकर अधिक बार करने का प्रयत्न करना चाहिए।

कफ दोषों के निवारण के लिए

फेफड़े की शुद्धि और कफ दोनों के निवारण के लिए कपालभाति प्राणायाम की प्रेरणा योग-शास्त्रों में दी गई है। इसकी दो प्रकार की विधियों का वर्णन मिलता है।

घेरण्ड संहिता (उप० १/५७) की विधि इस प्रकार है :—बाँयीं नासिका से धीरे-धीरे श्वास खींचे और दाँयीं नासिका से उसे धीरे-धीरे निकालें। फिर दायीं नासिका से श्वास खींचकर बाँयीं से निकालें।

हठयोग प्रदीपिका (२।३५) में इस प्राणायाम की विधि का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

सिद्धासन से बैठें। दोनों नासिकाओं से श्वास के छोड़ने और भरने का क्रम इतनी तीव्र गति से चलना चाहिए जिस प्रकार लोहार की धौंकनी चलती है। इसका अभ्यास यथा शक्ति बढ़ाना चाहिए। इन विधियों का परिणाम एक-सा होता है। इनमें से कोई भी किया जा सकता है।

जुकाम के नाश व सुरक्षा के लिए

जुकाम के लिए अनुलोम विलोम प्राणायाम करने का विधान है। विधि इस प्रकार है :—

पद्मासन से बैठें। समकाय होकर दाँयीं नासिका को बन्द करके बाँयीं नासिका से तीव्र गति से प्रश्वास को बाहर निकालें, रेचक करें। फिर उसी गति से श्वास को भीतर खींचे। अब बाँयीं नासिका को बन्द करके दाँयीं से तीव्र गति से प्रश्वास बाहर निकालें और फिर इधर से ही श्वास भीतर खींचें। इस तरह से दाँयें-बाँयें बदल कर कम-से-कम २० प्राणायाम नित्य करने चाहिए तभी पूरा लाभ प्राप्त हो सकता है। एकदम २० नहीं करने चाहिए। यह अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

कण्ठ रोगों को दूर करने के लिए

कण्ठ की नाड़ियों को शक्तिशाली बनाने व कण्ठ और गले के रोगों के विनाश के लिए चतुर्मुखी प्राणायाम की प्रेरणा योग शास्त्रों ने दी है। चतुर्मुखी प्राणायाम का अभिप्राय है, बायें-दायें नीचे और ऊपर की ओर मुख करके बिना कुम्भक किये रेचक पूरक करना चाहिए। १५ बार इसे नित्य ही करना चाहिए। अभ्यास बढ़ जाने पर इसे और अधिक करना चाहिए। विधि इस प्रकार है—सुखासन पर बैठे। पहले मुख को बाँयें कन्धे की ओर मोड़ें। दोनों नासिकाओं से जल्दी-जल्दी शब्द करते हुए श्वास खींचें और दौड़ें, श्वास भीतर खींचकर रोके नहीं, प्रश्वास छोड़ते समय अभ्यास इस प्रकार से करना चाहिए कि अँगूठे से दबाये बिना ही बाँयीं नासिका से प्रश्वास बाहर निकाला जाये। मुख को दाँयीं ओर

मोड़कर यही क्रम चलाना चाहिए। केवल अन्तर इतना है कि विना अँगूठा लगाये प्रश्वास दाँयीं नासिका से बाहर निकालना चाहिए। इसी तरह से क्रमशः मुख को पृथ्वी और आकाश की ओर करके, उच्च शब्द करते हुए पूरक, रेचक करना चाहिये। यह एक प्राणायाम हुआ। यथा-शक्ति इसका अभ्यास बढ़ाते रहें।

प्राणायाम के असाधारण प्रयोग

प्राणायाम फेफड़े का ही व्यायाम नहीं है। इसके द्वारा श्वसन संस्थान ही नीरोग नहीं बनता, प्रत्युत इसके द्वारा अपने मन को भी सरलता से वश में किया जा सकता है। अपनी मानसिक उलझनों को, मानसिक निर्बलताओं को भी सहज में दूर किया जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा सन्तापकारी दुर्व्यसनों को, बुरी आदतों को, जिन्हें सामान्यतया छोड़ना बड़ा दुष्कर प्रतीत होता है, आसानी से अपेक्षाकृत कम समय में दूर किया जा सकता है, सद्गुणों की वृद्धि की जा सकती है, आत्मबल बढ़ाया जा सकता है, एकाग्रता को दृढ़ किया जा सकता है।

प्राणायाम की सहायता से अपने आप में शुद्ध प्राण का भण्डार इकट्ठा करके उससे दूसरों का बहुविधि उपकार किया जा सकता है, दूसरों की मन में बैठी हुई भ्रांतियों और दुर्भावनाओं को मिटाया जा सकता है। उनके अन्दर सद्भाव और सदाचार की भावनाओं का प्रत्यारोपण किया जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा दूरस्थ व्यक्ति को सन्देश भी भेजे जा सकते हैं। ब्रह्मचर्य-रक्षण का तो यह सर्वोत्तम साधन है।

प्राणायाम के द्वारा अपने बच्चे को जो दुस्संग, दुरभ्यास या दुःसंस्कार के कारण अत्यन्त उच्छृंखल हो गया है, आप का कहना नहीं मानता, माता और छोटे भाई बहिनों को खूब परेशान करता, सिगरेट-बीड़ी आदि दुर्व्यसनों का शिकार हो गया है, अल्पसमय में सुधारा जा सकता है।

प्राणायाम के द्वारा स्त्री अपने पति को सदाचारी प्रकृति वाला बना सकती है, उसी प्रकार पति भी अपनी स्त्री को बिना मारे-पिटे विदुषी एवं सदाचारिणी बना सकता है। डॉ० दुर्गा शंकर नागर ने एक स्त्री को इसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा ऐसा ही योग सिखाया था, जिसके द्वारा उसने अपने शरावी, जुआड़ी, चोर और वेश्यागामी पति को साधु-व्यवहारी और परोपकारी बनाकर अपने गृहस्थ जीवन को आनन्दमय बना दिया था।

प्राणायाम के द्वारा मानसिक थकान, अवसाद भाव को दूर कर ही सकते हैं, मस्तिष्क को तरोताजा बना सकते हैं। विविध प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु सुबोध हल ढूँढ़ने की दिशा में भी प्राणायाम के योगों से अप्रत्याशित सहायता ली जा सकती है, बुद्धि को सबल और सूक्ष्मग्राही बनाने के लिए, हृदय को सुबुद्ध करने के लिए प्राणायाम किया जा सकता है। आज 'हार्टफेल' के वृत्तों (खबरों) की संख्या नित्य प्रति बढ़ रही है। पागलपन, हिस्टीरिया, मिर्गी, स्नायु दौर्बल्य, मनोविभ्रम प्रभृति मानसिक रोग भी बढ़ते जा रहे हैं।

उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के लिए प्राणायाम के प्रयोग हम यत्र-तत्र दे ही चुके हैं। यहाँ तो हम कुछ ऐसे प्रयोग देना चाहते हैं जिन्हें चमत्कार की संज्ञा दी जा सकती है। जो साधक इन प्रयोगों का सफल साधन कर लेते हैं, उन्हें सिद्ध पुरुष कहने लगते हैं। सूर्य-चक्र का साधन जागरण अतुल शारीरिक सामर्थ्य प्राप्त करके, लोगों को आश्चर्य चकित करना, भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करके अनिश्चित समय के लिए बिना खाये-पीये निर्जन पर्वतीय गुफाओं में रहकर साधना करना, शीत-ऋतु में भी पर्वतों पर बिना वस्त्र पहने रहकर साधनारत रहना, सन्देश-प्रेषण और परकाया प्रवेश जैसे असाधारण प्रयोग हम यहाँ में दे रहे हैं।

१. प्राणायाम से सूर्य चक्र का जागरण

प्राणायाम का प्रभाव सूर्य चक्र पर भी पड़ता है। योग शास्त्रों में वर्णित षट्चक्रों में सूर्य चक्र का विशिष्ट मूल्यांकन किया जाता है। इसकी महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का अवलोकन करने वालों ने इसे 'पेट का मस्तिष्क' नाम ही दे डाला, जो इसके गुणों के आधार पर अत्यन्त सार्थक है, क्योंकि इस क्षेत्र की सूक्ष्म गतिविधियों का यह केन्द्र-बिन्दु है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी इस चमत्कारिक ग्रन्थि को सूक्ष्म व शक्तिशाली नाड़ियों का केन्द्र स्वीकार किया है और ठोस तथ्यों के आधार पर यह घोषित किया है कि शरीर की समस्त गतिविधियाँ इसी केन्द्र से संचालित व नियन्त्रित होती हैं। आन्तरिक क्रियाओं पर इस चक्र का पूरा अधिकार है। वास्तविकता यह है कि आन्तरिक अंगों का विकास और उत्थान इसी पर निर्भर करता है; योग शास्त्र के अनुसार यह प्राण कोष है। इससे निकलने वाली विद्युत ही समस्त नाड़ियों में प्रवाहित होती है। चूँकि यह स्थान ओज शक्ति का भण्डार है।

सूर्य चक्र को अंग्रेजी में 'सोलर-प्लेक्सस' कहते हैं। योगाचार्यों के अनुसार इसका स्थान आमाशय के ऊपर हृदय की धुकधुकी के पीछे मेरुदण्ड के दोनों ओर है।

साधारण रीति से सूर्य-चक्र निष्क्रिय सुप्त अवस्था में रहता है परन्तु जब प्राणायाम किया जाता है तो फेफड़े फैलते हैं और फेफड़े का फैलाव सूर्य चक्र की परिधि तक पहुँचता है, उसे छूता है। बार-बार के स्पर्श से सूर्य-चक्र की हल्की सी मालिश हो जाती है, शरीर के साधारण मालिश का सहज परिणाम, अङ्गों में गर्मी, स्फूर्ति, सक्रियता व उत्तेजना होती है। इसी प्रकार के प्राणायाम द्वारा सूर्य-चक्र की स्पंशात्मक मालिश से इसकी सुप्त शक्तियों का जागरण होने लगता है। यह जागरण चक्र से सम्बन्धित समस्त सूक्ष्म तन्तुओं में शक्ति प्रदान करता है। यह शक्ति शारीरिक व मानसिक उत्थान के रूप में दृष्टिगोचर होती है। यूं कहना चाहिए कि इनके विकास का एक नया दौर आरम्भ होता है।

सूर्य-चक्र शक्ति का भण्डार है जब तक वह क्रियाशील बना रहता है उससे शक्ति का स्फुरण बना रहता है और साधक चमत्कारों का केन्द्र बन जाता है, वह असाधारण कार्यों के सम्पादन करने की सामर्थ्य वाला बन जाता है तभी लोग उसे सिद्ध कहने लगते हैं। यदि वह इस विकसित शब्दकोष को अपने आत्मिक उत्कर्ष में लगाए तो वह अल्प काल में ही उच्चतम स्थिति को पहुँच सकता है। उसकी उन्नति के सभी मार्ग खुल जाते हैं। यदि वह सिद्धियों के प्रदर्शन में अपनी शक्ति व्यय करेगा तो उसका पतन हो जायेगा और आत्मिक विकास रुक जायेगा।

सूर्य चक्र में एक शक्तिशाली केन्द्र है। इसकी सक्रियता से मानव असाधारण शक्तियों का स्वामी बन जाता है जिन्हें योग की भाषा में सिद्ध की संज्ञा दी जाती है। इसकी शक्तियों के विकास का एक और रहस्य भी है—अण्ड और पिण्ड का सिद्धान्त। जिस तरह से शरीर में सूर्य की शक्ति का निवास रहता है उसी तरह से ब्रह्माण्ड में भी सूर्य का तेजस्वी चक्र पिण्ड दृष्टिगोचर होता है। उसकी विशालता, तेजस्विता व शक्तियों की कोई सीमा नहीं है। कोई भी वैज्ञानिक व गणितज्ञ का उसका अनुमान लगाने में असमर्थ रहेगा। योगदर्शनकार ने अपने अनुभव के आधार पर घोषित किया कि 'सूर्य में संयम करने से समस्त भुवनों का ज्ञान होता है।' सूर्य की ज्योति में संयम करने से सिद्धों का दर्शन होता है। इसका

अभिप्राय असाधारण शक्तियों के विकास से ही है। इस प्रक्रिया से असम्भव कार्यों को भी सम्भव बनाया जा सकता है।

सूर्य-चक्र का भेदन प्राणायाम से होता है। अतः सूर्य की शक्तियों को आकर्षित करने का श्रेय भी प्राणायाम को ही है। यही कारण है कि प्राणायाम से कभी-कभी ऐसे चमत्कारी लाभ होते देखे गये हैं जिन पर सहज विश्वास नहीं होता परन्तु वास्तव में उसके मूल में वैज्ञानिक रहस्य छिपे रहते हैं। प्राणायाम भी एक ऐसा चमत्कारी प्रयोग है जिसके सहयोग से मानव सूर्य-चक्र जागरण करके चहुमुखी उन्नति के द्वार खोल लेता है।

जिस प्रकार से सेल के रूप में विद्युत छोटी सी पेटिका में एकत्र किया जाता है और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करके अन्धेरे में उससे रास्ता देखा जा सकता है। अथवा रेडियो बजा कर दूर-दूर का समाचार सुना जा सकता है उसी प्रकार अपने नाभि प्रदेश में स्थित सूर्य-चक्र भी उसे इकट्ठा करके आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करके अपना अथवा दूरस्थ अपने सम्बन्धी का हम बड़ा उपकार कर सकते हैं। नीचे हम प्राण तत्त्व को जो चैतन्य विद्युत है, अत्यन्त सूक्ष्म और अगोचर है, वायु के महासागर की नाई आस-पास अन्दर बाहर चारों ओर लहलहा रहा है, अपने अन्दर संचित करने की अत्यन्त सरल विधि दे रहे हैं।

रमणीय एकान्त स्थान में अथवा खुली छत पर नरम बिछौना बिछाकर पीठ के बल लेट जायें। मुँह ऊपर को रहे। पैर, कमर, छाती, सिर सब सीध में रहें। दोनों हाथ नाभि के पास उस स्थान पर रखें जहाँ पसलियाँ और पेट परस्पर मिलते हैं। यही सूर्य-चक्र है जिसमें प्राण एकत्र किया जाता है। लेटे-लेटे यह भावना करे कि मेरा अंग-अंग शिथिल हो रहा है। अब धीरे-धीरे नाक द्वारा साँस खींचना आरम्भ करें और दृढ़ शक्ति के साथ भावना करें कि मैं विश्वव्यापी प्राण भण्डार में से स्वच्छ प्राण साँस के साथ खींच रहा हूँ और वह प्राण रक्त प्रवाह के साथ समस्त नाड़ी तन्तुओं में प्रचलित होता हुआ सूर्य-चक्र में इकट्ठा हो रहा है। इस भावना को कल्पनात्मक चित्र के द्वारा इतनी दृढ़ता के साथ मनः चक्षु के सामने उतारें कि प्राण शक्ति की बिजली जैसी तेज किरणें नासिका के द्वारा देह में घुसती हुई स्पष्ट प्रतीत होने लगे। रुधिर का फुदक-फुदक कर नस-नस में दौड़ना और उसमें प्राण प्रवाह का बहना स्पष्ट नजर आने

लगे, भावना की जितनी प्रबलता होगी, उतनी ही अधिक मात्रा में हम प्राण अपने में खींच सकेंगे।

इस प्रकार भावनाओं के प्रवेग के साथ अधिक से अधिक जितनी प्राणवायु अपने फेफड़े में भर सकते हैं उतनी भर लेने के बाद उसे दस सेकेन्ड अन्दर ही रोकें। साँस रोके रहने के समय अपने अन्दर प्रचुर परिणाम में प्राण भरा हुआ अनुभव करना चाहिए।

इसके बाद मुँह खोलकर धीरे-धीरे वायु को बाहर निकालें साथ ही ऐसा अनुभव करें कि शरीर के सारे दोष और विष पदार्थ विजातीय तत्त्व निःश्वास के द्वारा मैं बाहर निकाल रहा हूँ। इस प्रकार उदरस्थ समस्त वायु को निकाल कर पाँच सेकेन्ड तक बिना साँस लिए रहें। फिर पूर्ववत् यही प्राणायाम करें।

यह प्राणायाम के भाव भरे हृदय से कम से कम दस मिनट तक करना चाहिये। धीरे-धीरे इसे आधा घण्टे तक बढ़ाया जा सकता है। यदि ठीक प्रकार से इस क्रिया को करेंगे, तो सूर्य चक्र के स्थान पर एक छोटा सा प्रकाश-बिन्दु मानस नेत्र के समक्ष स्पष्ट दिखाई देने लगेगा। ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों यह प्रकाश-बिन्दु अधिकाधिक उज्ज्वल और स्पष्ट ही नहीं होता जायगा प्रत्युत क्रम-क्रम से सघन होता हुआ भी प्रतीत होगा।

२. तनाव नाशक योग

जब अभ्यास करें तो पाँच सात बार बैठकर यह प्राणायाम अवश्य करें। पालथी मार कर बैठ जाएँ और लम्बी साँस लें। हवा को पाँच-सात सेकेण्ड रोककर सीटी बजाने के समान होठों को सिकोड़ कर बिना गालों को फूलने देकर धीरे-धीरे दो तीन बार अन्दर की वायु को मुँह से निकाल दें। जब होठों के रास्ते सब हवा निकल जाये तो पुनः पुनः पूरी साँस भर-भर कर यही क्रिया करें। ऐसा करने से, श्वसन-क्रिया से अवयवों की थकान दूर हो जायगी, तरो-ताजगी आ जायगी।

३. अतुल शारीरिक सामर्थ्य

प्राणायाम से अतुल शारीरिक सामर्थ्य की वृद्धि होती है, योग शास्त्र का प्रमाण है—

प्राणायामात् पुष्टगात्रस्य बुद्धितेजो यशोबलम्।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्मात् प्राणायाममाचरेत्॥

प्राणायाम से शरीर पुष्ट होता है, बुद्धि तेज, यश व बल बढ़ते हैं। अतः साधक को चाहिए कि इन लाभों की प्राप्ति के लिए प्राणायाम का उपयोग करें।

प्राणायाम से शरीर के आन्तरिक अवयवों में वायु भर जाती है जिससे छाती विशाल तथा कठोर हो जाती है। मोटर व बाइसिकिल के पहिए में जब हवा भर दी जाती है तो उसमें कई व्यक्तियों के बोझ के भार उठाने या भार सहने का सामर्थ्य हो जाता है। इसी तरह प्राणायाम से वक्ष-स्थल में अद्भुत शक्तियों का विकास होता है। अभ्यास करने पर उसकी छाती पर हाथी जैसा विशालकाय और भारी भरकम जीव चढ़ जाये तो भी उसे कोई विशेष भार का अनुभव नहीं होता। प्रो० राममूर्ति इस तथ्य के उज्ज्वल प्रमाण थे। वे इस प्रकार के अनेकों प्रदर्शन किया करते थे। लोहे की जंजीरों को देखते-देखते तोड़ देना, वक्षस्थल पर भारी पत्थर रखवा कर उन्हें हथौड़ों से तुड़वाना, मोटर की गति को रोकना, छाती पर तख्ते रखकर उस पर से हाथी को चढ़ा कर निकाल देना आदि उनके लिए सहज व सरल क्रियायें थीं। वे उसका श्रेय ब्रह्मचर्य का पालन व प्राणायाम के अभ्यास को ही देते थे। आभ्यन्तर कुम्भक से उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी।

प्रो० राममूर्ति की परंपरा के प्रख्यात योगी मीरजापुर निवासी प्रो० राजवली मिश्र ने स्वर योग के बल पर अनेक आश्चर्य जनक प्रदर्शन कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। सीने पर सड़क कूटने वाला रोलर चढ़ाना, गले में फाँसी लगाकर चार कारों को रोकना, हाथी को रस्से के सहारे रोकना, भार-लदे ट्रक को सीने पर से पार करना ही नहीं, बल्कि रेल का इंजन तक रोक देना आपके लिये सहज बात है। ६० वर्ष की अवस्था में आपने सागर से हिमालय तक की यात्रा करने वाले एडमण्ड हिलारी की २०० हार्स पावर की नौका को रोक दिया। जापान, रूस आदि अनेक देशों में आपने नाड़ी तथा हृदय की गति को रोककर लोगों को चकित कर दिया।

निम्न प्रकार के प्राणायामों से शारीरिक सामर्थ्य को विकसित किया जा सकता है—

(क) एकांग-स्तम्भ-प्राणायाम

इसका अभ्यास करने से शरीर का प्रत्येक अंग-पुष्ट, शक्तिशाली व सुडौल बनता जाता है। इससे शक्ति का यहाँ तक विकास हो जाता है

कि यदि वह योगी मोटर, घोड़ा, बैल आदि को रोक ले तो वह अपने स्थान से हिल तक नहीं सकते। शरीर में अपार स्फूर्ति व तेज की वृद्धि होती है। इस प्राणायाम की सिद्धि होने पर बाहों, टाँगों में इतनी शक्ति आ जाती है कि कई शक्तिशाली पुरुष भी मिलकर भी उन्हें मोड़ने की शक्ति नहीं रखते। शक्ति को चमत्कार रूप में वृद्धि ही इस प्राणायाम की विशेषता है।

इसे खड़े होकर या लेट कर किसी भी तरह से किया जा सकता है। दोनों नासिकाओं से श्वास धीरे-धीरे भीतर भरे, प्रयत्न यह हो कि उसे शरीर के प्रत्येक अंग में भरे। हाथ, पाँव, बाहुँ, जाँघ, गले सभी में श्वास भरने का अभ्यास करना चाहिए। वायु भरने के साथ यह सुदृढ़ भावना करे कि यह वायु जहाँ-जहाँ प्रविष्ट होती जा रही है, वहाँ वहाँ आशक्ति का अभाव होकर शक्ति का जागरण हो रहा है। वायु का भरना तब तक चलता रहना चाहिए जब तक उन अंगों में इतनी सामर्थ्य न आ जाय कि कई व्यक्ति मिलकर भी उन अंगों को मोड़ न सकें। इस प्राणायाम की सिद्धि अभ्यास पर निर्भर करती है, जो एक अनुभवी गुरु की देख-रेख में करना चाहिए।

(ख) नाड़ी-अवरोध-प्राणायाम

इसके पीछे लम्बे अभ्यास से प्राणों पर इतना अधिक दबाव हो जाता है कि प्राणों के इच्छानुसार किसी भी अंग में प्रवाहित किया जा सकता है। इससे वह अंग इतनी शक्ति सम्पन्न हो जाता है कि उसी से अद्भुत कार्य किये जा सकते हैं, जिसे साधारण व्यक्ति चमत्कार की संज्ञा देते हैं।

इसे खड़े होकर अथवा बैठकर दोनों तरह से किया जा सकता है। बैठकर करना हो, तो पद्मासन में स्थित होकर दाँयीं नासिका को बन्द करें और बाँयीं नासिका से प्राण वायु को भीतर खींचें, यहाँ तक कि वह मूलाधार तक पहुँच जाय, दोनों हाथों को मुट्ठियों की तरह बाँध लें और दोनों घुटनों पर रख लें। साधक की संकल्प शक्ति इस प्रकार विकसित होनी चाहिए कि यह भीतर भरी प्राण वायु को किसी ओर भी सुविधा से प्रवाहित कर सके। यह अभ्यास होने पर ही इस प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त करना सम्भव है।

मूलाधार-चक्र प्राण वायु को भरने के बाद उसे छाती की ओर फिर दाँयें बाहु की ओर प्रवाहित करने का प्रयत्न करें। यह अभ्यास तब तक चलता रहना चाहिए जब तक कि बाहु फूल न जाय, उसमें कड़ापन न आ जाय और नाड़ी में स्तब्धता न आने लगे। इसके बाद भीतर खींची हुई प्राण वायु को रोकें और नाड़ी को पूरी तरह से स्तब्ध करने की चेष्टा करें। जब तक पूर्ण सफलता प्राप्त न हो जाय, यह अभ्यास का क्रम चलता रहना चाहिए। इसमें दीर्घकालीन प्रयत्न की अपेक्षा है, शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने की आशा नहीं करनी चाहिए। इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि साधक प्राण-वायु को पूरी तरह से बाहु में भरने की विधि व्यवस्था जान गया या नहीं। इस विधि का क्रम जब सुविधा से होने लगता है, तो रक्त संचार रुक जाता है, जिससे कई बार बाहु काला अथवा नीला हो जाता है। इस स्थिति में पहुँचने पर नाड़ी की स्तब्धता भरने लगती है। यही इस प्राणायाम की अंतिम सीढ़ी है। यहाँ पहुँचने पर इसके सभी लाभों से लाभान्वित हुआ जा सकता है।

शारीरिक सामर्थ्य बढ़ाने के यहाँ दो प्रयोग ही दिये हैं। यही लाभ सहित कुम्भक, सर्वाङ्ग-स्तम्भ-प्राणायाम, वायवीय-कुम्भक-प्राणायाम, हृदय-स्तम्भक-प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम तभी प्राप्त किये जा सकते हैं।

४. भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करने के लिए

प्राचीन काल में ऋषि-मुनि वनों में रहकर भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करने के लिए कण्ठ-वात-उदर पूरक-प्राणायाम द्वारा वायु पान क्रिया करते थे, जिससे अन्न-जल ग्रहण की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी और शारीरिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हुए वह दीर्घ कालीन साधनाओं में संलग्न रहते थे। बिना अनुभवी पथप्रदर्शक के इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। हानि की सम्भावना हो सकती है, विधि इस प्रकार है :—

सिंहासन पर बैठें। दोनों हाथ घुटनों पर रहें। इस क्रिया में मुख तो बन्द रहता है, परन्तु कण्ठ और मुख से उच्च शब्द करते हुए वायु को उत्पन्न करके उसी का घूँट-घूँट भर पान करना होता है। नासिका तो बन्द नहीं की जा सकती है परन्तु वायु की उत्पत्ति कण्ठ और मुख से होना चाहिए। इस क्रिया की पुनरावृत्ति से पेट में वायु बढ़ती रहती है। प्रारम्भ में तो पेट में पूरी वायु भरना सम्भव नहीं होगा। कुछ दिनों के

सफल अभ्यास से इसकी आशा की जा सकती है। अभ्यास धीरे-धीरे ही बढ़ाना चाहिए। जब पेट में पूरी वायु भर जाय तो वह इतना फूल जाता है मानो साधक को अफरा रोग हो गया हो। योगियों का कहना है कि आधे घण्टे के सफल अभ्यास से यह स्थिति आ जाती है। इसकी निवृत्ति के लिए 'मयूरासन' और 'शीर्षासन' करना होगा। 'मयूरासन' व 'सर्वाङ्गासन' से भी यही लाभ प्राप्त होगा। जिन योगियों ने इसका अभ्यास किया है, उनका कहना है कि पहले जैसी स्थिति लाने के लिए कम से कम एक घण्टे का समय चाहिये। इस प्राणायाम को स्वयं नहीं करना चाहिए। अनुभवी गुरु की देख-रेख में करें।

५. शीत निवारण व संरक्षण के लिए

शीत निवारण व संरक्षण के लिए अग्नि-प्रदीप्त प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। प्राचीन काल के योगी इसी प्राणायाम के अभ्यास से पर्वतीय स्थानों में भी बिना वस्त्र के रहकर साधना करने की क्षमता प्राप्त करते थे। इसकी विधि इस प्रकार है—

पद्मासन में बैठें। दाँयीं नासिका को दाँयें हाँथ के अँगूठे से बंद करके बाँयीं नासिका से श्वास भीतर खींचे और तब तक भरते रहें जब तक पूरी वायु भर न जाय। जब यह अनुभव हो जाय कि अब और वायु भरा जाना सम्भव नहीं, तभी वायु भरने की क्रिया छोड़ी जाय। अब भरे हुए वायु को रोके रहें। अन्य प्राणायामों में तो यह विधान दिया जाता है कि श्वास को यथाशक्ति ही रोकना चाहिए परन्तु इस प्राणायाम में श्वास को बल पूर्वक रोकने का आदेश है। इसे इतना रोका जाय कि वक्षस्थल और मुँह लाल हो जायें। यह क्रिया करते हुए जब कभी घबराहट की अनुभूति हो तो श्वास को दूसरी नासिका से धीरे-धीरे निकाल देना चाहिए। श्वास रोकने की कुम्भक क्रिया का अभ्यास धीरे-धीरे ही बढ़ाना चाहिए अन्यथा हानि होने की सम्भावना हो सकती है।

इस प्राणायाम से शरीर में इतनी गर्मी आ जाती है कि शीत ऋतु में भी पसीना आ जाता है। यही इसकी सफलता का चिह्न है।

६. सन्देश प्रेषण

आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के परा मनोविज्ञान के स्नातकों को सन्देश-प्रेषण का प्रयोग (एक्सपेरीमेन्ट) कराया जाता है जिसमें मन को एकाग्र कर सरल वाक्यों की आवृत्ति एक छात्र करता है और कुछ दूरी पर स्थित

दूसरा छात्र एकाग्र चित्त होकर उसको ग्रहण करने का उपक्रम करता रहता है। दोनों एक समय एक दूसरे के अभिमुख होकर पर्याप्त दूरी पर वैठते हैं। सन्देश ग्रहण को उत्सुक छात्र तत्काल में अपने मनः क्षेत्र पर जिस स्फुरण का उदय देखता है। उसे कागज पर लिख लेता है बाद में दोनों अपने प्रयोगों की सफलता का मिलान करते हैं। इन प्रयोगों में वही छात्र अधिक सफलता पाते हैं जो अपने ध्यान को सुगमता से केन्द्रित कर लेते हैं और जिनका मानसिक संस्थान अधिक संवेदनशील या सूक्ष्म होता है। जिनकी भावना जितनी अधिक तीव्र नाशवान होती है वह उतनी ही सफलता का संदेश ग्रहण करते हैं। यह प्रयोग वहाँ इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए किया जाता है कि शब्द-तरंग रूप-तरंग के समान भावों की शून्य लहर भी होती है जो ईथर के माध्यम से अदृश्य रूप में भ्रमण करता है। इस विद्या को अंग्रेजी में टेलीपैथी कहते हैं।

टेलीपैथी का प्रथम आविष्कारक भारत

सन्देश-प्रेषण या टेलीपैथी का आविष्कार सर्वप्रथम भारत में हुआ था। रामायण के पाठक यह जानते हैं कि इसी विद्या के वल से लंकापति रावण ने पाताल स्थित अपने भाई अहिरावण को सन्देश भेज कर लङ्का वुलाया था। इस विद्या का उपयोग उस समय कितनी महनीय रही होगी, जिन दिनों टेलीफोन, टेलीग्राम अथवा डाक व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं थी। सब ओर घोर जंगल ही जंगल थे, यातायात के साधन भी अल्प थे। दुर्गम घाटी, दुर्गम पहाड़, वीहड़ नदियाँ, हिंसक पशुओं की बहुतायत और लोगों को दूर-दूर पर बसना। इस विषम स्थितियों में सामाजिक आवश्यकताओं के नाते परस्पर संलाप हेतु इस विद्या का आविष्कार करके भारतीय ऋषियों ने एक बड़ी कमी को पूरा किया था। आज भी भारतीय योगी अपने शिष्यों के अपेक्षित सन्देश इसी माध्यम से प्रेषित करते हैं। शक्तिपात का यही साधन है।

आज भी इसकी अतीव उपयोगिता है। आवागमन और संचार साधनों की विपुलता के आधुनिक युग में भी इस विद्या की अपनी उप-योगिता है। इसके द्वारा अपने विचारों को दूसरों के मन तक पहुँचा कर अपने प्रति बनी हुई उसकी धारणा को पूर्वग्रह (पक्षपात पूर्ण भावना) को प्रभावित और परिवर्तित किया जा सकता है, दूसरों की सहानुभूति, सह-योग और प्रेम को प्राप्त करके अपने सुखों की वृद्धि के लिए भी आज के युग में इसका बड़ा महत्त्व है। इसके द्वारा टूटे सम्बन्धों को जोड़ा जा सकता

है। मन में पड़ी हुई गाँठ, जटिल भावना ग्रन्थियों को मिटाना भी इससे सहज सम्भव है। परस्पर आत्मीयता को बढ़ाने में तो यह अनुपम है। प्रभाव की दृष्टि से यह अल्प समय साध्य है।

सच पूछें तो इस विद्या की सबसे बड़ी खूबी यही है कि यह अपने को तो प्राणवान, स्वस्थ और सद्भावी (उच्चाशय) बनाता, ग्रहण कर्ता या मध्य के प्रसुप्त कोषों को भी चैतन्य करके प्रमस्तिष्क को सबल करता है। सन्देश भेजने वाले और ग्रहण करने वाले दोनों को ही इसमें अपरिमित लाभ होते हैं।

भारतीय आविष्कार की श्रेष्ठता

ऊपर वर्णित आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के तथाकथित प्रयोग टेलीपैथी (विचार-संचरण) की सत्यता को प्रतिपादित भर करते हैं। उनका कार्य क्षेत्र और उनकी उपयोगिता अत्यन्त सीमित है, क्योंकि उसके प्रयोग की सफलता के लिए सन्देश भेजने वाले और ग्रहण करने वाले दोनों का अभिमुख होना, परस्पर सहमत होना और संवेदनशीलता भी समान होनी जरूरी है, प्रेषक और ग्राहक दोनों का परस्पर सहयोग करना आवश्यक है, किन्तु भारतीय विचार संचालन विद्या का टेलीपैथी दूसरे की अपेक्षा नहीं रखती क्योंकि हम लोग विचार प्रेषण का कार्य सिर्फ एकाग्रता या ध्यान के बल पर ही नहीं करते। हम अपने प्रखर विचारों के साथ विचार भेजते हैं। इसके लिए ग्राहक को तत्पर या अभिमुख होना जरूरी नहीं है। उसकी अपेक्षा और सहयोग मिलने पर भी हम अपनी प्रबल शक्ति के द्वारा उसे अपने भावनाओं से प्रभावित कर सकते हैं। उसके चित्त को बरवश अपनी ओर आकृष्ट करके अपने समान ही उदार दृष्टिकोण वाला सहृदय और सुहृद् बना सकते हैं। इस तरह भारतीय विचार संचालन विद्या पाश्चात्य विज्ञान विशारदों की टेलीपैथी से बढ़कर है। प्रभाव क्षेत्र और उपयोगिता दोनों ही दृष्टि से हमारी क्रिया-पद्धति आज के युग में महत्वाकांक्षाओं के अनुकूल है।

इस विद्या का सदुपयोग आवश्यक है

तन्त्र ग्रन्थों में इस विज्ञान का वर्णन वशीकरण-विद्या के नाम से किया गया है। मध्यकाल में इसका बड़ा ही दुरुपयोग हुआ है फलतः व्यक्ति के साथ ही साथ समाज को बड़ी हानि उठानी पड़ी थी। इस विद्या का प्रयोग जब हीन प्रयोजन के लिये किया जाता है, तो व्यक्ति की प्राण-

शक्ति विपुल वेग से क्षीण होती है। प्रयोक्ता का मानसिक संस्थान विकृत हो जाता है और सुमति के अभाव में उसका दैनिक जीवन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक समस्या-संकुल हो जाता है। प्राण-शक्ति का अपव्यय प्रकृति कभी सहन नहीं कर सकती। जो भी जाने-अनजाने दुरुपयोग करता है, उसको अपने पाप का उसी अनुपात में रोग, कलह, कष्ट, अपमान, असहयोग और अशक्ति के रूप में दण्ड भोगना पड़ता है, अतः किसी को हानि पहुँचाने या अपना स्वार्थ साधन करने के लिए किसी दूसरों को अपने सन्देशों से प्रवाहित करने की इच्छा न करें। इस प्रकार का सन्देह जव दूसरों पर प्रयुक्त किये जाते हैं, तो दुगने बल से प्रत्यावर्तित होकर प्रयोक्ता के मस्तिष्क पर आक्रमण करते हैं और उनके तन-तन्तुओं की बड़ी क्षति करते हैं। मस्तिष्क के धृति-स्मृति कोषों के क्षीण होने पर मनुष्य मोह-विमूढ़, विचार विमूढ़ बन जाता है। विवेक वुद्धि मारी जाती है, क्योंकि मानस केन्द्र के अनेक कोष और स्नायु हमेशा के लिए प्रत्यावर्तित (उल्टी) विद्युत धारा से जलकर नष्ट हो जाते हैं। अतः सन्देश भेजने की क्रिया स्वार्थ के लिए न होकर परमार्थ के लिए ही की जानी चाहिए। सद्भावना और उदार दृष्टिकोण सच्चरित्रता और मंगल कामना रखते हुए, भले उद्देश्यों के लिए ही इस विद्या का उपयोग करने से अपना और दूसरे का बड़ा हित होता है।

सन्देश भेजने की क्रिया पद्धति

सन्देश भेजने के लिए शान्त एकान्त स्थान में पालथी मारकर सुखासन पर वैठना चाहिए। सर्वसुहृद सर्वहितकारी सर्वेश्वर का कुछ समय तक स्मरण ध्यान करके तालबद्ध प्राणायाम करना चाहिए। तालबद्ध प्राणायाम उस प्राणायाम को कहते हैं जिसमें श्वास-प्रश्वास एक ताल के साथ खींचा और छोड़ा जाता है, जितना समय श्वास खींचने में लगाया जाता है उतना समय श्वास छोड़ने में लगाया जाता है। साँस भरने और साँस खाली हो जाने पर पुनः साँस को भरने और खाली करने की अपेक्षा आधे समय तक अन्दर या वाहर रोका जाता है।

पहला अभ्यास :—अतः ताल युक्त प्राणायाम करने के लिए मेरुदण्ड को सीधा करके बैठिये। हृदय पर हाथ रखिये। धीरे-धीरे उतने समय में पूरी स्वास खींचिये जितने समय में छः बार हृदय धड़कता है। हाथ हृदय पर ही रखे रहिये। तीन धड़कनों तक वायु अन्दर रोके रहिये।

फिर छः धड़कनों तक गिनते हुए श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालिये। अब तीन धड़कनों तक श्वास को बाहर ही रोके रहिये अर्थात् साँस न लीजिये।

नित्य नियम पूर्वक एक-दो महीने तक इस क्रिया को करने से यह सिद्ध हो जाती है, थोड़े ही अभ्यास के बाद श्वास खींचने और छोड़ने का समय सोलह धड़कनों तक की अवधि तक बढ़ाया जा सकता है। जब सोलह धड़कनों तक बिना कष्ट के श्वास खींचना और छोड़ना अथवा आठ धड़कनों तक अन्दर और बाहर साँस रोकने का अभ्यास सध जाए, तो समझना चाहिए कि ताल बद्ध प्राणायाम सिद्ध हो गया है। याद रहे श्वास की मात्रा धड़कनों की अवधि बढ़ाने में जल्दीबाजी न की जाय। ताल प्राप्त करने में जहाँ तक हो सके, पूरा प्रयत्न किया जाय। साँस लेने, अन्दर रोकने-छोड़ने और बाहर रोकने की क्रिया तबले की ताल के अनुसार एक लय के साथ चलनी चाहिए। समतालता या समस्वरता इस प्राणायाम का प्रभावकारी तत्त्व है। जब तक आपकी ताल युक्त गति न मिल जाय अथवा जब तक तालमय कम्पनों का अनुभव अपने शरीर में स्वयं न होने लगे, तब तक इसे सिद्ध हुआ समझना भूल है।

दूसरा अभ्यास—जब तालबद्धता सिद्ध हो जाय, तो इस प्राणायाम के साथ सद्भावना पूर्ण सन्देश भेजने का कार्य आसानी से सम्पादित किया जा सकता है। अभी तक आप हृदय पर हाथ रखकर श्वास प्रश्वास की अवधि का निर्धारण किया करते थे किन्तु प्राणायाम के सिद्ध होने पर आप अनुभव करेंगे कि आप इस क्रिया को बिना धड़कन गिने ही ताल की अभीष्ट समता के साथ सरलता पूर्वक करने लगे हैं। जब यह स्थिति आ जाय तब ही इस लय के साथ मन ही मन अपने सन्देश की निर्विघ्न आवृति करना सहज हो जाता है। ताल टूटने नहीं पाता और भावना की आवृति भी श्वास-प्रश्वास के साथ अबाध गति से चलती रहती है। ताल युक्त सन्देश के सप्राण प्रवाह की फ्रीक्वेन्सी अति उच्च होती है। उसे दूर-दूर तक भेजा और सुना जा सकता है। ऐसा अनुभवी लोगों का कहना है।

सन्देश प्रसारण का क्रम—सन्देश प्रसारण करते समय प्रयोक्ता को चाहिये कि वह ग्राहक महोदय का मनः पटल पर ध्यान द्वारा स्पष्ट चित्र

खींचे और मन ही मन उनसे कहे कि मैं आप से अत्यन्त स्नेह करता हूँ, मेरे हृदय में आप के प्रति सद्भावनाएँ ही सद्भावनाए हैं। मुझे आप की उदारता पर, विशाल हृदयता पर, पूरा विश्वास है। मैं अपने प्रवाह प्राण के साथ आप को सूचित करता हूँ कि वस्तुस्थिति वस्तुतः ऐसी ही है आप इसे भली भाँति समझ गये हैं। आप की भ्रांतियाँ दूर हो गयी हैं आदि, आदि इस प्रकार से कल्पना करें।

अव इसी भावना के साथ जो कुछ सूचना आप उन्हें देना चाहते हैं उसे उनके मन पर उतारिये। उन्हें वे गुप्त रहस्य या बातें बता दीजिए जिन्हें लज्जा भय दूरी या अन्य किसी कारण से आप सम्मुख होकर नहीं वता सकते हैं। सूचना या वर्णन प्रसाद शैली में किया जाना चाहिए। वीभत्स या भयावह सूचना अपने लिये ही हानिकारक होती है। अतः संदेश शुभ ही हो इसका ध्यान रहे।

यदि आप अपने को अधिक प्राणवान बना सकें तो ग्रहण कर्ता से अपनी इच्छाओं के सही-सही उत्तर भी इसी विधि से प्राप्त कर सकते हैं।

७. प्राण शरीर का परकाया प्रवेश

मृत्यु के वाद की जीव की स्थिति के सम्बन्ध में पाश्चात्य पर लोक विद्या विशारदों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। गीता भी इस तथ्य की पुष्टि करती है कि जीव को इस संसार में जिस प्रकार का स्थूल शरीर प्राप्त होता है उसी आकार का उसका एक वियत् शरीर भी होता है। इस वियत् शरीर के ७ कोश होते हैं। मृत्यु के वाद मनुष्य के वियत् शरीर के तीन कोश और एक स्थूल शरीर कुल चार शरीर यहाँ रह जाते हैं। जीव के पास ८ उप शरीर और एक प्राणमय शरीर रह जाता है। इसके सहयोग से वह अपने स्तर के अनुकूल पितृलोक में विचरण करता है। कुछ समय वाद वियत् शरीर के चार कोशों का भी नाश हो जाता है, प्राण मय शरीर ही शेष रह जाता है, जिसकी सहायता से वह विभिन्न लोकों में आ जा सकता है। इस लोक का निवास जीव के कर्मों के अनुसार ही होता है। शुभ कर्मों से युक्त जीव उच्चलोकों में निवास का अधिकारी होता है।

स्थूल शरीर और प्राण शरीर अलग-अलग होते हैं। इसका प्रमाण यह है कि स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी प्राणों की गति का बना रहना देखा गया है। विख्यात तिव्वती योगी लामा श्री लावसांग रम्पा ने "आप

अपर हैं" नामक पुस्तक में एक घटना का वर्णन इस प्रकार किया है कि फ्रांस की क्रांति में एक विद्रोही का सिर धड़ से अलग कर दिया गया था। इस स्थिति में भी उसके मुख से बुदबुदाहट जारी रही। ऐसा लगता था कि वह कुछ बोलने का प्रयत्न कर रहा है। इस घटना का वर्णन फ्रांसीसी शासन के रिकार्ड में अभी तक सुरक्षित है।

एक बार कर्नल **टाउनशेंड** ने वैज्ञानिकों और साहित्यकारों की साक्षी में इस प्रकार का ही एक प्रदर्शन किया था। एक ब्लैक बोर्ड के साथ खड़िया बाँधी। ब्लैक बोर्ड के पास ही वह बैठ गये और प्राण शरीर को स्थूल शरीर से अलग कर लिया। प्राण शरीर से वह ब्लैक बोर्ड पर लिखते रहे और दर्शकों के प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में बोर्ड पर देते रहे। इस प्रदर्शन में वह कई बार स्थूल शरीर में आ गये और जीवित मनुष्य के तरह बोलते रहे। फिर वह अपने इच्छानुसार प्राण शरीर अलग कर लेते थे। वह यह सहज स्वभाव से ही कर लेते थे।

कर्ण प्रयाग में स्वामी भास्करानन्द ने समाधि ग्रहण की। समाधि का बड़ी श्रद्धा से पूजन किया गया। उसी समय स्वामी जी कर्ण प्रयाग से कोल्हापुर लौट आये थे। इस घटना को भी अनेकों व्यक्तियों ने देखा था।

इस घटना से परिलक्षित होता है कि स्थूल शरीर की तरह ही एक अदृश्य शरीर भी होता है जो इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

मिस्र और चीन में मरने के बाद मृतक को जलाते नहीं वरन् कुछ निश्चित रासायनिक प्रयोगों से सुरक्षित रखते हैं जो लम्बे समय तक ज्यों का त्यों बना रहता है और सड़ता नहीं है। इस तरह से रखे गये मृतक शरीरों को वहाँ की भाषा में 'मम' कहते हैं। उन लोगों की यह मान्यता है कि जीव अपने स्थूल शरीर को देखने के लिए कभी-कभी आया करता है। यह वास्तविकता भी है। यह गतिविधियाँ प्राणमय शरीर की हैं।

स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी प्राण शरीर की गतिविधियाँ संचालित होती रहती हैं। एक साधारण उदाहरण से इसे स्पष्ट करते हैं। बिजली का प्रकाश बल्ब द्वारा हमें प्रकाशित होते दिखाई देता है। प्रकाश काँच में नहीं होता है उसका तो केवल सहयोग मात्र रहता है। काँच के बल्ब को हटा दिया जाय तो प्रकाश भी समाप्त हुआ दृष्टि गोचर होता है। परन्तु वास्तविक तो यह है कि विद्युत की गति बराबर बनी रहती है

उसके प्राण-परमाणु भी क्रियाशील रहते हैं। केवल काँच के हटने पर प्रकाश का प्रसारण बन्द हो जाता है। इसी प्रकार स्थूल शरीर के सहयोग से प्राण शरीर की गतिविधियाँ प्रदर्शित हो रही थीं। मृत्यु होने पर इनका दिखाई देना बन्द हो गया, परन्तु उसकी क्रियाशीलता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। स्थूल शरीर के साथ प्राण-शरीर का नाश नहीं होता। उसकी सत्ता स्थूल शरीर से बिलकुल भिन्न है।

प्रशान्त महासागर में समाओं दीप के पास 'पैलोलो' नाम का एक जीव मिलता है। इसकी जीवन प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से है कि वह समुद्र की जल मग्न चट्टानों में अपने निवास का स्थान बनाता है। पूरा वर्ष तो वह जल में ही रहने का अभ्यस्त है परन्तु जब चन्द्रमा आधा होता है और ज्वार कम होता है तो अक्टूबर-नवम्बर के इन दिनों में यह बाहर निकलता है और जल की सतह पर अण्डे देकर अपने मूल स्थान को लौट जाता है। 'पैलोलो' अपने पूरे शरीर के साथ जल की सतह पर नहीं आता वरन शरीर का कुछ भाग घर पर छोड़ आता है। वह शरीर का उतना भाग ही अपने साथ लाता है जितने के लिए उसे जल पर तैरने और अण्डे देने के लिए आवश्यक होता है। घर पर छोड़ा हुआ शरीर मृतक की तरह पड़ा रहता है। जिस तरह से कोई मिस्त्री किसी मशीन के दो पुर्जों को मिलाकर एक कर देता है उसी तरह 'पैलोलो घर लौटने पर सुरक्षित शरीर (मृतकप्राय भाग) से अपने जीवित शरीर को जोड़ लेता है। मृतक शरीर भी जीवित सा हो जाता है। अब उसका पहले जैसा एक पूर्ण शरीर हो जाता है जिसमें रक्त संचार व प्राण संचार की सभी क्रियाएँ संचालित होने लगती हैं।

मैसूर के नन्दी दुर्ग पर्वत पर १/२ इञ्च के आकार का एक 'टाडिग्राफ' नामक जीव रहता है। जल के अभाव में उसका स्थूल शरीर इस प्रकार सूख से जाता है जिस तरह से वह मिट्टी का ढेला हो और उसमें प्राण संचालन की कोई क्रिया न हो। इस मृतक प्रतीत होने वाले जीव के काट कर कई टुकड़े कर दिये जायें तो भी यह देखा गया है कि उसकी प्राण शक्ति का नाश नहीं होता। इन टुकड़ों को एक शून्य अंश उष्णता वाले एक पात्र में रखकर हेलियम नाम का एक द्रव्य मिलाया जाये तो उसकी सुप्त प्राण शक्ति जाग्रत हो जाती है और चेतना लौट आती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राण शरीर की सत्ता स्थूल शरीर से अलग है। प्राण शरीर मानव के आध्यात्मिक उत्थान में महत्त्वपूर्ण

भूमिका निभा सकता है। स्थूल शरीर तो कुछ वर्षों तक ही उसके साथ रहता है। प्राण शरीर मोक्ष प्राप्ति की लम्बी यात्रा के अंतिम क्षणों तक साथ देता है।

प्राण शरीर को प्रत्यक्ष देखा जाना सम्भव नहीं है। स्थूल शरीर से वह सूक्ष्म है। स्थूल से सूक्ष्म हर वस्तु शक्तिशाली होती है। उसमें एक अद्भुत गति व क्रियाशीलता होती है जिसके कारण उसकी शक्ति का अनुमान लगाना भी सहज नहीं होता।

सूक्ष्म होने के कारण प्राण शरीर दूसरे स्थूल शरीर में प्रविष्ट होने की क्षमता रखता है। योगियों की परकाया प्रवेश की अनेकों घटनायें प्राप्त होती हैं। श्रीमत् आद्य शंकराचार्य का उदाहरण तो लोक प्रसिद्ध है। उन्होंने अपना प्राण शरीर मृतक राजा सुधन्वा के शरीर में प्रविष्ट करवाया था और अपने स्थूल शरीर की सुरक्षा की जिम्मेदारी अपने शिष्यों पर छोड़ दी थी। राजा सुधन्वा में कुछ विशिष्ट महानताओं की अनुभूति करके उसके दरबारी चकित रह गये थे। उनके कुल गुरु तो उनके शरीर में किसी महान आत्मा का निश्चय से प्रवेश मान रहे थे। इसलिए उन्होंने आदेश दे दिया था कि जहाँ कहीं भी कोई सुरक्षित मृतक शरीर प्राप्त हो जाय, उसे जला दिया जाय ताकि वह आत्मा राजा के शरीर में ही बना रहे। इस प्रकार अनेक उदाहरण देखे गये और सुने गये हैं। ऐसे योगी व सिद्ध पुरुषों की घटनाएँ भी उपलब्ध होती हैं जो एक समय में ही दो स्थानों पर देखे गये थे। कुछ सिद्ध पुरुषों की ऐसी भी घटनायें सामने आई हैं जब उन्होंने अपने विपत्तिग्रस्त शिष्यों को अन्नमय शरीर से अलग होकर प्राणायाम शरीर से हजारों मील की दूरी पर भी उन्हें बचाया था। चीन के लामाओं में यह विधि प्रचलित थी। उनके ग्रन्थों में लिखा है कि किस प्रकार प्राणायाम से अन्नमय कोश से प्राणमय कोश को पृथक् किया जा सकता है। श्री गुलगेन ने 'प्राणायाम शरीर का उद्‌गमन' नामक एक स्वतन्त्र ग्रंथ की रचना की है। कर्नल टाऊशेड ने तो प्राणायाम के अभ्यास से प्राणमय शरीर पर नियन्त्रण प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी और इस प्रकार के अनेकों सफल प्रदर्शन भी किए थे।

इससे सिद्ध है कि प्राणायाम एक ऐसा वैज्ञानिक व चमत्कारी विधान है जिससे प्राण शरीर को स्थूल शरीर से अलग किया जा सकता है और

१६

किसी भी दूसरे शरीर में प्रविष्ट किया जा सकता है। प्राण शरीर से हजारों मील दूर आकर भी दूसरों की सहायता की जा सकती है और प्राण शरीर को अधिक क्रियाशील व शक्तिशाली बनाया जा सकता है। यदि ऐसा किया जाना सम्भव हो जाय तो जीवन की महान् सफलता होगी।

८. आकाश गमन

'वृहंद्योग सोपान' के अनुसार—

> **प्राणायामत्खेचरत्वं प्राणायामादरोगिता।**
> **प्राणायामाच्छक्तिबोध प्राणाय मन्मनोन्मनी॥**
> **आनन्दो जायते घित्वे प्राणायामो सुखी भवेत्।**

प्राणायाम से साधक आकाश में उड़ने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। ऐसा लगता है वह पक्षियों की भाँति आकाश गमन कर रहा हो। प्राणायाम से उन्मनी शक्ति जागृत होती है। साधक का चित्र सच्चे आनन्द से ओत-प्रोत हो जाता है और वह मानसिक सुख शान्ति की अनुभूति करता है।

प्राणायाम से उलझी समस्याओं का सहज समाधान

आज का मानव-जीवन समस्या-संकुल है। प्रत्येक प्राणी पद-पद पर अनेक प्रकार की उलझनों से अपने को घिरा पाता है, आर्थिक ही नहीं, वह पारिवारिक और सामाजिक समस्याओं से भी संत्रस्त है तथा योग्य सूत्र के अभाव में उलझा ही रहता है। ज्यों-ज्यों वह सुलझाने की कोशिश करता है त्यों-त्यों अधिकाधिक उलझता ही जाता है।

अपनी परिस्थिति से ऊब कर कितने ही व्यक्ति आत्महत्या कर लेते हैं। कोई उन्हें माया, भव-जाल कहता है, तो कोई उन्हें दुर्भाग्य कह-कहकर रात-दिन रोता झीकता रहता है। साधारण मनुष्य ही नहीं, तथाकथित खूब पढ़े-लिखे लोग भी परिस्थितियों से हार मानकर अपने जीवन का निष्कर्ष इन शब्दों में व्यंजित करते हैं—"मनुष्य परिस्थितियों का गुलाम है। वह कर्म स्वतन्त्र नहीं है। वह भाग्याधीन है।" इत्यादि इत्यादि।

परिस्थितियों की परिवर्तनशीलता अनिवार्य

वास्तव में ये उद्गार मोह और कुण्ठा के परिणाम हैं। सूझ-समझ की कमी और यथार्थ दर्शन के अभाव ने ही उसकी विचार शैली को

हतप्रभ कर रखा है। वह भूल गया है कि संसार घटनाओं का अनादि प्रभाव है जिस प्रकार दिन के बाद रात का आना स्वाभाविक है। यदि जन्म हुआ है, तो मृत्यु अनिवार्य है, बालक के बाद युवा, उसके बाद वृद्ध होना अनिवार्य है। जो व्यक्ति इन परिवर्तनों के अनुकूल अपने को ढालने-साधने में जितना असमर्थ होता है, वह उतना ही अपने को विवश, पराधीन और दुःखी अनुभव करता है।

पारिवारिक जीवन को ही देखिए। परिवार के सदस्यों की ज्यों-ज्यों संख्या बढ़ेगी, त्यों-त्यों उसी क्रम से परिवार की आवश्यकतायें भी बढ़ेंगी, उसका खिन्न, विपन्न और व्यक्तित्व-छिन्न होना अनिवार्य ही है।

समस्या का मनोविज्ञान

हर समस्या अपने में एक चुनौती है। हर बाधा किसी कमी की पूर्व-सूचिका है। हर रोग किसी उपेक्षा का परिणाम है। हर वियोग प्रकृति का सहज विधान है। उनके अन्तराल से जो प्रवेश कर सकता है, उनके समाधान के लिए जो उत्साह और धैर्य जुटा सकता है, वह तथाकथित प्रतिकूलताओं में भी सानन्द और सकुशल रह सकता है। आवश्यकता है अनुचित-उचित समझ की। आवश्यकता है समुचित क्रियाशीलता की।

सभी प्रकार की उलझनों को गणित के प्रश्न के समान ही सुलझाया जा सकता है। जो व्यक्ति गणित के प्रश्न की भाषा को नहीं समझता है, जो नहीं जानता कि प्रश्न में क्या दिया गया है, क्या पता चलाना है, कैसे पता चलाना है, इसी प्रकार मानव जीवन की जीवन्त-समस्याओं और उनकी आशा-आकांक्षाओं के प्रति जो उदासीन या अनभिज्ञ है, वह यदि उन्हें माया, भव जाल, प्रकृति की निष्ठुरता या अभाग्य कहे। उसके लिये ईश्वर या किसी और को कैसे दोषी ठहराया जा सकता है।

प्राणायाम और समस्या का हल

प्राणायाम की विशिष्ट साधना के द्वारा प्रत्येक प्रकार की समस्या, उलझन, विपरीत परिस्थिति और निर्बलता के निर्मूलन के लिये सूझ-सुबुद्धि और परमात्म बल अर्जित करना सहज सम्भव है। जिस प्रकार आज का वैज्ञानिक प्रचण्ड आत्म-साधना यानी पुरुषार्थ के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में प्रकृति को विजित कर रहा है उसी प्रकार प्राणायाम की विशिष्ट साधना के द्वारा वह अपनी प्रकृति को जीत सकता है। परि-

स्थितियों को अपने अनुकूल बना सकता है, विजय प्राप्त कर सकता है, उन्हें बदल भी सकता है। नीचे हम उसी प्राण साधना का विधि-विधान दे रहे हैं।

साधना का विधान

सिद्धासन या पद्मासन पर बैठ जाइये। बाँयें हाथ की अंगुली से दाहिने नासापुट को बन्द कर दीजिए और 'जय महाबुद्धि!' 'जय महाशक्ति!' कहते हुए बाँयें नथुने से धीरे-धीरे साँस लीजिए। यथाशक्ति सुविधा के अनुसार कुछ देर साँस को अन्दर ही रोके रहिये तथा मन ही मन ध्यान कीजिये कि आप के चारों ओर परमात्मा का विमल प्रकाश छाया हुआ है। आप उस प्रकाश की गोद में सुरक्षित बैठे हुए हैं। प्रकाश की चुम्बकीय किरणें समस्त ब्रह्माण्ड में सब ओर फैल रही है, इन्हीं शक्ति-तरंगों के द्वारा जगन्नियन्ता सारे संसार को सुव्यवस्थित सन्तुलित बना रहा है, ज्योति की इन्हीं लहरियों ने सम्पूर्ण विश्व को विवेकमयी गणितीय व्यवस्था में बाँध दिया है। परम पिता सर्वसुहृद् है, सबका हितैषी है। उसका प्रत्येक विधान दूरदर्शिता युक्त है। बालक के जन्म लेने से पहले ही वह माता के स्तनों में दूध भर देता है। वायु प्रदूषण की विनाशकारी क्रिया के अवरोध के लिए वह इन्हीं रश्मिल प्रकर्षों के द्वारा विषैली कार्बन गैस को प्राणदायी ऑक्सीजन गैस में अहर्निश परिवर्तित किया करता है। वही ज्वर, कास, अतिसार आदि के रूप में शरीरस्थ विजातीय तत्त्वों का जरण-क्षरण किया करता है। उसका प्रत्येक विधान मंगलमय है। वह वही कर रहा है, जिससे मैं उत्कृष्ट, स्वस्थ, सुखी और सबल बनूँ। मैं उसकी शुभाकांक्षा को समझ गया हूँ, वर्तमान विषमता या विघ्न बाधा मुझे अधिक सजग, अधिक सन्तुलित और अधिक कर्मण्य बनने की प्रेरणा देती है, मैं प्रभु के इस प्रबोध को कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता हूँ।

ऐसा मन ही मन चिन्तन करते हुए बाँयें हाथ के अँगूठे से बाँया नथुना दबाकर दाहिने नाशापुट से 'जय महाबुद्धि! जय महाशक्ति।' मन ही मन कहते हुए धीरे-धीरे साँस छोड़िये, चार बार 'जय महाशक्ति, जय महाबुद्धि' कहने तक साँस को बाहर ही रोके रखिये।

इस क्रिया को इसी प्रकार से तीस बार तक किया जाना चाहिए, प्राणायाम की मात्रा क्रम-क्रम से बढ़ाना चाहिए। एकदम जल्दी-जल्दी

प्राणायामों की संख्या बढ़ाना उचित नहीं है। प्रति सप्ताह दो-तीन प्राणायाम को नीचे लिखी कविता के पाठ के साथ भी किया जा सकता है। कविता पाठ मन ही मन अर्थों पर ध्यान देते हुए भावपूर्ण हो, इसका विशेष प्रयत्न करने में ही परिस्थिति परिवर्तन हेतु यथेष्ट शक्ति और सूझ उस महाप्राण से प्राप्त की जा सकती है।

कवितामय आत्म संकेत

१. साँस भरते समय कहें—

जय महाबुद्धि ! जय महाशक्ति !
जय महाबुद्धि ! जय महाशक्ति !

२. साँस को अन्दर रोकने की अवधि में मन ही मन इस कविता की भावपूर्ण आवृत्ति करें।

३. फिर श्वास छोड़ते समय इसे मन ही मन कहिये :—

जय महाबुद्धि ! जय महाशक्ति !
जय महाबुद्धि ! जय महाशक्ति !

४. साँस को बाहर ही रोके-रोके 'जय महाबुद्धि ! जय महाशक्ति!' चार से छः बार तक कहना चाहिए।

इस प्राणायाम से ईश्वर के स्वरूप की स्पष्टि तो होती ही है, बुद्धि भी सूक्ष्मग्राही बनती है। धैर्य, साहस, उत्साह का प्राणमय प्रस्फुरण व्यक्ति को क्रियाशील बनाता है जिससे परिस्थिति अनुकूलन और रुचि प्रकृति का शोधन होकर सुख-समृद्धि होती है।

प्राणायाम की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ

दोषों और दुर्गुणों का निवारण

प्राणायाम शुद्ध सात्विक यौगिक क्रिया है। इसके द्वारा शुद्ध सात्विक जीवन यापन की दिशा में बड़ी सहायता मिलती है। दुस्संस्कारों की प्रखरता के कारण प्रायः देखा जाता है कि इच्छा रहते हुए भी साधक निर्धारित नियमों का दीर्घकाल तक निर्बाध रूप से पालन नहीं कर पाता है। प्रायः तीन-चार दिन अथवा दो-चार सप्ताह से अधिक वह इच्छित साधना नहीं चला पाता, कभी-कभी वह बार-बार की अपनी असफलता को देखकर दोषों-दुर्गुणों की प्रबलता को देखकर इतना घबड़ा जाता है कि चाहते

हुये भी वह उस ओर कोई प्रयास करने से डरने लगता है। हमने कितनों को ही देखा है जो सिगरेट, बीड़ी, गाँजा, भाँग, शराब, मांस आदि छोड़ना चाहते हैं, किन्तु कुण्ठा के अतिरेक के कारण कुछ डरते हैं। यही बात क्रोध, कामुकता, लोलुपता, वैमनस्य, चिन्ता, भय आदि मनोविकारों के विनाश के सम्बन्ध में देखी गयी है। दुस्सङ्ग, जुआ, वेश्यागमन को लोग वुरा समझते हैं, किन्तु उसे छोड़ नहीं पाते हैं। ऐसी दयनीय स्थिति का उपचार यौगिक प्राणायाम की सहायता से सुविधा पूर्वक किया जा सकता है। एकाग्रता, समय परायणता, स्वच्छता प्रभृति सद्‌गुणों के विकास में भी वह सहायक है अतः संक्षेप में हम उसे नीचे दे रहे हैं।

कामवासना क्षय के लिए

मान लीजिये आप काम वासना के नियन्त्रण में अपने को असक्त पा रहे हैं। ब्रह्मचर्य व्रत धारण के लिए अपेक्षित इच्छा शक्ति या आत्मवल की आप में कमी है तो आत्मवल की वृद्धि और वीर्य रक्षण के लिये आप को यह प्राणायाम इस प्रकार करना चाहिए।

सर्व प्रथम पीठ के बल लेट जाइये। सिर, गरदन, छाती सव एक सीध में हों। शरीर को बिल्कुल ढीला कर दीजिए। सव ओर से मन को हटा लीजिए। अव मुँह को बन्द करके अन्दर को साँस खींचिये, सरलता पूर्वक जितनी साँस अन्दर भरा जा सके, भरिये। योग की भाषा में इसे पूरक (हवा अन्दर भरना) कहते हैं।

अव अन्दर खींची हुई साँस को जितनी देर तक आसानी से रोक सकते हैं उतनी देर तक उसे रोकिए। फिर धीरे-धीरे रुके हुए साँस को वाहर निकालना चाहिए। साँस रोकने की क्रिया को रेचक कहते हैं। नियमानुसार जितनी देर में साँस अन्दर खींची जाय उतनी ही देर उसे वाहर निकालने में लगाना चाहिए। किन्तु फुफ्फुस के अन्दर साँस रोकने की अवधि साँस भरने की अवधि (समय) से आधी होनी चाहिए यही वात साँस निकालने के वाद दूसरी वार, साँस भरने या छोड़ने में जितना समय लगाया है। उसके आधे समय तक श्वास रोकना चाहिए।

साँस अन्दर खींचते समय यह भावना करनी चाहिये कि काम शक्ति का प्रवाह जननेन्द्रिय को ओर से मस्तिष्क की ओर हो रहा है। अपने मानसिक नेत्रों के द्वारा यह देखना चाहिए कि हमारा वीर्य स्पष्ट रूप से वीर्यवाहिनी नाड़ियों द्वारा ऊपर चढ़ रहा है। नीचे की नाड़ियों में

शीतलता और शान्ति का प्रसार हो गया है। जब तक साँस रोके रहें, ध्यान में जितनी चित्तमयता होगी, उतनी ही तीव्रता वीर्य के ऊर्ध्वगमन में होगी।

जब श्वास को बाहर निकाल लें तब ऐसी भावना करनी चाहिए कि निःश्वास के साथ काम विकार बाहर निकालते जा रहे हैं, जननेन्द्रिय स्थान पर हल्कापन आ गया है। सभी क्षोभकारी विकार दूर हो गये हैं। वह निर्मल और पवित्र हो गया है।

इस क्रिया को करते समय यदि मूल-बन्ध लगाया जावे, तो वीर्य के उर्ध्वगमन की गति तीव्र हो जाती है। मूलबन्ध के लिए साँस अन्दर खींचते समय गुदा का अन्दर की ओर दृढ़ता के साथ संकोचन करना चाहिए जिससे अपानवायु का प्रवेश ऊपर की ओर हो और वह वीर्य की तेजी को बल पूर्वक ऊपर जाने के लिए प्रेरित करे।

इस क्रिया को केवल एक बार ही अभ्यास करना पर्याप्त नहीं है। कम से कम १०-१५ बार नित्य इस क्रिया को दोहराना चाहिए। यह क्रिया प्रातः काल की अपेक्षा शाम को करना अधिक लाभकर है। दोनों समय की जाय तो सोने में सुहागा डालना जैसा लाभ होगा।

वीर्यदोषों की निवृत्ति के लिए

वीर्य दोषों की निवृत्ति के लिए उज्जायी प्राणायाम करना चाहिये। विधि इस प्रकार है—

सुखासन से बैठें। दोनों नासिकाओं से श्वास को धीरे-धीरे भीतर खींचे। यह ध्यान रहे कि यह श्वास कण्ठ से हृदय तक ही जा पाये। इस क्रिया के साथ जालन्धर-बन्ध लगाना चाहिए। जितना सम्भव हो सके भीतर खींची हुई वायु को रोकना चाहिए। अब दाँयीं नासिका को बन्द करके बाँयीं नासिका से प्रश्वास को बाहर निकालें। श्वास रोकते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि श्वास हृदय से नीचे नहीं जाना चाहिए वरन् क्रम से उसे हृदय से गले में और गले से मुँह में लावें और शनैः शनैः प्रश्वास को बाहर निकालना चाहिए। आरम्भ में ३ प्राणायाम से अधिक नहीं करना चाहिए। अभ्यास बढ़ने पर ही इनकी संख्या बढ़ानी चाहिए।

हठ जोग के ग्रन्थों में इसके अन्य लाभ भी बताये गये हैं। यथा—

उज्जायीकुम्भकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।
न भवेत्कफरोग च क्रूरवायुरजीर्णकम् ॥

पूर्ण इन्द्रिय संयम के लिए

आँख, श्रवण, त्वचा, घ्राण और जिह्वा—यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। वाक्, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ—यह पाँच कर्मेन्द्रियाँ, यह दश इन्द्रियाँ मनुष्य के उपयोग के लिए वनी हैं। यह मानव शरीर के आवश्यक अंग हैं। इनमें से किसी एक की कमी हो जाय या उनमें रोग उत्पन्न हो जाय तो स्वाभाविक कार्यों में वाधा उपस्थित होती है परन्तु उन्हें स्वच्छन्द छोड़ दिया जाय और वह अपने विषयों में विचरती रहें तो वह स्वामी के शत्रु बन कर उनका नाश कर देती हैं। इसीलिये अध्यात्म शास्त्र का आदेश है कि कल्याण की इच्छा वाले साधक को इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिये।

शास्त्रों का आदेश है कि हम हाथों से किसी को कष्ट न दें, चोरी आदि कोई बुरा कार्य न करें, साधु सन्तों व गुरुजनों की सेवा करें, सत्सङ्ग और देव मन्दिर की ओर अग्रसर हों, सेवा कार्यों में प्रवृत्त हों, वाणी से मधुर शब्द ही वोलें, ऐसे वाक्य न कहें जिससे किसी को वुरा लगे, सत्शास्त्रों और उपदेशों का ही श्रवण करें, भगवान के विग्रह और साधु सन्तों के ही दर्शन करें, स्वाद के लिए नहीं, शरीर धारण के लिये विवेक पूर्वक खायें।

आज वातावरण वहुत दूषित हो चुका है। उपन्यास, पत्रिकाएँ, फिल्में, काम-वासनाओं को भड़काने का आसुरी काम कर रही हैं। नेत्र स्त्री रूप में पवित्र रूप को नहीं कामी रूप से ही देखते हैं, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग का निरीक्षण करते हैं। भजन, कथा, कीर्तन सुनना तो पिछड़े युग की बात हो गयी, सिनेमा की कथा कथित सभ्य युग की देन है। बीड़ी, सिगरेट, मांस, दारू आदि तामसिक पदार्थों का सेवन आधुनिक सभ्यता का एक अंग बन गये हैं। यह आहार तमोगुणी प्रवृत्तियों को उत्तेजित करते हैं। आहार का कामवासना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। श्री विजय कृष्ण गोस्वामी का मत है कि शरीर में प्रधान यंत्र है—जीभ ! जीभ वश में हो जाने से सब कुछ वश में हो जाता है। गाँधी जी का कहना है—"ब्रह्मचर्य के साथ आस्वाद व्रत का वहुत निकट सम्बन्ध है। मेरे

अनुभव के अनुसार इस व्रत का पालन करने में समर्थ होने पर ब्रह्मचर्य अर्थात् जननेन्द्रिय संयम बिल्कुल सहज हो जाता है। इन इन्द्रियों को काबू में रखना ही शक्ति और सिद्धि का साधन है।

हमारे शास्त्रों में इन्द्रिय निग्रह के लिए उसी उद्देश्य से प्रेरित किया गया है। गीता ४–३९ में कहा है जब श्रद्धावान मनुष्य इन्द्रिय निग्रह द्वारा ज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न करने लगता है तब उसे ब्रह्मात्मैक्य रूप ज्ञान का अनुभव होता है और फिर उस ज्ञान से उसे शीघ्र ही पूर्ण शान्ति मिलती है। बुद्धि की स्थिरता के लिए इन्द्रियों को विषयों से खींचना आवश्यक बताया गया है और कछुए का उदाहरण देते हुए कहा गया है कि जिस तरह वह अपने हाथ-पैर आदि अवयव सब ओर से सिकोड़ लेता है उसी तरह इन्द्रियों के शब्द-स्पर्शादि विषयों से अपनी इन्द्रियों को खींच लेना चाहिये। इन्द्रियों को बलत्कार से मनमानी और साधक को खींच लेने वाली शक्ति कहा गया है। जो अनेक प्रवाह में बह जाता है उसका आत्मिक पतन हो जाता है। जो उन्हें अपने इच्छानुसार चलाता है, उसका उत्थान होता है। इन्द्रियों के प्रति कड़ा रुख अपनाने को अहितकर बताया है और जो हाथ पैरादि पर रोक लगाकर मन से विषयों का चिन्तन करता है उसे **दाम्भिक** कहा है। भगवान ने परामर्श दिया है कि उसकी योग्यता विशेष है जो मन से इन्द्रियों को आसक्त करके केवल कर्मेन्द्रियों द्वारा अनासक्त बुद्धि से कर्मयोग का आरम्भ करता है। इसी को दृष्टि में रखते हुए, वशिष्ठ ने इन्द्रियों के निग्रह को मानस तीर्थ कहा है, जो इसमें स्नान करता है वह पवित्र हो जाता है। महाभारत पर्व में स्पष्ट कहा है कि इन्द्रियों को काबू में रखना ही ज्ञान है। और वही मार्ग है जिससे कि बुद्धिमान लोग उस परम पद की ओर बढ़ते हैं। कोई अजितेन्द्रिय पुरुष श्री हृषिकेश भगवान को प्राप्त नहीं कर सकता। तुकाराम ने भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए व्यंग्य से कहा है—'ईश्वर के पास मोक्ष की गठरी नहीं रक्खी है कि वह किसी के हाथ दे दें। यहाँ तो इन्द्रियों को जीतना, मन को निग्रह करना ही मुख्य उपाय है।'

मनुस्मृति में प्राणायाम के अभ्यास से इन्द्रियों के पवित्र, दोष रहित होने का आश्वासन दिया है—

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मला।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात्॥ ७॥

प्राणायामैदंहेद्दोषान्धारणभिश्च किल्विषम् ।
प्रात्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्युशात् ॥ ७२ ॥

प्राण निरोध से इन्द्रियों के दोष वैसे ही जलते हैं जैसे अग्नि में धौंकने से धातुओं के मल नष्ट होते हैं। प्राणायाम साधना से रोगादि दोषों को, धारणा के अभ्यास से पापों को, इन्द्रिय निरोध से विषय-वासनाओं की ओर, ध्यान सिद्धि से मोहादि गुणों को नष्ट कर दे।

हठयोग प्रदीपिका (२/५) में कहा है कि मल शुद्धि के लिए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए—

तदैव जायते योगी प्राणसंग्रहणे क्षमः ॥

वृहद्योगियाज्ञवल्क्य स्मृति (८–४०) में घोषणा है 'जो व्यक्ति नित्य-प्रति सूर्योदय के समय सौ प्राणायाम करता है, वह निर्मल होकर स्वर्ग को प्राप्त होता है।' योग वासिष्ठ में महर्षि वशिष्ठ जी भगवान् राम को उपदेश देते हैं—अभ्यास के द्वारा प्राणों की गति रुक जाने पर मन शान्त हो जाता है और केवल निर्माण ही शेष रह जाता है। जैसे पंखा वन्द कर देने से हवा की गति रुक जाती है, वैसे ही प्राण के निरोध होने से निश्चित ही मन शान्त हो जाता है। हे राम ! प्राण-शक्ति का निरोध होने से मन का निरोध हो जाता है। जैसे अन्य पदार्थों की अपनी छाया होती है वैसे ही प्राण की छाया मन है। हे राम ! प्राणों को वश में कर लेने से मनुष्य राज्य प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक की समस्त सिद्ध सम्पदायें प्राप्त कर सकता है। 'स्नायु चिकित्सा के ख्याति प्राप्त विशेषज्ञ डा० वाल्गेसी ने अपनी पुस्तक (स्नायु रोगों से ग्रस्त लोगों को एक सन्देश) में यह माना है कि प्राणायाम साधना से मनोविकारों का दमन व मानसिक स्थिरता सफलता पूर्वक प्राप्त की जा सकती है।

प्राणायाम का अभ्यास जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे मनुष्य के संचित कर्मों के संस्कार, अविद्या जनित क्लेश, जो कि ज्ञान के आवरण रूप है, दुर्बल होते जाते हैं। इसी आवरण से ज्ञान ढका रहने के कारण सांसारिक विषय वासनाओं से पीड़ित मनुष्य दुःखों को भोगता रहता है अतः यह संचित कर्मों का पर्दा प्राणायाम के अभ्यास से शनैः शनैः क्षीण हो जाता है। तब विवेक ज्ञान रूपी प्रकाश का उदय हो जाता है। जैसे तपाये हुए सोने के सभी मल नष्ट हो जाते हैं।

तपो न पर प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तश्च ज्ञानस्य ॥१९॥

प्राणायाम से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। इसकी साधना से मलों की शुद्धि होती है और ज्ञान का प्रकाश होता है।

इन्द्रियों की स्थिरता, पवित्रता व मलों की शुद्धि के लिए उदरस्थल शुद्धि प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। विधि इस प्रकार है—

पद्मासन से बैठें। रीढ़ की हड्डी को सीधा रखें। दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वास भीतर खींचे। जब पूरा श्वास खिंच जाये तो दाँयीं नासिका को दाँयें हाथ के अँगूठे से बन्द करके प्रश्वास को धक्का देकर बाँयीं नासिका से बाहर निकालना चाहिए। फिर दोनों नासिकाओं से श्वास भीतर खींचकर बाँयीं नासिका को बन्द कर दाँयीं नासिका से प्रश्वास से धक्का देकर बाहर निकालें। इसी प्रकार से अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाते रहें।

अन्य दोषों के निवारण के लिए

जिस विकार को दूर करना है, उसके अनुकूल कल्पना करना आवश्यक है। प्राण-प्रवाह को आज्ञा चक्र की ओर बहाने के लिए नासा द्वारा साँस खींचकर वैसा संकेत दें। मानस चित्र में वैसा ही ध्यान करते रहें। साथ ही यह भी भावना करते रहें कि इस ऊर्ध्वगमन से मेरा आत्मबल बढ़ रहा है। मेरा प्राण प्रबल हो रहा है, इत्यादि।

साँस छोड़ते समय ऐसा चिन्तन कीजिये कि मनोगत विकार निःश्वास के साथ निकल रहे हैं। मेरा अन्तःकरण अब शुद्ध और पवित्र हो रहा है।

याद रहे यह कोरा आत्मकथन शब्दात्मक न होकर "भाव प्रवण" होना चाहिए। अनुभूतिमय (मानसिक चित्रमय) होना चाहिए। जो शब्द आप मन ही मन कहें उसी का ध्यान भी करें। उसे चित्र कल्पना के द्वारा अपने मन स्थल पर अंकित करें, तभी उन संकेतों के द्वारा प्राणशक्ति अभीष्ट दिशा में प्रवाहित हो सकेगी और आप के मनोरथों को पूर्ण करेगी। भाव, संकेत, कल्पना या चिन्तन के द्वारा प्राणशक्ति का ग्रहण-संचयन किया जाता है।

आत्म संकेतों की प्रबलता से ही प्राण-शक्ति प्रखर होती है। आत्म संकेतों के द्वारा विपुल (ईथर-व्यापी) महा-प्राण को आत्मस्थ किया जाना सम्भव है। उसके आभूषण का वही सहज उपाय है।

आत्म-संकेतों के द्वारा ही आत्म संमोहन होता है और दोषों, दुर्गुणों तथा दुष्प्रवृत्तियों का नाश होकर सद्‌गुण, सद्भाव और सत्प्रवृत्तियों का विकास होता है। जीवन प्रवाह निम्न धरातल से ऊपर उठकर मनो-विकास, बुद्धि-विकास के साथ जीवन स्तर को भी उच्चस्तरीय बना देता है। उत्कृष्ट दृष्टिकोण के आने से रहन-सहन में, अहार-विहार में, आचार व्यवहार में उत्कृष्टता का समावेश होने लगता है। मनः शान्ति और अद्भुत मस्ती आती है। तब हमारे सोचने-समझने और विचार करने का ढंग एकदम बदल जाता है। शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह और उज्ज्वलता सभी समस्याओं और अभावों को यथा शीघ्र नष्ट करते हैं। अतः भाव की प्रगाढ़ता के द्वारा हमें अपने आत्म-संकेतों को प्राणवान बनाना चाहिये। प्राणवान संकेत ही परिपक्व होकर प्रवल आत्म-विश्वास, प्रखर इच्छा शक्ति और सफल संकल्प वनते हैं। संकेतों को परिपक्वावस्था ही मनो निग्रह है, सहज ध्यान है।

यदि आप अपने में आत्म-वल की न्यूनता (कमी) अनुभव करते हैं, यदि आप जल्दी-जल्दी घवड़ा जाते हैं, भय कुण्ठा के कारण बेचैन रहते हैं, कुत्सित चित्र, कुत्सित आकृतियाँ, आपके हर ओर दिखाई देतो हैं, हरदम संत्रस्त करती हैं। यदि आप को नींद नहीं आती, हर समय अवसाद, थकान और आलस्य लगता रहता है, किसी काम में जी नहीं लगता, हर ओर अपने शत्रु ही शत्रु दिखाई देते हैं, तो निश्चय जानिये की आप का मानसिक संस्थान विकृत है, रोगग्रस्त है। ऊपर वतायी हुई विधि से दो तीन महीने प्राणायाम कीजिये। आप अपने में अनेक आह्लादकारी परि-वर्तन पायेंगे। मानसिक प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए मस्तिष्क को शान्त, शीतल और चैतन्य बनाने के लिए, मानसिक-गुणों की अभिवृद्धि के लिये भी भावना पूर्वक उपर्युक्त प्राणायाम करना चाहिए। इसके अद्भुत लाभ देखकर विदेशों में भी इसका दिन-दिन प्रचार-प्रसार बढ़ता जा रहा है। अब तो मनोवैज्ञानिक चिकित्सकों ने भी इसकी श्रेष्ठता को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। वे भी अपनी चिकित्सा पद्धति में इस विधि को स्थान देने लगे हैं।

ज्ञान का विकास और विवेक की जागृति

योग दर्शन (२।१५) में महर्षि पतंजलि ने लिखा है—

ततः क्षीयते प्रकाशावरण्।

"प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान के आवरण का नाश होता है, अज्ञानान्धकार से निवृत्ति होकर ज्ञान का विकास होता है और विवेक की जागृति होती है।"

ज्ञान की रूप-रेखा के विषय में शास्त्रों ने अनेकविध तो वर्णन किया हो है श्वेताश्वतरोपनिषद् में व्यक्त किया गया है कि वही अग्नि है, वह सूर्य है, वह वायु है तथा वही चन्द्रमा है, वह अन्यान्य प्रकाशयुक्त नक्षत्र आदि है, वह जल है, वह प्रजापति है, वही ब्रह्मा है (४।२); तू स्त्री है, तू पुरुष है, तू ही कुमार है अथवा कुमारी है, तू बूढ़ा होकर लाठी के सहारे चलता है तथा तू ही विराट् रूप में प्रकट होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है (४।३)। तू ही नीलवर्ण पतंग है, हरे रंग का और लाल आँखों वाला पक्षी एवं मेघ वसन्त आदि ऋतुयें तथा सप्त समुद्र रूप है क्योंकि तुम से ही सम्पूर्ण लोक उत्पन्न हुए हैं, तू ही अनादि (आकृतियों) का स्वामी है और व्यापक रूप से सबमें विद्यमान है।

जो व्यक्ति इस ज्ञान को व्यावहारिक रूप में ग्रहण करता है उसी का जीवन सफल हो पाता है। गीता में भगवान ने इसे भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाया है। उन्होंने कहा है जो आत्मा मुझमें है वही सब प्राणियों में है। मैं सब प्राणियों में हूँ और सब प्राणी मुझमें हैं (६।६९), जो कुछ है वह वासुदेव मय है (१७।१४), ऐसी बुद्धि रखने वालों को ही भगवान ने पंडित कहा है, पंडितों अर्थात् ज्ञानियों की दृष्टि विद्याविनय युक्त ब्राह्मण गाय, हाथी, ऐसे ही कुत्ता और चाण्डाल सभी के विषय में समान रहती है (५।१८), ऐसे व्यावहारिक ज्ञान रखने वाले पंडित और ज्ञानी को ही भगवान अपना परम पद प्रदान करते हैं। गीता में भगवान आश्वासन देते हुए कहते हैं—

जिसकी ज्ञान दृष्टि में समस्त प्राणियों को भिन्नता का नाश हो चुका है और जिसे वह सब एकस्थ अर्थात् परमेश्वर स्वरूप दिखने लगता है, ब्रह्म में मिल जाता है (१३।३०)।

जो मुझ (परमेश्वर) को सब स्थानों में और सबको मुझ में देखता है उससे मैं कभी नहीं विछुड़ता और न ही मुझसे कभी दूर होता है (६।३०), जो एकत्त्व बुद्धि अर्थात् सर्वभूतात्मक बुद्धि को मन में रखकर प्राणियों में रहने वाले मुझको (परमेश्वर को) भजता है वह कर्मयोगी सब प्रकार से वर्तता हुआ भी मुझमें रहता है। (६।३१)। यह अनुभव हो

जाने से कि जो कुछ है वह सब वासुदेव ही है, ज्ञानवान मुझे पा लेता है (७।१९), जिस ज्ञान से यह मालूम होता है कि वह भक्त अर्थात् भिन्न-भिन्न सब प्राणियों में एक ही अविभक्त और अव्यय भाव अथवा तत्त्व है उसे सात्विक ज्ञान जानो (१८।२०), जिसे समस्त प्राणि मात्र में समदृष्टि हो वह मेरी परम भक्ति को प्राप्त कर लेता है (१८।५४)।

कैवल्योपनिषद् में भी कहा है कि जो आत्मा को सब भूतों में और सब भूतों को आत्मा में देखता है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। दूसरे किसी उपाय से नहीं। ईशावास्योपनिषद् का कथन है कि बुद्धिमान पुरुष प्राणी-प्राणी में परब्रह्म पुरुषोत्तम को समझ कर लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं।

ज्ञान का अभिप्राय शास्त्रों का गहन अध्ययन करना अथवा उनकी अधिक से अधिक जानकारी मात्र बढ़ा लेना नहीं है, प्राणी मात्र में ईश्वर को व्यापक समझ कर उसके अनुरूप उससे व्यवहार करना ही वास्तविक ज्ञान है। जब हर प्राणी ईश्वर की चलती-फिरती प्रतिमा अनुभव होने लगती है तो वह उसे हानि पहुँचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कल्पना भी नहीं कर सकता, कोई भी अपना शत्रु प्रतीत नहीं होता, किससे ईर्ष्या द्वेष करें, किस पर क्रोध करें, शिष्ट व्यवहार ही उसके स्वभाव का एक अंग बन जाता है, ज्ञानी साधक घृणा करना भूल जाता है, वह भी प्रेम के अमृत का रसास्वादन करता है, किसी से अन्याय व अत्याचार करना वह ईश्वर के साथ ऐसा व्यवहार करना मानता है। प्राणी मात्र का स्वार्थ ही अब उसका अपना स्वार्थ हो जाता है, तो झूठ, छल, कपट, घूस, स्वार्थ व अविवेक पूर्ण कृत्य उसमें कैसे हो सकते हैं। ऐसा साधक ज्ञान व विवेक की साक्षात् प्रतिमा बन जाता है। उसका जीवन धन्य हो जाता है।

योगाचार्य पतंजलि ने अपने अनुभव के आधार पर आश्वासन दिया है कि प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से अज्ञान दूर होता है और ज्ञान व विवेक का विकास होता है।

मानसिक एकाग्रता

मन का चञ्चल स्वभाव प्रसिद्ध है। उसे नियन्त्रण में रखना अत्यन्त कठिन है। यही शिकायत अर्जुन ने भगवान कृष्ण से की थी—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

"यह मन अत्यन्त चंचल, अस्थिर, शक्तिशाली, मथने वाला व दृढ़ है। इसे नियन्त्रण में रखना व स्थिर रखना उतना ही कठिन है जितना की वायु की गति को रोकना।

मन की गति अत्यन्त तीव्र है। वह हजारों मील की यात्रा क्षण भर में करता है। क्षण भर में वम्बई, कलकत्ता आदि में घुमने की क्षमता रखता है। वह अपने इच्छानुसार शरीर को नचाता है, जहाँ चाहे घुमाता है, इन्द्रियों और विषयों को अपने नियन्त्रण में रखता है, मनुष्य का सुख दुःख, उन्नति अवनति और बन्धन, मोक्ष, इसी पर निर्भर है क्योंकि जैसा मन होता है वैसा ही कार्य में मनुष्य प्रवृत्त होता है। उपनिषद् का कथन है, मनुष्य के (कर्म से) बन्धन या मोक्ष का मन ही कारण है। मन के विषयासक्त होने में बन्धन और निष्काम या निर्विषय अर्थात् निःसङ्ग होने से मोक्ष होता है। वेद शास्त्र भी मन की असाधारण शक्ति का समर्थन करते हैं। यथा—

यजुर्वेद १७।२५ में मनन शक्ति से संसार की उत्पत्ति वतायी गयी है। कहा है "सूर्य उत्पादक सर्वधारक ईश्वर ने मनन शक्ति से निश्चय ही जब जल को तथा इन दोनों में वने हुये द्युलोक तथा पृथ्वी लोक को उत्पन्न किया जव ही इन दोनों के अन्तः प्रदेश को भी दृढ़ किया। अनन्तर उत्कृष्ट द्यावा पृथ्वी विस्तार को प्राप्त हुई।" यजुर्वेद के तृतीय अध्याय के ५४वें मन्त्र में प्रार्थना है कि "पुनः वह मनन शक्ति हमको सत्कर्म के लिए, वल के लिए भली भाँति प्राप्त हो।" आगे ५५वें मन्त्र में प्रार्थना है कि 'हे विद्यादान से पालन करने वाले महानुभावों, आप जो देवत्व गुण-युक्त जेष्ठ विद्वान् हैं, हमें पुनः मनन शक्ति प्रदान करें जिससे हम सत्य भाषण आदि व्रतों से युक्त जीवन बना सके।' यदि हम अपनी शक्ति को जीवन में सत्य व्रतों को धारण करने में लगा दें। काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर चिंता, कलह, क्लेश, दुःख, ईर्ष्या, द्वेष, राग आदि हमारे शत्रु हमें दिन रात जलाते रहते हैं। अपने प्रतिकूल वातावरण देखकर अनुकूल वातावरण में जाने के लिए उत्सुक रहेंगे और उनके छोड़ने पर हमारे ऊपर निरन्तर सुख-शान्ति एवं आनन्द की वर्षा होती रहेगी। यह सुनिश्चित है और वह दिन दूर नहीं जव यह मैला मन धुलने पर ज्योतिर्मय प्रभु के दर्शन हों।

गीता १०।२२ में भगवान् ने कहा है 'इन्द्रियों में मन मैं हूँ।' प्रश्नो-पनिषद् (२।२) में भी मन को देवता कहा है। छान्दोग्योपनिषद् में

सनत्कुमार जी ने नारद जी को उपदेश देते हुए कहा 'मन ही आत्मा है, मन ही लोक है, और मन ही ब्रह्म है। तुम मन की उपासना करो। वह जो कि मन की 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, उसकी जहाँ तक मन की गति है, वहाँ तक स्वेच्छा गति हो जाती है।' मुक्तिकोपनिषद् में कहा है, 'सहस्रों अंकुर, त्वचा, पत्ते, शाखा एवं फल-फूल से युक्त इस संसार वृक्ष का मन ही मूल है। यह निश्चित हुआ, और वह मन संकल्प रूप है। संकल्प को निवृत्ति रूप करके उस मनस्तत्त्व को सुखा डालो, जिससे यह संसार वृक्ष भी निराश होकर सूख जाए।' तैत्तरीयोपनिषद् में भी मन को ब्रह्मा कहा है, और कहा है कि 'सचमुच मन से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर मन से ही जीते हैं, तथा इस लोक से प्रयाण करते हुए (अंत में) मन में ही सब प्रकार से प्रवृष्ट हो जाते हैं।'

स्वामी विवेकानन्द का वचन है, 'मन की दुर्बलता सब प्रकार के बन्धनों को जड़ है। जब तक हमारा मन असक्त नहीं हुआ है, तब तक दुःखों की क्या मजाल है, जो वह हमारी ओर आँख उठाकर भी देखे। शक्ति ही हमारा जीवन और दुर्बलता ही मृत्यु है। मनोबल ही सुख सर्वस्व चिरन्तन जीवन और अमृतत्त्व तथा दुर्बलता ही रोग समूह दुःख और मृत्यु है।

मैत्रेयोपनिषद् (५।७) में कहा है, 'परशांत धन वाला पुरुष जब आत्मा में स्थिति लाभ करता है, तब उसे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है।' महोपनिषद् 'अमृत के पान करने से तथा लक्ष्मी के आलिंगन से वैसा सुख प्राप्त नहीं होता, जैसा सुख मनुष्य मन की शांति से प्राप्त करता है।' **कबीर 'जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय।'**

मनु० (४।१६०) जो दूसरों की (बाह्य वस्तुओं की) अधीनता में है, वह दुःखी हैं और जो अपने (मन के) अधिकार में है, वह सुखी है। यही सुख-दुःख का संक्षिप्त लक्षण है।' महाभारत—मन से दुःखों का चिन्तन न करना ही दुःख निवारण की अचूक औषधि है।' भर्तृहरि—'मन के प्रसन्न होने पर क्या दारिद्रय और क्या अमीरी, दोनों समान हैं।' प्रसिद्ध यूनानी तत्त्ववेत्ता प्लेटो का कहना है कि 'शारीरिक अर्थात् बाह्य आधिभौतिक सुख की अपेक्षा मन का सुख श्रेष्ठ है।'

अतः निश्चित हुआ कि मन पर विजय प्राप्त करने वाला व्यक्ति ही विश्व विजय का अधिकारी होता है। वह जीवन के हर क्षेत्र में असाधारण

विकास व सफलता प्राप्त करता है। आत्म विकास भी बिना मनोजय के हो ही नहीं सकता।

मनोजय के हमारे शास्त्रों में अनेकों उपाय वर्णित किये गये हैं। उनमें एक प्राण शक्ति का उपयोग है। यह प्राण साधारण शक्ति नहीं है। अथर्ववेद के ११वें काण्ड में उसे विराट्, प्रेरक, सूर्य, चन्द्रमा, प्रजापति की संज्ञायें दी गयी हैं :—

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राण सर्वं उपासते।
प्राणो हि सूर्यश्चन्द्रमा प्राणमाहु प्रजापतिम्॥

जिस प्राण के वश में सारा संसार है, जो सभी प्राणियों का ईश्वर है, जिसमें सारा संसार प्रतिष्ठित है, उसे साधक नमस्कार करता है :—

प्राणाय नमो यस्न्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वनो यस्मिन सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

(अथर्व० का० ११)

प्राण के आधार पर यह सारा ब्रह्मांड स्थित है, जो प्राण को वश में कर लेता है, वह सारे संसार को नियन्त्रण में करने की क्षमता रखता है। वह असाधारण शक्तियों का स्वामी हो जाता है, जिसे लोग चमत्कार की संज्ञा देते हैं।

प्राण मन से शक्तिशाली है। अतः इसे नियन्त्रित करने की क्षमता रखता है। शास्त्र का प्रमाण है :—

चित्तं प्राणेन सम्बद्ध सर्वजीवेषु संस्थितम्।
रज्जता यद्वत्सु सम्बद्धः पक्षी तव विदं मनः॥
नानाविधैर्विचारैस्तु न बाध्यं जायते मनः।
तस्मात्तस्य जयोपायः प्राण एव हि नान्यथा॥

"प्राण मन को अपने अधीन रखता है। समस्त प्राणियों का चित्त प्राण के साथ उसी तरह बँधा रहता है जैसे रज्जु से पक्षी बँधा रहता है। विचार द्वारा मन को वश में करने का प्रयत्न किया जाय तो मन इसके लिए बाध्य नहीं है। अतः मनोजय का एकमात्र उपाय प्राण शक्ति को सक्रिय करने की शक्ति प्राणायाम है।"

उद्धव के पूछने पर भगवान् कृष्ण ने उनका समाधान करके कहा है कि ओंकार जप के साथ रेचक, पूरक, कुम्भक प्राणायाम का अभ्यास करने

से प्राण निरोध में सहायता मिलती है और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है—

प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्वरम् ।

हठयोग प्रदीपिका (२।४२) में भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि जब प्राण का सुषुम्ना में संचार होने लगता है, मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है—

मारुते मध्य संचारे मनः स्थैर्यंप्रजायते ।

ऋग्वेदादि—भाष्य भूमिका में स्वामी दयानन्द ने प्राणों की स्थिरता से मन को स्थिरता का अनुमोदन करते हुए कहा है—

"जैसे भोजन के पीछे किसी प्रकार वमन हो जाता है वैसे ही भीतर के वायु को बाहर निकाल के सुखपूर्वक जितना बन सके उतना बाहर ही रोक दें । पुनः धीरे-धीरे भीतर लेकर पुनरपि ऐसे ही करें । इसी प्रकार बारंबार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से, मन के स्थिर होने से, आत्मा भी स्थिर हो जाता है।"

योग-दर्शन (२।५३) में कहा है—

'धारणासु च योग्यता मनसः ।

प्राणायाम के निरन्तर जप से मन की चञ्चलता नष्ट हो जाती है और उसमें धारण की शक्ति आ जाती है। शङ्कराचार्य की प्रबल स्मरण शक्ति का एक ऐसा ही उदाहरण है। उनके एक शिष्य पद्मपाद ने वेदान्त पर एक भाष्य लिखा था जो आग लगने से भष्म हो गया। इसे एक बार पद्मपाद ने शङ्कराचार्य को सुनाया था। शंकर ने शिष्य को निश्चिन्त करते हुए कहा कि तुमने मुझे एकबार सुनाया था अतः वह मुझे स्मरण है। मैं बोलता हूँ, तुम उसे लिखते जाओ। इस तरह से वह वेदान्त भाष्य तैयार हो गया। स्वामी विवेकानन्द की स्मरण शक्ति का अनुभव जर्मन दार्शनिक पाल ड्यूसन ने देखा था। एक बार स्वामी जी एक कविता की पुस्तक के अध्ययन में इतने लीन हो गये कि प्रो० पाल चाय की प्रतीक्षा में काफी देर तक खड़े रहे और उन्हें इसका भान तक न हुआ। फिर वह पहली बार की पढ़ी लम्बी कविता तुरन्त ज्यों की त्यों सुना दी। प्रो० पाल चकित रह गये और इसका कारण पूछा तो स्वामी जी ने बताया कि

ब्रह्मचर्य के पालन और प्राणायाम के अभ्यास से चित्त की एकाग्रता प्राप्त होने पर यह सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है।

मन को एकाग्र करने के लिए प्राणायाम की विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है जो इस प्रकार है—

१. भ्रामरी प्राणायाम

इस प्राणायाम में रेचक की विशेषता है जो भँवरी के शब्दों से ही मिलता जुलता है। इसलिए इसका नाम भ्रामरी हुआ है। पूरक भौंरे की तरह तेजी के साथ किया जाता है।

वीरासन में बैठे भ्रूमध्य में ध्यान करें, दोनों नासिकाओं से लम्बे स्वर में इस तरह पूरक करें कि ध्वनि भौंरे की तरह हो। कुम्भक जितना सुविधा पूर्वक हो करें तत्पश्चात् रेचक इस प्रकार करें जिससे भौंरी की तरह मन्द-मन्द ध्वनि सुनाई दे। ध्वनि में मीठास व सुरीलापन हो। इस तरह प्राणायाम में उड्डीयान तथा मूल-बन्ध भी लगाने चाहिए। घेरण्ड संहिता में अँगुलियों से कानों को बन्द करके उपर्युक्त ध्वनियाँ सुनने का विधान मिलता है।

अनुलोम विलोम भ्रामरो प्राणायाम की विधि इस प्रकार से है कि बाँयीं नासिका से श्वास खींचे, यथा शक्ति उसे रोकें, फिर दाँयीं नासिका से निकाल दें। इसके बाद दाँयीं नासिका से श्वास खींचें और यथाशक्ति रोककर दाँयी से बाहर निकाल दें, यह एक प्राणायाम की विधि हुई। इससे मन की एकाग्रता बढ़ती है।

२. मूर्च्छा प्राणायाम

पद्मासन से बैठें। दाँयें हाथ के अँगूठे से दाँयीं नासिका को दबायें और पूरक करें। यथाशक्ति कुम्भक करें। इस क्रिया के साथ जालन्धर-बन्ध भी लगाना चाहिए और दृष्टि भ्रूमध्य पर। सुविधानुसार कुम्भक करके दोनों नासिकाओं से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालना चाहिये। श्वास रोकने की स्थिति में मन को इस प्रकार विलीन करने की चेष्टा करें जिससे वह मूर्छित सा हुआ प्रतीत हो। यही क्रम दूसरी नासिका से भी करना चाहिए। अभ्यास बढ़ाने से मानसिक शान्ति मिलती है, मन की चंचलता कम होती है और एकाग्रता की स्थिति आने लगती है।

३. षण्मुखी रेचक प्राणायाम

इसका पूरक-रेचक भ्रामरी प्राणायाम की तरह ही है। अन्तर यह है कि इसमें दोनों कानों को, दोनों हाथों के अँगूठे से, दोनों नेत्र को दोनों तर्जनियों से, दोनों नासिकाओं को मध्यमाओं से और मुख को अनामिका व कनिष्ठिका से बन्द किया जाता है। इसमें जालन्धर-बन्ध लगाना चाहिए, यथा शक्ति बाह्य-कुम्भक करते समय ध्यान भ्रूमध्य पर जमा रहे। इसके बाद जब पूरक करने की आवश्यकता प्रतीत हो तो बाँयें हाथ की मध्यमा को उठायें और श्वास लें। फिर श्वास को रोके बिना ही इसी ओर से श्वास निकाल दें और श्वास को बाहर रोकने का प्रयत्न करें। इसी तरह दाँयें-बाँयें क्रम से करना चाहिए। इससे मन की चपलता समाप होने, दिव्य चक्षु खुलने का महान लाभ भी प्राप्त होता है।

४. सूक्ष्म श्वास-प्रश्वास प्राणायाम

इस प्राणायाम में आहार का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। आहार की मात्रा साधारण क्रम से कम हो तो अच्छा है। इसके अभ्यास में श्वास निकालने की दूरी को क्रमशः कम करना पड़ता है। सुखासन में बैठ कर प्रथमतः एक फुट पर तिपाई पर रूई रखें। यह देखना चाहिए कि श्वास छोड़ने पर रूई उड़ती तो नहीं। दूरी उतनी हो जिस पर रूई को उड़ना चाहिए। केवल हिलाना चाहिए। इस अभ्यास को एक सप्ताह तक करें। धीरे-धीरे अभ्यास को इतना बढ़ा लें कि रूई बिल्कुल निकट आ जाय परन्तु श्वास छोड़ने पर भी वह न उड़े, न हिले। इसके अभ्यास में मन लगा रहकर एकाग्र स्थिति में आ जाता है।

५. सप्त व्याहृति प्राणायाम

सप्त व्याहृतियाँ हैं—ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्। प्राणायाम के साथ उसका मानसिक जप सप्त व्याहृति प्राणायाम कहलाता है। वीरासन में बैठना चाहिए। श्वास खींचने में इतना समय लगाना चाहिए कि सप्त व्याहृतियों का जप हो जाय। श्वास रोकने में चार बार और दौड़ने में दो बार उनका मानसिक जप होना चाहिए। यह एक प्राणायाम हुआ। इसका यथाशक्ति अभ्यास करें। मन की चपलता का अभाव होने से शान्ति और एकाग्रता का अनुभव होता है।

उपर्युक्त प्राणायाम में से कोई भी अपने सुविधानुसार करके अभीष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

अमरता की प्राप्ति

इस जगत् की तीन स्थितियाँ हैं—उत्पत्ति, स्थिति व नाश। हर वस्तु यहाँ उत्पन्न होती है, उसका पालन-पोषण, विकास होता है और निश्चित अवधि होने पर समाप्त हो जाती है। इसका नियमन एक ऐसी शक्ति करती है जिस पर किसी का अधिकार नहीं है। यह कार्य अपने स्वाभाविक रूप व गति से चलते रहते हैं। प्रथम दो गतियों में तो सभी को सन्तोष व प्रसन्नता होती है, परन्तु तीसरी गति-विनाश की कल्पना से ही भय लगता है। मानव इच्छा यही रहती है कि उसकी मृत्यु न हो, वह सदैव स्थिर ही रहे, वास्तविकता यह है कि विनाश इसकी स्वाभाविक गति है, इसे नष्ट होकर नवीन उज्ज्वल रूप धारण करना ही है, परन्तु अज्ञान के कारण मानव अनिश्चित भविष्य की कल्पना करके भयभीत हो जाता है।

आधुनिक विज्ञान ने प्रकृति पर कुछ हद तक विजय प्राप्त कर ली है। वैज्ञानिक मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसके मूल सिद्धान्तों की लम्बी खोज हो रही है। अभी तक पूर्णरूप से उसमें सफलता नहीं मिल पा रही है।

फ्रांस के डाक्टरों ने कुछ नवीन औषधियों का आविष्कार किया है जिनके सेवन से बाल काले ही रहते हैं, सफेद नहीं होते। दाँत सुदृढ़ रहते हैं, गिरते नहीं। नेत्रों की ज्योति अन्त तक पूर्ववत् बनी रहती है। शरीर पर वृद्धावस्था की निशानी—झुर्रियाँ नहीं पड़तीं। शारीरिक सौन्दर्य वृद्धावस्था तक बना रहता है। स्मरण शक्ति क्षीण नहीं होती वरन् वह यौवन की तरह स्थिर रहती है। कहते हैं उन्होंने इसका अनुभव अनेकों व्यक्तियों पर किया है और वह इसमें सफल हुये हैं।

रूस के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक को चार बार मरने से बचा लेने की घटना इस प्रकार है—

रूस का एक वैज्ञानिक डाक्टर सेफ लैन्डाओ जिसने १९६२ का नोबेल प्राइज प्राप्त किया था, चार बार मरा परन्तु चारों बार उसे जीवित कर लिया गया। वह सात सप्ताह तक एक पम्प की सहायता से श्वास लेता रहा। इसके पश्चात् प्राकृतिक ढङ्ग से उसका श्वास चलने लगा।

इस वैज्ञानिक की कार से टक्टर हुई। परिणामस्वरूप उसके सर पर चोट आई। खोपड़ी दब गई। मस्तिक पर आघात पहुँचा। उसकी

नौ पसलियाँ टूट गईं। ब्लैडर फट गया। बाँयीं बाह काम करने से रह गई। श्वास रुक गया। रक्त चलना बन्द हो गया। रूस के सभी बड़े-बड़े डाक्टरों का सम्मेलन हुआ। एक महान वैज्ञानिक के मूल्यवान शरीर को बचाने का प्रयत्न किया गया। खोपड़ी की सूजन और दबाव कम करने के लिए उसमें औषधियाँ भर दी गयी और उन्हें बराबर आक्सीजन मिलती रही। बिजली के यन्त्रों द्वारा उनकी बलगम निकाली जाती रही। दूध आदि पदार्थ उन्हें नाक के द्वारा दिये जाते रहे। उनका ताप १०६° तक पहुँच गया था। वह १०४° तक आ गया। चार दिनों के पश्चात् उनके दिल की धड़कन बन्द हो गयी जिसका स्पष्ट अर्थ था कि उनकी मृत्यु हो गयी है। अब उनकी बाँयीं बाँह में रक्त दिया गया और शक्ति वर्द्धक इन्जेक्शन लगाये गए जिससे उनके दिल की धड़कन पुनः होने लगी। तीन बार उनकी फिर मृत्यु हुई। परन्तु फिर उन्हें जीवित कर लिया गया। किन्तु उनका शरीर वैसे ही पूर्ववत बना रहा। अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवी चिकित्सकों को बुलाया गया परन्तु आपरेशन करने की सलाह नहीं दी गई।

इस प्रकार के समाचार पहले भी रूसी वैज्ञानिकों के द्वारा प्रसारित किये जा चुके हैं कि कुछ समय के लिए अमुक व्यक्ति को बचा लिया गया। जोशीली दवाओं के आधार पर व्यक्ति को कुछ समय तक रोका जा सकता है परन्तु मृत्यु को रोका जाना सम्भव ही नहीं है। यदि ऐसा ही है तो वह कम से कम अपने नेताओं को कुछ सौ वर्षों तक जीवित रखने का प्रयत्न करें ताकि उन्हें स्वस्थ नेतृत्व प्राप्त होता रहे। वास्तव में यह असम्भव है। इसकी कल्पना करना या इसके लिए प्रयत्न करना अपनी बुद्धि को धोखा देना है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने जीवन को लम्बा या स्थिर रखने के लिए सिद्धांतों की खोज की है उनका विश्लेषण इस प्रकार है—

हमारा शरीर विभिन्न प्रकार के अणुओं से बना है जिनकी संज्ञा कोशिकाएँ हैं। जब तक शरीर की स्थिरता बनी रहती है यह निरन्तर गतिशील बनी रहती है। इनका विनाश का निर्माण इतनी तीव्र गति से होता रहता है। जीवन स्थिर होता रहता है। जब निर्माण में कमी आने लगती है तो रोग नये-नये रूपों में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इन कोशिकाओं के निर्माण का बन्द होना ही प्राणी की मृत्यु कहलाती है।

यदि किसी उपाय से इन कोशिकाओं का निर्माण निरन्तर होता रहे तो मानव अमर रह सकता है।

प्रो० केइल ने इस दिशा में विशेष प्रयत्न किये हैं। कोशिकाओं की गतिविधियाँ लम्बे समय तक स्वाभाविक रूप से संचालित होती रहें उसके लिए उन्होंने दो सुझाव दिये हैं। एक तो यह कि उनको आवश्यक आहार प्राप्त होता रहे और उनसे निकलने वाला हानिकारक विपाक्त मल एकत्रित न हो सके, उसकी निवृति के उपाय अपनाए जाते रहें। दूसरा उपाय यह है कि कोशिकाओं की गतिविधियों को एक दम रोक दिया जाय ताकि नव निर्माण के लिए आहार की आवश्यकता प्रतीत न हो।

प्रो० केइल ने अपने इन सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए कुछ परीक्षण किए हैं जिनसे उनको कुछ आंशिक सफलता भी मिली है। रासायनिक द्रव्यों की सहायता से उन्होंने अपनी मुर्गी के हृदय का एक टुकड़ा ३० वर्षों से जीवित रखा है। इस प्रकार के अनेकों अनुभव उन्होंने किए परन्तु शरीर को स्थायी रूप से स्थिर रखने में वह अभी सफल नहीं हुए हैं और न होने की सम्भावना है।

प्रो० केइल के सिद्धान्त पाश्चात्यों के लिए नवीन हो सकते हैं परन्तु भारतीयों के लिए कुछ भी नवीनता नहीं है क्योंकि यह खोज और उसका व्यवहार यहाँ लाखों वर्षों पूर्व से होता आ रहा है। व्याख्या का नया रूप होने से उसे नवीन खोज की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

महर्षि पतंजलि के अष्टाङ्गयोग की एक क्रिया प्राणायाम है। दूसरी क्रिया पद्धति का यदि नवीन रूप में प्रतिपादन किया जाय तो कहा जा सकता है कि प्राणायाम के सुनियोजित अभ्यास से कोशिकाओं को गति-विधि दिया जाता है। प्राचीन काल में तो ऋषि इस अभ्यास को घण्टों, दिनों, महीनों और वर्षों तक समाधि के रूप में बढ़ाने की स्थिति में होते थे। जब कोशिकाओं की गतिविधियाँ रुकी रहती हैं व उनके पोषण के लिए आहार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रो० केइल भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि कोशिकाओं की क्रियाओं को जितने समय के लिए रोका जाना सम्भव हो, समझना चाहिए कि मनुष्य की उतनी आयु बढ़ गई। प्रो० केइल ने वर्षों के अनवरत परिश्रम से अमर रहने का सिद्धान्त तो खोज निकाला परन्तु उसे क्रियान्वित कैसे किया जाए, इसका कोई समाधान कैसे किया जाए, कोई समाधान वे अभी तक

नहीं कर पाए। यह पद्धति तो हमें ऋषि परम्परा से प्राप्त है परन्तु खेद है कि हम इसकी ओर ध्यान नहीं देते। प्राणायाम निश्चित रूप से वह उपाय है जिससे कोशिकाओं की गतिविधियाँ रोका जाना सम्भव है।

अमर बनाने का यह शारीरिक पक्ष है। उसका आध्यात्मिक पक्ष भी है। भारतीय तत्त्व-ज्ञान के अनुसार शरीर विनाश शील है और आत्मा अमर है, अविनाशी है। जो व्यक्ति अपने को शरीर मानता है वह उसके विनाश से दुःखी होता है परन्तु जो साधक शरीर भावना से ऊँचा उठा कर आत्म-भावना में स्थित हो जाता है उसे शरीर के नाश होने पर दुःख, चिन्ता, भय, निराशा का कोई कारण दिखाई नहीं देता। यह भी समझता है कि आत्मा समय-समय पर नये-नये शरीर धारण करती है। यह उसका स्वभाव ही है। अभी तक हर व्यक्ति हजारों प्रकार के शरीर धारण कर चुका है। हर वार वह नूतन शक्ति प्राप्त करता है और निरन्तर प्रगति करता हुआ ऊपर उठता रहता है।

भारतीय तत्त्वज्ञानियों ने अपनी खोजों को यहीं तक सीमित नहीं रखा कि जीवात्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा उपयुक्त शरीर धारण कर लेता है। अतः मृत्यु पुराने वस्त्रों को बदल कर नये ग्रहण करने की क्रिया मात्र है। यह उनकी एक आसाधारण खोज थी, जिससे मनुष्य निष्कंटक जीवन व्यतीत करता है और उसके जीवन के प्रत्येक कार्य में नया उत्साह, नयी स्फूर्ति और नयी आशायें सदैव ओत-प्रोत रहती हैं और जीवन के संघर्ष में वह बाजी मार ले जाता है।

भारतीय वैज्ञानिक इससे भी आगे बढ़े और साहस के साथ घोषित किया कि यह शरीर का स्वामी आत्मा नित्य अविनाशी और अचिंत्य है (गीता २।१८) "यह किसी से मारा जानेवाला नहीं है" (२।१९) "इसको शस्त्रों से काटा नहीं जा सकता, इसे अग्नि से जलाया नहीं जा सकता, इसे पानी से भिगोया, गलाया नहीं जा सकता और न वायु से सुखाया जा सकता है। इसकी रक्षा ऐसे यन्त्र करते हैं जिन पर इस जगत् की किसी भी वस्तु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह ऐसा अदृश्य तत्त्व है, जो सदैव एक सा बना रहता है, जिसकी वृद्धावस्था और नाश कभी नहीं होता। जिसमें किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नहीं होता। इससे सम्बन्धित शरीर का वध भी हो जाय, तो यह मारा नहीं जाता।" (गीता २।२०)। "यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है।"

भारतीयों की इस महान वैज्ञानिक खोज ने मनुष्य के लिए अमर जीवन के द्वार खोल दिये। उसे आश्वासन दिलाया "**कि तुम अमर आत्मा हो, तुम्हारा कभी नाश नहीं हुआ है।** अतः तुम्हारी कभी मृत्यु भी नहीं होगी; (गीता २।२०) तुम्हारा जीवन शाश्वत और स्वतन्त्र है, तुम्हें केवल अनुभूति मात्र करना है। तुम अज्ञान की जंजीरों से जकड़े हुये हो। केवल इन बन्धनों को खोलना ही है। इन बन्धनों से मुक्त होकर तुम अपना वास्तविक स्वच्छ और पवित्र रूप देखोगे। उस रूप के दर्शन होने पर तुम सदैव शाश्वत आनन्द की मस्ती में झूमते रहोगे। अतः अपने को शरीर मानना छोड़ दो। शरीर नाशवान व अनित्य है। (गीता० २।१८) उसकी प्रकृति में उत्पत्ति, स्थिति, लय ओत-प्रोत है, उसका नाश अवश्यम्भावी है। यदि उससे घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़े रहोगे तो भय, दुःखों और चिन्ताओं का आना भी निश्चित है, उसे केवल आत्मा का औजार मात्र मानोगे तो सदैव सुखी रहोगे और इसके वियोग का भय भी नष्ट हो जायगा।

आत्म-भावना को जीवित, जाग्रत् व स्थिर रखने के लिए अनेकों उपाय भारतीय शास्त्रों में वर्णित किये गये हैं। उनमें से एक प्रभावशाली शासन प्राणायाम है जिसकी पुष्टि ऋषियों ने अपने अनुभव से की है। योग दर्शन (२।५२) में कहा है :—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

प्राणायाम के अभ्यास से अज्ञान का आवरण नष्ट हो जाता है। अपने को शरीर भावना तक ही सीमित रखना ही अज्ञान है। इसकी सीमा से ऊँचे उठकर आत्म भावना में स्थिर होना ही ज्ञान है, विवेक की जागृति है।

पंचशिखाचार्य ने अपने सांख्य सूत्र में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है—

तपो न पर प्राणायामत्त तो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य।
तमणमात्रमात्मानमनुविद्या स्तीत्येवं तावत् संप्रजानीते॥

प्राणायाम से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। प्राणायाम से आंतरिक मल शुद्ध व पवित्र होते हैं। मलों की निवृत्ति होने पर अज्ञान नष्ट होता है और ज्ञान का प्रकाश होता है। परिणाम स्वरूप वह अणुमात्र आत्मा को खोज कर भली प्रकार से जान लेता है और उसकी अत्यन्त अनुभूति करता है।

प्राणायाम से आत्मानुभूति होने की घोषणा की गयी है। आत्म विकास, आत्म कल्याण व आत्मिक प्रगति हो अमर बनने की अच्छी विद्या है, क्योंकि ऐसे साधक का कभी नाश नहीं होता।

पाश्चात्य वैज्ञानिक मानव देह को अमर बनाने के प्रयत्नों में संलग्न हैं, परन्तु भारतीय वैज्ञानिकों ने तो इन खोजों को लाखों वर्ष पूर्व पूर्ण कर लिया था, जिसकी पुष्टि उपर्युक्त तथ्यों से होती है।

इसलिए हमको चाहिए कि भारतीय परम्परा के जो आत्मविषयक योग ग्रन्थ हैं, उनका सदैव अध्ययन करें और किसी योग्य गुरु के द्वारा क्रियाओं का अभ्यास करें तभी सत्य तक पहुँचा जा सकता है। इसी बात को कबीर साहब ने भी स्वीकार किया है।

●

परिशिष्ट

कबीर का योग

योग और क्षेम इन दो शब्दों को युक्त कर एक साथ व्यवहार करने की प्रथा हमारे देश में प्रचलित है (गीता ९।२२)। शङ्कराचार्य योग को अप्राप्त की प्राप्ति और क्षेम को उसकी रक्षा बताते हैं। श्रीधर स्वामी भी यही बात कहते हैं।

अत्यन्त प्राचीन काल से ही मनुष्य ने योग के मर्म को अनुभव किया है। जिस मोहन-जो-दरो को पण्डितों ने आर्यों के आगमन का भी पूर्ववर्ती बताया है उसमें भी सुन्दर-सुन्दर योगियों की मूर्तियाँ पायी गयी हैं। उन मूर्तियों को देखते ही जान पड़ता है कि ये योगियों की मूर्तियाँ हैं जो किसी-न-किसी योगसाधना को सूचित करती हैं।

असीम अनन्त विश्वतत्त्व से ही मनुष्य का उद्भव हुआ है। विश्व-सागर में से अपना व्यक्तित्व लेकर मनुष्य एक लहर की नाईं प्रकट हुआ है। इसीलिए यह विश्व तत्त्व निरन्तर नानाभाव से उसे आकृष्ट कर रहा है। उसका जीवात्मा भी सर्वदा विश्वात्मा के साथ युक्त होना चाहता है। यह व्याकुलता ही योग का मूल है।

इस योग की हम दो प्रकार से उपलब्धि कर सकते हैं—भावों से या क्रिया से। हमारे देश के साधकों ने इन दोनों प्रकार के योगों के वैचित्र्य की नाना रूप से प्रार्थनाएँ की हैं।

मिलन का एक मूलमन्त्र यह है कि जो लोग मिलेंगे उनमें परस्पर साधर्म्य होना चाहिए। समजातीय होने से भी मिलन होता है, जैसे जल के साथ जल का, और परस्पर परिपूरक होने से भी योग होता है, जैसे शिव के साथ शक्ति का। इस प्रकार की परिपूरकता के क्षेत्र में एक दूसरे के लिए व्याकुल आकांक्षा रहती है, इसीलिए ऐसा योग एक साधना मात्र न होकर एक अनुपम रस-वस्तु हो उठता है।

मनुष्य और विश्व—विश्वात्मा में जो योग है उसमें समजातीयता और परि-पूरकता दोनों ही भाव हैं। विश्वदेह और मानवदेह में जो योग है वह सम-जातीयता का ही योग है, यद्यपि उसमें कुछ परिमाणगत भेद भी है। विश्वात्मा और मानवात्मा में जो योग है वह परस्पर परिपूरक है। यद्यपि दोनों ही कुछ हद तक एक ही नियम मानकर चलते हैं तथापि जीवात्मा सीमाबद्ध है, विश्वात्मा या

परमात्मा असीम। अथवा इस भेद के कारण ही दोनों योग में इतनी प्रबल आकांक्षा और व्याकुलता का रस वर्तमान है।

विश्व और मानव दोनों में ही एक साधर्म्य है। दोनों ही एक-एक सम्पूर्ण जगत् हैं। इसीलिए ग्रीक दार्शनिकों ने विश्व को विराट् जगत् कहा है, और मानव को क्षुद्र जगत् कहा है। नव प्लेटोनिक (नौ-अफलातूनी) दार्शनिकों ने दार्शनिक भाव से इसकी नाना प्रकार से आलोचना की है। फिर भी इसके रस-रूप का अनुभव किया गया है भारतवर्ष की और सूफ़ियों की साधना में, भक्तों और कवियों की वाणी में।

नौ-अफलातूनियों ने ही केवल विश्व और मानव में यह साधर्म्य नहीं दिखाया। उपनिषदों में देखते हैं,—'इस विश्व आकाश में जो तेजोमय, अमृतमय पुरुष है, वही हमारे आत्मा में भी तेजोमय अमृतमय पुरुष है।' (बृहदारण्यक० २।५; १०।१४) तभी से यह भाव और दोनों के बीच की मिलन-व्याकुलता ही भारतवर्ष के सभी भक्त और साधक कवियों की प्राण-वस्तु रही है।

इसी का क्रियासाध्य रूप मोहन-जो-दरो की मूर्तियों में दिखायी पड़ता है। वहाँ का साहित्य तो हम लोगों को मिला नहीं, मिली है सिर्फ कुछ मूर्तियाँ। मूर्ति में भीतर की मर्मकथा तो रक्खी नहीं जा सकती, इसीलिए वहाँ की भीतरी बात हम नहीं पा सके, पा सके हैं बाहरी योगचेष्टा का रूप। यह योगचेष्टा भी इस देश में कम प्राचीन नहीं है। खूब सम्भव है, यह वेद-पूर्व सभ्यता की एक विशेष सम्पत्ति हो। पहले-पहल वैदिक आर्य लोग इसके प्रभाव में नहीं आये, पर बाद में उन्हें इससे प्रभावित होना पड़ा था, इसे आर्य चिन्ता से दूर नहीं रक्खा जा सका। परवर्ती भारतीय साहित्य तो इडा, पिङ्गला, चक्र, कमल, कोश, नवद्वार, मूलाधार, सहस्रार प्रभृति तत्त्वों से भरा पड़ा है। अथर्ववेद में भी इसका कुछ-कुछ आदि आभास मिलता है।

अष्टा चक्रा नवद्वारा देवानां पुरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ (अथर्वसंहिता ८।२।३१)

अष्टचक्र और नवद्वार से युक्त है यह अजेय देवपुरी यहीं पर जो हिरण्यमयकोश आवृत है वही स्वर्ग है।

तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ (अथर्व० १०।२।३२)

त्रि-अरमुक्त त्रिप्रतिष्ठित उस हिरण्मय कोश में जो आत्मयुक्त यक्ष (पूज्य अपूर्व पुरुष) विराजमान है, उसे ब्रह्मविद् लोग ही जानते हैं।

इस स्थान पर परवर्ती योगशास्त्र की अनेक बातें देख पड़ती हैं। इसके बाद एक और अपूर्व मन्त्र है—इसमें उस अन्तःस्थित अधिष्ठान पुरुष की बात और भी चमत्कार पूर्ण ढंग से वर्णित है—

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥

तीनों गुणों से आवृत, नवद्वारों वाला यह कमल है। उसमें वास करता है वही यक्ष (पूज्य अपूर्व पुरुष); उसे ब्रह्मविद् लोग ही जानते हैं। इसी में योगशास्त्र की सबसे बड़ी बात है।

इडा-पिङ्गला, शिव-शक्ति, चन्द्र-सूर्य, ज्ञान-प्रेय प्रभृति के मिलन से होकर नाना आकारों और नाना प्रतीकों में वियुक्त मानव और विश्वात्मा के मिलन की ही चेष्टा होती आयी है। एक मूलाधार से वियुक्त होकर दो धाराएँ हुई हैं, उन्हें फिर से एक वेणी में मिलाना होगा। अधोधारा षट्चक्र वेध करके ऊपर ऊर्ध्व लोक में जायगी।

वह्निपुराण-क्रियायोगसार, विष्णु पुराण (षष्ठ अंश सप्तम अध्याय), सौर पुराण (बारहवां अध्याय), ब्रह्मवैवर्त (कृष्ण खण्ड), गरुडपुराण (चौदहवां अध्याय, उनचासवां अध्याय) और भागवत में नाना भाँति से इस विषय का वर्णन है। देह के शुभाशुभ सम्बन्ध के साथ भी उसके सम्बन्ध की बात लिङ्ग-पुराण (नवाँ अध्याय), मार्कण्डेयपुराण (पैंतीसवाँ अध्याय) आदि में लिखी है। योग का भाव-पक्ष भी गीता में बहुत प्रकार से बहुत तरह के भाषाओं में व्यक्त हुआ है। इस दृष्टि से योग-वासिष्ठ बड़ा मूल्यवान ग्रन्थ है। तन्त्रों और शैवागमों में, यहाँ तक कि उत्तर कालीन बौद्ध ग्रन्थों में भी योग का बहुत कुछ सन्धान पाया जाता है।

इसके बाद योगी और सिद्धाचार्यों के निकट आना पड़ता है। ये सब तो योग-मत के ही ग्रन्थ हैं। गोरक्ष संहिता में अथ से इति तक क्रिया सिद्ध योग की ही बात है। मेरे अपने अध्ययन का विषय मध्ययुग के संतों की वाणी है। इस युग में भी सैकड़ों भक्तों की वाणियों में योग की बात नाना भावों से वर्णित हुई है। इनमें से केवल कबीर की ही बात यदि ली जाय, तो कबीर का साहित्य भी तो एक समुद्र है।

कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकांक्षा विश्वग्रासी है। वह कुछ भी छोड़ना नहीं चाहते, इसीलिए वह ग्रहणशील हैं, वर्जनशील नहीं। इसीलिये उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी प्रभृति सब साधनाओं को जोर से

पकड़ रक्खा है। फिर भी उन मतों की सङ्कीर्ण साम्प्रदायिकता कबीर के साथ मेल नहीं खाती। इसीलिए कबीर इन सबको ही अपने ढंग से अपना सके हैं। उनके क्रियाकाण्ड, उनकी साधना और उनकी संज्ञाओं को भी कबीर ने अपने विशेष भाव से व्यक्त किया है। कबीर भक्त हैं, प्रेमिक हैं, योगी हैं, मानवरस से भरपूर हैं, मैत्री युक्ति आदि से परिपूर्ण हैं। इस तरह उन्होंने जिन मतवादों को ग्रहण किया है उनमें से प्रत्येक हद तक उनका गृहीत है, कुछ हदतक अपनी विशेष व्याख्या से उन्होंने अपने समान कर लिया है, कुछ हदतक परित्यक्त है और किसी हदतक उनके कठोर आघातों से आहत है। कबीर के योगमत वाद के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। उन्होंने कुछ अंशों में इसे मान लिया है, कुछ अंशों तक विशेष भाव से आत्मसात् कर लिया है, कुछ अंशों तक छोड़ दिया है और फिर किसी-किसी अंश पर कठोर प्रहार भी किया है। कबीर साहित्य की आलोचना करते समय एक बात विशेष रूप से मन में उठा करती है। यह साहित्य तो बहुधा विचित्र है और नाना सम्प्रदायों द्वारा संग्रह किया गया है। फिर कौन सी वाणी का आश्रय करके आलोचना की जाय? योगमत की आलोचना के इस प्रसङ्ग में मैंने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के संस्करण का ही आश्रय लिया है।

कबीर के अनेक पदों को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि ठीक पूर्ववर्ती योगियों की, यहाँ तक कि कभी-कभी हू-ब-हू वे ही बातें पढ़ रहे हैं। जैसे—

'प्रथमे गगन की पुहमी प्रथमें प्रभु प्रथमे पवन कि पाणी।' (पदावली १६४)

कबीर की प्रश्नोत्तरी और प्रहेलिकाएँ बिल्कुल प्राचीन योगियों के समान हैं। इसीलिए इन प्रहेलिकाओं को 'गोरखधन्धा' कहते हैं। कबीर का निम्न-लिखित पद भी योगी-पदों के ही समान है—

सुंनिमंडल में घर किया जैसै रहै सिचांनां।
उलटि पवन कहाँ राखिये कोई भरम बिचारै॥
सांधै तीर पतालकूं, फिरि गगनहिं मारै।

ठीक इसी प्रकार का एक पद परिशिष्ट (२०७) में है।

मूल दुआरै बेध्या बंधु। रबि ऊपर गहि राख्या चंदु॥
पच्छम द्वारै सूरज तपै। मेर डंड सिर ऊपर बसै॥
खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर ताका अंत न पार॥

योग के संबंध में भी कबीर के वैचित्र्य का अन्त नहीं। वह पवन उलट कर षट्चक्र भेद करके शून्य गगन में समाहित होना चाहते हैं।

उलटे पवन षट्चक्र बेधा मेरडंड सर पूरा।
गगन गरजि मन सूंनि समांनां बाजे अनहद तूरा ॥ (पद ७)

कभी कहते हैं, 'मनको ही उलटकर उसमें भरना होगा।..................पवन उलटकर पट्चक्र वेध करके 'शून्य सुरति' में ही 'लय' लगाना होगा—

मन रे मनहीं उलटि समांनां। ....
उलटे पवन चक्र षट् बेधा सूंनि सुरति लै लागी ॥ इत्यादि (पद ८)

कभी वह द्वादश कूप से वनमाली के समान नीर धारा ऊपर की ओर उलट कर सुपुम्णा का कूल पूर्ण कर देना चाहते हैं—यह धारा दस दिशाओं में ही फुलवारी पावेगी।

द्वादश कुँआ एक बनमाली उलटा नीर चलावै।
सहजि सुषमना कूल भरावै दह दिसि बाड़ी पावै (पद २१४)

कभी-कभी ईंधन जलाकर जिस समय भट्ठी से सुरा लेते हैं, उसी प्रकार अन्तर के महारस को गगन में चुआकर उसी सुरा में मत्त होना चाहते हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि इस गगन रस को उन्होंने भक्त के समान 'रामरस' बना लिया है। उनके योग और भक्ति सम्बन्धी मत इसी प्रकार युक्त हैं। इसी रामरस में मतवाला होना ही कबीर की एकान्त वासना है।

गगन साल चुए मेरी भाठी। संचि महारस तन भया काठी।
वाकैं कहिये सहज मतवारा। पीवत रामरस ज्ञान बिचारा ॥
... .   (परिशिष्ट पद ५८)

'चन्द्र और सूर्य ये दोनों ज्योति के स्वरूप हैं। इसी ज्योति के अन्तर में अनुपम ब्रह्म विराजमान हैं। ऐ ज्ञानी, वहीं पर ब्रह्म विचार करो—

चंद सुरज दुइ जोति सरूप। जोति अन्तरि ब्रह्म अनूप।
करु रे ज्ञानी ब्रह्म बिचारू। (इत्यादि परिशिष्ट पद ६७)

कभी-कभी कबीर ने योगी के भेष को रूपक की भाँति ग्रहण करके, सुरति-निरति-आदि द्वारा सजाया है।

अवधू जोगी जगथैं न्यारा।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी नाद न खंडै धारा ॥ (पद ६९)

निरति मुद्रा और सुरति सिंगा से सज्जित होकर वह योगी जगत् में 'चेतन चौकी' पर बैठकर उस मधुर महारस को पान करता है, जिस महारस को इस

अन्तर की भट्ठी में चुआया गया है। वहाँ बैठकर वह दुनिया की ओर ताकता भी नहीं—

बसै गगन में दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा।
चढ़ि अकास आसन नहीं छाड़ै, पीवै महारस मीठा। (पद ६९)

गगन भट्ठी चुआकर जिस अमृतरस का निर्झर झरा करता है, उसे ही पान करना होगा। रस में ही झरा करता है वह रस।

गगन ही भाँठी सींगी करि चूँगी कनक कलस एक पावा।
तहुआं चवै अमृत रस नीझर रस ही में रस च्वावा॥ (पद १५३)

यहीं पर मन को मत्त कर देने वाला 'रामरसायन' पान करना होगा। दुनिया में सब भ्रम की साधना में भूले हैं—

.................यह दुनिया कांइ भरम भुलानी।
मैं राम रसाइन माता॥ (वही पद)

गगनमण्डल में घर करना होगा। क्योंकि वहीं सदा अमृत झरा करता है, सदानन्द उपजता है, वङ्कनाल का रस पान करना होता है—

अवधू गगनमंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंकनालि रस पीवै॥ इत्यादि (पद ७०)

कभी-कभी कबीर अधोधारा को को ऊर्ध्व में उठाने के लिए जिन सब आयोजनों की जरूरत है उन्हें रूपक के रूप में सजाकर लय, पवन, मन, सत्य, सुरति प्रभृति की सहायता से सहज ही उस धारा में चलाना चाहते हैं—

ल्यौंकी सेज पौन की ढीकूँ मन मटकाज बनाया।
सतकी पाटि सुरति का चाठा सहज नीर मुक लाया॥ (पद २१४)

कभी कबीर का यह योग सम्बन्धी सारा आयोजन रूपक के समान ही है। यद्यपि वह कहते हैं—'हे अवधूत ! मेरा मन मत्त हो गया है, उन्मनि पर चढ़कर मन ने उस महारस को मग्न होकर पान किया है, इसीलिये त्रिभुवन दीप्त हो गया है, उज्ज्वल हो गया—

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मुनि चढ़या मगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा। (पद ७२)

किन्तु इस महारस को चुआने के लिये उन्होंने ज्ञान को किया है गुड़ और ध्यान को किया है महुआ। मन धारा को भट्ठी बनाया है—

गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि महुआ भाठी मन धारा। (परि० पद ६२ एवं ७२)

इससे भी अधिक रूपक १५५ नम्बर के पद में हैं—

एक बूंद भरि देइ रामरस ज्यूं भरि देइ कलाली।
काया कलाली लाहनि करिहूं गुरु शबद गुड़ कीन्हां।
काम क्रोध मोह मद मंछर काटि काटि कस दीन्हां॥ इत्यादि (पद १५५)

योगियों का काम ही है, सारङ्गी बजाकर गान के सुर में सबके चित्त को जागरित करना। यह बात भी कबीर रूपक से दिखाना चाहते हैं—वह योगी इस तनुयन्त्र को बजाता है। इसीलिये धर्म के दण्ड में, सत्य की खूंटी में, तत्त्व की तांत बांधकर यह यन्त्र रचा गया है। मन के निश्चल आसन पर बैठकर रसना से जपो उस रस को। इस प्रकार संसार का आवागमन छूट जाता है।

जोगिया तनकौ जन्त्र बजाइ, ज्यूं तेरा आवागमन मिटाइ॥
तन करि तांति धर्म करि डांड़ी, सतकी सारी लगाइ।
मन करि निहचल आंसन निहचल, रसनां रस उपजाइ॥ (पद २०८)

यहाँ के पद १०४, २०५, २०९, २१० और २११ में नानाभाव से योग को अध्यात्म साधना के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

उन दिनों एक तरफ तो थी प्रबल मुसलमानी साधना और दूसरी ओर थी योगियों की योग-साधना। कबीर ने दोनों को ही स्वीकार किया है, पर अपने रास्ते से मुसलमान धर्म पर उन्होंने कम आघात नहीं किया (देखिये-साच को अङ्ग ५–९ इत्यादि)। योगियों के ढोंग पर भी उन्होंने कठोर रूप से आघात किया है। 'जोगी पड़े कि जोग कहै घर दूर हैं' इत्यादि कबीर के ही तीव्र काशाघात हैं। मन-ही-मन शायद उन्होंने समझा था कि आघात करने से कोई लाभ नहीं है, इसीलिये उन सारी बातों को रूपक के द्वारा व्याख्या कर आत्मसात् कर लेना चाहा है।

मुसलमान के लिये उनका कहना था कि मन को कर लो मक्का और देही को करो किबला। इस काया-मसजिद में ही तो दस दरवाजे हैं, वहीं जाकर बांग दिया करो—

मन करि मक्का किबला करि देही। बोलन हार परम गुरु एही॥
कहु रे मुल्ला बाँग निवाज। एकै मसीति दसै दरवाज॥

(परि० पद १५७)

उन दिनों के साधारण लोक-प्रचलित योगमतवादी योगियों के प्रति भी उनका प्रहार मामूली नहीं है। जोगी दण्ड, मुद्रा, कन्था प्रभृति लेकर भ्रम का

भेख धरे घुमा करते हैं। अरे पागल! आसन और पवन दूर कर दे और कपट छोड़कर नित्य हरि को भज। जिसे तू चाहता है वह स्वयं त्रिभुवन को भोग रहे हैं, फिर संसार में तुम्हारी इस योग साधना का अर्थ क्या है?

डंडा मुद्रा खिथा आधारी। भ्रम के भाइ भवै भेखधारी॥
आसन पवन दूरि करि बवरे। छोड़ि कपट नित हरि भज बवरे॥
जिहि तू जाचहि सो त्रिभुवन भोगी। कहि कबीर कैसो जग जोगी॥

फिर इसी योगी को समझाकर वह अपना लेते हैं—'पागल! मन की मैल छोड़ दे। सिङ्गा मुद्रा वगैरह दिखाकर लोगों को ठगने से क्या लाभ है? विभूति लगाने से ही क्या होता है?'

आसन पवन कियें दिढ़ रहु रे। मनका मैल छाँडि दे बौरे॥
क्या सिंगी मुद्रा चमकायें। क्या विभूति सब अंग लगायें॥ (पद ३५५)

इसके बाद रूपक दिखाकर वह योगी के मत को आत्मसात् ही कर लेना चाहते हैं। 'वही तो योगी है, जिसकी मुद्रा है मनमें, अपनी साधना में वह रात-दिन जगा रहता है। मन में ही है उसका आसन और मन में ही है उसकी स्थिति। मन में ही उसका जप-तप है, मन में ही बात-चीत है। मन में ही है उसका खप्पर, मन में ही सिङ्गा वहीं पर वह अनाहत नाद भी बजाता है। पञ्च को दग्ध करके ही वह विभूति बनाता है। कबीर कहते हैं, वही तो जीतेगा लङ्का—

सो जोगी जाके मन में मुद्रा। रात दिवस जा करइ निद्रा॥
मन आसन मन में रहनां। मन का जप तप मनसूं कहनां॥
मन में खपरा मन में सींगी। अनहद बेन बजावै रंगी॥
पंच पर जारि भसम करि भूका। कहै कबीर सो लहसै लंका॥ (पद २०६)

कबीर ने उसी को सच्चा योगी बताया जो लोक प्रचलित योगीपन के अतीत है। अर्थात् सारे संकीर्ण विधि विधानों से मुक्त साधक ही कबीर का चिर-आकांक्षित साधक है। ऐसे साधक का न तो कोई दल होता है और न कोई सम्प्रदाय। दल बाँधते ही नाना मिथ्या आवर्जना अधिकार जमा लेती हैं। इसीलिये उनका कहना है 'बाबा'! जिस योगी का न मेला है और न तीर्थ, वही एक शब्द हीन योगी है। उसके पास झोली नहीं, पत्र नहीं, विभूति नहीं, बटुआ भी नहीं, वही अनाहत बेन बजाता है'—

बाबा जोगी एक अकेला, जाके तीरथ बरत न मेला॥
झोली पत्र विभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै॥ (पद २०७)

ऐसा ही योगी तो 'मन का मानुष' है। इसे बाहर पाया कैसे जाय ? इस योगी का मर्म जो समझता है वही राम में रमता है। त्रिभुवन उसे उपलब्ध होता है। प्रकट कन्था में छिपा हुआ है वह गुप्त आधारी। उसमें जो मूर्ति है वही तो इस जीवन का प्रिय है। प्रभु निकट ही हैं, लोग उन्हें दूर खोजा करते हैं। ज्ञानगुहा में भर लो सींगा। कबीर कहते हैं कि जो भक्त प्रतिक्षण अमृत-वल्ली का रस पान करता है वही युग-युग जीता है।

जो जोगिया की जुगति बूझै। राम रमैं ताको त्रिभुवन सूझै ॥
परगट कंथा गुपुत अधारी। तामैं मूरति जीवनि प्यारी ॥
है प्रभु नेरैं खोजैं दूरी। ग्यांन गुफा मैं सींगी पूरी ॥
अमरबेलि को छिन-छिन पीवै। कहैं कबीर सो जुग-जुग जीवै ॥ (पद २०५)

सचमुच ही जो योगी है उसकी साधना विश्वब्रह्माण्ड को लेकर है। वह एक मुट्ठी भीख के लिये घर छोड़कर नहीं निकलता। कबीर कहते हैं कि वही योगी तो असल योगी है जो नवखण्ड पृथिवी को भिक्षा में माँग लेता है। ज्ञान ही उसका कन्था है। ध्यान की सुई से 'शब्द' के तागे से वह उसकी रचना करता है। पञ्चतत्त्व के सन्धान में वह निकल पड़ता है गुरु के रास्ते। काया की धुनी रमाकर वह दृष्टि-अग्नि जला रखता है 'दया है उसकी खड़ाऊँ—सब योगों का सार राम-नाम' ही उसकी काया है, वही उसका प्राण है। जिसने जीवन में उनकी कृपा पायी है वही सत्य की घोषणा कर जाता है—

नव खंड की प्रथमी माँगै सो जोगी जगसारा।
खिंथा ग्यान ध्यान करि सूई सबद ताग मथि घालै।
पंच तत्व को करि मिरणानी गुरुके मारग चालै।
दया फाहुरी काया करि धूई दृष्टि की अग्नि जलावै।
सम जोग तन राम नाम है जिसका पिंड पराना।
कहु कबीर जे फिरवा धारै देइ सचा निसाना ॥

(परि० पद १४६)

'वही तो जोगी है जिसका सहज भाव है, अखण्ड प्रेम की भिक्षा ही जिसका उपजीव्य है। अनाहत शब्द ही जिसका सिङ्गानाद है। जिसके न तो काम-क्रोध हैं और न विषयवाद' इत्यादि—

सो योगी जाके सहज भाइ। अकल प्रीति की भीख खाइ ॥
सबद अनाहद सींगी नाद। काम क्रोध विषिया न बाद ॥

इत्यादि (पद ३७७)

ऐसा आत्मानन्द योगी ही महारस पान करके अमृतरस सम्भोग करता है—

आत्मा अनन्दी जोगी। पीवै महारस अमृत भोगी॥ इत्यादि (पद २०४)

योग की यह परिपूर्ण दृष्टि जब आती है, तो फिर संसार के इस मिट्टी घर में मन नहीं रहना चाहता। उस समय श्री हरि के साथ युक्त होकर रहने की ही व्याकुलता दिखायी देती है—

इब न रहूँ माटी के घर मैं। इब मैं जाइ रहूँ मिली हरि मैं॥

इत्यादि (पद २७३)

सारे योग का मूलगत अर्थ और उसकी अन्तिम परिणति भगवान् के साथ प्रेम-मिलन में है। जिस कबीर ने सर्व धर्मों का समन्वय करना चाहा है, उनसे क्या हम किसी साम्प्रदायिक साधना की आशा कर सकते हैं? कबीर की महादृष्टि में सभी साधनाएँ एकत्र हुई हैं। बाघ और बकरी को एक घाट बही पानी पिला सकता है, जिसमें सामर्थ्य है। कबीर की साधना का माहात्म्य तभी समझ में आता है, जब हम हिन्दू और मुसलमान साधना को एकत्र सङ्गत देखते हैं। उन्होंने योग और भक्ति को परस्पर से आसक्त किया है। यह बात, किन्तु, ठीक है, कि कबीर के निकट ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति सभी साधनाएँ नदियों के समान हैं। सब साधनाओं का अवसान हुआ है भगवत्प्रेम के समुद्र में।

—श्री आचार्य क्षिति मोहन सेन के लेख, कल्याण, गोरखपुर वर्ष १०, संख्या १, अगस्त १९३५ से साभार।

- प्रस्तुत पुस्तक की महत्ता, जटिलता को सबके लिए ग्राह्य बनाने में ही निहित है। साधु-साधक और लेखक के त्रिगुणात्मक समन्वय के कारण योग के विषय में यह पहली पुस्तक है जिसे सभी लोग पढ़-समझ सकते हैं।

- आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री अल्पवय में ही कबीरपंथ में दीक्षित हो गये थे। प्रसिद्ध योगी और अतिलौकिक सिद्धियों से सम्पन्न संत आचार्य श्री रामविलास दास साहब की शिष्यता में रहने का सौभाग्य इन्हें मिला था और उनके आत्मीय डॉ० सम्पूर्णानद इत्यादि राजनेताओं को निकट से समझने का अवसर भी मिलता रहा। यह स्वाभाविक है कि आचार्य गंगाशरण जी शास्त्री में एक साधक, संत और समकालीन सामाजिकता का सुन्दर समन्वय हुआ।

- अध्ययन और साधना को समानान्तर महत्व देते हुए कवि, लेखक शास्त्री जी ने भारतीय साधु-समाज में अपनी निश्चित पहचान बना ली है। विद्या, विनय और दृढ़ निश्चय की मूर्ति शास्त्री जी सम्प्रति कबीरचौरा मठ के आचार्य हैं और मठ के व्यवस्थापक भी हैं।

- कबीर साहित्य के विख्यात साहित्यकारों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को २१,००० हजार का अनुदान देकर 'कबीर शोध वृत्ति' की स्थायी व्यवस्था करायी। यह सब आचार्य महन्त अमृत साहब की प्रेरणा और शास्त्रीजी के ही श्रम का प्रताप है कि आज कबीरचौरा मठ सम्पूर्ण भारत और विदेशों में सर्वाधिक जागरूक और प्रगतिशील साधु-संस्थान समझा जाने लगा है।

प्राच्यविद्यासंशोधनालयग्रन्थमाला–११५

श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्यविरचितराजयोगभाष्यसहिता

मण्डलब्राह्मणोपनिषत्

भावप्रकाशसहिता

योगतारावली च

संपादकः

विद्वान्. एन्. एस्. वेङ्कटनाथाचार्यः

सीनियर् रिसर्च् असिस्टेण्ट्

प्राच्यविद्यासंशोधनालयः

मैसूरु

प्राच्यविद्यासंशोधनालयः

मैसूरु विश्वविद्यानिलयः

मैसूरु

प्राच्यविद्यासंशोधनालयग्रन्थमाला-११५

श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्यविरचितराजयोगभाष्यसहिता

मण्डलब्राह्मणोपनिषत्

भावप्रकाशसहिता

यो ग ता रा व ली च

संपादकः

विद्वान्. एन्. एस्. वेङ्कटनाथाचार्यः

सीनियर् रिसर्च् असिस्टेण्ट्

प्राच्यविद्यासंशोधनालयः

मैसूरु

प्राच्यविद्यासंशोधनालयः

मैसूरु विश्वविद्यानिलयः

मैसूरु

मण्डलब्राह्मणोपनिषत्

MAṆḌALABRĀHMAṆOPANIṢAD

Oriental Research Institute Series 115

Mandalabrahmanopanishad

WITH

RAJAYOGABHASHYA OF SRI SHANKARACHARYA

AND

YOGATARAVALI OF SRI SHANKARACHARYA

WITH

BHAVAPRAKASHA

Critically Edited by

Vidvan N. S. VENKATANATHACHARYA

Senior Research Assistant

Oriental Research Institute, Mysore.

ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE

UNIVERSITY OF MYSORE

MYSORE

1970

प्राच्यविद्यासंशोधनालयग्रन्थमाला-११५

श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्यविरचितराजयोगभाष्यसहिता

मण्डलब्राह्मणोपनिषत्

भावप्रकाशसहिता

यो ग ता रा व ली च

संपादकः

विद्वान्. एन्. एस्. वेङ्कटनाथाचार्यः

सीनियर् रिसर्च् असिस्टेण्ट्

प्राच्यविद्यासंशोधनालयः

मैसूरु

प्राच्यविद्यासंशोधनालयः

मैसूरु विश्वविद्यानिलयः

मैसूरु

१९७०

PREFACE

The *Maṇḍalabrāhmaṇopaniṣad* professedly belongs to one of the Śākhās of the Śukla-Yajur-veda and treats of what is called Rája-Yoga, that method of attaining a direct knowledge of Brahman whose process consists in the psychological development of mind by concentration and meditation upon certain aspects of the Supreme Entity in man at their respective centres of manifestation. Along with the text is given a sort of commentary treating of the same subject in the same order, sometimes repeating the original verbatim and at other times adding some explanatory matter, and said to have been written by Śrī Śaṅkarācārya. In one of the MSS. the colophon at the end of the first section of the so-called Bhāṣya runs as follows :—

इति श्रीसदानन्दावधूतशिष्यविरचिते विजृम्भितयोगशास्त्रे प्रथमप्रकरणं समाप्तम्.

Similar colophons giving the name of the same author are found with necessary changes at the end of several other sections of the Rāja-Yoga-Bhāṣya. In other MSS. Śri Śaṅkarācārya is mentioned in the colophons as the author of the commentary. But the Rāja-Yoga-Bhāṣya so differs in its style and language from his genuine bhāṣyas on the Upaniṣadas, the Śārīraka-Sūtras and the *Bhagavadgītā* and the philosophy embodied in the Rāja-Yoga-Bāṣya so differs in some important details from that taught in the bhāṣyas referred to, that it is hard to belive that he is really the author of the Rāja-Yoga-Bhāṣya. It is more likely that the other person mentioned as a disciple of Sadānandāvadhūta has written the commentary.

Though this Upaniṣad cannot be allowed to occupy the same rank in the Vedic literature as some other Upaniṣads which are often referred to by Sri Śaṅkarācarya and other eminent writers on Vedāntic philosophy in their genuine works, the teaching therein embodied is not the less authoritative on that account. As tradition has it, a full knowledge of such practices as are taught in the Upaniṣad is as a rule

imparted by a *Guru* to his disciple orally and by means of secret initiations and is hardly ever committed to writing. It is only in extreme cases that such occult teachings are allowed to see the light of the day. They are, moreover, not easy of verification by ordinary methods of investigation. Under these circumstances one would naturally hesitate to subject writings embodying mystic teachings of this class to ordinary canons of criticism. It is often in a most incomplete form that such teachings are published and committed to writing; and as they pass from hand to hand among the uninitiated, they are often distorted beyond recognition. Thus the MSS. of the Upaniṣad and the Bhāṣya abound in errors of various kinds. The present edition, prepared from a careful collation of several MSS., is tolerably correct.

26/8/99. A. M.

PREFACE TO THIRD REVISED EDITION

The *Maṇḍalabrāhmaṇopaniṣad* relates to one of the *Śākhās* of the *Śukla Yajurveda* and deals with *Rājayoga. Ādhāra, Svādhiṣṭhāna, Maṇipūra, Anāhata, Viṣuddhi, Ājñā* and *Sahasrāra* are the seven *cakras* (stages) through which one, well initiated and trained in yoga, is supposed to concentrate one's attention on the Brahman for worship. Variety of yoga is depicted in the *Sūtra* and *Bhāṣya* stages. As stated in the *Bhagavadgitā*- "स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ।" (4-2) interest in yogic occultism is fast dwindling. But the Oriental Research Institute is there to protect the ancient lore from being lost of. Hence the third revised edition of this work.

The Upaniṣad has a commentary called *Rājayogabhāṣya*, attributed to Ādi-Śaṅkarācārya. As stated by the esteemed Editor Sri A. Mahadeva Sastri in the Preface to the II Edition, the authorship of this work should have to be attributed to one Sadānandāvadhūta and not to the famous Śrī Śaṅkarācārya whatever the tradition is. The colophon in one of the manuscripts supports the guess. The practice attributing everything philosophical to Śrī Śaṅkara and everything literary to Kālidāsa has come down from time immemorial. The style of this work betrays the myth.

The commentary, *Rājayogabhāṣya* is an elaborate one but does not explain the text word by word. It deals with all the principles of Yogaśāstra and clearly exposits the fundamentals of Rājayoga. As a concise compendium of the cult, this book will help the votaries that will always continue to practice yoga in our pious motherland.

Vidwan Shri N. S. Venkatanathacharya, Senior Research Assistant, Oriental Research Institute, Mysore, has taken great pains in bringing out this revised edition.

The text of the two earlier editions of this work was of confusing nature in some places due to incorrect readings. This defect has been completely remedied in the present edition by carefully selecting suitable readings from a few

more manuscripts of the work acquired for the Library of this Institute. The technicalities of the subject have been kept in view while selecting the readings.

Another important feature of the present edition is that it contains the *Yogatārāvḷi* of Śrī Śaṅkarācārya, which lucidly describes *Amanaskayoga* which closely agrees with the *Rājayoga*, within simple paraphrase.

Carefully considering the gist of this *Śāstra*, more reliable readings have been selected from among several versions and suitable critical notes wherever necessary have also been given. The critical acumen shown in the Introduction in kannada and Sanskrit by the author as also several useful appendixes to the workhave enhanced the value of this important edition.

Thus, the present revised edition of *Maṇḍalabrāhmaṇopaniṣad* has many important feature and therefore, we believe that it will be of more use to the scholars.

Oriental Research Institute
Mysore.
4th July 1970

G. MARULASIDDAIAH
Director

ಮುನ್ನುಡಿ

[ಯೋಗವಿದ್ಯಾಪ್ರಸ್ಥಾನದ ಸುಸಂಕ್ಷಿಪ್ತ ಪರಿಚಯ]

ಉಪನಿಷತ್ಸಾಹಿತ್ಯದ ಉಗಮ

ಪ್ರಾಚೀನಕಾಲದಿಂದ ಸೂರ್ಯನ ಉದಯಾಸ್ತಗಳಂತೆ ಜಾಗೃತ ಮಾನವನ ಮೇಲೆ ದಿನದಿನವೂ ನವೋನವವಾದ ಸೊಬಗನ್ನು ಬೀರುತ್ತಾ, ದಿವ್ಯಸಂದೇಶಗಳನ್ನೂ ಹಿಂಬದಿಯ ದೈವದ ಕರೆಯನ್ನೂ ಇವನ ಕಿವಿ ಮುಟ್ಟಿಸಿ, ಇವನನ್ನು ದಿವ್ಯಧಾಮದೆಡೆಗೆ ತಲುಪಿಸಲು ಹೊರಬಂದ ಭಾರತೀಯಸಾಹಿತ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ಪವಿತ್ರವಾದ ಉತ್ತಮಸಾಹಿತ್ಯವೇ ಉಪನಿಷತ್ತೆಂದು ಕರೆಯಲ್ಪಡುತ್ತಿದೆ. ಇದು ಪ್ರಪಂಚಹಿತೈಷಿಗಳಾದ ಜ್ಞಾನಿಗಳ ಹೃದಯಾಂತರಾಳದಿಂದ ಉಗಮಿಸಿ ಬಂದದ್ದು, ಮತ್ತು ಅವರ ಅನುಭವದ ಪರೀವಾಹ ರೂಪವೂ ಆಗಿರುವುದು.

ಉಪನಿಷತ್ತಿನ ಮತ್ತು ಅದರ ವಿಸ್ತಾರರೂಪವಾದ ಎಲ್ಲ ಶಾಸ್ತ್ರಗಳ ಸಾರ

ಎಲ್ಲ ಉಪನಿಷತ್ತುಗಳ ನಿರ್ದಿಷ್ಟವಾದ ಧ್ಯೇಯವೂ ಜೀವದೈವಗಳ ಯೋಗವೊಂದೇ. ಮಾನವನ ನಿಜವಾದ ಹಂಬಲವೂ ಇದೇ ಆಗಿದ್ದರೂ ಬೆನ್ನುಹತ್ತಿದ ಭೇತಾಳದಂತೆ ಅನಿವಾರ್ಯವಾದ ನಾನಾವಿಷಯಪಾಶಗಳು ಇವನ ಪಾಲಿಗೆ ಗಂಟುಬಿದ್ದಿದ್ದರಿಂದ, ಉಪಾಯವಾಗಿ ಇವುಗಳ ವಿಯೋಗವನ್ನು ಸಾಧಿಸಿಕೊಳ್ಳದೇ ಆತ್ಮಯೋಗದ ಸುಖವನ್ನು ಇವನು ಕಾಣಲಾರದಂತಾಯಿತು. ಈ ಯೋಗವಿಯೋಗಗಳ ಹೋರಾಟ ಮತ್ತು ಯೋಗಸಿದ್ಧಿಗಳೇ ಎಲ್ಲ ಉಪನಿಷತ್ತು ಶಾಸ್ತ್ರ ವಿದ್ಯೆಗಳ ವಿಸ್ತಾರ. ಎಲ್ಲ ಕರ್ಮಜ್ಞಾನಗಳ ಸಾರ.

"ಸರ್ವಂ ಹಿ ಶಾಸ್ತ್ರಂ ಇದಂ ಇನ್ದ್ರಿಯಜಯಃ |" (ಕೌಟಿಲ್ಯ)

"ಏಷ ಧರ್ಮಃ ಪರಃ ಪುಂಸಾಂ ಯದ್ಯೋಗೇನಾತ್ಮದರ್ಶನಮ್ !" (ಸ್ಮೃತಿ)

ವಾದಗ್ರಂಥಗಳು

ಹೀಗೆ ಆತ್ಮಸಿದ್ಧಿಗಾಗಿ ಸಾಗುತ್ತಿರುವ ವಿದ್ಯಾಪರಂಪರೆಯ ಮಧ್ಯದಲ್ಲಿ ಕೇವಲ ಬುದ್ಧಿಗೆ ಸಂಬಂಧಪಟ್ಟಂತೆ ಕೆಲವು ದುಷ್ಟಶಕ್ತಿಗಳು ತಲೆಯೆತ್ತಿ ಬುದ್ಧಿಪಟಲದಿಂದ ಸತ್ಯಾಂಶವನ್ನು ಮರೆಮಾಡಲು ತೊಡಗಿದಾಗ, ಹಿತೈಷಿಗಳಾದ ಹಿರಿಯರನೇಕರು ತಮ್ಮ ತಮ್ಮ ಮತಿಯ ಬೆಳವಣಿಗೆಗೆ ತಕ್ಕಂತೆ ಯೋಧರಾಗಿ ನಿಂತು ತಾರ್ಕಿಕ ವಾದವಿವಾದಗಳ ಮೂಲಕ ನಿಜಾಂಶವನ್ನು ಉಳಿಸಲು ಪ್ರಯತ್ನಪಟ್ಟರು. ಇದೆಲ್ಲವೂ ಕಾಲವಿಶೇಷದಲ್ಲಿ ಮತಸಿದ್ಧಾಂತಗಳೆಂಬ ಹೆಸರಿನಲ್ಲಿ ಅನಂತಗ್ರಂಥರೂಪವಾಗಿ ಬೆಳೆದು ಮತ್ತಷ್ಟು ಗೊಂದಲಕ್ಕೇ ಕಾರಣವಾಗಿದ್ದೂ ಉಂಟು. ಅಂತಹ ಗ್ರಂಥಪರಂಪರೆಯೂ ಸಹ ಇಂದಿನ ವೈಜ್ಞಾನಿಕಯುಗಕ್ಕೆ ಹೊರೆಯಾಗಿ ತನ್ನ ಗತಿಯನ್ನು ಮುಗಿಸಿಕೊಂಡಿದೆ.

ಇಂದಿನ ಸಾಹಿತ್ಯ ಹೇಗಿರಬೇಕು ?

ಇನ್ನು ಇಂದಿನ ಜಾಗೃತ ಜನವು ಮತ್ತೆ ಎದುರುನೋಡಬೇಕಾದುದು ಹಿಂದಿನಂತೆಯೇ ವೈಜ್ಞಾನಿಕವಾದ ಉತ್ತಮಸಾಹಿತ್ಯವನ್ನು. ಆ ಸಾಹಿತ್ಯವು ಜೀವನವನ್ನು ಹಸನಾಗಿ ಮಾಡುವ ಸಾಧನೆಯ ಬೆಂಬಲವಾಗಿರುವ ಬುದ್ಧಿಗೆ ಉತ್ತಮ ಸ್ಫೂರ್ತಿದಾಯಕವಾಗಿರಬೇಕು. ಪರಿಶೋಧನೆಯಲ್ಲಿ ತೂರಿಹೋಗಬಾರದು, ಸತ್ಯಾಂಶವನ್ನು ಪ್ರತಿಬಿಂಬಿಸಬೇಕು, ಮಾನವನ ಮನಸ್ಸನ್ನು ನೆಲೆಸಿಲ್ಲಿಸಬೇಕು.

ಆನ್ವೀಕ್ಷಿಕಿಯೇ ಇಂದಿನ ಉತ್ತಮ ಸಾಹಿತ್ಯ

ಇಂತಹ ಸಾಹಿತ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ಇಂದು ಜನಪ್ರಿಯತೆಯನ್ನೂ ವೈಜ್ಞಾನಿಕತೆಯನ್ನೂ ಪ್ರಾಚೀನತೆಯನ್ನೂ ಉಳಿಸಿಕೊಂಡು ಉತ್ತಮಸ್ಥಾನ ಗಳಿಸಿರುವುದು ಆನ್ವೀಕ್ಷಿಕಿ. ಸ್ಥೂಲ ಸೂಕ್ಷ್ಮ ಮತ್ತು ಪರ ದೃಷ್ಟಿಗಳಿಂದ ಗಮನಿಸಿದವರು ಇದನ್ನು 'ಲೋಕಾಯತ ಸಾಂಖ್ಯ ಯೋಗ' ಎಂದು ಮೂರಾಗಿ ವಿಂಗಡಿಸಿದ್ದಾರೆ. ಇಲ್ಲಿ ಕೌಟಿಲ್ಯನ ಮಾತು ಹೀಗಿದೆ:

"ಸಾಂಖ್ಯಂ ಯೋಗೋ ಲೋಕಾಯತಂ ಚೇತ್ಯಾನ್ವೀಕ್ಷಿಕೀ "

"ಪ್ರದೀಪಃ ಸರ್ವವಿದ್ಯಾನಾಂ ಉಪಾಯಃ ಸರ್ವಕರ್ಮಣಾಮ್ ।
ಆಶ್ರಯಃ ಸರ್ವಧರ್ಮಾಣಾಂ ಶಶ್ವದಾನ್ವೀಕ್ಷಿಕೀ ಮತಾ||" ಎಂದು.

ಈ ಮೂರೂ ಕ್ರಮವಾಗಿ ಭೌತಿಕ ದೈವಿಕ ಆಧ್ಯಾತ್ಮಿಕ ತತ್ತ್ವವಿಜ್ಞಾನಗಳನ್ನು ಮನ ಮೆಚ್ಚುವ ರೀತಿಯಲ್ಲಿ ಹೃದ್ಯವಾಗಿ ಪ್ರತಿಪಾದಿಸುವುವು. ಈ ಆನ್ವೀಕ್ಷಿಕಿಯು ಉತ್ತಮ ಗುರುವಿನ ಮಾರ್ಗದರ್ಶನವನ್ನು ಪಡೆದು ಬಾಳಲು ಹೊರಡುವವನಿಗೆ ಹೊಂಗಿರಣದ ಕೈದೀವಿಗೆಯಾಗಿದೆ.

ಯೋಗವಿದ್ಯೆಯ ಆವಶ್ಯಕತೆ

ಇವರಲ್ಲೂ ಕೊನೆಯದಾದ ಯೋಗವಿದ್ಯೆಯು ವಿಶೇಷವಾಗಿ ಜೀವನವನ್ನು ಕೊನೆಯವರೆಗೂ ಹಿಂಬಾಲಿಸುತ್ತದೆ. ಸುಖಿಯಾಗಿಯೂ ಆತ್ಮವಂತನಾಗಿಯೂ ಬಾಳಲು ಪೂರ್ಣವಾಗಿ ಸಹಕರಿಸುತ್ತದೆ. "ಮನ ಏವ ಮನುಷ್ಯಾಣಾಂ ಕಾರಣಂ ಬಂಧ-ಮೋಕ್ಷಯೋಃ" ಎಂಬಂತೆ ತ್ರಿಕರಣಗಳಲ್ಲಿಯೂ ಮನಸ್ಸೇ ಎಲ್ಲವಿಧದ ಶ್ರೇಯಃ ಪ್ರೇಯಸ್ಸುಗಳ ಮುಖ್ಯಕಾರಣವಾಗಿರುವುದರಿಂದ ಮನೋಮಲವನ್ನು ಸೀಗಲಾಡಿಸಿ ಶುಚಿಮಾಡುವ ಶಕ್ತಿಯು ಯೋಗವಿದ್ಯೆಗಲ್ಲದೇ ಇನ್ನಾವುದಕ್ಕೂ ಇಲ್ಲ.

ಮನಸ್ಸು ಬುದ್ಧಿ ಅಹಂಕಾರ ಚಿತ್ತ ಎಂಬ ನಾಲ್ಕು ಅವಸ್ಥೆಯನ್ನೂ ಮನಸ್ಸೇ ಹೊಂದುತ್ತದೆ. ಇವುಗಳಲ್ಲಿ ಆಲೋಚನಾತ್ಮಕವಾದ ಕೆಲಸ ಮನಸ್ಸಿನದು. ಇದು ಹೃದಯಸ್ಥಾನದಲ್ಲಿದೆ. ಆಲೋಚಿತವಾದ ಅಂಶವನ್ನು ನಿರ್ಧರಿಸುವುದು ಬುದ್ಧಿ. ಇದು ಹೃದಯಸ್ಥಾನದ ಸ್ವಲ್ಪ ಮೇಲ್ಭಾಗದಲ್ಲಿ ಮೂಡುವುದಾಗಿದೆ. ನಾನು ಎಂಬ ಜ್ಞಾನ

ವನ್ನು ಉಂಟುಮಾಡುವುದು ಅಹಂಕಾರ. ಇದು ಭ್ರೂಮಧ್ಯದ ಕೆಳಭಾಗದಲ್ಲಿ ಮೂಡುವುದು. ಭ್ರೂಯುಗದ ಮೇಲ್ಭಾಗದಲ್ಲಿರುವ ಚಿತ್ತವೆಂಬುದೇ ಭಗವತ್ಸಾಕ್ಷಾತ್ಕಾರಕ್ಕೆ ಯೋಗ್ಯವಾದ ವಸ್ತು. ಜಪಾಕುಸುಮದ ರಕ್ತಿಮೆಯು ಸ್ಫಟಿಕದಲ್ಲಿ ಸಂಕ್ರಮಿಸುವಂತೆ ಆತ್ಮವಸ್ತು ಈ ಚಿತ್ತದಲ್ಲಿ ಪ್ರತಿಫಲಿಸುವಂತಾದಾಗ ತಾನೆ "ತ್ವಾಂ ಚಿನ್ತಯರ್ತ ತ್ವನ್ಮಯತಾಂ ಪ್ರಪನ್ನಃ" ಎನ್ನುವಂತೆ ಜೀವನವು ಆತ್ಮಮಯವಾಗಿ ಆಗುವುದು. ಪ್ರಾಣಾದಿಗಳಿಗೆ ಹೇಗೆ ಉಪಾಧಿಭೇದದಿಂದಲೂ ಕ್ರಿಯಾಭೇದದಿಂದಲೂ ಭಿನ್ನಭಿನ್ನವಾದ ವೃತ್ತಿಗಳೂ ಹೆಸರುಗಳೂ ಇರುವುವೋ, ಹಾಗೆಯೇ ಮನಸ್ಸಿಗೂ ವೃತ್ತಿಭೇದದಿಂದ ಈ ಕ್ರಿಯೆಗಳೂ ಹೆಸರುಗಳೂ ಬಂದಿವೆ. ಅಹಂಕಾರಾದಿರೂಪದಲ್ಲಿ ಪರಿಣಾಮವನ್ನು ಹೊಂದದಂತೆ ಈ ಚಿತ್ತವನ್ನು ತಡೆದರೆ, ಆಗ ಮಾತ್ರ ಯೋಗಾರಂಭ. ಇದನ್ನೇ "ಯೋಗಃ ಚಿತವೃತ್ತಿನಿರೋಧಃ" ಎಂದು ಪತಂಜಲಿಯು ಅಪ್ಪಣೆಕೊಡಿಸಿರುವರು.

"ಮನೋಽನ್ತಃಕರಣಂ, ಸರ್ವಾಃ ವೃತ್ತಿಭೇದೇನ ತದ್ವಿದಾಃ ।
ಮನೋಬುದ್ಧಿರಹಙ್ಕಾರಃ ಚಿತ್ತಂ, ತತ್ತು ಪ್ರಸಾಧ್ಯತೇ ॥ (ಸ್ಮೃತಿ)

ರಾಜಯೋಗಭಾಷ್ಯದಲ್ಲಿ ಐದು ಅನ್ತಃಕರಣಗಳೆಂದು ಹೇಳಿ ಐದನೆಯ ಅನ್ತಃಕರಣವೇ ಜ್ಞಾತೃವಾದ ಪುರುಷನೆಂದು ಹೇಳಿದೆ. ಒಟ್ಟಿನಲ್ಲಿ ಹೇಗಾದರೂ ಮನಸ್ಸಿನ ಲಯಪರ್ಯನ್ತವಾದ ಸಂಸ್ಕಾರವೇ ಎಲ್ಲಕ್ಕೂ ಮೂಲವೆಂಬುದರಲ್ಲಿ ಸಂದೇಹವಿಲ್ಲ. ಇದಕ್ಕೆ ಯೋಗವಿದ್ಯೆಯೇ ಬೇಕು. ಇದು ಈಗಾಗಲೇ ಎಷ್ಟೋ ಜನರ ಮನವರಿಕೆಯಾಗಿರುವ ವಿಷಯವಾಗಿದೆ.

ಪ್ರಕೃತ ಗ್ರಂಥಗಳು

ಈ ಅಂಶವನ್ನು ಯಥಾವತ್ತಾಗಿ ಚಿತ್ರಿಸುವ ಯೋಗೋಪನಿಷತ್ತುಗಳಲ್ಲೊಂದಾದ ಮಂಡಲಬ್ರಾಹ್ಮಣೋಪನಿಷತ್ತನ್ನೂ, ಅಂತೆಯೇ ಅದರ ಭಾವವನ್ನು ವಿವರಿಸುವ ರಾಜಯೋಗಭಾಷ್ಯವನ್ನೂ, ಇವುಗಳ ಅನುಭವಸಾರವಾದ ಸವ್ಯಾಖ್ಯ ಯೋಗತಾರಾವಳಿಯನ್ನೂ ಇಲ್ಲಿ ಪ್ರಕಟಿಸಲಾಗಿದೆ.

ಯೋಗಪರಂಪರೆ

"ಸ ಕಾಲೇನೇಹ ಮಹತಾ ಯೋಗೋ ನಷ್ಟಃ ಪರಂತಪ !"

ಎಂಬ ಗೀತೆಯ ವಾಣಿಯಂತೆ, ಸಾಂಪ್ರದಾಯಿಕ ಯೊಗಾಭ್ಯಾಸಪರಂಪರೆಯು ನಿರ್ದಿಷ್ಟವಾದ ರೀತಿಯಲ್ಲಿ ಕಣ್ಮರೆಯಾಗಿರುವಂತೆ ಕಂಡುಬಂದರೂ, ಅದರ ವಿಚಾರಧಾರೆಯು ಮಾತ್ರ ಅನುಸ್ಯೂತವಾಗಿ ಬರುತ್ತಿದೆ. ಯೋಗವಿದ್ಯೆಯು ತರ್ಕದಂತೆ ಬುದ್ಧಿಗೆ ಮಾತ್ರ ವಿಷಯವಾದ ಶಾಸ್ತ್ರವಲ್ಲ. ಇದೊಂದು ಅನುಭವಶಾಸ್ತ್ರ. ಆದ್ದರಿಂದಲೇ ಇದು ಇತರ ಗ್ರಂಥಗಳಂತೆ ಮಿತಿಮೀರಿ ಬೆಳೆಯಲಿಲ್ಲ.

ಮುಖ್ಯಯೋಗಗಳು ಮತ್ತು ಅವುಗಳ ಧ್ಯೇಯ

ಪ್ರಕೃತಗ್ರಂಥದ ಮತ್ತು ಗುರುಕೃಪೆಯಿಂದಲೇ ಲಭ್ಯವಾದ ಈ ಯೋಗ ವಿದ್ಯೆಯ ಸಾರವನ್ನು ಅತಿಸಂಕ್ಷಿಪ್ತವಾಗಿ ಈ ರೀತಿ ಚಿತ್ರಿಸಬಹುದು :—

ಔಪನಿಷದ ಪೌರಾಣಿಕ ಮತ್ತು ಪಾತಂಜಲಯೋಗಗಳ ಮಾರ್ಗಪ್ರತಿಪಾದನೆಯ ಬಗೆಯು ಕಾಲ ದೇಶ ಅಧಿಕಾರಿಗಳಿಗೆ ತಕ್ಕಂತೆ ಬೇರೆಬೇರೆಯಾಗಿದ್ದರೂ ಪರಮಧ್ಯೇಯವು ಮಾತ್ರ ಒಂದೇ ಆಗಿದೆ. ಅಂತೆಯೇ ಈ ಎಲ್ಲರಿಗೂ ಸಮಮತವಾದ ಮನ್ತ್ರ-ಲಯ-ಹಠ-ಮತ್ತು ರಾಜಯೋಗಗಳೆಂಬ ನಾಲ್ಕು ಪ್ರಧಾನಯೋಗಗಳಿಗೂ ಧ್ಯೇಯವಾದ ಪ್ರಾಣಾಪಾನಯೋಜನೆಯೆಂಬ ಅದ್ಭುತತತ್ತ್ವವೂ ಸಮವೇ ಆಗಿದೆ.

"ಪ್ರಾಣಾಪಾನಸಮಾಯೋಗಃ ಜ್ಞೇಯಂ ಯೋಗಚತುಷ್ಟಯಮ್ ।" (ಯೋ. ಶಿ. 137)

ನಾಲ್ಕುಯೋಗಗಳ ಸ್ವರೂಪ

ಹಕಾರಸಕಾರಾತ್ಮಕವಾದ ಶ್ವಾಸೋಚ್ಛ್ವಾಸರೂಪದಲ್ಲಿ ಜೀವನು ಅನಿವಾರ್ಯವಾಗಿ ಜಪಿಸುತ್ತಿರುವ ಹಂಸಮಂತ್ರವನ್ನು ವಿಪರೀತವಾಗಿ ಸೋಹಂರೂಪದಲ್ಲಿ ಜಪವಾಗುವಂತೆ ಸಾಧಿಸಿ ಪ್ರಾಣಾಪಾನಗಳ ಯೋಗವನ್ನು ಹೊಂದಿಸುವುದು ಮಂತ್ರಯೋಗ. ಆತ್ಮನಲ್ಲಿ ಚಿತ್ತಲಯ ಮಾಡಿಸುವುದೇ ಲಯಯೋಗ. ಸೂರ್ಯಚಂದ್ರರನ್ನು ಒಂದುಗೂಡಿಸುವುದು ಹಠಯೋಗ.

"ಹಂಸಹಂಸೇತಿ ಮಂತ್ರೋಽಯಂ ಸರ್ವಜೀವೈಶ್ಚ ಜಪ್ಯತೇ ।
ಗುರುವಾಕ್ಯಾತ್ ಸುಷುಮ್ನಾಯಾಂ ವಿಪರೀತೋ ಭವೇದ್ಯದಾ ।
ಸೋಽಹಂ ಸೋಽಹಮಿತಿ ಯಃ ಸ್ಯಾತ್ ಮನ್ತ್ರಯೋಗಃ ಸ ಉಚ್ಯತೇ ।"
"ಪವನಃ ಸ್ಥೈರ್ಯಮಾಯಾತಿ ಲಯಯೋಗೋದಯೇ ಸತಿ ।"
"ಸೂರ್ಯಾಚಂದ್ರಮಸೋರೈಕ್ಯಂ ಹಠ ಇತ್ಯಭಿಧೀಯತೇ ।" (ಯೋ. ಶಿ. 135)

ಸಾಂಗ ಹಠ-ರಾಜಯೋಗಗಳ ಹೊಂದಾಣಿಕೆ

ಈ ಹಠಯೋಗಕ್ಕೆ ಯಮಾದ್ಯಷ್ಟಾಂಗಗಳಲ್ಲದೇ ಇನ್ನೂ- ಮಹಾಮುದ್ರೆ, ಮಹಾಬಂಧ, ಮಹಾವೇಧ, ಖೇಚರಿ, ಜಾಲಂಧರ, ಉಡ್ಯಾಣ, ಮೂಲಬಂಧ, ಪ್ರಣವಾನುಸಂಧಾನ, ಸಿದ್ಧಾಂತಶ್ರವಣ, ವಜ್ರೋಳಿ, ಅಮರೋಳಿ, ಸಹಜೋಳಿ, ಎಂಬ ಹನ್ನೆರಡು ಅಂಗಗಳೂ ಆರು ಕ್ರಿಯೆಗಳೂ ಸಹ ಬೇಕಾಗುತ್ತವೆ. ನಾಲ್ಕನೆಯದಾದ ರಾಜಯೋಗವನ್ನು ಈ ಹಠಯೋಗದ ಮೂಲಕವೂ ಸಂಪಾದಿಸಬಹುದು. ಸ್ವತಂತ್ರವಾಗಿಯೂ ಸಾಧಿಸಬಹುದು. ಅಣಿಮಾದ್ಯಷ್ಟಸಿದ್ಧಿಗಳನ್ನೂ ಇದರ ಮೂಲಕ ಪಡೆಯಬಹುದು.

ಸಿದ್ಧಿಗಳ ಪರಿಚಯ

ವೈಜ್ಞಾನಿಕವಾದ ಮನೋಜಯ ವಾಯುಜಯಾದಿಗಳಿಂದ ಪಡೆಯಬಹುದಾದ ಸಿದ್ಧಿಗಳನ್ನು ಕೆಲವೆಡೆ

"ಅಣಿಮಾ ಮಹಿಮಾ ಚೈವ ಗರಿಮಾ ಲಘಿಮಾ ತಥಾ ।
ಪ್ರಾಪ್ತಿಃ ಪ್ರಾಕಾಮ್ಯಂ ಈಶತ್ವಂ ವಶಿತ್ವಂ ಚಾಷ್ಟಸಿದ್ಧಯಃ ॥"

ಎಂದು ಎಂಟು ವಿಧವಾಗಿಯೂ, ಇನ್ನು ಕೆಲವೆಡೆ—

"ಅಣಿಮಾ ಲಘಿಮಾ ಪ್ರಾಪ್ತಿಃ ಪ್ರಾಕಾಮ್ಯಂ ಮಹಿಮಾ ತಥಾ ।
ವಶಿತ್ವಂ ಗರಿಮೇಶಿತ್ವೇ ತಥಾ ಕಾಮಾವಸಾಯಿತಾ ।
ದೂರಶ್ರವಣಮೇವಾಲಂ ಪರಕಾಯಪ್ರವೇಶನಮ್ ।
ಮನೋಯಾಯಿತ್ವಮೇವೇತಿ ಸರ್ವಜ್ಞತ್ವಂ ಅಭೀಪ್ಸಿತಮ್ ।
ವಹ್ನಿಸ್ತಂಭೋ ಜಲಸ್ತಂಭಃ ಚಿರಜೀವಿತ್ವಮೇವ ಚ ।
ವಾಯುಸ್ತಂಭಃ ಕ್ಷುತ್ಪಿಪಾಸಾನಿದ್ರಾಸ್ತಂಭನಮೇವ ಚ ।
ಕಾಯವ್ಯೂಹಶ್ಚ ವಾಕ್‌ಸಿದ್ಧಿಃ ಮೃತಾನಯನಂ ಈಪ್ಸಿತಮ್ ।
ಸೃಷ್ಟಿಸಂಹಾರಕರ್ತೃತ್ವಂ ಪ್ರಾಣಾಕರ್ಷಣಮೇವ ಚ ।
ಪ್ರಾಣಾನಾಂ ಚ ಪ್ರಧಾನಂ ಚ ಲೋಭಾದೀನಾಂ ಚ ಸ್ತಂಭನಮ್ ।
ಇಂದ್ರಿಯಾಣಾಂ ಸ್ತಂಭನಂ ಚ ಬುದ್ಧಿಸ್ತಂಭನಮೇವ ಚ ।
ಕಲ್ಪವೃಕ್ಷತ್ವಸತ್ತ್ವಾನುಸನ್ಧಾನೇ ಹ್ಯಮರತ್ವಕಮ್ ॥"

ಎಂದು ಮೂವತ್ತಮೂರು ವಿಧವಾಗಿಯೂ ತಿಳಿಸಿದೆ. ಪಾತಂಜಲಯೋಗಸೂತ್ರದಲ್ಲಿ ಮೊದಲು ಇಪ್ಪತ್ತೊಂಭತ್ತುಸಿದ್ಧಿಗಳನ್ನೂ, ನಂತರ "ಜನ್ಮೌಷಧಿಮನ್ತ್ರತಪಃಸಮಾಧಿಜಾಃ ಸಿದ್ಧಯಃ" ಎಂದು ಹೇಳಿ, ಅನಂತ ವಿಧವಾದ ಸಿದ್ಧಿಗಳನ್ನೂ ತಿಳಿಸಲಾಗಿದೆ. ಇದೆಲ್ಲವೂ ಚಾಚೂ ತಪ್ಪದೇ ನಿಜವಾಗಿ ಯೋಗಧಾರಣೆಯಿಂದ ಪಡೆಯಬಹುವಾದ ಅಂಶಗಳೇ ಆಗಿವೆ.

ಸಿದ್ಧಿಗಳ ತ್ಯಾಜ್ಯತೆ

ಆದರೆ ಆತ್ಮಯಾಥಾತ್ಮ್ಯಜ್ಞಾನವನ್ನು ಹೊಂದಿ, ಪರತತ್ತ್ವಸಾಕ್ಷಾತ್ಕಾರವನ್ನು ಪಡೆದು, ಜೀವನ್ಮುಕ್ತಿಯನ್ನೂ ಈಶ್ವರಭಾವವನ್ನೂ ಪಡೆಯಬೇಕೆಂಬ ಆಸೆಯುಳ್ಳವನು ಈ ಯಾವ ಸಿದ್ಧಿಗೂ ಮನಸೋಲಬಾರದು.

"ಯಾ ಇಮಾಃ ಸಿದ್ಧಯಃ ಪ್ರೋಕ್ತಾಃ ಹಠಾದಾಗನ್ತುಕಾ ಅಪಿ ।
ಮತ್ಸಾಯುಜ್ಯದಶಾಪ್ರಾಪ್ತೌ ಬಾಧಿಕಾಃ ನ ತು ಸಾಧಿಕಾಃ ॥" (ಸ್ಮೃತಿ)

ರಾಜಯೋಗಪದಾರ್ಥ

ವಿರಾಡ್ರೂಪನಾದ ಆತ್ಮನಿಗೆ ನೇರವಾಗಿ ಸಂಬಂಧಪಟ್ಟ ಶ್ರೇಷ್ಠಯೋಗವಾದ್ದರಿಂದ ಈ ನಾಲ್ಕನೆಯ ಯೋಗಕ್ಕೆ ರಾಜಯೋಗವೆಂಬ ಹೆಸರು ಬಂದಿದೆ.

"ರಾಜಯೋಗೋ ನಾಮ ರಾಜ್ಞಃ ಉಪಯುಕ್ತೋ ಯೋಗಃ | ಯೋಗಾನಾಂ ರಾಜಾ ಇತಿ ರಾಜಯೋಗಃ | ಅಯಂ ನಿರಾಯಾಸೇನ ಮೋಕ್ಷರೂಪಪರಮಪುರುಷಾರ್ಥಪ್ರದಃ ||"

(ಶು. 4)

ಈ ಪದದ ಅಂತರಾರ್ಥವನ್ನು "ರಜಸೋ ರೇತಸೋ ಯೋಗಾತ್ ರಾಜಯೋಗ ಇತೀರಿತಃ" ಎಂದು ತಿಳಿಸಿದೆ. ಅಂದರೆ-ಮಾನವನ ಶರೀರದ ತಾತ್ತ್ವಿಕಸ್ಥಾನವಿಶೇಷದಲ್ಲಿರುವ ರಜೋ ರೇತಸ್ಸುಗಳನ್ನು ಮುದ್ರಾವಿಶೇಷದ ಮೂಲಕ ಒಂದುಗೂಡಿಸುವುದೆಂದರ್ಥ. ಇದೇ ಶಿವಶಕ್ತಿಯೋಗ ಅಥವಾ ಪ್ರಕೃತಿಪುರುಷಯೋಗವೆನಿಸುವುದು.

ಇದಕ್ಕೆ ಸಾಧಕವಾದ ಮುಖ್ಯಾಂಶಗಳು

ಇದು ಕೈಗೂಡಬೇಕಾದರೆ,

"ನವಚಕ್ರಂ ಷಡಾಧಾರಂ ತ್ರಿಲಕ್ಷ್ಯಂ ವ್ಯೋಮಪಂಚಕಮ್ ||"

ಎಂದು ಹೇಳಿರುವ ಅಂಶಗಳು ಶಾರೀರರಹಸ್ಯಜ್ಞಾನದೊಂದಿಗೆ ಮನದಟ್ಟಾಗಿರಬೇಕು.

ಇತರ ಯೋಗಗಳು ಮತ್ತು ಮಹಾಯೋಗ

ಇನ್ನು ಈ ನಾಲ್ಕು ಯೋಗಗಳಿಗಿಂತಲೂ ಬೇರೆಯಾಗಿ-ತಾರಕಯೋಗ, ಕಾಲ ವಂಚನೋಪಾಯಯೋಗ, ಕಾಯದಾರ್ಢ್ಯಾದಿಸಿದ್ಧಿಯೋಗ, ಸಂಪುಟಯೋಗ, ವೇಧಕ ಯೋಗ, ಹಂಸಯೋಗ, ಸಮಾಧಿಯೋಗ, ಸುಷುಮ್ನಾಯೋಗ, ಕುಣ್ಡಲಿನೀಯೋಗ, ಮುಂತಾದ ಅನೇಕಯೋಗಗಳು ಶ್ರುತಿಪ್ರತಿಪಾದ್ಯವಾಗಿವೆ. ಆದರೆ ಅವೆಲ್ಲವೂ ಈ ನಾಲ್ಕರಲ್ಲೇ ಅಡಕವಾಗಿವೆ. ಈ ನಾಲ್ಕನ್ನೂ ಒಟ್ಟುಗೂಡಿಸಿ ಸಾಧಿಸುವ ಯೋಗಕ್ಕೆ ಮಹಾಯೋಗವೆಂದು ಹೆಸರು.

" ಏಕ ಏವ ಚತುರ್ಧಾಯಂ ಮಹಾಯೋಗೋಽಭಿಧೀಯತೇ ||" (ಯೋ. 129)

ಯೋಗದ ಭೂಮಿಕಾವಸ್ಥೆಗಳು

ಈ ಯೋಗದ ಭೂಮಿಕಾವಸ್ಥೆಗಳು ನಾಲ್ಕು—ಆರಂಭ, ಘಟ, ಪರಿಚಯ, ನಿಷ್ಪತ್ತಿ ಎಂದು. ಚಿತ್ತವು ಬಾಹ್ಯವಿಷಯಗಳನ್ನು ತ್ಯಜಿಸಿ ಅನ್ತರ್ಮುಖವಾದ ಕಾರ್ಯ ಗಳಲ್ಲಿ ತೊಡಗುವುದು ಆರಂಭಾವಸ್ಥೆ. ಕೇವಲ ಕುಂಭಕದಲ್ಲಿದ್ದು ವಾಯುವಿನಿಂದ ಸುಷುಮ್ನಾದ್ವಾರವನ್ನು ಭೇದಿಸುವಂತೆ ಮಾಡುವ ಸ್ಥಿತಿ ಘಟಾವಸ್ಥೆ. ವಾಯುವನ್ನು ದೃಢ್ಮನಃಪ್ರಾಣಾಗ್ನಿಗಳೊಡನೆ ಸುಷುಮ್ನಾನ್ತರದಲ್ಲಿ ಸ್ಥಿರೀಕರಿಸಿ ಇಡುವ ಸ್ಥಿತಿ ಪರಿಚಯಾ

ವಸ್ಥೆ. ಪರಮಾತ್ಮನ ದರ್ಶನಸ್ಥಿತಿಯೇ ನಿಷ್ಪತ್ತ್ಯವಸ್ಥೆ. ಇವೆಲ್ಲವೂ ತನ್ನಲ್ಲಿ ಮೂಡು ತ್ತಿದ್ದರೆ ಆಗಮಾತ್ರ ಯೋಗಸಾಧನೆಯು ಸರಿಯಾದ ಹಾದಿಯಲ್ಲಿ ಸಾಗುತ್ತಿದೆಯೆಂದು ತಿಳಿಯಬಹುದು.

ಯೋಗವನ್ನು ಸಾಧಿಸಲು ಬೇಕಾದ ಮನೋಭೇದ

ತ್ರಿಗುಣಾತ್ಮಕವಾದ ಚಿತ್ತಭೂಮಿಯು ಕ್ಷಿಪ್ತ ಮೂಢ ವಿಕ್ಷಿಪ್ತ ಏಕಾಗ್ರ ನಿರುದ್ಧ ಎಂದು ಐದು ವಿಧವಾಗಿದೆ. ವಿಷಯದಲ್ಲೇ ಸದಾ ಅಂಟಿಕೊಂಡಿರುವುದು ಕ್ಷಿಪ್ತ. ಆಲಸ್ಯಮಯವಾದ ಸ್ಥಿತಿಯುಳ್ಳದ್ದು ಮೂಢ. ಚಾಂಚಲ್ಯಮಯವಾದದ್ದು ವಿಕ್ಷಿಪ್ತ. ಈ ಮೂರೂ ಯೋಗಕ್ಕೆ ಉಪಯೋಗವಿಲ್ಲ. ಎಲ್ಲಾದರೂ ಒಂದು ಜಾಗದಲ್ಲಿ ನೆಲೆನಿಲ್ಲಿಸಿಕೊಳ್ಳಲು ಯೋಗ್ಯವಾಗಿರುವ ಪಕ್ಷೇ ಅದು ಏಕಾಗ್ರ. ವಿಷಯಜಾಲ ದಿಂದಲೇ ಮನಸ್ಸನ್ನು ತೆಗೆದು ತನ್ನಲ್ಲೇ ತನ್ನನೆಲೆಯಲ್ಲೇ ಇರಿಸಿಕೊಳ್ಳಲು ಸಮರ್ಥ ವಾಗಿರುವ ಪಕ್ಷೇ ಅದು ನಿರುದ್ಧ. ಈ ಎರಡೂ ಯೋಗಾಧಿಕಾರವನ್ನು ಸೂಚಿಸುತ್ತದೆ. ಇದರಿಂದ ಯೋಗ್ಯನು ವಂಚಿತನಾಗಬಾರದು.

ಯೋಗಾಧಿಕಾರಿ

ಮಾನವನು ತನಗಿರುವ ಭವಬಂಧನವನ್ನು ತಪ್ಪಿಸಿಕೊಂಡು ಆತ್ಮಸಾಮ್ರಾಜ್ಯ ವನ್ನು ಹೊಂದಬೇಕಾದರೆ ಅವನ ಮೊಟ್ಟಮೊದಲಿನ ಕರ್ತವ್ಯವು ಯೋಗಾಭ್ಯಾಸವಾಗಿದೆ. ಶಾಸ್ತ್ರದಲ್ಲಿ ದೃಢವಿಶ್ವಾಸವನ್ನಿಟ್ಟು ದೃಢಾಭ್ಯಾಸದಿಂದಲೂ ಅನನ್ಯಭಕ್ತಿಯಿಂದಲೂ ಇದನ್ನು ಸಾಧಿಸಬೇಕಾಗಿದೆ. ಶಾಸ್ತ್ರವನ್ನು ತನ್ನ ಮಟ್ಟಕ್ಕಿಳಿಯದೇ ಶಾಸ್ತ್ರವಲ್ಲಿರುವ ಜ್ಞಾನದಮಟ್ಟಕ್ಕೆ ತಾನೇರಿ ಅದರ ತಿರುಳನ್ನು ಸವಿಯಬೇಕೆನ್ನುವ ಅನ್ತಃಪ್ರವೃತ್ತಿಯುಳ್ಳ, ಮತ್ತು ಶಾನ್ತನೂ ನಿಧಾನಿಯೂ ಧೀರನೂ ಆಗಿರುವ ಆಲಸ್ಯವಿಲ್ಲದ ಎಲ್ಲ ಮಾನವನೂ ಇದಕ್ಕೆ ಅಧಿಕಾರಿಯಾಗಿರುವನು.

ಯೋಗಲಾಭಕ್ಕೆ ಬೇಕಾದ ಸಹಾಯಸಂಪತ್ತು

ಈ ಯೋಗವು ಲಭಿಸಬೇಕಾದರೆ ಚಿತ್ತವು ಮುಂದುವರಿಯಬಾರದು, ಹಿಂದು ವರಿಯಬೇಕು. ಶಾರೀರಶಾಸ್ತ್ರರಹಸ್ಯವನ್ನರಿತ ಪ್ರಾಣಜಯವನ್ನು ಮಾಡಿದ ಗುರುವಿನ ಉಪದೇಶದಿಂದಲೂ, ಸಂಸ್ಕಾರ ಬಲದಿಂದಲೂ ಶಾಸ್ತ್ರಗಳ ಸಹಾಯದಿಂದಲೂ ನಿರನ್ತರ ಸಾಧನಾಬಲದಿಂದಲೂ ಈ ಯೋಗದ ರಹಸ್ಯವನ್ನು ಮನದಟ್ಟುಮಾಡಿಕೊಳ್ಳಬೇಕು.

ಕರ್ಮಜ್ಞಾನಗಳ ಸಮನ್ವಯ

ಕರ್ಮಜ್ಞಾನಗಳ ಸ್ವರೂಪ ಮತ್ತು ಪರಸ್ಪರಸಂಬಂಧಗಳನ್ನು ಚೆನ್ನಾಗಿ ಅರಿತು ಜ್ಞಾನವನ್ನೂ ಯೋಗವನ್ನೂ ಜೊತೆಯಲ್ಲೇ ಅಭ್ಯಾಸಮಾಡಬೇಕು.

**

"ಹತಂ ಜ್ಞಾನಂ ಕ್ರಿಯಾಹೀನಂ ಹತಂ ಅಜ್ಞಾನಿನಾಂ ಕ್ರಿಯಾ ।
ಅಪಶ್ಯನ್ನಂಧಕೋ ದಗ್ಧಃ ಪಶ್ಯನ್ನಪಿ ಚ ಪಂಗುಕಃ ॥"

ಕುರುಡ ಕುಂಟ ಇಬ್ಬರೂ ಕಾಡುಗಿಚ್ಚಿನಿಂದ ತಪ್ಪಿಸಿಕೊಳ್ಳಲಾರರು ಎಂಬುದನ್ನೂ,

"ಏಕಂ ಸಾಙ್ಖ್ಯಂ ಚ ಯೋಗಂ ಚ ಯಃ ಪಶ್ಯತಿ ಸ ಪಶ್ಯತಿ ।"

ಎಂಬುದನ್ನೂ ಇಲ್ಲಿ ಮರೆಯಬಾರದು.

ಇನ್ನು ಬುದ್ಧಿಯಲ್ಲಿ ಬ್ರಹ್ಮಾಂಡ ಪಿಂಡಾಂಡಗಳ ಸಮನ್ವಯವೂ ಆಗಬೇಕು. ಇದನ್ನೇ

"ಆಗಮೇನಾನುಮಾನೇನ ಧ್ಯಾನಾಭ್ಯಾಸರಸೇನ ಚ ।
ತ್ರಿಧಾ ಪ್ರಕಲ್ಪಯನ್ ಪ್ರಜ್ಞಾಂ ಲಭತೇ ಯೋಗಮುತ್ತಮಮ್ ॥"

ಎಂದು ತಿಳಿಸಿದೆ.

ಸಾಂಖ್ಯ-ಯೋಗ-ವೇದಾಂತಗಳ ಸಮನ್ವಯ

ಶಾಸ್ತ್ರಗಳನ್ನು ಅದರದರ ಮರ್ಯಾದೆಯಲ್ಲೇ ಗಮನಿಸುವ ಪಕ್ಷೇ-ಸಾಂಖ್ಯಯೋಗ ವೇದಾಂತಗಳ ಬಗ್ಗೆ ಪರಸ್ಪರ ಭಿನ್ನತೆಗೆ ಅವಕಾಶವೇ ಇಲ್ಲವೆಂಬುದನ್ನು ತಿಳಿಯಬೇಕು. ಆತ್ಮನು ತಾನೇತಾನಾಗಿ ಭಗವಂತನ ಯೋಗದಲ್ಲಿದ್ದಾಗ ಯಾವ ತತ್ತ್ವಗಳ ಲೆಕ್ಕಕ್ಕೂ ಪ್ರಸಂಗವೇ ಇಲ್ಲ. ಸೃಷ್ಟಿಗೆ ಇಳಿದಾಗ ಮಾತ್ರ ಶೂನ್ಯದಿಂದ ಒಂದಕ್ಕೆ ಇಳಿದ ಹಾಗೆ. ಹೀಗಿಳಿದವನು ಅಲ್ಲಿಂದ ೨೪ ರವರೆಗೂ ತನ್ನ ಸಂಸಾರವನ್ನು ಬೆಳೆಸಿಕೊಳ್ಳುವನು. ಇದನ್ನು ಗುರ್ತಿಸಿ ಸಾಂಖ್ಯರು ಲೆಕ್ಕಮಾಡಿದರು. ಸೃಷ್ಟಿಯ ಕೊನೆಯಿಂದ ಮತ್ತೆಮೇಲಕ್ಕೆ ಏರಬೇಕಾದರೆ, ಅಂದರೆ ತನ್ನಧಾಮಕ್ಕೆ ತಾನು ಮತ್ತೆ ತಲಪಬೇಕಾದರೆ ಯಥಾಪ್ರಕಾರ ಸಾಂಖ್ಯಸೋಪಾನವೇ ಬೇಕು. ಹೀಗೆ ಏರಿದಂತೆಲ್ಲಾ ಒಂದೊಂದಾಗಿ ಕಳೆಯುತ್ತಾ ಬಂದರು. ಕೊನೆಗೆ ನಿಂತ ೧ ನೆಯವನೇ ಪುರುಷನೆಂದರು. "ಅಷ್ಟಾಚಕ್ರಾ ನವದ್ವಾರಾ ದೇವಾನಾಂ ಪೂರಯೋಧ್ಯಾ" ಎಂಬ ಪುರದಲ್ಲಿ ವಾಸಮಾಡಲು ನಿಂತವನೇ ಪುರುಷ. ಇವನನ್ನೇ ಮಹಾಭಾರತದಲ್ಲಿ 'ಅಣವಿಕ'ನೆಂದು ಕರೆದು ಅವನಿಗೆ ಕರ್ಮಾನುಸಾರವಾದ ಚಲನವಲನಗಳೆಲ್ಲವೂ ಉಂಟೆಂದು ತಿಳಿಸಿದೆ. ಈ ರೀತಿ ಸಾಂಖ್ಯವನ್ನು ಆಶ್ರಯಿಸಿ ೧ ರವರೆಗೆ ಬಂದಾಗ, ಯೋಗವು ಆ ಒಂದರಲ್ಲೂ ಒಂದನ್ನು ಕಳೆದು 'ಸೊನ್ನೆ' ಎಂದಿತು. ಇದೇ ಪರಮಯೋಗ.

"ಐಕ್ಯಂ ಜೀವಾತ್ಮನೋರಾಹುರ್ಯೋಗಂ ಯೋಗವಿಶಾರದಾಃ"

ಇದನ್ನೇ ದೃಷ್ಟಿಭೇದದಿಂದ-

"ಶಿವಾತ್ಮನೋರಭೇದೇನ ಪ್ರತಿಪತ್ತಿಂ ಪರೇ ವಿದುಃ ।
ಶಿವಶಕ್ತ್ಯಾತ್ಮಕಂ ಜ್ಞಾನಂ ಜಗುರಾಗಮವೇದಿನಃ ।
ಪುರಾಣಪುರುಷಸ್ಯಾನ್ಯೇ ಜ್ಞಾನಮಾಹುರ್ವಿಶಾರದಾಃ ॥"

ಎಂದೂ ತಿಳಿಸಿರುತ್ತಾರೆ.

ಹೀಗೆ ಭಗವಂತನಲ್ಲಿ ಲೀನನಾದ ಜೀವನು ಪ್ರತ್ಯೇಕವಾಗಿ ಕಾಣಿಸಿಕೊಳ್ಳಲು ಅವಕಾಶ ವಿಲ್ಲ. ಈ 'ಸೊನ್ನೆ'ಯಾಗಿ ತೋರುವವನೇ ಈಶ್ವರ. ಇದನ್ನೇ "ಕ್ಲೇಶಕರ್ಮವಿಪಾಕಾ ಶಯೈಃ ಅಪರಾಮೃಷ್ಟಃ ಈಶ್ವರಃ" ಎಂದು ಹೇಳಿತು. ಇದಕ್ಕೆ ಭಾಷ್ಯವನ್ನು ಬರೆದ ವ್ಯಾಸರೇ ಬ್ರಹ್ಮಸೂತ್ರವನ್ನು ಬರೆದು ಅದರಲ್ಲಿ "ಏತೇನ ಯೋಗಃ ಪ್ರತ್ಯುಕ್ತಃ" ಎಂದು ಹೇಳಿಬಿಟ್ಟರು. ಕಾರಣ-ಯೋಗವೆಲ್ಲ ತಪ್ಪೆಂದು ಅಲ್ಲ. ಬ್ರಹ್ಮವು ಉಪಾದಾನವೇ ನಿಮಿತ್ತವೇ ಇತ್ಯಾದಿ ಯಾದ ಬ್ರಹ್ಮನ ವಿಶೇಷಧರ್ಮಗಳನ್ನು ನಿರ್ಣಯಿಸಲು ಬ್ರಹ್ಮವಿದ್ಯೆಯೊಂದು ಸಿದ್ಧ ವಾಗಿರುವುದರಿಂದ, ಆ ಅಂಶದಲ್ಲಿ ಇವರು ತಲೆಹಾಕುವುದು ಬೇಡವೆಂದಿಷ್ಟುಮಾತ್ರ ಅಭಿ ಪ್ರಾಯದಿಂದ ಆ ರೀತಿ ಹೇಳಿದರು. ಭಗವಂತನು ಯೋಗೇಶ್ವರನೆಂಬ ವಿಷಯವನ್ನು ಮನದಟ್ಟುಮಾಡಿಕೊಳ್ಳಬೇಕು. ಹೀಗೆ ಎಲ್ಲವನ್ನೂ ಸಮನ್ವಯದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ನೋಡು ವವನೇ ಪಂಡಿತನೆಂದು ಗೀತೆಯು ಸಾರುತ್ತದೆ. ಔಪಾಧಿಕವಾಗಿ ಏನೇನು ಬಂದರೂ ಅವುಗಳ ಉಪಾಧಿಗಳೆಲ್ಲವನ್ನೂ ಮೂಲೆಗೊತ್ತರಿಸಿ ಅದರ ಶುದ್ಧರೂಪವನ್ನು ನೋಡುವ ವನೇ ಪಂಡಿತನೆಂದು ಹೇಳುವ ರೀತಿಯಲ್ಲಿ ಪಾಂಡಿತ್ಯವನ್ನು ಸಂಪಾದಿಸಿಕೊಳ್ಳಬೇಕು.

"ಅಚಿನ್ತ್ಯಾಃ ಖಲು ಯೇ ಭಾವಾಃ ನತಾಂಸ್ತರ್ಕೇಣ ಯೋಜಯೇತ್"

ಯೋಗವನ್ನು ಹಾಳುಮಾಡುವ ಅಂಶಗಳು

ಅಸಂಯಮ, ಅನಿಯತಾಹಾರ, ಆಲಸ್ಯ, ಧೂರ್ತಗೋಷ್ಠಿ, ಹಗಲುನಿದ್ರೆ, ರಾತ್ರಿಜಾಗರಣೆ, ಭಯ, ಇತ್ಯಾದಿಯಾದ ಪ್ರಕೃತಿಸಹಜವಾಗಿ ಒದಗುವ ಹಲವಾರು ಯೋಗವಿಘ್ನಗಳಿವೆ. ಇವುಗಳಿಂದ ಪಾರಾಗಬೇಕು. ತಾಪತ್ರಯ, ನವವಿಧವ್ಯವಹಾರ, ಷಟ್ಕೌಶಿಕ, ಷಡೂರ್ಮಿ, ಪಞ್ಚಕೋಶ, ಷಡ್ಭಾವವಿಕಾರ, ಅರಿಷಡ್ವರ್ಗ, ಷಡ್ಭ್ರಮೆ ಇವೆಲ್ಲವೂ ಇವನ ಯೋಗಸಾಧನೆಗೇ ಅಡ್ಡಿಯಾಗದಂತೆ ನೋಡಿಕೊಂಡು, ಯೋಗ ವಿಘ್ನಗಳ ಮೇಲೆ ಇವುಗಳನ್ನು ಪ್ರಯೋಗಿಸಿ ತನ್ನನ್ನು ಕಾಪಾಡಿಕೊಳ್ಳಲು ಸಮರ್ಥ ನಾಗಿರಬೇಕು.

ಯೋಗಾಂಗಗಳ ಪರಿಚಯ

ಇನ್ನು ಷಡಂಗ, ಅಷ್ಟಾಂಗ, ಪಂಚದಶಾಂಗಗಳಲ್ಲಿ ಯಥೋಚಿತ ಅಂಗಸಂಪತ್ತಿ ಇರಬೇಕು. ಆಸನ, ಪ್ರಾಣಾಯಾಮ, ಪ್ರತ್ಯಾಹಾರ, ಧಾರಣಾ, ಧ್ಯಾನ, ಸಮಾಧಿಗಳೆಂಬ ಆರಂಗಳೆಂದು ಕೆಲವರೂ; ಇದಕ್ಕೆ ಯಮ ಮತ್ತು ನಿಯಮಗಳನ್ನು ಸೇರಿಸಿಕೊಂಡು ಅಷ್ಟಾಂಗಗಳೆಂದು ಹಲವರೂ; ತ್ಯಾಗ, ಮೌನ, ದೇಶ, ಕಾಲ, ಮೂಲಬಂಧ, ದೇಹ ಸಾಮ್ಯ, ದೃಕ್‌ಸ್ಥಿತಿ ಎಂಬ ಮತ್ತೆ ಏಳನ್ನು ಸೇರಿಸಿಕೊಂಡು ಹದಿನೈದು ಅಂಗಗಳೆಂದು ಕೆಲವರೂ ಹೇಳುವರು. ಯಥೋಚಿತವಾದ ಯೋಗಾಂಗಾನುಷ್ಠಾನವು ಯೋಗಸಿದ್ಧಿಯ

ಸೌಧವನ್ನೇರಲು ಮೆಟ್ಟಿಲಾಗಿ, ಮನೋನೈರ್ಮಲ್ಯವನ್ನೂ ತತ್ತ್ವಗಳ ವಿಜ್ಞಾನ ಸ್ಫೂರ್ತಿಯನ್ನೂ ಉಂಟುಮಾಡುತ್ತದೆ.

ಯಮನಿಯಮಗಳು

ಇವುಗಳಲ್ಲಿ ಮೊದಲೆರಡು ಅಂಗಗಳಾದ ಯಮನಿಯಮಗಳ ಸ್ವರೂಪವು ಮಂಡಲಬ್ರಾಹ್ಮಣದಲ್ಲೂ ಶಾಂಡಿಲ್ಯೋಪನಿಷತ್ತಿನಲ್ಲೂ ಹೃದಯಂಗಮವಾಗಿ ನಿರೂಪಿಸಲ್ಪಟ್ಟಿವೆ.

ಮಂಡಲಬ್ರಾಹ್ಮಣವು— ಇವುಗಳನ್ನು ವಿವರಿಸುವಾಗ-ಶೀತೋಷ್ಣಾಹಾರನಿದ್ರೆಗಳ ಜಯ, ಯಾವಾಗಲೂ ನೆಮ್ಮದಿಯಾಗಿರುವುದು, ಚಿತ್ತಸ್ಥೈರ್ಯ ಮತ್ತು ಇಂದ್ರಿಯ ನಿಗ್ರಹಗಳೆಂಬ ನಾಲ್ಕುವಿಧ ಯಮಗಳೆಂದೂ; ಗುರುಭಕ್ತಿ, ಸತ್ಯಮಾರ್ಗದಲ್ಲಿ ಪ್ರೀತಿ, ತನ್ನ ಪಾಲಿಗೆ ಸಹಜವಾಗಿ ಬಂದ ಬದುಕನ್ನು ಉಪಯೋಗಿಸಿಕೊಳ್ಳುವುದು, ಅಷ್ಟರಿಂದಲೇ ಸಂತುಷ್ಟಿ, ಆದಷ್ಟು ನಿಃಸಂಗವಾಗಿ ಏಕಾಂತಪ್ರಿಯನಾಗಿರುವುದು, ಮನಸ್ಸನ್ನು ವಿಷಯದಲ್ಲಿ ನೆಡದಿರುವುದು, ಫಲನಿರೀಕ್ಷಣೆಯಿಲ್ಲದಿರುವುದು, ಮತ್ತು ವಿರಾಗತೆ ಎಂಬ ಒಂಭತ್ತು ವಿಧ ನಿಯಮಗಳೆಂದೂ ತಿಳಿಸುವುದು. ಆದರೆ ಶಾಂಡಿಲ್ಯವು ಅಹಿಂಸೆ-ಸತ್ಯ-ಅಸ್ತೇಯ-ಬ್ರಹ್ಮಚರ್ಯ-ದಯೆ-ಆರ್ಜವ - ಕ್ಷಮೆ - ಧೃತಿ-ಮಿತಾಹಾರ, ಮತ್ತು ಶೌಚಗಳೆಂಬ ಹತ್ತುವಿಧ ಯಮಗಳೆಂದೂ; ತಪಸ್ಸು, ಸಂತೋಷ-ಆಸ್ತಿಕ್ಯ-ದಾನ-ಈಶ್ವರಪೂಜನ-ಸಿದ್ಧಾಂತಶ್ರವಣ-ಹ್ರೀ-ಮತಿ-ಜಪ-ಮತ್ತು ವ್ರತಗಳೆಂಬ ಹತ್ತುವಿಧ ನಿಯಮಗಳೆಂದೂ ತಿಳಿಸುವುದು.

ಇವುಗಳಲ್ಲಿ-ಮನೋವಾಕ್ಕಾಯಗಳಿಂದ ಯಾವಾಗಲೂ ಯಾವ ಪ್ರಾಣಿಗೂ ಹಿಂಸೆಯನ್ನು ಕೊಡದಿರುವುದು ಅಹಿಂಸೆ. ಭೂತಹಿತವೂ ಯಥಾರ್ಥವೂ ಆದ ರೀತಿಯಲ್ಲಿ ನುಡಿಯುವುದು ಸತ್ಯ. ಕಂಡವರ ಬದುಕಿನಲ್ಲಿ ಸ್ಪೃಹೆಯನ್ನು ತೊರೆಯುವುದು ಅಸ್ತೇಯ. ಎಲ್ಲ ಅವಸ್ಥೆಯಲ್ಲೂ ಕಾಮಕ್ಕೆ ಬಲಿಯಾಗದಿರುವುದು ಬ್ರಹ್ಮಚರ್ಯ. ಎಲ್ಲಭೂತಗಳಿಗೂ ಅನುಗ್ರಹವನ್ನು ನೀಡುವುದು ದಯೆ. ಯೋಗ್ಯಜನರಲ್ಲಿ ಪ್ರವೃತ್ತಿಯನ್ನೂ ಅಯೋಗ್ಯರಲ್ಲಿ ನಿವೃತ್ತಿಯನ್ನೂ ಹೊಂದಿರುವ ಏಕಾಂತವಾದ ಚಿತ್ತವೃತ್ತಿ ಆರ್ಜವ. ಪ್ರಿಯಾಪ್ರಿಯಗಳನ್ನೂ ತಿರಸ್ಕಾರ ಪುರಸ್ಕಾರಗಳನ್ನೂ ಸಹಿಸಿಕೊಳ್ಳುವುದು ಕ್ಷಮೆ. ಧನ-ಬಂಧುಗಳ ಯೋಗವಿಯೋಗಗಳಲ್ಲಿ ಚಿತ್ತಸ್ಥೈರ್ಯ ಧೃತಿ. ಆಹಾರದ ಮುಕ್ಕಾಲುಪಾಲು ಮಾತ್ರ ಉಪಯೋಗಿಸುವುದು ಮಿತಾಹಾರ. ಯೋಗವಿದ್ಯೆಯಿಂದಲೂ ಜಲಮೃತ್ತಿಕೆಗಳಿಂದಲೂ ಒಳಹೊರಗಣ ಶುದ್ಧಿಯೇ ಶೌಚ. ವ್ರತಗಳಿಂದ ಶರೀರಶೋಷಣೆ ತಪಸ್ಸು. ದೊರೆತ ವಸ್ತುವಿನಿಂದ ತೃಪ್ತನಾಗುವುದು ಸಂತೋಷ. ಸನಾತನಧರ್ಮಗಳಲ್ಲಿ ನಂಬಿಕೆ ಆಸ್ತಿಕ್ಯ. ನ್ಯಾಯಾರ್ಜಿತ ಧನವನ್ನು ಶ್ರದ್ಧೆಯಿಂದ ಸದ್ವಿನಿಯೋಗಮಾಡುವುದು ದಾನ. ಯಥಾಶಕ್ತಿ ಪ್ರಸನ್ನ

ಮನಸ್ಸಿನಿಂದ ಹರಿಹರರ ಪೂಜೆ ಮಾಡುವುದು ಈಶ್ವರಪೂಜನ. ಸಚ್ಛಾಸ್ತ್ರಗಳವಿಚಾರ ಸಿದ್ಧಾಂತಶ್ರವಣ. ಕುತ್ಸಿತವಾದ ಕಾರ್ಯಗಳಲ್ಲಿ ನಾಚುವುದು ಹ್ರೀ. ಶಾಸ್ತ್ರೋಕ್ತ ಕರ್ಮಾಸಕ್ತಿ ಮತಿ. ಜ್ಞಾನಪ್ರದೀಪಕವಾದ ಮಂತ್ರಗಳನ್ನು ವಾಚಿಕ ಮತ್ತು ಮಾನಸಿಕವಾಗಿ ಅಭ್ಯಾಸಮಾಡುವುದು ಜಪ. ಜ್ಞಾನಿಗಳ ಶಾಸನಕ್ಕೆ ಒಳಪಟ್ಟಿರುವುದು ವ್ರತ. ಇವೆರಡೂ ಯೋಗಸಾಧನಗಳಷ್ಟೇ ಅಲ್ಲವೇ ಜನಸಾಮಾನ್ಯದಲ್ಲಿ ಸುಖಜೀವನವನ್ನೂ ಪರಸ್ಪರ ಸೌಹಾರ್ದವನ್ನೂ ಬೆಳೆಸಿಕೊಡುವುದರಿಂದ ಸಾಮಾನ್ಯಧರ್ಮಗಳ ಗುಂಪಿಗೂ ಸೇರುತ್ತವೆ.

ಆಸನ

ಅಷ್ಟಾಂಗಗಳಲ್ಲಿ ಮೂರನೆಯ ಮೆಟ್ಟಿಲೂ ಹಠಯೋಗದ ಷಡಂಗಗಳಲ್ಲಿ ಒಂದನೆಯ ಮೆಟ್ಟಿಲೂ ಆಗಿರುವುದು ಆಸನ. ಆಸನವೆಂದರೆ ಶಾರೀರಶಾಸ್ತ್ರನಿಷ್ಣಾತರ ದಿಗ್ದರ್ಶನದಿಂದ ತನ್ನಲ್ಲಿ ಆಗಬೇಕಾದ ಪರಿಣಾಮವನ್ನನುಸರಿಸಿ ಈ ಶರೀರದ ಒಳಗೂ ಹೊರಗೂ ದೃಙ್ಮನಃಪ್ರಾಣಾಗ್ನಿಗಳನ್ನು ಒಂದು ಸ್ಥಿತಿಯಲ್ಲಿರಿಸುವುದು. ಇದು ಸುಖಕರವಾಗಿಯೂ ಸ್ಥಿರವಾಗಿಯೂ ಇರಬೇಕು. ಇದರ ಬಗೆಗಳು ಅನಂತವಾಗಿವೆ.

"ಆಸನಾನಿ ಚ ತಾವಂತಿ ಯಾವತ್ಯೋ ಜೀವಜಾತಯಃ ।"

ಇವುಗಳಲ್ಲಿ ಎಲ್ಲರಿಗೂ ಹೊಂದಿಕೊಳ್ಳುವ ತಕ್ಕ ಆಸನವನ್ನು ಸುಖಾಸನವೆನ್ನುತ್ತಾರೆ.

"ಯೇನ ಕೇನ ಪ್ರಕಾರೇಣ ಸುಖಂ ಧಾರ್ಯಂ ಚ ಯದ್ಭವೇತ್ ।
ಸುಖಾಸನಂ ತದೇವ ಸ್ಯಾತ್ ಅಶಕ್ತಃ ತತ್ ಸಮಾಚರೇತ್ ॥"

ಹೀಗೆ ಶಾರೀರ ರಹಸ್ಯಗಳನ್ನೂ ರೋಗಪಾಪಗಳನ್ನೂ ಕಾಲದೇಶವರ್ತಮಾನಗಳನ್ನೂ ದೇಹದೇಶಗಳನ್ನೂ ನಿರ್ದಿಷ್ಟವಾಗಿ ಅರಿತು, ತಕ್ಕ ಸುಖಾಸನವನ್ನು ಕೈಗೊಂಡರೆ ಮಾತ್ರ, ಆರೋಗ್ಯ ಸ್ಥೈರ್ಯ ಮತ್ತು ಅಂಗಲಾಘವಗಳು ಉಂಟಾಗಿ ಒಳಹೊರಗಿನ ಪಾಪತಾಪಗಳು ಪರಿಹಾರವಾಗುತ್ತವೆ.

ಪ್ರಾಣಾಯಾಮ

ಪ್ರಾಣಾಯಾಮವೆಂದರೆ ಕೇವಲ ನಾಸಿಕಾಪೀಡನದಿಂದ ಉಸಿರನ್ನು ತಡೆಹಿಡಿಯುವುದಷ್ಟೇಅಲ್ಲ. ಹೀಗೆ ಮಾಡುವುದರಿಂದ ಬುದ್ಧಿಭ್ರಮಣೆಯೂ ಅನೇಕರೋಗೋತ್ಪತ್ತಿಯೂ ಸಂಭವಿಸಬಹುದೆಂದು ಶಾಸ್ತ್ರವು ಸಾರುತ್ತದೆ.

"ನಾಡೀನಾಮಾಶ್ರಯಃ ಪಿಂಡಃ ನಾಡ್ಯಃ ಪ್ರಾಣಸ್ಯ ಚಾಶ್ರಯಃ ।
ಜೀವಸ್ಯ ನಿಲಯಃ ಪ್ರಾಣಃ ಜೀವೋ ಹಂಸಸ್ಯ ಚಾಶ್ರಯಃ ॥
ಹಂಸಃ ಶಕ್ತೇರಧಿಷ್ಠಾನಂ ಚರಾಚರಮಿದಂ ಜಗತ್ ।
ನಿರ್ವಿಕಲ್ಪಃ ಪ್ರಸನ್ನಾತ್ಮಾ ಪ್ರಾಣಾಯಾಮಂ ಸಮಭ್ಯಸೇತ್ ॥"

ಇದರ ತಿರುಳನ್ನರಿತು, ನಾಡೀ ಮೊದಲಾದವುಗಳ ನೆಲೆ ಪರಸ್ಪರಸಂಬನ್ಧ ಮತ್ತು ವಿಕಾರಗಳನ್ನನುಸರಿಸಿ,

"ಸ್ಪರ್ಶಾನ್ ಕೃತ್ವಾ ಬಹಿರ್ಬಾಹ್ಯಾನ್ ಚಕ್ಷುಶ್ಚೈವಾನ್ತರೇ ಭ್ರುವೋಃ ।
ಪ್ರಾಣಾಪಾನೌ ಸಮೌ ಕೃತ್ವಾ ನಾಸಾಭ್ಯನ್ತರಚಾರಿಣೌ ॥
ಯತೇಂದ್ರಿಯಮನೋಬುದ್ಧಿಃ ಮುನಿಃ ಮೋಕ್ಷಪರಾಯಣಃ ॥"(ಗೀತೆ)

ಎಂದು ತಿಳಿಸಿರುವ ವಿಧಾನವಲ್ಲಿ ಪ್ರಾಣಾಯಾಮವನ್ನು ಅಭ್ಯಸಿಸಬೇಕು. ಇದರಿಂದ ಆಸನದ ಮುಂದಿನ ಹೆಜ್ಜೆಗೆ ತಕ್ಕಂತೆ ವೃಜ್ಮನಃಪ್ರಾಣಾಗ್ನಿಗಳು ಹಿಂತಿರುಗಲು ತೊಡಗಬೇಕಾಗಿದೆ.

ಪ್ರತ್ಯಾಹಾರ

ಇದರ ಮುಂದಿನ ಹೆಜ್ಜೆಯೇ ಪ್ರತ್ಯಾಹಾರ. ಬಹಿರ್ಮುಖವಾದ ಚಿತ್ತವನ್ನು ಒಳ ಮುಖವಾಗಿ ಸೆಳೆದುಕೊಂಡು ಅದರೊಡಗೂಡಿದ ತನ್ನ ಐಚ್ಛಿಕಾನೈಚ್ಛಿಕ ವ್ಯಾಪಾರ ಗಳನ್ನೂ ವಿಷಯೇಂದ್ರಿಯಗಳನ್ನೂ ಹತೋಟಿಯಲ್ಲಿಟ್ಟುಕೊಳ್ಳುವುದೇ ಪ್ರತ್ಯಾಹಾರ. ಇದೇ ಆತ್ಮಜ್ಯೋತಿಯನ್ನರಸಲು ಹೊರಡುವ ಸ್ಥಿತಿ. ಐದು ಬಗೆಯಾದ ಮಾರ್ಗಗಳಿಂದ ಹೊಂದಬಹುದಾದ ಇದು ಅನೇಕ ವಿಧಗಳಾಗಿವೆ. ಎಲ್ಲಕ್ಕೂ ಒಂದೇ ಗುರಿ.

ಮುಂದಿನ ಮೂರು ಅಂಗಗಳಿಗೂ ಸಂಯಮವೆಂದು ಹೆಸರು. ಇವು ಯೋಗ ಸಾಮ್ರಾಜ್ಯ ಸಿಂಹಾಸನದಲ್ಲೇ ಚಿತ್ರಿಸಿದ ಮೂರು ಸೋಪಾನಗಳಾಗಿವೆ.

ಧಾರಣೆ

ಬಾಹ್ಯವಿಷಯಗಳಲ್ಲಿ ಸವಿಯನ್ನು ಕಂಡ ಮನಸ್ಸಿಗೆ ವಿಷಯವೇ ಇಲ್ಲದಿದ್ದರೆ ಅದು ನಿಲ್ಲಲಾರದೆಂಬ ರಹಸ್ಯವನ್ನರಿತು, ಅದಕ್ಕೆ ಅನ್ತಃಪ್ರಪಂಚದಲ್ಲಿ ಯೋಗಸಾಧನೆಗೆ ತಕ್ಕ ವಿಷಯಗಳನ್ನು ಧರಿಸುವ ಯೋಗ್ಯತೆಯನ್ನು ಕೊಡುವುದೇ ಧಾರಣೆ. ಇದನ್ನೂ ಸಹ ಐದುಬಗೆಯಾಗಿ ವಿಂಗಡಿಸಬಹುದು. ಇದರಿಂದ ಆಂತರಾಳಿಕವಾಗಿ ದೂರಶ್ರವಣ ದೂರ ದೃಷ್ಟಿ ವಾಕ್ಸಿದ್ಧಿ ಮುಂತಾದ ಅನೇಕ ಸಿದ್ಧಿಗಳೂ ಲಭಿಸುವುವು. ಇಲ್ಲಿಗೇ ನಿಲ್ಲದೇ ಮುಂದುವರಿದರೆ, ಅದೇ ಚಿತ್ತಕ್ಕೆ ರೂಪಾರೂಪಗಳನ್ನೂ ಏಕಾಗ್ರತೆಯನ್ನೂ ತಂದು ಕೊಡುವ ಮುಂದಿನ ಸೋಪಾನವಾಗಿರುವುದೇ ಧ್ಯಾನ.

ಧ್ಯಾನ

ಈ ಧ್ಯಾನವು ಸಗುಣ ನಿರ್ಗುಣವೆಂದು ಎರಡುವಿಧ. ಸಗುಣವು ಸವಿಶೇಷ ಸಗರ್ಭ ಮೂರ್ತಿಧ್ಯಾನವೆಂಬ ವ್ಯವಹಾರಗಳಿಗೆ ವಿಷಯವಾಗುವುದು, ಇದು ಅನೇಕ ಸಿದ್ಧಿಗಳ ಮೂಲಕ ಜೀವನನ್ನು ಭಗವಂತನೆಡೆಗೆ ಒಯ್ಯಲು ಒಳ್ಳೆಯ ಸಾಧನೆಯಾಗಿರುವುದು.

ನಿರ್ಗುಣವು ನೇರವಾಗಿ ಸಮಾಧಿಸಿದ್ಧಿಗೆ ಕಾರಣವಾಗಿರುವುದು. ಈ ಧ್ಯಾನಕ್ಕೆ ಸುಷುಮ್ನೆಯಲ್ಲಿ ಪ್ರಾಣಗತಿಯನ್ನು ಮೂಡಿಸುವ ಹೃದಯವಿಜ್ಞಾನವಿರಬೇಕು.

ಸಮಾಧಿ

ಸಾಧಾರಣ ಜನರಿಗೆ ಅಲಭ್ಯವೂ, ಯೋಗಿಗಳಿಗೆ ಪರಮಧ್ಯೇಯವೂ ಆದ, ಕೊನೆಯ ಗದ್ದುಗೆಯೇ ಸಮಾಧಿ. ಪರಮಾತ್ಮನಲ್ಲಿ ಜೀವನ ಅನನ್ಯಭಾವನೆಯೇ ಸಮಾಧಿ. ಇದು ಸಂಪ್ರಜ್ಞಾತ ಅಸಂಪ್ರಜ್ಞಾತವೆಂದು ಇಬ್ಬಗೆಯಾಗಿದೆ. ಸಂಪ್ರಜ್ಞಾತಕ್ಕೆ ಸಬೀಜ ಸಾಲಂಬನ ಸವಿಕಲ್ಪ ಎಂದೂ, ಅಸಂಪ್ರಜ್ಞಾತಕ್ಕೆ ನಿರ್ಬೀಜ ನಿರಾಲಂಬ ನಿರ್ವಿಕಲ್ಪ ಎಂದೂ ನಾಮಾಂತರಗಳಿವೆ. ಸಂಪ್ರಜ್ಞಾತವು ಸವಿತರ್ಕ ಸವಿಚಾರ ಸಾನಂದ ಸಾಸ್ಮಿತ ಎಂದು ನಾಲ್ಕುಬಗೆಯಾಗಿ, ಕ್ರಮಶಃ ಮಧುಮತೀ ಮೊದಲಾದ ನಾಲ್ಕುವಿಧ ಸಿದ್ಧಿಯನ್ನುಂಟುಮಾಡುತ್ತವೆ. ಇದಲ್ಲದೇ ಇನ್ನೂ ಎಷ್ಟೋ ಬಗೆಯ ಸಮಾಧಿಗಳು ಶಾಸ್ತ್ರೋಕ್ತವಾಗಿವೆ. ಈ ಸಮಾಧಿಗಳನ್ನು ಹಿಂದೆ ವಿವರಿಸಿದ ಸಾಧನೆಗಳಿಂದಷ್ಟೇ ಅಲ್ಲದೇ, ಇನ್ನೂ ನಾನಾಉಪಾಯದಿಂದಲೂ ಹೊಂದಬಹುದು. ಉದಾಹರಣೆಗೆ—ಮೂಲಕುಂಡಲಿನಿಯನ್ನು ಪ್ರಾಣಜಯಾಭ್ಯಾಸದ ಮೂಲಕ ಸಹಸ್ರಾರಕ್ಕೆ ಹೊಂದಿಸುವುದರಿಂದಲೂ, ಗುರೂಕ್ತ ಧ್ಯಾನಗಳಿಂದಲೂ, ಸಹಜಕುಂಭಕದಿಂದಲೂ, ಆಯಾ ವಸ್ತು ತತ್ತ್ವಜ್ಞಾನದಿಂದಲೂ, ವೈಜ್ಞಾನಿಕವಿಚಾರಲಹರಿಯಿಂದಲೂ ನಾದಾನುಸಂಧಾನದಿಂದಲೂ, ಹಂಸಮಂತ್ರಜಪದಿಂದಲೂ, ನಿರ್ಗುಣಧ್ಯಾನದಿಂದಲೂ, ಉಚಿತವಾದ ಜನ್ಮೌಷಧಿಮಂತ್ರತಪಸ್ಸುಗಳಿಂದಲೂ ಭಗವದನನ್ಯಭಕ್ತಿಯಿಂದಲೂ ಸಹ ಇದನ್ನು ಹೊಂದಬಹುದು. ಈ ಸಮಾಧಿಯನ್ನು ಆತ್ಮದರ್ಶನವಾಗುವವರೆಗೆ ಬಿಡದೇ ಸಾಧನೆ ಮಾಡುತ್ತಿರಬೇಕು. ಹೀಗೆ ಸುಸಂಕ್ಷಿಪ್ತವಾಗಿ ಅಷ್ಟಾಂಗಗಳನ್ನು ನಿರೂಪಿಸಲಾಗಿದೆ.

ತ್ಯಾಗಾದಿ ಏಳು ಉಪಾಂಗಗಳು

ಇನ್ನೂ ಏಳು ಉಪಾಂಗಗಳನ್ನು ಸೇರಿಸಿ ಪಂಚದಶಾಂಗಗಳೆನ್ನುತ್ತಾರೆ. ಅವುಗಳಲ್ಲಿ ಪರಮಾತ್ಮನ ಧರ್ಮವನ್ನೇ ಬೆಳೆಸಲು ಬೇಕಾದ ರೀತಿಯಲ್ಲಿ ಎಲ್ಲವನ್ನೂ ತ್ಯಜಿಸುವುದೇ ತ್ಯಾಗ. ಮಾತಿಗೆ ನಿಲುಕದ ವಿಷಯದಲ್ಲಿ ಸಹಜವಾದ ವಾಕ್ಸಂಯಮವೇ ಮೌನ. ಅಪರಿಚ್ಛಿನ್ನವಾದ ದೇಶ ಕಾಲಗಳಲ್ಲಿ ತನ್ನ ನೆಲೆಯನ್ನು ಕಲ್ಪಿಸಿಕೊಳ್ಳುವುದು ದೇಶ ಕಾಲಗಳು. ಧಾರಣಾನುಗುಣವಾದ ಬಂಧವಿಶೇಷವೇ ಮೂಲಬಂಧ. ಧ್ಯಾನಮಂಗಳನಾದ ಗುರುವಿನ ದೇಹದೃಕ್ಕುಗಳೊಡನೆ ಸರ್ವಸಾಮ್ಯವನ್ನು ಹೊಂದಿರುವ ಸ್ಥಿತಿಯೇ ದೇಹಸಾಮ್ಯ ದೃಕ್‌ಸ್ಥಿತಿಗಳು. ಇವೆಲ್ಲವೂ ಸೂಕ್ಷ್ಮವಾಗಿ ಅಷ್ಟಾಂಗಗಳಲ್ಲೇ ಅಡಕವಾಗುತ್ತವೆ.

ಬಂಧ ಮುದ್ರಾದಿಗಳ ಪರಿಚಯ

ಇನ್ನು ಇದಲ್ಲದೇ ಮನ್ತ್ರಸಾಧನೆಗೆ ಮೂಲಬಂಧವೂ, ಭೂತಧಾರಣೆಗೆ ಉಡ್ಯಾಣ ಬಂಧವೂ, ಸಮಾಧಿಗೆ ಜಾಲಂಧರಬಂಧವೂ, ಸಹಕರಿಸುವುದರಿಂದ ಈ ಮೂರು ಬಂಧನ ಗಳನ್ನೂ; ಖೇಚರೀ ಷಣ್ಮುಖೀ ಶಾಂಭವೀ ಎಂಬ ಮೂರು ಮುದ್ರೆಗಳನ್ನೂ, ಪೂರ್ಣಿಮಾ ಅಮಾ ಪ್ರತಿಪತ್ ಎಂಬ ಮೂರು ದೃಷ್ಟಿಗಳನ್ನೂ, ಅನ್ತಃ ಬಹಿಃ ಮಧ್ಯವೆಂಬ ಮೂರು ಲಕ್ಷ್ಯಗಳನ್ನೂ, ಪೂರ್ವೋತ್ತರತಾರಕಗಳನ್ನೂ ಸ್ವಾಧೀನವಾಗಿ ತನ್ನಲ್ಲಿ ಮೂಡಿಸಿಕೊಳ್ಳಲು ಚತುರನಾಗಿರಬೇಕು. ಇಷ್ಟು ಅಂಶಗಳನ್ನೂ ಗಮನಿಸಿ ಸ್ಥಿರಚಿತ್ತನಾಗಿ ನೆಲೆಯ ಕಡೆ ಸಾಗಿದರೆ ಮಾತ್ರ ನಿಜವಾದ ಯೋಗಸಿದ್ಧಿ.

"ಯಸ್ಯ ದೇವೇ ಪರಾಭಕ್ತಿಃ ಯಥಾ ದೇವೇ ತಥಾ ಗುರೌ |
ತಸ್ಯೈತೇ ಕಥಿತಾ ಹ್ಯರ್ಥಾಃ ಪ್ರಕಾಶನ್ತೇ ಮಹಾತ್ಮನಃ ||"

ಮಂಡಲಬ್ರಾಹ್ಮಣೋಪನಿಷತ್ಪದಾರ್ಥ

ಹೀಗೆ ಪರಮಸಂಕ್ಷಿಪ್ತವಾಗಿ ಯೋಗವೃತ್ತವನ್ನು ಗಮನಿಸಿ, ಇನ್ನು ಪ್ರಕೃತ ಗ್ರಂಥದ ಕಡೆಗೆ ದೃಷ್ಟಿಯನ್ನು ಹರಿಸೋಣ. ಮೇಲ್ಕಂಡ ಅತಿರಹಸ್ಯವಾದ ವಿಷಯಗಳನ್ನೂ ಇದಕ್ಕೆ ಅಂಗವಾದ ಇನ್ನೂ ಅನೇಕ ವಿಷಯಗಳನ್ನೂ ಯಥೋಚಿತವಾಗಿ ನಿರೂಪಿಸುವುದು ಈ ಮಣ್ಡಲಬ್ರಾಹ್ಮಣೋಪನಿಷತ್ತು. ಬ್ರಹ್ಮವೆಂದರೆ ವೇದ ಅಥವಾ ಜ್ಞಾನ. ಅದರ ವಿವರಣರೂಪವಾದ ಭಾಗಕ್ಕೆ ಬ್ರಾಹ್ಮಣವೆಂದು ಹೆಸರು. ಯಾಜ್ಞವಲ್ಕ್ಯನೆಂಬ ಒಬ್ಬ ಉತ್ತಮಾಧಿಕಾರಿಯು, ಆದಿತ್ಯಮಣ್ಡಲಮಧ್ಯಸ್ಥನಾಗಿ ಜ್ಯೋತಿರ್ಮಯನೂ ಜ್ಞಾನ ಭಾಸ್ಕರನೂ ಆದ ಗುರುಮೂರ್ತಿಯೊಂದರ ಬಳಿ ಸಾಗಿ, ಆತ್ಮತತ್ತ್ವವನ್ನೇ ನೇರವಾಗಿ ಬಯಸಿದಾಗ, ಅವನಿಗೆ ಆ ಗುರುವು ಉಪದೇಶರೂಪವಾಗಿ ಧಾರೆಯೆರೆದ ಜ್ಞಾನವ್ಯಾಖ್ಯಾನವೇ ಇದಾಗಿರುವುದರಿಂದ ಇದಕ್ಕೆ ಮಂಡಲಬ್ರಾಹ್ಮಣೋಪನಿಷತ್ತೆಂಬ ಹೆಸರು ಬಂದಿದೆ, ಹಾಗೂ ಇದು ಅನ್ವರ್ಥವಾಗಿದೆ.

ಗ್ರಂಥದ ಮುಖ್ಯ ವಿಷಯಗಳು

ಇದರಲ್ಲಿ ಐದು ಬ್ರಾಹ್ಮಣಗಳಿವೆ. ಇವುಗಳಲ್ಲಿ ಕ್ರಮವಾಗಿ ರಾಜಯೋಗದ ಸೂಕ್ಷ್ಮಾಷ್ಟಾಂಗಗಳೂ, ಲಕ್ಷ್ಯತ್ರಯವೂ ಸಾಂಖ್ಯ ಮತ್ತು ಪೂರ್ವೋತ್ತರತಾರಕಗಳೂ, ವ್ಯೋಮಪಂಚಕವೂ, ವರ್ಣಿತವಾಗಿವೆ. ಸಂಕ್ಷಿಪ್ತವಾಗಿ ರಾಜಯೋಗವು-ಮೂರುವಿಧ ಸಾಂಖ್ಯ ತಾರಕ ಅಮನಸ್ಕವೆಂದು. ನಾಲ್ಕುವಿಧಯೋಗಿಗಳಲ್ಲಿ ಪ್ರಥಮಕಲ್ಪಕನೆಂಬ ಯೋಗಿಗೆ ಮನ್ತ್ರಯೋಗವೆಂದೂ, ಲಯ ಹಠ ಸಾಂಖ್ಯಗಳು ಮಧುಭೂಮಿಕಯೋಗಿ ಗೆಂದೂ, ಪ್ರಜ್ಞಾಜ್ಯೋತಿರ್ಯೋಗಿಗೆ ತಾರಕಯೋಗವೆಂದೂ, ಅತಿಕ್ರಾನ್ತಭಾವನೀಯ

ನೆಂಬ ಯೋಗಿಗೆ ಅಮನಸ್ಕಯೋಗವೆಂದೂ ಶಾಸ್ತ್ರಗಳು ಸಾರುತ್ತವೆ. (ಶಿವಯೋಗ ಪ್ರದೀಪಿಕೆ) ಇವುಗಳಲ್ಲಿ ರಾಜಯೋಗದ ಮೇಲ್ಸಂಡ ಮೂರು ಭೇದಗಳೂ ಇಲ್ಲಿ ವಿಸ್ತೃತ ವಾಗಿ ವರ್ಣಿಸಲ್ಪಟ್ಟು ಕೊನೆಗೆ ಉತ್ತರತಾರಕವಾದ ಅಮನಸ್ಕಯೋಗದ ವೈಭವವು ಹೃದಯಂಗಮವಾಗಿ ನಿರೂಪಿಸಲ್ಪಟ್ಟಿದೆ.

ಈ ಉಪನಿಷತ್ತಿನ ಅರ್ಥವನ್ನೇ ಸರಳವಾಗಿಯೂ ಸ್ಫುಟವಾಗಿಯೂ ಪ್ರಮಾಣಾ ನ್ತರಗಳ ಸಹಾಯದಿಂದಲೂ ಉಪಪಾದನೆಮಾಡುವುದು ರಾಜಯೋಗಭಾಷ್ಯ. ಇದನ್ನೇ ಹಿತಮಿತವಾಗಿ ಪದ್ಯರೂಪವಾಗಿ ಹೊರಹೊಮ್ಮಿಸಿರುವುದು ಯೋಗತಾರಾವಳಿ. ಇವೆರಡೂ ಶ್ರೀ ಭಗವತ್ಪಾದಶಙ್ಕರಾಚಾರ್ಯರಿಂದಲೇ ರಚಿತವಾದವೆಂದು ಪ್ರತೀತಿ ಇದೆ. ಸಿಕ್ಕಿದ ಒಂದು ಪ್ರತಿಯ ಭಾಗವನ್ನು ಬಿಟ್ಟು ಮಿಕ್ಕೆಲ್ಲ ಪ್ರತಿಗಳಲ್ಲಿಯೂ ಹೀಗೆಯೇ ಇದೆ. ಅನೇಕಕಾರಣಗಳಿಂದ ಇದು ಉಚಿತವೆಂದೇ ಕೆಲವರು ಭಾವಿಸುತ್ತಾರೆ.

ನಿಗಮನ

ಪ್ರಕೃತ ಇಲ್ಲಿ ಸಿಕ್ಕಿರುವ ಏಳೆಂಟು ಮೂಲಪ್ರತಿಗಳ ಸಹಾಯದಿಂದಲೂ, ಅನೇಕ ಯೋಗಗ್ರಂಥಗಳ ನೆರವಿನಿಂದಲೂ, ಈ ಯೋಗಭಾಷ್ಯ ತಾರಾವಳಿ ಗ್ರಂಥಗಳನ್ನು ಯಥಾಶಕ್ತಿ ಪರಿಶೋಧಿಸಿ, ಆವಶ್ಯಕವಾದ ಟಿಪ್ಪಣಿ ಮತ್ತು ಅನುಬಂಧಗಳೊಡನೆ ಸಂಸ್ಕರಿಸಿ ಬೆಳಕಿಗೆ ತರಲಾಗಿದೆ.

ಕೃತಜ್ಞತಾನಿವೇದನೆ

ಈ ಗ್ರಂಥದ ಸಂಪಾದನದಲ್ಲಿ ಎಲ್ಲವಿಧದಲ್ಲಿಯೂ ಸಲಹೆಗಳನ್ನಿತ್ತು ಸಹಕರಿಸಿ ಪ್ರೋತ್ಸಾಹಿಸಿದವರು-ನಮ್ಮ ಈ ಪ್ರಾಚ್ಯವಿದ್ಯಾ ಸಂಶೋಧನಾಲಯದ ಡೈರೆಕ್ಟರವರೂ, ಮೈಸೂರು ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯದ ಯು.ಜಿ.ಸಿ. ಸಂಸ್ಕೃತವಿಭಾಗದ ಮುಖ್ಯಸ್ಥರೂ ಹಾಗೂ ಪ್ರಾಧ್ಯಾಪಕರೂ ಆದ ಡಾ॰ ಜಿ. ಮರುಳಸಿದ್ಧಯ್ಯ, ಎಮ್. ಎ॰ ಪಿಹೆಚ್. ಡಿ. ಅವರು. ಇವರಲ್ಲಿ ನನ್ನ ಹಾರ್ದವಾದ ಕೃತಜ್ಞತೆಯನ್ನು ಸೂಚಿಸುವುದು ಇಲ್ಲಿ ನನ್ನ ಪ್ರಪ್ರಥಮ ಕರ್ತವ್ಯವಾಗಿದೆಯೆಂದು ಭಾವಿಸುತ್ತೇನೆ.

ಈ ಪುಟ್ಟ ಕೈದೀವಿಗೆಯು ಯೋಗಮಾರ್ಗದಲ್ಲಿ ಆಸಕ್ತಿಯುಳ್ಳ ಸಹೃದಯರೆಲ್ಲರಿಗೂ ಉತ್ತಮ ಸ್ಫೂರ್ತಿದಾಯಕವಾಗಲೆಂದು ಹಾರ್ದವಾಗಿ ಆಶಿಸಿ ವಿರಮಿಸುತ್ತೇನೆ.

ಇತಿ ಸಂಪಾದಕ

ಎನ್. ಎಸ್. ವಿ.

ಓಂ

“ಯದಾ ಪಂಚಾವತಿಷ್ಠನ್ತೇ ಜ್ಞಾನಾನಿ ಮನಸಾ ಸಹ ।
ಬುದ್ಧಿಶ್ಚ ನ ವಿಚೇಷ್ಟತಿ ತಾಮಾಹುಃ ಪರಮಾಂ ಗತಿಮ್ ॥
ತಾಂ ಯೋಗಮಿತಿ ಮನ್ಯನ್ತೇ ಸ್ಥಿರಾಂ ಇನ್ದ್ರಿಯಧಾರಣಾಮ್ ॥”

(ಕಠೋಪನಿಷತ್)

“ಯೋಽನ್ತಸ್ಸುಖಃ ಅನ್ತರಾರಾಮಃ
ತಥಾ ಅನ್ತರ್ಜ್ಯೋತಿರೇವ ಯಃ ।
ಸಃ ಯೋಗೀ ಬ್ರಹ್ಮನಿರ್ವಾಣಂ
ಅಚಿರೇಣಾಧಿಗಚ್ಛತಿ ॥”
“ತಸ್ಮಾತ್ ಯೋಗಾಯ ಯುಜ್ಯಸ್ವ
ಯೋಗಃ ಕರ್ಮಸು ಕೌಶಲಮ್ ॥

(ಭಗವದ್ಗೀತೆ)

“ಅಯಂ ತು ಪರಮೋ ಧರ್ಮಃ
ಯತ್ ಯೋಗೇನ ಆತ್ಮದರ್ಶನಮ್ ॥

(ಯಾಜ್ಞವಲ್ಕ್ಯ)

“ಶ್ರುತಾದ್ಧಿ ಪ್ರಜ್ಞಾ ಉಪಜಾಯತೇ ।
ಪ್ರಜ್ಞಯಾ ಯೋಗಃ ।
ಯೋಗಾತ್ ಆತ್ಮವತ್ತಾ ।
ಇತಿ ವಿದ್ಯಾಸಾಮರ್ಥ್ಯಮ್ ॥”

(ಕೌಟಿಲ್ಯ)

सुपरिष्कृत तृतीयमुद्रण प्रस्तावना

श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्यविरचित 'राजयोगभाष्य' समलङ्कृतायाः मण्डलब्राह्मणोप निषदोऽस्याः राजयोगमार्गसौन्दर्यानुसन्धानकुतूहलाकृष्टस्वान्तबहुजनादरणीयतां दुष्प्रापतां चाकलय्य पुनर्मुद्रणं प्रति सज्जीकरणाय, प्राच्यविद्यासंशोधनालयाध्यक्षैः, संस्कृतभाषा-साहित्य-विद्या-कला-शास्त्राणां विश्वव्यापकत्वेन प्रसारणाय अहर्निश-मुद्युञ्जानैः, मैसूरुविश्वविद्यानिलयीय यु· जि. सि· संस्कृतविभागप्रधानैः प्राध्यापकैश्च श्रीमद्भिः डा॥जि॥ मरुळसिद्धय्य, एम्· ए. पि हेच्. डि. महोदयैः आज्ञप्तः, यदा तथोपकल्पने प्रवृत्तोऽभूवं, तदा द्विवारमुद्रणेऽप्यसंमार्जिताः बह्वीरशुद्धीः विषयाननुगुणाः अध्यगच्छम्। ततश्चैतत्संशोधनाय एतत्संस्थाभाण्डागारे यावत्यः राजयोगभाष्यनामाङ्किताः मातृकाः समुपलब्धाः तावत्योऽपि सन्निधापिताः।

आसां मातृकानां ग्रन्थाङ्काः संज्ञाश्च एवं वर्तन्ते, यथा—1. C. 257. क., 2. C. 820. ख., 3. P. 4111. ग., 4. P. 2518. घ. 5. P. 4106. च 6. P. 2347. छ. इति। आभिर्मातृकाभिस्सह अत्रैव पूर्वं मुद्रितं तत्र तत्र अभिज्ञविलिखितपाठभेदं पुस्तकद्वयमपि (7· 8.) पाठसंशोधनाङ्गतया स्वीकृतम्।

मण्डलब्राह्मणोपनिषन्मूलपाठे च (9) मुंबई निर्णयसागरमुद्रणालये मुद्रितः पाठः (क) संज्ञया, (10) श्रीमदप्पयशिवाचार्यैः अङ्गीकृतः (ख) संज्ञया, (11) अडैयार् लैब्ररि मुद्रितःपाठः (ग) संज्ञया च निर्दिष्टः।

एवं आसां मातृकानां साहाय्येन संशोधने समारब्धे, उपलब्धेषु पाठेषु उचितार्थसूचकान् पाठान् उपरि निर्दिश्य, कथंचिदर्थभेदसूचकान् पाठभेदान् टिप्पण्यां सम योजयाम। अथापि काश्चन अशुद्धयः तथैवावशिष्टाः स्युः इति वक्तुं जिह्वैव जिह्रेति। किं कुर्मोऽत्र ? प्रायशः अनुभवैकप्रमाणानां एतादृशानां सर्वेषामपि ग्रन्थानां ईदृश्येव गतिरिति तत्त्वज्ञैर्विदितमेवेति समादध्महे॥

मण्डलब्राह्मणोपनिषत् भाष्याणि च

मण्डलब्राह्मणोपनिषदियं अष्टोत्तरशतोपनिषदामन्यतमा शुक्लयजुर्वेदीया। आत्मतत्त्वजिज्ञासुना महामुनियाज्ञवल्क्येन कृतानां प्रश्नानां स एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः एव गुरुरूपस्सन् तात्त्विकार्थप्रवचनेन यदुत्तरमदात्, तदेवात्र ग्रन्थरूपेण ब्राह्मण रूपेण संदृब्धमिति अस्याः उपनिषदः मण्डलब्राह्मणोपनिषदिति संज्ञा उचितैव भाति।

ब्रह्म=वेदः, ज्ञानमिति यावत् । तस्येदं उपव्याख्यानं ब्राह्मणम् । एवमेव अन्यास्वपि उपनिषत्सु "कौषीतकिब्राह्मणोपनिषदि"इत्यादयः संज्ञाः संदृश्यन्ते ।

अस्याश्चोपनिषदः श्रीमद्भिः उपनिषद्ब्रह्मयोगिभिः कृतमेकं भाष्यं, श्रीमद्भिः अप्पयशिवाचार्यैः कृतमपरं च भाष्यं समुपलभ्यते । तयोरपि भाष्ययोः संग्राह्याः उपनिषद्भावप्रकाशकाः अंशाः संगृह्य क्रमेण 'उ' 'भा' इति संज्ञानिर्देशेन टिप्पण्यां संयोजिताः ।

अस्यां चोपनिषदि पञ्च ब्राह्मणानि विद्यन्ते । तत्र प्रथमे अष्टाङ्गयोगव्याख्या, अन्तर्लक्ष्य-बहिर्लक्ष्य-मध्यलक्ष्याणां विवरणं च । द्वितीये प्रथमब्राह्मणविस्तरः । तृतीये अमनस्कस्वरूपम् । चतुर्थे व्योमपञ्चकविस्तरः । पञ्चमे अमनस्कवैभवमिति एते विषयाः उपपादिताः ।

अस्याः एवोपनिषदः आर्थं क्रममनुसृत्यैव मूलप्रतीकाद्यग्रहणेन मूलभावान् विशदतया प्रतिपादयति राजयोगभाष्यम् । तच्च तत्त्वशः भाष्यपदं लब्धुमर्हतीति, उपनिषद्भाष्ययोः परस्परसाहाय्येन पाठकानां निर्दिष्टमर्थं परिज्ञातुं आनुकूल्यं संपत्स्यते इति च विभाव्य, उपनिषदा साकं सविषयविभागं अत्रैव संयोजितम् । उपनिषदि चतुर्थब्राह्मणभागस्य तु एतदीयं विवरणं न दृश्यते । तत्र हेतुः, प्रायशः तत्प्रतिपाद्यार्थस्य व्योमपञ्चकस्य प्रथमे मध्यलक्ष्यनिरूपणावसर एव निरूपितप्रायत्वादिति ग्रन्थकारेणैव पौनरुक्त्यपरिजीहिर्षया त्यक्तं स्यात् इति भावयामः ॥

हठयोगराजयोगौ

ग्रन्थोपक्रमे च- "एवं हठयोगलक्षणं विस्तरेण निशम्य" इति वाक्यदर्शनात्, अनेनैव ग्रन्थकारेण एतत्पूर्वभागतया हठयोगभाष्यमपि विरचितं स्यादिति भाति । तच्च अधिकारिभेदेन सुसङ्गतमेव । यतः—

"हठं विना राजयोगः राजयोगं विना हठः ।
न सिद्ध्यति, ततो युग्मं आनिष्पत्तेः समभ्यसेत् ॥
कुम्भकप्राणरोधान्ते चित्तं कुर्यान्निराश्रयम् ।
एवमभ्यासयोगेन राजयोगपदं व्रजेत् ॥" इति,
"केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते ।" इति च

तत्र तत्र राजयोगमारुरुक्षोः अङ्गतया सोपानरूपतया च हठयोगस्य परिगणनायाः दर्शनात्, अनयोरङ्गाङ्गिभावे औचित्यस्यापि सत्त्वात् । परं तु इदं न सार्वत्रिकम् ।

"किञ्चित्पक्वकषायाणां हठयोगेन संयुतः ।
परिपक्वं मनो येषां केवलोऽयं च सिद्धिदः ।।" इति

स्वतन्त्रतयाऽप्यस्य साधनीयत्वोक्तेः । स चैतत्कर्तृकः हठयोगभाष्यरूपो ग्रन्थः नैतावदुपलब्धः ।।

प्रकृतः राजयोगपदार्थः

ग्रन्थेऽस्मिन् प्रतिपादितो 'राजयोगः' वैयासकिदर्शनप्रतिपाद्यात् शुद्धाद्वैतसमाधेः भिन्नः उताभिन्नः ? इति बहवः संशेरते, विवदन्ते च । हठप्रदीपिका-घेरण्डसंहिता,-शिवसंहिता-शिवयोगप्रदीपिका-ज्ञानसंकलिनीतन्त्रप्रभृतिषु बहुषु प्रमाणग्रन्थेष्वेव परस्परसङ्कीर्णाः भ्रामकाः बहवो व्याहाराः संदृश्यन्ते च । परं तु—

" राजयोगः समाधिः स्यात् एकात्मन्येव साधनम् । "

इति निर्दिष्टार्थपर्यालोचने,

"राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी ।
अमरत्वं लयः तत्त्वं शून्याशून्यं परं पदम् ।।
अमनस्कं तथाऽद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम् ।
जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः ॥"

इत्यादिराजयोगपर्यायपदार्थानां पर्यालोचने च जीवस्य परमफलरूपपरमपदप्राप्त्यवस्थैव अन्ततः राजयोगपदपरमार्थः इति गम्यते । साधनदशाप्राप्यावस्थाविशेषेऽपि तत्पदप्रयोगः सहज एव । यथा समाधिरपि अष्टस्वङ्गेषु अन्यतम इति, क्वचित् "तपोध्यानसमाधिभिः - - - भक्तिः प्रजायते" इति भक्त्यङ्ग इति, क्वचिच्च परमं फलमिति । एवमेव सर्वत्रापि । पातञ्जलः परमो योगोऽप्ययमेव । तस्य च निर्दिष्टरूपेणानिर्देशस्तु अर्थसिद्धत्वाभिप्रायेण अवाङ्मानसगोचरत्वस्फोरणाय च स्यात् । अत्र च—

"अशेषदृश्योज्झितदृङ्मयानां अवस्थितानामिह राजयोगे ।
न जागरो नैव सुषुप्तिभावः न जीवितं नो मरणं विचित्रम् ।।"

इत्यादयोऽप्यनुसन्धेयाः । 'एवंविधराजयोगप्रतिपादिके द्वे उपनिषदौ स्तः, ते तु-अद्वयतारकोपनिषत् मण्डलब्राह्मणोपनिषच्च' इति उपनिषद्ब्रह्मयोगिभिरुक्तम् ।

अत्रत्यः वेदान्तदर्शनाद्विलक्षणोंऽशः

अस्मिंश्च भाष्ये— पञ्चसु भूतेषु एकैकस्मात् भूतात् प्रत्येकं अन्तःकरणप्राण ज्ञानेन्द्रियतद्विषयकर्मेन्द्रियाणां एकैकयुतस्य पञ्चकस्य उत्पत्तिमभिधाय, ज्ञात्रा

पुरुषेण सह अन्तःकरणपञ्चकमित्यभिहितम्। वेदान्तदर्शनार्थप्रतिपादकेषु पञ्चदश्यादिषु तु मिलितैः पञ्चभूतैः अन्तकरणोत्पत्तिः, अन्तःकरणचतुष्टयं च अभिहितं दृश्यते। यथा-

"मनोऽन्तःकरणं सर्वैः वृत्तिभेदेन तद् द्विधा।
मनो विमर्शरूपं स्यात् बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका॥" इति,
"मनो बुद्धिरहङ्कारः चित्तं करणमान्तरम्।
संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं विषया अमी॥" इति च॥

प्रकृतग्रन्थार्थसंग्रहः

अथैतद्ग्रन्थप्रवेशसौलभ्याय ग्रन्थप्रतिपाद्यार्थः संक्षेपेण प्रदर्श्यते—अत्र प्रथमतः आत्मयाथात्म्यज्ञानाविनाभावेन साधनीयानां अष्टानामङ्गानां निरूपणं कृतम्। प्रसङ्गतश्च शास्त्रान्तराभ्यासापेक्षया राजयोगाभ्यासस्य विशेषज्ञानाधायकत्वं प्रदर्शितम्।

अत्र निरूपितौ सांख्ययोगौ

ततः आकाशादितत्त्वोत्पत्तिक्रमप्रदर्शनेन जडाजडपदार्थान् विविच्य, प्रकृत्यष्टकं षोडशविकारान् दशेन्द्रियाणि, उक्तप्रकृतितद्विकारेभ्योऽन्यमात्मानं च निरूप्य, "लयविधानक्रमेण आत्मनि विकाराणां मेलने अनुसंहिते ततो मनोलये च आत्मनः स्वस्वरूपावस्थानमेव मोक्षः" इति सांख्यमतं प्रदर्श्य, अनुपदमेव-"प्रकृतिपुरुषेश्वराणां त्रयाणां विवेचनपूर्वकं लयविधानक्रमेण सर्वेश्वरे परमात्मतत्त्वे आत्मनो लय एव मोक्षः" इति पातञ्जलो योगश्च प्रदर्शितः॥ अतिसूक्ष्मो जीवः सूक्ष्मतममार्गावलम्बनेन भूमेरुपरि स्थितान् सप्तवायुस्कन्धान् अतिक्रम्य शुद्धाकाशं प्राप्य तमोरजस्सत्त्वान्यतीत्य परमं पदं प्रविशतीति लयगतिक्रमः। सप्त वायुस्कन्धाश्च आवहप्रवहोद्वहसंवहसुवहपरिवहपरावहसंज्ञकाः इति पुराणादिषु प्रसिद्धम्।

तारयोगाङ्गदः

अनयोर्मतयोः चिदद्वैतज्ञानं न प्रतिपादितमिति, अयमेव वक्ष्यमाणतारकयोगाद्विशेषः। तारकयोगिनस्तु मतद्वयोक्तं प्रकृतिपुरुषभेदज्ञानं नित्यानित्यवस्तुविवेकाभिलप्यं ज्ञानाङ्गश्रवणपूर्ववृत्तमाचक्षते। सच्चिदानन्दाद्वितीयब्रह्मावलोकनहेतुभूतं खेचर्यादिमहामुद्रासम्पाद्यं भ्रूदहराद्यालम्बनचित्तैकाग्र्यमेव तारकयोग इत्युच्यते। तत्सिद्धिं प्रति लक्ष्यत्रयावलोकनं हेतुः।

लक्ष्यत्रयस्वरूपम्

अन्तर्लक्ष्यं बहिर्लक्ष्यं मध्यलक्ष्यमिति लक्ष्यत्रयम्। तेषां स्वरूपादिकं एवं वर्तते।

तत्र देहमध्ये मूलाधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तस्थितसुषुम्नामध्यगतकुण्डलिन्युद्बोधनेन फालोर्ध्वभागे निरन्तराविर्भवत्तेजसः तर्जन्यग्रोन्मीलितकर्णरन्ध्रद्वयेन श्रूयमाणे घूङ्कारादौ चित्तस्थापने सति प्रकाशमानस्य चक्षुर्मध्यनीलज्योतिषः हृत्पङ्कजमध्ये विराजत्तेजश्शिखायाश्चावलोकनं तारकावलोकनोपायभूतं अन्तर्लक्ष्यमित्युच्यते।

नासिकाग्रभागे यथोचितं चतुष्षडष्टदशद्वादशाङ्गुलपरिमितप्रदेशे क्रमेण दृश्यमानस्य नानावर्णविशिष्टस्य व्योमतत्त्वस्य, भ्रूदहरवीक्षितृपुरुषदृष्ट्यग्रभागस्थितानां मयूखानां,शीर्षोपरिद्वादशाङ्गुलमानतेजसश्चावलोकनं तारकयोगसाधकं बहिर्लक्ष्यमित्युच्यते।

नानाविधवर्णसमलङ्कृतप्रातःकालीनसूर्यमण्डलवत् वह्निज्वालावलीवत् प्रकाशादिविहीनान्तरिक्षवच्च तारकयोगकाले परिदृश्यमानव्योमपञ्चकदर्शनमेव मध्यलक्ष्यमित्युच्यते। तत्र अभ्यासवशेन दीप्त्यादिविकारहीनतया दृश्यमानमाकाशं प्रथमं गुणरहिताकाशम्। विस्फुरत्तारकादियुक्तगाढतमोवद्दृश्यमानं द्वितीयं पराकाशम्। कालानलवह्निभासमानं तृतीयं महाकाशम्। सर्वोत्कृष्टदीप्तियुक्ततया भासमानं चतुर्थं तत्त्वाकाशम्। कोटिसूर्यप्रकाशयुक्ततया भासमानमेव पञ्चमं सूर्याकाशमिति। एतन्निरूपणावसरे मूलभाष्ययोः किञ्चिदन्तरं दृश्यते। यथा- अत्रोक्त प्रथमं आकाशं परित्यज्य, तत्स्थाने अन्ते निरतिशयानन्दपरब्रह्मलक्षणं परमाकाशं परिगणय्य, आहत्य पञ्चाकाशाः, मूले चतुर्थब्राह्मणे निरूपिताः॥

राजयोगनिरूपणप्रकारः

राजयोगनिरूपणं तु इत्थम्—

राजयोगो द्विविधः तारकममनस्कं चेति। तारकमपि द्विविधं मूर्तितारकं अमूर्तितारकमिति। नेत्राधःपर्यन्तभागस्थगाणपत्यादिलक्ष्यालम्बनं मूर्तितारकम्। भ्रूयुगोर्ध्वे दहरालम्बनं अन्तर्दर्शनादिकमेव अमूर्तितारकम्। प्राणेन्द्रियाणां मनसश्च ब्रह्मात्मनि लय एव अमनस्कमिति। तदैव समुन्मन्यवस्था जीवन्मुक्तिश्चेति॥

ग्रन्थान्तरोक्तः एतत्प्रकारः

शिवयोगप्रदीपिकायां तु एवमुक्तम्—

योगिनः चतुर्विधाः प्रथमकल्पकः मधुभूमिकः, प्रज्ञाज्योतिः,अतिक्रान्तभावनीयश्चेति। योगा अपि चत्वारः- मन्त्रलयहठराजयोगभेदात्।

"तेष्वेक एव मुख्यः स्यात् राजयोगोत्तमोत्तमः।
सोऽपि त्रिधा भवेत् सांख्यः तारकश्चामनोऽपि च॥"

तत्र मन्त्रयोगः प्रथमयोगिनः। लयहठसांख्यास्तु मधुभूमिकस्य। तारकस्तु प्रज्ञाज्योतिषः। अतिक्रान्तभावनीयस्यैवामनस्कः। अयमेव उत्तमो राजयोगी।

"सांख्यात् श्रेष्ठः तारकोऽयं अमनस्कोऽपि तारकात्।
राजत्वात् सर्वयोगानां राजयोगो ह्ययं स्मृतः॥" इति,

अर्थतः पर्यालोचने इदमप्यत्र सङ्गतं भवेदिति मन्महे॥

खेचरीषण्मुखीकरणयोः स्वरूपम्

प्रकृते एतानर्थान् निरूप्य— लक्ष्यस्यात्मनः स्वरूपं, शाम्भवीमुद्रा षण्मुखीकरणं, जाग्रदादिपञ्चावस्थाश्च निरूपिताः। अत्र केचित् शाम्भवीमेव खेचरीं मन्वते।

"भ्रुवोरन्तर्गतां दृष्टिं निधाय सुदृढां सुधीः।
उपविश्यासने वज्रे नानोपद्रववर्जिते।
लम्बिकोर्ध्वस्थिते गर्ते रसनां विपरीतगाम्।
संयोजयेत् प्रयत्नेन सुधाकूपे विचक्षणः।
मुद्रैषा खेचरी प्रोक्ता भक्तानामनुरोधतः॥" इति,
"अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां द्विलोचने।
नासारन्ध्रे तु मध्याभ्यां अनामाभ्यां मुखे दृढम्।
निरुद्ध मारुतं योगी यदैव कुरुते भृशम्।
तदालक्षणमात्मानं ज्योतीरूपं प्रपश्यति॥"

इति च खेचरीषण्मुखीकरणयोः प्रकारः शिवसंहितोक्तः अत्रानुसन्धेयः।

ग्रन्थोपसंहारभागार्थः

ततश्च विस्तरेण अमनस्कयोगनिरूपणावसरे "नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकं" च योगिभिः अवश्यवेद्यमित्युक्तम्। आधार-नाभि-हृदय-कण्ठ-

तालु-भ्रू-ब्रह्मरन्ध्र-आकाशचक्राणि नवचक्राणीति, मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्धि-आज्ञारूपाः षडाधाराः इति च योगोपनिषत्सु प्रसिद्धम् ॥

अन्ते च अमनस्कवैभवं सुविस्तृतं निरूपितमिति ग्रन्थार्थसंक्षेपः ॥

ग्रन्थकर्ता श्रीशङ्कराचार्यः

एवं उक्तान् अर्थान् सुविशदतया सरळतया च निरूपणं कुर्वन् इदं राजयोगभाष्यं आदिशङ्कराचार्या एव रचयामासुरित्येव बाहुल्येन प्रथा वर्तते। एकमातृकावर्जं अन्यासु सर्वास्वपि मातृकासु निर्दिष्टतया तत्प्रवरपुरस्सरं श्रीभगवत्पादशङ्कराचार्यविरचिततयैव उपसंहारवाक्ये उल्लिखितं दृश्यते। एकस्यां तु मातृकायां प्रथमप्रकरणसमाप्त्यवसरे "इति श्री सदानन्दावधूतशिष्यविरचिते विजृम्भितयोगशास्त्रे प्रथमं प्रकरणं समाप्तम्।" इत्युपसंहारवाक्यं दृश्यते। राजयोगभाष्यगतां पद्वाक्यशैलीं परिशीलयन्तः केचित् श्रीशङ्कराचार्यविरचितत्वे संशेरते एव। तं च संशयं पक्षतावत् साधनीयांश-साधकमित्येवोत्पश्यन्ति केचत्। यतः महता कालेन आलस्यादिनिमित्तानुष्ठानेन नष्टप्रायस्य राजयोगस्य पुनःप्रवर्तनकर्तारः श्रीशङ्कराचार्या एवेत्यत्र न कस्यापि द्वापरः। भाष्यगतनिकायपरिशीलनेऽपि श्रीशङ्कराचार्यादन्येन येन केनापि एवं सुधीरं उद्घोषणं नैव कृतं स्यादित्येव भावयन्ति। योगतारावल्या सह तोलनेऽपि अयमेवार्थः स्फुटीभवेत्।

केचित्तु योगतारावलीमपि श्रीशङ्कराचार्यादन्येनैव कृतां मन्वते। यथा— शृङ्गेरीमठीयपुस्तकभाण्डागारे योगतारावल्याः श्रीनन्दिकेश्वरकृतत्वेनोल्लेखः, मद्रपुरीनगरस्थप्राच्यहस्तलिखितमातृकासंग्रहे-गोविन्दभगवत्पादरचितत्वेनैवोल्लेखश्च दृश्यते। न तावता तत्कृतत्वसिद्धिः। इतोऽपि बहुभिः कारणैः 'योगतारावली' 'राजयोग-भाष्यं' चेत्येतद्द्वयमपि सत्यं श्रीशङ्कराचार्यैरेव रचितमित्यपि वक्तुं शक्यते। शैली तु क्वचित् किञ्चिद्विभिन्नतया दृश्यमाना आचार्याणामवस्थाविशेषमेव सूचयेत्। न तु कर्त्रन्यतामित्येव तेषामभिप्रायः। अधिकं त्वन्यत्र।

भाष्यान्ते-सार्वदिकमानन्दस्वरूपं वर्णाश्रमाद्यतीतावधूतस्वरूपं चोपपाद्य तादृशसदानन्दावधूतसद्गुरुकटाक्षेण राजयोगसिद्धो भवतीत्युक्तमंशमादाय, तद्भावं परित्यज्य भ्रान्तः कश्चित् सदानन्दावधूतशिष्यविरचितत्वेनोल्लिलेखेत्यपि वक्तुं शक्यत इत्यन्ये ॥

भाष्यस्यास्य विजृम्भितराजयोगभाष्यता

अस्य राजयोगभाष्यस्य विजृम्भितराजयोगभाष्यमित्येव बहुषु पुस्तकेषु अभिधानं दृश्यते। तत्र हेतुः- उपनिषदि भाष्ये च- राजयोगपरमफलवर्णनावसरे, योगिजन-

***

हृदयान्तःप्रकाशमानस्य परमात्मभानोः विशेषणतया उपयुक्तं यत् विजृम्भितत्वं, तद्गतामसाधारणतां हृदि विभाव्य तत्प्रतिपादकस्यास्य ग्रन्थस्यापि तदभिधानमङ्कितं स्यादित्यप्युचितं भावयन्तीत्याद्यन्यत्र विस्तरः ।

योगतारावली-भूमिकादिसंयोजनावश्यकता

अथास्मिन् ग्रन्थे विवृतस्यैव राजयोगस्य अमनस्कयोगस्य अनुभवपरीवाहपरम्परावर्णनात्मिकां योगतारावलीमपि अनेन साकं संयोजने औचित्यं विभाव्य समयोजयाम । भावुकानां मुदे तत्तात्पर्यं च सरळतया अनूद्य रचितां भावप्रकाशाभिधानां व्याख्यां चानया सह समयोजयाम ।

योगप्रक्रियायाः अतिगहनत्वेन सुसंस्कृतान्तरङ्गाणां सुहृदयानां अत्युपयुक्तत्वेन च, शास्त्रीयान् निर्दिष्टान् मूलभूतान् कांश्चन विषयान् सङ्कलय्य देशानुगुणं कर्णाटकभाषया रचितः योगभूमिकारूपः अतिसंक्षिप्तः कश्चन उपोद्घातश्च, जिज्ञासूनां कृते संयोजितः ।

आदौ विस्तृता विषयसूची, अन्ते च अनुबन्धरूपेण विविधाः अनुक्रमण्यश्च संयोजिताः ।

उपसंहारः

एवं सुपरिष्कृतोऽयं ग्रन्थः यथोचितं सहृदयानां मुदे परिकल्पेतेति सुदृढमाशास्महे ॥

किञ्च—

जयतु जगतां मूलं सत्यं सनातनमञ्जसा
जयतु सरसा वाणी दिव्या तदीयमनोऽनुगा ।
जयतु विदुषां वर्गः तस्याः सदातन आश्रयः
जयतु च निधिस्तेषां पूर्णा चिरन्तनभारती ॥

मैसूरु
साधारणसंवत्सरविजयदशमी
10-10-1970

इति सहृदयवशंवदः
एन्. एस्. वेङ्कटनाथाचार्यः

सभाष्यमण्डलब्राह्मणोपनिषद्विषयसूचनी

*योगतारावली विषयसूचनी

---

*अत्रेदमवधेयम्—

अस्याः योगतारावल्याः B 378 संख्याङ्कितायां मातृकायां केचन श्लोकाः व्युत्क्रमेण दृश्यन्ते। यथा—

1, 2, 4, 3, 5, 6, 7, 8, 12, 10, 11, 9, 13, 14, 15, 16, 18, 19, 20, 17, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, इति क्रमः आदृतः। अथ च अन्तिमः 29 तमः श्लोकश्च न दृश्यते।

एवं मूलपाठे च - अधोनिर्दिष्टसंख्यावत्सु श्लोकेषु पाठभेदाः दृश्यन्ते। यथा—

(2) 'वसन्ति भूमौ' (3) 'सरेचपूर्वैः'

(4) 'वितीर्यते विष्णुपदे' (5) 'जालन्धरोड्डीयण'

---

(7) सन्तापसश्चन्द्रमसः स्रवन्तीम् ' (8) 'विहितप्रवाहं'
(9) 'रनुभूयमाने' (10) 'केवलसंज्ञयैव,' 'कुम्भोत्तमो'
(11) 'स्तिमितान्तरङ्गे,' 'शशाङ्कनाड्याः' (12) 'प्रत्याहृत' 'वितीर्यते विष्णु'
(13) 'निरोधतः,' 'कुम्भकाख्ये,' 'वृत्तिशून्य'
(15) 'सुषुप्तिभावौ' (16) 'केवलकुम्भकश्रीः'
(17) 'वायुर्यया,' 'सा मम' (18) 'श्वासप्रहारे'
(19) 'स्याधिगमाय,' 'मेकं खलु' (21) 'निभृते शरीरे नेत्राञ्चलैः'
(22) 'सहजामनस्कादहं', 'मनोगतिं' (23) 'सहजामवस्थाम्'
(24) 'परिभावयन्ती' (25) 'विजृम्भते' 'योगिनि'
(26) 'तुरीयतत्त्वे', 'सार्वकालम्' (27) 'निर्मलतुष्टयोऽपि'

(28) 'लता परिवेष्टयन्ती' ।। इति ।।

मण्डलब्राह्मणोपनिषत्

॥ ॐ ॥

शुक्लयजुर्वेदीया

मण्डलब्राह्मणोपनिषत्

राजयोगभाष्यसहिता

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः ।

प्रथमे ब्राह्मणे प्रथमः खण्डः

[ज्ञानसहिताष्टाङ्गयोगस्य तत्त्वाधिगमोपायता]

(१) याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिः आदित्यलोकं जगाम ।

(२) तं आदित्यं नत्वा,भो भगवन्! आदित्य! आत्मतत्त्वमनुब्रूहीति[1] ।

(३) स होवाच [2]नारायणः, [3]ज्ञानयुक्तयमाद्यष्टाङ्गयोगः [4] उच्यते ।

---

[1] तं पप्रच्छेति शेषः·

[2] अस्मिन् पाठे याज्ञवल्क्य एव भगवद्रूपः सन् गुरुर्भूत्वा उवाचेत्यर्थः; नारा· यणज्ञानयुक्तः· क·

[3] योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेत्प्रिये । योगोपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि ॥ इति योगशिखोपनिषत् (१–१३, ५१) ज्ञानसहितयमा· ख·

[4] योगाङ्गानुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः, यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि · (यो· स· २.२९)

अथ राजयोगभाष्यम्

एवं हठयोगलक्षणं विस्तरेण निशम्य [1]प्राकृतः सद्गुरुं एवं अवादीत्— '[2]राजयोगं वद कृपया' इति । स तु तं विनयसद्वचनं गुरुभक्ताग्रगण्यं शिष्यं 'शृणु सावधानेन' [3]इत्युक्त्वा आदरेण इदमाह–[4]राजयोगो नाम राज्ञः उपयुक्तो [5]योगः । योगानां राजा इति वा राजयोगः [6]उच्यते । [7]पूर्वोक्तयोगाः देहप्रयासकराः । अयं तु निरायासेन मोक्षरूपपुरुषार्थप्रदः । हठवदेवास्यापि [8]अष्टावङ्गानि सन्ति । किन्तु [9]तदङ्गं [10]विस्तृतं हठे भवति । [11]सूक्ष्माङ्गं तावत् संक्षेपात् अस्य [12]वक्ष्यते ॥

---

[1] प्रकृतिस्थ एव ब्रह्मनिष्ठासम्पादनार्थं गुरुमुपगच्छतीति, तमोनिवारक एव गुरुरिति चाभिप्रेत्य याज्ञवल्क्यं प्राकृतशब्देन, आदित्यं सद्गुरुशब्देन च व्यपदिशति भाष्यकारः ।

[2] उत्तरानुगुण्येन राजयोग एव अव्यभिचारितः आत्मतत्त्वाधिगमोपायः इत्यभिप्रायेण मूलस्थं आत्मतत्त्वपदमेव राजयोगशब्देनाभिलपति ।

[3] इत्यादरेण· ग·

[4] 'स्वपदानि च वर्ण्यन्ते' इत्यनुसारेण राजयोगपदविवरणं कृतम् ।

[5] योगस्तथोच्यते· ग·

[6] उच्यते इति नास्ति· .

[7] मन्त्र लय हठयोगाः इत्यर्थः.

[8] अष्टाङ्गानि· ग·

[9] तदङ्गत्वं· घ.

[10] विस्तृतं–स्थूलं, बहुलायाससम्पाद्यमिति यावत् । हठयोगस्य स्थूलविषयकत्वात् । जीवस्य तु अतिसूक्ष्मत्वात् तद्विषयकं योगाङ्गं सर्वमपि सूक्ष्ममित्युच्यते । अत एव अस्य सूक्ष्माङ्गमिति उत्तरत्र निर्देशः ।

[11] सूक्ष्माङ्गत्वं· ग· सूक्ष्माङ्गं संक्षेपात्. घ·

[12] वक्ष्ये· ग·

[चतुर्विधयमस्वरूपम्]

(४)[1] शीतोष्णाहारनिद्राविजयः, सर्वदा शान्तिः, निश्चलत्वं, विषयेन्द्रियनिग्रहश्च एते यमाः[2]।

शीतोष्णाहारनिद्राविजयः, सर्वदा शान्तिः, निश्चलत्वं, विषयेन्द्रियनिग्रहश्चेत्येते यमाः कथिताः ॥

[सप्तविधनियमाः]

(५) [3]गुरुभक्तिः, [4]तत्त्वमार्गानुरक्तिः [5]सुखानुगतवस्त्वनुभवश्च, [6]तद्वस्त्वनुभवेन तुष्टिः, [7]निस्सङ्गता, [8]एकान्तवासेन

---

[1] देहादौ आत्मात्मीयाभिमानत्यागः, स्वप्राप्तं वस्तु नेति ज्ञानं, स्वाभिलषिते लक्ष्ये पुनः पुनः मनसो लगनं, इन्द्रियेषु इन्द्रियार्थेषु च वस्तुतत्त्वचिन्तनं च क्रमेण चतुर्विधयमसम्पादकम् (उ)

[2] ते यमाः. क. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः इति योगसूत्रम् (२-३०)

[3] नित्यं अमायया स्वाज्ञानमोचकगुरुभजनम् (उ)

[4] सत्यमार्गानुरक्तिः. क. सत्यं तत्त्वं वा ब्रह्म, तत्प्रापकमार्गः तद्बोधः, तत्र आसक्तिरित्यर्थः (उ)

[5] सुखागत. क. निरतिशयसुखरूपतया श्रुत्याचार्यप्रसादादागतब्रह्मवस्त्वनुभवः (उ)

[6] तदनुभवेनैव, न तु बाह्यविषयानुभवतः (उ)

[7]तुष्टावपीति शेषः (उ)

[8] एकान्तवासः मनोनिवृत्तिः क. एकान्तपदं एकान्तत्रयपरं, तत्र-विजने प्रयत्नपूर्वकं, सजने प्रयत्नपूर्वकं, विजने सजने वा अप्रयत्नेनेति च मनोनियमनम्—स्वातिरेकेण मनो नास्तीति दृढाभिसन्धिः मनोनिवृत्तिः (उ) अत्र मनोनिर्वृतिः इति पाठः स्यादिति केचित्.

मनोनिवृत्तिः, [1]फलाभिलाषे वैराग्यभावश्च नियमाः[2]॥

नियमस्तु-गुरुभक्तिः, तत्त्वमार्गानुरक्तिः, सुखानुगतवस्त्वनुभवः तद्वस्त्व-नुभवेन तुष्टिः, निस्सङ्गता, एकान्तवासेन मनोनिवृत्तिः, फलाभिलाषे वैराग्य-भावश्च एवं नियमाः ॥

[आसननियमः]

(६) [3]सुखासनवृत्तिः, [4]चिरवासश्च एवं आसन[5]नियमो भवति ॥

आसनं तु—इष्टासने सुखासीनवृत्तिः, चिरवासश्च एवं आसन-नियमः ॥

[प्राणायामलक्षणम्]

(७) [6]पूरककुम्भकरेचकैः षोडश चतुष्षष्टिद्वात्रिंशत्सं-ख्यया यथाक्रमं [7]प्राणायामः ॥

प्राणायामस्तु—रेचकपूरककुम्भकान् अप्रयत्नेन स्ववशगतवायुना

---

[1] फलानभिलाषः. क. यथास्थितपाठे फलेच्छाविषये इत्यर्थः. उपनिषद्ब्रह्मयो-गिनां मते नवविधनियमाः इति भाष्यम् ।

[2] शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः इति योगसूत्रम्-(२-३२)

[3] यत्र सुखेन अखण्डाकारात्मिका वृत्तिः उदेति सा सुखासनवृत्तिः। निरायासेन यत्र चिरं वसति सः चिरासनवासः (उ) स्थिरसुखमासनं. (यो. सू. २-४६.)

[4] चीरवासाश्च. क. [5] नियमा भवन्ति. क.

[6] षोडशमात्राकालपरिमितं पूरकं, तच्चतुर्गुणितं कुम्भकं, तदर्धं रेचकम् (उ)

[7] प्राणायामाः. क. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः यो. सू. (२-४७)

[1]स्वाधीनान् कृत्वा प्राणवायुस्थैर्यं सम्पादयेत् । जगन्मिथ्येति स्मरेत् । अयं प्राणायामः इति सांख्ययोगविद्भिः निरुक्तः ॥

[प्रत्याहारलक्षणम्]

(८) विषयेभ्यः इन्द्रियार्थेभ्यः मनोनिरोधनं प्रत्याहारः ।

प्रत्याहारस्तु—स्वान्तर्मुखचित्तेन चैतन्यं परमात्मनि लीनं विभाव्य नानाविधग्रसनशीलता [2]तथोच्यते ॥

[धारणालक्षणम्]

(९) [3]विषयव्यावर्तनपूर्वकं चैतन्ये चेतस्स्थापनं [4]धारणा भवति ।

बाह्याभ्यन्तरगततत्त्वविलोकनं तद्गतचित्तवृत्तिः धारणेत्युच्यते ॥

[ध्यानलक्षणम्]

(१०) [5]सर्वशरीरेषु चैतन्यैकतानता ध्यानम् ।

सोऽहम्भावेन शुद्धाद्वैतस्वभावः सर्वप्रकाशकः परमात्मा इति ज्ञात्वा [6]सर्वभूतदयारतिः सदृशात्मानुभावनात् सर्वसमदृष्टिः, नित्यतृप्तिश्च ध्यानमिति मुनिमतम् ॥

---

[1] स्वाधीनीकृत्वा. च.

[2] तत्तथोच्यते. च. स्वस्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (यो. सू. २-४८)

[3] सर्वेभ्यः बन्धकविषयेभ्यः व्यावर्तनेनेत्यर्थः.

[4] धारणं. क. देशबन्धः चित्तस्य धारणा (यो. सू. (३-१)

[5] अनेकघटशरावादिषु भिद्यमानेष्वपि यथा तदवच्छिन्नव्योम्नः एकत्वं तथा. (उ) अप्पय्यशिवाचार्यैस्तु 'ध्यानधारणासमाधयः' इति क्रमः आदृत इति भाति । तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (यो. सू. ३-२)

[6] उक्तभावनापरिणामानां संग्रहः सर्वेत्यादिना कृतः.

[समाधिलक्षणम्]

(११) [1]ध्यानविस्मृतिः समाधिः ॥

समाधिस्तु परमयोगिभिः तत्त्वदर्शनेन निश्चलस्थैर्यचित्तत्वं, निर्विकल्पकचित्तवृत्तिः, सततं मनोनैर्मल्यं, शमसहितत्वं इति च समाधिः इत्युच्यते ॥

[सूक्ष्मयोगाष्टाङ्गज्ञानफलम्]

(१२) एवं सूक्ष्माङ्गानि ।

(१३) य एवं वेद सः मुक्तिभाक् भवति ॥

इति प्रथमे ब्राह्मणे प्रथमः खण्डः

एवं सूक्ष्माष्टाङ्गयोगनिरतः सद्गुरूपदेशेन राजयोगवेत्ता मुक्तिभाग भवति ॥

[योगशास्त्रस्यैव मुख्यवृत्त्या ब्रह्मोपदेशपरत्वम्]

ननु अन्यशास्त्राणि सांख्ययोगादीनि बहूनि विद्यन्ते, तानि च तत्त्वप्रधानान्येन, तद्द्वारा ब्रह्मप्राप्तिरस्तु, किमेतदुपदेशेन ? इति न वाच्यम् । शास्त्रप्रागल्भ्यपराणि तानि मुख्यवृत्त्या ब्रह्म न ह्युपदिशन्ति । इदं तु अज्ञानदृष्ट्या परिदृश्यमानं ब्रह्माण्डं उररीकृत्य— 'शृणु शिष्य ! एवमेव [2]पिण्डाण्डमपि' इति हस्तविन्यासपुरस्सरं उदाहृत्य दर्शयति । विशेषज्ञानं तेन आशु जायते । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन योगाभ्यास एव ब्रह्मप्राप्तये कर्तव्यः [3]इति ॥

---

[1] अयं निर्विकल्पकः, समाऽधिः. त्रिपुटीग्रासत्वात्. (उ) तदेव अर्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः (यो· सू· ३-३)

[2] पिण्डाण्डमिति· च· " एवं पिण्डाण्डमुत्पन्नं तद्वत् ब्रह्माण्डमुद्बभौ " इति कामिकायामुक्तम्·

[3] 'इति' इति नास्ति· च·

[सम्भवानुसारेण तत्त्वाधिगमक्रमः]

तत्र [1]तत्त्वज्ञानं एवं भवति—

(१) आत्मनः आकाशः सम्भूतः। तस्मात् ज्ञातृ-समान-श्रोत्र-शब्द-वाचः उत्पन्नाः।

(२) आकाशात् वायुः। तस्मात् मनो-व्यान-त्वक्-स्पर्श-पाणयश्च।

(३) वायोरग्निः। तस्मात् बुद्ध्युदान-चक्षू-रूप-पादाश्च।

(४) अग्नेरापः। ताभ्यः चित्तप्राणजिह्वारसपायवश्च।

(५) अद्भ्यः पृथिवी। तस्याः अहङ्कारः अपान-घ्राण-गन्धोपस्थाश्च॥

सर्वत्र आकाशादिपञ्चतत्त्वानि भवन्ति॥

[इन्द्रियादिषु अध्यात्मादिविभागः]

(1) श्रोत्रं अध्यात्मं, श्रोतव्यमधिभूतं, दिशोऽधिदैवतम्।

(2) त्वगध्यात्मं स्पर्शमधिभूतं, वायुरधिदैवतम्।

(3) चक्षुरध्यात्मं, द्रष्टव्यमधिभूतं, सूर्योऽधिदैवतम्।

(4) जिह्वाऽध्यात्मं, रसोऽधिभूतं, वरुणोऽधिदैवतम्।

(5) घ्राणमध्यात्मं, घ्रातव्यमधिभूतं, अश्विनावधिदैवतम्।

(6) वागध्यात्मं, वक्तव्यमधिभूतं, अग्निरधिदैवतम्।

(7) पाणिरध्यात्मं, गन्तव्यमधिभूतं इन्द्रोऽधिदैवतम्।

(8) पादोऽध्यात्मं, दातव्यमधिभूतं, विष्णुरधिदैवतम्।

(9) पायुराध्यात्मं, विसर्जनमधिभूतं, मृत्युरधिदैवतम्।

(10) गुह्यमध्यात्मं, आनन्दमधिभूतं, विरिञ्चिरधिदैवतम्॥

---

[1] तत्त्वमेवं. च.

[अन्तःकरणेषु अध्यात्मादिविभागः]

(1) ज्ञातृमनोबुद्धिचित्ताहङ्काराः पञ्चान्तःकरणानि ।

(2) ज्ञाता पुरुषः, संशयात्मकं मनः, निश्चयात्मिका बुद्धिः, सुविचारात्मकं चित्तम्, अहमभिमानात्मकः अहङ्कारः ।

(3) मनः अध्यात्मं, मन्तव्यमधिभूतं, चन्द्रोऽधिदैवतम् ।

(4) बुद्धिरध्यात्मं, बोद्धव्यमधिभूतं, [1]बृहस्पतिरधिदैवतम्।

(5) चित्तमध्यात्मं ,[2]चेतव्यमधिभूतं, क्षेत्रज्ञः अधिदैवतम् ।

(6) अहङ्कारोऽध्यात्मं, अहङ्कृतिरधिभूतं, रुद्रोऽधिदैवतम् ॥

[उक्तसत्वातीतब्रह्मात्मकत्वज्ञानस्यावश्यकता]

एवं सर्वपरिज्ञानादेव ' तदतीतं ब्रह्म ' इति ज्ञानं उत्पद्यते । कथं ? " नाहं आकाशादिगुणोपेतः, तत्सम्भूतेन्द्रियं [3]वा । नाहमन्तःकरणं, नाहं प्राणादिवायवः, नाहं वर्णाश्रमाचारवान्, नाहं धर्मनिरतः अधर्मनि[4]रतो वा, नाहं प्रपञ्चोऽयं[5]च । किंतु—अहं निरुपमसत्यज्ञानानन्दलक्षणलक्षितः परमात्मैव " इति चिन्तयन् परं [6]ब्रह्म भयात् ॥

[तत्र प्रमाणानि]

" सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म " (तै. उ. २-१) इति श्रुतेः, किंच—

" अणोरणीयानहमेव तद्वत्

महानहं विश्वमिदं विचित्रम् ।

---

[1] पितामहोऽधिदैवतम्. च.

[2] चेतव्य. च.

[3] च. च.

[4] रतश्च. च.

[5] ' च ' इति नास्ति. च.

[6] ब्रह्मैव भूयात्. घ. ब्रह्म तत् भूयात्. च.

पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशः
हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ॥
अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुः स श्रृणोम्यकर्णः ।
अहं विजानामि विविक्तरूपः
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाऽहम् ॥
वेदैरनेकैः अहमेव वेद्यः
वेदान्तकृत् वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशः
न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥
न भूमिरापो न च वह्निरस्ति
न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च ।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ।
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनं
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ॥"

(कैवल्योपनिषत्)

इति श्रुतेश्च, पुरा 'ब्रह्मभिन्नोऽहं इति प्रकृतिवासना[1]भिदुरमिथ्याज्ञानवानहमेव इदानीं 'ब्रह्मास्मि' इति ज्ञानवान् ज्ञानी मुक्तः स्यात् ॥

[आत्मनो विकारभेदज्ञानस्यावश्यकता विकाराश्च]

वक्ष्यमाण[2]विकारादीनपि नाहमिति त्यक्त्वा सत्यज्ञानी भव ।

---

[1] विद्रितमिथ्या॰ च॰ भिदुर्मिथ्या॰ छ॰

[2] विकारादीन्नाह॰ च॰

श्रोत्रादिपञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, वागादिपञ्चकर्मेन्द्रियाणि, शब्दादिपञ्चविपयाः, मनश्चेति षोडश विकाराः इत्युच्यन्ते ॥

[मायाकल्पितप्रपञ्चादात्मनि वैलक्षण्यज्ञानस्यावश्यकता, मायाकल्पिताश्च]

(1) पञ्चप्राणज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिय[1]मनोबुध्यात्मकं लिङ्गशरीरमित्युच्यते ।

(2) पञ्चमहाभूतज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियमनोबुध्यात्मकं लिङ्गमिति केचित् वदन्ति ।

(3) [2]कर्तृज्ञातृभोक्त्रादयो नव पदार्थाः ।

(4) पञ्चमहाभूतानि प्रकृतिः अहङ्कारः महच्च इत्यष्टौ प्रकृतयः ।

(5) ब्रह्मविष्णुरुद्राः इति मूर्तित्रयम् ।

(6) इच्छाज्ञानक्रियाः इति शक्तित्रयम् ।

(7) विश्वतैजसप्राज्ञाः इति जीवत्रयम् ।

(8) प्रातर्मध्याह्नास्तभेदात् कालत्रयम् ।

(9) गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्निभेदात् अग्नित्रयम् ।

(10) स्वर्गमर्त्यपातालभेदात् लोकत्रयम् ।

(11) जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिभेदात् अवस्थात्रयम् ।

(12) स्थूलसूक्ष्मकारणभेदात् देहत्रयम् ।

(13) [3]कामिकं मायिकं आणविकमिति मलत्रयम्

(14) आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकमिति तापत्रयम् ।

(15) धनदारपुत्राश्चेषणात्रयम् ।

(16) सत्त्वरजस्तमोभेदात् गुणत्रयम् ॥

---

[1] 'मनो' इति नास्ति. च.

[2] कर्त्रादिज्ञात्रादि नव. च.

[3] कर्मसंस्कारेन्द्रियाणां कार्मिकं. च. कर्मसंसारेन्द्रियाणां कार्मिकं. छ.

एतानि सर्वाण्यपि मायाकल्पितानीति ज्ञात्वा, तद्विलक्षणोऽहमिति [1]निश्चयबुद्धिं कुरु । ततः इमं उपदेशं शृणु ॥

[स्थूलानां सूक्ष्मेष्वन्तर्धानेन अन्ततः परमात्मनि मेलनविधिः]

आकाशादिभूतगुणान् सम्यक् ज्ञात्वा स्थूलस्य सूक्ष्मे अन्तर्धानविधिः उच्यते—

"भूमौ घ्राणं जले जिह्वां अग्नौ दृष्टिं तथैव च ।
वायौ त्वचं व्योम्नि श्रोत्रं क्रमाद्योगी तु मेलयेत् ॥"

इति ॥

एवं सावधानेन [2]भूतेन्द्रियैक्यं कृत्वा, भूमिं जले लीनमनुभाव्य, जलं वह्नौ हुतमाज्यमिव संचिन्त्य, वह्निं वायौ प्रलीनं कृत्वा, वायुं गगने विलीन-मनुभाव्य, तच्चित्ते लयं कृत्वा, चित्तमहङ्कृतौ प्राप्तविरतिं ज्ञात्वा, अह-ङ्कृतिं बुद्धिमध्ये गूढां कृत्वा, बुद्धिं मिथोदर्शनमध्यविलीनामनुभाव्य, तद्दर्शनं परमात्मनि मेलयेत् ॥

[तत्र प्रमाणानि]

तदुक्तम्—

"भूमिं जले जलं वह्नौ हुत्वाऽऽज्यमिव चिन्तयन् ।
वह्निं वायौ तथा वायुं आकाशे गगनं क्रमात् ॥
चित्ते चित्तमहङ्कारे ज्ञात्वा [3]प्राप्तरति क्रमात् ।
अहङ्कृतिं बुद्धिमध्ये गूढां कृत्वा मतिं तथा ॥
मिथोदर्शनमध्ये तद्दर्शनं परमात्मनि ।
पूर्वोक्तरीत्या सद्योगी परमात्मनि मेलयेत् ॥" इति ॥

---

[1] निश्चल. च.

[2] भूतेन्द्रियैक्यं कुर्यात् । तत्कथं ? "भूमिं जले. च.

[3] प्राप्तरतिः. च. प्राप्तरतिं तथा. छ.

[उक्तमेलनस्यैव पञ्चीकरणरूपता]

एवं चेत् पञ्चीकरण[1]रूपं स्यात् इत्याहुः परमयोगिनः ॥

[आत्मनि ज्ञातृत्वकैवल्ययोः निरूपणम्]

[2] अस्य इन्द्रियात्मा केवलात्मा चेति द्वैविध्यं अङ्गीकर्तव्यम् । बुध्या परमात्मस्वरूपं सच्चिदानन्दलक्षणं ज्ञातं भवति । तद्दर्शनेन बुद्धिसङ्कोचात् आत्मैक्यमिति [3] सर्वं समञ्जसमुक्तम् ॥

इति योगशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः

प्रथमे ब्राह्मणे द्वितीयः खण्डः

[देहदोषाः तन्निरसनोपायाश्च]

(१३) देहस्य पञ्च दोषाः भवन्ति कामक्रोधनिश्वासभय-निद्राः ।[4]

(१४) तन्निरासस्तु निस्सङ्कल्पक्षमालघ्वाहाराप्रमादता [5]सत्त्वसेवनम् ॥

एवं प्रतिपादितं सांख्यमोक्षलक्षणम् । इदानीं सांख्यैकदेशिमतं वक्ष्ये – देहस्य पञ्चदोषाः सन्ति, कामक्रोधनिश्वासभयनिद्राभेदात् । तत्परिहारमार्ग –

---

1 रूपः. च.

2 सेन्द्रियात्मा. च.

3 'सर्वं' इति नास्ति. क.

4 कामक्रोधभयनिश्वासनिद्राः. च.

5 तत्त्वसेवनं. क. च. परमार्थतत्त्वसेवनतः स्वाज्ञाननिद्रानिवृत्तिः इत्यर्थः (उ).

स्तु—सङ्कल्पवर्जनं कामस्य, क्षमा क्रोधस्य, [1] लघुभोजनं निश्वासस्य, [2] अप्रमादता भयस्य, सत्त्वसेवनं निद्रायाः, इति क्रमेण भवति ॥ [3]

---

[1] लघ्वाहारोपलक्षितप्राणायामतः श्वासस्थिरत्वम् (उ)

[2] सर्वत्र द्वैतधीत्यागतो भयनिवृत्तिः (उ)

[3] अत्र उक्तार्थसंवादाय द्रष्टव्यो भागः महाभारते यथा—

व्यास उवाच—

पृच्छतस्तव सत्पुत्र ! यथावदिह तत्त्वतः ।
सांख्यन्यायेन संयुक्तं यदेतत् कीर्तितं मया ॥
योगकृत्यं तु ते कृत्स्नं वर्तयिष्यामि तच्छृणु ।
एकत्वं बुद्धिमनसोः इन्द्रियाणां च सर्वशः ॥
आत्मनोऽव्ययिनस्तात ! ज्ञानमेतदनुत्तमम् ॥
तदेतदुपशान्तेन दान्तेनाध्यात्मशीलिना ।
आत्मारामेण बुद्धेन बोद्धव्यं शुचिकर्मणा ॥
योगदोषान् समुच्छिद्यात् पञ्च यान् कवयो विदुः ।
कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम् ॥
क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात् ।
सत्त्वसंसेवनाद्धीरः निद्रामुच्छेत्तुमर्हति ॥
धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ॥
अप्रमादात् भयं जह्यात् लोभं प्राज्ञोपसेवनात् ।
एवमेतान् योगदोषान् जयेत् नित्यमतन्द्रितः ॥
अग्नींश्च ब्राह्मणांश्चार्चेत् देवताः प्रणमेत च ।
वर्जयेदुषतीं वाचं हिंसायुक्तां मनोनुदाम् ॥
ब्रह्मतेजोमयं शुक्रं यस्य सर्वमिदं ततम् ।
एतस्य सूत्रभूतस्य द्वयं स्थावरजङ्गमम् ॥
ध्यानमध्ययनं दानं सत्यं ह्रीरार्जवं क्षमा ।
शौचमाहारसंशुद्धिः इन्द्रियाणां च निग्रहः ॥
एतैः विवर्धते तेजः पाप्मानं चापकर्षति ।
सिध्यन्ति चास्य सर्वार्थाः विज्ञानं च प्रवर्धते ॥

इत्यादिः । (महाभारते शान्तिपर्वणि २६६ तमेऽध्याये)

[भवतरणोपायः]

(१५) [1] निद्राभयसरीसृपं हिंसादितरङ्गं तृष्णावर्तं दारपङ्कं संसारवार्धिं [2] ततुं सूक्ष्ममार्गमवलम्ब्य सत्त्वादिगुणानतिक्रम्य तारकमवलोकयेत्, [3] भ्रूमध्ये सच्चिदानन्दतेजःकूटरूपं तारकं ब्रह्म ।

(१६) तदुपायं लक्ष्यत्रयावलोकनम् ॥

दुःखोदकं व्याधिमृत्युग्राहं भयसरीसृपं हिंसादितरङ्गं तृष्णावर्तं दारपङ्कं नानाकल्पितमुखरत्नं [4]आत्मैक्यतीरं सत्यातीतं संसारवार्धिं ततुं अय-मुपायः ।

जीवः स्वयं अतिसूक्ष्मः सूक्ष्ममार्गं अवलम्ब्य [5] सप्तपवनान् उत्तीर्य [6] प्रत्यग्रस्थितो [illegible] [7] परनभोगतिं प्राप्य तद्व्योम तमसि स्थापयेत् । तमो रजसि लीनं कृत्वा रजः सत्त्वे प्रवेशयेत् । सत्त्वं नारायणे प्रवेशयेत् । श्रीमन्नारायणं परं पदं प्रापयेत् । तदा नित्यानन्दसुखं अश्नुते ।

'ज्ञानादेव मोक्षः स्यात्' इति बुध्वा संख्यायते-ज्ञायते आत्मा यैः ते सांख्याः= सम्यग्ज्ञाननिरताः । एवं मोक्षलक्षणमाहुः ।

एवं उक्तसांख्यात् उत्तमं तारकमिति तारकयोगिनो मन्यन्ते । तल्ल-क्षणं अतिविचित्रं शृणु सावधानेन प्राकृत ! गोप्यतरमेतदपि इदं त्वद्भक्ति-

---

[1] निद्रासरीसृपं. क.

[2] तरितुमित्यर्थः.

[3] किं तत् तारकमित्यत्राह भ्रूमध्ये इति.

[4] आत्मैक्यतरं. घ.

[5] सप्तपदानि वनान्युत्तीर्य. घ.

[6] प्रत्यग्रस्थितः घ.

[7] वरनभो. क.

तुष्टः अहं वक्ष्ये । स्वल्पबुद्धयः पुरुषाः [1]मन्त्रलयहठयोगारण्ये चिरं चरन्ति । तान् [2]संत्यज्य गुरुमुखात् तारकाभ्यासी [3] चेत् तदा सिद्धो भवति । तस्मात् तारक[4]योगः एवं अभ्यसितव्यः ॥

सम्यक् निमीलिता[5]क्षो वा, किञ्चिदुन्मीलिताक्षो वा अन्तर्नेत्रेण भ्रूदहरादुपरि सच्चिदानन्दतेजः[6]कूटरूपं परं ब्रह्मावलोकयेत् । तारकाग्रवृत्त्या लक्ष्यं गगने[7] गुरोरेव लब्धं चेत् तदा तारकयोगसिद्धिः । [8] तदभ्यासिनः तारकयोग[9]सिद्धाः भवन्ति ।

---

[1] योगो हि बहुधा ब्रह्मन् ! भिद्यते व्यवहारतः ।
मन्त्रयोगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः ॥
मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत् ।
क्रमेण लभते ज्ञानं अणिमादिगुणान्वितम् ॥
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः ।
लययोगः चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः ॥ (योगतत्त्वोपनिषत्)
यमाद्यासनाजायासहठाभ्यासात् पुनःपुनः ।
संजातविघ्नबाहुल्यः अणिमादिवशादिह ॥
अलब्ध्वैव फलं सम्यक् पुनर्भूत्वा महाकुले । (वराहोपनिषत्)
ततो भवेद्राजयोगो नान्तरा भवति ध्रुवम् ।
तदा विवेकवैराग्यं जायते योगिनो ध्रुवम् ।
तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते पुरुषोत्तमः ॥ (योगतत्त्वोपनिषत्)

[2] संत्यज्यैवं. घ.

[3] चाशुसिद्धो ग. तारकयोगदाशु सिद्धो घ.

[4] योगस्त्वेवं. घ. योग एव. च.

[5] क्षश्रान्त ग.

[6] कुन्दरूपं ग.

[7] गोह्याटवृत्त्या ग.

[8] तदभ्यासी ग.

[9] सिद्धः इति प्राणायामादिदौर्लभ्यप्रयासाभावेन ग.

प्राणायामाद्यनुष्ठानप्रयासाभावेन तारक[1]योग एव उत्तमः इत्याहुः परमयोगिनः । किञ्च लक्ष्यत्रयं तारक[2]योगिना विदितं भवति । तस्मात् त्वमपि [3]गुरुकार्यासक्तः तारकाभ्यासं कुरु ।

तारकयोगस्य अभ्यासः परपुरुषार्थमिति । तारयति अभ्यासपरं पुरुषमिति [4] तारः । तार एव तारकः । स्वार्थे कप्रत्ययविधानात् । स चासौ योगश्च तारकयोगः इत्यर्थः । 'युजिर् योगे' इत्यस्मात् धातोः जीवेश्वरयोः [5]भेदकं अज्ञानं परिहृत्य ऐक्यं करोतीति [6]तथोच्यते ।

ब्रह्मणो जीवत्वं [7]अविद्योपाधिकम्,[8] मुखद्वैविध्ये दर्पणमिव, आकाशभेदे घटादिकमिव, सूर्यभेदे जलपात्रमिव च । सद्गुरूपदेशात् ज्ञानाग्निना [9]अज्ञानोपाधिविरहे जाते [10]ब्रह्मैकमेवाद्वितीयं परं अवशिष्टं भवति ॥

"यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिः
न सन्न चासत् शिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं
प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी ॥" इति श्रुतेः,
(श्वेताश्व. ४-१८)

---

1 योगमुत्तममित्याहुः ग.
2 योगिनां विदितम् ग.
3 त्वमतिगुरुकथनासक्तः. घ. गुरुकथासक्तः च.
4 तारम् । तारमेव तारकम् . क. तारकः तार एव तारकः. ग.
5 भेदरूपं ज्ञानं. ग.
6 यत् तत् तथोच्यते. घ.
7 औपाधिकं. ग.
8 मुखद्वैविध्यं दर्पण इव. घ.
9 उपाधिभेदरहितं. ग.
10 ब्रह्मैक्यमेवाद्वितीयमिवावशिष्टमिति भवति. ग.

"अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥"
(कठोप. २-२२)

इति श्रुतेश्च ॥

अतः परमात्मा तारकयोगवेद्यः इति फलितोऽर्थः ॥

[उपायतयोक्तलक्ष्यत्रये अन्तर्लक्ष्यम्]

(१७) [1]मूलादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं [2]सुषुम्ना सूर्याभा । [3]तन्मध्ये तटित्कोटिसमा मृणालतन्तुसूक्ष्मा कुण्डलिनी । [4]तत्र तमोनिवृत्तिः ।

(१८) [5]तद्दर्शनात् सर्वपापनिवृत्तिः ।

(१९) [6]तर्जन्यग्रोन्मीलित[7]कर्णरन्ध्रद्वये [8]फूत्कारशब्दः जायते ।

(२०) तत्र स्थिते मनसि [9]चक्षुर्मध्यनीलज्योतिः पश्यति । [10]एवं हृदयेऽपि ॥

---

[1] मूलाधारादाब्रह्म· क·

[2] सुषुम्नेति । वीणादण्डमाश्रित्येति शेषः (उ)

[3] 'तन्मध्ये तटित्कोटिसमा' इति नास्ति· घ.

[4] तत्र स्थिरीभूते मनसि स्वाज्ञानतमोनिवृत्तिः (उ)

[5] कुण्डलिनीमध्ये यदाकाशं विद्यते तद्दर्शनात् (उ)

[6] कर्णद्वयान्तः तर्जनीद्वयप्रवेशः मुकुन्दमुद्रा· (उ)

[7] कर्णद्वये· क·

[8] घूत्कारशब्दः घ· भाङ्कार· च·

[9] चक्षुर्मध्ये· क·

[10] न केवलं नादे किन्तु हृदयेऽपि (उ).

किमिदं लक्ष्यत्रयमिति ? अत्रोच्यते-देहमध्ये ब्रह्मनाडी [1]सुषुम्ना सूर्य-रूपिणी पूर्णचन्द्राभा वर्तते । सा तु मूलादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तगामिनी भवति । तन्मध्ये तटित्कोटिसमानकान्त्या मृणालसूत्रवत् सूक्ष्माङ्गी कुण्डलि-नीति[2] प्रसिद्धास्ति । तां दृष्ट्वा मनसैव नरः सर्वपापबन्धनविनाशनद्वारा मुक्तो भवति ।

[3]फालोर्ध्वगललाटशशिमण्डले निरन्तरं तेजः स्तारक[4]योगविस्फुरणेन पश्यति चेत् सिद्धः भवति । तर्जन्यग्रोन्मीलिते [5]कर्णरन्ध्रद्वये [6]फूत्कारशब्दः जायते । तत्र स्थिते मनसि चक्षुर्मध्यगतनीलज्योतिस्स्थलं विलोक्य अन्तर्दृष्ट्या समानरहितं सुखं प्राप्नोति । एवं हृत्पङ्कज[7]मध्ये विराजत्तेजश्शिखादर्शनेनापि । एवं अन्तर्लक्ष्यलक्षणं परमयोगिकल्पितं वेदितव्यं, [8]सर्वं मुमुक्षुभिरुपास्यं च ॥

---

[1] सुषुम्नारूपिणी॰ च

[2] शक्तिरूपा इति यावत् । 'कुण्डलनी' ग.

[3] फालोर्ध्वगोर्ललाटविशेषे॰ ग॰ फालोर्ध्वगोल्लाटविशेषे घ॰ फालोर्ध्वगोळ-ललाट॰ च॰ फालोर्ध्वगोल्हाटमण्डले॰ छ॰

[4] योगेन वि॰ ग॰

[5] सकर्ण॰ ग॰

[6] घुङ्कार॰ ग॰

[7] मध्यविराजितशिखा॰ ग॰

[8] सर्वमुमुक्षुभिः॰ च॰

[बहिर्लक्ष्यम्]

(२१) बहिर्लक्ष्यं तु [1]नासाग्रे [2]चतुष्षडष्टद्वादशाङ्गुलीभिः क्रमात् [3]नीलद्युतिश्यामत्व [4]सदृग्रक्तभङ्गी [5]स्फुरच्छुक्लपीतवर्णद्वयोपेतं [6]व्योमतत्वं पश्यति। स तु योगी।

(२२) [7]चलदृष्ट्या व्योमभागवीक्षितुः पुरुषस्य दृष्ट्यग्रे ज्योतिर्मयूखाः वर्तन्ते। [8]तद्दृष्टिः स्थिरा भवति।

(२३) शीर्षोपरि [9]द्वादशाङ्गुलमानज्योतिः पश्यति, तदा अमृतत्वमेति ॥

अथ बहिर्लक्ष्यं तु—नासिकाग्रे चतुर्भिः षड्भिः अष्टाभिः द्वादशभिः अङ्गुलैर्वा अन्ते क्रमात् [10]नीलद्युतिश्यामत्वसदृग्रक्तभङ्गीस्फुरच्छुक्लपीतवर्ण व्योमतत्त्वं यः पश्यति स तु योगी भवति।

---

[1] योगी स्वदृष्टी समे कृत्वा स्वनासाग्रे स्वकृताभ्यासानुरोधेन क्रमात् चतुरादि-द्वादशाङ्गुलिपर्यन्तं व्योमभावं पश्यति। तत्र नीलपीतवर्णौ प्रधानौ, श्यामादिवर्णस्तूपसर्जनीभूतः (उ)

[2] चतुष्षडष्टद्चद्वादशाः क.

[3] नीलद्युतिः क.

[4] सद्रत्नभङ्गी. च.

[5] स्फुरत्पीत. क. स्फुरत्पीतवर्णद्वयोपेतं. च.

[6] व्योमत्वं. क.

[7] चलदृष्ट्या. क. स्थिरदृष्ट्या. च.

[8] यद्दृष्टिः तत्र समारोपिता तद्दृष्टिः (उ)

[9] द्वादशाङ्गुलीमान क. द्वादशाङ्गुलिमान. च.

[10] नीलद्युतिं श्यामत्वं सद्रत्नभङ्गस्फुरत्पीतवर्णपीतं. ग.

[1]चलदृष्ट्या व्योमभागमीक्षितुः पुरुषस्य सामीप्ये दृष्ट्यग्रे वा ज्योतिर्मयूखाः वर्तन्ते । तद्दर्शनेन योगी भवति । तप्तकाञ्चन[2]सङ्काशान् ज्योतिर्मयूखान् अपाङ्गान्ते भूमौ वा पश्यति । [3]तेन दृष्टिः स्थिरा भवति ।

शीर्षोपरि द्वादशाङ्गलसमुन्नतभागे [4]प्रादेशमात्रे वा ज्योतिःपुञ्जं [5]यदि लक्ष्यते तदीक्षितुरमृतत्वं भवति । यत्र कुत्र [6]स्थितेनापि शिरसि व्योम ज्योतिस्स्वरूपेण दृष्टं चेत् स तु योगी भवति । एवं बाह्यलक्ष्यलक्षणम् ॥

[मध्यलक्ष्यम्]

(२४) मध्यलक्ष्यं तु [7]स्वान्तश्चित्रादिवर्ण[8]सूर्यचन्द्रवह्नि-ज्वालावलीवत् तद्विहीनान्तरिक्षवत् पश्यति तदाकाराकारी भवति ।

(२५) अभ्यासात् निर्विकारं गुणरहिताकाशं भवति ।

(२६) विस्फुरत्तारकाकार[9]गाढतमोपमं[10]पराकाशं भवति ।

(२७) कालानल[11]समद्योतमानं महाकाशं भवति ।

(२८) सर्वोत्कृष्ट[12]परमद्युतिप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति ।

---

[1] अन्तर्दृष्ट्या· ग.

[2] संङ्काशाः ज्योतिर्मयूखाः. ग.

[3] तद्दृष्टिः ग.

[4] प्रादेशमात्रा वा. ग.

[5] च लक्ष्यते· ग.

[6] स्थितस्यापि. क. स्थितस्य वा. च.

[7] प्रातः क. नातिदूरदेशपुरोभागान्तरिक्षे प्रातरित्यादि । एवं दर्शनस्य फलमाह तदाकारित्यादि । तन्मयत्वं व्योमपञ्चकदर्शनं तद्भावापत्तिश्च तत्फलमित्यर्थः । (उ)

[8] सूर्यचक्रवह्नि. क.

[9] कारं. क.

[10] परमाकाशं. क.

[11] समं. च.

[12] परमाद्वितीयप्रद्योतसमानं. क.

(२९) कोटिसूर्य[1]प्रकाशं सूर्याकाशं भवति।

(३०) एवं अभ्यासात् तन्मयो भवति। य एवं वेद॥

इति प्रथमे ब्राह्मणे द्वितीयः खण्डः

इदानीं मध्यलक्ष्यलक्षणमुच्यते।[2] स्वान्तः चित्रदिवर्णाखण्डसूर्य[3]चन्द्रादिवत् वह्नि[4]ज्वालावलीवत् तद्विहीनान्तरिक्षवत् पश्यति। तदा आत्मा [5]तदाकाराकारी अवतिष्ठते। तत् मध्यलक्ष्यलक्षणमिति।

पुनः पुनः [6]निर्विकारं चेत् तदिदं गुणरहिताकाशं भवति। [7]विस्फुरचारकाकारसन्दीप्यमानगाढ[8]तमोपमं [9]पराकाशं भवति। कालानलसमद्योतमानं महाकाशं भवति। सर्वोत्कृष्टपरमद्युतिप्रद्योतमानं तत्त्वाकाशं भवति। कोटिसूर्यप्रकाशवैभवसङ्काशं सूर्याकाशं भवति। एवं बाह्याभ्यन्तर[10]स्थितं व्योम

---

[1] प्रकाशसङ्काशं सूर्याकाशं. क.

[2] प्रागुक्तचित्रादिः घ. प्रातश्चित्रादि. च.

[3] चक्रादिवत्. क. चक्रवत् ग.

[4] ज्वालावलि ग.

[5] तदाकाराकारीव तिष्ठति ग.

[6] निर्विकारेण चेत्तदिदं. क. निर्विकारं चेत्तदादिकं ग.

[7] प्रविस्फुर ग.

[8] तमोपहं. ग.

[9] भवतीति नास्ति. ग.

[10] स्थव्योम. ग.

पञ्चकं [1]तारकलक्ष्यं वेद चेत् स तु योगी [2]मुक्तिफलः तादृग्व्योमसमानो भवति । [3]तस्मात् तारकमेव लक्ष्यास्पदं अमनस्कफलप्रदं च ॥

इति योगशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमब्राह्मणे तृतीयः खण्डः

[योगद्वैविध्यम्]

(३१) [4]तद्योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तर[5]विभागतः ।
पूर्वं तु तारकं विद्यात् अमनस्कं तदुत्तरम् ॥ इति ॥

[अमनस्कपदार्थविवरणम्]

किमिदं अमनस्कं नाम ? तारकमेव उत्तरार्धेन अमनस्कं भवति । [6]पूर्वार्धेन तु तारकमित्येव । अतः [7]उत्तरार्धेन अमनस्कराजयोगः इत्युच्यते ।

---

[1] तारकलक्ष्यं चेत्. क. तारकं लक्षयेत् ग.

[2] उक्तफलः घ. विमुक्तिफलः च. विमुक्तफलः, छ. मुक्तफलः ज.

[3] तस्मात् तारक एव लक्ष्यास्पदममनस्कं राजयोग इत्युच्यते ग.

[4] उक्तव्योमपञ्चकाभ्यासतः किं स्यादित्यत्र पर्यवसाने तारकामनस्कसिद्धिः स्यादित्याह–तदिति । यत् व्योमपञ्चकाभ्यासः उक्तः पर्यवसाने तद्योगमित्यर्थः । (उ).

[5] विधानतः. ख.

[6] 'तु' इति नास्ति. क. पूर्वार्थे तु. ग.

[7] उत्तरार्धे अमनस्कं इत्युच्यते. च. उत्तरार्थः अमनस्कः ग.

तदुक्तं योगशास्त्रे—

"तद्योगं च द्विधा विद्धि पूर्वोत्तरविभागतः ।

पूर्वं तु तारकं विद्यात् अमनस्कं [1]तदुत्तरम्" ॥ इति,

[2]"अमनस्कं राजयोगमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥" इति च ।

[श्रुत्यर्थानुवादः]

अस्यायमर्थः—

राजयोगो द्विविधः—तारकामनस्कभेदात् । तारकं तावत् पूर्वभागः, उत्तरभागस्तु [3]अमनस्कमिति ॥

[तारकपदार्थः]

[4]तारकशब्दस्वारस्यात् भ्रूयुगान्तःप्रदेशे [5]लयं गच्छतोः क्रमेण वामदक्षिणनेत्ररूपचन्द्रसूर्ययोः गतेः [6]तारकाश्रयत्वात् ,[7]इदानीमपि 'अश्विनीनक्षत्रप्रथमपादे अर्कः' इत्यादि [8]ताराधीनग्रहगतेः [9]ज्योतिश्शास्त्रप्रसिद्धिदर्शनात् [10]अत्रापि अक्ष्यन्तस्तारकयोः चन्द्रसूर्यप्रति[11]फलनात् एते अपि त एवेत्यूह-

---

[1] तथोत्तरम् ग.

[2] अमनस्को राजयोग इत्या. ग.

[3] अमनस्कः इति ग.

[4] तारकशब्दस्वारस्यं भ्रूयुः प्रवेशं लयगतं वामदक्षिणनेत्ररूपं. ग.

[5] लयं गच्छतः क. लयगतिक्रमेण वामदक्षिणनेत्ररूपचन्द्रसूर्यगतेः च.

[6] तारकाश्रितत्वात् ग.

[7] इदानीं. क. अश्विनीनक्षत्रं, अश्विनीप्रथमपादे इत्यादि. घ.

[8] तारानवग्रह. क.

[9] ज्योतिश्शास्त्रप्रसिद्धेः क.

[10] अत्राप्यक्ष्णोस्तारकयोः. च.

[11] फलितानि दैवतानीत्यूहनीयानि. क. फलितानि तदेवेत्यूहनीयानि ! तस्मात्तारकाभ्यां. ख फलनता स्यादेवेत्यूहनीया, तस्मात् तारकाख्यं सूर्य. ग.

नीयानीति, तारकाभ्यां सूर्यचन्द्रमण्डलदर्शनं कर्तव्यं इति प्राप्ते – ब्रह्माण्डे गगनमध्ये रवीन्दुमण्डलद्वयमिव पिण्डाण्डे शिरोमध्यस्थाकाशे रवीन्दुमण्डल-द्वितयमस्तीति निश्चयेन [1]तारकाभ्यां तद्दर्शनं अत्रापि [2]कर्तव्यमिति उभयैक्य-दृष्ट्या प्राप्तम् ।[3]

[4]तत्र मनोऽपि कारणमिति वक्तव्यम् । तद्योगाभावे इन्द्रियप्रवृत्तेः अनवकाशात् । [5]अतो मनस्तारकैक्यवृत्त्या द्रष्टव्यमिति च सिद्धम् । [6]लक्ष्यं अन्तरमिति कृत्वा अन्तर्दृष्टिप्राधान्यात् तारकयैव तद्वेद्यता भवति । अत एव तत् तारकमित्युच्यते ।[7]

[तत्र तारकस्य विभागः, तस्य समनस्कता च]

(३२) तारकं द्विविधं—मूर्तितारकं अमूर्तितारकमिति ।

---

[1] तारकाभ्यान्तर्दर्शनं ग.

[2] कर्तव्यमुभयैक्यदृष्ट्या. च.

[3] अयोगी यथा ब्रह्माण्डस्थचन्द्रसूर्यौ मनस्सहकृततारकाभ्यां पश्यति, तथा योगी स्वमस्तकाकाशविभातरवीन्दुद्वयं मनस्सहकृततारार्भ्यां अवलोकयेदिति भावः (उ) दृष्टितः ग.

[4] रूपदर्शनस्य चक्षुरधीनत्वात् किं मनसा इत्यत आह-तत्रेति । मनसि अन्यत्र व्यापृते रूपादिग्रहणशक्तिः केवलं चक्षुरादेः नास्तीत्यत्र 'अन्यत्र मनाः अभूवं नादर्शम्' अन्यत्र मनाः अभूवं नाश्रौषम्' इत्यादिरेव प्रमाणमिति भावः ।

[5] ततो. ग.

[6] लक्ष्यमनान्तरमिति कृत्वा अन्तर्दृष्टेः प्राधान्यात्. ग.

[7] अत्र 'गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात् सन्तारयति तस्मात् तारकम्' इति च अनुसन्धेयम् (अद्वय)

(३३) [1]यत् इन्द्रियान्तं तत् मूर्तितारकम् ।

(३४) यद् भ्रूयुगातीतं तत् अमूर्तितारकं इति ।

(३५) उभयमपि मनोयुक्तमभ्यसेत् ।

(३६) [2]मनोयुक्तान्तर्दृष्टिः तारकप्रकाशाय भवति ।

[पूर्वतारकम्]

(३७) भ्रूयुगमध्यबिले तेजस आविर्भावः । [3]एतत् पूर्वं तारकमिति ॥

तच्च द्विविधं–मूर्तितारकं अमूर्तितारकमिति ।

[4]एतदुक्तं भवति यत् इन्द्रियान्तं तत् मूर्तिमत् । यत् भ्रूयुगातीतं तत् अमूर्तिमत् इति ।

[मनोयोगवैशिष्ट्यम्]

ननु एवं वक्तव्यं–[5]नेत्रादधस्तात् गणपत्यादीनां; तदवेद्यत्वात्, तदूर्ध्वं तु दहरमार्गेण नाळप्रदेशमवलम्ब्य [6]सम्यगुपरिगमनेन तदुपरिस्थविशेषदर्शनमिति । तत्रोच्यते–[7]सर्वत्र अन्तःपदार्थविवेचने मन एव कारणं, मनोयुक्ता-

---

[1] मूलाधारमारभ्य आज्ञाचक्रपर्यन्तं मूर्तितारकम् । आज्ञाचक्रमारभ्य सहस्रारान्तं अमूर्तितारकमित्यर्थः । (उ)

[2] लक्ष्यदर्शनस्य चक्षुरधीनत्वात् किं मनसेत्याशङ्क्य मनोऽनुगृहीतदृष्टिः अन्तर्दृष्टिर्भूत्वा तारकग्राही भवति, न केवलदृष्टिः इत्याह–मन इति । (उ) मनोयुक्तान्तरदृष्टिः क.

[3] एतत्पूर्वतारकम्· क. [4] तद्युक्तं ग.

[5] नेत्रादधस्थं गण· क. [6] सम्यगुपरिस्थ ग·

[7] बाह्यपदार्थविवेचनवत् अन्तःपदार्थविवेचनमपि मनश्चक्षुरधीनमित्याह सर्वत्रेत्यादि । (उ) सर्वत्रान्तःप्रवेशपदार्थ· ग.

भ्यामेव तारकाभ्यां तदूर्ध्वस्थ[1]तत्त्वदर्शनात्, [2]मनोयुक्तैनैवान्तरीक्षणेनैव सच्चिदानन्दस्वरूपं [3]परब्रह्मेत्यवगम्यते ।

[मनोयुक्तान्तर्दर्शनस्य ब्रह्मलक्षणानुगुणता]

ब्रह्मणः किं लक्षणं? इति [4]विशये—

[5]"यत् शुक्लं तद् ब्रह्म"

इत्युपनिषदा शुक्लतेजोमयं [6]ब्रह्मेत्यनुप्राप्तम् । [7]शुक्लादिवर्णानां मायिकत्वेन तदतीतं ब्रह्मेति वक्तव्यमिति चेत्—तन्न । [8]शुक्लवर्णं ब्रह्म इति अन्यत्र विशेषेण अङ्गीकारात् ।

[9] "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥"

---

[1] सत्त्वदर्शनात्. क. अस्मिन् पाठे भ्रूमध्योर्ध्वविलासितोत्तरतारकलक्ष्यदर्शनादित्यर्थः ।

[2] मनोयुक्तेनानन्तरी. क.

[3] परब्रह्म=उत्तरतारकलक्ष्यम् । ब्रह्मेत्युपगम्यते. ग.

[4] विषये ग. [5] अथर्वशिरसि.

[6] ब्रह्मेत्यनुमानम् ग.

[7] भ्रूमध्यादिस्थलशुक्लतेजसः मनःकल्पितत्वेऽपि ब्रह्मणः सर्वव्यापकत्वेन तत्रापि विद्यमानत्वात् तदेव ब्रह्मेति अभिमतिद्रढिम्ना लीने तत्र मनसि कल्पकसापेक्षकल्पनावैरल्ये निर्विकल्पकं ब्रह्मैव अविशिष्यते इति भावः (उ)

[8] शुक्लवर्णतेजो ब्रह्म. च.

[9] कठोपनिषत्. 5-15 मुण्डके. 2-2-10, श्वेताश्वतरे 6. 14.

इति श्रुतेः। केवलशुक्लरूपं अपाम्, रोहितरूपं अग्नेः कृष्णरूपं अन्नस्य, इति नियमः।

[1]"यदग्नेः रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं
यच्छुक्लं तदपां, यत्कृष्णं तदन्नस्य"

इति श्रुतेः। अतः शुक्लतेजोमयं ब्रह्मेति सिद्धान्तः। [2]तद्ब्रह्म मनस्सह-कारिणा चक्षुषा अन्तर्दृष्ट्या [3]वेद्यमिति फलितार्थः। इत्यमूर्तितारकलक्षणम्॥

[मूर्तितारकस्वरूपम्]

मूर्तितारकं तु मनोयुक्तेन चक्षुषैव [4]वेद्यं भवति। रूपग्रहणप्रयोजनस्य मनश्चक्षुरधीनत्वात् बाह्यवदान्तरेऽपि [5]आत्ममनश्चक्षुस्संयोगेनैव रूपग्रहण-कार्यस्योदयात् प्रकृते मनोयुक्तान्तर्दृष्टिः तारकप्रकाशाय भवति।

तारकप्रकाशो नाम भ्रूयुगमध्यबिले[6] दृष्टिः, तद्द्वारा [7]ऊर्ध्वस्थले तेजः आविर्भूतं भवति, तत्तथोच्यते[8]। तेन सह मनोयुक्तं [9]तारकं सुसंयोज्य प्रयत्नेन

---

[1] छान्दोग्योपनिषत् 6-4-1　　यदग्नेर्लोहितं ग·
[2] तद्ब्रह्म. ग·
[3] वेदितव्यमिति ग·
[4] दहरादिकमाधारान्तं वेद्यं· ग·
[5] आत्मनो मन· क·
[6] तत्रस्थाज्ञाचक्रे इति यावत् (उ)　बले दृष्टेः ग·
[7] ऊर्ध्वस्थतेजः क·
[8] तारकयोगः इत्युच्यते इत्यर्थः।　तत्तदोच्यते· ग·
[9] तारकासु ग·

भ्रूयुगं [1]सावधानमूर्ध्वं किञ्चिदुत्क्षिपेत्[2] । [3]ततः क्षणेन समुन्मनीहेतुकं भवतीति तत्पूर्वतारकार्थः ॥

[उत्तरतारकम्]

(३८) उत्तरं तु अमनस्कम् ।

(३९) तालुमूलोर्ध्वभागे महाज्योतिर्विद्यते, तद्दर्शनात् अणिमादिसिद्धिः ॥

उत्तरं तु [4]अमूर्तं अमनस्कमिति । स एव राजयोग इति[5] । तल्लक्षणं अतिविचित्रमुच्यते । योगज्योतिःकुण्डे चित्ताध्वर्युणा बुद्धिहोत्रा अहङ्कारोद्गात्रा सह मनोयजमानः[6] प्राणेन्द्रियाणि हवींषि हुनेत् [7] । [8]अनेन योगेन निर्मलात्मभूतः यजमानः सर्वदेवरूपो भवति, सर्वैरुपास्यो भवति ॥

अयमर्थः—

[9]"छागस्य वपाया मेदसोऽनुब्रूहि"

इति [10]पशोर्मनसः हवनरूपलयार्थे प्राप्ते चित्तं बुद्ध्यहङ्कारोपसंहारमाश्रयति । [11]तादृक् चित्तं प्राणादि हविर्होमानन्तरं यजमाने लीनं भवति । स तु यज-

---

[1] सावधानं विलोकयन् इत्यर्थः । [2] उत्क्षेपयेत्. च.

[3] तत्क्षणेन क. तदुपक्षणेन ग.

[4] अमूर्तिमदम. ग.

[5] इति लक्षणमतिचित्र. ग.

[6] प्राणेन्द्रियहवींषि योगेन अनेन निर्मलात्मीभूत्वा हुनेत्. च.

[7] हुनेत् इति छान्दसः प्रयोगः । हुवेत्. ग.

[8] अनेन निर्मलाकारो भूत्वा यजमानः सर्वदेवैरुपास्यो भवति. ग.

[9] आपस्तम्बश्रौतसूत्रे 7-21-1

[10] पशोर्मेदसस्सवनरूपलये. क. प्राणेन्द्रियहविर्हवन. ग.

[11] तादृग्विधप्राणादि. ग.

मानः सिद्धयागफलः संस्कारातिशयेन [1]समुन्मन्यवस्थां प्राप्य [2]स्वर्गफलनिर्विषये परमात्मनि [3]लीनो [4]भवति । अयमेवातिशयो राजयोगस्य[5] । [6]मनोलयस्य अन्यथा असम्भवात् ।

तालुमूलोर्ध्वभागे च [7]महत् ज्योतिर्मण्डलं वर्तते । तत् योगिभिः ध्येयं [8]अणिमादिसिद्धिदं च [9]भवेत् इति ॥

---

[1] "विधिवत् प्राणसंयामैः नाडीचक्रे विशोधिते ।
सुषुम्नावदनं भित्त्वा सुखाद्विशति मारुतः ॥
मारुते मध्यसंचारे मनःस्थैर्यं प्रजायते ।
यो मनःसुस्थिरीभावः सैवावस्था समुन्मनी ॥ इति
तारं ज्योतिषि संयोज्य किंचिदुन्नमय भ्रुवौ ।
पूर्वाभ्यासस्य मार्गोऽयं उन्मनीकारकः क्षणात् ॥

इति च शाण्डिल्योपनिषत् (1-10)

[2] स्वर्गफले निर्विषयः क.

[3] लीनं क.

[4] भवतीत्यतिशयो. च.

[5] अत एव अमनस्कोपनिषदि — 'राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वतः इत्याद्युक्तम् ।

[6] मनोलयस्यास्य संभवात्. ग

[7] महा. ग.

[8] अत्र–'सिद्धौ चित्तं न कुर्वीत चञ्चलत्वेन चेतसः' (यो. शि. 5-32) 'सिद्ध्यन्ति सिद्धयो यास्तु कल्पितास्ताः प्रकीर्तिताः' (यो. शि. 1-152) इत्यादिकं अनुसन्धेयम् ।

[9] भवतीति. च.

[अस्यैव शाम्भवीमुद्रारूपता]

(४०) लक्ष्येऽ[1]न्तस्स्थे बाह्यायां दृष्टौ निमेषोन्मेषवर्जितायां च इयं शाम्भवी मुद्रा भवति[2]।

(४१) सर्वतन्त्रेषु [3]गोप्या महाविद्या भवति।

(४२) [4]तद्ज्ञानेन सर्वसंसारनिवृत्तिः।

(४३) तत्पूजनं मोक्षफलदम्।

लक्ष्येऽन्तस्स्थे बाह्यायां दृष्टौ निमेषोन्मेषवर्जितायां च इयं शाम्भवी मुद्रिका भवति। सर्वतन्त्रेषु गोप्या महाविद्या च भवति। संसारनिवृत्तिफलं सैव जनयति। तन्मुद्रापरिज्ञानिनिवासात् [5]भूमिः पवित्रा भवति। तं दृष्ट्वा सर्वे लोकाः पवित्राः भवन्ति इति परमार्थः। तथाविधपरमयोगिपूजा यस्य लभ्यते तस्यापि मुक्तिरस्तीति तात्पर्यम्। तस्य च [6]अन्तर्लक्ष्यगतदृढचित्तत्वात् इति[7]॥

---

[1] न्तर्बाह्यायां. ग. न्तस्स्थबाह्यायां च.

[2] मुद्रा सर्वतन्त्रेषु. क.

अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिः निमेषोन्मेषवर्जिता।
एषा सा शाम्भवी(वैष्णवी)मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥
इति (शां. उ. 17-14)

[3] गोप्यमहाविद्याः. क.

[4] तद्ज्ञाने सर्व. ग.

[5] 'स्वपादन्यासमात्रेण पावयन् वसुधातलम्' इत्युक्तेः।
'खेचराः भूचराः सर्वे ब्रह्मविद्दृष्टिगोचराः।
सद्य एव विमुच्यन्ते कोटिजन्मार्जितैरघैः' इत्युक्तेश्च॥

[6] स्वान्तर्लक्ष्य. क.

[7] 'इति' इति नास्ति. क.

[अन्तर्लक्ष्यसामान्यस्य आत्मस्वरूपता]

(४४) अन्तर्लक्ष्यं [1]जलज्योतिस्स्वरूपं भवति, महर्षिवेद्यं, अन्तर्बाह्येन्द्रियैः अदृश्यम् ।[2]

(४५) [3]सहस्रारे [4]जलज्योतिः अन्तर्लक्ष्यम् ।

(४६) बुद्धिगुहायां[5] सर्वाङ्गसुन्दरं पुरुषरूपं अन्तर्लक्ष्यमित्यपरे[6] ।

(४७) शीर्षान्तर्गतमण्डलमध्यगं पञ्चवक्त्रं उमासहायं नीलकण्ठं प्रशान्तमन्तर्लक्ष्यमिति केचित् ।[7]

(४८) अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः अन्तर्लक्ष्यमित्येके ॥[8]

(४९) उक्तविकल्पं सर्वं आत्मैव ॥[9]

---

[1] ज्वलज्ज्योति. क

[2] उपनिषद्ब्रह्मयोगिभिस्तु एतदन्तं प्रथमब्राह्मणस्य तृतीयं खण्डं परिसमापितम् । एतन्मते प्रथमं ब्राह्मणं खण्डचतुष्टयात्मकं इति ध्येयम् ॥

[3] अन्तर्लक्ष्यविषये वादिविप्रतिपत्तिं परमार्थदृष्ट्या सर्ववादिविकल्पगोचरलक्ष्यस्यैकत्वं तद्दर्शनतो ब्रह्मनिष्ठत्वं चाह- सहस्रार इति । (उ)

[4] ज्वलज्ज्योति· क· [5] योगिन इति शेषः । [6] अपरे-वैष्णवाः ।

[7] केचित्-शैवाः । 'उमासहाय'मित्यादि कैवल्योपनिषत् ।

[8] एके-दहरविद्योपासकाः ।

[9] परमार्थदृष्ट्या तु इति शेषः । अत्रेमानि अद्वयतारकोपनिषद्वाक्यानि अनुसन्धेयानि—"अन्तर्लक्ष्यं ज्वलज्ज्योतिस्स्वरूपं भवति । परमगुरूपदेशेन सहस्रारज्वल· ज्ज्योतिर्वा, बुद्धिगुहानिहितचिज्ज्योतिर्वा, षोडशान्तस्स्थतुरीयचैतन्यं वा अन्तर्लक्ष्यं भवति । तद्दर्शनं सदाचार्यमूलम् । आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः । योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः । गुरुभक्तिसमायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः । एवंलक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते ।" इत्यादीनि ॥ (13-14)

अन्तर्लक्ष्यं तु जलज्योतिस्स्वरूपं भवति । "आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवस्सुवरोम्" इति गायत्रीशीर्षात् । तदेवान्तर्लक्ष्यं परब्रह्म गोप्यात् गोप्यतरं महर्षिवेद्यं च । "अयमात्मा पूर्णः" इत्यनेन बाह्येन्द्रियैः न दृश्यते । "अन्तस्थः" इत्यनेन मनसाऽपि सत्वरं नेष्यते । किं तु परमगुरूपदेशेन सहस्रारे ज्वलज्ज्योतिः परममन्तर्लक्ष्यं भवतीति वदन्ति ॥

केचित् बुद्धिगुहायां चक्षुःश्रोत्रादिपरिपूर्णाङ्गः सृष्टिस्थितिलयशून्यः परमात्मा [1]सर्वमनुजान्तर्लक्ष्यमिति गोप्यमेव तद्वदन्ति ।

पुनः केचित् शीर्षान्तर्गतगगनार्कमण्डलमध्यगं पञ्चवक्त्रं उमासहायं नीलकण्ठं प्रशान्तं अन्तर्लक्ष्यमिति वदन्ति ।

[2] केचित् अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः द्विदलान्तर्लक्ष्यमिति वदन्ति ।

[3] 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरवाधूमकः ।'

[4] "तमेवं मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम् ॥"

[5] इत्यादिश्रुतेः ।

[6] "अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः ।
ईशस्सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वभुक् ॥"

इति श्रुतेश्च ॥

[आत्मनिष्ठस्य जीवन्मुक्तिद्वारा ब्रह्मभावापत्तिः]

(५०) तल्लक्ष्यं शुद्धात्मदृष्ट्या वा यः पश्यति स एव ब्रह्मनिष्ठो भवति ।

---

[1] सर्वेति स्वरूपयोग्यतामात्रकथनम् ।
[2] 'केचित्' इति नास्ति· च·
[3] कठोपनिषत्· 4. 13.
[4] बृहदारण्यकोपनिषत् 6. 4. 17.
[5] इति श्रुतेः· क·
[6] तैत्तिरीयोपनिषत्. 4. 71.

(५१) [1]जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विंशतितत्त्वं परित्यज्य [2]षड्विंशः परमात्माऽहमिति निश्चयात् जीवन्मुक्तो भवति।

(५२) [3]एवं अन्तर्लक्ष्यदर्शनेन जीवन्मुक्तिदशायां स्वयं अन्तर्लक्ष्यो भूत्वा, परमाकाशाखण्डमण्डलो भवति ॥[4]

इति प्रथमे ब्राह्मणे तृतीयः खण्डः

प्रथमं च ब्राह्मणम्

दशेन्द्रियपुरे [5]परिवर्तमानं जीवात्मानं ब्रह्मणा सह ऐक्यभावनया साध्याद्वैत[6]वृत्त्या शुद्धाद्वैतवृत्त्या वा यः पश्यति स एव ब्रह्मनिष्ठो भवति। पञ्चविंशको जीवः स्वकल्पितां चतुर्विंशतितत्त्वात्मिकां प्रकृतिं परित्यज्य = तत्सङ्गं [7]विहाय षड्विंशकः परमात्माऽहमिति कृतनिश्चयः, [8]स तु जीवन्मुक्तो भवति ॥

---

[1] स्वतत्त्वे स्थितो जीवः स्वन्यूनतत्त्वं परित्यज्य स्वाधिकतत्त्ववेदनात् मुक्तो भवतीत्याह– जीव इति। ज्ञानकर्माक्षप्राणभूतपञ्चकानि विंशतिः, अन्तःकरणचतुष्टयं चेति चतुर्विंशतितत्त्वानि। तदुपाधिको जीवः पञ्चविंशकः। 'पञ्चविंश आत्मा भवति' इति श्रुतेः। तत्सर्वोपाधिरहितः षड्विंशकः इत्यर्थः। (उ)

[2] षड्विंशकपरमात्मा. घ.

[3] जीवन्मुक्तः कां गतिं भजतीत्याशङ्क्य जीवन्मुक्ताभिमतित्यागानन्तरं ब्रह्मैव भवतीत्याह–एवमिति। (उ)

[4] परमात्मैव भवतीत्यर्थः। (उ)

[5] परिवर्तमानं जीवमात्मना सह. क. परिवर्तमानौ जीवात्मानौ ब्रह्मणा सह. ग.

[6] वृत्त्या वा. ग. [7]. विहायेत्यर्थः। षाड्विंशकः. ग. [8] सन्. क.

एवं [1]अनेकधाप्रोक्तान्तर्लक्ष्यदर्शनेन स्वयं अन्तर्लक्ष्यं व्योम भवति । तदेव [2]नादबिन्दुकलानां मूलं स्यात्, यतो नादाद्युत्पत्तिरपि [3]ब्रह्मण एव भवतीति निगमात् ।।[4]

इति योगशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः

---

[1] अनेकविधान्त॰ ग. [2] अत्र नादबिन्दुकलाध्यात्मस्वरूपं चेत्यादि महानारायणोपनिषत् अनुसन्धेया । [3] ब्रह्मद्वारा भवतीति विनिगमनात्॰ ग.

[4] ननु इह प्रथमब्राह्मणोपसंहारे अन्तर्लक्ष्यदर्शनः जीवन्मुक्तिदशायामित्युक्तम् अन्तर्लक्ष्यं तु बहुधा विकल्पितमपि परिच्छिन्नज्योतिर्मयमेवावगम्यते, अङ्गुष्ठमात्रपुरुषात्मकत्वात् । न च बाह्यलक्ष्यमपरिच्छिन्नं भवेदिति वाच्यम् । बहिर्लक्ष्यं तु नासाग्र इत्यादिना वाक्येन परिच्छिन्नतया एवावगम्यमानत्वात् । तस्माद्यमाद्यष्टाङ्गयोग उपक्रान्तेऽपि मूलधारादारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तोदन्तकथनैः सामान्यराजयोगस्यैवाभिहितत्वाद्विशेषज्ञानयोगविषयकाखण्डयोगानभिधानाच्चेदं ब्राह्मणं न विशेपरहस्यार्थकं भवतीत्याशङ्कायामिदमुच्यते – कालानलसमद्योतमानमहाकाशं भवतीत्युक्त्या परंज्योतिर्मयस्य महाकाशस्याभिहितत्वादखण्डाकारब्रह्मज्ञानयोगपर्यवसन्नमेवेदं ब्राह्मणमवगन्तुं शक्यम् । न चोक्तमहाकाशो भूताकाशो भवितुमर्हति, परंज्योतिष्ट्वाभिधानात् । किंच तल्लक्ष्यं शुद्धात्मदृष्ट्या वा यः पश्यति स एव ब्रह्मनिष्ठो भवतीत्युक्तम् । अत्राखण्डब्रह्मभावनाया अभावे सति परिच्छिन्नलक्ष्ये न कस्यचिदप्यात्मदृष्टिर्भवेत् । लक्ष्यज्योतिष इदंत्वेनैव दृश्यत्वादखण्डज्योतिष एवात्मत्वेन दृश्यत्वाच्च । अपि च जीवः पञ्चविंशकः स्वकल्पितचतुर्विंशतितत्त्वं परित्यज्य षाड्विंशकः परमात्माऽहमिति निश्चयाज्जीवन्मुक्तो भवतीत्युक्तम् । अत्र जीवशब्दः पञ्चविंशक एव, त्वंपदलक्ष्यार्थः कूटस्थः प्रत्यगात्मैव भ्रूमध्यादिषु दृश्यमानलक्ष्यरूपः । इतोऽप्यन्यस्य षड्विंशकस्य परमात्मनोऽभिहितत्वात् । एवमुपसंहृतजीवन्मुक्त्यर्थकत्वेनैवाष्टाङ्गयोगस्योपक्रान्तत्वाच्च मन्दाधिकार्युपयोगेनैव तारकलक्ष्यस्वरूपप्रवचनं मध्ये कृतमित्यवगन्तव्यम् ।। (भा)

अथ द्वितीये ब्राह्मणे प्रथमः खण्डः

[अन्तर्लक्ष्यस्वरूपप्रश्नः]

(५३) अथ ह याज्ञवल्क्यः आदित्यमण्डलपुरुषं पप्रच्छ—भगवन् ! अन्तर्लक्ष्यादिकं बहुधोक्तम्, मया तत् न ज्ञातम्, तद् ब्रूहि मह्यमिति ॥ [1]

एवं उपदिष्टः प्राकृतः परमयोगिनं इदमाह-[2]इति बहुप्रकारे [3]भवद्भिरुक्तेऽपि आत्मस्थानं मुख्यतया [4]न मया विदितमिव सामान्यार्थास्पदमभवत् । तदादरेण वक्तव्यमिति ॥

[अन्तर्लक्ष्यस्वरूपं, तद्ज्ञानस्य मुक्तिहेतुत्वं च]

(५४) तदु होवाच - [5]पञ्चमहाभूतकारणं [6]तटित्कूटाभं तद्वत् [7]चतुःपीठम् । [8]तन्मध्ये [9]तत्त्वप्रकाशो भवति । [10]सोऽतिगूढः अव्यक्तश्च ॥

---

[1] 'इति' इति नास्ति· क [2] 'इति' इति नास्ति. च.

[3] भवद्भिरुक्ते आत्मा· च· [4] न विदितमेव. ग·

[5] पञ्चभूतकारणं ख· अन्तर्लक्ष्यात्मनः 'आत्मनः आकाशः सम्भूतः' इत्यादि श्रुत्या पञ्चभूतहेतुत्वात् एवमुक्तिः । [6] तडित्कूटाभं· च.

[7] तमोरजस्सत्त्वगुणसाम्यरूपेण· जाग्रदाद्यवस्थाचतुष्टयभेदेन, स्वाविद्यापाद-स्थूलादिचतुरंशभेदेन, वा चत्वारि पीठस्थानानि यस्य तत्। अथास्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि भवन्ति नाभिः हृदयं कण्ठं मूर्धा च । तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति, जागरिते ब्रह्मा, स्वप्ने विष्णुः, सुषुप्तौ रुद्रः, तुरीयमक्षरम् । (ब्रह्मोप-1) तदेतच्चतुष्पात् ब्रह्म । वाक् प्राणः चक्षुः श्रोत्रमित्यध्यात्मं, अग्निर्वायुरादित्यो दिशः इत्यधिदैवतम्· (छां-3-18)

[8] अविद्यासुविद्यानन्दतुरीयपादेषु स्वाधिष्ठिताविद्यापादप्रकाशकः स्वयमेवेत्याह तदिति । तस्य अविद्यापादस्य मध्ये । [9] तत्प्रकाशो· ग·

[10] सोऽनिगूढः च· अत्र "एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" इत्याद्यनुसन्धेयम् ।

(५५) तत् [1]ज्ञानप्लवाधिरूढेन ज्ञेयम् । [2]तद्बाह्याभ्यन्तर-लक्ष्यम् ।

(५६) तन्मध्ये जगल्लीनम् । तन्नादबिन्दुकलातीतं अखण्ड-मण्डलम् । [3]तत् सगुणनिर्गुणस्वरूपम् । [4]तद्वेत्ता विमुक्तः ॥

उच्यते – पञ्चभूतादिवर्णयुक्तं तत् [5]त्रिकूटस्थलं प्रसिद्धम् । तद्वत् [6]चतुःपीठम् । तन्मध्ये तत्त्वप्रकाशोऽस्ति । सोऽतिगूढः अतिरम्यस्त्वव्यक्तश्च । तदेवात्मस्थानमिति [7]गुरुणा ज्ञानप्लवाधिरूढेन ज्ञेयम् । तद् बाह्याभ्यन्तरमध्यान्तर्लक्ष्यं स्थितम् । तन्मध्ये सर्वजगत् लीनमिति ज्ञेयम् । किञ्च तदेव रम्यं नादबिन्दुकलान्वितं [8]सगुणनिर्गुणं परमनयनोत्सव-[9]कारणं नित्यात्मस्थलं [10]आपोज्योतिः इति प्रसिद्धं [11]श्रीमन्नारायणस्थलम् । तद्वेत्ता मुक्तिभा[12]गिति ॥

---

[1] एतद्विरुद्धकर्मप्लवस्य सत्याऽऽवारकत्वमुक्तं मुण्डके–'प्लवा ह्येते अदृढाः यज्ञरूपा; अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढाः जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ।' इति ।

[2] तद्बाह्यान्तर्लक्ष्यम्. क.

[3] तद्गतविशेषाविशेषवत्त्वं केवलं दृष्टिनिष्ठं. न तु स्वनिष्ठमित्याह-तदिति । 'तत्' इति नास्ति. ग.

[4] "सगुणध्यानमेतत् स्यात् अणिमादिगुणप्रदम् । निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत् । अभ्यासभेदतो भेदः फलं तु सममेव हि ॥" (योगतत्त्वो. 105)

[5] त्रिकूटं=भ्रूमध्यम् । श्रीविद्यातारकोपनिषदि ब्रह्मविद्योपनिषदि च एतद्विवृतम्।

[6] चतुष्पीठं. ग.

[7] गुरूणां सकाशादित्यर्थः । गुरुणा इत्यादि ज्ञेयमित्यन्तं क्वचिन्नास्ति. ग.

[8] सगुणं निर्गुणं च. [9] कारि. ख. कारिणं ग.

[10] तैत्तिरीयोपनिषत्. 4. 35. [11] नारायणस्थलम्. ग.

[12] गीति. ग.

[तदधिगमहेतुशाम्भवीस्वरूपम्]

(५७) [1]आदावग्निमण्डलम् । तदुपरिसूर्यमण्डलम् । तन्मध्ये [2]सुधाचन्द्रमण्डलम् । तन्मध्ये अखण्डब्रह्मतेजोमण्डलम् ॥

(५८) तत् विद्युल्लेखावत् । शुक्लभास्वरम् तदेव शाम्भवी-लक्षणम् ॥

आदावग्निबिम्बम् । तन्मध्ये [3]मितिहीनदीप्तिविराजितं सूर्यबिम्बम् । तन्मध्ये अक्षयसुधाधारास्पदं [4]चन्द्रबिम्बम् । तन्मध्ये अङ्कुररूपेण परब्रह्म वर्तत इति केचिद्वदन्ति । इदं [5]सर्वं जगद्बीजं [6]सच्चिदानन्दरूपं [7]परब्रह्म-तत्त्वं शोभते । तच्च नीलज्योतिः किञ्चिच्छुक्लवर्णम् । तदन्तराळे विद्युल्लेखेव [8]भास्वरं प्रकाशमानं मुख्यतेजःकूटस्वरूपस्वच्छच्छविः । तच्छिखाया मध्ये परमात्मा अणुरूपेण व्यवस्थितः । [9]स एव ब्रह्म । [10]स एव हरिः । स एवेश्वरः । स एव इन्द्रादयश्च ॥

तथाऽऽह श्रुतिः—

---

[1] सिद्धासनमारुह्य षण्मुखीमुद्राभ्यासयोगिनः वह्निमण्डलादि क्रमेण दृश्यते । पर्यवसाने तदेव उन्मन्यस्थाजनकशाम्भवीमुद्रा भवतीत्यर्थः । (उ)

[2] सुधा चक्रमण्डलम्. ग.

[3] मितहीनं दीप्ति· ग. हीरदीप्ति· च. सूर्यमण्डलममितदीप्तिविराजितम्. ग.

[4] चन्द्रबिम्बं वर्तते· ख. [5] इत आरभ्य 'नीलज्योतिः' इत्येतपर्यन्तं ग. पुस्तके नास्ति.

[6] निश्चलानन्द· ग.

[7] परब्रह्मान्तश्शरीरीव शोभते. क. परब्रह्म तच्छरीरीव शोभते. ग.

[8] भास्वरा प्रकाशमानमुख्यतेजःकूटरूपा च विशिखा । तच्छिखामध्ये. ग.

[9] स एव ब्रह्मा हरिरीश्वर इन्द्रादिकश्च । तदाहुः· ग.

[1]"नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा ।
नीवारशूकवत् तन्वी पीता [2]भास्वत्यणूपमा ॥
तस्याः शिखाया मध्ये [3]परमात्मा व्यवस्थितः ।
[4]स ब्रह्म स शिवस्सेहरिस्सेन्द्रः [5]सोऽक्षरः परमः स्वराट् ॥ इति ॥
एतादृग्विधं [6]ब्रह्माहमस्मीति शाम्भवीमुद्रिकया ज्ञातुं शक्यते ॥

[तद्दर्शनोपायभूतदृष्टित्रयम्]

(५९) तद्दर्शने [7]तिस्रो दृष्टयः— अमा, प्रतिपत्, पूर्णिमा चेति । निमीलितदर्शनं अमादृष्टिः । अर्धोन्मीलितं प्रतिपत् । सर्वोन्मीलनं पूर्णिमा भवति ॥

तन्मुद्रालक्षणं [8] उक्तमपि विस्तारेणोच्यते-प्रतिप[9]दमापूर्णिमासंज्ञाः तिस्रो दृष्टयो ज्ञेयाः । किञ्चिदुन्मेष[10]शीला प्रतिपद्दृष्टिः । सर्वास्त[11]लोचना दृक् अमा । सर्वविदारित[12]चक्षुर्द्वन्द्वेक्षणा पौर्णमासी भवति ॥

---

[1] तैत्तिरीयोपनिषत्. 4. 13.

[2] भा स्यात्तनूपमा. क. अस्मिन् पाठे पीताभा पीतवर्णा, तनूनि वस्तूनि अनया उपमीयन्ते च । 'वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागो जीवस्स विज्ञेयः' इति श्रुतेः इत्यर्थः ।

[3] स च आत्मनोऽपि प्रकृतिभूतः जीवानुरोधेन सङ्कुचितः तिष्ठति । (भा)

[4] स ब्रह्मा स शिवस्सेन्द्रः क.

[5] अक्षरः क्षरणरहितः प्रकृष्टः स्वे महिम्नि सदा राजमानश्च ।

[6] ब्रह्म निहितं शाम्भवीं मुद्रिकां विना ज्ञातुं न शक्यते. ग.

[7] त्रयो दृष्टयः च.

[8] उक्तमतिविस्तरेणोच्यते. ग.

[9] दिमापौर्णि. ग.

[10] लीलाप्रतिपद्यदृष्टिः ग.

[11] लोचनेन्दुगमा. ग.

[12] दृक्चक्षुर्द्वन्द्वान्तरीक्षणम् ग.

[तत्र पूर्णिमायाः प्राधान्यं, तत्फलं च]

(६०) [1]तासु पूर्णिमाभ्यासः कर्तव्यः । [2]तल्लक्ष्यं नासाग्रम् । तदा तालुमूले गाढतमो दृश्यते । तदभ्यासात् अखण्डमण्डलाकार-ज्योतिः दृश्यते । तदेव सच्चिदानन्दं ब्रह्म भवति[3] ॥

(६१) [4]एवं सहजानन्दे यदा मनो लीयते तदा शाम्भवी भवति । [5]तामेव खेचरीमाहुः ॥

दृङ्-नियमे स्थिते चैवं पौर्णमासीदृष्ट्या अभ्यासः कर्तव्यः । [6]अथाभ्यस्त[7]दृष्टिलक्ष्यं नासाग्रं भवति । नासाग्रन्यस्तपूर्णिमादृष्टेः सम्यग्राज-योगफलजनकत्वात् । [8]अतः पूर्णिमादृङ्-नासाग्रयोगाभ्यासः सततं कर्तव्यः । तस्मिन् सिद्धे तस्य असाध्यं किमपि नास्तीति फलितार्थः ॥

---

[1] "कदाचित् पूर्णिमादृष्ट्या कदाचित् प्रतिपद्दृशा । अमादृष्ट्या कदाचिच्च निर्विघ्नेनाव लोकयेत् । (ब्रह्मप्रणवे) कामेन विषयाकाङ्क्षी विषयात् काममोहितः । द्वावेव संत्यजेन्नित्यं निरञ्जनमुपाश्रयेत् । पौर्णमास्यां स्थिरीकुर्यात् स च पन्था हि नान्यथा ॥" (योगकु॰ 3. 3)

[2] दृष्टित्रयलक्ष्यमित्यर्थः । [3] तदेव-सहजानन्दरूपं चेत्यर्थः ।

[4] तत्र मनोलय एव शाम्भवीत्याह-एवमिति । पर्यवसाने शाम्भवीखेचर्योः एकलक्ष्यसमासत्वात् । (उ)

[5] "कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा । भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिः मुद्रा भवति खेचरी । चित्तं चरति खे यस्मात् जिह्वा भवति खे गता । तेनैषा खेचरी नाम मुद्रा सिद्धनमस्कृता ॥ पीड्यते न च रोगेण लिप्यते न च कर्मणा । बध्यते न च कालेन यस्य मुद्रास्ति खेचरी । बिन्दुः क्षरति नो तस्य कामिन्यालिङ्गितस्य च ॥" (ध्यानबिन्दूपनिषत्. 80-84)

[6] तदाभ्यस्त ग. [7] दृष्टिः च. [8] ततः क.

पूर्णिमादृष्टियोगेन प्रोक्ततारकमार्गेणावलम्बिते चित्ते [1]तालुमूलद्वादशाङ्गुलाग्रभागे [2]अन्तःपुरोभागे च [3]गाढं तमः दृश्यते । तत्तमो[4]मध्यं निरन्तरं पश्येत् । तदानीं अखण्डमण्डलाकारं ज्योतिर्दृश्यते । [5]तदानीं सच्चिदानन्दं ब्रह्म भवति ।

एवं [6]सहजलिङ्गे परमात्मनि मनो नित्यं विलीनं कृत्वा [7]अचलितचञ्चत्तारान्वितवान् यस्तु सोऽपि सद्गुरुः स्यात् । इयं 'शाम्भवी' मुद्रिका, भवति ।

[8] "अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिः निमेषोन्मेषवर्जिता ।
एषा सा शाम्भवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥"

तामेव खेचरीं मुद्रां केचित् वदन्ति ॥

[शाम्भवीमुद्रासिद्धिः तच्चिह्नानि च]

(६२) तदभ्यासात् मनस्स्थैर्यम् । [9]ततो वायुस्थैर्यम् ॥

---

[1] "प्राणे गलितसंवित्तौ तालूर्ध्वंद्वादशान्तगे । अभ्यासादूर्ध्वरन्ध्रेण प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥" (शाण्डिल्यो. 1-31) तत्तालुमूले-ग.

[2] अन्तः पुरोर्ध्वभागे. क. [3] गाढतमः क.

[4] मध्यमं ग. [5] तदेव ग.

[6] सजललिङ्गे ख. [7] चलित ग.

[8] शाण्डिल्योपनिषत्. 1-14. मूलाद्दारानाहताज्ञासहस्रारेषु यथाक्रमं विराट् सूत्रबीजतुरीयैकतानं मनश्चेत् तदा अन्तर्लक्ष्यमित्युच्यते अत्रैव । वैष्णवीमुद्रेत्यपि पाठः । एतदनतरं-"अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनः योगी सदा वर्तते दृष्ट्या निश्चलतारया बहिरधः पश्यन्नपश्यन्नपि । मुद्रेयं खलु खेचरी भवति सा लक्ष्यैताना शिवा शून्याशून्यविवर्जितं स्फुरति सा तत्त्वं पदं वैष्णवी ॥" इत्युक्तम् ॥ अयं अन्तर्लक्ष्यमिति श्लोकः ग. पुस्तके नास्ति. [9] ततो बुद्धिस्थैर्यम् ग.

(६३) [1]तच्चिन्हानि-आदौ [2]तारकवत् दृश्यते, ततो [3]वज्र-दर्पणम्, [4]ततः परिपूर्णचन्द्रमण्डलम्, [5]ततो नवरत्नप्रभामण्डलम्, ततो मध्याह्नार्कमण्डलम्, ततो वह्निशिखामण्डलं [6]च एवं क्रमात् दृश्यते [7]

सद्गुरोः तां [8]अभ्यसेत् । यामद्वयं आत्मेक्षणेऽभ्यस्ते मनोवायू साम्यभावेन प्रवर्तितौ भवतः । [9]तस्मात् मनस्स्थैर्ये सिद्धे तद्वशात् वायुः स्थिरो भवति । वायुचाञ्चल्ये वा मनश्चाञ्चल्ये वा प्राप्ते तद्वशात् इतरत् सर्वं चञ्चलमेव भवति । अतो [10]राजयोगाभ्यासेन मनोवायुस्थैर्यं भवतीति निश्चयः । शताब्दकृताभ्यासे हठेऽपि मनोवायुलयो न भवति । एवं च खेचरी-मुद्राभ्यासेन ब्रह्मणि मनोवायुलयः कर्तव्यः इति [11]फलितार्थः ।

---

[1] तत्सिद्धिचिह्नानीत्यर्थः ।

[2] नक्षत्रवत् । यतः तद्दर्शनेनैव गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात् तारयति ।

[3] परिष्कृतवज्रवत् दर्पणवच्चेत्यर्थः । "नीहारधूमार्कानलानिलानां खद्योतविद्युत् स्फटिकशशीनाम् । एतानि रूपाणि पुरस्सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।" इत्युक्तत्वात् ।। (उ)

[4] तत उपरि पूर्ण॰ ख॰ ततः पूर्ण॰ ग॰ [5] ततो रत्नप्रभा॰ ग॰

[6] 'च एवं' इति नास्ति क॰

[7] उपनिषद्ब्रह्मयोगिव्याख्यानुसारेण अत्रैव प्रथमखण्डसमाप्तिः ।

[8] अभ्यस्य ग॰

[9] "पूरकाद्यनिलायामात् दृढाभ्यासादखेदजात् । एकान्तध्यानयोगाच्च मनःस्पन्दो निरुध्यते ।। ओङ्कारोच्चारणप्रान्तशब्दतत्त्वानुभावनात् । सुषुप्तेः संविदो जाते प्राणस्पन्दो निरुध्यते ।।"

[10] "योनिमध्ये महाक्षेत्रे जपाबन्धूकसंनिभम् । रजो वसति जन्तूनां देवीतत्त्वं समावृतम् । रजसो रेतसो योगात् राजयोग इति स्मृतः ।। " (योगशि॰ 177) "क्षेत्रज्ञः परमात्मा च तयोरैक्यं यदा भवेत् । तदैक्ये साधिते ब्रह्मन् चित्तं याति विलीनताम् ।" पवनः स्थैर्यमायाति ॥ (योगशि॰ 135) [11] नियमार्थः ग॰

तदुध्यानाभ्यासादौ ब्रह्मस्वरूपाण्येव बहुचिह्नानि जायन्ते [1]तारकवत् वज्रदर्पणवत् परिपूर्णचन्द्रमण्डलवत् [2]रत्नदीपवत् वह्निशिखावच्च । [3]इदं अन्तर्लक्ष्यलक्षणम् । तेन परमयोगिना ध्यानानुभवः कर्तव्यः ॥

(६४) तदा [4]पश्चिमाभि[5]मुखः प्रकाशः । स्फटिकधूम्र-[6]बिन्दुनादकलानक्षत्र[7]खद्योतसुवर्ण नवरत्नादिप्रभाः दृश्यन्ते । [8]तदेव [9]प्रणवस्वरूपम् ॥

इति द्वितीये ब्राह्मणे प्रथमः खण्डः

पूर्वाभिमुखो योगी सम्पूर्णमण्डलाकारं आत्मचिह्नं यदि पश्यति, तत्पश्चिमाभिमुखः प्रकाशः स्वीकर्तव्यः । तारकमार्गात् [10]किञ्चित्प्रत्यक्स्थानस्य ब्रह्मावगतिहेतुत्वात्। [11]किञ्च-तेजस्तटिद्धूम्रबिन्दुनादकलानक्षत्रखद्योतदीपनेत्रसुवर्ण [12]कञ्जकिञ्जल्कदण्डनवरत्नान्यात्मनः प्रत्ययानि भवन्ति । तत्प्रत्ययविदितं ब्रह्मैव परममृतमोङ्कारस्वरूपं आपोज्योतिस्स्थलं [13]शिवं विष्णोः परं पदं चेति [14]वदन्ति ।

---

[1] तारकवज्र ग. [2] इदं. ग. पुस्तके नास्ति ग.

[3] एवमन्तर्लक्ष्येण परमयोगिना ग. [4] प्रत्यक्प्रकाशानुभवः इति यावत् ।

[5] मुखप्रकाशः ख.

[6] अत्र बिन्दुः मनस्तत्त्वम् । नादः बुद्धितत्त्वम् । कला महत्तत्त्वम् । (उ)

[7] खद्योतदीपनेत्रसुवर्ण. ख. [8] यदेतदेवं दृष्टं तत्सर्वमित्यर्थः ।

[9] प्रणवरूपम्. ख. [10] किञ्च प्रत्यक् ग.

[11] "अनन्तमपरिच्छेद्यं अनूपममनामयम् । आत्ममन्त्रसदाभ्यासात् परतत्त्वं प्रकाशते । दीपज्वालेन्दुखद्योतविद्युन्नक्षत्रभास्वराः । दृश्यन्ते सूक्ष्मरूपेण तदा युक्तस्य योगिनः ॥" (योगशि. 2-13)

[12] कञ्ज इति नास्ति ग. [13] शिवविष्णुपरं पदं ग.

[14] वदन्तीत्येवमुक्त योगशाख. क.

[1]तदुक्तं योगशास्त्रे–
"ओङ्कारममृतं ब्रह्मत्यापोज्योतिस्स्थलं शिवम् ।
विष्णोः परं पदं चेति प्राहुः ब्रह्मविदो जनाः" इति ॥

इति योगशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः

अथ द्वितीये ब्राह्मणे द्वितीयः खण्डः

[षण्मुखीकरणेन नैष्कर्म्यहेतुप्रणवाधिगमः]

(६५) [2]प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा [3]धृतकुम्भकः नासाग्रदर्शन-दृढभावनया [4]द्विकराङ्गुलीभिः षण्मुखीकरणेन [5]प्रणवध्वनिं निशम्य [6]मनस्तत्र लीनं भवति ।[7]

---

[1] तदुक्तमित्यादि जनाः इत्यन्तं ग. पुस्तके नास्ति.

[2] हठयोगरीत्या प्राणेत्यादि (उ) इत्युक्तमिदं चिन्त्यम् । "प्राणापानसमायोगः ज्ञेयं योगचतुष्टयम्" इत्याद्युक्तत्वात् ।

[3] धृतकुम्भके ग.

[4] द्विकराङ्गुलिभिः–"अङ्गुष्ठाभ्यामुभे नेत्रे तर्जनीभ्यां द्विलोचने । नासारन्ध्रे च मध्याभ्यां अनामाभ्यां मुखे दृढम् । निरुद्ध मारुतं योगी यदेवं कुरुते भृशम् । तदा लक्षणमात्मानं ज्योतीरूपं प्रपश्यति ॥" इति शिवसंहितायां पञ्चमे पटले ।

[5] प्राणवादिध्वनिं. ग.　　[6] तत्र नादावसाने ब्रह्मणि (उ)

[7] "बिन्दुपीठं विनिर्भिद्य नादलिङ्गमुपस्थितम् । प्राणेनोच्चार्यते ब्रह्मन्! षण्मुखीकरणेन च ॥" (योगशि 2-13)

(६६) तस्य न कर्मलेपः

(६७) [1]रवेः [2]उदयास्तमययोः किल कर्म कर्तव्यम् ।

(६८) [3]एवंविदश्चिदादित्यस्य उदयास्तमयाभावात् सर्वकर्माभावः ॥

प्राणापानयोरैक्यं कृत्वा [4]धृतकुम्भकः स्थिरभावनया श्रोत्रनेत्रनासा-[5]गोलानि द्विकरषडङ्गुलीभिर्निरुध्य षण्मुखीकरणेन प्रणवध्वनिं निशम्य [6]तत्र केचिल्लयं कुर्वन्ति । केचित् दीपचन्द्रसूर्येभ्यः प्रत्यङ्मुखासीनाः सदा [7]तत्तच्चिह्नं उक्तमण्डलप्रकारेणालोकयन्ति । गुरूपदिष्टखेचरी[8]मुद्रया पूर्णचन्द्र-दृष्ट्या बाह्याभ्यन्तरतेजःप्रकाशो भवतीति निश्चयः । [9]तद्दृष्ट्यग्रभागे तेजःप्रति[10]फलनमावश्यकमित्युक्तं च । [11]एवमनुक्षणं आत्मदृष्ट्यासक्तस्य सर्वाणि कर्माणि नश्यन्तीति [12]परमार्थः ।

---

[1] रवेः योगिनामस्मादित्यस्य । "कर्मणा बध्यते जन्तुः विद्ययाऽमृतमश्नुते । तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः" इति श्रुतिः अत्रानुसन्धेया । (उ)

[2] "पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमर्कदर्शनात् । पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् । न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विजकर्मणः ।।" (मनु 2-103)

[3] एवंविदि चिदादित्यस्य. ग· एवंविधश्चिद्रादित्यस्य· क·

[4] धृतकुम्भस्थिरभावनः क. [5] गोलान्वितद्विकर· ग·

[6] तत्र खेचरीतुल्यं कुर्वन्ति. क· तत्र केचिच्चित्तलयं कुर्वन्ति ग.

[7] तत्तच्चिह्नयुक्त. ग· [8] मुद्रापूर्ण. ग·

[9] दृष्ट्यग्र· ग. [10] फलनस्वमा· ग.

[11] एवमनुलक्षणं· ग. एवमन्तर्लक्ष्यस्यावश्यकत्वात् एवमात्म· क·

[12] फलितार्थः. क·

[1]अथ आत्मलिङ्गार्चनम्-अहिंसा,सर्वेन्द्रियनिग्रहः, अधिकदयालुत्वं । क्षमा, सदाऽखण्डज्ञानपूर्णत्वम्, सत्यं, तपोनिष्ठा, [2]सर्वज्ञता च - इत्येतैः अष्टपुष्पैः आत्मलिङ्गार्चनपरो राजयोगी भवति ॥

निमीलनोन्मीलनद्वितयं विना [3]दृढराकाकारदृष्टिः संशयविवर्जितः परमपुरुषो राजयोगी भवति । [4]तं जात्याद्यौपाधिकं कर्म न हि बाधते । कर्म यावज्जीवं कार्यमपि राजयोगिनं न स्पृशति ।

तथाहि-तावत् कर्मणः सूर्याश्रयत्वं प्रतिफलति । तदुदयास्तमयकालयोः [5]सन्ध्यादिक्रियाणां अत्यावश्यकत्वात् ।

" [6]उद्यन्तमस्तं यन्तमभिध्यायन् कुर्वन्
ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥"

इति श्रुतेः । अतः [7]अस्तोदयसमययोः कर्म कर्तव्यमिति प्राप्ते, [8]तदभावेन

---

[1] इदं वाक्यं ग. पुस्तके नास्ति । "आत्मालिङ्गार्चनं कुर्यादनालस्यं दिनेदिने । तस्य स्यात् सकला सिद्धिः नात्र कार्या विचारणा" इति शिवसंहितायां पञ्चमे पटले उक्तम् । श्रीशङ्करभगवत्पादैरपि 'आराधयामि मणिसंनिभमात्मलिङ्गं' इत्यादिभिः निर्गुणमानसपूजेति नाम्ना, 'अखण्डे सच्चिदानन्दे' इत्यादिभिः परापूजेति नाम्ना, एवमन्यैरपि नानानामभिः इदमात्मलिङ्गार्चनम् प्रकटीकृतम् ।

[2] सर्वज्ञता इत्यैतैः क. [3] राकादृष्टि· ग.

[4] 'तं' इति नास्ति· क. [5] सन्ध्याक्रियाणां· क.

[6] तैत्तिरीयारण्यके 2.2. स्वाध्यायब्राह्मणे च स्वाध्यायात् प्राग्भाविनीं सन्ध्योपासनां विदधाना श्रुतिरेवमाह-उद्यन्तमिति । अभिध्यायन्-आभिमुख्येन चिन्तयन् । कुर्वन् विहितं कर्मानुतिष्ठन् । विद्वान् जानन् विजानंश्च । भद्रं-प्रेयः श्रेयश्च ।

[7] उदयास्तमयसमययोः क.

[8] तदभावः क· तदभावे· ग.

राजयोगिनो न घटते । कुतः ? तस्य सदा भानुः खमध्यंगत एव [1]भवति । [2]तत्त्वदृष्टिसिद्धेः । तस्मादुदयास्तमयाभावात् कर्माभावः इति सिद्धान्तः ॥

(६९) [3]शब्दकाललयेन [4]दिवारात्र्यतीतो भूत्वा सर्वपरिपूर्णज्ञानेन [5]उन्मन्यवस्थावशेन ब्रह्मैक्यं भवति उन्मन्या [6]अमनस्कं भवति ॥

[7]चतुष्पीठे मनो निधाय, तदुपरि त्रिकूटस्थं [8]अर्केन्दुमण्डलैक्यं अन्तर्दृष्ट्या वेदितव्यम् । तदेव तदिति [9]तदा भवतीति सामरस्यभावनया ब्रह्मैक्यानुभवी राजयोगी भवति । तज्ज्ञ दृश्यं तल्लयमिति [10]दृग्दृश्याभावस्तदा भवति । एवं जीवन्मुक्तिकरं राजयोगमङ्गीकृत्य, [11]प्राकृत ! कृतार्थो भवसि । [12]शब्दकाललयेन दिवारात्र्यतीतो भूत्वा सर्वपरिपूर्णज्ञानेन मनसा प्राप्तोन्मन्यस्थावशेन ब्रह्मैक्यं भवति । समुन्मनीभावेन मनसा [13]तदैव तव अमनस्कं भवति ।

---

[1] दहराकाशमध्यं गत इत्यर्थः । अयमेव ज्ञानिभिः परमव्योमभास्करः इत्युक्तः । अयमेवार्थः श्रीशङ्कराचार्यैरपि "प्रकाशमाने परमात्मभानौ" इत्यादिना, "कथं सन्ध्या विधीयते" इत्यादिना च स्वानुभवगोचरतया प्रपञ्चितः ॥

[2] तद्वत् दृष्टिसिद्धः· ग.

[3] शब्दः – अभिधानप्रपञ्चः, अभिधेयकलनात्मकः कालः । तयोः ज्ञानतो मिथ्यादृष्टयसत्ताबाध एव लयः । (उ)

[4] दिवारात्र्युपलक्षितावस्थात्रयमतीतवान् ।

[5] उन्मनी नाम तत्त्वज्ञानम् ।

[6] 'अमनस्कं स्वरूपं तत् न तत्र कलनामलम्' इति श्रुत्या ब्रह्मैव अमनस्कशब्दार्थः (उ)

[7] चतुष्पिष्टे· क.

[8] आग्नेयार्केन्दु ग·

[9] तथा· ग.

[10] दृग्दृश्याभेदस्तदा· क·

[11] प्राकृत; कृतार्थो भवति· क· प्राकृतार्थो भवति. घ·

[12] गम्येन दिवा· च.

[13] तदैवामनस्कं. क.

[अमनस्कपूजाविधिः]

(७०) तस्य [1]निश्चिन्तता ध्यानम् । सर्वकर्मनिराकरणं आवाहनम् । निश्चयज्ञानं आसनम् । उन्मनीभावः पाद्यम् । सदाऽमनस्कं अर्घ्यम् । [2]सदादीप्तिः आचमनम् । [3]अपारामृतवृत्तिः [4]स्नानम् । [5]सर्वात्म भावनागन्धः । दृक्स्वरूपावस्थानं अक्षताः । चिदाप्तिः पुष्पम् । चिदग्नि स्वरूपंधूपः । चिदादित्यस्वरूपं दीपः । [6]परिपूर्णचन्द्रामृतस्यैकीकरणं नैवेद्यम् । निश्चलत्वं प्रदक्षिणम् । सोऽहम्भावो नमस्कारः । मौनं स्तुतिः । सर्वसन्तोषो विसर्जनमिति य एवं वेद ॥

इति द्वितीये ब्राह्मणे द्वितीयः खण्डः

तस्य [7]निश्चिन्तता ध्यानम् । सर्वकर्मनिराकरणं आवाहनम् । निश्चयज्ञानं [8]आसनम् । समुन्मनीभावं पाद्यम् । सदाऽमनस्कं अर्घ्यम् । सदादीप्तिः आचमनम् । परामृतप्लुतिः [9]स्नानम् । परान्वितस्मरणं वस्त्रम् । सर्वपरिपूर्णज्ञानं उपवीतम् । सर्वात्मकत्वदृश्यलयः गन्धः । दृगवशिष्टावस्थानं

---

[1] 'सोऽहम्भावेन पूजयेत्' इति श्रुतिरत्रानुसन्धेया । निश्चिन्ता ध्यानम्. ख.

[2] सदादीप्तिरपारामृत. ख. सदादीप्तिरपारवारामृत. ग.

[3] दीप्तिमद्ब्रह्मगोचराखण्डाकारवृत्तिः इत्यर्थः ।

[4] स्थानम्. ग. [5] सर्वत्रभावना. ख.

[6] भ्रूमध्यसहस्रारान्तरालविलसत्परिपूर्णचन्द्रमण्डलनिस्सृतामृतस्य एकीकरणं अमृतसागररूपं नैवेद्यमित्यर्थः । (उ)

[7] निश्चिन्ता. क. निश्चिता. ग. [8] आचमनीयम्. क.

[9] स्थानम् । सर्वात्मकत्वं वस्त्रम् । दृश्यलयो गन्धः । दृग्विशिष्टान्तोऽक्षताः ग.

अक्षताः । चिदाप्तिः पुष्पम् । [1]चिदग्निमण्डलरूपत्वं धूपः । सूर्यात्मकत्वं दीपः । परिपूर्णचन्द्रामृतरसस्यैकीकरणं नैवेद्यम् । निश्चलत्वं प्रदक्षिणम् । सोऽहम्भावः नमस्कारः । परमेश्वरस्तुतिः मौनम् । सर्वसन्तोषः विसर्जनम् । एवं सर्वपूर्णराजयोगिनः [2]सर्वात्मकत्वं पूजा स्यात् ॥

इति योगशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः

अथ द्वितीये ब्राह्मणे तृतीयः खण्डः

[ब्रह्मभावब्रह्मविद्भावयोः साधनानि]

(७१) एवं [3]त्रिपुट्यां निरस्तायां निस्तरङ्गसमुद्रवत् निवातस्थितदीपवत् अचलसम्पूर्णभावाभावविहीनकैवल्यज्योतिर्भवति ।

(७२) [4]जाग्रन्निद्रान्तपरिज्ञानेन [5]ब्रह्मविद्भवति ॥

ध्यानादित्रिपुट्यां निरस्तायां निस्तरङ्गसमुद्रवत् निवातस्थदीपवत् अचलत्वेन सम्पूर्णभाव एव तन्मयत्वमित्याचक्षते । भावाभावविहीनवृत्त्या अमृतभावमापन्नः संन्यस्तसर्वावस्थः कैवल्यसिद्धिफलभाग् भवति ॥

जाग्रन्निद्रान्तपरिज्ञानेन ब्रह्मविद्भवतीत्येतदुक्तम् कठे—

" स्वप्नान्तं जागरितान्तं च उभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥" इति ।

---

[1] अग्निमण्डलानुरूपत्वं· क·   [2] सर्वात्मकपूजा· ख·

[3] सम्यग् ज्ञानेन ध्यातृध्यानध्येयरूपत्रिपुटीनिरासात्· (उ)

[4] जाग्रन्निद्रान्तः परि· क·

[5] कृत्स्नब्रह्मवेदनतः ब्रह्मत्वं; अकृत्स्नब्रह्मज्ञानतः ब्रह्मवित्त्वमिति भेदः । (उ)

मन आदिचतुर्दशकरणैः आदित्याद्यनुगृहीतैः शब्दादीन् स्थूलान् विषयान् यदोपलभते, तदा जाग्रदवस्था स्यात्। सर्वेन्द्रियोपरमकाले [1]मनोमात्रेणैव स्वप्नावस्था स्यात्। तत्र साक्षिमात्रात्मनो गमकत्वेन तद्वित् ब्रह्मविदिति [2]सुप्ट्रूक्तम्। [3]जाग्रदन्ते इन्द्रियविरामे सुषुप्त्यवस्थैव[4] स्यात्। ततः स्वप्नावस्थेति व्यवस्था।

तथाहि-सोपाधिकस्य नित्यं ब्रह्मैक्यानन्दाभिलाष[5]स्थितिप्राप्त्यै जाग्रदवस्थायां बहिर्मुखोऽपि समालम्बितनिद्रः तूर्णं ब्रह्मलयगतः [6]बहुलीकृतदेहप्रारब्धवशात् तमोऽभिभूतो भवति। अतः सुषुप्तौ तमोरूपपर[7]ब्रह्मणि जीवैक्यं भवति। तेन किञ्चित्कालं सुखेन स्थित्वा स्वान्तर्लीनमनसा स्वप्नं पश्यतीति [8]सिद्धान्तः। स्वप्नान्ते सोपाधिकस्य मनोगोचरत्वं सम्पद्यते। तस्मादुक्तं—'तत्त्वज्ञानान्मुक्ति'रिति॥

[सुपुप्तिसमाध्योः भेदः]

(७३) सुपुप्तिसमाध्योः मनोलयाविशेषेऽपि महदस्त्युभयोर्भेदः; तमसि लीनत्वात्, मुक्तिहेतुत्वाभावाच्च।

(७४) समाधौ मृदिततमोविकारस्य तदाकाराकारिताखण्डाकारवृत्त्यात्मकसाक्षिचैतन्ये प्रपञ्चलयः सम्पद्यते। [9]प्रपञ्चस्य मनःकल्पितत्वात्, ततो भेदाभावात्, कदाचित् बहिर्गतेऽपि मिथ्यात्व[10]भावन।

---

[1] मनोमात्रेण स्वप्नावस्थे. ग.

[2] सुप्त्यष्टकम्. ग.　　[3] जाग्रदन्तेन्द्रिय. ग.

[4] वस्थेव ग.　　[5] स्थितिप्राप्त्यैव. क.

[6] गतिबहुली. क. गतिबहुवशीकृत. ग.

[7] ब्रह्मजीवैक्यं. ग.　　[8] सिद्धार्थः ग.

[9] तस्यैवोपपादनं प्रपञ्चस्येत्यादिना।　　[10] भानात्. ख.

(७५) [1]सकृद्विभातसदानन्दानुभवैकगोचरः ब्रह्मवित् [2]तदेव भवति ॥

एवं अवस्थात्रयनियमे विचार्यमाणे सुषुप्तिसमाध्योः न ह्यस्ति भेदः। उभयोः [3]मनोलयतौल्यात्। मनोलय एव मुक्तिरिति [4]यद्युच्येत, तथा न वक्तव्यम्। तत्र तु [5]मनसः सत्त्वात् मुक्तिहेतुत्वाभाव एव।

[6]तर्हि कोऽत्र मुक्तिहेतुः वक्तव्यः? —तत्र विशेषोऽयं परिग्राह्यः। [7]परिच्छिन्नस्य [8]मनसः लयः सुषुप्तौ भवति। समाधौ तु [9]मृदितमनसः अपरिच्छिन्नत्वं [10]ईश्वरस्येव भवति। तदाकाराकारितान्तःकरणस्य [11]पूर्णत्वात्। [12]उभयैक्ये प्रपञ्चलयः सम्पद्यते। महाभूतादिप्रपञ्चस्य मनःकल्पितत्वात्। ततः परं [13]भेदगन्धाभावात् मुक्तिरिति दिक् ॥

बाह्याभ्यन्तरयोः अभिमानशून्यवृत्त्या सदानन्दानुभवेन वा यश्चरति सोऽपि मुक्त एव। [14]अज्ञत्वहीनज्ञप्तिं ज्ञप्तिहीनमज्ञत्वं च यो वेद, स तु नित्या-

---

[1] मनस्तत्कार्याभावे तदनुस्यूतचैतन्यस्य यत एकत्वं ततः बहिर्गतेऽपि मनसि तद्विकल्पितप्रपञ्चस्य मिथ्यात्वभानात्। सर्वप्रकारेण ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवतीत्याह—सकृदिति (उ)

[2] तदेव भवति. क. [3] मनोलयत्वं स्यात्. क. मनोलौल्यात्. ग.

[4] यदुच्यते. ग.

[5] तमसः सत्त्वात्. क.

[6] अतः कोऽत्र. ग. [7] इदं वाक्यं 'ग' पुस्तके नास्ति.

[8] मनोलयः. क. [9] मृदिततमसः. क. यदि तमसः ग.

[10] ईश्वरस्य. क. ईश्वरस्य वा. च. [11] पुण्यत्वात् ग.

[12] उभयोरैक्यं प्रपञ्चलयं च. [13] 'भेद' इति नास्ति ग.

[14] अज्ञत्वहीनज्ञप्तिहीनज्ञभावं च. क.

नित्यार्थविवेकवान् भवति । तद्विवेकसम्पन्नोऽपि अज्ञ इव वर्तते चेत्, स मुक्तिभागेव ॥

[मुक्तिसाधकाः त्यागाः]

(७६) यस्य सङ्कल्पनाशः स्यात् तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥

(७७) तस्मात् [1]भावाभावौ परित्यज्य [2]परमात्मध्यानेन मुक्तो भवति ।

(७८) [3]पुनः पुनः सर्वावस्थासु ज्ञानज्ञेयौ ध्यानध्येयौ लक्ष्यालक्ष्ये दृश्यादृश्ये चोहापोहादि [4]परित्यज्य जीवन्मुक्तो [5]भवेत् । य एवं वेद ॥

इति द्वितीये ब्राह्मणे तृतीयः खण्डः

---

[6]यस्य सङ्कल्पनाशः स्यात् तस्य भावयोगसिद्धिः, उन्मन्यवस्थापरिपक्वमनस्सिद्धिश्च भवति । यदि [7]सङ्कल्पमात्रे स्थितिलेशः, स एव बन्धहेतुः स्यात् । तस्मात् भावाभावौ परित्यज्य सर्वपरिपूर्ण[8]ज्ञानेन मुक्तो भवति । मुहुर्मुहुः सर्वावस्थासु अकृतप्रयत्नो भूत्वा, [9]ज्ञानज्ञेये [10]ध्यानध्येये लक्ष्यालक्ष्ये

---

[1] सङ्कल्पोऽस्ति नास्तीति तद्भावाभावावित्यर्थः. भावाभावं. ग.

[2] निष्प्रतियोगिकपरमात्मा स्वमात्रमिति ज्ञानाविर्भावेनेति शेषः (उ)

[3] इत्थंभूतज्ञानफलमाह– पुनरिति । स्वावशेषधिया ब्रह्मणि ज्ञातेऽपि स्वातिरिक्तधिया यदि ज्ञानज्ञेयादिवृत्तिरुदेति तदा पुनःपुनरिति । तत्त्यागाधिकरणं ब्रह्मास्मीति य एवं वेद स विद्वान् जीवन्मुक्तो भवतीत्यर्थः ॥ (उ)

[4] स्वातिरिक्तधियेति शेषः । [5] भवति. ख.

[6] यः स्वसङ्कल्पविकल्प. ग.

[7] सङ्कल्पमात्रोऽपि तल्लेशः क. [8] ध्यानेन. ग.

[9] ज्ञानज्ञेयौ. क. [10] ध्यानध्येयौ. क.

*4

दृश्यादृश्ये ऊहापोहादीनि च सर्वाणि परित्यज्य [1]निश्चलचित्तो भूत्वा यस्तु वर्तते स तु जीवन्मुक्तो भवति ॥

इति योगशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः

अथ द्वितीये ब्राह्मणे चतुर्थः खण्डः

[अवस्थापञ्चकम्]

(७९) पञ्चावस्थाः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयतुरीयातीताः । [2]

इतःपरं पारिभाषिकावस्थाः पञ्च ज्ञेयाः, जाग्रत्–स्वप्न–सुषुप्ति-तुरीय-तुरीयातीतभेदात् ।

[प्रवृत्तिमार्गासक्तस्याकाङ्क्षा]

(८०) जाग्रति प्रवृत्तो जीवः प्रवृत्तिमार्गासक्तः पापफलं नरकादि मास्तु [3]शुभकर्मफलं अस्तु, इति स्वर्गफलं काङ्क्षते ।

तल्लक्षणं तु–पापकर्माणि त्यक्त्वा शुभकर्माणि समाचरेत् । एवं वर्तमानस्तु प्रवृत्त इत्युच्यते । स एव जाग्र[4]दवस्थाऽऽप्त इति नाम भजति ।

---

[1] निश्चित्तो भूत्वा· क· निश्चिन्तो· ग·

[2] अत्र– 'नाभिकन्दात् समारभ्य यावद्धृदयगोचरम् । जाग्रद्वृत्तिं विजानीयात् कण्ठस्थं स्वप्नवर्तनम् । सुषुप्तं तालुमध्यस्थं तुर्यं भ्रूमध्यसंस्थितम् । तुर्यातीतं परं ब्रह्म ब्रह्मरन्ध्रे तु लक्षयेत् । जाग्रद्वृत्तिं समारभ्य यावद्ब्रह्मबिलान्तरम् । तत्राऽऽत्मायं तुरीयः स्यात् तुर्यान्ते विष्णुरुच्यते ॥' इति त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषत्, "केसरे जाग्रदवस्था, कर्णिकायां स्वरूपम्, लिङ्गे सुषुप्तिः, पद्मत्यागे तुरीयम्, यदा हंसे नादो विलीनो भवति तत् तुरीयातीतम्" इ यादि हंसोपानिषच्च अत्रानुसन्धेया ॥

[3] शुभकर्मफल· च· [4] दवस्था इति· ग·

जाग्रदवस्थायामाप्तः संयुक्त इत्यर्थः । प्रवृत्तिमार्गासक्तः प्रवृत्तः पाप-कर्मफल नरकाद्यनुभवो मास्तु, शुभकर्मफलस्वर्गाद्यनुभवोऽस्त्विति ।

[निवृत्तिमार्गासक्तस्याकांक्षा]

(८१) [1]स एव स्वीकृतवैराग्यात्, कर्मफलजन्मालं, संसारबन्धन-मलं इति, [2]विमुक्त्यभिमुखनिवृत्तिमार्गप्रवृत्तो भवति[3] ॥

स एव स्वीकृतवैराग्यः कर्मालं जन्मालं संसारबन्धनमलं इति [4]नित्य-मनुचिन्तनपरः [5]सम्यङ्मुक्त्यभिमुखस्सन् निवृत्ताख्यो भवति ॥

[तदाकाङ्क्षानुगुणाः क्रियाः, तत्फलं च]

(८२) स एव संसारतारणाय गुरुमाश्रित्य, [6]कामादि त्यक्त्वा, विहितकर्म [7]आचरन्, साधनचतुष्टयसम्पन्नः, हृदयकमलमध्ये भगवत्सत्तामात्रान्तर्लक्ष्यरूपमासाद्य, सुषुप्त्यवस्थायां उक्तब्रह्मानन्द-स्मृतिं लब्ध्वा, एक एवाहमद्वितीयः कञ्चित्कालं अज्ञानवृत्त्या विस्मृत [8]जाग्रद्वासनासु फलेन तैजसोऽस्मीति तदुभयनिवृत्त्या प्राज्ञ इदानीमस्मी त्यहमेक एव, [9]स्थानभेदादवस्थाभेदस्य, परं तु न हि मदन्यदिति [10]जातविवेकः,शुध्दाद्वैतब्रह्माऽहमिति भिदागन्धं निरस्य,स्वान्तर्विजृम्भित-

---

[1] एवंस्थितेष्वनेकेषु धन्यः कश्चिदित्यर्थः । एवं स एव. ख.

[2] विमुक्त्यभिमुखः च.

[3] इतः प्रभृति तस्य केवलं कर्मफलायैव जन्म, न तु कर्मकरणायेति भावः ।

[4] नित्यमनुचिन्तापरः क.

[5] सम्यग्विमुक्त्यभिमुखः. ग.

[6] पराग्भावप्रवृत्तिमित्यर्थः ।

[7] चरन्. क.

[8] जाग्रद्वासनानुफलेन. ख.

[9] जाग्रदादिस्थानभेदादित्यर्थः । (उ)

[10] जातिविवेकः ख. ब्रह्मातिरेकेण जायते इति जातिः जन्मादि, तत् न कदापि मेऽस्तीति विवेकः इत्यर्थः ।

भानुमण्डलध्यानतदाकाराकारित [1]परब्रह्माकार[2]मुक्तिमार्गमारूढः परिपक्वो भवति ।

[मनःप्रभावः]

(८३) सङ्कल्पादिकं मनो । बन्धहेतुः तद्विमुक्तं मनः मोक्षाय भवति ।

[निर्विकल्पकवृत्तेः फलम्]

(८४) तद्वान् चक्षुरादिबाह्यप्रपञ्चोपरतः विगतप्रपञ्चगन्धः सर्वं जगदात्मत्वेन पश्यन् त्यक्ताहङ्कार. 'ब्रह्माऽहमस्मी' ति चिन्तयन् 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इति भावयन् कृतकृत्यो भवति ॥

इति द्वितीये ब्राह्मणे चतुर्थःखण्डः

स एव संसारवार्धिप्लवार्थीव जननमरणप्रवाहतरणाय साधनाभिलाषी भक्त्या सदा गुरुसेवानिरतः कामादीन् परित्यज्य विहित[3]कर्माचरन् समाश्रितः मौननिष्ठः शमदमयुतः शुचिर्भूत्वा महाधैर्यवान् योगाभ्यासपरः [4]प्राप्तप्रायणोऽपि स्वर्गसौख्यानुभवी पुनर्भूमिमासाद्य [5]पूर्वाभ्यासबलात्स्वप्नावस्था-[6]हृतयोगफलः [7]स्वप्नबहुलशरत्कालप्राप्त[8]स्वप्नवत् लोकान् अनित्यान् सम्भाव्य हृदयकमलमध्ये भगवत्सत्तामात्रं उत्क्रान्तर्लक्ष्यरूपं अवाप्य सुषुप्त्य[9]वस्थायां

---

[1] परं ब्रह्माकारित. ख. परब्रह्मकारित. ग.
[2] मुक्तिमार्गारूढः. ग.
[3] कर्माचारसमाश्रितः ग.
[4] प्राप्तप्रयाणोऽपि. क.
[5] पूर्वाभ्यासात्. क.
[6] धृत. क.
[7] स्वप्नबाहुल्य. क.
[8] स्वर्लोकान्. ग.
[9] वस्थायां उक्त. क. वस्थया भुक्त. च.

भुक्तब्रह्मानन्दस्मृतिं लब्ध्वा 'एक एवाहं [1]न द्वितीयः, कश्चित् कालं अज्ञानवृत्या विश्वोऽस्मि, जाग्रद्वासना[2]बलेन तैजसोऽस्मि, तदुभय निवृत्त्या प्राज्ञ इदानीमस्मि, अहमेक एव स्थानभेदात् अवस्था[3]भेदवान् स्याम्, परं तु नहि मत्तोऽन्यत्' इति जातविवेकः शुध्दाद्वैतब्रह्माहमिति [4]भिदागन्धं निरस्य स्वान्तर्विजृम्भित भानुमण्डलध्यानात् तदाकाराकारितः पर[5]ब्रह्माभूवमिति मुक्तिमार्गं एवमारूढोऽपि चक्षुर्द्वारा स्वीकृतबाह्यप्रपञ्चलक्षणः [6]स्वहृत्प्रवृत्त्विरतो भूत्वा [7]चित्ररूप इव विगतप्रापञ्चिकगन्धः सर्वं जगदात्मत्वेन पश्यन् क्षमासत्य-शौचान्वितो वर्तते ॥

इति योगशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः

अथ द्वितीये ब्राह्मणे पञ्चमः खण्डः

[निर्विकल्पसमाधिमहिमा]

(८५) सर्वपरिपूर्णतुरीयातीत[8]ब्रह्मभूतो योगी भवति। तं ब्रह्मेति स्तुवन्ति। सर्वलोकस्तुति[9]पात्र[10]सर्वदेशसञ्चारशीलः [11]परमात्म-

---

[1] अद्वितीयः ग.　　[2] ऽनुफलेन· ग

[3] भेददृष्टिः स्यात् ग·　　[4] भिदाग्रन्थिं· ग·

[5] ब्रह्माभूदिति· ग·　　[6] स्वहृत्प्रवृत्तो भूत्वा· क·

[7] चित्तरूपमिव· क·　　[8] ब्रह्मभूतयोगी· ग·

[9] पात्रं ख· पात्रः ग·　　[10] सर्वलोक· ख·

[11] चिदाकाशे मनोविलयं कृत्वेत्यर्थः। तादृशमनोलयाधिकारणे शुद्धाद्वैते ब्रह्मणि निर्विकल्पसमाधिमापन्नः तदनवरतानुसन्धानात् ब्रह्मविद्वरो भवतीत्यर्थः। तदा जडताप्रयुक्तजाग्रदाद्यवस्थाऽभावात्। (उ)

गगने बिन्दुं निक्षिप्य शुध्दाद्वैताजाड्यसहजामनस्कयोगनिद्राऽखण्डानन्द-पदानुवृत्त्या जीवन्मुक्तो भवति ।

(८६) तदानन्दसमुद्रमग्नाः योगिनः भवन्ति । तदेपक्षया इन्द्रादयः स्वरूपानन्दाः ।

(८७) एवं प्राप्तानन्दः परमयोगी भवतीत्युपनिषत् ॥ [1]

इति द्वितीये ब्राह्मणे पञ्चमः खण्डः

द्वितीयं च ब्राह्मणम्

---

[1] अथेदानीं निष्प्रपञ्चाखण्डपरंज्योतिर्भावनानपेक्षं भ्रूमध्याद्याधारज्योतिर्निद्रा-मात्रेण अखण्डं स्वयमेव प्राप्येत इत्यादि वदतां खण्डयोगिनां उत्साहभङ्गकारी द्वितीयं ब्राह्मणमारभ्यते ।

नन्विहापि "बाह्याभ्यन्तरलक्ष्य एव जगल्लीन"मिति, "तस्माद्बिन्दुकलातीत"मिति, "अखण्डमण्डल" मिति चैवमादिवाक्यैः अखण्डब्रह्मणः पृथक् भावनीयत्वं नावगम्यते । अमादिदृष्टित्रयं च खण्डयोगविषयकमेव प्रसिद्धम् । अखण्डयोगस्य ब्रह्मात्मैक्यानु-भूतिस्वरूपत्वेन आरूढविषयतया अभ्यासविषयत्वाभावेन दृष्टित्रयाद्यनुपपत्तेः इति चेत्-नायं दोषः । अखण्डयोगेषु च त्रिविधेषु दृश्यानुविद्ध-शब्दानुविद्ध-निर्विकल्पाख्येषु समाधिषु दृष्टित्रयस्य क्रमेणोक्तत्वात् । ते ह्येते समाधयः ब्रह्मात्मैक्यार्थकाः इत्यसकृद्वो-चाम ।

न च खण्डयोगिनःअखण्डयोगाभ्यासं विना स्वयमेवाखण्डानुभवो भवितु-मर्हति । भावनानुरूपत्वात् इत्यप्यसकृद्वोचाम । "ज्ञानप्लवाधिरूढेन ज्ञेय"मित्युक्त्या च अखण्डज्ञानपूर्वकाखण्डयोग एव विवक्षितः अवगम्यते । बाह्यमाभ्यन्तरं च लक्ष्यं यस्मिन् तत् अखण्डं ब्रह्मेति व्युत्पत्त्या च न खण्डलक्ष्ययोगस्यावकाशोऽस्ति । तस्याखण्ब्रह्मणो मध्ये जगल्लयादिकं च न्याय्यम् । नादबिन्दुकलातीतत्वं च अखण्ड-ब्रह्मण एवोपपन्नम् । खण्डस्य तत्तदंशत्वेन अमुख्यत्वात् । सोमसूर्याग्निमण्डलानि तु पूर्ववासनया शब्दानुविद्धसमाधिकालेषु क्वचित्क्वचिद्भवन्त्येव ।

अपि च "द्विराज्यतीतो भूत्वा सर्वपरिपूर्णज्ञानेन उन्मन्यवस्थावशेन ब्रह्मैक्यं भवति"। "उन्मन्या अमनस्कं भवति" इत्यादिवाक्यैः अखण्डब्रह्मात्मैक्यानुभवार्थकस्य तादृशध्यानयोगस्य अवगम्यमानत्वात् नावान्तराभ्यासगोचरस्य षण्मुखीकरणादिजनितखण्डयोगस्य कथंचिदपि प्रधान्यं स्यात्। 'किंचैवं त्रिपुट्यां निरस्तायां' इत्यादिवाक्यानि बहुविस्तरेण व्याख्यातुं कुतूहलिनो भवामः, परमरहस्यानां विविक्षितानामर्थानां अभिहितत्वात्। तथापि अवलोकयतां सौकर्यं विचिन्त्य संगृह्यते।

ननु अखण्डं ब्रह्मापि शनैः शनैरेव भावनीयत्वात् तद्ध्यानाभ्यासिनः शब्दानुविद्धसमाधिमतोऽपि खण्डंखण्डमेव प्रतीयेतेति चेन्न। सुसंस्कृतान्तःकरणस्यास्य महायोगिनः सकृदुल्लेखमात्रेण अखण्डब्रह्मप्रत्ययदर्शनात्। तथा चाह-'सकृद्विभातसदानन्दानुभवैकगोचरः ब्रह्मवित् तदेव भवति' इति। श्रवणमननसुसंस्कारवर्जितान्तःकरणेन हि अखण्डं ब्रह्मापि मन्दं मन्दं स्वल्पस्वल्पावकाशात्मना भाव्येत। सुसंकृतान्तःकरणस्तु ब्रह्माभ्यासधुरीणः साधकोत्तमः अनेकब्रह्माण्डाधिष्ठानं अखण्डचिदाकाशं सकृत् स्मरणेन एकधा समुत्थाप्य तत्र निरङ्कुशां कुर्यादेव।

अपि च-'तस्मात् भावाभावौ परित्यज्य परमात्मध्यानेन मुक्तो भवति' इत्युक्तम्। न च वाक्यार्थश्रवणमननरहितस्य लक्ष्यार्थदर्शनमात्रवतः भावाभावात्मकप्रपञ्चाविद्ययोः त्यागः कथंचिदपि सेत्स्यति। नापि तत्त्यागासिद्धौ परमात्मध्यानं भवितुमर्हति। हिरण्यनिधेः भूम्येव परमात्मनः ताभ्यां प्रच्छन्नत्वात्।

ननु ऊहापोहादि परित्यज्य जीवन्मुक्तो भवतीत्युक्तम्। जीवन्मुक्तस्य मौढ्यप्रसङ्गात् इति चेन्-नैष दोषः। ऊहापोहादेरपि स्थूलादिभेदेन चातुर्विध्यात्। तत्र लौकिकवैदिकौपनिषदस्वानुभवीयेषु तुरीयमात्रोहापोहवतः ब्रह्मविद्वरीयस्त्वात्। न च स्थूलं लौकिकं नष्टं स्यात्। विशेषाभावेऽपि यथापूर्वमवस्थानोपपत्तेः। कथं तर्हि 'सुषुप्त्यवस्थायां उक्तब्रह्मानन्दस्मृतिं लब्ध्वा' इत्युच्यते ? तस्यां हि सर्ववृत्तिविलोपेन मृततुल्योऽस्ति। अत्रोच्यते- ब्रह्मविद्धि जाग्रदवस्थायां केवलब्रह्मनिष्ठावान् भवति। तद्वरः स्वप्ने च किंचित् कालं तथा स्यात्। तद्वरीयांस्तु सुषुप्तावपि ब्रह्मानन्दस्मृतिं अखण्डाकारवृत्तिं लभते इत्यर्थः। तदुभयनिवृत्त्या 'प्राज्ञः इदानीमस्मि' इत्येषा हि प्रज्ञा सामान्यसुषुप्तस्य क्वचिदप्यभिलाप्यते। अतः इयं सुषुप्त्यवस्था ब्रह्मविद्वरीयस्यैव मन्तव्या।

चक्षुरादिबाह्यप्रपञ्चोपरतः विगतसूक्ष्मप्रपञ्चगन्धः सर्वं जगत् आत्मत्वेन यः पश्यति सः दृश्यानुविद्धसमाध्यारूढः। त्यक्ताहङ्कारः ब्रह्मासीति यः चिन्तयति सः

स एव त्यक्ताहङ्कारः 'प्राज्ञातीतं अशेष[1]भूतोत्पत्तिकारणं ब्रह्माहं, इदं [2]मज्जं मल्लयमेव' इति विवेकेन [3]वर्तते । स एव समुद्र[4]निमग्नपरिपूरितघटवत् ध्वस्तघटनिष्ठाकाशवत् जीवपरैक्यं [5]कृत्वा सर्वपरिपूर्णः तुरीयातीतब्रह्मीभूतः योगी विराजते । तं ब्रह्मेति गोविन्दः इति परमशिवः इति च स्तुवन्ति ।

सर्वलोकस्तुतिपात्रं [6]सर्वदेशसञ्चारशीलः कृतार्थफलेन दत्तात्रेयादिवत् विराजते । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन योगाभ्यासं कुरु ।

शब्दानुविद्धसमाध्यारूढः । इदं सर्वं यदयमात्मा इति भावयन् यः कृतकृत्यो भवति सः निर्विकल्पकसमाध्यारूढः । सहजसमाध्यनुभवेन सर्वपरिपूर्णतुर्यातीतब्रह्मभूतो योगी ज्ञानयोगिश्रेष्ठो भवति । तं ब्रह्मेति स्तुवन्ति । कथं 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इति श्रुत्यन्तरे सति स्तुतिमात्रयोग्यत्वं ? इति चेन्नायं दोषः । निष्प्रतियोगिकब्रह्मतायाः प्रारब्धदेहपातानन्तरं उपलप्स्यमानायाः अपि इदानीमेवोपलब्धत्ववचनस्य औपचारिकत्वात् । कथं तर्हि जीवन्मुक्तिर्भवति ? सङ्ग्रहेण वक्तव्यमित्यपेक्षायामाह-सर्वदेश-सञ्चारशीलः परमात्मगगने बिन्दुं निक्षिप्य शुद्धाद्वैताजाड्यसहजामनस्कयोगनिद्राखण्डपदानुवृत्त्या जीवन्मुक्तो भवतीति । अत्र सर्वदेशसञ्चारशब्देन यतयो ग्रामैकरात्रं वासं मन्यन्ते, तदसत् । सर्वप्रपञ्चावकाशप्रदपरमात्मप्रदेशे एव सञ्चारः सर्वगतचिदाकाशानुसन्धानमित्यर्थः । स एव शीलं यस्य सः परमात्मगगने ज्योतिर्मयमहाकाशे बिन्दुं कूटस्थं प्रत्यगात्मानं निक्षिप्य, परमात्माभेदं निदिध्यासनेन प्रापय्य, शुद्धाद्वैतत्वादिलक्षणतत्तादृशपरमपदानुवृत्त्या सर्वावस्थासु च सर्वदा सहजानुभवेन जीवन्मुक्तो भवति । ब्रह्मविदामपीन्द्रादीनां सुखसंज्ञकविषयदुःखाधिक्यात् ब्रह्मानन्दसमुद्रमग्नयोग्यपेक्षया स्वल्पानन्दत्वं युक्तमेवोक्तम् ॥ (भा)

[1] भूतवृत्ति॰ ग॰

[2] भञ्जं अल्पयमेव॰ ग॰

[3] यो वर्तते स एव क॰

[4] निमज्जत्पुरवत् ग॰

[5] कृतसर्वं ख॰

[6] सर्वसञ्चार ग॰

[1]तुरीयातीतं आनन्दं स्वीकृत्य सर्वावस्थाः परित्यज्य संन्यस्तसर्वकार्यः सम्यग्दृढयोगनिष्ठः परमात्मनि गगने बिन्दुं निक्षिप्य शुध्दाद्वैतसामरस्यं कुर्यात् इति योगशास्त्रोपदिष्टं अमनस्कविधानं [2]कुरु ।

एवं उन्मनी मनोन्मनी सहजामनस्कं अजाड्यनिद्रा योगनिद्रा [3]अनन्ताखण्डानन्दः इति च पर्यायपदानुवृत्या राजयोगस्य विदितानि नामानि भवन्ति ॥

एवं कृतामनस्कसौख्यं अपरिमितं [4]अत्यद्भुतं अक्षरं भवति । तदानन्दसमुद्रमग्ना महायोगिनः सन्ति । तदानन्दापेक्षया सर्वानन्दाः [5]स्वल्पा इव भवन्ति । [6]'स एको ब्रह्मणः आनन्दः' इति श्रुतेः । एवं प्राप्तानन्दः परमयोगी [7]भवति ॥

इति योगशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः ।

अथ तृतीये ब्राह्मणे प्रथमः खण्डः

[अमनस्कस्वरूपप्रश्नः]

(८८) याज्ञवल्क्यो महामुनिः मण्डलपुरुषं पप्रच्छ-"स्वामिन् ! अमनस्कलक्षणं उक्तमपि विस्मृतम् । पुनः तल्लक्षणं ब्रूहि" इति । तथेति मण्डलपुरुषोऽब्रवीत् ।

---

[1] तुरीयातीतस्वीकृतमहानन्दः स्वीकृतसर्वं. ग.

[2] 'कुरु' इति नास्ति. ग.

[3] तज्ज्ञानन्दोऽखण्डानन्दः ग.

[4] अत्यन्तं क.

[5] द्वययुताः भवन्ति ग.

[6] तैत्तिरीयोपनिषत् 2. 8.

[7] भव. क.

[शाम्भवीसंयुतामनस्कस्वरूपमहिमा]

(८९) [1]इदममनस्कं [2]अतिरहस्यम्। यद्ज्ञानेन कृतार्थो भवति। तत् नित्यं शाम्भवीमुद्रान्वितम्। परमात्मदृष्ट्या तत्प्रत्ययलक्ष्याणि दृष्ट्वा तदनु सर्वेशं अप्रमेयं अजं शिवं परकाशं निरालम्बं अद्वयं ब्रह्मविष्णुरुद्रादीनां[3] एकलक्ष्यं सर्वकारणं [4]परब्रह्म आत्मन्येव पश्यमानः [5]गुहाविहरणमेवं निश्चयेन ज्ञात्वा भावाभावादिद्वन्द्वातीतः संविदितमनोन्म[6]न्यनुभवः[7] तदनन्तरं अखिलेन्द्रियक्षयवशात् अमनस्कसुखब्रह्मानन्दसमुद्रे मनःप्रवाहयोगरूपं निवातस्थितदीपवत् अचलं परं ब्रह्म प्राप्नोति।

(९०) ततः शुष्कवृक्षवत् [8]मूर्छानिद्रामयनिश्वासोच्छ्वासाभावात् नष्टद्वन्द्वः सदा अचञ्चलगात्रः परमशान्तिं स्वीकृत्य, मनः प्रचारशून्यं परमात्मनि लीनं भवति।

(९१) [9]पयस्स्रावानन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गे परिनष्टे मनोनाशं भवति, तदेव अमनस्कम्॥

---

[1] इदममनस्कलक्षणं. ग.

[2] मनो यत्र विलियते अमनीभावमेति तत् अमनस्कम् (उ)

[3] तृतीयार्थे षष्ठी। तैः सर्वारमैक्यधिया लक्षितत्वात्। (उ)

[4] परं ब्रह्म, ख.

[5] बुद्धिगुहेत्यर्थः। तत्र प्रत्यग्रूपेण विहरणात्। (उ)

[6] न्यवस्थः ग.

[7] मनः यत्र उन्मनीभावं निस्सङ्कल्पतां एति तादृशं ब्रह्मास्मीत्यनुभवः मनोन्मन्यनुभवः (उ)

[8] प्राणान्तःकरणसरूपविलयः मूर्छानिद्रावस्थेत्यर्थः। तद्विकारनिःश्वासोच्छ्वासकामसङ्कल्पादिव्याप्त्यभावात् इत्यर्थः। (उ)

[9] समाधिस्थयोगिनः इन्द्रियग्रामे सत्यपि मनोनाशे दृष्टान्तमाह - पय इत्यादि। (उ)

एवमुपदिष्टः प्राकृतः पुनरिदमवादीत् । स्वामिन् ! [1]अमनस्कलक्षण-मिदानीं श्रुतमपि [2]विस्मृतमिव भाति । तदाख्याय पुनर्वक्तव्य[3]मिति । तथा प्रार्थितः परमयोगी [4]शिष्यं प्रत्यब्रवीत् ।

[5]अथैतदत्यन्तरहस्यं शृणु । सद्यः कृतार्थो भवसि । नित्यं शाम्भवी-मुद्रान्वितः पूर्वोक्तप्रकारेण परमात्मदृष्ट्या प्रत्ययानि लक्ष्याणि दृष्ट्वा दृश्यहीनः पूर्वपुण्य[6]तपोदृष्टप्रत्ययानि शून्यान्यनुभाव्य [7]सर्वत्र एकं अप्रमेयं [8]अजं शिवं परमाकाशं सर्वकारणं परं ब्रह्म [9]आत्मत्वेनैव [10]पश्यन् , मनोगुहाविहरण-[11]शीलं एवं निश्चयेन ज्ञात्वा, भावाभावौ स्वप्नास्वप्नौ निद्रानिद्रे इत्यादि द्वन्द्वातीतः सन् विदितमनोन्मन्य[12]नुभवानन्तरं अखिलेन्द्रिय[13]जयवशात् अमनस्कसुखं ब्रह्मानन्दसमुद्रे [14]मनःप्रवाहयोगरूपं लब्ध्वा, ततः परं निवात-स्थितदीपवदचलं ब्रह्म प्राप्स्यसि । ततः परं त्वं शुष्ककाष्ठवत् मूर्छानिद्रामयनिःश्वासो[15]च्छ्वासाभावात् नष्टद्वन्द्वः सदा अचञ्चलगात्रः शान्तिं स्वीकृत्य [16]स्थितो भवसि ।

तदा तव मनः प्रचारशून्यं परमात्मनि लीनं भवति । [17]पयःस्रावा नन्तरं धेनुस्तनक्षीरमिव सर्वेन्द्रियवर्गे परिनष्टे मनोनाशमङ्गीकुरुष्व । तदेवामनस्कमिति ॥

---

[1] अमनस्कं श्रुतमपि. क· [2] विस्मृतमिति प्रार्थितः ग·
[3] मितिप्रार्थितः क· [4] शिष्यवरं· ग.
[5] अद्वैतमत्यन्त· क· अप्येतदत्यन्त· ग·
[6] तमोदृष्ट· ग. [7] तदनु सर्वेश्वरमप्र· क·
[8] अयं· ग· [9] आत्मन्येव पश्यन्· ग·
[10] पश्यमानो गुहा· क· [11] शीलतैव निश्चय इति ज्ञात्वा. क.
[12] नुभवस्थः तदनन्तरं [13] क्षय· ग.
[14] मग्नः. ग. [15] च्छ्वासभावाभावाद्विनष्टः क· [16] स्थिरो. ग·
[17] स्रावनानन्तरं· क.

[अमनस्काभ्यासस्य कृतकृत्यताहेतुत्वम्]

(९२) [1]तदनु नित्यशुध्दः परमात्माऽहमेवेति तत्त्वमसीत्युपदेशेन त्वमेवाहं अहमेव त्वं इति [2]तारकयोगमार्गेण अखण्डानन्दपूर्णः कृतार्थो भवति ॥

इति तृतीये ब्राह्मणे प्रथमः खण्डः

तदनु 'यदा नित्यानन्दः सच्चिदानन्दरूपः परमात्माऽहमेवत्वंस्वीकृतगुरुमार्गोऽसि, तदा [3]अहमेव त्वं, त्वमेवाहं' इति निजकरं शिष्यशिरसि निक्षिप्य, सम्यग् ज्ञात्वा 'तत्त्वमसीति' त्रिवारमुपदिश्य, 'पश्य, तारकयोगमार्गेण ब्रह्म,' इति समुपदिष्टः प्राकृतः, परमयोगिनं इदमाह—

[4] " अहं ब्रह्मास्मि" " इति, [5]अयमात्मा ब्रह्म" इति, [6]नेह नानाऽस्ति किञ्चन " इति च ॥

इति योगशास्त्रे नवमोऽध्यायः

---

[1] यदि कदाचित् तन्मनः विरूपलयमप्राप्य सरूपलयमेवैत्य बहिर्निस्सरति तद् नु इत्यर्थः (उ)

[2] यदि करणग्रामविरूपविलयमेव भजति तदेत्यर्थः (उ)

[3] " उन्नदेन्नदावियुं एन्नदुन्नदावियुं इन्नवण्णमे निन्राय् एन्रुरैक्कवल्लेने " इति इममेवार्थं पराङ्कुशा अपि अन्वगृह्णन्. (तिरु. 4.3.8.)

[4] बृह. 3. 4. 10. [5] बृह. 4. 5. 19.

[6] बृह. 6. 4. 19.

अथ तृतीये ब्राह्मणे द्वितीयः खण्डः

[उन्मन्यवस्थामहिमा]

(९३) परिपूर्णपरमाकाशमग्नमनाः प्राप्तोन्मन्यवस्थः संन्यस्तसर्वेन्द्रियवर्गः अनेकजन्मार्जितपुण्यपुञ्जपक्वकैवल्यफलः अखण्डानन्दनिरस्तसर्वक्लेशकश्मलः ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति ॥

(९४) त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात् परमात्मनः ।
इत्युच्चरन् समालिङ्ग्य [1]शिष्यं ज्ञप्तिमनीनयत् ॥

इति तृतीये ब्राह्मणे द्वितीयः खण्डः

एवमुच्चरन्, अखण्डानन्दपरिपूर्णब्रह्म पश्यन्, गुरुमभिवाद्य 'कृतार्थोऽस्मि भवत्कटाक्षात्' इति वदन् [2]ततः पूर्णाकाशपरायत्तमानसः [3]त्यक्तप्रापञ्चिकः प्राकृतः प्राप्तोन्मनीफलः संन्यस्तसर्वेन्द्रियवर्गः परब्रह्मणि गुरूपदिष्टमनोलयमभिनीय,[4] मर्यादाशून्यानन्दसुखमनु[5]भूय, चिरात् अनेक[6]जन्मतपःफलात् मोक्षभागभवत् ।

एवमखण्डानन्दानुभवनिरस्तसर्वक्लेशं आश्रितमिदमाह योगिराट्—
'त्वमेवाहं न भेदोऽस्ति पूर्णत्वात् परमात्मनः ।' इति ।
इत्युच्चरन् समालिङ्ग्य शिष्यं ज्ञप्तिमनीनयत् ॥

---

[1] याज्ञवल्क्यं स्वीयां ब्रह्मैवास्मीति प्रज्ञां अनीनयदित्यर्थः (उ)

[2] पुनः पुनः पूर्णा॰ क.

[3] त्यक्तप्राकृतिकः॰ ग॰ त्यक्तप्राकृतप्राप्तोन्मनीफलः घ॰

[4] अभितः आत्मनि सम्पाद्येत्यर्थः [5] भाव्य॰ ग॰ [6] जन्मान्तरतपः ख.

बाह्याभ्यन्तरतौल्येन शुक्लतेजोमयं शिवम् ।
योगदृष्ट्या सदा पश्यन् ननाम गुण[1]सत्तमः ॥ [2]

[इति योगशास्त्रे दशमोऽध्यायः]

अथ चतुर्थं ब्राह्मणम्

[व्योमपञ्चकविवरणम्]

(९५) अथ ह याज्ञवल्क्यो मण्डलपुरुषं पप्रच्छ–व्योमपञ्चकलक्षणं विस्तरेणानुब्रूहीति ।

(९६) सहोवाच—आकाशं, पराकाशं, महाकाशं, सूर्याकाशं, परमाकाशं, इति पञ्च भवन्ति ।

(९७) [3]बाह्याभ्यन्तरमन्धकारमयं आकाशम् ।

(९८) [4]बाह्याभ्यन्तरे कालानलसदृशं पराकाशम् ।

(९९) [5]सबाह्याभ्यन्तरे अपरिमितद्युतिनिभं तत्त्वं महाकाशम् ।

---

[1] सत्तमम्. क.

[2] इह तृतीये ब्राह्मणे यदुक्तं, सर्वेन्द्रियवर्गे परं नष्टे मनोनाशः भवति, तदेवामनस्कमिति, एष मनोनाशः औपचारिकः मन्तव्यः । न तु गौणोऽपि । कुतः ? तदन्वित्यारभ्य तत्त्वमस्याद्युपदेशस्य तदुत्तरकालीनतारकयोगमार्गेण अखण्डानन्दपूर्णतायाः जीवन्मुक्तोपलभ्यमानत्वेन गौणमनोनाशस्य सरूपमनोनाशसंज्ञकस्योपपन्नत्वात् । यस्तु तदन्तरमुक्तः परिपूर्णपरमाकाशमग्नमनाः इत्यादिलक्षणः निरस्तसर्वक्लेशकश्मलः उच्यते, तस्यैव विरूपमनोनाशसंभवात् मुख्यमनोनाशसिद्धिः । एवं उपदिशन् मण्डलपुरुषः शिष्यं याज्ञवल्क्यं आलिङ्ग्य ज्ञप्तिमखण्डबोधमनीनयत् ॥ (भा)

[3] सबाह्या. ख. [4] सबाह्या. ख. [5] बाह्या. च.

(१००) सबाह्याभ्यन्तरे सूर्यनिभं सूर्याकाशम् ।

(१०१) अनिर्वचनीयज्योतिः सर्वव्यापकं निरतिशयानन्द-लक्षणं परमाकाशम् ।[1]

(१०२) एवं [2]तत्तल्लक्ष्यदर्शनात् [3]तत्तद्रूपो भवति ॥

एवं विदितब्रह्मानन्दमपि शिष्यं उपाधिं कृत्वा लोकानुग्रहाय योगिराट् इदमब्रवीत् ।

शृणु सावधनेन शिष्यवर ! तस्मात् तव 'कर्म किञ्चिदपि [4]दुःखकरं भवति नैष्कर्म्यं सुखावहम्' इत्यर्थात् सिध्दं भवति । दृढतर[5]योगाभ्यासेन तत्कर्म [6]नौतारितपथिकवत् अष्टाङ्गं निर्वृत्तं स्यात् । अतो योगा[7]भिलाषी धैर्येण सर्वातिगं ब्रह्म ध्यायेत् । [8]अभ्यासेन सगुणं वा यदि निष्कलं वा भवति । तेन कर्मत्यागः आवश्यकः, [9]आभ्यन्तरबाह्यैकीकरणप्रवृत्तेः तेन प्रयोजनाभावात् । कर्माणि अनन्तानन्त[10]जन्मप्रदानि, इदानीं तत्तज्जन्मसञ्चितादिभेदा[11]दतिदृढानि

---

[1] जडभूतिः, जडभूतिग्रासमोहभूतिः, जडमोहभूतिग्रासलीलाविभूतिः जडादि क्रमेण भूतित्रयग्रासनित्यभूतिः, सर्वभूतिव्यापकं तद्गतहेयांशापह्नवसिध्दं चेति क्रमेण पञ्चाकाशानां स्वरूपाणि. (ड)

'षट्चक्रं षोडशाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम् । स्वदेहे यो न जानति तस्य सिद्धिः कथं भवेत् ॥' योगचूडामण्युपनिषत् ।

[2] अन्तर्लक्ष्य ग. अतर्लक्ष्यमर्दनात् घ.

[3] तद्रूपो. ख. [4] दुष्करं. क.

[5] योगाभ्यासेन तत्कर्म नौस्तारिततीरस्थपथिक. क. योगाभ्यासे तत्कर्म नौवारिकपथिक. च.

[6] दौवारिकतिरस्कृतपथिकवत् नष्टांशं निवृत्तं. ग.

[7] भिलाषः. ग. [8] अभ्यासे सगुणं ग.

[9] किङ्करणप्रवृत्तेः. घ. [10] जन्मफलानि. क.

[11] दतिदृढादिगुणयोगदनुचितानि परित्यक्तुमिति कल्पनायां तन्निरासः एवं भवति. ग.

परित्यक्तुमतिदृढास्पदगुणयोगादनुचितानि ममेत्यतिकल्पना। यतः[1]तन्निरायासतया एवैवंविधानात्। रात्रौ नष्टकलादिने अत्यन्तगाढान्धकारेण जगति व्याप्तेऽपि आदित्यो[2]दयात् तत्सर्वं सकारणमपि अनवशिष्टं भवति खलु ॥

[राजयोगसिद्धिहेतवः]

(१०३) [3]नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामतो भवेत् ॥[4]

इति चतुर्थं ब्राह्मणम्

---

[5]यत एवं तस्मात् योगाभ्यासेनैव मार्ताण्डोदये पिण्डाण्डे विदिते [6]च सति, सृष्ट्यादिवर्तमानपर्यन्तं जन्मान्तरसर्वकर्मध्वंसः स्यादेव। तस्मात् निष्क्रियः परमयोगी सर्वविधप्रकृतिबन्धमुक्तः सुखी भवति ॥

इति योगशास्त्रे एकादशोध्यायः।

---

[1] तन्निरायासत एव. क. तन्निरासार्थमेवं. च.

[2] दयात्सर्वं. क. दयात् परं. च.

[3] राजयोगसर्वस्वं क्रोडीकृत्य उपसंहरति-नवेति। मूलाधारादिषट्चक्रं तात्वाकाशभूचक्रत्रयं चेति नवचक्रं, अन्तर्बाह्यमध्यभेदेन त्रिविधं लक्ष्यं, अनुपदोक्त व्योमपञ्चकं च यो न जानाति सः केवलग्रन्थार्थज्ञानमात्रात् नाममात्रतो योगी। न वस्तुतः ॥ (उ)

[4] अथेह तुरीये ब्राह्मणे यदुक्तं "नवचक्रं षडाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्। सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामतो भवेत् ॥" इति, अत्र त्रयोविंशतितत्त्वानि ज्ञेयान्युच्यन्ते। वयं तु पञ्चमाकाशमात्रं ज्ञेयं, तन्मात्रेण कृतार्थः स्यादिति ब्रूमः। तर्हि नामत एव योगी स्यादिति चेन्न। एतद्ज्ञानस्य परमसिद्धान्तानुभूतिस्वरूपत्वात् यद्यपि नवचक्रादिज्ञानं पूर्वसाधनत्वात् सम्पादनीयमेव। तथापि उक्तपरमाकाशप्राप्तिपर्यन्ताभ्यासं विना पूर्वसाधननिष्ठामात्रेण कृतकृत्यत्वाभिमानिनां योगिनामेव प्राचुर्येण लोके दृश्यमानत्वात् तत्प्रतिषेधार्थं एवमुक्तमित्यवगन्तव्यम् ॥ (भा)

[5] एवं योगाभ्यासे. क. [6] 'च सति' इति नास्ति क.

अथ पञ्चमं ब्राह्मणम्

[मनोलयाभ्यासविधिः]

(१०४) [1]सविषयं मनो बन्धाय। निर्विषयं मुक्तये भवति

(१०५) अतः सर्वं [2]जगत् चित्तगोचरं, [3]तदेव चित्तं [4]निराश्रयं [5]मनोन्मन्यवस्थापक्वं लययोग्यं भवति।

(१०६) तल्लयं परिपूर्णे मयि समभ्यसेत्।

(१०७) मनोलयकारणमप्यहमेव।

[परमपदस्वरूपम्]

(१०८) [8]अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिः ज्योतिरन्तर्गतं मनः॥

(१०९) यन्मनः त्रिजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत्।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम्॥

सविषयमेव चित्तं बन्धाय, निर्विषयं मुक्त्यै भवति। अतः सर्वं जगच्चित्तगोचरं, तदेव चित्तं निराश्रयं मनोन्मन्यस्थापरिपक्वं मनोलय[9]योगं सम्पाद्य, तन्म[10]नोलयं भगवति परिपूर्णे समभ्यसेत्।

---

[1] विषयसङ्गासङ्गावेव बन्धमोक्षहेतू इति यावत्।

[2] 'जगत्' इति नास्ति. ख.

[3] योगाभ्यासतः शुद्धतामापन्नम्।

[4] विषयसम्बन्धशून्यम्। [5] उन्मन्यवस्था. ख.

[6] लयाधिकरणनिर्देशः तल्लयमित्यादिना। [7] कारणमहमेव. ख.

[8] अनाहतभवनादान्तर्गतप्रत्यग्ज्योतिर्विकल्पितं स्वातिरिक्तसृष्टिस्थितिनाशनिवर्तकं मनो यत्र विलीयते तत् लयाधिकरणं परमार्थदृष्ट्या निरधिकरणवैष्णवपदरूपेणावशिष्यते इत्यर्थः (उ)

[9] योग्यम्. क. [10] नोलयः भवति. ग.

मनोलयकारणं [1]विष्णुनोक्तं उत्तरगीतायाम्—
"अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिः ज्योतिरन्तर्गतं मनः ॥
यन्मनः त्रिजगत्सृष्टिस्थितिव्यसनकर्मकृत् ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥" इति ॥

[अमनस्कयोगिवृत्तिः]

(११०) [2]तल्लयात् शुद्धाद्वैतसिद्धिः भेदाभावात् ।

(१११) एतदेव [3]परमं तत्त्वम्

(११२) [4]स तज्ज्ञः बालोन्मत्तपिशाचवत् जडवृत्त्या लोकमाचरेत् । [5]

तन्मनोलयानन्तरं शुद्धाद्वैतसिध्दिर्भवति, तदानीं भेदगन्धाभावात् । एतत्परमतत्त्वं गोप्यं कर्तुं परमयोगिनः बालोन्मत्तपिशाचवत् स्वरूपं जडवृत्त्या समाच्छाद्य वर्तन्ते । पूर्वयुगकालजाः ऋभुनिदाघजडभरतदत्तात्रेयरैवतकप्रभृतयः [6]अव्यक्तलिङ्गाः [7]अव्यक्ताचाराः उन्मत्तवदाचरन्तीति श्रुतेः । निश्रेयसफललाभभाक् योगी [8]गुह्यै रागादिभ्यो [9]निवृत्तः निवृत्तप्रकृतिरपि वह्नादिप्रकृतिबद्ध इव संलक्ष्यते । तस्मात् सर्वयोगिश्रेष्ठः अमनस्कयोगी इति सिध्दान्तः ॥

---

[1] विष्णुरित्युक्तं . ग.

[2] यन्मनः द्वैतहेतुः तल्लयात् । तदा प्रत्यक्परयोः भेदाभावात् इति भावः ।

[3] परमतत्त्वम्. क. [4] 'स' इति नास्ति. ग.

[5] ख्यात्यादिप्रयोजनस्यानपेक्षितत्वात् । [6] व्यक्त. ग.

[7] व्यक्ता. ग. [8] वैराग्यादिभ्यो निवृत्तप्रवृत्तिरपि. क.

[9] निवृत्तिप्र. घ.

[अमनस्काभ्यासफलम्]

(११३) एवममनस्काभ्यासेनैव [1]नित्यतृप्तिः [2]अल्पमूत्रपुरीष-मितभोजनदृढाङ्गाजाड्यनिद्राः दृग्वायुचलनाभावः [3]ब्रह्मदर्शनजातसु-खस्वरूपसिद्धिश्च भवति ।

तद्दशयोगिभिः तैलाभ्यङ्गघृतपानादि, [4]स्वेदनिरासार्थं मर्दनं च न कर्तव्यम्, अमनास्काभ्यासेनैव सौकुमार्यादिदेहफलसिद्धेः लाभात् । अमनस्का-भ्यासो हि दिव्यौषधं भवति । तेन सर्वसिद्धिः, यतो [5]राजयोगसिद्धिः नित्य-तृप्तिश्च अल्पमूत्रपुरीषनिस्सरणं मितभोजनं दृढाङ्गत्वं इत्यादि शुभफलानि च सम्भवन्ति । दृग्वायुचलनाभावश्च । तेन च निरन्तरं ब्रह्मदर्शनजातं परमसुखं अद्भुतं प्राप्य न कुतश्चन बिभेति ॥

[6]एवं सिध्दाद्यासनादिभ्यः स्वमूलादिबन्धेभ्यः प्राणवायुनिरोधात् विषयेन्द्रियनिग्रहध्यानदृग्दृश्यविवेकाच्च, एभ्यो नियमेभ्यः अतिक्रमितशुद्धाद्वैत मार्गावलम्बी परमयोगी सदानन्दः सर्वसिद्धिभाक् अमनस्कविधानेन प्रतिदिनं क्षणमात्रं वा [7]कालक्षेपाय अनुभवं प्राप्नोति ॥

[एवंविधसमाधिसिद्धमहिमा]

(११४) एवं चिरसमाधिजनितब्रह्मामृतपानपरायणोऽसौ संन्यासी [8]परमहंसोऽवधूतो [9]भवति ।

---

[1] निर्विकल्पकसमाध्यारूढस्य अतृप्तिहेतुवृत्त्यनुदयात् ।

[2] समाधितो व्युत्थानेऽपि केवलकुम्भकतो मूत्रादेः शोषणात्, उदरे निरव-काशतया, योगमहिम्ना पदे पदे समाधेः निश्चलज्योतिर्दर्शनाच्च तादृशी अवाङ्मनस-गोचरसुखस्वरूपब्रह्ममात्रावस्थानरूपिणी सिद्धिर्भवतीत्यर्थः ।

[3] ब्रह्मदर्शनाज्ञात. ख. ब्रह्मदर्शनज्ञात- ग.

[4] चन्दनादिनिरासार्थं. ग.

[5] जरारोगादिनिवृत्तिः. ग.

[6] तस्य. घ. तस्मात् ग.

[7] कालक्षेपानुभवं. ग.

[8] परमहंस अवधूतः. ख.

[9] असावेव अवधूतपदमुख्यविषयः । (उ)

(११५) तद्दर्शनेन सकलं जगत् पवित्रं भवति ।

(११६) तत्सेवापरः अज्ञोऽपि मुक्तो भवति ।

(११७) तत्कुलं एकोत्तरशतं तारयति ।

(११८) तन्मातृपितृजायाऽपत्यवर्गं च मुक्तं भवति ।

इत्युपनिषत् ॥[1]

इति पञ्चमं ब्राह्मणम्

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति मण्डलब्राह्मणोपनिषत् समाप्ता

---

[1] इह पञ्चमे ब्राह्मणे मनोन्मन्यवस्थापरिक्वं लययोग्यं भवतीत्युक्तम् । इयं हि प्रणवस्य द्वादशतमी मात्रा ब्रह्मविद्वरीयसो भवितुमर्हति । बालोन्मत्तपिशाचादि चर्याविधानात् । स एव विवक्षित इति युक्तमवगन्तुम् । तथापि संन्यासी परमहंसोऽवधूतो भवतीत्युक्त्या तदन्येषां त्रयाणामाश्रमिणां सा निष्ठा न स्यात् इत्याशङ्का केषाञ्चिदुपजायते । तन्निवारणार्थं इदं ब्रूमः—

निष्कामानां गृहस्थानामपि संन्यासित्वस्मरणात् प्रणवमात्राभ्यासाधिकारसिद्धिः इति असकृद्वादिष्म । यद्यपि शास्त्रेषु तुरीयाश्रम एव ब्रह्मविद्यायाः मुख्यं साधनमुच्यते । तथापि नात्र तस्मादन्यत् पातित्यकारणं किञ्चिदुपलभ्यते । प्रायेण लोके परिदृश्यमानेषु तुरीयाश्रमिषु न कस्यचिदपि शास्त्रोक्तानुष्ठानमस्ति । ते हि ऊर्ध्वनिष्ठाः अधोदृष्टयो भवन्ति । अन्ये तु गृहस्थाः अधोनिष्ठाः ऊर्ध्वदृष्टयः, इत्यतः संन्यासिन एव ब्रह्मविद्यायामनधिकारिणः इति स्थिरं वक्तुं शक्यम् ।

यदि चिरसमाधिजनितब्रह्मामृतपानपरायणो यः कश्चित् भवेत्, सः तुरीयाश्रमी अन्यो वा संन्यासी इति सर्वैरपि पूज्यः स्यात् । इह तु संन्यासवेषमात्रवतां अपरिचितानि वाचामगोचराणि दृश्यन्ते कर्माणि । तस्मात् 'कलौ पञ्च विवर्जयेत्' इति स्मृति वचनं सुदृढं निश्चित्य तुरीयाश्रमविमुखा एव ब्रह्मप्रणवार्थविचारादिभिः कृतार्थाः भवेयुः इत्यवगन्तव्यम् ॥ (भा)

[1]एवं चिरसमाधिजनितब्रह्मामृतपानपरायणः भवति ।

[2] " तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये " ।

इति श्रुतेः । तादृक् परमयोगी । स एव परमहंसः । स एव अवधूतः । [3]तद्दृष्ट्या सकलमिदं जगत् पवित्रं भवति । तत्सेवापरः अज्ञोऽपि मुक्त एव भवति । तत्कुलं एकविंशतिसंख्याकं पूर्वं अपरं च मुक्तं भवति । तन्माता मुक्ता [4]कृतार्था फलेन भावेन च पिता च स्वपूर्वापरबहुपितृगणैस्सह मुक्तो भवति ।[5] इत्येवं योगिश्रेष्ठमहत्त्वं सम्यक् प्रपञ्चितम् ॥

[केषांचित् राजयोगिनां वैभवम्]

नारदादयः सर्वे राजयोगा[6]भ्यासिनः राज्यविहीनाः जरामरणहीनाः नित्यानन्दवैभवाः सन्ति । [7]तदेव इदानीमप्यूहनीयम् ॥

[नित्यसंसारिणां लक्षणम्]

[8]अन्ये तु तापत्रयनवविधव्यवहार[9]षट्कोशषडूर्मिपञ्चकोशषड्भ्रम-सहिताः भवन्ति ॥

---

[1] स एव चिर॰ ग॰ [2] छान्दोग्ये 6. 14. 2.

[3] तं दृष्ट्वा॰ क॰ [4] कृतार्थभावेन॰ ग.

[5] अत्र "कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा सार्थवती च तेन । अपार-संवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः ॥" इत्याद्यप्यनुसन्धेयम् ।

[6] भ्यासिनः नित्या॰ क॰ [7] तदिदानीमपि सन्ये॰ ग॰

[8] अन्यत्र॰ क॰ त्रितापसप्तव्यवहारषट्कौशिकषडरिपञ्चकोशषड्भावविकार षडूर्मिषड्भ्रमरहिताः॰ ग॰ एतदनुसारेण अनुपदं विवृतं तद्विवरणवाक्यमपि व्यत्यस्तमेव दृश्यते ।

[9] "वि नानार्थेऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते । नानासन्देहहरणात् व्यवहार इति स्मृतः ॥" वीरमित्रो॰ 2, 6.

(१) तत्र तापत्रयं तु [1]—अध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकाभिधम् ।

(२) कर्तृकर्मकार्य-ज्ञातृज्ञानज्ञेय-भोक्तृभोगभोग्याः नवविधव्यवहाराः[2] ज्ञातव्याः ।

(३) त्वङ्मांसशोणितास्थिस्नायुमज्जाः षट्कौशिकाः ।[3]

(४) [4]क्षुत्पिपासाशोकमोहजरामरणानि षडूर्मयः ।

(५) अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयाः पञ्चकोशाः ।

(६) [5]प्रियत्वजननवर्धनपरिणामापक्षयविनाशनानि षड्भावविकाराः ।

(७) [6]कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्याणि अरिषट्कम् ।

---

[1] अत्र आत्मानं देहमधिकृत्य, तथाऽन्तःकरणं चाधिकृत्य जायमानः अशनायादिः कामादिश्च आध्यात्मिकः, भूतानि चोरपशुपक्ष्यादीन्यधिकृत्य जायमानः, आधिभौतिकः, देवान् यक्षादीन् दिवः प्रभवान् वर्षवातादीन् वा अधिकृत्य जायमानः तापः आधिदैविकः, इति अनेके व्याकुर्वन्ति । प्रकृते तानपि उत्तरत्र गृहीत्वा प्रत्येकीकरणेन, अत्र विशिष्ट एवार्थः स्यादिति भाति । कर्तृज्ञातृभोक्तृनधिकृत्य प्रवृत्तः आध्यात्मिकः, कर्मज्ञानभोगानधिकृत्य प्रवृत्तः आधिदैविकः, कार्यज्ञेयभोग्यानधिकृत्य प्रवृत्तः आधिभौतिकः इति तु युक्तमिव भाति ।।

[2] अत्र निर्दिष्टानां कर्तृज्ञातृभोक्तृणां अर्थतः ऐक्यदृष्ट्या 'सप्त व्यवहाराः' इति पाठसङ्गमनं स्यात् ।

[3] अस्थिशुक्लमज्जाः पितृतः. त्वङ्मांसरुधिराणि मातृतः इति विभागः ।

[4] अशनायापिपासा. ग.

[5] प्रायशः सर्वत्र-जायते, अस्ति, वर्धते, परिणमते, अपक्षीयते, नश्यतीति षड् भावविकाराः इत्येवोक्तम् ।

[6] पुरुषार्थेषु तृतीयः धर्मार्थसमन्वयोपयोगी काम एवान्यः । किञ्च अत्रोक्ताः कामादयः मित्रभूता अपि भवन्तीति ज्ञेयम् । उपयोगवैचित्र्यात् ।

(८) [1]कुलगोत्रजातिनामवर्णाश्रमरूपाः षड्भ्रमाः भवन्ति । [2]एतत्सम्पन्नाः पुनः पुनः यमवशं गताः नित्यसंसारिणः इति ख्याताः भवन्ति ।

[निगमनम्]

तस्मात् संसारात् निर्विण्णः [3]परमयोगी ब्रह्ममार्गमवलम्ब्य, मूलाधारस्थ-[4]कुण्डलिन्या वायुं इडापिङ्गला[5]सञ्चारविकलं व्युत्क्रमेण सुषुम्नाबिलं [6]प्रापय्य, [7]एतदुद्घाटितवैपुल्ये तन्मार्गे ब्रह्मविष्णुरुद्रग्रन्थिभेदपुरस्सरं [8]आज्ञादहरं भित्वा, तारकानुसन्धानेन [9]तारके सार्धबिम्बमध्यमार्गे अनर्गळपरिविजृम्भमाणं [10]अग्निसूर्यतेजःकूट[11]पवनास्फोटनथळथळायमानतेजो भूत्वा, तत्समीपविश्वव्योम[12]व्याप्तपरिपूर्णचन्द्रमण्डलनिष्ठसान्द्रामृतनिष्यन्दबिन्दुसन्दोहपान[14]परितृप्तः सदानन्दरूपं [13]निःश्रेयसं प्राप्य निस्संशयः तत्त्वाकाशो भूत्वा, सदानन्दावधूतकृपालेशात् [15]मुक्तोऽस्मीति भावयेत् ॥

इति योगशास्त्रे द्वादशोऽध्यायः

[16]इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशङ्कराचार्यविरचितं
राजयोगभाष्यं समाप्तम् ।

---

[1] एते संसारभ्रमणहेतुत्वात् भ्रमा इत्युच्यन्ते । संसारात् विमोचनाय साधनभूता अप्येत एव । ध्येयस्थानावाप्त्यनन्तरमपि लोकासाङ्कर्याय ग्राह्या एव । साधनेषु साध्यताभ्रमवारणयात्र स्याद्भ्रमोक्तिः ॥

[2] एतत्सङ्गमेन. ग.
[3] परमयोगं. क.
[4] कुण्डलीसमुत्थितवायुं. ग.
[5] केवलवत् क्रमेण. घ.
[6] प्रापय्या. घ.
[7] तदुद्धारवैपुल्ये ग. तदुत्पूतवैपुल्ये. घ.
[8] आज्ञाषट्कं ग.
[9] तारकेशार्धबिम्ब. ग.
[10] अग्नितेजः क.
[11] पादपास्फोटनदळदशासमानतो भूत्वा. क. पाटवास्फोटनदलदशायमानतेजो. ग.
[12] व्याप्ति. घ.
[13] परिप्लुतः घ.
[14] श्रेयः. ग.
[15] मुक्तो भवामीति भावितव्यम् म. ग. ।
[16] इति सदानन्दावधूतविरचितं विजृम्भितयोगभाष्यं समाप्तम्. क.

अनुबन्धाः

१ श्री भगवत्पादशङ्कराचार्यविरचिता
योगतारावली
भावप्रकाशसहिता ।

२ योगतारावलीपद्यानुक्रमणी ।

३ उद्धृतप्रमाणानुक्रमणी ।

४ पदविशेषानुक्रमणी ।

५ उदाहृतदृष्टान्तानुक्रमणी ।

ॐ

श्रीशङ्करभगवत्पादविरचिता

योगतारावली

भावप्रकाशसहिता

वन्दे गुरूणां चरणारविन्दे
सन्दर्शितस्वात्मसुखावबोधे ।
जनस्य ये जाङ्गलिकायमाने
संसारहालाहलमोहशान्त्यै ॥ १ ॥

जनिधर्मणां अमीषां मानवानां कर्मानुगुणसंयोगवियोगवतीषु प्रकृति-विकृतिषुसशोकमोहस्वसंसरणरूपकालकूटाभिसम्बन्धजनितानिवर्णनीयमूर्छापनोद-नाय भुवस्तलमवतीर्णे विषवैद्यरूपे, तथा-जितात्मनां शोकमोहातिगानां योगि-नाममन्दमानन्दमनुभावयच्चिन्तामणिरूपे, सर्वविधयोगरहस्यार्थप्रकाशनपटुतरे, ध्यानमङ्गले, श्रीपरमगुरुपादारविन्दयुगले इमान् प्राणान् प्रणामयामः ॥ १ ॥

सदाशिवोक्तानि सपादलक्ष-
लयावधानानि वसन्ति लोके ।
नादानुसन्धानसमाधिमेकं
मन्यामहे मान्यतमं लयानाम् ॥ २ ॥

सोऽयं परमानन्दः, परमगुरुपादारविन्दानुग्रहादन्तरुद्घुष्यमाणस्य प्रणव-नादस्यान्ते अतिसूक्ष्मे वाङ्मनसातीते मनसो लयं विना नैव सम्भवति । यद्यपि लयाधिदेवतया भगवता सदाशिवेनैवोपदिष्टानि चित्तलयावस्थासमाधायकानि उपासनानि लोके सपादलक्षप्रकाराणि वर्तन्ते । अथापि तेषु सर्वेष्वपि लयेषु श्रुतिमिलितानाहतनादानुसारेण तदन्ते सन्धीयमानचित्तसमाधिरूपं लयमेव वयं

मान्यतमं मन्यामहे । यतो नादान्ते ज्योतिः । 'सं ज्योतिषा ज्योतिरङ्क्ताम्' इति ॥ २ ॥

सरेचपूरैः अनिलस्य कुम्भैः
सर्वासु नाडीषु विशोधितासु ।
अनाहताख्यो बहुभिः प्रकारैः
अन्तः प्रवर्तेत सदा निनादः ॥ ३ ॥

सचायमाहतेभ्यो लोकप्रसिध्दभेर्यादिनादेभ्यो भिन्नः, समुद्रमेघादिध्वनिगम्भीरः, वीणावेणुमृदङ्गशङ्खदुन्दुभ्यादिबहुप्रकारः, अनाहताख्यो महाप्रणवनादः, योगिनोऽस्य साधनादशायां, इडापिङ्गलाभ्यां पर्यायतः वायोरुदराद्बहिर्वि रेचनेन, बाह्यादन्तःपूरणेन च सहितैः कुम्भकैः-पूर्णकुम्भवद्वायोरन्तर्निरोधैः सर्वास्वपि नाडीषु विशोधितासु, अनुपदमेव निरन्तरमन्तरभिव्यक्तो भवेत् ॥ ३ ॥

नादानुसन्धान ! नमोऽस्तु तुभ्यं
त्वां साधनं तत्त्वपदस्य जाने ।
भवत्प्रसादात् पवनेन साकं
विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥ ४ ॥

अयि भगवन् ! निरन्तरान्तरुद्घुष्यमाणमहाप्रणवनादानुसन्धान ! त्वदर्थे मदीयान् प्राणान् प्रह्वीकरोमि । यतस्सर्वधातुप्रसन्नतामूलभूतात् भवतोऽनुग्रहात् पवित्रीकृतेनानेन कुम्भीकृतवायुना साकं मदीयमिदं मनः दहराकाशे सहस्रारान्तर्गतचिदाकाशे वा विलीनं कृत्वा, परब्रह्मतत्त्वानुभवमात्मनि साधयेयमिति सुष्ठु जाने ॥ ४ ॥

जालन्धरोड्याणनमूलबन्धान्
जल्पन्ति कण्ठोदरपायुमूलान् ।
बन्धत्रयेऽस्मिन् परिचीयमाने
बन्धः कुतो दारुणकालपाशात् ॥ ५ ॥

एवं ह्यनुसन्धीयमानः हृदयमध्यगतः नादश्चात्र बन्धत्रयसिद्ध्या सुषुम्नाश्रयवीणादण्डे अभिव्यक्तो भवेत्। तत्र-नाडीजालं धरमाणे कण्ठमूलप्रदेशे जायमानः सर्वविधशोकमोहनाशनः जालन्धरबन्धः। अधोगामिनभोविलं बद्ध्वा प्राणात्मकमहाखगस्य अविश्रान्तोर्ध्वोड्डयनहेतुः उदरे उड्याणबन्धः। शक्त्या-धारकमलस्थाने मूले मुद्राविशेषेण प्राणापानसाम्यहेतुः मूलबन्धः। एषु कण्ठे उदरे पायुमूले च प्रकाशस्सु जालन्धरोड्याणमूलबन्धेषु अनवरतमभ्यस्यमानेषु सर्वलोकहृदयविदारणात् मृत्युपाशादपि जनो मुच्यते। नैव बध्यते ॥ ५ ॥

ओड्याणजालन्धरमूलबन्धैः
उन्निद्रितायां उरगाङ्गनायाम्।
प्रत्यङ्मुखत्वात् प्रविशन् सुषुम्नां
गमागमौ मुञ्चति गन्धवाहः ॥ ६ ॥

एवं उदरकण्ठपायुमूलेषु वायुनिरोधकेन बन्धत्रयेण बहोः कालात् अन्तर्निद्रितायां उरगाङ्गनायां-कुण्डलिन्यां सञ्जातप्रबोधायां, जन्मान्तर-सहस्रसञ्चितकर्मफलप्रदचित्तवासनावाही प्राणवायुः गत्यन्तराभावात् प्रत्यगा-त्माभिमुखद्वारां ब्रह्मनाडीं सुषुम्नां प्रविशन् दक्षिणोत्तरमार्गयोः चन्द्रसूर्यनाड्योः इडापिङ्गलयोः प्रवेशनिस्सरणाख्ये गमनागमनक्रिये सत्यं त्यजत्येव ॥ ६ ॥

उत्थापिताधारहुताशनोल्कैः
आकुञ्चनैः शश्वदपानवायोः।
सन्तापितात् चन्द्रमसः पतन्तीं
पीयूषधारां पिबतीह धन्यः ॥ ७ ॥

ततश्च एवं केवलकुम्भकेनायतप्राणः यः कोऽपि धन्यात्मा, सततोर्ध्व-प्रसृतैर्मूलाधारस्थवैश्वानरज्वलनैः अधोगतिशीलापानवायोरनवरतोन्मुखीकरणैश्च प्राप्तातिशयितसन्तापात् सहस्रारान्तर्गताक्षीणचिच्चन्द्रमसमण्डलात् सपदि निस्सृ ताममृतधारां पिबन् परमानन्दभरितशुद्धसत्त्वमयचित्तो भवति ॥ ७ ॥

बन्धत्रयाभ्यासविपाकजातां
विवर्जितां रेचकपूरकाभ्याम् ।
विशोषयन्तीं विषयप्रवाहं
विद्यां भजे केवलकुम्भरूपाम् ॥ ८ ॥

एवं बन्धत्रयाभ्यासेन सञ्जातकुण्डलिनीप्रबोधः, तेन च उद्घाटितब्रह्म-नाडीद्वारः सन्, वैकृतप्राकृतरूपरेचकपूरकक्रियासम्बन्धविवर्जितो योगी, यामिमां शब्दादिविषयपरम्परासङ्गधर्मविनाशिनीं विवेकख्यातिजननीं केवलकुम्भकात्मिकां विद्यां भजते, तामेवाहमपि निषेवे ॥ ८ ॥

अनाहते चेतसि सावधानैः
अभ्यासशूरैरनुभूयमाना ।
संस्तम्भितश्वासमरुत्प्रचारा
सा जृम्भते केवलकुम्भकश्रीः ॥ ९ ॥

विषयानभिभूतनिश्चलचित्ततया ऐकाग्र्येण निरन्तराभ्यासपटुभिः अभय-प्रतिष्ठे विन्दमानैः अनुभूयमाना, सम्यङ्निरुद्धप्राणवायुसञ्चारा शुद्धकुम्भकात्मिका विजृम्भिता दैवीसम्पत् धन्येषु योगिषु नितरां प्रकाशते ॥ ९ ॥

सहस्रशः सन्तु हठेषु कुम्भाः
सम्भाव्यते केवलकुम्भ एव ।
कुम्भोत्तमे यत्र तु रेचपूरौ
प्राणस्य न प्राकृतवैकृताख्यौ ॥ १० ॥

हठयोगेषु सहस्राधिकप्रकाराः कुम्भकाः प्रसिद्धाः सन्तु नाम । ते केवलं रूढा एव, न त्वन्वर्थाः । किन्तु यस्मिन् उत्तमे कुम्भके प्राकृतवैकृता-भिधाने चित्तचलनहेतुभूते रेचकपूरके प्राणवायोः नैव सम्भवतः, स एव शुद्धः कुम्भकः इति राजयोगिभिः सम्भाव्यते ॥ १० ॥

त्रिकूटनाम्नि स्तिमितेऽन्तरङ्गे
खे स्तम्भिते केवलकुम्भकेन ।
प्राणानिलो भानुशशाङ्कनाड्यौ
विहाय सद्यो विलयं प्रयाति ॥ ११ ॥

अनेन च केवलकुम्भकेन नीरजस्कतया निश्चलीकृतस्य मनसः सोमसूर्याग्निमण्डलाधिष्ठाने त्रिकूटाभिधाने चिदाकाशे संस्तम्भने कृते सति, प्राणानिलोऽयं इडापिङ्गलाख्ये सूर्यचन्द्रनाड्यौ परित्यज्य झटिति विष्णुपदे एव विलीनो भवति ॥ ११ ॥

प्रत्याहृतः केवलकुम्भकेन
प्रबुद्धकुण्डलल्युपभुक्तशेषः ।
प्राणः प्रतीचीनपथेन मन्दं
विलीयते विष्णुपदान्तराले ॥ १२ ॥

एवमनेन केवलकुम्भकेन इतरमार्गेभ्यो व्यावर्तितः, जाग्रत्या कुण्डलिन्या यथेष्टमुपभुक्तशिष्टः अयं प्राणवायुः, आत्मावलोकनानुकूलेन प्रत्यङ्मुखेन अतिसूक्ष्मेण सुषुम्नामार्गेण शनैश्शनैः प्रसरन्, अन्ते स्वकारणस्य चिदाकाशस्य मध्यप्रदेशे एव विलीय एकीभवति ॥ १२ ॥

निरङ्कुशानां श्वसनोद्गमानां
निरोधनैः केवलकुम्भकाख्यैः ।
उदेति सर्वेन्द्रियवृत्तिशून्यः
मरुल्लयः कोऽपि महामतीनाम् ॥ १३ ॥

मत्तगजवत् येन केनापि प्रकारेण प्रतिबद्धुमशक्याकारतया सततं प्रवर्तमानानां प्राणानिलगमनागमनक्रियाणां अनेन केवलकुम्भकाख्येन महायोगमार्गेण निरोधने कृते सति, तदा अमीषां महामतीनां राजयोगिनां कर्मज्ञानात्मकसर्वेन्द्रियवृत्तिसामान्यशून्यीकरणहेतुः अनिर्वर्णनीयः कोऽपि मनोलयहेतुभूतः प्राणवायोर्लयः सत्यमुदेत्येव ॥ १३ ॥

न दृष्टिलक्ष्याणि न चित्तबन्धः
न देशकालौ न च वायुरोधः ।
न धारणा ध्यानपरिश्रमो वा
समेधमाने सति राजयोगे ।। १४ ।।

एवमुक्तप्रकारेण राजयोगे सम्यगभिवर्धमाने सति, न प्रतिपत्पूर्णिमादि दृष्टयः, नापि चक्षुर्मध्यगतनीलज्योतिरादिदर्शनम्, न च चित्तवृत्तिनिरोध-प्रयासः, न वा देशनियतिः, कालनियतिर्वा । वायोरपि स्वत एव लयात् नैव वायुनिरोधप्रयासश्च । नापि धारणध्यानादिसंरम्भः, चित्तस्यैव पूर्णलयात् । वृत्तिसामान्यस्यैवासम्भवात् तदुपरितनानां उक्तधर्माणां सुतरामसम्भवात् ।।१४।।

अशेषदृश्योज्झितदृङ्मयानां
अवस्थितानामिह राजयोगे ।
न जागरो नैव सुषुप्तिभावः
न जीवितं नो मरणं विचित्रम् ।। १५ ।।

उक्तेऽस्मिन् राजयोगे अखण्डब्रह्मभावापत्त्या निश्चलतया अवस्थितानां, जगत एव प्रत्यावर्तितदृशां, अवाप्तज्ञानावस्थानां, महायोगिनां या अवस्था प्रकाशते, सा बाह्येन्द्रियव्यापारपरिपूरिता न जाग्रदवस्था, अन्तरिन्द्रियव्यापार परिपूर्णा न सुषुप्तिः, नापि जाग्रत्संस्कारजप्रत्ययविशेषरूपा स्वप्नावस्था, न प्राणनधर्मो जीवनम्, प्राणवियोगधर्मः मरणं च न । एवं देहदेहिनोरुभयोः सत्त्वेऽपि तद्धर्मस्य कस्याप्यदर्शनात् इयं विचित्रा अद्भुतैवावस्था परमानन्द-भरिता । एवं च प्राणेन्द्रियमनोयोगावस्थायाः तद्वियोगावस्थायाश्च विलक्ष-णैवावस्थेयं योगिनां विराजते इति भावः ।। १५ ।।

अहंममत्वाद्यपहाय सर्वं
श्रीराजयोगे स्थिरमानसानाम् ।
न द्रष्टृता नास्ति च दृश्यभावः
सा जृम्भते केवलसंविदेव ॥ १६ ॥

अनात्मन्यात्मभावरूपामहन्तां, अनात्मीयेष्वात्मीयभावरूपां ममतां, एवंविधमन्यदन्यच्च विकल्पजातं सर्वमपि दूरतः परिहृत्य, परब्रह्मप्रकाशके श्रीमति राजयोगे नैष्ठिकमानसानां धन्यानां द्रष्टृत्वं, दर्शनं, दृश्यं चेत्येष्वेकमपि वा नोपलभ्यते, किन्तु पूर्वोक्तः केवलब्रह्मभाव एव साम्राज्यपदवीमधिरोहति ॥ १६ ॥

नेत्रे ययोन्मेषनिमेषशून्ये
वायुर्यथा वर्जितरेचपूरः ।
मनश्च सङ्कल्पविकल्पशून्यं
मनोन्मनी सा मयि सन्निधत्ताम् ॥ १७ ॥

यस्यां अवस्थायां नेत्रे निमेषोन्मेषरहिते, प्राणवायुश्च रेचकपूरकविवर्जितः, मनोऽपि सङ्कल्पविकल्पाभ्यां रहितं सत् एवं सर्वमपि निश्चेष्टं भवति, सा मनोन्मनी परिपूर्णपरब्रह्मानन्दानुभवावस्था अस्मासु अचिरादेव सिद्ध्यतु ॥ १७ ॥

चित्तेन्द्रियाणां चिरनिग्रहेण
श्वासप्रचारे शमिते यमीन्द्राः ।
निवातदीपा इव निश्चलाङ्गाः
मनोन्मनीमग्नधियो भवन्ति ॥ १८ ॥

योगीन्द्राः खलु चिरकालकृतचित्तेन्द्रियनिग्रहाभ्यासेन प्राणवायोः इडापिङ्गलासञ्चारे उपरमं प्रापिते सति, निवातप्रदेशप्रज्वलन्तः निश्चलशिखाः दीपा इव निश्चलाङ्गाः मनोन्मन्यवस्थालीनधियः स्वयमेव राराज्यन्ते ॥ १८ ॥

उन्मन्यवस्थामधिगम्य विद्वन् !
उपायमेकं तव निर्दिशामः ।
पश्यन् उदासीनतया प्रपञ्चं
सङ्कल्पमुन्मूलय सावधानः ॥ १९ ॥

अयि विद्वन् ! प्रतिज्ञासहस्रेणाप्यनिवार्याः प्राकृतीर्वैकृतीश्च सङ्कल्पविकल्पात्मिकाः क्रियाः सावधानतया समुन्मूलयितुं एकं उपायविशेषं निर्दिशामः । सम्यक् अवहितचित्तो भव । प्रप्रथमं एतावता कालेनोपपादितां मनोन्मन्यवस्थां सम्यगधिगच्छ । तदनु च सर्वं प्रपञ्चं केवलं उदासीनतया साक्षितया पश्यन् सावधानः साधनामनुवर्तय । तदा सङ्कल्पादयः सर्वे स्वयमेव निरवशेषं उन्मूलिता भवेयुः ॥ १९ ॥

प्रसह्य सङ्कल्पपरम्पराणां
सम्भेदने सन्ततसावधानम् ।
आलम्बनाशादपचीयमानं
शनैः शनैः शान्तिमुपैति चेतः ॥ २० ॥

एवं सन्ततसावधानतया अनन्तसङ्कल्पपरम्पराविघटने साधिते सति, संसारोपचयहेतुभूताः चित्तालम्बनवृत्तयः मनस्सङ्कल्पाः सर्वे नश्येयुः । तदा चेतः शनैश्शनैः अपक्षीयमाणः परमां शान्तिमुपैत्येव ॥ २० ॥

निःश्वासलोपैः निभृतैः शरीरैः
नेत्राम्बुजैः अर्धनिमीलितैश्च ।
आविर्भवन्तीममनस्कमुद्रां
आलोकयामो मुनिपुङ्गवानाम् ॥ २१ ॥

श्वासोच्छ्वासपरिवर्जनेन शरीरनैश्चल्यजननीं, अर्धमुकुलितावस्थापन्ननेत्रारविन्दसमलङ्कृतां, योगीन्द्रेष्वाविर्भवन्तीं अमनस्काख्यां महामुद्रां धन्याः वयमेवमालोकयामः ॥ २१ ॥

अमी यमीन्द्राः सहजामनस्काः
अहंममत्वे शिथिलायमाने ।
मनोऽतिगं मारुतवृत्तिशून्यं
गच्छन्ति भावं गगनावशेषम् ॥ २२ ॥

योगीश्वराश्चामी एवं सहजमाविर्भवन्त्या अनया अमनस्काख्यमहामुद्रया विभूषिताः अतिशयेन राराज्यन्ते । किं च ते तदा सङ्कल्पविकल्पादि-मूलभूतयोः अहंममतयोः विच्छिन्नयोः सत्योः वाङ्मनसातीतं प्राणादिवृत्तिशून्यं चिदाकाशावशेषं परिपूर्णपरब्रह्मानन्दानुभवमेवात्मनि लभन्ते ॥ २२ ॥

निवर्तयन्तीं निखिलेन्द्रियाणि
प्रवर्तयन्तीं परमात्मयोगम् ।
संविन्मयीं तां सहजामनस्कां
कदा गमिष्यामि गतान्यभावः ॥ २३ ॥

बाह्याभ्यन्तराणि निखिलान्यपीन्द्रियाणि स्वविषयेभ्यो व्यावर्तयन्तीं सहजमकृत्रिमं च ब्रह्मापरोक्षज्ञानं प्रवर्तयन्तीं, ब्रह्मताद्रूप्यज्ञानमयीं शुद्धज्ञानमयीं वा अनिर्वर्णनीयां तां सहजां उन्मन्यवस्थां गलितान्यभावः कदा गमिष्यामीति मदीयं मनः सदा उत्कण्ठितं वर्तते ॥ २३ ॥

प्रत्यग्विमर्शातिशयेन पुंसां
प्राचीनगन्धेषु पलायितेषु ।
प्रादुर्भवेत् काचिदजाड्यनिद्रा
प्रपञ्चचिन्तां परिवर्जयन्ती ॥ २४ ॥

यैः अनवरतासङ्कीर्णात्मतत्त्वविचारेण कृतात्मभिः, अनादिजन्मसञ्चिताः अनन्ताः दुर्वासनाः दूरोत्सारिताः, तेषां जगति प्राकृतवैकृतधर्मविस्तरणात्मक-प्रवृत्तिमार्गमूलभूतां प्रपञ्चचिन्तां तिरस्कुर्वती ब्रह्मानन्दानुभवात्मिका काचित् अनिर्वर्णनीया अजाड्यनिद्रा सद्य एव आविर्भवेत् ॥ २४ ॥

विच्छिन्नसङ्कल्पविकल्पमूले
निःशेषनिर्मूलितकर्मजाले ।
निरन्तराभ्यासनितान्तभद्रा
सा जृम्भते योगिनि योगनिद्रा ॥ २५ ॥

सविषया मनोवृत्तिः सङ्कल्पः, निर्विषया काल्पनिकी मनोवृत्तिः विकल्पः । अनयोः मूलभूते अज्ञाने ज्ञानासिना छिन्ने, अनन्तजन्मसञ्चित-चित्तवासनाधायककर्मसमूहेऽपि योगाग्निना निःशेषदग्धे, निरन्तरसाधनेन नितान्तसुदृढा, वाङ्मनसागोचरा उक्ता योगनिद्रा योगीन्द्रेषु विजृम्भिता सती प्रकाशते ॥ २५ ॥

विश्रान्तिमासाद्य तुरीयतल्पे
विश्वाद्यवस्थात्रितयोपरिस्थे ।
संविन्मयीं कामपि सर्वकालं
निद्रां सखे निर्विश निर्विकल्पाम् ॥ २६ ॥

भगवतोऽनुग्रहेण वीर्येण बलेन च लब्धया आत्मसाम्यावहया महा-वेधकादिविद्यया ससाधनया आत्मसमतामेव विन्दन् राजमान हे सखिरूप शिष्य ! विश्वतैजसप्राज्ञानुबन्धिजाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपावस्थात्रयमतीत्य वर्तमाने साक्ष्य-वस्थारूपतुरीयतत्त्वात्मके तल्पे विश्रान्तिमासाद्य, ततः तामप्यतीत्य, भ्रमप्रमादा-दिगन्धरहितां परिपूर्णपरब्रह्मानन्दमयीं कामपि निद्रां सर्वकालं भज । अयमेव ते ब्रह्माशीर्वादः ॥ २६ ॥

प्रकाशमाने परमात्मभानौ
नश्यत्यविद्यातिमिरे समस्ते ।
अहो ! बुधाः निर्मलदृष्टयोऽपि
किञ्चिन्न पश्यन्ति जगत् समग्रम् ॥ २७ ॥

स्वयंप्रकाशे परिपूर्णपरब्रह्मस्वरूपे परमात्मभानौ समन्तात् भासमाने, अविद्याख्ये समस्ते तिमिरेऽपि विनश्यति सति, एवं निर्मलदृष्टयः सम्पन्ना अपि बुधाः शुद्धबुद्धमुक्तस्वरूपाः समग्रमिदं जगत् किञ्चिदपि न पश्यन्तीति अत्याश्चर्यं खल्विदं एतद्राजयोगवृत्तम्! ॥ २७ ॥

सिद्धिं तथाविधमनोविलयां समाधौ
श्रीशैलशृङ्गकुहरेषु कदोपलप्स्ये ।
गात्रं यदा मम लताः परिवेष्टयन्ति
कर्णे यदा विरचयन्ति खगाश्च नीडान् ॥

एवं समाधौ सर्वविधमनोवृत्तिविस्मरणात्मकविलयजननीं तुरीयातीतावस्थारूपां निरन्तरपरिपूर्णसाधनसम्पन्नां सिद्धिं, श्रीशैलपर्वतशिखरान्तर्गतगुहासु कदा वा प्राप्स्ये ? कदा वा, निरस्तनिखिलप्रपञ्चभावतया ब्रह्मानुभवावस्थतया च काष्ठसमतां प्राप्तं मदीयं शरीरं समन्ततो वर्धनशीलाः लताः परिवेष्टयन्ति ? कदा वा मदीययोः कर्णकुहरयोः खगाः निश्शङ्कं नीडान् विरचयन्ति ? इत्यनवरतं मदीयमिदं हृदयमुत्कण्ठते ॥ २८ ॥

विचरतु मतिरेषा निर्विकल्पे समाधौ
कुचकलशयुगे वा कृष्णसारेक्षणानाम् ।
चरतु जडमते वा सज्जनानां मते वा
मतिकृतगुणदोषाः मां विभुं न स्पृशन्ति ॥

इति श्री भगवत्पादशङ्कराचार्यविरचिता
योगतारावली समाप्ता

एवं परमगुरुपादारविन्दानुग्रहेण समाहिता मदीया सद्विद्याशुद्धबुद्धिः योगे भोगे दुर्मते सन्मते वा यत्र कुत्रापि यथेष्टं सञ्चरतु, अहं तु तादृशमतिकृतगुणदोषसम्बन्धलेशविवर्जितः पुण्यापुण्यविवर्जिगतिसम्पन्नः समभवम्।एतादृशं ब्रह्मात्मकं मां इतः परं जगति किमपि वस्तु न बध्नाति। नैव स्पृशत्यपि। एवं धन्यो धन्यो पुनः पुनर्धन्यः सम्पन्नः इति भावः ॥२९॥

एवं गुरुकृपालब्धयोगार्थविमलात्मना।
कृता वेङ्कटनाथेन योगभावप्रकाशिका ॥

यः प्रादात् तां हंसविद्यां महतीं पावनीं पराम्।
प्राणान् प्रणामयामोऽस्मै गुरवे ब्रह्मरूपिणे ॥

ॐ नमः परमतारकाय आत्मदिव्याभरणभूषिताय
योगेश्वराय परमगुरवे ॥

॥ ॐ ॥

इति योगतारावलीभावप्रकाशः समाप्तः ॥

---

(२) योगतारावलीपद्यानुक्रमणिका

(३) उद्धृतप्रमाणानुक्रमणी

(४) पदविशेषानुक्रमणी

५ ग्रन्थप्रयुक्तदृष्टान्तभागानुक्रमणी

अशुद्धसंशोधनी

पठनीयः शुद्धः पाठः	पु–पं
(भूमिकाभागे)	
ಉಳಿಸಿಕೊಂಡು	12–10
ಚಿತ್ತವೃತ್ತಿ	13–11
ಸೃಷ್ಟಿಸಂಹಾರ	15–15
ಪ್ರದೀಪಿಕೆ	25-3
सुपरिष्कृत	27–1
मातृकाणां	27–11,18
आत्मतत्त्व	27–25
परिजिहीर्षया	28–18
भक्त्यङ्गमिति	29–20
अमनस्कयोग	32–28
(ग्रन्थभागे)	
पाठे आदित्य एव	3–16
यो॰ सू॰	3–21
अव्यभिचरितः	4–13
विवरणम्	5–1
ब्रह्मचर्या	5–13
सभाष्या	6–1
मुक्तिभाग्	8–10
उक्तसर्वा	10–10
भूयात्	10–15

पठनीयः शुद्धः पाठः	पु–पं
न पुण्यपापे	11–10
वैलक्षण्य	12–4
कार्मिकं	12–19
भूमौ घ्राणं	13–7
स्थितो भूत्वा	16–12
दर्पणमिव	18–9
षडष्टद्वा	21–3
वामदक्षिण	25–11
आन्तरमिति	26–8
तद्ब्रूहि	37–5
लोचना दृक्	40–12
ब्रह्मावगति	44–11
आत्मदृष्ट्यासक्तस्य	46–11
भावना	51–18
इत्यादिहसोपनिषच्च	54–21
मनो बन्धहेतुः	56–5
स्वल्पानन्दाः	58–5
परमात्मनि	62–13
उन्मन्यवस्था	65–1
पवित्रीकृतेना	80–19
विवर्जितगति	90–4
निरङ्कुशानां	91–23

ओ३म्

प्रस्तावना

योग दर्शन सैद्धान्तिक विवेचना पूर्ण दर्शन होने के साथ-साथ क्रियात्मक वैज्ञानिक दर्शन है। कतिपय महत्वपूर्ण विषयों को जिन्हें जानना अत्यावश्यक है, मैंने योग दर्शन की इस "सुप्रभा" नामक टीका की प्रस्तावना में प्रस्तुत किया है।

योग द्वारा मनुष्य स्वस्थ रहकर शान्त मन से युक्त हो दैविक आनन्द को प्राप्त कर लेता है।

सृष्टि के आरम्भ में "साध्य" तथा "ऋषि" उत्पन्न हुये। ऋषि गण आरम्भ से ही समाधिस्थ हो गये। इस प्रकार सृष्टि के आरम्भ के साथ साथ योग का भी आरम्भ हो गया।

"**युज् समाधौ**" तथा "**युज् संयमने**" इन दोनों धातुओं से योग शब्द सिद्ध होता है। "**युज् समाधौ**" से योग शब्द का अर्थ समाधि है। "**युज् संयमने**" से योग शब्द का अर्थ इन्द्रियों तथा चित्त का संयमन है।

समाधि अवस्था में ही ऋषियों के अन्तःकरण में वेदाविर्भाव हुआ। ऋषियों ने मंत्रों के साक्षात्कार के साथ साथ सस्वर मन्त्र सुने। उन पवित्रात्मा ऋषियों में से श्रेष्ठता की दृष्टि से ऋग्वेद वेत्ता की **अग्नि** संज्ञा हुई। यजुर्वेद वेत्ता की **वायु** संज्ञा हुई। सामवेद वेत्ता की **आदित्य** संज्ञा हुई, तथा अथर्ववेद वेत्ता की **अङ्गिरा** संज्ञा हुई। स्वायंभुव मन्वन्तर में, अग्नि,

---

॥ ओ३म् ॥

योग दर्शनम्

श्री मत् पतञ्जलि मुनि प्रणीतम्

"सुप्रभा" टीका समन्विताः

श्रीमत्भगवत्पूज्यपाद श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्रीमत् आत्मानन्द तीर्थ स्वामिना

विरचिता "सुप्रभा" नाम्नी टीका सुभूषिताः

मुनिवर पतञ्जलि प्रणीत योग दर्शनम्।

प्रकाशक :

आर्ष योग विद्यापीठ, धर्म संस्थान

खरखौदा, मेरठ, उत्तर प्रदेश।

प्रथम संस्करणम्

रविवार, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, २०४८ विक्रमी। (1991 ई०)

प्रविष्टे ४ चैत्र, २०४७ विक्रमी। (1990 ई०)

सजिल्द मूल्य—२५/-

अजिल्द मूल्य—१५/-

कृपया मूल्य देकर ही पुस्तक लें।

वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा योग के आद्य आचार्य थे। स्वायंभुव मन्वन्तर में योग के दूसरे आचार्य ब्रह्मा थे। योग के तृतीय आचार्य **हिरण्यगर्भ** थे।

प्रत्येक मन्वन्तर के पश्चात् अवान्तर प्रलय होने के कारण प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ में आचार्यों द्वारा योग का उपदेश होता रहा है। वर्तमान सातवें वैवस्वत नामक मन्वन्तर में योग के उपदेष्टा एवम् आद्य आचार्य **विवस्वान** थे। **वैवस्वत मनु** योग के दूसरे आचार्य थे। पाँच हजार दो सौ वर्ष पूर्व **"पतञ्जलि मुनि"** योग के आचार्य हुये। **"मुनि श्रेष्ठ पतञ्जलि'** ने **"योग दर्शन"** नामक ग्रन्थ की रचना की। योग दर्शन पर मुनिवर व्यास ने भाष्य किया। एक हजार पाँच सौ पैंतालिस वर्ष पूर्व राजर्षि भोज ने योग दर्शन पर **"भोज वृत्ति'** नामक टीका लिखी। विज्ञान भिक्षु ने योग दर्शन पर **योग वार्तिक** लिखा। आचार्य वाचस्पति मिश्र ने योग दर्शन पर टीका लिखी। पाँच हजार एक सौ चालीस वर्ष पूर्व मुनिवर जैमिनि के शिष्य याज्ञवल्क्य योगाचार्य हुये।

योग दर्शन पर सभी उपर्युक्त भाष्यकारों के भाष्य पारस्परिक भिन्नताओं से युक्त हैं। मुनिवर व्यास तथा राजर्षि भोज अनुभव सिद्ध योगी थे। राजर्षि भोज ने भोज वृत्ति में रेचक पूरक तथा कुम्भक आदि शब्दों का प्रयोग किया है जो नव्य योग प्रणाली में प्रचलित हैं। योग दर्शन के आधुनिक टीकाकारों की टीकायें मुनिवर पतञ्जलि के मत से सर्वथा भिन्न हैं। मुनिवर पतञ्जलि के योग दर्शन को उनके योग दर्शन के द्वारा ही भली भाँति हृदयङ्गम किया जा सकता है।

सृष्टि के आरम्भ में समाधि अवस्था में ही वेदाविर्भाव हुआ। अनेक ऋषियों ने समाधिस्थ होकर मन्त्रार्थ जाने तथा उनका प्रकाश किया। वेदों की विद्यमान शाखायें वैवस्वत मन्वन्तर की रचनायें हैं। मन्त्रों के ऋषि भी वैवस्वत मन्वन्तर के ही हैं।

योग साधन के आधार तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान हैं। विवेक वैराग्य तथा अभ्यास योगाभ्यास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

पाँच हजार दो सौ वर्ष पूर्व वेदों की शाखाओं के आविर्भाव ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणयन तथा उपनिषदों को रचना से विभिन्न योग मार्गों का उदय हुआ। कालान्तर में विभिन्न सम्प्रदायों की उत्पत्ति के साथ साथ विभिन्न सम्प्रदायों के योगोपनिषदों का आविर्भाव हुआ।

मुण्डक उपनिषद्कार ने ओ३म् शब्द के उच्चारण के माध्यम से ध्यान का मार्ग प्रस्तुत किया।

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

मुण्डक २। खण्ड २। मन्त्र ४॥

ओ३म् शब्द का उच्चारण धनुष के खींचने के समान, तन्मयता पूर्वक, प्रमाद रहित हो, ब्रह्म को लक्ष्य मानकर आत्मनिष्ठ होकर करे। इस प्रकार ओ३म् शब्द के उच्चारण पूर्वक परमेश्वर का ध्यान करे।

प्राणान् प्रपीडयेह संयुक्त चेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत ।
ततो दुष्टाश्व युक्तमिव वाह्मेनम्
विद्वान्मनो धारयेताप्रमतः ।

श्वेताश्वतरोपनिषद्, अध्याय २, मन्त्र ६ ॥

श्वास प्रश्वास द्वारा प्राणों को पीड़ित करते हुये, प्राणों के क्षीण होने पर नासाछिद्रों से प्राणों को बाहर निकाल दें। इस प्रकार विद्वान् प्रमाद रहित होकर, दुष्ट अश्वों के तुल्य इन्द्रियों तथा मन को अधिकार में करे। ये उपनिषद् प्रोक्त मार्ग हैं।

मन्त्र जप करना, ओ३म शब्द के उच्चारण पूर्वक ध्यान करना आदि **शब्द ब्रह्म** की उपासना है। प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से उत्पन्न हुई चित्त की प्रगाढ़ एकाग्रावस्था में ध्यान करते समय शरीरस्थ नाड़ियों के अनवरत कम्पन से उत्पन्न ध्वनि सुनाई देने लगती है। यही **अनाहृत नाद है**। यह ध्वनि विभिन्न प्रकार की होती है। ध्यानावस्थित होकर इस ध्वनि को सुनना **शब्द ब्रह्म** की उपासना है। अनाहृत नाद श्रवण पूर्वक ध्यान करने के आधार पर अनेक सम्प्रदायों की स्थापना हुई। अनाहृत नाद को अनहद नाद नाम से भी जाना जाता है।

प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से प्राणोत्थान होने पर समाधिस्थ होना **प्राणोपासना** है। प्राणोपासना द्वारा समाधिस्थ होकर ब्रह्म की उपासना करना किसी किसी बिरले भाग्यशाली योगी को सिद्ध होता है। चित्त की एकाग्रता **धारणा** है। धारणा के समय चित्त की प्रगाढ़ एकाग्रता **ध्यान** है। ध्यानावस्था में चित्त आन्तरिक प्रकाश से आपूरित रहता

है। अनेक सम्प्रदायों का जन्म प्रकाश का ध्यान करने के आधार पर हुआ है।

परमात्मा की **श्रवण शक्ति** से **वायु** तथा **प्राण** की उत्पत्ति हुई है। वायु स्थूल तथा प्राण सूक्ष्म है।

शरीर में अनेक नाड़ियाँ हैं। जिनके इड़ा पिङ्गला तथा सुषुम्ना आदिक विभिन्न **कल्पित** नाम हैं। विद्युत प्रकाशमय, गतिशील तथा सूक्ष्म है। वृत्तमयी होने के कारण विद्युत की **"सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति"** कल्पित संज्ञा है। प्राण भी वृत्ताकार रूप से गतिशील है। इसलिये प्राण को **"स्थूल कुण्डलिनी शक्ति"** कल्पित संज्ञा है। विद्युत तथा प्राण समस्त शरीर में व्यापक है। बाह्यवृत्ति प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से प्राणों पर अधिकार कर **पूर्व मार्ग** अथवा बङ्कनाल मार्ग से प्राणोत्थान करना प्राणरूपी **"स्थूल कुण्डलिनी शक्ति"** का जागरण है।

आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से मेरूदण्डस्थ मार्ग अर्थात् **पश्चिम मार्ग** से प्राणोत्थान पूर्वक ध्यानावस्था में अभूतपूर्व प्रकाश का दर्शन विद्युत शक्ति का साक्षात्कार अर्थात् **"सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति"** का साक्षात्कार है। यही कुण्डलिनी जागरण है। इसके लिये नव्य योग के ग्रन्थकारों ने विभिन्न मुद्राओं की आयोजनायें की हैं। प्राण शक्ति अर्थात् स्थूल कुण्डलिनी शक्ति के साक्षात्कार के समय योगी **रजत वर्ण के अलौकिक दिव्य प्रभामण्डल** के दर्शन करता है। विद्युत अर्थात् सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति के साक्षात्कार के समय योगी **स्वर्णिम वर्ण के अलौकिक दिव्य प्रभामण्डल** के दर्शन करता है।

नव्य योग पद्धति के ग्रन्थकारों द्वारा चित्त की एकाग्रता रूप धारणा के लिये षट्चक्र अथवा अष्टचक्र नामक कल्पित

लक्ष्य प्रख्यात हैं। अथर्व वेद के दशम काण्ड के द्वितीय सूक्त के इकत्तीसवें मन्त्र

अष्टा चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

के अष्टाचक्र पद से आठ चक्रों की कल्पना की है। मन्त्र का देवता "**ब्रह्म प्रकाशनम्**" है अर्थात् ब्रह्म स्वरूप बृहद् प्रकृति का वर्णन। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सत्त्व, रज तथा तम के संघात चक्र से रचित नवद्वारों से युक्त यह अविजित शरीर इन्द्रिय रूपी देवताओं का नगर है। इसमें स्वर्गिक प्रकाश से आपूरित **आनन्दमयकोष** है। सांख्य दर्शन के "**अष्टौ प्रकृतौ**" के अनुसार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सत्त्व, रज तथा तम रूपी प्रकृति अष्टधा है। इन आठों के चक्र रूप संघात से शरीर की रचना हुई है।

योगी आसन से स्थिरता तथा सुख से युक्त होकर क्षुधा तृषादि द्वन्द्वों से मुक्त होकर योग साधन में सक्षम हो जाता है। अतः योगाभ्यास करने के लिए प्राणायाम करने से पूर्व आसन की स्थिरता आवश्यक है। कम से कम **एक घटिका** अर्थात् चौबीस मिनिट पर्यन्त आसन पर स्थिर बैठने का अभ्यास होने पर प्राणायाम करना आरम्भ करना चाहिए।

अन्तःकरण की अशुद्धि के कारण इन्द्रियां वशवर्त्ती नहीं होतीं। अशुद्ध अन्तःकरण तथा विषयोन्मुख इन्द्रियों से यम नियमों का पालन नहीं हो सकता है। अतः प्राणायाम के अभ्यास द्वारा अन्तःकरण तथा इन्द्रियों को शुद्ध करते हुए यम नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन करना चाहिए।

शरीरस्थ **मलदोष**, चित्तस्थ **विक्षेपदोष** तथा बुद्धि के **आवरणदोष** को दूर करने का एकमात्र साधन **प्राणायाम** है। आसन पर स्थिरतापूर्वक स्थित होकर श्वास प्रश्वास की गति का विच्छेद करना प्राणायाम है।

बाह्यवृत्ति प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से मूलाकुञ्चन सिद्ध होने पर ध्यान की अवस्था में अपान मूल स्थान से उठकर नाभिस्थ समान में लय हो जाता है। नाभिस्थ समान उठकर हृदयस्थ प्राण में लय हो जाता है। हृदयस्थ प्राण उठकर कण्ठस्थ उदान में लय हो जाता है। अत्यधिक प्रयास करने पर कण्ठस्थ उदान उठकर मूर्द्धा में स्थिर हो जाता है। मूर्द्धा स्थित प्राण को उतारते हुये दृढ़ मूलाकुञ्चन को शनैः शनैः खोल देना चाहिए। यह **प्राणोत्थान पूर्वक पूर्व मार्ग** अर्थात् बङ्क नाल मार्ग से **प्राण संयमन** है। आभ्यन्तर प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से मेरुदण्डस्थ मार्ग अर्थात् **पश्चिम मार्ग से मूलाकुञ्चन पूर्वक प्राण संयमन** होता है। मूलाकुञ्चन के शिथिल करने से प्राण अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है।

पूर्व मार्ग से प्राणोत्थान के समय अपान का अपने स्थान से उत्थान **ब्रह्म ग्रन्थि भेदन** है। हृदयस्थ प्राणोत्थान **विष्णु ग्रन्थि भेदन** है। कण्ठस्थ उदान का उठकर भ्रूमध्य में प्रवेश **रुद्र ग्रन्थि भेदन** है।

योग विषयक ग्रन्थों में पतञ्जलि मुनि प्रणीत योगदर्शन ही एक मात्र **प्राच्य आर्ष योगग्रन्थ** है, तथा मुनिवर पतञ्जलि ही प्राच्य आर्ष योग के एक मात्र **प्रवक्ता स्वरूप आचार्य** हैं। योग दर्शन को **मूल दर्शन से ही भली भांति** समझा जा सकता है।

योग की नव्य पद्धति का आरम्भ लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व हुआ। यद्यपि योग की नव्य पद्धति का मूलाधार मुनिवर पतञ्जलि का योग दर्शन ही है। सम्प्रदायों के उत्पन्न होने पर उनके प्रवर्त्तकों ने योग को अपना अपना रूप दे दिया। नव्य योग के आचार्यों में **आचार्य मत्स्येन्द्र पाद**, **आचार्य गोरक्षपाद**, **आचार्य ज्वालेन्द्र पाद** अधिक प्रसिद्ध हैं।

सांख्य दर्शन के मतानुसार **"ध्यानं निर्विषयं मनः"** अर्थात् मन का विषयों के चिन्तन से सर्वथा रहित होना **ध्यान** है। योग दर्शन के मतानुसार **"देशबन्धश्चित्तस्यधारणा"** चित्त का एक देश में स्थिर होना अर्थात् चित्त की एकाग्रता **धारणा** है। **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"** जहाँ चित्त एकाग्र हुआ हो वहीं चित्त की **दृढ़ स्थिरता ध्यान** है।

अनेक सम्प्रदायों के अनुसार ध्यान की अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। उनका आधार शब्द अर्थात् अनाहत नाद श्रवण तथा प्रकाश का दर्शन है।

प्राणायाम के अनवरत अभ्यास द्वारा बुद्धि का आवरण क्षीण होकर प्रकाश होने पर समाधि अवस्था में योगी किसी भी विषय में **संयम** करने पर **देश तथा काल का व्यवधान** होने पर भी **प्रातिभ ज्ञान** अथवा आन्तरिक प्रकाश के माध्यम से उसका **साक्षात्कार** कर लेता है।

जीवात्मा के पास **आनन्दमय कोष** है जिसके द्वारा वह प्रीति, प्रसन्नता, न्यूनानन्द तथा अधिकानन्द अनुभव करता है। अल्प परिमाण वाला, अल्पज्ञ, चेतनस्वरूप जीवात्मा, अल्पानन्द से नित्ययुक्त होते हुए भी अधिक आनन्द की निरन्तर कामना करता है। आनन्द की प्राप्ति समाधि से होती है, इसी-

लिये योगदर्शन का प्रथम पाद **समाधि पाद** है। समाधि साधन से सम्पन्न होता है। इसीलिये योग दर्शन का दूसरा पाद **साधन पाद** है। साधन का परिणाम विभूतियों का स्वतः उपलब्ध होना है। वस्तुतः साधन ठीक होने पर विभूतियां क्रमशः स्वतः ही सम्पन्न होने लगती हैं। इसीलिये योग दर्शन का तीसरा पाद **विभूति पाद** है। विभूति की पराकष्ठा कैवल्य है। इसीलिए योग दर्शन का अन्तिम चौथा पाद **कैवल्य पाद** है।

योग दर्शन के समाधि पाद में चित्त के निरोध के परिणामस्वरूप समाधि प्राप्ति के आठ मार्गों का वर्णन है।

अ :—**अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१।१२॥**

अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध होता है।

आ :—**ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥१।२३॥**

अथवा ईश्वर प्रणिधान से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।

इ :—**प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥१।३४॥**

अथवा प्राण को बाहर निकाल कर धारण करने से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।

ई :—**विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी ॥१।३५॥**

अथवा विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन को बांधनेवाली होती है।

उ :—**विशोका वा ज्योतिष्मती ॥१।३६॥**

अथवा शोक रहित ज्योतिष्मती प्रवृत्ति चित्त की वृत्तियों का निरोध करती है।

ऊ :—वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥१।३७॥
अथवा रागादि से रहित होने पर चित्त निरुद्ध हो जाता है।

ए :—स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥१।३८॥
अथवा स्वप्न और निद्रावस्था में ज्ञान के आलम्बन से चित्त निरुद्ध हो जाता है।

ऐ :—यथाभिमतध्यानाद्वा ॥१।३९॥
अथवा अभिमत के ध्यान से चित्त निरुद्ध हो जाता है।

तप का मूल उद्देश्य चित्त वृत्तियों का निरोध कर समाधि प्राप्त करना है। "**प्राणायामं परमं तपः**" के अनुसार प्राणायाम ही परम तप है।

साधक के लिये आयु का बन्धन नहीं है। बाल्यकाल से निरन्तर की गई साधना के फलस्वरूप साधक तारुण्य से पूर्व ही **सिद्धावस्था** को प्राप्त कर लेता है। साधक निर्बल नहीं होना चाहिए। साधक का स्वभाव **कोमल, सरल, दृढ़श्रमनिष्ठ** तथा **आज्ञानुवर्त्ती** होना चाहिए। स्वाध्याय द्वारा विषय को समझने में सक्षम होने के लिये साधक का **पठित** होना आवश्यक है। साधक को नियमित रूप से **पवित्र, सुगन्धित, सुपाच्य, मृदु** तथा **निरामिष** भोजन करना चाहिये।

साधना के लिये शान्त तथा स्वच्छ वातावरण युक्त एकान्त स्थान होना चाहिए। शान्त समय में **रिक्त पेट** अथवा भोजन **के तीन घन्टे पश्चात्** साधना करनी चाहिए। **सुकोमल तथा गुदगुदे आसन** पर स्थिर रूप से स्थित होकर अभ्यास करना चाहिये।

दृढ़ ईश्वर निष्ठा, पवित्रात्मा आचार्य का परिचर्यापूर्वक आश्रय, तीव्र संवेग, विवेक, वैराग्य तथा अभ्यास, योग साधन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य हैं।

प्राणायाम के अनवरत अभ्यास से अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का शुद्ध होकर अलौकिक क्षमताओं से निरन्तर सम्पन्न होना **विभूति सम्पन्न** होना है। शरीर तथा इन्द्रियादि अन्तःकरण का शुद्ध होकर अलौकिक प्रतिभाओं से सम्पन्न होना **विभूति-युक्त** होना है।

"**देशबन्धश्चित्तस्य धारणा**" सूत्र से विभूतिपाद प्रारम्भ होता है। चित्त का एकाग्र होना धारणा नामक **प्रथम विभूति** है। "**सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्**" विभूति पाद का अन्तिम सूत्र है। सत्त्व अर्थात् बुद्धि तथा पुरुष की शुद्धि एवम् साम्यावस्था कैवल्य है। **कैवल्य ही विभूति की पराकाष्ठा है।**

किसी भी मन्त्र का निष्ठापूर्वक पुनः पुनः उच्चारण **वाचिक जप** है। ध्वनि रहित, जिह्वा तथा ओष्ठ के स्पन्दन से युक्त किसी भी मन्त्र की पुनः पुनः आवृत्ति **उपांशु जप** है। जिह्वा तथा ओष्ठ के स्पन्दन से रहित किसी भी मन्त्र की पुनः पुनः मानसिक आवृत्ति **मानसिक जप** है। जप द्वारा चित्त की एकाग्रता, प्रगाढ़ एकाग्रता, तथा निरुद्धावस्था प्राप्त करना **मन्त्र-योग** है।

"**जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः**" सूत्र से कैवल्य पाद आरम्भ होता है। पूर्व जन्मकृत साधना के परिणामस्वरूप **जन्मजा सिद्धि**, औषधि सेवन से **औषधिजा सिद्धि**, मन्त्र जपानुष्ठान से **मन्त्रजा सिद्धि**, व्रतोपवास तथा प्राणायाम रूपी तप से **तपजा सिद्धि** तथा समाधि के अनुष्ठान से **समाधिजा सिद्धियां** उत्पन्न होती हैं। "**पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रति प्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति**" पुरुषार्थ की समाप्ति तथा गुणों की निष्क्रियता कैवल्य है अथवा चेतन का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना कैवल्य है।

योग दर्शन की भोजवृति नामक टीका में साधन पाद के प्राणायाम प्रकरण में **रेचक, पूरक** तथा **कुम्भक** शब्द मिलते हैं तथा **नाड़ी चक्रों** का वर्णन मिलता है। अर्थात् राजर्षि भोज के पूर्व नव्य योग पद्धति प्रचलित हो चुकी थी। योग दर्शन के साधन पाद के सूत्र २० का "**द्रष्टा दृशिमात्रः**" पद तथा कैवल्य पाद के सूत्र बाईस का "**चित्तेरप्रतिसंक्रमाया**" पद विचारणीय है।

योगदर्शनकार ने योगदर्शन में योग सूत्रों द्वारा सहजगम्य व्याख्यात्मक क्रम रखा है। योगदर्शन का व्यास मुनि कृत भाष्य, पतञ्जलि मुनि प्रणीत योग दर्शन की उत्कृष्ट शैली के किसी सीमा तक अधिक समीप तथा युक्तियुक्त है। योगदर्शन के अन्य सभी भाष्य मुनिवरपतञ्जलि की अभिव्यक्तात्मक शैली से सर्वथा भिन्न है।

योग विद्या का मूल **वेद** है। अनन्त परमात्मा का अनाद ज्ञान होने पर भी वेद तथा वेद का ज्ञान अनन्त नहीं है। **अल्प प्राण** को **अनन्त ज्ञान** दिया ही नहीं जा सकता है।

स्वामी आत्मानन्द तीर्थ
रविवार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, २०४८ विक्रमी।
प्रविष्टे ४ चैत्र २०४७ विक्रमी।

योगदर्शनम्

ओ३म्

समाधि पादः

१. अथ योगानुशासनम् ॥१।१॥

पदार्थ :—(अथ) आरम्भ करते हैं, (योग) योग (अनुशासनम्) शास्त्र।

भावार्थ :—योग शास्त्र आरम्भ करते हैं।

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥१।२॥

पदार्थ :—(योगः) योग, (चित्तवृत्ति) चित्त की वृत्तियों का (निरोधः) रोकना है।

भावार्थ :—चित्त की वृत्तियों का निरोध अर्थात् रोकना योग है।

३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥१।३॥

पदार्थ :—(तदा) उस समय (द्रष्टुः) द्रष्टा (स्वरूपे) अपने स्वरूप में, (अवस्थानम्) स्थित होता है।

भावार्थ :—चित्त की वृत्तियों के निरुद्ध हो जाने पर द्रष्टा अर्थात् जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित होता है।

४. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥१।४॥

पदार्थ :—(वृत्तिः) वृत्तियां, (सारूप्यम्) चित के स्वरूप के अनुरूप होती हैं, (इतर अत्र) भिन्न अवस्था में।

भावार्थ :—निरुद्धावस्था से भिन्न अवस्था में चित्त की वृत्तियां चित्त के स्वरूप के अनुरूप होती हैं।

चित्त की शुद्धता के कारण योगी के चित्त की वृत्तियां सामान्य लोगों से सर्वथा भिन्न, शुद्ध स्वरूपवाली होती हैं।

५. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥१।५॥

पदार्थ :—(वृत्तयः) वृत्तियां, (पञ्चतय्यः) पांच प्रकार की हैं, (क्लिष्टाः) क्लिष्ट अर्थात् बाधक, (अक्लिष्टाः) अक्लिष्ट अर्थात् सहायक।

भावार्थ :—वृत्तियां क्लिष्ट अर्थात बाधक अक्लिष्ट अर्थात् सहायक भेद से पांच प्रकार की हैं।

६. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥१।६॥

पदार्थ :—(प्रमाण) प्रमाण, (विपर्यय) विपर्यय, (विकल्प) विकल्प, (निद्रा) निद्रा तथा (स्मृतयः) स्मृति।

भावार्थ :—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति ये चित्त की पांच वृत्तियां हैं।

७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥१।७॥

पदार्थ :—(प्रत्यक्ष) प्रत्यक्ष, (अनुमान) अनुमान तथा (आगमाः) आगम, (प्रमाणानि) प्रमाण हैं।

भावार्थ :—इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष विषय का युक्ति और लक्षणों द्वारा ज्ञान अनुमान है। वेद, शास्त्र तथा आप्त पुरुषों के वाक्य आगम हैं। प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम प्रमाण हैं।

८. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥१।८॥

पदार्थ :—(विपर्ययः) विपरीत ज्ञान, (मिथ्या ज्ञानम्) मिथ्या ज्ञान, (अतद् रूप प्रतिष्ठम्) जो वस्तु के स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं है अर्थात् वस्तु के स्वरूप से भिन्न है।

भावार्थ :—जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप से विपरीत अर्थात् भिन्न है वह विपर्यय अर्थात् विपरीत ज्ञान जो मिथ्या ज्ञान है।

९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥१।९॥

पदार्थ :—(शब्द ज्ञानानुपाती) शब्द के द्वारा उत्पन्न ज्ञान (वस्तु शून्यः) वस्तु का अभाव (विकल्पः) विकल्प है।

भावार्थ :—पदार्थ के अभाव में केवल शब्द द्वारा पदार्थ की कल्पना करना विकल्प है।

१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥१।१०॥

पदार्थ :—(अभाव प्रत्यय आलम्बना) अभाव के ज्ञान का आश्रय वाली (वृत्तिः निद्रा) वृत्ति निद्रा है।

भावार्थ :—ज्ञान के अभाव वाली वृत्ति का नाम निद्रा है।

निद्रावस्था में इन्द्रियां बाह्य ज्ञान ग्रहण नहीं करती हैं, तथा मन भी सङ्कल्पों से रहित होता है।

११. अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ॥१।११॥

पदार्थ :—(अनुभूत विषयासम्प्रमोषः) अनुभूत विषय का न छिपना अर्थात् पुनः स्मरण होना (स्मृतिः) स्मृति है।

भावार्थ :—अनुभूत विषय का पुनः स्मरण होना स्मृति है।

१२. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥१।१२॥

पदार्थ :—(अभ्यासवैराग्याभ्यां) अभ्यास तथा वैराग्य से (तत् निरोधः) चित्त वृत्तियों का निरोध होता है।

भावार्थ :—अभ्यास तथा वैराग्य से चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है।

१३. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥१।१३॥

पदार्थ :—(तत्र) निरुद्धावस्था में (स्थितौ) स्थित रहने का (यत्नः) प्रयत्न, (अभ्यासः) अभ्यास है।

भावार्थ :—चित्त के निरुद्धावस्था में स्थित रहने के लिए किये जाने वाले प्रयत्न का नाम अभ्यास है।

१४. स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः ॥१।१४॥

पदार्थ :—(सः) वह (तु) परन्तु (दीर्घकाल) दीर्घकाल तक (नैरन्तर्य) निरन्तर (सत्कारा) आदर सहित (सेवितः) सेवन करने पर (दृढ़ भूमिः) स्थिति दृढ़ हो जाती है।

भावार्थ :—चित्त को निरुद्धावस्था में रखने वाले यत्न अभ्यास का दीर्घकाल तक श्रद्धा सहित निरन्तर सेवन करने पर चित्त की निरुद्धावस्था रूपी स्थिति दृढ़ हो जाती है।

१५. दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥१।१५॥

पदार्थ :—(दृष्ट आनुश्रविक) देखे और सुने हुये (विषय, विषय में (वितृष्णस्य) सर्वथा तृष्णा रहित चित्त की (वशीकार संज्ञा) वशीकार अवस्था, (वैराग्यम्) वैराग्य है।

भावार्थ :—देखे और सुने हुये विषय के प्रति आकर्षित न होकर विषय की सर्वथा उपेक्षा करने वाले चित्त की वशीकार स्थिति वैराग्य है।

१६. तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥१।१६॥

पदार्थ :—(तत्) वैराग्य से (परम पुरुष ख्यातेः) परमात्मा का ज्ञान तथा, (गुण वैतृष्ण्यम्) गुणों में अरुचि हो जाती है।

भावार्थ :—विषयों के प्रति वैराग्य होने पर परमात्मा का ज्ञान तथा प्रकृति के सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण और उनके कार्यों में विरक्ति हो जाती है।

१७. वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥१।१७॥

पदार्थ :-(वितर्क, विचार, आनन्द, अस्मिता) वितर्क, विचार आनन्द तथा अस्मिता (रूप अनुगमात्सम्प्रज्ञातः) स्वरूप अनुगत् सम्प्रज्ञात समाधि है।

भावार्थ :—वितर्क, विचार, आनन्द तथा अस्मिता के स्वरूप के अनुगत् सम्पन्न होने वाली समाधि सम्प्रज्ञात समाधि है।

अ :—**सवितर्क समाधि** :—ग्राह्य पदार्थों के स्थूल स्वरूप में शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्प रहने तक की जानेवाली समाधि **सवितर्क समाधि** है।

आ :—**सविचार या विचारानुगत् समाधि** :—ग्राह्य ग्रहण विषय के सूक्ष्म स्वरूप में शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्प रहने तक की जाने वाली समाधि **सविचार समाधि** है।

इ :—**आनन्दानुगत् समाधि** :—समाधि की विचार रहित अवस्था में (निर्विचार अवस्था में) आनन्द की अनुभूति तथा अहङ्कार विद्यमान रहने तक की जाने वाली आनन्दानुगत् समाधि है।

ई :—**अस्मितानुगत् समाधि** :—केवल मात्र आत्मस्वरूप के आश्रय से की जाने वाली समाधि **अस्मितानुगत समाधि** है।

१८. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥१।१८॥

पदार्थ : (विराम प्रत्यय अभ्यास पूर्वः) चित्त की वृत्तियों की समाप्ति रूप विराम का प्रत्यय अर्थात् ज्ञान के (अभ्यास पूर्वः) पुनः पुनः अभ्यास से (संस्कार शेषः अन्यः) अन्य संस्कार मात्र शेष रहते हैं।

भावार्थ :—वृत्तियों के समाप्ति रूप ज्ञान के निरन्तर अभ्यास से केवल संस्कार मात्र विद्यमान रहते हैं।

१९. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१।१९॥

पदार्थ :—(भव प्रत्यय) शरीर तथा शरीर प्राप्ति के हेतु विषयक ज्ञान मात्र शेष रहता है। (विदेह प्रकृतिलयानाम) विदेह तथा प्रकृतिलयसंज्ञक योगियों के लिये।

भावार्थ :—पूर्व जन्म कृत साधन के प्रभाव से स्थूल शरीर के बन्धन से रहित होकर सूक्ष्म शरीर द्वारा स्थूल शरीर के बाहर रहने की क्षमता प्राप्त "महा विदेहा" स्थिति वाले **विदेह संज्ञक योगी** तथा सूक्ष्म विषय रूप मूल प्रकृति पर अधिकार करने में सक्षम **प्रकृति लय संज्ञक योगी** स्वभावतः भव प्रत्यय संज्ञक निर्बीज समाधि में समर्थ होते हैं। उनके लिये प्रारब्ध स्वरूप प्राप्त शरीर तथा जगत का ज्ञान मात्र ही **भव प्रत्यय** है।

२०. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥१।२०॥

पदार्थ :—(श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि, प्रज्ञा पूर्वक) श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा पूर्वक, (इतरेषाम्) अन्यों को यह योग सम्पन्न होता है।

भावार्थ :—**भव प्रत्यय** से भिन्न, **उपाय प्रत्यय** द्वारा उपासना योग को सम्पन्न करने वाले योगियों को यह परमेश्वर की उपासना रूपी योग, श्रद्धा अर्थात् सत्य को धारण करने विषयक उत्साह, वीर्य अर्थात् सामर्थ्य, स्मृति, चित्त के निरोध स्वरूप समाधि तथा विवेक ख्याति रूप प्रज्ञा द्वारा सम्पन्न होता है।

उपाय प्रत्यय की दृष्टि से योगियों के तीन भेद हैं—

अ :—मृदूपाय। आ :—मध्यमोपाय। इ :—अधिमात्रोपाय।

२१. तीव्र संवेगानामासन्नः ॥१।२१॥

पदार्थ :—(तीव्र संवेगानाम्) तीव्र संवेग युक्त योगियों को यह उपासना योग (आसन्नः) शीघ्र सम्पन्न होता है।

भावार्थ :—तीव्र संवेग युक्त योगियों को यह उपासना योग शीघ्र सम्पन्न होता है।

२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥१।२२॥

पदार्थ :—(मृदु) मन्द गति से साधन परायण, (मध्य) मध्यम गति से साधन परायण तथा (अधिमात्रत्वात्) तीव्र गति से साधन परायणों में (ततः) संवेग की दृष्टि से उनमें (अपि) भी (विशेषः) विशेषता है।

भावार्थ :—मृदूपाय, मध्योपाय तथा अधिमात्रोपाय वालों में भी संवेग की दृष्टि से विशेषाविशेष का अन्तर है।

२३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥१।२३॥

पदार्थ :—(ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर प्रणिधान से समाधि सम्पन्न होती है, (वा) अथवा।

भावार्थ :—अथवा ईश्वर प्रणिधान अर्थात् दृढ़ ईश्वर निष्ठा से समाधि सम्पन्न होती है।

२४. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥१।२४॥

पदार्थ :—(क्लेश, कर्म, विपाक, आशयैः) क्लेश, कर्म, कर्मफल तथा इच्छाओं से (अपरामृष्टः) रहित (पुरुष विशेष ईश्वरः) पुरुष विशेष ईश्वर है।

भावार्थ :—अविद्यादि क्लेशों, शुक्लाशुक्ल कर्मों, कर्मफल तथा इच्छाओं से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥१।२५॥

पदार्थ :—(तत्र) उस ईश्वर में (निरतिशयं) अनन्त (सर्वज्ञ बीजम्) सर्वज्ञता का मूल है।

भावार्थ :—उस ईश्वर में अनन्त ज्ञान है अर्थात् ईश्वर सर्वज्ञ है।

सर्वज्ञता सातिशय तथा निरतिशय है। ईश्वर की सर्वज्ञता निरतिशय है।

२६. स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥१।२६॥

पदार्थ :—(स) वह ईश्वर, (पूर्वेषाम्) पूर्वोत्पन्न लोगों का (अपि) भी (गुरुः) गुरु है। (कालेन्) काल के (अनवच्छेदात्) व्यवधान से रहित होने के कारण।

भावार्थ :—काल के व्यवधान से रहित होने के कारण, वह ईश्वर पूर्वोत्पन्न हुये लोगों का भी गुरु है।

२७. तस्य वाचकः प्रणवः ॥१।२७॥

पदार्थ :—(तस्य) उस ईश्वर का, (वाचकः) वाचक (प्रणवः) प्रणव है।

भावार्थ :—उस ईश्वर का अभिव्यक्ता प्रणव अर्थात् ओ३म् है।

२८. तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥१।२८॥

पदार्थ :—(तत् जपः) उस प्रणव का जप (तदर्थ भावनम्) उसके अर्थ का चिन्तन सहित ईश्वर में निष्ठापूर्वक करना चाहिये।

भावार्थ :—उस प्रणव अर्थात् ओ३म् का जप ओ३म् के अर्थचिन्तन सहित दृढ़ ईश्वरनिष्ठापूर्वक करना चाहिए।

२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥१।२९॥

पदार्थ :—(ततः) प्रणव के जप से (प्रत्यक् चेतनाधिगमः) चेतनस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति तथा (अपि अन्तरायाभावः च) अन्तरायों का भी अभाव हो जाता है।

भावार्थ :—प्रणव अर्थात् ओ३म् का दृढ़ ईश्वरनिष्ठापूर्वक जप करने से अन्तरायों का अभाव होकर चेतनस्वरूप ब्रह्म को प्राप्ति हो जाती है।

३०. व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्ध-भूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥१।३०॥

पदार्थ :—(व्याधि) शारीरिक रोग, (स्त्यान) अकर्मण्यता अर्थात् साधन में प्रवृत्ति न होने का स्वभाव, (संशय) साधन की सफलता में सन्देह, (प्रमाद) योग साधन के उपायों की उपेक्षा, (आलस्य) चित्त तथा शरीर के भारीपन के कारण साधन में रूचि न होना, (अविरति) वैराग्य का अभाव, (भ्रान्ति दर्शन) विपरीत ज्ञान, (अलब्ध भूमिकत्व) समाधि की अप्राप्ति तथा (अनवस्थितत्वानि) चित्त का समाधि में स्थित न होना, (चित्त विक्षेपास्ते अन्तरायाः) ये चित्त के विक्षेप रूप विघ्न हैं।

भावार्थ :—शारीरिक रोग, अकर्मण्यता अर्थात् साधन में प्रवृत्त न होने का स्वभाव, साधन की सफलता में सन्देह, योग साधन के उपायों की उपेक्षा, चित्त तथा शरीर के भारीपन के कारण साधन में रूचि न होना, वैराग्य का अभाव, विपरीत ज्ञान, समाधि की अप्राप्ति तथा चित्त का समाधि में स्थित न होना, ये चित्त के विक्षेप रूप विघ्न अर्थात् नौ अन्तराय हैं।

३१. दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप-सहभुव ॥१।३१॥

पदार्थ :—(दुःख) दुःख, (दौर्मनस्य) मानसिक क्षोभ, (अङ्गमेजयत्व) शारीरिक अङ्गों की अस्थिरता तथा (श्वास प्रश्वासाः) श्वास प्रश्वास रूपी विघ्न (विक्षेप सहभुव) विक्षेप के साथ उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ :—आध्यात्मिक दुःख, अर्थात् शारीरिक दुःख, आधिदैविक दुःख अर्थात् प्राकृतिक विपत्तियां, आधिभौतिक दुःख अर्थात् प्राणिजन्य दुःख, इच्छाओं की पूर्ति के अभाव में उत्पन्न मानसिक क्षोभ तथा श्वास प्रश्वास रूपी विघ्न विक्षेप रूपी अन्तरायों के साथ उत्पन्न होते हैं।

३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥१।३२॥

पदार्थ :—(तत् प्रतिषेधार्थम्) उन अन्तरायों तथा उनके साथ उत्पन्न होने वाले विघ्नों को दूर करने के लिये (एक तत्त्वाभ्यासः) एक तत्त्व अर्थात् परमात्मतत्त्व का अभ्यास करना चाहिए।

भावार्थ :—उन अन्तरायों तथा उनके साथ उत्पन्न होनेवाले विघ्नों को दूर करने के लिए एक तत्त्व अर्थात् परमात्मतत्त्व का अभ्यास करना चाहिए।

३३. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥१।३३॥

पदार्थ :—(मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाणाम्) मैत्री, करुणा, प्रसन्नता तथा उपेक्षा (सुख, दुःख, पुण्य, अपुण्य) सुखी दुःखी, पुण्यात्मा तथा पापियों के प्रति (भावनातः चित्त प्रसादनम्) की भावना योगी के चित्त की प्रसन्नता के आधार हैं।

भावार्थ :—सुखी प्राणियों से मित्रता, दुःखी प्राणियों के प्रति करुणा, पुण्यात्माओं को देख कर प्रसन्न होना तथा पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना योगी के चित्त की प्रसन्नता के आधार हैं।

३४. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥१।३४॥

पदार्थ :—(प्रच्छर्दन) प्राण वायु को बाहर निकालने तथा (विधारणाभ्यां वा) धारण करने से अथवा।

भावार्थ :—अथवा प्राण वायु को प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल कर धारण करने से चित्त निरुद्ध हो जाता है।

३५. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति-निबन्धनी ॥१।३५॥

पदार्थ :—(विषयवती वा) अथवा विषयोन्मुख (प्रवृत्तिः उत्पन्ना) प्रवृत्ति उत्पन्न होकर (मनसः स्थिति) मन की स्थिति को (निबन्धनी) बाँधने वाली होती है।

भावार्थ :—अथवा विषयोन्मुख प्रवृत्ति उत्पन्न होकर मन को बाँधने वाली होती है।

३६. विशोका वा ज्योतिष्मती ॥१।३६॥

पदार्थ :—(विशोका वा) अथवा शोक रहित, (ज्योतिष्मती) प्रकाशमयी प्रवृत्ति चित्त को बाँधने वाली होती है।

भावार्थ :—अथवा शोक रहित प्रकाशमयी प्रवृत्ति चित्त को बाँधने वाली होती है।

३७. वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥१।३७॥

पदार्थ : (वीतरागविषयं वा) अथवा विषयों के मोह से रहित (चित्तम्) चित्त स्थिर हो जाता है।

भावार्थ :—अथवा विषयों के मोह से रहित होने पर चित्त स्थिर हो जाता है।

३८. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥१।३८॥

पदार्थ :—(स्वप्न निद्रा ज्ञान आलम्बनं वा) अथवा स्वप्नावस्था तथा निद्रावस्था के तुल्य ज्ञान के आश्रय से चित्त स्थिर हो जाता है।

भावार्थ :—अथवा स्वप्नावस्था तथा निद्रावस्था के तुल्य ज्ञान के आश्रय से चित्त स्थिर हो जाता है।

३९. यथाभिमतध्यानाद्वा ॥१।३९॥

पदार्थ :—(यथा अभिमत ध्यानात् वा) अथवा इच्छानुकूल विषय का ध्यान करने से चित्त स्थिर हो जाता है।

भावार्थ :—अथवा इच्छानुकूल विषय का ध्यान करने से चित्त स्थिर हो जाता है।

४०. परमाणु परममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥१।४०॥

पदार्थ :—(परमाणु) परमाणु से लेकर [परम महत्त्वान्तः] परम स्थूल विषय तक (अस्य) चित्त को (वशीकारः) स्थिर करने के आधार हैं।

भावार्थ :—परमाणु से लेकर स्थूल विषय तक चित्त को स्थिर करने के आधार हैं।

४१. क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थ-तदञ्जनता समापत्तिः ॥१।४१॥

पदार्थ :—(क्षीण वृत्तेः) क्षीण वृत्ति वाले, (अभिजातस्य इव मणेः) स्फटिक मणि के तुल्य स्वच्छ चित्त की (ग्रहीतृ ग्रहण ग्राह्येषु) ग्रहीता, ग्रहण तथा ग्राह्य विषयों में, (तत्स्थ) उस चित्त की स्थिरता [तत् अञ्जनता] तदाकारता [समापत्तिः] समाधि है।

भावार्थ :—स्फटिक मणि के तुल्य स्वच्छ तथा क्षीण वृत्ति वाले चित्त की ग्रहीता, ग्रहण तथा ग्राह्य विषयों में स्थिरता तदाकारता समाधि है।

४२. तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥१।४२॥

पदार्थ :—[तत्र] उन समाधियों में [शब्द अर्थ ज्ञान विकल्पैः] शब्द अर्थ तथा ज्ञान के विकल्प में [संकीर्णाः] फैली हुई [सवितर्का] सवितर्क [समापत्तिः] समाधि है।

भावार्थ :—उन समाधियों में, शब्द, अर्थ तथा ज्ञान के विकल्प से युक्त सवितर्क समाधि है।

४३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥१।४३॥

पदार्थ :—(स्मृति परिशुद्धौ) स्मृति के अत्यन्त शुद्ध हो जाने तथा (स्वरूप शून्या इव) स्वरूप शून्यवत् होने पर (अर्थ मात्र निर्भासा) ध्येय मात्र को प्रकाशित करने वाली (निर्वितर्का) निर्वितर्क समाधि है।

भावार्थ :—स्मृति के अत्यन्त शुद्ध हो जाने तथा स्वरूप के शून्यवत् होने पर ध्येयमात्र को प्रकाशित करने वाली निर्वितर्क समाधि है।

४४. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥१।४४॥

पदार्थ :—(एतयैव) इससे ही (सविचारा निर्विचारा च) सविचार तथा निर्विचार समाधि द्वारा, (सूक्ष्म विषया व्याख्याता) सूक्ष्म विषय पर्यन्त वर्णन किया गया है।

भावार्थ :—पूर्वोक्त सवितर्क तथा निर्वितर्क समाधियों के वर्णन से सूक्ष्म विषय पर्यन्त की जाने वाली सविचार तथा निर्विचार समाधि का वर्णन किया गया है।

४५. सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥१।४५॥

पदार्थ :—(सूक्ष्म विषयत्वं च) तथा सूक्ष्म विषय से लेकर (अलिङ्ग पर्यवसानम्) प्रकृति पर्यन्त विस्तार है।

भावार्थ :—सविचार तथा निर्विचार समाधि का सूक्ष्म विषय से लेकर प्रकृति पर्यन्त विस्तार है।

४६. ता एव सबीजः समाधिः ॥१।४६॥

पदार्थ :—(ता एव) उपर्युक्त सभी (सबीजः समाधिः) सबीज समाधि हैं।

भावार्थ :—उपर्युक्त वर्णित सभी समाधि सबीज समाधि हैं।

४७. निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः ॥१।४७॥

पदार्थ :—(निर्विचार वैशारद्ये) निर्विचार समाधि के सम्पन्न होने से (अध्यात्म प्रसादः) अध्यात्म की प्राप्ति होती है।

भावार्थ :—निर्विचार समाधि के सम्पन्न होने पर अध्यात्म की प्राप्ति होती है।

४८. ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥१।४८॥

पदार्थ :—(ऋतम्भरा तत्र) उस समय निश्चयात्मक स्थिरता से युक्त (प्रज्ञा) बुद्धि होती है।

भावार्थ :—उस समय बुद्धि स्थिर सत्य ज्ञान से युक्त ऋतम्भरा संज्ञक होती है।

४९. श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥१।४९॥

पदार्थ :—(श्रुत अनुमान प्रज्ञाभ्याम्) सुनी हुई तथा अनुमानित बुद्धि से (अन्य विषया) भिन्न प्रकार की होती है (विशेषार्थत्वात्) विशेष अर्थ वाली होने के कारण।

भावार्थ :—समाधिजन्य ऋतम्भरा संज्ञक बुद्धि, समाधि विषयिणी होने के कारण सुनी हुई तथा अनुमानित बुद्धि से विलक्षण होती है।

५०. तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥१।५०॥

पदार्थ :—(तत् जः संस्कारः) समाधि जन्य बुद्धि से उत्पन्न हुए संस्कार (अन्य संस्कार प्रतिबन्धी) अन्य संस्कारों को रोकने वाले होते हैं।

भावार्थ :—समाधि जन्य ऋतम्भरा संज्ञक बुद्धि से उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारों को रोकने वाले होते हैं।

५१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥१।५१॥

पदार्थ :—(तस्यापि निरोधे) समाधि जन्य बुद्धि से उत्पन्न संस्कारों के भी निरोध से (सर्व निरोधात्) सब संस्कारों के निरुद्ध हो जाने के फलस्वरूप (निर्बीजः समाधिः) निर्बीज समाधि होती है।

भावार्थ :—समाधि जन्य ऋतम्भरा संज्ञक बुद्धि से उत्पन्न हुये संस्कारों के निरोध से समस्त संस्कारों के निरुद्ध हो जाने के फलस्वरूप निर्बीज समाधि सम्पन्न होती है।

॥ इति समाधि पादः ॥

साधन पादः

५२. तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥२।१॥

पदार्थ :—(तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि) तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान (क्रिया योगः) क्रियायोग है।

भावार्थ :—तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग है।

यम से लेकर प्रत्याहार पर्यन्त तप है। धारणा तथा ध्यान स्वाध्याय के अन्तर्गत है। समाधि ईश्वर प्रणिधान है।

५३. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥२।२॥

पदार्थ :—(समाधि भावनार्थः) समाधि सिद्ध करने के लिए (क्लेश तनूकरणार्थः च) तथा अविद्यादि क्लेश दूर करने के लिए है।

भावार्थ :—उपर्युक्त क्रिया योग समाधि प्राप्त करने तथा अविद्यादि क्लेशों को दूर करने के लिए है।

५४. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥२।३॥

पदार्थ :—(अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशाः) अविद्या अस्मिता राग द्वेष तथा अभिनिवेश (क्लेशाः) पाँच क्लेश हैं।

भावार्थ :—अविद्या अस्मिता राग द्वेष तथा अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं।

५५. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥२।४॥

पदार्थ :—(अविद्या क्षेत्रम्) अविद्या क्षेत्र है (उत्तर एषाम्) आगे के (प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदाराणाम्) प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार अवस्थाओं वाले क्लेशों का।

भावार्थ : **प्रसुप्त** अर्थात् निष्क्रिय, **तनु** अर्थात् शक्तिहीन, **विच्छिन्न** अर्थात् अन्य क्लेश की अवस्था में निष्प्रभ तथा **उदार** अर्थात् पूर्णतः कार्यरत अवस्थाओं वाले क्लेशों का क्षेत्र अविद्या है।

५६. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥२।५॥

पदार्थ :—(अनित्य, अशुचि, दुःख, अनात्मसु) अनित्य, अपवित्र, दुःख तथा अनात्मा में, (नित्य शुचि, सुख, आत्मसु ख्यातिः अविद्या) नित्य पवित्र सुख तथा आत्म भाव की अनुभूति अविद्या है।

भावार्थ :—अनित्य में नित्यतापरक भाव, अपवित्र में पवित्रता परक भाव, दुःख में सुख परक भाव तथा अनात्म में आत्म भाव अविद्या है।

५७. दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥२।६॥

पदार्थ :—(दृक् दर्शन शक्त्योः) द्रष्टा तथा दर्शन शक्ति की (एकात्मता इव अस्मिता) एकता मानना ही अस्मिता है।

भावार्थ :—द्रष्टा तथा दर्शन शक्ति की एकता मानना अस्मिता है।

५८. सुखानुशयी रागः ॥२।७॥

पदार्थ :—(सुखानुशयी) सुख का पुनः पुनः स्मरण राग है। (सुख के अनुशय से रहने वाली स्मृति राग है।)

भावार्थ :—सुख का पुनः पुनः स्मरण राग है।

५९. दुःखानुशयी द्वेषः ॥२।८॥

पदार्थ :—(दुःख अनुशयी) दुःख का पुनः पुनः स्मरण (द्वेषः) द्वेष है। (दुःख के अनुशय से रहने वाली स्मृति द्वेष है।)

भावार्थ—दुःख का पुनः पुनः स्मरण द्वेष है।

६०. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥२।९॥

पदार्थ :—(स्वरसवाही) अपने स्वभाव को प्राप्त कराने वाला (विदुषः अपि) विद्वानों को भी (तथारूढ़) यथावत् प्राप्त (अभिनिवेशः) अभिनिवेश है।

भावार्थ :—अविद्वानों के तुल्य विद्वानों को भी समान रूप से प्रभावित करने वाला क्लेश अभिनिवेश है।

जैसे मृत्यु का भय अविद्वान् तथा विद्वान् सभी को समान रूप से प्रभावित करता है।

६१. ते प्रतिप्रसव हेयाः सूक्ष्माः ॥२।१०॥

पदार्थ :—(ते) वे (प्रतिप्रसव) पुनः पुनः उत्पन्न होने के कारण (हेयाः) त्याज्य हैं (सूक्ष्माः) सूक्ष्म होने पर।

भावार्थ :—ये अविद्यादि क्लेश मूलक वृत्तियां सूक्ष्म हो जाने पर भी पुनः पुनः उत्पन्न होने के कारण त्याज्य हैं।

६२. ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥२।११॥

पदार्थ :—(ध्यान हेयाः) ध्यान द्वारा नाश करने योग्य हैं, (तद्वृत्तयः) क्लेश मूलक अविद्या जन्य वृत्तियाँ।

भावार्थ :—क्लेश मूलक अविद्या जन्य वृत्तियों का **स्थूल रूप प्राणायाम** द्वारा तथा **सूक्ष्म रूप अर्थात् तनु अवस्था को प्राप्त रूप ध्यान** द्वारा नाश करने योग्य है।

६३. क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥२।१२॥

पदार्थ :—(क्लेशमूलः कर्माशयः) क्लेशों का मुल कर्म समूह है (दृष्ट अदृष्ट जन्म) वर्तमान तथा पूर्व जन्मों के (वेदनीयः) जानने योग्य तथा भोग्य हैं।

भावार्थ :—अविद्या जन्य क्लेशों का मूल प्रत्यक्ष अर्थात् **वर्तमान** तथा परोक्ष अर्थात् **पूर्व जन्मों** का **कर्म समूह** है। जो **जानने योग्य** तथा **भोग्य** है।

६४. सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥२।१३॥

पदार्थ :—(सति मूले तद् विपाकः) कर्माशय के विद्यमान रहने से उसका फल (जाति आयुः भोगाः) जन्म जीवन तथा भोग होता रहता है।

भावार्थ :—**कर्माशय** अर्थात् कर्म समूह के विद्यमान रहने तक उसका **विपाक** अर्थात् फल **जन्म जीवन** तथा **भोग** होता रहता है।

कर्माशय **प्रवाह से अनादि** है।

६५. ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥२।१४॥

पदार्थ :—(ते) वे जाति, आयु तथा भोग (ह्लाद परिताप फलाः) हर्ष तथा शोक रूप हैं, (पुण्य अपुण्य हेतु त्वात्) पुण्य तथा पाप कर्मों के फल स्वरूप।

भावार्थ :—वे जाति आयु तथा भोग पुण्य तथा पाप कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होने के कारण हर्ष तथा शोकदायक हैं।

६६. परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥२।१५॥

पदार्थ :—(परिणाम ताप संस्कार दुःखैः) परिणामदुःख, तापदुःख तथा संस्कारदुःख (गुण वृत्ति विरोधात्च) गुणों तथा वृत्तियों के परस्पर विरोध के कारण (दुःखम् एव) दुःख रूप ही हैं (सर्वं) समस्त कर्माशय (विवेकिनः) विवेकियों के लिये।

भावार्थ :—समस्त कर्माशय, **परिणामदुःख** अर्थात् प्राप्त सुख के अन्त में, सुख का वियोग रूपी परिणामदुःख, **तापदुःख** अर्थात् सुख के बिछुड़ने पर उसका अभाव स्वरूप तापदुःख तथा **संस्कारदुःख** अर्थात् सुख के अभाव में सुख का पुनः स्मरण रूप संस्कारदुःख, **सतोगुण, रजोगुण** तथा **तमोगुण** की परस्पर विरोधी वृत्तियें, **प्रकाश** अर्थात् उत्पन्न होना, **क्रिया** अर्थात् सक्रिय होना, तथा अभाव रूप **निष्क्रियता** विवेकियों के लिये दुख रूप ही हैं।

६७. हेयं दुःखमनागतम् ॥२१।१६॥

पदार्थ :—(हेयं दुःखम्) साधन द्वारा नष्ट करने योग्य हैं दुःख (अनागतम्) अप्राप्त।

भावार्थ :—अप्राप्त दुःख योग के साधनों द्वारा नष्ट करने योग्य हैं।

६८. द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥२।१७॥

पदार्थ :—(द्रष्टृ दृश्ययोः) द्रष्टा तथा दर्शनीय पदार्थ का (संयोगः) संयोग (हेयहेतुः) हेय का कारण है।

भावार्थ :—अप्राप्त दुःख ही हेय है तथा **द्रष्टा और दृश्य का संयोग** ही हेय का कारण है।

६९. प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥२।१८॥

पदार्थ :—(प्रकाश क्रिया स्थिति शीलं) प्रकाश, क्रिया, स्थिति रूप स्वभाव वाला, (भूत इन्द्रिय आत्मकं) पञ्च महाभूत तथा दश इन्द्रियात्मक (भोग अपवर्ग अर्थम्) भोग तथा मोक्ष के लिये है (दृश्यम्) यह दृश्यमान् शरीर।

भावार्थ :—सतगुण, रजोगुण तथा तमोगुण के **प्रकाश, क्रिया** तथा **स्थिति रूप स्वभाव वाला पञ्चमहाभूत** पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश तथा **दश इन्द्रियात्मक,** नेत्र, श्रोत्र नासिका रसना तथा त्वचा, वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ मय यह दृश्य रूपी शरीर **भोग** तथा **मोक्ष** के लिये है।

७०. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥२।१९॥

पदार्थ :—(विशेष अविशेष) विशेष अर्थात् पञ्च महाभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, अविशेष अर्थात् पञ्च सूक्ष्मभूत तथा अहङ्कार, (लिङ्ग मात्र अलिङ्गानि) लिङ्ग मात्र महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि तथा अलिङ्ग रूप प्रकृति पर्यन्त (गुण पर्वाणि) गुणों का विस्तार है।

भावार्थ :—**विशेष** अर्थात् **पञ्च महाभूत** अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ नेत्र, श्रोत्र, नासिका, रसना तथा त्वचा, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ वाक्, पाणि, पायु, उपस्थ तथा पाद और मन, **अविशेष** अर्थात् पञ्च सूक्ष्म भूत, शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध और अहङ्कार **लिङ्गमात्र** अर्थात् महत्तत्त्वरूप बुद्धि, **अलिङ्ग** अर्थात् प्रकृति पर्यन्त प्रकाशशील सत, क्रियाशील रज तथा स्थितिशील तम रूप **गुणों का विस्तार** है।

७१. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२।२०॥

पदार्थ :—(द्रष्टा) चेतन स्वरूप जीवात्मा (दृशि मात्रः) द्रष्टा मात्र है (शुद्ध अपि) शुद्ध होते हुये भी (प्रत्यय अनुपश्यः) प्रत्यय रूप बुद्धि के अनुरूप देखता है।

भावार्थ :—चेतन स्वरूप जीवात्मा द्रष्टा मात्र है। शुद्ध होते हुये भी वह बुद्धि के अनुरूप देखता है।

वेद के मतानुसार चेतन स्वरूप जीवात्मा द्रष्टा मात्र न होकर कर्त्ता तथा भोक्ता है। यथा **"तयोरन्यः पिप्पलं स्वादवत्ति" (ऋग्वेद १।१६४।२०)** परम पुरुष से अन्य पुरुष भोक्ता है।

७२. तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥२।२१॥

पदार्थ :—(तदर्थ) द्रष्टा के लिये (एव) ही है, (दृश्यस्य) दृश्य का (आत्मा) स्वरूप।

भावार्थ :—यह दृश्य द्रष्टा के भोग तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये ही है।

७३. कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥२।२२॥

पदार्थ :—(कृतार्थम् प्रति नष्टम्) जिस पुरुष का भोग तथा मोक्ष रूपी अर्थ सिद्ध हो गया है उसके लिये नष्ट हो जाने पर (अपि अनष्टम्) भी नष्ट नहीं हुआ है, (तद् अन्य साधारणत्वात्) वह दृश्य अन्य साधारण लोगों की अपेक्षा से।

भावार्थ :—जिस पुरुष का भोग तथा मोक्ष रूपी अर्थ सिद्ध हो गया है उसके लिये यह दृश्य रूपी जगत् व्यर्थ हो जाने पर भी अन्य साधारण लोगों के लिये अनष्ट अर्थात् विद्यमान् रहता है।

७४. स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥२।२३॥

पदार्थ :—(स्व) दृश्य तथा (स्वामि) द्रष्टा की (शक्त्योः) शक्ति का, (स्वरूप उपलब्धि) स्वरूप की उपलब्धि का (हेतुः) आधार (संयोगः) संयोग है।

भावार्थ :—दृश्य तथा द्रष्टा का अपनी शक्ति के स्वरूप की प्राप्ति अर्थात् मोक्षार्थ जो आधार है वह संयोग है।

७५. तस्य हेतुरविद्या ॥२।२४॥

पदार्थ :—(तस्य) उस संयोग का (हेतुः) हेतु (अविद्या) अविद्या है।

भावार्थ :—उस संयोग का आधार अविद्या है।

७६. तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥२।२५॥

पदार्थ :—(तद् अभावात्) उस दृश्य के अभाव से (संयोगाभावः) संयोग का अभाव (हानम्) हान है, (तद्दृशेः) वह द्रष्टा का (कैवल्यम्) मोक्ष है।

भावार्थ :—अविद्या जन्य दृश्य के अभाव से उत्पन्न "हान" संज्ञक अवस्था ही द्रष्टा का कैवल्य है।

७७. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥२।२६॥

पदार्थ :—(विवेक ख्यातिः) विवेकज विवेकख्याति संज्ञक (अविप्लवा) स्थिर ज्ञान ही (हानोपायः) हान प्राप्ति का आधार है।

भावार्थ :—स्थिर विवेकख्याति संज्ञक ज्ञान हान संज्ञक स्थिति प्राप्ति का आधार है।

७८. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥२।२७॥

पदार्थ :—(तस्य) विवेक ख्याति प्राप्त पुरुष की, (सप्तधा) सात प्रकार के (प्रान्त भूमिः प्रज्ञा) स्तर वाली बुद्धि होती है।

भावार्थ :—हान प्राप्त विवेक ख्याति सम्पन्न पुरुष की बुद्धि ज्ञान की दृष्टि से सात स्तरों वाली होती है।

१. कार्य विमुक्त प्रज्ञा चार प्रकार की है। :—

अ—ज्ञेय शून्य अवस्था :—जानने योग्य सब जान लिया अर्थात् जानने योग्य कुछ भी शेष नहीं रहा।

आ—हेय शून्य अवस्था :—द्रष्टा और दृश्य के संयोग के अभाव रूप हान को प्राप्त कर लिया।

इ - प्राप्य प्राप्यावस्था :—समाधि द्वारा यह प्रतीति कि जो कुछ प्राप्त करना था प्राप्त कर लिया अर्थात् प्राप्तम् प्रापणीयम्।

ई—चिकीर्षाशून्य अवस्था :— हान के उपाय रूप विवेक ख्याति को प्राप्त कर लिया।

२. चित्त विमुक्त प्रज्ञा तीन प्रकार की होती है। :—

अ—चित्त की कृतार्थता :—अर्थात् चित्त का प्रयोजन शेष नहीं रहा।

आ—गुणलीनता :—कार्य के अभाव में चित्त का अपने कारण रूप गुणों में लीन रहना।

इ—आत्म स्थिति :— सर्वथा गुणातीत होकर अपने स्वरूप में स्थित रहना।

७९. योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक-ख्यातेः ॥२।२८॥

पदार्थ :—(योग अङ्गान् अनुष्ठानात्) योग के अङ्गों के अनुष्ठान से (अशुद्धि क्षये) अशुद्धि क्षीण होने से (ज्ञान दीप्तिः) ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, (आविवेक ख्यातेः) विवेक ख्याति पर्यन्त।

भावार्थ :—योग के अङ्गों के अभ्यास से **मल** रूप शारीरिक अशुद्धि, **विक्षेप** रूप चित्त की अशुद्धि तथा **आवरण** रूप बुद्धि की अशुद्धि क्षीण होकर **विवेकख्याति** पर्यन्त ज्ञान का प्रकाश हो जाता है।

८०. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि ॥२।२९॥

पदार्थ :—(यम नियम आसान प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयः) यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि (अष्टौ अङ्गानि) आठ अङ्ग हैं।

भावार्थ :—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि **योग के आठ अङ्ग** हैं।

८१. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥२।३०॥

पदार्थ :—(अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रहा) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह (यमाः) यम हैं।

भावार्थ :—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह **यम** हैं।

अहिंसा अर्थात् समस्त प्राणियों के प्रति वैर त्याग। **सत्य** अर्थात् वाणी द्वारा यथार्थ भाषण। **अस्तेय** अर्थात् निषिद्ध प्रकार से पराये पदार्थों का न लेना। **ब्रह्मचर्य** अर्थात् उपस्थे-

न्द्रिय के संयम द्वारा वीर्य की रक्षा। **अपरिग्रह** अर्थात् विषय भोग विषयक पदार्थों का संचय न करना।

८२. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥२।३१॥

पदार्थ :—(जाति देश काल समयात् अवच्छिन्नाः) जाति, देश, काल तथा समय की सीमा से रहित (सार्व भौमा महाव्रतम्) सार्वभौम अर्थात् सब के लिये सर्वत्र एवम् सर्वदा पालनीय महाव्रत हैं।

भावार्थ :—ये **यम** जाति देश काल तथा समय की सीमा से रहित सब के द्वारा सर्वत्र एवम् सर्वदा पालनीय **महाव्रत** हैं।

८३. शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥२।३२॥

पदार्थ :—(शौच, सन्तोष, तपः, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानानि नियमाः) शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

भावार्थ :—शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान **नियम** हैं।

८४. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥२।३३॥

पदार्थ :—(वितर्क बाधने) वितर्क द्वारा व्यवधान होने पर, (प्रतिपक्ष भावनम्) प्रतिपक्षीय भावना करे।

भावार्थ :—यम नियमों के पालन करने में **वितर्क अर्थात् विपरीत विचारों द्वारा व्यवधान** होने पर वितर्क के प्रतिपक्षीय विचार पुनः पुनः करे।

८५. वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥२।३४॥

पदार्थ :—(वितर्काः हिंसादयः) वितर्क हिंसादिक (कृत कारित अनुमोदिताः) स्वयं द्वारा की हुई, प्रेरित कर कराई हुई तथा अनुमोदित, (लोभ क्रोध मोह पूर्वकाः) लोभ क्रोध तथा मोह के कारण की गई (मृदु मध्य अधिमात्रा) हल्की मध्यम तथा भारी (दुःख अज्ञान अनन्तफलाः) ये अज्ञान रूप है तथा इनका फल अनन्तदुःख है (इति प्रतिपक्ष भावनम्) ये प्रतिपक्षीय भावनायें हैं।

भावार्थ :—हल्की, मध्यम तथा भारी परिमाण में लोभ क्रोध तथा मोह पूर्वक किये गये, कराये गये अथवा अनुमोदित हिंसादिक वितर्क रूपी बाधाएं हैं। इन अज्ञानमय कार्यों का फल अनन्त दुःख है, उस समय ये प्रतिपक्षीय भावनायें करनी चाहिए।

८६. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥२।३५॥

पदार्थ :—(अहिंसा प्रतिष्ठायां) अहिंसा की प्रतिष्ठा से (तत् सन्निधौ) योगी के समीपस्थ प्राणी (वैरत्यागः) वैर त्याग देते हैं।

भावार्थ :—जीवन में अहिंसा के प्रतिष्ठित होने पर योगी के समीपस्थ प्राणी परस्पर वैर त्याग देते हैं।

८७. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥२।३६॥

पदार्थ :—(सत्य प्रतिष्ठायां) सत्य की प्रतिष्ठा से (क्रियाफलाश्रयत्वम) योगी के द्वारा की गई क्रिया फलयुक्त होती है।

भावार्थ :—जीवन में सत्य के प्रतिष्ठित होने पर योगी के द्वारा की गई क्रिया फलयुक्त होती है।

८८. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥२।३७॥

पदार्थ :—(अस्तेय प्रतिष्ठायां) अस्तेय की प्रतिष्ठा से (सर्व रत्न उपस्थानम) उसे सब प्रकार के रत्न प्राप्त हो जाते हैं।

भावार्थ :—चोरी न करने अर्थात् अन्यों के पदार्थ अनुचित रूप से ग्रहण न करने के विचार दृढ़तापूर्वक स्थिर होने पर योगी को रत्नादिक समस्त ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है।

८९. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥२।३८॥

पदार्थ :—(ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां) ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा से (वीर्य लाभः) वीर्य अर्थात् बल की वृद्धि होती है।

भावार्थ :—जीवन में ब्रह्मचर्य के प्रतिष्ठित अर्थात् स्थिर होने पर बल की प्राप्ति होती है।

९०. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ॥२।३९॥

पदार्थ :—(अपरिग्रह स्थैर्ये) अपरिग्रह की स्थिरता से (जन्म कथं ता सम्बोधः) योगी को वर्तमान जन्म के कारणों का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—अपरिग्रह अर्थात् संग्रह न करने की वृत्ति की स्थिरता से योगी को वर्तमान जन्म के कारणों का ज्ञान हो जाता है।

९१. शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥२।४०॥

पदार्थ :—(शौचात्) शुद्धि का पालन करने से (स्वाङ्ग जुगुप्सा) अपने अङ्गों से घृणा अर्थात् विरक्ति तथा (परैः असंसर्गः) अन्यों से सम्पर्क न रखने की इच्छा उत्पन्न होती है।

भावार्थ :—शौच का पालन करने से विषयोन्मुख अपने अङ्गों से घृणा तथा अन्यों से सम्पर्क न रखने की इच्छा उत्पन्न होती है।

६२. सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन-योग्यत्वानि च ॥२।४१॥

पदार्थ :—(सत्त्व शुद्धिः) अन्तः करण की शुद्धि (सौमनस्य) मानसिक प्रसन्नता, (एकाग्र्य इन्द्रिय जय) चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर अधिकार (आत्म दर्शन योग्य त्वानि च) तथा आत्म दर्शन की योग्यता उत्पन्न होती है।

भावार्थ :—शौच का पालन करने से अन्तःकरण की पवित्रता, मानसिक प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों पर अधिकार तथा आत्म दर्शन की योग्यता उत्पन्न होती है।

६३. सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥२।४२॥

पदार्थ :—(संतोषात्) संतोष से (अनुत्तम) सर्वोत्तम (सुख लाभः) सुख प्राप्त होता है।

भावार्थ :—संतोष से सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है।

६४. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥२।४३॥

पदार्थ :—(काय इन्द्रिय सिद्धिः) शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि सम्पन्न होती है (अशुद्धि क्षयात्) अशुद्धि के क्षीण होने से (तपसः) तप के द्वारा।

भावार्थ :—तप के द्वारा शरीर तथा इन्द्रियों की अशुद्धि क्षीण होने पर शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धियाँ सम्पन्न होती हैं।

उपर्युक्त सूत्र में **तप** से अभिप्राय **प्राणायाम** से है। प्राणायाम द्वारा शारीरिक **मलदोष**, चित्तस्थ **विक्षेप दोष** तथा बुद्धिगत **आवरण दोष** दूर होकर, शारीरिक, इन्द्रियजन्य तथा अन्तःकरण विषयक **समस्त सिद्धियाँ** सम्पन्न होती हैं।

६५. स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः ॥२।४४॥

पदार्थ :—(स्वाध्यायात्) स्वाध्याय से (इष्ट देवता) अभीष्ट देवता आदि विषय की (सम्प्रयोगः) प्राप्ति होती है।

भावार्थ :—स्वाध्याय से अभीष्ट देवता आदि विषय का साक्षात्कार होता है।

६६. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥२।४५॥

पदार्थ :—(समाधि सिद्धिः) समाधि सिद्ध होती है, (ईश्वर प्रणिधानात्) ईश्वर के प्रति समर्पण से।

भावार्थ :—दृढ़ ईश्वर निष्ठा से समाधि सिद्ध होती है।

६७. स्थिरसुखमासनम् ॥२।४६॥

पदार्थ :—(स्थिर सुखम् आसनम्) जिसमें स्थिरता तथा सुख हो वह आसन है।

भावार्थ :—बैठने पर जिसमें स्थिरता तथा सुख हो वह आसन है।

६८. प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥२।४७॥

पदार्थ :—(प्रयत्नशैथिल्यात्) प्रयत्न की शिथिलता से (अनन्त समापत्तिभ्याम्) अनन्त परमात्मा में समाधि सम्पन्न होती है।

भावार्थ :—**आसन की स्थिरता** से शारीरिक प्रयत्न शिथिल होकर **अनन्त परमात्मा में समाधि** सम्पन्न होती है।

९९. ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥२।४८॥

पदार्थ :—(ततः) प्रयत्न की शिथिलता द्वारा समाधि सम्पन्न होने से (द्वन्द्व अनभिघातः) शीत उष्ण क्षुधा तृषा आदि द्वन्द्वों से आघात नहीं होता।

भावार्थ :—प्रयत्न की शिथिलता द्वारा **समाधि** सम्पन्न होने से क्षुधा, तृषा, शीत उष्ण आदि **द्वन्द्वों** द्वारा आघात नहीं लगता है।

१००. तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥२।४९॥

पदार्थ :—(तस्मिन् सति) आसन के स्थिर होने पर (श्वास प्रश्वासयोः) श्वास प्रश्वास की (गति विच्छेदः) गति का विच्छेद (प्राणायामः) प्राणायाम है।

भावार्थ :—आसन के स्थिर होने पर श्वास प्रश्वास की गति का विच्छेद करना **प्राणायाम** है।

१०१. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥२।५०॥

पदार्थ :—(बाह्य आभ्यन्तर स्तम्भवृत्तिः) बाह्य अर्थात् श्वास को बाहर निकाल कर बाहर रोकना, आभ्यन्तर अर्थात् श्वास को अन्दर लेकर अन्दर रोकना, तथा स्तम्भ वृत्ति अर्थात् श्वास को बाहर निकालने अथवा अन्दर लेते समय यथा स्थिति में रोक देना, (देश काल संख्याभिः) देश, काल तथा संख्या की दृष्टि से (परिदृष्टः) देखा गया है, (दीर्घ सूक्ष्मः) दीर्घ तथा सूक्ष्म।

भावार्थ :—बाह्य, आभ्यन्तर तथा स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम देश, काल तथा संख्या की दृष्टि से दीर्घ तथा सूक्ष्म देखा गया है।

अ—देश दृष्टः :—प्राणायाम करने के परिणामस्वरूप श्वास प्रश्वास के **देश की सीमा से परिमित** देश दृष्ट है।

आ—काल दृष्टः :—प्राणायाम करने के परिणाम स्वरूप श्वास प्रश्वास का **समय की सीमा से परिमित** होना काल दृष्ट है।

इ—संख्या दृष्टः :—प्राणायाम करने के फल स्वरूप श्वास प्रश्वास का **संख्या की सीमा से परिमित** होना संख्या दृष्ट है।

उपर्युक्त प्राणायाम, प्राणायाम केनिरन्तर अभ्यास से **दीर्घ तथा सूक्ष्म** होते हैं।

१. बाह्य वृत्ति प्राणायाम :—श्वास को बल पूर्वक वमनवत् बाहर निकाल कर यथा शक्ति बाहर रोकना बाह्य वृत्ति प्राणायाम है।

२. आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम :—श्वास को भीतर लेकर यथा शक्ति भीतर रोकना आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम है। जब अन्दर न रुक सके तब अत्यन्त मन्द गति से आपूरित श्वास को बाहर निकाल देना।

३. स्तम्भवृत्ति प्राणायाम :—अन्दर जाते हुये श्वास अथवा बाहर निकलते हुए प्रश्वास को यथाशक्ति वहीं रोके रखना स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है।

बाह्य वृत्ति प्राणायाम के लाभ :—

१. मूलाकुञ्चन की सिद्धि।
२. नाड़ियों की शुद्धि।

३. रक्त शुद्धि ।
४. चित्त की शुद्धि तथा एकाग्रता ।
५. प्राणशक्ति पर अधिकार तथा प्राणोत्थान ।
६. स्मरण शक्ति का बढ़ना ।
७. वीर्य का स्तम्भन ।
८. मन में धारणा की योग्यता आना ।

बाह्य वृत्ति प्राणायाम करने की विधि :—

प्रथम दिन बाह्य वृत्ति प्राणायाम **पाँच** से आरम्भ करके शनैः शनैः **इक्कीस पर्यन्त** बढ़ाता जाय। **तीव्र संवेग** युक्त योगी शनैः शनैः **सौ तक** बढ़ाता जाय ।

ध्यान करने से पूर्व दस बाह्य वृत्ति प्राणायाम कर ध्यान करे ।

आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम के लाभ :—

१. शारीरिक बल की प्राप्ति ।
२. चितस्थ आन्तरिक संस्कारों का शिथिल होना ।
३. पश्चिम मार्ग द्वारा प्राण संरोहण की सिद्धि ।

बाह्य वृत्ति प्राणायाम के सिद्ध होने पर ही आभ्यन्तर प्राणायाम अधिक संख्या में करे ।

मूलाकुञ्चन का सहजरूप में लग जाना बाह्य वृत्ति प्राणायाम की सिद्धि है ।

आभ्यन्तर प्राणायाम की विधि :—

पूर्वोक्त विधि से आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम प्रथम दिन **पाँच** से आरम्भ कर शनैः शनैः कालान्तर में **इक्कीस पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

तीव्र संवेग युक्त साधक शनैः शनैः कालान्तर में **सौ पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम का लाभ :—

चित्त का पूर्णतः एकाग्र होना ।

बाह्यवृत्ति प्राणायाम तथा आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम के सिद्ध होने पर ही स्तम्भवृत्ति प्राणायाम अधिक संख्या में करे ।

स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम की विधि :—

स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम पूर्वोक्त विधि से प्रथम दिन **पाँच बार करे ।** शनैः शनैः कालान्तर में **इक्कीस पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

तीव्र संवेग युक्त योगी शनैः शनैः कालान्तर में **सौ पर्यन्त** बढ़ाता जाय ।

१०२. बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥२।५१॥

पदार्थ :—(बाह्य आभ्यन्तर विषय आक्षेपी) बाह्य विषय अर्थात् प्रश्वास, आभ्यन्तर विषय अर्थात् श्वास का परस्परफेंक-कर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना (चतुर्थः) चतुर्थ प्राणायाम है ।

भावार्थ :—बाह्य विषय अर्थात् प्रश्वास तथा आभ्यन्तर विषय अर्थात् श्वास को परस्पर फेंक कर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना **चतुर्थ प्राणायाम** है ।

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी नामक चतुर्थ प्राणायाम का लाभ :—

प्राण चढ़ाने रूपी प्राण संयमन क्रिया का सिद्ध होना ।

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम की दो विधियाँ हैं।

१. बाह्याभ्यन्तर प्राणायाम की प्रथम विधि :—

प्रथम बाह्य वृत्ति प्राणायाम के पर्याप्त अभ्यास से चित्त को बाह्य वृत्तियों पर अधिकारकर मूलाकुञ्चन सिद्ध होने पर अधोभाग में स्थित अपानवायु के ऊपर उठने पर नाभिस्थ समान वायु में लय करे। नाभिस्थ समान वायु के ऊपर उठने पर हृदयस्थ प्राण वायु में लय करे। हृदयस्थ प्राण वायु के उठने पर कण्ठस्थ उदान वायु में लय करे। कण्ठस्थ उदान वायु को बल पूर्वक मूलाकुञ्चन द्वारा उठाकर मूर्द्धा प्रदेश में स्थिर करे। प्राण वायु मूर्द्धा प्रदेश में यथा सामर्थ्य धारण कर उतारने की इच्छा होने पर दृढ़ हुये मूलाकुञ्चन को शनैः शनैः खोलते हुये प्राण को यथा स्थान स्थिर करे।

यह पूर्व मार्ग अर्थात् बङ्क नाल मार्ग से प्राण संयमन है।

२. बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम की द्वितीय विधि :

बाह्य वृत्ति प्राणायाम के अभ्यास द्वारा मूलाकुञ्चन सिद्ध होने पर, मूलाकुञ्चन पूर्वक श्वास नाभिस्थ प्रदेश में भर कर स्थिर बैठे। शनैः शनैः प्राण मेरुदण्डस्थ मार्ग अर्थात् पश्चिम मार्ग से उठकर मूर्द्धा प्रदेश में स्थिर हो जायगा। प्राण वायु को यथा सामर्थ्य मूर्द्धा प्रदेश में धारण करे। उतारने की इच्छा होने पर दृढ़ हुये मूलाकुञ्चन को शनैः शनैः खोलते हुये प्राणों को यथा स्थान धारण करे।

उपर्युक्त विधि से पूर्व अथवा पश्चिम मार्ग द्वारा प्राणोत्थान सिद्ध होने पर आश्चर्यजनक आयु तथा अद्भुत सिद्धियाँ स्वतः ही सम्पन्न हो जाती हैं। क्योंकि चित्त का चाञ्चल्य

रूप विघ्न तथा श्वास प्रश्वास रूपी विक्षेप स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

१०३. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥२।५२॥

पदार्थ :—(ततः) प्राणायाम से, (क्षीयते) क्षीण हो जाता है (प्रकाश आवरणम्) प्रकाश का आवरण।

भावार्थ :—प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से **प्रकाश का आवरण क्षीण** हो जाता है।

१०४. धारणासु च योग्यता मनसः ॥२।५३॥

पदार्थ :—(धारणासु च) और धारणाओं में (योग्यता मनसः) मन की योग्यता हो जाती है।

भावार्थ :—तथा मन **धारणाओं में समर्थ** हो जाता है।

१०५. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥२।५४॥

पदार्थ :—(स्वविषय असम्प्रयोगे) अपने विषयों का ग्रहण न कर (चित स्वरूपानुकार इव इन्द्रियाणां प्रत्याहारः) इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप के तुल्य अनुवर्त्तन प्रत्याहार है।

भावार्थ :—इन्द्रियों का अपने विषयों को ग्रहण न कर चित्त के स्वरूप के तुल्य अनुवर्त्तन **प्रत्याहार** है।

१०६. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥२।५५॥

पदार्थ :—(ततः) प्रत्याहार के सम्पन्न होने से (परमावश्यता) परम वशीकार स्थिति हो जाती है, (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियों की।

भावार्थ :—प्रत्याहार के सम्पन्न होने से इन्द्रियों को **परम वशीकार** स्थिति हो जाती है।

॥ इति साधन पादः ॥

विभूति पादः

१०७. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥३।१॥

पदार्थ :—(देश बन्धः चित्तस्य धारणा) चित्त का एक देश में बंधना धारणा है।

भावार्थ :—चित्त का शरीर के किसी **एक देश में एकाग्र** होना **धारणा** है।

१०८. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥३।२॥

पदार्थ :—(तत्र प्रत्यय एकतानता) जहाँ चित्त एकाग्र हुआ हो वहाँ निरन्तर स्थिरता (ध्यानम्) ध्यान है।

भावार्थ :—जहाँ चित्त स्थिर हुआ हो वहीं **चित्त की प्रगाढ़ स्थिरता ध्यान** है।

१०९. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३।३॥

पदार्थ :—(तद् एव अर्थ मात्र निर्भासं) वह ध्यान में ध्येय की प्रतीति मात्र रहना तथा (स्वरूप शून्यम् इव समाधिः) स्वरूप का शून्यवत हो जाना समाधि है।

भावार्थ :—ध्यान की अवस्था में ध्याता को **ध्येय की प्रतीति** मात्र रहना तथा **स्वरूप का शून्यवत्** हो जाना **समाधि** है।

चित्त का **ध्येय में एकाग्र होना धारणा** है। चित्त की **ध्येय में प्रगाढ़ एकाग्रता** ध्यान है। चित्त का **ध्येय में स्थिर रूप से निरुद्ध होना तथा आत्मविस्मृति समाधि है।**

११०. त्रयमेकत्र संयमः ॥३।४॥

पदार्थ :—(त्रयम् एकत्र संयमः) तीनों अर्थात् धारणा ध्यान तथा समाधि का एक विषय में सम्पन्न होना संयम है।

भावार्थ :—**धारणा ध्यान तथा समाधि का एक विषय में सम्पन्न होना संयम है।**

संयम उपासना का नौवाँ अङ्ग है।

१११. तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥३।५॥

पदार्थ :—(तत् जयात्) संयम के जय से (प्रज्ञालोकः) बुद्धि प्रकाशमय हो जाती है।

भावार्थ :—**संयम** के जय से **बुद्धि प्रकाश युक्त** हो जाती है।

११२. तस्य भूमिषु विनियोगः ॥३।६॥

पदार्थ :—(तस्य) संयम का (भूमिषु) विभिन्न भूमियों में (विनियोगः) विनियोग होता है।

भावार्थ :—संयम का विभिन्न भूमियों में विनियोग होता है। **(वस्तुतः प्रकाशवती बुद्धि का संयम द्वारा विभिन्न भूमियों में विनियोग होता है।)**

११३. त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥३।७॥

पदार्थ :—(त्रयम् अन्तरङ्गं) धारणा, ध्यान तथा समाधि अन्तरङ्ग साधन हैं, (पूर्वेभ्यः) पूर्वोक्त यम नियमादि की अपेक्षा से।

भावार्थ :—पूर्वोक्त यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार की अपेक्षा से धारणा, ध्यान तथा समाधि अन्तरङ्ग साधन हैं।

११४. तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥३।८॥

पदार्थ :—(तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य) तथापि निर्बीज समाधि की अपेक्षा से धारणा, ध्यान तथा समाधि बहिरङ्ग साधन हैं।

भावार्थ :—**निर्बीज समाधि की अपेक्षा से धारणा**, ध्यान तथा समाधि बहिरङ्ग साधन हैं।

११५. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥३।९॥

पदार्थ :—(व्युत्थान निरोध संस्कारयोः) व्युत्थान और निरोध के संस्कारों का (अभिभवप्रादुर्भावौ) तिरोभाव तथा प्रादुर्भावों में (निरोध क्षण चित्तान्वयः) चित्त का निरोध काल रूपी आश्रय (निरोध परिणामः) निरोध परिणाम है।

भावार्थ :—चित्त में विद्यमान् संस्कारों के फल स्वरूप समाधि अवस्था में चञ्चलता और निरोध का प्रादुर्भाव तथा तिरोभाव होता रहता है। उस समय चित्त की निरुद्धावस्था में जो परिणाम होता है, वह **निरोध परिणाम** है।

११६. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥३।१०॥

पदार्थ :—(तस्य) चित्त की (प्रशान्त वाहिता) प्रशान्त वाहिता स्थिति होती है, (संस्कारात्) निरोध परिणाम युक्त संस्कारों से।

भावार्थ :—उस समाधि अवस्था में निरोध परिणाम युक्त संस्कारों के कारण प्रशान्त वाहिता स्थिति होती है।

११७. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥३।११॥

पदार्थ :—(सर्वार्थता एकाग्रतयोः क्षय उदयौ चित्तस्य) सब प्रकार के विषयों के चिन्तन की वृत्ति का क्षय होकर, चित्त में एकाग्रता का उदय होना (समाधि परिणामः) समाधि परिणाम है।

भावार्थ :—सब प्रकार के विषयों के चिन्तन की वृत्ति का क्षय होकर चित्त में एकाग्रता का उदय होना **समाधि परिणाम** है।

११८. ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता-परिणामः ॥३।१२॥

पदार्थ :—(ततः पुनः) उसके पश्चात् पुनः (शान्त उदितौ) शान्त तथा उदय होने वाली दोनों वृत्तियाँ (तुल्यप्रत्ययौ) तुल्य आश्रय वाली हो जाती हैं (चित्तस्य एकाग्रता परिणामः)। यह चित्त का एकाग्रता परिणाम है।

भावार्थ :—समाधि सम्पन्न चित्त को शान्त तथा उदय होने वाली दोनों वृत्तियाँ समान हो जाती हैं। यह चित्त का **एकाग्रता परिणाम** है।

११९. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥३।१३॥

पदार्थ :—(एतेन) इनके अर्थात् निरोधपरिणाम, समाधि-परिणाम तथा अवस्थापरिणाम के द्वारा (भूत इन्द्रियेषु) पञ्च

महाभूतों तथा इन्द्रियों में होने वाले, (धर्म लक्षण अवस्था परिणामा व्याख्याताः) धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम तथा अवस्था परिणाम कहे गये हैं।

भावार्थ :—निरोध परिणाम, समाधि परिणाम तथा एकाग्रता परिणाम के द्वारा, पञ्च महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश) तथा इन्द्रियों (नेत्र, श्रोत्र, नासिका, रसना तथा त्वचा; वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ तथा गुदा) में होने वाले, **धर्म-परिणाम, लक्षण परिणाम** तथा **अवस्था परिणाम** कहे गये हैं।

अ—धर्म परिणाम :—एक धर्म के लय होने पर दूसरे धर्म का उदय होना धर्म परिणाम है। धर्म परिणाम में धर्मी के धर्म का परिवर्त्तन होता है।

आ—लक्षण परिणाम :—लक्षण परिणाम धर्म परिणाम के साथ-साथ होता है। एक धर्म के लय के साथ उसके लक्षणों का लय होकर दूसरे धर्म के उदय के साथ उसके लक्षणों का उदय लक्षण परिणाम है। लक्षण परिणाम में धर्म का लक्षण बदलता है। लक्षण परिणाम, धर्म परिणाम से सूक्ष्म है।

इ—अवस्था परिणाम :—जो वर्तमान लक्षण युक्त धर्म में प्रतिक्षण परिवर्त्तन होकर नयापन आता है तथा नयापन समयान्तर के साथ पुराना होकर अतीत में विलीन हो जाता है। यही अवस्था परिणाम है। अवस्था परिणाम में धर्म के वर्तमान लक्षण रहते हुये भी उसकी अवस्था बदलती रहती है। लक्षण परिणाम, अवस्था परिणाम से सूक्ष्म है।

१२०. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥३।१४॥

पदार्थ :—(शान्त उदित अव्यपदेश्य) शान्त उदित तथा अनागत (धर्म अनुपाती धर्मी) जो धर्म हैं उनसे युक्त धर्मी है।

भावार्थ :—द्रव्य में रहने वाली शक्तियों का नाम **धर्म** है। जिसमें भूत, भविष्य तथा वर्तमान की संस्कार युक्त सामर्थ्य विद्यमान है तथा जो इसका अनुसरण कर्त्ता है, वह धर्मी है।

उपर्युक्त तीन परिणाम **धर्मी के धर्म की अवस्थाओं** के अनुसार हैं।

१२१. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥३।१५॥

पदार्थ :—(क्रम अन्यत्वं परिणाम अन्यत्वे हेतुः) परिणाम की भिन्नता में क्रम की भिन्नता हेतु है।

भावार्थ :—परिणाम की भिन्नता में क्रम की भिन्नता हेतु है।

१२२. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥३।१६॥

पदार्थ :—(परिणाम त्रय संयमात्) परिणाम त्रय में संयम करने से (अतीत अनागत ज्ञानम्) भूत तथा भविष्य का ज्ञान होता है।

भावार्थ :— **धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम** तथा **अवस्था परिणाम** इन तीनों में **संयम** करने से **भूत** तथा **भविष्य** का ज्ञान होता है।

१२३. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभाग-संयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥३।१७॥

पदार्थ :—(शब्द अर्थ प्रत्ययानाम्) शब्द अर्थ तथा ज्ञान (इतरेतर अध्यासात् संकरः) इन तीनों का एक में दूसरे का अध्यास हो जाने के कारण जो मिश्रण हो रहा है, (तत्प्रविभाग संयमात्) उसके विभाग में संयम करने से (सर्वभूत रुत ज्ञानम्) समस्त प्राणियों की बोली का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ : समस्त प्राणियों के वर्ण तथा शब्दों के उच्चारण में परस्पर ध्वन्यात्मक अन्तर है। ये सब उच्चारण परस्पर एक दूसरे में मिले हुये से हैं। इनकी पारस्परिक भिन्नता में संयम करने से **समस्त प्राणियों की बोली का ज्ञान** हो जाता है।

१२४. संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥३।१८॥

पदार्थ :—(संस्कार साक्षात्करणात) संयम द्वारा चित्तस्थ संस्कारों का साक्षात् करने से (पूर्व जाति ज्ञानम्) पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—चित्त में समस्त संस्कारों का संग्रह रहता है। प्रथम **वासना रूप**, द्वितीय **विपाक रूप** जिनका फल **जाति आयु** तथा **भोग** है। चित्तस्थ **विपाक संस्कारों** का **संयम** द्वारा साक्षात् करने से **पूर्व जन्म का ज्ञान** हो जाता है।

१२५. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥३।१९॥

पदार्थ :—(प्रत्ययस्य) दूसरे के चित्त में अपने चित्त द्वारा संयम कर साक्षात् करने से (पर चित्त ज्ञानम्) योगी को दूसरे के चित्त का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—अपने चित्त द्वारा **दूसरे के चित्त में संयम** द्वारा साक्षात् करने से योगी को **दूसरे के चित्त का ज्ञान** हो जाता है।

१२६. न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥३।२०॥

पदार्थ :—(**न च** तत् सालम्बनम्) किन्तु नहीं होता, उसके आलम्बन का ज्ञान (तस्य अविषयी भूतत्वात्) उसका विषय न होने के कारण।

भावार्थ :—अपने चित्त द्वारा दूसरे के चित्त में संयम करने से योगी को **चित्तस्थ संस्कारों का ज्ञान** तो हो जाता है, परन्तु

उन संस्कारों के आधार का ज्ञान उनका विषय न होने के कारण नहीं होता।

१२७. कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥३।२१॥

पदार्थ :—(काय रूप संयमात्) शरीर के रूप में संयम कर (तद् ग्राह्य शक्ति स्तम्भे) उसकी रूप ग्रहण करने की शक्ति को रोक लेने से (चक्षुः प्रकाश असम्प्रयोगे) नेत्रों से प्रकाश का सम्बन्ध न रहने के कारण (अन्तर्धानम्) अन्तर्धान होता है।

भावार्थ :—**शरीर के रूप में संयम** करने से नेत्रों का प्रकाश से सम्बन्ध न रहने के कारण रूप ग्रहण करने की शक्ति का निरोध होने से **योगी अन्यों को दिखाई नहीं देता है**।

१२८. सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥३।२२॥

पदार्थ :—(स उपक्रमम्) उपक्रम सहित (निः उपक्रमम् च) तथा उपक्रम रहित (कर्म) कर्म हैं (तत् संयमात्) उनमें संयम करने से (अपरान्त ज्ञानम्) मृत्यु का ज्ञान हो जाता है, (अरिष्टेभ्यः वा) अथवा अरिष्टों द्वारा मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—आयु विषयक कर्म दो प्रकार के हैं। **उपक्रम सहित** कर्म अर्थात् शीघ्र फल देने वाले कर्म तथा **उपक्रम रहित** कर्म अर्थात् विलम्ब से फल देने वाले कर्म। उन उपक्रम सहित तथा उपक्रम रहित कर्मों में संयम करने से **मृत्यु का ज्ञान** हो जाता है। अथवा **अरिष्टों** से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

अरिष्ट तीन प्रकार के हैं।

अ—आध्यात्मिक अरिष्ट :—कान बन्द करने पर शरीर के अन्दर होने वाले शब्दों का सुनाई न देना। नेत्र बन्द करने पर आन्तरिक प्रकाश का दिखाई न देना आदि।

आ—आधिभौतिक अरिष्ट :—स्वप्नावस्था में भयानक आकृति वाले पुरुषों को देखना। स्वप्न में मृत पुरुषों का देखना।

इ—आधिदैविक अरिष्ट :—स्वप्नावस्था में सुखदायक अथवा दुःखदायक दृश्यों का दिखाई देना।

अरिष्टों द्वारा सामान्य व्यक्तियों को भी अपनी **मृत्यु का पूर्वाभास** हो जाता है परन्तु यह ज्ञान संशय पूर्ण होता है। जब कि योगी का यह ज्ञान निश्चित होता है।

१२९. मैत्र्यादिषु बलानि ॥३।२३॥

पदार्थ :—(मैत्री आदिषु) मैत्री आदि भावनाओं में संयम करने से (बलानि) बलों की प्राप्ति होती है।

भावार्थ :—मैत्री, करुणा तथा मुदिता नामक भावनाओं में संयम करने से **मैत्री, करुणा तथा मुदिता** नामक बल प्राप्त होता है।

१३०. बलेषु हस्तिबलादीनि ॥३।२४॥

पदार्थ :—(बलेषु) बलों में संयम करने से (हस्ति बल आदीनि) हाथी आदि बलशाली प्राणियों के तुल्य बल प्राप्त होता है।

भावार्थ :—बलों में संयम करने से **हाथी आदि बलशाली** प्राणियों के समान बल प्राप्त होता है।

विधि :—सर्व प्रथम दृढ़ मूलाकुञ्चन पूर्वक बाह्य वृत्ति तथा आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम सिद्ध होने के पश्चात् मुख अथवा नासा छिद्रों से प्राणों को शनैः शनैः ग्रास वत् स्वल्प विराम पूर्वक यथा सामर्थ्य ग्रहण करता जाय। ग्रहण करने की शक्ति न रहने पर अत्यन्त मन्द गति से बाहर निकाल दे। पुनः पूर्ववत् करे।

इस प्रकार प्रथम दिन **पाँच** बार से आरम्भ कर शनैः शनैः यथा सामर्थ्य बढ़ाता जाय। **सौबार** प्रतिदिन करने की क्षमता होने पर अद्भुत बल प्राप्त होता है।

इस क्रिया के करने में **असावधानी** तथा **शीघ्रता** नहीं करनी चाहिये।

१३१. प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥३।२५॥

पदार्थ :—(प्रवृत्ति आलोक न्यासात्) ज्योतिष्मती प्रवृत्ति से उत्पन्न प्रकाश के संयोग से (सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट ज्ञानम्) सूक्ष्म, गुप्त तथा उत्तम अर्थों का भी ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—ज्योतिष्मती प्रवृत्ति से उत्पन्न प्रकाश के संयोग से **सूक्ष्म, गुप्त तथा उत्तम अर्थों** का भी ज्ञान हो जाता है।

१३२. भुवनज्ञानम् सूर्ये संयमात् ॥३।२६॥

पदार्थ :—(भुवन ज्ञानम्) समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है, (सूर्ये संयमात्) सूर्य में संयम करने से।

भावार्थ :—ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के उत्पन्न होने पर **सूर्य में संयम करने से समस्त लोकों** का ज्ञान हो जाता है।

१३३. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥३।२७॥

पदार्थ :—(चन्द्रे) चन्द्रमा में संयम करने से (तारा व्यूह ज्ञानम्) तारा मण्डल का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—ज्योतिष्मती प्रवृत्ति के उत्पन्न होने पर **चन्द्रमा में संयम** करने से **तारा मण्डल का ज्ञान** हो जाता है।

सूर्य मण्डल में संयम समस्त लोकों के जानने का माध्यम है तथा चन्द्रमा में संयम तारा मण्डल के जानने का आधार है।

१३४. ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥३।२८॥

पदार्थ :—(ध्रुवे) ध्रुव में संयम करने से (तत् गति ज्ञानम्) ताराओं की गति का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—**ध्रुव में संयम** करने से **ताराओं की गति** का ज्ञान हो जाता है।

१३५. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥३।२९॥

पदार्थ :—(नाभि चक्रे) नाभि चक्र में संयम करने से (काय व्यूह ज्ञानम्) शारीरिक रचनात्मक समूह का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—नाभि चक्र में संयम करने से **शारीरिक रचनात्मक समूह** का ज्ञान हो जाता है।

१३६. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥३।३०॥

पदार्थ :—(कण्ठकूपे) कण्ठ के अधर में स्थित कूप में संयम करने से (क्षुत्पिपासा निवृत्तिः) भूख तथा प्यास निवृत्त हो जाती है।

भावार्थ :—कण्ठ के अधर में स्थित कूप में संयम करने से **भूख** तथा **प्यास** निवृत्त हो जाती है।

१३७. कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥३।३१॥

पदार्थ :—(कूर्म नाड्यां) कूर्म नाड़ी में संयम करने से (स्थैर्यम्) स्थिरता प्राप्त होती है।

भावार्थ :—कण्ठ कूप के नीचे स्थित कूर्म नाड़ी में संयम करने से **स्थिरता** प्राप्त होती है।

१३८. मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥३।३२॥

पदार्थ :—(मूर्द्ध ज्योतिषि) मूर्द्धा स्थित ज्योति में संयम करने से (सिद्ध दर्शनम्) सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं।

भावार्थ :—मूर्द्धा स्थित ज्योति में संयम **करने से** सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं।

१३९. प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥३।३३॥

पदार्थ :—(प्रातिभात् वा) अथवा प्रातिभज्ञान उत्पन्न होने पर (सर्वम्) सब ज्ञान स्वतः ही हो जाता है।

भावार्थ :—विवेक द्वारा ज्ञेय को सहज रूप में जानने की योग्यता का नाम **प्रातिभ ज्ञान** है। प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होने पर समस्त ज्ञेय विषयों का **ज्ञान स्वतः** ही हो जाता है।

१४०. हृदये चित्तसंवित् ॥३।३४॥

पदार्थ :—(हृदये) हृदय में संयम करने से (चित्त संवित्) **चित्त का ज्ञान** हो जाता है।

भावार्थ :—**हृदय में संयम** करने से **चित्त का ज्ञान** हो जाता है।

१४१. सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥३।३५॥

पदार्थ :—(सत्त्व पुरुषयः अत्यन्त असंकीर्णयोः) बुद्धि तथा पुरुष की अत्यन्त भिन्नता है (प्रत्यय अविशेषः भोगः) इन दोनो का अभेद परक ज्ञान भोग है (परार्थत्वात् स्वार्थ संयमात्) इस परार्थरूप अभेदपरक ज्ञान से भिन्न स्वार्थ में संयम करने से (पुरुष ज्ञानम्) पुरुष का ज्ञान होता है।

भावार्थ :—**बुद्धि** तथा **पुरुष** परस्पर **अत्यन्त भिन्न** हैं। इन का **अभेदपरक ज्ञान** भोग अर्थात् **परार्थ** है। इस परार्थ संज्ञक भोग से भिन्न बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता परक ज्ञान **स्वार्थ** है। परार्थ से भिन्न **स्वार्थ में संयम** करने से **पुरुष का ज्ञान** होता है।

१४२. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥३।३६॥

पदार्थ :—(ततः) उससे अर्थात् स्वार्थ में संयम करने से (प्रातिभ श्रावण वेदना दर्शा स्वाद वार्ता जायन्ते) प्रातिभ ज्ञान, दिव्य शब्दों का सुनना, दिव्य स्पर्श, दिव्य दर्शन, दिव्य रसास्वादन तथा दिव्य गन्ध ग्रहण उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ :—स्वार्थ में संयम करने से **प्रातिभ ज्ञान, दिव्य शब्दों** का सुनना, **दिव्य स्पर्श, दिव्य दर्शन, दिव्य रसास्वादन** तथा **दिव्य गन्ध** ग्रहण उत्पन्न होते हैं।

१४३. ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ॥३।३७॥

पदार्थ :—(ते) वे प्रातिभ ज्ञान आदि उपर्युक्त सिद्धियां (समाधौ उपसर्गाः) समाधि में विघ्न हैं (व्युत्थाने सिद्धयः) व्युत्थान अर्थात् व्यवहार काल में सिद्धि हैं।

भावार्थ :—प्रातिभ ज्ञान आदि सिद्धियां समाधि में **विघ्न** तथा व्युत्थान अर्थात् व्यवहार काल में **सिद्धि** हैं।

१४४. बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥३।३८॥

भावार्थ—(बन्ध कारण शैथिल्यात्) बन्ध का कारण शिथिल होने से (प्रचार संवेदनात् च) तथा जाने आने के माध्यम का ज्ञान होने से (चित्तस्य परशरीर आवेशः) चित्त का दूसरे के शरीर में प्रवेश होता है।

भावार्थ :—जीवात्मा का शरीर में बन्धन का कारण **वासना** है। **वासनाओं के शिथिल** होने तथा चित्त के आने जाने के आधार **प्राणों की गमनागमन** प्रक्रिया को व्यवहारिक रूप में जान लेने पर **चित्त का अन्य शरीर में प्रवेश** होता है। यह **कल्पिता वृत्ति** है।

यह परकाया प्रवेश की प्रक्रिया है।

विधि :—मूलाकुञ्चन पूर्वक बाह्यवृत्ति प्राणायाम के अभ्यास से वासनाओं के शिथिल होने पर, बाह्यवृत्ति प्राणायाम की सिद्धि के फलस्वरूप दृढ़ हुये मूलाकुञ्चन के कारण अपान अपने स्थान से उठकर नाभिस्थ समान में लय हो जाता है। नाभिस्थ समान उठकर हृदयस्थ प्राण में लय हो जाता है। हृदयस्थ प्राण उठकर कण्ठस्थ उदान में लय हो जाता है। कण्ठस्थ उदान उठकर मूर्द्धा में प्रवेश कर स्थित हो जाता है। उस समय योगी चित्त द्वारा अभीप्सित शरीर में संयम करने पर उस शरीर में प्रवेश कर सकता है तथा पुनः संयम द्वारा अपने शरीर में प्रवेश कर सकता है।

१४५. उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥३।३९॥

पदार्थ :—(उदान जयात्) उदान जय से जल पङ्क कण्टकादिषु) जल, कीचड़ तथा काँटों से (असङ्ग उत् क्रान्तिः च) असङ्ग रहकर मृत्यु के समय प्राणों के प्रयाण की गति पर अधिकार कर लेता है।

भावार्थ :—**उदान वायु के जय** से शरीर के अत्यन्त हल्का होने के कारण योगी, **जल, कीचड़** तथा **कण्टकादि** के स्पर्श से पृथक् रहकर प्राणों की उर्ध्व गति तथा वासनाथाम की शिथिलता के कारण **स्वेच्छा मृत्यु** की योग्यता प्राप्त कर प्राण त्याग के समय शरीर के **ऊपरी भाग से प्राण विसर्जन** करता है।

शरीरस्थ प्राण के शरीर में विभिन्न स्थानों पर रहकर विभिन्न क्रिया कलापों के कारण पाँच भिन्न-भिन्न नाम हैं।

अ—प्राण :—नासिका तथा मुख से श्वास प्रश्वास द्वारा आता जाता हुआ हृदय प्रदेश में रहता है।

आ—अपान :—नाभि के नीचे के प्रदेश में रहकर मल-मूत्रादि विसर्जन करता है।

इ—समान :— प्राण तथा अपान में समता बनाये रख कर नाभि प्रदेश स्थित रहकर अन्न का पाचन करते हुये रस को समस्त शरीर में पहुँचाता है।

ई—उदान :—कण्ठ से सिर पर्यन्त भाग में रहकर अन्न जलादि ग्रहण करता है।

उ—व्यान :—समस्त शरीर में व्यापक रहता है।

मृत्यु के समय प्राणी अपने स्वभावानुसार तीन भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राणों का विसर्जन करता है।

कामासक्त प्राणियों के प्राण मृत्यु के समय अपान के आश्रय से **गुदा मार्ग** से निकलते हैं। उस समय उसका **मल मूत्रादि विसर्जित** हो जाता है।

रसासक्त बहु भाषी प्राणियों के प्राण मृत्यु के समय उदान के आश्रय से **मुख** से निकलते हैं। उस समय उसका **मुख खुला** रह जाता है।

रूपासक्त एवम् चिन्तन शील प्राणियों के प्राण मृत्यु के समय उदान के आश्रय से **नेत्रों** से निकलते हैं। उस समय उनके **नेत्र खुले** रह जाते हैं।

सामान्य प्राणियों के मृत्यु के समय प्राण विसर्जन के यही तीन स्थान हैं।

प्राणों की उत्क्रान्त्यावस्था के कारण **उदान जयी योगी जनों** के प्राण मृत्यु के समय उदान के आश्रय से तालु के ऊपर स्थित **ब्रह्म रन्ध्र** से निकलते हैं। ब्रह्मरन्ध्र से भिन्न शिखा प्रदेश का नाम मूर्द्धा है।

१४६. समानजयाज्ज्वलनम् ॥३।४०॥

पदार्थ :—(समान जयात्) समान वायु के जय से (ज्वलनम्) अग्नि के समान दीप्तिमान हो जाता है।

भावार्थ :—**समान वायु के जय** से योगी का शरीर **अग्नि के समान दीप्तिमान** हो जाता है।

१४७. श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥३।४१॥

पदार्थ :—(श्रोत्र आकाशयोः) श्रोत्र तथा आकाश के (सम्बन्ध संयमात्) पारस्परिक सम्बन्ध में संयम करने से (दिव्यं श्रोत्रम्) दिव्य शब्द सुनाई देते हैं।

भावार्थ :—श्रोत्र तथा आकाश के पारस्परिक सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य **शब्द** सुनाई देते हैं।

१४८. कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥३।४२॥

पदार्थ :—(काय आकाशयोः) काया तथा आकाश के पारस्परिक (सम्बन्ध संयमात्) सम्बन्ध में संयम करने से (लघु तूल समापत्तेः च) तथा रुई वत् हल्के पदार्थों में चित के समाहित करने पर योगी (आकाश गमनम्) आकाश में गमन करता है।

भावार्थ :—काया तथा आकाश के पारस्परिक सम्बन्व में संयम करने तथा रुई के समान हल्के पदार्थों में चित्त के समाहित करने पर योगी **आकाश में गमन** करता है।

१४९. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥३।४३॥

पदार्थ :—(बहिः अकल्पिता वृत्तिः महाविदेहा) मन के अकल्पित रूप से शरीर से बाहर रहने की वृत्ति महाविदेहा है (ततः प्रकाश आवरण क्षयः) उस महाविदेहा वृत्ति से प्रकाश का आवरण क्षय हो जाता है।

भावार्थ :—भावना द्वारा मन के शरीर से बाहर रहने की वृत्ति कल्पिता वृत्ति है। अकल्पिता वृत्ति अर्थात् स्वाभाविक रूप से मन के शरीर से बाहर रहने की वृत्ति महाविदेहा है। **महाविदेहा वृत्ति से प्रकाश का आवरण** क्षीण हो जाता है।

१५०. स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥३।४४॥

पदार्थ :—(स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थवत्व) भूतों की स्थूल अवस्था, स्वरूप, सूक्ष्मावस्था, अन्वय तथा अर्थवत्त्व अर्थात् प्रयोजन में (संयमात् भूत जयः) संयम करने से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश पर जय होता है।

भावार्थ :—पञ्च महाभूतों के **स्थूल रूप** (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश), **स्वरूप** (मूर्त्ति अथवा आकार, आद्रता, दाहकता तथा प्रकाश, गति तथा कम्पन, व्यापकता तथा अवकाश) **सूक्ष्म** (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द) **अन्वय** (रूप का प्राकट्य तथा प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति), **अर्थवत्त्व** (अर्थात् भोग तथा मोक्ष) में संयम करने से **भूत जय** होता है।

१५१. ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥३।४५॥

पदार्थ :—(ततः) उससे अर्थात् भूत जय से (अणिमादि प्रादुर्भावः) अणिमादि सिद्धियों का उत्पन्न होना (काय सम्पत्) शारीरिक ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा (तत् धर्म अनभिघातः च) पञ्च महाभूतों के स्वभाव से बाधा नहीं रहती है।

भावार्थ :—**भूत जय से** अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व **सिद्धियाँ** उत्पन्न होकर, शारीरिक ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है तथा उसे **पञ्च महाभूतों के स्वभाव से बाधा** नहीं होती है।

१५२. रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥३।४६॥

पदार्थ :—(रूप, लावण्य, बल, वज्र संहननत्वानि) दर्शनीय रूप, कान्ति, बल तथा वज्र के समान अछेद्य दृढ़ता (काय सम्पत्) कायसम्पत् है।

भावार्थ :—दर्शनीय रूप, दीप्तिमान कान्ति, बल तथा वज्र के समान अछेद्य दृढ़ता **कायसम्पत्** है।

१५३. ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥३।४७॥

पदार्थ :—(ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, अर्थवत्त्व) ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय तथा अर्थवत्त्व में (संयमात् इन्द्रिय जयः) संयम करने से इन्द्रिय जय होता है।

भावार्थ :—इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण करने की वृत्ति **ग्रहण** है। मन द्वारा विषयों का चिन्तन **स्वरूप** है। द्रष्टा और दर्शनशक्ति की एकात्मता **अस्मिता** है। तीनों गुणों का स्वभाव प्राकट्य एवम् प्रकाश, क्रिया तथा स्थिति **अन्वय** है तथा इन्द्रियां भोग तथा मोक्ष के लिये हैं यही **अर्थवत्त्व अर्थात् प्रयोजन** है। इनमें संयम करने से **इन्द्रिय जय** होता है।

१५४. ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥३।४८॥

पदार्थ :—(ततः) इन्द्रिय जय से (मनोजवित्वं) मन के समान शारीरिक गति (विकरण भावः) शरीर के बिना इन्द्रियों में विषयों को अनुभव करने की क्षमता (प्रधान जयः च) तथा प्रकृति पर अधिकार सम्पन्न होता है।

भावार्थ :—इन्द्रियों के जय से **मन के समान शारीरिक गति शरीर के बिना** किसी भी देश तथा काल के **इन्द्रिय गम्य विषयों को जान लेना** तथा प्रकृति पर अधिकार सम्पन्न होता है।

यह **मधु प्रतीक** नामक, विषयों को कठिनाई रहित सरलता से जान लेने वाली **सिद्धि** है।

१५५. सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥३।४९॥

पदार्थ :—(सत्त्व पुरुष अन्यता ख्याति मात्रस्य) बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता का ज्ञान मात्र होने पर (सर्व भाव अधिष्ठातृत्वम्) समस्त भावों पर अधिकार (सर्व ज्ञातृत्वं च) तथा समस्त गुणों का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ :—बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता का ज्ञान मात्र रहने वाली सबीज समाधि सम्पन्न योगी का समस्त भावों अर्थात् **गुणों तथा उसके व्यवसाय पर अधिकार** तथा **समस्त गुणों को जान** लेने की क्षमता हो जाता है।

यह **विशोका** नामक स्थिति कही जाती है।

१५६. तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥३।५०॥

पदार्थ :—(तत् वैराग्यात् अपि) उसमें भी वैराग्य होने पर (दोष बीज क्षये) दोषों का बीज क्षीण होने से (कैवल्यम्) मोक्ष होता है।

भावार्थ :—सबीज समाधि से बुद्धि तथा पुरुष की भिन्नता का ज्ञान होने, समस्त भावों पर अधिकार होने तथा समस्त गुणों एवम् कालों का ज्ञान होने पर **इनमें भी वैराग्य** होने तथा **समस्त दोषों का बीज क्षीण** होने से कैवल्य अर्थात् मोक्ष होता है।

१५७. स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥३।५१॥

पदार्थ :—(स्थानि उपनिमन्त्रणे) योग की भूमिकाओं में स्थिर होने पर भी अन्यों के द्वारा आमन्त्रित किये जाने पर

(सङ्ग स्मय अकरणम् पुनः अनिष्ट प्रसङ्गात्) सङ्ग होने पर अहङ्कार उत्पन्न होने से पुनः अनिष्ट होता है।

भावार्थ :—योग की भूमिकाओं में स्थिर होने पर भी **उत्तमोत्तम आमन्त्रण** मिलने से **सङ्ग से रागादि तथा अहङ्कार** उत्पन्न होने से पुनः अनिष्ट उत्पन्न होते हैं।

योग की भूमिकाओं के अनुसार चार प्रकार के योगी होते हैं।

अ—प्राथमकल्पिक :—जो अभ्यास करने में प्रवृत्त होते हैं।

आ—मधुभूमिक :—जिनकी बुद्धि योग में प्रवेश कर चुकी है अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा युक्त।

इ—प्रज्ञा ज्योति :—भूतेन्द्रिय जयी, जिसने भावित और भावनीय विषयों में रक्षा बन्ध कर लिया है।

ई—अतिक्रान्त भावनीय :—जिसका चित्त समस्त विषयों से विरक्त, रहकर समाधि जन्य मधुमती भूमिका में स्थिर रहता है। जिसने बुद्धि की सातों भूमिकाओं को प्राप्त कर लिया है।

१५८. क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥३।५२॥

पदार्थ :—(क्षण तत् क्रमयोः) क्षण और उसके क्रम में (संयमात् विवेकजं ज्ञानम्) संयम करने से विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ :—काल के सबसे छोटे अविभाज्य भाग का नाम **क्षण** है। क्षण के पश्चात् क्षण, का निरन्तर परिवर्तित होने वाला **क्रम** है। क्षण और उसके क्रम में संयम करने से **विवेकज ज्ञान** उत्पन्न होता है।

१५९. जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥३।५३॥

पदार्थ :—(जाति लक्षण देशैः) जाति, लक्षण और देश से (अन्यता अनवच्छेदात्) भिन्नता के अनिश्चय से (तुल्ययोः) तुल्य प्रतीत होने वालों का (ततः) विवेकज ज्ञान से (प्रतिपत्तिः) निश्चय होता है।

भावार्थ :—जाति, लक्षण और देश से भिन्नता के अनिश्चय से **तुल्य प्रतीत होने वाले पदार्थों की भिन्नता** का विवेकज ज्ञान से निश्चय होता है।

१६०. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमम् चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥३।५४॥

पदार्थ :—(तारकं) स्वयं स्फुरित ज्ञान (सर्व विषयं) जिससे समस्त विषयों का ज्ञान स्वतः हो जाता है, (सर्वथा अविषयम् अक्रमम् च इति) और जिससे क्रम की अपेक्षा से रहित सर्वथा अविदित विषय भी विदित हो जाते हैं (विवेकज ज्ञानम्) विवेकज ज्ञान है।

भावार्थ :—**स्वतः स्फुरित ज्ञान** जिससे समस्त विषयों का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है, और जिससे **क्रम की अपेक्षा** से रहित सर्वथा **अविदित विषय** भी विदित हो जाते हैं। वह तारक संज्ञक **विवेकज ज्ञान** है।

१६१. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥३।५५॥

पदार्थ :—(सत्त्व पुरुषयोः) बुद्धि तथा पुरुष की (शुद्धि साम्ये) शुद्धि तथा साम्यावस्था (कैवल्यम्) कैवल्य अर्थात् मोक्ष है।

भावार्थ :—बुद्धि तथा पुरुष की शुद्धि तथा साम्यावस्था कैवल्य अर्थात् मोक्ष है।

॥ इति विभूति पादः ॥

कैवल्य पादः

१६२. जन्मौषधिमंत्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥४।१॥

पदार्थ :—(जन्म औषधि मंत्र तपः समाधिजाः सिद्धयः) जन्मजा, औषधिजा, मंत्रजा, तपजा तथा समाधिजा सिद्धियां होती हैं।

भावार्थ :—पूर्व जन्म कृत साधना के संस्कार से जन्म से ही सिद्धि सम्पन्न उत्पन्न होना **जन्मजा सिद्धि** है। बल तथा वीर्यवर्धक औषधियों के सेवन से उत्पन्न सिद्धि **औषधिजा सिद्धि** है। मन्त्र के जप से उत्पन्न सिद्धि **मंत्रजा सिद्धि** है। प्राणायामादि तप के अनुष्ठान से उत्पन्न सिद्धि **तपजा सिद्धि** है। योग दर्शन के विभूतिपाद में वर्णित समाधि से उत्पन्न सिद्धियां **समाधिजा सिद्धि** है।

१६३. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥४।२॥

पदार्थ :—(जाति अन्तर परिणामः) जात्यन्तर परिणाम अर्थात् जाति परिवर्तन (प्रकृति आपूरात्) प्रकृति के आपूरित होने से होता है।

भावार्थ :—प्रकृति के आपूरित होने के कारण जाति परिवर्तन रूपी जात्यन्तर परिणाम होता है। सिद्धियों से सम्पन्न होने पर **शरीर इन्द्रियों** तथा **चित्त** में जो **सामर्थ्य संचार** होता है, वही **जात्यन्तर परिणाम** है।

१६४. निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतिनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥४।३॥

पदार्थ :—(निमित्तम् अप्रयोजकम् प्रकृतीनाम्) धर्मादि-निमित्त प्रकृतियों का प्रयोजक नहीं है (वरण भेदः तु ततः क्षेत्रिक-वत्) उससे तो किसान के समान आवरण अर्थात् रुकावट का छेदन किया जाता है।

भावार्थ :—पूर्व सूत्र में वर्णित मन्त्र, औषधि, तप तथा समाधि निमित्त मात्र हैं। प्रकृतियों के प्रयोजक नहीं हैं। वे **किसान के समान रुकावट दूर करने वाले हैं।** जन्म, औषधि, मन्त्र आदि नैमित्तिक कारण **विकासगत बाधाओं के हटाने हारे** हैं, न कि **प्रकृति को बदलने वाले।**

१६५. निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥४।४॥

पदार्थ :—(निर्माण चित्तानि) चित्तों का निर्माण करने वाली (अस्मिता मात्रात्) केवल मात्र अस्मिता है।

भावार्थ :—जन्म, औषधि, मन्त्र तथा तप आदि साधनों से चित्तों का निर्माण करने वाली केवल **मात्र अस्मिता** है।

१६६. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥४।५॥

पदार्थ :—(प्रवृत्ति भेदे) नाना प्रकार की प्रवृत्तियों के भेद में (प्रयोजकम्) प्रयोजक (चित्तम् एकम् अनेकेषाम्) चित्त एक है अनेकों चित्तों का।

भावार्थ :—एक चित्त ही प्रवृत्तियों के भेद से अनेकों (जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न) चित्तों का प्रेरक होता है।

१६७. तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥४।६॥

पदार्थ :—(तत्र ध्यानजम्) उत्पन्न हुये उन चित्तों में ध्यान जनित चित्त (अन आशयम्) कर्माशय से रहित होता है।

भावार्थ :—जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न हुये उन चित्तों में ध्यान जनित (समाधि जन्य) चित्त कर्माशय से रहित उत्तम चित्त होता है।

चित्त की उत्तमता पाँच प्रकार की होती है।

जन्म से, औषधि सेवन से, मन्त्र जपानुष्ठान से, प्राणायामादिक तपानुष्ठान से तथा समाधि से।

इनमें **समाधिजन्यचित्त कर्माशय से रहित सर्वश्रेष्ठ** होता है।

१६८. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥४।७॥

पदार्थ :—(कर्म अशुक्लं अकृष्णम् योगिनः) योगियों के कर्म अशुक्ल अर्थात् न पुण्य, अकृष्ण अर्थात् न पाप होते हैं (त्रिविधम् इतरेषाम्) अन्यों के कर्म शुक्ल अर्थात् पुण्य, कृष्ण अर्थात् पाप तथा पुण्य-पाप मिश्रित रूप से तीन प्रकार के होते हैं।

भावार्थ :—योगियों के कर्म पाप पुण्य रहित होते हैं। अन्यों के कर्म पुण्य, पाप तथा पुण्य-पाप मिश्रित रूप से तीन प्रकार के होते हैं।

१६९. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥४।८॥

पदार्थ :—(ततः) उन पाप, पुण्य तथा पाप-पुण्य मिश्रित कर्मों से (तत् विपाक अनुगुणानाम् एव) उनके फल स्वरूप ही (अभिव्यक्तिः वासनानाम्) वासनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

भावार्थ :—उन पाप, पुण्य तथा पाप-पुण्य मिश्रित कर्मों के फलस्वरूप ही वासनायें उत्पन्न होती हैं।

१७०. जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कार-योरेकरूपत्वात् ॥४।९॥

पदार्थ :—(जाति देश काल व्यवहितानाम् अपि) जाति, देश तथा काल का व्यवधान रहने पर भी (आनन्तर्यम्) कर्म के संस्कारों में व्यवधान नहीं होता है (स्मृति संस्कारयोः) स्मृति तथा संस्कारों की (एक रूपत्वात्) एक रूपता के कारण।

भावार्थ :—जाति, देश तथा काल का जन्मान्तर के कारण व्यवधान रहने पर भी स्मृति तथा संस्कारों की एक रूपता के कारण कर्म के संस्कारों में व्यवधान नहीं होता है।

१७१. तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥४।१०॥

पदार्थ :—(तासाम् अनादित्वं च) और उन वासनाओं की अनादिता है; (आशिषः नित्यत्वात्) आत्म कल्याण की इच्छाओं की नित्यता के कारण।

भावार्थ :—अपने कल्याण की इच्छाओं की नित्यता के कारण **वासनायें अनादि** हैं।

१७२. हेतुफलाश्रयालबनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥४।११॥

पदार्थ :—(हेतु फल आश्रय आलम्बनैः) हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन (संगृहीतत्वात्) से संगृहीत वासनायें रहती हैं। (एषाम् अभावे तत् अभावः) इनके अभाव से वासनाओं का अभाव हो जाता है।

भावार्थ :—सुख, दुःख, राग, द्वेष, धर्म तथा अधर्म इनसे संसार चक्र प्रवर्तित है। संसार चक्र का मूल **अविद्या** है। **हेतुरूप** (अविद्या), **फलरूप** (संस्कार), **आश्रयरूप** (चित्त) तथा

आलम्बनरूप (शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध) के अभाव से वासनाओं का भी अभाव हो जाता है।

१७३. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥४।१२॥

पदार्थ :—(अतीत अनागतं) गत और अनागत (स्वरूपतः अस्ति) स्वरूप से विद्यमान रहते हैं (अध्वभेदात् धर्माणाम्) काल से भेद होता है धर्मों का।

भावार्थ :—अतीत और अनागत स्वरूप से विद्यमान रहते हैं, धर्मों का काल से भेद होता है।

१७४. ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥४।१३॥

पदार्थ :—(ते) वे धर्म (व्यक्त सूक्ष्मा) प्रकट तथा अप्रकट (गुणात्मानः) गुण रूप ही हैं।

भावार्थ :—धर्मी के आश्रय से रहने वाले ये व्यक्त और अव्यक्त धर्म अर्थात् वासनायें गुणरूप ही हैं।

१७५. परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥४।१४॥

पदार्थ :—(परिणामैकत्वात्) परिणाम की एकता से (वस्तु तत्त्वम्) वस्तु को जाना जाता है।

भावार्थ :—परिणाम की एकता से वस्तु का ज्ञान होता है।

१७६. वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥४।१५॥

पदार्थ :—(वस्तु साम्ये) वस्तु की समानता होने पर भी (चित्त भेदात्) चित्त की भिन्नता से (तयोः) धर्म और धर्मी का (विभक्तः पन्थाः) मार्ग भिन्न-भिन्न है।

भावार्थ :—वस्तु एक होने पर भी चित्त अर्थात् धर्मी के भेद के कारण वस्तु विषयक अनुभव के मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।

१७७. न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥४।१६॥

पदार्थ :—(न च एक चित्त तन्त्रं वस्तु) और वस्तु एक चित्त के अधीन नहीं है (तद् अप्रमाणकं) उस वस्तु के चित्त का विषय न रहने पर (तदा किम् स्यात्) तब क्या होगा ?

भावार्थ :—वस्तु एक चित्त के अधीन विषय नहीं है। वस्तु के चित्त का विषय न रहने पर वस्तु का क्या होगा ?

१७८. तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥४।१७॥

पदार्थ :—(तत् उपराग अपेक्षित्वात्) तब उपराग अर्थात् सामीप्य की अपेक्षा से (चित्तस्य वस्तु) चित्त के लिये वस्तु (ज्ञात अज्ञातम्) ज्ञात और अज्ञात रहेगी।

भावार्थ :—तब वस्तु से उपराग अर्थात् सामीप्य न होने पर वस्तु चित्त के लिये अज्ञात तथा उपराग अर्थात् सामीप्य होने पर ज्ञात होगी।

१७९. सदा ज्ञातश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥४।१८॥

पदार्थ :—(सदा ज्ञाताः चित्त वृत्तयः तत् प्रभोः) चित्त के स्वामी पुरुष को चित्त की वृत्तियां सदा ज्ञात रहती हैं (पुरुषस्य अपरिणामित्वात्) पुरुष के अपरिणामी होने के कारण।

भावार्थ :—चित्त के स्वामी तथा अपरिणामी होने के कारण चित्त की वृत्तियां उसे सदा ज्ञात रहती हैं।

१८०. न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥४।१९॥

पदार्थ :—(न तत् स्व आभासम्) चित्त प्रकाश स्वरूप नहीं है (दृश्यत्वात्) दृश्य होने के कारण।

भावार्थ :—दृश्य होने के कारण चित्त किसी वस्तु का **प्रकाशक** नहीं है। क्योंकि चित्त **प्रकाश स्वरूप** नहीं है।

१८१. एकसमये चोभयानवधारणम् ॥४।२०॥

पदार्थ :—(एक समये) एक समय में (च उभयान् अवधारणम्) चित्त तथा वस्तु दोनों का ज्ञान नहीं होता।

भावार्थ :—चित्त प्रकाश स्वरूप नहीं है। अतः उसे **एक-समय में स्वयं का तथा ज्ञेय वस्तु** का एक साथ ज्ञान नहीं होता है।

१८२. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥४।२१॥

पदार्थ :—(चित्तान्तर दृश्ये) चित्त को अन्य चित्त का दृश्य मानने तथा (बुद्धि बुद्धेः) बुद्धि को अन्य बुद्धि का ज्ञाता मानने पर (अति प्रसङ्गः) अति प्रसङ्ग दोष होगा (स्मृति सङ्करः च) तथा स्मृतियों का मिश्रण हो जायगा।

भावार्थ :—चित्त को अन्य चित्त का दृश्य मानने तथा बुद्धि की अन्य बुद्धि का ज्ञाता मानने पर अति प्रसङ्ग दोष होगा तथा स्मृतियों का मिश्रण हो जायगा।

१८३. चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥४।२२

पदार्थ :—(चितेः अप्रति संक्रमायाः) चेतन के गमनागमन रहित होने से (तदाकारापत्तौ) बुद्धि के तदाकार होने पर (स्व बुद्धि संवेदनम्) उसे अपनी बुद्धि का ज्ञान होता है।

भावार्थ :—चेतन पुरुष के गमनागमन रहित होने से बुद्धि के साथ तदाकार होने पर उसे अपनी बुद्धि का ज्ञान होता है।

"अत" सातत्य गमने धातु के अनुसार तथा एक देशी एवम् अल्प होने के कारण आत्मा गमनागमन रहित नहीं है।

सर्वव्यापक होने के कारण केवल मात्र परमात्मा ही गमनागमन रहित है।

१८४. द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥४।२३॥

पदार्थ :—(द्रष्टृ दृश्य उपरक्तं) द्रष्टा और दृश्य में उपरक्त (चित्तं सर्वार्थम्) चित्त सब अर्थों वाला है।

भावार्थ :—द्रष्टा और दृश्य में अनुरक्त चित सब अर्थों वाला अर्थात् **चेतन और अचेतन** सब कुछ है।

१८५. तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥४।२४॥

पदार्थ :—(तत् असंख्येय वासनाभिः चित्रम् अपि) असंख्य वासनाओं से युक्त वह चित्त भी (परार्थ) परार्थ अर्थात् भोग के लिये ही है (संहत्य कारित्वात्) वासनाओं के संग्रह कर्त्ता होने के कारण।

भावार्थ :—वासनाओं के संग्रह कर्त्ता होने के कारण अनेक वासनाओं से युक्त यह चित्त **परार्थ** अर्थात् भोग के लिये ही है।

१८६. विशेषदर्शिन आत्मभाव भावना विनिवृत्तिः ॥४।२५॥

पदार्थ :—(विशेष दर्शिनः) विशेष दर्शी की (आत्म भाव भावना) आत्म भाव की भावना (विनिवृत्तिः) की निवृत्ति हो जाती है।

भावार्थ :—विशेषदर्शी अर्थात् समाधि द्वारा विवेकख्याति सम्पन्न योगी की **ऊहापोह युक्त आत्मभावना, मैं क्या हूँ** ? आदि निवृत्त हो जाती है।

१८७. तदा विवेकनिम्नम् कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥४।२६॥

पदार्थ : (तदा) उस समय (विवेकनिम्नम्) समाधिजन्य विवेक से विनम्र (कैवल्य प्राग्भारं चित्त) चित्त मोक्षाभिमुख संस्कारों से युक्त होता है।

भावार्थ :—उस समय चित्त समाधिजन्य **विवेक से विनम्र** तथा **मोक्षाभिमुख संस्कारों से युक्त** होता है।

१८८. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥४।२७॥

पदार्थ :—(तत् छिद्रेषु) उस समय समाधि से भिन्न अन्तराल की दशा में (प्रत्यय अन्तराणि) अन्य विषयों का ज्ञान (संस्कारेभ्यः) पूर्व संस्कारों से होता है।

भावार्थ :—समाधि से भिन्न अवस्था में योगी को अन्य विषयों का ज्ञान **पूर्व संस्कारों** से होता है।

१८९. हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥४।२८।

पदार्थ :—(हानम् एषाम्) इन संस्कारों का नाश भी (क्लेशवत्) अविद्यादि क्लेशों के समान (उक्तम्) करने को कहा है।

भावार्थ :—अविद्यादि क्लेशों की भाँति इन संस्कारों का भी नाश करना चाहिये।

**१९०. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेः-
धर्ममेघः समाधिः ॥४।२९॥**

पदार्थ :—(प्रसंख्याने अपि) पञ्च भूतों के विभावन में भी (अकुसीदस्य) फल की आशा से रहित, (सर्वथा विवेकख्यातेः) पूर्णतः विवेकख्याति वाले योगी को (धर्ममेघः समाधिः) धर्ममेघ समाधि सम्पन्न होती है।

भावार्थ :—पञ्च महाभूतों से उत्पन्न **सिद्धियों के विभावन में भी उपेक्षा करने वाले** तथा **फल की आशा से सर्वथा रहित** योगी को **धर्ममेघ समाधि** सम्पन्न होती है।

१९१. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥४।३०॥

पदार्थ :—(ततः) धर्ममेघ समाधि सम्पन्न होने से (क्लेश कर्म) अविद्यादि क्लेशों तथा कर्माशय से (निवृत्तिः) निवृत्ति हो जाती है।

भावार्थ :—विवेकख्यातिमय धर्ममेघ समाधि सम्पन्न होने से **अविद्यादि क्लेशों, कर्माशय एवम् त्रिविध कर्मों** से निवृत्ति हो जाती है।

**१९२. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञे-
यमल्पम् ॥४।३१॥**

पदार्थ :—(तदा) उस समय (सर्व आवरण मलापेतस्य) समस्त मल तथा आवरण रहित होने (ज्ञानस्य अनन्त्यात्) तथा ज्ञान की पराकाष्ठा होने के कारण योगी को (ज्ञेयम् अल्पम्) अल्प पदार्थ जानने योग्य रह जाते हैं।

भावार्थ :—उस समय **समस्त विक्षेप** तथा **आवरण रहित** होने तथा **प्राप्तव्य ज्ञान की पराकाष्ठा** होने के कारण योगी को **अल्प पदार्थ ही जानने योग्य** रह जाते हैं।

१९३. ततः कृतार्थानाम् परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥४।३२॥

पदार्थ :—(ततः) उससे (कृतार्थानाम्) कृतार्थों के लिये अर्थात् कैवल्य सिद्ध योगी के लिये (परिणाम क्रम समाप्तिः गुणानाम्) गुणों के परिणाम क्रम की समाप्ति हो जाती है।

भावार्थ :—उससे **कृतार्थों** (भोग तथा मोक्ष सिद्ध योगी) के लिये **गुणों के परिणाम क्रम की समाप्ति** हो जाती है।

१९४. क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥४।३३॥

पदार्थ :—(क्षण प्रतियोगी) क्षण का प्रतियोगी जो (परिणाम अपरान्त) परिणाम के अन्त में (निर्ग्राह्यः क्रमः) ग्रहण किया जाने वाला क्रम है।

भावार्थ :—क्षण के पश्चात् परिणाम के अन्त में ग्रहण किया जाने वाला क्रम है।

१९५. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥४।३४॥

पदार्थ :—(पुरुषार्थ शून्यानां) पुरुषार्थ की समाप्ति (गुणानां प्रतिप्रसवः) तथा गुणों की निष्क्रियता (कैवल्यं) कैवल्य है, (स्वरूप प्रतिष्ठा वा चिति शक्तिः इति) अथवा चेतन शक्ति का अपने स्वरूप में स्थित होना कैवल्य है।

भावार्थ :—**पुरुषार्थ की समाप्ति** तथा **गुणों की निष्क्रियता** कैवल्य है, अथवा **चेतन शक्ति का अपनेस्वरूप में स्थित** होना कैवल्य है।

॥ इति कैवल्य पादः ॥

इति श्री मत्भगवत्पूज्यपाद श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत् आत्मानन्द तीर्थ स्वामिना विरचिता "सुप्रभा" नाम्नी टीका सुभूषिता श्री मुनिवर पतञ्जलि प्रणीत योगदर्शनम् ॥

॥ ओ३म् ॥

योग दर्शनम्

सूत्र अनुक्रमणिका

॥ इति समाधि पादः ॥

साधन पादः

॥ इति साधन पादः ॥

विभूति पादः

॥ इति विभूति पादः ॥

कैवल्य पादः

सूत्र क्रम संख्या	सूत्र	पाद सं०	सूत्र सं०	पृ० सं०
१९०	प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ।	४	२९	८८
१९१	ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ।	४	३०	८९
१९२	तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ।	४	३१	८९
१९३	ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ।	४	३२	८९
१९४	क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ।	४	३३	९०
१९५	पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रति प्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।	४	३४	९०

॥ इति कैवल्य पादः ॥

— :o:—

॥ इति योगदर्शन सूत्रस्य अनुक्रमणिका ॥

ॐ

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री स्वामी आत्मानन्द तीर्थ

आचार्य

आर्ष योग विद्यापीठ, आनन्द निकेतन

खरखौदा, मेरठ, (उ०प्र०)

श्री संन्यास गीता - with the commentary in Hindi by the scholars of भारतधर्म महामण्डल - The work is in 12 Chapters containing - महर्षि समागम, साधारण धर्म निरूपण, दानतपोधर्म, कर्मोपासना ज्ञान, कालधर्म, संन्यासधर्म, कुटीचक धर्म, बहूदक धर्म, हंसधर्म, परमहंस धर्म, जीवन्मुक्त विज्ञान and आत्मस्वरूप निरूपण.

2/e, [struck out]. Benares, 1925.

(10)

श्रीविश्वनाथो जयति ।

श्रीसंन्यासगीता ।

भाषानुवाद और टिप्पणी सहित ।

भारतधर्म सिण्डिकेटके शास्त्रप्रकाशक विभाग द्वारा प्रकाशित ।

काशी ।

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा भारतधर्म प्रेसमें मुद्रित ।

सन् १९२५ ई० ।

द्वितीय आवृत्ति ।]

श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभण्डार।

श्रीभारतधर्म महामण्डल प्रधान कार्यालय काशीमें दीन दुखियोंके क्लेशनिवारणार्थ यह सभा स्थापित की गई है। इस सभाके द्वारा अति विस्तृत रीतिपर शास्त्र-प्रकाशनका कार्य प्रारम्भ किया गया है। इस सभा द्वारा धर्म्म-पुस्तिका पुस्तकादि यथासम्भव बिना मूल्य वितरण करनेका भी विचार रक्खा गया है। इस दानभण्डारके द्वारा महामण्डलसे प्रकाशित साधुओंका कर्तव्य, धर्म और धर्माङ्ग, दान-धर्म नारी-धर्म, महामण्डलकी आवश्यकता आदि कई एक हिन्दी भाषाके धर्मग्रन्थ और अंग्रेजी भाषाके कई एक ट्रेक्ट्स् बिना मूल्य योग्य पात्रोंको बांटे जाते हैं। शास्त्र-प्रकाशनकी आमदनी इसी दान-भण्डारसे दीन दुःखियोंके दुःखनिवारणार्थ व्यय की जाती है। इस सभामें जो दान करना चाहें या किसी प्रकारका पत्राचार करना चाहें, वे निम्न लिखित पतेपर पत्र भेजें।

सेक्रेटरी, श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभण्डार,

श्रीभारतधर्म महामण्डल, प्रधान कार्यालय

जगत्गञ्ज, बनारस (छावनी।)

श्रीविश्वनाथो जयति ।

श्रीसंन्यासगीता ।

भाषानुवाद और टिप्पणी सहित ।

भारतधर्म सिण्डिकेटके शास्त्रप्रकाशक विभाग द्वारा प्रकाशित ।

काशी ।

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा भारतधर्म प्रेसमें मुद्रित ।

सन् १९२५ ई० ।

द्वितीय आवृत्ति ।]

[illegible]

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल और उससे सम्बन्ध रखनेवाली सब संस्थाओंके विषयमें कुछ जानना हो तो निम्नलिखित पतेसे पत्र व्यवहार करें।

जनरल सैक्रेटरी,
श्रीभारतधर्म्म महामण्डल,
महामण्डल भवन जगत्गंज,
बनारस, छावनी।

विज्ञापन ।

वैदिक सिद्धान्तोंकी सारभूत अनेक गीताएं पूज्यपाद महर्षियोंने जगत्‌के कल्याणार्थ प्रकाशित की हैं। श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीसप्तशती गीता (दुर्गा) ये दोनों जगत्प्रसिद्ध गीताएं श्रेष्ठ उपनिषद् स्वरूप हैं। वेदोक्त अध्यात्म रहस्यकी प्रकाशक श्रीभगवद्गीता और अधिदैव रहस्यकी प्रकाशक श्रीसप्तशतीगीता है। ये दोनों गीताएँ कुछ विशेष अधिकार रखनेवाली हैं। इन दोनों गीताओंपर अपूर्व भाष्य श्रीभारतधर्ममहामण्डल–शास्त्र–प्रकाश विभाग द्वारा प्रणयन हो रहे हैं। श्रीभगवद्गीताके भाष्यका हिन्दी अनुवाद कुछ छप भी गया है।

इन दोनों गीता शास्त्रोंके अतिरिक्त सात और गीताएँ ऐसी हैं कि, जिनका हिन्दी अनुवाद और टिप्पणीसहित प्रकाशित होना और सब धर्मजिज्ञासुओंको उनका अध्ययन करना परम आवश्यक है। विष्णु उपासनाकी श्रीविष्णुगीता, सौर उपासनाकी श्रीसूर्यगीता, शक्ति उपासनाकी श्रीशक्तिगीता, गाणपत्य उपासनाकी श्रीधीश-गीता, शैव उपासनाकी श्रीशम्भुगीता, सब वर्ण, और सब आश्रमोप-योगी श्रीगुरुगीता और सन्न्यास–आश्रमोपयोगी सन्न्यासगीता इस प्रकारसे ये सप्त गीताएं विशेष लोकहितकर हैं। ये सातों गीताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। श्रीसन्न्यासगीताकी द्वितीय आवृत्ति यह है।

श्रीसन्न्यास गीता द्वादश अध्यायोंमें विभक्त है। इसमें साधारण धर्म, दानधर्म, तपधर्म, यज्ञधर्म, कालधर्म आदिके साथ साधु सन्न्यासियोंके सब अधिकार भेद और विस्तारित धर्म वर्णित होने-से यह ग्रन्थरत्न केवल चतुर्थ आश्रम–धारी साधु सन्न्यासियोंके लिये ही परम हितकारी नहीं है, परन्तु सब वर्ण और सब आश्रमके लिये इस ग्रन्थका अध्ययन करना परम लाभदायक है। गृहस्थ-गणको तो इस ग्रन्थरत्नसे विविध ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

आजकलके साधु सन्न्यासियोंमें जो अनेक मतभेद, जो अनेक पन्थ–भेद, जो अनेक सम्प्रदाय भेद, जो अनेक आचार-भेद और जो अनेक विचारभेद देखनेमें आते हैं, उनका समन्वय करके शान्ति और पारस्परिक विरोध दूर करनेके लिये यह ग्रन्थ रत्न परम उपयोगी है। निवृत्तिसेवी चतुर्थ आश्रमका अनु-करण करनेवाले जितने प्रकारके साधु सन्न्यासी आदि हैं, वे निरपेक्ष और आस्तिक बुद्धिसे इस ग्रन्थरत्नका स्वाध्याय करनेसे अपने

अपने अधिकारानुसार आध्यात्मिक उन्नति करनेमें समर्थ होंगे इसमें सन्देह नहीं। वर्णगुरु ब्राह्मण और आश्रमगुरु सन्न्यासी हैं। इस कारण ब्राह्मण वर्णके सन्न्यासिगण ब्राह्मणादि सब वर्णोंके स्वाभाविक गुरु और नेता हैं इसमें अणुमात्र मतभेद नहीं है। सर्वमान्य सर्वसम्मत नेता सन्न्यासियोंको सहायता देने योग्य उनके अधिकारोंका निर्णायक और उनका मार्गप्रदर्शक होनेसे यह ग्रन्थरत्न सन्न्यासीमात्रके लिये परम आदर और नियमित स्वाध्यायके उपयोगी है। इस ग्रन्थरत्नका प्रचार जितना अधिक होगा, उतना ही हिन्दु समाजका कल्याण है।

आजकलके नवशिक्षित लोग साधु सन्न्यासी मात्रके ऊपर विरुद्ध कटाक्ष करते हैं और वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि, साधु सन्न्यासी हिन्दू समाजके गलग्रह और वृथा भारस्वरूप हैं। यद्यपि ऐसी विरुद्ध भावनाओंके उत्पन्न करानेमें आज कलके साधु सन्न्यासियोंका कुछ दोष अवश्य है, परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि, ऐसी चिन्ता करनेवाले बिलकुल निर्दोष हैं। साधु सन्न्यासी गण समाजमें अपना अधिकार भूल रहे हैं, सन्न्यास धर्मोक्त कर्म उपासना ज्ञानकी साधनप्रणाली वे विस्मृत हो गये हैं और सन्न्यासाश्रमका प्रधान धर्म निष्काम व्रतकी आवश्यकता इनके स्मृतिपटलसे उठ ही गई है। दूसरी ओर आज कलके शिक्षित गृहस्थगण आर्य जातिके इस सिद्धान्तको भूल ही गये कि, पूज्यपाद महर्षियोंके विचारानुसार साधुसन्न्यासी ही सब वर्ण और आश्रमके स्वाभाविक गुरु हैं और वेही हिन्दुसमाजके स्वाभाविक और चिरमान्य नेता हैं और हो सकते हैं, क्योंकि वसुधाको अपना कुटुम्ब मानना, सर्वलोक हितकर होना और जगत्के हितार्थ आत्मसमर्पण करना निष्काम व्रतपरायण साधु-सन्न्यासीके लिये ही सम्भव और सहज साध्य है। यह ग्रन्थरत्न इन दोनों प्रकारके अधिकारियोंकी शङ्काओंके समाधान करने और दोनों-को यथावत् इस विषयमें मार्ग प्रदर्शित करनेमें सर्वथा उपयोगी है।

निवेदक—

गोविन्दशास्त्री दुगवेकर,

भारतधर्म सिण्डिकेट भवन, स्टेशनरोड, बनारस।

विषयानुक्रमणिका ।

प्रथम अध्याय ।

द्वितीय अध्याय ।

तृतीय अध्याय ।

सप्तम अध्याय ।

अष्टम अध्याय ।

नवम अध्याय ।

दशम अध्याय ।

एकादश अध्याय ।

द्वादश अध्याय ।

❀ ॐ नमः श्रीसच्चिदानन्दाय ❀

श्रीसंन्यासगीता

भाषानुवाद और टिप्पणी सहित।

अनाद्यनन्तवैराजलीलैश्वर्यविभावन ! ।
देशकालाऽपरिच्छिन्न ! जयस्वामिञ्श्रयोऽस्तु ते ॥ १ ॥
नमामि जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणम् ।
सर्वात्मानं परैश्वर्य्यमवाङ्मनसगोचरम् ॥ २ ॥
कर्मसाक्षिन् ! भक्तचित्तविहारिन् ! भूतभावन ! ।
सर्वबुद्धिप्रेरकत्वात् स्मृता लोके जगद्गुरुः ॥ ३ ॥
प्रार्थयामि ततो देव ! कृपया प्राणिनां धियः ।
जगत्कल्याणैकहेतुज्ञानमार्गे प्रवर्तय ॥ ४ ॥
प्रयागे नैमिषारण्ये विशालायां त्रिपुष्करे ।
गङ्गासरस्वतीतीरे नर्मदायास्तटे तथा ॥ ५ ॥

जो श्रीभगवान् आदि अन्त रहित विराट् सृष्टि लीलारूप ऐश्वर्य्यके सञ्चालक हैं, जो देशकालसे अपरिच्छिन्न हैं और जो सकल अभ्युदय और निःश्रेयसके कर्म्मोंमें जय प्रदान करनेवाले हैं उनकी जय हो ॥ १ ॥ जगत्को उत्पत्ति स्थिति और लयके कारणरूप, सर्व्वात्मा, परमैश्वर्य्यवान् और वाणी और मनसे अगोचर श्रीभगवान्को प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ हे कर्म्मोंके साक्षीरूप ! हे भक्तोंके चित्तमें विहार करनेवाले ! हे भूतभावन ! आपकी सत्तासे सब चराचर सत्तावान् हैं, आपही सब प्राणियोंकी बुद्धिके प्रेरक हैं, इस कारण आप जगद्गुरु कहे जाते हैं ॥ ३ ॥ अतः हे देव ! प्रार्थना यह है कि, जगत्के कल्याणका एक ही उपायरूप जो ज्ञानमार्ग है उसकी ओर प्राणिमात्रकी बुद्धियोंका कृपापूर्व्वक प्रेरित करिये ॥ ४ ॥ प्रयागमें, नैमिषारण्यमें, उज्जयिनीमें, त्रिपुष्करमें, गंगा, सरस्वती, नर्मदा,

तापीगोदावरीरेवायमुनागण्डकीतटे ।
हरिद्वारे कुरुक्षेत्रे तीर्थेष्वन्येष्वपि स्वयम् ॥ ६ ॥
ऋषयो मुनयः सिद्धा महात्मानश्चरन्ति यत् ।
तज्जगन्मङ्गलायेति निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥ ७ ॥
सन्तः कारुणिका नित्यं तीर्थव्याजेन सङ्गताः ।
दुष्कृतानि व्यपोहन्ति दिव्यज्ञानोपदेशिनः ॥ ८ ॥
नानाशास्त्रकथाख्यानकथनश्रवणादिभिः ।
उद्धरन्ति जनान् सर्वान् पावयन्ति परस्परम् ॥ ९ ॥
तस्मात्सर्वात्मना नूनं सङ्गं कुर्वीत साधुभिः ।
सर्वोपकारनिरताः सन्तः संसारतारकाः ॥ १० ॥
अस्ति वै नैमिषारण्यं सुप्रसिद्धं तपोवनम् ।
ऋषिभिर्मुनिभिर्जुष्टमनेकाश्रमशोभितम् ॥ ११ ॥
रसालैः सालहिन्तालैः प्रियालैश्च प्रियङ्गुभिः ।
तालैस्तमालैर्मन्दारैर्नागपुन्नागचम्पकैः ॥ १२ ॥

तापी, गोदावरी, यमुना और गण्डकीके तटपर, हरिद्वारमें, कुरुक्षेत्रमें और अन्य तीर्थोंमें भी ऋषि, मुनि, सिद्ध और महात्मा स्वयं विचरण करते हैं वह उनका विचरना जगत्के जीवोंके मङ्गलके अर्थ हैं, ऐसा तत्त्वदर्शियोंने निश्चय किया है॥ ५—७॥ सत्पुरुष दयालु हैं वे तीर्थस्नानके व्याज (बहाने) से सम्मिलित होकर दिव्यज्ञानका उपदेश करते हुए नित्य ही पापोंका नाश करते हैं, ॥ ८ ॥ वे अनेक शास्त्रोंकी कथा और व्याख्यानोंके कथन और श्रवणादिसे सब मनुष्योंको उद्धार करते हैं और एक दूसरेको पवित्र करते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण सर्व्वतोभावेन अवश्य ही सत्संग करना चाहिये, क्योंकि सकल जीवोंके उपकारमें तत्पर महात्मा ही संसारसमुद्रसे पार करनेवाले हैं ॥ १० ॥ नैमिषारण्य नामक सुप्रसिद्ध तपोवन है जो ऋषि और मुनियोंसे सेवित है एवं जो अनेक आश्रमोंसे सुशोभित है, जो कल्पवृक्षके समान समृद्धिवाले और दिव्य पुष्प, फल एवं पत्रवाले आम, साल, हिन्ताल, प्रियाल, प्रियंगु, ताल, तमाल, मन्दार, नाग,

द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिः कल्पवृक्षसमृद्धिभिः ।
पनसाश्वत्थन्यग्रोधैः पूगैः किंशुकचन्दनैः ॥१३॥

कुन्दैः कुरबकैर्नीपैर्दिव्यपुष्पफलच्छदैः ।
द्रुमैः कामदुघैरन्यैः प्रपूर्णञ्चाऽतिशोभनम् ॥१४॥

मनोज्ञकुसुमामोदनानावीरुद्विराजितम् ।
मल्लिकामाधवीजातिवासन्तीभिः सुमण्डितम् ॥१५॥

सरित्सरोभिरच्छोदैर्लसद्रुचिरवालुकैः ।
कुमुदोत्पलकल्हारशतपत्रादिशोभितैः ॥१६॥

हंससारसकादम्बचक्रारब्धकलस्वनैः ।
गुञ्जद्भ्रमरभङ्कारनादितैः समलङ्कृतम् ॥१७॥

फलमूलाशनैर्दान्तैश्चारुकृष्णाजिनाम्बरैः ।
सूर्य्यवैश्वानरसमैस्तपसा भावितात्मभिः ॥१८॥

महर्षिभिर्मोक्षपरैर्यतिभिर्नियतेन्द्रियैः ।
ब्रह्मभूतैर्महाभागैरुपेतं ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

पुन्नाग, चम्पा, दाख, ईख, केला, जम्बू, पनस, अश्वत्थ, न्यग्रोध, सुपारी, किंशुक, चन्दन, कुन्द, कुरबक, नीप और कामफलप्रद अन्य वृक्षोंसे पूर्ण सुशोभित है ॥ ११-१४ ॥ जो सुन्दर पुष्पोंकी सुगन्धि-वाली अनेक विस्तृत लताओंसे विराजित है और मल्लिका, माधवी, जाति और वासन्ती लताओंसे सुमण्डित है ॥ १५ ॥ जो स्वच्छ जल-वाले, चमकीली सुन्दर बालुकावाले, कुमुद कमल कल्हार और शतपत्रादिसे सुशोभित, हंस सारस कादम्ब और चक्रवाकोंकी गम्भीर चहचहाटसे युक्त एवं गूंजते हुए भंवरेके झंकारसे निनादित, नदी और तलावोंसे समलंकृत है। जो फल और मूल भक्षण करने-वाले, तपके क्लेशको सहन करनेवाले, सुन्दर कृष्ण मृगचर्मके वस्त्र-वाले, सूर्य्य और अग्निके समान तेजस्वी, तपके द्वारा आत्म-साक्षात्कार करनेवाले, इन्द्रियसंयमी, मोक्षमें तत्पर, ब्रह्मवादी, ब्रह्म-स्वरूप, संयमशील, महाभाग महर्षियोंसे युक्त है। जो जलमात्र पान करनेवाले, वायुमात्र पान करनेवाले, पत्ते घास खानेवाले, कौपीन

अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च पर्णाहारैस्तथैव च ।
चीरवल्कलसंवीतैः सर्वदाऽध्युषितं शिवम् ॥२०॥
अदंशमशकं रम्यमनालोकितदुर्जनम् ।
अश्रुताधिव्याधिदुःखमवितर्क्यतपःफलम् ॥२१॥
यत्र सिंहादयो हिंस्रा अपि सौहृदमास्थिताः ।
निर्वैराः क्रौर्यनिर्मुक्ताश्चरन्त्येणैश्च गोकुलैः ॥२२॥
शकुन्ता यत्र दृश्यन्ते मधुरस्वरगायनाः ।
ऋषिघुष्टाः सामगीतीर्गायन्ति शुकसारिकाः ॥२३॥
तत्रैकदा पुण्यदेशे नैमिषे कल्मषद्विषि ।
समवेता महात्मानः सिद्धा ब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥२४॥
नाना तपः प्रदेशेभ्य आश्रमेभ्यश्च सर्व्वतः ।
तीर्थेभ्यो विविधेभ्यश्च प्रयता लोकपावनाः ॥ २५ ॥
सशिष्याः साग्नयः शान्ता पश्यन्तो वनमुत्तमम् ।
पावयन्तो जनान्मार्गे समाजग्मुः कृपालवः ॥२६॥

और वल्कल धारण करनेवाले महर्षियोंसे सर्वदा अधिष्ठित और मंगलकर है॥ १९–२० ॥ जो डांश और मच्छरोंसे रहित और मनोहर है। दुर्जनोंने जिसको देखा नहीं है। आधि, व्याधि और दुःख जहां छुने भी नहीं गये हैं। जहांके तपका फल अनुमान नहीं किया जा सकता है। जहां सिंहादि हिंस्र पशु भी गौ और मृगोंके साथ मैत्री स्थापन करके निर्वैर हो क्रूरतासे रहित होते हुए विचरण करते हैं। शकुन्त जहां मधुरस्वरसे गायन करते दिखाई देते हैं और शुक एवं सारिकाएं जहां ऋषियोंके द्वारा गाये हुए सामवेदके गानको गाती हैं ॥२१–२३॥ उस पापनाशक पुण्य देश नैमिषारण्यमें एक बार लोकपावन, शान्त, संयमशोल, ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ, कृपालु, सिद्ध महात्मा चारों ओरके नाना तपःप्रदेशोंसे, आश्रमोंसे तथा विविध तीर्थोंसे चलकर अग्निहोत्र और शिष्योंको साथ लिए हुए, मार्गमें मनुष्योंको पवित्र करते हुए और उस उत्तम वनको देखते हुए आये ॥ २४–२६ ॥ क्योंकि सब

अल्पज्ञान् प्राणिनः सर्वान् सत्सङ्गेनोद्दिधीर्षवः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भूमौ सन्तश्चरन्ति हि ॥ २७ ॥

स्नाताः कृतार्चनाश्चीर्णदेवपितृर्षितर्पणाः।
तत्रैवोषुः कियत्कालं ते कथालापनिर्वृताः ॥ २८ ॥

दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते मुनयः शंसितव्रताः।
तत्रैकदा पर्यटन्तः समैक्षन्तैकमाश्रमम् ॥ २९ ॥

बलिहोमार्चितं दिव्यं सुसंमृष्टानुलेपनम्।
शुष्यच्छ्यामाकनीवारं वेदिभिश्च विराजितम् ॥ ३० ॥

विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भाण्डैरार्चितं शुभैः।
दिव्यपुष्पोपहारैश्च सर्वतोऽभिविराजितम् ॥ ३१ ॥

शरण्यं सर्वभूतानां ब्रह्मघोषनिनादितम्।
दिव्यमाश्रयणीयं तमाश्रमं श्रमनाशनम् ॥ ३२ ॥

प्रविशन्तः परं प्रीताः सर्व एव महर्षयः।
ज्ञानोपदेशलाभाय पर्याप्तं मेनिरे स्थलम् ॥ ३३ ॥

अल्पज्ञानी प्राणियोंको सत्संग द्वारा उद्धार करते हुए ही तीर्थयात्राके प्रसंगसे इस पृथिवीपर सत्पुरुष विचरण किया करते हैं ॥ २७ ॥ स्नान भगवदर्चन एवं देवता ऋषि और पितरोंका तर्पण करके कथा वार्ता कहते हुए कुछ समय तक उन्होंने वहीं निवास किया ॥ २८ ॥ वहां एक दिन दिव्यज्ञानसम्पन्न व्रताचारमें तत्पर उन मुनियोंने भ्रमण करते हुए एक आश्रमको देखा। जो बलि और हवनके द्वारा सुशोभित, देवभवनतुल्य और अत्यन्त परिष्कृत है। जिसमें श्यामाक और नीवार सूख रहे हैं, जो वेदियोंसे सुशोभित है, ॥ २९–३० ॥ विशाल अग्निकुण्ड और शुभ स्रुवा एवं पात्रोंसे सुशोभित दिव्य पुष्पोंके उपहारसे चारों ओर समावृत, सकल प्राणिमात्रका शरण्य, वेदघोषसे निनादित, श्रमनाशन, आश्रय करने योग्य उस दिव्य आश्रममें परम प्रसन्न उन सब ही महर्षियोंने प्रवेश किया और ज्ञानोपदेश प्राप्त करनेके लिये उस स्थानको पर्य्याप्त समझा ॥ ३१—३३ ॥

तदैवोपस्थितं तत्र याज्ञवल्क्यं महामुनिम्।
सूर्यतेजःप्रतीकाशं सर्वशास्त्रविशारदम्॥ ३४॥
धर्मधर्माङ्गतत्त्वज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम्।
कर्मज्ञानोपासनाद्यर्यसूक्ष्मतत्त्वावमर्शिनम्॥ ३५॥
जितेन्द्रियं योगपरं मुनिवृन्दनिषेवितम्।
यदृच्छया पर्यटन्तं दृष्ट्वा मुमुदिरे भृशम्॥ ३६॥
अथाऽतिपूताः सुप्रीता मुनयो दिव्यदृष्टयः।
भक्त्या प्रणामान् कुर्वाणाः समन्तादुपतस्थिरे॥ ३७॥
चक्रिरे तस्य सत्कारं विधिनाऽऽसनसंस्थितम्।
उपाजह्रुश्च सलिलं पुष्पमूलफलं शुचि॥ ३८॥
गृहीतार्घ्यं ततः प्रीतं तं मुनिं ब्रह्मवादिनम्।
विनयावनताः सर्वे सादरञ्चेत्थमूचिरे॥ ३९॥
त्वद्दर्शनेन पूताः स्मः कृतकृत्या बभूविम।
वयमत्र महाभाग! करुणावरुणालय!॥ ४०॥

वहां उसी समय सूर्यके तेजके समान तेजस्वी, सर्वशास्त्रविशारद, धर्म्म और धर्म्माङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाले, वेद और वेदाङ्गोंके पारङ्गत, कर्म्म, ज्ञान और उपासनाके पूजनीय सूक्ष्म तत्त्वोंके विचार करनेवाले॥ ३४—३५॥ जितेन्द्रिय, योगनिष्ठ, मुनिवृन्दोंके द्वारा सेवित और अपनी इच्छासे ही पर्यटन करनेवाले उपस्थित महामुनि याज्ञवल्क्यके दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ३६॥ इसके अनन्तर अत्यन्त पवित्र, सुप्रसन्न, दिव्यदृष्टि मुनिगण भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए चारों ओर खड़े हुए॥ ३७॥ और आसनपर बैठे हुए महर्षि याज्ञवल्क्यका विधिपूर्वक सत्कार किया एवं पवित्र जल, पुष्प, मूल और फलोंका उपहार उनको अर्पण किया॥ ३८॥ इसके पश्चात् अर्घ्य ग्रहण करके प्रसन्न चित्त उन ब्रह्मवादी मुनिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्यसे आदरसहित विनयपूर्वक नम्र होकर इस प्रकार निवेदन किया॥ ३९॥ हे करुणाके सागर! महाभाग! हम इस समय आपके दर्शनसे पवित्र और कृतकृत्य हुए हैं॥ ४०॥

वयं सर्वेऽधुना तात ! प्रपन्नास्त्वां महामुने ! ।
शाधि ज्ञानप्रदानेन श्रूयसे ज्ञानभास्करः ।। ४१ ।।

इति ब्रुवत्सु सर्वेषु याज्ञवल्क्यो महामतिः ।
अतिगम्भीरया वाचा स्मयमान उवाच ह ।। ४२ ।।

साधु साधु महाभागाः ! प्रीतोऽस्मि विनयेन वः ।
ज्ञानतत्त्वं परं पुम्भिः शीलेनैवात्र लभ्यते ।। ४३ ।।

शीलं हि परमा विद्या शीलमेव परं तपः ।
नैव शीलात्परं किञ्चित् तस्माच्छीलं सदाश्रयेत् ।। ४४ ।।

लोकोपकारकर्तॄणि चरितानि भवादृशाम् ।
तदहं वः प्रवक्ष्यामि यत्प्रष्टव्यं तदुच्यताम् ।। ४५ ।।

तच्छ्रुत्वा मुनयः प्रीताः मिथः सर्वे परामृशन् ।
पृच्छेत्सर्वहितं किञ्चित्कस्तादृग्बुद्धिमानिति ।। ४६ ।।

एवं विचारयन्तस्ते निश्चित्य जैमिनिं मुनिम् ।
प्रार्थयन्त प्रश्रयेण भक्त्या परमया युताः ।। ४७ ।।

हे प्रभो ! हे महामुने ! हम सब इस समय आपके शरणागत हैं, हमको ज्ञानदान करके शासन कीजिये क्योंकि हमने सुना है, आप ज्ञानिश्रेष्ठ हैं ।। ४१ ।। सबके इतना कहनेपर महामति याज्ञवल्क्य अति गम्भीर वचनोंसे मुस्कराते हुए बोले । हे महाभागो ! ठीक है ठीक है, तुम्हारी नम्रतासे मैं प्रसन्न हूं। इस संसारमें ज्ञानका परम तत्त्व मनुष्यको शीलसे ही प्राप्त होता है, शील ही परम विद्या है, शील ही परम तप है, शीलसे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। अतः शीलका सदा आश्रय करना चाहिये । आपके सदृश महामुनियोंके चरित्र लोकोपकार करनेवाले हैं अतः जो प्रष्टव्य हो, सो कहिये मैं आप लोगोंसे वर्णन करूंगा। ।। ४२—४५ ।। यह सुनकर मुनिगण प्रसन्न हो परस्पर विचार करने लगे कि ऐसा कौन बुद्धिमान है जो सर्वहितकारी कुछ प्रश्न पूछे ।। ४६ ।। इस प्रकार सोच विचार कर उन्होंने जैमिनी मुनिको निश्चित किया और वे उनसे अत्यन्त भक्तिभावसे प्रार्थना करने लगे कि सब धर्मोंके जाननेवाले हे भगवन् !

भगवन् ! सर्वधर्मज्ञ ! त्वमस्मासु मतोऽधिकः।
त्वमेक एव जानासि कर्मणो गहनां गतिम् ॥ ४८ ॥

तस्माद्वृतोऽसि भो ब्रह्मन् ! तत्त्वं धर्मस्य पृच्छ्यताम्।
बहुशाखस्य धर्मस्य दुर्गमत्वं विदुर्बुधाः ॥ ४९ ॥

अतो धर्मश्च धर्माङ्गान्यजानन्तोऽथ मोहिताः।
वेदतत्त्वार्थविज्ञानहीनत्वाल्लक्ष्यविच्युताः ॥ ५० ॥

विवदन्ते नरा यत्र यत्र सन्दिहते सदा।
तमेवोद्दिश्य विषयं जिज्ञासा क्रियतामिह ॥ ५१ ॥

विविधेनैव तापेन परितप्ताः शरीरिणः।
येन ज्ञानेन कल्याणमाप्नुयुस्तद्विचार्यताम् ॥ ५२ ॥

एतन्निशम्य सत्कृत्य तान्मुनीनथ जैमिनिः।
मुनिराजं याज्ञवल्क्यं सत्कुर्वन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥

जैमिनिरुवाच।

अहो पुण्यमहोभाग्यं सफलञ्चाऽद्य नस्तपः।
जातमेवं विधे क्षेत्रे भवतो दर्शनं यतः ॥ ५४ ॥

हम लोगोंसे आप श्रेष्ठ हैं। आप ही एक कर्मकी गहन गतिको जानते हैं इसलिये हे ब्रह्मन् ! आप ही व्रती होकर धर्मका तत्त्व पूछिये ॥ ४७—४६ ॥ अनन्त शाखाओंवाले धर्मकी दुर्गमता पण्डित लोग जानते हैं। धर्म और धर्माङ्गोंके न जाननेसे वे मोहित और वैदिक तत्त्वार्थके विज्ञानसे विहीन होनेके कारण लक्ष्य भ्रष्ट हो रहे हैं ॥५०॥ जिस विषयमें लोग विवाद करते हैं और जहां संदेह करते हैं, उसी विषयकी आप जिज्ञासा कीजिये। तीन तापोंसे प्राणीमात्र परितप्त हैं, जिस ज्ञानसे उनका कल्याण हो, वही पूछिये ॥ ५१-५२ ॥ यह सुनकर उन मुनियोंके प्रति जैमिनिने कृतज्ञता प्रकट की और वे मुनिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्यसे आदरके साथ बोले ॥ ५३ ॥

महर्षि जैमिनिने कहाः—यह हमारा बड़ा सुकृत है, हमारा अहोभाग्य है, हमारा तप सफल हुआ है, जो ऐसे क्षेत्रमें हमें आपका दर्शन हुआ।

नूनमेषा भगवतः सर्वान्तर्यामिणो दया।
यदस्माभिरियं प्राप्ता भवतः पुण्यसङ्गतिः ॥ ५५ ॥

अद्य ज्ञास्यामहे तत्त्वं गूढं वेदोपपादितम्।
सारञ्च सर्वशास्त्राणां त्वन्मुखाम्भोजनिस्सृतम् ॥ ५६ ॥

तद्ब्रूहि भगवन्! पूर्वमेतज्जिज्ञासितं हि नः।
को भावः तस्य भेदास्तु कियन्तः परिकीर्तिताः ॥ ५७ ॥

का श्रद्धा कीदृशी चेयं भावशोधनकारिणी।
कियन्त एव वा तस्या भेदाः ख्याता दयानिधे! ॥ ५८ ॥

त्वदुक्तश्रवणोत्पन्नश्रद्धावृद्धया यथा वयम्।
विशुद्धभावा संसारं सन्तरेम तथा कुरु ॥ ५९ ॥

अधिगन्तुञ्च भगवद्दिव्यभक्त्यधिकारिताम्।
शक्नुमो ब्रह्मनिष्णात! ब्रूहि सर्वं यथोचितम् ॥ ६० ॥

तदाकर्ण्य क्षणं ध्यात्वा याज्ञवल्क्योऽनुमोद्य तत्।
कृपया परयाविष्टः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ६१ ॥

यह उस सर्वान्तर्यामी भगवान्की बड़ी दया है, जो हमें आपकी पुण्यकारिणी सङ्गति प्राप्त हुई है ॥ ५४-५५ ॥ आज हम आपके मुख कमलसे निःसृत वेदोक्त गूढ़तत्त्व और सब शास्त्रोंका सार जानना चाहते हैं इसलिये हे भगवन्! यही हमारी पहिली जिज्ञासा है, इसीको पहिले कहिये। भाव क्या है, उसके भेद कितने हैं, श्रद्धा क्या है, भावको शोधन करनेवाली वह कैसी है, उसके भेद कितने हैं? हे दयानिधे! आपके कथनको श्रवणकर उत्पन्न हुई श्रद्धाकी वृद्धिसे जिस प्रकार हम विशुद्ध भाव होकर संसारसे तर जायं ऐसा कीजिये। हे ब्रह्मज्ञ! जिससे हम भगवान्की दिव्य भक्तिकी अधिकारिताको जाननेमें समर्थ हो जायं, वही यथोचित रूपसे हमें सुनाइये ॥ ५६-६० ॥ यह सुनकर याज्ञवल्क्यने क्षणमात्र ध्यान मग्न होकर महर्षिजैमिनिका अनुमोदन किया और वे परम कृपासे युक्त होकर बोलनेका उपक्रम करने लगे ॥ ६१ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ।

भाव एवाऽत्र सूक्ष्मातिसूक्ष्मतत्त्वं निगद्यते ।
भावात्सूक्ष्मतरं किञ्चित्तत्त्वं न परिलक्ष्यते ॥ ६२ ॥

भावातीतमपि ब्रह्म ज्ञायते योगिभिः सदा ।
साहाय्येनैव भावस्य प्रथमं तत्त्ववेदिभिः ॥ ६३ ॥

ब्रह्मसाक्षात्कृतौ भावमन्तिमालम्बनं विदुः ।
सारूप्यावस्थितौ वृत्तेः सदसद्भावभेदतः ॥ ६४ ॥

उत्पद्येते तु भावेन पुण्यपापे उभे अपि ।
सूक्ष्मावस्था तु भावस्य त्रैविध्यमवलम्बते ॥ ६५ ॥

आध्यात्मिकाऽऽधिदैवाऽऽधिभौतिकानीति शास्त्रतः ।
ज्ञानिना भक्तराजेन तत्त्रयस्यावलम्बतः ॥ ६६ ॥

ब्रह्मेश्वरविराड्रूपैर्भगवान् दृश्यते क्रमात् ।
ब्रह्माण्डेषु च सर्वत्र ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ६७ ॥

भावांस्त्रीन्सततं सम्यग्वीक्षन्ते सर्ववस्तुषु ।
भावो हि स्थूलावस्थायां सदसद्रूपमास्थितः ॥ ६८ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्य बोले—यहांपर भावतत्त्व सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म कहा गया है। भावसे सूक्ष्म तो कोई तत्त्व ही नहीं दीख पड़ता। तत्त्ववेत्ता योगिगण भावातीत ब्रह्मको भी भावकी ही सहायतासे जान लेते हैं। ब्रह्म-साक्षात्कारमें भाव ही अन्तिम अवलम्ब है। सारूप्य अवस्थामें वृत्तिके सत् और असत् भावोंसे ही पुण्य और पाप दोनों उत्पन्न होते हैं। भावकी सूक्ष्मावस्था शास्त्रोंमें त्रिविध कही गई है ॥ ६२–६५ ॥ यथा—आध्यात्मिक अवस्था, अधिदैव अवस्था और आधिभौतिक अवस्था। इन्हीं-के अवलम्बनसे भक्तराट् ज्ञानिगण क्रमशः ब्रह्म, ईश्वर, और विराट्के रूपोंमें भगवान्को देखते हैं। ब्रह्माण्डकी सभी वस्तुओंमें तत्त्वदर्शी ज्ञानिगण इन्हीं तीन भावोंको भलीभांति निरन्तर देखते हैं। स्थूल अवस्थामें सत् और असत्‌रूपमें स्थित

स्वर्गञ्च नरकञ्चैव प्रापयत्यत्र मानवान्।
श्रद्धाया जनको भाव आत्मोन्मुखकृताविह ॥ ६९ ॥
अन्तःकरणवृत्तेश्च श्रद्धैका मूलकारणम्।
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिप्रकृतिभेदतः ॥ ७० ॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसीति बुभुत्सवः!।
तासान्तु लक्षणं विप्राः! शृणुध्वं भक्तिभावतः ॥ ७१ ॥
श्रद्धा सा सात्विकी ज्ञेया विशुद्धज्ञानमूलिका।
प्रवृत्तिमूलिका चैव जिज्ञासामूलिकाऽपरा ॥
विचारहीनसंस्कारमूलिका त्वन्तिमा मता ॥ ७२ ॥

इति श्रीसन्यासगीतायां महर्षिसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

जैमिनिरुवाच।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ! धर्माङ्गज्ञानभास्कर!।
त्वत्समो वेदवेदांगनिष्णातो नेतरो जनः ॥ १ ॥

होकर भाव ही मनुष्योंको स्वर्ग अथवा नरकमें पहुंचाता है। भाव श्रद्धाका जनक है और अन्तःकरणकी वृत्तिको आत्मोन्मुख करनेके लिये श्रद्धा ही मूलकारण है। प्राणियोंकी प्रवृत्तिके अनुसार श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है ॥६९-७०॥ यथा—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। हे धर्मतत्त्वके जाननेकी इच्छा करनेवाले विप्रगण! अब उनके लक्षण भक्तिभावसे सुनो। विशुद्ध ज्ञान मूलक श्रद्धा सात्त्विकी है, प्रवृत्ति और जिज्ञासामूलक श्रद्धा राजसी है और विचारहीन संस्कारमूलक तामसी श्रद्धा है ॥७१-७२॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यासगीताका महर्षि समागम नामक
प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

महर्षि जैमिनि बोले—हे सब शास्त्रार्थोंके तत्त्वोंको जाननेवाले धर्माङ्गज्ञानके सूर्यस्वरूप! आपके समान वेद और वेदांगोंमें निष्णात दूसरा कोई नहीं है इसलिये हे धर्मज्ञोंके धुरीण! हम लोग

अतस्त्वां धर्मविद्धुर्यं पृच्छामो भक्तितो वयम्।
ज्ञेयं स्फुटं सर्वमुक्त्वा जिज्ञासूननुकम्पय॥ २॥
दुर्ज्ञेयं दुर्गमञ्चापि धर्मतत्त्वं नृणामिह।
बहुशाखश्च वेदोऽयं दुर्बोध इति कीर्त्यते॥ ३॥
सन्ति नाना पुराणानि स्मृतयो दर्शनानि च।
व्यञ्जयन्ति च भिन्नानि स्वमतानि पृथक् पृथक्॥ ४॥
आचार्या बहवस्तेषां मतञ्चाऽपि विभिद्यते।
तत एव वयं सर्वे तत्त्वं ज्ञातुं न शक्नुमः॥ ५॥
भवान् संदर्शितो दैवाद्विधात्रा ज्ञानसागरः।
अतस्त्वां परिपृच्छामः शाधि नः शरणागतान्॥ ६॥
ब्रूहि साङ्गं धर्मरूपं सरहस्यं सलक्षणम्।
कर्मज्ञानोपासनानां तत्त्वञ्चाऽपि पृथक् पृथक्॥ ७॥
निवृत्तिधर्म्मरूपस्य सन्न्यासस्य च तत्त्वतः।
प्रशंसार्हस्य तत्त्वज्ञ! निर्णयं वक्तुमर्हसि॥ ८॥

आपसे भक्तिपूर्वक प्रश्न करते हैं, आप हमें जानने योग्य सब कुछ स्पष्टतया कहकर हम जिज्ञासुओंपर दया करें। मनुष्योंके लिये धर्मतत्त्व दुर्बोध और दुर्गम हो रहा है, वेदकी अनेक शाखाएँ हैं और उनका जानना सहज नहीं ऐसा कहा जाता है॥ १–३॥ अनेक पुराण तथा स्मृतियाँ और दर्शन हैं। वे अपने विभिन्न मत पृथक् पृथक् प्रकट कर रहे हैं॥४॥ आचार्य अनेक हैं और उनके मत भी विभिन्न हैं अतः हम तत्त्वको जाननेमें असमर्थ हैं॥५॥ विधाताने आप जैसे ज्ञानसागरको हमें दिखा दिया है। इसीसे हम आपसे पूछते हैं। आप हम शरणागतोंको समझाइये॥६॥ आप अङ्गोंसहित, रहस्य-सहित और लक्षणोंसहित धर्मके स्वरूपको एवं कर्म, उपासना तथा ज्ञानके तत्त्वको पृथक् पृथक् कहिये। हे तत्त्वज्ञ! प्रशंसा करने योग्य निवृत्ति धर्म्मरूप संन्यास तत्त्वका निर्णय कथन करनेमें

अनुकम्पासमुद्रोऽसि विश्रुतो जगतीतले ।
तथोपदिश्यतां ब्रह्मन्! कृपया परयान्वितः ॥ ९ ॥
यथा श्रुतौ दर्शनेषु पुराणेषु स्मृतिष्वपि ।
यद्वेद्यं वास्तवं वस्तु विज्ञातं स्यादशेषतः ॥ १० ॥
कृतार्थयास्मज्जननं पूरयस्व मनोरथान् ।
नृणां निःश्रेयसायैव दर्शनं स्याद्भवादृशाम् ॥ ११ ॥
जैमिनेर्मुनिवर्य्यस्य वचसा मुदितो भृशम् ।
याज्ञवल्क्यो महातेजाः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १२ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ।

प्रीतोऽस्मि मुनिशार्दूल! ज्ञातं युष्मत्समीप्सितम् ।
नूनं विश्वहितायैव प्रश्नोऽयं मुनिसत्तम! ॥ १३ ॥
यावत्कालं प्रवत्स्यामि तीर्थेऽस्मिन् व्रतमास्थितः ।
तावद्वक्ष्ये यथाकालं तत्त्वं वेदादिनिश्चितम् ॥ १४ ॥

आप समर्थ हैं ॥ ७—८ ॥ आप दयासागर हैं, संसारमें प्रसिद्ध हैं, इसलिये हे ब्रह्मन्! आप विशेष कृपा करके ऐसा उपदेश कीजिये जिससे वेद, दर्शन, पुराण और स्मृतियोंमें जो कुछ वास्तवमें जानने योग्य है, उसका सम्पूर्णरूपसे हमें ज्ञान हो जाय ॥ ९-१० ॥ हमारे जन्मको आप कृतार्थ करें और मनोरथोंको पूर्ण करें। आप जैसोंका दर्शन निःसन्देह मनुष्योंके कल्याणके लिये ही होता है ॥ ११ ॥ मुनिवर जैमिनीके वचनोंसे अत्यन्त प्रसन्न होकर महान् तेजस्वी महर्षि याज्ञवल्क्य हंसकर बोले ॥ १२ ॥

हे मुनिशार्दूल! मैं आपसे प्रसन्न हूं, आपकी इच्छा मुझे ज्ञात हुई है। हे मुनिश्रेष्ठ! आपका यह प्रश्न जगत्का कल्याण करनेके लिये है ॥ १३ ॥ जबतक इस तीर्थमें मैं व्रती होकर रहूँगा तबतक समय समयपर वेद आदिसे निश्चित तत्त्वका कथन करूंगा और क्रमशः शास्त्रोंके तत्त्वोंको अधिकार भेदानुसार सुनाता हुआ

यथाधिकारं सर्वाणि शास्त्रतत्त्वान्यहं क्रमात्।
श्रावयन्नपनेष्यामि युष्माकं सर्वसंशयान्॥ १५॥
यच्चाऽहमभिधास्यामि तदग्रे ख्यातिमेष्यति।
नाम्ना सन्यासगीतेति सारभूता श्रुतेः क्षितौ॥ १६॥
पठनाच्छ्रवणाद्यस्या जिज्ञासुश्छिन्नसंशयः।
ईशिष्यते मुक्तिपदप्राप्तये नाऽत्र संशयः॥ १७॥
अन्येऽपि यदि सन्देहा भवेयुर्मनसि स्थिताः।
तदाख्येयास्तेऽपि सर्वे निर्विशङ्कं ममाग्रतः॥ १८॥

जैमिनिरुवाच।

भगवन्! सर्वधर्मज्ञ! ब्रूहि धर्मस्य लक्षणम्।
के हि साधारणा धर्मा विशिष्टाः के च कीर्तिताः॥ १९॥
कियन्ति धर्मस्याङ्गानि विस्तरेण वदस्व नः।
यथा नराः परं श्रेय इह च प्रेत्य चाप्नुयुः॥ २०॥

याज्ञवल्क्य उवाच

यतोऽभ्युदयमुत्कृष्टमैहलौकिकमाप्नुयुः।
हितञ्चाऽऽमुष्मिकं निःश्रेयसं धर्मः स कीर्तितः॥ २१॥

आपके सब सन्देहोंको दूर करूंगा॥ १४-१५॥ जो कुछ मैं कहूंगा, वह श्रुतिकी सारस्वरूप सन्यासगीताके नामसे आगे पृथ्वीपर प्रसिद्ध होगी। जिसके पढ़ने सुननेसे जिज्ञासुके सन्देह दूर हो जायँगे और निःसन्देह वह मुक्तिपद प्राप्तिके लिये समर्थ हो जायगा॥ १६-१७॥ इनके अतिरिक्त और भी यदि कोई सन्देह आपके मनमें हों तो वे भी सब मेरे आगे निःशङ्क होकर कहें॥ १८॥

महर्षि जैमिनी बोले-हे सब धर्मोंके जाननेवाले भगवन्! आप धर्मके लक्षणको कहिये। साधारण धर्म कौनसे हैं, विशेष धर्म कौनसे कहे गये हैं, धर्मके अङ्ग कितने हैं, यही हमें विस्तारसे कहिये। जिससे मनुष्योंको इहलोकमें और परलोकमें परम श्रेय प्राप्त हो॥ १९-२०॥

महर्षि याज्ञवल्क्य बोले-जिससे इहलोकमें उत्कृष्ट अभ्युदय और परलोकमें सुख एवं मोक्ष प्राप्त होता है, वही धर्म कहा गया

श्रुतिस्मृत्युदितो धर्म्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययः।
यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च स धर्म्मो विदुषां मतः॥ २२॥
धर्मात्प्रवर्द्धते सत्त्वं पुरुषार्थप्रवर्द्धनम्।
जगद्धारणहेतुत्वाद्धर्मत्वं तस्य चेष्यते॥ २३॥
प्रकाशकत्वात्सत्त्वस्य ज्ञानहेतुत्वमीर्य्यते।
लघुत्वादूर्ध्वनेतृत्वं सत्त्वाद्धर्मो हि निर्भौ॥ २४॥
स्वतः सत्त्वाभिवृद्धिर्यैर्मनोवाक्कायकर्मभिः।
तानि सर्वाणि कर्माणि धर्म इत्येष निर्णयः॥ २५॥
धर्म्याचाररतः सत्त्वं वर्द्धयन् परमोन्नतिम्।
ऐहिकीमामुष्मिकीं च प्राप्य मोक्षं ततोऽश्नुते॥ २६॥
धर्म्मं यो बाधते धर्मो कुधर्मः स हि वस्तुतः।
अविरोधी तु यो धर्म्मः स धर्मो मुनिपुंगवाः!॥ २७॥

है॥ २१॥ जिसका उदय श्रुतिस्मृतिसे हुआ है, वह धर्म और उससे विपरीत अधर्म है। जिससे स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है ज्ञानियोंके मतसे वही धर्म है॥ २२॥ धर्मसे पुरुषार्थकी वृद्धि करने वाला सत्त्वगुण बढ़ता है और जगत्‌को धारण करनेके कारण ही उसे धर्म कहते हैं॥ २३॥ धर्म सत्त्वगुणका प्रकाशक होनेसे ज्ञानका कारण है और सूक्ष्म होनेसे सत्त्वके ही कारण वह उन्नतिकारी है। जो मन, वाणी और कायासे किये हुए कर्म स्वयं सत्त्वकी अभिवृद्धि करें, वे सब कर्म ही धर्म हैं, ऐसा निर्णय किया गया है॥ २४--२५॥ धर्माचरणमें रत मनुष्य सत्त्व गुणको बढ़ाता हुआ ऐहिक और पारलौकिक परम उन्नतिको प्राप्त करनेपर मोक्ष पाता है *॥ २६॥ जो धर्म दूसरे धर्मका बाधक

---

* सत्त्वगुण वर्द्धक धर्म्मकी उत्तरोत्तर तीन दशाएँ वर्णन की गई हैं। पहली दशामें धर्म प्रथम अधिकारीको इस लोकके सुख देता है, दूसरी दशामें मध्यम अधिकारीको धर्म स्वर्गादि पारलौकिक सुख देता है और अन्तिम दशामें सर्वोत्तम अधिकारीको धर्म निर्वाण मुक्तिपदमें पहुंचा देता है। यथाक्रम ये तीनों अधिकार समझे जायं।

उक्तः सामान्यधर्मोऽयं विशिष्टस्त्वतिरिच्यते।
अधिकारिविभेदेन स ह्यनेकविधः स्मृतः ॥ २८ ॥
सधवाविधवादीनां स्त्रीणां भेदस्य दर्शनात्।
प्रत्येकं भिद्यते धर्मस्तथा पुंस्वपि सर्वथा ॥ २९ ॥
मूर्खपण्डितसंन्यस्तगृहस्थादिविभेदतः।
सर्वेषामेव प्रत्येकं धर्माः प्रोक्ताः पृथक् पृथक् ॥ ३० ॥
सर्वत्र व्यापकादस्मात् सर्वजीवहितैषिणः।
धर्मात् सनातनादेव सर्वे धर्म्माः समुत्थिताः ॥ ३१ ॥
सनातने ह्यार्यधर्मे वैदिकाचारपालना।
सदाचारसतीधर्माध्यात्मतत्त्वविचारणा ॥ ३२ ॥
वर्णाश्रमाधीनकर्मविभागश्चाऽत्र विद्यते।
अस्मादन्योऽनार्यधर्म इत्यस्मच्छास्त्रनिश्चयः ॥ ३३ ॥

हो, वह वास्तवमें कुधर्म है। हे मुनिश्रेष्ठो! जो धर्म किसीसे विरोध नहीं रखता, वही सच्चा धर्म है ॥ २७ ॥ † यह सामान्य धर्म कहा गया है, विशेष धर्म पृथक् है। जो अधिकारिभेदसे अनेक प्रकारका होता है। स्त्रियोंमें सधवा और विधवा इस प्रकारसे भेद देख पड़ते हैं, अतः उनके धर्म भी विभिन्न हैं। यही बात पुरुषोंकी है। मूर्ख और पण्डित, सन्यासी और गृहस्थ इस प्रकारके जो पुरुषमें भेद हैं, तदनुसार उनके धर्म भी अलग अलग कहे गये हैं ॥ २८–३० ॥ सनातनधर्म सर्वजीवहितकारी और सर्वव्यापक होनेके कारण इसीसे संसारके सब धर्म निकले हैं ॥ ३१ ॥ सनातन आर्यधर्ममें वैदिक आचारोंका पालन होता है एवं सदाचार, सतीधर्म और आध्यात्मिक तत्त्वोंका विचार रक्खा गया है ॥ ३२ ॥ और इसमें वर्णाश्रमके अनुसार कर्म्म विभाग किया गया है। इसीसे यह आर्यधर्म और इससे भिन्न अनार्य धर्म है, ऐसा हमारे शास्त्रोंका निश्चय है ॥ ३३ ॥ जो इस

† यही सर्वव्यापक सर्वजीव हितकारी सनातनधर्मका लक्षण है।

यैवं सदाचारवर्णाश्रमधर्मानुगामिनी।
सर्वस्वं मनुते वेदं साऽऽर्य्यजातिरिति स्मृतिः॥ ३४॥
एतद्भिन्नाऽनार्य्यजातिः सदाचारादिवर्जिता।
अन्यदप्येवमेवोह्यं नोच्यते विस्तृतेर्भयात्॥ ३५॥
अङ्गानि त्रीणि धर्मस्य दानं यज्ञस्तपस्तथा।
स्कन्धरूपाणि धर्मस्य शाखिनः पावनानि हि॥ ३६॥
दानञ्चापि त्रिधा प्रोक्तं विद्याऽर्थाऽभयदानतः।
तत्रापि गुणभेदेन नवधा दानमीर्यते॥ ३७॥
एवं तपस्त्रिधा ज्ञेयं कायिकं वाचिकं तथा।
मानसञ्चाथ गुणतः प्रत्येकं त्रिविधं पुनः॥ ३८॥
यज्ञधर्मविभेदास्तु मुनीनां बहवो मताः।
कर्मज्ञानोपासनाख्या भेदा मुख्यास्त्रयः स्मृताः॥ ३९॥
कर्मयज्ञस्य षड् भेदा नित्यं नैमित्तिकं तथा।
काम्यमाध्यात्मिकं चैवाऽऽधिदैवञ्चाधिभौतिकम्॥ ४०॥

प्रकारसे सदाचार और वर्णाश्रमधर्मका अनुसरण करती हो एवं वेदको ही अपना सर्वस्व समझती हो, स्मृतिके मतसे वही आर्य्य जाति है॥ ३४॥ इससे भिन्न अनार्य्य जाति है जो सदाचारसे रहित है। इसी प्रकार अन्य बातें भी जान लेनी चाहिये जो विस्तारके भयसे यहां पर नहीं कही जा सकतीं॥ ३५॥ धर्मरूपी वृक्षके पवित्र स्कन्धस्वरूप दान, यज्ञ और तप इस प्रकारसे तीन अङ्ग हैं॥ ३६॥ दान भी तीन प्रकारके होते हैं। विद्यादान, अर्थदान और अभय दान। इनमेंसे हर एककी सात्त्विक, राजसिक और तामसिक गुण-भेदानुसार गणना करनेसे दान सब मिलकर नौ प्रकारका होता है। ॥३७॥ इसी प्रकारसे तप भी त्रिविध होता है, यथा—कायिक, वाचिक और मानसिक। इनमेंसे हर एक सात्त्विकादि गुण भेदानुसार त्रिविध होनेके कारण सब मिलाकर तप भी नौ प्रकारका होता है। ॥ ३८॥ यज्ञ धर्मके भेद मुनियोंके मतसे अनेक हैं, किन्तु उनमें कर्म-यज्ञ, उपासना-यज्ञ और ज्ञानयज्ञ ये ही तीन मुख्य कहे गये हैं॥ ३९॥ कर्म यज्ञके छः भेद हैं, यथा—नित्य, नैमित्तिक,

सत्त्वादिगुणयोगेन भेदास्तत्रापि पूर्ववत्।
अतोऽष्टादशधा कर्म प्रत्येकं गुणयोगतः ॥ ४१ ॥
तथैवोपासनायज्ञो मुनिभिर्बहुधा मतः।
परं मुख्यप्रभेदास्तूपासनापद्धतेरिमे ॥ ४२ ॥
उपास्तिर्ब्रह्मणस्त्वाद्या द्वितीया सगुणस्य च।
तृतीया स्मर्यते लीलाविग्रहोपासना बुधैः ॥ ४३ ॥
चतुर्थी पितृदेवर्षिगणानामस्त्युपासना।
अन्तिमा क्षुद्रदेवानां प्रेतादीनां विधीयते ॥ ४४ ॥
अन्येऽपि तस्याश्चत्वारो भेदाः साधनपद्धतेः।
तत्रादिमो मन्त्रयोगः स्थूलध्यानैकसाधनः ॥ ४५ ॥
द्वितीयो हठयोगः स्याज्ज्योतिर्ध्यानैकसाधनः।
लययोगस्तृतीयोऽसौ बिन्दुध्यानविधानकः ॥ ४६ ॥
राजयोगोऽन्तिमस्तत्र ब्रह्मध्यानं विधीयते।
भेदा नवानामप्येषां गुणतः सप्तविंशतिः ॥ ४७ ॥

काम्य, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ॥ ४० ॥ पूर्ववत् सात्त्विकादि गुण भेदानुसार हर एक कर्म तीन तीन प्रकारका होनेसे सब कर्म अठारह प्रकारके हैं ॥ ४१ ॥ इसी तरह मुनियोंने उपासना-यज्ञ भी अनेक प्रकारके कहे हैं; परन्तु उपासना पद्धतिके मुख्य भेद निम्न लिखित हैं ॥ ४२ ॥ पहिली ब्रह्मोपासना, दूसरी सगुणोपासना, तीसरी अवतारोपासना, चौथी पितृगण, देवगण और ऋषिगणकी उपासना एवं पांचवीं प्रेतादि क्षुद्र देवोंकी उपासना विज्ञ पुरुषोंने कही है ॥ ४३—४४ ॥ इनके अतिरिक्त उपासनाकी साधनपद्धतिके और भी चार भेद हैं। उनमें प्रथम मन्त्रयोग है, जिसका साधन स्थूल ध्यानसे होता है। दूसरा हठयोग है, जिसका साधन ज्योतिके ध्यानसे होता है। तीसरा लय योग है, जिसमें बिन्दु ध्यान करनेकी विधि है और चौथा राजयोग है, जिसमें ब्रह्मका ध्यान किया जाता है। इस प्रकारकी नवविध उपासनाके सात्त्विकादि गुणानुसार २७ भेद हैं ॥ ४५—४७ ॥

श्रवणं मननञ्चैव निदिध्यासनमेव च ।
त्रिधैवं ज्ञानयज्ञोपि नवधा स्याद्गुणाश्रयात् ॥ ४८ ॥
इत्यन्वशासुर्धर्मस्य मुख्यान् भेदानशेषतः ।
चतुर्विंशतिसंख्याकान् मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ४९ ॥
एतेषामपि धर्माङ्गभेदानां गुणभेदतः ।
भेदा द्विसप्ततिर्भूयो भवन्तीति विभाव्यताम् ॥ ५० ॥
एषु जीवहितायैकमप्यङ्गं यद्यनुष्ठितम् ।
व्यष्टिबुद्ध्या नरैरत्र यज्ञ इत्युच्यते तदा ॥ ५१ ॥
समष्ट्या सर्वजीवानां हिताय यदनुष्ठितम् ।
एकञ्चापि तदा तच्च महायज्ञ इतीर्यते ॥ ५२ ॥
सत्त्वेन सेवितं ह्येकमप्यङ्गं पूर्णरूपतः ।
प्रापयत्येकमप्येतन्नरं मुक्तिपदं क्षणात् ॥ ५३ ॥
यथा स्फुलिंगश्चैकोपि विश्वन्दहति सेन्धनः ।
एवं दहत्येकमङ्गमपि कर्माणि सर्वशः ॥ ५४ ॥

ज्ञान यज्ञ भी श्रवण, मनन और निदिध्यासन इस प्रकारसे त्रिविध हैं और हरएक सात्त्विकादि गुण भेदानुसार त्रिविध होनेसे ज्ञानयज्ञ नौ प्रकारका कहा जाता है ॥ ४८ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने इस प्रकारसे धर्मके सम्पूर्ण भेदोंमेंसे मुख्य २४ भेद बताये हैं। धर्माङ्गोंके इन २४ भेदोंके सात्त्विकादि गुणानुसार ७२ भेद होते हैं, यह समझ लेना चाहिये ॥ ४९—५० ॥ यदि मनुष्य जीवके हितके लिये व्यष्टि बुद्धि अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिके कल्याणके विचारसे इनमेंसे एक भी अङ्गका अनुष्ठान करे, तो उसे यज्ञ कहते हैं। और समष्टि बुद्धिसे सब जीवोंके हितके लिये यदि मनुष्य इनमेंसे किसी एकका अनुष्ठान करे, तो उसे महायज्ञ कहते हैं ॥ ५१—५२ ॥ सात्त्विक भाव रखकर इनमेंसे एक भी अङ्गका यदि पूर्णरूपसे पालन किया जाय, तो वह मनुष्यको क्षणमात्रमें मुक्तिपदको पहुंचा सकता है ॥ ५३ ॥ जैसे एक ही चिनगारी इन्धनयुक्त होनेसे समस्त विश्वको जला देती है, वैसा धर्मका एक ही अङ्ग सब

अहिंसाज्ञानयोगादिधर्मोपाङ्गाश्रयेण ह ।
जगत्यां बौद्धधर्मोऽपि प्रथितः प्रचलिष्यति ॥ ५५ ॥
तथा द्वीपान्तरेष्वेवं केतुमालादिषु कचित् ।
वर्षेषु सत्यता स्वार्थत्यागिता च गुणादरः ॥ ५६ ॥
ज्ञानार्जनस्पृहा नित्यं नियमानाञ्च पालनम् ।
इमाः सर्वा भविष्यन्ति प्रशस्ता धर्मवृत्तयः ॥ ५७ ॥
यासामालम्बनादेव पाश्चात्याः परमोन्नताः ।
माननीयत्वमेष्यन्ति जगत्यां सुप्रतिष्ठिताः ॥ ५८ ॥
पितॄणां गुरुवृद्धानां शुश्रूषा राजभक्तता ।
धैर्यञ्च ब्रह्मचर्यञ्च क्षात्रधर्मानुरागिता ॥ ५९ ॥
इत्यादिकतिचिद्धर्मवृत्तिबाहुल्यसेवनात् ।
प्रख्यास्यति जयप्राणो देशः स्वल्पोपि भूतले ॥ ६० ॥
अत एवान्यदेशीयाः परोत्कर्षासहिष्णवः ।
अर्चिष्यन्ति तथाऽप्येनं केतुमालादिवासिनः ॥ ६१ ॥
तदैवं प्रतिपद्यध्वे विमृश्येत क्षणं यदि ।
ता धर्मवृत्तयोऽप्यस्मद्धर्म्मोपाङ्गानि सन्ति हि ॥ ६२ ॥

कर्मोको भस्म कर देता है ॥ ५४ ॥ धर्मके अहिंसा और ज्ञान योगादि उपाङ्गोंका ही आश्रय करनेसे संसारमें बौद्ध धर्म प्रसिद्ध होकर फैलेगा ॥ ५५ ॥ इसी तरह कहीं कहीं केतुमालादि द्वीपान्तरोंमें भी सत्यता, स्वार्थत्यागिता, गुणग्राहकता, ज्ञानसम्पादनकी इच्छा, नित्य नियमोंका पालन ये सब प्रशस्त धर्म वृत्तियां उदित होंगी ॥ ५६–५७ ॥ जिनके अवलम्बनसे पश्चिमी लोग संसारमें भलीभांति प्रतिष्ठित और अत्यन्त उन्नत होकर माननीय बनेंगे ॥ ५८ ॥ इनके अतिरिक्त माता पिता और वृद्ध गुरुजनोंकी सेवा, राजभक्ति, धैर्य, ब्रह्मचर्य, क्षात्रधर्ममें अनुराग इत्यादि कई एक धार्मिक वृत्तियोंका अधिक अभ्यास करनेसे छोटा भी जयप्राणदेश पृथ्वीमें प्रसिद्ध हो जायगा। अतएव दूसरोंका उत्कर्ष सहन न करनेवाले अन्यदेशीय केतुमलादवासी उस देशके निवासियोंका आदर करने लगेंगे ॥ ५९–६१ ॥ अतः क्षणमात्र विचार किया जाय, तो सिद्ध होगा कि, उक्त

कानि कस्येति कथ्यन्ते धर्म्मोपाङ्गानि तत्त्वतः।
तपसो मानसस्याहुः सत्यं वै मुनिसत्तमाः॥ ६३॥
तथा कलिप्रधानस्य दानस्य स्वार्थत्यागिता।
पितृपूजोपासनायाः क्षात्रं कर्म तु कर्मणः॥ ६४॥
समष्टिरूपेणैतानि देशजात्यर्थकानि चेत्।
महायज्ञोपाङ्गभावं भजन्तीति विभाव्यताम्॥ ६५॥
अवस्थाभेदतश्चैका धर्मस्य वृत्तिरास्वपि।
भवेद्विभिन्नधर्माङ्गोपाङ्गमित्यपि बुध्यताम्॥ ६६॥
मनोवृत्त्या सह स्वार्थत्यागः सम्बध्यते यदा।
तपसः खलु जानीहि तमुपाङ्गं तदा मुने॥ ६७॥
त्यागोऽसौ चेत्प्रकाश्येत यशोऽर्थे दानिना स्वयम्।
तदा स्याद्दानधर्मस्योपाङ्गमेव न संशय॥ ६८॥
एवं विज्ञानवित्कश्चिद्यदि पश्येत् समाहितः।
तदा निश्चिनुयादस्मद्धर्मस्योत्तमतां क्षणात्॥ ६९॥

धर्म-वृत्तियाँ हमारे धर्मकी उपाङ्ग ही हैं॥ ६२॥ अब धर्मके किस अङ्गके कौनसे उपाङ्ग हैं, सो सात्त्विक रीतिसे कहे जाते हैं। हे मुनिश्रेष्ठो! मानसिकतपका उपाङ्ग सत्य है। कलिकालके विचारसे प्रधान धर्माङ्ग दानका उपाङ्ग स्वार्थत्याग है। उपासनायज्ञका उपाङ्ग पितृपूजा है। कर्मयज्ञका उपाङ्ग क्षात्रधर्म है। समष्टि रूपसे देश और जातिके लिये किये जाते हों, तो येही उपाङ्ग महायज्ञके भावको प्राप्त होते हैं ऐसा समझना चाहिये॥ ६३-६५॥ यहां पर यह भी समझ लेना चाहिये कि, अवस्थाभेदसे धर्मकी एक ही वृत्ति विभिन्न धर्माङ्गकी उपाङ्ग बन जाती है॥ ६६॥ मनोवृत्तिके साथ जब स्वार्थत्यागका संबन्ध हो जाता है, तब हे, मुने! उसे निश्चयसे तपका ही उपाङ्ग जानो॥ ६७॥ दानी यदि वही त्याग यशकी इच्छासे स्वयं प्रकट करे, तो इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं कि, वह त्याग दान धर्मका उपाङ्ग होगा॥ ६८॥ इस प्रकारसे कोई विज्ञानवेत्ता यदि सावधान होकर देखे, तो वह हमारे धर्मकी उत्तमताका क्षणमात्रमें निश्चय कर लेगा॥ ६९॥ पृथ्वीपर जुदे जुदे

भूमौ विभिन्नधर्माणामाचार्याः सर्व एव हि।
ते सनातनधर्माङ्गसाहाय्यं प्रतिपेदिरे ॥ ७० ॥

धृतिर्दानं क्षमाऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो धर्मसामान्यवृत्तयः ॥ ७१ ॥

एताः सर्वान्यधर्मेषु सर्वास्वखिलजातिषु।
सर्वमर्त्यसमाजे च व्याप्ताः सन्तीति मन्यताम् ॥ ७२ ॥

अत एवास्य धर्मस्य गरीयस्त्वं सुसिद्ध्यति।
सर्वधर्मप्रसविता ततश्चैषोऽत्र गीयते ॥ ७३ ॥

यं पृथक् धर्मचरणाः पृथक् धर्मफलैषिणः।
पृथक् धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥ ७४ ॥

इति श्रीसंन्यासगीतायां साधारणधर्म्मनिरूपणं नाम
द्वितीयोऽध्यायः।

धर्मोंके सभी आचार्य सनातनधर्मके किसी न किसी अङ्गकी सहायतासे अपने धर्मका प्रतिपादन करते हैं ॥ ७० ॥ धैर्य, दान, क्षमा, चोरी न करना, पवित्र रहना, इन्द्रियोंका निग्रह करना, बुद्धि बढ़ाना, विद्या पढ़ना, सत्यका पालन करना और क्रोध न करना ये तो धर्मकी सामान्य वृत्तियाँ है ॥ ७१ ॥ ये सभी अन्य धर्मोंमें, सब जातियोंमें और सब मनुष्यसमाजमें व्याप्त हैं, ऐसा मानना ही होगा ॥ ७२ ॥ इसीसे इस सनातनधर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध होती है और इससे सब धर्मोंका यह जनक है ऐसी प्रसिद्धि है ॥ ७३ ॥ विभिन्न धर्मोंका आचरण करने वाले और विभिन्न धर्मोंके फलोंकी इच्छा करने वाले विभिन्न धर्मोंमे जिसकी पूजा करते हैं, उस धर्मस्वरूप परमात्माको प्रणाम है ॥ ७४ ॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यास गीताका साधारण धर्म्मनिरूपण नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

जैमिनिरुवाच ।

व्याख्यातं कृपया ब्रह्मन् धर्मतत्त्वविदा त्वया ।
साङ्गं धर्मं समाकर्ण्य सञ्जाताश्छिन्नसंशयाः ॥ १ ॥
अथाख्याहि मुने ! दान--धर्मतत्त्वमशेषतः ।
यस्मिन् ज्ञाते नराः सर्वे लभेरन् परमं हितम् ॥ २ ॥
ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वा याज्ञवल्क्यो मुनीश्वरः ।
कृपया परयाविष्टः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ।

श्रूयतां दानधर्मस्य रहस्यं मुनयोऽधुना ।
त्रीण्यङ्गानीह धर्मस्य दानं यज्ञस्तपस्तथा ॥ ४ ॥
त्रिष्वप्यंगेषु धर्मस्य दानमेकं विशिष्यते ।
विशेषतः कलावेतत्प्रधानं हितसाधनम् ॥ ५ ॥
निर्विशेषतया सर्वे यतो दानेऽधिकारिणः ।
तस्माद्दानं प्रशंसन्ति सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ६ ॥

महर्षि जैमिनी बोले हे धर्मतत्त्वके जाननेवाले ब्रह्मन् ! आपने कृपा करके अंगोंसहित धर्म कहा उसको सुनकर हमारे सन्देह मिट गये ॥ १ ॥ अब हे मुने ! दान धर्मके तत्त्वको सम्पूर्णरूपसे कहिये, जिसके जान लेनेसे सभी मनुष्योंका कल्याण होगा ॥ २ ॥ ऋषियों-का यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ याज्ञवल्क्य परमकृपालु होकर हंसते हुए बोले ॥ ३ ॥

हे मुनिगण ! अब दान धर्मका रहस्य सुनिये। धर्मके दान यज्ञ और तप इस प्रकारसे तीन अंग हैं ॥४॥ धर्मके उक्त तीनों अंगों-में प्रथम अङ्ग दान श्रेष्ठ है। विशेषतया कलियुगमें तो यही सर्व-प्रधान कल्याणका साधन है ।५॥ साधारणतया सभी दान करनेके अधिकारी हैं इसीसे सब शास्त्रोंके ज्ञातागण दानकी प्रशंसा करते हैं ॥६॥ हे मुनिगण ! अपना सम्बन्ध छोड़कर जो कुछ

स्वसम्बन्धमपाकृत्य यदन्यस्मै प्रदीयते।
तद्दानमिति सामान्यलक्षणं मुनयो विदुः ॥ ७ ॥
तत्रापि दत्तवस्तुभ्यः सम्बन्धं मानसं स्वतः।
सर्वथा क्षपयेद्योऽसौ स वदान्यशिरोमणिः ॥ ८ ॥
अतीव दुष्करन्त्वेतत्कर्म प्रोक्तं मनीषिभिः।
यदपाक्रियते चित्तसम्बन्धश्चिरसम्भृतः ॥ ९ ॥
सुसाधितं सर्वमेव दानिना तेन भूतले।
सुपात्रे दत्तवस्तुभ्यश्चित्तं यस्य निवर्तते ॥ १० ॥
अन्ये धर्माः कष्टसाध्यास्तपोयज्ञादयः क्षितौ।
बहुश्रमेण सिद्ध्यन्ति मनोवाक्कायनिग्रहात् ॥ ११ ॥
सुखसाध्यं दानमेव सर्वधर्मेषु कीर्तितम्।
दीयते देयमुत्थाप्य हस्तेनेयान् श्रमस्त्विह ॥ १२ ॥
दानमर्थस्य विद्याया अभयस्येति च द्विजाः।
इत्येवं त्रिविधं दानं मया पूर्वमुदीरितम् ॥ १३ ॥

दूसरोंको दिया जाता है, उसे दान कहते हैं और दानका यही सामान्य लक्षण है ॥ ७ ॥ फिर भी दी हुई वस्तुसे जो अपना मानसिक सम्बन्ध सब प्रकारसे छोड़ देता है, वह दानियोंमें श्रेष्ठ है ॥८॥ परन्तु चिरकालसे संलग्न चित्तके सम्बन्धको छोड़ देना, यह कर्म अत्यन्त कठिन है, ऐसा विद्वानोंका मत है ॥ ९ ॥ सुपात्रमें दान की हुई वस्तुसे जिसका चित्त हट जाय, उस दानी पुरुषको पृथ्वीपर जो कुछ साधना था, वह उसने साध लिया ऐसा जानना चाहिये ॥ १० ॥ पृथ्वीपर तप यज्ञादि जो अन्य धर्म हैं, वे अत्यन्त कष्टसाध्य हैं जो अत्यन्त परिश्रमसे मन, वाणी और शरीरका निग्रह करनेपर साध्य होते हैं; परन्तु सब धर्मोंमें दान ही सहज साध्य कहा गया है; क्योंकि इसमें देनेकी वस्तु हाथ उठाकर दे दी जाती है, केवल इतनाही श्रम होता है ॥ ११-१२ ॥ हे द्विजो ! अर्थदान विद्यादान और अभय दान इस प्रकारसे त्रिविध दान होता है, यह मैं पहले कह चुका हूं ॥ १३ ॥ जब सद्गुरु

भवत्यभयदानं तद् गुरुणा करुणावशात् ।
संसारभयनाशाय सम्यग् यदुपदिश्यते ॥ १४ ॥

संसारभयसंत्रस्तजीवानामबिभीषताम् ।
शक्ताः सद्गुरवस्तत्र भयं मुख्यं व्यपोहितुम् ॥ १५ ॥

यस्मात्सर्वेऽभयं दातुं नैव शक्ताः क्षितौ जनाः ।
तस्मादनुपयोगित्वाद्दानमेतदुपेक्ष्यते ॥ १६ ॥

विद्यादानञ्चार्थदानमात्रोच्येते ततोऽधुना ।
तत्र पूर्वं ब्रह्मदानापरपर्य्यायमुच्यते ॥ १७ ॥

कायेन मनसार्थेन विद्यावृद्धिमिहेच्छता ।
यद्दानं दीयते सम्यक् ब्रह्मदानं तदीर्य्यते ॥ १८ ॥

स्थापनं पाठशालानां महाविद्यालयस्य च ।
दुर्लभप्राक्तनानर्घ्यपुस्तकानां प्रकाशनम् ॥ १९ ॥

तथा विरचनं नव्यग्रन्थानामुपयोगिनाम् ।
दानञ्च पुस्तकादीनां विद्यार्थिभ्योऽथ पाठनम् ॥ २० ॥

करुणायुक्त होकर संसारका भय नाश करनेके लिये उत्तम उपदेश करते हैं, तब उसे अभय दान कहते हैं ॥ १४ ॥ संसारभयसे व्याकुल और अभय चाहनेवाले जीवोंके मुख्य भयका नाश करनेके लिये सद्गुरु ही समर्थ हैं ॥ १५ ॥ परन्तु पृथ्वीपर सभी लोग अभय दान देनेमें समर्थ नहीं हैं अतः सर्वसाधारणके पक्षमें इसकी विशेष उपयोगिता न होनेके कारण इस दानके विषयमें साधारणतः उपेक्षा की जाती है ॥१६॥ विद्यादान एवम् धन दानकी यहाँपर आलोचना की जाती है। दोनोंमें प्रथम विद्यादान है और इसीको ब्रह्मदान भी कहते हैं ॥ १७ ॥ काया, मन और धन द्वारा विद्यावृद्धिकी इच्छासे जो दान दिया जाता है, उसे उत्तम ब्रह्मदान कहते हैं ॥ १८ ॥ पाठशाला और महाविद्यालयोंकी स्थापना करना, दुर्लभ और बहुमूल्य प्राचीन पुस्तकोंको प्रकाश करना ॥ १९ ॥ नवीन उपयोगी ग्रन्थोंका निर्माण करना, विद्यार्थियोंको पुस्तकोंका दान करना, पढ़ाना, सार्वजनिक कल्याणकी बुद्धिसे लेखनशैलियोंका

एवं लेखनशैलीनां हितबुद्ध्या प्रवर्तनम्।
ज्ञेयान्येतान्यपि ब्रह्मदानान्तर्भावितानि वै ॥ २१ ॥
हस्त्यश्वरथवस्त्रान्नकन्यारत्नावनीगृहम्।
दीयते श्रद्धया यत्र चेतनाचेतनात्मकम् ॥ २२ ॥
धनैश्वर्यादिकं सर्वं दीयमानमथार्थिने।
ऋषिभिः प्रोच्यते सम्यगर्थदानमिति स्फुटम् ॥ २३ ॥
सर्वाण्येतानि दानानि गुणत्रयविभागतः।
प्रत्येकं त्रिविधानीह भवन्ति द्विजसत्तमाः ॥ २४ ॥
देशकालानुरोधेन पात्रायानुपकारिणे।
अनीप्सितयशःसौख्यं दीयते तद्धि सात्त्विकम् ॥ २५ ॥
जनः कीर्तिफलाकांक्षी तथा प्रत्युपकारधीः।
यद्दात्युपकर्त्रे च दानं तद्राजसं स्मृतम् ॥ २६ ॥
सद्देशकालपात्रादिज्ञानसन्मानवर्जितम्।
सरोषकष्टं यद्दानं तत्तु तामसमुच्यते ॥ २७ ॥

प्रचार करना ये सभी बातें ब्रह्मदानके अन्तर्गत हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ २०-२१ ॥ हाथी, घोड़ा, गाड़ी, वस्त्र, अन्न, कन्या, रत्न, भूमि, घर आदि जो श्रद्धासे दिया जाता है अर्थात् चेतन या अचेतन धन ऐश्वर्य आदि जो कुछ याचकको दिया गया हो, उसे ऋषिगण स्पष्टतया उत्तम अर्थदान कहते हैं। २२-२३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो! ये सभी दान तीन गुणोंके भेदसे प्रत्येक त्रिविध होते हैं ॥ २४ ॥ देशकाल-का विचार कर, जिसका अपने ऊपर किसी प्रकारका उपकार न हुआ हो ऐसे पात्रमें यश या सुखकी इच्छा न रखकर दान दिया जाता है, यह सात्त्विक दान है ॥ २५ ॥ कीर्तिपानेकी इच्छा करनेवाले और उपकारका बदला चाहनेकी बुद्धि रखनेवाले लोग अपने उपकारीको जो दान देते हैं वह राजसिक दान है ॥ २६ ॥ और अच्छे देश, काल एवं पात्रके ज्ञानसे तथा सम्मानसे रहित, क्रोधपूर्वक या दुःखसे जो दान दिया जाता है, उसको तामसिक दान कहते हैं ॥ २७ ॥ हे द्विजगण! सात्त्विक दानसे ही मुक्ति प्राप्त

सात्त्विकेनैव दानेन मुक्तिः सम्पद्यते द्विजाः ।
राजसेन सुखैश्वर्य्यमिहामुत्र प्रपद्यते ॥ २८ ॥
तामसेनाश्नुते दुःखं कदाचिच्च्यवतेऽप्यधः ।
तस्माद्देयं विचार्य्यैव दानं सत्त्वगुणोर्जितम् ॥ २९ ॥
क्षुद्रवस्तुप्रदानादिकर्मसामान्यमात्रतः ।
अहो मुक्तिः कथं सिद्ध्येद् दुर्लभा सा तु गीयते ॥ ३० ॥
इत्येवमनुयुञ्जीत संशयानोऽत्र कोऽपि चेत् ।
तदैवं बोधनीयोऽसौ शास्त्रतत्त्वविचक्षणैः ॥ ३१ ॥
सम्पद्यते कर्मणैव मुक्तिः स्वाचरितेन वै ।
सुनिर्णीतमिदं कर्ममीमांसायां यथायथम् ॥ ३२ ॥
कर्मैव दानमप्येतद्विश्वस्येत स्फुटं यदि ।
यथावच्छास्त्रनिर्दिष्टरीत्यैवानुष्ठितश्च चेत् ॥ ३३ ॥
तत्रापि सत्त्वसंजुष्टं तीव्रञ्चापि भवेद्यदि ।
नूनं सम्प्रापयत्येव नरं मुक्तिं न संशयः ॥ ३४ ॥

होती है। राजसिक दानसे इहलोक और परलोकमें सुख एवं ऐश्वर्य मिलता है; परन्तु तामसिक दानसे तो दुःख ही होता है। यही नहीं, किन्तु अधोगति भी प्राप्त होती है। अतः इन बातोंका विचारकर सत्त्वगुणयुक्त दान ही देना चाहिये ॥ २८-२९ ॥ क्षुद्र वस्तुके दान जैसे साधारण कर्मसे भला मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, जो बड़ी दुर्लभ कही गई है ॥ ३० ॥ इस प्रकारका कोई सन्देह कर सकते हैं, परन्तु शास्त्रतत्त्वोंके जानने वालोंको यह समझ लेना चाहिये कि, अपने किये हुए कर्मोंसे ही मुक्ति मिलती है और यह बात कर्ममीमांसामें ठीक तौरसे निश्चित की गई है। ॥ ३१-३२ ॥ दान भी एक कर्म ही है, इस बातपर यदि ठीक विश्वास किया जाय और ठीक ठीक शास्त्रोक्त रीतिसे इसका अनुष्ठान हो और वह अनुष्ठान भी तीव्र सात्त्विक भावसे युक्त हो, तो निःसन्देह ऐसा दान मनुष्यको मुक्ति प्राप्त करा सकता है ॥ ३३—३४ ॥

मुक्तिदत्वे च धर्मस्य तदङ्गञ्चापि मुक्तिदम्।
यस्यांशिनो हि यो धर्मः स तदंशेऽपि लभ्यते ॥ ३५ ॥
यथाग्नेर्दाहकत्वञ्चेद्गुणो लोकेऽवलोक्यते।
तदा तस्य स्फुलिङ्गेपि प्रत्यासन्नः स वै गुणः ॥ ३६ ॥
सद्देशकालपात्रादिसाहाय्यञ्चेत्समश्नुते।
दहत्येकः स्फुलिङ्गोऽपि वनमार्द्रमपि क्षणात् ॥ ३७ ॥
एवं धर्माङ्गमप्येकं दानञ्चेद्विधिना भवेत्।
तदा तेनाप्यश्नुवीत नरो मुक्तिं न संशयः ॥ ३८ ॥
विज्ञेयं तत्त्वमत्रेदं सर्वशास्त्रार्थनिश्चितम्।
सुगुप्तं सारभूतं च वक्ष्यमाणं मुनीश्वराः ॥ ३९ ॥
यावच्चित्तं मनुष्याणां विषयासक्तिमद्भवेत्।
तावत्तद्वृत्तयश्चान्तःकरणं क्षोभयन्त्यलम् ॥ ४० ॥
यदा स्याद्विषयासक्तिर्विलीना सुतरामिह !।
विलीयन्ते तदाप्येषां वृत्तयश्चापि सर्वशः ॥ ४१ ॥

धर्म मुक्तिदाता होनेसे उसका अंग भी मुक्तिदाता होगा, क्योंकि अंशीका जो धर्म होता है, वह उसके अंशमें भी पाया जाता है। उदाहरण स्थलपर समझ सकते हैं कि, अग्निमें दाह करनेका जो गुण सर्वत्र देखा जाता है, वही गुण अग्निकी एक चिनगारीमें भी रहता है। अच्छे देश, काल और पात्रकी यदि सहायता पा जाय तो वह एक ही चिनगारी हरे भरे बनको भी क्षणमात्रमें भस्म कर देगी ॥ ३५-३७ ॥ इसी प्रकारसे धर्मका एक ही अंग दान, यदि विधिपूर्वक किया जाय, तो उससे भी मनुष्य निःसन्देह मुक्ति पा सकता है ॥ ३८ ॥ हे मुनीश्वरों ! अब मैं सब शास्त्रार्थोंसे निश्चित, बहुत गुप्त और सार स्वरूप जो तत्त्व कहूँगा, वह यहांपर जान लेने योग्य है ॥ ३९ ॥ जबतक मनुष्योंका चित्त विषयोंमें आसक्त रहता है तबतक उनकी वृत्तियां अन्तःकरणको क्षुब्ध करती हैं और जब विषयासक्ति नष्ट हो जाती है, तब उनकी वृत्तियां भी विलीन हो जाती हैं। वृत्तियोंका नाश होनेसे मनकी चंचलता क्षणमात्रमें मिट जाती है और चंचलता मिटनेसे चित्त-धारणामें

क्षीयते वृत्तिनाशे च चांचल्यं मनसः क्षणात् ।
नष्टे च चापले चित्तं धारणायां प्रवर्त्तते ॥ ४२ ॥
तदेतदेव भगवान् योगशास्त्रे सदाशिवः ।
आम्नातवाँ "श्चित्तवृत्तेर्निरोधो योग" इत्यथ ॥ ४३ ॥
आज्ञापयच्च मुदितः परमेण समाधिना ।
"द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं तदा" स्यादिति चाग्रतः ॥ ४४ ॥
नूनमेतेन संसिद्धं यत्पुमान् शंसितव्रतः ।
विषयात्मकवस्तुभ्यश्चित्तवृत्तीर्निवारयन् ॥ ४५ ॥
दद्याद्विषयभूतानि तानि वस्तूनि सर्वथा ।
तदा निश्चापलं चेतः स्थिरता लभते पराम् ॥ ४६ ॥
स्थिरेऽन्तःकरणे जाते स्यात्तच्चैतन्यदर्शनम् ।
तथात्वे च नरो मुक्तिं विन्दत्येव सदा स्थिराम् ॥ ४७ ॥
एवं चैकेनापि दानधर्मेणासाद्यते नरैः ।
सुदुर्लभाऽपि सा मुक्तिः क्षुद्रास्ताः सिद्धयः किमु ॥ ४८ ॥
यद्येकं पणमप्यन्नमल्पं सात्त्विकभावतः ।
प्रीतो ददाति पात्राय मुक्तिस्तेनाऽपि लभ्यते ॥ ४९ ॥

प्रवृत्त होता है । यही भगवान् सदाशिवने योगशास्त्रमें कहा है कि, चित्तवृत्तिके निरोधको ही योग कहते हैं । भगवान्ने प्रसन्न होकर यह आज्ञा दी है कि, परम समाधिसे द्रष्टाका स्वरूपमें अवस्थान हो जाता है ॥ ४०-४४ ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि, पवित्राचारी पुरुष यदि विषयोपभोगकी वस्तुओंसे अपनी चित्तवृत्तिको हटा कर विषयोंकी वस्तुओंका दान कर दे, तो उसके चित्तसे चञ्चलता दूर होकर वह परमस्थिरताको प्राप्त करेगा ॥ ४५-४६ ॥ अन्तःकरण स्थिर होनेसे उसे चैतन्य दर्शन होगा और ऐसा होनेपर वह सदा निश्चला मुक्तिको प्राप्त करेगा ॥ ४७ ॥ इस प्रकारसे एक दान धर्मसे ही मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ मुक्तिको पा सकता है, फिर क्षुद्र सिद्धियोंकी तो बात ही क्या है ॥ ४८ ॥ यदि एक ही पैसा या थोड़ासा अन्न सात्त्विक भावसे और प्रसन्न होकर किसी सुपात्रको दिया जाय, तो उससे भी मुक्ति मिल सकती है ॥ ४९ ॥

यदि चेद्रजसाविष्टो वितरेद्विपुलं धनम्।
ऐहिकामुष्मिकं सौख्यमश्नुते मुक्तिमत्र नो ॥ ५० ॥
शुद्धे भावेऽल्पिष्ठदानमप्यनन्तफलं भवेत्।
भावाऽशुद्धौ महद्दानमपि नालं फलाय तत् ॥ ५१ ॥
उक्तं पुरस्ताद्वो विप्रास्तामसेनैति दुर्गतिम्।
तत्राप्येतद्विजानीत तत्त्वमुक्तं यदग्रतः ॥ ५२ ॥
इहामुत्र च संसिद्धिं दातुं दानं यथेश्वरम्।
तथैतद्दुर्गतिश्चापि नरं प्रापयितुं क्षमम् ॥ ५३ ॥
दत्तं हि तामसं दानमपात्रे यत्र पापिनि।
उद्युङ्क्ते स विशेषेण तीव्रे दुष्कृतकर्मणि ॥ ५४ ॥
दातुश्च फलसम्बन्धः पारम्पर्य्यक्रमागतः।
ततोऽसौ तामसो दाता स्यात्तत्पापफलांशभाक् ॥ ५५ ॥
अथ तस्मिन् पापफले प्रवृद्धे तु शनैः शनैः।
अवश्यं दुर्गतिं याति नैव वात्र विचारणा ॥ ५६ ॥

परन्तु यदि राजसिक भावसे बहुतसा धन दान किया जाय, तो इहलोक और परलोकमें सुख प्राप्त होता है, किन्तु उससे मुक्ति नहीं होती ॥ ५० ॥ शुद्ध भावसे दिया हुआ थोड़ा भी दान अनन्त फल-प्रद है और शुद्ध भाव न होनेपर किया हुआ बड़ा भारी दान भी यथार्थ फल उत्पन्न नहीं करता ॥ ५१ ॥ हे विप्रो! यह जो पहिले कहा जा चुका है कि, तामसिक दानसे दुर्गति होती है, उसमें जो तत्त्व है सो आगे कहता हूँ, उसे आप सुनिये ॥ ५२ ॥ जो दान इहलोक और परलोककी सिद्धि देनेमें समर्थ है, वही मनुष्यको दुर्गतिमें भी पहुँचा सकता है ॥ ५३ ॥ अपात्र पापीको यदि तामसिक दान दिया जाय, तो वह दान लेने वाला तीव्र असत् कर्मकी ओर विशेषरूपसे उद्युक्त होता है ॥ ५४ ॥ परम्पराक्रमसे दाता और प्रति-गृहीताका फलसम्बन्ध रहनेके कारण दान लेनेवालेके पापफलका अंशभागी तामसिक दान देनेवाला भी होता ही है ॥ ५५ ॥ फिर वही पाप फल क्रमशः बढ़नेपर दाता दुर्गतिको प्राप्त होता है, इसमें कहना ही क्या है ? ॥५६॥ इसलिये जिन लोगोंको दान धर्मकी साधना

सिषाधयिषुभिस्तस्माद्दानधर्मं नरैरिह ।
सत्त्वादिगुणमाहात्म्यं विस्मर्तव्यं न कर्हिचित् ॥ ५७ ॥
विद्यालयस्थापनादिब्रह्मदानात्मकान्यथ ।
धनरत्नाद्यर्थदानरूपाण्युत्सर्जनानि च ॥ ५८ ॥
देशकालप्रयुक्तानि योग्यपात्रार्पितानि चेत् ।
संसृज्यन्ते सत्फलेन नान्यथा तु कदाचन ॥ ५९ ॥
तस्मात्सावहिताः सर्वे निशामयत साम्प्रतम् ।
देशकालादिविज्ञानं व्याचक्षेऽहं पृथक् पृथक् ॥ ६० ॥
कस्मिन् देशे हि दातव्यं कुत्रैतद्वस्तु दुर्लभम् ।
क्व चाधिकफलावाप्तिर्देशे दानेन सिद्ध्यति ॥ ६१ ॥
कुत्र दानेनेश्वराज्ञा विहिता स्याद्विशेषतः ।
कस्मिंश्च देशे दानेनाऽधिकं जीवहितं भवेत् ॥ ६२ ॥
इत्येवमसकृत्सर्वं चिन्तयेयुर्यदा धिया ।
तदैवाशु प्रपद्येरन् देशज्ञानं हितप्रदम् ॥ ६३ ॥

करनी हो, उन्हें कभी सत्त्वादि गुणोंके माहात्म्यको भूलना नहीं चाहिये ॥ ५७ ॥ ब्रह्मदानस्वरूप विद्यालय स्थापन आदि और अर्थ-दान-स्वरुप धन रत्न आदिका दान देशकालानुकूल सत्पात्रमें किया हो, तो उसका फल उत्तम ही होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ५८—५९ ॥ इसलिये सावधान होकर आप सब सुनिये। मैं देश काल आदिका पृथक् पृथक् विज्ञान कहता हूं ॥ ६० ॥ किस देशमें दान देना चाहिये और दानकी वस्तु कहांपर दुर्लभ है और किस देशमें उसका दान करनेसे अधिक फलकी सिद्धि होती है, विशेषतया कहां दान देनेसे ईश्वराज्ञाके अनुकूल होगा और किस देशमें दान देनेसे अधिक जीवोंकी भलाई हो सकती है, इस प्रकारसे बुद्धिपूर्वक सब बातोंका बारंबार विचार किया जाय तभी दान सम्बन्धी हितकारी देशज्ञान शीघ्र होता है ॥ ६१—६३ ॥

एवं कदा हि दातव्यं कदैतद्वस्तु दुर्लभम् ।
कस्मिन् काले च दानेन लभ्यते विपुलं फलम् ॥ ६४ ॥
कदा दानेनेश्वराज्ञा पालनं स्याद्यथार्थतः ।
कस्मिंश्च काले दानेन बहुजीवहितं तथा ॥ ६५ ॥
इत्थं चिन्तयतो नूनं कालज्ञानमुदेत्यलम् ।
तथैवावश्यकं पात्रज्ञानञ्चात्र निशम्यताम् ॥ ६६ ॥
वितीर्णे कीदृशे दानं भूयिष्ठं फलमाप्यते ।
पात्राय कीदृशे देयं कस्यैतद्वस्तु दुर्लभम् ॥ ६७ ॥
कस्मै दानेन सौकर्य्यमीशाज्ञापालने भवेत् ।
कीदृशाय च पात्राय दानं प्राणिहितावहम् ॥ ६८ ॥
इत्येवं यो देशकालपात्रादिज्ञानपूर्वकम् ।
ददाति दानं लोके स दानसिद्धिं प्रपद्यते ॥ ६९ ॥
एवं त्रिगुणतत्त्वञ्च शास्त्रोक्तं योऽध्यवस्यति ।
असावभ्युदयं निःश्रेयसञ्चाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ७० ॥
यदा यदा मनुष्येषु देशज्ञानमुदेष्यति ।
तदाऽनावश्यकस्थाने न तैर्दानं प्रदास्यते ॥ ७१ ॥

इसी तरह कब देना चाहिये और वह वस्तु कब दुर्लभ होती है। किस समयमें दान करनेसे बहुत फल मिलता है। ॥ ६४ ॥ कब दान करनेसे ईश्वरकी आज्ञाका यथार्थ पालन होता है। किस समयके दानसे बहुतसे जीवोंका हित होता है, इस प्रकार विचार करनेसे कालज्ञान उत्पन्न होता है, ॥ ६५ ॥ इसी तरह आवश्यक पात्रज्ञानके सम्बन्धमें भी सुनिये। किस प्रकारके पात्रको दी जाय और किसको वह वस्तु दुर्लभ है, कैसे पात्रमें दान करनेसे अधिक फल होता है ॥ ६६—६७ ॥ किसे दान देनेसे ईश्वरकी आज्ञा पालनमें सुविधा होगी। किस तरहके पात्रको देनेसे वह दान प्राणियोंको हितकारी होगा ॥ ६८ ॥ इस प्रकारसे देश काल और पात्रका ज्ञान रखकर संसारमें जो दान देता है, वह दानकी सिद्धिको प्राप्त करता है ॥ ६९ ॥ इस तरह जो शास्त्रोक्त त्रिगुण तत्त्वको जानता है, वही अभ्युदय और उत्तम निःश्रेयस प्राप्त करता है ॥ ७० ॥ जब जब मनुष्योंमें देशज्ञान

यदैव कालविज्ञानं भविष्यति नरेष्विह ।
विद्यालयाद्यर्थमर्थोऽभावो न स्थास्यति क्षितौ ॥ ७२ ॥

यदा च मानसे तेषां पात्रज्ञानमुदेष्यति ।
न भविष्यन्ति वै मूर्खा ब्राह्मणास्तीर्थवासिनः ॥ ७३ ॥

यदि पात्रविचारश्च तेषां स्थास्यति चेतसि ।
न तदानीं ब्राह्मणानां दुर्गतिः समुदेष्यति ॥ ७४ ॥

नोपरंस्यति वंशोऽपि गुरूणाञ्च पुरोधसाम् ।
विद्याज्ञानतपोभ्यासैर्न पतिष्यंति ते द्विजाः ॥ ७५ ॥

नापि ते भ्रंशयिष्यंति यजमानाँश्च सद्व्रतेः ।
त्रायते हि यतः पात्रं नरके पतनान्नरम् ॥ ७६ ॥

इत्येवं मन्निगदितमविचार्यैव चेतसा ।
दानं यद्दीयते तस्मात्त्वदानं सुतरां वरम् ॥ ७७ ॥

यतो दत्तेनापि तेन न स्याच्छ्रेयो नृणामिह ।
स्वदेशस्य स्वजातेर्वा समष्टिव्यष्टिरूपतः ॥ ७८ ॥

का उदय होगा, तब उनके द्वारा अनुचित स्थानमें दान नहीं दिया जायगा ॥ ७१ ॥ जब मनुष्योंको कालज्ञान हो जायगा, तब पृथ्वीमें विद्यालय आदिके लिये अर्थाभाव नहीं रहेगा ॥ ७२ ॥ जब उनके मनमें पात्रज्ञान उदित होगा, तब तीर्थके ब्राह्मण कभी मूर्ख नहीं होंगे ॥ ७३ ॥ जब उनके मनमें पात्रका विचार रहेगा, तब कभी ब्राह्मणोंकी दुर्गति नहीं होगी ॥ ७४ ॥ गुरु—पुरोहितोंका वंश नष्ट नहीं होगा और द्विज विद्या, ज्ञान और तपके अभ्याससे नहीं गिरेंगे ॥ ७५ ॥ फिर वे यजमानोंको सद्गतिसे च्युत नहीं होने देंगे, क्योंकि पात्र ही मनुष्यको नरकमें गिरनेसे बचाता है ॥ ७६ ॥ यह जो मैंने कहा, उसका मनमें विचार न कर जो दान दिया जाता है, उससे तो दान न देना ही अधिक उत्तम है * ॥ ७७ ॥ क्योंकि ऐसा दान देनेसे भी समष्टि या व्यष्टि रूपसे स्वदेश अथवा

---

* ग्रन्थकारका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि, सात्त्विक दान ही देना सर्वदा दाताका कर्तव्य होना चाहिये ।

न चाप्यत्रोन्नतिस्तस्य स्वधर्मेपि विजृम्भते।
तस्माच्छास्त्रोक्तरीत्यैव दद्याद्दानं समाहितः॥ ७९ ॥
धरातले यावदत्र यथावद्विधिना नराः।
नाऽभ्यसेयुर्वितरितुं तावन्नाऽऽशा समुन्नतेः॥ ८० ॥
सर्वेभ्यश्चान्यदेशेभ्यो भारते हि निरन्तरम्।
संख्यातीतं देयवित्तं न च नो दीयते नरैः॥ ८१ ॥
यदि तत्तामसेनैव भावेन हि वितीर्यते।
आश्लिष्यन्ते पुमांसो हि तत एव विपत्तिभिः॥ ८२ ॥
तत एव च देशोऽयमधिकं प्रच्यविष्यते।
तस्माद्भाव्यं सदा दात्रा देशकालादिदर्शिना॥ ८३ ॥
इति वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोहं मुनीश्वराः।
माहात्म्यं दानधर्मस्य किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥ ८४ ॥

जैमिनिरुवाच।

धर्माङ्गस्य द्वितीयस्य तपसस्तत्त्वमुत्तमम्।
श्रावयित्वा कुरुष्वास्मान् कृतकृत्यान् कृपानिधे !॥ ८५ ॥

स्वजातिके मनुष्योंका कुछ भी कल्याण नहीं होता॥ ७८॥ न उसकी इस लोकमें उन्नति ही होती है और न स्वधर्मका पालन ही होता है इसलिये जब दान देना हो तब सावधानताके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे ही देना चाहिये॥ ७९॥ पृथ्वीपर यथाविधि दान करनेको जबतक मनुष्य नहीं सीखेंगे तबतक उन्नतिकी आशा नहीं है॥ ८०॥ सब देशोंकी अपेक्षा भारतमें ही मनुष्य असंख्य धनका दान करते हैं॥ ८१॥ परन्तु वही दान तामसिक भावसे दिया जायगा इसीसे मनुष्य विपत्तियोंसे घिर जायँगे॥ ८२॥ और इसी कारणसे यह देश अधिक दुर्दशाग्रस्त होगा। इसलिये दाताको देश काल और पात्रका जाननेवाला होना चाहिये। हे मुनीश्वरो! आपने मुझसे जो पूछा वह दान धर्मका माहात्म्य मैंने सम्पूर्णरूपसे कह दिया। अब पुनः आप क्या सुनना चाहते हैं?॥ ८३-८४॥

महर्षि जैमिनि बोलेः—हे करुणासागर! धर्मके द्वितीय अङ्ग तपके

याज्ञवल्क्य उवाच।

कर्म चोपासना ज्ञानं यथैतत्साधनत्रयम्।
प्रधानञ्चोत्तमञ्चाहुर्धर्माङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥ ८६ ॥
एवं तपोपि धर्मस्य साधनं मुनयो विदुः।
बहूपयुक्तं लोकेऽस्मिन्नत्यपेक्षितमेव च ॥ ८७ ॥
शरीरचित्तयोः सर्वसौख्यं त्यक्त्वा शनैः शनैः।
तयोर्निर्द्वन्द्वधर्मित्वापादनं तप उच्यते ॥ ८८ ॥
यथैकत्र दृढैः पाशैः पशोर्बद्धस्य सन्ततम्।
प्रवर्द्धन्तेऽधिकं कामवेगविक्रमशक्तयः ॥ ८९ ॥
एवं कायमनोऽक्षाणां वर्द्धते नितरां बलम्।
तपसि स्थापनादेव सुखभोगविवर्जनात् ॥ ९० ॥
श्रूयते या पुराणेषु मुनीनां शक्तिरद्भुता।
देवविस्मापिका सापि प्राप्तासीत् तपसा भुवि ॥ ९१ ॥

उत्तम तत्त्वको सुनाकर आप हमें कृतार्थ करें ॥ ८५ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्यने कहाः—सम्पूर्ण धर्माङ्गोंमें कर्म, उपासना और ज्ञान ये तीन साधन प्रधान और उत्तम कहे गये हैं ॥ ८६ ॥ इसी प्रकार तप भी धर्मका साधन है यह मुनिगण जानते हैं। संसारमें तप अत्यन्त उपयुक्त और आवश्यक है ॥ ८७ ॥ शरीर और चित्तका सब प्रकारका सुख धीरे धीरे छोड़कर दोनोंकी निर्द्वन्द्व दशा प्राप्तिको तप कहते हैं ॥ ८८ ॥ एक ही स्थानमें मजबूत रज्जुसे निरन्तर बंधे हुए पशुकी जिस प्रकार काम वेग और पराक्रम आदिकी शक्तियाँ अधिक प्रबल हो जाती हैं ॥ ८९ ॥ उसी प्रकार काया मन और इन्द्रियोंको तपमें लगा देनेसे और उनके सुख भोगका त्याग करनेसे उनका बल अत्यन्त बढ़ जाता है ॥ ९० ॥ पुराणोंमें देवताओंको भी विस्मयमें डालनेवाली मुनियोंकी जो अद्भुत शक्ति सुनी जाती है, वह उन्हें तपसे ही पृथ्वीपर प्राप्त हुई थी

लोकोत्तरं हि लोकेऽस्मिन् दिव्यं तेजो महात्मसु ।
विभाव्यतेऽधुना काले तच्चापि तपसः फलम् ॥ ९२ ॥

ब्राह्मक्षात्रविभेदेन तेजो यद्द्विविधं मतम् ।
तपसा रक्ष्यते तत्र ब्राह्मं दानेन चापरम् ॥ ९३ ॥

पतिप्रीतिकरं ह्येकं शारीरं मानसं तपः ।
आचरन्ती गतिं साध्वी सुदुष्प्रापां समश्नुते ॥ ९४ ॥

मनोवाक्कायनिर्वर्त्यं पूर्वमुक्तं तपस्त्रिधा ।
तत्रैकमाचरन्त्येके द्वे वा सर्वाणि वापरे ॥ ९५ ॥

अङ्गस्य यस्य यस्यैव तपः शक्तिः समेधते ।
बाहुल्येन तदङ्गस्य शक्तिर्भावश्च वर्द्धते ॥ ९६ ॥

यथा वाक्तपसः सिद्ध्या बहून्यन्यफलान्यपि ।
प्राप्नुयुर्वा न वा किन्तु वाचः सिद्धिस्तु जायते ॥ ९७ ॥

तपः शारीरकं देवगुरुप्राज्ञद्विजार्चनात् ।
सिद्धयेच्छौचार्जवब्रह्मचर्याहिंसादिसेवनात् ॥ ९८ ॥

॥ ९१ ॥ इस वर्तमान समयमें संसारमें महात्माओंका जो लोकोत्तर दिव्य तेज दीख पड़ता है, वह भी तपका ही फल है ॥ ९२ ॥ ब्राह्म-तेज और क्षात्रतेज इस तरहसे जो दो प्रकारके तेज हैं उनमें तपसे ब्राह्मतेजकी और दानसे क्षात्रतेजकी रक्षा होती है ॥ ९३ ॥ पतिप्रीतिकारी शारिरिक और मानसिक एक ही तपका यदि सती स्त्री आचरण करे, तो उसे अतिदुर्लभ सद्गति मिलती है ॥ ९४ ॥ मन, वाणी और कायासे किया जानेवाला तीन प्रकारका तप पहिले कहा गया है। इनमेंसे कोई एक, कोई दो और कोई तीनों प्रकारके तपका आचरण करते हैं ॥ ९५ ॥ जिसकी जिस अङ्गकी तप शक्ति बढ़ती है, उसी अङ्गकी शक्ति और भाव विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥ जिस प्रकार वाचनिक तपकी सिद्धिसे अन्यान्य अनेक फल मिलें वा न मिलें, किन्तु वाणीकी सिद्धि अवश्य होगी ॥ ९७ ॥ देव, गुरु, विद्वान् द्विजोंकी पूजा और विनीत भाव, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदिसे शारीरिक तपकी सिद्धि होती है ॥

अनुद्वेजकसत्येष्टप्रियवाक्यप्रयोगतः ।
स्वाध्यायाभ्यसनाच्चेह संसिद्ध्येद्वाङ्मयं तपः ॥ ९९ ॥
सिद्ध्येन्मानसमद्वेषाद्ब्रह्मणि प्रणिधानतः ।
तुष्टिश्रद्धाभावशुद्धिधृतिमौनाऽस्तिकत्वतः ॥ १०० ॥

इति श्री संन्यासगीतायां दानतपोधर्मनिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

जैमिनिरुवाच ।

श्रुतौ सर्वविदस्माभिः प्राणिनां हितकारकौ ।
दानधर्म्मतपोधर्म्माविदानीं श्रावयस्व नः ॥ १ ॥
त्रीण्यङ्गानि प्रधानानि यज्ञधर्म्मस्य तत्त्ववित् ।
कर्मज्ञानोपासनानि गूढं चैतद् रहस्यकम् ॥ २ ॥
यज्ज्ञानादेव वेदस्य स्वरूपज्ञानमुत्तमम् ।
काण्डत्रयात्मकस्याऽपि तत्त्वेनैवोदयेदिह ॥ ३ ॥

॥ ९८ ॥ जिससे किसीको दुःख न हो ऐसे सत्य, इष्ट और प्रिय वाक्यों-के प्रयोगसे एवं स्वाध्यायका अभ्यास करनेसे वाचनिक तप-की सिद्धि होती है ॥ ९९ ॥ अद्वेष, ब्रह्ममें प्रणिधान, तुष्टि, श्रद्धा, भाव-शुद्धि, धृति, मौन और आस्तिकतासे मानसिक तपकी सिद्धि होती है ॥ १०० ॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यास गीताका दानतपोधर्मनिरूपण नामक तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

महर्षि जैमिनि बोलेः—हे सर्वज्ञ ! हमने जीवहितकारी दानधर्म्म और तपधर्मका श्रवण किया है। अब हे तत्त्ववित् ! यज्ञ धर्मके प्रधान तीनों अङ्गोंको हमें सुनाइये अर्थात् कर्म, उपासना, ज्ञान और उनका गूढ़ रहस्य भी कहिये। जिसके जान लेनेसे काण्डत्रयात्मक वेदका उत्तम स्वरूपज्ञान होकर तत्त्व ज्ञान भी प्राप्त हो ॥ १-३ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

काण्डत्रये कर्मकाण्डमतीव गहनं स्मृतम्।
परमावश्यकं नृणां वर्तते चातिविस्तृतम्॥ ४॥
न हि कर्म विना कोपि कुत्रापि स्थातुमर्हति।
चराचरे व्याप्तमेतद् ब्रह्मेवेत्यवधार्यताम्॥ ५॥
किन्तु तत्राचरेत्तद्वै यच्छास्त्रविहितं भवेत्।
निषिद्धन्तु त्यजेद्दूराद्य इच्छेत् परमं हितम्॥ ६॥
यथाऽस्य साधनानीह स्थूलात्स्थूलतराण्यपि।
तथा सूक्ष्मतमा ह्यस्य संस्कारा बलवत्तराः॥ ७॥
यावन्ति क्रियमाणानि कर्माणि प्राकृतान्यपि।
चित्तेषु सूक्ष्मरूपेण विश्राम्यन्ति दृढं नृणाम्॥ ८॥
यथा बीजे वृक्षरूपं लीनं कश्चित्समीक्षितुम्।
प्रवर्तितोऽपि केनाऽपि क्षमते न विलोकितुम्॥ ९॥
परं बीजं तदेवाम्बुमृद्योगं लभते यदि।
तदा तस्मात् समुद्भूतो वृक्षः सर्वैरपीक्ष्यते॥ १०॥

महर्षि याज्ञवल्क्य बोलेः—तीनों काण्डोंमें कर्मकाण्ड अत्यन्त गहन है। यह बहुत विस्तृत होनेपर भी मनुष्योंको अत्यन्त आवश्यक है॥४॥ कर्मके विना कोई कहीं भी नहीं रह सकता। यह ब्रह्मकी तरह चराचरमें व्याप्त है, ऐसा जानना चाहिये॥ ५॥ परन्तु जो शास्त्र-विहित हों, उन्हीं कर्मोंका आचरण करना चाहिये और जो अपने परम कल्याणकी इच्छा रखते हों, उन्हें शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंका दूरसे ही त्याग करना चाहिये॥ ६॥ जिस प्रकार इसके स्थूलसे भी स्थूल साधन होते हैं, उसी प्रकार इसकी सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अति प्रबल अवस्था है उसे संस्कार कहते हैं॥ ७॥ जितने क्रियमाण और पहिले किये हुए कर्म होते हैं, वे सब मनुष्योंके चित्तमें सूक्ष्मरूपसे रहते हैं॥ ८॥ जैसे कोई बीजमें स्थित वृक्ष-का रूप देखनेके लिये प्रवृत्त हो तो, वह देख नहीं सकता॥ ९॥ परन्तु वही बीज यदि जल और मिट्टी पाजाय, तो उससे उत्पन्न हुआ

तथा सर्वाणि कर्माणि मनोलीनानि देहिनाम्।
अतिसौक्ष्म्यान्न शक्यन्ते स्मर्तुमज्ञैर्नरैः क्वचित्॥ ११॥
शुभाशुभानि तान्येव बलवन्तीह जन्मनि।
अन्यजन्मनि वा प्राप्य देशकालानुकूलताम्॥ १२॥
यथायोग्यं यथाशक्ति शुभान्येवाशुभानि वा।
अतर्कितान्यपीहाशु फलानि जनयन्ति हि॥ १३॥
देवत्वञ्च नरत्वञ्च जीवास्तिर्यक्त्वमेव वा।
कर्मभेदादेव लोके प्रपद्यन्ते पृथक् पृथक्॥ १४॥
स्वर्गं भूमिं दुर्गतिञ्च जड़त्वं ज्ञानितामपि।
प्राप्नुवन्तीह भूतानि कर्मणैवेति मे मतम्॥ १५॥
कर्मक्षेत्रतयैवैतद्भारतं स्तूयते क्षितौ।
अतश्चैवात्र वाञ्छन्ति जननं विबुधा अपि॥ १६॥
यच्चार्यजातिरस्त्यत्र महामहिमशालिनी।
तत्रापि मूलमत्रत्या विशिष्टा कर्मपद्धतिः॥ १७॥

वृत्त सब लोग देख लेते हैं॥ १०॥ वैसे ही प्राणियोंके मनमें सम्पूर्ण कर्म संस्काररूपसे विलीन रहते हैं और वे अति सूक्ष्म होनेसे अज्ञानी मनुष्य उनका स्मरण नहीं रख सकते॥ ११॥ वे ही बलवान् शुभ या अशुभ संस्काररूपमें स्थित कर्म इस जन्ममें या अन्य जन्ममें देशकालकी अनुकूलता प्राप्तकर अतर्कितरूपसे शीघ्रही यथायोग्य और यथाशक्ति शुभ अथवा अशुभ फल देते हैं॥१२-१३॥ कर्मभेदके अनुसार संसारमें जीवमात्र देवत्व, मनुष्यत्व और तिर्यक्त्व पृथक् पृथक् प्राप्त करते हैं॥ १४॥ स्वर्ग, भूलोक, दुर्गति, जड़ता और ज्ञानीपन यह सब कर्मसे ही प्राणिमात्र प्राप्त करते हैं, ऐसा मेरा मत है॥ १५॥ कर्मक्षेत्र होनेसे ही पृथ्वीमें भारतवर्षकी महिमा गाई जाती है और इसीसे देवता भी भारतमें जन्मग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं॥ १६॥ जो आर्य जाति यहांपर अत्यन्त प्रतापशालिनी है, इसका मूल कारण इसकी विशेष कर्मप्रणाली ही है॥ १७॥

गर्भाधानादिसंस्कारैरियं ध्वस्तमनोमला।
आजन्माऽनुष्ठितैः सद्भिः शुद्धा राजति कर्मभिः॥ १८॥
लोके तत्तत् पुण्यकर्म यद्यत्स्यात्सत्त्ववर्द्धकम्।
तमोविवर्द्धकं यद्यत्प्रोच्यते पापकर्म तत्॥ १९॥
एतयोस्तारतम्येन वैलक्षण्यं मिथो गताः।
लोकाः शास्त्रेषु विख्याता अध ऊर्ध्वं चतुर्दश॥ २०॥
विचित्रेयं कर्मशक्तिर्ययैकः सात्त्विकाश्रितः।
नीयते हि पदं मुक्तेर्नरः संशुद्धमानसः॥ २१॥
पापकर्माश्रयेणैव तमसा सुजड़ीकृतः।
क्रमशश्चानयैवाशु पात्यते दुर्गतौ परः॥ २२॥
अतोऽवश्यं मानवेन श्रेयः परममिच्छता।
अवधेयं प्रयत्नेन सत्कर्माचरणे सदा॥ २३॥
प्राचुर्य्यं कर्मणामेव ज्ञानादिभ्योऽत्र विष्टपे।
विस्तृतिः कर्मकाण्डस्य वेदे तस्मात्समीक्ष्यते॥ २४॥

गर्भाधानादि संस्कारोंसे इसके मनोमल हट गये हैं और जन्मसे ही अच्छे कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे यह जाति शुद्ध स्वरूपमें शोभा पा रही है॥ १८॥ संसारमें जो जो सत्त्वगुणके बढ़ानेवाले कर्म हों, वे पुण्यकर्म और जो तमोगुणकी वृद्धि करनेवाले हों, वे पापकर्म कहे गये हैं॥ १९॥ इन दोनोंके तारतम्यसे परस्पर वैलक्षण्यको प्राप्त होनेसे शास्त्रोंमें सात अधोलोक और सात ऊर्ध्व लोक मिलाकर चौदह लोक कहे गये हैं॥ २०॥ कर्मकी शक्ति ऐसी विचित्र है कि, सात्त्विक भावका आश्रय करनेवाले शुद्धचित्तके मनुष्यको वह मुक्तिपदको पहुँचाती है और पापकर्मका आश्रय करनेसे तमोगुणके कारण जड़भावको पहुँचे हुए मनुष्यको वही क्रमशः दुर्गतिमें गिराती है॥ २१-२२॥ अतः परमकल्याण चाहनेवाले मनुष्यको बड़े यत्नके साथ अच्छे कर्मोंका आचरण करनेके विषयमें निरन्तर अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये॥ २३॥ ज्ञानादिकी अपेक्षा इस लोकमें कर्मोंकी ही अधिकता होनेसे वेदमें भी

निरूपितास्त्रयो भेदाः शास्त्रेष्वेतस्य कर्मणः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यमिति वक्ष्यथ लक्षणम् ॥ २५ ॥

विशिष्टं यदनुष्ठाने पुण्यं नाप्नोति मानवः ।
तन्नित्यं प्रत्यवायश्चाऽकरणे यस्य निश्चितः ॥ २६ ॥

यथा सन्ध्योपासनादावकृते प्रत्यवायिता ।
कृतेऽपि नियमेनैव पुण्यं किञ्चिन्न लभ्यते ॥ २७ ॥

कृते यस्मिन् फलप्राप्तिरकृते तु न पातकम् ।
एतन्नैमित्तिकं प्रोक्तं यथा तीर्थादिसेवनम् ॥ २८ ॥

काम्यं तत् कार्यसिद्ध्यर्थं सकामो विदधाति यत् ।
यथाऽनपत्यः पुत्रेष्टियागाद्यत्रानुतिष्ठति ॥ २९ ॥

एतेऽपि च त्रयो भेदाः कथिता मुनिभिः पुरा ।
आध्यात्मिकं तथा चाधिदैविकञ्चाधिभौतिकम् ॥ ३० ॥

क्रियते यत्स्वधर्मस्य स्वदेशस्योपकारकम् ।
ज्ञानानुशीलनं यत्र ज्ञेयमाध्यात्मिकं हि तत् ॥ ३१ ॥

कर्मकाण्डका ही विस्तार देखा जाता है ॥ २४ ॥ शास्त्रोंमें ऐसे कर्मके तीन भेद कहे हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्य। इन तीनोंके लक्षण मैं कहता हूं ॥ २५ ॥ जिस कर्मका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको कोई विशेष पुण्य नहीं होता और न करनेसे प्रत्यवाय होता है, उसे नित्य कर्म कहते हैं ॥ २६ ॥ जैसे सन्ध्या न करनेसे प्रत्यवाय होता है और नियमपूर्वक करनेसे कोई विशेष पुण्य नहीं होता ॥२७॥ जिसके करनेसे फल होता है और न करनेसे पातक नहीं लगता, उसे नैमित्तिक कर्म्म कहते हैं। जैसे तीर्थयात्रासेवन आदि ॥२८॥ काम्य कर्म उसे कहते हैं, जो कोई कामना मनमें रखकर उस कार्यकी सिद्धिके लिये किया जाता है। जैसे पुत्रहीन मनुष्य पुत्रेष्टि याग आदिका अनुष्ठान करते हैं ॥ २९ ॥ पूर्वकालके मुनियोंने इसी तरह कर्म्मोंके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक रूपसे तीन भेद भी कहे हैं ॥ ३० ॥ स्वधर्म और स्वदेशके उपकारके लिये ज्ञानका जो अनुशीलन किया जाता है उसे आध्यात्मिक कर्म्म

देवानां कार्यमुद्दिश्य यत्र यागादिकं भवेत्।
तादृशं सकलं कर्म विज्ञेयं ह्याधिदैविकम्॥ ३२॥
तच्चाधिभौतिकं कर्म सर्वभूतार्थमेव यत्।
दीयतेऽन्नाऽतिथिभ्योऽन्नं भोज्यन्ते ब्राह्मणादयः॥ ३३॥
निष्कामतः कामतश्च सर्वाण्येतान्यपि द्विधा।
तदेवं कर्ममाहात्म्यं गहनञ्चातिविस्तृतम्॥ ३४॥
नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥ ३५॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्॥ ३६॥
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते॥ ३७॥
उभे सकामनिष्कामे कर्म्मणी प्रबले मते।
प्रवृत्तिमूलकं त्वाद्यं निवृत्तिमूलकं परम्॥ ३८॥

जानना चाहिये॥ ३१॥ देवताओंके कार्यका उद्देश्य रखकर जो याग आदि कर्म किये जाते हैं वे आधिदैविक कर्म्म समझने चाहियें॥ ३२॥ और प्राणिमात्रके लिये जो कर्म किया जाता है, जैसे अतिथिको अन्न देना या ब्राह्मणोंको भोजन कराना आदि, यह सब आधिभौतिक कर्म्म हैं॥ ३३॥ ये सभी कर्म निष्काम और सकाम इस प्रकारसे द्विविध हैं। इसीसे कर्म्ममाहात्म्य बड़ा गहन और विस्तृत है॥ ३४॥ आसक्ति रहित होकर, नियमपूर्व्वक, राग और द्वेष शून्य हो, फलकी इच्छा न करके जो कर्म किया जाता है वह सात्त्विक कर्म है॥ ३५॥ फलकी इच्छा करके अहङ्कारयुक्त होकर अत्यन्त आयोजनके साथ जो कर्म किया जाता है वह राजस कर्म है॥ ३६॥ प्रतिबन्धक, हानि, हिंसा और पुरुषार्थकी अपेक्षा न करके अवज्ञा पूर्वक जो कर्म आरम्भ किया जाता है वह तामस कर्म है॥३७॥ सकाम और निष्काम दोनों प्रकारके कर्म्म प्रबल कहे गये हैं। पहिला प्रवृत्तिमूलक और दूसरा निवृत्तिमूलक है॥ ३८॥ प्रथम प्रवृत्ति-

प्रवृत्तिमूलकत्वेऽपि प्रथमस्य विशेषतः।
प्रदातृत्वं ह्यभ्युदयस्य स्वर्लोकस्य चोच्यते ॥ ३९ ॥
लोकं पितृणां स्वर्गं च तद्दत्ते क्रमशः कृतम्।
तथेन्द्रादिपदं श्रेष्ठं भोगांश्चैवोर्द्ध्वलोकगान् ॥ ४० ॥
अत एव श्रुतावास्तेऽधिकं माहात्म्यमस्य हि।
एतस्यैव बलाज्जीवा यान्ति देवर्षिपितृताम् ॥ ४१ ॥
अवतारा भगवतोऽप्येवं कर्म्माश्रिता मताः।
निवृत्तिधर्म्ममूलस्य निष्कामस्य तु कर्म्मणः ॥ ४२ ॥
विलक्षणा गतिस्तात कथिता शास्त्रविस्तरे।
गतिस्तेनैव सहजा जीवन्मुक्तिश्च लभ्यते ॥ ४३ ॥
कर्म्मणो हि प्रसादेन जीवन्मुक्ता नरा अपि।
धृत्वेशस्य रताः कार्य्ये कुलालचक्रवद् वपुः ॥ ४४ ॥

मूलक होनेपर भी विशेषतया वही अभ्युदय और स्वर्ग देनेवाला कहा जाता है ॥ ३९ ॥ क्रमशः किया हुआ प्रवृत्तिमूलक कर्म पितृलोक, स्वर्ग, इन्द्रादिका श्रेष्ठ पद और ऊर्ध्व लोकोंके भोग प्राप्त कराता है, इसीसे श्रुतिमें इसीका अधिक महात्म्य वर्णन किया गया है। इसीके बलसे जीवगण देवत्व, ऋषित्व और पितृत्वको प्राप्त करते हैं ॥ ४०-४१ ॥ भगवान्के अवतार भी इसीका आश्रय करते हैं। और हे तात ! निवृत्तिधर्ममूलक निष्काम कर्मकी गति शास्त्रोंमें विलक्षण कही गई है। उसीसे सहज गति और जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ४२-४३ ॥ कर्मके ही प्रसादसे जीवन्मुक्त मनुष्य भी शरीर धारण कर कुलालके चक्रकी तरह भगवान्के कार्यमें लगे रहते हैं * ॥ ४४ ॥ संकल्प, विकल्प, जाति, आयु, भोगसमूह और प्रकृतिरूपसे कर्म्मशक्ति निश्चय पूर्वक कर्मोंमें स्थित रहती है। इसी-

---

* जीवन्मुक्तिको प्राप्त करके महात्मागण कुलालचक्र जिस प्रकार पहिले चलाई हुई गतिसे चलता रहता है, उसी प्रकार अपने प्रारब्धको भोग करते हुए वे भगवान्के कार्यमें लगे रहते हैं। इसी गतिको सहज गति कहते हैं।

संकल्पस्य विकल्पस्य जात्यायुर्भोगसंहृतेः।
प्रकृते रूपतस्तेषु कर्म्मशक्तिः स्थिता ध्रुवम् ॥ ४५ ॥
अतः सर्वप्रधानेयं दुर्ज्ञेयाऽभ्यधिकं मता।
कर्म्मणां गतिवेत्तारः सर्वज्ञाः सम्मता भुवि ॥ ४६ ॥
कर्म्मण्युपास्तौ ज्ञाने च ह्यङ्गोपाङ्गान्विताः सदा।
धर्म्माः सर्वेऽन्तर्भवन्ति ततो वेदस्त्रिकाण्डकः ॥ ४७ ॥
उपासनेशसान्निध्यप्राप्तेर्हेतुरिहोच्यते।
ब्रह्मस्वरूपज्ञानस्योपायानां वर्णनं खलु ॥ ४८ ॥
ज्ञानकाण्डे महाभागाः स्फुटमस्तीह विस्तरात्।
सच्चिदानन्दरूपस्य ब्रह्मणः समुपासना ॥ ४९ ॥
तथा सगुणमूर्त्तेश्च तस्यैव हि महर्चिषः।
लीलाविग्रहरूपस्य तस्यैव परमेशितुः ॥ ५० ॥
देवानाञ्च ऋषीणाञ्च पितॄणामपि सर्वथा।
तत्प्रत्यक्षविभूतीनामुपास्तिर्मुनिपुङ्गवाः ॥ ५१ ॥
वर्णितोपासनाकाण्डेऽस्तीत्येतदवधार्यताम्।
निम्नाधिकारिणां प्रोक्ता निम्नाऽनेका ह्युपासनाः ॥ ५२ ॥

से यह कर्मशक्ति सर्व प्रधान होनेपर भी अत्यन्त दुर्ज्ञेय है। कर्मकी गतिको जाननेवाले संसारमें सर्वज्ञ कहाते हैं॥ ४४–४६ ॥ कर्म, उपासना और ज्ञानमें धर्मके सब अंग उपांग अन्तर्भुक्त हो जानेसे वेद त्रिकाण्डक हैं॥ ४७ ॥ भगवान्का सान्निध्य प्राप्त करनेकी कारणस्वरूप उपासना कही गई है और इसमें ब्रह्मके स्वरूप साक्षात्कारके उपायोंका वर्णन है॥ ४८ ॥ हे महाभाग! सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मकी उपासनाका वर्णन ज्ञानकाण्डमें विस्तारके साथ स्पष्ट रीतिसे किया गया है॥ ४९ ॥ और उसी महान् तेजोमय ब्रह्मकी सगुण मूर्तिकी उपासना, उसी परमात्माके लीलाविग्रहरूपकी उपासना, उनकी प्रत्यक्ष विभूतियाँ देवता, ऋषि और पितृगणकी उपासना विधि, हे मुनिश्रेष्ठो॥ ५०–५१ ॥ उपासनाकाण्डमें वर्णित है, यह बात ध्यानमें रखना चाहिये। निम्नाधिकारियोंके लिये अनेक

तामसीनाञ्च शक्तीनां तस्यैव परमात्मनः ।
शरीरं योगमार्गो वै भक्तिः स्यात् प्राणरूपिका ॥ ५३ ॥
आहुस्तूपासनाकाण्डस्येदृक्तत्त्वमृषीश्वराः ।
योगः क्रियामूलकस्याद्भक्तिस्तु भावमूलिका ॥ ५४ ॥
मन्त्रो हठो लयो राजश्चतुर्धा योग ईरितः ।
भक्तिस्तु त्रिविधा प्रोक्ता गौणी रागात्मिका परा ॥ ५५ ॥
निर्गुणोपासना याऽस्ति ब्रह्मणो वेदमूर्द्धसु ।
सर्वासूपनिषत्स्वास्तेऽधिकारो न्यासिनामिह ॥ ५६ ॥
वेदस्य ज्ञानकाण्डस्तु सप्तधा परिकीर्तितः ।
सप्तानां ज्ञानभूमीनामानुकूल्येन साधवः ॥ ५७ ॥
सर्व एव यतन्तेऽत्र स्वाऽधिकारानुसारतः ।
सच्चिदानन्दरूपस्य ब्रह्मणो रूपवर्णने ॥ ५८ ॥
सर्वेषां कथनं वेदानुकूल्यमिह विन्दते ।
तत्त्वातीतं पदं तद्वद्वाङ्मनसगोचरम् ॥ ५९ ॥

निम्न श्रेणीकी उपासनाएँ कही गई हैं ॥ ५२ ॥ जो उसी परमात्माकी तामसिकशक्तियोंकी उपासना है। उपासनाका शरीर योग-मार्ग है और भक्ति उसका प्राण है ॥ ५३ ॥ महर्षियोंने उपासना-काण्डका इस प्रकार तत्त्व कहा है। योग क्रियामूलक और भक्ति-भावमूलक है ॥ ५४ ॥ मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग इस प्रकार चतुर्विध योग कहे गये हैं और गौणी, रागात्मिका एवं परा इस प्रकारसे भक्ति भी त्रिविध कही गई है ॥ ५५ ॥ ब्रह्मकी निर्गुण उपासना जो वेदोंमें और सब उपनिषदोंमें कही गई है, उसका अधिकार केवल संन्यासियोंका ही है ॥ ५६ ॥ वेद-का ज्ञानकाण्ड सप्तविध है। सभी साधुगण सात ज्ञान भूमियोंकी अनुकूलतासे अपने अपने अधिकारानुसार सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मका स्वरूप वर्णन करनेमें यत्न करते हैं ॥ ५७–५८ ॥ सबका कथन वेदके अनुकूल है। मन और वाणीसे अगोचर तत्त्वातीत जो पद है, उसको जाननेके लिये शब्द और भावकी सहायतासे सभी प्रयत्न करते हैं। हे जिज्ञासुओ ! ज्ञानके सप्तविध साधनोंके स्वतः आश्रयस्वरूप

सर्वे ज्ञातुं यतन्ते वै साहाय्याच्छब्दभावयोः ।
ज्ञानस्य साधनानान्तु सप्तानामाश्रयाः स्वतः ॥ ६० ॥
सप्त दर्शनशास्त्राणि कथ्यन्तेऽत्र बुभुत्सवः ।
शास्त्राणामन्तिमं प्रोक्तं शास्त्रं वेदान्तमुत्तमम् ॥ ६१ ॥
अत एवाऽधिकारोऽस्ति केवलं न्यासिनामिह ।
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥ ६२ ॥
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ॥ ६३ ॥
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥ ६४ ॥
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामससमुदाहृतम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीसन्न्यासगीतायां कर्म्मोपासनाज्ञान-
निरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

सप्त दर्शन शास्त्र कहे जाते हैं और उन सातों शास्त्रोंमें अन्तिम एवं उत्तम वेदान्त शास्त्र कहा गया है ॥ ५९–६१ ॥ वेदान्त शास्त्रका केवल सन्न्यासियोंको ही अधिकार है । विभाग किये हुए सब संसारमें अविभक्त एक अव्ययभाव जिसके द्वारा दिखाई देता है, वह सात्त्विक ज्ञान है । जो ज्ञान संसारके पदार्थोंको पृथक् पृथक् रूपसे दिखाता है और नाना प्रकारके पृथक् पृथक् भावोंका द्योतक है वह राजस ज्ञान है । जो ज्ञान मूर्खोंके समान एक कार्य्यमें आसक्ति कराता है, हेतुरहित है, सार हीन है और क्षुद्र है वह तामस ज्ञान कहलाता है ॥ ६२–६५ ॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यास गीताका कर्मोपासनाज्ञाननिरूपण नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

ऋषय ऊचुः।

धर्म्मज्ञ गतिवेत्ताऽसि त्वमेव कालकर्म्मणोः।
भवतः कृपया धर्म्मरहस्यं श्रुतमुज्ज्वलम् ॥ १ ॥
अङ्गोपाङ्गयुतं गूढं श्रुतिमूलमिदं हितम्।
भवतोऽन्तिमसिद्धान्ताज्ज्ञातमस्माभिरानतैः ॥ २ ॥
निवृत्तिमार्गनिष्कामकर्म्मणोः सर्वथा क्षमः।
सन्न्यासधर्म्म एवाऽस्ति सर्व्वश्रेष्ठोऽत्र भूतले ॥ ३ ॥
सन्न्यासाश्रम उक्ताँस्तान् धर्म्मांस्तत्र महाऋषे।
विहितानि च कर्म्माणि श्रावयाऽस्मानतोऽधुना ॥ ४ ॥
सन्न्यासिनां भवान् श्रेष्ठः जगतां गुरुरेव च।
उपदेष्टा भवेत् कोऽन्यस्त्वत्तोऽन्यो धर्म्मशिक्षणे ॥ ५ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

सन्न्यासधर्म्मनिर्वाहो दुर्गमः परिकीर्तितः।
अत एव त्रिकालज्ञा ऋषयो मुनयस्तथा ॥ ६ ॥
सन्न्यासग्रहणे सर्वे सङ्कोचं चक्रिरे सदा।
अतो वर्णगुरुर्विप्रः सन्न्यासी तद्गुरुः स्मृतः ॥ ७ ॥

ऋषिगण बोलेः-हे धर्मज्ञ ! आप ही काल और कर्मकी गति जानते हैं। आपकी कृपासे अङ्ग उपाङ्गों सहित उज्वल श्रुतिका मूलस्वरूप और परम हितकारी धर्मका रहस्य हमलोगोंने सुना है। आपके अन्तिम सिद्धान्तसे हम विनीतोंको यह ज्ञात हुआ कि, निवृत्ति मार्ग और निष्काम कर्मके योग्य एक सन्न्यास धर्म ही इस पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ है ॥ १-३ ॥ हे महर्षे ! सन्न्यासाश्रममें कौनसे धर्म और कर्म कहे गये हैं, उन्हें इस समय हमें सुनाइये ॥ ४ ॥ आप जगद्गुरु और सन्न्यासियोंमें श्रेष्ठ हैं। आपसे बढ़कर धर्मशिक्षा देनेमें दूसरा कौन उपदेष्टा हो सकता है ? ॥ ५ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्यने कहाः—सन्न्यासधर्म्मका निर्वाह अत्यन्त कठिन हो गया है। इसलिये त्रिकालज्ञ ऋषि मुनि भी ॥ ६ ॥ संन्यास ग्रहण करनेमें सभी सदा संकोच करते हैं। वर्ण गुरु ब्राह्मण

विप्राणामेव तत्राऽस्ति सन्न्यासेऽधिकृतिः शुभा।
अवस्थायां चतुर्थ्यां या सततं श्रुतिसम्मता ॥ ८ ॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९ ॥
ब्राह्मणेषु तु विद्वाँसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ १० ॥
तच्छ्रुत्वा विज्ञवर्य्याणां मुनीनां तत्र तस्थुषां।
ऋषीणाञ्च विचारोऽभूत् प्रश्नो नाऽन्येन सम्भवेत् ॥ ११ ॥
शुकं विहाय धर्म्मेऽस्मिन् गहने तूर्द्ध्वरेतसम्।
जैमिन्याद्यास्तदा सर्वे शुकदेवं महामुनिम् ॥ १२ ॥
ऋषयः प्रार्थयामासुः जिज्ञासा क्रियतामिति।
सन्न्यासाश्रमधर्म्माणां त्वं नः प्रतिनिधिर्भव ॥ १३ ॥

शुक उवाच।

सन्न्यासाश्रमधर्म्माणां कलिकालोपयोगिनाम्।
तत्त्वं नो ब्रूहि सर्वज्ञ पितुर्यस्माच्छ्रुतं मया ॥ १४ ॥

और उनके भी गुरु संन्यासी हैं ॥७॥ अतः संन्यास ग्रहण करनेका पवित्र अधिकार ब्राह्मणोंको ही है और वह भी वेदोंके मतसे चतुर्थ-अवस्थामें है ॥ ८ ॥ भूतोंमें प्राणी श्रेष्ठ हैं और प्राणियोंमें भी बुद्धि-जीवी प्राणी श्रेष्ठ हैं। बुद्धिमान् प्राणियोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंमें विद्वान् श्रेष्ठ और विद्वानों-में कृतबुद्धि श्रेष्ठ हैं। कृतबुद्धियोंमें कर्ता श्रेष्ठ और कर्ताओंमें ब्रह्मवादी श्रेष्ठ हैं ॥ १० ॥ यह सुनकर वहां बैठे हुए विज्ञवर ऋषि मुनियोंका विचार हुआ कि, इस गहन धर्मके सम्बन्धमें ऊर्ध्वरेता शुकदेवके विना कोई प्रश्न करनेमें समर्थ नहीं है। इस कारण जैमिनी आदि ऋषिगणने महामुनि शुकदेवसे प्रार्थना की कि, आप हमारे प्रतिनिधि होकर संन्यासाश्रम धर्मके सम्बन्धमें जिज्ञासा कीजिये ॥ ११–१३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेः-हे सर्वज्ञ! कलिकालके उपयोगी संन्या-साश्रमधर्मका तत्त्व आप हमें सुनाइये। क्योंकि मैंने पिताजी

अहो दुरत्ययः कालस्तथा कालाऽनुसारिणाम् ।
धर्म्माणां साधनेनैव सुखं सामान्यप्राणिनाम् ॥ १५ ॥
कलौ धर्म्मस्यैकपादो गाम्भीर्यो नो भविष्यति ।
एतदन्यदपि श्रुत्वा भवन्तं प्रार्थयामहे ॥ १६ ॥
कलेर्निवृत्तिधर्मस्याऽप्युच्यतां रूपमीश्वर ॥ १७ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ।

महान्तोऽपि च धर्म्मज्ञा अधर्मं कुर्वते मुने ! ॥
कलिस्वभाव एवैष परिहार्य्यो न केनचित् ॥ १८ ॥
तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावात्पापकारिणाम् ।
निष्कृतिर्न हि विप्रेन्द्र ! सामान्योपायतो भवेत् ॥ १९ ॥
यः कश्चिदपि धर्म्मात्मा यज्ञं दानं करोति च ।
यः कश्चिदपि धर्म्मात्मा क्रियायोगरतो भवेत् ॥ २० ॥

के मुखसे यह सुना है ॥ १४ ॥ कि काल बड़ा कठिन है और कालानुसार धर्म-साधनके विना सामान्य प्राणियोंको सुख नहीं होता ॥ १५ ॥ कलिमें धर्मका एक ही पाद रहेगा और उसको भी गम्भीरता नहीं रहेगी । यह बात और अन्य बातें भी सुनकर हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥ १६ ॥ हे ईश्वर ! कलिकालके उपयोगी निवृत्तिधर्मके रूपको आप कहिये ॥ १७ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्य बोलेः—हे मुने ! कलिका ऐसा स्वभाव ही है कि, बड़े बड़े धर्मात्मा भी कलिकालमें अधर्माचरण करते हैं और यह विषय किसीके रोके रुक नहीं सकता ॥ १८ ॥ अतः हे विप्रेन्द्र ! इस प्रकारके पापाचारी मनुष्योंके स्वभावकी निष्कृति सामान्य उपायोंसे नहीं हो सकती * ॥ १९ ॥ कोई धर्मात्मा यज्ञ और दान करेगा या कोई धर्मात्मा क्रिया-योगमें रत रहेगा ॥ २० ॥ तो ऐसे

---

* इस वचनका सिद्धान्त यह है कि, काल—शक्तिको रोकना सम्भव तो है, परन्तु साधारण पुरुषार्थसे नहीं रुक सकती । कलिकालमें धर्मसाधन बनेगा, परन्तु असाधारण पुरुषार्थसे बनेगा ।

नरं धर्म्मरतं दृष्ट्वा सर्वेऽसूयां प्रकुर्वते।
व्रताचाराः प्रणश्यन्ति ध्यानयज्ञादयस्तथा ॥ २१ ॥
उपद्रवा भविष्यन्ति चाऽधर्म्मस्य प्रवर्त्तनात्।
असूयानिरताः सर्व्वे दम्भाचारपरायणाः ॥ २२ ॥
प्रजाश्चाल्पायुषः सर्व्वा भविष्यन्ति कलौ युगे।
उत्तमा नीचतां यान्ति नीचाश्चोत्तमतां तथा ॥ २३ ॥
राजानश्चाऽर्थनिरतास्तथा लोभपरायणाः।
धर्म्मकञ्चुकसंवीता धर्म्मविध्वंसकारिणः ॥ २४ ॥
किङ्कराश्च भविष्यन्ति शूद्राणाञ्च द्विजातयः।
धर्म्मस्त्रियं न गच्छन्ति पतयो जारलक्षणाः ॥ २५ ॥
द्विषन्ति पितरं पुत्रा गुरुं शिष्या द्विषन्ति च।
पतिञ्च वनिता द्वेष्टि कलौ पापिनि चाऽऽगते ॥ २६ ॥
वेश्यालावण्यशीलेषु स्पृहां कुर्व्वन्ति योषितः।
धर्म्मविघ्ना भविष्यन्ति स्त्रियः स्वपुरुषेषु च ॥ २७ ॥
न व्रतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वेदनिन्दकाः।
न यक्ष्यन्ति न होष्यन्ति हेतुवादैर्विनाशिताः ॥ २८ ॥

धर्मरत पुरुषको देखकर उससे कलियुगमें सभी द्वेष करेंगे। इस कारण ध्यान, यज्ञादि व्रताचार नष्ट होंगे ॥२१॥ कलिमें अधर्मप्रचारसे नाना प्रकारके उपद्रव होंगे। सभी दम्भाचारी और द्वेषमें निमग्न रहेंगे॥२२॥कलियुगमें सब प्रजा अल्पायु होगी, उत्तम पुरुष नीच बनेंगे और नीच उत्तमताको प्राप्त करेंगे ॥२३॥ राजन्यगण लोभी अर्थनिरत और ऊपरसे धार्मिकताका ढोंग दिखाकर धर्मका नाश करनेवाले होंगे ॥२४॥ ब्राह्मण शूद्रोंके दास बनेंगे। व्यभिचारी पुरुष धर्मपत्नीसे सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे ॥ २५ ॥ पुत्र पितासे और शिष्य गुरुसे द्रोह करेंगे और जब पापी कलि आजायगा, तब कुलस्त्रियां पतिसे द्वेष करेंगी। वेश्याओंके लावण्य और शीलताकी इच्छा करेंगी और अपने पतिके धर्मकार्यकी विघ्नस्वरूप बनेंगी ॥ २६-२७ ॥ ब्राह्मण वेदनिन्दक होकर व्रतोंका आचरण नहीं करेंगे और नास्तिकतासे नष्ट होकर यज्ञ और हवन नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ पितृ

द्विजाः कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृयज्ञादिकाः क्रियाः ।
अपात्रेषु च दानानि कुर्व्वन्ति च तथा नराः ॥ २९ ॥
क्षीरोपायनिमित्तेषु गोषु प्रीतिश्च कुर्व्वते ।
दानयज्ञजपादीनां विक्रीणीते फलं द्विजाः ॥ ३० ॥
प्रतिग्रहं प्रकुर्व्वन्ति चाण्डालाद्यैरपि द्विजाः ।
न च द्विजातिशुश्रूषां न स्वधर्म्मप्रवर्त्तनम् ॥ ३१ ॥
करिष्यन्ति तदा शूद्राः प्रव्रज्यालिङ्गिनोऽधमाः ।
ततश्चाऽनुदिनं धर्म्मः सत्यं शौचं क्षमा दया ॥ ३२ ॥
कालेन बलिना प्राज्ञाः ! नङ्क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ।
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ॥ ३३ ॥
धर्म्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ।
दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके ॥ ३४ ॥
स्त्रीत्वे पुँस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ।
लिङ्गमेवाऽऽश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् ॥ ३५ ॥

यज्ञ आदि क्रियाएं द्विजमात्र केवल दम्भ दिखानेके लिये करेंगे और मनुष्य अपात्रमें दान करेंगे ॥ २९ ॥ केवल दूधके लिये गौसे प्रीति करेंगे और ब्राह्मण दान, यज्ञ, जप आदिका विक्रय करेंगे। ॥ ३० ॥ और चाण्डाल आदिसे भी प्रतिग्रह करेंगे, संन्यासका स्वांग बनानेवाले अधम शूद्र द्विजातिकी सेवा नहीं करेंगे और अपने धर्मका आचरण नहीं करेंगे। दिन प्रतिदिन बलवान् कलि-कालके प्रभावसे धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया ॥ ३१-३२ ॥ आयु, बल, स्मृति आदि नष्ट होंगे और कलिमें वित्त ही मनुष्योंका कुल, आचार एवं गुणका परिचायक होगा ॥ ३३ ॥ धर्माचार-व्यवस्थामें बल ही कारण होगा। अभिरुचि ही दाम्पत्य-सम्बन्धमें कारणीभूत होगी। व्यवहारमें कपट ही कारण होगा। प्रेमके लिये केवल स्त्रीत्व और पुंस्त्व ही पर्याप्त रहेगा। केवल यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणत्वका द्योतक होगा। आश्रम-का द्योतक केवल वेश ही होगा। और वह भी आपसके द्वेषका

अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः।
अनाढ्यतैवाऽसाधुत्वे साधुत्वे दंभ एव तु ॥ ३६ ॥
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनं।
दूरे वार्य्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् ॥ ३७ ॥
उदरंभरता स्वार्थः सत्यत्वे धाष्ट्र्यमेव हि।
दाक्ष्यं कुटुंबभरणं यशोऽर्थे धर्मसेवनम् ॥ ३८ ॥
एवं प्रजाभिदुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले।
ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः ॥ ३९ ॥
प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः।
आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् ॥ ४० ॥
शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पादिभोजनाः।
अनावृष्टया विनंक्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः ॥ ४१ ॥
प्रमादिनो बहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः।
न्यासिनोऽपि भविष्यन्ति दैवसन्दूषिताशयाः ॥ ४२ ॥

कारण होगा। जीविकाके अभावसे अन्याय होने लगेगा। बकवाद करना ही पाण्डित्य माना जायगा। आडम्बरहीन असाधु समझा जायगा और दम्भी साधु माना जायगा। दम्पतिका परस्पर स्वीकार ही विवाह समझा जायगा और स्नान करने मात्रसे श्रृंगार होगा, कुछ दूरसे लाया हुआ जल ही तीर्थ समझा जायगा। और केश रखना ही लावण्यताका कारण होगा ॥ ३४–३७ ॥ पेट भरना ही स्वार्थकी अवधि होगी। धृष्टता ही सत्यताका लक्षण होगा। कुटुम्बपोषण ही चातुर्यकी सीमा होगी और यशके वास्ते धर्मसेवन होगा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार दुष्ट प्रजासे भूमण्डल आकीर्ण हो जानेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंमें जो बली होगा, वही राजा बनेगा ॥ ३९ ॥ निर्घृण और दस्युधर्मवाले राजाओं द्वारा धन और स्त्रियोंका अपहरण होनेपर प्रजा गिरि काननोंमें चली जायगी और शाक, मूल, मांस, फल, मधु, पुष्पादि खाती हुई अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, कर आदिसे पीड़ित होकर अन्तमें मर जायगी ॥ ४०–४१ ॥ दैवसे जिनके स्वभाव दूषित हो गये हैं, ऐसे संन्यासी भी प्रमादी,

यदा संन्यासिनः सर्व्वे क्षात्रवृत्तिं समाश्रिताः ।
वैश्यवृत्तिश्च मुनयः ! तदैव प्रबलः कलिः ॥ ४३ ॥

यदा संन्यासिनो भूमौ कुसीदग्रहणे रताः ।
गृहिवन्मन्दिरक्षेत्रमठनिर्माणतत्पराः ॥ ४४ ॥

भविष्यन्ति हि विप्रेन्द्राः ! तदैव प्रबलः कलिः ।
तपोयोगविरागेभ्यः परावृत्य यदा रताः ॥ ४५ ॥

कामिनीकाञ्चनेष्वेते तदैव प्रबलः कलिः ।
ब्रह्मचर्य्यमकृत्वैव वानप्रस्थं विना तथा ॥ ४६ ॥

गृहस्था न्यासिनः स्युश्चेत्तदैव प्रबलः कलिः ।
सर्वे वर्णा भविष्यन्ति यदा संन्यासदम्भिनः ॥ ४७ ॥

युष्माभिस्तर्हि विज्ञेयस्तदैव प्रबलः कलिः ।
संन्यासलिङ्गमाश्रित्य शूद्राद्या ब्राह्मणैर्यदा ॥ ४८ ॥

कारयिष्यन्त्यङ्घ्रिपूजां तदैव प्रबलः कलिः ।
सन्न्यासिष्वपि भेदश्चेज्जातेः पङ्क्तेर्भविष्यति ॥ ४९ ॥

चञ्चलचित्त, खल और कलहोत्सुक हो जायंगे ॥ ४२ ॥ जब संन्यासी प्रायः क्षात्रवृत्ति और वैश्यवृत्तिका आश्रय करेंगे, तब हे मुनिगण! समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है ॥ ४३ ॥ जब सन्न्यासी पृथ्वीपर सूद ग्रहणमें रत होकर गृहस्थोंकी तरह मन्दिर, क्षेत्र, मठ आदिके निर्माणमें तत्पर होंगे, तब हे विप्रेन्द्रों ! समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है । तप योग और वैराग्यसे मुँह मोड़-कर जब वे कामिनी काञ्चनमें रत हो जायंगे, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है । जब विना ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थका पालन किये गृहस्थ सन्न्यासी बनने लगेंगे, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है । सभी वर्ण जब संन्यासका ढोंग रचने लगेंगे ॥ ४४–४७ ॥ तब आपलोग समझलें कि, कलि प्रबल हो गया है। सन्न्या-सियोंका स्वांग बनाकर शूद्रादि जब ब्राह्मणोंसे पैर पुजवाने लगेंगे, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल होगया है । संन्यासियोंमें जब जाति और पंक्तिका भेद होगा एवं जब संन्यासियोंके सम्प्रदाय

सम्प्रदाये तथा पन्थे विभागो बहुशो यदा।
सन्न्यासिनाञ्च भविता तदैव प्रबलः कलिः ॥ ५० ॥
सद्गृहस्था दरिद्राः स्युर्धनाढ्या न्यासिनो यदा।
संन्यासधर्म्मनिरता भिक्षां प्राप्स्यन्ति नैव हि ॥ ५१ ॥
छद्मसन्न्यासिनो ह्येव प्राप्स्यन्त्यादरमुत्तमम्।
युष्माभिस्तु परिज्ञेयस्तदैव प्रबलः कलिः ॥ ५२ ॥
क्षुद्रसिद्ध्या तथौषध्या कपटाचरणेन च।
वशीकरणतश्चाऽपि सामुद्रिकविधानतः ॥ ५३ ॥
संन्यासिनो भविष्यन्ति यदा मान्या धरातले।
वैराग्यज्ञानयोगानां तथा तेष्वादरो न हि ॥ ५४ ॥
विज्ञेयो ज्ञानसम्पन्नास्तदैव प्रबलः कलिः।
ज्ञानवृद्धतपोवृद्धपूजा ह्रासत्वमेष्यति ॥ ५५ ॥
आध्यात्मिकत्ववैराग्यादरो नैव भविष्यति।
यदा न्यासिषु वै धीरास्तदैव प्रबलः कलिः ॥ ५६ ॥
यदा तु वैदिकी दीक्षा दीक्षा पौराणिकी तथा।
न स्थास्यति महाभागास्तदैव प्रबलः कलिः ॥ ५७ ॥

और पन्थोंके अनेक विभाग हो जायंगे, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है ॥ ४८–५० ॥ सद्गृहस्थ दरिद्र और संन्यासी धनी बनेंगे, संन्यासधर्ममें जो निरत होंगे वे भिक्षा भी प्राप्त नहीं करेंगे और कपटी संन्यासी उत्तम आदरके पात्र बनेंगे, तब आपलोग समझलें कि, कलि प्रबल हो गया है ॥ ५१–५२ ॥ क्षुद्र सिद्धियां, औषधिप्रयोग, कपटाचार, वशीकरण और सामुद्रिक-विधान आदिसे जब संन्यासीगण पृथ्वीमें माननीय बनेंगे, वैराग्य, ज्ञान और योगका उनमें आदर नहीं रहेगा, हे ज्ञानसम्पन्न सत्पुरुषो! तब जानना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है। ज्ञानवृद्ध और तपोवृद्ध पुरुषोंकी पूजाका जब ह्रास हो जायगा और संन्या-सियोंमें आध्यात्मिकभाव तथा वैराग्यका कुछ भी आदर नहीं रहेगा तब हे धीर पुरुषो! समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है ॥५३-५६॥ जब वैदिकी या पौराणिकी दीक्षाका क्रम नहीं रहेगा, तब

यदा तु पुण्यपापानां परीक्षा वेदसम्भवा।
न स्थास्यति महाभागास्तदैव प्रबलः कलिः॥ ५८॥
क्वचिच्छिन्ना क्वचिद्भिन्ना यदा सुरतरङ्गिणी।
भविष्यति महाभागास्तदैव प्रबलः कलिः॥ ५९॥
यदा तु म्लेच्छजातीया राजानो धनलोलुपाः।
भविष्यन्ति महाप्राज्ञास्तदैव प्रबलः कलिः॥ ६०॥
यदा स्त्रियोऽतिदुर्दान्ताः कर्कशाः कलहे रताः।
गर्हिष्यन्ति च भर्त्तारं तदैव प्रबलः कलिः॥ ६१॥
यदा तु मानवा भूमौ स्त्रीजिताः कामकिङ्कराः।
द्विषन्ति गुरुमित्रादीन् तदैव प्रबलः कलिः॥ ६२॥
यदा क्षोणी स्वल्पफला तोयदाः स्तोकवर्षिणः।
असम्यक् फलिनो वृक्षास्तदैव प्रबलः कलिः॥ ६३॥
भ्रातरः स्वजनामात्या यदा धनकणेहया।
मिथः संप्रहरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः॥ ६४॥

हे महाभाग! समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है॥ ५७॥ जब वेदोक्त रीतिसे पुण्य पापकी परीक्षा नहीं रहेगी, तब हे महाभाग! समझना चाहिये कि कलि प्रबल हो गया है॥ ५८॥ जब कहीं छिन्न, कहीं भिन्न गङ्गा नदी हो जायगी, तब हे महाभाग! कलि प्रबल हो जायगा॥ ५९॥ जब म्लेच्छ जातिके राजा होंगे और वे धनलोलुप होंगे, तब हे महाप्राज्ञो! समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है॥ ६०॥ जब स्त्रियां दुर्दान्त, कर्कशा और कलहमें रत होकर पतिकी निन्दा करने लगेंगी, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है॥ ६१॥ जब पृथ्वीपर मनुष्यमात्र स्त्रीजित और कामके गुलाम बनकर गुरु एवं मित्रादिसे द्वेष करने लगेंगे, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है॥ ६२॥ जब पृथ्वी उपजाऊ नहीं रहेगी, मेघ वर्षा कम करेंगे, वृक्ष अच्छे नहीं फलेंगे, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है॥ ६३॥ बन्धुगण, स्वजन, अमात्य आदि जब थोड़ेसे धनके लिये आपसमें लड़ मरेंगे, तब जानो कि, कलि प्रबल हो गया है॥ ६४॥ मद्य और

प्रकटे मद्यमांसादौ निन्दादण्डविवर्जिते।
गूढ़पानं चरिष्यन्ति तदैव प्रबलः कलिः॥ ६५॥
गुरुशुश्रूषणे युक्ता रक्ताश्चेशपदाम्बुजे।
अनुरक्ताः स्वदारेषु न हि तान् बाधते कलिः॥ ६६॥
शृणुतर्षिगणा यूयं निर्लिप्तः काल ईरितः।
कालो हि भगवद्रूपस्तत्स्वरूपमिहोच्यते॥ ६७॥
प्रत्येककाले जायन्ते यादृशा जीवराशयः।
तेषां समष्टिकर्मभ्यस्तादृक् कालः प्रतीयते॥ ६८॥
तथाऽपीह महाभागाः! कालशक्तिर्दुरत्यया।
कलिकालप्रभावेण परिवर्तनमेति ह॥ ६९॥
वर्णाश्रमाणां धर्मो वै तस्मात् सन्यासिनामपि।
धर्मेषु वैपरीत्यं हि भविष्यति महर्षयः॥ ७०॥

इति श्रीसन्न्यासगीतायां कालधर्मनिरूपणं
नाम पञ्चमोऽध्यायः।

मांस जब गुप्त या प्रगटरूपसे सेवन किया जायगा और उसके लिये कोई निन्दा या दण्ड नहीं रहेगा, तब समझना चाहिये कि, कलि प्रबल हो गया है॥ ६५॥ परन्तु जो गुरु सेवामें लगे रहेंगे, भगवान्‌के चरणोंके भक्त रहेंगे और अपनी ही स्त्रीमें अनुरक्त रहेंगे, उन्हें कलिकी बाधा नहीं होगी॥ ६६॥ हे ऋषिगण! काल निर्लिप्त है और वह भगवान्‌का रूप है। उसका स्वरूप मैं कहता हूं सो सुनिये। हर एक कालमें जैसे जीव उत्पन्न होते हैं, उनके समष्टिकर्मोंके अनुसार काल प्रतीत होता है॥ ६७-६८॥ तथापि हे महाभाग! कालकी शक्ति बड़ी प्रबल है। कलिकालके प्रभावसे हे महर्षिगण वर्णाश्रमधर्ममें परिवर्तन और सन्न्यासियोंके धर्ममें वैपरीत्य हो जाता है॥ ६९-७०॥

इस प्रकार श्री सन्न्यास गीताका कालधर्म निरूपण नामक
पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ॥ ५॥

शुक उवाच।

भगवन्! वेदविहितं भेदं सन्न्यासिनामिह।
सामान्याचरणं तेषां धर्म्मं साधारणं तथा ॥ १ ॥
कृपया श्रावयित्वाऽस्मान्कृतकृत्यान्कुरुष्व ह ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

यज्ञप्रधानः पुंसो वै धर्म्मोऽत्र परिकीर्तितः।
तपसश्चाऽपि प्राधान्यं नारीधर्म्मे विशेषतः ॥ ३ ॥
प्रवृत्ते रोधको ज्ञेयो वर्णधर्म्मो महामुने।
आश्रमस्य च धर्म्मो हि निवृत्तेः पोषकः स्मृतः ॥ ४ ॥
ऐश्वर्यस्य तु प्राधान्यं वैश्यधर्म्मे विनिश्चितम्।
धर्म्मः सेवाप्रधानो वै शूद्रस्य समुदीरितः ॥ ५ ॥
क्षत्रियस्य च धर्म्मोऽयं क्षात्रतेजःप्रधानकः।
विप्रधर्म्मे तु भो विप्राः! ब्रह्मतेजःप्रधानता ॥ ६ ॥
चतुर्ष्वप्याश्रमेष्वेवाऽधिकारो ब्राह्मणस्य ह।
सन्न्यासमन्तरेणाऽत्र क्षत्रियस्य त्रिषु स्मृतः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेः--भगवन्! सन्न्यासियोंका वेदविहित भेद, उनका सामान्य आचरण और साधारण धर्म कृपया सुनाकर आप हमें कृतार्थ करें ॥ १-२ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्य बोलेः-पुरुषधर्म यज्ञप्रधान और नारीधर्म विशेषतया तपप्रधान कहा गया है ॥ ३ ॥ हे महामुने! प्रवृत्तिरोधक वर्णधर्म और निवृत्तिपोषक आश्रमधर्म है ॥ ४ ॥ वैश्यधर्ममें ऐश्वर्य-की प्रधानता निश्चित हुई है। सेवाधर्म शूद्रके लिये प्रधान माना गया है ॥ ५ ॥ क्षत्रियोंका धर्म क्षात्र तेज प्रधान है और हे विप्रो! ब्राह्मणोंके धर्ममें ब्रह्मतेजका ही प्राधान्य है ॥ ६ ॥ चारों आश्रमोंका ब्राह्मणको अधिकार है। क्षत्रियोंको सन्न्यासके अतिरिक्त तीन आश्रमोंका अधिकार है ॥ ७ ॥ वैश्यके

द्वयोरेव तु वैश्यस्य गार्हस्थ्यब्रह्मचर्य्ययोः ।
एकस्मिन्नेव गार्हस्थ्ये शूद्रस्याऽधिकृतिर्मता ॥ ८ ॥
प्रवृत्तिं शास्त्रविहितां ब्रह्मचर्य्ये तु शिक्षते ।
समाचरति गार्हस्थ्ये तां प्रवृत्तिं पुमान् भुवि ॥ ९ ॥
वानप्रस्थे निवृत्तेस्तु शिक्षा पुंसु प्रजायते ।
निवृत्तिः पूर्णतां याति संन्यासाश्रममेत्य वै ॥ १० ॥
आश्रमाणां चतुर्णां वै प्रधानो धर्म्म उच्यते ।
संयमस्तु गृहस्थानां नियमो ब्रह्मचारिणाम् ॥ ११ ॥
वानप्रस्थाश्रमस्थानां तपस्त्यागस्तु न्यासिनाम् ।
सन्न्यासाश्रमभेदाश्च चत्वार इह ईरिताः ॥ १२ ॥
कुटीचकस्तु प्रथमो द्वितीयस्तु बहूदकः ।
हंसः परमहंसश्च द्वाविमावन्तिमौ स्मृतौ ॥ १३ ॥
सन्न्यासदीक्षामादाय कामिन्यादीन् विहाय च ।
कुटीचकः स सन्न्यासी नगरप्रान्तसीमनि ॥ १४ ॥
क्वचिन्मनोरमे स्थाने कुटीं निर्म्माय संवसेत् ।
योगोपनिषदध्यायैः कुर्य्यादाध्यात्मिकोन्नतिम् ॥ १५ ॥

लिये गार्हस्थ्य और ब्रह्मचर्य ये दो ही अधिकार हैं एवं शूद्र-को केवल गृहस्थाश्रममात्रका अधिकार है ॥ ८ ॥ पृथ्वीपर पुरुष शास्त्रोक्त प्रवृत्तिको ब्रह्मचर्याश्रममें सीखते हैं और गृहस्था-श्रममें उसका आचरण करते हैं ॥ ९ ॥ वानप्रस्थाश्रममें निवृत्ति-की शिक्षा आरम्भ होती और सन्न्यासाश्रममें निवृत्तिको पूर्णता होती है ॥ १० ॥ अब चारों आश्रमोंके प्रधान धर्म कहता हूं । गृहस्थों-का प्रधान धर्म संयम है, ब्रह्मचारियोंका प्रधान धर्म नियम है, वान-प्रस्थोंका प्रधान धर्म तप है और सन्न्यासियोंका प्रधान धर्म त्याग है । सन्न्यासाश्रमके चार भेद कहे गये हैं ॥ ११-१२ ॥ यथाः-(१) कुटीचक (२) बहूदक (३) हंस और (४) परमहंस ॥ १३ ॥ सन्न्यास-दीक्षा ग्रहणकर स्त्री-पुत्रोंको छोड़ नगर-प्रान्तकी सीमापर कहीं मनोहर स्थानमें कुटी बनाकर जो रहता है, उसे कुटीचक सन्न्यासी कहते हैं । उसे योगाभ्यास और उपनिष-

बहूदकस्तु सन्न्यासी न वसेदधिकं क्वचित्।
दिनत्रयं प्रतिस्थानं स्थित्वाऽन्यत्र सुखं व्रजेत्॥ १६॥
तीर्थादिकं परिभ्रम्य यथावत् साधनादिभिः।
आत्मोपलब्धौ सततं यतेताऽयं महामनाः॥ १७॥
सन्न्यासी ज्ञानवान् हंसो विधाय भ्रमणं मुदा।
संसारे ज्ञानविस्तारं कुर्य्यादेव प्रयत्नतः॥ १८॥
पूज्यः परमहंसः स सन्न्यासो विगतज्वरः।
कुर्व्वन्नकुर्व्वन् वा किञ्चिदसौ नारायणः स्मृतः॥ १९॥
कौपीनं गैरिकं वस्त्रं दण्डश्चाऽपि कमण्डलुं।
सततं यत्नतः सम्यक् गृह्णीरन् प्रथमास्त्रयः॥ २०॥
अस्मिन् परमहंसस्य नियमो नाऽस्ति कश्चन।
ध्रुवं विधिर्निषेधश्च तदिच्छाऽधीनतामितः॥ २१॥
पञ्चधा सगुणोपास्तावधिकारी कुटीचकः।
सुयोग्यः कीर्त्तितः सम्यग् ज्योतिर्ध्याने बहूदकः॥ २२॥

दादिके अध्ययन द्वारा अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिये ॥१४-१५॥ बहूदक सन्न्यासीको कहीं अधिक नहीं ठहरना चाहिये। हर एक स्थानमें तीन दिन रहकर अन्य स्थानमें आनन्दके साथ उसे चले जाना चाहिये ॥१६॥ इस उदारचेताको तीर्थादिमें परिभ्रमण कर यथावत् साधनादिसे आत्माकी उपलब्धिके लिये निरन्तर चेष्टा करनी चाहिये ॥ १७ ॥ ज्ञानी हंस सन्न्यासीको प्रसन्नताके साथ भ्रमण कर बड़े प्रयत्नसे संसारमें ज्ञानका विस्तार करना चाहिये ॥१८॥ जिसके सब प्रकारके ताप छूट गये हैं, ऐसा परमहंस सन्न्यासी कुछ करे या न करे वह साक्षात् नारायणस्वरूप होनेके कारण पूज्य कहा गया है ॥ १९ ॥ प्रथम तीन अर्थात् कुटीचक, बहूदक और हंस, कौपीन, गेरुआ वस्त्र, दण्ड, कमण्डलु बड़े यत्नके साथ निरन्तर भली भांति ग्रहण करें ॥ २० ॥ इस विषयमें परमहंसके लिये कोई नियम नहीं है, क्योंकि विधि और निषेध उनकी इच्छाके अधीन हैं, ऐसा निश्चय है ॥ २१ ॥ सगुण पञ्चोपासनाका अधिकारी कुटीचक है। बहूदक उत्तम ज्योतिर्ध्यानके लिये सुयोग्य कहा गया

हंसो बिन्दूपासनायामधिकारी निगद्यते ।
पुण्यः परमहंसोऽसौ ब्रह्मोपास्तौ स्वतः क्षमः ॥ २३ ॥

वस्तुतोऽधिकृतिप्राप्तौ सर्व्वे सन्न्यासिनः सुखं ।
ब्रह्मोपास्तिं सदा कर्तुमर्हन्तीतरथा न हि ॥ २४ ॥

ऋतुद्वये हि सन्न्यासी क्षौरं कुर्य्यात्कुटीचकः ।
क्षौरं बहूदकः सम्यक् त्यजेत्स्यात्तु जटाधरः ॥ २५ ॥

हंसः परमहंसश्च चेदिच्छन्तावुभौ तदा ।
क्षौरं प्रत्ययनं कर्त्तुमर्हतः पूतमानसौ ॥ २६ ॥

दण्डत्रयं धरेदाद्यो द्वौ दण्डौ तु बहूदकः ।
एकदण्डं तृतीयस्तु चतुर्थो नियमोर्ध्वगः ॥ २७ ॥

आद्यो वारत्रयं स्नानमाचरेत्तु बहूदकः ।
द्विवारमेकवारन्तु तृतीयोऽनियमोऽपरः ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रं धरेदाद्यो द्वितीयस्तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
तृतीयः श्रद्धया भस्म चतुर्थोऽनियमो स्वतः ॥ २९ ॥

है ॥ २२ ॥ हंस बिन्दुकी उपासनाका अधिकारी है और पुण्यवान् परमहंस ब्रह्मकी उपासना करनेमें स्वयं समर्थ है ॥ २३ ॥ यह भी निश्चित है कि, वास्तविक अधिकार प्राप्त होनेपर सभी सन्न्यासी ब्रह्मकी उपासना कर सकते हैं ॥ २४ ॥ कुटीचक सन्न्यासीको दो ऋतु बीत जानेपर क्षौर कराना चाहिये। बहूदक सन्न्यासीको क्षौर नहीं कराना चाहिये, बरंच जटाएं धारण करनी चाहियें ॥ २५ ॥ हंस और परमहंस दोनों पवित्रात्मा यदि चाहें तो हरएक अयनमें क्षौर करा सकते हैं ॥ २६ ॥ तीन दण्ड कुटीचक धारण करे, बहूदक दो दण्ड ग्रहण करे, हंस एक ही दण्ड ले और परमहंस तो नियमसे अतीत होते हैं ॥ २७ ॥ कुटीचक प्रतिदिन तीन बार स्नान करे, बहूदक दो बार और हंस एकबार स्नान करे। परमहंसके लिये कोई नियम नहीं है ॥ २८ ॥ कुटीचक ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करें, बहूदक त्रिपुण्ड्र लगावे, हंस श्रद्धाके साथ भस्म धारण करे और परमहंसके लिये कोई नियम नहीं ॥ २९ ॥ कुटीचकको एक

एकाहारः सदाऽऽद्यस्य वृत्तिर्माधुकरी शुभा।
द्वितीयस्य ततोऽन्यस्य वृत्तिराजगरी मता॥ ३०॥
सत्यं परमहंसस्य करपात्रं सुशोभते।
यतो बालायमानोऽसौ बालवच्चेष्टते सदा॥ ३१॥
बहिःपूजा शुभाऽऽद्यस्य द्वितीयस्य हि मानसी।
आत्मपूजा तृतीयस्य त्वात्मारामोऽपरः स्वयम्॥ ३२॥
मन्त्रयोगः सदाऽऽद्यस्य द्वितीयस्य हठः स्मृतः।
तृतीयस्य लयोऽन्यस्य राजयोगो व्यवस्थितः॥ ३३॥
अनुकूलेऽधिकारे तु सर्व्वे सन्न्यासिनः सदा।
सर्व्वं विधातुमर्हन्ति नास्ति कश्चन संशयः॥ ३४॥
आद्यो जपेद्वाचनिकमुपांश्वेव बहूदकः।
तृतीयो मानसं सम्यक् प्रणवं ब्रह्मवाचकम्॥ ३५॥
पूज्यः परमहंसोऽयं विबुधेश्वरतां गतः।
सर्व्वदाऽनुभवं ह्यन्तः प्रणवस्य करोत्यलम्॥ ३६॥

वार भोजन करना चाहिये, बहूदकको माधुकरी * वृत्ति रखनी चाहिये। हंसकी अजगर कीसी वृत्ति † होनी चाहिये और परमहंसको तो करपात्र ही शोभा देता है, क्योंकि वह बाल-भावापन्न होकर बालककी तरह चेष्टा करता है॥ ३०-३१॥ कुटीचकको बाह्य पूजा, बहूदकको मानस पूजा और हंसको आत्म पूजा शुभ है। परमहंसतो स्वयं आत्माराम होते हैं॥ ३२॥ कुटीचकको मन्त्रयोग, बहूदकको हठयोग, हंसको लययोग और परमहंसको राजयोगके साधन करनेकी विधि है॥ ३३॥ अधिकार प्राप्त होनेपर भी सन्न्यासी चारों योगोंका साधन कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४॥ कुटीचक संन्यासी ब्रह्मवाचक प्रणवका वाचनिक जप करें, बहूदक उपांशु जप करे, हंस मानसिक जप करे और परमहंस तो देवताओंका भी ईश्वर होनेके कारण वह अन्तःकरणमें निरन्तर

* कई स्थानोंसे थोड़ा थोड़ा मांगकर भिक्षा करनेको माधुकरी वृत्ति कहते हैं।
‡ अपने स्थानमें बैठकर अयाचित जो मिल जाय उसीके अनुसार भिक्षा करनेको आजगरी वृत्ति कहते हैं।

कुर्य्यान्नाद्यो गुरोः कार्य्यं कुर्य्यात्तत्र बहूदकः ।
आचार्य्यकार्य्यं शास्त्रोपपत्तिकांशोपदेशनम् ॥ ३७ ॥
आचार्य्यस्य गुरोश्चाऽपि कार्य्यं कुर्य्यात्तृतीयकः ।
न विधिर्न निषेधश्च चतुर्थस्य कदाचन ॥ ३८ ॥
संत्यजेद्वपुषोऽध्यासमाद्यः स्थूलस्य सर्व्वथा ।
द्वितीयः खलु सूक्ष्मस्य तृतीयः कारणस्य च ॥ ३९ ॥
सर्व्वथाऽयं पूजनीयो मार्गं विधिनिषेधयोः ।
अतीतः परमो हंसः प्राप्नोति ब्रह्मरूपताम् ॥ ४० ॥
रक्षेदाद्यः शिखासूत्रे द्वितीयः सूत्रमात्रकम् ।
शिखा तस्य जटायां हि सम्यक् परिणता भवेत् ॥ ४१ ॥
सूत्रशून्यो भवेद्धंसः स्वेच्छाऽधीनैव तज्जटा ।
न विधिर्न निषेधो वा चतुर्थस्य विधीयते ॥ ४२ ॥
अन्त्योऽग्रिमैस्त्रिभिः पूज्यस्तृतीय आद्ययोर्द्वयोः ।
द्वितीयोऽग्र्येण सम्पूज्यो भक्त्या कल्याणमिच्छता ॥ ४३ ॥

प्रणवका अनुभव करता है। यही साधना उसके लिये पर्याप्त है ॥ ३५—३६ ॥ कुटीचक गुरुका कार्य न करे। बहूदक शास्त्रोंके औपपत्तिक अंशका उपदेश कर आचर्यका कार्य करे। आचार्यका और गुरुका दोनोंका कार्य हंस करे और परमहंसको किसी प्रकारका विधिनिषेध नहीं है ॥ ३७–३८ ॥ कुटीचक स्थूल शरीरका सर्वथा अध्यास छोड़ दे। बहूदक सूक्ष्म शरीरका और हंस कारण शरीरका अध्यास छोड़ दे। परमहंस विधिनिषेधसे अतीत होनेके कारण सर्वथा पूजनीय है। वह ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ३९—४० ॥ कुटीचक शिखा सूत्र धारण करे। बहूदक केवल सूत्रमात्र धारण करे, क्योंकि शिखा उसकी जटामें ही उत्तम रीतिसे परिणत हुई होती है। हंसको सूत्र भी त्याग देना चाहिये और जटा रखना न रखना उसकी इच्छापर अवलंबित है, परमहंसके लिये कोई विधिनिषेध नहीं है ॥ ४१–४२ ॥ परम-हंस सन्यासी कल्याण चाहने वाले प्रथम तीन सन्न्यासियोंके लिये भक्तिपूर्वक पूजनीय हैं। हंस सन्न्यासी शेष दो प्रकारके

सर्वे संन्यासिनः पूज्या वर्णाश्रमिभिस्तथा ।
संन्यासिनमविज्ञातं वचसैव नमेत्सुधीः ॥ ४४ ॥
कालतो हीनवर्णोऽपि संन्यासिवेषभाक् यतः ॥
प्रणामे कायिके सम्यक् दोषोऽत्र विद्यते खलु ॥ ४५ ॥
नमस्कारे वाचनिके न दोषोऽस्ति कथंचन ।
व्रतं त्रयाणामाद्यानां प्रत्येकं तु त्रिवत्सरम ॥ ४६ ॥
व्रते पूर्णेऽधिकारे च लब्धे गुरुदयाबलात् ।
आद्यो द्वितीयो भवितुं द्वितीयस्तु तृतीयकः ॥ ४७ ॥
एवं तृतीयश्चरमः शक्नोति योग्यतां गतः ।
आध्यात्मिकाऽधिकारस्य न कश्चित्पूर्णतां विना ॥ ४८ ॥
प्राप्नुयादुन्नतिं तत्र गुरुदेवः परीक्षकः ।
प्राणहीनः स्थूलदेहमाद्यस्य दहनं व्रजेत् ॥ ४९ ॥
दहनं क्षेपणं वाऽपि द्वितीयस्याऽनले जले ।
नद्यां क्षेपं तृतीयस्य क्षित्यन्तर्वा निवेशनम् ॥ ५० ॥

सन्न्यासियोंके लिये पूजनीय है और बहूदक कुटीचकके लिये पूजनीय है ॥ ४३ ॥ सब वर्ण और आश्रमों द्वारा सभी संन्यासी पूजनीय हैं । बुद्धिमान् मनुष्य अपरिचित सन्न्यासीको केवल वाचनिक प्रणाम करे, क्योंकि कलिके प्रभावसे हीनवर्णके लोग भी संन्यासीका वेश धारण कर लेते हैं । उनको कायिक प्रणाम करनेसे दोष होता है ॥ ४४-४५ ॥ वाचनिक नमस्कारमें दोष नहीं होता। कुटीचक, बहूदक और हंस इनमेंसे प्रत्येकका व्रत तीन तीन वर्षका होता है । व्रत पूर्ण होनेपर और गुरुकी कृपासे अधिकार प्राप्त होनेपर कुटीचक बहूदक हो सकेगा, बहूदक हंस बन सकेगा । ॥ ४६-४७ ॥ और हंस योग्यता प्राप्तकर परमहंस हो सकेगा । आध्यात्मिक अधिकारकी पूर्णता हुए बिना कोई उन्नतिको नहीं पहुँच सकता और इसके परीक्षक केवल गुरुदेव ही हो सकते हैं । कुटीचकका स्थूल देह प्राणहीन हो जानेपर उसे जला देना चाहिये ॥ ४८-४९ ॥ बहूदकका मृतदेह अग्निमें जलाया जा सकता है या जलमें फेक भी दिया जा सकता है । हंसके मृत शरीरको

चतुर्थस्य विशेषो न नियमोऽस्त्यत्र कश्चन।
संन्यासिगुरुदेवस्य सन्निधाने कुटीचकः॥ ५१॥
स्पृष्ट्वोपनिषद्ग्रन्थं गृह्णीयाद्भक्तितो व्रतम्।
बहूदकस्तु संन्यासी गुरुदेवस्य सन्निधौ॥ ५२॥
स्पृष्ट्वा तीर्थजलं सम्यक् गृह्णीत व्रतमुत्तमम्।
नारायणस्वरूपं तु स्पृष्ट्वा होमानलं स्वयम्॥ ५३॥
गृह्णीयाद्धंससंन्यासी व्रतं परमभद्रदम्।
परः परमहंसोऽसावतीतद्वैतभावनः॥ ५४॥
आत्मतत्त्वं स्वयं स्मृत्वा गृह्णीयात्परमं व्रतम्।
दृष्टाऽऽनुश्रविकैश्वर्य्यमूर्ध्वलोकादिकञ्च यत्॥ ५५॥
कुटीचकस्तु मन्त्रेण तत्सर्व्वं साधु सन्त्यजेत्।
त्यजेत्तदुक्तमखिलं सङ्कल्पेन बहूदकः॥ ५६॥
हंसो भवेत्सर्व्वथैव तत्तत्संस्कारवर्जितः।
संन्यासी परमो हंसः सर्व्वेषां भक्तिभाजनम्॥ ५७॥
ब्रह्मस्वरूपस्तत्तस्य क्व निषेधः क्व वा विधिः।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्वौमार्गावेव तिष्ठतः॥ ५८॥

नदीमें बहा देना या पृथ्वीमें गाड़ देना चाहिये॥ ५०॥ परमहंसके लिये कोई विशेष नियम नहीं है। कुटीचक सन्यासी गुरुदेवके निकट उपनिषद् ग्रन्थको छूकर भक्तिके साथ व्रत ग्रहण करे। बहूदक गुरुदेवके निकट जाकर तीर्थजलको स्पर्शकर व्रत धारण करे। स्वयं नारायण स्वरूप होमानलको स्पर्शकर हंस सन्यासी परम कल्याणकारी व्रत ग्रहण करे। परहंस द्वैतभावसे अतीत होता है॥ ५१-५४॥ आत्मतत्त्वका स्मरणकर वह स्वयं परम व्रतको ग्रहण करे। दृष्ट अर्थात् इह लौकिक ऐश्वर्य और आनुश्रविक अर्थात् स्वर्गलोकके ऐश्वर्य एवं ऊर्ध्वलोकादिके ऐश्वर्यका कुटीचक मन्त्र द्वारा त्याग करे और वही सब बहूदक सङ्कल्प द्वारा त्याग दे॥ ५५-५६॥ हंसको सर्वथा उसके संस्कारोंसे भी रहित होना चाहिये और परमहंस सन्यासी तो सबका भक्तिभाजन है। वह स्वयं ब्रह्मस्वरूप होनेसे उसके लिये न कोई विधि है और न कोई

निवृत्तिमेवाश्रयेरन् सर्व्वे संन्यासिनः सदा।
कलिप्रभावतो नूनं वर्णाश्रमविपर्य्ययात् ॥ ५९ ॥
इतरेऽप्याश्रयिष्यन्ते निवृत्तिमार्गमुत्तमम्।
अन्तश्चतुर्णामेतेषां प्रवेष्टुं यद्यपि क्षमाः ॥ ६० ॥
नैव ते स्युस्तथाऽप्येते निवृत्तिमार्गगामिनः।
अत एवाऽवधूतेति गोस्वामीति च साध्विति ॥ ६१ ॥
उदासीनेति वैरागीति महापुरुषेति च।
एतत्पर्य्यायकैरन्यैरपि शब्दैर्निरन्तरम् ॥ ६२ ॥
प्रकीर्त्यन्ते यतस्तेऽत्र साधुमार्गावलम्बिनः।
त्यागस्य तपसश्चाऽपि ज्ञानस्य तारतम्यतः ॥ ६३ ॥
सम्माननस्याऽपि तेषां तारतम्यं सुविद्यते।
विशेषतस्तारतम्याद्वर्णाधिकारयोरपि ॥ ६४ ॥
तारतम्यं भवेत्तेषां निवृत्तिमार्गवर्त्तिनाम्।
साधवः स्वोच्चवर्णीयान् कुर्वीरन् नैव दीक्षितान् ॥ ६५ ॥
प्रणामं कायिकं तेषां गृह्णीरंश्च कदापि नो।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च परमोन्नतिसाधिनी ॥ ६६ ॥

निषेध ही है। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो ही मार्ग हैं ॥ ५७-५८ ॥ इनमेंसे संन्यासियोंको निवृत्तिमार्गका ही आश्रय करना चाहिये। कलिके प्रभावसे वर्णाश्रमका विपर्यास होनेके कारण इस उत्तम निवृत्तिमार्गका ब्राह्मणेतरवर्ण भी आश्रय करेंगे। यद्यपि वे इन चारोंमें अर्थात् कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंसोंमें प्रवेश करनेमें असमर्थ हैं, तथापि वे निवृत्तिमार्गगामी हैं अतएव वे अवधूत, गोस्वामी, साधु, उदासी, वैरागी, महापुरुष या इन्हींके पर्यायवाचक शब्दोंसे निरन्तर अभिहित होंगे। क्योंकि वे साधुमार्गावलम्बी हैं। त्याग, तप और ज्ञानके तारतम्यसे ॥ ५९-६३ ॥ उनके सम्मानमें भी तारतम्य रहेगा। विशेषतः वर्ण और अधिकारके तारतम्यानुसार उन निवृत्तिमार्गावलम्बियोंका तारतम्य रहेगा। साधु लोग अपनेसे उच्चवर्णके लोगोंको दीक्षित न करें ॥ ६४-६५ ॥ उनका कायिक प्रणाम कभी ग्रहण न करें। ऐसा करनेसे वर्णाश्रमकी परम उन्नति

अन्यथा धर्म्ममर्यादाऽनादिसिद्धाऽपि नङ्क्ष्यति ।
उदासीना वा भवन्तु ब्राह्मणेतरवर्णजाः ॥ ६७ ॥
त्यागशीला वा भवन्तु रक्षेत नियमो हि तैः ।
अवश्यं धर्म्ममर्य्यादा पालनीया प्रयत्नतः ॥ ६८ ॥
कार्य्यं देवर्षिपितॄणां तैः सम्मानसुरक्षणम् ।
यत्नो विधेयः सर्वत्र सर्व्वेषां सर्व्वदा स्वतः ॥ ६९ ॥
भगवन्महिमप्रेम्णोः कीर्त्तने च प्रचारणे ।
कर्म्मण्युपास्तौ भक्तौ च रतानामधिकारिणाम् ॥ ७० ॥
जनयेयुर्बुद्धिभेदं न ते ज्ञानाऽभिमानिनः ।
परन्तु तेषां सततमधिकारोऽधिकारिणाम् ॥ ७१ ॥
शक्नोति वर्द्धितुं येन विधेया तत्र सम्मतिः ।
महर्षयोऽहमधुना निवृत्त्याश्रयवर्त्तिनां ॥ ७२ ॥
सन्न्यासिनां शुभकरं साधनं प्रब्रवीमि वः ।
निष्कामकर्म्माभ्यसनं कार्य्यं स्वस्वाऽधिकारतः ॥ ७३ ॥

साधिनी अनादिसिद्ध धर्ममर्यादा नष्ट हो जायगी । ब्राह्मणेतर वर्ण चाहे तो उदासी हों ॥ ६६-६७ ॥ चाहे त्यागी हों, लोकहितकारी वर्णाश्रम धर्मसम्बन्धीय नियमोंकी रक्षा उन्हें करनी उचित है । उन्हें बड़े यत्नके साथ धर्मकी मर्यादा अवश्य पालन करनी चाहिये ॥६८॥ और देव, ऋषि एवं पितरोंके सम्मानकी सुरक्षाका कार्य करना चाहिये। भगवन्महिमा और भगवत्प्रेमके कीर्तन और प्रचारमें सदा सर्वत्र स्वयं और दूसरोंके द्वारा उन्हें यत्नवान् होना चाहिये, वे ज्ञानाभिमानी होकर कर्म उपासना और भक्तिमें रत अधिकारियोंका बुद्धिभेद न करें । किन्तु उनके साथ ऐसी सहानुभूति रक्खें, जिससे अधिकारियोंका अपना अपना यथावत् अधिकार बढ़ सके । हे महर्षिगण ! अब मैं निवृत्तिमार्गका आश्रय किये हुए संन्यासियोंके कल्याणकारी साधनको कहता हूं । संन्यासियोंको अपने अपने अधिकारानुसार निष्काम कर्मका अभ्यास करना चाहिये ॥ ६९-७३ ॥

उपासना यथाशक्ति तेषां परमश्रद्धया ।
शक्यतेऽहरहः सम्यक् ज्ञानं वर्द्धयितुं यथा ॥ ७४ ॥

मोक्षशास्त्रादिपाठेन क्रियेतैव तथैव तैः ।
तपोज्ञानविवृद्धानां देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ७५ ॥

सम्माननं देवमूर्त्तिपीठानां कुर्य्युरेव ते ।
अनाश्रमी न तिष्ठेत्तु क्षणमेकमपि द्विजः ॥ ७६ ॥

यतो ह्यनाश्रमी तिष्ठन् पतत्येव न संशयः ।
अतो गार्हस्थ्यभावेऽपि वैराग्यं समुपागतः ॥ ७७ ॥

तथा गृहस्थधर्म्मस्य पालने चाऽक्षमः पुमान् ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना ह्याश्रमान्तरमाविशेत् ॥ ७८ ॥

विप्रो वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं सन्न्यासेन नयेत् क्रमात् ॥ ७९ ॥

और परम श्रद्धाके साथ यथाशक्ति उपासना भी करनी चाहिये। प्रतिदिन मोक्षशास्त्र आदिके पाठसे वे अपना ज्ञान भली भांति बढ़ावें और तदनुसार आचरण भी उन्हें करना चाहिये। तप एवं ज्ञानमें जो वृद्ध हैं, उनका और देवताओंका पूजन तथा देवमूर्त्तियों-के पीठोंका सम्मान उन्हें करना चाहिये। द्विजको कभी एक क्षणके लिये भी अनाश्रमी नहीं रहना चाहिये * ॥ ७४-७६ ॥ क्योंकि अनाश्रमी रहनेसे वह पतित होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः गृहस्थाश्रममें रहते हुए यदि वैराग्य प्राप्त हो या कोई गृहस्थधर्म—पालनमें असमर्थ हो, तो शास्त्रोक्त विधिसे ही आश्रमान्तर ग्रहण करना चाहिये ॥ ७७-७८ ॥ ब्राह्मण अपने आयुष्यका तृतीय भाग वानप्रस्थाश्रममें बिताकर क्रमशः जीवनका चतुर्थ भाग सन्न्यासाश्रममें बितावें ॥ ७९ ॥ एक

---

* आर्यजातिके स्वाभाविक नेता ब्राह्मण वर्णमें उत्पन्न व्यक्तिको कदापि अना-श्रमी होकर एक क्षण भी नहीं रहना चाहिये। या तो वह ब्रह्मचारी रहे या गृहस्थ रहे या वानप्रस्थ रहे या सन्न्यासी हो जाय। अनाश्रमी होकर रहनेसे उसकी अवश्य अवनति होगी, यह महर्षियोंका सिद्धान्त है।

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन् प्रेत्य वर्द्धते ॥ ८० ॥
अग्नीनात्मनि संस्थाप्य विप्रः प्रव्रजितो भवेत्।
योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः ॥ ८१ ॥
यदा मनसि सम्पन्नं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु।
तदा सन्न्यासमिच्छेत्तु पतितः स्याद्विपर्य्यये ॥ ८२ ॥
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं आग्नेयीमथवा पुनः।
दान्तः पक्वकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत् ॥ ८३ ॥
सदन्ने वा कदन्ने वा लोष्टे वा काञ्चने तथा।
समबुद्धिर्यस्य शश्वत् स संन्यासीति कीर्तितः ॥ ८४ ॥
शुद्धाचारद्विजान्नञ्च भुङ्क्ते लोभादिवर्जितः।
किन्तु किञ्चिन्न याचेत स संन्यासीति कीर्तितः ॥ ८५ ॥
अयाचितोपस्थितञ्च मिष्टामिष्टञ्च भुक्तवान्।
भक्षणार्थी न याचेत स संन्यासीति कीर्तितः ॥ ८६ ॥

आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाकर, अग्निहोत्रादि सम्पन्न कर जितेन्द्रिय और भिक्षा एवं बलिसे परिश्रान्त होकर अन्तमें जो संन्यास ग्रहण करता है उसकी देह छूटनेपर अवश्य ही आध्यात्मिक उन्नति होती है ॥ ८० ॥ अग्निको आत्मामें स्थापन कर ब्राह्मणको सन्न्यासी होना चाहिये। योगाभ्यासनिरत, शान्त और ब्रह्मविद्या-में परायण होकर जब मनमें सब वस्तुओंसे विराग हो जाय, तब सन्न्यासकी इच्छा करनी चाहिये। इसका विपर्यय होनेसे वह पतित हो जाता है ॥ ८१-८२ ॥ प्राजापत्येष्टि अथवा आग्नेयी इष्टि कर दमशील होकर और वासनाओंका क्षय करके ब्रह्माश्रम अर्थात् सन्न्यासाश्रमका आश्रय करना चाहिये ॥ ८३ ॥ सुस्वादु अथवा नीरस अन्नमें, पत्थर या सोनेमें जिसकी निरन्तर समबुद्धि रहे, वही सन्न्यासी है ॥ ८४ ॥ जिसका आचार शुद्ध हो ऐसे द्विजका अन्न लोभादि छोड़कर जो सेवन करता है और कुछ भी याचना नहीं करता, वह सन्न्यासी है ॥ ८५ ॥ विना मांगे मीठा कड़ुवा जो कुछ सामने आजाय उसको खाकर भोजनकी जो कभी याचना नहीं

सर्व्वत्र समबुद्धिश्च हिंसामायाविवर्जितः।
क्रोधाहङ्काररहितः स सन्न्यासीति कीर्तितः॥ ८७॥
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
संन्यासीह स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः॥ ८८॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः।
सम्यक् स दमसम्पन्न स योगी भिक्षुरुच्यते॥ ८९॥
भैक्ष्यं श्रुतञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः।
सम्यक् च ज्ञानवैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः॥ ९०॥
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिको मोक्ष एव च।
तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्तिसमाश्रितः॥ ९१॥
प्रथमा भावना पूर्व्वे मोक्षे त्वक्षरभावना।
तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी॥ ९२॥
यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम्।
आनन्दं ब्रह्म तत्स्थानं यस्मान्नावर्त्तते मुनिः॥ ९३॥

करता, वही संन्यासी है॥ ८६॥ जिसकी सर्वत्र समबुद्धि हो, जो हिंसा, माया, क्रोध, अहंकारसे रहित हो, वही संन्यासी है॥ ८७॥ जो पूर्ण तपस्वी और ध्यानपरायण है, वानप्रस्थाश्रममें रहनेपर भी उसे संन्यासी ही जानना चाहिये॥ ८८॥ जो आत्मामें रत, नित्यतृप्त और दमसम्पन्न है, वह महामुनि योगी भिक्षु कहा जाता है॥ ८९॥ भिक्षावृत्ति, शास्त्राध्ययनमें प्रवृत्ति, मनोनिग्रह, तप, ध्यान, उत्तमज्ञान और विशेषतः वैराग्य येही भिक्षुके धर्म हैं॥ ९०॥ योगी तीन प्रकारके होते हैं, यथा—(१) भौतिक योगी (२) मोक्ष योगी और (३) अन्त्याश्रमी योगी, जो योग मूर्तिस्वरूप हैं॥ ९१॥ पहिलेकी प्रथमा भावना, दूसरे (मोक्ष योगी) की अक्षर भावना और तीसरे (अन्त्याश्रमी) की पारमेश्वरी भावना होती है॥ ९२॥ ऐसे अन्त्याश्रमी यतचित्त ऊर्ध्वरेता संन्यासी यतियोंके ब्रह्मानन्दका वही स्थान–परमपद–है, जहांसे वे मुनि लौट

योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम्।
आनन्दमैश्वरं यस्मान्मुक्तो नावर्त्तते नरः॥ ९४॥

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्वेदसंन्यासिनोऽपरे।
कर्म्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधा परिकीर्त्तिताः॥ ९५॥

यः सर्व्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चाऽपि निर्भयः।
प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी स्वात्मन्येव व्यवस्थितः॥ ९६॥

वेदमेवाऽभ्यसेन्नित्यं निराशीर्निष्परिग्रहः।
प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः॥ ९७॥

यस्त्वग्नीनात्मसात् कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः।
ज्ञेयः स कर्म्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः॥ ९८॥

त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानी त्वभ्यधिको मतः।
न तस्य विद्यते कर्म्म न लिङ्गाद्या विपश्चितः॥ ९९॥

नहीं आते॥ ९३॥ योगियोंके लिये अमृत, व्योमाख्य, परमाक्षर, आनन्दरूप और ईश्वरसम्बन्धीय वह स्थान है, जहांसे मुक्त पुरुष पुनः लौटकर नहीं आता॥ ९४॥ तीन प्रकारके संन्यासी होते हैं। यथा–ज्ञानसन्न्यासी, वेदसन्न्यासी और कर्म्मसंन्यासी॥ ९५॥ जो अपने आत्मामें ही रममाण, सर्वसंगरहित, निर्द्वन्द्व और निर्भय है, उसे ज्ञानसंन्यासी कहते हैं॥ ९६॥ जो जितेन्द्रिय मुमुक्षु किसीसे कुछ नहीं लेता, आशा नहीं रखता और नित्य वेदपाठ ही किया करता है, वह वेदसंन्यासी कहाता है॥ ९७॥ जो द्विज अग्निको आत्मसात्‌कर ब्रह्मार्पणपरायण है, वह महायज्ञपरायण कर्मसंन्यासी जानना चाहिये *॥ ९८॥ इन तीनोंमें ज्ञानी संन्यासी ही सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि न उसे कोई कर्म है और न चिन्हादिकी ही अपेक्षा है॥ ९९॥ वह मरण नहीं

---

* संन्यासीकी अवस्थाके ये तीन भेद विचारने योग्य हैं। केवल कर्मकाण्डकी सहायतासे बहिरग्निका आत्मामें समारोप करनेसे कर्मसन्न्यासी होता है। सर्वत्यागी व्यक्ति अर्थात् अंतःकरणसे त्याग होकर जिसको वैराग्य हो गया है, वह द्वितीय अवस्था है और आत्मज्ञानी सन्न्यासी सर्वोत्तम है।

नाभिनन्देत मरणं नाऽभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ १०० ॥
नाऽध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कदाचन।
एवं ज्ञानपरो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १०१ ॥
एकवासोऽथवा विद्वान् कौपीनाच्छादनोऽथवा।
मुण्डः शिखी वाऽथ भवेत् त्रिदण्डी निष्परिग्रहः ॥ १०२ ॥
काषायवासाः सततं ध्यानयोगपरायणः।
ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वासं देवालयेऽपि वा ॥ १०३ ॥
समः शत्रौ तथा मित्रे तथा मानापमानयोः।
भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत् क्वचित् ॥ १०४ ॥
यस्तु मोहेन चाऽन्यस्मादेकान्नादी भवेद् यदि।
न तस्य निष्कृतिः काचिद् धर्म्मशास्त्रेषु कथ्यते ॥ १०५ ॥
रागद्वेषविमुक्तात्मा समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात्सर्व्वनिस्पृहः ॥ १०६ ॥

चाहता और जीना भी नहीं चाहता। वह आज्ञाकारी सेवककी तरह केवल कालकी प्रतीक्षा करता रहता है ॥ १०० ॥ बन्धन करनेवाले शास्त्र पढ़ना, बोलना, सुनना, उसके लिये कुछ नहीं है। ऐसा ज्ञान-परायण योगी ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है ॥ १०१ ॥ वह विद्वान् एक वस्त्र परिधान करे वा कौपीन ही धारण करे, चाहे मुण्डन करा दे या शिखा ही रखा ले, त्रिदण्ड ग्रहण करे अथवा कुछ भी न ले। काषायवस्त्रधारी, निरन्तर ध्यानयोगमें परायण, गांवके बाहर वृक्षके नीचे अथवा किसी देवालयमें जिसका वास हो ॥१०२-१०३॥ शत्रु मित्र और मान अपमानको जो समान समझता हो, जो भिक्षाकर जीवन बिताता हो और एकहीका अन्न न खाता हो (यदि मोहसे किसी एक हीका अन्न खानेवाला वह हो जाय तो धर्मशास्त्रमें उसके लिये कोई निष्कृति नहीं है) रागद्वेषसे रहित, पत्थर और सोनेको एकसा समझनेवाला, प्राणिहिंसासे

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत्।
सत्यपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत्॥ १०७॥
दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशून्यवर्ज्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्॥ १०८॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं तपः परम्।
क्षमा दया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः॥ १०९॥
चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकौ।
हंसः परमहंसश्च योऽत्र पश्चात्स उत्तमः ११०॥

इति श्रीसन्न्यासगीतायां सन्न्यासधर्म्मनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः।

शुक उवाच।

परिव्राजकमूर्द्धन्य! प्रभो सन्न्यासिनां गुरो।
श्रुतोऽस्माभिश्चतुर्णां हि धर्म्मः साधारणोऽनघ!॥ १॥

निवृत्त, मनको दमन करनेवाला, इच्छारहित, देखकर चलनेवाला, छानकर जल पीनेवाला, सत्य बोलनेवाला, मनसे पवित्राचरण करनेवाला, दम्भ, अहङ्कार, निन्दा, दुष्टतादिसे रहित, आत्मज्ञानके गुणसे युक्त जो यति हो, वह मोक्ष प्राप्त करता है॥१०४-१०८॥ ऐसे यतिके अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, तप, क्षमा, दया और सन्तोष ये व्रत हैं॥ १०९॥ चार प्रकारके भिक्षु होते हैं। यथाः-कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस-इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने गये हैं॥ ११०॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यासगीताका संन्यासधर्मनिरूपण नामक षष्ठाध्याय समाप्त हुआ।

श्रीशुकदेवजी बोलेः—हे निष्पाप! हे परिव्राजक श्रेष्ठ! हे सन्न्यासियोंके गुरु! हे प्रभो! हमने चारों प्रकारके सन्न्यासियों

सन्न्यासिनां महाभाग ! कृपया श्रावयस्व नः।
कुटीचकस्य यः शास्त्रे विशिष्टो धर्म्म ईरितः ॥ २ ॥
पद्धतिर्या च संन्यासग्रहणे सम्मता सताम् ॥ ३ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

मुमुक्षुः सत्युपरते गार्हस्थ्याच्चेतसि ध्रुवम्।
वानप्रस्थं समाश्रित्य त्यागे पूर्णरुचिस्तथा ॥ ४ ॥
साधने योग्यतां लब्ध्वा संन्यासाश्रममाविशेत्।
यद्वा विषयवैतृष्ण्यमात्मज्ञानार्ज्जने तथा ॥ ५ ॥
उत्कटेच्छा प्रजायेत तदैव प्रव्रजेत्सुधीः।
यतो वै प्राणिनां लोके गतिर्भाविन्यनिश्चिता ॥ ६ ॥
कुटीचकानां लक्ष्यं तु वक्ष्यमाणं निशामय।
विषयवासनात्याग इन्द्रियाणाञ्च संयमः ॥७ ॥
दृष्टानुश्रविकाणां हि विषयाणां विशेषतः।
त्यागसंकल्प आख्यातः सकामस्य च कर्म्मणः ॥ ८ ॥

का साधारण धर्म सुन लिया ॥ १ ॥ अब हे महाभाग ! कुटीचक सन्न्यासियोंका शास्त्रमें जो विशिष्ट धर्म कहा है, उसे सुनाइये ॥२॥ और सन्न्यास ग्रहणकी सज्जन सम्मत पद्धतिका भी वर्णन कीजिये ॥३॥

महर्षि याज्ञवल्क्यने कहाः—जब मुमुक्षुके चित्तमें गृहस्थाश्रमसे सच्ची उपरति हो जाय और जब वह वानप्रस्थाश्रमका आश्रय कर पूर्ण त्यागी बन जाय एवं जब वह साधनमें योग्यता प्राप्त कर ले, तब उसे सन्न्यासाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। अथवा विषयोंसे विरक्ति और आत्मज्ञान प्राप्तिकी उत्कट इच्छा जब हो, तभी बुद्धिमान् मनुष्यको सन्न्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। क्योंकि संसारमें प्राणियोंकी अनिश्चित गति हुआ करती है ॥४-६॥ अब कुटीचकोंका लक्ष्य कहता हूं, सुनिये। विषयवासनाका त्याग, इन्द्रियोंका संयम, विशेषतया दृष्ट और आनुश्रविक विषयोंका सङ्कल्प त्याग,

त्यागस्तथा गृहस्थानां वानप्रस्थगतस्य च।
धर्म्मस्य त्यागः कथितो देहाध्यासनिवारणे ॥ ९ ॥

तथा प्रयत्नो बहुधा सर्व्वकर्म्मस्वपि ध्रुवम्।
आत्मनैव सम योगो योगसाधनमेव च ॥ १० ॥

पराभक्तेस्तथा लाभस्तत्त्वज्ञानागमश्च ह।
विषयेषु च वैराग्यं संन्यासे तीव्रकाङ्क्षिता ॥ ११ ॥

यदा जायेत विप्रस्य तदैव प्रव्रजेद् गृहात्।
कस्यचिदुपयुक्तस्य गुरोः संन्यासिनोऽन्तिके ॥ १२ ॥

बद्धाञ्जलिर्नतशिरा दीक्षामभ्यर्थयेत् स्वयं।
इत्थं कुटीचकव्रतं प्रार्थयित्वा द्विजोत्तमः ॥ १३ ॥

प्रसाद्य देवर्षिपितॄन् देशे काले गुणान्विते।
आकाङ्क्षेत ततो धीरः संन्यासव्रतधारणम् ॥ १४ ॥

कामिनीकाञ्चनत्यागो यावज्जीवनधारणम्।
निष्कामकर्मणोऽभ्यासो गुरौ भक्तिर्निरन्तरा ॥ १५ ॥

ब्रह्मणि च पराभक्तिस्तत्त्वज्ञानावलम्बनात्।
अद्वैतभावनासिद्धिरेतत्सर्वं समासतः ॥ १६ ॥

सकाम कर्म त्याग ॥ ७-८ ॥ गृहस्थोंके और वानप्रस्थोंके धर्मोंका त्याग, सब कर्मोंके करनेमें देहाध्यास निवारणके लिये बहुधा निश्चित रूपसे प्रयत्न, आत्माके साथ योग, योगसाधन, पराभक्तिका लाभ, तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति, विषयोंमें वैराग्य और सन्न्यासकी तीव्र आकांक्षा, ये सब बातें जब हों, तभी ब्राह्मणको घरसे निकल जाना चाहिये। फिर किसी उपयुक्त सन्न्यासीके निकट जाकर ॥ ९-१२ ॥ हाथ जोड़ सिर झुकाकर दीक्षाके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकार कुटीचकव्रतके लिये प्रार्थना कर और अच्छे देशकालमें देव, ऋषि और पितरोंको सन्तुष्ट कर उस धीर द्विजश्रेष्ठको सन्न्यास व्रत धारण करनेकी इच्छा करनी चाहिये ॥ १३-१४ ॥ आजन्म कामिनी काञ्चनका त्याग, निष्काम कर्म्मोंका अभ्यास, निरन्तर गुरुभक्ति, ब्रह्मकी पराभक्ति, तत्त्वज्ञान

सन्न्यासदीक्षाग्रहणे प्रधानं लक्ष्यमीरितम्।
आतुरस्य तु सन्न्यासे विशेषः कोऽपि नो विधिः ॥१७॥
अल्पान्नाऽभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥ १८ ॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत् कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ १९ ॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ २० ॥
प्राणस्योत्क्रमणासन्नकालस्त्वातुरसंज्ञिकः।
नेतरस्त्वातुरः कालो मुक्तिमार्गप्रवर्तकः ॥ २१ ॥
आतुरेऽपि च सन्न्यासे तत्तन्मन्त्रपुरःसरम्।
मन्त्रावृत्तिञ्च कृत्वैव सन्न्यसेद्विधिवद्बुधः ॥ २२ ॥
आतुरेऽपि क्रमे वाऽपि प्रैषभेदो न कुत्रचित्।
न मन्त्रः कर्मरहितः कर्म मन्त्रमपेक्षते ॥ २३ ॥

के अवलम्बनसे अद्वैत भावनाकी सिद्धि, यही सब सन्न्यास दीक्षा ग्रहणमें प्रधान लक्ष्य कहे गये हैं। आतुर सन्न्यासके लिये कोई विशेष विधि नहीं है ॥ १५-१७ ॥ अल्प अन्न खाकर और एकान्त वास कर अशक्त हुई इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करना चाहिये ॥१८॥ ब्राह्मण प्रणव और व्याहृतिसे युक्त तीन ही प्राणायाम यदि यथा-विधि करे, तो वही परम तप जानना चाहिये ॥ १९ ॥ जिस प्रकार अग्निमें तपानेसे धातुके मल जल जाते हैं उसी प्रकार प्राणायाम करनेसे इन्द्रियोंके दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥ जब बिलकुल प्राण निकलते हों, वही काल आतुर संज्ञक है। दूसरा कोई आतुर काल मुक्तिमार्गप्रवर्तक नहीं है ॥ २१ ॥ आतुर सन्न्यासमें भी उन उन मन्त्रों सहित मन्त्रावृत्ति कर विधिपूर्वक विद्वान् पुरुष सन्न्यास ग्रहण करे ॥ २२ ॥ आतुर सन्न्यास या क्रमसन्न्यासमें प्रैषभेद कहीं नहीं है। कोई मन्त्र कर्मरहित नहीं है और हर एक कर्म मन्त्र

अकर्म मन्त्ररहितं नाऽतो मन्त्रं परित्यजेत्।
मन्त्रं विना कर्म्म कुर्यात् भस्मन्याहुतिवद्भवेत् ॥ २४ ॥
विध्युक्तकर्मसंक्षेपात् सन्न्यासस्त्वातुरः स्मृतः।
तस्मादातुरसन्न्यासे मन्त्रावृत्तिविधिर्मुने ॥ २५ ॥
आहिताऽग्निर्विरक्तश्चेद्देशान्तरगतो यदि।
प्राजापत्येष्टिमप्स्वेव निवृत्त्यैवाऽथ सन्न्यसेत् ॥ २६ ॥
मनसा वाऽथ विध्युक्तमन्त्रावृत्त्याऽथवा जले।
श्रुत्यनुष्ठानमार्गेण कर्मानुष्ठानमेव वा ॥ २७ ॥
आतुरस्य तु सन्न्यासे प्रेषमात्रं हि केवलम्।
न श्राद्धादि न चाऽन्यत् स्याज्जलमध्यादिसर्पणम् ॥ २८ ॥
प्रेषं वक्तुमशक्तश्चेद्वाचाऽसौ मनसैव हि।
प्रेषं कुर्यात्स्वयं धीरो मरणे समुपस्थिते ॥ २९ ॥
आतुराणां तु सन्न्यासे न विधिर्नैव च क्रिया।
प्रेषमात्रं समुच्चार्य्य सन्न्यासं तत्र कारयेत् ॥ ३० ॥

की अपेक्षा रखता है ॥ २३ ॥ मन्त्ररहित कर्म्म अकर्म्म मात्र है, इसलिये मन्त्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। मन्त्रके विना कर्म्म करना राखमें आहुति देनेके बराबर है ॥ २४ ॥ संक्षेपसे सन्न्यासका विधियुक्त कर्म करनेको आतुर सन्न्यास कहते हैं। इसलिये हे मुने ! आतुर सन्न्यासमें भी मन्त्रावृत्तिकी विधि है ॥ ॥ २५ ॥ अग्निहोत्री विरक्त होकर यदि देशान्तरमें गया हुआ हो तो प्रजापत्येष्टि जलमें ही निपटाकर उसे सन्न्यास ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ २६ ॥ मनसे यथाविधि मन्त्रावृत्ति करे अथवा जलमें बैठ कर वेदोक्त मार्गसे यथाविधि कर्मानुष्टान करे ॥ २७ ॥ आतुर सन्न्यासमें केवल प्रेषमात्र है। न उसे श्राद्ध है और न जलमें ही बैठना होता है ॥ २८ ॥ प्रेष कहनेमें अशक्त हो और प्राणोत्क्रमण-का समय उपस्थित हो गया हो, तो धीर पुरुष स्वयं मानसिक वाणीसे प्रेष कहे ॥ २९ ॥ आतुर सन्न्यासमें न कोई विधि है और न कोई क्रिया है। केवल प्रेषका उच्चारण कर सन्न्यास कर देना

तनुं त्यजेद्धि यो विप्रः कृत्वा सन्न्यासमात्मवान्।
मानसाद्वाचकाद्वाऽपि प्रेषादेवाऽत्र जायते ॥ ३१ ॥
कालान्तरेऽथवा सद्यो ब्रह्मलोकं स गच्छति।
सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ ३२ ॥
न तत्क्रतुसहस्रेण फलं प्राप्नोति मानवः।
सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ ३३ ॥
स सूर्यमण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोके महीयते।
ब्रह्मणो मरणे तेन ब्रह्मणा सह धैर्य्यवान् ॥ ३४ ॥
महाभूतक्षये प्राप्ते परं ब्रह्माऽधिगच्छति।
आपत्काले तु सन्न्यासः कर्त्तव्य इति शिष्यते ॥ ३५ ॥
जरयाऽभिपलीतेन शत्रुभिर्व्यथितेन च।
सन्न्यसन्नातुरो विप्रो यदि जीवति चेत्पुनः ॥ ३६ ॥
कर्त्तव्यः क्रमसन्न्यास आत्मश्रेयोऽभिकाङ्क्षिणा।
ततो नैमित्तिकान्पितॄन्सन्तर्प्य विधिपूर्वकम् ॥ ३७ ॥

चाहिये ॥ ३० ॥ सन्न्यास ग्रहण कर जो ब्राह्मण शरीर छोड़ता है, और जिसका यहां पर मानसिक अथवा वाचनिक प्रेष हो जाता है, वह कालान्तरमें अथवा तुरन्त ब्रह्मलोकको पहुँचता है। जब कण्ठ-में प्राण आ जाते हैं, तब यदि कोई 'सन्न्यस्तं' इतना ही कह दे तो उस पुरुषको ऐसा फल मिलता है जो हजार यज्ञ करनेसे भी नहीं मिलता। मरनेके समय यदि कोई 'सन्न्यस्तं' कहदे ॥ ३१-३३ ॥ तो वह सूर्यमण्डलको भेद कर ब्रह्मलोकमें पहुंचता है। ब्रह्माजीके लयके समयमें और महाभूतोंका क्षय होते समय वह धीर पुरुष ब्रह्माके साथ परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। आपत्कालमें सन्न्यास लेलेना चाहिये, ऐसा भी कहा है ॥ ३४-३५ ॥ जरासे जर्ज्जर होनेके कारण अथवा शत्रुसे पीड़ित होनेके कारण आतुर सन्न्यास लेने पर भी यदि वह ब्राह्मण जी जाय, तो उस आत्म-कल्याणकी चाहना करने वालेको फिर क्रमसन्न्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। अनन्तर नैमित्तिक पितरोंका विधिपूर्वक सन्तर्पण

नैमित्तिकाँस्तथा देवान्प्रसाद्य सन्न्यसेद्बुधः।
यतो वै दैवशक्तीनां पैतृकीणामिमे तथा ॥ ३८ ॥
प्रत्यक्षप्रतिनिधय आम्नाता सकला अपि।
नैमित्तिकास्तु पितरो यावत्सप्तमपूरुषम् ॥ ३९ ॥
प्राधान्येनैव विज्ञेया देवा नैमित्तिकास्त्वमी।
कुलदेवा ग्राम्यदेवा वास्तुदेवा प्रधानतः ॥ ४० ॥
गुरोः पुरोधसश्चैव ज्ञानवृद्धनृणां तथा।
अध्यात्मसम्बन्धयुजामेतेषामपि तोषणम् ॥ ४१ ।
कृत्वैव प्रव्रजेद्धीमान् चतुर्थेह्याश्रमे शुचिः।
यदि संस्कारशेषः स्यात्स्वयं स्वश्राद्धमाचरेत् ॥ ४२ ॥
कुटीचकस्तु सन्न्यासी योगसाधनसंयमौ।
अभ्यसेद्धि विशेषेण पञ्चसाकारब्रह्मसु ॥ ४३ ॥
कस्मिंश्चिद्यत्र मनसोरुचिरुग्राऽस्ति तस्य वै।
तस्मिन्रूपे सदा ध्यायन् ब्रह्मोपासनमाचरेत् ॥ ४४ ॥
आत्मीयकुलजातीनां त्यक्त्वा सम्बन्धमप्युत।
शरीरयात्रां निर्वोढुं धर्म्मात्मन्यात्मजे सति ॥ ४५ ॥

कर और नैमित्तिक देवताओंको प्रसन्न कर, उस विद्वान्को सन्न्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। क्योंकि दैवी शक्ति और पैतृकी शक्तिके ये सब प्रत्यक्ष प्रतिनिधिस्वरूप माने गये हैं। नैमित्तिक पितर सात पुरुष तक प्रधानतया मानने चाहियें और नैमित्तिक देवोंमें कुलदेव, ग्राम्यदेव एवं वास्तुदेव प्रधान हैं ॥ ३८-४० ॥ गुरु, पुरोहित, ज्ञानवृद्ध और अध्यात्मसम्बन्धयुक्त-पुरुषोंको सन्तुष्ट कर बुद्धिमान् पुरुष पवित्रतासे चतुर्थाश्रममें प्रवेश करे। यदि उसके संस्कार शेष रह गये हों तो वह स्वयं अपना श्राद्ध करले ॥ ४१-४२। कुटीचक सन्न्यासीको विशेषतया योग साधन और संयमका अभ्यास करना चाहिये। पांच साकार ब्रह्ममेंसे (अर्थात् सगुण पञ्च मूर्तियोंमेंसे) जिसमें उनके मनकी उत्कट रुचि हो, उसीके रूपका सदा ध्यान कर उसे ब्रह्मोपासना करनी चाहिये ॥ ४३-४४ ॥ आत्मीय, कुल और जातिसे सम्बन्ध त्याग

कुटीचकस्तु गृह्णीयादन्नवस्त्रे ततोऽपि च ।
एतत्त्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम् ॥ ४६ ॥
भैक्षेण वर्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथाऽपि वा ।
एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसज्येत विस्तरे ॥ ४७ ॥
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ।
सप्तागारं चरेद्भैक्षमलाभे द्वे पुनश्चरेत् ॥ ४८ ॥
प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीयादद्भिः प्रक्षालयेत्तु तत् ।
अथवाऽन्यदुपादाय पात्रं भुञ्जीत नित्यशः ॥ ४९ ॥
भुक्त्वा च संत्यजेत्पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः ।
विधूमे सन्नमुषले व्यङ्गारे भुक्तवर्जने ॥ ५० ॥
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ।
गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालं भिक्षुरधोमुखः ॥ ५१ ॥

कर शरीर यात्राका निर्वाह करनेके लिये, यदि धर्मात्मा पुत्र हो, तो उससे भी कुटीचक अन्न वस्त्र ले सकता है । ऐसे आश्रमनिष्ठ नियतात्मा यतियोंको भिक्षा वृत्तिसे अथवा फलमूल खाकर रहनेकी आज्ञा है । उसे भिक्षा भी रात दिनमें एकबार और थोड़ी*ग्रहण करनी चाहिये ॥ ४५-४७ ॥ क्योंकि भिक्षामें आसक्ति होनेसे यति विषयोंकी ओर प्रवृत्त होता है । सात घर भिक्षार्थ फिरना चाहिये और इतनेपर यदि भिक्षा न मिले तो दो घर और भी जाना चाहिये ॥४८॥ अन्नको धोकर पात्रमें वह भोजन करे और पश्चात् उस पात्रको जलसे धो डाले । अथवा नित्य नवीन पात्र लाकर उसमें भोजन करे । केवल शरीर यात्रार्थ भोजन कर उस पात्रको निर्लोभ होकर फेंक दे । जिस गृहमें धुआँ न निकलता हो, मूसल न बजता हो, अङ्गार न देख पड़ते हों, जहांके लोगोंका भोजन हो गयासा हो और पत्तल बाहर फेंक दिये हों वहां प्रतिदिन यतिको भिक्षार्थ जाना चाहिये । गोदोहन-

* थोड़ी कहनेसे तात्पर्य यह है कि, जो अष्टप्रहरके लिये पर्याप्त हो और अति भोजन भी न हो ।

भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद्वाग्यतः शुचिः ।
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च समाचम्य यथाविधि ॥ ५२ ॥
आदित्ये दर्शयित्वाऽन्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखोऽत्वरः ।
हुत्वा प्राणाहुतीः पञ्च ग्रासानष्टौ समाहितः ॥ ५३ ॥
आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम् ।
अलाबुं दारुपात्रञ्च मृण्मयं वैणवं तथा ॥ ५४ ॥
चत्वारि यतिपात्राणि मनुराह प्रजापतिः ।
प्रदोषे परात्रे च मध्यरात्रे तथैव च ॥ ५५ ॥
सन्ध्यास्वह्नि विशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरम् ॥ ५६ ॥
विष्णुश्चिदा यस्तु सता शिवः सन् ।
स्वतेजसाऽर्कः स्वधिया गणेशः ॥
देवी स्वशक्त्या कुशलं विधत्ते ।
कस्मैचिदस्मै प्रणतिः सदाऽऽस्ताम् ॥ ५७ ॥
त्रिपुरदलनदक्षश्चन्द्रखण्डावतंसः ।
कलितभसितलेपो हस्तविन्यस्तशूलः ॥

को जितना समय लगता है, उतने समय तक वह कुटीचक भिक्षु हरएक घरमें नीचे सिर कर भिक्षा शब्द उच्चारण करके और पवित्रता पूर्वक मौनी होकर भिक्षा करे फिर हाथ पैर धोकर, यथाविधि आचमन कर और सूर्यको अन्न दिखा कर पूर्वाभिमुख बैठ शान्तिके साथ वह भिक्षा ग्रहण करे। पांच प्राणाहुतियोंका हवन कर और आठ ग्रास लेकर पुनः आचमन करे एवं ब्रह्माका तथा परमेश्वरका ध्यान करे। तुम्बीका, काठका, मिट्टीका एवं बाँसका ॥ ४६–५४ ॥ ये चार प्रकारके पात्र मनुप्रजापतिने यतियोंके लिये कहे हैं। प्रदोष, परात्र, मध्यरात्र, सन्ध्या और विशेष कर दिनमें प्रतिदिन ईश्वरचिन्तन करना चाहिये ॥ ५५–५६ ॥ विष्णु चित् शक्तिसे, सदाशिव सत् शक्तिसे, सूर्य अपने तेजसे, श्रीगणेश अपनी बुद्धिसे और देवी अपनी शक्तिसे जगत्का कल्याण करती है, उनको सदा प्रणाम है ॥ ५७ ॥ जो त्रिपुरासुरको मारनेमें कुशल है, जिन्होंने अर्धचन्द्र धारण किया है, भस्म-

भवतु तव कपर्दी क्रीड़दुन्मत्तगङ्गो ।
दधदधितनु देवीं त्र्यम्बको मङ्गलाय ॥ ५८ ॥
जयति सकलविघ्नध्वान्तविध्वंससूर्यो ।
मदपरिमललुब्धैः सेव्यमानो मिलिन्दैः ॥
निजचरणपरेभ्यो दिव्यभोगस्य दाता ।
विलसितरददण्डो हस्तितुण्डो गणेशः ॥ ५९ ॥
मघवमुखसुराणामुत्तमाङ्गेषु यस्याः ।
चरणनखरभासो माल्यभावं भजन्ति ॥
महिषकदनचण्डैः सायुधैर्बाहुदण्डै-
र्जयति विकटमूर्तिः प्रेयसी त्र्यम्बकस्य ॥ ६० ॥
वहति वियति यस्य स्यन्दनं सप्तसप्तिः ।
सततमनुभचक्रं चोद्यमानोऽरुणेन ॥
स जयति तिमिराणां तत्त्वणे लब्धदीक्षो ।
विरतविधुविकाशो बान्धवः पङ्कजानाम् ॥ ६१ ॥

धारी, जिनके हाथमें त्रिशूल है और शिरपर गङ्गा उन्मत्त होकर क्रीड़ा कर रही हैं, अर्धाङ्गमें जगदम्बाको धारण किये हुए कपाल धारण करनेवाले तीन नेत्रवाले शिवजी आपका मङ्गल करें ॥ ५८ ॥ जो सकल विघ्नोंके अन्धकारको हटानेमें सूर्यके समान हैं, गण्ड-स्थलके मदकी सुगन्धिसे लुब्ध होकर भ्रमरगण जिनकी सेवा कर रहे हैं, चरणोंमें रत मनुष्यको जो दिव्य भोग प्रदान करते हैं, जिन-का दण्डस्वरूप दन्त शोभा पा रहा है, उन गजानन गणनायकका जयजयकार हो ॥ ५९ ॥ इन्द्रादि देवताओंके शिरोपर जिसके पदके नखोंकी प्रभा पुष्पोंके समान सुशोभित है, आयुधों सहित बाहुदण्डोंसे और प्रचण्ड महिषासुरके वधसे जिसकी मूर्ति बिकट हो रही है, उस त्रिलोचन सदाशिवकी प्रियाका जयजयकार हो ॥ ६० ॥ आकाशमें नक्षत्र मण्डलमेंसे जिनका रथ अरुणदेव निरन्तर हांक कर ले जाते हैं, जो अन्धकार नाश करनेमें प्रवृत्त हैं, जिन्होंने चन्द्रमाका प्रकाश मन्द कर दिया है और जो कमलोंके मित्र हैं, उन सूर्यनारायणका जयजयकार हो

अधिसलिलधितल्पीकृत्य शेषं शयानो।
द्रुहिणमभिनुवन्तं नाभिपद्मे दधानः॥
चरणयुगलमङ्के क्लृप्तवानिन्दिरायाः।
सजलजलदकान्तिः पातु नारायणो वः॥ ६२॥

स्वस्वाकाशादिभूतप्रकृतिगुणयुजां साधकानां विमुक्त्यै।
ब्रह्मैवैकं स्वमायाशवलितमभवत्पञ्चदेवात्मकं तत्।
नामाकारक्रियाभिर्विययदिव नं भिन्न वस्तुतोऽस्तीति तत्त्वम्।
एकं पञ्चाऽपि पञ्चैकमपि बुधजनाः शान्तिसौख्यं भजन्तु॥६३॥

एषु पञ्चसु रूपेषु यस्य कस्याऽपि निश्चितम्।
गुरुणैवोपदिष्टेषु ध्यानं कुर्य्याद्यतात्मवान्॥ ६४॥
सच्चिदेकं ब्रह्म इति रूपेण मुनिपुङ्गव!
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च॥ ६५॥

एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते।
उपेत्य च स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं समाहितः॥ ६६॥

॥ ६१॥ जो समुद्रमें शेषशय्या पर शयन किये हैं, जिन्होंने विनीत ब्रह्माको नाभिकमलमें धारण किया है और जिनके चरणोंकी सेवा लक्ष्मीजी कर रही हैं, वे घननील नारायण आपको पावन करें ॥ ६२॥ आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी प्रकृतिके गुणोंसे युक्त अपने अपने साधकोंकी मुक्तिके लिये एक ही ब्रह्म अपनी मायासे युक्त होकर पञ्च देवात्मक हो गया है। नाम आकार और क्रियाओंसे यद्यपि पांचों भिन्न प्रतीत होते हैं तथापि वस्तुतः आकाशकी तरह वे एक ही हैं। अतः पांचोंको एक और एकको ही पांच जानकर बुधजन शान्ति सौख्यका लाभ करें * ॥ ६३॥ हे मुनि श्रेष्ठ! इन पांचों रूपोंमें जिस किसीका उपदेश गुरुने किया हो, उसका ध्यान सच्चिदेकं ब्रह्मरूपसे एकाग्र होकर करना चाहिये। सन्न्यासियोंके जो व्रत और उपव्रत हैं उनमेंसे एकका भी यदि अतिक्रम हो जाय तो प्रायश्चित्त होता है। कामेच्छासे यदि

---

* ये मन्त्रयोगोक्त पञ्चोपासनाके स्थूल ध्यान हैं।

प्राणायामसमायुक्तं कुर्यात्सान्तपनं शुचिः।
ततश्चरेत नियमान् कृत्स्नान् संयतमानसः॥ ६७॥

पुनराश्रममागत्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः।
न नर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः॥ ६८॥

तथापि न च कर्त्तव्यः प्रसङ्गो ह्येष दारुणः।
एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा॥ ६९॥

उक्त्वाऽनृतं प्रकर्त्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना।
परमापद्गतेनाऽपि न कार्य्यं स्तेयमन्यतः॥ ७०॥

स्तेयादभ्यधिकः कश्चित् नास्त्यधर्म इति स्मृतिः।
हिंसा चैषा परा तृष्णा याच्ञाऽऽत्मज्ञाननाशिका॥ ७१॥

यदेतद्द्रविणं नाम प्राणास्ते तु बहिश्चराः।
स तस्य हरते प्राणान्यो यस्य हरते धनम्॥ ७२॥

एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तौ व्रतच्युतः।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्॥ ७३॥

वह स्त्रीके निकट जाय, तो प्रायश्चित्त कर प्राणायामयुक्त सान्तपन करे तब वह शुद्ध होगा। फिर वह सन्न्यासी संयमी हो पुनः अपने आश्रममें आकर निरलसभावसे समस्त नियमोंका पालन करे। हे मनीषियो! यद्यपि हंसीमें झूठ बोलना पापजनक नहीं होता है, तथापि सन्न्यासीको ऐसा दारुण प्रसङ्ग कभी नहीं आने देना चाहिये। एक रात्र उपवास और सौ प्राणायाम झूठ बोलनेके प्रायश्चित्तार्थ धर्मात्मा यतिको करने चाहिये। परम आपत्तिमें पड़ने पर भी कभी चोरी नहीं करनी चाहिये॥ ६४–७०॥ ऐसा कहा है कि, चोरीसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है। हिंसा, अत्यन्त तृष्णा और याञ्चा आत्मज्ञानको नाश कर देती है॥ ७१॥ द्रव्य वालेका द्रव्य उसके बहिस्थित प्राणरूप है। यदि कोई किसीका धन अपहरण करे तो वह धन नहीं, उसके प्राण ही हरण करता है॥ ७२॥ चोरी करनेसे वह दुष्टात्मा भिन्न वृत्ति और व्रतसे च्युत होता है, उसे लज्जित होकर चान्द्रायण व्रत करना चाहिये॥७३॥ यह व्रत शास्त्रोक्त

विधिना शास्त्रदृष्टेन सम्वत्सरमिति श्रुतिः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥ ७४ ॥
अकस्मादपि हिंसां तु यदि भिक्षुः समाचरेत् ।
कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रन्तु चान्द्रायणमथापि वा ॥ ७५ ॥
स्कन्देदिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोड़श ॥ ७६ ॥
दिवा स्वप्ने त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतं तथा ।
एकान्ने मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च ॥ ७७ ॥
प्रत्यक्षलवणे चोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम् ।
ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम् ॥ ७८ ॥
तस्मान्महेश्वरं ध्यात्वा तस्य ध्यानरतो भवेत् ।
यद्ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षयमक्षयम् ॥ ७९ ॥
योऽन्तरात्मा परं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः ।
एष देवो महादेवः केवलं परमेश्वरः ॥ ८० ॥
तदेवाऽक्षयमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम् ।
यस्मान्महीयते देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंज्ञिते ॥ ८१ ॥

विधिसे एक वर्ष पर्यन्त करे और संकोचके साथ निरलस होकर भ्रमण करे ॥ ७४ ॥ सन्न्यासी यदि अकस्मात् हिंसा करे, तो उसे कृच्छ्रातिकृच्छ्र अथवा चान्द्रायण व्रत करना चाहिये ॥ ७५ ॥ स्त्रीको देखकर इन्द्रियकी दुर्बलताके कारण यतिका वीर्यपात हो, तो उसे सोलह प्राणायाम करने चाहिये ॥ ७६ ॥ दिनमें यदि सोवे तो तीनरात्र सौ प्राणायाम करे। एकहीका अन्न ग्रहण करे, मद्य मांस भक्षण करे अथवा नवश्राद्धमें जाय ॥ ७७ ॥ या प्रत्यक्ष लवण खाय तो उसकी शुद्धिके लिये प्राजापत्य व्रत करे । ध्याननिष्ठके सब पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८ ॥ इसलिये महादेवका ध्यान कर उन्हींके ध्यानमें उसे रत हो जाना चाहिये। क्योंकि वही परम ज्योतिर्मय ब्रह्मप्रतिष्ठाका स्थान और कभी क्षय होनेवाला नहीं है ॥ ७९ ॥ जो अन्तरात्मा है, वही परब्रह्म महेश्वर है। वही देवाधिदेव केवल परमेश्वर है ॥ ८० ॥ वही अक्षय और अद्वैत है, वही परम

आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः।
नाऽन्यं देवं महादेवात् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति ॥ ८२ ॥

तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम्।
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात् ॥ ८३ ॥

न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमाः।
एकमेवपरं ब्रह्म विज्ञेयं तत्त्वमव्ययम् ॥ ८४ ॥

स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बध्यते।
तस्माद्यत्नेन नियतं यतिः संयतमानसः ॥ ८५ ॥

ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः।
एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः ॥ ८६ ॥

पितामहेन प्रभुणा मुनीनां पूर्वमीरितः ॥ ८७ ॥

इति श्रीसंन्यासगीतायां कुटीचकधर्मनिरूपणं
नाम सप्तमोऽध्यायः।

ज्योति आदित्यमें निहित है। क्योंकि ज्ञान संज्ञक अपने धाममें वही देव पूजे जाते हैं ॥ ८१ ॥ आत्मयोग नामक तत्त्वमें महादेव ही कहे गये हैं। महादेवके अतिरिक्त दूसरा कोई देव नहीं देखा जाता ॥ ८२ ॥ जो उनको अपने आत्मामें खोजता है, वही परम पदको प्राप्त करता है। अपने आत्माको जो परमेश्वरसे भिन्न मानते हैं। वे उस देवको नहीं देख सकते। उनका परिश्रम व्यर्थ है। परब्रह्म एक ही है इस अव्यय तत्त्वको जान लेना चाहिये ॥ ८३-८४ ॥ और वह देव महादेव ही हैं यह जान लेनेपर कोई बद्ध नहीं होता। इसलिये बड़े यत्नके साथ संयमी संन्यासी नियमितरूपसे ज्ञान योगमें रत और शान्त चित्तसे महादेव परायण हो जावे। यह मैंने हे विप्रो! यतियोंके शुभ आश्रमका वर्णन किया है, जो पहिले मुनियोंके स्वामी ब्रह्माने कहा था ॥ ८५-८७ ॥

इस प्रकार संन्यासगीताका कुटीचकधर्मनिरूपण नामक
सप्तम अध्याय समाप्त हुआ।

शुक उवाच।

ज्ञानिनामग्रणीः ! ब्रह्मन् ! श्रुतोऽस्माभिः सविस्तरः ।
कुटीचकस्य धर्मोऽयं विशिष्टस्त्वदनुग्रहात् ॥ १ ॥
बहूदकस्य यो धर्मो विशिष्टः समुदाहृतः ।
श्रावयाऽस्मानिदानीं त्वं भक्तानुग्रहकारकः ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

कुटीचकस्तु संन्यासी पूर्वलक्षणलक्षितः ।
त्रिभिरेव हि वर्षैस्तु स बहूदकतां श्रयेत् ॥ ३ ॥
तत्त्वज्ञानेऽग्रसरतां विना किन्तु न तामियात् ।
बहूदकस्य धर्म्मेषु विशिष्टानि मुनीश्वराः ॥ ४ ॥
सर्वप्रधानानि तथा लक्ष्यानीमानि यानि वै ।
विश्वात्मना समं स्वस्य चैक्ये यत्नो विशेषतः ॥ ५ ॥
जगद्ब्रह्म स्वरूपं वै ज्ञात्वा निष्कामकर्मकृत् ।
केवलं स भवेन्नित्यं व्रतेऽस्मिन्निरतः शुचिः ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेः–हे ज्ञानियोंमें अग्रणी ब्रह्मन् ! आपके अनुग्रह-से हमने कुटीचकका उक्त विशेष धर्म्म सविस्तर सुना ॥ १ ॥ अब आप बहूदकका जो विशेष धर्म्म कहा गया है वह हमलोगोंको सुनाइये क्योंकि आप भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं ॥ २ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्य बोलेः–पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त कुटीचक संन्यासी तीन वर्षोंके बाद बहूदक धर्मका आश्रय करे ॥ ३ ॥ परन्तु वह यदि तत्त्वज्ञानमें अग्रसर न हुआ हो तो तीन वर्ष बीत जानेपर भी उसे बहूदक नहीं होना चाहिये। हे मुनीश्वरो ! बहूदक धर्मके सर्वप्रधान और विशिष्ट लक्ष्य संक्षेपसे निम्न लिखित हैं। बहूदकको विश्वात्मा-के साथ अपना ऐक्य करनेका विशेषरूपसे यत्न करना चाहिये ॥ ४-५ ॥ जगत्को ब्रह्म स्वरूप जानकर पवित्र भावसे केवल निष्काम कर्मके व्रतमें उसे निरन्तर निरत रहना चाहिये ॥ ६ ॥

पूर्णतायास्तथा लाभः त्यागे तपसि यत्नतः ।
अनिकेतः स्थिरमतिस्तथा च दृढ़संयमी ॥ ७ ॥
न केषुचिदभिष्वङ्गो कश्चनाऽपि हि कुत्रचित् ।
तीर्थयात्राटनं चैव समासेन निबोधत ८ ॥
कामिनीकाञ्चनाभ्यां हि वैराग्यं मनसा यदि ।
पूर्णं नैवोपलब्धं चेन्न बहूदकतां श्रयेत् ॥ ९ ॥
संस्कारो ममतायाश्चेत्स्वजातिकुलबन्धुषु ।
न पूर्णं मनसा नष्टो न बहूदकतां श्रयेत् ॥ १० ॥
आत्मन्येव स्थितौ पूर्णा यदीच्छा नोपजायते ।
कदाऽपि विप्रो धर्मज्ञो न बहूदकतां व्रजेत् ॥ ११ ॥
कुटीचकस्य यत्त्वाहुर्मनसा पूजनं सदा ।
देवर्षिनित्यपितॄणां यच्चाहुर्वै ह्यमन्त्रकम् ॥ १२ ॥
जगत्कल्याणबुद्ध्यैव महायज्ञविधानकम् ।
सर्व्वमेतच्च संप्रोक्तं ब्रह्माण्डस्यात्मना सह ॥ १३ ॥
ज्ञेयं तन्मुनिभिर्नित्यमैक्यसम्बन्धवर्द्धकम् ।
तयोर्बहूदकस्याऽस्ति न निषेधो न वा विधिः । १४ ॥

यत्नपूर्वक त्याग और तपमें पूर्णता लाभ करना चाहिये। गृहहीन, स्थितप्रज्ञ और दृढ़संयमी हो ॥ ७ ॥ कहीं भी किसीमें भी कोई भी आसक्ति न रह जाय। और तीर्थयात्राटन किया करे ॥ ८ ॥ कामिनी काञ्चनसे यदि मनमें पूर्ण वैराग्य उत्पन्न न हुआ हो तो बहूदक धर्मका आश्रय नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥ अपनी जाति कुल और बन्धुवर्गके सम्बन्धकी ममताका संस्कार यदि हृदयसे नष्ट न हुआ हो तो बहूदक नहीं होना चाहिये ॥ १० ॥ आत्मामें ही अवस्थिति करनेकी यदि पूर्ण इच्छा न हो तो धर्मज्ञ ब्राह्मण कदापि बहूदक धर्ममें प्रवेश न करे ॥११॥ कुटीचकके लिये मानसिक पूजन और देव, ऋषि और नित्य पितृगणका जो अमन्त्रक पूजन कहा गया है, वह जगत्कल्याणकी बुद्धिसे महायज्ञ विधायक है। यह सब ब्रह्माण्डके साथ आत्माका ऐक्य सम्बन्ध बढ़ानेके लिये मुनियोंने कहा है ऐसा जान लेना चाहिये। इन दोनोंमेंसे बहूदकके

सङ्कल्पमोहरहितो यस्मात्स परिकथ्यते।
किन्त्वाश्रमागतानां वै धार्म्मिकाणान्तु सत्कृतिः॥ १५॥
शिष्टाचारेण कर्तव्या सर्व्वैः संन्यासिभिः सदा।
मर्य्यादां पालयन्न्यासी वर्णाश्रमविधेर्ध्रुवम्॥ १६॥
जगत्कल्याणबुद्ध्या वै शिष्टाचारपरो भवेत्।
वाङ्मात्रेण नमस्कर्ता निम्नवर्णजुषां सताम्॥ १७॥
साधूनामाश्रमाप्तानां इति शास्त्रविनिर्णयः।
सैश्वर्य्यायाः स्थूलमूर्तेर्ब्रह्मणः परमेशितुः॥ १८॥
ध्यानेन यदि तृप्तः स्यात्संन्यासी तु बहूदकः।
ज्योतिर्ध्यानेऽथवा बिन्दुध्याने कुर्याद्रतिं सदा॥ १९॥
निर्गुणाया धारणाया ध्यानमेतत्सहायकम्।
कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम्॥ २०॥
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसः स्थितम्।
सर्वस्याधारमव्यक्तमानन्दं ज्योतिरव्ययम्॥ २१॥

लिये किसीका विधिनिषेध नहीं है॥ १२-१४॥ क्योंकि वह सङ्कल्प और मोह रहित है। किन्तु अपने आश्रम अर्थात् आसनपर आये हुए धार्मिकोंका सत्कार शिष्टाचारके साथ सभी संन्यासियोंको करना चाहिये। वर्णाश्रम धर्म्मकी मर्य्यादा पालन करनेके लिये संन्यासीको जगत्कल्याणकी बुद्धिसे शिष्टाचार परायण होना चाहिये। आश्रमपर आये हुए निम्न वर्णके सज्जन साधुगणको केवल मौखिक नमस्कार करना चाहिये ऐसा शास्त्रका निर्णय है। ऐश्वर्य युक्त परब्रह्मकी स्थूल मूर्तिके ध्यानसे यदि बहूदक संन्यासी तृप्त हो गया हो तो उसे ज्योतिर्ध्यान अथवा बिन्दुध्यानका अभ्यास करना चाहिये॥ १५-१९॥ ये ध्यान ही निर्गुण धारणाके परम सहायक हैं। हृदयकमलमें विश्वसंज्ञक, विश्वसंभव, सर्व भूतोंके आत्मास्वरूप, अन्धकारसे परे स्थित, सबके आधारस्वरूप, अव्यक्त, आनन्दमय, ज्योतिर्मय, अव्यय, प्रधानपुरुषातीत, आकाश-

प्रधानपुरुषातीतमाकाशं दहनं परम् ।
तदन्तः सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम् ॥ २२ ॥

ध्यायेदनादिमद्वैतमानन्दादिगुणालयम् ।
महान्तं परमं ब्रह्म पुरुषं सत्यमव्ययम् ॥ २३ ॥

सितेतरारुणाकारं महेशं विश्वरूपिणम् ।
ओंकारान्तेऽथवात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि ॥ २४ ॥

आकाशे देवमीशानं ध्यायीताकाशमव्ययम् ।
कारणं सर्वभूतानां आनन्दैकसमाश्रयम् ॥ २५ ॥

पुराणं पुरुषं शम्भुं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात् ।
यद्वा गुहायां प्रकृतौ जगत्सम्मोहनालये ॥ २६ ॥

विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम् ।
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते ॥ २७ ॥

आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः ।
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम् ॥ २८ ॥

रूप और श्रेष्ठ अग्निके रूपमें ब्रह्म स्वरूप, अनादि, अद्वैत, आनन्दादि गुणोंके आलय, महान् परम-ब्रह्म-पुरुष, सत्य, अव्यय और सब भावोंके ईश्वरका ध्यान करना चाहिये † ॥ २०—२३ ॥ श्याम और अरुण स्वरूप विश्वरूप महेशको ॐकारमें अथवा आत्माको परमात्मामें स्थापन कर आकाशमें आकाशरूप, अव्यय, ईश्वर, देवका ध्यान करना चाहिये। जो सब भूतोंका कारण और आनन्दका एकमात्र आश्रयस्थान है उस पुराणपुरुष शम्भुका ध्यान करनेसे बन्धन छूट जाते हैं। * अथवा गुहा, प्रकृति और जगत्सम्मोहनालयके सम्बन्धसे परमव्योम, सर्वभूतोंका कारण, सर्व भूतोंका जीवन-जहां सभी लोग विलीन होते हैं-आनन्दमय ब्रह्मका सूक्ष्मरूप-जिसे मुमुक्षुगण देखते हैं-उसकी चिन्तना कर

---

† यह हठयोगके अनुसार ज्योतिर्ध्यानका प्रकरण है।
* यह लय योगके अनुसार बिन्दुध्यानका प्रकरण है।

अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संयतः।
गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीश्वरम् ॥ २९ ॥
योऽनुतिष्ठेत सततं सोऽश्नुते योगमीश्वरम्।
तस्मात् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥ ३० ॥
ज्ञानं समभ्यसेद्ब्राह्मं मुच्यते भवबन्धनात्।
यद्वा पृथक्त्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् ॥ ३१ ॥
आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः परम्।
यस्माद्भवन्ति भूतानि यद्गत्वा नेह जायते ॥ ३२ ॥
स तस्मादीश्वरो देवः परस्ताद्योऽधितिष्ठति।
यदन्तरे तद्गमनं शाश्वतं शिवमव्ययम् ॥ ३३ ॥
यमाहुस्तत्परो नाऽस्ति स देवः स्यान्महेश्वरः।
शृणुध्वं ऋषयः सर्वे वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ३४ ॥
कालो दुरत्ययः प्रोक्तस्तस्मादुपगते कलौ।
तत्प्रभावात्प्रजाः सर्वा वर्णसङ्करतां तथा ॥ ३५ ॥

उसमें निहित केवल ज्ञानलक्षण, अनन्त, सत्य, ईश्वरीय ब्रह्मका विचार करते हुए संयत होकर रहना चाहिये। यतियोंके लिये श्रेष्ठ, गुह्यसे भी गुह्य इस ज्ञानका जो अनुष्ठान करता है, वह ईश्वरीय योगको प्राप्त करता है। इसलिये नित्य ध्यानरत और आत्मविद्यापरायण होकर ब्रह्मज्ञानका अभ्यास करनेसे सब बन्धन छूट जाते हैं। अथवा सबसे पृथक्, केवल, आनन्द, अक्षर, अद्वितीय, ज्ञान स्वरूप आत्माका ध्यान करना चाहिये। जिससे प्राणिमात्र उत्पन्न होते हैं और जहाँ पहुँच कर वे पुनः उत्पन्न नहीं होते अर्थात् मुक्त हो जाते हैं, वही देव ईश्वर है। उनसे भी परे जो स्थित है, जिसमें उसका गमन शाश्वत, कल्याणमय, अव्यय होता है और जिससे परे कुछ नहीं है, वही देव महेश्वर कहे गये हैं * वेद वेदाङ्गोंमें पारङ्गत समस्त ऋषियो ! सुनिये ॥ २४-३४ ॥ काल बड़ा प्रबल कहा गया है। जब कलिकाल आ जायगा, तब उसके प्रभावसे पृथ्वी पर

---

* ये दो ध्यान राजयोगके अनुसार ईश्वर और ब्रह्म इन दोनों भावोंसे सम्बन्ध युक्त दो पृथक् ध्यान हैं। ईश्वर ध्यान तटस्थवेद्य और ब्रह्मध्यान स्वरूपवेद्य होनेसे राजयोगके अनुसार ये अलग ध्यान माने गये हैं।

कर्म्मसङ्करतां चाऽपि प्रायो यास्यन्ति भूतले।
ब्राह्मणव्यतिरिक्ता ये ततो वर्णाः कलौ तदा ॥ ३६ ॥
प्रव्रज्यां धारयिष्यन्ति निवृत्तेरिच्छुकास्तथा।
परिहारो नास्ति यस्य कालिकी गतिरीदृशी ॥ ३७ ॥
यदि कालप्रभावेण ब्राह्मणेतरवर्णकाः।
निवृत्तिमभिकाङ्क्षेरन् तदा पालनतत्पराः ॥ ३८ ॥
कुटीचकस्य धर्मस्य भवेयुस्ते निरन्तरम्।
तदा बहूदकस्याऽपि धर्मस्येति विनिर्णयः ॥ ३९ ॥
धर्मो हंसस्य परमहंसस्याऽपि न युज्यते।
अन्यथा पतनं तेषां भावीति शास्त्रसम्मतम् ॥ ४० ॥
तथाऽवदध्युस्ते नित्यं लोकरक्षाकरी यथा।
वर्णधर्मस्य मर्यादा न लुप्येत कथञ्चन ॥ ४१ ॥
मनसा तेऽधिकारं हि महान्तमपि कञ्चन।
कीदृशं चाऽपि लभ्येरन् शरीरेण तु नित्यशः ॥ ४२ ॥

समस्त प्रजा प्रायः वर्णसङ्कर और कर्मसङ्कर हो जायगी। ब्राह्मणके अतिरिक्त सभी वर्ण निवृत्तिमार्गके इच्छुक होकर सन्न्यास ग्रहण करने लगेंगे। इस बातका परिहार नहीं हो सकता क्योंकि कालकी गति ही ऐसी है ॥ ३५–३७ ॥ कलिकालके प्रभावसे ब्राह्मणेतर वर्ण जब निवृत्तिकी इच्छा करेंगे और निवृत्ति धर्मका पालन करनेमें तत्पर हो जायंगे, तब उन्हें केवल कुटीचक और बहूदक धर्मका ही पालन करना चाहिये। हंस और परमहंसके धर्मका पालन उनके लिये योग्य नहीं है। वे यदि ऐसा करें अर्थात् हंस या परमहंस बनें तो शास्त्रोंके मतसे उनका निश्चय पतन होगा ॥ ३८–४० ॥ उन्हें लोकरक्षाकारी वर्ण धर्मकी मर्यादाका सदा ध्यान रखना चाहिये। उसका लोप नहीं होने देना चाहिये ॥ ४१ ॥ वे अपना मानसिक कैसा ही महान् अधिकार क्यों न प्राप्त करलें,

वर्णधर्म्मानुसारेण वर्त्तेरन् विनयान्विताः।
स्वोच्चवर्णस्य मर्यादाविचारं च पुनः पुनः॥ ४३॥
हृदि संस्थापयेयुस्ते स्वायामुन्नतिमिच्छवः।
निम्नवर्णभवास्ते वै स्वोच्चवर्णेन पूजनम्॥ ४४॥
न कारयेयुः कथमप्युच्चवर्णाय ते तथा।
न चापि दीक्षां दद्युर्वै श्रुतिस्मृतिवचस्त्विदम्॥ ४५॥
वर्णां पृष्टाः केनचित्ते गोपयेयुः कथञ्चन।
न हि स्ववर्णं यस्माद्वै मूलमाहुर्महर्षयः॥ ४६॥
वर्णाश्रमस्य धर्मं हि आर्यत्वस्य दृढं ध्रुवम्।
एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान्॥ ४७॥
सिद्धिमेकस्य संपश्यन् न जहाति न हीयते।
अतिवादाँस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन॥ ४८॥
न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्व्वीत केनचित्।
क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत्॥ ४९॥

शरीरसे तो उन्हें विनयके साथ वर्ण धर्मानुसार ही चलना चहिये। वे यदि अपनी उन्नति चाहते हों, तो अपनेसे ऊंचे वर्णकी मर्यादाका विचार उन्हें हृदयमें रखना चाहिये। निम्न वर्णमें उत्पन्न होकर अपनेसे ऊँचे वर्णके लोगोंसे वे कभी अपना पूजन न करावें और न अपनेसे ऊंचे वर्णको दीक्षा ही दें, ऐसा श्रुति और स्मृतिका वचन है॥ ४२–४५॥ यदि कोई वर्ण पूछे तो उसे अपनी जाति छिपानी नहीं चाहिये; क्योंकि आर्यत्वका दृढ़ और निश्चित मूल वर्णाश्रम धर्म है। किसीकी सहायता न लेकर अकेला ही सिद्धिके लिये सदा प्रयत्न करे, इस प्रकारसे अकेले ही सिद्धि प्राप्त करनेसे उसकी सिद्धि न घटती है और न वह उसे छोड़ती है। अतिवाद नहीं करना चाहिये। किसीका अपमान नहीं करना चाहिये॥ ४६–४८॥ इस देहका आश्रयकर किसीसे वैर नहीं करना चाहिये। कोई क्रोध करे तो उसपर स्वयं क्रोध नहीं करना चाहिये। कोई आक्रोश

सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतां वदेत्।
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः॥५०॥

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह।
न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया॥ ५१॥

नाऽनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित्।
न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः॥ ५२॥

आकीर्णं भिक्षुकैर्वाऽन्यैरागारमुपसंव्रजेत्।
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत्॥ ५३॥

प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः।
अभिपूजितलाभाँस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः॥ ५४॥

अभिपूजितलाभश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते।
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेन च। ५५॥

करे तो शान्तिके साथ कुशलकी बात करनी चाहिये॥ ४६॥ जो वाणी सात द्वारोंसे निर्गत होती है, ऐसी वाणीका असत्यरूपसे प्रयोग नहीं करना चाहिये। सुखार्थी पुरुष अध्यात्म विषयोंमें प्रेम करता हुआ निरपेक्ष, निरामिष होकर आत्माकी ही सहायतासे विचरण करे। धूमकेतु उदय जैसे उत्पातोंके निमित्तसे, ज्योतिष विद्यासे॥ ५०–५१॥ और अनुशासन वादसे कभी कहींसे भिक्षाकी इच्छा न करे। *तपस्वी, ब्राह्मण, पक्षी, कुत्ते, भिखारी या अन्य लोगोंसे आकीर्ण गृहमें भिक्षार्थ गमन न करना चाहिये। कोई भिक्षा न दे तो विषाद न करे और अच्छी भिक्षा मिलने पर भी हर्ष न माने॥ ५२–५३॥ इन्द्रियके विषयोंके सङ्गसे मुक्त होकर केवल जीवनयात्राका चरितार्थ करना चाहिये। प्रतिष्ठाके साथ जो लाभ हो उसे निन्दित समझे क्योंकि प्रतिष्ठासे प्राप्त अर्थात् पुजाये हुए लाभसे मुक्त यति भी बद्ध हो जाता है। इन्द्रियोंके निरोधसे

---

* इस वचनका तात्पर्य यह है कि, सन्न्यासीको कदापि अपनी कोई विद्या, योग्यता या सिद्धि दिखाकर भिक्षा ग्रहण करनी नहीं चाहिये। यह सन्न्यासीके लिये अधर्म्म है।

अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥५६॥
निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ।
विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगश्च तथाऽप्रियैः ॥ ५७ ॥
जरया चाऽभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ।
देहादुत्क्रमणञ्चास्मात्पुनर्गर्भे च सम्भवम् ॥ ५८ ॥
योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चाऽस्यान्तरात्मनः ।
अधर्म्मप्रभवञ्चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ॥ ५९ ॥
धर्म्मार्थप्रभवञ्चैव सुखसंयोगमक्षयम् ।
सूक्ष्मताञ्चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ॥ ६० ॥
देहेषु च समुत्पत्तिं उत्तमेष्वधमेषु च ।
दूषितोऽपि चरेद्धर्म्मं यत्र तत्राऽश्रमे रतः ॥ ६१ ॥
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्म्मकारणम् ।
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रकाशकम् ॥ ६२ ॥
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ।
संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावहनि वा सदा ॥ ६३ ॥

रागद्वेषके क्षयसे, प्राणिमात्रकी अहिंसासे यति अमृतत्वको प्राप्त करता है। मनुष्योंकी कर्मदोषोंसे बनी हुई गति देखनी चाहिये। नरकमें पतन, यमयातना, प्रियवियोग, अप्रियसंयोग, जरा, का आक्रमण,व्याधिकी पीडा,देहसे उत्क्रमण,पुनःगर्भमें प्रवेश,॥५४-५८॥ करोड़ों योनियोंमें अन्तरात्माका आवागमन ये सब प्राणियोंके अधर्मसे उत्पन्न हुए दुःख योग हैं ॥ ५९ ॥ धर्मार्थप्रभव अक्षय सुखसंयोग ही हुआ करता है। इन बातोंकी परमात्माके संयोगसे सूक्ष्मता देखनी चाहिये ॥ ६० ॥ उत्तम या अधम कैसे ही शरीरमें उत्पत्ति क्यों न हो, दूषित होनेपर भी जिस आश्रमका जो धर्म है, वह पालन करना चाहिये॥६१॥सब प्राणियोंमें समभाव रखना चाहिये। क्योंकि धर्मका कारण वेश नहीं है। कतक वृक्ष अर्थात् निर्मली वृक्षके फलका केवल नाम लेनेसे ही पानी स्वच्छ नहीं होता। रातमें या दिनमें

शरीरस्याऽत्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत्।
अह्ना रात्र्या च यान् जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतो यतिः ॥६४॥
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत्।
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥ ६५ ॥
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनाऽनीश्वरान् गुणान्।
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥ ६६ ॥
चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः।
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥ ६७ ॥
रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत्।
प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ ६८ ॥
विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माऽभ्येति सनातनम्।
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निस्पृहः ॥ ६९ ॥
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्।
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः ॥ ७० ॥

प्राणान्त हो तो प्राणिमात्रकी रक्षाके लिये देखकर पृथ्वी पर चलना चाहिये, दिन या रात्रिमें जो यति विना जाने यदि जन्तुहिंसा करे तो इसकी शुद्धिके लिये वसे स्नान कर छःप्राणायाम करने चाहिये प्राणायाम दोषोंको जला देता है, धारणा किल्विषका नाश करती है ॥६२–६५॥ प्रत्याहारसे संसर्ग दोष दूर होते हैं और ध्यानसे अनीश्वर गुणोंका नाश होता है। कठिन अस्थि स्नायुओंके युक्त, रक्तसे लिप्त ॥ ६६ ॥ चर्मसे बद्ध, मलमूत्रकी दुर्गन्धिसे पूर्ण, जरा और शोकसे आक्रान्त, रोगका निकेतन स्वरूप, दोषयुक्त और पञ्चभूतोंके वासस्वरूप इस नश्वर शरीरकी आसक्तिको छोड़ना चाहिये। वह यति अपना सुकृत प्रियजनोंको और दुष्कृत अप्रियोंको देकर ध्यान योगसे सनातन ब्रह्मको प्राप्त करता है। जब भावकी सहायतासे सब भावोंसे निःस्पृह हो जाता है ॥६७–६९॥ तभी इहलोक और परलोकमें वह शाश्वत सुख प्राप्त करता है। इस प्रकार सब संगोंको धीरे धीरे छोड़कर सब द्वन्द्वोंसे मुक्त होता हुआ वह ब्रह्ममें ही अवस्थिति करता है। यह सब ध्यान सम्बन्धी विषय हैं, जो मैंने कहा॥७०–७१॥ अध्या-

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ।
ध्यानिकं सर्व्वमेवैतत्तदेतदभिशब्दितम् ॥ ७१ ॥
न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित् क्रियाफलमुपाश्नुते ।
अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च ॥ ७२ ॥
आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ।
इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् ॥ ७३ ॥
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ।
अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ॥ ७४ ॥
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ।
एकरात्रं वसेद्ग्रामे नगरे पंचरात्रकम् ॥ ७५ ॥
वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा चरति यो मुनिः ॥ ७६ ॥
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते कचित् ॥ ७७ ॥

इति श्रीसन्न्यासगीतायां बहूदकधर्म्मनिरूपणं नाम अष्टमोऽध्यायः ।

त्मज्ञान विना कोई क्रियाफल नहीं पाता । अधियज्ञ ब्रह्मका जप करना चाहिये, आधिदैविक ब्रह्मका जप करना चाहिये और वेदान्तमें कथित आध्यात्मिक ब्रह्मका जप करना चाहिये *। येही तीनों अज्ञानी, ज्ञानी, स्वर्ग चाहने वाले, अनन्त पदकी इच्छा करनेवाले, सभीके लिये शरण्य है । इस क्रमसे जो द्विज सन्न्यासी होता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त करता है । ग्राममें यतिको एकरात्र और नगरमें पञ्चरात्र रहना चाहिये । वर्षाकालमें कहीं चार मास रहना चाहिये । प्राणिमात्रको अभय प्रदान करता हुआ जो मुनि पर्यटन करता है, उसको किसी प्राणीसे कभी भय उत्पन्न नहीं होता॥७२-७७॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यासगीताका बहूदकधर्म्मनिरूपण नामक अष्टम अध्याय समाप्त हुआ।

---

* देहमें स्थित कूटस्थ चैतन्य अधियज्ञ, सगुण ईश्वर अधिदेव और निर्गुण ब्रह्म आध्यात्मिक कहाते हैं। तीनों एक हैं, एक ही तीन हैं। इस विचारसे जप, और ध्यान सन्न्यासीके लिये हितकर है।

शुक उवाच।

जगद्गुरो! श्रुतोऽस्माभिर्भवतः कृपयाऽनघ।
बहूदकदशायास्तु श्रोतव्यो धर्म उत्तमः॥ १॥

अधुना वै तृतीयाया विशेषं लक्षणं वद।
अवस्थायास्तु हंसस्य न्यासिनोऽस्मान्कृतार्थयन्॥ २॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

यदा तु जायते विप्राः! तत्त्वज्ञानस्य योग्यता।
बहूदको भवेद्धीरस्तदाऽऽत्मानं समुन्नयन्॥ ३॥

यदा च योग्यताप्राप्तिर्मनोनाशस्य जायते।
तदैव हंसावस्थायां विचरेद्योगिराण्मुदा॥ ४॥

यद्येवं योग्यता न स्यात्तदा पूर्वोक्तयोर्वसेत्।
हंसाऽधिकारे तत्त्वज्ञः निष्कामव्रततत्परः॥ ५॥

ब्रह्म मत्वा जगद्रूपं कर्म्मयोगी मनो जयन्।
जगत्यां सत्यधर्म्मस्य तत्त्वज्ञानस्य चैव हि॥ ६॥

श्रीशुकदेवजी बोलेः-हे निष्पाप! हे जगद्गुरो! आपकी कृपासे हमलोगोंने बहूदकदशाका जो उत्तम धर्म सुनना था सो सुन लिया। अब तृतीय अवस्थाके हंस सन्न्यासीका विशेष लक्षण कहकर आप हम लोगोंको कृतार्थ करें॥ १-२॥

महर्षि याज्ञवल्क्यने कहाः-हे विप्रो! जब तत्त्वज्ञानकी योग्यता हो जाय, तब धीर पुरुषको आत्मोन्नति करते हुए बहूदक होना चाहिये और जब मनोनाश करनेकी योग्यता हो जाय, तब उस योगिराजको आनन्दके साथ हंसदशामें विचरण करना चाहिये॥३-४॥ यदि ऐसी योग्यता न हो, तो वह पूर्वोक्त कुटीचक-बहूदककी दशामें ही रहे। हंसके अधिकारमें तत्त्वज्ञानी पुरुष निष्काम व्रतमें परायण होकर ब्रह्मको जगत्‌रूपमें माने और वह कर्मयोगी मनको जय करते हुए व्रती होकर संसारमें सत्यधर्म एवं तत्त्वज्ञानके विस्तारका निरन्तर यत्न करता रहे। हे महर्षिगण! इस दशामें सन्न्यासी जगद्गुरुके प्रतिनिधिका महान् उन्नत पद प्राप्त करता है।

विस्तारे यत्नमादध्याद् व्रती भूत्वा निरन्तरम् ।
अस्यां दशायां संन्यासी उन्नतं लभते पदम् ॥ ७ ॥
जगद्गुरोः प्रतिनिधेर्महनीयं महर्षयः ।
दृष्टाऽनुश्रविकाभ्यां चेद्विषयाभ्यां यदा नृणाम् ॥ ८ ॥
परवैराग्यसम्प्राप्तिस्तदा हंसव्रतं चरेत् ।
पराभक्ते रहस्यं हि ज्ञात्वा साधकसत्तमः ॥ ९ ॥
तत्वज्ञानं चाऽनुभूय तदा हँसव्रतं चरेत् ।
उत्तरोत्तरमेतेषामाश्रमाणां विधारणे ॥ १० ॥
ज्ञानाऽधिकारप्राधान्यं न कालस्य प्रधानता ।
संन्यास्येतज्जगन्मान्यं धृत्वा हंसं महाव्रतम् ॥ ११ ॥
लभते ह्युत्तमां विप्राः ! पदवीं वै जगद्गुरोः ।
स निष्कामकर्मयोगव्रतं धृत्वा महीं चरन् ॥ १२ ॥
लोककल्याणकर्तारमुपदेशं ददत्तथा ।
दीक्षादानं महत्कुर्वन्नभयञ्च प्रचारयेत् ॥ १३ ॥
साधनानां परं तस्य राजयोगोऽस्ति साधनम् ।
तस्य व्रतमिदं ज्ञेयं निष्कामव्रतमेव हि ॥ १४ ॥

दृष्ट और आनुश्रविक विषयोंसे मनुष्यको जब पूर्ण वैराग्य प्राप्त हो जाता है, तब उसे हंसव्रत ग्रहण करना चाहिये। परा भक्तिके रहस्यको जानकर और तत्त्वज्ञानका अनुभव करके साधकोत्तम हंसव्रतका ग्रहण करे। उत्तरोत्तर इन आश्रमोंको ग्रहण करनेमें ज्ञानके अधिकारकी प्रधानता है, कालकी नहीं। सन्न्यासी इस जगन्मान्य हंसके महाव्रतको धारण कर ॥ ५-११ ॥ हे विप्रो ! जगद्गुरुकी उत्तम पदवीको प्राप्त करता है। वह निष्काम कर्म योगके व्रतको धारण कर पृथ्वीपर विचरण करता हुआ लोककल्याण करनेवाले उपदेशको देकर दीक्षादान स्वरूप महान् अभयदानका प्रचार करे ॥ १२-१३ ॥ उसके लिये साधनोंमें श्रेष्ठ साधन राजयोग है। उसका व्रत निष्काम व्रत ही जानना चाहिये ॥ १४ ॥ लोक

धारणाऽपि च सा तस्य जगत्कल्याणधारणा ।
ब्रह्मध्यानं हि तद्ध्यानं धर्मेषु सकलेष्वपि ॥ १५ ॥

ऐक्यबुद्धिस्तु बुद्धिः स्यात्सम्प्रदायेष्वपि भृशम् ।
मित्रे शत्रौ सुखे दुःखे स्त्रियां पुंसि तथैव च ॥ १६ ॥
स्वर्णे लोष्ठे चैषु साम्यं द्वन्द्वेष्वन्येष्वपि ध्रुवम् ।
समाधिः कथिता तस्य महामहिमशालिनः ॥ १७ ॥

जगत्कल्याणबुद्ध्यैव केवलं देहधारणम् ।
तपः समीरितं तस्य सर्वप्राणिहितैषिणः ॥ १८ ॥
ज्ञानोपदेशाज्जीवेभ्यस्त्वभयं दानमुत्तमम् ।
दानं स्वभावजं विद्धि तत्तस्य विदितात्मनः ॥ १९ ॥

तदैव सम्भवस्त्वस्या उन्नताया विशेषतः ।
दशाया हंससंज्ञाया यदा द्रष्टृत्वमाप्नुयात् ॥ २० ॥
संन्यासी कर्मणां सप्तभूमिकायास्तथैव च ।
उपासनायाः सप्तानां भूमिकानां मुनीश्वराः ॥ २१ ॥

भूमिकानाञ्च सप्तानां ज्ञानस्य परमर्षयः ।
रहस्यं स्यात्तस्य सप्त दर्शनानाञ्च हृद्गतम् ॥ २२ ॥

कल्याणकी धारणा ही उसकी धारणा है । ब्रह्मका ध्यान करना ही उसका ध्यान है ॥ १५ ॥ सब धर्म और सम्प्रदायोंमें ऐक्य बुद्धि ही उसकी बुद्धि है । शत्रु-मित्र, सुख-दुःख, स्त्री-पुरुष, सुवर्ण-लोष्ठ और ऐसे ही अन्य द्वन्द्वोंमें भी समभाव रखना ही उस महान् प्रतापी पुरुषकी समाधि कही गई है ॥ १६-१७ ॥ केवल जगत्कल्याण-की बुद्धिसे देह धारण करना ही उसका सर्व-प्राणि-हितकारी तप है ॥ १८ ॥ ज्ञानके उपदेशसे जीवमात्रको उत्तम अभय दान देना ही उस परम ज्ञानी पुरुषका स्वभावसिद्ध दान है ॥ १९ ॥ हे मुनी-श्वरो ! इस विशेष उन्नत हंससंज्ञक दशाका तभी सम्भव हो सकता है, जब सन्न्यासी सप्त कर्मभूमि और सप्त उपासनाभूमिको पूर्णरूपसे जान लेगा ॥ २०-२१ ॥ हे महर्षियो ! सप्त ज्ञानभूमि और सप्त दर्शनोंका रहस्य जब

चतुर्णां योगमार्गाणां सः स्याच्च पथदर्शकः।
संन्यास्येतदवस्थाढ्यो मनसि प्रलयं गते ॥ २३ ॥

उन्नतायां दशायां हि ब्रह्मसद्भावमृच्छति।
चतुर्धा गुरवो ज्ञेयास्तत्र शिक्षागुरुः खलु ॥ २४ ॥

व्यावहारिकशिक्षायाः प्रवर्तक उदाहृतः।
विद्यागुरुर्यो वेदादिशास्त्रमध्यापयेत्सुधीः ॥ २५ ॥

दीक्षागुरुर्यः शिष्यान्स्वान्योजयेदवधानतः।
कर्मोपासनयोर्मध्येऽन्यतरस्मिन्विधानतः ॥ २६ ॥

जगद्गुरुः स विज्ञेयः शिष्यानुपदिशन् हि यः।
ब्रह्मविद्यां नयेत्कालं लोकसंग्रहणेच्छया ॥ २७ ॥

पूजनीयोऽधिकं त्वेषु परः पर इति स्मृतिः।
अन्तिमस्तु विशेषेण साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपभाक् ॥ २८ ॥

असङ्कल्पाज्जयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात्।
अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्षणात् ॥ २९ ॥

उसे हृद्गत हो जायगा, चारों योग मार्गोंका वह पथ-प्रदर्शक बनेगा और उसका मन जब विलीन हो जायगा, तब इस उन्नत दशामें आरूढ़ हुआ सन्न्यासी ब्रह्म सद्भावको प्राप्त करता है। चार प्रकारके गुरु होते हैं। उनमें प्रथम शिक्षागुरु, जो व्यवहारसम्बन्धी शिक्षाका प्रवर्तक कहा गया है। द्वितीय बुद्धिमान् विद्यागुरु, जो वेदादि शास्त्रोंको पढ़ावे ॥ २२-२५ ॥ तृतीय दीक्षा गुरु, जो अपने शिष्योंको यत्नके साथ कर्म अथवा उपासनामेंसे किसी एककी यथाविधि दीक्षा दे ॥२६॥ और चतुर्थ जगद्गुरु उसे जानना चाहिये, जो शिष्योंको ब्रह्मविद्याका उपदेश देते हुए लोकसङ्ग्रहकी इच्छासे अपना समय व्यतीत करता है ॥ २७ ॥ इनमें एकसे एक अधिक पूजनीय हैं और अन्तिम जगद्गुरु तो साक्षात् ब्रह्मस्वरूप होता है ॥२८॥ सङ्कल्प न कर कामको जय करना चाहिये। कामके त्यागसे क्रोधको, अर्थ और अनर्थके विचारसे लोभको, तत्त्वचिन्तनसे भयको, अध्यात्म विद्यासे शोक मोहको, गुरुजनकी उपासनासे दम्भको

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया।
योगान्तरायान्मौनेन हिंसां कामाद्यनीहया ॥ ३० ॥
कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात्समाधिना।
आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ॥ ३१ ॥
रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च।
एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥ ३२ ॥
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च मार्गद्वयमुदीरितम्।
गार्हस्थ्ये हि प्रवृत्तेर्वै त्ववसानं निगद्यते ॥ ३३ ॥
निवृत्तेः पूर्णता युक्ता हंस एवाश्रमे ध्रुवम्।
यतः परमहंसस्य निस्त्रैगुण्या दशा मता ॥ ३४ ॥
यथा गृहस्थ ऐश्वर्यभोगस्याकरणेन तु।
यथा तच्चिह्नरहितो लज्जते जनसंसदि ॥ ३५ ॥
तयोस्तु स्वीकृतौ युक्ता लज्जा संन्यासिनस्तथा।
परवैराग्यलक्ष्मैतद्ध्रीरियं च यथार्थतः ॥ ३६ ॥

मौनसे योग विघ्नको और वासना न करनेसे हिंसाको जय करना चाहिये। कृपासे आधिभौतिक दुःखको, सविकल्प समाधिसे आधिदैविक दुःखको और योगवीर्यसे अध्यात्मिक दुःखको जला देना चाहिये। निद्राको सात्त्विक आचरणसे, रज और तमको सत्त्वगुणसे, सत्त्वको उपशमसे और इन सभोंको सद्गुरुमें भक्ति करनेसे पुरुष शीघ्र जीत लेता है॥२६-३२॥ प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो मार्ग कहे गये हैं। गृहस्थाश्रममें प्रवृत्तिकी समाप्ति हो जाती है और निवृत्तिकी पूर्णता हंसदशामें होती है; क्योंकि परमहंस दशा तो त्रिगुणातीत दशा है॥३३-३४॥ कोई गृहस्थ ऐश्वर्यभोग न करे और ऐश्वर्यभोगके चिन्होंसे रहित हो,तो वह जनसमाजमें जिस प्रकार लज्जित होता है ॥ ३५ ॥ उसी प्रकार ऐश्वर्य भोगका स्वीकार करनेसे और ऐश्वर्यके चिन्ह धारण करनेसे सन्न्यासियोंको लज्जित होना चाहिये। यही पर-वैराग्यका लक्षण है और शास्त्रोंमें इसीको 'ह्री' कहते हैं॥ ३६ ॥

हठमन्त्रलयानां वै योगानां च यदा भवेत्।
आचार्यस्तत्त्वविद्योगी तदा हंसव्रतं चरेत्॥ ३७॥
राजयोगे यदा पूर्णोऽधिकारी योगिराड् भवेत्।
स महापुरुषो विप्राः! तदा हंसव्रतं चरेत्॥ ३८॥
भूमिका कर्मयोगस्य शुभेच्छा प्रथमा स्मृता।
विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा॥ ३९॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंक्तिनामिका।
परार्थाभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता॥ ४०॥
पूर्णज्ञानं विनैतासां राजयोगी भवेन्न हि।
उपासनाया भक्तेश्च भूमिका गदतः शृणु॥ ४१॥
प्रथमा भूमिका नामपरा रूपपराऽपरा।
स्याद्विभूतिपरा नाम्ना तृतीया भूमिका मता॥ ४२॥
तथा शक्तिपरा नाम चतुर्थी भूमिका भवेत्।
एवं गुणपरा ज्ञेया भूमिका पञ्चमी बुधैः॥ ४३॥
षष्ठी भावपरा ज्ञेया सा स्वरूपपराऽन्तिमा।
पूर्णज्ञानं विनैतासां राजयोगी भवेन्न हि॥ ४४॥

जब तत्त्ववेत्ता योगी हठयोग, मन्त्रयोग और लययोगमें आचार्य हो जाय, तब उसे हंसव्रत ग्रहण करना चाहिये॥ ३७॥ जब वह योगिराट् महापुरुष राजयोगमें पूर्ण अधिकारी हो जाय, तब हे विप्रो! उसे हंसव्रतका ग्रहण करना चाहिये॥ ३८॥ कर्मयोगकी प्रथम भूमिकाका नाम शुभेच्छा है, दूसरी विचारणा, तीसरी तनुमानसा चौथी सत्त्वापत्ति, पांचवी असंसक्ति, छठी परार्थाभाविनी और सातवीं भूमिकाका नाम तुर्यगा कहा गया है॥ ३९-४०॥ इनका पूर्ण ज्ञान हुए विना कोई राजयोगी नहीं होता। उपासना और भक्तिकी भूमिकाओंको कहता हूं, सो भी सुनो॥४१॥ उपासनाकी पहिली भूमिकाको नामपरा कहते हैं, दूसरी रूपपरा, तीसरी विभूतिपरा॥ ४२॥ चौथी शक्तिपरा, पांचवीं गुणपरा, छठी भावपरा और सातवीं भूमिकाका नाम स्वरूपपरा है, ऐसा जानना चाहिये। इनका पूर्ण ज्ञान हुए विना कोई राजयोगी नहीं होता है॥ ४३-४४॥ हे विप्रो!

ज्ञानस्य भूमिका विप्राः! इमाः सर्वाः प्रकीर्तिताः।
ज्ञानदा ज्ञानभूमेर्हि प्रथमा भूमिका मता॥ ४५॥
सन्न्यासदा द्वितीया स्यात्तृतीया योगदा भवेत्।
लीलोन्मुक्तिश्चतुर्थी वै पञ्चमी सत्पदा स्मृता॥ ४६॥
षष्ठ्यानन्दपदा ज्ञेया सप्तमी तु परात्परा।
पूर्णज्ञानं विनैतासां तद्वत्तानुभवं विना॥ ४७॥
सम्बन्धज्ञानमन्योन्यमेतासामन्तरा तथा।
कथञ्चिदपि सन्न्यासी राजयोगी भवेन्न हि॥ ४८॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः।
ध्यानयोगेन सम्पश्येद्गतिमस्याऽन्तरात्मनः॥ ४९॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते॥ ५०॥
अहिंसयेन्द्रियाऽसङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्म्मभिः।
तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्॥ ५१॥

ज्ञानकी भूमिकाओंके नाम इस प्रकार कहे गये हैं। ज्ञानभूमिकी पहिली भूमिका नाम ज्ञानदा है, दूसरी सन्न्यासदा, तीसरी योगदा, चौथी लीलोन्मुक्ति, पांचवी सत्पदा, छठी आनन्दपदा और सातवीं भूमिकाका नाम परात्परा है। इनका पूर्णज्ञान और अनुभव हुए विना एवं इनके परस्परके सम्बन्धका ज्ञान हुए विना कोई सन्न्यासी कभी राजयोगी नहीं हो सकता॥ ४५–४८॥ उन्नत और अवनत प्राणियोंमें अकृतात्माओंके लिये दुर्ज्ञेय अन्तरात्माकी गति ध्यान योगसे ही जानने योग्य है॥ ४९॥ उत्तम दार्शनिक ज्ञानसे सम्पन्न पुरुष कर्म्मोंसे बद्ध नहीं होता। दार्शनिक ज्ञानहीन पुरुष संसारमें ही पड़ा रहता है*॥ ५०॥ अहिंसा, इन्द्रियोंके विषयोंमें असंग, वैदिक कर्म्मोंका अनुष्ठान और उग्रतपके अनुष्ठानसे वह

* इसी कारण वैदिक दर्शनशास्त्रोंको दर्शन कहते हैं और दार्शनिक ज्ञान ही मुक्तिका साक्षात् कारण समझा गया है।

नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।
तथात्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते ॥ ५२ ॥
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्म्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म्मलक्षणम् ॥ ५४ ॥
दशलक्ष्माणि धर्म्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ५५ ॥
येन सर्व्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।
तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तत्त्वदर्शिवान् ॥ ५६ ॥
बहिः सूत्रं त्यजेद्विद्वान् योगमुत्तममास्थितः।
ब्रह्मभावमिदं सूत्रं धारयेद्यः सचेतनः ॥ ५७ ॥
धारणात्तस्य सूत्रस्य नोच्छिष्टो नाऽशुचिर्भवेत्।
सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम् ॥ ५८ ॥

उन्नत्त पद प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ नदीके तटको जैसे वृक्ष छोड़ देता है, अथवा वृक्षको जैसे शकुनी छोड़ देता है, वैसे ही इस शरीरको छोड़कर वह यति कठिन बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ५२ ॥ चारों आश्रमोंके द्विजोंको दशलक्षण युक्त धर्मका नित्यही यत्न पूर्वक सेवन करना चाहिये ॥ ५३ ॥ धृति, क्षमा, दम; अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश धर्मके लक्षण हैं। ५४ ॥ धर्मके उक्त दशों लक्षणोंको जो द्विज समझता है और समझ कर तदनुसार आचरण करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ५५ ॥ धागेमें मणियोंकी भाँति जिसमें यह सब जगत् पिरोया हुआ है, इस प्रकारका सूत्ररूपी यज्ञोपवीत तत्त्वदर्शी योगवेत्ता योगीको धारण करना चाहिये ॥ ५६ ॥ उत्तम योगमें निरत विद्वान्को बाह्य सूत्र अर्थात् स्थूलयज्ञोपवीतका त्याग कर यह ब्रह्मभावका सूत्र धारण करना चाहिये; क्योंकि वह अध्यात्म यज्ञोपवीतरूप सूत्र चेतन है ॥ ५७ ॥ इस सूत्रके धारणसे वह सूत्र न उच्छिष्ट होता है न अपवित्र हो। जिन ज्ञान-

ते वै सूत्रविदो लोके ते च यज्ञोपवीतिनः।
ज्ञानशिखा ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः॥ ५९॥

ज्ञानमेव परं तेषां पवित्रं ज्ञानमुच्यते।
गुणत्रयस्य या नित्या धारणा तत्त्रिदण्डकम्॥ ६०॥

यद्वाऽध्यात्माधिदैवाधिभौतिकत्रयधारणाम्।
बुधास्त्रिदण्डं प्राहुर्वै तयोरन्तिममुत्तमम्॥ ६१॥

प्रकृतेः पुरुषस्याऽपि द्रष्टुर्दृश्यस्य चैव हि।
धारणां प्राहुरात्मज्ञा द्विदण्डमिति शब्दतः॥ ६२॥

स्वरूपज्ञानमात्रेऽत्र स्थितिर्यस्य द्विजन्मनः।
एकदण्डी स विज्ञेयः सर्वस्मादपि चोत्तमः॥ ६३॥

तेषामेव स्मारका वै स्थूलदण्डा इमे मताः।
निवृत्तयेऽध्वश्रमतः श्वसर्पादिभयात्तथा॥ ६४॥

दण्डं तु वैणवं सौम्यं सत्वचं समपर्वकम्।
पुण्यस्थलसमुत्पन्नं नानाकल्मषशोधितम्॥ ६५॥

यज्ञोपवीतियोंका अन्तर्जगत् सम्बन्धीय आध्यात्मिक सूत्र होता है, वे ही संसारमें सूत्रवेत्ता और यज्ञोपवीतधारी हैं। ज्ञानयज्ञोपवीतियोंकी ज्ञाननिष्ठा ही ज्ञानशिखा है॥ ५८-५९॥ उनका आत्मज्ञान ही पवित्र ज्ञान कहा गया है। तीन गुणोंकी नित्य धारणाको त्रिदण्ड कहते हैं॥ ६०॥ अथवा अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इन तीनोंकी धारणा ही त्रिदण्ड धारण है। उक्त गुणत्रय और भावत्रयकी धारणामें विद्वानोंके मतसे भावत्रयकी धारणा ही श्रेष्ठ है॥६१॥ प्रकृति और पुरुष तथा द्रष्टा और दृश्यकी धारणाको आत्मज्ञानी द्विदण्ड कहते हैं॥ ६२॥ जिस द्विजकी स्वरूपज्ञान मात्रमें स्थिति हो, उसे एकदण्डी जानना चाहिये और यह सबसे उत्तम है॥६३॥ उन्हींके स्मारकस्वरूप ये स्थूल दण्ड हैं। जो मार्गका श्रम दूर करने और सांप, कुत्ता आदिके भयसे बचनेके काम आते हैं॥ ६४॥ बांसका, सौम्य, त्वचासहित, सम पर्व वाला, पुण्य स्थलमें उत्पन्न, नाना कल्मष रहित, बिना जला, कीटोंने जिसे नहीं काटा हो,हरएक

अदग्धमहतं कीटैः पर्वग्रन्थिविराजितम् ।
नासादघ्नं शिरस्तुल्यं भ्रुवोर्वा बिभ्रियाद्यतिः ॥ ६६ ॥
दण्डात्मनोऽस्तु संयोगः सर्वथा तु विधीयते ।
न दण्डेन विना गच्छेदिषुक्षेपत्रयं बुधः ॥ ६७ ॥
सन्न्यासिनं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।
एष मे मण्डलं भित्त्वा परंब्रह्माऽधिगच्छति ॥ ६८ ॥
षष्टिं कुलान्यतीतानि षष्टिमागामिकानिच ।
कुलान्युद्धरते प्राज्ञः सन्न्यस्तमिति यो वदेत् ॥ ६९ ॥
ये च सन्तानजा दोषा ये दोषा देहसम्भवाः ।
प्रेषाऽग्निर्निर्दहेत्सर्व्वांस्तुषाऽग्निरिव काञ्चनः ॥ ७० ॥
कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता ।
उपेक्षा सर्वभूतानां एतावद्भिक्षुलक्षणम् ॥ ७१ ॥
यस्मिन् वाचः प्रविशन्ति कूपे त्रस्ता द्विपा इव ।
न वक्तारं पुनर्यान्ति स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥ ७२ ॥

पोरमें ग्रन्थिसे सुशोभित, नासिका तक, शिर तक अथवा भृकुटि तकका लम्बा दण्ड यतिको धारण करना चाहिये ॥ ६५-६६ ॥ दण्डके साथ आत्मसंयोग सर्वथा रहना चाहिये। दण्डके बिना तीन वार छोड़नेसे बाण जितना दूर जाता हो, उतने दूर भी नहीं जाना चाहिये ॥६७॥ सन्न्यासी द्विजको देखकर सूर्यनारायण भी स्व-स्थानसे इस कारण चलित होते हैं कि, यह मेरा मण्डल भेदन कर ब्रह्मके निकट जाता है ॥६८॥ जो बुद्धिमान् केवल 'संन्यस्तं' कहता है, वह अतीत साठ कुल और आगामी साठ कुलोंका उद्धार करता है ॥६९॥ तुषानल जिस प्रकार सुवर्णके दोषोंको जला देता है, उसी प्रकार सन्तानसम्बन्धी और देहसम्भव दोषोंको प्रेषाग्नि जला देता है ॥७०॥ कमण्डलु ग्रहण करना, वृक्षके मूलमें वास करना, साधारण वस्त्र ओढ़ना, असहाय रहना, सब भूतोंकी उपेक्षा करना ये सब सन्न्यासियोंके लक्षण हैं ॥ ७१ ॥ कुएँमें गिरे हुए त्रस्त हस्तियोंकी तरह जिसमें वाणियँ आ गिरती हैं और वे पुनः वक्ताके पास नहीं लौट जाती, उसे कैवल्याश्रममें रहना चाहिये ॥ ७२ ॥ किसीका अवाच्य

नैव पश्येन्नशृणुयादवाच्यं जातु कस्यचित्।
ब्राह्मणानां विशेषेण नैव ब्रूयात्कथञ्चन ॥ ७३ ॥
यद्ब्राह्मणस्य कुशलं तदेव सततं वदेत्।
तूष्णीमासीत निन्दाया कुर्व्वन्भैषज्यमात्मनः ॥ ७४ ॥
येन पूर्णमिवाकाशं भवत्येकेन सर्व्वदा।
शून्यं येन जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ७५ ॥
येनकेनचिदाच्छन्नो येनकेनचिदाशितः।
यत्र क्वचन शायी च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ७६ ॥
अहेरिव गणाद्भीतः सौहित्यान्नरकादिव।
कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ७७ ॥
न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः।
सर्व्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ७८ ॥
अनभ्याहृतचित्तः स्यादनभ्याहृतवाग्भवेत्।
निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो निरमित्रस्य किं भयम् ॥ ७९ ॥

न देखे न सुने। विशेषतया ब्राह्मणोंको अवाच्य कभी न बोले ॥ ७३ ॥ जो ब्राह्मणका कुशल है, वही सर्वदा कहे। जहाँ निन्दा होती हो, वहां चुप रह जाय और इसीको अपनी औषधि समझे ॥ ७४ ॥ जिस योगिराजका चित्ताकाश महाकाशमें मिलकर एक अद्वितीय रूप धारण करलेता है और जिसकी अद्वैतधारणासे बहुजनतापूर्ण स्थान भी शून्यसा प्रतीत होता है, देवताओंके मतसे वह ब्राह्मण है ॥ ७५ ॥ जिस निर्विकल्प समाधिस्थ संन्यासिप्रवरका शरीर कोई ढक दे या उसे कोई भोजन करा दे, या अनिकेतन रूपसे कहीं सो जाय ऐसे देहाध्यासरहित महापुरुषको देवतागण ब्राह्मण करके जानते हैं ॥ ७६ ॥ सर्पके समान मनुष्योंकी भीड़से, नरकके समान लौकिक सेवकोंसे, शवके समान स्त्रीसे जो भय करता है, देवताओंके मतसे वह ब्राह्मण है ॥ ७७ ॥ मान करनेसे जो प्रसन्न नहीं होता और अपमान करनेसे क्रोध नहीं करता एवं सब भूतोंको अभय दान किया करता है, देवताओंके मतसे वह ब्राह्मण है ॥ ७८ ॥ जिसका न तो विकल चित्त है

अभयं सर्वभूतेभ्यो भूतानामभयं यतः।
तस्य मोहाद्विमुक्तस्य भयं नाऽस्ति कुतश्चन ॥ ८० ॥

यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम्।
एवं सर्वमहिंसायां धर्म्मार्थमपि धीयते ॥ ८१ ॥

अमृतः स नित्यं वसति यो हिंसां न प्रपद्यते।
अहिंसकः समः सत्यो धृतिमान्नियतेन्द्रियः ॥ ८२ ॥

शरण्यः सर्व्वभूतानां गतिमाप्नोऽत्यनुत्तमाम्।
एवं प्रज्ञानतृप्तस्य निर्भयस्य निराशिषः ॥ ८३ ॥

न मृत्योरतिगोभावः स मृत्युमधिगच्छति।
विमुक्तं सर्व्वसङ्गेभ्यो मुनिमाकाशवत्स्थितम् ॥ ८४ ॥

अस्वमेकचरं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
जीवितं यस्य धर्म्मार्थं धर्म्मो ह्यर्थमेव च ॥ ८५ ॥

अहोरात्राश्च पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मणं विदुः।
निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ॥ ८६ ॥

और न जिसकी वाणी ही विकल है, उस शत्रुरहित समस्त पापोंसे मुक्त पुरुषको किसका भय है? ॥ ७९ ॥ सब भूतोंसे जो अभय है और जिससे सब भूत अभय हैं, उस मोहरहित पुरुषको कहीं भी भय नहीं है ॥ ८० ॥ हाथीके पैरमें सभी पदगामियोंके जिस प्रकार पैर आजाते हैं, उसी प्रकार अहिंसामें सब धर्म और अर्थ आजाते हैं ॥ ८१ ॥ जो हिंसा नहीं करता वह नित्य अमृतरूपसे रहता है। हिंसा-शून्य, समबुद्धि, सत्यस्वरूप, धृतिमान् और जो जितेन्द्रिय है, वह सब भूतोंका शरण्य है एवं वह उत्तम गति प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रज्ञासे तृप्त, निर्भय, निराशी और मृत्युका अतिक्रमण करनेका जिसका भाव नहीं है अर्थात् मृत्युकी जिसे पर्वाह नहीं है, वह यथार्थ मृत्युको प्राप्त करता है अर्थात् मुक्त होता है। सर्व सङ्गसे मुक्त, आकाशवत् स्थित, और जिसका अहङ्कार दूर हो गया है उस शान्त, एकभावापन्न मुनिको देवता ब्राह्मण करके जानते हैं। जिसका जीवन धर्मके लिये,

निर्म्मुक्तं बन्धनैः सर्व्वैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ८७ ॥
सर्वाणि भूतानि सुखे रमन्ते। सर्वाणि दुःखस्य भृशं त्रसन्ते।
तेषां भयोत्पादनजातखेदः। कुर्य्यान्न कर्म्माणि हि श्रद्दधानः ॥८८॥
दानं हि भूताऽभयदक्षिणायाः। सर्वाणि दानान्यधितिष्ठतीह।
तीक्ष्णां तनुं यः प्रथमं जहाति सोऽनन्त्यमाप्नोत्यभयं प्रजाभ्यः ॥८९॥
इति श्रीसन्न्यासगीतायां हंसधर्मनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥

शुक उवाच।

ब्रह्मर्षे! श्रुतमस्माभिस्तवानुग्रहतः स्फुटम्।
सन्न्यासधर्म्मत्रितयाऽधिकारस्य स्वरूपकम् ॥ १ ॥
अधुनाऽत्यन्तगहनमन्तिमस्य विशेषतः।
अस्मान् परमहंसस्य स्वरूपं वर्णयन् विभो ॥ २ ॥

जिसका धर्माचरण भगवान्‌के लिये और जिसके दिनरात पुण्य-के लिये हैं, देवताओंके मतसे वह ब्राह्मण है। आशापाशरहित, नवीन कर्म न करने वाला, नमस्कार तथा स्तुतिरहित, सब प्रकारके बन्धनोंसे निर्मुक्त पुरुषको देवतागण ब्राह्मण करके मानते हैं ॥ ८२–८७ ॥ सभी प्राणि सुखसे प्रसन्न होते हैं और दुःखसे अत्यन्त त्रस्त होते हैं। अतः उन प्राणियोंको भय उत्पन्न होनेसे जो दुःखित होता हो, उस श्रद्धालु सन्यासीको कर्मसे रहित ह[illegible]ाहिये ॥८८॥ प्राणिमात्रको अभय दक्षिणा देना अर्थात् तत्वज्ञान द[illegible] करना सब दानोंमें अधिष्ठाता अर्थात् श्रेष्ठ है। जो पहिले ही अपनी तीक्ष्ण तनु अर्थात् अपनी देह द्वारा औरोंको क्लेश पहुंचाना त्याग करता है, वह सब संसारसे अनन्त अभयको प्राप्त होता है। अर्थात् ऐसे महा पुरुषको कोई दुःखदायी जगत्‌में नहीं होता ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीसन्यासगीताका हंसधर्मनिरूपण
नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेः–हे ब्रह्मर्षे! आपकी कृपासे हम लोगोंने तीन प्रकारके सन्यासधर्मके अधिकारका स्वरूप सुन लिया। अब अत्यन्त गहन अन्तिम और सर्वथा पूजनीय परमहंस स्वरूप और

दशायाः सर्व्वतोऽर्हीयाः कृतकृत्यान् कुरुष्वह ॥ ३ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

भेदः परमहंसस्य ब्रह्मणा सह कोऽपि न।
अहमेवाऽस्मि ब्रह्मेति भावस्याऽनुभवं विना ॥ ४ ॥
कश्चित्परमहंसस्य पदवीं लभते न हि।
द्वैतभानं दशायाश्चाप्यस्यां नैवाऽभिजायते ॥ ५ ॥
सच्चिदानन्दरूपा याऽप्यद्वैतस्थितिरुत्तमा।
अस्यामेव दशायां सा त्वन्तिमायां प्रवर्त्तते ॥ ६ ॥
तदानीं जायते चाऽऽत्मारामः सन्न्यासिसत्तमः।
आत्मारामत्वऽऽसम्प्राप्तावपि द्वैविध्यमूह्यताम् ॥ ७ ॥
परहंसस्य प्रारब्धकर्म्मवैचित्र्यदर्शनात्।
ईशकोटिर्ब्रह्मकोटिरिति द्वे नामनी श्रुते ॥ ८ ॥
परहंसो ब्रह्मकोटेर्मूकस्तब्धो जडस्तथा।
उन्मत्तो बालचेष्टश्च न जगत्तेन लाभवत् ॥ ९ ॥
परहंसस्त्वीशकोटेः परांकाष्ठां गतोऽनिशम्।
निष्कामस्य व्रतस्याऽत्र जगज्जन्मादिशक्तिमत् ॥ १० ॥

उसकी दशाका विशेष रूपसे वर्णन कर आप हमें कृतार्थ करें ॥१-३॥
महर्षि याज्ञवल्क्यजी बोलेः-परमहंसका ब्रह्मके साथ कोई भेद नहीं है। 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूं इस भावके अनुभव बिना कोई परमहंस पदवीको नहीं प्राप्त कर सकता। इस दशामें द्वैतभावका भान ही नहीं रहता ॥ ४-५ ॥ सच्चिदानन्दरूप उत्तम अद्वैतस्थिति इसी अन्तिम दशामें प्राप्त होती है ॥६॥ और तभी वह उत्तम सन्यासी आत्माराम हो जाता है। आत्मारामकी प्राप्तिमें दो प्रकार हैं ॥ ७ ॥ प्रारब्धकर्मके वैचित्र्यसे ईशकोटि और ब्रह्मकोटि इस प्रकारसे दो प्रकारकी परमहंस दशा होती है ॥ ८ ॥ ब्रह्मकोटिका परमहंस मूक, स्तब्ध, जड़, उन्मत्त और बालकोंकी तरह चेष्टा करने वाला होता है। उससे जगत्को कोई लाभ नहीं पहुँचता ॥ ९ ॥ ईश कोटिकी परा-काष्ठा तक पहुंचा हुआ परमहंस दिनरात जगज्जन्मादि शक्तिशाली

जगदीशप्रतिनिधिर्भूत्वा तत्कर्मसंरतः।
जगद्धितार्थं विप्रर्षे! एनं विद्धीशरूपिणम्॥ ११॥

परहंसस्त्वीशकोटेर्ब्रह्मरूपधरोऽपि सन्।
देवर्षिशक्तियुक्तश्च भवतीति विनिश्चयः॥ १२॥

ज्ञानदाता भयत्राता स एव जगतां मतः।
ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डी स उच्यते। १३॥

काष्ठदण्डो धृतो येन सर्व्वाशी ज्ञानवर्जितः।
स याति नरकान् घोरान् महारौरवसंज्ञितान्॥ १४॥

प्रतिष्ठा सूकरीविष्ठासमा गीता महर्षिभिः।
तस्मादेनां परित्यज्य कीटवत् पर्य्यटेद् यतिः॥ १५॥

अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत्।
परेच्छया च दिग्वासाः स्नानं कुर्यात् परेच्छया॥ १६॥

स्वप्नेऽपि यो हि युक्तः स्याज्जाग्रतीव विशेषतः।
ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम्॥ १७॥

भगवान्‌का प्रतिनिधि होकर, निष्काम व्रत ग्रहणकर भगवान्‌के कार्योंमें लगा रहता है। हे विप्रर्षे! ऐसे ईशस्वरूप परमहंसकी उत्पत्ति जगत्‌के कल्याणार्थ ही हुआ करती है, ऐसा समझना चाहिये॥ १०-११॥ ईश कोटिका परमहंस ब्रह्मस्वरूप और देवता तथा ऋषियोंकी शक्तिसे युक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं॥ १२॥ वही संसारका ज्ञानदाता और भयत्राता है। जिसने ज्ञानदण्ड धारण किया है, वही एकदण्डी कहने योग्य है। जिसकी आशाएँ नहीं छूटी हैं और जो ज्ञानशून्य है, वह लकड़ीका दण्ड धारण करले, तो निःसन्देह घोर महारौरव नरकमें जायगा॥ १३-१४॥ महर्षियोंके मतसे प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठाके समान है। अतः उसका त्यागकर सन्न्यासीको कीटकी तरह पर्यटन करना चाहिये॥ १५॥ बिना मांगे जो कुछ मिल जाय उसीसे भोजन आच्छादन करना चाहिये। उसमें अपनी इच्छा कुछ भी न रहे। न चेत् दिगम्बर रह-कर दूसरोंकी इच्छासे ही स्नान करें॥ १६॥ स्वप्नमें भी जो

पांसुनाच प्रतिच्छन्नशून्यागारप्रतिश्रयः ।
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाऽप्रियः ॥ १८ ॥
यात्रास्तमितशायी स्यान्निरग्निरनिकेतनः ।
यथालब्धोपजीवीस्यान्मुनिर्दान्तो जितेन्द्रियः ॥ १९ ॥
निष्क्रम्य वनमास्थाय ज्ञानयज्ञो गतस्पृहः ।
कालकांक्षी चरन्नेव ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २० ॥
निर्मानश्चाऽनहंकारो निर्द्वन्द्वश्छिन्नसंशयः ।
नैव क्रुध्यति न द्वेष्टि नाऽनृतं भाषते गिरा ॥ २१ ॥
पुण्यायतनचारी च भूतानामविहिंसकः ।
काले प्राप्ते भवद्भैक्ष्यं कल्पते ब्रह्मभूयसे ॥ २२ ॥
वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां न संसृज्येत कर्हिचित् ।
अज्ञातचर्य्यां लिप्सेत न चैनं हर्ष आविशेत् ॥ २३ ॥

जाग्रत्‌की भाँति विशेषरूपसे युक्त हो, इस प्रकारका चेष्टावाले परमहंस ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ और वरिष्ठ हैं ॥१७॥ धूलिधूसर शून्यागारमें जिसका आश्रय है अथवा वृक्षके तले जिसका घर है, जिसने प्रिय और अप्रियको छोड़ दिया है, जो यात्राप्रसङ्गमें जहाँ सन्ध्याकाल हो जाय, वहीं शयन करता है, अग्निरहित, गृहरहित, जो कुछ मिल जाय उसीपर निर्वाह करने वाला, दयालु, जितेन्द्रिय, इच्छारहित ज्ञानयज्ञपरायण, वनमें आकर कालकी प्रतीक्षा करता हुआ जो विचरण करता है, वह मुनि ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है ॥ ॥ १८-२० ॥ मानरहित, अहङ्काररहित, द्वन्द्वरहित संशयरहित होकर जो न क्रोध करता है, न द्वेष करता है और न झूठ बोलता है ॥२१॥ पुण्य गृहोंमें संचार करने वाला, प्राणिमात्रकी हिंसा न करने वाला और जो यथा समय भिक्षा करने वाला है, वह ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है ॥ २२ ॥ वानप्रस्थ और गृहस्थोंसे संसर्ग न करे। अज्ञातचर्याकी इच्छा करे, हर्षके अधीन न हो, असत् शास्त्रोंमें रुचि न करे, जीविकासे निर्वाह न करे, अतिवाद और तर्कका त्याग करे, किसीका पक्ष ग्रहण न करे, शिष्योंका दल न बांधे, बहुतसे ग्रन्थों

नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम्।
अतिवादाँस्त्यजेत्तर्कान् पक्षं कञ्चननाश्रयेत् ॥ २४ ॥
न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाऽभ्यसेद्बहून्।
नव्याख्यामुपयुञ्जीत नाऽऽरम्भानारभेत् क्वचित् ॥ २५ ॥
अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तार्थो मुनिरुन्मत्तबालवत्।
कविर्मूकवदात्मानं तद्दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥२६ ॥
न कुर्यान्नवदेत्किञ्चिन्नध्यायेत्साध्वसाधु वा।
आत्मारामोऽनयावृत्त्या विचरेज्जड़वन्मुनिः ॥ २७ ॥
एकश्चरेन्महीमेतां निःसङ्गः संयतेन्द्रियः।
आत्मक्रीड आत्मरतिरात्मवान् समदर्शनः ॥ २८ ॥
बुधोबालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत्।
वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्य्यांनैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥

का अभ्यास न करे, व्याख्याके पीछे न पड़े, किसी बातका आरम्भ न करे, अव्यक्त लिङ्ग और अव्यक्त प्रयोजन होकर वह मुनि उन्मत्त बालककी भांति रहे। ज्ञानी हो कर भी मनुष्योंकी दृष्टिसे मूक भाव प्रकट करे ॥ २३-२६ ॥ कुछ न करे, कुछ न कहे, साधु असाधु-का विचार न करे और आत्माराम होकर उपर्युक्त वृत्तिसे वह मुनि जड़की भांति विचरण करे ॥ २७ ॥ अकेला, सङ्गरहित, संयतेन्द्रिय, अपने आपमें क्रीडा करने वाला, आत्मरति करने वाला, समदर्शी और आत्मवान् परमहंस इस पृथ्वीपर सञ्चार करे ॥ २८ ॥ * पण्डित होकर बालककी भांति क्रीड़ा करे, चतुर होकर जड़की भांति आचरण करे, विद्वान होकर उन्मत्तकी भांति बोले, वेदज्ञ होकर भी पशुवत् आचरण करे ॥ २९ ॥ † अज्ञानी असत् लोगोंने

---

* ये सब पूर्वोक्त वचन परमहंसके लिये अनुशासन वचन या विधि नहीं हैं। परन्तु इनका तात्पर्य यह है कि, परमहंसोंमें स्वाभाविक रूपसे ऐसे लक्षण पाये जाते हैं। आत्माराम परमहंसके बहिर्लक्षण प्रायः ऐसे ही हो जाते हैं।

† दृश्य के प्रति उपेक्षा ही इन सब लक्षणोंका परिचायक है।

त्यक्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽपिवा ।
ताड़ितः सन्निरुद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥ ३० ॥

विष्ठितो मूत्रितोवाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकम्पितः ।
श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥ ३१ ॥

सम्माननं परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिञ्च विन्दति ॥ ३२ ॥

तथा चरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथाऽवमन्येरन् गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम् ॥ ३३ ॥

जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
युक्तः कुर्व्वीत न द्रोहं सर्व्वसङ्गांश्च वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

सर्वत्र विचरन्मौनी वायुवद्वीतकल्मषः ।
समदुःखसुखः क्षान्तो हस्तप्राप्तञ्च भक्षयेत् ॥ ३५ ॥

चाहे उसे छोड़ दिया हो, अवमानित किया हो, उसका उपालम्भ किया हो, उससे द्वेष किया हो, उसे मारा हो, रोका हो, वृत्तिसे च्युत किया हो, विष्टा मूत्रसे भ्रष्ट किया हो, अनेक तरहसे कँपाया हो, इस प्रकारके कष्टोंमें पतित कल्याण चाहने वाला पुरुष अपने आत्मस्वरूपमें स्थित रहकर निर्विकार बना रहे ॥ ३०–३१ ॥ जब कि सम्मान ही योगसिद्धिकी अत्यन्त हानि करता है, तब इसमें सन्देह नहीं कि, लोगोंसे अवमानित होकर योगी योगसिद्धिको प्राप्त करता है ॥ ३२ ॥ योगी इस प्रकारका आचरण करे कि, सज्जनों-का धर्म उनके द्वारा दूषित न हो और लोग उसका अपमान करते हुए उसका सङ्ग न करें * ॥ ३३ ॥ जरायुज अण्डज आदिकोंसे वाणी मन या कायाके कर्मों द्वारा कभी द्रोह न करे और सब प्रकारके सङ्गको छोड़ दे ॥ ३४ ॥ वायुके समान कल्मषरहित, दुःख सुख-को समान समझने वाला, क्षमाशील यति मौन अवलम्बनकर सर्वत्र सञ्चार करता हुआ हाथपर आई हुई भिक्षाको भक्षण करे ॥ ३५ ॥

---

* जनसङ्गसे पूर्ण वैराग्य ही इन सब लक्षणोंका कारण है । ये सब लक्षण ब्रह्मकोटिके परमहंसके हैं ।

जीवन्मुक्तोऽपि मुनयः ! ब्रह्मकोटेरयं पुनः ।
मूकस्तब्धो बालचेष्टो बहिरेव हि लक्ष्यते ॥ ३६ ॥
अन्तःकरणमध्ये तु ब्रह्मसद्भावमाप्तवान् ।
आत्मारामोऽभवन्नित्यं लोकदृष्टौ जड़ो मतः ॥ ३७ ॥
साक्षात्तु जगतः कश्चित्तस्माल्लाभो न दृश्यते ।
जीवन्मुक्तस्येशकोटेर्विपरीतास्त्वितो दशा ॥ ३८ ॥
सकलं कर्म्म कुर्वाणोऽप्यकर्मी गीयते हि सः ।
ऋषिश्रेष्ठाः ! ब्रह्मकोटेर्जीवन्मुक्ता मतास्त्विमे ॥ ३९ ॥
सनकः प्रथमो ज्ञेयो द्वितीयस्तु सनन्दनः ।
सनातनस्तृतीयः सनत्कुमारस्तुरीयकः ॥ ४० ॥
ईशकोटेर्भवन्तश्च दृष्टान्ता समुदीरिताः ।
जिज्ञासुतेयं भवतामाचार्य्यत्वं तथा मम ॥ ४१ ॥
इदानीं स्थापिते एते युष्माभिर्जगतीतले ।
प्रचारार्थं निवृत्तेर्हि धर्म्मस्यस्तो मुनीश्वराः ॥ ४२ ॥
भवद्भिरत्र यत्किञ्चिदिदानीं कृतमुत्तमम् ।
कर्म्मैतद् गीयतेऽकर्म्म महायज्ञश्च वै सदा ॥ ४३ ॥

हे मुनिगण ! ब्रह्मकोटिका इस प्रकारका जीवन्मुक्त पुरुष मूक, स्तब्ध और बालकोंकी तरह क्रीड़ा करनेवाला केवल बाहरसे ही देख पड़ता है ॥ ३६ ॥ अन्तःकरणमें तो वह ब्रह्मसद्भावमें स्थित रहता है। वह नित्य आत्माराम होता हुआ भी लोकदृष्टिसे जड़-वत् प्रतीत होता है ॥ ३७ ॥ ऐसे ब्रह्मकोटिके जीवन्मुक्त महापुरुषों द्वारा जगत्का कोई प्रत्यक्ष उपकार होता हुआ नहीं देखा जाता। ईशकोटिके जीवन्मुक्तकी इससे विपरीत दशा होती है ॥ ३८ ॥ सब कर्म करनेपर भी वह अकर्मी माना जाता है। हे ऋषिश्रेष्ठो ! ब्रह्मकोटि-के जीवन्मुक्तोंमें प्रथम सनक, द्वितीय सनन्दन, तृतीय सनातन और चतुर्थ सनत्कुमार हैं ॥ ३९-४० ॥ ईशकोटिके जीवन्मुक्तोंके दृष्टान्त-स्वरूप आप सब हैं। आपकी जिज्ञासुता और मेरा आचार्यत्व, इन दोनोंकी स्थापना हे मुनीश्वरो ! आप सभोंने संसारमें निवृत्ति धर्मके प्रचारार्थ की है ॥ ४१-४२ ॥ आप लोगोंने इस समय जो कुछ

कर्म्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यञ्च विकर्म्मणः ।
अकर्म्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ ४४ ॥
कर्म्मण्यकर्म यः पश्येदकर्म्मणि च कर्म्म यः ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ ४५ ॥
यस्य सर्व्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाऽग्निदग्धकर्म्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ ४६ ॥
त्यक्त्वा कर्मफलाऽसङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।
कर्म्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ ४७ ॥
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥ ४८ ॥
गुरुर्मनुष्यजातेस्तु ह्यार्य्यजातिर्मता शुभा ।
आर्य्यजातेर्ब्राह्मणा हि ब्राह्मणानान्तु न्यासिनः ॥ ४९ ॥

उत्तम कर्म किया है यह अकर्म कहा जा सकता है और यही महायज्ञ है ॥ ४३ ॥ विहित कर्म, अविहित कर्म और अकर्म अर्थात् कर्मरहित अवस्था इन तीनोंके स्वरूपमें समझने योग्य विषय बहुत कुछ हैं। क्योंकि कर्मविज्ञानकी गति बड़ी गहन है। कर्ममें जो अकर्म देखता है और अकर्ममें जो कर्म देखता है अर्थात् बहिरिन्द्रियोंसे कर्म होते रहनेपर भी जो व्यक्ति कामनारहित अवस्थामें कर्मका न होना समझता है और बलपूर्वक इन्द्रियोंको रोककर कर्मरहित होनेपर भी मनमें वासना रहनेके कारण जो व्यक्ति कर्मका होना समझते हैं, ऐसे महापुरुष मनुष्योंमें बुद्धिमान हैं, ब्रह्ममें युक्त हैं और कर्म न करके भी कर्म करने वाले हैं ॥ ४४–४५ ॥ जिसके सभी काम वासनाके सङ्कल्पसे रहित होते हैं और जिसके कर्म ज्ञानाग्निसे दग्ध हो चुके हैं, उसे विद्वान् लोग पण्डित कहते हैं ॥ ४६ ॥ कर्मके फलसे असङ्ग, नित्यतृप्त, निराश्रय पुरुष कर्मफलका त्याग कर यदि कर्म करनेमें प्रवृत्त भी हो, तो वह कुछ नहीं करता अर्थात् उसे कर्म दोष नहीं है ॥ ४७ ॥ यह अपना, यह पराया, ऐसी गणना छोटे चित्तके लोग करते हैं। जो उदारचेता हैं, उनका सारा संसार ही कुटुम्ब है॥४८॥समस्त मनुष्यजातिकी गुरु आर्यजाति है। आर्यजातिके गुरु ब्राह्मण और ब्राह्मणोंके गुरु सन्न्यासी हैं ॥४९॥

ब्राह्मणेषु तपोवृद्धाः श्रेष्ठास्तत्र प्रकीर्तिताः ।
तेष्वपि ज्ञानवृद्धा ये तत्राऽपि तत्त्वदर्शिनः ॥ ५० ॥

तत्त्वदर्शिषु ये युक्ता आत्मारामाश्च तेषु वै ।
न्यासिषु क्रमशः श्रेष्ठाः कुटीचकबहूदकौ ॥ ५१ ॥

हंसः परमहंसश्च यद्यप्येते तथापि ह ।
आत्मारामत्वमेवैषां लक्ष्यमत्र प्रकीर्तितम ॥ ५२ ॥
मानवः प्रथमं स्वस्मिन्नार्य्यभावं विधारयन् ।
धर्म्मं हि मनुते मुख्यं तदा गार्हस्थ्यमाश्रितः ॥ ५३ ॥

पुत्रेषु च कलत्रेषु तथेष्टमित्रबन्धुषु ।
आत्मत्वं तेषु नियतं विलीनयति धर्मवित् ॥ ५४ ॥
देशवासिषु तत्पश्चाज्जगत्सु च ततः परम् ।
विलीनेत्वेवमात्मत्वे वसुधैव कुटुम्बकम ॥ ५५ ॥

मनुते तत्त्वविज्ज्ञानी जगद्धितपरायणः ।
इयं परमहंसस्य गतिः श्रेष्ठा निगद्यते ॥ ५६ ॥

जीवन्मुक्तदशाऽपीयं ज्ञानिनः परिकीर्तिता ।
निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायणम् ॥ ५७ ॥

ब्राह्मणोंमें तपोवृद्ध श्रेष्ठ कहे गये हैं । तपोवृद्धोंमें ज्ञानवृद्ध श्रेष्ठ और ज्ञानवृद्धोंमें तत्त्वदर्शी श्रेष्ठ हैं ॥५०॥ तत्त्वदर्शियोंमें जो व्यक्ति आत्मामें युक्त हैं वे श्रेष्ठ और उनमें भी आत्माराम श्रेष्ठ हैं ५[illegible]संन्यासियोंमें कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस क्रमशः श्रे[illegible] । इन सभोंका आत्माराम हो जाना ही अन्तिम लक्ष्य है ॥५१-५२॥ मनुष्य प्रथम अपनेमें आर्यभाव धारण कर धर्मको मुख्य मानता है । फिर वह धर्मज्ञ गृहस्थाश्रमका आश्रय कर पुत्र, कलत्र, इष्ट, मित्र, बान्धवोंमें आत्मीयत्व नियमित रूपसे स्थापित करता है ॥ ५३-५४ ॥ तत्पश्चात देशवासियोंमें और फिर सारे संसारमें आत्मीयत्व स्थापन कर अन्तमें वह जगत्के हितमें परायण, तत्त्ववेत्ता ज्ञानीपुरुष वसुधाको ही कुटुम्ब मानने लगता है । यही परमहंसकी श्रेष्ठ गति कही जाती है ॥ ५५-५६ ॥ यही ज्ञानियोंकी जीवन्मुक्त दशा कही गयी है । घोर संसारसागर

सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौ दृढेवाप्सु मज्जताम्।
सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः॥ ५८॥

देवता बान्धवाः सन्तः सन्तो ब्रह्मस्वरूपिणः।
नापेक्षते भविष्यञ्च वर्त्तमाने न तिष्ठति॥ ५९॥

न संस्मरत्यतीतञ्च सर्व्वमेव करोति च।
अन्तःसर्व्वपरित्यागी नित्यमन्तरनेषणः॥ ६०॥

कुर्व्वन्नपि बहिः कार्य्यं सममेवावतिष्ठते।
बहिः प्रकृत सर्व्वेहो यथा प्राप्तक्रियोन्मुखः॥ ६१॥

स्वकर्म्मक्रमसम्प्राप्त बन्धुकार्य्यानुवृत्तिमान्।
समग्रसुखभोगात्मा सर्व्वाशास्विव संस्थितः॥ ६२॥

करोत्यखिलकर्म्माणि त्यक्तकर्तृत्वविभ्रमः।
उदासीनवदासीनः प्रकृतक्रमकर्म्मसु॥ ६३॥

में निमज्जन और उन्मज्जन करनेवाले संसारी जीवोंके लिये परमाश्रय स्थान, शान्त ब्रह्मवेत्ता भक्त संसारसागरसे पार होनेके लिये दृढ़ नौकाके समान हैं। सूर्य बहिर्वस्तुओंको प्रकाश करते हैं। परन्तु अन्तर्जगत्के दिखानेके लिये महात्मा लोग एकमात्र आश्रय स्थान हैं॥ ५७-५८॥ सन्त देवता हैं, सन्त बान्धव हैं और सन्त ब्रह्मस्वरूप हैं। वे भविष्यत्की अपेक्षा नहीं रखते, वर्तमानमें नहीं ठहरते, अतीतका स्मरण नहीं करते और ऐसे होते हुए सब कुछ किया करते हैं। अन्तःकरणमें वे सर्वत्यागी और इच्छारहित होते हैं॥ ५९-६०॥ बाहरसे कार्य्य करते हुए सर्वत्र वे समभाव रखते हैं। बाहर स्वाभाविक रूपसे सब प्रकारकी इच्छा करनेवाले, अनायास-प्राप्त कर्ममें तत्पर और अपने प्रारब्धानुसार प्रवाहपतित रूपसे प्राप्त अनुकूल कर्मोंमें तत्पर रहनेवाले होते हैं। और इस प्रकारसे समग्र सुखोंको भोगनेवालेके समान और सभी आशाओंमें स्थित रहनेवालेके सदृश प्रतीत॥ ६१-६२॥ होते हुए कर्तृत्वका विभ्रम छोड़कर वे सभी कर्म करते हैं। प्रकृतिके क्रमानुसार प्राप्त कर्मोंमें उदासीनवत् स्थित होकर॥ ६३॥ वे न

नाऽभिवाञ्छति न द्वेष्टि न शोचति न हृष्यति।
अनुबन्धपरे जन्ताव संसक्तेन चेतसा ॥ ६४ ॥
भक्ते भक्तसमाचारः शठे शठ इव स्थितः।
बालो बालेषु वृद्धेषु वृद्धो धीरेऽतिधैर्यवान् ॥ ६५ ॥
युवा यौवनवृत्तेषु दुःखितेष्वनुदुःखितः।
प्रवृत्तवाक्पुण्यकथो दैन्याद्व्यपगताशयः ॥ ६६ ॥
धीरधीरुदितानन्दः पेशलः पुण्यकीर्तनः।
प्राज्ञः प्रसन्नमधुरः पूर्णः स्वप्रतिभोदये ॥ ६७ ॥
निरस्तखेददौर्गत्यः सर्वस्मिन्स्निग्धबान्धवः।
उदारचरिताकारः समः सौम्यसुखोदधिः ॥ ६८ ॥
सुस्निग्धः शीतलस्पर्शः पूर्णचन्द्र इवोदितः।
न तस्य सुकृतेनाऽर्थो न भोगैर्नच कर्म्मभिः ॥ ६९ ॥
न दुष्कृतैर्न भोगानां सन्त्यागेन च बन्धुभिः।
न कार्यकारणारम्भैर्न निष्कृतितया तथा ॥ ७० ॥

इच्छा करते न द्वेष करते, न शोक करते और न प्रसन्न ही होते हैं ॥ ६४ ॥ सम्बन्धयुक्त प्राणियोंके विषयमें आसक्तिरहित चित्तसे वे भक्तोंसे भक्तके समान आचरण करते और दुष्टोंके साथ दुष्टके समान प्रतीत हो जाते हैं। बालकके साथ बालक, वृद्धोंके साथ वृद्ध, धीरके साथ अत्यन्त धर्मशील, युवाके साथ युवक, और दुःखी-के साथ दुःखीके समान दिखाई देते हैं। कोई भाषण करे तो पुण्य कथाएं कहते हैं और दैन्यसे अपना हृदय कलुषित नहीं होने देते ॥ ६५-६६ ॥ धीरबुद्धि, आनन्दमय, चतुर, पावनचरित्र, प्राज्ञ, प्रसन्न, मधुर, अपनी प्रतिभाके उदयके समय पूर्ण, खेद और दुर्गतिसे रहित, सबके प्रियबन्धु, उदारचरित्र और उदाराकार, समभाववान्, सौम्य, सुखके सागर, स्निग्ध, शीतल स्पर्शवान् और षोडशकलामय पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाशमान होते हैं। उन्हें न तो सुकृतसे प्रयोजन है, न भोगसे, न कर्मोंसे, न दुष्कृतोंसे, न भोगोंके त्यागसे, न बान्धवों-से, न कार्यकारणोंके आरम्भोंसे, न उनकी निष्कृतिसे ॥ ६७-७० ॥

न बन्धेन न मोक्षेण न पातालेन नो दिवा।
तथा वस्तु यथा दृष्टं जगदेकमयात्मकम् ॥ ७१ ॥
तदा बन्धविमोक्षाभ्यां न किञ्चित्कृपणं मनः।
सम्यक् ज्ञानाऽग्निना यस्य दग्धाः सन्देहजालिकाः ॥ ७२ ॥
निःशङ्कमलमुड्डीनस्तस्य चित्तविहङ्गमः।
स तिष्ठन्नपि कार्य्येषु देशकालक्रियाक्रमैः ॥ ७३ ॥
न कार्य्यसुखदुःखाभ्यां मनागपि हि गृह्यते।
बहिः प्रकृतसर्व्वार्थोऽप्यन्तः पुनरनीहया ॥ ७४ ॥
न सत्तां योजयत्यर्थे न फलान्यनुधावति।
नोपेक्षते दुःखदशां न सुखाशामपेक्षते ॥ ७५ ॥
कार्योदये नैति मुदं कार्य्यनाशे न खिद्यते।
आमूलान्मनसि क्षीणे सङ्कल्पस्य कथा च का ॥ ७६ ॥
तिलेष्विवाग्निदग्धेषु तैलस्य कलना कुतः।
न त्यजन्ति न वाञ्छन्ति व्यवहारं जगद्गतम् ॥ ७७ ॥

न बन्धसे, न मोक्षसे, न पातालसे, न स्वर्गसे ही प्रयोजन है, जो कुछ वस्तु जगत्में जैसी कुछ देख पड़ती है वह अद्वैतभावमें ही वे देखते हैं ॥ ७१ ॥ तब बन्ध मोक्षसे उनका मन क्षुद्रताको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि ज्ञानाग्निसे उनके सन्देहजाल जल जाते हैं ॥७२॥ उनका निर्मल चित्तरूपी पक्षी निःशङ्कभावसे उड़ता है। देश, काल, क्रियाके क्रमसे कार्योंमें लगे रहनेपर भी वे उन कार्योंके सुख दुःखोंसे लवमात्र सम्बन्धयुक्त नहीं होते। बाहरी स्वाभाविक सभी काम करते रहनेपर भी अन्तःकरणमें वासना न रहनेसे उनकी सत्ताका किसी विषयसे न संयोग ही रहता है और न उनके चित्तमें किसी फलकी ही आकांक्षा रहती है। न वे दुःख दशाकी उपेक्षा करते हैं, न सुख दशाओंकी अपेक्षा ही रखते हैं ॥ ७३-७५ ॥ कार्यका उदय होनेपर वे प्रसन्न नहीं होते और बिगड़नेपर खेद नहीं करते। क्योंकि जिनका आमूल मन ही नष्ट हो गया है, फिर सङ्कल्प की क्या कथा है ॥७६॥ अग्निमें जले हुए तिलमें फिर तेल कैसे निकलेगा? वे जगत्के व्यवहारोंको न छोड़ते हैं, न उनकी इच्छा ही करते हैं ॥७७॥

सर्वमेवानुवर्त्तन्ते पारावारविदो जनाः ।
सुशून्येऽपि न खिद्यन्ते देवोद्याने न सङ्गिनः ॥ ७८ ॥
नियतिञ्च न मुञ्चन्ति महान्तो भास्करा इव ।
विहरन्नपि संसारे जीवन्मुक्तमना मुनिः ॥ ७९ ॥
आदिमध्यान्तविरसो विहसेज्जागतीर्गतिः ।
रुदतो हसतश्चैव जीवन्मुक्तमतेरिह ॥ ८० ॥
न दुःखं न सुखं किञ्चिदन्तर्भवति न स्थितम् ।
वीतरागाः सरागाभा अकोपाः कोपसंयुताः ॥ ८१ ॥
अमोहा मोहवलिता दृश्यन्ते तत्त्वदर्शिनः ।
इदं सुखमिदं दुःखमित्यादि कलनास्तु ताः ॥ ८२ ॥
अलं दूरगतास्तेषां अङ्कुरा नभसो यथा ।
यस्य स्थिता भवेत् प्रज्ञा यस्यानन्दो निरन्तरः ॥ ८३ ॥
प्रपञ्चोऽपि स्मृतप्रायः स जीवन्मुक्त इष्यते ।
लीनधीरपि जागर्ति यो जाग्रद्धर्म्मवर्जितः ॥ ८४ ॥

इस प्रकारके पारावारवेत्ता योगी सब कुछ आचरण करते हैं। शून्यमें रहनेसे उन्हें न खेद होता है और न देवताओंके उद्यानमें ही उनकी प्रीति है ॥ ७८ ॥ जीवन्मुक्त चित्तवाले मुनि संसारमें सञ्चार करने पर भी महान् सूर्यनारायणकी तरह नियतिका उल्लङ्घन नहीं करते ॥ ७९ ॥ आदि, मध्य और अन्तमें विरस होकर जगत्की गतिको देख वे हँसते हैं। चाहे जीवन्मुक्त पुरुष हँसे या रोदन करे, उसके अन्तरमें किसी प्रकारका सुख दुःख स्थिर नहीं रहता। तत्त्वदर्शीलोग वीतराग होकर अनुरक्तकी तरह, अक्रोध होकर क्रोधयुक्तकी तरह, मोहरहित होकर मोहितकी तरह देख पड़ते हैं। जैसे आकाशके अंकुर असम्भव होते हैं, वैसे यह सब है, यह दुःख है, यह भावना उनकी नष्ट हो जाती है। * जो स्थित प्रज्ञ और निरन्तर आनन्द मग्न हैं, और जिनकी स्मृतिमें प्रपञ्चकी छाया कभी कभी आती है वे जीवन्मुक्त कहे जाते हैं। जो जागृत धर्मसे रहित हैं और जिनकी बुद्धि लीन होनेपर भी सदा जागृत है। जिन

* ये सब पूर्वकथित लक्षण समूह ईशकोटिके जीवन्मुक्तके समझे जायँ।

बोधो निर्वासनो यस्य स जीवन्मुक्त इष्यते।
वर्तमानेऽपि देहेस्मिञ्छायावदनुवर्त्तिनि ॥ ८५ ॥
अहंताममताभावो जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्।
न प्रत्यग्ब्रह्मणा भेदः कदापि ब्रह्मसर्गयोः ॥ ८६ ॥
प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्तलक्षणः।
जीवः शिवः सर्व एव भूतेष्वेवं व्यवस्थितः ॥ ८७ ॥
एवमेवाभिपश्यन्ति जीवन्मुक्तः स उच्यते।
अतीताऽननुसन्धानं भविष्यदविचारणम् ॥ ८८ ॥
औदासीन्यमपि प्राप्तं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्।
साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपास्ते जीवन्मुक्ता सदेदृशाः ॥ ८९ ॥
मूर्तिमद्ब्रह्मरूपा हि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ९० ॥

इति श्रीसन्न्यासगीतायां परमहंसधर्म्मनिरूपणं नाम
दशमोऽध्यायः ॥

—:*:—

का ज्ञान वासना रहित है उन्हें जीवन्मुक्त कहते हैं। उनका देह छाया की तरह उनके साथ रहने पर भी उनमें अहङ्कार और ममताका अभाव हो जाना ही जीवन्मुक्तका लक्षण है। प्रत्यग्ब्रह्मके साथ ब्रह्म और सृष्टिका जो अभेद है, उसको जो प्रज्ञासे जानता है उसे जीवन्मुक्त लक्षणसे युक्त जानना चाहिये। सब जीव ब्रह्मरूप हैं और ब्रह्म सब भूतोंमें व्याप्त है यह जो देखते हैं, वे जीवन्मुक्त कहे जाते हैं। अतीतका अनुसन्धान न करना, भविष्यत्का विचार न करना और वर्तमानमें उदासीन रहना जीवन्मुक्तका लक्षण है। * यह मैं सत्य कहता हूं कि, इस प्रकारके उत्तम जीवन्मुक्त साक्षात् ब्रह्मरूप और मूर्तिमान् ब्रह्मस्वरूप होते हैं ॥ ८०-९० ॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यासगीताका परमहंसधर्मनिरूपण नामक
दशम अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* ये पूर्व कथित सब लक्षण दोनों प्रकारके जीवन्मुक्तोंमें पाये जाते हैं।

शुक उवाच।

प्रभो ! परमहंसानामादर्श ! विश्वपूजित।
जगद्गुरो ! हे सर्वज्ञ ! सर्व्वधीरत्नवारिधे ॥ १ ॥
श्रुतमः परमहंसस्य रूपं स्म लक्षणानि च।
ब्रह्मकोटीशकोट्योश्च जीवन्मुक्तस्य तत्त्वतः ॥ २ ॥
पृथक् पृथक् लक्षणानि ज्ञातव्यानि विशेषतः।
प्रसादादेव भवतो जानीमो वयमाश्रिताः ॥ ३ ॥
योगीनामारुरुक्षूणां साधनायां कलौ युगे।
कीदृक् लक्ष्यं विधेयं तत् स्फुटं विज्ञापय प्रभो ॥ ४ ॥
त्वयैवाऽभिहितं पूर्वं कलिकालो दुरत्ययः।
सन्यासिनोऽपि नो यान्ति निष्कृतिं कालधर्मतः ॥ ५ ॥
सन्न्यासिनः कृतार्थाः स्युर्यया धारणया कलौ।
सम्यक्तदुपदेशेन कृतार्थान् कुरु नो गुरो ॥ ६ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच।

सन्न्यासिनां द्वे अवस्थे भेदात् प्रकृतिलक्ष्ययोः।
यथा विविदिषाविद्वत्सन्न्यासाविति साधकाः ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोलेः-हे परमहंसोंके आदर्श स्वरूप प्रभो ! हे विश्वपूजित ! हे जगद्गुरो ! हे सर्वज्ञ ! हे समस्त बुद्धिरूपी रत्नोंके सागर, परमहंसोंके रूप और लक्षणोंको हमने सुन लिया है। अब ब्रह्मकोटि और ईशकोटिके जीवन्मुक्तोंके पृथक् पृथक् लक्षणोंको विशेष निश्चित रूपसे जान लेनेकी इच्छा है। हम आपके आश्रित हैं, आपके प्रसादसे हम जान लेंगे ॥ १-३ ॥ हे प्रभो ! योगमार्गमें आरोहण करनेकी इच्छा करनेवाले योगियोंके साधनोंका कलि-युगमें कैसा लक्ष्य होना चाहिये सो स्पष्टतया कहिये ॥ ४ ॥ आपनेही पहिले कहा है कि कलिकाल बड़ा कठिन है। संन्यासीगणकी भी कालधर्मसे निष्कृति नहीं होगी ॥ ५ ॥ जिसकी धारणासे कलियुगमें सन्यासी गण कृतकृत्य हों, ऐसा उत्तम उपदेश देकर हे गुरो ! आप हमें कृतार्थ करें ॥ ६ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्यने कहाः—हे साधकगण ! सन्न्यासियोंकी

द्विविधस्यास्य भेदस्य वस्तुतो मूलकारणम् ।
ज्ञानानां तारतम्यं स्यादत्रमानमृषिस्मृतिः ॥ ८ ॥
सन्न्यासिनोऽन्तःकरणे यावज्ज्ञानं विकाशते ।
दृढं दृश्येषु वैराग्यं तावदेव प्रजायते ॥ ९ ॥
यावद् विषयवैराग्यमेधते योगिनां हृदि ।
उदेति तावदेवाऽत्र योगसिद्धिरनाविला ॥ १० ॥
विद्वत्सन्न्यासतः पूर्वं शुभा विविदिषा ध्रुवा ।
आयातीत्येष नियमः कचिद् व्यभिचरत्त्यपि ॥ ११ ॥
कदाचित्साधकः कश्चित् पूर्वसंस्कारतः कचित् ।
प्रागेव विद्वत्सन्न्यासमासाद्यैति कृतार्थताम् ॥ १२ ॥
यथा प्रारब्धकर्माणि जात्यादीन् जनयन्ति हि ।
धारणामप्यत्र तद्वज्ज्ञानलाभोपयोगिनीम् ॥ १३ ॥
प्रधानधारणाकर्म्मण्यधिकारित्त्वमागताः ।
कर्त्तुं स्वरूपोपालब्धिं शक्नुवन्त्यविलम्बितम् ॥ १४ ॥

प्रकृति और लक्ष्यके भेदसे दो अवस्थाएँ होती हैं। यथाः—विविदिषा सन्न्यासअवस्था और विद्वत्सन्न्यासअवस्था ॥ ७ ॥ ऋषि और स्मृतियोंके मतसे इस प्रकारके द्विविध भेदोंका मूल कारण ज्ञानका तारतम्य ही है ॥ ८ ॥ सन्न्यासियोंके अन्तःकरण-में जब ज्ञानका विकाश होता है, तभी उनमें दृश्य पदार्थोंसे दृढ़ वैराग्य उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ जब योगियोंके हृदयमें विषय वैराग्य बढ़ता है, तभी उनमें निर्मल योगसिद्धिका उदय होता है ॥ १० ॥ विद्वत्सन्न्यासके पहिले विविदिषा संन्यास श्रेयस्कर है। यही नियम चला आता है, किन्तु कहीं कहीं अन्यथा भी होता है। कभी कोई साधक पूर्वजन्मके संस्कारसे विविदिषा सन्न्यासके पहिले ही वित्सन्न्यास ग्रहण कर कृतार्थ हो जाता है ॥ ११–१२ ॥ जिस प्रकार प्रारब्ध कर्म जाति आदि उत्पन्न करते हैं, उस प्रकार ज्ञान लाभके उपयोगी धारणाको भी उत्पन्न करते हैं ॥ १३ ॥ प्रकृतिधारणामें अधिकार प्राप्त करके शीघ्र ही योगी स्व-स्वरूपकी उपलब्धि करनेमें समर्थ हो जाते हैं ॥ १४ ॥

इत्थन्ते योगिनः सम्यगनायासमनाविलम् ।
योगारूढत्वमापन्नाः लभन्ते परमं पदम् ॥ १५ ॥
नैवमस्त्यारुरुक्षूणां किन्तु नूनमपेक्ष्यते ।
तैरत्र क्रमसन्न्यास कृतकृत्यत्वसिद्धये ॥ १६ ॥
ततो हि वेदे सन्न्यासाश्रमस्य परिवीक्ष्यते ।
भेदश्चतुर्धा यत् पूर्वमहं सुस्फुटमुक्तवान् ॥ १७ ॥
प्रारब्धज-प्रकृतितः क्रमसंन्याससंजुषाम् ।
ब्रह्मनिष्ठाऽऽत्मनिष्ठेति नाम्ना भेदो द्विधा मतः ॥ १८ ॥
पूर्व्वं गृहीतप्रवृत्तिनिवृत्तिधर्म्मसम्भवः ।
संस्कार एव हेतुः सोऽवस्थयोरनयोर्मतः ॥ १९ ॥
वासनातो विनानैव संस्कारो जायते क्वचित् ।
संस्कारतः कर्म्म तस्मात् संस्कारो जायते पुनः ॥ २० ॥
संस्कारस्य विशुद्धत्वे कर्म्मणोऽपि विशुद्धता ।
विशुद्धकर्म्मजनितज्ञानान्मोक्षः प्रकाशते ॥ २१ ॥
तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनायाः क्षयोऽपि च ।
आविर्भवन्ति युगपदपवर्गदशा क्षणे ॥ २२ ॥

इस प्रकार वे योगीगण अनायास उत्तम और विशुद्ध योगारूढ दशा-को पहुंचकर परमपदका लाभ करते हैं ॥१५॥ विविदिषा सन्न्यासि-योंके लिये यह बात नहीं है। उन्हें कृतकृत्य होनेके लिये क्रम सन्न्यासकी अपेक्षा होती है। इसीसे वेदोंमें सन्न्यासाश्रमके चार भेद देखे जाते हैं, जो मैं पहिले स्पष्टरूपसे आपलोगोंको सुना चुका हूं ॥ १६-१७ ॥ प्रारब्धसे उत्पन्न प्रकृतिके अनुसार क्रम सन्न्यासपरायण योगियोंके ब्रह्मनिष्ठ और आत्मनिष्ठ नामक दो भेद होते हैं ॥ १८ ॥ इन दोनों अवस्थाओंके लिये प्राक्तन प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म मूलक संस्कार ही कारण है ॥ १९ ॥ वासनाके बिना संस्कार उत्पन्न नहीं होते। संस्कारसे कर्म और कर्मसे पुनः संस्कार उत्पन्न होते हैं ॥ २० ॥ संस्कार विशुद्ध होनेसे कर्मकी भी शुद्धि होती है और विशुद्ध कर्मसे उत्पन्न हुए ज्ञानसे मोक्षका प्रकाश होता है ॥ २१ ॥ मुक्ति दशाके क्षणमें तत्त्वज्ञान, मनोनाश

निवृत्तिधर्माज्जीवानां यत्परं घटते पदम्।
भावशुद्धप्रवृत्युत्थधर्मतोऽप्यन्त एव तत्॥ २३॥
अस्य भेदद्वयस्यैतत्कारणं मूल मीक्ष्यते।
ब्रह्मनिष्ठाऽऽत्मनिष्ठत्वदशा भवति संस्कृतेः॥ २४॥
स्वार्थश्च परमार्थश्च परोपकार इत्यपि।
चतुर्विधाऽस्ति परमोपकार इति वासना॥ २५॥
ऐहिकाऽभ्युदयस्तत्र स्वार्थो विद्वद्भिरुच्यते।
स्वीयाऽऽमुष्मिककल्याणं परमार्थः प्रकीर्तितः॥ २६॥
अपरैहिककल्याणं परोपकार उच्यते।
अपराऽऽमुष्मिकशिवं सकलान्तस्य लक्षणम्॥ २७॥
स्वार्थः परोपकारश्च जीवानां लक्ष्यतामितः।
परमार्थश्च परमोपकारश्चोच्चयोगिनाम्॥ २८॥
सन्न्यासिनस्त एवाऽत्र केचनैव निरामयम्।
स्वमोक्षमेवाप्नुवन्तो यान्त्येव कृतकृत्यताम्॥ २९॥

और वासनाका क्षय ये तीनों एक साथ ही उत्पन्न होते हैं॥ २२॥ जीवोंको निवृत्ति धर्मसे जो परम पद प्राप्त होता है, भावशुद्धि युक्त प्रवृत्ति धर्मसे भी अन्तमें वही पद प्राप्त होता है॥ २३॥ संस्कार हेतुक ब्रह्मनिष्ठ और आत्मनिष्ठ नामक जो दशाएँ ऊपर कही गई हैं, उल्लिखित भेदद्वय ही अर्थात् निवृत्ति धर्म और भावशुद्धि युक्त प्रवृत्ति धर्म ही इनका मूल कारण है॥ २४॥ वासनाएँ चार प्रकारकी होती हैं। यथाः—स्वार्थ, परमार्थ, परोपकार और परमोपकार॥ २५॥ जिससे ऐहिक अभ्युदय हो, उसे विद्वान् गण स्वार्थ कहते हैं। अपने पारलौकिक कल्याणका नाम परमार्थ है। दूसरोंके ऐहिक कल्याणको परोपकार और दूसरोंके पारत्रिक कल्याणको परमोपकार कहते हैं। स्वार्थ और परोपकार साधारण जीवोंका लक्ष्य तथा परमार्थ और परमोपकार उच्च श्रेणीके योगियोंका लक्ष्य होता है॥ २६–२८॥ कोई कोई सन्न्यासी केवल अपना ही मोक्ष साधन करके

अन्येधिकारिणः केचित् आत्मनो जगतासमम्।
संस्थाप्यैकत्त्व सम्बन्धं यतन्ते सर्व्वमुक्तये ॥ ३० ॥
ब्रह्मकोटियद्राप्नोति पदं सुखमनामयम्।
यदीशकोटिर्लभते तदेकमेव यद्यपि ॥ ३१ ॥
तथापि भेद आद्येन परोक्षं जगतो हितम्।
अन्त्येन जीवन्मुक्तेन साक्षाद् भवति मङ्गलम् ॥ ३२ ॥
न विश्वं लभते किञ्चित् प्रत्यक्षं फलमादितः।
भाविकालाश्रयाद्यस्मात्तत्कर्म विश्वभद्रकृत् ॥ ३३ ॥
जीवन्मुक्त ईशकोटिः पूर्वस्मादेव वस्तुतः।
परमोपकारतत्त्वाधिकारित्वं समाश्रयन् ॥ ३४ ॥
जगद्गुरुत्वमापन्नोऽध्यात्मज्ञानं प्रचारयन्।
विश्वप्रभूतकल्याणं जनयत्त्यविलम्बितम् ॥ ३५ ॥
तत्कर्माण्यपि साधूनि कालमाश्रित्य भाविनि।
भुवने कालसर्गस्य कारणानि भवन्त्यलम् ॥ ३६ ॥

बाधा रहित होकर कृतकृत्य हो जाते हैं ॥ २९॥ और दूसरे अधिकारी गण अपना जगतके साथ एकत्व सम्बन्ध स्थापन कर सभीके मुक्तिकी चेष्टा करते हैं ॥ ३० ॥ ब्रह्मकोटीके जीवन्मुक्त पुरुष जो अनामय पद अनायास प्राप्त करते हैं एवम् जो पद ईशकोटिके जीवन्मुक्तोंको प्राप्त होता है वे दोनों पद यद्यपि एक ही हैं तथापि दोनोंमें भेद यह है कि ब्रह्मकोटिके जीवन्मुक्तसे जगत्‌का परोक्ष रूपसे हित होता है और ईशकोटिके जीवन्मुक्तोंसे जगत्‌का प्रत्यक्ष मङ्गल होता है ॥ ३१-३२ ॥ ब्रह्मकोटिके जीवन्मुक्तसे संसारको प्रत्यक्ष कोई लाभ नहीं है। क्योंकि उसका कर्म भविष्यत् कालका आश्रय करके विश्वका मंगल करता है ॥ ३३ ॥ ईशकोटि का जीवन्मुक्त पहिलेसे ही परमोपकारके तत्त्वकी अधिकारिताका आश्रय कर जगद्गुरुत्वको प्राप्त करके अध्यात्मज्ञानका प्रचार करते हुए संसारका परम कल्याण बिना विलम्ब किये साधन करता है। ३४-३५ उस ईशकोटिके जीवन्मुक्त पुरुषके कर्मसमूह कालका आश्रय करके भावी संसारके लिये काल सृष्टिके कारण हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

सतः समुचितात् केन्द्रान्नूनं भगवदिङ्गितैः।
स कर्त्तुं भगवत्कार्य्यं प्रभवत्त्यनुपद्रवम् ॥ ३७ ॥

एतादृगेव परमहंसादर्शो जगद्गुरुः।
जीवन्मुक्तो हि सर्वेषां कल्याणं कर्तुमर्हति ॥ ३८ ॥

सन्न्यासमिच्छतां काले योगिनां सावधानता।
विशेषतोपेक्षणीया यस्मात् कालो दुरत्ययः ॥ ३९ ॥

कुटीचको वा भवतु विद्यतां वा बहूदकः।
हंसोवास्तां हि परमोहंसोवास्तु विवेकवान् ॥ ४० ॥

विधाय दृष्टिं परमोपकारे तत्त्व इष्टदे।
जगदेव परंब्रह्म ब्रह्मैव परमं जगत् ॥ ४१ ॥

इत्यस्य सम्यक् मीमांसाद्वय सिद्धान्तमाश्रयन्।
सन्न्याससोपानततौ सर्व्वोह्यग्रसरो भवेत् ॥ ४२ ॥

विराट केन्द्रके द्वारा चालित होकर ऐसे महात्मा भगवान्के इङ्गित-से अनायास भगवान्का कार्य करनेमें समर्थ होते हैं ॥ ३७ ॥ इस प्रकारका आदर्श परमहंस, जगद्गुरु, जीवन्मुक्त पुरुष सबका कल्याण कर सकता है ॥ ३८ ॥ कलिकालमें सन्न्यास चाहनेवाले योगियोंको विशेष सावधानता रखनी चाहिये। क्योंकि कलिकाल बड़ा कठिन है ॥ ३९ ॥ कुटीचक हो, बहूदक हो, हंस हो या विवेकवान् परमहंस ही क्यों न हो, सबको इष्टकारी परमोपकारके तत्वकी ओर दृष्टि रखकर जगत् ही परमब्रह्म है और परमब्रह्म ही जगत् है इन दोनोंकी मीमांसाओंके सिद्धान्तोंका आश्रय कर सन्न्यास मार्गमें अग्रसर होना चाहिये * ॥ ४०–४२ ॥

---

* विविदिषा और विद्वत् संन्यास इन दोनों भेदों तथा ब्रह्मनिष्ठ और आत्म-निष्ठ इन दोनों दशाओंके सम्बन्धके साथ ब्रह्मकोटिके जीवन्मुक्त और ईशकोटिके जीवन्मुक्तोंके अधिकारका सम्बन्ध दिखाते हुए इस ग्रन्थमें यह सिद्ध किया गया है कि कलिकालके कराल आक्रमणसे बचनेके लिये परमोपकार व्रतका धारण करते हुए संन्यासियोंको ईशकोटिकी जीवन्मुक्त अवस्था पर ही लक्ष्य रखना चाहिये।

सत्कर्मोपासनाज्ञानमेतद् यज्ञत्रयं क्रमात्।
त्रिविधानां हि शुद्धीनां कारणं कीर्तितं परम् ॥ ४३ ॥
अधिभूतं कर्मयज्ञात् शुद्धिं समधिगच्छति।
पूर्णाहुतिर्भवत्यस्य निष्कामकर्मयोगतः ॥ ४४ ॥
अधिदैवविशुद्धिः स्यादुपास्तियज्ञयोगतः।
पूर्णाहुतिः पराभक्तावद्वैतभावसंजुषि ॥ ४५ ॥
अध्यात्मशुद्धिः सर्व्वेषां भवति ज्ञानयज्ञतः।
अहं ब्रह्मास्मीति चिन्तासिद्धावेवाऽस्य पूर्णता ॥ ४६ ॥
यथाधिकारमेते हि साधयन्तो न योगतः।
विच्युताः स्युः कदापीहाऽन्यथाभावेऽन्यथा भवेत् ॥ ४७ ॥
सिद्धान्तानारुरुक्षूणाम् एतान्निश्चित्य यत्नतः।
ईशकोटिकमुक्तानामादर्शं परिचिन्तयन् ॥ ४८ ॥
निष्कामकर्मयोगात्मपरकर्मपरां गतिम्।
पराभक्तिं परज्ञानमाश्रयन् मानवः स्वयम् ॥ ४९ ॥

उत्तम कर्म, उपासना और ज्ञान ये तीन यज्ञ क्रमशः त्रिविध शुद्धिके परम कारणस्वरूप हैं ॥ ४३ ॥ कर्मयज्ञसे अधिभूतशुद्धि प्राप्त होती है। इसकी पूर्णाहुति निष्कामकर्मयोगसे होती है ॥ ४४ ॥ उपासनायज्ञसे अधिदैवशुद्धि होती है। इसकी पूर्णाहुति अद्वैतभाव युक्त पराभक्तिसे होती है ॥ ४५ ॥ सबकी अध्यात्मशुद्धि ज्ञानयज्ञसे होती है। इसकी पूर्णता 'मैं ब्रह्म हूं' इस प्रकारकी चिन्ताकी सिद्धिसे होती है ॥४६॥ यथाधिकार इन यज्ञोंकी साधना करनेसे साधक कभी योगसे च्युत नहीं होगा, परन्तु अन्यथा होनेसे च्युति अनिवार्य है॥४७॥*योगारूढ़ोंके इन सिद्धान्तोंका यत्नके साथ निश्चय कर ईशकोटीके जीवन्मुक्तोंको आदर्श मानकर, निष्काम कर्मयोग,

---

* सन्यासीको भी अपने अपने अधिकारानुसार कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ, और ज्ञानयज्ञसे पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। उनको छोड़नेसे अवनतिकी सम्भावना है। इसी कारण प्रस्थानत्रयका विधान है। कर्मयज्ञकी मीमांसा भगवद्गीतासे, उपासनायज्ञकी मीमांसा उपनिषदोंसे और ज्ञानयज्ञकी मीमांसा ब्रह्मसूत्रसे होनेके कारण प्रस्थानत्रय विहित है।

सम्यक् कृतार्थतामाप्त जगन्त्यपि कृतार्थतां।
नूनं गमयितुं सम्यक् शक्नोत्यत्र न संशयः॥ ५०॥
कलिकालप्रभावेण सन्न्यासिष्वपि सुव्रताः।
बहवः सम्प्रदायाः स्युर्लिङ्गान्यपि च भूरिशः॥ ५१॥
द्वैतभेदनिरासायाऽद्वैतभेदस्य सिद्धये।
यः सन्न्यासाश्रमः प्रोक्तस्तत्राऽज्ञानप्रभावतः॥ ५२॥
मतभेदो लिङ्गभेदोऽहङ्कारस्य भिदा तथा।
आचारस्यापि भेदश्च भविष्यति कलौ ध्रुवम्॥ ५३॥
प्रकृतिः कारणं तस्य माया या विश्वमोहिनी।
कलौ सन्न्यासभेदा ये तेषां चक्रे पतिष्यताम्॥ ५४॥
भाविन्यधोगतिर्विप्रा भवचक्रे विघूर्णिनी।
आध्यात्मिकोन्नतिं तद्वत् लब्ध्वा ज्ञानस्य पूर्णताम्॥ ५५॥
पदञ्चाभयमव्यग्रं य इच्छेन्नियतात्मवान्।
न पतेदीदृशे सोऽसोवविद्यापाशबन्धने॥ ५६॥

आत्मपर कर्म, परागति, पराभक्ति और परज्ञानका आश्रय कर मनुष्य स्वयम् उत्तम रीतिसे कृतार्थ होता हुआ जगत्को भी कृतार्थ कर सकता है इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं है॥ ४८–५०॥ हे सुव्रतो! कलिकालके माहात्म्यसे सन्न्यासियोंमें भी अनेक सम्प्रदाय और लिङ्ग होंगे॥ ५१॥ परन्तु जो सन्न्यासाश्रम द्वैतभेदको निर्मूल करने–अद्वैतभावकी सिद्धि करनेके लिये है, उसमें मतभेद अहङ्कारभेद, लिङ्गभेद और आचारभेद ये सब कलिमें केवल अज्ञानके कारण होंगे॥ ५२–५३॥ और वह अज्ञान विश्वमोहिनी मायाके कारण होगा। कलियुगमें सन्न्यासाश्रमके जो अनेक भेद होंगे, उनके चक्रमें जो पड़ेगा, हे विप्रो! उसकी निःसंदेह अधोगति होगी। अतः आध्यात्मिक उन्नतिकी इच्छा करनेवाले और ज्ञानकी पूर्णता प्राप्त करके अभय पदकी आकांक्षा करनेवाले नियतात्मा पुरुषको कदापि ऐसे अविद्यापाशमें बद्ध नहीं होना चाहिये॥ ५४–५६॥

सन्न्यासाश्रममभ्येत्य मुमुक्षुर्यदि सम्पतेत्।
उक्तेऽविद्याचक्रचक्रे तदा कष्टा बहिर्गतिः ॥ ५७ ॥
तन्मायाचक्रतो घोरात् सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम्।
ममैतद्वचने पूर्णं विश्वस्तव्यमलं सदा ॥ ५८ ॥
जीवन्मुक्तपदं तद्वन्न्यासिनश्च जगद्गुरोः।
पदं प्राप्तुमपेक्ष्येत क्रमन्यासो ध्रुवं ध्रुवम् ॥ ५९ ॥
चतुर्धा संविभक्तोऽसौ पूर्वमुक्तोऽत्र विस्तरात्।
स्वाभाविकास्ते चत्वारो विभागाः सम्प्रकीर्तिताः ॥ ६० ॥
यथा प्राकृतिका वर्णाश्रमाद्याः खलु सर्वथा।
तेषामेवाश्रयः श्रेयान्तत्त्वविद्भिरुदीरितः॥ ६१ ॥
महर्षयोऽतिदुर्ज्ञेयं स्वरूपं कर्मब्रह्मणः।
कर्मज्ञैर्योगिभिः कर्म विराड्रूपं त्रिधा स्मृतम् ॥ ६२ ॥
सहजं जैवमैशं च भावत्रयविभेदतः।
ब्रह्माण्डस्य हि संस्कारसमष्ट्या यस्य यस्य च ॥ ६३ ॥
सम्बन्धः कर्मणास्तिष्ठेत् सहजं कर्म तन्मतम्।
जङ्गमस्थावरसृष्टेर्मूलं कर्मैतदीरितम् ॥ ६४ ॥

यदि सन्न्यासाश्रम ग्रहण करके भी उक्त अविद्या चक्रमें मुमुक्षु पड़ेगा, तो उसको उस प्रबल मायाचक्रसे बाहर निकलना कठिन हो जायगा ॥ ५७ ॥ मैं यह सत्य सत्य कहता हूं। मेरे वचनपर आप लोग पूर्ण विश्वास करें ॥ ५८ ॥ जगद्गुरु सन्न्यासीपद और जीवन्मुक्तपद प्राप्त करनेके लिये क्रमसन्न्यास अत्यन्त आवश्यक है। क्रम सन्न्यास चार प्रकारका होता है, सो मैं पहिले विस्तारके साथ कह चुका हूं। ये चारों विभाग स्वाभाविक कहे गये हैं ॥ ५९-६० ॥ जैसे कि तत्त्ववेत्ताओंके कहे हुए वर्णाश्रमादि-विभाग प्राकृतिक हैं। उनका आश्रय करना सर्वथा श्रेयस्कर है॥६१॥ हे महर्षिगण! कर्मब्रह्मका स्वरूप अतिदुर्ज्ञेय है। कर्मज्ञ योगियों-ने कर्मके विराट् स्वरूपको तीन भावोंमें विभक्त किया है, यथाः- सहज, जैव और ऐश। ब्रह्माण्डके समष्टि संस्कारसे जिन जिन कर्मोंका सम्बन्ध हो, उनको सहज कर्म कहते हैं। स्थावर और

असङ्ख्या देवनिचयाश्चालका अस्य कर्मणः।
परिणामःस्थावरेषु क्रमान्मर्त्येतरेषु हि ॥ ६५ ॥
जङ्गमेषु च जीवेषु या क्रमोन्नतिरीदृशी।
जायते कारणं तत्र प्रभावो ह्यस्य कर्मणः ॥ ६६ ॥
पिण्डसम्बन्धि यत्कर्म मनुष्यैर्व्यष्टिरूपतः।
कृतं सद्भिस्तत्त्वविद्भिर्जैवं कर्म तदुच्यते ॥ ६७ ॥
नरादयः स्वतन्त्रा वै जीवा एतस्य कर्मणः।
निरन्तरं सर्वथैव भवन्ति फलभोगिनः ॥ ६८ ॥
कुर्वन्ति जीवन्मुक्ता यदैशं कर्म तदुच्यते।
जीवन्मुक्तः कार्यभूमिरीश्वरेच्छा तु कारणम् ॥ ६९ ॥
ततः कर्म भवेदैशमीशकोटिकमुक्ततः।
ईश्वराधीनमेवैतज्जगत्कल्याणहेतवे ॥ ७० ॥
ईशकोटिकमुक्तानां सञ्चितक्रियमाणके।
कर्मणी बन्धनेऽनीशे स्वकर्त्तुस्सर्वथैव हि ॥ ७१ ॥

जङ्गम सृष्टिका मूलभूत यही कर्म कहा गया है ॥ ६२–६४ ॥ असङ्ख्य देवतागण इस कर्मके सञ्चालक होते हैं। स्थावरमें जो क्रम परिणाम और मनुष्येतर उद्भिज्ज स्वेदज आदि जङ्गम जीवोंमें जो क्रमोन्नति होती है, इस सहज कर्मका प्रभाव ही उसका कारण है ॥ ६५–६६ ॥ पिण्डके साथ सम्बन्ध युक्त और व्यष्टिरूपसे मनुष्योंके द्वारा किये हुए कर्मोंको तत्त्वदर्शी सज्जनोंने जैवकर्म कहा है ॥ ६७ ॥ इन कर्मोंके सर्वथा फलभोगी मनुष्यादि जीव हैं, जो कर्म करनेमें स्वतन्त्र हैं ॥ ६८ ॥ और जीवन्मुक्तोंके किये हुए कर्मोंको ऐश कर्म कहते हैं। जीवन्मुक्त कार्यभूमि और ईश्वरेच्छा कारणभूमि होनेसे ईशकोटिके जीवन्मुक्तों द्वारा जो ऐश कर्म जगत्कल्याणके लिये होता है, सो ईश्वराधीन है, ऐसा जानना चाहिये ॥६९–७०॥ ईश कोटिके जीवन्मुक्तोंके सञ्चित और क्रियमाण कर्म उस जीवन्मुक्तको बन्धन करनेमें सर्वथा असमर्थ होते हैं ॥ ७१ ॥

भविष्यत्कालजनने साहाय्यमधितिष्ठतः ।
जगतां जीवनायैव जीवन्मुक्तस्य जीवनम् ॥ ७२ ॥
जगत्पवित्रतासिद्ध्यै जीवन्मुक्तस्य कर्म वै ।
भगवन्महिमख्यातिप्रचाराय निरन्तरम् ॥ ७३ ॥
जीवन्मुक्तकृतोपास्तिः केवलं समुदीरिता ।
जीवन्मुक्तस्य यज्ज्ञानं तत्त्वज्ञानप्रचारतः ॥ ७४ ॥
जगज्जीवोद्धारणाय केवलं तत्प्रकीर्तितम् ।
अतएव महाभागास्तीर्था अपि भवादृशाः ॥ ७५ ॥
जगत्पवित्रयन्तो हि तीर्थेऽटन्त्यनिशं स्वतः ।
महर्षयः सत्यमेव ब्रवीमि भवतां पुरः ॥ ७६ ॥
जीवन्मुक्ते ब्रह्मणि च न भेदः कोऽपि विद्यते ।
एतावानेव भेदोऽस्तिमूर्तिमद्ब्रह्म ते मताः ॥ ७७ ॥
तेषां कर्म ब्रह्मकर्म स्मर्यैतैतदहर्निशम् ॥ ७८ ॥

इति श्रीसन्न्यासगीतायां जीवन्मुक्तविज्ञाननिरूपणं
नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—:*:—

अतः वे भविष्यत् कालको बनानेमें सहायक हो रहते हैं। संसारके जीवनके लिये ही जीवन्मुक्तका जीवन होता है॥७२॥ जगत्को पवित्र करनेके लिये जीवन्मुक्तका कर्म होता है, जीवनमुक्तकी उपासना भगवन्महिमाके महत्त्वका प्रचार करनेके लिये होती है और जीवन्मुक्त-का ज्ञान केवल तत्त्वज्ञानविस्तार द्वारा जगत्के जीवोंके उद्धार करनेके लिये है। इसीसे आप जैसे स्वयं तीर्थस्वरूप महाभाग जगत्को पावन करते हुए अनेक तीर्थों में अखण्ड परिभ्रमण करते रहते हैं। हे महर्षिगण! आपलोगोंसे मैं सत्य कहता हूँ कि, जीवन्मुक्त और ब्रह्म-में कोई भेद नहीं है। भेद इतना ही है कि, वे मूर्तिमान् ब्रह्म कहे गये हैं और उनका कर्म ब्रह्मकर्म है इसका स्मरण अहर्निश रखना चाहिये॥ ७३-७८॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यासगीताका जीवन्मुक्तविज्ञाननिरूपण नामक
एकादश अध्याय समाप्त हुआ।

सर्व ऊचुः।

ब्राह्मणानां गुरो ! सन्न्यासिनां तद्वच्छिरोमणे।
जगद्गुरोऽद्य भवतः कृपया धन्यतामगात् ॥ १ ॥
इदं तीर्थं तथा सर्वे वयं धन्याः कृतास्त्वया।
रहस्यं धर्म्मविज्ञानस्याऽतिदुर्ज्ञेयमद्भुतम ॥ २ ॥
पुंसां साधारणो धर्म्मो धर्माङ्गस्य तथैव च।
स्वरूपं तेऽनुकम्पातः श्रुत्वा पुलकिता वयम् ॥ ३ ॥
प्रबलस्य कलेः रूपं करालं च विचित्रितम्।
श्रुत्वाश्चर्यपराः सर्वे वयं जातास्तपोनिधे ॥ ४ ॥
ततोऽतिपुण्यरूपस्य त्रैलोक्यपावनस्य च।
सन्न्यासधर्म्मस्य विभो ! रूपं श्रुत्वा पवित्रिताः ॥ ५ ॥
एवं कुटीचकादीनां चतुर्णां धर्ममुत्तमम्।
विशेषं कृतकृत्याः स्मः श्रुत्वा सर्व्वे वयं मुने ॥ ६ ॥
उपदिष्टं त्वया सर्वमिदं नौरेव कीर्तिता।
कलिदुस्तरनद्या वै तरणे मुनिपुङ्गव ॥ ७ ॥

सब बोलेः—हे ब्राह्मणोंके गुरु और सन्न्यासियोंके शिरोमणि ! हे जगद्गुरु ! आज आपकी कृपासे हम धन्यताको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ हम सबको और इस तीर्थको भी आपने धन्य किया। धर्मविज्ञान-का अत्यन्त दुर्ज्ञेय और अद्भुत रहस्य, पुरुषोंका साधारण धर्म और धर्माङ्गका स्वरूप आपकी कृपासे सुनकर हम अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २-३ ॥ हे तपोनिधे ! प्रबल कलिका विचित्र कराल रूप सुनकर हम बड़े आश्चर्यान्वित हुए। फिर अति पुण्यरूप, त्रैलोक्यपावन सन्न्यासधर्मका रूप सुनकर हे विभो ! हम पवित्र हुए ॥ ४-५ ॥ हे मुने ! इसी तरह कुटीचकादि चतुर्विध सन्न्यास के विशेष धर्म सुन-कर हम कृतकृत्य हुए॥ ६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने यह उपदेश क्या किया, मानों कलिरूपी दुस्तरा नदीको तरनेके लिये नाव ही निर्माण कर दी ॥७॥

आत्मज्ञानं श्रावयास्मानधुना कृपया विभो ।
लक्ष्यस्थैर्यं यतोऽस्माकं संसाराब्धिन्तरेम च ॥ ८ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ।

सर्व्वेषां दृश्यवस्तूनां त्रिधा दर्शनमस्ति यत् ।
आध्यात्मिकाधिदैवाधिभौतिकत्रयरूपतः ॥ ९ ॥
दृश्यकारणरूपा या मायाया वै गुणत्रये ।
दृष्टिश्च सततं विप्राः ! तत्त्वज्ञाने हि कारणम् ॥ १० ॥
अनादिसान्ता या माया शक्तिः सा परमात्मनः ।
परमात्मनि लीनायां तस्यामेव हि जायते ॥ ११ ॥
अद्वैतरूपज्ञानस्याविर्भूतिर्योगिनो हृदि ।
ब्रह्मणोऽभिन्नशक्तिस्तु ब्रह्मैव खलु नाऽपरा ॥ १२ ॥
तथा सति वृथा प्रोक्तं शक्तिरित्यविवेकिभिः ।
शक्तिशक्तिमतोर्विद्वन् ! भेदाभेदस्तु दुर्घटः ॥ १३ ॥

अब हे विभो ! कृपा करके हमें आत्मज्ञान सुनाइये, जिससे हमें लक्ष्यस्थैर्यको प्राप्त होकर हम संसारसागरसे तर जायंगे ॥ ८ ॥

महर्षि याज्ञवल्क्य बोलेः-सभी दृश्य वस्तुओंका आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक रूपसे त्रिविध दर्शन होता है ॥ ९ ॥ हे विप्रो ! दृश्यकी कारणरूप जो माया है, उसके त्रिगुणमें निरन्तर ध्यान रखना ही तत्त्वज्ञानका कारण है * ॥ १० ॥ अनादि, सान्त जो माया है, वही परमात्माकी शक्ति है। उसके परमात्मामें लीन हो जानेपर योगियोंके हृदयमें अद्वैतरूप ज्ञानका आविर्भाव होता है । ब्रह्मसे अभिन्न ब्रह्मशक्तिरूपिणी माया ब्रह्म ही है, कोई भिन्न वस्तु नहीं है । अतः अज्ञानी लोगोंने ही वृथा शक्तिको ब्रह्मसे भिन्न कहा है । विद्वन् ! शक्ति और शक्तिमान्‌का भेदाभेद दुर्घट

---

* तत्त्वज्ञानका उदय यथार्थतः तब समझना चाहिये, जब ज्ञानी व्यक्ति प्रत्येक पदार्थमें त्रिभावका अनुसन्धान करे और प्रत्येक क्रियामें त्रिगुणका विचार रक्खे। इस प्रकारकी विचारकी धारणा स्थिर हो जानेपर आगेकी कही हुई अद्वैत भाव युक्त आत्मज्ञानकी दशा ज्ञानीको स्वतः ही प्राप्त हो जाती है ।

सृष्टिर्मतैतज्जगतः शक्तिद्वारैव ब्रह्मणः।
द्वैतमेतत्तथाऽद्वैतद्वैताऽद्वैतविवर्जितम् ॥ १४ ॥
यतो हि कारणंब्रह्म भिन्नं न कार्यब्रह्मणः।
इत्थं स्थितमिदं विश्वं सदसद्रूपि च ॥ १५ ॥
द्वैतैक्यपदनिर्मुक्तं युक्तं द्वैतैक्यमप्यतः।
चितेः कलङ्कवैरूप्यमिति संसारतां गतम् ॥ १६ ॥
अकलङ्कमसंसारि तच्चाऽभिन्नाऽद्वयात्मकम्।
इयमस्मीति सम्प्राप्तकलङ्का चिन्निबध्यते ॥ १७ ॥
एतामेव कलां बुध्वा स्वकाद्भिन्नां विमुच्यते।
चिदर्थाकारताऽभावाद् द्वित्वात् सत्वं समुज्झति ॥ १८ ॥
सुखादि मिलितां धत्ते न सत्यां सदिति चणात्।
शुद्धा निरंशा सत्या वाऽसत्या वेत्येवमादिभिः ॥ १९ ॥
विमुक्ता नामशब्दार्थैः सर्वैः सर्व्वात्मिकाऽपि खम्।
सर्व्वं निरुपमं शान्तं मनसैतत्त्रिमार्गगम् ॥ २० ॥

है। जगत्की सृष्टि, शक्तिके द्वारा ही ब्रह्मसे होती है। यही द्वैत है, यही अद्वैत है और यही द्वैताद्वैतसे विवर्जित अवस्था है ॥ ११-१४ ॥ क्योंकि कारणब्रह्म कार्यब्रह्मसे भिन्न वस्तु नहीं है। इस प्रकारसे यह जगत् सदसद्रूपसे भासमान है ॥ १५ ॥ यह द्वैतसे एकता युक्त भी है और द्वैतके साथ एकतासे मुक्त भी है। प्रकृतिके कलङ्क या छायाके द्वारा चित्की जो विरूपता है, वही संसारका कारण है। अद्वितीय परमात्मा निष्कलङ्क, असंसारी और सर्वथा एकरस है। मैं प्रकृति हूँ इस प्रकारसे कलङ्क प्राप्त करके चित् बन्धनमें आता है। जब प्रकृतिके समस्त भावोंको अपनेसे पृथक् समझता है, तभी चित्की मुक्ति होती है। दृश्य और द्रष्टाकी एकाकारताके अभावसे द्वैतमय जगत्की सत्ता उत्पन्न होती है। वही सत्ता सुख दुःख और मोहरूपी विकल्पके द्वारा असतमें सत्की भ्रान्ति उत्पन्न करती है। परन्तु ब्रह्म इन सब सदसद्रूपी विकल्पभावसे तथा नामरूपसे मुक्त, शुद्ध, पूर्ण, सर्वत्र एकरस, निरुपम, शान्त और आकाशकी तरह सर्वत्र व्याप्त है। जब शुद्ध मनके द्वारा इन्द्रिय-

ब्रह्मेद बृंहितं ब्रह्म शक्त्याकाशविकासया ।
मनसा मनसि च्छिन्ने स्वेन्द्रियावयवात्मनि ॥ २१ ॥
सत्या लोकाज्जगज्जाले प्रच्छन्ने विलयं गते ।
छिद्यते शीर्णसंसारकलना कल्पनात्मिका ॥ २२ ॥
भ्रष्टबीजोपमा सत्ता जीवस्य इति नामिका ।
पश्यन्ती नाम कलितोत्सृजन्ती चेत्य चर्वणाम् ॥ २३ ॥
मनोमोहाभ्रनिर्मुक्ता शरदाकाशकोशवत् ।
शुद्धा चिद्भावमात्रस्था चेत्यचिच्चापलं गता ॥ २४ ॥
समस्तसामान्यवती भवतीर्णभवार्णवा ।
अपुनर्भवसौषुप्तपदपाण्डित्यपीवरी ॥ २५ ॥
परमासाद्य विश्रान्ता विश्रान्ता वितते पदे ।
एतत्ते मनसि क्षीणे प्रथमं कथितं पदम् ॥ २६ ॥
द्वितीयं शृणु विप्रेन्द्र ! शक्तेरस्याः सुपावनम् ।
एषैव मनसोन्मुक्ता चिच्छक्तिः शान्तिशालिनी ॥ २७ ॥

परायण मलिन मन छिन्न होता है। तथा परमात्माकी सत्य प्रभाके द्वारा जगज्जाल प्रच्छन्न और विलीन हो जाता है, तब कल्पनारूपी संसारकलना आमूल नाशको प्राप्त हो जाती है ॥ १५-२२ ॥ उस समय जीवकी सत्ता भर्जित बीजकी तरह हो जाती है। वह सांसारिक विषयोंको उस समय देखनेपर भी उसमें आसक्ति शून्य हो जाती है और मनोमोहरूप मेघजालसे निर्मुक्त होकर शरत्कालीन आकाशकी तरह अवस्थान करती है। इस प्रकारसे जो सत्ता पूर्वमें प्रकृतिके संगसे विषयचञ्चल थी, वह शुद्ध चिद्भावमें स्थित होकर जीवित दशामें ही संसारसिन्धुसे मुक्त हो जाती है। उस समय जीवन्मुक्त महापुरुष पुनर्जन्मबीजरहित ज्ञानमय परमानन्दपदमें सदा ही विश्रान्ति लाभ करते हैं। हे विप्रेन्द्रगण ! मनोनाशके बाद योगारूढ़ पुरुषको जो प्रथम पद प्राप्त होता है, सो मैंने आपके निकट वर्णन किया है, अब उसका द्वितीय पद सुनिये। द्वितीय दशामें मनसे उन्मुक्त शान्तिशालिनी वह चित् सत्ता समस्त ज्योति तथा तमसे मुक्त विशाल आकाशकी तरह विराज-

सर्व्वंज्योतिस्तमोमुक्ता वितताकाशसुन्दरी ।
घनसौषुप्तलेखावच्छिन्नान्तः सन्निवेशवत् ॥ २९ ॥
सैन्धवान्तस्थरसवद्वातान्तःस्पन्दशक्तिवत् ।
कालेन यत्र तत्रैव परां परिणतिं यदा ॥ २९ ॥
शून्यशक्तिरिवाकाशे परमाकाशगा तदा ।
चेत्यांशोन्मुखतां नूनं त्यजत्यब्धिव चापलम् ॥ ३० ॥
वातलेखेव चलनं पुष्पलेखेव सौरभम् ।
कालताकाशते त्यक्त्वा सकले सकला कला ॥ ३१ ॥
न जड़ा नाऽजड़ा स्फारा धत्ते सत्तामनामिकाम् ।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमहासत्तापदं गताम् ॥ ३२ ॥
तूर्यतूर्यांशकलितामकलङ्कामनामयाम् ।
काञ्चिदेवविशालात्मसाच्चिवत् समवस्थिताम् ॥ ३३ ॥

मान रहती है । तदनन्तर कालक्रमसे गाढ़सुषुप्ति दशाके अनुभव-की तरह, प्रस्तरके अन्तर्गत कठिनताकी तरह ॥ २३—२८ ॥ सैन्धवके अन्तर्गत रसकी तरह या वायुके अन्तर्गत स्पन्द शक्ति-की तरह जब समस्त स्थितिके साररूपसे अवस्थित होती है, तब वह चित् सत्ता आकाशकी शून्यशक्तिकी तरह परमाकाशगत होकर बाह्य विषयके प्रति उन्मुखताको एक बार ही परित्याग करके स्थिर समुद्रकी तरह निश्चलरूपसे अवस्थान करती है ॥ २६–३० ॥ इसके अनन्तर सूक्ष्म पवनके स्पन्द त्यागकी तरह, कुसुमलेखाके सौरभत्यागकी तरह, कालत्व और आकाशत्वको भी परित्याग करके उन जीवन्मुक्त योगियोंकी सत्ता समस्त दृश्य वस्तुओंके सम्पर्कसे सकल प्रकारसे मुक्ति लाभ करती है । उस समय उन-की सत्ता जड़ अजड़ दोनों भावोंसे मुक्त होकर एक अपरिच्छिन्न अनिर्वचनीय भावको धारण करती है । देश कालके द्वारा उस महासत्ताका परिच्छेद नहीं होता । निष्कलङ्क, अनामय और प्रकाश-मान रूपसे निखिल वस्तुकी प्रकाश तथा आनन्दसत्तासे भी उत्कृ-ष्टतर प्रकाश तथा आनन्दरूपमें अनिर्वचनीय विशालात्म होकर वह

सर्व्वतः सर्व्वदा सर्व्वप्रकाशास्वादु तत्पराम् ।
एषा द्वितीया पदता कथिता तव सुव्रत ॥ ३४ ॥
तृतीयं शृणु वक्ष्यामि पदं पदविदाम्वर ।
एषा हक् चेत्यवलनादनामार्था पदं गता ॥ ३५ ॥
ब्रह्मात्मेत्यादि शब्दार्थादतीतोदेति केवला ।
स्थैर्येण कालतः स्वस्था निष्कलङ्का परात्मना ॥ ३६ ॥
तुर्य्यातीतादि नामत्वादपि याति परं पदम् ।
सापरा परमाकाष्ठा प्रधानं शिवभावतः ॥ ३७ ॥
चित्त्येका निरवच्छेदा तृतीया पावनी स्थितिः
चिरमस्यां प्रतिष्ठायां सर्व्वाध्वाध्वगदूरगा ॥ ३८ ॥
साममाप्यङ्गवचसां न समायाति गोचरम् ।
सत्यं ब्रह्म जगच्चैक स्थितमेकमनेकवत् ॥ ३९ ॥

साक्षिकी तरह अवस्थान करती है। हे सुव्रत मुनिगण ! चित् सत्ताकी यह द्वितीय अवस्था मैंने कही ॥ ३१-३४ ॥ अब तृतीय अवस्था सुनिये। इस अवस्था में वह चित्सत्ता ब्रह्माकार अखण्ड वृत्ति और क्षीर नीरकी तरह ब्रह्मके साथ एक ही भाव प्राप्त होनेसे नामरूपसे अतीत होनेके कारण ब्रह्म आत्मा इत्यादि संज्ञासे भी अतीत होकर केवल रूपसे अवस्थान करती है। उस समय जीव-न्मुक्तकी सत्तामें किसी प्रकारका विकार न रहनेसे वे कालसे भी स्थिर, तमसे अतीत स्वस्वरूपमें निष्कलङ्क होकर तुरीयातीत आदि नामसे अतीत हो परमभावमें अवस्थान करते हैं। उनकी चित्सत्ता अपने मङ्गलभावमें सर्वप्रधान परमाकाष्ठाप्राप्त केवल चिद्रूपा,देश काल वस्तुतः अपरिच्छिन्ना तथा परमपवित्रा होनेसे तृतीय स्थानीय है। चित्सत्ताकी यह अवस्था समस्त पथ और समस्त पथिकके पुरुषार्थसे दूरवर्ती होनेके कारण वह मेरे भी वाक्यके गोचर नहीं होती। परन्तु यह बात सत्य है कि, ब्रह्म और जगत् एक ही वस्तु है और वे अविद्याके कारण अनेककी तरह ज्ञान पड़ते

सर्व्वं वा सर्ववद्भाति शुद्धश्चाऽशुद्धवत्ततम् ।
अशून्यं शून्यमिव च शून्य वाऽशून्यवत्स्फुटम् ॥ ४० ॥
स्फारमस्फारमिव तदस्फारं स्फारसन्निभम् ।
अविकारं विकारीव समं शान्तमशान्तवत् ॥ ४१ ॥
सदेवाऽसदिवाऽदृश्यं तदेवाऽतदिवोदितम् ।
अविभागं विभागीव निर्जाड्यं जड़वद्गतम् ॥ ४२ ॥
अचेत्यं चेत्यभावीव निरंशं सांशशोभनम् ।
अनहंसोऽहमिवतदनाशमिव नाशवत् ॥ ४३ ॥
अकलङ्कं कलङ्कीव निर्वेद्यं वेद्यवाहिवत् ।
आलोकिध्वान्तघनवन्नववच्च पुरातनम् । ४४ ॥
परमाणोरपि तनु गर्भीकृतजगद्गणम् ।
सर्वात्मकमपित्यक्तदृष्टं कष्टेन भूयसा ॥ ४५ ॥
अजालमपि जालाढ्यश्चाशेषवदेनकधा ।
निर्मायमपि मायांशुमण्डलामलभास्करम् ॥ ४६ ॥

हैं ॥ ३५-३९ ॥ वही एक ब्रह्म सर्वमय होनेपर भी असर्ववत् और निर्मल होकर मलिनवत् विराजमान है । वह अशून्य होकर शून्यवत् और शून्यप्राय होकर अशून्यवत्, व्यापक होकर अव्यापकवत् और अव्यापक होकर व्यापकवत् अनुभूत होता है । वह अविकारी होकर विकारीकी तरह, शान्त होकर अशान्तकी तरह, सत् होकर असत्‌की तरह अदृश्य, और अदृश्य होकर दृश्यरूप प्रतिभात होता है । वह अविभक्त होकर विभक्तकी तरह और जड़ताहीन होनेपर भी जड़की तरह प्रतीत होता है ॥ ४०-४२ ॥ वह ज्ञानगम्य न होनेपर भी ज्ञानगम्य और अवयवहीन होकर अवयवों द्वारा सुशोभित है । वह अहंबोधशून्य होकर अहंज्ञानयुक्त, विनाशी न होकर विनाशीके तुल्य, कलङ्करहित होकर कलङ्की और इन्द्रियगोचर न होनेपर भी अविद्याके कारण इन्द्रियगोचरकी तरह बोध होता है । वह प्रकाशमय होकर गाढ़ अन्धकारकी तरह और पुरातन होकर नवीनकी तरह है । परमाणुकी अपेक्षा सूक्ष्म होनेपर भी उसके गर्भमें ब्रह्माण्ड स्थित है । सर्वमय होकर

ब्रह्मविद्धि विदांनाथमपामिव महोदधिम् ।
जगद्रत्नमहाकोषतुलायां तूलकाल्लघु ॥ ४७ ॥
मायामरीचि शशिनमपिनेत्रणगोचरम् ।
अनन्तमपि निष्पार न च क्वचिदपि स्थितम् ॥ ४८ ॥
आकाशे वनविन्यासनगनिर्माणतत्परम् ।
अणीयसामणीयांस स्थविष्ठं च स्थवीयसाम् ॥ ४९ ॥
गरीयसां गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्चश्रेयसामपि ।
अकर्तृ कर्म्मकरणमकारणमकारकम् ॥ ५० ॥
अन्त: शून्यतयैवैतच्चिराय परिपूरितम ।
जगत्समुद्गकमपि नित्यं शून्यमरण्यवत् ॥ ५१ ॥
अनन्त शैलकठिनमप्याकाशलवान्मृदु ।
प्रत्येक प्रत्यह प्राय: पुराणं पेलवं नवम् ॥ ५२ ॥

भी वह दृश्यवस्तुसे अतीत है । जो अनेक कष्टोंसे ज्ञात होता है । संसारजालमें पतित न होकर भी संसार जालबद्ध और अनेकधा विराजमान होकर भी अद्वितीय है । हे विद्वद्वर ! जिस प्रकार समुद्र वारिराशिका आधार है; उसी प्रकार ब्रह्म ज्ञानसमूहका आधार है । वह स्वयं मायाशून्य होनेपर भी मायारूप किरणोंका प्रकाशक निर्मल सूर्यकी तरह उसे जानो । वह तिनकेसे भी लघु होनेपर जगत्‌रूपी रत्नका महाकोशस्वरूप है । वह दृष्टि-गोचर न होनेपर भी मायारूपी मरीचिमालाको उत्पन्न करनेवाले चन्द्रमाके समान है । वह अनन्त है, इसका पार नहीं और न वह कहीं स्थित ही है । वह आकाशमें अनेक वनराजि और पर्वत निर्माण करनेमें तत्पर है । वह सूक्ष्मसे सूक्ष्म और स्थूलसे भी स्थूल है ॥४३-४९॥ वह गुरुसे भी गुरु और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ है । न उसका कोई कर्ता है, न उसने ही किसीको बनाया है । इसके लिये कारण और कार्य कुछ भी नहीं है ॥ ५० ॥ वह शून्यप्राय होकर इसका अन्तर निरन्तर परिपूर्ण है । वह अखिल ब्रह्माण्डका भाण्डारस्वरूप होकर भी शून्यमय अरण्यकी तरह और अनन्त पर्वतोंसे भी कठिन होकर आकाशखण्डकी तरह कोमल है । वह सब कालमें सर्व

आलोकमन्धकाराभं तमस्त्वालोकमाततम् ।
प्रत्यक्षमपिदुर्लक्ष्यं परोक्षमपि चाग्रगम् ॥ ५३ ॥
चिद्रूपमेव च जडं जड मेव चिदात्मकम् ।
अहमेवानहम्भावमनहं वाऽहमेव च ॥ ५४ ॥
अन्यदेवतदेवाऽहमहमेवाऽन्यदेव तत् ।
अस्य पूर्णार्णवस्यान्तरिमे त्रिभुवनोर्मयः ॥ ५५ ॥
स्फुरन्त इव तिष्ठन्ति स्वभावद्रवतात्मकाः ।
बिभर्ति सर्वमङ्गस्थं तुषारमिव शुक्लताम् ॥ ५६ ॥
भाति सर्गस्त्वनेनैव तुषारेणेव शुक्लता ।
अदेशकालावयवोऽप्येष देवो दिवानिशम् ॥ ५७ ॥
असज्जगत्तनोतीव यथा वारि तरङ्गकम् ॥
एतस्मिन् विकसन्ती मा विपुलाकाशकानने ॥ ५८ ॥

वस्तुस्वरूप, कोमल, पुराण और नवभवापन्न है ॥ ५१-५२ ॥ वह आलोकमय और अन्धकारस्वरूप तथा तिमिरप्राय और सर्वव्यापक आलोकस्वरूप है। वह प्रत्यक्ष होकर दृष्टिके बहिर्भूत और सम्मुख होकर दृष्टिसे दूरवर्ती है ॥ ५३ ॥ वह चिन्मय होकर जड़ और जड़ होकर चिन्मय है। अहंभाव हीन होकर अहंभावयुक्त और अहंभावयुक्त होकर अहंभावशून्य है। मैं ब्रह्म होकर भी अन्य वस्तुकी तरह और अन्यवस्तुवत् होकर भी ब्रह्मस्वरूप हूँ ऐसा जानना चाहिये। इस पूर्ण समुद्रके अन्तरमें द्रवस्वभावयुक्त त्रिभुवनरूपी ऊर्मिमाला स्फुरित होती हुई रहती है। तुषार जिस प्रकार शुक्ल वर्ण धारण करता है, उसी प्रकार उसने अपनी सङ्ग भूत सब वस्तुएँ धारण की हैं ॥ ५४-५६ ॥ और तुषार द्वारा जिस प्रकार शुक्लता प्रकट होती है, उस प्रकार उसके द्वारा समस्त सृष्टि प्रतिभात होती है। वही देव देश, काल और अवयव रहित होकर भी जल जिस प्रकार तरङ्गमालाओंका विस्तार करता है, उस प्रकार निरन्तर यह असत्यमय जगत्का विस्तार करता है। उस विशाल ब्रह्मस्वरूप शून्य काननमें पञ्चभूतमय

जगज्जरठमञ्जर्यः प्रसरत्पत्रपञ्चकाः।
एष स्वप्रतिबिम्बस्य स्वयमालोकनेच्छया ॥ ५९ ॥
अत्यन्तनिर्मलाकारः स्वयं मुकुरतां गतः ॥
व्योमवृक्षफलस्यास्य स्वेच्छावयव उज्ज्वलाः ॥ ६० ॥
सार्वोपलम्भ उद्यच्च चमत्कुर्वन्ति संविदि।
अन्तःस्थेन बहिष्ठेन नानाऽनानातयात्मनि ॥ ६१ ॥
एष सोऽन्तर्बहिर्भाति भावाभावविभावया।
एतद्रूपा पदार्थश्रीरेतस्मिन्नेतदिच्छया ॥ ६२ ॥
चमत्करोत्येतदर्थं जिह्वेव स्वास्यकोटरे।
ज्ञाता ज्ञानं तथा ज्ञेयं द्रष्टा दर्शनदृश्यभूः ॥ ६३ ॥

पञ्चपल्लवान्वित जगत्समूह रूप जीर्ण मञ्जरियोंका विकाश होता है। वह अपने प्रतिबिम्बको स्वयं देखनेकी अभिलाषासे अत्यन्त निर्मल दर्पण स्वयं ही बन गया। उस ब्रह्मसे ही गगनवृक्षके फलतुल्य स्वेच्छाकल्पित त्रैलोक्यरूप अङ्गमें देदीप्यमान चन्द्र सूर्य और उनसे उत्पन्न चक्षुरादि इन्द्रिय जीवके दर्शनादि विषयमें चित्तको चमत्कृत कर देते हैं। वही परमात्मा आभ्यन्तरिक वासनामय प्रपञ्च और बहिःस्थित भुवन रूपमें और भीतर बाहर प्रकाशित हो रहा है। वह जागृत अवस्थामें नानारूप और सुषुप्ति अवस्थामें नानारूपरहित इस प्रकार भावाभावमय आकारमें नियत रूपसे प्रकाशमान होता है। जिस प्रकार मुखमें जिह्वा अपना ही रस आस्वादन कर स्वयं चमत्कृत होती है, उसी प्रकार ब्रह्मरूपिणी पदार्थशोभा ब्रह्मकी इच्छासे ब्रह्मके लिये ब्रह्ममें ही विस्मय उत्पन्न करती हुई रहती है * जिससे ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय; द्रष्टा, दर्शन और दृश्य, उत्पन्न ॥ ५८–६३ ॥

---

* अद्वैत भावना युक्त स्वरूपज्ञान क्रमशः किस प्रकार उदय होता है उसका यथाक्रम वर्णन पूर्वोक्त श्लोकोंमें किया गया है। स्वरूपउपलब्धि होनेपर भी व्युत्थान दशा हुआ करती है। इसका कारण पूर्वकथित भेद हैं। और स्वरूपज्ञानमें ही सबकी परिसमाप्ति है।

कर्ता हेतुः क्रिया यस्मात्तस्मै ज्ञप्त्यात्मने नमः ।
यत्तद्व्यक्तस्थमव्यक्तं विचिन्वन्ति महर्षयः ॥ ६४ ॥
क्षेत्रे क्षेत्रज्ञमासीनं तस्मै क्षेत्रात्मने नमः ।
अपुण्यपुण्योपरमे यं पुनर्भवनिर्भयाः ॥ ६५ ॥
शान्ताः संन्यासिनो यान्ति तस्मै मोक्षात्मने नमः ।
यस्मात्सर्वाः प्रसूयन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः ६६ ॥
यस्मिंश्चैव प्रलीयन्ते तस्मै हेत्वात्मने नमः ।
अप्रमेयशरीराय सर्व्वतो बुद्धिचक्षुषे ॥ ६७ ॥
अपारपरमेयाय तस्मै दिव्यात्मने नमः ।
परः कालात्परो यज्ञात्परात्परतरो हि यः ॥ ६८ ॥
अनादिरादिर्विश्वस्य तस्मै विश्वात्मने नमः ।
आत्मज्ञानमिदं ज्ञानं ज्ञात्वा पञ्चस्ववस्थितः ॥ ६९ ॥
यं ज्ञानेनाऽधिगच्छन्ति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ।
महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम् ॥ ७० ॥

कर्ता, हेतु और क्रियाका विलास होता है, उसी ज्ञप्त्यात्मारूप परमात्माको नमस्कार है। व्यक्त प्रकृतिमें अवस्थित जिस अव्यक्त सत्ताको महर्षिगण पहिचानते हैं और जो प्रत्येक क्षेत्रमें क्षेत्रज्ञ रूपसे विराजमान है, उसी क्षेत्रात्मारूप परमात्माको नमस्कार है। धर्म अधर्मसे अतीत होकर जन्मभयहीन शान्त सन्न्यासीगण जिस परम पुरुषको प्राप्त करते हैं उसी मोक्षात्मारूप परमात्माको नमस्कार है। जिससे उत्पत्ति और प्रलयकी सब क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं और जिसमें पुनः विलीन होजाती हैं, उस हेत्वात्मारूप परमात्माको नमस्कार है। जिसके शरीरकी तुलना नहीं है, जिसके ज्ञानरूप चक्षु सर्वत्र व्याप्त हैं और जिसका परम सत्ताका परिमाण अपार है, उस दिव्यात्मारूप परमात्माको नमस्कार है। जो काल-से परे, यज्ञसे परे और परसे भी परतर है, विश्वके अनादि आदि-स्वरूप उस विश्वात्मारूप परमात्माको नमस्कार है। पञ्चकोशमय शरीरमें अवस्थान करके आत्मज्ञान ही उसका ज्ञान है ऐसा जान

यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः ।
स्फुरन्ति शीकरा यस्मादानन्दस्याऽम्बरेऽवनौ ॥ ७१ ॥
सर्व्वेषां जीवनं तस्मै ब्रह्मानन्दात्मने नमः ।
यस्मिन् सर्व्वं यतः सर्व्वं यः सर्व्वं सर्व्वतश्च यः ॥ ७२ ॥
यश्च सर्व्वमयो देवस्तस्मै सर्व्वात्मने नमः ।
शृणुध्वं मुनयः सर्व्वे सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ७३ ॥
अस्याः सन्न्यासगीतायाः प्रकाशाज्जगतीतलम् ।
धन्यत्वमगमत्तद्वन्नरजातिः कृतार्थताम् ॥ ७४ ॥
इयं तूपनिषद् प्रोक्ता न देया यस्य कस्यचित् ।
देया तु गुरुभक्ताय सदाचारान्विताय च ॥ ७५ ॥
आस्तिकाय महाभागाः ! सत्यशीलयुतायच ।
अध्यापनंचाध्ययनं यत्राऽस्या जायते सदा ॥ ७६ ॥
तत्र वाग्देवताज्ञानजननी ह्युपतिष्ठते ।
अध्यापयति यश्चैनां तस्याऽनेक गुणैधते ॥ ७७ ॥

कर ज्ञानकी सहायतासे ज्ञानीगण जिसे प्राप्त करते हैं, उस ज्ञाना-त्मारूप परमात्माको नमस्कार है। घोर अविद्यान्धकारके परपारमें विराजमान महान् तेजस्वरूप जिस परम पुरुषको जानकर ज्ञानीगण मृत्युको अतिक्रम करते हैं, उसी ज्ञेयात्मा स्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जिससे आनन्दके कण आकाश और पृथ्वीमें विस्फारित होते हैं, सकल भूतोंके प्राण उसी ब्रह्मानन्दात्मारूप परमात्माको नमस्कार है। जिसमें सब है, जिससे सब है, जो सब है, जो सब प्रकारसे है और सर्वमय देव है, उस सर्वात्मा रूप परमात्माको नमस्कार है। समस्त ऋषियो ! मैं सत्य कहता हूं, सुनिये ॥६४–७३॥ इस सन्यासगीताके प्रकाशसे जगतीतल धन्य हुआ और मनुष्यजाति कृतार्थ हुई है। यह उपनिषत्स्वरूप है। हरएकको नहीं देनी चाहिये। हे महाभाग ! केवल सदाचारसम्पन्न, गुरुभक्त, आस्तिक और सत्यशील पुरुषको देनी चाहिये। इसका जहाँ सर्वदा अध्ययन और अध्यापन होता रहता है, वहां ज्ञानजननी वाग्देवता वास करती है।

विद्या प्रारब्धकर्मभ्यो महामहिमशालिनः।
अस्यास्तु पुस्तकं यैश्च गृहस्थैर्दीयते मुदा ॥ ७८ ॥
ऐश्वर्यहीनं न भवेत्तद् गृहं वै कदाचन।
पाठः प्रवर्त्तते यस्य गृहस्थस्य गृहे सदा ॥ ७९ ॥
पुस्तकस्याऽस्य तद्गेहं धनधान्ययुतं भवेत्।
विदुषी जायतेऽवश्यं तदीया सन्ततिः सदा ॥ ८० ॥
वानप्रस्थगणश्चास्याः—पाठेन लभते ध्रुवम्।
पराकाष्ठां तपस्यायाः स्वस्या ज्ञानपरायणः ॥ ८१ ॥
सन्न्यासिनां तु गीतेयं सर्वसिद्धिकरी मता।
यदि सन्न्यासिनो ह्यस्याः पाठं कुर्य्युर्निरन्तरम् ॥ ८२ ॥
तापत्रयविनिर्मुक्ता लभन्ते मुक्तिमुत्तमाम्।
तथैव परभक्तेस्ते लाभे वै परमात्मनः ॥ ८३ ॥
आत्मज्ञानस्य प्राप्तौ च भवेयुरधिकारिणः।
ऋषिश्रेष्ठाः! अहं मन्त्रमोंतत्सदिति संपठन् ॥ ८४ ॥
समाप्तिं प्रापयामीमं ब्रह्मयज्ञं महत्तमम्।
यज्ञे ब्रह्मणि च ज्ञेयो न भेदोऽणुरपि कश्चित् ॥ ८५ ॥

जो इसे पढ़ाता है, उस महान् महिमाशाली पुरुषकी विद्या प्रारब्ध-कर्मकी अपेक्षा अनेक गुण अधिक बढ़ती है ॥ ७४-७७ ॥ इस गीताकी पुस्तक जिन गृहस्थों द्वारा प्रदान की जायगी, उनका गृह कभी ऐश्वर्यहीन नहीं होगा। जिस गृहस्थके घर सदा इस पुस्तक-का पाठ पढ़ाया जायगा, उसका घर धन-धान्य-युक्त रहेगा और उसकी सन्तति अवश्य ही विद्वान् होगी ॥ ७८-८० ॥ ज्ञानपरायण वानप्रस्थगण इसके पाठसे अपनी तपस्याको पराकाष्ठाको प्राप्त करेंगे ॥ ८१ ॥ सन्न्यासियोंके लिये यह गीता सर्वसिद्धिकरी कही गई है। यदि सन्न्यासिगण इसका निरन्तर पाठ करें, तो तापत्रयसे मुक्त होकर वे उत्तम मुक्ति लाभ कर सकेंगे। इसी प्रकार पराभक्ति, परमात्मा और आत्मज्ञानकी प्राप्तिके वे अधिकारी बनेंगे। हे ऋषिश्रेष्ठो! अब मैं ॐ तत्सत् इस मन्त्रको कहकर इस ब्रह्मयज्ञको समाप्त करता हूं। यज्ञ और ब्रह्ममें अणुमात्र भी

अनन्ता ईरिता यज्ञा ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथैव च ॥ ८६ ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च कर्मयज्ञा अपि ध्रुवम् ।
ब्रह्मप्राप्तिनिदानत्वात् सर्व्वे ब्रह्ममया इमे ॥ ८७ ॥
एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्म्मजान् विद्धि तान्सर्व्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ८८ ॥
ब्रह्माऽर्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माऽग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म्मसमाधिना ॥ ८९ ॥

इति श्रीसन्न्यासगीतायां आत्मस्वरूपनिरूपणं
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

भेद नहीं जानना चाहिये ॥ ८२-८५ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने अनन्त यज्ञ कहे हैं। यथा द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञान-यज्ञ, कर्मयज्ञ इत्यादि। ये सभी ब्रह्मप्राप्तिके कारणस्वरूप होनेसे ब्रह्ममय हैं ॥ ८६-८७ ॥ इस प्रकारके बहुतसे यज्ञ वेदोंमें कथित हैं। उन सबको कर्मसे उत्पन्न हुए समझो। यह जानकर मुक्त हो जाओगे। ब्रह्ममें अर्पण है, ब्रह्म ही हवि है, ब्रह्मरूपी अग्निमें ब्रह्मने ही हवन किया है और ब्रह्मकर्मकी समाधिसे ब्रह्म द्वारा ब्रह्म ही प्राप्तव्य है * ॥ ८८-८९ ॥

इस प्रकार श्रीसन्न्यासगीताका आत्मस्वरूप निरूपण नामक
द्वादशाध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* निवृत्ति धर्मकी पूर्णताको प्राप्त करके वास्तवमें निष्क्रिय होकर ब्रह्म-स्वरूपको प्राप्त करना ही सन्न्यास है। सन्न्यास और भगवत्सायुज्य एक ही विषय है। यथार्थ सन्न्यासी मूर्तिमान् ब्रह्म हैं, ऐसे धर्मकी प्रकाशक श्रीसन्न्यासगीता भी ब्रह्मस्वरूप है, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण ऐसे वचनके द्वारा इस गीताकी परिसमाप्ति की गई है, वास्तवमें जब जीवन्मुक्त महापुरुष वासनाक्षय और स्वरूपकी उपलब्धि द्वारा ब्रह्मरूप हो जाता है उस समय उसके लिये कारण ब्रह्मरूपी स्वस्वरूप और कार्य ब्रह्मरूपी यज्ञकी सब सामग्रियां दोनों एक अद्वैत भावमें ब्रह्मरूप ही होंगी इसमें सन्देह ही क्या है?

श्रीभारतधर्म महामण्डलके सभ्यगण और मुखपत्र ।

श्रीभारतधर्म महामण्डल प्रधान कार्यालय काशीसे एक हिन्दी और अंग्रेजी भाषाका सम्मिलित मासिकपत्र एवं प्रान्तीय कार्यालयोंसे अन्यान्य भाषाओंके कई मासिक पत्र प्रकाशित होते हैं।

श्रीमहामण्डलके पाँच श्रेणीके सभ्य होते हैं। यथाः—स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्माचार्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े जमींदार सेठ साहूकार आदि सामाजिक नेता उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तोंके अध्यापक ब्राह्मणोंमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डल द्वारा चुने जाकर धर्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पाँच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धीय सहायक सभ्य, धर्मकार्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल, प्रान्तीय मण्डल और शाखा सभाओंको धन दान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्वान ब्राह्मण सहायक सभ्य और साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पाँचवी श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य कहाते हैं जो २॥) वार्षिक देनेसे हिन्दू स्त्री पुरुष हो सकते हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलका प्रान्तीय मण्डल, शाखा सभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी-अंग्रेजी मासिक पत्र विना मूल्य दिया जाता है। इसके अतिरिक्त समाजहितकारी कोषके द्वारा उनके उत्तराधिकारियोंको विशेष लाभ मिलता है। पत्र व्यवहार इस पतेपर करें—

प्रधानाध्यक्ष,

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल, जगत्गञ्ज, काशी।

सनातन धर्मकी पुस्तकें ।

—○∘❀∘○—

धर्मकल्पद्रुम ।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित ।

यह हिन्दूधमका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है। हिन्दू जातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी जरूरत है, उनमेंसे सबसे बड़ी भारी जरूरत एक ऐसे धर्मग्रन्थकी थी कि, जिसके अध्ययन अध्यापनके द्वारा सनातनधर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अंग उपांगोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथ हीसाथ वेदों और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप-जिज्ञासुको भलीभांति विदित हो सके। इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्म-महामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी महाराजने इस ग्रन्थका प्रणयन किया है। इस ग्रंथसे आजकलके अशास्त्रीय और विज्ञानरहित धर्मग्रंथों और धर्मप्रचारके द्वारा जो हानि हो रही है, वह सब दूर होकर यथार्थरूपसे सनातन वैदिक धर्मका प्रचार होगा। इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि, हिन्दूशास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आजकलकी पदार्थ विद्या (Science) के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं, जिससे आजकलके नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें। इसके छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं प्रथम खण्डका मूल्य २), द्वितीयका १॥), तृतीयका २), चतुर्थका २), पंचमका २), और षष्ठका १॥) है। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागजपर भी छापे गये हैं और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। सातवां खण्ड यंत्रस्थ है।

प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत ।

श्रीस्वामी दयानन्द सम्पादित ।

इस ग्रंथमें आर्य्यजातिका आदिका वासस्थान, उन्नतिका आदर्श निरूपण, शिक्षादर्श, आर्यजीवन, वर्णधर्म आश्रमधर्मआदि विषय वैज्ञानिक युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ वर्णित किये गये हैं। यह ग्रन्थ धर्मशिक्षाके अर्थ बी. ए. क्लासका पाठ्य है । मूल्य २)

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत ।

श्रीस्वामी दयानन्द सम्पादित ।

भारतका प्राचीन गौरव और आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। इसका द्वितीय संस्करण परिवर्द्धित और सुंदर होकर छप चुका है। यह ग्रन्थ भी बी० ए० क्लासका पाठ्य है। मूल्य १)

साधनचन्द्रिका ।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित ।

इसमें मंत्रयोग, हठयोग, लययोग, और राजयोग इन चारों योगोंका संक्षेपमें अति सुंदर वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ प्रथम वार्षिक एफ. ए. क्लासका पाठ्य है। मूल्य १॥)

शास्त्रचन्द्रिका ।

इसमें वेद, उपनिषद्, पुराण, दर्शन, स्मृति आदि सब शास्त्रोंका सारांश दिया गया है। धर्मशिक्षा लक्ष्यको सामने रखकर यह ग्रंथ भी प्रणीत हुआ है। इसके द्वारा स्कूल, कालेज, पाठशालाओंके कार्य्यकर्त्तागण तथा बालकोंके मातापितागण बालकोंको धर्मशिक्षा देकर लाभवान् होंगे। मूल्य १॥)

धर्मचन्द्रिका ।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित ।

एन्ट्रेंस क्लासके बालकोंके पाठनोपयोगी उत्तम धर्मपुस्तक है। इसमें सनातनधर्मका उदार सार्वभौम स्वरूपवर्णन, यज्ञ, दान, तप आदि धर्माङ्गोंका विस्तृत वर्णन, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, नारीधर्म, आर्यधर्म, राजधर्म तथा प्रजाधर्मके विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है। कर्मविज्ञान, सन्ध्या, पञ्चमहायज्ञ आदि नित्यकर्मोंका वर्णन, षोडश संस्कारोंके पृथक् पृथक् वर्णन और संस्का-

रशुद्धि तथा क्रियाशुद्धि द्वारा मोक्षका यथार्थ मार्ग निर्देश किया गया है। मूल्य १)

आर्य गौरव।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित।

आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। यह ग्रंथ स्कूलकी ६वीं तथा १०वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ॥)

आचारचन्द्रिका।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित।

यह भी स्कूलपाठ्य सदाचार सम्बन्धीय धर्मपुस्तक है। इसमें प्रातःकालसे लेकर रात्रिमें निद्राके पहले तक क्या सदाचार किस लिये प्रत्येक हिंदु संतानको अवश्य ही पालने चाहिये, इसका रहस्य उत्तम रीतिसे बताया गया है और आधुनिक समयके विचारसे प्रत्येक आचारपालनका वैज्ञानिक कारण भी दिखाया गया है। यह स्कूलकी ८ वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ॥)

नीतिचन्द्रिका।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित।

मानवीय जीवनका उन्नत होना नीतिशिक्षापर ही अवलम्बित होता है। कोमलमति बालकोंके हृदयोंपर नीतितत्त्वअंचित करनेके उद्देश्यसे यह पुस्तिका लिखी गई है। इसमें नीतिकी सब बातें ऐसी सरलतासे समझाई गई हैं कि, इस एकके ही पाठसे नीतिशास्त्रका ज्ञान हो सकता है। यह स्कूल की ७ वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ॥)

चरित्रचन्द्रिका।

सम्पादक पं० गोविन्दशास्त्री दुगवेकर।

इस ग्रन्थमें पौराणिक ऐतिहासिक और आधुनिक महापुरुषोंके सुन्दर मनोहर विचित्र चरित्र वर्णित हैं। यह ग्रन्थ स्कूलकी ६ ठी कक्षाका पाठ्य है। प्रथम भागका मूल्य १) और दूसरे भागका १।)

धर्मप्रश्नोत्तरी।

श्रीस्वामी दयानन्द विरचित।

सनातनधर्मके प्रायः सब सिद्धान्त अतिसंक्षिप्तरूपसे इस

पुस्तिकामें लिखे गये हैं। प्रश्नोत्तरीकी प्रणाली ऐसी सुन्दर रक्खी गई है कि, छोटे बच्चे भी धर्मतत्त्वोंको भलीभांति हृदयङ्गम कर सकेंगे। भाषा भी अतिसरल है। यह ग्रन्थ स्कूलकी ४ थी कक्षाका पाठ्य है। कागज़ और छपाई बढ़िया होनेपर भी मूल्य केवल ।) मात्र है।

परलोक रहस्य।

श्रीमान् स्वामी दयानन्द विरचित।

मनुष्य मरकर कहां जाता है, उसकी क्या गति होती है, इस विषयपर वैज्ञानिक युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ विस्तृत-रूपसे वर्णन है। मूल्य ।)

चतुर्दशलोक रहस्य।

श्रीमान् स्वामी दयानन्द विरचित।

स्वर्ग और नरक कहाँ और क्या वस्तु है, उनके साथ हमारे इस मृत्युलोकका क्या सम्बन्ध है इत्यादि विषय शास्त्र और युक्तिके साथ वर्णित किये गये हैं। मूल्य ।)

सती-चरित्र-चन्द्रिका।

श्रीमान् पं० गोविन्दशास्त्री दुगवेकर सम्पादित।

इस पुस्तकमें सीता, सावित्री, गार्गी, मैत्रेयी आदि ४४ सती स्त्रियोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं। मूल्य २)

नित्य कर्म चन्द्रिका।

इस ग्रन्थमें प्रातःकालसे लेकर रात्रिपर्यन्त हिन्दुमात्रके अनुष्ठान करने योग्य नित्य कर्म वैदिक तांत्रिक मन्त्रोंके साथ भलीभांति वर्णित किये गये हैं। मूल्य ।)

धर्मसोपान।

यह धर्मशिक्षा विषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्मका साधारण ज्ञान भलीभांति हो जाता है। यह स्कूलकी ५ वीं कक्षाका पाठ्य है। मूल्य ।) आना।

धर्म-कर्म-दीपिका।

इस पुस्तकमें कर्मका स्वरूप, कर्मके भेद, संस्कारके लक्षण और भेद, वैदिक संस्कारोंका रहस्य, त्रिविध कर्मका वैज्ञानिक

स्वरूप, कर्मसम्बन्धसे मुक्ति, कर्मके साथ धर्मका मिश्र सम्बन्ध, धर्मरूप कल्पद्रुमका विस्तृत वर्णन, वर्णाश्रम धर्मकी महिमा और विज्ञान, उपासनारहस्य, उपासनाकी मूलभित्तिरूप पीठरहस्य, धर्म कर्म और यज्ञ शब्दोंका वैज्ञानिकरहस्य और सदाचारका विज्ञान और महत्त्व प्रतिपादन किया गया है, यह ग्रन्थ मूल और सुस्पष्ट हिन्दी-अनुवाद-सहित शास्त्रीय प्रमाण देकर छापा गया है, यह ग्रंथरत्न प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीके लिये उपादेय है। मूल्य ॥)

सदाचारसोपान।

यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंकी धर्मशिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। यह स्कूलकी तीसरी कक्षाका पाठ्य है। मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान।

कोमलमति कन्याओंको धर्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। मूल्य -)

ब्रह्मचर्यसोपान।

ब्रह्मचर्य्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रंथ बहुत उपयोगी है। सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रंथकी पढ़ाई होनी चाहिये। मूल्य ।) आना।

राजशिक्षासोपान।

राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धार्मिक शिक्षा देनेके लिये यह ग्रंथ बनाया गया है, परंतु सर्वसाधारणकी धर्म्मशिक्षाके लिये भी यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है, इसमें सनातनधर्मके अंग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं मूल्य ≡) तीन आना।

साधनसोपान।

यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुत ही उपयोगी है। मूल्य ।) चार आना।

शास्त्रसोपान।

सनातनधर्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रंथमें वर्णित है। मूल्य ।) चार आना।

धर्मप्रचारसोपान ।

यह ग्रंथ धर्मोपदेश देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितों के लिये बहुत ही हितकारी है। मूल्य ≡) आना।

उपदेशपारिजात ।

यह संस्कृत गद्यात्मक अपूर्व ग्रंथ है। सनातनधर्म क्या है, धर्मोपदेश किसको कहते हैं, सनातनधर्मके सब शास्त्रोंमें क्या २ विषय हैं, धर्मवक्ता होनेके लिये किन २ योग्यताओंके होनेकी आवश्यकता है, इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थमें हैं। संस्कृत विद्वान्मात्रको पढ़ना उचित है और धर्मवक्ता, धर्मोपदेशक, पौराणिक पण्डित आदिके लिये तो यह ग्रंथ सब समय साथ रखने योग्य है। मूल्य ॥) आना।

कल्किपुराण ।

कल्किपुराणका नाम किसने नहीं सुना है? इस कलियुगमें कल्कि महाराज अवतार धारणकर दुष्टोंका संहार करेंगे, उसका पूर्ण वृत्तान्त है। वर्तमान समयके लिये यह बहुत हितकारी ग्रंथ है। विशुद्ध हिंदी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। धर्मजिज्ञासुमात्रको इस ग्रंथको पढ़ना उचित है। मूल्य १॥)

योगदर्शन ।

हिन्दीभाष्यसहित। इस प्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। सब दर्शनोंमें योगदर्शन सर्ववादि सम्मत दर्शन है। प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बना दिया गया है कि, जिससे पाठकोंको मनोनिवेशपूर्वक पढ़नेपर कोई असम्बद्धता नहीं मालूम होगी। मूल्य २) दो रुपया।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलरहस्य ।

इस ग्रंथमें सात अध्याय हैं। यथा आर्य्यजातिकी दशाका परिवर्त्तन, चिंताका कारण, व्याधिनिर्णय, औषधिप्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञसाधन। मूल्य १।)

निगमागमचन्द्रिका ।

प्रथम, द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ भाग धर्मानुरागी सज्जनोंको

मिल सकते हैं। इन भागोंमें सनातनधर्मके अनेक गूढ़ रहस्यसम्बंधी ऐसे ऐसे प्रबंध प्रकाशित हुए हैं कि, आजतक वैसे धर्मसम्बंधी प्रबंध और कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। प्रत्येकका मूल्य १)

मन्त्रयोगसंहिता।

भाषानुवादसहित। योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रंथ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। मू० १) एक रु०।

हठयोग संहिता।

भाषानुवादसहित। योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें हठयोगके ७ अंग और क्रमशः उनके लक्षण साधनप्रणाली आदि सब अच्छी तरहसे वर्णन किये गये हैं। मूल्य ॥)

तत्त्वबोध।

भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणीसहित। यह मूल वेदान्त ग्रन्थ श्रीशंकराचार्य्यकृत है। मूल्य =)

स्तोत्र कुसुमाञ्जलि।

इसमें पंचदेवता, अवतार और ब्रह्मकी स्तुतियोंके साथ साथ आजकलकी आवश्यकतानुसार धर्मस्तुति, गंगादि पवित्र तीर्थोंकी स्तुति, वेदान्तप्रतिपादक स्तुतियां और काशीके प्रधान देवता श्रीविश्वनाथादिकी स्तुतियां हैं। मू० ।) आना।

दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग।

यह ग्रन्थ आजतक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसके चार पाद हैं, यथाः—प्रथम रसपाद, इस पादमें भक्तिका विस्तारित विज्ञान वर्णित है। दूसरा सृष्टिपाद, तीसरा स्थितिपाद और चौथा लयपाद, इन तीनों पादोंमें दैवीमाया, देवताओंके भेद, उपासनाका विस्तारित वर्णन और भक्ति तथा उपासनासे मुक्तिकी प्राप्तिका सब कुछ विज्ञान वर्णित है। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड।

श्रीगीताजीका अपूर्व हिन्दी-भाष्य यह प्रकाशित हो रहा है, जिसका प्रथम खण्ड, जिसमें प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्यायका कुछ हिस्सा है, प्रकाशित हुआ है। मूल्य १) एक रु०।

सप्त गीताएं ।

पञ्चोपासनाके अनुसार पांच प्रकारके उपासकोंके लिये पांच गीताएं—श्रीविष्णुगीता, श्रीसूर्य्यगीता, श्रीशक्तिगीता, श्रीधीशगीता और श्रीशम्भुगीता एवं संन्यासियोंके लिये संन्यासगीता और साधकोंके लिये गुरुगीता भाषानुवादसहित छप चुकी हैं। विष्णुगीताका मूल्य १) सूर्य्यगीताका मूल्य ॥) शक्तिगीताका मूल्य १) धीशगीताका मूल्य ।॥) शंभुगीताका मूल्य १) संन्यासगीताका मूल्य ॥) और गुरुगीताका मूल्य ।) है। इनमेंसे पञ्चोपासनाकी पांच गीताओंमें एक एक तीनरंगा विष्णुदेव, सूर्य्यदेव, भगवती और गणपतिदेव तथा शिवजीका चित्र भी दिया गया है। शम्भुगीतामें वर्णाश्रमबंध नामक चित्र भी देखने योग्य है।

"THE WORLD'S ETERNAL RELIGION"

A Unique work on Hinduism in one volume, containing 24 Chapters with tricolour illustrations, glossary, etc. No work has hitherto appeared in English that gives in a suggestive manner the real exposition of the Hindu religion in all its phases. The book has perfectly supplied this long-felt want. Names of the chapters are as follows:—1, Foreword. 2. Universal Religion, 3. Classification of Religion. 4. Law of Karma, 5 Worship in all its phases, 6. Practice of Yoga through Mantras, 7. Practice of Yoga through physical exercise, 8. Practice of Yoga through finer force of Nature. 9. Yoga through power of reasoning. 10 the Mystic Circle, 11. Love and Devotion. 12. Planes of Knowledge, 13. Time, space, creation. 14. the Occult world, 15. Evolution and Reincarnation. 16. Hindu philosophy. 17. The System of Castes and Stages of Life, 18. Woman's Dharma. 12. Image Worship. 20. The great Sacrifices. 21. Hindu Scriptures, 22. Liberation. 23. Education, 24. Reconciliation of all Religions. The followers of all religions in the world will profit by the light the work is intended to give. Price cloth bound, superior edition Rs. 5, Ordinary edition Rs. 3, postage extra.

श्री आर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्

कार्यसम्पादिकाः—हर हाईनेस धर्म-सावित्री महारानी शिव कुमारी देवी, नरसिंह गढ़ ।

भारतवर्षकी प्रतिष्ठित रानी-महारानियों तथा विदुषी भद्र महिलाओंके द्वारा, श्रीभारतधर्म महामण्डलकी निरीक्षकतामें आर्य-माताओंकी उन्नतिकी सदिच्छासे यह महापरिषद् श्रीकाशीपुरीमें स्थापित की गई है । इसके निम्न लिखित उद्देश्य हैं—

(क) आर्य महिलाओंकी उन्नतिके लिये नियमित कार्यव्यवस्थाका स्थापन (ख) श्रुति-स्मृति प्रतिपादित पवित्र नारी-धर्मका प्रचार (ग) स्वधर्मानुकूल स्त्री-शिक्षाका प्रचार (घ) पारस्परिक प्रेम स्थापित कर हिन्दु सतियोंमें एकताकी वृद्धि (ङ) सामाजिक कुरीतियोंका संशोधन और (च) हिन्दीकी उन्नति करना ।

परिषद्के विशेष नियम—१-सब प्रकारकी सभ्याओंको इसकी मुख पत्रिका "आर्य महिला" मुफ्त मिलेगी । २-स्त्रियाँ ही सभ्याएँ हो सकेंगी । ३-यदि पुरुष भी परिषद्को किसी तरहकी सहायता करें, तो वे पृष्ठपोषक समझे जायंगे और उनको भी पत्रिका मुफ्त मिला करेगी । ४-परिषद्की चार प्रकारकी सभ्याओंके ये नियम हैं:—

(क) कमसे कम १५०) एक बार देने पर "आजीवनसभ्या" (ख) १०००) एक ही बार या प्रति मास १०) देने पर "संरक्षक सभ्या" (ग) १०) वार्षिक देने पर "सहायक सभ्या" और (घ) ५) वार्षिक देने पर या असमर्थ होनेसे ३) ही वार्षिक देने पर "सहयोगी सभ्या" आर्य महिला मात्र बन सकती हैं ।

कार्याध्यक्षा,

आर्यमहिला-हितकारिणी

महापरिषत्कार्यालय,

श्रीमहामण्डलभवन, जगत्गञ्ज, बनारस ।

अनुवादककृत ग्रन्थोंकी

सूची।

गौतमीयन्यायदर्शन वात्स्यायनभाष्य और
भाषाटीका मूल्य ३॥)

वेद उपवेद और वेद के छः अङ्गों के रक्षा के लिये हमारे ऋषियों ने छः उपाङ्ग स्वरूप छः दर्शनों को रचा है । इन दर्शनों में (अपने २ तरी के पर) वेदोक्त सत्य सनातन धर्म को युक्ति और प्रमाणों से बडे २ नास्तिकों के आक्षेपों को उत्तर देकर वेदोक्त धर्म की रक्षा कियी गयी है । इन छः दर्शनों में से सब से अधिक महर्षी गौतमजी ने चार्वाक, बौध, आर्हत, जैन आदि प्रबल नास्तिकों के आक्षेपों का युक्तियुक्त अकाट्य उत्तर दिया है। इस दर्शन में एक बडी विलक्षणता यह है कि इस को भलीभांति पढ समझ लेने पर शास्त्रार्थ वा बहस की रीति, और युक्तियुक्त बात लिखने वा बोलने की रीति मालूम होजाती है और चाहे कैसाभी प्रबल नास्तिक क्यों न हो इस शास्त्र के जानने वाले के सामने उस का मत नहीं ठहर सकता। इस न्याय विद्या को 'तर्क' मत्तिक

या लाजिक कहते हैं। इस के ५३० सूत्रों पर वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य और तदनुकूल सरलभाषानुवाद किया गया हैं। इस की भूमिका में अन्यान्य दर्शनों के साथ समन्वय दिखलाया गया है। यह पुस्तक अन्यान्य १३ शुद्ध प्रतियों से मिलाकर, छापी गयी है। यह पुस्तक देखने योग्य है।

सामवेदीय गोभिल गृह्यसूत्र संस्कृतटीका और भाषानुवाद मूल्य २॥)

वेद के शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, और ज्योतिष इन छः अङ्गों में से 'कल्प' नामक अङ्ग वेद के हस्त स्वरूप है अर्थात् वेद का जो प्रधान उद्देश्य श्रेयसकर कर्म काण्ड की प्रवृत्ति करानेमें है। उसी का प्रतिपादक श्रौत और गृह्य सूत्र है। जिन में से यह गृह्य सूत्र पुस्तक है। चारों वेदों की अलग २ शाखा होने से, प्रत्येक शाखा के अलग २ गृह्य सूत्र हैं। उसी प्रकार यह सामवेद के कौथुमी शाखा का गोभिलमुनि प्रणीत "गोभिल गृह्यसूत्र" है। इस पुस्तक में इस शाखाके द्विजों के कर्त्तव्य गर्भाधानादि संस्कार तथा स्मार्त्त कर्मों का विधान है। इस ग्रन्थ में पहिले सूत्र, फिर उस की संस्कृत में टीका, तब उस का भाषा में अनुवाद और मौके २ पर टिप्पणी और गर्भाधानादि संस्कारों में

पठनीय पूरे २ मन्त्र दिये गये हैं। और इस की भूमिका में वेद, शाखा, सूत्र, संस्कार, आदि अनेक उपयोगी विषयों पर विचार लिखा गया है। पुस्तक देखने योग्य है।

आर्यभटीय, या लघुआर्य सिद्धान्त मूल्य १)

महामति पं० आर्य भट्ट पटना निवासी ने वेद के अनुकूल इस ग्रन्थ को आर्या छन्दों में सिद्धान्त के अपूर्व ज्योतिष का ग्रन्थ शाके ४२१ में रचा था। जिस को आज १४०९ वर्षें हुईं। इस पर पं० परमेश्वराचार्य्य की संस्कृत टीका है। और भाषानुवाद किया गया है। इस की भूमिका में अपूर्व २ बातों पर विचार कियागया हैं। यह पुस्तक हिन्दुस्तान में आज तक नहीं छपी इस की केवल आवृत्ति जर्मन देश के लिपजिग स्थान में डाकटर कार्प ने छपवायी थी, जो ९) रु. को मिलती है, इस में पृथिवी का भ्रमण स्पष्ट लिखा है। इस की भूमिका में समुद्रमथन, राशलीला, और अन्यान्य उपयुक्त विषयों पर विचार लिखा गया है। ग्रन्थ देखने योग्य है।

सूर्य सिद्धान्त भाषाटीका और वृहद्भूमिका मूल्य १॥)

यह ग्रन्थ सिद्धान्त ज्योतिष के उपलब्ध ग्रन्थों में सब से प्राचीन सर्व मान्य है। भारत वर्ष में ज्यो-

तिष शास्त्र के अनुसार पञ्चाङ्ग बनने और सिद्धान्त सम्बन्धी विचार होने पर इसी ग्रन्थ के अनुसार फैसला किया हुआ मानाजाता है । आज तक इस अमूल्य ग्रन्थ पर ऐसे अपूर्व विचार के साथ भाषानुवाद नहीं किया गया था । इस की भूमिका १५० पृष्ठों में और शेष भाग में ग्रन्थ है ।। इस की भूमिका में प्रायः ज्योतिष सम्बन्धी सब विषयों पर वेद, ब्राह्मण, पुराण आदि मान्य ग्रन्थों तथा अङ्गरेजी आदि के पुस्तकों से सार लेकर उनपर वेदानुकूल विचार किया गया है । इस की थोडी प्रति रह गयी है ।

उपर लिखी ४ पुस्तकों की प्रशंसा भारत मित्र, वङ्गवासी वैङ्कटेश्वर हितवार्ता, सरस्वती, भारतजीवन, आर्य्यमित्र बहुत से प्रसिद्ध समाचार पत्रों ने मुक्त कण्ठ से कियी है ।

पत्रादिप्रेषणस्थानम् — हरिदासगुप्तः, चौखम्बा, बनारस, सिटी,

अथ जीवन्मुक्तिविवेकान्तर्गत (प्रमाणरूपेणधृत)

श्रुतिस्मृतिग्रन्थानां

सूचीपत्रम् ।

ग्रन्थ नाम

श्रीमद्विद्यारण्यविरचितः

जीवन्मुक्तिविवेकः ।

तत्र प्रथमं जीवन्मुक्तिप्रमाणप्रकरणम् ।

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्यो ऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥ १ ॥

अर्थः—जिस का निःश्वासरूप वेद हैं, और जिस ने वेदोक्तज्ञानानुसार सारे जगत् को निर्माण किया, उस श्रीविद्यातीर्थ-सकल विद्याओं का पवित्र आश्रय-गुरु से अभिन्न श्रीमहेश्वर को मैं वन्दन करता हूँ ॥ १ ॥

वक्ष्ये विविदिषान्यासं विद्वन्न्यासं च भेदतः ।
हेतू विदेहमुक्तेश्च जीवन्मुक्तेश्च तौ क्रमात् ॥ २ ॥

अर्थः—विविदिषासन्न्यास और विद्वत्सन्न्यास को भिन्न २ कथन करूंगा । इन में से पहिला विविदिषासन्न्यास विदेहमुक्ति का और विद्वत्सन्न्यास जीवन्मुक्ति का हेतु है ॥ २ ॥

सन्न्यासहेतुर्वैराग्यं यदहर्विरजेत्तदा ।
प्रव्रजेदिति वेदोक्तेस्तद्भेदस्तु पुराणगः ॥ ३ ॥

अर्थः—जिस दिन वैराग्य उत्पन्न हो उसी दिन सन्न्यास ग्रहण करे ऐसा वेद का कथन है । अत एव सन्न्यास का हेतु वैराग्य है, इस सन्न्यास का भेद पुराणोंमें प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

विरक्तिर्द्विविधा प्रोक्ता तीव्रा तीव्रतरेति च ।
सत्यामेव तु तीव्रायां न्यसेद्योगी कुटीचके ॥ ४ ॥

अर्थः—वैराग्य दो प्रकारका है- एक तीव्र वैराग्य दूसरा तीव्रतर वैराग्य । इनमें से तीव्रवैराग्य होनेपर योगी *कुटीचक सन्न्यास धारण करे ॥ ४ ॥

शक्तो बहूदके तीव्रतरायां हंससंज्ञिते ।
मुमुक्षुः परमे हंसे साक्षाद्विज्ञानसाधने ॥ ५ ॥

अर्थः—जो तीव्रवैराग्यवान् योगी शरीरसामर्थ्यवाला हो तो वह बहूदक[1]सन्न्यास ग्रहण करे । और तीव्रतर वैराग्य होने पर, हंस नाम का सन्न्यास लेवे, परन्तु तीव्रतर वैराग्यवान् पुरुष यदि मुक्ति चाहनेवाला हो तो, वह साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान का साधनभूत परमहंससन्न्यास को स्वीकार करे ॥ ५ ॥

पुत्रदारगृहादीनां नाशे तात्कालिकी मतिः ।
धिक् संसार इतीदृक् स्याद्विरक्तेर्मन्दता हि सा ॥६॥

अर्थः—जिस समय स्त्री पुत्र गृह आदिकोंका नाश होता उस समय "इस संसार को धिक्कार है" इस प्रकार की बुद्धि उपजती है- उसको मन्दवैराग्य कहते हैं ॥ ६ ॥

अस्मिन् जन्मनि मा भूवन्पुत्रदारादयो मम ।
इति या सुस्थिरा बुद्धिः सा वैराग्यस्य तीव्रता ॥७॥

* जो सन्न्यासी यात्रा (सफर) आदिक में सामर्थ्य हीन होनेसे एकजगह तीर्थस्थानादिक में कुटी बान्ध कर रहता प्रति दिन १२००० हजार प्रणवका जप करता और यथा समय भिक्षामाङ्गकर अपने आश्रममें ब्रह्मध्यान करता वह कुटीचक है ।

[1] तीर्थाटन करने वाले—सन्न्यासीको बहूदक जानना ।

अर्थः—"इस जन्म में मुझे स्त्रीपुत्रादिक कोई भी पदार्थ न होवें" इस प्रकार की जो सुस्थिरबुद्धि उस का नाम तीव्रवैराग्य है ॥ ७ ॥

पुनरावृत्तिसहितो लोको मे माऽस्तु कश्चन ।
इति तीव्रतरत्वं स्यान्मन्दे न्यासो न कोऽपि हि॥८॥

अर्थः—"इस जन्म और पुनर्जन्म में मुझे किसी भी लोक की इच्छा नहीं है" ऐसी वृत्ति की तीव्रतर वैराग्य में गणना होतीहै । मन्दवैराग्य में किसी सन्न्यासाश्रम का अधिकार नहीं ॥ ८ ॥

यात्राद्यशक्तिशक्तिभ्यां तीव्रे न्यासद्वयं भवेत् ।
कुटीचको बहूदश्चेत्युभावेतौ त्रिदण्डिनौ ॥ ९ ॥

अर्थः—यात्रा आदि के निमित्त पर्यटन करनेमें सामर्थ्य असामर्थ्य के कारण तीव्रवैराग्यवान् पुरुष यथाक्रम से कुटीचक और बहूदक नाम के दो सन्न्यासों को धारण करे । ये कुटीचक और बहूदक सन्न्यासी त्रिदण्डी होते हैं ॥ ९ ॥

द्वयं तीव्रतरे ब्रह्मलोकमोक्षाविभेदतः ।
तल्लोके तत्त्वविद्धंसो लोकेऽस्मिन्परमहंसकः ॥१०॥

अर्थः—तीव्रवैराग्यवान् योगी को यदि ब्रह्मलोक की इच्छा हो तो, वह हंस नामक सन्न्यास को ग्रहण करे । वह ब्रह्मलोक में आत्मसाक्षात्कार होने पर ब्रह्माके साथ मुक्ति पाता है । और यदि उक्त योगी को केवल मोक्ष ही की इच्छा हो तो वह परम हंस नामक आश्रम का सेवन करे । उस को वर्तमान शरीर में ही आत्मसाक्षात्कार होता है ॥ १० ॥

एतेषां तु समाचाराः प्रोक्ताः पाराशरस्मृतौ ।

व्याख्याने ऽस्माभिरत्रायं परहंसो विविच्यते ॥११॥

अर्थः—इन सब सन्न्यासियों के सदाचार का निरूपण पाराशरस्मृतिमें किया है और उस के व्याख्यान करने से हम उपराम करते हैं और इस ग्रन्थ में केवल परमहंस ही की विवेचना करते हैं ॥ ११ ॥

जिज्ञासुर्ज्ञानवांश्चेति परहंसो द्विधा मतः ।
प्राहुर्ज्ञानाय जिज्ञासोर्न्यासं वाजसनेयिनः ॥ १२ ॥

अर्थः—जिज्ञासु और ज्ञानवान् ये दोप्रकारके परमहंस है। जिज्ञासु (सन्न्यासी) ज्ञान प्राप्ति के लिये परमहंस आश्रम धारण करे ऐसा वाजसनेयी शाखा के अध्ययन करनेवालोंने (बृहदारण्यक उपनिषद् में) कहा है ॥ १२ ॥

प्रव्राजिनो लोकमेतमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति हि ।
एतस्यार्थस्तु गद्येन वक्ष्यते मन्दबुद्धये ॥ १३ ॥

अर्थः—"एतमेव प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति" इस श्रुति का अर्थ मन्दबुद्धिपुरुषोंके लिये हम गद्य (वाक्य) द्वारा कहेंगे ॥ १३ ॥

लोको हि द्विविधः, आत्मलोकोऽनात्मलोकश्चेति तत्राऽऽत्मलोकस्य त्रैविध्यं बृहदारण्यके तृतीयाध्याये श्रूयते—

अर्थः—आत्मलोक और अनात्मलोक ये दो प्रकारके लोक हैं। इनमें से अनात्मलोक का तीनप्रकार का होना बृहदारण्यक उपनिषद्के ३रे अध्याय में सुना जाता है।

"अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति, सोऽयं मनुष्यलोकः

पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः" इति ।
आत्मलोकश्च तत्रैव श्रूयते ।

अर्थः—मनुष्यलोक, पितृलोक, और देवलोक, ये तीन लोक हैं। इनमें से मनुष्य लोक का जय पुत्र द्वारा ही किया जा सकता, अन्यकर्म द्वारा नहीं । पितृलोक का कर्मद्वारा ही जय किया जा सकता, पुत्र या विद्याद्वारा नहीं । और देवलोक का विद्या (उपासना) द्वारा जय किया जा सकता पुत्र या कर्म द्वारा नहीं ।

आत्मलोक भी पूर्वोक्त उपनिषद् के ३रे अध्याय में ही वर्णित है—

"यो ह वा अस्माल्लोकात् स्वं लोकमदृष्ट्वा प्रैति स एनमविदितो न भुनक्ति" इति । "आत्मानमेव लोकमुपासीत स य आत्मानमेव लोकमुपास्ते न हास्य कर्म क्षीयते" इति च ॥ योमांसादिकपिण्डलक्षणात्स्वलोकं परमात्माख्यमहं ब्रह्मास्मीत्यविदित्वा म्रियते स स्वलोकः परमात्माऽविदितोऽविद्यया व्यवहितः सन्नेनमवेत्तारं प्रेतं मृतं न भुनक्ति शोकमोहादिदोषापनयनेन न पालयति । उपासकस्य ह निश्चितं कर्म न क्षीयते एकफलदानेनोपक्षीणं न भवति । कामितसर्वफलं मोक्षं च ददातीत्यर्थः । षष्ठाध्यायेऽपि ।

अर्थ—जो पुरुष अपने स्वरूपभूत स्वयंप्रकाश आत्मा को

साक्षात्कार किये विना इस मांस आदिक के पिण्डरूप शरीर को छोडता है उस का अज्ञात आत्मा, उस के शोकमोहभयादि से पालन नहीं करता, अतएव आत्मलोक की ही उपासना करनी चाहिये। जो आत्मरूप लोक की उपासना करता है उस के कर्म का नाश नहीं होता अर्थात् एक फल दान से कर्म का क्षय नहीं होता प्रत्युत सब ही इच्छित फलों को देता और मोक्ष भी देता है॥

बृहदारण्यक उपनिषद् के छठे अध्याय में भी कहा है--

"किमर्थं वयमध्येष्यामहे किमर्थं वयं यक्ष्यामहे किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं लोक" इति। "ये प्रजामीशिरे ते इमशानानि भेजिरे ये प्रजा नेशिरे तेऽमृतत्वं हि भेजिरे"।

अर्थः—किस लिये हम अध्ययन करेंगे? किस लिये हम यज्ञ करेंगे? प्रजाद्वारा हम क्या करेंगे? कि जिस को यह आत्मरूप फल की प्राप्ति हुई है। जो प्रजा का स्वामी हुआ वह मरण को प्राप्त हुआ (उस ने स्मशान का सेवन किया) और जो प्रजा का स्वामी न हुआ वह मोक्ष को प्राप्त हुआ॥

एवं सति-"एतमेव प्रवाजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ती"त्यत्राऽऽत्मलोको विवक्षित इति गम्यते। "स वा एष महानज आत्मा" इति प्रक्रान्तस्याऽऽत्मन एतच्छब्देन परामृष्टत्वात्। लोक्यतेऽनुभूयत इति लोकः। तथाचाऽऽत्मानुभवमिच्छन्तः प्रव्रजन्तीति श्रुतेस्तात्पर्यार्थः सम्पद्यते। स्मृतिश्च।

अर्थः—इस लिये "एतमेव" इत्यादि श्रुति में आत्मलोक विवक्षित है ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि "सवा एष०" इस श्रुति में पठित आत्मा का "एतमेव प्रव्रा०" इस श्रुति में 'एतद्' (इस) शब्दद्वारा ग्रहण किया है। "लोक्यते" इस व्युत्पत्तिद्वारा लोकपदका 'अनुभव गम्य' ऐसा अर्थ होता है। इसलिये "एतमेव प्र०" इस श्रुतिका तात्पर्य ऐसा निकलता है कि "आत्मानुभव की इच्छा करनेवाला पुरुष सन्न्यास ग्रहण करता है। स्मृति भी कहती है--

"ब्रह्मविज्ञानलाभाय परहंससमाह्वयः। शान्तिदान्त्यादिभिः सर्वैः साधनैः सहितो भवेत्" इति।

अर्थः—ब्रह्मसाक्षात्काररूपलाभ के लिये 'परमहंस' यह संज्ञा है। इस लिये परमहंससंन्यासी शमदमादि साधनों से युक्त होवे।

इह जन्मनि जन्मान्तरे वा सम्यगनुष्ठितैर्वेदानुवचनादिभिरुत्पन्नया विविदिषया सम्पादितत्त्वादयं विविदिषासन्न्यास इत्यभिधीयते। अयं च वेदनहेतुः सन्न्यासो द्विविधः, जन्मापादककाम्यकर्मादित्यागमात्रात्मकः प्रैषोच्चारणपूर्वकदण्डधारणाद्याश्रमरूपश्चेति।

अर्थः—इस जन्म या जन्मान्तर में यथाविधि (बाकायदे) आचरण के साथ वेदाध्ययनादि शुभ नित्य कर्म द्वारा उत्पन्न हुई विविदिषा से सम्पादन होनेसे इस का नाम विविदिषा

सन्न्यास है। यह विविदिषा सन्न्यास ज्ञान का हेतु है। यह सन्न्यास दो प्रकार का है। एक जन्मसम्पादक केवल काम्यकर्मादि का त्यागरूप और दूसरा प्रैषमन्त्र का उच्चारणपूर्वक दण्डधारणादिआश्रमचिह्न युक्त सन्न्यास है॥

"पुंजन्म लभते माता पत्नी च प्रैषमात्रतः।
ब्रह्मनिष्ठः सुशीलश्च ज्ञानं चैतत्प्रभावतः"॥
त्यागश्च तैत्तिरीयादौ श्रूयते—

अर्थः—केवल प्रैषमन्त्र के उच्चारण से भी उस उच्चारण करनेवाले की माता और पत्नी पुरुष योनि को प्राप्त होती, और स्वयं भी इस मन्त्र के प्रभाव से ब्रह्मनिष्ठ, सुशील, और ज्ञानवान् होता है। पुनर्जन्म का देनेवाला काम्यकर्मादि का त्यागरूप सन्न्यास का, तैत्तिरीयादि उपनिषद् में श्रवण होता है—

"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्त्वमानशुः" इति।

अर्थः—'किसी को कर्म द्वारा, प्रजा द्वारा, या धन द्वारा, मुक्ति नहीं हुई, किन्तु त्यागद्वारा कई एक को मुक्ति प्राप्त हुई है॥

अस्मिंश्चत्यागे स्त्रियोऽप्यधिक्रियन्ते।
भिक्षुकी त्यनेन स्त्रीणामपि प्राग्विवाहाद्वा वैधव्यादूर्ध्वं सन्न्यासेऽधिकारोऽस्तीति दर्शितम्। तेन भिक्षाचर्य्यं, मोक्षशास्त्रश्रवणं,

१ यहां से चतुर्थपादे यहां तक ग्रन्थ प्रक्षिप्तहै क्योंकि चतुर्धरटीका कार श्रीविद्यारण्यके पश्चात् हुये हैं सुतरां चतुर्धरी के वाक्यका ग्रहण यहां पर विद्यारण्य नहीं कर सकते।

एकान्त आत्मध्यानं च ताभिः कर्तव्यं, त्रिदण्डादिकं च धार्यम्, इति मोक्षधर्मे चतुर्धरीटीकायां सुलभाजनकसंवादः। शारीरकभाष्ये वाचक्नवीत्यादि श्रूयते। देवताधिकरणन्यायेन विधुरस्याधिकारप्रसङ्गेन तृतीयाध्याये चतुर्थपादे।
अत एव मैत्रेयीवाक्यमाम्नायते॥

अर्थः—इस काम्य कर्म के त्यागरूप सन्न्यास में स्त्रियों कोभी अधिकार प्राप्त है। कारण यह हैकि श्रुतिमे 'भिक्षुकी' इस पदके द्वारा विवाहके पूर्व या विधवा होने के बाद स्त्रियों कों भी सन्न्यास मे अधिकार है ऐसा श्रुतिद्वारा दिखलाया गयाहै। अत एव उसे भिक्षाटन मोक्षशास्त्र का श्रवण, और एकान्त स्थान में आत्मध्यान करना और त्रिदण्डादि सन्न्यासाश्रमके चिन्ह धारण करना चाहिये यह वार्ता मोक्षधर्मान्तर्गत सुलभाजनक के सम्वाद में चतुर्धरीटीकामे स्पष्ट है। और शारीरक भाष्य में (शा० अ० ३ पा ४० सू० ३६ से ३८ तक) वाचक्नवी आदि ब्रह्म वादिनी भिक्षुकी स्त्रियों का श्रवण देवताधिकरण में स्त्रीरहित पुरुष को विद्यामें अधिकारके प्रसङ्ग में है। इसलिये इस प्रमाण में मैत्रेयी ब्राह्मणका वाक्य वहां दृष्टान्तरूपसे दिया है।

"येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां
यदेव भगवन् वेत्थ तदेव मे ब्रूहि"। इति॥

अर्थः—जिस के द्वारा मुझे मुक्ति न होगी, उस धन को मैं (लेकर) क्या करूंगी? अत एव हे भगवन्! आप जानते

हो उसी को मुझे कहो ।

ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थानां केन चिन्निमित्ते-
न सन्न्यासाश्रमस्वीकारे प्रतिबद्धे सति
स्वाश्रमधर्मेष्वनुष्ठीयमानेष्वपि वेदनार्थो मा-
नसः कर्मादित्यागो न विरुध्यते । श्रुतिस्मृ-
तीतिहासपुराणेषु लोके च तादृशां तत्त्वविदां
बहूनामुपलम्भात् । यस्तु दण्डधारणादिरूपो
वेदनहेतुः परमहंसाश्रमः स पूर्वैराचार्य्यै
र्बहुधा प्रपञ्चित इत्यस्माभिरुपरम्यते ॥

॥ इति विविदिषासन्न्यासः ॥

अर्थः—ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, इन आश्रमियों को किसी निमित्त से सन्यासाश्रम स्वीकार करने में बलवान् रूकावट होतो, अपने २ आश्रमोचित धर्मोंको पालन करतेहुए भी मानस सन्न्यास का सेवन कर तत्त्वज्ञान प्राप्त करे। इस में कोई विरोध नहीं । इस अंश में वेद्, स्मृति, इतिहास, पुराण, और लोक मे ऐसे तत्त्वज्ञानियों के दृष्टान्त बहुत पाये जातेहैं । दण्डधारणादिचिन्हविशिष्ट ज्ञान का साधनरूप जो विविदिषा सन्न्यास है, उस की विवेचना पूर्वाचार्यों ने अनेक प्रकार से कियी है अत एव इस विषय में हम उपराम करते हैं ।

इसभांति विविदिषा सन्न्यास का संक्षेपसे निरूपण समाप्त हुआ॥

अथ विद्वत्सन्न्यासं निरूपयामः। सम्यगनु-
ष्ठितैः श्रवणमनननिदिध्यासनैः परतत्त्वं वि-

दितवद्भिः सम्पाद्यमानो विद्वत्सन्न्यासः ।
तं च याज्ञवल्क्यः सम्पादयामास । तथा हि
विद्वच्छिरोमणिर्भगवान् याज्ञवल्क्यो वि-
जिगीषुकथायां बहुविधेन तत्त्वनिरूपणेना-
ऽऽश्वलप्रभृतीन् विप्रान् प्रविजित्य वीतरा-
गकथायां संक्षेपविस्तराभ्यामनेकधा जनकं
बोधयित्वा मैत्रेयीं बुबोधयिषुस्तस्यास्त्वरया
तत्त्वाभिमुख्याय स्वकर्त्तव्यं सन्न्यासं प्रति-
जज्ञे । ततस्तां बोधयित्वा सन्न्यासं चकार
तदुभयं मैत्रेयीब्राह्मणस्याऽऽद्यन्तयोराम्ना-
यते ।

अर्थः—अब हम विद्वत्सन्न्यास का निरूपण करते हैं यथाविधि श्रवण, मनन निदिध्यासन का अनुष्ठान कर जिसने तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है ऐसा पुरुष विद्वत्संन्यास धारण करे । इस संन्यास को भगवान् योगिवर श्रीयाज्ञवल्क्य मुनि ने सम्पादन किया था । विद्वानों के मुकुटमणि भगवान् श्रीयाज्ञवल्क्य विजिगीषुकथा में बहुत प्रकार से तत्त्वनिरूपण द्वारा आश्वल आदिक ब्राह्मणों को जीता था और वीतराग कथा में राजा जनक को संक्षेप और विस्तार से बोध कराया उस के बाद अपनी स्त्री मैत्रेयी जो अधिकारी के लक्षणों से सम्पन्न थी, उसे उपदेश देने की इच्छा से उस को शीघ्र तत्त्वाभिमुख करने के लिये स्वयं " हेस्त्री ! अब मुझे सन्न्यास आश्रम धारण करना है " ऐसी प्रतिज्ञा कियी । अनन्तर उस को तत्त्वाभिमुखकरानेवाले प्रश्नोत्तर द्वारा श्री याज्ञवल्क्यमुनि ने बोध कराया और स्वयं सन्न्यास ग्रहण किया । ये दोनों बातें मै-

मैत्रेयीब्राह्मण के आदि और अन्त में स्पष्ट है, वह यह है:—

" अथ ह याज्ञवल्क्योऽन्यद्वृत्तमुपाकरिष्यन् मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्यः प्रव्राजिष्यन्वा अरे ऽहमस्मात्स्थानादस्मि" इति ।

अर्थः—गृहस्थाश्रम से अन्य संन्यासाश्रमधारण करने की इच्छा से मैत्रेयी (अपनी स्त्री) से याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा कि मैं इस गृहस्थाश्रम का त्याग कर सन्न्यासाश्रम को ग्रहण करने की इच्छा करता हूं ॥

" एतावदरे खल्वमृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार " इति च ।

अर्थः—" यही मोक्षका साधन है " इतना कह श्रीयाज्ञवल्क्य ने सन्न्यास ग्रहण किया । ये उपरोक्त दोनों वाक्य क्रम से मैत्रेयीब्राह्मण के आदि और अन्त में पठित हैं ।

कहोलब्राह्मणेऽपि विद्वत्सन्न्यास आम्नायते " एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति " इति ।

अर्थः—कहोलब्राह्मण में भी विद्वत्संन्यास का वर्णन है । इस प्रकार से प्रसिद्ध उस आत्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्मवित् पुरुष पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा से अलग हो, भिक्षाटन करते हैं अर्थात् संन्यासाश्रम को धारण करते हैं ॥

न चैतद्वाक्यं विविदिषासंन्यासपरमिति शङ्कनीयम् । पूर्वकालवाचिनो विदित्वेति क्त्वाप्रत्ययस्य ब्रह्मविद्वाचिनोब्राह्मणशब्दस्य च

बाधप्रसङ्गात् । न चात्र ब्राह्मणशब्दो जातिवाचकः । वाक्यशेषे पाण्डित्यबाल्यमौनशब्दाभिधेयैः श्रवणमनननिदिध्यासनैः साध्यं ब्रह्मसाक्षात्कारमभिप्रेत्याथ ब्राह्मण इत्यभिहितत्वात् ।

अर्थः—यह वाक्य विविदिषा सन्न्यास का प्रतिपादन करने वाला है ऐसी शङ्का न करनी चाहिये । क्योंकि 'विदित्वा' इस पद में स्थित भूत काल में 'क्त्वा' प्रत्यय और ब्रह्मवेत्ता का वाचक "ब्राह्मण" शब्द का बाध होता है । इस वाक्य में ब्राह्मणशब्द, ब्राह्मणजाति का वाचक नहीं, क्योंकि उक्त वाक्य के शेष भागमें, पाण्डित्य, बाल्य और मौन इन संज्ञाओं से यथा क्रम से कथन करनेपर, श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा साध्य ब्रह्मसाक्षात्कार के अभिप्राय से ही "अथ ब्राह्मणः" ऐसा कथन किया है ।

ननु तत्र विविदिषासंन्यासोपेतः पाण्डित्यादौ प्रवर्त्तमानोऽपि ब्राह्मणशब्देन परामृष्टः । "तस्माद्ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेदिति चेन्न । नैवम् । भाविनीं वृत्तिमाश्रित्य तत्र ब्राह्मणशब्दस्य प्रयुक्तत्वात् । अन्यथा कथमथ ब्राह्मण इति साधनानुष्ठानोत्तरकालवाचिनमथशब्दम्प्रयुञ्जीत । शारीरब्राह्मणेऽपि विद्वत्संन्यासविविदिषासंन्यासौ स्पष्टं निर्दिष्टौ ।

अर्थः—शङ्काः—उस स्थल में 'तस्माद्ब्रा०' (इस कारण

को विधिपूर्वक कर मनन में स्थित रहे) इस ब्राह्मण श्रवण आदि में प्रवृत्त होने से विविदिषासंन्यासवा- वाक्य में श्रवण आदि में प्रवृत्तहोने से विविदिषासंन्यासवा- न् पुरुषका भी ग्रहण किया है। ?

उत्तरः—भविष्यत् में ब्रह्मवित्त्व की प्राप्ति करनेवाला इस अर्थ का आश्रय कर पूर्वोक्त वाक्य में ब्राह्मण शब्द का प्रयोग, किया है। जो वैसा न होता, तो श्रुति 'अथ ब्राह्मणः इस वाक्य में श्रवणादिक साधनोत्तर काल वाचक अथ शब्द का उच्चारण क्यों करती! नहीं करती। शारीर ब्राह्मण में भी विवि- दिषा संन्यास का स्पष्ट निर्देश है।

"एतमेव विदित्वा मुनिर्भवत्येतमेव प्रव्रा- जिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति" इति। मुनित्वं मननशीलत्वं तच्चाऽसति कर्त्तव्यान्तरे सम्भवतीत्यर्थात्संन्यास एवाभिधीयते। ए- तच्च वाक्यशेषे स्पष्टीकृतम्।

अर्थः—इस आत्माको ही जानकर मुनि होता है। इस संन्यासी के लोक की (आत्मा को ही) इच्छा कर पुरुष सं- न्यास ग्रहण करते हैं। इस वाक्य में 'मुनि' शब्द का अर्थ मन- नशील इस प्रकार होता है परन्तु मननशीलत्व जबतक कर्त्तव्य शेष होता तब तक नहीं हो सकता अर्थात् उस से संन्यास ही सूचित होता है यह वार्त्ता ऊपर के वाक्य के अन्तिम भाग में स्पष्ट किया है।

"एतद्ध स्म वै तत्पूर्वे विद्वांसः प्रजां न काम- यन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमा- त्माऽयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च

वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति" इति। अयं लोक इत्य- परोक्षेणानुभूयत इत्यर्थः।

अर्थः—यह वहीहै- जिस को जान कर पूर्व समय के वि- द्वानों ने प्रजा की इच्छा न कियी। (कारण यह है कि उनको धारणा थी कि) जिनको यह स्वयं प्रकाश आत्मस्वरूप प्राप्त हुआ है, वे हम प्रजाको क्या करेंगे? ऐसा समझ कर उन वि- द्वानों ने पुत्र की इच्छा धनकी इच्छा और लोक की तृष्णा को छोड दिया और भिक्षावृत्ति (संन्यासाश्रम) का आश्रय लिया था अर्थात् संन्यास ग्रहण किया था। इस श्रुति में अयं लोकः का अर्थ जिस का साक्षात् अनुभव हुआ है ऐसा यह आत्मा ऐसा होता है।

नन्वत्र मुनित्वेन फलेन प्रलोभ्य विविदिषा- संन्यासं विधाय वाक्यशेषे स एव प्रपञ्चितः। अतो न संन्यासान्तरं कल्पनीयम्। मैवम्। वेदनस्यैव विविदिषासंन्यासफलत्वात्। न च वेदनमुनित्वयोरेकत्वं शङ्कनीयम्। "वि- दित्वा मुनिर्भवतीति" पूर्वोत्तरकालीनयो- स्तयोः साध्यसाधनभावप्रतीतेः। ननु वेद- नस्यैव परिपाकातिशयरूपमवस्थान्तरं मुनि- त्वम्। अतो वेदनद्वारा पूर्वसंन्यासस्यैव त- त्फलमिति चेत्। बाढम्। अत एव साधन- रूपात्संन्यासादन्यं फलरूपमेतं संन्यासं ब्रूमः। यथा विविदिषासंन्यासिना तत्त्वज्ञा-

नाय श्रवणादीनि सम्पादनीयानि, तथा वि-
द्वत्संन्यासिनाऽपि जीवन्मुक्तये मनोनाशवा-
सनाक्षयौ सम्पादनीयौ । एतच्चोपरिष्टात्प्र-
पञ्चयिष्यामः ।

अर्थः—शङ्काः—(एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति) इस श्रुति में मुनित्व की प्राप्तिरूप फल का लोभ बताकर, उस फल के निमित्त विविदिषासंन्यास का विधान कर 'एतद्ध स्म वै०' इत्यादि वाक्यशेष द्वारा विविदिषासंन्यास का ही स्पष्टीकरण किया है इस लिये विविदिषासंन्यास से भिन्न अन्य सन्न्यास की कल्पना करनी सम्भव नहीं ।

समाधानः—'विदित्वा मुनिर्भवति' ऐसे कथन से वेदन—ज्ञान की साधनरूपता तथा मुनित्व की फलरूपता प्रतीत होती है। अत एव विविदिषा संन्यास द्वारा प्राप्त हुए ज्ञानरूप फल मिलने पर विद्वत्संन्यास द्वारा मुनित्वरूप फल मिलता है । यह बात यथार्थ है ।

शङ्काः—ज्ञान के ही परिपाक विशेष से प्राप्त हुई एक प्रकार की अवस्था है, वही मुनित्वहै, अतएव ज्ञान द्वारा पूर्वसंन्यास अर्थात् विद्वत्संन्यास का ही मुनित्व फल है विद्वत्सं-न्यास का फल नहीं ।

समाधानः—यह बात ठीक है । इसी लिये हम साधन रूप संन्यास से भिन्न फल रूप संन्यास का कथन करते हैं ।
जैसे विविदिषासंन्यासी को ज्ञान के लिये श्रवण मनन और विदिध्यासन सम्पादन करना चाहिये उसी प्रकार विद्वत्सं-न्यासी को भी जीवन्मुक्तिरूप उत्कृष्ट फल के निमित्त वासना-क्षय और मनोनाश सम्पादन करना चाहिये । यह बात विस्तार

पूर्वक आगे (इसी ग्रन्थ में) कहेंगे ।

सत्यप्यनयोः सन्न्यासयोरवान्तरभेदे परम-
हंसत्वाकारेणैकीकृत्य "चतुर्विधा भिक्षवः"
इति स्मृतिषु चतुःसंख्योक्ता । पूर्वोत्तरयोरु-
भयोः संन्यासयोः परमहंसत्वं जाबालश्रुता-
ववगम्यते ।

अर्थः—शङ्काः-जो विद्वत्सन्न्यास नाम का एक अलग संन्यास होता तो, स्मृति में कुटीचक, बहूदक, हंस, एवं परमहंस इन चार प्रकार के भिक्षुकों के गिनने के बदले पांचप्रकारके गिनते ? उत्तर— यद्यपि विविदिषा सन्न्यास और विद्वत्संन्यास में परस्पर अवान्तर विलक्षणता हैं । तथापि परमहंस में दोनों का समावेश कर स्मृतियों में भिक्षुकों की ४ ही संख्या रक्खी है। दोनों संन्यासों का परमहंस होना जाबाल उपनिषद् की श्रुति से ही जाना जाता है ।

तत्र हि जनकेन संन्यासे पृष्टे सति याज्ञव-
ल्क्योऽधिकारविशेषविधानेनोत्तरकालानुष्ठे-
येन च सहितं विविदिषासंन्यासमभिधाय
पश्चादत्रिणा यज्ञोपवीतरहितस्याऽऽक्षिप्ते ब्रा-
ह्मण्ये सति पश्चादात्मज्ञानमेव यज्ञोपवीत-
मिति समादधौ ।अतो बाह्योपवीताभावात्
परमहंसत्वं निश्चीयते । तथाऽन्यस्यां कण्डि-
कायां परमहंसो नामेत्युपक्रम्य सम्वर्तकादीन्
बहून्ब्रह्मविदो जीवन्मुक्तानुदाहृत्य "अव्य-
क्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तव-

दाचरन्तः" इति विद्वत्संन्यासिनो दर्शिताः ।

तथा—

अर्थः—जाबाल उपनिषद् मे जनक राजा का संन्याससम्बन्धी प्रश्न करने पर श्री याज्ञवल्क्य मुनि ने संन्यासाश्रम के अधिकार का विधान कर उत्तर काल में साधने योग्य कर्त्तव्य सहित विविदिषा संन्यास का कथन किया, इस को सुन भगवान् अत्रिमुनि बोले कि 'यज्ञोपवीत के त्याग करने से ब्राह्मणत्व नष्ट होगा और ऐसा करने पर उपनिषद् के विचार में अधिकार भी नहीं रहता' । इस के उत्तर में 'आत्मज्ञान ही उन को (संन्यासियों के) यज्ञोपवीत है' यों श्रीमहामुनि योगिवर्य ने समाधान किया अत एव बाह्य उपवीत के अभाव से विविदिषासंन्यासियो का परमहंस होना निश्चित होता है । उसी प्रकार इसी उपनिषद् की अन्यकण्डिका में 'परमहंस नाम' से लेकर सम्वर्तकादिक अनेक ब्रह्मवित जीवन्मुक्त पुरुषों का नाम देकर "ये सब जिन का आश्रमादि ज्ञापक चिह्न कोई दीखता नहीं, वैसे गुप्त आचारवाले, उन्मत्त न हो परन्तु उन्मत्तका सा वर्त्ताव करनेवाले हैं, इस प्रकार कह कर, उसी तरह विद्वत्संन्यास को दिखलाया है ।

" त्रिदण्डं कमण्डलुं शिक्यं पात्रं जलपवित्रं
शिखां यज्ञोपवीतं चेत्येतत् सर्वं भूः स्वाहे-
त्यप्सु परित्यज्याऽऽत्मानमन्विच्छेत् " इति

अर्थः—त्रिदण्ड, कमण्डलु, छीका, जलपवित्र, शिखा और यज्ञोपवीत इन सब को "भूः स्वाहा" पढ कर जल में छोड देवे और आत्मसंशोधन करे ।

त्रिदण्डिनः सत एकदण्डलक्षणं विविदिषासंन्यासं विधाय तत्फलरूपं विद्वत्संन्यासमेवमुदाजहार ।

अर्थः—इस वाक्य द्वारा त्रिदण्डी संन्यासी के लिये एक दण्ड का धारणरूप विविदिषासंन्यास का विधान कर उसके फलरूपी विद्वत्संन्यास का ही उदाहरण दियाहै ।

"यथाजातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रह स्तत्र
ब्रह्ममार्गे सम्यक् सम्पन्नः शुद्धमानसः प्राण-
सन्धारणार्थं यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्ष्यमा-
चरन्नुदरपात्रेण लाभालाभौ समौ कृत्वा
शून्यागारे देवतागृहतृणकूटवल्मीकवृक्षमूल-
कुलालशालाग्निहोत्रनदीपुलिनगिरिकुहर—
कन्दरकोटरनिर्झरस्थण्डिलेष्वनिकेतवास्यप्र-
यत्नोनिर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठः
शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः संन्यासेन देहत्या-
गं करोति स एव हंसो नाम" इति ।

अर्थः—जैसा पैदा हुआ उसी प्रकार अर्थात् नंगा, सुखदुःखादिक के संसर्गसे रहित, संग्रहरहित, ब्रह्ममार्ग में यथार्थ निष्ठा प्राप्तकर शुद्धमनवाला प्राणरक्षार्थ योग्य समय में आसन से उठकर उदरपात्र द्वारा भिक्षा करता हुआ भिक्षा मिले या न मिले उस में समता रखने वाला, शून्य घर में, देवमन्दिर में, फूस के टाल में, दीमक की आड में, वृक्षों की आड में, कुम्हार के आवा में, अग्निहोत्रगृह में, नदी के तट पर, पर्वत की कन्दरा में, वृक्ष के खोड में, झरना के पास, यज्ञस्थण्डिल (चबूतरा वा

वेदी) पर, या जहां कोई न रहता हो वहां प्रयत्नरहित शुद्ध परमात्मा के ध्यान में तत्पर, आत्मनिष्ठावाला, शुभाशुभ कर्म के उच्छेद करने में तत्पर पुरुष संन्यास द्वारा शरीर को त्याग करता, उसी को परमहंस जानना" ।

तस्मादनयोरुभयोः परमहंसत्वं सिद्धम् । समानेऽपि परमहंसत्वे सिद्धे विरुद्धधर्माक्रान्तत्वादवान्तरभेदोऽप्यभ्युपगन्तव्यः । विरुद्धधर्मत्वं चाऽऽरुण्युपनिषत्परमहंसोपनिषदोः पर्यालोचनायामवगम्यते । "केन भगवन् कर्माण्यशेषतो विसृजानीति" शिखायज्ञोपवीतस्वाध्यायगायत्रीजपाद्यशेषकर्मत्यागरूपे विविदिषासंन्यासे शिष्येणाऽऽरुणिना पृष्टे सति गुरुः प्रजापतिः "शिखां यज्ञोपवीतम्" इत्यादिना सर्वत्यागमभिधाय "दण्डमाच्छादनं कौपीनं च परिग्रहेत्" इति दण्डादिस्वीकारं विधाय "त्रिसंध्यादौ स्नानमाचरेत् । सन्धिं समाधावात्मन्याचरेत्सर्वेषु वेदेष्वारण्यमावर्तयेत् । उपनिषदमावर्त्तयेत्" इति वेदनहेतूनाश्रमधर्माननुष्ठेयतया विधत्ते।

अर्थः—इस लिये इन दोनों आश्रमों का परमहंस होना सिद्ध है । परमहंसत्वरूप धर्मद्वारा दोनों समान होने पर भी उन में परस्पर अन्य विरुद्धधर्म होने से उन मे अवान्तर भेद स्वीकार करना अवश्य चाहिये । इस के विरुद्ध धर्म का ज्ञान आरुणि उपनिषद् और परमहंसोपनिषद् की आलोचना से होता है । आरुणि उपनिषद् में इस भांति है: —"केन भगवन्०"– हे भगवन् ? किस प्रकार मैं सब कर्मों का त्याग करूं ? इस प्रकार आरुणि शिष्य के स्वाध्याय गायत्री जपादिक सब कर्मों का त्यागरूप विविदिषा संन्यास विषयक प्रश्न करने पर गुरु प्रजापति ने "शिखां यज्ञोपवीतं" इत्यादि पूर्वोक्तवचनद्वारा सब का त्याग कहा और 'दण्डमाच्छादनं कौपीनं'—दण्ड, आच्छादन, और कौपीन को ग्रहण करे इस प्रकार दण्डादि ग्रहण करने का विधान किया एवं 'त्रिसन्ध्यादौ' इत्यादि प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल में स्नान करें सन्धिकाल में, आत्मा का अनुसन्धान करें, सब वेदों में, आरण्यक और उपनिषद् का आवर्त्तन करे । इस रीति से ज्ञान का हेतुरूप आश्रम धर्मों का कर्त्तव्यरूप से विधान किया है ।

अथ योगिनां परमहंसानां कोऽयं मार्ग इति विद्वत्संन्यासे नारदेन पृष्टे सति गुरुर्भगवान् प्रजापतिः स्वपुत्रमित्रेत्यादिना पूर्ववत् सर्वत्यागमभिधाय "कौपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय च लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहे"दिति दण्डादिस्वीकारस्य लौकिकत्वमभिधाय तच्च न मुख्योऽस्तीति शास्त्रीयत्वं प्रतिषिध्य कोऽयं मुख्य इति चेदयं मुख्यो "न दण्डं न शिखां न यज्ञोपवीतं न चाच्छाऽऽदनं चरति परमहंस" इति दण्डादिलिङ्गराहित्यस्य शास्त्रीयतामुक्त्वा "न शीतं न चोष्ण"मित्यादिवाक्येना "ऽऽशाम्बरो निर्नमस्कार" इत्यादिवाक्येन च लोकव्यवहाराती-

तत्त्वमभिधायान्ते "यत्पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्योभवतीत्यन्तेन ग्रन्थेन ब्रह्मानुभवमात्रपर्यवसानमाचष्टे । अतो विविदिषासंन्यासविद्वत्संन्यासयोः परस्परविरुद्धधर्मोपेतत्वादस्त्येवानयोर्महान् भेदः । स्मृतिष्वप्ययं भेद उक्त इति द्रष्टव्यम् ।

अर्थः—जाबालोपनिषद् में विद्वत्संन्यास के लिये इस भांति वर्णन है । "परमहंस योगी का कौन सा मार्ग है ?" इस प्रकार भगवान् नारद के विद्वत्संन्यास सम्बन्धी प्रश्न करने पर गुरु-प्रजापति ने 'स्वपुत्रमित्र'० आदि वक्ष्यमाण वाक्यद्वारा पूर्ववत् सब का त्याग कह कर 'कौपीनं दण्डमाच्छादनं'०—कौपीन, दण्ड, और आच्छादन को अपने शरीर निर्वाह के लिये और लोगों के कल्याण के लिये ग्रहण करे इस वाक्यद्वारा दण्डादि को धारण करे यह कोई शास्त्रीय मुख्य कर्त्तव्य नहीं किन्तु लौकिकव्यवहार है ऐसा बतलाया। इस पर फिर नारदजी ने पूछा कि विद्वत्संन्यास का मुख्य धर्म क्या है ? इस के उत्तर में प्रजापति ने यह वचन कहा ("न दण्डं०इत्यादि) कि परमहंस दण्ड, शिखा, यज्ञोपवीत, कौपीन, आच्छादनादि धारण नहीं करता, इस रीति से दण्डादि चिन्ह का अभाव शास्त्रोक्त है, ऐसा कहकर (न शीतं न चोष्णं०इत्यादि)उस को शीत, उष्णादि द्वंद्व धर्म, बाधा नहीं करता, वह दिशारूपी वस्त्र, धारण करता वह किसी की स्तुति नमस्कारादि नहीं करता' इत्यादि वचनों द्वारा उस की लोकों से विलक्षणता जनाकर अन्त में ('यत्पूर्णा०) जो, पूर्ण, आनन्दघन, और बोधरूप है, वह ब्रह्म मैं हूं ऐसे ज्ञान द्वारा कृतकृत्य होता है । इस अन्तिम जीवन्मुक्त योगी का पर्यवसान केवल ब्रह्मानुभव मे ही पूर्वोक्त उपनिषद् ने जतलाया है, अतएव विविदिषा संन्यास और विद्वत्संन्यास में परस्पर विरुद्ध धर्म होने से उन में अवान्तर विलक्षणता है । स्मृतियों में भी यह भेद दिखलाया है, वह देखने योग्य है ।

"संसारमेव निःसारं दृष्ट्वा सारदिदृक्षया ।
प्रव्रजन्त्यकृतोद्वाहाः परं वैराग्यमाश्रिताः ॥
प्रवृत्तिलक्षणो योगो ज्ञानं संन्यासलक्षणम् ।
तस्माज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान्" ॥
इत्यादि विविदिषासंन्यासः ।

अर्थः—इस प्रकार से संसार को साररहित अनुभव कर सारवस्तु (परमात्मा) के दर्शन की इच्छा से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पहिले ही परम वैराग्यवान् अधिकारी पुरुष संन्यास ग्रहण करता है ॥ कर्मयोग प्रवृत्तिरूप है, और ज्ञान का साधन संन्यास है । अत एव ज्ञान ही को प्रधानता समझ उसी को सम्पादन करने के निमित्त बुद्धिमान् पुरुष इस जगत् में संन्यास ग्रहण करे यह वाक्य विविदषा संन्यास का बोधक है ।

"यदा तु विदितं तत्त्वं परं ब्रह्म सनातनम् ।
तदैकदण्डं संगृह्य सोपवीतं शिखां त्यजेत् ॥
ज्ञात्वा सम्यक् परं ब्रह्म सर्वं त्यक्त्वा परिव्रजेत् । इत्यादिविद्वत्संन्यासः ।

अर्थः—जब सनातन परब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता, तब एक दण्ड को धारण कर, उपवीतसहित शिखा का त्याग करे और अच्छे प्रकार परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने पर, सब का त्याग कर परिव्राजक होवे । यह वाक्य विद्वत्संन्यास का प्रतिपादक है ।

ननु कलाविद्यास्विव कदाचिदौत्सुक्यमात्रेणापि वेदितुमिच्छा सम्भवत्येव विद्वत्ताऽप्यापातदर्शिनः पण्डितम्मन्यमानस्याप्यवलोक्यते, न च तौ प्रव्रजन्तौ दृष्टौ। अतो विविदिषाविद्वत्ते कीदृशे विवक्षिते इति चेत्। उच्यते। यथा तीव्रायां बुभुक्षायामुत्पन्नायां भोजनादन्यो व्यापारो न रोचते, भोजने च विलम्बो न सोढुं शक्यते। तथा जन्महेतुषु कर्मस्वत्यन्तमरुचिर्वेदनसाधनेषु च श्रवणादिषु त्वरा महती सम्पद्यते तादृशी विविदिषा संन्यासहेतुः। विद्वत्ताया अवधिरुपदेशसाहस्र्यामभिहितः।

अर्थः—शङ्काः-जैसे लोक कलारूपविद्याओं में कौतुक से प्रवृत्त होते हैं उसी प्रकार अध्यात्मशास्त्र में भी कितने एक को कौतुक से प्रवृत्ति करने की इच्छा होनी सम्भव है। उसी प्रकार अपण्डित होकर आपेको पण्डित मानने वाला ब्रह्म के सामान्य ज्ञानवाले में भी विद्वत्ता देखी जाती है। अतएव विविदिषा और विद्वत्ता पूर्वोक्त दोनों संन्यासों में कैसी अपेक्षित है? समाधानः—अत्यन्त भूख लगे पुरुष को जैसे भूख के समय भोजन के सिवाय अन्य किसी काम में मन नहीं लगता तैसे भोजन में विलम्ब भी नही सह सकता, उसी प्रकार जन्म देनेवाले कर्मों में अत्यन्त अरुचि और ज्ञान के साधन श्रवणादि में अत्यन्त शीघ्रता होती है इससे उसी समय विविदिषासंन्यास ग्रहण करे। विद्वत्संन्यास की अवधि भगवान् शङ्कराचार्य जीने उपदेशसाहस्री (ग्रन्थ) में दिखलाया है।

" देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम्।
आत्मन्येव भवेद्यस्य स नेच्छन्नपि मुच्यते" इति।

श्रुतावपि।

अर्थः—जैसे अज्ञानी को देहात्मज्ञान होता है, वैसा ही देहात्मज्ञान को बाध करने वाला ज्ञान जिस को स्वरूप में ही होता वह पुरुष यदि मुक्ति की इच्छा न करे तथापि वह मुक्त होता है।

श्रुति भी कहती है कि—

" भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे"

इति। परमपि हिरण्यगर्भादिकं पदमवरं यस्मादसौ परावरः, हृदये बुद्धौ साक्षिणस्तादात्म्याध्यासोऽनाद्यविद्यानिर्मितत्वेन ग्रन्थिवद्दृढसंश्लेषरूपत्वाद्ग्रन्थिरित्युच्यते। आत्मा साक्षी कर्त्ता वा, साक्षित्वेऽप्यस्य ब्रह्मत्वमस्ति वा न वा, ब्रह्मत्वेऽपि तद्बुद्ध्या वेदितुं शक्यं न वा, शक्यत्वेऽपि तद्वेदनमात्रेण मुक्तिरस्ति न वा, इत्यादयः संशयाः, कर्माण्यनारब्धान्यागामिजन्मकारणानि, तदेतद्ग्रन्थ्यादित्रयमविद्यानिर्मितत्वादात्मदर्शनेन निवर्तते। स्मृतावप्ययमर्थ उपलभ्यते।

अर्थः—पर अर्थात हिरण्यगर्भादि पद जिस से निकृष्ट कोटि को भोगता है, उस परमात्मा का साक्षात्कार होने पर इस अधिकारी पुरुष की अनादि अविद्या रचित बुद्धि में साक्षी का तादात्म्याध्यास, अत्यन्त दृढतावाला होने से हृदय की ग्रन्थि संज्ञा को भोगता है, सो गांठ खुल (छुट) जाती है।

क्या आत्मा साक्षी है ? या कर्ता है ? वह सब का साक्षी होवे, तो भी वह कदाचित ब्रह्म है या कैसा ? कदाचित वह ब्रह्मरूप होता तोभी ब्रह्मरूप जाना जा सकता या नहीं ? कदाचित जाना जा सकता हो तौभी उसकी केवल ज्ञान द्वारा मुक्ति की प्राप्ति सम्भव है या नहीं ? इत्यादिसंशय और प्रारब्ध कर्म को छोड़ कर भाविजन्म का हेतुभूत कर्म, यह सब अविद्या का कार्य होने से आत्मदर्शन से नष्ट हो जाते हैं । श्रीमद्भगवद्गीता में भी यही अर्थ प्रतीत होता है ।

"यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वाऽपि स इमाल्लोँकाँन्न हन्ति न निबध्य-
ते" । इति ।

ब्रह्मविदो भावः सत्ता स्वभाव आत्मा नाहंकृतोऽहंकारेण तादात्म्याध्यासादन्तर्नाऽऽच्छादितः । बुद्धिलेपः संशयः । तदभावे त्रैलोक्यवधेनापि न बध्यते किमुतान्येन कर्मणेत्यर्थः ।

अर्थ—जिस ब्रह्मवित् पुरुष का सत्तास्वभाव आत्मा, अहङ्कार द्वारा अन्तर में तादात्म्याध्यास से आच्छादित नहीं, और जिस की बुद्धि संशयरूप लेप रहित—(निर्लेप) है । वह पुरुष इस लोक को अर्थात् तीनों लोकों का हनन कर भी नहीं हनन करता ! और बन्धन को भी प्राप्त नहीं होता है ।

नन्वेवं सति विविदिषासंन्यासफलेन तत्त्वज्ञानेनैवाऽऽगामिजन्मनो वारितत्वाद्वर्त्तमानजन्मशेषस्य भोगमन्तरेण विनाशयितुमशक्यत्वात् किमनेन विद्वत्संन्यासप्रयासे-

नेति चेत् । मैवम् । विद्वत्संन्यासस्य जीवन्मुक्तिहेतुत्वात्, तस्माद्वेदनाय यथा विविदिषासंन्यास एवं जीवन्मुक्तये विद्वत्संन्यासः सम्पादनीयः ।

॥ इति विद्वत्संन्यासः ॥

अर्थः—शंकाः-यदि ऐसा है तो, विविदिषा संन्यास के फलरूप तत्त्वज्ञानद्वारा ही आगामी (भविष्यत् में होनहार जन्म का वारण (रोक) हो सकता है, और वर्तमान जन्म के अवशिष्ट कर्मों का भोग किये बिना नाश हो नहीं सकता, तब इस-विद्वत्संन्यास के निमित्त परिश्रम किस लिये किया जावे ?

समाधानः—विद्वत्संन्यास जीवन्मुक्तिरूप बड़े फल के वास्ते है । जैसे ज्ञान प्राप्ति केलिये विविदिषासंन्यास का ग्रहण करना आवश्यक है, उसी प्रकार जीवन्मुक्ति के लिये विद्वत्संन्यास का सम्पादन करना योग्य है ।

इस प्रकार विद्वत्संन्यास का निरूपण समाप्त हुआ ।

अथ केयं जीवन्मुक्तिः, किंवा तत्र प्रमाणम्, कथं वा तत्सिद्धिः, सिद्ध्या वा किं प्रयोजनमिति चेत् ।

उच्यते । जीवतः पुरुषस्य कर्त्तृत्वभोक्तृत्वसुखदुःखादिलक्षणश्चित्तधर्मः क्लेशरूपत्वाद् बन्धो भवति, तस्य निवारणं जीवन्मुक्तिः ।

अर्थः—जीवन्मुक्ति किस को कहते ? उस में प्रमाण क्या

है ? किस प्रकार इस की सिद्धि हो सकती ? और किस प्रयोजन से उस की सिद्धि कियी जाती ? इन ४ प्रश्नों में से प्रथम प्रश्न का उत्तर–जीवित पुरुष को कर्त्तापन, भोक्तापन, सुख, दुःखादि अन्तःकरण का धर्म क्लेशों का उत्पादक होने से बन्धरूप होता है। इस क्लेशरूप चित्त के धर्म का जो निवारण है उसे जीवन्मुक्ति कहते हैं।

नन्वयं बन्धः किं साक्षिणो निवार्यते, किंवा चित्तात्। नाऽऽद्यः, तत्त्वज्ञानेनैव निवारितत्वात्। न द्वितीयः, असम्भवात्। यदा तु जलाद् द्रवत्वं निवार्येत, वन्हेर्वोष्णत्वं तदा चित्तात्कर्त्तृत्वादिनिवारणसम्भवः, स्वाभाविकत्वं तु सर्वत्र समानम्।

अर्थः—शङ्काः–क्या तुम इस बन्धन को साक्षी से निवारण करते हो, या चित्त से दूर करते हो ? जो कहो कि साक्षी से निवारण किया जाता तो यह बात सम्भव नहीं। क्योंकि, विविदिषा संन्यास में ही तत्त्वज्ञान द्वारा पहिले ही साक्षी से भ्रान्तिसिद्ध बन्धन का निवारण किया है। यदि ऐसा कहो कि साक्षी से नहीं, किन्तु अन्तःकरण में से बन्धन का वारण किया जाता तो, वह बात भी नहीं बन सकती। क्योंकि कर्त्तापन, भोक्तापन, सुख, दुःख, आदिक अन्तः करण के स्वाभाविक धर्म हैं, अतएव, जो जल के द्रवत्वरूप धर्म का और अग्नि के उष्णत्वरूप धर्म का नाश किया जा सके तो अन्तः करण में से कर्त्तापन आदिक धर्मों का वारण हो सकता। क्योंकि, स्वाभाविक धर्म का, धर्मी की स्थिति पर्य्यन्त नाश हो नहीं सकता। और सब ही स्वाभाविक धर्म समान होते हैं अतएव अन्तःकरणका

तो धर्म नष्ट होता है जलादिकों का नहीं, ऐसा भी नहीं कहसकते।

मैवम्। आत्यन्तिकनिवारणासम्भवेऽप्यभिभवस्य सम्भवात्। यथा जलगतं द्रवत्वं मृत्तिकामेलनेनाभिभूयते, वह्नेरौष्ण्यं मणिमन्त्रादिना, तथा सर्वाश्चित्तवृत्तयो योगाभ्यासेनाभिभवितुं शक्यन्ते।

अर्थः—समाधान–स्वाभाविक धर्म का निःशेषता से नाश नहीं हो सकता, यह बात यथार्थ है, परन्तु उस का अभिभव तिरोभाव करना अशक्य नहीं है। जैसे जल में का द्रवत्व (बहना) जल के साथ मिट्टी मिलाकर अटकाया जा सकता है, उसी प्रकार अग्नि में की उष्णता को मणि, (चन्द्रकान्त) मन्त्र, औषधि द्वारा रोक सकते हैं, इसी प्रकार योगाभ्यास से चित्त की सारी वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है।

ननु प्रारब्धं कर्म कृत्स्नाविद्यातत्कर्मनाशने प्रवृत्तस्य तत्त्वज्ञानस्य प्रतिबन्धं कृत्वा स्वफलदानाय देहेन्द्रियादिकमवस्थापयति। नच सुखदुःखादिभोगश्चित्तवृत्तिं विना सम्पादयितुं शक्यते ततः कथमभिभवः।

अर्थः—शंकाः–प्रारब्धकर्म, कार्यसहित सारी अविद्या का क्षय करने के लिये प्रवृत्त हुए तत्त्वज्ञान को बाध कर (उसको होने से रोक कर) देह, इन्द्रियादिक को जाग्रत रखता है, क्योंकि, चित्त की वृत्तियों के बिना प्रारब्ध का फलरूप सुख दुःखादिकों का भोग हो नहीं सकता, अतएव योगाभ्यास द्वारा अन्तःकरण की वृत्तियों का अभिभव (निरोध) कैसे होसकता ?

मैवम्। अभिभवसाध्याया जीवन्मुक्तेरपि

सुखातिशयरूपत्वेन प्रारब्धफल एवान्तर्भा-
वात्।

अर्थः—समाधानः—वृत्तियों के निरोध द्वारा साधने योग्य जीवन्मुक्ति, इस उत्तम प्रकार के सुख होने से अन्य सुखों के साथ इस सुख का प्रारब्ध कर्म के फल में ही अन्तर्भाव है।

तर्हि कर्मैव जीवन्मुक्तिं सम्पादयिष्यति मा-
भूत् पुरुषप्रयत्न इति चेत्।

अर्थः—शङ्का—जैसे प्रारब्ध कर्म ही प्रयास विना योग्य समय में अपने सुखदुःखरूप फलों का जीव को भोगवाता है, उसी प्रकार वह जीवन्मुक्ति सुख को योग्य समय में जीव को देगा फिर उस के निमित्त परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है?

कृषिवाणिज्यादावपि समानः पर्यनुयोगः।
कर्मणः स्वयमदृष्टरूपस्य दृष्टसाधनसम्पत्ति-
मन्तरेण फलजननासमर्थत्वादपेक्षितः कृ-
ष्यादौ पुरुषप्रयत्न इति चेज्जीवन्मुक्तावपि
समं समाधानम्।

अर्थः—समाधानः—यह तुम्हारा प्रश्न केवल मेरे विरुद्ध सम्भव नहीं परन्तु अन्न पैदा करने के लिये जो किसान खेती करता और धन सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये जो व्यापारी लोग व्यापार करता उसके विरुद्ध भी घटता है। क्योंकि, उस को भी अपने प्रारब्ध कर्म ही अन्नादि की प्राप्ति करा देगा। इस पर प्रारब्ध वादी का उत्तरः—कर्म स्वयं अदृष्ट होने से दृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष साधन सम्पत्ति के विना फल देने में असमर्थ है। अतएव अन्नादि फल मिलने के निमित्त तो उसे कृषि आदि प्रत्यक्षसामग्री की आवश्यकता है, तब जीवन्मुक्ति के लिये

भी प्रयास करना निष्प्रयोजन नहीं है।

सत्यपि पुरुषप्रयत्ने कृष्यादेः फलपर्यवसानं
यत्र न दृश्यते तत्र प्रबलेन कर्मान्तरेण प्रति-
बन्धः कल्पनीयः। तच्च प्रबलं कर्म स्वानुकूल-
वृष्टयभावादिरूपां दृष्टसामग्रीं सम्पाद्यैव
प्रतिबध्नाति। स च प्रतिबन्धो विरोधिना
प्रबलतरेणोत्तम्भकेन कारीरीष्टयादिरूपेण
कर्मणाऽपनीयते। तच्च कर्म स्वानुकूलां वृष्टि-
लक्षणां दृष्टसामग्रीं सम्पाद्यैव प्रतिबन्धमप-
नयति। किं बहुना प्रारब्धकर्मण्येवात्यन्तभ-
क्तेन भवता योगाभ्यासरूपस्य पुरुषप्रयत्नस्य
वैयर्थ्यं मनसाऽपि चिन्तयितुमशक्यम्।

अर्थः—प्रारब्ध वादी के प्रति सिद्धान्ती कहता हैः—कर्म अदृष्ट होने से जीवन्मुक्ति सुख भी दृष्टसामग्री विना प्राप्त हो सकता, है वैसा नहीं। किसी २ समय कृषि आदिक कर्म का फल जब नहीं दीख पड़ता तो, तब वर्तमान पुरुषार्थ करने से किसी अन्य प्रबलतर कर्म द्वारा फल के प्रतिबन्ध की कल्पना करे, वह भी अधिक बलवान् प्रतिबन्धक कर्म भी दृष्ट सामग्री बिना अन्नादि फल के प्रतिबन्ध करने में समर्थ नहीं होता, परन्तु अपने अनुकूल वृष्टि के अभाव रूप दृष्ट सामग्री द्वारा ही प्रतिबन्ध करता है। वह प्रतिबन्ध भी अपनें विरोधी अतिप्रबल 'कारीरि इष्टि' [१] आदि उत्तम्भक (प्रतिबन्धक का प्रतिबन्धक) कर्मद्वारा नाश को प्राप्त होता है। वह भी स्वयं ही प्रतिबन्ध को

१ पानी जब नहीं बरसता है, उस समय लोग इस यज्ञ को पानी बरसाने के निमित्त करते हैं। यह एक प्रकार का यज्ञविशेष है।

न निवारण कर दृष्टि आदि दृष्ट सामग्री द्वारा निवारण करता है । इसी भांति हे प्रारब्धवादिन् ! जो श्रेष्ठप्रारब्ध, जीवन्मुक्ति सुख का हेतु है, वह साक्षात् उस सुख को नहीं उत्पन्न कर योगाभ्यासरूप पुरुषप्रयत्न द्वारा उत्पन्न करता है । अत एव तुम या जो प्रारब्धका अत्यन्त भक्त है, उस को योगाभ्यास रूप पुरुषार्थ की निष्फलता का मन में लेश भी विचार नहीं रखना चाहिये ।

अथवा प्रारब्धं कर्म यथा तत्त्वज्ञानात्प्रबलं तथा तस्मादपि कर्मणो योगाभ्यासः प्रबलोऽस्तु ।तथाच योगिनामुद्दालकवीतहव्यादीनां स्वेच्छया देहत्याग उपपद्यते ।

अर्थः—अथवा तुम्हारे अभिप्रायानुसार प्रारब्ध कर्म जैसे तत्त्वज्ञान से प्रबल है उसी प्रकार प्रारब्धकर्म से योगाभ्यास अधिक बलवान् हैं, ऐसा हम कहते हैं । इसी लिये उद्दालक, वीतहव्यादिक योगी महात्माओं ने अपनी इच्छा से ही देहत्याग किया सो उचित है ।

यद्यल्पायुषामस्माकं तादृशो योगो न सम्भवति तदा कामादिरूपचित्तवृत्तिनिरोधमात्रे योगे को नाम प्रयासः । यदि शास्त्रीयस्य प्रयत्नस्य प्राबल्यं नाङ्गीक्रियते तदा चिकित्सामारभ्य मोक्षशास्त्रपर्यन्तानां सर्वेषामानर्थक्यं प्रसज्येत । नहि कदाचित् कर्मफलाविसम्वादमात्रेण दौर्बल्यमापादयितुं शक्यम् । अन्यथा कादाचित्कं पराजयं दृष्ट्वा सर्वैर्भूपैर्गजाश्वादिसेनोपेक्ष्येत । अतएवाऽऽनन्दबोधा-

चार्या आहुः ।

अर्थः—हमलोगों की आयु थोड़ी होती है अतएव जैसे उद्दालक आदिक महात्माओं ने योगाभ्यास किया था वैसे योग करने में हमलोग असमर्थ है । तथापि काम आदिक चित्तवृत्तियों के निरोधरूप योगसाधन में कौन बड़ा परिश्रम है ? कुछ नहीं । जो तुम शास्त्रीय पुरुषार्थ को भी प्रारब्धकर्म से अधिक बलवान् न मानोगे, तो वैद्यक शास्त्र से लेकर मोक्ष शास्त्र तक, लौकिक अलौकिक सुखों की प्राप्ति के साधनों के प्रतिपादन करने वाले सब ही शास्त्र व्यर्थ हो जावेंगे । एकवार यदि पुरुषार्थ का फल न हो तो, उस पर से सारे पुरुषार्थ के उपर दुर्बलतारूप दोष को आरोपित करना यह विवेकी पुरुष की दृष्टि से किसी प्रकार योग्य नहीं । जो एकवार पुरुषार्थ निष्फल हो जाने से सदैव उस की निष्फलता ही गिनी जावे तो कोई राजा शत्रु से पराजय पाने पर, पीछे उसको सैन्य आदिक सम्पूर्ण युद्ध सामग्रियों का त्याग ही कर देना चाहिये, परन्तु अब तक किसी राजा ने ऐसा नही किया है और या ऐसा होना सम्भव भी नहीं । इसी लिये आनन्द बोधाचार्य ने कहा है ।

"न ह्यजीर्णभयादाहारपरित्यागः, भिक्षुकभयाद्वा स्थाल्यनधिश्रयणं, यूकाभयाद्वा प्रावरणपरित्यागः" इति ।

शास्त्रीयप्रयत्नस्य प्राबल्यं वसिष्ठरामसम्वादे विस्पष्टमवगम्यते "सर्वमेव हि सदे"त्यारभ्य "तदनु तदप्यवमुच्य साधुतिष्ठे"त्यन्तेन ग्रन्थेन।

अर्थः—अजीर्ण के भय से कोई आहार को नही छोडता, भिक्षुक के भय से कोई भोजन न पकावे, ऐसा नही होता है, या

जूं के डर से कोई कपड़ा न पहने ऐसा नहीं होता । शास्त्रीय पुरुषार्थ की प्रबलता श्रीयोगवासिष्ठ रामायण के अन्तर्गत श्रीवसिष्ठ और श्रीराम के सम्वाद से स्पष्ट जानी जाती है, श्रीवसिष्ठजी कहते हैं।

"सर्वमेव हि सदा संसारे रघुनन्दन।
सम्यक् प्रयत्नात् सर्वेण पौरुषात्समवाप्यते" ॥

सर्वं पुत्रवित्तस्वर्गलोकब्रह्मलोकादिफलं, पौरुषं पुत्रकामेष्टिकृषिवाणिज्यज्योतिष्टोमब्रह्मोपासनालक्षणः पुरुषप्रयत्नः ।

अर्थः—हे रघुनन्दन ! इस संसार में शास्त्रानुकूल आचरित पुत्रकामेष्टि, कृषि, वाणिज्य, ज्योतिष्टोम, ब्रह्मोपासना आदिक पुरुषार्थ द्वारा, पुत्र, धन, स्वर्ग मोक्ष आदि सब ही फलों को पा सकते हैं।

"उच्छास्त्रं शास्त्रितं चेति पौरुषं द्विविधं स्मृतम्।
तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम्" ॥

उच्छास्त्रं-परद्रव्यापहारपरस्त्रीगमनादि, शास्त्रितं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानादि, अनर्थो-नरकः, अर्थेषु स्वर्गादिषु परमो मोक्षः परमार्थः।

अर्थः— दूसरे के पदार्थ को हर लेना, परस्त्रीगमन आदिक अशास्त्रीय पुरुषार्थ, और नित्य नैमित्तिक आदिक सत्कर्मों का अनुष्ठानरूप शास्त्रविहित पुरुषार्थ, यों दो प्रकार के पुरुषार्थ हैं। इनमें से अशास्त्रीय पुरुषार्थ नरकादि अनर्थ फल का हेतु है। और शास्त्रीय सत्कर्माचरणरूप पुरुषार्थ परमार्थ के लिये है ।

"आबाल्यादलमभ्यस्तैः शास्त्रसत्सङ्गमादिभिः।
गुणैः पुरुषयत्नेन सोऽर्थः सम्पाद्यते हितः ॥

अलं सम्पूर्णं सम्यगित्यर्थः। गुणैर्युक्तेनेत्यध्याहारः । हितः श्रेयः श्रेयोरूपः । श्रीरामः ।

अर्थः—बाल्यावस्था ही से यथाविधि सत्शास्त्रों का श्रवण, सत्समागम, आदि शुभ गुण युक्त पुरुषार्थ से श्रेयरूप अर्थ सम्पादन किया जा सकता है। इस के अनन्तर श्रीरामजी प्रश्न करते हैं।

"प्राक्तनं वासनाजालं नियोजयति मां यथा।
मुने तथैव तिष्ठामि कृपणः किं करोम्यहम्"॥

इति ॥ वासना धर्माधर्मरूपा जीवगतसंस्काराः ।

अर्थः—धर्म अधर्मरूप जीवगतसंस्कार ही वासना इस नाम से प्रसिद्ध हैं, वह जिस प्रकार मुझ को प्रेरणा करती है, उसी प्रकार मैं रहता हूं। हे मुने ? मैं दीन स्वतन्त्रता से क्या कर सकता हूं ?

वसिष्ठः—

"अत एव हि हे राम? श्रेयः प्राप्नोषि शाश्वतम्।
स्वप्रयत्नोपनीतेन पौरुषेणैव नान्यथा" ॥

यतो वासनापरतन्त्रो भवानत एव हि पारतन्त्र्यनिवारणाय स्वोत्साहसम्पादितो मनोवाक्कायजन्यः पुरुषव्यापारोऽपेक्षितः ।

अर्थः—तुम वासना के वशीभूत हो, इसी कारण हे राम ! परतन्त्रता से मुक्त होने के लिये स्वयं उत्साह पूर्वक सिद्ध किये मन, वाणी, और शरीर जन्य पुरुषार्थ द्वारा मोक्षरूप अविनाशी सुख को पाओगे।

"द्विविधो वासनाव्यूहः शुभश्चैवाशुभश्च ते।
प्राक्तनो विद्यते राम द्वयोरेकतरोऽथवा" ॥

किं धर्माधर्मावुभावपि त्वां नियोजयत उत-

कतर इति विकल्पः। एकतरपक्षेऽपि शुभो-
ऽशुभोवेत्यर्थात्सिद्धो विकल्पः।

अर्थः—शुभ और अशुभ इन दो प्रकार की वासना ओं का समूह तुम में है? और वे दोनों तुम को प्रेरणा करते हैं? यदि कहो कि दोनों तो एक साथ प्रेरणा करते नहीं किन्तु एक प्रेरणा करता है तो, क्या शुभवासना समूह प्रेरण करता या अशुभवासनासमूह प्रेरणा करता है?

"वासनौघेन शुद्धेन तत्र चेदपनीयसे।
तत्क्रमेणाऽऽशु तेनैव पदं प्राप्स्यसि शाश्वतम्"॥

तत्र तेषु पक्षेषु। ततस्तर्हि तेनैव क्रमेण शुभ-
वासनाप्रापितेनैवाऽऽचरणेन प्रयत्नान्तरनि-
रपेक्षेण। शाश्वतं पदं मोक्षम्।

अर्थः—उनमें से यदि शुभवासना समूह तुम को प्रेरणा करती है तो, उस शुभवासना की प्रेरणा से प्राप्त शुभाचरण द्वारा ही क्रमशः तुम शाश्वत पद-(मोक्ष) पाओगे।

"अथ चेदशुभो भावस्त्वां योजयति सङ्कटे।
प्राक्तनस्तदसौ यत्नाज्जेतव्यो भवता स्वयम्"॥

भावो वासना। तर्हि यत्नोऽशुभविरोधि-
शास्त्रीयधर्मानुष्ठानं तेन स्वयं जेतव्यः नतु
युद्धे मृत्युमुखेनेव पुरुषान्तरमुखेन जेतुं
शक्यः।

अर्थः—और यदि पूर्व की वासना तुम को संकट में जोड़ती है, अर्थात् अशुभ कार्य करवाती है तो अशुभवासना की-विरोधी शुभवासनारूप शास्त्रीय धर्मों के अनुष्ठान द्वारा उन को तुम जीत सकते हो।

"शुभाशुभाभ्यां मार्गाभ्यां वहन्ती वासना-
सरित्।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि"॥

उभयपक्षे तु शुभभागस्य प्रयत्ननैरपेक्ष्येऽप्य-
शुभभागं शास्त्रीयप्रयत्नेन निवार्य शुभमेव
तस्य स्थाने समाचरेत्।

अर्थः—वासनारूप नदी की दो धारायें बहा करती हैं एक शुभ मार्ग से दूसरी अशुभ मार्ग से। इन में से अशुभ वासना की धारा को पुरुष प्रयत्न द्वारा शुभमार्ग में लगावे, अर्थात् अशुभवासनारूप अधर्माचरण को त्याग कर उस की जगह शास्त्रीय प्रयत्न द्वारा सद्धर्माचरण करे।

"अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्।
स्वमनः पुरुषार्थेन बलेन बलिनां वर"॥

अशुभेषु परस्त्रीद्रव्यादिषु। शुभेषु शास्त्रार्थदेवता-
ध्यानादिषु। पुरुषार्थेन पुरुषप्रयत्नेन, प्रबलेन।

अर्थः—हे बलवान् में श्रेष्ठ रामचन्द्र! परस्त्री पर द्रव्यादि में लिप्त हुए अपने मन को प्रबल पुरुष प्रयत्न द्वारा हटाकर शुभ-मार्ग में-शास्त्र चिन्तन और इष्ट देवता के ध्यानादि में स्थापन करो।

"अशुभाच्चालितं याति शुभं तस्मादपीतरत्।
जन्तोश्चित्तं तु शिशुवत्तस्मात्तच्चालयेद्बलात्"॥

यथा शिशुर्मृद्भक्षणान्निवार्य फलभक्षणे
योज्यते मणिमुक्ताकर्षणान्निवार्य कन्दुकाद्या-
कर्षणे योज्यते तथा चित्तमपि सत्सङ्गेन दुः-
सङ्गात्तद्विपरीतविषयान्निवारयितुं शक्यम्।

अर्थः—जीवों का शिशु तुल्य चित्त अशुभ में रुककर शुभ

में जाता और शुभ में से अशुभ में प्रवेश करता है, अत एव उस को बलात्कार से अशुभाचरणसे रोको । जैसे जो कोई बालक मट्टी खाता हो तो उस के हाथ में फल देकर उस को माटी खाने से रोका जा सकता, और मणि, मुक्ता फल आदिक मूल्यवान् पदार्थ को लेकर खेलने वाले बालक के हाथ में नाश होते देखकर गेन्द वगैरह देकर उस के पास से मणि आदि पदार्थ लिया जा सकता है उसी प्रकार चित्त रूपी बालक को भी सत्सङ्ग द्वारा दुःसङ्ग से रोककर विपरीत आचरणों से बचा सकते हो ।

"समतासान्त्वनेनाऽऽशु न द्रागिति शनैः शनैः।
पौरुषेण प्रयत्नेन लालयेच्चित्तबालकम्" ॥

चपलस्य पशोर्बन्धस्थाने प्रवेशनाय द्वावुपायौ भवतः। हरिततृणप्रदर्शनं कण्डूयनादिकं, वाक्पारुष्यं दण्डादिभर्त्सनं चेति । तत्राऽऽद्येन सहसा प्रवेश्यते, द्वितीयेनेतस्ततोधावन् शनैः शनैः प्रवेश्यते । तथा शत्रुमित्रादिसमत्वं सुखबोधनम्, प्राणायामप्रत्याहारादिपुरुषप्रयत्नश्चेत्येतौ द्वौ चित्तशान्त्युपायौ । तत्राऽऽद्येन मृदुयोगेन शीघ्रं लालयेत् । द्वितीयेन हठयोगेन द्रागिति न लालयेत् । किन्तु शनैः शनैः ।

अर्थः—शत्रुमित्रादिकों मे समतारूप सान्त्वन द्वारा चित्तनाम का बालक शीघ्र वश हो जाता है, और अन्य उपाय द्वारा उस प्रकार वश नहीं होता किन्तु धीरे २ वश होता है। जैसे चञ्चल पशु को गोशाला में बन्धनार्थ ले जाने के दो उपाय

होते हैं । एक तो हरी घास उस के आगे धरके जाना उसके शरीर को खुजलाना आदि, और दूसरा उसको कठोर वचन बोलना और दण्ड द्वारा ताडन करना इत्यादि । इन दोनों में से प्रथम उपाय द्वारा वह पशु थोडे समय में अपने स्थान में प्रवेश करता है और दूसरे उपाय से इधर उधर दौडता भटकता बडे परिश्रम से प्रवेश करता है । उसी प्रकार चित्तरूपी पशु को अपने अधीन वर्त्तावने के भी दो उपाय है । एक तो शत्रुमित्रादि में समभाव रखना इत्यादि मृदु उपाय और दूसरा प्राणायामादि कठिन उपाय है इन में सेमृदु उपाय द्वारा अतिशीघ्र वश में होता है और दूसरा हठयोग द्वारा सत्वर वश न होकर धीरे २ बहुत समय में वश होता है ।

"द्रागभ्यासवशाद्याति यदा ते वासनोदयम्।
तदाऽभ्यासस्य साफल्यं विद्धि त्वमरिमर्दन"॥

मृदुयोगाभ्यासाच्छीघ्रमेव सद्वासनोदये सति साफल्यमभ्यासस्य वक्तव्यं नत्वल्पकालत्वेनासम्भावना शङ्कनीया ।

अर्थः—मृदुयोगाभ्यासद्वारा जब तुम्हारे चित्त में शुभ वासना सहज स्वभाव से उदय पावे उस समय हे शत्रुमर्दन ! तुम्हारा अभ्यास सफल हुआ, ऐसा जानो । 'थोडे समय में कर्म सिद्ध हुआ ?' ऐसी शङ्का से सद्वासना की सिद्धि की असम्भावना तुम्हे न करनी चाहिये ।

"सन्दिग्धायामपि भृशं शुभामेव समाहर ।
शुभवासनाऽभ्यस्यमाना सम्पूर्णा न वेति सन्देहस्तदाऽपि शुभामभ्यसेदेव । तद्यथा सहस्रजपे प्रवृत्तस्य दशमीशतसंख्या यदा सन्दि-

न्धा तदा पुनरपि शतं जपेत्। असम्पूर्त्तौ स-म्पूर्त्तिः फलिष्यति, सम्पूर्तौ च तदूवृद्ध्या न सहस्रजपो दुष्यति तद्वत् ।

अर्थः—शुभ वासना के अभ्यास की सिद्धि होगी या नहीं ऐसे सन्देह को अपने अन्तःकरण में मिलने पर भी सद्वासना का ही अभ्यास करे जैसे सहस्र (हजार) जप में प्रवृत्त" हुए पुरुष को दशम सैकडे में यदि सन्देह हो (कि ९०० जपे या १००० पूरा हुआ ?) तो सौ मन्त्र फिर जपे । इससे जो हजार जप में कमी हुई होगी तो उस की पूर्त्ति होगी और जो हजार जप से अधिक हुआ, तो इससे सहस्रजप दूषित न होगा। उसी प्रकार सद्वासना के अधिक अभ्यास करने से कोई हानि नहीं, किन्तु सद्वासना की दृढता ही होती है ।

"अव्युत्पन्नमना यावद् भवानज्ञाततत्पदः ।
गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर ॥
ततः पक्कषायेण नूनं विज्ञातवस्तुना ।
शुभोऽप्यसौ त्वया त्याज्यो वासनौघो निरोधिना॥
यदति शुभमगमार्यसेवितं त-
च्छुभमनुसृत्य मनोज्ञभावबुद्ध्या ।
अधिगमय पदं यदद्वितीयं
तदनु तदप्यवमुच्य सधु तिष्ठ" इति ।

स्पष्टोऽर्थः । तस्माद्योगाभ्यासेन कामाद्यभि-भवसम्भवाज्जीवन्मुक्तौ न विवदितव्यम् ।

इति जीवन्मुक्तिस्वरूपम् ।

अर्थः— जब तक तुम को बोध का उदय हो कर पर-मात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार न हो तब तक गुरु और शास्त्र प्रमाण द्वारा निर्णीत शुभवासना का अभ्यास करो । उस को करने से तुम या जिस के अन्तःकरण का मल नाश हो गया है, और जिस को आत्मसाक्षात्कार हुआ है, उन को सब वृत्तियों के निरोध के अभ्यास में प्रवृत्त रहकर शुभवासना को भी त्यागना योग्य है । जो अति शुभ फल देने वाला और आर्यों से सेवित है, उस शुभाचरण को अनुसरण कर शुद्ध हुई बुद्धि द्वारा उस अद्वितीय पद को तुम प्राप्त करो । पीछे उस शुभ अ-भ्यास को भी छोड कर भली भांति स्वरूप में स्थिर रहो ।

इस प्रकार योगाभ्यास से कामादिवृत्तियों का निरोध होना सम्भव है । अत एव जीवन्मुक्ति में विवाद करना उचित नहीं ।

इसभांति जीवन्मुक्तिस्वरूपका निरूपण समाप्त हुआ ।

श्रुतिस्मृतिवाक्यानि जीवन्मुक्तिसद्भावे प्र-माणानि । तानि च कठवल्ल्यादिषु पठ्यन्ते— "विमुक्तश्च विमुच्यते " इति । जीवन्नेव दृष्ट-बन्धात् कामादेर्विशेषेण मुक्तः सन् देहपाते भाविबन्धाद्विशेषेण मुच्यते । वेदनात्प्रागपि शमदमादिसम्पादनेन कामादिभ्यो मुच्यत एव, तथाऽव्युत्पन्नानां कामादीनां तत्र प्रयत्ने-न निरोधः । अत्र तु धीवृत्त्यभावादनुत्पत्ति-रेव ततो विशेषेणेत्युच्यते । तथा प्रलये देह-पाते सति कश्चित्कालं भाविदेहबन्धान्मु-च्यते । अत्र त्वात्यन्तिको मोक्ष इत्यभिप्रेत्य

विशेषेणेत्युक्तम् । बृहदारण्यके पठ्यते ।

अर्थः—जीवन्मुक्ति के सद्भाव में श्रुति और स्मृतियों के प्रमाण हैं । –(विमुक्तश्च०) वे प्रमाण कठवल्ली आदिक उपनिषदों में पढे हैं ।

जीवितही दशा में काम आदिक प्रत्यक्षबन्धनों से मुक्त होने पर देहत्याग के अनन्तर भावी (होनेवाले) बन्धनों से भी विशेषकर मुक्त होता है । यद्यपि ज्ञान होने के पूर्व भी शमदमादिक साधनों को सम्पादनकर मुमुक्षु अधिकारी कामादिकों से मुक्त होता है, तथापि उसको एक समय प्रयत्न पूर्वक निरोध करना पडता है । और जीवन्मुक्त दशा में तो अन्तःकरण की वृत्तियों के अभाव से कामादिक वृत्तियां उदय होने में असमर्थ रहती हैं, अत एव 'विशेषकर मुक्त होता है' ऐसा श्रुति कहती है । प्रलय काल में देह पात के अनन्तर अमुक काल पर्यन्त भावि देहरूप बन्धन से मुक्त रहता है, और विदेह मुक्ति पीछे तो आत्यन्तिक मोक्ष की प्राप्ति होती है, अत एव श्रुतिमें 'विमुच्यते' (विशेष कर मुक्त होता है) ऐसा कथन किया है ।

बृहदारण्यक में लिखा है कि—

"यदा सर्वे प्रमुच्यते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" ॥

श्रुत्यन्तरेऽपि–

"स चक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव समना अमना इव" इति ।

एव मन्यत्राप्युदाहार्यम् । स्मृतिषु जीवन्मुक्त-स्थितप्रज्ञ-भगवद्भक्त-गुणातीत–ब्राह्मणा-तिवर्णाश्रमादिनामभिस्तत्र तत्र व्यवहियते ।

वासिष्ठरामसम्वादे "नृणां ज्ञानैक निष्ठानाम्" इत्यारम्भ " सत्किञ्चिदवशिष्यते " इत्यन्तेन ग्रन्थेन जीवन्मुक्तः पठ्यते । वासिष्ठः—

अर्थः—जब इस अधिकारी पुरुष के हृदय में स्थित सब कामनायें निवृत्त हो जाती हैं, उस समय यह जीव (पूर्व-अज्ञ अवस्था में मरणधर्मवाला रहता है,) अमृत नाम मरण रहित हो जाता है और जीवित ही दशा में ब्रह्म को प्राप्त होता है अन्य श्रुति में भी कहा है । नेत्रवाला होकर नेत्र हीन की नाईं, कर्ण इन्द्रियवाला होकर कर्णहीन की नाईं, मनवाला होकर मनहीन की नाईं (जीवन्मुक्त पुरुष होजाता है) अर्थात् उस की वृत्तियां इन्द्रियों द्वारा अपने २ विषयों का अनुसन्धान नहीं करतीं, जिस से वह इन्द्रियवाला होने परभी इन्द्रिय रहित का सा प्रतीत होता है । इस के सिवाय अन्य श्रुतियों को भी दृष्टान्तरूप से लेनी । स्मृतियों मे जीवन्मुक्त पुरुष को जीवन्मुक्त, स्थितप्रज्ञ, भगवद्भक्त, गुणातीत, ब्राह्मण, और अतिवर्णाश्रमी, आदिक विविध संज्ञाओं से कथन किया है । योगवासिष्ठ में वसिष्ठ राम के सम्वाद में ' नृणां ज्ञानै० " से लेकर ' सत्किञ्चि० " इस श्लोक तक जीवन्मुक्त की अवस्था का वर्णन किया है । वसिष्ठ जी बोले—

"नृणां ज्ञानैकनिष्ठाना मात्मज्ञानविचारिणाम् ।
सा जीवन्मुक्ततोदेति विदेहोन्मुक्ततेव या" ॥

ज्ञानैकनिष्ठत्वं लौकिकवैदिककर्मत्यागः । देहेन्द्रियसदसद्भावमात्रेण मुक्तिद्वयस्य विशेषो न त्वनुभवतः । द्वैतप्रतीतेरुभयत्राभावात् । श्रीरामः—

अर्थः—लौकिक, वैदिक कर्मों का त्यागपूर्वक केवल ज्ञान-

विशेषेणोक्तम् । बृहदारण्यके पठ्यते ।

अर्थः—जीवन्मुक्ति के सद्भाव में श्रुति और स्मृतियों के प्रमाण हैं । -(विमुक्तश्च०) ये प्रमाण कठवल्ली आदिक उपनिषदों में पढे हैं ।

जीवितही दशा में काम आदिक प्रबलबन्धनों से मुक्त होने पर देहपात के अनन्तर भावी (होनेवाले) बन्धनों से भी विशेषकर मुक्त होता है । यद्यपि ज्ञान होने के पूर्व भी शम दमादिक साधनों को सम्पादनकर मुमुक्षु अधिकारी कामादिकों से मुक्त होता है, तथापि उसको एक समय प्रयत्न पूर्वक निरोध करना पड़ता है । और जीवन्मुक्त दशा में तो अन्तःकरण की वृत्तियों के अभाव से कामादिक वृत्तियां उदय होने में असमर्थ रहती हैं, अत एव 'विशेषकर मुक्त होता है' ऐसा श्रुति कहती है । प्रलय काल में देह पात के अनन्तर अमुक काल पर्यन्त भावि देहरूप बन्धन से मुक्त रहता है, और विदेह मुक्ति पीछे तो आत्यन्तिक मोक्ष की प्राप्ति होती है, अत एव श्रुतिमें 'विमुच्यते' (विशेष कर मुक्त होता है) ऐसा कथन किया है ।

बृहदारण्यक में लिखा है कि—

"यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते" ॥

श्रुत्यन्तरेऽपि-

"स चक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव समना अमना इव" इति ।

एव मन्यत्राप्युदाहार्यम् । स्मृतिषु जीवन्मुक्त-स्थितप्रज्ञ-भगवद्भक्त-गुणातीत-ब्राह्मणा-तिवर्णाश्रमादिनामभिस्तत्र तत्र व्यवह्रियते ।

वासिष्ठरामसम्वादे "नृणां ज्ञानैक निष्ठानाम्" इत्यारभ्य " सात्किंचिदवशिष्यते " इत्यन्तेन ग्रन्थेन जीवन्मुक्तः पठ्यते । वासिष्ठः—

अर्थः—जब इस अधिकारी पुरुष के हृदय में स्थित सब कामनायें निवृत्त हो जाती हैं, उस समय यह जीव (पूर्व-अज्ञ अवस्था में मरणधर्मवाला रहता है,) अमृत नाम मरण रहित हो जाता है और जीवित ही दशा में ब्रह्म को प्राप्त होता है अन्य श्रुति में भी कहा है । नेत्रवाला होकर नेत्र हीन की नाईं, कर्ण इन्द्रियवाला होकर कर्णहीन की नाईं, मनवाला होकर मनहीन की नाईं (जीवन्मुक्त पुरुष होजाता है) अर्थात् उस की वृत्तियां इन्द्रियों द्वारा अपने २ विषयों का अनुसन्धान नहीं करतीं, जिस से वह इन्द्रियवाला होने परभी इन्द्रिय रहित का सा प्रतीत होता है । इस के सिवाय अन्य श्रुतियों को भी दृष्टान्तरूप से लेनी । स्मृतियों मे जीवन्मुक्त पुरुष को जीवन्मुक्त, स्थितप्रज्ञ, भगवद्भक्त, गुणातीत, ब्राह्मण, और अतिवर्णाश्रमी, आदिक विविध संज्ञाओं से कथन किया है । योगवासिष्ठ में वसिष्ठ राम के सम्वाद में ' नृणां ज्ञाने० " से लेकर ' सात्किञ्चि० " इस श्लोक तक जीवन्मुक्त की अवस्था का वर्णन किया है । वसिष्ठ जी बोले—

"नृणां ज्ञानैकनिष्ठाना मात्मज्ञानविचारिणाम् ।
सा जीवन्मुक्ततोदेति विदेहोन्मुक्ततेव या" ॥

ज्ञानैकनिष्ठत्वं लौकिकवैदिककर्मत्यागः । देहेन्द्रियसदसद्भावमात्रेण मुक्तिद्वयस्य विशेषो न त्वनुभवतः । द्वैतप्रतीतेरुभयत्राभावात् । श्रीरामः—

अर्थः—लौकिक, वैदिक कर्मों का त्यागपूर्वक केवल ज्ञान-

निष्ठ और आत्मविचार परायण पुरुष को जीवन्मुक्त दशा प्राप्त होती है जो विदेहमुक्त दशा के समान है ।

जीवन्मुक्ति और विदेह मुक्ति में केवल इतना ही भेद है कि जीवन्मुक्त पुरुष को अन्य की दृष्टि में देहेन्द्रियादिक विद्यमान है, और विदेहमुक्त को नहीं । परन्तु दोनोंके अनुभव में कोई भेद नहीं है । द्वैत की अप्रतीति दोनों ही में समान है ।

श्रीरामजी बोले—

"ब्रह्मन् विदेहमुक्तस्य जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ।
ब्रूहि येन तथैवाऽहं यते शास्त्रगया दृशा" ॥

अर्थः—हे ब्रह्मन् ! विदेहमुक्त और जीवन्मुक्त का लक्षण कहो । जिस को सुनकर शास्त्र से प्राप्त ज्ञान द्वारा उस पद की प्राप्ति के लिये मैं यत्न करूं ।

वसिष्ठः—

"यथास्थितमिदं यस्य व्यवहारवतोऽपि च ।
अस्तं गतं स्थितं व्योम स जीवन्मुक्त उच्यते"

इदं प्रतीयमानं गिरिनदीसमुद्रादिकं जगत्प्रतिपत्तुर्देहेन्द्रियव्यवहारेण सह महाप्रलये परमेश्वरेणोपसंहृतं सत्स्वरूपोपमर्दनास्तं गतं भवति, अत्र तु न तथा, किंतु विद्यत एव देहेन्द्रियादिव्यवहारः गिरिनद्यादिकं चेश्वरेणानुपसंहृतत्वा यथापूर्वमवतिष्ठमानं सत्सर्वैरन्यैः प्राणिभिर्विस्पष्टमवलोक्यते । जीवन्मुक्तस्य तत्प्रत्यायकवृत्त्यभावात् सुषुप्ताविव सर्वमस्तं गतं भवति । स्वयंप्रकाशमानं चिद्व्योम केवलमवशिष्यते। बद्धस्य सुषुप्तौ तात्कालिकवृत्त्यभावसाम्येऽपि

भाविधीवृत्तिबीजसद्भावान्न जीवन्मुक्तत्वम् ।

अर्थः—वसिष्ठ जी बोले–देह इन्द्रियद्वारा व्यवहार करते हुए जिस जीवन्मुक्त पुरुष को यह नामरूपात्मक जगत् ज्योंका त्यों होने पर भी, वह नाश होजाने के समान केवल चिदाकाश ही भासता है, जगत् की प्रतीति नहीं होती, उस को जीवन्मुक्त कहते हैं ।

यह प्रतीयमान पर्वत, नदी, समुद्रादि अनेक पदार्थों का समुदायात्मक जगत् जिस भांति प्रलय समय में उस को जानने वाले जीव के देहेन्द्रियादिक के साथ नाश को प्राप्त हो जाता है वैसा स्वरूप रहता नहीं, उस भांति जीवन्मुक्त दशा में नहीं होता। किन्तु देह इन्द्रिय आदि का व्यवहार रहता ही है तथा नामरूप जगत् भी ईश्वर द्वारा नष्ट न होने से उस को अन्य सब प्राणिगण स्पष्ट देख सकते हैं । परन्तु जीवन्मुक्त पुरुष को जगत् की प्रतीति करानेवाली वृत्तियों का अभाव होने से सुषुप्ति के तुल्य अस्त गत होता है । उस को तो शेष केवल स्वयंप्रकाश चिदाकाश ही स्थित है । तात्कालिक वृत्तियों का अभाव तो सुषुप्ति में बद्धजीवों को भी होता है परन्तु सुषुप्ति से उत्तर काल में उदय होने वाली वृत्तियों का बीज सुषुप्ति में विद्यमान होने से बद्ध पुरुष की गणना जीवन्मुक्त में नहीं होती ।

"नोदेति नास्तमायाति सुखदुःखैर्मुखप्रभा ।
यथाप्राप्ते स्थितिर्यस्य स जीवन्मुक्त उच्यते" ॥

मुखप्रभा हर्षः । स्रक्चन्दनसत्कारादिसुखे प्राप्तेऽपि संसारिण इव हर्षो नोदेति। मुखप्रभास्तमयो दैन्यम् । धनहानिधिक्कारादिदुःखे प्राप्तेऽपि न दीनो भवति। इदानींतनस्वप्रयत्नविशेषमन्त-

रेण प्रारब्धकर्मापादितपूर्वप्रवाहागतभिक्षान्ना-
दिकं यथाप्तं तस्मिन् स्थितिर्देहरक्षा । समा-
धिदार्ढ्येन स्रक्चन्दनादिप्रतीत्यभावात् । क-
दाचिद्व्युत्थानदशायामापाततः प्रतीतावपि
विवेकदार्ढ्येनैव हेयोपादेयत्वबुद्ध्यभावाद्धर्षा-
दिराहित्यमुपपद्यते ।

अर्थः—सुखदुःख के कारण जिस के मुखपर हर्ष विषाद के चिन्ह प्रतीत न हों, और यथाप्राप्त पदार्थों के उपर जिस की स्थिति होती है, उस का नाम जीवन्मुक्त है । 'मुखप्रभा' अर्थात् हर्ष । स्रक्, चन्दन, सत्कार आदिक अनुकूल पदार्थों की प्राप्ति से संसारी जीवों के समान जिस के चित्त में हर्ष का उदय नहीं होता, तथा धनहानि, धिक्कार आदि दुःख प्राप्त होने पर भी जिस के मुख पर मलिनता नहीं होती, अर्थात् जिस के मुख पर दीनता का चिन्ह प्रतीत नहीं होता तथा वर्तमान शरीर द्वारा प्रयत्न किये विना प्रारब्ध द्वारा प्राप्त भिक्षान्न आदिक पर जिस के शरीर का निर्वाह होता, वह जीवन्मुक्त पुरुष है ?। इस पुरुष को समाधि में तौ वृत्तियों के अभाव होने से कोई श्रद्धावान् पुरुष उस का अर्चन करे तो भी उस का उस को भान नहीं होता, और समाधि से भिन्न व्युत्थान काल में यद्यपि उस को भान होता है, परन्तु उस समय भी उस का विवेक इतना दृढ रहता है जो किसी वस्तु में उस को हेय उपादेय बुद्धि नहीं होती जिस से उस को हर्षविषादादि रहितभाव सम्भव होता हैं ।

"यो जागर्ति सुषुप्तस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते" ॥

चक्षुरादीन्द्रियाणां स्वस्वगोलकेष्ववस्थानेनो-

परत्यभावाज्जागर्ति । मनोवृत्तिरहितत्वात्सु-
षुप्तिस्थः । अत एवेन्द्रियैरर्थोपलब्धिरित्येत-
स्य जागरणलक्षणस्याभावाज्जाग्रन्न विद्यते ।
सत्यपि बोधे जायमानो ब्रह्मवित्त्वाभिमाना-
दिर्भोगार्थापादितकामादिश्च धीदोषः वासना
वृत्तिराहित्येन तद्दोषाभावान्निर्वासनत्वम् ।

अर्थः—जो जाग्रत् अवस्था में रहता हुआ सुषुप्ति में स्थित है, जिस को जाग्रत् अवस्था नहीं, तथा जिस को वासना रहित ज्ञान है, उस को जीवन्मुक्त पुरुष कहते हैं । चक्षु आदिक इन्द्रियों के अपने २ गोलकों में स्थित होनेसे वह जाग्रत अवस्था को अनुभव करता है, तथापि मन वृत्ति, रहित होनेसे सुषुप्ति में स्थित है इसी कारण से इन्द्रियों द्वारा विषयों का ज्ञानरूप जाग्रत् अवस्था का जिस को अभाव है । ब्रह्मवित् पन के होने पर भी ब्रह्मवित्पन के अभिमानादि, विषयभोग निमित्त उत्पन्न कामादि द्वारा अन्तःकरण के दोष के वासना वृत्तियों के रहित पन से उस के दोष के अभाव से जिस को वासनारहित ज्ञान है उसे जीवन्मुक्त कहते हैं ।

" रागद्वेषभयादीनामनुरूपं चरन्नपि ।
योऽन्तर्व्योमवदत्यच्छः स जीवन्मुक्त उच्यते"॥

रागानुरूप्यं भोजनादिप्रवृत्तिः । द्वेषानुरूप्यं
बौद्धकापालिकादिभ्यो विमुखत्वम् । भयानु-
रूप्यं सर्पव्याघ्रादिभ्योऽपसर्पणम् । आदिश-
ब्देन मात्सर्यादि । मात्सर्यानुरूपमितरयोगि-
भ्य आधिक्येन समाध्याद्यनुष्ठानम् । सत्यपि
व्युत्थानदशाया मीदृश आचरणे पूर्वाभ्या-

सेन प्रापिते विश्रान्तचित्तस्य कालुष्यर-
हितत्वादन्तःस्वच्छत्वम्। यथा व्योम्नि धूम-
धूलिमेघादियुक्तेऽपि निर्लेपस्वभावत्वादति-
शयेन स्वच्छत्वं तद्वत्।

अर्थः— राग, द्वेष, भय आदिक के अनुकूल बर्त्ताव करने पर भी जो अन्तर में आकाश की नाईं अत्यन्त निर्मल है। उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

भोजनादि में प्रवृत्ति यह राग की अनुकूलता है, बौद्ध कापालिक आदिकों से विमुखता यह द्वेष की अनुकूलता है, सर्प व्याघ्रादि से डर कर भागना यह भय की अनुकूलता है। आदिशब्द सें मात्सर्यादिको लेना चाहिये। एक योगी के दूसरे योगीसे अधिकतर समाधि आदिका अनुष्ठान करना यह मात्सर्य की अनुकूलता है। विश्रान्तचित्त वाले पुरुष को, व्युत्थान अवस्था में बहुतदिनों के पहिले के अभ्यास के कारण ऐसा आचरण प्राप्त होने पर भी जैसे आकाश, धूम, धूलि, मेघ, आदिकों से आच्छन्न होने परभी अपने निर्लेपस्वभाव से स्वच्छ है इसी प्रकार उस का अन्तःकरण रागादि मल से रहित होने से अत्यन्त निर्मल होता है।

"यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
कुर्वतोऽकुर्वतो वाऽपि स जीवन्मुक्त उच्यते॥
पूर्वार्द्धं विद्वत्संन्यासप्रस्तावे व्याख्यातम्।
लोके बद्धस्य पुरुषस्य शास्त्रीयकर्म कुर्वतोऽहं
कर्तेति तदा चिदात्माऽहंकृतोभवति। स्वर्गं
प्राप्स्यामीति हर्षेण बुद्धिर्लिप्यते। अकुर्वत-
स्तु त्यक्तवानस्मीत्यहंकृतत्वं। स्वर्गालाभ-

विषादादिर्लेपः। एवं प्रतिषिद्धकर्मणि लौ-
किककर्मणि च यथासम्भवं योजनीयम्।
जीवन्मुक्तस्य तु तादात्म्याध्यासाभावाद्धर्षा-
द्यभावाच्च न दोषद्वयम्।

अर्थः— विहित (कर्त्तव्य) या प्रतिषिद्ध (अकर्त्तव्य) कर्मों के करने पर भी जिस का आत्मा अहङ्कार से तादात्म्यके अध्यास से आच्छादित नहीं, और जिस की बुद्धि हर्ष विषादादि लेप रहित है, उस को जीवन्मुक्त कहते है।

लोक में बद्ध पुरुष शास्त्रीय कर्म करता है, उस समय "मैं इस कर्म का कर्त्ता हूँ" इस प्रकार उस के भीतर अहङ्कार उपजता है, तथा "मैं स्वर्गसुख को पाऊँगा, ऐसे हर्षरूप लेप को भी वह प्राप्त होता है। और जिस समय शास्त्रीय कर्म नहीं करता उस समय "मैनें सत्कर्मों का त्याग किया" ऐसे अभिमान के वश होता है। और 'अरे अब मुझे स्वर्गसुख प्राप्त नहीं होगा' इस प्रकार के खेद रूप लेप को प्राप्त होता है। इस भांति निषिद्ध और लौकिक कर्मोंके सम्बन्धमें भी यथायोग्य योजना कर लेनी। जीवन्मुक्तपुरुष को तो अहंकार के साथ तादात्म्याध्यास न होने से और हर्षादि दोष के अभाव के कारण उस में पूर्वोक्त दोनो दोष होते नहीं।

"यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च'यः।
हर्षामर्षभयोन्मुक्तः स जीवन्मुक्त उच्यते"॥
अधिक्षेपताडनादावप्रवृत्तादेतस्माल्लोको नो-
द्विजते। अत एवैतस्मिँल्लोकस्याधिक्षेपाद्य-
प्रवृत्तेः कस्य चिद्दुष्टस्य तत्प्रवृत्तावप्येतच्चित्ते
तादृशविकल्पानुदयाचायमपि नोद्विजते।

अर्थः— जिस तत्त्ववेत्ता पुरुष से कोई प्राणी सन्ताप को प्राप्त नहीं होता और विना अपराध दुःख देनेवाले प्राणियों से जो दुःख को नहीं पाता और जिस ने हर्ष, अमर्ष, भय उद्वेग इन चारों का परित्याग किया है उसे जीवन्मुक्त करते हैं।

स्वयं अन्यों के धिक्कार, ताडनादि में प्रवृत्त न होने से, अन्यलोग इस तत्त्ववेत्ता पुरुष से भय नहीं करते। इसी कारण लोगों की ताडनादि ऐसे पुरुष पर नहीं होता, कदाचित् किसी दुष्ट की प्रवृत्ति हो भी जाती है तथापि उस के चित्त में तिरस्कारादि विकल्पों के अनुदय होने से, जो किसी से भय नहीं करता, तथा हर्ष क्रोध, भयादि से जो मुक्त है, वह जीवन्मुक्त है।

"शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः।
यः सचित्तोऽपि निश्चित्तः स जीवन्मुक्त उच्यते"॥

शत्रुमित्रमानावमानादिविकल्पाः संसारकलनाः शान्ता यस्य सः। चतुःषष्टिविद्याः कलाः, तत्सद्भावेऽपि तदभिमानव्यवहारयोरभावान्निष्कलत्वम्। चित्तस्य स्वरूपेण सद्भावेऽपि वृत्त्यनुदयान्निश्चित्तत्वम्। चिन्तेति पाठे वासनावशादात्मध्यानवृत्तिसद्भावेऽपि लौकिकवृत्त्यभावान्निश्चिन्तत्वम्।

अर्थः— शत्रु, मित्र, और मान अपमानादि विकल्प जिस के चित्त में से शान्त हो गये हैं, जो विद्या कलादि में कुशल होने पर भी उस के ज्ञान के कारण अभिमान न करने से तथा उस के उपयोग न करने से विद्याकलादि ज्ञान रहित की नाईं है, और जिस का चित्त विद्यमान रहता हुआ वृत्तिरहित होने से विना चित्त का है, वह जीवन्मुक्त है।

"यः समस्तार्थजातेषु व्यवहार्यपि शीतलः।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते"॥

परगृहे विवाहोत्सवादौ स्वयं गत्वा तत्प्रीत्यै तदीयकार्येषु व्यवहरन्नपि लाभालाभयोर्हर्षविषादरूपं बुद्धिसन्तापं न प्राप्नोति। एवमयं मुक्तः स्वकार्येऽपि शीतलः। न केवलं सन्तापाभावाच्छीतलत्वं किन्तु परिपूर्णस्वरूपानुसन्धानादपि॥

इति जीवन्मुक्तलक्षणम्।

X (~~अथ विदेहमुक्तलक्षणम्~~)

अर्थः—जो सब पदार्थ सम्बन्धी व्यवहार करता हुआ भी अन्यों के लिये व्यवहार करता है, ऐसा व्यवहार करने से शीतल चित्तवाला है, उसी प्रकार जो पूर्ण आत्मा के अनुसन्धान में निरन्तर लिप्त रहता है, उसे जीवन्मुक्त कहते हैं।

जैसे कोई पुरुष अन्य के घर विवाहादि उत्सव में जाकर घर के मालिक की प्रसन्नता रखने के लिये उस के कार्यों में भाग लेता हुआ भी उस को इस कार्य्य से लाभ या हानि हो तो, स्वयं हर्ष विषाद रूप सन्ताप युक्त होता नहीं इसी प्रकार यह मुक्त पुरुष भी अपने कार्य्यों में शीतल अन्तःकरण वाला रहता है अर्थात् हर्ष विषाद रहित रहता है। हर्ष विषाद के अभाव से ही केवल अन्तःकरण में शीतलता रहती है नहीं, किन्तु सर्वत्र पूर्णस्वरूप के अनुसन्धान के प्रभाव से भी अन्तःकरण की शीतलता मुक्त पुरुष अनुभव करता है।

जीवन्मुक्तका लक्षण समाप्त हुआ।

X ⟶

अब विदेह मुक्त का लक्षण कहते हैं—

"जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते ।
विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव" ॥

यथा वायुः कदाचिचलनं त्यक्त्वा निश्चलरूपेणावतिष्ठते तथा मुक्ताऽऽत्माऽप्युपाधिकृतसंसारं त्यक्त्वा स्वरूपेणावतिष्ठते ।

अर्थः— अपनी शरीर को काल के अधीन होने पर मुक्त पुरुष, जिस प्रकार चलता वायु कभी २ निष्पन्द (स्थिर) अवस्था को धारण कर लेता उसी प्रकार जीवन्मुक्त पद को छोडकर विदेहमुक्ति में प्रवेश करता है । जैसे किसी समय वायु अपने चलन रूप व्यापार को त्याग के निश्चल रूप में स्थिति करता है ।

"विदेहमुक्तो नोदेति नास्तमेति न शाम्यति ।
न सन्नासन्न दूरस्थो न चाहं न च नेतरः" ॥

उदयास्तमयौ हर्षविषादौ । न शाम्यति नच तत्परित्यागी लिङ्गदेहस्यात्रैव लीनत्वात् । सद्वाच्यो जगद्धेतुरविद्या मायोपाधिर्न प्राज्ञेश्वरः । असद्वाच्यो नापि भूतभौतिकः । न दूरस्थ इत्युक्त्वा न मायातीतः । न चेत्युक्त्वा स्थूलमुक्तसमीपस्थत्वं निषिध्यते । अहं न चेति समष्टिश्च । नेतर इति न व्यष्टिश्च । व्यवहारयोग्यो विकल्पः कोऽपि नास्तीत्यर्थः ।

अर्थः—विदेहमुक्त पुरुष, हर्ष विषाद रूप उदय और अस्त को प्राप्त नहीं होता । उसी प्रकार उस का परित्यागी भी नहीं है, क्योंकि लिङ्गदेह स्थूल शरीर के साथ ही लय पा जाता है ।

वह सत्‌रूप नहीं अर्थात् जगत् का कारण अविद्या और माया उपाधि विशिष्ट प्राज्ञ और ईश्वर रूप नहीं, उसी तरह असत् अर्थात् भूत और उस का कार्यरूप नहीं, माया से अतीत नहीं, तथा समष्टि, वैसा ही व्यष्टि शरीर के व्यवहार के योग्य कोई भी विकल्प उस में नहीं ।

"ततः स्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम् ।
अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्किञ्चिदवशिष्यते" ॥

एवंविधया विदेहमुक्त्या सदृशत्वोत्कर्षत्वोक्तेर्जीवन्मुक्तावपि यावद्यावन्निर्विकल्पातिशयस्तावत्तावदुत्तमत्वं द्रष्टव्यम् । भगवद्गीतासु द्वितीयाध्याये स्थितप्रज्ञः पठ्यते ।

अर्जुन उवाच—

अर्थः—उस समय, निश्चल, गम्भीर, अर्थात् मन से भी जाना न जा सके ऐसा, प्रकाश नहीं, वैसे तम से भी विलक्षण, व्याप्त, वाणी का विषय नहीं, तथा इन्द्रियों द्वारा ग्रहण न होसकने योग्य, तैसा अनिर्वचनीय सत्, अवशेष रहता है । इस प्रकार की विदेहमुक्ति के तुल्य जीवन्मुक्ति की गणना कर उस की श्रेष्ठता बताता है, अतएव जीवन्मुक्ति दशामें भी जितने अंश में अन्तःकरण की निर्विकल्पता की अधिकता होती उतने अंश में उस दशा की उत्तमता समझनी चाहिये । भगवद् गीता के २ रे अध्याय में स्थितप्रज्ञ का लक्षण कहा है ।

अर्जुन बोले—

"स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव? ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्" ॥

प्रज्ञा तत्त्वज्ञानम् । तद्द्विविधम् । स्थितम-

स्थितं चेति । यथा जारेऽनुरक्तनार्याः सर्वेष्वपि व्यवहारेषु बुद्धिर्जारमेव ध्यायति, प्रमाणप्रतीतानि क्रियमाणान्यपि गृहकर्माणि सद्य एव विस्मर्यन्ते, तथा परवैराग्योपेतस्य योगाभ्यासपाटवेनात्यन्तवशीकृतचित्तस्योत्पन्ने तत्त्वज्ञाने तद्बुद्धिर्जारमिव नैरन्तर्येण तत्त्वं ध्यायति तदिदं स्थितप्रज्ञानम्। उक्तगुणरहितस्य केनापि पुण्यविशेषेण कदाचिदुत्पन्नेऽपि तत्त्वज्ञाने गृहकर्मवत्तत्रैव तत्त्वं विस्मर्यते तदिदमस्थितं प्रज्ञानम् । एतदेवाऽभिप्रेत्य वसिष्ठ आह ।

अर्थः— समाहित स्थितप्रज्ञ और व्युत्थित (समाधि में से उठा हुआ) स्थितप्रज्ञ यों कालभेद से दो प्रकारका स्थितप्रज्ञ है। इन में से समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ पुरुष उस के लक्षण को बोधन कराने वाले कैसे शब्दों से व्यवहार करता है ? और वह व्युत्थित स्थितप्रज्ञ वाणी का कैसा व्यवहार करता है ? तथा किस भांति वह बाह्य इन्द्रियों का निग्रह करता है ? उसी तरह किस प्रकार वह इन्द्रियों के निग्रह काल के अभाव में विषयों को प्राप्त होता है ?

प्रज्ञा (तत्त्वज्ञान) स्थिर और अस्थिर इस प्रकार दो प्रकार की है । जैसे जार पुरुष में प्रीति करने वाली नारी, घर के सब कामों को करती हुई भी बुद्धि द्वारा जार ही का चिन्तन किया करती है। तथा चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त हुए घर के कामों को करती है, जिस काम को प्रतिदिन किया करती उसे भी भूल जाया करती है । उसी प्रकार परवैराग्य

युक्त पुरुष, या जिनने (सद्गुरु के उपदेश से) योगाभ्यास की पटुता से चित्त को अत्यन्त वश कर लिया है, उस की बुद्धि, तत्त्वज्ञान होने के अनन्तर जार में अनुरक्त नारी के समान परमात्मा का निरन्तर ध्यान किया करती है । अत एव उस की प्रज्ञा स्थित है, परन्तु जिस में उक्त गुण नहीं, ऐसे पुरुष को कदाचित् किसी पुण्य विशेष से तत्त्वज्ञान हो भी जाता है । उस को व्यभिचारिणी स्त्री के गृह कार्यों के विस्मरण के समान तत्त्वज्ञान का विस्मरण हो जाता है, इस लिये उस की प्रज्ञा अस्थिर है । यह बात वसिष्ठ ने भी कही है—

"परव्यसनिनी नारी व्यग्राऽपि गृहकर्मणि ।
तदेवाऽऽस्वादयत्यन्तः परसङ्गरसायनम् " ॥
एवं तत्त्वे परे शुद्धे धीरो विश्रान्तिमागतः ।
तदेवाऽऽस्वादयत्यन्तर्बहिर्व्यवहरन्नपि" ॥ इति ।

तत्र स्थितप्रज्ञः कालभेदाद्द्विविधः । समाहितो व्युत्थितश्च । तयोरुभयोर्लक्षणं पूर्वोत्तराभ्यामर्द्धाभ्यां पृच्छति— समाधिस्थस्य स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, कीदृशैर्लक्षणवाचकैः शब्दैः सर्वैरयं भाष्यते, व्युत्थितः स्थितप्रज्ञः कीदृशं वाग्व्यवहारं करोति, तस्योपवेशन गमने मूढेभ्यो विलक्षणे कीदृशे ।

श्रीभगवानुवाच—

अर्थः— जार (यार) के साथ फँसी हुई नारी अपने घर के कामों में व्यग्र होने पर भी जैसे पुरुष के साथ भोगादि जनित सुख का ही मन में अनुभव किया करती है । इसी प्रकार परमशुद्धतत्त्वज्ञान होने पर धीर विवेकी पुरुष विश्रान्ति को

...अपने अन्तःकरण में उसी ...थाकर बाहरी कामों को करते हुए भी ...परमतत्त्व का अनुभव किया करता है। तहां कालभेद से स्थित-प्रज्ञ दो प्रकार का है एक समाहित, दूसरा व्युत्थित। उन दोनों का लक्षण पूर्वोक्त आधे श्लोक द्वारा अर्जुन ने पूछा है। समा-धिस्थ स्थितप्रज्ञ की भाषा, अन्य साधारणपुरुषों की अपेक्षा कैसी होती है? किस रीति के लक्षण वाचक शब्दों से सब मे यह कहा जाता है (अर्थात् लोग इसे क्या कह कर व्यवहार करते हैं) व्युत्थितस्थितप्रज्ञ किस रीति का वाग्व्यवहार कर-ता है? उस का बैठना, चलना, अन्य साधारण लोगों की अ-पेक्षा कैसा विलक्षण हैं?

इस पर श्री कृष्ण जी उत्तर देते हैं—

"प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवाऽऽत्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते"॥

कामास्त्रिविधाः बाह्या आन्तरा वासनामात्र रूपाश्चेति। उपार्जितमोदकादयो बाह्या, आशामोदकादय आन्तराः, पथिगततृणादि-वदापाततः प्रतीता वासनारूपाश्च। समा-हिताऽशेषधीवृत्तिसंक्षयात्सर्वान्परित्यजति। अस्ति चास्य मुखप्रसादलिङ्गगम्यः सन्तोषः। स च न कामेषु किं त्वात्मन्येव, कामानां त्य-क्तत्वात्। बुद्धेः परमानन्दरूपेणाऽऽत्माभिमु-खत्वाच। नचात्र संप्रज्ञातसमाधाविवा-ऽऽत्मानन्दो मनोवृत्त्योल्लिख्यते किन्तु स्वप्र-काशचिद्रूपेणाऽऽत्मना। सन्तोषश्च न वृत्ति-रूपः किन्तु तत्संस्काररूपः। एवं विधैर्लक्ष-णवाचकैः शब्दैः समाहितो भाष्यते।

अर्थः— अर्जुन? जिस समय वह समाधिस्थ पुरुष अपने मन में स्थित सब कामनाओं का परित्याग करता और अपने आत्मा में (वृत्ति रहित चित्त में) आत्मा द्वारा सन्तोष को प्राप्त होता है तब वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। काम तीन प्रकार का है। बाह्य, आभ्यन्तर, और वासनारूप। इन में से अपने प्रयत्न पूर्वक उपार्जित मोदक आदिक पदार्थ बाह्य काम की गणना मे हैं, जो मोदकादि पदार्थ उपार्जित तो नहीं हैं परन्तु आशारूप से अन्तः-करण में स्थित हैं यह आशा मोदकादि आभ्यन्तर काम हैं। तथा मार्ग में पड़ी घास आदिक पदार्थ (विना इच्छा के इन पर दृष्टि पड ही जातीहै) के समान रागद्वेषशून्य दृष्टि से प्रतीत हुए भोग्य पदार्थ केवल "वासनारूप काम" की गणना में हैं। समाधि-स्थ पुरुष अन्तःकरण की सारी वृत्तियों के क्षय के कारण सब कामों का त्याग कर देता हैं। यद्यपि इस के चेहरे पर की प्रसन्नता का चिन्ह ऊपर से उसके अन्तःकरण में सन्तोषरूप वृत्ति का स्फुरण रहता सा भासताहैं, परन्तु वह काम में सन्तोष नहीं है। क्यों कि, कामनाओं का तो उस ने त्याग ही कर दिया है तथा उस की वृत्ति परमानन्दरूप में आत्मा के ही अभिमुख रहती है। जैसे संप्रज्ञात समाधि में आत्मानन्द मनो-वृत्ति द्वारा अनुभव करता है वैसा असम्प्रज्ञात समाधि में नही होता है। उस में तो स्वयं प्रकाश चैतन्य, आत्मरूप द्वारा अनु-भव होता है, और वह सन्तोष वृत्ति जन्य नहीं है, किन्तु वृत्ति का संस्कार रूप है। इस प्रकार के लक्षण वाचक शब्दों से स-माधिस्थ पुरुष का कथन किया जाता है॥

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

"वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते" ॥

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ दुःखं रागादिनिमित्तजन्या रजोगुणविकाररूपा सन्तापात्मिका प्रतिकूला चित्तवृत्तिः । तादृशे दुःखे प्राप्ते सत्यहं पापी धिङ्मां दुरात्मानमित्यनुतापात्मिका तमोगुणविकारत्वेन भ्रान्तिरूपा चित्तवृत्तिरुद्वेगः । यद्यप्ययं विवेक इवाऽऽभाति तथाऽपि पूर्वस्मिञ्जन्मनि चेत्तत्पापप्रवृत्तिप्रतिबन्धकत्वात्सप्रयोजनो भवति । इदानीं तु निष्प्रयोजन इति भ्रान्तित्वं द्रष्टव्यम् । सुखं राजपुत्रलाभादिजन्या सात्त्विकी प्रीतिरूपाऽनुकूला चित्तवृत्तिस्तस्मिन्सुखे सत्यागामिनस्तादृशस्य सुखस्य कारणं पुण्यमनुष्ठाय वृथैव तदपेक्षा तामसी वृत्तिः स्पृहा । तत्र च सुखदुःखयोः प्रारब्धकर्मप्रापितत्वाद्व्युत्थितचित्तस्य वृत्तिसंभवाच्च तदुभयं समुत्पद्यते । उद्वेगस्पृहे तु न विवेकिनः संभवतः। तथा रागभयक्रोधाश्च तामसत्वेन कर्मप्रापितत्वाभावान्नास्य विद्यन्ते । एवंलक्षणलक्षितः स्थितधीः स्वानुभवप्रकटनेन शिष्यशिक्षार्थमनुद्वेगानिस्पृहत्वादिगमकं वचो भाषत इत्यभिप्रायः ।

अर्थः—जो दुःखों में उद्विग्न नहीं होता, सुखों में आसक्त नहीं, और प्रीति भय तथा क्रोध को जिसने त्याग दिया है, वह मुनि (मनन शील) स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ।

रागादि निमित्त से उत्पन्न रजोगुण का कार्यरूप सन्तापाकार प्रतिकूल चित्तवृत्ति का नाम दुःख है । ऐसे दुःख प्राप्त होनेपर " अरे मैं पापी हूं, मुझे दुरात्मा को धिक्कार हैं " ऐसी तमोगुण जन्य वृत्ति होने से भ्रान्तिरूप जो पश्चात्तापवाली चित्त की वृत्ति उस कों उद्वेग कहते हैं । यद्यपि यह उद्वेग सामान्यदृष्टि से विवेक के तुल्य भासता है, तथापि यदि वह पूर्वजन्म में पाप में प्रवृत्ति करने से हुआ है तो पाप में प्रतिबन्धक होने से सफल होता । परन्तु वर्त्तमान जन्म में प्रयोजन वाला न होने से वह भ्रान्तिरूप है । राज्य, पुत्र, गृह, क्षेत्र, आदि के लाभ से उत्पन्न सात्त्विक प्रीतिरूप अनुकूल वृत्ति को सुख कहते हैं । ऐसे सुख मिलने पर ' भविष्यत् में भी मुझ को यह सुख मिलेतो ठीक है' ऐसी—सुख के कारण धर्म का आचरण किये विना केवल वृथा इच्छारूप तामसी वृत्ति को स्पृहा कहते हैं। तहां सुख दुःख को प्राप्त करानेवाला प्रारब्ध कर्म है, और समाधि में से जाग्रत होने अनन्तर, वृत्ति भी बाहर उदय पाती है, अतएव यद्यपि उस को प्रारब्ध वश से सुख दुःख तो होता हैं, किंतु विवेकी पुरुषको तज्जन्य उद्वेग और स्पृहा सम्भव नही होती उसी प्रकार तमोगुण का कार्य राग है, भय और क्रोध प्रारब्ध का फलरूप न होने से उस में नही है । इस प्रकार का लक्षणवाला स्थितप्रज्ञ है, शिष्य को उपदेश देने के लिये अनुद्वेग भाव और निःस्पृहता आदिक आपे में विद्यमान दैवी सम्पत्तियों के बोधक वचनों के उच्चारण पूर्वक अपना अनुभव प्रकट करता है । यह " स्थितधीः किं प्रभाषेत ? इस प्रश्न का उत्तर हुआ ।

"यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता" ॥

यस्मिन्सत्यन्यदीये हानिवृद्धी स्वास्मिन्नारो-
प्येते तादृशोऽन्यविषय स्तामसवृत्तिविशेषः
स्नेहः, सुखहेतुस्वकलत्रादिशुभवस्तुगुणकथ-
नादिप्रवर्त्तिका धीवृत्तिरभिनन्दः । अत्र
गुणकथनस्य परप्ररोचनार्थत्वाभावेन व्यर्थ-
त्वात्तद्धेतुरभिनन्दस्तामसः । असूयोत्पादनेन
दुःखहेतुः परकीयविद्यादिरेनं प्रत्यशुभो वि-
षयः । तन्निन्दाप्रवर्त्तिका बुद्धिप्रवृत्तिर्द्वेषः
सोऽपि तामसः । तन्निन्दाया निवारणार्थ-
त्वाभावेन व्यर्थत्वात् । त एते तामसा धर्माः
कथं विवेकिनि सम्भवेयुः ।

अर्थ—जो विद्वान् सर्वत्र स्नेह से रहित है, और अनुकूल पदार्थ पाकर आनन्द, में प्रतिकूलपदार्थ पाकर दुःख में, मग्न नहीं होता उस की बुद्धि स्थिर हुई है ।

जिस के विद्यमान हुए अन्य वस्तु की हानि वृद्धि आपे में आरोपित किया जावे ऐसी जो उस अन्यवस्तुविषयक अन्तःकरण की तामस वृत्ति विशेष उस का नाम स्नेह है । सुख का साधनरूप अपनी स्त्री, पुत्रादिक वह शुभवस्तु है, तिन के गुणकथनादि में वाणी की जो प्रवृत्ति होती, उस का नाम 'अभिनन्द है (प्रशंसा) । अपने मुख से अपने स्त्री पुत्रादिकों की प्रशंसा करने से सुननवाले को उस प्रशंसा से स्त्री पुत्रादिकों पर प्रीति नहीं होती, अतएव वह व्यर्थ प्रशंसा तामस है। आपे में असूया प्रकट करने वाला होने से दुःख का कारणरूप अन्य की विद्यादि गुण अविवेकी को अशुभवस्तु रूप है । उस की निन्दा में प्रवृत्त कराने वाली वृत्ति का नाम द्वेष है । यह भी तमो-

गुण का [illegible] करने में असमर्थ होने से व्यर्थ [illegible] परिणाम होने से भला [illegible] सकते ? होते ही नहीं ।

" यदा संहरते [illegible]
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य[illegible]
व्युत्थितस्य समस्ततामस[illegible]
काभ्यामभिहितः । समाहित[illegible]
न सन्ति कुतस्तामसत्वशङ्केत्यर्थः[illegible]

अर्थ—जैसे कच्छप अपने सब अङ्गों को [illegible] जिस ने अप ने सब इन्द्रियों को विषयों से हटा लिया [illegible] की बुद्धि स्थिर हुई है ॥

समाधि से उठे हुए पुरुष में सब तामस वृत्तियों का अभाव रहता है यह बात उपरोक्त दो श्लोकोंके द्वारा कही गयी है और समाधिस्थ पुरुष को तो सब वृत्तियों का अभावहोने से उस में तामसवृत्ति के हो सकने की शङ्का ही सम्भव नहीं ।

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ "

प्रारब्धं कर्म सुखदुःखहेतून् कांश्चिद् विषयां-
श्चन्द्रोदयान्धकारादिरूपान् स्वयमेव सम्पा-
दयति । अन्यांस्तु गृहक्षेत्रादीन् पुरुषोद्योग-
द्वारेण । तत्र चन्द्रोदयादयः पूर्णेनेन्द्रियसंहा-
रलक्षणेन समाधिनैव निवर्तन्ते नान्यथा ।
गृहादयस्तु समाधिमन्तरेणापि निवर्तन्ते ।
आहरणमाहार उद्योगः । निरुद्योगस्य गृहा-

[illegible] निवर्तते ।
[illegible] परमानन्दरूपस्य
[illegible] स्वल्पानन्दहेतु-
[illegible] निवर्तते ।
[illegible] येषां नोऽयमात्मा-
[illegible] इति श्रुतिः ।

[illegible] र्थो को सेवन नही किया उस के वि[illegible] हैं, परन्तु उन मे अभिलाप बना रहता [illegible] का तो पर ब्रह्मको देख वह रस अर्थात [illegible] निवृत्त हो जाता है–प्रारब्धकर्म सुखदुःखका [illegible] चन्द्रोदय अन्धकार आदिपदार्थ को आप ही रचता है [illegible] पुरुषार्थ की अपेक्षा नही और गृह क्षेत्र आदि कतिपय- [illegible] को पुरुष के उद्योग द्वारा उपजाता है । इन में चन्द्रोद-यादि पदार्थ तो सब इन्द्रियों का निरोधरूप समाधि अवस्था-से ही निवृत्ति पाता है अन्य उपाय से निवृत्त होता नही और गृह क्षेत्रादि तो समाधि विना भी उस के मिलने के लिये उद्यो-ग त्याग ने से भी निवृत्त हो जाता है। परन्तु उस में से मानसी-तृष्णा (अभिलाष) जाती नही परन्तु परमानन्दस्वरूप पर ब्रह्म के साक्षात्कार से तो तुच्छ सुख देने वाले विषयो में से वह अभिलाष भी निःशेष हो जाता है । क्योंकि—

“जिस पुरुष को इस परमानन्द स्वरूप स्वयं प्रकाश आत्मा की प्राप्ति हो गई है, ऐसे हमको प्रजा का क्या प्रयोजन है ? इस भांति श्रुति तत्त्वज्ञानी पुरुष को अभिलाष का अभाव बोध कराती है ।

“यततोह्यपि कौन्तेय ? पुरुषस्य विपश्चितः ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः”॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।
उद्योगत्यागब्रह्मदर्शनप्रयत्नं कुर्वतोऽपि का-
दाचित्कप्रमादपरिहाराय समाध्यभ्यासः ।
तदेतत् किमासीतेतिप्रश्नोत्तरम् ।

अर्थः—हे अर्जुन ? यत्न करते हुए विद्वान् पुरुष को भी व्याकुल करने वाले इन्द्रियां बलात्कार से (उसके) मन को हर लेती हैं । उन सब इन्द्रियों को भलीभांति रोक के मुझ में विश्वास कर एकाग्र चित्त हो। क्योंकि, जिस की इन्द्रियां अपने अधीन है उस की बुद्धि स्थिर कही जाती है ।

प्रवृत्ति के त्याग और ब्रह्मदर्शनार्थ प्रयत्न करने पर भी किसी समय प्रमाद हो जाता है उस के निरोध के लिये समा-धिका अभ्यास करना आवश्यक है, यह ‘किमासीत’ वह इन्द्रियों का निग्रह किस भांति करता है ? इस प्रश्न का उत्तर हुवा ॥

“ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः संमोहात्स्मृतिवि-
भ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति”।
असति समाध्यभ्यासे प्रमादप्रकार उपन्यस्तः।
सङ्गोध्येयविषयसंनिधिः । सम्मोहो विवेक-
पराङ्मुखत्वं । स्मृतिविभ्रमस्तत्त्वानुसन्धाना-
भावः । बुद्धिनाशो विपरीतभावनोपचयदो-
षेण प्रतिबद्धस्य ज्ञानस्य मोक्षप्रदत्वसाम-

र्यभावः ।

अर्थः—जो पुरुष विषयों का चिन्तन करता उस की उन विषयों में प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति होने से इच्छा होती, और उस इच्छा के प्रतिबन्ध होने से क्रोध उत्पन्न होता, और क्रोध से अविवेक होता है, अर्थात् कर्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार नष्ट हो जाता है। अविवेक से स्मृतिका नाश होता स्मृति के नाश से बुद्धि नष्ट हो जाती और बुद्धिके नाश से सर्वस्वका नाश होता अर्थात् परम पुरुषार्थ से भ्रष्ट होजाता है ॥

योगी जब समाधि का अभ्यास नहीं करता, उस समय उस को किस २ प्रकार कब २ कौन २ प्रमाद होते हैं यह बात उपरोक्त श्लोकों द्वारा दिखलायी गयी है । सङ्ग नाम ध्येय पदार्थ के साथ संयोग (सन्निकर्ष) । सम्मोह हित और अहित के ज्ञानका अभाव। स्मृति विभ्रम— नाम तत्त्व पदार्थ के खोज का भूलना । बुद्धिनाश—नाम विपरीत भावना की वृद्धिरूप दोष द्वारा प्रतिबन्ध होने से तत्त्वबुद्धि की उत्पत्ति नहीं होती और उत्पन्न हुई बुद्धि की मोक्ष फल की प्राप्ति कराने में अयोग्यता होती है यही बुद्धिका नाश है ।

"रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति" ॥

विधेयात्मत्वं वशीकृतमनस्त्वं, प्रसादो नैर्मल्यं बन्धराहित्यम् । समाध्यभ्यासयुक्तस्तद्वासनाबलाद् व्युत्थानदशायामिन्द्रियैर्व्यवहरन्नपि प्रसादं सम्यक् प्राप्नोति । तदेतत्किं व्रजेतेतिप्रश्नोत्तरम् । उपरितनेनापि बहुना ग्रन्थेन स्थितप्रज्ञः प्रपञ्चितः । ननु प्रज्ञायाः

स्थित्युत्पत्तिभ्यां प्रागपि साधनत्वेन रागद्वेषादिराहित्यमपेक्षितम् । बाढम् । तथाऽप्यस्तिविशेषः, स च मार्गकारैर्दर्शितः ।

अर्थः— इन्द्रियों को राग द्वेष से हटाकर अपने अधीन करके जो वशी पुरुष विषयों का सेवन करता, वह प्रसन्नता को पाता है । समाधि का अभ्यास वाला पुरुष अभ्यास की वासना के बल से व्युत्थान अवस्था में सब इन्द्रियों के व्यापार को करते हुए भी चित्त की प्रसन्नता को ही अनुभव करता है । इस रीति ' किं व्रजेत ' ? इस प्रश्न का उत्तर हुआ । इस के अनन्तर भी बहुत श्लोकों द्वारा श्रीमद्गीता में स्थितप्रज्ञ का विस्तार से वर्णन किया है ।

शङ्का—ज्ञान की उत्पत्ति और स्थिति के पहिले भी साधन रूप राग द्वेष के अभाव की अपेक्षा है । क्या जीवन्मुक्तदशा में ही अपेक्षा है, ऐसा नही ? समाधान—ठीक है, परन्तु इस में कुछ अन्तर है, और उस को श्रेयोमार्ग नामक ग्रन्थ में बतलाया है ।

"विद्यास्थितये प्राग्ये साधनभूताः प्रयत्ननिष्पाद्याः ।
लक्षणभूतास्तु पुनः स्वभावतस्ते स्थिताः स्थितप्रज्ञे ॥
जीवन्मुक्तिरितीमां वदन्त्यवस्थां स्थितात्मसंबन्धाम् ।
बाधितभेदप्रतिभामबाधितात्मावबोधसामर्थ्यात्" इति ॥

भगवद्भक्तो द्वादशाध्याये भगवता वर्णितः ।

अर्थः—विद्या की स्थिति के लिये, मुमुक्षु पुरुष में जो साधन होकर दैवी सम्पत्तियां प्रयत्न साध्य होतीं, वे स्थितप्रज्ञ पुरुष में स्वाभाविक पन से रहती हैं । इस स्थितप्रज्ञ की दशा को " जीवन्मुक्ति " कहते हैं । इस दशा में आत्मज्ञान के सामर्थ्यद्वारा भेदप्रतीति बाध को प्राप्त होकर होती है ।

भगवद्भक्त का श्रीगीता में भगवान् ने १२ वें अध्याय में वर्णन किया है ।

"अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः"॥
ईश्वरार्पितमनस्त्वेन समाहितस्यानुसन्धा-
नाभावात् । व्युत्थितस्याप्युदासीनानुसन्धा-
नेन हर्षविषादाभावाच्च सुखदुःखसाम्यम् ।
एवं वक्ष्यमाणेष्वपि द्वन्द्वेषु द्रष्टव्यम् ।

अर्थः— किसी से द्वेष करने हारा नहीं, सब प्राणियों का मित्र, दयावान्, ममता से छूटा, अहंकार रहित, सुख और दुःख को समान मानने वाला, शान्त, सर्वकाल में सन्तुष्ट, योगी, अर्थात् स्थिरचित्त मन को अपने अधीन रखने वाला, दृढनिश्चय अर्थात् किसी बात का विचार करके पलटने वाला नहीं, मेरे बीच में मन और बुद्धिको अर्पण करने हारा, ऐसा जो मेरा भक्त है, वह मुझ को प्रिय है । जीवन्मुक्त पुरुष जिस समय समाधिस्थ होता है । उस समय उस का मन ईश्वराकार होने से वह अन्य विषय का अनुसन्धान नहीं करता, समाधि से व्युत्थान होने पर भी उदासीन वृत्तिवाला होता है इस लिये उस की सदा सुख दुःख आदिक द्वन्द्व धर्मों में समान वृत्ति होती है ।

"यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केन चित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः" इति॥
अत्रापि पूर्ववद्विशेषो वार्त्तिककारैर्दर्शितः ।

अर्थः—जिस से कोई उद्वेग को न प्राप्त हो, और जो किसी से उद्वेग को न प्राप्त हो, ऐसा जो हर्ष, अमर्ष कहिये दूसरे के सुख को देख खेद, भय, और उद्वेग, इन से अलग हो वह मेरा प्रिय है ॥ जो मिले उसी में सन्तुष्ट, पवित्र, प्रवीण, पक्ष पातसे रहित, खेदशून्य, फल की वासना छोड कर्मों का करनेहारा ऐसा जो मेरा भक्त वह मुझ को प्रिय है ॥ जो प्रिय वस्तु पाकर प्रसन्न न नहो, किसी से द्वेष न रखता हो इष्ट पदार्थ के नाश होने से शोक को न प्राप्त हो, किसी वस्तुपर लोभ न करता हो, अशुभ और शुभ इन दोनों का त्यागकरनेवाला भक्तिमान् हो वह मेरा प्रिय है । शत्रु, मित्र, मान, और अपमान इन में एकसा रहनेवाला, जाडा गरमी, सुख और दुःख में एकाकार, सङ्गरहित, निन्दा और स्तुतिको तुल्य मानने हारा, मौनी, जो कुछ मिले उसी में सन्तुष्ट, नियम से एकस्थान में वास करनेवाला नहीं, स्थिरबुद्धि भक्तिमान् ऐसा जो पुरुष, वह मुझे प्यारा है ।

इस स्थान में भी वार्त्तिककार ने विविदिषासंन्यासी और जीवन्मुक्त पुरुषमें भेद पूर्व के समान बताया है—

" उत्पन्नात्मप्रबोधस्य त्वद्वेष्टृत्वादयो गुणाः ।
अयत्नतो भवन्त्यस्य न तु साधनरूपिणः" इति॥

गुणातीतश्चतुर्दशाध्याये वर्णितः—

अर्थः—जिस पुरुष को आत्मज्ञान प्राप्त हो चुका है, उस पुरुष में द्वेषशून्यता आदि गुण बिना यत्न किये स्वभावसे सिद्ध होते हैं, साधनरूप से नहीं ॥

गुणातीत का निरूपण भगवद्गीता के १४ वें अध्याय में किया है। अर्जुन बोले।

"कैर्लिङ्गैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ?।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन् गुणानतिवर्तते" ॥

त्रयो गुणाः सत्त्वरजस्तमांसि, तेषां परिणामविशेषात् सर्वः संसारः प्रवर्तते। अतो गुणातीतत्वमसंसारित्वम् । जीवन्मुक्तत्वमिति यावत् । लिङ्गानि परेषामेतदीयगुणातीतत्वबोधकानि। आचार आचरणं तदीयमनःसञ्चारप्रकारः। कथमिति साधनप्रकारप्रश्नः। भगवानुवाच—

अर्थः—हे प्रभो ! किन चिन्हों करके ज्ञानी इन तीनों गुणों को अति क्रमण करने वाला होता ? और उसका क्या आचार है ? और वह किस भांति इन तीन गुणों का उल्लङ्घन करता है ?।

सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों के परिणाम विशेष से ही सब संसार की प्रवृत्ति है । अत एव गुणातीत होना, असंसारी होना, जीवन्मुक्तहोना एक ही वस्तु है। लिङ्ग अर्थात् जिन लक्षणरूप चिन्हों करके गुणातीत पुरुष का गुणातीतपन बोध हो, वैसा चिन्ह । आचार अर्थात् उस के मन की प्रवृत्ति । 'कथं' इत्यादि वाक्य द्वारा गुणातीत होने के साधनों का प्रकार

पूछा है। श्रीभगवान् उत्तर देते हैं—

"प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते" ॥

प्रकाशप्रवृत्तिमोहाः सत्त्वरजस्तमोगुणाः। ते च जाग्रत्स्वप्नयोः प्रवर्तन्ते । सुषुप्तिसमाधिशून्यचित्तवृत्तित्वावस्थासु निवर्त्तन्ते । प्रवृत्तिश्च द्विविधा अनुकूला प्रतिकूला चेति। तत्र मूढो जागरणे प्रतिकूलप्रवृत्तिं द्वेष्टि अनुकूलप्रवृत्तिं काङ्क्षति । गुणातीतस्य त्वनुकूलप्रतिकूलाध्यासाभावाद्द्वेषाकाङ्क्षे न स्तः । यथा द्वयोः कलहं कुर्वतो रवलोकयिता कश्चित्तटस्थः स्वयं केवलमुदास्ते। न तु जयपराजयाभ्यामितस्ततश्चाल्यते । तथा गुणातीतो विवेकी स्वयमुदास्ते। गुणा गुणेषु वर्तन्ते, न त्वहमिति विवेकादौदासीन्यम्। अहमेव करोमीत्यध्यासोविचलनम्, न चास्य तदस्ति। तदिदं किमाचार इत्यस्य

प्रश्नस्योत्तरम् । समसुखदुःखादीनि लिङ्गा-
न्यव्यभिचारिभक्तिसहितज्ञानध्यानाभ्यासेन
परमात्मसेवा इति गुणात्ययसाधनम् । ब्राह्म-
णो व्यासादिभिर्वर्णितः ।

अर्थः–हे पाण्डव ! सत्वगुणका प्रकाश, रजोगुण की प्रवृत्ति, और तमोगुणका मोह परिणाम है । इन के प्रवृत्त होने में जो त्रास को न प्राप्त हों और निवृत्त होने में उन की इच्छा न करे (वह गुणातीत है) । उदासीन मनुष्य के तुल्य जो सुख दुःख को एक समान मानता गुणों करके चञ्चल नहीं होता और 'गुण अपने कार्य्यों में प्रवृत्त होते हैं' ऐसा जान सावधान बैठा रहता है, किसी तरह की चेष्टा नहीं करता (वह गुणातीत है) ।

सुखदुःख को एकसा मानने वाला, स्वस्थ अर्थात् किसी-भाँति के विकार को नहीं प्राप्त, लोष्ट अर्थात् मट्टी का ढेला, पत्थर, और सुवर्ण को एक ही दृष्टि से देखने हारा, प्रिय और अप्रिय वस्तु में समानबुद्धि, निन्दा और स्तुति में एकसा रहने-वाला, धीर पुरुष (गुणातीत है) । जो मान अपमान में एकसा, और मित्र एवं शत्रु पक्ष में तुल्यदृष्टि, कर्मों के बीच फल की वासना छोड़ने हारा, वह गुणातीत कहाता है। जो मुझ को अ-खण्डभक्तियोग से सेवता है, वह इन सब गुणों को भली भाँति जीत कर ब्रह्मस्वरूप होने के योग्य होता है ॥

सत्त्व, रज, तम और क्रमसे इन का कार्य्य प्रकाश, प्रवृत्ति, और मोह, ये तीनों गुण जाग्रत् एवं स्वप्न इन दो अव-स्थाओं में प्रवृत्त होते हैं । और सुषुप्ति, समाधि, और चित्तकी शून्यावस्थामें ये निवृत्त होते हैं । प्रवृत्ति अनुकूल और प्रतिकूल इस प्रकार दो प्रकार की होती है । तिन में मूढ पुरुष जाग्रत् अवस्था में गुणों की प्रतिकूल प्रवृत्ति से द्वेष करता, और अनुकूल प्रवृत्ति की इच्छा करता है । गु-णातीत पुरुषको तो अनुकूल प्रतिकूल अध्यास की निवृत्ति हो जाने से किसी प्रकार की प्रवृत्ति की इच्छा ही नहीं होती, इस-लिये वह किसी से द्वेष नहीं करता । जैसे दो पुरुषों की लड़ाई को देखने वाला एक तीसरा गृहस्थ पुरुष केवल उदासीनभाव से देखा करता है, और उस की हार या जीत हो तो उस से वह स्वयं हर्ष विषाद को नहीं प्राप्त होता हैं । उसी प्रकार गु-णातीत विवेकी पुरुष गुणों की परस्पर प्रवृत्ति निवृत्ति को सा-क्षी के समान देखताहै । गुण, गुणोंके प्रति प्रवृत्ति करता, मैं कुछ भी नहीं करता, इस प्रकार का विवेक उदासीनता का स्वरूप है । मैं ही करता हूं, ऐसा अध्यास उस गुण द्वारा चला-यमानपन का हैं । यह जीवन्मुक्त पुरुष में नही होता । यह 'किमाचार' (उस का आचरण कैसा है ?) इस प्रश्न का उ-त्तर है । सुख दुःख आदि में समान वृत्ति आदिक गुणातीत के चिह्न है, और अखण्ड भक्ति सहित ज्ञान और ध्यान के अभ्यास द्वारा परमात्मा का सेवन करना ये गुणातीत होने के साधन हैं ।

जीवन्मुक्त पुरुष को ब्राह्मण इस नाम से व्यास आदिक मुनियों ने वर्णन किया है—

"अनुत्तरीयवसनमनुपस्तीर्णशायिनम् ।
बाहूपधायिनं शान्तं तं देवा ब्राह्मणं विदुः" ॥
ब्राह्मणशब्दो ब्रह्मविद्वाचीति "अथ ब्राह्मण"
इतिश्रुत्या वर्णितम् । ब्रह्मविदश्च विद्वत्संन्या-
साधिकारात् ।

"यथाजातरूपधरो नाऽऽच्छादनं चरति स परमहंसः"

इत्यादिश्रुत्या परिग्रहराहित्यस्य मुख्यत्वाभिधानादनुत्तरीयत्वादिकं तस्य युक्तम् ।

अर्थः—जिस को उत्तरीय वस्त्र (अङ्गोच्छा) नहीं, जिस को सोने के लिये कुछ भी नहीं, अर्थात् भूमि पर शयन करता है, और जिस को अपनी भुजारूप तकेआ है, ऐसे शान्त पुरुष को देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं ।

इस श्लोक में ब्राह्मणशब्द ब्रह्मवित् का वाचक है, क्योंकि 'अथ ब्राह्मण' (उस के अनन्तर ब्राह्मण) इस श्रुति ने उस का ब्राह्मण शब्द से कथन किया है । (यथा जातरूप० इस जन्म समय जैसा पैदा हुआ वैसे रूप को धारण करनेहारा अर्थात् नङ्गा परमहंस कुछ भी नहीं ओढता) पूर्वोक्त श्रुति में किसी पदार्थ को न ग्रहण करे यह परमहंस का मुख्य धर्म कहा है अतएव उस का उत्तरीय का त्याग आदि सम्भव होता है ।

"येन केन चिदाच्छन्नो येन केन चिदाशितः ।
यत्रक्वचनशायी स्यात् तं देवा ब्राह्मणं विदुः"॥

देहनिर्वाहायाशनाच्छादनस्थानापेक्षायामप्यशनादिगतौ गुणदोषौ नोत्पद्येते । उदरपूरणपुष्ट्यादिरूपस्य निर्वाहस्य समत्वान्निष्प्रयोजनस्य गुणदोषविचारस्य चित्तदोषत्वात् । अतएव भागवते पठ्यते—

अर्थः—प्रारब्धद्वारा जो मिले उस वस्त्र से शरीरको ढाकनेवाला, जो कुछ अन्नपानादि मिले उसी पर निर्वाह करनेवाला, और जिस किसी जगह रात्रि में सोनेवाला जो पुरुष, उस को देवगण ब्राह्मण कहते हैं ।

शरीर के निर्वाह के लिये अन्न, वस्त्र, शयन, स्थान आदि की अपेक्षा होने पर भी "यह ठीक है और यह ठीक नहीं" इस प्रकार की अन्नादिको में, जीवन्मुक्त पुरुष की बुद्धि उपजती नहीं । उदर पूरण, शरीरपोषण, आदि शरीरनिर्वाह तो भले या बुरे अन्नपानादि से भी हो सकता है, इस लिये निष्प्रयोजन भोग्यपदार्थों के गुण दोष का विचार करना यह केवल चित्त का दोषरूप होने से विवेकी पुरुषको त्यागना योग्यहै । अतएव भागवत के ११ वें स्कन्ध में भी कहा है—

"किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः" इति ।
"कन्थाकौपीनवासास्तु दण्डधृग्ध्यानतत्परः ।
एकाकी रमते नित्यं तं देवा ब्राह्मणं विदुः" ॥

ब्रह्मोपदेशादिना प्राण्यनुजिघृक्षायामुत्तमत्वज्ञापनेन श्रद्धामुत्पादयितुं दण्डकौपीनादिलिङ्गं धारयेत् ।

"कौपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय लोकोपकारार्थाय च परिग्रहेत्" इति श्रुतेः । अनुजिघृक्षयाऽपि तदीयगृहकृत्यादिवार्तां न कुर्यात्, किंतु ध्यानपरो भवेत् ।

"तमेवैकं विजानथाऽऽत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ" इति श्रुतेः ।

अर्थः—गुण दोष के लक्षणों के बहुत वर्णन से क्या फल है? 'यह अच्छा है,' 'यह बुरा है,' इस भांति गुण दृष्टि करनी, यह दोषरूप है । और इस प्रमाण से गुण दोष दृष्टि का त्याग,

यह गुण रूप है ।

गुदड़ी और लंगोट यही जिस के वस्त्र हैं, जो दण्ड धारण करता है, और ध्यान परायण है, और जो निरन्तर अकेला रहता हैं, अर्थात् जिसको एकान्त रहने में आनन्द होता है उस को देवगण ब्राह्मण कहते हैं । ब्रह्मादि द्वारा प्राणियों पर अनुग्रह करने की इच्छा हो तो अपना उत्तम आश्रम हैं इसप्रकार मुमुक्षु लोगों के बोधार्थ उनकी अपने शरीर पर श्रद्धा उपजाने के लिये परमहंस दण्डादि चिह्नों को धारण करता हैं। क्योंकि- "कौपीन, दण्ड, और आच्छादन अपने शरीर के निर्वाह के लिये और लोकोपकार के लिये ग्रहण करे" ऐसा श्रुति कहती है । प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये इच्छा हो तो भी वह परमहंस अन्यों के साथ, उस के घर और संसारकी वार्ता न करे, किन्तु उपदेश के समय को छोड कर सब समय में वह ध्यानपरायण रहे । श्रुति भी कहती है— "उस एक आत्मा का ही ज्ञान सम्पादन करो, और अन्यवार्तों का त्याग करो" यहां अन्य शब्द से आत्मव्यतिरिक्त वाणी समझनी चाहिये ।

"तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद् बहूञ्शब्दान् वाचोविग्लापनं
हि तत्" इति श्रुतेश्च ।

ब्रह्मोपदेशस्त्वन्या वाङ्न भवतीति न विरोधी । तच्च ध्यानमेकाकित्वे निर्विघ्नं भवति । अतएव स्मृत्यन्तरेऽभिहितम् ।

अर्थः—धीर ब्रह्मज्ञानी पुरुष, उस आत्मा का ही ज्ञान सम्पादन कर निरन्तर प्रज्ञा को करे, अनात्म विषयक अनेक शब्दों का चिन्तन न करे, क्योंकि वह वाणी को श्रम देने वा-

ला है। ब्रह्मोपदेश अन्यवाणी नहीं । अतएव वह जीवन्मुक्त पुरुष का विरोधी नहीं । परमात्मा का ध्यान अकेला रहने से निर्विघ्नता के साथ हो सकता है। इस लिये अन्य स्मृतियों में भी कहा है—

"एको भिक्षुर्यथोक्तः स्याद्द्वावेव मिथुनं स्मृतम् ।
त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥
नगरं नहि कर्त्तव्यं, ग्रामो वा, मिथुनं तथा ।
ग्रामवार्त्ता हि तेषां स्याद्भिक्षावार्त्ता परस्परम् ॥
स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं संनिकर्षात्प्रवर्त्तते ।
निराशिषमनारम्भं निर्नमस्कारमस्तुतिम् ॥
अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा ब्राह्मणं विदुः" ॥

विशिष्टैः संसारिभिः प्रणमतां पुरुषाणामाशीर्वादः प्रयुज्यते । यस्य यदपेक्षितं तं प्रति तदभिवृद्धिप्रार्थनमाशीः तथाच पुरुषाणां भिन्नरुचित्वात्तदभिमतान्वेषणे व्यग्रचित्तस्य लोकवासना वर्द्धते । सा च ज्ञानविरोधिनी । तथाच स्मृत्यन्तरम्—

अर्थः—शास्त्रानुसार अकेला भिक्षु(संन्यासी)का नाम भिक्षु (संन्यासी) है। दो भिक्षु (मिलकर रहने विचरने वाले) का नाम मिथुन या जोडा है। तीन भिक्षुओं का संवाद गाँव कहलाता। और तीन से अधिक भिक्षुओं का तो नगर नाम है। भिक्षुओं का नगर, ग्राम या जोडा न करे । क्योंकि ऐसा करने से उन में परस्पर ग्राम या नगर की बातें होती हैं या भिक्षा की बातें

१ इस स्थलमें "ग्रामवार्त्तादि" के बदले "राजवार्तादि" यह पाठ मूलग्रन्थ का है । क्योंकि आगे विवेचना में वह पाठ (राजवार्ता) पढा है जिस का अर्थ राजनीति वार्ता आदि ऐसा होता है ।

होती हैं। और समीप रहने से परस्पर स्नेह, चुगलखोरी, मत्सर, आदि दोष उत्पन्न होते हैं। जो किसी को आशीर्वाद न देवे, जो कोई उद्यम न करे, किसी को नमस्कार या स्तुति न करे, जो दीनता के वश में नहो और जिस के कर्मोंका क्षय हो गया है, उस को देवगण ब्राह्मण कहते हैं॥

श्रेष्ठ संसारी पुरुष आपे को प्रणाम करनेवाले लोगों के लिये आशीर्वाद देते हैं। जिस को जिस पदार्थ की अपेक्षा होती उस के प्रति उस अपेक्षित पदार्थ की, ईश्वर से प्रार्थना करने का नाम आशीर्वाद है। जैसे जिस को सन्तति की अपेक्षा होती, उस के प्रणाम करने पर "ईश्वर तुम को पुत्र देवे" या ईश्वर तुमे पुत्रवान् करे इस प्रकार के वचन मुख में बोलने का नाम आशीर्वचन है। लोगों की भिन्न २ रुचि होने से सब की इच्छित वस्तु के खोज करने में व्यग्रचित्तवाला जीवन्मुक्त संन्यासी की लोकवासना प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होती है, और वह ज्ञान की विरोधिनी होती है। योगवासिष्ठ में कहा है—

"लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयाऽपि च।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते"॥

एतच्चाऽऽरम्भनमस्कारादिष्वपि द्रष्टव्यम्। आरम्भः स्वार्थं परोपकारार्थं वा गृहक्षेत्रादिसम्पादनप्रयत्नः। तावेतावाशीर्वादारम्भौ मुक्तेन त्याज्यौ। न चाऽऽशीर्वादाभावे प्रणतानां नृणां खेदः शङ्कनीयः। लोकवासनाखेदयोरुभयोः परिहाराय निखिलाशीर्वादप्रतिनिधित्वेन नारायणशब्दप्रयोगात्। आरम्भस्तु सर्वोऽपि दुष्ट एव। तथा च स्मृतिः—

अर्थ—लोकवासना, शास्त्रवासना, और देह की वासना के कारण जीव को यथार्थ ज्ञान नहीं होता। उद्यम और नमस्कार भी लोकवासना के वृद्धि का हेतु होनेसे ज्ञान का प्रतिबन्धक होता है। आरम्भ अर्थात् अपने या पराये के लिये गृह, क्षेत्रादिकों के सम्पादनार्थ यत्न (उद्योग) करना इन आरम्भ और नमस्कार को मुक्त पुरुष त्याग देवे।

शङ्काः—जो मुक्त पुरुष (आपे को) प्रणाम करने वाले को आशीर्वाद न देवे, तो प्रणाम करने वाले के चित्त में खेद प्रतीत हो, अतएव आशीर्वाद देना आवश्यक है।

समाधानः—लोकवासना न बढ़े और प्रणाम करने वाले के जी में खेद की प्रतीति न हो इस लिये सब आशीर्वाद के बदले जीवन्मुक्त पुरुष "नारायण" शब्द का प्रयोग करे और आरम्भ (उद्यम) तो सब ही बुरे हैं।

अन्य स्मृति भी कहती है—

"सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवाऽऽवृताः" इति।

नमस्कारोऽपि विविदिषासंन्यासिनोऽभिहितः—

अर्थः—जैसे धूँए से अग्नि का प्रकाश सब ओर से छिप जाता उसी प्रकार सब ही उद्यम दोषों से आवृत होते हैं। इसी प्रकार नमस्कार भी विविदिषासंन्यासी के लिये विहित है—

"यो भवेत् पूर्वसंन्यासी तुल्यो वै धर्मतो यदि।
तस्मै प्रणामः कर्त्तव्यो नेतराय कदाचन"॥

तत्र पूर्वत्वधर्मतुल्यत्वविचारे चित्तं विक्षिप्यते। अतएव नमस्कारमात्र एव बहवः कलहायमाना उपलभ्यन्ते। तत्र निमित्तं वा-

स्तिककारैर्दर्शितम्—

अर्थः—'जिस ने अपने पूर्व सन्यास का ग्रहण किया है और धर्माचरण में जो अपने तुल्य हो ऐसे संन्यासी को प्रणाम करना औरों को नही। इस वाक्य से भी विविदिषासंन्यास में नमस्कार का विधान किया गया है। विद्वत्संन्यास के लिये यह नमस्कार का विधान किया गया है। विद्वत्संन्यास के लिये यह वाक्य नही है। क्यों कि "यह संन्यासी मुक्त से पूर्व क्यों कर हुआ? धर्म में मेरी बराबर किस रीति से है"? इत्यादि विचार द्वारा जीवन्मुक्त की बुद्धि विक्षेप को प्राप्त होती हैं। इसी से नमस्कार के निमित्त बहुत से संन्यासी परस्पर लड़मरते अर्थात् झगडते हुए पाये जाते हैं।

इस विषय में वार्त्तिक कार ने कहा है—

"प्रमादिनो बहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः।
संन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसन्दूषिताशयाः" इति।

मुक्तस्य नमस्काराभावो भगवत्पादैर्दर्शितः—

अर्थः—प्रमादी, बहिर्मुखवृत्तिवाले (संसारी कामों में मन देने वाले) चुगलखोर, झगडने में प्रीति करनेवाले इस प्रकार अपने दुर्दैव से दुषित चित्तवाले संन्यासी भी बहुत से देखने में आते है। मुक्त पुरुष किसी को नमस्कार न करे यह बात श्री शङ्कराचार्य जीने भी कही है।

"नामादिभ्यः परे भूम्नि स्वाराज्येऽवस्थितो यदा।
प्रणमेत्कं तदाऽऽत्मज्ञो न कार्यं कर्मणा तदा" इति।

चित्तकालुष्यहेतोर्नमस्कारस्य प्रतिषेधेऽपि सर्वसाम्यबुद्ध्या प्रसादहेतुर्नमस्कारोऽभ्युपेयते। तथाच स्मृतिः।

अर्थः—आत्मज्ञ पुरुष, जिस समय नामरूप से परे और

व्यापक ऐसे स्वरूप में अवस्थित होता है, तब यह किस को प्रणाम करे? किसी को नहीं। क्यों कि उस को कोई भी कर्म कर्त्तव्य नहीं रहता है। चित्त विक्षेप के हेतुरूप नमस्कार का निषेध होने पर भी सब पदार्थों में समब्रह्मबुद्धि से नमस्कार करनेका शास्त्र विधान कहता है।

श्रीमद्भागवत के ११ वें स्कन्ध में लिखा है—

"ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति।
प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्" इति।

स्तुतिर्मनुष्यविषया प्रतिषिध्यते न त्वीश्वरविषया, तथाच बृहस्पतिस्मृतिः—

अर्थः—'सब में ईश्वर, जीवकलारूप से प्रवेश कर स्थित है, इस भाव से चाण्डाल श्वान (कुत्ता) बैल, गदहे पर्यन्त प्राणियों को भी भूमि पर प्रणाम करे। मनुष्य की स्तुति करने का निषेध है, ईश्वर की स्तुति का निषेध नहीं।

बृहस्पतिस्मृति का वचन है—

"आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया।
तथा चेत् विश्वकर्त्तारं को न मुच्येत बन्धनात्"
इति।

अक्षीणत्वमदीनत्वम्। अतएव स्मृतिः।

अर्थः—जैसे मनुष्य, धन की अभिलाषा से आदर पूर्वक धनाढ्य पुरुष की स्तुति करता उस प्रकार यदि विश्वकर्ता की स्तुति करे, तो कौन नहीं इस संसार रूप बन्धन से मुक्त हो जावे? अक्षीणता अर्थात् दीनता का त्याग करे।

इस विषय में स्मृति भी कहती है—

"अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित्।

लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमान् उभयं दैवतन्त्रितम्”
इति ।

क्षीणकर्मत्वं विधिनिषेधानधीनत्वम् ।

“निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः”
इति स्मरणात् । एतदेवाभिप्रेत्य भगवताऽप्युक्तम् ।

अर्थ—योग्य समय पर कदाचित् अन्न न मिले तो, संन्यासी को विषाद युक्त न होना चाहिये । और मिले तो, उस से धर्मवाला यति हर्षित भी न होवे । क्यों कि, अन्नादि का मिलना या न मिलना दोनों ही प्रारब्ध के अधीन है । क्षीणकर्मता अर्थात् विधि निषेध के वश होके बर्त्ताव न करे, क्यों कि त्रिगुणातीत मार्ग पर चलने वाले पुरुषको क्या विधि क्या निषेध होता ? नहीं होता ऐसा स्मृति कहती है ।

इसी अभिप्राय से श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा है—

“त्रैगुणविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ? ।
निर्द्वन्द्वोनित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्”
इति ।

नारदः—

“स्मर्त्तव्यः सततं विष्णु
र्विस्मर्तव्यो न जातु चित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्यु
रेतयोरेव किंकरा” इति ॥

“योऽहेरिव गणाद्भीतः सन्मानान्नरकादिव ।
कुणपादिव यः स्त्रीभ्यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः” ॥
राजवार्तादि तेषां स्यादित्युक्तत्वात्सर्पवत्

गणाद्भीतिरुत्पद्यते, सन्मानस्याऽऽसक्तिकारणतया पुरुषार्थविरोधित्वान्नरकवद्धेयत्वम् ।
अत एव स्मृतिः ।

अर्थ—वेद (कर्मकाण्डात्मक) सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुणरूप जो संसार के विषयसुख उन को प्रकाश करानेवाले है । अर्जुन ! तू तो निष्काम हो और परस्पर विरोधी सुख दुःखादि पदार्थों से मुक्त हो, नित्य धैर्य को धारण कर, यह पदार्थ कैसे मिलेगा ? यह कैसे रहेगा ? इस चिन्ता को छोड और आत्मवान् अर्थात् प्रमाद से रहित हो । भगवान् नारद का वचन है—निरन्तर विष्णु का स्मरण करे, किसी समय भी उसे भूले नहीं जो सदा विष्णु का स्मरण करता और कभी भी उसे भूलता नहीं, उस के तो विधि और निषेध दास हो रहते हैं । सर्प के समान जो गण (समूह भीड) से भय करता, नरक के तुल्य जो सम्मान (आदर) से डरता, मुर्दे के समान जो स्त्री को छूने से डरता उसे देव गण ब्राह्मण कहते हैं ।

राजसम्बन्धी वार्ता आदि उन में होती है इत्यादि कथन से सर्प का जैसे भय, जन समूह से जिस को उत्पन्न होता है । सम्मान यह आसक्ति होने का हेतु होने से मोक्षरूप परम पुरुषार्थ का विरोधी है । अत एव नरक के तुल्य त्याज्य है ।

अन्य स्मृति में भी कहा है—

“असन्मानात्तपोवृद्धिः सन्मानात्तु तपःक्षयः ।
अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति” ॥
एतदेवाभिप्रेत्यावमान उपादेयतया स्मर्यते ।

अर्थः—अपमान से तप की वृद्धि होती है । और सम्मान से तप का क्षय होता है । अत एव अर्चन पूजन को राग से प्र-

दुःखी होता है ।
हण करनेवाले पुरुष दुही गौ के समान
इसी अभिप्राय से अन्य स्मृति में अपमान को यतियों के
लिये (ग्रहणयोग्य) उपादेय गिना है--

"तथाचरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथाऽवमन्येरन् गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम्" इति॥

स्त्रीषु द्विविधो दोषः प्रतिषिद्धत्वं जुगुप्सितत्वं चेति । तत्र कदाचिद् रागात्प्रारब्धबलादुल्लङ्घ्यते । तदेतदभिप्रेत्याऽऽह स्मृतिः ।

अर्थः—सत्पुरुषों के धर्मको दूषित न करनेवाला योगी इस संसार में इस प्रकार का आचरण करे कि जिस्से इतर लोग उस का अपमान करे और उस का सङ्ग न करे ।

स्त्री से दो प्रकार का दोष होता है, जिन में से एक वह दोष है जिस का शास्त्रों में निषेध है, दूसरा वह है जो शास्त्र में निन्दित है इन में कोई उत्कट पाप प्रारब्ध के योग से उत्पन्न होके रागवशतः कदाचित कोई अल्प धैर्यवान् पुरुष से निषेध का उल्लङ्घन हो जाता है ।

इसी लिये अन्य स्मृति कहतीहै—

"मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा
नैकशय्यासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो
विद्वांसमपि कर्षति" ॥

तथाच स्मृतिभिर्जुगुप्सा दर्शिता ।

अर्थः—मा, बहिन, और लडकी के साथ भी एक या बहुत समीप बिछावन पर न सोवे और एक आसन पर न बैठे । क्यों कि बलवान् इन्द्रियों की समूह विद्वानों को विषय के ओर झुकाती है ।

स्त्री में जुगुप्सादोष का निरूपण स्मृतियों ने किया है ।

"स्त्रीणामवाच्यदेशस्य क्लिन्ननाडीव्रणस्य च ।
अभेदेऽपि मनोभेदाज्जनः प्रायेण वञ्च्यते" ॥
चर्मखण्डं द्विधा भिन्नमपानोद्गारधूपितम् ।
ये रमन्ति नरास्तत्र कृमितुल्याः कथं न ते" ॥

अतः प्रतिषेधजुगुप्सयोरुभयोर्विवक्षया कुणपदृष्टान्तोऽत्राभिहितः ।

अर्थः—स्त्री का गुह्यभाग (जननेन्द्रिय) और आर्द्रनाडी व्रण में कोई भेद न होने पर भी मन की वृत्ति के कारण प्रायः लोग धोखा खाते है । अपान वायु मल त्याग का मार्ग के दुर्गन्ध से दूषित, चमडे के दो अलग २ टुकडा रूप स्त्री के गुह्यस्थान में जो पुरुष रमण करते हैं, वे कीडे के समान क्यों न हैं ? कृमि तुल्य ही है ।

इससे स्त्री के शरीर को स्पर्श करने का निषेध है, और उसमें जों निन्द्यतारूप दोष स्थित है, इन दोनों दोषों के कारण स्त्री का शरीर मुर्दे के समान है ।

"येन पूर्णमिवाऽऽकाशं भवत्येकेन सर्वदा ।
शून्यं यस्य जनाकीर्णं तं देवा ब्राह्मणं विदुः" ॥

संसारिणामेकाकित्वेनावस्थानं भयालस्यादिहेतुत्वाद्वर्ज्यम् । जनसम्बन्धश्चातथाविधत्वादभ्युपेयः । योगिनस्तु तद्विपरीतत्वमेकाकित्वे सत्यविघ्नेन ध्यानानुवृत्तौ परिपूर्णेन परमानन्दात्मना सर्वमाकाशं पूर्णमिवावभासते।अतो भयालस्यशोकमोहादयो न भवन्ति।

अर्थः—अद्वितीय आत्मा से सम्पूर्ण आकाश जिस को

सदा पूर्णसा भासता है और जिस को जनसमूह वाला स्थान जनरहित स्थान की नाईं प्रतीत होता है, उसे देवगण ब्राह्मण कहते हैं।

संसारी जीव को एकान्तवास, भय आलस्यादि का कारण होने से वर्ज्य है और जनसम्बन्ध वैसा न होने से उसे ग्राह्य है। योगी को इस का उलटा है। अर्थात् निर्जन स्थान में स्वयं अकेला होने से निर्विघ्नता से वह ध्यान कर सकता है, जिस से उस को परिपूर्ण परमानन्द स्वरूप परमात्म तत्त्वद्वारा सम्पूर्ण आकाश पूर्ण के समान भासता है, इस से उस को एकान्त प्रदेश में संसारी के तुल्य भय आलस्यादिदोष नहीं होते।

इसविषय में श्रुति कहती है—

"यस्मिन्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः"
इति श्रुतिः।

जनाकीर्णमिति जनसहितं स्थानं राजवार्त्तादिना ध्यानविरोधित्वादात्मप्रतीतिरहितं तच्छून्यमिव चित्तं क्लेशयति। जगतो मिथ्यात्वादात्मनः पूर्णत्वाच्चेत्यर्थः।

अतिवर्णाश्रमी सूतसंहितायां मुक्तिखण्डे पञ्चमाध्याये परमेश्वरेण वर्णितः।

अर्थ—जिस में सब भूत आत्मा ही हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष को और एकताका अनुभव करने वाले योगी को शोक या मोह कैसे हो? अर्थात् नहीं होते।

जन वाले स्थान में राजा की या अन्य के विषय में बात होने से, वह स्थान, आनन्द स्वरूप आत्मा के प्रतीतिरहित शून्यसा चित्त को क्लेश पहुंचाता है, क्योंकि जगत् मिथ्या है, और आत्मा पूर्ण है।

अतिवर्णाश्रमी, इस संज्ञा से जीवन्मुक्त पुरुष का वर्णन सूत संहिता के मुक्ति खण्ड के ५वें अध्याय में किया गया है—

"ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
अतिवर्णाश्रमी तेऽपि क्रमाच्छ्रेष्ठा विचक्षणाः"॥

अर्थः—ब्रह्मचारी से गृहस्थ, गृहस्थ से वानप्रस्थ, वानप्रस्थ से संन्यासी (विविदिषासंन्यासी) और संन्यासी से अतिवर्णाश्रमी (जिस ने ज्ञानद्वारा वर्णाश्रम धर्म्मों का त्याग करदिया) इस प्रकार उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ है और सब से अतिवर्णाश्रमी श्रेष्ठ है।

अतिवर्णाश्रमी प्रोक्तो गुरुः सर्वाधिकारिणाम्।
न कस्यापि भवेच्छिष्यो यथाऽहं पुरुषोत्तम?॥

अर्थः—हे पुरुषोत्तम–विष्णो? अतिवर्णाश्रमी, सब अधिकारी पुरुषों का गुरु है, जैसा मैं (सदाशिव) किसी का शिष्य नहीं, इसी प्रकार वह भी किसी का शिष्य नहीं।

"अतिवर्णाश्रमी साक्षाद् गुरूणां गुरुरुच्यते।
तत्समो नाधिकश्चास्मिँल्लोकेऽस्त्येव न संशयः॥

अर्थ—अतिवर्णाश्रमी साक्षात् गुरुओं का गुरु कहा जाता है, इस लोक में, उस के तुल्य या उस से अधिक है नहीं, इस में संशय नहीं।

"यः शरीरेन्द्रियादिभ्यो विभिन्नं सर्वसाक्षिणम्।
पारमार्थिकविज्ञानं सुखात्मानं स्वयम्प्रभम्॥
परं तत्त्वं विजानाति सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्"॥

अर्थ—शरीर इन्द्रियों से भिन्न, सब का साक्षी, नित्यज्ञान-

रूप, सुखस्वरूप और स्वयम्प्रकाश इस परम तत्त्व को जो जानता वह अतिवर्णाश्रमी कहलाता है ।

"यो वेदान्तमहावाक्यश्रवणेनैव केशव ? ।
आत्मानमीश्वरं वेद सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥
योऽवस्थात्रयनिर्मुक्तमवस्थासाक्षिणं सदा ।
महादेवं विजानाति सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्" ॥

अर्थ—हे केशव ! जो पुरुष वेदान्त के महावाक्य के श्रवणद्वारा ही अपने आत्मा को ईश्वर से अभिन्न अनुभव करता वह अति वर्णाश्रमी कहाता है । जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं से रहित और सदा इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी महादेव को जानता है, वह अतिवर्णाश्रमी होता है ।

"वर्णाश्रमादयो देहे मायया परिकल्पिताः ।
नाऽऽत्मनो बोधरूपस्य मम ते सन्ति सर्वदा ॥
इति यो वेदवेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्" ।

अर्थः—वर्णाश्रमादिक देह का विषय है, आत्मा में देहरूप उपाधि के सम्बन्ध के कारण अविद्याद्वारा कल्पित है । मैं जो बोध स्वरूप हूं, उस का किसी काल में भी वर्णाश्रमादि धर्म नहीं, ऐसा जो वेदान्त वाक्य द्वारा जानता है, अतिवर्णाश्रमी होता है ।

"आदित्यसंनिधौ लोकश्चेष्टते स्वयमेव तु ।
तथा मत्संनिधावेव समस्तं चेष्टते जगत् ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत् ॥"

अर्थः—जैसे प्रातः काल में सूर्य भगवान् के उदय होते ही, उस समय सूर्य की सन्निधि में लोग अपने आप निज २ कामों में लग जाते हैं, व्यापार करता इस प्रकार जो वेदान्त के वाक्य द्वारा जानता वह अतिवर्णाश्रमी होता है ।

"सुवर्णहारकेयूरकटकस्वस्तिकादयः ।
कल्पिता मायया तद्वज्जगन्मय्येव सर्वदा ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्" ॥

अर्थः—जैसे सुवर्ण में हार, बाजूबन्द, कड़ा, और स्वस्तिकादि आकृति कल्पित हैं, उसी प्रकार सारा जगत् मुझ में ही कल्पित हैं इस प्रकार जो वेदान्तवाक्य द्वारा जानता हैं वह अति वर्णाश्रमी होता है ।

"शुक्तिकायां यथा तारं कल्पितं मायया तथा ।
महदादि जगन्मायामयं मय्येव कल्पितम् ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्" ॥

अर्थः—जैसे शींप में रूपा अविद्या करके कल्पित है, उसी प्रकार यह महत्तत्त्व आदि मायामय सारा जगत मुझ में कल्पित है, ऐसा जो वेदान्त वाक्यद्वारा जानता हैं, वह अतिवर्णाश्रमी होता है ।

"चण्डालदेहे पश्वादिशरीरे ब्रह्मविग्रहे ।
अन्येषु तारतम्येन स्थितेषु पुरुषोत्तम ? ॥
व्योमवत्सर्वदा व्याप्तः सर्वसम्बन्धवर्जितः ।
एकरूपो महादेवः स्थितः सोऽहं परामृतः ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्" ।

अर्थः—हे पुरुषोत्तम ! चाण्डाल के देह में, पशु आदि के शरीर में, और ब्राह्मणशरीर में, उसी तरह परस्पर विलक्षणता से स्थित अन्य पदार्थों में, आकाश के समान सदा व्याप्त, एकरूप, जो महान् परमात्मा देव स्थित है, वह मरणधर्म रहित मैं हूं । इस प्रकार जो वेदान्तवाक्य द्वारा जानता है, वह अतिवर्णाश्रमी होता है।

"विनष्टदग्भ्रमस्यापि यथा पूर्वा विभाति दिक् ।
तथा विज्ञानविध्वस्तं जगन्मे भाति तन्नहि ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्"।

अर्थः—जिस पुरुष को दिङ्मोह (दिशा की भ्रान्ति) हो जाती उसे सूर्यादिग्रह की गति अवलोकन से उस मोह के छूट जाने परभी संस्काररूप होने से जैसे प्रतीत होता है, उसी प्रकार, यह विश्व ज्ञान करके नाश होने पर भी मुझ को केवल आभास रूप से भासता है, वस्तुतः जगत कुछ नहीं हैं। इस प्रकार जो वेदान्त वाक्य कर के जानता हैं, वह अतिवर्णाश्रमी होता है।

"यथा स्वप्ने प्रपञ्चोऽयं मयि मायाविजृम्भितः ।
तथा जाग्रत् प्रपञ्चोऽपि मयि मायाविजृम्भितः ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्" ॥

अर्थः—जैसे यह स्वप्न प्रपञ्च मुझ में माया कल्पित है। उसी प्रकार यह जाग्रत् प्रपञ्च भी मुझ में माया कल्पित है, इस प्रकार जो वेदान्तवाक्य द्वारा जानता है, वह अतिवर्णाश्रमी होता है।

"यस्य वर्णाश्रमाचारो गलितः स्वात्मदर्शनात् ।
स वर्णाश्रमान् सर्वानतीत्य स्वात्मनि स्थितः ॥
इति यो वेद वेदान्तैः सोऽतिवर्णाश्रमी भवेत्" ॥

अर्थः—आत्म साक्षात्कार होने के पश्चात् जिस का वर्ण और आश्रम का आचार निवृत्त होगया है। वह पुरुष सब वर्ण तथा आश्रम को अतिक्रम कर अपने आत्मा में स्थित है।

आत्मा का साक्षात्कार द्वारा देहादि अभिमान निवृत्त होने से देह के साथ उस का वर्णाश्रमादि धर्मों का भी उस मुक्त पुरुष को अतिक्रमण हो जाने से वह अतिवर्णाश्रमी होता है। परन्तु उस स्थिति की प्राप्ति के विना प्रमाद, आलस्यादि दोष

वश वर्त्तने वाला, जिस पुरुष ने वर्णाश्रमाचार का त्याग किया है, वह पतित है।

"यस्त्यक्त्वा स्वाश्रमान् वर्णानात्मन्येव स्थितः पुमान् ।
सोऽतिवर्णाश्रमी प्रोक्तः सर्ववेदार्थवेदिभिः" ॥

अर्थः—जो अपने वर्णाश्रम के अभिमान को छोड कर केवल स्वरूप में ही स्थित है, उस को सब वेदान्तवेत्ता पुरुष अतिवर्णाश्रमी कहते हैं।

"न देहो नेन्द्रियं प्राणो न मनो बुद्ध्यहंकृती ।
न चित्तं नैव माया च नच व्योमादिकं जगत् ॥
न कर्त्ता नैव भोक्ता च नच भोजयिता तथा ।
केवलं चित् सदानन्दो ब्रह्मैवाऽऽत्मा यथार्थतः ॥
जलस्य चलनादेव चञ्चलत्वं यथा रवेः ।
तथाऽहङ्कारसंसारादेव संसार आत्मनः ॥
तस्मादन्यगता वर्णा आश्रमा अपि केशव ?।
आत्मन्यारोपिता एव भ्रान्त्या ते नात्मवेदिनः" ॥

अर्थः—आत्मा देह नहीं, इन्द्रिय नहीं, प्राण नहीं, मन नहीं, बुद्धि नहीं, अहङ्कार नहीं, चित्त नहीं, माया नहीं, आकाशादि जगत नहीं, कर्त्ता नहीं, भोक्ता नहीं, भोगवानेवाला नहीं, वह तो यथार्थ दृष्टि से केवल सत् चित् आनन्द ब्रह्मरूप है। जैसे जल के डोलने से प्रतिबिम्बरूप जल में स्थित सूर्य में चञ्चलता प्रतीत होती, उसी प्रकार सारा जगत् अहङ्कार में होके उस के तादात्म्याध्यास से आत्मा में मिथ्या प्रतीत होता। अत एव हे केशव ? वर्ण और आश्रम जो अन्य का [अहङ्कार का] धर्म है, वह केवल अज्ञजन को भ्रान्ति करके आत्मा में आरोपित है; अतएव आत्मज्ञ पुरुषको नहीं।

"न विधिर्न निषेधश्च न वर्ज्यावर्ज्यकल्पना ।
आत्मविज्ञानिनामस्ति तथा नान्यज्जनार्दन ? ॥
आत्मविज्ञानिनां निष्ठामहं वेदाम्बुजेक्षण ? ।
मायया मोहिता मर्त्या नैव जानन्ति सर्वदा ॥
न मांसचक्षुषा निष्ठा ब्रह्मविज्ञानिनामियम् ।
द्रष्टुं शक्या स्वतः सिद्धा विदुषां सैव केशव ? ॥
यत्र सुप्ता जना नित्यं प्रबुद्धस्तत्र संयमी ।
प्रबुद्धा यत्र ते विद्वान् सुषुप्तस्तत्र केशव ? ॥
एवमात्मानमद्वन्द्वं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
नित्यशुद्धं निराभासं चिन्मात्रं परमामृतम् ॥
यो विजानाति वेदान्तैः स्वानुभूत्या च निश्चितम् ।
सोऽतिवर्णाश्रमी प्रोक्तः स एव गुरुरुत्तमः" इति ।
तदेवं "विमुक्तश्च विमुच्यते" इत्यादि श्रुतयो
जीवन्मुक्तस्थितप्रज्ञभगवद्भक्तगुणातीतब्रा-
ह्मणातिवर्णाश्रमिप्रतिपादकस्मृतिवाक्यानि
च जीवन्मुक्तिसद्भावे प्रमाणानीतिस्थितम् ।

इति श्रीमद्विद्यारण्यप्रणीते जीवन्मुक्ति-
विवेके प्रथमं जीवन्मुक्तिप्रमाण-
प्रकरणम् ॥ १ ॥

अर्थः—आत्मज्ञानी जीवन्मुक्त पुरुष को विधि नहीं, निषे-
ध नहीं, वर्ज्य, अवर्ज्य की कल्पना नहीं, उसी प्रकार हे जनार्द-
न ! अन्य लौकिक व्यवहार भी नहीं, हे कमल समाननेत्रवाले
विष्णो ? आत्मज्ञानी की निष्ठा को मैं जानता हूं, माया के मो-
हवशतः जीव किसी काल में भी नहीं जान सकता । ब्रह्मवित्

पुरुष की यह निष्ठा केवल मांसमय नेत्र करके देखी नहीं जा
सकती । हे केशव ? विद्वान् पुरुष की यह स्वतः सिद्ध निष्ठा है ।
जिस समय मनुष्य सोता है, उस समय विद्वान जागता है, और
जिस समय विद्वान् सोता है, उस समय मनुष्य जागता है । इस
भांति अद्वितीय, निर्विकार, निरावरण, नित्यशुद्ध, आभासरहित,
चैतन्यस्वरूप, और सदा मरणधर्मरहित ऐसे आत्मा को जो
पुरुष वेदान्तवाक्यद्वारा और अपने अनुभव से साक्षात् अनुभव
करता है, वहीं निश्चय अतिवर्णाश्रमी कहलाता है और वहीं
उत्तम गुरु है ।

इस रीति से 'विमुक्तश्च विमुच्यते' इत्यादि पूर्वोक्त श्रुतिवच-
न का तथा जीवन्मुक्त, गुणातीत, ब्राह्मण, और अतिवर्णाश्रमी
के स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले स्मृतिवाक्य जीवन्मुक्ति के
सद्भाव में प्रमाणरूप से हैं ।

इस भांति जीवन्मुक्तिप्रमाण प्रकरण समाप्त हुआ ।

॥ श्रीः ॥

अथ द्वितीयं वासनाक्षयप्रकरणम् ।

अथ जीवन्मुक्तिसाधनं निरूपयामः । तत्त्वज्ञानमनोनाशवासनाक्षयास्तत्साधनम् । अत एव वासिष्ठरामायण उपशमप्रकरणस्यावसाने "जीवन्मुक्तशरीराणाम्" इत्यस्मिन्प्रस्तावे वसिष्ठ आह—

"वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते ? ।
समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदायिन" इति॥

अन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह—

अर्थः—अब जीवन्मुक्ति के साधन का निरूपण करते हैं। तत्त्वज्ञान वासनाक्षय और मनका नाश ये तीनों मिलकर जीवन्मुक्ति के साधन हैं । इसी लिये योगवासिष्ठ के उपशम प्रकरण के अन्त में जीवन्मुक्ति का वर्णन है—

हे महामति रामचन्द्र ! वासनाक्षय, तत्त्वज्ञान, और मनोनाश को दीर्घकालपर्य्यन्त साथ २ सेवने से ये फल देने वाले होते हैं ।

वासनाक्षयादि तीन साधनों का अन्वय (इन तीन के अभ्यास से जीवन्मुक्तिरूप फल होता है) बता या, अब इन का व्यतिरेक (इन तीनों का साथ २ अभ्यास न करने से पूर्वोक्त फल नहीं होता) कहते हैं—

"त्रयमेते समं यावन्न स्वभ्यस्ता मुहुर्मुहुः ।
तावन्न पदसंप्राप्तिर्भवत्यपि समाशतैः" इति ॥

समकालाभ्यासाभावे बाधकमाह—

अर्थः—जबतक इन तीनों का वार २ भली भांति एक साथ अभ्यास न किया जावे, तब तक सैकड़ों वर्ष में भी परमात्मपद की प्राप्ति नहीं होती ।

तीनों का एक साथ अभ्यास न किये जाने पर उस में बाध (रुकावट) बतलाते हैं—

"एकैकशो निषेव्यन्ते यद्येते चिरमप्यलम् ।
तन्न सिद्धिं प्रयच्छन्ति मन्त्राः सङ्कलिता इव" इति॥

यथा सन्ध्यावन्दने मार्जनेन सह विनियुक्तानां "आपो हिष्ठा" इत्यादीनां तिसृणामृचां मध्ये प्रतिदिनमेकैकस्या ऋच पाठे शास्त्रीयानुष्ठानं न सिध्यति । यथा वा षडङ्गमन्त्राणामेकैकमन्त्रेण न सिद्धिः । यथावा लोके शाकसूपौदनादीनामेकैकेन न भोजनसिद्धिस्तद्वत् । चिराभ्यासस्य प्रयोजनमाह—

अर्थः—यदि इन में से एक २ का अलग २ बहुत दिनों तक भली भांति सेवन किया जाय तौ भी वे, एक कर्म में सह विनियुक्त मन्त्रों के समान फल देते नहीं ।

जैसे सन्ध्यावन्दन में मार्जन के लिये एक साथ विनियोग कियी हुई तीन ऋचायें हैं, उन में से प्रतिदिन एक २ ऋचा को पढने से यथा शास्त्र मार्जन कर्म सिद्ध नहीं होता । तथा जैसे श्रीसदाशिव के ऊपर अभिषेक करने में विनियुक्त षडङ्ग मन्त्रों में से प्रतिदिन एक २ मन्त्र करके अभिषेक करने से अभिषेक रूप शास्त्रीय कर्म की यथार्थ सिद्धि नहीं होती । और जैसे जगत में शाक, दाल, भात, आदि को में से केवल एक ही पदार्थ

के आहार से यथार्थ भोजन की सिद्धि नहीं होती है। उसी प्र-
कार वासना क्षय तत्त्वज्ञान, और मन के नाश में से एक २ का
अलग २ सेवन करने से जीवन्मुक्तिरूप अलौकिक फल की
सिद्धि नहीं होती है।

चिरकाल तक अभ्यास करने का प्रयोजन कहते हैं—

"त्रिभिरेतैश्चिराभ्यस्तैर्हृदयग्रन्थयो दृढाः ।
निःशङ्कमेव त्रुट्यन्ति बिसच्छेदाद्गुणा इव" इति॥

तस्यैव व्यतिरेकमाह—

अर्थः—तत्त्वज्ञान आदि पूर्वोक्त तीनों के चिरकाल तक
अभ्यास करने से हृदय की दृढ गांठें, जैसे कमल दण्ड को तो-
डने से उसके सूत टूट जाते, उसीप्रकार टूट जाती इस में कोई
सन्देह नहीं।

उसी पूर्वोक्त अर्थ को व्यतिरेक के द्वारा बतलाते हैं—

"जन्मान्तरशताभ्यस्ता राम ? संसारसंस्थितिः ।
सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित्" इति॥

न केवलमेकैकाभ्यासे फलाभावः किन्तु तत्स्व-
रूपमपि न सिध्यतीत्याह—

अर्थः—हे राम ! अनेक जन्मों से परिचित जो संसार की
संस्थिति है वह तत्त्वज्ञान आदि तीनों के दीर्घकाल तक अभ्यास
बिना कभी नहीं क्षय को प्राप्त हो सकती है।

तत्त्वज्ञान, मनोनाश, और वासनाक्षय में से केवल एक २
का अलग २ अभ्यास करने से कोई फल नहीं होता, इतना ही
नहीं बल्की उस प्रत्येक स्वरूप की भी सिद्धि नहीं होती,
इस बात को कहते हैं।

"तत्त्वज्ञानं मनोनाशो वासनाक्षय एव च ।

मिथः कारणतां गत्वा दुःसाध्यानि स्थितानि
हि" इति ॥

त्रयाणामेतेषां मध्ये द्वयोर्द्वयोर्मेलनेन त्रीणि
द्वन्द्वानि भवन्ति। तत्र मनोनाशवासनाक्षय-
द्वन्द्वस्यान्योन्यकारणत्वं व्यतिरेकमुखेनाऽऽह—

अर्थः—तत्त्वज्ञान, मनोनाश, और वासनाक्षय, ये तीनों
परस्पर कारणता को पाकर, वे प्रत्येक असाध्य हैं।

इन तीनों में से दो २ का योग करने से तीन युग्म (जोडा)
बनते हैं। उस में मनोनाश वासनाक्षय नाम के जोडे का पर-
स्पर कारणता को व्यतिरेक *द्वारा बतलाते हैं।

"यावद्विलीनं न मनो न तावद्वासनाक्षयः ।
न क्षीणा वासना यावच्चित्तं तावन्न शाम्यति" ॥

प्रदीपज्वालासन्तानवद्वृत्तिसन्तानरूपेण प-
रिणममानमन्तःकरणद्रव्यं मननात्मकत्वान्म-
न इत्युच्यते । तस्य नाशो नाम वृत्तिरूप-
परिणामं परित्यज्य निरुद्धत्वाकारेण परि-
णामः । तथाच पतञ्जलिर्योगशास्त्रे सूत्रया-
मास—

"व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ
निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः" इति॥

व्युत्थानसंस्कारा अभिभूयन्ते । निरोधसं-
स्काराः प्रादुर्भवन्ति। निरोधयुक्तः क्षणश्चि-
त्तेनान्वीयते। सोऽयं मनोनाश इत्यवगन्तव्य-

* परस्पर के सद्भाव को 'अन्वय' और परस्पर के अभाव से
परस्पर के अभावको 'व्यतिरेक' कहते हैं।

म् । पूर्वापरपरामर्शमन्तरेण सहसोत्पद्यमान-
स्य क्रोधादिवृत्तिविशेषस्य हेतुश्चित्तगतः सं-
स्कारो वासना । पूर्वपूर्वाभ्यासेन चित्ते वा-
स्यमानत्वात् । तस्याश्च वासनायाः क्षयो नाम
विवेकजन्यायां शान्तिदान्तिशुद्धवासनायां
दृढायां सत्यपि बाह्यनिमित्ते क्रोधाद्यनुत्प-
त्तिः तत्र मनोनाशाभावे वृत्तिषूत्पद्यमानासु
कदाचिद्बाह्यनिमित्तेन क्रोधाद्युत्पत्तेर्नास्ति
वासनाक्षयः । अक्षीणायां च वासनायां
तथैव वृत्त्युत्पादनान्नास्ति मनोनाशः । तत्त्व-
ज्ञानमनोनाशयोः परस्परकारणत्वं व्यतिरे-
कमुखेनाऽऽह—

अर्थः—जब तक मन का विलय नहीं होता, तब तक वासनाओं का क्षय नहीं होता, उसी प्रकार जब तक वासनायें क्षीण नहीं होती, तब तक चित्त भी शान्त नहीं होता है ।

दीप के टेम के समान वृत्तिनामक टेम या सन्तानरूप में परिणाम को प्राप्त हो अन्तःकरण नामक द्रव्य मननरूप होने से मन कहलाता है । इस का नाश अर्थात् वृत्तिरूप परिणाम निवृत्त होने से उस का निरुद्धाकार परिणाम हो जाता है ।

यह बात भगवान् पतञ्जलि ने सूत्र में कही है--

जब चित्तगत व्युत्थानसंस्कार (स्फुरण होना संस्कार) शान्त हो जाता, और निरोध संस्कार प्रकट होता है, तब चित्त निरोधयुक्त के अनुकूल होता है, यह चित्त का निरोधपरिणाम कहाता है ।

इस प्रकार के चित्त के निरोध परिणाम को ही मनोनाश

समझो । पूर्वापर विचार किये बिना अकस्मात् अन्तःकरणमें से उठी हुई क्रोधादिवृत्तियों का हेतुरूप जो चित्तगत संस्कार है उस की वासना यह संज्ञा है । पूर्व पूर्व के अभ्यास द्वारा संस्कार चित्त में स्थित होता है, अतएव संस्कार वासना कहाती है । उस वासना का क्षय अर्थात् विवेकजन्य शम दम आदि शुद्ध वासनाओं के दृढ होने से बाह्य उद्बोधक निमित्त समीप होने पर भी क्रोधादि की अनुत्पत्ति होती है । अब जो मनोनाश के अभाव से वृत्तियां उत्पन्न होती हों तो कदाचित् बाह्य निमित्त करके क्रोधादि की उत्पत्ति से वासना का क्षय नहीं होता । उसी प्रकार वासना का क्षय न हो तो वासना वशतः वृत्तियों का स्फुरण होने से मन का नाश नहीं होता है । इस लिये दोनों का एकसाथ अभ्यास करना आवश्यक है ।

तत्त्वज्ञान और मनोनाश की परस्पर कारणता व्यतिरेक द्वारा बतलाते हैं—

यावन्न तत्त्वविज्ञानं तावच्चित्तशमः कुतः ।
यावन्न चित्तोपशमो न तावत्तत्त्ववेदनं" इति ॥

इदं सर्वमात्मैव प्रतीयमानं रूपरसादिकं ज-
गन्मायामयं न त्वेतद्वस्तुतोऽस्तीति निश्चय-
स्तत्त्वज्ञानम् । तस्याऽनुत्पत्तौ रूपरसादिवि-
षयाणां सद्भावे सति तद्गोचराश्चित्तवृत्तयो
न निवारयितुं शक्यन्ते । यथा प्रक्षिप्यमाणे-
ष्विन्धनादिषु वन्हिज्वाला न वार्यन्ते तद्वत् ।
असति च चित्तोपशमे वृत्तिभिर्गृह्यमाणेषु
रूपादिषु सत्सु "नेहनानाऽस्ति किञ्चन"
इति श्रुते "यजमानः प्रस्तर" इत्यादेरिव प्र-

त्यक्षविरोधशङ्कया ब्रह्माद्वितीयमित्येतादृश-
स्तत्त्वनिश्चयो नोदियात् ।

वासनाक्षयतत्त्वज्ञानयोः परस्परकारणत्वं व्य-
तिरेकमुखेनाऽऽह—

अर्थः—जब तक तत्त्वज्ञान नहीं होता तब तक चित्त की शान्ति कहां से ? और जब तक चित्त की शान्ति नहीं तब तक तत्त्वज्ञान भी नहीं होता है ।

'यह सब जो कुछ प्रतीत होता है, वह आत्मा ही है, रूप रसादि अनेक वस्तु आत्मक जगत्, मायामय है, वस्तुतः वह है ही नही, इस प्रकार जो निश्चय उस का नाम 'तत्त्वज्ञान' है । जब तक तत्त्वज्ञान उत्पन्न नहीं होता तब तक रूपरसादि विषयों का सद्भाव ज्यों का त्यों बना रहने से, उस २ विषय का वारण हो नहीं सकता । जैसे अग्नि में इन्धन जब तक डालते जाते तब तक उस की ज्वाला की शान्ति नहीं होती उसी प्रकार "यजमानः प्रस्तरः" (दर्भमुष्टि यजमान है) इस वाक्य के सुनने द्वारा पुरुष को दर्भमुष्टि को अचेतन का और यजमान को चेतन का अनुभव होने से, उसको जैसे 'यजमानः प्रस्तरः' इस वाक्य के अर्थ में प्रत्यक्ष विरोध प्रतीत होता है, उसी प्रकार जब तक जिस पुरुष के मन का नाश नहीं होता है, तब तक उस पुरुष को प्रवृत्ति द्वारा विषयों को साक्षात् अनुभव होने से 'नेह नानास्ति किञ्चन ' (यहां कुछ भी नाना वस्तु नहीं है) इस श्रुति में प्रत्यक्ष विरोध की शङ्का के उत्पन्न होने के कारण पूर्वोक्त श्रुति वाक्य से " अद्वितीय ब्रह्म है, उस से भिन्न अन्य किसी पदार्थ की सत्ता है ही नहीं " इस प्रकार का तत्त्व निश्चय नहीं होता अत एव मन का नाश एवं तत्त्वज्ञान की पर-

स्पर कारणता व्यतिरेक द्वारा कथन कियी है ।

"यावन्न वासनानाशस्तावत्तत्त्वागमः कुतः ।
यावन्न तत्त्वसम्प्राप्तिर्न तावद्वासनाक्षयः " इति॥

क्रोधादिवासनास्वनष्टासु शमादिसाधना-
भावान्न तत्त्वज्ञानमुदेति । अज्ञाते चाद्वितीय-
ब्रह्मतत्त्वे क्रोधादिनिमित्तस्य सत्यत्वभ्रमान-
पायान्न वासना हीयते । तथोक्तानां त्रयाणां
द्वन्द्वानामन्योन्यकारणत्वमन्वयमुखेन वयमु-
दाहरामः । मनसि नष्टे सति संस्कारोद्बोध-
कस्य बाह्यनिमित्तस्याप्रतीतौ वासना क्षीय-
ते, क्षीणायां च वासनायां हेत्वभावेन क्रो-
धादिवृत्त्यनुदयान्मनो नश्यति । तदिदं मनो-
नाशवासनाक्षयद्वन्द्वम् । " दृश्यते त्वग्र्यया
बुद्ध्या " इतिश्रुतेरात्मैक्याभिमुखवृत्तेर्दर्शं-
नहेतुत्वादितरकृत्स्नवृत्तिनाशस्य तत्त्वज्ञान-
हेतुत्वमवगम्यते । सति च तत्त्वज्ञाने मिथ्या-
भूते जगति नरविषाणादाविव धीवृत्त्यनु-
दयादात्मनश्च दृष्टत्वेन पुनर्वृत्त्यनुपयोगान्नि-
रिन्धनाग्निवन्मनो नश्यति । तदिदं मनोनाश-
तत्त्वज्ञानयोर्द्वन्द्वम् । तत्त्वज्ञानस्य क्रोधादि-
वासनाक्षयहेतुतां वार्तिककार आह—

अर्थः—जब तक वासना का क्षय नहीं होता, तब तक तत्त्वज्ञान की प्राप्ति कहां से हो सकती? नहीं होती ? उसी प्रकार जब तक तत्त्वज्ञान नहीं होता तब तक वासना का भी क्षय नहीं होता है ।

जब तक क्रोधादिवासना का नाश नहीं होता तब तक ज्ञान का शम दमादि साधनों के अभाव होने से तत्त्वज्ञान का उदय होता ही नहीं। उसी प्रकार जब तक अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व का साक्षात् अनुभव नहीं होता तब तक क्रोधादि वृत्तियों के निमित्त में से सत्यता की भ्रान्ति निवृत्त न होने से वासना का भी क्षय नहीं होता है। मनोनाश और वासनाक्षय का युग्म, तत्त्वज्ञान और मनोनाश का युग्म, और वासनाक्षय तथा तत्त्वज्ञान का युग्म इन तीन द्वन्द्वों की परस्पर कारणता को व्यतिरेक द्वारा सप्रमाण बतलाया है। अब इन तीनों की परस्पर कारणता को व्यतिरेक द्वारा बतलाते हैं।

जब मन का नाश हो जाता, तब संस्कारों का उद्बोधक बाह्य निमित्तों की प्रतीति न होने से वासना का नाश होता है। उसी प्रकार वासना के क्षय होने से क्रोधादिवृत्तियों को प्रकट करने वाले हेतुओं (वासनाओं) का नाश होने से वह २ वृत्तियां उदित नहीं होती अतएव मन भी नाश को प्राप्त होता है। यह मनोनाश और वासना क्षय के नाम के युग्म की परस्पर कारणता बतलायी गयी। 'दृश्यतेत्व०' 'एकाग्र हुई बुद्धिद्वारा आत्मसाक्षात्कार होता है' इस श्रुति से अद्वितीय आत्मा को अभिमुख होनेवाली वृत्ति आत्मसाक्षात्कार में कारणरूप होने से इतर सब वृत्तियों का नाश इस तत्त्वज्ञान का कारण है ऐसा प्रतीत होता है। तत्त्वज्ञान होने के अनन्तर नरविषाण की नाईं मिथ्या जगत में बुद्धिवृत्तिका उदय नहीं होता और आत्मा का तो साक्षात्कार हो ही चुका है अतएव उस को पुनः वृत्ति का उपयोग नहीं। अत एव जैसे इन्धन के अभाव से अग्नि अपने आप शान्त हो जाता इसी प्रकार वृत्ति को भी किसी भी विषय में जाने का प्रयोजन न होने से स्वयं मन शान्त हो

जाता है इस प्रकार तत्त्वज्ञान और मनोनाश के युग्म में भी परस्पर कारणता बतलायी गयी।

तत्त्वज्ञान इस क्रोधादिवासना के क्षयका कारण है, ऐसा वार्त्तिककार ने कहा है—

"रिपौ बन्धौ स्वदेहे च समैकात्म्यं प्रपश्यतः।
विवेकिनः कुतः कोपः स्वदेहावयवेष्विव" इति॥

क्रोधादिवासनाक्षयरूपस्य शमादेर्ज्ञानहेतुत्वं प्रसिद्धम्। वसिष्ठोऽपि—

अर्थः—प्रत्येक अवयवों का भिन्न २ अभिमानी नहीं है। परन्तु अवयव समुदायरूप सम्पूर्ण शरीर का अभिमानी मैं एक हूं, इस प्रकार जो समझता है, वह पुरुष, एक अङ्गद्वारा अन्य अङ्ग को मारने आदि पर, इस मारने वाले अवयव पर जैसे क्रोध नहीं करता उसी प्रकार विवेकी पुरुष, वह जो शत्रु में, बन्धु में, और अपने शरीर में एक ही आत्मा का अनुभव करता है, उसे शत्रु आदिक पर क्रोध कहां से हो? नहीं होता है।

क्रोधादिवासना का क्षय रूप शमादिगुण ज्ञान का साधक है, यह बात तो प्रसिद्ध है। भगवान् वसिष्ठ मुनि भी कहते हैं कि—

"गुणाः शमादयो ज्ञानाच्छमादिभ्यस्तथा ज्ञता।
परस्परं विवर्धेते द्वे पद्मसरसी इव" इति॥

तदिदं वासनाक्षयतत्त्वज्ञानयोर्द्वन्द्वम्। तत्त्वज्ञानादीनां त्रयाणां सम्पादने साधनमाह—

अर्थः—ज्ञान से शमादिगुणों की प्राप्ति होती है, और शमादि गुणों से ज्ञानीपन प्राप्त होता है। इस प्रकार से कमल और सरोवर के जल की भांति दोनों एक दूसरे के आश्रय से बढ़ता हैं।

यह वासना क्षय और तत्त्वज्ञान का युग्मभाव भी बतला-या। अब तत्त्वज्ञान आदि तीनों को सम्पादन करने का साधन कहते हैं—

"तस्माद् राघव! यत्नेन पौरुषेण विवेकिना।
भोगेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा त्रयमेतत् समाश्रयेत्"

इति॥

पौरुषो यत्नः केनाप्युपायेनावश्यं सम्पादयिष्यामीत्येवंविधोत्साहरूपो निर्बन्धः। विवेको नाम विभज्य निश्चयः। तत्त्वज्ञानस्य श्रवणादिकं साधनं, मनोनाशस्य योगः। वासनाक्षयस्य प्रतिकूलवासनोत्पादनामिति। भोगेच्छायाः स्वल्पाया अभ्युपगमे—

"हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते"

इति न्यायेनातिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात् दूरत इत्युक्तम्। ननु पूर्वत्र विविदिषासंन्यासस्य तत्त्वज्ञानं फलं, विद्वत्संन्यासस्य जीवन्मुक्तिर्व्यवस्था वर्णिता, तथा च सति प्रथमतस्तत्त्वज्ञानं सम्पाद्य पश्चाद्विद्वत्संन्यासं कृत्वा जीवतः स्वस्य बन्धरूपयोर्वासनामनोवृत्त्योर्विनाशः सम्पादनीय इति प्रतिभाति, अत्र तु तत्त्वज्ञानादीनां सहैवाभ्यासो नियम्यतेऽतः पूर्वोत्तरविरोध इति चेत्। नायं दोषः। प्रधानोपसर्जनभावेन व्यवस्थोपपत्तेः। विविदिषासंन्यासिनस्तत्त्वज्ञानं प्रधानम्। मनोनाशवासनाक्षयावुपसर्जनीभूतौ। विद्वत्संन्यासिन-

स्तु तद्वैपरीत्यम्। अतः सहाभ्यास उभयत्राऽप्यविरुद्धः। नच तत्त्वज्ञानोत्पत्तिमात्रेण कृतार्थस्य किमुत्तरकालीनेनाभ्यासप्रयासेनेति शङ्कनीयम्। जीवन्मुक्तिप्रयोजननिरूपणेन परिहरिष्यमाणत्वात्। ननु विद्वत्संन्यासिनो वेदनसाधनश्रवणाद्यनुष्ठानवैफल्याद्वेदनस्य च स्वरूपेण कर्तुमन्यथा कर्त्तुमशक्यस्यानुष्ठेयत्वादुपसर्जनेनाप्युत्तरकालीनोऽभ्यासः कीदृश इति चेत्, केनापि द्वारेण पुनः पुनस्तत्त्वानुस्मरणमिति ब्रूमः। तादृशश्चाभ्यासो लीलोपाख्याने दर्शितः।

अर्थः—इस लिये हे राघव! विवेकी पुरुष पुरुषप्रयत्न द्वारा अपनी भोग की सारी इच्छाओं को सर्वथा त्याग कर तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय का भली भांति आश्रय करे।

'किसी भी प्रकार मैं अवश्य इष्ट फल को सम्पादन करूंगा' इस प्रकार उत्साहरूप जो निश्चय वह 'पुरुष प्रयत्न' कहाता है। विवेचन पूर्वक जो निश्चय उस का नाम 'विवेक' है। तत्त्वज्ञान का, श्रवण, मनन, और निदिध्यासन साधन है। मनोनाशका साधन योग है। और वासनाक्षय का उपाय विरोधी वासना का उपजाना है। "घृतद्वारा जैसे बुझा हुआ अग्नि पुनः जलने लगता उसी प्रकार तृष्णा पुनः बढ जाती है"। इस न्याय से थोडे भोग की इच्छा स्वीकार करने पर वह इतनी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है, कि उस का निवारण कठिन वा अशक्य हो पडता है, अतएव उसका निःशेषतया त्याग करे ऐसा कहा है।

शङ्का—विविदिषा संन्यास का 'तत्त्वज्ञान' फल है, और विद्वत्संन्यास का 'जीवन्मुक्ति फल है, ऐसी व्यवस्था पूर्व कर आये हैं, इस पूर्वोक्त कथन से यह प्रतीत होता है कि तत्त्वज्ञान सम्पादन कर जीवितपर्यन्त बन्धनरूप वासना और मनोनाश वृत्तियों का नाश करे और यहां तो तत्त्वज्ञान आदि तीनों का एक साथ अभ्यास करे ऐसा नियम करते हैं। अतएव पूर्वापर विरोध आता है।

उत्तरः—विविदिषा संन्यासी को तत्त्वज्ञान का अभ्यास प्रधानता से करना चाहिये, और वासनाक्षय, मनोनाश का अभ्यास गौणभाव से करना योग्य है, और विद्वत्संन्यासी को इस से उलटा है। अर्थात् उस को तत्त्वज्ञान का अभ्यास गौणभाव से और वासनाक्षय, एवं मनोनाश के निमित्त प्रधानता से अभ्यास करना कर्त्तव्य है, अत एव विद्वत्संन्यासी को गौणप्रधान भाव से तीनों को एकसाथ अभ्यास करने में किसी प्रकार विरोध नहीं आता।

शङ्काः—तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति मात्र से ही कृतकृत्यता को प्राप्त हुए पुरुष को फिर मनोनाश और वासनाक्षय के लिये परिश्रम किस लिये करना चाहिये?

उत्तरः—इस प्रश्न का समाधान जीवन्मुक्ति के प्रयोजन के निरूपण समय आगे करें गे।

शङ्काः—विद्वत्संन्यासी को पूर्वकाल में ही ज्ञान प्राप्त हुआ है, अतएव उस को श्रवणादिसाधनों का अनुष्ठान व्यर्थ है, और तत्त्वज्ञान स्वतः या श्रवणादि व्यतिरिक्त साधनों द्वारा होता नहीं, अतएव तत्त्वज्ञान का गौणभाव से अभ्यास भी कैसा होता है?

उत्तरः—किसी प्रकार बार २ तत्त्व का स्मरण करना यहां अभ्यास समझो।

यह अभ्यास योगवासिष्ठ रामायण के लीला नामक उपाख्यान में कहा गया है—

"तच्चिन्तनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम्।
एतदेकपरत्वं च ज्ञानाभ्यासं बिदुर्बुधाः॥
सर्गादावेव नोत्पन्नं दृश्यं नास्त्येव तत्सदा।
इदं जगदहं चेति बोधाभ्यासं विदुः परम्" इति॥

मनोनाशवासनाक्षयाभ्यासावपि तत्रैव दर्शितौ—

अर्थः—उसी का चिन्तन, उसी का कथन, परस्पर उसी का बोधन, और उसी के विषय में परायण रहना, उसे विद्वान् लोग ब्रह्म का अभ्यास जानते हैं। यह दृश्य जगत् और मैं सृष्टि के आदि काल में ही उत्पन्न न हुआ और तीनों काल में हैं नहीं, इस प्रकार के विचार का नाम श्रेष्ठ ब्रह्माभ्यास कहते हैं।

मनोनाश और वासनाक्षय का अभ्यास भी लीला आख्यान में ही देखलाया है—

"अनन्ताभावसम्पत्तौ ज्ञातुर्ज्ञेयस्य वस्तुनः।
युक्त्या शास्त्रैर्यतन्ते ये ते तत्राभ्यासिनः स्थिताः"
इति॥

ज्ञातृज्ञेययोर्मिथ्यात्वधीरभावसम्पत्तिः। स्वरूपेणाप्यप्रतीतिरत्यन्ताभावसम्पत्तिः। युक्तिर्योगः। सोऽयं मनोनाशाभ्यासः।

अर्थः—'जो पुरुष, ज्ञाता और ज्ञेय वस्तु का अत्यन्त अभाव की प्रतीति होने के निमित्त, शास्त्र तथा युक्ति द्वारा प्रयत्न करता हैं, उस का नाम अभ्यासी है।

ज्ञाता और ज्ञेय के विषय में मिथ्यात्वबुद्धि यह उस के अभाव की प्रतीति है, और उस के स्वरूप की भी अप्रतीति उस ज्ञाता और ज्ञेय की अत्यन्ताभाव की प्रतीति की गणना में है। युक्ति अर्थात् योग साधन समझना। योगाभ्यास और सत् शास्त्रों के अभ्यास से जो ज्ञाता और ज्ञेयादि सारे संसार की अप्रतीति होने का यत्न करता है, उसी का नाम ब्रह्माभ्यास है। सो इसप्रकार का अभ्यास, मनोनाश का अभ्यास है।

“दृश्यासम्भवबोधेन रागद्वेषादितानवे ।
रतिर्नवोदिता याऽसौ ब्रह्माभ्यासः स उच्यते”
इति ॥

सोऽयं वासनाक्षयाभ्यासः । तेष्वेतेषु त्रिष्वभ्यासेषु साम्येन प्रतीयमानेषु प्रधानोपसर्जनभावेन न विवेक्तुं शक्यत इति चेत् । नैवम् । प्रयोजनानुसारेण विवेक्तुं शक्यत्वात् । मुमुक्षोः पुरुषस्य जीवन्मुक्तिर्विदेहमुक्तिश्चेति प्रयोजनद्वयम् । अतएव दैवसम्पदा मोक्षः, आसुरसम्पदा बन्धः । एतच्च षोडशाध्याये भगवताऽभिहितम् ।

अर्थः—दृश्य के असम्भव का ज्ञान होने से रागद्वेषादि क्षीण हुए विषय में रति का उदय नहीं हो पाता, इस का नाम ब्रह्माभ्यास है। इस को वासनाक्षय का अभ्यास भी कहते हैं।

शङ्काः—ये तीनों प्रकार के अभ्यास एक से जान पड़ते अत एव इस का अभ्यास प्रधान और इस का अभ्यास गौण है, इस का विवेक किस तरह हो सकता ?

समाधानः—प्रयोजन वशतः उन का विवेक हो सकता है,

वह इस भांति कि—

मुमुक्षु पुरुष को जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति दो प्रयोजन है। इसी लिये “विमुक्तश्च विमुच्यते” ऐसा श्रुति भी कहती है। अत एव दैवी सम्पत्ति द्वारा मोक्ष होता एवं आसुरी सम्पत्ति से बन्धन होता है, यह बात भगवद्गीता के १६ वें अध्याय में श्रीकृष्णभगवान् ने कथन किया हैं—

“दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायाऽऽसुरी मता”
इति ॥

ते च सम्पदौ तत्रैवाभिहिते—

अर्थः—दैवी सम्पत्ति मोक्ष के लिये और आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानली है।

इन दो प्रकार की सम्पत्तियों का वर्णन गीताके १६ वें अध्याय में किया गया है—

“अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ ! सम्पद मासुरीम्”
इति ॥

पुनरप्याध्यायपरिसमाप्तेरासुरसम्पत्प्रपञ्चिता । तत्राशास्त्रीयायाः स्वभावसिद्धया आसुरसम्पदो दुर्वासनायाः शास्त्रीयया पुरुषप्रय-

नसाध्यया दैवसम्पदा सद्वासनया क्षये सति जीवन्मुक्तिर्भवति । वासनाक्षयवन्मनोनाशस्यापि जीवन्मुक्तिहेतुत्वं श्रूयते ।

अर्थः—श्रीभगवान् बोले—अभय, चित्त की शुद्धि, ज्ञान प्राप्ति का उद्योग, दान, इन्द्रियों का संयम, यज्ञ, वेदाध्ययन, तप, आर्जव (सीधापन) अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, (उदारता) शान्ति, चुगली न करनी, प्राणियों पर दया, विषयों में लोलुप न होना, मृदुता, लज्जा, चपलता का त्याग, प्रौढता, क्षमा, धीरता, शौच [बाहर भीतर से शुद्धि] अद्रोह, और अनतिमानिता [आपे में पूज्यता की भावना का अभाव अर्थात् मैं अधिक आदरणीय हूं' इस प्रकार की दुर्भावना से रहित होना] ये सब हे भारत ! दैवी सम्पत्ति भोगने के निमित्त जन्म धरने वालों को प्राप्त होते हैं । हे पार्थ ! दम्भ, गर्व, मान, क्रोध, कठोरपन, और अज्ञान, ये सब आसुरी सम्पत्ति भोगने के लिये जन्मने वाले पुरुषों को प्राप्त होते हैं ।

इस आसुरी सम्पत्ति का वर्णन भगवद्गीता अ० १६ की समाप्ति तक किया गया है।शास्त्रीय पुरुषार्थ से साध्य शुभ वासनारूप दैवीसम्पत्ति द्वारा जब अशास्त्रीय स्वाभाविक दुर्वासनारूप आसुरी सम्पत्ति का क्षय हो जाता है, तब जीवन्मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

वासनाक्षय के समान मनोनाश भी जीवन्मुक्ति का कारण है, यह वार्त्ता श्रुति में कही गयी है—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥
यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते ।

अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥
निरस्तविषयासङ्गं सन्निरुद्धं मनो हृदि ।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥
तावदेव निरोद्धव्यं यावद्धृदिगतं क्षयम् ।
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषो न्यायस्य विस्तरः"
इति ॥

बन्धो द्विविधः तीव्रः मृदुश्च । तत्राऽऽसुरसम्पत्साक्षादेव क्लेशहेतुत्वात्तीव्रोबन्धः।द्वैतभावप्रतीतिस्तु स्वयमक्लेशरूपत्वादासुरसम्पदुत्पादकत्वाच्च मृदुर्बन्धः तत्र वासनाक्षयेण तीव्रबन्ध एव निवर्त्यते मनोनाशेन तूभयम् । तर्हि मनोनाशेनैवालं वासनाक्षयस्तु निरर्थक इति चेन्न । भोगहेतुना प्रबलेन प्रारब्धेन व्युत्थापिते मनसि वासनाक्षयस्य तीव्रबन्धनिवारणार्थत्वात् । भोगस्य मृदुबन्धेनाप्युपपत्तेः। तामसवृत्तयस्तीव्रबन्धः। सात्त्विकराजसवृत्तिद्वयं मृदुबन्धः । एतच्च—

अर्थः—मनुष्य को बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही है, विषय में आसक्त मन बन्धन का कारण है, और निर्विषय होने से मन मुक्ति का हेतु है, जिस कारण इस निर्विषय मन की मुक्ति मान ली है, इसी लिये मुमुक्षु पुरुष को नित्य अपने मन को विषय से अलग रखना चाहिये विषय संसर्गरहित हृदय में निरोध करने पर मन जब उन्मनी अवस्था को प्राप्त होता है, उस समय, वह परम पद ब्रह्म रूप हो जाता है । जब तक उस का क्षय हो तब तक उसका हृदय देश में निरोध करे । 'मन

का निरोध ' यही ज्ञान और ध्यान है, उस के सिवाय और सब तो युक्तियों का विस्तार है।

तीव्रबन्ध और मृदुबन्ध इस भांति दो प्रकारका बन्ध है। इनमें से आसुरी सम्पत्ति साक्षात् क्लेश का हेतु होने से तीव्र बन्ध की गिनती में है और द्वैतमात्र की अप्रतीति स्वतः क्लेश रूप नहीं, तो भी आसुरी सम्पत्ति को उपजानेवाली है। इस लिये वह मृदुबन्ध माना जाता। इनमें वासना के क्षय से तीव्र बन्ध निवृत्त होता और मनोनाश से दोनों प्रकार के बन्धनों की निवृत्ति होती है।

शङ्का:—यदि ऐसा है, तो मन के नाश ही से बस है, वासनाक्षय का कोई प्रयोजन नहीं।

समाधानः—भोग देने वाले प्रबल प्रारब्ध द्वारा जब मन को व्युत्थान होता, उस समय तीव्र बन्ध के निवारण के लिये वासनाक्षय की अपेक्षा होती है। क्यों कि भोग की सिद्धि तो विषय की प्रतीतिरूप मृदुबन्ध से भी हो सकती है। तामसी वृत्तियां तीव्रबन्ध है। सात्त्विक और राजस वृत्तियां मृदुबन्ध है। यह वार्त्ता—

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः"।

इत्यत्र स्पष्टीकृतम्। एवञ्च सति मृदुबन्धस्याभ्युपेयत्वात् तीव्रबन्धस्य वासनाक्षयेणैव निवृत्तेरनर्थको मनोनाश इति चेन्न। दुर्बलप्रारब्धापादितानामवश्यम्भाविभोगानां प्रतीकारार्थत्वात्। तादृग्भोगस्य प्रतीकारनिवर्त्यत्वमभिप्रेत्येदमाहुः।

अर्थः—इस श्लोक के व्याख्यान करते समय स्पष्ट किया है।

शङ्का:—इस उपरले वचन से ऐसा प्रतीत होता है कि मृदुबन्ध हो तौ भी कोई हानि नहीं। केवल हानिकारक तीव्र बन्ध है। अतएव उस की निवृत्ति तो वासना क्षय ही से होती है, उस से मनोनाश का कोई प्रयोजन नहीं दीखता।

समाधानः—दुर्बल प्रारब्ध से प्राप्त हो हुए अवश्य भावि भोग के प्रतीकार के लिये मनोनाश की आवश्यकता है।

अवश्य भाविभोग की मनोनाश के सिवाय अन्य उपाय द्वारा निवृत्ति नहीं होती है, इस अभिप्राय का स्मृतिवाक्य है—

"अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि।
तदा दुःखैर्न लिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः" इति॥

तदेवं जीवन्मुक्तिं प्रति वासनाक्षयमनोनाशयोः साक्षात् साधनत्वात् प्राधान्यम्। तत्त्वज्ञानं तु तयोरुत्पादनेन व्यवहितत्वात् उपसर्जनम्। तत्त्वज्ञानस्य वासनाक्षयहेतुत्वं बहुशः श्रुतौ श्रूयते।

अर्थः— अवश्यं भावि भोग का जो अन्य उपाय होता तो नल, राम और युधिष्ठिर सरीखे पुरुष को दुःख होता ही नहीं।

इस प्रकार वासनाक्षय और मनोनाश जीवन्मुक्ति का साक्षात् साधन होने से विद्वत्संन्यासियों को उन का अभ्यास प्रधानता से करना उचित है, और तत्त्वज्ञान तो इन दोनों की उत्पत्ति से व्यवहित कारणरूप होने से उस का गौणभाव से अभ्यास कर्त्तव्य है।

तत्त्वज्ञान वासनाक्षय का कारण है, यह बात अनेक श्रुतियों में कथन कियी है—

"ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः

क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति" ॥

"तरति शोकमात्मवित्" "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" । "ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः" इति ।

मनोनाशहेतुत्वं च तत्त्वज्ञानस्य श्रुतिसिद्धम्। विद्यादशामभिप्रेत्येदं श्रूयते—

"यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्केन कं जिघ्रेत्" इत्यादि ।

गौडपादाचार्याश्चाऽऽहुः—

अर्थः—"परमात्मा देव के ज्ञान से सब बन्धनों की निवृत्ति हो जाती है, क्लेशों के क्षय से जन्ममरण की हानि होती। अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति से परमात्म देव का साक्षात्कार करने पर धीर पुरुष हर्षशोक का त्याग करता है" । आत्मवित् पुरुष शोक को पार कर जाता है । सर्वत्र अद्वितीय आत्मवस्तु को साक्षात् अनुभव करने पर शोक मोह कहां से हो ? नहीं होते। परमात्म देव को जानने पर सब बन्धनों से छूट जाता है ।

तत्त्वज्ञान मनोनाश का भी कारण है, यह बात भी श्रुति द्वारा ही सिद्ध है । विद्यादशा को अङ्गीकार कर यह श्रुति है- "जो विद्यादशा में इस अधिकारी पुरुष को सब आत्मा ही हो जाता उस अवस्था में वह किस कारण किस पदार्थ को देखे? और किस कारण किस पदार्थ को सूंघे ।

गौडपादाचार्य ने भी कहा है—

"आत्मतत्त्वानुबोधेन न सङ्कल्पयते यदा ।

अमनस्तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहः" इति ॥

जीवन्मुक्तेर्वासनाक्षयमनोनाशाविव विदेहमुक्तेः साक्षात्साधनत्वाज्ज्ञानं प्रधानम् ।

अर्थः—आत्मस्वरूप के साक्षात्कार से जब संकल्प रहित होता है, उस समय अधिकारी पुरुष अमनस्कभाव को प्राप्त होता है, तत्त्वज्ञानद्वारा ग्राह्य वस्तुओं का अभाव होने से वह वृत्ति द्वारा किसी भी विषय को ग्रहण नहीं करता ।

जैसे जीवन्मुक्ति का साक्षात्साधन वासनाक्षय और मनोनाश है, उसी प्रकार विदेहमुक्ति का साक्षात् साधन तत्त्वज्ञान है । अत एव विदेहमुक्ति के लिये ज्ञानाभ्यास प्रधानता से सेवने योग्य है ।

"ज्ञानादेव तु कैवल्यं प्राप्यते येन मुच्यते" इति स्मृतेः ॥

केवलस्याऽऽत्मनो भावः कैवल्यं देहादिरहितत्वम् । तच्च ज्ञानादेव प्राप्यते सदेहत्वस्याज्ञानकल्पितत्वेन ज्ञानैकनिवर्त्यत्वात् । ज्ञानादेवेत्येवकारेण कर्मव्यावृत्तिः । "न कर्मणा न प्रजया" इति श्रुतेः । यस्तु ज्ञानशास्त्रमनभ्यस्य यथासम्भवं वासनाक्षयमनोनाशावभ्यस्य सगुणं ब्रह्मोपास्ते न तस्य कैवल्यमस्ति । लिङ्गदेहस्यानपायात् । अत एवकारेण तावपि व्यावर्त्येते । "येन मुच्यते" इत्यस्यायमर्थः येन ज्ञानप्रापितकेवलत्वेन कृत्स्नसम्बन्धाद्विमुच्यते इति । बन्धश्चानेकविधः अविद्याग्रन्थिः, अब्रह्मत्वम्, हृदयग्रन्थिः, संशयः, कर्माणि,

सर्वकामत्वम्, मृत्युः, पुनर्जन्मेत्यादिशब्दैस्तत्र व्यवहारात्। अज्ञानत एते बन्धाः सर्वे ज्ञाननिवर्त्याः। तथा च श्रुतयः–

"एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य" "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति"।

अर्थः–'ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिस कैवल्य से इस संसार से मुक्त होता है।ऐसा स्मृति वचन है।कैवल्य अर्थात् देहादि रहितभाव वह केवल ज्ञान से ही प्राप्त होता है। सशरीर होना यह अज्ञान से है इस लिये केवल ज्ञान ही से निवृत्ति उसकी होनेवाली है।इस स्मृतिवाक्य में 'एव' ('ही') पद कर्म की निवृत्ति के लिये है। कर्म, प्रजा, और धन से मुक्ति नहीं प्राप्त होती है इस प्रकार श्रुति भी कहती है। जो पुरुष ज्ञान शास्त्र का अभ्यास किये बिना केवल मनोनाश और वासनाक्षय का ही अभ्यास कर सगुण ब्रह्म की उपासना करता है, उस के लिङ्ग शरीर के नाश न होने से वह कैवल्य को प्राप्त नहीं होता है। अतएव वासनाक्षय और मनोनाश द्वारा भी कैवल्य प्राप्त नहीं होता यह भी 'एव' पद से झलकता है। उपरले स्मृति वाक्य में 'येन मुच्यते' का इस भांति अर्थ है—ज्ञान प्राप्त होने पर जिस कैवल्य से सारे बन्धनों से मुक्त होता है। अविद्या ग्रन्थि, अब्रह्मत्व, हृदय ग्रन्थि, संशय, कर्म, सर्वकामत्व, पुनर्जन्म आदि अनेक शब्दों से भिन्न २ स्थलों में बन्धन का निरूपण किया है। बन्ध अनेक प्रकार का है। ये सब बन्धन अज्ञान से हुए हैं अत एव उन की निवृत्ति ज्ञान से होती है,। निम्नलिखित श्रुतियां इस विषय में प्रमाणभूत हैं। (एतद्यो० इत्यादि) "हे सौम्य!

बुद्धि-गुहा में स्थित इस आत्मस्वरूप को जो जानता है, वह वहीं अविद्या ग्रन्थि को काट डालता है" "जो ब्रह्म को जानता वह ब्रह्म ही होता है"।

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे"॥
"यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान्कामान्त्सह" "तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति"।

अर्थः—"उस परमात्मा के साक्षात्कार होने से इस अधिकारी पुरुष के हृदय की गांठें खुल जाती है। सब संशय छिन्न भिन्न हो जाते और सब कर्म क्षय हो जाते हैं"। "जो हृदयाकाशरूप गुहा में स्थित ब्रह्म को जानता है, वह सब कामनाओं के साथ पाता हैं" "उस ब्रह्म को ही जान कर अधिकारी पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है।

"यस्तु विज्ञानवान् भवति अमनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्परमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते"॥
"य एवं वेदाहं ब्रह्मास्मीति स इदं सर्वं भवति" इत्यादीन्यसर्वज्ञत्वादिबन्धनिवृत्तिपराणि वाक्यान्यत्रोदाहरणीयानि। सेयं विदेहमुक्तिर्ज्ञानोत्पत्तिसमकालीना ज्ञेया। ब्रह्मण्यविद्यारोपितानामेतेषां बन्धानां विद्यया विनाशे सति पुनरुत्पत्त्यसम्भवादननुभवाच्च। तदेतद्विद्यासमकालीनत्वं भाष्यकारः समन्वयसूत्रे प्रपञ्चयामास।

"तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ त-

दृग्व्यपदेशात्" इति । ननु वर्त्तमानदेहपाता-
नन्तरभाविनी विदेहमुक्तिरिति बहवो वर्ण-
यन्ति तथाच श्रुतिः—

"तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ स-
म्पत्स्ये" इति ।

वाक्यवृत्तावप्युक्तम् ।

अर्थः—जो अमनस्कभावसे प्राप्त हो के सदा शुचि पुरुष विज्ञानयुक्त होता है, वह परमात्म पद को प्राप्त होता हैं, जिस से फिर संसार में जन्म धारण नहीं करता है । 'मैं ब्रह्म हूं' इस प्रकार जो जानता है—साक्षात् अनुभव करता है, वह यह सर्वरूप होता है ।

ये सब वाक्य, असर्वज्ञत्व आदि बन्ध निवृत्ति में प्रमाणरूप से समझना। वही यह विदेहमुक्ति, ज्ञान की उत्पत्ति समय ही प्राप्त होती है, ऐसा जानना । क्यों कि, ब्रह्म में आरोपित पूर्वोक्त सब बन्धनों के नाश होने पर वह फिर विद्या प्राप्ति के समय ही बन्धन की निवृत्ति होती है, यह बात भगवान् भाष्यकार श्री शङ्कराचार्यजी ने समन्वय सूत्र में विस्तार पूर्वक कथन कियी है। उस ब्रह्म के साक्षात्कार से उत्तर और पूर्व अर्थात् पुण्यपाप के क्रम से अस्पर्श और विनाश होता है, श्रुति में उस का कथन है। शङ्काः "वर्तमान शरीर के पतन होने पर विदेहमुक्ति प्राप्त होती है, ऐसा बहुत लोग कहते हैं" और उस ज्ञानवान् पुरुष को तब तक विदेहमुक्ति में विलम्ब है कि जब तक वर्तमान देह से मुक्त नहीं होता है । वैसा होने पर ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होता है इसी प्रकार श्रुति भी है—वाक्यवृत्ति में भी कहा है:—

"प्रारब्धकर्मवेगेन जीवन्मुक्तो यदा भवेत् ।

कञ्चित् कालमथाऽऽरब्धकर्मबन्धस्य संक्षये ॥
निरस्तातिशयानन्दं वैष्णवं परमं पदम् ।
पुनरावृत्तिरहितं कैवल्यं प्रतिपद्यते" इति ॥

सूत्रकारोऽप्याह—

"भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते" इति ।

इतरे-प्रारब्धपुण्यपापे ।

वसिष्ठोऽप्याह—

अर्थः—अधिकारी पुरुष जब जीवन्मुक्त होता है, तब प्रारब्ध कर्म के योग से अमुक काल अनुभव कर, प्रारब्ध कर्म के क्षय होने के अनन्तर, पुनरावृत्तिरहित निरतिशय आनन्दस्वरूप सर्वोत्कृष्ट परमात्मा के कैवल्यपद को प्राप्त होता है । सूत्रकार नेभी कहा है—

"भोग करके प्रारब्धस्वरूप पुण्य पाप का क्षय करने पर परमात्मा के स्वरूप में अभेद को प्राप्त होता है ।

वसिष्ठजी ने भी कहा है—

"जीवन्मुक्तपदं त्यक्त्वा स्वदेहे कालसात्कृते ।
विशत्यदेहमुक्तत्वं पवनोऽस्पन्दतामिव" इति ॥

अर्थः—जैसे गतिमान् वायु निष्पन्द (स्थिर) अवस्था को प्राप्त होता है, तैंसे जीवन्मुक्त पुरुष, अपने शरीर के काल के वश होने अनन्तर (मरनेपर) जीवन्मुक्तदशा का त्यागकर विदेहमुक्त पद में प्रवेश करता है ।

नायं दोषः, विवक्षाविशेषेण मतद्वयस्यावि-
रोधात् । विदेहमुक्तिरित्यत्रत्येन देहशब्देन
कृत्स्नं देहजातं विवक्षित्वा बहुभिर्वर्णितम् ।
अस्माभिस्तु भाविदेहमात्रविवक्षयोच्यते ।

तदनारम्भायैव ज्ञानसम्पादनात् । अयं देहः पूर्वमेवाऽऽरब्धः, अतो ज्ञानेनापि नास्याऽऽरम्भो वारयितुं शक्यते । क्षये तन्निवृत्तिरपि न ज्ञानफलम् । अज्ञानिनामप्यारब्धकर्मक्षये तन्निवृत्तेः ।

अर्थः—समाधान–अभिप्राय के भेद को लेकर मतभेद भासता है। वस्तुतः मतभेद नहीं। जो मरने पीछे विदेहमुक्ति मानते हो उस विदेहमुक्ति पद में देह शब्द से सम्पूर्ण देह मानते हैं। सकल देह की निवृत्ति तो मरने के बाद ही होती है, अत एव उस के अभिप्रायानुसार मरने बाद विदेहमुक्ति में प्रवेश होना वास्तविक है। हम तो भाविदेह की निवृत्ति को ही विदेहमुक्ति कहते हैं। क्यों कि भाविदेह का आरम्भ न होने के लिये ज्ञानसम्पादन किया जाता। वर्त्तमान देह का तो ज्ञान होने के पहिले आरम्भ हो चुका है। अत एव ज्ञानसे भी वर्तमान शरीर का निवारण हो सकता, ऐसा नहीं है। वर्त्तमान शरीर की निवृत्ति भी कोई ज्ञान का फल नहीं है। क्यों कि प्रारब्ध कर्म का क्षय होता अज्ञानी लोगों का भी वर्त्तमान देह निवृत्त होता हैं।

तर्हि वर्तमानलिङ्गदेहनिवृत्तिर्ज्ञानफलमस्तु ज्ञानमन्तरेण तदनिवृत्तोरिति चेन्न ।

सत्यपि ज्ञाने जीवन्मुक्तेस्तन्निवृत्त्यभावात् ।

अर्थः—शङ्का—जो वर्त्तमान स्थूलशरीर की निवृत्ति ज्ञान का फल न हो तो, वर्त्तमान लिङ्गशरीर का नाश ज्ञान का फल मानना चाहिये, क्यों कि ज्ञान हुए बिना लिङ्गदेह का नाश नहीं होता है।

समाधान–यह बात ठीक है, परन्तु जीवन्मुक्त पुरुष को ज्ञान

प्राप्त होने पर भी उस के लिङ्गशरीर का नाश नहीं होता है। अतएव ज्ञान का फल लिङ्गकी निवृत्ति भी मानी नहीं जा सकती।

ननु ज्ञानस्य किञ्चित्कालं प्रारब्धेन कर्मणा प्रतिबद्धत्वेनानिवर्तकत्वेऽपि प्रतिबन्धक्षये लिङ्गदेहनिवर्तकत्वं भविष्यतीति चेन्न ।

अर्थः—शङ्का—यद्यपि प्रारब्धकर्म अपने स्थितिपर्यन्त ज्ञान का प्रतिबन्धक होने से जब तक शेष प्रारब्ध होता हैं, तब तक लिङ्गदेह की निवृत्ति नहीं होती है, तथापि प्रारब्ध रूप रुकावट के क्षय होने पर ज्ञानद्वारा लिङ्गदेह की निवृत्ति होगी, अत एव ज्ञान का फल लिङ्गकी निवृत्ति है, ऐसे कहने में कोई बाधा नहीं मालूम होती हैं।

पञ्चपादिकाचार्येण
"यतोज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्त्तकं"
इत्युपपादितत्वात् ।

अर्थः—समाधानः—तेज और तम के तुल्य ज्ञान ही अज्ञान का विरोधी है। लिङ्गदेह तो अज्ञान का कार्य्य होने से उस का तो अज्ञान के साथ विरोध होता ही नहीं। अत एव ज्ञानद्वारा ही अज्ञान की निवृत्ति होती है, ऐसा श्रीपञ्चपादिकाचार्य ने प्रतिपादन किया है।

तर्हि लिङ्गदेहनिवृत्तेः किं साधनं इति चेत् ।
सामग्री निवृत्तिरिति ब्रूमः । द्विविधं हि कार्यनिवर्तकम् । विरोधिसद्भावः सामग्री निवृत्तिश्चेति । तद्यथा विरोधिना वायुना, तैलवर्त्तिसामग्रीनिवृत्त्या वा दीपो निवर्त्तते । लिङ्गदेहस्य साक्षाद्विरोधिनं न पश्यामः ।

सामग्री हि द्विविधा प्रारब्धमनारब्धञ्चेति । ताभ्यामुभाभ्यामज्ञानिनां लिङ्गदेह इहामुत्र चावतिष्ठते । ज्ञानिनां त्वनारब्धस्य ज्ञानेन निवृत्त्या प्रारब्धस्य भोगेन लिङ्गदेहो निवर्त्तते। अतो न तन्निवृत्तिर्ज्ञानफलम् ।

अर्थः—प्रश्न—उस समय लिङ्गदेह की निवृत्ति का क्या साधन है ? समाधान—जिस सामग्री से लिङ्गदेह उत्पन्न होता है उस सामग्री की निवृत्ति से लिङ्गदेह की निवृत्ति होती है। विरोधी के सद्भाव से और सामग्री की निवृत्ति से इस भांति दो प्रकार से कार्य की निवृत्ति होती है । जैसे तेल बत्ती आदि दीप की सामग्री होने पर भी विरोधी वायु से शान्त हो जाता है, उसी प्रकार लिङ्गदेह का साक्षात् विरोधी तो कोई पदार्थ देखने में नहीं आता इस लिये उस की सामग्री निवृत्ति से निवृत्ति होती है । प्रारब्धकर्म और सञ्चित आदि अनारब्धकर्म यों दो प्रकार की लिङ्गदेह की सामग्री है । अज्ञानी का लिङ्गदेह इन दो सामग्रियों करके इस लोक परलोक में स्थिर रहता है । ज्ञानी पुरुषों का अनारब्धकर्म, ज्ञान द्वारा निवृत्त होता है, और प्रारब्ध कर्म की भोग से निवृत्ति होती है । अतएव तेल, बत्ती रूप सामग्री के नाश से जैसे दीप नाश को प्राप्त होता है, उसी प्रकार उस का लिङ्गदेह उक्त दो प्रकार के कर्मरूप सामग्री की निवृत्ति से निवृत्त होता है ।

नन्वनेन न्यायेन भाविदेहानारम्भोऽपि ज्ञानफलम् । तथाहि— किमनारम्भ एव हि फलम्, किंवा, तत्प्रतिपालनम् । नाद्यः । तस्य प्रागभावरूपत्वेनानादिसिद्धत्वात् । न द्वितीयः,

अनारब्धकर्मरूपसामग्रीनिवृत्त्यैव भाविदेहारम्भप्रागभावप्रतिपालनसिद्धेः । नच तन्निवृत्तिः फलं, अविद्यानिवृत्तेरेव विद्याफलत्वात् ।

अर्थः—शङ्का—यह उपरले वाक्य से तो भावि देह का अनारम्भ (आरम्भ न हुआ) भी ज्ञान फल है, ऐसा जान पड़ता है, परन्तु वह सम्भव नहीं, क्योंकि, क्या भाविदेह का अनारम्भ ही ज्ञान का फल है ? या भाविदेहके अनारम्भ का पालन अर्थात् अनारम्भ सदाकाल रहे यह भी उस का फल है ? इन में से प्रथम पक्ष—भाविदेह का अनारम्भ यह ज्ञान का फल है, यह बात सम्भव नहीं, क्योंकि भाविदेह का अनारम्भ इस भावि देह का प्रागभावरूप होने से अनादि सिद्ध है, अतएव, यह ज्ञान से उत्पन्न होता नहीं । उसी प्रकार भाविदेह के अनारम्भ का पालन यह ज्ञानफल है, यह दूसरा पक्ष भी सम्भव नहीं, क्योंकि भाविदेह के आरम्भ के प्रागभाव का पालन अर्थात् सर्वकाल भाविदेह का अभाव ही रहना यह तो सञ्चित कर्मरूप सामग्री की निवृत्ति से ही होता है । अनारब्धकर्म [सञ्चितकर्म] रूप सामग्री की निवृत्ति भी ज्ञान का फल नहीं । केवल अविद्या की निवृत्ति ही विद्या का फल है ।

नैष दोषः । भाविजन्मारम्भादीनां विद्याफलत्वस्य प्रामाणिकत्वात् । "यस्माद्भूयो न जायते" इत्याद्युदाहृताः श्रुतयस्तत्र प्रमाणम्। नच ज्ञानमज्ञानस्यैव निवर्त्तकमिति न्यायेन विरोधः । अज्ञानसहभावनियतानामब्रह्मत्वादीनामज्ञानशब्देन पञ्चपादिकाचार्यैर्विवक्षितत्वात् । अन्यथाऽनुभवविरोधः । अ-

नुभूयते ह्यज्ञाननिवृत्तिवदब्रह्मत्वादिनिवृत्तिर-
पि । तस्माद्भाविदेहराहित्यलक्षणा विदेह-
मुक्तिर्ज्ञानसमकालीना । तथाच याज्ञवल्क्य-
वचनं श्रूयते—"अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि,"
इति, "एतावदरे खल्वमृतत्वम्" इति च ।

अर्थः—उत्तर—तुम ने जो दोष बतलाया, वह प्राप्त नहीं होता, क्योंकि भावि में जन्म की प्राप्ति होती नहीं इत्यादि विद्या के फलत्व की प्रमाणसिद्ध बात है । (यस्मात्भू०) 'जिस तत्त्वज्ञान के होने से फिर जन्म पाता नहीं" इत्यादिपूर्वोक्तश्रुतियां इस विषय में प्रमाणभूत हैं । सदा अज्ञानी के साथ रहनेवाला-अज्ञान की सद्भावसे ही सद्भाववाला-पूर्वोक्त 'अब्रह्मत्व ('मैं ब्रह्म नहीं' ऐसा मिथ्या निश्चय) इत्यादि बन्धन को श्री पद्मपादिकाचार्य ने अज्ञान ही गिना है । पुनर्जन्म, अब्रह्मत्व आदि बन्धन की निवृत्ति जो ज्ञान का फल न हो, तो अनुभव में विरोध प्राप्त होता है । ज्ञान करके जैसे अज्ञान की निवृत्ति होती है, उसी प्रकार उस के साथ पूर्वोक्त 'अब्रह्मत्व' आदि बन्धन की भी निवृत्ति होती है, यह बात अनुभवसिद्ध है । इसलिये भाविदेह की अप्राप्तिरूप जीवन्मुक्ति ज्ञान समकाल ही है। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य मुनि ने भी कहा है कि—'हे जनक! तुम अभय को प्राप्त होगये हो'। 'इतना ही यथार्थ अमृतत्त्व है'।

श्रुत्यन्तरेऽपि "तमेवं विद्वानमृत इह भवति"
इति । यद्युत्पन्नेऽपि तत्त्वज्ञाने तत्फलभूता
विदेहमुक्तिस्तदानीं न भवेत् कालान्तरे च
भवेत्।तदा ज्योतिष्टोमादाविव ज्ञानजन्यम-

पूर्वं किञ्चित्कल्प्येत । तथा च कर्मशास्त्र एव
ज्ञानमन्तर्भवेत् । अथोच्यते । मन्त्रादिप्रति-
बद्धाग्निवत् प्रारब्धप्रतिबद्धं ज्ञानं कालान्तरे
विदेहमुक्तिं दास्यतीति । नैवम् । अविरोधा-
त् । न ह्यस्मदभिप्रेता भाविदेहात्यन्ताभाव-
लक्षणा विदेहमुक्तिर्वर्तमानदेहमात्रस्थापकेन
प्रारब्धेन विरुध्यते, येन प्रतिबध्येत । किञ्च
क्षणिकत्वेन कालान्तरे स्वयमविद्यमानं ज्ञानं
कथं मुक्तिं दद्यात् । ज्ञानान्तरं चरमसाक्षा-
त्कारलक्षणमुत्पत्स्यत इति चेन्न । साधनाभा-
वात् । प्रतिबन्धकप्रारब्धनिवृत्त्यैव सह गु-
रुशास्त्रदेहेन्द्रियाद्यशेषजगत्प्रतिभासनिवृत्तेः
किं ते साधनं स्यात् ।

अर्थः—अन्य श्रुति भी कहती है—इस प्रकार आत्मा का ज्ञान जिस को होता है, ऐसा पुरुष वर्तमान शरीर ही में मरण रहित हो जाता है ।

जो तत्त्वज्ञान होने परभी उस की फलरूप विदेहमुक्ति उस समय न हो और कालान्तर में हो तो ज्योतिष्टोमादिकर्म समाप्ति के अनन्तर, तत्काल स्वर्गादिफल न मिलने से जैसे अपूर्व नामके संस्कार विशेष को कर्मविषय में कल्पना कियी जातीहै, उसी प्रकार ज्ञान को भी अपूर्व की कल्पना करनी पडेगी और जो वैसा हो तो कर्मशास्त्र में ही ज्ञानशास्त्र का अन्तर्भाव हो जावे कदाचित् इस स्थल में वादी ऐसा कहै कि मणिमन्त्रादि द्वारा जिस की दाहकशक्ति का प्रतिबन्ध हो गयाहै ऐसा अग्नि प्रतिबन्ध छूट जाने पर जिस प्रकार अपना दाह कर्म कर सकता है

उसी तरह प्रारब्धसे प्रतिबन्ध को प्राप्त होने पर ज्ञान प्रारब्धके अन्तमे विदेह मुक्तिरूप फल को देगा, परन्तु यह कहना वस्तुतः ठीक नही, क्योंकि, हमारे अभिमत भाविदेह का अत्यन्त अभाव रूप विदेह मुक्ति को केवल वर्त्तमान शरीर को ही स्थापन करनेवाले प्रारब्धकर्म के साथ कोई विरोध नही। जिस से प्रारब्धकर्म विदेहमुक्तिरूप ज्ञान के फल का प्रतिबन्धक हो नही सकता वह ज्ञान क्षणिक है इस लिये कालान्तर में स्वयं न होने से से विदेहमुक्ति को कैसे दे सकता? कदाचित् ऐसा कहो कि मरणसमय में चरमसाक्षात्कार रूप अन्यज्ञान उत्पन्न होगा और वह विदेहमुक्ति देगा तो यह बात भी सम्भव नहीं क्योंकि उस समय पुनः अन्यज्ञान का उत्पादक कोई अन्य साधन होता नहीं। प्रतिबन्धकरूप प्रारब्धकर्म की निवृत्ति से ही गुरु, शास्त्र, देह, और, इन्द्रिय आदिक सारे संसार की प्रतीति की निवृत्ति हो जाती है इसलिये उस समय किस साधन से ज्ञान होता है ? होता ही नहीं।

तर्हि "भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः" इत्यस्याः श्रुतेः कोऽर्थ इति चेत् । आरब्धान्ते निमित्ताभावाद्देहेन्द्रियाद्यशेषनैमित्तिकनिवृत्तिरित्येवार्थः। ततो भवदभिमता वर्तमानदेहराहित्यलक्षणा विदेहमुक्तिः पश्चादस्तु देहपातानन्तरम् । अस्मदभिमता तु ज्ञानसमकालीनैव । एतदेवाभिप्रेत्य भगवान् शेष आह—

अर्थः—शङ्का— उस समय 'प्रारब्ध के क्षय होने पर फिर सारी माया की निवृत्ति होती हैं, इस श्रुति का क्या

अर्थ तुमने समझा ?

समाधानः—इस श्रुति का अर्थ यही है कि प्रारब्ध के अन्त में देहादि का स्थापक निमित्त न होने से देह इन्द्रियादि सब की निवृत्ति होती है । इस लिये अन्य मत के अनुसार वर्तमान देह का अभावरूप विदेहमुक्ति देहपात के बाद हो, परन्तु भाविदेह की अभावरूप को हम मानते हैं यह विदेह मुक्ति तो ज्ञानसमय में ही प्राप्त होती है ॥

इसी अभिप्राय से भगवान् शेष भी कहते हैं—

"तीर्थे श्वपचगृहे वा नष्टस्मृतिरपि परित्यजन्देहम्।
ज्ञानसमकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः" इति॥

अर्थः—मरणसमय में जिस को स्वरूपका विस्मरण हो गया है ऐसा पुरुष कदाचित् तीर्थ में या चाण्डाल के घर मर जावे तो भी ज्ञानकाल में ही मुक्त होकर शोक रहित वह पुरुष मुक्ति को ही प्राप्त होता है ॥

तस्माद्विदेहमुक्तौ साक्षात्साधनस्य तत्त्वज्ञानस्य प्रधानत्वमुपपन्नम् । वासनाक्षयमनोनाशयोर्ज्ञानसाधनत्वेन व्यवहितत्वादुपसर्जनत्वम्। आसुरवासनाक्षयकारिण्या दैववासनाया ज्ञानसाधनत्वं श्रुतिस्मृत्योरुपलभ्यते—"शान्तो दान्त उपरतास्तितिक्षु समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवाऽऽत्मानं पश्येत्" इतिश्रुतिः। स्मृतिरपि—

अर्थः—विदेहमुक्ति में साक्षात् साधन तत्त्वज्ञान की ही, प्रधानता है यह बात इस से सिद्ध हुई, वासनाक्षय और मनोनाश तत्वज्ञानद्वारा विदेहमुक्ति का साधन है । इस लिये विदेहमुक्ति

में उस का गौणपन है ।, आसुरी वासनाओंकी क्षय करनेवाली दैवीवासना ज्ञान का साधन है, यह बात श्रुति और स्मृति में प्रत्यक्ष प्रतीत होती है । "शान्तोदान्त इत्यादि" 'शम दम उपराति तितिक्षा, और समाधान आदि दैवी सम्पत्ति युक्त होकर अपने आत्मा से अभिन्न परमात्मा का अनुभव करे यह श्रुति इस मे प्रमाण रूप से है । और स्मृति में कहाहै कि—

"अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्य्योपासनं शौचं स्थैर्य्यमात्मविनिग्रहः" ॥

अर्थः—अमानित्त्व, निरभिमानपना, अदम्भित्व (निष्कपटता) अहिंसा, शान्ति, आर्जव (सूधापन) गुरुकी सेवा, पवित्रता, स्थिरता, और अपने शरीरका संयम ।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

अर्थः—इन्द्रियों के विषय जो शब्दादिक हैं उन में विरक्ति, निरहङ्कार, और जन्म, मृत्यु, बुढापा, व्याधि और दुःख इन में दोष देखना ।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

अर्थः—पुत्र, स्त्री, गृह, आदिकों से विरक्ति और उन के सुखदुःखों में अत्यन्त दृष्टि न देनी । इष्ट और अनिष्ट में सदा एकसा रहना ।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

अर्थः—मेरे विषय में अनन्यभाव से अव्यभिचारिणी भक्ति, चित्त को प्रसन्न करनेवाले देश में निवास, संसारी पुरुषों की सभा में अप्रीति ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अर्थः—अध्यात्मज्ञान (आत्मादि विषयक जो विचार) अर्थात् जीव माया ईश्वरादिकों का विवेक । इसका नित्यचिन्तन और तत्त्वज्ञान का प्रयोजन जो मोक्ष है उस का अवलोकन यह सब ज्ञान कहलाता है इस से अन्य अज्ञान है ।

अन्यस्मिन्नहंबुद्धिरभिष्वङ्गः । ज्ञायतेऽनेनेति-व्युत्पत्त्या ज्ञानसाधनमित्यर्थः । मनोनाशस्यापि ज्ञानसाधनत्वं श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धम् । "ततस्तु तं पश्यति निष्कलं ध्यायमानः" इति "अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति" इति च । प्रत्यगात्मसमाधिप्राप्त्या देवं ज्ञात्वेत्यर्थः ।

अर्थः—यह पदार्थ मैं ही हूं इस प्रकार की अभेदभावना-से जो उन पदार्थों में अधिक प्रीति करनी अर्थात् उन पदार्थों-के सुखी दुःखी हुए मैं ही सुखी दुःखी होता हूं इस प्रकार जो अत्यन्त अभिनिवेश है उस को अभिष्वङ्ग कहते हैं ॥

"इसके द्वारा जाना जाता है ऐसी व्युत्पत्ति से ज्ञानसाधन" होता है । मनोनाश भी ज्ञान का साधन है यह श्रुति में प्रसिद्ध है, तहां श्रुति का प्रमाण (—ततस्तुतं ०) ध्यान करनेवाला पुरुष उस निरवयव आत्मा का साक्षात् दर्शन करता है" "(अध्यात्म०) प्रत्यक् आत्मा में समाधि के लाभ से परमात्म देव को जान कर धीर पुरुष हर्ष शोक को छोडता है" । और स्मृति का प्रमाण—

"यं विनिद्रा जितश्वासाः सन्तुष्टाः संयतेन्द्रियाः।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै विद्यात्मने नमः"॥

अर्थः—निद्रा श्वास और इन्द्रियों को जीतने वाले योगीजन जिस ज्योति को योग द्वारा देखते हैं उस योगात्मक परमात्मा को नमस्कार हैं ॥

तदेवं तत्त्वज्ञानादीनां त्रयाणां विदेहमुक्तिजीवन्मुक्तिवशाद्गुणप्रधानभावव्यवस्था सिद्धा।

अर्थ—इस प्रकार विदेहमुक्ति और वासनाक्षय की यथायोग्य गौणत्व की एवं प्रधानता की व्यवस्था सिद्ध है ॥

ननु विविदिषासंन्यासिना सम्पादितानामेतेषां किं विद्वत्संन्यासादूर्ध्वमनुवृत्तिमात्रं, किं वा पुनरपि सम्पादनप्रयत्नोऽपेक्षितः। नाद्यः। तत्त्वज्ञानस्येवान्ययोरप्ययत्नसिद्धत्वे प्राधान्यप्रयुक्तादराभावप्रसङ्गात्। न द्वितीयः। इतरयोरिव ज्ञानस्यापि यत्नसापेक्षत्वे सत्युपसर्जनत्वप्रयुक्तौदासीन्याभावप्रसङ्गात्।

अर्थः—शङ्का—विविदिषासंन्यासी द्वारा प्राप्त किये तत्त्वज्ञान आदि तीन साधनों की विद्वत्संन्यास धारण करने के बाद अनुवृत्तिमात्र समझें? या उस के सम्पादन के लिये फिर प्रयत्न करने की आवश्यकता है? जो उस की अनुवृत्तिमात्र करोगे तो तत्त्वज्ञान के समान वासनाक्षय और मनोनाश भी बिना यत्न के सिद्ध होने से उस को प्रधानता दे कर विशेष आदर करने की आवश्यकता नहीं रहती और जो प्रयत्न की आवश्यकता है ऐसा कहोगे तो जैसे मनोनाश और वासनाक्षय के निमित्त यत्न

की अपेक्षा हैं उसी प्रकार तत्त्वज्ञान के लिये भी यत्न की अपेक्षा होने से उस के गौणपन के कारण उस में उदासीनता रखनी योग्य है सो नहीं बनता है।

नायं दोषः। ज्ञानस्यानुवृत्तिमात्रमितरयोर्यत्नसाध्यत्वमित्यङ्गीकारात्।

अर्थः—समाधान—यह दोष नहीं है जीवन्मुक्त-अवस्था में ज्ञान की केवल अनुवृत्ति तथा वासनाक्षय और मनोनाश प्रयत्नसाध्य है ऐसा हमने स्वीकार किया है—

तथाहि-विद्याधिकारी द्विविधः, कृतोपास्तिरकृतोपास्तिश्चेति। तत्रोपास्यसाक्षात्कारपर्यन्तामुपास्तिं कृत्वा यदि ज्ञाने प्रवर्तेत, तदा वासनाक्षयमनोनाशयोर्दृढतरत्वेन ज्ञानादूर्ध्वं विद्वत्संन्यासजीवन्मुक्ती स्वत एव सिध्यतः। तादृश एव शास्त्राभिमतो मुख्यो विद्याधिकारी। ततस्तं प्रति शास्त्रेषु सहोपन्यासात् स्वरूपेण विविक्तावपि विद्वत्संन्यासौ सङ्कीर्णाविव प्रतिभासेते। इदानींतनास्तु प्रायेणाकृतोपास्तय एवौत्सुक्यमात्रात्सहसा विद्यायां प्रवर्तन्ते। वासनाक्षयमनोनाशौ च तात्कालिकौ सम्पादयन्ति। तावता श्रवणमनननिदिध्यासनानि निष्पद्यन्ते। तैश्च दृढाभ्यस्तैरज्ञान-संशय-विपर्यनिरासात् तत्त्वज्ञानं सम्यगुदेति।उदितस्य ज्ञानस्य बाधकप्रमाणाभावान्निवृत्ताया अविद्यायाः पुनरुत्पत्तिकारणाभावाच्च नास्ति तस्य

शैथिल्यम् । वासनाक्षयमनोनाशौ तु दृढाभ्यासाभावाद्भोगप्रदेन प्रारब्धेन तदा तदा-बाध्यमानत्वाच्च सवातप्रदेशदीपवत्सहसा निवर्तेते । तथाच वासिष्ठः—

अर्थः—कृतोपासन (जिस ने उपासना सिद्ध कर लियी है) और अकृतोपासन (जिस ने उपासना नही सिद्ध कियी है) इस प्रकार विद्याधिकारी के दो भेद हैं । इनमें से जो अपने उपास्य 'देवके साक्षात्कार करने तक उपासना कर ज्ञान में प्रवृत्त हो ते हैं उस अधिकारी के मनोनाश, एवं वासनाक्षय अत्यन्त दृढ होने से ज्ञान होने के अनन्तर विद्वत्संन्यास और जीवन्मुक्ति उस को स्वतः सिद्ध होती हैं । शास्त्र में तो ऐसे पुरुष को ही अध्यात्मविद्या का मुख्य अधिकारी गिना है इस लिये ऐसे अधिकारी के लिये ही शास्त्र में तीन साधनों के साथ कथन किया है इस से विद्वत्संन्यास और विविदिषासंन्यास स्वरूप करके भिन्न होने पर भी वे मिले हुए के समान भासते हैं साम्प्रत काल में तो प्रायः अकृतोपासन ही अधिकारी होते हैं। इस से वह केवल उत्सुकता से सत्वर ब्रह्म विद्या में प्रवृत्ति करता है, उतने समय तक ही वासनाक्षय और मनोनाश को सम्पादन करता हैं, उतने से उस को श्रवण, मनन और निदिध्यासन सिद्ध होता है । इस प्रकार के दृढ अभ्यास से अज्ञान, संशय, और विपर्यय निवृत्त होने के कारण तत्त्वज्ञान का भली भांति उदय होता है उदय को प्राप्त होने पर तत्त्वज्ञान को बाध करने वाला कोई भी प्रमाण न होने से और निवृत्त हो कर अविद्या को फिर उत्पन्न करने वाला कोई कारण न होने से उस का तत्वज्ञान शिथिल नही होता । परन्तु वासनाक्षय और मनोनाश के दृढ अभ्यास न होने से और भोग देनेवाले प्रबल प्रारब्ध से उस का उस २ समय में बाध होनेसे वायुवाले प्रदेश में स्थित दीपक के समान उसी समय वासनाक्षय और मनोनाश निवृत्ति को प्राप्त होते हैं ।

वसिष्ठजी भी कहते हैं—

"पूर्वेभ्यस्तु प्रयत्नेभ्यो विषमोऽयं हि सम्मतः ।
दुःसाध्यो वासनात्यागः सुमेरून्मूलनादपि" इति॥
अर्जुनोऽपि—

अर्थः—पूर्वोक्त प्रयत्नों के अभ्यास करने की अपेक्षा यह वासनात्यागरूप प्रयत्न सुमेरुपर्वत को जड से उखाडने से भी विषम और अधिक कष्ट से सिद्ध होने योग्य है, ऐसा माना है।

अर्जुन ने भी गीताके अ० ६. श्लो० ३४ में कहा है—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्" इति॥

अर्थः—हे कृष्ण इन्द्रियों को क्षुब्ध करनेवाला विचार से भी जीतने योग्य नही, दृढ अर्थात् विषयवासनाओं से दुर्भेद्य मन अत्यन्त ही चपल है । वायु के समान इसका रोकना मैं दुष्कर मानता हूं ॥

तस्मादिदानीन्तनानां विद्वत्संन्यासिनां ज्ञानस्यानुवृत्तिमात्रम् । वासनाक्षयमनोनाशौ तु प्रयत्नसम्पाद्याविति स्थितम् । ननु केयं वासना ? यस्याः क्षयाय प्रयतितव्यमिति चेत्तत्स्वरूपमाह वासिष्ठः—

अर्थः—ऐसा है इस लिये इस समय के विद्वत्संन्यासियों को ज्ञान की केवल अनुवृत्ति और वासनाक्षय, और मनोनाश

प्रयत्न करके साध्य है यह बात सिद्ध हुई। जिस के क्षय के लिये यत्न करने की आवश्यकता है यह वास ना क्या वस्तु है ? ऐसी शङ्का पर महामुनि वसिष्ठ जी उस का स्वरूप कहते हैं:—

"दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम् ।
यदादानं पदार्थस्य वासना सा प्रकीर्त्तिता ॥
भावितं तीव्रसंवेगादात्मना यत्तदेव सः ।
भवत्याशु महाबाहो ? विगतेतरसंस्मृतिः ॥
तादृग्रूपो हि पुरुषो वासनाविवशीकृतः ।
संपश्येति यदेवैतत् सद्वस्त्विति विमुह्यति ॥
वासनावेगवैवश्यात्स्वरूपं प्रजहाति तत् ।
भ्रान्तं पश्यति दुर्दृष्टिः सर्वं मोहवशादिव" इति॥

अर्थः—पूर्वापर विचारको न करके दृढ भावना से पदार्थ का जो ग्रहण है उसे वासना कहतें हैं। हे महाबाहो ? तीव्र संवेग से जो स्वयं भावना करता (जैसा कि मैं शरीररूप हूं,) वह रूप वह पुरुष तत्काल हो जाता है, और इतर स्मृति उस की जाती रहती है। वासना के वश में करने से पुरुष स्वयं जिस वासनानुसार निश्चय कर लिया हो वही रूप होता है, और स्वयं निश्चय किया हुआ वही ठीक वस्तु है । ऐसा मोह को प्राप्त होता है । वासना के वेग में विवश होने से अपने रूप को भूल जाता है । जैसे मदिरा पीए हुए पुरुष नशे के वश में हो यथार्थ नहीं देखता उसी प्रकार वासना से दूषित हुई दृष्टि वाला पुरुष सब पदार्थों को भ्रान्ति युक्त देखता है । वास्तविक रूप को नही देख सकता है ।

अत्र च स्वस्वदेशाचारकुलधर्मभाषाभेदतद्गतापशब्दसुशब्दादिषु प्राणिनामभिनिवेशः सामान्यत उदाहरणम् । विशेषस्तु भेदानुक्त्वा पश्चादुदाहरामः । यथोक्तां वासनामभिप्रेत्य बृहदारण्यके श्रूयते—

"स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते" इति ।

वासनाभेदो वाल्मीकिना दर्शितः—

अर्थः—अपने देश, आचार कुल, धर्म, भाषा, और भाषा में के अपशब्द, साधु शब्द आदि में जो प्राणियोंका आग्रह देखने में आता उसे वासना का सामान्य उदाहरण समझना । उस का विशेष उदाहरण वासना के भेदों को कह कर पीछे देंगें। इस प्रकार की वासना को स्वीकार कर बृहदारयक उपनिषद में कहा है कि—

"वह जैसी वासना वाला होता वैसा सङ्कल्प करता जैसा सङ्कल्प करता वैसी क्रिया करता और जैसी क्रिया करता वैसा उसे फल मिलता है ।

वासना का भेद वाल्मी की जी ने योगवासिष्ठ मे बतलाया है।

"वासना द्विविधा प्रोक्ता शुद्धा च मलिना तथा ।
मलिना जन्महेतुः स्याच्छुद्धा जन्मविनाशिनी ।
अज्ञानसुघनाकारा घनाहङ्कारशालिनी ।
पुनर्जन्मकरी प्रोक्ता मलिना वासना बुधैः
पुनर्जन्माङ्कुरं त्यक्त्वा स्थिता सम्भृष्टबीजवत् ।
देहार्थं ध्रियते ज्ञातज्ञेया शुद्धेति चोच्यते" इति ॥

अर्थः—शुद्धवासना तथा मलिनवासना इस भांति दो प्रकार की वासना है । इन मे से मलिनवासना जन्म का कारण है ।

और शुद्धवासना जन्म को नष्ट करने वाली है। अज्ञान से अतिशय घन आकाश वाली और घन अहंकार वाली मलिनवासना को विद्वान् पुरुषों ने पुनर्जन्म देनेहारी कहा है। भूने पुट बीज के समान पुनर्जन्मरूप अङ्कुर को छोड कर स्थित तथा जिस के द्वारा ज्ञेय वस्तु का ज्ञान होता है वह शुद्धवासना देहके निर्वाहार्थ धारण कियी जाती ऐसा विवेकी पुरुष कहते हैं।

देहादीनां पञ्चकोशानां तत्साक्षिणश्चिदात्मनश्च भेदावरकमज्ञानं तेन सुष्ठु घनीभूत आकारो यस्याः सेयमज्ञानसुघनाकारा। यथा क्षीरं तक्रमेलनेन घनीभवति। यथा वा विलीनं घृतमत्यन्तशीतलप्रदेशे चिरमवस्थापितं सुघनीभवति तथा वासना द्रष्टव्या। घनीभावश्चात्र भ्रान्तिपरम्परा। तां चाऽऽसुरसम्पद्विवरणे भगवानाह—

अर्थः—अन्नमयादि (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय) तथा इन का साक्षी आत्मा के भेद को ढाकने वाला अज्ञान है। उस अज्ञान से उस का आकार अतिघनीभूत हो गया है। इस लिये मलिनवासना को "अज्ञानसुघनाकारा" ऐसा विशेषण दिया है। जैसे तक्र मिलाने से दूध गाढा हो जाता। जैसे अत्यन्त शीतल स्थान में रक्खा हुआ पतला घृत जम कर गाढा हो जाता उसी प्रकार वासना के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये अर्थात् भ्रान्ति की परम्परा से वासना भी घनीभाव को पहुंच जाती है। इस भ्रान्ति की परम्परा रूप वासना के घनीभाव का निरूपण, भगवद्गीता के १६ अ० श्लोक ७ १२ तक में आसुरी सम्पत्ति के विचार के

प्रसङ्ग में किया है।

"प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाऽऽचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥
आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्" इति॥

अहङ्कारश्च तत्रैवोदाहृतः।

अर्थः—आसुर स्वभाववाले लोग प्रवृत्ति और निवृत्ति किस भांति की होतीं हैं, सो नहीं जानते। और उनमें शौच, आचार, सत्य, ये कोई नहीं होते। वे इस जगत् को असत्य (नहीं है सत्य वेदादिकों का प्रमाण जिस में) अप्रतिष्ठ [नहीं है धर्माधर्मरूप व्यवस्था जिस में] और अनीश्वर (नहीं हैं ईश्वर कर्त्ता जिस का) कहते हैं। और यह कहते हैं कि परस्पर काम से प्रेरित स्त्रीपुरुषों के संयोग से जगत् उत्पन्न हुआ है और कोई कारण नहीं है। मलिनचित्त, अल्पबुद्धि क्रूरकर्म करनेहारे, शत्रु के भांति जगत् के क्षय करने के लिये उत्पन्न होते हैं। दुःख से पूर्ण होने के योग्य अभिलाष को अङ्गीकार कर दम्भ, मान, और मद से युक्त अशुचि (अपवित्र) व्रत के

करने हारे वे अशुभ विचार को स्वीकार करके सर्वत्र प्रवृत्त होते हैं। वे मरणकाल तक चिन्ता से व्याप्त कामोपभोग ही एक परम पुरुषार्थ है दूसरा कोई नहीं ऐसा मानते हैं। अनेक आशारूप पाशों [फांसों] से बन्धे, कामक्रोध में तत्पर, वे कामोपभोग के लिये अन्याय से धनोपार्जन की इच्छा करते हैं। अहङ्कार का उदाहरण भी वहीं (गी०अ० १६ श्लो० १३–१६)कहा है।

"इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ" इति॥

एतेन पुनर्जन्मकारणत्वमुदाहृतं भवति, तच्च पुनः प्रपञ्चितम्।

अर्थः—यह मैंने आज पाया, इस मनोरथ (अभिलषित) को पाउंगा। यह वस्तु मेरे पास है, और, यह भी धन फिर मुझ को मिलेगा। इस शत्रुको मैंने मारा, औरों को भी मारुंगा। मैं ईश्वर [समर्थ] हूं मैं भोगी (भोग्य वस्तु को उपभोग करनेवाला) हूं, सिद्ध [कृतकृत्य] हूं, बलवान हूं, और सुखी हूं, धनी हूं, और उत्तम कुल में उत्पन्न हवा हूं मेरे तुल्य इस संसारमें कौन हे। मैं यज्ञ करता हूं दान देता हूं और प्रसन्न रहता हूं इस प्रकार अज्ञान से अत्यन्त मोहित अनेक भांति के चित्त विकारों कर के भ्रान्त, मोह ('अज्ञान) रूप जाल से फँसे हुए विषय

भोगों में अत्यन्त अनुरक्त वे, अपवित्र नरक में पडते हैं। इत्यादि नाना प्रकार की पुनर्जन्म में कारणता देखलायी है और फिर से भी उसी का विस्तार सेवर्णन (श्लो० १७–२०) करते हैं—

"आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्" इति॥

शुद्धवासना तु ज्ञातज्ञेया। ज्ञेयस्वरूपं त्रयोदशाध्याये भगवानाह—

अर्थः—अपने आप अपनी स्तुति (तारीफ) करनेवाले, स्तब्ध पूज्यों का सत्कार न करनेवाल, धन से उत्पन्न हुए मानमदों करके युक्त, वे पाखण्डपने से विधिपूर्वक यज्ञ नहीं करते है। अहङ्कार, बल, गर्व, काम, एवं क्रोध को भली भांति प्राप्त हुए वे अपने और दूसरों के शरीर में स्थित जो मैं तिस (मेरे) साथ द्वेष करते हुए निन्दा मे प्रवृत्त होते हैं। सन्मार्ग के शत्रु क्रूर, अशुभ कर्म करने हारे, उन नीच मनुष्यों को मैं सदा इस संसार में आसुरी योनि के बीच जन्म देता हूं। हे कौन्तेय (अर्जुन) वे मूढ प्रति जन्म में असुर योनि को प्राप्त होते हैं मुझ को न पाकर अधमा गति को जाते हैं। ज्ञेय की ज्ञान करानेवाली शुद्धवासना है।

ज्ञेयवस्तु का स्वरूप भगवान ने गीता के १३अ०में कथन किया है—

"ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ।
सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते" इति।

अर्थः—जिस को जान कर मोक्ष प्राप्त होता उस ज्ञेय (ज्ञान करने योग्य वस्तु) को कहता हूं वह अनादि परब्रह्म सत् (विद्यमान) असत् (अविद्यमान) से विलक्षण कहा जाता है। उस से चारो ओर हाथ, पैर, आंख, शिर, मुह, और कान, है। वह लोक में सब को व्याप्त करके टिका है। वह सारे इन्द्रियों के गुणों का आभास अर्थात् प्रकाश स्थान होकर भी सब इन्द्रियों से हीन है। सङ्ग रहित होकर भी सारे ब्रह्मण्ड को धारण करने हारा है, और सत्त्व रज तम गुणों से अलग भी सत्वादिगुणों का भोक्ता है। वह सारे भूतों के बाहर, और भीतर, चर और अचर है, सूक्ष्म होनेसे जानने के योग्य नहीं है, दूर है और निकट भी है। वह भूतों के विषय में अविभक्त (अलग बटा हुआ नहीं भी बटासा) स्थित है और सारे भूतों का पोषण संहार और उत्पत्ति करनेहारा है वह सूर्य चन्द्र आदिक ज्योतियों का भी ज्योति (प्रकाशक) है, तमसः पर कहिये अज्ञान से परे कहा जाता है।

अत्र तटस्थलक्षणस्वरूपलक्षणाभ्यामवगन्तुं सोपाधिकनिरूपाधिकस्वरूपद्वयशून्यमुपन्यस्तम्। कदाचित्सम्बन्धि सद्यल्लक्षयति तत्तटस्थलक्षणम् । यथा देवदत्तगृहम् । तथा कालत्रयसम्बन्धि सद्यल्लक्षयति तत्स्वरूपलक्षणम्। यथा प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्र इति ।

अर्थः—उपरोक्त श्लोकों में ज्ञेय वस्तु को तटस्थ और स्वरूपलक्षण द्वारा जानने के लिये उपाधि सहित और उपाधिरहित इस दो प्रकार के ज्ञेय स्वरूप का कथन किया है। जो लक्ष्य के साथ अमुक समय मे सम्बन्ध वाला होकर लक्ष्य वस्तु का बोधन करे उस का नाम तटस्थ लक्षण है जैसे पटनेवाले देवदत्तका घर है? इस वाक्य में पटना देवदत्त के घर के साथ अमुक समय में ही सम्बन्धवाला हो कर इतर घर से अलग हो देवदत्त के गृहरूप लक्ष्य को बतलाता है अतएव वह तस्थलक्षण कहलाता है। सदा लक्ष्य के साथ ही रह कर लक्ष्य को अन्य पदार्थों से अलग कर बतलाने वाला वह स्वरूप लक्षण है जैसे किसी ने किसी बालक से पूछा कि इस आकाश में स्थित ज्योतिर्गणों में चन्द्रमा कौन है? इस के उत्तर में स्थूलविचार से उस ने कहा कि जिस का सब से अधिक प्रकाश है वह चन्द्रमा है इस वाक्य में बालक को तारागण से अलग हुए चन्द्रमा का बोध कराता है, और प्रकृष्ट प्रकाश सदा चन्द्रमा के साथ ही रहता है, यह स्वरूप लक्षण है।

ननु त्यक्तपूर्वापरविचारस्त्वं वासनालक्षणमुक्तम्। ज्ञेयज्ञानं च विचारजन्यमतो न शुद्धायां तल्लक्षणमस्ति। मैवम्।

अर्थः—शङ्का–पूर्वापर विचाररहित स्फुरण का हेतुरूप संस्कार को तुम वासना कहते हो और ज्ञेय ज्ञान तो विचार जन्य है, अत एव उस में शुभवासना का लक्षण सम्भव नहीं होता है ।

लक्षणे दृढभावनयेत्युक्तत्वात् । यथा बहुषु जन्मसु दृढभावितत्वेनास्मिन् जन्मनि विनैव परोपदेशमहङ्कारममकारकामक्रोधादयो मलिनवासना उत्पद्यन्ते, तथा प्राथमिकस्य बोधस्य विचारजन्यत्वेऽपि दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारभाविते तत्त्वे पश्चाद्वाक्ययुक्तिपरामर्शमन्तरेणैव पुरोवर्त्तिघटादिवत्सहसा तत्त्वं परिस्फुरति तादृश्या बोधानुवृत्त्या सहित इन्द्रियव्यवहारः शुद्धवासना । सा च देहजीवनमात्रायोपयुज्यते । नतु दम्भदर्पाद्यासुरसम्पदुत्पादनाय, नापि जन्मान्तरहेतुधर्माधर्मोत्पादनाय । यथा भृष्टानि व्रीह्यादिबीजानि कुसूलपूरणमात्रायोपयुक्तानि न रुचिरान्नाय, नापि सस्यनिष्पत्तये, तद्वत् ।

अर्थः—समाधान—वासनालक्षण में "दृढभावनया" (दृढ अभ्यास द्वारा) ऐसा पद दिया है, इस लिये जैसे अनेक जन्मों में दृढ अभ्यास किया हुआ होने से इस जन्म में अन्य के उपदेश विना ही, अहङ्कार, ममकार, काम, क्रोध, आदि मलिन वासनायें उत्पन्न होती हैं। उसी प्रकार प्रथम ज्ञान विचारद्वारा उत्पन्न होते पर भी उस का चिर काल अविच्छिन्नता से (निरन्तर) आदरपूर्वक सेवन करने से परमतत्त्व की भावना दृढ होने के अनन्तर

महावाक्य और युक्तियों का स्मरण किये विना भी सम्मुख रक्खे हुए घडे के समान आत्मतत्त्व फुरता है। इस प्रकार के बोध की अनुवृत्ति सहित जो इन्द्रियव्यवहार, वह शुद्धवासनारूप है, वह शरीर के जीवन के लिये ही उपयोगी है । वह दम्भ, दर्प आदिक किसी आसुरी सम्पत्ति को नहीं पैदा करती, उसी प्रकार जन्मान्तर के कारणरूप धर्म, अधर्म को भी उत्पन्न करती नहीं । जैसे भूना हुआ व्रीहि आदि बीज केवल कोठी भरने ही के काम में आता किन्तु उस का रुचिकर अन्न नहीं होता उसी प्रकार उस में से बीज अन्न भी नहीं उपजता, उसी तरह शुभवासना भी भृष्टबीज की तरह अर्थात् वह शरीर निर्वाह के सिवाय आसुरी सम्पत्ति की उत्पत्ति या पुनर्जन्म का कारण नहीं हो सकती ।

मलिना च वासना त्रिविधा । लोकवासना शास्त्रवासना देहवासना चेति । सर्वे जना यथा मां न निन्दन्ति यथा वा स्तुवन्ति तथैव सर्वदा चरिष्यामीत्यभिनिवेशो लोकवासना । तस्याःसम्पादयितुमशक्यत्वान्मलिनत्वम्— तथाहि—

"कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्" इत्यादिना बहुधा वाल्मीकिः प्रपच्छ ।

"इक्ष्वाकुवंश प्रभावो रामो नाम जनैः श्रुतः" इत्यादिना प्रत्युत्तरं नारदो ददौ । तादृशस्यापि रामस्य पतिव्रताशिरोमणिभूताया जगन्मातुः सीतायाश्च श्रोतुमशक्यो जना-

पवादः सम्प्रवृत्तः । किमु वक्तव्यमन्येषाम् ।

अर्थः—लोकवासना शास्त्रवासना और देहवासना इस भान्ति मलिनवासना तीन प्रकार की है। तहां सब लोग मेरी स्तुति करें कोई भी मेरी निन्दा न करे ऐसा मैं आचरण करूंगा इस प्रकार के अभिनिवेश को लोकवासना कहते हैं ऐसी वासना का सम्पादन करना कठिन होने से इस का नाम मलिनवासना है क्यों कि श्रीवाल्मीकीजी ने नारद जी से पूछा कि इस संसार में अत्यन्त गुणवान और कीर्तिमान् कौन है? इस के उत्तर में नारद ने कहा कि, ऐसा तो इक्ष्वाकुवंश में अवतीर्ण श्रीरामजी हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्रजी की स्त्री पतिव्रताओं में मुकुट रूपा जगन्माता श्रीसीता देवीके उपर भी ऐसा अपवाद लगा जिसे लोग सुन न सकें। जब कि ऐसों की यह दशा हुई फिर दूसरों की क्या कहना ?

तथा देशविशेषेण परस्परं निन्दाबाहुल्यमुपलभ्यते। दाक्षिणात्यैर्विप्रैरौत्तरीया वेदविदो विप्रा मांसभक्षिणो निन्द्यन्ते । औत्तरेयैश्च मातुलसुतोद्वाहिनो यात्रासु मृद्भाण्डवाहिनो दाक्षिणात्या निन्द्यन्ते । बह्वृचा आश्वलायनशाखां कण्वशाखायाः प्रशस्तां मन्यन्ते । वाजसनेयिनस्तु वैपरीत्येन । एवं स्वस्वकुलगोत्रबन्धुवर्गेष्टदेवतादिप्रशंसा परकीयनिन्दा च, आविद्वदङ्गनागोपालं सर्वत्र प्रसिद्धा । एतदेवाभिप्रेत्योक्तम् ।

अर्थः—इसी तरह देशभेद के कारण परस्पर निन्दा प्रायः देखने में आती है—दक्षिणदेशस्थ ब्राह्मण उत्तर देशस्थ वेद

जाननेहारे ब्राह्मणो को मांस खानेवालेहैं कहकर निन्दा करते हैं उसी तरह उत्तरदेशस्थ ब्राह्मण दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंको "वे मातुल (मामी) की लडकी से ब्याहनेवाले हैं तथा मुसाफरीमें माटीके बर्तनों को साथ लेकर जाते हैं यों कहकर निन्दा करते। ऋग्वेदी ब्राह्मण आश्वलायन शाखाको कण्वशाखा से श्रेष्ठ मानते हैं, तो वाजसनेयी शाखा के पढने वाले यजुर्वेदी द्विज इस के उलटा मानते हैं अर्थात् आश्वलायन शाखा से कण्व को श्रेष्ठ मानते हैं इस भान्ति अपने २ कुल, गोत्र, बन्धु वर्ग को इष्ट देव की प्रशंसा तथा अन्य कुल गोत्र की निन्दा, विद्वान् से लेकर अत्यन्त पामर गोआलेकी जाति तक सर्वत्र यह लोकप्रसिद्ध बातहै।

इसी अभिप्राय से कहा है कि—

"शुचिः पिशाचो विचलो विचक्षणः क्षमोऽप्यशक्तो बलवांश्च दुष्टः ।
निश्चित्तचोरः सुभगोऽपि कामी को लोकमाराधयितुं समर्थः" इति ।

अर्थः—पवित्र और पिशाच के समान, चपल और विचक्षण शक्तिमान् तथा अशक्त, बलवान् तथा दुष्ट, चित के ठिकाना बिना चोर, सुन्दर, और कामी ऐसा कौन पुरुष लोक को प्रसन्न करने में समर्थ है ? कोई भी नहीं ।

"विद्यते न खलु कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः ।
सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्प" इति च ।

अर्थः—जिससे सब लोग प्रसन्न ही रहें कोई भी अप्रसन्न न हो ऐसा कोई भी उपाय नहीं इस लिये सब प्रकार से जिस में

अपनी भलाई हो वैसे काम को करे । बहुत बोलने वाला मनुष्य-
क्या कर सकता तैसा है ?

अतो लोकवासनाया मलिनत्वमभिप्रेत्य यो-
गीश्वरस्य तुल्यनिन्दास्तुतित्वं मोक्षशास्त्रेषु
वर्णितम् । शास्त्रवासना त्रिविधा । पाठव्य-
सनं शास्त्रव्यसनमनुष्ठानव्यसनं चेति । पाठ-
व्यसनं भरद्वाजेऽवगम्यते। स हि पुरुषायुषत्र-
येण बहून् वेदानधीत्येन्द्रेण चतुर्थायुषि प्रलो-
भितस्तत्रापि परिशिष्टवेदाध्ययनायोद्यमं च-
कार । तस्यापि पाठस्याशक्यत्वान्मलिनवा-
सनात्वम्। तां चाशक्तिमिन्द्रः प्रतिबोध्य पा-
ठान्निवर्त्य ततोऽप्यधिकाय पुरुषार्थाय सगुण-
ब्रह्मविद्यामुपदिदेश । तदेतत्सर्वं तैत्तिरीय-
ब्राह्मणे द्रष्टव्यम् । तथैवाऽऽत्यन्तिकपुरुषा-
र्थाभावाद्बहुशास्त्रव्यसनस्य मालिन्यं काव-
षेयगीतायामुपलभ्यते ।

"कश्चिन्मुनिर्दुर्वासा बहुविधशास्त्रपुस्तकभा-
रैः सह महादेवं नमस्कर्तुमागतस्तत्सभायां ना-
रदेन मुनिना भारवाहिगर्दभसाम्यमापादितः
कोपात्पुस्तकानि लवणार्वे परित्यज्य महादेवे-
नाऽऽत्मविद्यायां प्रवर्त्तितः" इति । आत्मवि-
द्या चानभिमुखस्य गुरुकारुण्यरहितस्य न
वेदशास्त्रमात्रेणोत्पद्यते । तथा च श्रुतिः—
"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न
बहुना श्रुतेन" इति ।

अन्यत्राप्युक्तम् ।

अर्थः—इस प्रकार लोकवासना को मलिन कहकर मोक्ष शास्त्र
में योगीश्वर की निन्दा और स्तुति में समानता कथन कियी है ।
शास्त्र वासना भी तीनप्रकार की है १ पाठव्यसन २ शा-
स्त्रव्यसन और ३ अनुष्ठानव्यसन । इनमे से पाठव्यसन भरद्वाज-
मुनि में देखने में आता है । इन भरद्वाज मुनि ने अपनी ३००
वर्ष की पूरी आयु पर्यन्त बहुत वेदों को पढा, तब इन्द्रने आ-
कर १०० वर्ष की आयु देने का लालच बतलाया, इतने आयु
से भी शेष रहे वेदों के अध्ययन के लिये प्रयत्न करने का नि-
श्चय किया । उस के बाद इन्द्र ने उन को समझा कर पाठ करने
से रोक उन्हे अधिक पुरुषार्थ करने के लिये सगुण ब्रह्मविद्या
का उपदेश किया । यह सब वार्त्ता तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्ट है।
बहुत शास्त्रों का व्यसन भी मोक्षरूप आत्यन्तिक पुरुषार्थ का
हेतु न होने से उस की भी मलिनता कावषेय गीता में पायी
जाती है, वह इस रीति से—कोई दुर्वासा नाम के मुनि अनेक
प्रकार के पुस्तकों का भार साथ लेकर महादेव जी को नमस्कार
करने आये, तब नारदमुनि जो महादेवजी की सभामें पहिले से
बैठे थे । उन्हों ने दुर्वासा मुनि को भार ढोने वाले गदहे की भांति
सभा के बीच ठहराया । इस से दुर्वासा मुनिने क्रोध के वश सब
पुस्तकें खारसमुद्र में फेंक दियी और महादेवजीकी सभामें आगमन,
किया तब महादेवजी ने उन्हें अध्यात्मविद्या में प्रवृत्ति कराई। यह
आत्मविद्या, जिसकी अन्तर्मुख वृत्तियां हुई नहीं, तथा जिस ने
सद्गुरु की कृपा प्राप्त नहीं कियी ऐसे पुरुषको किसी काल में
भी केवल वेदशास्त्र के अभ्यास से प्राप्त नहीं होती । यह
आत्मा शास्त्रद्वारा, ग्रन्थ के अर्थ को धारण कराने वाली शक्ति

द्वारा, या बहुत सुनने से प्राप्त नहीं होती ऐसी श्रुति है। अन्यत्र भी कहा है—

" बहुशास्त्रकथाकन्थारोमन्थेन वृथैव किम्।
अन्वेष्टव्यं प्रयत्नेन तत्त्वज्ञैर्ज्योतिरान्तरम् " इति॥

अर्थ—अनेक शास्त्रों की कथारूप कन्था के वार २ चर्वण से क्या फल हैं ? तत्त्वज्ञ पुरुष तो प्रयत्न द्वारा आन्तर ज्योति का अन्वेषण करें (आन्तरज्योति को खोजें)।

"अधीत्य चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
ब्रह्मतत्त्वं न जानाति दर्वी पाकरसं यथा " इति च॥

अर्थः—चारो वेदों और अनेकशास्त्रों के पढनेपर भी, जैसे अनेक पाक में फिरती हुई करछी (दर्वी) अन्नके रस को जानती नहीं, वैसें ही, अन्तर्मुख वृत्ति रहित और गुरु कृपाशून्य पुरुष ब्रह्मतत्त्व को नही जानता।

नारदश्चतुः षष्टिविद्याकुशलोऽप्यनात्मविस्त्वेनानुतप्तः सनत्कुमारमुपससाद इति छन्दोगा अधीयते । अनुष्ठानव्यसनं विष्णुपुराणे निदाघस्योपलभ्यते। वासिष्ठरामायणे दाशूरस्य । निदाघोहि ऋभुणा पुनः पुनर्बोध्यमानोऽपि कर्मश्रद्धाजाड्यं चिरं न जहौ। दाशूरश्चात्यन्तश्रद्धाजाड्येनानुष्ठानाय शुद्धप्रदेशं भूमौ न क्वाप्युपलेभे । अस्याश्च कर्मवासनायाः पुनर्जन्महेतुत्वान्मलिनत्वम् । तथाचाऽऽथर्वणिका अधीयते—

अर्थः—नारदमुनि ६४ कला विद्याओं मे कुशल थे। तौभी ब्रह्मवित, न होने से व्याकुल हो सनत्कुमार मुनिकी शरण में

गये यह बात छान्दोग्य उपनिषद् में है। अनुष्ठान व्यसन निदाघजी का विष्णुपुराणमें वर्णित है । दाशूरके पुत्र निदाघको ऋभु के वार २ बोध कराने पर भी चिरकाल तक उन्होने कर्म में जडश्रद्धा को नहीं त्याग दिया। दाशूरको अत्यन्त श्रद्धा की जडता के कारण यज्ञ करने योग्य भूमि पृथिवी पर कहीं नहीं मिली। यह बात योगवासिष्ठ रामायण में है । यह कर्मवासना पुनर्जन्मकी हेतुरूप होने से मलिन है। अथर्ववेदीय मुण्डक उपनिषद् में भी कहा है कि—

" प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरा मृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥ अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः॥ अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनाऽऽतुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥इष्टापूर्तं मन्यमन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेनानुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति "॥

भगवताप्युक्तम्।

अर्थः—जिन यज्ञोंमें अठारह प्रकारके (१६ऋत्विक् १ यजमान और यजमानकी स्त्री) नीच कर्म कहे हैं । सो ये यज्ञरूप नौकायें अदृढ हैं अर्थात इन से संसारसागर को पार नहीं पा सकते। जो मूढ लोग इस उक्त कर्म को परमकल्याण मार्ग या

मोक्ष है, ऐसा सर्वोत्कृष्ट मानकर अच्छेप्रकार आनन्द मानते हैं। वे बार२ ही वृद्धावस्था के साथ होनेवाले मृत्यु को प्राप्त होते या अर्थात् नष्ट भ्रष्ट होते हैं । अविद्या के बीच डूबे हुए आपे को धीर, और पण्डित मानने हारे, अधम, जैसे नेत्रहीन पुरुष द्वारा अन्य अन्धे पुरुष चलते इस प्रकार वे मूढ (कर्म करनेहारे) वारवार जन्ममरणरूप गढे (कुमार्ग) में गिरते हैं। बहुत प्रकारवाली अविद्या में ऐसे बालक (अज्ञलोग) आपेको कृतकृत्य मानते हैं।राग का आश्रयकर जिसी किसी कर्म में आसक्त होकर उस कर्म के फलप्राप्ति के हेतुसे आतुर कर्म फल के क्षय होने से उस परमतत्त्व मोक्ष से गिरजाते हैं । जो अत्यन्त मूढ कर्मी पुरुष इष्टापूर्त (लौकिक फलभोग की इच्छा) को ही श्रेष्ठ मानते, कर्म के सिवाय अन्य उपायों को श्रेष्ठ नहीं जानते। उस से वे स्वर्ग में सुकृत द्वारा तज्जन्य तुच्छ सुख को भोगकर इस मनुष्य लोक में या इस से भी नीच लोक में प्रवेश करते हैं।

श्री कृष्णजी ने भी भगवद्गीता के अ० २ । श्लो० ४२ ४६ में कहा है कि—

"यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ ? नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ?।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके॥

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः"इति॥

अर्थः—हे अर्जुन? वेदों में अनेकभान्ति से दिखाये हुए जो स्वर्ग आदिक फल हैं उन में अभिलाषा करनेवाले, कर्मकाण्ड से अन्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है ऐसा भाषण करनेहारे विविधकामनाओं करके कर्म में प्रवृत्त, स्वर्गवास ही को परम पुरुषार्थ माननेवाले ऐसे जो अज्ञानी लोग वे केवल ऐश्वर्यों के भोग ही में दृष्टि देकर नाना क्रियाओं के आडम्बरों से बढी हुई जन्म केद्वारा कर्मफलों को देनेवाली वाणी को पल्लवित (बढाकर) कहते हैं। परन्तु भोग और ऐश्वर्य में फसे हुए तथा-कर्मकाण्डों करके खींची है चित्तवृत्ति जिनकी ऐसों के अन्तःकरण में दृढप्रवृत्तिवाली बुद्धि नहीं होती है ॥ वेद सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुणरूप जो संसार के विषय सुख उन को प्रकाश करने वाले हैं। हेअर्जुन ? तू तो निष्काम हो और परस्परविरोधी सुखदुःखादिपदार्थों से मुक्त हो, नित्यधैर्य को धारणकर, यह-पदार्थ कैसे मिलेगा यह कैसे रहेगा इस चिन्ता को छोड और आत्मवान् अर्थात् प्रमाद से रहित हो। छोटे २ जलाशयों से होनेवाले जो काम होतें वे चारों ओर से भरे हुए बडे भारी जलाशय में जैसे सहज मे होते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण वेदों से होने वाले जो प्रयोजन वो ब्रह्म जाननेवाले को सहज में हो जाते हैं।

"दर्पहेतुत्वाच्छास्त्रवासनाया मलिनत्वम्।
श्वेतुकेतुरल्पेनैव कालेन सर्वान् वेदानधीत्य दर्पेण पितुरपि पुरतोऽविनयं चकारेति छन्दोगाः षष्ठाध्याये पठन्ति। तथा बालाकिः कानि चिदुपासनान्यवगत्य दृप्त उशीनरादिषु बहुषु देशेषु दिग्विजयेन बहून् विप्रानवज्ञाय काशि-

मजातशत्रुं ब्रह्मविच्छिरोमणिमनुशासितुं धार्ष्ट्यं चकारेति कौषीतकिनो वाजसनेयिनश्चाधीयते। देहवासनाऽऽत्मत्वगुणाधानदोषापनयनभ्रान्तिभिस्त्रिविधा । तत्राऽऽत्मत्वं भाष्यकार उदाजहार—

"देहमात्रं चैतन्यविशिष्टमात्मेति प्राकृता लौकायतिकाश्च प्रतिपन्नाः" इति ॥

अर्थः—शास्त्रवासना गर्व का कारण होनेसे मलिन है, श्वेतकेतु ने थोडे समय में सब वेदों का अभ्यास कर गर्व से अपने पिता के समीप भी अविवेक किया, यह वार्त्ता छान्दोग उपनिषद में हैं । बालाकि ने कई एक उपासना ओं को जाननेसे गर्विष्ठ होके, उशीनर आदि अनेक देशों में दिग्विजय द्वारा बहुत से ब्राह्मणों का अपमान कर अन्त में काशी में ब्रह्मज्ञ शिरोमणि अजातशत्रु नामक राजा को भी उपदेश देनेके लिये अपनी ढिठाई (धृष्टता) प्रकट कियी, यह बात बृहदारण्यक एवं कौषीतकी उपनिषद् में प्रसिद्ध है । देहवासना भी देहात्मभाव, गुणाधान, और दोषापनयन भ्रान्तिद्वारा तीन प्रकार की है । — "चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है, इस प्रकार पामर लोग और लौकायतिक—चार्वाक के अनुयायी मानते हैं । इस प्रकार देह में आत्मापनका उदाहरण भगवान् शङ्कराचार्य ने शारीरक भाष्य में दिया हैं ।

"सवा एष पुरुषोऽन्नरसमयः" इत्यारभ्य "तस्मादन्नं तदुच्यते" इत्यन्तेन ग्रन्थेन तामेव प्राकृतप्रतिपत्तिं तैत्तिरीयाः स्पष्टीकुर्वन्ति । विरोचनः प्रजापतिनाऽनुशिष्टोऽपि स्वचित्त-

दोषेण देहात्मबुद्धिं दृढीकृत्यासुरान् सर्वाननुशशास इति छन्दोगा अष्टमाध्याये समामनन्ति। गुणाधानं द्विविधम् । लौकिकं शास्त्रीयं चेति । समीचीनशब्दादिसम्पादनं लौकिकम् । कोमलध्वनिना गातुमध्येतुं वा तैलपानमरीचभक्षणादिषु लोकाः प्रयतन्ते। मृदुस्पर्शाय लोकाः पुष्टिकरावौषधाहारावुपयुञ्जते । लावण्यायाभ्यङ्गोद्वर्तनदुकूलालङ्कारानुपसेवन्ते । सौगन्ध्याय स्रगालेपने धारयन्ति । शास्त्रीयं गुणमाधातुं गङ्गास्नानशालिग्रामतीर्थादिकं सम्पादयन्ति ।

अर्थः—सो यह पुरुष अन्न रसका विकाररूप है । यहां से आरम्भ कर "इस लिये उसे अन्न कहते है" यहां तक तैत्तिरीयोपनिषद्में भी उसी प्राकृत लोगों का मत दिखलाया है ।विरोचन कों ब्रह्मा ने उपदेश दिया उस पर भी उसने अपने अन्तःकरण के दोष से देहात्म बुद्धि को दृढकर उसको असुरों को उपदेश दिया, यह कथा छान्दोग्य उपनिषद् के अ० ८ में स्पष्ट है। गुणाधान (आपे में जो गुण न हो उस को प्राप्त करना) शास्त्रीय और लौकिक इस भांति दो प्रकारका है । कण्ठ में सुन्दर स्वर का सम्पादन आदिक लौकिक गुणाधान है । कोमल स्वर से गान या अध्ययन के लिये तैलपान, मरीच का सेवन, आदि उपायों को बहुत लोग प्रयत्न पूर्वक सेवते हुए देख पडते हैं । बहुत से तो अपने शरीर को मुलायम करने के लिये पुष्टिकारक औषध और आहार का सेवन करते हैं । सुन्दररूप होनेके लिये अभ्यंग और उबटन को सेवते हैं।उसी प्रकार सुन्द-

वस्त्र और अलंकारों को धारण करते हैं। शरीर को सुगन्धवाला करने के लिये चन्दन और पुष्पमालाओं को धारण करते हैं। इन सब की लौकिकगुणाधान में गिनती है। शास्त्रीय गुण को हासिल करने के लिये गंगास्नान और शालिग्राम के चरणामृत को सेवन करते हैं।

दोषापनयनं च चिकित्सकोक्तैरौषधैर्मुखादिप्रक्षालनेन च लौकिकं, शौचाचमनाभ्यां वैदिकमित्युभयविधम्। अस्याश्च देहवासनाया मालिन्यं वक्ष्यते। देहस्याऽऽत्मत्वं तावदप्रामाणिकत्वादशेषदुःखहेतुत्वाच्च मलिनत्वम्। अस्मिंश्चार्थे पूर्वाचार्यैः सर्वैरपि पराक्रान्तम्। गुणाधानं च प्रायेण न पश्यामः। प्रसिद्धा एव गायका अध्यापकाश्च प्रयतमाना अपि बहवो ध्वनिसौष्ठवं न लभन्ते। मृदुस्पर्शोऽङ्गपुष्टिश्च न नियता। लावण्यसौगन्ध्ये अपि दुकूलस्रगादिनिष्ठे ननु देहनिष्ठे। अतएव विष्णुपुराणेऽभिहितम्।

अर्थः—दोषापनयन (शरीर में के दोषों को दूर करना) भी लौकिक और शास्त्रीय इस भान्ति दो प्रकार का है। तहां वैद्यक में कहे अनुसार औषधों के सेवन तथा मुखप्रक्षालनादि से दोषापनयन को लौकिक दोषापनयन कहते हैं, और शौच आचमन द्वारा शास्त्रीय दोषापनयन कहलाता है। इस देहवासना की मालिनता को कहेंगे। देह को आत्मा जानना यह प्रमाणशून्य और सब दुःखों का कारणरूप होनेसे मलिन है। देह को आत्मा मानने का खण्डन सब ही पूर्वाचार्यों ने अति प्रयत्न से

किया है। गायक और अध्यापक सुन्दरध्वनि होने के लिये प्रयत्न करते हुए भी प्रायः निष्फल होते जाते हैं। शरीर का खूब मुलायम होना और पुष्टि होना यह भी औषधादिक सेवने से ही होजाता ऐसा कोई नियम नहीं। लावण्य और सुगन्धिपन भी वस्त्र अलंकार, पुष्पमाला आदिमें स्थित है, देहमें नहीं, अत एव विष्णुपुराण में कहा है—

"मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ।
देहे चेत्प्रीतिमान् मूढो भवति नरकेऽपि सः।
स्वदेहाशुचिगन्धेन न विरज्येत यः पुमान्।
विरागकारणं तस्य किमन्यदुपदिश्यते" इति ॥

अर्थ—मांस, रुधिर, पीव, विष्ठा, मूत्र, रग, मज्जा और हड्डियों के संघातरूप शरीर में जो मूढ पुरुष प्रीतिमान् होता है तो नरक जो वैसेही पदार्थों से भरा रहता है, उसमें भी उसको प्रीतिमान् होना चाहिये। अपने शरीर में स्थित अशुचि दुर्गन्ध करके जिस पुरुष को शरीर में विराग उत्पन्न नहीं होता, उस पुरुष को दूसरा वैराग्यजनक कारण का क्या उपदेश किया जावेगा।

"शास्त्रीयं च गुणाधानं प्रबलेन शास्त्रान्तरेणापोह्यते "नहिंस्यात्सर्वभूतानि" इत्यस्य "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" इत्यनेनापवादस्तद्वत्प्रबलशास्त्रमेतत् ॥

अर्थः—शौच आचमनादिगुणाधान, उसके विधान करनेवाले शास्त्र की अपेक्षा अधिक बलवान् शास्त्रसे बाधको प्राप्त होता है, जैसे "किसी प्राणी की हिंसा न करे" इस वेदवचन का—"अग्निष्टोम यज्ञ मे पशु का आलम्भन करे"— यह

वाक्य अपवाद है । तैसे शास्त्रीय गुणाधान का अपवादरूप निम्नलिखित शास्त्र वचन है—

"यस्याऽऽत्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः" ॥

अर्थः—जिस को वात, पित्त, और कफ, इन धातुओं का बना हुआ शव (देह) में आत्मबुद्धि है, स्त्री, पुत्रादि में जिस को आत्मबुद्धि है, पृथिवी का विकार रूप प्रतिमा आदि में जिस को पूज्य बुद्धि है, तीर्थबुद्धि जिस को जल में है, परन्तु ऐसी बुद्धि जिस को ज्ञानवान् पुरुष में नहीं है, वही पुरुष भारवाही बैल या गदहा हैं ।

"अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः ।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते"
इत्यादि ।

अर्थः—देह अत्यन्त मलिन है, अर्थात् किसी प्रकार वह शुद्ध हो ऐसा नहीं । और देहस्थ आत्मा अत्यन्त निर्मल है, उस को शुद्धि की अपेक्षा नही, ऐसा इन दोनों के भेद को समझ कर किस को शुद्ध करें ? किसीको नहीं ।

यद्यप्यनेन शास्त्रेण दोषापनयनं प्रतिषिध्यते नतु गुणाधानं, तथाऽपि सति विरोधिनि प्रबलदोषे गुण आधातुमशक्य इत्यर्थाद्गुणाधानस्य प्रतिषेधः । अत्यन्तमालिन्यं चात्र मैत्रायणीयशाखायां श्रूयते ॥

अर्थः—यद्यपि यह वाक्य दोषापनयनका निषेध करता है, गुणाधान का निषेध करता नहीं तथापि जब तक प्रबल दोष विद्यमान रहते तब तक गुणाधान बन नहीं सकता । इस लिये गुणाधान का निषेध भी इस वाक्य से समझ लेना । देह की अत्यन्त मलिनता मैत्रायणी शाखा में दिखलायी है—

" भगवन्नस्थिचर्मस्नायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेष्माश्रुदूषिकादूषिते विण्मूत्रवातपित्तसंघाते दुर्गन्धे निःसारेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः " इति ।

अर्थः—हे भगवन् ! इस शरीर को जो हड्डी, चर्म, नस, मज्जा, मांस, शुक्र (बीज) रुधिर, कफ, आंसु, दूषिका (आंख का मैल) आदि से दूषित है और विष्ठा, मूत्र, वात, पित्त आदिकों का समुदायरूप और दुर्गन्धि वाला है, उस में विषय भोग का क्या प्रयोजन है ? कोई भी नहीं ।

शरीरमिदं मैथुनादेवोद्भूतं संविदपेतं निरय इव मूत्रद्वारेण निष्क्रान्तमस्थिभिश्चितं मांसेनानुलिप्तं चर्मणाऽवबद्धं विण्मूत्रकफपित्तमज्जामेदोवसाभिरन्यैश्चाऽऽमयैर्बहुभिः परिपूर्णं कोश इव वसुनेति च चिकित्सया च रोगशान्तिर्न नियता । शान्तोऽपि रोगः कदाचित् पुनरुदेति । नवच्छिद्रैर्निरन्तरं स्रवत्सु मलेषु रोमकूपैरसङ्ख्यातैः स्विन्ने गात्रे को नाम स्वदेहमुपायेन प्रक्षालयितुं शक्नुयात् । तदुक्तं पूर्वाचार्यैः ।

अर्थः—यह नरक तुल्य शरीर, मैथुन से उत्पन्न हुआ है । चैतन्यरहित, मूत्र द्वारसे निकला, हड्डियों से व्याप्त, मांस से

लिपटा, चाम से बन्धा, तथा जैसे द्रव्यों से भरा खजाना होने से इन विष्ठा मूत्र कफ पित्त मज्जा मेद वसा और अन्य रोग रूप द्रव्यों से पूर्ण है । दवा से रोगों की निवृत्ति हो ही जाती ऐसा नियम नहीं । और कदाचित् रोग छूट भी जावे तो फिर वह हो जाता है । नौ छिद्र (मलत्याग मार्ग, पेशाव करने का यन्त्र, मुंह, नाकके दो छेद, आंख के दो, वा और कान के दो) में से निरन्तर मल निकलता रहता है । और शरीर में पसीना होता है । उस समय भी असंख्यात रोमकूप में से मल निकलता है । ऐसे शरीर को प्रक्षालन आदि उपायों से कौन शुद्ध कर सकता ? कोई नहीं ।

पूर्वाचार्य्योंने भी कहा है—

"नवच्छिद्रकृता देहाः स्रवन्ति घटिका इव ।
बाह्यशौचैर्न शुध्यन्ति नान्तः शौचं तु विद्यते"॥

अतोदेहवासना मलिना । तदेतन्मालिन्यमभिप्रेत्य वसिष्ठ आह—

अर्थः—जैसे नौ छेदवाले घडे में से जल बाहर गिरता है, उसी प्रकार नौछिद्रवाले शरीर में से मल बाहर होता । यह शरीर बाह्य शौच (बाहरी सफाई) से शुद्ध नहीं हो सकता । उसी प्रकार उस की भीतरी शुद्धि तो है नहीं । इस लिये देहवासना मलिन है ।

देहवासना को मलिन समझ कर वसिष्ठ ने भी कहा है:—

"आपादमस्तकमहं मातापितृविनिर्मितः ।
इत्येको निश्चयोराम? बन्धायासद्विलोकनात्॥
सा कालसूत्रपदवी सा महावीचिवागुरा ।
साऽसिपत्रवनश्रेणी या देहोऽहमितिस्थितिः ॥

सा त्याज्या सर्वयत्नेन सर्वनाशेऽप्युपस्थिते ।
स्प्रष्टव्या सा न भव्येन सश्वमांसेव पुल्कसी "
इति ।

अर्थः—पैर से शिर तक मुझ को माता पिता ने ही रचा है। माता पिता से उत्पन्न इस शरीर के सिवाय, अन्य मेरा स्वरूप नहीं । हे राम ? इस प्रकार का एक निश्चय अयथार्थ दृष्टि रूप होने से बन्धन देने वाला है । 'मैं देह हूं' ऐसा जो निश्चय है, वह कालसूत्र नामक नरक का मार्ग है । वह 'अवीचि' नामक नरक में फासने वाला बडा जाल है, वह 'असिपत्रवन' इस नामके नरक की पंक्ति है । सर्व पदार्थों के नाश की समय आने पर भी ' मैं देह हूं ' ऐसी भावना सब प्रयत्नों से भी त्याग करनी । भविष्यत् में कल्याण चाहने वाला पुरुष कुत्ते का मांस लेकर जाते हुए चण्डाली के समान पूर्वोक्त अहम्भाव का स्पर्श भी नहीं करे ।

"तदेतल्लोकशास्त्रदेहवासनात्रयमाविवेकिनामुपादेयत्वेन प्रतिभासमानमपि विविदिषोर्वेदनोत्पत्तिविरोधित्वाद्विदुषो ज्ञानप्रतिष्ठाविरोधित्वाच्च विवेकिभिर्हेयम्। अतएव स्मर्यते" ।

अर्थः—लोकवासना, देहवासना, और शास्त्र वासनायें तीनवासनायें अविवेकी पुरुषको ग्रहण करने योग्य प्रतीत भी हों तो भी वह जिज्ञासु के लिये ज्ञान उत्पत्ति में विरोधी होनेसे और ज्ञानी को स्थिरता की विरोधी होनेसे विवेकी पुरुष इनका सर्वथा त्याग करे ।

इसी लिये योग्यावासिष्ठ में कहाहैं कि—

"लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयाऽपि च।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते" इति ॥

अर्थः—लोकवासना, शास्त्रवासना, और देहवासना द्वारा जीव का यथार्थ (ठीक) ज्ञान नहीं प्राप्त होता ।

या तु दम्भदर्पाद्यासुरसम्पद्रूपा मानसवासना तस्या नरकहेतुत्वान्मालिन्यमतिप्रसिद्धम् । अतः केनाप्युपायेन वासनाचतुष्टयस्य क्षयः सम्पादनीयः । यथा वासनाक्षयः सम्पादनीयस्तथा मनसोऽपि । नच तार्किकवन्नित्यत्वमणुपरिमाणं मनो वैदिका अभ्युपगच्छन्ति । येन मनोनाशो दुःसम्पादनीयः स्यात् । किं तर्हि सावयवमनित्यं सर्वदा जतुसुवर्णादिवद्बहुविधपरिणामार्हं द्रव्यं मनः । तस्य लक्षणं प्रमाणं च वाजसनेयिनः समामनन्ति ।

अर्थः—दम्भ दर्प आदि आसुरी सम्पत्तिरूप जो मानस वासना है । वह नरक का हेतु होने से उस की मलिनता तो अत्यन्त प्रसिद्ध ही है, अतएव किसी उपाय से लोक, शास्त्र, देह और मानस इन चार प्रकार की वासना ओं का क्षय करे । जैसे वासना ओं का क्षय कर्त्तव्य है उसी प्रकार मनोनाश भी कर्त्तव्य है ।

तर्कशास्त्री लोग मन को नित्य, और अणुरूप मानते हैं इस लिये उन के मत में मन का नाश यद्यपि अशक्य है । तथापि वैदिक पुरुष वैसा मानते नहीं । वे तो अवयव वाले अनित्य और लोह सुवर्ण आदिक के समान बहुत तरह के परि-

णाम पाने योग्य जो द्रव्य वह मन है ऐसा मानते हैं । मन-का लक्षण और प्रमाण वाजसनेयी शाखावाले यों कहते हैं ।

"कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव" इत्येतल्लक्षणम् ।

कामादिवृत्तयः क्रमेणोत्पद्यमानाश्चाक्षुषप्रत्यक्षघटादिवत्साक्षिप्रत्यक्षा अतिस्पष्टं भासन्ते तद्वृत्त्युपादानं मन इत्यर्थः ।

अर्थः—"काम, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, लज्जा, ज्ञान, भय ये सब मन ही हैं यह ऊपर से जैसे घडा आदि पदार्थ चाक्षुष (आंखसे) प्रत्यक्ष से स्पष्ट भासते हैं उसी प्रकार अनुक्रम से उत्पन्न होनेवाली काम आदिक वृत्तियां साक्षिप्रत्यक्ष से स्पष्ट भासती हैं । उन वृत्तियों का उपादान कारण यह मन ही है यह मन का लक्षण हुआ ।

"अन्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषम्" इति "मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति" इत्यादि प्रमाणम् ।

अर्थः—मेरा मन अन्यत्र था इस से मैंने नहीं देखा, मेरा मन अन्यत्र था इससे मैंने नहीं सुना । और "यह पुरुष मन से देखता है और मन से सुनता है" यह श्रुति मन के सद्भाव में प्रमाणरूप है ।

चक्षुःसंनिकृष्टः स्फीतावलोकमध्यवर्त्ती घटः श्रोत्रसंनिकृष्ट उच्चैःपठितवेदश्च यस्यानवधाने सति न प्रतीयते, अवधाने तु प्रतीयते । तादृशं सर्वविषयोपलब्धिसाधारणकारणम-

न्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रतीयत इत्यर्थः ।
"तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्टो मनसा विजानाती" त्येततदुदाहरणम् ।

अर्थः—नेत्र इन्द्रिय के समीप बहुत प्रकाश में रहने वाला घड़ा और कान के पास ऊंचे स्वर से पढने से वेद जिस के अवधान से प्रतीत होता है, उसी प्रकार जिस की अनवधानता से प्रतीत न हो वैसे सब विषयों के ज्ञान का जो साधारण कारण अन्वय व्यतिरेक रीति से प्रतीत होता है, वह मन है। "पीठ पर से हुए स्पर्श को मन से जानता है" यह मन का उदाहरण है ।

यस्माल्लक्षणप्रमाणाभ्यां सिद्धं मनस्तस्मात्तदेवमुदाहरणीयम् । पृष्ठभागेऽप्यन्येनोपस्पृष्टो देवदत्तो विशेषेण जानाति हस्तस्पर्शोऽयमङ्गुलिस्पर्शोऽयमिति । नहि तत्र चक्षुः प्रसरति, त्वगिन्द्रियं तु मार्दवकाठिण्यमात्रोपक्षीणम् । तस्मान्मन एव विशेषज्ञानकारणं परिशिष्यते । तच्च मननान्मन इति चिन्तनाच्चित्तमिति चाभिधीयते । तच्च चित्तं सत्त्वरजस्तमोगुणात्मकं प्रकाशप्रवृत्तिमोहानां सत्त्वादिकार्याणां तत्र दर्शनात् । प्रकाशादीनां च गुणकार्यत्वं गुणातीतलक्षणेऽवगम्यते ।

अर्थः—लक्षण और प्रमाण द्वारा मन सिद्ध होने के लिये इस भांति उस का उदाहरण समझना कि जैसे देवदत्त के पीठ की ओर होकर किसी ने उस का स्पर्श किया जिस को वह

मालूम करता है कि 'यह हाथ से किसी ने छुआ है और 'यह अङ्गुलि से स्पर्श हुआ'—यहां पीठ की ओर नेत्र इन्द्रिय पहुंच नहीं सकता और त्वचा इन्द्रिय केवल स्पर्शगत कठिनता या मृदुता को जतलाकर विराम को पाता है । अतएव हाथ का स्पर्श या अङ्गुली का स्पर्श इस विशेष ज्ञान का कारण जो शेष रहा वह मनन रूप क्रिया के कारण 'मन' कहलाता है, और चिन्तन रूप क्रिया करने से 'चित्त' कहलाता है। वह मन सत्त्व, रज, और तमोगुणमय है । क्योंकि इन तीन गुणों का कार्य्य प्रकाश, प्रवृत्ति, और मोह मन में प्रतीत होते हैं ।

"प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव" ?
इत्यभिधानात् । साङ्ख्यशास्त्रेऽपि प्रकाशप्रवृत्तिमोहा नियमार्था इत्युक्तम् । प्रकाशोनाम नात्र सितभास्वरं रूपं किं तु ज्ञानम् ।

अर्थः—प्रकाश आदि तीन गुणों के कार्य्य हैं, यह गुणातीत के लक्षण मे बतलाया है (भगवद्गीता में) प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह, नियम के लिये हैं । इसी प्रकार साङ्ख्यशास्त्र में भी कहा हैं। प्रकाश अर्थात् यहां शुक्लभास्वर रूप न समझना, किन्तु ज्ञानरूप प्रकाश समझना । क्योंकि—

"सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च"
इत्युक्तत्वात् । ज्ञानवत्सुखमपि सत्त्वकार्यम् । तदप्युक्तम् ॥

अर्थः—सत्त्वगुण से ज्ञान, रजो गुण से लोभ, और तमो गुण से प्रमाद, मोह, और अज्ञान उत्पन्न होते हैं । गी०-अ० १४ । श्लो १९ में कथन किया है । ज्ञान के समान सुख भी

सत्वगुण का कार्य है, यह बात भी उसी अध्याय में ९ मे श्लो. में कथन कीय है ।

"सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ? ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत" इति ॥

समुद्रतरङ्गवन्निरन्तरं परिणममानेषु गुणेषु कदाचित् कश्चिदुद्भवति । इतरावभिभूयेते । तदुक्तम् ।

अर्थः—हेभारत ! सत्त्वगुण के उदय होने से सुख, और रजोगुण के उदय होनेसे कर्मों में प्रवृत्ति होती है, परन्तु तमोगुण तो अपने उदय को पाकर ज्ञान को चारों ओर से रोक कर देही को प्रमाद में पटकता है ।

समुद्र की लहरों की भान्ति सदा परिणाम को प्राप्त होनेवाले गुणों में से जिस समय जो गुण अधिक उद्भव होता है। उस समय इतर गुण दब जाते हैं, यह भी गी० अ० १४ श्लो० १० में वर्णित है—

"रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ! ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा" इति ॥
"बाध्यबाधकतां यान्ति कल्लोला इव सागरे" इति ॥

अर्थः—हेभारत ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण को दबाकर उदय होता है । रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण, को दबाकर उदय होता है । और तमोगुण, सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर उदय होता है । समुद्रमें लहरों की भाँति वे सब गुण बाध्यबाधकता को प्राप्त होते हैं ।

तत्र तमस उदये सत्यासुरसम्पदुदेति । रजस उद्भवे सति लोकादिवासनास्तिस्रो भवन्ति । सत्त्वस्योद्भवे सति दैवी सम्पदुपजायते । एतदभिप्रेत्योक्तम् ।

अर्थः—जहां तमोगुणका उद्भव होता हैं, तब आसुरी सम्पत्तिका उदय होता है, रजोगुण वृद्धि पाता है, तब लोक वासना आदि पूर्वोक्त तीन वासनाओं का उदय होता हैं, और सत्त्वगुण का उदय होता है । तब दैवी सम्पत्ति उपजती है । इसी अभिप्राय से भगवद्गी० अ० १४ श्लो० ११ में कहा है—

"सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत" इति॥

अर्थः—इस शरीर के बीच जब सारे इन्द्रियों के द्वारों में ज्ञान रूप प्रकाश उत्पन्न होता है तब सत्त्वगुण की विशेष वृद्धि जानो ।

यद्यप्यन्तःकरणं त्रिगुणात्मकं भासते तथाऽपि सत्त्वमेवास्य मनसो मुख्यमुपादानकारणम् । उपादानसहकारिभुता अवयवा उपष्टम्भकाः । रजस्तमसी तु तदुपष्टम्भके । अतएव ज्ञानिनो योगाभ्यासेन रजस्तमसोरपनीतयोः सत्त्वमेव स्वरूपं परिशिष्यते । एतदभिप्रेत्योक्तम् ।

अर्थः—यद्यपि अन्तःकरण त्रिगुणात्मक है ऐसा प्रतीत होता है, तथापि इस मन का मुख्य उपादान कारण तो सत्वगुण ही है । उपादान कारण की सहायता करनेवाला अवयव 'उपष्टम्भक' कहलाता है, अतएव रजोगुण और तमोगुण सत्त्वगुण का उपष्टम्भक है । इसी कारण से ज्ञानवान् पुरुष का योगाभ्यास से रजस और तमस दूर होनेपर उसको केवल शुद्ध-

सत्त्व स्वरूप ही शेष रहता है । इसी अभिप्राय से किसी महात्मा ने कहा है कि—

"ज्ञस्य चित्तमचित्तं स्याज्ज्ञचित्तं सत्त्वमुच्यते" इति॥

अर्थः—ज्ञानी का चित्त सङ्कल्प विकल्प रहित होने से चित्त-संज्ञा के योग्य नही । उस का चित्त तो केवल शुद्ध स्वरूप है ।

तच्च सत्त्वं चाञ्चल्यहेतुरजोगुणशून्यत्वादेकाग्रम् । भ्रान्तिकल्पितानात्मस्वरूपस्थूलपदार्थाकारहेतुतमोगुणशून्यत्वात् सूक्ष्मम् । तत आत्मदर्शनयोग्यम् । अत एव श्रुतिः ।

अर्थः—वह सत्त्वरूप चित्त चञ्चलता के कारणभूत रजोगुण रहित होने से एकाग्र होता है, तथा भ्रान्तिकल्पित अनात्मस्वरूप स्थूल पदार्थ का आकार होने में कारणभूत तमोगुण-शून्य होने से सूक्ष्म है। इन दोनों गुणों से युक्त होने से वह आत्मदर्शन के लिये योग्यता वाला होता है। श्रुति भी कहती है कि-

"दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" इति ॥

अर्थः—सूक्ष्मदर्शी पुरुष एकाग्र और सूक्ष्मबुद्धि द्वारा आत्मा का दर्शन करता है ।

न खलु वायुना दोधूयमानेन प्रदीपेन मणिमुक्तादिलक्षणानि निर्धारयितुं शक्यन्ते । नापि स्थूलेन खनित्रेण सूच्येव सूक्ष्मपटस्यूतिः सम्भवति । तदीदृशं सत्त्वमेव योगिषु तमोगुणसहितेन रजोगुणेनोपष्टब्धं बहुविधद्वैतसङ्कल्पेन चेतयमानं चित्तं भवति । तच्चित्तं तमोगुणाधिक्ये सत्यासुरीं सम्पदमुपचिन्वत्पीनं भवति । तथाऽऽह वसिष्ठः ।

अर्थः—जैसे वायु द्वारा कांपते हुए दीप के प्रकाश से रत्न की परीक्षा करने वाला पुरुष रत्न के लक्षणों की परीक्षा नहीं कर सकता, उसी प्रकार—बारीक सूइ से जैसे सूक्ष्म वस्त्र सिआ जाता है, उसी प्रकार स्थूल कोदारी से वस्त्र नहीं सिआ जा सकता । सो यह सत्त्व ही योगियों में तमस सहित रजोगुण मिश्रित होने से नानाविध द्वैत विषयके संकल्प द्वारा अनात्म वस्तु का दर्शन करने से चित्त संज्ञा को प्राप्त होता है । वह चित्त तमोगुण की अधिकतावाला होता है, तब वह आसुरी सम्पत्ति का संग्रह करने से स्थूलता को प्राप्त होता है । यह वार्ता योगवासिष्ठ में यों लिखी है कि—

"अनात्मन्यात्मभावेन देहभावनया तथा ।
पुत्रदारैः कुटुम्बैश्च चेतो गच्छति पीनताम् ॥
अहङ्कारविकारेण ममतामललीलया ।
इदं ममेति भावेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥
आधिव्याधिविलासेन समाश्वासेन संसृतौ ।
हेयादेयविभागेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥
स्नेहेन धनलोभेन लाभेन मणियोषिताम् ।
आपातरमणीयेन चेतो गच्छति पीनताम् ॥
दुराशाक्षीरपानेन भोगानिलबलेन च ।
आस्थादानेन चारेण चित्ताहिर्याति पीनताम्"
इति ॥

आस्था नाम प्रपञ्चे सत्यत्वबुद्धिस्तस्या आदानमङ्गीकारः स एव चारो गमनागमन-

क्रिया तयेति । विनाशनीययोर्वासनामनसोः स्वरूपं निरूपितम् ॥

अथ वासनाक्षयमनानाशौ क्रमेण निरूप्येते, तत्र वासनाक्षयप्रकारमाह वसिष्ठः ।

अर्थः—अनात्मपदार्थ में आत्मबुद्धि करने से, स्थूल शरीर में दृढ अहंभाव के कारण, स्त्री, पुत्र, और कुटुम्ब द्वारा अर्थात् उस में आसक्ति से चित्त स्थूलता को प्राप्त होता है। अहंकार के विकास से अर्थात् उस की वृद्धि होने से ममतारूप मल के संसर्ग से, यह और मेरा ऐसे भाव के उदय होने से सत्यत्व बुद्धि से तथा यह त्यागने योग्यहै और यह ग्रहण करने योग्य है ऐसे विभाग से चित्त स्थूलता को प्राप्त होता है। आपातरमणीय ऐसे स्नेह से, धन के लोभ से, और मणी मुक्ता आदिक तथा स्त्री की प्राप्ति से चित्त स्थूलता को प्राप्त होता है । दुराशारूप दूध पीने से, भोगरूप वायु के सेवन जन्य प्राप्त बल से, जगत् में सत्यत्त्व बुद्धि के स्वीकार से और विषयों के प्रति जाने आने से चित्तरूपी सर्प स्थूलता को प्राप्त होता है ।

इस भान्ति नाश करने योग्य वासना और मन के स्वरूप का निरूपण किया ।

अब वासना क्षय और मनोनाश का क्रमसे निरूपण किया जाता है । पहिले वासना क्षयका प्रकार भगवान् वसिष्ठ जी कहते हैं—

"बन्धो हि वासनाबन्धो मोक्षः स्याद्वासनाक्षयः।
वासनास्त्वं परित्यज्य मोक्षार्थित्वमपि त्यज ॥
मानसीर्वासनाः पूर्वं त्यक्त्वा विषयवासनाः ।

ता अप्यन्तः परित्यज्य ताभिर्व्यवहरन्नपि ॥
अन्तः शान्ततमस्नेहो भव चिन्मात्रवासनः ॥
तामप्यन्तः परित्यज्य मनोबुद्धिसमन्विताम् ।
शेषे स्थिरसमाधानो येन त्यजसि तं त्यज" इति॥

अर्थः—वासनारूप बन्ध सो ही बन्ध है, और वासनाओं का क्षय यही मोक्ष है । इस लिये प्रथम वासनाओं का त्याग कर मोक्ष की कामना को भी छोडो । प्रथम विषय वासना तथा मानसी वासनाओं का त्याग कर मैत्री मुदिता आदि की भावना नाम की निर्मल वासनाओं को तुम ग्रहण करो । उस शुभवासना के द्वारा व्यवहार करने पर भी, अन्त में उन का भी त्याग कर अन्त में जिस का स्नेह (विषयों में प्रीति) असन्त शान्त हो गया है, ऐसे तुम केवल चिन्मात्र वासना वाला होओ, यह मन बुद्धि सहित चिन्मात्र वासनाओं का भी त्याग कर सब का अवधिभूत वस्तु में स्थिरवृत्ति स्थापन कर और जिस्से इन सब को त्याग दिया है, उसको भी (उसवृत्ति को भी) तुम त्याग दो ।

अत्र मानसवासनाशब्देन पूर्वोक्तास्तिस्रो लोकशास्त्रदेहवासना विवक्षिताः। विषयवासनाशब्देन दम्भदर्पाद्यासुरसम्पद्विवक्षिता । मृदुतीव्रत्वे तद्विवक्षाभेदकारणे । यद्वा शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा विषयास्तेषां काम्यमानत्वदशाजन्यसंस्कारो मानसवासना । भुज्यमानत्वदशाजन्यः संस्कारो विषयवासना । अस्मिन्पक्षे पूर्वोक्तानां चतसृणामनयोरन्तर्भावः। अन्तर्बाह्यव्यतिरेकेण वासनान्तरासम्भवात् ।

अर्थः—यहां मानस वासना शब्द से लोकवासना, शास्त्र-वासना, और देह वासना विवक्षित है। और विषयवासना शब्द से दम्भ, गर्व आदिक आसुरी सम्पत्ति विवक्षित है। लोक आदि वासना मृदु होने से तथा दम्भ, दर्प, आदिवासना तीव्र होने से वे दोनों अलग २ गिने हैं। अथवा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध इन पांच विषयों की कामनाजन्य चित्तगत संस्कार वह मानस वासना है, और उन विषयों को भोगने से उत्पन्न हुए संस्कार हैं सो विषय वासना है ऐसा जानो। इस पक्ष में पूर्वोक्त ४ वासनाओं का इन दो प्रकार की वासना में समावेश हो जाता है, क्योंकि अन्तर वासना और बाह्य वासना सिवाय अन्य वासना है नहीं।

ननु वासनापरित्यागः कथं घटते ? नहि तासां मूर्त्तिरस्ति। येन संमार्जनीसमूहितधूलितृणवद्धस्तेनोद्धृत्य बहिस्त्यक्ष्यामः। मैवम्।

अर्थः—शङ्काः—वासनाओं का त्याग ही किस प्रकार सम्भव है ? क्योंकि इन का तो कोई आकार नहीं। जो वैसा हो जैसा कि झाड़ू से बुहार ने पर जो कूर इकट्ठा होता उसे घर के बाहर फेंक देते हैं उसी प्रकार इस वासनारूप कूरे को भी शरीर के वाहर फेंक देंगे।

उपवासजागरणवत्तदुपपत्तेः। स्वभावप्राप्तयोर्भुजिक्रियानिद्रयोरमूर्त्तत्वेऽपि तत्परित्यागरूपे उपवासजागरणे सर्वैरप्यनुष्ठीयेते तद्वदत्राप्यस्तु।

अर्थः—समाधान-उपवास और जागरण के समान इस के सम्बन्ध में भी है, अर्थात् जैसे स्वाभाविक पन को प्राप्त भोजन क्रिया तथा निद्रा का आकार विशेष न होने पर भी उन का त्यागरूप उपवास और जागरण लोक करते हैं। उसी प्रकार यहां भी उस का विरोधी शुभ वासना का ग्रहण यह मलिन वासना का त्याग समझो।

"अद्य स्थित्वा निराहारः" इत्यादिमन्त्रेण सङ्कल्पं कृत्वा सावधानत्वेनावस्थानं तत्र त्याग इति चेत्।

अर्थः—शङ्का—"अद्य स्थित्वा०" इत्यादि मन्त्र से सङ्कल्प का सावधनता से रहना, उस को भोजनादि का त्याग कहते हैं। वासनात्याग में तो ऐसा कभी होता नहीं, इस लिये उन का त्याग किस रीति से होगा ?

अत्रापि न तद्दण्डनिवारितम्। प्रैषमात्रेण सङ्कल्प्याप्रयत्नत्वेनावस्थातुं शक्यत्वात्। वैदिकमन्त्रानाधिकारिणां तु भाषया सङ्कल्पोऽस्तु। यदि तत्र शाकसूपौदनादिसन्निधित्यागस्तर्ह्यत्रापि स्रक्चन्दनवनितासंनिधिपरित्यागोऽस्तु। अथ तत्र बुभुक्षानिद्रालस्यादिविस्मारकैः पुराणश्रवणदेवपूजानृत्यगीतवादित्रादिभिश्चित्तमुपलालयेत तर्ह्यत्राऽपि मैत्र्यादिभिस्तदुपलालयेत्। मैत्र्यादयश्च पतञ्जलिना सूचिताः।

अर्थः—समाधान— यहां भी इस प्रकार दण्डनिवारित नहीं, अर्थात् इस विषय में वैसा ही बन सकता। अर्थात् प्रैषोचारपूर्वक सङ्कल्पकर मलिन वासनाओं का उदय न होने के लिये सावधानी से रह सकता। जिन को वेदमन्त्रों का अधिकार

न ही उन को अपनी भाषाद्वारा सङ्कल्प करना चाहिये । यदि जो भोजन त्याग रूप उपवास में शाक, दाल, भात, आदि की संनिधि का त्याग, यह विशेष है, ऐसा मानो तो वासनात्याग में पुष्पमाला, चन्दन, वनिता, आदि विषयों की संनिधि भी त्यागने योग्य है । कदाचित् ऐसा कहो कि उपवासादि में क्षुधा, निद्रा, आलस्य, आदि का विस्मरण करनेवाले पुराण का सुनना, देवपूजा, नृत्य, गीतवादित्र आदि उपायोंसे चित्त को आनन्द पाने का है, तो इस में भी मैत्री आदि की भावना से चित्त को प्रसन्न करने का है । मैत्री आदि चित्त को निर्मल करने वाला उपाय भगवान् पतञ्जलिने सूत्र में कथन किया है—

"मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् " इति । चित्तं हि रागद्वेषपुण्यपापैः कलुषी क्रियते । रागद्वेषौ च पतञ्जलिः सूत्रयामास ।

अर्थः—सुखी के साथ मैत्री, दुःखी पर करुणा, पुण्यवान को देख हर्ष होना, और पापी से उदासीनता रखना, ऐसी भावना से योगी का चित्त निर्मल होता है । राग द्वेष, पुण्य, और पाप से चित्त की मलिनता होती है । राग और द्वेष का लक्षण पतञ्जल ने सूत्र में लिखा हैं ।

"सुखानुशयी रागः । दुःखानुशयी द्वेषः" इति । स्नेहात् स्वेनानुभूयमानं सुखमनुशेते काश्चिद्धीवृत्तिविशेषः सुखजातं सर्वं मे भूयादिति । तच्च दृष्टादृष्टसामग्र्यभावान्न सम्पादयितुं शक्यम् । अतः स रागश्चित्तं कलुषीकरोति यदा सुखिप्राणिष्वयं मैत्रीं

भावयेत्सर्वेऽप्येते सुखिनो मदीया इति तदा तत्सुखं स्वकीयमेव सम्पन्नमिति भावयतस्तत्र रागो निवर्तते यथा स्वस्य राज्याऽभावेऽपि पुत्रादिराज्यमेव स्वकीयराज्यं तद्वत् । निवृत्ते च रागे वर्षास्वतीतासु शरत्सरिदिव चित्तं प्रसीदति ।

अर्थः—सर्व सुख मुझ को मिले इस प्रकार की प्रीतिपूर्वक स्वयं अनुभव करने योग्य सुख की तृष्णावाली वृत्तिविशेष का नाम सुख हैं । सो वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सामग्री के अभाव के कारण उस का सम्पादन हो नहीं सकता, जिससे, वह राग है, चित्त को मलिन करता है । "ये सब सुखी प्राणी मेरे ही हैं" इस भांति जब सुखी प्राणियों में मित्रता की भावना करे तब इस भांति भावना करनेवाले को अन्य का सुख अपना होने से उस सुख में से राग की निवृत्ति हो जाती है । जैसे आप को राज्य न होने पर भी पुत्रादिक का राज्य अपना (राज्य) मानने से ऐसे पुरुष में राग नही रहता, इसी प्रकार अन्य सुखी प्राणियों में स्वकीयत्व (अपनापन) बुद्धि होने से उस सुख में पुरुष को राग नही रहता अर्थात् 'उस का सुख मुझ को प्राप्त हुआ' ऐसी वृत्ति नहीं रहती । राग निवृत्त होने से चातुर्मास्य (वर्षा ऋतु) बीतने पर जैसे शरत् ऋतु की नदियां निर्मल हो जाया करती उसी भांति उस पुरुष का चित्त निर्मल होता है ।

तथा दुःखमनुशेते काश्चित्प्रत्ययः ईदृशं दुःखं सर्वदा मे मा भूदिति । तच्च शत्रुव्याघ्रादिषु सत्सु न निवारयितुं शक्यम् । न च सर्वे दुःखहेतवो हन्तुं शक्यन्ते । ततः स द्वेषः सदा

हृदयं दहति । यदा स्वस्यैव परेषां सर्वेषां प्रतिकूलं दुःखं न भूयादित्यनेन प्रकारेण करुणां दुःखिप्राणिषु भावयेत्तदा वैर्यादिद्वेषनिवृत्तौ चित्तं प्रसीदति । अतएव स्मर्यते ।

अर्थ—'इस प्रकार का दुःख मुझ को कभी न हो' ऐसे दुःख विषयक अनुशय को (अनिच्छा को) द्वेष कहते हैं । यह दुःख शत्रु व्याघ्र आदिकों के सद्भाव में नहीं रोक सकता। क्योंकि सारे दुःखों के कारण का नाश नहीं कर सकता, इस लिये यह द्वेष सदा हृदय में दाह उत्पन्न करता है । 'अपने समान अन्य सब को प्रतिकूल दुःख प्राप्त न हो ऐसा जब दुःखि प्राणियों पर करुणा की भावना करता है तब वैरी आदिकों पर से भी द्वेष निवृत्त होनेसे चित्त प्रसन्नता को प्राप्त होता हैं। इस लिये स्मृति कहती है कि—

"प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति साधवः"इति।

अर्थः—जैसे अपना प्राण आप को प्रिय है उसी प्रकार प्राणिमात्र को अपना प्राण प्रिय होता अत एव साधु यह आपे में जैसे दया करते वैसे ही सब प्राणियों पर दया करते हैं। और करुणा की भावना का प्रकार महापुरुष देखाते हैं ।

"सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्"इति।

तथाहि प्राणिनः स्वभावत एव पुण्यं नानुतिष्ठन्ति, पापं त्वनुतिष्ठन्ति । तदाह ।

अर्थः—इस संसार में सब सुखी होंवे सब नीरोगी हों, सब कल्याण को देखें, और किसी को दुःख न होवे ।

इस संसार में प्राणिगण स्वभाव से ही पाप करते हैं, और पुण्य नहीं करते । सो कहा है—

"पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः ।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः"इति ।

अर्थः—'मनुष्य पुण्य के फल (सुख) की इच्छा करता है परन्तु पुण्य करने की इच्छा नहीं करता । और पाप के फल (दुःख) की इच्छा नहीं करता, परन्तु यत्नपूर्वक पाप करता है ।

ते च पुण्यपापे पश्चात्तापं जनयतः । स च तापः श्रुत्याऽनूद्यते ।

अर्थः—वह पुण्य पाप पश्चात्ताप को उत्पन्न करते हैं । पश्चात्ताप का स्वरूप श्रुति कहती है कि—

"किमहं साधु नाकरवम्, किमहं पापमकरवम्"इति।

अर्थः—अरे ! मैं ने शुभ कर्म क्यों न किया ? अरे ! मैं ने पाप कर्म क्यों किया ?

"यद्यसौ पुण्यपुरुषेषु मुदितां भावयेत्तदा तद्वासनायाः स्वयमेवाप्रमत्तः पुण्येषु प्रवर्त्तते । तथा पापिषूपेक्षां भावयन्स्वयमपि पापान्निवर्तते।अतः पश्चात्तापस्याभावेन चित्तं प्रसीदति।

अर्थः—जो यह मुमुक्षुपुरुष पुण्यात्मा पुरुष में मुदिता की भावना करे, तो उस वासना के कारण स्वयं भी प्रमाद रहित हो पुण्य में प्रवृत्ति करे तथा पापी में उपेक्षा की भावना करे तो भी पाप से निवृत्त हो इससे पुण्य न करने से तथा पाप न करनेसे जो पश्चात्ताप होता हैं, सो उस को नहीं होता और पश्चात्ताप न होनेसे चित्त निर्मल होता है ।

सुखिषु मैत्रीं भावयतो न केवलं रागनिवृत्तिः

किं त्वसूयेर्ष्यादयोऽपि निवर्तन्ते । परगुणानामहसनमीर्ष्या, गुणेषु दोषाविष्करणमसूया । यदा मैत्रीवशात् परकीयं सुखं स्वकीयमेव सम्पद्यते तदा परगुणेषु कथमसूयादि सम्भवेत् । एवं दोषान्तरनिवृत्तिरपि यथायोगमुन्नेया ।

अर्थः—सुखी पुरुषों के साथ मैत्री की भावना करनेवाले का केवल राग की ही निवृत्ति होती है, ऐसा नहीं, किन्तु उस के साथ असूया, इर्ष्या आदि दोष भी नाश को प्राप्त होते हैं। अन्य के गुणों को न सह सकना ईर्ष्या है, और गुणों में दोषों का आरोपण करना उस को असूया कहते हैं । जब मैत्री की भावना से अन्य का सुख अपना होता है, तब पुरुष में अन्य के गुण में असूयादि कैसे सम्भव हो सकता ? नहीं सम्भव हो सकता । इस भांति अन्य दोषों की निवृत्ति भी यथायोग्य कल्पना करनी ।

दुःखिषु करुणां भावयतः शत्रुवधादिकरो द्वेषो यथा निवर्तते तथा दुःखित्वप्रतियोगिकस्वसुखित्वप्रयुक्तो दर्पोऽपि निवर्तते । स च दर्प आसुरसम्पद्यहङ्कारप्रस्तावे पूर्वमुदाहृतः।

अर्थः—दुःखी प्राणियों पर करुणा की भावना करनेवाले पुरुष का जैसे शत्रुवधादि कर द्वेष निवृत्ति को प्राप्त होता उसी प्रकार दुःखिपन का विरोधी सुखिपन का गर्व भी जाता रहता है । इस गर्व का स्वरूप अहङ्कार के प्रसङ्ग में आसुरी सम्पत्ति में पूर्व कथन कर आये हैं ।

"ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।

आढ्योऽभिजनवानास्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया" इति ।

ननु पुण्यात्मसु मुदितां भावयतः पुण्यप्रवृत्तिफलत्वेनोक्ता सा च योगिनो न युक्ता । मलिनायां शास्त्रवासनायां पुण्यमन्तर्भाव्य पूर्वमुदाहृतत्वात् । मैवम् ।

अर्थः—शङ्का—'पुण्यवान् पुरुषों में मुदिता की भावना करने से पुण्य में प्रवृत्तिरूप फल होता है' । ऐसा जो कहा है सम्भव नहीं, क्योंकि पंहिले इस की गणना मलिन शास्त्रवासना में कर आये हैं ।

पुनर्जन्मकरस्य काम्येष्टापूर्त्तादेस्तत्र मलिनत्वेनोदाहृणात् इह तु योगाभ्यासजन्यमशुक्लकृष्णत्वं पतञ्जलिः सूत्रयामास ।

अर्थः—समाधान—इस के पूर्व, 'इष्ट,' 'पूर्त्त' आदि काम्य कर्म जो पुनर्जन्म के देनेवाले हैं, इन को मलिनवासना रूप गिन आये है । और यहां, तो योगाभ्यासजन्य पुण्य, जो अशुक्ल और अकृष्ण होने से पुनर्जन्म का हेतु नहीं, सो विवक्षित है ।

योगियोंके अशुक्ल और अकृष्ण कर्मों का निरूपण पातञ्जलयोगसूत्र में किया है ।

"कर्माशुक्लकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्" इति। काम्यं कर्म विहितत्वात् शुक्लं, निषिद्धं कृष्णं, मिश्रं शुक्लकृष्णम् । तदेतत्त्रयमितरेषामयोगिनां सम्पद्यते । तच्च त्रिविधं जन्म प्रयच्छति । तदाहुर्विश्वरूपाचार्याः ।

अर्थः—योगियों के कर्म अशुक्लकृष्ण और इतर मनुष्यों के

शुक्ल, (विहित काम्य कर्म) कृष्ण (निषिद्ध) और शुक्लकृष्ण मिश्र ये तीन प्रकार के होते हैं । ये तीनों कर्म पुनर्जन्म का हेतु है । ऐसा विश्वरूपाचार्य कहते हैं—

"शुभैराप्नोति देवत्वं निषिद्धैर्नारकीं गतिम् ।
उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां मानुष्यं लभतेऽवशः"इति।

अर्थः—शुभकर्मो द्वारा जीव देवभाव को पाता, निषिद्ध कर्मों से नारकी गति को प्राप्त होता और दोनों से मनुष्यजन्म पाता है।

ननु योगस्याऽनिषिद्धत्वादकृष्णत्वेऽपि विहितत्वाच्छुक्लत्वमिति चेत् ।

अर्थः—शङ्का—योग, अनिषिद्ध होने से वह भले ही कृष्ण कर्म न हो, परन्तु विहित होनेसे उस की शुक्लकर्मोंमें गणना होनी चाहिये ।

मैवम् । अकाम्यत्वाभिप्रायेणशुक्लत्वाभिधानात् । अतः शुक्लकृष्णे पुण्ये प्रवृत्तिर्योगिनोपेक्षिता ।

अर्थः—समाधान—ऐसी शङ्का न करो । योग काम्य कर्म न होने से उस को अशुक्ल कर्म माना है । इस हेतु से शुक्ल कृष्ण पुण्य में जो प्रवृत्ति है, उसकी योगी उपेक्षा करता है ।

नन्वनेन न्यायेन योगिनोऽपि यथोचितपुण्यात्मसु मुदितां भावयित्वा पुण्येष्वेव प्रवर्त्तेरन् ।

अर्थः—शङ्का—इस रीति से तो पुण्यात्मा में योग्यरीति से मुदिता की भावना करनेवाले योगियों की भी प्रवृत्ति होगी!

प्रवर्तन्तां नाम ?। ये मै त्र्यादिभिश्चित्तं प्रसादयन्ति तेषामेव योगित्वात् । मैत्र्यादिचतुष्टयमुपलक्षणम् । "अभयं सत्त्वसंशुद्धिः" इत्यादि दैवी सम्पत् । "अमानित्वमदम्भित्वम्" इत्यादिना ज्ञानसाधनानि जीवन्मुक्तस्थितप्रज्ञादिवचनोक्तधर्माश्चोपलक्ष्यन्ते । सर्वेषामेतेषां शुभाशुभवासनारूपत्वेन मलिनवासनानिवर्त्तकत्वात् ।

अर्थः—समाधान हो प्रवृत्ति, जो पुरुष मैत्री द्वारा चित्त की प्रसन्नता रखता है, वही योगी है । उपर दिखलाये हुए मैत्री आदि चार साधन का अभय आदि दैवी सम्पत्तियों का, अमानित्व आदि ज्ञानसाधनों का, तथा जीवन्मुक्त और स्थितप्रज्ञ के लक्षणों का उपलक्षक है, ये सब शुभवासनारूप होने से मलिनवासना का क्षय करनेहारे हैं ।

ननु सन्त्यनन्ताः शुभवासनाः, न चैकेन ताः सर्वा अभ्यसितुं शक्यन्ते, निरर्थकश्च तदभ्यासप्रयास इति चेन्न ।

अर्थः—शङ्का—शुभवासना अनन्त है, इस लिये उन सब का अभ्यास एक पुरुष से बन नहीं सकता, अत एव सब शुभवासनाओं के लिये अभ्यास करना निरर्थक है ।

तन्निवर्त्यानामनन्तानां मलिनवासनानामेकस्य नरस्यासम्भवात् । न ह्यायुर्वेदोक्तानि सर्वाण्यौषधान्येकेन सेवितुं शक्यन्ते । नापि तन्निवर्त्याः सर्वे रोगा एकस्य देहे सम्भवन्ति । एवं तर्हि स्वचित्तं प्रथमतः परीक्ष्य तत्र यदा यावत्यो मलिनवासनास्तदा तावतीर्विरोधिनीः शुभवासना अभ्यसेत् । यथा पुत्रमित्रकलत्रादिभिः पीड्यमानस्ततो

विरक्तस्तन्निवर्तकं पारिव्राज्यं गृह्णाति, तथा विद्यामदधनमदकुलाचारमदादिमलिनवासनाभिः पीड्यमानस्तन्निरोधिनं विवेकमभ्यसेत्। स च विवेको जनकेन दर्शितः।

अर्थः—समाधान—शुभवासनाओं करके त्यागने योग्य मलिन वासनाओं का एक पुरुष मे सम्भव नही हैं। आयुर्वेदोक्त सब औषधों का सेवन एक पुरुष से बन नही सकता। उसी प्रकार उन २ औषधों से हटाने योग्य सब रोग भी एक पुरुष में नही होते। अतएव जैसे अपने शरीर में जो २ रोग होता है, उनके विरोधी औषधों का सेवन करना आवश्यक है, उसी तरह पहिले अपने चित्त की परीक्षा करनी, उस में जितनी जिस समय मलिनवासना हो, उस समय उनकी विरोधी वासना का अभ्यास करे। जैसे पुत्र मित्र स्त्री आदि से पीडित पुरुष उससे वैराग्य को प्राप्त होकर पुत्र आदिक के त्याग का हेतुरूप संन्यास आश्रम को ग्रहण करता है उसी तरह विद्यामद, धनमद, कुलमद, आचारमद, आदिकों से पीडित हो पुरुष उन के विरोधी विवेक का सेवन करे।

यह विवेक जनक जी ने दिखलाया है—

"अद्य ये महतां मूर्ध्नि ते दिनैर्निपतन्त्यधः।
हन्त चित्त ? महतायाः कैषा विश्वस्तता तव॥
क? धनानि महीपानां ब्रह्मणः क?जगन्ति वा।
प्राक्तनानि प्रयातानि केयं विश्वस्तता तव॥
कोटयो ब्रह्मणो याता गताः सर्गपरम्पराः।
प्रयाताः पांसुवद्भूपाः का धृतिर्मम जीविते॥
येषां निमेषणोन्मेषौ जगतां प्रलयोदयौ।

तादृशाः पुरुषा नष्टा मादृशां गणनैव का" इति॥

अर्थः—जो इस समय बडों के शिरताज बन रहे हैं, वे भी गिने गिनाये दिनौं मे नीचे गिर जाते हैं तो, हे चित्त ? आज तुम उस के बडपन का क्यों भरोसा करते हो ? पूर्व जो राजा हो गये उन का धन कहां गया ? और ब्रह्मा का रचा अनन्त जगत कहां गया ? ये सब गये तो हे चित्त ! तुम इस शरीर आदि का विश्वास क्यों करते हो ? करोडों ब्रह्म और उन की अनन्त सृष्टि चली गयी और अनेक राजा लोग भी धूलि के समान उड गये तो मेरेजीवित में अर्थात् उस की स्थिरता में धैर्य कैसे रहे ? जिस का पलक मारना जगत् का प्रलय और आँख खोलना जगत् का उदय रूप है, ऐसा पुरुष भी जब नाश को प्राप्त हुआ तो मेरे जैसे लोगों की गणना ही क्या ?

नन्वयमपि विवेकस्तत्त्वज्ञानोदयात्प्राचीनः, नित्यानित्यवस्तुविवेकादिसाधनव्यतिरेकेण ब्रह्मज्ञानासम्भवात्। इह तूत्पन्नब्रह्मसाक्षात्कारस्य जीवन्मुक्तये वासनाक्षयादिसाधनं वक्तुमुपक्रान्तम्। अतः किमिदमकाण्डे ताण्डवमिति चेत्। नायं दोषः।

अर्थः—शङ्का—यह विवेक तत्वज्ञान होने के पहिले होता है, क्यों कि नित्यानित्य विवेक आदि साधन विना ब्रह्मज्ञान हो नही सकता, और यहां तो जैसे ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ है उनको जीवन्मुक्ति प्राप्त होने के निमित्त तुमने वासनाक्षय आदि साधनों का निरूपण आरम्भ किया है। अत एव इस विवेक का कथन तो विना अवसर नाच होने के समान है।

साधनचतुष्टयसम्पन्नस्य पश्चाद्ब्रह्मज्ञानमित्ये-

ष सर्वपुरुषसाधारणक्षुण्णः प्रौढो राजमार्गः । जनकस्य तु पुण्यपुञ्जपरिपाकेनाऽऽकाशफलपातवदकस्मात् सिद्धगीताश्रवणमात्रेण तत्त्वज्ञानमुत्पन्नम् । ततश्चित्तविश्रान्तये विवेकोऽयं क्रियते इति काण्ड एवेदमुचितं ताण्डवम् ।

अर्थः— समाधान,-साधनचतुष्टय के सिद्ध होनेपर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती यह तो सब पुरुषों से सेवित साधारण राजमार्ग है । जनक को तो पूर्व पुण्यपुञ्ज के पाक के कारण जैसे आकाश में से फल गिरता, तैसे अकस्मात् सिद्धगीता के सुनने मात्र से तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ । चित्त विश्रान्ति उन को बाकी थी, इस हेतु उनने पूर्वोक्त विवेक विचार किया । अतएव मेरा कथन प्रासङ्गिक ही है, अप्रासङ्गिक नृत्य के समान नहीं है ।

नन्वेवमप्यस्य विवेकस्य ज्ञानसमनन्तरभावित्वेन मलिनवासनानुवृत्त्यभावाच्छुद्धवासनाभ्यासो नापेक्षित इति चेन्न ।

अर्थः—ऐसा विवेक, ज्ञान होने के बाद होता है, इस लिये तत्त्वज्ञान हुए पीछे मलिन वासना की अनुवृत्ति (संसर्ग) न रहने से शुभवासना के लिये अभ्यास करना कोई प्रयोजन नहीं।

जनकस्य तदनुवृत्त्यभावेऽपि याज्ञवल्क्यभगीरथादेस्तदनुवृत्तिदर्शनात् । अस्ति हि याज्ञवल्क्यतत्प्रतिवादिनामुषस्तकहोलादीनां च भूयान्विद्यामदः । तैः सर्वैरपि विजिगीषुकथायां प्रवृत्तत्वात् ।

अर्थः— यद्यपि जनक को तत्त्वज्ञान होने के अनन्तर मलिनवासना की अनुवृत्ति न थी परन्तु याज्ञवल्क्य, भगीरथ आदि कों में मलिनवासना की अनुवृत्ति मालूम पडती है । याज्ञवल्क्य और उन के प्रतिवादी उषस्त कहोलादि विजिगीषु कथा (जय पाने की इच्छा वाले पुरुषों के बीच परस्पर सम्वाद) में प्रवृत्त हुए थे, इस कारण उन में विद्यामदरूप मलिन वासना तो प्रसिद्ध है ही ।

ननु तेषां विद्यान्तरमेवास्ति न तु ब्रह्मविद्येति चेन्न । कथागतयोः प्रश्नोत्तरयोर्ब्रह्मविषयत्वात् ।

अर्थः—उन को ब्रह्मविद्या के सिवाय अन्य विद्या प्राप्त थी, ऐसा कहो तो सो नहीं कह सकतें । क्यों कि उन में परस्पर प्रश्नोत्तर ब्रह्मविषयक है ।

ननु ब्रह्मविषयत्वेऽपि तेषामापातज्ञानमेव न तु सम्यग्वेदनमिति चेन्न । तथा सत्यस्माकमपि तदीयवाक्यैरुत्पन्नाया विद्याया असम्यक्त्वप्रसङ्गात् ।

अर्थः— उन को केवल अकस्मात् ज्ञान हुआ, यथार्थ ज्ञान नहीं, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि जो ऐसा होता, तो अपने लिये भी अपने ही वाक्य से उत्पन्न हुआ ज्ञान यथार्थ हो नहीं सकता ।

ननु सम्यक्त्वेऽपि परोक्षज्ञानमेवेति चेन्न । यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्मेति मुख्यापरोक्षविषयतयैव विशेषतः प्रश्नोपलम्भात् ।

अर्थः— उन को यथार्थ ज्ञान तो ठीक है किन्तु परोक्षज्ञा-

न हुआ ऐसा कहना भी उचित नहीं, क्योंकि जो साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म है इस वाक्य पर से मुख्य अपरोक्ष ब्रह्म के विषय में ही प्रश्न हुआ ऐसा प्रतीत होता है ।

नन्वात्मज्ञानिनो विद्यामद आचार्य्यैर्नाभ्युपगम्यते । तथा चोपदेशसाहस्र्यामुक्तम्—
"ब्रह्मवित्त्वं तथा मुक्त्वा स आत्मज्ञो न चेतरः"
इति । नैष्कर्म्यसिद्धावपि ।

अर्थः—शङ्का—आत्मज्ञानी को विद्यामद का सद्भाव आचार्य स्वीकार नहीं करते, क्योंकि तथा ब्रह्मविद् पन को अभिमान कहकर जो रहता है वह आत्मज्ञ है अन्य नहीं इस प्रकार उपदेशसाहस्री ग्रन्थ में लिखा है, और नैष्कर्म्यसिद्धि में भी कहा है—

"न चाध्यात्माभिमानोऽपि विदुषोऽस्त्यासुरत्वतः।
विदुषोऽप्यासुरश्चेत् स्यान्निष्फलं ब्रह्मदर्शनम्"
इति । नायं दोषः ।

अर्थः—ज्ञानी पुरुष को ज्ञानीपन का अभिमान नहीं होता, क्यों कि वह एक आसुरी सम्पत्ति है । विद्वान् में भी आसुरीपन हो तो पीछे ब्रह्मसाक्षात्कार निष्फल जानो । ऐसा है तो इस लिये ज्ञानी को विद्यामद होना संघटित नहीं होता ।

जीवन्मुक्तिपर्यन्तस्य तत्त्वज्ञानस्य तत्र विवक्षितत्त्वात् । न खलु वयमपि जीवन्मुक्तानां विद्यामदमभ्युपगच्छामः । ननु विजिगीषोरात्मबोध एव नास्ति ।

अर्थः—समाधान—उपर के दोनों वचन जीवन्मुक्ति तक तत्त्व ज्ञान के अभिप्रायसे कथन किये हैं । हम भी जीवन्मुक्त पुरुष को विद्यामद, नहीं मानते ।

शङ्का—जिस को जय पाने की इच्छा है, उस को आत्मज्ञान नहीं । क्यों कि—

"रागो लिङ्गमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु ।
कुतः शाद्वलता तस्य यस्याग्निः कोटरे तरोः"
इत्याचार्यैरभ्युपगमादिति चेन्न ।

अर्थः—चित्तरूपी व्यायाम भूमि में राग, यह अज्ञान का चिन्ह है । जिस वृक्ष के कोटरे में अग्नि जल रहा है, उस के नीचे हरिततृणपूर्णता कहां से होगी ? नहीं होती है । ऐसा आचार्य मानते हैं ।

"रागादयः सन्तु कामं न तदभावोऽपराध्यति।
उत्खातदंष्ट्रोरगवदविद्या किं करिष्यति"
इत्यत्र तैरेव रागाद्यभ्युपगमात् । न चात्र परस्परव्याहतिः । स्थितप्रज्ञे ज्ञानिमात्रे च वचनद्वयस्य व्यवस्थापनीयत्वात् ।

अर्थः—तत्त्वज्ञानी में रागादि यथेच्छ हों, उन का सद्भाव ज्ञान को हानि पहुंचानेवाला नहीं । जैसे सांप के दान्त जड से उखड गये । ऐसा सर्प कुछ नहीं कर सकता इसी प्रकार अविद्या उस ज्ञानी पुरुष को क्या कर सकती ? कुछ भी नहीं । इस प्रकार रागादिक का स्वीकार भी आचार्य्यों ही ने किया है ? इस से आचार्य्य के वाक्य मे परस्परविरोध न करे, क्योंकि प्रथम वचनकी व्यवस्था स्थितप्रज्ञ में हो सकती है, और दोनों वचनों की व्यवस्था केवल ज्ञानी में हो सकती है ।

ननु ज्ञानिनो रागाद्यभ्युपगमे धर्माधर्मद्वारेण जन्मान्तरप्रसङ्ग इति चेन्नैवम् । अदग्धबीजवदविद्यापूर्विकाणामेव मुख्यरागादित्वेन पु-

नर्जन्महेतुत्वात् । ज्ञानिनस्तु दग्धबीजवदा-
भासा एव रागादयः। एतदेवाभिप्रेत्योक्तम् ।

अर्थः—ज्ञानी में रागादिक का सद्भाव मानने से उस के धर्म अधर्म द्वारा जन्मान्तर का प्रसङ्ग आवेगा, ऐसी शङ्का न करनी । बिनभूने बीज के समान अविद्यासहित मुख्य रागादि दोष ही पुनर्जन्म का कारणरूप है, ज्ञानी पुरुष का रागादि तो भूने हुए बीज के समान केवल आभास रूप है । इस अभिप्राय से कहा है—

"उत्पद्यमाना रागाद्या विवेकज्ञानवह्निना ।
तदा तदैव दह्यन्ते कुतस्तेषां प्ररोहणम्" इति॥

अर्थ—विवेकी पुरुष के अन्तः करण मे राग आदि दोष जब २ उत्पन्न होता तब २ विवेकसहित ज्ञानरूप अग्नि से दग्ध हो जाया करता उस्से वे पुनः क्यों कर अङ्कुरित हों? नही होते।

तर्हि स्थितप्रज्ञस्यापि ते सन्त्विति चेन्न ।

अर्थः—शङ्का—तब स्थित प्रज्ञ में भी राग आदि हो तो क्या दिक्कत है !

तत्काले मुख्यवदेवाऽऽभासानां बाधकत्वात्।
रज्जुसर्पोऽपि मुख्यसर्पवदेव तदानीं भीष-
यन्नुपलभ्यते तद्वत् । नन्वाभासत्वानुसन्धा-
नानुवृत्तौ न कोऽपि बाध इति चेच्चिरं जीवतु
भवान् । इयमेव ह्यस्मदभिमता जीवन्मु-
क्तिः । याज्ञवल्क्यस्तु विजिगीषुदशायां न
हीदृशः । चित्तविश्रान्तये विद्वत्संन्यासस्य
तेन करिष्यमाणत्वात् । न केवलमस्य वि-
जिगीषा किन्तु धनतृष्णाऽपि महती जाता।

यतो बहूनां ब्रह्मविदां पुरतः स्थापितं साल-
ङ्कारगोसहस्रमपहृत्य स्वयमेवेदमाह—

अर्थः—समाधान-स्थित प्रज्ञ अवस्था में मुख्य के तुल्य भासता है, आभासरूप राग आदिक दोष क्लेशरूप हो जाता है । जैसे रज्जु में प्रतीत होता (नकली) सर्प भी मुख्य की नाईं भय देता है, उसी प्रकार रागादि आभासरूप होनेपर भी क्लेश देनेवाले मालूम पड़ते हैं । रागादि आभासरूप हैं, इस प्रकार बार २ अनुसन्धान करें तो वह स्थितप्रज्ञ को कदापि बाधा नहीं करता ऐसा यदि पूर्वपक्षी कहे तो उस को सिद्धान्ती उत्तर देता है कि भाई ? चिरञ्जीव हो । इसी को हम भी जीवन्मुक्त मानते हैं याज्ञवल्क्यजी विजिगीषु दशा मे स्थितप्रज्ञ नहीं थे इस लिये उन्हों ने चित्तविश्रान्ति के लिये विद्वत्संन्यास पीछे से ग्रहण किया । याज्ञवल्क्य को केवल जीत ही की इच्छा न थी । किन्तु धन की भी बहुत तृष्णा थी क्योंकि बहुत से ब्रह्मविद् ब्राह्मणों के सामने अलङ्कार सहित १००० गौओं को खड़ी करा इन का धन स्वयं लेकर यों बोले कि—

"नमोवयं ब्रह्मिष्ठाय कुर्मो गोकामा एव वयं
स्मः" इति। इतरान् ब्रह्मविदोऽवज्ञातुमियं का
चिद्वचोभङ्गीति चेत् । अयमपि तर्ह्यपरो
दोषः । इतरे च ब्रह्मविदः स्वकीयं धनमने-
नापहृतमिति मत्वा चुक्रुधुः । अयं च क्रोध-
परवशः शाकल्यं मारयामास । न चास्य
ब्रह्मघ्नस्य मोक्षाभावः शङ्कनीयः । यतः कौ-
षीतकिनः समामनन्ति—

अर्थः—हम ब्रह्मवित् पुरुष को नमस्कार करते हैं हम

तो केवल गौओं के चाहने वाले हैं । इतर ब्रह्मवित् की अवज्ञा करने के लिये यह केवल उनके वाक्य की चतुराई है ऐसा कदाचित् समझो तो, यह भी एक दूसरा दोष है। अन्य ब्रह्मवित् ब्राह्मणोंने भी श्री याज्ञवल्क्य ने अपना धन लेलिया ऐसा समझ कर क्रोध किया, उस्से याज्ञवल्क्य भी क्रोध में आकर शाकल्य ऋषि को शाप देकर मार दिया । इस भांति याज्ञवल्क्य ने ब्रह्महत्या किया इस्से उन को मोक्ष न होगा,ऐसी शंका न करो,।

क्यों कि कौंषीतकी उपनिषद् में कहा है कि—

"नास्य केनापि कर्मणा लोको मीयते न मातृवधेन न पितृवधेन न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया" इति ।

शेषोऽपि स्वकृतायामार्यपञ्चाशीत्यामिदमाह ।

अर्थः—इस ज्ञानवान् पुरुष को प्राप्त हुआ लोक (आत्मलोक) किसी कर्म द्वारा नाश नही होता मातृवध करके पितृवध कर के चोरी कर के, भ्रूणहत्या कर के, भीं नाश को प्राप्त नहीं होता ।

शेष भगवान् ने भी अपनी रचित आर्यपञ्चाशीति में कहा है किः—

"हयमेधशतसहस्राण्यथ कुरुते ब्रह्मघातलक्षणानि।
परमार्थविन्न पुण्यैर्न च पापैः स्पृश्यते विमलः" इति॥

अर्थः—आत्मस्वरूप का जिस को साक्षात्कार हुआ है, ऐसा निर्मल पुरुष कदाचित लाख अश्वमेध करे, या लाख ब्रह्महत्या करे, तौ भी यह अश्वमेध के पुण्य का या ब्रह्महत्या के पाप का सङ्गी नहीं होता ।

तस्मात् किं बहुना, ब्रह्मविदां याज्ञवल्क्यादीनामस्त्येव मलिनवासनानुवृत्तिः, भगीरथश्च तत्त्वं विदित्वाऽपि राज्यं पालयन्मलिनवासनाभिश्चित्तविश्रान्त्यभावे सति सर्वं परित्यज्य पश्चाद्विश्रान्तवानिति वसिष्ठेनोपाख्यायते। अतः स्वकीयं वर्त्तमानं मलिनवासनाविशेषं परकीयदोषवत् सम्यगुत्प्रेक्ष्य तत्प्रतीकारमभ्यसेत् । अनेनैवाभिप्रायेण स्मर्यते ।

अर्थः—इस लिये अधिक क्या कहना ? याज्ञवल्क्य आदि ब्रह्मवित् पुरुषों में भी मलिन वासना का संचार है ही । राजा भगीरथने भी तत्त्वज्ञान प्राप्त कर राज्य करते समय उत्पन्न हुई वासनाओं कर के चित्त विश्रान्ति न पानेसे सबका त्याग कर विश्रामग्रहण किया, ऐसा वसिष्ठ मुनि ने कथन किया है । इस लिये जैसे कोई पुरुष अन्य के दोष को यथार्थ उत्प्रेक्षा करता है । उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष भी अपने अन्तः करण में स्फुरित वासनाओं को भली भांति जान कर उन के नाश का अभ्यास करे ।

इसी अभि प्राय से स्मृति भी कहती है—

"यथा सुनिपुणः सम्यक् परदोषेक्षणे रतः ॥
तथा चेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनात्"इति॥

अर्थः—जैसे कोई बडे निपुण पुरुष पराये दोष के देखने में भली भांति निरत होता । वैसे यदि वह अपने दोषों को देखने में निपुण हो तो कौन नही बन्धन से मुक्त होवे ?

नन्वादौ तावद्विषादस्य कः प्रतीकार इति चेत् । किं स्वनिष्ठस्य मदस्य परविषयस्य,

तो ? किंवा स्वविषयस्य परनिष्ठस्य । आद्ये भङ्गो ऽवश्यं कचिद् भविष्यतीति निरन्तरं भावयेत् । तथथा श्वेतकेतुर्विद्यया मत्तः प्रवाहणस्य राज्ञः सभां गत्वा तेन पञ्चाग्निविद्यायां पृष्टायां स्वयमजानानो निरुत्तरो राज्ञा बहुधा भर्त्सितः पितुः समीपमागत्य स्वनिर्वेदमुदाजहार । पिता तु निर्मदस्तमेव राजानमनुसृत्य तां विद्यां लेभे । दृप्तबालाकिश्चाजातशत्रुणा राज्ञा भर्त्सितो दर्पं संत्यज्य राजानमुपससाद । उषस्तकहोलादयश्च मदेन कथां कृत्वा पराजिताः । यदा स्वाविषयः परनिष्ठो मदः प्रवर्तेत तदा मत्तः स परो मां निन्दतु, अवमन्यतां वा । सर्वथाऽपि न मे हानिरिति भावयेत् । अत एवाऽऽहुः ।

अर्थः-शंका,-तब प्रथम विषाद (विद्यामद) का क्या उपाय है? उत्तर,—क्या आपेमें स्थित और अन्य परव्यवहृत विद्या मद के बारे मे तुम्हारा प्रश्न है ? या अन्य मे स्थित और आपे पर व्यवहृत विद्या मद विषय में पूछते हो ? आपेमें स्थित और अन्य को हराने वाला विद्या मद विषयमें पूछा हो, तो उसकी निवृत्ति का उपाय यह है कि "अवश्य किसी से भी हमारा पराजय होगा,, ऐसी भावना करनी । जैसे कि विद्या से मत्त हुआ श्वेत केतु मुनि प्रवाहण राजा की सभामें गया, उस समय राजाने उस को पञ्चाग्निविद्या सम्बन्धी प्रश्न किया, इस विद्या से स्वयं अज्ञानी होने से कोई भी उत्तर दे नहीं सका, तब पिता के पास आकर अपने अपमान सम्बधी बातें कही।

उस का पिता तो मद रहित था, इस लिये उस ने उसी राजा के पास जाकर वह विद्या सिखी । उसी प्रकार दृप्तबालाकी का अजातशत्रु नामक राजासे तिरस्कार हुआ, इस्से उस ने गर्व का त्याग कर उसी राजा की शरण लियी । उषस्तकहोलादि ब्राह्मण भी विद्या मदसे याज्ञवल्क्य के साथ विवाद कर अन्तमें उस्से हार गये ।

जब अन्य का विद्यामद आपे को पराजित करने को प्रवृत्त हो, तब "भले ही अन्य लोग मेरी निन्दा करें या अपमान करें, सर्वथा मेरे स्वरूप की इस से लेश भी हानि नहीं ऐसी वृत्ति में भावना करनी । इसी अभि प्राय से बडे लोगोंने कहाहै-

"आत्मानं यदि निन्दन्ति स्वात्मानं स्वयमेव हि।
शरीरं यदि निन्दन्ति सहायास्ते जना मम ॥
निन्दावमानावत्यन्तं भूषणं यस्य योगिनः ।
धीविक्षेपः कथं तस्य वाचाटैः क्रियता मिह" इति ॥

नैष्कर्म्यसिद्धौ—

अर्थः—इस संघात में आत्मा और शरीर है, तिसमें दुर्जन जो मेरी आत्माकी निन्दा करता हो तो वह स्वयं अपनी ही निन्दा करता है । क्यों कि जो आत्मा मेरा है वही उसका भी आत्मा है । और जो वह शरीर की निन्दा करता है । तो वह मेरी सहायता करने वाला है । क्यों कि शरीर तो मुझे भी निन्द्यहै । जिस योगी पुरुष को निन्दा और अपमान अत्यन्त भूषण रूप है उस पुरुष के बुद्धि को वाचाल पुरुष विक्षेप किस रीति से कर सकता ? नहीं कर सकताहै ॥

नैष्कर्म्यसिद्धि (ग्रन्थ) में लिखा हैः ।

" सपरिकरे वर्चस्के दोषत इत्यावधारिते ।

यदि दोषं वदेत्तस्मै किं तत्रोचारितुर्भवेत् ॥
तद्वत्स्थूले तथा सूक्ष्मे देहे त्यक्ते विवेकतः।
यदि दोषं वदेत्ताभ्यां किं ? तत्र विदुषो भवेत् ॥
शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः।
अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नाऽऽत्मनः"
इति । निन्दाया भूषणत्त्वं च ज्ञानाङ्कुशे दर्शितम् ।

अर्थः—मल मूत्रादि या जिस को मनुष्य ने दोष रूप निश्चय किया है, उस विषयमें जो कोई दोष का कथन करे तो, उस में उस विष्ठा आदि के त्याग करने वालों की क्या हानि हुई? उसी प्रकार विवेक दृष्टि से स्थूल और सूक्ष्म शरीर के छोड़ने पर-"ये दोनों शरीर मैं नहीं, ऐसा पक्का निश्चय करने पर जो कोई इन दोनो शरीरों का दोष कहे, तो विद्वान् पुरुष की उस में क्या हानि है ? शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा आदि, और जन्म मृत्यु अहं कार में प्रतीत होते हैं, ये सब आत्मा के धर्म नहीं हैं ॥

ज्ञानाङ्कुशनामक ग्रन्थ में निन्दा को भूषणरूप से बतलाया है।

" मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति
नन्वप्रयत्नजनितोऽयमनुग्रहो मे ।
श्रेयोऽर्थिनो हि पुरुषाः परितुष्टिहेतो
र्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति ॥
सततसुलभदैन्ये निःसुखे जीवलोके
यदि मम परिवादात्प्रीतिमाप्नोति कश्चित् ।
परिवदतु यथेष्टं मत्समक्षं तिरो वा
जगति हि बहुदुःखे दुर्लभः प्रीतियोगः"इति

अवमानस्य भूषणत्त्वं स्मर्यते ।

अर्थः—जो कोई मनुष्य मेरी निन्दा से ही सन्तोष को प्राप्त होवे, तो मुझे बिना किसी परिश्रम के मानो मुझपर बडा अनुग्रह हुआ ऐसा मैं समझूं । क्यों कि श्रेय (कल्याण) की अभिलाषा वाले मनुष्य अन्य का सन्तोष करने के लिये बडे परिश्रम से सम्पादन किये धन को भी खर्च कर डालते हैं जिस में सदा दीनता सुलभ है, इस प्रकार इस सुख रहित जीव लोक में जो कोई पुरुष मेरी निन्दा करने से प्रीति को प्राप्त हो, तो मेरे समीप या दूर यथेष्ट निन्दा करो, क्यों कि बहुत दुःख वाले जगत् में प्रीति का योग दुर्लभ है ।

अपमान का भूषण होना स्मृति में भी कथन किया है-

" तथाऽऽचरेत वै योगी सतां धर्ममदूषयन् ।
जना यथा ऽवमन्येरन् गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम्"
इति ॥

अर्थः—सत्पुरुषों के धर्म को दूषित न करता हुआ योगी पुरुष जगत् में इस प्रकार बर्ताव करे कि जिस में लोग उस का अपमान करें, और उस की संगति न करें ॥

याज्ञवल्क्योषस्तादीनां यौ स्वनिष्ठपरनिष्ठौ विद्यामदौ तयोर्यथा विवेकेन प्रतीकारस्तथा धनाभिलाषक्रोधयोरप्यवगन्तव्यम् ।

अर्थः—याज्ञवल्क्य, उषस्त और कहोलादिक के विषय जो आपे में स्थित, और अन्य में स्थित विद्या मद ये दो प्रकार इन दोनो विद्यामदों का जैसा पूर्वोक्त विवेक से प्रतीकार हो सकता है । वैसे धन की तृष्णा और क्रोध का निवारण भी विवेक द्वारा हो सकता है ।

धन सम्बन्धी विवेक इस तरह कर सकते हैं--

"अर्थानामर्जने क्लेशस्तथैव परिपालने ।

नाशेदुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् क्लेशकारिणः"

इति धनविषयो विवेकः ॥

अर्थः—धन को हासिल करने में दुःख होताहै, उस की रक्षा करने में दुःख होता, इस भांति सब तरह दुःख देने वाले धन को धिक्कार है ।

क्रोधोऽपि द्विविधः । स्वनिष्ठः परविषयः, परनिष्ठः स्वविषयश्चेति । स्वनिष्ठं प्रत्येवमुक्तम् ।

अर्थः—क्रोध भी दोप्रकार का है, एक अपना क्रोध अन्य के उपर, तथा अन्य का क्रोध आपे पर, तिनमें से अपने में स्थित क्रोध के बारे में इस प्रकार विवेक करना ।

अपकारिणि कोपश्चेत् कोपे कोपः कथं न ते ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसह्य परि पन्थिनि ॥

फलान्वितो धर्मयशोऽर्थनाशनः स-

चेदपार्थः स्वशरीरतापनः । न चेह नामुत्र

हिताय यः सतां मनांसि कोपः समुपाश्रये-

त्कथम्" इति स्वविषयं प्रत्येव मीरितम् ।

अर्थः—जो तेरा क्रोध अपकार करने वाले पर होताहै, तो कोप जो धर्म है, धर्म अर्थ, काम, और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का बलात्कारसे घातक होनेसे अत्यन्त अपकारी है उस पर तेरा क्रोध क्यों नहीं होवे ? क्रोध जो अन्य को किसी भी प्रकार की हानि करने रूप फलयुक्त हो तो उस क्रोध करने हारे का धर्म, यश अर्थ का नाश करता, और जो कोई भी फल देने वाला न हो सकेतो आपेको आश्रय देने वाले पुरुष के ही शरीर को संतप्त करता है ? अत एव जो क्रोध इस लोक और परलोक दोनों लोकों के लिये हितरूप नहीं, उसको सत्पुरुषों का मन कैसे आश्रय देवें ? नहीं देवें ।

अपने उपर हुए अन्य के क्रोधके विषय में इस भांति विचार किया है—

"नमेऽपराधः किमकारणे नृणां

मदभ्यसूयेत्यपि नैव चिन्तयेत् ।

न यत्कृता प्राग्भवबन्धनिःसृति-

स्ततोऽपराधः परमोऽनुचिन्त्यताम्" ॥

नमोऽस्तु कोपदेवाय स्वाश्रयज्वालिने भृशम् ।

कोप्यस्य मम वैराग्यदायिने दोषबोधिने" इति ।

अर्थः—मेरा कोई भी अपराध न होने पर भी लोगों ने मेरी निन्दा निष्कारण क्यों कियी होगी ? ऐसा विचार कभी न करे परन्तु पूर्वजन्म मे मैने संसार निवृत्ति के लिये कोई उपाय न किया, यही मेरा बडा अपराध है । जो यह उपाय किया होता, तो आज शरीर ही न होता, तो लोग किसकी निन्दा करते ? ऐसा विचार करना चाहिये ।

जिस ने आपे को आश्रय देरक्खा है, उसको ही बहुत जलानेवाला मैं या जो अन्य के कोपका विषय हूं, उस को वैराग्य देनेवाला और मेरे दोष रूपका बोधन करानेवाले क्रोधरूप देव को नमस्कार है ।

धनाभिलाषक्रोधवद्योषित्पुत्राभिलाषावपि विवेकेन निवर्तनीयौ । तत्र योषिद्विवेको वसिष्ठेन दर्शितः ।

अर्थः—धनकी तृष्णा और क्रोधके समान स्त्री एवं पुत्र

की इच्छा भी त्यागने योग्य ही है। इन दोनों के विषय में विवेक का प्रकार वसिष्ठजी ने दिखलाया है। वहां स्त्री के सम्बन्ध में इस प्रकार का विचार किया है—

"मांसपाञ्चालिकायास्तु यन्त्रलोलेऽङ्गपञ्जरे।
स्नाय्वस्थिग्रन्थिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम्॥
त्वङ्मांसरक्तबाष्पाम्बु पृथक्कृत्वा विलोचने।
समालोकय रम्यं चेत् किं मुधा परिमुह्यसि॥
मेरुशृङ्गतटोल्लासिगङ्गाजलरयोपमा।
दृष्टा यस्मिन्स्तने मुक्ताहारस्योल्लासशालिनः॥
श्मशानेषु दिगन्तेषु स एव ललनास्तनः।
श्वभिरास्वाद्यते काले लघुपिण्ड इवान्धसः॥
केशकज्जलधारिण्यो दुःस्पर्शा लोचनप्रियाः।
दुष्कृताग्निशिखा नार्यो दहन्ति तृणवन्नरान्॥
ज्वलतामतिदूरेऽपि सरसा अपि नीरसाः।
स्त्रियो हि नरकाग्नीनामिन्धनं चारुदारुणम्॥
कामनाम्ना किरातेन विकीर्णा मुग्धचेतसाम्।
नार्यो नरविहङ्गानामङ्गबन्धनवागुराः॥
जन्मपल्वलमत्स्यानां चित्तकर्दमचारिणाम्।
पुंसां दुर्वासनारज्जुर्नारी बडिशपिण्डिका॥
सर्वेषां दोषरत्नानां सुसमुद्गिकयाऽनया।
दुःखशृङ्खलया नित्यमलमस्तु मम स्त्रिया॥
इतो मांसमितो रक्तमितोऽस्थीनीति वासरैः।
ब्रह्मन्कतिपयैरेव याति स्त्रीविशरारुताम्॥
यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निस्त्रीकस्य क्व भोगभूः।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत्त्यक्त्वा सुखी भवेत्" इति।

पुत्रविवेको ब्रह्मानन्दे दर्शितः—

अर्थः—स्नायु, और हड्डियों की परस्पर सङ्गठन से सुन्दर मांस की पूतलीरूप स्त्री के यन्त्र के समान चञ्चल शरीररूप पञ्जर में क्या है? कुछ भी नहीं। स्त्री की आंखों में त्वचा, मांस, रुधिर, आंसू, ये सब अलग २ कर इन में यदि कोई सुन्दर पदार्थ हो तो, उसे देखो। और जो न हो तो, उस में वृथा मोहवश क्यों होता? जिस स्तन पर लटकती हुई मोती की माला की शोभा, मेरु पर शोभती गङ्गा की धारा के समान शोभती ऐसा मानते हो, उसी स्त्री के स्तन को दूर के प्रदेशरूप स्मशान भूमि में एक समय मरने पर बहुत से चावल के पिण्ड के समान कुत्ते सब प्रीति पूर्वक खाते हैं, स्त्रियां पापरूपी अग्नि की ज्वाला के समान है, क्योंकि जैसे अग्नि की ज्वाला के उपरले भागमें काजल होता है, उसी प्रकार यह स्त्री रूप पापाग्नि ज्वाला केश रूपी काजल को मस्तक पर धारण करती है, जैसे अग्नि की ज्वाला देखने में सुन्दर, प्रकाशित हुई परन्तु उस का स्पर्श दुःख देनेवाला है, उसी प्रकार यह स्त्री भी देखने में सुन्दर होती। परन्तु उसका स्पर्श दुःख दाई है। और जैसे प्रसिद्ध अग्नि तृणादिक को जला देता उसी प्रकार यह स्त्री रूपी पापाग्नि की शिखा पुरुषरूप तृण आदिक को जला देती, वासना करके सुन्दर हुई विवेक से नीरस स्त्रियां, नरकाग्नि जो अतिदूर अर्थात् यम पुरीमें बलता है, सो वह देखनेमें सुन्दर परिणाम में दारुण इन्धन रूप है। काम नामक व्याधने मूढ चित्तवाले नर रूप पक्षियों के अङ्गो को बांधने के लिये संसार रूप वन में स्त्री रूप जाल फैलाया है। द्रव्य रूप कादोंमें फिरने वाला, जन्म मरण रूपी पल्वल [अनेक तालाब] का मत्स्य

रूप पुरुषको खींचनेवाली दुर्वासना रूप रज्जु से बन्धी हुई बडिश [मच्छली फसाने का कांटा] के साथ चुभी हुई मांस पिण्ड के समान स्त्री है। सकल दोष रूपी रत्नों को रखने वाले सन्दुक की नाई और दुःख देनेवाला श्रृंखला रूप स्त्रीका मुझे सर्वदा प्रयोजन नही । यहां मांस है, तो यहां रुधिर है, और यहां हड्डियां हैं, इस भांति शरीर गत पदार्थ हैं, ऐसे होते कितने दिनों तक मोह से हे ब्रह्मन् ! स्त्री–विषय सुन्दरता को पाता है। जिसको स्त्री है, उसको भोग की इच्छा है; जिसको स्त्री ही नहीं उसको भोगका सम्भव कहां से ? जिसने स्त्रीका त्याग किया, उसने संसारका त्याग किया, और जगत् का त्याग करने से पुरुष सुखी होता है।

पुत्र सम्बन्धी विवेक ब्रह्मानन्द नामक पञ्चदशी के प्रकरण में बतलाया हैं––

"अलभ्यमानस्तनयः पितरौ क्लेशयेच्चिरम् ।
लब्धोऽपि गर्भपातेन प्रसवेन च बाधते ।
जातस्य ग्रहरोगादिः कुमारस्य च मूर्खता ।
उपनीतेऽप्यविद्यत्वमनुद्वाहश्च पण्डिते ॥
यूनश्च परदारादिर्दारिद्र्यं च कुटुम्बिनः ।
पित्रोर्दुःखस्य नास्त्यन्तो धनी चेन्म्रियते तदा" इति

अर्थः—नहीं प्राप्त हुआ पुत्र माता पिता को चिरकाल तक दुःख देता और गर्भ मे प्राप्त हुआ गर्भपात द्वारा और प्रसव वेदना से कष्ट देता है। पुत्र उत्पन्न हुए अनन्तर बालग्रह और रोग आदिक से माता पिता को दुःख होता है। और कुमार अवस्था होने पर उसकी मूर्खता दुःख देती है। उपनयन संस्कार करने पर भी यदि वह विद्या हीन हुआ तो उस से भी माता

पिता को दुःख होता है । युवा होने पर वह परदार लम्पट होता तौभी माता पिता को दुःख होता है । जो वह पुत्र बहुबाला हुआ तो अनेक कुटुम्बी हुआ और उसकी दरिद्र अवस्था हो तौभी माता पिता को खेद होता है। धनवान हुआ और जो वह मर गया तो माता पिता के दुःख की सीमा नहीं रहती—

यथा विद्याधनक्रोधयोषित्पुत्रविषयाणां मलिनवासनानां विवेकेन प्रतीकारस्तथाऽन्यासामपि यथायोगं शास्त्रैः स्वयं युक्त्या दोषं विविच्य प्रतीकारं कुर्यात् । कृते च प्रतीकारे जीवन्मुक्तिलक्षणं परमं पदं लभ्यते । तदाह वसिष्ठः—

अर्थः—विद्या, धन, क्रोध, स्त्री, और पुत्र सम्बन्धी मलिन वासना ओंकी निवृत्ति जैसे विवेक से होती उसी प्रकार अन्य वासनाओं की—जो जो वासनायें अन्तरमें प्रतीत हुई हो उन सब को भी शास्त्र और युक्तिसे निवृत्ति करे । ऐसा करने से जीवन्मुक्ति रूप परम पद की प्राप्ति होती है। ऐसा भगवान् वसिष्ठ मुनि कहते हैं––

"वासनासंपरित्यागे यदि यत्नं करोष्यलम् ।
तास्ते शिथिलतां यान्ति सर्वाधिव्याधयःक्षणात्।
पौरुषेण प्रयत्नेन बलात् सन्त्यज्य वासनाः ॥
स्थितिं बध्नासि चेत्तर्हि पदमासादयस्यलम् "
इति ॥

अर्थः––हे राम चन्द्र ? यदि तुम वासना के त्याग के निमित्त परि पूर्ण यत्न करोगे तो, क्षणभरमें सारी आधि व्याधियों की शिथिलता को प्राप्त होगे । पुरुषार्थ के बल से वास-

नाओं का त्याग कर [वृत्ति] की) स्थिति (जो स्वरूप में) बान्धोगे तो पूर्ण ऐसे परम पद को पाओगे ।

ननवत्र पौरुषः प्रयत्नोनाम पूर्वोक्तो विषयदोषविवेकः । स च पुनः पुनः क्रियमाणोऽपि प्रबलेन्द्रियव्यापारेणाभिभूयते । तदुक्तं भगवता—

अर्थः—शङ्का—यहां पुरुषार्थ अर्थात् विषय दोष सम्बन्धी विवेक समझाना हैं । परन्तु इस विवेक को करने परभी अति प्रबल इन्द्रियों का वेग इस विवेक का ध्वंस कर डालता यह बात भगवान् ने भगवद् गीता अ०२।श्लो० ६० ६७मे कही है—

"यततो ह्यपि कौन्तेय ? पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि" इति ॥

अर्थः—हे कौन्तेय ? यत्न करते हुए विद्वान् पुरुष को भी व्याकुल करने वाले इन्द्रियां बलात्कार से (उसके) मन को हरतीं हैं । जैसे वायु समुद्र में नाव को इधर उधर घुमाता है, वैसे मन विषयों में प्रवृत्त हुए इन्द्रियों में जिस जिस इन्द्रिय को प्राप्त हुआ, वही (इन्द्रिय) इस मनुष्य की बुद्धि को डुबा देती है।

एवं तदुत्पन्नविवेकरक्षार्थमिन्द्रियाणि निरोद्धव्यानि तदपि तत्रैवोत्तर श्लोकाभ्यां दर्शितम् ।

अर्थ—जो इन्द्रिय विवेक का ध्वंस करती होतो उत्पन्न हुए विवेक की रक्षाके लिये इन्द्रियों का निरोध करना चाहिये । यह बात भगवान् ने उसी स्थान में उपरले श्लोकों के बाद दो श्लोकों में कही है:—

"तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।
तस्माद्यस्य महाबाहो ? निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता"
इति । स्मृत्यन्तरेऽपिः—

अर्थः—उन सब इन्द्रियों को भलीभान्ति रोक के मेरे मे विश्वास कर एकाग्र चित्त हो । क्यों कि जिसके इन्द्रिय अपने अधीन हैं, उस की बुद्धि स्थिर कही जाती है । इस लिये हे महाबाहो ? (अर्जुन) जिस ने अपने इन्द्रियों को सब विषयों से खींच लिया है, उसकी बुद्धि स्थिर हुई है ।

अन्य स्मृति में भी कहा है—

"यः पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो यतिः ।
न च वाक्चपलश्चैवमिति शिष्टस्य लक्षणम्" इति॥

एतदेवान्यत्र सङ्ग्रहविवरणाभ्यां स्पष्टीकृतम् ।

अर्थः—संन्यासी हाथ, पांव, चपल, न रक्खे, नेत्र चपल न रक्खे, अर्थात् प्रयोजन के सिवाय निर्व्यापार रक्खे, वाणी भी चपल न रक्खे अर्थात् खास प्रयोजन विना भाषण भी न करे ये सब शिष्ट पुरुषों के लक्षण हैं ।

इस अर्थ को, ही अन्यत्र सङ्क्षेप में उसी प्रकार विस्तार से स्पष्ट किया है—

"अजिह्वः षण्डकः पङ्गुरन्धोबधिर एव च ।
मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः" ॥

अर्थः—जिह्वारहित, क्लीब, लङ्गडा, अन्धा, बहिरा, और मूढ भिक्षु अजिह्वत्वादि छः गुणों से मुक्तहोताहै । इसमे लेश भी संशय नहीं है ।

"इदमिष्टमिदं नेति योऽश्नन्नपि न सज्जते ।
हितं सत्यं मितं वक्ति तमजिह्वं प्रचक्षते" ॥

अर्थः—भोजन समय जो पुरुषको भोजन करता हुआ भी 'यह पदार्थ तो मुझे प्रिय है, यह मुझको प्रिय नहीं' इस भान्ति भोज्य पदार्थों में आसक्ति को प्राप्त न हो और हित, सत्य, और (जरुरत के लायक) बोलता है उसे "अजिह्व कहते हैं।

"अद्यजातां यथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम्।
शतवर्षां च यो दृष्ट्वा निर्विकारः स षण्डकः" ॥

अर्थः—जैसे आज की पैदा हुइ तथा १०० वर्ष की स्त्री को देख कर पुरुष निर्विकार रह जाता उसी प्रकार १६ वर्ष की स्त्री को भी देखकर जो पुरुष निर्विकार चित्तवाला रहता वह षण्ढ होता है ।

"भिक्षार्थमटनं यस्य विण्मूत्रकरणाय च ।
योजनान्न परं याति सर्वथा पङ्गुरेव सः" ॥

अर्थ—जिस का भ्रमण करना केवल भिक्षा निमित्त तथा मल मूत्र के त्यागने के लिये ही है, और जो एक योजन से अधिक नहीं चल सकता अर्थात् जिसका निष्प्रयोजन जहां तहां भटकना नहीं होता है । वह सर्वथा पङ्गु ही है ।

"तिष्ठतो व्रजतो वाऽपि यस्य चक्षुर्न दूरगम् ।
चतुर्युगां भुवं त्यक्त्वा परिव्राट् सोऽन्ध उच्यते" ॥

अर्थः—ठहरे हुए या चलते हुए जिस की दृष्टि १६ हाथ भूमि उपरांत दूर न जावीहो वह संन्यासी "अन्ध" कहलाताहै ॥

"हितं मितं मनोरामं वचः शोकापहं च यत् ।
श्रुत्वा यो न शृणोतीव बधिरः स प्रकीर्तितः" ॥

अर्थः—हित, अहित, मनोहर, और शोक को उत्पन्न क-

रने वाले वचन को सुनकर भी न सुनने के समान जो रहता है, अर्थात् उस से हर्ष शोक युक्त नही होता, वह "बधिर" कहलाताहै ।

"सान्निध्ये विषयाणां च समर्थोऽविकलेन्द्रियः ।
सुप्तवद् वर्तते नित्यं भिक्षुर्मुग्धः स उच्यते" ॥

अर्थः—विषयों की समीपता हो और स्वयंभी भोगने में सामर्थ्य वाला और अविकल इन्द्रिय वाला होवे, तौभी जो निद्रावश होता उस भांति बर्ताव करता है, वह भिक्षुमुग्ध कहलाताहै ।

"न निन्दां न स्तुतिं कुर्यान्न किं चिन्मर्माणि स्पृशेत् ।
नातिवादी भवेत्तद्वत् सर्वत्रैव समो भवेत् ॥
न संभाषेत्स्त्रियं कां चित्पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि"
इति ।

अर्थः—किसी की निन्दाया स्तुति न करे किसी को मर्मवेधी वचन न सुनावे, असन्त भाषण करने वाला न होवे, सर्वत्र समभाव वाला होवे, किसी भी स्त्री के साथ बात न करे । पहिले की देखी हुइ स्त्री का स्मरण न करे । स्त्री सम्बन्धी वात भी न करे । उसी प्रकार स्त्री के चित्र को भी न देखे ॥

यथा कश्चिद्व्रती नक्तैकभुक्तोपवासमौनादिव्रतं संकल्प्य सावधानो भ्रंशमकृत्वा सम्यक् पालयति, तथैवा ऽजिह्वत्वादिव्रते स्थितः सावधानो विवेकं पालयेत् । तदेवं विवेकेन्द्रियनिरोधाभ्यां दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारसेविताभ्यां मैत्र्यादिभावनासु प्रतिष्ठितास्वासुर

संपद्रूपा मलिनवासनाः क्षीयन्ते । ततो निःश्वासोच्छ्वासवन्निमेषोन्मेषवच्च पुरुषप्रयत्नमन्तरेण प्रवर्तमानाभिर्मैत्र्यादिवासनाभिर्लोके व्यवहरन्नपि तदीयसाकल्यवैकल्यानुसन्धानं चित्ते परित्यज्य निद्रातन्द्रामनोराज्यादिरूपाः समस्तचेष्टाः प्रयत्नेन शान्ताः कृत्वा चिन्मात्रवासनामभ्यसेत् । स्वतस्तावदिदं जगच्चिज्जडोभयात्मकं भासते । यद्यपि शब्दस्पर्शादिजडवस्तुभासनायैवेन्द्रियाणि सृष्टानि—

" पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूः "

इति श्रुतेः, तथाऽपि चैतन्यस्योपादानतया वर्जयितु मशक्यत्वात् चैतन्यपूर्वकमेव जडं भासते ।

" तमेव भान्तमनु भाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति "

इति श्रुतेः । तथा सति पश्चादू भासमानस्य प्रथमतो भासमानमेव चैतन्यं वास्तवं रूपमिति निश्चित्य जडमुपेक्ष्य चिन्मात्रं चित्ते वासयेत् ।

एतच्च बलिशुक्रयोः प्रश्नोत्तराभ्यां विस्पष्टमवगम्यते ।

अर्थः—जैसे कोई व्रत करने हारा पुरुष रात्रि, एक भुक्त, उपवास, या मौन आदि व्रतों का संकल्प कर, सावधानतासे उस के सारे नियम पालन करता, किसी दिन भी उस को

छोडता नहीं, उसी प्रकार पूर्वोक्त अजिहत्व आदि व्रतों में स्थित पुरुष भी सावधानी से भली भांति विवेक का पालन करे। इस प्रकार चिर काल पर्यन्त निरन्तर और आदर पूर्वक सेवित विवेक तथा इन्द्रियनिरोध करके पूर्वोक्त मैत्री आदि भावना ओं के स्थिर होने से, आसुरी सम्पत्ति रूप मलिन वासनायें क्षय को प्राप्त होती हैं, । उन का क्षय होने से श्वास, उच्छ्वास के समान या आंख बन्द करने और खोलने के समान पुरुष प्रयत्न विना प्रवृत्त मैत्री और आदि वासना ओं करके जगत् व्यवहार करते हुए भी, कदाचित् वह व्यवहार यथार्थ सिद्ध हो या उस में कोई कमी रह जावे तौ भी उस के बारे में चित्त में चिन्ता का त्याग कर तथा निद्रा, तन्द्रा, तथा मनोराज्य (मनकी झूंठीतरंगों,) कोभी प्रयत्न से शान्त कर इस भांति चैतन्य वासनाओं का अभ्यास करे।

यह जगत् स्वतः चैतन्य और जड—ये दो रूपों में भासता है। यद्यपि "ब्रह्माने इन्द्रियों को विषयाभिमुख कर इनका हिंसन किया" इसभांति श्रुति कहती है इस लिये, यद्यपि शब्द स्पर्श आदिक जड पदार्थों को ही प्रकाश करने के लिये इन्द्रियों को रचा है । तथापि जड का (विवर्त्त) उपादान कारण चैतन्य होने से जड पदार्थ उस से जुदा न हो सकने से चैतन्यपूर्वक ही जड पदार्थ का भान होता है । "उसके ही भानपूर्वक सब भासता है, उस परमात्मा के प्रकाश से ये सब भासते हैं" ऐसा श्रुति भी कहती है। अत एव चैतन्य या जिसका प्रथम भान होता है वही पीछे से भासता जड पदार्थों का वास्तव स्वरूप है । एसा निश्चय कर जडपदार्थ की उपेक्षा करके चैतन्य की ही वासना आरूढ करे । यह बात बलि और

शुक्राचार्य के सम्वाद से स्पष्ट जान पडती है—

" किमिहास्तीह किम्मात्रमिदं किम्मयमेव च ।
कस्त्वं कोऽहं क एते वा लोका इति वदाऽऽशु मे।
चिदिहास्तीह चिन्मात्रमिदं चिन्मयमेव च ।
चित्त्वं चिदहमेते च लोकाश्चिदिति संग्रहः" इति॥

अर्थः—यहां क्या है ? यह सब किस रूप में हैं ? यह कौन है । तुम कौन हौ ? मैं कौनहूं ? और यह लोक कौन है ? शीघ्र मुझे कहो । इस भान्ति बलि राजाने पूछा तब शुक्राचार्य ने उत्तर दिया जो, यही चैतन्य है ये सब चैतन्य ही है, तूं चैतन्य है, मैं चैतन्य स्वरूप हूं, तथा यह लोक भी चैतन्य स्वरूप है, यह थोडे में उत्तर है ।

यथा सुवर्णकारः कटकं विक्रीणन्नपि वलयाकारस्य गुणदोषानुपेक्ष्यगुरुत्ववर्णयोरेव मनः प्रणिधित्सति तथा चिन्मात्रे मनः प्रणिधातव्यम् । यावता कालेन जडं सर्वथैवोपेक्ष्य चिन्मात्रे मनसः प्रवृत्तिर्निश्वासादिवत् भाविकी सम्पद्यते तावन्तं कालं चिन्मात्रवासनायां प्रयतेत ॥

अर्थः—जैसे सोनार सोनेके कडा को बेचता हुआ भी कडा के आकार गत गुण दोष पर दृष्टि न देकर केवल उसके रङ्ग और तौल पर ही मन लगा कर देखता है—(ऐसा कडा लेनेवाला करता है) उसी प्रकार मुमुक्षु पुरुष मिथ्या नामरूपात्मक जड वस्तूपर लक्ष्य न देकर जडके पहिले भासता चैतन्य परही मन स्थिर कर जैसे श्वास उच्छ्वास रूप क्रिया विना प्रयास, अपने आप स्वभावसे ही होती है—

उसी प्रकार जडकी उपेक्षा कर केवल चैतन्य में ही मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जावे तब तक चैतन्य वासनाओं का अभ्यास करे ।

नन्वादावेव चिन्मात्रवासनाऽस्तु, तयैव मलिनवासनानिवृत्तेः, किमनेनान्तर्गडुना मैत्र्याद्यभ्यासेनेति चेन्न ।

अर्थः—शङ्का, पहिले चिन्मात्र वासना का ही अभ्यास करे, और मलिन वासना की निवृत्ति भी इस चिन्मात्रवासना से ही होगी तो पीछे मैत्री आदि शुभ वासना के अभ्यास के बीच व्यर्थ हाथ डालने का क्या प्रयोजन है ?

चिद्वासनाया अप्रतिष्ठितत्वप्रसङ्गात् । यथा कुट्टिमदार्ढ्यव्यतिरेकेण क्रियमाणमपि स्तम्भकुड्यात्मकं गृहं न प्रतितिष्ठति । यथा वा विरेचनेन प्रबलदोषमनिःसार्य सेवितमप्यौषधं नाऽऽरोग्यकरं तद्वत् ।

अर्थः—समाधान—मैत्री मुदिता आदि शुभ वासनाओं का अभ्यास किये बिना चैतन्य वासना स्थिर होती नहीं । जैसे नेव (दीवार का) मजबूत किये विना खम्भे, भीत आदिक समुदायरूप घर चिरकाल तक ठहर नहीं सकता, जैसे जुलाब लेकर सब दोषों को निकाले बिना रसायन का सेवन करने से रोग को कुछ लाभ नहीं होता, उसी प्रकार मैत्री आदि शुभ वासनाओं का अभ्यास किये बिना पहिले से ही चैतन्य वासना सिद्ध हो नहीं सकती ।

ननु " तामप्यथ परित्यजेत् " इति चिन्मात्रवासनाया अपि परित्याज्यत्वमवगम्यते ।

चिन्मात्रं परित्यज्यान्यस्य कस्य चिदुपादेयस्याऽभावात् ।

अर्थः—'उस चिन्मात्र वासना का भी पीछे त्याग करो' इस भान्ति चिन्मात्रवासना को भी हेय गिना है, सो योग्य नहीं, क्यों कि चैतन्य का त्यागकर, उस के बिना अन्य कोई पदार्थ उपादेय नहीं ।

नायं दोषः । द्विविधा चिन्मात्रवासना-मनोबुद्धिसमन्विता तद्रहिता चेति । करणं मनः, कर्तृत्वोपाधिर्बुद्धिः । तथा च सत्यप्रमत्तोऽहमेकाग्रेण मनसा चिन्मात्रं भावयिष्यामीति, एतादृशेन कर्तृकरणानुसन्धानेन समन्विता प्राथमिकी या चिन्मात्रवासना ध्यानशब्दाभिधेया तां परित्यजेत् । या त्वभ्यासपाटवेन कर्तृत्वाद्यनुसन्धानावधानरहिता समाधिशब्दाभिधेया तामुपाददीत । ध्यानसमाध्योस्तु लक्षणं पतञ्जलिः सूत्रयामास ।

अर्थः—समाधान, यह दोष वास्तविक नहीं, क्यों कि दो प्रकार की चिन्मात्र वासना है, एक मन बुद्धि सहित, और दूसरी मन बुद्धि रहित । मन यह करण सबही ध्यान आदिक आन्तर क्रियाओं का साधन है, और बुद्धि कर्त्तापन की उपाधिरूप है अर्थात् मैं अमुक कार्य करता हूं, इसप्रकार की वृत्ति बुद्धि का स्वरूप है, इस लिये, सावधान हूं, एकाग्र मन से केवल चैतन्य की भावना करूंगा, इस भांति कर्त्ता (बुद्धि) और करण (मन) का अनुसधान पूर्वक जो आरम्भ काल में चिन्मात्र वासना है, उस का ध्यान यह नाम है, इस मन बुद्धि पूर्वक चिन्मात्र वासना का त्याग करे, और अधिक अभ्यास से बुद्धि और मन के अनुसन्धान बिना जो समाधि नाम की चिद्वासना है, उसको ग्रहण करे । ध्यान और समाधि का लक्षण भगवान् पतञ्जलि ने सूत्रोंद्वारा कथन कियाहैः—

"तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" ।

तादृशे समाधौ दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारैः सेविते स्थैर्यं लब्ध्वा पश्चात्कर्तृकरणानुसन्धानपरित्यागार्थो यः प्रयत्नस्तमपि परित्यजेत् ।

अर्थः—नाभि आदि स्थानों में ध्येय के अवलम्बन ज्ञान की जो स्थिरता लगातार प्रवाह और उसमें दूसरे ज्ञान का अभाव हो उसे ध्यान कहते हैं । जिसमे ध्यान का संस्कार मात्र रह जाय और स्वरूप शून्य के समान होजाय उसे समाधि कहते हैं ।

चिर काल तक आदर पूर्वक निरन्तर सेवन किया इस प्रकार की समाधि में स्थिरता प्राप्त करने बाद मन बुद्धि के अनुसन्धान को त्यागने के लिये प्रयत्न का भी त्याग करे ।

नन्वेवं सति तत्त्यागयत्नोऽपि परित्याज्य इत्यनवस्था स्यात् ।

अर्थ—शङ्का—इस तरह तो जैसे मन, बुद्धि के त्याग के निमित्त यत्न का त्याग करे, उसी प्रकार इस त्याग के निमित्त प्रयत्न का त्याग करे, पीछे उस त्याग के निमित्त प्रयत्न का त्याग करे, इस भांति अनवस्था दोष प्राप्त होगा ?

नैवम् । कतकरजोन्यायेन स्वपरनिवर्तकत्वात् । यथा कलुषिते जले प्रक्षिप्तं कनक-

रज इतररजसा सह स्वात्मानमपि निवर्त्तयति तथा त्यागार्थः प्रयत्नः कर्तृकरणानुसन्धानं निवर्त्तयन्स्वात्मानमपि निवर्तयिष्यति । निवृत्ते च तस्मिन्मलिनवासनावच्छुद्धवासनानामपि क्षीणत्वान्निर्वासनं मनोऽवतिष्ठते । एतदेवाभिप्रेत्य वसिष्ठ आह ।

अर्थः—समाधान, जैसे मलिन जल में डालने से निर्मली के फल की धूलि इतर धूलि के साथ अपना भी नाश कर डालती है, उसी प्रकार कर्त्ता (बुद्धि) और करण (मन) के अनुसन्धान का त्याग के लिये किया हुआ यत्न, कर्त्ता तथा करण को अनुसन्धान की निवृत्ति के साथ अपनी भी निवृत्ति करेगी । यह यत्न निवृत्त हुए पीछे मलिन वासना के समान शुद्ध वासना में भी क्षीण होने से मन, वासना शून्य रह जाता है । इसी अभिप्राय से भगवान् वसिष्ठ ने कहा है—

"तस्माद्वासनया बद्धं मुक्तं निर्वासनं मनः ।
राम ? निर्वासनीभावमाहराऽऽशु विवेकतः" ॥

अर्थः—वासना सहित मन बद्ध है और वासना रहित मन मुक्त है, अत एव हे राम ? विवेक द्वारा शीघ्र निर्वासनापन की प्राप्ति करो—

"सम्यगालोचनात्सत्याद्वासना प्रविलीयते ।
वासनाविलये चेतः शममायाति दीपवत्"
इति ।

अर्थः—यथार्थ विचार पूर्वक सम्पूर्ण जगत् का बाधरूप त्याग होने से वासनायें लय को प्राप्त होती हैं, और वासनाओं का लय होने से जैसे दीप शान्त (बुत) होता है, उस प्रकार वासनायें शान्त हो जाती हैं ।

"यो जागर्ति सुषुप्तिस्थो यस्य जाग्रन्न विद्यते ।
यस्य निर्वासनो बोधः स जीवन्मुक्त उच्यते"
इति च ॥

अर्थः—जो अविद्या रूप निद्रा के उड जाने से जागते हुआ भी सुषुप्ति में स्थित पुरुष के समान केवल स्वरूप में स्थित है, जिस को ज्ञान द्वारा देहेन्द्रियका बाध हो जाने से इन्द्रियों द्वारा विषयों का ग्रहण रूप जाग्रत् अवस्था नहीं, तथा जिस को जाग्रत् वासना से हुई स्वप्न अवस्था भी नहीं, वही जीवन्मुक्त पुरुष कहलाता है ।

"सुषुप्तिवत् प्रशमितभाववृत्तिना
स्थितं सदा जाग्रति येन चेतसा ।
कलान्वितो विधुरिव यः सदा बुधै
र्निषेव्यते मुक्त इतीह स स्मृतः" इति च ।

अर्थ—जैसे सुषुप्ति अवस्था में चित्त विषयाकार नहीं होता उस प्रकार जाग्रत् अवस्था में भी जो विषयाकार वृत्ति से रहित चित्त मे स्थित है । तथा जिस को कलावान् चन्द्रमा के समान यही विवेकी पुरुष निरन्तर सेवता है, वह पुरुष मुक्त कहलाता है ।

" हृदयात्संपरित्यज्य सर्वमेव महामतिः ।
यस्तिष्ठति गतव्यग्रः स मुक्तः परमेश्वरः" ॥

अर्थः—जो महामति पुरुष हृदय में के सब विषयों को त्याग कर चित्त की व्यग्रता से मुक्त रहता, वह मुक्त साक्षात् परमेश्वर है ॥

"समाधिमथ कर्माणि मा करोतु करोतु वा ।

हृदयेनास्तसर्वाशो मुक्त एवोत्तमाशयः।
नैष्कर्म्येण न तस्यार्थस्तस्यार्थोऽस्ति न कर्मभिः।
न समाधानजप्याभ्यां यस्य निर्वासनं मनः॥
विचारितमलं शास्त्रं चिरमुद्ग्राहितं मिथः।
संत्यक्तवासनान्मौनादृते नास्त्युत्तमं पदम्" इति॥

अर्थः—जिस के हृदय की आशा ये निवृत्त होगयीं हैं, वह पुरुष समाधि या सत्कर्म करे या न करे, परन्तु वह उत्तम आशयवाला पुरुष सदामुक्त ही है। जिस का मन वासना रहित हुआहै, उस पुरुष को कर्म के त्याग का कोई प्रयोजन नहीं, उसी तरह उस को कर्म करने से कोई फल नहीं, तथा समाधि या जपका भी कोई प्रयोजन नहीं, पूर्ण रीति से शास्त्रों का विचार किया हो तथा परस्पर चर्चा द्वारा शास्त्रों का तात्पर्य्य एक दूसरे को ग्रहण कराया भी हो तौभी वासना त्याग रूप मौन विना उत्तम पद की प्राप्ति नहीं होती है।

न च निर्वासनमनस्कस्य जीवनहेतुर्व्यवहारो लुप्येतेति शङ्कनीयम्। किं? चक्षुरादिव्यवहारस्य लोपः, किं? वा मानसव्यवहारस्य। तत्राऽऽद्यमुद्दालकोनिराचष्टे—

अर्थः—वासना रहित मनवाले पुरुष का कोई भी व्यवहार यथार्थसिद्ध नही हो सकता, एसी यहां शङ्का न करनी। क्यों कि चक्षु आदि इन्द्रियों का व्यवहार और मानस व्यवहार ये दो प्रकार के व्यवहार हैं। इनमें से कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता? इन में से प्रथम पक्षका उद्दालक मुनि खण्डन करते हैं—

"वासनाहीनमप्येतच्चक्षुरादीन्द्रियं स्वतः।

प्रवर्तते बहिः स्वार्थे वासना नात्र कारणम्" इति॥
द्वितीयं वसिष्ठो निराचष्टे—

अर्थः—ये चक्षु आदि इन्द्रियां वासना विना भी, अपने विषय प्रति स्वयं ही प्रवृत्त होती हैं। इन्द्रियों का अपने अपने विषयों के प्रति प्रवृत्त होने में कोई वासना कारण नहीं है।

वासनाके क्षय होने से मानस व्यवहार भी बन्द नही होता यह वसिष्ठ मुनि कहते हैं।

"अयत्नोपनतेष्वक्षिदिग्द्रव्येषु यथा पुनः।
नीरागमेव पतति तद्वत्कार्येषु धीरधीः" इति॥
तादृश्या धिया प्रारब्धभोगं स एवोपपादयति—

अर्थः—रास्ता चलते, विना यत्न के प्राप्त हुए नाना दिशाओं की वस्तुओं पर जैसे दृष्टि राग विना जाती है, उसी प्रकार विवेकी पुरुष के अन्तः करण की वृत्ति सब कार्यों में राग विना ही प्रवृत्त होती है।

राग रहित बुद्धि द्वारा प्रारब्धभोग भी सिद्ध होता है, ऐसा वसिष्ठ जी कहते हैं—

"परिज्ञायोपभुक्तोहि भोगो भवति तुष्टये।
विज्ञाय सेवितश्चौरो मैत्रीमेति न चौरताम्"॥
अशङ्कितोपसंप्राप्ता ग्रामयात्रा यथाऽध्वगैः।
प्रेक्ष्यते तद्वदेव ज्ञैर्भोगश्रीरवलोक्यते" इति॥
भोगकालेऽपि सवासनेभ्यो निर्वासनस्य विशेषमाह—

अर्थः—जैसे चोर को चोर रूप से जान कर उस का से-

धन करने से वह चोर मित्र हो जाता है, किन्तु वह अपनी चोरी नहीं करता वैसे विषय भोगमें जो २ दोष हैं, उस को यथार्थ जानकर उनके भोगने से तृष्णाओं को नहीं बढा कर सन्तोष ही उत्पन्न करते हैं । जैसे मुसाफिर नीडर हुआ प्राय यात्रा (एक के पीछे एक आने जाने वाले को) को देखता है, उसी प्रकार ज्ञानी भोगलक्ष्मी (उदासीन दृष्टि से) देखता है।

भोग समय भी सवासन से निर्वासन पुरुष में अधिकता वसिष्ठ जी ने कही है—

" नाऽऽपदि ग्लानिमायाति हेमपद्मं यथा निशि।
नेहन्ते प्रकृतादन्यद्रमन्ते शिष्टवर्त्मनि ॥
नित्यमापूर्णतामन्तरक्षुब्धामिन्दुसुन्दरीम् ।
आपद्यपि न मुञ्चन्ति शशिनः शीततामिव ॥
अब्धिवद्धृतमर्यादा भवन्ति विगताशयाः ।
नियतं न विमुञ्चन्ति महान्तो भास्करा इव" इति ॥

जनकस्यापि समाधिव्युत्थितस्येदृशमेवाऽऽचरणं पठ्यते ।

अर्थः—जैसे सोने का कमल (बनावटी होनेसे) रात्रि में भी कुम्हलता नहीं वैसेही जीवन्मुक्त पुरुष आपत्ति में भी दीनताके वश नहीं होता है, प्रवाह प्राप्त कार्य्य के सिवाय अन्य कार्य के करने की इच्छा नहीं होती, और शिष्ट पुरुषों के ही मार्ग का अनुसरण कर आनन्द को प्राप्त होता है । चन्द्रमा के समान और वैसाही शीतल विकार रहित ऐसी पूर्णता को आपत् काल में भी नहीं छोडता वासना रहित महान् पुरुष समुद्रकी नाई मर्यादा को नहीं छोडता, उसी भांति सूर्य्य के समान नियम को नहीं छोडता है ।

समाधि में से उठने बाद जनक का भी उसी प्रकार आचरण योगवासिष्ठ में कहा गया है—

"तूष्णीमथ चिरं स्थित्वा जनकोजनजीवितम् ।
व्युत्थितश्चिन्तयामास मनसा शमशालिना ।
किमुपादेयमस्तीह यत्नात्संसाधयामि किम् ।
स्वतःस्थितस्य शुद्धस्य चितः का मेऽस्ति कल्पना।
नाभिवाञ्छाम्यसंप्राप्तं संप्राप्तं न त्यजाम्यहम् ।
स्वस्थ आत्मनि तिष्ठामि यन्ममास्ति तदस्तु मे।
इति संचिन्त्य जनको यथाप्राप्तक्रियासमौ ।
असक्तः कर्तुमुत्तस्थौ दिनं दिनपतिर्यथा ॥
भविष्यं नानुसन्धत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ ।
वर्तमाननिमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते" इति ॥

तदेवं यथोक्तेन वासनाक्षयेण यथोक्ता जीवन्मुक्तिर्भवतीति सुस्थितम् ॥

इति श्रीमद्विद्यारण्यप्रणीतजीवन्मुक्तिविवेके
वासनाक्षयनिरूपणं नाम
द्वितीयं प्रकरणम् ॥ २ ॥

अर्थः—बहुत देरतक शान्त रहकर जाग्रत होने के बाद शान्ति युक्त चित्त करके जनक लोगों के जीवित का कारण रूप आत्मस्वरूप में विचार करने लगे कि 'इस जगत् में मेरे ग्रहण योग्य क्या वस्तु है जिस को मैं यत्न से सिद्धकरूं ? स्वतः स्थित शुद्ध चैतन्य मेरी क्या कल्पना है ? अप्राप्त वस्तु की मैं इच्छा करता नही वैसे ही प्राप्त वस्तु को नही छोडता। मैं तो केवल-

स्वस्थ स्वरूप में ही स्थिर हूं । प्रारब्ध द्वारा प्राप्त जो वस्तु मेरीमानी गयी वह भले ही मेरी हो । इस प्रकार विचार कर जैसे सूर्य नारायण, अधिकार वशात् प्राप्त दिवस रूप क्रिया करते हैं वैसे ही जनक राजा भी आसक्ति रहित, यथा प्राप्त क्रिया करने के लिये उठे । यह राजा भविष्यत् सम्बन्धी विचार नही करते उसी प्रकार भूत कालका भी विचार नही करते और वर्त्तमान क्षण को तो हसते हुए वर्तते हैं ।

इस भान्ति यथा विधि उक्त वासनाक्षय द्वारा यथार्थ जीवन्मुक्ति सिद्ध होती है, यह अत्यन्त निश्चित है । इस प्रकार जीवन्मुक्ति विवेक का वासनाक्षय नाम का दूसरा—

प्रकरणसमाप्त हुवा ॥

अथ तृतीयं मनोनाशप्रकरणम् प्रनः ॥

अथ जीवन्मुक्तिसाधनं मनोनाशं निरूपय। म॥यद्यप्यशेषवासनाक्षये सति अर्थान्मनो नश्यत्येव, तथाऽपि स्वातन्त्र्येण मनोनाशे सम्यगभ्यस्ते सति वासनाक्षयो रक्षितो भवति । न चाजिह्वत्वषण्डकत्वाद्यभ्यासेनैव तद्रक्षा सिद्धेति वाच्यम् । नष्टे मनस्यजिह्वत्वादिनामर्थसिद्धत्वेनाभ्यासप्रयासाभावात् । मनोनाशाभ्यासस्तत्राप्यस्तीति चेदस्तु नाम ? तस्याऽऽवश्यकत्वादन्तरेण मनोनाशमभ्यस्ता अप्यजिह्वत्वादयोऽस्थिरा भवन्ति । अत एव मनसो नाशनीयत्वं जनक आह ।

अर्थः—अब जीवन्मुक्ति के साधन रूप मनोनाश का निरूपण करते हैं । यद्यपि सम्पूर्ण वासनाओंके क्षय होनेसे मनका नाश हो ही जाता है, तथापि स्वतन्त्र मनोनाश का यथाशास्त्र अभ्यास करने से वासनाक्षय की रक्षा होती है, अर्थात् वासना फिर उदय होने योग्य नही रहती । मौन होना षण्ढ होना आदि पूर्वोक्त साधनों के अभ्यास से वासना क्षय की रक्षा सिद्ध ही है, ऐसी शङ्का यहां न करनी चाहिये । क्योंकि मनोनाश होने से, मौन, षण्ढत्व आदि स्वयं सिद्ध होने से उन के अभ्यास करने के लिये प्रयास नही करना पडता ।

शङ्का—अजिह्वत्वादि में भी मनोनाश का अभ्यास तो है ही, तब स्वतन्त्रता से मनोनाश के लिये अभ्यास क्यों करेंगे ?

हस्तस्य हस्त—मनोनाश का अभ्यास उस में भी हो, परन्तु मेरी मानी अभ्यास की आवश्यकता होने से, स्वतन्त्रता से जैसे मूर्का अभ्यास किये विना अजिह्वत्वादि साधन स्थिर करते हैं। अतएव जनक ने मन को नाश करने योग्य कहा है।

"सहस्राङ्कुरशाखात्मफलपल्लवशालिनः ।
अस्य संसारवृक्षस्य मनोमूलमिति स्थितम् ॥
संकल्पमेव तन्मन्ये मनोमूलमिति स्थितम् ।
संकल्पमेव तन्मन्ये संकल्पोपशमेन तत् ॥
शोषयामि यथाशोषमेति संसारपादपः ।
प्रबुद्धोऽस्मि प्रबुद्धोऽस्मि दृष्टश्चोरो मयाऽऽत्मनः॥
मनो नाम निहन्म्येनं मनसाऽस्मि चिरं हतः ।
वसिष्ठोऽप्याह—

अर्थः—हजार अंकुर, शाखा, पल्लव, और फल वाला संसाररूपी, वृक्ष की जड मन ही है, इस में सन्देह नही । संकल्प ही उस का स्वरूप है, इस लिये संकल्प का शमन करने के लिये मन का शोषण कर डाले, जिस्से यह संसार रूपी वृक्ष भी सुख ही जाय । अब मैंने समझा, अब ही समझा हूं, मैं ने आत्म धन का चुराने वाले मन नामक चोर को देखा है, इस लिये अब आज मै इसे मारता हूं, इस ने बहुत दिनों तक मुझे मारा है । वसिष्ठजी कहते हैं—

" अस्य संसारवृक्षस्य सर्वोपद्रवदायिनः ।
उपाय एक एवास्ति मनसः स्वस्य निग्रहः ॥
मनसोऽभ्युदयो नाशो मनोनाशो महोदयः ।
ज्ञमनो नाशमभ्येति मनोऽज्ञस्य हि शृङ्खला ॥
तावन्निशीथवेताला वल्गन्ति हृदि वासनाः ।

एकतत्त्व च दृढाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः ॥
प्रक्षीणचित्तदर्पस्य निगृहीतेन्द्रियद्विषः ।
पद्मिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोगवासनाः ॥
हस्तं हस्तेन संपीड्य दन्तैर्दन्तान्विचूर्ण्य च ।
अङ्गान्यङ्गैः समाक्रम्य जयेदादौ स्वकं मनः ॥
एतावति धरणीतले सुभगास्ते साधुचेतनाः पुरुषाः।
पुरुषकथासु च गण्यन्ति जिता ये चेतसा स्वेन ॥
हृदये बिले कृतकुण्डल उल्बणकलनाविषो
मनो भुजगः ।
यस्योपशान्तिमगमचन्द्रवदुदितं तमव्ययं वन्दे"
इति ।

अर्थः—अनेक प्रकार के कष्टरूप फल को देनेवाले इस संसार वृक्ष का निर्मूल करने का, केवल अपने मन का निग्रह करे यही केवल उपाय है । मन का उदय यह पुरुष के नाश का रूप है, और मन का नाश यह उस का बडा अभ्युदय है । ज्ञानी का मन नाश को प्राप्त होता है, और अज्ञानी का मन इस का बांधने वाला सांकल (जंजीर सिर) रूप है । जब तक एक परम तत्त्व के दृढ अभ्यास से अपने मन को नहीं जीतता तब तक आधीरात में नाच करने वाले पिशाचादि के समान हृदय में नाच किया करता है ।
जिस के चित्त का गर्व शांत हुआ है, तथा जिस ने इन्द्रियरूप शत्रु को वश में कर लिया है, उस की भोगवासनायें शीतकाल में हिम पडने से कमल के नाश के समान क्षय को प्राप्त हो जाती हैं । हाथ से हाथ दाब कर, दांतों से दांत को पीस कर और अङ्गों से अङ्ग मरोड कर भी प्रथम अपने मन को जीते ।

वे ही पुरुष इस विशाल भुमण्डल में भाग्यवान्, बुद्धिमान् है और पुरुषों में भी ऐसी ही की गणना हो सकती है। हृदय रूपी बिल में फणवाला बैठा हुआ (सर्प) सङ्कल्प विकल्प रूप जिस का भयङ्कर विष है, ऐसा मनरूपी सर्प जिस का मारा गया है, उस उदय पाये हुए पूर्णचन्द्रमा के समान निर्विकार पुरुष को मैं वन्दना करता हूं।

"चित्तं नाभिः किलास्येदं मायाचक्रस्य सर्वतः।
स्थीयते चेत्तदाक्रम्य तन्न किं चित्प्रबाधते" इति॥
गौडपादाचार्य्यैरप्युक्तम्।

अर्थः—इस मायाचक्र की नाभि (मध्य) ठीक यह चित्त है। सब ओर से उस का आक्रमण कर जो स्थित हुआ है। वह किसी बाधा को प्राप्त नहीं होता।

श्री गौडपादाचार्य ने भी कहा है—

"मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम्।
दुःखक्षयः प्रबोधश्चाप्यक्षया शान्तिरेवच" इति॥
अर्जुनेनोक्तम्—

अर्थः—सब योगिपुरुषों को भयशून्यता की प्राप्ति मन के निग्रह के अधीन है, उसी प्रकार दुःख की निवृत्ति, ज्ञान और अक्षय शान्ति भी मन के निग्रह के ही अधीन है। अर्जुन ने भी (भ० गी० अ० ६। श्लो ३४) कहा है—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण ? प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्"
इत्येतद्वचनं हठयोगविषयम्। अतएव वसिष्ठ आह—

अर्थः—हे कृष्ण ! इन्द्रियों को क्षुब्ध करनेहारा विचारसे

जीतने के अयोग्य, दृढ अर्थात विषय वासनाओं से दुर्भेद्य मन अत्यन्त ही चञ्चल है। वायु के समान इन को रोकना मैं दुष्कर जानता हूं॥ ३४॥

यह वचन हठयोग सम्बन्धी है, अर्थात हठयोग से मन का रोकना अत्यन्त कठिन है, इस अभिप्राय से यह वचन अर्जुन ने कहा है। इस अभिप्राय से वसिष्ठ जी भी कहते हैं कि—

"उपविश्योपविश्यैकाचित्तकेन मुहुर्मुहुः।
न शक्यते मनो जेतुं विना मुक्तिमनिन्दितम्॥
अङ्कुशेन विना मत्तो यथा दुष्टमतङ्गजः।
विजेतुं शक्यते नैव तथा युक्त्या विना मनः॥
मनोविलयहेतूनां युक्तीनां सम्यगीरणम्।
वसिष्ठेन कृतं तावत्तन्निष्ठस्य वशे मनः॥
हठतो युक्तितश्चापि द्विविधो निग्रहो यतः।
निग्रहो धीक्रियाक्षाणां हठो गोलकनिग्रहात्॥
कदा चिज्जायते कश्चिन्मनस्तेन विलीयते।
अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसङ्गम एव च॥
वासनासम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम्।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल॥
सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयन्ति ये।
चेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नन्ति तमोऽञ्जनैः॥
विमूढाः कर्त्तुमुद्युक्ता ये हठाच्चेतसो जयम्।
ते निबध्नन्ति नागेन्द्रमुन्मत्तं बिसतन्तुभिः" इति॥

अर्थः—चित्त के स्वभाव को जानने वाले पुरुष, बिना उत्तम युक्ति प्राप्त किये, केवल वारंवार आसन पर बैठने से इस मन को नहीं जीत सकते जैसे महामत्त हाथी बिना अङ्कुश के

वश में नहीं हो सकता, उसी प्रकार यह मन भी उत्तम युक्ति के बिना वश में नही आसकता । मन को वश करने की ठीक युक्तियां वसिष्ठ जी ने निरूपण कियी हैं अतएव उन युक्तियों के सेवन करने वाले पुरुष के मन स्वयमेव अधीन हो जाता है। मन का निग्रह (रोकना) दो प्रकार का है-एक हठ द्वारा दूसरा युक्ति द्वारा तहां (नेत्र आदिक ५ ज्ञान इन्द्रिय, और वाणी आदि पांच कर्म इन्द्रिय, ये दश इन्द्रिय) इन्द्रियोंके गोलक मात्र के निरोध करने से ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का जैसे हठ से निग्रह किया होता है वैसे ही कदाचित् इस मन का भी हठ से निग्रह होगा ऐसी भ्रांति मूढ पुरुष को होती है । अब युक्ति से निग्रह को कहते है । युक्ति ४ प्रकार की है एक तो अध्यात्मविद्या की प्राप्ति, दूसरी महात्माओं का समागम, तीसरी वासनाओं का परित्याग, और चौथी प्राणों के स्पन्द का निरोध है। ये ही चार युक्तियां उस मन के निरोध के लिये उपाय है। इन चार युक्तियों के विद्यमान हुए भी पुरुष चित्त को बलात्कार से निग्रह करता वह पुरुष अन्धकार को हटानेके लिये दीपक का परित्याग कर अन्धकार को आञ्जन से निवृत्त करता है। जो मूढ पुरुष हठ से चित्त को जीतने का उद्यम करता है, वह मानो पगले हाथी को कमल के सूत से बान्धता है ??

निग्रहो द्विविधः हठनिग्रहः क्रमनिग्रहश्चेति। चक्षुःश्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियाणि वाक्पाण्यादिकर्मेन्द्रियाणि च तत्तद्गोलकोपरोधमात्रेण हठान्निगृह्यन्ते । तद्दृष्टान्तेन मनोऽपि तथा निग्रहीष्यामीति मूढस्य भ्रान्तिर्भवति, न तु तन्निगृह्यते । तद्गोलकस्य हृदयकमलस्य नि-

रोद्धुमशक्यत्वात् । अतः क्रमनिग्रह एव योग्यः ।

अर्थः—हठ निग्रह और क्रम निग्रह इस भांति दोप्रकार का निग्रह तहां चक्षु आदि ज्ञान इन्द्रियों का और वाणी आदि कर्मेन्द्रियों का उस २ इन्द्रिय के गोलक को (इन्द्रियों के रहने की जगह) व्यापार रहित करने से जैसे हठ से निरोध किया जा सकता, वैसे ही मन के गोलक का निरोध भी मैं करूंगा ऐसी मूढ पुरुष को भ्रांति होती है परन्तु उस तरह मन का निरोध हो नही सकता । क्यों कि जैसे आंख मून्दने से नेत्रेन्द्रिय का निरोध हो सकता वैसे मन के गोलक हृदय कमलका निरोध नही किया जा सकता । अतएव मन के निग्रहार्थ क्रम निग्रह ही योग्य है ।

क्रमनिग्रहे चाध्यात्मविद्याप्राप्त्यादय उपायाः सा च विद्या दृश्यमिथ्यात्वं दृग्वस्तुनः स्वप्रकाशत्वं च बोधयति तथाच सत्येतन्मनः स्वगोचरेषु दृश्येषु प्रयोजनाभावं प्रयोजनवति दृग्वस्तुन्यगोचरत्वं च बुद्ध्वा निरिन्धनाग्निवत् स्वयमेवोपशाम्यति । तथा च श्रूयते ।

अर्थः—क्रम निग्रह के लिये अध्यात्मविद्या की प्राप्ति आदि उपायों को ऊपर कथन किया है । तिस में अध्यात्म विद्या दृश्य का मिथ्यापन और द्रष्टा का स्वयं प्रकाशपन को जतलाती है; ऐसा करने पर यह मन, अपना विषय दृश्य पदार्थ, जिस का अध्यात्म विद्या से मिथ्यारूप निश्चय किया है, उस के प्रति जाने को मुझे प्रयोजन नही तथा जिस के प्रति जाने को मुझे प्रयोजन नही तथा जिस के प्रति जाने की आवश्य-

कता है, वह द्रष्टा रूप वस्तु मेरा विषय नहीं, इस भान्ति समझ कर यह मन, जैसे काष्ठ आदिक के अभाव से अग्नि स्वयं शान्त हो जाता वैसे ही स्वयं शान्त हो जाता है। श्रुति भी कहती है—

"यथा निरिन्धनो वह्निः स्वयोनावुपशाम्यति।
तथा वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति"
इति।

अर्थः—जैसे इन्धन के न रहने पर अग्नि अपने कारण में शान्त हो जाता है, उसी भान्ति वृत्ति के क्षय से चित्त आत्मा में शान्त हो जाता है।

योनिरात्मा। यस्तु बोधितमपि तत्त्वं न सम्यग् बुध्यते यश्च विस्मरति तयोरुभयोः साधुसङ्गम एवोपायः। साधवो हि पुनः पुनर्बोधयन्ति स्मारयन्ति च। यस्तु विद्यामदादिदुर्वासनया पीड्यमानो न साधूननुवर्तितुमुत्सहते तस्य पूर्वोक्तविवेकेन वासनापरित्याग उपायः। वासनानामतिप्राबल्येन त्यक्तुमशक्यत्वे प्राणस्पन्दनिरोधनमुपायः। प्राणस्पन्दनवासनयोश्चित्तप्रेरकत्वात्तयोर्निरोधे चित्तशान्तिरुपपद्यते।

प्रेरकत्वं च वसिष्ठ आह—

अर्थः—परन्तु जो जडबुद्धिवाला होने से आत्मतत्त्व का बोध कराने पर भी उस का ग्रहण नहीं कर सकता, तथा जो ग्रहण कर तुरन्त उसे भूल जाया करता ऐसे पुरुष के मन के निग्रह के लिये सत्पुरुषों का समागम ही उपायरूप है। क्यों

कि दयालु सत्पुरुष ऐसे जडमतिवाले को वारवार बोध कराते हैं, तथा आत्मा का स्मरण कराया करते हैं। जो पुरुष विद्यामद, धन मद, ऐश्वर्यमद आदि दुष्ट वासनाओं से पीडित होने से सत्पुरुष की शरण में जा कर उन को, प्रणाम शुश्रूषा आदि उपायों से प्रसन्न करने में असमर्थ होते ऐसे पुरुषों के लिये पूर्वोक्त विवेक से वासना का त्याग रूप उपाय है। वासनाओं की अति प्रबलता होने से उन को जो नहीं छोड सकता उन के लिये प्राण वायु का निरोध रूप उपाय है। प्राण की गति और वासनायें चित्तको वेग में प्रेरणा करती हैं, अत एव उन दोनों के निरोध करने से चित्त शान्ति को पाता है।

गतिवाला प्राण और वासना मन को वेग में प्रेरणा करती है, ऐसा श्री वसिष्ठ जी कहते हैं—

"द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य वृत्तिव्रततिधारिणः।
एकं प्राणपरिस्पन्दो द्वितीयं दृढवासना॥
सती सर्वगता संवित्प्राणस्पन्देन बोध्यते।
संवेदनादनन्तानि ततो दुःखानि चेतसः" इति॥

अर्थः—हे रामचन्द्रजी ? आप में से प्राप्त हुई वृत्तिरूप लताओं को धारण करने वाले चित्तरूप वृक्ष के दो बीज हैं। एक प्राण की गति और दूसरा दृढ वासना।

यथा भस्मच्छन्नमग्निं लोहकारा दृतिभ्यां धमन्ति तत्र च दृत्युत्पन्नवायुना सोऽग्निर्ज्वलति तथा चित्तोपादानेन काष्ठस्थानीयेन ज्ञानेनाऽऽवृता संवित्प्राणस्पन्देन बोध्यमाना चित्तवृत्तिरूपेण प्रज्वलति। तस्माच्चित्तवृत्तिनामकात् संविज्ज्वालारूपात् संवेदनाद्दुःखा-

न्युत्पद्यन्ते सेयं प्राणस्पन्देन प्रेरिता चित्तो-त्पत्तिः । अन्यांच स एवाऽऽह—

अर्थः—चित्त का उपादान (बीज) कारण रूप अविद्या से ढका हुआ सर्वगत चैतन्य प्राण के वेग से प्रकट होता है। उस के प्रकट होने से चित्त में से दुःख उत्पन्न होता है । अर्थात् जैसे भस्म से ढके हुए अग्नि को लुहार धौंकनी से धौंकता है, तब धौंकनी से उत्पन्न वायु से अग्नि में ज्वाला उत्पन्न होती है, उसी प्रकार काठ के समान चित्त का उपादान कारण रूप अज्ञान से आवृत चैतन्य प्राण वायु से स्फुट हो चित्तवृत्ति रूप से जला करता । उस चित्त संवित् नाम की (अज्ञानावृत चैतन्य) की ज्वाला रूप आग से अनेक दुःख उत्पन्न होते हैं।

इस भान्ति प्राण की गति द्वारा प्रेरित चित्त की उत्पत्ति बतलायी गयी । वासनाजन्य चित्त की उत्पत्ति का भी श्री वसिष्ठ मुनि कथन करते हैं—

"भावसंवित्प्रकटितामनुभूतां च राघव ?।
चित्तस्योत्पत्तिमपरां वासनाजनितां शृणु ॥
दृढाभ्यस्तपदार्थैकभावनादतिचञ्चलम् ।
चित्तं सञ्जायते जन्मजरामरणकारणम्" इति॥

न केवलं प्राणवासनयोश्चित्तप्रेरकत्वं किं तु परस्परप्रेरकत्वमप्यस्ति । तदाह वसिष्ठः—

अर्थः—हे रामचन्द्रजी ! पदार्थ के ज्ञान से प्रकट हुए, अनुभव में आये हुए, चित्त की दूसरी वासनाजन्य उत्पत्ति का तुम श्रवण करो। दृढता से सेवित विषय की वासना से जन्म, बुढापा, और मरण का कारण इस भान्ति अति चञ्चल चित्त उत्पन्न होता है।

केवल प्राण और वासना ही चित्त को प्रेरणा करनेवाले नहीं हैं प्रत्युत वे दोनों भी परस्पर एक दूसरे को प्रेरणा करते हैं। इसी प्रकार वसिष्ठ जी भी कहते हैं—

"वासनावशतः प्राणस्पन्दस्तेन च वासना ।
क्रियते चित्तबीजस्य तेन बीजाङ्कुरक्रमः" इति ॥

अतएवान्यतरनाशेनोभयनाशमप्याह ।

अर्थः—वासना के अधीन प्राण की गति है, और प्राण के गति के कारण वासना फुरती है, इस भान्ति चित्त के बीज रूप वासना और प्राणव्यापार का बीजांकुर के समान क्रम है। इसी कारण दोनों में से एक के नाश होने से दूसरे का नाश हो जाता ऐसा वसिष्ठ जी कहते हैं—

"द्वे बीजे चित्तवृक्षस्य प्राणस्पन्दवासने ।
एकस्मिंश्च तयोः क्षीणे क्षिप्रं द्वे अपि नश्यत" इति॥

तयोर्नाशोपायं नाशफलं चाऽऽह—

अर्थः—गतिवाला प्राण और वासना ये दोनों चित्तरूपी वृक्ष के बीज हैं। इन दोनों में से एक का क्षय होने से तत्काल दोनों का क्षय हो जाता है ॥

इन दोनों के नाश का उपाय और नाश के फल को श्री वसिष्ठ जी कहते हैं—

"प्राणायामदृढाभ्यासैर्युक्त्या च गुरुदत्तया ।
आसनाशनयोगेन प्राणस्पन्दो निरुध्यते ॥
असङ्गव्यवहारित्वाद्भवभावनवर्जनात् ।
शरीरनाशवर्तित्वाद्वासना न प्रवर्तते ॥
वासनासंपरित्यागाच्चित्तं गच्छत्यचित्तताम् ।
प्राणस्पन्दनिरोधाच्च यथेच्छसि तथा कुरु ॥

एतावन्मात्रकं मन्ये रूपं चित्तस्य राघव ! ।
यद्भावनं वस्तुनोऽन्तर्वस्तुत्वेन रसेन च ॥
यदा न भाव्यते किञ्चिद्धेयोपादेयरूपि यत् ।
स्थीयते सकलं त्यक्त्वा तदा चित्तं न जायते ॥
अवासनत्वात्सततं यदा न मनुते मनः ।
अमनस्ता तदोदेति परमोपशमप्रदा" इति ॥
अमनस्तानुदये शान्त्यभावमाह—

अर्थः—प्राणायाम के दृढ अभ्यास से, श्रीसद्गुरु से प्राप्त कियी हुई युक्ति द्वारा आसन जय और नियमित आहार से प्राण की गति रोकी जा सकती है, निःसङ्ग व्यवहार से जगत् में से सत्यत्व बुद्धि को त्यागने से और शरीर के विनाशपन को बार २ स्मरण करने से दुष्ट प्राण की गति के निरोध से चित्त अचित्तपन को प्राप्त होता है । अतएव हे राम ! इन दो उपायों के करने की इच्छा हो तो करो । किसी भी पदार्थ को सत्य मानकर उस को सेवन करना यही चित्त का स्वरूप है, इसी भाँति मैं मानता हूं यह वस्तु तो सुख का हेतु है, इस लिये यह तो ग्रहण करने योग्य हैं, और यह तो सुख का हेतु नहीं है इस लिये अग्राह्य है इस प्रकार जब किसी पदार्थ विषयक ग्राह्य अग्राह्यकी भावना न हो ऐसा ही जब सब अनात्म वस्तुओं के त्याग से रह सकता है तब चित्त का उदय नहीं होता। चित्त निर्वासन होने से जब सङ्कल्प विकल्प नहीं करता तब अमनस्कता का उदय होता है जो परमशान्ति को देनेवाला है।

जब तक मन का अमनभाव नहीं होता तब तक शान्ति नहीं होती, ऐसा वसिष्ठ जी कहते हैं--

"चित्तयक्षदृढाक्रान्तं न मित्राणि न बान्धवाः ।

शक्नुवन्ति परित्रातुं गुरवो न च मानवाः" इति ॥

अर्थः—जिस पुरुष को चित्तरूपी यक्ष ने अपने अधीन कर रक्खा है, उस पुरुष की रक्षा मित्र, बान्धव, माता, पिता, आदि गुरुजन और अन्य मनुष्य भी नहीं कर सकते अर्थात् इन में से कोई भी उस की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं ।

आसनाशनयोगेनेति यदुक्तं तत्राऽऽसनस्य लक्षणमुपायं फलं च त्रिभिः सूत्रैः पतञ्जलिः सूत्रयामास ।

अर्थः—इस के पहिले आसन जय और नियमित आहार प्राण जय का कारण रूप से गिना गया है । उस में से आसन का लक्षण और उन का उपाय पतञ्जलि मुनि ने तीन सूत्रों द्वारा कहा--

"स्थिरसुखमासनम्" "प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्" "ततो द्वन्द्वानभिघातः" इति ॥

अर्थः—जिस प्रकार बैठने में शरीर के अवयवों को व्यथा न हो और शरीर स्थिर रहे उस का नाम "आसन" है लौकिक कार्य्यों के लिये प्रयत्न की शिथिलता और शेष की धारणा से आसन जय सिद्ध होता है । आसन सिद्धि के बाद सुखदुःख का नाश होता है ।

पद्मकस्वस्तिकादिना यादृशेन देहस्थापनरूपेण यस्य पुरुषस्यावयवव्यथानुत्पत्तिलक्षणं सुखं देहचलनराहित्यलक्षणं स्थैर्यं च सम्पद्यते तस्य तदेव सुखमासनम् । तस्य च प्रयत्नशैथिल्यं लौकिक उपायः । गमनगृहकृत्यतीर्थयात्रास्नानयागहोमादिविषयो यः

प्रयत्नो मानस उत्साहस्तस्य शैथिल्यं कर्तव्यम् । अन्यथा स उत्साहो बलाद्देहमुत्थाप्य यत्र क्वापि प्रेरयति । अलौकिकोपायश्च फणासहस्रेण धरणीं धारयित्वा स्थैर्येणावतिष्ठते योऽयमनन्तः स एवाहमस्मीति ध्यानं चित्तस्यानन्ते समापत्तिः । तया यथोक्तासनसम्पादकमदृष्टं निष्पद्यते । सिद्धे चाऽऽसने शीतोष्णसुखदुःखमानामानादिद्वन्द्वैर्यथा नाभिहन्यते तथाविधस्य चाऽऽसनस्य योग्यो देशः श्रूयते ।

अर्थः—शरीर को स्थापन करनेवाला पद्मक स्वस्तिक आदि जैसे आसन से जिस पुरुष को अवयव में व्यथा न होनेरूप सुख होता, तथा देह के अचलपन रूप स्थिरता प्राप्त होती है, उस पुरुष को वह मुख्य आसन समझना । इस आसन को स्थिर होने का लौकिक उपाय व्यावहारिक कार्यों में प्रयत्नरहित होना है । गमन, गृहकृत्य, तीर्थयात्रा, स्नान, याग, और होमादि विषय सम्बन्धी जो प्रयत्न अर्थात् मानस उत्साह उस की शिथिलता करनी योग्य है । जो व्यावहारिक कार्य में उत्साह रहित न होय तो, यह उत्साह उसे बलात्कार से उठा कर जहां कहीं प्रेरणा करती है । 'शेष नाग जो' अपनी १००० फणाद्वारा पृथिवी को धारण कर स्थिरता से ठहरे हैं, वह शेष भगवान् मैं हूं इस प्रकार का ध्यान यह आसन जय का अलौकिक उपाय है । इस उपाय के करने से आसन स्थिर करने में समर्थ जीव का अदृष्ट उत्पन्न होता है । आसन सिद्ध होने से शीत, उष्ण, सुख, दुःख, मान, अपमान आदि द्वन्द्वधर्मों से आ-

सन जय करने वाले पुरुष पूर्व के समान पीडित नहीं होता। ऐसे आसन के लिये योग्य स्थल भी श्रुति कहती है—

"विविक्तदेशे च सुखासनस्थः शुचिः समग्रीवशिरःशरीरः" इति ।

"समे शुचौ शर्करवह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाशयादिभिः ॥
मनोऽनुकूले नतु चक्षुःपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्" इति च ॥

सोऽयमासनयोगः । अशनयोगस्तु मिताहारत्वम् ।

अर्थः—सम, पवित्र, कङ्कड, अग्नि, और बालू से रहित, कोलाहल तथा जिस की खलखलाहट की आवाज होती हो ऐसे जलाशय से रहित, मन के अनुकूल और मच्छर से रहित, ऐसा निर्जन गुहा आदिक निर्वात स्थान में आराम से बैठ कर, जिस ने गर्दन सीधा, मस्तक और शरीर सीधा रक्खा है ऐसे पवित्र पुरुष को योगाभ्यास का आरम्भ करना चाहिये । इस प्रकार आसन योग का कथन किया है । अब अशन (भोजन) योग अर्थात् मिताहार का कथन करते हैं ।

"अत्याहारमनाहारं नित्यं योगी विवर्जयेत्" इति श्रुतिः ।

भगवताऽप्युक्तम् ।

अर्थः—अति आहार और उपवास योगी नित्य, ही, त्याग करे ऐसा श्रुति का वचन है । भगवान् नेभी कहा है—

"नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतोनैव चार्जुन ! ।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा"
इति ॥

जितासनस्य प्राणायामेन मनोविनाशः श्वेताश्वतरैराम्नायते ।

अर्थः—हे अर्जुन ! जो अधिक भोजन करता या भोजन का अत्यन्त परित्याग करता है, जो बहुत सोया करता है या जागता ही रहता है उस को योग नहीं प्राप्त होता है । उचित आहार और विहार से रहता है, कर्मों में योग्य रीति से बर्तता है और योग्य काल में सोता एवं जागता हैं उस पुरुष का योगाभ्यास उस के दुःख को मिटा देता हैं । जिस ने आसन का जय किया है, उस के मन का नाश प्राणायाम से होता है ऐसा श्वेताश्वरशाखाध्यायी कहते हैं—

" त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि
मनसा संनिवेश्य ।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि
भयावहानि ।
प्राणान्प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोः श्वसीत ।
दुष्टाश्वमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः" इति ।

अर्थ—हृदय, गर्दन, और मस्तक जिस में ऊंचे रहें इस भांति शरीर को समान रख मन सहित इन्द्रियों को हृदय में संनिविष्ट कर विद्वान् पुरुष, प्रणव रूप नौका पर सवार हो संसार नदी के भय देनेवाले सब प्रवाहों को पार कर जाता है, युक्त चेष्टा वाले उस पुरुष को प्राणायाम कर प्राण क्षीणता

को प्राप्त हो, तब २ धीरे २ नासिका से प्राण को बाहर करना चाहिये (श्वास बाहर करे) बदमास घोडे वाले सारथी के समान विद्वान्पुरुष सावधानता से मन को वश में करे ॥

योगी द्विविधः विद्यामदाद्यासुरसम्पद्रहितस्तत्सहितश्चेति । तयोराद्यस्य ब्रह्मध्यानेन मनसि निरुद्धे सति तन्नान्तरीयकतया प्राणो निरुध्यते । तं प्रति त्रिरुन्नतमिति मन्त्रः पठितः । द्वितीयस्याभ्यासेन प्राणे निरुद्धे तन्नान्तरीयकतया मनो निरुध्यते तं प्रति प्राणान्प्रपीड्येति मन्त्रः प्रवृत्तः । प्राणपीडनप्रकारो वक्ष्यते । तेन च पीडनेन युक्तचेष्टो भवति । मनश्चेष्टाविद्यामदादयो निरुध्यन्ते प्राणनिरोधेन चित्तदोषे निरोधे दृष्टान्तो ऽन्यत्र श्रूयते ।

अर्थः—विद्यामदादि आसुरी सम्पत्ति रहित और आसुरी सम्पत्ति युक्त यों दो प्रकार के योगी होते हैं उनमें से प्रथम आसुरी सम्पत्ति रहित योगी जब ब्रह्म के ध्यान से मन का निरोध कर चुकता, 'तब उस के प्राण का भी स्वयं निरोध हो जाता है । क्यों कि मन और प्राण सदा साथ ही रहता है इस प्रकार के योगी को उद्देश कर—"त्रिरुन्नत" मन्त्र पढा है, और दूसरा जो आसुरी सम्पत्तियुक्त योगी है, उस से पहिले मनका निरोध नहीं हो सकता, अत एव जब वह प्राणायाम के अभ्यास से प्राण का निरोध करता, तब उस का मन स्वयं निरोध को प्राप्त होता है इस योगी को उद्देश कर "प्राणान्प्रपीड्य" यह मन्त्र पढा है । प्राणायाम का प्रकार आगे कहेंगे । प्राणायाम से अधिकारी का शरीर इन्द्रिय का व्यापार नियम में आ जाता

है। विषामद आदि को मन का व्यापार भी शान्त हो जाता है। प्राण के निरोध से चित्त के दोष का निरोध होनेमें दृष्टान्त श्रुति में इस प्रकार है—

"यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते दहनान्मलाः।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात्" इति॥
अत्रोपपत्तिर्वसिष्ठेन दर्शिता—

अर्थः—जैसे पर्वत में से निकले हुए सुवर्ण आदि धातुओं के तपाने से उन का मल जर जाता है, उसी भांति प्राण के निग्रह से इन्द्रिय और मन का दोष जर जाता है।

प्राण के निरोध से मन का निरोध होने में युक्ति श्री वसिष्ठ जी ने दिखलायी है—

"यः प्राणपवनस्पन्दश्चित्तस्पन्दः स एव हि।
प्राणस्पन्दक्षये यत्नः कर्त्तव्यो धीमतोच्चकैः" इति॥

अर्थः—जैसे प्राण वायु का स्पन्दरूप व्यापार है वही मन का व्यापार है, इस लिये बुद्धिमान् पुरुष प्राण वायु के निरोध के लिये उत्कृष्ट यत्न करे।

मनोवाक्चक्षुरादीन्द्रियदेवताः स्वस्वव्यापारं करिष्याम इति व्रतं धृत्वा श्रमरूपेण मृत्युना ग्रस्ताः। स च मृत्युः प्राणं नाऽऽप्नोत्। ततो निरन्तरमुच्छ्वासनिःश्वासौ कुर्वन्नपि प्राणो न श्राम्यति। तदा विचार्य देवताः प्राणरूपं प्राविशन्। सोऽयमर्थो वाजसनेयिभिराम्नायते—

अर्थः—मन, वाणी, चक्षु आदि इन्द्रियों को देवगण "स्वयं अपना २ व्यापार निरन्तर करेंगे" ऐसा व्रत धारण कर

अन्त में वे श्रमरूप मृत्यु अधीन होते, अर्थात् श्रम के वशात: उन का व्यापार बन्द हो जाता है। परन्तु वह श्रमरूप मृत्यु, प्राण को नहीं पहुंच सकता है। इससे प्राणवायु निरन्तर श्वासोच्छ्वासरूप व्यापार करता हुआ भी नहीं थकता तब चक्षु आदिक के देवगण विचार कर प्राण में प्रवेश कर गये यह अर्थ बृहदारण्यक उपनिषद् में कथन किया है—

"अयं वै नः श्रेष्ठो यः सञ्चरंश्चासञ्चरँश्च न व्यथते यो न रिष्यति हन्तास्यैव सर्वे रूपमसामेति एतस्यैव सर्वे रूपमभवंस्तस्मादेत एतेनाऽऽख्यायन्ते प्राणाः" इति॥

अर्थः—मन और नेत्र आदि इन्द्रियों ने विचार किया कि यह प्राण हम में श्रेष्ठ है जो सांस लेने रूप व्यापार करने पर पीडा नहीं अनुभव करता, हम और नाश को भी नहीं प्राप्त होता, इस लिये सब प्राण रूप हुए। प्राणरूप हुए इस कारण से मन इन्द्रियादि सब प्राण ही कहलाते हैं।

अत इन्द्रियाणां प्राणरूपत्वं नाम प्राणाधीनचेष्टावत्त्वम्। तच्चान्तर्यामिब्राह्मणे सूत्रात्मप्रस्तावे श्रूयते—

अर्थः—प्राण के अधीन अपने व्यापार के होने से इन्द्रियां प्राण कहलाती हैं, यह बात अन्तर्यामि ब्राह्मण में "सूत्रात्मा" के प्रसङ्ग में कही गयी है—

"वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति। तस्माद्वै गौतम ? पुरुषं प्रेतमाहुर्व्यस्रंसिषतास्याङ्गानीति। वा-

पुना हि गौतम सूत्रेण संदब्धानि भवन्ति”
इति ॥

अर्थः—हे गौतम ! वायु ही सूत्र है । इस वायुरूप सूत्र द्वारा यह लोक परलोक और प्राणीगण बन्धे हुए हैं । इसी लिये (मरने पर) ‘इस के अङ्ग शिथिल हो गये’ इस भांति मरे पुरुष को कहते हैं । हे गौतम ! वायुसे ही शरीर के सब अङ्ग परस्पर सङ्गठित हैं ।

अतः प्राणस्पन्दनयोः सहभावित्वात्प्राणनिग्रहे मनो निगृह्यते ।

अर्थः—प्राण और मन की गति सदा साथ रहती है इस लिये प्राण के निग्रहं करने से मन का निग्रहं होता है ।

ननु सह स्पन्दो न युक्तः सुषुप्तौ चेष्टमानेऽपि प्राणे मनसोऽचेष्टमानत्वात् ॥

अर्थः—शङ्का,–मन और प्राण की साथ गति का होना सम्भव नही होता क्योंकि सुषुप्ति अवस्था में प्राण गति वाला होने पर भी मन व्यापार रहित होता है ।

न । विलीनत्वेन तदानीं मनस एवाभावात् ।

अर्थः—समाधान–इस समय मन के लय को प्राप्त होनेसे मन का ही अभाव है इस लिये यह शङ्का सम्भाव नहीं ।

ननु क्षीणे प्राणे नासिकयोः श्वसीतीति व्याहतम् । नहि क्षीणप्राणस्य मृतस्य श्वासं कचित् पश्यामः । नापि श्वसतो जीवतः प्राणक्षयोऽस्ति ।

अर्थः— शङ्का, प्राणक्षीण होने पर नाक से सांस लेवे यह परस्पर विरुद्ध है क्योंकि मरे हुए मनुष्यका प्राण क्षय को प्राप्त

हो जाता है परन्तु उस के श्वास हम कभी नही देखते हैं । उसी भांति जीवित मनुष्य जो श्वास लेता है उस के प्राण का क्षय होता नही इसलिये पूर्वोक्त श्रुति वचन मे परस्पर विरोध आता है ।

मैवम् । अनुल्बणत्वस्य क्षयत्वेनात्र विवक्षितत्वात् । यथा खननच्छेदनादिषु व्याप्रियमाणस्य पर्वतमारोहतः शीघ्रं धावतो वा श्वासवेगोयावान् भवति न तावांस्त्ववस्थितस्याऽऽसीनस्य वा विद्यते । तथा प्राणायामपाटवोपेतस्य तस्याल्पः श्वासो भवति । एतदेवाभिप्रेत्य श्रूयते ।

अर्थः—समाधान– वेग की अति मन्दता होनी यह प्राणका क्षय है इस स्थल में समझना । जैसे खोदने में या काटने में लगे हुए मनुष्य का श्वास जितना वेगवाला होता, उसी प्रकार पर्वत पर चढने वाले, या दौडते हुए मनुष्य का श्वास जितना वेगवाला होता, उतना खडे या बैठे हुए मनुष्य का श्वास वेगवाला नही होता, उसी भांति प्राणायाम में कुशलता पाये हुए पुरुष का श्वास इस्से भी न्यून वेगवाला होता है । इसी अभिप्राय से श्रुति में कहा है—

भूत्वा तत्राऽऽयतप्राणः शनैरेव समुच्छ्वसेत्”
इति ।

अर्थः—प्राण को नियम में लाने के लिये धीरे २ सांस लेवे ।

यथा दुष्टैरश्वैरुपेतो रथो मार्गं त्यक्त्वा यत्र क्वापि नीयते स एव सारथिना दृढमेव रज्जुष्वाकृष्य मार्गेषु पुनर्धार्यते तथेन्द्रियैर्वासना-

द्विभिरितस्ततो नीयमानं मनः प्राणरज्जौ दृढं धारितायां धार्यते । प्राणान्प्रपीड्येति यदुक्तं तत्र प्राणपीडनप्रकारोत्र श्रूयते—

अर्थः—'जैसे बदमाश घोडों से जुता हुआ रथ अपने रास्ता को छोड कर इधर उधर घसीटा जाता है । परन्तु सारथी लगाम द्वारा उन घोडों को बलात्कार से खींच कर फिर रथ को रास्ते पर लाता है इसी भांति इन्द्रियां वासना द्वारा मन को इधर उधर विषयों में घसीटती हैं । परन्तु जो प्राण रूपी लगाम को खींच रक्खा हो तो, वह मन किसी विषय में जा नहीं सकता। प्राणायाम का प्रकार अन्य श्रुतियों में कथन किया है-

"सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥
प्राणायामास्त्रयः प्रोक्ता रेचकपूरककुम्भकाः ।
उत्क्षिप्य वायुमाकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम्॥
शून्यभावेन युञ्जीयाद्रेचकस्येतिलक्षणम् ।
वक्त्रेणोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः ॥
एष वायुर्ग्रहीतव्यः पूरकस्येतिलक्षणम् ।
नोच्छ्वसेन्न च निःश्वासेन्नैव गात्राणि चालयेत्।
एवं तावन्नियुञ्जीत कुम्भकस्येति लक्षणम्" ॥
इति ॥

अर्थः—प्रणव व्याहृति और शिरोमन्त्र इन सब के सहित गायत्री को प्राण गति रोक कर तीन वख्त पढे इसी को प्राणायाम कहते हैं ॥ पूरक, कुम्भक और रेचक इस भान्ति ३ प्रकार का प्राणायाम होता है । शरीरस्थित वायु को बाहर निकालना वायु को उंचा चढा कर शरीर गत आकाश को वायु रहित कर उस (वायु) को पुनः जरा भी शरीर मे जाने देने बिना शरीर को यथाशक्ति वायु रहित रखना इस को रेचक प्राणायाम कहते हैं । जैसे कोई कमल के दण्ड के एक छोर को पानी मे रख कर और दूसरे छोर को अपने मुख मे रख पानी को खींचता है उसी भान्ति नासिका के छिद्र द्वारा बाहर के वायु को भी तब खींचना इस को पूरक प्राणायाम कहते हैं, श्वास उच्छ्वास न लेवें और शरीर के अवयवों को न हिलाता हुआ वायु को रोंक रखना इस को कुम्भक प्राणायाम कहते हैं ।

अत्र शरीरान्तर्गतं वायुं बहिर्निःसारयितुमुत्क्षिप्य शरीरमाकाशं शून्यं निरात्मकं वायुरहितं कृत्वा स्वल्पमपि वायुमप्रवेश्य शून्यभावेनैव नियमयेत् । तदिदं रेचकं भवति । कुम्भको द्विविधः । आन्तरो बाह्यश्च । तदुभयं वसिष्ठ आह ।

अर्थः—शरीर में के वायु को बाहर निकालने के लिये उपर को खींचे, शरीर गत आकाश को वायु से खाली कर रक्खे और बाहर से वायु को भीतर न आने दे । इस को रेचक प्राणायाम कहते हैं । कुम्भक प्राणायाम दो प्रकार का है एक आन्तर कुम्भक, दूसरा बाह्य कुम्भक है । इन दोनों को वसिष्ठ जी ने कहा है—

"अपानेऽस्तं गते प्राणो यावन्नाभ्युदितो हृदि।
तावत्सा कुम्भकावस्था योगिभि र्याऽनुभूयते ॥
बहिरस्तं गते प्राणे यावन्नापान उद्गतः ।
तावत्पूर्णां समावस्था बहिष्ठं कुम्भकं विदुः" इति॥

अर्थः—अपान वायु के शान्त होने पर जब तक प्राण वायु का हृदय देश में उदय नहीं होता तब तक "आन्तर कुम्भक" अवस्था कहलाती हैं इसी अवस्थाक अनुभव योगी जन करते हैं। बाहर प्रदेश में प्राण वायु के शान्त होने पर जब तक अपान का उदय नहीं होता है तब तक पूर्ण और 'सम अर्थात् निःश्वास, उच्छ्वास रूप व्यापार रहित प्राण की अवस्था है, इस को बाह्य कुम्भक कहते हैं—

तत्रोच्छ्वास आन्तरकुम्भकविरोधी, निःश्वासो बाह्यकुम्भकविरोधी, गात्रचालनमुभयविरोधी, तस्मिन्सति निःश्वासोच्छ्वासयोरन्यतरस्यावश्यम्भावित्वात्। पतञ्जलिरभ्यासनानन्तरभाविनं प्राणायामं सूत्रयामास।

अर्थः—उच्छ्वास आन्तरकुम्भक का विरोधी है, निःश्वास बाह्य कुम्भक का विरोधी है। और शरीर का हिलाना दोनों कुम्भक का विरोधी है। क्यों कि जो शरीर चलायमान हो तो निःश्वास या उच्छ्वास मे से एक एक हुए बिना न रहे। श्रीपतञ्जलि भगवान् ने भी आसन जय होने के पीछे अवश्य कर्तव्य प्राणायाम का निरूपण सूत्र द्वारा किया है—

"तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः" इति॥

अर्थः—आसन जय के अनन्तर निःश्वास और उच्छ्वास की गति को जो अवरोध होता है उसे 'प्राणायाम' कहते है।

ननु कुम्भके गत्यभावेऽपि रेचकपूरकयोरुच्छ्वासनिःश्वासगती विद्येते इति चेन्न।

अर्थः— यद्यपि कुम्भक में प्राण की गति नहीं। परन्तु रेचक पूरक में तो प्राण की गति है, इस लिये रेचक और पूरक को प्राणायाम नाम कैसे होगा?

अधिकमात्राभ्यासेन स्वभावसिद्धायाः समप्राणगतेर्विच्छेदात्। तमेवाभ्यासं सूत्रयति।

अर्थः—अधिक मात्राओं से अभ्यास करने से स्वाभाविक जो प्राण की गति है, सो न्यून वेगवाली हो जाती है। इस अभ्यास को श्री पतञ्जलि भगवान् सूत्रों द्वारा कहते हैं।

"बाह्याऽभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसङ्ख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः" इति।

अर्थः—बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति, और स्तम्भवृत्ति ये तीन प्रकार के प्राणायाम है। जो देश, काल, और मात्रा की संख्या से दीर्घ और सूक्ष्म प्रतीत होते हैं।

रेचको बाह्यवृत्तिः। पूरक आन्तरवृत्तिः। कुम्भकः स्तम्भवृत्तिः। तत्रैकैको देशादिभिः परीक्षणीयः।

अर्थः—बाह्यवृत्ति प्राणायाम को रेचक कहते आभ्यन्तरवृत्ति प्राणायाम को पूरक और स्तम्भवृत्ति प्राणायाम को कुम्भक कहते हैं। तिनमें से हर एक प्राणायाम की यथार्थ सिद्धि के लिये देश, काल और मात्रा की परीक्षा करनी योग्य है।

तद्यथा स्वभावसिद्धे रेचके हृदयान्निर्गत्य नासाग्रसंमुखे द्वादशाङ्गुलपर्यन्ते श्वासः समाप्यते। अभ्यासेन तु क्रमेण नाभेराधाराद्वा वायुर्निर्गच्छति। चतुर्विंशत्यङ्गुलपर्यन्ते षट्त्रिंशदङ्गुलपर्यन्ते वा समाप्तिः। अत्र रेचके

प्रयत्नातिशये सति नाभ्यादिप्रदेशक्षोभेणान्तर्निश्चेतुं शक्यम्। बहिस्तु सूक्ष्मं तूलं धृत्वा तच्चालनेन निश्चेतव्यम्। सेयं देशपरीक्षा।

अर्थः—वह इस प्रकार है कि मनुष्य को अभ्यास विना स्वाभाविक रेचक होता है, उस समय प्राण वायु हृदय में से उठ कर नाक के छेद से बाहर निकल कर १२ अङ्गुल पर शान्त हो जाता है। और भली भान्ति अभ्यास करने से क्रमशः नाभि से या मूलाधार से प्राण उठ कर नासिका से बाहर के सामने प्रदेश में नाक से २४ अङ्गुल या ३६ अङ्गुल तक जा कर वहां शान्त होता है। रेचक प्राणायाम में जब अधिक प्रयत्न होता है, तब अन्तर में नाभि आदि देश के क्षोभ से उस स्थान से प्राण उठता है, ऐसा निश्चय होता है। और बाह्य देश में नाक से २४ अङ्गुल या ३६ अङ्गुल दूर पर नाक के सामने वारीक कपास (रुई) रक्खे और जब सांस लेने से वह हिले तो जानना कि उस जगह पवन समाप्त होता है। ऐसा निश्चय होता है और इसी को देश परीक्षा कहते हैं।

रेचककाले प्रणवस्याऽऽवृत्तयो दशविंशतित्रिंशदित्यादिकालपरीक्षा। अस्मिन्मासे प्रतिदिनं दश रेचका, आगामिमासे विंशतिः, उत्तरमासे त्रिंशदित्यादि कालपरीक्षाभिः। संख्यापरीक्षा यथोक्तदेशकालविशिष्टाः प्राणायामा एकस्मिन्दिने दश विंशतित्रिंशदित्यादिभिः संख्यापरीक्षा। पूरकेऽप्येवं योजनीयम्। यद्यपि कुम्भके देशव्याप्तिविशेषो नावगम्यते तथाऽपि कालसं-

ख्याभ्यामिरवगम्यत एव। यथा घनीभूतस्तूलपिण्डः प्रसार्यमाणो दीर्घो दुर्लक्ष्यतया सूक्ष्मश्च भवति तथा प्राणोऽपि देशकालसङ्ख्याधिक्येनाभ्यस्यमानो दीर्घो दुर्लक्ष्यतया सूक्ष्मश्च सम्पद्यते। रेचकादिभ्यस्त्रिभ्योऽन्यं प्रकारं सूत्रयति।

अर्थः—रेचक समय प्रणव की दश आवृत्ति हो वीस आवृत्ति हो ३० आवृत्ति हो इत्यादि क्रम से काल की परीक्षा करके इसी प्रकार रेचक इस मास में प्रति दिन दश हो उसके बाद दूसरे मास में प्रतिदिन वीस करे फिर ३रे महीने में प्रति दिन ३० करे इत्यादि क्रम से सङ्ख्या परीक्षा करे। पूरक में भी इसी तरह समझ लेना। यद्यपि कुम्भकमें देशपरीक्षा बन नही सकती तथापि कालपरीक्षा और सङ्ख्यापरीक्षा हो सकती है जैसे ओटी हुई रुई की गोली चरखीमें कात नेसे वह बहुत बारीक जो, देखनेमें न आवे और लम्बी हो जाती है। उसीतरह प्राण भी अधिक देश, अधिक संख्या के अभ्यास करने से लम्बा और बहुत ही सूक्ष्म हो जाता है। रेचक आदिक त्रिविध प्राणायाम से भिन्न अन्य प्राणायाम को भगवान् पतञ्जलिनें सूत्र द्वारा कहा—

"बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः" इति। यथाशक्ति सर्वं वायुं विरच्यानन्तरं क्रियमाणो बहिष्कुम्भको यथाशक्ति वायुमापूर्यानन्तरं क्रियमाणोऽन्तःकुम्भक इति रेचककुम्भकावनादृत्य केवलः कुम्भकोऽभ्यस्यमानः पूर्वत्रयापेक्षया चतुर्थो भवति।

निद्रातन्द्यादिप्रबलदोषप्रयुक्तानां रेचकादि-
त्रयम् । दोषरहितानां चतुर्थ इति विवेकः ।
प्राणायामफलं सूत्रयति ॥

अर्थः-"जिस में बाह्य विषय और आभ्यन्तर विषयों का परित्याग हो वह चौथा प्राणायाम है"

यथा शक्ति कोष्ठ में के सारे वायु को नाक के छेद के रास्ते बाहर निकाल जो कुम्भक किया जाता है उस का नाम "बाहिः कुम्भक" है । यथाशक्ति वायु को शरीर में भर कर जो कुम्भक किया जाता है वह अन्तःकुम्भक है । इन दोनों को छोड कर केवल जो कुम्भक का अभ्यास किया जाता है वह पूर्वोक्त तीन प्राणायाम से विलक्षण ४ था प्राणायाम है। जिस पुरुष में निद्रा तन्द्रा आदि दोषों की प्रबलता होती उस को पूर्वोक्त रेचक आदि तीन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये । और जिस में वैसे दोषों का बल न हो उस पुरुष को कुम्भक प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायाम का फल महर्षि पतञ्जलि ने सूत्र में कहा है—

"ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" इति ।

प्रकाशस्य सत्त्वस्याऽऽवरणं तमोनिद्रालस्या-
दिहेतुस्तस्य क्षयो भवति । फलान्तरं सूत्रयति।

अर्थः—'प्राणायाम के अभ्यास से बुद्धिसत्त्व को ढाकने वाला तमोगुण जो निद्रा आलस्यादि दोषों का कारण है वह क्षय हो जाता है ।

"धारणासु च योग्यता मनसः" इति ।

आधारनाभिचक्रहृदय भ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रादि-
देशविशेषे चित्तस्य स्थापनं धारणा ।

अर्थः—'जिससे, मन, धारणा के अभ्यास के लिये योग्यता वाला होता है ॥

मूलाधार नाभि हृदय भौं का बीच ब्रह्मरन्ध्र आदि देशों में चित्त को लाकर स्थापन करना इस को धारणा कहते हैं ॥

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा इति सूत्रणात् श्रुतिश्च।

अर्थः—नाभि आदि स्थानों में चित्त को स्थिर करने का नाम धारणा कहतेहैं । श्रुति भी कहती हैं ।

"मनः सङ्कल्पकं ध्यात्वा सङ्क्षिप्याऽऽत्मनि
बुद्धिमान् ।
धारयित्वातथाऽऽत्मानं धारणा परिकीर्तिता"

प्राणायामेन रजोगुणकारिताचाञ्चल्यात्तमो-
गुणकारितादालस्यादेश्च निवारितं मनस्त-
स्यां धारणायां योग्यं भवति ।

अर्थः—बुद्धिमान् पुरुष सङ्कल्प विकल्प वाले मन को एकाग्र कर अपने आत्मा मे स्थापन करे और आत्मा को ही वृत्ति द्वारा धर रक्खे उस को धारणा कहते हैं ।

प्राणायाम द्वारा रजोगुण कारित चञ्चलता से और तमोगुण से हुए आलस्य आदि दोष से निवारित मन धारणा करने में योग्यता वाला होता हैं ।

"प्राणायामदृढाभ्यासैर्युक्त्या च गुरुदत्तया"
इत्यत्रत्येन युक्तिशब्देन योगिजनप्रसिद्धं शि-
रोरूपमेरुचालनम्, जिव्हाग्रेण घण्टिकाक्रमणं
नाभिचक्रे ज्योतिर्ध्यानं विस्मृतिप्रदौषधसेवा
चेत्येवमादिकं गृह्यते ।

अर्थः—इस श्लोक मे युक्ति अर्थात् शिरोरूप मेरु दण्ड का

चालन, जिह्वा के नोक से घण्टिका (तालु के ऊपर जो छोटी सी जीभ होती है) को भ्रमण अर्थात् घुमाना, नाभिचक्र में ज्योति का ध्यान देह के अभिमान को भुलाने वाली औषधियों का सेवन इत्यादि युक्तियां समझनी ।

तदेवमध्यात्मविद्यासाधुसङ्गमवासनाक्षयप्राणनिरोधाश्चित्तनाशोपाया दर्शिताः। अथ तदुपायभूतं समाधिं वक्ष्यामः । पञ्चभूम्युपेतस्य चित्तस्य भूमित्रयत्यागेनावशिष्टं भूमिद्वयं समाधिः। भूमयश्च योगभाष्यकृता दर्शिताः,

अर्थः—सो इस भांति अध्यात्मविद्या, साधु सङ्गम वासनाक्षय और प्राणायाम, ये चित्त के नाश के उपाय दिखलाये। अब मनोनाश का उपाय समाधि को कहेंगे । चित्त की जो पांच भूमिका या अवस्था है उन में से पहिली तीन भूमिकाओं को छोडकर बाकी दो भूमिका को समाधि कहते हैं। चित्त की भूमिकाओं का योगभाष्यकार श्रीव्यास जी ने दिखलाया हैः ।

"क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रं निरुद्धमिति चित्तभूमयः" इति ।

अर्थः—चित्त की पांच अवस्था या भूमिका होती हैं। १ क्षिप्त २ मूढ, ३ विक्षिप्त, ४ एकाग्र और ५ वीं निरुद्ध है।

आसुरसम्पल्लोकशास्त्रदेहवासनासु वर्तमानं चित्तं क्षिप्तं, निद्रातन्द्रादिग्रस्तं मूढं, कादाचित्कध्यानयुक्तं क्षिप्ताद्विशिष्टतया विक्षिप्तम्। तत्र विक्षिप्तमूढयोः समाधिशङ्कैव नास्ति। विक्षिप्ते तु चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः समा-

धिर्योगपक्षे न वर्तते । विक्षेपान्तर्गतया दह्नान्तर्गतबीजवत्सद्य एव विनश्यति । यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति क्षिणोति च क्लेशान्कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखीकरोति स सम्प्रज्ञातोयोग इत्याख्यायते। सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसंप्रज्ञातसमाधिः। तत्र सम्प्रज्ञातसमाधिभूमिकामेकाग्रतां सूत्रयति—

अर्थः—जिन मे से आसुरी सम्पत्ति लोकवासना, शास्त्रवासना, और देहवासना मे प्रवृत्ति वाले पुरुषका चित्त "क्षिप्त" कहलाता हैं। निद्रा तन्द्रा आदिक दोषों के वश हुए चित्त को मूढ कहते हैं। किसी समय ध्यान युक्त चित्त क्षिप्त से श्रेष्ठ होनेसे 'विक्षिप्त" कहलाता है। तिनमें से चित्त की क्षिप्त और मूढ अवस्था में तो समाधि की शङ्का भी नही सम्भव होती है । विक्षिप्त अवस्था में विक्षेप अधिक और समाधि गौण होने से अग्निमें रक्खे बीज के समान तत्काल नष्ट हो जाता है । एकाग्रचित्त होने से जो समाधि सत्य वस्तु (आत्मा) को प्रकाश करती क्लेशों का क्षय कर्मों की बन्धनों को ढीला करती और निरोध को सम्मुख लाती वही सम्प्रज्ञात योग कहते हैं तहां श्रीपतञ्जलि भगवान् [illegible] समाधि की भूमिकारूप एकाग्रता को सूत्रद्वारा कथन करते हैं—

"शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणाम" इति ।

शान्तोऽतीतः । उदितो वर्त्तमानः । प्रत्ययश्चितवृत्तिः अतीतप्रत्ययो यं पदार्थं गृह्णाति

तमेव चेदुदितोगृह्णीयात्तावुभौ तुल्यौ भवतः।
तादृशश्चित्तस्य परिणाम एकाग्रतेत्युच्यते।
एकाग्रताभिवृद्धिलक्षणं समाधिं सूत्रयति॥

अर्थः—चित्त की शान्तवृत्ति और उदित वृत्ति चित्त की समान वृत्ति वा ज्ञान है (किन्तु एकाग्रता रूप परिणामहै) शान्त एवं उदित वृत्ति जब एक विषय को ग्रहण करे उस समय उस चित्त का एकाग्रतारूप परिणाम कहलाता है। अर्थात् प्रथम उठी हुई वृत्ति जिस पदार्थ को ग्रहण करे तो उसी पदार्थ को यदि वर्त्तमान वृत्ति ग्रहण करे तो वह भूत वृत्ति और वर्तमान वृत्ति तुल्य विषयक गिनी जाती है। इस प्रकार के चित्त के परिणाम को एकाग्रता परिणाम कहते हैं।

एकाग्रता की, अभिवृद्धिरूप समाधि को भगवान् पतञ्जलि कहते हैं—

"सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणाम "इति।

अर्थः—चित्त के सर्वार्थता धर्मका तिरोभा और एकाग्रता धर्म का प्रादुर्भाव समाधि परिणाम ,ग्रं [illegible]लाता है—

रजोगुणेन चाल्य[illegible] [illegible] क्रमेण सर्वान् पदार्थान् गृह्णा[illegible] पांच अवस्[illegible]रजोगुणस्य निरोधाय क्रियमा[illegible]क्षिप्त, ४ एका[illegible] प्रयत्नविशेषेण दिने दिने स[illegible]पह्लोकश[illegible]यते। एकाग्रता चोदेति तादृशश्च नि[illegible] परिणामः समाधिरित्युच्यते। तस्य [illegible]माधेरष्टाङ्गेषु यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहाराः पञ्च बहिरङ्गा[illegible]नि। तत्र यमान् सूत्रयति॥

अर्थः—रजो गुण से चञ्चल हुआ चित्त क्रमशः सब पदार्थों को ग्रहण करता है। इस रजोगुण के निरोध के लिये योगियों द्वारा किये जाने वाले प्रयत्नसे प्रतिदिन सब विषयों को ग्रहण करनेवाली वृत्ति क्षीण होती है। और योगी के एकाग्रता काउदय होता है। इस प्रकार के चित्त परिणाम को समाधि कहते हैं। समाधि के अङ्गों में यम नियम आसन प्राणायाम, और प्रत्याहार मे ५ समाधि के बाह्य और धारणा ध्यान और समाधि अन्तरंग में परिगणित हैं। तहां यमों को सूत्र द्वारा कहते हैं—

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"
हिंसादिभ्यो निषिद्धधर्मेभ्यो योगिनं यमयन्ति यमाः। तत्र नियमान् सूत्रयति—

अर्थः—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (दूसरे की वस्तु की इच्छा न करनी) ब्रह्मचर्य, (उपस्थ इन्द्रिय का संयम) अपरिग्रह, (शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक पदार्थों के सिवाय अधिक पदार्थ की अपेक्षा न रखनी, ये पांच यम हैं।

हिंसादि निषिद्ध धर्मों से योगी को जो रोकता है इस लिये इस को यम कहते हैं। नियमों को कहने वाला सूत्र यह हैः—

"शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः" इति।

जन्महेतोः काम्यधर्मान्निवर्त्य मोक्षहेतौ निष्कामधर्मे नियमयन्ति प्रेरयन्तीति नियमाः। यमनियमयोरनुष्ठानवैलक्षण्यं स्मर्यतेः—

अर्थः—पवित्रता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, (प्रणवादि जप तथा अध्यात्मशास्त्र का पढना) और ईश्वर भक्ति ये नियम है।

जन्म देनें वाले काम्य कर्मों से रोक कर योगी को निष्काम कर्म में प्रेरणा करते हैं इस लिये शौच आदिक नियम कहलाते हैं। यम तथा नियमों के अनुष्ठान में तारतम्य स्मृति में दिखलाते हैं।

"यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान् भजन्"॥

अर्थः—बुद्धिमान् मनुष्य निरन्तर यमों का सेवन करे सदा नियमों के सेवन की यम जितनी अपेक्षा नहीं। क्योंकि यमों को न सेव कर केवल नियमों का ही जो सेवन करता है उस (योगी) का योगमार्ग से पतन होता है।

"पतति नियमवान्यमेष्वसक्तो न तु यमवान्नियमालसोऽवसीदेत्।
इति यमनियमौ समीक्ष्य बुद्ध्या यमबहुलेष्वनुसन्दधीत बुद्धिम्" इति॥

यमनियमफलानि सूत्रयति—

अर्थः—यम मे की आसक्ति (प्रीति) को त्याग कर केवल नियम को ही सेवन करने वाला योगमार्गसे भ्रष्ट होता है और जो यथाविधि यमों को सेवता पर नियमों का सेवन करने में प्रमाद वाला होता है वह दुःखित नही होता अर्थात् योगमार्ग से पतित नही होता है। इस भान्ति यम और नियमों को बुद्धि से विचार कर विशेषतः यमों के पालन में वृत्ति को लगावे।

यम और नियमों के फल को भगवान् पतञ्जलि ने सूत्र द्वारा कथन किया हैः—

"तत्संनिधौ वैरत्यागः" "क्रियाफलाश्रयत्वम्" "सर्वरत्नोपस्थानं" "वीर्यलाभः" "शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः" सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च" संभवति। "सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः। कायेन्द्रियशुद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः। स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः। समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्" इति।

आसनप्राणायामौ व्याख्यातौ। प्रत्याहारं सूत्रयति।

अर्थः—अहिंसा की भावना दृढ होने से उस अहिंसक योगी के समीप बसनेवाले सर्प, नेउल, मूस, मार्जार आदि परस्पर विरोधी प्राणियों का भी वैरभाव छुट जाता है। सत्य की सिद्धि होने से वाणी द्वारा अन्य को क्रिया तथा उस के फल देने का सामर्थ्य आता है। अस्तेय की सिद्धि से योगी की इच्छा न होने पर भी सर्व रत्नों की प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्य की सिद्धि होने से विरति शम सामर्थ्य की या जनन आदि के भय का अभाव रूप लाभ होता है। अपरि ग्रह वृत्ति के स्थिर होने से योगी, भूत, भविष्यत् और वर्तमान जन्म के वृत्तान्त को कह सकता है। बाह्य शौच के अभ्यास से अपने शरीर में ग्लानि उपजती और अन्य के संसर्ग की इच्छा नहीं होती है। अन्तः शौच से सत्त्वशुद्धि, मन की प्रसन्नता, उस की एकाग्रता, इन्द्रिय का जय आत्मदर्शन की योग्यता होती है। सन्तोष से सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है। तप से अशुद्धि का क्षय होने से अणिमा आदि कायसिद्धि तथा दूरका सुनना दूरका देखना आदि इन्द्रियसिद्धियां होतीं हैं। इष्ट मन्त्रादि

का जपरूप स्वाध्याय से इष्ट देवता का दर्शन और उस के साथ भाषण आदि हो सकता है। सब कर्मों को ईश्वर के नाम अर्पण करना रूप भक्ति से समाधि की सिद्धि होती है।

आसन और प्राणायाम इन दोनों अङ्गों का निरूपण पहिले किया गया, प्रत्याहार का निरूपण अगले सूत्र से किया जाता है।

"स्वस्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः" इति।

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा विषयास्तेभ्योनिवर्तिताः श्रोत्रादयश्चित्तस्वरूपमनुकुर्वन्तीव व्यवतिष्ठन्ते। श्रुतिश्च भवति।

अर्थः—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पांच विषयों से विमुख होकर श्रोत्र आदिक इन्द्रियां चित्त के स्वरूप का अनुकरण करती हैं ऐसी प्रतीति होती है इस को प्रत्याहार कहते हैं। श्रुति में भी लिखा है।

"शब्दादिविषयाः पञ्च मनश्चैवातिचञ्चलम्।
चिन्तयेदात्मनो रश्मीन् प्रत्याहारः स उच्यते॥

शब्दादयो विषया येषां श्रोत्रादीनां ते श्रोत्रादयः पञ्च मनःषष्ठानामेतेषामनात्मरूपेभ्यः शब्दादिभ्योनिवर्तनमात्मरश्मित्वेन चिन्तनं प्रत्याहारः स इत्यर्थः। प्रत्याहारफलं सूत्रयति।

अर्थ—शब्दादि पांच जिनके विषय हैं, ऐसे श्रोत्र आदि पांच इन्द्रियों को तथा और चपल मन को अपने विषयों से रोक कर उन को आत्मा के किरण रूप से चिन्तन करना इस को प्रत्याहार कहते हैं।

प्रत्याहार का फल सूत्र से कहते हैं—

"ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्" इति।

धारणाध्यानसमाधींस्त्रिभिः सूत्रयति।

अर्थः—प्रत्याहार से इन्द्रियां अत्यन्त वशीभूत हो जाती हैं। धारणा ध्यान और समाधि इन तीनों का सूत्रों से कथन करतेहैं।

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"। "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"। "तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" इति॥

आधारादिदेशाः पूर्वमुक्ताः। देशान्तरं श्रूयते।

अर्थः—चित्त को मूलाधार आदि देशविषय स्थिर कर रखने का नाम धारणा है। वृत्तिका एक ही तत्त्व में प्रवाह का नाम ध्यान है। यह ध्यान जिस समय ध्येयाकार हो कर स्वरूप रहित के समान हो जाता उस को समाधि कहते हैं।

धारणा आदि का मध्य नासिकाग्र मूलाधार आदि बाह्य और आभ्यन्तर देशों का कथन पहिले ही किया गया है। उस विषय अन्य देशों का कथन श्रुति कहती है।

"मनः सङ्कल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान्।
धारयित्वा तथाऽऽत्मानं धारणा परिकीर्तिता"॥

यत्सर्ववस्तुसंकल्पकं मनः तदात्मानमेव संकल्पयतु न त्वन्यादित्येवं विधः प्रयत्न आत्मनि संक्षेपः। प्रत्ययस्यैकतानता तत्त्वैकविषयः प्रवाहः। स च द्विविधः विच्छिद्य विच्छिद्य जायमानः सन्ततश्चेति। तावुभौ क्रमेण ध्यानसमाधी भवतः। तदुभयं सर्वा-

नुभवयोगिना दर्शितम् ।

अर्थः— सर्व वस्तुओं में संकल्प करने द्वारा मन केवल आत्मा का ही चिन्तन करे अन्य विषय का चिन्तन न करे ऐसे दृढ विचार से मन को अन्य विषय से अलग रखनेवाला बुद्धिमान् पुरुष जिस मन को बार २ आत्मा में ही लगाने के लिये यत्न करता उस को धारणा कहते हैं ।

चित्त का तत्त्वविषयक प्रवाह दो प्रकार का है । एक तो मध्य में विजातीय वृत्ति से किसी २ समय विच्छेद को प्राप्त होता है । दूसरा अविच्छिन्न है । विच्छिन्न प्रवाह को ध्यान कहते और अविच्छिन्न या सन्तत प्रवाह को समाधि कहते हैं। इन ध्यान और समाधि दोनों का निरूपण सर्वानुभव योगी ने किया है—

"चित्तैकाग्र्याद्यतो ज्ञानमुक्तं समुपजायते ।
तत्साधनमतोध्यानं यथावदुपदिश्यते ॥
विलाप्य विकृतिं कृत्स्नां सम्भवव्यत्ययक्रमात् ।
परिशिष्टं च सन्मात्रं चिदानन्दं विचिन्तयेत् ॥
ब्रह्माकारमनोवृत्तिप्रवाहोऽहंकृतिं विना ।
सम्प्रज्ञातसमाधिः स्याद्ध्यानाभ्यासप्रकर्षत"इति ।
तं च भगवत्पादा उदाजह्रुः—

अर्थः—पूर्वोक्त ज्ञान, चित्त की एकाग्रता से प्राप्त होता है इस लिये एकाग्रता का साधनभूत ध्यान का यथाविधि उपदेश किया जाता है । देहादि कार्य प्रपञ्च जो क्रम से उत्पन्न हुआ है उस से उलटे क्रम से कार्य का कारण में लय करके शेष रहे सत चित और आनन्द स्वरूप आत्मा का चिन्तन करना ध्यान कहलाता है । और अहङ्कार से रहित ब्रह्माकार

हुई मनोवृत्ति के प्रवाह को सम्प्रज्ञातसमाधि कहते हैं । यह समाधि ध्यान के अभ्यास के परिपाक से सिद्ध होती है ।

इस समाधि का स्वरूप भगवान् शङ्कराचार्य्य ने उपदेशसाहस्री में यों कहा है—

"दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरम् ।
अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सततं विमुक्त ओम् ॥
दृशिस्तु शुद्धोऽहमविक्रियात्मको न मेऽस्ति कश्चिद्विषयः स्वभावतः ।
पुरस्तिरश्चोर्ध्वमधश्च सर्वतः सम्पूर्णभूमा त्वज आत्मनि स्थितः ॥
अजोऽमरश्चैव तथाऽजरो मृतः स्वयम्प्रभः सर्वगतोऽहमद्वयः ।
न कारणं कार्यमतीव निर्मलः सदैव तृप्तश्च ततो विमुक्त ओम्" इति ॥

अर्थः—जो चैतन्य स्वरूप, आकाश के समान सर्वव्यापक है, सब से श्रेष्ठ है, सदा प्रकाश स्वरूप है, जन्म मरण रहित है, एक है, अक्षर है, निर्लेप है, सर्वगत, और भेद रहित है, उस सदा मुक्त ॐकार का लक्ष्यार्थ रूप मैं हूं । मैं विकार रहित शुद्ध चैतन्य हूं, वस्तुतः कोई भी मेरा विषय नहीं क्यों कि मुक्त से अतिरिक्त अन्य पदार्थ ही नहीं, आगे, पीछे, उपर नीचे, सर्वत्र मैं पूर्ण व्यापक हूं, और अजन्मा मैं अपने स्वरूप में ही स्थित हूं, मैं जन्म रहित हूं, अक्षर और अमृत हूं, स्वयंप्रकाश, सर्वगत, और द्वैतभाव रहित हूं, कारण और कार्य्य से

दोनों मुझ में हैं नहीं, मैं अत्यन्त निर्मल हूं, मैं नित्यतृप्त, व्यापक और मुक्त हूं।

ननु सम्प्रज्ञातसमाधिरङ्गी स कथं ध्यानानन्तरभाविनोऽष्टमाङ्गस्य समाधेः स्थान उदाहृियते।

अर्थः—शङ्का—जो सम्प्रज्ञात समाधि को अङ्गी मानते हो तो, उस को योग के ८ अङ्गों में से सात वां अङ्ग ध्यान के पीछे आठवा अङ्ग के स्थान में क्यों गिनते हो ?

नायं दोषः। अत्यन्तभेदाभावात्। यथा वेदमधीयानो माणवकः पदे पदे स्खलन्पुनः समादधाति। अधीतवेदः सावधानो न स्खलति। अध्यापको निरवधानस्तन्द्रीं कुर्वन्नपि न स्खलति तथा विषयैक्येऽपि परिपाकतारतम्येन ध्यानसमाधिसंप्रज्ञातानामवान्तरभेदोऽवगन्तव्यः। धारणादित्रयं मनोविषयत्वात्संप्रज्ञातेऽन्तरङ्गम्। यमादिपञ्चकं तु बहिरङ्गम्। तदेतत्सूत्रयति—

अर्थः—समाधान—ध्यान और समाधि में अत्यन्त भेद नहीं, इस से उस भांति गणना कियी है। जैसे वेद पढने वाले विद्यार्थी पद २ में भूलता २ पुनः उस को सुधारता जाता है, जैसे वेदज्ञ पुरुष सावधानी से पढते हैं, और भुल नहीं करते और जैसे वेद पढाने वाले कदाचित प्रमाद कर जावें या अर्धनिद्रा में हों तौ भी वेदाध्ययन में भूल नही करते हैं। उसी तरह ध्यान सम्प्रज्ञात समाधि और असंप्रज्ञात समाधि का विषय एक होने पर भी परिपाक में तारतम्य के कारण उन का परस्पर भेद समझना चाहिये। यम नियम, आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहार ये समाधि के बहिरङ्ग (बाहरी) साधन हैं बाकी तीन अन्तरङ्ग (भीतरी) साधन हैं। उस को सूत्र से कहते हैं—

"त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः" इति।

ततः केनापि पुण्येनान्तरङ्गे प्रथमे लब्धे बहिरङ्गलाभाय नातिप्रयासः कर्त्तव्यः। यद्यपि पतञ्जलिना भौतिकभूततन्मात्रेन्द्रियाहङ्कारादिविषयाः संप्रज्ञातसविकल्पसमाधयो बहुधा प्रपञ्चितास्तथाऽपि तेषामन्तर्धानादिसिद्धिहेतुतया मुक्तिहेतुसमाधिविरोधित्वान्नास्माभिस्तत्राऽऽदरः क्रियते। तथा च सूत्रितम्।

अर्थः—पूर्वअङ्गों मे से तीन अन्तरङ्ग हैं, इस लिये किसी पुण्यके योग से प्राप्त हुए गुरुप्रसाद से प्रथम अन्तरङ्ग साधन प्राप्त हो तो पीछे बहिरङ्ग साधन के लिये अति प्रयास करने का प्रयोजन नहीं रहता। यद्यपि पांच भूतों का कार्य्य स्थूल पांच भूत, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध, ये ५ तन्मात्रायें, इन्द्रियां और अहङ्कारादि जिस के विषय हैं, ऐसे अनेक प्रकार के सविकल्प सम्प्रज्ञात समाधियों का पतञ्जलि मुनि ने विस्तार पूर्वक निरूपण किया हैं। परन्तु वे समाधियां अन्तर्धान आदि सिद्धियों का कारण रूप होने से, मुक्ति के कारण रूप समाधि में विरोधी हैं। अतएव हम वैसे समाधि के निरूपण का आदर नहीं करते। भगवान् पतञ्जलि भी कहते हैं—

"ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः" इति। "स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाऽकरणं पु-

नरानिष्टप्रसङ्गात्" इति च ॥

स्थानिनो देवाः । उद्दालको देवैरामन्त्रितोऽप्यवज्ञाय देवान्निर्विकल्पसमाधिमेव चकारेत्युपाख्यायते । प्रश्नोत्तराभ्यामप्येवमेवावगम्यते—

श्रीरामः—

अर्थः—दिव्य शब्द दिव्य गन्ध इत्यादि ज्ञानरूप पूर्वोक्त सिद्धियां समाधि में विघ्नरूप हैं । और व्युत्थान काल में वे सिद्धिरूप हैं । देवताओं कीप्रार्थना में आसक्ति तथा आश्चर्य नही करना क्यों कि उससे फिर अनिष्ट का प्रसङ्ग हो जाता श्री उद्दालक मुनि को इन्द्र आदि देवताओंने स्वर्ग में आने के लिये आमन्त्रण किया और उद्दालक जी ने देवताओं की अवज्ञा कर निर्विकल्प समाधि को किया ऐसी कथा योग वासिष्ठ में हैं । श्री रामचन्द्र और वसिष्ठ के प्रश्नोत्तर से भी यही समझा जाता है । श्री रामचन्द्र जी प्रश्न करते हैं कि—

"जीवन्मुक्तशरीराणां कथमात्मविदांवर ? ।
शक्तयो नेह दृश्यन्त आकाशगमनादिकाः" ।

वसिष्ठः—

अर्थः—हे आत्मवेत्ताओं मे श्रेष्ठ ? [वसिष्ठ] जीवित ही जिस ने अपने शरीर के अभिमान का त्याग किया है अर्थात् जीवन्मुक्त आत्मज्ञानीपुरुषों की आकाश सें जाने इत्यादि सिद्धियां क्यों नही देखने मे आती हैं ! इस पर वसिष्ठ जी बोलैं-

"अनात्मविदमुक्तोऽपि नभोविहरणादिकम् ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां सिद्धिजालानि वाञ्छति ॥
"द्रव्यमन्त्रक्रियाकालयुक्त्याऽऽप्नोत्येव राघव ? ।

नाऽऽत्मज्ञस्यैष विषय आत्मज्ञोह्यात्ममात्रदृक् ॥
आत्मनाऽऽत्मनि संतृप्तो नाविद्यामनुधावति ।
ये केचन जगद्भावास्तानविद्यामयान्विदुः ॥
कथं तेषु किलाऽऽत्मज्ञस्त्यक्ताविद्यो निमज्जति ।
द्रव्यमन्त्रक्रियाकालशक्तयः साधु सिद्धिदाः ॥
परमात्मपदप्राप्तौ नोपकुर्वन्ति काञ्चन ।
सर्वेच्छाजालसंशान्तावात्मलाभोदयो हि यः ॥
स कथं सिद्धिवाञ्छायां मग्नचित्तेन लभ्यते ।
"न केचन जगद्भावास्तत्त्वज्ञं रञ्जयन्त्यपि" इति ॥
नागरं नागरीकान्तं कुग्रामललना इव" इति ॥
"अपि शीतरुचावर्के सुतीक्ष्णे चेन्दुमण्डले ।
अप्यधः प्रसरत्यग्नौ जीवन्मुक्तो न विस्मयी ॥
चिदात्मन इमा इत्थं प्रस्फुरन्तीह शक्तयः ।
इत्यस्याऽऽश्चर्यजालेषु नाभ्युदेति कुतूहलम्" ॥
"यस्तु वा भावितात्माऽपि सिद्धिजालानि वाञ्छति ।
स सिद्धिसाधकैर्द्रव्यैस्तानि साधयति क्रमात्"
इति ॥

अर्थः—आत्मज्ञान रहित पुरुष मुक्त न होने पर भी आकाश में विहार करना आदिक का और अणिमा आदि आठ सिद्धि ओं के सिद्धि जाल की इच्छा करता है । मणि, औषध, आदि प्रत्येक की शक्ति से, मन्त्र के सामर्थ्य से योगाभ्यास आदिक क्रियाशक्ति से, और उस के परिपाक के हेतुरूप काल के बल से पुरुष आकाश में विहार करना इत्यादि सिद्धिओं को हे रामचन्द्र जी ! प्राप्त होता है, परन्तु सिद्धि ओं को प्राप्त करना आत्म ज्ञानी का विषय नहीं । केवल आत्मा

का ही साक्षात्कार करने वाला आत्म ज्ञानी कहलाता है। जो स्वयं अपने आत्मा में ही तृप्त रहता वह अविद्या के कार्यों पीछे नहीं दौड़ता। तत्त्ववित् पुरुष, जगत् के जितने पदार्थ हैं उन को अविद्या का कार्य समझता है। अतएव आत्मज्ञ पुरुष या जिस ने अविद्या का त्याग किया है, वह जगत् के पदार्थों में आसक्ति क्यों कर रक्खें ? नहीं रखता हैं।

द्रव्य शक्ति, मन्त्रशक्ति, क्रियाशक्ति, और कालशक्ति, ये सब पूरीतरह सिद्धि देनेवाली है, परन्तु ये शक्तियां परम पद की प्राप्ति में किसी प्रकार की सहायता करने वाली नहीं हैं। सब इच्छा शान्त हो जाने से जो आत्मलाभ होता है, वह लाभ, सिद्धिजाल में फंसे पुरुष को क्यों कर मिल सकता ! नहीं मिलता हैं। जैसे नगर में बसने वाली स्त्री का वल्लभ नगर वासी पुरुष को कुग्राम में बसने वाली स्त्रिया प्रसन्न नहीं कर सकतीं, उसी भांति जगत् का कोई भी पदार्थ तत्त्वज्ञानी म-हात्मा को खुश नहीं कर सकता। कदाचित् सूर्य नारायण शीतल किरण वाला हो जावें चन्द्रमा का मण्डल अति उष्ण हो जावे, और अग्नि की ज्वाला की ऊंची गति बन्द हो कर नीची हो जावे तौ भी जीवन्मुक्त पुरुष विस्मय को प्राप्त नहीं होता। परमात्मा की अनेक शक्तियां इस भांति स्फुरित होतीं हैं, ऐसा जान कर उस को आश्चर्य कारक पदार्थों में कौतुक नहीं होता। जिन सिद्धि ओं की वाञ्छा वाला पुरुष सिद्धियों की इच्छा करता वह सिद्धि को देनेवाले द्रव्यों से क्रमशः सिद्धियां सम्पादन करता है॥

आत्मविषयस्तु सम्प्रज्ञातसमाधिर्वासनाक्षयस्य निरोधसमाधेश्च हेतुस्तस्मात्तत्राऽऽदरः

कृतोऽस्माभिः॥

अथ पञ्चभूमिरूपो निरोधसमाधिर्निरूप्यते। तं च निरोधं सूत्रयति—

अर्थः—आत्म विषयक संप्रज्ञात समाधि, वासनाक्षय और निरोध समाधि का हेतु है, अत एव इस समाधि का यहां हमने आदर किया है। अब पञ्चम भूमिकारूप निरोध समाधिका नि-रूपण किया जाता है। इस समाधि को पतञ्जलि मुनि सूत्र से कहते हैं।

"व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयोनिरोधपरिणामः" इति॥

व्युत्थानसंस्काराः समाधिविरोधिनस्ते चोद्दालकस्य समाधावुदाहृताः॥

अर्थः—'चित्त के व्युत्थान संस्कार का तिरोभाव और निरोध संस्कार का प्रादुर्भाव होता है, तथा चित्त उत्तरोत्तर क्षण में निरोध की ओर ही बढता हैं इस प्रकार के चित्त, के परिणाम को निरोध परिणाम कहते हैं। चित्त का व्युत्थान संस्कार समाधि में विरोधी होता है, उस को उद्दालक की स-माधि में योगवासिष्ठ में दिखलाया हैं॥

"कदाऽहं त्यक्तमनने पदे परमपावने।
चिरं विश्रान्तिमेष्यामि मेरुशृङ्ग इवाम्बुदः॥
इति चिन्तापरवशोबलादुद्दालको द्विजः।
पुनः पुनस्तूपविश्य ध्यानाभ्यासं चकार ह॥
विषयैर्नीयमाने तु चित्ते मर्कटचञ्चले।
न स लेभे समाधानप्रतिष्ठां प्रीतिदायिनीम्॥
कदाचिद्बाह्यसंस्पर्शपरित्यागादनन्तरम्।

तस्यागच्छच्चित्तकपिरान्तरस्पर्शसंश्रयात् ॥
कदाचिदान्तरस्पर्शाद्बाह्यं विषयमाददे ।
तस्योड्डीय मनो याति कदाचित्त्रस्तपक्षिवत् ॥
कदाचिदुदितार्काभं तेजः पश्यति विस्तृतम् ।
कदाचित्केवलं व्योम कदाचिन्निबिडं तमः ॥
आगच्छता यथा कामं प्रतिभासान्पुनः पुनः ।
अच्छिन्नमनसा शूरः खड्गेनेव रणे रिपून् ॥
विकल्पौघे समालूने सोऽपश्यद्धृदयाम्बरे ।
तमश्छन्नविवेकार्कं लोलं कज्जलमेचकम् ॥
तमप्युत्सादयामास सम्यक्ज्ञानविवस्वता ।
तमस्युपरते स्वान्ते तेजःपुञ्जं ददर्श सः ॥
तल्लुलाव स्थलाब्जानां वनं बाल इव द्विपः ।
तेजस्युपरते तस्य घूर्णमानं मनो मुनेः ॥
निशाब्जवदगान्निद्रां तामप्याशु लुलाव सः ।
निद्राव्यपगमे तस्य व्योम संवित्समुच्चयौ ॥
व्योमसंविदि नष्टायां मूढं तस्याभवन्मनः ।
मोहमप्येष मनसस्तं ममार्ज महाशयः ॥
तमस्तेजस्तमोनिद्रामोहादिपरिवर्जिताम् ।
कामप्यवस्थामासाद्य विशश्राम मनः क्षणम्"
इति ॥

अर्थः—सङ्कल्प विकल्प रहित परम पावन श्री परमात्मा के स्वरूप में ही जैसे सुमेरु पर्वत की चोटी पर मेघ स्थिर रहता हैं, उसी भांति मैं कब तक विश्रान्ति पाऊंगा ? ऐसी चिन्ता के वश हो उद्दालक नामक ब्राह्मण बारंबार बलात्कार से ध्यान का अभ्यास करते थे मरकट की नाईं चञ्चल चित्त

को जब विषयों ने आकर्षण किया, तब उन को सुख जनक समाधि में स्थिरता प्राप्त न हुई । किसी समय उन का चित्त रूप बन्दर बाह्य विषयों के सङ्ग को छोड कर आन्तर विषयों में जाता था उसी भांति कभी आन्तर विषयों को छोड उन का मन बाह्य विषयों में जाता, जैसे भयभीत चिडिया, एक पेड पर से दूसरे पेड पर, उस पर से तीसरे पर, इस भांति भटकती उसी प्रकार उन का मन एक विषय को छोड कर दूसरे विषय में उस में से तीसरे विषय में यों भटका करता था वह ब्राह्मण ध्यान कर अभ्यास करते समय अपने भीतर उदय को प्राप्त हुआ सूर्य की नाईं विस्तारवाले तेज को अनुभव करते, कभी केवल आकाश को देखते, कभी गाढ अन्धेकार को देखते, जैसे शूर बीर पुरुष युद्ध में तलवार से शत्रुओं को काटता हुआ चला जाता उसी भांति उद्दालक मुनि अन्तर में क्रमशः जो २ आभास प्रकट होता, उन को मन से लय करते जाते हैं। जब बहुत विकल्पों को शमन किया तब उन ने विवेक रूप सूर्य को ढाकने वाले काजल समान अन्धकार को अपने भीतर देखा। उस को भी यथार्थ ज्ञान रूप सूर्य से शान्त किया तब अन्धकार दूर होने पर वह अपने भीतर में तेज का ढेर देखने लगे। उस को भी स्थल के कमल वन को जैसा बच्चा हाथी काट डालता तैसे वृत्ति द्वारा छेद डाले, तब तेज के उपराम होने पर रात जैसे कमल निद्रा के वश होता वैसे उन का मन निद्रा के वश हुआ अर्थात् उस को भी शीघ्र उडा दिया। उस के बाद उन के अन्तर में आकाश का भान हुआ। वह भी नष्ट हुआ, तब उन का मन मोह मुक्त हुआ । उस मोह को भी उन महाशय ने दूर किया अर्थात् इन मुनि का मन, तेज,

तम, निद्रा, और मोह, आदि के वश से न हो कर किसी अनिर्वचनीय अवस्था को पाकर क्षणभर विश्रान्ति पायी।

त एते व्युत्थानसंस्कारा निरोधहेतुना योगिप्रयत्नेन प्रतिदिनं प्रतिक्षणं चाभिभूयन्ते तद्विरोधिनश्च निरोधसंस्काराः प्रादुर्भवन्ति तथा सति निरोध एकैकस्मिन्क्षणे चित्तमनुगच्छति। सोऽयमीदृशश्चित्तस्य निरोधपरिणामो भवति।

अर्थः—ये सब व्युत्थान संस्कार दिन दिन और क्षण क्षण निरोधके कारणरूप योगी के प्रयत्न से तिरोभाव को प्राप्त होता है और निरोध संस्कार प्रकट होते हैं। इस भांति क्षण क्षण में चित्त निरोध के अनुकूल होता जाता है। इस प्रकार के चित्त परिणाम को निरोधपरिणाम कहते हैं।

ननु—"प्रतिक्षणपरिणामिनो हि भावा ऋते चितिशक्तेः" इति न्यायेन चित्तस्य सर्वदा परिणामप्रवाहो वक्तव्यः। बाढम्।

अर्थः—शङ्का—'एक चैतन्य को छोड कर बाकी सब पदार्थ क्षण २ मे परिणाम को प्राप्त होते हैं। इस भांति चित्त का सदा परिणामरूप प्रवाह चला करता ऐसा कहना चाहिये उस का निरोध सम्भव नहीं—

तत्र व्युत्थितचित्तस्य वृत्तिप्रवाहः स्फुटः। निरुद्धचित्तस्य तु कथमित्याशङ्क्योत्तरं सूत्रयति—

अर्थः—समाधान– जागृत् अवस्था में तो चित्त का वृत्तिरूप परिणाम स्फुट है। निरुद्ध चित्त का परिणाम किस भांति? इस शङ्का को दूर करने के लिये पतञ्जलि मुनि सूत्र द्वारा कहते हैं–

"ततः प्रशान्तवाहिता संस्कारात्" इति॥

अर्थः—निरोधसंस्कार से चित्त की प्रशान्तवाहिता होती है।

यथा समिदाज्याहुतिप्रक्षेपे वह्निरुत्तरोत्तरवृद्ध्या प्रज्वलति। समिदादिक्षयप्रथमक्षणे किञ्चिच्छाम्यति। उत्तरोत्तरक्षणे शान्तिर्वर्धते, तथा निरुद्धचित्तस्योत्तरोत्तराधिकः प्रशमः प्रवहति। तत्र पूर्वपूर्वप्रथमजनितः संस्कार एवोत्तरोत्तरप्रशमस्य कारणम्। तामेतां प्रशान्तवाहितां भगवान् विस्पष्टमुदाजहार॥

अर्थः—जैसे अग्नि में समिध, घी, आदिक डालने से वह उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता, और समिध आदि जल जाती प्रथम क्षण में ज्वाला कुछ शान्त होती हैं दूसरे क्षण में उससे अधिक शान्त होती, इसी भांति उत्तरोत्तर क्षण में अधिक शान्त होती जाती है, इसी भांति निरोध को प्राप्त हुए चित्तका उत्तरोत्तर अधिक २ शान्ति का प्रवाह बढता है। तिन में पूर्व २ की शांति से उपजे हुए संस्कार ही उत्तरोत्तर शान्ति में कारण रूप हैं। इस प्रकार की चित्त की प्रशान्त वाहिता भगवान् कृष्ण गीता में स्पष्ट कहते हैं।

"यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्योयुक्त इत्युच्यते तदा॥
यथा दीपोनिवातस्थोनेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनोयतचित्तस्य युञ्जतोयोगमात्मनः॥
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते ।
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा" इति
निरोधसमाधेः साधनं सूत्रयति—

अर्थः—जब संयम को प्राप्त हुआ चित्त अपने आत्मा ही में टिकता और सम्पूर्ण कामना ओं से निवृत्त हो जाता तब वह पुरुष (योगी) कहा जाता हैं । जैसे निर्वात स्थान में रक्खा हुआ, दीप निश्चल रहता है । वैसे ही अपने चित्त को सावधान कर आत्मयोग करता हुआ योगी निश्चल होता है, ऐसा दृष्टान्त दिया है । जिस अवस्था में योगाभ्यास के द्वारा रोका हुआ चित्त उपराम को प्राप्त हो, और जहां शुद्ध अन्तःकरण से आत्मा (ज्योतिः स्वरूप) को देख आत्मा सन्तोष को प्राप्त हो । जिस दशा में इन्द्रियों के विषय में आने योग्य नहीं ऐसे केवल बुद्धि ही से जानने के योग्य अनन्त आनन्द को पावे और जहां पर स्थित होकर मनुष्य अपने स्वरूप से च्युत नहीं हो जिस लाभ को पाकर उस्से अधिक दूसरे लाभ को न माने और जिस में स्थिर हो अत्यन्त बडे दुःख से भी न दोलायमान हो ॥

निरोध समाधि के साधन को बतलानेवाला सूत्र—

"विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः" इति।
विरामो वृत्त्युपरमस्तस्य प्रत्ययः कारणं वृत्त्युपरमार्थः पुरुषप्रयत्नस्तस्याभ्यासः पौनःपुन्येन सम्पादनं तत्पूर्वकस्तज्जन्यो-

नन्तरातीतसूत्रे संप्रज्ञातसमाधेरुक्तत्वात्तदपेक्षयाऽन्योऽसंप्रज्ञातसमाधिः, तत्र वृत्तिरहितस्य चित्तस्वरूपस्य दुर्लक्ष्यत्वात्संस्काररूपेण चित्तं शिष्यते । विरामप्रत्ययजन्यत्वं भगवान् विस्पष्टमाह—

अर्थः—जिस में चित्त की सारी वृत्तियों का अवसान (अन्त) हो जाता है, उस वितर्कादि के अभाव ज्ञान को बारम्बार विचार पूर्वक जिस में केवल संस्कार ही शेष रहता उस निरालम्ब समाधि को असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं ॥

चित्त के उपराम का कारण रूप प्रयत्न विशेष से असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं । यह बात कृष्ण भगवान् ने गीता में स्पष्ट कथन कियी है—

"सङ्कल्पप्रभवान्कामाँस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्" इति ॥

अर्थः—सङ्कल्प से उत्पन्न होनेवाली सब कामनाओं को छोड और मन ही से सम्पूर्ण इन्द्रियों को चारों ओर से रोक धैर्य के द्वारा बुद्धि को स्वाधीन कर, धीरे २ विषयों से उपराम को प्राप्त हो और भली भांति मन को आत्मा में निश्चल कर किसी पदार्थ की चिन्ता न करे । स्वभाव ही से चपल इस कारण अस्थिर ऐसा जो मन यह जिधर २ दौडता फिरे वहां वहां से उसे रोक अपने आत्मा में स्थिर करे ॥

काम्यमानाः स्रक्चन्दनवनितापुत्रमित्रगृहक्षेत्रादयो मोक्षशास्त्रकुशलविवेकिजनप्रसिद्धैर्बहुभिर्दोषैरुपेता अप्यनाद्यविद्यावशात् दोषानाच्छाद्य तेषु विषयेषु सम्यक्त्वं कल्पयन्ति। तस्माच्च सङ्कल्पादिदं मे स्यादित्येवंरूपाः कामाः प्रभवन्ति। तथा च स्मर्यते—

अर्थः—इच्छा का विषय पुष्पमाला, चन्दन, स्त्री, पुत्र, मित्र, घर, क्षेत्र आदिक पदार्थ हैं, मोक्ष शास्त्र में प्रवीण विवेकी पुरुषों से स्पष्ट अनुभव किये हुए अनेक दोषों से युक्त हैं। तौभी अज्ञानी लोग अपनी अविद्या के कारण उन दोषों को नहीं देखते, तिससे उन २ में श्रेष्ठता की कल्पना करते हैं। श्रेष्ठता मानने से, यह पदार्थ मुझ को प्राप्त हो तो ठीक है इस भांति उन की प्रत्येक विषय में अभिलाषा हुआ करती है, स्मृति में भी कहा है—

"सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः।
काम ? जानामि ते मूलं सङ्कल्पात्किल जायसे॥इति॥
न त्वां सङ्कल्पयिष्यामि समूलस्त्वं विनङ्क्ष्यसि"
इति॥

अर्थः—काम का मूल सङ्कल्पहै, यज्ञ भी सङ्कल्प से ही उत्पन्न हुए हैं, हे काम ? तेरा मूल जानता हूं कि तूं सङ्कल्प से उत्पन्न हुआ है अत एव तुझको सङ्कल्प ही न करूंगा तब तूं जड़ से नाशको प्राप्त हो वेगा॥

तत्र विवेकेन विषयदोषेषु साक्षात्कृतेषु शुना वान्ते पायस इव कामास्त्यज्यन्ते। स्रक्चन्दनवनितादिविव ब्रह्मलोकादिष्वाणिमाद्यष्टैश्वर्येषु च कामास्त्याज्या इत्यभिप्रेत्य सर्वानित्युक्तम्। मासोपवासव्रतिना तस्मिन्मासेऽन्ने त्यक्तेऽपि कामः पुनः पुनरुदेति तन्मा भूदित्यशेषत इत्युक्तम्। कामत्यागे मनःपूर्वकप्रवृत्त्यभावेऽपि चक्षुरादीनां रूपादिषु स्वभावसिद्धा प्रवृत्तिः साऽपि, प्रयत्नयुक्तेन मनसैव नियन्तव्या। देवतादर्शनादिष्वप्यननुसरणाय समन्तत इत्युक्तम्। भूमिकाजयक्रमेणोपरमस्य विवक्षितत्वाच्छनैः शनैरित्युक्तम्। ताश्च भूमिकाश्चतस्रः कठवल्लीषु श्रूयन्ते—

अर्थः—इन पूर्वोक्त पुष्पमाला आदिक विषयों में विवेक द्वारा दोष दिखलाने पर जैसे कुत्ते को वमन किए पायसान्न (दूध का पका) पर रुचि उत्पन्न नहीं होती है, उस भांति उन विषयों में भी इच्छा नहीं होती। जैसे इस लोक के विषय की इच्छा त्यागनी, उसी भांति ब्रह्म लोक और अणिमा आदिक ८ विध ऐश्वर्यों की भी इच्छा त्यागनी आवश्यक है, अत एव उपर के श्लोक में 'सर्वान्' (सारे) ऐसा पद पढ़ा है। एक मास पर्यन्त जिस ने उपवास रहने का व्रत धारण किया है, उस को मास में अन्न का त्याग करना पड़ता तथापि अन्न के लिये वार २ अभिलाषा हुआ करती है इस लिये 'अशेषतः' (अर्थात् 'कुछ बाकी न रहे इस भांति') ऐसा पद पढ़ा है। काम का त्याग करने मे मन मे प्रवृत्ति नहीं होती है, तथापि जो चक्षु आदि इन्द्रियों की अपना २ रूप आदि विषयों में प्रवृत्ति स्वभावतः होती है, उस को भी प्रयत्न युक्त मन द्वारा

रोके। देव दर्शन के लिये प्रवृत्ति का निषेध करने के निमित्त 'समन्ततः' (हर तरह से) यह पद दिया है। पहिले प्रथम भूमिका को जय करे फिर दूसरी भूमिका को। तब तीसरी को, इसी भांति उत्तरोत्तर क्रम से भूमिका के जय पूर्वक चित्त को उपराम देवे इस अभिप्राय से 'शनैः शनैः' (धीरे २) यह पद पढ़ा है। भूमिका चार हैं। इन का निरूपण कटवल्ली उपनिषद् में किया है॥

"यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि"
इति॥

अर्थः—वाणी का मन में लय करे, और उस मन को ज्ञानात्मा विशेष अहङ्कार में लय करे, उस का भी महान् आत्मा सामान्य अहङ्कार में लय करे, और सामान्य अहङ्कार को शान्त आत्मा निरुपाधि शुद्ध चैतन्य में लय करे।

वाग्व्यापारो द्विविधः, लौकिको वैदिकश्च, जल्पादिरूपो लौकिको जपादिरूपो वैदिकः। तत्र लौकिकस्य बहुविक्षेपकरत्वाद्व्युत्थानकालेऽपि योगी तं परित्यजेत्। अत एव स्मर्यते-

अर्थः—वाणी का व्यवहार दो प्रकार का होता है, एक वैदिक दूसरा लौकिक। तिन में से जो बोलना है वह लौकिक वाग्व्यवहार है और प्रणव आदि मन्त्रों का जप करना वैदिक वाग्व्यवहार है। इन दोनों में जो लौकिकवाणी व्यवहार है वह चित्त को बहुत ही विक्षेप में डालने वाला होने से योगाभ्यासी पुरुष को व्युत्थान (समाधि से उठने पर) काल में भी अवश्य त्यागना चाहिये। अतएव स्मृति भी कहती है—

"मौनं योगासनं योगस्तितिक्षैकान्तशीलता।
निःस्पृहत्वं समत्वं च सप्तैतान्येकदण्डिनः" इति॥

अर्थः—मौन, योग के अनुकूल आसन, योग, तितिक्षा, एकान्तसेवन, किसी वस्तु की इच्छा न रहना, समदृष्टि ये सात एकदण्ड धारी संन्यासी के लक्षण हैं॥

जपादिकं निरोधसमाधौ परित्यजेत्। सेयं वाग्भूमिः प्रथमा, तां भूमिं प्रयत्नमात्रेण कतिपयैर्दिनैर्वा दृढं विजित्य पश्चाद्द्वितीयायां मनोभूमौ प्रयतेत। अन्यथा बहुभूमिकः प्रासादवत् प्रथमभूमिकापातेनैवोपरितनयोगभूमयो विनश्येयुः। यद्यपि चक्षुरादयो निरोद्धव्यास्तथाऽपि तेषां वाग्भूमौ मनोभूमौ वाऽन्तर्भावो द्रष्टव्यः।

अर्थः—जपादि का निरोधसमाधि में त्याग करे। यह प्रथम वाणीरूप भूमिका कथन करी। इस भूमिका को कई दिन, मास, वर्ष में दृढ जीत कर दूसरी मनोभूमिका के जय के लिये प्रयत्न करे। यदि क्रम से एक २ भूमिका के जय न कर के पहिले ही अन्तिम भूमिका को जीतने की इच्छा हो तो, जैसे बहुत मञ्जिल (महल) वाले मकान के सब से उपर वाले महल में जाने की इच्छावाला पुरुष पहिले के क्रम से (एक के बाद दूसरा इस भांति) उपर को न चढ कर एकदम कूदकर आखीरि महल में जावे तो, वह उपर के महल में नहीं पहुंचता, और जमीन पर ही गिर पडता है, तथा लोगों के उपहास का भाजन बन जाता है। उसी भांति इस पुरुष की भी अवस्था होती है। यद्यपि नेत्र आदिका भी निरोध करना आवश्यक है।

तो भी उस का वाणी रूप भूमि का या मन रूप भूमिका में अन्तर्भाव समझो। अर्थात् वाणी का या मन का निरोध के साथ इन्द्रियों का निरोध भी समझ लेना।

ननु वाचं मनसि नियच्छेदित्यनुपपन्नम्।
नहीन्द्रियस्येन्द्रियान्तरे प्रवेशोऽस्ति॥

अर्थः—शङ्का—वाणी का मन में निरोध करना, यह कहा, सो असम्भव सा भासता है। क्योंकि एक इन्द्रिय का दूसरे इन्द्रिय में प्रवेश हो नहीं सकता है?

मैवम्। प्रवेशस्याविवक्षितत्वात्। नानाविक्षेपकारिणोर्वाङ्मनसयोर्मध्ये प्रथमतो वाग्व्यापारनियमेन मनोव्यापारमात्रपरिशेष इह विवक्षितः। गोमहिषाश्वादीनामिव वाङ्नियमे स्वाभाविके सम्पन्ने ज्ञानात्मनि मनो नियच्छेत्। आत्मा त्रिविधः। ज्ञानात्मा महानात्मा शान्तात्मा चेति। जानात्यत्र स्थित आत्मेति ज्ञातृत्वोपाधिरहङ्कारोऽत्र ज्ञानशब्देन विवक्षितः। करणस्य मनसो नियम्यत्वेन पृथगुपात्तत्वात्। अहङ्कारो द्विविधः। विशेषरूपः सामान्यरूपश्चेति। अयमहमेतस्य पुत्र इत्येवं व्यक्तमभिमानो विशेषरूपः, अस्मीत्येतावन्मात्रमभिमन्यमानः सामान्यरूपः। स च सर्वव्यक्तिषु व्याप्तत्वान्महानित्युच्यते। ताभ्यामहङ्काराभ्यां द्वाभ्यामुपहितौ द्वावात्मानौ। निरुपाधिकः शान्तात्मा, तदेतत्सर्वमन्तर्बहिर्भावेन वर्तते। शान्त आत्मा स-

र्वान्तरश्चिदेकरसस्तस्मिन्नाश्रितं जडशक्तिरूपमव्यक्तं मूलप्रकृतिः। सा च प्रथमं सामान्याहङ्काररूपं महत्तत्वं नाम धृत्वा व्यक्तीभवति। ततोबहिर्विशेषाहङ्काररूपेण, ततोबहिर्मनोरूपेण, ततोबहिर्वागादीन्द्रियरूपेण। तदेतदभिप्रेत्योत्तरमान्तरत्वं विविनक्ति श्रुतिः॥

अर्थः—समाधान—इस स्थल में प्रवेश में तात्पर्य नहीं, परन्तु नाना प्रकार के विक्षेप को उपजाने वाला मन और वाणी में से प्रथम वाणी के व्यापार को रोककर केवल मनका व्यापार अवशेष रखे ऐसा कहने का तात्पर्य है। जैसे बैल, भैंस, घोडा आदिक प्राणियों को स्वाभाविक रीति से वाणी का जय हुआ करता उसी भांति स्वाभाविक रीति से वाणी का जय होनेके ताई मनको ज्ञानात्मा में निरोध करे। ज्ञानात्मा, महान् आत्मा, और शान्त आत्मा ये तीन प्रकार के आत्मा हैं। तिन में ज्ञातापन की उपाधि जो अहङ्कार वह ज्ञानात्मा शब्द में ज्ञान पद का अर्थ हैं। अहङ्कार दो प्रकार का है। एक विशेष अहङ्कार और दूसरा सामान्य अहङ्कार। 'मैं यज्ञदत्त देवदत्त का पुत्र हूं यह विशेष अहङ्कार का स्वरूपहै। और मैं हूं यह सामान्य अहङ्कार है। इस प्रकार का अहङ्कार सब प्राणीयों में व्याप्त होने से उस को सामान्य अहङ्कार ऐसी संज्ञा (नाम) दियी है। इन दो प्रकार के अहङ्कार रूप उपाधि सहित आत्मा का क्रम से एक को ज्ञानात्मा और दूसरे को महान् आत्मा इस नाम से श्रुतियों ने व्यवहार किया है। निरूपाधि आत्मा को शान्त आत्मा कहते हैं। इन तीन आत्माओं में से सब से बाहर ज्ञान

आत्मा है, और भीतर महान् आत्मा है, और उस के भीतर शान्तात्मा है। यह सर्वान्तर चित् एकरस में जड वर्ग को उत्पन्न करनेवाली जो शक्ति रहती उस को अव्यक्त या मूल प्रकृति कहते हैं। वह मूल प्रकृति पहिले सामान्य अहङ्कार रूप 'महतत्त्व' ऐसा नाम धारण कर प्रकट होती है। उस के बाद उस के बाहर, विशेष अहङ्कार रूप से प्रकट होती है, उस के बाद उस के बाहर मनरूप से प्रकट होती है, और उस के पश्चात् इन्द्रिय आदि रूप से प्रकट होती हैं, इसलिये सब से बाहर इन्द्रिय आदिक हैं, उन के भीतर मन है, उस के अन्दर विशेष अहङ्कार है, उस के अन्दर सामान्य अहङ्कार है, उस के अन्दर मूल प्रकृति है, और उस के अन्दर पुरुष है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः"
इति॥

अर्थः—[पृथिव्यादितत्त्वों से बने] इन्द्रियों से गन्ध आदिक विषय सूक्ष्म वा श्रेष्ठ है, विषयों से मन अतिसूक्ष्म है, मन से निश्चयात्मक ज्ञान रूप बुद्धि सूक्ष्म है, बुद्धि से महान् आत्मा (हिरण्यगर्भ) सूक्ष्म है। महतत्त्व से अव्यक्त सूक्ष्म है, अव्यक्त से पुरुष सूक्ष्म हैं, और पुरुष से कोई भी सूक्ष्म नहीं है, वही सब का अन्त [हद] और वहीं तक जाने की अवधि है।

एवं सत्यत्र नानाविधसङ्कल्पविकल्पसाधनं कारणरूपं मनोऽहङ्कर्तरि नियच्छेत् मनोव्या-

पारान् परित्यज्याहङ्कारमात्रं शेषयेत्। न चैतदशक्यमिति वाच्यम्॥

अर्थः—इस प्रकार है, इस लिये मन का अहङ्कार में निरोध करना अर्थात् मन के व्यापार को त्याग कर केवल अहङ्कार को शेष रक्खे, इस का होना अशक्य है, ऐसा न जानो क्यों कि—

"तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्"

इति वदन्तमर्जुनं प्रति भगवतोत्तराभिधानात्—

अर्थः—इस मन का निग्रह होना, वायु को रोकने के समान बहुत ही कठिन है। इस भांति अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में भगवान् श्री कृष्ण जी यों उत्तर देते हैं कि—

"असंशयं महाबाहो! मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन च कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः" इति॥

अर्थः—भगवान् बोले हे अर्जुन! निःसन्देह मन अति चपल और क्लेश से अपने वश करने के योग्य है। परन्तु हे कौन्तेय! वह अभ्यास और वैराग्य से वश किया जा सकता है। मन को न जीतने वाले को योग अत्यन्त दुर्लभ है ऐसा मेरा निश्चय है। परन्तु मन को वश करने हारे यत्न करते हुए पुरुष को उपाय द्वारा मिलने के योग्य है॥

अभ्यासवैराग्ये पतञ्जलिसूत्रोदाहरणेन व्याख्यास्येते। पूर्वपूर्वभूमिदार्ढ्यरहितोऽसंयतात्मा। तत्सहितो वश्यात्मा। उपायतः प्राप्तिं गौडपादाचार्य्याः सदृष्टान्तमाहुः—

अर्थः—अभ्यास और वैराग्य का व्याख्यान पतञ्जलिजीने सूत्रों द्वारा किया है । पूर्व २ भूमिका का, जिस ने सुहृदता से जय कर लिया हो, उसे संयतात्मा अर्थात् देह इन्द्रियादिक को वश में करनेवाला समझो और जिस ने उन का जय न किया हो, उसे असंयतात्मा अर्थात् देहादिक को वशमें न रखनेवाला जानो ॥

उपाय से मन वश में होता है ऐसा दृष्टान्त सहित गौडपादाचार्य ने कहा है—

"उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकबिन्दुना ।
मनसो निग्रहस्तद्वद्भवेदपरिखेदतः ॥
बहुभिर्न विरोद्धव्यमेकेनापि बलीयसा ।
स पराभवमाप्नोति समुद्र इव टिट्टिभात्" इति ॥

अर्थः–जैसे कुश के नोक से एक २ बून्द जल ले २ कर समुद्र को उबछने का काम, जो कायर न हो तो बन सकता है । उसी भांति खेद रहित हो तो, मन का निग्रह भी हो सकता है । एक पुरुष यद्यपि बलवान् हो तथापि उस को बहुतों के साथ विरोध न करना चाहिये। क्यों कि समुद्रने, तित्तीर पक्षी से हार माना उसी तरह वह पराभव को प्राप्त होता है । इस की कथा यों है—

अत्र संप्रदायविद आख्यायिकामाचक्षते—

"कस्य चित्किल पक्षिणोऽण्डानि तीरस्थान्युदधिरुत्सेकेनापजहार । तत्र समुद्रं शोषयामीति प्रवृत्तः स च पक्षी स्वमुखाग्रेणैकैकं जलबिन्दुं प्रतिक्षिपति । तदा बहुभिः पक्षिभिर्बन्धुवर्गैर्वार्यमाणोऽप्यनुपरतः प्रत्युत तानपि सहकारिणो वव्रे । तांश्च पतनोत्पतनाभ्यां बहुधा क्लिश्यतः सर्वानवलोक्य कृपालुर्नारदो गरुडं समीपे प्रेषयामास । ततो गरुडपक्षवातेन शुष्यन्समुद्रो भीतस्तान्यण्डानि पक्षिणे ददौ" ॥

अर्थः—यहां वेदान्त सम्प्रदाय के वेत्ता वृद्ध पुरुष इस प्रकार की आख्यायिका कहते हैं–किसी समुद्र के किनारे तितिर नामक पक्षी रहता था । एक समय तित्तिरीन को प्रसव का समय निकट आया, तब उस ने अपने पति से अण्डा कहां दूंगी ऐसा पूंछा । इस पर तित्तीर ने समुद्र के तीर में ही अण्डा देने कहा । स्त्री ने कहा कि " समुद्र अण्डों को बहा ले जावेगा । तित्तीर ने उत्तर दिया कि 'समुद्र पर इस से क्या भार होगा ? तू खुशी से समुद्र के तीर जा कर अण्डा दो । अनेक प्रकार तित्तिरीन के समझाने पर भी उस ने समझा नहीं तब उस ने प्रसव किया अर्थात् समुद्र के तीरही में अण्डे दिये । समुद्र ने विचार किया कि ' यह तित्तिर सरीखा छोटा सा पक्षी इतना बल दिखलाया है, तो जा कर देखूं तो वह क्या करता है ? ऐसा मन विचार कर उस के अण्डों को बहा ले गया और उन को सावधानता से एक ठिकाने रक्ख दिया । तित्तिर इस की खबर सुनते ही क्रोध वश हो समुद्र को सुखाने के लिये चोंच में पानी का एक २ बून्द ले बाहर फेक ने लगा इस को देख अन्य पक्षियों ने भी उसे बहुत समझाया तौ भी उस ने एकभी न सुनी, और बोला जो इस समय मुझे तुम्हारी सलाह की जरुरत नहीं जो मुझे मदद करना हो तो करो नहीं तो तुम्हारी इच्छा। इससे अन्य पक्षियों ने भी उस के समान करना

आरम्भ किया । इस को देख कर श्री नारदमुनि के जी में दया हुई इससे उन पक्षियों की सहायता के लिये गरुड को पास भेजा। और जब गरुड अपने पंख की हवा से समुद्र को सुखाने लगे तब उस को भय हुआ और तित्तिर को उसने अण्डे वापस दिये।

एवमखेदेन मनोनिरोधे परमधर्मे प्रवर्तमानं, योगिनमीश्वरोऽनुगृह्णाति अखेदश्च मध्ये-मध्ये तदनुकूलव्यापारमिश्रणेन सम्पाद्यते । यथौदनं भुञ्जानस्तद्ग्रासान्तरे चोष्यलेह्यादीनास्वादयति तद्वत् । इदमेवाभिप्रेत्य वसिष्ठ आह—

अर्थः—इसी भान्ति खेद रहित हो मन के निरोधरूप सर्वोत्तम धर्ममें प्रयत्न करते हुए योगी पर ईश्वर अनुग्रह करता है । इस से उस के मन का निरोध होता है । जैसे कोई मिष्टान्न खानेवाला पुरुष बीच २ में चूस ने और चाटने की चीजों का स्वाद लेता जाता है जिस से उस को मिष्टान्न में अरुचि पैदा नहीं होती है, उसी प्रकार योगाभ्यासी पुरुष योग के अनुकूल अन्य व्यापारों का मेल करता है, तिस से वह योगाभ्यास से कायर नहीं होता है । इसी अभिप्राय को लेकर वसिष्ठ ने भी कहा है—

"चित्तस्य भोगैर्द्वौ भागौ शास्त्रेणैकं प्रपूरयेत् ।
गुरुशुश्रूषया भागमव्युत्पन्नस्य संक्रमः ॥
किञ्चिद्व्युत्पत्तियुक्तस्य भागं भोगैः प्रपूरयेत् ।
गुरुशुश्रूषया भागौ भागं शास्त्रार्थचिन्तया ॥
व्युत्पत्तिमनुयातस्य पूरयेचेतसोऽन्वहम् ।
द्वौ भागौ शास्त्रवैराग्यैर्द्वौ ध्यानगुरुपूजया"इति ॥

अर्थः—भोग से चित्त के दो भाग पूर्ण करे, एक भाग को शास्त्रों के विचार से और दूसरे को सद्गुरु की सेवा से पूरा करे । इस भांति योग में प्रवेश करने वाले चित्त का क्रम है । योग में कुछ भी कुशलता प्राप्त हुए चित्त के एक भाग को भोग से पूरा करे । दूसरे भाग को सद्गुरु की सेवा से पूरा करे और एक भाग को शास्त्रविचार से पूरा करे । योग में सब तरह कुशलता पाए हुए चित्त के दो भाग प्रति दिन शास्त्रविचार और वैराग्य से पूरा करे, तथा दो भाग ध्यान और गुरु पूजा से पुरा करे ।

भोगशब्देनात्र जीवनहेतुर्भिक्षाटनादिव्यापारोवर्णाश्रमोचितव्यापारश्चोच्यते । घटिकामात्रं मुहूर्त्तं वा यथाशक्ति योगमभ्यस्य ततोमुहूर्त्तं शास्त्रश्रवणेन परिचयो वा गुरूननुगम्य मुहूर्त्तं स्वदेहमनुस्मृत्य मुहूर्त्तं योगशास्त्रं पर्यालोच्य पुनर्मुहूर्त्तं योगमभ्यसेत् । एवं योगप्राधान्येन व्यापारान्तराणि मेलयंस्तानिद्रागभ्यस्य शयनकाले तद्दिनगतान्योगमुहूर्त्तान् गणयेत् । ततः परेद्युर्वा परपक्षे वा परमासे वा योगमुहूर्त्तान् वर्धयेत् । तथा चैकैकस्मिन् मुहूर्त्ते एकैकक्षणयोगेऽपि संवत्सरमात्रेण भुयान् योगकालो भवति । न चैवं योगैकशरणत्वे व्यापारान्तराणि लुप्येरन्निति शङ्कनीयम् । लुप्तेतरकृत्स्नव्यापारस्यैव योगेऽधिकारात् ।

अर्थः—यहां 'भोग' अर्थात् भिक्षा मांगना इत्यादि जी-

वन का हेतुरूप क्रिया और वर्णाश्रम के अनुकूल कर्म समझना। एक घडी या मुहूर्त्त मात्र या यथाशक्ति योगाभ्यास कर उस के बाद दो घडी शास्त्र श्रवण या गुरुकी सेवा करे, उस के बाद दो घडी शरीर क्रिया करे बाद उस के दो घडी शास्त्र विचार कर फिर दो घडी योगाभ्यास करे। इस भांति कर्त्तव्य में प्रधान पद योग को देकर उस के साथ अन्य व्यापार निलाता जाकर सोते समय 'आज योग का काल कितना हुआ, इस की गणना करे। उस के बाद दूसरे दिन, दूसरे पक्ष, या दूसरे मास में योग के समय की वृद्धि करे। इस प्रकार एक २ मुहूर्त में एक क्षण के योग से भी वर्ष में बहुत योग काल हो जाता हैं। इस भांति प्रतिदिन योग में अधिक काल बीतनेपर धीरे २ अन्य काम नहीं बन सकते ? ऐसी शङ्का न करो, क्यों कि योग के सिवाय अन्य कार्यों को त्यागने वाले ही का योग में अधिकार है ॥

अतएव विद्वत्संन्यासोऽपेक्ष्यते। तस्मात्तदेकनिष्ठः पुमानध्येतृवणिगादिवत्क्रमेण योगारूढो भवति। यथाऽध्येता माणवकः पादांशं पादमर्धर्चमृचं मृग्द्वयं वर्गं च क्रमेण पठन्दशद्वादशवर्षैरध्यापको भवति। यथा च वाणिज्यं कुर्वन्नेकनिष्कद्विनिष्कादिक्रमेण लक्षपतिः क्रोडपतिर्वा भवति तथा ताभ्यां वणिगध्येतृभ्यां सहैवोपक्रम्य मत्सरग्रस्त इव युञ्जानस्तावता कालेन कुतो न योगमारोहेत्। तस्मात्पुनः पुनः प्राप्यमाणान् सङ्कल्पविकल्पानुद्दालकवत्पौरुषप्रयत्नेन परित्यज्याहङ्कर्तरि ज्ञानात्मनि मनो नियच्छेत्।

तामेतां द्वितीयभूमिकां विजित्य बालमूकादिवन्निर्मनस्त्वे स्वाभाविके सति ततो विशेषाहङ्काररूपं विस्पष्टं ज्ञानात्मानमस्पष्टे सामान्याहङ्कारे महत्तत्त्वे नियच्छेत्। यथा स्वल्पां तन्द्रां प्राप्तवतो विशेषाहङ्कारः स्वत एव सङ्कुचति विनैव तन्द्रां तथा विस्मरणे प्रयतमानस्याहङ्कारसङ्कोचो भवति सेयं लोकप्रसिद्धया तन्द्या तार्किकाभिमतनिर्विकल्पकज्ञानेन च समाना महत्तत्त्वमात्रपरिशेषावस्था तृतीया भूमिः। अस्यां चाभ्यासपाटवेन वशीकृतायां तमेतं सामान्याहङ्काररूपं महान्तमात्मानं निरुपाधितया शान्ते चिदेकरसस्वभावे नियच्छेत्।

अर्थः—इस से ही विद्वत्संन्यास की योग की सिद्धि के लिये अपेक्षा है। इस लिये योगपरायण पुरुष, विद्यार्थी और व्यापारी के समान धीरे २ योगारूढ होता है। जैसे वेदाध्ययन करनेवाले विद्यार्थी पहिले, पाद का आधा, फिर पाद, तब आधी ऋचा, पूरी ऋचा, दो ऋचा, और वर्ग इसी भांति क्रम से अधिक २ पढता बारह वर्ष में स्वयं अन्य को वेद पढानेवाला हो जाता है। तथा जैसे व्यापारी एक रूपैआ, दो रूपये, इस भांति प्रति दिन उपार्जन करते २ क्रमशः लखपति, या क्रोडपति होता है, उसी तरह योगी भी क्रमशः योग की अभिवृद्धि करता २ उत ने ही समय में योगारूढ क्यों न हो वे ? तिस कारण से बार २ उठे हुए सङ्कल्प विकल्पों को उद्दालक मुनि के

समान प्रयत्न से छोड़कर विशेष अहङ्कार जिस को ज्ञानात्मा कहते हैं उस में मन का निरोध करे। इस भांति दूसरी भूमिका का जय कर, बाल या मूक के समान अमनस्कता के स्वाभाविक सिद्ध होने पर स्फुटस्वरूपवाला विशेष अहङ्कार जिस को ज्ञानात्मा कहते हैं उस का अस्फुट सामान्य अहङ्कार महत्तत्त्व में लय करे। जैसे स्वल्प तन्द्रा (आधी नीन्द) के वश हुए पुरुष का विशेष अहङ्कार स्वयं सङ्कुचित हो जाता उसी तरह विशेष अहङ्कार के विस्मरण होने के लिये यत्न करता योगी का अहङ्कार, निद्रा विना सङ्कोच को प्राप्त हो जाता है। या लोक प्रसिद्ध तन्द्रा के समान या नैयायिक के माने हुए निर्विकल्प ज्ञान के समान अवस्था जिस में महत्तत्त्वरूप सामान्य अहङ्कार शेष रहता हैं। उस को तीसरी भूमिका कहते हैं। इस भूमिका को अभ्यास से जीतने पर यह सामान्य अहङ्कार का निरुपाधि होने से शान्त शुद्ध चैतन्य स्वरूप में निरोध करे॥

"महत्तत्त्वं तिरस्कृत्य चिन्मात्रं परिशेषयेत्" ॥

अत्रापि पूर्वोक्तविस्मृतिप्रयत्न एव ततोऽप्यतिशयेनोपायतामापद्यते। यथा शास्त्राभ्यासप्रवृत्तस्य व्युत्पत्तेः प्राक् प्रतिग्रन्थं व्याख्यानापेक्षायामपि व्युत्पन्नस्य स्वत एवोत्तरग्रन्थार्थः प्रतिभाति तथा सम्यग्वशीकृतपूर्वभूमेर्योगिन उत्तरभूम्युपायः स्वत एव प्रतिभाति। तदाह योगभाष्यकारः—

अर्थः—'महत्तत्त्व को भूल जाय और चैतन्य को ही शेष रखे' ऐसा वाक्य है। ऐसा होने पर भी महत्तत्त्व को विस्मरण करने का प्रयत्न ही विशेष उपाय है। जैसे शास्त्र के अभ्यास में प्रवृत्त हुए पुरुष को व्युत्पत्ति होने के पहिले प्रत्येक ग्रन्थ के व्याख्यान की अपेक्षा रहती है, परन्तु व्युत्पत्ति होने पर उस को उत्तर ग्रन्थों का अर्थ अपने आप फुरता है, उसी तरह जिस ने प्रथमभूमिका का जय कर लिया है, उस को उत्तर भूमिका के जय का उपाय अपने आप मालूम हो जाता है। यही बात व्यास जी योगभाष्य में कहते हैं—

"योगेन योगो ज्ञातव्यो योगो योगात्प्रवर्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन स योगी रमते चिरम्"

इति॥

योग उत्तरभूमिका योगेन ज्ञातव्यो योगो योगात् प्रवर्तते। यो योगाप्रमत्तो योगेन पूर्वभूमिकोत्तरभूमिकायोगेन स योगी रमते चिरमिति।

अर्थः—उत्तर भूमिका रूप योग को योग द्वारा पूर्वभूमिका से जाने। योग द्वारा योग में प्रवृत्ति होती है। जो योगी योग में प्रमाद रहित होता, वह योगी पूर्व भूमिका के जय पूर्वक उत्तरोत्तर भूमिका की प्राप्ति से चिरकाल अलौकिक सुख का अनुभव करता है।

ननु महत्तत्त्वशान्तात्मनोर्मध्ये महत्तत्त्वोपादानमव्यक्ताख्यं तत्त्वं श्रुत्योदाहृतम्, तत्र कुतो नियमनं नाभिधीयत इति चेन्न॥

अर्थः—शङ्का—महत्तत्त्व और निरुपाधि शान्तात्मा के मध्य महत्तत्त्व का उपादान अव्यक्त (प्रकृति) नाम का तत्त्व श्रुति ने कथन किया है, इस लिये महत्तत्त्व का अव्यक्त में निरोध क्यों नहीं कहा?

लयप्रसङ्गादिति ब्रूमः । यथा पटोऽनुपादाने जले निक्षिप्यमाणो न लीयते, उपादानभूतायां तु भूमौ लीयते तथा महत्तत्त्वमात्मनि न लीयते । अव्यक्ते तु लीयते । न च स्वरूपलयः पुरुषार्थः, आत्मदर्शनानुपयोगात् ।

अर्थः—समाधान—महत्तत्त्व (सामान्य अहङ्कार) का उस के उपादान प्रकृति में निरोध करने से उस का लय हो जाता है । जैसे घड़े को जल या जो उस का उपादान नहीं, उस में डुबाने से उस का लय नहीं होता है, परन्तु मट्टी में उस का लय होता है । वैसे शुद्ध चैतन्य महतत्त्व का उपादान न होने से, उस में उस का लय नही होता। परन्तु अव्यक्त में लय होता है, क्योंकि वह उस का उपादान है । अन्तः करणकी एकाग्रता आत्मदर्शनका कारण होने से पुरुषार्थ है, उस का लय पुरुषार्थ रूप नहीं ।

"दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" इति पूर्ववाक्ये आत्मदर्शनमभिधाय सूक्ष्मत्वसिद्धये निरोधस्याभिधानात् लयस्य प्रतिदिनं सुषुप्तौ स्वतः सिद्धत्वेन प्रयत्नवैयर्थ्याच्च ।

अर्थः—सूक्ष्मदर्शी पुरुष सूक्ष्म और एकाग्र बुद्धि से आत्मा का दर्शन करता है ।

जो अन्तः करण का लय पुरुषार्थ होता तो प्रति दिन सुषुप्ति समय पर स्वयं सिद्ध हो, इस लिये उस के लिये सारे प्रयत्न निष्फल है ।

ननु धारणाध्यानसमाधिभिः साध्यस्य सं-

प्रज्ञातस्यैकाग्र्यवृत्तिरूपत्वेन दर्शनहेतुत्वेऽपि शान्तात्मन्यवरुद्धस्य संप्रज्ञातसमाधिमापन्नस्य चित्तस्य वृत्तिराहितत्वेन सुषुप्तिवन्न दर्शनहेतुत्वमिति चेन्न ।

अर्थः—शङ्का,—धारणा, ध्यान, और समाधि द्वारा सिद्ध होनेवाली सम्प्रज्ञात समाधि, एकाग्रवृत्तिरूप होने से वह आत्म दर्शन का हेतु है, यह बात निर्विवाद है, परन्तु शान्तात्मा में निरोध करने से असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त हुए का चित्त वृत्ति रहित है, अतएव सुषुप्ति के समान वह आत्म दर्शन का कारण सम्भव नही ।

स्वतः सिद्धस्य दर्शनस्य निवारयितुमशक्यत्वात् । अतएव श्रेयोमार्गेऽभिहितम् ।

अर्थः—समाधान—आत्मदर्शन स्वतः सिद्ध होने से उस का वारण उस भांति नहीं हो सकता है, इसी कारण श्रेयोमार्ग नामक ग्रन्थ कार ने कहा है कि—

"आत्मानात्माकारं स्वभावतोऽवस्थितं सदा चित्तम् । आत्मैकाकारतया तिरस्कृतानात्मदृष्टिं विदधीत" इति ॥

अर्थः—चित्त स्वभाव से ही आत्माकार या अनात्मकार स्थित रहता है । इस लिये उस को अनात्म दृष्टि का तिरस्कार पूर्वक आत्माकार करे ॥

यथा घट उत्पद्यमानः स्वतो वियत्पूर्ण एवोत्पद्यते, जलतण्डुलादिपूरणं तूत्पन्ने घटे पश्चात्पुरुषप्रयत्नेन भवति । तत्र जलादौ निःसारितेऽपि न वियन्निः सारयितुं शक्यते, सु-

अपिधानेऽप्यन्तर्वियदवतिष्ठत एव । तथा चित्तमुत्पद्यमानमात्मचैतन्यपूर्णमेवोत्पद्यते उत्पन्नं चित्तं पश्चान्मूषानिषिक्तद्रुतताम्रवद्घटपटरूपरससुखदुःखादिवृत्तिरूपत्वं भोगहेतुधर्माधर्मादिवशाद्भवति तत्र रूपरसाद्यनात्माकारे निवारितेऽपि निर्निमित्तश्चिदाकारो न निवारयितुं शक्यते । ततो निरोधसमाधिना निर्वृत्तिकेन संस्कारमात्रशेषतया सूक्ष्मत्वेन चिदात्ममात्राभिमुखत्वादेकाग्रेण चित्तेन निर्विघ्नमात्माऽनुभूयते । अनेनैवाभिप्रायेण वार्त्तिककारसर्वानुभवयोगिनावाहतुः ।

अर्थः—विवेचन—जब घडा उत्पन्न होता तब आकाश द्वारा पूर्ण ही उत्पन्न होता, उस में आकाश भरने के लिये कोई यत्न नही करना पडता है परन्तु उस में पानी या चावल भरना हो तो, घडा के उत्पन्न होने पर पुरुषप्रयत्न से वह हो सकता। उस में से जल आदिक निकाल लेने पर आकाश नही निकाला जा सकता कदाचित् घडा का मुंह बन्द करो तो भी आकाश तो उस मे बना ही रहेगा उसी प्रकार चित्त भी जब उत्पन्न होता है, तब आत्मचैतन्य द्वारा पूर्ण ही उत्पन्न होता है जैसे कुढाली (सांची) में गला हुए तामा आदिधातुओं को डालो तो उस का आकार सांचे के आकार की नाई हो जाता है, उसी भांति चित्त उत्पन्न होने पर भोग के हेतु रूप धर्म अधर्म के कारण घडा, वस्त्र, रूप, रस, सुख, दुःख, आदि वृत्तिरूप हो जाता है। इन चित्त के रूप, रस आदिक अनात्म आ-

कार की निवृत्ति होने पर उस का स्वाभाविक चैतन्याकार का निवारण नहीं हो सकता है, अतएव वृत्ति रहित निरोधसमाधि द्वारा, संस्कारमात्र शेष होने से सूक्ष्म केवल, आत्माभिमुख होने से एकाग्र, चित्त निर्विघ्नता से आत्मा का ही अनुभव करता है इसी अभिप्राय से वार्त्तिककार और सर्वानुभवयोगी कहते हैं।

"सुखदुःखादिरूपित्वं धियो धर्मादिहेतुतः ।
निर्हेतुत्वात्मसम्बोधरूपत्वं वस्तुवृत्तितः ॥
प्रशान्तवृत्तिकं चित्तं परमानन्ददीपकम् ।
असम्प्रज्ञातनामायं समाधिर्योगिनां प्रियः" इति ॥

अर्थः—धर्मादि कारण के वश चित्त, सुख, दुःख आदि आकार वाला हो जाता है, और बोधरूप आत्माकार तो कारण बिना ही स्वभावसे ही होता है। वृत्तिरहित हुए चित्त का परमानन्दस्वरूप प्रकाश करता है, उस को असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। यह समाधि योगियों को प्रिय है।

आत्मदर्शनस्य स्वतः सिद्धत्वेऽप्यनात्मदर्शनवारणाय निरोधाभ्यासः । अतएवोक्तम्—

अर्थः—आत्म दर्शन अपने आप सिद्ध होने पर अनात्म वस्तु के दर्शन को रोकने के लिये चित्त के निरोध का अभ्यास करना आवश्यक है। इसी कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी कहते हैं—

"आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्"

अर्थः—आत्मा में मन को स्थिर कर साथ किसी विषय का चिन्तन न करे।

योगशास्त्रस्य चित्तचिकित्सकसमाधिमात्रे

प्रवृत्तत्वान्निरोधसमाधावात्मदर्शनं तत्र न साक्षादुक्तम् । भङ्ग्यन्तरेण त्वभ्युपगम्यते ।

अर्थः—योगशास्त्रकी चित्त का राग आदिक रोग हटाने वाले समाधी के ही प्रतिपादन में प्रवृत्ति है, अतएव उस में समाधिकाल में आत्मदर्शन का साक्षात् कथन नहीं किया है, तथापि उस में प्रकारान्तर से आत्मदर्शन स्वीकार किया है ।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" इति सूत्रयित्वा "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" इति सूत्रणात् । यद्यपि निर्विकारो द्रष्टा सदा स्वरूप एवावतिष्ठते तथाऽपि वृत्तिषूत्पद्यमानासु तत्र चिच्छायायां प्रतिबिम्बितायां तदविवेकादस्वस्थ इव द्रष्टा भवति । तदप्यनन्तरसूत्रेणोक्तम्–"वृत्तिसारूप्यमितरत्र" इति। अन्यत्रापि सूत्रितम् ।

अर्थः—चित्तवृत्ति के निरोध का नाम योग है । इस सूत्र को कह कर समाधि में द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति होती हैं । ऐसा सूत्र दिया है । यद्यपि निर्विकार द्रष्टा सदा स्वरूप में ही स्थित होता है, तथापि वृत्तियां जब तक उठा करती तब तक उन में चैतन्य का प्रतिबिम्ब पडने से, अविवेक के कारण द्रष्टा भी विकारी समान हो जाता है । यह बात भी पतञ्जलि मुनि ने कथन किया है योग के सिवाय अन्य अवस्था में आत्मा वृत्ति-के साथ तादात्म्य को प्राप्त हुआ प्रतीत होता है—अन्य स्थल में भी पतञ्जलि ने कहा है ।

"सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात्" इति ॥

अर्थः—बुद्धि और आत्मा अत्यन्त भिन्न हैं, बुद्धि का सुख दुःखादि परिणाम जो पुरुष में प्रतिबिम्ब द्वारा प्रतीत होता है वह भोग है वह भोग दृश्य होने से पुरुष के लिये है । अन्य सूत्र—है ।

"चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम्" इति च । निरोधसमाधिना शोधिते त्वम्पदार्थे साक्षात् कृतेऽपि तस्य ब्रह्मत्वं गोचरयितुं महावाक्येन ब्रह्मविद्या-नामकं वृत्त्यन्तरमुत्पद्यते । न च शुद्धत्वंपदार्थसाक्षात्कारे निरोधसमाधिरेक एवोपायः । किं तु चिज्जडविवेकेनापि पृथक्कृते तत्साक्षात्कारसम्भवात्—अतएव वसिष्ठ आह ।

अर्थः—चितिशक्ति (पुरुष) जिस का अन्यत्र गमन नहीं होता, उस की छाया बुद्धि में पड कर बुद्धि के आकार को प्राप्त होने से अपना भोग्य ऐसी बुद्धि का ज्ञान होता है निरोध समाधि द्वारा शोधन करने पर पदार्थ के साक्षात्कार करने पर भी उस को ब्रह्मपन का साक्षात् अनुभव होने के लिये, श्री सद्गुरु के मुख से महावाक्य के सुनने से ब्रह्मविद्या नामक एक प्रकार की वृत्ति उत्पन्न होती है । शुद्ध 'त्वं' पदार्थ के साक्षात्कार में केवल निरोधसमाधि ही उपाय रूप नहीं परन्तु श्रीगुरु उपदिष्ट युक्ति द्वारा चैतन्य और जड का विवेक करने से जड से भिन्न स्वरूप द्वारा त्वं पदार्थ रूप प्रत्यक् आत्मा का साक्षात्कार होता है । इस लिये वसिष्ठ भगवान् कहते हैं ।

"द्वौ क्रमौ चित्तनाशस्य योगो ज्ञानं च राघव ?।

योगस्तद्वृत्तिरोधो हि ज्ञानं सम्यगवेक्षणम्" इति।
"असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचिज्ज्ञाननिश्चयः।
प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमेश्वरः" इति॥

अर्थः—हे राम चन्द्र ! चित्त का नाश दो प्रकार का है। एक योग और दूसरा ज्ञान है । मन के वृत्ति के निरोध को योग कहते है ? और यथार्थ विचार को ज्ञान कहते हैं। इनमें से किसी को योग असाध्य है, अर्थात् बनना अशक्य है, और किसी को ज्ञान का निश्चय असाध्य है, इस लिये श्री परमेश्वर—शङ्करजी ने दो प्रकार कहा है ।

ननु विवेकोऽपि योगे पर्यवस्यति दर्शनवेलायामात्ममात्रगोचराया एकाग्रवृत्तेः क्षणिकसंप्रज्ञातरूपत्वात् ।

अर्थः—शङ्का, आत्मा का दर्शन करते समय केवल आत्मा को ही ग्रहण करने वाली एकाग्रवृत्ति क्षणिक संप्रज्ञात समाधिरूप होने से विवेकरूप ज्ञान भी वस्तुतः योग ही है अत एव योग से ज्ञान का अलग मानने में कोई कारण नहीं है ।

बाढम् । तथाऽपि संप्रज्ञातासंप्रज्ञातयोः स्वरूपतः साधनतश्चास्त्येव महद्वैलक्षण्यम् । वृत्त्यवृत्तिभ्यां स्फुटः स्वरूपभेदः । साधनं तु संप्रज्ञातस्य सजातीयत्वाद्धारणादि त्रयमन्तरङ्गम् । असंप्रज्ञातवृत्तिकस्य विजातीयत्वाद्बहिरङ्गम् । तथा च सूत्रम् "तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य" इति । विजातीयत्वेऽपि बहुविधानात्मवृत्तिनिवारणेनोपकारितया बहिरङ्गत्वमविरुद्धम् । तदेवोपकारित्वं विशद-

यितुं सूत्रयति—

अर्थः—समाधान,—तुम्हारा कहना वास्तविक है, तथापि संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि के स्वरूप में और उस के साधन में बहुत फरक हैं। संप्रज्ञात समाधि में वृत्ति का सद्भाव रहता और असंप्रज्ञात समाधि में वृत्ति का अभाव होता है । यही दोनों के स्वरूप में भेद जानो । धारणा, ध्यान, और समाधि ये तीन अङ्ग संप्रज्ञात समाधि में अन्तरङ्ग साधन हैं, क्योंकि वे संप्रज्ञात समाधि के सजातीय हैं । सजातीय इस लिये हैं कि जैसे धारणादि तीन अङ्ग में वृत्ति होती है, वैसे संप्रज्ञात समाधि में भी वृत्ति होती हैं । पूर्वोक्त तीन अङ्ग असंप्रज्ञात समाधि जो वृत्तिरहित है, उन का बहिरङ्ग साधन हैं । यह बात भगवान् पतञ्जलि कहते हैं—" वे धारणा आदिक तीन अङ्ग निर्बीज असंप्रज्ञात समाधि का बहिरङ्ग साधन है " धारणा आदि तीन अवृत्ति युक्त होने से असंप्रज्ञात समाधि से विजातीय होता हुआ अनेक प्रकार की अनात्माकार वृत्ति के निवारण द्वारा उस में उपकारक होने से उन को बहिरङ्ग साधन मानने में कोई विरोध नहीं। उन की उपकारकता पतञ्जलि मुनि सूत्रों से कहते हैं—

"श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्"

अर्थः—और अन्य को श्रद्धा उत्साह, स्मृति, एकाग्रता, विवेकख्याति (प्रकृति पुरुष के अलग २ होने का ज्ञान) द्वारा संप्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है। और उस के होने के बाद पर वैराग्य द्वारा असंप्रज्ञात समाधि सिद्ध होती है।

केषाचित् देवादीनां पूर्वसूत्रे जन्मनैव समाधिमुक्त्वा मनुष्यान् प्रत्येतदुच्यते । समायं योग एष परमपुरुषार्थसाधनमिति प्रत्ययः

श्रद्धा । सा चोत्कर्षश्रवणेनोपजायते । तदु-त्कर्षश्च स्मर्यते ।

अर्थः—श्रद्धावीर्य० इस सूत्र से पहिले के सूत्र में कई एक देव आदिक को जन्म से ही समाधि सिद्ध हुई है, इस बात को कहकर मनुष्य को समाधि की सिद्धि होने का उपाय इस सूत्र में बतलाया है । मेरा जो योग ही परम पुरुषार्थ है, इस प्रकार के दृढ निश्चय को श्रद्धा कहते हैं । यह श्रद्धा योग की श्रेष्ठता के श्रवण करने से उत्पन्न होती है । योग की श्रेष्ठता श्रीकृष्ण ने गीता में कथन कियी है—

"तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन"॥
इति ॥

अर्थः—हे अर्जुन ! तपस्या करने वाले ज्ञाननिष्ठ और अग्नि होत्र आदिक कर्म करने हारे जो पुरुष हैं उन से योगी श्रेष्ठ है, इस लिये तूं योगी हो ।

उत्तमलोकसाधनत्वात्कृच्छ्रचान्द्रायणादितपसो ज्योतिष्टोमादिकर्मणश्च योगोऽधिकः । ज्ञानं प्रत्यन्तरङ्गत्वाच्चित्तविश्रान्तिहेतुतया ज्ञानादप्यधिकत्वम् । एवं ज्ञानतो योगे श्रद्धा जायते । तस्यां च श्रद्धायां वासितायां वीर्यमुत्साहो भवति सर्वथा योगं सम्पादयिष्यामीति । एतादृशेनोत्साहेन तदानुष्ठेयानि योगाङ्गानि स्मर्यन्ते ।

अर्थः—योग उत्तम लोक का साधन होने से कृच्छ्र चान्द्रायण आदिक तप से और ज्योतिष्टोम आदिक यज्ञरूप कर्म से

अधिक है, उसी तरह वह चित्त विश्रान्ति का हेतु होने से ज्ञान का अन्तरङ्ग साधन है । इस प्रकार से योग की श्रेष्ठता दिखलाने से उस में श्रद्धा उत्पन्न होती है । यह श्रद्धा जब दृढ-बन्ध जाती है तब सर्वथा मुझे योग सिद्ध करना है ही ऐसा उत्साह होता है उत्साह उत्पन्न होने पर अवश्य सेवने योग्य योगाङ्ग का स्मरण होता है ।

तया च स्मृत्या सम्यगनुष्ठितसमाधेरध्यात्मप्रसादे सत्यृतम्भरा प्रज्ञोदेति । तत्प्रज्ञापूर्वकस्तत्प्रज्ञाकारणकोऽसम्प्रज्ञातसमाधिरितरेषां देवादिभ्योऽर्वाचीनानां मनुष्याणां सिध्यति । तां च प्रज्ञां सूत्रयति ।

अर्थः—स्मरण होने पर वह अधिकारी पुरुष श्री सद्गुरु के अनुग्रह से समाधि को सिद्ध करता है । उस की सिद्धि होने पर अध्यात्म प्रसाद अर्थात् भूत भावि सब पदार्थ को एक काल में ग्रहण करने वाली बुद्धि का प्रकाश होता है । अध्यात्मप्रसाद होने से ऋतं भरा (वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकाश करने हारी) बुद्धि उत्पन्न होती है । ऐसी बुद्धि जिस में कारण है ऐसी असम्प्रज्ञात समाधि देवादि से इतर मनुष्य को सिद्ध होती है । भगवान् पतञ्जलि ऋतम्भरा प्रज्ञा का यों कथन करते हैं—

"ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा" इति ।

ऋतं सत्यं वस्तुयाथात्म्यं बिभर्ति प्रकाशयतीति ऋतम्भरा । तत्र तस्मिन्समाध्युत्कर्षजन्येऽध्यात्मप्रसादे सतीत्यर्थः । ऋतम्भरोपपत्तिं सूत्रयति ।

अर्थः—उस निर्विचार समाधि से स्थिर चित्त की जो

बुद्धि होती है उसे ऋतम्भरा कहते हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञा की योग्यता को पतञ्जलि भगवान् दिखलाते हैं—

"श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात्" इति ।

अर्थः—जो बुद्धि श्रवण (सुनने) और अनुमान से होती है । उन से भिन्न विशेष विषयवाली समाधिविषयिणी होती है ।

सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टवस्तुष्वयोगिप्रत्यक्षं न प्रवर्तते । आगमानुमानाभ्यां तानि वस्तून्ययोगिभिर्ज्ञायन्ते । ते च शास्त्रानुमानजन्ये प्रज्ञे वस्तुसामान्यमेव गोचरयतः । इदं तु योगिप्रत्यक्षं विशेषवस्तुगोचरत्वादृतम्भरम् । तस्य योगिप्रत्यक्षस्यासम्प्रज्ञातसमाधौ बहिरङ्गत्वासिद्ध्यर्थमुपकारित्वं सूत्रयति ।

अर्थः—सूक्ष्म, निकट के पदार्थ, और दूरस्थ पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान योगी के सिवाय अन्य को नहीं होता है। शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण से साधारण (योगी नहीं) पुरुष को सामान्य ज्ञान हो सकता है। योगिपुरुषों का प्रत्यक्ष ज्ञान तो वस्तु के विशेष आकार को ग्रहण करता है, इस लिये उस के बुद्धि का ऋतम्भरा होना सम्भव है। यह योगी का प्रत्यक्ष ज्ञान असम्प्रज्ञात समाधि में बहिरङ्ग साधन है, इस बात को सिद्ध करने के लिये उस का असम्प्रज्ञात समाधि में उपकारकता पतञ्जलि मुनि ने सूत्र से कथन किया है—

"तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी" इति ॥

अर्थः—समाधिप्रज्ञा से उत्पन्न हुए संस्कार से अन्य संस्कार नष्ट हो जाते हैं।

असंप्रज्ञातसमाधेर्बहिरङ्गसाधनमुक्त्वा तन्निरोधप्रयत्नस्यान्तरङ्गसाधनतां सूत्रयति ।

अर्थः—असंप्रज्ञातसमाधि का बहिरङ्ग साधन कह कर अब उस संस्कार के निरोध करने के लिये प्रयत्न की अन्तरङ्ग साधनता को कहते हैं।

"तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः" इति ।

अर्थः—जब संस्कारों का समाधि द्वारा निरोध हो जाता तब निर्बीज (निर्विकल्प) समाधि होती है।

सोऽयं समाधिः सुषुप्तिसमानः साक्षिचैतन्येनानुभावितुं शक्यः । न चासौ सर्वधीवृत्तिराहित्यात्सुषुप्तिरेवेति शङ्कनीयम् । मनःस्वरूपसदसत्त्वाभ्यां विशेषात् । तदुक्तं गौडपादाचार्यैः ।

अर्थः—इस सुषुप्ति के समान असंप्रज्ञात समाधि का अनुभव साक्षिचैतन्य कर सकता है। सब वृत्तियों का निरोध जैसे सुषुप्ति में होता है, उसी भान्ति असंप्रज्ञात समाधि में भी होता है। इस लिये वह सुषुप्ति अवस्था है ऐसी शङ्का यहां न करो। क्योंकि सुषुप्ति में मन के स्वरूप का लय हो जाता है, और इस समाधि में तो मन रहता है, इतना सुषुप्ति और समाधि में फरक है।

यह बात गौडपादाचार्य ने भी कथन कियी है—

"निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः ।
प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः ॥
लीयते हि सुषुप्तौ तन्निगृहीतं न लीयते ।

तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः" इति॥ माण्डूक्यशाखायामपि श्रूयते।

अर्थः—बुद्धिमान पुरुष का निग्रह किये हुए निर्विकल्प मन की अवस्था सुषुप्ति के समान नहीं होती है किन्तु उस से विलक्षण होती है। क्योंकि सुषुप्ति में मन लय को प्राप्त होता है। और निग्रह किया हुआ मन लय को नहीं प्राप्त होता। यह सर्वत्र ज्ञान का प्रकाशरूप निर्भय ब्रह्म है।

माण्डूक्यशाखा में भी इसी भांति सुन पडता है—

"द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुर्ययोः।
बीजनिद्रायुतः प्राज्ञः सा च तुर्ये न विद्यते॥
स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया।
न निद्रां नैव च स्वप्नं तुर्ये पश्यन्ति निश्चिताः॥
अन्यथा गृह्णतः स्वप्नो निद्रा तत्त्वमजानतः।
विपर्यासे तयोः क्षीणे तुरीयं पदमश्नुते" इति॥

अर्थः—प्राज्ञ (सुषुप्ति का अभिमानी) और तुरीय अवस्था में स्थित पुरुष को द्वैत की अप्रतीति समान है, तथापि प्राज्ञ बीजरूप निद्रा से युक्त है, और तुरीय में निद्रा नहीं, इतना ही प्राज्ञ और तुरीय में अन्तर है विश्व और तैजस, स्वप्न और निद्रायुक्त हैं। और प्राज्ञ स्वप्न रहित केवल निद्रायुक्त है। तुरीय अवस्था में निश्चयवाला पुरुष तो निद्रा और स्वप्न इन दोनों को देखता नहीं। अन्यथा ग्रहण करने वाले को स्वप्न है, और तत्त्व को जो नहीं जानता उस को निद्रा है। जब आत्मवस्तु का अग्रहण और अन्यथा ग्रहण क्षय को प्राप्त होते है, तब पुरुष तुरीय पद को अनुभव करता है।

आद्यौ विश्वतैजसौ। अद्वैतस्य वस्तुनोऽन्य-

थाग्रहणं नाम द्वैतरूपेण प्रतिभासः। स च विश्वतैजसयोर्वर्तमानः स्वप्न इत्युच्यते। तत्त्वस्याज्ञानं निद्रा। सा च विश्वतैजसप्राज्ञेषु वर्तते। तयोः स्वप्ननिद्रयोः स्वरूपभूतयोर्विपर्यासो मिथ्याज्ञानम्। तस्मिन्विद्यया क्षीणे सति तुरीयं पदमद्वैतं वस्त्वश्नुते।

अर्थः—अद्वैत आत्मवस्तु का अन्यथा ग्रहण अर्थात् द्वैत से प्रतीति समझनी इस द्वैत की प्रतीति विश्व को जाग्रत अवस्था में है, तथा तैजस को स्वप्न अवस्था में है। इस लिये दोनों अवस्था को यहां स्वप्न संज्ञा से कहा है। आत्मतत्त्व का अज्ञान निद्रा है। इस जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति का अभिमानी विश्व तैजस, और प्राज्ञ इन तीनों में है। जब यह स्वप्न और निद्रा का विपर्यास मिथ्याज्ञान विद्या करके क्षय को प्राप्त होता है, तब अर्थात् आत्मवस्तु का अग्रहण और अन्यथा ग्रहण क्षय को प्राप्त होते हैं। तब तुरीय अर्थात् अद्वैत पद का पुरुष अनुभव करता है।

नन्वस्त्वेवमसंप्रज्ञातसमाधिसुषुप्त्योर्महान् भेदः। तत्र तत्त्वविदिदृक्षोर्दर्शनसाधनत्वेन समाध्यपेक्षायामपि दृष्टतत्त्वस्य जीवन्मुक्तये नास्ति तदपेक्षा। रागद्वेषादिक्लेशबन्धस्य सुषुप्त्याऽपि निवृत्तेः।

अर्थः—शङ्का—जिस को तत्त्वदर्शन की इच्छा है, उस को समाधि या जो आत्मसाक्षात्कार का साधन है, उस की अपेक्षा भले हो, परन्तु जिस को विविदिषा सन्यास में ही आत्मज्ञान हो चुका है, उस को जीवन्मुक्ति के लिये समाधि का

कोई प्रयोजन नहीं दीख पडता है । क्योंकि राग द्वेष आदिक क्लेश रूप बन्धकी निवृत्ति तो सुषुप्ति जो अनायास से जीव को प्राप्त होती है, उस के द्वारा भी होता है ।

मैवम् । किं प्रतिदिनं स्वतःप्राप्ता कादाचित्की सुषुप्तिर्बन्धनिवर्त्तिका, किं वाऽभ्यासेन निरन्तरवर्त्तिनी। आद्येऽपि किं सुषुप्तिकालीनस्य क्लेशबन्धस्य निवृत्तिः किं वा कालान्तरवर्त्तिनः । नाऽऽद्यः । अप्रसक्तेः । नहि मूढानामपि सुषुप्तौ क्लेशबन्धः । अन्यथाऽऽयासः प्रसज्येत । न द्वितीयः । असम्भवात् । न अन्यकालीनया सुषुप्त्या कालान्तरवर्त्तिनः क्लेशस्य क्षयः सम्भवति अन्यथा मूढानामपि जागरणस्वप्नयोः क्लेशस्य क्षयः प्रसज्येत । नापि सुषुप्तौ नैरन्तर्यमभ्यसितुं शक्यम् । तस्याः कर्मक्षयनिमित्तत्वात् । तस्मात्तत्त्वविदोऽपि क्लेशक्षयायास्त्येवासंप्रज्ञातसमाध्यपेक्षा । तस्य च समाधेर्गवादिष्विव वाङ्निरोधः प्रथमा भूमिः । बालमूढादिष्विव निर्मनस्त्वं द्वितीया । तन्द्रामिवाहङ्काररा हित्यं तृतीया । सुषुप्ताविव महत्तत्वराहित्यं चतुर्थी । तदेतद्भूमिचतुष्टयमभिप्रेत्य शनैः शनैरुपरमेदित्युक्तम् । अत्र चोपरमे धृतिगृहीता बुद्धिः साधनं महदहङ्कारमनोवागादीनां स्वत एव तीव्रवेगेन बहिः प्रवहतां कूलङ्कषाया नद्या इव निरोधे धैर्यं महदपेक्षितम् । बुद्धिविवेकः भूमिर्जिता न वेति परीक्षा । जितायामुत्तरभूम्युपक्रमः । अजितायां तु सैव पुनरभ्यसनीयेति तदा तदा विविच्यात् । आत्मसंस्थमित्यादिना सार्द्धश्लोकेन चतुर्थभूम्यभ्यासोऽपि स्मृतः । गौडपादाचार्या आहुः ।

अर्थः—समाधान—प्रतिदिन स्वयं अल्पकालपर्यन्त जो सुषुप्ति होती है, वह क्लेशरूप बन्ध का निवर्त्तक है, ऐसा तुम कहते हो ? या अभ्यास से सदा रहनेवाली सुषुप्ति को बन्ध निवर्तक कहते हो ? स्वल्प काल हुई सुषुप्ति को क्लेश बन्ध निवर्तक कहते हो तो वह, सुषुप्ति समय के क्लेश को हटाता है ? या अन्य समय के क्लेश को भी हटाता है ? जो कहो कि सुषुप्ति समय के क्लेश को हटाता है, तो वह बात सम्भव नहीं । क्योंकि उस समय क्लेश का प्रसङ्ग ही नहीं, तो किस को हटाता है ? मूढ पुरुष को सुषुप्ति बन्ध नहीं होता है । जो बन्ध होवे तो, उस को हटाने के लिये प्रयत्न करना पडे । जो कहो कि वहां अन्य अवस्था के क्लेश को टालता है, तो सो सम्भव नहीं क्योकि अन्य काल में रही हुई सुषुप्ति से कालान्तर में रहे क्लेश की निवृत्ति सम्भव नहीं । जो वैसा हुआ हो तो मूढ पुरुषों का भी जाग्रत और स्वप्न के क्लेश का क्षय हो जावे । सदा सुषुप्ति की अनुवृत्ति रखने का अभ्यास नहीं बन सकता । क्योंकि सुषुप्ति का कारण कर्मक्षय है । इस लिये तत्त्वज्ञ पुरुष को भी क्लेश का क्षय करने के लिये असंप्रज्ञात समाधि की अपेक्षा है । जैसे गाय, भैंस आदिक पशुओं को स्वतः सिद्ध वाणी निरोध है, उस प्रकार का वाणी निरोध होना यह सम्प्रज्ञात समाधि की पहिली भूमिका है । बालक और मूढ के समान मन रहित होना यह

दूसरी भूमिका है । तन्द्रा में स्थित पुरुष के समान अहङ्कार रहित होना यह तीसरी भूमिका जानना । सुषुप्ति के समान प-हतत्त्व (बुद्धि) रहित पन यह चौथी भूमिका है । इन चार भूमिका ओं को क्रमशः अभ्यास करने के अभिप्राय से 'धीरे २ उपराम को प्राप्त हो ऐसा कहा है । धीरे २ उपराम की प्राप्ति में सात्विक धृति द्वारा वशीकृत बुद्धि कारण है। जैसे दो ओर बहती महा नदी के वेग के निरोध के लिये बहुत प्रयत्न की आवश्यकता है, उसी प्रकार महत्तत्त्व, अहङ्कार, मन, और वाणी, आदिक इन्द्रियां जो तीव्रवेग से बाह्य विषयों में बहा करती हैं, उन के निरोध में भी बडी धीरता की अपेक्षा है । 'शनैः शनैः' इस पूर्वोक्त भगवद्गीता के श्लोक में बुद्धि शब्द का प्रयोग विवेक अर्थ में किया है ।

प्रथम भूमिका का जय हुआ है या नहीं हुआ इस की परीक्षा कर, जो जय हुआ जानो तो दूसरी भूमिका का आ-रम्भ करो । और जो प्रथम भूमिका का जय न हुआ हो तो, उसी भूमिका के जय के लिये वार २ अभ्यास करो ।

उपर दिया हुआ 'शनैः शनैः' श्लोकार्द्ध है । इस श्लोक का आधा इस भान्ति है "आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्"। आत्मा में मन स्थिर कर किसी भी विषय का चिन्त-न न करे। यह उत्तरार्द्ध चौथी भूमिका का स्वरूप दिखलाता है।

गौडपादाचार्य इस भांति कहते हैं—

"उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः।
सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामोलयस्तथा ॥
दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत् ।
अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति ॥
लये सम्बोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः ।
सकषायं विजानीयात्समप्राप्तं न चालयेत् ॥
नाऽऽस्वादयेत्सुखं तत्र निःसङ्गः प्रज्ञया भवेत् ।
निश्चलं निश्चरं चित्तमेकीकुर्यात्प्रयत्नतः ॥
यदा न लीयते चित्तं न च विक्षिप्यते पुनः ।
अलिङ्गनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा" इति॥

अर्थः—काम और भोग में विक्षिप्त मन का उपाय द्वारा निग्रह करे । उसी भांति सुषुप्ति में यद्यपि चित्त आयास रहित है तथापि उस का उस में से निग्रह करो । क्योंकि जैसे काम अनर्थ का हेतु है । उसी प्रकार लय भी अनर्थ का ही हेतु है । सर्व द्वैत प्रपञ्च दुःख रूप है, इस भांति स्मरण कर विषयभोग से मन को रोके । सर्व जन्मरहित ब्रह्मरूप है, ऐसा स्मरण प्राप्त कर सम्पूर्ण द्वैत को योगी नहीं देखता है । सुषुप्ति में लय को प्राप्त हुए चित्त को फिर शान्त करे । कषाय युक्त चित्त को जानना और समता को प्राप्त चित्त को चलायमान न करे । समाधि से जो सुख होता है उस में रागवान् न होवे प्रत्युत विवेक बुद्धि से असङ्ग होवे । निश्चल और बाहर न निकले चित्त को प्रयत्न से आत्मा के साथ एक रूपता को प्राप्त करे । जब चित्त फिर से लय को प्राप्त न हो, तथा विक्षेप को भी न प्राप्त हो और कषाय और रस के आस्वाद से रहित हो तब वह ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त हो जाता है ।

लयविक्षेपकषायसमप्राप्तयश्चतस्रश्चित्तस्या-वस्थाः । तत्र निरुद्ध्यमानं चित्तं विषयेभ्यो-व्यावृत्तं सत्पूर्वाभ्यासवशाद्यदि लयाय सुषु-प्तये ऽभिमुखं भवेत्तदानीमुत्थापनप्रयत्नेन ल-

यकारणनिवारणेन वा चित्तं सम्यक् प्रबोधयेत् । लयहेतवोऽनिद्राशेषाजीर्णबह्वशनश्रमाः । अतएवाऽऽहुः ।

अर्थः—लय, विक्षेप, कषाय, और सम प्राप्ति ये चार चित्त की अवस्थायें हैं। तहां निरुध्यमान चित्त विषयों से अलग जो पूर्व के अभ्यास वशात् सुषुप्ति के सन्मुख हो तो, उस को उत्थापन के प्रयत्न द्वारा या लय के कारणों को निवारण द्वारा भली भांति जाग्रत् करे। पूरी न हुई निद्रा, अजीर्ण, बहुभोजन, और परिश्रम ये चित्त को लय होने का कारण है। अतएव कहा है।

"समापय्य निद्रां सजीर्णाल्पभोजी श्रमत्याज्यबाधे विविक्ते प्रदेशे ।
सदाऽऽसीत निस्तृष्ण एषा ऽप्रयत्नोऽथवा प्राणरोधो निजाभ्यासमार्गात्" ॥ इति ।

अर्थः—सहज में जो पच जावे इतना भोजकरने वाला और श्रम को त्यागने वाला पुरुष परिमित निद्रा कर तृष्णा रहित और प्रयत्नरहित हो एकान्त देश में सदा रहे, या अभ्यास करता हो तो उस भांति प्राणायाम करे।

लयादुत्थापितं चित्तं दैनंदिनप्रबोधाभ्यासवशाद्यदि कामभोगयोर्विक्षिप्यते तदा विवेकिजनप्रसिद्धभोग्यवस्तुगतसर्वदुःखानुस्मरणेन शास्त्रप्रसिद्धजन्मादिरहिताद्वितीयब्रह्मतत्त्वाऽनुस्मरणपूर्वकेन भोग्यवस्त्वदर्शनेन च पुनःपुनर्विक्षेपाच्चित्तं शमयेत् । कषायस्तीव्रचित्तदोषस्तीव्ररागद्वेषादिवासनाः तयाग्रस्तं चित्तं कदाचित्समाहितमिव लयविक्षे-

परहितं दुःखैकाग्रमवतिष्ठते तादृशं तच्चित्तं विजानीयात् । समाहितच्चित्ताद्विवेकेनावगच्छेत् । असमाहितमेतदित्यवगम्य लयविक्षेपवत्कषायस्य प्रतीकारं कुर्य्यात् । समशब्देन ब्रह्माभिधीयते ।

अर्थः—लय में से उठा हुआ चित्त प्रतिदिन जाग्रत् अवस्था के अभ्यास के कारण जो काम, और भोग मे विक्षेप को प्राप्त हो तो विवेकी पुरुष, साक्षात् अनुभव किये भोग्य पदार्थों में रहे दुःखों का बार २ स्मरण करने द्वारा और शास्त्र प्रसिद्ध, जन्मादिविकार रहित अद्वितीय ब्रह्मवस्तु का स्मरण पूर्वक भोग्य वस्तु प्रति अलक्ष करने द्वारा, विक्षेप से चित्त को बार २ शमन करे । कषाय, तीव्र राग द्वेष वासना रूप चित्त गत महान् दोष है । इस तीव्र वासना के अधीन हुए चित्त को किसी समय जाने समाधि में स्थित हो तैसे दुःख में ही एकाग्र हो कर रहे । अतएव उस प्रकार के चित्त को समाहित से अलग हुआ जाने या यह चित्त समाहित नहीं है। परन्तु तीव्रवासना के वश दुःख में एकाग्र होता है । ऐसा समझ कर लय और विक्षेप के समान कषाय को भी निरोध का उपाय करे। 'सम' शब्द ब्रह्म का वाचक है ।

"समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्" इति स्मृतेः लयविक्षेपकषायेषु परिहृतेषु परिशेषाच्चित्तेन समं ब्रह्म प्राप्यते। तच्च समप्राप्तं चित्तं कषायलयभ्रान्त्या न चालयेत् । सूक्ष्मया बुद्ध्या लयकषायप्राप्ती विविच्य तयोः सम-

प्रत्ताधातिप्रयत्नेन चिरं स्थापयेत् । स्थापिते तस्मिन्ब्रह्मस्वरूपभूते परमानन्दः सम्यगाविर्भवति । तथा चोदाहृतम् ।

अर्थः—"सब प्राणियों में स्थित ब्रह्मस्वरूप ईश्वर को ऐसा भगवद्गीता में भी कहा है ।

लय विक्षेप और कषाय दूर कर पीछे चित्त ब्रह्मरूप हो कर रहता है। तैसे चित्त को कषाय और लय की भ्रान्ति से चलायमान न करे। सूक्ष्म बुद्धि से, लय और कषाय के स्वरूप को जान कर ब्रह्म में चित्त को अतिशय प्रयत्न से चिरकाल पर्यन्त स्थापन करे । ऐसे स्थापन करने पर ब्रह्मानन्द प्रकट होता है। भगवद्गीता में कहा है—

"सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्"

श्रुतिश्च भवति ।

अर्थः—जो आत्यन्तिक सुख है वह बुद्धिग्राह्य और अतीन्द्रिय है। श्रुति भी यों कहती है—

"समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसोनिवेशितस्याऽऽत्मनि यत्सुखं भवेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते" इति ॥

अर्थः—समाधि द्वारा रागादि दोष रहित हुए और आत्मा में स्थापित चित्त में जो सुख का उदय होता है, वह सुख तब वाणी द्वारा नहीं कहा जा सकता है । उस सुख को केवल अन्तःकरण ही ग्रहण करता है ।

ननु समाध्याविर्भूतब्रह्मानन्दस्य बुद्धिग्राह्यत्वं श्रुतिस्मृतिभ्यामभिहितम् । आचार्यैस्तु "नाऽऽस्वादयेत्सुखं तत्र" इति बुद्धिग्राह्यत्वं प्रतिषिध्यते ।

अर्थः—शङ्का—पूर्वोक्त श्रुति और स्मृति में समाधि द्वारा आविर्भाव को प्राप्त हुए ब्रह्म सुख का बुद्धि से ग्रहण होता है, ऐसा कहा है, और गौडपादाचार्य तो (नास्वादं) समाधि में सुख का स्वाद न लेवो इस वाक्य से समाधिकाल का ब्रह्मसुख का बुद्धि से ग्रहण नहीं होता, ऐसा कहते हैं इस लिये आचार्य के वचन और श्रुति के वचन में परस्पर विरोध आता है ।

नायं दोषः । तत्र निरोधसुखं बुद्धिग्राह्यं न प्रतिषिध्यते, किन्तु समाधिविरोधिनो व्युत्थानरूपस्य परामर्शस्यैव प्रतिषेधात् । यथा निदाघदिवसेषु मध्याह्ने जाह्नवीह्रदनिमग्नेनानुभूयमानमपि शैत्यसुखं तदा वक्तुमशक्यं पश्चादुन्मग्नेनाभिधीयते । यथा वा सुषुप्तावविद्यावृत्तिभिरतिसूक्ष्माभिरनुभूयमानमपि स्वरूपसुखं तदानीं सविकल्पकेनान्तःकरणवृत्तिज्ञानेन ग्रहीतुमशक्यम् । प्रबोधकाले तु स्मृत्या विस्पष्टं परामृश्यते । तथा समाधौ वृत्तिरहितेन संस्कारमात्रशेषतया सूक्ष्मेण वा चित्तेन सुखानुभवः श्रुतिस्मृत्योर्विवक्षितः । महदिदं समाधिसुखमन्वभूवमित्येतादृशो व्युत्थितस्य सविकल्पकः परामर्शोऽत्राऽऽस्वादनम् । तदेवाऽऽचार्यैः प्रतिषिध्यते । तमेव स्वाभिप्रायं प्रकटयितुं निःसङ्गः प्रज्ञया भवेदित्युक्तम् । प्रकृष्टं सविकल्पक

ज्ञानं प्रज्ञा तया सह सङ्गं परित्यजेत् । यद्वा पूर्वोक्ता धृतिगृहीता बुद्धिः प्रज्ञा । तदात्मकेन साधनेन सुखास्वादनतद्वर्णनादिरूपामासक्तिं वर्जयेत् ।

अर्थः—समाधान–आचार्य्य के वचन का तात्पर्य्य समाधि सुख बुद्धि ग्राह्य नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु समाधि में से जाग्रत होने पर समाधि सुख का स्मरण जो समाधि का विरोधी है, और जिस को रस का आस्वाद कहते हैं, उस का निषेध करता है । जैसे उष्ण काल के दिनो में मध्याह्न समय गंगा के जल में निमग्न हुआ पुरुष उस समय शीतलता का सुख अनुभव करता है, तथापि मुखं से नहीं कह सकता । परन्तु बाहर आने पर कहता है । और सुषुप्ति अवस्था में स्थित पुरुष अति सूक्ष्म अविद्यारूप वृत्ति से स्वरूप सुखको अनुभव करता है। तथापि वह सविकल्प अन्तःकरण की वृत्ति से ग्रहण नहीं हो सकता है । क्योंकि उस समय वृत्तियां अविद्यामें लय को प्राप्त होती हैं । परन्तु जागने पर उस सुख का स्मरण होता है । उसी प्रकार समाधि में वृत्तिरहित या केवल चित्त का संस्कारमात्र शेष होने से अत्यन्त सूक्ष्म चित्त से सुख का अनुभव होता है, ऐसा श्रुति, स्मृति कहती । और आचार्य्य तो, समाधि में से जाग्रत होने पर 'आह ! बहुत समाधि के सुख का अनुभव किया है' इस प्रकार का स्मरण जिस को योग शास्त्र में रस आस्वाद कहते हैं, उस का निषेध करते हैं । इसी अभिप्राय को जतलाने के लिये 'नास्वादयेत्' इस पाद के बाद 'निःसङ्गः प्रज्ञया भवेत्' (धीरता के साथ वशीकृत बुद्धि से समाधि सुख का स्मरण और वाणी से उस का अन्य के आगे कथन इस

रूप आसक्ति का त्याग करे) ऐसा पाठ पढा है । पूर्वोक्त धैर्यद्वारा वश कियी हुई बुद्धिरूप साधन से समाधि सुख का स्मरण और उस का अन्य के आगे प्रकट करना रूप आसक्ति या सविकल्प ज्ञान के साथ की आसक्ति का त्याग करे ।

समाधौ ब्रह्मानन्दे निमग्नं चित्तं यदि कदाचित्सुखास्वादनाय वा शीतवातमशकाद्युपद्रवेण वा निश्चरेत्तदा निश्चरत्तच्चित्तं पुनर्निश्चलं यथा भवति तथा परब्रह्मणा सहैकीकुर्यात् । तत्र च निरोधप्रयत्न एव साधनम् । एकीभाव एव "यदा न लीयते" इत्यनेन स्पष्टीक्रियते। "अलिङ्गन मनाभास" मित्याभ्यां पदाभ्यां कषायसुखास्वादौ प्रतिषिध्येते ।

अर्थः—समाधि दशा में ब्रह्मानन्द में मग्न होने पर चित्त, जो किसी समय विषय सुख के स्वाद लेने के लिये, या शीत पवन, या मच्छर आदिक कों के उपद्रव के कारण निकले तो उस चित्त को पुनः प्रयत्न से परमात्मा में एक रूप करे । एक रूप करने मे साधन निरोधरूप प्रयत्न है । 'यदा न लीयते' इस वाक्य से एकीभाव स्पष्ट किया है । अलिङ्गनमनाभासं इस वाक्य से कषाय, और सुखास्वाद का निषेध किया है ।

लयविक्षेपकषायसुखास्वादेभ्यो रहितं चित्तमविघ्नेन ब्रह्मण्यवस्थितं भवति ।

एतदेवाभिप्रेत्य कठवल्लीषु पठ्यते—

अर्थः—इस प्रकार पूर्वोक्त लय, विक्षेप, कषाय, और सुखास्वाद से मुक्त हुआ चित्त, निर्विघ्नता से, ब्रह्म में स्थिरता

को प्राप्त होता है ।

इसी अभिप्राय से कठवल्ली उपनिषद् की श्रुति में कहा है-

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमाङ्गतिम् ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ" इति ।

उपेक्षितो योग इन्द्रियवृत्तीनां प्रभवं करोति ।
अनुष्ठितस्तु तासां लयहेतुः ।

अर्थः—जब मनुष्य के इन्द्रियरूप छिद्रों से निकलनेवाली बाह्यवृत्ति और भीतर अन्तःकरणों में ठहरनेवाली बुद्धिरूप वृत्ति सब उपद्रवों से रहित शान्त स्थित होती है, किसी प्रकार अपने नियतस्वभाव से विरुद्ध नहीं होती तब जीवन्मुक्ति दशा को प्राप्त हुए ज्ञानी के लिये मुक्ति का द्वार खुल गया जानो। जब योगाभ्यास से सब इन्द्रिय दृढरूप से स्थिर हुए जीत लिये जाते हैं, तब योगसिद्धि होने का अनुमान निश्चित हो जाता है । योग की वृत्ति में नवीन शुद्ध संस्कारों की प्रकटता और पहिले दुष्ट संस्कारों का तिरोभाव हो जाता है, तब स्वरूप में स्थित प्रमाद रहित द्रष्टा यथार्थरूप से सब को जानता है। उपेक्षित योग इन्द्रियों की वृत्तियों को उत्पन्न करता है, तथा सम्यक् साधित योग इन्द्रियों की वृत्तियों का लय करता है।

अतएव योगस्य स्वरूपलक्षणं सूत्रयति "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" इति । वृत्तीनामानन्त्यान्निरोधोऽशक्य इति शङ्कां वारयितुमियत्तां सूत्रयति "वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाः" इति । रागद्वेषादिक्लेशरूपा आसुरवृत्तयः क्लिष्टाः । रागादिरहिता दैववृत्तयोऽक्लिष्टाः । यद्यपि पञ्चस्वेव क्लिष्टानामक्लिष्टानां चान्तर्भावस्तथाऽपि क्लिष्टा एव निरोद्धव्या इति मन्दबुद्धिं वारयितुं ताभिः सहाक्लिष्टा अप्युदाहृताः। नामधेयलक्षणाभ्यां वृत्तिं विशेषयितुं सूत्रषट्कमाह ।

अर्थः—इस लिये भगवान् पतञ्जली योग का लक्षण इस भांति कहते हैं । 'चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। चित्त की वृत्तियां तो अनेक है, इस लिये उन सब का निरोध क्यों कर हो सकता ? ऐसी शङ्का को दूर करने के लिये सूत्र—' क्लेश रूप और अक्लेश रूप पांच वृत्तियां है ' राग द्वेष आदिक क्लेश के कारणरूप आसुरी वृत्तियों को क्लेशरूप जानना और रागादिक दोष रहित वृत्तियों को अक्लिष्ट जानना । इन सब वृत्तियों का पांच वृत्तियों में ही अन्तर्भाव होता है । इन में से क्लिष्टवृत्तियां ही निरोध करने योग्य हैं, ऐसी मन्दबुद्धियों की शङ्का को दूर करने के लिये क्लिष्ट वृत्तियों के साथ अक्लिष्ट वृत्तियों का ग्रहण किया है । अर्थात् दोनों तरह की वृत्तियों को निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करने की इच्छावाला पुरुष अवश्य निरोध करे । वृत्तियों के नाम और लक्षण से वृत्तियों का स्वरूप स्पष्ट करनेवाले भगवान् पतञ्जलि के छः सूत्र है ।

"प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः । प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि । विपर्ययोमिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् । शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्योविकल्पः।अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।

अनुभूतविषयस्यासंप्रमोषः स्मृतिः" इति । वस्त्वभावः प्रतीयते यस्मिंस्तमस्यावरके सति तत्तमोऽभावप्रत्ययः । तमोगुणं विषयं कुर्वती वृत्तिर्निद्रेत्युच्यते । अनुभूतविषयस्यासंप्रमोषस्तदनुभवजन्यमनुसन्धानम् । पञ्चधीवृत्तिनिरोधसाधनं सूत्रयति ।

अर्थः—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, और स्मृति ये पांच तरह की वृत्तियां हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण वृत्तियां हैं। अपने मुख्य अर्थ में न ठहरने वाला अर्थात् उत्तर काल में बाध को प्राप्त होनेवाला जो मिथ्याज्ञान उस को 'विपर्यय' कहते हैं। शब्द मात्र से जिस का ज्ञान होता है, परन्तु शब्द के अनुसार अर्थ नहीं, उस को 'विकल्प' कहते हैं। जाग्रत् और स्वप्न अवस्था की वृत्तियों के अभाव का कारण तमोगुण जिस का विषय है, ऐसी वृत्ति को निद्रा कहते हैं। अनुभव किये हुए विषय के संस्कार के उद्भव द्वारा मानसिक ज्ञान का होना 'स्मृति' है। इन पांच प्रकार की वृत्तियों के निरोध के साधन को निरूपण करने हारा सूत्र इस भांति है—

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः" इति । यथा तीव्रवेगोपेतं नदीप्रवाहं सेतुबन्धनेन निवार्य कुल्याप्रणयनेन क्षेत्राभिमुखं तिर्यक् प्रवाहान्तरमुत्पाद्यते तथा वैराग्येण चित्तनद्या विषयप्रवाहं निवार्य्य तस्याः समाध्यभ्यासेन प्रशान्तः प्रवाहः सम्पाद्यते ।

अर्थः—'अभ्यास और वैराग्य द्वारा उन वृत्तियों का निरोध होता है। जैसे तीव्रवेगवाली नदी के प्रवाह को पुल बान्धकर के रोक दिया जाता है और उस नदी में नहर खोदकर उस का एक प्रवाह खेत के ओर किया जाता है, उसी भांति वैराग्य से चित्तरूप नदी के विषय की ओर जाने वाले प्रवाह को रोक कर समाधि के अभ्यास द्वारा उस का एक शान्त प्रवाह किया जा सकता है।

मन्त्रजपदेवताध्यानादीनां क्रियारूपत्वेनाऽऽवृत्तिलक्षणोऽभ्यासः सम्पाद्यते, सर्वव्यापारोपरमरूपस्य समाधेः को नामाभ्यास इति शङ्कां वारयितुं सूत्रयति—

अर्थः—शङ्का—मन्त्रजप देवताध्यानादि क्रिया रूप होने से, उस का आवृत्तिरूप अभ्यास सम्भव है, परन्तु सब व्यापारों का उपरम रूप समाधि का अभ्यास क्योंकर सम्भव हो सकता ?

"तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः" इति । स्थितिर्नैश्चल्यं निरोधः । यत्नो मानस उत्साहः स्वतएव बहिष्प्रवाहशीलं चित्तं सर्वथा निरोधयामीत्येवं उत्साह आवर्त्यमानोऽभ्यास इत्युच्यते। अयमभ्यास इदानीं प्रवृत्तः स्वयमदृढः सन्ननादिप्रवृत्ता व्युत्थानवासनाः कथमभिभवेदित्याशङ्कामपवदितुं सूत्रयति ।

अर्थः—समाधान—(शङ्का का उत्तररूप सूत्र) चित्त की एकाग्रता के लिये वार २ उत्साह पूर्वक प्रयत्न करने का नाम अभ्यास है । चित्त में व्युत्थान संस्कार अनादिकाल से प्रवृत्त होने से अत्यन्त सुदृढ है । उस का वर्तमान काल में चित्त के निरोध के लिये एक जन्म का अभ्यास क्या कर सकता है ?

इस शङ्का को दूर करने के लिये अगला सूत्र है—

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ-भूमिः" इति । लोका हि मूढस्य वचनमुदाहरन्ति—विद्यमानाश्चत्वार एव वेदास्तानध्येतुं गतस्य माणवकस्य पञ्चदिवसा अतीता अद्याप्यसौ नागत इति । तादृश एवायं योगी तदा स्याद्यदा दिवसैर्मासैर्वा योगसिद्धिं वाञ्छेत्तस्मात्सम्वत्सरैर्जन्मभिर्वा दीर्घकालं योग आसेवितव्यः । तथा च स्मर्यते ।

अर्थः—वह अभ्यास चिरकाल निरन्तर आदर पूर्वक, सेवन करने पर, दृढ होता है । इस प्रसङ्ग में लोग किसी मूढ का उदाहरण देते हैं कि–किसी एक मूढ ने अपने पुत्र को वेद पढने के लिये भेजा । जब उस लडके को गये पांच दिन बीते तब उस पुरुष ने विचार किया कि वेद तो केवल चार ही है, और मेरे पुत्र को तो गये पांच दिन बीत गये तौ भी वह आज तक पढ क्यों नहीं आया ? उसी भांति योगी अमुक दिवस से, या अमुक मास से, योगसिद्धि द्वारा आशा रखता हो तो वह भी उपर के उदाहरण में दिये निर्बोध पुरुष के समान है । अत एव अनेक बहुत मास पर्यन्त, बहुत वर्षों तक, और बहुत जन्म पर्यन्त भी जब तक फल की प्रतीति न हुवे तब तक योग सेवन करे । कायर न हो । इस लिये श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने भी कहा है ।

"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयाति परां गतिम्" इति ।

चिरमासेव्यमानोऽपि यदि विच्छिद्याविच्छि-

द्य सेव्येत तर्हुत्पद्यमानानां योगसंस्काराणां समनन्तरभाविभिर्व्युच्छेदकालीनैर्व्युत्थानसंस्कारैरभिभवे सति खण्डनकारोक्तन्याय आपतेत्-"अग्रेधावन्पश्चाल्लुप्यमानो विस्मरणशीलश्रुतवत् किमालम्बेतेति" । सत्कार आदरः। अनादरेण सेव्यमाने वसिष्ठोक्तन्याय आपतेत् ।

अर्थः—अनेक जन्मों के अभ्यास से सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष परा गति को पाता है । योग का सेवन चिरकाल अर्थात् बहुत मास या वर्षों तक परन्तु एक दिन करके पांच दिन न करे इस तरह बहुत समय तक भी योग करने से कोई फल नहीं होगा, क्योंकि बीच २ में जितना समय खाली पड जाता, उतने समय में उद्भव हुआ व्युत्थान संस्कार से निरोध संस्कार का अभिभव होता है । उस से भूलने का स्वभाव वाले विद्यार्थी के समान आगे दौडता है, और पीछे को भूलता जाता है, वह क्या फल पा सकता है ? यह खण्डनकार का कहा हुआ न्याय (प्रमाण बना) । अत एव निरन्तर योग का सेवन करना चाहिये और उस का आदर पूर्वक सेवन करना चाहिये । अनादर पूर्वक सेवन करने से वसिष्ठ मुनि का कहा हुआ न्याय के समान होगा ।

"अकर्तृ कुर्वदप्येतच्चेतश्चेत् क्षीणवासनम् ।
दूरंगतमना जन्तुः कथासंश्रवणे यथा" इति ॥

अर्थः—जैसे कथा सुनने वाले का चित्त कथा को छोड कर विषयान्तर में भटकता हो तो कथा सुनने पर भी कुछ भी नहीं सुना उसी तरह जो चित्त वासना रहित हुआ है, तो वह आ-

बाधक व्यवहार करता हुआ भी वह कुछ भी नहीं करता है।

अनादरो लयविक्षेपकषायसुखास्वादनानामपरिहारः। तस्मादादरेण सेवितव्यः। दीर्घकालादिभिर्विघ्नेन सेवितस्य समाधेर्दृढभूमित्वं नाम विषयसुखवासनया दुःखवासनया वा चालयितुमशक्यत्वम्। तच्च भगवता दर्शितम्।

अर्थः—लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद जो समाधि में विघ्नरूप है, उन में से कोई भी समाधि समय प्राप्त हो तो उस को रोकने के लिये प्रयत्न न करना, यह योगी के लिये अनादर है। इस लिये उन का निवारणरूप आदर से योग सेवने योग्य है। चिरकाल तक निरन्तर आदर पूर्वक सेवन किया हुआ या दृढता को प्राप्त होता है। ऐसा पहिले कहा गया है। तहां विषय सुख की वासना से या दुःखवासना से समाधि में से दृढता जानो। यह बात भगवद्गीता में श्रीकृष्ण जी ने कथन करी है।

"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते"
इति॥

अपरलाभस्यानाधिक्यं कचवृत्तान्तेन वसिष्ठ उदाजहार।

अर्थः—वृत्ति के निरोध अवस्था को पहुंचा योगी उस से अधिक किसी लोभ को नहीं मानता, और जिस अवस्था में स्थिर होके बडे शस्त्राघात आदिक दुःखों से भी डोलता नहीं।

समाधि की अपेक्षा अन्यलाभ बढ कर नहीं, यह बात श्रीवसिष्ठ भगवान् ने कच के इतिहास में स्पष्ट कथन कियी है।

"कचः कदाचिदुत्थाय समाधेः प्रीतमानसः।
एकान्ते समुवाचेदमेवं गद्गदया गिरा॥
किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम्।
आत्मना पूरितं विश्वं महाकल्पाम्बुना यथा॥
सबाह्याभ्यन्तरे देहे ह्यध ऊर्ध्वं च दिक्षु च।
इत आत्मा ततो ह्यात्मा नास्त्यनात्ममयं जगत्॥
न तदस्ति न यत्राहं न तदस्ति न यन्मयि।
किमन्यदभिवाञ्छामि सर्वं संविन्मयं जगत्॥
स्फारब्रह्मामलाम्भोधिफेनाः सर्वे कुलाचलाः।
चिदादित्यमहातेजोमृगतृष्णा जगच्छ्रियः" इति।

गुरुदुःखेनाप्यविचालित्वं शिखिध्वजस्य बत्सरत्रयसमाधिवृत्तान्तेनोदाजहार।

अर्थः—"एक समय कच समाधि में से उठ कर प्रसन्न-चित्त से एकान्त में गदगदवाणी से इस भांति बोला कि—जैसे महाप्रलय समय सारा जगत् जल से पूर्ण हो जाता, उसी तरह यहां आत्मा द्वारा पूर्ण है, इस लिये मैं क्या करूं? कहां जाउं? किसे ग्रहण करूं? किसे छोडूं? अर्थात् एक ही वस्तु में ये सब सम्भव नहीं। देह के बाहर, भीतर, उपर, नीचे, सब ओर, सब जगह, आत्मा ही है। विना आत्मा के कोई जगह नहीं। जहां मैं न होहूं ऐसी कोई जगह या वस्तु नहीं तैसे जो मुझे में है नहीं, ऐसी कोई वस्तु ही नही, इस लिये किस अन्य वस्तु की मैं इच्छा करूं? सब चैतन्यमय है। निरवधि ब्रह्मरूप समुद्र के फेन की राशि (ढेर) रूप सब पर्वत है, और चैतन्य सूर्य के महान् तेज में यह जगत् रचनारूप मृगतृष्णा है"।

महा दुःख से भी योगी चलायमान नहीं होता यह शिख-

ध्वज की तीन वर्ष की समाधि के वृत्तान्त से स्पष्ट है।

"निर्विकल्पसमाधिस्थं तत्रापश्यन्महीपतिम्।
राजानं तावदेतस्माद्बोधयामि परात्पदात्॥
इति संचिन्त्य चूडाला सिंहनादं चकार सा।
भूयोभूयः प्रभोरग्रे वनेचरभयप्रदम्॥
न चचाल तदा राम! यदा नादेन तेन सः।
भूयोभूयः कृतेनापि तदा सा तं व्यचालयत्॥
चालितः पातितोऽप्येष तदा न बुबुधे बुधः" इति।
प्रल्हादवृत्तान्तेनाप्येतदेवोदाजहार।

अर्थः—चूडाला नामक स्त्री ने अपने पति शिखिध्वज को निर्विकल्प समाधि में स्थित देखकर विचार किया कि राजा जो परम पद मै लीन हुआ है, उस को उस में से जगाऊं तो ठीक है, ऐसा विचार कर उस ने सब वनवासियों को भय देने वाला वार २ सिंह का सा गर्जा। तो भी वह समाधि में से न उठा, तब उस को खूब हिलाया, और नीचे गिराया, तब भी वह नहीं जगा।

प्रह्लाद की कथा से भी यही बात सूचित होती है।

"इति संचिन्तयन्नेव प्रह्लादः परवीरहा।
निर्विकल्पपरानन्दसमाधिं समुपाययौ॥
निर्विकल्पसमाधिस्थश्चित्रार्पित इवाऽऽबभौ।
पञ्चवर्षसहस्राणि पीनाङ्गोऽतिष्ठदेकदृक्॥
महात्मन्संप्रबुध्यस्वेत्येवं विष्णुरुदाहरत्।
पाञ्चजन्यं प्रदध्मौ च ध्वनयन्ककुभां गणम्।
महता तेन शब्देन वैष्णवप्राणजन्मना॥
बभूव संप्रबुद्धात्मा दानवेशः शनैः शनैः" इति॥

अर्थः—शत्रु का नाश करनेवाले प्रह्लाद ने ऐसा विचार कर परम आनन्द स्वरूप निर्विकल्प समाधि में स्थिति कियी। इस समाधि में स्थित हुए प्रह्लाद चित्र में स्थित मूर्त्ति की नाई शोभता था। एक आत्मरूप लक्ष स्थान में दृष्टि डाल ५००० हजार वर्ष तक समाधि में स्थित रहने पर, भी उसका शरीर हृष्ट पुष्ट था। उस के बाद विष्णु भगवान् उस के पास पधार कर बोले कि "हे महात्मन्! तुम जागो। इस पर भी वह न उठा। तब दिशाओं को नाद से पूर्ण करन वाला पांच जन्य नामक शंख का नाद किया"। यह श्रीविष्णु के प्राणवायु द्वारा उत्पन्न हुए महाशब्द से दानवपति (प्रह्लाद) धीरे धीरे जाग उठा।

एवं वीतहव्यादीनामपि समाधिरुदाहरणीयः। वैराग्यं द्विविधम् अपरं परं चेति। यतमान-व्यतिरेकैकेन्द्रियवशीकारभेदैरपरं चतुर्विधम्। तत्राऽऽद्यं त्रयमर्थात्सूत्रयन्साक्षात् चतुर्थं सूत्रयति।

अर्थः—इस भांति वीतहव्य आदिक महात्माओं की समाधि भी दृष्टान्तरूप से जानना। वैराग्य दो प्रकार का है एक पर वैराग्य, दूसरा अपर वैराग्य। तिन में से यतमान, व्यतिरेक, एकेन्द्रिय, और वशीकार इस भांति अपर वैराग्य के चार प्रकार हैं। इन ४ प्रकार के वैराग्य में से पहिले तीन प्रकार के वैराग्य को तात्पर्य द्वारा और चतुर्थको साक्षात कहनेवाला सूत्र।

"दृष्टानुश्राविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्" इति। स्रक्चन्दनवनितापुत्रमित्रक्षेत्रधनादयो दृष्टाः। वेदोक्ताः स्वर्गा-

दृष्टः आनुश्रविकाः तत्रोभयत्र सत्यामपि तृष्णायां विवेकतारतम्येन यतमानादिवैराग्यत्रयं भवति । अस्मिंश्च जगति किं सारं किमसारामिति गुरु शास्त्राभ्यां ज्ञास्यामीत्युद्योगो यतमानत्वम् (१) स्वचित्ते पूर्वं विद्यमानानां, दोषाणां मध्येऽभ्यस्यमानेन विवेकेनैतावन्तः पक्वा एतावन्तोऽवशिष्टा इति विवेचनं व्यतिरेकः (२) दृष्टानुश्रविकविषयप्रवृत्तेर्दुःखात्मत्वबोधेन तां प्रवृत्तिं परित्यज्य मनस्यौत्सुक्यमात्रेण तृष्णावस्थानमेकेन्द्रियत्वम् (३) वितृष्णत्वं वशीकारः (४) तदिदमपरं वैराग्यमष्टाङ्गयोगप्रवर्तकत्वेन संप्रज्ञातस्यान्तरङ्गम् । असंप्रज्ञातस्य तु बहिरङ्गम् । तस्यान्तरङ्गं परं वैराग्यं सूत्रयति ।

अर्थः—देखे और सुने हुए विषयों से तृष्णा रहित पुरुष की उस विषय में जो उपेक्षा बुद्धि, उस को वशीकार नाम का वैराग्य कहते हैं । माला, चन्दन, स्त्री, पुत्र, घर, क्षेत्र आदिक दृष्ट (प्रत्यक्ष) विषय है । केवल वेद आदिक शास्त्र प्रतिपादित स्वर्ग आदिक "आनुश्रविक" (अप्रत्यक्ष) है । सो इन दृष्ट और आनुश्रविक विषयों की तृष्णा होने पर भी विवेक के तारतम्य से यतमानादि वैराग्य के तीन भेद होते हैं । इस जगत में साररूप क्या है ? और असार क्या है ? इस भांति मुझे गुरु और शास्त्र से जानना चाहिये ऐसे उद्योग का नाम यतमान वैराग्य है । विवेक के अभ्यास करने के पहिले जो २ दोष मुझ में विद्यमान थे उन में से वर्त्तमान विवेक अभ्यास करने से, इतने दोष हट गये

और अब इतने बाकी रहे इस प्रकार के विवेक को व्यतिरेक वैराग्य कहते है । दृष्ट और श्रुत विषयों में प्रवृत्ति को दुःख रूप समझ कर उस प्रवृत्ति का त्याग करने पर मन में कई एक तृष्णा का अंश रहे उस को एकेन्द्रिय वैराग्य कहते हैं । और केवल निस्तृष्णापन को 'वशीकार' वैराग्य कहते हैं । ये चार प्रकार के अपर वैराग्य अष्टाङ्गयोग में प्रवृत्ति कराते हैं इस लिये वे संप्रज्ञातसमाधि के अन्तरङ्ग साधन है और असंप्रज्ञात समाधि के बहिरङ्ग साधन है । असंप्रज्ञात समाधि के अन्तरङ्ग साधनरूप पर वैराग्य का निरूपण करने वाला सूत्र है ।

"तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्" इति । सम्प्रज्ञातसमाधिपाटवेन गुणत्रयात्मकात्प्रधानाद्विविक्तस्य पुरुषस्य ख्यातिः साक्षात्कारादशेषगुणत्रयव्यवहारे यद्वैतृष्ण्यं तत्परं वैराग्यम् । तस्य तारतम्येन समाधेः शीघ्रत्वतारतम्ये सूत्रयति ।

अर्थः—आत्मा के साक्षात्कार होने से तीन गुण और उन के कार्यों में जो तृष्णा रहित पन है उस को 'पर वैराग्य' कहते हैं । इस वैराग्य में न्यूनाधिक्य के कारण समाधि की शीघ्रता में जो तारतम्य होता उस को भगवान् पतञ्जलि कहते हैं ।

"तीव्रसंवेगानामासन्नः समाधिलाभः" इति । संवेगो वैराग्यम् । तद्भेदाद्योगिनस्त्रिविधा मृदुसंवेगा मध्यसंवेगास्तीव्रसंवेगाश्चेति । आसन्नोऽल्पेनैव कालेन समाधिर्लभ्यत इत्यर्थः । तीव्रसंवेगेष्वेव समाधितारतम्यं सूत्रयति ।

अर्थः—वैराग्य के भेद के कारण तीन प्रकार के योगी

होते हैं, एक मृदुवैराग्य वाला दूसरा मध्यमवैराग्यवाला और तीसरा तीव्र वैराग्यवाला। इन में से तीव्र वैराग्यवान् को समाधि शीघ्र ही समय में सिद्ध होती है। तीव्र वैराग्यवान् में भी समाधिसिद्धि के समय न्यूनाधिकता का प्रतिपादन करनेवाला सूत्र।

"मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः" इति। मृदुतीव्रो मध्यतीव्रोऽधिमात्रतीव्र इति। तेष्वप्युत्तरोत्तरस्य त्वरया सिद्धिर्द्रष्टव्या। उत्तमोत्तमा जनकप्रह्लादादयोऽधिमात्रतीव्राः मुहूर्त्तमात्रविचारेण दृढसमाधिलाभात्। अधमाधमा उद्दालकादयो मृदुसंवेगाः। चिरप्रयासेन तल्लाभात्। एवमन्येऽपि यथायोगमुन्नेयाः। तदेवमधितीव्रस्य दृढभूमावसंप्रज्ञातसमाधौ लब्धे सति पुनर्व्युत्थातुमशक्यं सन्मनो नश्यति। मनोनाशेन वासनाक्षये रक्षिते सति जीवन्मुक्तिः सुप्रतिष्ठिता भवति। न च मनोनाशेन विदेहमुक्तिरेव नतु जीवन्मुक्तिरिति शङ्कनीयम्। प्रश्नोत्तराभ्यां तन्निर्णयात्। श्रीरामः।

अर्थः—'मृदु तीव्र, वैराग्यवान् योगी को जल्दी से समाधि का लाभ होता है, मध्य तीव्र वैराग्य वाले को उस से भी जल्दी समाधि का लाभ होता है' उत्तमोत्तम जनक प्रह्लाद आदिकों का मुहूर्त्तमात्र विचार करने से समाधि का लाभ हुआ था इस लिये वे अतिशय तीव्र वैराग्यवान् समझे गये। अधमों में उद्दालक आदिकों को मृदुवैराग्यवान् जानो। क्यों कि उन

को बड़े परिश्रम से समाधि की प्राप्ति हुई थी। इस भांति और को भी जान लेना। इस प्रकार अतिशय तीव्र वैराग्यवान् पुरुष को अत्यन्त दृढ असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त होने से पुनः व्युत्थान को प्राप्त होनेमें अशक्त होने से मन नाश को प्राप्त हो जाता है मन के नाश होने से वासनाक्षय का संरक्षण होता है। और उस से जीवन्मुक्ति की स्थिरता प्राप्त होती है। मन के नाश से विदेहमुक्ति सिद्ध होती है, जीवन्मुक्ति सिद्ध नहीं होती, ऐसी शङ्का न करो। क्यों कि योगवासिष्ठ में श्री राम और वसिष्ठ मुनि के प्रश्नोत्तर में जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है ऐसा निर्णय हुआ है। श्री राम जी ने पूछा।

"विवेकाभ्युदयाच्चित्तस्वरूपेऽन्तर्हिते मुने ?।
मैत्र्यादयो गुणाः कुत्र जायन्ते योगिनां वद" ॥
वसिष्ठः।

अर्थः—हे मुने ? विवेक के उदय होने से चित्त का स्वरूप नाश हो जाता है, इस लिये योगियों में मैत्री, मुदिता, आदि गुण चित्त के विना कहां उत्पन्न हों ? इस पर वसिष्ठ जी—

द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च।
जीवन्मुक्तौ सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिगः ॥
प्राकृतं गुणसम्भारं ममेति बहु मन्यते।
सुखदुःखाद्यवष्टब्धं विद्यमानं मनो विदुः ॥
चेतसः कथिता सत्ता मया रघुकुलोद्वह ?।
अस्य नाशमिदानीं त्वं शृणु प्रश्नविदां वर ? ॥
सुखदुःखदशा धीरं साम्यान्न प्रोद्धरन्ति यम्।
निःश्वासा इव शैलेन्द्रं तस्य चित्तं मृतं विदुः ॥
आपत्कार्पण्यमुत्साहो मदो मान्द्यं महोत्सवः।

यं नयन्ति न वैरूप्यं तस्य नष्टं मनो विदुः ॥
चित्तनाशाभिधानं हि यदा नश्यति राघव ! ।
मैत्र्यादिभिर्गुणैर्युक्तं तदा सत्त्वमुदेत्यलम् ॥
भूयोजन्मविनिर्मुक्तं जीवन्मुक्तस्य तन्मनः ।
सरूपोऽसौ मनोनाशो जीवन्मुक्तस्य विद्यते ॥
अरूपस्तु मनोनाशो यो मयोक्तोरघूद्वह ! ।
विदेहमुक्तावेवासौ विद्यते निष्कलात्मनः ॥
समग्राग्र्यगुणाधारमपि सत्त्वं प्रलीयते ।
विदेहमुक्तावमले पदे परमपावने ॥
संशान्तदुःखमजडात्मकमेकरूप-
मानन्दमन्थरमपेतरजस्तमोयत् ।
आकाशकोशतनवोऽतनवोमहान्त-
स्तस्मिन्पदे गलितचित्तलवा वसन्ति" इति ॥
"जीवन्मुक्ता न मुह्यन्ति सुखदुःखरसस्थितौ ।
प्राकृतेनार्थकारेण किञ्चित् कुर्वन्ति वा न वा"॥
तस्मात् सरूपोमनोनाशो जीवन्मुक्तिसा-
धनमिति स्थितम् ।

इति श्रीमद्विद्यारण्यप्रणीतजीवन्मुक्ति
विवेके मनोनाशनिरूपणं नाम
तृतीयं प्रकरणम् ॥

अर्थः—'सरूपनाश' (सूक्ष्म स्वरूप रहे ऐसा नाश) और 'अरूपनाश' (निःशेष नाश) इस तरह चित्त का नाश दो प्रकार का हैं। जीवन्मुक्तदशा में चित्तका सरूप का नाश होता

है और विदेह मुक्ति में अरूप नाश होता है । प्रकृति के गुण कार्यों को ममता बुद्धि पूर्वक जब आसक्ति से मन सेवता है, और इस मे ही जब सुख दुःख आदि से युक्त होता है, तब वह मन विद्यमान है, ऐसा जानना, हे रघुकुल में श्रेष्ठ रामचन्द्र जी ! यह तो मैंने आप को चित्त की विद्यमानता का वर्णन किया है । अब हे प्रश्न जानने वालों में श्रेष्ठ ? उस के नाश को सुनो जैसे सांस (निःश्वास) पहाड को हिला नहीं सकता वैसे सुख के समय या दुःख के समय जिस के चित्त की साम्य अवस्था भङ्ग नहीं हो सकती उस विवेकी पुरुष का चित्त नाश को प्राप्त हुआ है ऐसा जानो । आपत्ति, कृपणता, उत्साह, मद, मन्दता, और महोत्सव, जिस के रूप को बदल नहीं सकता (चलायमान नहीं कर सकता) अर्थात् हर्ष शोक आदि के वश नहीं कर सकता, उस का चित्त नाश हुआ, ऐसा समझो, तृष्णा ही जिस का स्वरूप है, ऐसा चित्त जब नाश को प्राप्त होता है तब मैत्री आदिक गुण युक्त सत्त्व उदय को प्राप्त होता है । इस मैत्री आदि गुण युक्त वाले पुरुष का चित्त पुनर्जन्मरहित होता है । इस प्रकार की चित्त की अवस्था जीवन्मुक्त पुरुष की होती है, उस को सरूपचित्तनाश कहते हैं । हे राघव ! मैं ने जो तुम को अरूप चित्त नाश कहा, वह विदेह मुक्ति दशा में ही होता है । इस समय चित्त का कोई भी अंश बाकी नहीं रहता । विदेह मुक्ति में समग्र मैत्री आदि उत्तम गुण वाला चित्त भी परम पावन और निर्मल ऐसे परमात्मा के स्वरूप में ही लय को प्राप्त होता है । जिस पद में सारे दुःखों का अभाव है, जो चैतन्य रूप है, जो सदा एक रूप है, जिस में रज, और तम हैं ही नहीं, और जो आनन्द पूर्ण है उस पद

में, जिस के चित्त का नाश हुआ है ऐसा शरीर रहित हुआ और आकाश के समान सूक्ष्म महात्मा पुरुष सदा वास करता है, जीवन्मुक्त पुरुष सुख दुःख की स्थिति में मोह को प्राप्त नहीं होता। प्रारब्ध से कुछ करता है और नहीं करता है। अत एव सरूप मनोनाश जीवन्मुक्ति का साधन है, यह, बात सिद्ध हुई।

इस रीति से श्री जीवन्मुक्ति विवेक में मनोनाश नामक तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ स्वरूपसिद्धिप्रयोजनप्रकरणम् ॥

केयं जीवन्मुक्तिः,? किं वा तत्र प्रमाणं,? कथं वा तत्सिद्धिः, ? इत्येतस्य प्रश्नत्रयस्योत्तरं निरूपितम् । सिद्ध्या वा किं प्रयोजनमित्यस्य चतुर्थप्रश्नस्योत्तरमिदानीमभिधीयते । ज्ञानरक्षातपोविसंवादाभावदुःखनाशसुखाविर्भावाः पञ्च प्रयोजनानि । ननु प्रमाणोत्पन्नस्य तत्त्वज्ञानस्य को नाम बाधप्रसङ्गः ? येन रक्षाऽपेक्ष्यत इति चेदुच्यते । चित्तविश्रान्त्यभावे संशयविपर्ययौ प्रसज्येयाताम् । तथाहि तत्त्वविदो राघवस्य विश्रान्तेः पूर्वं संशयं विश्वामित्र उदाजहार ।

अर्थः—जीवन्मुक्ति किस को कहते हैं? उस में क्या प्रमाण है ? और उस की सिद्धि किस रीति से होती है ? इन तीन प्रश्नों के उत्तर का निरूपण हो चुका है । अब जीवन्मुक्ति के सिद्धि का क्या प्रयोजन है ? इस चौथे प्रश्नका उत्तर कहा जाता है ।

ज्ञान की रक्षा, तप, विसंवादाभाव, (विचार की निवृत्ति) दुःख की निवृत्ति और सुखका आविर्भाव ये पांच जीवन्मुक्ति के प्रयोजन हैं ।

शङ्का—महावाक्यरूप प्रमाण से उत्पन्न हुए तत्त्वज्ञान को कोई बाध करने हारा नहीं । जो श्रुति से कोई प्रबल प्रमाण होवे तो उस से तत्त्वज्ञान बाध पावे परन्तु श्रुति से कोई बढकर

प्रमाण नहीं, इस लिये महावाक्य श्रुति से उत्पन्न ज्ञान की रक्षा की क्या आवश्यकता है ?

समाधान—तत्त्वज्ञान हो भी जाय तौ भी जब तक चित्त की शान्ति नहीं होती तब तक संशय विपर्यय होना संभव है।

श्रीरामचन्द्र को तत्त्वज्ञान हुआ भी था, तौ भी चित्त विश्रान्ति होने के पहिले संशय उत्पन्न हुआ यह बात योगवासिष्ठ में प्रसिद्ध है।

विश्वामित्र बोले—

"न राघव ? तवास्त्यन्यज्ज्ञेयं ज्ञानवतां वर ?।
स्वयैव सूक्ष्मया बुद्ध्या सर्वं विज्ञातवानसि ॥
भगवद्व्यासपुत्रस्य शुकस्येव मतिस्तव।
विश्रान्तिमात्रमेवात्र ज्ञातज्ञेयाऽप्यपेक्षते"इति॥

शुकस्तु स्वयमेवाऽऽदौ तत्त्वं विदित्वा तत्र संशयानः पितरं पृष्ट्वा पित्रा तथैवानुशिष्टस्तथाऽपि संशयानो जनकमुपासाद्यतेनाऽपि तथैवानुशिष्टस्तंप्रत्येवचा मुवा श्रीशुकः—

अर्थः—हे रामचन्द्र ! अब तुम्हारे को कुछ जानने को शेष नहीं रहा अपने सूक्ष्म बुद्धि द्वारा तुम सब जान चुके। परन्तु भगवान् व्यास देव के पुत्र शुकदेव के समान तुम्हारी चित्तवृत्ति को विश्रान्ति मात्र प्राप्त होने की आवश्यकता है।

श्रीशुकदेव तो अपने आपही तत्त्वज्ञान प्राप्त कर मुझको जो ज्ञान है, सो सत्य होगा या मिथ्या होगा ? इस भांति संशय होने से अपने पिता व्यास जी से पूछा तब उन ने भी जो स्वयं जानते थे—सो कहा, तथापि संशय निवृत्त न होने से जनक राजा के पास कई प्रश्न किये, उनने भी वही उप-

देश दिये। तब स्वयं जनक को इस भांति कहा—

"स्वयमेव मया पूर्वमेतज्ज्ञातं विवेकतः।
एतदेव च पृष्टेन पित्रा मे समुदाहृतम् ॥
भवताऽप्येष एवार्थः कथितो वाग्विदांवर ?।
एष एवात्र वाक्यार्थः शास्त्रेषु परिदृश्यते ॥
यथाऽयं स्वविकल्पोत्थः स्वविकल्पपरिक्षयात्
क्षीयते दग्धसंसार असार इति निश्चितः ॥
तत्किमेतन्महाबाहो ? सत्यं ब्रूहि ममाचलम्।
त्वत्तो विश्राममाप्नोमि चेतसा भ्रमता जगत्।
जनकः—

अर्थः—पूर्व में अपने ही विवेक द्वारा मैं ने यह जाना था, अपने पिता से भी यही प्रश्न मैंने किया था तब उनने भी यही उत्तर दिया था, हे वक्ता में श्रेष्ठ ? आप भी यही बात कहते हो। यह निन्द्य और निःसार संसार अपने ही अन्तःकरण से स्फुरित होता है। और उस अन्तःकरण के क्षय होने से नाश को प्राप्त होता है। ऐसा ही निश्चय शास्त्रों में भी देखा है। इस लिये 'यह जगत् क्या है ? सो मुझ को कहो जिससे हमारे सन्देह की निवृत्ति हो जावे। इस भ्रांतचित्त से भ्रमने वाला मैं आपके वचनों से विश्रांति को पाऊंगा।

इस पर जनक जी बोले—

"नातः परतरः कश्चिन्निश्चयोऽस्त्यपरो मुने ?।
स्वयमेव त्वया ज्ञातं गुरुतश्च पुनः श्रुतम् ॥
अव्युच्छिन्नश्चिदात्मैकः पुमानस्तीह नेतरत्।
स्वसंकल्पवशाद्बद्धो निःसंकल्पस्तु मुच्यते ॥
तेन त्वया स्फुटं ज्ञातं ज्ञेयं स्वस्य महात्मनः।

भोगेभ्यो विरतिर्जाता दृश्याद्वा सकलादिह ॥
प्राप्तं प्राप्तव्यमखिलं भवता पूर्णचेतसा ।
न दृश्ये पतासि ब्रह्मन् ? मुक्तस्त्वं भ्रान्तिमुत्सृज॥
अनुशिष्टः स इत्येवं जनकेन महात्मना ।
विशश्राम शुकस्तूष्णीं स्वस्थे परमवस्तुनि ॥
वीतशोकभयायासोनिरीहश्छिन्नसंशयः ।
जगाम शिखरं मेरोः समाध्यर्थमनिन्दितम् ॥
तत्र वर्षसहस्राणि निर्विकल्पसमाधिना ।
दश स्थित्वा शशामासावात्मन्यस्नेहदीपवत्"
इति ॥

अर्थः—हे मुने ! यहां सर्वत्र पूर्ण, अद्वितीय चैतन्यस्वरूप आत्माही है, उसके सिवाय इतर कोई भी वस्तु नहीं । और जीव केवल अपने संकल्प से ही बद्ध है, और संकल्प रहित होता, तब मुक्त होता है । इस से भिन्न दूसरा कोई निश्चय नहीं । तुमने आपसे यह जाना और फिर गुरु से भी सुना तूजो महात्मा है, तिसने अपनी ज्ञेय वस्तु यथार्थ जाना है। क्योंकि सकल भोगों से या सकल दृश्य पदार्थ से उसके विषय विराम प्राप्त हुआ है, पूर्णचित्त वाला तूं सर्व प्राप्तव्य प्राप्त कर लिया है। तू अब दृश्य में नहीं पडता अर्थात् उस में तुच्छ बुद्धि होने से, उस पर तेरा लक्ष्य नहीं जाता है, इस लिये भ्रांति को छोड दो । इस भांति महात्मा जनक से उपदेश पाकर शुकदेवजी, निर्विकार परमात्मवस्तु में तूष्णीं भाव ग्रहण कर विश्राम पाया जिस के शोक, भय और आयास निवृत्त होगये हैं, जिस को किसी प्रकार की इच्छा नहीं और जिस के संशय छिन्न हो गये, ऐसा शुकदेव समाधि के निमित्त समाधि के प्रतिकूल दोष रहित मेरु के शिखर

(चोटी) पर गये । वहां निर्विकल्प समाधि में दश हजार वर्ष स्थिति कर जैसे विना तेल का दीप सामान्य अग्नि में शान्त होता है, वैसे वह स्वरूप में शान्त हुआ ।

तस्माद्विदितेऽपि तत्त्वे विश्रान्तिराहितस्य शुकराघयोरिव संशय उत्पद्यते। स चाज्ञानमिव मोक्षस्य प्रतिबन्धकः। अतएव भगवतोक्तम् ।

अर्थः—इस कारण आत्म स्वरूप का ज्ञान होने पर भी जिस का चित्त विश्राम को नहीं प्राप्त हुआ, उस पुरुष को श्रीशुकदेवजी के समान और श्रीरामचन्द्रजी के समान संशय उत्पन्न होता है, और वह संशय अज्ञान के समान ही मोक्ष में प्रतिबन्धरूप है । इसी लिये श्रीभगवान् ने कहा है ।

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः"॥

अर्थः—जो अज्ञानी, श्रद्धा से हीन और सदा संशय करने वाला है वह नाश को प्राप्त होता है । जिस का मन सदा संशय में रहता है, उस को यह लोक परलोक और सुख नहीं।

अश्रद्धा विपर्ययः। स चोत्तरत्रोदाहरिष्यते । अज्ञानविपर्ययौ मोक्षमात्रविरोधिनौ । संशयस्तु भोगमोक्षयोरुभयोरपि विरोधी । तस्य परस्परविरुद्धकोटिद्वयावलम्बित्वात् । यदा संसारसुखाय प्रवृत्तिस्तदा मोक्षमार्गे बुद्धिस्तां निरुणद्धि । यदा च मोक्षमार्गे प्रवृत्तिस्तदा संसारबुद्धिस्तां प्रतिबध्नाति । तस्मात् संशयात्मनो न किञ्चित् सुखमस्तीति मुमुक्षुणा सर्वथा संशयाश्छेत्तव्याः। अतएव

श्रूयते-"छिद्यन्ते सर्वसंशयाः" इति ।

अर्थः—अश्रद्धा अर्थात् विपर्यय इस का उदाहरण आगे आवेगा । अज्ञान और विपर्यय मोक्षमात्र का विरोधी है, और संशय तो भोग और मोक्ष दोनों का विरोधी है, क्योंकि संशय, परस्पर विरुद्ध कोटि को अवलम्बन कर उदय को प्राप्त होने वाला होने से जब संशय वाला पुरुष संसार के सुख में प्रवृत्ति करता है, तब मोक्षमार्ग सम्बन्धी बुद्धि उसकी सुख में हुई प्रवृत्ति को रोकती है । और जब मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करता है, तब उस को संसार बुद्धि रोकती है । इस लिये संशय वाले मनुष्य को किसी प्रकार का सुख न होने से उस को सर्वथा संशय का उच्छेद करना चाहिये । छिद्यन्ते सर्वसंशयाः—इस श्रुति वाक्य से भी आत्मसाक्षात्कार होने से संशय छिन्न हो जाते है ऐसा सिद्ध होता है ।

विपर्ययस्यापि निदाघ उदाहरणम् । ऋभुः परमकरुणया निदाघस्य गृहमेत्य बहुधा तं बोधयित्वा निर्जगाम । बुद्धेऽपि तदुपदिष्टवस्तुन्यश्रद्दधानो निदाघः कर्मणि परमपुरुषार्थहेतुरिति विपर्ययं प्राप्य कर्मानुष्ठाने यथापूर्वं प्रवृत्तः । सोऽपि शिष्यस्य परमपुरुषार्थभ्रंशोमाभूदिति कृपया गुरुः पुनरागत्य बोधयामास । तदाऽपि विपर्ययं न जहौ । तृतीयेन तु बोधनेन विपर्ययं परित्यज्य विश्रान्तिमलभत् । संशयविपर्ययाभ्यामसम्भावनाविपरीतभावनारूपाभ्यां तत्त्वज्ञानस्य फलं प्रतिबध्यते । तदुक्तं पराशरेण—

अर्थः—विपर्यय का दृष्टान्त निदाघ का है-वह इस भांति है कि ऋभुनामक मुनि ने केवल कृपा दृष्टि से निदाघ के घर आकर उसका अनेक प्रकार बोध कराया उस के बाद वहां से वह चले। परन्तु ऋभु के अन्तःकरण में 'मेरे दिये हुए इस प्रकार के ज्ञान में अविश्वास होने से 'कर्म ही परम पुरुषार्थ का हेतु है, ऐसी उलटी बुद्धि के वशवर्त्ती हो के यह ज्ञान के उपदेश होते पहिले जैसा कर्म करता था वैसा ही कर्म करने लगा मेरा शिष्य परम पुरुषार्थ से भ्रष्ट न हो तो ठीक है' ऐसे हेतु से ऋभु ने फिर उस के घर आकर उपदेश दिया तौ भी उसकी विपरीबुद्धि नहीं मिटी।जब तीसरी बार आकर बोध कराया, तब उस ने विपरीत बुद्धि का त्याग किया, और अन्त में विश्रान्ति को प्राप्त हुआ । संशय या जिस को असम्भावना कहते हैं, और विपर्यय जिस को विपरीत भावना कहते हैं, ये दोनों, तत्त्वज्ञान का फल जो चित्त विश्रान्ति, उस को उत्पन्न नहीं करते हैं। सो पराशर जीने कहा हैं—

"मणिमन्त्रौषधैर्वह्निः सुदीप्तोऽपि यथेन्धनम् ।
प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात् प्रतिबद्धस्तथैव च ॥
ज्ञानाग्निरपि सञ्जातः प्रदीप्तः सुदृढोऽपि च ।
प्रदग्धुं नैव शक्तः स्यात् प्रतिबद्धस्तु कल्मषम् ॥
भावना विपरीता या या चासम्भावना शुक ! ।
कुरुते प्रतिबन्धं सा तत्त्वज्ञानस्य नापरम्" इति ।

अर्थः—जैसे प्रज्वलित अग्नि भी मणि, मन्त्र, और औषधि के जरिये नहीं जलता (बन्द हो जाता) है तब वह इन्धन काष्ठ को नहीं जरा सकता, उसी भांति ज्ञान रूप अग्नि भी अति प्रदीप्त हो तो वह प्रतिबन्ध युक्त होता है, तो अज्ञान आदिक

दोषों को नहीं जला सकता। हे शुक ! असम्भावना और विपरीत भावना ही तत्त्वज्ञान का प्रतिबन्ध करती है, अन्य कोई भी पदार्थ ज्ञान का प्रतिबन्धक नहीं।

तस्मादविश्रान्तस्य संशयविपर्ययप्रसङ्गेन तत्त्वज्ञानस्य फलप्रतिबन्धलक्षणात् बाधाद्रक्षाऽपेक्ष्यते। विश्रान्तचित्तस्य तु मनोनाशेन यदा जगदेव प्रविलीयते तदा संशयविपर्ययोः कः प्रसङ्गः।जगत्प्रतिभासरहितस्य ब्रह्मविदो देहव्यवहारोऽपि विनैव प्रयत्नं परमेश्वरप्रेरितेन प्राणवायुना निष्पद्यते। अतएव छन्दोगा आमनन्ति।

अर्थः—इस लिये जिस का चित्त विश्रान्ति को प्राप्त नहीं होता है, उस का संशय विपर्यय रूप प्रतिबन्ध से ज्ञान के फल की रक्षा करनी आवश्यक है। और जिस का चित्त विश्राम पाया है उसको तो मनोनाशसे जगत्काही लय हो जाता है, तो संशय विपर्यय का प्रसङ्ग ही नहीं। जगत् की प्रतीति रहित ब्रह्मवित् पुरुष का शरीरव्यवहार भी प्रयत्न किये बिना ही परमेश्वर प्रेरित वायुसे होता है।

छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

"नोपजनं स्मरन्निदं शरीरं स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिन् शरीरे प्राणो युक्तः" इति। उपजनं जनानां समीपे वर्तमानमिदं शरीरं न स्मरन्ब्रह्मविद्वर्तते। पार्श्वस्था जना एव तत्त्वविदः शरीरं पश्यन्ति। स्वयं तु निर्मनस्कत्वान्मदीयं शरीरमिति न

स्मरति।प्रयोग्यो रथशकटादिवहने प्रयोक्तुमर्हः शिक्षितोऽश्वबलीवर्दादिः स यथा सारथिना मार्गस्याऽऽचरणे प्रेरितः पुनः सारथिप्रयत्नमनपेक्ष्य स्वयमेव रथशकटादिकं पुरोवर्तिग्रामं नयति एवमेवायं प्राणवायुः परमेश्वरेणास्मिन् शरीरे नियुक्तः सत्यसति वा जीवप्रयत्ने व्यवहारं निर्वहति। भागवतेऽपि स्मर्यते।

अर्थः—ब्रह्मवित् पुरुष को मनुष्यों के समीप रहने पर उस के शरीर का भान नहीं होता है। समीप रहे मनुष्य ही उसके शरीर को देखते हैं। स्वयं तो अमन भाव को प्राप्त होने से 'यह मेरा शरीर है' ऐसा उसको भान नहीं होता। जैसे गाडी या रथ में जुते हुए बैल या घोडे अपने काम में शिक्षित होने से सारथी के एक बार गन्तव्य मार्ग पर चला देने पर अपने आप ही बिना सारथी के प्रयत्न के आगे चले जाते हैं और जिस गांव में जाना आना होता वहां पहुंचा देते उसी प्रकार यह प्राणवायु भी परमेश्वररूपी सारथी द्वारा इस शरीर में प्रेरित जीव का प्रयत्न हो या न हो तो भी व्यवहार का निर्वाह करता है।

भागवत में भी कहा है—

"देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम्।
दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः" इति।

अर्थः—जैसे मदिरा के नशे से मदान्ध पुरुष अपने पीछे या पास रक्खे वस्त्रादिक को यहां ही है या कहीं छूट गया

उस को खबर नहीं हो सकती, उसी भांति योगी पुरुष भी अपने नाशवान शरीर प्रारब्ध कर्म के योग से आसन से उठा है, उठ कर वहां स्थित है, या वहां से दूसरी जगह गया है या फिर अपने स्थान पर आया है उस को वह जानता नहीं, क्यों कि वह देह से भिन्न ऐसा अपने स्वरूप को प्राप्त हुआ है।

वसिष्ठ जी भी कहते हैं—

"पार्श्वस्थबोधिताः सन्तःपूर्वाचारक्रमागतम्।
आचारमाचरन्त्येव सुप्तबुद्धवदक्षताः" इति।

अर्थः—जैसे निद्रामें से जगा हुआ पुरुष अपने पूर्ववत व्यवहार करता है, तैसे पार्श्वस्थ (पास के रहने वाले) मनुष्य के जगाने पर योगी पुरुष प्रथम के अपने आचारों के क्रम का अनुसरण कर सब आचारों को करता है।

सिद्धो न पश्यत्याचारमाचरतीत्युभयोः परस्परविरोध इति चेन्न। विश्रान्तितारतम्येन व्यवस्थोपपत्तेः। तदेव तारतम्यमभिप्रेत्य श्रूयते—

"आत्मक्रीड आत्मरतिःक्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः" इति।

अत्र चत्वारः प्रतीयन्ते। ब्रह्मवित्प्रथमः, ब्रह्मविद्वरो द्वितीयः, वरीयांस्तृतीयः, वरिष्ठश्चतुर्थः। त एते सप्तसु योगभूमिषु चतुर्थीं योगभूमिमारभ्य क्रमेण भूमिचतुष्टयं प्राप्ता इत्युपगन्तव्यम्। भूमयश्च वसिष्ठेन दर्शिताः—

अर्थः—शङ्का–पूर्व के श्लोक में कहा है कि योगी अपने शरीर को नहीं देखते और इस श्लोक में यह कहा है कि सोने के बाद उठे हुए पुरुष के समान सब व्यवहारों को करते हैं इस लिये दोनों वाक्य परस्पर विरुद्ध अर्थ को कथन करते हैं।

समाधान—दोनों की विश्रान्ति में तारतम्य होने से कोई विरोध नहीं दीखता। जीवन्मुक्त पुरुष की चित्तविश्रान्ति में तारतम्य है, इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है। 'यह जीवन्मुक्त पुरुष आत्मा में ही क्रीडा करने वाला, आत्मा में ही रमण करने हारा, क्रियावान् और ब्रह्मविद् वरिष्ठ है'।

इस श्रुति के तात्पर्य्य से चार प्रकार के योगी प्रतीत होते हैं। ब्रह्मवित, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरीयान, और ब्रह्मविद् वरिष्ठ। योग की भूमिकाओंमें से चौथी भूमिका से लेकर क्रमशः सातवी भूमिका–में स्थित पुरुषों की यथा क्रम संज्ञा है। यानी ४ थी भूमिका में स्थित का नाम ब्रह्मवित, ५ वीं भूमिका में स्थित का नाम ब्रह्मविद् वर, ६ ठीभूमिका में स्थित का नाम ब्रह्मविद्वरीयान्, और सातवीं भूमिका में स्थित योगी का नाम ब्रह्मविद् वरिष्ठ कहलाते हैं।

७ भूमिकाओं का नाम सहित निरूपण वसिष्ठ जी ने किया है—

"ज्ञानभूमिः शुभेच्छा स्यात् प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया स्यात् तृतीया तनुमानसा॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात् ततोऽसंसक्तिनामिका।
पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगास्मृता"॥
स्थितः किंमूढ एवास्मि प्रेक्षेऽहं शास्त्रसज्जनैः।
वैराग्यपूर्वमिच्छेति शुभेच्छेत्युच्यते बुधैः॥
शास्त्रसज्जनसंपर्कवैराग्याभ्यासपूर्वकम्।
सद्विचारप्रवृत्तिर्या प्रोच्यते सा विचारणा॥

विचारणाशुभेच्छाभ्यामिन्द्रियार्थेष्वसक्तता।
यत्र सा तनुतामेति प्रोच्यते तनुमानसा॥
भूमिकात्रितयाभ्यासाच्चित्तेऽर्थविरतेर्वशात्।
सत्त्वात्मनि स्थिते शुद्धे सत्त्वापत्तिरुदाहृता॥
दशाचतुष्टयाभ्यासादसंसर्गफला तु या।
रूढसत्त्वचमत्कारा प्रोक्ताऽसंसक्तिनामिका॥
भूमिकापञ्चकाभ्यासात् स्वात्मारामतया भृशम्।
आभ्यन्तराणां बाह्यानां पदार्थानामभासनात्॥
परप्रयुक्तेन चिरं प्रयत्नेनावबोधनम्।
पदार्थाभावनी नाम षष्ठी भवति भूमिका॥
भूमिषट्कचिराभ्यासाद्भेदस्यानुपलम्भनात्।
यत्स्वभावैकनिष्ठत्वं सा ज्ञेया तुर्यगा गतिः" इति।

अर्थः—'शुभेच्छा' पहिली भूमिका, विचारणा, दूसरी भूमिका, तनुमानसा तीसरी भूमिका, सत्त्वापत्ति चौथी भूमिका, असंसक्ति पांचवी भूमिका, पदार्थाभावनी छटी भूमिका, और तुरीया सातवी भूमिका है—

इनका क्रम से लक्षण कहते हैं।

मैं मूढ के समान क्या बैठा हूं श्रीमद् गुरु और सत्य शास्त्र की सहायता से मैं अपने स्वरूप को देखूं तो ठीक है। ऐसा वैराग्यादिक साधनों सहित जो इच्छा है, वह शुभेच्छा नाम की प्रथम भूमिका है। गुरु शुशूषा और स्वधर्म में निरत रहती हुई श्रवण मनन में जो प्रवृत्ति वहऽरी विचारणानाम की भूमि का जानो। विचारणा और शुभेच्छा के परिणाम से इन्द्रियां विषयों को ग्रहण न करे उतने मन की सूक्ष्मता होती है, अर्थात् सविकल्प समाधि प्राप्त होती है तब

'तनुमानसा' नाम की तीसरी भूमिका प्राप्त हुई जानो। इन तीन भूमिकाओं के अभ्यास से बाह्य विषयों में अत्यन्त उपराम होने से चित्त की शुद्ध अर्थात् माया और उस के कार्य रहित सत्स्वरूप आत्मा में त्रिपुटी के लय पूर्वक निर्विकल्प समाधि रूप जो स्थिति उस को सत्त्वापत्ति नाम की चौथी अवस्था समझनी। इन चार भूमिकाओं के अभ्यास से बाहरी और भीतरी विषयों के सङ्ग रहित हो समाधि के परिपाक से बढा हुआ परमानन्द स्वरूप ब्रह्म के साक्षात्कार युक्त ऐसी चित्त की अवस्था को 'असंसक्ति' कहते हैं। इन पांच भूमिकाओं के अभ्यास से आत्मा में ही अत्यन्तरति प्राप्त होने से बाहर और भीतर के पदार्थों की प्रतीति नहीं होती है। और दूसरा पुरुष जब उस को अनेक बार जगाने का प्रयत्न करता तब उसे पदार्थों का भान होता है, इस प्रकार की जो अन्तःकरण की अवस्था उस को छटी 'पदार्थाभावनी' नाम की भूमिका कहते हैं। छः हो भूमिकाओं का बहुत समय तक अभ्यास से जब प्रयत्न द्वारा भी भेद प्रतीत न हो, और केवल स्वरूप में ही चित्त स्थिति कर रहता, तब तुरीया नाम की सातवी भूमिका सिद्ध हुई ऐसा समझो।

अत्र भूमिकात्रितयं ब्रह्मविद्यायाः साधनमेव नतु विद्याकोटावन्तर्भवति। भूमित्रये भेदसत्यत्वबुद्धेरनिवारितत्वात्। अतएवैतज्जागरणमिति व्यपदिश्यते। तदुक्तम्—

अर्थः—इन सात भूमिकाओं में पहिली तीन भूमिका यें ब्रह्मविद्या का साधन रूप हैं, परन्तु ब्रह्मविद्या की कोटि में नहीं गिनी जाती क्योंकि तीन भूमिका तक भेद के विषय में स-

स्वप्न बुद्धि नहीं मिटती । इसी से पहिली तीन भूमिकाओं को जाग्रत अवस्था कहते हैं ।

वसिष्ठ मुनि कहते हैं—

"भूमिकात्रितयं त्वेतद्राम ! जाग्रदिति स्थितम् ।
यथावद्भेदबुद्ध्येदं जगज्जाग्रति दृश्यते" इति ।

अर्थः—हे राम ! ये तीन भूमिका जाग्रत अवस्थारूप हैं, यह बात यथार्थ है । क्योंकि यह विश्व, यथा योग्य भेदबुद्धि द्वारा जाग्रत अवस्था में दीखता है ।

ततो वेदान्तवाक्यान्निर्विकल्पको ब्रह्मात्मैक्यसाक्षात्कारश्चतुर्थी भूमिका फलरूपा सत्त्वापत्तिः । चतुर्थभूमौ सर्वजगदुपादानस्य ब्रह्मणो वास्तवमद्वितीयसत्तास्वभावं निश्चित्य ब्रह्मण्यारोपितयोर्जगच्छब्दाभिधेययोर्नामरूपयोर्मिथ्यात्वमवगच्छति । मुमुक्षोः पूर्वोक्तजागरणापेक्षयेयं भूमिः स्वप्नः । तदाह—

अर्थः—इन तीन भूमिकाओं का जय करने पर वेदान्तवाक्य से प्रत्यगात्मा से अभिन्न ब्रह्म का निर्विकल्प साक्षात्कार होना—यह 'सत्त्वापत्ति' नाम की फलरूप चौथी भूमिका है । इस चौथी भूमिका में साधक, सब जगत् का विवर्त उपादान रूप ब्रह्म का वास्तविक अद्वितीय सत्तारूप स्वभाव का निश्चय कर, ब्रह्म में आरोपित 'जगत्' ऐसे नाम से कथन करने से नामरूप का मिथ्यापन ज्ञान होता है । मुमुक्षु को पूर्व कथन किये जाग्रत अवस्था की अपेक्षा से यह भूमिका स्वप्नरूप है ।

वसिष्ठ जी कहते हैं—

"अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते चोपरतिं गते ।

पश्यन्ति स्वप्नवल्लोकं चतुर्थीं भूमिकामिताः ॥
विच्छिन्नशरदभ्रांशविलयं प्रविलीयते ।
स्वस्वेतरं च सन्मात्रं यत्प्रबोधादुपासते ॥
योगिनः सर्वभूतेषु सद्रूपं नौमि तं हरिम् ।
सत्तावशेष एवाऽऽस्ते चतुर्थीं भूमिकामितः" ॥

अर्थः— अद्वैत की स्थिरता प्राप्त होने से और द्वैत की शान्ति से चौथी भूमिका को पहुँचे हुए जो योगिजन जगत् को स्वप्न समान देखते हैं । और जिस को अच्छा होने पर शरद् ऋतु के बादल की गर्जना के समान, आप और आप से अन्य इस प्रकार का भेद मिला जाता है, और जिस से प्राप्त हुए ज्ञान से केवल सद् वस्तु की ही मुमुक्षु उपासना करता है । वे सब प्राणियों में सत्रूप से स्थित योगिगण हरि ही हैं । उसी की मैं स्तुति करता हूं । चतुर्थी भूमिको पहुंचा हुआ योगी, केवल सत्तारूप ही शेष रहता है ।

सोऽयं चतुर्थीं भूमिकां प्राप्तो योगी ब्रह्मविदित्युच्यते । पञ्चम्यादयस्तिस्रो भूमयो जीवन्मुक्तेरवान्तरभेदाः । ते च निर्विकल्पसमाध्यभ्यासबलेन विश्रान्तितारतम्येन संपद्यन्ते ।

अर्थः—इस चतुर्थी भूमिका को प्राप्त हुआ योगी 'ब्रह्मविद' कहलाता है । पांचवी, छठी, और सातवीं, भूमिका जीवन्मुक्ति के अवान्तर भेद हैं । यह भेद, निर्विकल्प समाधि के बल से हुई विश्रान्ति की न्यूनाधिकता के कारण होता है ।

पञ्चमभूमौ निर्विकल्पकात्स्वयमेव व्युत्तिष्ठति । सोऽयं योगी ब्रह्मविद्वरः । षष्ठभूमौ पार्श्वस्थैर्बोधितो व्युत्तिष्ठति । सोऽयं ब्रह्म-

विद्वरीयान् । तदेतद्भूमिद्वयं सुषुप्तिर्गाढ-सुषुप्तिरिति चाभिधीयते । तदाह—

अर्थः—पांचवी भूमिका में स्थित योगी, निर्विकल्प, समाधि में से स्वयं जागता है यह योगी ब्रह्मविद् वर कहलाता है। छठी भूमिका में स्थित योगी, निकट वासियों के जगाने पर जागता है। इस योगी का नाम ब्रह्मविद् वरीयान् है। इन दोनों भूमिकाओं को क्रम से पांचवी को सुषुप्ति और छठी को गाढ सुषुप्ति कहते हैं। सो कहते हैं—

"पञ्चमीं भूमिकामेत्य सुषुप्तिपदनामिकाम् ।
शान्ताशेषविशेषांशस्तिष्ठत्यद्वैतमात्रके ॥
अन्तर्मुखतया नित्यं बहिर्वृत्तिपरोऽपि तत् ।
परिश्रान्ततया नित्यं निद्रालुरिव लक्ष्यते ॥
कुर्वन्नभ्यासमेतस्यां भूमिकायां विवासनः ।
षष्ठीं गाढसुषुप्त्याख्यां क्रमात्पतति भूमिकाम् ॥
यत्र नासन्न सद्रूपोनाहं नाप्यनहंकृतिः ।
केवलं क्षीणमनन आस्ते द्वैतैक्यनिर्गतः ॥
अद्वैतं केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति केचन ।
समं ब्रह्म न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥
अन्तःशून्योबहिः शून्यः शून्य कुम्भ इवाम्बरे ।
अन्तःपूर्णोबहिः पूर्णःपूर्णकुम्भ इवार्णवे" इति ।

अर्थः—सुषुप्ति पद नाम की पांचवी भूमिका को पाकर जिस को सब भेद रूप अंश निवृत्त हुए हैं, ऐसा पुरुष, केवल अद्वैत स्वरूप में स्थिति कर रहता है । वह बाह्यवृत्तियों से व्यवहार करता हुआ भी सदा अन्तर्मुख होने से थक गया हो ऐसा नित्यनिद्रालु के समान जान पडता है । इस भूमिका के

अभ्यास करने से वासना रहित हो वह योगी, क्रम से गाढ सुषुप्ति नाम की भूमिका को पाता है । जिस में वह सत् रूप नहीं, असत् रूप नहीं अहंकार युक्त नहीं उसी तरह अहंकार रहित नहीं । केवल मनन रहित ऐसा वह पुरुष द्वैत और एकता (अद्वैत) से अलग हो रहता है । कई एक द्वैत की इच्छा करते, बहुत से अद्वैत की इच्छा करते हैं । परन्तु सर्वत्र सम ब्रह्म जो द्वैत और अद्वैत दोनों से रहित है, उस को नहीं जानते । आकाश में खाली घडा के समान वह अन्तः और बाह्य शून्य है, जैसे समुद्र में भरे हुए घडे के समान बाहर, भीतर पूर्ण है ।

गाढं निर्विकल्पसमाधिं प्राप्तस्य संस्कारमात्रशेषस्य चित्तस्य मनोराज्यं कर्त्तुं बाह्यपदार्थान् ग्रहीतुं वा सामर्थ्याभावादाकाशावस्थितकुम्भवदन्तर्बहिःशून्यत्वम् । स्वयंप्रकाशसचिदानन्दैकरसे ब्रह्मणि निमग्नत्वेन समुद्रमध्यस्थापितजलपूर्णकुम्भवदन्तर्बहिःपूर्णत्वम् । तुरीयाभिधां सप्तमीं भूमिं प्राप्तस्य योगिनः स्वतः परतो वा व्युत्थानमेव नास्ति । ईदृशमेवोद्दिश्य-"देहं विनश्वरमवस्थितमुत्थितं वा"-इत्यादि भागवतवाक्यं प्रवृत्तम् । असंप्रज्ञातसमाधिप्रतिपादकानि योगशास्त्राण्यत्रैव पर्यवसितानि । सोऽयमीदृशो योगी पूर्वोदाहृतश्रुतौ ब्रह्मविद्वरिष्ठ इत्युच्यते । तदेवं पार्श्वस्थबोधितः सिद्धो न पश्यतीत्यन-

योर्भूमिविषयेन व्यवस्थितत्वान्न कोऽपि विरोधः।

अर्थः—गाढ निर्विकल्प समाधि को प्राप्त हुआ, केवल संस्काररूप से शेष रहे चित्त का मनो राज्य करने या बाहर के पदार्थों को ग्रहण करने के लिये सामर्थ्य न होने से वह आकाश में रक्खे घडे के समान बाहर और भीतर खाली है। उसी तरह स्वयं प्रकाश सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म में मन निमग्न होने से और बाहर भी सर्वत्र तुल्य दृष्टि द्वारा, समुद्र के बीच में स्थापित पानी से भरे घडे के समान उसके मन की बाहर और भीतर पूर्णता है। तुरीया नाम की सातवी भूमिका को पहुंचे योगी को स्वयं या अन्य के प्रयत्न द्वारा उत्थान ही नहीं। ऐसे योगी को सङ्केत कर 'देहं च' इत्यादि भागवत का वाक्य प्रवृत्त हुआ। असंप्रज्ञात समाधि का प्रतिपादक योग शास्त्र का, इस भूमिका में ही पर्यवसान है। ऐसे योगी को पूर्वोक्त श्रुति ने ब्रह्मविद् वरिष्ठ कहा है। इस भांति 'पार्श्वस्थ' यह वचन और सिद्धो न यह वचन क्रम से छठी और सातवी भूमिका में स्थित योगी के स्वरूप का बोधक है। इस लिये दोनों वचनों में परस्पर विरोध नहीं है।

तत्रायं संग्रहः। पञ्चम्यादिभूमित्रयरूपाया जीवन्मुक्तौ सम्पाद्यमानायां द्वैतप्रतिभासाभावेन संशयविपर्ययप्रसङ्गाभावादुत्पन्नं तत्त्वज्ञानमबाधेन रक्षितं भवति। सेयं ज्ञानरक्षा जीवन्मुक्तेः प्रथमं प्रयोजनम्।

अर्थः—उपसंहार–५ वी, ६ वी, ७ वी, भूमिकारूप जीवन्मुक्ति को सम्पादन करने से संशय और विपर्यय का प्रसङ्ग नहीं आता इससे तत्त्वज्ञान की निर्बाधता की रक्षा होती है।

ज्ञान रक्षा यह जीवन्मुक्ति का प्रथम प्रयोजन है।

तपो द्वितीयं प्रयोजनम्। योगभूमीनां देवत्वादिप्राप्तिहेतुतया तपस्त्वं द्रष्टव्यम्। तद्धेतुत्वं चार्जुनभगवतोः श्रीरामवसिष्ठयोश्च प्रश्नोत्तराभ्यामवगम्यते।

अर्जुन उवाच—

अर्थः—जीवन्मुक्ति का दूसरा प्रयोजन तप है। योगभूमिकायें देव आदि योनि की प्राप्ति का कारण हैं, इस लिये वह तप रूप है।

इन का तप होना अर्जुन और भगवान् कृष्ण के उसी तरह श्रीराम और वसिष्ठ के सम्वाद से जान पडता है।

अर्जुन बोले—

"अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण? गच्छति॥
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥
एतन्मे संशयं कृष्ण? च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य च्छेत्ता नह्युपपद्यते॥

भगवानुवाच—

अर्थः—हे कृष्ण? मनोवृत्ति को स्वाधीन न करने हारा, श्रद्धा युक्त, योग से चल चित्त पुरुष योग की सिद्धि को न पाकर किस गति को जाता है। क्या वह योगी कर्म मार्ग और योगमार्ग से भ्रष्ट हुआ, निराधार ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग में अज्ञ, वायु से घेरे हुए मेघ की नाईं नष्ट हो जाता है, या, हे महाबाहो! नहीं नष्ट होता है?। हे कृष्ण! इस सारे संशय को तुम

दूर करने के योग्य हो। तुम से दूसरा कोई इस संशय को दूर करने वाला नहीं दीखता। इस पर श्रीकृष्णजी बोले—

पार्थ ! नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात ? गच्छति॥
प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो ऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ?" इति॥

अर्थः—हे पार्थ ! इस लोक या परलोक में योगभ्रष्ट पुरुष का नाश नहीं है। क्योंकि हे तात ! शुभ कर्म करने वाला कोई बुरीगति को नहीं पाता। योग भ्रष्ट पुरुष, पुण्य करने वालों के लोक को पाकर वहां अनेक वर्ष निवास कर, अति पवित्र ऐसे जो लक्ष्मी वान् उन के घर में उत्पन्न होता है। या वह बडे बुद्धिमान् ऐसे योगियों के ही घर में जन्मता है। ऐसा जन्म पाना लोक में बहुत ही कठिन। हे कुरुनन्दन ! यह योगियों के कुल में उत्पन्न हो, पहिले देह से अभ्यास किये हुए बुद्धि संयोग अर्थात् आत्मज्ञान को पाता है और अधिकता से सिद्धि के लिये यत्न करता है।

श्रीराम उवाच—

"एकामथ द्वितीयां वा तृतीयां भूमिकामुत।
आरूढस्य मृतस्याथ कीदृशी भगवन् ! गतिः" ॥

अर्थः—श्रीरामजी बोले हे भगवन् ? पहिली, दूसरी, या तीसरी भूमिका में आरूढ हुए पुरुष को मरने पर कैसी गति होती है।

"योगभूमिकयोत्क्रान्तजीवितस्य शरीरिणः।
भूमिकांशानुसारेण क्षीयते पूर्वदुष्कृतम्॥
ततः सुरविमानेषु लोकपालपुरेषु च।
मेरूपवनकुञ्जेषु रमते रमणीसखः॥
ततः सुकृतसम्भारे दुष्कृते च पुराकृते।
भोगक्षयपरिक्षीणे जायन्ते योगिनो भुवि॥
शुचीनां श्रीमतां गेहे गुप्ते गुणवतां सताम्।
तत्र प्राग्भावनाभ्यस्तं योगभूमित्रयं बुधः॥
स्पृष्ट्वोपरिपतत्युच्चैरुत्तरं भूमिकाक्रमम्" इति॥

अर्थः—योग भूमिका का अभ्यास जिस क्रम से किया होता, उसी के अनुसार पूर्व का पाप क्षय हो जाता है। उसके बाद वह अप्सरा सहित, देवता के विमान पर बैठ कर, लोकपाल के नगर में और मेरु पर्वत पर, उपवनों की घटाओं में क्रीडा करता है। उस के बाद भोग के क्षय द्वारा पूर्व के पुण्य का सञ्चय और पापके क्षय होने से पवित्र, गुणवान्, और लक्ष्मीवान् सत्पुरुषों के सुरक्षित घरमें वह योगी जन्म ग्रहण करता है। तहां पूर्व जन्म कृत अभ्यास से तीन भूमिकाओं का स्पर्श कर ऊपर की उत्तम भूमिका का यत्न से अभ्यास करता है।

अस्त्येवं योगभूमीनां देवलोकप्राप्तिहेतुत्वम्
तावता तपस्त्वं कुत इति चेच्छ्रुतेरिति ब्रूमः॥

अर्थः—शङ्का—इस प्रमाण से भूमिकायें देव लोक की प्राप्ति का कारण हैं, यह बात ठीक है, परन्तु वह तप रूप है, इस में क्या प्रमाण है ?

तथाच तैत्तिरीया आमनन्ति—"तपसा देवा देवतामग्र आयन्, तपसर्षयः सुवरन्वविन्दन्" इति।

अर्थः—उत्तर, वह तप रूप है, इस में श्रुति का प्रमाण है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है कि—"पूर्व देव गण तप द्वारा देवभाव को पाये और ऋषियों ने तप द्वारा स्वर्ग को पाया।

तत्त्वज्ञानात्प्राचीनस्य भूमिकात्रयस्य तपस्त्वे सति तत्त्वज्ञानस्योत्तरकालीनस्य निर्विकल्पसमाधिरूपस्य पञ्चम्यादिभूमिकात्रयस्य तपस्त्वं कैमुतिकन्यायसिद्धम्। अतएव स्मर्यते।

अर्थः—तत्त्वज्ञान होने के पहिले की भूमिका जब तपरूप है, तब तत्त्वज्ञान हुए पीछे निर्विकल्प समाधि रूप पञ्चमी, छठी और सप्तमी भूमिका तपरूप हो, इस में क्या ही कहना है? इसी लिये स्मृति वाक्य है।

"मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमन्तपः।
तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः सधर्मः पर उच्यते" इति॥

अर्थः—मन और इन्द्रियों की एकाग्रता यह परम तप है। यह तप सब धर्मों से श्रेष्ठ है और वह परम धर्म रूप है।

यद्यप्यनेन न्यायेन तपसा प्राप्यं जन्मान्तरं नास्ति तथाऽपि लोकसंग्रहार्थेदं तप उच्यते। अत एव भगवानाह—

"लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि" इति। संग्राह्यश्च लोकस्त्रिविधः। शिष्योभक्तस्तटस्थश्चेति। तत्र शिष्यस्यान्तर्मुखे योगिनि गुरौ प्रामाणिकबुद्ध्यतिशयेन तदुपदिष्टे तत्त्वे परमं विश्वासं प्राप्य चित्तं सहसा विश्राम्यति। अत एव श्रूयते—

अर्थः—यद्यपि इस न्यायसे तप द्वारा पाने योग्य जन्मान्तर नहीं, तथापि लोक संग्रह के लिये एकाग्रता को तप कहते हैं। इसी अभिप्राय से भगवद्गीतामें कहा है—

"लोक संग्रह को देखता हुआ तू कर्म करने योग्य है"। संग्राह्य अर्थात् विपरीत मार्ग से रोक कर सन्मार्ग में प्रवृत्ति कराने योग्य लोक तीन प्रकार का है। शिष्य, भक्त, और तटस्थ। तहां शिष्यकी अपनी अन्तर्मुख वृत्ति वाले सद्गुरु में अतिशय प्रामाणिकता की बुद्धि होने से गुरूपदिष्ट तत्त्व में परम विश्वास पाकर उनके शिष्य का चित्त सहसा विश्रान्ति को प्राप्त होता है।

श्रुति भी कहती है—

"यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथागुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः" इति।

अर्थः—जिस को देव अर्थात् ईश्वर में परम भक्ति होती, है, वैसी ही गुरु के विषय में होती है उस महात्मा को यह कहा हुआ अर्थ प्रकाशित होता है।

स्मृति भी कहती है—

"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति"
इति।

अर्थः—श्रद्धावाला, इन्द्रियों को वश करने हारा, और श्रीसद्गुरु की सेवा में परायण पुरुष ज्ञान को पाता है। ज्ञान प्राप्त कर थोडे काल में परम शान्ति पाता है।

अन्नप्रदाननिवासस्थानकल्पनादिना योगिनं सेवमानो भक्तस्तदीयं तपः स्वयमेवाऽऽदत्ते। तथा च श्रूयते—

अर्थः—अन्न देने के लिये, रहने का स्थान देने के लिये, इत्यादि द्वारा योगी को सेवन करता हुआ उसका भक्त योगी के तप को स्वयं ग्रहण करता है। श्रुति भी कहती है—

"तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्" इति। तटस्थोऽपि द्विविधः-आस्तिको नास्तिकश्च। तत्राऽऽस्तिको योगिनः सन्मार्गाचरणं दृष्ट्वा स्वयमपि सन्मार्गे प्रवर्तते। तथा च स्मृतिः—

अर्थः—उस का (योगी का) हक पुत्र या शिष्य, उस का सुहृद उस के पुण्य को, और उस का द्वेषी उस के पाप का ग्रहण करते हैं। तटस्थ भी दो प्रकार का है, एक आस्तिक और दूसरा नास्तिक। तिन में नास्तिक योगी को सन्मार्ग से आचरण करते देख कर स्वयं भी सन्मार्ग में होता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी लिखा है—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" इति।
नास्तिकोऽपि योगिना दृष्टः पापान्मुच्यते।

अर्थः—श्रेष्ठ पुरुष जो २ आचरण करता, इतर लोग भी वही २ आचरण करते है। और जिस २ को वह प्रमाण मानता लोग भी उसी २ को प्रमाण मानता है। नास्तिक पुरुष भी योगी की दृष्टि पडने से पाप से छूट जाता है। कहा है—

"यस्यानुभवपर्यन्ता तत्त्वे बुद्धिःप्रवर्तते।
तद्दृष्टिगोचराः सर्वे मुच्यन्ते सर्वपातकैः"
इति। अनेन प्रकारेण सर्वप्राण्युपकारित्वं योगिनो विवक्षित्वा पठ्यते—

अर्थः—जिस की साक्षात्कार होने तक, तत्त्व के विषय में बुद्धि की प्रवृत्ति होती है, उस की दृष्टि जिन प्राणियों पर पड़ती है-वे सब ही, पाप से छूट जाते हैं। इस भांति योगी सब प्राणियों का उपकारी हैं।

इस अभिप्राय से आगे श्लोक कहते हैं—

"स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले सर्वाऽपि दत्ता
ऽवनिर्यज्ञानां च सहस्रमिष्टमखिला देवाश्च
संपूजिताः।
संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्यो-
ऽप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं
मनः प्राप्नुयात्॥
कुलं पवित्रं जननी कृतार्था
विश्वंभरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मि
ल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः" इति।

अर्थः—जिस का मन, क्षणमात्र भी विचार में स्थिरता को प्राप्त हो, उसने सर्वतीर्थों में स्नान किया, सारी वसुन्धरा का दान-दिया, हजार यज्ञों का अनुष्ठान किया, सब देवताओं का पूजन किया, संसार से अपने पितरों का उद्धार किया और तीनों लोकों का भी पूज्य वही पुरुष है। अपार ज्ञान और सुख के सागर स्वरूप इस ब्रह्म में जिसका चित्त लीन होता है, उस का कुल पवित्र है, उस की माता कृतार्थ है, और पृथिवी उस पुरुष द्वारा पुण्य वाली है।

न केवलं योगिनः शास्त्रीयव्यवहारस्यैव तप-

स्वं, किन्तु सर्वस्यैव लौकिकव्यवहारस्यापि। तथा च तैत्तिरीयाः स्वशाखायां नारायणस्यान्तिमेनानुवाकेन विदुषोऽपि महिमानमामनन्ति। तस्मिश्चानुवाके पूर्वभागे योगिनोऽवयवा यज्ञाङ्गद्रव्यत्वेनाऽऽम्नाताः—

अर्थः—योगी का केवल शास्त्रीय व्यवहारही तपरूप नहीं, किन्तु सब लौकिक व्यवहार भी तपरूप है। तैत्तिरीयशाखा पढने वाले ने अपनी शाखा मे नारायण उपनिषद् के आखिरी अनुवाक द्वारा विद्वानों की इस महिमा कही है। इस अनुवाक के पूर्व भाग में योगी का अवयव, यज्ञ का अङ्गभूत द्रव्यरूप कहा है—

"तस्यैवं विदुषो यज्ञस्याऽऽत्मा यजमानः श्रद्धा पत्नी शरीरमिध्ममुरो वेदिर्लोमानि बर्हिर्वेदः शिखा हृदयं यूपः काम आज्यं मन्युः पशुस्तपोऽग्निर्दमः शमयिता दक्षिणा वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युर्मनो ब्रह्मा श्रोत्रमग्नीत्" इति॥

अत्र च दानं दक्षिणेति दान पदमध्याहर्तव्यम्।

अर्थः—इस प्रकार जानने हारा पुरुष रूप यज्ञका आत्मा यजमान है। श्रद्धा पत्नी है। शरीर समिध है। वक्षस्थल वेदि है। लोम दर्भ है। शिखा वेद है। हृदय यूप (यज्ञस्तंभ) है। काम घृत है। क्रोध पशु है। तप अग्नि है। दम शमयिता नाम का पशू का मारने वाला पुरुष है। वाणी होता है। प्राण उद्गाता है। नेत्र अध्वर्यु है। मन ब्रह्मा है। श्रोत्र आग्नीध्र है। इस में दान यह दक्षिणा है, ऐसा अध्याहार करना चाहिये। क्योंकि—

"अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः" इति छन्दोगैराम्नातत्वात्। उक्तानुवाकमध्यमभागेन योगिव्यवहारास्तज्जीवनकालाश्च ज्योतिष्टोमावयवक्रियारूपत्वेनोत्तरसर्वयज्ञावयवक्रियारूपत्वेन चाऽऽम्नाताः।

अर्थः—सामवेदीय 'जो उस का तप, दान आर्जव, अहिंसा, और सत्य वचन है, ये सब उसकी दक्षिणा रूप है'–ऐसा कथन करते हैं, उपर ले अनुवाक में मध्य भाग से योगी का व्यवहार और उसका जीवन काल ज्योतिष्टोम यज्ञ के अवयव रूप क्रिया रूप से और उस से पीछे के सब यज्ञों के अवयव रूप क्रिया रूप से भी कथन किया है।

"यावद्ध्रियते सा दीक्षा यदश्नाति तद्धविर्यत् पिबति तदस्य सोमपानं यद्रमते तदुपसदो यत् संचरत्युपविशत्युत्तिष्ठते च स प्रवर्ग्यो यन्मुखं तदाहवनीयो या व्याहृतिराहुतिर्यदस्य विज्ञानं तज्जुहोति यत्सायं प्रातरत्ति तत् समिधं यत्प्रातर्मध्यंदिनꣳ सायं च तानि सवनानि ये अहोरात्रे ते दर्शपूर्णमासौ येऽर्धमासाश्च मासाश्च ते चातुर्मास्यानि य ऋतवस्ते पशुबन्धा ये संवत्सराश्च परिवत्सराश्च तेऽहर्गणाः सर्ववेदसं वा एतत्सत्रं यन्मरणं तदवभृथ" इति।

अर्थः—जब तक योगी जीता तब तक उस की दीक्षा है, जो वह भोजन करता वह उस का हविष है, जो पीता वह उस का सोमपान है, जो व्यवहार करता वह उस का उपसद है,

जो फिरता, बैठता है और उठता है वह प्रवर्ग्य है, जो मुख वह आहवनीय है । जो बोलता है वह आहुति है, जो उसका ज्ञान है वह होम है, जो साम सुबह भोजन करता है, वह होम की लकडी हैं, जो उस के प्रातःकाल मध्यान्ह, और सायं काल हैं, वे सवन रूप है, जो रात दिन है वह दर्श पूर्णमास याग है, जो पक्ष और मास है वह चातुर्मास्य (याग) है, जो ऋतु है, वे पशुबन्ध है जो संवत्सर और परिवत्सर है, वह अहर्गण है, जिस में सर्वस्व दक्षिणा है, ऐसा, यह "आयुष्य सत्त्र" है, जो योगी का मरण है, वह अवभृथ स्नान है ।

सर्ववेदसं-सर्वस्वदाक्षिणाकम् । अत्रैतच्छब्देन प्रकृताहोरात्रादि परिवत्सरान्तं सर्वकाल-समष्ट्युपलक्षितं योगिन आयुर्विवक्ष्यते । यदायुस्तत् सर्वस्वदाक्षिणोपेतं सत्त्रमित्यर्थः । उत्तरानुवाके चरमभागेन सर्वयज्ञात्मकं यो-गिनमुदासीनस्य क्रममुक्तिरूपं सूर्याचन्द्रमसोः कार्यकारणब्रह्मणोस्तादात्म्यलक्षणं फलमा म्नायते ।

अर्थः—उपर के अनुवाक में 'एतत्' (यह) शब्द द्वारा, अहोरात्र से लेकर वह परिवत्सर तक सब काल के समूह से द्वारा उपलक्षित योगी की आयु विवक्षित हैं । जो कि उस की सारी आयु है, वह सर्वदक्षिणायुक्त सत्त्ररूप है, ऐसा अर्थ समझना, उत्तर अनुवाक में अन्तिम भाग द्वारा, सब यज्ञस्वरूप योगी को कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्मरूप सूर्य चन्द्रका अभेद रूप क्रम मुक्ति नाम का जो फल मिलता, उस का निरूपण किया है।

"एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रं सत्त्रं य एवं विद्वान्

उदगयने प्रमीयते देवानामेव महिमानं ग-त्वाऽऽदित्यस्य सायुज्यं गच्छत्यथ यो द-क्षिणे प्रमीयते पितृणामेव महिमानं गत्वा चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नोत्येतौ वै सूर्याचन्द्रमसोर्महिमानौ ब्राह्मणो विद्वान-भिजयति तस्माद्ब्रह्मणो महिमानमाप्नोति तस्माद्ब्रह्मणो महिमानमित्युपनिषत्" इति । जरामरणावधिकं यद्योगिचरितमस्ति तद्वेदो-क्ताग्निहोत्रादिसंवत्सरसत्रान्तं कर्मस्वरूप-मित्येवं मुपासीनो भावनातिशयेन सूर्या-चन्द्रमसोः सायुज्यं तादात्म्यं प्राप्नोति । भावनामान्द्येन समानलोकं प्राप्य तस्मिंल्लोके सूर्याचन्द्रमसोर्विभूतिमनुभूय तत ऊर्ध्वं सत्यलोके चतुर्मुखस्य ब्रह्मणो महिमानं कै-वल्यमाप्नोति । इत्युपनिषदित्यनेन यथोक्त-विद्यायास्तत्प्रतिपादकग्रन्थस्य चोपसंहारः क्रियते ।

तदेवं जीवन्मुक्तेस्तपो रूपं द्वितीयंप्रयोजनं सिद्धम् ।

अर्थः—जरा मरण पर्यन्त जो योगी का चरित्र है, वह अग्निहोत्र से लेकर सम्वत्सर सत्र तक कर्म स्वरूप है। इस प्रकार से उपासना करने वाला जो उत्तरायण या दाक्षिणायन में मरता है तो देव या पितृओं की महिमा को पाकर अपनी भावना की दृढता के कारण सूर्यचन्द्र के साथ एक रूपता को पाता है । उस लोक में वह विद्वान् ब्राह्मण सूर्यचन्द्र की विभूति को अनुभव करता है । वह पीछे चतुर्मुख ब्रह्मा की महिमा को पाता है । तहां

उस को तत्त्व ज्ञान उत्पन्न होता है । उस के बाद सच्चिदानन्द स्वरूप पर ब्रह्म की कैवल्य रूप महिमा को प्राप्त होता है । 'इत्युपनिषद्'–यह वचन पूर्वोक्त विद्या को प्रति पादन करने हारा ग्रन्थ की समाप्ति सूचित करता है । इस भांति जीवन्मुक्ति का तप रूप दूसरा प्रयोजन सिद्ध हुआ ।

विसंवादाभावस्तस्यास्तृतीयं प्रयोजनम् ।

न खल्वन्तर्मुखे बाह्यव्यवहारमपश्यति योगीश्वरे लौकिक स्तैर्थिको वा कश्चिद्विसंवदते। विसंवादो द्विविधः । कलहरूपो निन्दारूपश्च । तत्र क्रोधादिरहितेन योगिना सह कथं नाम लौकिकः कलहायते । तद्राहित्यं च स्मर्यते ।

अर्थः—विवाद का अभाव यह जीवन्मुक्ति का तीसरा प्रयोजन है । योगी या जो अन्तर्मुख होने से बाह्य व्यवहार को नहीं देखता, उस के साथ कोई लौकिक मनुष्य या साम्प्रदायिक मनुष्य विवाद नहीं करता । कलह रूप और निन्दारूप इस भांति दो प्रकार का विवाद है। तिस में क्रोधादि रहित योगी के साथ लौकिक मनुष्य क्यों कर कलह करता है ? नहीं करता हैं। योगी क्रोधादिक दोष रहित होता है ऐसा स्मृति कहती है ।

"क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कश्चन" ।

अर्थः—कोई क्रोध करे, तो उस पर क्रोध न करे, कोई निन्दा करे तो भी 'तुम्हारा कुशल हो' ऐसा कहे । अत्यन्त बोले तो क्षमा करे, और किसी का अपमान न करे ।

ननु जीवन्मुक्तेः प्राचीनो विद्वत्सन्न्यासस्ततोऽपि प्राचीनं तत्त्वज्ञानं तस्मादपि प्राचीनो विविदिषासन्यासः । अत्रैते क्रोधादिराहित्यादयोधर्माः कथं स्मृता इति चेत् ।

अर्थः—शङ्का—विद्वत्सन्यास, जीवन्मुक्ति के पूर्व है, उस के पहिले तत्त्वज्ञान है, और उस के भी पहिले विविदिषा संन्यास है । इस विविदिषा संन्यास में ही क्रोध आदिक त्याग करना चाहिये तो जीवन्मुक्ति दशा में क्रोधादिक रहित होना इत्यादि धर्म स्मृति में किस लिये कहा ? ।

बाढम् । अत एव जीवन्मुक्तस्य क्रोधादयः शङ्कितुमशक्याः । अत्यर्वाचीने पदे विविदिषासंन्यासेऽपि यदा क्रोधादयो न सन्ति तदोत्तमपदे तत्त्वज्ञाने कुतस्ते स्युः, कुतस्तरां च विद्वत्संन्यासे, कुतस्तमां च जीवन्मुक्तौ, अतो न योगिना सह लौकिकस्य कलहः सम्भवति । नापि निन्दारूपो विसंवादः शङ्कनीयः। निन्द्यस्यानिश्चितत्वात् । तथा च स्मर्यते ।

अर्थः—उत्तर—तुम्हारा कहना ठीक है इसी लिये जीवन्मुक्ति की हालत मे तो क्रोधादि की शङ्का भी करनी योग्य नहीं । जब सब से पहिले विविदिषा संन्यास में ही क्रोधादि नहीं होता तब उत्तम पद तत्त्वज्ञान प्राप्त होने पर वे कहां से हो ? और विद्वत्सन्यास में तो सम्भव ही नहीं । और जीवन्मुक्ति में तो अत्यन्त असम्भव है । इस लिये योगी के साथ लौकिक मनुष्य का कलह सम्भव नहीं । तैसे निन्दारूप विवाद की भी शङ्का न करनी चाहिये ।

स्मृति कहती है कि—

"यत्र सन्तं न चासन्तं नाऽश्रुतं न बहु श्रुतम् ।
न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स वै यतिः" इति ।
सदसत्त्वे उत्तमाधमजाती । तैर्थिकोऽपि किं शास्त्रप्रमेये विसंवदते किं वा योगिचरिते । आद्ये न तावद्योगी परशास्त्रप्रमेयं दूषयति ।

अर्थः—जिस को कोई उत्तम या अधम जाति ऐसा नहीं जानता, वैसे मूर्ख या विद्वान् नहीं जानता और सदाचारी या दुराचारी नहीं जानता वह यति है ।
साम्प्रदायिक पुरुष भी क्या शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय में विवाद करते हैं ? या योगी के चरित के सम्बन्ध में झगड बैठते हैं ? साम्प्रदायिक पुरुष तो उस के साथ विवाद करते नहीं, क्यों कि योगी किसी शास्त्र का प्रमेय (प्रतिपाद्य) को दूषण नहीं देता नहीं । क्योंकि—

"तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ । नानुध्यायाद् बहूञ्शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तत्" इत्यादि श्रुत्यनुरोधात् । नापि स्वशास्त्रप्रमेयं प्रतिवादिनोऽग्रे समर्थयते ।

अर्थः—"उस एक आत्मा को ही जाने अन्य बात को छोड देवे । बहुत शब्दों का चिन्तन न करे, क्योंकि वह वाणी को परिश्रम देना मात्र है" । वैसे वह अपने शास्त्र के सिद्धान्त को दूसरे के सामने सिद्ध नहीं करता । क्योंकि—

"पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रन्थमशेषतः ।
परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत्"

इत्यादिश्रुत्यर्थपरत्वात् । यदा प्रतिवादिनमपि स्वात्मतया वीक्षते तदा विजिगीषायाः का कथा । नापि लोकायतिकव्यतिरिक्तः सर्वोऽपि तैर्थिको मोक्षमङ्गीकुर्वन्योगिचरितेऽपि विसंवदितुमर्हति। आर्हतकापालिकबौद्धवैशेषिकनैयायिकशैववैष्णवसांख्ययोगादिमोक्षशास्त्रेषु प्रतिपाद्यप्रमेयस्य नानाविधत्वेऽपि मोक्षसाधनस्य यमनियमाद्यष्टाङ्गयोगस्यैकविधत्वात् । तस्मादविसंवादेन सर्वसंमतो योगीश्वरः । एतदेवाभिप्रेत्य वसिष्ठ आह ।

अर्थः—जैसे धान्य का प्रयोजन वाला धान्य को निकाल कर उस के भूसी को छोड देता वैसे सारे ग्रन्थों को छोड देवे । परम ब्रह्म को जानने पर उसी के समान उन का त्याग करे ।

इस श्रुति के अर्थ में वह तत्पर होता है, जब प्रति वादी को भी अपने आत्मा रूप देखता है तब जीतने की इच्छा की तो बात ही क्या कहनी ? केवल लोकायतिक (चार्वाक के सिवाय सब साम्प्रदायिक पुरुष योगी के चरित्र में विवाद करने योग्य नहीं । क्योंकि आर्हत, बौद्ध, वैशेषिक, नैयायिक, शैव, वैष्णव शाक्त और सांख्य योगादिकों के मोक्ष शास्त्र में प्रमेय का भेद होने पर भी मोक्ष का साधक जो यम नियमादि अष्टाङ्ग योग का अनुष्ठान, है, वह सब सम्प्रदायों में एक ही प्रकार का होता है । इस भांति योगी के साथ किसी को भी विचार न होने से योगीश्वर सब को संमत है ।

"यस्येदं जन्म पाश्चात्यन्तमाश्वेव महामते !।

विशन्ति विद्या विमला मुक्ता वेणुमिवोत्तमम्॥
आर्यता हृद्यता मैत्री सौम्यता मुक्तताज्ञता ।
समाश्रयन्ति तं नित्यमन्तःपुरमिवाङ्गनाः ॥
पेशलाचारमधुरं सर्वे वाञ्छन्ति तं जनाः ।
वेणुं मधुरनिध्वानं वने वनमृगा इव ॥
सुषुप्तवच्छमितभाववृत्तिना
स्थितः सदा जाग्रति येन चेतसा ॥
कलान्वितो विधुरिव यः सदा बुधैर्निषेव्यते
मुक्त इतीह स स्मृतः" इति ।

अर्थः—हे महामते ! जिस का, यह अन्तिम जन्म होता है, उस में जैसे उत्तम बांस में मोती होती है वैसे सब निर्मल विद्यायें प्रवेश कर रहती हैं । जैसे स्त्रियां आकर हवेली में रहती हैं वैसे, आर्यपन, मनोहरता, मित्रता, सौम्यता, मुक्तपन, और ज्ञानीपन उस को सदा आश्रय कर रहती है । जैसे वांसुरी की सुरीली आवाज को वन में वसने हारे मृग सुनने इच्छा करते तैसे उत्तम आचरणों से प्रिय उस योगी को सब लोग चाहते हैं । सुषुप्ति में स्थित पुरुष के समान जिस की विषयाकार वृत्ति शान्त होने पर भी जो सदा चित्त से जाग्रद् अवस्था में स्थित है, और कलावान् चन्द्रमा की जैसे लोक सेवा करता है, तैसे जिस को विद्वान् सेवा करता वह इस संसार में मुक्त कहलाता है ।

"मातरीव शमं यान्ति विषमाणि मृदूनि च ।
विश्वासमिह भूतानि सर्वाणि शमशालिभिः ॥
तपस्विषु बहुज्ञेषु याजकेषु नृपेषु च ।
बलवत्सु गुणाढ्येषु शमवानेव राजते" इति ।

तदेवमबाधं जीवन्मुक्तेर्विसंवादाभावरूपं तृतीयं प्रयोजनं सिद्धम् ।

दुःखनाशसुखाविर्भावरूपे चतुर्थपञ्चमप्रयोजने विद्यानन्दात्मकेन ब्रह्मानन्दगतेन चतुर्थाध्यायेन निरूपिते । तदुभयमत्र सङ्क्षिप्योच्यते ।

अर्थः—शान्ति शील पुरुष में सब मृदु और विषमभूत माता मे जैसे शान्ति पाता है वैसे शान्ति पाता है, और विश्वास करता है । तपस्विओं में, बहुत जानने वालों में, याजकों में, राजाओं में, बलवानों में और गुणवानों में शान्तिशील पुरुष ही शोभता है ।

इस भांति निर्बाध पन विवाद का अभाव रूप जीवन्मुक्ति का तीसरा प्रयोजन सिद्ध हुआ । चौथा, पांचवा, प्रयोजन का निरूपण, ब्रह्मानन्दान्तर्गत विद्यानन्द नामक चौथे अध्याय में पञ्चदशी में किया है । ये दोनों प्रयोजन यहां संक्षेप में कथन किया जाता है—

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पुरुषः ।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्"
इत्यादिश्रुत्या दुःखस्यैहिकस्य विनाश उक्तः—

अर्थः—'यह आत्मा मैं हूं' इस प्रकार जो कोई आत्मा को जाने तो, वह किस की इच्छा करे, किस की कामना के लिये शरीर के साथ सन्ताप अनुभवकरे ? इत्यादि श्रुति से योगी के ऐहिक दुःखका विनाश कहाहै—

" एतं ह वाव न तपति किमहं साधु नाकरवं किमहं पापमकरवमिति ।
इत्यादिश्रुतय आमुष्मिकहेतुपुण्यपाप-

चिन्तारूपस्य दुःखस्य नाशमाहुः । सुखाविर्भावस्त्रेधा सर्वकामावाप्तिः, कृतकृत्यत्वं, प्राप्तप्राप्तव्यत्वं, चेति । सर्वकामावाप्तिस्त्रेधा—सर्वसाक्षित्वं, सर्वत्राकामहतत्वं, सर्वभोक्तृरूपत्वं चेति । हिरण्यगर्भादिस्थावरान्तेषु देहेष्वनुगतं साक्षिचैतन्यरूपं यद् ब्रह्म तदेवाहमस्मीति जानतः स्वदेह इव परदेहेष्वपि सर्वकामसाक्षित्वमस्ति । तदेतदभिप्रेत्य श्रूयते—

अर्थः—"मैंने शुभ कर्म क्यों नहीं किया ? और पाप क्यों किया ? इस प्रकार योगी को सन्ताप नहीं होता'। इत्यादि श्रुतियां, परलोक के हेतु पुण्य पाप की चिन्ता रूप दुःख नाश का कथन करती हैं । सुख का आविर्भाव तीन प्रकार का है सर्वकामावाप्ति, कृतकृत्यता और प्राप्तप्राप्तव्यपन। सब कामनाओं की प्राप्ति भी ३ प्रकार की है। सबका साक्षीपन सर्वत्र कामनाओं करके हत न होना, और सब का भोक्तापन हिरण्य गर्भ से जो स्थावर तक सब देहों में व्याप्त साक्षी चैतन्य जो ब्रह्म है, वही मैं हूं इस रीति से जानने हारे पुरुष का जैसे अपने शरीर में सब भोगों का साक्षिपन है वैसे ही अन्य की देह में भी है । इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है:—

"सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह। ब्रह्मणा विपश्चितलोकेति । भुक्तेषु भोगेष्वकामहतत्वं यत्तत्कामप्राप्तिरित्युच्यते ।

अर्थः—'सर्वज्ञ ब्रह्म स्वरूप से वह एक समय सब भोगों को भोगता है'—संसार में भोग भोगने पावे उसमें इच्छा नहीं हो इस को 'कामप्राप्ति' कहते हैं। इसलिये सब भोगों में दोष देखने वाला तत्त्ववित् पुरुष को किसी पदार्थ में इच्छा होती ही नहीं, इसलिये उस को सर्व काम की प्राप्ति है ही।

तथा च सर्वभोगदोषदर्शिनस्तत्त्वविदः सर्वत्राऽकामहतत्वादस्ति सर्वकामावाप्तिः। अतएव सार्वभौमोपक्रमेषु हिरण्यगर्भपर्यन्तेषूत्तरोत्तरशतगुणेष्वानन्देषु—"श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य" इति श्रुतम् । सद्रूपेण चिद्रूपेणाऽऽनन्दरूपेण च सर्वत्रावस्थितं स्वात्मानमनुसंदधतः सर्वभोक्तृरूपत्वमस्तीत्यभिप्रेत्यैवं श्रूयते ।

अर्थः—इसलिये चक्रवर्ती राजा से लेकर हिरण्यगर्भ पर्यन्त उत्तरोत्तर सौ२ गुणा आनन्द में 'श्रोत्रियस्य०' ऐसा कहा है । अर्थात् सब आनन्द कामनाओं करके हत न हुए तत्ववित् पुरुष को प्राप्त ही हैं। इस भांति श्रुति कहती है। सत् रूप से, चित् रूप से, आनन्द रूप से सर्वत्र स्थित अपने आत्मा का अनुसन्धान करता योगी को सर्व भोगों का भोक्तापन है। इस अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः" इति । कृतकृत्यत्वं स्मर्यते—

अर्थः—मैं अन्न (भोग्य) हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं। मैं अन्न का खाने वाला हूं, मैं अन्न का खाने वाला हूं, मैं अन्न का खाने वाला हूं ।

चिन्तारूपस्य दुःखस्य नाशमाहुः । सुखाविर्भावस्त्रेधा सर्वकामावाप्तिः, कृतकृत्यत्वं, प्राप्तप्राप्तव्यत्वं, चेति । सर्वकामावाप्तिस्त्रेधा—सर्वसाक्षित्वं, सर्वत्राकामहतत्वं, सर्वभोक्तृरूपत्वं चेति । हिरण्यगर्भादिस्थावरान्तेषु देहेष्वनुगतं साक्षिचैतन्यरूपं यद् ब्रह्म तदेवाहमस्मीति जानतः स्वदेह इव परदेहेष्वपि सर्वकामसाक्षित्वमस्ति । तदेतदभिप्रेत्य श्रूयते—

अर्थः—"मैंने शुभ कर्म क्यों नहीं किया? और पाप क्यों किया? इस प्रकार योगी को सन्ताप नहीं होता'। इत्यादि श्रुतियां, परलोक के हेतु पुण्य पाप की चिन्ता रूप दुःख नाश का कथन करती हैं। सुख का आविर्भाव तीन प्रकार का है सर्वकामावाप्ति, कृतकृत्यता और प्राप्तप्राप्तव्यपन। सब कामनाओं की प्राप्ति भी ३ प्रकार की है। सबका साक्षीपन सर्वत्र कामनाओं करके हत न होना, और सब का भोक्तापन हिरण्य गर्भ से जो स्थावर तक सब देहों में व्याप्त साक्षी चैतन्य जो ब्रह्म है, वही मैं हूं इस रीति से जानने हारे पुरुष का जैसे अपने शरीर में सब भोगों का साक्षिपन है वैसे ही अन्य की देह में भी है। इसी अभिप्राय से श्रुति कहती है:—

"सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह। ब्रह्मणा विपश्चितलोकेति। भुक्तेषु भोगेष्वकामहतत्वं यत्तत्कामप्राप्तिरित्युच्यते।

अर्थः—'सर्वज्ञ ब्रह्म स्वरूप से वह एक समय सब भोगों को भोगता है'—संसार में भोग भोगने पावे उसमें इच्छा नहीं हो इस को 'कामप्राप्ति' कहते हैं। इसलिये सब भोगों में दोष देखने वाला तत्त्ववित् पुरुष को किसी पदार्थ में इच्छा होती ही नहीं, इसलिये उस को सर्व काम की प्राप्ति है ही।

तथा च सर्वभोगदोषदर्शिनस्तत्त्वविदः सर्वत्राऽकामहतत्वादस्ति सर्वकामावाप्तिः। अतएव सार्वभौमोपक्रमेषु हिरण्यगर्भपर्य्यन्तेषूत्तरोत्तरशतगुणेष्वानन्देषु—"श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य" इति श्रुतम्। सद्रूपेण चिद्रूपेणाऽऽनन्दरूपेण च सर्वत्रावस्थितं स्वात्मानमनुसंदधतः सर्वभोक्तृरूपत्वमस्तीत्यभिप्रेत्यैवं श्रूयते।

अर्थः—इसलिये चक्रवर्ती राजा से लेकर हिरण्यगर्भ पर्यन्त उत्तरोत्तर सौ२ गुणा आनन्द में 'श्रोत्रियस्य०' ऐसा कहा है। अर्थात् सब आनन्द कामनाओं करके हत न हुए तत्त्ववित् पुरुष को प्राप्त ही हैं। इस भांति श्रुति कहती है। सत् रूप से, चित् रूप से, आनन्द रूप से सर्वत्र स्थित अपने आत्मा का अनुसन्धान करता योगी को सर्व भोगों का भोक्तापन है। इस अभिप्राय से श्रुति कहती है—

"अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः" इति। कृतकृत्यत्वं स्मर्यते—

अर्थः—मैं अन्न (भोग्य) हूं, मैं अन्न हूं, मैं अन्न हूं। मैं अन्न का खाने वाला हूं, मैं अन्न का खाने वाला हूं, मैं अन्न का खाने वाला हूं।

"ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किंचित् कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित् ॥
"यस्त्वात्मरतिरेव स्यात् आत्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते"
इति ॥

अर्थः—ज्ञान रूप अमृत द्वारा तृप्त हुए और कृतकृत्य योगी का कोई भी कर्त्तव्य नहीं, और जो कर्तव्य हो तो, वह तत्त्वज्ञानी नहीं है । जो आत्मा ही में रमण करने हारा है, उसको कर्त्तव्य नहीं ।

प्राप्तप्राप्यताऽपि श्रूयते —" अभयं वै जनक ? प्राप्तोऽसि " इति "तस्मात्तत्सर्वमभवत्" इति "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" इति ॥

अर्थः—प्राप्त प्राप्तव्य पन (पाने योग पाचुकनापन) भी श्रुति कहती है—' हे जनक ! तूं अभय को पाया है ' 'इस कारण वह सर्व रूप हुआ ' ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही है'—इत्यादि ।

नन्वेतौ दुःखविनाशसुखाविर्भावौ तत्त्वज्ञानेनैव सिद्धत्वान्न जीवन्मुक्तिप्रयोजनतामर्हतः । मैवम् ।

अर्थः—शङ्का—दुःख का नाश और सुख का आविर्भाव ये दोनों तत्त्वज्ञान द्वारा ही सिद्ध है, अत एव ये दोनों जीवन्मुक्ति के प्रयोजन होने में संघटित ही नहीं होते ।

सुरक्षितयोस्तयोरत्र विवक्षितत्वात् ।
यथा तत्त्वज्ञानं पूर्वमेवोत्पन्नमपि जीवन्मुक्त्या

सुरक्षितं भवति, एवमेतावपि सुरक्षितौ भवतः ।

अर्थः—उत्तर जैसे पूर्वही उत्पन्न हुआ तत्त्वज्ञानभी जीवन्मुक्ति करके सुरक्षित होता, तैसे जीवन्मुक्ति में दुःखनाश और सुखाविर्भाव की सबतरह रक्षा होती है, ऐसा कहने का अभिप्राय है ।

नन्वेवं जीवन्मुक्तेः पञ्चप्रयोजनत्वे सति समाहितो योगीश्वरोलोकव्यवहारं कुर्वतस्तत्त्वविदोऽपि श्रेष्ठ इति वक्तव्यम् । तच्च रामवसिष्ठयोः प्रश्नोत्तराभ्यां निराकृतम् ।

अर्थः—शङ्का —जो जीवन्मुक्तिके पांच प्रयोजन होय तो, समाधिनिष्ठ योगी, लोक व्यवहार करता हुआ तत्त्वज्ञानी से श्रेष्ठ है, ऐसा कहना चाहिये । परन्तु श्रीराम और वसिष्ठजी के सम्वाद से उसका श्रेष्ठपन खण्डित होता हैं ।

श्रीरामः—

भगवन्भूतभव्येश ? कश्चिज्ज्ञातसमाधिकः ।
प्रबुद्ध इव विश्रान्तो व्यवहारपरोऽपि सन् ॥
कश्चिदेकान्तमाश्रित्य समाधिनियमे स्थितः ।
तयोस्तु कतरः श्रेयानिति मे भगवन् ? वद ॥

अर्थः—श्री रामजी बोले–हे भूत भावि के नियन्ता भगवन् ! कोई पुरुष समाधि निष्ठ ज्ञानी के समान, व्यवहार करता हुआ भी विश्राम युक्त है, तथा कोई पुरुष एकान्त देश में जाकर नियम से समाधि में ही स्थित है, इन दोनों में कौन अच्छा है ? सो हे भगवन् ! आप मुझे कहैं—

वसिष्ठः—

"इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः ।
अन्तः शीतलता याऽसौ समाधिरिति कथ्यते ॥

दृश्यैर्न मम सम्बन्ध इति निश्चित्य शीतलः।
कश्चित्संव्यवहारस्थः कश्चिद्ध्यानपरायणः॥
द्वावेतौ राम ! सुसमावन्तश्चेत्परिशीतलौ।
अन्तः शीतलता या स्यात्तदनन्ततपःफलम्"॥

अर्थः—वसिष्ठजी बोले—इस गुण के कार्य संसार को अनात्म रूप देखने वाले के अन्तःकरण की जो शीतलता हैं, वह समाधि रूप है, ऐसा कहा है। दृश्य के साथ मेरा सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा निश्चय कर शान्त हो कोई पुरुष व्यवहार में स्थिर होता है, और कोई पुरुष ध्यान में तत्पर होता। ये दोनों पुरुष जो अत्यन्त शीतल अन्तःकरण वाले हों तो, हे राम! वे समान ही हैं। अन्तःकरण की शीतलता प्राप्त होतो वह अनन्त तप का फल है।

नैष दोषः। अत्र वासनाक्षयरूपमन्तःशीतलत्वमवश्यं सम्पादनीयमित्येतावदेव प्रतिपाद्यते। न तु तदनन्तरभाविनो मनोनाशस्य श्रेष्ठत्वं निवार्यते। शीतलत्वं तृष्णायाः प्रशमनमित्येतादृशीं विवक्षां स्वयमेव स्पष्टीचकार।

अर्थः—समाधान—तुम कहते हो यह दोष नहीं। वासनाक्षय रूप अन्तर की शीतलता को अवश्य सम्पादन करे यही यहां वसिष्ठ जी के कहने का मतलब है। परन्तु उस से वासनाक्षय होने के बाद होने वाले मनोनाश की श्रेष्ठता का कोई वारण नहीं होता।

तृष्णा की शान्ति ही शीतलता है, ऐसा अभिप्राय वसिष्ठजीने स्वयं ही स्पष्ट किया है—

"अन्तः शीतलतायां तु लब्धायां शीतलञ्जगत्।
अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावदाहमिदञ्जगत्" इति॥

ननु समाधिनिन्दाव्यवहारप्रशंसा चात्रोपलभ्यते—

अर्थः—अन्तर में शीतलता मिली हो तो, उस को संसारभर शीतल है। और जिसका अन्तःकरण तृष्णा से सन्तप्त है, उस को जगत रूपी वन में अग्नि जलता के समान है।

शङ्का—समाधिकी निन्दा और व्यवहार की प्रशंसा भी वसिष्ठ के वचन से मालूम होती है—

"समाधिस्थानकस्थस्य चेतश्चेद्वृत्तिचञ्चलम्।
तत्तस्य तु समाधानं सममुन्मत्ततांडवैः॥
उन्मत्तताण्डवस्थस्य चेतश्चेत्क्षीणवासनम्।
तत्तस्योन्मत्तनृत्यं तु समं ब्रह्मसमाधिना" इति॥

अर्थः—समाधि में स्थित पुरुष का चित्त जो वृत्ति से चञ्चल होय तो, उस की समाधि उन्मत्त पुरुष के नृत्यके समान है। और उन्मत्त के नाच में स्थित हो तोभी जो उस का चित्त वासना रहित हो तो, उस का उन्मत्त के समान नृत्य भी ब्रह्म में समाधिके समान है।

मैवम्। अत्र हि समाधिप्राशस्त्यमेवाङ्गीकृत्य वासना निन्द्यते। इयमत्र वचनव्यक्तिः। यद्यपि व्यवहारात्समाधिः प्रशस्तस्तथाऽप्यसौ सवासनश्चेत्तदा निर्वासनाद् व्यवहारादधम एवेति स न समाधिः। यदा समाहितव्यवहर्त्तारावुभावप्यतत्त्वज्ञौ सवासनौ चेत्तदा समाधेरुत्तमलोकप्राप्तिहेतुपुण्यत्वेन प्राशस्त्यम्। यदावुभौ ज्ञाननिष्ठौ निर्वासनौ च तदापि वासनाक्षयरूपां जीवन्मुक्तिं परिपा-

तदयं मनोनाशरूपः समाधिः प्रशस्त एव। तस्माद्योगीश्वरस्य श्रेष्ठत्वात्पञ्चप्रयोजनोपेताया जीवन्मुक्तेर्न कोऽपि विघ्न इति सिद्धम्।

इति श्रीमद्विद्यारण्यप्रणीतजीवन्मुक्तिविवेके
जीवन्मुक्तिस्वरूपसिद्धिप्रयोजननिरूपणं
नाम चतुर्थं प्रकरणम् ॥ ४ ॥

अर्थः—समाधान—यहां समाधि की श्रेष्ठता मानकर वासना की निन्दा कियी जाती है। उपरले वचन का मतलब यह है कि यद्यपि व्यवहार से समाधि उत्तम है, तथापि जो वह वासनायुक्त होय तो, वह व्यवहारसे भी अधम है। इस लिये वह समाधि ही न गिनी जाती। जो समाधिस्थ और व्यवहार करनेहारा तत्त्ववित् न होने से वासना युक्त होवे तो, वह समाधि उत्तम लोक की प्राप्ति का हेतु पुण्य रूप होने से अज्ञानी के व्यवहार से श्रेष्ठ हैं। और जो व्यवहार करने हारा और समाहित चित्तवाला पुरुष, दोनों ज्ञान निष्ठ और वासनारहित हों तो भी, वासना का क्षय रूप जीवन्मुक्ति का पालन करनेवाला यह मनोनाश रूप समाधि श्रेष्ठ ही है। इस प्रकार योगीश्वर श्रेष्ठ है, इस लिये पांच प्रयोजन वाली जीवन्मुक्ति में कोई भी बखेडा नहीं।

इस प्रकार जीवन्मुक्ति प्रकरण में स्वरूप प्रमाण साधन
प्रयोजनों द्वारा जीवन्मुक्तिनिरूपण नाम का चौथा
प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं प्रकरणम्।

स्वरूपप्रमाणसाधन प्रयोजनैर्जीवन्मुक्तिर्निरूपिता। अथ तदुपकारिणं विद्वत्संन्यासं निरूपयामः। विद्वत्संन्यासश्च परमहंसोपनिषदि प्रतिपादितः। तां चोपनिषदमनूद्य व्याख्यास्यामः। तत्रादौ विद्वत्संन्यासयोग्यं प्रश्नमवतारयति।

अर्थः—अब जीवन्मुक्ति का उपकारक विद्वत्संन्यास का निरूपण किया जाता है। विद्वत्संन्यास का प्रतिपादन परमहंसोपनिषद में किया है। इस उपनिषद का पाठ सहित हम व्याख्यान करेंगे। तहां आदि में विद्वत्संन्यास के योग्य प्रश्न का अवतरण करते हैं।

अथ योगिनां परमहंसानां कोऽयं मार्गस्तेषां का स्थितिरिति नारदो भगवन्तमुपगम्योवाच" इति।

अर्थः—परम हंस योगीयों का कौन सा मार्ग है? और उन की स्थिति कैसी है? इस भान्ति नारदजी ने ब्रह्मा के पास जाकर प्रश्न किया।

यद्यप्यथशब्दापेक्षित आनन्तर्यप्रतियोगी न कोऽप्यत्र प्रतिभाति तथाऽपि प्रष्टव्यार्थोऽत्र विद्वत्संन्यासः। तस्मिंश्च विदिततत्त्वो लोकव्यवहारैर्विक्षिप्यमाणोमनोविश्रान्तिं कामयमानोऽधिकारी। ततस्तादृगधि-

कारिसंपत्त्यानन्तर्यमथशब्दार्थः । केवलयो-
गिनं केवलपरमहंसं च वारयितुं पदद्वयमु-
क्तम् । केवलयोगी तत्त्वज्ञानाभावेन त्रि-
कालज्ञानाकाशगमनादिषु योगैश्वर्यचमत्का-
रेष्वासक्तः संयमविशेषैस्तत्रोपयुंक्ते । ततः
परमपुरुषार्थाद्भ्रष्टो भवति । अस्मिन्नर्थे सूत्रं
पूर्वमेवोदाहृतम्—"ते समाधावुपसर्गा व्यु-
त्थाने सिद्धयः" इति । केवलपरमहंसस्तु
तत्त्वविवेकेनैश्वर्येष्वसारतां बुद्ध्वा विरज्य-
ति । तदप्युदाहृतम्—

अर्थः—यद्यपि 'अथ' शब्द इस स्थल में अनन्तर अर्थ में हैं, तथापि किसके अनन्तर यह कोई मालूम नहीं पडता तौ भी यहां प्रश्न का विषय विद्वत्संन्यास है । इस विद्वत्संन्यास में, तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाने पर भी लौकिक व्यवहारों द्वारा विक्षेप पाने से चित्त विश्रान्ति की इच्छावाला पुरुष अधिकारी है।

इस लिये वैसे अधिकार को प्राप्त होने पर ऐसा उपनिषद् के आरम्भ में दिये 'अथ' का अर्थ है । केवल परमहंस के वारण करने के लिये योगी का ग्रहण किया है और केवल योगी के वारण करने के लिये परमहंस का ग्रहण किया है । केवलयोगी को तत्त्वज्ञान न होने से, त्रिकाल ज्ञान आकाश में गमन आदिक योग ऐश्वर्य का आश्चर्य कारक व्यवहारो में वह आसक्ति पाता है, और उस से विविध संयमों करके अपने योग बल का उस में उपयोग करता है, जिस से वह परम पुरुषार्थ मोक्ष से भ्रष्ट हो जाता है, 'ते समाधा०' यह सूत्र पहिले ही कहा है । केवल परमहंस तो तत्त्व के विवेक द्वारा ऐश्वर्य को असार जान कर उस से विराग को प्राप्त होता है । उस का भी उदाहरण इस भान्ति आगे दिया है—

"चिदात्मन इमा इत्थं प्रस्फुरन्तीह शक्तयः ।
इत्यस्याऽऽश्चर्यजालेषु नाभ्युदेति कुतूहलम्" इति॥
विरक्तोऽप्यसौ ब्रह्मविद्याभारेण विधिनिषे-
धावुल्लङ्घयति । तदुक्तम्—

अर्थः—इस जगत् में चैतन्यरूप आत्मा की ये सारी-शक्तियां इस प्रकार फुरती है, ऐसा समझ कर आश्चर्य के समूह में इस जीवन्मुक्त पुरुष को कौतुक उत्पन्न नहीं होता ।

विरक्त होने पर भी केवल परमहंस पुरुष, ब्रह्म विद्या के बल द्वारा विधि निषेध का उल्लङ्घन करता है । कहा है, कि—

"निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को
निषेध" इति ॥

तथाच श्रद्धालवः शिष्टास्तमेवं निन्दन्ति—

अर्थः—त्रिगुणातीत मार्ग में चलने वाले तत्त्ववित् पुरुष को क्या विधि है या क्या निषेध है ? अर्थात् वह विधि निषेध के वश नहीं ऐसे परमहंस को श्रद्धावान् शिष्ट पुरुष इस भांति निन्दा करते हैं ।

"सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे ।
नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय शिश्नोदरपरायणाः" इति ।
योगिनि तु परमहंसे यथोक्तं दोषद्वयं नास्ति ।
अन्योऽप्यस्यातिशयः प्रश्नोत्तराभ्यां दर्शितः ॥

अर्थः—हे मैत्रेय ! कलियुग जब होगा तब सब मनुष्य ब्रह्म की वार्त्ता मात्र करेंगे, परन्तु शिश्नोदरपरायण वे शुभ क्रियाओं को नहीं करते ॥

योगी परमहंस में तो, सिद्धि में आसक्ति और यथेष्ट आचरण ये दोनों दोष होते नहीं । अन्य भी योग युक्त परमहंस की श्रेष्ठता श्रीरामचन्द्र और वसिष्ठ मुनि के प्रश्नोत्तर से मालूम पडती है ।

श्रीरामः—

"एवं स्थितेऽपि भगवन् ? जीवन्मुक्तस्य सन्मतेः ।
अपूर्वोऽतिशयः कोऽसौ भवत्यात्मविदां वर ?" ॥

अर्थः—श्रीरामजी बोले, ऐसा है तौ भी हे भगवन् ! हे आत्मज्ञानी में श्रेष्ठ ! शुभ मति वाले जीवन्मुक्त की कोई अपूर्व श्रेष्ठता है सो कहो ।

वसिष्ठः—

"ज्ञस्य कस्मिंश्चिदेवाङ्ग ? भवत्यतिशयेन धीः ।
नित्यतृप्तः प्रशान्तात्मा स आत्मन्येव तिष्ठति ॥
मन्त्रसिद्धैस्तपःसिद्धैस्तन्त्रसिद्धैश्च भूरिशः ।
कृतमाकाशयानादि तत्र का स्यादपूर्वता ॥
एक एव विशेषोऽस्य न समो मूढबुद्धिभिः ।
सर्वत्राऽऽस्थापरित्यागान्नीरागममलं मनः ॥
एतावदेव खलु लिङ्गमलिङ्गमूर्त्तेः
संशान्तसंसृतिचिरभ्रमनिर्वृतस्य ॥
तज्ज्ञस्य यन्मदनकोपविषादमोह—
लोभापदामनुदिनं निपुणं तनुत्वम्" इति ।

अर्थः—वसिष्ठ जी बोले हे राम ! ज्ञानवान पुरुष की बुद्धि कि सी भी श्रेष्ठ वस्तु में मोह को प्राप्त नहीं होती । नित्य तृप्त और प्रशान्त चित्तवाले उस स्वरूप में ही स्थिति वाला होता है । मन्त्र सिद्धि वाला, तप की सिद्धवाला, उसी तरह

तन्त्र की सिद्धि वाला कदाचित् आकाश में गमन करे तो, उसमें अपूर्वता क्या है ? कोई नहीं । आकाश में बहुत से पक्षी उड़ते हैं, उसी तरह यह भी एक पक्षी है, ज्ञानी में एक विशेषता है कि जो मूढ पुरुषों में नहीं, वह यह है कि सब दृश्य पदार्थों में से सत्य बुद्धि जाती रहने से उसका निर्मल मन राग रहित होता है ॥

आगे को सूचित करने वाले इतर चिन्ह रहित स्वरूप वाले संसार रूपी अनादि काल का भ्रम जिस का जाता रहा है, ऐसे ज्ञानवान् पुरुष का मुख्य चिन्ह काम, क्रोध, विषाद, मोह, लोभ, और आपत्ति की प्रति दिन अत्यन्त क्षीणता होती रही है" ।

एतेनातिशयेनोपेतानां दोषद्वयरहितानां मार्गस्थिती पृच्छ्येते । वेषभाषादिरूपो हि व्यवहारो मार्गः । चित्तोपरमरूप आन्तरो धर्मः स्थितिः ।

अर्थः—इस प्रकार की श्रेष्ठता वाला और सिद्धि में आसक्ति और यथेष्ट आचरण ये दो दोषों से रहित ऐसा योगी का मार्ग और स्थिति को पूछते हैं । वेष भाषादि रूप जो उसका व्यवहार है वह उस का मार्ग जानो । तथा चित्त का उपरामरूप जो अन्तःकरण का धर्म है, उसे स्थिति समझो ।

भगवांश्चतुर्मुखोब्रह्मा यथोक्तप्रश्नोत्तरमवतारयति—" तं भगवानाह" इति । वक्ष्यमाणमार्गे श्रद्धातिशयमुत्पादयितुं मार्गं प्रशंसति—

अर्थः—भगवान् चतुरानन ब्रह्मा, पूर्वोक्त प्रश्न का उत्तर देते हैं—'उन नारद से भगवान् कहते हैं'।

आगे कहे जाने वाले मार्ग में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये मार्ग की प्रशंसा करते हैं:—

"सोऽयं परमहंसानां मार्गो लोके दुर्लभतरो न तु बाहुल्यम्" इति ॥

यः पृष्टः सोऽयमिति योजना। अयमित्युत्तरग्रन्थे वक्ष्यमाण आच्छादनादिः स्वशरीरोपभोगेन लोकोपकारेण च निरपेक्षोमुख्यो-मार्गः परामृश्यते। तादृशस्य परमकाष्ठां प्राप्तस्य वैराग्यस्यादृष्टचरत्वात्तस्य मार्गस्य दुर्लभत्वम्। न चैतावताऽत्यन्ताभावः शङ्कनीय इत्यभिप्रेत्य बाहुल्यमेव प्रतिषेधति। नत्विति। बाहुल्येनेति वक्तव्ये लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः।

अर्थः—"सो यह परमहंस मार्ग अत्यन्त दुर्लभ है। उसकी बहुलता नहीं"—'सः' (वह) अर्थात् जो पूछा उस को समझो। और 'अयं' (यह) अर्थात् अब जो कहने में आवेगा, और जो आच्छादन आदि अपने शरीर के उपभोग का साधन रहित और लोकोपकार की अपेक्षा रहित है, उसे मुख्य मार्ग समझो, 'इस प्रकार के परम अवधिको प्राप्त' हुए वैराग्य पहिले देखे हुए न होने से उस का दुर्लभ पन कथन किया है। यह उपर से वैसे वैराग्य की अभावकी शङ्का हो तो, उस के निवारण के लिये 'न तु बाहुल्यं' (प्रायः नहीं होते) इस वाक्य से उस की अधिकता का निषेध किया है। 'बाहुल्येन—नहीं कहकर "बाहुल्यं" कहा है सो छान्दस प्रयोग है।

नन्वयं मार्गो दुर्लभतरश्चेत्तर्हि तदर्थं प्रयासो न कर्त्तव्यः तेन प्रयोजनाभावादित्याशङ्क्याऽऽह।

अर्थः—शङ्का—जब यह मार्ग अति दुर्लभ है, तो उस के लिये प्रयास करने की क्या आश्यकता है। क्योंकि उस से कोई प्रयोजनभी नहीं। ऐसी शङ्का का उत्तर—

"यद्येकोऽपि भवति स एव नित्यपूतस्थः स एव वेद पुरुष इति विदुषो मन्यन्ते" इति ॥

अर्थः—'जो वैसा पुरुष एक भी होता है तो, वही सदा पवित्र परमात्मा में स्थित और वेद पुरुष है, ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं।

"मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः"

इति न्यायेन यत्र क्वापि यदा कदाचित् योगी परमहंसो यदि कश्चिल्लभ्यते तर्हि स एव नित्यपूतस्थो भवति। नित्यपूतः परमात्मा। "य आत्मा ऽपहत पाप्मा" इति श्रुतेः। एवकारेण केवलयोगी केवलपरमहंसश्च व्यावर्त्तते। केवलयोगी नित्यपूतं न जानाति केवलपरमहंसो जानन्नपि चित्तविश्रान्त्यभावाद् बहिर्मुखो ब्रह्मणि न तिष्ठति। वेदप्रतिपाद्यः पुरुषो वेदपुरुषः विदुषो विद्वांसो ब्रह्मानुभवचित्तविश्रान्तिप्रतिपादकशास्त्रपारङ्गता योगिनः। परमहंसस्य ब्रह्मनिष्ठत्वं सर्वे जना मन्यन्ते। यथोक्तविद्वांसस्तु

तदप्यसहमाना ब्रह्मत्वमेव मन्यन्ते । तथाच स्मर्यते ।

अर्थः--हजारों मनुष्यों में कोई एक पुरुष अन्तःकरण की शुद्धिरूप सिद्धि के लिये यत्न करता और यत्न करने वाले चित्त शुद्धि वालों में से कोई ही एक मुझ (परमात्मा को) ठीक २ जानता है । इस न्याय से, जहां कहीं, और जब कभी जो योगी परमहंस मिले तो वही नित्य पूतस्थ है । नित्य पूत (सदा पवित्र) परमात्मा ही है । क्योंकि, 'जो आत्मा निष्पाप है' । ऐसा श्रुति कहती है । 'यद्येको' इस उपनिषद् वाक्य में 'एव' (ही) ऐसा पद है । वह केवल योगी और केवल परमहंस के निमित्त है । क्योंकि केवल योगी तो, नित्य पूत आत्मा को जानता ही नहीं । और केवल परमहंस जानताभी है तौभी उस का चित्त विश्राम को न पाने से बहिर्मुख होता है, इस से ब्रह्म में स्थिति नहीं कर सकता । वेद प्रतिपादन करने योग्य पुरुष वेद पुरुष है । ब्रह्मानुभव और चित्त विश्रान्ति के निमित्त प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों का पार पाय हुए पुरुष को यहां विद्वान् जानो । परमहंस योगी का ब्रह्म निष्ठपन सर्वमनुष्य मानते हैं । और पूर्वोक्त विद्वान् तो, उस को सहन न करता हुआ उसका ब्रह्म पन ही मानता है । स्मृति में ऐसा कहा है—

"दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः ।
यस्तिष्ठति स तु ब्रह्म ब्रह्म न ब्रह्मवित्स्वयम्" इति ॥

अतो न प्रयोजनाभावः शङ्कितुमपि शक्यते ।

अर्थः--दर्शन और अदर्शन का त्याग कर अद्वैत स्वरूप से रहता है, वह पुरुष स्वयं, हे ब्रह्मन् ? ब्रह्म वित् नहीं बल्कि ब्रह्म ही है ।

इस लिये योगी परमहंस दशा का कोई प्रयोजन ही नहीं, ऐसी शङ्का भी नहीं हो सकती ।

नित्यपूतस्थत्वं वेदपुरुषत्वं च मुखतो विशदयन्नर्थात्का स्थितिरिति प्रश्नोत्तरं सूचयति ।

अर्थः--नित्यपूतस्थपन और वेदपुरुषपन वाणी से स्पष्ट करते हुए 'उन की स्थिति कैसी होती है ? इस प्रश्न का उत्तर तात्पर्य से कहते हैं ।

"महापुरुषो यच्चित्तं तत्सर्वदा मय्येवावतिष्ठते ।
तस्मादहं च तस्मिन्नेवावस्थीयते" इति ।

अर्थः–वह पुरुष योगी है जो अपना चित्त है उसे मुझ में ही ठहराता है । तिस कारण मैं भी उसी में रहता हूं ।

वैदिकज्ञानकर्माधिकारिषु पुरुषेषु मध्ये योगिनः परमहंसस्यात्यन्तमुत्तमत्वान्महापुरुषत्वम् । स तु महापुरुषो यच्चित्तं स्वकीयं तत्सदा मय्येवावस्थापयति । संसारगोचराणां तदीयचित्तवृत्तीनामभ्यासवैराग्याभ्यां निरुद्धत्वात् । अतएव भगवान् प्रजापतिः शास्त्रसिद्धं परमात्मानं स्वानुभवेन परामृशन्मयीति व्यपदिशति । तस्माद्योगी मय्येव चित्तं स्थापयति । तस्मादहमपि परमात्मत्वस्वरूपत्वेन तस्मिन्नेव योगिन्याविर्भूतोऽवस्थितोऽस्मि नेतरेष्वज्ञानिषु । तेषामाविद्यावृतत्वात् । तत्त्ववित्स्वप्ययोगिषु बाह्यचित्तवृत्तिभिरावृतत्वान्नास्त्याविर्भावः ॥

इदानीं कोऽयं मार्ग इति पृष्टं मार्गमुपदिशति—

अर्थः—वैदिकज्ञान और कर्मके अधिकारी पुरुषों में योगी परमहंस अत्यन्त उत्तम हैं, इस लिये उस को महापुरुष कहते हैं। वह महापुरुष, सदा मुझ में ही चित्त स्थिर करता क्योंकि अभ्यास और वैराग्य से, संसार के विषयों से उस की वृत्तियां निरोध को प्राप्त होती हैं। इस लिये भगवान् प्रजापति स्वयं साक्षात् अनुभव किये आत्मा को लेकर, 'मयि' (मुझ में) ऐसा कहा है जिस कारण यह योगी मुझ में ही सदा चित्त स्थापन करता, इस लिये मैं भी परमात्मारूप से उस में प्रकट हो रहा हूं। इतर अज्ञानी में नहीं रहता। क्योंकि वे अविद्या से आवृत होते हैं। तत्त्ववित् होने पर भी जो योगी नहीं, उन में मेरा स्वरूप बहिर्वृत्तिसे आवृत होने से भी मेरा आविर्भाव नहीं। अब योगी परमहंस का कौन मार्गहै ? इस प्रश्न का उत्तर दिया है।

"असौ स्वपुत्रमित्रकलत्रबन्ध्वादीन् शिखायज्ञोपवीते स्वाध्यायं च सर्वकर्माणि संन्यस्यायं ब्रह्माण्डं च हित्वा कौपीनं दण्डमाच्छादनं च स्वशरीरोपभोगार्थाय च लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहे"दिति ॥

अर्थः—यह योगी परमहंस अपना पुत्र, मित्र, स्त्री, बन्धु, आदि को, शिखा और यज्ञोपवीत को, स्वाध्याय और सर्व कर्मों को त्याग कर, वैसे ही इस ब्रह्माण्ड को भी त्याग कर, केवल अपने शरीर के उपभोगार्थ निर्वाह के लिये और लोकोपकार के लिये कौपीन, (लङ्गोट) दण्ड और आच्छादन को ग्रहण करे।

योगृहस्थः पूर्वजन्मसञ्चितपुण्यपुञ्जे परिपक्वे

सति मातृपितृज्ञात्यादिना निमित्तेन विविदिषासंन्यासरूपपरमहंसाश्रममस्वीकृत्यैव श्रवणादिसाधनान्यनुष्ठाय तत्त्वं सम्यगवगच्छति, ततो गार्हस्थ्यप्राप्तैर्लौकिकवैदिकव्यवहारसहस्रैश्चित्ते विक्षिप्ते सति विश्रान्तिसिद्धये विद्वत्संन्यासं चिकीर्षति तं प्रति स्वपुत्रमित्रेत्याद्युपदेशः। पूर्वमेव विविदिषासंन्यासं कृत्वा तत्त्वं विदितवतो विद्वत्संन्यासं चिकीर्षोः कलत्रपुत्रादिप्रसङ्गाभावात्।

अर्थः—जो गृहस्थ पूर्वजन्म के सञ्चित पुण्य के परिपाक होने से, माता, पिता, सम्बन्धी आदि निमित्त के कारण विविदिषासंन्यासरूपपरमंहस के आश्रम को स्वीकार किये विना श्रवण, मनन, आदिक साधनों को कर यथार्थ तत्त्वज्ञान का सम्पादन करता और उस के बाद गृहस्थाश्रम के कारण प्राप्त लौकिक वैदिक हजारों व्यवहारों के कारण, जब उन का चित्त विक्षेप को प्राप्त होता है, तब जो चित्त विश्रान्ति के लिये विद्वत्संन्यास धारण करने की इच्छा करता उस के लिये पुत्र, मित्र आदिकों के त्याग का कथन किया है। क्योंकि जिस ने प्रथम से ही विविदिषासंन्यास धारण कर तत्त्वज्ञान प्राप्त किया है, और उस के बाद विद्वत्संन्यास धारण करने की इच्छा रखता है, उस को स्त्री, पुत्रादिक का प्रसङ्गही नहीं होता।

नन्वयं विद्वत्संन्यासः किमितरसंन्यासवत् प्रैषोच्चारणादिविध्युक्तप्रकारेण सम्पादनीयः, किं वा जीर्णवस्त्रसोपद्रवग्रामादित्यागवत् लौकिकत्यागमात्ररूपः। नाऽऽद्यः। त-

स्वविदः कर्तृत्वराहित्येन विधिनिषेधानधिकारात् । अतएव स्मर्यते ।

अर्थः—शङ्का—क्या यह संन्यास, इतर संन्यास के समान प्रैषोच्चारण आदि विधि कथितानुसार सम्पादन करना चाहिये ? या जैसे अपने पुराने वस्त्र को त्याग कर दिया जाता उसभांति या जैसे रोगादि उपद्रव वाले गांव को छोड दिया जाता उस तरह स्त्री पुत्रादिकों का त्याग करे ? पहिला अर्थात् प्रैषोच्चारणादि विधिपूर्वक त्याग तो सम्भव नहीं होता क्योंकि तत्त्ववित् पुरुष अकर्त्ता होने से उस को विधिनिषेध का अधिकारही नहीं । स्मृति भी कहती है ।

"ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किञ्चित्कर्त्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्" इति॥

न द्वितीयः । कौपीनदण्डाद्याश्रमलिङ्गविधानश्रवणात् ।

अर्थः—शङ्का—ज्ञानरूपी अमृत कर के तृप्ति पाए हुए कृतकृत्य योगी को कुछ कर्तव्य नहीं । और जो उसको कुछ कर्तव्य है तो, वह तत्त्व वित् नहीं है ।

और कौपीन दण्डादि आश्रम के चिन्ह के विधान का श्रवण होने से लौकिक त्याग रूप दूसरा पक्ष भी सम्भव नहीं ।

नैष दोषः । प्रतिपत्तिकर्मवदुभयरूपत्वोपपत्तेः । तथा हि—ज्योतिष्टोमे दीक्षितस्य दीक्षाङ्गनियमानुष्ठानकाले कण्डूयितुं हस्तं प्रतिषिध्य कृष्णविषाणा विहिता ।

अर्थः—समाधान—प्रतिपत्ति कर्मके समान विद्वत्संन्यास लौकिक और वैदिक दोनों कर्म रूप हैं, इस लिये पूर्वोक्त दोष

नहीं है । प्रतिपत्ति कर्म इस प्रकार है ।

जिस ने ज्योतिष्टोम यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कियी हो—उस के लिये दीक्षाका अङ्गभूत कर्म करते समय हाथ से शरीर को खुजलाने का निषेध कर काले मृग के सींङ्ग से खुजलाने का विधान किया है । तहां प्रमाण—

"यद्धस्तेन कण्डूयेत पामनंभावुकाः प्रजाः स्युर्यत्स्मयेत नग्नंभावुकाः" इति "कृष्णविषाणया कण्डूयते" इति च । तस्याश्च कृष्णविषाणायाः समाप्ते नियमे प्रयोजनाभावाद्वोढुमशक्यत्वाच्च त्यागः स्वत एव प्राप्तः । तं च त्यागं सप्रकारं वेदो विदधाति—

अर्थः—जो हाथ से शिर खुजलावे तो, खुजली की बीमारी युक्त प्रजा होती जो हास्य करे तो, लाज हीन प्रजा होती । इस लिये काले मृग के सींङ्ग से खुजलावे । नियम पूरा होने पर काले मृग के सींङ्ग का कोई प्रयोजन न होने से और उस को धारण करना अशक्य भी होने से उस का स्वयं त्याग प्राप्त होता है । परन्तु उसका विधिपूर्वक त्याग का वेद विधान करता है ।

"नीतासु दक्षिणासु चात्वाले कृष्णविषाणां प्रास्यति" इति । तदिदं प्रतिपत्तिकर्म लौकिकं वैदिकं चेत्युभयरूपम् । एवं विद्वत्संन्यासोऽप्युभयरूपः । न च तत्त्वविदि कर्तृत्वस्यात्यन्ताभावः शङ्कनीयः । चिदात्मन्यारोपितस्य कर्तृत्वस्य विद्ययाऽपोहितत्वेऽपि

चितिच्छायोपेतेऽन्तःकरणोपाधौ विक्रिया-सहस्रयुक्ते स्वतः सिद्धस्य कर्तृत्वस्य यावद्द्रव्यभावितया ऽनपोदितत्वात् । न च ज्ञानामृतेनेत्यादि स्मृतिविरोधः । सत्यपि ज्ञाने विश्रान्तिरहितस्य तृप्त्यभावेन विश्रान्तिसम्पादनलक्षणकर्त्तव्यशेषसद्भावेन कृतकृत्यत्वाभावात् ।

अर्थः—दक्षिणा ले चुकने पर कृष्णविषाण को चात्वाल (ज्योतिष्टोम यज्ञ करने में खोदा हुआ गडहा या खाई)में डालना । यह कर्म लौकिक और वैदिक दोनो रूप है इसी तरह विद्वत्संन्यास भी दोनो रूप है । तत्त्व वित् में कर्तापन का एकदम अभाव है, ऐसीं शङ्का न करो । क्योंकि चैतन्यस्वरूप आत्मा में आरोपित कर्तापन को ज्ञान से निरोध करने पर भी अनेक विकार युक्त चिदाभास सहित अन्तःकरण रूप उपाधि में जो स्वतः सिद्धकर्त्तापन रहता है, वह अन्तःकरण रहता तब तक रहने वाला होने से उसको पुरुष दूर नहीं करता । इस से 'ज्ञानामृतेन' इस पूर्वोक्त स्मृति के साथ कोई विरोध नहीं आता क्योंकि उस को ज्ञान होने पर भी, शेष चित्त को विश्रान्ति नहीं होती इस लिये उस को तृप्ति प्राप्त हुई नहीं, तिस से चित्त विश्रान्ति सम्पादन करना रूप कर्त्तव्य बाकी होने से वह कृतकृत्य नहीं हुआ ।

ननुतत्त्वविदो विध्यङ्गीकारे सति तेना ऽपूर्वेण देहान्तरमारभ्येत ।

अर्थः—शङ्का–जो तत्त्व ज्ञानी को विधि अङ्गीकार करो तो, उस से हुए अपूर्व करके अन्य देह की प्राप्ति हो जावे ।

नैवम् । तस्या ऽपूर्वस्य चित्तविश्रान्तिप्रतिबन्धनिवारणलक्षणस्य दृष्टफलस्य सम्भवे सत्यदृष्टफलकल्पनाया अन्याय्यत्वात् । अन्यथा श्रवणादिविधिष्वपि ब्रह्मज्ञानोत्पत्तिप्रतिबन्धनिवारणरूपं दृष्टफलमुपेक्ष्य जन्मान्तरहेतुत्वं कल्प्येत । तस्माद् विध्यङ्गीकारे दोषाभावाद् विविदिषुरिव विद्वानपि गृहस्थो नान्दीमुखश्राद्धोपवासजागरणादिविधिमनुसृत्यैव संन्यसेत् ।

अर्थः—समाधान–यह दोष यहां प्राप्त नहीं होता, क्योंकि चित्त विश्रान्ति में प्रतिबन्धक कारण निवारण करना यह उस अपूर्व का प्रत्यक्ष फल सम्भव है, इस लिये जन्मान्तर की प्राप्तिरूप अदृष्ट फल की कल्पना करनी योग्य नहीं । जो वैसा न मानो तो, श्रवण आदिक विधियों का भी ब्रह्मज्ञानके उत्पत्ति का प्रतिबन्ध होते उस का निवारणरूप जो दृष्ट फल है, उस का अनादर कर जन्मान्तर प्राप्तिरूप फल कीं कल्पना हो सकती । इस लिये तत्त्वज्ञानी को विधि मानने में कोई भी दोष नहीं । उस से ज्ञान की इच्छावाले पुरुष के समान ज्ञानवान् गृहस्थ भी नान्दीमुख श्राद्ध, उपवास, जागरण, आदि विधियों को अनुसरण कर विद्वत्संन्यास को धारण करे ।

यद्यप्यत्र श्राद्धादिकं नोपादिष्टं तथा ऽप्यस्य विद्वत्संन्यासस्य विविदिषासंन्यासविकृतित्वात् "प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या" इति न्यायेन तदीया धर्माः सर्वेऽप्यत्र प्राप्नुवन्ति । यथाऽग्निष्टोमस्य वि-

कृतिष्वतिरात्रादिषु तदीयधर्मप्राप्तिस्तद्वत् । तस्मादितरसंन्यासवदत्रापि प्रैषमन्त्रेण पुत्रमित्रादित्यागं सङ्कल्पयेत् । बन्धवादीनित्यादिशब्देन भृत्यपशुगृहक्षेत्रादिलौकिकपरिग्रहादिविशेषाः संगृह्यन्ते । स्वाध्यायं चेति चकारेण तदर्थनिर्णयोपयुक्तानि पदवाक्यप्रमाणशास्त्राणि वेदोपबृंहकाणीतिहासपुराणानि च समुच्चिनोति । औत्सुक्यनिवृत्तिमात्रप्रयोजनानां काव्यनाटकादीनां त्यागः कैमुतिकन्यायसिद्धः । सर्वकर्माणीति सर्वशब्देन लौकिकवैदिकनित्यनैमित्तिकनिषिद्धकाम्यानि संगृह्यन्ते । पुत्रादित्यागेनैहिकभोगः परिहृतः । सर्वकर्मत्यागेन चाऽऽमुष्मिकभोगाशा चित्तविक्षेपकारिणी परिहृता । अयमिति छान्दसविभक्तिव्यत्ययेनेदं ब्रह्माण्डमिति योजनीयम् । ब्रह्माण्डत्यागो नाम तत्प्राप्तिहेतोर्विराडुपासनस्य त्यागः । ब्रह्माण्डं चेति चकारेण सूत्रात्मप्राप्तिहेतोर्हिरण्यगर्भोपासनस्य तत्त्वज्ञानहेतूनां श्रवणादीनां च समुच्चयः । स्वपुत्रादिहिरण्यगर्भोपासनान्तमैहिकमामुष्मिकं च सुखसाधनं सर्वं प्रैषमन्त्रोच्चारणेन परित्यज्य कौपीनादिकं परिगृह्णीयात् । आच्छादनं चेति चकारेण पादुकादीनि समुच्चिनोति । तथा च स्मृतिः—

अर्थः—यद्यपि विद्वत्संन्यास में श्राद्ध आदिक का कथन नहीं किया, तथापि विद्वत्संन्यास यह, विविदिषा संन्यास की विकृति है, और विकृति प्रकृति के समान करना, यह न्याय है, इस लिये विविदिषा संन्यास के सब धर्म विद्वत्संन्यास में प्राप्त होते हैं । जैसे अग्निष्टोम यज्ञ की विकृति अतिरात्र आदि यज्ञ में अग्निष्टोम के सब धर्म प्राप्त होते हैं । तैसे विविदिषा संन्यास की विकृति विद्वत्संन्यास है, इस लिये विविदिषा संन्यास की अङ्ग भूत क्रियायें इस विद्वत्संन्यास में भी करनी चाहिये, ऐसा समझना, ऐसा है इस लिये इतरसंन्यासी के समान इस संन्यास में भी प्रैषोच्चारण द्वारा पुत्र मित्रादि का त्याग करना । श्रुति में बन्धु आदि ऐसा कहा है, इस लिये आदि शब्द से चाकर, पशु, गृह, क्षेत्र आदि लौकिक वस्तुओं, का त्याग समझो । 'स्वाध्यायं च' यहां चकार का ग्रहण किया है, इस लिये उस से वेदान्त के निर्णय में उपयोगी व्याकरण, न्याय मीमांसा, आदि शास्त्रों का तथा वेदार्थ का उपबृंहण करने वाला इतिहास पुराण आदिक का भी ग्रहण समझना, अर्थात् वे भी त्यागने के योग्य है, तब उत्सुकता की निवृत्ति मात्र जिन का प्रयोजन है, इस प्रकार काव्य नाटकादि का त्याग तो, कैमुतिकन्याय से सिद्ध है । सब कर्मों के त्याग में अर्थात् नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध कर्मों का त्याग समझना । पुत्रादि के त्याग पर से ऐहिक भोग का त्याग जानना । सर्व कर्म के त्याग से चित्त को विक्षेप डालनेवाली आमुष्मिक भोग की आशा का त्याग जान लेना । 'अयं' इस छान्दस प्रयोग से उस स्थल में 'इदं ब्रह्माण्डं' ऐसी योजना समझनी । ब्रह्माण्ड का त्याग अर्थात् ब्रह्माण्ड की प्राप्ति का कारण विराट् उपासना का त्याग जानना । 'ब्रह्माण्डं

च' यहां चकार के ग्रहण से सूत्रात्मा के प्राप्ति का कारण हिरण्यगर्भोपासना का, तथा तत्त्वज्ञान के प्राप्ति का कारण श्रवणादि का त्याग समझ लेना । अपने पुत्र से उस हिरण्यगर्भोपासना तक इस लोक परलोक के सब सुखों के साधनों को प्रैष मन्त्र का उच्चारण से त्याग कर कौपीन आदि ग्रहण करना । आच्छादन को ग्रहण करने कहा है, परन्तु च शब्द से पादुका आदिक का ग्रहण करना भी समझना ।

स्मृति में यही कहा है—

"कौपीनयुगलं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ।
पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम्" इति ॥

अर्थः—दो लङ्गोटा, एक ओढने का वस्त्र, शीत से बचाने के लिये गुदडी और पादुका इतनी वस्तु संन्यासी ग्रहण करे, अन्य का संग्रह न करे ।

स्वशरीरोपभोगो नाम कौपीनेन लज्जाव्यावृत्तिः । दण्डेन गोसर्पाद्युपद्रवपरिहारः । आच्छादनेन शीतादिपरिहारः । चकारात्पादुकाभ्यामुच्छिष्टदेशस्पर्शादिपरिहारं समुचिनोति । लोकस्योपकारो नाम दण्डादिलिङ्गेन तदीयमुत्तमाश्रमं परिज्ञाय तदुचिताभिवन्दनभिक्षाप्रदानादिप्रवृत्त्या सुकृतसिद्धिः । चकाराभ्यामाश्रममर्यादायाः शिष्टाचारप्राप्तायाः पालनं समुच्चिनोति ॥

अर्थः—कौपीन से लज्जा की रक्षा होती है, दण्ड से बैल, सर्प, आदिके उपद्रवों से बचता है, आच्छादन से शीत आदि

दुखों का परिहार होता है । और पादुका धारण करने से उच्छिष्ट भूमि का स्पर्श नहीं हो सकता । इन सब को शरीर का उपभोग कहना । और दण्डादि चिह्न को देख कर उस का उत्तम आश्रम है, ऐसा समझ कर लोक उस कों यथोचित अभिवन्दन करते हैं, और भिक्षा देते हैं, उस से उस लोक के पुण्य की वृद्धि होती है । इस प्रकार चिह्न धारण करने का लोकोपकार भी फल हैं, पूर्वोक्त उपनिषद् के (स्वशरीरोपभोगाय च लोकोपकाराय च) इस भांति दो चकार का ग्रहण किया है, उस से शिष्टाचार द्वारा प्राप्त आश्रम मर्यादा का पालन भी दण्डादि चिह्न धारण का फल है, ऐसा समझना ।

कौपीनादिपरिग्रहस्याऽऽनुकूल्यत्वमभिप्रेत्य मुख्यत्वं प्रतिषेधति—

"तच्च न मुख्योऽस्ति" इति ।

यत् कौपीनादिपरिग्रहणमस्ति तदप्यस्य योगिनः परमहंसस्य मुख्यः कल्पो न भवति । किं त्वनुकल्प एव । विविदिषासंन्यासिनस्तु दण्डग्रहणं मुख्यमिति कृत्वा दण्डवियोगस्य निषेधः स्मर्यते—

अर्थः—जो योगी परमहंस कौपीन आदिधारण करे तो, उस को अनुकूल पडे इस अभिप्राय से उन को कौपीनादिक धारण करने कहा है । इस लिये कौपीनादि धारण की मुख्यता का निषेध करता है ।

'तच्च न मुख्योस्ति' जो कौपीन आदि ग्रहण करना यह उन का अर्थात् परमहंस का मुख्य विधि नहीं, किन्तु गौण विधि है । और विविदिषा संन्यासी को तो दण्ड ग्रहण आ-

दिक मुख्य है । इस लिये ही स्मृति दण्ड त्याग का निषेध करती है ।

"दण्डात्मनोस्तु संयोगः सर्वदैव विधीयते ।
न दण्डेन विना गच्छेदिषुक्षेपत्रयं बुध" इति ॥

अर्थः—दण्ड और शरीर का सम्बन्ध सदा रखना चाहिये। तीन धनुष (नाप विशेष) जहां तक जाये उतनी जमीन तक भी अपने आश्रम धर्म को जानने हारा संन्यासी को विना दण्ड के न चलना चाहिये ।

"प्रायश्चित्तमपि दण्डनाशे प्राणायामशतं स्मर्यते—"दण्डत्यागे शतं चरेत्" इति ।
योगिनः परमहंसस्य मुख्यं कल्पं प्रश्नोत्तरगतं दर्शयति—

अर्थः—किसी निमित्त से यदि दण्ड का त्याग हो जावे तो १०० प्राणायाम करे । इस भान्ति दण्ड का नाश होय तो स्मृति उस का प्रायश्चित्त भी कथन करती है, योगी परमहंस के मुख्य विधि को प्रश्नोत्तर द्वारा बतलाते हैं ।

"कोऽयं मुख्य इति चेदयं मुख्यः, न दण्डं न शिखं न यज्ञोपवीतं नाऽऽच्छादनं चरति परमहंसः" इति ॥

न शिखमिति छान्दसो लिङ्गव्यत्ययोऽनुसन्धेयः । यथा विविदिषुः परमहंसः शिखायज्ञोपवीताभ्यां रहितो मुख्यस्तथा योगी दण्डाच्छादनाभ्यां रहितः सन्मुख्यो भवति । दण्डस्य वैणवत्वादिलक्षणमाच्छादनस्य कन्थात्वादिलक्षणं च परीक्षितुं दण्डादिकं

सम्पादयितुं रक्षितुं च चित्ते व्यापृते सति चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणो योगो न सिध्येदिति । तच्च न युक्तम् । न हि वरविघाताय कन्योद्वाहः' इति न्यायात् ॥

आच्छादनाद्यभावे शीतादिबाधायाः कः प्रतीकार इत्याशङ्क्याऽऽह—

अर्थः—इसका मुख्य विधि क्या है ? ऐसा पूछो तो, परमहंस दण्ड, शिखा, या यज्ञोपवीत, या आच्छादन, कुछ न रक्खे । यही मुख्य विधि है ।

व्याकरण की रीति से 'न शिखां' चाहिये इस के बदले 'न शिखं' ऐसा प्रयोग किया है, यह छान्दस प्रयोग है । जैसे विविदिषा संन्यासी शिखा और यज्ञोपवीत रहित मुख्य है, तैसे योगी परमहंस दण्ड और वस्त्र रहित मुख्य है । क्योंकि दण्ड बांस का है, या अन्य काठ का है, इस भांति दण्ड की परीक्षा करने के लिये, वैसे ही आच्छादन भी कन्था रूप है ? या अंगरखा के समान है ? इस रीतिं आच्छादन की परीक्षा करने के लिये, वैसे ही दण्ड मिलने के लिये और उस की रक्षा के लिये योगी की वृत्ति बारबार बाहरी व्यापार वाली होने से उस का मुख्य कर्त्तव्य जो चित्त वृत्ति का निरोध रूप योग है सो सिद्ध नहीं हो सकता । जैसे कन्या का ब्याह वरके मारने के लिये नहीं, किन्तु उस की वंश वृद्धि के लिये है । तैसे ही परमहंस आश्रम धारण किया जाता है, वह केवल चित्त वृत्ति के निरोध के लिये ही धारण करने में आता है । किन्तु चित्त वृत्ति के विक्षेप के लिये धारण करने में नहीं आता । दण्ड

आदिक धारण करने से तो, ऊपर बताये हुए प्रमाण से चित्त विक्षेप को प्राप्त होता है, इस लिये दण्ड आदि का ग्रहण यह परम हंस के लिये मुख्य विधि नहीं। वस्त्र आदि न रक्खे तो, शीत, आतप, आदि से शरीर की रक्षा किस रीति करे? ऐसी शंका हो इस लिये श्रुति उत्तर देती है—

"न शीतं न चोष्णं न दुःखं न सुखं न मानावमाने च षड्डूर्मिवर्जम्" इति ॥

अर्थः—उस को ठण्ढ, गर्मी, दुख, सुख, मान अपमान, होते नहीं। तैसे ही वह छः ऊर्मि रहित होता है ॥

निरुद्धाशेषचित्तवृत्तेर्योगिनः शीतं नास्ति तत्प्रतीत्यभावात्। यथा लीलायामासक्तस्य बालस्याऽऽच्छादनादिरहितस्यापि हेमन्तशिशिरयोः प्रातःकाले शीतं नास्ति तथा परमात्मन्यासक्तस्य योगिनः शीताभावः। घर्मकाले उष्णाभावश्च तथैवावगन्तव्यः। वर्षाभावसमुच्चयार्थश्चकारः। शीतोष्णयोरप्रतीतौ तज्जन्ययोः सुखदुःखयोरभाव उपपन्नः। निदाघे शीतं सुखजनकं हेमन्ते दुःखजनकम्। उक्तविपर्यय उष्णे द्रष्टव्यः। मानः पुरुषान्तरेण सम्पादितः सत्कारः, अवमानः तिरस्कारः।

अर्थः—सब वृत्तियों का जिन ने निरोध कर लिया है, ऐसे योगी को शीत की प्रतीति होती नहीं। जैसे क्रीड़ा में खुश रहने वाला लड़का वस्त्र आदिसे रहित होय तो भी हेमन्त शिशिर, ऋतु के प्रातः काल में भी उस को शीत नहीं मालूम

पड़ता। तैसे ही परमात्मा में आसक्त योगी को शीत आदि का असर नहीं होता, उसी तरह उष्ण काल में गर्मी का अभाव होता है। चातुर्मासे में वृष्टि का अभाव भी च शब्द से लेना चाहिये। उस को शीत और उष्णता की अप्रतीति होने से, उस से होने वाले सुख दुःख का उस को अभाव होता है। यह वार्ता योग्य ही है, उष्ण काल में शीत सुख कारक है, और हेमन्त में दुःखकारक है, उसी तरह हेमन्त में उष्णता सुख जनक है, और उष्ण काल में दुःख जनक है। मान अर्थात् अन्य पुरुष से किया सत्कार। अपमान अर्थात् तिरस्कार।

यदा योगिनः स्वात्मव्यतिरिक्तं पुरुषान्तरमेव न प्रतीयते तदा मानावमानौ दूरादपेतौ। चकारः शत्रुमित्ररागद्वेषादिद्वन्द्वाभावं समुच्चिनोति। षडूर्मयः—क्षुत्पिपासे शोकमोहौ जरामरणे च। तेषां त्रयाणां द्वन्द्वानां क्रमेण प्राणमनोदेहधर्मत्वादात्मतत्त्वाभिमुखस्य योगिनस्तद्वर्जनं न विरुद्ध्यते ॥

अर्थः—जब योगी को अपने आत्मा के सिवाय अन्य पुरुष ही नहीं। तब मान अपमान, हो ही कैसे? चकार का ग्रहण शत्रु, मित्र, राग, द्वेष, आदिक द्वन्द्व धर्मों के समुच्चय को दूर करता है। भूख, प्यास, शोक, मोह, और जरा, मरण, ये छ, ऊर्मियां समझो, इन में से भूख प्यास, प्राणका धर्म हैं। शोक मोह अन्तः करण के धर्म हैं, और बुढापा, मृत्यु, शरीर के धर्म हैं। इसलिये आत्माभिमुख योगी में छः ऊर्मियों का त्याग विरुद्ध नहीं।

नन्वस्त्वेवं समाध्यवस्थायां शीताद्यभावः, व्युत्थानदशायां तु निन्दादिक्लेशः संसारि-

णमिवैनं बाधत एवेत्याशङ्क्याऽऽह—

अर्थः—समाधि दशा में योगी को शीत आदि का अभाव हो, परन्तु व्युत्थान दशा में तो, संसारी के समान निन्दा आदि क्लेश उस को बाध करता ही है, ऐसी शङ्का का उत्तर।

"निन्दागर्वमत्सरदम्भदर्पेच्छाद्वेषसुखदुःखकामक्रोधलोभमोहहर्षासूयाहङ्कारादींश्च हित्वा" इति॥

अर्थः—निन्दा, गर्व, मत्सर, दम्भ, दर्प, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष, असूया, और अहङ्कार आदिक को त्याग कर।

विरोधिभिः पुरुषैः स्वस्मिन्नापादिता दोषोक्तिर्निन्दा।अन्येभ्योऽधिकोऽहमिति चित्तवृत्तिर्गर्वः। विद्याधनादिभिरन्यसदृशो भवामीति बुद्धिर्मत्सरः। परेषामग्रे जपध्यानादिप्रकटनं दम्भः। भर्त्सनादिषु दृढबुद्धिर्दर्पः। धनाद्यभिलाषः इच्छा। शत्रुवधादिषु बुद्धिः द्वेषः। अनुकूलद्रव्यादिलाभेन बुद्धिस्वास्थ्यं सुखम्। तद्विपर्ययो दुःखम्। योषिदाद्यभिलाषः कामः। कामितार्थविघातजन्यो बुद्धिक्षोभः क्रोधः। लब्धस्यधनस्य त्यागासहिष्णुत्वं लोभः। हितेष्वहितबुद्धिरहितेषु हितबुद्धिर्मोहः। चित्तगतसुखाभिव्यञ्जिका सुखविकासादिहेतुर्धीवृत्तिर्हर्षः। परकीयगुणेषु दोषत्वारोपणमसूया। देहेन्द्रियादिसङ्घातेष्वात्मभ्रमोऽहङ्कारः। आदिशब्द-

न भोग्यवस्तुषु ममकारसमीचीनत्वादिबुद्धयोगृह्यन्ते। चकारो यथोक्तं निन्दादि विपरीतं स्तुत्यादिकं समुच्चिनोति। एतान्सर्वान्निन्दादीन् हित्वा पूर्वोक्तवासनाक्षयाभ्यासेन परित्यज्यावतिष्ठेतेति शेषः॥

अर्थः—विरोधी पुरुषों कर के आपे में दोषों के कथन का नाम 'निन्दा' है। 'मैं दूसरे से अधिक हूँ' इस प्रकार की चित्त की वृत्ति का नाम गर्व है। 'विद्याधनादि से मैं दूसरों के समान' होऊं ऐसी बुद्धि को मत्सर जानो। अन्य के आगे जप ध्यान आदि प्रकट करना 'दम्भ' है। दूसरे के तिरस्कार करने में दृढ बुद्धि रखना यह दर्प कहाता है। धन आदिक की लालसा 'इच्छा' है। शत्रुवधादि विषयक बुद्धि को 'द्वेष' कहते हैं। धन आदि अनुकूल पदार्थ की प्राप्ति से बुद्धि की स्वस्थता का नाम सुख है। इस के उलटा होना दुःख है। स्त्री आदि की इच्छा का नाम काम है। इच्छित अर्थ के विघात से हुई बुद्धि के क्षोभ का नाम 'क्रोध' है। प्राप्त धन के त्याग को न सहसकना लोभ है। हित में अहित बुद्धि और अहित मे हित बुद्धि 'मोह' है। चित्त में रहने वाले सुख को सूचित करनेवाली सुखके विकास का हेतुरूप जो बुद्धि की वृत्ति है, वह हर्ष है। अन्य के गुणों में दोषों का आरोपण करना असूया है। देह इन्द्रिय आदि के सङ्घात में, वह आत्मा है अर्थात मैं हूं ऐसी भ्रांति का नाम अहङ्कार है। आदि शब्द से भोग्य पदार्थों में से ममत्व और उस में श्रेष्ठता का भी त्याग समझो। चकारका ग्रहण निन्दादि से विपरीत स्तुति आदि के ग्रहण के लिये है। इन सब निन्दा आदि दोषों को वासनाक्षय के अभ्यास

द्वारा त्याग कर रहे ।

ननु विद्यमाने स्वदेहे तत्परित्यागो न स-म्भवतीत्याशङ्क्याऽऽह—

अर्थः—शंका,—जब तक शरीर है, उन का त्याग सम्भव नहीं ।

"स्ववपुः कुणपमिव दृश्यते यतस्तद्वपुरपध्व-स्तम्," इति ।

अर्थः—समाधान,–अपने शरीर को मुर्दे के समान देखता है, क्योंकि उस शरीर का ज्ञान होने पर नाश हो जाता है ।

पूर्वं यत्स्वकीयं वपुस्तदिदानीं योगिना स्वा-त्मचैतन्यात्पृथग्भूतत्वेन कुणपमिवावलोक्य-ते । यथा श्रद्धालुः स्पर्शनभीत्या शवदेहं दूरे स्थितोऽवलोकयति तथाऽयं योगी तादात्म्य-भ्रान्त्युदयभीत्या सावधानो देहं चिदात्मनः सकाशान्निरन्तरं विविनक्ति, यतः का-रणात्तद्वपुराचार्योपदेशागमानुभवैरपध्वस्तं चिदात्मनः सकाशान्निराकृतम् । तत-श्चैतन्यवियुक्तस्य देहस्य शवतुल्यतया दृश्य-मानत्वात्सत्यपि देहे निन्दादित्यागोऽघटत-इत्यभिप्रायः ॥

अर्थः—पूर्व में जिसको, यह मेरा शरीर है, ऐसा माना था, उस शरीर को ज्ञान होने पर योगी चैतन्य-स्वरूप आत्मा से अलग मुर्दे की नाईं देखता है । जैसे कोई श्रद्धालु पुरुष छूने के डर से मुर्दे को दूर खडा हुआ देखता है, उसी भांति योगी भी शरीर के साथ ता-

दात्म्य की भ्रांति उदय के भय से देह का चिदात्मा से सदा विवेक किया करता है । क्योंकि वह शरीर श्री सद्-गुरु के उपदेश से शास्त्र प्रमाण से, और अपने अनुमान से ही चैतन्य स्वरूप आत्मा से अलग कर लिया है । इसलिये चैतन्य रहित शरीर मुर्दे के समान योगी देखता है । अतएव देह रहने पर भी योगी को निन्दा का त्याग घटता है ।

ननूत्पन्नोदिग्भ्रमः सूर्योदयदर्शनेन विनष्टो-ऽपि यथा कदाचिदनुवर्तते तथा चिदात्म-नि देहात्मत्वसंशयाद्यनुवृत्तौ निन्दादिक्ले-शः पुनःपुनः प्रसज्येतेत्याशंक्याऽऽह—

अर्थः—जैसे उत्पन्न हुई दिशा की भ्रांति सूर्योदय होने पर यद्यपि हट जाती है पर तौ भी किसी समय फिर उदय को प्राप्त होती है । उसी प्रकार चैतन्य स्वरूप आत्मा में फिर देह में आत्मापन का संशय आदि उत्पन्न होता है तो, निन्दादि क्लेश का प्रसंग बार२ आवे, ऐसी शंका पैदा हो तो उसको निवारण के लिये कहते हैं कि:—

"संशयविपरीतमिथ्याज्ञानानां यो हेतुस्तेन नित्यनिवृत्तः" इति ॥

आत्मा कर्तृत्वादिधर्मोपेतस्तद्रहितो वेत्या-दिकं संशयज्ञानम् । देहादिरूप एवाऽऽत्मेति विपरीतज्ञानम् । एतदुभयं भोक्तृविषयम् । मिथ्याज्ञानं तु भोग्यविषयमत्र विवक्षितम् । तच्चाऽनेकविधं " संकल्पप्रभवान् कामान् " इत्यत्र स्पष्टीकृतम् । तद्धेतुश्चतुर्विधः ।

अर्थः—संशयज्ञान, विपरीतज्ञान, और मिथ्या ज्ञान के

जो हेतु हैं, वे योगी में से सदैव के लिये निवृत्त हो जाते हैं।

आत्मा कर्त्तापन आदि धर्मवाला है? या वह धर्मों से रहित है? इत्यादि संशयज्ञान का स्वरूप है। आत्मा देहादिरूपही है, यह मिथ्याज्ञान का स्वरूप है। ये दोनों ज्ञान भोक्ता में करने हारे हैं। इस स्थल में मिथ्याज्ञान भोग्य सम्बन्धी समझना। यह मिथ्याज्ञान अनेक प्रकार का है (संकल्पम०) इस श्लोक के व्याख्यान में स्पष्ट कहा है। संशय आदि ज्ञान का हेतु ४ प्रकार का श्रीपतञ्जलिमुनि ने कहा है।

"अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या" इति

अनित्ये गिरिनदीसमुद्रादौ नित्यत्वभ्रान्तिरेका। अशुचौ पुत्रभार्यादिशरीरे शुचित्वभ्रान्तिर्द्वितीया। दुःखे कृषिवाणिज्यादौ सुखत्वभ्रान्तिस्तृतीया। गौणमिथ्यात्मनि पुत्रभार्यादावन्नमयादिकेऽनात्मनि मुख्यात्मत्वभ्रान्तिश्चतुर्थी। एतेषां संशयादीनां हेतुरद्वितीयब्रह्मात्मतत्त्वावरकमज्ञानं तद्वासना च। तच्चाज्ञानं योगिनः परमहंसस्य महावाक्यार्थबोधेन निवृत्तम्। वासना तु योगाभ्यासेन निवृत्ता। उदाहृतायां दिग्भ्रान्तावज्ञाने निवृत्तेऽपि वासनायाः सद्भावाद्यथापूर्वं भ्रान्तिव्यवहारः। योगिनस्तु भ्रान्तिहेतुद्वयराहित्यात् कुतः संशयादीन्यनुवर्तेरन्। तमेवमनुवृत्त्यभावमभिप्रेत्य तेन हेतुद्वयेन योगी नित्यनिवृत्त इत्युक्तम्।

सत्यामप्यज्ञानतद्वासनानिवृत्तेरुत्पत्तौ तस्या निवृत्तेर्विनाशाभावान्नित्यत्वं द्रष्टव्यम्। तन्नित्यत्वे हेतुमाह—

अर्थः— अनित्य, अशुचि, दुःख, और अनात्म पदार्थ में नित्य, शुचि, सुख, और आत्मापन की जो भ्रान्ति है—वह अविद्या है।

पर्वत, नदी, समुद्र, आदि, पदार्थ जो अनित्य है, उन में नित्यपन की भ्रान्ति करनी यह पहिली अविद्या है। स्त्री पुत्रादिकों के अशुचि शरीर में शुचिपन की भ्रान्ति होनी यह दूसरी अविद्या है। दुःखरूप कृषि व्यापार आदि में सुखपन की भ्रान्ति यह तीसरी अविद्या है। और स्त्री पुत्रादिकों के शरीर जो गौण आत्मा है, वैसे ही अन्न का विकाररूप स्थूल शरीर जो मिथ्यात्मा है, उन दोनों में मुख्यात्म भ्रान्ति यह ४ थी अविद्या है। पूर्वोक्त संशय आदिकों का कारण, अपने स्वरूप से अभिन्न ब्रह्म को आवरण करने वाला अज्ञान और उसकी वासना है। उस में अज्ञान तो महावाक्य के अर्थ के ज्ञान होने से नाश को प्राप्त हो जाता है। और वासना योगाभ्यास से क्षीण हो जाती है। पहिले ही दिया हुआ दृष्टान्त रूप से दिशा की भ्रान्ति रूप अज्ञान, सूर्योदय से नाश को प्राप्त हो जाने पर भी उस की वासना बनी ही रहती है, उससे पुनः दिग्भ्रान्ति होती है। और योगी को तो भ्रान्ति के दोनों कारण नाश को प्राप्त होने से उस को संशय आदिक क्यों कर हों? होते ही नहीं। इस प्रकार संशय आदिक दो कारणों का अभाव होता है, इस अभिप्राय से ही 'सदा संशय आदि का कारण रहित, ऐसा श्रुति कहती है। यद्यपि योगी में अज्ञान तथा वासना की निवृत्ति उत्पन्न होती है,

तथापि उस निवृत्ति का नाश न हो इस लिये उन को सदा निवृत्ति का कथन किया है । संशय आदि के कारणों की निवृत्ति के निरूपन में कारण कहते हैं ।

"तन्नित्यत्वबोधः" इति ।

सर्वनामत्वात्प्रसिद्धार्थवाची तच्छब्दोऽत्र सर्ववेदान्तप्रसिद्धं परमात्मानमाचष्टे । तस्मिन्परमात्मनि नित्यो बोधो यस्य योगिनः सोऽयं तन्नित्यबोधः । योगी हि—

"तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः" इति श्रुतिमनुसृत्य चित्तविक्षेपान् योगेन परिहृत्य नैरन्तर्येण परमात्मविषयामेव प्रज्ञां करोति । अतो बोधस्य नित्यत्वाद्बोधाविनाश्ययोरज्ञानतद्वासनयोर्निवृत्तिर्नित्येत्यर्थः ॥

बुध्यमानस्य परमात्मनस्तार्किकेश्वरवत्तटस्थत्वशङ्कां वारयति—

"तत्स्वयमेवावस्थितिः" इति ।

यद् वेदान्तवेद्यं परं ब्रह्मास्ति तत्स्वयमेव न तु स्वस्मादन्यदित्येवं निश्चित्य योगिनोऽवस्थितिर्भवति ॥

तस्य योगिनो ब्रह्मानुभवप्रकारं दर्शयति —

अर्थः—'उस परमात्मा का जिसको सदा ज्ञान है । ऐसा योगी पुरुष—धीर ब्रह्मवित् पुरुष उस परमात्मा का साक्षात्कार कर ब्रह्माकार बुद्धि को करे'—इस श्रुति के अनुसार योग द्वारा चित्त के विक्षेप का निरोध कर निरन्तर परमात्माकार बुद्धि करता है ।, इसलिये ज्ञान के निरूपन के कारण ज्ञान द्वारा नाश होने वाला अज्ञान और उसकी वासना की निवृत्ति उस में नित्य है । अनुभव गम्य परमात्मस्वरूप तार्किक ईश्वर के समान तटस्थ होगा, ऐसी शंका का कारण कहते हैं—

वेदान्त से जानने योग्य जो परमात्मा का स्वरूप हैं, वह मैं स्वयं हूं, मुझ से वह अलग नहीं । ऐसो निश्चय पूर्वक योगी की ब्रह्मविषयकस्थिति होती है ।

योगी को किस प्रकार से ब्रह्म का अनुभव होता है, सो बतलाते हैं ।

"तं शान्तमचलमद्वयानन्दविज्ञानघन एवास्मि तदेव मम परमं धाम," इति ।

अर्थः—वह शान्त, अचल, अद्वितीय, आनन्द स्वरूप, विज्ञान घन परमात्मा, मैं हूं । वही मेरा वास्तविक स्वरूप है ।

तमित्यादिपदत्रये द्वितीया प्रथमार्थे द्रष्टव्या। यः परमात्मा शान्तः क्रोधादिविक्षेपरहितः अचलोगमनादिक्रियारहितः, स्वगतसजातीयविजातीयद्वैतशून्यः सच्चिदानन्दैकरसोऽस्ति स एवाऽहमस्मि । तदेव ब्रह्मतत्त्वं मम योगिनः परमधाम वास्तवं स्वरूपम् । न त्वेतत्कर्तृत्वभोक्तृत्वादियुक्तरूपम् । एतस्य मायाकल्पितत्वात् ।

अर्थः—जो परमात्मा शान्त अर्थात् क्रोधादि विक्षेपरहित है, अचल अर्थात् गमनादिक्रियारहित है, सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद रहित है, और अखण्ड सत् चित् आनन्द स्वरूप है, वही मैं हूं । वह ब्रह्म स्वरूप ही मैं हूं, योगी का परम

धाम अर्थात् वास्तविक स्वरूप है । कर्तापन, भोक्तापन, इत्यादि धर्मवाला मेरा स्वरूप नहीं, वह तो, माया कल्पित है ।

नन्वात्मनः परब्रह्मत्व आनन्दावाप्तिरिदानीं कुतो नेत्यत्राऽऽनन्दावाप्तिः सदृष्टान्तमुक्ताऽभियुक्तैः ।

अर्थः—जो आनन्द स्वरूप होयतो, वह सदा सब में स्थित है, तब इस समय आनन्द की प्रतीति क्यों नहीं होती ? ऐसी शङ्का का उत्तर विद्वानों ने दृष्टान्त सहित दिया है ।

"गवां सर्पिः शरीरस्थं न करोत्यङ्गपोषणम् ।
तदेव कर्म रचितं पुनस्तस्यैव भेषजम्" ॥
एवं सर्वशरीरस्थः सर्पिर्वत् परमेश्वरः ।
विना चोपासनं देवो न करोति हितं नृषु" इति ।

यदि योगिनः पूर्वाश्रमप्रसिद्धा आचार्यपितृभ्रात्रादयः कर्मिणः श्रद्धाजडाः शिखायज्ञोपवीतसन्ध्यावन्दनादिरादित्येन पाखण्डित्वमारोप्य व्यामोहयेयुस्तदा व्यामोहनिवृत्तये योगिनां वर्त्तमानं निश्चयं दर्शयति ॥

अर्थः—जैसे घी गौ के शरीर में ही रहता, तौ भी वह उसके शरीर का पोषण नहीं करता, परन्तु वही क्रिया द्वारा बाहर निकाला जाता है तो, शरीर की पुष्टि का औषध स्वरूप होता है । तैसे परमात्मा देव, घी के समान शरीर में रहता है तथापि वह उपासना बिना मनुष्य का हित नहीं करता ।

यदि योगी के पूर्वाश्रम के प्रसिद्ध गुरु, पिता, भाई, आदिक सम्बन्धीजन, कर्मठ और श्रद्धाजड़ वे शिखा, यज्ञोपवीत, संध्यावन्दन आदि के अभाव के कारण उस में पाखंडिपन का

आरोप कर उसको व्यामोह उत्पन्न करे तो, उस व्यामोह की निवृत्ति के लिये योगी के वर्तमान निश्चय को दिखलाते हैं—

"तदेव च शिखा तदेवोपवीतं च परमात्मनोरेकत्वज्ञानेन तयोर्भेद एव विभग्नः सा संध्या" इति ।

अर्थः—वह ब्रह्म ही शिखा है, वही उपवीत है, और जीवात्मा परमात्मा के अभेद से जो उनका भेद नाश होता, वही संध्या है ।

यद्वेदान्तवेद्यस्य परब्रह्मणोज्ञानं तदेव कर्माङ्गभूतबाह्य शिखायज्ञोपवीतस्थानीयम् । अन्ये च मन्त्रद्रव्यलक्षणे कर्माङ्गभूते चकारात् समुच्चीयंते । शिखाद्यङ्गसाध्यैः कर्मभिरुत्पन्नं यत् स्वर्गादिसुखं तत्सर्वं ब्रह्मज्ञानेनैव लभ्यते । विषयानन्दस्य सर्वस्य ब्रह्मानन्दलेशत्वात् ।

"एतस्यैवाऽऽनन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति"

इति श्रुतेः । एतदेवाभिप्रेत्याऽऽथर्वणिका ब्रह्मोपनिषद्यामनन्ति—

अर्थः—वेदान्त से जानने योग्य परमात्मा का जो ज्ञान, वही कर्म के अङ्ग भूत बाहरी शिखा, यज्ञोपवीत, की जगह है । और अन्य मन्त्र द्रव्य लक्षण कर्माङ्गभूत का दो चकार से समुच्चय होता है । शिखा आदिक अङ्गों से करने योग्य कर्मों से उत्पन्न हुए जो स्वर्ग आदि सुख हैं, वे सब ब्रह्म ज्ञान से ही प्राप्त होते हैं । क्योंकि सम्पूर्ण विषयानन्द ब्रह्मानन्द का लेश

रूप है, श्रुति अन्य प्राणिगण इसी ब्रह्मानन्द के लेश को भोगते हैं ऐसा कहती है। इसी अभिप्राय से अथर्ववेद के जानने वाले ब्रह्मोपनिषद में कहते हैं।

"सशिखं वपनं कृत्वा बहिः सूत्रं त्यजेद्बुधः।
यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत्॥
सूचनात् सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पदम्।
तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः।
येन सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।
तत्सूत्रं धारयेद्योगी योगवित्तत्त्वदर्शिवान्॥
बहिः सूत्रं त्यजेद्विद्वान् योगमुत्तममाश्रितः।
ब्रह्मभावमिदं सूत्रं धारयेद्यः स चेतनः॥
धारणात्तस्य सूत्रस्य नोच्छिष्टोनाशुचिर्भवेत्।
सूत्रमन्तर्गतं येषां ज्ञानयज्ञोपवीतिनाम्॥
ते वै सूत्रविदो लोके तेच यज्ञोपवीतिनः।
ज्ञानाशिखा ज्ञाननिष्ठा ज्ञानयज्ञोपवीतिनः॥
ज्ञानमेव परं तेषां पवित्रं ज्ञानमुच्यते।
अग्नेरिव शिखा नान्या यस्य ज्ञानमयी शिखा॥
स शिखीत्युच्यते विद्वान्नेतरे केशधारिणः।
कर्मण्यधिकृता ये तु वैदिके ब्राह्मणादयः॥
तैर्विधार्यमिदं सूत्रं कर्माङ्गं तद्धि वै स्मृतम्।
शिखा ज्ञानमयी यस्योपवीतश्चापि तन्मयम्॥
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य इति ब्रह्मविदोविदुः।
इदं यज्ञोपवीतं च परमं यत्परायणम्॥
विद्वान् यज्ञोपवीती स्यात्तज्ज्ञास्तं यज्विनं विदुः"
इति॥

अर्थः—शिखा सहित क्षौर करा के विद्वान् परमहंस बाह्य सूत्र का त्याग करे। जो नाश रहित पर ब्रह्म है, वह सूत्र है, इस लिये उस को धारण करे। वेदान्त शास्त्र सूचित करता है, इस लिये परम पद (परमात्मा सूत्र है) इस सूत्र को जिस ने जाना उसी ब्राह्मण ने वेद का पार पाया है। जिस तरह सूत्र में मणि गुथे हुए रहते वैसे ही सारा दृश्य जगत जिस के द्वारा व्याप्त है, उस सूत्र को योगवित् और तत्त्व दर्शी पुरुष धारण करे। उत्तम योग का आश्रम करने हारे विद्वान् को बाह्य यज्ञोपवीत त्यागना चाहिये। जो पुरुष ब्रह्म की सत्तारूप सूत्र को धारण करते वह ज्ञानवान् है। यह सूत्र धारण करने से पुरुष उच्छिष्ट या अशुचि नही होता जो ज्ञान रूपी यज्ञोपवीत वाले पुरुष के भीतर, उपर कहा हुआ सूत्र रहता वे जगत में सूत्र को जाननें हारे है, और वेही निसमिद्ध यज्ञोपवीत वाले हैं। जिन को ज्ञानरूप शिखा है, जो ज्ञान में ही निष्ठावाला है, तथा जिन को ज्ञानरूप यज्ञोपवीत है, उन्ही को परम पावन ज्ञान है ऐसा कहा है। जैसे अग्नि को अपने स्वरूप से अलग शिखा नही, तैसे जिस को ज्ञानरूप शिखा है, वही शिखा वाला कहलाता है, इतर केश को धारण करने हारा शिखा युक्त नही। जो ब्राह्मण आदि वर्ण वैदिक कर्म में अधिकारी है, उन्हे बाह्य सूत्र धारण करना चाहिये। क्योंकि वे कर्म के अङ्गभूत है। जिन को ज्ञान रूप शिखा है, और ज्ञान मय उपवीत है उनका ही सम्पूर्ण ब्राह्मणपन है, ऐसा वेद वेत्ता लोग कहते हैं। यह प्रसिद्ध, श्रेष्ठ और सब का उत्तम आश्रम रूप जो ब्रह्मरूप यज्ञोपवीत है, उस को आपे से अभिन्न जानता है, वह यज्ञोपवीत वाला है, और उस को ही ज्ञानी

लोग यह करने द्वारा कहते हैं ॥

तस्माद्योगिनः शिखायज्ञोपवीते विद्येते । तथैव सन्ध्याऽपि विद्यते । यः शास्त्रगम्यः परमात्मा यश्चाहम्प्रत्ययगम्यो जीवात्मा तयोरेकत्वज्ञानेन महावाक्यजन्येन भ्रान्तिप्रतीतो भेदो विशेषेण भग्न एव पुनर्भ्रान्त्यनुदयो भङ्गस्य विशेषः । येयमेकत्वबुद्धिः सेयमुभयोरात्मनोः सन्धौ जायमानत्वात्संध्येत्युच्यते । अहोरात्रयोः सन्धावनुष्ठेया क्रिया यथा सन्ध्या तद्वत् । एवं च सति योगी श्रद्धाजडैर्न व्यामोहयितुं शक्यः ।

कोऽयं मार्ग इति प्रश्नस्यासौ स्वपुत्रेत्यादिदिनोत्तरमुक्तम् । का स्थितिरित्येतस्य महापुरुष इत्यादिना सङ्क्षिप्योत्तरमुक्त्वा संशयविपरीतेत्यादिना तदेव प्रपञ्च्येदानीमुपसंहरति ।

अर्थः—तिस कारण योगी को शिखा और यज्ञोपवीत होता है । इसी प्रकार उस को सन्ध्याभी है । जो शास्त्रगम्य परमात्मा है तथा जो मैं ऐसा प्रतीति द्वारा गम्य जीवात्मा है, उन के अभेद को विषय करने वाले महावाक्य से उत्पन्न ज्ञान करके भ्रान्ति से प्रति होने वाला विशेष रूपसे नष्ट होता है फिरे से उदय को नहीं प्राप्त होना यही नाशपे विशेष है । इस भांति दोनों का अभेद ज्ञान जीवात्मा परमात्मा की सन्धि में होता है । इसलिये वह योगी की सन्ध्या कही जाती है । जैसे रात दिन की सन्धि में करने योग्य क्रिया सन्ध्या

कहलाती, उसी भांति अपरोक्ष ज्ञान भी जीवात्मा और परमात्मा की सन्धि में होता है । इसलिये वह भी परमहंस की सन्ध्या ही समझी जाती है । इस प्रकार विचार करने हारे योगी को श्रद्धाजड पुरुष व्यामोह उत्पन्न नहीं कर सका । परमहंस का कौन मार्ग है ? उस का उत्तर 'स्वपुत्र०' इत्यादि श्रुति द्वारा दिया है । उस के बाद उस की स्थिति कैसी होती है ? इस का उत्तर 'महापुरुष०' इत्यादि वचन से संक्षेप में देकर और 'संशय०' इत्यादि वचन से उसका विस्तार से उत्तर दिया, अब उपसंहार करते हैं—

"सर्वान्कामान् परित्यज्य अद्वैते परमे स्थितिः" इति ।

अर्थः—सब कामनाओं का परित्याग कर योगी परमहंस की परम अद्वैत में स्थिति होती है।

क्रोधलोभादीनां कामपूर्वकत्वात्कामपरित्यागेन चित्तदोषाः सर्वेऽपि परित्यज्यन्ते । एतदेवाभिप्रेत्य वाजसनेयिभिराम्नातम्—

अर्थः—क्रोध आदिकों की उत्पत्ति भी काम से ही है, इसलिये काम के परित्याग द्वारा चित्त के सब दोषों का त्याग समझना इसी अभिप्राय से वाजसनेयी शाखा वाले कहते हैं:—

"अथो खल्वाहुः काममय एवायं पुरुषः" इति ।

अतो निष्कामस्य योगिचित्तस्याऽद्वैते निर्विघ्ना स्थितिरुपपद्यते ॥

अर्थः—और यह पुरुष निश्चय काम मय ही है—इसलिये निष्काम योगी के चित्त की अद्वैत ब्रह्म में निर्विघ्न स्थिति घटती है ॥

ननु दण्डग्रहणविधिवासनयोपेता विविदिषासंन्यासिनो योगिनं दण्डरहितं परमहंसं नाभ्युपगच्छन्तीत्याशङ्क्याऽऽह—

अर्थः—दण्ड ग्रहण की विधि की वासना से युक्त विविदिषा संन्यासी दण्ड रहित योगी को परमहंस नहीं मानते, ऐसी शंका के उत्तर में कहते हैं—

"ज्ञानदण्डो धृतो येन एकदण्डी स उच्यते ।
काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ॥
स याति नरकान् घोरान् महारौरवसंज्ञितान् ।
तितिक्षाज्ञानवैराग्यशमादिगुणवर्जितः ॥
भिक्षामात्रेण यो जीवेत् स पापी यतिवृत्तिहा ।
इदमन्तरं ज्ञात्वा स परमहंसः" इति ॥

अर्थः—जिस ने ज्ञान दण्ड धारण किया है, वह एक दण्डी कहलाता है । जो काष्ठ का दण्ड धारण कर सब का अन्न खाता, और ज्ञान रहित है, वह संन्यासी महा रौरव नामक घोर नरक में जाता है । तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य, और शमादि गुण रहित जो संन्यासी केवल भिक्षा मांगकर जीवे वह, पापी सन्यासियों का स्वरूप भंग करने वाला है । इस भांति एक दण्डी, और दण्ड रहित योगी पुरुषों में अन्तर समझ कर योगी पुरुष को ही परमहंस कहना ठीक है ।

परमहंसस्य योऽयमेकदण्डः स द्विविधः । ज्ञानदण्डः काष्ठदण्डश्च । यथा त्रिदण्डिनो-वाग्दण्डो मनोदण्डः कायदण्डश्चेति त्रैविध्यम् । वागदण्डादयो मनुना स्मर्यन्ते—

अर्थः—परमहंस का एक दण्ड दो प्रकार का है—एक

काठ का दण्ड दूसरा ज्ञान रूपी दण्ड । जैसे त्रिदण्डी संन्यासी को काठ के दण्ड के सिवाय वाग्दण्ड, मनोदण्ड, और काय दण्ड हैं, तैसे परमहंस को ज्ञान दण्ड है । वाग्दण्डादि तीन दण्ड मनुभगवान् कहते हैं—

"वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते नियता बुद्धौ स त्रिदण्डीति चोच्यते ॥
त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः ।
कामक्रोधौ तु संयम्य ततः सिद्धिं निगच्छति ॥
तेषां स्वरूपं दक्षः स्मरति—

अर्थः—वाणी, मन और शरीर को दण्ड के समान पकड़ कें वश में रखने से संन्यासी त्रिदण्डी कहलाता है । मनुष्य सब प्राणियों में इन तीन दण्डों को रख के काम क्रोध को नियम से रक्खे, तब वह सिद्धि को पाता है । इनके स्वरूप को दक्षस्मृति कहती है:—

"वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते नियता दण्डास्त्रिदण्डीति स उच्यते ॥
वाग्दण्डे मौनमातिष्ठेत्कर्मदण्डे त्वनीहताम् ।
मानसस्य तु दण्डस्य प्राणायामो विधीयते"
इति ।

अर्थः—वाग्दण्ड, मनोदण्ड, और कर्मदण्ड इन तीन दण्डों को जिस ने नियम से वश में कर रक्खा है, वे त्रिदण्डी कहलाते हैं । वाग्दण्ड में मौन धारण करना, कर्मदण्ड में क्रिया रहित होना, और मनोदण्ड के बदले प्राणायाम करना ।

"कर्मदण्डोऽल्पभोजनम्" इति स्मृत्यन्तरपाठः । ईदृशं त्रिदण्डित्वं परमहंसस्याप्यस्ति ।

तदेतदभिप्रेत्य पितामहः स्मरति—

अर्थः—'थोडा भोजन करना, यह कर्मदण्ड है' ऐसा अन्य स्मृति में पाठ है । ऐसा त्रिदण्डी होना परमहंस का भी है । इसी अभिप्राय से श्री ब्रह्मा कहते हैं:—

"यतिः परमहंसस्तु तुर्याख्यः श्रुतिचोदितः ।
यमैश्च नियमैर्युक्तो विष्णुरूपी त्रिदण्डभृत्"इति ।

अर्थः—परमहंस संन्यासी को श्रुति ने तुर्य–इस नाम से कथन किया है । यम नियम युक्त और वाग्दण्ड आदि तीन दण्ड धारण करने हारे यति विष्णुरूप हैं ।

एवं सति मौनादीनां वागादिदमनहेतुत्वा-यथा दण्डत्वं तथैवाज्ञानतत्कार्यदमनहेतोर्ज्ञा-नस्य दण्डत्वम् । अयं ज्ञानदण्डो येन परमहं-सेन धृतः स एव मुख्य एकदण्डीत्युच्यते । मानसस्य ज्ञानदण्डस्य कदाचिच्चित्तविक्षेपेण विस्मृतिः प्रसज्येतेति तन्निवारणार्थं स्मारकः काष्ठदण्डोध्रियते । तदेतच्छास्त्रार्थरहस्यम-बुद्ध्वा वेषमात्रेण पुरुषार्थसिद्धिमभिप्रेत्य काष्ठ-दण्डो येन परमहंसेन धृतः स पुरुषो बहुविध-सन्तापोपेतत्वाद्घोरान्महारौरवसंज्ञकान्न-रकानाप्नोति । तत्र हेतुरुच्यते । परमहसवेषं दृष्ट्वा ज्ञानित्वभ्रान्त्या सर्वे जनाः स्वस्वगृहे भोजयन्ति । स्वयं च जिह्वालम्पटोवर्ज्यावर्ज्य-विवेकमकृत्वा सर्वमन्नमश्नाति तेन प्रत्यवायं प्राप्नोत्यज्ञानी । यानि तु "नान्नदोषेण मस्क-रीति" "चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्ष्यम्" इत्यादि स्मृ-

तिवचनानि ज्ञानिविषयाणि । अयं च ज्ञानव-र्जित इति युक्तोऽस्य नरकः । अत एव ज्ञानहीनस्य यतेर्भिक्षानियममाह मनुः ।

अर्थः—ऐसा है इस लिये जैसे मन आदि, वाणी आदि के दमन का कारण होने से दण्डरूप है, वैसेही ज्ञान भी अ-ज्ञान और उस के कार्य्य को दमन करने वाला होने से दण्ड-रूप है । यह ज्ञान दण्ड जिस परमंहस ने धारण किया है वही मुख्य एक दण्डी कहलाता है । मानस दण्ड का किसी समय चित्त के विक्षेप द्वारा विस्मरण होने का प्रसङ्ग, आ पडे तो, उस के स्मरण के लिये स्मारक चिन्हरूप से काष्ठ दण्ड धारण किया जाता है । इस भान्ति शास्त्र के तात्पर्य समझे विना केवल वेष मात्र से जिसने काठ का दण्ड धारण किया हो यह परमंहस अनेक प्रकार के सन्ताप युक्त होने से घोर महारौरव नामक नरक में जाता है ।

नरक प्राप्तिका कारण यह है कि केवल परमहंस का वेष देख कर सब लोग ' यह ज्ञानी होगा ' ऐसी भ्रान्ति से उस को अपने २ घर भोजन कराते और वह स्वयं भी जिह्वा इस में लम्पट होने से वर्ज्य अवर्ज्य के विवेक को त्याग कर खाता है, उस से वह अज्ञानी वेषधारी परमहंस पापी होता है । 'सं-न्यासी को अन्न का दोष नहीं लगता'–और 'संन्यासी चारों-वर्णों की भिक्षा ग्रहण करे" इत्यादि स्मृति वाक्य ज्ञानवान् 'सं-न्यासी के विषय में हैं, अज्ञानी संन्यासी भक्ष्य अभक्ष्य का-विवेक त्यागने से नरक का ही अधिकारी है । जिस को ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ वैसे संन्यासी के लिये मनु जी भिक्षा का नियम करते हैं—

"न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया ।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित्"॥
एककालं चरेद् भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ।
भैक्षे प्रसक्तोहि यति र्विषयेष्वपि सज्जते" इति ॥

ज्ञानाभ्यासिनं प्रति त्वेवं स्मर्यते—

अर्थः—उत्पात के कथन द्वारा शुभाशुभ निमित्त के सूचन द्वारा, नक्षत्र विद्या द्वारा, सामुद्रिक द्वारा, उपदेश द्वारा, वाद करके, किसी समय संन्यासी भिक्षा मिलने की इच्छा नहीं रक्खे । एक ही समय भीख लेवे, अधिक भिक्षा में आसक्त न हो । क्योंकि जो यति भिक्षा में प्रीति वाला होता है, तो, वह विषयों में भी आसक्त हो जाता है । ज्ञानाभ्यासी परमहंस के लिये इस भांति स्मृति कहती है ।

"एकवारं द्विवारं वा भुञ्जीत परमहंसकः ।
येन केन प्रकारेण ज्ञानाभ्यासो भवेत्सदा"इति ।

एवं च सति ज्ञानदण्डकाष्ठदण्डयोर्यदन्तरमुत्तमत्वाधमत्त्वरूपं तदिदमवगत्योत्तमं ज्ञानदण्डं यो धारयति स एव मुख्यः परमहंस इत्यभ्युपगन्तव्यम् ।

अर्थः—परमहंस संन्यासी एक वार या दो वार भोजन करे । सब तरह से वह ज्ञानाभ्यास ही में तत्पर रहे ।

इस भांति ज्ञान दण्ड की उत्तमता और काष्ठ दण्ड की अधमता समझ के जो ज्ञान दण्ड धारण करता है वही मुख्य परमहंस है ऐसा मानना चाहिये ।

नन्वस्त्वभिज्ञस्य परमहंसस्य ज्ञानदण्डो, माभूत् काष्ठदण्डनिर्बन्धः, इतरा तु चर्या सर्वा-

कीदृशीत्याशङ्क्याऽऽह ।

अर्थः—ज्ञानवान् परमहंस को ज्ञान दण्ड रहे, उसको काष्ठ दण्ड के लिये आग्रह न हो, परन्तु बाकी उस की चर्या (वर्त्ताव) कैसी होती है ? ऐसी शङ्का के उत्तर में कहते हैं ।

"आशाम्बरोनिर्नमस्कारो न स्वधाकारो न निन्दास्तुतिर्यादृच्छिकोभवेद्भिक्षुर्नाऽऽवाहनं न विसर्जनं न मन्त्रं न ध्यानं नोपासनं न लक्ष्यं नालक्ष्यं न पृथक् नापृथक् न चाहं न त्वं न सर्वं चानिकेतस्थितिरेव स भिक्षुः सौवर्णादीनां नैव परिग्रहेत् तल्लोकं नावलोकयेच्च" इति ।

आशा दिशस्ता एवाम्बरं वस्त्रमाच्छादनं यस्यासावाशाम्बरः । यत्तु स्मृतिवचनम् ।

अर्थः—दिशा रूपी वस्त्र धारण करने हारा, नमस्कार रहित, निन्दास्तुति रहित, सब व्यवहारों में आग्रह रहित, संन्यासी होवे । देवता आवाहन, विसर्जन, मन्त्रजप, ध्यान, और उपासना आदि उसे न करना चाहिये । उस को लक्ष्यार्थ, अलक्ष्यार्थ, पृथक्, अपृथक्, मैं, तू, सर्व, इत्यादि कोई विकल्प नहीं । उस को एक जगह मुकाम न करना चाहिये, सुवर्णादि ग्रहण न करे, और सुवर्णादि उसी प्रकार शिष्य आदि के सामने भी अवलोकन न करे ।

'आशा' अर्थात् दिशारूपी वस्त्र धारण करने वाले योगी 'आशाम्बरधर' या 'दिगम्बर' कहलाते हैं ।

"जान्वोरूर्ध्वमधोनाभेः परिधायैकमम्बरम् ।
द्वितीयमुत्तरं वासः परिधाय गृहानटेत्"इति ।

अर्थः—घुटने के ऊपर और नाभि के नीचे एक वस्त्र धारण कर और ऊपर दूसरा वस्त्र धारण कर यति घर २ भीख मांगने को जावे ।

यह स्मृति वाक्य, जो सन्यासी योगी नहीं, उसके लिये समझना । वैसाही—

"योभवेत्पूर्वसंन्यासी तुल्यो वै धर्मतो यदि ।
तस्मै प्रणामः कर्त्तव्यो नेतराय कदाचन" इति ॥

अर्थः—जिसने अपनी अपेक्षा प्रथम संन्यास ग्रहण किया हो, और धर्म मे अपने समान होय उस संन्यासी को प्रणाम करे, इतर संन्यासी को किसी समय नहीं प्रणाम करे ।

तस्याप्ययोगिविषयत्वान्नास्य नमस्कारः कर्त्तव्योऽस्ति । अत एव ब्राह्मणलक्षणे "निर्नमस्कारमस्तुतिम्" इत्युदाहृतम् । गयाप्रयागतीर्थेषु श्रद्धाजाड्यात्प्राप्तः स्वधाकारो निषिध्यते, पूर्वत्र निन्दागर्वेत्यादिवाक्येन परकृतया स्वनिन्दया क्लेशोनिवारितः, अत्र तु स्वकर्तृकेऽन्यविषये निन्दास्तुती निषिध्येते । यादृच्छिकत्वं निर्बन्धराहित्यम् । न क्वचिदपि व्यवहारे निर्बन्धं कुर्यात् । यस्तु देवपूजायां निर्बन्धः स्मर्यते—

अर्थः—यह वचन भी अयोगी संन्यासी के लिये हैं । योगी संन्यासी किसी को नमस्कार न करे । इसी लिये पहिले ब्राह्मण लक्षण के वर्णन में 'नमस्कार और स्तुति रहित' ऐसा कथन कर आये हैं । गया, प्रयाग आदिक तीर्थों में जाकर अतिशय श्रद्धा वशतः प्राप्त हुए श्राद्ध का भी उस को निषेध

है । पूर्व में 'निन्दा गर्व' इत्यादि वाक्य से, अन्य द्वारा कियी हुई अपनी निन्दा से हुए क्लेश का वारण किया और यहां तो आपे से दूसरी की निन्दा और स्तुति का निषेध करता है । कोई भी व्यवहार उस को आग्रह पूर्वक न करना चाहिये ।

"भिक्षाटनं जपः शौचं स्नानं ध्यानं सुरार्चनम् ।
कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत्" इति॥

अर्थः—भिक्षाटन करना, जप, शौच, स्नान, ध्यान, और देव पूजन, ये छः कर्म संन्यासी, राजदण्ड के समान सर्वथा करे ।

तस्याप्ययोगिविषयत्वमभिप्रेत्य नाऽऽवाहनमित्याम्नातम् । सकृत्स्मरणं ध्यानम्, नैरन्तर्येणानुस्मरणमुपासनमिति तयोर्भेदः । यथा योगिनः स्तुतिनिन्दालौकिकव्यवहाराभावः, यथा वा देवपूजादिधर्मशास्त्रव्यवहाराभावः, तथा लक्ष्यत्वादिज्ञानशास्त्रव्यवहारोऽपि नास्ति । यत्साक्षिचैतन्यमस्ति तदिदं तत्त्वमसीति वाक्ये त्वंपदेन लक्ष्यं देहादिविशिष्टं चैतन्यं लक्ष्यं न भवति, किंतु वाच्यम् । तच्च वाच्यं तत्पदार्थात्पृथक्, लक्ष्यं त्वपृथक् । स्वदेहनिष्ठो वाच्योऽर्थोऽहमिति व्यवहारार्हः । परदेहनिष्ठस्त्वमिति व्यवहारार्हः । लक्ष्यं वाच्यमित्युभयविधं चैतन्योपेतमन्यज्जडं जगत्सर्वमिति व्यवहारार्हमित्येतादृशोविकल्पो न कोऽपियोगिनोऽस्ति, तदीयचित्तस्य ब्रह्मणि विश्रान्तत्वात् । अत एव स भिक्षुरनिकेतस्थितिरेव । यदि निष-

तन्निवासार्थं कञ्चिन्मठं सम्पादयेत्तदानीं त-
स्मिन्ममत्वे सति तदीयहानिवृद्ध्योश्चित्तं वि-
क्षिप्येत । तदेवाभिप्रेत्य गौडपादाचार्या
आहुः ।

अर्थः—इस भांति स्मृति में देव पूजन में आग्रह बतलाया है, वह भी योगी के लिये नहीं । इसी अभिप्राय से 'नावाहनं' इत्यादि श्रुति ने कथन किया है । एकवार स्मरण करने का नाम 'ध्यान' और निरन्तर स्मरण करने का नाम 'उपासना' है, यही ध्यान और उपासना में भेद है । जैसे योगी को स्तुति आदिक लौकिक व्यवहार नहीं होते और जैसे देव पूजा आदि धर्मशास्त्र सम्बन्धी व्यवहार नहीं होते तैसे लक्ष्यत्व आदि ज्ञान शास्त्र का व्यवहार भी उस को नहीं होता । सो इस भांति जो साक्षी चैतन्य है, वह "तत्त्वमसि" इस महावाक्य में 'त्वं' पद द्वारा लक्ष्य है, देहादि उपाधि युक्त चैतन्य 'त्वं' पद का लक्ष्य अर्थ नहीं है, परन्तु वह 'त्वं' पद का वाच्य अर्थ है । वह वाच्य अर्थ तत् पद के अर्थ से अलग है, लक्ष्य अर्थ पृथक् नहीं । अपने देह में स्थित वाच्य अर्थ 'अहं' (मैं) ऐसे पद द्वारा व्यवहार करना योग्य है । तथा अन्य देह में स्थित वाच्य अर्थ 'त्वं' (तू) ऐसे पद से व्यवहार करना योग्य है । लक्ष्य तथा वाच्य इन दो प्रकार के चैतन्य रहित अन्य जड जगत् 'सर्व' ऐसा व्यवहार करना योग्य है । इस प्रकार का कोई भी विकल्प योगी को फुरता नहीं क्योंकि उस का चित्त ब्रह्म में विश्राम को प्राप्त होता है । इस लिये वह संन्यासी एक जगह वास नहीं करता । क्योंकि जो एक ही जगह में वास करने के लिये वह कोई मठ बान्धे तो, उस में ममत्व बन्धन से जो उस की

हानि या वृद्धि होती होय तो, उस का चित्त विक्षेप को प्राप्त हो । इसी अभिप्राय से गौडपादाचार्य्य कहते हैं—

"निस्तुतिर्निर्नमस्कारोनिःस्वधाकार एव च ।
चलाचलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत्" इति ।
यथा मठो न परिग्रहीतव्यस्तथा सौवर्णराज-
तादीनां भिक्षाचमनादिपात्राणामेकमपि न
गृण्हीयात् । तदाह यमः—

अर्थः—किसी की भी स्तुति या नमस्कार करने में प्रवृत्ति रहित, श्राद्ध न करने हारा, शरीर और आत्मा रूप घरवाला, और आग्रह रहित संन्यासी को होना चाहिये ।

जैसे मठ न बान्धे, तैसे सोना रूपे की भिक्षा या आचमनादि के पात्र में से एक भी उस को न रखना चाहिये । यम स्मृति में भी ऐसा ही कहा है—

"हिरण्मयानि कृष्णायसमयानि च ।
यतीनां नान्यपात्राणि वर्जयेत्तानि भिक्षुकः" इति ।
मनुरपि—

अर्थः—सोने का पात्र, लोहे का पात्र इत्यादि अन्य पात्र यति को रखने योग्य नहीं । इस लिये भिक्षु उन का त्यागकरे ।

मनुजी भी ऐसा ही कहते हैं—

"अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च ।
तेषां मृद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥
अलाबुदारुपात्रं वा मृन्मयं वैणवं तथा ।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्" इति ।
बोधायनोऽपि—

अर्थः—संन्यासी के लिये धातु के पात्र न हों, और टूटे

फूटे या छिद्रवाले भी न हो, जैसे यज्ञ के चमस पात्र की शुद्धि मट्टी से होती, उसी तरह संन्यासियों के पात्रों की भी शुद्धि होती है। तुम्बी का पात्र, काट का पात्र, माटी का पात्र और बांस का पात्र इतने यतियों के पात्र होते है, स्वायंभव मनुजी ने कहा है।

बौधायन भी ऐसा ही कहते हैं—

"स्वयमाहृतपर्णेषु स्वयंशीर्णेषु वा पुनः ।
भुञ्जीत न वटाश्वत्थकरंजानां च पर्णके ॥
आपद्यपि न कांस्येषु मलाशी कांस्यभोजनः ।
सौवर्णे राजते ताम्रे मृन्मये त्रपुसीसयोः" इति ।
तथा लोकं जनं शिष्यवर्गं न गृह्णीयात् ।
तदाह मनुः—

अर्थः—स्वयं लाये हुए या स्वयं गिरे पडे पत्तों पर यति भोजन करें। तो भी बड, पीपल, और करंज, के पत्ते पर भोजन न करें। आपत्काल में भी कांस्य पात्र में भोजन न करें, क्योंकि कांस्य पात्र में भोजन करने हारा यती मल का भोजन करने वाला है। वैसे सोना, रूपा और तामे के पात्र में उसी तरह माटी का कलाई या सीसा के पात्र में भोजन न करे।

संन्यासी, लोक यानी शिष्यों का भी संग्रह न करे इस सम्बन्ध में मनुजी बोलते हैं।

**"एक एवचरेत नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायकः ।
सिद्धिमेकस्य पश्यन् हि तज्जहाति न हीयते"
इति ।**

मेधातिथिरपि—

अर्थः—अकेला की सिद्धि देख कर मोक्ष के लिये नाकर

आदिक की सहायता बिना ही यती नित्य अकेला विचरे वह किसी का त्याग नहीं करता और न उसे लोग त्यागते।

मेधातिथि भी कहते हैं—

"आसनं पात्रलोभश्च संचयः शिष्यसंग्रहः ।
दिवा स्वापो वृथाऽऽलापोयतेर्बन्धकराणि षट् ॥
एकाहात्परतोग्रामे पञ्चाहात्परतः पुरे ।
वर्षाभ्योऽन्यत्र यत्स्थानमासनं तदुदाहृतम् ।
उक्तालाब्वादिपात्राणामेकस्यापि न सङ्ग्रहः ।
भिक्षोर्भैक्षभुजश्चापि पात्रलोभः स उच्यते ॥
गृहीतस्य तु दण्डादेर्द्वितीयस्य परिग्रहः ।
कालान्तरोपभोगार्थं संचयः परिकीर्त्तितः ॥
शुश्रूषालाभपूजार्थं यशोऽर्थं वा परिग्रहः ।
शिष्याणां न तु कारुण्यात्स ज्ञेयः शिष्यसंग्रहः ॥
विद्या दिनं प्रकाशत्वादविद्या रात्रिरुच्यते ।
विद्याभ्यासे प्रमादो यः स दिवास्वाप उच्यते ॥
आध्यात्मिकीं कथां मुक्त्वा भैक्षचर्यां सुरस्तुतिः ।
अनुग्रहात्पथिप्रश्नो वृथाऽऽलापः स उच्यते" इति ॥

अर्थः—आसन, पात्र का लोभ, संचय, शिष्य का संग्रह, दिन का सोना, व्यर्थ बकना, ये छः संन्यासियों को बन्धन करने वाले वस्तु है। गांव में एक दिन वास करे शहर में पांच दिन, रहे, और चातुर्मास के सिवाय एक जगह मुकाम करें इस को आसन कहते हैं। भिक्षान्न का भोजन करने वाला यति उक्त तुम्बरी आदि पात्रों में से एक एक का भी संग्रह न करे, वह पात्र लोभ कहलाता है। दण्ड आदिक जो अपने पास हो, उस से विशेष आगे काम में आवेगा इस विचार से प्र-

हण करना उस का नाम संचय है। अपनी सेवा के लिये, लाभ के लिये, पूजा के लिये, यश के लिये, या दया वशतः भी शिष्यों को साथ रखना 'शिष्य संग्रह, जानो। प्रकाश रूप होने से विद्या का नाम दिन और अन्धकार मय होने से अविद्या का नाम रात्रि है, इस लिये निद्रा मे जो प्रमाद रक्खे उस का दिन में शयन कहते है। अध्यात्म शास्त्र की कथा में, भिक्षा मांगते समय, या देवता की स्तुति करते समय जो आवश्यक बोलना पडे उस के सिवाय रास्ते में जो सामने मनुष्य आते हों उन पर अनुग्रह कर उसी का कुशल प्रश्न पूछना वृथा भाषण है।

लोकं शिष्यजनरूपं न गृह्णीयादित्येतावदेव न भवति, किन्तु तस्य लोकस्यावलोकं दर्शनमपि न कुर्यात्। तस्य बन्धहेतुत्वात्। न चेत्यनेनान्यदपि स्मृतिनिषिद्धं न कुर्यादित्यभिप्रेतम्। तच्च निषिद्धं मेधातिथिर्दर्शयति—

अर्थः—शिष्य का संग्रह न करे ऐसा ही नहीं किन्तु उन का अवलोकन भी न करे। श्रुति में 'न च' यों च कारका ग्रहण किया है, इस लिये स्मृति के निषेध करने से अतिरिक्त अन्य वस्तु का भी त्याग करो ऐसा समझना चाहिये। निषिद्ध वस्तु मेधातिथि दिखलाते हैं—

"स्थावरं जङ्गमं बीजं तैजसं विषमायुधम्।
षडेतानि न गृह्णीयाद्यतिर्मूत्रपुरीषवत्।
रसायनं क्रियावादं ज्योतिषं क्रयविक्रयम्।
विविधानि च शिल्पानि वर्जयेत्परदण्डवत्" इति।

अर्थः—स्थावर, जङ्गम, बीज, तैजस पदार्थ, विष, और शस्त्र इन छः वस्तुओं को यति मूत्र और पुरीष के समान ग्रहण न करे। रसायन, कर्म सम्बन्धी बात, ज्योतिष, अर्थात् किसी ग्रह आदिक को देखना, क्रय विक्रय और विविध कारीगरी, इतनी वस्तुओं को परायी स्त्री के समान त्याग देवे।

योगिनो लौकिकवैदिकव्यवहारगतानि यानि बाधकानि सन्ति तेषां वर्जनमभिहितम्। अथ प्रश्नोत्तराभ्यामत्यन्तबाधकं प्रदर्श्य तद्वर्जनमाह।

अर्थः—योगी को लौकिक उसी तरह वैदिक व्यवहार में जो बाधक वस्तु हैं, उन के त्याग का कथन किया हैं, अब प्रश्नोत्तर द्वारा अत्यन्त बाधक वस्तुओं को देखा कर उन का त्याग कहते हैं—

"आबाधकः क इति चेदाबाधकोऽस्त्येव। यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन दृष्टं चेत्सब्रह्महा भवेत्। यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन स्पृष्टं चेत्स पौल्कसोभवेत्। यस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन ग्राह्यं चेत्स आत्महा भवेत्। तस्माद्भिक्षुर्हिरण्यं रसेन न दृष्टं च न स्पृष्टं च न ग्राह्यं च" इति।

अर्थः—यति को अत्यन्त बाध करने वाला क्या पदार्थ हैं?— उत्तर,— उस को अत्यन्त बाध करने वाली वस्तु है, क्योंकि यदि वह सुवर्ण को प्रीति पूर्वक देखे, तो वह ब्रह्महत्या करने वाला होता, और जो सुवर्ण को प्रीति पूर्वक छूवे तो, वह चाण्डाल होता, और भिक्षु जो सुवर्ण को प्रीति से ग्रहण करता तो, वह आत्मा को हनन करने वाला होता है। इस लिये

संन्यासी सुवर्ण को प्रीति से न देखे प्रीति से उस का स्पर्श न करे और प्रीति पूर्वक उस को ग्रहण भी न करे।

आकारोऽभिव्याप्त्यर्थः "आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ" इत्यभिहितत्वात्। अभिव्याप्तो बाधकोऽत्यन्तबाधकस्तस्य सद्भावं प्रतिज्ञाय हिरण्यस्य तथाविधबाधकत्वमुच्यते। रसेनाभिलाषयुक्तेनाऽऽदरेण हिरण्यं यदि दृष्टं स्यात्तदानीं स द्रष्टा भिक्षुर्ब्रह्महा भवेत्। हिरण्यासक्त्या तत्सम्पादनरक्षणयोः सर्वदा प्रयतमानस्तद्वैयर्थ्यपरिहाराय प्रपञ्चमिथ्यात्वप्रतिपादकान् वेदान्तान् दूषयित्वा तत्सत्यत्वमवलम्बते। ततः शास्त्रसिद्धमद्वितीयं ब्रह्म तेन भिक्षुणा हतमिव भवति। तस्मादसौ ब्रह्महा भवेत्। तथा च स्मर्यते।

अर्थः—'यति ही को अत्यन्त बाधक है, ऐसी प्रतिज्ञा कर सुवर्ण को अत्यन्त बाधक कहा है। यति जो सुवर्ण को इच्छा पूर्वक आदर सहित देखे तो वह ब्रह्म हत्या करने वाला होता है। क्योंकि सुवर्ण में आसक्ति होने से उस को मिलने और रक्षा करने के लिये सदा यत्न करता यति, सुवर्ण का व्यर्थ पन को हटाने के लिये, संसार के मिथ्यापन को प्रतिपादन करने वाले वेदान्त वाक्यों को दूषण देकर, उस के सत्यपन का अवलम्बन करता है। उस से शास्त्र सिद्ध अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व को मानो संन्यासी ने मारडाला है। इस से वह ब्रह्म हत्या करने वाला होता है। स्मृति में भी ऐसा ही कहा है:—

"ब्रह्म नास्तीति यो ब्रूयाद्द्वेष्टि ब्रह्मविदं च यः।

अभूतब्रह्मवादी च त्रयस्ते ब्रह्मघातकाः" इति॥
"ब्रह्महा स तु विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः"।

अभिलाषपूर्वकं हिरण्यं स्पृष्टं चेत्तदा तत्स्प्रष्टा भिक्षुः पतितत्वात्पौल्कसो म्लेच्छसदृशो भवेत्। पातित्यञ्च स्मर्यते—

अर्थः—जो 'ब्रह्म नहीं है' ऐसा कहता, और जो ब्रह्मवित पुरुष से द्वेष करता, और जो मिथ्या ब्रह्म वादी है, ये तीन पुरुष ब्रह्महत्या करने हारे हैं। सर्व धर्मों से भ्रष्ट हुए पुरुष को ब्रह्महत्या करने हारा जानो।

इच्छा पूर्वक सुवर्ण का स्पर्श करे तौभी वह स्पर्श करने हारा संन्यासी पतित होने से पुल्कस अर्थात उसे म्लेच्छ समान जानो। इस का पतित होना स्मृति मैं लिखा है:—

"पतत्यसौ ध्रुवं भिक्षुर्यस्य भिक्षोर्द्वयं भवेत्।
धीपूर्वं रेतउत्सर्गो द्रव्यसंग्रह एव च" इति॥

अर्थः—जो संन्यासी बुद्धि पूर्वक वीर्यपात और धनका संग्रह ये दो वस्तु करता वह भिक्षु निश्चय पतित होता है।

अभिलाषपुरःसरं हिरण्यं न ग्राह्यम्। गृहीतं चेत्तदा स भिक्षुर्देहेन्द्रियादिसाक्षिणमसङ्गं चिदात्मानं हतवान् भवेत्। असङ्गत्वमपोह्य स्वात्मनो हिरण्यादि द्रव्यं प्रति भोक्तृत्वेन प्रतिपन्नत्वात्। तस्याश्चान्यथाप्रतिपत्तेः सर्वपापरूपत्वं स्मर्यते—

अर्थः—संन्यासी इच्छा पूर्वक सुवर्ण को न ग्रहण करे। क्योंकि सुवर्ण ग्रहण करने से वह देहेन्द्रिय का साक्षी आत्मा का हनन करने हारा होता है। क्योंकि अपने

आत्मा के असङ्गपन को त्याग कर उस ने आत्मा को हिरण्य आदिक द्रव्य का भोक्ता होना माना है । आत्मा का अन्यथा ज्ञान सब पापरूप है, ऐसा स्मृति कहती है ।

"योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते, ।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणाऽऽत्मापहारिणा"॥

किञ्चाऽऽत्मघातिनः सुखलेशेनापि रहिता बहुविधदुःखेनाऽऽवृता लोकाः श्रूयन्ते—

अर्थः—जो आत्मा के स्वरूप अन्य प्रकार का हुआ स्वयं उस से अन्य प्रकार का मानता उस आत्मा को हरण करने वाले चोर पुरुष ने कौन पाप नहीं किया ? बहुत किया ।

आत्म घाती को जिस में लेश भी सुख नहीं ऐसे अनेक दुःख युक्त लोक की प्राप्ति होती है, ऐसा श्रुति कहती है ।

दृष्टं चेत्यनेन चकारेण श्रुतं च समुच्चीयते । स्पृष्टं चेत्यनेन कथितस्य समुच्चयः । प्राह्यं चेत्यनेन व्यवहृतं चेति समुच्चयः । दर्शनस्पर्शनग्रहणवदभिलाषपूर्विका हिरण्यवृत्तान्तश्रवणतद्गुणकथनतदीयक्रयादिव्यवहारा अपि प्रत्यवायहेतव इत्यर्थः । यस्मात्साभिलाषहिरण्यदर्शनादयो दोषकारिणस्तस्माद्भिक्षुणा हिरण्यदर्शनादयो वर्जनीया इत्यर्थः ॥ हिरण्यवर्जनस्य फलमाह—

अर्थः—सुवर्ण का दर्शन, उस का छूना, और उस का ग्रहण जैसे दोषों का कारण है, वैसेही अभिलाष पूर्वक सुवर्ण सम्बन्धी बात करना, और उस के गुणों का कथन करना और उस के द्वारा खरीद फरोखत करना आदि व्यवहार करना भी

प्रत्यवायका ही कारण है । सुवर्ण की इच्छा पूर्वक उस का दर्शन इत्यादि दोष उपजाने वाले होनेसे संन्यासी सुवर्ण सम्बन्धी सारे व्यवहारों को छोड देवे । सुवर्ण के त्याग का फल कहते हैः—

"सर्वे कामा मनोगता व्यावर्तन्ते दुःखे नो द्विग्नः सुखे निःस्पृहस्त्यागो रागे सर्वत्र शुभाशुभयोरनभिस्नेहो न द्वेष्टि न मोदते च सर्वेषामिन्द्रियाणां गतिरुपरमते य आत्मन्येवावस्थीयते," इति ।

अर्थः—जो पुरुष (द्रव्य की इच्छा त्यागकर) परमात्मा में ही स्थिति करता, उस के मन में रही हुई इच्छाओं का नाश हो जाता है । दुःख में तो उद्वेग पाता नहीं सुख में स्पृहारहित होता, उस के राग में त्याग होता, सर्व शुभ में वह स्नेह रहित होता, वह किसी से द्वेष नहीं करता, वह किसी पदार्थ से हर्ष को प्राप्त नहीं होता, और उस के सब इन्द्रियों की गति विषयों में से निवृत्त होती है ।

पुत्रभार्यागृहक्षेत्रादिकामानां सर्वेषां हिरण्यमूलत्वाद्धिरण्ये परित्यक्ते सति ते कामा मनोगता मनस्यवस्थानाद् व्यावर्तन्ते व्यावृत्ता भवन्ति । कामनिवृत्तौ सत्यां कर्मप्राप्ययोर्दुःखसुखयोरुद्वेगस्पृहे न भवतः । एतच्च स्थितप्रज्ञप्रस्तावे प्रपञ्चितम् । ऐहिकयोः सुखदुःखयोरभिव्यञ्जकत्वे सत्यामुष्मिकविषयरागे ऽपि त्यागो भवति । ऐहिकसुखस्पृहायुक्तो हि तदृष्टान्तेनानुमित

आमुष्मिके सुखे रागवान् भवति । तस्मादैहिकनिःस्पृहस्याऽऽमुष्मिके रागाभावो युज्यते । एवं सति सर्वत्र लोकद्वयेऽपि यौ शुभाऽशुभावनुकूलप्रतिकूलविषयौ तयोरनभिस्नेहः । एतच्च द्वेषराहित्यस्याप्युपलक्षणम् । तादृशो विद्वान् शुभकारिणं कंचिदपि पुरुषं न द्वेष्टि शुभकारिणि च मोदं न प्राप्नोति । द्वेषमोदरहितो यः पुमानात्मन्येव सर्वदाऽवतिष्ठते तस्य सर्वस्य सर्वेषामिन्द्रियाणां गतिः प्रवृत्तिरुपरमते । इन्द्रियोपरतौ न कदाचिदपि निर्विकल्पकसमाधेर्विघ्नो भवति । तेषां का स्थितिरिति प्रश्नस्य सङ्क्षेपविस्तराभ्या मुत्तरं पूर्वमुक्तं तदेवात्र पुनरपि हिरण्यनिषेधप्रसङ्गेन स्पष्टीकृतम् ॥

अर्थः—पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्र, इत्यादि सब भोग्यपदार्थों का मूल सुवर्ण अर्थात् द्रव्य है । इस लिये उस का त्याग करने से स्त्री पुत्रादि कों के मन में रही हुई इच्छा भी निवृत्त होजाती काम की निवृत्ति होने पर कर्म द्वारा प्राप्त सुख और दुःख में से स्पृहा और उद्वेग दूर होजाते हैं । यह वार्त्ता स्थित प्रज्ञ के प्रसङ्ग में विस्तार पूर्वक वर्णन कियी गयी है । ऐहिक सुख दुःख के अनादर होने से परलोक के सुख में से भी राग त्याग होता है । क्योंकि जिस को इस लोक के सुख मे स्पृहा होती उस को इस लोक के सुख पर से अनुमान किया पारलौकिक सुख में भी इच्छा होनी सम्भव है । इस लिये ऐहिक सुख में निःस्पृह पुरुष को परलोक के सुख में विराग घटता है । इस प्रकार

इन दोनों लोकों के अनुकूल वैसाही प्रतिकूल विषयों में राग द्वेष रहित होता है । ऐसा विद्वान् अपने अशुभ करने हारे किसी भी पुरुष से द्वेष नहीं करता, उसी तरह अपने शुभ करने वाले पर प्रसन्न नहीं होता । राग द्वेष रहित जो पुरुष आत्मा में ही स्थिति करता, उस की सब इन्द्रियों की प्रवृत्ति उपराम को प्राप्त होती हैं । वैसा होने पर किसी समय भी उसको निर्विकल्प समाधि में विघ्न नहीं होता ।

जीवन्मुक्त पुरुष की कैसी स्थिति होती है ? इस प्रश्न का उत्तर संक्षेप और विस्तार से पहिले दिया गया । उस का ही यहां फिर हिरण्य के निषेध के प्रसङ्ग से स्पष्टी करण किया है ।

अथ विद्वत्संन्यासमुपसंहरति ।

"यत्पूर्णानन्दैकबोधस्तद्ब्रह्माहमस्मीति कृतकृत्यो भवति" इति ॥

यद्ब्रह्म वेदान्तेषु पूर्णानन्दैकबोधः परमात्मेति निरूपितं तद्ब्रह्माहमस्मीत्येवं सर्वदाऽनुभवन्नयं योगी परमहंसः कृतकृत्यो भवतीति । तथा च स्मर्यते—

अर्थः—अब विद्वत्संन्यास का उपसंहार कहते हैं । जिस ब्रह्म का वेदान्त में पूर्णानन्द स्वरूप, अखण्ड ज्ञान स्वरूप और परमात्मा रूप से निरूपण किया है, वह ब्रह्म मैं हूं, इस प्रकार निरन्तर अनुभव करता हुआ योगी परमहंस कृत कृत्य होता है, स्मृति में भी ऐसा ही कहा है—

"ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्"
इति ॥

अर्थः—ज्ञान रूप अमृत द्वारा तृप्ति को प्राप्त हुए कृतकृत्य योगी को कुछ भी कर्तव्य नहीं । और जो कर्त्तव्य हो तो, वह तत्त्वज्ञ नहीं ।

जीवन्मुक्तिविवेकेन बन्धं हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थमखिलं देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥ १ ॥

अर्थः—जीवन्मुक्ति के विवेक से हृदय के बन्धनों को नाश करता हुआ ऐसे भारतीतीर्थ गुरु से अभिन्न श्रीमहेश्वर सम्पूर्ण पुरुषार्थ को देवें ।

इति श्रीमद्विद्यारण्यप्रणीते जीवन्मुक्तिविवेके
विद्वत्संन्यासनिरूपणं नाम पञ्चमं
प्रकरणम् ॥ ५ ॥

भेदाभेदौ सपदिगलितौ पुण्यपापे विशीर्णे
मायामोहौ क्षयमधिगतौ नष्टसन्देहवृत्तिः ।
शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं
निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां कोविधिः कोनिषेधः॥१॥
तीर्थानि तोयपूर्णानि देवान् पाषाणमृन्मयान् ।
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मज्ञानपरायणाः ॥ २ ॥
अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् ।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥३॥
सर्वत्रावस्थितं शान्तं न प्रपद्ये जनार्दनम् ।
ज्ञानचक्षुर्विहीनत्वादन्धः सूर्यमिवोदितम् ॥ ४ ॥

सम्पूर्णोऽयं श्रीमद्विद्यारण्यप्रणीतो-
जीवन्मुक्तिविवेकः ।

अर्थः—जिसको वाणी नहीं पहुचती और जो तीन गुणों से रहित ऐसे परमात्माका ज्ञान पाके भेद और अभेद उसी

समय नष्ट होजाते, पुण्य, पाप क्षीण होजाते, अविद्या और मोह का भी क्षय होजाता, और सन्देह रूप वृत्ति भी नष्ट हो जाती। त्रिगुणातीत मार्ग पर चलने वाले पुरुष के लिये क्या विधि ? या क्या निषेध होता ? अर्थात् ऐसा पुरुष विधि निषेध से रहित होता है । आत्मज्ञान में तत्पर योगी जल से पूर्ण तीर्थ को और पाषाण और मट्टी के बने देवों की शरण नहीं जाते । द्विजातियों की देव अग्नि, मुनियों का देव हृदय में, स्वल्पबुद्धिवालों का देव प्रतिमा में, और आत्मवेत्ताओं का देव सर्वत्र है । जैसे अन्धा पुरुष सूर्य के उदय होने पर भी नहीं देखता, तैसे अज्ञ पुरुष ज्ञान रूपी नेत्र से हीन होने से सर्वत्र व्यापक एवं शान्त और सब लोग जिसकी इच्छा करते ऐसे परमात्मा को नहीं देखते हैं ।

इस भांति विद्यारण्य विरचित जीवन्मुक्तिविवेक
का श्रीउदयनारायणसिंह कृत
भाषानुवाद पूरा हुआ ।

संस्कृतविद्वत्परिचायिका

Inventory of Sanskrit Scholars

संस्कृतविद्वत्परिचायिका
INVENTORY OF SANSKRIT SCHOLARS

General Editor

Radha Vallabh Tripathi

RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN

Deemed University

New Delhi

PREFACE

It is immensely gratifying that the Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi is publishing the 'Inventory of Sanskrit Scholars' (संस्कृतविद्वत्परिचायिका) on the occasion of Fifteenth World Sanskrit Conference. The Sansthan under its various schemes also intends to collect the Bio-data of Sanskrit Scholars and to make them available on its website. The preparation of the Software for this purpose is in its final stage. The website will give an access to know the Sanskrit scholars of the entire world and the works done by them. The present Inventory includes the details of about 5000 Sanskrit scholars. Initially, the preparation of Inventory was taken up at the Bhopal Campus of the Sansthan. Since 2009 the Bhopal Campus has been doing this work in collaboration with its Main Campus, The Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi.

This Inventory on the basis of details made available by scholars in response to the Sansthan's format presents briefly the data as under - the name of scholars, qualification, date of birth, place of birth, positions, teachers and disciples (Guru-Shishya-Parampara), numbers and titles of published books and research papers, addresses, awards and honors, foreign visits etc. and gives also a resume of their significant contributions to Sanskrit. The Sanskrit scholars mentioned in this Inventory are mostly those who were born between 1850 to 1990 A.D.

The application form for entries in the Inventory of Sanskrit Scholars is available in the Sansthan's website. A large number of Sanskrit Scholars responded. The Bio-data of several Sanskrit scholars were also collected by personal contact, through internet, correspondence, books, conferences etc. It was however, not possible to include Bio-Data of each and every scholar due to paucity of time. The Sansthan has decided to launch a 'Wikipedia of Sanskrit Scholars' and is hopeful of getting the co-operation of Scholars, in this regard.

The Sansthan expresses its gratitude to the scholars who have offered their direct and indirect co-operation in preparing the Inventory. Prof. Balkrishna Sharma, from Ujjayini, Dr. Narayan Dash from Kolkata (W.B.), Dr. Bhai Vasant Bhatt from Gujarat, Dr. Pradeep Kumar Pandey from Varanasi and Dr. Sugyana

Kumar Mohanty form Orissa have particularly helped us in getting the data. We also acknowledge the valuable assistance provided by Dr. Ajay Kumar Mishra, Lalit Kishore Sharma and Avinash Pandey who collected the Bio-Data of Scholars participating in conference held at different places in India. We are thankful to Shri Anil Sharma who designs the format of the Inventory and Shri Subhash Chandra Jain of New Bharatiya Book Co-operation, New Delhi who took great pains in publishing it in a very short time.

Though the Inventory is not complete in itself, yet it is believed that it will be helpful to readers, researches and those who are willing to know the contributions of scholars to Sanskrit studies spanning over last 150 years.

ABBREVIATION

A.I.R.	-	All India Radio
Add.	-	Address
AP	-	Andhra Pradesh
Asct. Prof.	-	Associate Professor
Asst. Prof.	-	Assistant Professor
b.	-	Birth / Date of Birth
B.A.	-	Bachelor of Arts
B.O.L.	-	Bachelor of Oriental Language
BHU	-	Banaras Hindu University
BORI	-	Bhandarkar Oriental Research Institute
CG	-	Chhattisgarh
Comm.	-	Commentary
D.D.	-	Door Darshan
D.Phil.	-	Doctor of Philosophy
Dipl.	-	Diploma
Dy.	-	Deputy
Ed.	-	Edited / Editor
GJ	-	Gujarat
Govt.	-	Government
Gp.	-	Guru Parampara
HP	-	Himachal Pradesh
HR	-	Haryana
IASS	-	International Association of Sanskrit Studies
IIAS	-	Indian Institute of Advance Studies
J&K	-	Jammu & Kashmir
JH	-	Jharkhand
KT	-	Karnataka
M. Phil.	-	Master of Philosophy

M.A.	-	Master of Arts
M.M.	-	Mahamahopadhyaya
M.O.L.	-	Master of Oriental Language
M.P	-	Madhya Pradesh
MH	-	Maharashtra
P. G. T.	-	Post Graduate Teacher
P. G.	-	Post Graduate
Ph. D.	-	Doctor of Philosophy
Prof.	-	Professor
Pt.	-	Pandit
R. A.	-	Research Assistant
R.Sk.S.	-	Rashtriya Sanskrit Sansthan
RJ	-	Rajasthan
S.S.V.V.	-	Sampoornananda Sanskrit Vishwa-Vidyalaya
Skt.	-	Sanskrit
Sp.	-	Shishya Parampara
Spl.Ref.	-	Special Reference
T.G.T.	-	Trained Graduate Teacher
TN	-	Tamil Nadu
U.G.	-	Under Graduate
UK	-	UttaraKhand
Univ.	-	University
UP	-	Uttar Pradesh
WB	-	West Bengal

A

Abhimanyu. Acharya (Sāhitya & Darśana), M.A. in Skt. *b.* 09.12.1939. Vill. Bhainswal Kalan, Sonipat, Dist. Haryana. Reader. *GP.* Ramachandra Pandeya, Satyavrata Sastri, Baladeva Simha. ***Add.*** Dept. of Skt.. Punjab University, Patiala (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Darśana.

Abhyankar, Kamal shankar. M.A., Ph.D. ***b.*** 15.12.1938. Maharashtra. HOD Skt. Deptt. NDT Mahila Vidyapeeth, Mumbai. ***Bks.*** 06. Saṃskṛtaracanā, Saṃskṛtanibandhādarśaḥ, Rājaśekhararācī Kāvyamīmāṃsā, Hāsya-tuṣārāḥ. ***Add.*** C-9, Ganesh Bhavan, Senapati Bapatmarg, Mahim, Mumbai – 16. ***Spl. Ref.*** Poetry in Skt., Marathi. Join to A.I.R. & Dooradarshana.

Acharya, Balvir. Acharya in Veda & M.A. in Skt., D.Litt.. ***b.***23.05.1952, Fazalpur (U.P.). Prof., M. D. Univ. Rohatk. ***Bks:*** 05. Śikṣā Vedānta Paramparā aur Siddhānta, Brāhmaṇa Granthon ke Rājanītika Siddhānta, Ṛgvedīya Brāhmaṇo kā Sāmskṛtika Adhyayana. ***Ps:*** 20. ***Add.*** H.No. - 33 / Type - IV. University Campus, Rohtak 124001, Haryana. email: balviracharya @ gmail.com.

Acharya, Buddhi Vallabh. Acharya in Vyākaraṇa, Vidyavachaspati. ***b.***15.06.1936, Vill. Aamdipatti, Garhwal. Principal. Jagat Dev Singh Skt. College, Haridwar. ***Gp.*** Paramesvarananda Shastri, Ramanandaji Shastri, Omprakash Bhatt, Kanta Prasad Badhola, Madhavanand Shastri. ***Bks.*** 03. Jāgo Vira Jāgo, Rasa Kalaśī, Uddhava-śatakam. ***Add.***Vill. Haripur Kala, Raiwala, Dehradun. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Acharya, Chainsukh Das. Acharya. Nyāya Theertha. ***b.*** 1900. Jaipur. Principal. Digambar Jain Skt College. Jaipur. ***Bks.*** 05. Jainadar-śanasāraḥ, Pāvanapravāhaḥ, Bhāvanāvivekaḥ, Ṣodaśakāraṇabhāvanā. Arhatapravacana. ***Spl.Ref.*** Jain Darśana.

Acharya, Chandi Prasad. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya & Darśana. ***b.*** 1871. Principal. Maharaja Skt. College, Jaipur. *GP.* Pt. Murari Mishra. Pt. Devanarayana Tripathi. ***Bks.*** 08. Raghuvaṃśa Explanation, Rāvaṇavadham Explanation, Sāṅkhya Pravacana Explanation, Śaktiśaṅkhanāda Explanation. Tarkabhāṣā Explanation. ***Spl.Ref.*** Many Research Papers are Published in Skt. Ratnakar, Bharti, Svaramangla etc.

Acharya, Dharmaveer. Acharya. ***b.*** 15.01.1951. Rohtak, Haryana. Teacher. Govt. Sr. Secondary School Sonipat. ***Bks.*** 01. Rajarṣidevīlīlācaritam.

Acharya, Hariram. M.A., Ph.D. (Sanskrit), Sāhitya Ratna (Hindi). ***b.*** 21.06.1936 Jaisalmer, Rajasthan. Retd. Professor, Deptt. of Skt. Rajasthan V.V., Director Jain Research Centre and President Rajasthan Skt. Academy. ***Bks.***05 pūrvaśākuntalam, Khule Kiraṇapāla, Mahākavihāla Aura Gāthāsatasai, Saṅgīta-dāmodara. ***Ps*** 50. ***Add.*** Parnakuti, 42-A, Gangawal Park, Jaipur. ***Spl.Ref.*** Kāvya Śāstra, Nā-ya Śāstra and Prākṛta Literature. Writer of Poetry Songs Drama, Literary Criticism in the field of Hindi Braj Bhasha Skt. Prakrit and Urdu Chief Editor Svaramangla Journal. Meerakavya Puraskar, Meru Puraskar. Rediotalks & Kavyapath from A.I.R. & D.D.- JAIPUR .

Acharya, Jagadish kumar. Acharya in Jyotiṣa, Shiksashastri. ***b.*** 31.01.1925, Dilip Pur, Pratapgarh, U.P. Rtd. Principal. ***GP.*** Pt. Pauharisarana Pandey, Avadhabihari Tripathi. ***Bks.*** 01. Indirā Caritam. ***Add.*** Dilip Pur, Pratapgarh (U.P.). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Acharya, Jyotimitra. Acharya in Darśana, Sāhitya, Purāṇetihāsa, Ph.D. ***b.*** 01.05.1939, Rudauli, Barabanki, U.P. ***Add.*** B-13/166 A, Kedarghat, Varanasi (U.P.) ***Spl.Ref.*** Darśana.

Acharya, Karna Chandra. Acharya in Sāhitya M.A., Ph.D., Diploma. ***b.*** 02.09.1934. Prof. Dept. of Skt.. . ***Ps.*** 05. ***Add.*** Utkal University, Vani Vihar, Bhuvaneswar – 751004 (Orissa). ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Acharya, Krishna. Acharya M.A. in Veda & Grammar, Ph.D., *b.* 12.12.1959. Asct. Prof. M.D. Univ. Rohtak. *Bks.* 01. Paśuyajña-mīmāmsā. *Ps:* 25. *Add.* H.No. 33/ Type IV. University Campus, Rohtak-124001. Haryana. *Spl.Ref.* Veda & Vyākaraṇa.

Acharya, Kshitinath. Kāvya-Vyākaraṇa Tirtha, M.A., Ph.D. *b.* 03.11.1952, Rasan, Midnapur, W.B. Asct. Prof. Scottish Church College, Calcutta – 70006. *Add.* Ananda Ashram. AF–186 Rabindrapalli, P.O. Prafulla kanan, Calcutta, *Pin.* 700101. *Ph.* (033) 5713300.

Acharya, Motilal. Acharya. *b.* 16.08.1929, Sihora, Sagar, (M.P.). Asst. Prof. *Gp* Mahendra Kumar, Diwakar Joshi. *Add.* Shri Ganesh Digambar Jain Sanskrit Vidyalaya, Sagar (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Acharya, Pandhari Nath G. Ratna (Nyāya, Vedānta, Sāhitya). *b.* 10.07.1922, Bijapur, KT. *Bks.* 04. Rāghavendrakāvya-pañcakam, Satya-dhyānaśatakam, Kṛṣṇa-laharī. *Add.* Vishveshwar Nagar, Hubli, (KT). *Spl.Ref.* Nyāya, Vedānta, Sāhitya.

Acharya, Prabhudas. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 08.08.1942, Palatudas Akhara, Ayodhya, Faizabad, (U.P.). Principal. *Bks.* Edited Journals. *Add.* Shri Hanumat Sanskrit Mahavidyalaya, Hanumangarhi, Ayodhya, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Nyāya.

Acharya, Prasant Kumar. Acharya in Advaita Vedanta. *b.* 23.12.1952, Cuttack, Orissa. *GP.* Pt. Shrinivas Shastri, Pt. Ramanuj Tatacharya, Pt. Siddheshvar Dixit, Dr. N. Jha, Prof. Dr. G.K. Bhatta. *Add.* C/o Andhra Bank, 84, Bapuji Nagar, Bhubaneshwar – 751009 (Orissa). *Spl.Ref.* Advaitavedānta.

Acharya, Ramjiban. M.A. (Skt. & Bengali), Ph.D., Kāvyatīrtha, Purāṇaratna, Sāhitya-vinoda. *b.*24.06.1937, Kalindi, Midnapure, W.B. Guest Lecturer in Skt. Rabindra Bharati Univ. Calcutta. *Bks.* 06. Saṃskṛta Sāhitye Rūpāloka (65 crit.), Kālidāsakṛtiṣu nārī caritra Vimarśaḥ, Padavalir Path (84–Discourse on Vaishnavism). *Add.* K.B. Block, Flat No. 804, Salt Lake City, Calcutta–700091,W.B. *Spl.Ref.* Conferred title "Bhakti – Siddhanta Vachaspati" by the Institute of Vaishnavism & Vedic culture 1989, UGC Research Awards.

Acharya, Ram Nath Suman. Acharya, M.A., Honourary Vidyavachaspati. *b.* 20.07.1926. Gaziabad, U.P. Committee Adhyaksh Bharat Skt. Parishad. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa. He has written many texts books which are prescribed in the various universities of India, Ashukavi, President Awardee.

Acharya, Shaligram. Acharya (Darśana, Vyākaraṇa). *b.* 09.04.1918. Una, HP. Rtd. Principal, Govt. Skt. College, Solan. *Bks.* 04. Nyāyadarśana, Vaiśeṣikadarśana. *Ps.* 40. *Spl.Ref.* Indian Philosophy, Head, Darsanaik Anusandhan Kendra, President Awardee.

Acharya, Sitanath. M.A., Ph.D., *b.* 01.12.1939, Rasan, Midnapur, W.B. Prof., University of Calcutta, Calcutta – 700073. *Bks.* 10 Kā Tvam Śubhe, Śiśuyuvadurdaiva-vilasitam. *Ps. 70. Add.* AF-177. Rabindra Palli. P.O. Prafulla Kanan, Kolkata - 700101. W.B. *Ph.* (033) 5710074. *Spl.Ref.* Editor of Jahnavi Patrika. President Awardee – 2008.

Acharya, Srikant. *b.* Dehradun, Uttaranchal. Lecturer, Govt. Skt. College, Solan, H.P. *Bks.* 02. Sīmātikramaṇam, Pratāpavijayam. *Add.* Prateet Nagar, Raiwala, Dehradun, U.K.

Acharya, Sriram Sharma Ariyar. Nyāya Alaṅkāra, Veda Alaṅkāra. Rashtra Bhasha Vishradh, M.A., Shiksha Shastri. *b.* 28.08.1943. Melukota, KT. Pranshupal, Govt. Skt. Mahavidyalaya. *Bks.* 07. Asmaccampū, Kavi Kāvya Mālā, Sāhitya Mātṛkā, Saṃskṛta Śikṣaṇa Kalpavalli, Prākṛta Śataka Kāvya Dvayam. *Add.* Govt. Skt. College, Melukote. 31. KT. *Spl.Ref.* Poetry in Skt. Prakrit, Kannad, Tamil, Hindi.

Acharya, Sudyumna. M.A., Ph.D. *b.* 09.01.1946. Satna, MP. Director Ved Vani Vitan Oriental Publication and Research Institute, Satna. *Bks.* 10 Gaṇitaśāstra ke vikāsa kī bhāratīya paramparā. *Ps.* 150. *Add.* Ved Vani Vitan, Oriental Publication & Research Institute, Birla

Road, Kolgawan, Satna – 01 MP. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Linguistics, Philosophy, Phy. Science, Veda, Vedic Science and Ancient Mathematics, He has analysed ancient Shastras deeply and exposed with special reference to the Modern Science. His endeavor is to highlight the formulae and theorems of ancient mathematicians as are virtually entitle to be known with their names, President Awardee.

Acharya, Suryanarayan. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 1883, Kanod, Bhivani. Prof., Maharaja Skt. College, Jaipur. *SP.* Sawai Mansingh. *Bks.* 02. Mānavāṃśa, Udyogalaharī. *Ps.* 49. *Expired.* 1951. *Spl.Ref.* Editor of Skt. Ratnakar Patrika from 1933 to 1942. Awarded by Sahitya-bhushan.

Acharya, Tulsi. *b.* Ladanu, Rajasthan. *Bks.* 08. Pañcasūtram, Śikṣāṣaṇṇavatiḥ, Kartavya-ṣa-triṃśikā. *Expired. Spl.Ref.* Poet in Skt., Hindi, Rajasthani. Jain Acharya.

Acharya, Vidya Sagar. *b.* 10.10.1946. Belgaon, KT. *Bks.* 01. Pañcaśatī (Collection of 5 Shatkas). *Spl.Ref.* Sanyasi. Marathi, Darśana, Itihas, Religion, Sāhitya, Nyāya Vyākaraṇa, Psychology.

Achyuta, Ramanujam K. śiromaṇi in Vyākaraṇa. Siksha-shastri. *b.* 13.05.1958. Nallattur, South Arcot, T.N. *Add.* 5, Krishna Ayyangar Street, Gobichettpalayam – 638452, Periyar Dist. Tamil Nadu. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Adamaru, Narayanacharya. śiromaṇi in Vedānta & Vyākaraṇa, Kannada Vidvan, Maisuru Vidvan. *b.* 1914, Adamaru, South Kannad, KT. *Gp* Satyadhyana Tirtha. *Add.* 44, III Main, 19th Cross, 6 Block, Jayanagar II, Bangalore (Karnataka). *Spl.Ref.* Nyāya, Yoga, Darśana.

Adat, Dharmaraj. M.A, Ph.D. *b.* 10.04.1957. Adat. Prof. Shri Sankaracharya University of Skt. Kalady. *Bks.* 25. Buddhānmūthal Mārxvare (1987) Mārxisavum Bhāgavat Gītayum (1988) Mārxism Mātam Sāstram (1989) Lokāyata Darśanaṃ. Dr. K.N. Ezhuttānchante Kritikal. *Ps.* 62. *Add.* Samskrethi. Kalady. Kerala – 683 574. Ph. 0484 - 2461633. *M.* 09447913160.

Adhikari, Balarama. Teertha in Kāvya, Vyākaraṇa & Purāṇetihāsa. *Age.* 51 yrs., Fulini, Arambagh, W.B. *Add.* Krishnaganj Mandir, Badanganj, Hooghly (W.B.). *Spl.Ref.* Kāvya, Vyākaraṇa. Purāṇetihāsa.

Adhikari, Hari Prasad. Ph.D. *b.*03.02.1963. HoD., Sampoornanand Skt. Uni. Varanasi. *Gp.* Kashinath, Pt. Ramapati Tripathi, Pt. Mahesh Chandra Sharma, Prof. Radheshyam Dwivedi. *Bks.* 04. Bhārtīya Tattvamīmāṃsā, Sarala-Saṃskṛtam, Madhura-Saṃskṛtam, Mānavīya-Jñāna-Visayaśasahsram. *Add.*3 A/ 43, Aavas Vikas Colony, Dotalpur Raod, Pandeypur, Varanasi 221002 U.P. *Spl.Ref.* Awarded by U.P. Govt. Editor Gandivam Skt. Magazine.

Adhikary, Madhan Mohan. Kāvya-Vyākaraṇa-Smṛti-Tīrtha M.A., Nyāya, Ph.D. *b.* 07.08.1954 Fului, W.B. Prof. Krishanganj Debabani Mandir. *Bks.* 08. The New Horizon of Library Clissification Theory Perveded By Oriental Philosophy, Om Yoga Cosmopolitan Love and Peace, Advaita Vedāntī Svāmī Vivekānanda, Gītāmṛta, Hidden Roots of Library Classification *Ps.* 35. *Add.* Debasanskriti Devbabni Mandir, Vill Fului, Hoogli, W.B. dsdebabanimandir@yahoo.co.in *Spl.Ref.* Veda, Vyākaraṇa & Nyāya.

Adiga, K. Shankaranarayana. M.A., M.Phil., Navyanyayavidvaduttama, Dvaitavedānta Vidvaduttama, Alankar Vidvat Madhyama. *b.* 06.08.1962. Udupi, KT. Dy. Director, Puranpragya Vidyapeetha. *Bks.* 04. *Ps.* 14. *Spl.Ref.* Dvaitavedānta, Nyāya, Awarded with Sacchastra Vichakshana, Since 1977 he has been running evening classes for Skt. Teaching. Maharshi Badarayan Vyas Samman by President of India.

Adiga, Padmanabha H. Alankaravidvan. *b.* 15.08.1959, Vill. Haniya, Karnataka. *GP.* Pt. Laxminarayan Sharma, Pt. Haridas Upadhyaya. *Add.* Uttaradi Muth, Car Street, Udupi (KT). *Spl.Ref.* Alaṅkāraśāstra.

Adihkari, Tarak Nath. M.A., Ph.D. *b.* 08.10.1959, Vill+P.O. Kirnahar, Birbhum, W.B. Prof., Rabindra Bharti University, Calcutta 700050. ***Bks*** 09. ***Adds.*** Subal Appt. III, 7 Nilgunj Road, Calcutta 700056. adhikaritaraknath@yahoo.com

Agarwal, Murarilal. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.01.1949. Asct. Prof. ***Bks.*** 01. Śailīvijñāna ke Tattva. ***Ps.*** 24.

Aggarwal, Laxmi Singh. M.A., ***b.*** 12.05.1939. Faridabad, Haryana. ***Bks.*** 10. Kālidāsa ke Upajīvyo kī Khoja, Kālarātri, Rāṣ--radarpaṇaḥ, Abhinavavīṇā, Śrīrāmarasāyanam, Kālacakram. ***Add.*** 54/1 Singhi Dwar, Vallabhgarh, Faridabad – 04. ***Spl. Ref.*** Honour from Haryana Skt. Academy and Delhi Skt. Academy 1994.

Aggarwal, Vibha. M.A., Ph.D. ***b.*** 04.12.1962, Rampur, U.P. Asstt. Professor. ***Ps*** 03. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit Pali & Prakrit, Kurukshetra University 136119, Ph. 01744-238207, M. 9416373478 aggarwal_vibha @ rediffmail.com

Agnihotram, Chittannasundara Tatacharya. Age. 67 yrs in 1988. Kodavasal, Kumbhakonam, Tamil Nadu. Lecturer. ***Add.*** 40. Ayyangar Street, Kumbhakonam (T.N.). ***Spl.Ref.*** Veda (Kṛṣṇayajurveda).

Agnihotri, Baijanath Tapasi. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 21.08.1917, Tairi, Banda. U.P. Acting Principal. ***GP.*** Ramasharana Tripathi. ***Add.*** Sri Ramanam Skt. Mahavidyalaya, Akshayavat, Chitrakut, Satna Dist. (M.P.) ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Agnihotri, Bhagwan Lal. Acharya in Atharva-veda, Ṛgveda, Sāhitya. M.A., Ph.D. ***b.*** 1873. Vill. Chiawa. Dist. Jhunjhunu. Lect. S.S.V.V. Kashi. ***GP.*** Pt. Laxmishankar Dwivedi. ***SP.***. Shri Gangadhar Tangiral. Nathulal Pancholi. Bhagwanilal Pancholi. Narmadashankar Pancholi. Narayan Dhule. Parashuram Ramdohkar. Jagannath Dhule. Ramachandra Aathvale. Dr. Manohar Lal Dwivedi. ***Bks.*** 01. Kātyāyana Yajña-paddhati-Vimarśa. ***Expired.*** 1959. ***Spl.Ref.*** Established Shri Vallabhram Shaligram Sangved School in 1919.

Agnihotri, Durga Shankar. Acharya in Vyākaraṇa, B.Ed., Vidyavaridhi. ***b.*** 09.09.1969, Gautampura Indore, M.P. Lecturer Govt. Skt. Mahavidyalaya, Ujjain. ***Add*** 36, Sandeepani Parisar, Indira Nagar Near MPEB Ujjain - 456001 Ph. 07342580872, M. 09827838067 ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Agnihotri, Lakshminarayana Pandita. āyurveda Vidvān, āyurveda Pracharya, & M.D. ***b.*** 01.01.1908. Tipturu, Karnataka. ***GP.*** Ramanuja Ayyangara, Tayavatta Mustu; Laksminarayana Sastri. Rtd. Pradhyapaka (Professor). Ayurveda Mahapathasala & Hospital, Mysore, Karnataka. ***Add.*** Kalpataru, Ittige Gude, Mysore (Karnataka). ***Spl.Ref.*** Āyurveda & Veda.

Agnihotri, Manoramadevi. Acharya in Sāhitya, M.A.. ***b.*** 06.05.1924, Barelli, (U.P.). Asst. Prof.. ***Gp*** Dr. Ram Saxena, Devidayal Tripathi. ***Add.*** Vidyant Marg, Lal Kuan, Lucknow ***(U.P.)***. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Agnihotri, Nellikatmana Nilakanthan Namputiri, N. Acharya in Veda. ***b.*** Dec. 1905, Panchal Nagar, Kerala. ***GP.*** Mahadeva Shastri. ***Add.*** Panchal Nagar, Via Cheruthuruthi, Dist Trissur (Kerala). ***Spl.Ref.*** Skt. Vidvān & Sāmaveda.

Agnihotri, Prabhu Dayal. Hindiprabhakar, Sahityaratna, M.A., Ph.D., Vyakaranacharya, Kavyatirtha. ***b.*** 20.07.1914, Shahjahapur, (U.P.) Rtd. Vice-Chancellor, Jabalpur University. ***GP.*** Pt. Laxminarayan Sharma, Pt. Paramanad Mishra, Pt. Shivratna Dwivedi. ***Bks.*** 60. Abhinavamanovijñānam, Aruṇimā, Agnigarbha, Naye Sapne, Mahākavi Kālidāsa, Bhāṣā Sāhitya Aura Kalā. ***Add.*** E-2/73, Mahavir Nagar, Bhopal-16. ***Spl.Ref.*** U.P. Skt. Academy Award.

Agnihotri, Prabhu Dutt. Śukla Yajurveda, Śatapathabrāhmaṇa, Vyākaraṇa, Sāṅkhyayoga, Karmakāṇda. ***b.*** 1864. Vill. Khedi. Dist. Sirsa (Haryana). Lect. & Teach. Ranveer Skt. Pathshala. Varanasi Under B.H.U.. ***GP.*** Pt. Chintamani Gurjar. Pt. Moolchand Gurjar.

Pt. Jagannath Sharma. Pt. Anantram Shastri. Pt. Yugalkishore Pathak. *SP.* Pt. Bhimsen Chaturvedi. Pt. Vijaychand Chaturvedi. Pt. Dharmdatt Vedshastri. *Bks.* 09. Śrauta-padārthavivecana, Śrāddha-prakāśikā. Ṛkprāti-śākhya. Mahārudra-paddhati. Jīvitaśrāddha-paddhati. *Expired in* 1929. *Spl.Ref.* M.M. Awarded by British Govt. in 1924. He was known as kulaguru of Birla Family.

Agnihotri, Rishiraj Chunnilal. M.A., Vedānta, Kāvyatīrtha. *b.* 02.09.1927. *Bks.* 01. Āgneyaḥ. *Add.* Yagyashala, Raigarh, Himmat Nagar Mehsana, Gujarat.

Agnihotri, Shiv Prasad. Śuklayajurveda, Acharya in Navyavyākaraṇa, Vidyavaridhi. *b* 05.06. 1957. Asct. Prof. DBS PG College Kanpur. *Bks* 02 Abhijñānaśākuntalam (Śiva Ṭīkā), Kārakadīpikā (Siddhānta Kaumudī), *Ps* 16, *Add* 127/169A – W2 Juhikala Damodarnagar Kanpur U.P. 208027 M. 09335331367, 09621879273. *Spl.Ref.* Śukla Yajurveda, Navyavyākaraṇa, Kalidas Samman.

Agnihotri. Vidyadhar. *b.* 1886. Hariyana. *GP.* Pt. Shiv Kumar Shastri. *Bks.* 01. Kātyāyana Śrautasūrta kī Saralā Ṭīkā. *Expired.* 1941.

Agrawal, Avneesh. M.A. (Psy, Eco.), Acharya (Purāṇaetihāsa, Sarvadarśana), M.Phil (Psy.), M.Ed., Ph.D. (Psy.), MBA (HR). *b* 02.07.1967. Asso. Prof. Rashtriya Sanskrit Sansthan Deemed University, Lucknow Campus. *Ps* 10. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan Deemed University, Lucknow Campus Vishal Khand-4, Gomti Nagar, Lucknow, U.P. M. 09451244456, 09335226178.

Agrawal, Beena. M.A., Ph.D. *b* 01.01.1959 Udaipur. Prof., Deptt. of Skt. Univ. of Rajasthan. *Bks* 03 Tarkasaṅgraha, Nātyaśāstram (Raso'dhyāya) Saṃskṛta Sāhitya kā Prācīna Evam Arvācīna Itihāsa. *Ps* 10. *Add.* C-99 Moti Marg, Bapu Nagar, Jaipur 302015. Ph. 0141-2705766, M. 09414442037.

Agrawal, Bisan Svarup. M.A., B.T. *b.* 1937, Ropad, Punjab. *Add.* Master Nandlal Bhawan, Old Post Office Road, Ropar – 140001 (Haryana). *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Agrawal, Kamalesh. Acharya. *b.* 01.04.1944, Bharatpur, Rajasthan. *GP.* Dr. Ramratan Shastri. *Add.* 219 Krishna Nagar Colony, Bharatpur (Rajasthan). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Agrawal, Mahavir. M.A., Vyākaraṇa, D.Litt. *b.* 09.10.1951, Palasasion Maharashtra. Vice President, Uttarakhand Skt. Acadamy. *Bks.* 05. Vālmīkirāmāyaṇa me Rasa-Vimarśa, Vaidika Artha Vyavasthā, Saṃskṛta Gadya Latikā, Ṛksūkta Saurabhaṃ. *Ps.* 48. *Add.* Vedalok, 22 Nand Vihar Post Gurukul Kangri Haridwar – 249404. *Ph.* 228544. E-mail-mahavir_gkv@yahoo.co.in

Agrawal, Murali Lal. M.A., Ph.D. *b.* 05.01.1949, Miyoli, Agra, (U.P.). Asst. Prof. *Gp* R.L. Shastri, V.N. Mishra. *Add.* 430, Arya Nagar, Gali No. 17, Firozabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Agrawal, Premlata. M.A., B.Ed. *b.* 15.01.1938. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School No. 1, Roop Nagar, New Delhi. *Add.* 13/21, Shakti Nagar, New Delhi – 110007. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Agrawal, Vasudev Sharan. M.A in History, D.Litt. Principal, Bharti College, Kashi. Director, Central Asian Antiquities. Curator Curjon Museum, Mathura. *Bks.* 10. Pāninikālīna Bhāratavarṣa, Padmāvata, Pṛthivīputra, Gupt Art, Gītā Navanītaṃ.

Ahuja, G.L. M.A. (Skt.). B.T.. *b.* 10.05.1935. Language Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School, New Delhi. *Add.* 16/70, Subhash Nagar, New Delhi – 110027.

Ahuja, Jagannath. M.A., B.Ed. *b.* 12.10.1942. Teacher (TGT), Skt., Govt. Senior Secondary Boys School, palam Enclave No. 2, New Delhi. *Add.* H.No. 75, Ath Marla, Gurgaon (Haryana). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Ahuja, Nirmala. M.A. (Skt.), B.Ed. *b.* 01.07.1940, Teacher (Skt.). Govt. Girls Senior Secondary School, F-Block, Hari Nagar, New Delhi. *Add.* B.B.30-C, Janakpuri. New Delhi–110058.

Ahuja, Usha. M.A. (Sankrit & Hindi). *b.* 07.05.1939. Teacher, Govt. Senior Secondary

School No. 01, Janakpuri, Delhi – *Add.* C-03 A/120 A, Janakpuri, New Delhi – 110058. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Airi, Raghunath. M.A. (Skt, Hindi), Prabhakar (Hindi), Vidya Bhushan (Skt) & Ph.D. *b* 01.05.1935, Hoshiarpur (Punjab). Rtd. Principal, Haryana Education Service *Gp.* M.M. Pandit Parmeswaranand Shastri, Dr. Shri. Dharanand Shastri. *Bks.* 10. Concept of Sarasvatī in Vedic Epic & Paurāṇika Literature, Dict. of Proverbs (Hindi, English, Skt.), Annotated Bibliography of Popular books on Science and Techonology written in Skt., Studies in Vedic Skt. Literature. P*s* 10. *Add.* 465, Sec. 07 Urban Estate, Gurgaon 122001 Ph. 0124-2330465, M. 09910988572. *Spl.Ref.* Veda, Epics & Purāṇa.

Ajabia, K.J. M.A., Ph.D. *b.* 08.08.1932. *Gp* D.P. Joshi; Prof. R.S. Betai. Acharya (Teacher), Head, Deprtment of Skt. *Add.* Dr. K.V. Arts & Science College, Jamnagar (GJ). *Spl.Ref.* Vedānta.

Ajita Kumar. M.A., Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa, B.Ed. *b.* 15.07.1950. Vill. & Post Dhindhawali, Muzaffarnagar, U.P. Teacher (T.G.T.), Bhagavan Mahavir Skt. Vidyapeetha, Sawan Ashram, Shakti Nagar, Delhi – 110007. *Bks.* 01. Devarāja Lekhamālā (unpublished). *Add.* 3/24, Sector No. 2, Rajendra Nagar, Sahibabad, Ghaziabad Dist. (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Vyākaraṇa.

Aklujkar, Ashok. Ph.D. *b.* 06.11.1941, Pandharpur, Maharashtra. Prof. University of British Columbia, Yancouver, B.C. Canada V6T 1Z2. *Bks.* 04. Marā-hī Māti Samīkṣā, Appāśāstri Sāhitya Samīkṣā, Skt.: An easy introduction to an enchanting language, Theory of Nipātas (Particles) in Yāska's Nirukta (1962-1965) *Ps.* 60. *Add.* Dept. of Asian Studies, University of British Columbia, Vancouver, B.C., Canada V6T 1z2. *Ph.* 1 – 604 - 8225185.

Alaṅkāra, Virendra Kumar. M.A. (Skt., Vedic Lit), M.Phil., Acharya (Sāhitya), Advance Dip. in Russian & Prakrit, Ph.D., D.Litt. *b.* 15.10.1962. Prof. & Ex. Chairperson HOD Deptt. of Skt. Punjab Univ. *Bks* 16 Pālippadīpikā, Mīmāṃsādarśana (Tarka Adhyayana), Devapraśastikāvyam, Bhāratī-kāvyam, Mānavamūlya Viśvakośa *Ps* 75. *Add.* HOD Skt. Deptt. Punjab Univ. Chandigarh. Ph. 0172-2779123, M. 09463837343, alankar@ pu.ac.in *Spl.Ref.* Grammar Indian Philosophy & Veda, Poet, Mahakavi Banabhatta Award.

Alagoudar, Abhijeet. M.A., Ph.D., Multimedia Animation Hardware and Networking. *b.*25.07.1987 Shedbal (KT.), Res. Officer. IGNCA. *Gp* Shri Rajdhar Mishra, Ms. Kapoor, Ark Nath Chaudhary, Sudeep Jain. *Ps* 01. *Add* B-461, Chatarpur Extn. Murgi Farm Near JVTS Garden, New Delhi 110074, M. 08339292353, 09716839292, abhijeetalagoudar@gmail.com . *Spl Ref.* Kannada, Hindi, Sanskrit, Prakrit, English, Marathi, Telugu, Gujarati.

Alok, Veda Vrata. Ashtakopadhyaya, Acharya, M.A., Ph.D., Dip. Ling. *b.* 20.07.1938, Sita Ram Bazar, Old Delhi. Rtd. College Teacher. *Gp.* Swami Dayananda Saraswati's Ashram Parampara, Shree Swami Yogesh-warananda Saraswati, Swami Sachchidananda Yogi. *Sp.* Dr. Deva Sharma *Bks*.05 Prāṇayoga : Philosophy & Practice, Prāṇayoga Practices, Prāṇayogasāra, Śāṅkarayoga Vivaraṇa, Mudrā Prāṇayoga. *Add.* B-2/114, Varun Apartment Sec. 9, Rohini Delhi, India 110085, aalokee@yahoo.com. *Spl.Ref.* Yoga. Visit Newzealand, Singapore, Australia.

Amarendra Kumar. M.A. M.Phil. *b.* 04.12.1949. Dharma Pracharaka (Religious Preacher). *Add.* Ahimsa Bhavan, Shankar Road, New Rajendra Nagar, Delhi – 110060.

Amba Prasada. Acharya. *b.* 26.03.1925. Acharya. Rishikul Samskrita Mahavidyalaya. Delhi. *Add.* House No. 370. Vill. Alipur. Delhi–110036.

Ampallur, Sridharan. Kavyabhusana. *b.* 16.08.1928, Ampallur, Kerala, *Bks.* Samskṛta-bhāṣāyāṃ Pāścātyadarśana-granthāḥ,

Communist Manifesto (Saṃskṛta-bhāṣānuvāda). ***Add.*** Ampallur. Eranakulam–682315 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Kāvya.

Amritraj Rahul M.A. (Pali) , NET-JRF (Pali), Ph.D. ***b.*** 05.01.1982, Gopalganj, Bihar SRF (Pali) Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow Campus ***Gp*** Prof. Bimalendra Kumar. ***Ps*** 08 ***Add.*** Vill. Ranipur P.O. Bhorey Distt. Gopalganj 841426, Bihar M. 09335557610, rahulpali8@gmail.com ***Spl.Ref.*** Pali.

Anand Kumar. Tīrtha in Vyākaraṇa & Kāvya. ***b.*** 11.02.1953, Bakalasa, Bardwan, W.B. Principal. ***GP.*** Sivakinkara Shastri. ***Add.*** Vill. Bakalasa, Post. Bardwan Dist. (W.B.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Kāvyaśāstra.

Anand, Kamal. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 18.10.1942. Lahore. Honourary Prof. Vishvewaranand Vedic Research Institute, Hosiyarpur, PB. and member Editorial Board of Research Journals Vishwa Sanskritam and Vishwa Jyoti. ***Bks.*** 04. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Ram Krishna Award from Canada, Siromani Sanskrit Sahityakar Govt. of Punjab, President Awardee.

Anandavardhana, S. śiromaṇi. ***b.*** 20.10.1956, Madras, Tamil Nadu. Samskrita Research Assistant. ***GP.*** Sesadrinatha Sarma, V. Sarma. ***Add.*** Skt. Research Institute, Pondicherry. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Anandhan, S. śiromaṇi in Nyāya, M.A. General. ***b.*** 09.05.1979, Pudukottai, Tamilnadu. Teacher, Maharishi School, Chennai. ***Gp.*** Kura Kulotama Dasam. ***Ps.*** 04. ***Add.*** No. 162, Temple View Apartments, GST Road, Chennai (TN.). ***Ph.*** (04371)-247295, 09894709418. anandresearch03@rediffmail.com.

Ananta Padmanabhacarya, P. Vidvān, M.A. ***Age.*** 45 yrs. In 1987. Lecturer. ***Add.*** Purna Pragya Vidyapeetham, Kalyam Nagar, Bangalore–24. (KT). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāraśāstra, Vedānta.

Ananta. L. V. Traditional Education. ***Age.*** 86 yrs., Puduseri, Kerala. Rtd. Teacher. ***Add.*** 1/527, Old Kalpathi, Palghat (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Anantachary, Rajgopalan Matham. ***b.*** 30.11.1940, Terazhundur, Tanjavur, Tamilnadu. ***Gp.*** R. Krishna-swami Ayyangar, K.K. Yamunacharya. ***Add.*** Shri Tirumala Tirupati Devasthanam, Tirumala, 61-B, Vinayak Nagar, Tirupati (A.P.). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda, Karmakāṇḍa.

Anantakrsnacharya, M. S. Mīmāṃsā Vidvān, B.A. (Samskrit), B.T. (Education), Yajurveda Samhitapathi. ***b.*** 18.01.1918. Majori, Udupi, Karnataka. Retd. Skt. Teacher, Udupi Skt. Pathasala, Udupi. ***GP.*** Kasi Pranesacharya, Krishnadesikacharya, Subrahmanya Sastri. ***Add.*** 9174, Sri Saudhe Matha Compound, Udupi – 576101, South Kannad Dist. (KT). ***Spl.Ref.*** Dvaita Vedānta Yajurveda.

Ananthakrishna. Acharya in Navya Nyāya. ***b.*** 15.07.1985. Sringeri. ***Gp.*** V. Naveena Holla. ***Add.*** RSKS. Sringeri Campus, Ambalamane, P.O. Tekkur, Sringeri, Chickmagalore. ***Ph.*** 9480071648. ***Spl.Ref.*** Navya Nyāya.

Anantharama, N. V. Sāhitya Vidvān ***b.*** 20.09.1926. Karnataka. ***Bks.*** 06. ***Add.*** Rtd. Skt. Pandit. Behind Post Office. Rama Murthy Nagar. Bangalore – 16. 560016. ***Ph.*** 25651398.

Anantharangachar, N. S. B.A., BT, Ph.D., Vedānta Vidvat. ***b.*** 15.02.1920. Mysore, KT. Rtd. Principal, Maharaja Sanskrit College. ***Bks.*** 75. ***Add.*** 780, 5th Main Road, Vijaynagar, Bangaluru–40 KT. ***Spl.Ref.*** Viśiṣ-ādvaita-vedānta, Veda, Upaniśad, Sāhitya, He held different administrative assignment like District Education Officer, Bangalore Secretary of Karnataka State Sāhitya, Lalitkala and Sangeet Natak Academies, Honouray Registrar Bhartiya Vidya Bhawan, He has been acitively engaged in delievering a no. of Lecturers all over India on the Work of Kalidas Veda Upanishad and Philosophy, President Awardee.

Ane, Madhav Sri Hari. ***b.*** 1880. Pune. V.C. Maharashtra Vidyapeetham, Maharastra. ***Bks.*** 01. Śrī Tilakayaśo'rṇavaḥ. ***Expired*** - 1968. ***Spl.Ref.*** Awarded by Padma Vibhushan. Vice Chancellor of Maharashtra Vidyapeetham & Government of Bihar.

Angiras, Aditya. M.A., M.Lib., Ph.D. *b.* 17.09.1965, Hoshiarpur. *Ps.* 02. *Add.* 1605. Sector - 44 B, Chandigarh 160047. *Ph.* (01882) 221002.

Anita Rani. M.A., Ph.D. *b.* 02.03.1973 Kaithal, Haryana. Lect. (Skt.) TGT. *Gp.* Dr. Arvind Kumar. *Sp.* Neelam Sharma. *Ps.* 02. *Add* 129/ 11 Nehru Garden Colony, Kaithal 136027. M. 09416079637

Anita. M.A., Ph.D. *b.* 05.07.1980, Lucknow. Astt. Prof., M. G. Kashi Vidhyapeeth. *Ps.* 01. *Add.* Plot No. 40 D. Mahamanapuri Colony. Post Sushuwahi, BHU, Varanasi (U.P.) 221005. *Ph.* 9450533555.

Anjurani. M.A., Ph.D. *b.* 05.01.1980. Chamoli, Gadhwal. *Bks.* 02. Relayātrā, Capalaśatakam. *Add.* A-10 Railway Road, Modi Nagar, Gaziabad – 04. U.P.

Annadacharan. *b.* 1862. Somapada, Bengal. *Spl.Ref.* He was awarded by 'Tarkachūḍamaṇi' State. Kashi Pandit Samaj.

Annadura, Rajagopalacharya. Śiromaṇi. *b.* 08.05.1923. Annadur, Chengalpet, Tamil Nadu. *GP.* Gosthipur Vasudevacharya, Srinallur Rangacharya, Puduseri Doraisvami Ayyangar. *Bks.* Kodaṇḍa Svāmi Devasthānasthala-Purāṇa *Add.* 17, Sannadhi Street, Madhurantakam– 603306. (T.N). *Spl.Ref.* Kṛṣṇa-yajurveda.

Aptikar, M. S. *b.* 23.04.1912. Satara Maharashtra. *Add.* 105 B, Mangalwar peth, Satara 2, Maharashtra. *Spl. Ref.* Skt. Poet.

Aralikatti, Ramchandra Narasimha. M.A. (Skt. and Education), Ph.D. *b.* 05.05.1931. Jamkhandi, KT. Ex-Registrar and Prof. Kendriya Skt. Vidyapeetha, Tirupati. *Bks.* 21. *Ps.* 140. *Spl.Ref.* Sāhitya, Darśana, Education, Linguistics, Presently he is Shastra Chudamani Scholar in Tilak Maharashtra Vidyapeetha, Pune. President Awardee.

Aravamudachariyar, M. S. *b.* 1910, Melpakkam, Chingalpet, T.N. *Gp.* Tillaisthanam Svami Ghanpathi, Purisai Varadacharya, Srinivasa-charya. *Add.* 6, Anaikatti Street, Kanchipuram (T.N.). *Spl.Ref.* Veda, Vedānta.

Aravamudan, P. V. *b.* 1936, Purisai, North Arcot, Tamil Nadu. Vedaparayana Kartta. (Vedic Exponent). *GP.* Srikrishnamacharya. *Add.* 16, N.M.T. Quarters, Tirumala – 517504 (A.P.). *Spl.Ref.* Kramānta Kṛṣṇayajurveda.

Aravamudan, T. *b.* 26.11.1925, Srivilliputtur, TN. *GP.* Chelan Ayyangara Swami. *Add.* 4, Anand Nagar, Sri Nagar Colony Extension, Kumbhkonam(T.N). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Archaka, R. H. Siromani in Nyāya, Nyāya Vedānta Vidvan. *b.* 02.05.1913, Dharwad, Karanataka. Asthana Vidvan. *Add.* 6/1, Sitapati Agrahara, New Taraganj. Bangalore – 560002 (KT). *Spl.Ref.* Vedānta & Nyāya.

Arjunwadkar, Krishna S. Advaitavedānta Kovid, M.A. (Skt., Ardhmagadhi) *b.* 31.10.1926. Belgaun. Reader Univ. of Bombay. *Bks.* 20. *Ps.* 300. *Add.* 1192, Shukrawar Peth, Pune – 02. MH. *Spl.Ref.* Visiting Prof. in British Columbia Univ. 1973-74. Visiting Lecturer the Yogik Path London 1999-2000. Known as International Writer, Honourary Director Skt. Sanskriti Sansodhika, Gyanprabhodhini Pune, President Awardee.

Arksomayaji, Dhulipal. M.A., Ph.D. *b.* Rajamundri, A.P. Rtd. Project Officer, Research Deptt. Tirumalatirupatidevsansthana, A.P. *Bks.* 02. Śrīmat Sītārāmāñjaneyam, Śrīmat-prasannāñjaneyam. *Spl.Ref.* President Awardee.

Arora, Karuna. M.A., M.Phil.. *b.* 13.10.1961, Amritsar, Punjab. Asst. Prof., A.S. College, *Add.* C/o A.S. College, Anloha Road, Khanna (Punjab). *Spl.Ref.* Darśana.

Arora, Komal. M.A., Shiksashastri. *b.* 18.11.1959. Teacher, Manava Sthali Vidyalaya, R-Block, New Rajendra Nagar, New Delhi. *Add.* New Layalpur Colony, Krishna Nagar, Delhi – 110051. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Arunachalam, S. Siromani in Sāhitya, Shiksa-shastri. *b.* 11.06.1940, Vettavalam. Tiruvanna-malai Dist., Tamil Nadu. *Gp.* Krishnaghana-pathi. V.H. Subrahmanya Sastri. Pola-gomarama Sastri. *Add.* 11, East Dabeer Street,

Kumbhkonam (TN). *Spl.Ref.* Salakṣaṇa Kṛṣṇayajurveda & Sāhitya.

Arvikar, Narayan Shankar. Kāvya-Tirtha. Sāhitya Manisi, Panjab-Shastri. *b.* March 1906, Nagpur, (MH). Asst. Prof. *Gp.* Pandharinath Shastri Ghate, Ahitagni Balashastri Ghate. *Add.* Dr. Hedagewar Bhawan, Sabhare Mahal Nagpur (MH). *Spl.Ref.* Kāvya, Sāhitya. *Awards.* Received the Gold Medal From Kanchi Kamakoti Shri Sankarachary for his command in subject.

Arvind. *b.* 15.08.1872. *Bks.* 02. Sāvitrī. Bhavāni Bhāratī. *Expired.* 05.12.1950.

Arya, Devakanya. M.A. (Skt.), Ph.D.. *b.* 11.07.1938. Asst. Prof. *Add.* 5, Sakshar Apartments, Pashchim Vihar, Delhi.

Arya, Ghanasyam simha. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.* 22.08.1946, Devagarh. *GP.* Acharya Devasvami Maharaja, Pt. Ramacharan Dixit. Teacher, D.A.V. Public School. *Add.* R-6/157, Raj Nagar, Ghaziabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Arya, Gyanendra Prakash. M.A. (Skt.), Hindi Prabhakara. *b.* 26.11.1949. Teacher (PGT). D.A.V. Senior Secondary School, Nizamuddin, New Delhi. *Add.* E-39, New Multan Nagar, Rohtak Road, New Delhi – 110056.

Arya, Jaibhagavan. M.A. (Hindi & Skt.). *b.* 18.08.1933. Teacher (PGT). *Ps.* 02. *Add.* F-86, Vikaspuri, New Delhi.

Arya, Krishngopal. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya, M.A.. *b.* 10.10.1949. Asst. Prof., *Add.* Shrimaddayanand Gurukul Sanskrit Mahavidyalay, Kheda Khurda, Delhi – 110082. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Arya, Madhu. M.A., Ph.D. *b.* 20.07.1947, Meerut. Asst. Prof. Raghunath Girls' P.G. College, Meerut - 250002. *Bks.* 01 Kāvya Dīpikā Pariṣkaraṇa. *Ps.* 03. *Add.* 138/7 HIG Shastri Nagar, Meerut - 250005. *Ph.* 767057.

Arya, Manohar Lal. M.A., M.Ed. *b.* 15.08.1937, Gurmani (in Pakistan). Asst. Prof., Delhi Vidyapeetha. *Gp* Swami Rameshvaranand. *Add.* 938 – A, Sector 29, Faridabad (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Arya, Manorama. M.A.. *b.* 26.04.1938. Vice-Principal, Nagarpalika Bengali Higher Secondary School, Gole Market, New Delhi. *Add.* D-11/137, Kidwai Nagar (W), New delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Arya, Ravi Prakash. M.A., Ph.D. *b.* 06.06.1961, Principal Govt. College Haryana. *Bks.* 35 Origin of Indo Europeans, Dhanurveda (Indian Military Science), Vaidika Concordance, Concordance of Vedic Mantras as per Devatas and Rishis. *Ps.* 64. *Add.* 1051, Sector – 1, Rohtak, Haryana 124001 *Spl.Ref.* Letter of Appreciation of Univ. of West Indies Trinidad and Tobago, Foreign Visit USA, Canada, Trinidad & Tobago, Surinam, British Guyana, Russia, hungary, Holland, Germany, Australia etc., editing Journal Vedic Science for 12 Years and World Vedic Calander for Last Six Years.

Arya, Saraswati Acharya. *b* 12.08.1983, Chandan Khera Maurawna. *Gp.* Acharya Surya Devi, Dr. Dhaniendra Kumar Jha. *Ps* 03. *Add* F-1114 Rajaji Puram Lucknow 226017, saraswatiarya@gmail.com *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Arya, Suneeti. Acharya (Vyākaraṇa, Darśana) *b.* 05.09.1984, Unnao. *Ps.* 02. *Add.* Arya Nagar, Bangarmau, Unnao 241501 U.P. M. 8687731773

Arya, Urmila. M.A. *b.* 10.07.1947. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School No. 2, Shakti Nagar, New Delhi. *Add.* 458, Lancers Road, Timarpur, Delhi – 110009. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Aryal, Harihar Sharma. Acharya, Vidyavaridhi. *b.* 1952. Lumbini, Nepal. Prof. Sriram Shankar Sangveda Vidyapeeth, Kabir Nagar, U.P. *Bks.* 05. Mātalimahimā, Samayaśatakam, Navagrahāvadānam, Bhāvanakṣatramālikā. *Spl.Ref.* Poet in Skt. and Nepali, Delhi Sanskrit Academy Honour.

Aryika, Gyanmati Mataji. *b.* 1934, Tikaitnagar, Barabanki, U.P. *Gp.* Acharya Deshbhushan Maharaj. *Bks.* 05. Indradhvaja Vidhāna, Aṣ-asahasrī, Pravande, Śri Pañcameśa Stuti, Saḥ Jayatu Guruvaryaḥ. *Spl.Ref.* Chief Editor of Samyagyan Magazine.

Aryika, Jinmati Mata ji. *Gp.* Aryika Gyanmati Mataji, Acharya Veersagar ji, Acharya Shivsagar Maharaj. *Bks.* 01. Śivāṣ-akastotra.

Aryika, Suparshvamati Mataji. *b.*1985, Mainsar, Nagour, Raj. *Gp.* Acharya Ajitsagar ji, Acharya Veersagar Maharaj ji. *Bks.* 05. Sāgara Dharmāmṛta, Ṣa-prabhṛtam, Merā Cintāvana, Varvāṅga Caritra, Parama Ādhyātma Taraṇi.

Aryika, Vishnuddhamati. Sāhitya Ratna, Vidyā-Alaṅkāra. *b.*12.04.1929, Rithi Katni, M.P. Head Master, *Gp.* Shrut Sagar ji, Ajit Sagar ji, Ratan Chandra Ji. Expired 22.01.2001. *Bks.* 05. Vatthuvijjā, Śramaṇacaryā, Samādhidīpaka, Stotrasaṅgraha, Śrāvakasopāna. *Spl.Ref.* Jainism.

Aryika, Vishuddhmati Mataji. *b.* Rathi, Jabalpur, M.P. Principal., Shri Digambar Jain Mahila Asharam, Sagar, M.P. *Gp.* Panna Lal Sāhityacharya, Acharya Shivsagar ji. *Bks.* 02. Trilokasāra, Aṣ-ottaraśatanāmastotram. *Spl.Ref.* Skt. & Prakrit.

Asha. Acharya in Veda. *b.* 06.01.1967. Delhi. *Gp.* Laksmisvara Jha, Harihara Trivedi. *Add.* B-242, Saraswati Vihar, Delhi – 110034. *Spl.Ref.* Veda.

Asha. Ph.D. *b.* 28.08.1959, Delhi. Prof. M. D. Univ. Rohtak. *Bks.* 01. Kālidāsa Kriyāpada Kośa (1995). *Add.* 258, Subhash Nagar, Rohtak. *Ph.* (01262) 266612.

Ashok Kumar. M.A. Professor. *Add.* Govt. R.B.L. Gagarmal Skt. College, Court Road, Amritsar (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Asoka Kumar, K. P. M.A., B.Ed. *b.* 10.04.1963, Pannikottur, Kozhikode, Kerala. *Add.* Pannikottur, Via Koduvalli, Kozhikode (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Asoka Kumar. Acharya, M.A. in Skt.. *b.* 17.08.1953. Teacher, Govt. Uchatar Madhyamika Vidyalaya, Delhi. *Add.* R -02, 160, D-3, Street No. 7, Mahaveer Enclave, Palam-Dabari Road, New Delhi. *Spl.Ref.* Samskrita Sāhitya.

Asokan, K. K. M.A., M.Sc., M.Ed. *b.* 01.02.1959, Kizhampara, Kottayam, Kerala. Professor, Sri Ramakrishna Skt. Vidyalaya, Arunapuram. *GP.* V.N. Namputiri, Svami Svaprabhanandaji. *Add.* Kunnel, Amparanirappel, Kottayam (Kerala). *Spl.Ref.* Darśana.

Asri, Suraj Bhan. Shastri, M.A. (Sanskrit, Hindi, Pol.Science), B.Ed. *b.* 12.12.1955. Principal, Govt. Sr. Sec. School Khurana. *Gp.* Sh. Bal Krishna Nand. *Sp.* Sh. Raj Bir. *Add.* 361 Model Town Jind Road, Kaithal 136027, M. 09466421567 *Spl.Ref.* Urdu, Punjabi, English, Sanskrit.

Asthana, Kiran. M.A., B.Ed., Ph.D.. *b.* 23.09.1944. Teacher (TGT) Sanskrit, Kendriya Vidyalaya, Gole Market, New Delhi. *Add.* 291, Prasad Nagar, New Delhi.

Asuru, Varadaraja. Nyāya-¶iromaṇi, Rashtra-bhasha Pravina. *b.* 09.11.1928. President, Samskrta Bhasa Pracharini Sabha. *Add.* President, Skt. Bhasha Pracharini Sabha, Chittur (A.P.). *Spl.Ref.* Nyāya.

Asvattha Narayan Avadhani, Subrahmanya-vadhani Matturu. Jyotiṣa, Śāṅkara-Vedānta. *b.* 20.08.1951, Mattur, Shimoga, Karnataka. Vedānta, Vyākaraṇa-Shikshaka. Patanjali Mahapathashala. *Gp* Advaitanandendra Saraswati, Subrah-manyaavadhani, Sachchida-nand Saraswati, P. Subrahmanyabhatt. *Add.* Mattur. Dist. Shimoga (KT). *Spl.Ref.* Advaitavedānta, & Jyotiṣa.

Aswal, Roshani. M.A., NET, Ph.D. *b.* 05.08.1982. Asstt. Prof. Govt. PG College, Uttarakhand. *Ps.* 04. *Add.* Vill & P.O. Jai Harikhal, Distt. Pauri Garhwal, Uttarakhand—246139, M. 09837891118.

Athavale, Kashinath Ramchandra. B. Com., M.A., (Darśana), B.Ed.. *b.* 30.08.1934, Varanasi, (U.P.). Asst. Prof.. *GP.* Ramchandra Bhatta Athavale, Baba Guru Patavardhan. *Add.* Govt. Venkata Sanskrit Mahavidyalaya, Rewa (M.P.). *Spl.Ref.* Ṛgveda, Atharva Veda, Darśana.

Atmajyoti, M.G. Acharya, Shiksashastri. *b.* 03.05.1963. Teacher. *Add.* 509 A-3, R.K.

Puram. New Delhi– 110022. *Spl.Ref.* Sāhitya, Education.

Atrey, Bheekhan Lal. M.A., Ph.D. Hindu Univ. Kashi. *GP.* Phanibhushan Adhikari. *Bks.* 13. Vāsiṣ-hadarśanaṃ. Yogavāsiṣ-hasāraḥ. Śaṅkarācārya kā Māyāvāda. The Elements of Indian Logic. Yogavāsiṣ-ha and Modern Thought.

Attreya, V. Swaminath. Śiromaṇi in Vyākaraṇa, Linguistics. *b.* 1919. Tanjaur Tamilnadu. *Gp.* M.M. S. Kuppuswami Shastri, M.M. Dandpani Swami. *Bks.* 06. Anurūpā, Mahākavisamāgamaḥ, Badrīkedāranāthayātrā Prabandhaḥ. *Add.* 1170 Balobalane West Main Street, Tanjaur 09. *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Linguistics, Manuscriptologist. Poet, Skt. Scholar. Title of Ashu Kavi Tilak, Sāhitya Vallabh.

Avadhani, Kadavadhani Ramaswami. Shastri. *b.* 05.05.1950, Sringeri, Chikmagalur, Karnataka. Rtd. Teacher. *GP.* V.S. Ramachandra Shastri, Krishna Ghanapathi. *Add.* Harihar Vithi, Shringeri, Chikmagalur – 579139 (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda.

Avadhanulu, Remella. M.Sc. (Nucelar Physics), M.A. (Skt, Astro Science), Ph.D. (Skt., Jyotish), PG Dip. in Computer Programming, Software Engineering, Trad. Study in Yajurveda, Mīmāṃsā, Vedānta etc. Research in vedic sciences *b.* 25.09.1948. Podagatlapalli, A.P. Chief Executive Shri Veda Bharti. *Bks.* 04 Vedas & Computers – Computer Science in Vedas, Science & Technology in Vedas & Sastras, Computerization of Vedas- Need of the Hour, Vaidika Ganitamu- Parts 1 to 5 (Telugu/ English). *Ps.* 80. *Add.* H. 34, Madhuranagar, Hyderabad-500038, remella.avadhanulu@ gmail.com *Spl.Ref.* Appreciation from PM of India for Vedic Wisdom in CDROMs 2000, Appreciation from President of India for designing for first Vedic Data Base in 1995, Appreciation from Official Language Committee of Parliament of India for design of First Telugu and Hindi FORTRAN Compliers 1976, SAMSKRIT MITRA 2003, Madras Telugu Academy Ugdai puraskar 1997, Prajna Bharati Award 1996, Man of the Year 1999 by ABI, USA etc. Her Biography included in Who's in the World 15th Edition USA, Dictionary of International Biography, England, 2000 Outstanding Scientists of the 20th Century England, The International Dictionary of Distinguished Leadership USA.

Avadhnalu, Krishnamurti D.V. *b.* 10.03.1946, Kolluru, A.P. Vedic exponent. *GP.* Vishnubhattala Adinarayan Ghanapathi. *Add.* Shri Govind Swami Devasthana, Tirupati (A.P.). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda Kramānta.

Avanindra Kumar. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 13.03.1940. Asct. Prof. Deptt. of Skt., Delhi University, Delhi. *Add. Ps.* 19, Maurya Enclave, Delhi – 110034. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Avanindra Kumar. Acharya in Vyākaraṇa, Nirukta-charya, M.A., Ph.D. *b.* 13.03.1940. Etah U.P. Prof. & Head Deptt. of Skt. Univ. of Delhi. *Gp.* Pt. Brahamdutt Jigyasu, Pt. Yudishtir Mimansak, Pt. Jyotiswaroop Acharya. *Sp.* Prof. Mithilesh Chaturvedi, Dr. Omnath Bimli. *Bks.* 05. Pāṇinīdhātvanukramakośa, Aṣṭādhyāyī-padānukramakośa, Vyākaraṇa kā Itihāsa. *Ps.* 115. *Add.* RP 19 Mayur Enclave Pitampur Delhi–110034. avanindra_kumar@ rediff mail.com *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, President Awardee 2007, Skt. Sāhitya Seva Samman 2000, Panini-Sayan Samman 1996, New Mexico, USA,

Avasthi, Brahmadina. Acharya in Sāhitya, & Āyurveda, M.A. *b.* 10.07.1930. Vill. Dehali, Kanpur, U.P. Asstt. Teacher. *Add.* Govt. Ramananda Skt. Vidyalaya, Lalghati, Guphamandir, Bhopal (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Āyurveda.

Avasthi, Brahmamitra. Acharya in Sāhitya, M.A. (Skt.), Diploma in Pali & BauddhaDarśana. *b.* 16.10.1929, Unnao, U.P. Asct. Prof. *Bks.* 20. Bhāratīya Nyāyaśāstra - eka Adhyayana, Pātañjali-yogaśāstra eka Adhyayana. *Add.* Ganganath Jha Kendriya Skt. Vidyapitham, Azad Park, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Avasthi, Gopinatha. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 15.03.1935, Shuklapur. Teacher. ***Add.*** Shri Tiwari Vedic Adarsh Skt. Mahavidyalaya, Old Kanpur, Kanpur(U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Avasthi, Nandakishore. Acharya in Vyākaraṇa, B.Ed. ***b.*** 01.06.1959. Purohit (Priest). ***Add.*** House No. 1137, Near Shiva Mandir, Mukherjee Nagar, Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Avatare, Shankardev. M.A. (Skt.& Hindi), Acharya, Ph.d., D.Litt. ***b.***15.04.1921, Bulandsahar, U.P. Rtd. Principal, Motilal Nehru Eveing College, Delhi. ***Bks.*** 04 Jīvanamuktakaṃ Nārīgītaṃ, Sītārāmīyam. ***Add.***H-54, Jyoti Nagar (West), Loni Road, New Delhi-94. ***Spl.Ref.*** Honor by President., Mysore Hindi Parisat, Delhi Skt. Academy.

Avinashi, Tararani. Sāhityaratna, Prabhakar, J.B.T.. ***Age.*** 52 yrs. Asst. Teacher. ***Add.*** G-625, Sarojini Nagar, New Delhi – 110023.

Avula, Nagamallayya. M.A. B.Ed. ***b.*** 26.06.1958, Sangatipalli, Cudappa, A.P. Lecturer. ***Add.*** Sri Rajareddi Degree Kalashala, Pulivendula, Cudappa – 516390 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Awasthi, Baburam, M.A., Acharya. ***b.***28.02.1929, Lakhimpurkheri. Asst.Prof. ***Bks.*** 09. Yuga Darśanam, Lokagītāñjali, Kathā Dvādaśī, Nā-ya Navanītam, Nā-ya Nīrayanam. ***Add.*** Urmila Sadan, Bajpai Colony, Lakhimpur, Kheri. Expired on 02.06.2010. ***Spl.Ref.*** Kavi Evam Sāhityakar.

Awasthi, Bachchoolal. Acharya in Vyākaraṇa, Darśana, Sāhitya, M.A., Ph.D, D.Litt. ***b.*** 08.08.1918. Sipahia, Kodar, Pharuha ghat, Bahraich Disst. (U.P.). Acharya. Sagar Univ. (M.P.). ***GP.*** Pt. Rajaram Batt. Bhagirath Mishra, Vedānta Mishra, Pt. Ghutar Jha. Mahaveer Jha. ***SP.*** Dr.Ananda Mangal Bajpai, Dr Santosh Pandya, Dr. Vandana Tripathi, Dr. D K Singhdeo ***Bks.*** 20. Bhāratīya Darśana Śāstra kā Bṛhatkośa. Kāvya me Rahasyavāda. Dhvani Siddhānta & Tulaniya Sāhitya Cintana. Bhāratīya Kāvya Samīkṣā Me Dhvanisiddhānta, Kāvya-Tattva-Bhodhinī. Pratāninī. ***Ps.*** 100. ***Spl.Ref.*** Rasasidh Kavi, Ozasvi Vakta, Samvedansheel Lekhak & Parinishta Samikshak. Honored by Sāhitya Akademi puraskar for his beautiful poetry collection Pratanini As well as Honored by presidential award in the year of 1993.

Awasthi, Krishn Datt. Acharya, Ph.D., D.Litt. ***b.*** 30.12.1927, Banda, (U.P.). ***GP.*** Dr. Gopinath Kaviraj, Baladev Upadhyay. Teacher (Senior). ***Add.*** 2/55, Civil Lines, Banda (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Awasthi, Krishnkant. Acharya, M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 30. 12.1927, Banda, (U.P.). ***Bks.*** 01. Bhāratīya Vāṅmaya meṃ Sītā kā Svarūpa. ***Add.*** 2/55, Civil Lines, Banda (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Awasthi, Narendra. M.A., Ph.D. ***b.*** 22.09.1955, Jodhpur. Prof., Deptt. of Skt. JN Vyas Univ. Jodhpur. ***Gp.*** Prof. Dayanand Bhargava. ***Sp.*** Smt. Rani Dadhich. ***Bks.*** 06 Śrīmadbhagavad-gītāvijñānabhāṣyam, Atrikhyātiḥ, Nūpur-dhvani : Veda Upaniṣad, Gītā Kā Dārśanika Vivecana. ***Ps.*** More than 70. ***Add.*** 21/54 Chopasni Housing Board, Jodhpur 342008, Raj. Ph. 02912702455, M. 09351510782, awasthi_dr.narendra @rediffmail.com ***Spl.Ref.*** Indian Philosiphy. Gujrati, French. West Germany, France, Switzerland, Neitherland, Belzium.

Awasthi, Premshankar. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 05.06.1955, Dharmpur, Kanpur, (U.P.). ***GP.*** Surendradatta Awasthi, (Sāhitya). ***Add.*** Govt. Sanskrit Mahavidyalaya, Gwalior (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Ayyangar, Kallenalattur Varadaraj. Vidvān. ***b.*** 30.09.1921, Kalle, Karnataka. ***GP.*** Kasturi Shrinivasacharya, Laksmikant Ayyangar. ***Bks.*** Ed. Sudharmā, Nārāyaṇīyam etc. ***Add.*** Shrikant Power Press, No. 561, Chhawari Road, Ramachandra Agrahar, Mysore (KT). ***Spl.Ref.*** Viśiṣ-ādvaita Vedānta, ***Award.*** Sanskrit Seva Dhurina. Vani Bhushanam, Vidyanidhi.

Ayyangar, Krishnamurti Raghavan. ***b.*** 09.01.1958, Shesamulai, Thanjavur, Tamil Nadu. Vedaparayanakartta (Veda Exponent).

Add. Shri Venkateshwar Swami Devasthanam, Tirumala, 41, C-Type Quarters, Tirumala – 517704 (A.P.). *Spl.Ref.* Ayyangara.

Ayyangar, Krishnasvami. Vedic Education. *b.* 08.08.1915, Melkote, Karnataka. *Add.* Melkote, Mandya Dist. (KT). *Spl.Ref.* Veda Vedāṅga.

Ayyar, Nilakantha Shastri Sundaram. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 20.06.1904, Shingakulam, Tirunelaveli, T.N. Rtd. Teacher. *GP.* Padmanabha Shastri, Tollur Raghavendra-charya, Shrikrishn Shastri. *Bks.* 01. Sāvitrī. *Add.* T.C. 34/10/1980, South Street, Fort, Tiruvananthapuram – 695023 (Kerala). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, & Kāvya Śāstra.

Ayyar, Parameshvaran Sesasubrahmanya. Daivajña Shiromani. *b.* 02.07.1921, Tirumanamjeri, T.N. Principal. *Add.* Sanskritik Jyoti Vidyapeetha, 143, Perundurai Road, Erode (T.N.). *Spl.Ref.* Vedānta.

Ayyar, Puntottam Subrahmanya Venkata-rama. *b.* 11.03.1911, Puntottam, Villupuram, S. Arcot, T.N. Teacher. *GP.* Paranur Kuppusvami Ghanapathi. *Add.* No. 3, Middle Street, Puntottam, Villupuram – 605602 (TN). *Spl.Ref.* Dharmaśāstra.

Ayyer, Parameshwar. Acharya in Nyāya, Vedānta. *b.* 16.07.1916, Kerala. Lect. Maharishi Europian Research Univ. in Switz. *Bks.* 03. Devī Navaratnamālā, Bhārata Gauravam, Ābhāṇaka Mañjarī, Aṣ-aka. *Ps.* 08. *Spl.Ref.* Simple Translation of English Proverbs in Ābhāṇaka Mañjarī is done.

Ayyer, Sri Nivasan. M.A., Ph.D. *b.* 22.01.1954, Jaipur. Prof. & HOD Univ. of Udaipur . *Gp.* Prof. Ramchandra Dwivedi, Pt. Vishnu Ram Naagar, Prof. Mul Chandra Pathak. *Bks.* 03. *Ps.* 09. *Add.* Sri Sai Kripa 1408, Sec-05, Gayatri Nagar, Udaipur, Raj. Ph. 02942464621, 2413029. *Spl.Ref.* Tulanatamak Sāhitya. Paryatana, Sāhitya evem Sanskriti Puraskar, UGC Scholarship.

Ayyer, T.V. Parameshvar. *b.* 1915, Kerala. Prof. Paris, Germany, Sweden & West Indies. *Bks.* 04. Jarmanī-yatrā-varṇanaṃ, Svāsthaya-Sūktiratnāvalī, Sāhitya-kautukaṃ.

B

Babu, Suresh E. M.A., M.Phil. Ph.D. *b.* 30.11.1965. (Kerala). *Bks.* 03. *Add.* Puyayi House. Chelambra (P.O.). Kerala - 673634. *Ph.* 0496 – 2695445.

Baburama. M.A., B.Ed. (Skt.). *b.* 02.12.1957. Teacher (TGT) Govt. Senior Secondary School No. 2, Tagore Garden, New Delhi. *Add.* WZ-30 A, Keshavpuram, New Delhi – 110048. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Badarinarayanacharya, K.S. *b.* 15.07.1959. Dvaitavedānta Vidvaduttama, Nyāya Vidvaduttama. Nyāya Vedānta Vidvān (Nyāya Scholar). *Add.* Purnaprajnavidyapitham, Purnaprajnanagar, Bangalore – 560028 (Karnataka). *Spl. Ref.* Nyāya, Dvaitavedānta.

Badarinatha, Jha. Acharya in Sāhitya. *b.* 20.08.1913, Madhubani, Bihar. Rtd. Lecturer. *Gp.* Dinabandhu Jha, Madhusudana Mishra, Sri Ravinatha Jha. *Add.* Vill. Bittho, Sarisabapahi, Via-Manigachi, Madhubani (Bihar). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Badoni, Govindaram. Acharya, M.A.. *b.* 05.11.1943, Chamy, U.P. *Gp.* Kamata Prasada, Haridatt, Trilokadhara Dwivedi. *Add.* Government Skt. Vidyalaya, Nahan, Sirmaur Dist. (H.P.). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bagchi, Sharmila. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.*06.08.1960. Jhansi (U.P.) Research Officer, Oriental Institute M.S. Univ. Baroda (Guj.). *Gp.* Prof. Radha Vallabh Tripathi. *Bks.* 04. Saṃskṛta Nā-akon me Ekālāpa, Dharma-sūrikṛta Narakāsuravijaya-vyāyoga, Abhinaya-lakṣaṇa of Śivadāsa. A Digest of 108 Scenes. *Ps.* 25. *Add.* III Floor, Rajgurukripa 26, Nutan Bharat Society, Alkapuri, Vadodara. *Ph.* (0265) 2357073, 09426947941.

Bagh, Gouranga. Acharya, M.Ed. *b.* 14.03.1980. Uchchakapat, Bamda. Dist. Sambalpur. Orissa;

Asst. Prof. Jammu Campus, R.Sk.S.. *Gp*. A.P. Sachidananda. *Ps. 02. Add*. H.S. Meena. A – 317. Triveni Nagar. Gopalpura By Pass, Jaipur (RJ) Skt. *Ph*. 07894 – 579332, 9530274431,

Bahugun, Prabhusharan. Acharya in Sāhitya, M.A. *b*. 03.08.1952, Savali Chamma, Tehari Garhwal, (U.P.). Teacher. *Gp*. Pt. Lalbahadur Mishra, Buddhivallabh Shastri. *Add*. Shri Munishwar Vedang Mahavidyalaya, Rishikesh (U.P.) *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bahuguna, Chandi Prasad. Acharya in Navya-Vyākaraṇa, Hindi Sāhitya Ratna, Shiksha-Shastri. *b*. 15.04.1926. Acharya, Sri Punjab Sindkshetra Mahavidyalaya, Rishikesh. *Bks*. 04. Śrīcaṇḍīsiddhirahasyam, Śrī Bharata-darśanam, Svatantratāvijayam. *Add*. 1, Bahuguna Niketan, 14 Bigha, Rishikesh. *Spl.Ref.* Purāṇapravacan. Shastra Chudamani, India Govt.

Bahulikar, Digambar Dattatrey. B.A., B.T. *b*. 11.03.1916. Teacher. *Bks*. 04. Kallolinī, Triśaṅkuḥ, Muktakamañjūṣā, Muktakāñjaliḥ. *Add*. Jyanprabodhini, Sanskrit Sanskriti Sanshodhika, 510, Sadashivpeth, Pune – 30. *Expired. Spl. Ref.* An eminent Scholar in Skt. Language and Literature.

Bahura, Gopal Narayan. M.A. (Skt. Sc. & Hindi). *b*. 14.05.1911. Purohit ji ka katla, Jaipur; Chairman. City Palace Pothikhana, Jaipur. *Gp*. Bhatt Mathuranath Shastri. *Bks*. 39. Mahākavi Sūradāsa (ed.), Śrīkṛṣṇa Caritāmṛta, Bhuvaneśvarī Mahāstotra, Rasadīrghikā (ed.), Literary Rulers of Amer & Jaipur (ed.). *Exp*. on 02.12.2003. *Spl. Ref.* The Founder of Rajasthan Prachya Vidya Pratishthan in 1951. President Awardee.

Bajaj, Kamalesh. M.A., C.P.Ed. *b*. 01.09.1944. Teacher, *Add*. 31, D.D.A. Harinagar, New Delhi – 110064.

Bajpai, Shiva G. Ph.D. Rai Bareli. U.P. India. *Prof. Bks*. 02. A Historical Atlas of India. Patterns of Commerce and Communication in cultural History of Mathura. *Add*. 670. Wildomar St. Pacific Palisades. CA. U.S.A. 90272. *Ph*. (310) 454 – 3826. email. sbajpai @csun.edu.

Bajpai, Sudha. M.A. (History, Psy., English), Ph.D. *b*. 09.11.1953, Varanasi. Senior Reader, Lucknow University. *Gp*. Prof. Vishwanath Bhattacharya, Prof. K.N. Chattarjee, Prof. K.K. Mishra. *Sp*. Km. Kavita Srivastava (IAS), Neelam Rawat , Neelema. *Bks*. 04 Mahābhārata me Sāṅkhya aur Yoga, Gaṇgā Śatakam, Mahākavi Māgha, Samskṛta Prākṛta Kāvya Dhārā ke Anucintana, *Ps*. 25. *Add*. C-23 Butler Palace Colony, Lucknow 226001, Ph. 0522-2207319, M. 09450941500. *Spl. Ref.* Sāṅkhya Yoga Darśana. Vice President in Gramin Mahila Sansthan.

Bajpayee, Daya Shankar. M.A., Acharya, (Vyākarṇa, Sāhitya). *b*. 1918. Unnao, U.P. Rtd. Principal, Ujjain. *Bks*. 03. Avantīsingha-sthakhaṇdkāvyam, Kalikautukam, Anehasā-hvānam. Expired in 1987. *Spl. Ref.* Ashukavi, President Awardee, Honour from M.P. Govt.

Bajpeyi, Amit Anand. M.A., M.Com. Ph.D. *b*. 13.06.1980. Guest Asst.Prof., Maharshi Panini Skt. Univ., Ujjain, M.P. *Ps*. 01. *Add*. 104, E.W.S. Indira Nagar, Agar Road, Ujjain, M.P.

Bakhsi, Pravin. M.A., B.Ed. *b*. 13.10.1947. Teacher (TGT), Khrista Raja School, Ashoka Place, New Delhi. *Add*. C-131, Hari Nagar, Ghantaghar, New Delhi – 110064. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bakul Bhushan, Jaggualvar. *b*. 1909. *Bks*. 01. Adbhutaddūtam. *Exp. in* 1993.

Bala Shastri. Vyākaraṇa - Acharya in Sāhitya, M.A., Sāhityaratna, Ph.D. *b*. 16.10.1954, Mirghat, Varanasi, U.P. Prof. *Gp*. Dr. Sitarama Shastri, Dr. Ramaprasad Tripathi, Dr. Visvanath Bhattacharya, Dr. Srinarayana Mishra. *Bks*. 05. Editing & publishing the complete Mahābhāṣya. *Add*. Dept. of Skt., B.H.U. Varanasi. *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Bala, Anju. M.A., Ph.D. *b*. 16.09.1971. Delhi. Skt. Teacher. *Bks*. 01. Jātakaphala & Jātakamālā : A Comparative Appraisal (1999). *Ps*. 15. *Add*. 1432. Shora Kothi. Sabzi Mandi. Ghanta Ghar. Delhi – 110007. *Ph*. 3945318.

Baladeva. Acharya, M.A.. *b.* 23.05.1952, Fajalpur, Meerut, U.P. *Gp.* Gangarama, Acharya Sudarshandev, Dr. Krishnakumar. *Add.* Maharshi Dayanand University, Rohatak (HR). *Spl. Ref.* Veda.

Balaganapati, M. Visarada. *b.* 28.04.1933. Sringeri, Chikkamagalur, Karnataka. Service. *Gp.* Venkatasubba Avadhani, Subba krishna Dixit. *Add.* Agamapandita, Harihara, Sringeri, Chikkamagalur – 577139 (Karnataka). *Spl. Ref.* Darśana.

Balaji, Ramachandrula. M.A. (Darśana, Telugu, Philosophy), M.Ed., Ph.D. *b.* 10.07.1963., Timme Samudram (A.P.) Asst. Prof., R.Sk.S. Rajiv Gandhi Campus, Sringeri. *Bks.* 02. Sārasvatam, Śikṣāyāḥ Dārśanika Pṛṣ-habhūmiḥ, *Ps.* 19. *Add.* C/o Badari Narayana, Behind Girls High School, Subhash Street, Sringeri. *Ph.* 250258.

Balarama, Sinha. Vyākaraṇaratna, Vyākaraṇa-Tirtha. *b.* Phultali, Tripura. *Add.* Village & P.O. Phulatali, Kailashahar – 799280 (Tripura). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa.

Balasubrahmanyam, D. *b.* 14.09.1964. Kalahasti, A.P. Veda Parayankartta. *Gp.* Srirama Sharma, Mahalinga Ghanapathi. *Add.* Sri Kalahasti Devasthanam, Sri Kalahasti, Chittoor (A.P.). *Spl. Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Balasubrahmanyam, D. Bhasyaratna. *b.* 20.01.1933, Taramangalam, Salem. Veda Teacher. *Gp.* Subrahmanya Venkataramana. *Add.* 9, Murugan Nagar, Raja Nagar, P.O. Mettur Dam, Salem (T.N.). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Balasubrahmanyam, N. Vedānta Kovid, śiromaṇi, *b.* 07.12.1917, Velayudham-palayam, Trichi, T.N. *Gp.* K.A. Laxman Shastri, T.V. Ramachandra Dixit; N.R. Subrahmanya Shastri, R.S. Venkatarama Shastri. *Add.* 6, Kamakshi Shastri Street, Satyamangalam – 638501 (T.N). *Spl. Ref.* Vedānta, Bharopiya BhashaŚāstra. P.O.L.

Balasubramaniam, K.S. B.Sc., M.A., Ph.D. *b.* 16.02.1959, Chennai. *Bks.* 20. *Ps.* 50. *Add.* C – 4, Durga Apts., 185. R.K. Mutt Road, Mandaiveli, Chennai - 600028. *Ph.* (044) (R) 4610928. (O) 4985320.

Balasubramanian, Jayalakshmi. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 22.12.1945. Gobi Chettipalayam Tamilnadu. Asst. Prof. *Add.* Plot – C – 336, A/3, Jayam Flats. New No. – 5. 8th Avenue Ashok Nagar. Chennai – 83. *Ph.* (044) 4747148.

Balasubramanian, K. S. Vidyavaridhi, Ph.D. *b.* 16.02.1959, Chennai. Dy. Director, Kuppuswami Shastri Research Institute. *Gp.* Sahaj Marg System of Rajyoga. *Bks.* 54 Nandikeśvarakāśikā with Upamanyu's com, Amṛtānanda Upaniṣad, Advayatarka Upaniṣad, Darśana Upaniṣad, Many vols. of Journal of Oriental Research and other publications of the K.S.R. Institute. *Ps.* More than 20. *Add.* Dy. Director, the Kuppuswami Sastri Research Institute, 84, Thiru Vi ka Road, Mylapore, Chennai, India 600004. Ph. 044-24617197, M.09884899716. sanskritkannan@yahoo.com. *Spl. Ref.* International Award Yoga Sastra Praveena, Sāhitya Visarada, Yogakala Kalapa. Switzerland 2002, France 2003, Singapore and Malaysia 2008, Italy 2009, have been teaching PG and UG students and many foreign countries for more than 25 years. Have published more than 50 books on Sanskritic and Indological research associated with the AIOC Samskrita Ranga, Sanskrit Akademi (Chennai) in all their publications from 1985. Have reviewed more than 60 books in the J.O.R. Vedānta Kesari, Samskrita Ranga Annual, JICPR, Vedānta Kesari etc.

Baljinnatha. M.A., Ph.D. *Age.* 69 years. Gandhi Nagar, J&K. Research Director, Sri Ranvir Kendriya Skt. Vidyapeeth, Jammu. *Gp.* Pt. Srichandra Shastri, Pt. Kakarama Shastri. *Bks. Ed.* Encyclopaedia of Shaivagama. *Add.* 627-A, Gandhi Nagar, Jammu – 180004 (J&K). *Spl. Ref.* Shaivasim & Sāhitya, Encylopedia of Shaiv Darshan & Paramārthasāra with Hindi Comentary and many other marvelous work in Shaiv and Shakta Darshan.

Balodi, Mohanchandra. Acharya. *b.* 15.12.1964. ***Add.*** T-211, Ansari Nagar, New Delhi – 110029.

Baluni, Sridhar Prasad. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna. *b.* 12.01.1941. Paudi-Gadhwal. Rtd. Vice Principal Govt. Sr.Sn. School. Delhi. ***Bks.*** 05. Daśameśacaritam, Śrībadrīnāthastotram, Śrīkedāranāthastotram. ***Add.*** C-259 Bhajanapura, Delhi – 53. ***Spl.Ref.*** Rajyashikshak Puraskar and Honour from Delhi Sanskrit Academy.

Bamal, Sheela. M.A., B.Ed., M.Phil. *b.* 02.05.1973. Kaithal. Lect. Jat College Kaithal. ***Gp.*** Dr. Mange Ram Yadav. ***Add.*** Kothi No. 2 Canal Colony, Kaithal 136027 Ph. 9017763705.

Bamniya, Kuwarsingh. M.A., M.Phil, Ph.D. *b.* 07.05.1977, Vill. Attarsuma, Post. Badvanya Tehsil Dahi, Distt. Dhar M.P. Asst. Prof., Govt. P.G. College Damoh M.P. ***Gp.*** Dr. Archana Joshi, Dr. Sangeeta Mehta, Dr. Mithila Prasad Tripathi. ***Sp.*** Surendra Tiwari, Pramod Kumar Ahirwal. ***Add.*** R.11 Vaishali Nagar, Damoh M.P. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bamsala, Nayantara. M.A. (Skt.), Ph.D. *b.* 27.11.1948. Research Associate, Delhi University. ***Add.*** 880/881, Kedar Building, Sabzi Mandi, Ghantaghar, Delhi – 110007.

Banarji, Pavan. M.A., Ph.D. *b.* 10.08.1952, Cuttack, Orissa. Asst. Prof.. ***Gp.*** Kulamani Mishra. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Sundargarh (Orissa). ***Spl. Ref.*** Sāhityam.

Bandhu, Manudev. M.A. (Veda, Skt., Darśana, Hindi) Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. (Veda, Skt). Dip. (Eng.). *b.* 05.04.1958. Pathargama, Jharkhand. Prof. Gurukul Kangadi Univ. Haridwar. ***Gp.*** Swami Omanand Saraswati, Acharya Vedprakash Shastri. ***Bks.*** 05. Bṛhadāraṇyakopaniṣad Eka Adhyayana, Chāndogyopaniṣad: Eka Adhyayana, Upaniṣadvāṅmaya me Yoga Vidyā, Veda-Manthan, Bhāṣyakāra Dayānanda. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Bandhusadan, Dayanand Nagari, Arya Nagar. Jwalapur, Distt. Haridwar Uttarakhand. ***Ph.*** 249407, 09837631882. ***Spl. Ref.*** Hindi Sāhitya Sevi Award, Vaidik Vidvān Award.

Bandi, Visvanatham. M.A. *b.* 18.07.1945, Kovvuru, West Godawari, A.P. Skt. Pandita, Veda Skt. Pathasala. ***Gp.*** Peri Suryanarayana Shastri. ***Add.*** L.I.G.T-2, A.P.H.B. Colony, Nellore – 524004 (A. P.). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bandopadhyay, Anita. M.A., B.Ed., M.Phil., Ph.D. *b.* 31.03.1961. Calcutta. Res. Sch. ***Bks.*** 02. Mādhyamika Sāhitya Sambhāra. ***Add.*** Kailash Pandit Lane, Calcutta. – 700053. ***Ph.*** 400 9561.

Bandopadhyay, Pratap. M.A., Ph.D. *b.* 01.05.1939, Calcutta (W.B.). Asct. Prof., University of Burdwan. (W.B.). ***Bks.*** 02. Similes in the Naiṣadhacarita, Bhāśā. ***Ps.*** 36. ***Add.*** 6/C, Cornfield Road, Namita Smriti. Calcutta–700019. (W.B.).

Bandopadhyaya, Alakananda. M.A., Ph.D. *b.* 10.01.1942. Bolpur. Birbhum. W.B. Prof. Visva Bharati ***Bks.*** 01. Saṃskṛta Alaṅkārśastre Yamakam. ***Ps.*** 01. ***Add.*** "Pitarou" Ukilpati Bolpur, P.O. Bolpur, Dist. Birbhum, W.B. – 731204. ***Ph.*** (03463) 54766.

Bandyaopadhyay, Nabanarayan. M.A., Ph.D. *b.* 29.10.1954, Burdwan. W.B. Prof. & Director School of Vedic Studies Rabindra Bharti University Calcutta 110050. ***Bks.*** 11 Vedic Studies, Bengal's Contribution to Vedic Studies, Mīmāṃsā Paribhāṣā, Ancient Indians Views on Truth and Falsity. ***Ps.*** 41. ***Add.*** Kavi Sukanta Co-operative Housing Society P-19B, CIT Scheme VIII M, Flat 5, Ultadanga, Kolkata 700067. Ph. 033-23565000, M. 09433618161, naba_narayana@yahoo.com. ***Spl Ref.*** Budapest 1997, Hungary, Finland 2002, Kyoto-Japan 2009.

Bandyopadhaya, Nabanarayana. M.A. *b.* 29.10.1954. Asct. Prof. Vaidik Studies, Skt. Department. ***Add.*** Ravindra Bharati Univ. 56 A, Barrackpur, Trunk Road, Calcutta – 700050 (W.B.). ***Spl. Ref.*** Veda.

Bandyopadhyay, Manavendu. M.A., Ph.D. Asct. Prof. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Jadavpur University, Calcutta – 700032. ***Spl. Ref.*** Kāvyaśāstra.

Bandyopadhyay, Mrinal Kanti. Kāvya Vyākaraṇa - Tarka-Tirtha, Ph.D. ***b.*** 04.11.1946, Burdwan, Professor Burdwan University, W.B. ***Bks.*** 04. ***Add.*** Vill. Chakundi, P.O. Nabastha, Distt Burdwan.

Bandyopadhyay, Nandita. B.A. (Hons.), M.A., Ph.D. Asct. Prof., Skt. Deptt. ***Add.*** Jadavpur University, Calcutta – 700032 (W.B.). ***Spl. Ref.*** Nyāya.

Bandyopadhyay, Nanigopal. Vyākaraṇa-Tirtha. ***Age.*** 32 yrs. in 1990, Midnapur, W.B. Principal. ***Add.*** Manikpriparam Chatuspathi, Aliganj, Midnapore (W.B.). ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa.

Bandyopadhyaya, Dayajit Kumara. Vedānta-Tirtha, M.A., Ph.D. ***b.*** 01.02.1915, Krishna Nagar, W.B. ***Gp.*** Ashutosha Shastri, Pt. Govindagola Mukhopadhyay. ***Add.*** AB-28/4, Rangapur, Burdwan – 713325 (W.B.)

Banerjee, Manabendu. M.A., Ph.D., Shastri. ***b.*** 12.07.1939. Kolkata. Vice-President, The Asiatic Society, Kolkata, and Hon.Secretary, Skt. Sāhitya Parishat, Kolkata. ***Gp.*** Pt. Pattabhiram Shastri, Prof. Gaurinath Shastri ***Bks.*** ***10*** Skt. Inscriptions of Nepal, Historical and Social Interpretationas of the Gupta Inscriptions, Looking into India's Past Through Epigraphical Literature, Aspects of Skt. Architectural Texts, Abhinayadarpaṇa of Nandikeśvara. ***Ps.*** 45. ***Add.*** 27/L/5, Raja S.C. Mullick Road, Kolkata – 700 032 (W.B.). ***Ph.*** (033) 24123989. Mob. 09831439706. ***Spl. Ref.*** Awarded in 2007 Certificate of Honour from the president of India, Organized 33rd 34th All India Oriental Conference in the capacity of Jt. Local Secretary.

Banerjee, Satya Ranjan. M.A. (Skt., Comporative Philology), Ph.D. (Comparative Philology and Greek) ***b.*** 01.08.1933. Dhaka, Bangladesh. Rtd. Prof. Linguistic. Kolkatta Univ. ***Bks.*** 50. ***Ps.*** 350. ***Spl.Ref.*** He has taught in Edinburgh Univ., South Asia Area Centre Viconson-Madison, Institute of Language, Holborn London. Editor Shramar (in Bengali), President Awardee.

Banerjee, Satyabati. M.A., Ph.D. ***b.*** 07.11.1967. Baidyabati. Reader Univ. of Burdwan, W.B. ***Bks.*** 02. ***Add.*** 37 N.C. Banerjee Road, Baidyabati, Hoogli Ph. 03326326628.

Bannanje, Govindacharya. ***b.*** 03.01.1936. Udupi, Karnataka. Chief Editor, Udaya Vāṇī (Kannad Daily Newspaper). ***Bks.*** 01. Ānanda Mālā. ***Add.*** Udupi (Karnataka). ***Spl. Ref.*** Mādhvavedānta.

Bansal, Jaishri. M.A. (Skt. & Hindi). B.Ed. ***b.*** 01.01.1952. Teacher. Manavasthali School, R-Block, New Rajendra Nagar, New Delhi. ***Add.*** R.U. 294. Vishakha Enclave, Pitampura. Delhi – 110034.

Bansal, Krishna. M.A., B.Ed. ***b.*** 18.07.1938. Teacher (PGT), Govt. Girls Senior Secondary School, Kirti Nagar, New Delhi. ***Add.*** A – 2/ 114, Paschim Vihar, New Delhi – 110063.

Bapat, Purushottam Vishvanath. In The Beginning Studied Pali as Principal Subject in Fergusson College, Pune & After that M.A. (Pali) Bombay Univ. (MH). Ph.D. (Harvard Univ.) U.S.A. Also learnt Tibatian and Chinese languages. b. 12.06.1994. Sangli (MH.). Prof., Chief Editor, General President, A.I.O.C. 27th Session. 1. As life member of Deccan Univ. Pune (1920). Taught pali in Fergusson college, pune. 2. Invited to work on Chinese Buddhism by Vishvabharthi at Shantiniketan (Calcutta). ***Gp.*** Prof. Dharamananda Kosabhi. ***Bks.*** 163. Arthapadasūtra (English trs. & Commentory on Text). 2500 years of Buddhism (Chief Editor) 1956. English Translation of Chines Version Shan-chien p'i-p'o-sha' of the Pali 'Vinaya' Commentary of 'Samantapasadika' (1970). ed. First Chapter with Auto commentary of 'Pravrajya vastu' of the 'Vinaya sutta' (with the help of Prof. V.V. Gokhale). ***Add.*** 'Svadhyaya' 772, Shivaji Nagar. Pune – 411004. ***Spl.Ref.*** Great Scholar of Buddhist Studies, Indology & the Allied subjects. 1. At the recommendation of his late guru, Professor Dharmanand Kosambi, Professor University in the U.S.A. to work on the English translation of the Visuddhimagga. 2. In 1956

he visited china as a leader of a cultural mission under the auspices of the Indo-China Friendship Association. 3. His last teaching assignment was in 1957 when he was invited by the University of Delhi to organize the first Department of Buddhist Studies in India. 4. Professor Bapat has widely traveled in America and Europe and also in the Buddhist Countries of Asia viz. Nepal, Sri Lanka, Thailand, Combodia, Laos, Vietnam China and Japan and has been able to get the first hand knowledge of earlier and later phases of Buddhism. 5. For his contribution he was honored by being elected to the Gereral President ship of the 27th session of the All India Oriental conference at Kurukshetra University in 1974.

Bare, Prajanya. M.A., B.Ed. *b.*02.01.1983. Research Scholar, Guwahati Univ. *Add.* Research Scholar, Deptt. of Skt. Gauhati Univ.

Barijah, Punya. M.A., Ph.D. *b.*06.08.1940, Gazpuriya Road, Jorhat Assam. HOD, Girls College Jorhat. *Bks.* 03. Jogī Kona, Pañcakanyā, Sāhitya Sādanī.

Barikeri, V.H. M.A., Ph.D. Rtd. Professor. *Add.* Deptt. of Skt., Gulbarga University, Gulbarga–585106 (A.P). *Spl. Ref.* Veda, Linguistics.

Barthakuria, Apurba Chandra. Shastri in Veda Sāhitya,M.A., Ph.D. *b.* 01.11.1937 Kumarpara, Rtd. Prof. Guwahati Univ. & President Assam Skt. Mahasabha. *Bks.* 08. *Ps.* 30. *Spl. Ref.* 25 Lect. in Skt. through A.I.R. He has been Activily engaged in propagation of Skt. In Assam & Tripura, President Awardee.

Barua, Dipak Kumar. M.A. (Pali), PG Dipl. in Librarian Ship, Ph.D. *b.* 14.01.1938, Chitagang. Rtd. Prof. Kolkata Univ. *Bks.* 10. *Ps.* 250. *Spl. Ref.* Selected as National Lect. in Pali & Buddhism by UGC, First Director Nava Nalanda Mahavir MHRD. As a visiting Prof. Japan, Sri Lanka, President Awardee.

Basavaraju, C.N. Alaṅkāra-Vidvaduttamā. *b.* 03.02.1951, Chinnahalli, Tumkur, KT. Research Associate. *Add.* H.No. 113/2, Kundara Mutt Road, Court Mohalla, Mysore – 570241 (KT). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Basu, Nirmalakanti. B.A. M.A., Ph.D. Principal, Skt. Dept. *Add.* Jadavapur Univ., Calcutta (W.B.). *Spl. Ref.* Alaṅkāra.

Basu, Ratna. M.A., Kāvya & Vyākaraṇa-Tirtha, Dipl. & Teachers Training Dipl. German, Great German Lng. Dipl. from Germany. *b.* 07.09.1951, W.B. *Bks.* 05 Dūtavākya of Bhāsa, Śāriputraprakaraṇa of Aśvaghoṣa, Raghuvaṃśa of Kālidāsa , Mālvikāgnimitra of Kālidāsa, Padmaprabhṛtikā of Śūdraka. *Add.* 183, Jodhpur Park Backside Bldg. 1st Floor Kolkata-700068 W.B. Ph. 033-24148840, M. 0943301019. *Spl. Ref.* Asstt. Executive Edr. in The Series Samskrit Sāhitya Sambhara, Sanskrit, Bengali, English, German, French, Tibtan, Pali, Prakrit & Script known Newari Grantha Brahmi, Malyalayam, Gaudi, Medieveal Bengali, Nandi Nagri, Sharda, Oriya.

Basu, Shiuli. M.A., Ph.D. *b.* 22.09.1976, Birbhum. Asstt. Prof., Jadavpur Univ. *Ps.* 05. *Add.* 20A, Ramratan Bose Lane, Shyam Bazar, Kolkata - 04. Ph. 033-25555940, M. 09434348485, ghose.shiuli@rediffmail.com

Basu, Soma (Sikdar) M.A., Ph.D. *b.* 01.05.1961, Chinsurah, Reader, School of Vedic Studies, Rabindra Bharati Univ. *Bks.* 01 Supriyā-Sārthavāha-Jātaka of Bhadrakalpāvadāna. *Ps.* 22. *Add.* 123, Sharad Chatarjee Road, Flat No. D/2 Sangam Complex, Lake Town Calicutta - 700089, Ph. 03324007214, M. 09051118213 somabasu01@gmail.com.

Batabyal Sumita M.A., Ph.D. *b.* 12.01.1961, Burdwan. Seclt. Gd. Lect. Deptt. of Skt, Burdwan Univ. *Add.* Deptt. of Skt. Burdawan University. M. 09434524178.

Batra, Naresh. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya), M.A., Ph.D. *b.* 28.12.1956. Panipat, Haryana. Principal, Adarsh Skt. Mahavidyala, Ambala Cantt. *Bks.* 01. Dāmpatyam. *Ps.* 40. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, Poet.

Bava, Jaidevan. M.A., Ph.D. *b.* 29.11.1936, Cheruvaranam, Alappuzha, Kerala. H.O.D.

of Vyākaraṇa. Platinum Jubilee Skt. College. Kalpetta. *Bks.* 01. Śabdabrahma-samīkṣaṇam. *Gp.* N.S. Ramanujatatacharya, M.H. Shastri. *Add.* Jayasthivaranam, Muhamma, Shertalai–68855 Alleppey Dist. (Kerala). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Darśana, Vedānta.

Bavara, Mohanlal Shastri. Acharya, B.Ed., Sāhityaratna. *b.* 07.12.1935. Teacher (PGT). *Add.* 1119, Sector 1, R.K. Puram, New Delhi–110022.

Benarji, Durgavati. Acharya in Vyākaraṇa, Vyākaraṇa-Tīrtha. Asst. Prof. Skt. Dept. *Add.* Jadavapur University, Calcutta – 700032 (W.B.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Benerji, Suresh Kumar. Kāvya-Tīrtha, M.A., B.Ed., Ph.D. *b.* 10.06.1957. Bankura, Vice-Principal & Sr. Lect., Sri. Sitaram Vedic Adarsh Skt. Mahavidyalaya. *Bks.* 08. *Add.* 160, Southern Avenue 'Vaikunthdham' Kolkata-700029. Ph. 033-25777250, M. 09933826211, srisrisitaramdasomkarnath@yahoo.in *Spl.Ref.* Sāhitya.

Bhadrasena. Acharya in Darśana, Siddhānta-śiromaṇi. *b.* 15.11.1936, Budhuana, Jhang, Punjab. Teacher. *GP.* Dharmavira Shastri, Vidyadhara, Swami Atmananda. *Add.* Sadhu Ashram. Hoshiarpur – 146021 (Punjab). *Spl. Ref.* Darśana.

Bhaduri, Sudheer Ranjan. Jyotiṣa. *b.* 1885, Nadiya (W.B.). *Bks.* 02. Search of Screate India, Brahmacintā. *Exp. on* 13.06.1955. *Spl.Ref.* Collected 19300 Manuscript & 3200 Books which are now in Sampurnanand Skt. Univ., Varanasi. He acquainted with 14 Languages.

Bhagavatacharya, Shri Ram Shastri. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa, Nyāya, Vedānta, Sāṅkhya-yoga, Nyāya-vaiśeṣika). *b.* 1859. Bhadausi, Kashi, Farrukhabad. Lect. Skt. College, Kashi. *Gp.* Balkrishnacharya. Pt. Rammishra Shastri. Pt. Mahadev Shastri. *Sp.* Ms. Jonson (Who Translated Bibil in Skt.). *Bks.* 15. Khaṇḍana-Khaṇḍa-Khādya Sampādana Srībhāṣya Ṭīkā, Nayakamlākaraḥ, Kāvyaprakāśasya Doṣoddhāraḥ. *Add.* Vill. Bhadausi. *Distt.* Farrukhabad. *Exp.* 1913. *Spe. Ref.* M.M. Award in 1908. Ms. Pandit Jonson was student of Shri Ramshastri Bhagvatacharya Ms. Pt. Jonson First Time Translated of Bibil in Skt.

Bhagawati, Sudesh. Acharya (Dharmaśāstra), B.Ed., Ph.D.. *b.* 01.01.1958, Delhi. Asst. Prof. *Gp.* Lalana krishna Pandeya, Harekrishna Sastri. *Add.* Kendriya Skt. Vidyapeetham, B-89, Bapu Nagar, Jaipur (RJ). *Spl. Ref.* Dharmaśāstra.

Bhagwat, Vaman Balkrishna. Kāvya-Tīrtha, Vyākaraṇa-Ratna, Vyākaraṇa Pāraṅgata. *b.* 24.01.1918. Satara, MH. Principal, Balmukund Mahavidyalaya. *Spl.Ref.* As Principal, he executed many schemes for the popularization of The Sanskrit language, Initiated a Teacher Training Programme and Wrote Many Books. After his retirement, he has worked as a Research Fellow in Bhandarkar Oriental Research Institute and Vaidic Samshodhan Mandal. He has successfully completed The Recording of a cassettes for Sanskrit Teaching, President Awardee.

Bhaktavatsal. Acharya. Ph.D. *b.* 05.10.1955. Principal. *Add.* Sanatana-Dharma Skt. College, Dohgi. P.O. Bangana, Dist. Una (H.P.). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhalla, Gangadhar. M.A. (Skt. & Hindi). Ph.D. *b.* 01.01.1927. Alwar (RJ). Rajkiya Mahavidyalaya (RJ) & Rajasthan Univ., Jaipur. *Bks.* 03. Bha--amathurānātha Vāgvaibhavaṃ, Rāmacandrabha--avāgvilāsaṃ. Vīrāṅganā Pallavī. *Ps.* 400. *Spl. Ref.* Edited Svaramangala Skt. Monthly Patrika of RJ. Skt. Academy. Awarded all India vidvat samman by H.R.D. Delhi, Also awarded Harit Rishi Purashkar by Maharana Mevar Foundation Jaipur (RJ).

Bhan, Narayanacharya. Purāṇa-Vācaspati, Paurāṇikaratnam, Panditaratnam. *b.* 14.10.1911, Udupi, Karnataka. Purāṇapravakta (Purāṇa exponent). *Gp.* Udupi Sirurusvami. *Add.* Srimand Uttradimatham, Rathaveethi, Udupi (KT). *Spl. Ref.* Vedānta, Paurāṇika Sāhitya.

Bhanauta, Dipali. M.A., Ph.D. ***b.*** 31.10.1948, New Delhi. Asst. Prof. Janakidevi Mahavidyalaya. ***Add.*** Block N-1, Delhi – 110017.

Bhandare, V. V. M.A., Ph.D., L.L.B. Professor. ***Add.*** Dept. of Skt., Univ. of Bombay, Ranade Bhawan, Vidya Nagari, Santa Cruz (E), Bombay-400098 (MH). ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa, Vedānta.

Bhandari, Govind Singh. M.A., L.L.B. ***b.*** 04.06.1955, Neelimanchal House, Tehsil Road, Bageshwar. Advocate, Distt. Court Bageshwar. ***Bks.*** 02. Mātṛbhūmi, Uttarāñcala Saṃdeśa. ***Spl. Ref.*** Head of Arya Pratinidhi Sabha, Uttarakhand.

Bhandari, Janardan Vasudev. Kāvya-Tīrtha, Vedānta-Tīrtha, Śikṣāśātrī. ***b.*** 14.08.1923, Kunakeshwar. Rtd. Teacher. ***Gp.*** Digambara Shastri, Achyuta Shastri, Kevalanand Sarasvati. ***Add.*** Dahaju, Thane – 401601 (MH). ***Spl. Ref.*** Kāvya, Vedānta.

Bhandari, Manjula. M.A., Ph.D.. Asst. Prof., Deptt. of Sanskrit. ***Add.*** Lady Shriram College for Women, Lajpat Nagar, New Delhi – 24. ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa, Dharmaśāstra.

Bhandari, Rajendra Singh. Acharya, M.A. (Skt., Hindi). ***b.*** 07.12.1956. Skt. Lect. ***Add.*** Sri Badrinath Bodbadang PG College, Josimath-246443. M. 09411109657, 9012048596.

Bhandarkar, Tryambak Atmaram. M.A., Acharya, Gurukul Parampara, Varanasi. ***b.*** 1897. Candupur, Torangram. Pracharya, Vasant College Varanasi. ***Bks.*** 02. Ātmacaritam, Śrīvivekānanda Caritaṃ. ***Spl. Ref.*** Some Parts of Śrīvivekānanda Caritaṃ is add in Syallabus of PG Classes in DU.

Bhansali, Asa. M.A., B.Ed., M.Ed. ***b.*** 02.02.1954, Jodhpur, RJ. Prof. ***Add.*** Shah Govardhanalal Kabara Teachers College, Jodhpur (RJ). ***Spl. Ref.*** Bhāratiya Darśana.

Bhanumati, V. Sāhitya-śhiromaṇi, Śikṣāśāstrī. ***b.*** 1958. Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Srividya Mandir Higher Secondary School, Salem – 636003 (T.N). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhanumurthy, J. Vidyapraveena. M.A., M.Ed., Ph.D. ***b.*** 15.03.1957. Tenali. Asct. Prof., RSkS., Bhopal Campus. ***Bks.*** 05. Skt. Śikṣaṇe Mātṛbhāṣā-Prabhāvaḥ, Adhigamasya Manovaijñānikādhāraḥ, Kṣemendrakaveḥ Cārucaryā, Śivasūtrāṇi (ed.), Jagannāthasya Citramīmāṃsā-Khaṇḍanaṃ. Citrabandharāmāyaṇa. ***Ps.*** 08. ***Add.*** B-18, Unique Campus, Bagh Sevania. Bhopal. ***Ph.*** 0755 – 2421877. ***Mob.*** 09630169691.

Bhanwar, Lal. Nyāya-Tīrtha. ***b.*** 1858. ***Gp.*** Shri Chainsukhdas. ***Bks.*** 1. Śamyamaprakāśya. ***Spl. Ref.*** Editing in 'Veervani' Patrika till 46 years. Chairman was Rajasthan Jain Sāhitya Parishad.

Bharadvaj, Kamala. M.A., Ph.D., M.Phil. ***b.*** 03.03.1955, Delhi. Teacher, Mahavira Visvavidyalaya. ***Gp.*** Dr. Vachaspati Upadhyaya, Dr. Satyavrata Shastri, Dr. Avanindrakumara. ***Add.*** A-50, Gulmohar Park, New Delhi – 110049. ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa.

Bharadvaj, Pratibha. M.A., B.Ed. ***b.*** 15.09.1946. Teacher, Kendriya Vidyalaya, Andrews Ganj, New Delhi – 110049. ***Add.*** 94/4, Secotor – 1, Pushpa Vihar, New Delhi – 110017. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bharadwaj, Ganeshadatta. M.A., Ph.D. ***b.*** 10.04.1949, Motili, H.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Ramakanta Sharma. ***Add.*** Skt. Research Institute, Sadhu Ashram, Punjab University, Hoshiarpur (Punjab). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bharadwaj, Kamal. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 03.03.1955, Delhi. Teacher, Mahavira Vishwavidyalaya. ***Gp.*** Dr. Vachaspati Upadhyay, Dr. Satyavrat Shastri, Dr. Avanindra Kumar. ***Add.*** A-50, Gulmohar Park, New Delhi – 110049. ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa.

Bharadwaj, Maheshchandra. Acharya, Shiksashastri. ***b.*** 03.05.1959, Kajimabad, (U.P.). Teacher. ***Gp.*** Lalaram Sudhakar, Bankelal Dwivedi. ***Add.*** Shri Ratnamoti Sanskrit Mahavidyalaya, Gokul Mathura (U.P.). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bharadwaj, Rajesh. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.10.1956. Hapur (U.P.). Asct. Prof., Barelli College,

Bareilly, MJP University. *Bks.* 01 Tvāṃ Kathaṃ Vismarāmi, Mālinīśatakam, Bālyakathā-saptakam. ***Add*** 31., Sun City, Pilibhit Road, P.O. Air Force Station Bareilly - ***Pin.*** 243122. Ph. (0581) 535083.

Bharadwaj, Shiv Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A., M.O.L., Ph.D., D.Litt., Sāhityaratna. ***b.*** 15.10.1924, V. Dang, Patti Gagwarsun, Dist. Pauri Garhwal. Asst. Prof., V.V.R.I. Hoshiarpur & VIS & IS, Punjab University. Hoshiarpur, Punjab. ***Bks.*** 45, Bhārata-saṃdeśa, Hūṇā-varājayam, Jīvanasaladhi, Radhikaprikṣikā. ***Ps.*** 50, ***Add.*** Bharadwaj Niketan, Haripur Kanwli, Gen M.S.R.D. Dehradun, Uttarakhand. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra, President Awardee, Vishist Puraskar U.P. Sanskrit Academy, Founder Chairmen Panchnadiya Sanskrit Parishad, Editor of Vishvasanskritam Quarterly Magazine.

Bharati, Devadatta. Acharya in Sāhitya, M.A. ***b.*** 04.09.1932. Teacher, Baijanatha Uchcha-madhyamika Vidyalaya, Ishvar Nagar. ***Add.*** R.Z. 70-C, Street No. 9, Madhya Marg, Tugalakabad, New Delhi. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bharatiya, Pramod. M.A. (Skt. & Eng.), M.Phil., Ph.D. ***b.*** 20.09.1965. Nayagaon, Khagaria, Bihar. Asst. Prof., M.P.G. College. Mussoorie. ***Bks.*** 03. Fourteen Novels of Skt., Sahapā-hinī, Oriental Flavour. ***Add.*** Deptt. Of Skt., M.P.G. College, Mussoorie. Uttarakhand – 248179. ***Ph.*** (0135) 633237.

Bhardwaj, Bal Krishna. ***b.*** 1921. Kurukshetra, Haryana. ***Bks.*** 02. Śāradāmaṇilīlācaritam, Rāmakṛṣṇa-paramahaṃsadivyacaritam.

Bhardwaj, Ganesh Datt. M.A., Ph.D. ***b.*** 10.04.1949. Dist. Mandi (H.P.). Asct. Prof. V.V.B.I.S. Punjab University, Sadhu Ashram, Hoshiarpur, Punjab. ***Ps.*** 11. ***Add.*** V.V.B.I.S. Punjab University. Sadhu Asharm. Hoshiarpur (Punjab). ***Pin.*** 146021. ***Ph.*** (01882) 224817.

Bhardwaj, Kailash. Acharya (Vyākaraṇ, Sāhitya) ***b.*** 05.11.1971, Kaithal, Principal, Kaithal Skt. Mahavidyalaya. ***Gp.*** Dr. Krishna Acharya. ***Sp.*** Subhash Chand. ***Add.*** Friends Colony H.No. 114/19 Kaithal, Haryana 136027. M. 09416682153

Bhardwaj, Kamal Kishore. Acharya (Śuklayajurveda, Sāmaveda), Vidyavaridhi. ***b.*** 04.09.1963. Jaipur, Prof. & HOD, Govt. Maharaja Acharya Skt. Mahavidyalaya. ***Gp.*** Pt. S.N. Vedacharya. ***Sp.*** 200. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 4/ 759, Jawahar Nagar, Jaipur - 302004. Ph. 0141-2656363, 0141-2706608, M. 09314932588. ***Spl. Ref.*** Harit Rashi Samman, Acharya Bhaskar Samman etc. Sāmaveda Rāṇāyanīya Śākhā.

Bhardwaj, Kamla. M.Phil., Ph.D. ***b.*** 03.03.1955. Delhi. Asct. Prof. Vyākaraṇa. ***Bks.*** 01. Mahābhāṣya ke ślokavārtika. ***Ps.*** 19. ***Add.*** A–50. Gulmohar Park. IInd Floor. New Delhi – 110049. ***Ph.*** 6867051.

Bhardwaj, Krishna Dutt. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 15.08.1908. Bullandsahar, U.P. Princpal, Modern School Delhi. ***Bks.*** 01. Padya-puṣpāñjaliḥ. ***Spl. Ref.*** Padamshri Award, Delhi Skt. Academy. Shreshta Skt. Vidvān from President of India.

Bhardwaj, Kusum Lata. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.02.1945. Asst. Prof. Kamla Nahru College, Siri Fort Marg, New Delhi.

Bhargav, Purushottamlal. M.A. (Skt./Hindi), Ph.D. ***b.*** 1909. Jaipur. Prof & HOD, Univ. of Rajasthan. ***Spl. Ref.*** 'Āryāṇāmādini-vāsasthānam' the research Paper presented in international Prācyavidyāpratiṣ-hān in America.

Bhargava, Dayanand. M.A. Ph.D. ***b.*** 22.02.1937. Jodhpur, RJ. ***Gp.*** Gangarama Shastri, Dr. Indra Chandra Shastri, Pt. Krishnadutt Shastri. Chairman. Pt. Madhusudan Ojha Veda Vijnan Peeth. J.R. ***RJ*** Skt. University, Jaipur. ***Bks.*** 21. Ṛcā - Rahasyam, Vaidika Vijñāna (ed.), Vedadharmavyākhyānam (ed.), Holistic Approach of the Vedas, Integral World – View of the Vedas. ***Ps.*** 17. ***Add.*** J-1/7, Jeevan Suraksha Flats, Vidyadhar Nagar, Sector-02. Jaipur-23. ***Ph.*** (0141) 2232856. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Bhartiya, Bhavanilal. M.A. Ph.D. ***b.*** 1928. Nagor. Prof. ***Bks.*** 80. Vedādhyayan ke Sopān, Vaidika Svādhyāya, Upniśadoṃ kī Kathāyeṃ, Āryalekhana Kośa, Ārya Samāj ke Sāhitya kā Itihāsa.

Bhasina, Balajit Kaur. M.A., Ph.D.. Prof., Skt. Department. ***Add.*** Mata Sundari College for women, Delhi University, Mata Sundari Lane, New Delhi – 110002. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhaskar, Nagaraj S. Sāhitya Śiromaṇi. ***b.*** 17.11.1914, Baireddipalli, T.N. ***Gp.*** Setumadhwacharya, Purisai Krishnamachary, Venkateshwar Dixit. ***Add.*** 45, Ganapati Colony, Ketcheri Road, Mylapore, Madras – 600004 (T.N). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhaskarbhatt, K. S. b. 03.02.1921. Sagartaluk, Karanataka. ***Bks.*** 02. Devīvilāsakāvyam, Stavakusumāñjaliḥ. ***Add.*** Valmiki Nilayam, Bhimankone, Sagar Taluka, Shimoga – 17. ***Spl. Ref.*** Sāhitya Bhushan, Kavi Kishore.

Bhat, Chandrashekhar. M.A., Ph.D. Net. B.Ed. ***b.*** 20.07.1973. Asst. Prof. R.G. Campus. Sringeri. ***Bks.*** 01. Śabdān Jānīmahe (2007-08). ***Ps.*** 09. ***Add.*** Matrichaya, Near Police Station, Bharat, Street. Sringeri. ***Ph.*** 08265–250258.

Bhat, Ganesh Ishwar. M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 09.07.1976., SIRSI. Asst. Prof., R.Sk.S., Rajiv Gandhi Campus, Shringeri, Chikkamagalore. ***Ps.*** 18. ***Add.*** AT & PO – Vandur, TQ – Honnavar– Dist. North Kanara.

Bhat, K. Ganapathi M.A., Ph.D. ***b.*** 21.02.1962, Jalsoor, Karnataka. Asst. Prof. R.Sk.S. Tirupathi. ***Bks.*** 02. Jalavadhāda Nischayatva-vicāraḥ, Nyāyāvayavavicāraḥ. ***Ps.*** 09. ***Add.*** Chitsukhee. 78/B. Ponnakalva Road, Opp. Lazza Ice Cream Factory, Shivagirinagar, Tiruchanoor, Tirupati– 517507. ***Ph.*** 0877 – 2239928. ***Mob.*** 9440773072, ***Spl. Ref.*** Ṛgveda Kramapā-hī.

Bhat, K. Ganapati. M.A. (Skt. & Music) ***b.*** 04.07.1960. Karnataka. Skt. Teac. ***Gp.*** Pt. Bhalchandra, Pt. Martanda Dixit, Pt. Chandra Shekhar Purāṇik Math. ***Bks.*** 06. Padarūpāvalī, Vedīc Maths, Saṃskṛta Gāna Dhavnī, Saṃskṛta Prabhā, Devapujāvidhānam. ***Ps.*** 25. ***Add.*** Skt. Vidyapeeth. Mālamaddi. Dharwada. Kanataka. ***Ph.*** 740598.

Bhat, Madhukeshwar. M.A., M.Phil. ***b.*** 20.07.1981, Kyadgi. Astt. Prof. R.Sk.S. Sringeri. Chikkamagolore. ***Add.*** Hirekai. P.O. – Kyadgi T. Siddapur. Dest. Uttarakannada. State – Karnataka. ***Ph.*** 09964499743.

Bhat, N. Radhakrishna. M.A. Ph.D. ***b.*** 03.01.1952. Nooji. Kabaka P.O., Putur Taluk (KT). Prof. Karnataka State Open University. Manasagangotri. Mysore – 570006. ***Bks.*** 01. Pictorial Glossary in Skt. ***Ps.*** 20. ***Add.*** H.No.-136. 'D' Block. Vijayanagar. III Stage. Mysore–570017. ***Ph.*** (0821) 2411858, 09448166634.

Bhat, Narasimha M. Vidwat. M.A., B.Ed. ***b.*** 08.04.1970. Yellapur. Skt. Teac. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Presentation High School, P.B. Road, Dharwad– 1.

Bhat, P. Mahabaleshwar. Advaita Vedānta Vidvān. M.A., Ph.D. ***b.*** 07.10.1953., Kichchikari. Asct. Prof., RSkS, R.G. Campus., Sringeri Chikkamagalore. ***Bks.*** 01. Sārasvatam (ed.). ***Ps.*** 04. ***Add.*** Sriniketan, Pragati Nagar, Yallapur Road, Sirsi (KT.). ***Ph.*** 09448688498.

Bhat, Raghavendra. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.04.1977., Sampa (KT), Asst. Prof., Rajiv Gandhi Campus, Menase, Sringeri. ***Bks.*** 02. Kāvyasya Śabdaniṣ-hatā. ***Ps.*** 02. ***Add.*** At. Sampa, Po. Araigod. Tq. Sagar, Dt. Shimoga KT- 577421. ***Ph.*** 8265-250258. ***M.*** 9448971469.

Bhat, Suryanarayan. Acharya in Mīmāṃsā, M.A., Ph.D. ***b.*** 07.06.1971. Vellapur. Asst. Prof. RSkS. R.G. Campus, Menase, Sringeri, KT. ***Ps.***04. ***Add.*** C/o D. Ganapati Advocate, Sharada Nagar, Sringeri, Karnataka. ***Ph.*** 08265-250258.

Bhat, Venkataramana. Alaṃkāra Vidwat, Ph.D. ***b.*** 08.02.1982. Yellapur. Asstt. Prof., Deptt. of Skt, R.K. Mission Vivekanand Univ. ***Add.*** Sri R.K. Mission Vivekanand Univ., Belurmath, Howrah, 711202. W.B. M. 9165621558, bhat.vktramana@gmail.com

Bhate, Saroja. M.A., Ph.D. *b.* 05.01.1942. Aundh, MH. Head of the Deptt. (Skt. & Prakrit). Bhandarkar Oriental Research Institute, Law College Road, Pune – 411004. ***Bks.*** 16. The Role of the Particle 'ca' in the Interpretation of the Aṣ-ādhyāyī, The Fundamentals of Anuvṛtti, The Mahābhāṣyadīpikā of Bhartṛhari Āhnika VI, Law in Vaidika and Prākṛta Literature (Bibliography and Survey) Subhāṣitaśatakam - III. ***Ps.*** 44. ***Add.*** 15/46, Nirmalbag, Parvati Peta, Pune – 411004. ***Ph.*** 020 – 25656932. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Bhatiya, Usha. M.A., B.Ed.. *b.* 05.10.1940. Language Teacher (Skt.), Govt. Senior Secondary School, Azadpur Colony, Delhi ***Add.*** K-D-39 B, Ashok Vihar, New Delhi. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Acharya Bimal Krishna. M.A. Ph.D. *b.* 01.04.1954. Batsop (Nalbori, Assam). Dip. Director (Higher) Skt. Edu. Assam. ***Bks.*** 04. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Rangia (Tiniali). Kamrup. Assam. ***Ph.*** 09678613149.

Bhatt, Balaganapati. Alaṅkāra Vidvat, Rashtrabhasha Visarada, Kannadda Pandita. *b.* 06.01.1919, Sringeri, Chikkamagalur, KT. Rtd. Asst. Prof. of Skt., Junior College, Chamaraja Nagar. ***Gp.*** Venkatacharya, Chakavela Kesava Shastri, Venkata Ramana Bhatta. ***Add.*** Surabharati Bhawan, Sriranga-pattanam – 571438 Mysore (KT). ***Spl. Ref.*** Advaita Vedānta.

Bhatt, Balkrishna. Vill. Jakhauli, Patti Bhardar, P.O. Jakhal Bhardar Distt. Tihari Uttaranchal. Head Master, Rajkiya Skt. College Tihri Gardhval Uttaranchal. ***Bks.*** 02. Svatantra-bhāratam, Kāvya Saṅgraha.

Bhatt, Bhagavatprasad Natawaralal. M.A., Ph.D. *b.* 16.10.1931, Padara, Vadodara, Gujarat, ***GP.*** G.H. Bhatta, Krishna Sakharama Bhave, Arunodaya Jani. ***Add.*** C-09, Tara Bagh Colony, Near Polytechnic, Vadodara (Gujarat). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Bhaskar. M.A. (Skt., Bauddha Litt. & Philosophy). *b.* 19.01.1939, Teacher, Govt. Senior Secondary School, Janakpuri, New Delhi. ***Add.*** B-2/A/7, Janakpuri, New Delhi–110058. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Bhaskara K.S. Alaṅkāravidvat, Sāhitya-Bhushana. *b.* 03.02.1921, Vill. Bhimankone, Sagar Taluka, Karnataka. Rtd. Teacher. ***Add.*** Vill. Bhimankone, Sagar Taluka, Shimoga – 577401 (Karnataka). ***Spl. Ref.*** Alaṅkāraśāstra.

Bhatt, Bhima. S.V. M.A. (Vedānta), Vidvān. *b.* 17.02.1924, Sanur, South Kannad, KT. Rtd. Asst. Prof., Camarajendra Skt. Mahavidyalaya. ***Add.*** No. 24/4, Ishavasyam, Cross 6, 5 Main, Chamraj Pet, Bangalore (KT). ***Spl. Ref.*** Prachina Nyāya, Navyanyāya, Dvaitavedānta, Alaṅkāraśāstra.

Bhatt, Bhuvanagote Ganesha Vidvān. *b.* 21.01.1929. Vishvanathpur, Sringeri, Karnataka. Rtd. Teacher, Mysore Maharaja Samskrita Mahavidyalaya. ***Gp.*** Chaturvedi Ramchandracharya, Vishnumutri Bhatta. ***Bks.*** 01. Bhā--a Kaustubham. ***Add.*** 2262/I, Basaveshwar Road, 6th Cross, Mysore – 4 (KT). ***Spl. Ref.*** Alaṅkāraśāstra, Mimāṃsā.

Bhatt, Dilibhaya Bhagavatishankara. M.A. *b.* 22.07.1943. Principal. ***Add.*** Saha K.M.S. High School, Atul, Valsad (Gujarat). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Gangadhar. M.A. Ph.D. *b.* 01.01.1927. Alwar (RJ). HOD. & Prof. Univ. of RJ. Jaipur, Director Raibahadur Champalal Reserch Institute, Chairman, RJ Skt. Academy, Jaipur. ***Bks.*** 04. Prajñāmṛtam (ed.), Rājasthānī-yamabhinava- Saṃskṛtasāhityam, Śabdavidyā-saurabham. Rājasthānagauravam. ***Ps.*** 200. ***Exp.*** 08.02.2001. Jaipur. ***Spe. Ref.*** Chief Editor Svaramangala Skt. Patrika of Jaipur, Dr. Vishvanath Sharma, Pt. Shri Ashok Kumar Gupta has done Ph.D. on his works. ***Award.*** vidvat samman by govt of India & Haritrishi puraskar by Maharana Mevar foundation.

Bhatt, Goswami Falgun. *b.* 1915. Bikaner. Director, Nagarpalika Deptt. Bikaner. ***Bks.*** 01. Jayabharatādarśakāvyam. ***Exp.*** 06.05.1976. Spl. in Kāvya, Jyotiṣa, Sāhitya, Karmakāṇda, Āyurveda.

Bhatt, Harivallabh. Vyākaraṇa. Vaidyakaśāstra. Nyāyaśāstra. *b.* 1866. *Gp.* Srikrishnaram Bhatt, Shri Kundanram, Bhainath Ojha, Shri Narayan Bhatt Parvanikar. *Bks.* 10. Jayanagara-pañcaraṅgaḥ, Lalanālocanollāsaḥ, Kāntāvakṣojaśaktyodayaḥ, Śṛṅgāralaharī, Dāsakumāradāsa. *Exp.* 1920. *Spe. Ref.* Recipient of Kavimalla Award.

Bhatt, Jagadish Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D.. *b.* 05.10.1956, Pithauragarh, *U.P.* Asct. Prof.. *Gp.* Madananarayana Tripathi, Pt. Vedananda Jha, Dr. Harinarayana Dixit. *Bks.*01. Rāmāyaṇa-kālīnasamāja evaṁ saṃskṛti. *Add.* Siddha Kutir, Nawabi Road, Haldwani, Nainital (U.P.) *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatt, Jayant karunashankar. Kāvya-Tīrtha, Shastri (Purāṇetihāsa, Sāhitya, Jyotiṣa, Vedānta), M.A., Ph.D. *b.* 25.01.1933, Badalpura. Junagarh. Gujarat. Asct. Prof. *Gp.* Kamal Kant Mishra, Pratap Rai Modi. *Bks.* 01. Śāṅkarabhāṣya-Gītāmuddiśya Gītāyā Vivecanātmakādhyayanam. *Add.* Maharshi Ved Vijnana Academy, 3-B, Highland Park, Ahmedabad (GJ). *Spl. Ref.* Purāṇa, Sāhitya, Vedānta, Jyotiṣa.

Bhatt, Jeet Ram. Acharya (Vyākaraṇa). M.A., Pub. Adm., B.Ed., Ph.D. *b.* 09.11.1962. Bhattwari, UK. Deputy Secretary (P) Delhi Skt. Academy. *Bks.* 02. Bhaktirasāmṛtam – Eka Adhyayana, Anubhūtiśatakam. *Ps.* 02. *Add.* 46. Uttaranchal Enclave Kamalpur, Burari, Delhi – 110009. Ph. 6548786. *Spl. Ref.* Skt. Scholar, Poet and Critics.

Bhatt, Kakunje Krishna. Mimāṃsā śiromaṇi, Mimāṃsā-Visarada. *b.* 01.04.1916, Kasargode, Kakunje, Kerala. Rtd. Prof. (Mimāṃsā). Maharaja Samskrta College, Nirachala, KT. *Gp.* V. Vishnu Bhatt, S. Venkatappa Sharma, Bala-subrahmanya Shastri. *Bks.* 03. Kau-ilya Arthaśāstra, Svarṇa Kośa. Vyākaraṇavṛtti. *Add.* Kakunje, Kasargode (Kerala). *Spl. Ref.* Mimāṃsā, Advaitavedānta.

Bhatt, Kamaleshvar Prasad. Acharya in Sāhitya. M.A.. *b.* 12.04.1948. Principal. *Gp.* Aditya Ram Tripathi, Mahanand Sharma. *Add.* Shri Jairam Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh (UK). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatt, Kemalinga. Sāhitya-śiromaṇi. *b.* 05.02.1921, Kulamarawa, Kasaragode, Kerala. *Gp.* Narayana Bhatt, Krishna Bhatt. *Add.* Harihara Nilayam, Palkanar, Kauntikana, Kasaragode (Kerala). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatt, Kesava K. śiromaṇi, KannadaVidvān, M.Sc. *b.* 10.10.1918, Kilingar, Kasaragode, Kerala. Rtd. Lecturer. *Gp.* D. Narayana Bhatta, Subraya Bhatta, U. Vishnu Bhatta. *Add.* Kilingar, Srisadan, Nirchala mantralay, Kumbala, Kasaragode – 670321 (Kerala). *Spl. Ref.* Sāhitya, Kannada Sāhitya.

Bhatt, Kesava Y. Sāhityaśiromaṇi. *b.* 15.06.1930, Kundakatta, Kasaragode, Kerala. Asst. Prof. *Gp.* K. Krishna Bhatt, Darbe Narayana Sastri. *Add.* Kundakat House, Peral, Kasaragode – 670532 (Kerala). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatt, Krishn K. Sāhityashastri. *b.* 27.09.1921, Kotuvalli, Belur, Karnataka. *Gp.* Dalinarasimha Bhatt, H. Sitarama Bhatt. *Add.* Kotuvalli Post, Chikmaglur Dist. (KT). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatt, Krishnaraja K.R. Sāhitya śiromaṇi. *b.* 07.04.1922, Kinni Mulki, Karnataka. Rtd. Teacher. *Gp.* Shrinivasa Bhatta, Ramakrishnacharya, K. Ramakrishna Tantri. *Add.* Kinni Mulki, Udupi (Karnataka). *Spl. Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa, Nyāya Śāstra.

Bhatt, Lakshmi Narasimha. Veda, Alaṃkāra Śāstra, Pañcarātra Āgama. *b.* 08.08.1939. Rtd. Prof. Rashtriya Sanskrit Vidyapetha, Tirupati. *Bks.* 15. *Ps.* 80. *Add.* 3A, Gurukul Quarters Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupathi – 07. *Spl.Ref.* Sub-Editor Sanskrit Pratibha, Research General Sahitya Academy New Delhi. He has associated with Agam Kosh Project in Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati. President Awardee.

Bhatt, M. Ramkrishan. Rtd. HOD Deptt of Sanskrit, Hindu Mahavidyala, D.U. *Bks.* 01. Kāvyodyānam. *Spl.Ref.* Astrology.

Bhatt, M.A. Acharya, Ph.D. Śiromaṇi. *b.* 11.07.1932, Udupi Taluk, South Kannad, KT.

Teacher (Deptt. fo Phalita Jyautisha). ***Add.*** Kendriya Skt. Vidyapeetha, Tirupati – 517501 (A.P). ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa, Sāhitya.

Bhatt, Manjunath K.S. Vedavidvaduttamā. ***b.*** 02.06.1962, Kigg, Sringeri, KT. Ved Teacher. ***Gp.*** Krishnamurti Bhatt. ***Add.*** Kigg, R.S. Pura, Shringeri, Chikmagalur (KT). ***Spl. Ref.*** Veda.

Bhatt, Manjunath. M.A. ***b.*** 24.05.1950, Goka, Mysore. Principal. ***Add.*** Ajager, Goka, Mysore (KT). ***Spl. Ref.*** Advaitavedānta.

Bhatt, Mausumi. M.A., B.Ed. ***b.***15.08.1968, Dhubri, R.K. Mission Road, P.O. Khalilpur, Assam. Asst.Prof. B.N. College Dhubri. ***Gp.*** Dr. Shrutidhara Chakravarty. ***Add.*** Dhubri, R.K. Mission Road, P.O. Khalilpur, Assam.

Bhatt, Muggeri Manjunath. SāhityaVidvān, M.A. (Skt). ***b.*** 06.09.1916, Muggeri, Udupi, KT. Rtd. Asst. Prof. (Sanskrit). ***Gp.*** Goda Varma, A.V. Ramsvami Shastri. ***Bks.*** 02. Viraktivīthikā, Bhaktivīthikā. ***Add.*** Vyasacar Compound, Dongarkeri, Mangalore – 575003 (KT). ***Spl. Ref.*** Ṛgveda, Advaitavedānta, Sāhitya.

Bhatt, Mukundram. Acharya (Navya-Vyākaraṇa, Sāhitya). ***b.*** 18.11.1939. Language Teacher. ***Add.*** B048, Vishwas Park, Uttam Nagar, New Delhi – 110059. ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Navya-Vyākaraṇa.

Bhatt, Narasimhamurti Shastri. M.A. ***b.*** 25.12.1937, Chikkamagalur, KT. Teacher (Sāhitya, Pūrvamīmāṃsā). ***Gp.*** B. Ramabhatt, Sitaram Shastri. ***Add.*** S.S. College, Shringeri–577139 (KT). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Narayan. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 16.06.1924, Mugu, Kasargode, Kerala. ***Bks.*** 02. Madhura-vāṇī, Udayanapatrikā. ***Add.*** Thandamul Mugukasargode (Kerala). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Narayan. Vidvān, Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 20.03.1924, Bholeyar, Nirchal, Kasargode, Kerala. ***Gp.*** Narayan Shastri, Venkatakrishna Sharma. ***Add.*** Masyepar House, Bela, Kumbala, Kasargode – 670321 (Kerala). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Naresh V. M.A., Ph.D.. ***b.*** 01.07.1936, Valsad, Gujarat. ***Gp.*** Dr. D.P. Patel, Dr. Kapadiya. ***Add.*** Advait, 7, Balaji Nanaparsivada. Valsad – 396001 (GJ). ***Spl. Ref.*** Purāṇetihāsa.

Bhatt, Omprakash. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 25.05.1949, Khastalpatti Khasa, Tihri Garhwal, *U.P.* ***Gp.*** Buddhivallabhacharya, Sri Triloka-dhara Dwivedi, Gyanchandra Shastri, Haridatt Shastri. ***Add.*** Bhatt bhawan, Bhupatawala, Haridwar – 248410, (U.P.). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatt, Padmanabha H.A. Vedānta śiromaṇi, Sāhitya, Research (Dvaitavedānta-śākhā), Kannada Vidvān, Hindi Ratna, Music Higher Grade, B.Ed. ***b.*** 26.04.1920, Udupi, Alevur, Karnataka. Rtd. Teacher, Viveka Padavi Purvasala, Karnataka. ***Gp.*** Pt. Narayanacharya, Sirur Swami. ***Add.*** Near Vivek Praudha Shala, Parampally, Saligram, Kannada – 576225 (KT). ***Spl. Ref.*** Sanskrit Sāhitya, Vedāntaśāstra.

Bhatt, Parameshvar I. śiromaṇi in Sāhitya, āyurveda. ***b.*** 01.12.1935, Indugulli, Kasara-gode, Kerala. ***Add.*** Kala House, Post Muleria, Kasaragode (Kerala). ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Āyurveda.

Bhatt, Ramakrishna V. M.A. (Nyāya, Advaita Vedānta), Ph.D. ***b.*** 25.05.1948. Kerala. Prof. ***Ps.*** 73. ***Add.*** Dheemahi, Neeleswaram, P.O. Kalady, Kerala. ***Ph.*** 0484 – 2464773. ***Spl.Ref.*** – OMC Narayanan Nambuthiripad Memorial Deviprasadam Award, (2007), Sreekaliyath Parameswara Bharathi Swami Memorial Award, (2008).

Bhatt, Ramchandra. ***b.*** 1891. Principal. Govt. Skt. School, Alwar. ***Gp.*** Pt. Madan Sharma, Pt. Maithil Chandradatt Ojha, Pt. Shri Ramdev Sharma, Vishudhanand Sharma, Madangopal Sharma, Pt. Pyarelal Sharma, Shri Ghanshyam Datt. ***Bks.*** 01. Ātmadarśanam. ***Exp.*** 24.02.1963.

Bhatt, Savita. D. Phil. ***b.*** 01.07.1958. Mussoorie. Asct. Prof., ***Bks.*** 02. Vālmīkī ke Vana aur Vṛkṣa. Rāmāyaṇa Navanītam. ***Add.*** 82/6, Block II, Arya Nagar, Dehradun. ***Pin.*** 248001. ***Ph.*** 749689.

Bhatt, Shivram Shambhu. Vidvān Upadhi (Sāmaveda, Śrauta, Tāṇḍyamahābrāhmaṇa).

b. 02.10.1928. Hosakulli, KT. Adhyapak and Adhyaksha, RBSS Mahapathshala, Bhaskari. *Bks.* 04. Drāhyāyaṇasūtra, Trikālasandhyā-vandana. *Spl.Ref.* Veda, Besides National & International Conferences, he participated in the T.T.D Voice Recording Project on the Samavedasamhita, Uha-rahasyanta Prakriti and Vikriti, President Awardee.

Bhatt, Vasantkumarm. M.A., Ph.D., Dip. in Linguistics. *b.* 21.02.1953. Ahmedabad Director, School of Languages. Prof. & Head of the Skt. Dept. Gujarat University, Ahmedabad – 380009. *Gp.* Pt. Balkrishna Pancholi ji. *Sp.* Dr. Kalindi Pathak. *Bks.* 36. Saṃskṛta Vākyasaṃracanā, Pāṇinīya Vyākaraṇa Vimarśa, Pāṇinīya Vyākaraṇa Artha, Tantra aura Sambhāṣaṇa Sandarbha, Saṃskṛta-pāṇḍulipīyān aura Samīkṣita Pā-ha-sampādanavijñāna. *Ps.* 150. *Add.* A-2, Surbhi Apt., Subhash Society, Vijay Cross Road (East)., Ahmedabad – 380009. *Ph.* (079) 2640 6508. 09427700064. *Spl.Ref.* expertisation on Indian Linguistic & Natural Language Processing.

Bhatta, Ganapati P. Traditional Degree. *b.* 26.08.1949, Polali, Karnataka, Asst. Prof. S.S. College. Shringeri. *Gp.* M.S. Rama Bhatta. *Add.* S/o Shri P.L. Vasudeva Bhatta, Bandwal, Polali, South Kannad (KT). *Spl. Ref.* Veda.

Bhatta, Ganapati. Kāvyacūdāmaṇi, M.A., Navyanyāya Vidvat. *b.* 04.07.1960. Teacher. *Add.* Shri Vanamali Ramadeva Skt. Pathsala, Malamaddi, Dharwar–480001 (KT). *Spl. Ref.* Kāvya, Nyāya.

Bhatta, Ghanashyam Shastri. Acharya in Sāhitya. *b.* 25.05.1935, Bhawanikhal, Almora. Principal. *Gp.* Muralidhara Avasthi, Pt. Anantadev Tripathi, Acharya Sudarsana. *Add.* Shri Baijnath Skt. Mahavidyalaya, Moradabad (U.P.). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatta, Gopalkrishna Narayana. M.A., Ph.D.. *b.* 21.01.1952, Harimar, Sidhapur Taluk, North Kannada, KT, *Gp.* Prof. R.N. Shastri, V.V. Tantri, Prof. V.H. Shridhara. Vice-Principal & Asct. Prof. *Add.* Canara Union College, Mangalore–575003 (KT). *Spl. Ref.* Advaita Vedanta, Ṛgveda & Sāhityaśāstra.

Bhatta, Gopalkrishna U. Āyruveda-śiromaṇi. M.A.. *b.* 05.06.1937, Ubana Vela, Kasaragode, Kerala. *Add.* Nirchal, Kasaragode, Kerala – 670321. *Spl. Ref.* Āurveda.

Bhatta, Isvara P. Skt.Vidvān. *b.* 17.04.1937. Poudal, Kasargode, Kerala. *Add.* Reddi Gulli House, Kumbala, Kasargode (Kerala). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatta, K. Narayana. Acharya, M.A., Ph.D., Shastra Proudhi. *b.* 05.02.1959. Salkod, Dist. Karwar. KT. Asct. Prof. Skt., University of Mysore. Manasagangotri, Mysore – 570006. *Bks.* 03. Yāskaniruktam, Trayī, Ṛtusṃhāra. *Ps.* 08. *Add.* R-12, 4th Cross, University Quarters, Manasa Gangotri, Mysore – 570006.

Bhatta, Kakunje Krishna. śiromaṇi in Mīmāṃsā Visharad. *b.* 01.04.1916, Kasargode, Kakunje, Kerala. Rtd. Prof. Maharaja Sanskrit College, Nirachal, KT. *Gp.* V. Vishnu Bhatta, S. Venkatappa Sharma, Balasubrahmanya Shastri. *Bks.* 03. Kautilya Arthaśastra, Svarṇa Koṣaḥ, Vyākaraṇa-vṛttih. *Add.* Kakunje, Kasargode (Kerala). *Spl. Ref.* Mīmāṃsā, AdvaitaVedānta.

Bhatta, Kemalinga. Sāhityaśiromaṇi. *b.* 05.02.1921, Kulamarawa, Kasaragode, Kerala. *Gp.* Narayan Bhatta, Krishna Bhatta. *Add.* Harihara Nilayam, Palkanar, Kauntikana, Kasaragode (Kerala). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhatta, Keshav K. Śiromaṇi, KannadaVidvān, M.Sc.. *b.* 10.10.1918, Kilingar, Kasaragode, Kerala. Rtd. Asst. Prof.. *Gp.* D. Narayan Bhatt, Subraya Bhatt, U. Vishnu Bhatt. *Add.* Kilingar, Shrisadan, Nirchala mantralay, Kumbala, Kasaragode – 670321 (Kerala). *Spl. Ref.* Sāhitya, KannadaSāhitya.

Bhatta, Khandige Shyam. M.A., Sāhitya Vidvat, Sāhitya Śiromaṇi. *b.* 20.09.1919, Khandige, South Kannad, Karnataka. Rtd. Principal, Maharaja Sanskrit College, Perdala, KT. *Gp.* P. Shankar Shastri, U. Krishna Bhatta, V.S. Kuppusvami Shasti, Dr. K. Raghavan, K. Vyas Rai Shastri. *Add.* Nirchal, Kumbala, Kasaragode (Kerala). *Spl. Ref.* Advait Vedānta, Sāhitya, Vyākaraṇa.

Bhatta, Krishna K. Sāhityashastri. ***b.*** 27.09.1921, Kotuvalli, Belur, KT. ***Gp.*** Dalinarasimha Bhatta, H. Sitaram Bhatta. ***Add.*** Kotuvalli Post, Chikmaglur Dist. (KT). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatta, Krishnaraj K.R. Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 07.04.1922, Kinni Mulki, KT. Rtd. Teacher. ***Gp.*** Shrinivas Bhatta, Ramakrishnachary, K. Ramakrishna Tantri. ***Add.*** Kinni Mulki, Udupi (KT). ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa. Nyāya Śāstra.

Bhatta, Madhav V. Acharya, M.A. ***b.*** 14.01.1928, Kasargode, Kerala. Asst. Prof. ***Add.*** Balapodam House, Kubhadej, Kasargode (Kerala). ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Vedānta.

Bhatta, Mahabaleshwar G. Alaṅkāra Śāstra, Vyākaraṇa Vidvān. ***b.*** 12.06.1948, Himallipur, KT. Teacher (Vyākaraṇa). ***Gp.*** N. Ranganath Sharma, N.T. Shrinivasacharya. ***Add.*** Shri Chamraj Sanskrit Pathashala, Bangalore (KT). ***Spl. Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Bhatta, Mathuranath Shastri. Sāhitya, Vyākaraṇa, Urdu, Sanskrit, Brijabhasha, Darśana, Tantra. ***B.*** 1889. Jaipur, RJ. ***Prof.*** Maharaja Sanskrit College. Jaipur, RJ. ***Gp.*** M.M. Madhusudan Ojha, Pt. Shri Rajguru Haridutta Jha, Pt. Gopinath Dadhicha. ***Sp.*** Siddharaj Dadda, Jawaharlal Jain, Dwarkanath Purohit, Kanhaiyalal Tiwari, Prabhakar Shastri, Dr. Usha Bhargav. ***Bks.*** 30. Sāhitya-Vaibhavam, Jayapura- Vaibhavam, Govinda-Vaibhavam, Saṃskṛtagāthāsaptaśatī. ***Add.*** C-8, Prithviraj Road, Jaipur – 302001, RJ. ***Expired.*** 04.06.1964. ***Spl.Ref.*** Awards – 'Kavishiromani' by Jaipur King Sawai Jaisingh, 'Kavi-sarvabhaum' by Vellanatiy Tailang Sabha, 'Kavi-Shiromani' by All India Sanskrit Sāhitya Sammelan, 'Sāhityavaridhi' by Bharatbharm. He was also editor, Journilist, Poet & Writer. Wrote 'Gajal' & 'Rubaiyan' in Sanskrit & also Radio Rūpaka, Lalita Nibandha, Ekaṅkī in Sanskrit.

Bhatta, Narasaraja S. M.A., Viśiṣ-ādvaita Vedānta. ***b.*** 21.06.1949, Kanchipuram, T.N. Research Scholar & Librarian. ***Gp.*** S. Narasimhacharya, Sampatkumar Bhatta. ***Add.*** Skt. Research Academy, Melukote (Karnataka). ***Spl. Ref.*** Viśiṣ-ādvaita Vedānta.

Bhatta, Narayan. ***b.*** 1855. Gwalior. ***Bks.*** 05. Ślokabaddhasiddhāntakaumudī, Pratibhā-ṣapratichaviḥ, Pañcapañcāśikā, Saṃskṛta-ślokaśatasaṅgraha. Svamitraślokasaṅgraha.

Bhatta, Prajapati ManilalIshvar. M.A., Ph.D. ***b.*** 18.03.1938, Mamunda, Mehsana, Gujarat. Director. ***Add.*** Shankaracharya A.S.T. Sanskrit Mahavidyalaya, Sanskrit Academy Hostel, Dwarka – 361335 (Gujarat). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhatta, Rajeshwari. HOD, L.B.S. P.G. College, Jaipur (Rj.) ***Spl.Ref.*** She has Writtan Skt. articals & Stories. Has Received many puraskar. Her story Paramadaivataḥ Patiḥ is published in Rājakathākuñjam, a collection of stories.

Bhatta, Subray V. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.06.1964. Siddapur, Karnataka. Asct. Prof., RSkS. R.G. Campus, Sringeri, Karnataka - 577139. ***Bks.*** 04. Jaiminī Nyāyamālā, Mīmāṃsā Śāstrārtha Vallarī, Āpastaṃbaparibhāṣāsūtram, Kūṣ-māṇḍamantrārthadīpikā. ***Ps.***05. ***Add.*** C/o Vidhatri. Mallappa Street, Sringeri Chikkamagalur, KT. ***Ph.*** 08265 – 250538.

Bhattacharjee, Amit M.A., Ph.D. ***b.*** 08.10.1956, Midnapur. Asso. Prof. N.D. College. ***Bks.*** 11. ***Add.*** 5, Deshpran Sasmal Avenue, Krishnakali, Ashokagar Bazar, Kolkata- 700108. Ph. 033-25782546, M. 09831240854

Bhattacharjee, Asima. M.A., B.Ed. ***b.*** 16.12.1962, Silchar. Slct. Gd. Lect., Cachar College, Silchar, Assam. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Deptt of Skt Cachar College, P.O. Silchar, Cachar 788001 W.B. Ph. 03842-262061, 03842-246953, M. 09435522484.

Bhattacharjee, Krishna. M.A., Ph.D. ***b.***. 06.05.1951, Kolkata. Asso. Prof. Govt. Skt College, Kolkata. ***Bks*** 01 ***Add.*** 17/1 Suren Togre Road, Gariahat, Kolkata-700019, Ph. 2440-5542, M. 09831792880.

Bhattacharjee, Tapamoy. Vyākaraṇaśāstrī, Dharmaśāstrī, M.A., B.Ed. ***b.*** 30.11.1972, Karimganj, Second Adhyapaka, Srihatta Bharat Smriti Vidyalaya. ***Bks.*** 02 Praśna Pradīpa,

Citravidhānam. *Ps.* 02. *Add.* P.O. Vill. Maizgram Distt. Karimganj, Assam 788712. M. 03843275404, 09435376205.

Bhattacharya, Abhedananda. Acharya in Vedānta, M.A. Darśana, Ph.D., D.Litt.. *b.* 10.04.1937. Kamakhya Nagar, Kamrup Dist. Assam, Principal. *GP.* Pt. Raghunatha Sastri. Pt. Kamala Kanta, Pt. Trilokadhara Dvivedi, Dr. Visvanatha Bhattacarya. *Bks.* Ṣāṅkara Vedānta Me Mithyātvanirūpaṇa, Nyāyapramāṇaparikramā, Vedāntasūtra, Pratipādyavimarśa. *Add.* Principal, Bhagwan Das Skt. Mahavidyalaya, Gurukul Kangri, Haridwar (U.P.) *Spl. Ref.* Vedānta, Darśana.

Bhattacharya, Adityanath. M.A., Ph.D. *b.* 01.08.1947, Nadia. Prof., Burdwan Univ. *Bks.* 14, An Analytical Exposition On Kenopaniṣad, Mūlamādhyamikamataprakāśaḥ, Brahmavicāryatvasamīkṣā. *Ps.* 55. *Add.* Univ. Teacher quarter, U5A/5 Tarabag,Rajbati, Burdwan-713104, W.B. Ph. 0342-2657962, M. 09434671863. *Spl. Ref.* Sāṅkhya, Mīmāṃsā, Bauddha & Vedānta System of Indian Philosophy, Upanisadik Literature & Grammer of Pāṇini. Man of the year 2004 (ABI,USA), Honorary Member of ABI's Research Board of Advisors 2004 USA, Life time Achievement Award Vidyalankar 2008, Involved as a member & Genl. Sect. Chairperson in various committees.

Bhattacharya, Ahibhushan. Skt & Eng. *Spl. Ref.* Translated in to English kūrma, Vāmana & Vārāha Purāṇa, Published by Kashirajanyas. Recipient of English Vidvān award.

Bhattacharya, Amaraprasada. Tirtha (Vedānta, Kāvya). Vedāntaśāstrī. M.A. Ph.D. *b.* 1925. Sr. Lecturer & Head, Deptt. of Skt., Dinabandhu Andrews College. Calcutta. *Bks.* Śrinimbārka-Dvaitā-dvaitadarśana (Bengali), Samīkṣāpañcaka (Bengali), Upaniṣatpradīpam, Stotrapuṣpāñjalih. *Add.* South Govindpur. Via Malancha Mahinagar, South 24Parganas (W.B.). *Spl. Ref.* Vedānta. Dvaitādvaita.

Bhattacharya, Bhawaniprasad. Kāvyatīrtha, Vedatīrtha. *b.* 31.12.1940, Krishnagarh. Nadia, W.B. Acharya (Prof.). Jadavpur Univ. *Gp.* Pattabhirama Shastri, Hemanta Kumar Ganguli, Asutosh Shastri. *Add.* 169, Santoshpur Avenue, Calcutta – 700075 (WB). *Spl. Ref.* Sāhitya. Veda. President Awardee – 2008.

Bhattacharya, Dakshinacharan. *b.* 01.01.1909. Kadipur. *Gp.* Dayalakrishna Tarkatirth, Nishikant Tarkatirtha. *Add.* Mukumamjawan, Dibrugarh (Assam). *Spl. Ref.* Tarka, Vyākaraṇa, Sāṅkya, Vedānta & Āyurveda.

Bhattacharya, Durganatha. Kāvyatīrtha, Purāṇatīrtha. *b.* 30.09.1913, Ikada Vill., Burdwan, W.B. *Gp.* M.M. Haranachandra Bhattacharya, Nyāyatirtha Taranatha, Dvarakanatha Nyāyashastri. *Add.* Vidya Ratna Mutt, 70 – B, Shobha Bazar Street, Calcutta–700004 (W. B.). *Spl. Ref.* Kāvya, Purāṇa & Nyāya.

Bhattacharya, Dwijendra Chandra. Kāvyatīrtha, Kāvyanidhi. *Age.* 79 yrs. Dirghaladi, Tripura. *Gp.* Chandra Mohana Kāvyavinoda, Suryakanta Shastri. *Add.* 7/3 A, Kalicharan Ghosh Road, Calcutta – 700050 (W.B.). *Spl. Ref.* Kāvyaśāstra.

Bhattacharya, Gaurichandra. Acharya in Kāvya & Purāṇa, Darśana Tīrtha. *b.* 16.07.1915, Derada, Bankura, W.B. *Gp.* Harihar Kripalu Vaidya, Samakantha Tarkatirtha. Acharya. *Add.* Shri Guru Chatuspathi, Gantala Road, Nabadwip – 741302 (W.B.). *Spl. Ref.* Sāhitya, Purāṇa & Vedānta.

Bhattacharya, Girijaprasad. *b.* 01.04.1918, Makuda, Birbhum, W.B. Teacher and Editor. *Gp.* Ramatarana KāvyaVyākaraṇa Smṛitītirtha. *Add.* Makuda Katyani Chatuspathi, Village Makuda, Bhalkuti, Birbhum (WB). *Spl. Ref.* Vedānta & Awarded by Bengal Skt. Seva Samiti.

Bhattacharya, Gyanendrakishor. *b.* 01.03.1931, Naihati. Teacher. *Gp.* Narendra Kishore Siddhartha. *Add.* Purnanand Palli, Naihati, 24, Pargana Dist. (WB). *Spl. Ref.* Kāvya, Vyākaraṇa, Purāṇa.

Bhattacharya, Haranchandra. Vyākaraṇa. *b.* 15.12.1889. Vill. Balubhara, Distt. Rajshahi

(W.B.). Lect. & HOD. Shekhawati Skt. College, Fatehpur (RJ.). *Gp.* Shivkumar Shastri. *Bks.* 02. Kālasiddhānta Darśinī. *Exp.* 27.06.1934. *Spl. Ref.* M.M. Awarded by Bharat Samrat in 1942.

Bhattacharya, Kali Shankar. *Bks.* 02. Krodapatra. *Spl. Ref.* He was wrote many Krodapatras and He was Famous to the Krodapatrakar.

Bhattacharya, Kalidasa. Tīrtha (Kāvya, Vyākaraṇa, Smṛti). *b.* 1935, Midnapur, W.B. Asst. Prof. Akna Tol, Akna, Via Pinla, Midnapur, (W.B.). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, Smṛti.

Bhattacharya, Kamakhya Charan. Acharya. *b.* 16 Magha, 1316 (Bengali Era), Assam. *Gp.* Kalikrishna Tarkatīrtha, Harendrachandra Smṛti - Vyākaraṇatīrtha. *Add.* P.O. Kaila Shahar, Baulapasa. North Tripura (Tripura). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhattacharya, Kesava H.S. Pañcarātrāgama (Traditional Degree). *b.* 10.12.1946, Honnawar, KT. *Add.* Archakar. Palayam, Coimbatore – 37 (T.N). *Spl. Ref.* Āgama.

Bhattacharya, Kishordachandra. Kāvyatīrtha, Smṛtitīrtha, Vyākaraṇa Tīrtha. *b.* 15.10.1915, Bhatpara, 24 Paraganas, W.B. *Gp.* Haripad Smrtitirth, Sashibhushan Smrtitirth. *Add.* 62/1, Kedar Marg, Belgharia, 24 Paraganas (W.B.).

Bhattacharya, Krishnakali. M.A., Ph.D. *b.*25.07.1959, Kolkata. Asct. Prof. Ravindra Bharti Univ. *Bks* 01. *Add.* Rabindra Bharti Univ. Kolkatta 700056 W.B. Ph. 2564-2484, M. 09681131029. *Spl. Ref.* French Language.

Bhattacharya, Manudev. Vyākaraṇa-Acharya. *b.*28.06.1946. Asst.Prof., Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. *Gp.* Gopitnath, Rajeshwar Shastri. *Bks.* 04. Viśuddha-Vaibhava Mahākāvyam, Rāmkṛṣṇa-Caritāmṛitam, Panḍhitrāja Vaibhavam. *Ps.* 25. *Add.*B-14/73 A-1, Mansarowar, Varanasi U.P. *Spl. Ref.* Vyākaraṇa Bhūṣana.

Bhattacharya, Mohan. Tīrtha in Tarka, Vedānta & Vyākaraṇa. *b.* 05.02.1912, W.B. Asst. Prof. *Gp.* M.M. Shrikrishna Vamacharan, M.M. Chandidas. *Bks.* Kāryakāraṇarahasyam, Advaitamatasamīkṣā. *Add.* Sanskrit College, Bankim Chatterji Street. Calcutta – 700073. *Spl.Ref.* Tarka, Vedānta, Vyākaraṇa.

Bhattacharya, Nalinikant. Tīrtha in Vyākaraṇa & Smṛti, Āyurvedaśāstrī, Ph.D.. *b.* 18.05.1923, Shibpur, (W.B.) Principal. *Gp.* L. Nagendranath Tarkatirtha, Satish Chandra Tarkatirtha. *Add.* Vishvanath Chatuspathi No. 2, Govt. Colony, Giribala Bhawan, Malda (WB). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa & Āyurveda.

Bhattacharya, Narayandash. Tīrtha in Vyākaraṇa & Purāṇa. *b.* 30.09.1908, Junaigacha, Patna, Bihar. Asst. Prof. *Gp.* Taranath Saptatirtha, Narendrakrishna Shastri. *Add.* 10, Karigate Road, Atpur, 24 Paragana (WB). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Purāṇa.

Bhattacharya, Narendrachandra. Vyākaraṇa Tīrtha. *b.* 04.03.1913, Amatola, WB. *Gp.* Narendra-kishore Siddhanant Mishra. *Add.* Vill. Purnanand Palli, Post. Naihati (W.B.). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa.

Bhattacharya, Navakumar. Vyākaraṇatīrtha, Acharya in Sāhitya. *b.* 21.10.1960. Principal. *Gp.* Santosh Kumar. *Add.* 90/2, Beniatola, Calcutta. (West Bengal). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Bhattacharya, Niranjana. Tīrtha in Vyākaraṇa & Āyurveda. *b.* 25.09.1925, Chakamurati, WB. Principal. *Gp.* Nilakanthapati, Sarojasena, Bhaskarachandra Dash. *Add.* Sitasundari Chatuspathi, Mohanpur, Midnapur (W.B). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa.

Bhattacharya, Nripendranatha. M.A.. *b.* 01.06.1927, Manukachi, Nalvani, Assam. *Gp.* Rajeswar Tarakavagisa. *Add.* Vill. Ratanpur, Post Tejpur, Dist. Sonitpur (Assam). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhattacharya, Padnanatha. Acharya. *b.* 01.04.1914, Agartalla, Tripura. *Gp.* Kisna De Vidyanidhi. *Add.* 23 Krishna Nagar, V. Rai Lane, Agartalla – 799001, (Tripura). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhattacharya, Pankaj Ranjan. Acharya, Kāvya

Vyākaraṇatīrtha, Smṛtiratna. *b.* 10.08.1948, Kantapukur, Midnapore, (W.B.). Teacher. *Gp.* Vibhutibhushan. *Add.* Ashutosh Chatuspathi, Midnapore (W.B.). *Spl. Ref.* Kāvya, Vyākaraṇa & Veda.

Bhattacharya, Phanindra Chandra. Vidyaratna, Smṛti - Vyākaraṇatīrtha. *b.* 1326 (B.E.), Yatingram Bangladesh. *Add.* Chitra Sundari Chatuspathi, Ichapur, 24 Paragana South (W.B.). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa & Smṛti.

Bhattacharya, Priyanath. Acharya. *b.* 1319 B.E., Badarigram. *Gp.* M.M. Chandidas Nyāyatarkatirth, Herambanath Sankhyavedānta Tirtha. *Add.* P.O. Navadvip Chatir Math, Goshwamipara, Nadia (W.B.). *Spl. Ref.* Sāhitya & Veda.

Bhattacharya, Probananda. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.06.1946, Hangsakhola, Srihatta, Bangala Desh. *GP.* Pratap Smrtiranjan. *Add.* Logoni Road, Settlement Road, P.O. Karimganj (Assam). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhattacharya, Pt. Vamacharan. Acharya (Nyāya, Vaiśeṣika). *b.* 1880, Kashi. Lect & HOD, Skt. College, Kashi. *Gp.* Pt. Gadadhar Shiromani, Pt. Surrendramohan, Tarkteertha, Kailash Chandra shiromani. *Sp.* Rajeshwar Shastri 'Dravid', Pt. Shivdutt Mishra, Pt. Vamacharan Tarkteerth, Pt. Suryanarayan Shukla, Khagendranath Pandey, M.M. Kunjvihari Tarkteerth, M.M. Dr. Satishchandra Vidyabhushan, M.M. Pt. Ramesh Chandra Tarkteerth. *Bks.* 01. Avacchedakatva Niruktiḥ, Jagdīśī Manoramā Ṭīkā. *Exp.* 21.03.1931. *Spe. Ref.* M.M. Awarded by British Govt. in 1925.

Bhattacharya, Rabindranath. Acharya (Kāvya, Vyākaraṇa, Veda) M.A., B.Ed., M.Phil. Ph.D. *b.* 21.12.1955, Hoogli. Asct. Prof., Bngabasi Evening College, Kolkata. *Bks.* 02. *Add.* A-47, Uttarayan Sarani, North Nandpara, Ariadaha, Kolkata- 700057, W.B. Ph. 033-25638825, 0332351-0304, M. 09231668828. *Spl. Ref.* Veda.

Bhattacharya, Ramshankar. Acharya in Vyakarna, M.A., Ph.D. WB. *Gp.* Pt. Pashupati Bhattacharya, Pt. Raghunath Sharma, Swami Hariharanand Aaranya. *Bks.* 19. Itihāsa purāṇa ka Anuśīlana. Nidrā yā Suṣupti, Pāṇini Vyākarana kā Anuśīlana, Viśva kā Manomaya Mūla, Pātañjalayoga-darśanam.

Bhattacharya, Ravindranath Shastri. M.A., Ph.D., *B.* 01.03.1964. Calcutta. Asst.Prof. Calcutta University. *Bks.* 19. Naimiṣāraṇya-Mahātīrtham, Life Sketch of Nirañjana-Svarūpa-Brahmacārījī, Śabda-Svarūp-Vimarśa. *Add.* 143 – A, Rahasbihari Avenue, Calcutta.– 700029. *Ph.* (033) 4632249.

Bhattacharya, Ravindranath. Acharya (Veda & Mīmāṃsā), M.A., Ph.D. *b.* 01.03.1964, Kolkata. Asct. Prof. *Bks.* 22. *Add.* 646 Rabindra Sarani, Kolkata 700003, M. 09339209553. *Spl. Ref.* Veda & Mimāṃsā.

Bhattacharya, Satya Pada. Acharya in Sāhitya, Nyāya, Advita Vedānta. Sāṅkhya Yoga. Tīrtha in Vyākaraṇa, Kāvya, Navya Nyāya, Vedānta. *b.* 04.07.1944, Vill. Analia, P.O. Nishanpur, Dist. Balasore (Orissa). Rtd. Asct. Prof. of Govt. Skt. College, Kolkata. *Gp.* M.M. Jogenra Nath Bagchi, M.M. Srimohan Tarka Vedarta Tirtha. *Sp.* Dr. Ayan Bhattacharya, Dr. Satyabrat Pahari, Dr. Debabrata Pahari, Dr. Ruma Banarji, Dr. Bhabani Ganguli. *Bks.* 04. Vedānta Paribhāṣā, Tarkasaṅgraha, Rādhā-Tantram. *Ps.* 02. *Add.* AF – 159, Rabindra Pally, Krishnapur, P.O. Prafulla Kanan, Kolkata– 700101, *Ph.* (033) 2571 – 0257. *Spl.Ref.* Ex. Adhyakar, Nada kumar Chatuspati, Orissa. Ex. Member Nikhilokai, Skt. Mahamandal. Ex. State Co. Orivator W.B. of R.Sk.S. New Delhi. Ex. Founder Secretary Purvanchal Samskrit Prachar Parishad, Kolkata. President Vangiya Skt. Snikhar Samitee. W.B.

Bhattacharya, Shriramranjan. Kāvya Vyākaraṇa Tīrthā. *b.* 11.04.1933, Bankura (W.B.). Sachiv Sri Sitaram Vedic Mahavidyalaya, Seh Sachiv Sri Sitaram Omkarnath Skt. Shiksha Sansad. *Bks.* 04. *Spl. Ref.* Sāhitya,Vyākaraṇa. Editor & Manager Pranava Parijat, Editor Sanatan Shastram, Editor & Publisher of Ārya Śāstra, Skt. Bangla Magazine,

Translater of Adhyatma Ramayan & Purāṇa, Founder of many of Skt. Tola & organizations in W.B., President Awardee.

Bhattacharya, Srijeev. M.A., Kāvyatīrtha, Vyākaraṇatīrtha, Nyāyatīrtha. *b.* 1883. Bhatpada, Distt. Choubees. (W.B.). Lect. Univ. of Jadhavpur. *Bks.* 14. Nigamānandcaritam, Sārasvataśatakam, Pāṇdavavikramam, Mahākavikālidāsam, *Spl. Ref.* He is expert writers of GītiKāvyas.

Bhattacharya, Sujata Purkayastha. M.A., Ph.D. *b.* 10.02.1957. Jorhat (Assam). Asct. Prof., Guwahati University, Guwahati, *Bks.* 01. Sarvajñātmamuni's Contribution to Advaita Vedānta. *Ps.* 15. *Add.* Dept. of Skt., Guwahati Univ. Guwahati, Assam. *Pin.* – 781014. *Ph.* – 571088.

Bhattacharya, Sukhamay. Tirth in 7 Shastras. *b.* 08.01.1909. Silhat. Now in Bangladesh. Sanskrit Adhyapak in Vishva Bharti. *Bks.* 11. *Ps.* 50. *Spl.Ref.* He worked on many rare manuscripts and awarded the highest honourary degree of Deshikottama (D.Litt.) & Ravindra Puraskar, Shishir Puraskar by Govt. of WB, President Awardee.

Bhattacharya, Tanmay Kumar. Kāvya-Vyākaraṇa-Tīrtha, Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 07.03.1971, Kolkata. Asst. Prof. R.Sk.S. Kolkata. *Gp.* Lt. Pt. Siddheswara Panchatirtha, Pt. Naranarayana Mishra, Pt. Padmanava Panigrahi Padmashree, Acharya Ramaranjan Mukherjee. *Bks.* 06. Devabhāṣā Praveśaḥ (Vol.-I,II), Arcanā (Stotra Saṅgrahaḥ), Kavīndrakathākallolinī, Viśva Sabhyatāyāṃ Vivekānandasya Avadānam, Vyāvahārika-Saṃskṛita Darpaṇaḥ (Vol. I-III). *Ps.* 10. *Add.* "Samskrita Sadanam" AF-177, Rabindra Pally, Krishnapur P.O. – Prafulla Kanan. Kolkata – 700101. *Ph.* (033) 2571 – 0257, *Mob.* 09433351582. *email* tanmaybhattacharya@ gmail.com. *Spl.Ref.* Samskrita Sam-bhasanaandolana Karyakarta. From – 1995. W. Bengal State Coordinator (N.F.S.E.). Rashtriya Samskrita Samsthanam, New Delhi. From – 2005.

Bhattacharya, Tarani Kumar. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.10.1915, Dharmada, Bangladesh. *Gp.* Sachi-ndranath Ghosh, Pt. Mahendrachandra. *Add.* Vill. Vaikunthpur, P.O. Kalami, Kachar (Assam). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhattacharya, Tripti. Acharya, M.A., B.Ed.. *b.* 10.02.1936. *Add.* Principal, Bhartiya Vidya Bhawan, New Delhi – 110001.

Bhattacharya, Virendra Kumar. *b.* 1917. Lect. Calcutta. *Bks.* 11. Kālidāsacaritam. Gītagaurāṅgam, Śūrpaṇakhābhisāraḥ. Śārdūlaśakatm, Veṣā-anavyāyogaḥ. *Exp.* 1982. *Spl.Ref.* Well knowledge of English. Bangla & Skt.

Bhattacharya, Yadupati. Panchatīrtha, Smṛtitīrtha. *Age.* 75 yrs. Payer, Birbhum, W.B. Teacher. *Gp.* Ram Maya Panchatirtha, Smrititirtha. *Add.* Payer, Birbhum (W.B.). *Spl. Ref.* Veda.

Bhattacharyya, Amiya Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 28.05.1952, Burdwan, Asct. Prof. *Bks.* 01. *Ps.* 12. *Add.* 29, Rabindra Sarani, Srinagar Pally, Durgapur, Burdwan-713213,W.B. M. 09332809442.

Bhattacharyya, Bhaskar Nath. Veda-Vyākaraṇa, M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 16.12.1965, Hawada, Asct. Prof., School of Vedic Studies. Rabindra Bharti Univ. *Gp.* M.M. Pt. P.N. Pattabhiram Shastr, Prof. Gopalnath Bhattacharya, M.M. Pt. Anantalal Thakur. *Bks.* 01 In Quest of Ambrosia. *Ps.* 30. *Add.* 93, National Place, P.O. Baksara Dt. Howrah 711110. W.B. Ph. 033-26582227, 0122-25571028, M. 09433860282, 09051776617, jaymabnb@ rediffmail.com. *Spl. Ref.* Young Vedic Scholar Award, Arsha Vidyabharati Puraskar.

Bhattacharyya, Chandan. Shastri Vyākaraṇa, Acharya in Nyāya, M.A., Ph.D. *b.* 28.12.1979, Midnapur(W.B.). Sr. Lect., Deptt of Skt., Univ. of Gourbanga, Malda. *Ps.* 09. *Add.* Deptt. of Skt. Univ. of Gourbanga Malda, W.B. 732101. Ph. 03512-223664, M. 09433474480. chandan_snsk@yahoo.co.in. *Spl. Ref.* Medalist in B.A. (Hons. Vyākraṇa)

Bhattacharyya, Jagat Ram M.A., M.Phil., Ph.D.

b. 16.01.1960. Prof. Jain Vishwa Bharti Univ. Ladnu. *Bks.* 04. *Ps.* 35. *Add.* A-1 Profs. Quarters, Jain Vishwa Bharti Univ., Ladnu - 341306. Rajasthan. Ph. 01581-222594, M. 09460124537 jagatrb@gmail.com

Bhattacharyya, Tapan Sankar. Kāvya-Vyākaraṇa - Tarka Tīrtha, Acharya in Navya-Vyākaraṇa M.A., Ph.D. *b.* 17.01.1959, Midnapur. Asso. Prof. Deptt. of Skt., Jadavpur Univ. *Gp.* Pt. Avadh Bihari Tripathi, Pt. Ashutosha Nyāyacharya, Pt. Mirnal Kanti Bandyopadhyay, *Sp.* Dr. Chandan Bhattacharya, Sh. Vishwaranjan Panda. *Bks.* 07 Vaidika Vyākaraṇa, Laghu Siddhānta Kaumaudī, Lakārārthaviṣaye Śābdika Naiyāyikamatasamīkṣā, Siddhānta Kaumudī: Strīpratyaya Prakaraṇa *Ps.* 05. *Add.* P-27A PM Sarani Calcutta - 700078, Ph. 033-24162274, 24146115, M. 09432113352. tapansankarbhattacharyya@yahoo.co.in *Spl. Ref.* Vyākaraṇa. Guest Lect. in Deptt. of Skt. Univ. of Burdwan & Visiting fellow Deptt. of Philosophy Univ. of Burdwan

Bhattarai, Dilliraj. Acharya in Sāhitya Vedānta. *b.* 10.04.1940, Dharapani, Chishanku, Nepal. Asst. Prof. *Gp.* Pt. Keshavaprasad Vastola, Pt. Shesharaj Sharma. *Add.* Nepali Skt. Mahavidyalaya, Mangala Gauri, Varanasi (U.P). *Spl. Ref.* Sāhitya.

Bhattarai, Giridhari. Acharya in Nyāya, Ph.D.. *b.* 15.04.1928, Tanahu, Badhipur, Nepal. Asst. Prof.. *Gp.* Ramaprasada Tripathi, Partha-Prasada Bhattarai, Badarinath Shukla. *Add.* K-18/72, Brahmghat, Varanasi (U.P). *Spl. Ref.* Nyāya.

Bhattarai, Narayan Prasad. Shikshashastri, Vidyavaridhi. *b.* 25.09.1976. Asstt. Prof., Veda Deptt., PSKSD College, Rishikesh. *Bks.* 01 Śuklayajuḥ-Prātiśākhyavṛtttiḥ. *Ps.* 09. *Add.* Punjab Sind Kshetra Sadumaha Vidyalaya, P.O. Rishikesh 249201. Ph. 0135-2432766 M. 9720153344, narayanrksh@gmil.com , np_shastri@yahoo.co.in

Bhattarai, Padma Prasad. Vedānta, Dharm-Śāstra, Nyāya-Śāstra. *b.* 1896. Vill. Shalusamali, Dist. Ramechhap (Nepal). Principal. Sanyasi Pathashala, Kashi. *Gp.* Pt. Deenanath Bhattarai, M.M. Laxman Shastri Dravid. Pt. Nityanand Parvteeya, M.M. Vriddh Vamacharan. *Sp.* Shankaranand, Sarasvati (Kashi Sumeru-peethadheshwar), Chetanand Swami, Shivchaitnya Bharti, Yogindranand Swami, Kedarnath Ojha, *Bks.* 04. Vātsyāyanabhāṣyaṃ, Vīramitrodaya, Nyāyakusumāñajalīḥ. *Exp.* 1973. *Spl. Ref.* 'Nyāyaratna' upadhi awarded by pandit mandali of Kashi. "Padma Smriti Grantha" Published (1984) from Varanasi.

Bhattaraj, Periyatiruvadi A. V. Āgama-pañcarātra. *b.* September, 1926. Alavarti-runagari, Tirunelveli, T.N. Principal. *Gp.* Tiruvenkata-bhattara. *Add.* Agam-pathashala, 65-A, Sannadhi Street, Kanchipuram (T.N.). *Spl. Ref.* Āgama.

Bhatti, Dev Datt. Shastri, Hons. in Skt. M.A., *b.* 03.06.1939, Patiala, Director Vedic Research House, Agarnagar Maler Kotla. *Bks.* 16 Vaidika Bhaiṣajya, Cikitsā ke Ādi Srota : Veda, Śampā (Navavidhā me Skt. Kavitā) *Ps.* 300 *Add.* Vedic Research House, Agarnagar Maler Kotla 148023, Punjab. Ph. 01675-252701, M. 09592215222. *Spl. Ref.* Cert. of Presidential Honour 2003, ABI USA, IBC Cambridge UK, Foreign Visit- Hooland, USA, UK, Nepal, Pioneer of experimentalist Style in Skt. Poetry in 1969.

Bhattpad, Mangalattu Parameshvaran. Katannirikal. *b.* 03.07.1922, Guruvayur, Brahmakulam, Kerala. *Gp.* P.C. Vasudevan, Erkat Brahmadattan Namputiripad. *Add.* Mangalattumana, Brahmakulam, Trissur (Kerala). *Spl. Ref.* Ṛgvedasaṃhitā (Sapa-dakram). Veda Teacher.

Bhavadeva, Bhagawati. Purāṇa, Tīrtha (Vyākaraṇa, Vedānta), Vedāntavāgīśa. *b.* 27.01.1902, Kaithalkuchi, Nalbari, Assam. *Bks.* 04. Satī Jayamatī, Ślokamālā, Nūtanāṅga-nā-akam, Līlā (Assamese). *Add.* Kaithalkuchi, Nalbari (Assam). *Spl. Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa, Vedānta.

Bhavana, Mrityunjaya Acharya. M.A. *b.* 08.01.1934, Cholanayakapalli, Magadi, KT. Asct. Prof., Kalpataru College, Tirupati. ***Gp.*** Chandra-shekhara Bhatta Pathanakara, S. Ramachandra Rava. ***Add.*** 49, 4 Main Road, Tiptur (KT). ***Spl. Ref.*** Alaṅkāra, Vedānta.

Bhawalkar, Vanamala. M.A. (History & Skt.), Ph.D. Prof. Deptt. of Skt. Sagar Univ. ***Spl. Ref.*** He pennd Opera. Rāmavanagamanam and Pārvatī Parmeśvarīyam. His one – Act play Papdanda written in the background of Chinese aggression which depicts the emotional struggle related to love and marriage, is worth mentioning from the point of view of modern prose-style.

Bhimacharya, Vaidik. Vedaparangata (Sammanitopadhi). *b.* 13.04.1920. ***Add.*** State Bank Colony, Barakoti Road, Dharwar – 7 (Karnataka). ***Spl. Ref.*** Veda.

Bhimsenacharya. Vidvān. *b.* 24.06.1922. ***Add.*** L.N. Temple, Goldsmith Street, Bellari – 583101 (KT). ***Spl. Ref.*** Nyāya, Vedānta.

Bhinda, Triyuginarayana. Acharya in Sāhitya, M.A.. *b.* 15.01.1940, Jayantipur, Allahabad, (U.P.). Asst. Prof. ***Add.*** Shri Dharma-gyanopadesh Skt. Mahavidyalaya, Mahamana Malaviya Nagar, Allahabad (U.P.). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhoi, Shukadev. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 08.09.1967. Orissa. Asct. Prof. BHU, Varanasi. ***Bks.*** 03. ***Ps.*** 40. ***Spl.Ref.*** Veda, Sāhitya, Linguistics, Member AIOC, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Bhojaraja. Acharya in Sāhitya. *b.* 16.12.1946, Setigram, Doti. Nepal. Teacher. ***Gp.*** Padmanarayana Tripathi. ***Add.*** Baijanatha Skt. Mahavidyalaya, Moradabad (U.P.). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhuramal, Mahakavi. Shastri. *b.* Sikar, Raj. ***Bks.*** 07. Jayodyamahākāvyam, Vīrodaya-mahākāvyam, Muniśatakam, Sudarśanodaya-mahākāvyam. ***Expired*** in 1973. ***Spl.Ref.*** He is a famous Jain Acharya named Muni Gyan Sagar, Kavi Pungava. Darśana and Sāhitya.

Bhushan, B. J. A. Ayyangar. Sāhitya, Vedānta Vidvān. *b.* Mailkot, KT. Prof. Deptt of Viśiṣ-ādvaita Vedānta, Maharaj Skt. Mahavidyalaya, Mysore. ***Bks.*** 01. Adbhudd-ūtam. ***Expired Spl.Ref.*** Viśiṣ-ādvaitavedānta, He penned several Natak, Campū, Gadya-Kāvya, MahaKāvya, Stotra in Skt. Honour from Sahitya Academy.

Bhutani, Prabha. Acharya, Ph.D.. *b.* 12.12.1941, Gorakhpur, (U.P.). Principal. ***Add.*** S.D. College, Sultanpur, Lodhi (HR). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bhuvarahan, Krishnamurthi Acharya. Sāhitya. *b.* 23.04.1939, Madras, T.N. Teacher. ***Gp.*** Tulasi Narasimhacharya, R. Ramamurti Sharma. ***Add.*** 18-2-127, Ashok Nagar, Near Ashoka Mill, Tirupati (A.P.). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bidaliya, Brahmanand. Acharya. *b.* 01.02.1954, Pauri Garhwal, U.P. Sāhitya Teacher. ***Gp.*** Dinanatha Shastri, Vishvanatha Mishra, ***Add.*** Rishi Skt. Mahavidyalaya, Khadkhadi, Haridwar (U.P). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Bidirepalli, Govindacharya Jayaramacharya. Śrautasmārta Vidvān, Ghanapathi. *b.* 14.10.1933, Bidirepalli, Bangalore, KT. Junior Professor in Śuklayajurveda. ***Gp.*** G. Narayana Bhatta, G. Rangacharya. ***Bks.*** 02. Tri-kālasandhyā devatārcanam. ***Add.*** Maharaj Rajakiya Mahavidyalaya, Mysore (KT). ***Spl. Ref.*** Śuklayajurveda, Smṛti.

Bijju, Aruna Kumara. M.A., Siksasastri. *b.* 14.06.1948. Teacher, Modern School, Barakhamba Marg, New Delhi. ***Add.*** 09/74, Shyam Block, Back of Punjab National Bank, Kailash Nagar, New Delhi – 110031.

Bindra, Jogendra. M.A. (Skt.). *b.* 17.06.1939. Teacher (Skt.). Govt. Girls Senior Secondary School No. 1, B-Block, Janakpuri, New Delhi. ***Add.*** B-1, 1/335, Janakpuri, New Delhi – 110058.

Bindra, Trilochansinha. B.A., M.A. in Skt. & Hindi. Ph.D.. *b.* 31.10.1942, Hoshiarpur, Punjab. Asct. Prof.. ***Gp.*** Dr. Vishavabandhu, Prof. Jagannatha Agravala. ***Bks.*** 01. Vaidika sāhitya Me Yuddhavijñāna. ***Add.*** V.V.B.

Sansthan, Sadhu Asharam, Hoshiarpur (Punjab). *Spl. Ref.* Veda.

Birajdar, G.D. Abbas Ali. M.A., B.Ed. *b.* 24.08.1935. Sholapur, Maharashtra. Joint Convener, Somaiya Skt. Kendra, Mumbai. Chief Editor and Publisher, Vishva Bhasha, General Secretary of Vishva Skt. Pratishthanam, Varanasi. ***Bks.*** 05. Muslimānām Saṃskṛtābhyāsaḥ, Prācīnabhāratīya-bhautikavijñānam. ***Ps.*** 70. ***Spl.Ref.*** He was awarded various titles such as Mahapandit, Panditendra, Sanskrita Ratnam, Parashurama Shreeh, Vidya parangatah by different Scholarly bodies. He edited and published a trimonthly Sanskrit Magazine, President Awardee.

Bista, Devaraj. Acharya in Āyurveda, Vedānta. ***b.*** 01.11.1952, Khoplong, Nepal. H.O.D. of Vedānta. ***Gp.*** Parankushacharya, Ramayasha Pandeya. ***Add.*** Shri Ramanuja Darshan Mahavidyalaya, D-5/37 Tripura Bhairavi, Varanasi (U.P.). ***Spl. Ref.*** Vedānta.

Biswal, Banamali. Acharya, M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 04.05.1961. Telia, Yajpur, Orissa. Asct. Prof. R.Sk.S, G.N. Jha Campus, Allahabad. ***Gp.*** Prof. K. D. Joshi, Prof. Soraja Bhate. ***Bks.*** 40. The Samāsaśaktinirṇayaḥ, The Concept of Upadeśa in Skt. Grammar, Saṅgamenābhirāmā, Vyathā, Nīravasvanaḥ. ***Ps.*** 100. ***Add.*** R.Sk.S, G.N. Jha Campus, Azad Park. Allahabad – 211002. (U.P.). ***Ph.*** (0532) (R) 641713. (O) 460957. email : padmaja@ nde. vsnl.net.in ***Spl.Ref.*** An Eminent Scholar poet & writer. 20 Prizes Awarded by U.P. Skt. Sansthan, Delhi Skt. Academy, Hindi Sāhitya Sammelan, Uttrakhand Skt. Academy etc.

Biswas, Bhagirathi. Kāvyatīrth, M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 01.02.1958, Nadia. Asct Prof., Deptt. of Skt., Assam Univ. ***Gp.*** MM Prof. Ramaranjan Mukherjee. ***Sp.*** Kamal Lochan Atraya. ***Bks.*** 02 Sāhityadarpaṇa, Sociology of Skt. Drama. ***Ps.*** 08. ***Add.*** B-1/46, Kalyani Nadia, W.B. 741235. Ph. 03842240576, M. 09435373664, biswasnb2001@yahoo.co.in , biswasmb1952@ gmail.com . ***Spl. Ref.*** Kāvya sastra.Life Member AIOC.

Biswas, Dihiti (Chakrabarti). M.A. Ph.D. ***b.*** 29.09.1955. Kolkata. Asct. Prof. Calcutta Univ. ***Bks.*** 01. Nārdīyaśikṣā. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 23, Ibrahimpur Road. Kolkata – 700032. ***Ph.*** (033) 4124418.

Biswas, Mukta. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.***01.02.1956, Digboi, Santipara. Prof., Guwahati Univ. ***Gp.*** Prof. R.N. Sharma, Dr. Jagdish Sharma. ***Bks.*** 01. Śāṅkhya Yoga Epistemology A Study. ***Add.*** Deptt. of Skt., Guwauhati Univ. Guwahati.

Biswas, Souvick. M.A.. Asstt. Teacher of Higher Sec. School, Howrah. ***Add.*** 4/A Shiv Talab Ji Lane, P.O. Uttarpara Distt. Hoogly-712258, W.B. M. 09433842959.

Bittharia, Hemlata. M.A., Ph.D. ***b.*** 16.08.1947. Retd. Asst. Prof. ***Ps.*** 19. ***Add.*** 73, Halipad Colony, Near Jivaji Club, Lashkar, Gwalior. Ph. 0751-2435700, M. 09407244440, nodatagwalior@indiatimes.com

Bodala, Kantaprasad. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 01.06.1955, Durg, Garhwal, (UK). Teacher. ***Gp.*** Buddhi Vallabhaji. ***Add.*** C/o Shri Jaga Dev Singh Sanskrit Mahavidyalaya, Saptarishi, Haridwar (Uttarakhand). ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa.

Bohara, Pushplata. M.A. (Sanskrit), B.Ed.. ***b.*** 03.09.197. Teacher, Govt. Senior Secondary School No. 1, Shakti Nagar, New Delhi. ***Add.*** B4/22A, Ashok Vihar, Phase – VI, New Delhi–110052.

Boliya, Hemlata. M.A., Ph.D. ***b.*** 22.04.1952, Udaipur, Asct. Prof., Skt. Vibhag, Samajik evam Manviki Mahavidyalaya, Udaipur. ***Gp.*** Prof. Ramchandra Dwivedi, Prof. Vishnu Ram Nagar, Prof. Mool Chandra Pathak, Prof. Radhavallabh Tripathi, Prof. Prem Suman Jain, Pt. Gridhar Lal Shastri. ***Sp.*** Dr. Shayamanand Mishra, Dr. Hemant Dugarwal, Dr. Dheeraj Prakash Joshi, Dr. Deepak Mandel, Darśana Jain. ***Bks.*** 04 Mahārtha Mañjarī eka adhyayana, Kārakaprabodha, Pañcaliṅgīprakaraṇa. Bhaktāmarastotra ***Ps.*** 10. ***Add.*** Balshri Jain Mandir Marg, Madhav Colony Pahara, Udaipur. Ph. 0294-2470511. ***Spl. Ref.*** Saraswat Samman, Skt. Vidwat Samman (Raj. Govt.), Aakashwani Varta 25, Direction of Skt. Dramas.

Bora, Maitreyee. M.A., Ph.D. *b.*20.06.1948, Dibrugarh, Assam. Prof. Guwahati Univ. ***Bks.*** 03. Facets of Vedic Religion and Culture, Athar vavedīya Upniṣadḥ. ***Add.*** Near Assam Forest School, P.O. Guwahati Univ. Guwahati. 781014.

Bora, Saikla, Indira. M.A., B.T., Ph.D. *b.*19.09.1957, Nawa Gaon, Assam, Asct. Prof., Guwahati Pragjyotish College. ***Bks.*** 05. Rāmāyaṇa, Bhāgavata Purāṇa, Bṛhat Saṃhitā, Abhijñāna Śākuntalam, Kāraka Saṃhitā. ***Add.*** Prag jyotish College Skt. Deptt. Guwahaty.

Bose, Sonali. M.A. M.Phil. *b.* 14.01.1971. Calcutta. Asst. Prof. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 29 – A. Mahim Halder Street. Kolkata – 26. ***Pin.*** 700026. (W.B.). ***Ph.*** (033) 4550825.

Brahamchari, Kapildev. Acharya, Vidyavaridhi. *b.* 13.08.1943, Sitamadhi. Rtd. Upacharya, Shastra Chudamani, Dharmagam Deptt., Kashi Hindu V.V., Varanasi. ***Gp.*** Swami Ramlakhan Dev Brahamchari. ***Bks.*** 01 Bhaktirasavimarśa. ***Add.*** Sri Kabir Bhagwadashram, C-35/59 Chandua chitupur, Varanasi- 221002. Ph. 0542-2225820. ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Honoured from U.P. Govt.

Brahma, Gouri Kumar. M.A., D.Ed. *b.* 05.09.1919. Tourist Director, Orissa Govt. ***Bks.*** 03. Bhāratasaṃhatiḥ, Āndhrapradeśa Parya-anam, Bhañjapañcāśikā. ***Spl.Ref.*** Scholar &Writer in Skt., Eng., Odisi Lit. Title of Utkalvachaspati, Purusasarasvati, Vagmi-pravar, Bharatapradeep etc.

Brahmachari, Jayatsyama. Achrya in Vyākaraṇa, Sāhitya. *b.* 02.01.1940, Puri. Orissa. Principal. ***Gp.*** Dr. Adyaprasada Mishra, Sheshamani Mishra, Ramabadana Shukla. ***Add.*** Shri Shiva Sharma Skt. Mahavidyalaya. 937 Daraganj. Allahabad (U.P). ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa. Sāhitya.

Brahmachari, Markandey. Acharya. *b.* 13.12.1917, Lilkar, Dist. Balia, (U.P.). ***Gp.*** Sabhapati Samopadhyay, Swami Hariharanand Saraswati (Karapatriji). ***Add.*** Dharmasangh, Durgakund, Varanasi (U.P.). ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa, Sāhitya. ***Award.*** Title of Panditaprakash by Kanchishankaracharya.

Brahmachari, Om Prakash. Acharya, M.A. Ph.D.. *b.* 20.07.1950, Baldeva, Mathura, U.P. ***Gp.*** Dr. Parasanath Dwivedi. ***Add.*** A 11/51 A, Swami Anandashram, Naya Mahadev, Raj Ghat, Varanasi (U.P). ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Brahmachari, Ramanand. Acharya, Ph.D. *b.* 1947, Devalpur, Dharing, Nepal. H.O.D. of Vedānta. ***Gp.*** Gopalanidhi Tripathi. ***Add.*** Sri Vishvanath Skt. Mahavidyalaya, Bela Road, Delhi. ***Spl. Ref.*** Vedānta.

Brahmachari, Surendra Kumar. Acharya in Sāhitya. M.A. Ph.D. *b.* 20.12.1933. Chapra. (Bihar). Prof. & Ex. V.C. KSD Skt. University. ***Bks.*** 02. Skt. Syntax and the grammer of case, Co-ordinization in Skt. ***Add.*** I. 85 – B. Pataliputra Colony. Patna – 13. Bihar. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Brahmadattavagmi. Acharya in Jyotiṣa, Sāhitya, Vyākaraṇa. *b.* 19.03.1925, Gurgaon, HR. ***Gp.*** Haradatta, Visudhananda. ***Bks.*** Adbhuta-pañcatākāvyam (Skt.), Kāvyāvataraṇa (Hindi), Meḍtā Mīrā (Hindi). ***Add.*** Vill. Dhamdouj, Gurgaon (HR). ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa, Sāhitya, Vyākaraṇa.

Brahmanand, Gupta. M.A., Ph.D. (Bonn). *b.* 01.04.1930, Calcutta, W.B. Asct. Prof., Deptt. of Skt., Rabindra Bharati Univ., Calcutta. ***Add.*** 4-B, Nandalalji Road, Calcutta –700026 (WB). ***Spl. Ref.*** Darśana.

Brihaspati, N. Shathakopacharya. *b.* 1923. Kumbakonam, T.N. Rtd. Teacher. ***Gp.*** Agnihotri Tatacharya. ***Add.*** 92, Ayyangar Street, Kumbakonam (T.N). ***Spl. Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Budihal, Ramchandra. M.Sc., Ph.D. *b.* 13.12.1971. Bangalore, KT. Solution Architect at Aerospace, Defence and Satellite System, Wipro Technologies, Banglore. ***Spl.Ref.*** With a view to rediscover the great Indian Cultural heritage; especially the epic Mahabharat, he has registered a research organization 'Mahabharata Samshodhana Pratisthanam' with some of his associates. He has developed

a special tool called 'Vyasa' to digitize the ancient heritage Sanskrit manuscripts, Two important projects conceptualized by the organization namely the first ever Digital Mobile Lab for Sanskrit manuscripts located across India and secondly, pioneering effort of bringing out Encyclopaedia for the Mahabharata encompassing all Indian texts. Maharshi Badrayan Samman by President of India.

C

Chabbra, Bahadur Chand. Ex-Joint Secretary Bharatiya Puratattva Vibhag. ***Bks.*** 01. Puṣpahāsaḥ.

Chakraborty, Anant Kumar. Shastri. ***b.*** 24.03.1910, Ratiyar Para. Assam. ***Add.*** Vill. & P.O. Sal Ganga. Tehsil Kachar (Assam). ***Spl.Ref.*** Āyurveda.

Chakraborty, Anantacharya. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 02.07.1916, Bangalore, KT. Rtd. Lecturer. ***Add.*** 110, 8-B. Main, 4th Block, West Jayanagar, Bangalore, KT. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Chakraborty, Chandan Kumar. B.A. (Hons.), M.A., LLB, Ph.D. ***b.*** 12.02.1953, Reader, Deptt of Skt. Tripura Univ. ***Bks.*** 1 ***Ps.*** 10. ***Add.*** Suryamaninagar, Agartala West Tripura 799130. ***Spl.Ref.*** Member AIFUCTO Sect. Tripura Rajye Ved Vidya Prasar Samiti.

Chakraborty, Dhyanesh Narayan. Shastri, M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 18.10.1930, Khitapachar, Rishidham, Chittagong, Bangladesh. Asst. Prof. & Head, Deptt. Skt., Rabindra Bharati. ***Gp.*** Shri Satakadi Mukhopadhyay, Dr. Gaurinath Shastri, M.M. Yogendranath Tarkatirth, Dr. JivaNyāyatirth, M.M. Chintamani Acharya, Pattabhirama Shastri. ***Bks.*** 40. Vārtāgṛham (Rabīndrakṛta Ḷākagharasyānuvādaḥ) etc. ***Add.*** Rishidham, Dattapukur, 24 Parganas, W.B. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. President Awardee.

Chakraborty, Didhiti Biswas. M.A., Ph.D. ***b.*** 29.09.1955. Kolkata. ***Bks.*** 01. ***Add.*** 23, Ibrahimpur Road, Kolkata – 700032. ***Ph.*** (033) 4124418. ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Chakraborty, Durga Sankar. B.A. (Hons.) M.A. ***b.*** 17.04.1963. Kolkata. Asct. Prof., R.K. Mission Vidyamandir, Hawrah. ***Bks.*** 02 Mañju Bhāṣiṇī (for Class 7th), Mañju Bhāṣiṇī (for Class 8th). ***Add.*** Bireshpally, P.O. Madhyamgram, Kolkatta 700129, W.B. Ph. 033-25625787, M. 09830492815. durga.chakraborty22@ gmail.com

Chakraborty, Dwijendra. Acharya. ***b.*** 25.03.1908, Hatawara, Assam. ***Gp.*** Atulkumar Panchatirtha. ***Add.*** Vill. Ruyat. Dhanawari, Assam – 783337. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chakraborty, Haranchandra. ***Gp.*** Kaviraj Gangadhar. ***Bks.*** 01. Suśrutārtha Saṃdīpanam (Comm. on Suśrutasaṃhitā). ***Expired in*** 1935. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chakraborty, Hari Prasad. Kāvya Ratna, Vidya Vinod. ***b.*** 1916, Golpasha, Chandagram, W.B. ***Add.*** Barapatari, Balonia, Via-South Tripura. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Chakraborty, Haripad. Tirtha (Kāvya, Vyākaraṇa, Smṛti, Purāṇa). ***b.*** 12.02.1948, Midnapur, W.B. Prof. ***Gp.*** Yogindranath TarkAlaṅkāra. ***Add.*** Padhna Bazar, Midnapur, W.B. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra, Vyākaraṇa Śāstra, Dharma Śāstra, Purāṇa Śāstra.

Chakraborty, Himanshu. M.A., Ph.D. Asct. Prof. & Head. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, jadavpur Univ. Calcutta, W.B. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra, Veda.

Chakraborty, Hirak Kanti. M.Sc., M.Lib., NET, Ph.D. ***b.*** 20.09.1964, Varanasi, Reader Deptt. of Lib. & Information Science, Sampooranand Skt. V.V. Varanasi. ***Ps.*** 22. ***Add.*** 15, New Teachers Colony, Sampooranand Skt. V.V., Varanasi - 221002. Ph. 05422208588, M. 09450871391. hirakchakro@rediffmail.com

Chakraborty, Kali Shankar. Vyākaraṇa Tīrtha. ***b.*** 20.12.1936, Midnapur, W.B. Principal. ***Add.*** Vill. Tabutatapur, Midnapore (W.B.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Chakraborty, Kalipada. Acharya. *b.* 08.11.1936, Calcutta. *Gp.* Pitambr Jha, Harinarayan Bhattacharya. *Add.* Rashtriya Sanskrit Mahavidyalaya-1, Bankim Chandra Chatterji Road, Calcutta–73., W.B. *Spl.Ref.* Veda, Tarka.

Chakraborty, Kanayi Lal. Acharya in Nyāya & Darśana. *b.* 27.03.1934, Varshahara, Midnapur, W.B. Teacher (Nyāya). *Gp.* Rameshvar Smrtitirth, Prabodha-chandra Kavyatirtha. *Add.* Subarna Devi Darshan Tola. Vill. & P.O. Hore, Midnapur, W.B. – 721131. *Spl.Ref.* Nyāya Śāstra.

Chakraborty, Kumud Ranjan. Sāhitya-Shastri. *b.* 21.01.1917, Karim Ganj, Maisgram, Assam. Rtd. Teacher. *Gp.* Vinoda Bihari. *Add.* Longhayi Ghat, Karim Ganj, Assam. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chakraborty, Loknath. NavyaNyāya-Shastri, Vyākaraṇa tīrtha, Vedānta-Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 17.09.1963, Burdwan. Asct. Prof. in Vedāntaa WBES. *Bks.* 05. *Add.* Saptarshi Aptt., Block Pulaha, Flat 3A 22/C, AC Sarkar Road, Kolkata 76. Ph. 033-25442418. E-mail: chakraborty.loknath@gmail.com *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Vedānta.

Chakraborty, Madhu Sudan. Kāvyatīrtha, Vedāntashastri. *b.* 22.02.1919, Kotalipara, Faridpur, Bangla Desh. Librarian. *Ps.*02. *Add.* Skt. Sāhitya Parishad, Calcutta – 700004. *Spl.Ref.* Kāvya, Vedānta.

Chakraborty, Madhu Sudan. Sāhitya-Shastri, Vyākaraṇa, kāvya, Purāṇa &Sāṅkhya Tīrtha. *b.* 01.01.1919, Varanasi, (U.P.). Rtd. Teacher. *Ps.*02. *Add.* 20, Hiranchandra Mukherji Road, Goswamipura, 24 Parganas – 743155 (W.B.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, Kāvya, Purāṇa and Sāṅkya.

Chakraborty, Nanigopal. Tīrtha in Kāvya & Vyākaraṇa. *b.* 1914. Comilla, Bangladesh. Teacher. *Add.* 5/120, Yatin Das Nagar, Calcutta, W.B. – 700056. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Veda.

Chakraborty, P. M.A., B.Ed., Ph.D.. *b.* 16.02.1940. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* K-2123, Chittaranjan Park, New Delhi – 110019.

Chakraborty, Parboty. Vyākaraṇa Tīrtha, M.A., Ph.D. *b.* 08.08.1962, Hoogly. Reader, Ravindra Bharti Univ. *Bks.* 05. *Add.* Deptt. of Skt. Ravindra Bharti Univ. Kolkata – 700050. Ph. 03325322679, M. 09433435629.

Chakraborty, Samiran Chandra. M.A., Ph.D., Dipl. in German. *b.* 02.12.1940. Rangpur. Rtd. Prof.& Emeritus Fellow Ravindra Bharti Univ. Kolkatta *Bks.* 10. *Ps.* 70. *Add.* 135, Indra Biswas Road, Kolkata – 37. WB. *Spl.Ref.* Prof. & Director in Ravindra Bharati Univ and Kolkatta Univ. RK Mission Institute. Visited in Germany, France, USA, Japan. President Awardee.

Chakraborty, Satya Narayan. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 01.02.1950. Batanagar, W.B.. Prof. & Head. *Bks.* 14. A study of the Caitramīmāṃsā of Appya dīkṣita, Meghadūta aur saudāmantraye. *Ps.* 100. *Add.* 38, Gopimohan Dutta lane, bhuvan vill, 2nd Flr., P.O. Bagbazar, Calcutta– 700003. *Ph.* (033) 5552307.

Chakraborty, Shrinivasa Varadacharya, Ghanapathi. Veda Vidvan. *b.* 19.09.1909, Vill. Hedatale, KT. Rtd. Veda Teacher. *Gp.* Venkataram Avadhani, Krishnaghanapathi. *Add.* Melkote, Mandya, Mysore, Karnataka. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Chakraborty, Shrutidhara. M.A., Ph.D. *b.*02.12.1959, Dibrugarh, Assam. Asct. Prof., Gauhati Univ. Guwahati, Assam. *Gp.* Late Prof. Munda madhav Sharma. *Sp.* Dr. Binina Bujarbarua, Mr. Mausumi Bhattacharjee. *Bks.02,* Paninian Influence on Sanskrit poetics, Studies on Sanskrit literature, culture and arts. *Add.* 34, Gauhati Univ. Campus. Guwahati 781014.

Chakraborty, Swapan Kumar. Kāvyatīrtha. *b.* 27.01.1951, Dist. Hooghli, W.B. Service. *Gp.* Gurupad Choudhary. *Add.* Samanta Kanda High School, Hooghli, W.B.

Chakraborty, Triveni Mohana. Kāvyatīrtha. *b.* 01.01.1911, Kolapara. *Gp.* Tripurachandra Shiromani, Chandra Mohana. *Add.* West Town Hall, Post Balonia, Tripura – 799155.

Chakraborty, Umapad. Vyākaraṇa Tīrtha. *b.* 17.10.1950, Ballabhapur, Midnapore, W.B. *Gp.* Pt. Pasupatinatha Shastri Saptatirtha, Syamasundara Chatuspathi. Principal. *Add.* Kamala Chatuspathi, Sangat Bazar, Midnapore (W.B.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Chakraborty, Vindeshwar. Tīrtha. *b.* 08.01.1922, Khulna, Bangladesh. Asst.Prof. *Gp.* Mahendranath Smriti Nath. *Add.* D-32/66, Pataleshwar, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Vedic Lit.

Chakraborty, Vinod Bihari. Tīrtha (Kāvya, Vyākaraṇa , Smṛti), Vidhyanidhi. *b.* 19.03.1914, Chattagram, Bangladesh. Rtd. Principal. *Gp.* Rajni Smritiratna, Sitanath Vidhyabhushan. *Add.* C/o. Premath Nath Bhattacharya, Barrackpore, 24 Paraganas South West Bengal. *Spl.Ref.* Kāvya Śāstra, Vyākaraṇa Śāstra.

Chakraborty, Vishnu Prasad. Vyākaraṇa Shastri, Sāṇkhyaratna, Āyurveda. *b.*31.12.1919, Batsar, Assam. *Gp.* Ramnath Vidya-Alaṅkāra, Sadanan. *Add.* Badsar, Nalbari Assam. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāṅkya, Āyurveda Śāstra.

Chakradhar, Bijaivana. Acharya in Navya-Nyāya, M.A., Ph.D.. *b.* 15.10.1932, Principal, Kendriya Samskrta Vidyapitham. Lucknow. *Add.* B-1/89 B, Aliganj, Lucknow, (U.P.). *Spl.Ref.* Nyāya, Sāhitya.

Chakrapani, Achar, A. Nyāya Śiromaṇi. *b.* 04.08.1949, Mantralaya, Kurnool, A.P. Teacher. *Add.* P.K.S.R. Oriental High School, Hindupuram, Anantapur – 515201 (A.P.). *Spl.Ref.* Nyāya Sastra.

Chakrapani, Ganapathigal T.K. Acharya in Ṛgveda. *b.* 24.10.1913, Palakkad, Kerala. *Gp.* T.C. Narayana Shastri. *Add.* Nemmara, Palakkad, Kerala.

Chakravartyacharya, Perkkaranai Madabhushi. Nyāya śiromaṇi, Vedānta Sāhitya. *b.* 17.03.1923. Asthan Vidwan, Sri Ahobila Matha. *Bks.* 09. *Ps.* 70. *Add.* Sri Vedānta Deshika Bhawanam, 30 Vekantesh Agarharam, Mylapore, Chennai – 04. *Spl.Ref.* He has been conferred with more than tweleve title by various institutions and organizations including Title of M.M. by Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupathi, President Awardee.

Chakyar, Mahi Madhava. Alaṅkāra-Śāstra, Nā-ya Śāstra, Vyākaraṇa, Nyāya, Jyotiṣa. *b.* 15.02.1899, Kozhikode, Kerala. Skt. Teacher, Balakollasihi Skt. Pathshala Kullikkurassi Mangalam Kerala. *Gp.* Rama Varma Parikshith ThamPurāṇa. *Bks.* 05. Nā-yakalpa-druma, MathaVilāsam (Attaprakārsa), Svapnavāsavadata (Attaprakārsa), Vikramorvaśīya (Attaprakārsa), Mālavikāgnimitra (Attaprakārsa). *Expired on.* 14.01.1990. *Spl.Ref.* Kudiyattam Dancer, Skt. Scholar, Nā-ya Śāstra. SNA Award New Delhi, Govt. of India's Emeritus Fellowship in 1982, Tulsi Samman by Govt. of M.P. in 1987. First Actor to receive those awards Kerala Sangeeta Natak Academy Annual award is known as Mani Madhav Puruskaram.

Chalamcharla, Venkatashachary. Acharya, M.A. *b.* 15.07.1938, Gudivada, A.P. Asst. Prof. *Gp.* S.T.G. Varadacharya, V.S. Venkataraghavacharya. *Add.* 170, Old Airport, Sikandarabad, A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda.

Champaneri, Alka Ben K. Ph.D. *b.*24.06.1973. Prof. Shri Rang Nav Chetan Mahila Arts College Valior Distt. Bharuya. *Ps.* 03. *Add.* 203, Vajra Appartment Megha Township Vekunthadham College Road, Bharuya. *Spl.Ref.* Vedānta.

Chand, Krishan. M.A. (Skt., Hindi), Acharya, Ph.D. *b.* 07.06.1978, Jind (Haryana). TGT Skt. BBSS School Delhi. *Bks.* 02 Karmakāṇda Mīmāṃsā, Pratiyogitā Candrikā. *Ps.* 03. *Add.* CN 1781, Gali No. 13, Main Wazirabad, Delhi-84. M. 09911314143. *Spl.Ref.* Vedāṅga Jyotiṣa & Karamkāṇda.

Chandan, Urmila. M.A., B.Ed. *b.* 09.10.1949. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School, Hari Nagar, *Ps.* 03. *Add.* D-B-72 A, LIG Flats, Hari Nagar, New Delhi – 110064. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chandarana, Bhagwan Ji Gopal Das. Ph.D. *b.* 16.04.1940. Retd. Prof. M.G. Arts & Commerce College Gondal Distt. Rajkot. *Add.* Tripura 21, Sadguru Park Near Goutam Nagar Rajkot. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Chandra, Dinesh. M.A. (Skt.) *b.* 08.07.1964 Asst.Publicity Officer, A.B.O. Skt. Academy Plot No. 5, Jhandewala Karol Bagh New Delhi. *Ps.* 01. *Add.* G-1/135 First Floor Sector 16 Rohini Delhi 89. *Spl.Ref.* Administrative Experience in Skt. Academy 28.01.1998 to Onwards.

Chandra, K.R. Ph.D. *b.* 28.06.1931. Prof. Prakrit Deptt. Bhasha Bhawan, GJ Univ. Ahemdabad. *Add.* 375 Saraswati Nagar, Near Himmatlal park, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Pālī & Prākṛta.

Chandra, Lalita. Acharya (Navya Vyākaraṇa), Shikshasastri. *b.* 02.11.1955, Manattala, Trissur, Kerala. Research Asst. *Add.* Panikkaparampil House, Chittilappilli, Trissur Kerala. *Spl.Ref.* Disc. Vyākaraṇa, Śikṣā Śāstra.

Chandra, Mala. Sāhitya ratna, M.A., Ph.D., LL.B.. *b.* 03.09.1954, Bareilly, (U.P.). Evaluator (Mulyankaka), Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi. *Gp* Vachaspati Upadhyay, Adyaprasad Mishra. *Add.* A-7, Shivam Apartments, D-Block, Vikaspuri, New Delhi – 110018. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chandra, Shekharan, P.V. Acharya, Shiksha Shastri, M.Ed. *b.* 15.11.1952. Kerala. Principal Calicut Sanskrit Vidyapeetham. *Ps.* 03. *Add.* Cherukunnummal House, P.O. – Karandode, Via- Kuttiady, Dist. - Calicut, Kerala. *Ph.* (0496) 642516.

Chandragiri, Yugendra Babu. Vidvan. *b.* 13.01.1954, Chitturu, A.P. *Ps.* 03. *Add.* S.M.M.O.H. School, Pulivendula, Cuddapah, A.P. – 561390. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chandrakanta, Baba. M.A., B.Ed.. *b.* 19.01.1934, Principal. *Add.* K.D. 31-C, Ashok Vihar, New Delhi – 110052. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chandrakumara. Acharya in Vyākaraṇa . *b.* 01.01.1952, Itarvari, Banda, U.P. Principal. *Gp.* Ramabhajana Pandey, Kanisha Mani Tripathi, *Add.* Shri Mauni Baba Panchmukhi Hanumat Sanskrit Mahavidyalaya, Ramghat, Chitrakut, Banda, U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Chandramauli, Muruganbattu. *b.* 27.10.1965, Muruganbattu, Chittur, (A.P.). Ved Parayanakartta. *Gp* E. Ramsvami Sharma. *Add.* Shri Padmawati Devasthanam, Thiruchanur (A.P.). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Chandrashekar, Ramaswami. M.A., Ph.D. Consultant of Linguist. Jawaharlal Nehru Uni. New Delhi. *Bks.* 03 Information Technology for Skt. Lexicography, Developing a Skt. Analysis system for machine translation, Towards computational Analysis system for skt. *Add.* 4228, B-5-6 Vasant Kunj New Delhi 110070. *Ph.* 09871577680. *Email.* ramaswamy chandrashekar@gmail.com. *Spl. Ref.* Information Technology for Skt. Lexicography, Paninian Grammer and indian languistic tradition.

Chandrashekar, Ramaswamy. B.Sc. M.A. (Skt.), Ph.D. Classics Brown Univ. USA. *Bks.* 03. Information Technology for Skt. Lexicography : The case of Amarakosha, Developing a Skt. Analysis System for Machine Translation, Towards Computational Analysis System for Skt. (Proceedings of the First National Symposim on Modeling and Shallow Parsing of Indian Languages). *Spl.Ref.* Paninian Grammar & Indian Linguistic Tradition, Skt. Lexicography, Natural Language Processing : Morphology, Shallow Parsing & Part of Speech Tagging, Darshana (Indian Philosophy) : Sankhya & Vedānta. As a Visiting Scholar, Guest Lecturer, He has gone to Brown University, USA., Bangala Language.

Chandrashekhar, M. Acharya in Vedānta & Shiksha, Shiromani. *b.* 04.02.1958. Asst. Prof. *Add.* Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Aliganj, Lucknow, U.P.. *Spl.Ref.* Vedānta.

Chandrashekhar, P.V. Shiksashastri, Acharya in AdvaitaVedānta. *b.* 15.11.1952, Moken, Kozhikode, Kerala. Principal. *Add.* Adrash Sanskrit Vidyapeetha, Balussery, Kozhikode, Kerala. *Spl.Ref.* Advaita Vedānta.

Chandrashekhar. Vidvān in Sāhitya & Tarkaśāstra. *b.* Jyotipur, Chitradurga, KT. Rtd. Teacher, *Add.* Jyotipur, Jagalur, Chitradurga, KT. *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda.

Chandrashekharan, K. M.A. (Sāhitya). *b.* 24.04.1918, Edanadu, Kollam, Kerala. Rtd. Principal. *Gp.* V.R. Kesavan. *Add.* Arinada, P.O.- Karmkod, Dist. -Kollam, Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chandrashekharan, M. Sāhitya śiromaṇi, Shiksashastri. *b.* 26.10.1950, Pennam, TN. *Gp.* M.S. Subrahmanya Sharma, Dr. Shridhara Vashishtha. *Add.* No. 20. Tamilrasu Street, Kondalampatti, Salem, Tamilnadu – 636010. *Spl.Ref.* Sāhitya, Veda.

Chandrashekharayya, Ramanathan. M.A., Rashtrabhashavisharad. *b.* 04.01.1935, Mysore, KT. Principal, A.P.S. College of Science, Bangalore. *Gp.* N. Shivaram Shastri, P.S. Gopalan, G. Sitaramayya. *Add.* No. 1861, 32nd, A-Cross, Vanshankari II Stage, Bangalore, KT – 560070. *Spl.Ref.* AdvaitaVedānta, Alaṅkāra.

Chandrika, B. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 15.11.1960. Kollam, Kerala. ***Bks.*** 02. Vedāntasāra (Malayālam Translation), Ātmabodhā Prakāśikā, (Commentary Critical Edition). *Ps.* 12. *Add.* Shivadeepthi, Via – Kulathungamali, Okkal, Kerala – 683550. *Ph.* 0484 – 2463380. *Spl.Ref.* AdvaitaVedānta.

Chandrudu, Pullel Sriram. Vedānta Śiromaṇi, M.A. (Skt., English, Hindi), Ph.D. *b.* 1927. Parivritakonapsima. A.P.. Rtd. Prof. & HOD, Usmania V.V. and Director, Skt. Academy. *Bks.* 04. Susaṅghabhāratam, Pratipadārtha-tātpryādirūpayā Sākam Śrī Madrāmāyaṇam (10 Vol.) *Add.* Nandanam, 7-1-32/4 P2, Leela Nagar, Begumpeth, Hyderabad – 16. *Spl. Ref.* President Awardee, Visah Bharti Puraskar, Vyākaraṇa, Vedānta Alaṅkāra Śāstra.

Channapa, Yersime. Vidvān, Shiksashastri. *b.* 03.09.1929, Harvigram, KT. Rtd. Skt. Teacher. *Gp.* Shrinivasacharya, Setumadhavacharya. *Add.* No. 597, 2nd Cross, 7 Main, Vijayanagar Extn., Bangalore, Karnataka. *Spl. Ref.* śaivāgama.

Chatarji, Pritikana (Chattopadhyaya). M.A.. *b.* 18.03.1953. Teacher (Language), Union Academy Senior Secondary School, Raja Bazar, New Delhi. *Add.* 4-62, Padam singh Road, Karol Bagh, New Delhi – 110005. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chatterjee, Goutam. M.A., Ph.D. *b.* 18.08.1963, N-11/38 B, Ranipur Mahmurganj, Varanasi. President, Abhinavapupta Academy Varanasi, Asct. Prof. Deptt. of Journalism & Mass Communication, Banaras Hindu Univ. *Gp.* Pt. Ishvar Chandra Vidhyasagar, Pt. Suniti Kumar Chaturjya, Jiddu Krishnamurti, Acharya Hajari Prasad Dwivedi, Thakur Jaidev Singh & Pt. Vraj Vallabh Dwivedi. *Bks.* 04. Taṅtraloka by Ācārya Abhinavgupta, Jñānagaṅgā by P.T. Gopīnath Kavirāja, Saṅgīta Ratnākara by śāraṅgadeva, Saṅgāta Vimarśa. *Spl.Ref.* Disvovered the time and place of Bharatmuni, Derived thirty six acting methods from Natya Shastra of modern global relevance. Developed drama semiotics i.e. Bhavlipi, Singn of emotions for dance, drama and music on the very basis of Nā-ya Śāstra. Identified Pathbheda from all authentic texts of Nā-yaśāstra to prepare the correct text, Prodounded Kāśī śaiva Darśana, Translated Prapañca Sāra Tantra by Shasnkaracharya and Guhya Samāja Tantra (A Buddhist text) from Skt. In to English for the first time, Made films on the very basis of Kashi Shaivism.

Chatterjee, Indira. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 26.09.1963. Hawrah. Asct. Prof. Ravindra Bharti Univ. *Bks.* 01. *Add.* Deptt. of Skt. Ravindra Bharti Univ. Kolkata 700050. M. 9433171923. chatterjeeindira@yahoo.in

Chatterjee, Kshitish Chandra. M.A., D.Litt. *b.* 26.10.1890, Shibpur, Howrah, West Bengal. Prof., Univ. Of Calcutta. *Bks.* Technical terms and Technique of Sanskrit Grammar Part-I, Greek Proverbs for Indian Students(ed), Upasargas, Sankrit commentaries of the ushasukta, devisukta, bhadriya sukta. *Expired*

on. 29.05.1977. ***Spl.Ref.*** Awards – Bhashacharya by Ravindranath Tegore, Sāhitya Vachaspati by Allahabad Hindi Lit. Confrence, Padmavibhushan by Govt. of India.

Chatterjee, Shivanee. M.A., Ph.D. ***b.*** 16.05.1981. Asst. Prof. ***Bks.*** 01. ***Ps. 01 Add.*** Subodhbela Bhawan, Jhapantala mode, P.O. Rajwati Burdwan 713104. W.B. Ph. 0342-2634617, M. 09378071462.

Chattopadhyay, Amar Kumar. M.A. ***b.*** 05.05.1943. Calcutta , W.B. ***Bks.*** 05. Veda Granthamālā, Veda Upaniṣad, Piṅgala Chandaḥsūtram, Aśvalāyanaśrauta-sūtram, Ṛgvedīya Gṛhya Sūtram. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 7 – A, Paramhansa Dev Road, Alipore (Chetla), Kolkata, W.B. ***Pin.*** 700027. ***Ph.*** 4796794.

Chattopadhyay, Ashok. M.A., Ph.D., D.Phil., D.Litt. ***b.*** 30.10.1929, Bankura. W.B. Professor & Head, Dept. of Skt., Univ. of Calcutta. ***Bks.*** Śrāddhakalpaḥ (ed.), Samayapradīpaḥ (ed.), Padmapurāṇa : a critical study, Bha--nārāyaṇa critical observation on the Citrasūtra of Nagnajit, Viṣṇudharmottarīya Citrasūtra (Hindi). ***Add.*** A – 03, Labony Estate, Salt Lake City, Calcutta, W.B. –700064. ***Spl. Ref*** Recipient of Umesh Chandra Vidyaratna Award. A great Scholour of Dharmaśāstra, Purāṇa, Citravidyā etc.

Chattopadhyay, Chinmayi. M.A., D.Phil. Rtd. Asst. Prof., Skt. Dept. ***Add.*** Jadavpur University, Calcutta, W.B.. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra, Vaiṣṇava-Darśana.

Chattopadhyay, Jaishree. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 06.01.1945. Kolkatta. Asct. Prof., Women's Cristian College, Kalighat. ***Add.*** Sushma, 102.C. Tarapark, PN Mitre Brik Field Road. New Alipur, Kolkatta – 53. ***Spl.Ref.*** Poet and Scholar.

Chattopadhyay, Krishna Nath. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 11.12.1930, Calcutta, W.B. Asst. Prof. Skt. Dept. ***Add.*** Rabindra Bharati University, 56 A, Barrackpore Trunk Road, Calcutta – 700050 (W.B.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chattopadhyay, Narayan Kumar. M.A., Ph.D.. ***b.*** 1946, Ranaghat, Nabadwip, W.B. Asct. Prof., Dept. of Skt., Univ. of Calcutta. ***Bks.*** 03. Indian Philosophy, Its exposition in the light of Vijñānabhikṣu's Bhāṣya and Yogavārttika, Mahājīvana (Bengali), Bhāratīya Darśana Sāṅkhya (Bengali), ***Add.*** Karunamayee Housing Estate, F-16/3, Salt Lake, Calcutta, W.B.– 700091. ***Spl.Ref.*** Darśana.

Chattopadhyay, Rita. M.A., Ph.D. ***b.*** 19.07.1952. Calcutta, W.B. Asct. Prof. ***Bks.*** 06. M.M. Haridāsa Siddhāntavāgīśa An Appraisal, A study on Candravaṃśam, Modern Sanskrit Dramas of Bengal, Morden Sanskrit Plays, Pañcatantram, ***Ps.*** 09. ***Add.*** Sanchar Minar. E – 1103/4, New Road, Alipore, Calcutta – 700 027. ***Ph.*** (033) 448 4848.

Chaturvedi, Amar nath. Acharya, Vidya Varidhi. ***b.*** 30.01.1939. Vishnupur, Dist. Jaunpur, U.P.. Principal. ***Gp.*** Dr. Ramaprasada Tripathi. Rajarama Dwivedi. ***Add.*** Adarsh Shri Vasudeva Sanskrita Pathasala, Gutavan, Jaunpur, U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Chaturvedi, Archana. M.A., Ph.D., D.Litt.. ***b.*** 29.07.1955. Research Asstt., Hindi Directorate, R.K. Puram, New Delhi. ***Add.*** 178 A, Dilshad Garden. Delhi – 110032.

Chaturvedi, Baladeva Shastri. Acharya, M.A. ***b.*** 01.05.1943, Mathura, U.P. Principal. ***Gp.*** Muralidhara Mishra, Kesavadev Pandeya, Vanamali Shastri. ***Add.*** Sri Ratna Moti Sanskrit Mahavidyalaya, Gokul, Mathura, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chaturvedi, Braj Mohan. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 57 year, Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa, Ph.D. Vill. Devria, Distt. Gajipur, U.P.. H.O.D., Sanskrit Dept., Delhi Univ. ***Gp. Gp.*** Ramyash Tripathi, Pt. Mukund Shastri Khiste. ***Bks.*** 02. Vyaktiviveka, Rasa siddānt ke Anālocita Pakṣa. ***Add.*** D-23, Univ. Campus, University of Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chaturvedi, Chandradhara Acharya. Acharya. ***b.*** Varanasi, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Harivansha Chaturvedi, Gulabaprasada Mishra. ***Add.*** Janata Inter College, Chunar, U.P.. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chaturvedi, Devadatta. Acharya in Sāhitya & Paurohitya, M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1951, Mathura, U.P. Asst. Prof., Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Skt. Vidyapeetha, New Delhi. *Add.* 3/117 Katwaria Sarai, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya, Paurohitya.

Chaturvedi, Dharamdatt. M.A., NET, Ph.D. *b.* 01.03.1959, Astt. Prof. Kendriya Tibetan Study V.V, Sarnath. *Bks.* 03 Kātantrogā-di-sūtravṛttiḥ, Kāvyakallolinī, Vajrayānadarśana mīmāṃsā. *Ps.* 10. *Add.* Kendriya Tripatan Study V.V. Sarnath, Varanasi. *Spl.Ref.* Mīmāṃsā

Chaturvedi, Giridhar Sharma. Acharya in Vyākaraṇa , Ph.D. *b.* 1881. Director, Sanskrit research Deptt. BHU, Kashi. *Gp.* Jeevannath Jha, Laxminath Drawid, Madhusudan Ojha, Shri Jankilal Chaturvedi, Shri Gopinath Dadhichi. *Bks.* 05 Sidhānta Kaumudī (ed.). Mahābhāṣya (ed.), Mahākāvyasaṅgraha (ed.), Mahārṣīkulavaibhavam (ed.), Brahma-siddhānta (ed.). *Ps.* 13. *Expired on.* 11 June. 1966. *Spl.Ref.* Received first Rashtrapati Award in India at 1958 by Dr. Rajendra Prasad Sharma. Awarded Vachaspati by BHU. M.M. by Vice roy and Padmabhushan by Govt. of India. A Outstanding Poet of Brij Language.

Chaturvedi, Harivansh. Acharya. *b.* 15.02.1924, Chandoli, Varanasi, U.P. Retd. Princ. *Gp.* Ramyash Tripathi, Shukhdev Chaturvedi, Narsingh Dwivedi. *Add.* Smt. Bhagirathi Turst, Adarsh Sanskrit College, Chunar, Mirzapur U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra, Vedānta Śāstra, Sāhitya Śāstra.

Chaturvedi, Krishna Chandra. Acharya (Navya-Vyākaraṇa, Sāhitya), M.A., Ph.D.. *b.* 02.09.1940, Mathura, (U.P.). Asct. Prof. *Bks.* Premapatramahākāvyam, Alaṅkāra-dhvani-vimarśaḥ, Navavṛttaratnāvalī, Vividhapatha-puṣpāvaliḥ. *Add.* Dept. of Sāhitya, Guruvayur Kendriya Sanskrit Vidyapith, Puranattukara. Trissur – 680055 (Kerala). *Spl.Ref.* Navya-Vyākaraṇa, Sāhitya. U.P. Skt. Academy Honour.

Chaturvedi, Krishna Kant. Acharya, Ph.D. *b.* 19.12.1937, Jabalpur M.P. Prof. Rani Durgavati Uni. Jabalpur, Director, Kalidas Academy, Ujjain. Director, Rajshekhar Academy, Jabalpur. *Gp.* Acharya Prabhudayal Agnihotri, Nilameghacharya, Shrinath Shastri, Dr. Hiralal Jain. *Bks.* 05. Dvaitavedāntaḥ, Tattva-Saṃīkṣā, Studies in Rājśekhara, Viveka-Makaranda, Athāto Bṛahma Jijñāsā. *Ps.* 80 *Add.* A/4, Saraswati Vihar. Panchavati, Jabalpur – 482001 (M.P.) *Spl.Ref.* Received President Award, Editor- Ritambhara Magazine, Abhinandangranth Published on his Contribution Member of many bourds, Vice President AIOC Chennai in 2000.

Chaturvedi, Kunj bihari. Acharya in Sāhitya , M.A., Ph.D.. *b.* 15.04.1934, Khadgada, Satna, M.P. Principal, Govt. Skt. College. *Gp.* Shyama-sundar Shastri, Trinatha Shastri, Dr. Vayunandan Pandey, Tilakadhari Tripathi. *Ps.* 05. *Add.* Govt. Sanskrit Mahavidyalaya, Shahdol, M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chaturvedi, Mahashweta. Sāhitya, M.A. (English, Skt., Hindi), Sangitaprabhakar, Dipl. in Germanilism LLB Ph.D., D.Litt. *b.* 02.02.1953, Etawa, (U.P.). *Bks.* 03. Vedāyanarakṣāśatakam, Jyotikalaśa (Hindi), Yajurvedarahasya (Hindi), *Add.* Asst. Profs Colony, Bareelly College Parisar. Shamganj, Bareilly – 243005. *Spl.Ref.* Sāhitya, Veda. *Awards.* Honoured by the title of Kavya Ratan & Kavyālaṅkāra, Michel Madhusudan Dutt Award etc.

Chaturvedi, Narottam. Sāhitya. *b.* 07.11.1931, Jaipur. Asst. Director. *Gp.* Jagadish (Sāhitya.) *Add.* Ghee Valon ka Rasta, Chaubon ka Chauk, Jaipur, Rajasthan. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chaturvedi, Prasad. Acharya (Vyākaraṇa, Vedānta, Nyāya). *b.* 18.01.1934, Kedarpur, Faizabad, (U.P.). Teacher. *Gp.* Rudraprasad Avasthi, Udayaraj Mishra. *Add.* Shri Dharma Sangh Shiksha Mandal. Durgakund, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Vedānta, Nyāya.

Chaturvedi, Purushottam. Acharya in Sāhitya, Śuddhādvaita, Vyākaraṇa & Darśana. *b.* 1955. Todaraisingh, RJ. Lect., Meyo College, Ajmer. *Gp.* Madhura Lal Chaturvedi, Nand Kishore

Shastri, Bal Shastri. *Sp.* Maharana Bhagwant Singh, Kishangarh Naresh Sumer Singh, Bahadur Singh Bundi, Deenanath Trivedi. *Bks.* 05. Vṛittīdīpikā (ed.), Rasagaṅgādhara (Hindi Tr.), Digvijaya (Hindi Tr.), śuddhādvaita Darśana (Hindi Tr.), Ambikā Pariṇaya (Hindi Tr.). *Expired in* 1959. *Spl.Ref.* Editor of 'Bhartiya Dharma' from Ajmer vidyalaya partika, Kashi. Editor of Madhusudan ojha's Books.

Chaturvedi, Radheshyam. Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1940. Azamgarh (U.P.). Professor, Dev Sanskrit Vishwavidyalaya, Haridwar. *Gp* Raghuvansh Pandey, Ramanuj Ojha. *Bks.* Gandharva - Tantram, Gāyatrī Mahātantram, Śrī Siddhāntaśikhāmaṇiḥ, Mahākālasaṃhitā, Svacchandatantram. *Ps.* 16. *Add.* Gyan Ashram, Ganeshpuri Colony, Lane No. 09, P.O. Susuwahi, Varanasi, (U.P.), *Pin.* 221005. *Ph.* (0133)4261367 - 5517, 09235505582, 09415992992.

Chaturvedi, Raghu Nath Prasad. *b.* 1911. Mathura, U.P.. *Bks.* 01. Jawahar Jyotirmahākāvyam. *Expired in* 1988.

Chaturvedi, Ramesh Chandra. Acharya in Sāhitya & Puraṇetihāsa. *b.* 15.11.1942, Jaipur, RJ. Asct. Prof. *Gp* Jagadish Shastri, Mandan Mishra. *Add.* Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapith, Katwaria Sarai, New Delhi – 110016. *Spl.Ref.* Sāhitya, Purāṇa.

Chaturvedi, Rameshwar Prasad. M.A., Ph.D. *b.* 15.10.1962, Asct. Prof. & HOD Deptt. of Skt, RSGU PG College, Ramabai Nagar. *Bks.* 03 Śikṣāgrantho kā Ālocanātmaka Addhyayana, Hastāmalakastotra Anuśhīlana (In-Press), Veda evam Avestā (In-Press). *Ps.* 15. *Add.* Deptt of Skt, RSGU PG College, Ramabainagar, U.P. M. 09450219632

Chaturvedi, Rammurti. Acharya in Śuklayajurveda, Ṛigveda, Navya- Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1958. Mehdaval, Bahavoliya, Santa Kabeer Nagar, U.P. Asst. Prof., M.G. Kashi Vidhyapeeth, Varanasi. *Gp* Acharya Ram Sajivan Shukla, Acharya Ram Raj Tripathi, Acharya Radheshmani Tripathi, Dr. Kailash Chandra Dave, Prof. Gopalchandra Mishr, Prof. Ram Prasad Tripathi, Prof. Adhya Prasad Mishra. *Sp.* Shri Vani Vilas Dimari, Dr. Pravesh Kumar Mishra, Dr. Shashi Shekhar Mishra, Dr. Pushpendra Shukla, Dr. Devendra Kaushik, Dr. Ajay Hari Shukla, Dr. Sandeep Bhatta, Dr. Madhukar Trivedi, *Bks.* Yajñopavīta Vedārambha Samāvartana Sanskārah, Vaidika Śikṣā Svarūpa Vimarśa. *Ps.* 16. *Add.* H.No. N – 09/36, F– 04 – 54, Kedar Nagar Colony, Patiya, P.O. Bajardiha, Sundarpur, Varanasi. *Pin* – 221005. *Ph.* 09415685491. *Spl.Ref.* Veda, Navya Vyākaraṇa, Mīmāṃsā.

Chaturvedi, Saraswati Prasad. M.A. *b.* 1902. Village Lalapur, Dist. Allahabad, U.P.. Prof. Nagpur (MH) Univ.& Allahabad Univ.. Director, Directorate Sanskrit, Govt. of India. *Bks.* 01. Sārasvatasandarśanam. *Expired in* 1979. *Spl.Ref.* He Wrote many Books in Hindi, English & Sanskrit regarding to sanskrit Sāhitya & Vyākaraṇa .

Chaturvedi, Seetaram. M.A. in Sanskrit & Hindi. *b.* 1907. Kashi. Principal, Sateesh Chandra Degree College, Baliya & Murli Manohar College, Kashi. *Bks.* 03. Abhinava Nā-yaśāstra, Bhārata ke Udāsīna Santa, Kālidāsa Granthāvalī (ed.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Drama, Play.

Chaturvedi, Shivdutt Sharma. Acharya, Sāhitya Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 16.04.1934. Jaipur, Raj.. Prof. & H.O.D., Prachya Vidya Sankay, B.H.U.,Varanasi. *Gp.* M.M. Giridhar Sharma Chaturvedi. *Bks.* 06. Gosvāmī Tulsīdāsaśatakam, Sphūrti-saptśatī, Raś-raguru Sahasranām Stotram, Lālasāmaitricarcā mahākāvyam, Satyam Śivam Sundaram Mahākāvyam, Abhinava-kathāNikuñja (ed.). *Add.* 886 Giridhar Chaturvedi Marg, Jaipur, Raj. *Spl.Ref.* Editor, Short Story writer, & Essayist. Awarded M.M. by President of India, Magha Puraskar, Kalidas Puraskar.

Chaturvedi, Shukhdev. Jyotiṣa, Mantra Śāstra Āgama, Vāstu Śāstra, Veda. *b.* 07.02.1943. HOD Jyotish Deptt. L.B.S. Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, New Delhi. *Bks.* 25. *Ps.* 300. *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Vedangopaveda Vidwan, Editor Rashtriya Panchang of L.B.S. Rashtriya Sanskrit

Vidyapeetha, Dr. Chaturvedi has contributed a lot in bringing the practicability of Jyotiṣa-Śāstra. President Awardee.

Chaturvedi, Tribhuvananath. M.A., Ph.D. *b.* 14.06.1948, Gopipuram, U.P. Head, Vyākaraṇa Dept., Adarsh Shrivasudeva Sanskrit Pathashala, Gutvan, Jaunpur. *Add.* Vill. Gopipur, Kanjagaon, Jaunpur (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Chaturvedi, Umakant. Acharya. M.A., Ph.D. *b.* 03.11.1960. Banauli, Kaimur, Bhabhua, Bihar. Asst. Prof., R.Sk.S. Jaipur, Rajasthan. *Bks.* 03. Kāvyadoṣavimarśaḥ, Ayodhyātīrtha Praśaṅsā, Stutikusumāñjali. *Add.* 35 – B, Usha Vihar, Triveni Nagar, Jaipur, RJ. *Ph.* 09414888050.

Chaturvedi, Vasudev Krishna. Acharya (Navya-Vyākaraṇa, Dharma-Śāstra, Vallabha-Vedānta, Purāṇa, Jyotiṣa, Sāṅkhya-Yoga, Sāhitya.) M.A., Skt. Hindi, Sāhitya Ratan, Ph.D., D.Litt., Kavyatirtha, Vidya Vachaspati. HOD Oriental Institute of Philosophy. *Bks.* 05. Śrī Dvārikādhīśamahākāvyam, Srī Vrajsta-vamālikā, Nandotsavaḥ, Bhāratarāṣṭragītiḥ, Śrīmatī Indirāgāndhīkāvyam. *Add.* 966, Gathsharamtila, Mathura, U.P. *Spl.Ref.* Awarded from UP Skt. Academy.

Chaturvedi, Vishram Prasad. Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 10.06.1950, Lohadwar, Rewa M.P. Asst.Prof. *Gp* Ramvedna Shukla. *Add.* Shri Abhayanand Govt. Sanskrit Mahavidhyalaya, Kalyanpur, Shehdol, M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Chaturvedi, Vivekanand. Acharya. *b.* 07.02.1960, Sundar Bahuara, Rohtas, Bihar. Princ. *Add.* Sundar Bahuara, Naraia, Rohtas Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Chaubey, Brij Bihari. M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1940. Ballia, UP. Prof. & Director, MSD Univ. Vishweswaranand Vishbandhu Skt. & Bharat Bharati Anusheelan Sansthan, Hosiyarpur. *Gp.* Baladeva Upadhyaya, Siddhesvara Bhatta-carya. *Bks.* 29. *Ps.* 125. *Add.* Vishveshvaranand Vishwabandhu Sanskrit & Indological Research Institute, Hoshiarpur. *Spl.Ref.* Veda, President Awardee.

Chaudhari, Kantilata Purushottam. M.A., B.Ed.. *b.* 03.08.1953, Barolia, Valsad, Gujarat. Asst. Teacher, S.M.S. School, Dharapur. *Add.* P.O. Barolia, Baranapur, Valsad (Gujarat). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chaudhari, Keval Narayan. Jyotiṣa. *b.* 10.08.1958, Darbhanga, Bihar. Principal, J.N.V. Sanskrit Vidyalaya. *Ps.* 03. *Add.* Vill. & P.O. Lagam Ram, Bhadrapur, Dist. Darbhanga (Bihar). *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Chaudhary, Angraj. M.A. (English, Pali) D.Lit. *b.* 01.01.1935. Editor (Ex.), Vipassana Research Institute Dhamma Giri, Igatpuri, Nashik MH. *Bks.* 05 Comprative Articles : East and West, Essays on Budhism and Pali Literature, Aspects of Bauddha Dhamma. Books Transliterated for the first time into Devanagari script and critically edited- Suttanipāta-A--hakathā (Vols.I-II), Thera-gāthā-A--hakathā (Vols.I-II), Therīgāthā-A--ha- kathā(Tr) *Ps.* 30. *Add.* Vipassana Research Institute Dhamma Giri Igatpur Nashik Maharashtra. *Spl.Ref.* Various Topics of Buddhism and Pali Literature. Visted Univ. of Leeds, England.

Chaudhary, Arkanatha. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 15.08.1956, Vill. Patra, Rudrapur, Madhubani, Bihar. Prof., R.Skt.S. Jaipur Campus. *Gp.* Pt. Umesh Chaudhari, Dr. Harsanatha Misra. Dr. Maninath Jha. *Bks.* 20. Laghu Siddhānta Kaumudī, Vaiyākaraṇa Siddhānta Kaumudī, Madhya Siddhānta-kaumudī, Nighaṇtu Śabdakośah, Tarkbhāṣā, Meghadūtam.(All Ed.) *Ps.* 33. *Add.* R.Sk.S., Deemed Univ., Jaipur Campus, Jaipur – 15. *Ph.* (0141) 2755657. *Mob.* 09413561390.

Chaudhary, Arun Chandra Govind Bhai. Ph.D. *b.*25.02.1952. Prof. Babu Bhai B. Aviyada Arts & Commerce College Mandvi Distt. Surat. *Add.* Near Gayatri Kripa Ambaji Road Mandvi Distt. Surat. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Chaudhary, Ashish Kumar. M.A.(Skt. Hindi), M.Phil. (Skt.), Dipl. in Linguistic, German, Punjabi, B.Ed., NET. *b.* 15.02.1985. Res. Fellow. *Bks.* 01, Mithila Art. *Ps.* 10. *Add.* D-34A Kiran Garden, Uttam Nagar - 110059.

M. 08269492969, 09968156459. ashish.kuthram@gmail.com *Spl.Ref.* Skt. Pratibha Award from Delhi Skt. Academy, Editor Award from DU.

Chaudhary, Bhagwan Bhai Nanji Bhai. Ph.D. *b.* 01.12.1968. Prof. Arts & Commerce College, Vaso Tehsil Nadiyad, Distt. Kheda Gujrat. *Add.* Vaso Nadiyad. Distt. Kheda. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Chaudhary, Binayendra Nath. Ph.D. Pali. *b.* 02.03.1931. Chittagong, Bengal. Prof. Pali Skt. College, Kollkata. *Bks.* 05. Aśoka Ke Abhilekha, Majjhimanikāya. *Ps.* 50. *Add.* C/3C, Jaisri Park, Kolkatta – 34. WB. *Spl.Ref.* He collaborated with the Royal Danish Academy, Copenhegen for compiling a Critical Pali Dictionary and has translated the Pali Majjhimanikaya into Bengali, President Awardee.

Chaudhary, Govind Bhai Nanji Bhai. Ph.D. *b.*01.01.1967. Prof. Shri A.P.Patel Arts & Commerce College Naroda Ahemdabad. *Add.* 12, Vinayak Residency Payal Nagar Road Naroda Ahemdabad. *Spl.Ref.* Alaṃkāra Śāstra.

Chaudhary, Gunjeshwar. Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 07.08.1949. Rtd. Principal Hry. Skt. Vidyapeeth, Baghola. *Bks.* 08 Viduranīti, Paṇditarājakṛit Appayadīkṣhita Samīkṣā-vivecanam, Sarojasundara, Vāṇi Vīnā. *Ps.* 25. *Add.* Housing Board Colony H.No. 313, Palwal, Haryana - 121102. Ph. 01275-258482, M. 09728227718, gunjeshwar chaudhary@gmail.com. *Spl.Ref.* Sāhitya, Broadcasting of more than 20 special speeches in the light of Ramayana, Geeta, Mahabharata and Classical Skt. etc. from All India Radio.

Chaudhary, Jaipal Sinha. M.A.. *b.* 02.11.1928. Teacher (PGT), Society, Senior Secondary School, New Delhi. Andhra *Add.* G-142, Press Vihar, New Delhi – 110092. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chaudhary, Jaishankar. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 04.04.1964, Rudrapur, Bihar. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Harshanath Mishra. *Add.* Shri Dadu Adarsh Sanskrit Mahavidyalaya, Motidungari Road, Jaipur (RJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Chaudhary, Manoharlal. M.A., Vidyālaṅkāra. *b.* 28.08.1923. Prof., Deshbandhu Gupta College, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 16/3, Kalkaji, New Delhi – 110019. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chaudhary, Mansingh Bhai M. Ph.D. *b.*01.06.1967. Prof. Mahila Arts College Motipura HimmatNagar Distt. Sambharkanta. *Add.* 192, Shantinagar Society Himmat Nagar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Chaudhary, Moundhji Bhai Babulal. Ph.D. *b.*01.06.1969. Prof. Govt. Arts College Sector 15, GandhiNagar. *Add.* Vill Kiyadar, Post Gunja Tehsil VishNagar Distt. Mehsana. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Chaudhary, Narayanaram. M.A. *b.* 22.03.1960, Bhagalpur, Bihar. Asst. Prof., Shyama Charan Vidyapith, Baunsi. *Gp.* Brajmohan Jha, Dr. Sukheswar Jha. *Add.* Guru Dham, Baunsi, Bhagalpur, Bihar. *Spl.Ref.* Yogadarśanam.

Chaudhary, Prabha Devi. M.A., M.Ed, M.Phil., Ph.D. *b.* 27.07.1954. Bihar. Asst. Prof., RSkS, Bhopal Campus. *Bks.* 05. Jalad Rag, Sāhitya Śikṣaṇam, Nibandha-saurabham, Pragata Hindī Śikṣaṇa, Bhārtiyaśikṣāyāṃ Samasā-mayika Samasyā Navinaprvṛtayaśca. *Ps.* 10. *Add.* 172, Barfani Dham, Near Kunjan Nagar Watertank, Phase – I, Baghsevania, Bhopal, M.P. *Ph.* 0755 - 2800603.

Chaudhary, Ramvilas. M.A., Ph.D. *b.* 12.09.1947, Gonuchak, Begusarai, Bihar. Vice-Princ., B.N. College, Patna. *Add.* Gulabi Ghat, Mahendru, Patna- 800006 Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra, Vedānta Śāstra, Darśana Śāstra.

Chaudhary, Sandhya Ben Nansingh Bhai. Ph.D. *b.*25.03.1969. Prof. Arts & Commerce College Mandvi Distt. Surat. *Add.* B-35, Sainath Society, Near Leemda Bus Stand Mandvi Distt. Surat. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Chaudhary, Shravan Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 12.11.1952. Chanpura, Bihar. Asct. Prof., Dept. of Sāhitya, K.S.D. Sanskrit Univ., Darbhanga Bhawan, New Ganga Sagar, Darbhanga, Bihar.

Chaudhary, Ved Narayan. M.A., Acharya, M.Ed., Ph.D.. *b.* 01.03.1949. Bihar. Asst. Prof., RSkS,

Bhopal Campus. ***Bks.*** 05. Meghāloka, Śikṣā Prasūnāñjali, Varāhmihira Racita Brihaj-jātakasya Horābhiprāya - Nirnāyatīkāyaḥ Sampādnamanuvādaśca, Bhāratiya Śikśāyaḥ Vikāsaḥ, Jyotiṣa Śikṣaṇam. ***Ps.*** 14. ***Add.*** 172, Barfani Dham, Near Kunjan Nagar Watertank, Phase – I, Baghsevania, Bhopal, M.P. ***Ph.*** 0755 - 2800603.

Chaudhary, Yatindra Vimal. M.A., Ph.D., D.Phil. ***b.*** 1908. ***Bks.*** 40. Mīrābāīcaritam, Prabhu-haridāsa-Caritam, Mahimāmaya Bhārata, Bhāskarodaya. ***Expired in*** 1964.

Chaudhuri, Ajayarama. M.A. in Skt., Kāvya Tīrtha, Kāvyaratna, Sangitaprabhakara, Sangita Visarada. ***Age.*** 47 yrs. Ramgopal Puram, W.B. ***Gp.*** Dr. Gaurinatha Sastri; Dr. Ramaranjana Mukharji. ***Add.*** H. No. 3, Vijaya Nagar, Uttar 24 Pargana, W.B. – 743165. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Saṅgīta.

Chaudhury, Sukomal. M.A., Ph.D., Dipl. in French and Tibetan, Visiting Prof. Asiatic Society, Kolkatta. ***Bks.*** 14. ***Ps.*** 40. ***Spl.Ref.*** As Visiting Prof. He visited to Kolkatta Univ., Fellowship from Japan Society Foundation and Hawai Univ., Now he is engaged in preparing the work title Abhidhamma Philosophy in the Asiatic Society, President Awardee.

Chaudhury, Usha. M.A., Ph.D., Vedavachaspati. ***b.*** 20.09.1937. Asct. Prof., Sanskrit Dept. Delhi Univ. ***Bks.*** 02. Indra and Varuna in Indian Mythology, Vedic Mythopoeca. ***Add.*** 183, Tagore Park, New Delhi – 110009. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chaudhury, Uttara. ***b.*** 1930, Dhaka (Bangladesh). ***Gp.*** Hemachandracharya Shastri. Ashutosh Nyāyacharya. Chief Executive, Bangavani, Nabadwip (W.B.). ***Spl.Ref.*** Saṅgīta, Sāhitya.

Chauhan Ram Singh M.A., M.Phil. Ph.D. ***b.*** 05.05.1969. Karauli. Asst. Prof. Deptt. of Skt. Rajasthan Univ. ***Bks.*** 03. ***Add.*** L9F, Rajasthan Univ. Campus, Jaipur 302015. M. 09782329245, 08890358038.

Chauhan, Chandramani. M.A., Ph.D. ***b.*** 12.08.1969, Jaipur, Asstt. Prof. Deptt of Skt. Univ. of Raj. ***Bks.*** 01. Bhāratīya Samskṛti kā Eśiā kī Samskṛti para Prabhāva. ***Ps.*** 09. ***Add.*** Deptt of Skt. Univ. of Raj. Jaipur. M. 09828169703.

Chauhan, Dalabirasinha. Acharya in Purāṇaetihāsa, Ph.D.. ***b.*** 31.01.1948, Aligarh, U.P. ***Gp.*** Dr. Parasanath Dwivedi. H.O.D. of Skt. ***Add.*** Shri Shankar Mahavidyalaya, Saram, Rohtas , Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chauhan, Harish B. Ph.D. ***b.*** 30.09.1967. Prof. Sanskrit Deptt. Bhasha Sahitya Bhawan, Gujrat Univ. Navrangpura Ahemdabad. ***Add.*** Vill Post Chapaldhara, Via HigendraNagar, Distt. Navsari. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Chauhan, Leela Ben G. Ph.D. ***b.***01.02.1970. Prof. B.V.D. Arts & Commerce College, Near Anushruti Flat Thaltez, Gandhinagar Highway, Ahemdabad. ***Add.*** 402, Vibhuti Appartment, Near Dharti Vikas Mandal, Narayan Pura, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Chauhan, Nilima. M.A., Ph.D. ***b.*** 08.12.1974, Nagpur SRF (Pali), Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow. ***Gp.*** Dr. Balchandra Kandekar. ***Bks.*** 01 Samyak Dṛiṣ-i. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 786 Ahuja Nagar, Nagpur -440014, Maharashtra. M. 09423111353, 09696734847. nmcpali2@gmail.com ***Spl.Ref.*** Pālī. Nepal.

Chauhan, Rajkumari. M.A., Ph.D.. ***b.*** 01.04.1947. Asst. Prof., R.P. College, Delhi. ***Gp.*** Usha Satyavrat. ***Add.*** 113, Kamala Nagar, Delhi – 110007. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Chauhan, Udayapratapa Singh. Acharya (Prācīna-Vyākaraṇa , Darśana, Sāhitya) B.Ed., Sāhitya ratna. ***b.*** 11.11.1955, Sanaraha (Pihani) Hardoi, (U.P.). Head of the Deptt. ***Gp.*** Ramaprasad Tripathi. ***Add.*** Shri Shiv Sankat Harana Adarash Sanskrit Mahavidyalaya, Hardoi, (U.P.). ***Spl.Ref.*** Prācīna Vyākaraṇa , Sāhitya, Darśana.

Chauhan, Yashavanta Sinha. Acharya in Sāhitya & Darśana, Hindi Kovid. ***b.*** 10.07.1923, Santaraha, U.P.. Principal. ***Gp.*** Ramavilasa

Shukla, Acharya Devadatt Sarmopadhyaya. *Add.* Shri Durga Vedavedanga Vidhyapith, Maholia, Hardoi, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya, Darśana.

Chavada, Bahadurachanda. M.A., M.Phil., Ph.D.. *b.* 03.04.1908. Joint – Director - General, Bharatiya Sarvekshana. *Add.* P-6, Hauz Khas Enclave, New Delhi – 110016. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chavada, R.C.. M.A., Ph.D.. Asst. Prof. Sanskrit. *Add.* Govt. Sanskrit College, Indore (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Saṅgītakāvya.

Chavala, Ramesh Chandra. Sāhitya pravīna, M.Com., Ph.D.. *b.* 11.02.1945, Khargon, Neemar (W), (M.P.). *Gp* Badariprasad Pandey, Damodar Shastri, Rajivalochan Agnihotri. Head. *Add.* Deptt. of Sāhitya, Govt. Sanskrit College, Indore (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chawda, Geeta Kumari Jhilu Singh. Ph.D. *b.*01.07.1973. Prof. Govt. Vinyan College Sector 15, GandhiNagar. *Add.* Block No. 29/3, Sector 23, Near Post Office Gandhi Nagar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Chawla, Pushpa. M.A., B.T.. *b.* 13.04.1936. Teacher (PGT) Sanskrit, Govt. Girls Senior School No. 2, Janakpuri, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* B01/318, Janakpuri, New Delhi– 110058.

Chennu, Narayana Ayyangara. Vedabhushan, Yujurveda-Acharya, Vidyavaridhi. *b.* 24.10.1901, Melkote, Karnataka. *Add.* 62, S.B.M. Colony, Ananda Nagaram, Bangalore, KT. *Spl.Ref.* Sāhitya, Yujurveda, Karmakāṇda.

Chettiarthodi, Rajendran. M.A., Ph.D.. *b.* 12.11.1952. Perumudiyun, Pattambi, Dist. Palghat, Kerala – 679303. Prof. Calicut Univ.. *Gp.* Punnasseri Nambi Neelakantha Sharma, Vidwan C. Govindan Nair, Mahamahopadhyaya Prof. V. Venkataraja Sharma. *Sp.* Dr. N.K. Sundareswaran. Dr. J. Vasudevan, Dr. V.R. Muraceedharan, Dr. J. Prasad. *Bks.* 05. Vyaktiviveka – A Critical Study, Studies in Comparative Poetics, Sign and Structure, The Traditional Sanskrit Theatre of Kerala, Abhīnaya-Darpaṇa. *Ps.* 200. *Add.* 26/1097, Rajadhani, J.P. Kumaran Nair Road, Chevayur, Calicut – 673017. *Ph.* (0495) 2354624. Mob. – 09447000624.

Chhabara, Gulabchand. Ph.D. Acharya. *b.* 1921. Vill. Goner. Jaipur (Rj.). Principal. Digamber Jain Sanskrit College. Jaipur. *Spl.Ref.* Poet, Drama writer of Sanskrit & Hindi, Expert in Karmkāṇda.

Chhailabihari, Sharma. M.A. (Skt.). *b.* 22.11.1935. Teacher. *Add.* H.No. 6, Pandit Park Extension, B-Block, Krishna Nagar, New Delhi – 110051. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chhatre, Vishvanath Keshav. *Bks.* Apūrva Shānti Sangrām. (Drama on Gāndhi ji ki Dāndi Yātra).

Chhotu, Prasad. M.A., B.Ed.. *b.* 10.08.1960, Patna, Bihar. *Add.* Sodhara Inter College, Biharsharif, Nalanda (Bihar). Assistant Teacher, Sodhara Inter College.

Chidambara, Joyisa Biruru, B.R. Vidvān in Dharmaśāstra & Jyotiṣa. *b.* 11.09.1914, Biruru, Chikkamagalur, KT. Rtd. Principal, Mattur Maha Sanskrit Pathasala, Shimoga, KT. *Gp.* Venkatarama Bhatta, Malladi Shastri. *Add.* B.M. Temple Street, Biruru, KT – 577116. *Spl.Ref.* Sāhitya, Advaita Vedānta.

Chidghananand. *b.* 1895. *Gp.* Lakshaman Shastri, Achyutanand. *Bks.* 01. Brahmasūtrabhāṣyanirṇaya. *Expired.* 1945. *Spl.Ref.* Brahmasutrabhashyanirnay pub. by Ram Krishna Sevashram Press, Varanasi.

Chinmayakumara, Kavyatirthankara. *b.* 20.03.1945. *Add.* Vill. Abana, P.O. Gobra, Dist. Midnapur (W.B.). *Spl.Ref.* Kalikinkara Shastri Saptatirtha.

Chippadi, Chinnasubbareddi. Sāhityaśiromaṇi, Shiksashastri. *b.* 01.07.1957, Krishnangaripalli, Chuddapah, Andhra Pradesh. *Add.* Shri Mittamalleshwar Swami Oriental High School, Pulivendula – 516390 (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chitra, N. M.A. *b.* 20.09.1943. Chennai. *Add.* 5. Kamala Rai Street. Chennai – 600017. *Ph.* 8280335.

Chitteti, Markandey. śiromaṇi, Shiksha- shastri. *b.* 20.06.1946, Buttireddi, Khandug, A.P. Teacher. *Gp.* S. Laxmanayya Nayadu, N.C.V. Narasimhacharyalu. *Add.* Shrinivasa Sanskrita

Prathamikonnata Pathashala, Kapila Tirtham, Tirupati, A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chittora, Krishna. M.A., Ph.D. *b.* 26.08.1957, Indore, M.P. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Prabhakar Kotukar, Dr. H.V. Trivedi. *Add.* Govt. College, Shahpura (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chogaduba, Dhubavan. Acharya in Darśana, Vidyavaridhi. *b.* 08.07.1939, Tibet. Asst. Prof. *Gp.* Ramashankar Tripathi, *Add.* 51/1, Kiran Colony, A.E.C. Prashikshan Mahavidyalaya, Panchmani , M.P. *Spl.Ref.* Darśana.

Chokse, Kamleshkumar. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D.. *b.* 06.06.1961. Visnakar, Dist. Mehesana, Gujrat. Prof., Gujrat Univ. Ahmedabad – 380009. *Bks.* 08. Paṇiṇiya Vyākaraṇa me kāraka mīmāṃsā. *Ps.* 01. *Add.* 24-B, Veernagar Society, Bhimaji Pura, Navavadai Road, Ahmedabad – 380013. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Purāṇa Śāstra.

Cholakavil, Periyagovinda Variyar. Sāhitya. *b.* 10.01.1921, Chembara, Palakkad, Kerala. Rtd. Teacher. *Gp.* K.P. Naravana Pisarodi. *Bks.* 01. Vālmīkīyarāmāyaṇasya Malayālamabhāṣārūpāntaraṇam. *Add.* Devi Niwas, Thirikandu, Ponnani, Kerala. *Spl.Ref.* Recipient of Shri Narayana Dharma Paripalan Sangam Award.

Chopda, Krishna. M.A., B.Ed.. *b.* 23.09.1939. Teacher (PGT). Govt. Senior Secondary School, Dhasa. *Add.* 12 B, LIG D.D.A. Flats, Rajouri Garden, New Delhi.

Chopda, Phul. M.A., M.Ed.. *b.* 05.06.1943. Teacher (TGT), Modern School, Barakhamba Road, New Delhi. *Add.* BB 11, F. DDA Flats, Munirika, New Delhi – 110067. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chopda, V.D. M.A.. *b.* 01.09.1932. Teacher, Senior Secondary School, Lajpat Nagar, New Delhi. *Add.* E-79, Lajpat Nagar, Phase – I, New Delhi – 110024. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Chotliya, Rajendra Kumar Arjun Bhai. Ph.D. *b.*30.05.1958. Prof. Sanskrit Bhawan, Sourashtra University Rajkot. *Add.* 29, A-1, Sourashtra University Karmachari Housing Society Street no.1 Rajkot. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Choubey, Kashi Nath. M.A., Vidyavachaspati. *b.* 25.07.1944. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School No. 2, Tilak Nagar, New Delhi. *Add.* N-16, Vijay Vihar, Uttam Nagar, Delhi – 110059.

Choubey, Lalit Kumar. Ph.D., Acharya in Sāṅkhyayoga & Darśana. *b.* 20.06.1962. Asst. Prof., Sampoornanand Skt. Uni., Varanasi. *Gp.* Sudhanshu Shekhar. *Add.* C.K. 34/39, Lahori Tola, Varanasi-1. *Spl.Ref.* Sāṅkhyayoga Śāstra.

Choubey, Rakesh Chandra. Acharya (Vyākaraṇa, Shikṣā). *b.* 02.06.1963, Loharatala, Jaunpur, (U.P.). Asst. Prof. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, ShiksaŚāstra.

Choubey, Suresh Chandra. M.A., Ph.D. *b.* 21.07.1958. Roopchandrapur, Varanasi. Asst. Prof., M.G. Kashi Vidyapeeth, Varanasi. *Ps.* 05. *Gp.* Prof. Jai Shankar Tripathi, Prof. Shri Narayan Mishra, Prof. Vishvanath Bhattachrya, Prof. Ramayan Prasad Dwivedi. *Sp.* Dr. Yogendra Shastri, Rajneesh Pandey, Pratibha Kumari, Aparna Tripathi. *Add.* 1, M. Gandhi Kashi Vidhyapeeth, Varanasi. *Ph.* 09415817881.

Choudhary, Satya Dev. M.A. (Skt, Hindi), Ph.D. *b.* 21.05.1921. Rtd. Asct. Prof. DU. Emritus Prof. D.U. *Bks.* 30. Bhāratīyakāvyaśāstra, Kāvya Ke Paridṛśya, Saṅkṣiptamahābhārata, Ṛgvedīya Saṃvādasūkta. *Add.* F-11/12, Model Town Delhi – 09. *Spl.Ref.* Director, Ramkrishna Jai Dayal Dalmia Sri Vani Nyasa, Delhi, Visiting Prof. Indology Institute Tubingan Univ. Germany, , Awarded by Punjab Govt., UP Govt., Delhi Skt. Academy, Hindi Academy etc. President Awardee.

Ciraputker, Narayan. Acharya, Tīrtha in Tarka, Kāvya, Purāṇa & Veda, M.A.. *b.* 25.03.1925, Vill. Devagude Nadagavata, Maharashtra. Hon. Asstt. Secretary. *Add.* Deccan College, Pune, Maharashtra. *Spl.Ref.* Navya Nyāya-Kāvya-Purāṇa, Veda.

Cunetha, Narayandutt. Sāhitya, Siksashastri. *b.* 29.12.1925, Pithauragarh, Uttarakhand. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Devendradutt, Dr. Gopal Mishra. *Add.* Shri Kurmanchal Anglo Sanskrit Maha-vidyalaya, Champawat, Pithauragarh, Uttarakhand. *Spl.Ref.* Sāhitya, Shikhaśāstra.

D

Dabral, Ashok Kumar. M.A. (Skt. & Hindi),Sāhitya Ratna, Ph.D. *b.* 14.04.1943. Gadhwal. Rtd. Prof. *Bks.* 07 Devatātmā-himālayaḥ, Dhukṣate Hā Dharitrī, Dāyādyam, Dudhukṣā, Atha Iti. *Ps.* 05. *Add.* A-3/29 FF Sector 11 Rohini New Delhi 110085. *Spl.Ref.* Skt. Scholar & Poet.

Dabral, Sadanand. *b.* 1877, Timli (Pandi) Uttarakhand. *Gp.* Damodar Dabral. *Bks.* 04. Narnārāyaṇīyam Mahākāvyam, Kīrtīvilāsam, Divya Caritam, Rāsvilāsa. *Spl.Ref.* Tantra, Title of Siddhakavi. *Expired in* 1950.

Dabral, Sushila. M.A. (Skt., Hindi). *b.* 15.08.1947. Gadhwal. *Bks.* 04 (Trans., Ed. Published) Devatātmāhimālayaḥ, Dhukṣate Hā dharitrī, Dāyādayam, Dudhukṣā. *Spl.Ref.* Scholar & Poet.

Dadhich, Harishastri. Acharya in Veda, Sāhitya, Tantra. *b.* 18.04.1893, Jaipur. Lecturer, Maharaja Skt. College, Jaipur. *Gp.* Shri Laxmiramji Swami, Shri Chandra dutta Ojha, Pt. Biharilal Ji Shastri. *Sp.* Vijay kumar, Rajkumar. *Bks.* 12. Udara-Praśasti, Vāṇīlaharī, Lalitāsahasra-kāvyam, Siddhīstavaḥ, Śrī Mādhava-kāvyam. *Expired in* 1970. *Spl.Ref.*. Chief Editor of 'Bharati' Skt. Patrika of Jaipur, Awarded 'Ashukavi' 'Kavibhushan' by Jaipur Skt. Samiti, Jaipur. Also resipient of 'Ayurveda-bhushan' by Ayurved Anushilan Samiti, Jaipur, 'Aamnaya Dhurandhara' by Prayag & 'Sahityamahamahopadhyaya' by agra.

Dadhich, Nangalya Gopinath. Sāhitya, Nyāya, Mīmāṃsā. *b.* Nangalya, Jaipur. Lecturer, Skt. College, Jaipur, RJ. *Gp.* Pt. Jeevnath Ojha. *Bks.* 29. Ānandanandanakāvyam, Mādhavasvā-tantryam, Tarkakārikā, Santoṣapañcāśikā, Kṛṣṇāryāsaptaśatī. *Spl.Ref.* Famous Skt. Poet.

Dadhich, Nityanand Shastri. *b.*1889, Marvad, Jodhpur Raj. Famous Poet of 20th Century. *Bks.* Rāmakathā Kalpalatā (Mahākāvya), Śrīdadhīcicarita, Śrīrāmacaritābdhiratnam, Śrīhanumaddūtam, Laghucchando'laṅkāra-darpaṇaḥ (Devīstavaḥ) *Expired in* 1961. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Kāvya, Śāstra, Alaṅkāra, Chand, Citrakavya Hindi. He is the well known poet and Aashukavi of 20th Century in Skt. and Hindi.

Dadhich, Ram Kumar. *b.* 07.09.1959, Narodada (Sikar) RJ. Principal, Acharya Sanskrit College, Ajmer. *Bks.* 05. Ādhunikasaṃskṛtasāhityeti-hāsaḥ, Prācīnabhāratasya Sāhityikasaṃskṛtika-ścetihāsaḥ, Alaṃkāraśāstretihāsaḥ, Kāvyā-laṃkārasutra kī Vyākhyā. *Ph.* 09351643205. *Expired in* 1920.

Dadhich, Rani. M.A.(Skt. & Edu.), Acharya in Dharma Śāstra. Shikshacharya, Ph.D. *b.* 24.05.1980, Jodhpur, RJ. Instructor. R.Sk.S. New Delhi. *Gp.* Prof. Shrikrishna Sharma, Prof. Narendra Awasthi, Prof. Paras Nath Dwivedi. *Bks.* 01. Bhāratīya darśano kī Śāstrārthapaddhati. *Ps.* 30. *Add.* 2018, Shakti Sadan, Purani Basti, Mistri Khana Road, Gangauri Bazar, Jaipur – 302001.(RJ). *Ph.* 09414145879. *Spl.Ref.* Editing of many Text books of Self study material for Open University, Kota. Dramatis and Annunsore of All India Radio.

Dadhimath, Pt. Kanhaiyalal. Acharya in Nyāya. *b.* 1883, Jaipur. Asst. Prof. Skt. College, Jaipur. *Expired.* 07.05.1964. *Spl.Ref.* Recipient of Vidyasagar', 'Sarvabhaum', 'Nyayratna' Awards. Language.

Dadhimatha, Pt. Shivadatta. Vyākaraṇa. *b.* 1851, Jaipur. Prof. Oriental College, Lahore. *Gp.* Badri Lal Dadhicha, Pt. Rambhaj Saraswat, Shivram Saraswat. *Bks.* 05. Vyākhyāsudhā Siddhānta Kaumudī, Kāśikā, Nirukta, Mahābhāṣya (all Books ed.). *Expired.* 1986. *Spl.Ref.* Recipient of M.M. Award.

Dahal, Lokmani. Acharya in Vedānta, ShikshaŚāstra. *b.* 24.04.1939, Pangatha Shagushawasabha, Nepal. Vice-Principal. *Gp.* Ramgovind Shukla, Sheshraj Sharma, Somnath Sharma. *Add.* 22/7, Durgaghat, Varanasi. U.P. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Daina, Suryanarayan Avadhanalu. *b.* 14.08.1948, A.P. Vedaparayana-Karta (Vedic Exponent), Shri Venakateshvara Swami-devasthanam. *Gp.* Ramamurti Avadhani. *Add.* 18-B, Type Quarters, Tirumala, A. P. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Dalai, Bata kishor. Prof., Centre of Advance Study in Skt., *Bks.* 20. Dharma Studies, Ancient Theories of Values and Ethics, Studies in Indian Linguistics, Upaniṣadic Concordence, Theories of Inherence in Indian Philosophy. *Ps.* 50 *Add.* CASS, Univ. of Pune. Pune -7, *Mob.* 8983318993.

Dalai, Kishore Kumar. Shiksha Shastri, Acharya, NET, Ph.D. *b.* 28.12.1969. Katak. Asst. Prof. Rashtriya Sanskrit Sansthan, Garli. *Ps.* 03. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan, Garli Campus, Kangra -177107. H.P. M. 09816535130. *Spl.Ref.* Member of VMC Kendriya Vidyalaya Naleti.

Damodaran, A.R. Śiromaṇi in Vyākaraṇa & Vedānta. *b.* 18.07.1949, Madhurantakam, Dist. Chengalpattu, T.N. *Gp.* P.N. Raghavacharya & Rajagopalacharya. *Add.* 17, Sannadhi Street, Madhurantakam, T.N. – 603306. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Vedānta.

Damodaran, K.S. *b.* 31.07.1934, Koram, Chengalpattu, T.N. *Gp.* R. Krishnaswami. *Add.* H.No. 3, T.T.D. Quarters, Shrinivasa-mangapuram, Chittur, A.P. – 517102. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Damodaran, P. M.A. *b.* 29.11.1946, Thiruvagur, Arikkulam, Kozhikode, Kerala, Teacher. Govt. Secondary School, Naduvanur. *Add.* Thiruvagur, Kozhikode (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Damodaran, R. Shastri *b.* 25.02.1904, Writer, Politian and Journalist, Kerala. *Bks.* 40. Indian Thought, Man and Society in Indian Philosophy, Marx Hegel and Sreesankara, Marx comes to India (Co authored with P.C. Joshi, Bhāratīya Cintana Paramparā. ***Expired*** 03.07.1976. *Spl.Ref.* He had Joined Kerala Socialist Party and it may the some year formed the kerala unit of the communist party. He organized cair workers and beedi workers. Become KPCC Geranal Secretory 1940.

Dandapani, Kurukkala, A.N. *b.* 1949, Tirunageswaram, Kumbakonam, TN. Veda Teacher. *Gp.* Vishvanathashivacharya, Rama-krishna Pandita, Gopatikrishna. *Add.* Naganatha Swamidevasthanam, Tiruna-geshwaram, Kumbakonam, T.N. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Dandekar, Ramchandra Narayan. M.A. in Skt. & Ancient Indian Culture, Ph.D. *b.* 17.03.1909, Satara, MH. Skt. Scholar & Indologist, Presently National Research Prof., Govt. of India. *Bks.* 30. Vedic Mythological Tracts; Vedic Bibliography (5 vols); Śrautakośa, (2 vols); Jñānadīpikā; Rasaratnapradīpikā. *Add.* 787, Shivaji Nagar, Pune – 411004, MH. *Tel.* 376352. *Spl.Ref.* Conferred 'Padma Bhushan', 62, by the Govt. of India; Vachaspati (D.Litt). 79, by Sampur. Skt. Univ., Varanasi, 'Hony Doctor of Letters' by B.H. Univ., Varanasi, Poona Univ.; Heidelberg Univ. Germany; Univ. of North Bengal & Tilak Maha. Vidyapeeth, Pune, Visited Germany, USA & several Europeon countries. Recipient of 'Skt.Sāhitya Vishishtha Puraskar', 1978, 'Shri Sankardeva Award', 1991-92 'Viswa Bharati Award', 1993, 'Rashtra Bhushan Award', 1995 'Lokamanya Tilak Sanman Puraskar',1996 etc.

Dangavala, Jagadishachandra. M.A. *Age.* 53 yrs. Rtd. Joint Secretary. *Add.* I.A. 33, Ashok Vihar, New Delhi – 110052. *Spl.Ref.* Sāhitya.

***Dange, S.S.*.** M.A., Ph.D. Head, Skt. Dept., Bombay Univ. *Add.* Ranade Bhavan, Vidyanagari, Santa Cruz (East), Bombay – 400098 (MH). *Spl.Ref.* Veda, Dharmaśāstra, Alaṅkārasastra.

Dantre, S.R. M.A., Ph.D., D.Litt., L.L.B., Acharya. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Skt. Dept., Government Arts and Commercial College, Indore (M.P). *Spl.Ref.* Sāhitya, Kavyaśāstra.

Darbari, Lal Satyabhakt. *Gp.* Ganesh Prasad Varni. *Bks.* 02. Jaina Darśana, Jaina Dharmamīmāṃsā. *Spl.Ref.* He Starded Satya Darshan & Sangam Patra magazine.

Das, Abhiram. Acharya in Vedānta, M.A.. *b.* January 1924. Bhajgava, Etawah, U.P. Founder Teacher, Sri Jagadguru Ramanandacharya Adarsa Samskrta Vidyapitham. *Gp.* Mohana Lala, Nilameghacharya. *Add.* Sri Jagadguru Ramanandacharya Adarsh Skt. Vidyapeetham. Girinar Road, Junagarh (GJ). *Spl.Ref.* Vedānta.

Das, Anil Kumar. Tīrtha in Kāvya, Vyākaraṇa. *b.* 08.01.1944. Varajpur, WB. *Gp.* Niranjana Svarupa Brahmachari, Purana Das, Siddhesvara Mukhopadhyaya. *Add.* Vill. & P.O. Hasanaba,. Bhela, North Dist. 24 Parganas, W.B. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Das, Ashwini Kumar. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya & Vedānta, Shiksa-shastri. *b.* 01.11.1944. Saramera, Nalanda, Patna, Bihar. Prof. L.B.S. R.Sk.S. Vidhyapeeth. New Delhi. *Bks.*1, *Ps.*2. *Expired in* 2009. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, Vedānta.

Das, Avadh Bihari. Acharya in Vyākaraṇa, Vedānta. *b.* 04.03.1944. Gaya Bihar. Head of the Deptt. of Vyākaraṇa. *Add.* B-1/155, Mithila Bihari Temple, Assi, Varanasi (U.P.) *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Vedānta.

Das, Ayodhya Chandra. Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 18.02.1937, Medinipur, WB. Lecturer. *Gp.* Acharya Visvanatha, Dr. Gaurinatha Sastri, Acharya Sambhu Datta Sarma, Dr. Dharmendra Natha Gupta. *Add.* Dept. of Skt.. Kurukshetra Univ. Kurukshetra (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Das, Chandra Shekhar. M.A., Acharya in Vyākaraṇa, Āyurveda, Mimāṃsā. *b.* 30.07.1927. Puri, Orissa. Rtd. HOD. *Add.* Pathuria Sahi, Puri – 01. *Spl.Ref.* Honour by Mukti Mandap Pandit Sabha, Puri, Sri Jagannath Mandir, Lifetime Achievement Award Jagannath Skt. Univ. Puri, Title of M.M. by Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupati, Honour by Orissa Govt., President Awardee. In addition to his contribution for popularization of Sanskrit, he helped to spread Vedic Parampara, through Mahrshri Veda Vigyan Vishva Vidyapeetha, Noida.

Das, Chhatrapati. Acharya in Navya Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.* 12.06.1940, Kurahana, Varanasi, U.P. Teacher. *Gp.* Chakradhar Shastri. *Add.* Udasina Sanskrit Mahavidyalaya, Kanakhal, Haridwar, U.P.

Das, Debkumar. M.A. Ph.D. *b.* 15.09.1947, Midnapur, W.B. Asct. Prof. Ghatal R.S. College. *Bks.* 11. Saṃskṛta Vaicitrya, Naiṣadhacarite Darśanam, Saṃskṛta Sāhityālokaḥ, Saṃskṛta Sāhitya Mañjūṣā, Uttararāmacaritam (ed. & Bangālī tr.) *Ps.* 09. *Add.* 1/B. Ghoshpara Lane. Calcutta – 700036. *Ph.* (033) 5460615.

Das, Gupta Mau. M.A., Ph.D. *b.* 29.04.1968, Kolkatta. Reader, Deptt. of Skt. Kolkatta Univ. *Bks.* 02. *Add.* 5, Swami Vivekanand Road, Extn. West Rajapur Kolkatta - 700032 Ph. 033-24259351, M. 09831975474, uncommon.mau.@gmail.com

Das, Indramani. M.A., Acharya in Jyotiṣa, Ph.D. *b.*01.02.1950. Bihar. Asct. Prof. R.Sk.S. Jammu Campus. *Bks.* 01. Yavana - Bhārtīya - Siddhānta-Jyotiṣayostulnātmakamanuśīlanam. *Ps.* 10. *Add.* R.Sk.S. Ranbir Campus, Kot Bhalwal, Jammu. *Ph.* 456246.

Das, Jagadisha. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 15.05.1955, Lakshman Ghat, Ayodhya, U.P. Assistant Head of Deptt. *Add.* Sri Rupakala Skt. Vidyapith, Sri Divyakala Kunj, Ayodhya, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Das, Karunasindhu. M.A., Ph.D., *b.* 11.11.1947. Vice-Principal. Ravindra Bharati Univ., Calcutta, (W.B.). *Add.* 56 A Barrakpur Trunk Road, Calcutta (W.B.). *Spl.Ref.* Vedānta, Vyākaraṇa.

Das, Maya. M.A., Ph.D. *b.* 17.12.1952. Shantiniketan, W.B.. Asst. Prof. in Philosophy.

Ps. 02. *Add.* D/o Prof. Upendrakumar Das, Sripalli, Santniketan, W.B. 731235. *Ph.* (03463) 52778. mayanila@dte.vsnl.net.in.

Das, Monidipa. Kāvya Upādhi, Ph.D. *b.* 24.11.1972, Karimganj. Asstt. Prof. Victoria Inst. Kolkatta. *Bks.* 01. *Add.* 27M, Raja SC Mullick Road Flat No. 6, Jadavpur, Kolkatta–700032 M. 09339553427. Email-monidipa_sanskrit@yahoo.co.in *Spl.Ref.* Sāhitya.

Das, Partha Pratim. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 28.10.1963, Kolkatta. Prof. of Skt. Burdwan Univ. *Bks.* 08. *Add.* D3 Tarabagh Burdwan 713104 W.B. M. 09474968701.

Das, Prabhat Kumar. M.A., B.Ed. *b.* 18.05.1975, Orissa. Asst. Prof. *Ps.* 01. *Add.* C/o Prahllad Charandas At – Balisahi, P.O. Balikuda, Disst. Jagatsinghpur, Orissa. *Spl.Ref.* Prakrit.

Das, Rakesh. Acharya, M.Phil. *b.* 27.03.1985. Asst. Prof. Deptt of Skt. Studies RK Mission Vivekanand Univ. *Gp.* Prof. K.B. Ramkrishnaacharyulu, Dr. B.V. Venkatraman, Dr. Umesh Nepal. *Bks.* 01 Kavīndra-Kathā-Kallolinī. *Add.* Naveen Nagar Aswinipally P.O. Barsat North 24 Pragna - 700124 W.B. Ph. 033-25527496., M. 09748246305. rakdas@gmail.com *Spl.Ref.* Sub Editor Katha Sarit

Das, Ram Chandra. Acharya in Sāhitya. *b.* 04.10.1950. Asst. Prof.. *Add.* Ramadhin Sanskrit Mahavidyalaya, Berhampur, Ganjam (Orissa). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Das, Ramprakash, Acharya, M.A., Ph.D., B.Ed. *b.* 13.04.1946. Editor, Akashvani-Doordarshan News. *Add.* H-393, Srinivaspuri, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Das, Rekha. M.A., B.Ed. *b.* 23.03.1948, Delhi. Asst.Prof., Bhagavan Mahavir Sanskrit Vidhyapeeth, Shakti Nagar, Delhi. *Add.* I – 1606, Chittaranjan Park, New Delhi 110019. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Das, Tripti. M.A., Ph.D appearing *b.* 28.02.1963. Silchar. Asst. Prof. Women's College Silchar. *Ps.* 01. *Add.* Women's College Silchar, Cachar-788001 Assam. Ph. 03842262909, M. 09954398216.

Das, Vaikunthapriya. Acharya. *b.* 29.10.1933, Satod, MH. Asst.Prof. *Add.* Motinath Sanskrit Mahavidhyalaya, Ramesh Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāṅkya, Yoga, Vedānta, Purāṇa.

Dasacharya, Tangoda. *b.* 04.04.1911, Saratur, Dharwar, KT. Skt. Teacher. *Add.* Shri Gururaja Pathasala, Vyasa Mandir, Shorapur – 585224 (KT). *Spl.Ref.* Dvaita Darśana.

Dasgoswami, Raghavanand. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 1852, Khanduru, Dengapadara, Ganjam, Orissa. *Bks.* 03. Oriya Translation of Bhagavad Gītā, Oriya Translation of Siddhāntakaumudī, Prasannarāghava-īkā. *Expired on.* 16.11.1959. *Spl.Ref.* Associated with many pandit sabhas & Religious Institutions.

Dasgupta, Surendra Nath. B.A., M.A. *b.* 1887, Kushlia, Bengal. (Now in Bangladesh). Principal of Sanskrit College. *Sp.* Debiprasad Chattopadhyaya. *Bks.* 10. A history of Indian Philosophy (5 Vol.), General Introduction to Tantra Philosophy, A Study of Patañjali, Yoga Philosophy in Relation to other, Systems of Indian Thought, Hindū Mysticism. *Expired in* 1952. *Spl.Ref.* Dasgupta had taken the Griffith Prize in 1916 and his doctorate in Indian Philosophy in 1920.

Dash, Achyutanand. Shastri, M.A. (Skt./Pali), M.Phil., Ph.D. *b.* 20.05.1960. Orissa. Prof. Dr. H.S. Gaur Univ. Sagar, M.P. *Gp.* Prof. S.D. Joshi, *Sp.* Dr. Narayana Dash, Dr. Sheetanshu Tripathi. *Bks.* 19. Vyutpattivāda (ed.), Ātmajñānabhakti-yoga, Ātmatattva Vivekaḥ (ed.), Nyāyapradīpaḥ, Reflections On Kāraka Theory. *ps.* 80. *Spl.Ref.* Research Associate of BORI, Pune (1988). Co-editor of Encyclopedic Dictionary of Sanskrit in Historical Principle, Deccan College, Pune (1988-90). Visiting Professor of University of Oxford (1993,1997-98) and The first and founder Visiting Prof. of Sanskrit in the '*Chair for Sanskrit and Buddhist Studies*' at the National University of Mangolia (2006). Scholarly visited UK, Paris, Switzerland etc. UGC Minor Project on "*Reflections on Kāraka*

Theory" (Completed). UGC Major Project on *"Vutpattivāda : A Critical Study"* (Completed). Coordinator, Manuscript Resource Center, Dept. of Sanskrit, Dr.H.S. Gaur V.V., Sagar. Twenty episode have been prepared entitled 'Nyāya Darśana Vyākhayānamālā' in Sanskrit. He was Awarded by 'Vagarth–Samman' 2007 by M.P. Sanskrit Board, Bhopal. Gold made list, 1983, Pune Univ. He was Awarded by Jagadguru Shankaracharya of Kanchi-puram,1993. Developed a software jointly with Dr. Pankaj Chaturvedi ' GAVEṢIKĀ-CS4' the complete software solution for Sanskrit studies on preparing dbase for Sanskrit study and research. Many National Seminars organized by Prof. Dash. ***Expired on*** 05.06.2009.

Dash, Damodar. Sahityopadhyay. ***b.*** 05.08.1900, Vanaraghunatapur, Dunkapada, Ganjam, Orissa. Asst. Prof. (Sahitya) Ramdin Skt. College, Brahmapur, Ganjam, Orissa. ***Bks.*** 01. Aṣ-ādaśa-Purāṇam. ***Expired.*** 10.10.1992.

Dash, Divakar. Achary in Vyākaraṇa, & Vedānta. ***b.*** 03.10.1925, Gouradelpura Shasanam, Kodala, Ganjam, Orissa. Asst. Prof. R.Sk.S., Puri Campus, Orissa. ***Bks.*** 04. Śukla-yajurvedakāṇva Saṃhitā with sāyaṇabhāṣya (ed.). Vāmadevasaṃhitā (ed.). Śrījagannātha Rathotsavaḥ (ed.). Vāstusūtropaniṣad (ed.). ***Expired on.*** 20.06.1986.

Dash, Godavarish. Acharya in Skt., Diploma in Engineering. ***b.*** 1910, Podamari, Ganjam, Orissa. ***Bks.*** 01. Līpītattva, 7 Commentaries in Oriya of Vedas. ***Expired in.*** 2010. ***Spl.Ref.*** Contribution to Promote Vedic Rituals.

Dash, Gopal Krishna. Yajurveda Mādhyandina Saṃhitā, M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 24.11.1952. Puri. Prof. Ex-HOD PG Deptt of Skt. Utkal Univ. ***Gp.*** Pt. Ganeshwar Dass, Swami Janardanand Saraswati, Prof. A.C. Swain, Prof. K.C. Acharya, Sh. Sadanand Ramanuj Dass, Dr. Sudeshwar Hota, Prof. Sadashiv Praharaj, Sh. Harihar Satpati, Sh. Ramchandra Panda, Sh. Jagarnath Rath, Pt. Kashinath Mishra, Pt. Bhagavatra Prasad Tripathi, M.M. Pt. Chandrashekhar Dass, Prof. H.P. Dwivedi, Sh. Radhamohan Mahapatra, Dr. B.M. Chaturvedi, Sh. Radharaman Dass, Ketaki Nayak. ***Sp.*** Prof. Radhamadhav Dass, Prof. Surendra Mohan Mishra, Prof. Sukhdev Bhoi, Dr. Madhusudan Mishra, Dr. Niranjan Pati, Sh. Tanmey Behra (IPS), Pramod Chandra Bhera (OAS), Shakuntala Sahu (OFS), Dr. Jagmohan Acharya, Dr. Bamdev Senapati, Dr. Nirmal Chandra Panda etc. ***Bks.*** 27 Vyākaraṇa Darpaṇa, Saṃskṛta Prabhā, Saṃskṛta Mandākinī, Nārada in Mythology, Siddhānta Kaumaudī. ***Ps.*** 155. ***Add.*** PG Deptt of Skt., Utkal Univ., Bhuwaneswar - 751004 Odisha. ***Spl.Ref.*** Yagurveda Madhayandin Shakha, Awards Vidwat Samman 2002, Kavi Shri Harsh Samman 2003, Saraswati Varad Putra Samman 2004, Feciliation by Odisha Skt. Academy 2001, Scholar of Excellence Award 2006, First Prof. Krishan Chandra Arya Samman 2006, President Odisha Skt. Academy & Neelachal Tatva Sandhan Parishad, Puri, Chairman Board of Writers etc., Mauritius, 2009.

Dash, Kadambini. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 16.01.1958, Puri, Reader Shailbala Womens College Katak. ***Gp.*** Pt. Dibakar Dass, Prof. A.C. Swain, Prof. K.C. Acharya, Prof. A.C. Sarangi, Dr. U.N. Dhal, Prof. P.R. Roy, Shri. Sadanand Ramanuj Dass, Prof. R.N. Panda, Shri. B. Kar, Prof. L.K. Satyapathi. ***Sp.*** Dr. Bhagyalipi Mala(Curator odhisa State Musuem), Dr. Surekha Dass, Dr. Manasvini Sarangi, Anita Patri, Nandita Mishra, Rojalim Mohanty (Odisi Dancer), Dr. Manan Sahu, Rashmikar. ***Bks.*** 24 Raghuvaṃśam, Megha-dūtam, Cārudattam, Siddhānta Kaumudī. ***Ps.*** 40. ***Add.*** Shailbala Womens College Katak, Odhisha. Ph. 0674-2580862, M. 09861064212. kadambinidash8@gmail.com ***Spl.Ref.*** Dr. Kunjbihari Tripathi Smriti Samman, Linguistic Samman at National Seminar, Katak, Member Board of Writers, Master Trainner Orientation Programme, Patron All Odisha Assoc. of College teachers in Skt. etc.

Dash, Kailash Chandra. Acharya in Vyākaraṇa, Vidya Varidhi. *b.* 10.04.1970, Berhampur, Ganjam, Odisha. Asst. Prof., R.Sk.S., Bhopal Campus, Bhopal. *Gp.* Prof. K.V. Ramakrishnamacharyulu, Prof. J. Ramakrishna, Prof. S.S.N. Murty, Prof. R.L.N. Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Pitambarpur, P.O. Siddheshwar, Vai – Balipada, Dist. Ganjam, Odisha – 761054.

Dash, Keshab Chandra. Acharya, M.A., M.Phil., Ph.D., D.Litt.Dipl in German, French. *b.* 06.03.1955, Hatasahi, Katak. Orissa. HOD Deptt of Nyaya Darshan Shri Jagannath Skt. Univ. Puri. *Bks.* 40. Śītalatṛṣṇā, Nikaṣa, Ṛtam, Añjali, Visargaḥ. *Add.* Shashirekha, Bhoodan Nagar, Univ. Road, Puri, Orissa - 752003. *Ph.* 06752 - 251820. dash_keshab@-indiatimes.com. *Spl.Ref.* Nyāya Darśana, Vidvatmani Sri VaniSāhitya Sansad Samman, Tantra Saraswati Delhi Sanskrit Academy award, Sankar Puraskar etc.

Dash, Kshirod Chandra. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.* 26.04.1954, Katak, Orrisa. Asct. Prof., Sri Jagannath Skt. V.V. *Bks.* 04. Tāruṇyaśatakam, Cilikā, Arṇyasasyam, Ramākāntakāvyasañcayanam. *Ps.* 27. *Spl.Ref.* OrissaSāhitya Academy Puraskar, DelhiSāhitya Academy Anuwad Puraskar, Jaimant Mishra Puraskar.

Dash, Narayan. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 25.06.1972. Ganjam, Orissa. Lecturer Ramkrishna Mission Kolkatta. *Bks.* 12. Triraṅgapatākātale, Kāragilalaharī, Vahnivalayaḥ, The Computational Study of Śṛṅgāraprakāśaḥ. *Ps.* 26. *Add.* Ramakrishna Mission Residential College Narendrapur (South 24 Paraganas), Kolkatta – 13 WB. *Spl.Ref.* Modern Skt. Poet, Story Writer, Critics, Editor of 'KATHASARIT' Patrika. Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Dash, Nata Narayan. Kāvyatīrtha. Purāṇaratna. *b.* 17.05.1948, Panchrol, WB. Principal. *Gp.* Chaturbhuja Mishra, Jiva Bhattacharya. *Ps.* 05. *Add.* Shri Jagannath Chatuspathi, Vill. & P.O. Panchrol, Midnapur, WB. *Spl.Ref.* Sāhitya, Purāṇa.

Dash, Nilakantha. M.A. in Skt., Indian Logic & Epistemology, Ph.D. *b.* 15.07.1970. Keonjhar, Orissa. Asct. Prof., Dept. of Hindi and Indian Studies, EFLU, Hyderabad. *Gp.* Sadashiv Mishra, Kamal Lochan Kar, Prof. V.N. Jha, Prof. R.V. Tripathi, Prof. J.P. Dimri. *Bks.* 03. A New Bibliography of Skt. Drama, Turning Points in Indian Shastric Tradition, Supernormal Perception in Indian Philosophy. *Ps.* 07. *Add.* F – 1. Varsith Nivas. H.No.- 12-10-587/23, Medibavi, Sitaphalmandi, Secunderabad – 500061. *Ph.* (040) 27689410. (M) 09989353187. *Spl.Ref.*. Member of many Commities Regarding the design of syllabus and study material.

Dash, Nilamani. Acharya in Sāhitya. *b.* 12.08.1918, Kharasatpur, Balasore, Orissa. Rtd. Principal. *Gp.* Kashinath Mishra, Vasudeva Mishra, Pundarikaksa Mishra, Mayadhra Tarkapancanana. *Add.* Kharasatpur, Annatapur, Balasore (Orissa). *Spl.Ref.* Sāhitya, Sāṅkhyayoga,

Dash, S.R. M.A., Acharya in Vedānta, Sāṅkhya & Sāhitya. Rt. Prof., P.G. Skt. Dept. *Add.* Utkal Univ., Vani Vihar, Bhuvaneshwar – 751004 (Orissa). *Spl.Ref.* BharatiyaDarśana, Sāhitya.

Dash, Somnath. Acharya, Shiksha Shastri, NET, Ph.D., Dipl. in Multimedia *b.* 04.04.1976. Asstt. Prof. Research and Publication, Rashtriya Sanskrti Vidyapeetha, Tirupathi. *Ps.* 30. *Spl.Ref.* Akhil Bhartiya Navodit Yuva Kavi Puraskar, Kavi Bhushan, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Dash, Subhash Chandra. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 11.01.1963, Mugagahin, Banamba, Cuttack, (Orissa). Asst. Prof. Utkal Univ.. *Bks.* 02. Gaṅgeśa on Yogarūḍiḥ, Bibliography of Pālī & Buddhism. *Ps.* 35. *Add.* Dept. of Skt., Utkal Univ., Vanivihar, Bhubaneshwar, Orissa - 751004. *Ph.* (R) 583303. (O) 582315. *Spl.Ref.* Saṃskṛta and Orissi Poet.

Dash. R.S. M.A., M.Phil., Certificate Courses in Russian & German. Asst. Prof., Skt. Dept. *Add.* Utkal Univ., Vani Vihar, Bhuvaneshvar, Orissa – 751004. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Linguistics.

Dasharth. Shiksha Shastri, Acharya, M.A., NET, Ph.D. *b.* 08.08.1976. Bhiwani. Lect. Sri Jairam Vidyapeetha. Kurukshetra. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Vill. Mundhal Kalan Distt. Bhiwani - 127041 Haryana. M. 9813300450.

Dasora, Karuna. M.A., Ph.D.. *b.* 21.07.1957, Udaipur, RJ. ***Add.*** 5, Panchavati Road – 1, Udaipur – 313001 (RJ.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Datt, Jagadeva. M.A., Ph.D.. *b.* 01.07.1945. Teacher (TGT) Skt.. ***Add.*** 1/3421, Ram Nagar, Loni Road, Shahadara, New Delhi – 110032. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Datta, Aruna. M.A., B.Ed.. *b.* 29.05.1943. Teacher. ***Add.*** B – 03. B/41A, Janakpuri, New Delhi – 110058. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Datta, Dinesh Chandra. M.A. in English, Urdu, Skt., Bangla & Latin. Prof. Maharaja College, Jaipur, RJ. ***Sp.*** S.J.B. Mathur. ***Bks.*** 11. Bhāratagāthā, Subhāṣagauravam, Chandaḥ Sandohaḥ, Ravīndra Pratibhā. ***Expired in.*** 1972. Jaipur. ***Spl.Ref.***. A Great Singer & Poet of Skt., Urdu, English, Bangla etc. Translation of Meghdoot in English.

Datta, Krishna. M.A., B.Ed.. *b.* 13.06.1948. Teacher (PGT). ***Add.*** Bharatiya Vidya Bhavan Mihta Vidyalaya, Kasturba Gandhi Marg, New Delhi – 110001.

Datta, Nilanjana Sikdar. Ph.D. *b.* 13.10.1954. W.B. Asct Prof. CAL. Univ. ***Bks.*** 01. The Ṛgveda As Oral Literature. ***Ps.*** 01. ***Add.*** F - 35/3. Karuna Mayee. Estate. Salt Lake. Calcutta - 700091. ***Ph.*** (033) 23590177.

Datta, Parimal Kumar. M.A., M.Ed., Ph.D. *b.*08.12.1955, Cossim Bazar, Manindra Nagar, Murshidabad, WB. Asst. Prof. Kharupetia College Kharzipetia, Darrang, Assam. ***Bks.*** 02. Tantra its Relevance to Modern Times, A Unique Trilingual Dictionary Saṃskṛta Assamese English. ***Add.*** Ramnagar Ward No. 8, Kharupetia Town, P.O. Kharupetia Darrang. ***Spl.Ref.*** Awards – Prasannakumar Sarbodh Silver Medal, Tarachand Silver Medel, Jawahar Lal Nehru Memorial Award, Best Seminar Paper in Classical Skt. In Kurukshetra Univ., 44th Oriental Confrence.

Datta, Pradyot Kumar. Veda Vyākaraṇa Tīrtha, M.A., Ph.D. *b.* 01.11.1950. Bhagalpur Bihar. Prof. Jadavpur Univ. ***Bks***_16 Pāṇinī & Prātiśākhya, Arthasaṅgraha, Source Material of Phonetics, Scientific eliments in the Vedas. ***Ps.*** 31. ***Add.*** 30 1st Row Samabayapali, Howrah-711205. Ph. 033-26710315, M. 09231960643.

Datta, Pradyut Kumar. M.A., Ph.D.. *b.* 01.11.1950, Howrah, (W.B.). Vice-Principal, Vaidik Studies, Sanskrit Dept., Rabindra Bharati Vishwavidyalaya, Calcutta. ***Add.*** 30, First Row, Samabayapali, Howrah (W.B.). ***Spl.Ref.*** Veda, Vyākaraṇa Śāstra.

Datta, Samir Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 08.07.1938. Dantan, Midnapore. Asct. Prof. ***Bks.*** 01. Aśvaghosa - As a Poet & Dramatist : A Critical Study. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 11 / 11 - A. Lake East (6th) Road. Calcutta - 700075. ***Ph.*** (033) 2416 9871. ***Spl.Ref.*** Literature & Literary Criticism.

Dattavadakar, Keshav Purushottam. Kavyatirth. *b.* 02.09.1913, Chinchali, Belgaon, KT. ***Add.*** Ganga Nivas. Tilak Mandir, Somora Peth, Sangli (MH). ***Spl.Ref.*** Kāvya.

Dave, Alkesh Vasudev Bhai. Ph.D. *b.*05.11.1968. Prof. GJ Arts & Science Alisbridge Ahemdabad. ***Add.*** 108, Taranga Hill Society Near Arjun Aashram Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Dave, Chandrakant. Acharya in Vyākaraṇa, Darśana & Sāṅkhyayoga. *b.* 20.04.1940, Vyavar, RJ. Asct. Prof. ***Gp.*** Pt. Chandrashekhar Dwivedi, Pt. Ramanand Shastri. ***Add.*** Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Skt. Vidyapeeth, Katwaria Sarai, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāṅkhyayoga.

Dave, Jaishri Ben D. Ph.D. *b.* 13.05.1952. Prof. Valiya Arts College, Vidha Nagar, BhavNagar. ***Add.*** Aanand Watika, Near Bhagini Mandal, Plot No. 14, Tapteshwar Bhav Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Dave, Jaya. M.A., Ph.D., B.Ed., M.Ed.. *b.* 28.12.1962. Jodhpur, RJ. Asst. Prof. Girls P.G. College. Kamla Nehru Nagar, Jodhpur. ***Gp.*** Shri Ram Dave. ***Bks.*** 04. Kāvya Mañjūṣā, Kāruṇya Kādambinī, Lalitā laharī, ***Ps.*** 40. ***Add.***

C/o Pt. Shri Ram Dave, Shri Niketan, 559/ 13, 8th C – Road, Sardarpura, Jodhpur. *Pin*-342001. *Ph.* (0291) 2432520. 2759473. (M) 09414194940. jaya.dave@yahoo.in.

Dave, Jyanand Laxmi Shankar. Ph.D. *b.* 25.10.1917. Prof. *Add.* Om Namah Shivay, Sector 23, Plot No. 338, Charch Street, Gandhinagar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Dave, Kailasha chandra. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 04.04.1941, Bhati, Barodiya. (M.P.). Asst. Prof., Kashi Hindu V.V. *Gp.* Mangala Dattaji Tripathi, M. Ramnath Dixit, Pt. Ramprasad Tripathi. *Add.* K-24/19, Ramghat, Varanasi (U.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Dave, Kantilal Ramshankar. Ph.d. *b.* 07.10.1943. Prof. Skt. Dept. Sardar Patel Univ., VallabhVidhya Nagar. *Add.* D-1 Neelkantha Banglo, Nana Bazar, V.V. Nagar. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Dave, Kirti Ben G. Ph.D. *b.*05.09.1944. Prof. Prabhudas Thakkar Arts & Commerce College Paldi Ahemdabad. *Add.* D-1 Ambawadi Flat Bhudarpura Ambawadi, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Dave, M.D. Ph.D. *b.*18.10.1958. Prof. Tolani Arts & Science College Aadipur Distt. kacch. *Add.* Saraswati Prof. Colony Plot No. 23, Aadipur Distt. kacch. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Dave, Mahendra Kumar Ambalal. Ph.D. *b.*01.06.1971. HOD Sanskrit Deptt. Neema Girls Arts College Gojhariya Distt. Mehsana. *Add.* Geeta Park Society, Near Towar Chauk Gojhariya Distt. Mehsana. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Dave, Minakshi Ben Uma Shankar. Ph.D. *b.* 02.11.1946. Prof. Govt. Arts College Sector 15 GandhiNagar. *Add.* Plot No. 83/1, Sector 2-A, Green Land Avenu Park, GandhiNagar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Dave, Padmanabh Tapishankar. Ph.D. *b.* 22.07.1928. Prof. *Ps.* 05. *Add.* 16, Geeta Park Society, Bharuya. *Spl.Ref.* DharmaŚāstra.

Dave, Parmanand Bhai Chelshankar. Ph.D. *b.* 30.08.1927. Prof. H.K. Arts College, Near Natraj R.C.Road Ahemdabad. *Add.* 34 Vandana Park Society Navawadi Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Dave, Pushpa. M.A., Ph.D. Asst. Prof. (Sanskrit). *Ps.* 05. *Add.* Govt. Old Post-Graduate Girls College, Moti Tabela, Indore (M.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dave, Ragini Ben Ramkrishna. Ph.D. *b.* 24.11.1962. Prof. Smt. J.P. Saraf Arts College Tithal Road Valsad. *Ps.* 05. *Add.* 204, Bhagyodaya Appartment Tithal Road Valsad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Dave, Ramesh Ambalal. Acharya in Ayurveda. *b.* 15.11.1952, Lonabara, GJ. Teacher. *Gp* Danidatta Jha. *Ps.* 05. *Add.* Vitha Chaukasi Suryapur Sanskrit Pathashala, Surat (GJ). *Spl.Ref.* Āyurveda.

Dave, Ramesh Chandra Jetha Lal. Ph.D. *b.* 18.11.1949. Prof. Neema Arts College Gojhariya, Distt. Mehsana. *Ps.* 05. *Add.* Krishna Nagar Near Garden Vill. Post Halol Distt. Panchmahal. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Dave, Sharda Ben N. Ph.D. *b.* 02.09.1947. Prof. Smt. Gandhi Mahila College, Daimond Chouk, Bhavnagar. *Ps.* 05. *Add.* Plot No 1016, Near Veerbhadra Akhada, Krishna Nagar, BhavNagar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Dave, Shriram. Kāvyatīrtha, Nyāya, Vedānta, English, M.A.. *b.* 22.09.1922. Vill. Samdadi, Distt. Badmer, RJ. Teach. W.B.I. High School. Karachi. *Gp.* Pt. Mani-shankar Dwivedi, Dhardev Jetli. *Bks.* 19. Bhṛatyābharanam, Rājalakṣmīsvayaṃvaram, Sākatasaṅgarām, Saundaryalīlāmṛtam, Viyogaśatakam. *Spl.Ref.* 'Māgha' Puruskara awarded by RJ. Skt. acadamy in 1992.

Dave, Shushila Ben G. Ph.D. *b.* 11.09.1945. Prof. Aanand Arts College Aanand. *Ps.* 05. *Add.* Alapviram 53, Bhawandeep Colony, Near Sardar Bag Aanand. *Spl.Ref.* Sāṅkhya- Yoga Śāstra.

Dave, Suresh Chandra Jamiyatram. Ph.D. *b.* 31.08.1933. Prof. New Gujrat Arts College Ashram Road Ahemdabad. *Ps.* 05. *Add.* 7,

Jan Vishram Society Near Sahajanand College Ambawadi Ahemdabad. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra, Purāṇa Śāstra.

Dave, Tulashankara Jethalal. Acharya in Sāhitya. *b.* 12.05.1949, Sai Deoria, Jamnagar, GJ. Teacher. *Gp.* Lalaji N. Modha, Vasudeva Tribhuvanadas. *Ps.* 05. *Add.* Rajakiya Skt. Pathashala, K.V. Road, Jamnagar, GJ. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dave, Urvi Parmanand. Ph.D. *b.* 03.06.1962. Prof. Sanskrit Deptt. Gujrat Arts & Science College Alisbridge Ahemdabad. *Ps.* 04. *Add.* 34, Vandana Park Society Near Navdeep School, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Dave, Varshaben P. Ph.D. *b.* 09.02.1957. Prof. Seth H.P. Arts & T.S.M. Commerce College Kalol Distt. Sambharkanta. *Ps.* 05. *Add.* E-11, Neerav Flats Shantivan Road, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Daya, Kumari. Acharya. *b.* 06.06.1948. Teacher, T.G.T. Mahavira Vishvavidya-pitha, Pashchim Vihar. *Add.* C.P. 104, Peetampura, Delhi–110034. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dayal, Rameshwar. M.A. (Sanskrit, Hindi) *b.* 25.05.1919, Palhawas, Mahendergarh, HR. Asst. Prof., Hari Mandir Sanskrit Maha-vidhyalaya, Pataudi, Gurgaon HR. *Bks.* Rāṣ-rīya Ekatā meṃ Ka-haputalī Nā-akoṃ kā Yogadāna(Hindi), Hariyāṇavī Rāmāyaṇa(Tr. Of Rāmacarita Mānasa). *Add.* Hari Mandir Sanskrit Mahavidhyalaya, Pataudi, Gurgaon, HR.

Deb, Mitali. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 15.09.1973. *Bks.* 05. *Ps.* 50. *Spl.Ref.* She is known for her efforts in bringing out the scientific aspects of ancient Sanskrit Literature, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Deekshithar, T. Ramalinga. M.A., M.Litt.. *b.* 15.04.1936. *Bks.* 01. A Study of Chidambaram & its Shrine as Recorded in Skt. Literature. *Add.* Pratibha' 136/55. East Car Street. Chidambaram Cuddalore Dist., TN. - 608001. *Ph.* (04144) 223507. *e mail* - pratibha2k2005@yahoo.com.in

Deekshither, E. J. Kumaraswamy. Kramanta, Samarth Vidvat, Salakshna GanantaVidvat, Srotra-Vidvat Upadhi in Śuklayajurveda, Acharya (Jyotiṣa, Purāṇetihāsa, Dharamsśātra, Phalita Jyotiṣa), Veda Bhashya Mani, M.A., M.S. *b.* 10.12.1930. Vadaellupai TN. He has served Mysore Sanskrit College for five years and now he is running a voluntary Sanskrit Organisation viz. K.S. Janakriram Vedic Shodha Sansthan. *Bks.* 09. *Spl.Ref.* Title of Sangavedavisharad, Vedaratnam, Bharat-Bharati Shatapatha Praveena, President Awardee.

Deka, Barnali. M.A., B.Ed., M.Phil. *b.* 01.07.1983, Tezpur. Research Scholar, Guwahati Univ. *Ps.* 01. *Add.* H.No. 6, Sreenagar Nalini Bala Devi Path, Dispur.

Deka, Indrani. M.A., M.Phil, Ph.D. *b.*01.03.1976, Nalbari Assam. Academic Consultant Skt., K.K. Handiqi State Open Univ. Dispur 6, Assam. *Bks.* 02. Śaritam, A Socio – Cultural Study. *Add.* H.No. 86, Rong Bong Path, VIP road Hengerabari Guwahati, P.O. Hengrabari, Assam.

Deka, Pranabjyoti. M.A. *b.* 29.11.1986, Ramdia Hajo Kumpup, Assam. Research Scholar. *Ps.* 01. *Add.* C/o. Dr. Satyen Roy, Lankeshwar, West Jalukbari Bye Lane-1, H/N-8, Guwahati-14.

Deka, Rashmi. M.A., M.Phil. *b.* 04.12.1983, Manaha Kachari Gaon, Manaha, Marigaon (Assam). Asst. Prof. Dept. of Skt., Nowgong Girls' College, Nagaon, Assam. *Ps.* 01. *Add.* C/o Sri Mukul Deka, Vill. – Manaha Kachari Gaon, P.O. – Manaha, Dist. – Marigaon, Assam, Pin – 782411. M.8867192835. email – rashmideka.ngc@gmail.com.

Deo, Ram Chandra Acharya in Sahitya, M.A., Ph.D. *b.* 03.05.1944, Soonbhadra, U.P. Principal. Vanasthali Mahavidyalaya, Mirzapur *Gp.* Prof. S. Sidheswar Bhattacharya, Prof. S.N. Mishra, Prof. Vishwanath Bhattacharya. *Sp.* Dr. Madhavaraj Dwivedi, Dr. Kriparam. *Bks.* 01. *Add.* Imarti Colony, Robrtsgang, Sonbhadara U.P. Ph. 07376108072. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Desai, Amrit Lal Velji Bhai. Ph.D. *b.*15.02.1974. Prof. Arts College Rajendra Nagar Teh. Bhiloda, Distt. Sambharkanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Vill Post Kapoda Teh. Idar Distt. Sambharkanta. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Desai, Chandrika Purushottum Das. Ph.D. *b.*12.03.1944. Rtd Teacher, Shri Kadwi Bai Virani Girls Higher Secondary School Rajkot. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Puleen 7, Bhakti Nagar Society Rajkot. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Desai, Dipika Ben Dhiru Bhai. Ph.D. *b.* 14.02.1942. Prof. Smt. J.P. Saraf Arts College Tithal Road, Valsad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** C-12, Manish Apartment, Tithal Road, Valsad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Desai, H.G. Ph.D. *b.* 26.08.1927. Prof. C.B. Patel Arts College College Road Nadiyad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 5- Ravindra Park, Near Tirupati hotel, Surat. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Desai, Isvar Singh Jiva Singh. M.A. *b.* 01.06.1954, Valsad, GJ. Asst. Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Hanuman Taliya, Dharmapur, Valsad (GJ). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Desai, Kusumaben Rameshchandra. M.A., Acharya in Samaskrit. *b.* 30.07.1938, Bilimora, Valsad, GJ. Principal. ***Gp.*** Dr. B.H. Kapatiya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Saint N.C.M. Kanya Vidyalaya, Mahatama Gandhi Road, Bilimora, Valsad (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Desai, Kusumaben Rameshchandra. M.A., Sanaskritacharya. *b.* 30.07.1938, Bilimora, Valsad, GJ. Principal. ***Gp.*** Dr. B.H. Kapatiya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shaint N.C.M. Kanya Vidyalay, Mahatama Gandhi Road, Bilimora, Valsad (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Desai, Naina Ben M. Ph.D. Prof. Sahjanand Arts College Ambawadi Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 5, Sourabh Society MemaNagar Road, Navrangpura Distt. Ahemdabad.

Desai, Neeleshwari Ben Chandrakant. Ph.D. *b.* 25.06.1936. Prof. Bhawans Seth R.A. College of Arts & Commerce Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** A-8, New Arpan Flats, Near Paldi Bus Stand Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Desai, Puneeta Ben N. Ph.D. *b.* 12.04.1939. Prof. Smt. J.P.Shraf Arts College Tithal Road Valsad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 8 AanandNagar Society Mullawadi Valsad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Desai, Ramsingh DayaBhai. M.A. *b.* 01.06.1948, Valsad, Gujrat. Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** D.C.O. High School Killa-Pardi, Valsad (GJ) ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Desai, Ranjan Ben Hari Bhai. Ph.D. *b.* 01.01.1962. Prof. V.S. Patel College of Arts & Science, Bilimola. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Deep 32, JalNagar Society Mahadev Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Desai, Ranjanabena H.. M.A., B.Ed. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Vanaraj Arts & Commerce College, Dharampur, Valsad – 396050 (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Desai, Vinayak Govind. M.A., Kāvyatīrtha, Rashtrabhasha Praveen. *b.* 02.04.1934. ***Bks.*** 15. Anvayārthagītā(ed.), Śrīdevīpatha (ed.), Siddhāsiddhāntapaddhati(ed.), Yoga-rahasya(tr.), Bodharahasya(tr.). ***Add.*** 49, Saneguraji Vasahat, Vashi Road, Kolhapur (Mah.) – 416012. ***Ph.*** (0231) 2322652. ***Spl.Ref.*** He has also edited 'Neetatatvavivechini', 'Shreemadbhagvat', 'Shreemadbhyatma-ramayana'. He was titled 'Aadarsh Shikshak' (Distt. Parishad, Kolhapur), Sanskrit Pandit (Mah. Govt.), Vedāntavidvan (Shreeshiv Shankarananda Aashram).

Desaval, Bhagawatiprasad. Acharya ***in*** Vyākaraṇa, M.A. *b.* 15.07.1951, Silsu, Pauri Garhwal. U.P. Professor. ***Gp.*** Swami Balananda. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sri Siddheshvar Mandir, Gali No. 1, Raja Park, Jaipur (RJ.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Deshapande, Ananta Gopala. M.A. *b.* 15.08.1930. Bombay, MH. ***Bks*** 02. Godālaharī (Kāvyam), Ādiśaṅkarācārya – Nā-akam. ***Add.*** D 6/9, P&T Colony, Mulund West, Bombay–80 (MH). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Deshapande, Uma Saratchandra. M.A., Ph.D., Dip. In German. *b.* 26.08.1944, Baroda. GJ. Teacher. ***Gp.*** Dr. Arunodaya Jani, Suresha-

chandra Kantavala. ***Bks.*** 01. Rasikavinodam Svānubhūtiḥ Hastalikhita-granthadvayasya Prakāśanam. ***Add.*** 4, Mangalvarika, R.V. Desai Marg, Baroda – 390001 (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Deshaval, Munshiram. Acharya in Sāhitya, B.Sc.. ***b.***07.06.1956. Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** H.No. 161, Vill. Puthkhurd, Delhi – 110039. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Deshmukh, Chintamani Dwarakanath. b. Sahyachal, Maharashtra. Ex-VC DU, Chairmen UGC, Member Skt. Aayog, Finance Minister Govt. of India. ***Bks.*** 03. Gāndhisūktimuktāvalī, Saṃskṛtakāvyamālikā, Meghadūtam (Transl. from Sanskrit to Marathi).

Deshpandey, Divya. M.A., Ph.D., NET. ***b.*** 09.07.1983. Vardha, M.P. Guest Faculty, Dept. of Skt., H.S. Gaur Univ., Sagar, M.P. ***Gp.*** Dr. Rasah Bihari Dwivedi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** D/o Shri Dileep Deshpandey, South Civil Lines, Thakare Colony, Chhindwara, M.P.. ***spl.Ref.*** Sāhitya.

Deshpandey, Ganesh Trayambak. D.Litt. ***b.*** 1809. ***Bks.*** Bhāratīyasāhityaśāstram, Sāṅkhya-kārikā (Bhasya) Spandakārikā, Alaṅkāra-pradīpa, Abhinavagupta-A monograph. ***Spl.Ref.***Sāhitya Academy Award, Scholar ofSāhitya and Philosophy.

Deshpandey, Uma Sharacchandra. M.A., Ph.D., Dipl. in Linguistics and German. ***b.*** 26.08.1944. HOD Deptt of Sanskrit, Baroda Univ. ***Bks.*** 05. The Glimpses of Indological Heritage, Arcanam, Śrīraṅgapattamañjūṣā. ***Ps.*** 60. ***Add.*** Ishavasayam, 5 Mangalwadi Society, RV Desai Road, Baroda – 01. ***Spl. Ref.*** Akhil Bhartiya Bharti Mishra Puraskar, Jaipur, Skt. Poet.

Deshpandey, Umaben S. Ph.D. ***b.*** 26.08.1944. Prof. Sanskrit Prakrit Deptt. M.S. Univ.Sāhitya Art Sansthan Varodara. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 503, Siddhi Building Samrajya Tower Varodara. ***Spl.Ref.*** Vedānta, Kāvya, Purāṇa, Bhāṣā Śāstra.

Deshpandey, Venkatesh S. Vidvan. ***b.***15.05. 1958. ***Ps.*** 05. ***Add.*** N. 364, 19 Main Road, Block II, V.S.K. Street, Banglore KT. ***Spl.Ref.*** AlaṅkāraŚāstra.

Desikachariyar, V. Srinivas. Salakshana Vidvat, Smārtaprayoga Vidvat. ***b.*** 04.11.1928. Vaduvur. ***Bks.*** 02. ***Spl.Ref.*** Vedbhashya Mani, He has contributed in the field of Vadic Studies by Training Young Student in Vedic Discipline, President Awardee.

Desikacharya, Narasimha E.T. b. 1917, Singaperumalkoil, Chengalput, TN. Vedapandit (Teacher). ***Gp.*** Varadara-manujacharya. ***Add.*** Skt. Vedapathasala, Trivendram South Arcot, TN – 607401. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda Kramanta.

Dev, Munishvar. Acharya in Nirukta, Vyākaraṇa, M.A., Ph.D.. ***b.*** 10.09.1931, Mohwa, (U.P.). Teacher. ***Gp*** Indradev, Brahmadatt. ***Add.*** Sadhu Ashram, Hoshiarpur (Punjab). ***Spl.Ref.*** Veda.

Dev, Ramchandra. Acharya, Ph.D. ***b.*** 03.05.1944, Mirzapur, (U.P.). Asst. Prof. ***Gp*** Dr. Siddheshvar Bhattacharya. ***Bks.*** Maṇḍana-miśrakṛtavidhivivekasya samīkṣātmaka-madhyayanam. ***Add.*** Kanhaiyalal Vasantalal Post - Graduate College, Mirzapur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Mimāṃsā.

Deva, Usha. M.A., Ph.D., Dip.-in-Russian. ***b.***02.02.1943. Asst. Prof. Mata Sundari Mahilavidyalaya. ***Gp.*** Dr. C.B. Gupta. ***Ps.*** 05. ***Add.*** B-T-25, Shalimar Bagh, Delhi – 52. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Devadarsan, K. M.A. ***b.***20.10.1932, Chattannur, Kollam, Kerala. Rtd. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Gangalaya, Chavarkkode, Post. Parippalli, Kollam (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Devanathacharya, P.S. śiromaṇi (Mimāṃsā, Sāhitya & Viśiṣ-ādvaita Vedānta). ***b.*** 21.05.1922, Vill. Paiyambadi, Taluka Madhurantakam, Chengalput, TN. ***Gp.*** Ranga-ramanuja Mahaperika, Shrivatsa Sangha-chariyar. ***Bks.*** Abhinava Rāghava (Drama). ***Add.*** 81 A, Sannadhi Street, Kanchipuram (T.N.).

Devanathan, K.L. Nyāyaśiromaṇi, Ph.D.. ***b.*** 04.10.1960, Madras, TN. Asct. Prof., Shri Lal Bahadura Shastri Rashtriya Skt. Vidyapeetha, N.Delhi. ***Add.*** Shri Venketeshwar Mandir, Sector III, R.K. Puram, New Delhi–110022. ***Spl.Ref.*** Nyāya, Mimāṃsā & Vedānta.

Devasharma, Muktadhar. Vyākaraṇa. ***b.*** 14.01.1914, Bijni, Assam. ***Add.*** Bijni Nagar, Ward – 703, P.O. Bijni, Kokarajhar (Assam). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Devashrayi, Umaben Indu Prasad. Ph.D. ***b.*** 15.03.1940. Prof. Bhawans Arts & Commerce College Khanpur Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shivark 7, National Park Society Near Politechnic, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Devasiya, Plakel Chako. M.A. (Skt. & Malyalam.) ***b.*** 28.03.1906. Kadamlor, Kottayam, Kerala. Principal, Marevanis Mahaviyalaya, Trivendram. ***Bks.*** 04. Khristu-bhāgavatam, Kathāsaritsāgara (Translate). ***Spl. Ref.*** KendriyaSāhitya Academy Award, President Awardee.

Devee, Sabita. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.01.1960, Bamurkuchi, P.O. Patacharkuchi, Distt. Barpeta, Assam. Asct.Prof. Pandu College Guwahati, Assam. ***Gp.*** Mrs. Maitreyee Bora, Dr. Ashok Kumar Goswani. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Hemlota Heritage-B, F.C. Road, Uzarbazar, Guwahati 1, Assam.

Devi Prasad. Vyākaraṇa, Prācīna Nyāya, Sāṅkhyayoga, Mimāṃsā, Vedānta, Dharm Śāstra, SahityaŚāstra. ***b.*** 1883, Kashi. Astt. Prof., Sanskrit College Kashi & Hindu Univ., Kashi. ***Bks.*** 03. Śāradāpaccīsī, Kavittasū-dhānidhi. ***Expired in*** 1931. ***Spl.Ref.*** Recipient of Kavichakravarti upadhi by Vidwatsabha of Kashi & Maha- Mahopadhyaya Award. He was also a great Skt. poet.

Devi, Suman Lata. M.A., B.Ed., NET, Ph.D. ***b.*** 13.01.1965, Sr. Lect. RML PG College, Varanasi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** RML PG College, Rajatalab, Varanasi.

Devirajan, T. M.A. (Sāhitya, Vedānta), M.Phil., Ph.D.. ***b.*** Karyavattam, Kerala. Vice – Princ. & Asct. Prof., Skt. Dept. ***Add.*** Univ. of Kerala, Karyavattam, Tiruvanantapuram, Kerala – 695581. ***Spl.Ref.*** Skt.nā-ak, Nā-yakalā, Kāvya-Śāstra.

Devnayakacharya. Vyākaraṇa. Darśana Nyāya. Teacher, Sangved School, Kashi. ***Spl.Ref.*** He was Editor & publisher of 'Brahman Mahasammelan' news paper & also a good speaker.

Dey, Sitanath. M.A., Ph.D., D.Lit. ***b.*** 01.03.1946. Silchar (Assam). Prof. & H.O.D. Tripura Univ.. ***Bks.*** 01. Indian Life in the Śukla Yajurveda (1985). ***Ps.*** 02. ***Add.*** Vedashri, Ramnagar – 5, P.O. Ram Nagar, Agarthala. Tripura - 799002. ***Ph.*** (0381) 203524. ***email.*** sitanathdey @rediffmail.com

Dhala, U.N. M.A., B.Ed., Ph.D. Prof. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Dept. of Skt., Utkal Univ., Vani Vihar, Bhubaneshwar – 751004 (Orissa). ***Spl.Ref.*** MahaKāvya, Purāṇa, Sāhitya.

Dhankar, Vaman Balaji. ***b.*** 01.09.1927, Nagpur, MH. Asst. Prof. ***Gp*** Ambadas Sharma, Narayan baba. ***Add.*** Bhonsla Vedashastra maha-vidhyalaya, Jhanda Chowk, Nagpur MH. ***spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Dhar, Shamita Nag. M.A., Ph.D. ***b.*** 31.03.1960. Asct. Prof. HOD Skt. Deptt. Cachar College Silchar. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Chungbunglaw Lane, Malugram, Silchar - 788002. Ph. 03842246953. M. 09435371601.

Dharmadhikari, Trivikram Narayan. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.05.1931. Ex. Secretary, Director, Tresurer Vaidika Samsodhan Mandal, Pune (MH). (Erandol-Jalgaon) (MH.). ***Bks.*** 08. Taittarīya Saṃhitā, Descriptive Catalogues of Skt. Manuscripts. Yajñāyudhāni, Apali Vaidika Saṃskṛti, Shrī Rudrādhyāya. (Mara-hī trans.). ***Ps.*** 75. ***Add.*** 63, Adiparna United, Western Society, Karve Nagar, Pune MH - 411052. ***Spl.Ref.*** Recipient of State Govt. of MH Award (1993). Veda Ratna Award (1997), Rashtrapati Award (1999), Rigveda Puruskar (1999), Acharya Panini Award (2000) etc.

Dharmapal, Gouri. M.A. ***b.*** 25.08.1931. Kolkatta. Rtd. Asstt. Prof. & HOD, Govt. Mahila Braborn College. ***Bks.*** 10. ***Add.*** Ritam, Ī, Farm Road, Kolkatta – 19. WB. ***Spl.Ref.*** Vedic Literature, She is making unabated efforts for the propagation of Sanskrit, President Awardee.

Dharmavir, Acharya. M.A., Acharya, Ph.D.. *b.* 10.04.1970, Darbhanga (Bihar). Post Doctoral Senior Scholar. *Ps.* 11. *Add.* C/o Prof. Vidhata Mishra, Near Gas Godown, Laxmi Sagar, Dharbhanga (Bihar) 846009. *Ph.*06272–35146. *Spl.Ref.* Linguistics.

Dharmdas. Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana, Āyurveda. *b.* 1862. Vill. Chupi, Navdwip, Bengal. Chairman, Prachya Vidya Vibhag, Kashi. Principal. Aayurveidic College, Kashi. *Gp.* Pareshnath Sen. *Sp.* Pt. Satyanarayan Shastri. Pt. Rajeshwar Shastri. Pt. Durgadutt Shastri. Kavi Brijmohan Dixit. *Expired in* 1935. *Spl.Ref.* Āyarveda.

Dhasmana, Vidyadhar. M.A., MOL, Ph.D. Acharya. Asct. Prof., GM National College, Ambala Cantt. *Bks.* 01. Muktakamañjaram. *Spl.Ref.* Swaranaawaran from Punjab Brahaman Mandal, Lahore.

Dhata, Ramchandra Krishna. Kāvyatīrtha. *Age.* 60 years, Dombivili, MH. *Add.* Nasa Niwas, Ajanta Co-operative Housing Socienty, Dombivili (E), Thane (MH). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Dhavala, Venkatsubbarao. M.A. *b.* 27.09.1932. Asst. Prof. *Add.* WZ-405, Basai Darapur, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Dhir, Aparna. M.A., Ph.D. *b.* 09-01-1983. Bhatinada, Punjab. Co-ordinator. Rashtriya Sanskrit Sansthan, 56-57 Institutional Area, Janakpuri, New Delhi. *Gp.* Dr. Shashi Tiwari. *Ps.* 06. *Add.* H.No. 1 Road No 22, Punjabi Bagh Extn. New Delhi -110026 Ph. 011-25225469, M. 09990433340. dhir.aparna@gmail.com *Spl.Ref.* Dr. Prabhu Dayal Agnihotri memorial Award, Joint Secretary WAVS.

Dholakiya, H.R. M.A., Ph.D. Principal. *Ps.* 05. *Add.* Govt. Skt. Mahavidyalaya, Indore (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Chhanda, Bhaṣāvijñāna.

Dhumaketu, Acharya. Acharya Sāhitya. *b.* 04.10.1962, Badakata, Sundargarh, Orissa. Asst. Teacher. *Add.* Veda Vidyalaya, Gautam Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dhundiraj, Kaveeshwar Shreepad. B.A., S.T.C. Nyāya, Vyākaraṇa, Darśana. *b.* 17.11.1927. Narasobawadi. Kolhapur, MH. *Ps.* 03. *Add.* 14- Tilak Dham, Cama Road, Andheri West, Mumbai, MH. - 400058. *Ph.* (022) 6289773.

Dhuse, Vasudev. Vyākaraṇa. *b.* 43 yrs. Asct. Prof, Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidhyapeeta, New Delhi. *Ps.* 05. *Add.* 149-A, Kalwaria Sarai, New Delhi. 11016. *spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Dhyani, Pitambaradatt. M.A.. *b.* 15.06.1927. Teacher (Sanskrit), Hira Lal Jain Senior Secondary School, Sadar Bazar, Delhi. *Ps.* 05. *Add.* X-4342, Aryapura, Sabzi Mandi, Delhi.

Dhyani, Rajendraprasad. Acharya. *b.* 01.01. 1952. Asst. Prof., D.A.V. Senior Girls College, Nizamuddin, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* C-499, Kidwai Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Digambara, Subrahmanyashastri K. M.A. *b.* 15.07.1948, Vijayawada, Dist. – Krishna, A.P. Asst. Prof. *Gp.* Gopalakrishnamurti Shastri, Mrdulapalli Manikyashastri. *Ps.* 05. *Add.* 28-42/2, 14, Near Rail Road, Guntur – 4 (A.P.). *Spl.Ref.* Alaṅkāra-Śāstra.

Digindrachandra, Acharya. Jyotiṣa Bhushana, Vyākaraṇa Vedānta, Dharmaśastrī. *b.* 31.08.1934, Silhat, Bangladesh. *Ps.* 05. *Add.* South Billapur, Silchar, Kachar (Assam). *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Vyākaraṇa. Vedānta, Dharma-Śāstra.

Dimari, Jagadisha Prasada. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 01.01.1946, Chamoli, Uttarakhanda. Asst. Prof., Russian Languages. *Gp.* Ramaprasada Tripathi, Pt. Bhupendrapati Tripathi. *Bks.* 04. Pāṇīnī evam Aṣ-ādhyāyī, Aṣ-adhāyī me rūpasaṁracanā ke siddhānta. *Add.* Dept. of Russian Languages, Central Institute English & Foreign Languages, Hyderabad – 500007 (A.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Russian Languages.

Dimari, Nagadutt. Acharya, M.A., Ph.D.. *b.* 12.06.1940, Garhwal, Uttarakhanda. Asst. Prof. *Gp.* Mallanadev Pant, Devadutt Shridhar Sharma. *Add.* Rajakiya Skt. College, Nahan, Sirmaur, Himachal Pradesh. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dimri, J.P. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. (Russian Philology). ***b.*** 01.01.1946. Rtd. Prof. EFL Univ. Hyderabad. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 60. ***Add.*** 403 Shalen Res. Vijayapuri Tarnaka, Hyderabad -500017. Ph. 040-27006409, M. 09912273836. jpdimri @rediffmail.com

Dimri, JagdDinanatha Sharma. Acharya in Darśana, M.A., Ph.D. ***b.*** 12.11.1953, Jola, Bilaspur, Himachal Pradesh. Principal. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri S.S. Mahavidyalaya, Dangar, Ghumakhi, Bilaspur, (H.P.). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Dindoriya, Ved Prakash. Ph.D. ***b.*** 18.12.1978. (RJ.). Lect., V.V.B.I.S. & L.S. (P.U.) Hoshiarpur. ***Bks.*** 01. Nāmakaraṇa Saṃskāra (2009). ***Ps.*** 15. ***Add.*** E – 7, Panjab Univ. Quarters, Una Road, Gautam Nagar, Hoshiarpur. ***Ph.*** (01882) 221001. Divyasanskrit9@gmail.com.

Dipa Devi. M.A., B.Ed., Vyākaraṇa Tīrtha. ***b.*** 01.09.1954. East Pakisthan (Bangladesh) Secretary, Skt. Mahavidyalaya. ***Add.*** Balika Ashram Skt. Mahavidyalaya. Dakshineswar, Adyapeeth. Calcutta. P.S. Belgharia. ***Ph.*** 0332564 – 5218.

Diwan, Jageshvaradhar C. M.A.. ***b.*** 17.11.1947, Raipur, Chhattisgarh. Asst. Prof. Skt. Dept. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Govt. P.G. College, Arts and Commerce, Bilaspur, (Chhattisgarh). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dixit, Balaji. Acharya in Sāhitya, Siksashastri. ***b.*** Kaithi, Hamirpur, U.P. Teacher. ***Gp.*** Ramabhajana Pandeya, Srikanta Pandeya, Bhupendrapati Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sri Janaki Skt. Mahavidyalaya, Old Lanka, Chitrakuta, Satna, M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dixit, Bhuvaneshvari. M.A., Shiksashastri. ***b.*** 27.08.1963. Teacher. Bal Bhawan Public School, Laxmi Nagar, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sector 2, 1055, Ramakrishna Puram, New Delhi – 110022. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dixit, D. Narasimha. M.A., Ph.D. ***b.*** 10.05.1962. Guntur, A.P. Asct. Prof. Hindu College, Guntur. ***Bks.*** 05. Ālaya Saṃskṛtī (Temple Culture - 1999). ***Ps.*** 08. ***Add.*** 2 - 14 - 152/A, Ist Lane, Syamala Nagar, Guntur, A.P. - 522006. ***Ph.*** (0863) 243986.

Dixit, Duraiswami Ratna. T. Vyākaraṇa & AdvaitaVedānta, Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 17.05.1931, Chidambaram. ***Gp.*** K.M. Narasimha Shastri, K.S. Shivarama Srishna-shastri. ***Add.*** 98-A, South Car Street, Chidambaram, TN. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Dixit, Hari Narayan. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 13.01.1936, Padkula, Jaloon, U.P.. Prof., Kumaun Univ., Uttarakhand. ***Bks.*** 50. Gopāla Bandhuḥ, Bhīṣmacaritam, Bhāratmātā Brūte, Menakāviśvāmitrama, Upadeśaśatī. ***Spl.Ref.*** He is known for his Rashtriyakavya lekhan. Recipient of President Award,Sāhitya Academy Puraskar, Vanabhatta Puraskar, Pt. Gorishankar Dwivedi Puraskar, Vidhyaratnakar Saraswat Samman, Vachaspati Puraskar etc.

Dixit, Hari Prasad. Acharya in Navya Vyākaraṇa, Ph.D. ***b.*** 20.12.1964, Alibada, Bareli, Jamgarh, Raisen, M.P. Asst. Prof. Govt. Ramanand Skt. College, Lalghati, Bhopal, M.P. ***Gp.*** Dr. Ramyatna Shukla, Dr. Purushottam Tripathi, Dr. Rammanohar Mishra, ***Sp.*** Dr. Pragya Mishra, Purushottam Tiwari, Shivachandra Valka. ***Ps.*** 20. ***Add.*** G. 13/7. South T.T. Nagar. Bhopal. ***Ph.*** (0755) 556729.

Dixit, Harishchandra. M.A., Ph.D. ***b.*** 1933. ***Bks.*** 01. Kāvyamuktāvalī.

Dixit, Ishvarshastri Gundashastri. Vyakaranopadhyaya, Vyākaraṇaratna. ***b.*** 28.12.1910, Vill. Tadakod, Dharwad. ***Gp.*** Venkatesha shastri Abhyankara, Digambara shastri Havale, Atmarama Shastri Jere. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 1041/13, Pethabhag, Sangli, MH. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Dixit, Jajneshvara. Vidvān in AdvaitaVedānta & Sāhitya, Hindiratan, Kannadapandita. ***b.*** 28.08.1925, Hangalla, Dharwad, KT. Rtd. Teacher, Harihara Pathashala. ***Add.*** Fort Vina Street, Harihar – 571601 (KT). ***Spl.Ref.*** Advaitavedānta, Sāhitya.

Dixit, Krishnamurti S. Sāmaveda Adhyayana. ***Age.*** ***Above*** 78 yrs., Umayalpuram, T.N. Upadhyaya. ***Add.*** No. 51, Panchyappa Street, Kumbakonam, T.N. – 612001. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Sāmaveda.

Dixit, Laxmikant. M.A., Ph.D. *b.* 03.07.1920, Kamalpur, Sitapur, U.P. Rtd. Prof. ***Add.*** 326, Mamford Ganj, Allahabad U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Dixit, Mahadev G.P. *b.* Chidambaram, T.N. Ved Teacher. ***Gp*** Shrinivas Ghanapathigal, Shrikrishna Sharma, Parameshvar Dixit. ***Add.*** Shri Vidyanidhi Ved Pathshala, 85, South Char Street, Chidambaram (T.N.). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Dixit, Martand Chidambar. Navyanyāya Vidvān, Pūrva-Mimāṃsā Vidvān. *b.* 01.06.1916. Belgaun, KT. Lecturer, Dharwad Skt. College, Mysore, Skt. College, Deccan College. ***Bks.*** 03. Paryāyaśabdaratna, Guruva-canasudhā, Mādhavakaruṇāvilāsa. ***Spl.Ref.*** Nyāya, Mimāṃsā, Vedānta, KT State Award, Kanchi Samman. President Awardee.

Dixit, Martand. Vidwan. ***Age.*** 70 years in 1988. ***Add.*** Chidambar Nivas, Vidya Nagar, Hubli (KT). ***Spl.Ref.*** Nyāya, Mimāṃsā.

Dixit, Mathura Prasad. *b.* 1878. Bhagwantnagar, Distt. Hardoi, U.P. ***Bks.*** 10. Abhidhānarājendra (ed.), Atrinirvacana, Vīrapṛthivīrājanā-aka, Bhāratavijaya, Śaṅkara-vijaya. ***Expired on.*** 25.09.1966. ***Spl.Ref.*** Recipient of MahaMahopadhya award by Govt. of India.

Dixit, Narahari.Sāhitya śiromaṇi, Sāhityaratna. *b.* 04.10.1923, Gokarana, KT. Yajurved Purohit (Priest). ***Gp.*** Devaru Bhatti Shastri, Sivaram Shastri. ***Add.*** Gokarana, KT– 581326. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Yajurveda.

Dixit, Paksitirth Subrahmanya (Somayaji). *b.* 13.01.1921, Tirukkalukundram, T.N. ***Add.*** 166-4 Cross, Purushottam Nagar, Chrompet, Madras – 600044. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Veda.

Dixit, Pawan Kumar. M.A., Ph.D. Asstt. Prof. R.Sk.S. Lucknow Campus ***Gp.*** Prof. B.P. Mishra, Prof. N.J. Rastogi. ***Bks.*** 01. Manasijasūtram. ***Ps.*** 11. ***Add.*** R.Sk.S., Lucknow Campus Vishal Khand – 4, Gomti Nagar Lucknow. M. 09415521230.

Dixit, Piyush Kant. M.A., Ph.D. *b.* 05.02.1964. Varanasi. Prof., S.L.B.S. R.Skt. vidyapeeth, New Delhi. ***Bks.*** 01. Vyāptisaptaka Sāraḥ. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Lalbahadur Shastri Rashtriya Skt. Vidhyapeetha, Qutub Institutional area, New - Delhi - 110016. ***Ph.*** 011-26513036.

Dixit, Pradeep Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 01.05.1965. Farrukhabad, U.P.. Asst. Prof. ***Bks.*** 01. Saṃskṛta Gadya Saṅklana (1999). ***Add.*** 10/10, Vijay Nagar Colony, Kanpur, U.P.. ***Ph.*** (0512) 230003.

Dixit, Prem Shankar. M.A., B.Ed. *b.* 01.07.1947. Asst. Prof., Shri Ramanuj Skt. College, Maishrapokhra, Varanasi. ***Gp.*** Sh Prasad. ***Sp.*** Mohan Chandra Joshi, Ramkumar Mishra, Vipin Chnadra Joshi. ***Add.*** M.L. 13, Ashok Vihar, II, Pahadiya, Varanasi U.P.

Dixit, Pushpa. M.A., Ph.D. *b.* 12.06.1943, Jabalpur, (M.P.). Rtd. Prof. Govt. Maha-vidhyalaya, Bilaspur, ***Gp.*** Pt. Vishvanath Tripathi, Dr. Hiralal Jain. ***Bks.*** 10. Agniśikhā, Aṣ-ādhyāyī sahaja bodha, sahaja bodha Vyākaraṇa. ***Add.*** Telipara, Bilaspur (M.P.). ***Mob.*** 09425542292. ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa, episodes have been prepared on Sanskrit Language learning. President Awadee, Govt. of India.

Dixit, Ramchandra Venkataraman. Chuda-mani. *b.* 18.09.1957. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shrimad Jagadguru Shankaracharya Sanskrit Pathashala, Dharwad (KT). ***Spl.Ref.*** Nyāya, Vedānta.

Dixit, Ramlinga. M.A., M.Litt. *b.* 1939. Arcaka. ***Gp*** Dr. C.S. Venkatesvaram. ***Bks.*** 01 A Study of Chidambaram. ***Add.*** Nataraja Temple, Chidambaram (T.N.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Dixit, S. Tatwamasi. Yajurveda, B.A. Gurukul Education. *b.* 28.12.1972. Varanasi. Director, Ojas Holistic Healthcare Pvt. Ltd. Ojas Foundation and Kayakalpa. ***Spl.Ref.*** He has intensively worked in the field of Energy Science. He went to Europe and Phillippiness to educate himself in Psychotherapy and different forms of healing. As a result, he has integerated modern scientific methods

with Vedic Science in healing therapy. He is also versed in modern energy practices like kinesiology, pranic healing and Reiki. Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Dixit, Samba Damodar Upadhyaya. Vidvān in Vyākaraṇa, Veda, M.A. (Skt.). ***b.*** 14.02.1934, Gokarn, Karwar, KT. Ex-VC, Maharishi Vedic VV. ***Bks.*** 14. Gṛhāgnisāgara, Vicāra-Vāhinī, Chando darśanaṃ. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Agni Sharanam, Gokarna, Near Gokarna Police Station. ***Ph.*** 08386-256242. ***E-mail.*** Agnisharnam@ yahoo.com. ***Spl.Ref.*** Member Rashtriya Ved Vidya Pratisthan, Maharshi Sundeepani Veda Vidya Pratisthan KT, Prashasthi Pradan Samiti. Title of Vedvarisdhi, Vedratna, Skt. Pandit, President Awardee etc.

Dixit, Shri Nivas. Vidvān in Traditional Vyākaraṇa & śivādvaita. ***Gp.*** Appaya Dixit. ***Bks.*** 05. Vijñapti Śatakaṃ, Kalivaibhava Śatakaṃ, Āsthānubhāva-śatakaṃ, Jagad-guru-dhāmasevākaśatakaṃ. Kālikāṣ-akoddhāraḥ.

Dixit, Somketu. śiromaṇi. ***b.*** 1928, Chidambaram, T.N. ***Gp.*** Pt.Subrahmanya Shastri, R.S. Shastri, Shriniasacharya. ***Bks.*** Citambara-māhātmyam, Na-arājasahasra-nāma Bhāṣyam, Rītiśāstram. ***Add.*** 72, South Car Street, Chidambaram, T.N. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra, Nyāya Śāstra.

Dixit, Turuvekare Subrahmanya Vishveshvar. Vidvān in Śuklayajurveda, Vedānta. Alaṅkāra etc. ***b.*** 07.07.1924, Turuvekare, KT. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Venkata-ramavadhani, M.S. Patanakar, V.S. Rama-chandra. ***Bks.*** 03. Stotraviṣayakā Catvaraḥ, Lobhasāmrājyam (One act Plays), Gopasvāpa (Kāvya). ***Add.*** No. 66, Sushama, Hospital Road, Block – IV, Jayalakshmipuram, Mysore, KT– 12. ***Spl.Ref.*** Śuklayajurveda, Vedānta Bhāṣya. Alaṅkāra-Śāstra.

Dixitar, Kuppusvami M.R. Pandit. ***b.*** 27.10.1927, T.N. Teacher. ***Gp.*** Subrahmanya Shastri, Venugopal. ***Add.*** No. 92, II Agraharam, Brahmavidya Sabha, Salem – 636001 (T.N.). ***Spl.Ref.*** Veda & Darśana.

Dixitar, Parmeshvar G. Age. 42 yrs. in 198. ***Gp.*** Subrahmanya Ghanapathi, Shrinivas Ghanapathi. ***Add.*** 185, South Car Street, Chidamabaram (T.N.). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇa-yajurveda, Ṛgveda.

Dixitar, Rajgopal C. Traditional Education. ***b.*** 09.02.1910, Kalpathi, Palakkad, Kerala. Priest. ***Add.*** 3/339, C.N. Puram, Palakkad – 678006 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Veda.

Dixitar, Sundararam K. Bramhsri Pakshitirth. Kṛṣṇayajurveda, Mīmāṃsā-śiromaṇi. ***b.*** 14.03.1915. Teacher, Sringeri Jagat-gurusanatana, Dharmavidya-samiti and Najaradpet, Vedapathshala, Madras. ***Bks.*** 01. Jagadgurustavanam. ***Add.*** G/A Ramaniyam, Shiv Apptt., Plot. No. 9, Valmiki Nagar, Tiruvanmuyur, Madras – 41. ***Spl. Ref.*** Veda, Mimāṃsā, President Awardee 1993.

Dogara, Nina. M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 24.09.1949, Delhi. Asst. Prof., S.L.B.S.R.Skt. Vidyapeeth, New Delhi. ***Bks.*** 02. Caṇḍeśvara kā Gṛhastha ratnākara – ek Adhyayana. ***Add.*** 266 MIG, DDA Flats, Prasad Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Dharma-Śāstra. Sāhitya. Darśana, Vyākaraṇa.

Dongare, Vireshwar Krishna. Vidvān. ***b.*** 15.02.1914, Mak, South KT. ***Gp.*** Ramchandra Shastri. T. Subba Shastri, Venkat Shastri. ***Add.*** D-2, Kalpanamati, Oundh, Pune MH. ***Spl.Ref.*** Mimāṃsā.

Doshi, Jagriti Rajnikant. Ph.D. ***b.***22.05.1965. Prof. Shri M.P. Shah Arts & Science College Surendra Nagar. ***Add.*** 12, Jaipushp Alkapuri Chauk, Near Junanari Kendra, Surendra Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Dravid, Chinnaswami. Vidvān in Vyākaraṇa, Sāhitya, Mimāṃsā. ***b.*** 1889. TN. Asst. Prof., B.H.U. Varanasi, U.P.. ***Gp.*** Pt. Venkata Raman Shastri. M.M. Kuppu Shastri. M.M. Venkat Subba Shastri. ***Bks.*** 05. Mīmāṃsākaustubhaṃ. Bṛhatī, Tantrasiddhāntāvaliḥ, Vaidika Yajñamīmāṃsā, Yajñatattvaprakāśaḥ. ***Expired in.*** 1956. ***Spl.Ref.*** ***Awarded*** 'Mahamaho-padhyaya'.

Dravid, Laxman Shastri. Ṛgveda, Sāhitya,

Vedānta, Sāṅkya, Nyāya. ***b.*** 1874.Varansi, U.P. Teacher. Ranveer Sanskrit Pathshala. Varansi. Asst.Prof. Calcutta Uni. ***Gp.*** Gurunath Bhatt, Pt. Krishan Shastri, Pt. Subrahmanyam Shastri, ***Sp.*** Pt. Bhaoo Shastri Bajhe. ***Add.*** V.P. Trisinillur, Teh. Kumbh-konam, TN. ***Expired in*** 1930. ***Spl.Ref.*** Has Awarded 'M.M.' in 1926. Established 'Varnashram Dharm', Swarajya Sangh, Shivkumar Bhawan, Sangved School. Organized Brahman Mahasammelan in 1925 & akhilbhartiya Brahman maha-sammelan from 5-7 Nov. 1928. at mishra-pokhara. Khasi in these Mahasammelans Participted Shankracharyas of Fourth Peethas Ramanuj. Chairman of Vallabh Sampradaya of All India Panditas.

Dravid, R. Mani. Vedānta, Mīmāṃsāśiromaṇi, Ph.D. ***b.*** 17.03.1965. Lect. in Mimāṃsā Madras Skt. College, Chennai. ***Bks.*** 3. ***Spl.Ref.*** Vedāntaa Mimāṃsā, Awarded from Advait Sabha, Kumbhkonam, Sringeri Shardha Peeth. He has the quality of teaching Higher Texts on Advaita Vedāntaa by employing the technique of Navya Nyāya and the Principal of Mimāṃsā.

Drawid, Ramji Shastri. Vedānta, Kṛṣṇa Yajurveda. Acharya in Veda, Sāhitya. ***b.*** 1917. Varanasi, (U.P.). Asst. Prof., Goyanka Skt. College. Varanasi, U.P. ***Gp.*** Laxman Shastri Drawid. ***Expired in.*** 1977.

Druv, Rashmi Kant Shankar Bhai. Ph.D. ***b.***01.06.1966. Prof. Smt. Sadguna Girls College Lal Darwaza, Ahemdabad. ***Add.*** F-2 Shantinath Appartment Vejalpur, Near Bus Stand, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Dubey, Jagadish Prasada. M.A., Sikshasastri. ***Age.*** 38 years, Parasath, Velava, U.P. Teacher. ***Add.*** Parasath, Velava, Dist. Jaunpur, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dubey, Jagannarayana. Acharya. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.11.1936, Bilaspur, Chhattisgarh. H.O.D. of Sāhitya. ***Gp.*** Pt. Rajaram Tripathi, Pt. Deviprasad, Pt. Hiralal Shukla. ***Add.*** C.M. Dubey Post Graduate Mahavidyalaya, Bilaspur, Chhatishgarh. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dubey, Jyoti. M.A., Ph.D. ***b.*** 31.03.1964. Guest Asst.Prof., Maharshi Panini Univ. Ujjain. ***Ps.*** 05. ***Add.*** C/o. Vijay Upaddhyay, 12 Haisidhhi Darwaza, Ramghat Marg Ujjain. ***Spl.Ref.*** Honoured by Akhil Bhartiya Maa Chamunda Jyotish Sodh Sansthan.

Dubey, Kailash. M.A., Ph.D.. Asst. Prof.. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit Kashi Vidyapith, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dubey, Kameshvar. Acharya in Jyotiṣa. ***b.*** 25.11.1957, Bhojpur, Bihar. Teacher (Jyautisa), Muraraka Sanskrit Mahavidyalaya. ***Gp.*** Yuktinatha Jha, Vaidyanath Pandey, Vrajakishor Jha. ***Add.*** Murarka Sanskrit Mahavidyalaya. Chouk, Patna city (Bihar). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Dubey, Mahendra. M.A.. ***b.*** 24.10.1924. Asct. Prof., University of Delhi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 7/2, Vishwavidyalay Marg, Delhi – 110007. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dubey, Parmatma. Acharya, B.Lib. Yogtantra. ***b.*** 17.07.1956. Asct. Prof. S.S.Univ. Varanasi. ***Gp.*** Prof. Devswaroop Mishra. ***Sp.*** Dr. Saroj Tripathi, Dr. Omprakash Pandey. ***Add.*** Vill. Post Bhishampur, Janpad Varanasi. ***Spl.Ref.*** Nepal Yatra, Skt. Vinyadhikari, Ex.Coordinator, Rashtriya Seva Yojana, Chairman Sāṅkhya Yogtantra Deptt.

Dubey, Rajendra. M.A., Shastri, Acharya, Ph.D.. ***b.*** 05.01.1954, Simri, Bhojpur, Bihar. Asst. Teacher. ***Gp*** Dr. Hariharanath Upadhyaya, Dr. Shrikant Pandey. ***Add.*** Khairapatti, Simri, Bhojpur (Bihar). ***Spl.Ref.*** Āyurveda.

Dubey, Ram Bahadur. Acharya, Shiksha Shastri, M.A. Ph.D. ***b.*** 01.01.1960. Sultanpur U.P. Asst. Prof. Rashtriya Sanskrit Sansthan Lucknow Campus. ***Gp.*** Dr. Chakradhar, Swami Swaropanand Ji. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Rashtriya Sanskrit Sansthan A4 Vishal Khand Gomti Nagar Lucknow – 226010.

Dubey, Satyaprakash. Acharya, M.A., Vidyavaridhi. ***b.*** 20.06.1960. Jaunpur, U.P. Prof. Deptt of Skt. Univ. of Jodhpur. ***Gp.*** Pt. Ramprasad Tripathi, Pt. Ramyatan Shukla.

Sp. Dr. Sunil Dutt Vyas, Dr. Kaushal Kishore Gothwal, Dr. Meena Jangidh. *Bks*. 10 Atrikhyātiḥ, Vedadharmavyākhyānam, Varṇa-samīkṣā, Vyākaraṇa Siddhānta Sudhānidhi. *Ps*. 80. *Add*. E-283 Naivedya, Rameshwar Nagar, 1st Phase, Basni, Jodhpur - 342005, Ph. 0291-2741759, M. 09413165164. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Skt. Shikshak Award, Career Award from UGC

Dubey, Yadunath Prasad. M.A., D.Phil, Acharya. *b.*15.11.1952. HOD, Sampoornanand Skt. Uni. Varanasi. *Gp*. Prof. Saraswati Prasad Chaturvedi, Prof. Aadha Prasad Mishra, Prof. Suresh Chandra Pandey, Abhiraj Rajendra mishra. *Sp*. Dr. Krishna Kumar Tripathi, Dr. Krishnapal Tripathi, Dr. K.P. Gupta, Dr. Sikandarlal Prabhuti. *Bks*. 04. Vāgvaibhavam, Prabanda Cintāmaṇi Eka Ālocanatmaka Adhayayan, Vāgvitanam, Jaina Saṃskṛita Mahākāvyam. *Add*. Vill. Nibikala, Post Jhunsi, Distt. Allahabad.*Spl.Ref.* U.P. Skt. Sansthan Visista Puraskar.

Dubey, Yogesh Chandra. M.A., D.Phil. D.Litt.. *b*. 01.03.1960, Vill. Mansil, Po. Menhadi, Dist. Jaunpur (U.P.). Prof. & Head, J.R.H. Univ., Chitrakoot (U.P.). *Bks*. 05. Rāmāyaṇa Mañjarī kā Sāhityika Anuśīlana, Saṃskṛta Sūkti Sudhā, Hanumāna-Dhārā, Grāmya Gītāñjalī, Bīsavin Śatī ke Pramukha Saṃskṛta Mahākāvyon Me Citrita Bhāratīya Svādhīnatā Saṅgrāma. *Ps*. 21. *Add*. ‘Saraswatam’ Sant Kabir Marg, Jankikund, Po – Nayagaon, Chitrakoot, Dist–Satna (M.P.) *Pin*. – 485331. *Ph*. (05198) 224481, 09993234107, 09452032221. *Spl.Ref.* Rashtriya Shiksha Ratna,Sāhitya Mahopadhyaya,Sāhitya Kala Shiromani.

Duddila, Narasimhamurti. Acharya. *b*. 02.06.1944, Karimnagar, A.P. Asst. Prof., *Gp*. U. Ramanujacharya, M. Raghavacharya. *Add*. S.V.V.S. College, 170, Old Air Port Road, Baunipali, Sikandrabad, A.P. *Spl.Ref.* Nyāya śāstra, Sāhitya.

Dudekula, Bannu Saheb. Vidvan. *b*. 14.08.1953, Chintakutla, A.P. *Gp*. N. Jayaram Reddi, V. Rajagopala. *Add*. S.V.V.O. U.P. School, Ankalammapet, Pulivendula (A.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dudhatra, RajaBhai ManjiBhai. Ph.D. *b*. 12.01.1949. Prof. Municipal Arts & Commerce College, Near Girls Hostel Upleta. *Add*. Kalrav. B.G. Girls Hostal Road Jawahar Society Upleta. *Spl.Ref.* Alaṅkāra-Śāstra.

Dugarakoti, Paramanand. Acharya. *b*. 02.02.1945, Balena, Nainital, (U.P.). Principal. *Gp*. Madanalal Tripathi, Jayadatta Kandapal, Manasharama Shastri, Vedananda Jha, Purushottam Tripathi. *Add*. Sanatan Satasang Sanskrit Mahavidyalaya, Nainital (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Duggal, Rita. M.A. B.Ed. *b*. 08.09.1955. Teacher. *Add*. 1-F/49, Lajpat Nagar, New Delhi. 110024. *Spl.Ref.*Sāhitya Śāstra.

Duraisvami Ayyangara, T.A.P. Nyāyaśiromaṇi. *b*. 1916, Tiruchanur, A.P. Acharya (Rtd. Principal). *Gp*. Das Shrinivasa Ayyangara, Ramachandra Shastri. *Add*. Purisai, Kanchipuram, TN. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Durgacharana. Tirthopadhi in. Kāvya & Vyākaraṇa *b*. 03.04.1941, Kaiti, Burdwan, WB. Teacher. *Add*. Harisabha Chatuspathi, Bardwan, W.B. *Spl.Ref.* Kāvya, Vyākaraṇa.

Durrany, Mohammad Khan. M.A., Ph.D. Ex-Secretary (N.I.C.), Dy. Director (Rtd.) R.Sk.S. New Delhi. *Bks*. 150. The Geeta and Quran] Bisharat-i-Rasul (in Devanagari Script on the theme, How to gain Veto power), Translated from Skt. To Hindi- Uttararāmacaritam, Kirātārjunīyam, Mṛccha-ka-ikam, Three Shatakas of Bhartṛhari, Arthaśāstra of Kautilya, Saṃskritasāhitya kā Itihāsa, Rāmcaritamānasa of Gosvāmī Tulasīdāsa, Rājataranginī of Kalhaṇa. *Ps*. 50. *Add*. Durrany Villa, B-74 Mohan Garden, New Delhi- 110059. *Ph*. (Res.) 011-5648996. *Spl.Ref.* Translated many Sanskrit and Hindi Epic, Drama etc. into Urdu. He is the known poet of Hindi, Skt. and Urdu and gave saveral talks and recited poem or A.I.R. and T.V. Delhi. A Member of Indian Motion Picture Producers’ Association (Imppa) Bombay.

Dutt, Haripad. M.A. (Skt. & Bangla) Sāṅkhya Vedānta Tīrtha. ***b.*** 1927, Bangladesh. ***Bks.*** 02. Kavitāvalī, Khukī. ***Add.*** NIshchintpur, Rampur Haat, Veerbhum, W.B.

Dutta, Dinesh Chandra. M.A. in English, Greek, Latin, French, German, Hibru, Arabic & Parsiian. ***b.*** 1891. Lect., Culcutta. ***Bks.*** 05. Subhāṣa Gauravaṃ (1968), Ravīndra Pratibhā, Candaḥ Sandohaḥ, Baṅga Vibhavarī (1968), Bhārata Gāthā.

Dutta, Vishnu. M.A., Sahitya. ***b.*** 08.05.1957, Gagar, Pithouragarh, U.P. Prof. ***Gp.*** Shyamacharan Mishra, Jagdamba Prasad Dwivedi. ***Add.*** Shri Sanatan Dharma Sanskrit Mahavidhyalaya, Haldwani, Nainital U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Dwivedi, Avadhesh Kumar. M.A., Acharya in Sāhitya, Bauddha-Darśana, Shiksha Shastri, Ph.D.. ***b.*** 21.07.1965, Devariya (U.P.). Asct. Prof. Karmashri Nalanda Uchcha Baudha Adhyayana Sansthan, Roomteka Sikkim. ***Ps.*** 05.

Dwivedi, Ayodhya Prasad. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.08.1940, Belaha, Sidhi, M.P. ***Gp.*** Dr. Revaprasada Dwivedi. ***Bks.*** Kālidāsasya Bimbavidhānam. ***Add.*** Belaha, Sidhi, M.P.. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Baij Nath. Acharya. ***b.*** 15.10.1928. Vill. & P.O. Handiya, Gorakhpur, U.P. Principal. ***Bks.*** 03. Śrīmad Vālmīkiya Rāmāyaṇa Aura Bhāratīya Dṛstī, Rāmāyaṇakāra Mahārsī Vālmīki eka vivechana, Sanatsujātiya Darśana. ***Add.*** Sri Rajagopal Skt. Mahavidyalaya, Ayodhya, Faizabad, U.P. ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa, Vedānta.

Dwivedi, Balendu Kumar. Acharya in Vyākaraṇa, M.A.. ***b.*** 03.11.1956. Pathari, Shahdol, M.P. Teacher. ***Gp.*** Dr. Kusalaprasada Pandeya, Anjaniprasada Pandeya. ***Add.*** Govt. Skt. Mahavidyalaya, Gwalior, M.P – 474009. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Dwivedi, Bhartendu. M.A., D.Phil. ***b.*** 01.03.1956, Muradabad, U.P. Asct. Prof. & HOD Deptt of Skt. Kashinaresh Govt. PG College Bhadohi. ***Bks.*** 20 Ṛgveda Subhāṣitāvalī, Vedo me Rājanīti Śāstra, Atharvaveda Subhāṣitāvalī, Vedo me Āyurveda, Nāṭyaśāstra me Āṅgika Abhinaya. ***Ps.*** 44. ***Add.*** Shantinekaten Gyanpur, Bhadohi-221304. Ph. 05414250250, M. 09415170201. drbdbivdi@hotmail.com ***Spl. Ref.*** Nā-ya Śāstra. Mauritius, Singapore in 1990.

Dwivedi, Bhaskaradatta. Acharya (Sankrit), Shiksashastri. ***b.*** 17.02.1958. P.G. Teacher, Dadu Dayala Arya Vaidik Senior Secondary School, Naya Bans, Delhi. ***Add.*** T-10/A/4 Nai Basti, Ward No. 3, Mehrauli, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Biharilal Ramalal. Acharya in Siddānta & Phalita Jyotiṣa. ***b.*** 15.02.1932, Khadagada, Dungarpur, RJ.. Principal. ***Gp.*** Pranashankar Dixit, Laxmikanta Jha, Sarayuprasada Upadhyaya, Avadhabihari Tripathi, Mithalala Ojha. ***Add.*** G.T. Skt. Mahavidyalaya, August Kranti Maidan, Tejapal Road, Mumbai, MH – 400007. ***Spl.Ref.*** Jyotisha. Recipient of President award.

Dwivedi, Brahmadutta. ***b.*** 1906. Allahabad Prayag, U.P.. Asst. Prof., Muraraka Skt. College, Patana, Varanasi. ***Bks.*** 01. Rādhikā (Comentory on Śabdenduśekhara). ***Expired in.*** 1987.

Dwivedi, Chandra Mauli. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 09.03.1948, Varanasi. Prof.Sāhitya SVDV, BHU. ***Gp.*** Pt. Mahadev Pandey, Prof. Rewa Prasad Dwivedi. ***Sp.*** Dr. Shiv Ram Sharma, Dr. Amrendra Mishra, Dr. Sharadindu Kumar Tiwari, Dr. Ranjan Tripathi, Dr. Ramakant Pandey. ***Bks.*** 09 Vivekālokaḥ, Candrālokaḥ, Kāvyamīmāṃsā, Bhāratajīvanam Kāvyam, Rasavasumūrtiḥ. ***Ps.*** 32. ***Add.*** N2/297 B2 Karaundi BHU, Varanasi - 221005. Ph. 0542-316109. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. Principal Investigator of the Project Title Vyaktiviveka kī Upalabdha tikāo kī Samīkṣā 1997, Member of various committees including academic council DRC, RDC, PPC Deen Commitees, Schoalarship committees in BHU, Steering Committes for National International Database etc.

Dwivedi, Chandrabali. Sāhitya. ***b.*** 15.10.1937, Atrourajham, Basti, U.P. Teacher. ***Add.*** Rampur

Halvara. Sarairasi, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* Navya-Vyākaraṇa. Sāhitya.

Dwivedi, Chhakkilal. Shastri in Vaidya, Acharya in Sāhitya & Āyurveda. *b.* 02.03.1925, U.P. *Gp.* Banavarilal Dixit, Pt. Baleshvara Pandey. *Add.* 27, Dwarikadhish Pitrichayam, Gwalior (M.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya, Āyurveda.

Dwivedi, Chhatradhari. Acharya in Jyotiṣa. *b.* 07.07.1938, Bariaghat, U.P. H.O.D. of Jyotiṣa, Shri Sanatan Bhairav Shankar Brahm Mahavidyalaya, Bariaghat, Mirzapur. *Gp.* Sarajuprasad, Shiv Shankar Sharma Tripathi. *Add.* Shri Sanatan Bhairav Shankar Brahm Mahavidyalaya, Bariaghat, Mirzapur (U.P.). *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Dwivedi, Dashrath. M.A., Ph.D. *b.* 14.12.1940. Vill. & Post. – Pachval, Distt. Jaunpur, U.P.. Prof. Gorakhpur Univ., U.P. *Bks.* 14. Vakroktījīvitam, Abhīnavarasa Siddhānta, Kādambarī (trans.). *Ps.* 35. *Add.* 14. Hirapuri, D.D.U. Gorakhpur Univ., Gorakhpur, U.P. *Ph.* 200437.

Dwivedi, Devi Prasad. Acharya, Shikshacharya, Ph.D. *b.* 02.07.1966 Jaunpur U.P. Reader Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow Campus. *Gp.* Dr. Mandan Mishra, Prof. S.D. Vasistha. *Bks.* 03 Prācya Śikṣā Darśanam, Prācīna Bhāratīya Śikṣā, Hindī Śikṣaṇa. *Ps.* 10. *Add.* 2/811 Vinaya Khand Gomti Nagar Lucknow - 226010 U.P. M. 09455037183.

Dwivedi, Devi Prasad. Acharya. *b.* 10.01.1955, Hardigulalpur, Mirzapur, U.P. Asst. Prof. (Vyākaraṇa). *Gp.* Sarayuprasad Upadhyay, Pt. Kamalkant Pandey. *Add.* Shri Sanatan Bhairava Shankar Bhrahm Sanyukta Mahavidyalaya, Bariyaghat, Mirzapur, U. P.. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Dwivedi, Durga Prasad. Vidvān in Jyotiṣa, Sāhitya, Darśana & Vyākaraṇa. *b.* 1863, Ayodhya, U.P. Lect., HOD. & Princ. Skt. College, Jaipur. *Gp.* Bapudev Shastri, Gangadhar Shastri, Rambhaj Saraswat, Saryu Prasad Dwivedi. *Bks.* 19. Daśakaṇ-havadham, Durgāpuṣpāñjali, Devarāj Carita, Cāturvarṇya Śikṣā, Prasanna Caṇḍīpati Aṣ-aka. ***Expired in.*** 1937. *Spl.Ref.*. Recipient of Mahamahopadhyaya award.

Dwivedi, Dwarka Prasad. Acharya, Ph.D., Vedāntaśiromaṇi, Vyākaraṇa Vachaspati. *b.* 18.02.1939, Ghorat, Khurai, Sagar, M.P. H.O.D. of Vyākaraṇa. Shri Nandlal bajoriya Skt. Mahavidyalaya, Varanasi. *Gp.* Pt. Balakrishna Dixit, Ramaprasad Tripathi, Mahesvaranand Saraswati. *Add.* B-2/148, Bhadaini, Varanasi (U.P). *Spl.Ref.* Vedānta,Darśana.

Dwivedi, Gangadhar. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.* 1921. Ayodhya. Princ., Govt. Skt. College, Alwar. *Gp.* Pt. Veereshwar Shastri Dravid, Shri Ghootar Jha, Shri Girish Chandra Avasthi. *Bks.* 08. Durgāpuṣpānjaliḥ, Daśakāṇ-ha Vadhachampūkāvyam, Āgamarahasyam, Bhāratālokah. *Spl.Ref.* Recipient of Rashtrapati Award. A Great Scholar of Mahabhashya, Shabden-dushekhara, Manjusha praudha Vyākaraṇa. Editor of Saṃskṛta Ratnākara Magzine. Participated in Skt. Programms broadcasted from doordarshan jaipur.

Dwivedi, Hajari Prasad. D.Litt., M.A. (Hindi). *b.* 1907, Baliya, (U.P.). Prof. & V.C. Panjab Univ., Punjab. *Bks.* 13. Bāṇabha-- kī Ātmakathā, Meghadūta eka Purānī Kahānī, Kālidāsa ki Lālitya Yojanā, Prācīna Bhārata meṃ Kalā Vilāsa. Aśoka ke Phūla. ***Expired in*** 1978. *Spl.Ref.* Recipient of ‘Padmbhushan Award’ by Govt. of India.

Dwivedi, Hari Prapanna. M.A., Ph.D. *b.* 06.02.1931, Chakari, Distt. Siwan, Bihar. HOD. of Sanskrit, Bihar University, Muzaffarpur, Bihar. *Gp.* Sitla Prasad Shukla. *Bks.* Studies in Paṇini. *Add.* Muzaffarpur Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra, Darśana Śāstra.

Dwivedi, Harihar Kripalu. Specilization in Vyākaraṇa, Nyāya, Mimāṃsā, Vedānta. Teacher, Seth Murarka Skt. School. Varanasi, (U.P.). *Gp.* Pt. Ramyagya, Pt. Umapati. *Sp.* Pt. Kamalakant Mishra, Pt. Ramanuj Ojha, Pt. Raghunandan Tripathi, Pt. brahmadatt Dwivedi, Swami Krishanbodhasram, Shankara-

nand. *Bks.* 05. Kalpakalikā, Nyāya Kusumāñjali Ṭīkā. Rameśvarakīrti Kaumudī. *Expired on.* 23.03.1949. *Spl.Ref. Recipient of* M.M. award by Govt. of India in 1922. Also hounored 'Vidyaratnakar' & 'Vidyanidhi' award by Bharat Dharm Mahamandal, Kashi in 1914 and 'Tarkālankar' Padavi by Bihar Vidwatparishad in 1914.

Dwivedi, Harinath. *Gp.* Balshastri Ranade. *Bks.* 02. Liṅga-Dhāraṇā Candrīkā Vyākhyā, Aśaucanirṇaya Trinśatślokī (1914).

Dwivedi, Haripal. Sāhityaratna, Ph.D. *b.* 01.08.1940, Badahari, Deoria, U.P. Princ. *Add.* Shri Devavani Pracharak Janta College, Pipla Dhola Kadam, Deoria U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Dwivedi, Iccharam. Acharya in Purāṇetihāsa, Ph.D. *b.* 15.11.1961, Etawa U.P.. Asst. Prof., S. L. B. S. R. Skt. Vidyapeeth, N.Delhi. *Gp.* Shri Lalbihari Dwivedi (Father), Pt. Gopal Dubey, Acharya Keshav Dev Tiwari, Shri Ramdhyal Dwivedi, Shri Parabhu Dutt Sharma. *Bks.* 30. Gīta Mandākinī, Dūta Prativacanam, Mitradūtam. Ps. 55. Spl.Ref. Poetry in Hindi, Skt., Urdu,

Dwivedi, Indradeva. Acharya in Sāhitya, Ph.D., Vidyavachaspati, *b.* 03.01.1940. Asct. Prof. *Bks.* 02. Sūktimandākinī, Sudāmācarita. *Add.* Kendriya Skt. Vidyapeetha. Aliganj, Lucknow (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dwivedi, Jai Prakash Narayan. M.A., Ph.D. *b.* 01.04.1954. Pipraiya Hat, Padarauna, Deoria, U.P. Prof./ Director *Bks.* 01. Bṛhaddevatā (Anuvāda - I,II). (1983). *Ps.* 01. *Gp.* Dr. Vidyanivas Mishra, Dr. Vishambhara-natha Tripathi, A.C. Benarji. *Add.* Director, Shri Dwarakadhish Skt. Academi & Indological Research Institute, Dwarka, Dist. Jam Nagar, GJ - 361335. *Ph.* (02892) 34525.

Dwivedi, Jaiprakash Narayan. Ph.D. *b.* 01.04.1954. Prof. Shri Dwarikadheesh Sanskrit Academy & Indological Research Institute Dwarika. *Add.* Director Niwas, Sanskrit Academy & Research Centere, Dwarka. *Spl.Ref.* Vedānta, Alaṅkāra.

Dwivedi, Jaishankar Prabhakar. Sāhitya-Acharya. *b.* 25.06.1929, Tilakpur, Talawada, RJ.. *Gp.* Shukdev Jha, Pt. Kantilal Yajnik, Karunashankar Dwivedi. *Add.* Talawada, Banswara (RJ.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Dwivedi, Janaki Sharan. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 25.08.1950, Kamata, M.P. Vyākaraṇa Teacher. *Gp.* Rambhajan Pandeya, Rameshvaradayalu Tripathi. *Add.* Shri Hari Ram Skt. Vidyalaya, 24 Unchamandi, Prayag, U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Dwivedi, Janki Prasad. M.A., Ph.D. *b.*08.05.1941. Prof. Kendriya Uchcha Tibbati Sansthan Sarnath, Varanasi. *Add.* Vill. Kamla Patralaya Akaru, Jampad Kanpur U.P.

Dwivedi, Kailash Nath. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 11.01.1942, Vaina, Kanpur, U.P.. HOD, Janta Mahavidyalaya Etava. Principal. Sri Mathura Prasad Mahavidyalaya, Jaloun. *Bks.* 05. Kālidāsa kī Kṛtiyo me bhaugolika Sthāno kā Pratya-bhijñāna, Ṛgveda me Saptasindhu pradeśa. *Add.* Janata Mahavidyalaya, Ajitmal, Etawah, U.P.. *Spl.Ref.* Recipient of U.P Skt. Academy Award & Kashi Prasad Jayaswal Award.

Dwivedi, Kapil Dev. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. (Skt. & Hindi), D.Phil., Ph.D. *b.* 16.12.1919, 06.12.1918 Gazipur, Director Vishwa Bharti Research Inst. Bhadohi, Ex-V.C. Gurukul Mahavidyalaya *Gp.* Pt. Chhedi Prasad & Dr. Hari Datt Shastri. *Bks.* 74 Vedo me Vijñāna, Samskṛita kavi Hṛdayam, Ātmavijñānam, Vedo me Āyurveda. Artha-vijñāna aura Vyākarana Darśana (Hindi), Saṁskṛta Vyākaraṇa (Hindi), Saṁskṛta sāhitya kā samīkṣāvijñana evam bhāṣāśāstra (Hindi), Śānti stotram evam Mahāprayāṇam (Kāvya). *Ps.* 113. *Add.* Shantiniketan Gyanpur, Bhadohi-221304 U.P. Ph. 05414250250, M. 09415170201 drbdvivedi@hotmail.com *Spl. Ref.* Veda, Indian Religion, Vyākaraṇa, Kāvya. Marathi, Bangali, Pālī, Prākṛta, Urdu, German, French, Russian, Cheinees. Padmshri Award 1991, Guru Ganeshwaranand Veda Ratna 2005, Rashtrapati Samman 2010, Italy, France,

England, USA, Canada in 1976, England West Germany, Neitherland 1989, America, Canada, Surinam Guyana 1990 Mauritius, Keneya, Tanjaniya 1991. Honoured by President of Surinam, President of Mauritius, London Univ., Toronotto Univ. & Several Awards etc.

Dwivedi, Kashi Nath. Acharya in Vyākaraṇa & Darśana. *b.* 21.01.1898. Kashi. ***Gp.*** Pt. Rambhawan Upadhyay, Swami Manishyanand ji. ***Sp.*** Pt. Rambalak Shastri. ***Bks.*** 02. Rukmaṇiharaṇaṃ. Rasapeśala Kāvya. ***Add.*** Misirpokhara Muhalla, Kashi. ***Expired in.*** 1973. ***Spl.Ref.***. Recipient of 'Sahitya Sudhanidhi' Award.

Dwivedi, Kedar Nath. Śuklayajurveda, M.A., B.Ed., *b.* 15.01.1934, Dhanautiray, Pipra Ramghar, Deoria, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Pt. Kamalnath Shukla. ***Add.*** Govt. Skt. Mahavidyalaya, Bhitri. ***Dist.*** Sidhi, M.P. ***Spl.Ref.*** Śuklayajurveda. Sāhitya.

Dwivedi, Keshav Prasad. Acharya, Vidyavaridhi. *b.* 18.09.1959, Varanasi, U.P. ***Gp.*** Dr. Parasanath Dwivedi. ***Add.*** Bahpura. Itahara, Varanasi, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Krishn Kumar. Acharya in Vyākaraṇa & Siddhānta Jyotiṣa. *b.* 01.03.1922, Samhan, Prayag, U.P. Rtd. Principal. ***Gp.*** Avadha Bihari Tripathi, Pt. Sukadev Chaturvedi. ***Add.*** Shri Narayani Skt. Vidyalaya, Katni, M.P.. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Siddhānta Jyotiṣa.

Dwivedi, Krishna Chandra. Acharya in Jyotiṣa, Siddhānta Phalita, Astronomy, Ph.D. *b.* 19.07.1932. Devariya U.P. Director Bharati Jyotish Anusandhan Kendra Varanasi. ***Bks.*** 14. ***Ps.*** 10. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa, Awarded by U.P. Govt. & U.P. Skt. Academy, TV Radio Talk.

Dwivedi, Lalbihari. Acharya in Jyotiṣa, Purāṇa, Hindi Sāhityaratan, Ph.D. *b.* 15.02.1922, Etawah, U.P. ***Gp*** Chotelal Tripathi, Pt.Kalika Prasad, Pt. Krishnamani Tripathi, Pt. Badrinath Shukla. ***Bks.*** Purāṇeṣu Vāstuvidyāvivecanam. ***Add.*** 167/12, Punjabi Colony, Mainpuri U.P. ***Spl.Ref.*** Disc.Jyotiṣa Śāstra, Purāṇa Śāstra.

Dwivedi, Laxmi Narayan. Acharya Navya Nyāya, Mahopadhyaya, Navya Vyākaraṇa. *b.* 1907, Sagar, Rtd. Teacher & Skt Scholar. ***Spl Ref.*** Navya Vyākaraṇa, Navya Nyāya.

Dwivedi, Laxmi Prasad. Ach., M.A. (Skt., Hindi) *b.* 05.04.1954, Panna, M.P. Lec. & Trenner, District Institute of Education and Tranning Hatta, Damoh M.P. ***Gp.*** Ach. Indrapal Mishra, Prof. Karunapat Mishra, Pt. Ramsanmukh Mishra, Pt. Ramprasad. ***Sp.*** Sanjay Dwivedi, Avneesh Pauranik. ***Add.*** Ganga Jhiriya, Chandi ji Ward Hatta, Distt. Damoh M.P. ***Spl.Ref.*** Scholar of Yajurveda, Vyākaraṇa, Jyotiṣa and Karmakāṇda. He is a vedpathi.

Dwivedi, Lokadhar. Acharya (Navya-Vyākaraṇa, Vedānta), Kāvya-Tīrtha, M.A. *b.* 10.10.1913, Barhyapar, Gorakhpur, U.P. Rtd. Asst. Prof. ***Add.*** Rishi Sanskrit Mahavidhyalaya, Nardhan Niketan, Kharkhari, Haridwar U.P. ***Spl.Ref.*** Disc. Navya-Vyākaraṇa, Vedānta Śāstra, Kāvya Śāstra.

Dwivedi, Mahavir Prasad. Hindi & Skt.. ***Bks.*** 14. Kathamaham Nāstikaḥ, Kānyakubjalīlā-mṛtaṃ, Samācārapatrasampādakastavaḥ. Sūryagrahaṇam. Prabhāta Varṇaṇaṃ. ***Spl.Ref.*** Famous Poet of Skt. & Hindi Poetry.

Dwivedi, Mahesh Kumar. Acharya, M.A., NET, Ph.D. *b.* 14.07.1975. Prof. Shri Ekrasanand Adarsh Skt. College, Mainpuri U.P. ***Gp.*** Prof. Mamyatna Shukla, Prof. Mammanohar Mishra, Prof. Radhavallabh Tripathi. ***Sp.*** Sanjay Dwivedi, Vishnu Prasad Meena, Surendra Prasad Tiwari. ***Add.*** Vill. Ghatra, Post Naharpur, Distt. Chatarpur M.P.

Dwivedi, Mani Shankar. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa. *b.* Patanwada, Badmer, RJ. Asst. Prof., Skt. College, Jodhpur, RJ. ***Bks.*** 01. Saṃsakṛta Kavitā Saṅgraḥ. ***Spl.Ref.***. Also specilization in Veda & Sangeet, Translated Sindhi book of Poet Abadula Latif into Sanskrit, Organized Skt. Sammelan in Jodhpur on 25.12.1952.

Dwivedi, Manohar Lal. Acharya in Sāhitya. M.A., Ph.D., Atharvaveda, Lib. Science. *b.* 23.08.1920, Varanasi (U.P.). ***Gp*** Gopalshastri

Nene, Chinnasvami Shastri, Bhagawanlal Agnihotri, Damodarlal Goswami, Mukund Shastri Khiste. *Bks.* 01. Kātyāyana-yajñapaddhativimarśa (Hindi). *Add.* K-24-26, Ramghat, Varanasi – 221001 (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Atharvaveda, Shrauta. *Awards.* (U.P.) Government Award.

Dwivedi, Mata Prasad. Acharya in Sāhitya, Jyotiṣa. *b.* 18.03.1921, Mirzapur, (U.P.). Principal (Rt.). *Gp* Pt. Ramshastri. *Add.* V 22/170 B, Shankudhara, Khojwa, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Jyotiṣa.

Dwivedi, Nanhe Prasad. Shastri, M.A.. *b.* 07.11.1933, Kharade, Bilaspur, Chhattisgarh. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Revaprasad Dwivedi, Dr. Deviprasad Tripathi. *Add.* J.L.N. College, Skt. Dept. Bilaspur, Chattishgarh. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dwivedi, Narasimha. Acharya in Śukla Yajurveda, Ph.D.. *b.* 11.12.1944, Shahpur, Deoria, U.P. Veda Teacher. *Gp.* Bhagavatprasad Mishra, Vindheshvariprasad Tripathi, Dr. Gopalachandra Mishra. *Add.* Mumukshu Bhawan, Ved Vedang Skt. Mahavidyalaya, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Veda & Dharma-Śāstra.

Dwivedi, Nirbhay Ram. Acharya in Sāhitya. *b.* 10.06.1924, Chapra, Banda, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Ramadayalu Tripathi. *Add.* Rishikumar Skt. College, Pilikothi, Chitrakuta, Dist. Satna, M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dwivedi, Paras Nath. Acharya in Vedānta, Vyākaraṇa, Sāhitya, Ph.D., Vachaspati. *b.* 15.09.1943, Aara, Bihar. Prof. Vedānta, Sampurnanand Skt. Vishvavidhyalaya, Varanasi. *Gp.* Pt. Raghuveer Pandey, Acharya Shriram Prasad Tripathi, Dev Swaroop Mishra. *Sp.* Prof. Ramkishor Tripathi, Dr. Rameshwar Dwivedi (Son). *Bks.* 05. Pārvatī Maṅglam, Vivaraṇa-prameya Saṅgrahaḥ, Sanatsujātīyam, Siddhantaleśa Śaṅgraha. *Expired on* 23.08. 2010. *Spl.Ref.* Recipient of President Award for his contribution in Vedānta, Vyākaraṇa, Sāhitya, jyotiṣa & Vishishta Samman of Luchnow Skt. Sansthan.

Dwivedi, Paras Nath. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1930, Sulatanpur, (U.P.). Head of the Deptt. of Puranetihasa. *Gp.* Muralidhar Mishra, Dr. R.G. Harsh. *Add.* 3/A, New Professor Colony, Sampurnanand Sans. Univ. Campus, Varanasi – 221002 (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya. President Awardee.

Dwivedi, Prabhakar. Vyākaraṇa, Ph.D.. *b.* 05.01.1951, Bhojpur, Bihar. *Gp.* Bhupendrapati Tripathi, Saligram Mishra. Head of the Vyākaraṇa Deptt., Shri Haradev Das Nathamala Vaisaliya Adarsh Sanskrit Vidyalaya. *Add.* D-14/110, Tedhi Nim, Varanasi, (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Dwivedi, Prabhu Nath. M.A., Ph.D. *b.* 25.08.1947, Vill. Bhainsa, Kachhwa, Dist. Mirzapur, U.P., Prof. M.G. Kashi, Vidhyapeeth, Varanasi (U.P.). *Bks.* 27. Śrīrāmānanda-Caritam, Antaradhwaniḥ, Śvetadūrvā, Kathā-Kaumudī, Mahākavī Harṣavardhana. *Ps.* 120. *Spl.Ref.*- Recipient of Skt. M.M. Banabhatta Award, Vikramakalidas Award. Kadambari Award. *Add.* M.G. Kashi Vidhyapeeth, Varanasi. *Pin.* 221002. *Ph.* (0542) 2373815. 09415291980.

Dwivedi, Pradeep Kumar M.A. *b.* 20.05.1984. Sarguja C.G. JRF, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow Campus *Gp.* Prof. Vijay Kumar Jain. *Ps.* 01. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan Vishal Khand 4, Gomti Nagar Lucknow - 226010. U.P. Ph. 05740252356, M. 09696424720 pkdsans@gmail.com *Spl Ref.* Pali.

Dwivedi, Pt. Premnarayan. M.A., Acharya, Kāvyatīrtha, Ph.D. b. 05.06.1922 Sagar, M.P. *Gp* Prof. Ramji Upadhyay, Prof. B.M. Apte, Acharya Bhaiyalal shastri, Nyayacharya Bhadram Shastri. *Bks.* 05. Saundarya Saptaśatī, Kavitāvalī, Srīmadrāmacaritamānasam, Stuti Kusumamālā, Kāvyanirjhara. ***Expired on*** 28.04.2006. *Spl.Ref.* Translated all literature of Goswami Tulsidasa & other many important Hindi kavyas in Sanskrit language.

Dwivedi, R.P. Acharya, M.A. in Skt. & Pali, Ph.D., Vidyavachaspati. Asct. Prof. *Add.* Deptt. of Skt., Faculty of Arts, Banaras Hindu Univ. Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya, Pālī, Bauddha-Sāhitya.

Dwivedi, Radhakrishn. *b.* 21.12.1953, Sultanpur, (U.P.). Principal. ***Gp*** Kamalesvara Dwivedi, Purushottam Tripathi. ***Add.*** Bharatiya Sanskrit Vidyalaya, Katra Bazar, Gonda (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Dwivedi, Radhe Shyam Dhar. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 22.07.1944, Sajaon Deoria, U.P.. Asst. Prof. Sampurnanand Skt. V. V., Varanasi, U.P. ***Gp*** Jagannath Upadhyaya, C.R.V. Murti. ***Bks.*** 07. Mānava Nītī Vivecanam. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Krishna Bhawanam. Varuna Parisar, Jadida Bajar, Back of Taj Hotel, Varanasi. ***Ph.*** 204974.

Dwivedi, Rahas Bihari. Acharya, M.A.,Sāhitya Ratna, Vidyavachaspati, M.Litt. ***b.*** 02.01.1947. Allahabad. Rtd. Prof. Rani Durgavati V.V. ***Bks.*** 04. Arvācīna Saṃskṛta Mahākāvyānuśīlanaṃ, Svāsti-Sandeśa, Sāhityavimarśaḥ, Saṃskṛta Mahākāvyo ka Ālocanātmaka Adhyayana, Svarita - Sandeśaḥ, Saṃskṛta Vāṅmaye Vijñānam. ***Ps.*** 50. ***Add.*** C -9. Saraswativihar, Pachapedi, Jabalpur. M.P. - 482001. ***Ph.*** (0761) 605081. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra. Poet, President Awadee 2011, Govt.of India.

Dwivedi, Rajendra Prasad. M.A., Ph.D.. ***b.*** 01.08.1956, Hardua, Allahabad, (U.P.). Asst. Prof., Murar, Sanskrit Mahavidyalaya, Chowk, Patna. ***Add.*** Kagaj Bhawan, Chowk, Patna City (Bihar). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Dwivedi, Rajendra Prasad. Acharya in Sahitya, M.A.. ***b.*** 15.07.1952, Jaunpur, (U.P.). Asst. Prof.. ***Add.*** D-20, Cottage Nancy Colony, Shrikrishna Nagar, Boriwali, Bombay (MH). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Ram Chandra. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 1951. Mainpuri, U.P. Prof., Univ. of RJ. ***Gp.*** Prof. Mukund Shastri Khiste. Batuknath Shastri Khiste. Gaurinath Shastri. Prof. Co. A. Subrahamanayam Aiyyar. ***Bks.*** 07. Tantrāloka (ed.), Trikadarśanam, Jātakamālā, Īśvara Prātyabijña Vimarśinī, Amara Bhāratī Saṃvāda. ***Expired in*** 1993. ***Spl.Ref.*** Recipient of "Rashtrapati award" in 1987–88. Also honored by "Harit Rishi" award of Maharana Mewar Foundation.

Dwivedi, Ram Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D., Diploma in French. ***b.*** 15.06.1935, Farukhabad, (U.P.). Head, Deptt. of Sanskrit. ***Gp*** Asst. Prof. Subrahmanya Ayyar, Asst. Prof. Batukanath Shastri. ***Bks.*** 01. Alaṅkāra-sarvasvasañjīvanī. ***Add.*** University of RJ., Jaipur (RJ.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Darśana.

Dwivedi, Ram Gopal. Acharya in Vyākaraṇa, M.A.. ***b.*** 01.04.1944, Pahra, Chhatarpur, (M.P.). Asst. Prof.. ***Add.*** Shri Vamdev Sanskrit Mahavidyalaya, Banda (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Dwivedi, Ram Madhav. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D., B.Ed.. ***b.*** 04.11.1939, Dulhara, Rewa, (M.P.). ***Gp*** Rajaramacharya, A.N. Ramanujacharya. ***Add.*** B-31, Ramkrishna Puri, Murad, Gwalior (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Ram Narayan. Acharya, Ph.D. ***b.*** 08.09.1944, Satohari, Sidhi, (M.P.). Asst. Prof. ***Gp*** Dr. Jagannath Pathak. ***Add.*** Abhayanand Shasakiya Sanskrit Mahavidyalaya, Kalyanpur, Shahdol (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Ram Nath. Acharya in Āyurveda. Baliya, U.P.. Asst. Prof., Aayurved Sansthan, Varanasi. ***Gp.*** Pt. Satya Narayan Shastri. ***Bks.*** 06. Rogiroga Vimarśaḥ, Sauśrutī, Agadatantra, Bhiṣakkarma-Siddhi, Prasūtivijñāna.

Dwivedi, Ram Salahi. Acharya (Vyākaraṇa), M.A., Vidyavaridhi. ***b.*** 06.09.1968. Asstt. Prof. Deptt of Vyākaraṇa, LBS Rashtriya Skt. Vidyapeetha. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 50 ***Add.*** 205, Gupta Aptt., Mehta Chowk, Ward No. 07 Mehrauli-30 ***M.*** 09873306806.

Dwivedi, Ramanuj.Sāhitya Shastri. ***b.*** 25.11.1958, Deora, Tenshah, Alamabad, U.P. Asst. Prof., Sanskrit Vidhyalaya. ***Gp*** Ramvind Prasad. ***Add.*** Deora, Tenshah, Alamabad, Allahabad. Dist. U.P.

Dwivedi, Ramashray. Sāhitya-Acharya. ***b.***05.05. 1950, Tisoura, Azamgarh, U.P. Principal. ***Add.*** Shri Vaishnava Harihardas Sanskrit Vidhyalaya, Sherpurkuti, Azamgarh U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Dwivedi, Ramayan Prasad. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, M.A., Ph.D., Vidhyavachaspati. ***b.*** 08.07.1939, Dubouli, Deoria, U.P. Asct. Prof., Deptt. Of Sanskrit, Banaras Hindu University. ***Gp*** Baladev Upaddhayay, Badrinath Shukla, Ramkuber Malviya, Vishvanath Prasad Mishra, Hajariprasad Dwivedi., Suryakant. ***Add.*** B-32/29, Saket Colony, Naria, Varanasi U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra, Darśana Śāstra.

Dwivedi, Ramdhar. Acharya in Sāhitya, Ph.D.. ***b.*** 15.03.1960, Mirzapur, (U.P.). Asst. Prof. ***Add.*** Shri Mahavir Vishvavidyapith, A-5, Pashchim Vihar, Delhi – 110063. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Ramesh Kumar. Acharya, M.A., Ph.D.. ***b.*** 23.07.1960, Deoria, (U.P.). ***Gp*** Jagannath Upadhyaya, Ramshankar Tripathi. ***Add.*** Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Darśana.

Dwivedi, Ramesh Kumar. M.A., Ph.D. ***b.*** 23.07.1960, Devariya (U.P.). Prof. & Dean, Sampoornanand Sanskrit Sansthan, Varanasi (U.P.). – 221002. ***Bks.*** 11. Bauddha-dharmadarśana evam Dharmanirapekṣatā, Bauddhadarśana aura Mārksavāda, Bhāratīya Saṃskrita Pravrajita Nārīṇāmavadānam, Bauddhadarśana Tattva Vimarśaḥ, Jyoti-Smārikā. ***Ps.*** 24. ***Add.*** S – 17/95, A 12-2, Nadesar, Varanasi (U.P.) 221002.

Dwivedi, Ramkripal. Sāhitya, Kāvyatīrtha. ***b.*** 15.08.1934, Shiv, Banda, (U.P.). Teacher. ***Bks.*** 03. Naladamayantī-nā-akam, Mayūra-dūtam, Śivāsammohan. ***Add.*** Inter College, Khandihakala, Banda (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Dwivedi, Ramnarayan, Shastri. Sahityashastri, Kāvyatīrtha, Ph.D. ***b.*** 24.02.1938, Madanpur, Bilaspur C.G. ***Gp.*** Deviprasad Tripathi, Mahadev Shastri. ***Add.*** Vidhya. U.P. Nagar, Bilaspur C.G. ***Spl.Ref.*** Disc.*Sāhitya* Śāstra.

Dwivedi, Ramraj. M.A., Acharya, Ph.D. ***b.*** 01.08.1956, Godhani, Banda, U.P. Research Scholar. ***Gp*** Dr. Revaprasad Dwivedi. ***Add.*** 33, Research Scholars Hostel, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi. U.P. ***Spl.Ref.*** Mīmāṃsā.

Dwivedi, Rewa Prasad. Acharya, M.A., Ph.D. D.Litt. ***b.*** 22.08.1935. M.P. Prof. & H.O.D. Prachya Vidya B.H.U., Varanasi. ***Bks.*** 35. Sītācaritam, Yūthikā, Ānandavardhanaḥ, Himādre Raghuvaṃśa Darpaṇaḥ, Kālidāsa-granthāvaliḥ, Uttarasītācaritam, Svātantraya Sambhavam, Nā-yānuśāsanam, Śatapatram, Pramatha. ***Ps.***108. ***Add.***28, Mahamanapuri, Varanasi-05. ***Spl.Ref.*** Recipient of Certificate of Honour by President, Govt. of India & Srivani Alankarana (99), Sāhitya Śāstra.

Dwivedi, Sadashiv Kumar. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.05.1964, Raipur. Asct. Prof. Deptt. of Skt. Faculty of Arts, BHU, Varanasi. ***Gp.*** Acharya Rewa Prasad Dwivedi, Acharya Vishwanath Bhattacharya. ***Sp.*** Students appointed at various college and Univ. ***Bks.*** 11 Śṛṅgār-prakāśa, A Texual Study of Kumārasambhava, Kālidāsa Granthāvalī, Kālidāsa : Apanī Bāta, Svatantra Sambhava Mahākāvyam. ***Ps.*** 47. ***Add.*** 28, Mahamanapuri, BHU, Varanasi - 221005, U.P. Ph. 0542-2570682. M. 09454860068. sadashivdwi@ yahoo.co.in ***Spl. Ref.*** Sāhitya Kalidas Vikram Puraskar 2007.

Dwivedi, Sanjay. M.A., Sangeet Prabhakar. ***b.*** 15.08.1986. Hatta, Damoh, M.P. Project Co-ordinator, Rashtriya Skt. Sansthan, Bhopal Campus, M.P. ***Gp.*** Prof. R.V. Tripathi, Prof. Achutanand Dash, Pt. Lakshmi Prasad Dwivedi, Dr. Ramakant Pandey, Dr. Mahesh Dwivedi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Ganga Jhiriya, Chandi Ji ward, Hatta, Damoh, M.P. gandharva85 @gmail.com ***Spl.Ref.*** Scholar of Musicology, Nā-yaśāstra & SāhityaŚāstra, Classical singer & music director of many Sanskrit Plays, Composer of 'Kulgeet' of Rashtriya Skt. Sansthan & many Skt. Verses like 'Geetgovindam, Writer of Hindi literature.

Dwivedi, Sarayu Prasad. ***b.*** 1835. Ayodhyasanah (Gram). ***Bks.*** 13. Saṅgrahaśiromaṇi, Sadācāra, Āgamarahasya, Varṇabīja prakāśa, Saptaśatī Sarvasva.

Dwivedi, Shankar Dayal. M.A., D.Phil. ***b.*** 01.09.1957. Vill. Mudauhan, P.O. Bhaunri, Dist. Chitrakoot, (U.P.). Professor, Allahabad

University. *Gp*. Prof. Adya Prasad Mishra. ***Bks***. 04. Ācārya Jayanta kā Śabda Darśana, Saṃskṛta kā Bṛhad Itihāsa (Daśam Khaṇḍa), Sāhitya Śevadhi, Bhāratīya Manīṣā. *Ps*. 20. ***Add***. Sanskrit Department, University of Allahabad – 211002. *Ph*. 09415365323.

Dwivedi, Sharachchandra. Sāhitya-Acharya, Dipl. in Tibetan Language, NET, Ph.D. *b*. 03.07.1979. Varanasi. Lect. (Part Time) RP Tara Yoga Tantra Adarsha Skt. Mahavidyalaya, Varanasi. *Gp*. Prof. Shiv Ji Upadhyaya. ***Bks***. 01 Gandharvakalāpa-Vyākaraṇam. *Ps*. 32. ***Add***. S-19/134, AC1 Zadid Bazar, Nodeshar Varanasi- 221002 M. 09026783833, drscdwivedi@yahoo.co.in *Spl.Ref*. Tibetan Language.

Dwivedi, Shashi Kant. Acharya, M.A., Ph.D. *b*. 01.08.1974, Varanasi. Asstt. Prof. of Sankhya Yoga, Deptt of Vedic Darśana, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi. *Gp*. Prof. Chandra Mauli Dwivedi, Prof. Shri Narayan Mishra. ***Bks***. 05 Bhāratajīvanam Khaṇḍa Kāvya, Vṛttivārtikam, Rasavasumūrtiḥ, Vivekālokaḥ, Sumeru-śaṅkarācārya, Pt. Śṛī. Mahādeva Pāṇdey, Kṛtisaṅgraha. *Ps*. 63. ***Add***. N7/297 B2 Karaundi BHU, Varanasi - 221005. M. 09453313299. skdwivedi74@yahoo.co.in, sdwivedi@bhu.ac.in *Spl.Ref*. Sāhitya, Darshan Member of AIOC, ICPQR Pune, Akhil Bhartiya Darshan Parishad, Vishvabhasha, BHU Alumuni Association, Rashtriya Sanskrit Sansthan Research Fellowship BHU Research Fellowship, Navodit Sanskritkavi Protsahan Award, Delhi Skt Academy. Chairman of Waitlifting best physic Sport Team, Varanasi, BHU 2009-11, In-Charge of Faculty Athlete Association SVDV from 2009 etc.

Dwivedi, Shiv Sharan Sharma. M.A. (Skt. Hindi), D.Phil. Ph.D., LLB. *b*. 15.03.1928. Fatehpur, U.P. Principal, Govt. College. M.P. ***Bks***. 10. Jāgaraṇam, Lokārcanam, Āvāhana, Śrīmadbhāgvat kā Kāvyasaundarya. ***Add***. 51, Vinay Nagar, Jail Marg, Gwalior – 12. *Spl. Ref*. Poet in Skt. Hindi.

Dwivedi, Shiva Swaroop. M.A. *b*. 05.09.1957. *Ps*. 05. ***Add***. Sampadak, Skt. amritam, Hayat Ganj, Tanda, Ambedkar Nagar, U.P. *Ph*. (05273) 22188. *Spl.Ref*. Editor of Skt. Amritam Patrika.

Dwivedi, Shreyansh. M.A., Ph.D. *b*. 10.01.1969. Director, School Education SCERT Gurgaon, HR. ***Bks***. 02. *Ps*. 10. ***Add***. 104. Housing Board Colony, Sec. – 07, Ext. Gurgaon, Harayana. *Ph*. (0124) 2254415, ***Mob***. 9717399169. *Spl.Ref*. Organized Skt. Grammar book writing workshop, Preparation of audio programs in Skt. for Secondary Students, Developed Educational Video of Sanskrit's Selected Stories. Worked as coordinator of Skt. Curriculums framework, Module writing, Book writing, workshops, meetings, conferences & seminars at SCERT HR.

Dwivedi, Shyamvarn. *b*. 1916. Gorakhpur, U.P.. ***Bks***. 01. Viśāla Bhārata. ***Expired in*** 1975.

Dwivedi, Sudhakar. Jyotiṣa Śāstra. *b*. 1917. Khajuri, Varanasi. Lect., Skt. College, Varanasi. *Gp*. Pt. Devkrishna Mishra. *Sp*. M.M. Pt. Muralidhar Jha, Pt. Baldev Mishra, Pt. Ramayatna Ojha, Pt. Baladevadutt Pathak. ***Bks***. 34. Dīrghavrittalakṣaṇam, Vāstavacandra Śringonnatī Sādhanam, Bhūbhramarekhāni-rūpaṇam, Gaṇakataraṅgiṇī, Dinamīmānsā. ***Expired on*** 28.11.1960. *Spl.Ref*. Recipient of Mahamahopadhyaya Award by British Govt.. A Great Scholor of Siddhānta Jyotiṣa.

Dwivedi, Suresh Chandra Shastri. Vyākaraṇa Acharya, Sangeet Prabhakar. *b*. 05.06.1941, Sukaraksetra, Etah, U.P. ***Add***. Sauron, Etah U.P. *Spl.Ref*. Vyākaraṇa Śāstra, Saṅgīta

Dwivedi, Sushil Kumar. Acharya, M.A. *b*. 31.07.1949, Kannauj, Farukhabad, U.P. *Gp*. Vidhyanath Jha, Amarnath Laxmi Narayan Chaturvedi. ***Bks***. Published Articles in Journals. ***Add***. C/o. Murarilal Shastri, Sundar Mohalla, Chandausi, Distt. Muradabad. U.P. *Spl. Ref*. Sāhitya Śāstra.

Dwivedi, Sushil Kumar. Acharya. *b*. 02.12.1959, Hajipur, Vaishali, Bihar. Asst. Prof. *Gp*. Vidhyavachaspati Pt. Brahmadatta Dwivedi. ***Add***. Murarka Sanskrit College Chowk, Patna City, Bihar. *Spl.Ref*. Purāṇa Śāstra.

Dwivedi, Swami Kartik. Śuklayajurveda. *b.* 06.03.1955, Kurvaha, Sidhi Dist. M.P. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Vinayak Tripathi, Mayaram Mishra. *Add.* Abhyananda Govt. Sanskrit College, Kalyanpur, Shahdol, M.P. *Spl.Ref.* Śuklayajurveda.

Dwivedi, Trilokadhar. Acharya in Vyākaraṇa & Vedānta, M.A.. *b.* 10.10.1913, Gorakhpur, U.P.. Rtd. Principal, Jaibharat Sadhu Mahavidyalaya, Haridwar. *Add.* Shri Maheshanand Sanskrit Mahavidyalaya, Kankhal, Haridwar (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Vedānta, Kāvya.

Dwivedi, Tulasi Prasad. Acharya, B.Ed.. *b.* 14.11.1955, Shivarajpur, Satna, M.P. *Gp.* Dr. Ramayatana Shukla. *Ps.* 05. *Add.* C.K. 13/30, Sati Chautara, Varanasi, U.P.. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Dwivedi, Uma Kanta. Shastri, Acharya. *b.* 01.02.1959, Jaura, Allahabad, (U.P.). Principal. *Gp.* Pt. Ramvadan Shukla, Pt. Manikachandra Mishra. *Add.* Baldevadasa Hanumat Madhyamik Vidyalaya, Mohamadpur, Unurakha, Sultanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Veda.

Dwivedi, Umapati. Vyākaraṇa & Nyāya-Śāstra. *b.* 1853, Sahuapar, Dist. Gorakhapur, U.P.. Teacher, Vishishta Pathashala, Ayodhya. *Gp.* Pt. haridutt Dwivedi. *Sp.* Pt. Shivkumar Shastri. *Bks.* 04. Sanātana Dharmoddhāra. Śabdenduśekhara (Jatā Tīkā), Paribhāṣenduśekhara. (Jatā Tīkā). Nārāyaṇa Kāvya. *Expired in.* 1911. *Spl.Ref.* Recipient of 'Vidyamaharnav' Award.

Dwivedi, Vachaspati M.A. (Skt., Hindi), Sahityaacharya, M.Ed., Ph.D. *b.* 05.01.1938. Patna. Ex-HOD Deptt of Ed. Skt. Univ. Varanasi. *Gp.* Pt. Sri Brahamdatt Dwivedi, Prof. Bcchan Jha, *Sp.* Prof. Subhash Chandra Tripathi, Prof. Meera Dubey. *Bks.* 08 Śrīmadbhagvat Gītā (Ed.), Kedārakhaṇda Purāna, Bṛhadāraṇyaka Vṛttisāra. *Ps.* 10. *Add.*Vidya Complex 4th Floor Flat No. 4 Pipalni Katra Kabir Road, Varanasi-221002. M. 09839322321. *Spl.Ref.* Sāhitya. Skt. Award by Skt. Academy U.P., Visiting Prof. in Mauritius 2008-09.

Dwivedi, Vasudev Shastri. Veda, Vyākaraṇa, Sāhitya. *B.* 1913. Vill. Bhawani Chhapar, Distt. Devaria, U.P. *Bks.* 13. Dīpamālikā, Kautsyasya Gurūdakṣiṇā, Saṃsakṛtagāna-mālā, Bhojarājye Saṃskṛta Sāmrājyam, Saṃskṛtagauravagānam. *Add.* D-38/110 Hauz Katora Varanasi 01. *Spl.Ref.* Establish- ed Sarvabhaum Sanskrit Prachar Sanstha- nam in 15.08.1947. Students learn Sanskrit in this institute. He completed many Sanskrit spoken camps in north India every year & different places, President Awardee 1995. Vishwa Bharti Puraskar 1998

Dwivedi, Vedprakash. Acharya in Vyākaraṇa, B.T.C. *b.* 05.09.1945, Duviana, Bhivarajpur, Kanpur, U.P. Vice- Principal. *Ps.* 05. *Add.* Duviana, Bhivarajpur, Kanpur U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa -Śāstra.

Dwivedi, Vidya Nath. Acharya, Shastri. *b.* 15.10.1912, Surouli, Hamirpur, U.P. Principal. *Ps.* 05 *Add.* 4/36, H.V.T. Colony, Kanpur U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa -Śāstra.

Dwivedi, Vikram Kumar. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 02.03.1951, Katapali, Orissa. Asct. Prof. *Gp* Dr. Ramnath Vedalankar. Dr. Nigma Sharma. *Ps.* 05 *Add.* Deptt. of Sanskrit, University of Punjab. Chandigarh. *spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Dwivedi, Vishwa Nath. Acharya in Āyurveda. *b.* 1910. Vill. Ojhvaliya, Dist. Balia. Asst. Prof., Univ. of Lucknow & Aayurved Director Shikshan Centre Jamnagar. *Bks.* 07. Tridoṣālokaḥ, Tāilasaṅgraham, Abhinavanetrarogavijñānaṃ, Nāḍīvijñānaṃ, Pratyakṣa Auṣadhī Nirmāṇaṃ. *Spl.Ref.* A Great Scholor of Ayurveda. Also Worked in Varanaseya Skt. Vishwavidyalaya, Varanasi.

Dwivedi, Vrij Mohan. Acharya. *b.* 30.03.1935, Ujjain, M.P. *Gp.* Krishnabhilash Khatake. *Add.* 58, Near Harsiddhi Mandir, Ujjain M.P. *Spl.Ref.*Sāhitya Śāstra, Veda, Mimāṃsā.

Dwivedi, Vrij Vallabh. Darśanācharya, M.A. *b.* 30.07.1921, Shahpura, Bhilvada, RJ. Prof. *Gp.* Dhundhiraj Shastri, Raghunath Sharma. *Bks.* Prācīnanirṇayapatram, Pathikajanapātakacintanasmṛtiḥ. *Add.* 12, Teachers Quarters, Sampurnanad Sanskrit University, Varanasi U.P. *Spl.Ref.* Darśan Śāstra.

E

Ekananda, Rajahamsa. Acharya in Vyākaraṇa, Nyāya & Sāhitya, M.A., B.Ed. ***b.*** 05.04.1919, Devaghar, Bihar. H.O.D., Govt. Sanskrit College, Muzaffarpur, Bihar. ***Gp:*** Pt. Sadananda Jha. ***Add.*** Devaghar, (Baidya-nath Dham), P.O. Baidyanath Devaghar (Bihar)

Elayat, Krishnakutti M. V. B.A., B.Ed. ***b.*** 01.09.1927, Thalor, Kerala. Rtd. Teacher. ***Add.*** Thalor, Trissur – 680306. (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Elayat, Vasudevan P.C. Nyāya Bhusan, Sāhitya śiromaṇi. ***b.*** 15.06.1912, Kakkasseri, Trissur, Kerala. ***Gp.*** Mannita Shastri Sharma, Achyuta Potuval, Ram Variyar. ***Bks.*** Kṛṣṇagīti, Kāvyadarśana, Guruvāyūramāhātmyam. ***Add.*** P.O. Kakkasheri, Trissur. Kerala. ***spl.Ref.*** Nyāya Śāstra, Sāhitya Śāstra.

Elayath, K.N. Neelakantan. Acharya in Vedānta, M.A., Ph.D. ***b.*** 05.03.1943, Vazhoor. Asst. Prof., Sanskrit University, Kerala, Director Adyar Library & Research Centre. ***Gp.*** Krishan Shastrikal (Sringeri Math Vedanta). ***Bks.*** 10. Advaita-Dharmam (1982), The Ethics of Śaṅkara (1990), The Concept of Jivanamukti (1975). ***Ps.*** 03. ***Add.*** B – 6, C.U. Campus, Calicut University. ***Ph.*** – (0494) 401460. ***Spl.Ref.*** Awarded by Kerla Sāhitya Academy in 1984.

Eletattumana, Sankara Narayanan Nambutiri. Munpilirikal (equivalent to B.A. Degree in Veda). ***b.*** 1902, Valampuri, Srikrishnapuram, Kerala. ***Gp.*** Panditaraj Appashashtri Jayant Mangalam, Parashuram Shastri, Krishna Kutti Shastri, Brahma Shri Shankaran Namputiri. ***Add.*** Eletattumana, Valachili Mangalam, Srikrishnapuram, Palakkad – 679513.

Eluthacchan, K. N. Sāhitya. ***b.*** 19.06.1911, Cherpalcheri, Kerala. ***Bks.*** 04. Kusumopahāram, Pratijñā, Pratīkṣā, Keralodayaḥ. Rt. Asst. Prof., Deptt. of Malayalam, Calicut University, ***Add.*** Durga mandir, Panthakkal, Pattambi, Palakkad Dist. (Kerala). ***Spl. Ref.*** ***Awards.*** Kerala Sāhitya Academy Award 1976, Sāhitya Academi Award 1979.

Enamdar, Hemant Vishnu. M.A. (Sanskrit & Marathi), L.L.B., Ph.D. ***b.*** 03.11.1925. ***Bks.*** 12. Sant Nāmdeva, Bhaktipantha-Navacintana, śrī Eknātha-Darśana, Ādhunika Bhāratiya Tattvajña, Abhaṅga- Navanīta. ***Expired.*** 23.06.2006.

Eppurath, Raman Narayanan. M.A., NET., Ph.D. (Sāhitya). ***b.*** 20.05.1970, Elavally, Thrissur, Kerala. Astt. Prof., Hyderabad. ***Gp.*** Prof. Vasudevan Elayath, Prof. K. Govindan Nambiar, Prof. E.P. Bharata Pisharody. ***Bks.*** 12. The Sarasvatyaṣ-aka, The Bhṛguvaṃśa-mahākāvya of Pratāparāja, The Muktakāvalī. Ps. 10. ***Add.*** Centre for Exact Humanities, International Institute of Information Technology, Gachibowli. Hyderabad – 500019. ***Ph.*** (040) 32210140, 09581539685. ***Spl. Ref.***– He has been deputed to the IIT-H by the Rashtriya Sanskrit Sansthan for the Project– Computational approach to Indian Analytic Traditions.

Ettanni, Raja P. C. Sāhitya. ***b.*** 20.05.1929, Kozhikode. Rt. Asst. Prof. ***Gp.*** Desamangalathu Rama Variyara. Mehtodology in Ancient India, Essentials of Buddhism and Jainism, Avaidika Darśana Saṅgraha of Gaṅgādhara, Indian Scientific Traditions. ***Ps.*** 100. ***Add.*** Gokulam Palace Road, Mankavu, Kozhikode - 673007. Kerala. Ph. 0495-2330070, M. 09495173880. knneelak@gmail.com, www.knneelkanthan.net ***Spl. Ref.*** Indian Philosophy, Kerala Sāhitya Academy Award 1984. Member & Director of the various Council including Theosophical Society, Other Indian Universities etc.

Ezuthchan, K. N. M.A. (English, Malayalam, Skt.), Ph.D. ***b.*** 21.05.1911. Cherpalcheri, Kerala. Prof., Madras Univ. ***Bks.*** 01. Keralodayam. ***Expired*** in 1981. ***Spl. Ref.*** Poet and Scholar in Skt. and Malayalam. Sāhitya Academy and Kerala Sāhitya Academy Award.

F

Fondari, Aatmaram Kamal. M.A., B.Ed., Vaidyavisharad, MAS, MICAS. *b.* 15.06.1944. Tihari-Gadhwal. *Bks.* 02. Khādīgītā, Śrīkamala-guruvaṃśa-mahimna-stotram. *Expired in* 2000. *Spl.Ref.* Sanskrit, Hindi and Gadwali Poet.

Francis, A.P. M.A. (Skt. Veda. His.), Ph.D., B.A., B.Tech. *b.* 30.04.1963, Pavaratty (Thrissur). *Bks.* 02. *Add.* Arakal House, P.O. Amala Nagar. Trissur – Dt. (Choorak-kattukara Street), Kerala – 680555. *Ph.* 0484 – 2463380.

G

Gadgil, Vasant. B.A., B.Ed. *b.* 08.09.1930, Kolhapur, MH. Editor. *Ps.* 02. *Add.* Editor, Sharada, Zelum, Patrakar Nagar, Pune – 411016. *Ph.* (020) 5650124.

Gadpal, Prafull. M.A., NET., Ph.D. *b.* 03.06.1981. Umeri. Asstt. Prof. Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi. *Bks.* 03. Bodhicaryāvatāraḥ, Universal Message of Buddhist Tradition, Bhrtṛharinītiśatakam. *Ps.* 02. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi 110058. M. 09891400819.

Gajera, Bhawna Ben Hari Bhai. Ph.D. *b.*09.12.1968. Prof. Sanskrit Deptt. Bahauddin Vinyan College Junagarh. *Add.* F-2 Ramniwas, Bilkha Road Junagarh. *Spl.Ref.* Alaṅkāraśāstra.

Gajulapalli, Venkatanarasimha. Sāhitya śiromaṇi. *b.* 27.10.1941, Nellore, A.P. Asst. Prof. (Sāhitya). *Gp.* Brahmashri Gajulapalli Hanumacchastri, Subbarama Shastri, T. Shriramamurti Shastri. *Add.* Shri Ved Sanskrit Kalashala, Nellore or 20/570, Near High School, Nellore (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Galagali, Annayyacharya Dhruvacharya. Chudamani. *b.* 26.06.1911. Acharya (Asst. Prof.). Nyāya Vedānta Deptt. *Add.* Purnaprajna Vidyapeetha, Bangalore-4 (KT). *Spl.Ref.* Dvaita Vedānta.

Galangali, R.M. Acharya. *b.* 14.03.1914, Karajangi, Dharwad, KT. *Gp.* Madhu Acharya Galangali, Davaita Ved Pracharak (Vedic Teacher). *Add.* Sarnemer Street, House No. 15, Bangalore – 4 (KT). *Spl.Ref.* Veda and Sāhitya.

Gambhir, Paramanand. M.A. (Sanskrit & Hindi). *b.* 16.04.1929. Teacher *Add.* 257, Taliwada, Shahadara, Delhi – 110032.

Gami, Ajmal Bhai Shiva Bhai. M.A., Ph.D. *b.* 01.06.1968. Prof. Arts & Commerce College Chanasma. Distt. Patan Gujarat. *Add.* 29, Jaiveer Nagar Khodiyar Chauk, Patan. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Gamit, Pravin Kumar C. Ph.D. *b.* 02.02.1966. Prof. P.R.B Arts & P.G.R. Commerce College Bardosi Distt. Surat. *Add.* Unavi Teh. Wasanda Distt. Navsari. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Ganapati, Acharya. Jyotiṣa Vidvān. *b.* 06.04.1918, Padubidri, Udupi, KT. *Gp.* Karur Sesacharya, Venkatacharya. *Add.* Bhimanakatte Muth, Car Street, Udupi (KT). *Spl.Ref.* Jyotṣa, Sāhitya.

Ganapati, M. L. Krishnamurthy. Salak-chhana Ghanantapathi. *b.* 30.08.1931. Manakkal. *Add.* 4/73. Purva Agrahar. Manakkal, P.O. Lalgudi. *Ph.* (0431) 2544823. *Spl.Ref.* President Awardee.

Ganapatigal, S. Krishnamoorthy. Kṛṣṇa Yajurveda, Gurukul Shiksha, Bhasyaratna, Ved Vidya Alankar, Ved Lakshnajna, Ved Vani Vidwan. *b.* 25.03.1932, Thanjavor. Parayana under Dharma Prachar Parishad. *Spl.Ref.* Kramapath, Jattapath, Ghanpath, in Yajurveda, Yajurveda Parayan in TT Dev Sathanam Tirupati, Kṛṣṇayajurveda with Sāyaṇa Bhāṣya, President Awardee.

Ganapatigal, V. Rajagopala. Veda (Kṛṣṇayajurveda, Saṃhitā Brāhmaṇa Pada, Krama, Ja-ā, Ghana & Prātīśākya) Śāstra (Advaita Vedānta) Mīmāṃsā (śabara Bhāṣya

Bhatta Dīpikā), Vyākaraṇa, Nyāya, Dipl. in Computer, Astrology, B.Com., M.A. *b.* 20.08.1963. Tanjor. Prof. Correspondent. ***Bks.*** 10. Sandehanivāriṇī, Dharmaśastram. ***Ps.*** 5. ***Add.*** New Number 488, Old Number 175 TT Krishnam Acharya Road Alwar Pet Chennai-600018. T.N. Ph. 044-24361210, M. 09381061946. ganpatigal @gmail.com ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda, Vedānta, Advaita Vedānta, Vyākaraṇa, Mīmāṃsā, Nyāya. Vedavidya-alankar, Vidyaratnam, Skt. Ratnam.

Gandhi, Bhav Prakash. Shastri, M.A., B.Ed., NET, Ph.D. *b.* 06.01.1982. Asstt. Prof. Sri Somnath Skt. Univ. Junagarh. ***Bks.*** 02 Vedika Sāhitya Paricāyikā, Subhaṣitapiyūṣam. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Sri Somnath Skt. Univ. Veraval Junagarh-262265. Guj. Ph. 02876244532. M. 09924-850091. bhagprakashgandhi@gmail.com

Gandhi, Chandrakanta. M.A. *b.* 20.07.1939, Teacher, ***Ps.*** 02. Govt. Girls Senior Secondary School, Chittaranjan Park, New Delhi – 110019. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. B.T.

Gandhi, Geeta Ben Kanti Lal. Ph.D. *b.* 28.02.1949. Prof. Smt. C.C. Mahila Arts & Seth C.N. Commerce College, Station Road, Vish Nagar. ***Add.*** 17, Sāhitya park, Dharoi Colony Road, Vish Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Gandhi, Nilotpala Amul. Ph.D. *b.*20.06.1959. Surat, Gujrat Prof. Bhasha Sāhitya Bhawan, Gujarat Univ. Navrangpura, Ahemdabad. ***Bks.*** 01. Active Passive & Impersonal Constructions in Classical Sanskrit. ***Add.*** 30, Shivani Appartment Rangwala Tower, Alisbridge Ahemdabad. ***Ph.*** 6402710. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Bhasha Śāstra.

Ganesh Ghanpati, K. ***Age.*** 55 yrs in 1988. Kunrakudi, T.N. Veda Sanskrit Teacher. ***Add.*** Sanskrit Vidvan & Ghanapathigal, Pillaiyar-patti – 623207 (T.N). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda (Ghanapathanta).

Gangadhara, M. Vyākaraṇaśiromaṇi, M.A. (Sanskrit). *b.* 01.06.1957. Sanskrit Pandita (Teacher). ***Add.*** Shri Vivekanand Sanskrit High School, Kurnool (A.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Gangopadhyay, Anantalal. M.A. Ph.D. D.Litt. *b.* 14.05.1937. ***Bks.*** 02. Panditarāja Jagannātha on Aesthetic Problems, Appaya Dīkṣita to Indian Poetics. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Gurukripa. Tetultala Lane. Kamarpara Road. P.O. Chinsura. Dist.–Hooghly. ***Pin.*** 712101. ***Ph.*** 6807198.

Gangopadhyay, Shivaram. Vyākaraṇa Tīrtha, Nyāya Vaiśeṣika-Achaya, Ph.D. *b.* 01.04.1953. Bankura. W.B. Asstt. Prof. Deptt. of Vedic Darśana Faculty of SVDV BHU, Varanasi. ***Gp.*** Prof. Vashisht Tripathi. ***Bks.*** 01. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Deptt. of Vedic Studies, Faculty of SVDV BHU, Varanasi. drsgangopadhyaya@rediffmail.com ***Spl.Ref.*** Nyāya Vaiśeṣika.

Gangude, UttamBhai k. Ph.D. *b.* 01.10.1966. Prof. Gujrat Arts & Commerce College Alicbridge Ahemdabad. ***Add.*** 35, Akshardham Banglow 1, Near Govt. Water Boring Bopal Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Ganguli, Gangopadhyaya. M.A. *b.* 01.01.1934. Vice–Principal, Nagar Palika Girls Senior Secondary School, Gol Market, New Delhi – ***Add.*** H-19, Kailash Colony, New Delhi – 110048.

Ganguli, Hemanta Kumar. M.A., Kāvyatīrtha, Sāṅkyatīrtha. *b.* 01.02.1914. Barisal. Asct. Prof., Jadavpur Univ. ***Bks.*** 06. Philosophy of Logical Construction, God: Reason and Religion, Cārvākdarśana, Samāja Sāhitya O Darśana, Vaidikadharma O Mīmāṃsā Darśana. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Ganguli, Sarbani. M.A., Ph.D. *b.* 19.10.1951. Guwahati. Prof. Jadavpur Univ. ***Bks.*** 04. ***Add.*** Deptt. of Skt. Jadavpur Univ. Ph. 24125578. M. 09831504240. sargan19@gmail.com .

Ganpati, Salaksan Subrahmanya. Vidhya-pravin, Ph.D. *b.* 05.01.1914, Chitram, Gudivada, A.P. Teacher. ***Gp.*** Venkateshwer Avdhani, Rammurti Avdhani. ***Add.*** 22/5/28, Tenali A.P. ***Spl.Ref.*** Advaita Śāstra.

Garasia, Saraswati Ben Durlabh Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1961. Prof. Smt. J.P. Saraf Arts College Tithal Road Valsad. ***Bks.***01. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 25-B Panchdev Society, Near Politecnic Boys Hostel, Valsad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Garasiya, Subhash Bhai C. Ph.D. *b.*21.08.1969. Prof. C.U. Shah Arts College Lal Darwaza Ahemdabad. *Bks.*01. *Ps.* 02. *Add.* C-15 Pink Citi, Near Sangh Kalyan Kendra Ranip, Distt. Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Garg, Babulal. Acharya, M.A.. *b.* 02.04.1928, Vill. Char, Banda, U.P. Principal, Jaydeva Vaishnav Sanskrit College, Karwi, Banda. *Gp.* Shivanarayana Shukla, Pt. Rameshwara Pandeya. *Add.* Bharati Bhavan, Karwi, Chitrakut – 210205 (U.P). *Spl.Ref.* Sāhitya. *Awards.* President Award, Ramakrsnadasa Award, Sri Hanuman – Nyasa - Sansthan Award.

Garg, Kamalesh. M.A.. *b.* 13.05.1944. Asst. Prof., Maitreyi College, Bapu Dham, Chanakyapuri, New Delhi. *Add.* B 11/121, Safdarjung Enclave, New Delhi – 110019.

Garg, Mathura Prasad. Acharya, M.A.. *b.* 04.06.1946, Vill. Dhoresara, Jabalpur, (M.P.). Asct. Prof. *Gp* Chhajjulal Shastri, Narrottama-prasad Tripathi, Kashinath Pathak, Motilal Shastri. *Add.* Shri Lokanath Sanskrit Maha-vidyalaya. Govindganj, Jabalpur (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Garg, Ramnivas. Sāhitya-Acharya. *b.*31.06.1915, Korra, Banda, (U.P.), Rtd. Asst. Prof. *Gp* Ramyas Tripathi, ShivDarsana Tripathi, *Add.* Shri Ram Sanskrit Vidhyalaya, janaki Kund, Chitrakut, Banda (U.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda.

Garikapati, Laxmikant. M.A., Vidvān. Former HOD, Deptt of Telugu, Nizam Mahavidyalaya, Hyderabad. *Bks.* 12. Bhavyabhāratam, Viśvakaviḥ, Kīra-sandeśaḥ. Bhārataratnam. *Spl.Ref.* Talks in Sanskrit from A.I.R., Hyderabad.

Gaud, Banwari Lal. Acharya in Bhaiṣaja, āyurveda Brahspati, Dipl. in German, Ph.D. *b.* 17.03.1946. Jaipur. Vice-Chancellor, Rajasthan Ayurved Univ. Jodhpur. *Gp.* Pt. Braj Mohan Shastri, Vaidhy Ram Krishan Dhand. *Sp.* Prof. Naresh Sharma, Prof. Shambhu Dayal Sharma, Dr. G.P. Garg, Dr. M.D. Paliwal, Dr. Sujata Sathu, Dr. LL Ahirwal. *Bks.* 16. Āyurvedīya Śhbdāvabodha, Aṣṭāṅga-hṛdayam, Saṃskṛta Āyurveda Sudhā, Āyurveda Cikitsā Vijñāna, Padārthavijñāna Paricaya. *Ps.* 20. *Add.* B-63, Jasol House, Pawata B Road, Jodhpur - 342001, Ph. 02912542200, M. 09414934673. vaidyablgaur@yahoo.co.in *Spl.Ref.* āyurveda German, WHO Fellowship England, Sri Lanka, South Africa Visit, Pragya Puraskar, Isherpuraskar, Adarsh Ayurved Shiksha Puraskar.

Gaud, Bishanlal. M.A. Ph.D. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 03.01.1936. Lachampur. Muradabad. (U.P.). Lect. Sahibabad. *Bks.* 02. Agnijā, Aham Rāṣtrī. *Add.* 156, Syama Park lane, Sahibabad, Gaziabad,U.P.,

Gaud, Damodar Sharma. Vaidya. Shri Vaidyanath Ayurved Bhavan *Bks.* 01. Abhinava Śārīram. *Spl.Ref.*. Abhinava Shariram is an important book on Ayurveda.

Gaud, Jwala Prasad. *Bks.* 01. Muktāvalī Ṭīkā. Commentary (Gadādhārī - Satpratipakṣa, Svayabhīcāra. *Spl.Ref.* Muktawali Tika – Published from Sanyasi Sanskrit College, Varanasi.

Gaud, Kanakalata. M.A., B.Ed.. *b.* 15.10.1961, Sitapur, U.P. Assistant Teacher. Navin Public School, Katwariya Sarai, New Delhi. *Add.* C/o Umeshachandra Gaur. Electronics Department, C-Wing. Pushpa Bhavan. Madangir Road, Pushpa Vihar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gaud, Khushiram. Acharya in Vyākaraṇa, Shiksashastri. *b.* 15.10.1956. Language Teacher, Rajakiya Bala Vidyalaya, Azadpur, Delhi. *Add.* H-3/1497, Jahangirpuri. New Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa .

Gaud, Madhav Prasad. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 10.08.1951, Arail, Allahabad, (U.P.). Head of Vyākaraṇa Deptt. *Add.* Shri Sacha Adhyatm Sanskrit Mahavidyalaya, Vill. Arail, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Gaud, Sohanlal. Acharya in Vyākaraṇa, Kāvyatīrtha, M.A. *b.* 02.12.1919. *Add.* F-166/ 2, Rajauri Garden, New Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Gaud, Vishanlal. M.A., Ph.D. *b.* 03.01.1936, Lachhampur. Principal *Gp.* Haradatta Shukla, Vednand Jha, Vijayprakash Sharma. *Add.* Atarra P.G. College, Atarra, Dist. Banda U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Gaud. Bhagawantdatta. Acharya in NavyaVyākaraṇa, Sāhityashastri, M.A. *b.* 08.03.1912, Rangpur, Bulandshahar, U.P. *Gp.* Badaridatta Mishra, Kuberdatta Shastri, Paramananda, Shivaratna Shastri. *Add.* Gadh Road, Kothi No. 44/2, Jadugiri ka Bagh, Meerut (U.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa

Gaur, Lalit Kumar. Acharya in Sāhitya, M.A. (Skt., Hindi), Ph.D. *b.* 01.01.1962. Bulandshehar, Asct. Prof. Skt. Pali & Prakrit Deptt. Kurukshetra Univ. *Gp.* Acharya Prabhu Dutt Swami, Dr. Ganesh Dutt Sharma, Dr. Vishnu Dutt Sharma, Dr. Ram Kishore Sharma. *Bks.* 02. Mahākavibhāsa dvārā Praṇīta Pratimānātakam kā Sāhityika Adhyayana. *Ps.* 30. *Add.* 777/8 Pratap Colony Railway Road Kurukshetra - 136118, Haryana. Ph. 01744292632, M. 09355271482. *Spl.Ref.* Award of Honour Radhakrishanan Educational Society Sahabad Kurukshetra, Honoured in the Yuva Kavi Sammelan Harayana Skt. Academy, Panchkula.

Gautam, Jayadevdutt. M.A., Siksashastri. *b.* 04.07.1943. Teacher (PGT). Commercial Senior Secondary School, 24, Darya Ganj, New Delhi. *Add.* 25/70, G-15 Vishwas Nagar, Shahadara, Delhi – 110034. *Spl.Ref.* Sāhityam.

Gautam, Monika Pareek. M.A. *b.* 23.04.1982. Asstt. Prof. Deptt. of Education, U.K. Skt. Univ. Haridwar. *Add* Uttarakhand Skt. Univ. Skt. Bhawan, Haridwar - 249407. Ph. 0133-4213408, M. 09868022279, monikascert@gmail.com

Gautam, Nand Kishore. M.A. Ph.D. Acharya (Sāhitya, āyurveda). *b.* 06.01.1936. Vill. Shivar. Distt. Sawai Madhopur (RJ). Principal. *Bks.* 05. Ghurmeśantu Śivālaye, Ghuśmeśvara padyakathā, Pratiśruti, Yautukanartanam, Saṃskṛta Nibandha Pārijāta. *Spl.Ref.*. 'Maharana Kumbha' mewar foundation Udaipur. Has done Kāvyapath in many Sanskrit kavi sammelans as a poet. Broadcasted his many speeches, Poems, Stories etc. wrote many articles in 'swarmangala, Bhatri' etc. Sanskrit Magzines.

Gautam, Sudesh. Acharya, M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 22.08.1959. Palampur. H.P. Principal Himachal Adarsh Skt. College. *Bks.* 01. *Ps.* 10. *Add.* Principal HAS College Chirgawon. Shimla - 171214. H.P. Ph. 01781220113, M. 09418499709. *Spl.Ref.* Writer in Hindi Skt, Yoga & Veda, National Lagu Katha Puraskar 2003,07,10. Indic Award Narayan Sewa Sansthan Udaipur.

Gautam. M.A. Ph.D. *b.* 04.08.1936. Ahamedabad. *Bks.* 120. Ādi Śaṅkarācārya, Chāndogyopaniṣddīpikā, Kumārasaṃbhavam of Kālidāsa, Vaidika Sāhitya aura Saṃskṛti, Ṛk – Sūkta – Mañjūṣā. *Ps.* 60. *Add.* Valam. L-111. Swatantrta Senani Nagar. Nava Wadaj. Ahmedabad – 380013. *Ph.* (079) 27621610.

Gavani, Dinkar Bhai Botadakar Harji Bhai. Ph.D. *b.* 16.10.1966. Prof. Arts & Commerce College, Botad, Bhavnagar. *Ps.* 02. *Add.* Bahubali Society, Block No. 52, Narayan Nagar-2 Botad, Distt. Bhav Nagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Gavint, Jaisingh Bhai Manchu Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1968. Prof. Sardar Vallabh Bhai Patel Arts College, Rilif Road, Ahemdabad. *Add.* 855, Janta Nagar Chand Kheda, Gandhi Nagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Gavint, Pali Ben Lahnu Bhai. Ph.D. *b.*01.06.1967. Prof. Govt. Vinyan College Sector 15, GandhiNagar. *Add.* Tenament No. 8, A-Type, HariNagar Society, GandhiNagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Gavit, Ramji Bhai Jetia Bhai. Ph.D. *b.*04.11.1965. Prof. Smt. P.R. Patel Arts College Palasar Distt. Patan. *Ps.* 04. *Add.* Vill. Post Palasar Tehsil Chanasma Distt. Patan. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Gayawal, Lala Shankar. M.A. M.Phil. Ph.D. *b.* 02.01.1971. Deoghar (Jharkhand). HOD.

R.D. Govt. Girls PG. College. *Ps.* 08. *Add.* R.D. Govt. Girls PG. College. Fort – Bharatpur– 321001 (Raj.). *Ph.* (05644) 21586.

Geetha, L. Viśiṣ-ādvaita, Philosophy, M.A.. *b.* 15.02.1952, Chennai. *Add.* G – 2, Anand Square, 36, Govindam Road, West Mambalam, Chennai – 600033. *Ph.* 4852405.

Gera, Vimla. M.A., Ph.D. *b.* 05.03.1943, Delhi. Asst.Prof. *Add.* HOD. Mata Sundari College for Women, Mata Sundari Lane, New Delhi. *Spl.Ref.* Veda, Vyākaraṇa.

Ghadwi, Ghanshyam Singh N. Ph.D. *b.* 01.06.1967. Prof. Nalini Arvind & T.V. Patel Arts College Vallabh Vidhya Nagar. *Add.* 16 Raghuvansh Society, Near Hariom Nagar, Nana bazar Vallabh Vidhya Nagar Distt. Aanand. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Ghai, Vedkumari. M.A. Ph.D. *b.* 14.12.1931. Jammutawi. Rtd. Professor & HOD, Jammu University. *Bks.* 10. Nīlamata Purāṇa. Purandhrīpañcakam, Kaśmīra kā Saṃskṛta Sāhitya ko Yogadāna Ps.25 *Add.* Prof. Vedkumari Ghai. 15/2. Trikuta Nagar. Jammu Tawi. - 180012. *Ph.* 473277.

Ghanapathi, Gundappa S.P. Veda Varidhi, Veda Visharad. *b.* 31.07.1920, Magadi, KT. *Gp.* Keshav Shiv Ghanapathi. *Add.* No. 243, 5, Main Road, Third Block, Tyagaraj Nagar, Bangalore – 560048 (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya, Darśana.

Ghanapathi, L. M. Subrahmanya. Kṛṣṇa-yajurveda, Taittirīyaśākhā & Aṣ-avikṛti Pātha. *b.* 30.10.1932. Manakkal TN. *Bks.* 03. *Ps.* 40. Sr. Adhyapak Sri Mahaswamigal Avtarsthal Vedapathshala, Kanchipuram. *Spl.Ref.* Kṛṣṇa-yajurveda, Bhashya Ratna, Veda Vidyalankar, Sri Guru Gangeswaranandji, Veda Puraskar, President Awardee.

Ghanapathi, M. L. Krishnamoorthy. *b.* 26.08.1931, Trichy. Veda Adhyapak, Sri Kṛṣṇayajurveda Pathshala, Lalgudi, Trichy. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda, Ghanapati is the recipient of different honours namely; Salakshana Ghanapti, Vedalakshnajna, Vedamani, President Awardee.

Ghanapathi, Parasurama. Salaksana Ghananta Vidvān. Śhata Patha Brahmana. *b.* 15.08.1914. Engikollai (Kumbakonam). Adhyapak, President Yagnavalkya Gurukulam, Ambattur, Chennai-53. *Bks.* 01. Yājñavalkya Sahasra-nāmāvalī. *Ps.* 04. *Add.* Yagnavalkya Gurukulam. 23/7. Nedunchezhian Street, Vijaya Lakshmi Puram, Ambattun, Chennai– 600053. *Ph.* (044) 26571307. email id – saranathanp_@gmail.com.

Ghanapathi, Raghunath V. *b.* 11.04.1932, Anantavaram, Guntur, A.P. *Gp.* R. Venkatarama Ghanapathi. *Add.* 21, Thirumanjour, Thiruvaiyar – 313204 (T.N.). *Spl.Ref.* Veda (Kṛṣṇayaju with Bhāṣya-Taittirīyaśākhā).

Ghanapathi, Ramswami K.S. Sāhityavidvat. *b. Age.64 Yrs.* Agriculturist, Priest. *Gp.* Gundavadhani, KrishnaGhanpathi, Tippaya-vadhani. *Add.* C/o.K.R. Venkatesamurti, No.306, 21 Cross, Kuvempunagar, Hasan KT. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Ghanapathi, Ramswami M. *b.* 1926, Tiruppuravasal, Thanjavur, T.N. *Gp* Venkat-raman Ghanpathi. *Add.* Kanchikamakoti Sankarmath, Sannidhi Street, Rameshwaram-623526 Tamilnadu. *Spl.Ref.* Ṛgveda Kramānta.

Ghanapathi, Sripada Subrahmanya. Veda. *b.* 05.08.1906. East Godawari AP. Aasthan Pandit, Sri Veer Venkat Satyanarayan Swami, Varidevsthan. *Spl.Ref.* Veda, Vedpurush Vedalankar, Vedavadhna, President Awardee.

Ghanapathi, Vidyeshwer. Traditional Education. *b.* 15.06.1915, Kumbakonam, T.N. *Add.* 2, Raghoji Panditagraharam, Kumbakonam, T.N. *Spl.Ref.* Advaita Śāstra, Vedānta Śāstra.

Ghanapathigal, Jagadish. Niyoga Śiromaṇi, *b.*14.09.1912, Tiruvannamalai, T.N. *Add.* Tiruvannamalai (T.N). *Spl.Ref.* YogaDarśanaa.

Ghanapathigal, Parashuram. Gurukulo-padhi. *b.* 23.02.1919, Palakkad, Kerala. Gp. T.C. Krsnaghanapathigal, K.V. Shrinivas Shastrigal. *Add.* Tenilpur, Vill. & P.O. Anjumurty, Palakkad, (Kerala). *Spl.Ref.* Kāvya.

Ghanapatigal, N. Srinivasa. Veda, Nyāya

Vyākaraṇa Mimāṃsā & Advaita Vedānta. *b.* 31.10.1925. Kothangudi Near Kumbakonam (TN). *Add.* Old No. 70. New No. 27. Surendra Nagar, Sixth Street, Adam Bakkam, Chennai–600088. *Ph.* (044) 22601068.

Ghanasyam. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 06.11.1946, Matyi, Garhwal, U.P. *Gp.* Mahanandaji Shastri. Asstt. Teacher. *Add.* Shri Jagadev Singh Sanskrit Mahavidyalaya, Haridwar (U.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa .

Ghanghla, Praveen Bhai Maku Bhai. Ph.D. *b.*10.01.1969. Prof. Shri H.M.V. Arts & Commerce College Delwadha. *Add.* Matushri Paras Society Block No. 28 Delwadha Road Una Distt. Junagarh. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Ghatage, Amrit Madhav. M.A. (Pālī, Prākṛta, Skt., English), Ph.D. *b.* 10.08.1913. Kolapur. Honourary Secretary BORI, Pune. *Bks.* 06. *Ps.* 75. *Spl.Ref.* Pālī and Prākṛta. He has got Rockfeller, Foundation Fellowship at Univ. of Pennsylvania served at Rajaram College Kolapur, Deccan College, Pune & Univ. of Pune, President Awardee.

Ghimire, Shri Krishna Prasad Sharma. *b.* 1921. Katmandu. Nepal. *Bks.* 13. Śrī Kṛṣṇacaritāmṛatam, Vṛattāvadham, Yayāticaritam, Nāciketasam.

Ghosal, Bhaskarjyoti. M.A., Ph.D. *b.* 02.01.1960, Burdwan. Asct. Prof. Skt. Deptt Univ. of Burdwan. *Bks.* 01. *Add.* Deptt. of Skt. Univ. of Burdwan W.B. - 713104. M. 09434224521.

Ghosh, Bidyut Baran. M.A. M.Phil. Ph.D. *b.* 06.04.1950. Senai (W.B). Prof. A.B.N. Seal College, Cooch Bahar. W.B. *Ps.* 15. *Add.* 11–C. Snuff Millst. Belgharia. Calcutta – 700056. *Ph.* (033) 5640157.

Ghosh, Dipak. M.A. Ph.D. *b.* 24.01.1941. Calcutta. *Bks.* 06. Abhāva Vimarśa, Vilāpa Pañcikā, Saṁskṛta Rabīndra Saṅgītam, Megha Vilāpa, Suravāg Vilāsa, Amara Vilāpa, Ujjayanī Vilāsa. *Add.* 233. Green Park. Sharada Pally. Calcutta. – 700055. *Spl.Ref.* Sāhitya, Darśana, Poet in Skt. and Bengauli.

Ghugrawala, Hemangini Rameshchandra. Ph.D. *b.*30.11.1969. Prof. Sahjanand Arts College Ambawadi Ahemdabad. *Add.* 931/1 Sector 3D, GandhiNagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Ghule, Rajaram. Acharya. *b.* 17.04.1942. Varanasi. *Add.* 1314/946. Daragunj. Allahabad. U.P. *Ph.* (0532) 2508584. *Spl.Ref.* Ved – Pandit– Award – U.P. Sanskrit Academy, Lucknow.

Ginde, Vasudev Purushottam. B.A., M.A. (Sanskrit, Marathi), Ph.D.. *b.* 19.01.1937, *Bks.* 05. Kallola Amṛtāche, Jñyāneśwarītīl Rasatīrthe, Ek Rasasvāda. *Spl.Ref.* Pune Vidyapeetha Puruskar on Kallola Amṛtāche.

Gira Ataliwala, Tribhuvandas. Alaṅkāra & Purāṇa Śāstras. *b.*31.05.1947, Bharuch. *Ps.* 02. *Add.* 27. Nilkamal Society, App. Pujan Flats, Paldi, Ahmedabad – 380007.

Giri, Goswami Prahlad. Acharya, Sāhitya Śaṅkara Vedānta & Darśana, LL.B. *b.* 22.06.1959. Balangiri, Odhisha. Guest Teacher Deptt. of Dharmaagarm. Faculty of SVDV, BHU, Varanasi. *Gp.* Sri Sanakaracharya Guru-paramapara & Sri Vidyagam. *Bks.* 29. Bhairavīmahāvidyā, Bhuvaneśvarī Mahāvidyā, Ṣodaśī Mahāvidyā, Śrī Cakranirūpaṇam, Savṛttiraśtādhyāyī. *Ps.* 01. *Add.* K22/2 Durgaghat, Varanasi. 221001 M. 09451362769. poornapeetham@gmail.com *Spl. Ref.* Agamtantra, Vyākaraṇa, Sāhitya, Philosophy, Honoure by U.P. Skt Academy.

Giri, Vishwambhar Nath. M.A. (Sāhitya,Old Nyāya). Ph.D. *b.* 01.04.1953, Mirzapur. Lect. *Bks.* 03. Vādīvinodaḥ, Śrī Krisṇalīlā, Daśakumāracaritam. *Add.* 1/67 – MIG. Avas – Vikas Colony. Plan – 3. Jhunsi, Allahabad (U.P.). *Ph.* 605652.

Girijashankar. M.A., Sāhityaratna. *b.* 26.09. 1933. Teacher, Govt. Model Senior Secondary School, Civil Lines, New Delhi, *Add.* 5818, Jogivara, Nai Sarak, Delhi – 110054. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gitamani, R. Sāhityaśiromaṇi, Shikshashastri, Shikshacharya. *b.* Age 29 yrs. in 1989, Airanta,

Chittur Dist., A.P. *Gp*. Subbarayan, Nagamunireddi, Arlikatti. Special Officer. *Add*. S.W. Residential School, Kala Samudram, Anantapur (A.P.). *Spl.Ref*. Sāhitya.

Godh, Suresh. M.A., B.Ed. LL.B. *b*. 23.06.1947. Teacher, Atmaram Sanatan Dharma Senior Secondary School, Delhi. *Add*. B-5/3, Rajouri Garden, New Delhi. *Spl.Ref*. Sāhitya Śāstra.

Goel, Aruna. M.A. Ph.D. *b*. 12.09.1947. Narwana (HR). Prof. P.U. Off. P.U. Chandigarh – 160014. *Bks*. 05. Modern Knowledge of Nayāya. *Ps*. 30. *Add*. 185. Sector – 16. Chandigarh – 160015. *Spl.Ref*. President Awardee.

Goel, Shashi Prabha. M.A. B.Ed. *b*. 06.09.1933. Ambala Cantt. Principal. Delhi. *Bks*. 02. The Message of Jip. *Add*. D/E – 128. Tagore Garden. New Delhi. 011/110027. *Ph*. 5194255. 5428986.

Gogana, Pushpa. M.A.. *b*. 10.05.1945. Teacher, Kendriya Vidyalaya, Andrews Ganj, New Delhi. *Add*. B.B. 5, Greater Kailash Enclave -2, Near Savitri Cinema, New Delhi.

Gogiya, Jaidayal. M.A.. *b*. 01.11.1943. Teacher (TGT), Govt. Boys Senior Secondary School No. 3, Palam Colony, New Delhi. *Add*. C-124, Vikaspuri, New Delhi – 110018. *Spl.Ref*. Sāhitya.

Gogna, P.R. M.A. M.Com. AICWA. D.H.S. B.Ed. *b*. 20.11.1927. V.Apra. Distt. Jalandhar. Chairman, Technical Management. *Ps*. 01. *Add*. D – 402. Kaveri Aptts. Alakhananda. P.O. Kalkaji. New Delhi – 110019. *Ph*. 6437709. 6437712.

Gogoi, Chutua Laksahira. M.A., Ph.D. *b*. 01.09.1946, Dhakuakhana, North Lakhimpur. Prof. Deptt. Of Skt. Gauhati uni. Assam. *Bks*. 02. Studies on Laksanā Vṛtti, The Purānas on Poetics and Dramaturgy. *Add*. Satabdi nagar bye lane Haricaran Das Path Lakhra, Guwahati-34, *Spl.Ref*. Kāvya.

Gokani, Kumud Ben Manu Bhai. Ph.D. *b*. 17.09.1935. Prof. Shri Sharda Peeth Arts & Commerce College, Dwarka. *Add*. C/o. Shri Mani Bhai Contractor, Near Brahma Kunda, Dwarka. Distt. JamNagar. *Spl.Ref*. Vedānta Śāstra.

Gola, Jaichandra. M.A., B.Ed. *b*. 20.08.1943. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School No. 1, Rama Krishnapuram, New Delhi. *Add*. B.D. – 890, Sarojini Nagar, New Delhi – 110023. *Spl.Ref*. Sāhitya.

Golvelkar, Kalawati Ben K. Ph.D. *b*. 04.08.1948. Prof. Gujarat Arts & Science College, Alisbridge, Ahemdabad. *Add*. D-17, Akleshwariya Block, Near Police Commissoner office, Shahi bag Ahemdabad. *Spl.Ref*. Kāvya-Śāstra.

Gopakumar, P.V. Acharya. *b*. 20.05.1971. Kothamangalam (Kerala). Executive President. *Bks*. 01. Jaimini Sūtrās. *Add*. Centre for Sanskrit and Indological Studies. Mathuramattom. Kidangoor Post. Kottayam. 686572. Kerala. *Ph*. (0482) 254025. 258703.

Gopal, Shastri. *b*. 1892. Bihar. *Bks*. 01. Gītākarmayogaśāstram. *Spl.Ref*. 'Gitakarmayogashastr' is a Philosophical book.

Gopalacharya, S. śiromaṇi. *b*. 15.08.1908, Paduram, South Arcot, T.N. *Bks*. 01. Tattva-īkā. *Add*. 39, G.T.S. Road, Madhurantakam – 603306 (T.N.). *Spl.Ref*. Ved (Kṛṣṇayajuḥ).

Gopalacharya, T.N. *Age*. 57 yrs. in 1988, Tiruvahindrapuram, T.N. *Gp*. Sirkali Rajagopalacharya. *Add*. Tiruvahindra-puram, South Arcot (T.N). *Spl.Ref*. Kṛṣṇayajurveda.

Gopalakrishna, Ghanapathi G. Kṛṣṇayajurveda Kramānta Salakṣanaghanānta. *b*. 14.10.1953, Tirunelveli, T.N. Teacher. *Gp*. Trisattamalli R. Subrahmanya Ghanapathi, P.S. Anantanarayana Shastri. *Add*. 2, M.V.S. Agraharam, Kulittalai, Trichi Dist. (T.N). *Spl.Ref*. Kṛṣṇayajurveda.

Gopalakrishnan, P.O. M.A.. *b*. 15.12.1933, Venkapalli. P.G. Assistant. *Add*. G.H.S. School Pandalur, Neelgiri, Malappuram – 643233. (Kerala). *Spl.Ref*. Sāhitya.

Gopalan, Krishnayyar. *b*. 15.07.1953, Madurai, T.N. Vedic Exponent. *Gp*. Ramasvami Sharma. *Add*. Shri Govind Raja Swami Devasthan, Tirupati (A.P.). *Spl.Ref*. Kṛṣṇayajurveda.

Gopalkrishna. M.A. Asst. Prof. Skt. Dept. *Add.* Government Sanskrit College, Nabha – 147201 (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Gopinath, 'Kaviraj.' M.A. ***b.*** 07.09.1887, Vill. Dhamrai, Distt. Dhaka Bangladesh. Principal Govt. Skt. College, Varanasi. ***Bks.*** 05. Bhāratīya Saṃskṛiti aura Sādhanā, Tāntrika Vāṇmaya meṃ Sāktadṛiṣṭī, Tāntrika Sādhanā aur Siddhānta, Śri Kṛiṣṇa Prasaṇga, Patrāvali. ***Expired on*** 12.06.1976. ***Spl.Ref.*** Awards Mahamahopadhyay, Padma Vibhushan By Govt. of India. Sāhitya Vachaspati by U.P. Govt. Deshikottam by Vishva Bharti, Sāhitya Academy Award.

Gor, Mukesh Chandra Chota Lal. Ph.D. ***b.***28.07.1966. Prof. S.S.P. Jain Arts & Commerce College Grahgandha, Surendra Nagar. ***Add.*** C-38, 60 Quarter, Near Distt. Panchayat Bhawan Surendra Nagar. ***Spl.Ref.*** Alaṇkāra Śāstra.

Goranal, Ramchandracharya Raghava-charya. Pandit, Purnaprajnaprasada-patra. ***b.*** 03.08.1914, Tadavaluga, KT. Rtd. Principal. ***Gp.*** Annacharya. ***Add.*** Merry Road, Bijapur (KT). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, MadhvaDarśana.

Gore, Kashinath Gopal. B.A., LLB (Gold-medalist), Hindi Sāhitya Ratna, Sangeet Visharad, Telugu Kovid, ***b.*** 03.06.1936. Rtd. Joint Secretary U.P. Govt. ***Gp.*** Vedmurti, Gopal Bhatt Gore (Rigveda), MM Pt. Bahushastri Bjhe (Skt. Literature), Pt. Madan Gopal Sharma (Jyotiṣa, Ayurveda) ***Bks.*** 07. Kaligītā, Vyavahārasūkti, Yoga & Svāsthya. ***Ps.*** 100. ***Spl.Ref.*** Ṛgveda, Jyotiṣa, Āyurveda, Poet (Marati, Hindi, Skt. English), Chairman Maharashtra Samaj, Vice Chairman U.P. Secretariat Hindi Parishad & Matra Sewa Sansthan, Lucknow, Direction & Acting in Marathi Dramas (Radio Talk from A.I.R., Lucknow.

Gornal, Ramacharya, b. 03.08.1914, Tadealga, Bijapur, KT. Teacher, Sanskrit Pathshala, Bijapur. ***Add.*** Rajavendra Chowk, Main Road, Bijapur- 586101 KT. ***Spl.Ref.*** Darśana Śāstra.

Gosai, Natwargar Amritgar. Ph.D. ***b.*** 02.03. 1947. Prof. S.S.Mehta Arts & M.M. Patel Commerce College Motipura Himmat Nagar. ***Add.*** B-4, Shastri Nagar, Mahaveer Nagar, Himmat Nagar. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Goswami, Asarani. M.A., Ph.D.. ***Sub.*** Sāhitya, Dharmaśāstra, Sanskrit. Sr. Lecturer; Gargi College, New Delhi. ***Bks.*** Kṛṣṇa-Kathā & Allied Matters, The Kṛṣṇa Legend: a new Perspective. ***Add.*** 12/7644, Dharmapur Lodge, Clock Tower Sabji Mandi, Delhi – 110007.

Goswami, Asha. M.A., Ph.D. Convenor International Consortium of Epics & Purāṇika Lower Studies Delhi. ***Bks.*** 05 The Kṛṣṇa Legend a new perspective, In the foot steps of Kṛṣṇa: Research in Kṛṣṇa Lord, Uses in Indology in search of Blue Green Crest. ***Ps.*** 48. ***Spl.Ref.*** Skt. Samman Award, Delhi Skt. Academy, Honor of Citation of Excellence in Writing Ministry of HRD etc., Dr. Asha Goswami is a well publicized name in Kṛṣṇa Lore studies. Devoted to serving Indology, she is associated with a number of Educational and Cultural organizations in India and abroad.

Goswami, Ashok Kumar. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.05. 1938. Jorhad. Rtd. Prof. & HOD Deptt of Skt Gauhati Univ. ***Bks.*** 17. ***Ps.*** 89. ***Add.*** A6/116 Shanti Gram Housing Complex Tripura Road Khanapara, Gauhati - 781022, Assam. Ph. 2227771. ***Spl.Ref.*** Visiting Prof. Tejpur Univ., Deptt of Traditional Cultural & Art form 1998-99, Founder Co-ordinator Gauhati Study Centre of IGNOU 1987-94, Director In-charge Academic Staff College GU Campus 1998 (Jan-April), Honoured by MHRD Minister Dr. M.M. Joshi 2000, President Awardee, Sāhitya Bata Award by Assam Govt. 2008, Awarded literary pension by Assam Govt. 2009.

Goswami, Balbhadra Prasad. Acharya, M.A., Ph.D., Sāhitya Ratna. ***b.*** 07.10.1925. Hardoi. Upar Parishad Pariyojana Nideshak. ***Bks.*** 12. Nehrūyaśaḥ, Indirājīvanam, Jyotiṣmatī. ***Add.*** 14, Ashok Nagar, Barelli. ***Spl. Ref.*** Kalidas Puraskar, Honour from U.P. Skt. Sansthan, Haryana Govt.

Goswami, Bharati. M.A., Ph.D. *b.* 29.01.1962, No.2 Majgaon P.O. Dhula Distt. Darrang Assam. Asct. Prof. Guwahati. ***Bks.*** 03 Saṃskṛita Pāthasaṅgrahaḥ, Part – I, II, Saṃskṛita Vyākaraṇa Jyoti. ***Add.*** B-Boroah College Guwahati-7, Assam.

Goswami, Bornali. M.A., B.Ed. *b.*01.01.1984, Guwahati, Research Scholar, Guwahati Univ. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Gatia Janakpuri Kahilipara, P/s. Dispur Ghy-19.

Goswami, Chandra Kishor. M.A., Ph.D., Dip. In French. *b.* 27.02.1938. Bharatpur (RJ). Prof. Darśana & Vedic Studies, Vanasthali Vidyapith. ***Gp.*** Sampurnadatta Mishra, Kadi Pundarika, Krishnchandra Sharma, Gangadhar Bhatta, Premanidhi Shastri. ***Bks.*** 06. Bhāvaśatakam. Pṛthvīrājajayam. Kāvyānjali. Dānavīrakarṇaḥ. Gītānjaliḥ. ***Add.*** 33, Aurobindo Niwas, Vanasthali Vidyapith, Tonk – 304022 (RJ). ***Spl.Ref.*** RJ Sanskrit Academy awarded Ambikadutt Vyas puruskar in 1989 on his works.

Goswami, Dahyapuri Hathipuri. M.A., Ph.D. *b.* 01.06.1965. Patan. Asct. Prof. Muni. Arts & UBSC College. Mehsana Gujarat. ***Bks.*** 10. Comseption of form and Conventional of Skt. Stotra Poetry, Ādiśaṅkarācārya : Life and Works, Divotion and Philosophy in the stotra of Ādiśaṅkarācārya. ***Ps.*** 50. ***Add.*** 19 Yogeshwar Society Part II Nagalpur Highway Mehsana Gujarat. Ph. 02762253325. M. 09879277075. dhgoswami65@gmail.com ***Spl.Ref.*** Vedānta, Secretary Anart Skt. Sanskriti Swadhya Sansthan.

Goswami, Devesvar. M.A., Vedānta, Sāhitya. *b.* 12.03.1916, Purvisatra, Nagaon. ***Add.*** Majgaon, Tejpur, Sonitpur (Assam). ***Spl.Ref.*** Vedānta, Sāhitya.

Goswami, Durgadas. Kāvyatīrtha, Sāhitya, Smṛtitīrtha. ***Age.*** 78 yrs. Mahadevapur, W.B. ***Gp.*** Vidhushekhar Shastri, Sitaram Shastri, Ananta Krishna Shastri. ***Add.*** 36, Elias Road, Agarpara, Kamarhathi, Culcutta – 700058 (W.B.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa.

Goswami, Gangadhar Dev. Shastri. *b.* Nowgong, Assam. ***Add.*** Nowgong, Barpeta (Assam). ***Spl.Ref.*** Ved, Vyākaraṇa.

Goswami, Giridhari Lal. M.A., Ph.D. *b.* 24.08.1919. Social Worker. ***Add.*** 25/30, East Patel Nagar, New Delhi – 110008. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Goswami, Girish Puri. Acharya in Sāhitya, Shikshashastri, Yoga Diploma. *b.* 01.05.1960. Teacher, Shri Samanta Bhadra Samskrita Mahavidyalaya, Daryaganj. Delhi. ***Add.*** 3, Raisina Road, New Delhi – 110001. ***Spl.Ref.*** Yoga & Sāhitya.

Goswami, Gokulendra Narayan Deva. M.A., D.Phil. *b.*01.04.1968 Dwiparsatra Nalbari Assam. Asst.Prof. HOD Mīmāṃsā K.K.H.Govt. Skt. College Guwahati, Assam. ***Bks.*** 17 Dīpīka, Ha-hayoga Pradīpikā, Veda Mañjarī, Rādhā Tantra. ***Ps.*** 12. ***Add.*** C/o Shri D.D.Sharma Kali Mandir Jyoti Nagar Guwahati Assam. ***Ph.*** 08486966071,09864126426 ***Spl.Ref.*** Chair Person Awarded by 10th World Skt. Confrence Banglore 97, Received Pt. Hemchandra Goswami Award, Assam 2008.

Goswami, Gorkrishan. Kāvyatīrtha, Purāṇatīrtha, Darśanatīrtha, Āyurveda Śiromaṇi. *b.* Virandavan, U.P. HOD Ayurveda Faculty Gurukul V.V., Vrindavan. ***Bks.*** 01. Virahiṇīvrajāṅganā. ***Add.*** Abhinav Chaitaneya Ayurvedic Aushadhalaya, Radhraman Marg, Vrindavan, U.P.

Goswami, Hari Krishan. Sāhitya. Nyāya. Śuddhādvaita Vedānta. *b.* 1909. V.P. Shivanandpuri, Mahapura, Jaipur (RJ). Prof. Udaipur Sanskrit College. Principal Sanskrit College. Ajmer. ***Sp.*** Pushtimargiya Goswami, Suresh Baba. ***Bks.*** 25. Siṃhasiddhānta-Sindhu, Ādarśaudāryam, Lalita-Kathā-Kalpalatā, Divyālokaḥ. ***Add.*** V.P. Shivanandpuri, Mahapura, Jaipur (Rj.). ***Expired.*** 1979. ***Spl.Ref.***. Established of Sanskrit pathashala in Mahapuro which is known shastri College in Present. 'Magha' Awarded by RJ Sanskrit Academy, Jaipur, 'Gadya – Padya Smart' by Goswami sabha.

Goswami, Harirai. Acharya in Sāhitya, ***b.*** 22.05. 1950. Jodhpur, Raj. ***Bks.*** 07. Jarāsandha-vadhamahākāvyam, Varṣāvalī, Puruṣasam-bhavamahākāvyam. ***Add.*** Srimoti Haweli, Haweli Street, Sri Vallabhacharya Marg, Jaamnagar, Gujarat – 01. ***Spl.Ref.*** Awarded by 'Magh-Puruskar' by Rajasthan Sanskrit academy, Jaipur. He wrote many poems in Sanskrit, Hindi and Gazals in Urdu also.

Goswami, Kalyani. M.A., Ph.D. ***b.*** 19.08.1956, Baligaon, P.O. Korokatali Gorhat, Assam. Asct. Prof. Jagannath Barooah College Gorhat-1, Assam. ***Gp.*** Dr. Mukta Biswas. ***Sp.*** Miss Purbassi Borpuzari. ***Add.*** P.O.Tarajar Purona Gayon-gaon, Near Bajaj Workshop Jorhat-1. Assam.

Goswami, Manikmohan. Vyākaraṇa Upadhi, Smṛti-madhyama, Paurohitya-madhyama. ***b.*** 01.01.1952, Kaichar, W.B. Principal. ***Gp*** Umapati Chattopadhyaya. ***Add.*** Kaichar, Dist. Burdwan (W.B.).

Goswami, Narmadakumar. Tarkatīrtha. Vyākaraṇa tīrtha. ***b.*** 14.10.1907, Neehadham, Assam. Rtd. Teacher. ***Gp.*** Navinachandra Dharma Shastri, Sachindra Vyākaraṇa tirtha. ***Add.*** G-104, Bagha Jatin, Calcutta – 86 (W.B). ***Spl.Ref.*** Tarka, Vyākaraṇa.

Goswami, Prafulla Chandra. Acharya, Sāhitya Śāstra. ***b.*** 01.08.1943. Nagaon (Assam). Rtd. Principal Krishna Kanta Sanskrit College. Guwahati – 14. ***Bks.*** 01. Ancient Geography of India. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Vill.-Jambori. Garigaon. Guwahati – 781012. ***Ph.*** 09435400542.

Goswami, Purna Chandra. Acharya in Vyākaraṇa, Āyurveda. ***b.*** 23.05.1913, Bihampur, Nalbari, Assam. Ayurved Doctor. Gp. Sanatan Bhattacharya. ***Add.*** Vill. & P.O. Bihampur, Nalbari Dist. (Assam). ***Spl.Ref.*** Āyurveda & Vyākaraṇa.

Goswami, Rajatchandra. Smṛtitīrtha, Smṛtiratna, Bhishagratna. ***b.*** 04.02.1990. ***Add.*** Kaihadisat, Nalbari (Assam). ***Spl.Ref.*** Smṛti, Āyurveda.

Goswami, Shastri Rohini Ballav. Acharya & Jyotiṣa Ratna. ***b.*** 1952. Skt. Teacher Sankar Dev High School Dergaon Assam. ***Bks.*** 13. Mahātmā Vidura, Bhaktarāja, Saṃskāratattva, Subhāṣitam, śaiva Dharmera Prampara. ***Spl.Ref.*** Rashtriya Dharma Seva Award, Vidya Vinod, Geetacharya, Teachers State Award, DK Saraswat Shiksha Ratna Award 2005.

Goswami, Sitanath. M.A., D.Phil., Vyākaraṇa tīrtha, Vedatīrtha, Vedāntatīrtha. ***b.*** 01.07.1930. Navadweep, WB. President Geeta Śāstra Vidyapeetha & Teacher Ramkrishan Math Kolkatta. Skt. Deptt. ***Bks.*** 17. ***Ps.*** 43. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Veda, Vedānta. President Awardee.

Goswami, Subuddhi Charan. M.A. Kāvyatīrtha Nyāyavidya-Acharya. ***b.*** 20.05.1944. Burdwan, W.B. Prof. Rabindrabharati University. Calcutta-50. ***Bks.*** 04. Avayavacintāmaṇi of Gaṅgeśa, Kanāda-ippaṇī on Avayava-cintāmaṇi, ***Add.*** 16/5. Olabibital 1st bye lane. Howrah – 711104. ***Ph.*** (033) 6676388.

Goswami, Tarun Chandra. Shastri, Vyākaraṇa Sāhitya & Smṛti. ***b.*** 01.07.1956, Jorhat. Classical Teacher. BH Sec. School, Golaghat. ***Add.*** Betioni Higher Sr. School. Betioni, Golaghat - 785627, Assam M. 09401360350. ***Spl.Ref.*** Founder Principal (Part Timer) of Pt. Hemchandra Goswami Skt. Vidyapeetha, Golaghatt.

Goswami, Vijay. M.A., Ph.D. Asct. Prof. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Jadavpur University, Calcutta- 700032 W.B. ***Spl.Ref.*** AlaṅkāraŚāstra.

Goswami, Vrij Mohan. Kāvytīrtha. ***b.*** 08.02.1912, Shatak, Assam. Asst.Prof. ***Gp.*** Rukmani Mohan Goswami, Sukhmaya Tarkvagisa. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Ladgai Road, Settlement Road, Karimganj, Assam. ***Spl.Ref.*** Veda, Sāhitya Śāstra, Vedānta Śāstra.

Gour, Vidyadhar. Veda. Karmakāṇḍa. Dharm-Śāstra. Nyāya-Śāstra. ***b.*** 1886. Vill. Poothi. Distt. Rohtak. (HR). Dean & HOD, Kashi Hindu Univ. Kashi. ***Gp.*** Pt. Prabhudutta Gour, Pt. Vamacharan ji. ***Sp.*** Pt. Vijaychandra Chaturvedi, Ramjeev Dwivedi, Martand Shastri, Pt. Vishvanath Pandey. ***Bks.*** 08.

Smārtaprabhu, Pratiṣ-hā-prabhu, Vivāha-paddhati, Upanayana Paddhati, Vāstuśānti Paddhati. *Expired.* 1941. *Spl.Ref.* M.M. awarded by British Govt. in 1941. Title of Vaidik samrat. Yajniksamrat. Vaidikchakravarti. Vidya-vachaspati. Vidyabhushan. Dharmalankar. Mahapandit etc.

Goutam, Naunihal. M.A., Ph.D., NET, JRF. *b.* 15.01.1984, Jalalpur, Sheopur M.P. Guest Faculty (Skt.) Dr. H.S.Gour Univ. Sagar. *Gp.* Dr. Vayunandan Sharma. *Add.* Near Water Tank, Madhuvan Colony, By pass Road, Sheopur M.P. *Spl.Ref.* Gold Medal, faculty fo Arts in J.U. Gwalior.

Govindam, K. E. Nyāyaśiromaṇi, Shiksha Shastri, Vidyavaridhi, Tradition in Kṛṣṇayajurveda, Taitirīyaśākhā, Mīmāṃsā, Viśiṣ-ādvaita Vedānta. *b.* 03.09.1948. Ex-V.C., Prof. Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati. *Bks.* 17. Dharmavijayacampū, ātmatvajātivicāra, Vaikuṇ-havijayacampū. *Ps.* 50. *Add.* 6-8-1139, NGO Colony Tirupati – 07. AP. *Spl.Ref.* Veda Vedang, Mīmāṃsā, Kṛṣṇayajurveda, Manuscriptology, Honoured by the title of Vipaschinmani, Navya Nyāya Praveen, Spl.Honour MP Skt. Board, Member of Several Academic Bodies. President Awardee.

Goyal, Rajendra Prakash. M.A., B.Ed. *b.* 23.04.1947. Teacher, Ram Rishi Sanskrit Mahavidyalaya, Karala. *Ps.* 02. *Add.* Goyal Bhawan, R-32, Buddha Vihar, Phase – I, Delhi–110041. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Goyal, Rajrani. M.A., Ph.D.. Asst. Prof. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Lady Shriram College for Women, Lajpat Nagar, New Delhi – 110024. *Spl.Ref.* Veda, Linguistics.

Guduru, Laksmidevamma. Acharya, Shiksha-shastri. *b.* 04.05.1952, Krishnan-garipalli, Cuddapah Dist. A.P. Teacher. *Add.* D. No. 1/546, Ankalpet, Pulivendula, Cuddapah Dist. (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Guha, Dinesh Chandra. M.A., D.Litt. *b.* 01.02.1912, Faridpur (Bangladesh). *Ps.* 02. *Gp.* Dr. Satkari Mukhopadhyaya. *Add.* D-47/67, Rampur, Varanasi – 221010 (U.P.). *Spl.Ref.* Vedānta.

Gulati, Charan Das. M.A. *b.* 05.08.1931. Teacher (PGT). Govt. Senior Secondary School No. 1, Lajpat Nagar, New Delhi. *Add.* 1, G-89, New Township, Faridabad (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Guleri, Pt. Chandradhar Sharma. Studied Sāhitya, Darśana, Linguistics. *b.* 07.07. 1883. Jaipur. Prof. Meyo College. Ajmer. *Bks.* 03. Pṛthvīrāja Vijaya (ed.), Pañcanadadeśastavaḥ, Usane Kahā Thā. *Ps.* 20. *Expired.* 12.09.1922. *Spl.Ref.*. Translated Samrāta Siddhānta from Sanskrit to English in 1901. wrote many articles in 'Sanskrit Ratnakar' from 1910 to 1914. Edited 'Samālochak' & 'Nāgarīpracariṇī' magzines. He wrote famous hindi story 'Usane kahā thā'.

Gullapalli, Ghanapathi Anjaneya. Kṛṣṇayajurved Śrauta, Smārta, Atharvaveda, Vedāṅga, Sāhityam. *b.* 29.08.1934, Iragavaram. *Add.* H.No. 10-59. Behind Old Post – Office. Iragavaram. West Godavari. Dist. A.P. – 534217. *Ph.* (08819) 289254. *Spl.Ref.* Veda. President Awardee.

Gullapalli, Ramkrishnamurti. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D.. *b.* 01.01.1958. Asst. Prof.. *Add.* Kendriya Sanskrit Vidyapitham, Aliganj, Lucknow (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gullapalli, Sriram Krishanmurthy. Sāhtiya Praveen, POL, Shiksha-Shastri, M.A., Vidyavaridhi. *b.* 11.11.1918. Paschim Goda-wari, A.P. HOD and Prof., Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupathi. *Bks.* 02. Vānikī, Tau Yakṣau Punarāyātau. *Ps.* 16. *Spl.Ref.* Sanskrit Sāhitya Puraskar from U.P. Skt. Academy 1992, Poet.

Gundecha, Sangeeta. M.A. Ph.D. M. Music. *b.* 01.04.1974. 62. Sakhipura. Ujjain. (M.P.). Asst. Prof. Sanskrit. Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal. *Bks.* 03. Bhāsa kā Raṅgamañca, Udāharaṇa Kāvya, Samakālīna Raṅgamañca meṃ Nā-yaśāstra kī Upasthiti. *Ps.* 50. *Add.* 15. Prof. Colony, Bhopal – 462002.

Ph. (0755) 2660873. 09425674851. *Spl.Ref.* Sāhitya & Nā-ya.

Gupt, Aanand Swaroop. Merrut. Prof. Merrut College. *Spl.Ref.* Worked in Purāṇaprakashan yojna of Sarvabhartiya Kashirajnyas as assistant editor. Editor 'Purāṇam' patrika since twenty years and wrote many Research paper.

Gupt, Bachusubbaraya. *b.* November, 1902. Karnool, A.P. *Bks.* 01. Abhinavasītārāvaṇasamvādajharī. *Spl. Ref.* Skt. and Telugu Poet.

Gupta, Aghore Nath. *b.* 1841, Shantipur in Nadia, Brahma Missionary (U.P.). *Bks.* 09. Dhruva aura Prahlāda, Śloka Saṅgraha, Dharmatattva, Sulava Samācāra, Dharmasopānam. *Expired on* 09.12.1881, Lucknow. *Spl.Ref.* He was great scholar of Buddism a Preacher of the Brahmo Samaj. He was designated (Saint).

Gupta, Ashutosh. M.A., Ph.D. *b.* 17.08.1981, Rasoolpur, Jalalpur, Ambedkarnagar U.P. Asst. Prof., Birla Campus, HNB Garhwal Univ. Srinagar Garhwal-74 *Gp.* Smt. Preeti Sinha. *Ps.* 02. *Add.* C/o. Shri R.P. Chanoli, New Colony, Near SSB Bhaktiyana Srinagar Garhwal.

Gupta, Chhiddhimal. M.A.. *b.* 06.07.1940. Language Teacher, Govt. Model Senior Secondary School, Ludlo Castle, New Delhi. *Add.* C.D. – 144, Bhajanpur, New Delhi – 110053. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gupta, D.J. M.A., B.L.S.. *b.* 12.06.1944, Qila Sholiya Singh (in Pakistan). Asst. Prof. *Gp.* Lala Agrawal, Dr. Vedprakash. *Add.* D.M. College, Dinanagar (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gupta, Dayaram. M.A. *b.* 09.10.1938, Puthkhurd, New Delhi. Asst. Prof., Hansraj College, Delhi. *Gp.* Dr. Narendranath Chaudhuri, Dr. R.V. Joshi, Pt. Gangaram Sharma. *Ps.* 01. *Add.* A 3/258, Paschim Vihar, New Delhi–110063. *Spl.Ref.* Sāhitya, *Award.* Gold Medalist.

Gupta, Dayavati. M.A., B.Ed. *b.* 20.11.1939. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School No. 2, Kalkaji, New Delhi – 110019. *Add.* E-345, Greater Kailash, New Delhi.

Gupta, Dharmesh Kumar. M.A., Ph.D., Acharya. *b.* 19.10.1933, Rajpur, M.P. H.O.D. of Sanskrit. *Bks.* 01. A Critical Study of Daṇḍin and his works, and others. *Add.* Vishwesharanand Vaidik Research Institute, Sadhu Ashram, Hoshiarpur (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gupta, Gyanprakash. M.A. *b.* 01.07.1944. Teacher (PGT), Ramjas Senior Secondary School No. 1, Anand Parvat, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 1/1575, Mansarovar Park, G.T. Road, Shahadara, Delhi – 110032.

Gupta, Hariprasad. M.A., B.Ed. *b.* 12.10.1946. Teacher, Govt. Higher Secondary School, No. 1, Shakti Nagar, Delhi. *Add.* B-16, Bharat Nagar, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Gupta, Jyoti. M.A., M.Ed. NET. JRF. *b.* 26.06.1986, Jaipur. Research Scholar, R.SK.S. Jaipur Campus. *Gp.* Prof. Beena Agrawal, Prof. Madan Mahan Sharma. *Ps.* 04. *Add.* 42, Mahaveer Colony, Extn. Kartarpura, Jaipur–15. Mob. 09269637116. *Spl.Ref.* Darśana.

Gupta, K. M.A., Ph.D. Asst. Prof. Skt. Dept. *Ps.* 02. *Add.* Miranda House, Delhi University, Patel Chest Marg, Delhi – 110007. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gupta, Kanta. M.A., Ph.D. *b.* 11.01.1935, Nagina, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Prof. Rasikabihari Joshi. *Bks.* 01. Chando' laṅkāramañjarī. *Add.* 2, Park Avenue, Maharani Bag, New Delhi – 110065. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gupta, Krishna. M.A., B.Ed.. *b.* 09.07.1957. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School No. 1, Shakti Nagar, New Delhi. *Add.* 130 Dhaka, Kingsway Road, Delhi – 110009.

Gupta, Kusum. M.A. *b.* 02.11.1950. Teacher (TGT), Govt. Girls Senior Secondary School, Gandhi Nagar, Delhi. *Add.* B-9/13 A, Krishna Nagar, Delhi – 110051.

Gupta, Lajpatrai. M.A. *b.* 15.02.1935. Teacher, Govt. Senior School. Ranjit Nagar, *Add.* E-102/1, Narayan Vihar, New Delhi.110028. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Gupta, Maniprabha. M.A. (Skt. & Hindi) ***b.*** 08.02.1962. ***Add.*** 154, Lok Vihar, Pitampur, Rani Bag, Delhi – 110034. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Gupta, Manjul. M.A. ***b.*** 12.12.1943. Teacher, Govt. Girls Higher Secondary School, Diwan Hall, Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 140, Ashok Vihar, Phase IV, Delhi – 110052. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Gupta, Manorama. M.A. (Sāhitya Veda Darśana), M.Ed., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 10.12.1956. Asst. Prof. & HOD Skt. Deptt. Kanpur Vidyamandir Mahila PG College. ***Bks.*** 02 Vedāntasāra, Sāṅkhyakārikā. ***Ps.*** 100. ***Add.*** C/1 57 Indira Nagar Kanpur - 208026. Ph. 0512-2570168. M. 09450137765.

Gupta, Mohanlal. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 17.05.1941, Kawai, Kota, RJ. Asst. Prof. ***Gp.*** Surajan Das, Brahmanand Sharma. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Govt. Post-Graduate College, Bundi (RJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Gupta, P.M. M.A. (Sanskrit & Hindi). M.Ed., LL.B.. ***b.*** 17.07.1937. Teacher (PGT) Sanskrit, Mahavir Jain Senior Secondary School, Nai Sarak, Delhi – 110006. ***Add.*** B-1098. Shastri Nagar. Delhi – 110052.

Gupta, Pawan Kumar. M.A., NET, Ph.D. ***b.*** 04.10.1968. Asstt. Prof. Skt. Deptt. BBD PG College, Ambedkar Nagar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** BBD PG College, Ambedkar Nagar - 224159 U.P. Ph. 05275237204. M. 09450488884. ***Spl.Ref.*** Veda.

Gupta, Phulavati. M.A., M.Ed. ***b.*** 26.03.1936. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School, Adarsh Nagar, New Delhi. ***Add.*** 34-B, Shankaracharya Road, Adarsh Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Gupta, Pramila. M.A. (Sanskrit & Linguistics). ***Age.*** 50 years in 1988. Asct. Prof., Shri Venkateshwar College, Dhaula Kuan, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 56, Vaishali, Pitampura, Delhi – 110034. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Gupta, Promila. M.A., B.Ed. ***b.*** 15.04.1956, Hissar, Lect. Skt. GGS School Siwan. ***Add.*** 314/12 Ashoka Garden Colony, Kaithal - 136027 Haryana. M. 09416355241.

Gupta, Rakhi. M.A., Ph.D. ***b.*** 08.07.1977. Guest Prof., Maharshi Panini Skt. Uni. Ujjain M.P. ***Ps.*** 07. ***Add.*** 12, Keshav Nagar, Near Hari Fatak, Ujjain M.P.

Gupta, Ramkrishna. M.A.. ***b.*** 02.05.1912. Rtd. Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 1517, Chand Norangrai, Bazar Sitaram, Delhi – 110006. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Gupta, Rukmani. Vidyavachaspati, Ph.D., B.Ed. ***b.*** 21.03.1950. Clerk, UCO Bank. ***Ps.*** 01. ***Add.*** F-14/15, Model Town, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Gupta, Saroj. M.A. (Skt. Hindi). ***b.*** 03.02.1945. Rtd. Principal, KV. ***Bks.*** 02. Nanhephūla, (Poetry Collection) Bholī Muskāna (Poetry Collection). ***Add.*** 817/5, Sheet No. 04, Patel Nagar, Gurgaon – 122001 Haryana. Ph. 0124-3249792. M. 08010859488.

Gupta, Shashi. ***b.*** 08.11.1946. Lect. Shri Bhairava Ratna C.S. School. Bikaner (RJ). ***Bks.*** 01. Mūlyānyamūlyāni.

Gupta, Sudha. M.A. Ph.D. ***b.*** 22.03.1959. Kanpur. Lect. Juhari Devi Girls P.G. College Kanpur – 208004. ***Bks.*** 01. Svapnavāsavadattam (ed.) ***Ps.*** 01. ***Add.*** 133/N/108. Kidwai Nagar. Kanpur – 208011.– Ph.No. – 617984. ***Ph.*** 368010.

Gupta, Sudheer kumar. M.A., Ph.D. ***b.*** 1917. Gurgaon. (HR). Lect. Univ. of RJ. Khurja Gorakhpur Univ. ***Sp.*** Dr. Satyadev Mishra. Dr. Badriprasad Pancholi. Dr. Narayan Shastri Kankar. Dr. Ved Kumari. ***Bks.*** 05. Saṃskṛta Sāhityasya Subodha Itihāsaḥ, Ṛgveda Paricaya, Bhārtīyadarśanasya Sampradāyaḥ, Daṇḍībāṇayorekamadhyayanam, Vedalāvaṇyam. ***Ps.*** 100. ***Spl.Ref.*** Vishishtavidwan awarded by RJ Sanskrit Academy.

Gupta, Sunita. M.A., M.Phil., Ph.D., Post Doctoral Research. ***b.*** 13.10.1953. Asstt. Prof. Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi. ***Bks.*** 01. Śakti with reference Kashmir Shaivism. ***Ps.*** 04. ***Add.*** A2 137E Mayur Vihar Phase III Delhi - 110096. ***Spl.Ref.*** Kashmir Shaivism, UGC Fellowship, Research Associateship for 7year for Post Doctoral Work by UGC, AIR

Talk, Wise President ISAC, New Delhi & Lok Seva Shiksha Samiti, New Delhi, Secretary Manav Kalyan Seva Samiti, New Delhi.

Gupta, Sushma. M.A. M.Phil. Ph.D. *b.* 13.06.1962. Ram Nagar (Jammu). Lect. Jammu University. *Ps.* 25. *Add.* Lecturer Sanskrit Deptt. Jammu University. Ambedkar Road. Jammu – 180006. *Ph.* (0191) 458945. 552783.

Gupta, Swaraj. M.A. (Hindi & Sanskrit). B.Ed. M.Ed. *b.* 29.09.1946. Delhi. Lect. *Ps.* 01. *Add.* 116. Siddhartha Enclave. New Delhi. *Ph.* 6838030.

Gupta, Tripti. M.A., Ph.D.. *b.* 13.01.1947. Asst. Prof. *Ps.* 01. *Add.* Gargi College, Delhi University, Shiri Fort Road, New Delhi – 110049. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gupta, Urmibhushan. M.A., Ph.D. *b.* 13.12.1938, Agra, (U.P.). Asst. Prof. Miranda House College. *Ps.* 02. *Add.* M-97, Greater Kailash – II, New Delhi – 110047. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Gupta, Vijay Kumari. M.A. (Skt. & Hindi) M.Phil. *b.* 14.11.1957. Delhi. Lect. *Ps.* 03. *Add.* 24/1. New Vijay Nagar. Jalandhar City. Punjab. *Pin.* – 144001. *Ph.* (0181) 254547.

Gupta, Vinod Kumar. M.A., NET, D.Phil. *b.* 03.07.1972. Asct. Prof. Govt. PG College Tihari Gadhwal. *Bks.* 01 Saṃskṛta Chandovidhānam. *Ps.* 16. *Add.* B8/3, Type 4 Adhikarai Awaas, Nag Tigri Gadwal 249001, Uttarakhand Ph. 01376234964, M. 09412394602.

Guragai, Jagannath. Śuklayajurveda-Acharya, M.A. *b.* 05.09.1961, Nepal. H.O.D. of Veda. *Gp.* Yugalakishor Mishra, Dr. Manilala Sharma Upadhyaya. *Add.* Banasthali Vidyapeetha, RJ K-23/18, Mangal Gaura, Varanasi (U.P). *Spl.Ref.* Veda & DharmaŚāstra.

Gurjar, Brijendra Singh. Acharya, M.A., NET, Vidyavaridhi. *b.* 01.08.1972. Pravakta & Pracharya. Sri Maa Mahavidyalaya. *Bks.* 01. Hitopadeśa Nītiśatakam. *Add* FCT Godam, Lect. Colony, Sainik Nagaram Gangapur, Sawaimadhopur, RJ.

Guru Prasad, A. Alaṅkāra Vidvān. *b.* 24.08.1953. Acharya (Teacher). *Add.* Purna Prajna Vidyapeetha. Purnaprajna Nagar. Bangalore– 560028 (KT). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra. Sanskrit Computer Operation.

Gurugundi, Vasudevacharya. Vidvān, śiromaṇi. *b.* 1926, Gurugundi, Udupi, KT. *Add.* 7/92, Sitaram Nilayam, Belekare, Udupi- 576101. *Spl.Ref.* Dvaita Vedānta.

Gurukkal Subburatna, N. Śaivāgama. *b.* Age. 54 yrs., Perur, Coimbatoure, T.N. *Add.* 28, Chinnakoyil Street, Perur, Coimbatore, T.N. *Spl.Ref.* Saivasim.

Gurukkal, Nagaraj N. Śaivāgama. *b.* Age 41 yrs. Perur, Coimbatore. Archaka, Veda Teacher. *Add.* 2/3, Nataraj Nilayam, Chinnakizha Street, Perur, Coimbatore (T.N). *Spl.Ref.* Veda & Śaiva Darśana.

Gurukkala, Gomatishvar. Āgama Pravīṇa. *Age.* 38 in 1989, Perur, T.N. *Gp.* Svaminath Shivacharya. Archaka (Priest). *Add.* 2/3, Natarajnilaya, Chinna Court Street, Perur, Coimbatore (T.N). *Spl.Ref.* Āgama.

Gururajacharya, Raja S. Vedānta Śiromaṇi, Vedānta Vidwan. Tradition in Mādhva Siddhānta, Sāhitya etc. *b.* 17.09.1921. KT. Honorary Principal Shri Guru Sarvabhouma Sanskrit Pathshala and Secretary Sri Sameer Samaya Samvardhini Sabha. *Bks.* 08. Bhedavidyāvilāsa, Upasaṅghāravijayaḥ, Aitareyamantrārthaḥ, Vāgvaikharī. *Spl.Ref.* He writes poems under the name Kamlesh. Title of Vidya Vaibhav, Sāhityalankar, DharamŚāstra Bhushan, Vidvat Chudamani, President Awardee, Skt. & Kannad Poet.

Gururani, Durga Datt. Acharya in Sāhitya. *b.* 06.05.1948, Kanda, Almora, U.P. Teacher. *Gp.* Mathuradatta Panta. *Ps.* 02. *Add.* Shri Mahadevagiri Sanskrit Mahavidyalaya, Haldwani, Nainital (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Guruvenkatacharya, G. Vidvan. M.A. Asst. Prof. *Ps.* 01. *Add.* Purna Prajna Vidyapeetha, Purnaprajna Nagar, Bangalore (KT). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Gyanender, Kumar. Vidyavaridhi. *b.* 29.08.1982. Banda U.P. Asstt. Prof. Uttarakhand Skt. Univ. ***Bks.*** 01. Education Psychology. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Uttarakhand Skt. Univ. Haridwar 249407. Ph. 01334-213480. Gyanender_k78@gmail.com

Gyansagar, Acharya. *b.* 1899. Vill Ranauli. Distt. Sikar. (Rj.). ***Bks.*** 04. Jayodayam. Vīrodayam. Sudarśanodayam. Samudradūtacaritam. ***Expired in*** 1973. ***Spl.Ref.*** His old name was 'Bhooramal Shastri'.

H

Hadimaru, Basavarajayya Raju. M.A. *b.* 20.09.1933, Hadimaru, KT. Asst.Prof., Deptt. of Sanskrit, S.J.R.C. College, Anand Road, Bangalore. ***Gp.*** H.L. Hariyappa, Chandra Shekhar Bhatt, N.Shivram Shastri, Laxminarasinghayya. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 139, Divyadip, 10th Floor, Main Block, Jayanagar, Bangalore, KT.

Hajarika, Bhavendranatha. M.A., (Veda), Sāhitya Shastri. *b.* 01.03.1932, Tichak, Jorhat, Assam. ***Spl.Ref.*** Veda.

Hampiholi, Vishwanath K. M.A., Ph.D. *b.* 01.06.1955, Belgaum. Asst. Prof. ***Bks.*** 08. Influence of Kāmaśāstra on Classical Sanskrit Literature. ***Add:*** "Ashirvad" Post Hegde, Kumta, Karnatak. ***Pin.*** – 581330. ***Ph.*** (08386) 23048.

Handa, Janak. M.A., B.Ed. *b.* 04.06.1945. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School, Aram Bagh Lane, New Delhi.

Handa, Nirmala. Sāhityācārya *b.* 04.09.1942. Teacher, Rajakiya Uccattar Madhyamika Girl's Vidyalaya, Netaji Nagar, New Delhi ***Add:*** G-69. Sarojini Nagar, New Delhi – 110023. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Handa, Vijay. M.A. *b.* 08.08.1944. Teacher, St. Columbus School, Gole Market, New Delhi. ***Add.*** E-14/4/C, Vasant Vihar, New Delhi-110051. ***Spl.ref.*** Sāhitya Śāstra.

Handique, Krishna Kanta. He was educated at Cotton College, Guwahati, Sanskrit College, Calcutta, Calcutta University, Oxford University, Paris University and Berlin University. *b.* 20.07.1898, Jorhat Town. ***Expired on*** 07.06.1982. ***Spl.Ref.*** He know 13 Languages, 8 European Languages and 5 Indian Languages including Pālī and Prākṛta.

Hansa, Ben Praveen Chandra. Ph.D. *b.* 18.12.1930. Prof. Ahemdabad Arts College Vasna Ahemdabad. ***Add.*** Lad Society Nehru Park, Near Vastrapur Fuvvara, Ahemdabad. ***Spl. Ref.*** Engeenier.

Hansa, Kausalya. M.A. *b.* 04.07.1949, Yoga & Sanskrit Teacher, Govt. Senior Secondary School, Chand Nagar, New Delhi. ***Add:***56-A, DDA (MIG) Flats, Rajauri Garden, New Delhi.

Hanta, Ramkrishnabhatta V. Vidvan (Vyākaraṇa, Hindi). *b.* 18.01.1924, Sringeri, Chikamagalur, KT. Asst. Prof., Sadvidya Sanjivini Sanskrit College, Sringeri. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Bharati Nagar, Manas Village, Shringeri, Chikamagalur (KT). ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa.

Hari, Ravva Sri. M.A. (Skt. Telugu), PG Dipl. in Applied Linguistics, Ph.D (Telugu) *b.* 05.05.1943. Nalgonda, Former V.C. Dravidin Univ. Kuppam. ***Bks.*** 03. Tikkaṇa Bhāratī ***Ps.*** 55. ***Add.*** H.No. 16-2-836 F/2 Madhav Nagar Colony Saidabad, Hyderabad - 500059. Ph. 040-24162929. ***Spl. Ref.*** Classical Telugu Literature, Skt. Grammer and Literature, Comparitive Literature, Best Skt. Scholar Award 1993, Vishist Vayakti Puraskar Vijayawada, Shivanand Eminent Citizen Award 2004, Literary Award Hyderabad, Dialects Preparation of Lexicons, Conducted Skt. Lessons through AIR for more than 10 Years etc.

Haridev. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. *b.* 07.07.1947. Principal. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Gautam Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Harish, Bhai Raman Lal. Acharya in Sāhitya, B.Ed. *b.* 13.08.1939, Balalji Road, Surat, Gujrat.

Asst.Prof., Bitha Choukasi Suryapur Sanskrit College. *Gp.* Narbada Shankar, Mansukhram Shastri. *Ps.* 01. *Add.* 9/1197, Balaji Road, Near Girls School, Surat Gujrat. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Harit, Harishchandra. M.A. *b.* 29.06.1977, Churu. *Add:* Harit Bhawan, Ward No. – 04, Churu (Raj.). *Ph.* (01562) 55507.

Harkaniya, Vajeer Bhai D. Ph.D. *b.* 02.06.1957. Prof. Shri Vanraj Arts & Commerce College Lal Dungri Dharampur Valsad. *Add.* Vill Post Ojharpada, Tehsil Dharampur Distt. Valsad. *Spl.ref.* Vedānta Śāstra.

Harsh Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 04.12.1936, Delhi. Asct. Prof. *Bks.* 01. Kirī-abhāṣya on Viṣṇu-sahasranāmastotra with Padyapuṣpāñjali. *Ps.* 01. *Add.* Flat No. 1C, Utqarsh, 2 Raj Narain Road, Civil Lines, Delhi – 110054. *Ph.* 2940195.

Harshvardhan, V. S. Acharya in Sāhitya, M.A. Editor, All India Radio, Kozhikode. *Add.* Uadaya Niwas, Karparamba, Kozhikode Kerala. *Spl.ref.* Sāhitya Śāstra, Darśana Śāstra.

Hasoorkar, Srinath. M.A., Ph.D. *b.* 26.02.1924. Lecturer & Principal, Govt. College M.P. *Bks.* 05. Ajātaśatru, Pratijñāpūrti, Sindhu Kanyā and Chenammā (novels). *Spl.Ref.* An eminent Skt. Scholar, Writer, U.P. Skt. Academy award for Pratijñāpūrti, Sahitya Academy Award on Sindhu Kanyā, M.P. Skt. Academy Award.

Hasurkar, Sripad Shastri. *b.* 10-06-1882 Hasur, Kolhapur. Rtd Principal Holkar Skt. College & Regious Teacher of Maharaj Yashwant Rao, Indore. *Bks.* 15. Saṃskṛta Bharata Nartanamālā Rāṇāpratāpa Vallabhācārya, Śivājī, Samartha Rāmadāsa, Pṛthvīrāja, Guru Nānaka, Mahāvira, Buddha, The great women of Rajasthan and Maharashtra. *Spl. Ref.* Mokṣamandirasya Dvādaśadarśanasopānāvaliḥ is Sri Hasur-kar's treatise on Indian Philosophy. He has written copiously on Philosoophy in Hindi also.

Hayagrivacharya, Kapu. Acharya in Nyāya, Vedānta & Dharmaśāstra. *b.* 01.07.1926, Kapu, Udupi, KT. Rtd. Teacher. *Gp.* S. Haya-grivacharya, V. Anantakrishnachrya. *Add.* H.No. 16-116, Batvariya Lane, Udupi, KT – 576101. *Spl. Ref.* Nyāya, Vedānta, Dharma-śāstra.

Hebbar, Ganpati Shastri. Studied Ṛgveda, Nyāya, Vedānta, Rājnītiśāstra. *b.* 1901, Mangloor (KT). *Gp.* M.M. Laxman Shastri, Pt. Bheekam Bhatt Patvardhan, Pt. Rajeshwar Shastri. *Bks.* 02. Gaṇeśamīmāṃsā, Bhāratīya Lipi aura Maulika Ek Rūpa. ***Expired in*** 1986. *Spl. Ref.* Veda, Honoured by 'Vidyabhushan' and 'Sarvtantra'.

Hebbar, Shankar M. M.A., B.Ed., NET. *b.* 13.12.1983, KT. Asst. Prof., Rajiv Gandhi Campus, Shringeri. *Ps.* 01. *Add:* Shankar M. Hebbar. (PO) Iduvani, Sagar, Shivamogga, KT. *Spl. Ref.* Acharya Gold Medalist.

Hemlata. M.A., Ph.D. *b.* 15.02.1943, Bhagalpur. Prof. & Head, Bhagalpur Univ. *Bks.* 02. Ṛgveda ke Agni Sūkton kī upamāon kā adhyayana, Śiva Svarodaya. *Ps.* 02. *Add:* Bramhalaya, Shivaji Path, Chhoti Khanjerpur, Bhagalpur. *Pin.* 812001. *Ph.* (0641) 425100.

Hemnath, V. Vyākaraṇa Śiromaṇi, M.A. *b.* 25.10.1940, Tiruvaiyar, Thanjavur, T.N. Asst. Prof. *Gp.* Tirumalachari, Swaminath Shastri. *Ps.* 01. *Add.* Oriental School, K.T. Road, Tirupati A.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Hempasandra, Venkatnarayan. Alaṃkāra-śāstravidvān, Vyākaraṇavidvān, M.A. *b.* Sonenhalli, Kolar, KT. Research Asst. *Gp.* G.Vishnumurti Bhatt, S. Ramaswami Ayyan-gara, T. Sitaram Shastri, S.M.S. Varadacharya. *Bks.* 07. *Add.* Oriental Research Institute, Mysore KT. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa Śāstra, Alaṅkāra Śāstra.

Hemraj. M.A. *b.* 15.11.1940. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Hari Nagar, New Delhi. *Add.* A-69, Om Vihar, Uttam Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Hemrashmi. M.A. *b.* 13.06.1940. Research, Central Hindi Directrorate, R.K. Puram, New Delhi. *Add.* H-8, Bhaum Nagari, Safdarjung Extn., New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Hindamayum, Gaurikrishn. *b.* 1831., Laikei,

Imphal. *Gp.* Govindaji, Hindamayum Lalamohana Sharma. *Add.* Uraipok, Laikei, Imphal (Manipur). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa.

Hindkesri. M.A. Ph.D. *b.*15.08.1947, Kesari, Mainpuri, U.P. Principal, R.Sk.S. Jaipur Campus. *Gp.* Govindram Shastri, Pt. Ramprasad Tripathi. *Bks.* 05. *Ps.* 20. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra. *Expired in* 2009.

Hindocha, Hansa Ben N. Ph.D. *b.* 27.01.1945. Prof. Sanskrit Bhawan, Sourashtra Univ. Rajkot. *Ps.* 02. *Add.* 202/B- Panchnath Tower, Near Saint Marry School, Kalawad Road, Rajkot. *Spl.Ref.* Alaṃkāra Śāstra.

Hindocha, Hansnarayan. M.A., Ph.D., Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Saurashtra University, Rajkot (Gujrat). *Spl.Ref.* Alaṃkāra Śāstra.

Hitaisi, Kishorilal. M.A., B.Ed. *b.* 01.07.1940. Teacher (TGT), Govt. Boys Senior Secondary School, C-Block, Janakpuri, N. Delhi. C-5, D/69 C, Janakpuri, N. Delhi – 110058.

Holla, Naveen. Ph.D. *b.* 08.12.1973, Mangalore. Asst. Prof., Rajiv Gandhi Campus, Shringeri. *Bks.* 01. Vivecanī. *Add.* Ganesh Kripa, Behind Kulala Bhavan, Suratkal, Distt. South Kanara, 575014.

Hosmane, Narayan M.A., Ph.D. *b.* 10.10.1966. Gokaran, Karnataka. Asstt. Prof. Deptt of Veda JRR Skt. Univ *Gp.* Acharya Sridhar Adiji. *Ps.* 12. *Add.* Quarter no. 16 JRR Skt. Univ. Campus-302026, Jaipur. Ph. 01415132026. M. 09928157795. *Spl. Ref.* Atharvaveda Sāyaṇa Bhāṣya, śaunakīya śākhā, Veda Pandit Puraskar, Ved Ratna Puraskar.

Hosmane, Ramchandra Shastri. Ṛgveda, Nyāya, Dharmśāstra, Jyotiṣa, Sāṅkhya, Yoga. *b.* 1920, Gokarn (Karnatak), Teacher, Sangved School. *Gp.* Pt. Ganesh Shastri, Pt. Rajeshwar Shastri, Pt. Hariram Shastri Shukla. *Expired in* 1986. *Spl. Ref.* Awarded by President Certificate of Honour of Govt. of India.

I

Iftekhar, Zafar. M.A., Ph.D. *b.* 04.07.1971, Azamgarh (U.P.). *Ps.* 03. *Add.* 36/A. D.C. Mostle. S.Z. Hall. A.M.U. Aligarh. U.P. – 202002. *Ph.* (0571) 708115.

Ilayat, Krishnan C. P. Acharya, Vidvan. *b.* 31.05.1897, Kallur, Kerala. *Gp.* Patamana Vasudevan IIayat, K. Vasudevan Musat, Shrinivasaraghava-charya, Anujan Rajah, Nilkanth Sharma. *Bks.* Vasantasenā, Suhṛt. *Add.* 31/A 5, Moti Lal Street, T. Nagar, Madras–600017 (TN). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Iliyat, P. C. Tasudevan. Kerala. *Bks.* 03. Bhaktitaraṅginī, Guruvāyurapureśasuprabhātam, Navanītakṛṣṇastavaḥ.

Inaganti, Uma Ramaravu. Nyāya, Vidyapravina. *b.* 21.05.1954, Tyajampudi, Distt. West Godavari, A.P., Asst. Prof., (Nyaya). *Gp.* Ramachandrula Koteshvar Sharma. *Add.* Shri Malayala Swami Sanskrit Kalashala, Proddutur– 516360 (A.P.)

Indira, P. M.A., Ph.D. *b.* 30.05.1952, Palakkad, Kerala. Asst. Prof., Guruvayura Kendriya Sanskrit Vidyapitha. *Ps.* 01. *Add.* C/o Supertronics Mini Industrial Estate, Vaniyamkulam, Ottapalam, Palakkad (Kerala). *Spl.Ref.* Scholar of Sāhitya.

Indu, Bala. M.A. Principal, Govt. Girls Senior Secondary School No. 2, Gandhi Nagar, Delhi. *Ps.* 02. *Add.* Gandhi Nagar, Delhi. *Spl.Ref.* Scholar of Sāhitya.

Indu, R. Rava. M.A., L.L.B., Ph.D. Asst. Prof., Sanskrit Dept., Lady Shri Ram College For Women, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* Lady Shri Ram College For Women, Lajpat Nagar, New Delhi – 110024. *Spl.Ref.* Darśanaśāstra.

Ingale, Vamana. Vyākaraṇācārya. *b.* 07.08.1949, Jiksal. Asst. Prof., Shri Akhanda Vedant Sanskrit Mahavidyalaya. Rishikesh (U.P.) *Gp.* Pt. Purushottam Tripathi. *Ps.*01. *Add.* Shri Akhanda Vedant Sanskrit Mahavidyalay, Koyal

Ghati, Rishikesh (U.P.) *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Irimal, F. M.A., Ph.D., (Paris University). ***b.*** 27.03.1945, Caen, France. ***Gp.*** L. Renot, A. Minari, C. Kailat. ***Bks.*** 03. Bhavabhūteḥ Mahāvīracaritam, Bhavabhūteḥ Samayam (A Concordence of Bhavabhuti), Tārkika rakṣā (Ed.) ***Add.*** D. Extreme orient, 22, Dumas Street, Pondicherry – 605001.

Ishwar Prasad, A. B.Sc., B.Ed., M.A., Ph.D. ***b.*** 15.07.1974. Mangalore, Lect. Swami Vivekanand Yoga Anusandhan Sansthan Bangalore. ***Bks.*** 01. Scientific Significance of Sacret Plans ***Ps.*** 20. ***Add.*** Swami Vivekanand Yoga Anusandhan Sansthan Bangalore Ek Nath Bhawan No. 19, KG Nagar, Bangalore - 560019. M. 09481026774, 09900766285. Email : ishwaraprasad84@gmail.com

Iyengar, N. T. Srinivasa. Vyākaraṇa Vidvān, Alaṇkāra Shastra, Vidvat Uttama Tarkshastra Vidvat Madhyama. ***b.*** 20.08.1920. Hassan KT. ***Bks.*** 10. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Karnataka and Kerala Rajya Puraskar title of Abhinav Valmiki, Ramayana Kesari, President Awardee.

Iyengar, Rangachar Narayana. B.E., M.Sc (Engg.)., Ph.D.. ***b.*** 02.06.1943, Tumkurm KT. Asst. Prof., Jain University, Bangalore. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Centre for Disaster Mitigation & Centre for Ancient History & Culture, Bangalore – 562112. ***Ph.*** 080 – 28711119, 27577203(O), 9880030082.

Iyer, K.A.S. M.A. ***b.*** 07-09-1896. Palghat, Kerala. Former Founder HOD of the Skt. Lucknow Univ. ***Gp.*** Sri Narayan Shastri, Prof. Sylvain Levi, Dr. Brnett, Mrs. Rhys David. ***Sp.*** Prof. K.C. Pandey, Prof. Satyavrat Singh. ***Bks.*** 12 Kālidāsaviracitam Mālavikāgnimitram, Malayālamamahābhāratam, Maṇḍana-miśrasya Sphotasiddhiḥ, Bhartṛhari-praṇītam Vākya-padīyam (ed). ***Ps.*** 150. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Literature Linguistic, He has been associated with a number of Univ. and institution in various capacities he was the chief editor of the catalogous of manuscripts published by Akhil Bhartiye Samskrit Parishad Lucknow, France, Holland, Balzegum, Germany, Switzerland, Austria, Italy, Vishist Vidwan Puraskar UP Skt. Sansthan 1976, President Awardee 1947.

J

Jaddipal, Viroopaksha. M.A. (Skt., English, Hstory). Vidyavaridhi. ***b*** 21-07-1970, Yellapur, Asct. Prof. Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupati. ***Bks*** 4 Teaching of Sanskrit, Śabdaśaktiḥ. ***Ps.*** 12, ***Add.*** Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth Tirupati - 517064, M. 0944000-2813 email vvjaddipal@gmail.com ***Spl.Ref.*** Grantha, Nandi Nagari, Sarada Scripts & AlaṅkāraŚāstra.

Jadhav, Chandrakant Khushal Bhai. Ph.D. ***b.***15.04.1970. Prof. Shri R.K. Arts K.P. Commerce & Smt. B.C.J. Science College khambhat Distt. Aanand. ***Add.*** B-41 Maheshwari Society Metpur Road, Khambhat. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Jagadguru, Ramanandacharya Swami Rambhadracharya. Acharya, M.A. D.Litt. ***b.*** 14.01.1950. Vill. Shandi Khurd, Dist. Jaunpur, U.P. Chancellor, Jagadguru Rambhadracharya Handicapped University, Chitrakoot, U.P. – 210204. ***Gp.*** Shri Padini Samarambham, Shri Harinarayanam-adhyanam, Shri Ramprasada-paryantam. ***Bks.*** 80. Gīta-Rāmāyaṇam, Aṣ-āvakra, Bhārgava Rāghavīyam, Bhṛṅga-dūtam, Arundhatī Mahākāvya. ***Ps.*** 50. ***Add.*** Shri Tulsipeeth Amodvan, Chitrakoot, Satna (M.P.). ***Ph.*** (05198) 224413, 224293, 9415143099, 9450916650. ***Spl.Ref.*** President Certificate of Honour (2004), Sāhitya Akademi (2005), Śrīvāṇī Alaṅkāra (2006). Mahamaho-padhyaya, Gujarati, Oriya, Maithili, Bhojpuri etc. Bhaurao Devrass Paritoshik, Dharam Chakravarti.

Jagannathan, K. Śiromaṇi in Nyāya, Vedānta. *b.* 22.02.1952, Tandiya Kadu, Tanjavur, T.N. *Gp.* V.D. Sampatkumar Varadacharya, V.T. Lakshminarasimhacharya. *Add.* Shri Vidyamandir, Salem – 636003 (T.N). *Spl.Ref.* Nyāya, Vedānta.

Jagannathan, V. b. 21.01.1913, Thiruppalam, T.N. Archaka & Vaidik Teacher, Kadal Dvaita Perumal Devasthanam, Ramanathapuram.(T.N.) *Gp.* Venkatacharya. *Add.* 1/25, Perumal Kovil Street, Ramanathapuram (T.N). *Spl.Ref.* Kramnta Kṛṣṇa Yajurveda.

Jagatiya, Ketki H. Ph.D. *b.*08.07.1963. Prof. Shri Shardapeeth College, Dwarka. *Ps.* 02. *Add.* Kabir Aashram, Near Rameshwar Mandir Dwarka. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Jagdish Chandra. M.A., Sastri, M.O.L. *b.* 19.07.1916, Pathiyar, Khandwa, M.P. Rtd. Professor. *Ps.* 03. *Add.* Pathiyar, Khandwa (M.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jagdish. Acharya, B.Ed, M.A. *b.* 22.07.1977 Latur, Maharashtra. Research Scholar Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow *Gp.* Dr. Vijaypal, Dr. Shivkumar Chturvedi *Sp.* Pranveer Patil *Ps* .01.*Add.*4-A, Vishal Khand, 4 Gomti Nagar, Lucknow-226010.

Jagdish. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya. Principal. *Ps.* 03. *Add.* Dayanand Skt. Vidyalaya, Dayanand Math, Dina Nagar, Gurudaspur (Punjab). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Jaibhagwan. Shastri. Siksha - Shastri, M.A. (Skt.,Hindi)STET *b* 01.04.1979. Jind (Haryana). Lecturer, Sh.Jairam Vidyapeeth. Kurukshtra. *Gp.* Dr. Rishi Ram Sharma *Sp.* Naresh Sharma(S.R.F.)*Ps.* 01 *Add.* V.P.O. Pandu-Pindara, Jind - 126102 Haryana. *Ph.* 01744-290431 M. 09802330066.

Jain, Abhay. Acharya in Sāhitya, M.Ed. Principal. Govt. H.S. M.P. *Bks.* Jināṣṭakāvali Stotra (ed.), Vīrodaya Mahākāvya Aura Bhagavān Mahāvīra ke Jīvana Caritra kā samikṣātmaka Addyayana.

Jain, Amar. M.A. B.Ed. Ph.D.. *b.* 18.08.1945. Teacher. *Add.* D.A.-14. F, Hari Nagar, Ghantaghar Marg, Delhi – 110064.

Jain, Anand Kumar. Acharya, M.Phil., Ph.D. *b.* 25.08.1982. JRF. RSKS New Delhi. *Bks.* 01. *Ps.* 11. *Add.* RSKS 56-57 Institutional Area, Janakpuri New Delhi 110058. M. 0828734-2008. anandjain82@rediffmail.com

Jain, Anekant Kumar. M.A., Acharya in JainaDarśana, Bauddha Darśana. *b.* 16.08. 1978, Dalpatpur, Dist. Sagar, M.P. Asst. Prof., S.L.B.S.R.S.Vidyapeeth, N.Delhi. *Gp* – Prof. Dayanand Bhargava. *Bks.* 06. Saṃvega Cūḍāmaṇīḥ, Ṣaḍdarśaneṣu Pramāṇa Prameya Samuccayaḥ, Satprarūpaṇasāraḥ, Pravacanasāraḥ, Āvaśyaka Niryuktiḥ. *Ps.* 190. *Add.* A - 93/7 A, Near Jain Mandir, Behind Nanda Hospital, Chattarpur Extention, New Delhi–110074. *Ph.* 9868034740, 9711397716. *Spl.Ref.* Prakrat, Jainagam and Tulnatmak Dharma Darśana.

Jain, Anil Kumar. M.A., Ph.D. *Bks.* 02. Cintāmaṇī Traya Samīkṣā, Bapū ke Adarśoṃ ko bāpū stavana.

Jain, Anita. M.A., Acharya, M.Phil, Ph.D. *b* 07.10.1969, *Bks* 1- Vaidika Saṃhitāo me Mṛtyūparānta Jīvātmā kā svarūpa. *Ps* 14. *Add.* 304 Gautam Buddh Niwas, Vanasthali Vidyapeeth, Tonk - 304022 Raj, *Ph.* 01438228567, *M* 9414543680, *Email*-anitajain.sanskrit@gmail.com

Jain, Anoopchand. Nyāyatīrtha, Hindi Sāhitya Ratna. *b.* 1922. Bhanvsangram. Editor. Rasthanmaholekhar Office. Jaipur. *Bks.* 03. Bāhubalī (Khaṇḍakāvyam).

Jain, Ashok Kumar. Acharya (Jain Darśana) M.A., D.Phil. *b.* 01-03-1959, Lalit pur. Asct. Prof. Faculty of SVDV , BHU, Varanasi. *GP.* Prof. Jagnnatha Upadhayaya, Prof. Virendra Kumar Verma, *Sp.* Dr. Anekant Jain. *Bks* 16 Ācharyajñānasāgara Mahārāja kā Dārśanika Vivecana,Jainadarśana me Anekāntavāda: eka Pariśīlana, Jainadharmamīmāṃsā. *Ps* 165, *Add.* Jain Bauddha Darśana Department, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi-05, *Spl Ref.* Prākṛta Apabhraṃśa.

Jain, Ashok. M.A., Ph.D. *b.* 20.06.1962, Banda, Sagar M.P. *Bks.* 03. Sādhanā ke Sūtra, Naitika Śikṣāvati (2-5 Part), Jinendra Pūjañjali.

Jain, Barelal. *b.* Patha, Tikamgarh M.P. Shri Shantinath Jain Vidhyalaya, Aharji M.P. ***Bks.*** 02. Śrī Āhāra Tīrtha, Stavanam (Sto-ṛaKāvya). ***Spl.Ref.*** Rajvaida.

Jain, Bhagchandra 'Bhagendu.' M.A., Ph.D., Acharya, Kāvyatirtha, Gāndhi Darśana, Sāhityaratna. ***b.*** 02.04.1937, Rithi, Katni M.P. HOD P.G. College Damoh, Secetory M.P. Skt. Academy Bhopal, Director, Rashtriya Prakrit Adhyayan and Sansodhan Sansthan, Sharavanbelgola KT. Director Skt. Prakrit Tatha Jain Vidhya Anusandhan Kendra Damoh. ***Gp.*** Sāhityacharya, Daya Chandra Siddhant, Panna Lal, Prof. Ramji Upaddhyay etc. ***Sp.*** Dr. Savitri Jain, Dr. Narendra Singh Rajput, Dr. Daya Chandra. ***Bks. 04.*** Bhāratiya Saṃskṛiti meṃ Jaina Tirthaoṃ kā Yogadāna, Prācīnā-bhilekhāḥ, Bhārtiya Darśana ke mūlatatva. Jaina Sāhitya kā saṃskṛta vaṅmaya ko yogadāna. ***Add.*** 28, Saroj Sadan, Saraswati Colony, Damoh. M.P. ***Spl.Ref.*** Laxmi devi Jain Award, Ahinsa International Sāhitya Award, Jain Rashtra Gourav Alaṅkāraan Kolkata. Kundalpur Puruskar, Rishabhdev Puruskar.

Jain, Bhagchandra. Acharya (skt.lit.), (prakrit & Jainism), M.A. (Sanskrit, Pali, AIHCA), Ph.D. (Pali & Prakrit), D.Lit. (Hindi,Pali, Prakrit & Sanskrit) ***b.***11.09.1936, Chattarpur, MP. Rtd.Prof., Nagpur Univ.& Madras Univ. Joint-Director, National Institute of Prakrit & Research, Maysore Univ. ***Gp.*** Dr. Pannalal Jain, Pt. Kailash Chandra Siddhantshastri, Dr. Narayana Samatini ***Sp.*** Dr. Kastur Chandra jain, Dr. B. Moharil, Dr. Lokhande, Dr. Khandekar, Dr. Malati Bodele, Dr. Kala Trikule, Dr. Athvale etc. ***Bks.***75. Jaina Saṃskṛta Kośa, Catuśśatakam, Jainadharma aura Paryāvaraṇa ***Ps.***200. ***Add.*** New Ext. Area, Tukaram Chaz, Sadar, Nagpur – 440001. ***Ph.*** 0712-2541726 ***M.*** 09421363926. ***Email*** drbcjain@hotmail.com, ***Spl.Ref*** Philosophy, Hindi, Saṃkṛta, Pālī& Prākṛita. 24 Awards including Kendriya Bharat Sarkar Ahimsha International Award, President Award. Editor of research journals Sharamana, Ratnatraya etc. Literary contribution to the field of AIH, Culture & Archaeology. Philosophy, Hindi, Skt., Pali & Prakrit. America, Britain, Italy, Franc, Germany, Shri Lanka, Thailand etc. President Awardee.

Jain, Daya Chandra Siddhant Shastri. Acharya. ***b.*** 1956, Bandari, Sagar M.P. Principal, Shri Ganesh Varni Skt. College, Sagar M.P. ***Bks.*** 01. Ṣa-khaṇḍāgamarahasya. ***Spl.Ref.*** Syadvada Vachaspati.

Jain, Daya Chandra. M.A., Ph.D. ***b.*** 11.08.1915, Shahpur Magron, Sagar M.P. Principal. Shri Ganesh Digambar Jain Skt. College, Sagar M.P. ***Gp.*** Ganesh Prasad Varni, Pt. Dayachandra Siddhant Shastri, Pt. Hajari lal Nyaytirth, Pt. Mukul Shastri Khiste, Loknath Shastri, Kapileshwar Jha, Pt. Baburam Jha. ***Sp.*** Sunil Kumar, Acharya Vibhav Sagar, Prof. Bhagchandra Jain, Prof. Bhagchandra Bhaskar, Dr. Harindrabhushan Jain, Dr. Nanhe Bhai Shastri. ***Bks 05.*** Amara Bhārati (Part 1 – b), Śrī Caturviṃśati Sandhāna Mahākāvya, Bhagavāna Mahāvīra Muktaka Śtavana, Viśvatattva Prakāśakaḥ Sayādvāda, Varṇī ji kā Jīvana Paricaya. ***Expierd on.*** 12.02.2006.

Jain, Dharmchandra. M.A. ***b.*** 07.10.1940, Gambheeriya, Sagar, M.P. Prof. ***Gp.*** Dr. Pannalal Dyanand Jain, Manik Chandra Jain. ***Bks.*** 05. Dictionary of Buddhist Technical Terms. ***Ps.*** 80. ***Add.*** 1756 B/6, Jyoti Nagar, Near Neelam Theatre, Kurukshetra – 18. ***Spl. Ref.*** Jain Darśanaa, Boodh Darśana, Pali and Prakrit, President Awardee – 2009.

Jain, Dharmendra. M.A. (Skt., Prakrit, Jainsim & Comt. relegion) Acharya (JainDarśana, Sāhitya, Buddhism) Ph.d. ***b*** 24.08.1969 Development officer, Rashtriya Sanskrit Sansthan Jaipur. ***Bks.*** 01 Tiloyapaṇṇatti kā Sāṃskṛtika Mūlyāṅkana ***Ps.***15 ***Add.*** Rashtriya Sanskrit Sansthan, Jaipur Campus, Triveni Nagar, Jaipur - 302018 M. 09461016260 ***Spl. Ref*** Muni Punya Vijaya award 2010

Jain, Dolly. M.A., Ph.D. ***b.*** 29.08.1975. Jaipur (Rajasthan). ***Ps.*** 01. ***Add.*** 94/185. Tulsi Marg. Agarwal Farm. Mansarovar. Jaipur. Rajasthan. ***Ph.*** 396940.

Jain, Gokul Chndra. Acharya in Sāhitya, Jain Darśana, Ph.D. *b.* 05.11.1934, Pidrua, Sagar M.P. Asst. Prof. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. *Bks.* 05. Yaśastilaka kā sāṃskṛtika Adhyayana, Karmaprakṛti, Satyaśāsan Parīkṣā, Parisaṃvāda. *Spl.Ref.* Gommetesh Vidhyapeeth Prashasti Award, President Award – 2008.

Jain, Gulab Chandra. M.A., Jain Darśana-Acharya. *Gp.* Pt. Acharya Ganesh Prasad Varni. *Bks.* Viśva Locānakośa, Saṃskṛta Vyākaraṇa.

Jain, Harindra Bhushan. Jainasiddhānta-shastri, Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 25.01.1922, Sagar, M.P. Hon.Director, Anekant Shodh Vidhyapeeth, Bahubali, Ujjain. *Add.* 15, M.I.G. Nagar, Ujjain, M.P. *Spl.Ref.* Jaina Darśana Śāstra, Sāhitya Śāstra.

Jain, Jai Sagar. *b.* 09.11.1911. *Bks.* 04. Tāraṇa Śabdakośa, Paṇḍita Pūjā, Mālārohaṇa, Kamalabattīsī. *Spl.Ref.* Freedom Fighter, Vanibhushan, Vyakhyan Vachaspati, Samaj Ratna Upadhi.

Jain, Jinendra: M.A., Ph.D. *B.* 14.06.1962. Sinhudi, Katni, M.P. Asst. Prof. Jain Vishvabharti Univ. Ladnu, RJ. *Bks.* 13. Jaina Kāvyoṃ Kā dārśanika Mulyāṅkana, Pahuda Jaina Vidyā Evaṃ Bauddha Adhyayana Ke Āyāma, Prathamataḥ Akkhāṇayamaṇikosaṃ (Prakṛta), Siri-kummāputtacariyaṃ-Anuvāda, Prākṛta Sāhitya Evam Jaina Darśana Samīkṣā. *Ps.* 55.

Jain, Jugamandar Dash. M.A., (Skt.), M.Ed.. *b.* 04.04.1932. Teacher (PGT), Govt. Co-Education Senior Secondary School, Kitchnar Road, New Delhi. *Add.* C-215, Minto Road Complex, New Delhi – 110002.

Jain, Kalpana. M.A. (Skt./Prakrit). *b.* 22.08. 1968. Banaras. Asst. Prof. S.L.B.S. R.S.Vidyapeeth, N.Delhi. *Bks.* 01. Prākṛta Ārāmasobhākahā. *Ps.* 15. *Ph.* (011) 26642128, 09911511168.

Jain, Kamlesh Kumar. Ach. Ph.D. *b.* Kulau, Damoh M.P. Prof. B.H.U. Varanasi U.P. *Bks.* 02. Yogasāra, Jaina Nyāya (Part -2). *Spl.Ref.* Ach. Gold Medelist.

Jain, Kamlesh Kumar. M.A.(Skt.), Acharya(Jain Darśana,Prākṛita) Ph.d.*b*21.06.1960 Reader, deptt.of Jain Philosophy,Rashiriya Sanskrit Sansthan, Jaipur. *Bks.*02 Jaina uddharaṇa kośa vol. 1&2. *Ps*42. *Add.*deptt.of Jain Philosophy, Rashiriya Sanskrit Sansthan,Jaipur 302018 *Ph.01412501051 M. 09887605319*. *Spl.Ref.* Pt. Gopaldas Baraiya Memorial Award 2010.

Jain, Kastur Chandra 'Suman'. M.A., Ph.D. *b.* 12.04.1936, Bansa, Tarkheda Damoh, M.P. Research Asst. Jain Vidhya Sansthan Shrimahavirji, Raj. *Bks.* 05. Jaina Purāṇa Kośa, Ahāra Kṣetra ke Abilekha. Kundakunda Kośa, Bhārtīya Digambara Jaina Abilekha, Pranāṇa Parikṣā Bhāśā Vacanikā. *Spl.Ref.* Jain Purāṇa Koshakas Award, Shrut Samvardhan Award.

Jain, Komal Chandra. M.A., Ph.D. *b.* 20.08.1935, Bina, Sagar M.P. Asst.Prof., B.H.U. Varanasi U.P. *Bks.* 05. Pālī Praveśikā, Prakṛta Praveśikā, Pālī Sāhitya kā Itihāsa, Bauddha Avam Jaina Agamoṃ meṃ nārī jīvana.

Jain, Krishna. M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1959. Prof. Govt. M.L.B. Arts & Commerce Autonomaus College Gwalior M.P. *Bks.* 04. Abhaya kī sādhanā, Kṣnabhaṅgura Jivana, Daśadharma. *Spl.Ref.* Pratibhashali Mahila Vidwan Award Editor of Richa Magazine.

Jain, Lalchandra. Sāhityaratna. M.A. (Hindi), M.Ed. *b.* 10.04.1941. Teacher, Govt. Secondary Girls School. Azadpur, Delhi. *Add.* X-3711, Gali No. 7, Shanti Mohalla, Gandhi Nagar, Delhi, 110031.

Jain, Manorama. M.A., B.T.. *b.* 05.05.1928. Teacher, Govt. Girl's Higher Secondary School, New Delhi. *Add.* 410, Tagore Road Hostel, Tagore Road, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jain, Munni Pushpa. M.A., Acharya in JainDarśana, Ph.D. *b.* 22.06.1951, Damoh M.P. *Bks.* 05. Hindī Gadya ke Vikāsa meṃ Jain Manīsī pt.Sadāsukhadāśa kā yogadāna, Munīrāja Battīsi, Ratnayogasāra, Pañcendrīya-saṃvāda.

Jain, Munni. M.A., Acharya, Ph.D. *b.* 22.06.1957.

Damoh (M.P.). Director, Jain Foundation. *Gp*. Pt. Kailash Chandra Jain, Pt. Phoolchand Siddhant Shastri. *Bks*. 05. Hindī Gadya ke Vikāsa me Jaina Manīṣī Sadāsukhadāsa Jī Kā yogadāna, Mūlācāra, Pañcendriya Saṃvāda, Samyaktva Paccīsī, Ratnayoga Sāra. *Ps*. 15. *Add*. A 93/7 A. Chattarpur Ext. N. Delhi – 110074. *Ph*. (0542) 2315451. 09450179254.

Jain, Nanhebhai. M.A. *b*. 01.04.1950, Junagarh, M.P. Asst. Prof. Shri Alaṅkāra Digambar Jain Vidyalay, Mandi Bamaura, Sagar. *Gp*. Dayanand ji, Pannalal ji. *Add*. Varni Bhawan, Bhoraji, Laxmipura, Sagar (M.P). *Spl.Ref*. Sāhitya, Jain Darśana.

Jain, Nemichandra. Acharya. *b*. Baleh, Sagar, M.P.. Pricipal, Govt. H.S. School, Khuri, Sagar, M.P.. *Bks*. Kaṣāya Jaya Bhāvanā (Anūdita Kāvya).

Jain, Padmachandra. Shastri. *b*. 10.09.1947, Shahpur, Sagar, (M.P.). Principal. *Add*. Shri Shanti Niketan Jain Sanskrit Vidyalaya, Katni, Jabalpur (M.P.) *Spl.Ref*. Sāhitya, Jaina Darśana.

Jain, Pannalal. Shastri, Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b*. 05.03.1911, Pargua, Sagar M.P. Principal. Shri Ganesh Digambar Jain Skt. College, Sagar M.P. *Gp*. Ganesh Prasad Varni, Dayachandra Siddhant Shastri, Kailash Chandra, Hajari Lal Nyaytirtha, Koknath Shastri, Kapileshwar Jha. *Sp*. Prof. Bhagchandra Jain, Prof. Bhagchandra Bhaskar, Dr. Harindra Bhushan Jain. *Bks*. 05. Vinayāñjali (Kāvya Sañgraḥ), Muktāhārḥ, Samyakatva Cintāmaṇi, Sujñāna Chandrikā, Dharma Kusamo'dhyayanam. *Spl.Ref*. Award by the President of India.

Jain, Patrika. M.A., Ph.D *b* 24-06-1977, Etah (U.P.) SRF, RSKS Lucknow. *Gp* Prof. K.K. Mishra, Prof. A.K. Kalia. *Ps*. 09. *Add*. B1/23 Sec. G, Janaki Puram, Lucknow. *Ph*. 05222732703 *M*. 09621967355.

Jain, Phool Chand. M.A., Ph.D. *b*. 12.07.1948. Dalpatpur. Sagar. (M.P.) Asct. Prof. *Bks*. 05. Mūlācāra kā Samīkṣātmaka Adhyayana, Jain Dharma meṃ Bramana Saṃgha, Mūlācāra Bhāṣā Vacanikā, Śaurasenī Prākṛta Sāhitya kā Itihāsa. *Ps*. 50. *Add*. Head, Deptt of Jainology. S. Skt. Univ. Varanasi. *Ph*. (0542) 315451. *Spl.Ref*. Five Awards in Diffirent Books & Reasearch works.

Jain, Prakash Chandra. Acharya in Sāhitya, Acharya in Jaina Darśana, M.A., B.Ed. *b*. 08.01.1937, Jalalabad, Muzafarnagar, (U.P.) *Gp*. Bholanath Pandey, Amrit Bhadra Sanskrit Mahavidyalaya, Daryaganj, New Delhi – 110002. *Spl.Ref*. Sāhitya, Jaina Darśana, ShiksaŚāstra.

Jain, Praveen Chandra. M.A., Skt./Hindi. *b*. 1909. Jaipur. Lect. Maharaja Skt. College. Principal. Dungar College. Bikaner.

Jain, Prem Suman. Acharya in Sāhitya, M.A. (Pali, Prakrit , Jain Philosophy & AIH) Ph.D. *b* 01-08-1942, Jabalpur., Director National Inst. of Prakrit Studies & Research, Shravanabelagola. *Gp* Prof. N.H. Santani, Pandit Kailash Chandra Shastri. *Sp*. Dr. Jinendra Jain, Dr. K.K. Jain, Dr. Dharmendra Jain, Dr. Rajnish Shukla., *Bks* 52 Jainadharma kī Sānskṛtika Virāsata, Tīrthaṅkara Mahāvīra & his Religion of Compassion, Prākṛta aura Jainadharma Samīkṣā. *Ps*. 160, *Add* Director NIPSAR, Shri Dhabal Teertham, Sharvanabelagola - 573135, Karnataka. *Ph*. 02942490227 *M*. 09480302666 *Email* premsuman@yahoo.com *Spl.Ref*. President Award 2006, Mahakavi Gyansagar Award 2005, Mahakavi Svayambhu Award 2003, USA, Germany, London.

Jain, Prince Kumar. Acharaya. *b* 02-10-1983 Tikamgarh (M.P.) JRF RSKS Lucknow. *Add*. RSKS Lucknow Campus – 226010. *Ph*. 05222393748 *M* 07376812157 *Email* jainprince84@gmail.com

Jain, Pusparaj. M.A., Acharya in Sāhitya. *b*. 29.09.1949. Asst. Prof., Sanskrit Dept. P.G., D.A.V. College, New Delhi. *Add*. B-17, Prashant Vihar, New Delhi – 110042. *Spl.Ref*. Vyākaraṇa, Gandhi Adhyayana.

Jain, Raja Ram. M.A. (Hindi, Prākṛta, Pālī), Śāstracharya, Ph.D. *b*. 01.02.1929. Sagar, MP.

Honourary Director, Kundkund Bharati Prakrit Jain Research Institute. *Spl.Ref.* Prākṛta Apbharaṃśa and Jainology, Founder of Prakrit Parishad and Founder HOD, Deptt. of Prakrit in Maghad Univ., Editor of Prakrit Vidya and Sectional Editor of Encyclopedia of Jainism, He has serachout 32 Prakrit and Apbharansh Manuscripts in which 10 has published. President Awardee.

Jain, Raka. M.A., Ph.D. Acharya (Jain and Bodh Darśana). *b.* 15.01.1960. HOD, Asct. Prof., Chatrasal Govt. Mahavidyalaya, Panna. M.P. *Bks.* 01. Kāvyakamalāñjaliḥ. *Ps.* 15.

Jain, Rekha. M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1979, Damoh M.P. Asst.Prof. (G.L.) Govt. P.G. College Damoh M.P. *Gp.* Bhagchandra Jain, ShivaDarśana Tiwari.

Jain, Rishabh Nanda. M.A., Acharya. Ph.D. *b.* 02.03.1960, Senghapa, Chhatarpur, M.P. *Bks.* 04. Jaina Siddhānta Bhāvanā Granthāvalī, Avacūrijudo Darvasañgaraḥ, Ek Ātmakalyāṇa Prakāśa. Spl.Ref. Editor of Many Manuscripts of Prakrit & Skt.

Jain, Rukmani. M.A., B.Ed. *b.* 13.01.1955. Asst.Prof., Shri Samantabhadra Sanskrit Mahavidhyalaya, Deryaganj, New Delhi. *Add.* 4783/23, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi. 110002. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Jain, S.L. Acharya in Sāhitya, Prākṛta, Jainadarsana, M.A., Ph.D.. Asct. Prof. *Bks.* 03. Saṁskṛtapraveśikā, Prākṛtadīpikā, Tarka-saṅgrāha-īkā (ed.). *Add.* Deptt. of Skt., Banaras Hindu Univ., Varanasi (U.P). *Spl.Ref.* Darśana, Prākṛta.

Jain, Seema. Acharaya M.A., NET, Ph.D. b 03.05.1983, Jaipur. Asstt. Prof. Govt. Maharaja Acharaya Skt. College, Jaipur. *Ps.* 1 *Add.* 43 Muktanand Nagar, Gopalpura road, Tonk Road, Jaipur – 302018. *Ph.* 01412552860 *M.* 9799886990 drgauravpatni@gmail.com *Spl.Ref.* Visited - Thailand, Singapore, Malaysia.

Jain, Shashi Prabha. M.A. in Skt., History, M.Ed., Acharya in Sāhitya, Prākṛta, Ph.D. *b.*22.11.1946, Delhi. *Bks.*1. Relationship Between Skt. Achievement. *Add.* Flat No. 5, Shri Lal Bahadur Shastri Skt. Vidyapeeth, Katwaria Sarai, New Delhi-110016. *Ph.* 6561666, 6960872.

Jain, Sudeep. M.A. in Prākṛta & Skt., Ph.D. *b.* 05.07.1965. Lalitpur, UP. Asct. Prof. L.B.S. Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi. *Bks.* 06. *Ps.* 75. *Add.* B–32, Chhattarpur Extn. Behind Nanda Farm. New Delhi – 110030. *Spl.Ref.* Honourary Research Director of Prakrit Vidya Journal. Maharshi Badarayan Vyas Samman by President of India.

Jain, Uday Chandra. M.A., Ph.D. *b.* 02.04.1947. Chattarpur, MP. Rtd. Prof., Co-ordinator Buddhist Studies and Non-Violence Centre. *Bks.* 10. Kundakundaśabdakośa, Hemaprākṛta, Śaurasenīprākṛtavyākaraṇa. *Ps.* 150. *Add.* Peu Kunj, Arvind Nagar, Near Jain Sthanak, Udaypur – 01. RJ. *Spl.Ref.* Jaina Darśana, Vyākaraṇa, Buddhism, President Awardee.

Jain, Varsha. B.A., M.A.(Hindi & Skt.), Ph. D.(Con.). *b.* 04.03.1981. Sagar, M.P. Manuscripts Surveyor, Dept. of Skt., Dr. H.S. Gaur Uni. Sagar, M.P. *Gp.* Prof. R.V. Tripathi, Prof. Kusum Bhuriya, prof. A. Dash. *Ps.* 02. *ph.* 08269532754. *spl.Ref.* Manuscriptology & Editing, Conservation & Preservation.

Jain, Veer Sagar. Acharya, M.A., M.Phil., Ph.D.. *b.* 16.07.1962. Rajasthan. *Bks.* 10. *Add.* C-274/4. Arjun Nagar. Safdarjung Enclave. New Delhi – 110029.

Jain, Vijay Kumar. Acharya M.A., Ph.D. *b* 01-07-1956, Prof. RSKS Lucknow. *Gp.* Pandit Kailash Chandra Shastri, Dr. K.C. Jain, Pandit Jaganmohan Lal Shastri, *Bks.* 10-Pālisaddhātusaṅgaho, Prārambhika Bauddha-darśana, Saṃskṛtasūkti Samuccaya, Atta dīpo bhava. *Ps* 75 *Add.* 3/65 Vikash Khand Gomati Nager, Lucknow – 226010. *Ph.* 05222393748, *M* 9415789445 *Email.* Vijayjain.sampadak@gmail.com, *Spl.Ref.* Awarded from U.P. Sanskrit Santhan, Shrutsamvardhan Puraskar, Digamber jain shastri parisad Puraskar, Editor Shrutsamvardini, Shastri Parisad Bulletin.

Jain, Vijay Kumar. Acharya, Ph.D. ***b.*** 01.07. 1956. Asst. Prof. ***Add.*** Deptt. of Buddhism, Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, Aliganj, Lucknow U.P. ***Spl.Ref.*** Darśana Śāstra.

Jain, Vina. M.A., M.Ed. ***b.***19.11.1949. Teacher, Shri Mahaveer Vishvavidhyapith. ***Add.*** A-1/ 366, Paschim Vihar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Shiksha.

Jain, Yogesh Kumar. Acharya in Jaina Darśana, B.Ed., NET (JRF), Ph.D. ***b.*** 04.07.1978. Bara, Sagar, M.P. Asst. Prof. Jain Vishva Bharati, University Ladnun, Nagaur, RJ. ***Bks.*** 01. Jñānanidhi. Ps. 05. ***Add.*** Jain Vishva Bharati University Campus, SC-1, Ladnun, Nagaur, RJ. ***Ph.*** 09413142180.

Jaiprakash. M.A., B.Ed.. ***b.*** 02.07.1938. Bhasadhyapaka (Language Teacher). ***Add.*** H.No. 201/17, Adarsha Mohalla, Maujpur, New Delhi – 110053.

Jaiswal, Suneeta. M.A. Sangeet Prabhakar (Tabla, Kathak Dance) M.Phil., D.C.A., Ph.D ***b*** .08.02.1968 HOD & Asct. Proff. Govt. P.G Degree College, Chandauli, U.P.,***Bks*** 5 ***Ps*** 30 ***Add.*** HIG 1, ADA Colony, Allahabad -211003. ***Ph.*** 05413222653 ***M*** .09450179636,

Jaiswal, Sunita. M.A., D.Phil. ***b.*** 08.02.1968, Gorakhpur U.P. Asct.Prof. & HOD Govt. P.G. Degree College Chakia, Chandauli U.P. ***Bks.*** 05. Nītiśatakam, Kumāra-sambhavam, Iśāvāsyopaniṣad, Sāhitya ke Nā-yaśāstrīya Pāribhāṣika Śabda. ***Add.*** H.I.G. B-01, A.D.A. Colony New Jhunsi Allahabad U.P. 211003.

Jalaj, Jay Kumar. M.A., Ph.D. ***B.*** 02.10.1934. Lalitpur, U.P. Asst. Prof. Allahabad Univ. U.P. ***Bks.*** 28. Saṃskṛta Nā-yaśāstra– Eka Punarvicāra (śodha Aura Samīkṣā), Dhvani Aura Dhvanigrāmaśāstra (Bhāṣāśāstra), Saṃskṛta Aura Hindī Nā-aka–Racanā Evaṃ Raṅgakarma, Aitihāsika Bhāṣā Vijñāna, Bhagavāna Mahāvīra Kā Buniyādī cintana. ***Ps.*** 20. ***Spl.Ref.*** 'Kamta Prasad Guru'-1967, 'Akhil Bhartiy Vishvnath'-1967 & 'Bhoja' Awards by M.P. Govt., Sāhitya Sarsvat Samman by Hindi Sāhitya Sammelan, Pryag U.P. Many texts are translated from Sanskrit, Prakrit & Apabhransh to Hindi. One popular book named 'Bhagavāna Mahāvīra Kā Buniyādī cintana' translated in several Indian languages.

Jalali, Ramnika. M.A., Ph.D. ***b.*** 11.07.1955. Srinagar, Kashmir. ***Bks.*** 02. Indian Woman in The Smṛtis, Legal Status of Woman. ***Ps.*** 37. ***Add.*** C/o Univ. girls Hostel (New), Univ. of Jammu, Jammu Tawi. ***Ph.*** 452628.

Jamindar, P.C. M.A.. ***b.*** 01.06.1953, Atmakuru, Kurnool, A.P. Asst. Prof. ***Add.*** Junior College, Cuddapah – 516001 (A.P). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Janardanan, T.V.. M.A., M.Phil, Ph.D.. ***b.*** 28.05.1961, Nileshwaram, Kozhikode, Kerala. Asst. Prof. ***Gp.*** M.S. Menon, N.V.P. Unnithiri. ***Add.*** Vadakara, Nileshwaram, Kotuveli, Kozhikode Dist. (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jani, Arunodaya Natvar Lal. Ph.D. ***b.***20.11.1921. Prof. Prachya Vidhya Mandir M.S. University Varodara. ***Add.*** Panini 303 Sungrass Appartment 18-A, Pratapganj Varodara. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāhitya, Vedānta, Alaṅkāra, Tantra Śāstra.

Jani, Harshadev Mansukhlal "Madhav". M.A., B.Ed. ***b.*** 20.10.1954, Bhavnagar, Gujrat. Teacher. ***Bks.*** Lavārasa, Svapnam(Kāvya). ***Add.*** Kasturba Gandhi Higher Secondary School, Narayan Nagar Marg, Paldi, Ahemdabad, Gujrat. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Jani, Harshvadan Bhai Mansukh Lal. Ph.D. ***b.*** 20.10.1954. Prof. H.K. Arts College, Navrangpura, Ahemdabad. ***Add.*** A-12 Heeramoti tenaments, Near Siddhi Complex, Chandkheda, Distt. GandhiNagar. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Jani, Jayadev Arunoday. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. ***b.*** 05.02.1951, Baroda, Gujarat. ***Gp.*** Arunodaya Jani, Prof. Surendrachandra Kamtevala, Vidyabhaskara, Manishankara Upadhyaya. ***Bks.*** 01. Naiṣadhacarita Kāvyasya Caṇḍū Paṇḍita kṛta Ṭīkā (Ed.). ***Add.*** 29, Tulasi Society, Vaghodiya Road, Baroda (Gujarat). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jani, Mahesh Mulshankar. Ph.D. ***b.***07.08.1959. Prof. Shri D.V. Rawal Arts & Commerce College

Surendra Nagar. ***Add.*** 17 Aaradhna Park L. Society Medhani bag, Surendra Nagar, Gujrat.

Jani, Mridula Ben A. Ph.D. ***b.***23.10.1962. ***Add.*** 13, Neelam Complex Paldi Post Office Aanad Nagar Paldi Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Sāṅkya, yoga Śāstra.

Jani, Varsha Ben Gagan Bihari. Ph.D. ***b.***26.03.1958. Prof. L.D. Vidhyamandir Navrangpura Ahemdabad. ***Add.*** 5, Mehta Appartment Dungarshi Nagar, Near Sector 1, Paldi Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Indian Culture.

Janu, Jaidev Arunodaya. Ph.D. ***b.*** 05.02.1951. Prof. Skt. Deptt. Faculty of Arts, Maharaj Sayajirao University, Varodara. ***Add.*** C-1 Dr. C.S. Patel, Enaclev 3 Pratapganj Varodara. ***Spl.Ref.*** Vedānta, Vyākaraṇa Śāstra.

Jat, Uttam Singh. M.A., Ph.D., NET. ***b.*** 15.07.1975, Bharatpur, RJ. Scholar, S.C. E.R.C. & L.D. Endology Ahemdabad. ***Gp.*** Vijay Kumar Jain, Prof. Azad Mishra. J.B. Shah. ***Bks.*** 04. Jaina Ācāra Saṃhitā, Jaina Dharma Darśana, Prācīna Lekhankalā aura uskā Sādhana, Prācīna Lipiyoṃ kī Varṇamālā. ***Add.*** 104, Sarap Building, Income tax Chouraha, Ahemdabad Guj.

Jauhara, Gita. M.A., B.Ed., Diploma in Yoga. ***b.*** 09.09.1953. Teacher. ***Add.*** 8535, Arankasha Road, Ram Nagar, Pahar Ganj, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jauharilal. Acharya in Sāhitya. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 15.10.1943. ***Add.*** Badali, Delhi – 110042. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jayaprakasam, K.C. b. 22.11.1963, Karveti Nagar, Chittoor, A.P. Rigved Parayanakarta (Ved exponent). ***Gp.*** S. Tyagaraja Shastri. ***Add.*** Sri Kalahasti Devasthanam, Kalahasti (A.P) ***Spl.Ref.*** Ṛgveda.

Jayaswal, Manjula. M.A., D.Phil. D.Litt. ***b.*** 06.05.1950, Allahabad, (U.P.). Asct. Prof., Deptt. of Sanskrit, Allahabad University. ***Bks.*** 02. Kālidāsa ke kāvya meṁ dhvanitattva, Vālmīkiyugīna Bhārata. ***Add.*** 59, Bahadurganj, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jayaswal, Nemichandra. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 16.09.1922, Babarpur, Dhoulpur Raj. ***Bks.*** 05. Muhūrtta Mārtaṇḍa, Bhārtīya Jyotiṣa, Ādipurāṇa meṃ Pratipādita Bhārata, Saṃskṛta Kāvyānucintanam, Bhagvāna Mahāvīra aura unkī Ācārya paramparā.

Jecob, T. M.A. (Skt. & Hindi). B.Ed. ***b.*** 08.10.1937. Teacher (PGT) Skt. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 113-B, Ramnagar Extension, Delhi – 110051.

Jejurkar, Shweta. M.A. in Vocal Music, Ph.D. ***b.*** 29.06.1973. Nizampura, Vadodara . Asst. Prof., Dept. of Skt., Pali & Prakrit, Faculty of Arts, The Maharaja Sayajirao Univ. of Baroda, Vadodara – 390002. ***Gp.*** Prof. Dr. Mrs. Uma S. Deshpande. ***Bks.*** 20. Vāstu-nirdoṣaprakāra, Siddhāntakaumudī of Bha--ojī-dīkṣita, Some Significant Facets of Modern Skt. Literature. ***Ps.*** 20. ***Add.*** C-164, Shivam Duplex, Opp. Ambe School, Darbar Chokdi, Manjalpur, Vadodara – 390011. ***Ph.*** (0265-2973277) M. 09427849706.

Jejurkar, Sweta Avdhoot. Ph.D. ***b.***29.06.1973. Prof. Deptt. Of Sanskrit, M.S. Univ. Varodara. ***Add.*** Gurukripa 19-B, Shriji Bagh Society Manjalpur, Varodara. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Jena, Siddheswar. M.A., CIC, Ph.D. ***b.*** 25.05.1949 Puri. Rtd. Principal, Dept. of Sanskrit Utkal Univ. ***Bks.*** 8., Textual Corelation of Narasiṃha Purāṇa with other Purāṇas and Sanskrit Texts., A Study of Selected Paurāṇika Legends, The Laghu – Hārita Smṛti, Contributions to Sanskrit Criticism. ***Ps.*** 14. ***Add.*** Śāstra Chudamani Scholar P.G. Deptt. of Sanskrit Utkal Univ. Bhuvanashwar – 751004 Odisha. ***Ph.*** 06742551206 ***M*** 9937575960 ***Spl.Ref.*** Sastra Chudamani Scholar.

Jha, Achyutananda. Acharya in Yajurveda, Sāmavedatīrtha, Vyākaraṇa. ***b.*** 02.02.1939. Darbhanga, Bihar. Professor. ***Gp.*** Pt. Pitambara Jha. ***Add.*** Vill. & P.O. Nikashi, Dist. Darbhanga, Bihar. ***Spl.Ref.*** Veda.

Jha, Achyutananda. Acharya. ***b.*** 15.08.1930, Madhubani, Bihar. Rtd. Prof. ***Gp.***

Shivanarayana Jha, Pt. Hari Narayana Jha. *Add.* Vill. Bitto, Sarisub Pahi, Dist. Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Jha, Adyacharan. Acharaya (Sāhitya Vyākaraṇa), SāhityaAlaṅkāra. *b.*01.11.1921. Mangroni Madhubani Bihar. Prati Kulpati KSSV, Bihar. *Bks.* 25. Manoramāśabdaratna prakāśikā, Saṃskṛta Racanā Saṅgraha, Bhāratīya-vāṅmayeṣu Rāmakathāvarṇanam, Hariś-candra Upā-khyānam. *Ps* 150 *Add* 61 Jyotipuram, Mourya Path, Beli Road Patna-800014. *Spl.Ref.* Member of Advisory Committee A.I.R. Patna, Darbhanga Central Board of Sanskrit Shiksha (1993-2000), Selection Committee for the President Award (1993-1996) etc. Radio Boradcast of Poems, News Critics, Radio Natak, Shastriya Varta from Patna, Rachi, Bhagalpur, Darbhanga Radio Station. President Award 1989, Sanskrit Ratna Samman, Awarded from U.P. Sanskrit Academy for the Book Manoramā-śabdaratna prakāśikā, Tulsi Samman, M.P. (Tulsi Academy) Samman Patra from Prisendent Gyani Jail Singh (Prayag Hindi Sāhitya Sammlen) 1991 etc. In Sanskrit Commission organized by India Govt in the Chairpersonship of Dr. Sumiti Kumar Chaterjee, he has taken a part to prepare the plan for Sanskrit Shiksha in 08-01-1957. Poet, Sanskrit & Hindi Scholar etc.

Jha, Alikalala. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 01.01.1916, Fulakahi, Bihar. Prof. *Gp,* Pt. Rajesvara Jha, Kalanatha Jha. *Add.* Vill. Fulakahi, Post Raiyam, Dist. Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Jha, Amaranatha. M.A. in Skt. Acharya in Yajurveda. *b.* 01.06.1961 Arpatti. Saharsa, Bihar. *Gp,* Prabhata Kumara Sanyala. Pt. Sivaprasada Mishra. Lecturer in Veda Dept., K.S.D. univ.. *Add.* Kameshwar Singh Darbhanga Skt. Univ. Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Veda.

Jha, Anand. *b.* 22.09.1914, Singhwara, Darbhanga, Bihar. Honry. Prof. Dept. of Philosophy, Kameshvar Singh Skt. Univ. *Bks.*3. Rasanirjhariṇī, Sītā Svayamvaraṃ, Padārtha Śāstra. *Add.* Mithila Sanksrit Research Institute, Kabaraght, Dist. Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya, Darśanaa.

Jha, Anand. Acharya in Vyākaraṇa, Vedānta Vāgīśa. Rtd. Prof., Prachaya Skt. Deptt., Lucknow Univ. *Bks.* 01. Ānandamadhu-mandākinī. *Spl.Ref.* Title of SakalDarsana-Kanan-Sanchar-Panchanan, President Awardee.

Jha, Ananda. M.A., Acharya in Nyāya. *b.* 03.03.1953, Navani, Madhubani, Bihar. Lecturer. Darśana Dept. *Gp.* Pt. Yadupati Mishra, Pt. Umesa Misra, Dr. Ramasevaka Jha. *Add.* Kameshwar Singh Darbhanga Skt. Univ., Dist. Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Navya Nyāya.

Jha, Anil kumar. M.A., Ph.D., D.Lit. *b.* 26.01.1964. Darbhanga, Bihar. *Bks.* 04. Pratibhā Nā-aka kī Nā-yaśāstrīya Samīkṣā, Saṃskṛtodgāraḥ. *Add.* Chunabhatty, Near 8 No., Naka, Laxmisagar, Dist. Darbhanga, Bihar. *Ph.* 23586, 23586.

Jha, Arjun. Acharya in Vyākaraṇa, Tīrtha in Sāhitya, Nyāya. *b.* 15.11.1913, Chainpur, Saharsa, Bihar. *Gp.* Pt. Sadananda Jha. *Add.* Chainpur, Via Baragaon, Dist. Saharsa, Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, Nyāya.

Jha, Aruneshwar. Acharya in Sāhitya, M.A., M.Phil. *b* 01-02-1964 Rampur, Bihar. Director & Principal J.K. P.G. Skt. Vidyapeetham, Kaithal. *Gp* Prof. Kashi Nath Mishra, Prof. Udaykant Jha, Dr. Ravishankar Nager, Prof. Brijmohan Chaturvedi, Prof. Bachaspati Upadhyay *Sp* Criosto for Cremmer (ABC Baeuro Chief), Dr. Ajay Kumar Mishra, Dr. Omnath Bimli, Dr. Ajay Kumar Jha, Dr. Pharmod Bhartiya. *Add.* 627/19/1 Huda, Kaithal–136027, Harayana. *Spl.Ref.* Foreign isit Nepal, Bhutan.

Jha, Avadhakanta. M.A., Vedānta Tīrtha. *b.* 14.09.1955. Vaghant, Darbhanga, Bihar. Veda Teacher, Govt. Skt. College, Patna. *Gp.* Pt. Suryanarayana Jha, Dr. Upendra Jha. *Add.* Vill. Vaghant, Via Manigachi, Dist. Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Veda.

Jha, Baccha (Dharmadutta). b. 1860. Nivani, Madhubani, Mithila, Bihar. ***Bks.*** 02. Gūḍhārthatattvālokaḥ (A commentery on Siddhānta lakṣaṇa of Jagadīśa) Sulocanā-mādhavacampū. ***Expired in*** 1918. An eminent & unbeaten scholar of Nyāya.

Jha, Badari Nath. b. 12.01.1893. ***Bks.*** 05. Rādhāpariṇaya, Pramodalaharī, Rajasthāna crasthānam, Anyokti Sāhasrī, Jalāśayaśatakam. ***Expired in*** 1973.

Jha, Baidya Nath. Acharya in Navya Vyākaraṇa & Nyāya. ***b.*** 20.01.1954. Bihar. Prof. in Nyāya, R.Sk.S. Jammu. ***Bks.*** 07. Commentaries on Karṇabhāram, Urubhaṅgam, Pratijñā-yaugandharāyaṇam, Meghadūtam, Vyutpatti-vādaḥ. ***Ps.*** 05. ***Add.*** R.Sk.S. Jammu Campus, Jammu. ***Spl.Ref.*** Great Naiyayika at present.

Jha, Baladeva. Acharya in Sāhitya, M.A. ***b.*** 28.04.1932. Vill. Birasayar, Madhubani, Bihar. Teacher. ***Add.*** Govt. Skt. Mahavidyalaya, Laladhari, Bhopal (M.P). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Baleswar. Vedashastri, Acharya in Sāhitya. ***b.*** 10. 10.1925, Morava, Chandauli. Dhar-bhanga, Bihar. Vedacharya. ***Gp.*** Nagesvara Jha, Jagadisha Thakura, Suresha Dwivedi. ***Add.*** Morwari Hatel, Morwa, Dist. Samastipur, Bihar. ***Spl.Ref.*** Veda, Sāhitya.

Jha, Batohi. Acharya in Sāhitya, Shiksha Shastri, Ph.D. ***b.*** 26.03.1951. Darbhanga, Bihar. Prof. in Sāhitya, Rashtriya Sanskrit Sansthan Lucknow Campus. ***Bks.*** 05. Pañcamī Sāhitya Vidyā, Bhāgavatsahasranāma, Saptaśatī-sahasram, Gītānantarasam I-II. ***Ps.*** 10. ***Add.*** R.Sk.S. Lucknow Campus, Vishal Khand – 4, Gomati Nagar, Lucknow. ***Ph.*** 0522-393748.

Jha, Bhairav. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 10.05.1948. Teacher. ***Add.*** Sri Motinatha Skt. Maha-vidyalaya. Ramesh Nagar. Delhi–110015. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Bhavendra. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D.. ***b.*** 03.01.1949, Lakhnor, Madhubani, Bihar. Prof., L.B.S. Rashtriya Skt. Vidyapeeth. ***Bks.*** 01. Āśādharabha--aviracitasya Kovidānandasya Siddhāntalaghu-mañjūṣāyāḥ samīkṣātmakam-adhyayanam. ***Add.*** H. No. 98, Skt. Nagar, Plot No. 3, Sector-14, Rohini, Delhi – 110085. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Bhola. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 07.08.1955, Purasolia, Madhubani, Bihar. Principal. ***Gp.*** Vedanandaji Jha. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Sri Bhagvandass Skt. Mahavidyalaya, Gurukul Kangri, Haridwar, Uttarakhand. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Bhuvaneswar. M.A. ***b.*** 20.01.1946, Amethi, Mithila, Bihar. Principal. ***Gp.*** Kamalakanta Jha. ***Add.*** Jagadamba Skt. College, Batho, Darbhanga, Bihar. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa, Sāhitya.

Jha, Brjakanta. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 12.10. 1939. Skt. Teacher, Govt. Boys Sr. Secondary School, Model Town, ***Add.*** C-7/148 A, Lawrence Road, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Bucchi (Purusohttama). Acharya in Vyākaraṇa, āyurveda, Karmakāṇḍa. ***b.*** 01.02.1928, Rudrapur, Madhubani, Bihar. Rtd. Principal. ***Gp.*** Muralidhara Jha, Krishnesvara Jha. ***Add.*** Prakash Bhawan, Ramana, Muzaffarpur, Bihar. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, āyurveda, Karmakāṇḍa.

Jha, Chandra Bhushan. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 08.07.1969. Darbhanga, Bihar. ***Bks.*** 04. Dillīsthāḥ Viṃśaśatābdīyāḥ Racanākārāḥ. ***Ps.*** 25. ***Add.*** Dept. of Skt., St. Stephed's College, Univ. of Delhi, Delhi – 110007. ***Ph.*** (011) 7932895. ***Spl.Ref.*** Poet & Scholar. Maharshi Badarayana Samman, Govt. of India.

Jha, Damodar. Acharya in Sāhitya, Jyotiṣa(Phalita & Gaṇita), M.A., Vidyavaridhi. Asst. Prof. ***b.*** 11.11.1940, Kovarimadan, Bihar. ***Gp.*** Ramchandra Jha, Shivashankar Jha, Babu Mishra. ***Add.*** Sadhu Ashram, Hoshiarpur – 146021 (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Damodar. Acharya. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.01.1945. Koari Madan. Sutamashi, Bihar. ***Bks.*** 11. ***Ps.*** 72. ***Add.*** Street No. – 7. Gautam Nagar. Hoshiarpur (P.B.). ***Pin.*** – 146001. ***Ph.*** (01882) 226600.

Jha, Danidatta Jagannatha. Acharya in Vyākaraṇa. Kāvyatīrtha. ***b.*** 15.06.1933,

Manikchowk, Bihar. *Gp.* Baladeva Jha, Ravinatha Thakura. Principal. *Add.* Veetha Suryapur Skt. Mahavidyalaya, Surat (Gujarat). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa. Kāvya.

Jha, Dayanath. *Bks.* 01. Vimaṇḍala Vakravicāraḥ. *Expired in* 1965. *Spl.Ref.* Vimandal Vakravicharah Pub. By. Mithila Shodha Sansthan, Darbhanga. Bihar.

Jha, Dev Narayan. Acaharya (Sāhitya, Vyākaraṇa) M.A., Ph.D. *b.* 12.01.1952. Sitamadhi Bihar. Prof., KS Sanskrit V.V. Darbhanga. *Gp.* Pattabhirama Shastri, Prof. Dvijendranatha Mishra, Batukanatha Shastri. *Bks.* 01. Vājapeyīśatakam. *Ps.* 40. *Add.* Darbhanga Skt. Vishvavidyalaya, Darbhanga (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Jha, Devananda. Acharya in Jyotiṣa, Sāhitya. *b.* 15.10.1921, Nagvasa, Bihar. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Genalal Chaudhari, Mukunda Shastri. *Bks.* 01. Bṛhat Pārāśara horā. *Add.* Binodanand Nagar, Madhubani (Bihar). *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Sāhitya.

Jha, Dhairya Narayan. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 03.02.1956, Ladaur, Bihar. H.o.D. of Vyākaraṇa. Shri Bilveshvara Skt. Mahavidyalaya, Meerut. *Gp.* Jiveshvar Jha, Trilokadhar Dwivedi, Pt. Devanarayan Tripathi. *Ps.* 02. *Add.* 1/89, Shastri Nagar, Meerut (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Jha, Dhairya Nath. Acharya, M.A., Sāhityaratna. *b.* 17.08.1916, Darbhanga, Bihar. Teacher. *Gp.* Mahesha Jha, Chandrashekhara Shastri. *Add.* Vill. Rathi, Darbhanga (Bihar). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jha, Dhanindra Kumar. Acharaya Vidyavaridhi. *b* 11-06-1963 Muzaffar Pur. Asct. Prof. RSKS Lucknow. *Gp.* Acharaya Parasnath Dwivedi, Acharaya Ramyatana Shukla, Pandit Ramprasad Tripathi, Pandit Raghunath Sharma. *Sp.* Dr. Narendra Kumar, Dr. Dhananjay Shukla. *Bks.* 02 Śrī Śivadharma Mahāśāstram, Pārāśarasaṃhitā *Ps* 9. *Add.* 1/240 Virat Khand Gomati Nagar, Lucknow – 226010. *Ph.* 05222300320 *M* 9450501036. *Email.* dhaneendrajha@gmail.com

Jha, Dhirendra Kumar. Acharya in Sāhitya, Sikshashastri. *b.* 25.11.1960. T.G.T. *Add.* C-44-A, Nanhe Park, Near Matiyala, Uttam Nagar, New Delhi – 110059. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jha, Digambar. Acharya. *b.* 15.08.1924, Mahinathapur, Madhubani. Bihar. *Gp.* Jagadish Jha, Ishvarinatha Jha, Yadupati Mishra. *Add.* Mahinathpur, Basopatti, Madhubani (Bihar). *Spl.Ref.* Nyāya Darśana.

Jha, Dilip Kumar. Acharya (DharmŚāstra, Gaṇita & Phalita Jyotiṣa, Sāhitya),M.A., Ph.D, D.Litt. *b.*26.10.1966, Darbhanga. Asct. Prof. KSDS Univ. Darbhanga. *Gp* Lakshminath Jha, Braj Kishor Jha, Prof. Shivkant Jha, Prof. Ramchandra Jha *Sp* Kartik Kumar, Brijesh Kumar Jha, Govind Jha. *Bks.* 2, Jyotirvijñānasya Prāsaṅgikatā *Ps* 16 *Add.* – Kameshwer Singh Darbhanga Skt. Univ. Darbhanga- 846008 Bihar. *M* 09835129528, 09430772872 *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Nepal visit.

Jha, Dular. Acharya in Nyāya. *b.*Seetamahi, Mithila. Pradhanpandit, Shrikant Pandey Pathshla, Panditpur. *Gp.* Pt. Sarvabhouma Bhattacharya. *Sp.*Pt.Chandiprasad Shukla. *Spl.Ref.* Famous in Nyāya.

Jha, Gangadhar. M.A., Ph.D. *b.* 07.06.1952. Sudai, Ratouli, Mithila. *Ps.* 01. *Add.* Skt. Maithili Bhawanam. Dighi, West Darbhanga. *Ph.* (06272) 30261.

Jha, Ganganath. *b.* 1871. Vice Chancellor, Allahabad Univ. *Bks.* Khadyota (Ṭīkā), Mīmāṃsānukramaṇikā (Maṇḍana Commentary). *Expired in* 1941. *Spl.Ref.* He was famous scholar of English and Sanskrit literature.

Jha, Ganganatha. 'Bujhnuk'. M.A., Ph.D. *b.* 18.08.1938, Bitho, Madhubani, Bihar. Principal, Nandan Sanskrit Mahavidyalaya, Isahapur, Madhubani. *Add.* Vill. Bitho, Sarisabpahi, Madhubani (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Jha, Girish Kumar. Acharya, M.A., Ph.D. *b* -01.01.1953, Saharsha, Bihar. Asct. Prof. Dept. of Skt. Patna Univ. *Gp* Pandit Shri Krishna Jha, Pt. Shobha Kant Jha, Pt. Babu Mishra,

Dr. Kashinath Mishra, *Ps* 15. ***Add.*** C8/T2 Saidpur, Prof. Colony, Rajendra Nagar, Patna– 800016. ***Ph*** 06122664495 *M.* 9931490815 *Mail.* jhakgirish@gmail.com ***Spl.Ref.*** Poet.

Jha, Govinda. Acharaya Vyākarṇa Sāhitya. ***b*** 10-10-1923, Madhubani. Ex Dy. Director State Language Dept. Govt. of Bihar. ***Gp.*** Guru Deenvandhu Jha. ***Bks*** 49. Kalyāṇīkośa (Maithili English Dictiornary), Maithilībhāṣā kā Vikāsa, Vidyāpati kī Ātmakathā. ***Add.*** 104 Sati Chitrakut Appt. Ganga Path, Patel Nager, Patna– 800023. ***M*** 09471866907 ***Email.*** Ptgovind.jha@gmail.com, ***Spl.Ref.*** Sāhitya Academy Award, Grierson Award, Kamil Bulka Award Govt. of Bihar. Sāhitya Academy has produced a documentary on his life.

Jha, Hansdhar. Acharya in Ganita & Phalita Jyotiṣa, DharmaŚāstra, Purāṇa, Ph.D. ***b.*** 05.10.1963. Madhubani, Bihar. Asct. Prof. R.Sk.S. Bhopal Campus. ***Gp.*** Lt. Pt. Shri Yaduveer Jha, Lt. Pt. Shri Ramavtar Mishra, Prof. Ramchandra Jha, Prof. Shivakant Jha, Prof. Radhakant Thakur. ***Sp.*** Dr. Vidyanath Mishra, Dr. Ramkumar Koul, Dr. Suman Kumar, Dr. Avdhesh Kumar Shrotriya. ***Bks.*** 05. Bhāratīya Jyotiṣa Pa-hyakramḥ, Golaparibhāṣā, Jyotiṣasaurabham. ***Ps.*** 21. ***Add.*** C-4, Yashoda Garden, Parika griha nirman Samiti. Bag mugaliya, Bhopal, M.P. ***Pin.***- 462016. ***Ph.***– 09827564839. ***Spl.Ref.*** An expert in Triskandha Jyotiṣa, Dharma-Śāstra & Purāṇa.

Jha, Harendra Kishor. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.05.1956. Harpurkala. ***Bks.*** 01. Jñānasaṃhitā. ***Add.*** Principal B.S. Ram Skt. College. Pacharhi, Darbhanga, Bihar.

Jha, Hari Shankar. M.A., Ph.D. ***b.***05.01. 1939,Kaithwar, Darbhanga, Bihar. Prof. P.G. Sanskrit Deptt. ***Gp.*** Pt. Shivaji Jha, Dr. Jayamant Mishra, Dr. Bechana Jha. ***Add.*** Bhagalpur Univ., Bhagalpur, Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Harikant Pakshi. Acharya, M.A., Dipl in Education. ***b.*** Madhubani, Bihar. Rtd. Lecturer Sāhitya, Janak Nandini Skt. Mahavidyalaya. ***Bks.*** 01. Jambūkaśmīrasuṣamāratnam.

Jha, Harinandan. Traditional Astronomy. ***b.*** 1929, Madhubani, Bihar. Teacher. ***Gp.*** Raghunandan Jha. ***Add.*** Kameshwar Singh Darbhanga Skt. Univ., Darbhanga, Bihar. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa Śāstra, Astronomy.

Jha, Indrakanta. M.A.. ***b.*** 01.02.1960. Vardaha, Madhubani, Bihar. Asst. Prof. (Sāhitya). ***Gp.*** Shashinatha Jha. ***Add.*** Shyamacharan Vidyapitha, Baunsi, Bhagalpur, Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Jagadish. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 23.04.1912, Bihar, Asstt. Teacher. ***Add.*** P.O. & Vill. Nikasi, Darbhanga Dist. (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Jagannath. M.A., Ph.D. ***b.*** 10.01.1949. Madhubani (Bihar). Teach. A.P.S. High School. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Skt. Teacher. A.P.S. High School. Nawkothi – Begusarai.

Jha, Jaikrishna. Acharya in Sāhitya & Purāṇaa. ***b.*** 01.07.1958, Muzaffarpur, Bihar. Asst. Prof. ***Ps*** 01. ***Add.*** Mumbadevi Adarsh Skt. Pathasala. Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay – 400007. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Jaishankar. M.A.. ***b.*** 10.03.1956, Darbhanga, Bihar. Asst. Prof. ***Gp.*** Prof. Srutidhar Jha, Dr. Satisachandra Jha. ***Add.*** Vice–President, Lok-Bhasha Prachar Samiti, Darbhanga, Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Jatanand. Acharya. ***b.*** 15.08.1922, Lohana, Bihar. Asst. Prof. ***Add.*** Lohana, Sarisabapahi, Madhubani (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Jivananda. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. ***b.*** 28.03.1924, Devadiha, Nepal. Asst. Prof., ***Gp.*** Pt. Ganeshadutt Jha, Pt. Ramratna Shukla. ***Add.*** A.C. Syama Mahavidyalaya, Kachauri Gali, Varanasi (U.P). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Kala Nath. M.A., Ph.D. ***b.*** 30.04.1934, Madhubani, Bihar. Asst. Prof., Deptt. of Sanskrit, Bhagalpur Univ. ***Gp.*** Pt. Ramanarayan Sharma, Pt. Chandrakant Pandey. ***Bks.*** Articles & Books Published. ***Add.*** 3, D.N.B. College

Campus, Bhagalpur (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, KāvyaŚāstra.

Jha, Kalika Datt. M.A., Ph.D. *b.* 09.09.1950, Saurath, Madhubani, Bihar. Asst. Prof., Skt. Dept., L.N. Mithila Univ., Darbhanga. *Gp.* Dr. Kashinatha Mishra, Dr. Vachana Jha. *Ps.* 01. *Add.* L.N. Mithila Univ., Dist. Darbhanga , Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Darśana.

Jha, Kalinath. Śuklayajurveda, Shiksa-shastri. *b.* 01.01.1949, Shahpur, Madhubani, Bihar. Vice-Principal. *Gp.* Pt. Shivdas Mishra. *Add.* Shri Motinath Sanskrit Mahavidyalaya. Ramesh Nagar, New Delhi – 110015. *Spl.Ref.* Shukla-Yajurveda.

Jha, Kamdev. B.A., Ph.D. *b.* 06.09.1963. Bhithamore, Dist. Sitamahi. (Bihar). *Add.* 6 – D. Dayalbagh. Ambala Cantt. HR. *Ph.* 660075.

Jha, Kameshwar. M.A. in Sanskrit. *b.* 04.06.1939, Bardaha, Mithila, Bihar. Principal. *Add.* Govt. Secondary School, Khutaina, Madhubani (Bihar). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jha, Kamlesh. Acharya (Śāṅkara Vedānta, Śaivāgama, Navyanyāya, Jain Darśana) Ph.D. *b.* 04.06.1960 Samastipur,Bihar. Prof. & HOD, Deptt. of Dharmaagama, BHU, Varanasi. *Gp.* M. M. Pt. Rameshwar Jha *Bks.*07 Saṃvitsvā-tantryam, Śaivatattvavimarśa, Āgamasaṃvid, Pūrṇatā Pratyabhijñā. *Ps* 10. *Add.* Deptt. of Dharmaagam, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi-221010. Ph. 0542-2315148 M.09336073463 *Spl.Ref.* Śaivāgama, Vedānta. Visited - Scottland.

Jha, Kashi Nath. M.A., Ph.D. *b.* 31.12.1960. Deep, Bihar. *Ps.* 04. Lect. *Add.* Kalyani Mithila Skt. College, Vill. & P.O. Deep, Distt. Madhubani, Bihar. – 847403. *Ph.* 06273 -- 22672 ,22626.

Jha, Kashi Natha. Acharya. *b.* 15.04.1929, Madhubani, Bihar. *Gp.* Pt. Trilokanatha Mishra, Mahavira Mishra. *Add.* Vill. Vitto, Post. Sarisabpahi, Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jha, Khagesh. Acharaya (Vyākaraṇa, Sāhitya), Ph.D. *b.* 02-01-1942, Madhubani. Rtd. Principal RPS College, Vaishali. *Gp* Pt. Ramesh Jha, Pt. Ramand Jha, Pt. Ramdev Jha, Pt. Udaykant Jha, Pt. Mahesh Jha. *Sp* Pt. Atmanand Sharma, Pt. Pramanand Jha, Pt. Rajendra Jha, Pt. Bhaglu Jha. *Bks* 4 Dharmasya Mūlam Arthaḥ, Surabhāratī, Prabandhāvalī. *Add.* B3/7 RD. Gardi Medical College Campus Ujjain – 456006 (M.P.), *M* 08084949348 *Email* jhakamal@rediffmail.com *Spl.Ref.* Jyotiṣa & Dharma-Śāstra.

Jha, Khoj Narayan. M.A., Acharya in Sāhitya. *b.* 02.04.1942, Sadar, Mithila, Bihar. Principal. *Gp.* Pt. Shukdev Jha, Pt. Yogendra Jha. *Add.* Govt. Sanskrit College, Bhagalpur (Bihar). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jha, Kirtyananda. M.A., Ph.D.. *b.* 15.04.1934, Jariso, Darbhanga, Bihar. Asst. Prof. *Gp.* Pt. Achyutananda Jha, Pt. Harirama Shukla. *Bks.* 01. Gūḍhārthatattvālokaḥ. *Add.* Dept. of Darśanaa, K. S.Darbhanga Skt. Univ., Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Navya Nyāya.

Jha, Kishor Nath. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, M.A. in Skt. (Nyāyavaiśeṣika group), Ph.D., D.Lit. *b.* 10.06.1940. Rtd. Reader, R.Sk.S. Ganganath Jha Campus, Allahabad. *Gp.* Madhusudan Mishra, Dinabandhu Jha, Chandramadhava Jha. *Bks.* 52. Uttara Rāmacaritam (Skt.&Hindī commentery.), Nyāyaśāstrī Īśvaravāda, Nyāyadṛṣ-yā Ātma-vādānucintanam, Nyāyasūtrāṇāṃ Pā-ha-vimarśaḥ, Nyāyaśāstrānuśīlanam. *Ps.* 125. *Add.* Vill. Bittho. P.O.-Sarisub-Pahi. Dist. Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* An extraordinary scholar in different schools. President Awardee in 2003. An ever green Editor of manuscripts in G.N.Jha campus. President Awardee.

Jha, Krisha Madhav. *b.* 1898. Bihar. *Bks.* 01. Tatvaprakāśikā Ṭīkā (Comentory on Paramalaghu Mañjūṣā). ***Expired in*** 1986.

Jha, Krishna Kumar. Acharya in Sāhitya, Shiksashastri. *b.* 11.01.1964, Madhubani, Bihar. Asst. Prof. *Ps.* 01. *Add.* Mumba Devi Adarsh Sanskrit Vidyapeetha, Bhartiya Vidya Bhawan, K.M. Munshi Marg, Bombey – 400007 (MH). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jha, Krishna Madhav. b. 1899. Bittho Gram. Sarisab Pahi, Madhubani, Bihar. ***Bks.*** 01. Siddhānta Lakṣaṇa Bodhinī. ***Expired in*** 1985.

Jha, Kumaralata. Acharya, Ph.D. ***Age.*** 86 yrs., Madhubani, Bihar. Rtd. Principal. ***Gp.*** Suresh Dwivedi, Vasudeva Dwivedi. ***Add.*** P.O. Sangi, Via-Dhondhar Diha, Madhubani, Bihar. ***Spl.Ref.*** Veda.

Jha, Lakshmi Nath. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.01.1948, Dip, Mithila, Bihar. Asct. Prof. ***Gp*** Pt.Tejanath Jha, Dr. Anant Lal Thakur. ***Add.*** Deptt. Of Sanskrit Literature, Kameshwar Singh Deabhanga Sanskrit University, Darbhanga. Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra. Essays and books edited and published.

Jha, Lakshmishwar. B.A, M.A.. ***b.*** 01.07.1952, Baghwa, Saharsa, Bihar – 852106. Professor, T.M. Bhagalpur University. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Behind Basudeopur P.O. Munger, Bihar – 811202. ***Ph.*** (06344) 24701. ***Spl.Ref.*** Gold Medalist.

Jha, Lakshmishwar. Acharya in Śhukla-yajurveda, M.A., Ph.D. ***b.*** 05.06.1948, Madhubani, Bihar. Asct.Prof., Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, New Delhi. ***Gp*** Shilakant jha, Shivdas Mishra. ***Bks.*** Vaidikavāṅmayasyetihāsaḥ, Vedānta-siddhāntamuktāvalī kā Samīkṣātmaka Adhyayana, Kātyāyanaśrautasūtra (Ed. With Hindi Tr.), Gauḍapādakārikā kā Samīkṣātmaka Adhyayana. ***Ps.*** 50. ***Add.*** H-7, Dharmapura, Najafgarh, New Delhi. 110093. ***Spl.Ref.*** Veda.

Jha, Laxman, Acharya, Ph.D. ***b.*** Age. 80 yrs., Madhubani. ***Gp*** Shivshankar Jha. ***Add.*** Pariharpur, Via- Madhubani Bihar. ***Spl.Ref.*** Disc. Jyotiṣa Śāstra.

Jha, Laxmikant. Acharya (Sāhitya, Karma-kāṇḍa). ***b.*** 01.02.1918, Darbhanga, Bihar. ***Gp*** Mishrilal Jha, Badrinath Jha. ***Add.*** Tekrari, Madhupur, Darbhanga Bihar.

Jha, Lilanand. Acharya(Vyākaraṇa, Purāṇa). ***b.*** 05.02.1937. Asst.Prof., Shri Motinath Sanskrit Mahavidhyalaya, Ramesh Nagar, Delhi.-110015. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Purāṇa.

Jha, Loknath. Darbhanga, (Bihar). ***Sp.*** M.M. Balkrishna Mishra. ***Bks.*** 02. Ubhayābhāvādi-vākarapariṣkāraḥ, Jātibādhakapariṣkāraḥ.

Jha, Madan Mohan. Traditional Education. ***b.*** 02.12.1922, Navani, Madhubani, Bihar. Rtd. Principal. Govt. Sanskrit College, Patna. ***Gp*** Yadupati Mishra, Ishvarnath Jha. ***Bks.*** 01. Rasagaṅgādhara kī Saṁskṛta Hindī vyākhyā and others. ***Add.*** Vill & P.O. Navani, Madhubani (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāhitya.

Jha, Madhav. Acharya, Ph.D.. ***b.*** 17.04.1926, Bihar. ***Add.*** Sarisab Pahi, Madhubani (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Mahakant. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 21.04.1920. Teacher. ***Add.*** Tarakant Vidyalaya, Belhavar, Madhubani (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Mahanand Acharya. Ph.D. ***b.*** 15.08.1972. Samastipur. Bihar. ***Bks.*** 04. Tarkasaṅgraha Sarvasvam, comentery on Nyāya Siddhānta Muktāvalī, Vaidika Darśana Vimarśaḥ. Asst. Prof. S.L.B.S.R.Skt. Vidyapeetha, N.Delhi. ***Ps.*** 08. ***Add.*** Flat No.-206, Plot No. 1055/1, Hill View Apartment, Ward No.-07, Mehrauli, N.Delhi – 30. ***Ph.*** (011) 46060516.

Jha, Mahesh. M.A., Acharya in NavyaNyāya Ph.D. ***b.*** 04.02.1946. Madhubani, Bihar. ***Gp*** Pt. Muralidhar Jha, Bechen Jha, Dr. Ayodhyaprasad Sinha. ***Bks.*** 03. Caṇḍikā-ṣ-akam, Saparyāśatakam, Āryā-śatakam. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Kalayatanam, Shastri Nagar, Munger, Bihar. ***Pin.*** 811201. ***Ph.*** (06344) 20035. ***Spl.Ref.*** Nyāya-Darśana, Bauddha-Darśana.

Jha, Markandey. Acharya. ***b.***01.04.1924, Madhubani, Saharsa, Bihar. Principal. ***Add.*** Vill. Madhubani, Via Pratapganj, Saharasa (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Medha. M.A., Ph.D.. ***b.*** 10.02.1944, Alwar, RJ. Asst. Prof. ***Ps.*** 01. ***Add.*** L.P. College, C-2, Indra Prastha, Delhi – 110054. ***Spl.Ref.*** Darśana.

Jha, Mohan Kumar. M.A., M.Ed. ***b.*** 01. 09. 1969. Bihar. ***Add.*** C/o R.P. Pathakh. H/o Karan Singh. H.No. – 200. Katwaria Sarai. New – Delhi – 16. ***Ph.*** 6569499. ***Spl.Ref.*** Gold Medelist in M.Ed.

Jha, Mrigendra Nath. M.A., Ph.D. Sāhitya. *b.* 13.06.1953. Darbhanga. Prof. Shri Raghuwar Ramanand Vedant College Paldi, Ahemdabad. *Add. Add.* 34/347, Chandrabhaga Colony Near Ganesh School Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra, Vyākaraṇa Śāstra.

Jha, Munishwar. M.A. in Skt. & Hindi, D.Lit. *b.* 04.11.1928. Karamauli, Bihar. ***Bks.*** 12. Bhūparikramaṇam. Veda Vāgvivṛttiḥ. ***Ps.*** 50. ***Add.*** Shree Kunj Apartment, No. 12, Buddha Colony, Patna – 80000. ***Spl.Ref.*** Presidential awardee.

Jha, Munishwer. Acharya in Sāhitya, Mahamaho-padhyaya, Vidyavachaspati, M.A. D.Litt. *b.* 04.11.1928, Madhubani. Ex. Prof. & V.C. ***Bks.*** 10. Vidyāpativāṅmaya, Kāvya aura Bhāṣā. ***Ps.*** 60. ***Add*** .ShreeKunj, Apart. 12, Buddha Colony. Patana - 800001 ***Ph.*** 0612-2523032. ***Spl Ref*** Bengauli, France, U.K. Germany, Trinidad, West Indise.

Jha, Murlidhar. Acharya in Jyotiṣa, Vyākaraṇa, NyāyaŚāstra & Sāhitya. *b.* 1869. Shyam sidhav, Bihar. Lect., Banaras. ***Gp.*** Pt. Sudhakar Dwivedi, Pt. Vidya Jha, Pt. Madhusoodan jha. ***Sp.*** Pt. Babua Mishra, Pt.Chandrashekhar Jha, Pt. Gangadhar Mishra, Pt. Murlidhar Thakur, Pt. Seetaram Jha. ***Bks.*** 05. Laghu Vivaraṇa Ṭīkā on Sudhākara Bhāṣya of Vedāṅga Jyotiṣa. ***Expired in*** 1929. ***Spl.Ref.*** honoured by "Maha Mahopadhyay" Distinction in 1922 A.D.

Jha, Nagendra. Acharya in Jyotiṣa, Siksashastri. *b.* 15.07.1956, Belahi, Madhubani, Bihar. Asst. Prof. Delhi Skt. Vidyapith. ***Gp.*** Ajabalal Thakur, Vishvanath Jha. ***Add.*** L-10 C, D.D.A. Flat, Gajipur, Near Dairy Farm, Shahdara, Delhi–110091. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Jha, Narayan. Acharya, Ph.D. *b.* 03.07.1959, Thadhi, Madhubani. Bihar. ***Gp.*** Muralidhar Jha, Chandrashekhar Jha, Dr. Harshanath Mishra. ***Add.*** 3-A, East Mada Street, Little Kanchipuram–631503 (T.N). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Narendra. Acharya in Navya Vyākaraṇa, Sāhitya. *b.* 11.07.1927, Chanpur, Madhubani, Bihar. Asst. Prof. ***Add.*** G.T. Skt. Mahavidyalaya, August Kranti Maidan, Bombay – 400007 (MH). ***Spl.Ref.*** Navya Nyay, Vyākaraṇa, Sāhitya. ***Award.*** Three Gold Medals and President Award.

Jha, Naresh. Acharya, Kāvyatīrtha, Hindi Sāhityaratna, Ph.D. *b.* 15.08.1929, Darbhanga, Bihar. Principal. ***Gp.*** Ganesh Jha, Narsimha Dwivedi, Taracharan Bhattacharya. ***Bks.*** 01. Physical Education in Ancient India. ***Add.*** Adarsh Rani Chandrawati Shyama Mahavidyalay, Kachauri Gali, Varanasi (U.P). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Panchadev. M.A. *b.* 01.01.1962, Gadha, Sitamadhi, Bihar. Principal. Gp. Laxmikanta Jha, Ananda Jha. ***Add.*** Shri Sharada Sanskrit Mahavidyalaya, 103, Vidyanta Road, Lal Kuan, Lucknow (U.P.). ***Spl.Ref.*** AdvaitaVedānta.

Jha, Paramanand. Acharya in Sāhitya, Dharma-Śāstra, M.A., B.Ed.. *b.* 05.08.1952. T.G.T., Rajakiya Ucchatar Madhyamika Girls Vidyalaya, Adarash Nagar. ***Add.*** DA – 591, Hari Nagar, New Delhi–64. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Darma-Śāstra.

Jha, Paramanand. Acharya in Sāhitya, Hindi Visharad, M.A., Ph.D., D.Lit. *b.* 02.01.1927, Madhubani, Bihar. President, Bihar Samskrta Siksa Board. Gp. Dr. L. Vaidya, Dr. Viramani Upadhyaya, Pt. Baladev Upadhyaya. ***Add.*** East Boaring Canal Road, Patna (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Paramanand. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, NavyaNyāya. *b.* 17.04.1921. ***Add.*** Vill. & P.O. Barail, Via Garh Baruari, Saharsa Dist. (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāhitya, Navya Nyāya.

Jha, Parameshwar. Acharya in Vyākaraṇa, DharmaŚāstra, Mīmāṃsā, Sāṅkya, Vedānta & Nyāya. *b.* 1853. Vill. Taruvani, Dist. Darbhanga. Principal, Rameshwarlata Skt. College, Darbhanga. ***Gp.*** Pt. Chiranjeev Mishra, Pt. Rajaram Shastri, Pt. Balshastri, Pt. Taracharan Bhattacharya, Pt. Visvanath Jha. ***Sp.*** Pt. Markandey Mishra, Pt. Triloknath, Shri Shivnandan Thakur. ***Bks.*** 13. Saṃskāra-

daśakarmapaddhati Ṭīkā, Chandogya-vṛṣotsarga, Sadācāradarpaṇa, Parameśvara-koṣa, Mithileśa Praśasti. ***Expired in*** 1924. ***Spl.Ref.*** Recipent of M.M. Award by Govt. of India in 1914. Vaiyakaran kesari by Bharatdharm Mahamandal. He was also a famous Skt. poet.

Jha, Parmanand. Shastri Pratistha, Acharya (NavyaVyākaraṇa), M.A., B.Ed., NET, Ph.D. ***b.*** 18.07.1977. PGT Sarvodaya Bal Vidyalaya, Delhi Cantt. ***Bks.03. Ps.***12 ***Add.*** WZ-44C, Possangipur, Janakpuri, New Delhi-110058. ***M.***09818574474 ***Spl.Ref.*** CNRT in Sanskrit Unit, NEWS Div., AIR. Seceretary General, Mandakini Sanskrit Vidvat Parishad, Delhi, Acting in Sanskrit, Hindi, Maithali Dramas, Poet & Writer, Poetries broadcasted many times from Radio Station & DD-1.

Jha, Parmeshwar. Achary in DharmaŚāstra, Sāṅkya, Vedānta, Vyākaraṇa ***b.*** 1856. Tarroni, Bihar. ***Bks.*** 30. Mithilātatvavimarśa, Ṛtudarśana. Yakṣasamāgama, Parameśvara-koṣa. ***Spl.Ref.*** He Awarded 'Vyākaraṇakesari' by Bhartdharm Maha Mandal.

Jha, Pashupati. Acharya, Navya Vyākaraṇa Sāhitya. ***b.*** 27.04.1930, Sadha, Nepal. Asst. Prof. ***Gp.*** Balabodha Mishra, Jivananath Jha. ***Bks.*** 01. Nepāla Sāmrājyodayam. ***Add.*** S.B.B. Anusheelan Institute, Punjab University, Hoshiarpur (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Prem Kant. Acharya (Jyotiṣa & Sāhitya), M.A.. ***b.*** 01.07.1957, Madhubani, Bihar. Principal. I.N.M. Skt. College. ***Bks.*** 01. Graharkha Darśan. ***Add.*** I.N.M. Skt. College. Chaibusa. Jharkhand. ***Ph.*** 31873.

Jha, Premanand. ***b.*** 12.02.1938, Hainthi, Mithila, Bihar. Asstt. Teacher. ***Add.*** Rameshwari Shyama Mandir, Darbhanga (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vedānta.

Jha, Premchandra. Acharya, Shiksashastri. ***b.*** 29.06.1949. Teacher. Govt. Boys Sr. Secondary School No. 2, Roop Nagar, ***Add.*** C-53, Timarpur, Delhi Administration Quarters, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Pushpa. M.A., Ph.D. Asst. Prof. ***Add.*** Govt. Arts & Commercial College, Indore (M.P.) ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Pushpa. M.A., Ph.D.. ***b.*** 22.07.1946. Jabalpur. ***Ps.*** 40. ***Add.*** Professor and H.o.D. the Skt. Dept, Govt. Mankunwar Bai Girl's College, Jabalpur, M.P.

Jha, Ram Kishor. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.11.1959 Muzaffarpur, Bihar. ***Bks.*** 04. Yogaratnākara, Vikhyātavijayam, Caṇḍikā caritacandrikā. ***Ps.*** 08. ***Add.*** 51/23. Janki Appartment. Ramanand Nagar. Allapur. Allahabad.

Jha, Rama Nath. M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 02.12.1970. Darbhanga. ***Add.*** C/o S.N. Jha. B – 34. R.B.I. Colony. Hauzkhar. New Delhi–110016. ***Ph.*** 6520173. ***Spl.Ref.*** Prativa Puraskar by Skt. Acadmi N.Delhi.

Jha, Ramchandra. Acharya in Gaṇita & Phalit Jyotiṣa, DharmaŚāstra. ***b.*** 19.01.1951. Darbhanga. Prof. & H.o.D. Jyotiṣa K.S.D. Skt. Univ. Darbhanga. ***Bks.*** 21. Skt. & Hindi Commentry on 'Siddhāntakaumudi', Skt. & Hindi Commentry on 'Madhya Kaumudi', Skt. & Hindi Commentry on 'Laghukaumudi'. ***Add.*** Prof. & Head P.G. Dept. Of Jyotiṣa, K.S.D. Skt. Univ., Darbhanga. ***Ph.*** (06272) 21913.

Jha, Rameswar. ***b.*** 1905. Mithilanchal (Samastipur) Patasagram. ***Gp.*** Pt. Ramdutta Mishra, Shri Radhakant Jha, Shri Sadanand Jha, Pt. Ugranand Jha, Pt. Balkrishna. ***Bks.*** 02. Pūrṇatā Pratyabhijñā, Śivatatvavimarśa ***Expired on*** 12.12.1981. ***Spl.Ref.*** Honoured by Mahamahopadhyaya in 1980 and President Certificate of Honour in 1981.

Jha, Ramkishore Vibhakar. M.A. (Skt. Hindi, Maithili), Ph.D. ***b.*** Darbhanga, Bihar. Rtd. Prof. and HOD, Devghar Mahavidyalaya, Jharkhand. ***Bks.*** 04. Mugdhāśatakam, Vibhākaravaibhavam. ***Add.*** Bilasi Town, Devghar Nagar, Jharkhand.

Jha, Ramsevak. M.A., Ph.D. ***b.*** 20.04.1931, Mangrauni, Madhubani, Bihar. Acharya. HOD. ***Gp.*** Pt. Namonarayan Jha. Pt.Shashinath Jha. ***Add.*** P.G. Darśana Sanskrit Univ. Darbhanga, Bihar. ***Spl.Ref.*** Vedānta, YogaDarśanam.

Jha, Ramsharan Sharma. Acharya in Vyakarna, Tīrtha in Vedānta, Kāvya. *b.*30.12.1918. Rtd. Principal. *Gp.* Padam Prasad Bhattarai Parvatiya., Ramesh Jha. *Add.* Rahimpur, Khagarhia Bihar. *Spl.Ref.* Navya Vyākaraṇa.

Jha, Rati Nath. *b.* 1922. Basti. Asst. Prof. Varanasi, U.P. Basti. *Bks.* 05. Mahāvīrābhyudaya, Gāndhiśatakam, Mālavīyapraśastiḥ, Aravindaśatakam, Mālavīya Praśastīḥ. Mahāvīrā-bhudayamahākāvyam, Vānīvilasitam.

Jha, Ratna Mohan. M.A., Acharya, Ph.D. *b.* 25.12.1974. Asst. Prof. R.Sk.S, New Delhi. *Ps.* 07. *Add.* . Rashtriya Sanskrit Sansthan, 56-57, Inst. Area, D Block Janakpuri, New Delhi–58. *Spl.Ref.* Coordinator, NFSC, Award received Skt. Sevavatansah.

Jha, Rekha. M.A., M.Phil., B.Ed., Ph.D. *b.* 01. 01.1972. Delhi. *Add.* C – 20. II Floor. B.K. Dutta Colony. Lodhi Road. New Delhi – 110003. *Ph.* 4625436.

Jha, Rudradhar. Acharya (Vyākaraṇa, Nyāya, Vedānta) *b.* 1923. *Add.* Andhara Tharhi, Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Nyāya & Vedānta Śāstra.

Jha, Sarva Narayana. Acharya in Gaṇita & Phalita Jyotiṣa, Ph.D., D. Litt. *b.* 05.06.1962. Saharsa (Bihar). Prof. R.Sk.S. Lucknow Campus. *Bks.*05. Meghamālā, Vaiṣṇavī, Uśatī, Gomatī (Ed.). *Ps.* 06. *Add.* 5/614, Viramkhand, Gomtinagar, Lucknow.

Jha, Satish Chandra. Ph.D., D.Litt. *b.* 10.05.1947. Chanpura, Madhubani, Bihar. Prof. & H.o.D. Skt. B.R.A. Bihar Univ. *Bks.*02. Surathacarita Mahākāvya : Eka Pariśīlana, Kātyāyanavārtikānām Bhāṣāśāstrīyam-adhyayanam. *Ps.* 100. *Add.* Prof. & H.O.D. Skt.. B.R.A. Bihar Univ., Muzaffarpur – 842001. Ph.(0621) 242922.

Jha, Seetaram. Acharya in Jyotiṣa, Jyotiṣatīrtha. *b.* 1890. Vill. Chougama, Dist. Darbhanga, Bihar. Teacher, Sanyasi Pathasala, Kashi. *Bks.* 67. Ahibalacakra, Avakaḍahācakram, Tājika Nīlakaṇ-hī Vyākhyā, Bṛhajjātaka Ṭīkā, Muhūrttamārtaṇḍa Ṭīkā, Mānasāgarī Ṭīkā, Bṛhat Pārāśara Horāśastra Ṭīkā. ***Expired on*** 15.06.1975., Kashi. *Spl.Ref.* 'Jyotiṣa samrat' & 'Jyotiṣaratnakar' titles awarded by sanyasi Skt. College, Kashi. He was well known as 'Sun' of Mithila. An extraordinary scholar in JyotiṣaŚāstra.

Jha, Shambhu Kumar. Yajurveda, Ṛgveda, Acharaya (DharmaŚāstra, Sāhitya), M.A., Ph.D. *b* 25-05-1970, Madhubani, Asstt. Prof. Jagat Guru Ramanandacharaya Raj. Skt. Univ. *Gp* Prof. Vidyeshwar Jha. *Bks 0*3, Vaidikadevavādasya Samīkṣātmakam-adhyayanam, Kātyāyanaśrautasūtram, Vaidika Sāhityetihāsaḥ. *Ps* 30. *Add.* Dept. of Ved, JRR Skt. Univ. Jaipur – 302022. *M* 09166227681, 09799192184 *Spl.Ref.* Ṛgveda, Yajurved.

Jha, Shashi Nath. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, M.A. in Skt., Ph.D., D.Lit. *b.* 15.02.1954., Madhubani, Bihar. Prof. K.S.Darbhanga Univ., Bihar. *Gp.* Pt.Kulanand Mishra, Pt.Tejnath Jha, Pt.Shyamasundar Jha, Pt. Khagendra Jha., Pt. Kameshwar Jha. *Sp.* Dr.Shankar ji Jha, Dr. Panchadeva Jha, Dr. Sadananda Jha, Dr. Kamal Thakur. *Bks.* 70. śuddhikaumudī, Samāsaśakti Dīpikā, Upasṛṣ-adhātvarthasaṅgrahaḥ, Bālaśikṣā-sopānam, Rāgataraṅgiṇī. *Ps.* 40. *Add.* Behind Dyaurhi, Shubhankar Pur, Darbhanga, Bihar. *Ph.*(06272) 254727. *Spl.Ref.* A great Gramarian & Smārtta pundit. Manuscript & script specialist and an excellent writer as well as editor.

Jha, Shashinath. Bihar. *Bks.* Lakṣaṇāvalī Vyākhyā, Tritalāvacchedaktāvādaḥ. Khaṇḍa-sāraḥ. ***Expired in*** 1963.

Jha, Shiv Kant. Acharya in Phalita & Gaṇita, Ph.D., D.Lit. *b.* 02.01.1956. Bardaha, Madhubani, Bihar. Prof. & head Jyotiṣa, S.K.Singh Skt. Vishvavidhyalaya, Darbhanga, Bihar. *Bks.* 04. Brahmaguptoktaṃ Vedhayantram, Brāhmasphu-asiddhāntasya Samīkṣātmaka-madhyayanam, Adbhuta Sāgaraḥ, Yogayātrā. *Ps.* 14. *Add* Dept. of Jyotiṣa, KSD Skt Univ. Darbhanga, Bihar. *M*

09431451758. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa, Jyotiṣa Śāstra Siromani Bhaskar Award 2003, Awarded by Prasastipatra from Jyotiṣa Dept. BHU 2009, Member of Syllabus and Research Committee Kashi Hindu V.V., RSKS New Delhi, Shri Sadashiv Kendriya Sanskrit Vidyapeeth, Puri. Member of Vidwat Parisad, Examination Committee, Library Committee, Research Committee, Mahavidyalaya Vikas Parisad etc. In KSD Skt. Univ., Darbhanga.

Jha, Shivkant. Acharya in NavyaVyākaraṇa, Ph.D. ***b.*** 10.04.1959. Vill. Gonouli. Andhara Thadi, Madhubani, Bihar. Prof. R.Sk.S. Jaipur. ***Bks.*** 15. Vyākaraṇatattvādarśaḥ. Pāṇinisūtrārthatattvālokaḥ. Spho-atattvamīmāṃsā, Pāṇinīya Vyākaraṇe Strīpratyayānāmadhyayanam, ***Ps.*** 11. ***Add.*** A-27-B. Chhatrashal Nagar (Near Malviya Nagar Sect. – 3) Railway By pass, Jaipur – 17. ***Ph.*** (0141) 2759030. 09352682044.

Jha, Shobhakant Jayadeva. Acharya (Vyākaraṇa, Vedānta, Nyāya.), Tīrtha, Tarkopadhi. ***b.*** 10.10.1922. Darbhanga, Bihar. Director Mithila Skt. Shodh Sansthan. ***Bks.*** 03 Paramalaghukalā. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Nyāya, Vedānta, President Awardee.

Jha, Shri Murlidhar. Acharya in Jyotiṣa, Vyākaraṇa Nyāya, Sāhitya. ***b.*** 1869. Shyam Sidhar, Mithila. Lect. Banaras (Kashi). ***Gp.*** Pt. Vidya Jha. Pt. Sudhakar Dwivedi. Pt. Madhusoodan Jha. ***Sp.*** Pt. Babua Mishra, Pt. Chandrashekhar Jha, Pt. Gangadhar Mishra, Pt. Murlidhar Thakur, Pt. Seetaram Jha. ***Bks.*** 05. Sudhākara Bhāṣya. Siddhāntatattvavivekaḥ. Līlāvatī & Bījagaṇita, śivasvarodaya Ṭīkā in Hindi, Trikoṇamiti. ***Add.*** Maram, Darbhanga. ***Expired in*** 1929. ***Spl.Ref.*** M.M. Award by British Govt. in 1922.

Jha, Shrutidhar. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, M.A. in Skt., Ph.D. ***b.*** 01.10.1936. Andhara Tharhi. ***Bks.*** 01. Dharmaśāstra me Vraton ke Svarūpa Evam Unake Māhātmya. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Aparna Sadan, Hanumanganj, Darbhanga, Bihar. ***Ph.*** (06272) 24304.

Jha, Shyam Sundar. 8-7-1933. Principal, Hindu Sanskrit Mahavidyalaya (Surat). ***Bks.*** 07. Explanation of Maduri & Jagdishi Commentary, Mahākavivasantapraśasti. ***Add.*** Mithilapuri, Barelly 243122. UP.

Jha, Shyamanand. Prof. & Principal. Y.J.B.M. ***Bks.*** 01. Madhuvīdhī.

Jha, Subhadra. Acharya in Sāhitya, M.A., B.L., D.Litt. ***b.*** 09.07.1909, Nagadah, Madhubani, Bihar. Rtd. Prof., Deptt. of Maithili, Patna University. ***Bks.*** The Formation of the Maithili Language, The Songs of Vidyapati, Bhāratipraveśikā. ***Add.*** Nagadah, Madhubani, Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Academy Award. Sāhitya Śāstra, Vyākaraṇa Śāstra.

Jha, Sukheshwar. M.A., Ph.D. ***b.*** 04.05.1938. Madhubani, Bihar. Prof. Bhagalpur Univ. Bihar. ***Bks.*** 03. Bālanibandhāḥ, Nibandhasudhā, Pāṇiniyan system of Accent. ***Ps.*** 30. ***Add.*** Lalkothi (Tatarpur). Bhagalpur – 2. Native Place. Harasuwar. Hissar. Dt. Madhubani. Bihar. ***Ph.*** (0641) 422304.

Jha, Suman Kumar. Acharya in Sāhitya, Ph.D. ***b.*** 05.01.1974. Birpur, Bihar. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Suman Pt. Jha. Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Skt. Vidyapeeth. New – Delhi – 110016. ***Ph.*** 6512721.

Jha, Sumankant. Acharya in Sāhitya, M.A. Teacher, Vasantgrama Adarsh Sanskrit Vidhyalaya, Vasant Vihar, New Delhi. ***Add.*** RZ H.No. 65, Dharmapura, Nazafgarh, New Delhi.

Jha, Sunder Narayan. Acharya in Śuklayajurveda, Sāhitya, B.Ed., Ph.D. ***b.*** 30.04.1972. Hanuman Nagar, Bihar. Asst. Prof. L.B.S.Rashtriya Skt. Vidyapeeth, New Delhi. ***Bks.*** 03. Puruṣamedhayajñasya Samīkṣātmakam-adhyayanam, Kātīyeṣ-idīpakaḥ, Avyaya Puruṣa Nirūpaṇam . ***Ps.*** 62. ***Add.*** F-93. Katawariya Sarai. New Delhi-16.

Jha, Surendra. M.A. M.Ed. Ph.D. ***b.*** 20.06.1948. Bihar. Principal, R.Sk.S. Lucknow Campus. ***Bks.*** 01. Vaiyākaraṇasiddhāntānāṃ Tulanātmakamadhyayanam. ***Add.*** R.Sk.S. Lucknow

Campus, Vishalkhand–4. Gomati Nagar, Lucknow, U.P.

Jha, Sureshwar. Acharya, Ph.D. ***b.*** 03.07.1958, Hulas, Bihar. Asct. Prof. K.S.D. Skt. Univ. ***Gp.*** Yadunandan Jha, Pt. Upendra Jha. ***Ps.*** 01. ***Add.*** East of Gas Godown. L. Sagar. Darbhanga. (Bihar). ***Ph.*** (06272) 21431. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Jha, Suryakanta Laxman. Acharya (Sāhitya, NavyaVyākaraṇa) ***b.*** 19.09.1929, Madhubani, Bihar. Principal. ***Gp.*** Pt. Ishvarnath Jha. ***Add.*** Shri Brahmakarmavardhini Sanskrit College Itwari, Nagpur-2, MH. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra, Sāhitya.

Jha, Suryanarayan. Acharya. ***b.*** 26.07.1946, Ratnapur, Saharasa, Bihar. Asct. Prof. ***Bks.*** Kavīndragaṅgānanda-kavita tathā Kṛtittva. ***Add.*** 23, Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeeth, Katwaria Sarai, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Suryanarayan. Shastri, Acharya. ***b.*** 10.05.1914, Vill. Muradpur, Saharasa, Bihar. Retd. Acharya, K.D. High School, Muradapur, Saharasa. ***Gp.*** Nirsan Kumar, Ishwar Nath. ***Add.*** Vill. Muradapur, P.O. Chandra-indharahara, Nauhatta, Saharasa Bihar. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Nyāya Śāstra.

Jha, Tarinish. Acharya in Vyākaraṇa, Vedānta. ***b.*** 03.04.1919, Panch Gachiya, Bihar. ***Gp.*** Pt. Nirashan Kumar, Sadanand Jha, Ravinath Jha. ***Bks.*** 01. Saṃskṛta Hindī kośa and others. ***Add.*** 63, Meera Gali, Daraganj, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Vedānta.

Jha, Tirthanand. M.A. ***b.*** 05.12.1955. Teacher, Shri Samanta Bhadra Skt. Secondary School, Dariya Ganj, New Delhi. ***Add.*** E-39, Kamla Nagar, Delhi – 110007.

Jha, Trilok Nath. M.A., Ph.D. ***b.*** 03.08.1934, Sarisab Pahi, Madhubani, Bihar. Head, Skt. Department. ***Gp.*** Pt. Umakanta Jha, Dr. Ramkarana Sharma, Dr. Jaymant Mishra, Dr. S.S. Bagachi. ***Bks.*** 08. Gokulanāthapraṇītam muditamadālasānā--akam(ed.). ***Add.*** Lalita-narayan Mithila Vishvavidyalaya, Darbhanga–846004 (Bihar). ***Ps.*** 36. ***Add.*** Bela Garden, Polytechnic Chowk, Darbhanga, Bihar. ***Pin***–846004. ***Ph.*** (06272) 22560. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Jha, Tulakrishna. M.A., Ph.D. ***b.*** 27.08.1951. Chainpur, Saharsa, Bihar. Vice-Principal, Post-graduate Skt. Deptt. ***Gp.*** Dr. Krishnadatta Jha, Dr. Harimohan Mishra. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Lalkothi. Bhagalpur. Bihar. ***Pin.*** – 812002. ***Ph.*** (0641) 423212. ***Spl.Ref.*** Presidents Certificate of Honour in Skt.

Jha, Udayakant. M.A., Ph.D.. ***b.*** 04.04.1939, Chatauni, Madhubani, Bihar. H.O.D. of Sāhitya Deptt. ***Gp.*** Dr. Krishnanand Jha, Dr. Khageshvar Jha, ***Bks.*** 02. Śṛṅgāra Sāriṇī Samīkṣā, Vijayabhūtī Samīkṣā. ***Add.*** Kameshwar Singh Darbhanga Sanskrit University, Darbhanga (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Udayanath 'Ashok'. M.A., Ph.D., Sāhityaratna. ***b.*** 06.04.1959, Madhubani, Bihar. Lecturer, Lakshmivati Sanskrit College, Sarisabpahi. ***Gp.*** Pt. Chandramadhav Jha, Maheshvar Jha. ***Bks.*** 01. ***Add.*** Bitho, Sarisabpahi, Madhubani (Bihar).

Jha, Uditanarayan. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 31.07.1925, Darbhanga, Bihar. Rtd. Teacher, ***Add.*** Village Machhaita, P.O. Kurso – 847405, Darbhanga Dist. (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Jha, Uma Raman. M.A, Acharya in Nayāya, Ph.D, D.Lit. ***b.*** 18.07.1943. Rtd. Prof. & Principal, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow. ***Bks*** 30, Nyāyasāravicāra, Daśapadārtha Śāstram, Trakapraveśaḥ, Śrī Nehrūcārucarcā, Viveka-sāhasrī. ***Ps*** 200, ***Spl.Ref.*** Darśana, Poet, Member U.P. Sanskrit Sansthan, Associate with A.I.O.C Vishwa Sanskrit Sammelan etc. 40 Radio Talks, Awarded from Sringeri Shankaracharaya, Kanchipuram Shankaracharaya, Penja-waramathadhish etc. President Awardee.

Jha, Upendra 'Vimal'. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.01.1940, Dist. Samastipur, Bihar. Principal. Sanskrit Hindi Vidyapitha, Khamhar, Begusarai. ***Add.*** Manohar Nikunja, Begalagarh, Darbhanga, (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Jha, Upendra. ***b.*** 05.01.1928. ***Add.*** Raj Bhawan Hata, Vinodpur, Katihar, (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa. Sāhitya, Vedānta.

Jha, Upendra. Acharya in Jyotiṣa, Vidya-varidhi. ***b.*** 25.05.1954, Kurtha, Dhanusa, Nepal. Teacher. ***Gp.*** Pt. Mithalal Ojha, Pt. Murarilal Sharma, Dr. Nagendra Pandey. ***Add.*** Adarsh Rani Chandravati Shyama Mahavidyalaya, Kachauri Gali, Veranasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Jha, Upendra. M.A., Ph.D., ShiksaShastri, Vedacharya. ***b.*** 05.06.1948, Madhubani, Mithila, Bihar. ***Gp.*** Pt. Shiv das Mishra. H.O.D. of Veda. ***Add.*** Kameshwar Singh Darbhanga Sanskrit University, Darbhanga, (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Veda.

Jha, Vasishtha Narayan. Tīrtha, M.A. Ph.D. ***b.*** 20.07.1946, Thakurgaom, Dinajpur. Prof. & Director, Center for Advanced Study in Skt., Univ. of Pune. ***Gp.*** Sitakant Shastri, T.S. Shrinivas Shastri. ***Bks.*** Studies in Language, Logic and Epistemology, Linguistic Analysis of the Ṛgveda Pātha, Studies in Padapātha & Vedic Philosophy. ***Spl.Ref.*** Active Member of Advisory Board in various Universities and Institutions.

Jha, Vedanand. Acharya, Sāhityaratna, M.A. ***b.*** 15.08.1924, Vasantpur, Vargania, Bihar. Rtd. Principal, Motinath Sanskrit Mahavidhyalaya, Ramesh Nagar, Delhi. ***Gp.*** Janniram Vyas, Bhupnarayan Jha. ***Bks.*** 01. Tripathagākāvyam. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 19-E, Shivanath Yogashram Residential Area, Ramesh Nagar, Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Nyāya, Vedānta, Sāhitya, Sāṅkya, Yoga Śāstra, President Awardee. Expired.

Jha, Vidanath. M.A., Ph.D. ***b.*** 15.12.1929, Dugra, Mithila, Bihar. HOD of Sanskrit. ***Gp.*** Dr. Hajariprasad Dwivedi, Prof. Mahaveer Pathak. ***Bks.*** Locana Vimarśa. ***Add.*** Bihar University, Muzaffarpur, Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Jha, Vidyanand. Acharya in Sāhitya, Shiksha Shastri, Ph.D. ***b.*** 11.07.1951. Beehat, Begusarai, Bihar. Prof. & Head in Sāhitya, R.Sk.S.,Bhopal Campus. ***Gp.*** Dr. Mandan Mishra, Kaviratn Ameer Chandra Shastri, Dr. Harshanath Mishra. ***Bks.*** 02. Srīmad-Yaśovijayamunikṛtāyāḥ Kāvyaprakāśa-īkāyāḥ Dvitīyatṛtīyamātropalabdhāyāḥ Samīkṣā, Kāvyaśāstrīya siddhāntānām Dārśanika Tattvamīmāṃsā. ***Ps.*** 11. ***Add.*** C-15. Yashoda Garden. Bag Mugalia. Bhopal. Pin. -462043. ***Spl.Ref.*** Eminent Speaker & Idiol of students.

Jha, Vijay Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A. Asst. Prof. ***Add.*** Sanatan Dharma Sanskrit College, Hoshiyarpur Punjab. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Jha, Vinodkumar. M.A. ***b.*** 28.12.1957, Distt.. Samastipur, Bihar. Asst.Prof. ***Add.*** Kameshwer Singh Darbhanga Sanskrit University, Darbhanga (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Jha, Vishwanath. Bihar. ***Bks.*** 01. Lakṣaṇāvalī Tīkā. ***Spl.Ref.*** Lakṣaṇāvalī Commentary – Published by Varanasi 1900.

Jha, Vishweshwer. Acharaya Vyākaraṇa, M.A. (Skt & Maithali) Ph.D. ***b*** 01-02-1935, Madhubani. Rtd. Prof. & Hod. MSS Mahavidyalaya Madhubani. ***Gp.*** Pt. Deenbandhu Jha, Shri Madhusudan Mishra. ***Sp.*** Dr. Umaraman Jha, Dr. Vishwanath Jha etc. ***Bks.*** 4 Nītimālā, Śukanāsopadeśaḥ, Saṃskāra vivecana, Svapnavāsavaduttam, ***Ps*** 10 ***M*** 9471011486 ***Spl.Ref.*** Churamani Scholar RSKS.

Jha, Vounand. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, Nyāya, Ph.D. ***b.*** 03.03.1953. Bihar. Asct. Prof. in Darśana Dept., S.K.S.D.Univ., Bihar. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Professor Colony. Digghi Pashchim, Mirjapur. Darbhanga, Bihar. ***Ph.*** (06272) 23865. ***Spl.Ref.*** *Navya Nyāya*.

Jha, Vrijmohan. M.A. ***b.*** 12.08.1924, Navani Mithila, Bihar. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Pt. Ishwer Nath Jha, Yadupati Mishra, Jagdish Jha. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Bhagalpur, Bihar. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra, Sāhitya Śāstra.

Jha, Yogeshvar. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, Sāṅkya-Yoga. ***b.*** 01.05.1924, Virsayar, Mithila, Bihar. Rtd. Principal. ***Gp.*** P. Madhava Chaudhari, Yadupati Mishra, Ishvaranatha

Mishra, Ravinatha Jha. *Add.* Virsayar, Via-Pandauli, Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya, Sāṅkya, Yoga.

Jhala, Laxman Singh Ajmal Singh. Ph.D. *b.* 23.04.1963. Prof. K.C. Seth Arts College, Veerpur, Distt. Kheda. *Add.* Vill Kevadiya (Vardhara) Post Limarvadha Tehsil Veerpur, Distt. Kheda. *Spl.Ref.* Vedānta.

Jhala, Suhas Dharmendrasingh. Ph.D. *b.*24.02.1955. Princ. B.D. Arts College Manik Chauk Ahemdabad. *Add.* 603, B Manisha Appartment Near Rajpath Club, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Jhamba, Jagadishachandra. M.A.. *Age.* 51 yrs. Teacher (PGT). *Add.* C-3/428, Janakpuri, New Delhi – 110058. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Jhoshi, Mahakant Bhai J. Ph.D. *b.* 25.05.1969. Prof. Pramukhswami Science & H.D. Patel Arts College, Near Railway Station Kadi. *Add.* 13 Mangal Murti Society, Near Dr. House. Kadi, Distt. Mehsana. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Jhujarved, Vitthalacharya Sheshacharyasunu. Vidvān. *b.* 08.04.1931, Bagalkot, Bijapur, KT. Inspector of Sanskrit Pathashalas, Govt. of KT. *Gp* Keshvacharya. *Bks.* Satyabodhavijayaḥ. *Add.* 2833, Gokul Road, V.V. Mohalla, Mysore KT. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Jigyasu, Brahmdatt. Studied in Vyākaraṇa. Pūrvamīmāṃsā. *b.* 1892. Distt. Jalandhar. Acharya. Sadhu Aashram. Pulkali River. Aligarh. Virjanandashram. Amritsar. Gandasinghwala. *Gp.* Swami Poornanand Saraswati. Devnarayan Tiwari. M.M. Pt. Chinnaswami Shastri. *Bks.* 01. Aṣ-ādhyāyībhāṣya. *Expired on* 21.12.1964. *Spl.Ref.* Established Panini College on Motijheel, Kashi. Awarded by Govt. of India for his contribution in Skt.

Jivandhar, Nyaytirth. *b.* Shahgarh, Sagar M.P. Principal, Seth Hukumchand Jain Skt. College Indore M.P. *Bks.* 01. Jainatattvavivekaḥ. *Expired in.* 1974.

Jogal, H.R. Ph.D. *b.*05.02.1970. Prof. Smt. C.P. Chaukse Arts & Commere College Rajendra Bhawan Road Vairawal. *Add.*Vill Khamidana, Tehsil Kesod Distt. Junagarh. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, (Tarktirth), Laxman Shastri. Nyāya, Vedānta. *b.* 27.01.1901, Pimpalner (Dhule) MH. *Gp.* K. Rajeshwar Shashtri Dravid, Vamacharan Bhattacharya. *Bks.* 11. Śuddhīsarvasvam, Ānandamīmāṃsā, Jyotinibandha, Vaidika Saṃskṛti kā Vikāsa. *Spl.Ref.* Titled as 'Tarkatirtha (1922) by Calcutta Skt. College, Rashtriya Skt. Pandit (1973) and Padmabhushan (1976) by President of India. Chief editor of 'Dharmakosha' 1930-32. He was freedom-fighter.

Joshi, Anand Vallabh. M.A., *b.* 30.11.1942. Vadalu, Pithauragarh, U.P, Principal Sri Sarasvati Skt. Vidyalaya, Jogath Uttar Kashi. *Gp.* Dukhaharana Acharya, Narmadesvara Prasada Shukla, Batukanatha Sastri. *Add.* Sri Sarasvati Skt. Vidyalaya, Jogath, Uttar Kashi (U.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Aniruddha. M.A., Ph.D. *b.* 15.06.1943, Kapurthala, Punjab. Teacher. *Gp.* D.N. Shukla. Punjab Univ., Chandigarh (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Anuradha. M.A., B.T.. *b.* 08.10.1935. Vice-Principal, Govt. Senior Secondary School, New Delhi – *Add.* A-02/182, Janakpuri, New Delhi – 110058.

Joshi, Aravinda Harsadaraya. M.A., Ph.D.. *b.* 05.01.1934. Vyara, Surat. Lecturer, M.T.B. Arts College, Surat. *Gp.* J.T. Parikh, Dr. A.D. Sastri. *Add.* 102, Kalpana Society, Part – 02, Rander Road, Surat – 395009 (GJ). *Spl.Ref.* Vedānta, Sāhitya.

Joshi, Archana. M.A., M.Phil. Professor, Skt. Dept. *Ps.* 02. *Add.* Govt. Skt. College, Indore (M.P.)

Joshi, Arun Bhai Shantilal. Ph.D. *b.* 25.03.1936. Prof., Shamaldas College, Bhav Nagar Univ. *Add.* Shantikunj Pushpa Society Heel Drive BhavNagar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Arvind Bhai Harshadrai. Ph.D. *b.* 05.01.1934. Prof. M.T.B. Arts College Campus

Athwalainse Surat. *Add.* 101 G. Kalpana Society Near Jain Mandir, Surat. *Spl.Ref* Vedānta Śāstra.

Joshi, B., Rajeshwara, Shastri. *b.* 13.09.1955. Dharwad. *Add.* Shastriwada, Haletaluk, Kacheri Gali. Dharwad, KT – 580001. *Ph.* (0836) 446869. *Spl.Ref.* Nyāya Choodamani, Vidvanvidyabhushan.

Joshi, Balakrishna Dattatraya Kheda-gamvakara. Vedaratna. *b.* 21.07.1916. MH. Vaidika Veda exponent. *Gp.* LaksSmana Shastri. *Add.* Kailash Bamanbari, J. Phule Road. Dombiwali (West), Thane Dist. MH. *Spl.Ref.* śuklayajurveda Mādhyandina-vājasaneyī-śākhā.

Joshi, Bhalachandra Shastry. Navya Nyāya, Vedānta Mīmāṃsā, Vyākaraṇa, Jyotiṣa, Alaṅkāra Śāstra, Dharam Śāstra. *b.* 15.06.1919. Rtd. Principal Jagadguru Shankaracharya Sanskrit Pathshala, Dharwad. *Bks.* 04. *Spl.Ref.* As illustrious scholar of traditional Sanskrit learning, Pt. Joshi has not only been honored by many Peethadhipatis with various title but also good number of them have been taught by him, President Awardee.

Joshi, Bharti Ben R. Ph.D. *b.* 26.01.1964. Prof. Arts & Commerce College, Motipura Himmat Nagar. *Add.* 8 Jalbindu Society VatvaRoad, Ghodhasar Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Joshi, Chandu Bhai Chiba Bhai. M.Phil, Ph.D. *b.* 01.06.1942. Prof. Smt. J.P. Shrof Arts College, Valsad. *Add.* 105, Jal Kamal Society Beejalpur Road, Navsari Distt. Valsad. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Dattaraya Ghanashyam. B.A., M.Ed.. *b.* 24.03.1930, Keravadi, Karnatak. *Add.* Karnatak Univ., Dharwar (KT).

Joshi, Deepak Kumar P. Ph.D. *b.*13.01.1970. Prof. Shri K.N.S.B.C.Arts & Commerce College Kheralu Distt. Mehsana. *Add.* Vill. Post Madropur Tehsil Kheralu Distt. Mehsana. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Dharmanand. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.* 24.11.1961, Madhyavali, U.P. Principal. *Gp.* Manishirama Brahmachari, Shyama-sundara Sharma. *Add.* Shri Gauri Shankar Skt. Mahavidyalaya, Govatsa, Kanalaudhina, Pithauragarh (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Durga N. Ph.D. *b.*22.03.1958. Prof. Yogiji Maharaj College Yogi Nagar Dhari. *Add.* Spandan Yogi Nagar Dhari Distt. Ambreli. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Joshi, Girishachandra. Acharya in Sāhitya. *b.* 13.11.1942, Deval Vishrala, Almora. U.P. Teacher. *Gp.* Pt. Mohanachandra Joshi, Dineshachandra, Durgadatta Pathak. *Add.* Junior High School, Bheta. Almora (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Gopalprasad. Acharya in Phalita Jyotiṣa. *b.* 31.07.1959, Koda, M.P. *Gp.* Prabhakara Joshi, Dayashankar Vajapei, Nandakishor Shastri, Ganeshadatta Shastri. *Ps.* 01. *Add.* Government Sanskrit Mahavidyalaya. Ujjain (M.P). *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Joshi, Gunavant. Acharya in Sāhitya, Shiksha-shastri. *b.* 05.11.1962, Chayarada, Gujarat. *Gp.* Narayana Mishra, Lalaji Bhai Motha. *Add.* Shri Shankaracharya Abhinava Sachidananda Tirtha Sanskrit Mahavidyalaya, Dwaraka–35(GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Haresh Arunbhai. M.A. in Vedānta, B.Ed., *b.*15.12.1963, Porbandar (GJ.), *Bks.*05. Nītiśatakam, Svapnavāsavadattam, Karṇa-bhāram, Saṃskṛta Sāhitya kā itihāsa, Vedānta darśanam. *Ps.*03. *Add.* Bhaktipark, Plot No. 2256 – C/6, Fulwadi Chok, Hill Drive, Bhav Nagar. – 364002.

Joshi, Harish Chandra. Acharya in Sāhitya, B.Ed. *b.* 12.04.1954, Jaspur, Almora, U.P. Teacher. *Gp.* Asharam Upaddhyay, Mansharam Shastri. *Add.* Muradabad, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Hem Chandra. M.A., Acharya, Ph.D. Tradition in Sāhitya, Nyāya, Mīmāṃsā. *b.* 31.07.1925. Allahabad, U.P. Rtd. Prof. Deptt of Skt. Gorakhpur Univ. *Bks.* Udayanā-cāryakṛita Nyāyakusumāñjalī *Ps.* 80. *Spl.Ref.* Columbo Plan Prof. at Tribhuwan Univ.

Kathmandu for 2 Years, Śāstra Chudamani at Gorakhpur Univ., Founder Member and Life member of Akhil Bharatiya Skt. Parishad, Lucknow, President Awardee.

Joshi, Jagadishsarana Sharma. Acharya. *b.* 22.01.1930, Moradabad, U.P. H.O.D. of Vyākaraṇa. *Gp.* Sudarsanaacharya, Premashankar Tripathi. *Add.* Sri Ramanuj Sri Vaishanav Skt. Mahavidyalaya, Haridwar (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Joshi, jagdish Bhai Shantilal. Ph.D. *b.* 15.04.1947. Prof. Arts & Commerce College, Motipura, Himmat Nagar Distt. Sambharkanta. *Add.* 6- Swastik Society Nava Road, Mahaveer Nagar, Himmat Nagar Distt. Sambharkanta. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Jagriti Bhalchandra. Ph.D. *b.*26.11.1963. Prof. Arts & Commerec College Balasinor. *Add.* A-51, Gokulesh Society Balasinor. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Joshi, Jaidevi Ben J. Ph.D. *b.* 19.04.1963. Prof. J.M. Shah Arts College Jambusar. *Add.* 11-B Rajnigandha Near Super Market, Muktampur Distt. Bharuya.

Joshi, Jaishri Ben Shantilal. Ph.D. *b.*29.05.1967. Prof. Nagarpalika Sanchalit Mahila Arts, Commerce & Home Science College Gondal, Distt Rajkot. *Add.* Joshi Akshardham Society Street No. 3, Block No. 26, Gondal. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Jaji Ram Purushottam. Kāvyatīrtha, Sāhitya, Siksashastri. *b.* 09.04.1924, Roha, Raimad, MH. *Gp.* Shankar Shastri Gadagila, Shridhar Shastri, Harihar Jha. *Bks.* 01. Śrīśanimahātmyam, Prākṛtakāvyānuvādaḥ. *Add.* 1768, Ganesh Nagar, Dr. Ambedkar Marg, Sangli – 416416 (MH). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Jyotsana Ben Mohan Lal. Ph.D. *b.* 04.08.1944. Prof. Shri J. S. Aayurved College Road Nadiyad. *Add.* Shri Bhagwat Niketan, Dakor Road, Nadiyad. *Spl.Ref.* Alaṅkāra.

Joshi, Kailash Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A.. *b.* 13.05.1957, Thikuli, Nainital, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Pt. Padmanarayana Tripathi, Pt. Ghanasyam Shastri, Mana Sharma. *Add.* Skt. Mahavidyalaya, Kashipur, Nainital. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Kashinath Shastri. Nyāyaratna. *b.* 01.02.1909, Narsovadi, Kolhapur, MH. *Gp.* Vishnu Shastri, Hariram Shukla. *Add.* Shrimad Adya Shankaracharya Bharati Bhavan Muth, Satara, (MH). *Spl.Ref. Nyāya*

Joshi, Kashinath Someshvar. Acharya in Nyāya. *b.* 1940. Narsovadi, Kolhapur, MH. Teacher (Nyāya). *Gp.* Kashinath Shastri Joshi. *Add.* Shri Shankaracharya Muth, Satara (MH). *Spl.Ref.* Nyāya.

Joshi, Kedar Narayan. M.A., Acharya in Sāhitya, Ph.D., Vyākaraṇa Tīrtha. *b.* 03.04.1948. Kannaud, Devas, M.P. Prof. & HOD Dept. of Skt., Vikarm Univ. Ujjain. *Gp.* Dr. Rewa Prasad Dwivedi, Dr. Ramnihal Sharma, Dr. Laxman Narayan Shukla. *Sp.* Dr. Ramesh Chandra Sharma. Dr. Ramadhar Malviya. *Bks.* 04. Śrī Pādaśastrī Hasūrakara Vyakti avam Abhivyakti, Saṃskṛta Kāvyaśastra aura nirālā, Bhāratīya Saṃskṛti, Saṃskṛta Kāvyeṣu Vaidika Cintanasya Prabhāvaḥ. *Ps.* 50. *Add.* Vagartha B-2/05, Mahananda Nagar, Ujjain M.P. *Spl.Ref.* International Educator Award, Best Citizen of India Award, Vagarth Samman, Samaj Ratna Samman.

Joshi, Kedardatt. Acharya in Jyotiṣa. *b.* 1910. Almoda. Lect. Skt. College. Kashi. *Gp.* Haridatt Joshi. Pt. Baldev Pathak. *Bks.* 17. Grahagaṇitādhyāyaḥ, Vāsanābhāṣyam, Marīcibhāṣyam, Grahalāghavam. Muhūrta-cintāmaṇī. *Spl.Ref.* Karmkāṇḍa & Jyotiṣa.

Joshi, Keshav Bhai Jairam Bhai. Ph.D *b.*01.06.1958. Prof. Konkrej Arts & Commerce College Thara. *Add.* Vill Jesangpura, Tehsil Patan. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Joshi, Keshavaram Rao. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D.. *b.* 07.04.1928, Rangari, Chindwada, M.P. *Gp.* Ambadasa Shastri Pandeya, Shankar Shastri, Pt. Harirama Shukla. *Bks.* 02. Nīlakaṇ-havijaya (Kāvya), Rahasyamayī (Nataka). *Add.* 2/2, M.I.G. Colony, Banjari Nagar, Nagpur (MH). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Joshi, Krishan Kant. M.A., Ph.D. ***b.*** 17.06.1958. Head of Abhilekha, Sindhiya Prachya Vidhya Sodh Pratishthan, Vikram Univ. Ujjain. ***Gp.*** Pt. Ramchandra Joshi. ***Bks.*** 01. Śrīmad-bhāgavata Meṃ Bhakti Rasa kā śāstrīya Nirupaṇa. ***Add.*** 123, Mangal Colony Ujjain. ***Spl.Ref.*** Traditional Pandit & Yajñika.

Joshi, Kunj Bihari. M.A., Ph.D. ***b.*** 1952. Prof. Patracharya Mahavidyalaya, Delhi Univ. ***Bks.*** 01. Śrīdāmakāvyam.

Joshi, Labhshankar Mohanlal. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.***20.11.1953, Jalalpur, Amrethi, Gujarat. Asct. Prof., Sanskrit Mahavidhyalaya, Univ. of Baroda. ***Gp*** Dr. Arunodaya Jani, Suresh Chandra, Pt. Laxmishankar Shukla. ***Add.*** 5, Sonipol, Vodadara. Gujarat. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Joshi, Lal Shankar Mohan Lal. Ph.D. ***b.*** 20.11.1953. Asct. Prof. Deptt. Of Sanskrit, M.S. Univ., Varodara. ***Add.*** C-139, Rajlaxmi Society Juna Padra Road, Varodara. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra, Jyotiṣa Śāstra.

Joshi, Laxmesh Vallabha G. Ph.D. ***b.*** 27.03.1935. Prof. Sanskrit Deptt. Bhasha Sāhitya, Gujrat Univ., Ahemdabad. ***Add.*** Bhardwaj 6, Roopal Society Narayan Nagar, Paldi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Joshi, Leeladhar. Shastri, Acharya, M.A., Ph.D., ***b.***15.12.1963, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Bhuwan Chandra Tripathi, Narayan Dutt, Bhuwan Chandra Joshi. ***Add.*** Govt. Inter College. Almora, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Madanmohan. Acharya in Sāhitya, M.A., Sikshashastri. ***b.*** 20.05.1945. Teacher, Ramjas Senior Secondary School, Anand Parbat, Delhi. ***Add.*** B-100, Gali NO. 6, Bhajanpura, Delhi – 110053.

Joshi, Madhav Ganesh. Shastri, Kāvya-Vyākaraṇatīrtha, Sāhitya-Visarad. ***b.*** 1918. Rt. Teacher, Vidya Mandir, Nijhani, Belgaon, KT. ***Gp*** Laxman Shastri Marugudakar. ***Bks.*** 01. Prāthamika Pāṇinīya vyākaraṇa (English, Kannada, Marathi). ***Add.*** Alandi, Devachi, Pune– 412105 (MH). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra-Śāstra, Vyākaraṇa.

Joshi, Mahakant Jayantilal. M.A., Ph.D. ***b.*** 25.05.1969. Kapadwanj, Gujarat. Asst. Prof. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 13. Mangalmurti Society, Karan Nagar Road, Kadi–Di– Mahsanauttar. Gujarat. ***Ph.*** (02764) 65474.

Joshi, Mahaveer Prasad. Acharya in Sāhitya, Āyurveda. ***b.*** 1914. Vill. Dundlod, Dist. Jhunjhunu. Chairman, Sāhitya Samiti, Rajgarh, Secretary Bhawani Devi Hospital. ***Bks.*** 22. Pratāpacaritam, Prārthanāpuṣpāñjaliḥ, Vedanānīvedanam, Pañcatantram, Rudrāṣ-ā-dhyāyī. ***Expired in*** Feb. 2002. ***Spl.Ref.*** Ayurveda & Published many Skt. articles in Skt. Ratnakar & Bharti Monthly Magzines

Joshi, Maheshchandra. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna. ***b.*** 20.08.1928, Jeschuda, Nainital, (U.P.). Asstt. Teacher. ***Gp*** Ghanashyamadatt Shastri. ***Add.*** Shri Ramtirth Bhawan, Haridwar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Malti Ben Jamiyatram. Ph.D. ***b.*** 07.08.1941. Prof. Shri M.R.D. Arts. College Chikhli Distt. Valsad. ***Add.*** 38-39 Krishna Kunj Laxmi kant Society, Ashram Road, Katargam. Surat. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Joshi, Manishankar Jagajeevan Shastri. Shastri. ***b.*** 04.01.1914, Umrali, Junagarh, Gujarat. Teacher, Shri Manikabai Sanskrit Pathashala. ***Gp*** Shankarlal Laxmiram Joshi, Baya M. Dixit. ***Add.*** Behind Gopinath Mahadev Mandir, Near Court, Porbandar – 360575 (GJ). ***Spl.Ref.*** Śuddhādvaita-vedānta.

Joshi, Manohardatt. Acharya in Jyotiṣa, B.Ed.. ***b.*** 01.03.1958. Teacher. ***Add.*** Sadgurudham Mandir, Dr. Mukherji Nagar, New Delhi – 110009. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Joshi, Mansukhalal Brajlal. M.A. ***b.*** 25.11.1937, Janpur, Gujarat. Asct. Prof. & Head. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Saurashtra University, Kalavad Road, Rajkot – 360008 (Gujarat). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Joshi, Meenakshi. M.A., Ph.D. ***b.*** 27.12.1958. Jabalpur. ***Psw.*** 03. ***Add.*** 975. South Civil Lines. Jabalpur (M.P.). ***Pin.*** 482001.

Joshi, Milind S. Ph.D. ***b.***09.11.1974. Prof.

Sanskrit College M.S. Univ., Varodara. ***Add.*** B-61, Payal Park Society, Near Bright School, VIP Road Karelibag, Varodara. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra, Vyākaraṇa.

Joshi, Moreshvar Tryambak Shastri. Kāvyatīrtha, Smṛtitīrtha, Dharmaśāstra. ***b.*** 1924, Yelambaghat, MH. ***Gp*** Vinayak Shastri Tillu, Achyut Shastri Padhve. ***Bks.*** 01. Mahārāṣ-ra – paṇḍitavaidikajñānām 750 Saṅkhyakānām Parichayaḥ. ***Add.*** Madhasamor, Igatpuri, Nasik – 422403 (MH). ***Spl.Ref.*** Kāvya, Smṛti.

Joshi, Motilal. Acharya in Sāhitya, Vyākaraṇa, Darśana. Kāvyatīrtha. ***b.*** 1935. Vill. Badijodi, Teh. Shahpura, Distt. Jaipur. Principal, Maharaja Skt. College, Jaipur. Asst. Director, Skt. Education Directorate, Jaipur. Syndicat Member – Governer Nomini – J.R. Raj. Skt. Univ. Jaipur. ***Bks.*** 02. Kārakamīmāṃsā. Prabodha Chandrikāyāh vimarśaḥ. ***Spl.Ref.*** Established Rajasthan Teacher Training College. Shahpurabag. Jaipur.

Joshi, Nalini. M.A., Ph.D. Asst. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Govt. Skt. College, Indore (M.P.).

Joshi, Narayandutt. Acharya in Navya, Vyākaraṇa. ***b.*** 01.09.1956, Bheta, Nainital, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Sitaram Shastri, Shaligram Mishra. ***Add.*** Shri Mahadevagiri Skt. Mahavidyalay, Haldwani, Nainital. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Joshi, Natavaralal. Acharya in Sāhitya, M.A.. ***b.*** 24.11.1936, Lakshmangarh, Rajasthan. Asst. Prof. ***Gp.*** Tikaram Tripathi, Ghanashyama-chandra Shastri. ***Add.*** Shri Rishikul Brahmacharyashram Skt. Mahavidyalaya, Lakshmangarh (RJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Navneet Bhai Jayanti Bhai. Ph.D. ***b.*** 18.10.1964. Prof. Smt. J.C. Dhanak Arts & Commerce College Bagsara Distt. Ambreli. ***Add.*** Yashash 56/B, Vrindawan Park 2, Varsada Road Ambreli. ***Spl.Ref.*** Purāṇa.

Joshi, Neeraben P. Ph.D. ***b.***17.10.1947. Prof. Smt. R.D. Shah Arts & V.D. Shah Commerce College Dholka, Ahemdabad. ***Add.*** 21 Sumeru Banglow Ramdev Nagar Satelite Road, Ahemdabad . ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Joshi, Pankhuri. Ph.D. ***b.*** 21.05.1983, Guest Asst.Prof., Maharshi Panini Skt. Univ. Ujjain M.P. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 13, Dashhara Maidan, Ujjain, M.P.

Joshi, Paramaraj. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 10.12.1952, Chabira, Bajhanga, Nepal. Head of Deptt. of Sāhitya. Gp. Ghanashyam Shastri. ***Add.*** Shri Baijanath Sanskrit Mahavidyalaya, Morabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Prabhakar. M.A.. ***b.*** 10.10.1933, Koda, Dhar, (M.P.). Principal, Govt. Sanskrta Mahavidyalaya, Ujjain, (M.P.). ***Ps.*** 02. ***Add.*** 40, Pan Dariba, Matrichchaya, Ujjain – 456001 (M.P.). ***Spl.Ref.*** Purāṇa, Yajurveda, Dharma Śāstra.

Joshi, Prafulla Kumar Vishvanath. Ph.D. ***b.***08.05.1957. Asct. Prof. Sanskrit deptt. Sardar Patel Univ., Aanand. ***Add.*** D-22, University Staff Colony Vallabh Vidhya Nagar Aanad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Pragya Ben Yogesh. Ph.D. ***b.*** 06.12.1958. Prof. Maharshi Vedvigyan Acadamy 3-B, High Land Park Society, Ahemdabad. ***Add.*** S-3, Kriti Appartment, Nehru Park, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra.

Joshi, Praksh Chandra. Acharya in Sāhitya MA, B.Ed, Ph.D,***b*** 15.06.1981. Lecturer Gurukul Mahavidyalaya, Haridawar. Ps *10* ***Add.*** Gurukul Mahavidyalaya, Jawala pur, Gurukul Kangri, Haridawar -249404. *M* 9456319195.

Joshi, Pramodashankar M.A. (Skt. Hindi), Ph.D.. ***b.*** 10.10.1951, Maler Kotla, Sangrur, Punjab. Asst. Prof.. Gp. Dr. D.K. Gupta, Dr. Rabindra Ravi. ***Add.*** Govt. College, Darabassi, Patiala (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Praphullachandra Devshankar. Acharya in Sāhitya, Shiksashastri. ***b.*** 22.04.1958, Chaparada, Junagarh, Saurashtra, GJ. Asst. Prof. Gp. Pt. Shankarlal Shastri, Pt. Shastri. ***Add.*** Jagadaguru Shri Ramanandacharya Adarsh Sanskrit Vidyapeetha, Girnar Road, Junagarh (Gujarat). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Praveen Chandra Prabha Shankar. Ph.D. *b.* 20.01.1949. Prof. Shri V.D. Kankiya Arts College, Shri M.R. Sanghvi Commerce College, Gurukul Road, Sabharkundla. ***Add.*** Shashidhar, Yugantar Society, Near S.T. Deppo, Sabharkundla, Amreli. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Prhlad R. M.A. (Skt), M.Sc (Psycho), Shiksha Acharaya, Vidyavaridhi. ***b*** 23-06-1971 Gulbarga. Asct. Prof. Dept. of Edu., Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Trupati ***Bks*** 1. Adhyāpakaśikṣā. ***Add.*** Dept. of Edu., Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Trupati – 517064 ***Ph*** 08772287548 ***M*** 9441394486, ***Email*** joshiprtpty@gmail.com

Joshi, Purushottam Harisharma. M.A.. ***b.*** 08.02.1939, Baroda, Gujarat. Sanshodhan Adhikari. Gp. Dr. S.S. Bhave, Dr. Arunodaya Jani, Dr. S.G. Kamtavala. ***Add.*** M.S. Vishwavidyalaya, Lokmanya Tilak Marg, Baroda (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Joshi, Rajni Bhai Jaishankar Bhai. Ph.D. ***b.*** 05.10.1944. Prof. Maharaja Bhagwat Singh ji Arts & Commerce College Gondal Distt. Rajkot. ***Add.*** 13-A, Yugdharma Sankul, Near Geeta Mandir, Rajkot. ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Joshi, Rakesh Kumar Natwarlal. Ph.D. ***b.***28.11.1967. Prof. Arts Commerce College HimmatNagar Distt. Sambharkanta. ***Add.*** 47, Shanti Park Near Chitrakut Society Himmat Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Joshi, Ramchandra. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., ***b.*** 16.09.1927. Rtd. Principal. ***Gp.*** Pt. Dayashankar Vajpeyi. ***Add.*** 123 Mangal Colony Ujjain. ***Spl.Ref.*** Veda, Jyotirvid, Paurohitya Karma.

Joshi, Rasik Bihari. M.A, D.Lit.. ***b.*** 1929. Byawar (Rj.). ***Bks.*** 05. Mohabhaṅga, Karuṇāka-ākṣa-laharī, Sārasvatam, Prajñā-pārijātam, Śrī-govardhanagauravam.

Joshi, Rasik Vihari. Honours (Hindi), Shastri, M.A., Ph.D., D.Lit. Prof. of Skt. & Investigator, El Colegio de Maxico. ***Bks.*** 35. Rādhā-sahasranāma, Vide di un Saggio Parma, The Universal Truth, Lakṣmīnṛsiṃhasahasranāma Stotra, Cantos a la Diosa de la Sabiduría. ***Ps.*** 68, ***Add.*** CEAA, El Colegio de Mexico, Camino Al Ajusco 20, Mexico DF 01000. ***Ph*** 11077140 ***Fax.No.***645-04-64 ***Spl.Ref.*** French, Grammar, Literature, Indian Philosophy, Religion, Yoga & Meditation, poet. Award from U.P. Skt. Academy, Honorary Doctorate Universidad de oriente Cumana, Venezuela 2006, Dalmia Award 2001, Birla Foundation Award 2002, Sāhitya Academy National Award 1996., Delhi Sanskrit Academy Award 1989, President of India Award 1984, Harita Rishi Award 1984 etc. Visiting Prof. in Univ. of Warshaw (Poladnd,1964-65), Budapast(1964-65), Czechoslovakia (1964-65), Cambodia (1965-66), Columbia (New York, 1969-70) Maxico (1968-69, 1979-83, 1995 to present)

Joshi, Revadhar. Acharya. ***b.*** 05.04.1927, Pithauragarh, U.P. Rtd. Prof. ***Gp.*** Chandrashekhar Shastri, Sumiran Mishra. ***Add.*** Near Indra Pharmacy, Tallital, Nainital.

Joshi, Revadhara. M.A. ***b.***15.05.1939. Teacher, Govt. Higher Secondary School. Sakti Nagar, Delhi. ***Add.*** C-2/13 Yamuna Vihar Delhi–110053. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Rita Ben Jayant Kumar. Ph.D. ***b.***26.12.1967. Prof. Mahila Arts. College Motipura Himmat Nagar. ***Add.*** 78 Sharda Kunj Society Motipura Himmat Nagar. ***Spl.Ref.*** Vadānta Śāstra.

Joshi, Sailesh Kumar Keshav Lal. Ph.D. ***b.***01.06.1972. Prof. Smt. M.C. Desai Arts & Commerce College, Sambharkanta. ***Add.*** 6, Rambagh Society Thalota Road VishNagar Distt. Mehsana. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Sanat B . Ph.D. ***b.*** 08.01.1965. Prof. Shri & Smt. P.K. Kotawala Arts College Rajmahal Road Patan, Gujrat. ***Add.***10, Ganesh Nagar Society, Near Umiya Nagar, Patan. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Santosh Kumar. M.A., Ph.D., ***b.*** 25.07.1977, Gandwari. ***Add.*** P.O. Manilal Gandwari. H.No. 765. Dist. Nizamabad. (A.P.). 503 114. ***Ph.*** 9441054965. ***Spl.Ref.*** Skt. Literature.

Joshi, Shastri, Veneemadhava. M.A., Ph.D. *b.* 20.05.1949. Dharwar. ***Bks.*** 07. ***Ps.*** 35. ***Add.*** Bhamati Sadhakeri. Bendre Marga. Dharwad. KT–580008. ***Ph.*** (0836) 446788.

Joshi, Subhadra. Acharya in Sāhitya, M.A. (Edu.), B.Ed., Ph.D. ***b.*** 18.08.1958 Junjhnu. ***Bks.***01 ***Add.*** 28, Rajsthali, Shahpura Bag, Amer Road, Jaipur.

Joshi, Taradatta. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 20.02.1935, Agaspari, Almora, U.P. Asstt. Prof. ***Gp.*** Ramalal Vedapathi, Vidyadatta Bahuguna. ***Add.*** Gurumandalashram Skt. Mahavidyalaya, Haridwar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Trilochan. Acharya in Sāhitya, M.A.. ***b.*** 30.09.1959, Haldwani, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Bhuvanachandra Tripathi, Bhuvanachandra Joshi, Acharya Narayanadatta Joshi. ***Add.*** Shri Kurmachal Anglo Skt. Mahavidyalaya, Champawat, Pithauragarh (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Joshi, Uma. M.A., Ph.D. Asst. Prof. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Joshi, Umashankar. ***b.*** 02.01.1944, Harda, Hoshangabad Dist., M.P. Principal. ***Gp.*** Ramavatar Shastri, Shambhunath Tripathi, Dr. Laxmananarayana Shukla. ***Add.*** Shri A. Dvija Sanskrit Vidyalaya, Kailash Marg, Malhar Ganj. Indore (M.P.).

Joshi, Varsha Bhagwanji. Ph.D. ***b.***18.03.1968. Prof. Dr. V.R. Gorhaniya College Khijdi Plot Porbander. ***Add.*** Plot No. 13, Narsan Tekri Society Kheriya, Near Tirupati Transport, Porbandar. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Joshi, Vasvanand. Acharya in Yoga, B.Ed. ***b.*** 03.03.1960. Teacher, Yoga & Sanskrit. ***Add.*** D-136, Shakarpur, Delhi- 110092. ***Spl.Ref.*** Yoga Śāstra.

Joshi, Vikram Krishnalal. Ph.D. ***b.*** 07.07.1964. Prof. Arts Commerce College Mansa Distt. Gandhinagar. ***Add.*** 7, Shanti Banglow Near Prerna High School Janta Nagar Chandkheda, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Joyisa, Vasudev K.N. M.A., Vedānta Vidvān, B.Ed. ***b.*** 02.05.1952, Chikmagalur, KT. Sanskrit Pandit. ***Gp*** Ramchandra Somya ji. ***Add.*** Kigga (Post), Sringeri, Chikmagalur- 577139 KT. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Jugarana, Manohar Lal. M.A, Ph.D., D.Litt. ***b.*** 30.10.1955. Paudi-Gadhwal. Rtd. Prof., HN Bahuguna V.V., Gadhwal. ***Bks.*** 08. Uttarākhaṇda Gauravam in 8 Vol. ***Ps.*** 40.

Jyotisai, Shivram. ***b.*** 07.08.1911, Barela. ***Bks.*** 03. Gāndhī-Caritamahākāvyam, Neharū Vaṃśamahākāvyam, Hariyāṇā Vaibhavam.

Jyotsyar, Narayanan K.K. Traditional Education. ***b.*** 06.11.1922, Palakkad, Kerala. Astrologer. ***Add.*** Koduttipalli, Palakkad (Kerala). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

K

K. K. Abdul Majeed. M.A., Sanskrit Advaita Vedānta. ***b.*** 05.02.1975, Kozhi Kode, Kerala. Astt. Prof. Univ. of Calicut. ***Gp.*** Dr. V.N. Dhamodar Unni., Prof. Dharmaraj Adatt. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Abdul Majeed K.K., Koyiloth Kuni, Ulliveri, Koyilandy, Kozhikode, Kerala – 673620. ***Ph.*** 09745300125.

Kachhwah, Hetram. Acharaya, Ph.D. ***b*** 12-08-1957 Katani (M.P.) Reader Dept. of Prachin Rajyasastra, S.S.S. Vishwavidyalaya. ***Ps.*** 08. ***Add.*** Prof. Colony Sampoornanad Skt. Vishwavidyalaya. ***M.*** 9473969683.

Kagadiyala, Brahmanand. M.A. ***b.*** 02.11.1938, Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Kidwai Nagar. ***Ps.*** 02. ***Add.*** D-G-845, Sarojini Nagar, New Delhi – 110023. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Kagrana, Rajesh Ranchor Bhai. Ph.D. ***b.***27.11.1970. Prof. Shri M.C. Rathva Arts College Sanskrit Deptt. Pavi, Jetpur Varodara. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Near Post office Handiya Bazar, Vill Post Jetpur Distt. Varodara. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Kahadkar, Gopalacharya. Maharashtra. *Gp.* Shri Neelkantha shastri. *Bks.* 01. *Spl.Ref.* He wrote Many Comments on chichandrika by Dushakradoddhadini.

Kailagi, Seshacharya. Vidvān, Sāhitya. *b.* 09.11.1912, Mysore, KT. Rtd. Teacher, Purna Pragya Mahadeva Vidyalaya, Udupi. *Gp.* L. Shrinivasacharya, K. Gopal Krishna Shastri, Ramchandracharya Chaturvedi. *Add.* Aparna, 5/1, Sita Vilas Road, Mysore, KT – 570024. *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda.

Kakura, Raghavendracharya R. Jyotiṣa-ratna. *Age.* 60 yrs. (in 1988). *Add.* Shri Krishna Nilayam, P.O. Allipura, Bellary – 583115 (KT). *Spl.Ref.* Jyotiṣa, MādhvaVedānta.

Kala D. Acharya. M.A., B.Ed.. *b.* 1944, Dombivali, MH. *Add.* P.B. Bhagavat Building, Sainathakripa, 46/4, Dombivali (East), Rajaji Road, Dist. Thane, MH – 421201. *Spl.Ref.* Veda & Sāhitya.

Kalawatiya, Purāṇachandra Shastri. Acharya in āyurveda, Sāhitya Ratna. *b.* 10.10.1928. Doctor, Orissa. *Bks.* 01. Aparājita-vadhūmahākāvyam.

Kalia, Ashok Kumar. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 20.04.1944 Bahraich (U.P.) Rtd. Prof. Dept. of Skt. Lucknow Univ. V.C., S.S.V.V., Varanasi. *Gp.* H.H. Shrimad, Abhina Ranganath *Bks.* 07. Lakṣamī Tantra: Dharma aura Darśana, Tantra Adhikārī Nirṇayaḥ of Bhattoji Dīkṣita Pañcarātra Pariśīlana, Puruṣottama Saṃhitā *Ps.* 39. *Add.* B1/19 Kalyan Vihar, Sec-K Aliganj Lucknow – 226024. Ph. 05224041435 M. 09889816504 Mail. a.kalia@rediffmail.com. *Spl. Ref.* Editor of AJASRA Skt. Quarterly Magazine, President Awardee 2009.

Kalla, Badri Nath. Sastri, M.A., Ph.D. *b.* 03.03.1931, Srinagar, J & K. Asst. Prof., Deptt. of Sanskrit, Centre for Central Asian Studies, Kashmir University. *Bks.* 06. Kośura śivamata (Kashmiri), Mānasadarpaṇa (Hindi), Vitastā-māhātmyam. *Ps.* 50. *Add.* Ganpatyar, Srinagar, J & K, Pin – 190001. *Spl.Ref.* Recipient of J&K Rashtra Bhasha Prachar Samiti Award (1979).

Kallayya, Banavari Sivaramayya. M.A. *b.* 04.08.1925, Banavara, Arasikere, KT. Prof., Manas Gangotri Univ., Mysore. *Gp.* Prof. C.R. Narasimha Shastri, M. Sivarama Shastri. *Add.* C.H. 14, 6th Main Saraswatipuram, Near Third Cross, Mysore, KT–570039. *Spl.Ref.* Alaṅkāra-Śāstra.

Klyansundar, Shastri Varagur Ramnath. śiromaṇi (Sāhitya, Vedānta), Ph.D. *b.* 24.03.1911, Varagur, Tanjavur, T.N. *Gp* M.M. Yajnaswami, K. Krishna Shastri. V.Vaidyanath Shastri. *Bks.* Vṛttimīmāṃsā, Ślokatraya-vivaraṇam, Sundararāmāyaṇam (Ed.), Satīvilāsam(ed.), Veṅka-eśaśatakam (Ed.), Bhagavadanudhyāna Campūkāvyam (Ed.), Vicārasāgaraḥ(Ed.), Pātañjalamahābhāśyam: Pradīpo-dyotānnambha--a-īkāsahitam(Ed.), Nītiprakāśikā (Ed.), Hariharādvaitabhūṣaṇam (Ed.), Pāṇinisūtravyākhyā Kalpataruvyākhyā (Ed.), Nyāya-sidhhāntatattvāmṛtam (Ed.), Devakeralam (Ed.). *Add.* 65/2, Vasukala Veethi, Thyagaraya nagar, Madras- 600017 T.N. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra, Vedant Śāstra.

Kamakshi. *b.* 1851, Chaldesh. *Bks.* 03. Advaitadīpikā, Ṭippaṇī (Śrūtimatprakāśaḥ), Ṭippaṇī. *Expired in* 1920. *Spl.Ref.* Vedānta.

Kamal, K. M.A., Ph.D.. *b.* 03.06.1938, Mahabub Nagar, A.P. Asct. Prof., Deptt. of Sanskrit, Nizam College, Hyderabad. *Bks.* 03. Kādambarī Kāvya Suṣamā (Telugu), Vyāsasūktam, Śānti Parvamuloni Sūktulu (Telugu). *Add.* 16, Tulja Guada, M. Market, Hyderabad – 500001 (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kamal, Ratnam. M.A., Ph.D.. *b.* 03.10.1914, Allahabad, U.P.. Rtd. Principal, Ramjas School, Pusa Road, New Delhi. *Gp.* Gaya Prasad Dixit, K.A. Subrahmany Ayyar. *Bks.* 03. Saṃskṛtasahitye Aitihāsika – Sāṃskṛtika parīpreksye Kālīdāsa, Kālīdāsajanma-bhumi, Anveṣaṇama. *Add.* F-1/7, Ishan, Haus Khas, New Delhi – 110016. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kamatchinathan. M.A., Ph.D. *b.* 04.08.1936, Shivgiri. *Bks.* 02. The Tirunelveli Tamil Dialect, Tamila Valama. *Ps.* 50. *Add.* Natrinai, First South Cross Road, Mariappanagar, P.O.

Annamalai-nagar, TN. 608002. *Ph.* 04144 – 38491.

Kamboja, Jiyalal. M.A., M.Lit., Ph.D., Bhasavijnana. *b.* 12.02.1932, Karnal, HR. Senior Asst. Prof., Hindu College, New Delhi. *Bks.* Utkīrṇalekhastabaka Vyākhyāsahita. *Add.* E-46, Guru Nanak Marg, Adarsh Nagar, New Delhi – 110033. *Spl.Ref.* Veda.

Kameshwari, V. M.A., Ph.D. *b.* 20.05.1958, Pattukkottai, Tajore. *Bks.* 20. *Ps.* 10. *Add.* 12. Aiyasamy Road, Nehru Nagar, Chronepet, Chennai – 600044. *Ph.* 2233254.

Kamla Acharya, M.A., Ph.D. *b.*15.10.1954 Rohatak. Lect. DIET, Gurgaon. *Bks.* 01. *Ps.*14. *Add* .H.No.429, Sector-7, Gurgaon 122001

Kamsala, Brjabal. M.A.. *b.* 27.12.1953. Lecturer, Municipal Girls Senior Secondary School, Gole Market, New Delhi. *Add.* 23, Harsh Vihar, Pitampura, Delhi – 110034. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kamtawala, Suresh chandra Govind Lal. Mahamahopaddhyay, M.A., Ph.D. *b.* 14.07.1930, Varodara, Gujrat. Prof. *Gp.* Govindlal Bhatt, S.S. Bhave. *Bks.* Cultural History from Matsyapurāṇa. *Add.* M.S. University, Varodara, Gujrat. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Kanaklata, Devi. Sāhitya Shastri, M.A., Ph.D.. *Bks.* 01. Values in the Works of Kālidāsa. *Add.* H.O.D. of Sanskrit, Women's College, Balangir, Orissa – 767001. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Kanchedi, Lal. M.A., Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 1930 Bilani, Pathariya, Damoh M.P. Asst.Prof., Jain P.G. College Sioni, M.P. & Govt. Skt. College Kalyanpur. *Spl.Ref.* Editor Jain Sandesh Magazine.

Kandapal, Durga Datt. Acharya, Kāvyatīrtha. *b.* 15.10.1917, Mohan Chaura, Almora. Rtd. Principal. *Gp.* Laxmidatta Pathaka, Ayodhyaprasada Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Siddhi Sadan, No. 6, Millital, Nainital, UK. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kandapal, Jayadutt. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 19.07.1925, Kanda, Almora, Uttarakhand. *Add.* Kusumkhera, Haripur Nayak, Haldawani, Nainital, UK. *Spl.Ref.* Veda & Vyākaraṇa.

Kandapal, Ramesh Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 17.02.1925, Almora, (U.P.). *Gp* Shrikrishn Kandapal, Bhagavansahay Sharma. *Add.* Yogasadhana Mandal, Sagar Sarai, Moradabad (U.P.). *Spl. Ref.* Veda & Sāhitya.

Kandapala, Durgadatta. Acharya. *b.* 12.12.1925, Nainital. Rtd. Principal. *Gp.* Krishna Joshi, Sumirana Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Stabari House, Snow View, Mallital, Nainital, UK. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kandela, Jagannath Sharma. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, RāmānujaVedānta & Pūrvamīmāṃsā. *b.* 01.07.1952, Faizabad U.P. Asst. Prof., Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi. *Gp.* Ramavadana Shukla, Narayanacharya, Ramaprasada Tripathi, Devasvarupa Mishra. *Add.* K-22/66, Brahma Ghat, Varanasi, U.P.. *Spl.Ref.* RāmānujaVedānta, Mīmāṃsā, Vyākaraṇa, Āyurveda.

Kandiyoor, Geetakumari. M.A., M.Phil., B.Ed., Ph.D. *b.* 16.03.1967, Mattam, Thrissur, Kerala. Asct. Prof. Calicut Univ. *Gp.* Prof. P. Narayan Namboodiry, Prof. K.N.N. Elayath. *Bks.* 01. Metre in Sanskrit – A Study with special Reference to Vrttavartika of Ramapani vadki. *Ps.* 08. *Add.* Univ. Q. No. C-4, Calicut Univ., P.O. Malappuram, Kerala – 673635. *Mob.* 09447536858.

Kanhe, Vasant Krishna Rav. Acharya in Sāhitya, M.A. Ph.D., *b.* 03.12.1939, Raipur, C.G. *Gp* Pt. Saraswati Prasad Chaturvedi, Dr. S.S. Hasurkar, Dr. R.N. Sharma, Dr. Revaprasad Dwivedi, Pt. Ramnandan Ojha, Pt. Rajendra Choudhari, Karapatri Swami. *Bks.* Vāgbha--akṛta-Aṣ-āṅgahṛdayayasya Sāṃskṛtikamadhyayanam. *Add.* Tatgipura, Raipur C.G. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kanjilal, Dileep Kumar. M.A., Ph.D., B.Litt. *b.* 01.08.1933. Kolkatta. Rtd. Principal Govt. Skt. College Kolkatta. *Bks.* 12. *Ps.* 80. *Spl.Ref.* Visiting Prof. in Ravindra Bharati Burdwan Univ. as visiting Fellow He was selected by Association of commonwealth universities UK. Life member of Ancient Astronaut Society,

USA, BORI, Pune, KSRI Chennai and Asiatic Society. President Awardee.

Kankar, Narayan Shastri. Acharya in Vyākaraṇa, SāṅkyayogaDarśanaa, Sāhitya, M.A., Sāhitya Ratna, Prabhakar, D.Litt., Ph.D., *b.* 30.07.1930, Jaipur, Astt. Prof., Maharaja Sanskrit College, Jaipur. Secretary, Govt. Ayurved College, Jaipur & Sanskrit Vag Vivardhini Parishad, Jaipur. *Gp.* Nawal Kishore Kankar. *Bks.* 29. Abhīnava Saṃskṛta Kathā, Racanābhyudayama Mahākāvyam, Abhīnava Saṃskṛta Subhāṣita Saptaśatī, Saṃskṛta Kathā kautūkam, Vināyakanāmābhinandanama. *Add.* Sumeru Karam Marg, Ramganj, Jaipur. *Spl.Ref.* Recipient of President award & Vaiyakaran Kesari award by Bhartiya vidya propaganda committee U.P. in 1969, Recipient of Rajasthan Govt. & Madras Sanskrit Academy awards.

Kankar, Nawalkishor. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, Sāhitya-Ratnakar & Prabhakar. *b.* 1910, Jaipur. HOD., Sanskrit College, Rajgarh, Alwar. *Gp.* Jamnalal kankar, Pt. Madhusudan Ojha. *Bks.* 27. Yātrāvilāsam, Rāś-ravedāḥ, Śāstrasarvasvam, Prabandhāmṛtam, Dharmkarmasarvasvam. *Ps.* 06. *Expired in* June 1996. *Spl.Ref.* An Extra-ordinary Scholor of Sanskrit literature. Recipient of 'Kavibhushan', 'Kavi Shiromani', Kavichakravarti, Vidyavachaspati, Gadyasamrat, Mahamahopadhyay Titiles & also awarded by Haritrishi puruskar, Magh smriti, Pattabhiramvedmimansa, Guru Gangeshwaranand Smriti Puruskar.

Kansara, Narayan Manilal. M.A., Ph.D. *b.* 25.12.1932, Vishnagar, Distt. Mehsana GJ. Director, Aarsha Akshardham, Gandhinagar. *Gp.* Parabrahma Shri Swaminarayan Bhagwan, Aksharbrahma Shri Guṇatinandan. *Bks.* 47. Vaidika Vimānavidyā, Śabdabrahmollāsa of Udayana Prabhasūri, Pāṇinīya Laghucandrikā, Pañcagranthī vyākaraṇa of Buddhi Sāgarasūrī. *Add.* 17/176, Vidhyanagar Flats, Nr. Himmatlal Park, Ambawadi Area, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Gold Medal by Pustimargiya Samsad, Vishnagar.

Kanta, Devi. Acharya in Sāhitya, M.A.. *b.* 24.12.1961, Mohanghati, Mandi, H.P. Principal. *Ps.* 02. *Add.* S.S. Mahavidyalaya, Dangar, Tehsil-Ghumaravi, Bilaspur, H.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kantawala, Sureshachandra G. M.A. Ph.D. Certificate Course in German French and advance course in linguistics *b.* 14.07.1930. Badodara. Former HOD Dept. of Skt. Pali & Prakrit, Dean Faculty of Arts & Director Oriental Institute M.S. Univ. Badodara *Bks.* 6. Eassy in Skt Literature, Studies in Purāṇas, Legends in Purāṇas *Ps.* 170 *Add.* Shri Ram, Kantareshwar Mahadevs Paul, Bajwada Badodara – 390001 *Ph.* 02652784256 *M.* 09825604603 Email. bhavana.kantawala@gmail.com. *Spl.Ref.* French German. Common wealth Scholarship Holder in 1962 & 1963 Honoured by PM Indra Gandhi in 1983, President Awardee, UK, Italy.

Kantilal, Rajgor Ashwinbhai. Śukla Yajurveda Mādhyndinīśākhā, B.Ed., M.A. Ph.D. *b.* 05.01.1968, Patan, Guj. *Gp.* P.P. Ramdasji, Shri. Shantilal Ji *Bks.* 04 Trikālasandhyā, Mantramañjūṣā. *Ps.* 02. *Add.* Shri Vartantu Skt. Mahavidyalaya, Sola, Bhagwat Vidyapeeth, Ahemdabad- 380061. *Ph.*079-29299-486. *E-Mail.* shastri_akrajgor@yahoo.com *Spl.Ref.* śukla Yajurveda Mādyndinīśākhā. New York, Virginia, Chicago, California, Canada, Switzerland, Germany, U.K.

Kapoor, Satish Kumar. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya), M.A., NET, Shiksha Shastri, Ph.D. *b.* 02.07.1971. Ambala. Asstt. Prof. & HOD, Deptt of Skt. Sāhitya, RSKS Jammu. *Bks.* 07 Bhuvanabhāskarastavaḥ,Candrālokaḥ (With commentary), Vīrabhūmikāvyam (With Commentry). *Ps.* 20. *Add.* . Rashtriya Sanskrit Sansthan, Sri Ranbir Campus, Kot Bhawal, Jammu. *Spl.Ref.* Sanskrit Literature and Criticism Poet, Music, Lyrics, Award received Yuva Pratibha Samman, Skt. Academy RJ, Shresht Shikshak Samman etc., Drama Direction and Music Composition.

Kapur, Premlata. M.A., B.Ed.. *b.* 02.03.1934.

Teacher, Dayanand Model School, Patel Nagar, New Delhi. *Add.* 1057, Sector – 12, Ramkrishnapuram, New Delhi – 110022. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Kapur, Uma. M.A. (Skt. & Hindi). ***b.*** 13.12.1943. Teacher. Govt. Senior Secondary School No. 1. Kalkaji, New Delhi. ***Add.*** E-322, Greater Kailash, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kara, Bhuwaneswar. Acharya, M.A. ***b.*** 24.08.1925. Nayagarh, Orissa. Rtd., Govt. College. ***Bks.*** 03. Doṣaśatakam, Jīvana Darśanam, Pūtaprema. ***Add.*** Bausagadia, Sarankul, Nayagarh, Orissa – 80.

Kara, Dinabandhu. Sāhitya, M.A., Ph.D. ***Bks.*** 01. A Semantic Study of Pāṇini's Aṣ-ādhyāyi. Head, Deptt. of Sanskrit. Rajendra College, Balangir, Orissa-767001. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa. Sāhitya.

Kara, Gangadhar. M.A., M.Phil. Teacher. ***Add.*** Dhenkanal School, Dhenkanal (Orissa). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kara, Kamal Lochan. M.A., Ph.D. H.O.D. of Sanskrit, Dharanidhar College, Keonjhar. ***Bks.*** 01. A Study of Early Sanskrit Linguistic Terms. ***Add.*** Dharanidhar College, Keonjhar, Orissa–758001. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kara, Vasudev. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 06.01.1918, Principal. Macmichel Sanskrit College, Aska, Ganjam, Orissa. ***Bks.*** 02. Gaṇeśastotram, Sarasvatistotram. ***Expired on*** 19.08.2008.

Karamahapatra, Gopal Chandra. Kāvya, Vyākaraṇa, Vedāntatīrtha. ***b.*** 08.12.1954, Mohanpur, W.B. Acharya. ***Gp.*** Hemantakumar Sattirtha, Lambishvar Kāvyatirtha, Vatsalanchana Tarkatirtha. ***Add.*** Nigamanand Saraswat Math Rishi Vidyalay. Hali Shahar, 24 Parganas (W.B.). ***Spl.Ref.*** Kāvya, Vyākaraṇa.

Karmalkar, Pandit Gajanan Ramchandra Shastri. Kāvyatīrtha, Sāṅkhyatīrtha. ***b.*** 1895. Indore Holkar College. Prof. & Vice Principal Holkar College, Indore. ***Bks.*** Lokamānyālaṅkārāḥ, Saundaryasaptaśatī (Tr.), Ramcharita Mānasa (Tr.). ***Expired. Spl. Ref.*** In his student life he used to bring out a Sanskrit journal titled Vidyarthi on montly or fortnightly basis. Acquiring special skill in the compostion of Illustrative Poetry he presented examples of several kinds of Illustrative Poems which are rarely available. Samasyapurti were published in several contemporary Sanskrit journals. He composed several poems on current affairs such as Sanskrit Shiksha Chinakramanam. Mantrisu Driskshepah and Pracheen Panditesu Pradattasyadhikshepasya Kandanam. 100 such miscellaneous poems. In addition to this he has rendered poetic versions of Vairagyasandipani. Dohavali and the utterances of Rahim, Kabir, Dadu and other saints as well as those of Buddha. Confucius and other great men. In his book Lokamānya Alaṅkārāḥ which was in consonance with Prataprudriyam and Ekawli's new poetic patterns, he formulated the symbolic signs of 100 embellished expressions expressing the connotation thereof and thus created new examples many of which depict the life and activities of Tilak jee.

Karpatri, Hari Haranand Saraswati. Vyākaraṇa, DarśanaŚāstra. ***b.*** 1907, Pratapgarh. Shankaracharya, Kashi (U.P.) ***Gp.*** Swami Brahmanand Saraswati, Shri Jeevandatt ji, Swami Vishveshwarashram. ***Sp.*** Prof. Raghu Nath Sharma. ***Bks.*** 17. Vedārtha Pārījātah, Vedasvarūpvimarśa, Veda-Prāmāṇyamīmāṃsā, Śrīvidyāratnākara, Bhaktīrasārṇava. ***Expired on*** 07.02.1982. ***Spl.Ref.*** Established Dharmsangh at Kashi to protection of Indian culture in 1940 & established a Sanskrit school in this camps.

Karra, Venkat Subrahmanyam. Sāhitya Śiromaṇi. ***b.*** 26.09.1929, Raivaram, Chuddapah, A.P. Rtd. Teacher. ***Add.*** 5.4-21-I, Naneppa Nagar, Hindupur (A.P.). ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Karu, Nangesh. M.A., ***b.*** 01.06.1951, Dwarka. ***Bks.*** 02. Mahā Kavī Bhāsa, Golok. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Gop Sanskriti, Rabari Para, Dwarka, Dist. Jam Nagar, GJ.

Karyakar, Sastrapuram R.K. Swaminathan. M.A., Acharya, M.Litt, Ph.D. ***b.*** 10.03.1927. Palghatt, Kerala. Sub-Advisor Shiksha Mantralaya, Govt. of India. ***Bks.*** 03. Śrībadrī-śasuprabhātam, Ṣodaśākṣarīstotraśatakam, Guhyeśvarī stotram. ***Expired. Spl.Ref.*** He has started Śāstra Chudamani Pariyojana, Manuscripology, President Awardee 1998.

Kashiram. M.A., Ph.D.. ***b.*** 05.02.1942, Delhi. Asst. Prof., Hansraj Mahavidyalaya, New Delhi. ***Gp.*** Dr. Satyavrat Shastri, Dr. R.V. Joshi. ***Add.*** C-78, Shakti Nagar Extension, Delhi – 110052. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Kashyap, R.L. Ph.D. ***b.*** 28.03.1938, Mysore. ***Bks.*** 50. Ṛgveda-Saṃhitā (Tr.), Text & Notes (11 Volumes). ***Ps.*** 200. ***Add.*** 63, 13th Main, 4th Block, Jayanagar, Bangalore - 560 011.

Kashyap, Shashi. M.A. (Sanskrit Hindi), Ph.D. Juniour Dip. Gokhal Music Certificate in German French Computer Training Program in Ms Office, Multimadia, Internet. ***b*** 10-06-1954 Dean Faculty of Arts Reader & HOD Dept. of Skt. SNDT Women Univ. ***Bks*** 03. Śabdapramāṇa in Nyāya Philosophy, Concept of Justice According to Dharmaśāstra, Concept of Untouchability in Dharmaśāstra. ***Ps.*** 20 ***Add.*** Dept. of P.G. S. R. SNDT Women's Univ. 1, Nathibai Thackersey Road Mumbai. ***Ph.*** 02222052970 ***M.*** 09869272238. ***Spl. Ref.*** JRF Vijay Shri Award 2005, Chairperson Managing Committee Bharitya Vidyabhawan Mumbadevi Adarsh Skt. Mahavidyalaya. Chairperson of BOS Research & Recognition Committee, Member of Univ. Senate etc. In SNDT Women's Univ. Member of UGC Scheme Committee, Script Writer of lesson for the student of Correspondence Studies Punjab Univ. Chandigarh, Play Director.

Kashyap, Shashi. M.A., Ph.D. ***b.*** 10.06.1954, Saharanpur, U.P. ***Bks.*** 01. Dharma Śāstraṃ me Nyāya Vyāvasthā kā Svarūpa. ***Ps.*** 12. ***Add.*** B – 13, Jalada, Prabhadevi Tata Press Lane, Mumbai - 400025. ***Ph.***- 4321196.

Kasture, Yadneshvar Madhav. Vedāntaratna, Vedāntatārtha. ***b.*** 31.12.1908, Kalamanuri, Parbhani, Maharashtra. Rtd. Asst. Prof., Sanskrit Mahavidyalaya, Nanded. ***Add.*** Chaturvedeswar Dham, Savargaom, Pimpli Dhamgram, Partur, Jalna, Maharashtra. ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Kasyap, Devaraja. M.A., Acharya, Prabhakara. Principal. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Government Sanskrit Mahavidyalaya, Nabha (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Katare, Nityagopal. Shastri. Sanskrit Bhushan, Sangeet Visharad. ***b.*** 26.03.1955. Narsinghpur, U.P. Teacher, Govt Sr. Secondary School, Hosangabad. M.P. ***Bks.*** 01. Pañcagavyam. ***Add.*** EWS 60, Housing Board Colony, Hosangabad, M.P. ***Spl.Ref.*** Director, Shiv Sankalp Sāhitya Parishad. Co-ordinator, Prakhar Sāhitya Sangeet Sanstha.

Katayayan, Sunil. Acharaya Vidyavaridhi, ***b*** 23-01-1977, Meruth. Asstt. Prof. Ved Dept. Faculty of SVDV BHU. ***Gp.*** Shri Lakshmi Narayan Vedpathi, Shri Laxmishwer Jha. ***Ps*** 10. ***Add.*** Ved Dept. Faculty of SVDV, BHU, Varanasi. ***Ph.*** 0542-6701948 ***M.*** 09956275819. ***Spl. Ref.*** Veda.

Kathad, Raja Bhai Naga Bhai. Ph.D. ***b.***15.07.1973. Deputy Registrar. Shri Somnath Sanskriti University, Somnath. ***Add.*** Vill Viro, Post College Via Shil, Teh. Mangron Distt. JuNagarh. ***Spl.Ref.*** Kāvya Śāstra.

Kathuriya, Usa. M.A.. ***b.*** 14.07.1942. Teacher, P.G. Senior Secondary School No. 01, New Delhi – 06, ***Add.*** 5766, Jogivara, Nai Sarak, New Delhi – 110006. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Katiyal, Madhavprasad. Acharya in Sāhitya, Sikshasastri. ***b.*** 01.03.1942. Teacher, D.T.E.A. Hr. Secondary School, Laxmibai Nagar. ***Add.*** A-2/B-33 A, Paschim Vihar, New Delhi – 110063. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Katte, Gopal Krishnacharya. Nyāyaśiromaṇi Vidvan, Pravina. ***b.*** 22.06.1922, Udupi, KT. ***Gp.*** Narayanacharya, Katte Shrinivasacharya. ***Add.*** Katte Acharya Marg, Kunjivedu, Udupi–576101. ***Spl.Ref.*** Nyāya Darśana.

Katte, Vadirajacharya. Nyāya Śiromaṇi. ***b.***

16.01.1928, Udupi, KT. *Gp.* Pt. Narayanacharya, Pt. Hayagrivacharya, Anantakrishnacharya, *Add.* Katte Acharya Marg, Kunjivedu, Udupi, KT. *Spl.Ref.* Nyāya-Darśana.

Kattumunda, Vinod Kumar. M.A., M.Phil., B.Ed.. *b.* 30.05.1978, A.R. Nagar. *Add.* Kattumundakkal (H.). *P.O.*– A.R. Nagar. Dist. Malappuram, Kerala. 676305.

Kaul, Eshwar. *b.* 19th Century, Kashmir. *Bks.* 01. Kāśamīraśabdāmṛtam.

Kaundiny, Ramdas Vishnu. Acharya in Sāhitya, M.A.. *b.* 07.04.1917, Pahur, MH. Principal. *Gp* Nathushastri Patanakara, Rajeshvar Shastri. *Add.* Bhagavata Vidyapitha, Shri Varatantu Sanskrit Mahavidyalaya, Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kaur, Kulvant. M.A., B.Ed. *b.* 03.05.1945. Teacher (PGT) Sanskrit, Kendriya Vidyalaya, Gole Market, New Delhi. *Add.* B-3/3981, Pashchim Vihar, New Delhi – 110063.

Kaur, Paramajit. M.A., B.Ed. *b.* 07.08.1955, Kanpur, (U.P.). Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Tara Singh Memorial College for Women, Ludhiana (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kaushal, Bhagat Ram. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. *b.* 03.04.1959, Undoda, Lehri, Bilaspur, H.P. Acharya. *Add.* Sri S.S. Mahavidyalaya, Dangar, Chumakhi, Bilaspur (H.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Kaushalendracharya. Acharya in Vyākaraṇa, Rāmānuja-Rāmānanda-Vedānta. *b.* 14.01. 1943, Ayodhya, Faizabad, U.P.. Principal. *Gp.* Pt. Bholanath Tripathi, Pt. Rambadan Shukla. *Add.* Shri Sachcha Adhyatm Sanskrit Mahavidyalay. Arail Allahabad, U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Vedānta.

Kaushik, Ajay. M.A., Acharaya (Sāhitya) Ph.D. *b.* 10-05-1959, Kulsachiv, Gurukul Mahavidyalaya, Haridawar. *Bks.* 01 *Ps.* 03. *Add.* Gurukul Mahavidyalaya, Haridawar – 249404. *M.*09897284490, ***Email.*** kaushikgmv@gmail.com .

Kaushik, Ashutosh. M.A., M.Phil. *b.* 28.05.1987 Kaithal, Research Scholar. *Gp.* Dr. Lalit Kumar Gaur. *Ps.* 01. *Add.* 262 Sunder Nagar near Verwala Road, Hisar – 125001 (HR) *M.* 09667329272.

Kaushik, Avdhesh Kumar. M.A. in Skt. & Pol. Sc., Acharya in Jaina Darśana, Ph.D. *b.* 09.08.1958, Jaipur. Librarian. *Bks.* 01. Pāṇḍūlīpī Pustakālaya Evam Śodha Pravīdhī. *Add.* Shahpura House, Uniaron ka Rasta, Chandpole, Jaipur – 302001. *Ph.* 09414981677.

Kaushik, Jayanarayan. M.A. *b.* 04.11.1935. T.G.T. Govt. Co-Education Teachers Training Institute, Darya Ganj, New Delhi. *Add.* C-605, Saraswati Vihar, New Delhi – 110034. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Kaushik, Satya Dev. M.A., Ph.D.. *b.* 01.07.1950, Bhaipur Brahmanan Gautam Buddha Nagar, U.P. *Bks.* 01. *Add.* C – 49, Medical Colony, A.M.U. Aligarh, U.P.. *Ph.* 0571- 705450.

Kaushik, Vijayshri. M.A. *b.* 17.07.1953. News Asct. Prof, All India Redio. *Ps.* 02. *Add.* 1415, Lodhi Road Complex, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Kavanal, Reeja B. M.A., Ph.D. *b.* 24.05.1961, Tripunithura. *Bks.* 01. Śrī Kṛṣṇavijaya of Śankarakavi : A Critical Study (2003). *Ps.* 13. *Add.* Samskrithi, Kalady, Kerala. 683 574. *Ph.* 0484 – 2461633.

Kavathekar, Prabhakar Narayan. Acharya in Sāhitya, M.A., Kāvyatīrtha, Ph.D., Sāhityaratna. *b.* 29.09.1923, Indore, (M.P.). Gp. Pt. Govind Lal Shastri, Pt. Gajanan Shastri Karamarakara, Pt. Dhundhiraja Gopala Sapre. *Bks.* 12. Saṁskṛta meṁ nīti kathā kā udbhava aura vikāsa, Dhvanikathā (Prabandaḥ), Bhūloka vilokanam, Rājayogini (Kāvya). *Add.* 145, Anup Nagar, Indore – 452008 (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya. President Awardee, Poet.

Kaveeshwar, Shripad Dhundiraj. Kāvya Tīrtha Vidyasagar, Alaṅkāra *b* 17-11-1927 Kolahapur. Co-orinator Kavi Kulaguru Kalidas Skt. Univ. and Organizer Surbharati Somiya Pratishthanam Mumbai. *Ps.* 700 *Spl. Ref.* Skt. Scholar & Dedicated Person for the Propagation & Persuasion of Skt. President Awardee.

Kaviraj, Sitaram. Tradition in Āyurveda and Skt. ***b.*** 21.02.1926. Fatehpur, RJ. President Sri Vidya Sadhna peeth. ***Bks.*** 11. ***Spl.Ref.*** Tantrāgama, Āyurveda, Srividyasadhna. His Diksha name is Dattatreyanandnath, Founder of Srividyasadhnapeeth, President Awardee.

Kavishvar, Dattatreya Dhundhiraja. Nyāya Vidvat. ***b.*** 1909, Nrisingwadi, Maharashtra. Teacher. ***Add.*** Vasudeva Niwas, Karve Road, Pune, Maharashtra – 4 ***Spl.Ref.*** Nyāya.

Kavita, S. M.A, M.Phil., ***b.*** 15.02.1974. Bangalore, (KT). ***Ps.*** 02. ***Add.*** Gurukripa, Sharada Nagar, Shringeri (TA), Chikkamagalur (D), KT. Pin. 577139.

Kelakar, Chintamani. Acharya in Vyākaraṇa. M.A., Ph.D.. ***b.*** 05.02.1931, Gwalior, M.P. ***Gp.*** Anantarama Shastri Ghanekara, Narasimha Shastri, Pt. V. Kshirodabandhu Chakravarti, Dr. Laxmananarayana Shukla. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 26, Raghavendra Nagar, Jhansi Marg, Gwalior (M.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Kelkar, Prabhakar. Graduate (Ṛgveda). ***b.*** 29.11.1937, Kashi, (U.P.). Rgveda Teacher. Gp. Pt. Dattatreya Dixit. ***Add.*** Sanskrit Mahavidyalaya, Lashkar, Gwalior (M.P.). ***Spl.Ref.*** Ṛgveda.

Kelkar, Purnima. M.A. (Skt., Music), NET, JRF, Ph.D. ***b.*** 11.11.1973. ***Ps.*** 10. ***Spl.Ref.*** Bhale Rao Smriti Samman, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Keshavan, K. P. M.A., B.Ed. ***b.*** 03.09.1955, Pattambi, Palakkad, Kerala. Prof. R.Sk.S. Jaipur Campus, ***Gp.*** Hariharashastri. ***Bks.*** 02. Vyaktivivekavimarśaḥ. ***Ps.*** 10. ***Add.*** B-89, Ganesh Marg, Bapu Nagar, Jaipur–15, Rajasthan. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Ketkar, Venkatesh Ramkrishna. ***b.*** 1854. ***Bks.*** 05. Jyotirgaṇitam, Ketakī Grahagaṇitam, Vaijantī Pañcāṅga Gaṇitam, Bhārata Bhūmaṇḍala Sūrya Grahaṇam. *Expired in 1930.* ***Spl.Ref.*** Siddhānta Jyotiṣa-Śāstra.

Kewal, Krishan. Shiksha Shastri M.A., (Skt. Hindi) PGDJMC. ***b.*** 04.01.1979. Kurukshetra, TGT Skt. Geeta Niketan Awasiya Vidyalaya Kurukshtera. ***Add.*** VPO. Sirsma Bir Mathana, Kurushetra – 136131. ***Ph.*** 01744232021 ***Email.*** vasudhevkutumb@gmail.com ***Spl.Ref.*** Mahasachiv, Vasudhev kutumbkam Sanskriti Sewa Ayam.

Khajuria, Yash Pal. Acharya, Ph.D. ***b.*** 10.02.1949, Gurah Slathian, Jammu. Prof. R.Sk.S. Ranbir Campus, Jammu. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 2/120, Indira Vihar, Old Janipur, Jammu, J&K - 180007. ***Ph.*** 0191- 538585.

Khakhandikar, Devi Prasad. M.A., Ph.D., Sangeet Alaṅkāra, Kāvyatīrtha. ***b.*** 01.10.1935. Maharashtra. Rtd. HOD, Ahmednagar. ***Bks.*** 05. Samānamastu Vo Manaḥ, Prabhavati Dharmo Dharmātītaḥ, Sūktimañjūṣā. ***Add.*** 39/ 1/1 A, Geetayanam, Narhari Nagar. Ahmednagar – 03. Maharashtra. ***Spl.Ref.*** Sanskrit Pandit Samman. Maharashtra Govt. etc., Skt. Poet.

Khan, Mohammad Hanif Shastri. Acharya Purāṇa Itihāsa, Adeeb Kamil (Urdu), M.A. in Skt., Ph.D.. ***b.*** 21.09.1951. Sonebhadra, (U.P.). ***Bks.*** 10. Islāmika Paramparā me Sanātana dharma Tattva, Mānava Surakṣā kā Śaṅkhanāda, Veda aura Kurāna ke Mahāmantra Gāyatrī evam Surah fatiha, Gītā evam Kurāna me Sāmañjasya, Vedon me mānava Adhikāra. ***Ps.***03. ***Add.*** G-52/19, Ist Floor, Royal Appartment Sirsayed Royal Apartment ayed road, Batta House, Jamia Nagar. N.D. – 110025. ***Ph.*** 28525963, 28521994, 9891068307, 9891164701. mhkshastri@ gmail.com. ***Spl. Ref.*** Haj Assistant for Deputation for Saudi Arabia in 1995 for 3 month, Deputation to the Kabul University Afganistan as Sanskrit Teaching in 2007 for 6 month, International Conference by Global Network of Religious Children to Hiroshima Japan for 01 week in 2008. Received 'National Communal harmony award 2009.

Khan, Mohd. Israil. M.A., Ph.D., D.Litt., Dipl. in German. ***b.*** 18.07.1938. Rtd. Prof. ***Bks.*** 10. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Skt., German, Arabic, Urdu. He has edited 13 Research Journals, President Awardee.

Khandare, Jaywant W. M.A. Ph.D.(Pali) ***b*** 01.05.1974, Akola (MH). S.R.F. RSKS, Lucknow Campus. ***Gp.*** Prof. Balchandra Khandekar *Ps.*10 Add. Swagat Nagar Plot no.-42 Nagpur-13, MH *M.*09421807483, 08081414977 e-Mail. jaywantkhandare@rocketmail.com. ***Spl. Ref.*** Nepal.

Khandekara, Balachandra. Acharya. M.A., Ph.D. ***b.*** 27.12.1942, Nagpur. H.O.D. P.W.S. College, Nagpur. ***Gp.*** Dr. Bhagachandra Jain. ***Add.*** P.W.S. College, Nagpur, MH. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Pālī, Prākṛta.

Khandelwal, N.M. ***b.*** 02.10.1943, Ajmer. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 13/592. Agra Gate, Ajmer, Rajasthan-305001. ***Ph.*** 0145- 787235.

Khandelwal, Ram Ratan. Siksha Shastri M.A., Ph.D. ***b*** 17-05-1981 Asstt. Prof. U.K. Skt. Univ. Haridawar. ***Bks*** 01 Śevadhiḥ. ***Ps*** 04 ***Add.*** Sāhitya Dept. U.K. Skt. Univ. Haridawar. ***M.*** 08909161878 ***Email.***drramkhandelwal@gmail.com .

Khandelwal, Ravindra Vinodchandra. M.A. in Vedānta-Śāstra, Prākṛta & Pālī, ***b.*** 12.08.1975, Ahmedabad. ***Bks.*** 04. Sāma Veda Eka Parīcaya. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 32, Bhadreshwar Soceity, O/S, Delhi Gate, B/H. H.B.K. High School, Shahibaug Road, Ahmedabad, GJ. ***Ph.*** – 5628051.

Khanduri, Bholadatt. M.A. ***b.*** 13.06.1930, Khandada, Chamoli, UK. Asst. Lecturer. ***Gp.*** Balakarama Agnihotri, Dukhaharana Jha. ***Add.*** Sri Badarish Kirti Sanskrit Vidyapith, Chamoli UK. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Khanduri, Patiram Sharma. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, B.Ed.. ***b.*** 18.05.1956. Teacher. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Motinath Sanskrit Mahavidyalaya, Ramesh Nagar, New Delhi – 110015. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Khandwala, Ravindra V. Ph.D. Prof. H.K. Arts College R.C. Road Navrangpura Ahemdabad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 32, Bhadreshwar Society, H. Link Kapdiya School, Delhi Gate, Ahemdabad.

Khanna, Arunabala. M.A., Ph.D. ***b.***07.07.1941. Lecturer, Venkatesvar Mahavidyalaya, Dhaula Kuan, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** B 4/9, Vasant Vihar, New Delhi – 110057. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Khanna, Jang Bahadura. M.A., Dip. In Library Sciences. ***b.*** 07.08.1933. H.O.D. of Reference Department, Library, Delhi University. ***Add.*** Laxmi Bai Street, 46, Darya Ganj, New Delhi–110002. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Khanna, Maheshvari. M.A. ***b.*** 01.05.1939. Vice-Principal, Ratnadevi Arya Girls Senior Secondary School, Krishna Nagar, Delhi. ***Add.*** 131, Sheikh Sarai, Phase–1, S.P.S. Flats, Pocket-B, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Khanna, Sushma. M.A., M.Phil, Ph.D. ***b.*** 24.11.1956. ***Add.*** 11-B, Pocket-A, Phase III, Ashok Vihar, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Kharwandikar, Deviprasad Khanderao. M.A. (Skt., Ardhamagadhi, Ancient Indian Culture), Ph.D., Sangeetvisharad, SangeetAlankara. ***b.*** 01.10.1935. Ahmednagar, MH. Rtd. Prof. Ahmednagar, Degree College and Chief Editor Gungarav Quarterly Journal. ***Bks.*** 15. Sūktiratnākara, Suvacanasandoha. ***Add.*** Gitayanam Near Narhari Nagri, Gulmohar Path, Ahmadnagar – 03. MH. ***Spl.Ref.*** Skt. Literature and Music, His several books are the part of curriculam and he broadcast and telecasts his self composed poems from A.I.R. and D.D. At present he is working as guide for the number of students camps working under All India Gandharava Degree Collage Mandal, Mumbai & President Awardee.

Khatwani, Manish Vinod Rai. Ph.D. ***b.*** 17.01.1968. Prof. Sanskrit Deptt. Shri D.K.V. Arts & Science College JamNagar. ***Add.*** Block No. D/7/5 Govt. Colony, Khedeshwar Walsura Road, JamNagar. ***Spl.Ref.*** Purāṇa.

Khemachandra. M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 07.01.1939. Language Teacher, Govt. Boys Senior School No. 2, Shakti Nagar, New Delhi. ***Add.*** D.S. – 252/3, Bholanath Nagar, Shahadara, New Delhi – 110032. ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Khetai, Jaya Ben R. Ph.D. ***b.*** 31.07.1931. Prof. S.S. U.College For woman, Pritam Nagar, I

Face 3, Ahemdabad. ***Add.*** 107- Sarvodaya Nagar, Near Ranna Park K.K. Nagar Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Khetai, Ramesh Chandra Sundar G. Ph.D. ***b.*** 05.02.1926. Prof. L.D. Institute of Endology Navrangpura Ahemdabad. ***Add.*** 107, Sarvoday Nagar Vibhag 3, Near Ranna Park, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Dharma Śāstra, Vedānta Śāstra.

Khiste, Batukanatha Shastri. Acharya, M.A. ***b.*** 30.10.1919 Varanasi. Rtd. Asst. Prof., Sampoornananda Sanskrita University, Varanasi. ***Gp.*** Gosvami Damodaralala Shastri, Narayana Shastri, M.M. Laksman Shastri Tailanga, Bhalachandra Shastri Tailanga. ***Bks.*** 11 Bāṇabha--avimarśa, Sāhityalaharī, Kallolinī, Chandaḥkaumudī, Śrībhāskaragranthāvalī . ***Add.*** N-16/43, Patrakar Nagar, Vinayaka, Varanasi, Uttar Pradesh – 2211001. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. Awarded by Uttar Pradesh Samskrita Academy, President Awardee 1983.

Khiste, Pt. Narayan Shastri. Acharya. ***b.*** 1883, Kashi, President, Saraswati Bhawan, Kashi. ***Gp.*** M.M. Pt. Ramshastri Tailang, M.M. Gangadhar Shastri, Dr. Venis Saheb. ***Sp.*** Prof. Brown, Dr. Ekgarton. ***Bks.*** 03. Vidvatcarita Pañcakam, Abhijñāna-Śākuntala kī Navīna Ṭīkā, Kāvyamīmāṃsā Ṭīkā. ***Expired on*** 13.04.1961. ***Spl. Ref.*** Recipient of Mahamahopadhyay Award in 1946, Expert of Tantra-śāstra.

Khokhar, Jitsinha. M.A., Ph.D. ***b.*** 15.01.1955, Bhairopa, Bhatinda, Punjab. Asst. Prof. Govt. Sanskrit College, Nabha. ***Ps.*** 05. ***Add.*** H.No. 560, Near Dhobi Gate, Nabha, Punjab. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Khunte, Janardan Shastri. Yajurveda, Karmakāṇḍa, Jyotiṣa-Śāstra, Dharma-Śāstra, Nyāya-Śāstra, ***b.*** 1916, Dhule. ***Gp.*** Ganesh Dixit, Jawaji Bhatt, Neelkhantha Joshi, Ganpatidev Shastri, Hrishikesh Upadhyay, Rajeshwar Shastri. ***Expired on*** 13.09.1990, ***Spl.Ref.*** Published 'Jaihind Panchang' & 'Lokbandhu' Panchang. Recipient of panditbhushan Award & Nyayratna Upadhis.

Khurana, Vina. M.A., B.Ed. ***b.*** 20.12.1949. Teacher, Gadodia Girls Higher Secondary School No.1, Chandni Chowk, Delhi. ***Add.*** A-1/366, Paschim Vihar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kikani, Heena Manranjan. Ph.D. ***b.***26.02.1960. Prof. B. Jahauddin Arts College, Near Motibagh Junagarh. ***Add.*** Khitij, Near Navdeep Tenament, G.P.O. Gandhigram Junagarh. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Kintara, Vijaykumar. M.A., M. Phil. ***b.*** 04.02.1956, Jallandhar, Punjab. Asst. Prof. ***Gp*** M.P. Thapar, R.D. Tiwari. ***Add.*** Govt. College, Gurdaspur Punjab. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kinzvadekar, Vaman Shastri. Maharashtra. ***Bks.*** 05. Agnyādhānapaddhatī, Agnīhotra-chandrīkā, Dārśapaurṇamāsaprayoga, Aśvā-lāyanagṛhyaprayogā. Paśvālambhana-mīmāṃsā.

Kiran, Prabha. M.A. in Sāhitya & DharmaŚāstra, Ph.D., D.Litt. ***b.*** 16.10.1949, Patna. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 16. ***Add.*** Professor, P. G. Department of Sanskrit, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur. ***Ph.*** 0621- 245820, 0621- 260370.

Kishori, Bharat Singh Dalsukh Bhai. Ph.D. ***b.*** 05.04.1968. Prof. S.T. Arts & Commerce College, Sant Ram Pur Panchmahal GJ. ***Add.*** Amardeep Society, Godhra College Road, Sant Ram Pur Distt. Panchmahal. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Kishvar, Jabin Nasarin. M.A., D.Phil.. ***b.*** 08.02.1953, Allahabad, U.P.. Asct. Prof. ***Add.*** 907 Dilkusha, Naya Katra, Allahabad, U.P.– 299002 . ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kodandram. Vyākaraṇa Śiromaṇi, M.A., Shiksashastri, Ph.D. ***b.*** 30.06.1947, Vaduvur, Thanjavur, TN. ***Gp.*** Swami Ayyangar, N.S. Tatacharya. ***Bks.*** 01. Pratyākhyānavimarśa. ***Add.*** Sanskrit Pandit, Oriental High School, Thanjavur– 613009, TN. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Kohli, Santosh. M.A., B.Ed.. ***b.*** 24.11.1938, Jammu. ***Bks.***04. Māṇikā (I & II), Abhayāsa Pustakam (I & II). ***Ps.*** 04. ***Add.*** C – 538, Saraswati Vihar, Delhi - 110034. ***Ph.*** (R)- 011- 7013710, 7021175.

Komanduri, Venkatkrishn. M.A., M.Phil. *b.* 29.07.1954, Vijayarayi, West Godavari, A.P.. Asst. Prof. *Gp.* M. Gopalreddi. *Bks.* 01. Nṛsiṃhāvatāratattva pariśīlanam. *Add.* Prabhutvakalashala, Anantpuram, A.P. – 515001. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kompalla, Virvenkat shastri. Bhashapravin. *b.* 15.07.1916, Modekuru, A.P. Pauranik. *Gp.* Kandukuri Krishnashastri. *Add.* Bhimvaram, West Godavari, A.P. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Kondi, R. Chandrakala. M.A. in Sanskrit & Prakrita, Ph.D.. *b.* 28.12.1970, Kumta. *Add.* Shri Nagendra N. Bhat, Uppinapattan, Kumta, Uttara kannada, KT. *Ph.* 8386-264538.

Konkani, Hansmukh Manga Bhai. Ph.D. *b.*14.12.1969. Prof. Shri M.M. Gandhi Arts & Commerec College, Kalol Distt. Panchmahal. *Add.* Vaishnav Sampraday Hall, Timbagam Godhara, Panchmahal. *Spl.Ref.* Vedānta.

Korada, Subrahmanyam. Bhaskarapravin, M.A., Ph.D. *b.* 11.11.1954, Hyderabad. Asst. Prof. *Add.* Centre for applied linguistics & Translation Studies, University of Hyderabad, Hyderabad, A.P. *Spl.Ref.* Ṛgveda, Kṛṣṇayajurveda, Jyotiṣa.

Koranne, Damodara Ramakrishna. M.A., Kāvyatīrtha. *b.* 18.07.1930, Vashmi, Dist. Akola, M.P. Asst. Prof., Govt. Shri Vaishnava Sanskrita Mahavidyalaya, Raipur, C.G. *Gp.* Pt. Ambadasa Pandeya, M.M. Yajneshvara Shastri Kasture, Dr. G.B. Deshapande, Varnekara, G.D. Joshi. *Add.* 30, Shala Marg, Chaube Colony, Raipur, C.G. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kotanala, Rajendraprasad. M.A., B.Ed. *b.* 16.11.1951. Teacher, Govt. Senior Secondary School, Sarojini Nagar, New Delhi. *Add.* H-163, Sarojini Nagar, New Delhi – 110023. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kothari, Jagadisha Prasada. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 04.03.1953, Pujaldi, Garhwal, UK. *Gp.* Trilokadhar Dwivedi, Vishveshvaradatt Shastri. H.O.D. of Vyākaraṇa. *Add.* Bartan Bazar, Moradabad, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Kothiya, Darwari Lal. Acharya (Nyāya, Jaina Darśana), M.A., Ph.D. *b.* 11.06.1911. Nainagir, Chattarpur. *Bks.* 10. Jaina Darśana aura Parmāṇaśāstrapariśīlana, Jaina Tarkaśāstra me Anumānavicāra, Jaina Tatvajñā-namīmāṃsā. *Ps.* 70. *Spl.Ref.* Jainology, Nyāyalaṅkāra Award, Bhartiya Gyanpeeth Award, Kundkund Puruskar, President Awardee.

Kothiya, Govind Das. M.A., Acharya in Sāhitya, Veda. *b.* 1976. Principal. Shantinath Vidhyalaya Ahar M.P. *Bks.* 05. Śilpajñamālā Paccīsī, Amarasandeśa.

Kotia, Manjula Ben. Ph.D. *b.*20.03.1966. Prof. Gurukul Mahila Arts College Bokhira Porbander. *Add.* 102, Sagar Appartment Manhar Plot Rajkot. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Kottamangalam, Sundararajachary Varada-charya. Vidvat in Navya Nyāya, Viśiṣ-ādvaita & Vedānta. *b.* 18.10.1922, Kottamanglam, Chengalpat, TN. *Bks.* 02. Nyāyamañjarī Vyākhyāna, Rāmāyaṇa. *Add.* Jayanti Printer, Pampapet Road, Mysore, KT. *Spl.Ref.* Navya Nyāya, Viśiṣ-ādvaita, Vedānta. Recipient of Pandita Ratna Award.

Krishanlal. M.A., Ph.D. *b.* 20.11.1933. Port Blair, Andaman. HOD. Skt. Deptt., DU. *Bks.* 07. Śiñjāravaḥ, Anantamārgaḥ, Camatkāraḥ. *Add.* Vishvaneed E-937. Saraswati Vihar, Delhi–34.

Krishannunni, N.D. Vyākaraṇa, Sāhitya Śiromaṇi. *b.* 15.12.1908. Rtd. Prof. *Bks.* 05. Trimadhuram Pañcāmṛtam, Ātmopa-deśaśatakam. *Add.* Raghuvihar, Thiruvambadi, Trissur – 01. Kerala. *Spl. Ref.* Vidyabhushan, Pt. Ratan, Ashvaghosh Kaviratan, Sāhitya-nipuna, Savyasachi, Founder Aksharshalok Parishad.

Krishna Devi. M.A., M.Phil. *b.* 08.10.1966. Rohtak, Asct. Prof. Deptt. of Skt. Pali & Prakrit. *Gp.* Prof. Dr. Maan Singh (President Awardee). *Sp.* Sarita Devi. *Ps.* 04. *Add.* Krishna Kutir H.No. 918, Sector – 3 K.K.R. Ph. 01744-230918.

Krishna Murty, G.S.R. M.A., Ph.D. *b.* 01.11.1958, Kottapadu. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 30. ***Add.*** 304 - III Floor, Adiseshu Residency, Shri Ram Nagar, Akkarampall Road, Tirupati - 5170507. *Ph.* 0877 – 2283167.

Krishna. M.A., B.Ed. *b.* 15.08.1941. T.G.T. Sanskrit, N.P. Boys Senior Secondary School No. 1, New Delhi. ***Add.*** Type – 3. Q. No. 22, Lal Bahadur Sadan, Gole Market, New Delhi.

Krishnacharya, T. E. Kṛṣṇyajurveda *b.* October 1920, Tiruvallur, TN. Rtd. Veda Teacher. ***Gp.*** Gandapuram Swami, Shrinivas Mahadeshika. ***Add.*** 15, Shrirangaraj Street, Kanchipuram, Chengalput, T.N. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Krishnacharya, Vattangadu. Vidvat (Sāhitya, Dvaitavedānta), Śiromaṇi (Sāhitya, Mīmāṃsā). *b.* 60 yrs., Mannargudi, T.N. ***Add.*** 6, Arumukhachetti Lane, Tiruvallikkeni, Madras-600005. TN. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Krishnadeshikacharya, T.E. *b.* 01.04.1935, Tiruvahindrapuram, South Acrot. Veda exponent. ***Gp.*** Kanchipara-kalapithiya Nelava Raghunathacharya. ***Add.*** 2/18 A, Shri Dishika Bhavan, Tiruvahindrapuram, TN. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Krishnadev, Aravinda. M.A. Ph.D. *b.* 08.09.1942. Principal. ***Add.*** Bhai Paramananda Education Society, C-112, Majlis Park, New Delhi – 110033.

Krishnadu, G. Vyākaraṇaśiromaṇi, M.A., Shiksashastri. *b.* 31.07.1955, Lingapalli, A.P. Asst. Prof. ***Add.*** Shri Gauri Shankar Junior College, Proddaturu – 516360 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Krishnagopal, Brajesh. Acharya in Sāhitya, Jyotiṣa. *b.* 26.08.1932, Jaipur. Asst. Prof. ***Gp.*** Prof. Vindhyachalprasad Pandey, Pt. Badarinath Sharma. ***Add.*** Near Saudhi Farm, 193 Tonk Road, Jaipur–16 RJ. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Jyotiṣa.

Krishnajoyisa, K. Vidvat in Alaṅkāra & Vedānta. *b.* 01.08.1912, Shringeri, KT. Vedānta Teacher, Shri Shankar Mutt Pathashala, Bangalore. ***Bks.*** 04. Śri Śṛṅgagiri Kumbhābhiṣeka-vaibhavam, Daśaślokī (ed.), Sambandha-vārtikam (ed.). ***Add.*** R-16, Sankar Mutt Old Buildings, Pampa Mahakavi Road, Bangalore–560004, KT. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Advaita Darśana.

Krishnamachari, V. Vyākaraṇaśiromaṇi, Shiksashastri. *b.* 03.11.1942, Pondicherry. Sanskrit Teacher. ***Gp.*** Padusa Raghavacharya, Malapakkam Narasimhacharya. ***Add.*** French Institute, Pondicherry– 605001. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Krishnamurti, Acharya. Vidvat, Panditaratna. *b.* 14.08.1906. ***Add.*** 5/17, Second Road, Satyanarayanpet, Bellary, KT – 583103. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Krishnamurti, Dwarika. Sāhityaśiromaṇi, Sikshashastri. *b.* 28.08.1929, Pannuru, Chittur, A.P. Teacher. ***Gp.*** Narasimhacharya. ***Bks.*** 01. Padmāvatī Stotram. ***Add.*** Brahm Vidya-pathasala, Shri Vyasashram, Yerpedu, Chittur–517621, A.P ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Krishnamurti, K. M.A., Ph.D. *b.* 1923, Keralpuram, Mysore, KT. Rtd. Asst. Prof. ***Add.*** Karnatak University, Dharwar, KT. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. Awarded by U.P. Samskrta Academy.

Krishnamurti, N. B.Sc., M.A., Jyotiṣa Vidvān, Alaṅkāra Vidvān. *b.* 27.09.1946, Nitilapur, South Kannad, KT. Sub-Editor, Udayavani Patrika. ***Gp.*** K. Hayagrivacharya, H. Subbaray Bhatta, Shrinivas Adiga. ***Add.*** Chitapaddi Compound, Udupi, KT – 576101. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa, DvaitaVedānta.

Krishnamurti, Ramvarapu Shastri. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 23.03.1912, Amritalur, Guntur, A.P. Editor, Yajurved Project. ***Gp*** Laxminarayan Shastri, Rambrahma Shastri. ***Add.*** Tirupati Tirumala Devasthanam, Tirupati-517507 A.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Krishnasvami, E. V. Nyāyaśiromaṇi. *b.* 11.04.1927, Damal, TN. Teacher. ***Gp.*** Sudarsanaachary, Krishnaswami Tatyacharya. ***Add.*** 17, Jeeyar Street, Narsimha Nagar, Cheyyar, North Arcot, TN. – 604407 ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kriyadia, Ramesh Kumar Chabil Das. Ph.D.

b.02.10.1962. Prof. Smt. J.C. Dhanak Arts. & Commerce College Bagsara, Ambreli. ***Add***. "Kalpana" 3/21 Gokuldham Near Meghani High School Bagsara, Ambreli. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Kshullak, Dhyan Sagar. M.B.B.S. ***b***. 09.04.1963. ***Gp***. Acharya Shri Vidya Sagar Ji, Dr. Panna Lal Sāhityacharya. Bks. 10. Mṛtyuñjaya Stotram, Nirvāṇadhāma Stotram, Navaprabhāta Stotram, Vairāgya Gītā, Caturviṃśati Jinastutiḥ. ***Add***. Acharya Shri Vidya Sagar Ji ka sangh.

Kukareja, Raksha. M.A., B.Ed. ***b***. 10.10.1943. Teacher, Govt. Higher Secondary School, Laxmi Nagar, Delhi. ***Ps***. 02. ***Add***. C-44, Anand Vihar, Delhi – 110092. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kukareti, Mahadevprasad. Acharya, Siksa-shastri. ***b***. 03.01.1943, Tehri Garhwal, (U.P.). Principal (Acting). ***Gp*** Trilokidhar Dwivedi, Harihar Jha. ***Add***. Shri Darśana Mahavidyalaya, P.O. Shivanandnagar, Tehri (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kukiloo, Makhan Lal. M.A. Skt. Hindi Sāhitya Alaṅkāra High Proficiency & Honors in Skt Shastri with MOL. Rtd. Prof. & HOD. ***Bks***. 19. Kuṇḍalinī Vijñāna Rahasya, Vatulanātha-Sūtra, Parāpraveśikā, Kāśmīra Śaiva Darśana Me Yama and Niyama, Amṛteśvara Bhairava. ***Ps***. 30 ***Add***. Pocket F Flat no. 544, Sarita Vihar, New Delhi - 110076. ***Ph***. 01129943327 ***M***. 9999190636 ***Spl. Ref.*** Kashmir shaiv Scholar. He teach shaiv text in various workshop. Vijyeshawara Award 2008, Darśanajyoti Award 2007.

Kulakarni, Devaraya. Traditional Education. ***b***. 02.12.1922, Kolivada, KT. Advaita Vedānta Pracharaka & Vedic Exponent. ***Add***. No. 1022, Anugrah, 8th Cross, Block – 2, Vanashankari, I Stage, Bangalore, KT.

Kularia, Dharam Pal. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b***. 06.08.1956, Surpurakalan. ***Bks***. 01. Kātyāyana Śulbasūtra. ***Ps***. 08. ***Add***. 1/9J. M.D. University Campus, Rohtak. HR - 124001. ***Ph***. 01262 - 266612.

Kulasrestha, Anupama. M.A., M.Ed., ***b***. 07.12.1958. Teacher, Navayuga Vidyalaya, I Avenue, Sarojini Nagar. ***Ps***. 01. ***Add***. Q.No. 113, Sector – 05, Rama Krishna Puram, New Delhi – 110022.

Kuldeep Kumar. Shiksha Shastri Acharaya Ph.D. ***b***. 05-05-1969, Jhajjar, Harayana. Asstt. Prof. Dept. of Jain Darśana LBS Rashtiya Skt. Vidyapeeth. ***Gp***. Dr. Veer Sagar Jain. ***Ps***. 11 ***Add***. A166 Flat no. 201, FF Street no. 25, Chhatarpur Enclave Face 2nd New Delhi – 110074 ***Ph***. 01146060513.

Kulkarani, Amba. M.Sc., M.Tech., Ph.D. ***b***. 05.03.1961, Patna. Asct. Prof. Deptt. of Sanskrit Studies, Univ. of Hyderabad, ***Add***. A-60, Telecom Nagar, Gandhi Bowti, Hyderabad. ***Ph***. 9440893578. email id – ambapradeep@gmail.com. ***Spl.Ref.*** Expert in Computer & Sanskrit, Coputational Linguistic. Machine Translation in skt.

Kulkarni, Malhar. M.A., Ph.D. ***b***. 17.11.1972, Mumbai. Asct. Prof. Mumbai. ***Gp***. Pt. Vaman Shastri Bhagwat, Pt. Shivram Shastri Joshi, S.D. Joshi, Pt. Peri Suryanarayana Shastri. ***Sp***. Prof. Saroj Bhatta, Dr. Chaitali Dangasikar. ***Bks***. 05. Nyāyaśāstrapraveśa, Sūktīratnākara V-II, The Quotations of the Kāśikā in the later paninian grammatical tradition, Subhāṣitānī, Ajantapuṃlliṅga Prakaraṇam. ***Add***. Department of Humanities and Social Sceences, IIT Powai, Mumbai – 400076. ***Ph***. 25767375, 25722530, Mob. – 9809019268. email – malharku@ gmail.com, malhar@iitb.ac.in. ***Spl.Ref.*** Resipient of Badarayara Vyasa Award (2009) & Pt. Satavalekar Award (2010). Inter-disciplinaey work on Development of Sanskrit Wordnet.

Kulkarni, Shashikant Govind. M.A. ***b***. 1938. ***Bks***. 05. Puruśa Śuktā (ed.), Śrī Śuktā (ed.), Rūdrādhyāya (ed), Gāyatrī Mantra (ed.), Sulabha Tarkaśāstra (wr.). ***Add***. 'Radhai' 3, Sanmitra Hausing Society, Navi Rajarampuri, Kolhapur – 416008.

Kulkarni, Vaman Mahadev. M.A. in Sanskrit & Prākṛta, Ph.D. ***b***. 22.11.1917. ***Bks***. 05. Jaina

Kathā Nītī, Kālidāsasya Raghūvaṃśa. ***Add.*** 5, Suruchi Society, Dixit Road, Villeyparloy, Mumbai, MH.

Kulshreshtha, Sushma. M.A., Acharya, D.Phil., D.Litt. FRAS (London). ***b.*** 13.03.1945. Khurja, UP. Director Kalidas Academy of Skt. Music and Fine Arts Delhi and Member of Faculty of Arts, D.U. ***Bks.*** 75. ***Ps.*** 151. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Skt. Shiksha Puraskar, Akhil Bharatiya Maulik, Skt. Rachna Puraskar, Certificate of Honour by Darbhanga Univ., President Awardee.

Kumar, Shashi Prabha. M.A., Certificate in German, Ph.D. ***b*** 01.11.1951, Chairperson Special Centre for Sanskrit Studies, JNU. ***Bks.*** 13 Facts of Indian Philosophical Thought, Bhāratīyaṃ Darśanam, Garimā, Kāla-tattvacintanam, Vaidika Anuśīlana, Vaidika Vimarśa. ***Ps.*** 75 ***Add.*** 295, Sector-15-A, Noida-201301 ***Ph.*** 120-2511742,2512889. E-*Mail.* shashiprabhakumar@yahoo.com ***Spl.Ref.*** Shankara Puraskar 1998, Sanskrit Sikshaka Puraskara1997, Vedic Vidushi Award 1995 DAAD Short Term Fellowship 1999, ICPR General Fellowship 1996, 2001. Member WAVES, AIOC, AIPA, Devavani Parishad etc.

Kumar, Surendra. Ph.D. ***b.*** 01.01.1964, Mathura. ***Bks.*** 02. Ṛgveda mañ Vividha Vidyāyañ. ***Add.*** H.No.-1428, Sector-1, Rohtak, HR. ***Ph.*** 09215379708.

Kumaraswami, V.A. Sāhitya Vidya Praveena M.A., Ph.D. ***b*** 02-12-1936, Vijayawada. Ret. Principal, Kendriya Vidyalaya, New Delhi. ***Gp.*** Shri Ramakoti Shastri, Maharaj Bhominiketan. ***Sp.*** Prof. B. R. Sarma (Ist director of Skt. Vidyapeeth, Tirupati) ***Bks*** 60. Laghu-vedāntacintanamu (Telgu), Ambikā-nakṣatramālā, Visṇusahasranāmapadyāvalī, Prasthānatrayapraśnamālā. ***Add.*** 3-122/4 Plot No. 37 Ashok Nager Colony Uppal Hydrabad-500092. Ph. 0821-2484321. M. 09449804360. ***Spl. Ref.*** Honoured by Surbharati Samiti Hydrabad Jagannath Pandit Rajpeeth etc. Honoured with the title Bhareti Teertha Hamsaka, Bhakti kavita Mattak kokila, Ubhaya kavi tallaja etc., Borad cast several Programm on AIR Vijaywada Vishakhapatanam Bhopal & Hydrabad on Poetry & Literary Talks etc.

Kumari Vibha. M.A. Acharya. ***b.*** 12.08.1944. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School, Badarpur, New Delhi. ***Add.*** R-Z-70 C, Gali No. 9, Madhya Marg, Tughlakabad Ext, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Kumarkar, Dillip. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 21.06.1970, Orissa. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Badagorada, P.O. – Kesharpur, Vill. – Mandhatapur, Dist.– Nayagarh, Orissa - 752079.

Kumary, Geeta K.K. M.A., B.Ed., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 16.03.1967, Mattom. Asct. Prof., Calicut University. ***Bks.*** 01. Metre in Sanskrit : A study with Special Reference to Vṛttavārtika. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Calicut University, Malappuram, Kerala.

Kumudini, Sudhir. M.A., D.Litt. ***b.*** 15.09.1947. Prof., Bharati Vidyalaya. ***Add.*** 14, Sakshar Apartments, A-03, Paschim Vihar, New Delhi.

Kunchunniraja K. M.A., Ph.D. ***b.*** 26.02.1920, Nadathara, Thrissur, Kerala. Prof. Chennai Univ. ***Bks.*** 05. Contribution of Kerala to Sanskrit Litterature, Indian Theories of Meaning (Eng.), Bhāsa Gaveṣaṇam (Malayalam) Bhāsa Chinthakal, Londonil. ***Spl. Ref.*** Famous Skt. Scholar & Writer of Kerala.

Kunduru, Venkatanarasimhacharyulu. Sāhitya-Vidyapravin, Shiksashastri. ***b.*** 30.06.1937, Virepalli, A.P. ***Gp.*** T.K. Sudarśanaacharyulu. Sanskrit Exponent. ***Add.*** Prabhuttva Kalashala, Shrikakulam, A.P.. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Kuntal, Harikesh. M.A. ***b.*** 31.01.1935. Teacher, Govt. Higher Secondary School, Delhi. ***Add.*** 64, Muhalla Nandaram, Gali No. 1, Brahmapuri, Delhi. ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Kuppa, Shivasubrahmany Avadhani. Nyāya śiromaṇi, B.A. ***b.*** 01.11.1964, Anantawaram, Guntur, A.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Kuppa Ramagopala-vadhani, Pt. Kuppa Vairagi Shastri, Kuppa Laxman Avadhani, Ramchandra Koteshvar Sharma. ***Add.*** Maharshi Ved Vigyana Vishva Vidyapitham, Maharshi Nagar, Ghaziabad U.P. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda, Nyāya.

Kuppuswami, Lalita. M.A., Ph.D. *b.* 15.07.1946, Thiruchirapalli, T.N. Asst. Prof. *Gp* Dr. Sita Nambiyar. *Add.* II/3/5, Janakpuri, New Delhi-58. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Kurup, Govind C. Diploma in āyurveda. *b.* 15.06.1931, Kuttamath, Kasaragode, Kerala. Vaidya (Ayurved Physician). *Gp.* K.K. Narayana Kurup, P. Govindan, Y.M.C. Sankara Kurup. *Bks.* Several books & Articles. *Add.* Shri Kuttamath Kunniyur, Kuttamath, Cheruvayur, Kasaragode, Kerala. *Spl. Ref.* āyurveda.

Kurup, Narayana S. M.A., B.Ed. *b.* 21.03.1920, Shertala, Alappuzha, Kerala. Asst. Prof., Sanskrit Mahavidyalaya, Kottayam. *Gp.* N.V. Krishnavariyar, N. Shankar Sharma. *Add.* Chandrikalayam, Mulavattam, Kottayam, Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa, Vedānta.

Kusum Lata. Shastri Prabhakar Sāhitya Acharaya. *B.* 10-06-1967, Karnal. Lecturer Swami Shankarchetan Bharati Skt Mahavidyalaya, Kurukchtera. *Gp.* Anju Bhatiya. *Add.* 141/9 Chakravorty Mohalla, Tilak Galli, Thaneshar, Kurukshetra – 136118, *ph.* 01744237099 *M.* 8950627076.

Kutumbasastri, V. M.A., Vidyavaridhi, Dipl. in Yoga. *b.* 12.08.1950. Krishana, A.P. Ex-V.C. R.Sk.S., New Delhi & S.S.V.V., Varanasi. Principal R.Sk.S. Sringeri Campus, Sringeri. *Bks.* 30. Upaniṣadaḥ Ekaḥ Paricayaḥ, Kunticaritam, Sāhityaratnākara (Ed.). *Ps.* 100 (More than). *Add.* R.Sk.S., Sringeri Campus, Sringeri. *Spl.Ref.* Advaita Vedānta, Indian Philosophy, Kāvya Śāstra, Literature, Linguistics, Poet. Visited European Contries & Japan etc. President of I.A.S.S.

L

Laila, H. S. M.A. *b.*30.11.1955, Natakkal, Kollam, Kerala. *Ps.* 03. *Add.* Mohan Vilas, Adutala, Chattanur Kerala. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Lakhanpal, Poonam. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 18.10.1965, Meerut. *Bks.* 01. *Ps.* 04. *Add.* 138/7, Scheme No. – 7. Shastri Nagar, Meerut (U.P.) – 250005. *Ph.* (0121) 767057.

Lakshman Singh, Pragyachakshu. M.A. *b.* 1918 yrs., Faridabad, Haryana. *Bks.* Prabhāta-śatakam, Kālarātrī, Vijñānagītam, Śabda-vivartaḥ, Ku-umbinī, Kālacakram, Śrīrāma-rahasyam. *Add.* 54/1, Shihi gate, Ballabhgarh 121004. *Spl.Ref.* Award Haryana Sāhitya. Academy Award.

Lakshminarayan, M. V. Niyogaśiromaṇi, Shikshasastri. *b.* 24.04.1928, Mudur, Vandavasi, T.N. *Ps.* 03. *Add.* Vandavasi, North Arcot, T.N. *Spl.Ref.* Education.

Lakshmithathachar, M. A. M.A., Navyanyāya Vidvān, Rashtriya Bhasha Praveen, Cert. in German, Karnataka Instrumental Music. *b.* 26.08.1936. Mysore. Chief Executive Academy Centre for Technology Research in Skt. Sachiv Skt. Sanshodhan Sansad. *Spl.Ref.* He has led many teams of scholars resulting publication of more than 50 invaluable books. Under his guidance, the Academy has prepared 20 software on different branches of Sanskrit language, Honoured with the titles of Citizen of the Age of Enlightenment and Ramanuja Paduka Sevaka, President Awardee.

Lalye, Pramod Ganesh. M.A. *b.* 27.06.1928. Pune, Maharashtra. Rtd. HOD & Prof. Usmania Univ. Hyderabad. *Ps.* 70. *Spl.Ref.* Manuscript-ology Title of Skt. Pt. by Maharashtra Govt., Manuscript Editing and Publication, President Awardee.

Lamba, Jagadish Chandra. M.A., M.Phil Ph.D., *b.* 12.01.1945. Asst. Prof., Delhi University. *Ps.* 08. *Add.* Vill. & P.O. Kutabgarh, New Delhi–110039.

Latika, R. Acharya in Sāhitya, B.Ed. *b.*17.10.1959, Kottarakara, Kerala. Research Asst. *Gp.* M.Harihara Shastri, Dr. R. Karunakaran, Shridhar Vashishtha. *Ps.* 03. *Add.* Sanskrit Research Akademi, Melkote. 571431. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Laxman, S. Śiromaṇi, M.A., P.O.L. *b.* 15.10.1949,

Vaduvur, Thanjavur, T.N. Teacher. *Gp.* Ramanuj-tatacharya, P.N. Raghvacharya, M.S. Narsimhacharya. *Ps.* 03. *Add.* Kendriya Vidhyalalya, Pondicherry. *Spl.Ref.* Vyakaran Śāstra.

Laxmanacharya. Acharya, Tarkatīrtha. *b.*01.03.1918, Gadag, Dharwad, Karnataka. Principal. *Gp.* Shripad Shastri, Gopalacharya. *Ps.* 03. *Add.* Gopalpur, Dharwad, KT.

Laxminarsinghacharya, V. R. P.G. in Kṛṣṇayajurveda. *b.* 30.03.1927. *Gp.* S. Rambhadracharya, kali Ganpati, Sauriraja Ayyangara. *Add.* Shri Ahobila Math, Kampa Dasavallabha Street, Srirngam , Tiruchirapalli-620006. T.N. *Spl.Ref.* Veda.

Laxminarsinghacharya. Kovid. *b.*15.09.1943, Dommar Nandapal, Cuddapah, A.P. *Add.* Santiniketan Oriental School. Sankarpur. Cuddapah- 516002 A.P. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Laxmitatacharya, Ayyana Ayyangaracharya. Navyanyāya, M.A. *b.* 26.02.1938, Melkote, Karnatak. *Gp.* Tirumalai Ayyangaracharya, V. Raghavan. *Bks.* Edited & published a number of Research Papers. *Add.* Raja Street, Melkote, Mandya – 571431 (KT). *Spl.Ref.* NavyaNyāya, Veda, Viśiṣ-ādvaita.

Layek, Satyajit. M.A. Ph.D. *b.* 15.11.1959. Bankura, W.B. Prof. Dept. of Skt., Univ. of Kolkatta. *Bks.* 3. *Add.* Dept. of Skt., Kolkatta Univ–700073. *Ph.* 03325915724 *M.* 0923145 9833. *Email.* slayek2007@rediffmail.com.

Leela, K. M.A., Ph.D. b. 18.07.1959. Associated with JSS Ayurveda Medical College Maysore. *Bks.*16, Rudra-a's Kāvyālaṅkāra – An Estimate, Sacred Preachings of Āyurveda, Kaṇṇaḍa Bhagavadgītā, Kavikāvyavivecana, Kāvya Vallarī. *Add.* 22, Chirantana, Krishanamoorthy Layout, T.K. Layout IV Stage, Mysore – 570009. *M. 0* 8212543447, 09886056177 *Email.* dr_leelaprakash@yahoo.co.in, *Spl. Ref.* Pravachanapatu, Hoysala Suvarna Rajyotsava Award, C.R. Narasimha Shastri Award, Rashtriya Samskrutha Samsthana Award, Narasimhamurthy, Chintan & Rasamanjari Programms in AIR, Directed Sanskrit Saurabha at DoorDarśana, Mamber in Editorial Committee of manthan magazine.

Leela, S.R. B.A. *b.* 25.05.1953, Ernakulam, Kerala. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* A.V.P.S., Chembakulam, Palakkad (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Lekhwar, Rajesh Prasad. Acharaya (Jyotiṣa, Sāhitya), Veda, karmakand Visharad, B.Ed, M.A. (Hindi) *b.* 15-08-1972, Tehri Garhwal. Lecturer. Shri Jayaram Vidyapeeth Kurukshtera. *GP.* Dr. Mayaram Raturi, *Sp.* Rakesh Sharma, Soochit Geeyanan (Island) *Add.* Shri Jayram Vidyapeeth, Kurukshtera–136118. *Ph.* 01744-290431. *M.* 09416646726. *Mail.* jairam72@gmail.com. *Spl. Ref.* Veda.

Lohani, Devidatta. M.A., Sāhityaratna. *b.* 05.01.1929. Teacher, Govt. Model Boys Senior Secondary School, Sarojini Nagar, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 67-B (LIG), Katwaria Sarai, New Delhi – 110016.

Loitel, Pradeep Kumar. Shikshashastri Acharya *b.* 27-07-1982 Research Scholar, RSKS, Lucknow. *Gp.* Hari Prasad Adhikari, Prof. Radheshyamdhar Dwivedi. *Ps.* 01. *Add.* RSKS, Lucknow Campus, Vishalkhand 4, Gomati Nagar – 226010. *M.* 09889281737, 08016 157126. *Mail.* pradeep25sharmma@gmail.com

Lokesh Chandra. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 11-04-1927, Ambala. Prof. , Director I.A.I.C. New Delhi. *Bks.* 576., *Ps.* 286. *Add.* J22 Hauz Khas Enclave, New Delhi – 110016. *Ph.* 26515800, 55712680. *Spl. Ref.* Pali Avesta, Old Persian, Japanese, Chiness, Tibetan, Mongolian, Indonesian, Greek, Latin, Greman, French, Russian, etc. Member of Parliament 1974-86, No of. Several committees of Parliament related to Education, Offical Language Heavy Industry, Tourism and Civil Aviation, etc. Life Trustee of the Jawaharlal Nehru Memorial Fund, Vice-President, Indian Council for cultural Relations, Advisory Committee, Encyclopaedia of Dravidian Languages, Advisory Committee, Encyclopaedia of Dravidian Languages. Member of the I.N.C.C.

with UNESCO & Member of Court of the J.N.U., Honorary Doctorate awarded from the Nalanda University. Asia, Europe, USA and Russia for inter-cultural relations.

Lokhande, K. B. NyāyaShastri, Darśanasastri, M.A., Ph.D. *b.* Solapur, Maharashtra. Prof. HOD Sanskrit Deptt. ***Bks.*** Editor: Vidyā-dhvanipatrikā. ***Add.*** 29, Ratnatrya Vidyanagar, Solapur- 413003 Maharashtra. ***Spl.Ref.*** Nyāya Śāstra, Darśana Śāstra.

Lusi, P. A. Shastri. *b.* 02.11.1955, Kunam Muchi, Kerala. Asst. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** S.B.S.V., Villian Chattanur, Palakkad (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

M

Maan Singh. M.A., Acharya, Dipl. in German, Ph.D. *b.* 05.01.1937. Haridwar. Director, Maharishi Dayanand Study Centre, Kurukshetra Univ. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 45. ***Spl.Ref.*** 34 Radio Talks, President Awardee.

Machi, Dinesh Bhai P. Ph.D. *b.*16.01.1964. Prof. Arts & Commerce College Balasinor Distt. Kheda. ***Ps.*** 02. ***Add.*** B-81, Gokulesh Society Balasinor Distt. Kheda. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Machi, Dinesh Kumar Rama Bhai. Ph.D. *b.*10.09.1971. Prof. Govt. Vinayan & Commerce College Khergam Distt. Nawsari. ***Ps.***02. ***Add.*** Gram Khrawada Post Munpur Teh. Kadana Distt. Panchmahal. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Madan, Nirmal. M.A. (Skt. & Maths), M.Com. *b.* 10.01.1946. Teacher (PGT), Govt. Girls Senior Secondary School No. 1, Kalkaji, New Delhi. ***Ps.***01. ***Add.*** C – 64, Kalkaji, New Delhi–110019.

Madan, Rama Devi. M.A., B.Ed. *b.* 13.06.1950. Teacher, Govt. Senior Secondary Girls' School, Adarsh Nagar, Sonipat. ***Ps.***01. ***Add.*** H-N-1/ 230, Gopal Nagar, Sonepat (HR). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Madhav, Harshadev. M.A. in Vedic Literature & Alaṅkāra, B.Ed., Ph.D. *b.* 20.10.1954. Vartej, Bhavnagar, Gujrat. Prof. A.H.K. Arts College, Ahmedabad. ***Bks.*** 77. Rathyāsu Jambū Varṇānāṃ Śirāṇām, Alakanandā, Śabdānāṃ Nirmakṣikeṣu Dhvaṃsāvaśeṣeṣu, Mṛgayā, Āsicca me manasi. ***Ps.*** 65. ***Add.*** A-12, Hiramoti Tenaments opp. Satyamev Hospital, Chandkheda, Ahmedabad– 382424, ***Ph.*** (079) 26585429. ***Spl.Ref.*** An unbeaten poet by quality & quantity in Gujrati, Skt. & Hindi languages in present period; who received Sāhitya Akademi award for his excellent and apriciable works, Beautiful use of Hikoo, cizoo, bowl geet in Skt. Literature.

Madhav, Pauranik. Vidvat in Navya Nyāya & Dvaita Vedānta *b.* 15.03.1943, Udupi, Katpadi, KT. Asst.Prof. ***Gp.*** K. Hayagrivacharya, Venkataramanacharya. ***Ps.***02. ***Add.*** S.M.S.P. Skt. College, Udupi – 576101 (KT). ***Spl.Ref.*** Navya Nyāya & Dvaita Vedānta.

Madhavan, R. (Aduri Asur Madhavcharya). Vyākaraṇaśiromaṇi. *b.* 06.09.1953, Adur Agraharam, South Arcot, TN. Teacher, Madhurantakam Skt. Mahavidyalaya. ***Bks.*** 01. Śrīmadrahasya-trayasāraḥ. ***Add.*** 179, North Chitra Street, Shrirangam, Siruchi (TN). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Madhu, Rai. M.A., Acharya in Sāhitya. *b.* 01.07.1966, Gajipur, (U.P.). ***Ps.***02. ***Add.*** B/ 194, B-3, Virodopur, Mahmudganj, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Madhumalati. M.A., B.Ed.. *b.* 15.06.1948. Teacher, Ramjas School, Pusa Road, New Delhi. ***Ps.***01. ***Add.*** G-3, Green Park Extn., New Delhi – 110016. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Madhuri. M.A., M.Phil.. *b.* 07.09.1959. Research Scholar. ***Ps.***01. ***Add.*** C-22 Rajouri Garden, New Delhi – 110027 or I-23A, Garhwali Mohalla, Lakshmi Nagar, Delhi – 110092. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Madhusudan, K.K. M.A. *b.* 17.03.1961, Pala,

Kottayam, Kerala. Research Scholar. *Ps.*01. *Add.* Kollaparampil, Kizhatatiyur, Pala Kottyam (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Madhusudan, Penna. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 26.04.1966. Hyderabad, A.P. *Bks.* 05. Yogasūtrasāra, Tarkabhāṣā, Mudgala Carita Nā-aka, ādhyātma Rāmāyaṇa, Rāhula Sāṅkṛtyāyana Bibliographay in Saṃskṛta Verse. *Ps.* 07. *Add.* C/o Dr. V.D. Kulkarni Opp. Dhanvantari Hospital, Kharetown, Dharampath, Nagpur– 440010, MH. *Ph.* (0919) 55549.

Madhyastha, Neerchal Narayan. Sāhityaśiromaṇi, Kaanad Vidvat, Rashtra Bhasha Praveen, Dipl. in Language Teaching. *b.* 10.01.1930. Karnataka. Rtd. Lecturer Nirmala Balika Praudh Shala. *Bks.* 08. Cā-uciñcāphalāni, Kāle Varṣti Parjanyaḥ, Aśvāṇḍapurāṇam. *Add.* 27/1 (2) Vinoba Nagar, Jog Road, Sagar. Shimoga – 01. Karnataka. *Spl. Ref.* Poetry in Skt., Hindi, Kannad.

Magotra, Kailash Datt. M.A.. *b.* 09.11.1952, Yoga Teacher, Govt. Senior Secondary Boys School, Link Road, Karol Bag, New Delhi. *Ps.*01. *Add.* 51/13, Kabul Line, Cantt., New Delhi – 10. *Spl.Ref.* Yoga.

Mahabala, Bhatt. D. Skt. śiromaṇi, Vidvat (Kannad). *b.* 16.02.1925, Kasaragode, Kerala. Rtd. Asst. Prof. *Ps.*02. *Add.* Volumpur Bela, Kumba, Kasaragode (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya, KannadaSāhitya.

Mahadev, Dhanushkar. Acharya in Jainadarśana, Sāhitya, āyurveda. *b.* 11.11.1942, Sabalpur, Amaravati, MH. Prof., Head, Dept. of Jain Philsophy. *Gp* Chainsukhadasa ji Nyāyatirth, Damodaracharya. *Add.* Shri Digambar Jain Acharya Skt. Mahavidyalaya, Jaipur (RJ). *Spl.Ref.* JainDarśana, Sāhitya & Ayurveda.

Mahajan, Sushma. M.A., B.Ed. *b.* 18.08.1952. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls, School, Chand Nagar, Delhi. *Ps.*01. *Add.* B-3, Moti Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Mahant, Rajendra. Vyākaraṇa -Shastri, *b.* 16.11.1950. Mahtali (Darrang). Bks. 01. Abhibhāṣaṇa of Anderīghā-a Sāhitya Sabhā. Asst. Teacher, Andherighat High School. *Add:* Vill. Mahtili, P.O. Andherighat, Dist. Darrang, Assam. *Ph.* 09854224837.

Mahapatra, Baikoli. Acharya in Jyotiṣa. *b.* 1908, Balukeshwarapura Shasana, Khallikote, Ganjam, Orissa. Govt. Service. Ganjam, Orissa. *Bks.* 10. Jyotiṣaratnāvalī, Jātakadarpaṇaḥ, Bṛhajjātakaphaladīpikā, Nityakarmadarpaṇaḥ, Camatkāracintāmaṇiḥ. *Expired on* 11.12.1977.

Mahapatra, Bishnupad. Acharya (Navya Nyāya Sarva Darśana), Ph.D. *b.* 25.11.1970. Sr. Lect. LBS Rashtriya Skt. Vidyapeetha. *Gp.* Prof. Vashistha Tripathi, Prof Rajaram Shukla, Prof. Rampujan Pandey. *Sp.* Kuldeep Kumar Sehgal, Vinayak Bhatt, Anant Ram. *Bks.* 03. Śabdaśaktisamīkṣaṇam, Tarkāmṛtam(ed). *Ps.* 32. *Add.* 918-B, Flat No. 06, Ward No. 07, Sanskar Aptt. Mehrauli New Delhi - 110030. Ph. 011-26645981, M. 09911256500. *Spl. Ref.* Navya Nyāya & Sarva Darśana, Visiting fellow SJSV, Puri 2010.

Mahapatra, Digambar. M.A., B.Ed., Rashtra Bhasha Ratan, Acharya. *b.* 05.01.1928, Purunapani, Baideshwar, Cuttack. *Bks.* 16. Surendracarita Mahākāvyam, Vyāsataraṅgam, Mānasa-sandeśam, Raṅgaruciram, Bhāvātītadhyānayogaḥ. *Ps.* 08. *Add:* A – 399, Koel Nagar, Rourkela – 769014. Orissa. *Ph.* (0661) 570682. *Spl. Ref.* President Awardee, Śāstra Chudamani Scholar, Honoured by Odissa Skt. Academy Holland, Russia

Mahapatra, Keshav Chandra. M.A., Ph.D. *b.* 22.06.1968. Jajpur, Orissa. Asct. Prof., Narendra Nath Sanskrit Mahavidyalaya, Balasur, Orissa. *Bks.* 02. Kavitāñjaliḥ, Vibhāvarī. *Spl.Ref.* Poet.

Mahapatra, Kishor Chandra. Acharya in DharmaŚāstra & Sāhitya, V.Varidhi, V.Vachaspati. *b.* 19.12.1951. Prof. in Dharma-Śāstra. *Bks.*03. Cayanapradīpa, Dāyabhaga Samīkṣā, Oḍiyā Samskṛta Dictionary, Nirṇaya Sindhu Samīkṣā Yājñavalkya Samīkṣā. *Add.* Sri Jagannath Viswvidyalaya, Puri (Orissa). *Spl.Ref.* DharmaŚāstra.

Mahapatra, Sachidananda. M.A., M.Phil., Ph.D., Dipl. in German. *b.* 25.07.1961. Sambalpur. Reader & Head Govt. College Sundergarh, Orissa. *Gp.* Pt Baldev Upadhyaya, Pt. Kapil Dev Shastri. *Bks.* 01. Concept of Jātavedas in Vedic Literature. *Ps.* 03. *Add.* Deptt. of Skt. Govt. College Sundergarh - 770002. Odhisha. Ph. 06622272240, M. 09437352903. *Spl. Ref.* German Veda Ashr Vidya Bharati Award, Smt. Sushila Devi Award.

Mahapatra, Vasudev. *b.*1851, Shikarpur Shasan, Ghumushar, Ganjam, Orissa. Acharya. *Bks.* 01. Abhinavarāmāyaṇaṃ. *Expired in* 1939.

Mahapragya, Acharya. He Studied Hindi, Skt. Prakrit, Rajasthani language and Lit. along with Physics, Biology, Ayurveda, Politics, Economics and Sociology. *b.* 14.06.1920, RJ. HOD, Bharti Uni. Ladnun, RJ. *Gp.* Ach. Tulsi. *Bks.* 300. Art of Thinking Positive, Powards Inner Hormony & Mine, Mind beyond mind, New man new World. *Exp.on* 09.05.2010. *Spl.Ref.* Mother Teresa National Award, Communal Harmony Award Ambassedor of Peace by Inter Religious and International Federation.

Maharaj, Acharya Gyansagar. Acharya. *b.* 1892, Ranoli, Sikar RJ. *Gp.* Acharya Shiv Sagar maharaj. *Sp.* Vidhyasagar, Vivek Sagar, Vijay Sagar. *Bks.* Vīrodaya (Mahākāvya), Jayodaya (Mahākāvya), Sudarśanodaya (Mahākāvya), Dayo-daya (Compūkāvya), Munimano-rañjana Śataka. *Exp.on* 07.06.1973. *Spl.Ref.* He is Awarded by Charitra Chakravarti.

Maharaj, Ajit Sagar. *b.* 1925, Bhaura, Ashta Bhopal M.P. *Gp.* Acharya Shiv Sagar Maharaj. *Bks.* 01. Sūriṃ Prabandhe Śivasāgaram.

Maharaj, Kanthu Sagar. Digambar Acharya. *Bks.* 20. Śānti Sudhā Sindhu, Śānti Sāgaracaritra, Bodhāmṛtasāra, Caturviṃśati jaina stutiḥ. *Spl.Ref.* Ahimsa Parva is celebrated on his birthday.

Maharaj, Vidhya Sagar. *b.* 10.10.1946, Sadalga, Belgram KT. Munishri Acharya. *Gp.* Acharya Gyan Sagar ji., Acharya Shanti Sagar Ji. *Sp.* Muni Yog Sagar, Muni Abhay Sagar, Muni Prasad Sagar. *Bks.* 05. Nirañjana Śataka, Bhāvanā Śataka (Saṃskṛta), Sunīti Śataka, Mūkamā-ī (Mahākāvya–Hindī), Caitanya Candrodaya (Mahākāvya Saṃskṛta). *Add.* Kendra Sthan, Bhagyodaya Tirtha, Khurai Road, Sagar M.P. *Spl.Ref.* Scholar of Jain Darśana, Vyākaraṇa, Chand Śāstra, Nyāya, Darśana, Sāhitya, Adhyatma, Prakrit, Apbhransh, Sanskrit, Kannad, Marathi, English, Hindi & Bangla.

Mahashankar, Ghelabhai Shukla Agnihotri. *b.* 14.03.1900, Ponsara, Maroli, GJ. *Bks.* 03. Śrautaśiromaṇi, Saddharmamārtaṇḍa, Yājñika-viśarada. *Add.* Soniphalisa, Surat (GJ). *Spl.Ref.* DharmaŚāstra.

Mahato, Damodar. M.A., Ph.D. *b.* 01.06.1952. Sundarpur (Munger). *Bks.* 04. Vaidikī Prakriyā, Pāṇinīya Śikṣā, Śīśe kī Darāra, Banārasī Havā. *Ps.* 06. *Add:* Prof. Colony, Patel Nagar, P.O. T.N.B. College, Bhagalpur, Dist. Bhagalpur-812007, (Bihar), *Ph.* (0641) 500866.

Mahaur, Jagdish Prasad. M.A., M.L.I.S. *b.* 05.05.1960. Dist. Sitapur, U.P. Asct.Prof., Motilal Neharu College, Univ. of Delhi. *Bks.* 02. *Ps.* 10. *Add:* D – 1/181. Brijpuri, Wazirabad Road, P.O. GokulPuri, Delhi – 110094. *Ph.* (R) 2854102, (O) 3383097.

Mahavir, Sinha. Sanskrt. *b.* 31.07.1940. Teacher, Govt. Higher Secondary School, New Seelampur, Delhi. *Ps.*01. *Add.* C-6/440, Yamuna Vihar, Delhi – 110053. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mahavir. Acharya in Darśana, & Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 20.05.1937. Asst. Prof., Shivaji College, Raja Garden, New Delhi. *Ps.*02. *Add.* A-3/11, Pashchim Vihar, New Delhi – 110063. *Spl.Ref.* Darśana, Vyākaraṇa.

Mahendra, kumar. Shastri, Sāhitya-Vachaspti, Siddhantbhushan. *b.* 05.05.1921. Teacher. *Ps.*01. *Add.* Arya Balagriha, Pataudi House, Darya Ganj, New Delhi – 110002.

Mahendra, Sinha. M.A. *b.* 01.01.1939. Teacher, D.A.V. Higher Secondary School, Paharganj,

New Delhi. *Ps.*02. *Add.* J-210, Kartar Nagar, New Usmanpur, Shahdara, Delhi – 110053. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mahendra, T. M.A., M.Phil., Vidyavaridhi. *b.* 10.07.1983. Varangal AP. Asstt. Prof. RSKS New Delhi. *Ps.* 01. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan 56-57 Institutional Area, 'D' Block Janakpuri New Delhi 110058. M. 09555243989 tpmahi@gmail.com

Mahendrapal. M.A., B.Ed.. *b.* 10.11.1958, Badera, Pilibhit, (U.P.). Teacher, Govt. Hr. Secondary School. *Ps.*02. *Add.* 3/29, Sector No. 2, Sahibabad, Ghaziabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Mahesh Prasad. M.A.. *b.* 16.07.1935, Lucknow, (U.P.). *Gp* K.S.R. Ayyar, K.C. Pandey. Secretary, Ministry of Information & Broadcasting, Govt. of India. *Ps.*02. *Add.* Ministry of Information & Broadcasting, Shastri Bhavan, New Delhi–110001. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Maheshwar Prasad. M.A., Ph.D. Asst. Prof., Dept. of Skt. *Ps.*02. *Add.* Magadh University, Bodh Gaya, Gaya (Bihar). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mahodaya, Ramswami, M.A., L.T. *b.* 25.07.1910, Kalyanapuram, Thanjavur, T.N. *Bks.* Pativijaya (Play), Saṃskṛta-śikṣaṇa-paddhatiḥ, Saṃskṛtetarabhaṣā-śikṣaṇa-paddhatiḥ. *Add.* Kalyanapuram, Thanjavur T.N. *Spl.Ref.* Advaita, Viśiṣ-ādvaita, Vyākaraṇa Śāstra, Mīmāṃsā.

Mahulikar, Gauri. M.A., Ph.D., P.G. Diploma in Comparative Mythology. *b.* 30.07.1953. *Bks.* 03. Vedic Elements in Paurāṇika Mantrās & Ṛcās, Facts of feministy, East and Best, Abhijāta Saṃskṛta Sāhitya kā Itihāsa. *Ps.* 41. *Add.* 202, Snehal, Kasturba X Road, 05, Borivli (East), Mumbai – 400066. *Ph.* 022 – 28065693, 09869105178.

Mainakar, Madhukar Govind. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 15.03.1916. MH. Principal. Fargusan Univ. Director Bhandarkar Oriental Research Insititute, Pune. *Bks.* 02. Smṛtiraṅgam, GāyikāŚilpaKāram. *Expired on* 17.09.1981. *Spl.Ref.* He was a Romantic Skt. Poet. User of Sonnet in Skt. Poetry.

Maithani, BhaktaDarsanaacharya. Acharya in Sāhitya. *b.* 07.09.1950, Vill. Jhod, Pauri Garhwal, (U.P). Principal. *Gp.* Mukteswarji Khandavala. *Ps.* 02. *Add.* Shri Svargasram Trust Skt. Mahavidyalay, Svargasram – 249304, Garhwal ((U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Maithani, Bhaskaranand. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 01.10.1904, Chamoli, Garhwal, (U.P.) *Ps.* 02. *Add.* Ukhimath, Chamoli, Garhwal ((U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Maithani, Kulnanda. Acharya in Jyotiṣa. *b.* 15.08.1914, Makkumuth, Chamoli, (U.P.). *Gp.* Mukand Ram Kimothi. *Ps.* 02. *Add.* Village & P.O. Makkumuth, Chamoli. (U.P.). *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Maitreyee, Kumari. M.A., B.Ed., BET, NET, Ph.D. *b.* 05.01.1972. Bhagalpur. Asst. Prof. Kamla Nehru College, New Delhi. *Gp.* Dr. Dipti Tripathi, Dr. Hemlata, Dr. P.K. Jha, Dr. Damodar Mehto, Dr. Poonam Pandey, Dr. Ramsagar Mishra, Dr. Avneesh Agarwal. *Sp.* Dr. Arpita Chattarjee, Dr. Deepika Ekta Pandey. *Ps.* 08. *Add.* Deptt. of Skt. Kamla Nehru College New Delhi - 110049. M. 09717658497, 09811562307. mkkumari51@yahoo.com

Majumder, Shilpi Dutta. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.* 02.03.1964. Silchar. Asst. Prof., Dept of Skt. Chachar College Silchar. *Ps.* 08. *Add* Leelaniketan NS Avenue Hilakandi Road Silchar - 788005. Ph. 0384223433. M. 09435170528. shilpidm@gmail.com *Spl. Ref.* German, French.

Makand, Parul Kapil Rai. Ph.D. *b.* 04.02.1953. Prof. L.D. Istitution of Endology, Navrangpura Ahemdabad. *Ps.* 02. *Add.* A-7 Sonarika Appartment Dr. Vikram SaraBhai Road Panjarapola Ahemdabad. *Spl.Ref.* Alaṅkāraa Śāstra.

Makand, Sonal N. Ph.D. *b.*02.02.1965. Prof. D.K.V. College, JamNagar. *Ps.* 05. *Add.* Yogeshwar 2/2, Patel Colony JamNagar. *Spl.Ref.* AlaṅkāraaŚāstra.

Makwana, Jayanti Bhai S. M.Phil. *b.* 18.03.1963. Prof. N.D. Arts & B.R. Commerce

College, Mansa Distt. GandhiNagar. *Ps.* 02. *Add.* M. 12/ 138, Shri Sardar Patel Society Sector 14, GandhiNagar, GJ. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Makwana, Naveen Kumar Daya Bhai. Ph.D. *b.*18.03.1971. Prof. Sadguna C.U. Shah Mahila Arts College Vadhwana City Surendra Nagar. *Ps.* 02. *Add.* Krishna Park, Near Naroda board 80, Krutani Road Surendra Nagar . *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Makwana, Prabhu Bhai Kachara Bhai. Ph.D. *b.*26.05.1967. Prof. Vijay Nagar Arts College Vijay Nagar Distt. Sambharkanta. *Ps.* 05. *Add.* Vill. Post Jawanpura Tehsil Idar Distt. Sambharkanta. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Makwana, Ramesh kumar Govind Bhai. Ph.D. *b.*04.01.1952. Prof. Shri G.K.C.K.Bossmiya Arts & Commerce College JuNagarh Jetpur. *Ps.* 02. *Add.* Tili patel Chauk Jetpur. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Malaiya, Asha. Prof. Govt. Girls College Sagar M.P. *Bks.* 01. Saṃskṛta kī Śataka Paramparā aura Acārya vidyāsāgara.

Malaji, R.G. M.A. *b.* 01.03.1943, Koda, Dharwar, KT. Upanideshak (Dy. Director). *Ps.* 02. *Add.* Oriental Research Institute, Mysore – 570005. (KT). *Spl.Ref.* Darśana.

Malgi, Vasudevacharya Jayatirthacharya. Acharya in Vedānta & Dharma-Śāstra, Sāhitya-vidvān, Sāhityaśiromaṇi, M.A. *b.* 26.06.1950. Teacher. *Add.* KT Vishwavidyalaya, Dharwar (KT). *Spl.Ref.* Vedānta, Dharma-Śāstra, Sāhitya, Kannada & Hindi Sāhitya.

Malhotra, Kasturi Lal. M.A. *b.* 15.08.1940. Dist. Sargodha, Pakistan. *Ps.* 02. *Add:* E – 7. Moti Nagar. New Delhi – 110015. *Tel.* 5101012. k.l.malhotra@hotmail.com.

Malika, R. M.A., B.Ed.. *b.* 25.08.1935. Vice-Principal. *Ps.* 02. *Add.* B-1/16, Janakpuri, New Delhi – 110058. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Malika, Usha. M.A., Ph.D.. *b.* 06.12.1959. Asst. Prof., Skt. Department. *Ps.* 02. *Add.* Mata Sundari College for Women (Delhi University), Mata Sundari Lane, New Delhi – 110002. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Malladi, Pandurangarav. *b.* 1948, Machillipattanam, Vedaparayanakartta. *Gp* M.V. Ramanatha Ghanapathi. *Ps.* 02. *Add.* Shri Kalahastidevasthanam, Shrikalahasti, Chittur (A.P.). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Mallavajhula, Venkatsubbaramashastri. Acharya in Sāhitya. *b.* 10.05.1902, Arepalli Agraharam, Guntur, (A.P.). Rtd. Teacher. *Gp.* Charla Bhashyakar Shastri, Gauripati Shastri. *Ps.* 02. *Add.* 21, Dayanand Colony, Warangal (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mallayya, N. Venkateswara. M.A., M.Litt. Ph.D. *b.* 30.05.1913. Manjeswara. Rtd. Prof. Maharaja College. *Bks.* 05. *Ps.* 50. *Spl.Ref.* UGC Award, His talks on various topics were Broadcasted through A.I.R., President Awardee.

Malledevaru, H.P. M.A., Ph.D. *b.* 18.07.1931, Honnura, Mysore, KT. Asst. Prof., Oriental Research Institute, Mysore. *Gp.* Suryakant Shastri, Baldev Upadhyay. *Ps.* 02. *Add.* Mysore University, Manas Gangotri, Mysore (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya & Darśana.

Malviya, Rameshwary. Acharya in Sāhitya. *b.*02.08.1938, Lucknow, U.P. Principal. *Gp* Shridhar Mishra. *Ps.* 02. *Add.* Laxmi Mahila Vidhyapeeth, 181, Gautam Buddha Marg, Lucknow, 226001 U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Malviya, Ramkuber. Acharya, Āyurveda-ratna, M.A. *b.* 1906. Asst.Prof. & H.o.D. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. *Bks.* 04. Mālavīyamahākāvyam, Vikramāṅkadevacaritam, Rāghavanaiṣadhīya, Añjana. *Expired in* 1973. *Spl.Ref.* Āyurveda.

Mamata, B. M.A.. *b.* 23.02.1958, Mysore, KT. Research Asst., O.R.A. *Gp* H.P. Malladevaru, B.K. Shivaramayya. *Ps.* 02. *Add.* Mysore University, Manasa Gangotri, Mysore (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mandal, Alpana. Sastri, B.A., B.Ed. *b.* 06.09.1962, Mirga-Chhatra, Hooghly, W.B. Teacher. *Gp.* Dr. Gopalanatha Bhattacharya, Dr. Visvanatha, Dr. Pratapa Mukherjee. *Ps.* 02. *Add.* Vill. & P.O. Mirga Chhatra, Goghat, Hooghly Dist. (W.B.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mandal, Chinmay. M.A., Paṇini Vyākaraṇa , Ph.D. *b.* 02.04.1982. 24 Pargnath. Asstt. Prof. *Gp.* Dr. Tapansankar Bhattacharya, Prof. Bhawani Prasad Bhattacharya, Prof. Sitanath Goswami. *Bks.* 01. *Ps.* 01. *Add.* Deptt. of Skt. Jadavpur Univ. M. 09830911438. *Spl. Ref.* Vyākaraṇa.

Mandalika, Laxminarasimha. Sāhitya vidyapravina, Sikshashastri. *b.* 11.07.1945, Vijayanagar, (A.P.). Skt. Teacher. *Gp* Kollur Laxmanamurti Sharma. *Ps.* 01. *Add.* S.D.S.H. Pathashala, Simhachalam, Vishakhapatnam (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mangala, Mithileshkumari. M.A. (Skt.& Hindi). *b.* 01.05.1949. Teacher. D.T.E.A. Senior Secondary School, Lodhi Estate, New Delhi. *Ps.* 01. *Add.* 1/10, DDA Flats, Madangir, New Delhi – 110062. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mangalavede, Balacharya Bandacharya. Bhushan in Kāvya, Purāṇa-pravin, Mahabhgavatacharya. *b.* 05.05.1903, Yajnakund, Belgaum, KT. Rtd. Teacher. *Gp.* Pt. Pradyumnacharya, Pt. Narasimhacharya. *Add.* 4747, Toraligali, Hubli – 20 (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya & Purāṇa.

Manilal, Kansara Narayan. M.A., Ph.D. *b.* 25.12.1932. Mehasana. Rtd. Prof. & Director in Several Academic Institutions. *Bks.* 42. *Ps.* 176. *Spl.Ref.* Poet, President Awardee, His poetry and musical concerts broadcasted from A.I.R. several times.

Manilal, Sarmopadhyay. Acharya in Śuklayajurveda, Phalita Jyotiṣa, DharmaŚāstra, Ph.D. *b.* 15.09.1959, Gulmi, Tramdhas, Nepal. Teacher of Veda, Shri Nandlal Bajeriya Skt. Mahavidyalaya, Asighat, Varansi. *Gp* Vamshidhar Mishra, Bhagvatprasad Mishra, Gopalchandra Mishra, Daulatram Gaud, Veniram Gaud. *Add.* K/23/19, Dhudhvinayak, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Śuklayajurveda, Jyotiṣa, DharmaŚāstra.

Manoharlal, Maharaj. Madhyama. *b.* 05.08.1928, Mevansa, Jamnagar, GJ. Principal. *Gp.* Trayambaka Ram Shastri. *Add.* Gita Vidyalay, Varanasivishvanath Road, Jamnagar–7 (GJ). *Spl.Ref.* Ṛgveda.

Manoj, V.R. Acharya in Vyākaraṇa, B.Ed., Ph.D. *b.* 30.04.1973. Kottayam, Kerala. Dy. Director Chinmay International Foundation Shodha Sansthan. *Gp.* Peri Suryanarayan Shastri, Prof. K.V. Ramakrishanamachayulu. *Bks.* 01. Pūrṇimā : A Comentary on Ākhyātacandrikā of Bhattamalla. *Ps.* 27. *Add.* Vallisserickal P.O. Chittady Cotty Kottayam Distt. Kerala - 686524. M. 09846626626. drvrmanoj@gmail.com *Spl. Ref.* Vyākaraṇa.

Mansukharam, Amritlal. M.A., Ph.D. *b.* 10.03.1935, Dhambola, Dungarapur, RJ. *Gp.* Prof. J.C. Jhala. *Ps.* 02. *Add.* B/22, Karuna Apartment, Near Lavanya Society, Basan, Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Manudev, Bandhu. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Siddhantasiromani, Ph.D.. *b.* 05.04.1958, Vill. Pathargram, Gonda, (U.P.). Asst. Prof., Gurukul Kangri University, Haridwar. *Bks.* 01. Vedokhilo Dharmamūlam. *Add.* Bandhusadan, Near Vanaprasthasharam, Arya Nagar, Kankhal Road, Jwalapur, Haridwar (UK). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Marasini, Dadhiram. śuklayajurveda, Nyāya,Vedānta, Acharya in NavyaVyākaraṇa. *b.* 1882. Vamruk, Arghatvachi, Nepal. Principal, Harihar Skt. Pathshala, Khidimgram. *Gp.* Pt. Parikshit Sharma, Sri Mohdutt Brahmchari. *Bks.* 04. Śrī Rāmacaritāmṛtam, Sadupadeśa Bhaktivilāsaḥ. Expired in Kashi. *Spl.Ref.* Poet in Skt. and Nepali, śuklayajurveda.

Margshayan, Suryanarayan. śiromaṇi. *b.* 16.09.1912, Varagur, Tanjavur, T.N. *Ps.* 01. *Add.* Shri Bala Sadanam, Near Railway Station, Kazhakuttam, Tiruvananthapuram Kerala. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa &Vedānta Śāstra.

Marigant, Shrirangacharya. M.A., Vedāntavidvān. *b.* 16.02.1933, Bemulwad, Karimnagar (A.P.). Asst. Prof., Nyāya. *Gp* G. Seshacharya Swami, Sathakopa-ramanujacharya Swamipad. *Ps.* 01. *Add.* 13.1.1/49, Hyderabad (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Nyāya.

Markandeya, Avadhani Ghanapathi, K.N. Ṛgvedakramānta, Jyotiṣa, (Traditional Degree). *b.* 18.11.1933, Mattur, Shimoga, KT. Pauranika Purohit. ***Gp.*** Laxmi Keshva Avadhani, N. Chidambar Joyisha, Shrikant Ghanapathi. ***Add.*** Mattur, Dist. Shimoga (KT). ***Spl.Ref.*** Ṛgveda & Yajurveda, JyotiṣaŚāstra.

Markandeya. Acharya, (Vyākaraṇa, Sāhitya, Śuklayajurveda), Veda Teacher, Central Higher E. School, Samastipur. ***Add.*** Narayanapur (Manikpur), Silon, Muzaffarpur – 843119 (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa , Sāhitya, Yajurveda.

Markuru, Krishnacharya. Dvaitavedānta-śiromaṇi, Skt. Sāhitya Bhushan. ***b.*** 06.06.1915, Ramkunj, Puttur Taluk, KT. Rtd. Teacher. ***Add.*** Krishna Kripa Sulya, South KT– 574239 (KT). ***Spl.Ref.*** Skt. Sāhitya, Veda & DvaitaVedānta.

Mata, S.R. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.06.1944, Chittur, (A.P.). Head Librarian, S.B.U. Oriental Research Institute. ***Gp.*** E.R. Shrikrishna Sharma. ***Bks.*** 01. Kauṣītaki Upaniṣad : Ekam adhyayanam. ***Add.*** S.V.U. Oriental Research Institute, Tirupati – 517502 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Matha, Jagannath. Acharya in Navya Vyākaraṇa, Shiksashastri. ***b.*** 01.06.1945. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 32, Anand Van, MH Co-Operative Housing Society, Block A-6, Paschim Vihar, New Delhi. ***Spl Ref.*** Navya Vyākaraṇa.

Mathada, Shivakumar Swami. M.A., Ph.D. ***b.*** 10.02.1938, Asgode, Chitradurg, KT. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Asgode, Chitradurg (KT). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mathur, Abha. M.A.. ***b.*** 16.11.1951. Skt. Teacher, Navyug Vidyalaya, Sarojini Nagar, New Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** F-26, Desu Colony, Shakti Nagar, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mayavati. M.A., Ph.D. ***b.*** 29.06.1954, Rajapur, Delhi. Asst. Prof., Kirorimal College. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 94/5, C.P.W.D. Flats, Saket, New Delhi–110017. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Meena, Kumari M.A., Acharya, Ph.D. ***b.*** 15.03.1961. Asct. Prof. Dronasthli Arsh Kanye Gurukul Dheradun. ***Ps.*** 08. ***Add.*** Dronasthli Arsh Kanye Gurukul 35/A Kishanpur Dheradun–248009 UK. M. 07830236898.

Meena, Vishnu Prasad. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.11.1980, Guna, M.P. Project Fellow, Rashtriya Skt. Sansthan, Bhopal Campus. ***Gp.*** Prof. R.V. Tripathi, Prof. A. Dash, Prof. Kusum Bhuriya, Dr. Ramakant Pandey, Dr. Dharmendra Kumar Singhdeo. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Bandari, Kumbhraj, Guna, M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Meghashyam, Vedalankara. VedaAlaṅkāra, M.A.. ***b.*** 01.12.1950, Paurohitya (Priest). ***Add.*** Arya Samaj Mandir, Lajpat Nagar, New Delhi–110024. ***Spl.Ref.*** Veda.

Mehara, Baldev. B.A., M.A., Ph.D., L.L.B., ***b.*** 15.08.1952, Hariyana. Asst. Prof., Mahendra Gadha, Rohtak. ***Bks.*** 07. Śrauta Sacrifices in the Atharvaveda, Vaīdika Saṅkalan, Vaīdika Saṅgraha Evam Vyākhyā, ātharvaṇa Kravya Sūkta, Gṛhakarma Evam Saṃskāra, Śrauta Sūtra Vyākhyā.

Mehata, Kamalesh. M.A. ***b.*** 17.01.1945. Teacher (TGT), Kendriya Vidyalaya, Andrews Ganj, New Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** C/o Shri N. Mehta, E-44, Saket New Delhi.

Meher, Harekrishna. M.A., Ph.D., Diploma in German. ***b.*** 05.05.1956, Sinapali (Orissa). Asct. Prof. & Head. Dept. of Skt.. ***Bks.*** 14. Philosophical reflection in the Naiṣadhacarita, Naiṣadhamahākāvye Dharmaśāstrīya Pratiphalanam, Sāhityadarpaṇa Alaṅkāra, Mātṛgītikāñjaliḥ, Śrīkṛṣṇa Janma. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Government College, Bhawanipatna – 766001. ***Ph.*** (06670) 31591. ***Spl.Ref.*** Good Poet, translated many Kāvyas from Oriya Literature.

Mehta, Anjana ben Harsh Kumar. Ph.D. ***b.*** 01.10.1958. Prof., Vivekanand Arts College Raipur Darwaja Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 6 Avi Flats Someshwer Satelite Road Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Mehta, Arun kumar Purushottum Das. Ph.D. ***b.*** 09.10.1938. Prof., S.S. Mehta Arts College

Himmat Nagar. ***Bks.*** 02. Premaśatakam. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 9 Shantikunj Society, Gokul Nagar Tasia Road Himmatnagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Mehta, Bhaskar Bhai Y. Ph.D. Prof. Arts & Commerce College Ider GJ. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Yogendra Kripa, 7 Anand Nagar Society Ider GJ. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Mehta, Chotalal V. Ph.D. ***b.*** 03.08.1943. HOD. Shri R.K. Parika, Arts. & Science College Petlad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 3-M. City Garden Society, Mankodia Bijalpur, Navsari. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Mehta, Geeta Ben P. Ph.D. ***b.*** 02.08.1958. Prof. B.D. Arts College, Sankadi Street Manik Chouk Ahemdabad. ***Ps.*** 06. ***Add.*** 12, Anupam Apartment, Shakti Society, Paldi., Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Mehta, Gigna S. M.A., B.Ed.. ***b.*** 23.07.1973, Ranpur (GJ). ***Ps.*** 01. ***Add.*** P.H.C. Quarter, At.- Vartej, Td. Bhavnagar, Bhavnagar (GJ) ***Ph.*** (0278) 448032.

Mehta, Hariprasad Chhaganlal. Kāvya Tīrtha, M.A., B.T. ***b.*** 30.05.1912, Natapur, Nadiad, GJ. ***Gp.*** Chhaganlal Natthulal Shastri, Pratap Rai. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 47/I, Sadhana Nagar, Kareli Bag, Varodara, Gujrat. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Mehta, Krishna Shankar Vishnu Shankar. Ph.D. ***b.*** 21.04.1942. Prof. Sanskrit deptt. Bhasha Sahitya Bhawan, Gujrat Univ., Ahemdabad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 4 Swikar Tenament, Near DurDarśana Thaltez, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Alaṅkāra, Mīmāṃsā, Sāṅkya, Yoga, Veda, Vedāṅga.

Mehta, Mahesh kumar K. Ph.D. ***b.***05.10.1967. Prof. Smt. C.R. Gardi Arts College Moonpur Distt. Panchmahal. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Vill Post Moonpur, Tehsil Kadana Distt. Panchmahal. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Mehta, Narendra Kumar Purushottum Bhai. Ph.D. ***b.*** 23.08.1939. Prof. C.N. Arts & B.D. Commerce College Kalol Road, Kadi Mehsana. ***Add.*** 5, Raj Banglow, Karun Nagar Road, Kadi Distt. Mehsana. ***Spl.Ref.*** Vednāta Śāstra.

Mehta, Narhari Bhai Chagan Lal. Ph.D. ***b.*** 21.03.1939. Prof. S.D. Arts & B.R. Commerce College Mansa Distt. GandhiNagar. ***Ps.*** 01. ***Add.*** B/604, Kevalya Dham, Tower 1, Near Times of India press Satelite. Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Mehta, Parul Ben M. Ph.D. ***b.***06.12.1966. Prof. Mahila Arts College Gondal Distt. Rajkot. ***Ps.*** 01. ***Add.*** C/o. P.M. Mehta 197, Chandra Park B, Street No. 12, Ring Road, Rajkot. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Mehta, Rashmi Ben P. Ph.D. ***b.***02.08.1957. Prof. Arts College Kodinar Distt. Junagarh. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Milan Near Mihir STD, Sardar Nagar kodinar Distt. JuNagarh. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Mehta, Rashmikant Padam kant. Ph.D. ***b.*** 14.05.1946. HOD B.J. Vidhyabhawan, H.K. Arts College Compound, Ahemdabad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 778-1, Shivanjali Madhuram Flats, Sector 21, GandhiNagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Mehta, Shobhna Ben A. Ph.D. ***b.***03.08.1958. Prof. RP Chouhan Arts & Commerce College Vyara, Distt. Surat. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Vagish 45, Vrindawan Dham Society, Near Ramji Mandir Vyara Distt. Surat. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Mehta, Shuchita Yagnesh. M.A., Ph.D.. ***b.*** 17.10.1957, Ahmedabad. Asst. Prof., St. Xavier's College. ***Bks.*** 01. Idealistic Thought in Indian Philosophy. ***Ps.*** 08. ***Add.*** 9, Rupam Society, B/H Child – Care. N.R. Vijay Restaurant, Navarangpura. Ahmedabad – 380009. ***Ph.*** 7911440.

Mehta, Suchita ben Yogesh Bhai. Ph.D. ***b.*** 17.10.1957. Prof. Saint Javior College Navrangpura Ahemdabad. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 9, Roopam Society Near Vijay Resturent Navrangpura Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Mehta, Tejani Samir. M.A., Ph.D. ***b.*** 28.08.1968, Ahmedabad. Asst. Prof. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 19/20. Archit Bunglows. 3rd Floor. NR. Hira Rupa Hall. Ambli – Bhopal Road. Ahmedabad – 58. ***Ph.*** 6746246. ***Spl.Ref.*** Paṇinīya Vyākaraṇa.

Mehta, Vandana ben D. Ph.D. *b.* 30.08.1945. Prof. Shri H.K. Arts College, Aashram Road, Ahemdabad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** E-195 Premchand Nagar Satelite Road Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Mehta, Vinod Bhai Parmanand. Ph.D. *b.* 10.04.1932. Prof. H.K. Arts College Ashram Road Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** D-10, Ramankala Appartment Near Railway Crossing Narayan Pura Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vedānta Śāstra.

Mehtra, Mahesh Bhai Kanha Bhai. Ph.D. *b.*19.08.1971. Prof. Arts & Commerce College Jerawar Bag Manavadar Distt. juNagarh. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Harsh Nagar Dolatpura JuNagarh. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Menka, Sharma. M.A., B.Ed., Ph.D.. *b.* 09.03.1955. Teacher, Bal Bharati Public School, Gangaram Hospital Marg, New Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 12, Ashok Park Extn., Rohtak Road, New Delhi – 110026. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Menon, K Ravi Sankara Acharya M.A., M.Ed., Vidyavaridhi. *b.* 05.08.1948. Prof. of Education Rashtriya Skt. Vidyapeetha Tirupati. ***Gp.*** MM Harshnath Mishra. ***Bks.*** 03. Sāhityamīmāṃsā, Śikṣaṇavidhi. ***Ps.*** 34. ***Add.*** Rashtriya Skt. Vidyapeetha Tirupati - 517507. Ph. 0877-2287812. M. 09885881901. menon.ravisankar @gmail.com

Menon, K.P.Achutha B.Sc., M.A. (English), LLB, Ph.D., Dipl. Spanish & French. *b.* 08.07.1927. Rtd. IAS & President LBS Rashtriya Skt. Vidyapeetha. ***Bks.*** 40. ***Spl. Ref.*** Indira Behrai Gold Medal Kalidas Puraskar Pandit Ratanam Puraskar, Vishwa Tulsi Samman, President WAVS. President Awardee.

Menon, Narayan K. *b.* 25.05.1926, Vill. Panangad, Kerala. ***Add.*** Skt. Vidvan, Meledat House, Kalathiparambu Road, Panangad – 682016 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Mevalal. M.A.. *b.* 30.07.1942. Teacher. Govt. Senior Higher Secondary School, Padma Nagar. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 286, Kalyanwas, Khichripur, Delhi – 110091. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mikhail. Ph.D. *b.* 18.10.1952. Gorki. Belarus. Director of the Center for Advanced Studies of the Belarusian Collegium. ***Bks.*** 03. Kṣemendra Foundations of true Morality, Orśa, Vaidic Met code. Minsk. Web Publication. ***Add.*** 11 – 36. Yakubovskogo. Gorki. Belarus. 213410. ***Ph.*** 375 – 2233. 25867. mih_mihailor @gmail.com.

Mimansak, Yudhishthir. Mīmāṃsā, Nyāya-vaiśeṣika, Karmakāṇḍa, Kātyāyanaśrautasūtra, Vyākaraṇa, Veda. *b.* 22.09.1909, Vill. Muhammadpur, Distt. Nimad, Indore (M.P.). Asst. Prof. Sandhya Skt. College, Bhuvan-eshwar, Paniniya College, Motijheel, Varanasi. ***Gp.*** Pt. Brahmdutt Jigyasu, Pt. Buddhadev, M.M. Pt. Chinnaswami Shastri, Pt. Pattabhiram Shastri, Pt. Dhundhiraj Shastri, Pt. Bhagwat-prasad Mishra. ***Sp.*** Pt. Subrahmanya Shastri. ***Bks.*** 10. Vaidikasvaramīmāṃsā, Vaidikachando mīmāṃsā, Kāśakṛtsna Dhātu Vyākhyānam, Niruktasamuccayaḥ, Saṃskṛta Vyākaraṇa-śāstra kā itihāsa. ***Spl.Ref.*** Rashtrapati Award by Govt. of India in 1977.

Minakshisundaram, S. Yujurveda. *b.* 08.03.1957, Tiruchi, Tamil Nadu. Yajurved Teacher. ***Add.*** S.S. College, Shringeri, KT – 577139. ***Spl.Ref.*** Veda.

Minoch, Usha. M.A.. *b.* 04.04.1950. Language Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School, Mehrauli, New Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 668/Y Mehrauli, New Delhi – 110030. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Adya Prasad. Acharya in Sāhitya, Vedāntasastri, M.A., D.Litt.. *b.* 21.03.1921, Dronipur, Dist. Jaunpur, U.P.. Ex. V.C., Allahabad University. ***Gp.*** Dr. Prasannakumar Acharya, Dr. Baduram Saxena, Ksetresa-chandra Chattopadhyay. ***Bks.*** 15. Sāṅkhya Darśana kī Aitihāsika Paramaparā, Kālidāsa Sāhityam, Ka-hopaniṣad Vyākhyā, Sāṅkhya Darśana Paryālocana. ***Ps.*** 10. ***Spl.Ref.*** President Award by Honb'le President of India Vishishta Vidvan by U.P. Skt. Academy.

Mishra, Adya Prasad. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, M.A., Ph.D.. *b.* 15.07.1937, Basti,

U.P.. Asst. Prof., Vyākaraṇa Dept.. *Gp.* Pt. Muralidhar Mishra, Pt. Ramprasad Tripathi. *Bks.* 02. Prakriyā Kaumudī Vimarśa, Vaiyākaraṇa Bhūṣaṇasāra with sāvitri (Hindi explanation). *Ps.* 01. *Add.* A/2, Acharya Niwas, S.S.V.V. (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa , Sāhitya.

Mishra, Ajay Kumar. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 04.04.1968, Hajipur (Vaishali), Bihar. Asst. Prof., Distance Education. *Gp.* Prof. B. M. Chaturvedi, Prof. Manjushri. *Bks.* 05. Uttarādhunikatā aura Saṃskṛta Kavitā, Mathurāprasāda Dīkṣita ke nā-aka, Bharatavijaya Nā-aka : svatantratā saṅgrāma kā samājaśāstra. *Ps.* 89. *Add.* Rashtriy Sanskrit Sansthan, 56-57, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi– 110 058. *Spl.Ref.* Kāvya Śāstra and Nā-ya Śāstra, President Awardee (Maharshi Badarayana Vyas Samman – 2005), Govt. of India. Literary criticism (Brief And detail review more than 600 books on various disc. Of Sanskrit). Member of Editorial board Quarterly Sanskrit Journal on dramatrology and Aesthetics Nā-YAM. Email: ajayk-mishra68@gmail.com, mob. 09968303243.

Mishra, Anand Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 25.07.1962. Teacher, Maharishi University. *Ps.* 01. *Add.* Maharishi Nagar, Ghaziabad (U.P.)

Mishra, Anandmurti. Acharya, M.A. *b.* 01.08.1954, Kalyanpur, Rohtas, Bihar. *Bks.* 03. Śrī Sampradāya, Yatīndramatadīpikā (Hindi trns.), Pratāpavijaya (Skt. Comm. & Hindi trns.). *Add.* Shri Hanumat Skt. Mahavidyalay, Hanuman Garhi, Ayodhya, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* Viśiṣ-ādvaita-Vedānta.

Mishra, Anantram. *b.* 1956. Prof., Deptt. of Hindi, Kengoars Nehru PG College, Khiri, U.P. *Bks.* 01. Dogdhakaśatakam.

Mishra, Aniruddha. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 1910, Makrampur, Bihar. Director, Aniruddha Jnanapitham, Kanada Nagar, Makaram Puram. *Gp.* Pt. Satyadev Jha, Pt. Dirgha Narayan Jha. *Ps.* 01. *Add.* Anirudha Gyanpeetham, Pandit Niketanam, Kanad Nagar, Makrampur, Ramauli (Bahera), Darbhanga Dist. (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Annapurna. M.A., Ph.D. Acharya Skt. Vachaspati *b.* 16.02.1937. Rtd. Principal Gokuldass Hindu Girls PG College Muradabad UP. *Bks.* 02. Vaidikavāṅmaya me Rāṣ-rīya Ekatā evam Akhaṇḍatā. *Ps.* 10. *Add.* 6A Rly. Board of Officers Colony Sarojini Nagar, New Delhi-110023. M. 09760006231. sharmaanu shree7@gmail.com

Mishra, Aparajita. M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1977, Allahabad. Asst. Prof., Ganganath Jha Campus, Allahabad. *Bks.*04. Dhruvacaritam(Ed.), Rāmavilāsa-kāvyam(Ed.), Gopālavivekaḥ(Ed.), Vilāsa-ratnamālā(Ed.) *Ps.* 08. *Add.* 742/2/94 Ramanand Nagar, Allapur, Allahabad. *Ph.* 9453137308.

Mishra, Arjun. Acharya in āyurveda. *b.* 1853, Hoshiyarpur, Panjab. *Sp.* Shyam-sundara-charya, Pt. Nanakchandra Sharma, Pt. Lalchandra Vaidya. *Expired in* 1921. *Spl.Ref.*. Established 'Ayurvedvidya Pramodini Pathshala' in 1917 at Varanasi. He donated all property for Arjun Aayurved Vidyalay, Varanasi.

Mishra, Arun Kumar. Ph.D. *b.* 02.01.1969. Prof. R.M.Patel Arts & Commerce College, Nawavadaj, Ahemdabad. *Ps.* 01. *Add.* T -306, Vishvash City–2, Chanakya Puri, Ghatlodia, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Mishra, Ashok Kumar. Acharya in Sāhitya. *b.* 15.04.1962, Anand Nagar, Bagaha, Bihar. *Gp.* Ramnath Tripathi, Hare Ram Tripathi, Siyaram Mishra etc. *Ps.* 02. *Add.* C.K. 13/30, Satti Chauraha, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Ashutosh. M.A., Acharya in Purāṇetihāsa, Shiksha Shastri, Ph.D. *b.* 17.07.1958. Bhadohi. Upacharya Deptt of Purāṇaetihas Sampoornand Skt. VV. *Gp.* Prof. Parasnath Dwivedi *Bks.* 05. Paurāṇika Vanśānucaritam, Rāmakathāmañjarī, Bhāratasya Sānskṛtika Nidhi, Kalkipurāṇa, Kapilapurāṇa. *Ps.* 45. *Add.* Deptt of Purāṇa-etishas Sampoornand Skt. VV Varanasi. M. 09415375695. *Spl. Ref.* Purāṇetihāsa.

Mishra, Azad. Shastri, Acharya (Vyākaraṇa Shastri). M.A., Ph.D.. *b.* 25.10.1949, Parsia Mishra, Deoria. Principal, R.Sk.S. Bhopal Campus. *Bks.* 21. Saṃskṛta Śikṣikā, Īśāvāsyopaniṣadbhāṣya Pradīpaḥ, Saṃskṛta ke Pratyāyon kā Bhāṣāśāstrīya Paryālocana, Pañjabī Saṃskṛta Śabdakośa, Vaiyākaraṇa Siddhānta Ratnākaraḥ P. I & II (Ed.). *Ps.* 23. *Add.* C – 1, Yashoda Garden, Bagmugalia, Bhopal – 462043. *Ph.* (0755) 2804353, Mob. 9425682270. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Liguistic. Editing many Skt. Magazines like Parishilanam, Rashtree, Patanjaliprabha and Śāstra Meemansa. Complited a Lexicography (Panjabi-Sanskrit Dictionary). Received Gold Medal for Navyavaykaran degree, All India best poetry Award from Akashavaani, Spl. Award form U.P. Skt. Sansthan, Lucknow.

Mishra, Babbana. Acharya. *b.* 15.09.1948, Jaunpur, (U.P) *Ps.* 01. *Add.* 1314, Mishra Market, Ranjhi Basti, Jabalpur (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Babulal. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 01.04.1955, Rampur, Banda, (U.P.). Joint H.o.D. of Vyākaraṇa. *Gp.* Dr. Shrikant Pandey. *Bks.* 01. Vaiyākaraṇa Laghūsiddhānta-mañjūṣā Vaiyākaraṇa-dvaitavedāntamatayoḥ samīkṣātmakamadhyayanam. *Add.* Shri Mahanirvan ved Vidyalay, Daraganj, Prayag (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Badri Prasad. Vyākaraṇācarya, Shiksashastri. *b.* 02.01.1950. Teacher, Govt. Boys Sr. Secondary School, Uttam Nagar. *Ps.* 01. *Add.* WZ-438, Jain Park, Uttam Nagar, New Delhi – 110059. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa-Śāstra.

Mishra, Balbodh. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana, Nyāya. *b.* 1877, Muzaffarpur, Bihar. Asst. Prof., Govt. Skt. College, Varanasi. *Gp.* Pt. Singheshwar Jha, Pt. Gangadhar Shastri, M.M. Pt. Shivkumar Shastri, Pt. Jeevnath Mishra. *Sp.* Pt. Ramchandra Ojha, Pt. Bhoopnarayan Jha, Pt. Dhundhiraj Shastri, Muralidhar Jha, Pt. Ramchandra Jha, Pt. Krishneshwar Jha. *Expired in* 1948. Varanasi. *Spl.Ref.* Poet.

Mishra, Balkrishan. Vyākaraṇa, Nyāya, Mīmāṃsā, Vedānta. *b.* 1888, Darbhanga. Asst. Prof. & Principal. Skt. College, Varanasi. *Gp.* Pt. Loknath Jha, M.M. Pt. Chitradhar Mishra, Pt. Shashinath Jha, Pt. Bachcha Jha. *Sp.* Pt. Badarinath Shukla, Shri Kedarnath Ojha, Dr. Veermani Prasad Upadhyay, Pt. Ishwarnath Jha, Goptrinath Mishra, Pt. Umanand Jha, *Bks.* 05. Lakṣmīśvarīcaritam, Tātparyāvivṛttiḥ Prakāśa Ṭīkā, Vidyāpati Padāvalī, Rādhānayanadviśatī Saṃskṛta Tīkā. *Expired in* 1946. Varanasi. *Spl.Ref.*. M.M. awarded by British Government.

Mishra, Banamali. Acharya (Vyākaraṇa , Sāhitya). *b.* 23.04.1918, Chhatrapur, Ganjam, Orissa. *Bks.* 02. Transletion of Paśpaśāhnika, Jñānaratnāvalī. *Expired on* 09.11.1989.

Mishra, Beena. M.A., B.Lib., Ph.D.. *b.* 07.07.1956, Fatehpur, U.P. Curator R.Sk.S. Allahabad (U.P.). *Bks.* 04. Pāṇīniyā Varṇa Śikṣāsaṃhitā, Mūrkhaśatakam, Puṣpavā-ikā Vidhiḥ, Maṅgala Maṇimālā (Vol.–I). *Ps.* 25. *Add.* B-23. Ashoka Nagar. Ext. Scheme Patrakar Colony. Allahabad. U.P. *Ph.* 2460957.

Mishra, Bhagawan Prasad. Acharya in Sāhitya. *b.* 30.10.1952, Fatehpur, Faizabad, (U.P.). *Gp.* Tridandi Deva. *Ps.* 01. *Add.* Shri Tridandi Dev Skt. Mahavidyalay, Ayodhya, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Bhagwat Prasad. Acharya in Veda, Mīmāṃsā, Dharm-Śāstra. *b.* 18.09.1906, Jaipur. Asst. Prof., Govt. Skt. College, Jaipur, H.o.D. Varanasey Skt. Univ., Varanasi. *Gp.* Pt. Damodar Lal Goswami. *Sp.* Gopalchandra Mishra, Yudhishthir Mimansak, Vasudev Dwivedi, Nandkishore Vinayak Tripathi. *Bks.* 02. Amṛtollāsa, Agniṣ-oma Paddhatiḥ. *Ps.* 04. *Spl.Ref.*. Decleared as srautsmartmartand Viruda by Varanasipanditasabha. Mahamahopadhyaya by Bhartiparishad. He has started agnihotra department facility syllabus for ved exams and veda teacher in sampoornanand Skt. univ. Varanasi.

Mishra, Bhajkrishna. Vyākaraṇa tīrtha, Vedānta Upadhyay, Acharya in Sāṅkyayoga. *b.*

12.08.1895, Asureshwar, Cuttack (Orissa). Rtd. Professor & H.o.D. of Sadashiv Skt. College, Puri. *Gp.* Mayadhar Tarkapanchanan, Harihar Nyāyaratna, Balakrishna Mishra, Madanmohan Malaviya. *Add.* C/o Shishir Kumar Mishra, Ashureshwar, Cuttack – 754209. (Orissa). *Spl.Ref.* Advaita. *Award.* Vedāntavagisa (Muktimandap Pandita Sabha, Puri).

Mishra, Bharat Bhushan. Acharya in Jyotiṣa (Siddhānta & Phalita), Ph.D. *b.* 16.01.1965, Deoria, (U.P.). Asct. Prof. Dept. of Jyotiṣa, R.Sk.S. Ranvir Campus, Jammu. *Bks.* 05. Gaṇakataraṅgiṇī(ed.), Bhāvakautūhalam(ed.), Sanātanadīpikā. *Ps.* 20. *Add.* Bhaidawa, Devariya - 274601, (U.P.). *Spl.Ref.* Eminent sholar in Jyotiṣaa vedanga, Edited Panchanga, Received 'Sanskrit Sāhitya Award' from U.P. Sanskrit Sansktha, Lucknow in 2005 & 2008.

Mishra, Bhaskaranand. Acharya in Sāhitya. *b.* 21.03.1931. *Ps.* 02. *Add.* Chandralok Colony, B-32, Mandoli Road, Delhi – 110093. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Bhole Shankar. Acharya, M.A. *b.* 30.06.1956, Firozpur, Jaunpur, (U.P.). Teacher. *Ps.* 01. *Add.* Shri Dudhanath Shukla Skt. Mahavidyalay, Sahjadpur, Barhata, Jaunpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Binda Prasad. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 03.05.1954, Banda, (U.P.). Prof. Prachya Sankrit Dept. & VC, S.S.V.V. Varanasi. *Gp.* Devidayal Tripathi, Jagannath Shastri, Ananda Jha, Ramanarayan Tripathi. *Bks.* 05. *Ps.* 10. *Add.* Lucknow University, Lucknow ((U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Brahmadev. Acharya in NavyaVyākaraṇa, HindiSāhityaratna. *b.* 24.01.1928, Kuthua, P.O. Thakurganj, Jaunpur, (U.P.). *Gp.* Krishnabihari Shukla. *Add.* Vill. Kathua, P.O. Thakurganj, Jaunpur (U.P.).

Mishra, Buddhi Sagar. Śuklayajurveda. *b.* 12.10.1965, Lilakar, Balia, (U.P.). Teacher. *Gp.* Shrinath Mishra, Dr. Yugalkishor Mishra, Dr. Kubernath Pathak, Dr. Suryakant Mishra. *Add.* Shri Shankaracharyabhinav Sachidanandatirtha Skt. Mahavidyalaya, Dwarka (GJ). *Spl.Ref.* Śuklayajurveda.

Mishra, Chanchal. M.A., M.Phil., Ph.D., Certificate in French & German. *b.* 19.07.1956. Scr. Lect., Skt. Department, Delhi University, *Bks.* 01. Vedāntatatvaviveka ek Adhyayan. *Ps.* 08. *Add.* B – 2/25 D. Lawrence Road. Delhi–35. *Ph.* 7190520.

Mishra, Chandi Charan. Acharya Paurohita, Acharya Purāṇa. *b.* 06.03.1955, Purul, W.B. Teacher. *Gp.* Kanhaiyalal Chakravarti, Janakivallabha Kāvyatirtha. *Add.* Purul, Midnapur (W.B.). *Spl.Ref.* Priesthood.

Mishra, Chandra Bhanu. Acharya. *b.* 15.03.1935, Maunaha, (U.P.). Principal. *Gp.* Shatrughna Mishra. *Ps.* 02. *Add.* Vidya Darma Samvardhini Skt. Pathsala, Mungera bazaar, Chauri Chaura, Gorakhpur (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Chandra Bhushan. Shastri, M.A., D.Phil.. *b.* 20.07.1938, Pratapgarh, (U.P.). Asst. Prof. *Bks.* 02. Vaidika Sāhitya men Marudgaṇa Eka Ālocanātmaka Adhyayana. *Add.* Deptt. of Skt., Kashi Vidyapith, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Veda.

Mishra, Chandra Shekhar. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya. *b.* 15.05.1927, Vill. Bari, Gorakhpur, (U.P.). H.o.D. of Sāhitya. *Gp.* Ramdev Tripathi, Pt. Vidyanath Dwivedi. *Ps.* 02. *Add.* Shri Kashi Vishwanath Skt. Mahavidyalaya, Sanyasa Ashram, Ellis Bridge, Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Mishra, Chandradev. Acharya in Sāhitya, M.A., D.Phil.. *b.* 15.01.1958, Chandrauta, (U.P.). Principal. *Gp.* Bholanath Tripathi, Pt. Yogeshvar Jha. *Ps.* 02. *Add.* Shri Sacha Adhyatma Skt. Mahavidyalaya, Arail, Prayag (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Damodar Prasad. Acharya in Navya Vyākaraṇa. *b.* 08.08.1938, Dhanela, (M.P.). *Gp.* Shri Jagannath Shastri, Narahari Shastri Dhatte, Anantaram Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Kalekar Bhari ki goth, Ramsingh ka Bagh, Lashkar, Gwalior, (M.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Damodar. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 01.10.1915. ***Add.*** Veerharekrishnapur, Puri–752001 (Orissa). ***Spl.Ref.*** Veda & Vyākaraṇa.

Mishra, Daya Shankar. Acharya in Sāhitya, M.A.. ***b.*** 01.10.1939, Ismailganj, (U.P.). Principal. ***Gp.*** Mukund Shastri, Dvijendranath Mishra. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Saudamini Skt. Mahavidyalaya, 149, Vivekanand Marg, Prayag (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Devendra Prasad. Acharya in Veda, M.A., Ph.D. ***b.*** 25.12.1976, Delhi. Astt. Prof., L.B.S. N. Delhi. ***Bks.*** 02. Śrīmadbhāgavata Mahāpurāṇa men Varṇita Vaīdika Devatāon kā Svarūpa, Vedavimarśa. ***Ps.*** 25. ***Add.*** 266 P2G Ward No. 02. Gharwal Colony. Mehroly. N. Delhi – 30. ***Ph.*** 9968055859.

Mishra, Devi Charan. Acharya in Sāhitya, Purāṇetihasa, Sāṅkyayoga. ***b.*** 01.01.1944, Auradanpur, Hardoi, (U.P.). H.o.D. of Purāṇaetihasa. ***Gp.*** Pt. Ramavilasa Shukla, Dr. Yashavant Sinha. ***Add.*** Shri Shiva Shankar Adarsh Mahavidyalaya, Hardoi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Purāṇetihasa, Sāṅkyayoga.

Mishra, Devi Prasad. Vyākaraṇa Shastri, Acharya in Āyurveda. ***b.*** 15.10.1922, Lakhanpur. ***Gp.*** Ramdhar Mishra, Rudraprasad Avasthi. ***Add.*** Banadri Mutt, Vibhishan Kund, Ayodhya, Faizabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, āyurveda. Svatantratasenanai.

Mishra, Devikant. Acharya. ***b.*** 04.07.1935, Madhubani, Bihar. Asct. Prof. ***Bks.*** 01. Dīkṣitakārikā kaumudī. ***Add.*** Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Skt. Vidyapeetha, Katwaria Sarai, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa , Nyāya, Sāhitya.

Mishra, Devswaroop. Acharya, Ph.D. ***b.*** 15.05.1935. Prof. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. ***Gp.*** Raghunath Sharma, Ramprasad Tripathi, Devsharan Mishra. ***Sp.*** Sudhakar Mishra, Kamlesh Jha. ***Bks.***01. ***Ps.*** 16. ***Exp.on*** 18.08.1998. ***Spl.Ref.*** U.P. Skt. Academy Vishishta Puruskar Vishva Bharti Puruskar.

Mishra, Digambar. M.A., Ph.D. ***b.*** 08.07.1954, Sarara, Mithila, Bihar. Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Jagadamba Skt. College, Vatho (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Dinabandhu. Acharya in Sāhitya. ***b.*** Ningayi (M.P.). Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Govt. Skt. Mahavidyalay, Bhitri. Sidhi (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Durga Prasad. Sāhitya-Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 07.05.1955, Banda, (U.P.). Asst. Prof., Meerut College, Meerut. ***Gp.*** Prof. Laxmikant Dixit, Prof. Surendrachandra Pandeya. ***Bks.*** 01. Śṛṅgerī śataka kāvya samīkṣā. ***Add.*** Chandrika, Shivaji Marg, Meerut (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Dwaraka Prasad. Acharya in śuklayajurveda. ***b.*** 01.01.1954, Khaira, Rewa, (M.P.). Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Vinayak Tripathi, Veniram Gauda. ***Add.*** Shri Manamal Bhimaraj Ruiya Skt. Mahavidyalaya, Ujjain (M.P.). ***Spl.Ref.*** Śuklayajurveda.

Mishra, Dwijendra Nath 'Nirgun'. Acharya in Sāhitya, M.A. ***b.*** 1915, Kunvar, Badaun, (U.P.). Rtd. Asct. Prof. Sampurnanand Skt. University, Varanasi. ***Bks.*** 01. Kathāsaritā. ***Add.*** D-5/13, Tripurabhairavi, Mirghat, Varanasi – 221001 (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya. ***Awards.*** Sāhitya-ratnakara (Akhil Bhartiya Pandit Parishad, Varanasi), Premchand Award (Govt. of (U.P.).

Mishra, Dwijendra Nath. Acharya (Navya-Vyākaraṇa , Athrvaveda), M.A., Vidyavaridhi. ***b.***11.11.1961 Gorakhpur. Lecturer, Govt. Maharaj Skt. College, Jaipur. ***Gp.***Sri. Shyamvarna Dwiwedi, Dr. Ramprasad Tripathi, Dr. Manohar Lal Dwiwedi. ***Bks.***01. ***Ps.***10. ***Add.***498-B, Rajani Vihar, Heerapur, Ajmer Road. Jaipur - 302024. Ph.01412173061, M. 9460762050. ***Spl. Ref.*** NavyaVyākaraṇa, Athrvaveda.

Mishra, Gajanan. Acharya in Sahiya. ***b.*** 11.03.1940, Jhunjhunu, RJ. Principal. ***Gp.*** Anantadev Tripathi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Birla Acharya Skt. Mahavidyalaya, Pilani, Jhunjhunu (Rj.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Ganesh Datt. Acharya in Sāhitya &

Vyākaraṇa. *b.* 04.06.1910, Shiva Sagar, Aurangabad, Bihar. Rtd. Principal. ***Bks.*** 03. Maṅgalālayaśāstrārtha, Laghusiddhānta-candrikā, Candolaṅkāra mañjarī. ***Add.*** Vill. Shiva Sagar, Baradhiha, Aurangabad (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Vyākaraṇa.

Mishra, Ganesh Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A., Vishist Shastri, Vidyavaridhi. *b.* 05.06.1944, Chunar, Mirzapur, (U.P.). Acting Principal. Smt Bhagirathi Trust Adarsh Skt. Maha-vidyalaya Mirzapur. ***Gp.*** Pt. Harivansh Chaturvedi. ***Bks.*** 01. Kāvyollāsaḥ ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Bhagirathi Trust Adrash Skt. Maha-vidyalaya, Chunar, Mirzapur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Gangadhar. Vyākaraṇa Acharya, Sāhitya Shastri, Ph.D. *b.* 01.05.1911, Madhubani, Bihar. Rtd. Principal. ***Gp.*** Chandrakishore Jha, Pt. Muktinath Mishra. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Vill. & Post. Haripur, Madhubani (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Mishra, Gayadin. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 05.10.1942, Sultanpur, (U.P.). H.o.D. of Vyākaraṇa. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Daxinamurti Skt. Mahavidyalaya, Mishra Pokhara, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Mishra, Ghan Shyam. B.o.L., Acharya, M.A.. *b.* 19.10.1927. Principal. ***Ps.*** 02. ***Add.*** National Ayurvedic Pharmacy Mahavidyalaya, Kavi Surya Nagar, Ganjam (Orissa). ***Spl.Ref.*** Ayurveda & Sāhitya.

Mishra, Ghan Shyam. M.A., M.Ed., Ph.D.. *b.* 05.02.1968, Bihar. ***Bks.*** 01. Ancient Indian Education. ***Add.*** C/o Dr. B.K. Upadhyay, House No. – 200, Katawariya Sarai, New – Delhi. ***Ph.*** 6528956.

Mishra, Girija Shankar. Acharya in Sāhitya. *b.* 1926. Barabanki, U.P. Principal, Seth Jaidayal Inter College, Sitapur. ***Gp.*** Pt. Laxmi Narayan Mishra, Sri Vindhyeswari Prasad Mishra. ***Bks.*** 03. Rāṣ-rasūktam, Prasanna-bhāratākhyam, Vipraprabhā Śākadvīpī-yabrāhmaṇabandhu Sāhitya ke do Śikhara. ***Add.*** Kaithi Tola Biswan, Sitapur - 01 U.P. ***Spl. Ref.*** He started Poetry writing in his 14th year of age.

Mishra, Gopabandhu. M.A., Acharya, Ph.D., D.Litt.. *b.* 13.10.1959, Biruda, Nayagarh (Odisha). Prof., Banaras Hindu University, Varanasi – 221005. ***Bks.*** 07. Vyākaraṇa-sidhāntakaumūdī, Book for JRF/NET (II-III), Saṃskṛta Bhāratī (Vol. 1-4,), Saṃskṛta Abhyāsinī (Vol. 1-4,), Amarabhāratī Dīpīkā. ***Ps.*** 29. ***Add.*** Flat No. – 01. Neelkanth Apartment. B-01/87-7-1 ka, Ravindrapuri Extension, Varanasi – 221005. ***Spl.Ref.*** Editor of ARANYAKA Skt magazine.

Mishra, Gopal Chandra. Acharya in Veda, Dharm-Śāstra, Mīmāṃsā, M.A., Ph.D. *b.* 15.05.1924, Varanasi, H.o.D, Varanasi Hindu Univ. Varanasi. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. ***Gp.*** Pt. Bhagwatprasad Mishra, M.M. Pt. Vidhyadhar Sharma Gaur. ***Sp.*** Virendra Kumar Verma, Kamla Prasad Singh, Pt. Rajpati Shukla, Rajendra Prasad Mishra, Nandkishore Pandey. ***Bks.*** 10. Sūktaratnasaṅgraham, Pṛthivīsūkta kā Saṃskṛta Bhāṣya, Sampradāya Prabodhinī Śikṣā, Yājñikanyāya mālā, Veda Pā-havidhi. ***Expired on*** 09.09.1980.

Mishra, Gopal Chandra. M.A., Ph.D. *b.* 15.02.1958, Midnapur (W.B.). Asct. Prof., Ravindra Bharati University. Calcutta – 700050. ***Bks.*** 01. Saṃskṛta Farcical Plays & Those of Tīrtha Śrījīva Nyāya. ***Add.*** Flat – 4. (1st Floor), 83, Nainanpara Lane, Kolkata – 700036. ***Ph.*** (033) 5180703.

Mishra, Gopi Raman. Acharya, M.A., Shikshashastri, Siksacharya. *b.* 01.11.1953. Bihar. Dy. Registrar, R. Skt. Sansthan, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C-346, Street No. 9. Majis Park, Delhi – 110033. ***Spl.Ref.*** Expert to promoting Sanskrit evaluation system.

Mishra, Govind Chandra. Acharya in Sāhitya, Shiksha Shastri. *b.* 10.07.1935, Bhatapada. Prof. Regional Litrature Society of Orissa. ***Bks.*** 01. Śrīrāmalīlāmṛtam (1986). ***Ps.*** 02. ***Add.*** Vill. Bhatapada, P.O. Debidol Dist, Jagatsinghpur. ***Ph.*** (06724) 37980.

Mishra, Govind Prasad. Acharya in Sāhitya. *b.* 1964 v.s., Todapali, Sagar, (M.P.). Acharya. *Gp.* Pt. Rajakishor Shastri. *Add.* Lokapriya Darśana Siddhant Vidyalaya, Gopalganj, Sagar (M.P.). *Spl.Ref.* Vedic Acharya & Sāhitya.

Mishra, Govind. Vyākaraṇa tīrtha. *b.* 15.11.1910, Panchanpur, Gaya, Bihar. Skt. Teacher. *Ps.* 01. *Add.* Maulaganj. Gaya (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Harekant. Acharya in Sāhitya. *b.* 02.01.1939, Darbhanga, Bihar. Editor, Chowkhamba Amarabharati Prakashan, Varanasi. *Gp.* Kirtyanand Jha, Ramchandra Mishra. *Bks.* Tarkasaṅgrahaḥ (Comm.), Candrālokaḥ (Comm.), Śiśupālavadham (Comm.), Laghusiddhāntakaumudī (Ed.). *Add.* Gomath (Imlivala), C.K.-8/21, Barvasi Tola, Varanasi U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Mishra, Hari Prasad. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 20.05.1952, Dahriyavan, Sultanpur, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Ramsanmukh Dwivedi, Ramlakhan. *Ps.* 02. *Add.* Shri Krishnanand Sanskrit College, Rambari, Rudouli, Barabanki U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Mishra, Harihar. Acharya. *b.* 05.07.1903, Veer Harekrishnapur Shasan, Puri, Orissa. Acharya. Ramaddina Skt. College Berhampur, Orissa. *Bks.* 02. Oriyā Translation of Manusmṛtiḥ, Oriyā Translation of Mantrārthadīpikā. *Expired in* 1980. *Spl.Ref.* Traditional Skt. Teacher with Veda & Paurahitya.

Mishra, Harinarayan Mathuranath. Sāhitya Acharya. *b.* 1913, Atihar, Darbhanga, Bihar. Principal. Shri Kashi Vishvanath Sanskrit College, Ahemdabad. *Gp.* Nandlal Jha, Radhakant Jha, Vamacharan Bhattacharya. *Ps.* 02. *Add.* 16, Parvati Bai Chal, Near Shmasan Tekari, Highway, Jogeshwari (E), Bombay MH. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Nyāya, Vedānta & Sāhitya Śāstra.

Mishra, Harphul. Acharya in Navya & Vyākaraṇa. *b.*01.01.1956, Sikandarpur, Basti, U.P. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Shri Hanumat Sanskrit College, Hanumangharhi, Ayudhya, Faizabad U.P. *Spl.Ref.* Navya Vyākaraṇa Śāstra.

Mishra, Harsh Nath. Acharya, M.A., Ph.D. *b.*15.09.1925, Gajjahara, Madhubani, Bihar. Prof. Sri Lal Bahadur Skt. Vidyapeetha New Delhi. *Bks.* Cāndravyākaraṇa Vṛtteḥ Samālocanātmakamadhyayanam, Paribhā-ṣenduśekharasya Saṃskṛtavyākhyā. Hindī-bhāṣya-sahitasya Sabhūmikam Sampādanam. *Add.* C-12/379, Yamuna Vihar, Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya Śāstra, President Awardee, Delhi Skt. Academy etc. *Expired in* 2003.

Mishra, Hiralal. *b.* 02.04.1924. Siwan Bihar. Rtd. Asst. Prof. SVDV Jyotiṣa Deptt. BHU. *Gp.* Dr. Ramvyas Pandey. *Sp.* Dr. Vinay Kumar Pandey, Dr. Shatrugan Tripathi, Dr. Subhash Pandey, Prof. Chandrama Pandey, Prof. Umashankar Shukla, Dr. Parshvnath Ojha. *Bks.* 05. Samvatsarāvalī Paddhati, Camatkāra Cintāmaṇi. *Add.* B-31/41 A9K Sankatmochan Bhogveer Varanasi — 221005 M 09838743377. *Spl. Ref.* Jyotiṣa Martand, Mahamahopadhyayay.

Mishra, Jagadish Prasad. Acharya, Shiksacharya. *b.* 01.07.1961, Shahjahanpur, U.P.. *Gp.* Chandrahas Sharma, Shridhar Vashistha. *Ps.* 05. *Add.* Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Katwaria sarai, New Delhi – 110016. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Jagadish Prasad. M.A., M.Phil., Acharya in Darśana, Ph.D. *b.* 01.08.1953. Sitapur, U.P. Asct. Prof., Motilal Neharu College, N. Delhi. *Bks.* 01. Āśādhara Bhatta. *Ps.* 01. *Add.* 22 B/2, West Chandra Nagar, Delhi – 110051. *Ph.* 2210516. *Spl.Ref.* Darśana.

Mishra, Jagadish Prasad. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D., Sangeet Visharad. *b.* 01.12.1924, Hinauta, M.P. *Gp.* Sipahilal Mishra, Ramadhar Shukla. *Bks.* 02. Maheśacandra Tarka Cūḍamaṇī Vaiśiṣ-yam, Saṁskṛta Saurabham. *Add.* Tekaha, Birra Road, M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Music & Āyurveda.

Mishra, Jagannath Prasad. Acharya in Sāhitya, Vedānta. *b.* 06.05.1954, Etaura, Banda, U.P. Asst. Teacher. *Gp.* Pt. Sobhita Mishra, Pt. Krishnshankar Mehata. *Add.* Shri Samarth

Sanskrit Mahavidyalaya, Near Love Garden, Ellis Bridge, Ahmedabad GJ. *Spl.Ref.* Sāhitya & Vedānta.

Mishra, Jagannath. Acharya in Jyotiṣa, Sāhitya. *b.* 20.05.1912, Bhawanipur, Bihar. Teacher, S.K. High School, Madhubani, Bihar. *Gp.* Pt. Harinand Mishra, Pt. Vaikunthanath Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Bhawanipur, Pandaula, Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Mishra, Jagat Narayan. Acharya. *b.* 15.01.1946, Kanawara, U.P. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Shri Vamadev Sanskrit Mahavidyalay, Banda, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Jagat Narayan. M.A. *b.* 15.08.1933, Firozpur, Jaunpur, U.P.. Principal. *Gp.* Jagadev Chaturvedi, Ramraj Dwivedi, Ramkaran Pandey. *Ps.* 02. *Add.* Hanumat Sanskrit Mahavidyalay, Rajganj, Shikar, Jaunpur, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Jaidev. Vyākaraṇa. *b.* 1944. Vill. Gajhada, Mithila. Asst. Prof. & H.O.D. Banaras Hindu Univ., Varanasi. *Gp.* Halli Jha. M.M. Pt. Rajjomishra. M.M. Pt. Shivkumar. *Sp.* M.M. Dr. Ganganath Jha. Pt. Rajnarayan Shastri. Pt. Markandey Mishra. Pt. Damodar Mishra. *Bks.* 05. Śāstrārtharatnāvalī, Mahāvināyaka sthāpanā Paddhati, Vāstupaddhati, Nīlavṛṣot-sarga paddhati. *Spl.Ref.*. Recipient of MahaMahopadhyaya Award (1919).

Mishra, Jaimant. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 15.10.1925. Vill. Danga Haripur, Majrahi, Madhubani, Bihar. Ex. V.C. Kameshwarsingh Darbhanga Sanskrit Univ., Darbhanga. *Gp* Pt. Sarvnarayan Mishra, Pt. Ugranand Jha, Pt. Bhoopnarayan Jha, Pt. Suryanarayan Shukla, Pt. Narayandatt Tripathi, Namo-narayan Jha, Pt. Balbodh Mishra, Pt. Aanand Jha. *Bks.* 11. Kāvyātmamīmāṃsā, Alaṅkāra Prakāśa, Saṃskṛtavyākaraṇodayaḥ, Puśpa-cintāmaṇīh, Śaivasarvasāra. *Ps.* 150. *Add.* Hanumanganj, Mishra Tola, Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Recipient of President Award (1986). In World Sanskrit Sammelan (Filedelifiya-U.S.A.) worked as Chairman of Sanskrit Sāhitya Section, Appointed Prof. in Tribhuvan V.V. Nepal under the scheme of Colombo, India Govt.

Mishra, Jainath. Acharya in SarvaDarśana & Sāhitya, M.A.. *b.* 02.07.1954, Gitadewadha, Bihar. Teacher. *Gp.* Vidyanath Mishra, Ramaranga Sharma. *Ps.* 02. *Add.* Shri Sanatan Sanskrit Mahavidyalaya, Saharanpur, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Jaiprakash. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 10.01.1964, Deoria, U.P. *Gp.* Dr. Hind Kesari. *Ps.* 02. *Add.* Plot No. 760, Mahaveer Nagar, Tonk Road, Jaipur, RJ. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Mishra, Jaya Krishna. Ph.D., D.Litt.. *b.* 04.09.1957, Ranpur, Garhpuri, Orissa. Asct. Prof. *Bks.* 12. Kṛtya Kaumudī of Bṛhaspati. *Ps.* 01. *Add.* Shri Jagannath Sanskrit Vishwavidyalaya, Shrivihar, Puri, Orissa. *Ph.* 06752 - 24346.

Mishra, Jivanchandra Bhagawati. Shastri. *b.* 01.01.1907, Bangaon, Assam. *Add.* Bangaon, Barpetta, Assam. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & āyurveda.

Mishra, K.K. Acharya (Sāhitya Vyākaraṇa , Bauddha Darśana), M.A., Ph.D. Vidya-vachaspati, LLB, PG Dipl. in Applied Linguistics, Certificate in German *b.* 11.01.1947. Former Director RSKS. *Bks.* 34. *Ps.* 21. *Add.* 169, Nehru Apptt. Kalkaji New Delhi - 110019. Ph. 26463725. M. 09350116961. Email. kkmishra1123@ rediffmail.com *Spl. Ref.* Organised many Conferences and Workshop for the development of Curriculum texts books and other instructional material on behalf of NCERT, Kavikokil Vidyapati Award 1997, Vidyavachaspati National Youth Development Award 2004, Skt. Sāhitya Sewa Samman 2005. Vienna, Philadelphia

Mishra, Kailash Chandra. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 12.09.1951. Ganjam, Orissa. Principal. Mac michel Sanskrit College, Asika, Ganjam, Orissa. *Bks.* 03. Utkala Padyānuvādaḥ of Kumārasaṃbhavam.

Mishra, Kailash Pati. Acharya. *b.* 15.10.1939,

Bansagaon, Deoria, U.P. *Gp* Pt. Batukanath Shastri, Pt. Mukund Shastri, Pt. Raghunath Sharma. *Add.* Vill. & P.O. Dubahi, Deoria, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Kali Prasad. Acharya in Vyākaraṇa & Nyāyadarśana. *b.* 1889, Vill. Tikriya, Gorakhpur. H.O.D., Sanskrit College, Varanasi. *Gp.* Pt. Damodar Shastri, Pt. Rambhavan Upadhyay. *Sp.* Pt. Nirikhshanpati Mishra, Dr. Venkatachalmoorti, Pt. Karunapati Tripathi, Pt. Ramchandra Malviya. *Expired on.* 06.08.1997. *Spl.Ref.* Traditional Pandit.

Mishra, Kalikant. Acharya in Jyotiṣa (Gaṇita & Phalita) & Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 02.01.1944, Tumaul, Darbhanga. Principal. *Ps.* 02. *Add.* Tumaul, Putai, Darbhanga.

Mishra, Kalikant. Acharya. *b.* 01.07.1923, Vistupur, Assam. *Gp* Devendranath, Laxmipati. *Ps.* 02. *Add.* Vill. Bamparbaliya, Parvati Nagar, P.O. Tejpur, Sonitpur, Assam – 784001. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Kalluprasad. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 01.05.1948, Kithai, Banda, U.P.. Asst. Teacher, Shri Janaki Sanskrit Vidyalaya. *Gp* Pt. Rambhajan Pandey. *Ps.* 01. *Add.* Old Lanka, Chitrakut, Dist.Satna, M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Kalpana. M.A., B.Ed. H.O.D. Skt. *Ps.* 02. *Add.* Keonjhar College, Old Town, Keonjhar, Orissa – 758002. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Kamal Kant. Acharya in Jyotiṣa (Siddhānta, Gaṇita & Phalita). *b.* 05.09.1916, Jaidev Patti, Darbhanga, Bihar. *Gp.* Dayanath Jha, Chandrakant Jha, Durgadatta Jha. *Ps.* 02. *Add.* Vill. & P.O. Jaidev Patti. Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Mishra, Kamal Kant. M.A., Acharya in Sāhitya, Vyākaraṇa & BauddhaDarśana, Ph.D., D.Litt. *b.* 11.01.1947, Madhubani, Bihar. Ex.Director of Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi. *Gp.* Dr. Bachan Jha, Dr. Vidhata Mishra, Pt. Kulnand Mishra. *Bks.* 20. Arthavijñāna ko Saṁskṛta vyākaraṇa aur kāvyaśāstra kā yogadāna. *Add.* 169, S.F.S., Nehru Apartments, Kalkaji, New Delhi – 110019. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa, BauddhaDarśana.

Mishra, Kamal Kishore. Ph.D. *b.* 01.01.1970, Gumla. *Ps.* 02. *Add.* 112. Jubilee Hall. University of Delhi. Email – kamalkmishra@yahoo.com.in.

Mishra, Kamalarani. Kāvyatīrtha, Ph.D. *b.* 08.08.1924, *Ps.* 01. *Add.* Chittranjan Park, New Delhi – 110019. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Kameshvaranath. Acharya in Sāhitya. *b.* 04.07.1938, Nathayipurba, Gonda, U.P. *Gp.* Pt. Rudra Prasad Awasthi, Prof. Kantichandra Pandey, Prof. Ramachandra Diwedi, Dr. Vanamala BhavAlaṅkāra. *Bks.* 04. Rāmakṛṣṇa-vilomakāvya Sūryakavi Kṛtam Sarasvatī Kaṇ-hābharaṇam (ed. with Sanskrit Comm.), Bhojakṛta tattvaprakāśikā, Appaya Dikṣita ātmārpaṇastuti (ed.). *Add.* Prof. and H.O.D., Kendriya Tibbati Uchchadhyayan Sansthan, Saranath, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Kameshwar Nath. M.A., Ph.D. *b.* 04.07.1938. Prof. Kendriya Uccha Tibbati Sansthan. *Ps.* 02. *Add.* Vill. Nathai, Purva, Post Devriya Via Balrampur Janpad Gonda, U.P.

Mishra, Kamla Kant. Acharya (Vyākaraṇa-Vedānta). *b.* 1892, Vill. Kotva, Allahabad. Principal, Jo. M. Goyanka Sanskrit College, Varanasi. *Sp.* Ramchandra Shastri Khanang. Ramnivas Garg. Shivdutt Pandey. Yamuna Prasad Shukla. Mahanand Dwivedi. Kalika Tripathi. Dr. Ludvig Alrdorf (Germany). *Expired on.* 10.10.1974. *Spl.Ref.* Recipient of Mahamahadhyapak award by Bharatdharm mahamandal, Varanasi, Vidwatshiromani award by Girvanvagvardhini sabha, Varanasi & Mahamahopadhyay award by Bhartiya-parishad, Prayag.

Mishra, Kanti Chandra. Shastri in NavyaVyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 10.12.1920, Chhathiya, Bareli, U.P. Rtd. Asct. Prof. *Gp.* Sumiran Mishra, Ganesh Datta. *Ps.* 20. *Add.* B-22/275, L-3, Khojawa Market, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Kapil Deo. M.A., D.Phil., D.Litt.. *b.* 06.07.1963. Prof. & Director MG Chitrakut

Gramodaya V.V. *Bks.* 04. *Ps.* 40. *Add.* Vivekanand Nagar Chitrakut, Satna, M.P. M. 09407333760. kapil_ckt@rediffmail.com *Spl. Ref.* Rashtriya Siksha Ratna Puraskar.

Mishra, Kapildev. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.* 15.08.1926, Ghosiya Khurd, Rohtas, Bihar. Teacher, Kapildev Sanskṛt Mahavidyalaya, Rohatas. *Gp* Kuldip Mishra, Devnarayan Tripathi, Vidyavachaspati Brahmadatt Dwivedi. *Ps.* 02. *Add.* Kapildev Sanskrit Mahavidyalaya, Ghosiya Khurd, Ghosiya Kalan, Rohatas Dist. Sasaram, Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Mishra, Kapildev. M.A.. *b.* 31.07.1931, Madaila, Jaunpur, U.P. Principal. *Gp.* Mukundshastri Khiste, Raghunath Sharma, Shivdatt Chaturvedi. *Ps.* 02. *Add.* Adarsh Bharati Mahavidyalaya, Khetsarai, Jaunpur, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Kashi Nath. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya, Ph.D. *b.* 01.01.1930, Saharsa, Bihar. V.C. Kameshwar Singh Darbhanga V.V. *Gp.* Sadanand Jha, Gangadhar Mishra, Dr. R.K. Sharma, Dr. J. Misra. *Bks.* 03. Kārṇatarājataṅgiṇī, Harṣacaritamañjarī, Vidyātatiśatakam *Ps.* 02. *Add.* B 2/1, Profesor Colony, Rajendra Nagar, Patna, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya Vyākaraṇa, Kalidas Puraskar, Sāhitya Academy Award, President Awardee.

Mishra, Kashi Prasad. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.* 15.08.1939, Shirs, Pratapgarh, U.P. Mandaliya JanaSāṅkya Shikshadhikari. *Gp.* Dr. Umesh Mishra, Dr. Babulal Saxena, Dr. Chandikaprasad Shukla. *Ps.* 02. *Add.* 4/ 10, Nyavudar Road, Allahabad, (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Mishra, Kedar Nath. Acharya in Śāstra, Ph.D. *b.* 08.07.1944, Varanasi, U.P. Sāhitya Teacher, Sachcha Adhyatma Sanskrit Mahavidyalaya, Arail. *Gp* Ramkuber Malaviya, Prof. Batuknath Shastri. *Ps.* 03. *Add.* 139, Maruti Bhavan, Arail–22008, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Keshav Prasad. Vyākaraṇa, Sāhitya, English & Manuscript. *b.* 1885. Bhaidaini Mohalla, Varanasi. Asst. Prof.. Central Hindu School, Varanasi. *Gp.* Pt. Gangadhar Shastri. *Bks.* 01. Meghdūta kā anuvāda. ***Expired in.*** 1951.

Mishra, Keshav. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.* 02.05.1910, Pacharhi, Madhubani, Bihar. Hon. Prof. *Gp.* Pt. Batekrishna Jha, Pt. Trilokanath Mishra. *Ps.* 05. *Add.* Kameshwar Singh Darbhanga Sanskrit University, Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Kishore Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 31.07.1932, Kavisurya Nagar, Ganjam, Orissa. Teacher, Ganjam, Orissa. *Bks.* 03. Kāvyālaṅkāra of Bhāmaha (tr.), Kāvyālaṅkārasūtravṛttiḥ (tr.), Kāvyādarśaḥ (tr.).

Mishra, Krishna Dutt. Ph.D. *b.* 01.02.1952, Ambedakar Nagar, U.P.. Asct. Prof. M. Gandhi Vidhyapeeth, Varanasi. *Gp.* Prof. V.K. Karma, Prof. Shri Narayan Mishra. *Bks.* 04. Īśāvāsyopaniśada, Vedacayanam, Sanskrita Nibandha Mākarandaḥ, Prākṛta Prakāśaḥ. *Ps.* 05. *Add.* N. 10/29, K – 04, Shyama Nagar Colony, Kakasamatta, Varanasi. *Ph.* 09451440208.

Mishra, Krishna Kumar. Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 15.12.1943. Sitapur. Rtd. Prof. & HOD Lucknow Univ. *Gp.* Prof. Satyavrat Singh, Dr. MD Trivedi, Pt. Anand Jha. *Sp.* Prof. BK Shukla, Dr. Suman Tripathi. *Bks.* 08. Nā-yasaptakam. *Ps.* 120. *Add.* 538, Kha/294, Dindayal Nagar, Lucknow -226020. Ph. 0522-2743976, M. 09415563483.

Mishra, Krishna Kumar. Acharya. *b.* 13.02.1958, Sohanpur, Shahdol, M.P. Asst. Teacher. *Gp* Anjaniprasad Pandey, Dr. Visramprasad Chaturvedi, Kusalprasad Pandey. *Ps.* 01. *Add.* Shri Abhayanand Govt. Sanskrit Mahavidyalaya, Kalyanpura, Shahdol (M.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Krishna Nand. M.A. *b.* 05.05.1975 Darbhanga, Bihar. *Ps.* 01. *Add.* E/88-1. Katwaria Saria. New Delhi – 16. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa

Mishra, Kshamapati. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya. *b.* 01.11.1948, Panditpur, Pratapgarh,

U.P. Vice-Principal. *Gp*. Pt. Brajkant Jha. *Ps*. 03. *Add*. Shri Kashi Vishwanath Sanskrit Mahavidyalaya, Sanyasashram, Ellis Bridge, Ahmedabad, GJ – 6 . *Spl.Ref*. Vyākaraṇa, Sāhitya.

Mishra, Ladukeshwar. Shastri in Vedānta & Vyākaraṇa, Acharya in Sāhitya. *b*. 31.01.1929, Panchasinhapura Shasana, Dharakot, Ganjam, Orissa. Asst. Prof., Shri Sadashiva Kedriya Sanskrit Vidyapeetham, Puri, Orissa. *Bks*. 01. Poetic Translation of Śrīmad Bhagavad Gītā. *Ps*. 10. *Expired on*. 18.02.2009. *Spl.Ref*. Profound Scholar of Jyotiṣa & Karmakāṇḍa.

Mishra, Lalaji. Acharya(Vyākaraṇa, Sāhitya), Sāhityaratna. *b*. 02.09.1956, Chinda, Sitapur, Satna, M.P. Asst. Prof. *Ps*. 02. *Add*. Shri Ambaji Sanskrit Mahavidhyalaya, Niveria Road, Malad, Bombay MH. *Spl.Ref*. Vyākaraṇa Śāstra.

Mishra, Lallan Prasad. M.A., Ph.D. Prof. *Ps*. 05. *Add*. Deptt. Of Sanskrit, Kashi Vidyapeeth, Varanasi U.P. *Spl.Ref*. Sāhitya Śāstra, Darśana Śāstra.

Mishra, Lambodar. Acharya (Sāhitya, Dharmashashtra) *b*.15.03.1912. Rtd. Asst. Prof. *Ps*. 04. *Add*. C/o. Radha kanta Sahi, Old Berhampur, Ganjam Orissa. *Spl.Ref*. Sāhitya, DharmaŚāstra.

Mishra, Lambodar. Acharya, M.A., Ph.D. *b*. 15.07.1956, Samastipur. Asct. Prof. Rajsthan Skt, Univ. *Gp*. Sri. Rishi Shankar Tripathi. *Sp*. Hariom, O.P.Pandey. *Bks*.07 Vaidika Tattvamīmāṃsā, Vedāntasāra (Skt. Hindi Commentry), Atharvavedīya Mātṛbhūmisūkta. *Ps*.30. *Add*. 5-B, Chatrasaal Nagar, Nandpuri, Malviyanagar, Jaipur - 302027. M. 0995070 5384. *Spl. Ref*. Veda.

Mishra, Lingaraj. Acharya in Vyākaraṇa, B.A., B.L. *b*. 02.06.1902, Lal Shasan, Aska, Ganjam, Orissa. Asst. Prof., Paralakhemundi Sanskrit College, Ganjam, Orissa. *Expired on*. 07.08.1971. *Spl.Ref*. Translated many Sanskrit palmleaf Manuscripts.

Mishra, Lokmanya. ShikshaShastri, Shiksha-charya. *b*.05.01.1963. Asst. Prof. *Bks*. 02. *Ps*. 10. *Add*. Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow Campus, Gomati Nagar, Lucknow. *Spl.Ref*. Education.

Mishra, Madhav Prasad. Studied in Sāhitya, Darśana, DharmŚāstra. *b*. 1871, Vill. Kungar, Distt. Bhivani, Haryana. *Gp*. Pt. Ramji, Pt. Jairamdas ji, Pt. Shridhar ji, Pt. Rammishra Shastri, Pt. Umapati Dwivedi. *Expired in*. 1907. *Spl.Ref*. Established 'HindiSāhityasabha' in Kolkata. Edited 'SuDarśana' Monthly Magzine from Varanasi.

Mishra, Madhusudan, M.A., Ph.D. *b*. 21.09.1933. Vaishali, Bihar. Rtd. Dy. Director RSKS Delhi. *Bks*. 10. A Historical Vedic Grammer, The early Indus Civilisation, The senthali Grammer, The Indus Aryans and the Vedic Culture. *Ps*. 50. *Add*. 30 Uttaranchal 5 IP Extn. Patparganj Delhi - 110092. M. 09871195909. *Spl. Ref*. French, Russian, Persian, German. Sāhitya, Honoured by Delhi Skt. Academy.

Mishra, Mandan. Acharya (Mīmāṃsā & Sāhitya). Ph.D. *b*. 1931, Vill. Hanutya, Jaipur. V.C. R.S. Sansthan N. Delhi., Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi., Raj. Sans. Univ. Jaipur. *Gp*. Shri P.N. Pattabhiram Shastri. *Spl.Ref*.. Awarded by President of India as 'Padmashiri' Purushkar. Established of L.B.S.V. N.Delhi. R.S.K.S. N.Delhi. RJ Skt. Univ. Jaipur. First V.C. of J.R.R.S.U. Jaipur.

Mishra, Mandan. Acharya in Sāhitya & Mīmāṃsā, M.A., Ph.D. *b*. 07.06.1929, Vill. Hanutiya, Jaipur, RJ. Ex. Vice-Chancellor. S. L. B. S. R. Skt. Vidyapeeth, New Delhi. *Gp* Acharya Pattabhiram Shastri. *Bks*. 10. Mīmāṁsādarśanam. *Ps*. many research papers, *Spl.Ref*. Recipient of President Award, Sanskrit Academy Award & Akhil Bharatiya Shankaracharya Puraskar.

Mishra, Mangilal. Acharya in Vyākaraṇa , Sāhityaratna. M.A.. *b*. 1936. Asst. Prof., Deptt. of Sanskrit Education. Govt. of RJ. *Gp*. Motilal Menariya, Nathuram Khadgavat, Agarachand Nahata. *Ps*. 05. *Add*. Dedhichi Nagar, Sikar–332001 (RJ). *Spl.Ref*. Vyākaraṇa , Sāhitya.

Mishra, Manik Chandra. Acharya, M.A. *b.* 15.07.1931, Vill. Belavar, Allahabad, U.P.. Principal. *Gp.* Mahanand Dwivedi, Ramshankar Dwivedi. *Ps.* 10. *Add.* Shri Mahanirvana Ved Vidyalaya, Daraganj, Allahabad, (U.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Matinath Matang. Shastri in Vyākaraṇa & āyurveda, Acharya in Sāhitya. *b.* 04.03.1927. Rtd. Pracharya, Bhagalpur *Bks.* 05. Ṛtuvivaraṇam (Khaṇḍakāvyam), Rāṣ-ra-bandhunā-akam, Bhārgavavikramam. *Add.* Jamathari, Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya & Ayurveda & Śāstra Chudamani Scholar.

Mishra, Mayaram. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. M.A.. *b.* 15.10.1929, Prayag, Allahabad, U.P. Asst. Teacher. *Gp* Ramshankar Dwivedi. *Ps.* 01. *Add.* Abhayanand Govt. Sanskrit Mahavidyalaya, Kalyunpur, Shahdol, M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Mishra, Mirikshanpati. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 1907, Gopiganj, Bihar. Asst. Prof., Varanasi Hindu Univ., Varanasi. *Gp.* Pt. Balkrishan Mishra. *Expired in.* 1987. *Spl.Ref.* Worked in Varanasi Vidwatparishad as Chairman.

Mishra, Mithilesh Kumari. M.A., Acharya, Ph.D., D.Litt. *b.* 01.12.1953. Hardoi, U.P. Research Officer, Rashtra Bhasha Parishad, Patna. *Bks.* 07. Vyāsaśatakam, Āmrapālī, Daśamastvamasi, Ādhunikā, Laghvī, Jigīṣā. *Add.* Lok Bhasha Vibha, Bihar Rashtra Bhasha Parishad, Patna – 04. *Spl.Ref.* Title of Vidyavachaspati, Sāhityamahopadhya, Kāvyasri, Kavyasarasvati, Editor Sanskrit Sanjeevanam. Tamil, Bangla.

Mishra, Mithilesh Kumari. Research Asst., Bihar Rastrabhasha Parishad. *Bks.* 02. Subhāṣita Sumanāñjaliḥ, Vyāsa Śatakam.

Mishra, Modnath. Ph.D. *b.*25.09.1964. Principal. *Ps.* 02. *Add.* Shri Ambaji Arts College Campus Kumbhariya Ambaji Distt. Janaskanta. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Mishra, Mohan. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 26.01.1956. Bhagalpur. Asct. Prof. Bhagalpur University. *Bks.* 03. Svapna-vāsavadattam, Brahmavaivarta Purāṇa- Vimarśaḥ, Ṣaḍ vedāṅga-Vimarśaḥ. *Ps.* 02. *Add.* Lalkothi. Bhagalpur – 02. *Ph.* 401648.

Mishra, Mohan. M.A.,Ph.D. *b.*02.07.1976.SRF (Pali) RSKS, Lucknow. *Ps.* 04 *Add.* B-31/40, B1L, Bhogbir, Sankatmochan, Lanka, Varanasi-221005 *Ph.*05422369879. *M.*09839064390 *mail*-mohanmishra76@rediffmail.com

Mishra, Monika. M.A., Ph.D. *b.* 31.01.1976. Allahabad. *Bks.* 01. *Add.* 474 Sec. 16B Vasundhara Gaziabad - 201012. M. 09999 105934. mishra.monicka@gmail.com

Mishra, Motilal. Acharya. *b.* 19.02.1943, Haliya Mirzapur, U.P. Principal. *Gp* Devataprasad Mishra, Ramsagar Mishra. *Ps.* 02. *Add.* Shri Sanatan Bhairav Shankar Brahma Samyukta Mahavidyalaya, Bariaghat, Mirzapur U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya, Purāṇa & Vyākaraṇa.

Mishra, Mrityunjay. *b.* 1932, Yadunathpur, Puri, Orissa. Rtd. Ayurvedic Physician. *Bks.* 03. Sarala Sūcībheda Cikitsā (Oriya), Jānakīsvayamvara (Oriya), Āyurveda Abhidhāna (Oriya). *Add.* Santi Nagar, Sunaved-I, Koraput, Orissa – 763001. *Spl.Ref.* Literature & āyurveda.

Mishra, Murlidhar. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa, Sāṅkya yoga, Vedānta, Mīmāṃsā), M.A., Ph.D. *b.* 03.12.1927. Seetamani, Bihar. Rtd. Principal, Prof. MJ College, Betiah, Bihar. *Bks.* Mahākavimāghasya Sarvatomukham Pāṇḍityam. *Spl.Ref.* Founder of Skt. Prachar Sangh, Bihar and Founder Editor and Publisher of Amrit Bharati, Skt. Weekly, President Awardee.

Mishra, Nagendra Nath. M.A., M.Ed., L.L.B., B.J.M.C., Ph.D.. *b.* 14.09.1956, Cuttack, Orissa. Asst. Prof., K.V.S. *Ps.* 100. *Add.* 6 – HSCL Colony, BHEL, Haridwar, Uttrakhand. *Ph.* 0135- 484005.

Mishra, Nalini Devi. M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1955, Rihabari, Guwahati. Prof. Skt. Deptt. Guwahati Univ. *Ps.* 19. *Add.* 32, Univ. Campus, Guwahaty.

Mishra, Nalini Kant. Tirtha in Kāvya, Vyākaraṇa, DharmaŚāstra, Tark, Mimāṃsā Madhya. *b.*

25.12.1933, Midnapur. Rtd. Principal Bholanath Rashtriya Skt. Mahavidyalaya Nirikshak. Bangiye Skt. Shiksha Parishad. ***Bks.*** 04. Devavrata Caritam, Brāhmāṇḍa Purāṇa, Devī Bhāgavatam, Brahmavaivartapurāṇa. ***Ps.*** 50. ***Add*** 6 Yadunath Sen Lane, Calcutta, W.B.– 6 ***Ph.*** 033 - 3512438. ***Spl. Ref.*** President Awardee, Mahamahopadhyaya, Title of Naya Ratan, Kavi Ratan, Founder Director Nikhil Bangh Skt. Seva Samiti.

Mishra, Nandkishor. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 15.02.1941, Hisamabad, Allahabad, U.P. Asst. Prof., ***Gp.*** Suryanarayan Shukla, Rampal Tripathi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Sankirtan Brahmacharyashram Sanskrit Mahavidyalay, Jhoosi, Prayag, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Narayan Mathuranath. Acharya in Vyākaraṇa, Kāvyatīrtha. ***b.*** 15.10.1929, Atihara, Darbhanga, Bihar. Acharya & Inspector. ***Gp.*** Nandalal Jha, Kalikaprasad Shukla, Venkatesh Dixit. ***Add.*** Rajakiya Sanskrit Pathashala, Jamnagar, GJ. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Kāvya. Recipient *of* Daksina Examination Prize From Baroda.

Mishra, Narayandash. Acharya in Sāhitya & Āyurveda, Vidyashastri. ***b.*** 07.01.1927, Kyotara, Dist. Etawah, U.P. ***Gp.*** Banavarilal Dixit, Rajaram Gadagil. ***Add.*** Kadam Sahab ki Goth, Janak Ganj, Gwalior, M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Āyurveda.

Mishra, Natthulal. Acharya, M.A., Ph.D.. ***b.*** 01.04.1947, Bhatapur, M.P. Sr. Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Govt. Surajamal H. Sec. School, Bilaspur, Chhattisgarh. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Jyotiṣa.

Mishra, Nilamani. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 12.04.1929. ***Ps.*** 02. ***Add.*** A.L./65, Bhima Tangi, Bhuvane-shwar, Orissa – 751002. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Niranjan. Acharya. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.01.1966, Brahamarpur, Vihpur, Bhagalpur, Bihar. Sr. Prof. Haridwar. ***Gp.*** Pt. Suryanarayan Mishra. Dr. Shankar Ji Jha. ***Bks.*** 12. Kāvyamālā, Kāvyakuñjam, Grāmaśatakam, Pramatta Kāvyam, Kuvalayānanda (with Hindī Tīkā). ***Ps.*** 15. ***Add.*** Shri Bhagwan Das Adarsh Skt. College, Post Gurukul, Kangadi, Haridwar U.K. ***Spl. Ref.*** Honoured from Ministry of HRD Govt. of India.

Mishra, Niranjan. Acharya in Navya Vyākaraṇa. ***b.*** 01.04.1952, Champatpur, Puri. Orissa. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Punjab Sindh Kshetra Sadhu Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh, Uttara-khand. ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa.

Mishra, Niriksan Pati. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 1907. Tara Naharava, Chapra, Bihar. Rtd. Asst. Prof., B.H.U. Varanasi. ***Gp.*** Kaliprasad Mishra. ***Add.*** B/2/114, Assighat, Varanasi, U.P.. ***Spl.Ref.*** Recipient of Panditraja Award by Kasi Pandita Parisada.

Mishra, Nirmal. M.A., B.Ed. ***b.*** 20.03.1959. Teacher. Kendriya Vidyalaya, Nai Mehrauli, New Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapith, New Delhi – 110016.

Mishra, Nityanand. M.A., Ph.D. ***b.*** 03.06.1932, Mahishi, Saharsa, Bihar. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Upendra Jha. ***Add.*** Kameshwar Singh Darbhanga Sanskrit University, Darbhanga, Bihar. ***Spl.Ref.*** Veda.

Mishra, Nod Nath. M.A. (Skt., Hindi), Ph.D. ***b.*** 01.09.1944. Madhubani, Bihar. Rtd. Principal, Vice-Educational-Advisor, Ministry of HRD, Govt. of India. ***Bks.*** 09. Vālmīki aura Kālidāsa kī Kāvyakalā, Navamālatī, Kavitāvali. ***Ps.*** 50. ***Add.*** C-180, Second Floor, Hari Nagar, Clock Tower, New Delhi – 64. ***Spl.Ref.*** Poet, Ramanyana Poetry telecasted from Akashawani Patna, Lucknow, Allahabad, Varanasi, Śāstra Chudamani Scholar, R.Sk.S., President Awardee.

Mishra, Pankaj K. M.A. Ph.D. ***b.*** 01.11.1968. Chainpur. Saharsa, Bihar. Asst. Prof. & H.O.D. Govt. P.G. Colllege, Baran, RJ. ***Bks.*** 03. Vaiśeṣika Evam Jainadarśana Tattva Mīmāṃsā, Tarkasaṅgrahaḥ. ***Ps.*** 16. ***Add.*** 192. Vidya Vihar, West Enclave, Pitampura, Delhi. ***Pin.*** – 110034. ***Ph.*** 7012409.

Mishra, Paramanand. M.A. Ph.D. ***b.*** Satna, M.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Prof. Ramji Upadhyay, Prof. R.V. Tripathi. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Govt. P.G. Colllege, Guna, M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Pashupati Nath. Acharya (Vya. śukla Yajurveda), M.A., Ph.D. ***b.*** 15.05.1966. Sr. Lect. ***Bks.*** 01. ***Ps.*** 14. ***Add.*** 385, Housing Board Colony, Palwal - 121102 Haryana. Ph. 01275244021. M. 09466869173. ***Spl. Ref.*** śuklayajurveda, Vyākaraṇa.

Mishra, Phool Kant. Acharya, M.Ed., Ph.D. ***b.*** 01.01.1956. Madhubani. Principal JNB Adarsh Skt. Mahavidyalaya Darbhanga. ***Bks.*** 01. Guruśiṣyasambandha. ***Add.*** JNB Adarsh Skt. Mahavidyalaya Lagma via Lohan Road Darbhanga - 847407. M. 09934208429. principal.jnb@gmail.com.

Mishra, Prafulla Kumar. B.A., M.A., L.L.B. ***b.*** 20.02.1954. Puri Orissa. Prof. Utkal Univ. Bhuvaneshwar, Orissa. ***Bks.*** 25. Sanskrit Poetics, Purāṇa Paramaparā o Nayākalevara, Bhāgavata Galpamālā, Citra-Kuraṅgī, Tava Nilaye. ***Add.*** Deptt. Of Skt. Utkal Univ. Vani Vihar, Bhuvaneshwar, Orissa. ***Spl.Ref.*** Orissa Skt. Academy Honour, Abhinav Geetgovind Samman, Prashasti Patram, Special Award by International Naturapathy Org. New Delhi, Jayadev Piyusha Samman.

Mishra, Pragya. M.A., Ph.D. ***b.*** 22.07.1969. Reader. Mahatama Gandhi Chitrakut Gramodaya VV ***Bks.*** 12. ***Ps.*** 25. ***Add.*** Mahatama Gandhi Chitrakut Gramodaya VV Satna M.P. M. 09424361241. kapil_ckt@rediffmail.com

Mishra, Prakash Chandra. LLB, M.A. Pol. Science. ***b.*** 10.03.1917. Mainpuri, U.P. Rtd. Judicial Officer. ***Bks.*** 01. Prakāśakiraṇāvalī. ***Add.*** B 2/86. Sector – 17 Rohini, New Delhi–85.

Mishra, Pramod Chandra. Acharya in Sāhitya, Kovid, M.O.L., Ph.D. ***b.*** 03.08.1956, Bhagwanpur Shasan. Asst. Prof. PG Deptt. of Sāhitya Sri Jagannath Skt. Univ. Puri. ***Bks.*** 10. Utkalagaurava, Jagati Kevalam, Candradūtam ***Ps.*** 50. ***Add.*** Subhadra Nagar, Balighat, Puri-02, Orissa. ***Spl.Ref.*** Sachiv, Orissa Skt. Academy. Editor Vasundara Research Journal.

Mishra, Prayag Narayan. M.A., Acharya, Ph.D., D.Litt. ***b.*** 05.07.1966. Sitapur. Lect. Deptt of Skt. Prakrit Language Lucknow Univ. ***Gp.*** Prof. AK Kalia, Prof. BK Shukla. ***Bks.*** 06. Āapastambīya Śrautayāga Mīmāṃsā, Āapastambasmṛtiḥ, Vedāmṛita Mañjūṣikā. ***Ps.*** 27. ***Add.*** Plot No. 07, Goshala Road Balaganj-226003. M. 09415171430. ***Spl. Ref.*** Skt. Sāhitya Puraskar 2000, 2006, Asstt. Editor Vangmayi etc.

Mishra, Pt. Baldev. Acharya in Jyotiṣa. ***b.*** 01.11.1861. Saharsa, Bihar. Speakar, Varanasi Prasad Jaysawal Research Institute. ***Gp.*** M.M. Pt. Sudhakar Dwivedi. ***Bks.*** 06. Trikoṇamitī, Bhāskariya Bīja Gaṇita Ṭīkā, Dīrghavṛtta, Calana Kalana, āryabha-īyam.

Mishra, Pt. Khadgannath. Acharya in Vyākaraṇa, Nyāya, Sāhitya, Vedānta & śāṅkara Vedānta. Asct. Prof., Univ. of RJ. ***Bks.*** 02. Śābdabodhādivāda Pañcaka Prakāśaḥ, Siddhānta Lakṣaṇatattvāloka-prakāśa. ***Spl.Ref.***. Recipient of Rashtrapati Award, Harit Rishi Award by Maharanamevar Foundation, Ambika Dutt Vyas Award by RJ Sanskrit Academy & Ramdhari Śāstra Award.

Mishra, R.P. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.*** 30.04.1959. Allahabad. Prof. Deptt. of Skt. Kurukshetra Univ. ***Gp.*** Prof. Maan Singh. ***Sp.*** Dr. Sheila Bathala, Dr. Ranjeet Behara. ***Bks.*** 08. Ārṣa vijñānacintanam, Sāyaṇakṛta Atharvavedagata Nirvacanavimarśa, Nītiśatakam, Nigamāloka. ***Ps.*** 70. ***Add.*** Deptt of Skt. Kurukshetra Univ. Kurukshetra - 136119. Haryana. Ph. 01744238158, M. 09416570371. r.p.mishra 304@gmail.com ***Spl. Ref.*** Veda, Poet, 50 Radio Talks from AIR Rohtak, Kurukshetra, Sayan Puraskar, Nehru Memorial Award.

Mishra, R.S. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.05.1947. Prof. Skt. Deptt Lucknow Univ. ***Gp.*** Prof. KAS Iyer, Prof. Satyavrat Singh, Prof. KC Pandey. ***Sp.*** Prof. JP Sinha, Prof. AK Kalia. ***Bks.*** 07. Rudryāmalottaratantra : Dharma aura Darśana, Kādambarī Mahāśvetā Vṛttanta. ***Ps.***

80. ***Add.*** 424 C Vaishalli Enclave Extn. Sector 09. Indira Nagar Lucknow - 226016. M. 09415561568. ***Spl. Ref.*** Literature & Philosophy.

Mishra, Radheshyam Acharya in Vyākaraṇa (Prācīna & Navya), Sāṅkyayoga, Dharma-Śāstra, Purāṇaetihāsa, Sāhitya, Jyotiṣa, āyurveda-ratna, HindiSāhitya-ratna, M.A., Ph.D. ***b.*** 25.12.1940, Khajurhata, (U.P.). ***Gp*** Chotelal, Ramavilas Shukla. ***Add.*** 27, Bohra Saudagar, Hardoi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāṅkya, Yoga, Dharmaśāstra, Purāṇa, Sāhitya, āyurveda.

Mishra, Raghav Sharan. Acharya in Darśana, M.A., Ph.D. ***b.*** 30.11.1956. HOD. Sastrartha College, Dashashwamedh Varanasi U.P. ***Gp.*** Trinath Sharma. ***Sp.*** Sanjay Chaturvedi. ***Bks.*** 01. Karmaṇyeva Bhakteranusandhānam. ***Add.*** S 9/164 K, New Basti Pandeypur Varanasi U.P.

Mishra, Rajdev. M.A., Acharya (Navya Vyākaraṇa), Vidyavaridhi. ***b.*** 01.03.1928. Lalgang, Ajamgarh, U.P. Ex-V.C. S.S.V.V. Varanasi. ***Bks.*** 17, Kāvyakautukam, Bhāvāñjaliḥ. ***Add.*** Alokpuri, New Colony, Niyawan Road, Faizabad – 01. U.P. ***Spl.Ref.*** Vishitha Puraskar from U.P. Skt. Sansthan, He is the President / Member of various educational and cultural institutions and organizations, President Awardee.

Mishra, Rajdhar. M.A., Ph.D., Acharya. ***b.*** 17.01.1971. Asct.Prof. J.P.R.S.U. Jaipur, ***Gp.*** Pt. Late Rajendra Prasad Sharma, Pt. Late Vedanand Jha, Pt. Late Devikant Mishra, Pt. Dr. Vasudev Ghushe. ***Bks.*** 08. Pāṇinīyaliṅgā-nuśāsanam, Vaidika-sāhityetihāsaḥ, Madhya-siddhānta-kaumudī, Laghūsiddhāntakaumudī, Candrāpīḍakathā. ***Ps.*** 12. ***Add.*** H.No. 06, Chhatrasal Nagar, Nand Puri, Jagatpura Road, Jaipur – 302017. ***Ph.*** (0141) 2750248, 09314568823. ***Spl.Ref.*** Six Gold Medals in Student life.

Mishra, Rajendra Kumar. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna. ***b.*** 13.01.1936, Madhopur, (U.P.). Head, Deptt. of Sahitya. ***Gp*** Dr. Satyavrata Sinha, Dr. Kantichandra Pandey. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Garibdasi Sanskrit Vidyalaya, Mayapur, Haridwar (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Rajendra Prasad. Acharya in Veda, Atharvaveda, M.A., Ph.D. ***b.*** 15.06.1957, Kudia, (M.P.). Head, Dept. of Veda. ***Gp.*** Bhagavatprasad Mishra, Dr. Gopalchandra Mishra. ***Bks.*** 01. Āpastambīyodvāhasamī-kṣaṇam, Ṛkmantrārthasamālocanam. ***Add.*** Rajakiya Maharaja Sanskrit College, Jaipur (RJ). ***Spl.Ref.*** Veda, Atharvaveda.

Mishra, Rajendra Abhiraj . M.A., D.Phil., D.Litt. ***b.*** 02.01.1943, Dronipur (U.P.). Prof. & V.C.– Sampoornananda Skt. Univ., Varanasi (U.P.). ***Bks.*** More than 100. (Mahakavya 02., Khandakavya 15, Geetsangraha 06, Natika 05, Ekanki 10, Kathasangraha 10, Text Book 07, Research Book 20, Translated Book Above 50 etc.) Jānakī Jīvanam, Parāmbāśatakam, Navyabhāratasatakam, Catūrthasyaśatakam, Caitrakam. ***Ps.*** 250. ***Add.*** H.O.D., Himachal Pradesh University. Shimla. ***Ph.*** (R) - (0177) 231407. ***Spl.Ref.*** A creative poet, Play Writer and Prose Writer, Good Researcher, Appreciable Script Writer, charmfull speaker, also an critic. Visting Prof. Udayan Univ., Indonesia. Member, Board of Advisor-More than 25 including National and International Institutions. ***Awards*** Uttarpradesh Sahityik Samman - 11, Delhi Skt. Academy Samman-03, Raj. Skt. Academy Samman, Vachaspati Samman, Sahitya Academy Award, Valmiki Puraskar, Swami Dharmanand Sarawati Sahitya Sammanl, Dr. Vidyaniwas Mishra Skt. Samman, Shasrabdi Ratna Samman, Mahamahopadhyaya Samman etc. President Awardee.

Mishra, Rajesh Kumari. M.A., M.Phil., Ph.D.. ***b.*** 21.10.1968, Hamirpur (H.P.). ***Ps.*** 01. ***Add.*** 114, Teachers Hostel, Faculty House, Summer Hill, Shimla, H.P.– 05. ***Ph.*** 0177- 231407.

Mishra, Rajeshwar Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A.. ***b.*** 15.04.1928, Nakud, (U.P.). Teacher. ***Gp*** Sundaralal Shastri. ***Ps.*** 03. ***Add.*** R.N.I. Inter College, Bhagavanpur, Saharanpur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Rajeshwar. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 30.04.1959, Barahakalan, Allahabad. Prof., Kurukshetra University, Kurukshetra. ***Bks.*** 05. Sāyaṇakṛta Atharvaveda Bhāṣyāgata Nirvārcana, Arthaveda meṃ Paramatattva Mīmāṃsā. *Ps.* 20. ***Add.*** Kurukshetra University. Kurukshetra. Haryana. – 136119 ***Ph.*** 01744-291158.

Mishra, Ram Avadh. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa), ***b.*** 24.08.1922, Rtd. Principal. *Gp.* Kamlaprasad Mishra. ***Bks.*** 04. Śivāsambandha, Gāndhicaritam, Saṅgaro-pākhyānam *Ps.* 05. ***Add.*** Avadh Dhaam Nath Nagar, Deoria, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa Śāstra, Rashtriya Shiksha Award.

Mishra, Ram Kishore. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya), M.A., Ph.D. ***b.*** 25.02.1939. Etah. U.P. HOD, Mahamana Malviya Mahavidyalaya, Meerut. ***Bks.*** 21. Vidyotamā Kālidāsīyam, Bālacaritam, Devistavacaritam, Ekāṅkamālā, Chāndasgranthaparamparā, Chandaskalāvatī. ***Add.*** Mahamana Maliviya Degree College, Khekra Bagpat – 01. ***Spl. Ref.*** Honour from U.P. Skt. Sansthan, Delhi Skt. Academy.

Mishra, Ram Manohar. M.A., Ph.D. ***b.*** 08.07.1948. Prof., Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. ***Gp.*** Shri Purushottam Tripathi. ***Sp.*** Prof. Ayodhya Dasji, Prof. Ashok Tripathi. ***Bks.*** Vaiyākaraṇabhūṣaṇasāra Paramala-ghumañjūṣāyāḥ Sidhāntānāṃ Samīkṣā, Bhuktivāda Samīkṣā. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Vill. Majhvar, Post Chandauli, Janpad Chandauli.

Mishra, Ram Narayan. NavyaVyākaraṇa, Ph.D. ***b.*** 23.12.1940, Naraharpur, Gorakhpur, (U.P.), Asct. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Ranvir Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, 304-A, Shastri Nagar, Jammu Tawi (J & K)

Mishra, Ram Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A. ***b.*** 08.02.1951, Malbhirha, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Padmanarayan Tripathi, Sankardutta Bharadvaj. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Baijnath Sanskrit Mahavidyalaya, Bartan Bazar, Muradabad U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Mishra, Ram Sagar. M.A., M.Ed., Ph.D. ***b.*** 15.03.1943, Sultanpur, U.P.. Asct. Prof., R.Sk.S., Lucknow Campus. ***Bks.*** 02. Śiṣyahita Nyāsa & Śiṣya Hitavṛittī. ***Add.*** 5/598, Vikaskhand, Gomati Nagar, Lucknow – 226010. ***Ph.*** 396660.

Mishra, Ramakant. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, M.A., Ph.D. ***b.*** 12.12.1955, Marhan, Gorakhpur, (U.P.). Head, Deptt. of Sāhitya. ***Ps.*** 10. ***Add.*** D-7/39, viharipuri, Vishvanath Gali, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Ramakant. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. ***b.*** 05.08.1955, Pothikhurd, Satna, (M.P.). Asst. Prof. ***Gp.*** Ramavadana Shukla, Madhukar Phatak. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Ramadeshika Sanskrit Mahavidyalaya, Daraganj, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Mishra, Ramapati. Acharya in Sāhitya, Ph.D. ***b.*** 11.07.1949, Jhunsi, Allahabad, (U.P.). ***Gp.*** Rajadhar Dwivedi, Amaranath Pandey, Vishvanath Bhattacharya. ***Bks.*** 01. Gaṅgā-vataraṇam (Mahākāvyam). ***Add.*** Samyog, Gandhi Ganj, Karbi, Banda (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Ramashankar. Acharya in Vyākaraṇa & Vedānta, Sāhitya Ratna, Sāhitya Alaṅkāra, M.A., Ph.D. ***b.*** 03.03.1948. Ajhara, Pratapgarh (U.P.) Prof. & HOD Sāhitya Skt., Muniswar Dutt PG Mahavidyalaya Pratapgarh. ***Gp.*** Shivpratap Mishra, Muralidhar Mishra. ***Bks.*** 07. Māruticaritam (Khaṇḍa-kāvyam), Karapātrapūjāñjali, Āvantikam, Vivekacamūḥ. ***Add.*** Munishvar Datt Colony, Paltan Bazar, Pratapgarh (U.P.) ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa , Sāhitya & Vedānta, Madhup. He writes poem with the name of Madhup.

Mishra, Ramavtar. Sahityopadhyay, Vyākaraṇa, āyurveda, Jyotiṣa. ***b.*** 1899, Banipur, Bihar. ***Bks.*** 02. Śrī Devīcaritam, Rukmaṇī Maṅgalam. ***Expired in.*** 1984. ***Spl.Ref.*** āyurveda, Recipient of Kalidas Purskar by U.P. Sanskrit Academy.

Mishra, Ramchandra Vidyavachaspati. Acharya, Vyākaraṇa, Vedānta, Sāhitya. ***b.*** 19.09.1911. Sitamadhi Bihar. Prof. KSVV, Darbhanga. ***Bks.*** 02. Vaidehīcaritam,

Tarukathā. *Expired. Spl.Ref.* President Awardee, Honourary Vidyavachaspati Upadhi from KSVV, Darbhanga.

Mishra, Ramdev. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya), Shiksashastri. *b.* 06.06.1931, Gorakhpur, (U.P.). Principal. *Ps.* 03. *Add.* Shri Raghunath Sanskrit Mahavidyalaya, Sita Road, Chandausi, Moradabad (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Mishra, Ramesh Prasad. Acharya in Veda. *b.* 15.07.1945, Varanasi, (U.P.). Asst. Prof. in Veda. *Gp.* Vindhyeshvariprasad Tripathi, Bhagavanprasad Mishra. *Add.* Shri Mahanand Giri Sanskrit Mahavidyalaya, Patambari Math, Godaulia, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Veda.

Mishra, Rameshwar Prasad, Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 25.12.1927, Mukhtyarganj, Satna. M.P. *Bks.* Rāma Para Likhe Gaye Saṃskṛta Rūpakoṃ kā Ālocanātmaka Adhyayana. *Add.* Sarayu sadan, Mukhtyarganj, Satna M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Mishra, Ramgulam. M.A., Ph.D., Acharya in Sāhitya. *b.* 03.06.1950, Vardaha, Mudhubani, Bihar. Asct. Prof.. Sanskrit Deptt. *Gp.* Vrajakishor Jha, Dr. Bechan Jha. *Add.* Patna Univ. Patna– 800005 (Bihar). *Spl.Ref.* Sāhitya & Jyotiṣa.

Mishra, Ramjeevan. Ph.D., D.Litt. *b.* 01.01.1966. Madhubali. Asct. Prof. Deptt of Jyotiṣa SVDV BHU. *Gp.* Pt. Brajkishore Jha, Prof. Ramchandra Jha, Prof. Shivakant Jha. *Bks.* 11. Manda-śīghraphal-sādhanasamīkṣā, Jyotiṣa-svarasandohaḥ, Saralatrikoṇamitiḥ. *Ps.* 87. *Add.* Deptt. of Jyotiṣa SVDV BHU Varanasi - 221005 UP. M. 09935297127. *Spl. Ref.* Triskandha in Jyotiṣa.

Mishra, Ramkailash. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.01.1964, Kandhipur, Jhigure, (U.P.). *Ps.* 01. *Add.* Kandhipur, Jhigure, Kunda, Pratapgarh (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Ramkalyan. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 01.01.1961, Kandhipur, Pratapgarh, (U.P.). *Ps.* 01. *Add.* Kandhipur, Kunda, Pratapgarh (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mishra, Ramkeshav. M.A., Acharya in Vyākaraṇa. Sāhitya. Principal, Rashtriya Sanskrit College, Bikaner. Asct. Prof., Jain Vishvabharati. *Bks.* 03. Prauḍhanibandha-Saurabham, Vāmana Vijayam, Kalikautukam.

Mishra, Ramkumar. Acharya in Sāhitya, M.A. (Hindi, Sanskrit). *b.* 10.04.1926, Pihani, (U.P.). *Gp.* Jayachandra Shastri, Haridatta Shastri. *Add.* WZ-214/D, Virendra Nagar, Delhi – 110058. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Ramnaryan. Acharya (Navya Vyākaraṇa, Sāhitya), Ph.D. *b.* 23.12.1940. Gorakhpur, U.P. Reader, Kendriya Sanskrit Vidyapeth, Prayag. *Bks.* 03. Sārasvata-mupāyanam, Bhāratīmaṅgalā-yatanam, Saṃskṛtavarṣābhiyānam. *Add.* 9/90 Gayatripuram, Ramgulam Tola, Devariya U.P. *Spl.Ref.* Honour from Delhi Sanskrit Academy, Raj. Skt. Academy & Sanskrit Sansthan, Lucknow.

Mishra, Ramnath. *Bks.* 05. Ātmavikraya, Samādhāna, Prāyaścita Karmaphala, Cāṇakya Vijaya, Śrī Rāma Vijaya.

Mishra, Ramprakash. Acharya in Sāhitya. *b.*15.01. 1954, Kandhipur, Pratapgarh, U.P., Principal, Vinda Prasad Sanskrit Vidhyalaya. *Ps.* 02. *Add.* Kandhipur, Jhingur, Kunda, Pratapgarh (U.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Mishra, Rampyare, M.A. *b.* 02.11.1952, Teacher, Govt. Higher Secondary School, Delhi. *Ps.* 01. *Add.* E-453, Hardevpuri, Loni Road, Shahdara, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Rampyare, M.A., Ph.D. Acharya in Vyākaraṇa, *b.* 26.11.1925, Banauli, Mirzapur, (U.P.), Rtd. Asst. Prof. *Gp* Kaliprasad Mishra, Rajnarayan Pandey. *Ps.* 03. *Add.* P.D.N.D. College, Chunar, Mirzapur (U.P.) *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Mishra, Ramroop, Acharya, Ph.D. *b.* 15.03.1940, Sithauli. Principal. *Ps.* 10. *Add.* Shri Mumbadevi Adarsh Sanskrit Vidyapith, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay-7 MH. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Darśana Śāstra.

Mishra, Ramshakal. M.A. *b.* 01.09.1951, Bhassi, Dandi, Gorakhpur, U.P. HOD. *Ps.* 03. *Add.*

Shri Rupkala Sanskrit Vidhyapeeth, Shri Divyakala Kunj, Ayodhya, Faizabad U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Mishra, Ramshankar. M.A., Ph.D. ***b.*** 28.01.1946, Umapur, Rohtas, Bihar. Asst. Prof. ***Ps.*** 04. ***Add.*** C-K-64/368, Hirapur, Jalpat Devi Road, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Mishra, Ramsipahi. Acharya in Navya Vyākaraṇa, Kāvya Tīrtha. ***b.*** 30.07.1915, Banda U.P. Rtd. Asst. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Puranaa Bazar, Karbi, Banda U.P. ***Spl.Ref.*** NavyaVyākaraṇa Śāstra.

Mishra, Ramswaroop. Acharya in Jyotiṣa & Sāhitya. ***b.*** 15.10.1936, Bandikui, RJ. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Sikandra Road, P.O. Bandikui, Dist. Dosha, RJ. ***Ph.*** 01420- 23415.

Mishra, Ramyatana, Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya) ***b.*** 01.01.1943, Tilak Nagar, Allahabad, U.P. HOD of Vyākaraṇa. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Shri Hariram Gopal Sanatan Dharma Sanskrit Mahavidyalaya, Uncha Mandi, Allahabad U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Mishra, Ravidatta. M.A. ***b.*** 01.07.1931, Dudhaura, Sultanpur, (U.P.). Asst. Prof. ***Gp.*** Sāhityacharya Ramprakash Shukla. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Hindu Inter College, Rudauli, Barabanki (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Rudrakant. M.A., D.Phil. ***b.*** 03.02.1946, Allahabad, U.P. Asct. Prof. Deptt. Of Sanskrit, Allahabad University. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 36, Darbhanga Council, Allahabad- 211002. U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, S.C. b. 28.02.1961, Faizabad, U.P.. ***Add.*** E – 193. Dakshin Puri, New Delhi – 110062. ***Ph.*** 6078883, 6654654. ***Spl.Ref.*** Recipient of Sanskrit Academy Award.

Mishra, S.K. Acharya in Veda, Mīmāṃsā, M.A., Ph.D. Asst. Prof. ***Bks.*** Vedaśākhāparyālocanam, Madhuparkaparyālocanam, Kātyāyanīyo mūlyādhyāyaḥ. (Saṁskṛta -īkā). ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi, U.P. ***Spl.Ref.*** Veda.

Mishra, S.K. M.A. in Sanskrit & Hindi, Acharya in Navya-Vyākaraṇa. Skt. Teacher ***Ps.*** 01. ***Add.*** Sanskrit Department, Government Sanskrit College, Indore, M.P. ***Spl.Ref.*** NavyaVyākaraṇa.

Mishra, Sachchidanand. Acharya in Gaṇita & Phalita Jyotiṣa, Sāhitya, Vidyavaridhi. ***b.*** 02.04.1962. Prof. & Head Facutly of SVDV, BHU. ***Gp.*** Pt. Raghuveer Jha, Pt. Mukhlal Chaudhary, Pt. Khechandra Jha, Pt. Vaidya Nath Pandey, Pt. Bhagwat Thakur, Pt. Ratneswar Jha, Pt. Ramchandra Jha. ***Sp.*** Pt. Shivkant Jha, Gangesh Thakur, Dr. Madanmohan Pathak, Dr. Shivakant Mishra, Pt. Shivakant Jha. ***Bks.*** 15 Keralapraśna-saṅgrah, Jyotiṣasaṃsthānavidyā, Ayanānśa-vimarśa. ***Ps.*** 55. ***Add.*** Deptt. of Jyotiṣa Facutly of SVDV BHU Varanasi – 221005. Ph. 05422311019. M. 09452197406. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa

Mishra, Sachidanand. Acharya, Vidyavaridhi. ***b.*** 01.03.1971. Basti U.P. Asct. Prof. Deptt. of Philosophy & Religion BHU. ***Gp.*** Dr. Vashisht Tripathi. ***Bks.*** 07. Vedāntasāra of Sadānanda with Bālabodhinī of Āpadeva and Bālavyut-pattivardhinī Hindi Commentary, Mānasollāsa with Mānasollāsavardhinī of Ānanda Kṛṣna Śāstrī, Nyāyadarśana me Anumāna, Tattvacintāmaṇi Prabhā, Vyutpattivāda with a detailed introduction commentary in Hindi. ***Ps.*** 32. ***Add.*** Near Siverage Treatment Plant Bhagwanpur Lanka, Varanasi -221005. Ph. 0542-2368050. M. 09450823808. sachchit-mishra@gmail.com, mishrasachchidanand @yahoo.com. ***Spl. Ref.*** Darśana, Panini Grammar Maharshi Badrayan Vyas Samman.

Mishra, Sadhusharan. Champaran. Bihar. Principal, Janaki Sanskrit Mahavidhyalaya, Bihar. ***Bks.*** 01. Gāndhicarita.

Mishra, Sampadananda. Ph.D. ***b.*** 17.11.1971. Director Sri Aurbindo Foundation for Indian Culture. ***Bks.*** 08. The wonder that is Skt., Chandovallarī, Century of Life, Saṃskṛta. Vyākaraṇa Pāribhāṣika Śabdāvalī. ***Ps.*** 09. ***Add.*** Sri Aurobindo Society 11, Saint Martin Street, Pondicherry - 605001. Ph. 0413-2332907, M. 09952888350. ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa, Maharishi Badrayan Vyas Samman.

Mishra, Sampoorna Dutt. M.A. (Skt., English), Āyurveda Shastri. ***b.*** 10.10.1927. Bharatpur, Raj. HOD English Deptt., Bristal Univ., Britain. ***Bks.*** 11. Ṛtūllāsaḥ, Rāsanāyakanāyikam, Sūktipañcāmṛtam, Rādhākṛpāka-ākṣa. ***Add.*** Ullas Sribhavanam, Gopalgarh, Bharatpur – 01. ***Spl.Ref.*** Title of Kavipundarika, Sundari-spandnandan, Kavishwar, Kavisahri-dyashikhamani, Kavikulmani, Poet in Sanskrit, Hindi, English, Urdu. Recipient of 'Magh' Puraskar by RJ Sanskrit Univ., Jaipur.

Mishra, Sashibhusan. M.A., Ph.D. ***b.*** 23.02.1975. Jagat Singhpur, Orissa. Lecturer Sri Seetaram Vedic Adarsh Skt. Mahavidyalaya ***Bks.*** 11 ***Ps.*** 25. ***Add.*** Sri Seetaram Vedic Adarsh Skt. Mahavidyalaya 7/2A, PWD Road, Kolkatta–35 WB. ***Spl.Ref.*** Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Mishra, Satya Deva. M.A., Ph.D. Certificate in German, Post Doctoral Research at CASP, Univ. of Madras. ***b.*** 11.11.1942, Balrampur. Prof. Ex-VC, JRR Skt. Univ., RJ. ***Bks.*** 05, Amarakośa with Kṛṣṇa Mitra's Commentary in sanskrita, Advaita Vedānta meṃ Ābhāsavāda, Modern Researches in Sanskrit, The Theory of Appearance in Sankara Vedānta in the Voice of Sankara, Dvanyāloka-Darpaṇam. ***Ps.*** 120. ***Add.*** S-366, Sanskrit Enclave, Udyan-II, Eldeco, Raibareilly Road, Lucknow-25. M. 09936074616. Email. sdmvc@yahoo.com ***Spl.Ref.*** Philosophy, Visiting Prof. Gurukul Kangri Univ. 2007, Adjunct Prof. BITS, Pilani, RJ. Univ. of Malaya Kuala-lumpur 1970-73. Lifetime Achievement Award by United Writers Association, Rising Personalities of India Award-2001 of International Penguin Publishing House; Chennai; Utkrisht Sāhitya Samman-2002 by Akhil Bharatiya Sahitya Parishad, RJ; Vedānta Siromani Samman. U.P. Skt. Academy Award (1979); Rashtriya Siksha Ratna by AIBDA, New Delhi, DEED Award by Bharatiya Vishwa Vidyalaya Parisangh, Padmabhushan Shri Pattabhiram Shastri Memorial 'Mimamsa Keshari' Award-2006 of Vaidik Pracharak Sangh, Jaipur.

Mishra, Shail Kumari. M.A., B.Ed., M.Ed., Ph.D. ***b.*** 15.01.1954, Bhonti, Sivan, Bihar. Asct. Prof., R.Sk.S., Allahabad. ***Bks.*** 04. Pañjābī Saṃskṛta Śabda Koṣa, Pañjābī Saṃskṛta Pā-habhāṣya(I-II), Tilaka Vimarśa, Caturdaśa Khyāti Viveka. ***Add.*** 701/02/67 – D. Ramanand Nagar, Allahpur, Allahabad. ***Ph.*** 0532 – 6451061.

Mishra, Shambhu Dayal. Acharya, Vidyavaridhi. ***b.*** 13.04.1983. Sultanpur SRF RSKS Lucknow. ***Gp.*** Prof. S.N. Jha, Dr. PVB Subramanyam. ***Ps.*** 08. ***Add.*** 86/40 Sarojini Devi Lane Makbul Ganj Lucknow - 226001. shambhudayal.mishra @gmail.com. ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa.

Mishra, Shankar Kumar. Acharya (Sāhitya, DharamŚāstra), M.Ed., Ph.D. ***b.*** 02.01.1971. Supaul, Bihar. ***Gp.*** D.N. Mishra, Prof. V. Upadhyaya, Prof. Nina Dogra, Prof. S.N. Mishra. ***Sp.*** Santosh Tiwari, Preeti Ranjan Jha. ***Bks.*** 01. Ṣodaśasaṃskāravimarśaḥ. ***Ps.*** 43. ***Add.*** Deptt. of DharamŚāstra Mimansa, Faculty of SVDV, BHU Varanasi. M. 09935953851. ***Spl. Ref.*** DharmaŚāstra.

Mishra, Shesh Narayan. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. ***b.*** 10.10.1952. Asst. Prof. Śāstrartha College Dashashwamegh Varanasi. ***Gp.*** Pt. Ram Yatna Shukla. ***Sp.*** Vijay Kumar Mishra. Diwakar Mishra. ***Bks.*** Māheśvara-caturdaśa Sūtrāṇām Vyākaraṇatantrā-gamadṛṣ-ayā Samīkṣā. ***Add.***K. 54/116 Daranagar Varanasi U.P.

Mishra, Shiv Shekhar. M.A., Ph.D., LLB, D.Litt. ***b.*** 01.01.1927. Seetapur, UP. Asct. Prof. & HOD Deptt. of Skt. Lucknow Univ. ***Bks.*** 08. ***Ps.*** 25. ***Spl.Ref.*** Manuscript Editing. President Awardee.

Mishra, Shivkant. Acharya, M.Ed., Ph.D. ***b.*** 03.02.1973. Sitamadhi. Asstt. Prof. J. Ramanandacharya Raj. Skt. Univ. Jaipur. ***Bks.*** 02. Jyotiṣa Śikṣaṇam, Keralapraśnasaṅgraha. ***Add.*** Jyotiṣa Deptt. Jagadguru Ramananda-charya Rajasthan. Skt. Univ. Jaipur. M. 09413840157. drshivakant@gmail.com.

Mishra, Shridhar. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, Shiksha Shastri, Ph.D. ***b.*** 12.12.1964,

Darbhanga, Bihar. ***Bks.*** 02. Ajantaliṅgatrayasya Tattvabodhinī Laghuśabdenduśekharayoḥ Tulanātmakamadh-yayanam. ***Ps.*** 02. ***Add.*** R.Sk.S. Jaipur Campus, Triveni Nagar, Jaipur.

Mishra, Shyam Dev. Acharya Siddhant & Falit Jyotiṣa, Ph.D. ***b.*** 01.03.1979. Bikaner. Asstt. Prof. RSKS Lucknow. ***Gp.*** Prof. Radhakant Thakur, Dr. Sripad Bhatt. ***Ps.*** 45. ***Add.*** 2/239 Viramkhand 2 Gomti Nagar Lucknow - 226010. Ph. 0522-2394750.

Mishra, Shyamapad. Tīrtha in Nyāya & Tarka Śāstra. ***b.*** 24.11.1945, Egra, Midnapur, W.B. Asst. Prof., Univ. of Calcutta. ***Bks.*** 02. Nyāyakusumāñjali (ed.), Padārthadharma-saṅgraha. ***Ps.*** 07. ***Add.*** AF. 176, Ravindrapalli, P.O. Prafullakanan, W.B. - 700101. ***Ph.*** 033-5713326.

Mishra, Sudha. M.A., Ph.D. ***b.*** 25.02.1958. Patna. Reader Deptt of Skt. Patna Univ. ***Bks.*** 01. ***Add.*** PG Deptt of Skt. Patna Univ. Patna. M. 09973584567.

Mishra, Sudhakar. Ach. ***b.*** 11.11.1964. Prof. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. ***Gp.*** Shri Devswaroop Mishra, Parasnath Dwivedi. ***Sp.*** Shri Krishna Pandey, Dr. Madhulika Debe. ***Bks.*** 01. ***Ps.*** 12. ***Add.*** Vill. Bulapur Patralaya, Gangapur, Janpad Valiya, U.P. ***Spl.Ref.*** Crodimath Puruskar, Nepal Yatra.

Mishra, Sudhakar. Acharya, B.Ed, NET, Ph.D. ***b.*** 08.06.1982. Sultanpur U.P. Lect. in Vyākaraṇa Sri Sitaram Vedic Adarsh Skt. Mahavidyalaya. ***Gp.*** Prof. Ram Yatan Shukla, Prof. Rammanohar Mishra, Prof. Abhiraj Rajendra Mishra, Prof. Shivji Upadhayaya. ***Bks.*** 01 Samāsasamīkṣaṇam. ***Ps.*** 09. ***Add.*** Sitaram Vedic Adarsh Skt. Mahavidyalaya 7/2A PWD Road Kolkatta - 700035. Ph. 03325777250. M. 09903562853. sudhakar-mishra.vyākaraṇa@gmail.com . ***Spl. Ref.*** Vyakrana, Bangladesh, Nepal.

Mishra, Sudhir Kumar. Ph.D. ***b.*** 07.04.1978. Computational Linguistic AAI Group, C-DAC. ***Bks.*** 01. Saṅgaṇaka Janita Saṃskṛta Vyāvahārika Dhāturūpāvalī. ***Ps.*** 14. ***Add.*** AAI Group, C-DAC NSGIT Park Aundh Pune. sudhirkumar-mishra@gmail.com

Mishra, Sulachana. M.A., M.Phil., Ph.D. B.Ed. ***b.*** 21.02.0171, Madhubani, Bihar. Teacher, ***Gp.*** Prof. R. Sharma. ***Bks.*** 01. Utpaladeva kī Siddhitrayī. ***Ps.*** 07. ***Add.*** B-1082(old no. B-295), New Ashok Nagar, Mayur Vihar Ext.-I, New Delhi – 110 096. ***Spl.Ref.*** Sanskrit Critics. e: drsulachana.mishra@gmail.com

Mishra, Surendrapratap Narayan. M.A., Ph.D., Acharya in Sāhitya. ***b.*** 17.05.1956, Nagria Jalalabad, Faizabad, U.P. HOD Sahitya. ***Bks.*** Vāsudevakṛta-Yudhiṣ-hira-Vijaya-mahākāvyasya Samīkṣātmakā-dhyayanam. ***Add.*** Shri Hanumat Sanskrit P.G. College, Hanuman Garhi Nirvani Akhara, Ayodhya, Faizabad, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Mishra, Suresh Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. ***b.*** 25.05.1955, Sarurpurkalan, Meerut, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Harshnath Mishra. ***Bks.*** Phalitajyotiṣa Bhāvamañjarī, āyurnirṇaya, Hastasañjīvanam, Jātakatattvam. ***Add.*** 47/R, C.P.W.D. Flats, Saket, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Jyotiṣa.

Mishra, Surya Prasad. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, Ph.D. ***b.*** 25.12.1940, Khajurhata, U.P. ***Gp.*** Ramvilas Shukla, Ramkuber Malviya. ***Bks.*** Paramānanda Saurabham. ***Add.*** H.No.29, Bahara, Saudagar, West Hardoi U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Mishra, Taranath Mohale. b. 1922, Kashi, (U.P.). ***Gp.*** Martand Shastri. Rtd. Teacher. ***Add.*** C.K. 8/95, Garhwali Tola, Chowk, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** śuklayajurveda Mādhyandinaśākhā. Recipient of U.P. Samskrita Akademi Award.

Mishra, Thakkan. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhityaratna, Ph.D. ***b.*** 01.11.1929, Vairdih, Darbhanga, Bihar. ***Gp.*** Pt. Jnaniram Shastri. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Gurumukh Bhavan, Shravana Nath Nagar, Haridwar, Uttarakhand. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Mishra, Trilochan Sharma. Acharya in Sāhitya, Purāṇa, Sāṅkyayoga. ***b.*** 03.08.1935, Brahmpur,

Orissa. Asct. Prof. *Gp.* Narayana Mahapatra, Pt. Kashinatha Mishra. *Ps.* 05. *Add.* Shri Sadashiv Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Puri, Orissa – 752001. *Spl.Ref.* Sāhitya, Purāṇa, Sāṅkya Yoga.

Mishra, Uma Shanker. M.A., Ph.D.. *b.* 17.10.1957, Varanasi. *Ps.* 02. *Add.* 64, Jawahar Nagar, Extention Bhelupur, Varanasi – 221010. *Ph.* 313332.

Mishra, Umanand. P.G. in Jyotiṣa *b.* 04.05.1949, Raiyam, Madhubani, Bihar. Teacher. *Gp.* Hareram Mishra, Ramaji Ojha. *Ps.* 03. *Add.* Govt. Sanskrit College, Patna, Bihar – 800004. *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Mishra, Umashankar. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.05.1945, Belharkala, Basti, U.P. H.O.D., Shri Rupkala Sanskrit Vidyapitha, Ayodhya *Ps.* 04. *Add.* Shri Rupkala Sanskrit Vidyapitha, Shri Divyakala Kunj, Ayodhya, Faizabad, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Upendra Kumar. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya. *b.* 10.08.1958. Raibareli, U.P. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* Shivprasad Sanskrit Adarsh Mahavidyalaya, Gandhi Nagar, Lucknow. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Mishra, Vaidyanath. *b.* 30.06.1911, Madhubani, Bihar. Teacher, Saharnpur U.P. *Bks.* 05. Ratinātha Kī Cacī, Bālārcanam, Bābā Bateśara Nātha, Nai Paudha, Dukha Mocana. *Exp.on* 05.11.1998. *Spl.Ref.* Sāhitya Academy Award, Bharat Bharti Award by U.P.Govt.

Mishra, Vamdev. Acharya, M.A., Ph.D. Asct. Prof. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Kashi Vidhyapeeth, Varanasi. U.P. *Spl.Ref.* Veda.

Mishra, Vamsidhar. Acharya, Yājñikaśiromaṇi. *b.* 05.05.1905, Korara, Kurukshetra, Haryana. Rtd. Head. *Gp.* Vidhyadhar Sharma. *Ps.* 05. *Add.* D-15/25, Manas Mandir, Varanasi. *Spl.Ref.* Darśana.

Mishra, Vedmitra. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, M.A. *b.* 05.04.1944, Allahabad, U.P. HOD. Deptt. of Sāhitya. *Gp.* Jairam Pandey, Ramkuber Malviya. *Ps.* 04. *Add.* 6/5, Alopi Bagh, Allahabad U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Vidhata. M.A. in Skt, Pālī, Prākṛta, Hindi, Maithili, Ph.D., D.Litt. *b.* 06.05.1934, Darbhanga. *Bks.* 01. A Critical Study of Sanskrit Phonetics. *Ps.* 154. *Add.* Near Gas Godown, Laxmi Sagar, Darbhanga, Bihar – 846009, *Ph.* (06272) 35146. *Spl.Ref.* Recipient of Award of Honour from the president of India, F.R.A.S. (London), Mahamahopadhyaya Honour.

Mishra, Vidhinarayan. Acharya in Sāhitya. *b.* 15.11.1951, Rewa, M.P. Asst. Prof. *Gp.* Bholanath Tripathi, Shashishekhar Jha, Dr. Kedarnath Mishra. *Ps.* 02. *Add.* Shri Sachcha Adhyatma Sanskrit Mahividhyalaya, Arail, Baba Nagar, Allahabad. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Vidhyadhar. Acharya, Ph.D. *b.* 25.12.1952, Jaidevpatti, Darbhanga, Bihar. Asst. Prof. *Gp.* Upendra Jha, Rameshwar Mishra. *Bks.* 02. Munitrayam Namaskṛtya, Mulāyama Patthara. *Ps.* 02. *Add.* M.A. Rameshwarlata Sanskrit Mahavidhyalaya, Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Mishra, Vidya Prasad. Acharya. *b.* 10.07.1958. Amethi U.P. Jr. Research Officer IGNCA, New Delhi. *Bks.* 02. *Add.* Arya Samaj South Extn. First New Delhi - 110049. Ph. 011-24636268, M. 09811281378.

Mishra, Vidyanath. Acharya. *b.* 20.09.1929, Tarouni, Bihar. *Gp.* Yadupati Mishra, Ishvarnath Jha. *Ps.* 02. *Add.* Tarouni, Vishvanathpur, Nehra Via Darbhanga, Bihar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, NyāyaŚāstra.

Mishra, Vidyaniwas. M.A. *b.* 1925, Gorakhpur, U.P. V.C. Sampoornanand Sanskrit Univ., Varanasi. *Gp.* Pt. Kshetreshchandra Chattopadhyay. *Bks.* 59. Aṅgada kī niyati, Agniratha, Tuma Candana Hama Pānī, Kadama kī phūlī ḍāla, Sāhitya kī Cetanā. *Spl.Ref.* Recipient of 'Padmashri' Award by Govt. of India and 'Moorlidevi' puraskar by Bhartiya Gyanpeeth. *Expired.*

Mishra, Vindhyavasini Prasad. M.A., Ph.D. *b.* 15.10.1935, Hariharpur, Varanasi U.P. Asst.Prof. *Gp.* Raja Narayan Shukla, Shrikant Pandey, Brahmadev Pandey. *Ps.* 02. *Add.* Hariharpur, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mishra, Vindhyeshwari Prasad 'Vinay'. M.A., Ph.D.. ***b.*** 18.03.1956, Village Kahara, Hamirpur (U.P.). Prof. & HOD in Sanskrit Vidya Dharma Vigyan (SVDV). Director – Malviya Bhavan, Coordinator, Centre for Yoga. – Banaras Hindu University, Varanasi. ***Sp.*** Dr. Shravan Kumar Dwivedi, Dr. Krishnakant Joshi, Dr. Ghanshyam Dixit, Dr. Mudita Tiwari, Dr. Pratibha Pandeya. ***Bks.*** 13. Mantrabhāgavatam, Saṅkīrtanarasa-nirjharī, Śrīmahākāleśvar–Stutipañca-ratnam, Vātāyana, Śrīmadbhāgavat–Tattvabinduḥ. ***Ps.*** 81. ***Add.*** Department of Vaidic Darśana, Faculty of Sanskrit Vidya Dharma Vigyan (SVDV), BHU, Varanasi. ***Pin.*** 221005. ***Ph.*** (0542) 6701951. M. – 9936038383. ***Spl.Ref.*** Received M.P. State Bhoj Puraskar for the Year 1999–2000 on the Book titled 'Śrīmadbhāgavata Meṃ Kṛṣṇakathā Svarūpa Evam Tatvavimarśa'. First Prize to the Sanskrit Drama 'Netralīlāvitam' (Conceiver and Script-Writer) in Navodita–Pratibha Samagam Held at Dr H.S. Gour Univ. Sagar in 1995, organized by M.P. Sanskrit Academy, Bhopal (M.P.). First Prize in 'Sanskrit-Kāvya-Lekhan' Competition at Navodit – Pratibha- Samagam in 1986.

Mishra, Vir Bhadra. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.08.1940. Seetapur U.P. HOD Skt. Deptt. BSNV PG College. ***Bks.*** 20. Anunayaḥ, Saṃskṛta. Saṃracanā, Vaidika Vāṅmayagu-ikā, Aṣṭ-ādhyāyīpariṣkāraḥ ***Ps.*** 25. ***Add.*** 643. SA/42. Skt. Nagaram, Sitapur Road, Lucknow - 226021. Ph. 0522-2759045. ***Spl. Ref.*** Short Documentary is made by UGC on his Skt. Skills. *Expired* .

Mishra, Virendra Kumar. Acharya. ***b.*** 08.05.1962, Unnav, U.P. ***Gp.*** Laxmeshwer Jha. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 31/3204, Beedanpura, Karol Bagh, New Delhi. 110005.

Mishra, Vishuddhanand. Acharya (Vyākaraṇa Sāhitya), Vidyabhushan. ***b.*** 1922. Badayun. U.P. Former Vice-V.C., Gurukul Vrindavan ***Bks.*** 05. Gokaruṇānidhikāvyam, Suravāṇī-praśastikā, Vane Nirvāsitā sītā, Satyārtha-prakāśaprśastau Aś-ottaraśatakam, Āryāśca ke? Hindavaḥ. ***Add.*** Vedamandir, Kuchapanda, Badaun, U.P. ***Spl.Ref.*** Veda, Sāhitya, Vyākaraṇa. President Awardee, Akhil Bhartiya Vedvedang Puraskar, Sri Gangeswaranand Vedvedang Puraskar, Anuchan Sāhitya Puraskar, Visihist Puraskar U.P. Skt. Sansthan, Honourary Vidya Martand by Gurukul Kangri, Chairman Sarvdeshik Karya Pratinidhi Sabha.

Mishra, Vishvambhar Vagish. M.A., Ph.D. ***b.*** 03.07.1961, Jhanjharpur, Bihar. HOD. ***Gp.*** Pt. Sobhakant Jha, Pt. Kulnandan Mishra, Dr. Kashinath Mishra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shyama Charan Sanskrit Vidhyapith, Madhusudan Nagar, Baunsi, Bhagalpur Bihar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Mishra, Vishvanath. Acharya, M.A. ***b.*** 05.08.1914, Lakhimpur. Inspector of Sanskrit Pathshalas, Govt. of U.P. ***Gp.*** Bhola Chandra Shastri, Dr. Mangaladev Shastri. ***Ps.*** 02. ***Add.*** B-43, Chandralok Hydle Colony, Chandralok, Lucknow, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Mishra, Vishvanath. Acharya. ***b.*** 1919, Ramapurnadi, Jaunpur, U.P. Rtd. Asst.Prof., Govt. Sanskrit College, Ranchi. ***Add.*** C/o. Chotangpur Prathamik Shikshak Shiksha Mahavidyalaya, Main Road, Ranchi, Jharkhand. ***Spl.Ref.*** Veda, Vyākaraṇa Śāstra.

Mishra, Vishvnath Prasad. M.A. in Sanskrit & Hindi. ***b.*** 1906. Varanasi. Prof., B.H.U., Varanasi. ***Bks.*** 14. Hindī Sāhitya kā Atīta, Hindī kā Sāmayika Sāhitya, Vāṅmayavimarśa, Bihārī kī Vāgvibhūti, Kāvyāṅga Kaumudī.

Mishra, Vishwa Nath. M.A., Acharya. ***b.*** 15.06.1930. Bihar. Prof., Jain Vishwa Bharati University. RJ. ***Bks.*** 07. Laghūśabdendū Śekhara, Paribhāṣenduśekhara, Prauḍha Nibandha Saurabham, Bhikṣu Nyāyakarṇikā. ***Ps.*** 50. ***Add.*** 6-Kailash Nikunja. Rani Bazar. Bikaner. RJ. ***Ph.*** 9828927155. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Mishra, Vulan. M.A. Ph.D. ***b.*** 01.01.1944, Madhubani, Bihar. Principal. Ugratara Bharati Mandan Sanskrit College, Mahishi, Saharsa. ***Gp.*** Pt. Suryanarayan Jha, Pt. Pitambar Jha.

Ps. 02. *Add.* Vill. Garatola, Via Ghoghardiha, Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Veda, Darśana Śāstra.

Mishra, Yadu Nath. *Gp.* Loknath Jha. *Bks.* 01. Padavākyaratnākaravyākhyā. *Expired in* 1928.

Mishra, Yajana Nath. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa. *b.* 01.04.1930, Jamudhari, Madhubani, Bihar. *Gp.* Krishnsinha Thakkara. *Ps.* 02. *Add.* Jamudhari, Itaharupauli, Madhubani, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya & Vyākaraṇa.

Mishra, Yugal Kishor. Acharya in Śuklayajurveda, Ph.D. *b.* 23.07.1953, Varanasi, U.P.. H.O.D. Veda, Sampurnanand Skt. University, Varanasi. *Gp.* Gopalchandra Mishra, A.M. Ramanatha dixit, Siddheshwar Bhattacharya. *Ps.* 20. *Add.* 7, Professor Colony, Jagatganj, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Dharma-Śāstra.

Misra, Gopal Chandra. M.A., Ph.D. *b.* 15.02.1958 Medinipur WB. Prof. Skt. Deptt Ravindra Bharati Univ. *Bks.* 01. *Add.* Skt. Deptt. Ravindra Bharati Univ. - 700050. M. 0943311 9196. gm.professor@gmail.com.

Mitra, Kamlarani. Kāvyatīrtha, Ph.D.. *b.* 08.08.1924. *Ps.* 02. *Add.* Chittranjan Park, New Delhi – 110019. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mitta, Anjaneyalu. Vidvat, M.A. *b.* 01.06.1948, Anantpur, A.P.. Asst. Prof. *Gp.* N.V. Nigamant, Chandrashekhar Sharma. *Ps.* 02. *Add.* Shri Satya Saibaba National College, Anantpur, A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mitta, Sahadevayya Shetti. Sāhityaśiromaṇi. *b.* 15.08.1957, Pedhajutulam, Dist. Kuddapa, A.P. *Ps.* 02. *Add.* Shri Mittamalleshwarswami Sanskrit Pathshala, Pulivendula, Kuddapa A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mittal, Santosh. M.A., M.Ed., Ph.D. *b.* 19.07.1956, Soami Bag, Agra. Asst. Prof., Jaipur. *Bks.* 05. Śaikṣika Takanīki evam Kakṣā Kakṣa Prabandha, Bāla Vikāsa evam Pārivārika Saṃbandha, Ikkīsa dina me Paryāvaraṇa evam Paryāvaraṇa Śikṣā, Saṃskṛta Śikṣaṇam, Bhāśā Śikṣaṇa Navācārāḥ. *Add.* 7/398. Malviya Nagar. Jaipur – 302017. *Ph.* 0141 - 2547334. 09413586550.

Mittal, Surendrapal. M.A., B.Ed. *b.* 25.12.1942. Vice Principal, Central School, Andrews Ganj, Delhi. *Ps.* 01. *Add.* 7, Vigyan, Vihar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Mittala, K., M.A. Asst. Prof., Sanskrit Department. *Ps.* 02. *Add.* Lady Shri Ram College for Women, Lajpat Nagar, New Delhi–110024. *Spl.Ref.* VedāntaDarśana.

Modgil, Surendra kumar. M.A., M.Phil. *b.* 03.03.1947. Asst. Prof. *Gp.* Prof. S.P. Ranadev. *Ps.* 03. *Add.* M.G.S.M. Janta College, Kartarpur Jallandhar, Punjab. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Modgill, Satyaveer. M.A., Siksha Shastri, Vidyavachaspati. *b.*05.01.1967 Senior lecturer, Sri Sanatandharma Birla Skt. Degree College, Kurukshetra. *Bks* 03 Janmāṅgaphaldīpikā, Pañcakālikā Sandhyā *Add.* Giyong , Kaithal-136027 Haryana *Ph.*01746288455. M. 09896197024 *Spl. Ref.* Pandulipi Janmpatri Samrat.

Mohandas, K. M.A. (Skt. Language and Literature), M.Ed., Ph.D. *b.* 03.04.1955. Ernakullam. Rtd. Sr. Lect DIET. *Bks.* 07. Madhuram Gayatu, Geetakam Manoharam, Cricket Mandanmar. *Ps.* 20. *Add.* Thulasivanam, Muthalapuram, P.O. Elanji, Ernakulam Distt. Kerala -686665. Ph. 0485-2257865. M. 09847943865. mumodas@rediffmail.com. *Spl. Ref.* Regular Pariticipant in SCERT Workshops for the preparation of Skt. Texts Books.

Mohanty, Sugyan Kumar. Acharya, B.Ed., Ph.D. *b.* 01.02.1968. Ganjam, Orissa. Asst. Prof., R.Sk.S., Garli Campus, H.P. *Bks.* 05. Evalution in Sanskrit at Secondary Level, Kāvyaprakāśīyasudhā-sāgara-īkā - Śamīkṣā, Kāvyaśāstra, Abhidhāvṛttimātṛkā (Skt. Comm.), Kāvyatattvālokaḥ. *Ps.* 33. *Add.* 270. Gayatri Vihar, Bagmugaliya, Near Rameshwaram Extn., Bhopal, M.P. *Ph.* 0755 – 2421877, 2422033. *Spl.Ref.* Preached Sanskrit All over India since 1980 Directed and Staged 05 Sanskrit Dramas at National Level & won prizes for the institution.

Mohanty, Sulok Sundar. M.A., Ph.D. *b.* 04.12.1953, Sambalpur, Odisha. Asst. Prof.,

Dept. of Sanskrit, G.M. College, Autonomous, Sambalpur, Odisha, Pin. – 768004. *Bks.*06. Aspects of Domestic in Ceremonies in Āśvalāyana School, Śaunakakārikā A Medieval Treatise on Hindū Rites, Āpastamba – Dharmasūtram, Nābhigayā At Jaipur, Gayānābhi Śrāddha Paddhati, (A Manual on Śraddha at Nābhigayā). *Ps.* 37. *Add.* Principal, G.M. College, Autonomous, Sambalpur, Odisha, Pin – 768004. *Ph.* 9937251767.

Mohapatra, Kishore Chandra. Acharya in Sāhitya & Dharma-Śāstra, Ph.D., D.Litt.. *b.* 19.12.1951, Cuttack. Asst. Prof., Shri Jagannath Sankrit Vishvavidhyalaya. *Bks.* 05. Cayana Pradīpa, Dāyabhāga Samīkṣā, Oriya Sanskrit Dictionary, Nirṇayasindhu, Yājñavalkya Smṛtiḥ. *Ps.* 30. *Add.* Jageswarilane, Balighat, P.O. Puri, Dist. Puri, Orissa. – 06752. *Ph.* 22925.

Mokaria, Dayalal Maldebhai. M.A., M.Phil., B.Ed., NET, Ph.D. *b.* 25.10.1978. Asct. Prof. Sri Somnath Skt. Univ. Junagarh. Gujarat. *Ps.* 08. *Add.* Sri Somnath Skt. Univ. Veraval, Junagarh - 362265 GJ. M. 09825512756.

Moliya, Mansukh. M.A., Ph.D. *b.* 03.04.1963, Srurashtra, GJ. Asst. Prof. *Ps.* 01. *Add.* "Abhijñāna" 61, New Parimal Park, Behind Yogeshwar Park, UNI Road, Rajkot, GJ. – 360005. *Ph.* 0281- 79273.

Moliya, Mansukhlal KanjiBhai. Ph.D. *b.* 03.04.1963. Prof. Sanskrit Bhawan Sourashtra University Rajkot. *Ps.* 10. *Add.* Abhigyan 27, Satelite Park, Ajanta park, Near University Road, Rajkote. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Mondal, Ajit Kumar. Acharya (Kāvya Vyākaraṇa, Purāṇa), B.Ed., M.A., Ph.D. *b.* 11.10.1957. Midnapur WB. Asct. Prof. *Bks.* 08. Nava Saṃskṛta Praveśa, Saṃskṛta Pā-hamālā Vicitra, Muṇḍakopaniṣad. *Ps.* 03. *Add.* Nutan Chati Circus Maidan Bapura - 722101. Ph. 03512223664. 09232166150. shriguru2010 akm@yahoo.com.

Mondal, Amal Kumar. M.A., B.Ed., M.Phil., Ph.D. *b.* 01.03.1961. South 24 Pargana WB. Asstt. Prof. Deptt. of Skt. Ravindra Bharati Univ. *Bks.* 01. *Add.* Deptt of Skt. Ravindra Bharati Univ. Kolkatta - 700050. Ph. 03324304310. M. 09830950791.

Moorthy, K. Venkatesh. Acharya, Shiksha Śāstra, NET. *b.* 04.05.1976. Asst. Prof. R.Sk.S. *Ps.* 15. *Add.* . Rashtriya Sanskrit Sansthan, 56-57, Inst. Area, D Block Janakpuri, New Delhi–58. *Spl.Ref.* Co-Editor of Srimad Bhagwat Geeta Sanghrah, Sanskrit Varta, Sanskrit Drama direction and acting.

Mor, Laxmi. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 01.06.1961. Jajanpur. Asct. Prof. RKSD PG College. Kaithal. *Bks.* 01. Nyāyapraveśa Sūtram eka Vivecana. *Ps.* 04. *Add.* 110, Sector 20, Huda Kaithal - 136027. Haryana. Ph. 01746228051. *Spl. Ref.* Philosophy.

Moreshwar, Mahasabde Vinayak. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. *b.* 23.10.1916, Chalisgaon, Khandesh, Jalagaon, MH. *Gp.* Shridhar-shastri Pathak, M.M. Vedāntavagish, Bhargav Shastri Joshi. *Ps.* 02. *Add.* Kaumudi, C-39, M.I.D.C. Chinchavad, Pune, MH. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mori, Bharat Kumar Punja Bhai. Ph.D. *b.*01.06.1967. Prof. Y.S. Arts & Commerce College Devgarh Bariya Distt. Dahod. *Ps.* 02. *Add.* 29, Gokul Society, Near Tower Devgarh Bariya Distt. Dahod. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Motilal, Shastri. M.A.. *b.* 22.06.1922, Alwar, RJ. Rtd. Asst. Prof.. *Gp.* Giradhar Shastri, Pyarelalji. *Ps.* 02. *Add.* Vijay Vilas, Near S.T.C. School, Alwar, RJ. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Motiram, Shastri. Acharya in Sāhitya. *b.* 10.10.1924, Jabalpur, M.P. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Lokanath Shastri. *Bks.* 01. Payaḥpānam. *Add.* 55, Vinayak Niwas, Gopal Bagh, Jabalpur, M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mudgal, Jagadisha Prasad. M.A., B.T. *b.* 08.04.1932, P.G. Teacher, Govt. Senior Secondary School, New Delhi. *Ps.* 01. *Add.* C-43, New Krishna Park, Near Dhauli Piao, New Delhi – 110027. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mudgal, Krishna Chandra. Acharya in Sāhitya, Kāvyatīrtha. *b.* 14.09.1920. Principal, L.N. Girdhari Lal K.P.H.S. School, Delhi. *Ps.* 02.

Add. 10A/19, Shakti Nagar, Delhi – 110007. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Muguli, Govind Bhatt. M.A. *b.* 06.01.1944. *Add.* D. No. 71-3, Y. Ten Houses, Kalamma Street, Bellary, KT – 538101. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Mukherjee, Biswanath. M.A., Ph.D. *b.* 02.11.1947, Burdwan. Prof. Skt. Deptt Univ of Burdwan. ***Bks.*** 02. ***Add.*** Deptt of Skt. Burdwan Univ. Burdwan - 713104 WB.

Mukherjee, Debranjan. M.A., Ph.D. *b.* 14.04.1926. Burdwan, WB. Rtd. Prof. Burdwan Univ. ***Bks.*** 03. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Vedānta Sāṅkya Yoga, He has honoured by Several Award. President Awardee.

Mukherjee, Debsujan. M.A. ***b.*** 16.07.1986. Raiganj. Parttime Lect. Kaliyaganj College. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Vill & P.O. Rasakhowa. P.S. Karandighi Distt. Uttar Dinapur - 733212.

Mukherjee, Kalpika. M.A. Ph.D. ***b.*** 19.02.1939. Bangladesh. Prof. ***Bks.*** 01. Prācīna Saṃskṛta nā-ya Saṅgīta. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Sree Palli, P.O. Santiniketan, West Bengal - 731235, ***Ph.*** 03463- 56375.

Mukherjee, Ramaranjan. M.A., D.Phil., D.Litt.. *b.* 01.01.1928, Suri, Birbhum, (W.B.). Ex. Vice-Chancellor, Univ. of Burdwan (1970-71, 1973-84), Rabindra Bharati Univ. (1984-1987), Emeritus Fellow, U.G.C. ***Bks.*** 10. Literary Critisism in Ancient India, Imagery in Poetry, Sanskrit Poetries and Western Literary theory. ***Add.*** 125, Santoshpur Avenue, Calcutta- 700075 (W.B.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Alaṅkāra-Śāstra. ***Awards.*** Certificate of Honour by President of India. ***Expired.***

Mukherjee, Shukla. M.A., M.Lib., Ph.D. *b.*18.02.1953. Kolkata. Project Officer, R.Sk.S, New Delhi. ***Bks.*** 03. Rāgāñjali-Nītiśatānśaḥ, Jayadeva-Daśāvatārastotra, Kālidāsa Sāhitya me Saṅgīta. ***Ps.*** 27. ***Add.*** Rashtriya Sanskrit Sansthan, 56-57, Inst. Area, D Block Janakpuri, New Delhi – 58. ***Spl.Ref.*** Editor of Sanskrit Varta, Kavi Bhaskari – 2009, Proceeding of several national / international seminars, Several Projects are completed in her Guidance. Coordinator of Yuvamahotsva, Kaumudi-mahotsva & All India Natyotsava.

Mukherjee, Sudeshna Bhattacharya. M.A. ***b.*** 21.01.1970, Dhubri, Assam. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Asst. Prof. Dept. of Sanskrit, Cotton College, Guwahati – 01, Assam. ***Ph.*** 621097.

Mukherjee, Tapati. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 15.09.1952, Calcutta. Asct. Prof., Silpur Dirolundha College. ***Bks.*** 03. Bāṅglāya Meghadūta Anuvāda, Saṃskṛta Anuvāda Nā-aka, Paraloka Rahasya (1997). ***Add.*** 65, Hindusthan park, Calcutta. – 700029. ***Ph.*** 033-4644415.

Mukhopaddhyay, Hemant Kumar. Vyākaraṇa Tīrtha. ***b.*** 21.10.1927, Ray Ramchandrapur, Burdwan, W.B. Principal. ***Gp.*** Ladilisaran Shastri. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Nigamanand Saraswat Math Rishi Vidhyalaya, Halisahar, 24 Parganas, W.B. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Mukhopadhaya, Satkari. Traditional and Modern (Cul. Univ. Cul. Government Sanskrit College). *b.* 04.01.1934. ***Gp.*** M.M. Seetaram-shastri, Pt. Harinandan Jha, Pt. Panchanan Shastri, N.S. Anantakrishna Shastri, Pt. Ahibhushan Bhattacharya, Pt. Anant Tarka-tirtha, Devprasad Chakravarti, Pt. Jagannatha Upadhyaya. ***Bks.*** 06. Anumānagadādhārī(Ed.), Tarkasaṅgraheḥ (with nine Commentaries), Dhammapada (Hindi Ṭīkā), Kurma Purāṇa (English Tr.), A critical Inventory of Ramayan studies in word, Jātakamālā. ***Spl.Ref.*** Baudha.

Mukhopadhyay, Bhaktisudha. Prof. Sanskrit Mahila Mahavidhyalaya. BHU. Varanasi. ***Bks.*** 01. Mūko Badhiraśca. ***Add.*** Sanskrit Mahila Mahavidhyalaya. B.H.U., Varanasi, U.P.

Mukhopadhyay, Devavrat. M.A., Kāvyatīrtha. *b.* 16.04.1951, Calcutta, W.B. Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Ravindra Deshbandhu Vidyalaya, Howrah, W.B. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Mukhopadhyay, Dipankar. M.A., B.Ed., M.Phil. *b.* 08.09.1963, Calcutta, W.B., Asst. Prof., Surendra Nath College, Calcutta. ***Ps.*** 02. ***Add.*** AB – 272, Salat Lake City, Sector – 1, Calcutta, W.B. – 700064. ***Ph.*** 3580227.

Mukhopadhyay, Dipankar. Mahacharya, Sāhitya, Vyākaraṇa Vidya Shastri, M.A., M.Phil., B.Ed., Ph.D. *b.* 08.09.1963. Kolkata. Asst. Prof. Deptt. of Skt. Calcutta Univ. *Add.* AB-272 Salt Lake City Sector -1 Kolkatta - 700064. Ph. 033-23580227. *Spl. Ref.* Kāvya & Vyākaraṇa , Transalted many poems of Bengauli into Skt. Language.

Mukhopadhyay, Gopendumohan. M.A. in Skt.& Eng., Ph.D., D.Litt.. *b.* 18.10.1947, Sarang, Bardwan, W.B. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Govindagopal Mukhopadhyay, Dr. Ramprasad Bhattacharya. *Ps.* 02. *Add.* Kamarpukut College, Hooghly – 712612. *Spl.Ref.* Sāhitya, Purāṇa, Jyotiṣa.

Mukhopadhyay, Govind Gopal. M.A., Sāṅkya Tīrtha, Ph.D. *b.* 23.05.1918. Nadia, WB. Rtd. HOD & Prof. Vardaman Univ. *Bks.* 10 Studies in the Upaniṣad, Traibhāṣika Śabdakośa, Mahān Prājñapuruṣa. *Spl.Ref.* Skt. Strotrapath from AIR visiting Prof. in Skt. Rabindra Bharati Univ. Member Santro Skt. Board, RSKS, New Delhi, President Awardee.

Mukhopadhyay, Gurushankar. M.A., Tīrtha in Kāvya & Vyākaraṇa. *b.* 25.09.1930. Vice–Principal, *Ps.* 01. *Add.* Ravindra Bharati Vishvavidyalaya, 56-A, Barrackpur, Trunk Road, Calcutta, W.B.. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mukhopadhyay, Kalipad. Tīrtha in Vyākaraṇa, Kāvya, Smṛti. *b. 1923.* Mauladanga, W.B. Principal. *Gp.* Ramadas Kāvyatirtha. *Ps.* 02. *Add.* Gattakpara, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mukhopadhyay, Kaliprasann. M.A., Tīrtha in Kāvya & Vyākaraṇa. *b.* 11.02.1941. Teacher, Senior Secondary School, Shamnath Marg, Delhi. *Ps.* 01. *Add.* G-34, Lakshminagar, Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Mukhopadhyay, Ramshankar. M.A., Ph.D.. *b.* 11.04.1944, Gopalbati, Hooghly, (W.B.). Asst. Prof. *Gp.* Gaurinath Shastri, Govindagopal Mukhopadhyaya. *Ps.* 02. *Add.* S.R.S. Mahavidyapith, Kamarpukur, Hooghly – 712612 (W.B.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mukhtar, Jugal Kishore. *b.* Saravasa, Saharanpur Bihar. *Bks.* 30. Yuga Bharatī (Kāvya Saṅgraham), Merī Bhāvanā (Kāvya), Yugavīra Nibandhāvalī (Part _ I,II), Jaina Sāhitya aura itihāsa Para viśada Prakāśa (Nibandha Saṅgraham), Jainādarśa (Jaina Guna Darpaṇa). *Spl.Ref.* He was the Editor of Jain Gajata, Anekanta Magazine. He was a Journelist & Honoured by Yugaveer.

Mulchand, Vatsal. Shastri. *b.* Bilai, Damoh M.P. *Bks.* 25.Vicāra Puṣpodyāna, Ādarśa Jaina Kumāra, Sadācāra Koṣa, Samādhi śataka, Aitihāsika Mahāpuruṣa. *Spl.Ref.* Freedom Fighter. Edited & Published 'Adarsh Jain' & 'Veer Patra' Paper.

Mulganwakar, Pandit Sadashiva Sitaram. *b.* 18.11.1886. Lashkar, Gwalior. Principal of Skt. College, Gwalior *Bks.* 07. Dharma-śāstrīyavyavasthā Saṅgrahaḥ, Vedānta-vijñānamataḥ, Dhanavantaristotrama, śrī-nārāyaṇastavaḥ, śrījīvajī Maṅgalam, śindevalascampū.

Mulukunte, Narayanbhatt Laxminara-simha bhatt. Vyākaraṇa vidvat, Alaṅkāra-vidvat. *b.* 10.11.1921, Mulakunte, Magadi, KT. Rtd. Teacher. *Gp.* Shrinivasachary, Chakavel Keshavshastri. *Ps.* 01. *Add.* Siddhaganga, Khyat Santara, Tumkur, KT – 572104. *Spl.Ref.* Alaṅkāra, Vyākaraṇa.

Muni, Jambu Vijay. B. 1923. Mandal, Gujrat. Bhikshu of Jain Shvetambar (Tapa - Gaccha) Sampraday. Bks. 38. Viyaha Pannati Suttama, Sthaṅga Sūtra, Anuyogadvāra Sūtra, Nandī Suttam, Dasakāliya Suttam.

Muni, Pranamya Sagar. (Br. Sarvesh Ji): B.Sc., Muni Diksha-1998. *b.* 13.09.1975. Bhoganva, Mainpuri, U.P. *Gp.* Acharya Shri Vidya Sagar Ji. Bks. 26. śryasa Patha (Kāvyasaṅgraha), Stuti Pā-ha (Kāvya-saṅgraha), Samādhi Tantra-Ārhata Bhāṣya (Sānuvāda), Caitanya Candrodaya – candrika Ṭīkā (Sānuvāda), Titthayara Bhāvaṇā (Prākṛta). *Add.* Acharya Shri Vidya Sagar Ji ka sangh. *Spl.Ref.* Many texts are translated from Sanskrit to Hindi, All works are published by Dharmodaya Sāhitya Prakashan, Khurai road, Sagar, M.P.

Muni, Virag Sagar. (Arvind): Shastri Muni Diksha-1983. ***b.*** 02.05.1963. Pathariya, Damoh, M.P. ***Gp.*** Jaganmohan Lal Shastri, Acharya Vatsalya Ratnakar, Acharya Vimal Sagar Ji. ***Bks.*** 105. Bārasa aṇupekkhā - Sarvodayī (Saṃskṛta Tīkā), Āgama cakkhū Sāhū (Prākṛta Kāvya), Śuddhopayoga, Samyagdarśana, Sarvodayī Digambara Jaina Dharma. ***Add.*** Acharya Shri Vidya Sagar Ji ka sangh. ***Spl.Ref.*** Many Bhashyas & Commentaries are Published on many Sanskrit & Prakrit texts.

Muni, Vishuddha Sagar. (Jain, Rajendra Kumar) Metric, Muni Dikha-21.11.1991. ***b.*** 18.22.1971. Rur, Bhind, M.P. ***Gp.*** Acharya Vidya Sagar Maharaj. ***Bks.*** 10. Śuddhātma-Taraṅgiṇī, Iṣ-opadeśa -Bhāṣya, Tattva-Deśanā, Ādhyātma-Deśanā, Ātma-Bodha.

Muni, Yogisha. Acharya in Darśana, M.A., M.Phil. ***b.*** 28.08.1956. Social worker. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Ahinsa Bhavan, Shankar Road, New Rajendra Nagar, New Delhi – 110060.

Munshi, Narayanan O.K. Vyākaraṇaśiromaṇi, Malayalamvidvan. ***b.*** 09.12.1923, Cherukunnu, Cannanore, Kerala. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** V.R. Shriniwas Tatacharya, A.K. Menon. ***Bks.*** 02. Bṛhaddhāturūpāvalī, Tāddhitakośaḥ. ***Add.*** Cherukunnu, Cannanore, Kerala. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Munshi, Tejniben Goutam Bhai. Ph.D. ***b.*** 28.08.1968. Prof. Smt. S.R. Mehta Arts College Ashram Road Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 19-20, Arpit Banglow, Near Heerarupa Hall, Satelite Anjali Road, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Muraleemadhavan, P. C. M.A., Ph.D. ***b.*** 25.05.1952. Prof. Rtd. Shree Shankaracharya Univ. of Skt., Kaladi, Ernakulam, Kerala. Chairman, CIF Shodh Sansthan, Secretary, Kerala Skt. Academy Trissur. ***Bks.*** 25. Bhaktitaraṅgiṇī, Cātakasaṁdesa, Kṛsnagīti of Mānaveda rāja (Skt.), Hṛdayatt utippukal (Ed.Malayalam Poem), Amaruśataka (Tr.) ***Ps.*** 175. ***Add.*** Reshmi Shri Krishna Nagar, Kothakulamgara, Angamaly P.O. Ernakulam Dist. Kerala. 683572. ***Ph.*** 09446577808. ***Email Id.*** muraleemadhavan@yahoo.com ***Spl.Ref.*** Scholar of Nyāya Philosophy. He is the Director of Planning and Development S.S. Uni. Kalady. He is Member in Various academic committees. He visited 15 foreign Uni. for many academic activities. He awarded by Aksaraslokatilaka, Mallinath Puruskar, Vijayashree Award, Shrisankarshana Samman etc.

Murali, P.N. M.A., B.Ed. ***b.*** 19.06.1922, Kayamkulam, Kerala. ***Bks.*** 02. Vīrākhaḍānam (Kāvya), śrī Nārāyaṇa Gītām (Kāvya). ***Add.*** Murali Bhavan, Cheravalli, P.O. Kayamkulam Kerala. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Muralidharan, T.D. M.A., B.L.I.S., Ph.D.. ***b.*** 14.07.1962, Nanguneri, Asst. Prof.. ***Bks.*** 03. The Life of Ramanuja, Divine wisdom of Dvavide Sains, Veṅka-eśvara Suprabhātam. ***Ps.*** 02. ***Add.*** MS/RB/II/10/11 First Floor, Central Railway Quarters, G.T.B. Nagar, Mumbai – 400 037. ***Ph.*** 022- 402 4806.

Muralidharan, V.R. M.A. M.Phil. Ph.D. ***b.*** 10.05.1963, Thrissur. Reader, Shri Shankaracharya Univ. of Sanskrit, Kalady, Kerala. ***Bks.*** 05. Facets of Indian Culture. ***Add.*** Pattath, Cheruvathery, P.O. Chovoor, Thrissur, Kerala – 680027.

Murari, Ramesh Chandra L. Ph.D. ***b.*** 10.05.1960. Prof. Shri Dwarikadheesh Sanskrit Academy Dwarka. ***Ps.*** 10. ***Add.*** B.Ed. Hostel, Near Bus Stand, Dwarka. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra, Purāṇa, Vedānta Śāstra.

Murari, Ramesh Chandra. M.A., Ph.D., Acharya. ***b.*** 10.05.1960, Motyouraj. ***Gp.*** Kailasapati Tripathi, Vayunandan Pandey. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Dwarkadhish Sanskrit Academy & Indological Research Institute, Dwaraka – 361335 (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Murthi, M. Srimannarayana. M.A., Ph.D., Senior Diploma in German. ***b.*** 19.06.1941. ***Bks.*** 03. Vedāntasāracintāmaṇi of Sītārāma-śāstrī, Vallabhadeva's Commentary on Kumārasaṃbhava, ***Ps.*** 52. ***Add.*** 18-3-24, Shanti Nagar, Khadi Colony, K.T. Road, Tirupati - 517507. ***Ph.*** 0877 - 2230139. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Murthy, C.S.S.N. M.A., Ph.D.. *b.* 10.06.1959, Kadali, A.P. Asst. Prof., R.Sk.S., Shringeri. *Bks.* 01. Padacaturvidyā Vicāra. *Add.* C/o Rama Chandra Pandit Cloth Stores, Bharathi Street, Shringeri – 577139.

Murthy, D.V.S.R. M.A., Ph.D. *b.* 20.01.1954, Rajahmundry, A.P. *Ps.* 02. *Add.* Asct. Prof. in Sanskrit, A.S.P.O. College, Tilak Road, Hyderabad, A.P. *Ph.* 4753724.

Murthy, Kuppa Venkata Krishna. M.A., Maths, Skt. & Telugu Literature & Vedānta. *b.* 12.09.1949. Machilipatnam AP. Chairman I-SERVE *Gp.* Sri Kuppa Lakshmavadhani Sri KV Bhadrashastri, Sri KS Anjaneya Sastry, Janardanananda Saraswati Swami. *Bks.* 17. Kirī-a Maṇimālikā, Rudraprapañcastavaḥ, Yogvaśhiṣ-ha Hṛdayam, Modern Science in the Ancient Land, Yogatārāvalī (Telugu & English). *Ps.* 50. *Add.* 11-13-279, Road No. 8, Alakapuri Hyderabad - 500035 Ph. 024035013. M. 09866330060 vedakavi@serveveda.org, www.serveveda.org *Spl. Ref.* Honured by many Awards including Ugadi Puraskar, Dharma Nidhi Puraskar etc. Spiritual Discourses in Gemini TV ETV 2 DD8 (Saptagiri), ETV and Bhakti TV, Special discourses to teach the secrets of Purāṇaas and Vedānta śāstra in an easy way.

Murty, K. Samba Siva Vidyapraveen, Siksha Shastri, M.A. (Sans.,Telugu), P.G. Dip. in Hindi, Vidyavaridhi. *b.*03.10.1963. Dean& Head Faculty of Edu., Rajsthan Skt. Univ. *Gp* .Prof. V. Kutumba Shastry, Prof. K.V.Ramkrishnamacharya, Prof.H.K. Satapathi, Prof. K.R. Suryanarayana. *Sp.* Dr. Mahesh Parikha, Dr. Gyatri Bairakh, Dr. Sushant, Dr. Shakuntala. *Bks* .09 Sāṅkhyakārikā - Ekaḥ Praveśaḥ, Prāyogikamanovijñānam *Ps.* 80 *Add.* Dept.of Edu., JRR Skt. Univ. Jaipur - 302026. *Ph* 01415132025. M.09928525565. sandilyasiksha@yahoo.com *Spl. Ref.* Philosophy, Vaidiksrimoni Award, Skt. Seva Puraskar, Best Teacher Award.

Murty, K.V.R. M.A., Shiksashastri. *b.* 27.09.1949, Hindupuram, Anantpur, A.P. Sanskrit Teacher. *Ps.* 02. *Add.* N.S.R.P.P. Oriental High School, Lepakshi, A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Murty, Krishna G.S.R. Sāhitya Vidhya Praveena, M.A., Ph.D. *b.* 01.11.1958, Kottapadu, Tragauarm Mandlam. Asst. Prof., R.Sk.S. Tirupati. *Bks.* 06. Navarūpakam, Vanakī, Laghu Dhvanyāloka, Prāyogikam Vyākaraṇam, Śaṅkara Sudhā. *Ps.* 30. *Add.* 304, III Floor, Adiseshu Residency, Shri Ram Nagar, Akkarampali Road, Tirupati – 5170507, *Mob.* 09441408796.

Murty, Narasimha H.V. M.A. in Sanskrit, Rashtrabhasha Visharad, Hindiratna. *b.* 14.03.1946, Hegoda, Dist. Chikkamagalur, KT. Asct. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Sanskrit Department, Bhandarkars Mahavidyalaya, Kundapur, KT – 576201. *Spl.Ref.* Vaidika Sāhitya, AlaṅkāraaŚāstra.

Murty, Radhakrishna Cala. M.A.. *b.* 28.06.1926, Bimpapur, Godavari. *Gp.* Akela Venkatashastri. *Ps.* 02. *Add.* Dhanavai Peta, Rajamahendry–03 (A.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Murty, Rani Sadashiv. M.A., Skt. English Darśana Vedānta Vidya Praveen PG Dipl. in German, Ph.D. *b.* 30.11.1958. Yenugula Mahal, East Godavari, (A.P.). Asct. Prof., Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupathi. *Gp.* Shri Badhanand Bharati Mahaswami, Shri Paripurna Prakashanand Bharti Mahaswami, Shri Rani Shrinivas Shastri, Brahmashri Appalla Someshwar Sharma. *Bks.* 20. Vedic Prosody: Its Nature, Origin and Development, Dhvanyāloka Karikārtha Darśini, Dhvanyāloka Paribhāṣikā Padakośa, Vivikta Puṣpakarandaḥ (An Anthology of Free Verse Poetry in Sanskrit), A Manual of Gemology. *Ps.* 50. *Add.* 'Sumeru', Door No. 2-204, Plot No.-17, TTD Phase II Plots, MR Palli, Tirupati – 517502, (A.P.) *Ph.* 0877-2244354. *Mob.* 9440246354. *Spl.Ref.* Alaṅkāraa śāstra, Western Aesthetics, Vedic Prosody, Sanskrit–Science, Ancient India Morology, Tantras.

Murty, Shastri, M.G.K. Pravina in Vyākaraṇa vidya & Bhasha, M.A. in Telugu. *b.* 14.01.1928, Nangevadu, Divi Taluka, A.P. Vyākaraṇa

Teacher. *Ps.* 02. *Add.* 23-32, 31/C, Paparajuvarivithi, Satyanarayana-puram, Vijayawada, A.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa , Sāhitya.

Murty, Varaprasad P. M.A., Ph.D. *b.* 19.04.1963. Peruru. Dist. East Godavari, A.P.. Asct. Prof., Nagarjun University, Guntur, A.P.. *Bks.* 01. Surabhī (2000). *Ps.* 01. *Add.* Nagarjuna University, Nagarjunanagar, Dist. Guntur, A.P. *Ph.* (0863) 351300. *Spl.Ref.* Alaṅkāra-Śāstra.

Musalgaonkar, Keshav Rao. M.A., D.Phil. *b.* 30.01.1928, Gwalior. *Bks.* 08. Saṃskṛta Mahākāvya kī Paramparā, Ādhunika Saṃskṛta Kāvya, Kālidāsa Mīmāṃsā, Daśarūpakam, Harṣa Caritam. *Add.* 3, Deepti Vihar, Nana Kheda, Indore Road, Ujjain–10. *Spl.Ref.* President Awardee.

Musalgaonkar, Rajeshwar Shastri. M.A., Ph.D. *b.* 03.03.1964, Gwalior. Asst. Prof., S. S., Vikram University, Ujjain. *Bks.* 09. Vaidika Sāhitya kā Itihāsa, Arthasaṅgrahaḥ, Ratnāvalinā-ikā, Nītiśatakam, Dhāturūpakaumudī (all ed.). *Add.* 03, Deepti Vihar, Nana Kheda, Indore Road, Ujjain - 456010.

Muttukrishan, Krishnayyar Ghanapathi. *b.* 12.12.1954, Cholavandan, Madurai, Tamil Nadu. Vedic Exponent. *Gp.* Ram Svami Sharma. *Add.* Padamavati Devasthana, Tiruchanuru, A.P. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Mutturi, Suguna. Sāhityaśiromaṇi, Shiksashastri. *b.* 08.08.1960, Cholasa-mudram, Anantpur, A.P. Sanskrit Teacher. *Gp.* Vedgiri, K. Nageshwar Shastri. *Ps.* 01. *Add.* Shri Saraswati Vidyamandir, Hindupur, Anantpur, A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Mutturu, Vijaya Lakshmi. Sāhityaśiromaṇi, Shiksashastri. *b.* 05.02.1958, Cholasa-mudram, Anantpuram, A.P. P.G.T. *Gp.* Vedgiri, K. Nageshavar Shastri. *Ps.* 01. *Add.* S.W. Residential School, Muluguru, Hindupur, A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Muttuvedachalam, Vishvanathan. *b.* 1938, Achcharpakkam, Chengalpet, T.N. *Gp* R. Krishnasvami Ayyangar. *Add.* Shri Kapileshwarswami Devasthanam, Tirupati, A.P. *Spl.Ref.* Kṛṣṇa-yajurveda.

N

Natyacharya, Dr. Prabhunarayan. M.A. (Hindi/ Pol. Science) Ph.D. *b.* 1899. Asst. Prof. Skt. College, Jaipur. *Bks.* 45. *Expired in* 1997. *Spl.Ref.* Established 'Rashtra-bhasha College which is known by Sanatan Dharm Hindi Vidyapeetha at chhoti chaupar. Jaipur. Awards– Sāhitya M.M. Sāhitya Vachaspati by indraprashtha Vidyapeetha, Awarded by Rajasthan Sāhitya Academy, Awarded by Sangeet Natak Academy.

Nadadura, Sathagopan. Sāhitya vidyapravina. *b.* 25.04.1928, Kokalunda, Orissa. Rtd. Teacher. *Gp.* Gajulapalli Hanumatshastri, Udali Subbaraya Shastri. *Bks.* 01. Suravāṇī Maṇihāra *Add.* Shri Sukabrahmashrma, Shri Kalahasti–517640 (AP). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nadan, Krishnalal. M.A., Ph.D. *b.* 20.11.1933, Andaman Nagar, Andaman-Nikobar. Asst. Prof., Delhi University. *Gp.* Dr. Ramgopal, Dr. Satyavrat Shastri, Dr. Mahendra Kumara Sarkar. *Bks.* 04. Śiñjārava (Kavyasangraha), Anantamārga (Laghukathāsaṅgraha), Ūrvīsvana, Camatkāra. *Add.* Vishwanida, E-937, Sarswati Vihar, New Delhi – 110034, *Spl.Ref.* Vaidika Vāṅmaya.

Nadhediya, Narayan Sinha. M.A., Sāhityaratna, Acharya in Sāhitya. *b.* 23.07.1936. Hindi Officer, Company Law Board, North Zone, New Delhi. *Ps.* 01. *Add.* 302, Sector – III, Sadik Nagar, New Delhi – 110049. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nagar, Ravi Shankar. M.A., Ph.D. *b.* 30.12.1927, Jammu, (J & K). Rtd. Asct. Prof., Deptt. of Sanskrit, Univ. of Delhi. *Gp* Narendranath Chaudhuri, Surendranath Shastri. *Bks.* 02. Śrī Vyañjanāvimarśaḥ. *Add.* R-33, Model Town,

Delhi – 110009. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. ***Awards.*** U.P. Sanskrit Academy Award.

Nagar, Ravindra. Acharya (Veda, Sāhitya), M.A., Ph.D.. ***b.*** 05.12.1941, Mathura, (U.P.). Asst. Prof., Lal Bahadur Shastri, Kendriya Vidyapith, New Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** J-40, Rajori Garden, New Delhi – 110027. ***Spl.Ref.*** Paurohitya.

Nagar, Urmila. M.A., B.Ed., Visharad. ***b.*** 01.01.1936. Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** N.P. Senior Secondary School, Gol Market, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Nagaraju, D.S. Sāhitya Śiromaṇi, Shiksashastri. ***b.*** 09.04.1961, Lepakshi, AP. T.G.T. ***Gp.*** Chandrashekhar Pandey, Arlikatti, Nagmuni Reddy. ***Ps.*** 01. ***Add.*** (A.P.S.W.) Residential School, Kala Samudram, Anantapur (AP). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Nagarjun, Vaijnath. ***b.*** 1911. ***Bks.***04. Lenina Śatakam. Bhārata Bhavanam. Haimi Pārvatī. Chinnāsmṛtī.

Nagasampagi, Anandatirtha. Vidvat. ***Age.*** 30 yrs. in 1988, Bagalkot, KT. ***Bks.*** Tattvodyota, Yatipraṇavakalpa, Ātharvaṇ-opaniṣadbhāṣyaṃ, ***Add.*** Mysore Prachyavidya Samshodhanalaya, Mysore Univ., Mysore (KT). ***Spl.Ref.*** Nā-ya, Vedānta.

Nagasampasi, A.V. DvaitaVedānta, Prācīnanyāya, Vedānta ***b.*** 02.12.1958, Bagalkote, Bijapur, KT. ***Gp.*** Vishvesatirtha Swami; K.T. Pandurangi. ***Add.*** Research Assistant, Purnaprajna Vidyapeetha, Bangalore– 560028 (KT).

Nagasatyawati, V. Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 10.07.1958, Prodduturu, Cuddappa, AP. ***Add.*** 4/188, D.B. Street, Penukonda, Anantapur (AP). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Nagraj, Sompur Tippabhatt. Vidvat, Vyākaraṇa. ***b.*** 21.06.1952, Somapura, Cikamagalur, KT. ***Add.*** 'Aksharam' 73/2, Rangaravpet, Samerapuram, Bangalore KT. ***Spl.Ref.*** Ṛgveda, Yajurveda, Vyākaraṇa Śāstra.

Nagrajan, K. S. B.Sc. Sāhitya Alaṅkāra, Kavi Bhushan, Ph.D. Lekha Adhikari, Bangalore. ***Bks.*** 02. Bhāratavaibhavam.

Naiyar, Ratnam G. M.A., Ph.D.. Asst. Prof. ***Ps.***01. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Lady Shri Ram College for women, Lajpat Nagar, New Delhi–110024. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Nalini, N. M. Acharya in NavyaVyākaraṇa. ***b.*** Mannantala, Trissur, Kerala, Research Scholar. ***Ps.***01. ***Add.*** Mandakattinkal House, Vettukad, Chundal, Trissur (Kerala). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Siksasastra.

Namavala, Pt. Nand Kishore Sharma. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 1904. Asst. Prof. & HOD. Hindu Univ. Kashi. ***Bks.*** 06. Prāyaścitasāraḥ, Harṣacarita, Candrāloka, Ānandākanda Campū, Nalacampū. ***Spl.Ref.*** An expert Researcher of Brahmi script.

Namavala, Pt. Nand Kumar. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 1901. Jaipur. Asst. Prof. Maharaja Skt. College. Jaipur. ***Spl.Ref.*** Recepent of Sahityabhushan Award.

Nambisan, Narayanan. P. Vidvat (Skt. & Malayalam), L.T.T.C. ***b.*** 15.04.1921, Villayur, Palakkad, Kerala. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Nilakantha Sharma, K.P. Narayanaprasad. ***Bks.*** Laghumañjarī, Prahlādacaritam. ***Add.*** Palanchattanur, Palakkad – 678575 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Malayalam.

Nambisan, Nilakanthan. Sāhityaśiromaṇi, Sāhityalāṅkāra, Vidvān. ***b.*** 07.01.1912, Nelluvaya, Kerala. ***Gp.*** P.V. Ramayyar, P. Nilakantha Sharma. ***Bks.*** 03. Pavanasmṛtī, Ādhunika Bhārate Gāndhi darśanasya prasaktiḥ, Vijayasopānam. ***Add.*** Nelluvaya, Erumapetti, Trissur (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Namboodiri, P. Narayanan. M.A. Ph.D. ***b.*** 01.12.1955, Ugrapuram. Prof. Univ. of Calicut. ***Gp.*** Prof. P.C. Vasudevan Elayath, Prof. D. Damodara Pisaroti, Prof. V. Venkataraja Sharma, Prof. M. Govindan Nambian. ***Sp.*** Dr. S. Sharikumari, Dr. V.R. Muralidharan, Dr. N.K. Sundar, ***Bks.*** 01. Śāka-āyanīya Prakriyā. ***Ps.*** 30. ***Add.*** Chaithram Pudukkudi Road. Manjeri. P.O. Malappuram–676121.***Mob.*** 09447537098.

Nambutiri, Aryan. Paramparikopadhi. ***b.*** 04.10.

1919. Malappuram, Kerala. *Gp.* Raman Nambutiri. *Add.* Pidavannur, P.O. Mukkutala, Malappuram (Kerala) *Spl.Ref.* Veda.

Nambutiri, Isvaran. Mahopadhyaya, M.A., Ph.D.. *b.* 02.08.1930, Vill. Kottarakkara, Quilon Dist. Kerala. H.o.D of Skt. Dept. *Gp.* S.Venkata Subrahmanya Ayyar. *Bks.* Sanskrita Literature of Kerala, Pramāṇalakṣaṇa, Bodhānandagītā. *Add.* Vedānta Śāstradhayayana Centre, Karyavattam, Tiruvananthapuram (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vedānta.

Nambutiri, Vasudevan P.T.M. *b.* age. 69 yrs, Kodungalur, Trissur, Kerala. Rtd. Asst. Prof. *Gp* Mathita Kunchu Namputiri. *Ps.* 01. *Add.* Kodnugallur, Trissur Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nambutiripada, Antalatimana Divakaran. Katannirikal (M.A., Vaidikopadhi), *b.* 10.03.1909. Antalatimana, Odallur, Palakkad, Kerala. *Gp.* Antalati Kiratamurti Nambutiri (Veda), Kochchi Pariksit Maharaja (Tantra). *Add.* Marutur, Via Melepattambi – 677366 (Kerala). *Spl.Ref.* Ṛgveda & Tantra Śāstram.

Namputiri, Krishnan K. M.A.. *b.* 05.05.1952, Karassheri, Kozhikode, Kerala. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* R.Sk.S. Guruvayur Campus Puranaattukara, Trissur – 680551 (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Namputiri, Narayan. Veda Bhushan. *b.* 08.09.1916, Edappal, Malappuram, Kerala. Asst.Prof. *Gp.* Narayan Bharati, Haridattan Namputiri. *Add.* Pantavur Mana, Mukkutala, Malappuram (Kerala). *Spl.Ref.* Veda.

Namputiri, Narayanan T. Traditional Degree. *b.* 17.03.1925, Trissur, Kerala. Veda Parayanam (Vedic Exponent). *Add.* Tottattil Mana, Panchal, Cheruturutti, Via – Trissur (Kerala). *Spl.Ref.* Veda.

Namputiri, Nilakanthan V.K.V. Bhishagvara. *b.* 1937, Cheruventeri, Thirushivapuram, Kerala. Vishacikitsaka (Ayurvedic Physician). *Gp.* Virupaksan Namputiri, Asaru Madhavan Atitiri. *Add.* Visha Chikitsalaya, Kizhakketathumana, Chetikkatar, Trissur (Kerala). *Spl.Ref.* Veda & āyurveda.

Namputiri, Nilakanthan V.N. Acharya in Sāhitya & Jyotiṣa. *b.* 01.10.1913, Mewata, Kottayam, Kerala. Principal, Sri Ramakrishna Adarsh Skt. Kalalaya, Arunapaur. *Ps.* 02. *Add.* Vadakkematham, Mewata, Kottayam – 686620 (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya & Jyotiṣa.

Namputiri, S. Vidvat. *b.* 29.11.1921, Ernakulam, Kerala. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* K. Sivanath, K. Krishna Menon. *Ps.* 02. *Add.* Perumpallur, Muvattupuzha – 686661 (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Namputiri, Subrahmanyan P. *b.* 23.10.1922, Mukkunthala, Malapuram, Kerala. Rtd. Principal. *Gp.* Parmeshweran Namputiri, Pt. Hariharan. *Ps.* 02. *Add.* Pantavuraman Mukkunthala, Malapuram Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Namputiri, Tamaranllur Purushottaman. Valiyakatannirikkal (Equ. To Ph.D.). *b.* 23.03.1921, Ozhur, Kerala. *Add.* Chasur Kovilkam, P.O. Chasur, Trissur – 680571 (Kerala). *Spl.Ref.* Ṛgveda.

Namputiri, Tottattil Narayanan. *b.* 20.12.1928, Kerala. Samaveda Pandita. *Add.* Tottathilamana, Panjal – 679531 (Kerala). *Spl.Ref.* Sāmaveda.

Namputiri, Tottattilmana Subrahmanya. *b.* 06.07.1908, Panjala, Kerala. *Add.* Vill. Tottattilmana, P.O. Panjal – 679531 (Kerala). *Spl.Ref.* Sāmaveda.

Namputiri, Vasudevan K.G. Acharya in Sāhitya, L.T.T. *b.* 13.07.1921, Muttam, Kerala. Acharya, Sanskrit Vidhyapeeth, Arunapuram. *Gp* N.V. Krishnavariyar, E.R. Shrikrishna Sharma. *Ps.* 02. *Add.* Shri Sailam, Edanadu Pala, Kottayam Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Namputiri, Vatakettu Narayanan. Katannirikkal, Nyaybhushan. *b.* 1918, Porkulam, Kerala. *Gp* K.Acyuta Potuval, K. Variyar. *Add.* Vatakketattumana, Porkulam Kerala. *Spl.Ref.* Ṛgveda, Nyāya Śāstra.

Namputiripad, Raman U.M. Traditional. *b.* 22.01.1919, Malappuram, Kerala. *Add.* Pudianur Mana, Edapal, Malappuram (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Namputiripada, Udiyannur Mana Astamurti. Katannirikkal (Equivalent M.A.). *b.* 20.10.1922, Udinikkara, Edapal Dist., Kerala. *Gp.* Udiyannur Aryan, E. Subrahmanyan Namputiri, M. Acyutan Namputiripada. *Add.* Udiyannurmana, Edapal (Kerala). *Spl.Ref.* Ṛgveda.

Namputiripada, Udiyannur Manakkal Raman. Katannirikkal (equ. To M.A.). *b.* 21.01.1919, Udiyannur, Edapal Kerala. *Gp.* K. Nilakanth Namputiri, N. Acyutan Namputiri. *Add.* Udiynnur Mana, P.O. Edapal (Kerala). *Spl.Ref.* Ṛgveda.

Nanawati, Rajendra Ishwar Lal . Ph.D. *b.* 04.05.1939. Prof. HOD Oriental Institute Kirti Stambha Near Palace Gate Varodara. *Bks.* 02 Secondary Tales of the Great Epics, Rītivicāraḥ.. Marīcikā *Ps.* 02. *Add.* B-103, Rajlaxmi Society Juna Padra Road, Rescourse, Varodara. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Nanda Sharma, Bhagirathi. Acharya in Sāhitya, Dharmaśāstra & Āyurveda. *b.*08.06.1935. Barabhag Sashan. Principal, Damodar Sanskrit College, Bhadrak. *Bks.* 15. Vyāsadūtam(I-II), Bhārata-Matṛ-Stotram, Śakuntalā-Viraha-Dīpaka-Kāvyam, Trimūrti-Stotram. *Add.* Elkha, Bhadrak, Orissa. *Spl.Ref.* President Certificate of Honour-2005, Rashtiya Anubrata Award, New Delhi-1999, BBSR Award, Sāhitya Academy-1999, Bhadrak Sāhitya Sansad Award-1990. Founder Nikhil Utakal Skt. Mahamandal.

Nanda, Baikunth Bihari. Acharya. *b.* 27.11.1929, Mahilo, Cuttuck, Orissa. Rtd. Prof. Sadasiv Kendriya Vidyapeetham, Puri. *Gp.* Narayan Mahapatra, SuDarśana Pathi. *Bks.* Śaraṇāgatistotram, Kīcakavadham. *Add.* Shri Sadashiv Kendriya Sanskrit Vidhyapith, Puri, Orissa. *Spl.Ref.* Sāhitya, Mīmāṃsā, Viśiṣ-ādvaita Vedānta.

Nanda, Bhagirathi. Acharya(Sāhitya), Siksha Shastri, Ph.D. *b.*13.04.1966. Prof. Dept.of Sāhitya, LBS Rashtriya Skt.Vidyapeeth, New Delhi. *Bks.*06. *Ps.*55. *Add.* Dept. of Sāhitya, LBS Rashtriya Skt.Vidyapeeth, New Delhi-110016 *Ph.*011-26642588, *M.*09911333950. *Mail.*ibnanda2@gmail.com *Spl.Ref.* Sāhitya, Poetics. 'Devavani Bhushana-2011' samman from Devavani Parishad, New Delhi.

Nanda, Paresh Kumar. Kāvya & Vyākaraṇa. *b.* 15.09.1934, Barada (Midnapur). Pradhan Adhyapaka & Secretary. *Ps.* 02. *Add.* Vill. Barada Mirjapur Milani Chatuspathi, P.O. Baradabazar, Dist. Midnapur. (W.B.). *Ph.* (03220) 63331.

Nandaniya, Arvind. M.A., Ph.D. *b.*04.01.1970. Asct. Prof., Mahila Arts & Com. College, Veraval. *Ps.*11. *Add* Mahila Arts & Com. College, Veraval, Junagarh - 362266 Guj. *M.*09426440254.

Nandi, Nanda Dulal. B.A., B.Sc., Engg. Dr. Sc. Techn. Eth. *b.* 01.08.1937, Calcutta. *Bks.* 01. Adaptive Design of Electrical Networks Using Mathematical Optimization – 52. (1971). *Ps.* 03. *Add.* Feldstrasse 5442. Fislisbach. Switjerland. *Ph.* 0041-56-4932212.

Nandi, T.S.. M.A., Ph.D.. *b.* 22.09.1933, Khera, GJ. Asst. Prof. *Bks.* 01. The Origin and Development of Theory of Rasa and Dhvani. *Add.* School of Languages, GJ University, Ahmedabad – 09 (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nandini Ramani. Managing Trustee, Dr. V. Raghavana Centre for Performing Art. *b.*18.11.1950, Chennai. Dancer *Gp.*T. Balasaraswati. *Ps.*05. *Add.* No.1, 3rd Street, Bhaktavatsalam Nager, Adyar, Chennai-600020 Ph. 044-24430344, M. 09841430344. Email. nandinirvr@yahoo.com *Spl.Ref.* Upkeeping Sanskrit dramatic tradition, in 1975 she was one of the Earliest Announcer, Composer, Presenter, Scriptwriter covering the variety of programmes on Sanskrit, Music, Dance rare art forms etc. She has given talks on the topic s related to dance, Aesthetics & Production of Sanskrit play. Honoured by several awards including Bharat Kalachar, Kritk fine arts etc. for the contribution in the field of Sanskrit, music, dance, drama.

Nandkishore. Acharya, M.Ed. *b.*19.12.1973 Ajmer. PGT Sanskrit, Gurukul Kurukshetra. *Add.*.Gurukal Kurukshetra, Kurukshetra-

136119 Haryana. *Ph.*-01466-273533, *M.*09466436220. *Mail.* nandkishore_kkr@yahoo.com

Nandsharma, Gopinath. Traditional Education in Skt., Pali & Prakrit. *b.* 21.08.1869. Paralakhemundi, Ganjam, Orissa. Paralamahavidyalaya, Paralakhe-mundi, Ganjam, Orissa. *Bks.* 10. Śrī Bhāratadarpaṇaḥ. Rāmāyaṇasamālocanā. Pīyūṣadhārā. *Ps.* 10. *Expired on* 14.01.1924. *Spl.Ref.* Contributed to Both Skt. & Odiya Literature.

Nanduri, Venkat Narasimhachary. Acharya in Vyākaraṇ. *b.* 19.06.1918, Simhachalam, AP. *Gp.* Kati Venkata Ramanujacharya. *Add.* Simhachalam, Vishakhapattanam (AP). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Naraharibhai, Ajay kumara. Acharya, Siksasastri. *b.* 12.11.1962. Vasja, Ahmedabad, GJ. Asst. Teacher. *Gp.* Ramadasa Kaundinya. *Ps.* 02. *Add.* Sri Varatantu Samskrta Mahavidyalaya, Bhagvat Vidyapeetham, Sola, Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Dharmaśāstra.

Narang, Manju. M.A. D.Litt. *b.* 08.04.1949, Allahabad. Asct. Prof. & Head. Skt. Department Deharadun. *Bks.* 01. Bhāsa Aura Kālīdāsa Ke Nā-akon kī Kathāon ke Srotaon kā Vivecanātmaka Adhyayana. *Add.* B – 3. Street No. – 3. Shastri Nagar. Haridwar Road. Dehradun.

Narang, S. K. M.A., Ph.D. Asst. Prof., Skt. Department.. *Add.* Miranda House, Delhi University, Patel Chest Marg, New Delhi – 110007. *Spl.Ref.* Veda, Silalekha, Dharma-śāstra, Indian Philosophy.

Narang, Satya Pal. M.A. Ph.D. L.L.B. *b.* 18.01.1942, Nankana Sahib. Prof. at Delhi Uni. *Bks.* 19. Saṃskṛta Kośaśāstra ke Vividha Āyāma. *Ps.* 125. *Add.* 31. Vidya Apartments. Opp. Jwala Puri – 05. Rohtak Road. Delhi – 87. *Ph.* 5259991. *Spl.Ref.* Pada index of Classical Skt. Poems. President Awardee.

Naranga, Bhimasena. M.A., M.Ed., Ph.D. *b.* 20.11.1942. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Roopnagar, Delhi. *Ps.* 01. *Add.* 672, Gopal Nagar, Sonipat – 131001 (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Narasimha, Sharma, (Sringagiri Kavi). Vedāntaśiromaṇi, Asthana Vidvan. *b.* 23.08.1904, Nanjangudu, KT. Rtd. Special Assistant, Food Department, Govt. of KT. *Gp.* Syam Bhatt, Syamabhasuri Swami, Venkatesh Shastri. *Add.* 492, 33-A Cross, 4-Block, Jayanagar, Bangalore – 560011 (KT). *Spl.Ref.* Advaita Vedānta & Veda.

Narasimhacarya, N.C.V. Vidvat, M.A., B.O.L.. *b.* 07.08.1923, *Add.* 42, R.N. Mada Street, Tirupati – 1 (AP). *Spl.Ref.* Nā-ya, Vedānta, Alaṅkāra. Edited many part of Bhagavatam as director under Bhagavata project run by T.T.Devasthanams,Tirupati.

Narasimhacarya, N.V. śiromaṇi. *b.* 19.03. 1919, Tirukkandalam, TN. Principal. *Bks.* 01. Navīna Nyāya-prasthāna Vimarśaḥ. *Add.* Brahmavidya Bathasala, Sri Vyasashram, Yerpedu, Chittoor – 517621 (AP). *Spl.Ref.* Navya Nā-ya.

Narasimhachar, Jaggu. Tradition in Veda, Viśiṣ-ādvaita Vedānta, Draviḍa Veda Vedānta. *b.* 30.06.1925. Melkota KT. Varisht Pt. Veda Vedānta Bodhini Skt. Mahapthshala, Melkota. *Bks.* 01. Kaivalyaśatadūṣaṇī. *Spl.Ref.* Title of Vedic Bhushan Skt. Pt., At present he is contributing in the field of Vedas, Dharma-śāstra and Purāṇaas by giving Lectures, President Awardee.

Narasimhacharya, Mudumby. Nayāya, Mīmāṃsā, Vyākaraṇa, Vedānta, Alamkara Śāstra. *b.*06.04.1939 Arthamur, AP. Member of Editorial Board of New Catalogous Catalogorum, Dept.of Skt., Univ.of Madras. *Spl.Ref.* Indian Philosophy, Vyākaraṇa, Kāvyaśāstra, Honoured by the Titles of Ashukavi, Sahityavisharad, śāstrakaviraj etc. President Awardee.

Narasimhacharya, P. K. Vedāntaśiromaṇi. *b.* 15.03.1935, Padur, Madhurantakam, TN. Teacher. *Gp.* Padur Gopalacharya, Tirukkalu Krishnamacharya, P.N. Raghavacharya, Palavari Varadacharya. *Add.* 40, Shri Ranga-

satagopura, G.S.T. Marg, Madhurantakam–603306 (TN). *Spl.Ref.* Vedānta, Kṛṣṇayajurveda.

Narasimhacharya, S. V. M.A., Ph.D.. *b.* 23.04.1923, Swarganathapur, Tanjavur, TN. *Gp.* V.R.S. Tatacharya. *Add.* 2, Deshikar Vithi, Dashavatara Nagar, Srirangam, Tiruchi – 620007 (TN). *Spl.Ref.* Vedānta.

Narasimhacharya, Shrinivasvaradacharya Melapakkam. śiromaṇi. *b.* 16.12.1916, Melpakkam, TN. *Bks.* 01. Vyākaraṇaprakriyā-kośaḥ. *Add.* 4, Car Street, Madhurantakam–06, Chengalpattu (TN). *Spl.Ref.* Veda, Vedānta & Dharma-Śāstra.

Narasimhamurti, N.G. Jyotiṣa Vidvaduttama in Rashtra Bhasha Visharad. *b.* 13.10.1950, Chikkamagalur, KT. Principal. *Gp.* K. Manjunath Sharma, Bharatitirth Sannidhanam. *Ps.* 02. *Add.* Shri Shadvidya Sanjivani Skt. Mahapathasala, Sringeri Math, Sringeri–39 (KT). *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Sāhitya.

Narasimhamurtyacarya, H.S. *b.* 22.08.1922, Pawgad, Tumkur, KT. *Gp.* Rayachuru Krishnachary, Dasasahu. *Ps.* 02. *Add.* 83, Parimal Shakambari Nagar, Kanakapur, Bangalore (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vedānta.

Narasimhan, P.K. Vyākaraṇaśiromaṇi. M.A. *b.* 06.01.1944, Padur, Madhuran-takam, TN. *Gp.* P.N. Raghavacharya, M.S. Narasimha-charya, S. Gopalacharya. *Ps.* 01. *Add.* 36, Santan Bajanana, Koil Street, Villuppuram–605602 (TN). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Narattumana, Narayan Namputiri. Katannirikal (M.A.). *b.* 12.11.1932, Etappal, Trichur, Kerala. *Gp.* Kuttuli Narayan Namputiri, Narattu Vasudevan Somyaji. *Add.* Pullimana, Perikkot, Palakad (Kerala) *Spl.Ref.* Ṛgveda, Vyākaraṇa.

Narayan, Acharya A. Vedāntaśiromaṇi, Vyākaraṇa, Kannada Vidvan. *b.* 14.04.1914, Adamar, South Kannad, Karnatak. Rtd. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* 44, 19th Cross, Block–16, Jayanagar, Bangalore (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Narayan, Jay Prakash. Siksha Shastri, M.A., M.Phil., Ph.D. *b.*07.05.1965. Sr.Asst. Prof., RSKS New Delhi. *Gp.* Dr.Ganga Nath Jha, Dr. Srutidhar Jha, Prof. Deepti Tripathi. *Bks.*03 Māgha me Vakrokti, Nā-yaśāstra me Kāvya-lakṣaṇa, Śisupālavadham kī Śastrīya Mīmāṃsā. *Ps.*24. *Add.* RSKS, 56-57 Institutional Area, D-Block Janakpuri New Delhi-58. M.*09717658497. Mail.* n.jayprakash @yahoo.com. *Spl.Ref.* Sāhitya, Poet (Hindi, English).

Narayan, K. S. Śiromaṇi. *b.* 05.05.1953, Rajapuram, Rajpalayam, TN. *Gp.* V.D. Samapatkumar Varadachari, V.T. Laxmi-narasimhacharya. *Ps.* 02. *Add.* 235, Chinnakodi Street, Salem (TN). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Narayan, Venkatsatyanarayancharyalu. *b.* 20.09.1952, Prakashan, AP. Archaka (Priest). *Gp.* N. Srinivasacharyulu, N.A. Kesavacharyulu. *Add.* Shri Kalyan Venkateshwar Swami Devasthan, Srinivasamangapuram, 114, G.S. Muth Street, Tirupati–517501 (AP). *Spl.Ref.* Vaikhānasāgama.

Narayan. Vidwat, M.A., Ph.D. *b.*03.07.1967. Asst.Prof.,Dept. of DvaitaVedānta, Rashtriya Skt. Vidyapeeth, Turipati. *Ps.* 02 *Add.* Dept. of Dvaita Vedānta, R.S Vidyapeeth, Turipati-517064. *Ph.*0877-2229954, *M.*09490077161 *Spl.Ref.* philosophy.

Narayanacharya, U.B. Vidvat, Purāṇa vachaspati. *Age.* 75 yrs., Bannanje, Udupi, KT. Purāṇa, Asthanvidvan. *GP.* P. Narayanacharya, G. Ramachar, B. Shrinivas Bhatt, A. Narayan, Tantri, B. Ananat-krishnopadhyay. *Add.* Shri Ashta Mutt, Udupi (KT). *Spl.Ref.* Vedic Pandit.

Narayanamadhyastha, N. Sāhityaśiromaṇi, Vidvat. *b.* 10.01.1930, Kunjas, Bel, Kasargode, Kerala. Rtd. Skt. Teacher, Sagar Praudhasala, Sagar, Shimoga. *Gp.* Narayan Bhatt, C.H. Subahmanya Bhatt, K. Shama Bhatt, U. Vishnu Bhatt, K. Krishna Bhatt. *Ps.* 02. *Add.* 27/1 (2), Vinoba Nagar, Sagar (KT) – 577401. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Narayanan, E.R. M.A., Ph.D. ***b.*** 20.05.1970. Elavally, Chavakkad Taluk, Thrissur, Kerala. Asst. Prof. Sri Ranbir Campus, Kot Bhalwal, Jammu. ***Gp.*** Prof. P.C. Vasudevan Elayath (Tripunitura Tradition), Panditarajan K. Govindan Nambiar (Madurai Tradition). ***Bks.*** The Bhṛguvaṃśamahākāvya of Pratāparāja. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Eppurath Mana, Elavally Post, Thrissur District, Kerala State – 680511. ***Spl.Ref.*** Making Pectoral Poems as 'Hobby Already Tried' the best on different forty meters, for making poem.

Narayanan, Vedavalli. Ph.D. ***b.*** 10.04.1941. Chennai. Guest Asst. Prof. L.B.S. N. Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C – 136. Sarojini Nagar. N. Delhi–23. ***Ph.*** 011 - 24678196.

Narayanaswami, Rajagopala Ghanapathigal. Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 15.07.1908, Tiruchi, TN. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Skt. Vidvan, 13 Parthiban Street, Tambaram, Madras (TN). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Narayandutt, Sharma. M.A. ***b.*** 15.11.1935. Principal, Govt. Secondary School, Vivek Vihar, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** H.No. B-48, Mansarovar Park, G.T. Road, Shahdara, New Delhi – 110032.

Narendrakumar. Vedalnkar, M.A. ***b.*** 01.01.1959. Paurohitya (Priest). ***Add.*** Gurukul, Burari, Delhi. ***Spl.Ref.*** Veda.

Narendrakumara, Acharya. Acharya. ***b.*** 28.02.1907, Chikauraha, Srihatt. ***Gp.*** Dayalakrishna Tarkatirtha, Rameshchandra Kāvyatirtha. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Koyahar, Palonghat (Assam). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Naresh, Kumar. B.A., B.Ed. ***b.*** 07.05.1977, Bhiduki (H.R.). ***Ps.*** 01. ***Add.*** Naresh Kumar S/o Shri. Tejpal Gautam. V.P.O. Bhiduki. Dist. Faridabad, HR. ***Ph.*** (01275) 72279.

Narmadashankar, Girijashankar Rajagora. Acharya.. ***b.*** 03.11.1957, Sami, Mahesana, GJ. Asst. Prof. ***Gp.*** Ramadas Kaundinya, Vrajakanta Jha. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Vartantu Skt. Mahavidyalay, Sola, Ahmedabad (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Narsinghacharya, Laxmi V.T. ***b.*** 15.07.1930. ***Add.*** 35, Srirangasatagopuram, G.S.T. Road, Madhurantakam, Chengalput Dist. T.N. ***Spl.Ref.*** Veda, Nyāya, Vedānta.

Natarajan, K. ***b.*** 16.11.1954, Tiruvarur, Thanjavur, TN. Skt. Teacher. ***GP.*** K. Balasubrahmanyacharya, Krishnarajapuram Ramamurti, S.R. Krishnamurti Shastri. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 133, North Car Street, Tiruvaiyaru, Dist. – 613204. Thanjavur (TN). ***Spl.Ref.*** AdvaitaVedānta, Vyākaraṇa & Mīmāṃsā.

Natarajan, S. M.A., Ph.D. ***b.*** 16.05.1941, Madurai, TN. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. G. Sundaramurti. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Alagappa College, Karaikudi (T.N.). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Natarajanani, Sundar Dixitar. śiromaṇi. ***b.*** 22.12.1934, Chidambaram, TN. ***Gp.*** Ramabhadra Dixitar. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 60, East Car Street, Chidambaram (TN). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Natarajashivan, G.R. ***b.*** 1908. ***Spl.Ref.*** Śukla-yajurveda. ***Add.*** Vikrapandi, Tiruvidachari, Kumbakonam (TN)

Natavaralal, Arunodaya Jani. M.A., Ph.D., D.Litt.. ***b.*** 20.11.1921. Baroda, GJ. Rtd. Prof. Head of the Dept. of Skt., M.S. University, Baroda. ***GP.*** Prof. Govinda Lata Haragovinda Bhatta, Krishnasakharama Bhava, Manisankara V. Upadhyaya. ***Bks.*** A Critical Study of Harṣa Caritam. ***Add.*** Opp. Natyamandir, Gymkhana Pol, Sultanpura, Baroda (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Mahamahopadhyaya.

Natavaralal, Shivshankar Yagnik. Vyākaraṇā-laṅkāra, M.A.. ***b.*** 01.04.1918, Kolabada, GJ. Rtd. Asst. Prof., V.K. Arts College, GJ. ***GP.*** Vitthalaram Shastri, Dr. S.S. Sharma. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 13, Ghosha Society, Thalateja Road, Ahmedabad–54 (GJ). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Natesa, Shastrigal, M.S. Ghananta Taittirīya Kṛṣṇayajurveda. ***Age.*** 71 yrs. Mela-mangalam, Madurai, TN. ***Gp.*** Vaidyanatha Ghanapathi. ***Add.*** Veda Melamangalam, Madurai (TN). ***Spl.Ref.*** Veda.

Nath, Bharat Chandra. M.A., Ph.D. ***b.*** 06.11.1952. Dhenkanal (Orrissa). ***Bks.*** 04.

śrī Durgā Śatakama, śrī Kṛṣṇā nanda Stotram, Puṣpāñjaliḥ, Upadesāmṛtam, śrī Hanūmat Stotraratnāvalī. *Ps.* 01. *Add.* Dept. of Skt. Dhenkanal College. Dhenkanal – 759001. Orissa. *Ph.* (06762) 27208.

Nath, Jyotisa. Ph.D. *b.* 12.11.1953. Khowai (Tripura). Asct. Prof. Tripura University. Tripura. *Bks.* 01. The Dāsas, Dasyus & Rākṣasas in the Ṛgvedic Literature. *Add.* Tripura University Quarters No. C.N. – 4. Agartala – 799004. *Ph.* (0381) 220077. *Spl.Ref.* Veda & Indian Philosophy, Paninian Grammar. Received Tata Trust award for Vedic research.

Nautiyal, Ghanasyam. Acharya in Sāhitya. *b.* 31.12.1953, Majjur, Rokhari, Garhwal, U.P.. *Gp.* Trilokadhara Dube. Asst. Teacher. *Ps.* 01. *Add.* Shri Akhand Vednta Skt. Mahavidyalaya, Rishikesh. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Navlata. M.A. Acharya Ph.D., *b.* 10.06.1955, Lucknow U.P. Asct.Prof. V.S.S.D. College Kanpur U.P. *Bks.* 04. Saṃskṛta Sāhitye jala Vijñānam, Saṃskṛta Vāṅamaye kṛṣivijñānam, Medhā, Saṃskṛta Sāhitye Mahilānāṃ Yogadānam (ed.). *Ps.* 50. *Add.* K-680, Aashiyana Colony Kanpur Road, Lucknow. *Spl.Ref.* Poetry, Stories & Other Writing, Honour Delhi Skt. Acadmey etc.

Nayadu, Amara Ananda. Sāhityaśiromaṇi. Siksa Sastri. *b.* 10.09.1949, Bitragunta, Nellur Dist. AP. Samskrita Teacher. *Gp.* P.C. Gopalacharya, N.S.R. Tatacharya, R. N. Arali Katti. *Ps.* 02. *Add.* S.V.S. Training Centre, K.T.Road. Tirupati–01. A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayadu, Gyanprakash L. Acharya in NavyaVyākaraṇa, M.A., M.Lib.Sc.. *b.* 25.11.1958, Mungilipattu, AP. Librarian – II. *Ps.* 01. *Add.* R.Sk.S. Guruvayur Campus Guruvayur, Purunattukara, Trissur – 680551 (Kerala). *Spl.Ref.* NavyaVyākaraṇa, Library Science.

Nayadu, Uppamandal Prahlad. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 05.10.1950, Laxmi-narayanapuram, Chittoor, AP. Research Assistant. *Gp.* Dr. Molakaluri Narayana Murti. *Bks.* 01. Aruṇagirināthasya Saṁskṛta Bhāṣā sevā. *Add.* Shri Venkateshwar Research Institute, Shri. Venkateshwara University, Tirupati, (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayak, Bhanumati Ben Maganlal. Ph.D. *b.* 22.11.1949. Prof. Shri M.R.D. Arts & E.E. L.K. Commerce College, Chikhli GJ. *Add.* C/o. Rajendra KikuBhai Nayak, Near Water tank. Vill Post Gandevi Via. Kharel Distt. Navsari. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Nayak, Braja Kishore. Acharya in Sāhitya, Ph.D.. *b.* 20.10.1953, Golabai. *Bks.* 09. Naiṣādhiya Carītama (Skt. Comm. & Oriya Trans.), Sahṛdayānandam (Skt. Comm.), Sāhitya Saurabham (Criticism), Viyogacandrīkā, Sāhitya Mañjarī. (Kāvyam). *Ps.* 10. *Add.* Balighat, Nuasahi, Puri. Orissa. *Ph.* 06752 – 250003. 9778576660.

Nayak, Ketaki. M.A., Acharya in AdvaitaVedānta. *b.* 20.09.1934, Jaipur, Rajasthan. H.O.D. *Bks.* 05. *Add.* R.Sk.S., Sadasiva Campus, Puri (Orissa). *Spl.Ref.* Sāhitya, Oriya Lit., AdvaitaVedānta.

Nayak, Nayna Kalpesh. Ph.D. *b.*09.11.1961. Prof. Shri M.R. Desai Arts & Shri E.E.L.K. Commerce College Chikhli Distt. Navsari. *Ps.* 02. *Add.* Gurusmriti, Smriti Society Jalalpur Road, Navsari. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Nayak, Pramod Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 1965. Puri, Orissa. HOD Deptt of Vyākaraṇa, Damodar Skt. Mahavidyalaya, Bhadrak, Orissa. *Bks.* 03. Gartaḥ, Uvāca Kaṇḍukalyāṇaḥ, Kathāsaptatiḥ. *Spl.Ref.* Sanskrit Poet.

Nayak, Vimlaben Prafull Chandra. M.A., B.Ed. *b.* 25.04.1944, Surat, GJ. Teacher. *Ps.* 01. *Add.* Shri J.S. Girls School, Valsad, GJ. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Nayar, Anantapadmanabhan Valliyatu. M.A., B.Ed., Hindividvan. *b.* 18.12.1925. Tiruvananthpuram, Kerala. Talipatraga-veshanacharya (Research Scholar). *Gp.* Ganapati Sarma, M.H. Sastri, Dr. Goda Varma. *Ps.* 02. *Add.* (Professor, Kalikat Sarvakalashala), Sumeru, Chari Parambu, Katakal, Kollam (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayar, Balakrishnan J.R. M.A. (Hindi, Skt., Malyalam), B.Ed. Mahopadhyaya (Skt.), Vidwan, Sāhityavisharad. *b.* 04.10.1925. Varkala, Thiruvananthapuram Dist., Kerala. Teacher. *Bks.* 03. Keśavīyam (93, trans. Into Hindi), Nītiśhatakam (Poetry trans. into Hindi), Pratijñā. *Add.* Padma Bhaan, Chilakkoor, Varkala, Thiruvananthapuram Dist, Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayar, Balakrsnan R. M.A. *b.* 23.02.1929. Tiruvananthapuram, Kerala. Rtd. Lecturer. *Ps.* 02. *Add.* T.C. – 29/1268, Palkulangara, Tiruvananthapuram – 695024 (Kerala). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Nayar, Bhaskaran M. M.A., *b.* 01.08.1923, Mavelikara, Alleppey, Kerala. H.o.D. Malayalam & Skt. *Ps.* 01. *Add.* Alakatiyambalam, Mavelikara (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayar, Bhaskaran S. Acharya. *b.* 25.08.1921, Kottiyadi, Kerala. *Gp.* Ramamurti Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Skt. Vidvan, Neyattinkara, Tiruvanantha-puram, (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayar, K. Kashavan. Kerala. Asst. Prof. Ramkrishna Gurukul Vidyamandir. Kerala. *Bks.* 01. Nirveda.

Nayar, Krishnan, K. Skt. Mahamaho-padhyaya. *b.* 27.11.1927, Tiruvanantha-puram. *Ps.* 02. *Add.* Ponmelat House, Sastamangalam, Tiruvananthapuram (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayar, Maheshvaran K. M.A., Ph.D., M.A. (Russian Language), Certificate in German. Asst. Prof., Skt. Department. *Ps.* 02. *Add.* Kerala University, Karyavattam, Tiruvanantapuram (Kerala). *Spl.Ref.* Vedānta, Bharatiya Darśana.

Nayar, Mutukulam Shridharan. M.A. *b.* 26.01.1926, Mutukulam, Alappuzha, Kerala. *Ps.* 02. *Add.* Puttankottakkakam, Chennitala, Alappuzha, Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayar, Raghavan C. Sāhityaśiromaṇi, Vidvat, Visharad. *b.* 27.09.1924, Kerala. *Gp* P.C. Vasudevan, M.P.S. Nayar, K.P. Narayan Pisaradi. *Ps.* 02. *Add.* Vilvatilakam, Tiruvilvamala, Trissur – 680588 (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Nayara, Vasudevan K. Mahamahopaddhyay. *b.* 12.02.1907, Kerala. Asst. Prof. *Add.* Purvakulathu, Maramon, Pathanamthitta. Kerala. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Nayara, Vishvanathan P. Traditional Education. *b.* 06.06.1909, Palakkad, Kerala. Rtd. Principal. *Gp* Subrahmanyam Shastri. *Bks.* Cāṇakya Śatakam, Bhajagovindam. *Add.* Padinjare Paradal House, Palakkad Kerala. *Spl.Ref.* Vidhyabhushan.

Nayudu, Vangpandulaxmi. Bhashapravin, M.A., Rashtrabhashakovid. *b.* 15.06.1921. Saluru. AP. Chairman, Prachya Bhasha Branch, Rajkalashala, A.P. *Bks.* 08. Gāndheyacaritam, Gāndhigītā, Bhārata-bhājñavidhātā. *Spl.Ref.* Writer in Skt. & Telugu.

Nayyara, Asha. M.A. in Skt. & Hindi, B.Ed. *b.* 21.03.1950. Hindi Translator, Inspection Directorate, Mayur Bhavan, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* L-11/9 B, D.D.A. Flats (LIG), Kalkaji, New Delhi–19. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Neelakantham, K. M.A., M.Phil., Ph.D. *b* 1.01.1958. Prof. & Head of Skt. Dept., Osmania Univ. *Bks.*03. Comparative Study of Aṣ-ādhyāyī & Bhojas Sarasvatīkaṇ-hābharaṇam, Kāvyālaṅkārasūtravṛtti with English translation. *Ps.*40 *Add.* Dept. of Skt. Osmania Univ., Hyderabad-500007 Ph.04027032468, *M.*9866038754. *Mail.* k.neelakantham@ yahoo.com

Neelakanthan, C.M. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 15.04.1952. Shoranur. *Bks.* 07. Sārikāsandeśa of Ramapanivada, Bhāvūkante Nilapātūkal, Mānanamañjarī, Campūkāvyangal Saṃskrita Sāhitya Caritram (Vol. I-II, 1991). Vedakiraṇāṅgala. *Ps.* 25. *Add.* Saranya. Chethala Mana. Paruthippura. Shoranur–I (P.O.) Palakkad, Kerala

Negi, Gurucharan Singh. Achraya(Bhot-Baudh Darśana, Pali-Thervad, Skt.Sāhitya), NET, Ph.D. *b.*02.04.1969 Kinnaur (H.P.) Asst.Prof. RSKS, Lucknow Campus. *Gp.*Bhot- Baudh Parampara & Skt. Baudh Parampara. *Bks.*03. *Ps.*06. *Add.* R.Sk.S. Lucknow Campus, Vishal Khand 4, Gomati Nagar, Lucknow-226010,

*M.*09936253373. ***Mail.*** gcsnegi@ rediffmail. com ***Spl.Ref.*** Tibetan, Bauddha Darśana, Honorary President Himachal Buddist Youth Association

Nene, Somnath. B.A., M.A., Ph.D. ***b.*** 05.03.1954. Prof. B.H.U. Varanasi. ***Gp.*** Gajanand Shastri Musalgawker. ***Bks.*** 03. Bha--a-Cintāmaṇi-Tarkapada-Vimarśa, Subodha Dārśanika Tatvasaṅgraha, Mīmāṃsaka Darśana Vimarśa. ***Ps.*** 60. ***Spl.Ref.*** Mīmāṃsā. Swami Parmanand Dasan Award for the book Bhatta Chintamani, Patanjali Award.

Nepal, Umesh. Sāhityaśiromaṇi, Acharya (Viśiṣ-advaita), M.A., Ph.D. ***b.***30.08.1979, Lalitpur, Nepal. Asst.Prof., JRR Sanskrit Univ. Jaipur. ***Gp.***Prof. N. N. Devi Prasad, Dr.K.E. Madhusoodanan, K. E. Devnathan. ***Bks.***01 ***Add.*** 26, Staff Quarters, JRR Skt. Univ., Jaipur-302026 *M.*09829568913. ***Spl.Ref.***Tamil.

Netrapala, Sinha. M.A. (Skt., Hindi). ***b.*** 10.07.1951. Teacher (TGT) Skt. Govt. Boys Senior Secondary School No. 2, Palam Enclave, New Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** F-417, Rajnagar – II, Palam Colony, New Delhi–45.

Nigam, Jyotsna. M.A., Ph.D. ***b.*** 27.06.1964. Gwalior. Asst. Prof. Barakatullah Vishwavidyalaya, Bhopal. ***Bks.*** 03. Bhāgvata Bhakti Rasāyana aura Bhakti Rasa, Śabda Siddhī, Bhaktīsudhā. ***Ps.*** 05. ***Add.*** A – 5, Yashoda Vihar, Chuna Bhatti, Bhopal.

Nigam, Sarupa. Shastri, Acharya, Gyanprabhakar. Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Govt. Skt. College, Nabha (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Nigam, Sheel. D.Litt.***b.***25.09.1949. Head & Asct Prof. ***Bks.***06 ***Ps.***18 ***Add.***103/335 Karnal Ganj, Kanpur, U.P. ***Ph.***05122540503, ***M.***094154 77331.

Nigam, Shyam Sundar. M.A., Ph.D., Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, Āyurvedratna. ***b.*** 25.10.1931. Asct. Prof., Vikram Univ. Ujjain M.P. ***Bks.*** 25. Mālavā kī Hṛdayasthalī Avantikā, Saṅkramaṇaśita Bundelakhaṇḍa, Khaṅgāva Kṣatriya Jāti kā Itihāsa, Mālavāñcala meṃ kurmācala, Jana Dharma (Mālavā Viśeṣāṅka– I,II ed.). ***Spl.Ref.*** Founder- shri Kaveri shod Sansthan at Ujjain.

Nigamantam, Vajram Narayanamangalam. Vyākaraṇaśiromaṇi, Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 28.05.1933, Narayanmangalam, South Arcot, TN. Asst. Prof. ***Gp.*** M.S. Narasimhachary, M. Shrinivasacharya. ***Add.*** 4/297, N. Kamalakshamma Block, Prodduturu – 516360 (AP). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāhitya.

Nigm Alankara, Somdev Sitanshu. Shastri, M.A., M.Phil. ***b.*** 29.05.1959, Nuapali Kansiha, Sambhalpur, Orissa. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Gurukul Prabhat Ashram, Jholajhala Dist. Meerut, U.P. ***Spl.ref.*** Sāhitya Śāstra.

Nilakantha Vajapeyi. Acharya in Sāhitya. Sāhitya-ratna. ***b.*** 15.03.1942, Sonitpur, Chamoli, U.P. Principal. ***Gp.*** Harishankar Tripathi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Badri Kirti Skt. Vidyapeetha, Post. Simli, Chamoli Dist. (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Nilakanthan, Ratnam. M.A., M.Litt., Ph.D.. ***b.*** 12.07.1933. Asct. Prof., Kalindi College, Patel Nagar (E), New Delhi. ***Add.*** 5, President Estate, New Delhi – 110008. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Nilakshi Devi. M.A., Shastri, SLET. ***b.*** 01.12.1981, Kailash Nagar, Hatigaon, GHY. Research Scholar, Guwahati Univ. ***Bks.*** 01. Sāhitya Cintā Taraṅga (ed.). ***Add.*** Kendukona, Kamalpur Karup, Assam.

Nippani, Gururaja K. M.A., Ph.D. ***b.*** 07.08.1954. Asst. Prof. ***Add.*** Veersaiva College, Bellary (KT). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Dvaitavedānta.

Nirakari, Ramdas. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.012.1934, Haridwar, (U.P.). Head, Deptt. of Philosophy, Punjab University. ***Add.*** P – 4, Punjab Univ. Campus, Patiala (Punjab). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Nirala, Indradev Singh. M.A., Ph.D. ***b.***07.01. 1956. Lecturer, JMPDL Mahila Mahavidyalaya, Madhubani. ***Bks.***01 Śodhaprakāśaḥ. ***Ps.***01. ***Add.***Ramjanaki Nagar, Mangrauni, Madhubani-11 Bihar.

Nirala, Krishnaprasad Narayanaprasad. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. ***b.*** 10.08.1954, Bhutan. Teacher. ***Gp.*** Pt. Mahanand Sharma.

Ps. 01. ***Add.*** Skt. Mahavidyalaya, Solagram, Ahmedabad – 54 (GJ). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Nirmal, Nandkishore Gautam. Acharya in Sāhitya. Ph.D., Āyurvedaratna. ***b.*** 06.01.1936, Shivalay, Sawaimadhopur, Rajasthan. H.o.D. ***Gp.*** Jagadish Sharma, Dr. Purushottamlal Bhargav. ***Add.*** Geet Govind Kunj. S-25, Krishna Marg, Bapu Nagar, Jaipur (RJ). ***Spl.Ref.*** Āyurveda, Sāhitya.

Nirupama, Devi. M.A., M.Phil. Asst. Prof., Dept. of Skt., Panchayat College, Bargarh, Sambalpur (Orissa). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Nivasacharya. Rajagarh. Distt. Churu (Rj.). ***Bks.*** 02. Candramahīpatiḥ, Sūryprabhā. ***Spl.Ref.*** The famous novel 'Chandramahipatiḥ' wrote & offered to Pt. Ambikadutt Vyas in Rajasthan.

Nochur. Krishna Shastri. Sundareswaran. M.A., Ph.D. ***b.*** 28.05.1964, Chittur, Palakkad, Kerala. Asct. Prof. Dept. of Skt.. Univ. of Calicut. ***Gp.*** Dr. Shri. N.R. Krishna Shastry (Father). ***Bks.*** 05. Saṃskṛta in Technological Age, Sūtar-ha muktāvalī, Saptaśatisāra Sarvasva, Contribution of Kelallur, Nīlakaṇ-ha Somayājī to Astronomy. ***Ps.*** 30. ***Add.*** Skt. Univ. of Calicut. Malappuram. Kerala – 673635. ***Mob.*** 09446146982.

Nyayateertha, Sri Jiva. Nā-yaŚāstra & Sāhitya. ***b.*** 1894. W.B. Asst. Prof. Culcutta Univ. Principal. Butta Palli Skt. College. Bangal. Culcutta. ***Bks.*** 40. Kailāśanātha Vijayam, Girisaṃvardhana-vyāyoga, Śaṅkarācārya Vaibhavam, Daridradurdaiva.

O

Ojha, Braj Bhushan. Acharya, Vidyavaridhi. ***b.*** 03.02.1978. Gopalganj, Bihar. Asstt. Prof. RSKS, Lucknow Campus. ***Bks.*** 03. ***Ps.*** 20. ***Add.*** RSKS, Lucknow Campus, Vishal Khand–4, Gomti Nagar, Lucknow. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Title of Vyakarana Bhushan, Shresth Pandit Puraskar, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Ojha, D. M.A., M.Phil., M.Ed. ***b.***29.03.1959, Karanji (Orissa). ***Bks.*** 01. Candrakalā Nā-īkā-A Study. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Principal, Kendriya Vidyalaya MCL, IB Valley Area, P.B. No. – 15, Brajraj Nagar, Distt. Jharsuguda (Orissa). Pin – 768216.

Ojha, Hari Shankar. Acharya. ***b.*** 15.06.1909, Tenduamaphi, Basti, U.P. Rtd. Principal. ***Gp.*** Kameshwar Prasad Tripathi, Ramcharan Dwivedi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Vidhya Nagar, Khajilabad, Basti U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra, Sāhitya Śāstra.

Ojha, Madanlal Harishankar Vaidik. Samavedacharya. ***b.*** 05.02.1912, Shukltirtha, Bharuch, GJ. Samavedguru. ***Gp.*** Ahitagni Gaurishankar Vallabha Ojha. ***Add.*** Vadihanuman Pole, Savita Sadan. 2nd Floor, Baroda – 390017 or vadi variyasheri, Baroda– 390017 (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāmaveda.

Ojha, Madhusudan. Vidyavachaspati, Nyāya, Vedānta, Mīmāṃsā. ***b.*** 1866, Muzaffarpur. Principal, Maharaja College. Jaipur. ***Gp.*** M.M. Shivkumar Shastri, Rambhoj Saraswati, Rajeev Lochan Jha, Vishvahath Jha. ***Sp.*** M.M. Pt. Giridhar Sharma, Chaturvedi. Pt. Chandradutt Choudhary, Pt. Jaichandara Jha, Pt. Motilal Shastri, Pt. Aadyadutt Thakur. ***Bks.*** 62. Jagadgurūvaībhava, Indiravijayaṃ, Brahma Vijñāna, Gītā Vijñāna. ***Ps.*** 288. ***Expired in*** 1939. ***Spl.Ref.*** Rajpandit of Jaipur King. Recipent of Vidyavachaspati & Mahamahopadeshaka Samiksha-chakra-varti-vyakhyah-vachaspati titles. Madhu-sudan ojha shodh sansthan founded in jodhpur. Every year Mathusudan Ojha vyakhyah mala organized in R.Sk.S., Jaipur.

Ojha, Narayan Prasad N. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya), Kāvyatīrtha. ***b.*** 18.12.1943, Rohida. Rtd. Principal, Shree Ambika Skt. Mahavidyalaya & (Niyamak Director) Sri Krishan Ashram Pathshala. Sabarkantha. ***Gp.*** Sri Narmada Shankar G Ojha. ***Bks.*** 01

Devīstotrāṇi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sri Krishan Ashram Pathashala, Modasa, Sabarkantha- 383250, Gujarat. Ph. 079-26862304. M. 09375841978.

Ojha, Pinaki Prasad. b. 20.01.1938, Sankhera (Barauda). Specialisation in Sāmaveda ***Add.*** Shri Govardhan Nath Ji Ka Mandia. Mehtapura (Barauda) – 390001.

Ojha, Ramakant. Navyavyākaraṇācharya, M.A.. ***b.*** 16.10.1913, Dishni, Dhakapur, Pratapgarh, (U.P.). ***Gp.*** Bholanath Shukla, Ramaprasad Tripathi, Devanayakacharya. ***Add.*** Pure Narasimhabhan, Pratapgarh (U.P.). ***Spl. Ref.*** Navyavyākaraṇa.

Ojha, Ramnandan. Vyākaraṇācārya, Vedānta. ***b.*** 15.10.1920, Ojha, Ballia, Devaria, (U.P.). ***Gp.*** Devasharan Mishra, Ramlakhan Pathak. ***Add.*** Dwarka Nagar, Amahia, Rewa (M.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Vedānta.

Ojha, Ramsubhag Acharya. Ph.D., Sāhityācārya, Navyavyākaraṇācharya, M.A. ***b.*** 15.06.1930, Basti U.P. Rtd. HOD. Sanskrit, Heera Sanskrit Mahavidhayalaya, Khalilabad, Basti. ***Gp.*** Jeetnarayan Ojha, Harishankar Ojha. ***Add.*** 13/140, Vidya Nagar, Khalilabad, Basti, U.P. ***Spl.Ref.*** Navyavyākaraṇa, Sāhitya Śāstra.

Ojha, Ramyash. Sāhityācārya. ***b.*** 01.02.1955, Chausarha, Banda, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Indrajeet Mishra, Chandra Shekhar Tripathi. ***Add.*** Jaideva Sanskrit College. Karbi. Banda U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Ojha, Ramyatna. Bihar. Chapara, Manjhi Gram. (Hoby) Astrology Banaras Hindu Univ. (Vanarasi). ***Gp.*** Pt. Sudhakar Divedi. ***Bks.*** 01. Falit Vikas, ***Expired in*** 1938.

Ojha, Savita. M.A., NET, Ph.D. ***b.*** 15.12.1972. Reader & HOD Skt. Deptt. Nehru Gram Bharati Univ., Allahabad. ***Bks.*** 01. Āhārya Abhinaya Eka Samīkṣhātmaka Adhyayana. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Pragyan Bhawan, 50 Vasant Vihar Colony, Jhunsi, Allahabad. M. 09453228728.

Ojha, Shrinivas. Shastri, M.A., Ph.D. ***b.*** 01.07.1952, Varanasi. Prof. M. Gandhi Kashi Vidhyapeeth. ***Bks.*** 01. Naiṣadhīyacaritam. ***Ps.*** 04. ***Gp.*** Prof. Amarnath Pandey, Prof. Kamdev Mishra, Prof. Hare Ram Tripathi. ***Add.*** 1. E-08. Adhyapak Avas. M. Gandhi Kashi Vidhyapeeth, Varanasi. ***Ph.*** (0542) 2225353.

Ojha, Vedi Prasad. Vyākaraṇācārya. ***b.***18.05.1945, Ahagikalan, Mirzapur, U.P. HOD of Vyakaran. ***Gp.*** Ramyatna Shukla. ***Add.*** Shri Sanatan Bhairava Sankar Brahma Sanskrit Mahavidhyalaya, Beriyaghat, Mirzapur U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Ojha, Yogeshwar. Vyākaraṇācārya, 1885, Balia (U.P.), ***Gp.*** Rajaram Shashtri Karlekar, Kashinath Shastri, Ashtaputri. ***Sp.*** Veereshwar Shastri Dravid (Jaipur). ***Bks.*** 01. Hemavatī Ṭīkā on Parībhāśendū Śekhara (1975). ***Expired*** in 1956.

Omvrat. Acharya. ***b.*** 05.10.1976. Ajmer. TGT Skt., Gurukul Kurukshetra. ***Add.*** Gurukul Kurukshetra Near IIIrd Gate, Kurukshetra-136119, Haryana. Ph. 01466-273533. M. 09466704108. omvrat@gmail.com.

P

Pachauri, Chandra Kant. M.A. L.T. Visharad in DharmaŚāstra. ***b.*** 30.04.1946. Kande, Champawat, U.K. Rtd. Teacher. ***Gp.*** Acharya Devaki Nandan Lohni, Pt. Ghanashyam Shastri. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Radha Krishna Vihar, Near Neem Tree, Badi Mukhani, Haldwani, Nainital (U.K.). ***Spl.Ref.*** Poet in Hindi & Skt. Veda, Jyotiṣa, DharmaŚāstra.

Pachauri, Krishan Kant. M.A. (History & Skt.) ***b.*** 10.09.1975. Kande, Champawat, U.K. ***Gp.*** Dr. Lalit Kumar Tripathi, Dr. A Dash, Dr. D. K. Singhdeo. ***Ps.*** 01. ***Add.*** RZ 651/313, Gali No.06, Sagarpur, New Delhi-46. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Ancient Indian History.

Padhi, Balabhadra. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya & Jyotiṣa. Jagadalpur, Brahmapur, Orissa. ***Bks.*** 01. Karmadīpikā (Vol. II). ***Ps.*** 22. ***Expired on*** 03.09.2001. ***Spl.Ref.***. Taught

Sanskrit Grammar, Literatur & Astrology for many Decades in Orissa.

Padhi, Venimadhav. M.A., Ph.D., P.O.L. *b.* 06.06.1919, Lokanathpur Shasan, Ganjam, Orissa. Asst. Prof. Ganjam, Orissa. *Bks.* Śhri Jagannātha Tattva Vimarśaḥ, Dārudevatā. *Expired on* 10.08.2006. *Spl.Ref.*. Angaged in Indological Ressarch, Guided many Research Scholars.

Padmanabham, Ch.K. M.A., *b.* 16.08.1973, Hyderabad. Asst. Prof. *Bks.* 02. Sabdan Janīmahe. *Ps.* 08. *Add.* C/o Laxmi Narayan Bhatt, Ganesh Nilaya – Mallikartunabeedhi, Shringeri – 577139, *Ph.* 08965250.

Padmanabhan, M. V. Ananth. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 15.05.1972, Chennai, Guest Feculty Evening College. *Bks.* 02. Gurūtīlakastūtī, Acārya Śekharaḥ. *Add.* Shri Ahobilam – 16, Devanathan Colony, Westmam Bacham, Chennai – 600 033, T.N. *Ph.* (044) 4712284.

Padmanabhan, S. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 27.09.1957, Kumbakonam, T.N. Asct. Prof., Univ. of Madras. *Bks.* 02. Pārāsara Bha--a's Contribution to Viśīṣ-ādvaitā, Visīśtadvaitā Research *Add.* University of Madras, Marina Campus, Chennai – 600 005. *Ph.* 8444933.

Padmavati, K. Acharya in Sāhitya, Shikasacharya. *b.* 04.06.1956, T.N. Vice-Principal. A.P.R. School, Sofinagar, Nirmal, Adilabad. Gp. T.A. Gopalan, Rangarajan. *Ps.* 01. *Add.* Nirmal (Post) Adilabad (A.P.). *Spl.Ref.*. Sāhitya.

Pahari, Laxmi Kanta. M.A., Ph.D. *b.* 28.06.1950, Bijoy Nagar, (W.B.). Asst. Prof. *Bks.* 02. Jñānaprāmāṇya-vimarśaḥ, Brahmatatt-vanirūpaṇam. *Ps.* 01. *Add.* Kaliachak B.K. Adarsh Sanskrit Mahavidhyalaya, Post. Heria. Dist. Midnapur. (W.B.).

Paija, Dilip Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 18.04.1967, Rajkot (GJ). *Ps.* 01. *Add.* Somnath Society, Bhd. – Adhyapan Mandir, Dhrangadhra, Dist. Surendra Nagar, Gujarat. *Pin.* 363310, *Ph.* (02754) 61127.

Pal, Suresh. M.A., Ph.D. *b.* 04.04.1971. Skt. Lecturer, SD Birla Skt. College, KKR. *Gp.* Dr. Usha Gupta. *Add.* Vill. Sanwla, P.O. Kolapur, Thanesr, Kurukshetra- 136118. Ph. 01744-275687. M. 09468249187.

Palachaudhuri, Kshaitish Chandra. Tīrtha, Purāṇaratna. *b.* 01.09.1915, Silhat, Bangladesh. *Gp.* B. Dev, N.M. Shastri, M.M. Sitaram Shastri. *Add.* 3, Tarapur, Narsingh Road, Silchar–3 (Assam). *Spl.Ref.*. Purāṇa, Sāhitya, Vedā.

Palande, Chintamani. Acharya in Sāhitya, Kāvyatīrtha. *b.* 15.08.1935, Varanasi, U.P. Principal. *Gp.* Ananta Shastri Phadake Sandekara, Kashinath Paturakara. *Ps.* 02. *Add.* Lokanath Shastri Sanskrit mahavidyalaya. Govindganj, Jabalpur (M.P.) *Spl.Ref.*. Sāhitya.

Palasule, Gajanan Balakrishn. M.A., Ph.D. *b.* 01.11.1921, Satara, MH. Asst. Prof., Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune. *Bks.* 05. Samānamastu vo manaḥ, Bhāsohāsaḥ, Agnijā, Sixty Upaniṣads of the Veda, Sankrit dhātupā-has. *Add.* 743, Sadashiv Peth. Pune–411030 (MH). *Spl.Ref.*. Sāhitya, Vyākaraṇa, Upaniṣad. *Award.* Govt. of India Award.

Palaveli Satagopacharya. Śiromaṇi. *Age.* 75 yrs. in 1988, Palaveri, North Arcot, T.N. Gp. Palaveri Varadacharya, Villivalam Narana-charya. *Bks.* 01. Gayatrī-Mahimā. *Add.* 38, Shri P.C. Satagopapuram, G.S.T. Road, Madhurantakam – 603306 (T.N.). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Paliwal, Anjana. Ph.D. *b.* 12.09.1970, Udaypur, RJ. Asst. Prof., Rajkiya Meera Kanya Mahavidhyalaya, Udaypur (Rj.). *Bks.* 01. *Ps.* 05. *Add.* IV – 08, Rajkiya Awas, Phatahapura, Udaypur (Rj.). – 313001. *Ph.* 9414158817, 9460901419.

Paliwal, Haridatt 'Nirbhay'. *b.* 1927, Farrukhabad, Aligarh. *Bks.* 16. Parivartanam, Janaghośa, Krānti, Subhāṣabosa-Caritam, Rāś-radhvani.

Paliwal, Kishorilal Dhanraj. M.A., Acharya in Vyākaraṇa, Kāvyatirtha. *b.* 29.01.1929, Mandala Kalan, Falaudi, Jodhpur, RJ. Vice–

Principal. Gp. Pt. Krsnakanta Jha. *Ps.* 02. *Add.* Shri Brahmakarmavarddhini Sanskrit Mahavidyalaya, Itwari, Nagpur (MH). *Spl.Ref.*. Vyākaraṇa & Kāvya.

Pan, Somanatha. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa, āyurveda). *b.* 07.05.1918, Kavisurya Nagar, Ganjam, Orissa. Asst. Prof. *Bks.* 01. Gaṅgavaṃśamahākāvyaṃ. *Expired on* 10.08.1985.

Panchal, Geeta Ben T. Ph.D. *b.*26.04.1970. Prof. Shri S.P.Patel Arts College, Semliya, Panchmahal. *Ps.* 05. *Add.* 2, Gopi Nagar, Kanjari Road, Halol Distt. Panchmahal. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Panchal, Magan Bhai H. Ph.D. *b.* 04.05.1941. Prof. Arts & Commerce College, Bardoli, Surat. *Ps.* 05. *Add.* Juni Janta, Near Dalmeel Bardoli, Distt. Surat. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Panchal, Praveen Bhai A. Ph.D. *b.*22.03.1965. Prof. M. & V. Arts & Commerce College Halol, Panchmahal. *Ps.* 05. *Add.* 2, GopiNagar, Kanjari Road Halol, Panchmahal. *Spl.Ref.* Vedānta.

Panchamukhi, V. R. M.A., Ph.D. *b.* 17.09.1936. Ex. Chancellor, Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupati & President, The Indian econometric society. *Bks.* 26. Bhāratīya-Arthaśāstram, Vicāra Vaibhavam, Bhāratīya Sarvekṣaṇam Ārthika Sarvekṣaṇam, Srī Pūranadāsa ke Bhaktī Gīta, Managing One-self - śrī Bhagavadgītā Theory & Practice, Indian classical thought on Economic Science, Economic Development in India: Challenges & Perspectives. *Ps.*75. *Add.* Block-6/V - 38, Lodhi Road Complex, New Delhi – 110003. *Ph.* (O) 4682176. (R) 4622972. *Spl.Ref. Ex. Director General,* Research & Information System for the non-aligned and other developing countries and served as chief of research division & executive Director in ministry of India govt. President Awardee.

Panchanadeshvaran, J. Niyogaśiromaṇi, Shiksashastri. *b.* 25.07.1963, Anandatandavapur. *Ps.* 02. *Add.* Anandatandavapuram, Kumbakonam, Dist. Tanjavur (T.N.).

Panchanan, Chetak. M.A., Ph.D. *b.* 11.02.1940. Asct. Prof., Vice–Principal, Sanskrit Department. *Ps.* 05. *Add.* Rabindra Bharati University, 56-A, Barrackpur Trunk Road, Calcutta – 700050 (W.B.). *Spl.Ref.* SāṅkyaDarśana.

Pancholi, Badari Narayana. Acharya in Vedānta, Sāhitya, Sāṅkyayoga, Dharma-Śāstra, Purāṇetihāsa. Vidyavaridhi (Ph.D.). *b.* 15.08.1948, Brahmpuri, Bhilwara, RJ. Reader, Head of the Deptt. of Darsana. *Gp.* Hanumat Prasada Shastri, Dr. Mandana Misra, Dr. Ramasevaka Jha. *Bks.* 04. Śrīmadbhāgavatīyamsāṅkhyam, Sāṅkhyasāra, Sarvopakāriṇī, Vijñana-bhikṣudarśana-vimarśaḥ. *Add.* 3, Awasaparisar, Sri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeeth, Katwaria Sarai. New Delhi – 110016. *Awards.* Gold Medalist.

Pancholi, Badri Prasad. M.A., Ph.D. Sāhitya Ratna. *b.* 03.08.1935, Kanpur (Jhalawar). Principal & HOD. *Bks.* 140. Śrutī- Sāndīpani, Sanjīvanī, vimarśinī Mangalā. *Ps.* 600. *Add.* B – 6, Data Nagar, Ramble Road, Ajmer – 305006. *Ph.* (0145) 2425664.

Pancholi, Balkrishna Nilkanth. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* Vasai, Dhabhla GJ. Deptt. Of Vyākaraṇa, Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi U.P. *Gp.* Pt. Sabhapati Sharmopaddhyay. *Sp.* Vasant Kumar Bhatt. *Bks.* 05. Vaiyākaraṇabhūṇasāra – Ratna-Prabhā(Ṭīkā), Vaiyākaraṇa-siddhāntakaumudī-Savimarśa Hindī Anuvāda (Part-4), Vaīyakaraṇa-siddhāntkaumudī Lakṣmī (Ṭīkā kā Uttrārdha). *Exp.in* 1997. *Add.* Varanasi Bhawan, Near Ramji Mandir Maninagar, Ahemdabad, GJ.

Pancholi, Chandrika Ben Veer Chand Bhai. Ph.D. *b.* 14.07.1945. Prof. Kavi Shri Botadakar Arts. & Commerce College, Botad, Bhav Nagar. *Ps.* 05. *Add.* 102-G, Housing Bourd Colony, Paniyad Road, Botad Sourashtra. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Pancholi, Kinnari Ben D. M.A. Ph.D. *b.* 07.01.1974. Prof. Govt. Vinyan College, Gandhi Nagar. *Ps.* 02. *Add.* 12-A, Neelkantha Colony, Ved Mandir Road, Kankriya, Ahemdabad.

Pancholi, Priti Ben Nayan Kumar. Ph.D. *b.* 02.06.1963. Prof. L.D. Institute of Endology, Navrangpura Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** S.F.2 Arpan Flats, Paldi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Panda, Bhagawan. M.A. *b.* 10.01.1938, Kiarpur. Ex-Dy, Director of Culture, Govt. of Orissa. ***Bks.*** 85. Sūrīsarvasva (Vol. I-II), Rukmaṇī Parīṇaya Mahākāvya, Abhinava Gītagovinda Mahākāvya. ***Ps.*** 85. ***Add.*** Shivasran, Plot No. 3181/82, Kotitirtha Marg, Bhuvaneshwar, Orissa. ***Pin.*** 751002. ***Ph.*** (O) 433273. (R) 433742. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Vidya Puraskar, Falguni Samman, Title of Sāhitya Vinod, President Awardee – 2009.

Panda, Gajendra Kumar. Ph.D. *b.* 10.05.1964. Prof. L.D. Arts College Navrang Pura Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 14, Shyam Sharan 2, Bopal Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Panda, Gangadhar. M.A., Ph.D., Acharya (Sāhitya, Purāṇa, Dharmaśāstra, Sāṅkya, Yoga), D.Litt. *b.* 08.08.1957, Cuttak, Orissa. Deputy Edu. Adviser, Govt. of India. Registrar, L.B.S. Skt. Vidhyapeeth New Delhi. Prof. & Dean, Sampoornanand Skt. Uni. Varanasi U.P. ***Gp.*** V. Venkatachlam, P.C. Samantaray, Shrinivasa Ratha. ***Bks.*** 05. Dramas of Kālidāsa, Mātṛbhāṣā Śikṣaṇa Paddhati, Purāṇeṣu Indracaritam, Sanskrit Education In Orissa, Saṃskṛta Vāṅmaya Vallarī. ***Ps.*** 60. ***Add.*** 6, New Prof. Colony, Sampoornanand Skt. Uni. Varanasi U.P. ***Spl.Ref. Award.*** Girvana Vidyaratna, Honorary degree Awarded by Sanskrit Sāhitya Parishad, Tiruchirapalli, T.N, Amrat Bhasha Samman by Amrat Vani Seva pratishthan, Orissa in 2000, Vishisht Sanskrit Seva puruskar, U.P. Sanskrit Sansthan, Lakhnow (U.P.) 2009, Kalidas Vikram Puruskar, Vikram University, Ujjain (M.P.), 2010.

Panda, Giridhari. Acharya in Vyākaraṇa, Viśiṣ-ādvaita, Shiksha-Shastri, Vidyavaridhi. *b.* 18.02.1977. Bhadrak Orissa. Asstt. Prof., Univ. of Gour Banga, Malda, W.B. ***Gp.*** Dr. Pramod Kumar Nayak, Dr. Govind Ch. Kar, Dr. K.C. Padhi, Dr. Tejpal Sharma, Dr. H.H. Hota. ***Bks.*** 01. Śāstrakāreṣu Kārakasya Cintanadhārā. ***Ps.*** 09. ***Add.*** Deptt of Skt., Univ. of Gourbanga, Malda College Campus, Malda-732103 W.B. M. 09476164702, 09434462186 giripanda@ yahoo.co.in ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa.

Panda, Gopala Chandra. Acharya in Sāhitya. Vedcharya. *b.* 14.02.1928, Puri, Orissa. ***Gp.*** Damodar Shastri, Ganesh Mishra, Narayana Mahapatra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Bali Sahi. Barahi Lane, Puri (Orissa). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Veda.

Panda, Kamakshiprasad. Traditional Education in Saṃskṛta, Āyurveda, Jyotiṣa, Odisi, Telugu, Bangla. ***Bks.*** 30. Kāmākṣiśatakapadyāvalī, Daridramokṣaṇam, Stotraratnamālā. ***Expired in*** 1934. ***Spl.Ref.*** Written Many StotraKāvyas in Sanskrit.

Panda, Kanhucharan. Acharya (Sāhitya, Purāṇa), Shiksha Shastri, Ph.D. *b.* 30.04.1957, Banki, Cuttack, Orissa. Asst. Prof. (Purāṇa), Ramadhin Sanskrit College, Berhampur, Ganjam, Orissa. ***Bks.*** 03. Aṣ-ādaśapurāṇeṣu Śrījagannāthaḥ, Mahāmuni Vyāsaḥ, Mahātmā Viduraḥ. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Gajapati Nagar, 8 Lane, Brahmapur, Ganjam, Orissa, ***Pin.***- 760010. ***Ph.*** 09776227540, 9437616751.

Panda, Narasingha Charan. Acharya, M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 12. 09.1963. Bhadrak, (Orissa). Asct. Prof. V.V.B.I.S. & I.S. Panjab Univ., Punjab. ***Bks.*** 08. ***Ps.*** 42. ***Add.*** V.V.B.I.S. & I.S. Panjab University, Sadhu Ashram, Hoshiarpur, Punjab – 146021.

Panda, Pradipt kumar. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 16.04.1959. Asst. Prof., Ramjas College, Delhi University. ***Ps.*** 05. ***Add.*** D.C.6,G.W. Hall, Delhi – 110007. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Panda, Purna Chandra. Acharya in Sarva Darśana. ***Age.*** 25 yrs. in 1988, Kumbhorpara, Puri, Orissa. ***Gp.*** Radharamana Dasa, Pt. Ramavrksa Pandey, K. Raghunathan. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Rishikul Bharatiya Vidyalaya, Bakaul, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sarva Darśana.

Panda, R.N. M.A., M.Phil., Certificate Course in German. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** P.G. Deptt.

of Sanskrit, Utkal University, Vani Vihar. Bhuvaneshwar – 751004 (Orissa). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Panda, Rabindra Kumar. Acharya, M.A., M.Phil., Ph.D. Dipl. in German *b.* 10.01.1963, Mirzapur, Orissa. Asct. Prof. & Head Dept. of Sanskrit, Pali & Prakrit, M.S. Univ. of Baroda, Baroda. *Bks.* 30. Ānandabodhyatī – A Study, Studies in Sanskrit Śāstras, Essays on Modern Skt., Poetry, Cainnācaya, Kāvyāmṛtataranginị. *Ps.* 70. *Add.* 13/169, Parishram Park, Refinery Road Gorva, Baroda - 16 *Ph.* (0265) 2325548. Mob. 09974262038. *Spl.Ref.* Creative Writer, Reapient of Ramakrishna Award Kalidasa Award. Guj. Skt. Sāhitya Academy Award.

Panda, Ramesh Chandra. M.A. (Sanskrit), Ph.D. *b.* 02.09.1954, Purusottampur, Ganjam, Orissa. Prof. & Head., Dept. of Vyākaraṇa, Sanskrit Dharma Vijnan Sankay, B.H.U. Varanasi, U.P. *Bks.* 10. Mahābhāṣyavīkṣikā-īkāyāḥ Viśleṣaṇatmakamadhyayanam. *Ps.* 50. *Ph.* 91-9415992 108. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Panda, Seemachal. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 24.03.1959, Taratarini, Ganjam, Orissa. Asst. Prof., Govt. College, Sundargarh, Orissa. *Bks.* 03. Nā-yatattva of Sāhityadarpaṇa, Vālmikīyarāmāyaṇe Yuddhakāṇḍam, Kāvyatattvaṃ. *Add.* Mukuban, Navakalevar Road, Puri, Orissa. *Ph.* 09437768707.

Pande, Aniruddha kumara. Acharya, Ph.D. *b.* 01.01.1956. Kuradih, Pratapgarh, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Kalika Prasad Sukla. *Ps.* 02. *Add.* Govt. Basic Sanskrit MAhavidyalaya, Rewa (M.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pande, Suresh Chandra. M.A., D.Phil. *b.* 07.08.1934, Almora (Uttarakhand). Rtd. Prof., Allahabad Univ. *Bks.* 07. Dhvanī Siddhānta Virodhī Sampradāya, Kavī Aura Kāvyaśāstra, Alaṃkāradarpaṇaḥ, Kādambarī-soūrabham, Nalvīlāsa Nātakam. *Add.* 1/6, Prayag Street, Allahabad. *Ph.* (0532) 2641538.

Pandey, Narasimha. Acharya in Sāhitya, Sāhitya-ratna. *b.* 10.05.1918, Balia. U.P. Rtd. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Bharasar, Balia (U.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Adya Prasad. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.07.1944. Asamaha, Gorakhpur. U.P. Asstt. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* Sanskrit Mahavidyalaya, Baspar, Gorakhpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Pandey, Amar Nath. M.A. *b.* 13.07.1949. Azamgarh, U.P. Principal. *Gp.* Jagadisa Upadhyaya. Aniruddha Dave. *Ps.* 02. *Add.* Sri Durgaji Sanskrit Mahavidyalaya. Chandesvar, Azamgarh (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Amar Nath. M.A. D.Phill. *b.* 06.10.1937. Prof. & Head. *Add.* Deptt. of Sanskrit. Kashi Vidyapith. Varanasi. (U.P.). *Spl.Ref.* Veda.

Pandey, Amarnath. M.A., D.Phil. *b.* 06.10.1937 Allahabad U.P. Rtd. HOD. MG Kashi Vidhyapeetha. (U.P.). *Bks.* 17. Soundrayāvalī (Ed), Upasargavargaḥ, Bāṇabhatta Kā Sāhityika Anuśīlana. *Ps.* 200. *Spl. Ref.* Vivad Śāstra Parangat, M.M. Honourary Title of Pt Raj and Vidyaratakar, President Awardee, 50 Radio Talks.

Pandey, Ambadas Sharma. Vyākaraṇasastri. *b.* 1910. Nagpur. MH. Lecturer. *Gp.* Sankarasastri, Arvikara Vaidika, Dattatreya Sarma. Ramadasa Misra. *Add.* Bhaumsala VedaŚāstra Mahavidyalaya. Nagpur – 440002. (MH). *Spl.Ref.* Veda & Vyākaraṇa.

Pandey, Anjani Prasad. Acharya in Sāhitya & M.A. *b.* 04.05.1942. Gahanauwa, Rewa, M.P. Asst. Prof. & Head, Deptt. of Sāhitya. *Gp.* Pt. Kalikaprasada Tripathi, Pt. Subodha Jha, Dr. Ramakrsna Tripathi. *Ps.* 02. *Add.* Govt. Venkat Sanskrit Mahavidyalaya, Rewa (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Anjula. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.* 24.03.1976. Teacher, Chattrapati Shivaji Mahavidyalaya, Ramabai Nagar. *Ps.* 15. *Add.* Vill P.O. Gauriyapur, Akbarpur, Ramabai Nagar -209101, U.P. M. 09236092237.

Pandey, Annapurna. Acharya in Sāhitya. *b.* 20.07.1941. Sultanpur, U.P. Asst. Teacher. *Gp.* Pt. Rama Gopala Misra. *Ps.* 02. *Add.* Kesh Kumari Govt. Degree College, Sultanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Arun Kumar. Acharya (Siddhānt, Jyotiṣa, Dharma Śāstra, Śukla Yajurveda) Ph.D. *b.* 01.03.1960, Gayghat, Basti U.P. Asst.Editor, S.S.V.V. Varanasi U.P. *Gp.* Shri Vindhyeshwari Prasad Shukla, Joshanram Ahitagni, Laxmikant Dixit. *Ps.* 02. *Add.* Panchang Vibhag, Sampoornanand Skt. Uni. Varanasi U.P. *Spl.Ref.* Co-editor in SSVV, Varanasi, Gold Medalist, Honored by Veda Pandit Puruskar by U.P. Sanskrit Academy.

Pandey, Bal Mukund. M.A., Sikshacharya. *b.* 01.11.1954, Maharacha, Allahabad, U.P. Principal. *Add.* Rashtriya Sanskrit Mahavidyalaya, Jaunpur (U.P). *Spl.Ref.* Sāhitya & Education.

Pandey, Bal Mukund. Acharya in NavyaVyākaraṇa, Ph.D. *b.* 14.02.1970. Principal. *Gp.* Dr. Prabhakar Dwivedi, Dr. Ram Manohar Mishra. *Sp.* Yagya Pandey, Nagendra Upaddhyay. *Ps.* 02. *Add.* Shri Dayalu Skt. College Bans Fataq, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Vidvat Samman.

Pandey, Balram. Veda Karamkāṇḍa, Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, DharmaŚāstra, Vidyavaridhi. *b.* 01.01.1953. Varanasi. Principal, Shri Vanshidhar Skt. Mahavidyalaya. *Gp.* M.M. Joshan Ram Pandey, Shri Yugal Kishore Mishra. *Sp.* Parasa Nath Pandey, Baldau Pandey, Vipin Chandra Pandey. *Bks.* 03. Sanyāsa Grahaṇa Paddhati, Kālasarpayoga Śānti. *Ps.* 05 *Add.* B2/198 Bhadaini, Varanasi-221001 Ph. 0542-2310827. M. 09935031929. balrampandey6@gmail.com *Spl. Ref.* Veda, Karmakāṇḍa, DharmaŚāstra, Vedapandit State Award, Karpatri Award, Shankaracharya Swaroopanand Award.

Pandey, Bharadvaja. Acharya in Sāhitya, M.A., Vidyabhusana. *Age.* 33 yrs. *Add.* Arya Samaj Mandir, Hanuman Road, New Delhi – 110001. *Spl.Ref.* Sāhitya. Dharmacharya (Priest), Veda.

Pandey, Bhaskaranand. Acharya in Navya Vyākaraṇa, Shiksashastri, M.A., M.Phil, Ph.D. *b.* 24.07.1947. Sanskrit Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School, Anandvasa, Shakarpur. *Ps.* 02. *Add.* WZ-971, Rani Bagh, Shakur Basti, Delhi – 110034. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pandey, Brahma Nanda. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 02.01.1952. Siwan, Bihar. Principal. *Gp.* Ramadhara Tripathi, Niriksana-pati Mishra, Dr. Vidyanivasa Mishra, Prof. Karunapati Tripathi. *Ps.* 04. *Add.* Swami Devananda Sanskrit Mahavidyalaya, Devasharama, Mathlar, Deoria (U.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pandey, Chandra Kanta. Acharya in Sāhitya. *b.* 30.07.1950, Babura, U.P. Teacher. *Gp.* B.N. Benerji, Sarayuprasad Upadhyaya. *Ps.* 02. *Add.* Sanatan Bhairava Sankar Brahma Samyukta Sanskrit Mahavidyalaya, Baryaghat, Mirzapur (U.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Chandra Shekhar. Acharya in Sāhitya, M.A., M.Ed. Shiksashastri, Teluguvisharad. *b.* 01.01.1936, Kathirao, Varanasi, U.P. Asct. Prof. *Bks.* 03. Āndhraśabdacintāmaṇi, Ātharvaṇakaṇikā, Ahobalapāṇḍityam, *Add.* R.Sk.S. Guruvayur Campus, Purnattukara, Trissur (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya, Veda, Linguistics, ShiksaŚāstra, TeluguSāhitya.

Pandey, Chandrabali. M.A. (Hindi). Studied in Sanskrit. *Bks.* 01. Kurāna aura Hindī.

Pandey, Chandrma. Jyotiṣa Acharya (Gaṇita & Phalita), Vidyavaridhi. *b.* 01.07.1954, Bhojpur, Bihar. HOD Deptt of Jyotiṣa, Faculty of SVDV BHU. *Gp* Rajmohan Upadhyay, Pt. Sri Chandra Pandey, Dr. Satya Narayan Triapthi. *Sp.* Dr. Parasnath Ojha, Dr. Jitendra Narayan Pandey, Dr. Kripa Shankar Pandey. *Bks.* 05. Keśavīya Jātakapaddhati, Ādhyātma Rāmāyaṇa, Amarakoṣa, Kāśīkedāra Māhātmya, Dīrghavṛtta-lakṣaṇam. *Add.* Deptt of Jyotiṣa, Faculty of SVDV, BHU. Ph. 0542-2369240. M. 09415303818.profcpandey@gmail.com *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Pandey, Devendra Nath. Acharya in Suklayajurveda & Atharvaveda, M.A. *b.* 20.11.1958, Motihari, Bihar. Asst. Prof. Vanasthali Vidyapeeth, RJ. *Gp.* Bhagavatprasad Mishra, Gopalchandra Mishra, Bindhesvariprasad Tripathi. *Ps.* 05. *Add.* C.K. 32/17,

Brahmnal, Varanasi (U.P.) & Vanasthali Vidyapeeth, Tonk (RJ). ***Spl.Ref.*** DarmaŚāstra.

Pandey, Dhananjay Kumar. Acharya(Advaita Vedānta). ***b.*** 01.07.1971. Ballia, U.P. Reader, Vedic Darśana Faculty of SVDV, BHU, Varanasi. ***Gp.*** Padamshri Raghunath Sharma, Pt Ramprasad Tripathi, Prof. Parasnath Dwivedi, Sri Pashupati Baba Maharaj. ***Bks.*** 02. Advitīyo Dvitīyaḥ, Brahma mīmāṃsā. ***Ps.*** 11. ***Add.*** Deptt. of Vedic Darśana,Faculty of SVDV, BHU, Varanasi-05. M. 09451891501. dhananjay pandeybhu@gmail.com ***Spl. Ref.*** Advaita Vedānta.

Pandey, Dhruvapati Acharya. M.A., Sāhityaratna. ***b.***01.02.1947, Baliya U.P. Rtd. Asst. Prof. ***Bks.*** 01. Lokatantram. ***Add.*** Udaipura, Sawara Bandh, Baliya, U.P.

Pandey, Ganga Sahay. Acharya in āyurveda. Asst. Prof., Aayurved College, Kashi. ***Gp.*** Pt. Satyanarayan Shastri. ***Bks.*** 01. Kāycaikitsā. ***Spl.Ref.*** Āyurveda.

Pandey, Gauri Shankar. Śuklayajurveda-charya. ***b.*** 01.01.1935, Kashipur, Varanasi, U.P. ***Gp.*** Bhagavataprasada Mishra, Dr. Bindhyeshvari-prasad Tripathi, Dr. Gopalaprasad Mishra. Principal. ***Add.*** Shri Krishna Sanskrit Mahavidyalaya, Samarkand Gali, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** śuklayajurveda. Received U.P. Skt. Akademi Award.

Pandey, Gaya Prasad. Acharya. ***b.*** 02.01.1945, Pratapgarh, U.P. Asstt. Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** G.T. Sanskrit Mahavidyalaya, August Kranti Maidan, Bombay (MH). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Gaya Ram. M.A., Ph.D. Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Dept. of Sanskrit, Kashi Vidyapith, Varanasi (U.P) ***Spl.Ref.*** Darśana.

Pandey, Gayaram. M.A., Ph.D. ***b.*** 08.07.1949, Ambedkar Nagar (U.P.). Prof. & Head, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi. ***Gp.*** Prof. Adya Prasad Mishra, Prof. S.C. Shrivastava, Prof. S.C. Pandey, Prof. Rajendra Mishra. ***Bks.*** 01. Śankara's Interpretation of the Upaniṣada. ***Ps.*** 17. ***Add.*** C-309, Lalpur Avasiya Yojha, Phase-I, Baralalpur, Varanasi (U.P.). ***Ph.*** (0542) 2220360. 09236573384.

Pandey, Govind Chandra. M.A., D.Phil. ***b.*** 30.07.1923. Allahabad. Rtd. Prof. & VC. RJ Univ. Director Prayag Museum ***Bks.*** 12. Sanundarya Darśana Vimarśa, Bhaktī Darśana Vimarśa, Ekam Sad Viprā Bahudhā Vadanti, Aśtācalīyam. ***Ps.*** 150. ***Add.***11 Balhampur House, Allahabad 211002. ***Spl.Ref.*** Out Starding work and Indian Philosophy Astachaliyam is Translation work from English into Sanskrit of Poets like Shakespear Words worth, Milton, Kitles, Tehiyason, President Awardee

Pandey, Hari Datt. Acharya in Sāhitya. ***b.***15.05.1926, Chami Almora, U.P. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Dinanath Sharma, Batuknath Kiste. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Chami, Kwerali, Bageshwar, Almora, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Hari Prasad. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.10.1957, Sultanpur (U.P.). Principal & Head. Deptt. Of Traditional Sanskrit Studies Faculty of Arts, M.S. Univ. of Baroda. ***Bks.*** 05. Nayī Kavītā kī Bhāṣā, Kāvyaśāstrīya Sandarbha meṃ, Vyākarana, A comparative Stylystic Study of Tillyard and Kuntak, Kāvyaśastra ke Badalte Āyām. ***Ps.*** 15. ***Add.*** I, B-196, Subodh Nagar, Mardalpur, Baroda.

Pandey, Hari Shanker. M.A., Ph.D. ***b.*** 20.02.1963, Narayanpur (Bihar). Asct. Prof. ***Bks.*** 12. Śrīmadabhagavat Gītā kī Stutiyon kā Samīkṣātmaka Adhyayan, śrīsūkta Evam Jaināgam. ***Ps.***130. ***Add.*** Jain Visvabharati Institute, Ladnun, RJ. ***Ph.*** (01581) 22595.

Pandey, Harihar Prasad. Acharya. ***b.*** 15.04.1924, Siwan, Bihar. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Martand Shastri, Ramji Shastri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Tikamani Sanskrit College, B-I/140/A, Varanasi, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Harihar. Acharya in Jyotiṣa. ***b.*** 1914, Ajamgarh, U.P. ***Gp.*** Hrikesh Upaddhyay, Neelkanth Joshi. ***Bks.*** Umodvāha-mahākāvyam. ***Add.*** B-27/31/B, Minagakothi, Durgakund, Varanasi, U.P.

Pandey, Harish Chandra. Acharya. ***b.*** 28.09.1953, Almora, U.P. Teacher. ***Gp.***

Badrisingh Chouhan, Purnanand Sharma. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Govt. Inter College, Kanda, Almora. U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Harishankar. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 20.02.1963, Narayanpur, Bihar. Prof. & HOD Prakrit Avam Jain Agam Deptt. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi, U.P. ***Gp.*** Prof. Ray Ashwini Kumar, Dr. Laxmi Narayan Chobey. ***Sp.*** Dr. Satyanarayan Sharma, Dr. Pramod Kumar. ***Bks.*** 22. Pāiyakahāo, Setubandha, Prākṛta Kathāeṃ, Bhaktāmbara Saurabha. ***Ps.*** 210. ***Spl.Ref.*** He is a major scholar of Jain Agam and wildly written and worked on Jain Sāhitya. Gold Medelist, Rashtriya Shodh Puruskar 9th U.G.C. 2002-05, Achareya Mahapragya Sāhitya Puruskar-2006.

Pandey, Harivansh. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 31.13. 1948, Champaran, Bihar. Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Rajagopal Sanskrit College, Ayodhya, Faizabad U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Hetal Maheshbhai. M.A., Ph.D. ***b.*** 18.05.1970. Asst.Prof. HOD School of Languages Gujrat Uni. Ahemdabad. ***Bks.*** 03, Personality, Nityotsav, Vivdhyam. ***Ps.*** 13. ***Add.*** 205, Panchtirth Appartment Jodhpur Char Rasta Satelite, Ahemdabad. ***Ph.*** 09426699899. ***Spl.Ref.*** He Awarded by Pratibha Samman 2008. Various Work in Tribal Child Woman.

Pandey, Hiralal. Acharya. ***b.*** 08.02.1945, Mirzapur, U.P. Head of Sāhitya. ***Bks.*** Kumbhasamudbhavam (Nā-aka). ***Add.*** 8, Baksi Khurd, Daraganj, Allahabad U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra, Jyotiṣa Śāstra.

Pandey, Indu Shekhar. Acharya in Jyotisa. ***b.*** 05.05.1935, Varanasi, U.P. Asst. Prof., S.S.V., Varanasi. ***Gp.*** Pt. Rama Vyasa Pandeya, Pt. Avadha Bihari Tripathi, Pt. Sivasankara Pandeya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 2/22, Bhadaini, Varanasi (U.P) ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Pandey, Isha Dutta Shastri. Achayra in Sāhitya, Kāvyatīrtha, Sāhitya Ratan. ***b.*** 1915. Ajamgarh (U.P.). ***Bks.*** 01. Pratāp Vijay. ***Expired in*** 1944. ***Spl. Ref.*** Poet in Skt.& Hindi.

Pandey, Jagadish Chandra. Acharya in Sāhitya, Shiksashastri. ***b.*** 01.06.1950, Almora, U.P. Teacher. ***Gp.*** Asharama Upadhyaya, Satyavrat Sharma, Dr. Madan Mishra. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Sanatan Satsang Sanskrit Mahavidyalaya, Kashipur, Nainital (U.K). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Jagannarayan. Acharya (Sāhitya. Vyākaraṇa), M.A., Ph.D. ***b.*** 01.01.1944, Baliya (U.P) Rtd. Prof. R. Sk.S. Jaipur Campus. ***Gp.*** Acharya Pattabhiram Shastri. ***Bks.*** 18. Maheśvarīcaritam, Rājendra-śatkam, Indīrā-śatkam, Bhaktīsinghcaritam, Sāhityanavnītam. ***Ps.*** 30. ***Add.*** 1 – B. Shanti Nagar, B – Block, Gurjar ki Thadi, P.O. Shyam Nagar, Jaipur (Raj.) – 302019. ***Ph.*** 290491. ***Spl.Ref.*** 70 poems & speechs were board cast from DoorDarsana Centre of Jaipur, Delhi & Jammu. He is famous Handy Storywriter and great popular poet Sanskrit & Bhojpuri. written summary & Critical comm. of Abhijñānśākuntalam, Raghuvaṃśam, Kirātārjunīyam, Pratimā-nā-kam, Svapna-vāsvadattam. Vṛttaratnākar etc.

Pandey, Jagaprasad. Acharya. ***b.*** 16.11.1955, Jalalpur, M.P. Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Raj Gopal Sanskrit College, Ayodhya, Faizabad (U.P) ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Jai Narayan. M.A., Ph.D. ***b.*** 06.01.1939. Mokameh. Prof. Deptt. of Skt., R.U., Ranchi. ***Bks.*** 01. Ṛgbhāṣya Saṃgrah-1 . ***Ps.*** 12. ***Add.*** B – 26, Harmu Housing Colony. Harmu, Ranchi– 12. ***Ph.*** (0651) 243553.

Pandey, Janardan Prasad. Acharya in Sāhitya & Sāṅkhayoga, Ph.D. ***b.*** 01.02.1950, U.P. Teacher. ***Gp.*** Pt. Ganapati Shastri, Yadunath Pandey, Onkaranath Shukla. ***Bks.*** 01. Bhṛṅgadūtaśatakam (Kāvya). ***Add.*** B.N. Mehata Sanskrit Mahavidyalaya, Pratapgarh (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Sāṅkya Yoga.

Pandey, Janardan Prasad. M.A. (Skt. & Hindi), D.Phil. ***b.*** 27.11.1962. Jaunpur (U.P.). Asct. Prof. R.Sk.S. Ganganath Jha Campus, Allahabad. ***Bks.*** 07 Niḥṣyandinī, Nīrājanam, Udgārapañcāśikā, Bhāvacchandaḥśatī. ***Ps.*** 21. ***Add.*** 7L/7A, Shivpuri, Govindpur, Allahabad, U.P. – 211004. ***Ph.*** (0532) 2543031, 2460957,

09450253332. ***Spl.Ref.*** Well known contemporary Skt. Writter. Recieved Kalidas Puraskar, Pt. Pratap Narayan Mishra Puraskar, Pt. Raj Jagannath Puraskar, Vyasdhawaj Puraskar & Maharshi Badarayana Vyas Samman, President, Govt. of India.

Pandey, Janardan. M.A., Acharya in Sāhitya. ***b.*** 21.01.1920, Almorha. Sr.R.A., Tibbati Siksha Sansthan. ***Bks.*** 46. Gorasasamhitā (Vol.I-II), Bhaktī Vivekaḥ, Sidhānta Paddhatt, Uśārāgodaya Nā-ikā. ***Add.*** K22/39, Panchganga, Varanasi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, President Awardee – 2008.

Pandey, Kamal Kant. Acharya in Navya Vyākaraṇa. ***b.*** 28.12.1918, Mirzapur. (U.P) Rtd. Teacher. ***Gp.*** Shukadevacharya, Ramyash Tripathi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Vill. Baburachande. Mirzapur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pandey, Kamal Prasad. Acharya in Navya Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. ***b.*** 28.05.1946, Sidhi, M.P. Asst. Prof. Sanskrit Deptt., C.M.D. College, Bilaspur. ***Gp.*** Bhupendrapati Tripathi, Kalikaprasad Shukla, Dr. Prabhudayal Agnihotri. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Near Shiva Mandir. Vidya Nagar, Bilaspur. (M.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pandey, Kamal Shankar. Acharya in Vedānta, M.A. ***b.*** 12.07.1946, Varanasi, (U.P) H.O.D. of Sanskrit. ***Gp.*** Dr. Adyaprasada Mishra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** G.D. Binani Post Graduate College, Mirzapur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Pandey, Kamala Prasad. Acharya in Navya Vyākaraṇa. M.A., Ph.D. ***b.*** 28.05.1946, Ratanpurva, Sidhi, (M.P). Asst. Prof., Skt. Deptt., C.M.D. College, Bilaspur. ***Gp.*** Bhupendrapati Tripathi, Kalikaprasad Shukla, Dr. Prabhudayal Agnihotri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Near Shiva Mandir. Vidya Nagar, Bilaspur. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pandey, Kamla. M.A., Ph.D. Acharya in Sāhitya. ***b.*** Nanital. Asstt. Prof., Vasant Kanya Mahavidyalaya, Varanasi. ***Bks.*** 04. Rakṣata Gaṅgām, Gaṅgādaṇḍkam. ***Add.*** B-16/38 B-1 Pandey Haweli, Til Bhandeswar Colony, Varanasi – 10. ***Spl. Ref.*** Founder Director, Sanskrit Matri Mandalam.

Pandey, Kanhaiyalal. Vyākaraṇa, Sāhitya, Acharya in Vedānta. ***b.*** 15.08.1928, Babura, Mirzapur, (U.P.) ***Gp.*** Raghunath Sharma, Muralidhar Mishra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Vill. Babura, Mirzapur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pandey, Kantichandra. Rtd. Professor. Lucknow Univ. ***Bks.*** 01. Śaivadarśana Bindu, Abhinava Gupta : An Historical Philosophycal study of K.C. Pandey by G.C. Pandey. ***Spl.Ref.*** He was the first scholar with his independent reasearch on Kashmir Shaiv Darśana. 'Abhinavguta Institute' is estabalished by Pandey ji at Lucknow. He wrote many articles, research papers and books on Kāśmīra Śhaiva Darśana.

Pandey, Kapildev. M.A., Ph.D., Navya-Vyākaraṇasahstri. ***b.*** 01.09.1936, Ratsar, Ballia, (U.P.). Gp. Sabhapati Sharma Upadhyay, Dr. Siddheshvar Bhattacharya, Dr. Shrinarayan Mishra. ***Bks.*** 03. Mīmāṁsānyāya-prakāśādhya-yanam, Sṛṅgāratilakam, Chando,laṅkā-ramanjarī. ***Add.*** C-27/3, Jagat Ganj, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya, Darśana, Bhasavigyan, Skt. Poet.

Pandey, Kapildev. Navya Vyākaraṇa Shastri, Ayurvedacharya. ***b.***01.07.1909, Azamgarh, (U.P.). Teacher. ***Add.*** Village & P.O. Jigarsandi, Azamgarh Dist. (U.P.). ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa & Ayurveda..

Pandey, Kashi Prasad. Acharya. ***b.*** 01.01.1960, Allahabad. Principal. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Ram Sanskrit Vidyalaya, Lahure Parwa Charak, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Kashinath Chandramauli. Principal, Shardul Acharya Sanskrit Vidyapeeth, Bikaner. ***Bks.*** 31. Śrīmānjavāharayaśo-vijayākhyā.

Pandey, Kaushal Prasad. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ayurveda-Ratna, Ph.D.. ***b.*** 30.11.1939, Bhitanta, M.P. Asct. Prof., Government Ayurveda Mahavidyalaya, Rewa. ***Gp.*** Dr. Chandrikaprasad Dwivedi, Pt. Ram Vedana Shukla, Sadashiv Joshi. ***Bks.*** 01. Brāhmaṇa

Granthesu Savarna-vivāhaḥ. *Add.* 24 B, Civil Lines, Rewa (M.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Āyurveda.

Pandey, Kaushalendra. Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 17.08.1959. Varanasi. Prof., Faculty of SVDV, Deptt of Sāhitya, BHU. ***Bks.*** 01. Kiyat Kāvyam. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** U.P. Sanskrit Sāhitya Puraskar 1986. Broadcast of Nā-ya and Talks from A.I.R.

Pandey, Kavish Ramkailash. M.A., *b.* 14.10.1939. Allahabad, U.P. *b.* 05. Bhārata-śatakam, Mahākaviśatakam, Kulapaticaritam, Tulasīdāsacaritam, Śrīhanumada-ṣtakam. ***Ps.*** 50. ***Expired*** on 08.06.1997. ***Spl.Ref.*** Honouray D.Litt. Ashukavi, Visiting Prof. Holland, Russia, Talks from AIR.

Pandey, Kishorchandra Iswarlal. Sāhitya-charya, Shiksashastri. *b.* 03.03.1952, Jam Nagar, GJ. Principal, Veda Bhavan Vidyalaya. Gp. Narayan Shastri, Dr. Manoharalal Dwivedi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Ved Bhawan Vidyalaya, Dwaraka (GJ). ***Spl.Ref.***. Sāhitya.

Pandey, Krishna Kumar. Acharya in NavyaVyākaraṇa. *b.* 25.03.1957, Gorakhpur, (U.P.). Manuscript Incharge. Gp. Dr. Kalikaprasada Shukla, Dr. Krishnakumar Mishra. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Tridandi Ved Sanskrit Research Sansthan, Koshlesh Sadan, Katra, Ayodhya, Faizabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** NavyaVyākaraṇa & Manuscript.

Pandey, Krishna Narayan. M.A., Ph.D., L.L.B. *b.* 15.01.1950. Unnao, U.P., Dy. Director. ***Bks.*** 20. Svayamvaram (Play), Lokajīvane Saṃskṛtam, Saṃskṛtāmṛtam, Mānavatā Vijayam, Mārco Polo Dṛ-am Bhāratam. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 30, Akashvani Bhavan, New Delhi-110001. ***Ph.*** 3719855, 3385488.

Pandey, Krishnamurti. Acharya. *b.* 26.03.1956, Pratapapur, Varanasi. Teacher. ***Gp.*** Prof. Virendra Kumar Varma, Dr. Gopalchandra Mishra, Dr. Vindhyeshvariprasad Tripathi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Adarsh Uchattar Madhyamika Vidyalaya, Ishwargangi, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Kusumlata. Acharya in Sāhitya, M.A., Shiksashastri. *b.* Lohta, Varanasi, (U.P.). Shri Usha Shastri Kendriya Sanskrit ***Ps.*** 01. ***Add.*** Vidyapitha, Aliganj, Lucknow (U.P.). ***Spl.Ref.***. Sāhitya, ShiksaŚāstra.

Pandey, Lal Bihari. Acharya (Purāṇetihāsa & Sāhitya), Ph.D. *b.* 01.01.1933, Sitapatti, Gajipur, U.P. Prof., Sampurnanand Sanskrit Univ., Varanasi. ***Gp*** Jagdish Chandra Shastri, Shukdev Jha, Mukund Shastri, Baladev Shastri. ***Ps.*** 03. ***Add.*** K-7/19, Gayaghat, Varanasi U.P. ***Spl.Ref.*** Purāṇa & Sāhitya.

Pandey, Lalit Prasad. Acharya (Sāhitya & Vyākaraṇa) *b.* 15.10.1921, Pratapgarh, U.P. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Ghutara jha, Jagannath Shastri. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Motor Sales Ltd. Charbagh, Lucknow U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Lalit Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A., D.Phil. *b.* 03.08.1941, Bharatpur, Garhwal. Principal. Omkaranand Sanskrit Maha-vidhalaya, Devprayag. ***Bks.*** Kedārakhaṇḍasya Siddhapī-hānām Sarvekṣaṇātmakam Adhya-yanam. ***Add.*** 86/6, Virabhadra Marg, Rishikesh U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Lalit Prasad. Acharya in Sāhitya. *b.* 16.02.1952, Almora, U.P. ***Gp.*** Bahadur Singh, Badri Singh Chouhan, Durga Dutt Pathak. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Narayan Sanskrit Maha-vidhyalaya, Kamerhidevi, Almora U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Lallan. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 22.01.1943, Azamgarh, U.P. Asct. Prof. ***Gp.*** Dwarikanath Shukla, Vishvanath Shastri. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Shri Digambar Jain Acharya Sanskrit Mahavidhalaya, Jaipur RJ. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Laxmi Niwas. M.A., M.Ed., Ph.D. *b.* 15.07.1961. Kathiraon, Varanasi. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Asct. Prof. in Education, R.Sk. S. Lucknow Campus.

Pandey, M.D. M.A., Ph.D. *b.* 12.08.1928, Almora. ***Bks.*** 03. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 1292, Sector -15, Panchkula–134113 (HR). ***Ph.*** (0172) 572167.

Pandey, Madhusudan. M.A. (Skt. Hindi.), Ph.D. Acharya (Vyākaraṇa, āyurveda), āyurveda

Ratna. *b.* 15.12.1955. Lect., Govt. Girl Sr. Sn. School, Aurangabad, Bihar. *Bks.* 01. Mahogrākāmākhyāstavanaśatakam.

Pandey, Mahadev. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa, Nyāya Śāstra, Vedānta). *b.* 1894, Elaya, Rahtos, Bihar. Asst. Prof. Gayank Sanskrit College, Kashi. *Gp.* Pt. Chandradhar, Pt. M.M. Balkrishan Mishra. *Sp.* Dr. Trinathdas Sharma, Dr. Rammoorti Tripathi, Dr. Jagannath Pathak. *Bks.* 04. Bhārataśatakam, Pūrṇāstavaḥ, Saundaryalaharī. *Spl.Ref.* He was appointed as kashi peethadhipati by Jyotisapeetha-dhishwar shri swami krishanbodhasram ji maharaj in 1958 then he was become famous as swami maheshwaranand saraswati.

Pandey, Maharajdin. M.A., Ph.D. *b.*30.11.1956. Mahadev Nishula. Asst. Prof. Narendradev Mahavidhyalaya, Badhanan (U.P.). *Bks.* 07. Yotīkīyam, Maunavedha Vīvikto Vartmānam, Kulrām Pracālimp. *Add.* Mahadev Nischala Purva, Parsada Gonda 01. *Spl. Ref.* Honoured by UP Skt. Sansthan, Gazal in Skt. Literature.

Pandey, Mathura Dutt. M.A. (Hindi, Skt.), Shastri, Ph.D. *b.* 12.08.1928. Almora Uttaranchal. Rtd. Principal, *Bks.* 05. Gītimañjarī. *Add.* 1292/15 Panchkula, Haryana– 13. *Spl.Ref.* Visiting Prof. in Tribhuavan V.V. (1961-65), Maharishi Vedic V.V. (1991), Honour from Govt. of U.P. and Govt. of U.K.

Pandey, Mohanlal Sharma. Acharya in Sāhitya. *b.* 23.09.1934. Director, Akhil Bhartiya Vedvedang Jyotiṣa Swadhyaya Sansthan, Jaipur. *Bks.* 04. Patradūtam, Natitatiḥ. *Add.* 2381, Khajane walo ka rasta, Jaipur – 01. *Spl.Ref.* President Awardee, Vashaspati Award, Margh Puraskar, Śāstra Mahodadhi, Editor Swarmangala Magazine.

Pandey, Muralidhar. Acharya. M.A., D.Litt. *b.* 05.10.1926, Siwan, Bihar. Principal (Rtd). *Gp* Brihaspati Pandey, Vasudev Mishra. *Bks.* 01. Śaṅkarāt prāgadvaita-vāda. *Add.* Head, SankaraVedanta Kosh Yojana, Sam-Purnananda Sanskrit Vishva-vidyalaya, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* śāṅkara-Vedānta, RamanujaVedānta. Received U.P. Sanskrit Academy Award.

Pandey, Musaphir. Acharya in Sāhitya. *b.* 19.06.1947, Varanasi, (U.P.). Asstt., Saraswati Bhavan Granthayalaya. *Gp.* Pattabhiramshastri. *Ps.* 01. *Add.* C-3, I.T.H. Colony, Kaijampura, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Nagendra. Acharya in Jyotiṣa. M.A. *b.* 14.07.1948, Bhanti, Bihar. Asst. Prof. *Gp.* Prof. Avadhabihari Tripathi, Prof. Krishnachandra Dwivedi. *Ps.* 05. *Add.* Agnihotra Bhawan, Sampurnanand Sanskrit Vishvavidyalay, Varanasi (U.P). *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Pandey, Nand Kishore. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 08.08.1941, Champaran. Bihar. Asst. Prof. Vedic Literature Deptt. *Gp.* Bhagavatprasad Mishra, Dr. Gopal chandra Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Kameshwar Singh Sanskrit Vishwa-vidyalay, Darbhanga (Bihar).

Pandey, Nand Kishore. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.03.1955, Bhitri, M.P. Asst. Prof. *Gp.* Anjaniprasad Pandey, Subhalaksana Chaturvedi. *Ps.* 01. *Add.* Govt. Venkat Sanskrit Mahavidyalay, Rewa (M.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Narayan Dutt. Acharya. *b.* 05.07.1923, Pithauragarh. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Purnanand Sharma, Sumiran Mishra. *Ps.* 02. *Add.* Vill. Shaktipur, Dudhpokhar, Champawat, Pithauragarh (U.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Narendra Nath. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D., D.Litt. *b.* 02.01.1950. Prof. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. *Gp.* Shri Ram Prasad Tripathi, Shri Devswaroop Mishra. *Sp.* Dinesh Kumar Garg. *Bks.* 10. Rāmānanda Vedāntādarśaḥ, Vākyapadīyapā-ha-bheda-nirṇayaḥ, Dhammapadavyākhyānam, Pari-bhāṣā-pradīpārciḥ, Vākyapadīyam (ed.). *Add.* N 16/65 1-kh-1, Sudama Nagar Varanasi U.P. 221010.

Pandey, Narottam. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.* 03.09.1922, Shilauti, U.P. Rtd. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Vill. Shilauti, Nainital (U.K). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Nigam. Acharya, JRF, NET. *b.*

01.12.1981. Asstt. Prof. RSKS., Lucknow Campus. ***Bks.*** 01. Golaparibhāṣā. ***Ps.*** 05. ***Add.*** RSKS Lucknow Campus, Vishal Khand-4, Gomti Nagar, Lucknow. M. 09450529755. pandey nigam@gmail.com *Spl. Ref.* Jyotiṣa.

Pandey, Om Prakash. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 15.09.1949. Barabanki, U.P. Rtd. Prof & HOD, Lucknow Univ. ***Bks.*** 11. Vedanāvallakī, Dīpaśikhā Sañcāriṇī, Vaidikakhilasūkta eka adhyayana, Vaidika Sāhitya evam saṃskṛti kā svarūpa, Sāmavedīya brāhmaṇo kā anuśīlana. ***Spl.Ref.*** Honour from U.P. Skt. Sansthan, U.P. Hindi Sansthan etc. Visiting Prof. in Paris.

Pandey, Om Prakash. Acharya in NavyaVyākaraṇa. Shikska Shastri. ***b.*** 01.01.1957, Jogapur, Pratapgarh, U.P. ***Gp.*** Pt. Giridhara Sharma, Pt. Satyadeva Tripathi, Pt. Sadhurama Tripathi, Pt. Deviprasada Tripathi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Jogapur, Bhawani-pur, Pratapgarh (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pandey, Om Prakash. Acharya in Purāṇetihāsa, M.A., M.Ed.. ***b.*** 01.05.1960, Ghazipur, U.P. ***Gp.*** Dr. Lalbihari Pandey, Dr. Virendrakumar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** K-7/19, Gaya Ghat, Varanasi. ***Spl.Ref.*** Purāṇetihāsa.

Pandey, Paras Nath. Acharya. ***b.*** 19.07.1938, Vikrampur, Ghazipur, (U.P.). Asstt. Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** D 1/38, Lahauri Tola, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Prabhakar Prasad. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 01.05.1958, Rewa, (M.P.). Teacher. Gp. Pt. Anjaniprasada Pandey, Pt. Ramadhar Dwivedi, Hanumatprasad Tripathi, Pt. Subodha Jha. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Govt. Venkat Sanskrit Mahavidyalaya, Rewa, (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Prabhu Nath. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 31.12.1958, Hata, Deoria, (U.P). Principal. Gp. Dr. Parasanath Dwivedi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Vill. Mujahana, Rahim Hata. Deoria Dist. (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Prachee Kumar. M.A., Ph.D. ***b.*** 20.07.1977, Chitracoot. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Titihara, Chitrakoot, (M.P.) ***Ph.*** 09450614916.

Pandey, Pradeep Kumar. Acharya. (Vyākaraṇa & Sāhitya). Ph.D. ***b.*** 20.07.1977, Chitrakoot. Asst. Prof. R.Sk.S., Bhopal Campus. ***Gp.*** Prof. Ram Manohar Mishra, Pt. Purushottam Tripathi, Prof. Vashishtha Tripathi, Dr. Ram Nevaj Pandey. ***Sp.*** Manas Sharan Tiwari, Bharat Bhushan Tripathi, Shiv Sampat Dwivedi. ***Ps.*** 10. ***Add.*** L – 142, ABDL Paradise (Sant Asharam Nagar – III), Laharpur, Bhopal – 426043. ***Ph.*** 09406542991. ***Spl.Ref.*** Editing Reseach Jounal 'Śāstra-Meemamsa' from 2011.

Pandey, Prakash. M.A., Acharya. ***b.*** 30.12.1955, Vindhyachal, Mirzapur, (U.P.). Principal, R.Sk.S. Ganganatha Jha Campus, Allahabad (U.P.). ***Bks.*** 09. ***Ps.*** 38. ***Add.*** E-670, D.D.A. Flats, Poket – 03, Bindapur, Dwarika, New Delhi – 1100591. ***Spl.Ref.*** Eminent scholar of Sharada lipi, Shaivasim & Aethestics.

Pandey, Prakash. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 15.07.1941. Yavatmala, Maharashtra. Principal, Manohar Kamdi Mahavidyalaya, Nagpur. ***Bks.*** 04. Literary Aspects of Bhavabhūti, Cultural Aspects of the age of Bhavabhūti, The World of Bhavabhūti. ***Add.*** Ahilaya, Somalwada, Vardha Road, Nagpur. *Spl. Ref.* Poetry in Skt. and English.

Pandey, Pratap Narayan. Acharya, M.A. ***b.*** 09.08.1940, Faizabad (U.P). Principal. ***Gp.*** Ramprakash Shukla, Pt. Ravidatta Mishra, Pt. Bhavanisahay Pandey. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Krishnanand Ramvari Hindi Sanskrit Mahavidyalaya, Rudauli, Barabanki (U.P.) ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Radheshyam. Acharya in Jyotiṣa (phalita & Siddhānta), Sāhitya. ***b.*** 11.12.1954, Faizabad, (U.P.). HOD, Jyotiṣa. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Rajgopal Sanskrit Mahavidyalaya, Ayodhya, Faizabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa & Sāhitya.

Pandey, Radheshyam. Acharya. ***b.*** 01.01.1948, Rohtas, Bihar. Asstt. Teacher. ***Gp*** Ramkuber, Dvijendranath Mishra. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Bapu Higher Secondary School, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** DharmaŚāstra.

Pandey, Radheshyam. *b.* 17.01.1940. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Netaji Nagar, New Delhi. *Ps.* 01. *Add.* C-4/G, Janak Puri, New Delhi – 110058. *Spl.Ref.*. Sāhitya.

Pandey, Radheshyam. Acharya in Dharma Śāstra, Ph.D. *b.* 25.08.1931, Siwan, Bihar. Researcher. *Gp* Indushekhar Pandey, Kailashapati Tripathi. *Add.* D-5319, Lanka, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* DharmaŚāstra & Veda.

Pandey, Raghunath. Acharya, M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 02.06.1939, Nalanda, Bihar. Asst. Prof., Deptt. Of Buddhist studies, University of Delhi. *Bks.* 04. Prācīna-bhāratīyavāṅmaye svarga-narakavarṇanam, Bhāvavivekakṛta-prajñāpradīpasya Bho-abhāṣātaḥ Saṁskṛta-rūpāntarīkaraṇam, Mādhyamikaśāstram, Udayanācāryanirākaraṇam. *Add.* B-20, J-I, Dilshad Garden, Delhi. *Spl.Ref.* Bauddha Darśana, Pali & Tibetan Languages.

Pandey, Raj Narayan. Acharya in navya-Vyākaraṇa. *b.* 08.08.1950, Banda, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Rambhajan Pandey. *Ps.* 03. *Add.* Shri Balaji Sanskrit Vidyalaya, Chitrakut, Banda (U.P.). *Spl.Ref.* Navya Vyākaraṇa.

Pandey, Rajbali. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 1907, Deoria. Prof. B.H.U. *Bks.* 17. Bhāratīya Lipiśāstra, Aśoka ke Śilālekha, Bhārtīya Nīti kā Vikāsa, Hindū Saṃskāra, Vikramāditya Samvāt Pravartaka. *Expired on* 06.06.1971.

Pandey, Rajendra Prasad. Acharya in Vyākaraṇa & Karmakāṇḍa. *b.* 10.12.1953. *Add.* Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapith, Katwaria Sarai, New Delhi-110016. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Karmakāṇḍa.

Pandey, Rajendra Prasad. Acharya, M.A. *b.* 03.07.1962, Almora, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Durgadatta Kandapal, Shekhar Joshi. *Ps.* 01. *Add.* Govt. Inter College, Nainital (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Rajendra Prasad. Acharya. *b.* 05.02.1957, Pamapur, Faizabad , (U.P.). Asst.Prof. *Ps.* 01. *Add.* Shri Hanumat Sanskrit Mahavidyapitha, Ayodhya, Faizabad(U.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Rajendrakumar Jayshankarbhai. Acharya in Sāhitya, Śuklayajurveda. *b.* 13.11.1963, Jamnagar, GJ. Asst. Prof. in Sāhitya. *Gp* Krishnakashinath Godase, Ramdas V. Kaundinya. *Add.* Bhagavata Vidyapith, Krishna Dham, Sola, Ahmedabad-54 (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya & Śuklayajurveda.

Pandey, Ram Badan. Acharya, Ph.D. *b.* 01.08.1975. Asst. Prof. Shri Ekrasanand Skt. College Mainpuri U.P. *Gp.* Prof. Ramyatna Shukla, Prof. Ram Manohar Mishra. *Sp.* Purnendu Mishra, Rambabu Pandey. *Ps.* 05. *Add.* Vill. Korari, Post Rolli, Kalyanpur, Distt. Chitrakut U.P. dr.rambadanpandey@gmail.com. *Mob. No.* 09457680230.

Pandey, Ram Bhajan. Acharya in NavyaVyākaraṇa. *b.* 01.04.1930, Banda, U.P. Principal. *Ps.* 05. *Add.* Sri Janki Sanskrit Mahavidyalaya, Purāṇai Lanka, Chitrakut, Satna M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pandey, Ram Chandra. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 16.07.1931, Varanasi, (U.P.). *Gp* Rajanarayan Sharma, Badrinath Shukla. *Ps.* 05. *Add.* 24, Chavalary Lines, University of Delhi. Delhi – 110007. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Darśana.

Pandey, Ram Kailash. M.A., Ph.D. *b.* 1939. Principal. Gurukul Skt. College, Faijpur MH. *Bks.* 03. Bhāratam, Mahākaviśatakam, Hanumadaṣ-akam. *Spl.Ref.* Honorary D.Litt. By Vishva Unnayan Sansad, Delhi.

Pandey, Ram Kishor. Acharya in Sāhitya. *b.* 15.10.1933, Pratapgarh, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Sitaram Shukla, Kamalakant Shukla. *Ps.* 03. *Add.* Shri Ramdesika Sanskrit Maha-vidyalaya, Daraganj, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Ram Lakhan. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 02.01.1955. Prof. RSKS Lucknow Campus. *Bks.* 03. Śākuntalam Dharma-vijñānam, Gānāyanī, Sattrahavī Śatābdī ke Saṃskṛta Mahākāvya. *Ps.* 26. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow Campus, Vishal Khand-4, Gomti Nagar, Lucknow -10 Ph. 0522-

2392490, M. 09532100121. *Spl.Ref.* Sāhitya, Poet.

Pandey, Ram Narayan, Acharya in Sāhitya, ShikshaShastri. *b.* 27.10.1942, Teacher, *Ps.* 01. *Add.* Govt. Senior Sanskrit School, Mandawali, Delhi-110092.

Pandey, Ram Nath. M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1960. Nalanda (Bihar). R. Asct. *Bks.* 04. Kālidāsa ke Rūpakon kī Bhāṣā Saṃracanā, Prācīna Bhārtīya Sāhitye Svarga Narakavarṇanam, Hemacandra ke Apabraṃśa sūtron kī Pṛṣ-ha Bhūmi, Vipassana Vimarśa. *Ps.* 01. *Add.* D – Pocket – 214, Dilshad Garden, Delhi – 95. *Ph.* (011) 2295900, Mob. 9868110178.

Pandey, Ram Niranjan, Acharya in Darśana, M.A., Ph.D. *b.* 1908, *Ps.* 02. *Add.* Anantavijay, Nallakunta, Hyderabad (A.P.). *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Pandey, Ram Pujan. Acharya in Navyanyāya, Ph.D. *b.* 01.01.1964. Prof., Dept. of Nyāya. S.S.V., Varanasi. *Gp.* Badrinath Shukla, Shri Ram Pandey. *Sp.* Dr. VishnuPad Mahapatra, Dr. Bamdev Senapati. *Bks.* Annambha--akṛta-Tarkasaṅgrahaḥ Ta--īkānāñca Samīkṣā-tmakamadhyayanam, Anumitiparāmarśayoḥ Kāryakāraṇabhāvavicāraḥ. *Ps.* 11. *Add.* 05, Naveen Acharya Niwas, Sampoornanand Skt. Univ. Parisar, Varanasi U.P. *Spl.Ref.* Skt. Pandit Samman.

Pandey, Ram Shankar. Acharya in NavyaVyākaraṇa. *b.* 01.07.1926, Ballia (U.P.). Rtd. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Basirkapur, Ballia (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pandey, Ram Sharan. Acharya, M.A. *b.* 01.03.1953. Gonda, U.P., HOD. Shri Rupakala Sanskrit Vidyapeeth. *Ps.* 04. *Add.* Shri Divyakala Kunj, Ayodhya, Faizabad U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Pandey, Ram Surat. Acharya in Darśana. *b.* 01.12.1915, Balia, U.P. Rtd. Principal, Jubilee Sanskrit College, Balia. *Ps.* 05. *Add.* Rajputanewari, Ballia U.P. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Pandey, Ram Suresh. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 05.04.1938, Prof., Gorakhpur Univ. *Ps.* 05. *Add.* 3, Vani Vihar, Uttam Nagar, New Delhi.- 110059. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Pandey, Ram Vriksha. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya, AdvaitaVedānta & Pālī), M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1934, Nalanda, Bihar. Asct. Prof. *Gp.* Brahma Dutt Dwivedi, Shitamshushekhara Bhagchi. *Ps.* 06. *Add.* Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeeth, Katwaria Sarai, New Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya Śāstra, Advaita Vedānta.

Pandey, Ram Vyas. Acharya in Jyotiṣa. *b.* 1895. Baliya (U.P.). HOD. Sanskrit College, Kashi. *Gp.* Pt. Ramjatna Ojha, M.M. Pt. Sudhakar Dwivedi. *Sp.* Dr. Hajariprasad Dwivedi, Pt. Avadhvihari Tripathi, Pt. Sharada Prasad Mishra, Pt. Kaladharprasad Tripathi, Pt. Jeevnath Ojha, Satnarayan Tripathi, Ghanshyam Mishra, Bhavbhuti Mishra, Chabinath Tripathi. ***Expired on*** 08.06.1976. *Spl.Ref.* Published Saurpanchang from Gyanmandal Institute, Kashi.

Pandey, Rama Kripalu. Acharya. *b.* 05.01.1929, Veshdar, Banda, (U.P.). Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Shri Vamdev Sanskrit Mahavidyalaya, Banda (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Ramagya. Acharya (Vyākaraṇa). Asst. Prof., Patna College, Patna. *Gp.* Pt. Devnarayan Tripathi, Pt. Damodar Shastri, Gangadhar Shastri, Shivkumar Shastri. *Sp.* Dr. Prahlad Pradhan, Sadashiv Mishra, Chintamani Mishra, Lingraj Mishra, Dr. Subhadra Jha. *Bks.* 01. Vyākaraṇa Darśan. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pandey, Ramakant. Acharya in Purāṇaetihāsa, Ph.D., *b.* 15.10.1938, Khapari, (M.P.). Asct. Prof. *Gp.* Mukundashastri Khiste, Ramarup Pathak, Ramaswarup Pauranik. *Ps.* 02. *Add.* Shri G. M. Goenka Sanskrit Mahavidyalaya, Bhadaini, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Ramakant. M.A., Ph.D., Acharya in Sāhitya. *b.* 02.02.1965, Chitrakoot. Asct. Prof. R.Sk.S. Jaipur Campus. *Gp.* Prof. Radhavallabh Tripathi, Pt. Vayunandan Pandey, Prof. Ram Prasad Tripathi, Pt. Ram Yatna Shukla. *Sp.*

Dr. Radha vallabh Sharma, Dr. Rajesh Gupta, Shri Shyam Sundar Sharma & others. ***Bks.*** 45. Nalodayam(ed. with skt. Comm.), Mañjunāthagranthāvalī (ed. 1-5 vol.), Abhinavakāvyālaṅkārasūtram (Hindi comm.), Śivaśatakam (skt.comm.), Alivilāsisaṃlāpaḥ (Skt.comm.) ***Ps.*** 70. ***Add.*** 122, Bhagirath Nagar, Gopalpura By Pass. Jaipur – 302015. ***Ph.*** (0141) 2504411. 9414775638. ***Spl.Ref.*** Eminent commentator of rare Sanskrit books. 'Vangmaya Sumeru' Award from Sharada Peetham. 'Ratnakar' Award from Vyas Bala Vaksha Shodh Sansthan, Jaipur. 'Devavani Bhushana-2011' samman from Devavani Parishad, New Delhi. Directed a number of Sanskrit Dramas. Editor of Sanskrit Magazines (Jayanti, Saraswati-saurabha). Well known Researcher and Critic of Grammar, Poetics and contemporary Sanskrit Literature.

Pandey, Ramakant. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. ***b.*** 26.03.1966. Asct.Prof. B.H.U. Varanasi, U.P. ***Gp.*** Ram Manohar Mishra, Vashishtha Tripathi, Late Shri Ramprasad Tripathi. ***Bks.***08. Prauḍhamanoramā Kāraka Bhāga, Prauḍhamanoramā-Pañcasandhi-bhāga, Kāraka Mīmāṃsā, Vaiyākaraṇa Siddhānta Paṅkti Prakāśikā. ***Ps.*** 20. ***Add.*** N.10/70 F 11 New Colony Kakarmatta, Varanasi, U.P. ***Spl.Ref.*** He has worked as fellow in a research project of UGC. ***Mob. No.*** 09454749029.

Pandey, Ramashish. M.A. (Skt., Hindi), Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa Veda), Ph.D., D.Litt. ***b.*** 07.07.1944. Nalanda, Bihar. Rtd. Prof., Marawari Mahavidyalaya, Ranchi. ***Bks.*** 07. Mayūkhadūtam, Indirāśatakam, Prahelikāśatakam, Svatantrabhāratī. ***Ps.*** 100. ***Add.*** MFH 27, Harmuhousing Colony, Ranchi -12 Jharkhand. ***Spl. Ref.*** Vedic Sāhitya Puraskar, Pt. Raj Jagannath Puraskar.

Pandey, Ramchandra. Acharya & Vidyavaridhi. ***b.*** 03.07.1941. Prof. & Ex. HOD, Deptt. of Jyotiṣa, Dean Faculty of SVDV, BHU. ***Gp.*** Pt. Shri Avadh Bihari Tripathi. ***Sp.*** Prof Devi Prasad Tripathi, Dr. Shatrughan Tripathi, Dr. Vinay Kumar Pandey, Dr. Subhash Pandey, Dr. Nigam Pandey, Dr. Chandra Mauli Raina. ***Bks.*** 13. Jyotirvidābharaṇam, Sūrya Siddhānta, Grahalāghavam, Muhurtacintāmaṇi. ***Ps.*** 150. ***Add.*** 38 Manas Nagar Colony, Durgakund Varanasi-221005. Ph. 0542-2310707. M. 09415203658. rcpandey.in@gmail.com ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa, President Awardee, Arya Bhatt Puraskar etc. Britian, Canada, Singapore, Nepal, Switzerland, Holland etc.

Pandey, Ramesh Chandra. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 15.10.1952, Almora, (U.P.). Teacher. ***Gp*** Durgadatta Pathak, Kailashapati. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C.R.S.T. Inter College, Nainital (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Ramesh Kumar. M.A., Acharya in Sāhitya, Ph.D., D.Litt. ***b.*** 01.02.1959. Prof. Sri Lal Bhadur Shastri Rashtriya Skt. Vidyapeetha New Delhi. ***Bks.*** 20. Ovanitattvasiddhānta. ***Ps.*** 34. ***Add.*** V/5 LBS Rashtriya Skt. Vidyapeetha. New Delhi 110016. Ph. 011-46060405. M. 09810207063 profrkpandey@yahoo.co.in ***Spl. Ref.*** Sāhitya. Kundkund Award, Annapoorna Puraskar.

Pandey, Ramkrishna 'Paramahansa'. ***b.*** 01.10.1964, Bhagalpur (Bihar). Principal. ***Bks.*** 01. Agni-Nāradapurāṇyoh Vyākaraṇa-Viṣayāṇām Samikśāṇam. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Principal, Kaliachak Bikram Kishor Adarsh Skt. Mahavidyalya, P.O.-Haria, Midanapoore (W.B.) ***Pin.*** – 721430.

Pandey, Ramsewak. Acharya. ***b.*** Sitapur. U.P. ***Bks.*** 01. Naimiṣāraṇyam. ***Ps.*** 100. ***Expired*** in 1970.

Pandey, Ramsharan. Acharya (Vedānta, Sāhitya), M.A. ***b.*** 29.03.1959, Rampur Sidhi, M.P. Teacher, M.P. Govt. School. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C-K-32/17, Brahmanal, Varanasi U.P. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra, Sāhitya Śāstra.

Pandey, Ratan Kumar. M.A., NET, Ph.D. ***b.*** 10.10.1981. ***Ps.*** 14. ***Add.*** Jahajghat, Purvi Patel Nagar, P.O. Barhaj. Devariya U.P. M. 09936148509. ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa.

Pandey, Ravi Datt. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 15.12.1935. Teacher, Govt. Higher Secondary

Girls School, Jhilmil Colony, Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 499/4, Chandanvari, Bholanath Nagar, Shahdara, Delhi-32.

Pandey, Ravindra Nath. Acharya in Veda. ***b.*** 12.07.1957, Madhu Chapra, Bihar. Asst. Prof. in Ved. ***Gp.*** Vindhyeshvari-prasad Tripathi, Nandkishor Pandey. ***Add.*** C.K. 32/17, Brahmanala, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Veda, DharmaŚāstra & Jyotiṣa.

Pandey, Sangam Lal. M.A., Ph.D., D.Litt., ***b.*** 12.07.1929, Allahabad. ***Gp.*** Pt. Kamlakant Mishra. ***Bks.*** 05. Śrī Śankara, Adwaita Philosophy, Philosophy of Ravīdāsa, Vedāntika Social Philosophy, Bhārtīya Darśan kā Sarvekṣaṇa, Deśabhaktī-catūṣtyam.

Pandey, Shailja. M.A. (Veda. Purāṇetihsa), Ph.D. D.Litt. (VastuŚāstra) ***b.*** 15.06.1954, Varanasi, U.P. R.A., R.Sk.S., Ganganath Jha Campus, Azad Park, Allahabad. ***Bks.*** 06. Vāstu Saukhya, Rājavallabha Mandan, Śaiva Rāmāyaṇa, Griha Vāstu Pradīp, Mayamata. ***Ps.*** 50. ***Add.*** 116 – H/1D, Radha Nagar Colony. Phulwaria Road, Daraganj, Allahabad. Mob. 0945117 9728.

Pandey, Shashi Kant. ***b.*** 07.07.1984. Research Scholar. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Ruiya Hostel Room No. 61. BHU, Varanasi- 05. M. 09451722909. shiva.479@rediffmail.com

Pandey, Shashi Nath. M.A. (Veda), Acharya (Boudh Darśana), NET, Ph.D. ***b.*** 19.01.1971. General Fellow ICPR New Delhi. ***Bks.*** 02. Tantravimarśa, Saṅgama. ***Ps.*** 25. ***Add.*** H.No. 16/96-A Kolhua, Vinayaka Varanasi-221008 M. 9936179829. ***Spl. Ref.*** Veda, Boudh Darśana. Member of Akhil Bhartiya Darśana Parishad.

Pandey, Shitala Prasad. Acharya, Ph.D. ***b.*** 28.01.1962. Varanasi. Asstt. Prof, Deptt. of Dharmagam Faculty of SVDV, BHU Varanasi. ***Gp.*** Swami Karpatrey Ji Maharaj, Acharya Kamlesh Dutt Tripathi. ***Bks.*** 01. Vaikhānasa Āgama eka Adhyayana. ***Ps.*** 40. ***Add.*** Deptt of Dharmagam, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi 221005. M. 09452823899.

Pandey, Shrawan Kumar. M.A. ***b.*** 04.01.1975, Daltonganj. ***Ps.*** 03. ***Add.*** M.R.D.A.V. Public Lohardaga, (Jhharkhand). ***Ph.*** (06526) 24304, 24592.

Pandey, Shri Prakash. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.04.1959, Siwan (Bihar), Asst. Prof., L.S. College, Muzaffarpur (Bihar). ***Bks.*** 01. Hindī Saṃskrit Śabdakośaḥ. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Teacher's Hostel No.-2, Q.No.-36. Univ. Campus, Muzaffarpur – 842001, Bihar.

Pandey, Shrichandra. Acharya in Jyotiṣa, Sāhitya. ***b.*** 1908, Vill. Jounpur, Baliya. Asst. Prof. Lucknow Univ. Lucknow. ***Gp.*** Pt. Ramvyas Pandey. ***Bks.*** 02. Jyotirnibandhāvalī, Grahagatī kā Kramika Vikāsa. ***Expired on*** 23.04.1983. ***Spl.Ref.*** Edited Hrikesh Panchang, Tought in Rastriya Sanskrit Vidyapeeth as Śāstra chavdamani in Jampu Campus.

Pandey, Shriram. Acharya in Nyāya,Vyākaraṇa & Sāhitya. ***b.*** 15.07.1926. HOD Darśana, S.S.V.V., Varanasi, U.P. ***Gp.*** Shri Mahadev Shastri, Badrinath Shukla. ***Sp.*** Sudhakar Dixit, Rampujan Pandey, Vashishth Tripathi, Kailashpati Tripathi. ***Bks.*** 09. Avayavinirākaraṇa, Pratyakṣa Jñāna Mīmāṃsā, Sāṅkhya Pratimā, Yoga Pratimā, Dīdhitikāroparāvicārāṇāmālocanam. ***Ps.*** 10. ***Add.*** B-22/200 A Rakhojva Varanasi, U.P. ***Spl.Ref.*** Gold Medelist. Awarded by President of India.

Pandey, Shriram. M.A., Acharya in Purāṇa. ***b.*** 05.07.1948. Asst. Prof. Śāstrartha College, Dashashwamegh, Varanasi. ***Gp.*** Dr. Ramashankar Tripathi. ***Bks.*** 01. Parānanda-Purāṇa (Trayodaśa – Khaṇda (ed.). ***Add.*** Amani pandeypur, Paripat Jonpur, U.P.

Pandey, Sohanlal. Acharya in Sāhitya, M.A., B.Ed., M.Ed. ***b.*** 12.08.1956. Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, Aliganj, Luchnow U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Som Prakash. M.A., Acharya in Sāhitya. ***b.*** 14.04.1958, Mau, Pratapgarh, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Ramshankar Mishra. ***Bks.*** Bhṛṅgadūta-Śatakam. ***Add.*** Munishwar Dutt P.G. College, Paratapgarh, U.P. ***Spl.Ref.*** Vedānta, Sāhitya Śāstra.

Pandey, Sriramtilak Urmilajani. M.A. (English, Sanskrit). *b.* 06.09.1946, Faizabad, U.P. Rtd. IAS *Bks.* 01. Bālagovindacaritamahākāvyam. *Add.* 125, Jahaj Apptt., G-17 Area, Old Rohtak Road, Sunder Vihar, New Delhi – 87. *Spl.Ref.* Beautiful Use of Chandh in his poetry.

Pandey, Subhash. Acharya in Jyotiṣa, Vidyavaridhi. *b.* 15.01.1975. Asstt. Prof., Deptt. of Jyotiṣa, Faculty of SVDV, BHU. Guru Shishya Parampara. *Bks.* 01. Laghujātakam. *Ps.* 12. *Add.* B 26/29-7 GPS Tower, Sankatmochan, Flat No. 102, Varanasi-05. M. 09415374432. *Spl. Ref.* Jyotiṣa.

Pandey, Sudharani. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 22.10.1947. Vice Chancellor of U.K. Skt. Univ. Haridwar. *Ps.* 10. *Spl.Ref.* Doon Ratna Samman, Azadi ki Swarna Jayanti Samman, Uttaranchal Ratna Samman, Karma Shree Samman, Uttaranchal Rajya Mahila Ayog Samman, Utkarshata Shiksha Samman, Vidushi Vidyottama Stree Shakti Samman.

Pandey, Surendra Kumar. M.A., Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, D.Phil. *b.* 25.06.1959, Varanasi. Chief Development Officer, Kaushambi (U.P.). *Bks.* 22. Jyotiṣa Pañcaśatī, Dharma Śāstra-sahasrakam, Vāst śabdārnava, Śankaragītā, Sūrya Vimarśa. *Add.* 21/3-A. Amarnath Jha Marg, George Town, Allahabad (U.P.). *Ph.* (05331) 232460.

Pandey, Surendra Nath. Acharya. *b.* 03.06.1948, Kahinaur, Mau, U.P. Asst. Teacher. *Gp.* Dhanapati Dwivedi. *Ps.* 02. *Add.* Shri Maharaja Vandevi Sanskrit Pathshala, Kahinaur, Varanasi U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Pandey, Suresh Chandra. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya, M.A. *b.*04.10.1943, Itarasi, M.P. Secretary. *Gp.* Pujyaswami Shrikarpatraji, Shivkumar Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Sanskrit College, Itarasi, M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya & Vedānta.

Pandey, Suresh Chandra. M.A., D.Phil. *b.* 07.08.1934, Almora, U.P. Prof., Allahabad University. *Ps.* 10. *Add.* 1/6, Pragya Street, Allahabad, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Pandey, Suresh. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.* 19.08.1962, Gajipur. Asst. Prof. R.Sk.S., Ganganatha Jha Campus, Allahabad. *Bks.* 01. Kāśmīra Śaiva Daraśana Bṛhatkośaḥ. *Add.* R.Sk.S, Ganganatha Jha Parisar, Chandrashekhar Azad Park, Allahabad. *Ph.* 2460957, 9918482522.

Pandey, Swaminath. M.A., Ph.D. *b.* 05.07.1959 Asst. Prof. Govt. Teacher Education College, Ujjain M.P. *Gp.* Dr. Balkrishna Sharma, Shri Niwas Rath. *Sp.* Dr. Arvind Pandit. *Bks.* 01. Haribhakti Kumudakara. *Ps.* 04. *Add.* M-24, Mahashaktri Nagar, Ujjain, M.P.

Pandey, Talukadar. Acharya in Navya Vyākaraṇa. M.A., Ph.D.. *b.* 25.07.1949, Sultanpur, U.P.. Principal. *Bks.* 01. Paribhāṣenduśekharalaghuja-ājū-aḥ. *Add.* Shrirupakala Sanskrit Vidyapith, Shridivyakala Kunj, Ayodhya, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* NavyaVyākaraṇa.

Pandey, Tapeshwar. Acharya in Vedānta & Sāhitya. *b.* 05.07.1942, Raghunathapur, U.P. Asst.Prof. *Gp.* Ram Pandey, Mulashankar Vyas. *Ps.* 05. *Add.* Shri Daivi Sampad Adhyatma Sanskrit Mahavidyalaya, Paramarth Niketan, Dehradun (U.P.). *Spl.Ref.* Vedānta and Sāhitya. Gold Medalist.

Pandey, Tarashankar Sharma. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 05.08.1957. Jaipur (RJ). *Bks.* 17. *Ps.* 06. *Add.* H.No.-2381, Pandey Bhavan, Khajane Valon ka Rasta, Jaipur, RJ. *Pin.*-302001. *Ph.* (0141) 2321151. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra, Modern Sanskrit Literature

Pandey, Trilochan. Acharya. *b.* 07.12.1945, Pithauragarh, U.P. Principal. *Gp.* Ramadatta Mishra. *Ps.* 04. *Add.* Shri Kurmachal Anglo Sanskrit Mahavidyalaya, Champawat, Pithauragarh (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Tripurari Sharan. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, Āyurveda. *b.* 05.08.1923. Raibareli (U.P.). *Bks.* 05. Rāmāmṛtacaritāmṛtam, Deśadigdarśanamahākāvyam, Vividhavibudhastavastabakaḥ. *Add.* Acharya Kulam, Jhakrashi, Nayan (Salol), Raibarelli.

Pandey, Uday Shankar. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 28.02.1961, Deoria (U.P.). ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Head Dept. of Sanskrit, Shree Chhatradhari, Sanskrit Degree College, P.O. Hathwa, Dist. Gopalganj (Bihar).

Pandey, Uddhav Prasad. Acharya in Veda. *b.* 01.03.1955, Haridwar, (U.P.). Principal. ***Add.*** Jagadaguru Shri Shankaracharya Sanskrit Vidyapeetha, Haridwar – 249401 (U.P.). ***Spl.Ref.*** Veda.

Pandey, Uma Rao. Acharya in Jyotiṣa. *b.* 04.09.1938, Desahi Varavan, Deoria, (U.P.). Assitant Head of the Deptt. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shridharma Jnanopadesa Sanskrit Mahavidyalaya, Mahamana Nagar, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Siddhānta Jyotiṣa.

Pandey, Uma. M.A. *b.* 27.12.1952, Lucknow. ***Bks.*** 02. ***Add.*** Samanvaya Kuteeram, E – 1052, Rajaji Puram, Lucknow – 226017. ***Ph.*** (0522) 416897.

Pandey, Umesh Chandra. Granthalaya-vijnana Shastri (B.Lib.Sc.). Acharya in Vedānta (Gold Medalist), Ph.D. *b.* 01.01.1942, Dhani, Maharaj Ganj, Gorakhpur, U.P. Librarian. ***Gp.*** Pt. Badarinath Shukla, Satyanarayana Shastri. ***Bks.*** Vaiṣṇavadarśaneṣu jīvaviṣayako vicāraḥ, Jīva-parimāṇavicāraḥ, Jñeyajñānayoḥ svarūpa-vimarśaḥ, Śuddhādvaitamatasvarūpam, Āstikadarśaneṣu jīvasvarūpam, Tulasī kā dārśanika dṛṣ-ikona. ***Add.*** Shri Lal Bahadur Shastri Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Katawaria Sarai, New Delhi.

Pandey, Umesh Kumar. Acharya (Siddhant & Falita Jyotiṣa), NET, Vidyavaridhi. *b.* 14.07.1978 Deoria,U.P. Asstt. Prof., RSKS Garli Campus. ***Gp.*** Prof. Ramchandra Pandey, Prof. Ramnarayan Mishra, Prof. Sarva Narayan Jha. ***Sp.*** Vipin Pandey(JRF), Anil Kumar Podwal(JRF). ***Ps.*** 03. ***Add.*** Rashtriya Sanskrit Sansthan, Garli Campus, Garli, HP. M. 09450114522. ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa.

Pandey, Umrao Prasad. Acharya in Jyotiṣa (Siddhānta) *b.* 04.09.1938, Deoria, (U.P.). H.O.D. of Jyotiṣa. ***Gp.*** Pt. Avadha Bihari Tripathi, Mithalal Ojha, Kamalakanta Shukla, Shrichandra Pandeya. ***Ps.*** 06. ***Add.*** Shri Dharma-jnanopadesh Sanskrit Mahavidyalay, Malviya Nagar, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Siddhānta Jyotiṣa.

Pandey, Upendra Deo. Acharya (Sāṅkya-Yoga, Sāhitya), M.A., NET, Ph.D. *b.* 02.06.1978, Varanasi. Project Fellow, Deptt. of Sanskrit, MG Kashi Vidyapeetha, Varanasi. ***Gp.*** Dr. B.N. Pandey, Dr. G.R. Pandey. ***Ps.*** 22. ***Add.*** K 67/ 78 I Ishwargangi, Varanasi 221002 U.P. M. 09839247775 ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Upendra. Acharya, M.A., Ph.D., Dipl. in Yoga. *b.* 09.04.1962. Aurangabad, Bihar. Asstt. Prof. BHU Varanasi. ***Bks.*** 04. ***Ps.*** 35. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Vyākaraṇa, Skt. Radio Talks and Kāvyapatha from A.I.R. and Maharshi Badarayan Vyas Samman by President of India.

Pandey, Ushakant Shantikumar. Shastri, B.Com., B.Ed. *b.* 25.07.1954, Junagarh, Gujarat. Asstt. Teacher. ***Gp.*** Haridas Shastri, Shankarlal Shastri. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Bhavadeshvar Sanskrit Mahavidyalaya, Bavada, Porbandar, (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandey, Vachaspati. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa), Kāvyatīrtha, M.A., Ph.D. *b.* 15.09.1924, Agra, U.P. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 19, Huntle House, Panchkuia, Agra- 282010 U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa Śāstra.

Pandey, Vasudev. Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 25.09.1932, Raipur, C.G. ***Gp.*** Bhupendra pati Tripathi, Shivshekhar Mishra. ***Ps.*** 06. ***Add.*** Officers Hostel, Ramana, Pithoragarh C.G. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāhitya Śāstra.

Pandey, Vasudev. Tīrtha, Vyākaraṇa-Shastri. *b.* 1928, Deoria, U.P. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Vinayak Shastri Tilla. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Hukum Chandra Colony, Indore U.P. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa, Sāhitya & Vyākaraṇa Śāstra.

Pandey, Vayu Nandan. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa), Vidyavaridhi. *b.* 15.10.1927. Gorakhpur. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 50. Rtd. Principal & Śāstra Chudamani Scholar. ***Spl.Ref*** Sāhitya Vyākaraṇa, President Awardee.

Pandey, Ved Vyas. Acharya (Sāhitya), M.A. (Pali). ***b.*** 01.05.1982. Gorakhpur. JRF, RSKS, Lucknow Campus. ***Gp.*** Prof. Pradyumna Dubey. ***Ps.*** 03. ***Add.*** RSKS, Lucknow Campus Vishal Khand-4, Gomti Nagar, Lucknow -226010. M. 09452564279. vedbyasb@gmail.com

Pandey, Vidhyadhar. Acharya, Ph.D. ***b.*** 10.07.1955, Maheshpur. Principal. ***Gp.*** Prabhakar Mishra, Rammanohar Mishra. ***Ps.*** 06. ***Add.*** Sanskrit Mahavidhyalaya, Ira Marg, Mau, U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pandey, Vidhyanidhi. Acharya (Sāhitya, Paurohitya), M.H.B. ***b.*** 15.11.1925. Gopalganj, Bihar. Member, Delhi Sanskrit Academy. ***Gp.*** Ramavtar Sharma, Vedprakash Shastri. ***Add.*** Delhi Sanskrit Academy, Old Secretariat, Delhi-110054. ***Spl.Ref.*** Sanskrit Education Award of the Union Territory of Delhi.

Pandey, Vidyanath. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 01.07.1946, Sidhi, M.P. Asct.Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Govt. Sanskrit Mahavidhyalaya, Bhitari, Sidhi, M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Pandey, Vijay Kumar. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 17.12.1970. Pratapgarh. Sr. Asstt. Prof. Sampoornanad Skt. V.V. ***Gp.*** Guru Shishya Prampara. ***Bks.*** 03. Pāṇinīyaprakāśaḥ, Rasamañjarī, Alaṅkārasamuccayaḥ. ***Ps.*** 10.. ***Add.*** Prachin Adyapaka Awas Flat No. 10. Sampoornanand Skt. V.V. Varanasi. 221002. ***SplRef.*** Sāhitya, Vyākaraṇa.

Pandey, Vijay. M.A., Ph.D. ***b.*** 06.05.1943, Shehera. Asct. Prof. Guj. Univ. ***Bks.*** 25. Saṃskṛta Textual Criticism. ***Ps.*** 70. ***Add.*** 16, Asct. Prof.'s Row House. Nr. Guj. Univ. Guest House, Navrangpura, Ahmedabad – 380009. ***Ph.*** 6303929.

Pandey, Vinay Kumar. Acharya, Ph.D. ***b.*** 20.11.1979. Kusinagar, U.P. Asstt. Prof., Deptt of Jyotiṣa, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi ***Gp.*** Pt. Hiralal Mishra, Prof. Ramchandra Pandey. ***Bks.*** 02. Jyotirnibandhāvalī, Siddhāntatattvaviveka. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Deptt. of Jyotiṣa, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi-05. Ph. 0542-6703228 M. 09452197407. drvkpandeyjyotiṣa@gmail.com ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa. Kashi Yuva Vidwat Parishad Samman.

Pandey, Vindhyeshwar. Acharya. ***b.*** 24.11.1930, Kulkupi, Ranchi. Principal, Shri Bhuvaneshwari Maheshwaranand Gurukul Sanskrit Vidhyalaya, Jahloukhar, Hamirpur. ***Gp.*** Rajshekhar Prasad Mishra, Rangheshwar Mishra, Kailashpati Mishra. ***Bks.*** Bhāratīyadarśaneṣu Atmaviṣayaka-matabhedānāṃ Samanvayasambhāvanā-vimarśaḥ. ***Add.*** Kulkupi, Post Kotambe, Distt. Lohardaga (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa & Nyāya Śāstra.

Pandey, Vinod. Nyayśiromaṇi, B.Ed. ***b.*** Kathirao, Varanasi, UP. Teacher, Central School, Allahabad. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 166, L.I.G. Building, Govindpur, Kalki, Toliarganj, Allahabad U.P. ***Spl.Ref.*** Nyāya Śāstra.

Pandey, Vishnu Dutt. M.A., B.Ed. ***b.*** 30.06.1960, Ghazipur, U.P. Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** High School, Nursarai, Nalanda, Bihar. ***Spl.Ref.*** Darśana, Education.

Pandey, Vishnu Kant. Acharya, Ph.D. ***b.*** 01.06.1977, Mirzapur (U.P.). Asst. Prof. R.Sk.S., Jaipur Campus. ***Gp.*** Late Pt. Kamla Kant Pandey, Ram Prasad Tripathi, Shri Kant Pratham, Ram Manohar Mishra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Plot. No. 80, Ganesh Vihar (Devori) Gopalpura, Bye pass, Jaipur – 302018. ***Ph.*** 9414606724.

Pandey, Viveka. Ph.D. ***b.*** 27.08.1970. Varanasi. Linguistic Consultant in India Infotech Systems. ***Bks.*** 01. Critical Study of epic Narāvāyanānanda. ***Ps.*** 01. ***Add.*** C- 27/239-1(ka), Jagatganj. Varanasi–02. ***Ph.*** (0542) 201056, 09839014870.

Pandey, Vyas Prasad. Acharya in Navya-Vyākaraṇa. ***b.*** 15.06.1958, Deoria, U.P. Asst.Prof. ***Gp.*** Ramdulare Tripathi, Ramavadh Mishra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Mumbadevi Sanskrit Adarsh Mahavidhayalaya, Bharatiya Vidhya Bhawan, Bombay, MH. ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa.

Pandey, Yogendra Prasada. M.A. ***b.*** 07.10.1948, Padmipur, Faizabad, (U. P.). Teacher. ***Ps.*** 03.

Add. Shri Hanumat Sanskrit Mahavidyalaya, Hanuman Garhi, Ayodhya Faizabad (U.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pandey, Rambriksh. Acharya (Navya Vyākaraṇa, Advaitvedānta, Pali, BaudhDarśana), M.A., Ph.D. ***b***. 01.01.1934, Nalanda. Ex. HOD Dept. of Sāṅkya Darśana, Sri. LBS Rashtriya Skt. Vidyapeeth, New Delhi. ***Gp.*** Acharya Brahmadutt Dwivedi. ***Bks.*** 20 Advaitālokaḥ, Pātañjalayogamīmāṃsā, Prajñā-karaguptabhāṣyaratnam, Tantrāṇāmāgamaśāstrāṇāñcālocanam, Vyākaraṇadarśanavivṛttiḥ ***Ps.***15. ***Add.*** K-104. Jaitpur Extension, New Delhi-110044. ***M.***09999579667, 09868589976 sharmakirti kant@yahoo.co.in ***Spl Ref.*** Nyāya, Advaita Vedānta, Jain- Baudh Darśana. Skt. Sāhitya Seva Samman, Delhi Skt. Academy, Vidwat Samman, Honoured by Dr. M.M. Joshi.

Pandharkar, Ganesh Gangaram. Maharshtra. ***Bks.*** 01. Saṃskāra Sāgaram (1977).

Pandit, Devyani Ben S. Ph.D, ***b***. 07.01.1949. Prof. Smt. J.P. Patel Arts & N.P. Patel Commerce College Naroda, Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** A-304, Devpreet Apartment, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandit, Dhanraj Vishnu dev. Ph.D. ***b***. 25.08.1951. Prof. Sadguna Girls College Khanpur, Lal Darwaja Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 29, DahyaBhai Park, Sahjalam Tol Naka, Geeta Mandir Road, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandit, Ganesh Timmanna. M.A. M.Ed. Ph.D. ***b***. 17.02.1980, Kumta. Asst. Prof. R.Sk.S., Rajiv Gandhi Campus, Sringeri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Uive Traders, Bharati Street, Sringeri. ***Ph.*** 9743058177.

Pandit, Kanchan Mala. M.A., Ph.D. ***b***. 03.12.1955. Munger. Bihar. Asst. Prof. HOD, RSS Mahila College, Sitamashi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** R.S.S. Mahila College, Sitamarhi, Dumra, Sitamarhi – 843301, Bihar. ***Ph.*** (06226) 20366.

Pandit, Neela Hari Prasad. Ph.D. ***b***. 07.04.1950. Prof. S.L.U. Arts & H. & P. Thakur Commerce College For woman. Alisbridge, Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** C/o. J.P.Dave, 3 Dewas Flat Near C.N. School Ambawadi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandit, Rajkumar. Acharya (Sāhitya, Navya Vyākaraṇa), M.Phil. ***b***. 01.01.1966. Lecturer. ***Bks.*** 03. Nītiśatakam, Pratimānātakam (ed.), Vyākaraṇa evam Anuvādacandrikā. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Vill. P.O. Chaura via Narahi, Balia U.P. ***Sp.*** Navya Vyākaraṇa and Sāhitya.

Pandit, Ram Venkatraman. Traditional Education. ***b***. 16.01.1916, Gokarna, KT. Jyotiṣaacharya (Astrologer). ***Ps.*** 05. ***Add.*** Gokarna- 581326 Karnataka. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa Śāstra.

Pandit, Sharad Chandra Shankar. Ph.D. Prof. Smt. Sadguna C.U. Arts College for Girls, Lal Darwaza, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** D-1 Radhakunj Society, Mem Nagar, Ahemdabad.

Pandit, Vijay Kamal Lal Bhai. Ph.D. ***b***. 07.09.1945. Prof. Sanskrit & Bhartiya Vidhya Vibhag Uttar Gujart University, Patan. ***Ps.*** 05. ***Add.*** A-29, Aayush Society Varodara Road, Dahoya, Varodara. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandurangi, K. T. PurvaMīmāṃsā śiromaṇi, Dvaita Vedānta Vidvan, Nyāyaratna Madhyama. M.A. ***b***. 01.12.1918, Tumminakatti, Haveri. Chairman and Honourary Director Dwaita Vedānta Studies and Research Foundation Bangalore. ***Gp.*** Dharapuram Krishnamurti Acharya Chaturvedi Ramchandra Acharya, Digambar Shastri Havele, Ramasubba Shastri, Prof. V.A. Ramaswami Shastri, Prof. P.S. Subbramanaya Shastri, Prof. C.S. Venkatesan. ***Sp.*** Dr. Sriniwasa Ritthi, Dr. D.N. Shanbhag, Dr. D. Prahladacharya etc. ***Bks.*** 26. Vicāra Jyoti, Dvaitavedānta Darśana, Brahmasūtra Bhāṣya of Ānanda Tīrtha, Ṛgbhāṣya of Ānanda Tīrtha, Nyāyasudhā of Śrī Jaitīrtha. ***Ps.*** 100. ***Add.*** 132/4 II Cross, 3 Block, Jayanagar, Bangalore-560011. Ph. 080-26648215, 26627272. pandurangi.k.t @gmail.com ***Spl. Ref.*** PurvaMīmāṃsā, Vedānta Darśana, Honored by many Awards including President Award etc. Leipzig Univ. Vienna, UK, USA etc.

Pandurangi, N. K. Vidvān (Nyāya & Dvaita Vedānta), M.A. (Sāhitya), Ph.D. ***b.*** 04.07.1973. Asct. Prof., Jagadguru Ramanandacharya Raj. Skt. Univ. ***Gp.*** Manikya Shastri, Martanda Dixit. ***Bks.*** 08. Tātparyacandrikā, Nyāyasudhā, Tarkanavanītam, Śaktivāda. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Staff Quarter No. 12, JR. Raj Skt. Univ., Jaipur-302026. Ph. 0141-3293861. M. 09928332834. veerankp@gmail.com ***Spl. Ref.*** Darśana.

Pandya, Bhagwat Prasad Pannalal. śuddhādvaitaviṣārada. Sāṅkyayoga-Vedānta-śāstri. M.A. ***b.*** 14.01.1945, Baroda, GJ. ***Ps.*** 05. ***Add.*** L-10/115, Shivashakti, Vijay Nagar, Harnibade, Baroda (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya. Vedānta & Sāṅkyayoga.

Pandya, Bhagwati Prasad. Acharya in Vyākaraṇa, Tīrtha (Kāvya, Purāṇa), M.A., Ph.D. ***b.***09.11.1926, Sanvarkantha, GJ. ***Gp.*** Simapati Sarmopadhyaya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 1/A, Gopal Kunj Society, Rambagh, Mani Nagar, Ahmedabad (GJ). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pandya, Ganpati Shankar Karuna Shankar. Ph.D. ***b.*** 10.12.1937. Prof. N.S. Arts College Distt. Aanand. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 11-jalaram Park, Indira Gandhi Road, Aanand. ***Spl.Ref.*** Purāṇa.

Pandya, Har narayan Bhai Uma Shankar. Ph.D. ***b.*** 06.06.1935. Prof. Music Arts College, Kalol Distt. Gandhi Nagar. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 15 Aamra Kunj Society. Near College Kalol, Gandhi Nagar. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandya, Hetal ben Mahesh Bhai. Ph.D. ***b.*** 18.05.1970. HOD, Bhasha Sāhitya Bhawan, Gujarat University, Navrangpura, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 205, Panchtirtha Tower Jodhpur Road, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Pandya, Jagriti Ben K. Ph.D. ***b.***16.06.1965. Prof. Sanskrit Deptt. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Bahabuddin Vinyan College Road, Junagarh. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Pandya, Jagriti Sundar Lal. Ph.D. ***b.*** 08.04.1953. Prof. Hari Vallabh Das Kali Das Arts College, Ashram Road, Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 1-Yogita Appartment, Vasant Kunj, New Sharda Mandir Road, Paldi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandya, Jatin Premesh. Ph.D. ***b.*** 03.11.1938. Prof. Shri M.R.D. Arts & Shri E.E.L.K. Commerce College, Chikhli, Navsari. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 10/709, Awadia Chakhla, Khambasi Road, Surat. ***Spl.Ref.*** Dharma Śāstra.

Pandya, Kishore Chandra Ishwaralal. Acharya in Sāhitya, B.Ed. ***b.*** 03.03.1952, Jam Nagar, GJ. Principal, Veda Bhavana Vidyalaya. ***Gp.*** Narayan Shastri, Dr. Manoharlal Dwivedi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Dwaraka (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandya, Mukesh Kumar Rajnikant. Ph.D. ***b.*** 06.01.1961. Prof. Arts Science & Commerce College, Pilwaye Beejapur, Mehsana. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 1, Bhoomi Banglow Shyam Sadan, Mukti Garden, Mani Nagar, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandya, Pravinchandra Dayashankar. Shastri, B.Ed. ***b.*** 19.12.1962, Jam Nagar, GJ. Teacher. Gp. Shrikrishan Kashinath Godse. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Bavadeshwar Sanskrit Mahavidyalaya, Bavada, Porbandar, (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pandya, Rajendra Bhai Jayshankar Bhai. Śuklayajurveda, Karmakanda ***b.*** 13.11.1963. Jamnagar. Hindu Priest and Sanskrit Prof., Bhagwat Vidyapeeth, Ahmedabad. ***Gp.*** Sri Krishan Kashinath Godse. ***Bks.*** 01. ***Ps.*** 100. ***Add.*** Sri Vartantu Sanskrit Mahavidyalaya, Bhagwat Vidyapeeth Sola, Ahmedabad-380061. Ph. 074-2765831. M. 09427061677. pandya_rajendrashastri@yahoo.co.in ***Spl. Ref.*** Śuklayajurveda. Visited Canada, USA Shikago etc.

Pandya, Sanjay kumar Navneet Rai. Ph.D. ***b.***28.05.1970. Prof. Sharda Gram Arts & Commerce College Mangrola Distt. Junagarh. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 25/A, Varahi Society Ghoga, Jakatnaka, Bhav Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Pandya, Shantikumar Manilal. Ph.D. ***b.*** 05.09.1941. Prof. Saint Jaivior College, Navrangpura, Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 18, Abhigam Society Narayan Nagar Road, Paldi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pandya, Shrikant. Acharya, Vyākaraṇa, Vedānta,

Ph.D. *b.* 15.01.1944, Baburagram, Mirzapur (U.P). Asst. Prof., HOD. & Dean Vyākaraṇa Faculty. *Gp.* Kamlakant Panday. *Bks.* 08. Ṣatkārak. *Ps.* 25. *Spl.Ref.* Awarded Panditratna Mahamahopadhyaya & Vaiyakarana Shiromani for his contribution in Vyākaraṇa Shashtra.

Pandya, Utpala Ben Naveen Prasad. Ph.D. *b.* 01.10.1950. Prof. BalaBhai Damodardas Arts College, Manik Chauk, Ahemdabad. *Ps.* 05. *Add.* 1063, Kastoorba Niwas, Raipur Chakla, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Pandya, Vijay Bhai Dev Shankar. Ph.D. *b.* 06.05.1943. Rtd. Prof. Sanskrit Deptt. Bhasha Sāhitya Bhawan GJ University, Honourary Prof. LD Institute of Indology, Ahmedabad. *Bks.* 40. The fundamental Vedānta, Mṛchakatika ek Adhyayana, Mahākavi-Aśvaghoṣa. *Ps.* 125. *Add.* 16-Reader Row House, Navrangpura, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra, President Awardee, Śāstra Chudamani by R.Sk.S., New Delhi.

Pandya, Vinod Chandra. Ph.D. *b.* 27.06.1943. Prof. Shri S.K. Shah & Shri Krishna O.M. Arts College Modasa. *Ps.* 05. *Add.* Near Gokulnath ji Mandir Kadkiya wala, Modasa, Sambharkanta. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Pandya, Vinod Rai Prem Shankar. Ph.D. *b.* 18.06.1944. Prof. Kamani Scinece & Pratap Rai Arts College Ambreli. *Ps.* 05. *Add.* Anugriha E-60, GJ Housing board Society, Ambreli. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Pandya, Vipul S. Ph.D. *b.* 21.07.1968. Prof. Devmani Arts & Commerce College Satadhar Road, Vishavadar. *Ps.* 04. *Add.* Jagdamba 21-A Saibaba Society, Junagarh. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Pandya, Yogini ben Kanheyalal. Ph.D. *b.* 06.10.1951. Prof. Arts Science & commerce College, Lunawada. *Ps.* 05. *Add.* 8, Fatehbagh Palace Veri Hanuman Road Lunawada, Panchmahal. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Panicker, N. Gopala. Mahopadhyaya, M.A., B.Ed., Vidyavaridhi. *b.* 28.07.1928. Tirvananta-puram, Kerala. President Jyotiṣa Śāstra Vidyapeetham, Chairman Vidhya-peetham Mukhayastha and Publication. *Bks.* 33. *Add.* TC No. 30/1150, Pradeep Nivas, Pettah P.O. Thiruvananthapuram – 01 Kerala. *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Darśana, Tantra, Nā-yaŚāstra, He is engaged in the preparation of an encyclopedia dictionary of Indian Darśana in Eng., Skt., Hindi and Malyalam, President Awardee.

Panigipalli Venkatacharyalu. *b.* 26.06.1946, Pulletikurru, East Godavari, (A.P.). *Gp.* S. Krishnamacharyalu, N.A. Keshavacharyalu. *Add.* Shrikalyana Venkateshwaraswami Devasthanam, Shrinivasamankapuram, Tirupati – 517102 (A.P.). *Spl.Ref.* Vaikhāna-sāgama.

Panigrahi, Gati Krishna. M.A., M.Phil.. *b.* 04.07.1977, Pantikhari Shashna, Odhisha. *Ps.* 09. *Add.* C/o Dr. Raghunath Panda. P.G. Department Asct. Prof. in Sanskrit. Vanivihar BBSR – 4. *Ph.* 582325.

Panigrahi, Harihar. Vyākaraṇatīrtha. *b.* 20.06.1956, Akana, Midnapur, W.B. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* Akana, Gobra, Midmapur, W.B. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Panigrahi, Premnath. Kāvya Vyākaraṇa-tīrtha. *b.* 1323 B.E., Bakhantaliya, Kanthi, Midnapore, (W.B.). Principal. *Gp.* Ishvarchandra Shastri, Nilkanth Kāvyatirtha. *Ps.* 03. *Add.* Bakhan Taliya, Midnapore (W.B.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Panikkar, K. Balram. Pt. Nyāya Mahopadhyaya, Vedāntaśiromaṇi, Sāhityaśiromaṇi, M.A. Rtd. Principal, Srimad Anantpur Skt. Maha-vidyalaya, Kerala. Sodh Acharya, Kerala V.V. *Bks.* 01. Śrīnārāyaṇavijayam.

Panipotaraju, Prabhakar Venkat Durganaga Trisula. M.A., Ph.D.. *b.* 01.10.1958, Machalipattanam, Krishna, (A.P.). Asst. Prof. *Gp.* Dr. S.B. Raghjunathacharya. *Bks.* 01. Viśvanātha-nyāyasūtravṛtti-savimarśakaparī-śīlanam. *Add.* S.S.B.N. College, Anantpur 15001 (A.P.). *Spl.Ref.* Nyāya.

Panseriya, Lalji Bhai M. Ph.D. *b.* 08.08.1966. Prof. Shri Veer Bhagat Singh Educational Arts & Commerce College, Sasna Road, Mandrada,

Junagarh. *Ps.* 05. *Add.* Sitaram Kripa Old Post Office Road, Mandrada, jaungarh. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Pant, Bharatraj. Acharya, M.A. (Nepali). *b.* 1929. Kathmandu, Nepal. Prof., Saraswati Vidyapeeth. *Bks.* 17. Vallarī, Tapasvinī. *Add.* Baneswar, Kathmandu, Nepal. *Spl. Ref.* Nepal and Skt. Poetry.

Pant, Girish Chandra. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 10.03.1961, Uttaranchal. Asst. Prof. *Bks.* 01. Kāvya Prakāśa Vivekānūśilana. *Ps.* 01. *Add.* C-141, Rajpur Colony, IGNOU, New Delhi-68. *Ph.* 6805685 (R). 6439565 (O).

Pant, Krishnanand. Acharya in Sāhitya, M.A., Shiksashastri. *b.*02.04.1946. Teacher, Govt. Senior Secondary School, Roop Nagar, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 1764 C, Gulabi Bag, Delhi– 110007.

Pant, Lajja. M.A., Visharada, Sāhityacharya, Ph.D. *b.* Asstt. Prof. Kumayun Univ., Nanital. *Bks.* 03. *Ps.* 24. *Add.* Deptt of Sanskrit, DSB Campus, Kumayu Univ., Nenital-02. Ph 05942-231472, M. 09412983216.

Pant, Manoj Kishor. Acharya in Sāhitya, Darśana, M.A., Ph.D. *b.* 01.11.1977. Asstt. Prof., Deptt of Sāhitya, Uttarakhand Skt. V.V. *Ps.* 06. *Add.* Dept. of Sāhitya, Uttarakhand Skt. V.V., Jawalapur, Haridwar. M. 09412157445. *Spl. Ref.* Sāhitya, Manuscriptology & Cataloging.

Pant, Nandalal. Acharya. M.A. *b.*1945, T.G.T. *Ps.* 02. *Add.* Mukharjee Smaraka Ucchatar H. Sec. School, Shahdara, Delhi -110032.

Pant, Pitambar Datta. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 15.10.1955, Gokhuri, Almora, (U.P.). *Ps.* 05. *Add.* Gokuri, Syakot, Almora, (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pant, Prakash Chandra. Acharya in Sāhitya, M.A., M.Ed., Ph.D. *b.* 18.03.1980. Champawat. Asstt. Prof. Uttarakhand Skt. Univ. *Gp.* M.M. Prof. Ved Prakash Shastri *Bks.* 11. Gītamādhurī, Mānadaṇḍaḥ, Samupasthitāḥ Praśnāḥ. *Ps.* 22. *Add.* Uttarakhand Skt. Univ., Haridwar-249407. Ph. 01334-251720. M. 09411178866. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Pant, Subodhchandra. *b.* 1934. *Bks.* 01. Jhānsīśvarīcaritam.

Paraddi, Malikaarjun. Sāhitya Ratna, M.A., Ph.D. *b.* 06.02.1939. KT. HOD, KT V.V. Dharwad. *Bks.* 18. Basavabhāskrodaya-mahākāvyam. *Ps.* 70. *Add.* Pawet Nagar, Dharwad – 03. *Spl.Ref.* ***Sāhitya*** Academy Puraskar – 1991.

Paradkar, Moreshwar Pinkar. M.A., Ph.D. M.A. (Ardhmagdhi) *b.* 17.11.1925. *Bks.* 05. Mālvikāgnimitra : A critical Study (ed. In English, Hindi &Marathi), Vaidika Saṃskriti kā vikās, Ṛksūkta Vaijayantī, Studies in the Geeta, Hindī Bhāṣā Sāhitya Aur Saṃskṛti.

Parakhi, Pitambar Shastri. Veda-Alaṅkāra, Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa. *b.* 10.05.1910, Jammu. *Gp.* Shri Devaraj Shastri, Shrichandra. *Add.* 262, Paki - Dhaki, Jammu Tawi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya & Veda.

Paramar, Natavar Singh Jinabhai. Acharya, M.A. *b.*15.12.1932, Valsad, GJ. V.C., S.M. Vidhyalay, Dharmapura. *Ps.* 10. *Add.* Ramavali, Dharampur, Valsad (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Parasar, Pratibha. M.A. *b.* 30.12.1952. Assistant Librarian, Rastriya Sangrahalaya, Jan Path, New Delhi. *Ps.* 05. *Add.* 32/2 East patel Nagar, New Delhi – 110008. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Parashar, Chandanlal. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. (Skt. Hindi, Linguistic.), Ph.D. *b.* 25.02.1928. Rtd. Prof., Raja Balwant Singh Mahavidyalaya, Agra. *Bks.* 04. Maṅgalam Bhāratam, Avadhūtaśatakam. *Add.* Amrita-yanam, 62B Alok Nagar, Agra – 10.

Parashar, Dinesh Chandra Acharya. Acharya. *Age.* 36 yrs. in 1989. Skt. Teacher, Vaidika Dharma Pracharka. *Ps.* 03. *Add.* L-20/95, Street No. 7, Shivaji Marg, Jaiprakash Nagar, Delhi–110053. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Parashar, Hargovind. M.A. Ph.D. Teacher, Motilal Nehru Govt. Higher Secondary School, Khandwa. *Bks.* Javāharajyotiḥ, Javāharakathā, Saṃskṛta Gītamālā, Saṃskṛta Pāthamālā, Saṃskṛta Vyākaraṇa (Hindi), Bāṇakṛta Harśacarita kā Rājanītika evam Saṃskṛtika

Adhyayana. ***Add.*** Keshav Kunj, Shrinagar Colony, Bhandaria Road, Khandwa, M.P.

Parashar, Kanhaiyalal. Acharya. Ph.D. ***b.*** 25.01.1941, Singhavali, Meerut. Asst. Prof., ***Gp.*** Dr. Ramamurti Sharma, Dr. Govinda Trigunayata. ***Ps.*** 30. ***Add.*** V.V.B.S.B.B. Anusheelan Sansthan, Punjab University, Sadhu Ashram, Hoshiarpur (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Parashar, Shyamdev. M.A., Ph.D., MOL ***b.*** 03.03.1922. HOD. Vishveshawarnand Vedic Shodh Sansthan, Hosiyarpur. ***Bks.*** 03. Ṛtucakram, Madhumādhurī, Triveṇī. ***Add.*** 223. Hari Nagar. Hosiyarpur – 01. Punjab. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. Delhi Skt. Academy Samman, Punjab Rajya Siromani, Kavi Ratna.

Parasharay, Jyoti M. Ph.D. ***b.*** 27.12.1936. Prof. Gurukul Mahila Arts & Commerce College Porbander. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 2193-C Shanti Sadan Hill Drive, Bhav Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Parauha, Tulsi Das. M.A. (Navya Vyākaraṇa, Sāhitya). ***b.*** 12.06.1971. Katni (M.P.). Asst. Prof. J.R. Handicapped University Chitrakoot (U.P.) – 210204. ***Bks.*** 03. Śaṅkarṣaṇa-caritāmṛtam, Kālidāsa, Itihāsa Purāṇoṃ kā Paricaya. ***Ps.*** 20. ***Add.*** 'Sanskrit Bhavan' Sphatik Tila, Chitrakoot, Satna, M.P. ***Ph.*** (05198) 224481, 9424740049, 9450329887.

Pardhi, Narmada S. Ph.D. ***b.***05.04.1953. Prof. D. D. Thakur Arts & K.J. Patel Commerce College, Laxmipura Road, Khedbrahma. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Pragya Kunj, Patel Society, Khedbrahma. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Pargai, Damodar. Acharya in NavyaVyākaraṇa, NET, Ph.D. ***b.*** 11.07.1978. Haldwani. Asstt. Prof., Uttarakhand Skt. University. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Deptt of Vyākaraṇa, Uttarakhand Skt. Univ. Haridwar- 249407. M. 09410939700. ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa.

Parikh, Deepak kumar Pramod Rai. Ph.D. ***b.***13.01.1970. Prof. Smt. Kusumben Karkiya Arts & Commerce College, Hansot Road, Ankleshwar, Bharuya. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Rangkripa D-4 Modi Nagar, Ankleshwar, Bharuya. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Parikh, Rasiklal Amritlal. M.A., B.Ed. ***b.*** 27.04.1926, Padra (GJ). ***Bks.*** 05. Subodh Grammer Books (Vol. I-V). ***Ps.*** 02. ***Add.*** 1114/ 5, sommath Mahadevis Street, Haripura, Surat, (GJ) – 395003. ***Ph.*** 442901.

Parikh, Vasant. M.A., Ph.D. ***b.*** 17.03.1933, Amreli. Rtd. Prof., Pratap Rai Arts College, Amreli. ***Bks.*** 15. Mahābhārata : A Study, Mṛcchāka-ikam : A Study, Tarka Taranginī (Critical Ed.), Tarka-saṃgrah with Dīpīkā (Critical Ed.), Tarkbhāṣā (Ed.), Char Darśanas. ***Ps.*** 70. ***Add.*** 03, Dena Bank Society, Station Road, Amreli-365601, (GJ). ***Ph.*** (02742) 224635.

Parikh, Vasantrai Girdharlal. Ph.D. ***b.*** 17.03.1933. Prof. Prataprai Arts College Ambreli. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 3, Near Dena Bank Society Ambreli. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra, Darśana Śāstra.

Parivrajak, Brahm muni (Priyaratna). Studied in Vyākaraṇa, Nyāya, & Pingal-Śāstra. ***b.*** 1893. Lakhnoti, Saharanpur. ***Gp.*** Pt. Vanmalidutt Chaube, Swami Poornanand, Pt. Devnarayan Tiwari, Dhundiraj Shastri. ***Spl.Ref.*** Written Sanskrit Teekas of Upnishad, Sāṅkya, Vaiśeṣika, Vedānta-Darśana and nirukta.

Parmar, Ansuya Ben Narsingh Bhai. Ph.D. ***b.***08.11.1966. Prof. Shri D.K.V. College, JamNagar. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Block No. D/1/4, Govt. Quarter, Valsura Road, Jamnagar. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Parmar, Bharat Kumar D. Ph.D. ***b.***10.07.1974. Prof. M.N. Arts Science College, VishNagar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 37, Shubh Laxmi Society, Gurukul Road, VishNagar. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Parmar, Bhupat Bhai A. Ph.D. ***b.***01.06.1964. Prof. Arts Science & R.J. Patel Commerce College, Bhadran, Aanand. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 40, Dhartipark Society, Near New Sabji Market, Borsad, Aanand. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Parmar, Dinesh Kumar Veera Bhai. Ph.D. ***b.***07.12.1970. Prof. S.B. Mahila College Himmat Nagar, Savgarh Sambharkanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 121 Sharda Kunj Society, Motipura, Himmat Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Parmar, Hansa Ben Anup Singh. M.Phil, Ph.D. *b.* 01.06.1960. Prof. Smt.J.P. Saraf Arts College, Tithal Road, Valsad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Akshay Richa, Near Bhagwati Apartment, Tithal Road, Valsad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Parmar, Jaya Chotu Singh. Ph.D. *b.*28.08.1966. Prof. Rofel Arts & Commerce College, Vapi. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Bhutsar, Valsad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Parmar, Karan Singh Jagu Bhai. Ph.D. *b.* 01.03.1967. Prof. S.B. Gardi & P.K. Patel Commerce College, Near Fuwara Navsari. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Bhutsar, Valsad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Parmar, Vinod Rai Narsingh Bhai. Ph.D. *b.*31.05.1965. Prof. Shri A.V.D.S. Arts & Commerce College, Jamjedhpur. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Near Sahkari Sangh Godam, Plot No. 4, Jam Nagar. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Parsai, K.B. M.A. *b.*1922, RJ. Rtd. Director, Cabinet Secretariat. ***Bks.*** 01. Star Guide to Love and Marriage. ***Add.*** G-19, SFS, DDA Flats, Saket, New Delhi–110017. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Parsule, Gajanan Vinayak. M.A., Ph.D. *b.* 01.11.1921, Satara, Maharashtra. Prof., Deptt. of Skt., Puna University. ***Bks.*** 01. Vaināyakam. ***Expired. Spl. Ref.*** President Awardee, Srimant Nanasahab Peshwa Puraskar, Mahakavi Kalidas Samman etc. German.

Parthasarathi, D. ***Age.*** 51 yrs. in 1988, Pevangipuram, T.N. ***Gp.*** Palavari Ganapati Varadacharya, etc. ***Add.*** Shri Veera Raghava Swami Devasthanam, Tiruvallur (T.N.). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Parthasarathi, V.N. śiromaṇi (Nyāya, Viśiṣ-advaita). *b.*05.01.1945, Vedkupattu, T.N. Arcaka (Priest). ***Gp.*** Vellivalam Narayana-charya, A.S. Krishnamacharya. ***Add.*** 15, Panagal Street, Thiruvallur, Chengalpet (T.N.). ***Spl.Ref.*** Nyāya, Viśiṣ-ādvaita & Veda.

Parvatharaju, B.S. M.A., Ph.D. *b.* 24.05.1955, Vijayapura, KT. Prof. & Head, Marimallappa's College, Mysore. ***Bks.*** 01. Ārya Kṣemīsvara. ***Add.*** 28/A, III Main, A/B Block, Ramakrishna Nagar, Mysore – 570023, KT. ***Spl.Ref.*** Received Sanskrit Vidyaratna, Kanchi Kamakoti Peetam Award, Sarvajñapeeta Award, Akhila Bharata Jyotirvijnapeetam Award.

Parvati, Kumari. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., B.Ed.. ***Age.*** 34 yrs. in 1988, Nursarai, Bihar. Teacher. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Balika Ucchatar Madhyamika Vidyalaya, Bihar – Shareef, Nalanda (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Parvatiya, Shri Nityanand Pant. Acharya, Knowledge of DharmŚāstra, Karmakanda, Veda, Mīmāṃsā, Vedānta. *b.* Koormachal, Kashi, Asst. Prof., Central Hindu College, Kashi. ***Gp.*** Pt. Namdev Pant, M.M. Pt. Gangadhar Shastri. ***Sp.*** Pt. Seetaram Shastri Shende, M.M. Pt. Madhavshastri Bhandari, Pt. Gopal Shastri Nene, Pt. Anant Shastri Fadke, Gopaldatt Pandey. ***Bks.*** 12. Jaimini Sutravrīttī, Mīmāṃsā Parībhāṣā, Kātyāyana Śrautasūtra, Sanskārdīpak, Antyākarmdīpak. ***Expired in*** 1931. ***Spl.Ref.***. M.M. Award in 1921.

Patel, Arvind Bhai U. Ph.D. Prof. Arts, Science & Commerce College, Khambhat, Aanand. ***Ps.*** 03. ***Add.*** B-16, Maheshwari Society, Metpur Road, Khambhat, Aanand.

Patel, Ajay Chaganlal. Ph.D. *b.*26.07.1970. Prof. Rofel Arts & Commerce College, Namdha Road, Vapi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Vill Post Kacholi Tehsil Gandev Distt. Navsari. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Alya Ben Jayanti Lal. M.A. Ph.D. *b.* 01.06.1968. Prof. Shri J.M. Patel Art. & Commerce Mahila College, Girls Hostel Road, Onjha. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 14-A, Punit Park Society, Sahi bagh, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Amrit Lal J. Ph.D. *b.* 01.06.1962. Prof., Shri Vanraj Arts & Commerce College, Lal Dungri, Dharampur, Valsad, GJ. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Mukam Motidhol Dungri, Khatana, Dharampur, Valsad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Anila Ben Shankar Bhai. Ph.D. *b.* 03.12.1968. Prof., Shir J.N. Patel Arts. & Commerce Girls College, Sardar Chouk Unjha. ***Ps.*** 04. ***Add.*** D-24 Sona township Complex, VishNagar, GJ. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Arpita Ben Govind Lal. Ph.D. *b.*21.08.1973. Prof., Smt. S.R. Mehta Arts College, Usmanpura, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sardar Chauk, Gothwa, Vishnagar, Mehsana, GJ. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Aruna Kanheya Lal. Ph.D. *b.*18.02.1945. Research Associate, Sanskrit Deptt. Sardar Patel University Vallabh Vidhya Nagar. ***Ps.*** 05. ***Add.*** E/73 Power House Colony AEC, Sabarmati Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Arvind Kumar P. Ph.D. *b.*01.06.1971. Prof., Tilok Chand Myachand Shah Mahila Arts College, Eder, Sambarkanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Lalpur, Sachodar, Idar, Sambarkanta. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Ashok Kumar Lallu Bhai. Ph.D. *b.* 30.01.1966. Prof., Govt. Vingyan College, Navsari. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sadakpur, Chikhli, Navsari. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Baldev Bhai Ambalal. Ph.D. *b.* 01.02.1943. Prof., Shri Sahajanand Arts & Commerce College, Ambawadi, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 16, SuDarśana Colony, Satelite Road, Ahemdabad, GJ. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Bhai Lal Bhai Govind Bhai. Ph.D. *b.*01.06.1972. Prof., Arts & Commerce College, Near S.T.Bus Stand Bhabhar, Janaskata, GJ. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 5, Umiya Nagar, Modhera, Mehsana. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Bhakti Bhai Sendha Bhai. Ph.D. *b.* 31.10.1932. Prof., Arts & Commerce College, Himmat Nagar. GJ. ***Ps.*** 03. ***Add.*** C/o. Dr. Praveen Bhai B Patel, Hardwar Society, Near Ramji Temple, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Patel, Bhanu Prasad Dahya Bhai. Ph.D. *b.* 14.01.1967. Prof., Arts & Commerce College, Ider. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Mashal, Ider, Sabarkanta. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Patel, Bhikubhai Sukkarabhai. M.A. *b.* 01.06.1949, Bigari, Valsad, GJ. Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sarvajanik High School, Dungari, Valsad – 496375 (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Patel, Bindu Ben Chiba Bhai. Ph.D. *b.* 08.12.1965. Prof., Smt. J. P. Shraf Arts College, Tithal Road, Valsad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 103 Pooja Abhishek Apartment, Tithal Road, Valsad, GJ. ***Spl.Ref.***Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Chaganalal Basantlal. Ph.D. *b.* 15.01.1946, Navsari, GJ. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Kachivati, Chaubisi, Navsari – 396427 (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Patel, Chandu Bhai Ramji Bhai. Ph.D. *b.*01.06.1966. Prof., Mahila Arts & Commerce College, Dhansura, Sambharkanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 15, Jivan Jyoti Society, Meghraj Road, Modasa, Sambharkanta. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Chibu Bhai Dayal Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1963. Prof., M.R.D. Arts & Commerce College, Chikhli, Valsad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Serava, Valsad, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Chiman Bhai Moti Bhai. M.phil. Ph.D. *b.* 28.03.1968. Prof., Shri N.K. Mehta & Smt. M.F. Dani Arts College, Malvan, Panchmahal. ***Add.*** Juna Kalwa, Lunawada, Panchmahal, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Chunnilal Bahechardash. Ph.D *b.* 21.02.1945. Prof., Rajni Parekh Arts College, Khambat, Kheda. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Maktuwad, Khambat, Kheda, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Daksha Ben Khodi Das. Ph.D. *b.*01.06.1967. Prof., R. H. Patel Arts & Commerce College, Bhavsar Hostel, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** E/15, Pramukh Nagar, R.C. Technical Road, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Deepak Kumar Govind Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1969. Prof., S. B. Gardi Arts & P.K. Patel of Commerce College, Navsari. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 2/4 Maruti Chambar, Near Petrol Pump. Gandevi, Navsari, GJ. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Destimona Jetha Bhai. Ph.D. *b.* 11.08.1969. Prof., Govt. Vinyan College, Sector 15, Gandhi Nagar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** C-4 Abhimanyu Flats, Shastri Nagar, Narayan Pura, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Sāṅkya.

Patel, Dilkhush Bhai Ujam Lal. Ph.D. *b.* 05.07.1969. Prof., Smt. C.R. Gardi Arts College, Moonpur, Panchmahal. *Ps.* 04. *Add.* S-4 Akshat Flat Near Nagar Palika Office, Lunawada, Panchmahal, (GJ). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Gautam. M.A., Ph.D. *b.* 04.08.1936. Ahmedabad. Rtd. HOD Deptt of Skt. St. Saviour College. Ahmedabad. Chairmen nagar Skt. Seva Samiti & Gujarat Rajaya Sanskrit Academy. *Bks.* 90. Ādiśaṅkarācāryaḥ, History of Vedic Literature and Culture, Meghadūtam (English & Gujarati Translation), Ṛksūkta-mañjūṣā. *Add.* "Valam" L – 111, Swatantrya Senani Nagar, Nava Wadaj, Ahmedabad–380013. *Ph.* (079) 7479610. *Spl. Ref.* Sāhitya, Veda Darśana, Poet. Visited Philodelfia, New York, Schekago, Oxford, Paris, Diana, Rome, Nerobe etc. President Awardee.

Patel, Hemraj Bhai Rama Bhai. Ph.D. *b.* 01.09.1955. Prof., Konkrej Arts & Commerce College, Thara, Konkrej, Janaskanta. *Ps.* 03. *Add.* 10, Thara, Siddhshila Society, Konkrej. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Indira Ben Parag Bhai. Ph.D. *b.*01.06.1965. Prof., Rofel Arts & Commerce College, Namdha Road, Vapi, Pardi, Valsad. *Ps.* 05. *Add.* 202, Siddhashila 2, Near Aashish Hospital Geeta Sadan Road, Valsad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, Ishwar Bhai Uka Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1967. Prof. Muncipal Arts, Arban & Science College, Mehsana. *Ps.* 05. *Add.* 1-Sun City Row House, Near Sadanand Society, Mehsana (Nagalpur). *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, J. S. Ph.D. *b.* 17.10.1941. Prof., M.N. College, Vish Nagar, Mehsana. *Ps.* 03. *Add.* Kaneripara Vasai, Beejapur, Mehsana, GJ. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Jagriti Ben M. Ph.D. *b.*23.10.1971. Prof., Mahila Arts College, Bijapur, Mehsana. *Ps.* 03. *Add.* Nagarpuravas, Sipor, Badnagar, Mehsana. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Jairam Bhai V. Ph.D. *b.*01.06.1968. Prof., Uma Arts & Mahila College, Gandhi Nagar. *Ps.* 05. *Add.* Block No. 25/1, Sector 13, Gandhi Nagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, Jasu Ben Nagin Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1964. Prof., Shri M.R.D. Arts & Shri E.E.L.K. Commerce College, Chikhli, Navsari. *Ps.* 05. *Add.* Chikhli Adarsh Niwasi, Near Vasanda Road, Khundh, Chikhli, Navsari. GJ. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, Jitendra Kumar Ambu Bhai. Ph.D. *b.*27.12.1971. Prof., Arts & Commerce College, Sankheda, Varodara. *Ps.* 03. *Add.* Jaladeep 25, Jankalyan Society 2, Rajkherwa Road, Alipura, Varodara. *Spl.Ref.* Alaṅkāra.

Patel, Jitendra Kumar Veer Chand Bhai. Ph.D. *b.*01.04.1968. Prof., Chanasma Nagrik Sahkari & Arts & B.A. Patel Commerce College, Chanasma, Patan, GJ. *Ps.* 04. *Add.* Maa Kripa, Kamboi, Chanasma, Patan, (GJ). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Kala Ben Dahya Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1966. Prof., Shri P. H. G. Municipal Arts & Science College, Kalol, Gandhi Nagar. *Ps.* 03. *Add.* O-10, Suvarna Appartment, Near Nirnay Nagar, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, kalidas shoba Bhai. Ph.D *b.* 01.04.1966. Prof., K.C. Seth Arts College, Birpur. *Ps.* 03. *Add.* Batu Pagina muwaba, Konthaba, Lunawada, Pancamahal, (GJ). *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Patel, Kanta Ben Parag Ji. B.A. *b.* 10.01.1956, Valsad, GJ. Asstt. Teacher, *Ps.* 02. *Add.* Adarsh Secondary School, Vapi. Phardi, Valsad (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Patel, Kantilal Dhula Bhai. Ph.D. b.26.10.1964. Prof., D. D. Thakar Arts & K. J. Patel Commerce College, Laxmi Pura Road, Khedbrahmha, Shambharkanta. *Ps.* 03. *Add.* 2 Sainath Society, Wasna Road, Shambhar, (GJ). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Lalit. M.A., B.Ed., NET, M.Phil., Ph.D. *b.* 01.02.1974. Asstt. Prof., Sri Somnath Skt. Univ., Junagarh. *Bks.* 10. Kāvyālaṃkāra. *Ps.* 12. *Add.* Sri Somnath Skt. Univ. Veraval,

Junagarh-262265, Gujarat. Ph. 02876-244533. M 09879834071. lpatel76@gmail.com

Patel, Mahesh Kumar Ambalal. Ph.D. *b.*17.09.1971. Prof., Govt. Vinyan & Commerce College, Naswadi, Varodara. ***Ps.*** 03. ***Add.*** C/o. Shri A. C. Shah, Near Police Station, Naswadi, Varodara. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Patel, Manjula Ben Ambalal. Ph.D. *b.*07.12.1971. Prof., Arts College, Satlasana, Mehsana. ***Ps.*** 03. ***Add.*** C/o. Shri Lal Bhai Veera Bhai, Near Animal Gate, Limdi Chauk, Satlasana, Mehsana. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Mayaram K. Ph.D. *b.*01.06.1971. Prof., Govt. Vinayan College, Sector No.15, Gandhi Nagar. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 229/1, Juna M.L.A. Quarters 17, Gandhi Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Naginlal Harilal. Ph.D. *b.* 04.12.1940. Prof.. Y. S. Arts & K. S. Shah Commerce College. Devgarh, Baria. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 30 Shilpi Society, Near Swami Narayan Mandir, Kareli Bag, Varodara. ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Patel, Naina Ben Durlabh Rai. Ph.D. *b.* 24.06.1963. Prof., Vanraj Arts & Commerce College, Dharampur, Laldungri. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Vada, Itanva, Navsari, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Narendra K. Ph.D. *b.*26.06.1969. Prof., Sanskrit Deptt. Smt. P. R. Patel Arts College, Palasar, Patan, (GJ). ***Ps.*** 03. ***Add.*** Navavadaj, Valasar, Chansama, Patan, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Nathu Bhai Lallu Bhai. Ph.D. *b.* 01.06.1948. Prof., H. R. Shah Mahila Arts & Commerce College, Navsari. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Gadat, Ganadevi, Navsari, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Nayanaben D. M.A., B.Ed. Asst. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Vanaraj Arts & Commerce College, Dharmapur, Valsad – 396050 (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Nayna Nen C. Ph.D. *b.*10.06.1970. Prof., Smt. J. C. Dhanak Arts & Commerce College, Bagsara, Ambreli. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Vedānta Ranuja Dham Socierty, Near Ramdevpeer mandir, Bagsara, Ambreli, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Niharika Ben Kanu Bhai. Ph.D. *b.* 23.03.1966. Prof., S. V. Arts College, Ririf Road, Patthar Kuva, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** D-13, Snehadri Appartment, Shreyash Foundation. Ambawadi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Patel, Niharika Kanubhai. M.A., Ph.D. *b.* 23.03.1966. Boriavi (Anand). Asst. Prof. ***Bks.*** 01. Meghadūtam (ed.) ***Ps.*** 01. ***Add.*** D–13, Snehādri Appartments, Shreyas Tekara, Ambawadi, Ahmedabad – 15. ***Ph.*** (079) 6600611.

Patel, Nilyaben Karsan Bhai. Ph.D. *b.*21.09.1969. Prof., P. S. Science & M. D. P. Arts College, Sarva School Campus, Near Railway Station, Kadi, Mehsana. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 3, Mangal Murti Society Kadi, Karun Nagar Road Kadi, Mehsana. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Niranjan Kumar Punam Chandra. Ph.D. *b.* 27.07.1966. Asct. Prof., Sanskrit Department, Sardar Patel University Vallabh Vidya Nagar. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Vivksya Plot No. 1003/2 Near Ramamanu Music College Nana Bazar, Vallabh Vidhya Nagar, Aanand ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Patel, Parmanand H. Ph.D. Prof., S. T. Arts & Commerce College, Sant Rampur, Panchmahal. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Vavia Muvadha, Ranijini, Khadedhi, Santrampur, Panchmahal, (GJ).

Patel, Prahalad Bhai Ganesh Dash. Ph.D. *b.* 19.06.1938. Prof., N.N.S. Arts College, BadNagar, Mehsana. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 16, Alok Nagar Society, thalota Road, VishNagar,(GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Punita Ben B. Ph.D. *b.*20.03.1973. Prof., J. Z. Shah Arts & H. P. Desai Commere College, Ambroli, Surat. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 34, Ramkripa, Sounsak, Olpad, Surat. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Radha Ben M. Ph.D. *b.*01.06.1965. Prof., G. D. Modi Arts College, Palanpur, Janaskanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Aanand Nagar, Near Highway,

Palanpur, Janaskanta, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Rakesh R. Ph.D. ***b.***11.05.1970. Prof., P. K. Choudhary Mahila Arts College, Sector 7, Gandhi Nagar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 377/2, Sector 5-A, Gandhi Nagar. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Raksha Ben Bhoja Bhai. Ph.D. ***b.***19.05.1970. Prof., Mahila Arts College, Motipura, Himmat Nagar, Sambharkanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Kankrole, Himmat Nagar, Sambharkanta, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Rama Ben H. Ph.D. ***b.***03.02.1956. Prof., J. Z. Shah Arts & H. P. Desai Commerce College, Ambroli, Surat. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 23, Rajrajeshwar Society, Bhatar, Four Rasta, Surat. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Ramanbhai Lallu Bhai. Acharya in Sāhitya & Jyotiṣaa, B.Ed. ***b.*** 10.03.1948, Asma, Pardi, GJ. Principal. ***Gp.*** Danidatta Jha, Ramanarayana Vyasa, Revashankara Dube, Narendrabhai Upadhyaya. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Govt. High School, Ashramshala, Singana, Ahwa Dang, (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Jyotiṣa.

Patel, Ramesh Bhai Dwarka Bhai. Ph.D. ***b.*** 01.02.1965. Prof., Arts College, Vijay Nagar, Sambharkanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sardar Pur, Falasan, Idar, Sambharkanta, (GJ). ***Spl.Ref.*** Purāṇa Śāstra.

Patel, Ramesh Bhai Govind Bhai. Ph.D. ***b.*** 20.05.1968. Prof., Smt. H. C. Patel Arts & Commerce College, Karjan, Varodara. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 12, Shikshak Sadan, School Compound, Nava Bazar, karjan, Varodara. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Ramila Ben Magan Bhai. M.A. Ph.D. ***b.*** 02.06.1966. Prof. Vivekanand College of Arts, Raipur Darwaza Bazar, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** C-304, Anmol Appartment, Baherampura, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Rasikalal Kikabhai. M.A., Ph.D. ***b.*** 16.11.1944. ***Gp.*** K. H. Trivedi, B. H. Kapatiya. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 213, Gayatri Apart (B), Opp. Giriraj Theatre, Navsari (GJ). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Patel, Rupa Natwar Bhai. Ph.D., 06.01.1967 Ahmedabad. Asst. Prof., Smt. Sadguna Arts College for Girls. ***Ps.*** 09. ***Add.*** D/15 Malbar Hill Appartment, Prem Chand Nagar Road, Ahmedabad-380015. Ph. 079-26745473, 09426579440. rupa.patel67@gmail.com

Patel, Shailesh Kumar Kanti Lal. Ph.D. ***b.*** 01.06.1966. Prof., Arts & Commerce College, Audh, Aanand. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sardar Chauk, Near Gayatari mandir, Audha, Aanand. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Shankar Bhai M. Ph.D. ***b.*** 05.03.1943. Prof., M. M. Gandhi Arts & Commerce College, Kalol. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shivam Shrinath Society, Near Saraswat Society, Kalol, Panchmahal, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Sita Ben Dhanji Bhai. Ph.D. ***b.***01.06.1966. Prof., Jayendra Puri Arts & Science College, Old National Highway No. 8, Bharuya. ***Ps.*** 04. ***Add.*** C-55, Hariom Nagar Society Bharuya, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Sita Ben Shobha Bhai. Ph.D. ***b.***01.06.1968. Prof., Seth Shri H. P. Arts & T. S. M. Commerce College, Talod, Sambharkanta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 572/2, B-1, Shivalik, Near Central School, Sector 30, Gandhi Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patel, Sunanda Ben S. Ph.D. Prof. Smt H.B. Jasani Arts & N. K. Commerce College, Rajkot. ***Ps.*** 03. ***Add.*** New D Block No. 10/147, Near Dharam Cinema, Rajkot.

Patel, Surekha Ben Kalidas. Ph.D. ***b.*** 01.04.1967. Prof., G. D. Modi Arts College, S.T. Workshop, Palanpur. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 1, Vinayak Park Society, Jampura Road, Palanpur, Janastanta GJ. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Suresh Bhai Shiva Bhai. Ph.D. ***b.*** 01.06.1971. Prof., C. N. Arts & B. D. Commerce College, Kadi, Mehsana. ***Ps.*** 03. ***Add.*** C/o.Shri Ishwar Bhai, Mehtapura, Himmat Nagar, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Tribhuvan Bhai Mangal Bhai. Ph.D. ***b.***12.09.1948. Prof., Arts & Comerce College, Idar, Sambharkanta. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Madhuram

Hall, Railway Station Road, Idar, Sambharkanta, (GJ). *Spl.Ref.* Purāṇa.

Patel, Tulsi Das Dhanji Bhai. Ph.D. *b.*01.12.1970. Prof., Arts College, Vadali, Sambharkanta. *Ps.* 03. *Add.* Ravipura-kampa, Megha, Vadali, Sambharkanta, (GJ). *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, Urwashi Ben Chagan Lal. Ph.D. *b.* 24.09.1967. Prof., C. U. Shah Arts College, Lal Darwaza, Ahemdabad. *Ps.* 05. *Add.* 26, Devpuriya Banglow, Motera Stadium Road, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, Usha Ben Suman Bhai. Ph.D. *b.* 26.01.1965. Prof., Arts & Commerce College, Kankanpur, Godhra, Panchmahal. *Ps.* 03. *Add.* 27, Heena Park Near Yogashram Society, Manikbag Road, Satelite, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, Vasant Chagan Lal. Ph.D. *b.* 15.01.1946. Prof., M. T. B. Arts, Science College, Surat. *Ps.* 03. *Add.* A-10, Balkrishna Appartment, Near Sudama Hotel, Surat. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Patel, Veenu Bhai Natha Bhai. Ph.D. *b.*21.12.1972. Prof., Arts College, Rajendra Nagar, Bhiloda, Sambharkanta. *Ps.* 04. *Add.* Galodiya, Khedbrahma, Sam-bharkanta, (GJ). *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Patel, Vijyanand Girdhar Lal. Ph.D. *b.*05.10.1971. Prof., Bhawans College, Dakor. *Ps.* 03. *Add.* 12, Purushottum Banglow, Near S.T. Stand, Umreth, (GJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Patel, Yashodabhana Babulal. M.A., B.Ed. *b.*09.08.1951, Kanjanranjod, Valsad, GJ. Teacher, S.M. School, Dharampur. *Ps.* 02. *Add.* Vidyabharati, Bilpudi, Dharampur (GJ). *Spl.Ref.* Darśana.

Pathak, Anil Kumar. Acharya. *b.* 06.07.1951. Chalis Gaon, Jalgaon, MH. Lecturer, Mumba Devi Adarsa Samskrita Mahavidyalaya, Bharatiya Vidya Bhavan. *Ps.* 05. *Add.* Netaji Stop, Ulahas Nagar – 04, Thana. (MH). *Spl.Ref.* Advaita Vedānta.

Pathak, Asvin Kumar Sankar Prasad. Acharya in Sāhitya, Vyākaraṇa Śāstrī. *b.* 21.02.1942. Baroda. GJ. Teacher, Samskrita Maha-vidyalaya, D.N. Hall, Pratapaganj, Baroda. *Gp.* Dr. Jayanarayana Pathaka, M.V. Upadhyaya, Srirama Bh. Sirgamvkara. *Ps.* 04. *Add.* Pathak Nivas. Bajapara, Bhatiashery, Baroda – 390001 (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Pathak, Baldev. *b.* 1873. Gorakhapur Devapara gram. Gp. Pt. Sudhakar Diwedi. *Bks.* 01. Maṇḍapakuṇḍasiddhīḥ. *Spl.Ref.* The Nadivalay yantra was made by him.

Pathak, Bhavesh Nath. P.G. *b.* 01.01.1934. Rtd. Principal, *Bks.* 03. Brahma Sūtra - The Song String Divine, The Gita Divine, The Vedāntaic Verses - An Anthology of the Vedānta Triology (with full saṃskṛta text and Roman Translations). *Spl.Ref.* Associated with various literary, music, dance, drama, photography and fine arts societies.

Pathak, Brahmananda. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.*15.10.1934. Voknare, Basti, U.P. HOD of Sāhitya. *Ps.* 05. *Add.* Sri Rajgopal Sanskrit Mahavidyalaya, Ayodhya, Faizabad (U.P). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, Vedānta.

Pathak, Chandra Shekhar. Acharya in Sāhitya. *b.*07.11.1952, Devatoli, Almora, U.P. Principal. *Gp.* Badridatta Pathak, Purnachandra Pathak, Durgadatta Pathak. *Ps.* 05. *Add.* Shri Narayan Sanskrit Mahavidyalaya, Kamedi Devi, Almora (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pathak, Chandrika Ben Vasudev. Ph.D. *b.* 01.10.1940. Prof., B.D. Arts College, Manikchauk, Ahemdabad. *Ps.* 03. *Add.* 354, Vagarth Saraswati Nagar, Ambawadi, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Pathak, Data Ram. Acharya in Vyākaraṇa, M.Ed. Ph.D. *b.*12.010.1976. Jharkhand. Asst.Prof., Mahalxmi College for Girls, Gaziabad.. *Bks.* 01. *Ps.* 05. *Add.* Siswa Bazar, Gorakhpur (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya & Purāṇa.

Pathak, Dinesh Prasad. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya & Purāṇa. *b.*05.09.1954, Gorakhpur,

U.P. Principal, Shri Sarasvati Skt. Pathashala, Dhivaha. ***Gp.*** Suresha-prasada Pathak, Vanamali Pandey. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 858, Gali No. 04, Nathupura, Burarai, Delhi-110084.. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pathak, Durga Datt. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. ***b.***15.10.1922, Devatoli, Almora, U.P. Rtd. Principal. ***Gp.*** Laxmidatt Pathak, Dravyesha Jha, Ramalakhan Pathak. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Devatoli, Kemadi Devi, Almora, (U.P.). ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa.

Pathak, Girish Chandra. Acharya. ***b.***05.03.1949, Begusarai, Bihar. Principal. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Akshyavata Sanskrit Madhyamik Vidyalaya, Navakothi, Begusarai (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pathak, Indravadan Krishna Dev. Ph.D. ***b.*** 29.10.1947. Prof., Bhawans College, Dakor, Kheda. ***Add.*** Near Purushottam Bhawan, Pujya kumar Branch, Dakor, Kheda, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pathak, Jagannath. Acharya in Sāhitya, M.A. (Skt. & Hindi), Ph.D. ***b.*** 04.10.1934 Sasaram. Rtd. Principal, R.Sk.S. Allahabad Campus. ***Gp.*** Ramroop Pathak, Pt. Mahadev Shastri, Siddheshwar Bhattacharya, Prof. Baldev Upaddhyay. ***Bks.*** 10. Kāpīśayanī, Mṛdvīkā, Pipāsā, Jahāṃgīravirūdāvalī. Vicaittī Vātāyanī. ***Ps.*** 25. ***Add.*** Avas Vikas Colony, Jhunsi, Allahabad. ***Spl.Ref.*** He is Awarded by Sāhitya Academy for Kapishayni in 1981 & U.P Sanskrit Academy Award, Lucknow. Famous Poet & Critics. Well known writer of Arya metre. President Awardee.

Pathak, Jayanarayan Ramakrishn. Tīrtha in Kāvya & Vyākaraṇa, Ph.D. ***b.***24.09.1925, Baroda, GJ. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Mehatapole, Goraiwada, Baroda (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa, DharmaŚāstra.

Pathak, Kaushal Kishore. b. Dhana, Sagar M.P. ***Bks.*** 03. Hanumāna Sañjivanī Būṭī, Japa-mālā, Sūrya-Cālīsā, Śaniprabhava Jyotiṣa. ***Spl.Ref.*** Many Articles published in Jyotiṣa Martanda Magazine.

Pathak, Kishore Chandra Bhanu Shankar. Ph.D. ***b.*** 01.03.1947. Prof., Kamani Science & Pratap Rai Arts College, Vidhyavihar Amreli. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Padmapani, Mahadevpura, Balala, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra & Vyākaraṇa Śāstra.

Pathak, Kuber Nath. Acharya in Yajurveda (Krishna & Shukla), M.A., Ph.D. ***b.***15.10.1934, Ekdanga, Deoria, (U.P.). Asst. Prof. ***Add.*** Acharya Niwas, Flat No. 7, Sri Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Yajurveda.

Pathak, Madan Mohan. Ph.D., B.Ed.. ***b.*** 10.12.1968, Bihar. Asct. Prof. R.Sk.S., Garli Campus. ***Bks.*** 03. ***Ps.*** 24. ***Add.*** C/o Dr. H.K. Sharma, At./P.O. Garli – 177108, Dist. Kangra (H.P.). ***Ph.*** 01979 – 245288. ***Spl.Ref.*** Editing Jagannath Paṃcaṃgam & Bhaskaroday (Jrn.).

Pathak, Madhukar. Acharya in Vedānta-Vyākaraṇa. Ph.D. ***b.*** 12.09.1942, Varanasi, (U.P.). Head of Vyākaraṇa Deptt. ***Gp*** Ramprasad Tripathi, Chintamani Tripathi, Narayan Dwivedi, Ramanuj Ojha, Vishvanathashastri Datar. ***Bks.*** 01. Pāṇiniyaśikṣāyāḥśikṣāntaraiḥ Saha Samīkṣā. ***Add.*** Shri Ramdesik Skt. Mahavidyalaya, Daraganj, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Vedānta.

Pathak, Madhusudan Madhavlal. M.A., Ph.D. ***b.***26.11.1930, Godhra, GJ. ***Gp.*** Asst. Prof., Govindlal Hargovind Bhatt, Dr. Shridhar. ***Bks.*** 01. Upamā in the Vālmīki Rāmāyaṇa (Eng.). ***Add.*** L-2, Vikram Bagh, Pratapganj, Vadodara-02. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pathak, Manish. M.A., Ph.D. ***b.***19.08.1942, Raipur, (M.P.). Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Raipur (M.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pathak, Manu Bhai J. Ph.D. ***b.*** 25.03.1945. Prof., Arts & Commerce College, Balasinore, Khedha. ***Ps.*** 03. ***Add.*** B/7 Vrindavan Society, Balasinore, Kheda. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Pathak, Marutinandan. M.A., Ph.D. Asct. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Magadh University, Bodh Gaya, Gaya (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Darśana.

Pathak, Meena Ben P. M.A., Ph.D., Sāhityacharya. *b.*20.12.1951. Sadhi, Baroda. Asst. Prof., Oriental Institute, Baroda. ***Bks.*** 03. A study of Taittiriya Upansisad. ***Ps.*** 28. ***Add.*** 12, Rajgiri Society, B/H Aryakanya Vidhyalaya, Karelibaug, Vadodara–18. ***Ph.*** 0265 – 2425121.

Pathak, Meena Ben Pinakin Bhai. Ph.D. *b.*20.12.1951. Prof., Prachya Vidhya Mandir, M. S. University of Varodara, Near Palece Gate Varodara. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 12, Rajgiri Society, Near Aarya Girls School, Kareli Bag, Varodara. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Pathak, Meera Ben P. M.A. Ph.D. Prof., V.M. Mehta Municipal Arts & Commerce College, Jam Nagar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 3, Cricket Banglow Street, Near Gurudwara Jam Nagar, (GJ).

Pathak, Mool Chandra. Ph.D., M.A. Asst. Prof., Udaipur Univ. ***Bks.*** 03. Kālīdāsam Nāmāmyaham, Rājaratnākara Mahākāvyam, Raghūvaṃśa Mahākāvyam. ***Spl.Ref.*** Vidwat Samman. Awarded by H.R.D. New Delhi.

Pathak, Murli Manohar. M.A., D.Phil, Acharya in Sāhitya, L.L.B. ***b.*** 01.09.1963. Prof. Dept. of Skt. ***Gp.*** Harishankar Tripathi. ***Bks.*** 03. Ṛigvedīya Darśana evam Pramukha Dārśanika Sūkta, Catuṣṭayī Bhārtiya Saṃskṛiti, Sabhyatā evam Paryavarṇīya Adhayayana. ***Ps.*** 42. ***Add.*** Gorakhpur University, Gorakhpur. ***Spl.Ref.*** Best Research Paper Award.

Pathak, Niranjan Bhai J. Ph.D. *b.*06.02.1945 Prof., Samandas College, Bhav Nagar. ***Add.*** 106, Devnad Complex, Panwadi, Bhav Nagar. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Pathak, Purushottam Prasad. Acharya in navya-Vyākaraṇa, M.A. *b.*15.10.1938. Prof., S. S. V., Varanasi, U.P. ***Gp.*** Shri Ram Pandey. ***Sp.*** Chang Jung Vah (Kariya). ***Ps.*** 07. ***Add.*** Madhopur, Gopigang, Sant Ravidas Nagar, Mandohi. ***Spl.Ref.*** Received Skt. Varsh 2000 Samman by Govt. of India.

Pathak, R. P. M.A. (Skt., A.I.History, Sociology). D.D.E., PMOL., M.Ed., Ph.D. *b.*15.12.1959. Agraura, Jaunpur (U.P.). Prof. in Edu. L.B.S. R.Sk.S. Vidhyapeeth, New Delhi. ***Bks.*** 25. Prāchina Bhārtīya Śīkśā, Philosophical & Sociological Perspectives of Education, Philosophical & Sociological Dimensions of Education, Śikśa ke Dārśanik avam Samāj śastriya Ādhāra, Bhartiya śikṣā Samasyayen avam sūjhāva. ***Ps.*** 25. ***Add.*** C/o Karan Singh. H. No. 200. Katwaria Sarai. New Delhi – 110016. ***Ph.*** 011- 6060635, 638 (R). 09868905810 (M).

Pathak, Raghvendra. M.Phil. ***b.*** 07.04.1979, Gorakhpur. ***Ps.*** 01. ***Add.*** H. No. 106, Jubilee Hall, Delhi University, Mall Road, Delhi – 07. ***Ph.*** 7667826, 7666265.

Pathak, Rajaram. Acharya in NavyaVyākaraṇa, B.A., B.Ed. *b.*01.12.1946, Jabalpur (M.P.). Principal. ***Gp.*** Vishwanath Tripathi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Onkardvij Sanskrit Vidyalaya, Malharganj, Indore (M.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pathak, Rajeshvar. Sāhityacharya. ***b.*** Palamoo, Bihar. Teacher, Janata High School, Vishrampur. ***Bks.*** 05. Śrīgaṅgāsomāvataraṇam (Kāvya), Sitārāmacaritam (Kāvya). ***Add.*** Manpur, Palamoo, South Chota Nagpur (Bihar). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pathak, Ram Lakhan. Acharya. (Vyākaraṇa, Nyāya, Vedānta). ***b.*** 1917, Gagha, Gorakhpur, U.P. Rtd. Principal, Sanatan Dharma-vivarddhini Sanskrit Maha-vidhyalaya. ***Gp.*** Baba Sarju Prasad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sirhipur Mandir, Ramghat, Ayodhya U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Nyāya, Vedānta Śāstra.

Pathak, Ram Milan. Acharya in Jyotiṣa. *b.*07.08.1957, Lohjara, Gajipur, U.P. ***Gp.*** Balchandra Musalagavkar. Asst.Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Govt. Sanskrit Mahavidyalaya, Bhitari Shidhi, (M.P.) ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Pathak, Ram Nath. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya, M.A. ***b.*** 05.11.1919. ***Bks.*** 05. Sradhāñjalī, Raṣtrāvanī, Sāthī, Sitār, Tīrthān-kara Bālagītāñjalī. ***Expired on*** 16.08.1989.

Pathak, Ramrup. ***b.*** 1891, Saharsa (Bihar). ***Gp.*** Harihoranand Saraswati. ***Bks.*** 02. Caitrakāvyakautūham, Śrī Rām Carītam.

Expired in 1973. *Spl.Ref.* He was a first Chairman of 'Kavi Bharati' of Varanasi.

Pathak, Ratikant Sharma. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. *b.*03.04.1929, Madhubani, Bihar. Acharya & Head of Sanskrit Deptt. *Ps.* 05. *Add.* Sangat Singh College, Bihar University, Muzaffarpur (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pathak, Roop Narayan. Acharya. *b.*14.06.1929. *Ps.* 03. *Add.* A-405, Shastri Nagar, Ashok Vihar, Delhi. 110052. *Spl.Ref.* Karmakanda.

Pathak, Shuddhanand. M.A., Acharya, Ph.D. *b.*04.07.1951. MH. Prof., L.B.S. R.S. Vidyapeetha, New Delhi. *Bks.* 02. Śiva Sūtra Śūdhānandī Tīkā, Padārtha-tattva-Nirnaya. *Ps.* 02. *Add.* 42, F. Bersarai (First Floor), Near Old J.N.U. Campus, New Delhi – 16. *Ph.* 6851306 – 46060530.

Pathak, Suniti Kumar. *b.* 01.05.1924. Midinapur, WB. Rtd. Prof., Vishwa Bharati and Asiatic Society. *Bks.* 08. *Ps.* 192. *Add.* Akash Deep, Abanpalli, Santiniketan – 35. WB. *Spl.Ref.* Sri Pathak has contributed to the development of Skt. Studies by undertaking painstaking task of restoring lost original Skt. texts based on the Tibetan and Chinese translations. Thus he restored more than six texts such as, 'Cāṇakya Rājanīti Saṅgraha'. 'Nītiśāstra of Masūrākṣa' etc. He innovated Sanskrit – Tibetan bi-lingual editing methods and published 'Ārya-Bhadrācārī-Praṇidhāna-Rāja' and other works based on those principles. He also contributed in Tibetan tantra studies and Indian Tantric Visual Art outside India, President Awardee.

Pathak, Surendra. Acharya (Navya Vyākaraṇa), Ph.D. *b.* 30.03.1956. Prof., RSKS, Lucknow Campus. *Gp.* Ramnarayanacharya, Sh. Ramprasad Tripathi. *Sp.* Dr. Bharat Nandan Chaubey, Dr. Anupama Prusty, Dr. Kali Prasad etc. *Bks.* 05. Saudheyam, Mohinī, Ṣadliṅgeṣu Sureṣana, Pañca sandhyanteṣu Sursammati, Vyākaraṇa of Laghuśabdenduśekhara. *Ps.* 11. *Add.* D-1/228, Vinit Khand, Gomti Nagar, Lucknow-226010. Ph. 0522-2393748. M. 09450466200. *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Oriya.

Pathak, Tribhuvananatha. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Diploma in Library Science. *b.*04.07.1928, Pathkhauli. *Gp.* Chandra Shekhar Mishra, Pt. Brahmadatta Dwivedi. *Ps.* 05. *Add.* Sanskrit Vihar, Pathkhauli, Nandapur, Saran (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Pathak, Vaneshwar. M.A. (Skt. & Hindi), Acharaya (Sāhitya, Vyākaraṇa), D.Litt. *b.* 18.09.1922. Bihar. Prof. & HOD, St. Xavier College, Ranchi. Śāstra Chudamani Scholar. *Bks.* 09. Kālidāsīyam, Yīśucaritam, Plavaṅga-dūtam. *Add.* Sanskrit Sadanam, Street No. 2. Kishoreganj, Ranchi – 01. *Spl. Ref.* Rajkiya Sāhitya Puraskar. U.P. Govt. President Awardee.

Pathak, Vasudev Vishnu Prasad. Ph.D. *b.* 15.03.1940. Prof., B.D. Arts College, Manik Chauk, Ahemdabad. *Ps.* 05. *Add.* Vagarth 354, Saraswati Nagar, Near Himmatlal Park, Ambawadi, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Pathak, Vidhyadhar. Acharya (NavyaVyākaraṇa, DharmaŚāstra), *b.*03.01.1941, Azamgarh, U.P. HOD. *Gp.* Chandi Prasad Pathak, Murlidhar Mishra. *Ps.* 05. *Add.* V-1/150, L-60, Varanasi U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Pathak, Vijay Shankar. Acharya. *b.*26.12.1943, Pachoukhar, Gaya, Bihar. Vice-Principal. *Ps.* 03. *Add.* Kallumal Sanskrit Mahavidhyalaya, Chawal Mandi, Kanpur U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Pathani, Veenapani. M.A., Ph.D. *b.*15.08.1932, Holdwani. Asst. Prof., Jankidevi College, Delhi. *Gp.* K.S. Ayyar, K.C. Pandey, A.C. Banerji. *Bks.* 04. Madhūramilan, Aprājītā. *Ps.* 05. *Add.* D-120, Vivek Vihar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sanskrit Sāhitya Seva Samman -1996.

Pati, Narayan. M.A., Ph.D. *b.* 21.10.1970, Puri. R.A., Academy of Skt. Research, Melkote. *Ps.* 01. *Add.* 2, Kapileswar Pur, Puri, Orissa. *Ph.* (R) 49963 (O) 58741.

Pati, Nilakantha. Acharya in Sarvadarśana.

M.A., Ph.D. ***b.*** 20.10.1953. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sarva Darśana Department, Shri Jagannath Sanskrit Mahavidyalaya, Puri (Orissa). ***Spl.Ref.*** Sarva Darśana.

Pati, Venimadhav. M.A., Ph.D. ***b.***06.06.1919. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Chandraprabha Lane, Berhampur, Ganjam, Orissa. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Patidar, Natha Bhai Ranchod Bhai. Ph.D. ***b.***01.03.1946. Prof. Shri Lunawada Arts Science & Commerce College, Sant Rampur Road, Lunawada. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Near Shivaji Kuva, Dungabheet Lunawada, Panchmahal. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Patil Surendra P. M.A., Ph.D. ***b.*** 10.06.1939. Sangli, Maharashtra. Prof. in Kannada, Jainology , Karnataka Univ., Dharwad. ***Gp.*** Mirzi Anna Rao. Dr. RS Mugali. ***Sp.*** Dr. Parsvanath Kempannavar, Dr. T.R. Jodatti. ***Bks.*** 60. Bhagavān Mahāvīra aur unkī Ācāraparamparā, Jainadarśana. Chāmuṇḍ-arāya Purāṇa : Adhyayana. Nayasenasampu-a (Dharmāmṛtam). ***Ps.*** 75. ***Add.*** Vaishali, Samarth Chowk South Shivaji Nagar, Sangali- 416416. Ph. 0233-2321170. M. 09423829403. ***Spl. Ref.*** Prakrit Jainology, Nemichandra Acharya Prashasti, Chavundaraya Prashasti, Dr. A.N. Upadhayaya Sāhitya Sanshodan Prashasti. Editor, Sanmati Magzine, Chief Editor Pragati Jin Vijay, Dakshin Bharat Jain Sabha etc.

Patil, Amrit Bhai J. M.A., B.Ed. Lect. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sri Vanaraja Arts & Commerce College, Dharmapur, Valsad (GJ). ***Spl.Ref.***. Vedānta.

Patil, Devadutta Govinda. M.A., NET, Ph.D. ***b.*** 08.07.1969. Goa. Acharya. Nrisimha Saraswati Pathshala, Alandi, Pune. ***Spl.Ref.*** Advaita Vedānta, Nyāya Śāstra, He is the Convener of Subrahmanya Vakyartha Sabha in Pune. He has been honoured by different organizations, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Patil, Gajanan Moreshvar. M.A., L.L.B., Ph.D. ***b.***25.03.1916, Bombay, MH. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Ganapati Shastri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Dadar, Bombey (MH). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Patil, Nathubhai Lalu bhai. M.A., M.Ed. Asst. Prof. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Shri Vanaraja Arts and Commerce College, Dharmapur, Valsad– 396050 (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patnayak, Pyaree Mohan. Acharya in Sarva-Darśana & AdvaitaVedānta. Ph.D. ***b.*** 17.04.1955, Polasara, Ganjam, Orissa. Prof., Dept. of Darśana, S.J.V.V., Puri. ***Bks.*** 05. Sānkhyakārikā with graphic comm. A Graphic Representation of Vedāntasāra & Mīmāṃsā Paribhāṣā. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Sharat Niwas, Suar Sahi, Puri (Orissa). ***Spl.Ref.*** Sarva Darśana & dvaitaVedānta.

Patoliya, Mansukh Bhai P. Ph.D. ***b.*** 25.01.1966. Prof., Smt. M. M. Shah Mahila Arts College, Kadi. Mehsana, GJ. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Manorama 6, A Sardar Patel Society, Vibhag 2, Kalol, GandhiNagar. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Patoria, Kusum. M.A., Acharya in Sāhitya, Sāhitya-Paraṅgata, Ph.D., D.Lit. ***b.*** 22.02.1950. Reader, Dept. of Skt., Nagpur Uni. ***Bks.***11, Kathā Paurāṇikī dṛṣ-i Ādhunikī, Krāntigāthā, Bhāratīya Kāvyaśāstra: Kāvyābhāsa va Kāvyabimba(First Comparative Study of Poetic Image, A Western Concept of Aeasthetics& Indian Poetics) ***Ps.***200. ***Add.*** Azad Chowk, Sadar Nagpur,(M.S.),440001. Ph. 0712-2520327. ***Spl Ref.*** SāhityaŚāstra, Philosophy, Jainology. Sashasrabdi Hindisevi Purskar etc. prakrit, Apabhransha.

Pattamal, R. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.***08.07.1955, Nagapattinam, Tanjore, T.N. Asst. Prof. Gp. Dr. N.V. Ranganathan, Dr. Kunjan Raja. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Ethiraj College For Women, C.N.C. Road, Madras (T.N.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pattangi, Narasimhacharya. Vidvan, M.A., B.Ed. ***b.*** 13.06.1945, Sitaram Pet, Chittur, (A.P.) Teacher. Gp. N.C.V. Narasimhacharya. ***Ps.***01. ***Add.*** Basic Sanskritonnat Pathshala, Shri Vyasashran, Yerpedu, Chittur – 517619, (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Patwa, Leena. M.A., Ph.D. ***b.*** 02.06.1979, Damoh M.P. Geust Lect.,Govt. P.G. College, Damoh M.P. ***Gp.*** Bhag Chandra Jain, Shiva Darśana Tiwari. ***Ps.*** 03.

Pavar, Yadarama. M.A., B.T. *b.* 03.08.1943. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Rajgarh Colony, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** A-58 Jagatpuri, Delhi – 110051. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pawan Kumar. M.Ed. (Skt.), Ph.D. ***b.*** 01.03.1978, N.Delhi. Asst. Prof., R.Sk.S. Jaipur. ***Gp.*** Prof. Ramanuj Devnath, Prof. J. Ramkrishna, Prof. M. Sharada. ***Ps.*** 03. ***Add.*** S-62. Param Puri, Uttam Nagar, N. Delhi – 59. ***Ph.*** 09893073280. ***Ph.*** 09571216994.

Peja, Dilip Kumar K. Ph.D. ***b.***18.04.1967. Principal. Shri U. N. Mehta Arts College, Near Nazar bag Railway Station Morbi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Kripa Sahyog 2, Near Yogeshwar Nagar, Khapar Road, Morbi. ***Spl.Ref.*** Vedānta Shatra.

Pemananda, Mawatagama. B.A., M.A. ***b.***04.02.1969, Mawatagama. ***Bks.*** 01. The Syp Seen by Kaū-ilya. ***Ps.*** 09. ***Add.*** Ketapitiya Purāṇa Viharaya, Menikdiwela, Shri Lanka. ***Ph.*** (094) 08 - 575346.

Penchalayya, G. Shiromani, Shiksashastri. ***b.***01.04.1967, Cuddapah, (A.P.). Teacher. ***Ps.*** 02. ***Add.*** A.O.U.P. School, Chint Chowk, Ashok Nagar, Cuddapah – 516001 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Penna, Madhusudan. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.***26.04.1966, Hyderabad. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 08. ***Add.*** C/o Dr. V.D. Kulkarni, Opp. Dhanvantari Hospital, Khare Town, Dharampeth, Nagpur, MH.

Perukkarani, Mathabhusi Chakravarti Acharya. Vidyavachaspati, Shiromani. ***b.***22.02.1923, Perukkarani, T.N. ***Gp.*** D.T. Tatacharyar, Ramnath Shastri. ***Add.*** 3/103, Vellalar Street, Narasingh Nagar, Tiruvettipur, North Arcot – 604407 (T.N.). ***Spl.Ref.*** Darśana & Veda.

Petel, Gautam Vadilal. M.A., Ph.D. ***b.***04.08.1936, Ahmedabad, GJ. H.O.D. of Skt. Dept., Saint Xavier College, Ahmedabad. ***Bks.*** 01. Kumārasambhavam Vallabhadeva-ikā-sahitam(ed.). ***Add.*** Valam L-III, Swatantrta-senani Nagar, Naya Vadaja, Ahmedabad – 380013 (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Piccai Kurukkal, K. ***Age.*** 41 yrs. in 1988, Pillaiyar Patti, T.N. ***Gp.*** Shrikrishn Kurukal. ***Add.*** Pillaiyarpatti, T.N. ***Spl.Ref.*** Veda & Saivāgama.

Pillai, K. Achuthan. M.A. (Skt. Malayalam, Hindi, Vedānta), M.Ed., Ph.D. Principal, Hindi Teachers Training College, Trivendram. ***Bks.*** 40. ***Ps.*** 80. ***Spl.Ref.*** He was awarded UGC Assistance for a major Research Project and Sr. Fellowship for Literature Govt. of India, President Awardee.

Pillai, Krishna N.P. Mahopadhyaya, L.T.T. ***Age.*** 61 yrs., Mukhatala, Kollam, Kerala. Rtd. Teacher. ***Add.*** Lekha Niwas, Mayyanad, Kollam (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Pillai, Narayan P.K. M.A., Ph.D. ***b.*** 25.12.1920, Tiruvalla, Kottayam, Kerala. ***Gp.*** Dr. B.M. Apte. ***Bks.*** 03. Mīmāṁsāsūcanārthasangraḥ, Laghu-bhāṣkarīyam, Madanaketucaritam. ***Add.*** Jaya Vihar, Jagati, Tiruvananthapuram – 695014 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pillai, P.K. Narayan. M.A., Malayalam, Sanskrit. Ph.D. ***b.*** 25.12.1910 Kerala. Principal, Univ. College, Dean Prachaya Vidya Sankaya & HOD Prof. ***Bks.*** 09. Śabarī-giritīrthā-anam, Mayūradūtam, Pitāduhitā Ca ***Spl.Ref.*** He is a Famous Poet in Malayalam & Sanskrit Sāhitya, Honoured by Vivekanand Samman, Kerala Sāhitya Academy, Kerala Verma. Member of the Foundation Commiitee of Skt. Univ. in Kerala.

Pillai, Raman P.G. Vyākaraṇaśiromaṇi, Vidvān (Sanskrit, Malayalam). ***b.***14.11.1927, Thiruvalla, Pattanmathitta, Kerala. ***Gp.*** Krishn Murar, Padmanabhan Nayar. ***Add.*** Chungmannar (Kerala). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Veda.

Pimpikapure, Gunakara Vamana. M.A., Ph.D. ***b.*** 12.12.1927, Mivapur, Nagpur, MH. ***Bks.*** Gītārahasyasya Lokamānyatilakakṛtasya Sanskṛtānuvādaḥ, Saṃskṛta Bhavitavyam-patrasya sampādanam, Abhyāsasiddhānta. ***Add.*** 41, Modern Housing Society, Pratap Nagar, Nagpur – 440022 (MH). ***Spl.Ref.*** Vedānta, Kāvya & Sāhitya.

Pipasi, Ram Swaroop. M.A. *b.*06.03.1955, Rasin, Banda, U.P. Asst. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shriram Sanskrit Mahavidhalaya, Janaki Kund, Chitrakut, Satna M.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Pisarati, Bharat E.P. Kāvya Bhushan, Hindi Bhushan, Śāstra Vachaspati. ***b.*** 30.12.1920, Eranellur, Trissur, Kerala. Ex. Principal, Śāstra Chudamani. ***Gp.*** Sri Subrah-manyashastri, Krishna Pisarati. ***Bks.*** 03. Kāmadhenu, Saṁskṛta Vṛttasamīkṣā, Śāhityatriveṇī. ***Add.*** Kamadhenu, Eranellur, Trissur 01. (Kerala). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya, Bal Sāhitya Writer.

Pisharati, Narayan K.P. Sāhityaśiromaṇi, Malyalam Vidwan. ***b.*** 23.08.1909. Prof., Sri Kerala Verma Mahavidyala, Trissur. ***Bks.*** 01. Saṃskṛtavibhūtiśatakam. ***Ps.*** 50. ***Add.*** Naryaniyam Kanattukara, Trissur -11. Kerala. ***Spl. Ref.*** President Awardee. A famous Scholar in Skt. and Malayalam Language and Literature, Kodiyatam Nā-ya Prampara, Sāhitya Academy Award, Kerala Sāhitya Academy Award, Kerala Sanskrit Sāhitya Academy Award.

Pitar, Kamalakar (Chintamani Dave). Sāhitya Manishi. ***b.***22.01.1915, Sankali, Goa. ***Gp.*** Vishnuvasudev Panasikara, Vasudev Shastri Pitar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Vittalapur, Sankali (Goa). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pochamcharla, Shriramamurty. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.05.1934, Tammavaram, (A.P.). ***Bks.*** 06. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 4/112, Vidyut Nagar, Dayalbagh, Agra (U.P.). – 282005. ***Ph.*** (O) 570196. (R) 570203.

Poduval, Kunjikanna V.P. Jyotirbhushana. ***b.***14.02.1915, Payyanur, Channanore, Kerala. ***Bks.*** 03. Sūkṣmagaṇitasopānam, Śṛanuta-gaṇitam, Gaṇitaprakāśikā. ***Add.*** Jyotiṣaasadan, Kokkani Sheri, Payyanur, Cannanore (Kerala). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Pokharela, Sriram Sharma. Acharya in Vedā, Ph.D. ***b.***1999 (v.s.), Varahatar, Sundari Jalam, Kathmandu, Nepal. Principal. Mahendra Sanskrit Univesity, Kathmandu. ***Gp.*** Somanath Paudela, Valmiki Paudela. ***Add.*** K-23/19, Dudh Vinayak, Varanasi – 221001 (U.P.). ***Spl.Ref.*** Veda & Vedic Philosophy.

Pokhariyal, Aditya. M.A. ***b.***05.07.1957. Secondary School, Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** K-13, L.I.C. Colony, G.T. Road, Shahdara, Delhi.

Pokhariyal, Bhagawati Prasad. Acharya in Sāhitya, Śikṣashāstrī. ***B.***14.04.1956. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School, G.T. Road, Shahadara. ***Ps.*** 02. ***Add.*** H-103, Kalibari Marg, New Delhi – 110001. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. ŚikṣāŚāstra.

Pokhariyal, Jagadish Prasad. Acharya. ***b.***02.11.1955, Garhwal U.P. Asstt. Teacher. ***Gp.*** Ramavrksa Pandeya, Jnana Chandra, Devanarayana Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Brahmniwas, Shrawan Nath Nagar, Haridwar (U.P). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pokhrel, Shanti M.A., Hindi Sāhitya Ratna, Ph.D. ***b.*** 01.02.1963. Sonitpur Assam. Reader, Deptt of Skt, Assam Univ. ***Bks.*** 01. Chāndogyopaniṣattattvasamīkṣā. ***Ps.*** 31. ***Add.*** Deptt of Skt., Assam Univ. Silchar-788011 Assam. Ph. 03842-264675. M. 09435712058. shantipokhrel.aus@gmail.com ***Spl. Ref.*** Nepali.

Pokhrela, Krishna Prasad. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.***24.08.1953, Janaki Nagar, Janakpur, Nepal. Principal. ***Gp.*** Vijayanand Mishra. ***Add.*** Shri Sitaram Vidyamandir, Sultanpur, Mahrauli, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Polavarapu, Shankarayya. Sāhityaśiromaṇi, Shiksashastri, M.A. ***b.***01.06.1953, V.N. Palle, Cuddapah, (A.P.). Sanskrit Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shrikrishnagirvana Oriental School, Prodduturu, Cuddapah–516360 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Poncha Shastri, Lalit mohan. Shastri (Smriti, DharmaŚāstra, Jyotiṣa, VaisnavaDarśana). ***b.***20.01.1934. Principal. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Kali Mahavir Gaurinath Chatushpati, Ramani Road, Karimganj. 780710. ***Spl.Ref.*** Smriti, Karmakanda, Jyotiṣa.

Potti, Raman Vasudevan. Mahopaddhyay. M.A.

b. 28.02.1929, Kokkad, Puttur, Kerala. Asst. Prof. *Gp.* K. Yajnanarayan Shastri, Shiva-subrahmanyam Shastri. *Add.* T-C-29/1336, Sivapuri, Shrikantheswaram, Tiruvananthapuram 695023. *Spl.Ref.* Veda, Vedānta, Vyākaraṇa & Sāhitya Śāstra, President Awardee.

Potty, Vishnu V.S. Shastri, M.A., Ph.D. *b.*06.08.1958, Thrikkalathoor, Kerala. Acharya, Shri Chandershekharendra Saraswati Nyay Śāstra Mahavidhyalaya, Kanchipuram. *Gp.* S. Venketkrishna Shastri, A. Shankar Sharma. *Ps.* 03. *Add.* 33 E/1, East Masi Street, Little Kanchi-puram T.N. *Spl.Ref.* Navya Nyāya Śāstra.

Potuval, Balakrishna V.P. M.A. *b.*23.06.1923, Payyanur, Kerala. Rtd. Lecturer. *Bks.* 05. Prabandhaprabodhinī, Padapuṣpāmañjarī, Upavādaparīkṣāsahāyī, Ātmadarśanam, Stotrahāram. *Add.* Shakti Niwas, Keloth, Payyanur, Cannanore, (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Potuval, Krishna A. K. Vidvan. *b.*26.10.1924. *Add.* Shantalayam, Tayaneri, Payyanur (Kerala). *Spl.Ref.* Sanskrit Sāhitya & Veda.

Prabha, C. M.A., Ph.D. Principal. *Ps.* 02. *Add.* Gargi College, Shiri Fort Road, New Delhi – 110049. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Prabhakar, Kallyan Lakshminarasimha. B.Sc., M.A., Ph.D. *b.*23.08.1942, Tadipatri, Anantpuram, A.P. Vice-Principal, Sanskrit Department, National College, Bangalore, KT. *Gp.* Madhavaram Subrahmanya Shastri, Surampudi Bhaskar, Dr. K. Krishnamurti. *Ps.* 05. *Add.* 524, 41 Cross, VIII Block, Jayanagar, Bangalore (KT). *Spl.Ref.* Alaṅkāraa, Jyotiṣa & Dharma-Śāstra.

Prabhakar, Ram Ratna, M.A., Ph.D. *b.*05.11. 1924, Delhi. Rtd. Prof. *Bks.* Sūryasaṃskṛtav-yākaraṇam, Saṃskṛta- mañjarī, Rajaḥkaṇam. *Add.* 1418, Gulian Bazar, Near Jamma Masjid, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Prabhakaracharya. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*21.11. 1931, Alappuzha, Kerala. Principal. Gomathe-shvar Vidyapeeth, Hasan. *Ps.* 02. *Add.* Shri Gomatheshwar Vidyapeeth, Shrawan Belagola, Hasan – 573135 (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya & Vyākaraṇa.

Prabhanjanacharya, Vyasanakere. M.A., Vedānta Vidvat, Vyākaraṇa a Vidvat, Ph.D., D.Litt. *b.* 14.06.1944. V.C. Sri Ragvendra Vedānta Mahapathshala and Director Sri Vyas Madhva Research Foundation, Bangalore. *Bks.* 100. *Spl.Ref.* He has done a yeoman service for Sanskrit by collecting and cataloguing more than 1000 manuscripts, President Awardee.

Prabhudayal. Acharya in Sāhitya. *b.* 16.10.1925, Amin Road, Rajkot, GJ. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Prof. Narayandas Bathija. *Ps.* 05. *Add.* 1, Anupama Society, Amin Road, Rajkot (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Pradhan, Bharamar Bara. Sāhityaśāstṛi, Kovid (Hindi). Pracharak, Hindi-Sanskrit-Pracharini Sanstha, Rajsunakhala, Orissa. *Add.* Kaimatia, Brajamohanpura, Puri – 752018 (Orissa). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Praharaj, Laxmicharan VidyAlaṅkāra. Acharya in Vyākaraṇa & Tarka. *b.*28.09.1869, Chatrapur, Ganjam, Orissa. *Bks.* 03. Navani-vedanaṣoḍaśī, Sukha-bodhinī, Satyopā-khyānaṃ. *Expired on* 11.04.1972. *Spl.Ref.* Awarded 'Kāvyalaṅkāraa' by the King Ramakrishna Rangarau Bahadur.

Praharaj, Priyali. B.A. (Hons.). M.A. M.Phil. Asst. Prof., Sanskrit Department. *Ps.* 02. *Add.* Jadavpur University, Calcutta – 700032 (W.B.). *Spl.Ref.* Smṛti.

Praharaja, Sadashiva. M.A. (Skt., Oriya), Acharya, Ph.D., Tradition in Yajurveda Madhyandin Shakha *b.* 24.08.1937 Sambalpur, Orissa. Former Prof. & Head. PG Deptt of Skt. G.M. Autonomous Govt. College, Sambalpur. *Bks.* 09 Bhaktasarvasva, Śrī Devī Bhāgavatadarpaṇa, Stutimālā . *Ps.* 80. *Spl.Ref.* Yajurveda Madhyandin Shakha, Śāstra Chudamani Scholar, Honour from Orissa Skt. Academy Skt. Univ. Puri, Title of Mahimaho-

padhyaya, Lokbhashaprachar Samiti Bhadrak, President Awardee.

Prahladachar, D. M.A., Nyāya Vidvān, Vedānta Vidvān, Ph.D. ***b.*** 17.02.1940. Bellary, KT. Ex-V.C. Rashtriya Skt. Vidyapeetha, Tirupathi. ***Bks.*** 20. ***Ps.*** 150. ***Spl.Ref.*** Nyāya Vedānta Vyākaraṇa, Sāhitya, Pt. Ratan Pt. Kulbhushan, Veda Vyas Rashtriya Skt. Puraskar, Presently, he is a member of several well known academic bodies and universities such as BHU, JNU, Rashtriya Sanskrit Sansthan, Central Sanskrit Board and ICPR. President Awardee.

Prajapati Likha Bhai M. Ph.D. ***b.***01.02.1971. Prof., Mahila Arts College Bijapur. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Brahmani Nagar Dediyasan, Mehsana. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Prajapati, Ambalal M. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.***31.12.1940. Malusan. Rtd. V.C. & Prof. H.N.G. Univ. Patan (N.GJ. Univ.). ***Bks.*** 20. Subhāsitaratnamālā Skt. Gītāṃjalī, Mahākavi Māgha – A Study, Subhāśitā Ratnāvalī, Parīcched Kalpadrum. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 25. Gujarat Housing Board, Sector-21, Gandhi Nagar–382021. GJ. ***Ph.***– 23224341.

Prajapati, Daksha Govind Bhai. Ph.D. ***b.***26.08.1972. Prof. Smt. Sadgun C.U. Shah Arts College For Girls, Lal Darwaza, Ahemdabad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 21, Nilam Park Society, Gurukul Road, Mem Nagar, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Purāṇa.

Prajapati, Jaswant Bhai Kachra Bhai. Ph.D. ***b.***01.06.1968. Prof. Arts & Commerce College, Ider, Sambharkanta. ***Add.*** Kaniyal, Himmat Nagar, Sabharkanta. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Prajapati, Mani Bhai E. M.A., Ph.D. ***b.***18.03.1938, Manud, Mehsana, MH. Asst.Prof., Dwarikadhish Skt. Academy & Research Sansthan, Dwarika, GJ. ***Bks.*** 10. Saṃskṛta Stotra Kāvya Udbhava, Vikāśa Evaṃ Svarūpa, Rādhākṛṣṇa Bhaktakośa Gujarāta Pradeśa kā Aṃśa, Tattvavicāra Saurabha, Nā-ya Darpaṇa, Saṃskṛta Svādhyāya Mañjuṣā. ***Ps.*** 45. ***Add.*** 11 Neelkantha Mahadev Road, Nagalpur, MH. 384002. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Prajapati, Mani Bhai Ishwar Bhai. Ph.D. ***b.***18.03.1938. Prof., Kankrej Arts and Commerce College, Thara, Janaskata. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 11, Neelkantha Banglow, Nagalpur Mehsana. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Prajapati, Mani Bhai. M.A. (Skt. & Hindi), C.Lib. ***b.***01.05.1947, Chanasma. Librarian & Head Gujarat University. ***Bks.*** 02. Bibliographic Survey of Catalogues of Indian Langueges Manuscripts. ***Ps.*** 10. ***Add.*** F – 1/6, Officer's Flats, North Gujarat University, Staff Quarters, Patana–384265. ***Tel.*** (02766) (R) 32639. (O) 22744.

Prajapati, Manoj Kumar L. Ph.D. ***b.***27.12.1970. Prof. M.N. Arts & Science College VishNagar. ***Ps.*** 02. ***Add.*** A-32 Manglam Society Vikram Cinema Road, VishNagar. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Prajapati, Manu Bhai Sendha Bhai. Ph.D. ***b.***05.03.1970. Prof., Arts Science & Commerce College, Pilwaye. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 24, Devrishi Banglow, Near Tirupati Township, VishNagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Prajapati, Sameer Kumar Kantilal. Ph.D. ***b.***12.07.1969. Prof., Arts & Commerce College, Chamunda Nagar, Radhanpur, Patan. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 16, Umiya Row House, Near Sorabh Vidhyalaya Radhanpur, Mehsana (GJ). ***Spl.Ref.*** Purāṇa.

Prajapati, Sweta. M.A., Ph.D. ***b.*** 31.07.1969, Karjan, Dist. Baroda, GJ Research Officer, Oriental Institute, M.S. Univ., Baroda. ***Bks.*** 05. Influence of Nyāya Philosophy on Sanskrit Poetics, Pānapetī, Bibliography of Palacography & Manuscriptology, Catalogue of Manuscripts at Oriental Institute, Baroda. Vadagranthas of Raghudeva Bhattacharya. ***Add.*** C/62, Akshardham Society. Aksharchawk. O.P. Road. Baroda – 390020. GJ. ***Ph.*** (0265) 2325548. Mob. 09898472669.

Prajna, Samani Kusum. M.A. Ph.D. ***b.*** 26.06.1959, Indore. Asct. Prof., Jain Vishva Bharati University. ***Bks.*** 14. Ekārthaka Kośa, Pinḍniryuktī, Jītakalpabhāśya, Ek Būnd ek

Sagar, Acārya Tūlsī ke Sāhitya se (22,000 Suktīyon kā Sankalan). ***Add.*** Jain Vishva Bharati Institute. Ladun. Nagore (RJ.).

Prajna, Samani Mangal. M.A. Ph.D. ***b.*** 05.04.1962. Momasar (RJ). VC. Jain Vishvabharati Univ. Ladnun. ***Bks.*** 03. Arhatī Dṛṣ-i, Vratya Darśan, Jain Āgamo me Darśana. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Jain Vishvabharati University, Ladnun (RJ) – 341306. ***Ph.*** (01581) 222116.

Pramila Devi. Sāhityashāstrī, B.A., B.Ed. Teacher, ***Ps.*** 02. ***Add.*** Nimpara Girls High School, Nimpara, Puri (Orissa). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Prasad, Ishwar. M.A., Ph.D., Diploma (German). ***b.***15.01.1974, Alangar. Asst. Prof. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Alangar House, Vittal Mudnoor, 574243, Bantwala (T.Q.), KT. ***Ph.*** (08255) 54239.

Prasad, Ramesh. M.A., JRF, M.Phil., Ph.D. ***b.*** 17.11.1966. Patna, Bihar. Asstt. Prof. SSVV. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 11. ***Spl.Ref.*** Pali, Baudha Darśana, He is actively involved in traditional teaching of Sastras, guiding scholars and editing and publishing manuscripts. Beside it, he is teaching Pali by using different methods of statistics and Vipassana meditation, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Prasannapada, Sudarshanacharya. ***Bks.*** 02. Nyāyasūktavṛtti, Advaitacandrikā. ***Spl.Ref.*** Nyāya, Pūrva Mīmāṃsā and Vedānta.

Pratap, K. M.A., Ph.D. ***b.***11.12.1951. Asst. Prof., Sanskrit Department. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Venkateshwar Sanskrit Vishwavidyalaya, Tirupati (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pratibha, R. Acharya in Vedānta, śikṣāśāstri. ***b.***24.05.1964, Nilambur, Trissur, Kerala. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Guruvayur Kendriya Sanskrit Vidyapitha, Purāṇattukra, Trissur (Kerala). ***Spl.Ref.*** AdvaitaVedānta, śikṣāśāstra.

Pratihast, Anil Acharya, M.A., śikṣā-Shastri, M.Phil., Ph.D. ***b.*** 25.01.1981. Kota. Asstt. Prof., RSKS, Lucknow Campus. ***Ps*** 09. ***Add.*** 3/58 Patrakarpuram, Gomti Nagar Lucknow. Ph. 0744-2426085. M. 09829246925. anilpratihast @gmail.com ***Spl. Ref.*** Jyotiṣa.

Pravin, G.R. B.Sc., M.Sc. ***b.***12.06.1966, Bantwal, South Kannada, KT. Asst. Teacher, Prashanti Nilayam Vidyalaya. ***Gp.*** Prof. Shrikrishnamurti, Laxminarasimha-murti, ***Add.*** Shri Satyasai Institute of Higher Learning, Prashantinilayam, Anantpur – 515134, (A.P.). ***Spl.Ref.*** Veda.

Prem, Nath. D.Litt., Vyākaraṇa, Sāhitya, Nyāya, Vedānta, Sāṅkya & Mīmāṃsā. ***b.***1865, Bhattpalli(W.B.). Asst. Prof., Kolkata Univ., Kolkata. ***Bks.*** 21. Kokīladūtam, Rasarasodayam, Vijayaprakāśam, Vyāptīpaṃcaka, Māthūrī Rahasya Vivrittī. ***Expired on*** 22.05.1941. ***Spl.Ref.*** Tarkbhushan Padavi. M.M. awarded by English, Govt. in 1911. D.Litt. manad Upadhi by Hindu Vishvavidyalaya. Kashi in 1942.

Premlala, Gautam. Acharya in Sāhitya, M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.***07.10.1954, Samaloh, Solan, H.P. Principal. ***Gp.*** Devidatta, Sukhadev Sharma, Dr. Baladev Sinha. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Rajakiya Sanskrit College, Nahan (H.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Premlala. M.A., B.T. ***b.*** 08.04.1939. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School No. 1, Moti Nagar, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C-142 B, Moti Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Premlata, Madan. M.A.. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School No. 3, Uttam Nagar, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C-2/172, Janakpuri, New Delhi – 110058. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Priyavrata. M.A. ***b.***13.04.1939, Binijhol, Karnal, HR. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Satyavrata, Dr. Jayapal VidyAlaṅkāraa. ***Ps.*** 02. ***Add.*** D.A.V. College, Punjab University, Amritsar (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Promila. M.A., OT. ***b.*** 30.06.1976, Jind. Skt. Teacher Govt. Girls Sr. Sec. School, Sivan. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Promila Rattan Vill & P.O. Siwan, Kaithal. M. 09416097298.

Prthvinath, Pushpa. M.A. ***b.***16.10.1917, Srinagar (J & K). Rtd. Professor & Head, Deptt. of Sanskrit, G.G.M. College, Jammu. ***Bks.*** 01. Acha Ku-ira (Kashmir tr. Of Rabindranath Tagore's Cokhera Bālī). ***Add.*** D-47, Pamposh Enclave, New Delhi – 110048. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Pujalal. Arvind Aashram, Pondicherry. ***Bks.*** 02. Stotrasaṅgītikā, Stotrasaṃhitā. ***Expired. Spl.Ref.*** Poet in Skt. Gujarati, Music, Drama Writer.

Pullayya Moduboyin. Vyākaraṇaśiromaṇi, Shiksashastri. ***b.*** 16.06.1952, Oduru, Nellore, (A.P.) Sanskrta Pandit, Nallagadu, Tumbakuppam, Chittoor (A.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Veda.

Pullel, Ramchandrudu. ***b.*** 23.10.1927. A.P. Asst. Prof., Usmaniya Univ., Hydarabad. ***Bks.*** 05. Srī Rāmcandra Laghukāvya Saṅgraham, Sanskrit Bhāśā, Bhārat Deśa, Vasantāgamanam, Kavikokila. Gītāñjaliḥ (Trans.)

Pundarika, B. Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 25.08.1938, Bela, Kasaragode, Kerala. Teacher. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Govt. High School, Kumbala, Kasaragode–670321 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Punetha, Ganesh Datt. Acharya in Sāhitya. ***b.*** 20.05.1955, Boyal, Pithauragarh, U.P. H.O.D. of Sāhitya, Ramanuja Shri Vaishnav Sanskrit Mahavidyalaya. ***Gp.*** Nrsimhadev Shastri, Pitambar Jha, Krishna Baijvala, Pt. Kailash Chandra Joshi. Krishna Baijval, Pt. Kailash Chandra Joshi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Vedntashram, Sapt Sarovar Marg, Sadhuvela, Haridwar (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Punjani, Shakuntala. M.A., Ph.D. ***b.*** 07.09.1948, Pune. ***Bks.*** 03. Pañcadasī, Bhāratīya Darśana kī Avadhāranāyen. ***Ps.*** 25. ***Add.*** 5/8, Roop Nagar (Backsida), Delhi – 110007. ***Ph.*** 2943034. 3965034.

Punjani, Shalini. Ph.D., L.L.B. ***b.*** 31.10.1969, Faridabad. Asst. Prof., Satyawati College, Ashok Vihar, Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 5/8, Roop Nagar, Delhi – 110007.

Purāṇaik, Hayavadan. M.A., DvaitaVedānta, Vidvān, Nyāya. ***b.*** 10.06.1939. Principal. ***Add.*** Purnapragya Vidyapeetha, Banglore, KT. ***Spl.Ref.*** Veda, Vedānta, Nyāya Śāstra.

Purāṇaik, K. Hayavadana. M.A., Tradition in Nyāya Dvaita Vedānta, AlaṅkāraŚāstra ***b.*** 10.06.1939. Udupi, KT. Rtd. Princiapal and Prof. Investigator in Pancratra Agam Kosha Project in Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupathi. ***Bks.*** 11. ***Ps.*** 50. ***Add.*** 5A, Gurukul Quarter, Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupathi – 64. ***Spl.Ref.*** Nyāya, Dvaita Vedānta, Alaṅkāra Śāstra, Honoured by the Title of Dwait Vedānta Vidwan, Nyāya Vidwan, Śāstra Vichakshana, President Awardee.

Purkayastha, Sujata Shastri, M.A., Ph.D., Proficiency in French. ***b.*** 10.02.1957. Prof. & Head Deptt. of Skt., Guahati University. ***Bks.*** 01. Pūrvottaraprānte Saṃskṛtam Ekam Mūlyāṅkanam. ***Ps.*** 45. ***Add.*** Quarter No. 86, Guahati University Campus, Guwahati - 781014. ***Spl.Ref.*** Darśana.

Purnachandra, Kaparuvan. Acharya. ***b.*** 06.09.1948, Maun, Pauri Garhwal. Teacher. ***Gp.*** Gangadhara Jha, Mahananda Sharma, Dr. Mandana Mishra. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Adarsh Shri Darśana Mahavidyalaya. Muni ki Reti, Shivananda Nagar, Tihari, (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Purohit, Anand. Vedacharya. ***b.*** 01.08.1955, Varanasi, (U.P.). Asst. Prof. (Veda). ***Gp.*** Dr. Vishvanath Vamanadev, Dr. Yugalkishor Mishra. ***Add.*** Maharaja Sanskrit College (Near Assembly), Jaipur, (RJ). ***Spl.Ref.*** Veda.

Purohit, Ananda. Veda Śāstrī, Ṛgvedācarya, Acharya in Sāhitya. ***b.*** 01.08.1955, Pathar Gali, Varanasi, U.P. Rgveda Teacher, Rajakiya Maharaja Samskrta College, Jaipur, RJ. ***Gp.*** Pt. Visvanatha Deva, Dr. Kosora Jha. ***Add.*** K/9/26, Pathar Gali, Varanasi (U.P). ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Purohit, Bechara Bhai Bhaishankar. Advaita Acharya in Vedānta & Sāhityacharya, Kāvyatīrtha. ***b.*** 23.10.1922, Dabha, Sanwarkanta, GJ. Assistant Director. ***Bks.*** 01. Abhinava Jyotirdhārā. ***Add.*** Bharatiya Vidya Bhawan, New Delhi – 110001. ***Spl.Ref.*** Advaita Vedānta, Sāhitya, Kāvya. Recieved Adarsa Pandita Awared by Govt. of India.

Purohit, Jagdish Prasad Girdharlal. Ph.D. ***b.*** 06.12.1948. HOD, Bhawance Shri A.K. Doshi Mahila College, Jam Nagar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Keshar Ganga Tenament, Patel Colony, Street No.3,

Road No. 4, JamNagar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Purohit, Janardan Ambalal. Acharya in Jyotiṣa (Siddhanta) & Sāhitya, śikṣā-śastrī. *b.*05.03.1951, Sadhi, GJ. Asstt. Teacher. *Gp.* Ksemendar Joshi, Dinanath Jha. *Ps.* 03. *Add.* Shri Vartantu Sanskrit Mahavidyalaya, Bhagawat Vidyapeetha, Sola, Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Jyotiṣa & Sāhitya.

Purohit, Kanhaiyalal Jetha Lal. Acharya. *b.*03.08.1948, Tentalab, Baroda, GJ. *Gp.* Pt. Jagannarayan Pathak, Shriram Vireshvar Bhatta. *Ps.* 03. *Add.* N-09, Tarabagh Colony, Near Bridge Campus, Baroda (GJ). *Spl.Ref.* DharmaŚāstra.

Purohit, Kedar Datta. Acharya in Navyavyakarana. *b.* 05.03.1962. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* Shri Samant Bhadra Sanskrit Mahavidyalaya, Darya Gunj, Delhi – 110002. *Spl.Ref.* Navya Vyākaraṇa.

Purohit, Laxmi Narayan. Sāhityacharya, Ph.D., D.Litt. *b.*1908, Kankroli, Udaipur (RJ). Principal, Adarsh Vidya Mandir, Udaipur. *Gp.* Pt. Shri Markenday Mishra, Pt. Purushottam Sharma Chaturvedi, Tripaldas Maharaj. *Bks.* 10. Śrī Govindagūnārnavaḥ, Bhāvavaibhavam, Muktakamanīmālā, Gadyatarangīnī, Pañcamṛt-kāvyam.

Purohit, Praful M. *b.*19.06.1972. Dabha, S.K., GJ. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* Baroda Skt. Mahavidyalay, M. S. Univ. Vikram Banglow, Pratapganj. Vadodara. GJ. *Ph.* (0265) 795511.

Purohit, Rajanikant Vrindavan Das. Acharya in Purāṇa, Sāhitya & Nyayshastri. *b.*07.02. 1955, Kodinar, Amreli, GJ. Vice-Principal. *Gp.* Danidatta Jha, Dayashankar Shastri, Bhaishankar Purohita. *Ps.* 02. *Add.* Bhagavat Vidyapith, Krishnadham (Sola), Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Purāṇa, Sāhitya & Nyāya.

Purohit, Ramesh Chandra. Kāvyatīrtha, M.A., Ph.D. *b.* 30.04.1934, Ujjain, (M.P.). *Ps.* 20. *Add.* Vikram Kirti Mandir, Vikram University, Ujjain (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Purohit, Vishnu Bhai D. Ph.D. *b.*01.06.1974. Prof., Govt. Vinyan College Sector 15, Gandhi Nagar. *Ps.* 02. *Add.* Block No. 347/2, D Type, Sector 13, GandhiNagar. *Spl.Ref.* Nā-ya Śāstra.

Pushpavati. Acharya, Ph.D. *b.* 15.10.1925, Patiala, Punjab. Principal, Matri Mandir Shiksa Sansthan, Varanasi. *Bks.* 03. The Methods of the Interpretations of the Vedas, Vaidika, Tāntrika ca sāhitye śabdārtha sambandha. *Add.* Matri Mandir Kanya Gurukul, D 45/129, Nai Basti, Rampura, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Prachina Vyākaraṇa, Darśana & Veda.

Pushpendra, Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 14.07.1936. Saharanpur. Prof. & Head. *Bks.* 35. *Add.* A 2/146 Sector 5 Rohini New Delhi – 110085. *Spl.Ref.* President Awardee.

R

Radha Rani. M.A., B.Ed. *Age.*40 years. Teacher, Govt. Higher Secondary School, Malkaganj, Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 8636, Marhgarh, Roshnara Road, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Radha S. Acharya (Sāhitya, Purāṇa), M.A., Ph.D. *b.*15.06.1948, Guruvayur, Trissur, Kerala. Asst. Prof. *Bks.* 01. Vartamānaśatābdyāḥ Uttarārdh-keraleṣu Kāvyaprasāraḥ. *Add.* R.Sk.S., Guruvayur Campus, Purāṇaattukara, Trissur (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Radhakrishnan, C. S. M.A., Ph.D. *b.*13.05.1954, Chittur, Palghat. Asst. Prof., of Sanskrit, Pondichery University. *Bks.* 02. Sathavairi – Vaibhava Prabhākara, Kālidāsa New Perspectives. *Add.* 59/2, Ramraj I Main Road, R.A. Puram, Chennai – 600028. csrsanskrit@gmail.com.

Radhakrishnan, Dr. Sarvepalli. Primary Education was at Primary board high sehool at Tiruttani, and graduation and master degree in Philosophy From the madras christion college. *b.*05.09.1888, Thiruttani, Madras Presidency, British India. (Now Chennai). Vice President of India (1952-62) Second President

of India (1962-67). Vice Chan. A.U. from (1931-36), V.C. of B.H.U. (1948). Culcutta, Delhi, London (Oxford Univ.). ***Bks.*** 11. The Hindu view of Life, An Idealist view of Life, Eastern Religions and Western Thought, The Principal of Upanishads, A Source Book in Indian Philosophy, Indian Philosophy. ***Ps.*** 25. ***Expired on*** 17.04.1975. ***Spl.Ref.*** He was elected fellow of the British Academy in 1938. He was awarded the Bharat Ratna in 1954. He received the Place Prize of the German Book Trade in 1961 and the Templeton Prize in 1975. He was nominated for the noble prize for literature for consecutive year 1933-37.

Raghavacharya, S. S. M.A. ***b.***29.10.1913, Melkote, Mandya, KT. Rtd. Asst. Prof., Faculty of Arts, Head, Dept of Skt. Manas Gangotri, Mysore. ***Gp.*** K. Vadiy, R.K. Shrinivas Ayyangar. ***Bks.*** 03. Hindū Saṁskṛte dārśanikādhāra, Brahmasūtraṇi ekam adhyayanam, Durgā-saptaśatī dārśanikādhyayanaviśiṣ-ā. ***Add.*** No. 33, Block III, Jayalakshmipur, Mysore–12 (KT). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Raghavan, Venkat. Traditional & Modern Sanskrit, Music, Ph.D. ***b.***20.08.1908. Tiruvar. TN. Prof. & HOD Madras Univ. ***Gp.*** Pt. M.M. Kuppu Swamy Shastri. ***Bks.*** 30. Śrī Kāmākṣī Mātṛakāstavḥ, Śrī Mīnākṣī Suprabhātam, Deva Vandī, Ucchavsitānī. ***Expired*** in 05.04.1979. ***Spl.Ref.*** Honourary Vidya Vachaspati Upadhi, Hounerd by Padam Bhushan, Kavi Kokil Vidwat Kaviender etc. Founder of Skt. Rang Nā-ya Sanstha. Kalidas Samman for Anarkali Natak. An Eminent Skt. Scholar Reseracher.

Raghavan, Vijay V. S. Acharya in Nyāya & Viśiṣ-ādvaita. ***b.***12.05.1963, Vadvvur, Tanjore. Asst. Prof., Baroda Sanskrit Mahavidhyalaya. ***Ps.*** 02. ***Add.*** No.- 16, Adhyapak Nivas, Pratapgunj, Vadodara-02.

Raghavendracharya, K. b.1952, Villupuram, TN. Priest. ***Gp.*** D. Yamunacharya, A.C.R. Sundararajaswami. ***Add.*** Shri Kalyana Venkateshwaraswami Devasthanam, Chittoor (A.P.). ***Spl.Ref.*** Pancharatragama.

Raghu, E.V. Sāhitya, Acharya, P.G.D.C.A. & Java (Computer). ***b.*** 30.05.1970, Thodupuzha (Kerala). Research Assistant. ***Add.*** Chinmaya International Foundation, Adishankar Nilayam, Veliyanad, Ernakulam, Kerala–682319. E-mail. ev_raghu@yahoo.com ***Spl.Ref.*** Skt & Computer.

Raghunathacharya, N. L. Traditional Sanskrit. ***Age.*** 75 yrs. in 1988. ***Gp.*** Duraisvami Ayyangara, Nelluriya Raghavacarya. ***Add.*** Deva Raj Swamy Devasthanam, Kanchipuram (T.N.). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Raghunathacharya, S. B. Nyāyavidyā-praviṇa, M.A., Diploma (German Language), Ph.D. ***b.***01.01.1944. Asct. Prof. ***Bks.*** 01. Nyāya-mīmāṁsā-darśanayoḥ prāmāṇya-vicāraḥ. ***Add.*** Shri Venkateshwar Vidyalaya, Tirupati–517502 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Nyāya, Mīmāṃsā, Vedānta & āgama, President Awardee.

Raghunathdas. Acharya. ***b.*** 01.07.1954, Balia, (U.P.). Service. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Hanuman Garhi, Nirvani Akhara, Ayodhya, Faizabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Raghuvir, VedAlaṅkāra. M.A., Ph.D., Shastri, Acharya. ***b.*** 03.07.1945, (U.P.). Asst. Prof. ***Gp.*** Satyavrata Shastri, Satyakam, Brajamohan Chaturvedi. ***Bks.*** Kāśikā (Hindī-Vyākhyā), Yogadarśana evam Upaniṣat. ***Add.*** 343, Deepali Enclave, Pitampura, Delhi–34. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Raghvan, Janaki. Kovid (Samskrta, Hindi). ***b.***1914. Sanskrit Scholar. ***Add.*** 29, Murugan Nagaram, Mettur – 636403 (TN). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Rahewar, Mahendra Singh C. Ph.D. ***b.*** 13.01.1972. Prof., Arts College Vadali, Sambharkanta. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Khatasana, Sipor, Bad Nagar, Mehsana, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Rai, Ganga Sagar. M.A., Ph.D. ***b.***1940, Gajipur, U.P. Asst. Editor, Purāṇa Deptt. Sarvabhartiya Kashirajanyas, Kashi. ***Bks.*** 07. Vaidikasamāja, Śankhayānbrāhman, Venīsamhār, Mrīchhkatī-kam, Mudrārakśam (ed.).

Rai, Jamini Bhushan. B.A., M.A. Medical degree from culcutta medical college. *b.* 01.07.1879, Kulna, Payogram, Bangladesh. Physician, Ayurvedacharya, Philanthropist. ***Bks.*** 08. Diseases : Their origin and Diagnosis, A Treatise on Disable of Ear, Nose Throat and Mouth, The Care of Infants and the diseases of children, A manual of Toxicology. books are based on ancient Indian 'Salakya tantra'. *Expired on* 11.08. 1926. ***Spl.Ref.*** Eminent Personalities associated with the Ashtanga Ayurveda College and Hospital.

Rai, Kayyar Phinhama. Vidvān (Sanskrit, Kannada). *b.*04.06.1915, Kasaragode, Kerala. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Paradala, Kasaragode – 670551 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rai, Kedar Nath. Kāvya Vyakaran Purāṇatīrtha. *b.*23.11.1913, Kotalpura, Bankura(W.B.). Principal. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Bhagvatchatuspathi, Baranga, Patbira Ashram, Calcutta – 700035.

Rai, Pravin Kumar. Acharya in Sāhitya. *b.*01.01.1964. Nagsar, Ghazipur, U.P. ***Gp.*** Dr. Lalit Kumar Tripathi, Dr. kapil Dev Rai. ***Ps.*** 01. ***Add.*** D-4/69, Third floor, Vashishth Park, opp. Janak Cinema, New Delhi-110046. M. 9968314717. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rai, Ramji. M.A., Skt. Pali, Prakrit & Jaina Śāstra, Ph.D., D.Litt. *b.* 02.11.1948. Chairman, PG Prakrit & Jainology Deptt. Veerkuvara Singh V.V. Aara. ***Bks.*** 05. Setubandha Mahākāvya kā Ālocnātamaka Pariśīlana, Prākṛta Vyākaraṇa evam Racanā, Agadaduttamayaṇamañjarī Kahā, Pāiya Gajja Pavesa. ***Ps.*** 53. ***Add.*** Tilak Nagar Katira, Aara, Bhojpur- 802301 Bihar. Ph. 06182-239832. M. 09431853132. ***Spl.Ref.*** Prakrit & Jainology, Life member AIOC, Indian Society of Buddhist Study Member, Syallubus Committee, Nalanda Open University, Magad V.V., Director Akhil Bharti Vikas Parishad, Specilist Member Bihar Lok Sewa Aayog etc.

Rai, Ravindra Nath. M.A. *b.*12.07.1949, Deoria, Ghazipur, (U.P.). S.O., Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** B-266, Sector 23, Raj Nagar, Ghaziabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rai, Savita: M.A., Ph.D. *b.*10.01.1983. Sagar, M.P. Manuscripts Surveyor, Dept. of Skt., H. S. Gaur Univ. Sagar, M.P. ***Gp.*** Prof. R.V. Tripathi, Prof. Kusum Bhuriya, Prof. A. Dash. ***Ps.*** 03. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rai, Venkteshwar. Sāhityaśiromaṇi, M.A. *b.*15.06.1952, Nellore, A.P. Asst. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Ved Sanskrit Kalashala, 20/204, Brahmana Vithi, Mulapet, Nellore,-524003 A.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Vyākaraṇa Śāstra.

Raidas, Hari Ram. M.A., Ph.D., B.Ed. *b.*01.07.1958, Jabalpur (M.P.). Asst. Prof., Bhopal (M.P.). ***Gp.*** Dr. K.K. Chaturvedi, Dr. M.L. Purohit, Dr. R.B. Dwivedi, Dr. R.K. Trivedi. ***Sp.*** Dr. Anil Kumar Jha, Dr. Ram Swaroop Dubey. ***Bks.*** Kṛdanta Rahasyam, Paryāvarana Cintanam. ***Add.*** Meer Gang Bheraghat Road, Jabalpur (M.P.).

Raina, Dina Nath. *b.* 1959, v.s. ***Add.*** House No. 33, Ward No. 5, Udhampur (J&K). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa & Veda.

Raina, Motiram Shastri. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.*05.05.1922, Jammu. Śāstrachudamani, Asst. Prof. ***Gp.*** Arudha Bhanuji Shastri. ***Add.*** 103, Panch Tirthi, Jammu Tawi (J & K). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Raithatta, Daksha Ben Chaganlal. Ph.D. *b.*10.12.1967. Prof. Smt. R.P.B. Mahila College, Kolki Road, Upleta. ***Ps.*** 03. ***Add.*** C/o Dilip Bhai Dolani, Gali No. 1, Jawahar Society Upleta. ***Spl.Ref.*** Purāṇa.

Raj, Ashvini Kumar. M.A., Ph.D. Asst. Prof. & Head, Deptt. of Sanskrit, Magadh University. ***Ps.*** 03. ***Add.*** B-10, Magadh University, Bodh Gaya, Gaya – 824234 (Bihar). ***Spl.Ref.*** Darśana, Pālī, Prākṛta, Buddhism, Jainism.

Raj, Veena ben Suresh Bhai. Ph.D. *b.*28.03.1966. Prof., Arts & Commerce College, Chanasma, Patan. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 483 Hariom Nagar Vill Vallabhvidhya Nagar, Aanand. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Raja, T.A.N. Somverma. Rtd. Principal, St. Thomas Kalalaya. Lecturer, Vatvatur Seminari *Bks.* 01. Śrīyīśusaurabham. *Spl.Ref.* Kathakali Dance, Poet in Hindi, Skt. Malyalayam.

Rajagopalachariar, Annadur. Nyāyaśiromaṇi, Tradition in Veda, DharamŚāstra, Nyāya. *b.* 08.05.1923. Annadur. *Add.* Pushpagam, 17, Sannidhi Street, Madhuranthakam – 06 TN. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda, Pañcarātrāgama, DharamŚāstra and NyāyaŚāstra, Traditional Teaching, President Awardee.

Rajagopalan, Purisai. Acharya in Kṛṣṇayajurveda. *b.*May, 1936, Purisai, TN. Gp. Kalathur Vijaya – Raghavacariyara, H.H. Andavan Svamigal. *Add.* Shri Devaraj Swamimuth (Devasthan), Kanchipuram – 631503 (T.N.). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Rajaguru, Krishna Chandra. Acharya in Vedānta, Purāṇa & Shastri in āgama & Nyāya. *b.*10.11.1914. *Add.* Tiadi Shahi, Puri – 752001. (Orissa). *Spl.Ref.* Vedānta, Purāṇa, āgama, Nyāya.

Rajaguru, Satya Narayan. Sanskrit Bhasha Pravin. *b.*19.08.1903, Paralakhemundi, Curator, Orissa. *Bks.* 20. Rādhābhiṣekanā-akaṃ, Gajapatinā-akaṃ. *Ps.* 20. ***Expired on*** 11.06.1997. *Spl.Ref.* Engaged in Indological Research and Promotion of Sanskrit.

Rajan, E. M. Acharya. *b.*10.05.1959, Trissur, Kerala. Asst. Prof. *Ps.* 03. *Add.* R.Sk.S., Guruvayur Campus, Purnnattukara, Trissur (Kerala). *Spl.Ref.* NavyaNyāya, Sāhitya.

Rajan, S. Sundar. D.Sc. *b.*16.09.1944, Mysore. *Ps.* 06. *Add.* 137, (MIG) KHB Colony, Koramangala, Bangalore –560095.

Rajanina, N. D. Acharya. *b.*22.10.1931, Alal, Sangrur, Punjab. Asst. Prof. *Gp.* Pt. Jayadev Mishra, Pt. Gaurishankar. *Ps.* 03. *Add.* Government Ranbir College, Sangrur (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rajendran, C. M.A., Ph.D. *b.*12.11.1952, Pattambi. Prof., Calicut University. *Bks.* 23. A Study of Mahimābhatta's Vyaktīviveka, The Traditional Saṃskṛta Theatre of Kerala, A Trans-cultural Approach to Saṃskṛta Poetics, Contemporary Approach to Indian Philosophy (Ed.), Pathavum Porulum. *Ps.* 53. *Add.* 28/ 1097, Rajadhani, T.P. Kumaran, Nair Road, Chevayun, Calicut –17, Kerala. crajenin@yahoo.com.

Rajesh Ranjan. M.A., NET, JRF, M.Phil., Ph.D. *b.* 20.09.1968. Lecturer, Buddhist Studies, Punjabi University, Patiala. *Bks.* 02. *Ps.* 16. *Spl.Ref.* Life Member AIOC, Indian History Congress, Indian Association of Buddhist Studies, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Rajesh, Kumar. Acharya. *b.* 31.12.1985. Hissar Haryana. Lecturer Gurukul Kurukshetra. *Gp.* Acharya Ramswaroop, Azad Singh, Mansingh. *Add.* Gurukul Kurukshetra Near IIIrd Gate Kurukshetra Univ. Kurukshetra 136119. M. 09466861530.

Rajeshvari, S. Sāhitya, Śiromaṇi, Shiksha-shastri. *b.* 02.02.1959, Viralimalai, Pudukottai, TN. *Gp.* K. Radha, K.N. Aralikatti. *Ps.* 03. *Add.* South Car Street, Viralimalai, Pudukkottai–631316 (T.N.). *Spl.Ref.* Sāhitya, SikshaŚāstra.

Rajgopal, V. Sāhityashiromani. *b.*03.02.1954, Proddutur, Cuddappa, A.P. Asst. Prof. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Shri Mittamalleshwar Swami Oriental High School, Pulivendla–516390 (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rajgopalacharya, K. B.A., M.A., Ph.D. *b.*23.06.1931, Melukote, Mandya, KT. Asct. Prof., P.G. Department, Manasgangotri, Mysore. *Gp.* Asst. Prof. Laxminarasimhayya, V.T.T. Ayyangara, Dr. H.L. Hariyappa. *Add.* 684, 11-A, Main 5 Block, Jayanagar, Bangalore (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya, Viś-ādvaitaVedānta.

Rajgopalan, D. Sāhitya Shiromani, M.A., B.Ed. *b.*27.04.1930. Teacher (PGT), D.T.E.A. Senior Secondary School, Moti Bagh, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* D.V./109/A, Hari Nagar, New Delhi – 110064.

Rajguru, Bharat Kumar Devaram. Acharya in Sāhitya. *b.*22.09.1966, Jam Nagar, GJ. Asst. Teacher. *Gp.* R.V. Kaundinyaji, Navalbhai

Rajagora. *Ps.* 03. *Add.* Govt. Sanskrit Pathashala, K.V. Road, Jam Nagar, (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rajkumar. *b.*01.10.1940, Gundrapur, Jhansi U.P. Prof. & HOD, Agra College, Agra. Editor, Bhartiya Gyanpeeth, Varanasi U.P. *Bks.* 05. Varṇī Vāṇī (Śrī Bandhaḥ), Madana Parājaya (ed.), Praśaramati (ed.), Bṛhad Kathā Kośa (ed.), Jasaharacariu (ed.).

Rajkumari. M.A., B.Ed. *b.*10.11.1943. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* Chandra Arya Vidya Mandir, East of Kailash, New Delhi – 110065. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rajlaxmi, S. śiromaṇi (Sāhitya). Age 37 yrs. in 1988, Thanjavur, TN. Sanskṛt Pandit. *Gp.* Ramanuja Tatacharya, Tirumalacharya, A. Sundaresh Shivacharya. *Bks.* 03. Vibhutirudrākṣamāhātmyam, Tanjapurīmāhātmya, Bṛhadīśvaramāhatmyam. *Add.* T.M.S.S.M. Library, Thanjavur (T.N.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rajopadhye, Hemant. M.A., M.Phil. *b.*06.05.1986. Decan Gymchana, Pune (MH). *Ps.* 10. *Spl.Ref.* M.A. Gold Madlist.

Rajpali, Om Praksh. M.A., Ph.D. *b.* Khandwa, M.P. Asct.Prof. *Gp.* R. V. Tripathi. *Bks.* 05. *Ps.* 20. *Add.* P.G. College, Ambah, Morena, (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Nā-yaśāstra.

Rajpoot, Narendra Singh. M.A., Ph.D. Madiya Devsingh, Damoh (M.P.). *Bks.* 03. Saṃskṛta Kāvya ke Vikāsa meṃ Bīsavīṃ Śatābdī ke Jaina Manīṣiyoṃ kā Yogadāna. *Spl.Ref.* Many Articals Published in Sagarika Magazine.

Rajpurohit, Bhagwatilal. M.A. (Hindi, AIH, Sanskrit), Ph.D. *b.* 02.11.1943. Dhar, M.P. Prof., Sandipani Mahavidyalaya, Ujjain. *Bks.* 05. Bhojarāja, Vidyotamā, Kālidāsa, Vīṇā Vāsavadattā. *Add.* 12. Bilotipura, Ujjain – 06. M.P. *Spl.Ref.* Writer and Poet in Sanskrit Malvi, Hindi Bhoj Puraskar M.P. Skt. Academy, Honour from M.P. Sāhitya Prasihad.

Rakesh Chandra. Acharya in Sāhitya, Purāṇetihāsa. *b.*15.03.1955, Daurala, Meerut, (U.P.). *Gp.* Dr. Dharmendranath Shastri, Dr. Umakant Shukla, Dr. Ramesh kumar. *Ps.* 03. *Add.* I-H-31, Shastri Nilayam, Mahi, Sarovar Nagar, Banswara (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya, Purāṇetihāsa.

Rakhiyania, S.S. Ph.D. *b.* 01.06.1966. Prof. Shri J.S.K. Arts & S.H. Gardi Commece College, Kakanpur. *Ps.* 03. *Add.* 46, Vallabh Nagar Society Bhooravav, Godhra Distt. Panchmahal. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Ram Chandra. M.A. *b.* 29.12.1957, (U.P.). Research Assistant, R.Sk.S. Allahabad. *Bks.* 02. Editing of 'Vishnubhaktikalpalata', *Add.* V/P Chhibalyan, Allahabad.

Ram Gopal. M.A., Ph.D. *b.*01.10.1925, Adampur, HR. Vice Chancellor, M. D. Univ. Rohtak. *Bks.* 09. Ṛgveda (Vol. I–III) (ed.), Vaidika Vyākaraṇa (Vol. I-II), India of Vedic Kalpa-Sūtras, The History & Principals of Vedic Interpretation, Kālidāsa His Art & Culture. *Ps.* 100. *Add.* H.No. 3051. Sector – 21. D. Chandigarh – 160022. *Spl.Ref.* Independence Day Award – Certificate of Honour in Sanskrit, in 1971. Haryana State Literacy Award in Sanskrit in 1971. Govt. of India Award on Vaidika–Vyakaran in 1981. Maharshi Sandipani Rashtriya Vedic Vidya Pratishthan (Ujjain) Award in 2003.

Ram Pratap. M.A., Acharya, Veda-Alaṅkāra Ph.D. *b.* 26.07.1936. Dadri, Gautambuddh Nagar. Prof. Dept. of Skt. Jammu Univ. *Bks.* 06. Purāṇānam Kāvyarupatayā vivecanam, Sāhitya Sudhāsindhu, Ūrmikā, Bhallataśatakam, Rājendrakarṇapūraḥ. *Add.* 15/2, Trikuta Nagar, Jammu Tawi. . 180012. *Spl.Ref.* Sāhitya, Veda.

Ram Ranganathan. M.A., M.Ed. *b.*23.03.1953. Teacher, Convent of Jesus & Mary School. *Ps.* 01. *Add.* F-4/F, DDA Flats, Munirka, New Delhi–110067. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Ram Shastri, Vedkantha Sheshadri. *b.* 26.07.1923, Vadakkantara, Palghat, Kerala. Vedaparayankarta. *Gp.* Jambunath Shastri, Shubrabrahmaniyam Shastri. *Add.* Anakapalli, Visakhapattanam- 531001 A.P. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra & Veda.

Rama, Aravinda Kumara. M.A., Ph.D., B.Ed. *b.*09.02.1957, Balia, U.P. Lecturer. Sanskrit Department. ***Gp.*** Dr. Atulachandra Bandyopadhyaya, Dr. Ramavadha Pandeya. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Govt. Mahavidyalaya, Sonabhadra (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Ramabai, E.R. M.A., Ph.D. *b.*18.10.1939, Chennai. Asst.Prof. & Head. ***Bks.*** 01. Kerlahardṇa, A Critical Study & Edition. ***Ps.*** 25. ***Add.*** 10. (New No. 21) III. Mani Road, Vnited India Colony, Kodamsakkam, Chennai–600024.

Ramabhadrachariyar, R. *b.*10.01.1944, Vandavasi, North Arcot, TN. ***Gp.*** P.C. Sathgopachariyar. ***Add.*** 14, Sri Rangaraja Street. Kanchipuram-3 (TN). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Ramachandrulu, Balaji. Education & Nyāya, M.A. Darśana & Telugu, M.Ed., Ph.D., M.D. *b.*10.07.1963, A.P. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 19. ***Add.*** C/o Badari Narayan, Behind Girls Hi. School, Subhash Street, Shringeri.

Ramadayalu. Acharya, M.A., Vidyabhaskara. *b.*02.10.1934. Teacher, DAV Senior Secondary School, Daryaganj, Delhi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 31/18, Dharma Gali, Sitaram Bazar, Delhi–110006. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Ramadevi, S. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 25.06.1964. Reader. ***Bks.*** 01. The Ontology of Advaita : A study of Shaṅkarās Upadeśasāstra ***Ps.*** 27. ***Add.*** 10-30/5 Koundinya Homes, Gokhle Nagar, Ramanthapur, Hyderabad-13. Ph. 040-27032468. M. 09959652642.

Ramakrishnan, G. (Kalabharati). *b.* 1926. Rtd. Office Sup., Southern Railway. ***Bks.*** Śrīsubrahmaṇyabhujaṅgam, Devyaparādhakṣamāpanam, Śrīmīnākṣīpañcaratnam, Śobhanapañcāṅgam, Gaṇeśapañcaratnam. ***Add.*** 3, Avvai Road Extn., I.O.B. Colony Extn., Selaiyur – Tambaram, Madras – 600073 (T.N.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Darśana. Sanskrit Parishad Award, Madras.

Ramamani, S.N. A. Vedānta, Ph.D. *b.*20.12.1951, Tirupathi (A.P.). Asct. Prof. ***Bks.*** 03. Purūṣārtha Sudhānidhiḥ, Parmārthastuti, Śrī Stuti. ***Add.*** 1191– Sector–8, R. K. Puram, New Delhi 110022.

Raman, K. *b.* 11.12.1951, Tiruindaluru, TN. Teacher. ***Gp.*** T.A. Gopalan, K. Sundaracharya. ***Add.*** Shri Kalyana Venkatesvara Svami Devsthana, Shrinivasamangapuram, Chittoor–517102 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Dravida Divya Prabandha & Veda.

Raman, Karunakaran, M.A., Ph.D., D.R.M.S. *b.* 14.08.1924, Edakkodam, Kerala. Head, Deptt. of Sanskrit, University of Kerala. ***Bks.*** The Concept of Sat in Advaita Vedānta (Eng.), Darśanamāla (Edited). ***Add.*** Shri Sankara Bhavanam, Petta Trivandrum (Kerala). ***Spl.Ref.*** Darśana. ***Award.*** Advaita Vedānta Siromani, Setu Parvatibai Puraskara (Univ. of Kerala).

Ramanujachari, N.V. Shiromani (Sāhitya, Advaita, Nyay), Ph.D., Vidhyavaridhi. *b.*1935. Admn. officer, United India Insurance Ltd. ***Gp.*** Ayya Devnatachari, N. Vizhinathan. ***Bks.*** Nyāya-kusumāñjaliḥ(Ed.). ***Add.*** 27 Sannadhi Street, Little Kanchipuram- 631503 TN. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Nyāya Śāstra.

Ramanujacharya, Vangipurram. M.A., Ph.D. *b.* 18.12.1931, Hyderabad, A.P. Asst. Prof. ***Gp.*** K. Sathkopa Ramanujacharya. ***Add.*** 13-1-1/53, Sitaramnagar, Hyderabad A.P. ***Spl.Ref.*** Veda, Nyāya & Sāhitya.

Ramasanchi, Phattehram. Navya Vyākaraṇa Acharya, Ayurvedaratna. *b.*15.11.1960, Panchoni, Nagaur, RJ. Principal. ***Gp.*** Girishachandra Jha, Ramkishor Tripathi. ***Add.*** Shri Samarth Sanskrit Mahavidyalaya, Ellis Bridge, Ahmedabad, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & āyurveda.

Ramasanchi, Phattehram. Navya Vyākaraṇa charya, Ayurvedaratna. *b.* 15.11.1960, Panchoni, Nagaur, RJ. Principal. ***Gp.*** Girisha chandra Jha, Ramkishor Tripathi. ***Add.*** Shri Samarth Sanskrit Mahavidyalaya, Ellis Bridge, Ahmedabad, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & āyurveda.

Ramasubrahmanyan, K. M.Sc., AMIE, M.A.,

Ph.D., Tradition in DharamŚāstra, Siddhanta Jyotiṣa and Advaita Vedāntaa. *b.* 06.02.1969. Tanjoor. Asct. Prof. IIT, Mumbai. *Bks.* 06. *Add.* Cell for Indian Science and Technology in Sanskrit, Deptt of HSS, IIT Bombay, Powai, Mumbai – 76. MH. *Spl.Ref.* He has done a lot of work for popularization of Sanskrit among the students of Science and Engineering by way of offering courses on Indian Sciences based on Sanskrit Texts, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Ramasuryanarayana, Kompella. M.A. (Telugu and Sanskrit), Ph.D. *b.* 15.10.1947. East Godawari AP. Prof. Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupathi. *Bks.* 10. *Ps.* 40. *Add.* 204, Boon's Residency, Kanaka Bhushanam Layout, Tirupati AP. *Spl.Ref.* AlaṅkāraŚāstra, NyāyaŚāstra, Broadcasted and Telecasted several Talks from A.I.R. and D.D. President Awardee.

Rambhatt, M. S. Traditional Degrees. *b.*28.11.1918, Sringeri, Chikmagalur, KT. Teacher. *Gp.* M. Sobhabhatt. *Add.* Mallikarjun Swamy Mandir Street, Sringeri-577139 (KT). *Spl.Ref.* Veda.

Ramchandra, S. Vidvan, Rastrbhasha-visharad. *b.*20.03.1919, Tiruchirapalli, TN. Sanskrit Teacher. *Add.* 94, Nangavaram Store, Teppakulum, Tiruchi–620002 (T.N.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Ramchandracharya, D. B.O.L., M.A., Vidvan. *Age.* 42 years in 1987. NyāyaVedānta Vidvān. *Add.* Purnaprajna-vidyapitham, Bangalore (KT). *Spl.Ref.* Nyāya, Vedānta.

Ramdevputra, Madhavdas Amardas. Ph.D. *b.*08.11.1950. Prof., Shri Prataprai Arts & Science Varsad Road, Amreli. *Ps.* 02. *Add.* Jai Raghuveer Khatarwadi, Near Peenakin oil Mill Amreli. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Ramesh Kumar Shastri, M.A. (Skt. Hindi), Sāhitya Ratan *b.* 07.03.1944. Bhagal Haryana. Lect., Kaithal Skt. Mahavidyalaya. *Add.* 470/ 03 Subhash Nagar Kaithal - 136027.

Ramesh, Chandra. M.A., Ph.D. *b.*12.01.1957, Patiala. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* 3336, Court Road, Bhatinda (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Ramesh, Y. S. Acharya in Sāhitya, M.Ed. *b.*22.10. 1960, Tirupathi, A.P. Acst. Prof., R.Sk.S., Jaipur Campus. *Gp.* Dr. Shankar Bhatta, Haimavatisha, Aralikatti. *Bks.* 02. *Ps.* 10. *Add.* B-89, Ganesh Marg, Bapu Nagar, Jaipur (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rameshwar, Prasad. Acharya. *b.*15.10.1939, Rankhandi Saharanpur, U.P. Principal. *Gp.* Mahadev Sharma, Haridutt Sharma. *Ps.* 02. *Add.* Shri Devikund Sanskrit Mahavidhyalaya, Saharanpur. U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rami, Mamta B. Ph.D. *b.*09.07.1969. Prof., Smt. P. R. Patel Arts College, Palasar, Mehsana. *Ps.* 02. *Add.* Sardar Market Bazaar, Chanasma, Patan (GJ). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Ramkrishnacharya, P.K. Jyotiṣaśiromaṇi. *b.*03.06.1913, Palimaru, Udupi, KT. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Adde Subrahmanyacharya, K. Narasimho-pdhyay. *Add.* Vaishnava Nilaya, Kunjibettu, Udupi–576101 (KT). *Spl.Ref.* Jyotiṣa & Veda.

Ramkrishnatantri, K. M.A. *b.*07.04.1907, Kalantur, KT. Vedant Teacher (Rtd.). *Gp.* Padmanabhachari, Ramkrishnachari. *Add.* H.No. 5-2/20, Mission Hospital Road, Belur, Udupi (KT). *Spl.Ref.* Veda & Vedānta.

Ramlingaya, Venkataraman. *b.*12.07.1937, Chinnababu Samudram, T.N. Vedparayan-karta. (Vedic Exponent), Shri Venkateshwar Swami Devasthanam, Tirumala. *Gp.* N.S. Krishnamurti Ganpati. *Add.* 12-A Hospital Road, Tirupati. 517501 A.P. *Spl.Ref.* Ṛgveda.

Rammurti, Vasudev. M.A., Ph.D. *b.* 16.06.1940, Pubobal, Una, H.P. Asst. Prof. *Gp.* Jagdish Chandra Sharma, Rajendra Kumar, P.D. Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Govt. College, Dharmasala, H.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rampal, Upaddhyay, Vyakranacharya, Vidhya-bhaskar, M.A., Siddhantasastri, Paurahitya-pravara. *b.*05.06.1964. *Ps.* 02. *Add.* Arya Samaj, Shaktinagar, Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Ramprakash, M.A. (Sanskrit & English). *b.*08.01.1918, Teacher (Ministry of Education & Culture, Mauritius). *Ps.* 05. *Add.* 191, Aravali Apartments, Alaknanda, New Delhi-110019. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Ramrao, M. B.A., L.T. *b.*31.03.1898, Thirukoilur, South Arcot, T.N. Preacher. *Add.* Dwaitavilasa, 18, Reddy Rao Tank, North Kumbakonam-612001 T.N. *Spl.Ref.* Award upanyasaratnakara, Śāstra visharad, Pandit Bhushan. Sāhitya Śāstra, Vedānta Śāstra.

Ramratan Das Ji, Maharaj. Acharya (Vyakaran, Sāṅkya, Yoga, Sāhitya) *b.*08.08.1901. *Add.* Shri Ram Daya Parishad, Puri- 75201 Orissa. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāṅkya Yoga, Sāhitya & Veda.

Ramtulasi S. Sāhitya Shiromani, Shiksa-shastri. *b.*15.06.1953, Katrakayalgunta, Chittur, A.P. Sanskrit Teacher. *Gp.* N.C.V. Narasimhacharya. *Ps.* 02. *Add.* S.V. Oriental High School, K.T. Road, Tirupati – 517501 (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rana, Dilipa Kumar. Acharya in Advaita Vedānta, M.A. *b.* 1963. *Bks. 02. Ps. 20. Add.* Shankar Akademi, Shahid Jit Singh Marg, New Delhi. *Spl.Ref.* Advaita Vedānta.

Rana, Narendra sinha. Acharya. Siksashastri. *b.*1924. Teacher, Gurukula Tatesara, Delhi. *Ps.* 02. *Add.* Shahdar, Daulatpur, Delhi.

Rana, Rakesh Kumar A. Ph.D. *b.* 28.09.1969. Prof., Arts & Commerce College, Ider, Sambharkanta. *Ps.* 02. *Add.* 5 Anand Society Idar Distt. Sambharkanta. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Rana, Subalsingh. M.A., Ph.D. *b.*02.04.1936. Principal. *Ps.* 03. *Add.* B-1/112, Ashok Vihar, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Ranakoti, Sundaramani. Acharya in Sāhitya. *b.*12.12.1951, Nailapal Kot, (U.P.). *Gp.* Radhakrishna, Ramdasa. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Shri Jairama Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rangachar, M. E. M.A. (Skt. and Philosophy, Ph.D. *b.* 24.06.1937. Rtd. Prof. KJ Somaya College, Mumbai. *Bks.* 12. *Add.* 502, Geeta, Andal Temple Street, R.V. Road, Garutuman Park, Basavangudi, Bangalore – 04, KT. *Spl.Ref.* Sanskrit and Philosophy, Visting Prof. Kuvempu Univ. Shimoga, He prepared 5 Audio CD's of Viṣṇusasranāma, Śrīsūktam, Puruṣasūktam, Kṛṣṇanayajurveda and Gītārthasaṅgraha, President Awardee.

Rangacharya, Adya Shrirang. B.A., M.A. *b.* 26.09.1904, Agarkhed, Bijapur, KT. First Director of Kalidas Academy Ujjain. Chairman, Mysore State Sangeet Academy. *Bks.* Drama in Sanskrit Literature, Introduction to Bharata's Nā-yaśāstra, Kālidāsa – An Appreciation, The Indian Theatre, Nā-ya Śāstra – A Translation with Notes. *Ps.* 67. *Exp.on* 17.10.1984. *Spl.Ref.* Padma Bhushan Award. He was founder President Nā-ya Sangh, Mysore.

Rangacharya, Guttala Gururajacharya. Nayaysudha Visharad, Vedānta Vidvan. *b.*21.01.1947, Principal. *Ps.* 04. *Add.* 178, Dwaitvednta Pathshala, Vidya Mandir, Bangalore–560004 (KT). *Spl.Ref.* Dvaita Vedānta & Nyāya.

Rangacharya, S. Jyotiṣa Vidvan, M.A. (Darśana), Hindi Visharada. *b.*07.12.1908, Sarguru, Mysore., KT. Rtd. Asst. Prof., Mysore Sanskrit Mahavidyalaya. *Gp.* Karuru Sheshacharya, Venkatacharya, *Bks.* 01. Ratnasampu-am, 76 other books in Sanskrit. *Add.* Devaparthiva Marg, Chamarajpuram, Mysore, KT. *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Darśana, Hindi Sāhitya.

Ranganathacharya, Magadi Sesagirirava. Alaṅkāraasastravidwan, DvaitaVedānta-vidwan. *b.*20.12.1914, Magadi, Bangalore, KT. Teacher. *Gp.* Padmanabhacharya, Ramnathapuram Desikacharya. *Add.* S.M. 2 Quarters, Mantralaya–518345 (KT). *Spl.Ref.* AlaṅkāraaŚāstra, Dvaitavedānta & Veda.

Ranganathacharya, S. T. Traditional Education. *b.*03.11.1905, Tirunarayan-puram, Mysore. Hindi Pandita, Paurohita. *Add.* Archak Kalpataru, 2, Netaji Marg, Pappanayakan Palayam, Coimbatore-641037 (T.N.). *Spl.Ref.* Vedic & Paurohityam, Hindi.

Ranganathan, S. Shiromani. ***b.***01.01.1930, Madhurantakam, TN. Asst. Prof. ***Gp.*** U. V. P. N. Raghavacharya, M. S. Narasimha-charya, A.S. Krishnamacharya, V.D. Sampatakumara Varadacharya. ***Add.*** 37, G.S.D. Road, Chengalpet (T.N.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Vedānta & Veda.

Ranganayakamma. Alaṅkāraavidvān, Hindi-visharada, Kannada Pandita. ***b.***09.04.1940, Hedatal, Nanjangudu, KT. Teacher in Sanskrit, Shrirangapattana Mahavidyalaya, Mysore. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 1373/1, Siddharth Hotel Road, Krishnamurti Puram, Mysore–570004 (KT). ***Spl.Ref.*** Viśiṣ-ādvaita, Vyākaraṇa.

Rangarajacharya, V.D. śiromaṇi (Nyāya, Vedānta). ***b.***03.03.1935, Shrirangam, TN. ***Gp.*** Villivalam Narayanacharya, T. Rameshvaram Ayyangara. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Plot No. 40, Street No. 26, Trilinga Nagar, Nanganallur, Madras (T.N.). ***Spl.Ref.*** Nyāya Vedānta.

Rangarajan, P. R. Vyākaraṇa Shiromani, Shiksashastri. ***b.***18.11.1944. Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Venkateshwar Oriental College, Tirupati–517501 (A.P.) ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Viśiṣ-ādvaita-Vedānta, Shikshashastri.

Rangnath, S. M.A., Ph.D., Rashtra Hindi Visharad, Dipl. in German and Indology. ***b.*** 10.01.1959. Kolar, A.P. ***Bks.*** 09. Post Independence Sanskrit Drama, Contribution of Women to post Indepences Sanskrit Literature, Dr. Abhirāja Rājendra Miśra and his poetry, Arvācinakavimālā, Pursuits in Indian Philosophy. ***Ps.*** 50. ***Add.*** West Park Road Malleshwaram, Bangalore – 55. ***Spl.Ref.*** An Eminent writer in Sanskrit Literature criticisms.

Rangpriya, Vardedasikacharya H. S. DharmaŚāstra Vidvan, M.A. ***b.***01.04.1927, Hedatale, Najanagudu, KT. Rtd. Asct. Prof. ***Gp.*** N. Venkat Narsinghcharya, Dr. Ramji Upaddhyay. Prof. Khuswant Battacharya. ***Bks.*** Gajendramokṣa (Gīti Kāvya). ***Add.*** No. 625, Fourth Cross, Hanumant Nagar, Bangalore-560019, KT.

Rani, Sadasivamurty. M.A. (Sank. Eng. Philo.), Ph.D., Vedant Vidhya Praveena, PG Dip. In German., CIC. ***b.*** 30.11.1958, Yenugula Mahal, East Godavari, (A.P.). Asct. Prof. Rashtriya Sanskrit Vidhyapeetha, Tirupati. ***Gp.*** Shri Bodhanand Bharati Mahaswaminah, Shri Paripurna Prakashnand Bharti Mahaswaminah, Shri Rani Shrinivas Shastri, Brahmashri Appalla Someshvar Sharma. ***Bks.*** 20. Vedic Prosody its Nature Origin and Development Dhvanyāloka Kārikārtha Darśinī, Dhvanyāloka Paribhāśikā Padakośa Vivikta Puśpakarandaḥ (An Anthology of Free Verse Poetry in Sanskrit). A Manual of Gemology, ṚtuSandeśaḥ. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Areas of Specialization are Alaṅkāra Śāstra, Western Aesthetics, Vedic Prosody, Sanskrit Science, Ancient Indian Morology, Tantras, Personality Development Skills and Ancient Indian Management Techniques. ***Add.*** "Sumeru" Door No. 2 – 204, Plot. No. 17, TTD Phase II Plots, MR Palli, Tirupati – 517502.

Rao, Bhimasena D. Śiromaṇi. ***b.*** 26.12.1901, Mullagal, KT. ***Gp.*** Pranatarthi Havan. ***Add.*** No. 847/6-A Cross, Bangalore–560019 (KT). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Rao, C. Upender. Buddhism, M.A. (Pali & Sanskrit), M.Phil., B.Ed., Ph.D. (Pali & Buddhism). ***b.***15.10.1964. Mahbub Nagar. (A.P.). ***Bks.*** 04. Pālī Sāhityam loui Dīghnikāyoulo Tātvika Dharaulu (Telugu) 1997, Pālī Bhāśā Sāhityānca. ***Ps.*** 14. ***Add.***, Dept. of Skt., J. N. U., New Delhi. choudury@yahoo.com.

Rao, C. Upender. M.A., M.Phil, Ph.D.(Gold Medalist) ***b.*** 15.10.1964. Asct.Prof. Special Centre for Skt. Studies J.N.U. New Delhi. ***Bks.*** 09 Pāli Sāhityam Loni Dighanikāyam tātvika Dhoranala, Vañmaya Vallañ, Bhārtikavi Nītiśatwkam (Tr.), A Story of Five arts in Skt. Literature, Revelance of Buddhas Teaching in present Society. ***Add.*** Special Centre for Skt. Studies JNU New Delhi 110067. ***Ph.*** 011-26704130, 09818969756. ***Email*** upendra@mail.jnu.ac.in.

Rao, Dharmoji G. Vidyapravina. ***b.***10.01.1957, Velivel, A. P. Sanskrit Teacher. ***Gp.*** Narasinhacharyalu, C. H. Laxminarayana. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Venkateshvar Oriental High School, K.T. Road, Vinayaka Nagar, C-39, Tirupati–517507 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rao, Jagannath. Acharya in Navya Vyākaraṇa. ***b.***04.06.1952, Narsipur. Principal. ***Gp.*** Pundariksacharya. ***Add.*** Sri Bharat Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Rao, K. Giridhara. M.A., M.Ed., Ph.D. ***b.*** 11.07.1976, Ongole. Asst. Prof., R.Sk.S. Shringeri. ***Bks.*** 01. Bhāśā Praveśa–II. ***Ps.*** 06. ***Add.*** S/o K. Ramulu, 15 -03 – 10, Bhimaraju Vari St. Ongole-523001, Prakasam, A.P.

Rao, Kalpatru Bhaskar. Tarka Bhushan, M.A. (Nyāya), Ph.D., Nyāya, Darśanaa. ***b.***18.11. 1936. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Kameshwari Nilayam, Koralgunta Road, Tirupati – 517501 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Nyāya Darśana. Bhāṣā Śāstra.

Rao, Kaluri Hanumanta. B.Sc. M. Pharm, Ph.D. ***b.*** 20.09.1931 ***Gp.*** Sitaram Shastri, Amarwadi Krishnamacharya, Varadvetkar Krishnaacahrya ***Bks.*** 04. Sītāharaṇam (Nā-akam), Sāhitijagati (Nibandhasaṅgrahaḥ). ***Ps.*** 15. Asst. Prof., College of Technology, Osmania University, Hyderabad – 500007 (A.P.). ***Spl .Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa, TarakŚāstra.

Rao, Krishnamurti Vijayendra. ***b.***08.07.1954, Kumbakonam, TN. Vedic Exponent. ***Gp.*** B. Ramchandra Acharya. ***Add.*** Shri Kodanda Ram Swami Devasthanam, Tirupati (A.P.). ***Spl.Ref.*** Ṛgveda (Karmanta).

Rao, Lila. ***Bks.*** 05. Tukārāma Carītam, Gyāneśwar Carita, Mīrācarita, Tulacalādhī-rohan, Māyāzāla.

Rao, Nagaraj H.V. Vidvan M.A. (Sanskrit, English). ***b.***10.09.1942, Somenhalli, Kolar, KT. Research Asstt.. ***Gp.*** G. Vishnumurti Bhatt, S. Ramaswami Ayyangar, T. Sitaram Shastri, S.M.S.Varadachary. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Oriental Research Institute, Mysore University, Mysore–570006, (KT). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra, Sāhitya, Vyākaraṇa.

Rao, P. Uma Maheswara. M.A., PGDSCA, Ph.D. ***b.*** 01.07.1974, Krishnaraipuram. Principal, Sri Chaitanya Jr. College. ***Bks.*** 01. Subhāṣitās in Bhāgavatam. ***Add.*** Sri Chaitanya Jr. College, Sri Kiran Residency, Dr. No 9-25-1 Vishakhapatnam-530003. M. 09246775547. maheshsanskrit007@yahoo.com ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Rao, Pandita Kshama. Matric. ***b.***04.07.1890. Pune. Pandita. ***Bks.*** 12. Satyāgraha Gīta, Mīrā Laharī, Śaṅkar Jīvanarāṇyam, Tukārā-mcaritam, Kathāmuktāvalī. ***Expired on*** 22.04.1954. ***Spl.Ref.*** Seven Aikanki, Four Play, Thirty Five Short Stories, Vichitraparishad Yotra, She was inspired by Gandhi ji & She Wrote Satyagrahgeeta.

Rao, Parthasarathi. M.A. ***b.***25.03.1944, Vishakhapatnam, (A.P.). Asst. Prof. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Laxmaneshvar Govt. College, Kharid, Bilaspur (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rao, Raghavendra R. M.A. ***b.***08.12.1953, Bangalore, KT. Research Associate, O.R.I. Mysore. ***Gp.*** Dr. G. Marula Siddhayya, Dr. H.P. Malladevaru. ***Ps.*** 03. ***Add.*** No. 2847/ 2II, Main Jayanagar, Mysore (KT). ***Spl.Ref.*** AlaṅkāraŚāstra.

Rao, Rajeshvar S. ***b.***1947, Teacher, E.M. Convent School, Narsipatnam. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 19/100, Kapu Street, Narsipatnam (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rao, Ramchandra S. M.A. ***b.***25.07.1910, Kolar, KT. Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Ramaswami, D. Shrinivasacharya, Setumadhavacharya. ***Bks.*** Rasagaṅgādharaḥ (samīkṣāsahita, ed.). ***Add.*** 234/2, II Main, Jayanagar, Mysore–570014 (KT). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra, Vyākaraṇa, Darśana.

Rao, Ramkrishna B. S. Alaṅkāraavidvan, M.A., Ph.D., Hindiratna. ***b.***26.10.1952, Basuru Tarikere, Chikamagalur, KT. ***Gp.*** Dr. T. S. Krishna Rao. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Near Purnaprajana Layout, Banashankari–III, Bangalore-560085 (KT). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra.

Rao, S. Balachandra. M.Sc., Ph.D. ***b.***30.12.1944,

Sagar, KT. Director, Bhartiya Vidhya Bhavan. *Bks.* 26. Indian Mathematics & Astronomy Some Land Marks, Astrology Believe it or not?, Indian Astronomy – A Primer, Tradition, Science & Society, Eclipses in Indian Astronomy. *Ps.* 38. *Add.* 2388, Jnana Deep. Raja ji Nagar, Second Stage, A–Block, Bangalore–560010. balchandra1944@gmail.com

Rao, Surya Narayan M.K. M.A. *b.*11.04.1933, Tumkur, KT. Principal. *Gp.* Laxminarsinghayya, G. Sitaramaiya. *Add.* National College, Bangalore, KT. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra & veda.

Rashivadekar, Appa Shastri. *b.* 02.11.1873. Kolhapur (MH). *Bks.* 25. Śambhoḥ Kumārāvāpti, Udvāhmahotsavam, Pañjar-baddhaśukaḥ, Tilakasya Kārāgrahnivāsḥ, Śrīkāṇthapadbhūṣanam. *Expired in* 1993. *Spl.Ref.* He was also Awarded by 'Vachaspatee' Bangiya Sanskrit Parishad.

Rastogi, Bisanaswarup. M.A., Ph.D. *b.* 20.01.1950. Research Scholar. *Ps.* 02. *Add.* 73, Moti Bazar, Chandni Chowk, Delhi – 110006. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rastogi, Kshem. M.A., B.Ed. (Sanskrit). *Age.* 42 yers. Asst. Prof., Vishambharnath Rastogi Girls Senior Secondary School, Bhagirath Place, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 8/12, W.E.A. Karol Bagh, New Delhi–110005. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rastogi, Leena. M.A. (Skt. Pali, Marathi), Ph.D. *b.* 29.07.1939. Patan, GJ. Lecutrer, Nutan Adarsh Mahavidyalaya. *Bks.* 02. Spandan. *Ps.* 25. *Add.* Veelasa Kothri Layout, Umered, Nagpur – 03. *Spl.Ref.* Sanskrit Poetry.

Rastogi, Meera. M.A., Ph.D. Post Doctoral Research. *b.* 03.07.1954, Lucknow. Asstt. Prof., Skt & Prakrit Bhasha Vibhaga, Lucknow Univ. *Gp.* Prof. K.C. Pandey, Prof. Navajivan Rastogi. *Bks.* 01. Tāntrika Sivādvayavāda me Icchā Svātantrya thatā Niyamanavāda. *Ps.* 19. *Add.* K- 472, Aashiyana Colony, Lucknow- 226012. Ph. 0522-2422822. M. 09839606378. mirastogi@yahoo.co.in *Spl.Ref.* Kashmira Shaiva Darśana.

Rastogi, Mithilesh Kumari. M.A. *b.*12.09.1959. Govt. Service. *Ps.* 02. *Add.* C-5, G-2, Dilshad Garden, Delhi–110032. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Rastogi, Navjivan. M.A., Ph.D. *b.* 21.02.1939. Lucknow. Prof & Rtd. HOD, Deptt of Skt & Prakrit Languages, Lucknow Univ. *Gp.* Prof. K.C. Pandey. *Bks.* 06. Kāśmīra Śivādvayavāda kī Mūla Avadhāraṇāyeṅ, Kashmira kī Śaiva Saṃskṛti me Kula aur Krama Mata, Introduction to Trantrālok : A Study in Structure. *Ps.* 100. *Add.* Anand-mangal, B-202/203, Sterling Apptt.- 9, Univ. Road, Lucknow-226007. Ph. 0522-2782508. M. 09415105898. nr2508@airtelmail.in *Spl.Ref.* Kashmir Saiva Darśana, Marathi, Gujrati. USA (As Director, Kashmir Shaiva Translation Series-1989), Harward Univ. (As Visiting Scholars in Skt. & Indian Studies-1989), Hongkong(As an expert in the Research Project-1993), Visiting Fellow / Professor BHU (1989 KKR Univ. 2002) Kalidas Academy Ujjain 2002 etc.

Rastogi, Pratibha Rani. M.A. (Skt. & Hindi), B.Ed., Ph.D. *b.*20.05.1953, Meerut. *Ps.* 02. *Add.* E–67. Anand Niketan New Delhi–21.

Rastogi, U. M.A., Ph.D. Asst. Prof. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Miranda House, Patel Chest Marg, Delhi–110007. *Spl.Ref.* Veda, DharmaŚāstra.

Rastogi, Umesh Prasad. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 14.09.1940. Lucknow. Prof. & Rtd. Head Skt. & Prakrit Languages Deptt., Lucknow Univ. *Bks.05* Bhāravikāvya Me Arthā-ntaranyāsa, Saṃskṛtakāvyatattvamīmāṃsā, Saṃskṛta-kāvya me Maulikatā Evam Anuharaṇa, Vaidika Vāṅgmaya me Vaidagdhya Thatā Kāvyātmakatā. *Ps.*10. *Add.* C-1031/32 Sector B, Mahanagar, Lucknow-226006. Ph. 0522-2329861. M. 09305309288. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra, State Award on the Book Bhāravikāvya Me Arthāntaranyāsa, Banerjee Research Prize.

Rastogi, Urmila. M.A., Ph.D. *b.*01.05.1945, Chayasa, Gurgaon, Haryana. *Gp.* Dr. Krishnalata Nandan, Satyabhushan yogi. *Add.*

SD-84, Tower Apartments, Pitampura, Delhi–110034. *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda.

Ratate, Janardan Gangadhar. Acharya. Ph.D. *b.* Varanasi. Asst. Prof. Banaras Hindu University. *Gp.* Batukanath Shastri. *Bks.* 01. Mānasa Bhārati. *Add.* K 22/47, Durga Ghat, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya. U.P. Sanskrit Academy Award.

Ratate, Madhav Janardan. M.A., Acharya, Ph.D. *b.* 25.11.1975. Varanasi. Asstt. Prof., Deptt. of DharmaŚāstra and Mīmāṃsā, Faculty of SVDV, BHU. *Gp.* Prof. S.N. Mishra, Dr. J.G. Ratate, Prof. N.R. Srinivasan. *Sp.* O.P. Singh, Preeti Ranjan Jha. *Bks.* 07. Sāhitya Darpaṇa, Mīmāṃsā Darśana Vimarśa, Mudrārākṣasa Nātaka, Veṇisaṃhāra Nātaka. *Ps.* 28. *Add.* Deptt. of DharmaŚāstra and Mimāṃsā, Facutly of SVDV, BHU, Varanasi- 221005. Ph. 0542-2437174. M 09335641267. ratate@bhu.ac.in *Spl.Ref.* Mimāṃsā. 8 Speech brought casted by A.I.R. Varanasi.

Ratate, Ramchandra Shastri. Riksamhita, Samveda, Atharvaveda. *b.* 1874, Kashi. Teacher. Sangved School, Kashi. *Gp.* M.M. Gangadhar Shastri Tailang, Vedmoorti Balshestri Kale, Balshastri Vapatji. *Spl.Ref.* Edited Rigved with Pt. Shripad Damodar Satavalekar.

Rath, Kali Charan. Kāvyatīrtha, Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa , Āyurveda). *b.* 1895, Digapahandi, Ganjam, Orissa. Rajasabha Pandit Digapahandi. *Bks.* 03. Keralā Bayāliśa, Narāyaṇa Cautiśā, Payodhārā Tīkā of Rūdrābhiṣekaḥ. *Expired in* 1965.

Rath, P. M. M.A., M.Phil., Certificate in German. Asst. Prof., Sanskrit Department. *Add.* Utkal University, Vani Vihar, Bhuvaneshwar – 751004 (Orissa). *Spl.Ref.* Vaidika Sāhitya.

Rath, Shitanshu. M.A., Ph.D. *b.*12.09.1963. Asst. Prof. Vikram Univ. Ujjain, M.P. *Gp.* Prof. V. Venkatachalam, Dr. Balkrishna Sharma. *Bks.* 01. Rāmakathātrayī. *Ps.* 38. *Add.* Shri Leela 12, Udyan Marg, Ujjain. *Spl.Ref.* Bhoj Samman.

Rath, Shrinivas. Shastri, Acharya. *b.* 01.11.1933, Puri (Orissa). Asst. Prof., Sagar Univ., Prof. & HOD in Vikram Univ. & Rtd. Director of Kalidas Akademi, Ujjain (M.P.). *Gp.* Pt. Baladev Upadhyaya. *Bks.* 10. Tadeva Gaganaṃ saiv dharā, Baladevacharitam mahaKāvyam, Meghadūtam (Hindi tr.), Urubhaṅgam (Hidni tr.), Puruśārtha Saṃhitā. *Ps.* 100. *Spl.Ref.* A creative poet, good administrator, charm full speaker, Certificate of Honour by President of India, Sāhitya Academy award – 1999, Rajshekhar Award.

Rath, Suryamani. Shastri, PG Dipl in English, Vidyavaridhi. *b.* 07.09.1958. Cuttack, Orissa. HOD, R.Sk.S., Puri Campus. *Bks.* 03. Śṛṅgerīśatakam, Samasyāpūrtiśatakam. *Add.* Chundang Sahi, Matamatha Lane, Puri – 01. Orissa. *Spl.Ref.* Contemporary Poet.

Rath, Vanamali. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.*31.01.1933, Belaguntha, Ganjam, Orissa. *Bks.* 05. Samskṛta Sāhitya kā Paricaya, Bhāratīya Sāhitya Tattva, Study on Śrikṛṣṇalīlāmṛtaṃ, Glimpses of Vaiṣṇavism in Orissa, A Study in the imitations of Gītagovinda. *Add.* Medical Bank Colony, Brahmapur, Ganjam, Orissa. *Spl.Ref.* Reveived about 20 award. 1. Jayadev Sammana by Orissa akademi, honoured member of research board of advisors, Carolina, USA, Bhanja Bharati Samman, Nā-ya Praveena Saman etc.

Rathaura, Ravindra Sinha. Acharya in Sāhitya, Sangitaprabhakar. *b.* 07.08.1948, Gobarik, Hardoi, (U.P.). Teacher. *Gp.* Pattabhiram Shastri, Batukanathashastri Khiste, Dvijendranatha Nirguna. *Add.* Shri Shivashankataharanadarsh Sanskrit Maha-vidyalaya, Sakaha, Hardoi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Sangeet.

Rathore, Narendra Kumar. Ph.D. *b.* 10.05.1968. Prof. Shri Jayendra puri Arts & Science College, Bharuya. *Ps.* 02. *Add.* 305, Vinay Complex, Old National Highway No.8, Bharuya, GJ. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Rathore, Shailesh Bhai C. Ph.D. *b.*24.03.1971.

Prof., Shri Vanraj Arts & Commerce College, Laldungri, Dharampur, Valsad. *Ps.* 02. *Add.* Aasura, Dharampur, Valsad, (GJ). *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Rathva, Devsingh Bhala Bhai. Ph.D. *b.*15.06.1970. Jorapura. Asst. Prof., Bhartiya Vidhya Vibhag H. Uttar Gujrat University, Patan. *Ps.* 02. *Add.* 89, Rashiyan Nagar Siddhpur Road. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Rathwa, C.B. Ph.D. *b.*03.01.1974. Prof. Sanskrit Deptt. M. N. College Vishnagar. *Add.* 25, Vidhya Nagar Society Gharoi Colony Road, Vishnagar. *Spl.Ref.* Vedānta.

Rathwa, Rasik Bhai S. Ph.D. Prof. S.N. College Chota Udaypur Distt. Varodara. *Ps.* 02. *Add.* B-11, Sony Society Pavi Jetpur Distt. Varodara. *Spl. ref* Vedānta Śāstra.

Ratna K.V. M.A., Shastri, Pravina Jyotiṣaa. Asst. Prof., Skt. Dept. *Ps.* 02. *Add.* Lady Shri Ram College for Women, Delhi University, Lajpat Nagar, New Delhi–110024. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Ratudi, Mayaram. Vedashastri. *b.* 15.02.1963, Tehri Garhwal. Asst.Teacher. *Add.* Shri Jairam Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh. *Spl.Ref.* Veda.

Rautroy, Gokulanand. M.A. *b.* 31.08.1947, Tirinia, Kendrapara, OR. *Bks.* 15. Śrī Jagannātha Divya Sahasranāmaḥ. *Ps.* 01. *Add.* Narayani Sāhitya Kuteer, Tirinia, Indalo, Danpur, Kendrapara (Orissa). *Pin.* 754210.

Ravat, Asha Singh. M.A., Ph.D. *b.*04.10.1977. Asst.Prof., Govt. P. G. College, Mandsor, M.P. *Ps.* 08. *Add.* C/o. Shri K.C. Pathak, Janta Colony, Mandsour, M.P.

Ravat, Krishna. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.*17.02.1952. Teacher (PGT), Govt. Boys Senior Secondary School, Kirti Nagar, New Delhi, *Ps.* 02. *Add.* A-2/114, Paschim Vihar, New Delhi – 110063.

Ravat, Kuldeep Sinha. M.A. *b.* 10.11.1931. Teacher (TGT). Sanskrit, *Ps.* 02. *Add.* Govt. Boys Senior Secondary School No. 1, West Patel Nagar, New Delhi.

Ravat, Madan Singh. Acharya, B.Ed. *b.*15.09.1947. T.G.T. *Ps.* 02. *Add.* Govt. Senior Secondary School No. 1, Roopnagar, Delhi. *Add.* 19/12, Shakti Nagar, Delhi – 110007.

Ravidatta, Gautam. Acharya in Sāhitya, Sāhitya-ratna. *b.* 15.11.1918. Rtd. Teacher, Birla Higher Secondary School, Kamla Nagar, Delhi. *Ps.* 05. *Add.* A-13/3, Gautam Sadan, Rana Pratap Bagh, Delhi.

Ravikumar, K.R. M.A. Classical Literature. *b.* 23.03.1955. Hassan (KT). Asst. Prof. Maharam's Science College. Bangalore – 560001. *Bks.* 04. Vicāralaharī, Dinākkon-dusubhāśita, Daśakumāracarītam (ed.), Sanskrit Patrikodayama. *Ps.* 10. *Add.* 750. III Block. III Stege. III Phase. Banashankari. Bangalore–560085.

Ravindra Kishor. Shuklayajurvedacharya. *b.*02.08.1960, Rishikesh. Asst. Prof. *Gp.* Krishnkishor. *Add.* Ved Mahavidyalaya, Vedmarg, Rishikesh, (U.P.). *Spl.Ref.* Veda.

Rawal Nayna Ben T. Ph.D. Prof. Meenaben Kundliya Mahila Arts & Commere College Rashtriya Shala Rajkot. *Ps.* 02. *Add.* Vaani Natraj Nagar 1, University Road, Distt. Rajkot.

Rawal, Anantrai J. Ph.D. *b.*01.10.1939. Asct.Prof., Faculty of Arts M.S. University Varodara, GJ. *Ps.* 02. *Add.* 39, Sandipani Society, Bhaikaka Nagar, Thalteg Ahemdabad. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Rawal, Indravardhan Bhalchandra. Ph.D. *b.*24.09.1937. Prof. Shri & Smt. Chaukse Arts & Commerce College, Veraval, Junagarh. *Ps.* 02. *Add.* 7, Teacher Colony Near Derasar, Veraval, Junagarh. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Rawal, Jyotsana C. Ph.D. *b.*30.07.1969. Prof., Shri Ambaji Arts College, Kubhariya, Ambaji. *Ps.* 02. *Add.* B-9 Cotej Hospital Quarter Ambaji. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Rawal, Narendra Kumar Bheekha Lal. Ph.D. *b.*01.01.1973. Prof., Govt. Vinyan & Commerce College, Ahwa Dang, Dang. *Ps.* 02. *Add.* Pethapur, Danta, Janaskata, (GJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Rawal, Usha Ben R. Ph.D. *b.* 29.10.1941. Prof., Bhawans Arts & Commerce College Banpur,

Ahemdabad. *Ps.* 04. *Add.* 20/474 Satyagraha Chawani, Near Bhavnirjhar Satelite Road, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Apigraphy.

Rawliya, Ramji Bhai T. Ph.D. *b.*11.01.1959. Prof., Seth Shri B.J. Addhyan Sanshodhan Vidhya Bhawan, H.K.College Compound, Aashram Road, Ahemdabad. *Ps.* 02. *Add.* A-4 Yagyapurush Nagar, Ranna Park Ghat Lodiya, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Shilpa Śāstra.

Rawliya, S.M. Ph.D. HOD, Sanskrit Deptt. M.V.M. Arts College, Rajkot. *Ps.* 02. *Add.* 6 Laxmi Society Raj Nagar, Nana Mouva Road, Rajkot.

Ray Suchitra M.A., Vyākaraṇa tirtha, Ph.D. *b.* 02.11.1949. Calcutta. Asct. Prof., Deptt of Skt., Calcutta Univ. *Bks.* 01. *Add.* Deptt. of Skt., Calcutta Univ. Ph. 033-25883413. M. 09433410734.

Ray, Shipra. B.A., M.A., M.Phil, Ph.D. *b.*09.08.1959, Tripura. Asct.Prof., Tripura Univ. Tripura. *Bks.* 01. *Ps.* 10. *Add.* P.O. Teliamura Bazar Distt. Tripura (w). *Spl.Ref.* Member of Core committee women study cell Tripura Univ. Tripura.

Ray, Vijay Shankar. Sāhityacharya, Ph.D. *b.*07.01.1957, Bhojpur, Bihar. Asst. Teacher. *Gp.* Shivaji Upaddhyay. Vayunandan Pandey. *Ps.* 02. *Add.* Nat. Umarpur, Bhojpur, Bihar. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Ray, Vimla. M.A. Ph.D. *b.*05.03.1943 (in Pakistan). Asst.Prof. *Gp.* Rajendra Shukla. *Ps.* 05. *Add.* B-59, Patel Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Raya, Anantarama. Kāvyatirtha, Vyākaraṇa tirtha. *b.*20.04.1932. W.B. Acharya. *Gp.* Gopala Kaviratna. *Add.* Aram Bagh, Sri Ramkrishna Chatuspathi, Aram Bagh, Hooghly (W.B.). *Spl.Ref.* Veda & Sāhitya.

Raya, Anantaraya Jatasankara. Kamterala, *b.*01.10.1939, Vardhmanpuri, GJ. *Gp.* Prof. Anuparama Bhatta; Prof. Aster Simon; Prof. Ramacandra. *Ps.* 02. *Add.* 39, Sandipani Society, Ahmedabad–380054 (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Raya, Pranav. M.A., Kāvyatirtha. *b.*27.03.1937, Basudevpur, Midnapore, (W.B.). Asst. Prof., Secretary, Bangiya Sanskrit Shiksa Parisad, Calcutta. *Bks.* 01. *Add.* Govt. R.H.E. 193, Andul Road, Flat No. R.P. 3, Howrah–711109 (W.B.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Reddy, C.S.R. Linga. Shastri, Shikshashastri, NavyaVyākaraṇa charya, M.A., Ph.D. *b.*01.08.1977. R.Asst. Uttaranchal Skt. Academy, Haridwar. *Gp.* Brahmadutt Jigyasu, Pt. Vijaypal. *Bks.* Amṛdyamānā Maryādā. *Ps.* 05. *Add.* 504, Ganga Block, Ganga Darśana Apts., Haripur Kalan, Raiwala, Dehradun, (U.K.).

Reddy, Surya Narayan K. Vidvan, M.A. *b.* 01.07.1947, Proddatur, Cuddappa, A.P. Asst.Prof. *Gp.* Anjanye Sharma. *Ps.* 02. *Add.* S. V. Arts College, Tirupati A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Reddy, Vemuri Venkatraman. Acharya, Ph.D. *b.*01.07.1954, Kotambadu, Nellore. Asst.Prof. *Gp.* C.H.N.V. Prasad Rao. *Ps.* 03. *Add.* Shri Venkateshwer Oriental Institute, Shri Venkateshwer University, Tirupati, A.P. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Rekki, Ram. Shastri, Acharya in Vyākaraṇa. Asst.Prof., R.B.L.G. Sanskrit College. *Ps.* 02. *Add.* Gagarmal Sanskrit College, Court Road, Amritsar Punjab. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Renapurkar, Harish Chandra: M.A. *b.*27.09.1924. Latur, MH. Rtd. Pricipal, Govt. College, Gulbarg (Karnataka) *Bks.* 42 Kāvyonmeṣaḥ. *Add.* Lingodaya, Gulbarga 585102. KT. *Spl.Ref.* Urdu, Sāhitya, Darśana, Veda, Poet.

Renil, Dev M.R. M.A., M.Phil., *b.*02.02.1981, Alappurha. *Bks.* 01. *Add.* Avalookkunnv. P.O. Alappurha. Kerala – 688006.

Reu, Vishvanath. Acharya. *b.* 02.07.1890. Jodhpur (RJ). Lect. Jaswant College, Jodhpur. *Bks.* 19. Viśveśvar Smṛti, Ārya Vidhānam (II Vol.), Kṛśna Vilāsa, Vedānta Pañcaka, Śiva Sudhākar. *Spl.Ref.* Pali, Prakrit & Apabhramsha. Received M.M. Award.

Reva, Krishnamurty Vijayendra. *b.*08.07.1954, Kumbakonam, TN. Vedic Exponent. ***Gp.*** B. Ramchandra Acharya. ***Add.*** Shri Kodand Rama Swami Devasthanam, Tirupati (A.P.). ***Spl.Ref.*** Ṛgveda (Kramanta).

Revathy S. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 05.06.1959, Chennai. Asct. Asst. Prof., University of Madras. ***Bks.*** 02. Three Little Known Advaitins, Nāmamālā of Acyuta kṛṣṇānandatīrtha Eng.Tran. ***Ps.*** 30. ***Add.*** 1. Appu – II, Lane – 7, Gangavihar, Mylapore, Chennai – 4.

Richhariya, Brijesh. M.A., *b.*25.01.1975. Guest Lect. Dr. H. S. Gour Univ. Sagar, M.P. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 214, Gulab Colony Sagar M.P. ricchariyabrijesh@gmail.com.

Rijal, Kamalnayan. Acharya. *b.*28.07.1958, Pangana, Parvatanchal, Dhavalgiri, Nepal. ***Gp.*** Shesaraj Sharma Regmi, Thakur Prasad Gaud, Kali Prasad Mishra, ***Bks.*** 01. Raghūvaṃśaparīkramā, ***Add.*** K 22/77, Brahmaghat, Varanasi (U.P.) ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Rohatagi, Nirmala. M.A., B.Ed. *b.*07.07.1952. Teacher (PGT) Sanskrit, Govt. Boys Senior Secondary School, Gali Barfvali, Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 2807, Gali Matavali, Chandni Chowk, Delhi.

Rohil, Raj Sinha. M.A. *b.*15.04.1958. Teacher. Govt. Senior Secondary Girls School, Rajouri Garden, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** WZ-12, Keshopur, Tilak Nagar, New Delhi–110018. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Rohit, Ramji Bhai R. Ph.D. *b.*01.06.1969. Prof., Kankrej Arts & Commerce College, Bhaktinagar, Thara, Kankrej, Janaskanta, (GJ). ***Ps.*** 02. ***Add.*** Rojhiv, Kharodh, Veerpur, Kheda, (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Rohtam, Bhaktiputra. Acharya in Agama & Vedānta, JRF, NET, Vidyavaridhi. *b.* 01.01.1958. Ayodhya. Asstt. Prof., Dharmagam Vibhag, Faculty of SVDV, BHU. ***Gp.*** Swami Ramanand Saraswati, M.M. Gopal Shastri Darśana Kesari, M.M. Rameshwar Jha, Prof. Sudhanshu Shekhar Shastri, Prof. Dev Swaroop Mishra, Dr. Paramahans Mishra. ***Sp.*** Dr. Braj Kishore Mahapatra, Swami Jagdishwaranand etc. ***Bks.*** 01. Nigamāgamayostattvavimarśa. ***Ps.*** 07. ***Add.*** Dharmagama Vibhag, Faculty of SVDV, BHU. Varanasi-221005. M. 09450575765. bhaktiput-rabhu@gmail.com. ***Spl.Ref.*** Agama, Darśana.

Roy, Jyotirmay. M.A. Bengali, Ph.D. *b.* 30.11.1965. Medinipur. Lecturer. Kalichak Vikram Kishore Adarsh Skt. Mahavidyalaya. Ph. 03220-231081. M. 09153515681.

Rukmani, T.S. D.Litt. Ph.D. *b.* 29.06.1930, Kerla. ***Bks:***01. Yogasūtrabhāṣya–Vivaraṇa (Vol. I-II, 2001). ***Add:***Concordia University. 1455 De Maisonneuve West. Montreal. Quebec H3G IM8. Canada.

S

Sachidananda, A. P. M.A., M.Ed., Ph.D. *b.* 30.03.1955. KT. Prof. & Head, R.Sk.S., Sringeri. ***Bks.,*** 03. Ādhunika Bhāratīya Śikṣāyāḥ Vikāso Navaśikṣānītiśca, Śikṣāyāḥ Sāmājika Dhārāḥ, Śikṣāyāḥ Dārśanika Pṛṣ-habhūmiḥ ***Ps.*** 02. ***Add.*** Gurukripa Vilasa. Menase, Sringeri, Chikmagalur, KT.

Sadashivam, M. M.A., M.Litt., Ph.D. *b.* 15.06.1934. Erode. Formerly Director, Saraswati Mahal. ***Bks.*** 40. Names & Epithets of Lord Vināyaka. ***Ps.*** 120. ***Add.*** M. Sadashivam Meera Nilayam–7, Valliammai, II Street, Erode– 638004.

Sadhu, Adarsh Jivan Das. B.E., M.A., Ph.D. *b.*07.11.1969, Ahemdabad. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha. ***Gp.*** Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. ***Bks.*** 01. Bhagavān Svāmīnārāyaṇa Jīvana Evaṃ Kāvya. ***Add.*** BAPS Swaminarayan Mandir, Swaminarayan Chouwk, Dadar, Mumbai.

Sadhu, Akhar Jivan Das. Acharya in Sāhitya. *b.*30.06.1955, Rohisala, Botad, Bhavnagar. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha. Editor, Swaminarayan Prakas, Swaminarayan Mandir, Shahibag Ahemdabad. ***Gp.*** Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. ***Bks.*** 04.

Svāmīnārāyaṇa Caritamānasa, Bhagavāna Svāmīnārāyaṇa eka divyajīvana Gāthā, Śrī jī Caritra Vihāra, Bhaktacaritam. *Add.* Swaminarayan Mandir Shahibag, Ahemdabad-380004. *Spl.Ref.* Skt. Braja, Hindi, Avadhi language & Literature.

Sadhu, Akshar Charan Das. Shastri in Sāhitya. *b.*15.11.1952 Antoli, Varodara GJ. Asst.Prof. BAPS Swaminarayan Mandir, Sarangpur. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Bhagatji Maharaj. *Bks.* 05. Pramukhavā-ikā, Pramukhanikuñja, Pramukhapallava, Pramukhamañjarī, Pramukhapuṣpam. *Add.* Sarangpur, Barvala, Ahemdabad, GJ.

Sadhu, Anand Jivan Das. Shastri in Sāhitya. *b.* 01.11.1958, Rohisala, Botad, Bhavnagar. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 01. Bālasnehī, Khaṇḍeśma Svāmīnārāyaṇīya Satsaṅga. *Add.* Shri Swaminarayan Road, Devpur Dhuliya-422405. MH.

Sadhu, Atmatript Das. M.A., Ph.D. *b.*24.09.1972, Savarkundla GJ. Prof., BAPS Swaminarayan Mandir, Sarangpur. *Gp.* Swaminarayan Bhagatji Maharaj, Yagnapurush Das ji. *Add.* BAPS Swaminarayan Mandir, Yagnapurush Skt. College Sarangpur, Barvala, Ahemdabad, GJ. *Spl.Ref.* Veda & Darśana.

Sadhu, Bhadresh Das. M.A., Acharya in Vedānta, Sāṅkyayogacharya, Ph.D., D.Litt. *b.* 12.12.1966, Nanded, MH. Prof. BAPS Swaminarayan Mandir, Sarangpur Yagnapurush Skt. College. *Gp.* Shri Swaminarayan Bhagwan, Shri Gunatitanand Swami, Shri Bhagat ji Maharaj. *Bks.* Bṛahmasutra swāminārāyaṇa Bhāṣyam, Ishādyashtopaniṣat Svāminārāyaṇa Bhāṣyam, Chhāndogyopaniṣad Svāmīnārāyaṇa Bhāṣyam, Śrīmad Bhāgvadgītā Svāmī Nārāyaṇa Bhāṣyam. *Add.* Sarangpur, Barvala, Ahemdabad, GJ.

Sadhu, Bhagvat Priya Das. Acharya in Vedānta, Vachaspati, Ph.D. *b.*13.06.1939, Kolkata. Mahant, Svaminarayan Mandir. *Gp.* Shri Bhagatji Maharaj, Shri Yagnapurush Das, Shri Gyanjivan Das ji. *Bks.* 01. Satsaṅgavacanamālā. *Add.* Swaminarayan Mandir, Bhasa 14 No. Diamond Harbour Raod, 24 Parganas, Kolkata.

Sadhu, Bhakti Priya Das. Acharya in Vedānta, Vachaspati, Ph.D. *b.* 28.04.1938, Rajpur, Kadi, Mehsana, GJ. Mahant, Swaminarayan Mandir, Dadar, Mumbai MH. *Gp.* Shri Yagnapurush Das, Shri Gyanjivan Das. *Bks.* 04. Suvarṇa Malikā, Arṛta Setu, Novakhaṇḍa dharatimāna, Vairāgya mūrti niśkulānanda. *Add.* Swaminarayan Mandir Dadar, Mumbai, MH.

Sadhu, Bhakti Sagar Das. M.A., Acharya in Vedānta, Sāṅkya Yoga, Nyāya, Vaiṣeṣikaa, Mimāṃsā, Vyākaraṇa , Samveda, Purāṇaetihasa. *b.* 01.06.1962, Pati, Botad, Bhavnagar, GJ. Prof., BAPS Swaminarayan Mandir. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 01. Pramukhasṃskṛtam. *Add.* BAPS Swaminarayan Mandir, Sarangpur, Gagyapurush Skt. College, Sarangpur, Barvala, Ahemdabad.

Sadhu, Hari Bhushan Das. Shastri in Sāhitya. *b.*10.01.1932, Mumbai. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 01. Translation of Vacanamūrta in marāthī. *Add.* Swaminarayan Mandir Adajan, Surat-396230 (GJ).

Sadhu, Ishwar Chandra Das. Sāhitya Shastri. *b.*08.11.1938, Bhavnagar, GJ. Convenor of BAPS International Satsang Pravritti, Swaminarayan Mandir, Ahemdabad. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 04. Yogī Caritam, Yogī jī Mahārāja, Digantamāna ḍaṅkā, Kalyāṇa. *Add.* Swaminarayan Mandir, Shahibag, Ahemdabad-380004.

Sadhu, Param Purush Das. Acharya in Navya Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 20.10.1954, Bhensadad, Dhrol, Jamnagar. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 01. Catalogue of Pañcarātra Saṃhitā. *Add.* Akshardham, Sector-20 'J' Road, Gandhinagar, GJ.

Sadhu, Prabhu Charan Das. M.A., Ph.D.

Acharya in Sāṅkya-Yoga Prachin Nyāya-Vaiṣeṣikaacharya, Vishishtadvaita-Vedāntacharya. *b.*30.12.1960, Vibhapar, Jamnagar. Saint of BAPS Swami-narayan Sansthan Shree BAPS Swaminarayan Sant Nirdeshak Mandir. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Ps.* 02. *Add.* Shri BAPS Swaminarayan Mandir, Swaminarayan Chawk, Pramukh-swami Maharaj Marg, Near Sardar Bridge, Surat Gujrat.

Sadhu, Pritam Prasad Das. Acharya in Vedānta. *b.* 20.01.1956, Barvada, GJ. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 01. Śrī Jī Sannidhi. *Add.* BAPS Swaminarayan Mandir Swaminarayan Chowk, Dadar (C.R.) Opp. Station, Mumbai- 400014.

Sadhu, Satayapriya Das. Vedāntacharya. *b.*02.04.1931, Mumbai. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha. Swaminarayan. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 01. Muktānanda Swāmī. *Add.* Swaminarayan Mandir, Shahibag, Ahemdabad, GJ.

Sadhu, Shrihari Das. Acharya in Vedānta, Vachaspati, Ph.D. *b.*10.10.1943, Mbale, Uganda, Africa. Saint of BAPS Swaminarayan Sansthan. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 05. Sarvoparī Śrīhari, Sanātana Dharma Abhigama, Jagabhakta, Kiśora Satsaṅga Paricaya, Kiśora Satsaṅga Praviṇa. *Add.* Swaminarayan Mandir, Shahibag, Ahemdabad, GJ.

Sadhu, Shruti Prakash das. Ph.D., Acharya in Navya-Vyākaraṇa , Vedānta, Sāṅkya- Yoga, Sarva-Darśanaa, Mimāṃsā. *b.*31.12.1961, Pati, Batod, Bhavnagar, GJ. Asst. Prof. AARSH, Akshardham Gandinagar. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 10. Akṇarapuru-ṣatlama Caritam, Vyāsasūtrā-rthadipa, 'Śrī Svāmināroāyana darśana' Sanātana Dharma-granthaṃ ke paripreks-ya meṃ. *Add.* AARSH, Akshardham, Sector-20, 'J' Road, Gandhinagar, GJ.

Sadhu, Siddheswar Das. Shastri in Sāhitya. *b.* 23.11.1938, Mumbai. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha, Near New Railway Junction Surendranagar. *Gp.* Swami-narayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 02. Brahamānanda Svāmī, Kiśora Satsaṅga Pravīṇa. *Add.* Near New Railway Junction Surendranagar, GJ.

Sadhu, Vivek Sagar Das. Acharya in Vedānta, Vachaspati, Ph.D. *b.* 01.07.1939, Mehsana, GJ. Saint of BAPS Swaminarayan Sanstha, Swaminarayan Mandir, Ahemdabad. *Gp.* Shri Bhagat ji Maharaj, Shri Jyanjivan Das ji. *Bks.* 05. The Sānkhya System in the Vachnāmruta of the Svāmīnārayaṇa Faith, Kariṣye Vacanam tava, Bhagavad Gītā Nirupaṇa, Shikshavalli a Chapter of the Taitiri yopniṣad, Mrutyunjayi Nachiketā, Swāminārā-yaṇiya Asmitā. *Add.* Swaminarayan Mandir, Shahibag, Ahemdabad, GJ.

Sadhu, Yagneshwar Das. Shastri in Sāhitya. *b.*10.09.1952, Morzar, Rajkot. *Gp.* Swaminarayan Bhagwan, Ganatitanand Swami. *Bks.* 01. Mukundananda Varṇī. *Add.* Rasoolpura, Nr. Viman Nagar, Behind Anand Talkies, Secundrabad. *Spl.Ref.* Best Singer.

Sadhukhan, Sanjit Kumar. M.A., Ph.D.. *b.* 03.01.1958, Kolkata. Asct. Prof.. *Add.* 6 – B, Kaliprasad Chakrabaty St. Kolkata – 700003. *Ph.* (033) 25337337, 09433447539.

Sagar, Baldevanand. Ph.D., *b.*14.06.1952. Bhavanagar, GJ. In-Charge, News Services Division, All India Radio, Parliament Street, New Delhi. *Gp.* Shri Shivoham Sagar ji Maharaj. *Bks.* 11. Dvādaśa-Upaniṣad(ed.), Saṃskṛta Patrakāritā(ed.), Tīrthadeva, Śivamahimna-stotram(ed.), Svarṇa-dehāñjalī. *Ps.* 55. *Spl.Ref.* Working scholar of Sanskrit theater and journalism.

Saha, Geeta. Sāstri in Sāhitya, Ph.D.. *b.* 21.09.1953, Dibrugarh. Vice Principal & HOD., Rabindrasadan Girls College, Karimganj, Assam. *Bks.* 07. Navabhaginīnām Lokakathā, Śahīda Tarpaṇa, Ratnamañjarī, Śūdraka,

Kāvyamañjarī. *Ps.* 10. *Add.* Rabindrasadan Girls College, Karimganj, Assam – 788710. *Ph.* (03843) 263065, 262323, 09435596001. sahageeta41@ gmail.com.

Saha, Kingsook. M.A.. *b.* 23.09.1967, Agartala, Tripura. Asst. Prof., Kaliachak Bikram Kishore Adarsh Sanskrit Mahavidyalaya. *Add.* 11/61, Jheel Road, New Land, Kolkata-700031. *Ph.* (033) 24723450, (03220) 276036, 94334 50127, 9434742503.

Sahgal, Krishna. M.A., B.Ed.. *b.* 05.03.1942. Teacher (TGT). Govt. Senior Secondary School, Rajauri Garden, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 96-A, Janata Colony, Rajouri Garden, New Delhi–110027.

Sahoo, Ramdev, b. 1958. Nagarfort, Tonk, Asst. Prof., Dadu Acharya Sanskrit College, Jaipur. *Bks.* 10. Rāmadevacaritam, Cittaudha-cūḍāmaṇi, Śiva-laharī, Abhinava-jayapuram, Abhinandana-dvāraptātīh.

Sahu, Girdhari Lal. M.A., Ph.D. *b.*01.01.1950, Deoria. Asct. Prof. & H.O.D., Kalikadham, P.G. College, Sevapuri, Varanasi. *Ps.* 05. *Add.* S – 17/95 A, Smt. Chanmati Gupta Nivas, Laxmighat, Nadesar, Varanasi.

Sahu, Somanath. Achary., M.Ed., Ph.D. *b.*12.06.1974. Kushang, Odisha. Asst. Prof., R.Sk.S., Sringeri. *Bks.* 01. Śikṣāyaḥ-Dārśanikadharāḥ. *Ps.* 14. *Add.* Kushang, Chandanghati, Balagir, Orissa.

Saini, Krishna. Acharya, Ph.D. *b.* 20.10.1956, Hoshiarpur, Punjab. Asct. Prof., Punjab Univ. *Gp.* Dr. Sivaprasada Bharadvaja, Dr. Braja Bihari Chaubey, Dr. Virendra Sarma. *Ps.* 15. *Add.* Dharamvir Saini, Saini's Ashiana, Gautam Nagar, Jodha Mal Road Hoshiarpur, (Punjab).

Saini, Ranajit Singha. M.A., Ph.D. *b.*20.09.1938. Teacher, Motilal Nehru Vidyalaya. *Ps.* 03. *Add.* 285, Sector–14, Gurgaon (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Saini, Sunita. Ph.D. *b.*18.01.1973. Hissar. Asst. Prof., M.D. Univ., Rohatak. *Bks.*01. Agnipurāṇa Me Vividha Vidhāyen. *Add.* H.No.- 1454, Sector-2, Rohtak, (HR).

Saini, Usha Kiran. Purāṇaetihasacharya. *b.*15.11.1953. *Ps.* 03. *Add.* P&T, Type Second Quarter No. 12, Deva Nagar, New Delhi – 110005. *Spl.Ref.* Purāṇetihāsa.

Sajeev, Kumar S. M.A. *b.*14.07.1975. Ernakulam, Kerala. *Ps.* 02. *Add.* Kalamandiram, Chotta-nikkara, Ernakulam, Kerala, *Pin*–682 312.

Saktayana, Kirti Vallabh. Acharya, Siksha Shastri, Vidyavaridhi. *b.* 02.06.1954. Pithoragarh, U.P. Asct. Prof., Pithoragarh. *Bks.* 04. Kīdṛk Saṃyogaḥ, Rāṣ-ram hi sarvopari. *Add.* Champavat, Pithoragarh. 23. *Spl.Ref.* Writer in Hindi and Sanskrit Literature.

Samaka, Subrahmanya. M.A., B.Ed. *b.*21.07.1961, Balegadde. Vedpathi. *Add.* Kasakanda, Salkod, Honavar, Kannada-581334, (KT). *Spl.Ref.* Sāmaveda.

Samantaray, Bhagaban. Acharya, Ph.D. *b.*15.03.1972, Kabisurya Nagar, Ganjam Orissa. Asst.Prof., *Bks.* 02. Māṇḍūkyopaniṇad(Tr.), Vividha-Kusuma-vallī. *Add.* R.Sk.S., Rajiv Gandhi Campus, Sringeri, KT. *Spl.Ref.* Veda & Vedānta.

Samdilya, Bagmita. M.A., Ph.D. *b.*01.02.1980, Jagimoad, Marigaoh, Assam. Asst.Prof., Cotton College, Guwahati. *Gp.* Sujata Puakayastha. *Ps.* 02. *Add.* Deptt. Of Skt. Cotton College, Guwahati -1.

Sammvedula, Prashant Rao. M.A. *b.*07.04.1972. Guest Asst.Prof. Maharshi Panini Skt. Univ., Ujjain, M.P. *Ps.* 01. *Add.* B-10/2, Mahananda Nagar, Ujjain M.P.

Sampath, Raghu Narasimha. M.A., Ph.D., P & PA Dipl., DOOP Dipl., Tradition in Vedānta Veda, Upaniṣad. *b.* 30.04.1924. Madras. Rtd. Prof & HOD Madras Univ. *Bks.* 04. *Ps.* 70. *Spl.Ref.* Honourary MM and Sanskrit Prachar Chaturaha, President Awardee.

Samtani, N.H. M.A., Ph.D. *b.*10.06.1924. *Bks.* 05. Arthaviniścaya-Sūtra & Commentary. *Add.* Hon. Director, Centre for Mahayana, Buddhist Studis, Nagarjuna University, Guntur (A.P.) *Pin* - 522510.

Sandhya. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.* 06.10.1971. Jammu. Teacher in Gov. School. *Bks.* 01. Women in Modern Sanskrit Dramas. *Ps.* 04. *Add.* Girl's Hostel, New Campus, University of Jammu.

Sanhiwal, Bharat Bhushan. Sāhitya Ratna, Ayurveda Ratna. *b.* 28.02.1932. Rohtak, Haryana. *Bks.* 03. Śivastotram, Maṅgala-kalaśam, Haryāṇā Darśanam. *Add.* Saraswati Sadan, 835/35 Janta Colony, Rohtak, Haryana. *Spl.Ref.* Poet and Writer in Skt. and Haryanavi, Honour from Haryana Sāhitya Academy and Haryana Skt. Academy India Govt.

Sanjeev P.K. MSW, M.Phil. (Vastuvidya). Ph.D. *b.* 20.05.1977. Ernakulam. Research Scholar. *Bks.* 01. Upālayavāstuvidhi. *Ps.* 02. *Add.* Pelappilly House, Okkal Post, Ernakulam-683550, Kerala. Ph. 04843109284. M. 09895038551. pksanjeev77@gmail.com *Spl. Ref.* Vastu.

Sankaran, N.K. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.*04.03.1945, Badagara, Kerala. Prof., Sri Shankaracharya Univ., Kalady. *Bks.* 01. Brahmasūtra Śāṅkara-Bhāṣya Study in Dialectics. *Add.* TC 4/108, Aksharam, Cheshire Home Lane, Kaudiar, Trivandrum, Kerala.

Sankrityana, Rahul. *b.*April, 1893. Kanaila, Mohammadabad, Gohna, Azamgarha (UP). His original name was Kedarnath Pandey. Rahul jee passed his middle school examination in 1909. He learnt Bangla, he studied old writings, stone inscriptions, manuscripts, several lost Asian and Slavonic languages. Travelling his knowledge of Sanskrit had become so refined that he taught it at VidyAlaṅkāra Vihar in Sri Lanka. In this sequence Kashi Pandit Sabha conferred the title of "Mahapandit" on him in 1930. His life was the life of a traveller. 'Meri Jeevan Yatra' i.e., ' My Life Journey' his autobiography. From one place to another place, from village to town and thence to big cities, from own country to alien countries, Vaisnava dharma to Arya Samaj, Arya Samaj to Buddhism and from Buddhism to communism – an ever going journey which never stopped. "Victory, victory unto to the path of the Rover" his declaration. 'Ghummakar Śāstra, Athato Ghummar Jigyasa, the greatest religion. He was converted into Buddhism as 'Bhikchu Rahul Sankrityana'. Travelling from Haridwar, Rishikesh, Tehri, Dharas, Gangotri, Yamunotri, Kedarnath, Badrinath, Benaras, Asansol, Adara, Kharagpur, Puri, Tirupati Balajee, Rameshwaram, Lumbini, Kapilvastu. Sarnath, Nalanda, Bodhgaya. Rahul jee went to Nepal, France, Germany and England. As an Arya Samaji, As a follower of Buddha. He went towards Politics and Communism. He was ever a revolutionary, experimenting and dynamic. Mahaprayan i.e. the greatest journey of life on 14th April, 1963.

Sanyal, Prabhat Kumar. M.A. *b.*08.06.1941, Sahebganj, Bihar. Teacher. *Gp.* Tarapada Bhattacharya, Vishnudev Jha. *Ps.* 03. *Add.* Shyamcharan Sanskrit Vidyapith, Madhusudan Nagar, Baunsi, Bhagalpur (Bihar). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sanyogita. M.A.. *b.* 15.06.1983, Lucknow. Research Scholars, Lucknow University, Lucknow. *Guru Parampara.* Mr. R.S. Yadav. *Ps.* 01. *Add.* E – III, 444, Sector – J, Aliganj Lucknow – 226024. *Ph.* 9450441760.

Saraf, Ramkrishna. M.A., LL.B., Shastri, Ph.D., Mahamahopadhyaya. *b.* 17.08.1929, Jabalipuram (M.P.). Rtd. Principal, Govt. Sanskrit Mahavidyalaya, Bhopal. *Bks.* 10. Pañcaprakaraṇī, Kathanī - Karanī, Saṃskṛti-cintanam, Mānavamūlyaparakaśabdāvalī-viśvakośa, Rāṣ-racintanam. *Ps.* 300. *Add.* E–7/562, Arera Colony, Bhopal (M.P.). *Pin* 462016. *Ps.* (0755) 2424424. *Spl. Ref.* Rajyastariya / Akhilbharatiya Samman/ Gold Medal/ Silver Medal Awarded.

Sarangi, Alekha Chandra. Vyākaraṇa-Acharya, M.A., M.Phil., Ph.D., Diploma in German, Certificate in French & Japanese. *b.* 26.03.1949, Puri (Orissa). Teacher, Visiting Prof. in Nagova University, Japan (1984 – 95), Administrator Utkar University, V.C. in

Shri Jagannath Sanskrit University. *Gp.* Pt. Banamali Mishra, Prof. S.D. Joshi, Prof. S.D. Laddu, Prof. G.B. Palsule. *Sp.* Prof. R.M. Dash, Prof. P.M. Rath, Dr. S. Maya. *Bks.* 05. Development of Sanskrit from Pāṇini to Patañjali, Verbal Cognition; A Neo Grammatical Approach, Gleanings in the Sanskrit Grammatical Tradition, Glimpses of Indian Culture, Suṣamākalāśrīḥ. *Ps.* 33. *Add.* A – 42, Lingaraj Vihar, Pokhariput, Bhubaneshwar (Orissa) – 751020. *Ph.* 0674-2382262. *M.* 9861138251, *Spl. Ref.* Dwarkanath Das Shiksha Samman, Puri. Prof. K.C. Acharya Samarak Sanskrita Samman, Jaipur. Arshavidya Vikash Kendra. F shastriJapan (1984 – 85), Indonesia (1990–91). He was Ex. V.C. of Sri Vihar, Puri.

Sarangi, Buddheswar. Acharya in Sāhitya & Veda, Ph.D., M.A. (Oriya), Rashtrabhasha Kovida. *b.* 27.05.1968, Sundargarh (Orissa). Asst. Prof., Shri Sitaram Vaidik Adarsha Sanskrit Mahavidyalaya. *Gp.* Pt. Devavrata, Pt. Bhagabatprasad Tripathi, Prof. Harekrishna Satapathy. *Sp.* Vivekananda, Chandrakanta, Gourava, Somanath. *Bks.* 25. Madhusvana, Turiyavṛtti Vimarśa, Tathāpī Vandyā Mama Mātṛbhūmiḥ, Ṛṣi bodham, Aṣ-a vikṛtaya. *Ps.* 05. *Add.* Shri Sitaram Vaidik Adarsha Sanskrit Mahavidyalay, 7/2 A, P.W.D. Road, Kolkata–35. *Ph.* (80172) 03932, (033) 25777250. budheswar.@gmail.com. *Spl.Ref.* Sāhitya. Maharshi Badrayan Vyas Samman – 2006.

Sarasvat, Krishna Dev. Acharya, M.A., Ph.D. *b.*03.07.1951, Katapali, Sambhalpur, Orissa. *Bks.* 01. Gītā Sītā Vallabham. *Add.* Neeta Bhawan, Mahamayee Para. Old Basti, Raipur (C.G.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Saraswat, Kedar Nath. *b.*12.03.1903, Kashi. Teacher, Ranveer Sanskrit Pathshala. *Bks.* 04. Kāvyamīmāṃsā (Tr.), Kathāsaritsāgara (Tr.). *Expired on* 05.12.1959. *Spl.Ref.* Established 'Sanskrit Sāhitya Samaj' in 1953 & Started monthly Sanskrit newspaper 'Suprabhatam'. Edited 'Sanskrit Ratnakar' magazine.

Saraswati, Swami Aatmanand, (Muktiram Upadhyay). Darśana, Vyākaraṇa, Sāhitya, Vedānta. *b.*1879. Merut. Acharya, Chohanbhaktan Gurukul, Near Rawalpindy. *Bks.* 05. Sandhyā, Aṣtāṅga-yoga, Vaidika-Gītā, Manovijñāna, Śivasaṅkalpa. *Expired in* 1960.

Saraswati, Swami Dharmanand. Vyākaraṇa-shastri, Acharya. *b.*16.07.1943, Humayunpur, Rohtak, HR. Principal. *Gp.* Swami Omanand, Rajveer Shastri. *Add.* Gurukul Ashram, Amasena, Khariar Road, Kalahandi Orissa. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Darśana & āyurveda.

Sarkar, Aditi. M.A., Ph.D.. *b.* 26.06.1960, Burdwan, West Bengal. Asct. Prof. *Bks.* 01. *Add.* 57/2, B.C. Chatterjee St. Belghoria, Kolkata-700056. *Ph.* (033) 25644173.,

Sarkar, Debarchana. M.A., Ph.D., Diploma in Pali and German Languages. *b.* 31.07.1958, Kolkata. Prof. Jadavpur University. *Bks.* 05. Harṣacaritera Ṣaṣ-ha Ucchvāsa, Vīkṣaṇam, Bhāratīya Abhilekha Sāhityera Rūparekhā, A Dictionary of Technical Terms in Kautilyas Arthaśāstra, Geography of Ancient India in Buddhist Literature. *Ps.* 20. *Add.*10/12, Charu Avenue, Kolkata – 700033. *Spl. Ref.* His book "Sekela" in Bengali is a collection of 16 essays published in various journals & magazines, The book was reviewed by Dr. Gautam neogi in a Bengali Daily and was highly praised.

Sarkar, Haridas. Shastri, Vidyavachaspati, M.A., Ph.D., *b.* 20.01.1969. Asst. Prof. Calcutta University. *Bks.* 01. *Add.* 5/4, Jogendra Barak Road, Baranagar, Kolkata – 700036. *Ph.* 9477143725.

Sarswati, Jyotiṣa Chandra. *b.*1920. Bangal. *Bks.*01. Carakapradīpikā. *Spl.Ref.* Āyurveda.

Sastrigal, G. R. Ramachandra. *b.* 20.06.1914. Pazhaya Gudalur, Nagpatham (TN). *Bks.* Veda Bhāṣya anubandham, Suprabhāta-rāmāyaṇa, Rāgadevatā Dhyāna Mañjarī, Stotra-Mañjarī. *Spl.Ref.* Awarded by President Cetificate of Honour (2010).

Satapathi, Padma Nath. Acharya in Sāhitya, Jyotiṣaa, & Karmakanda. *b.*03.07.1935. *Add.*

Nuyadiha, Tangan Palli, Bharkumarada, Ganjam, (Orissa). *Spl.Ref.* Sāhitya, Jyotiṣaa, Karmakanda & Veda.

Satapurakar, Vishnu Vaman. M.A., Ph.D. *b.*23.07.1937, Sasik, MH. *Gp.* S.A. Dange. *Bks.* Śāstraśuddhapañcāṅgasya Nirṇayasāgar-pañcāṅgasya Prakāśanam. *Add.* Yashodiya Thakur Nagar, Sant Tukaram Road, Mulund East, Bombay, MH. *Spl.Ref.* DharamŚāstra.

Satheesha, K.S. Siromani Acharya in Advaita Vedānta, M.A., Vidyavaridhi *b.* 27.03.1977 Shimoga. Asstt. Prof. Sri Lal Bahadur Rashtriya Skt. Vidyapeeth. *Gp.* Dr. Krishna Moorthy Shastrigal. *Ps.* 02. *Add.* Deptt. of Advaita Vedānta Sri Lal Bahadur Rashtriya Skt. Vidyapeeth. New Delhi 110016. Ph. 011-26303902. seemasatks@gmail.com. *Spl. Ref.* Advaita Vedānta, Vidwat Pravara.

Sathian, M. M.A., M.Phil., B.Ed., Ph.D. *b.*25.05.1966. Chathamanmalam. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.*Harinandanam, Pattamri, Palakkade, Kerala, Pin- 679303.

Sathyanarayana, R. M.Sc.(Chemistry), Ph.D., D.Litt *b.*09.05.1927. Professor, Mysore, KT. *Bks.* 90. Niśānka Hṛdaya, Puṇḍarīkamālā, Bharatanātya : A Critical Study, Suladis and Ugabhagas of Karnātakā Music. Vīnalakṣanā Vimarśa. *Ps.* 300. *Add.* 12, 9th Cross, 4th main Jayanagar, Mysore– 14, KT. *Spl.Ref.* Awarded Padmabhushana.

Sati, Khimanand. Acharya in Sāhitya. *b.*07.07.1946, Patali, Nainital, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Vedanand Jha, Kedaradatta Shastri, Kamtaprasad Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Shri Prachin Avadhut Mandalashram, Haridwar. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sati, Mohan Prasad. Acharya. *b.*15.12.1956. Teacher, Govt. Higher Secondary School, Shriniwas Puri, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* G-12, Shriniwas Puri, New Delhi–110065.

Satpathy, Prakash Chandra. Ph.D. *b.*03.05.1972. Orissa. *Ps.* 02. *Add.*C/o Krishan Ji, F – 195, Kathwaria Sarai, New Delhi–16.

Satyamurti. M.A. *b.*01.07.1977. Chhapra (Bihar). Junior Research Fellow in D.U. *Ps.* 01. *Add.* H–07. Jubilee Hall. Univ. of Delhi, Mall Road, Delhi – 110007.

Satyanarayan, Koyambatturu Vedvyas. *b.* 10.12.1945, Kumbhakonam, TN. *Gp.* Keshavachary, R. Krishnasvami Ayyangar. *Add.* Shri Padmavati Devasthan, Tiruchanur–517503 (A.P.) *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda (Kramanta).

Satyanarayana, K. M.A. (Sanskrit & Education), Ph.D. *b.*01.03.1957, Dorasanipadu (A.P.). Asst. Prof., Nagarjuna University, Guntur, A.P.

Satyanaryana Bhimraj. M.A., B.Ed., V.P. *b.* 22.09.1909. Rtd. PCS., A.P. Govt., Principal, SBS Oriental Mahila Mahavidyala. Tonoku Nagar. A.P. *Bks.* 01. Sūktimuktāvalī.

Savsani, Mansukh Lal Devraj Bhai. Ph.D. *b.*31.05.1964. Prof., M. N. College, VishNagar. *Ps.* 02. *Add.* 13, Mohan Nagar Society, M.N. College Road, VishNagar, Mehsana. *Spl.Ref.* Purāṇa Śāstra.

Saxena, Madhuri. M.A. *b.*16.10.1943. Principal, Lalbahadur Shastri Smarak J.A.V.M. Senior Secondary School, R.K. Puram, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* A-8/2, Baldev Park (E), Krishna Nagar, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Saxena, Parvesh. M.A., Ph.D. *b.* 24.12.1946. Delhi. Prof., Jakir Hussian Evening PG College, Delhi. *Bks.* 02. Anubhūtiḥ, Rāṣtradevatā. *Ps.* 50. *Add.* AN7B, Shallimar Bagh, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sekhar, Ramadevi. B.A., M.A., B.Ed., M.Phil. *b.*10.08.1976, Chennai. R.A. *Ps.* 02. *Add.*16, LIC Colony, Dr. Radhakrishnan Nagar, Thiruvanmiyur, Chennai-41, TN.

Sekharan, K. M.A., Ph.D. *b.*01.11.1953. Kollam, Perinad. Asct. Prof., Calicut University, Kerala. *Bks.* 01. Nārāyaṇa Paṇdita and his works. *Ps.* 10. *Add.* Sasimangalam, Chonamchira, Perinad, Kollam-01, Kerala.

Semaval, Ram Gopal. Sāhityacharya, M.A., Sāhityaratna. *b.*30.09.1957, Jakhani, Melgarh. Vice-Principal. *Gp.* Prabhulal Mishra, Kamataprasad Sharma. *Ps.* 03. *Add.* Shri Nirmal

Sanskrit Mahavidyalaya, Kankhal, Haridwar. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Semval, J. P. M.A., Ph.D. *b.*01.01.1944. Henu, Rudra Prayag. Asct.Prof. *Bks.* 10. Vasanta-Vilāsa, Megha- Vilāsa, Indu-Vilāsa, Himagirī-Vilāsa, Bhānūdaya-Vilāsa. *Add.* V.V.B.I.S. - I.S. P.U., Hoshiarpur (P.B.).

Semval, Markandey Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A., B.Ed. *b.*05.12.1951, Jakhani, Garhwal. Asst. Prof. *Gp.* Kamataprasad Palival. *Ps.* 02. *Add.* Udasin Sanskrit Mahavidyalaya, Kankhal, P.O. Gurukul Kangri, Haridwar (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Semval, Parasuram. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*20.10.1962, Bainosi, Tihari, Garhwal. Teacher. *Gp.* Harshapati Sharma, Pt. Devanarayan Tripathi. *Ps.* 02. *Add.* Shri Nirmal Sanskrit Mahavidyalay, Kanchal, Haridwar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Semwal, Jagdish Prasad. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1944. Chamoli, U.P. Asct. Prof., Visvabandu Bharat Bharti Shodh Sanshtan, Hosiyaarpur. *Bks.* 11. Vasantavilāsa, Jayapattanaśrī, Śailaputrī Śatakam, Vedāntakārikā. *Add.* E-7 Univ. Quarter, Gautam Nagar, Jharna Road, Hosiyaarpur – 01.

Semwal, Shrikrishna. M.A., Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya Ratna, Shiksha Shastri, Kavi Ratna, Vidyavachaspati. *b.* 05.01.1944. Chamoli, U.P. Director, Delhi Skt. Academy. *Gp.* Shri Nathiram. *Bks.* 10. Piyūṣam, Bhīmaśatakam, Sarvamaṅgalāśatakam, Vāgvaibhavam, Mahāprayāṇam. *Add.* B-88 Shalimar Garden Phase II, Saibabad, U.P. *Spl.Ref.* Awarded Kaviratna Upadhi. Skt. Scholar, Poet, as an officer and member. He contributed his service Rashtriya Sanskrit Sansthan, Delhi Shiksha Nideshayalaya etc. Editor of Skt. Manjari, President Awardee.

Sen, Ganesh Nath. *b.*1877. Varanasi. *Bks.* 05. Sidhāntanidānaṃ, Pratyakṣaśārīraṃ, Śarīra-vicched, Saṃgyāpañcakavimarśa, Śārīravini-śacayaḥ. *Expired in* 1945.

Sen, Yogindra Nath. *b.*1871. *Gp.* Kaviraj Gangadhar Raj. *Bks.* 01. Carakopaskāra Vyākyā. *Expired in* 1918. *Spl.Ref.* Ayurveda.

Senai, Ranjala Vaikuntha. Ayurvedacharya, Ayurvedashiromani, Sucivedhavisharada, Rashtrabhashavisharada, Hindipracharaka. *b.*15.05.1919. *Add.* Mahalakshmi Bhaisha-jashram, Karkala–574104 (KT.). *Spl.Ref.* āyurveda.

Senapati, Sukanta Kumar. Acharya in AdvaitaVedānta & SarvaDarśana, M.A., Ph.D.. *b.* 20.07.1965. Asct. Prof..*Gp.* M.M. N.S.R.Tatacharya, Vempati Kutunba Shastri, M.L.Narasimha Murty, K.E.Govindan. *Sp.* K.Hariprasad, B.S.Mallikarjuna. Nandighosh Mahapatra, Dayananda Panigrahi. *Bks.* 07. Advaitasiddhiprakaśaḥ, Śāṅkarabhāṣye Lokanyāyāḥ, Darśanāmśavaḥ, Sāṅkhyakārikā-Sacitravyākhyā, Dārśanikanibandhāḥ, *Ps.* 10. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan, Shri Sadashiva Campus, Puri, Orissa – 7520001. *Ph.* (0674) 3254980, 09937427094. e.mail-sukantsnpt@gmail.com

Sengupta, Lalita. M.A., Ph.D.. *b.* 19.10.1954, Kolkata, (W.B.). Prof., *Bks.* 04. *Ps.*12. *Add.* Manali Apartment, 3rd Floor, 3 A Vivekananda Road, Kolkata- 700075(W.B.). *Ph.* 24144852, 9903552238.

Sensharma, Debabrata. M.A., Ph.D. *b.* 19.04.1929, Burdwan, WB. Prof. of Indology Ramkrishna Mission Institute of Culture, Kolkatta. *Bks.* 09. *Ps.* 40. *Spl.Ref.* Indology, Kashmir Shaiv Darśana, Germany, France, Polland, Rumania, USSR, UK etc., President Awardee.

Sethi, Prakash. M.A., B.Ed. *b.*03.10.1952. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School No.1, Roop Nagar, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 17 A, Kamla Nagar, New Delhi -110007. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sethi, Priya. M.A. *b.*10.10.1956. Teacher, Govt. Boys Senior Secondary School No. 2, Roop Nagar, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 24-A, Kamla Nagar, Delhi–110007. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Seturaman, V. L. B.Sc., M.A., Ph.D.

*b.*09.10.1939, Madras, T.N. ***Bks.*** Bhaktiyogaḥ, Śyāmāya Tubhyam Namaḥ (Play), Bahujanahitaya Bahujanasukhāya (Play). ***Add.*** 15, Thanjavur Road, Thyagaraya Nagar, Madras, T.N. ***Spl.Ref.*** Mathematics & Sāhitya Śāstra.

Shadangi, Krishankeshav. ***b.*** Katak, Orissa. ***Bks.*** 01. Jīmūtadūtam. ***Add.*** H-62 Reserve Bank Colony, IRC Village, Nayapalli Bhuwaneswar. Orissa – 15.

Shah, Ela Ben Indravadan. Ph.D. ***b.***27.08.1964. Prof., Arts & Commerce College, Mandvi, Surat. ***Ps.*** 02. ***Add.*** G-2, Shaival Appartment, Near Punamwadi Mandvi, Surat. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Shah, Govind Lal Shankar Lal. Ph.D. ***b.***03.09.1934. Asct. Prof., Govt. Arts College, Gandhi Nagar. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 7, Mukund Apartment, Manorama Complex, 132 Ring Road, Ambawadi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Shah, Jagriti Ben K. Ph.D. ***b.***16.09.1967. Prof., Arts & Commerce College, Odha, Aanand. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 2, Shaifali Apartment, Near Morarji Ground, Kalpana Talkies, Aanand. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Shah, Jitendra Babulal. Ph.D. ***b.***21.12.1960. HOD. L. D. Institute Bhartiya Sanskriti Vidhya Mandir, Navrangpura, Ahemdabad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 20, SuDarśana Society Face 2, Near Narayanpura Busstand Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Jaina Darśana.

Shah, Jitendra. M.A., Ph.D. ***b.***21.12.1960, Khari Distt. Bhavnagar, Gujrat. Director, L.D. Institute of Endology, Near Gujrat UniV. Ahemdabad. ***Gp.*** Bechardas Doshi, Swami Yogindranand ji, Kenarnath Ojha. ***Bks.*** 05. Dvadaśāranaya-Cakra kā Dārśanika Adayayana, Nayāvicāra, Kumarapālacaritra Saṇgraḥ, Vijaya Candra Kevalī Carita, Rājanagara kā Jinālayo. ***Add.*** 20, SuDarśana Society Narayanpura Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Jaina Darśana, Prākṛta Sāhitya.

Shah, Mridula Ratilal. M.A., B.Ed. ***b.***17.06.1953, Valsad, GJ. Teacher. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri J.S. Girls School, Valsad (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Shah, Nagin Dash. M.A., Ph.D. ***b.***13.01.1931, Sayla, GJ. Prof. & HOD, L.D. Inst., Ahemdabad. ***Bks.*** 04. A study of Jayant a Bhatts Nyāyamañjarī, Essays in Indian Philosophy, Bhārtīya Tatvajñana, Jaina Darśana meṃ sraḍhha. ***Spl.Ref.*** M.L. Prize, Research Prize.

Shah, Neela Ben Suresh Chandra. Ph.D. ***b.***13.12.1944. Prof., M. D. Shah Commerce & B. D. Patel Arts College, Mahudha, Kheda. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Piplapole Ahemdabad Bazar, Near Desaipole Nadiyad, Kheda, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Shah, Neelanjana Ben Subodh Bhai. Ph.D. ***b.***05.06.1934. Prof., Gujrat College, Alisbridge, Ahemdabad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 18, Swervihar Society Vikram Sarabhai Road, Ahemdabad.. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Shah, Ramesh Chandra Govinda Lal. M.A., Ph.D. ***b.***29.11.1937, Dabhai, Vadodara, GJ. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. A.N. Jani, S.G. Kantaval. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Baroda Sanskrit College, M.S. University, Vadodara (GJ). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Shah, Ramesh Chandra Raman Lal. Ph.D. ***b.***20.07.1937. Prof., Kapadwanj Arts & Commerce College, Kapadwanj, Kheda. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 1, Shilpa Society Ratnakar Mata Road, kapadwang, Kheda, (GJ). ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra Śāstra.

Shah, Ramnik Lal Chandu Lal. Ph.D. ***b.*** 06.09.1940. Prof., S.B. Gardi Arts & P.K. Patel Commerce College Navsari. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 6-442/1 Pitrachaya, Navsari, (GJ). ***Spl.Ref.*** Jain Philosopy.

Shah, Ranjana Ben Y. Ph.D. ***b.***04.02.1951. Prof., Gujrat Vinyan & Science College, Alic Bridge, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** B-202, Swati Appartment, Near Bank of Baroda, Ambawadi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Shah, Urmi Sameer. M.A., Ph.D., B.Lib.Sc. ***b.***02.12.1952. Ahmedabad. Asst. Prof. ***Bks.*** 03. Bhāṣā Bhāgavata, Gītā & Bhāgavata. ***Ps.*** 15. ***Add.*** I, Govind Bhavan, 7, Shanti-niketan

Society, Elic Bridge, Ahmedabad – 380006. *Spl.Ref.* Vedānta, Bhasha Śāstra.

Shaikh, Rafik Bhai Mohammad Bhai. Ph.D. *b.*30.07.1968. Prof., Shri K.R. Desai Arts & Commerce College, Jhalod, Dahod. *Ps.* 03. *Add.* Shikari Phaniya, Santrampur, Panch-mahal(GJ). *Spl.Ref.* Vedānta.

Shaildiya, Balu Bhai Mohan Bhai. Ph.D. *b.*15.03.1952. Prof., Shri G. Bilakhiya College of Arts & Commerce, Banda, Ambreli. *Ps.* 03. *Add.* Banda, Savarkundla, Ambreli. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra & Purāṇaa.

Shakta, Kirti Vallabh. Ph.D. *b.* 02.06.1954. Champavat. Teacher. *Bks.* 01. Rāṣtram Bhavati Sarvasvam. *Ps.* 02. *Add.* Sharada Jyotir Bhavan, Mandalaka, Champavat. (U.K.).

Shalihas, Ramesh Chandra. Sāhityacharya. *b.*25.07.1925. Sirsa. *Bks.* 05. Śyāmgitañjalī, Syāmamahimnaḥstavaḥ, Satyasaptaka, Marud-dūtam, Mālavīyaśatakam.

Shamasundara, A. M.A. *b.*15.06.1977. Bukkapattan,Tumkur. Asst. Prof. *Ps.* 03. *Add.* U. Palachandra of Sanskrit College, Menase, Sringeri, KT.

Shanbhag, Dayanand Narasingh. M.A., Ph.D. *b.* 08.11.1933. Kumta, UK. Rtd. Prof. & HOD, Karnataka Univ. *Bks.* 06. *Spl.Ref.* Founder of Skt. Shodh Sansthan to promote Higher Studies in Skt., Presently he is associated with various academic institutions, President Awardee.

Shandilya, H. A. M.A. *b.*14.02.1927, Shikarpur, Sindha Pakistan. Secretory, Sindhu Education Society, Mumbai. *Bks.* 03. Yātrā Prasaṃgīyam, Kāmadūtam, Ṛtuvarṇanam. *Spl.Ref.* Founder of 3 Jonior College and 6 High School in Ulhas Nagar.

Shandilya, Ramchandra Ambikadutt. B.A., B.T., MBBS. *b.* 15.02.1927. Shikarpur, Sindh. Rtd. Principal. *Bks.* 05. Yātrāprasṅgīyam, Kāmadūtam, Cacavanshamahākāvyam. *Add.* 1451/1 Section 31 A, Ullasnagar – 04. Thane. *Spl. Ref.* Karamkand, Jyotiṣa, āyurveda, Title of Jyotiṣa-Maharathi-Doctor of Tantralogi, Sindhi Samajh Ratan, Founder of Sindhi Bhasha Prachar Samiti, President of Sindhu Sanskrit Prachar Samiti.

Shankhadhara, Rama Kripalu. Acharya (Vyākaraṇa, Jyotiṣa), M.A. *b.*01.06.1937, Basara, Pilibhit, (U.P.). Asst. Prof. in Vyākaraṇa. *Gp.* Ramaraya Tripathi, Kandanatha Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Shri Shiv Sankatharanadarash Sanskrit Maha-vidyalaya, Sakaha, Hardoi (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Jyotiṣa.

Shantipriya Devi. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 04.04.1965, Raj Ranapure. Puri (Orissa). P.T. Lect. Utkal Univ.. *Bks.* 01. *Ps.* 07. *Add.* C/o Dr. Subash Chandra Dash. Skt. Dept.. Utkal Univ.. Vanivihar. Bhubaneshwar - 751004. *Ph.* (R) 583303. (O) 582315.

Shapriya, Amarshi Bhai Nathu Bhai. Ph.D. *b.*23.11.1944. Prof. Shri N.P. Arts & Commerce College, Akshay Nath Hospital Road, Kesod. *Ps.* 03. *Add.* Shivam 110, Sarvodaya Society, Garbi Chauk, Arodrum Road Kesod, Junagarh (GJ). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Sharma, Jawahar Lal. HOD, Vidya Niketan, Pilani (Rj.). *Bks.* Itihāso vartate, Niṣkrānti, Sūtradvayam, Saptapadī.

Sharma, Subrahmanya Nagraj. Ph.D. *b.* 10.07.1930, Madras, T.N. *Gp.* K. Balasubrahmanya Shastri. *Ps.* 02. *Add.* No.3, N.K. Rajapuram, Madras, T.N. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Sharma, Akhilanand. *b.* Badayun, U.P. *Bks.* 01. Dayānandadigvijayam.

Sharma, Alpana. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.*18.12.1970. Kota (RJ). Asst. Prof., Banasthali. *Bks.* 01. A Comprative Study of Politics in Vedic or Pauranic Litreture. *Add.* C/o Mr. Ramakant Dwivedi, H.No. 139, Deendayal Co. Niwai [Tonk], RJ.

Sharma, Ambika Datta. M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1960. Jharkhand. Prof., H.S. Gour Univ., Sagar (M.P.) *Bks.* 07. Samekita Dārśanika Vimarśa (05), Samekita Advaita Vimarśa (05), Bhāratīya Darśana ke 50 Varṣa (06), Bauddha

Pramaṇa Darśana, Mīmāṃsāpadārtha-vijñānam. *Ps.* 50. *Add.*C-37, Gour Nagar, University Campus, Sagar– 470003. (M.P.). *Spl.Ref.* Indian Philosophy.

Sharma, Aruna. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.*05.01.1959. Saharanpur (U.P.). Asct. Prof., Kurukshetra Univ., HR. ***Bks.*** 03. Śiṃhabhūpālakrit Rasārṇavasudhākara kā Samīkṣātmaka Adhyayan, Śāradāmaṇilīlā-caritam, Unmattarāghavam. ***Ps.*** 11. ***Add.*** Dept. of Sanskrit, Pali & Prakrit, Kurukshetra University (HR)

Sharma, Bajrang Lal. Acharya, M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 01.09.1962, Jaipur (Rajasthan). Asst. Prof., Govt. Maharaja Acharya Sanskrit College, Jaipur (Raj.). ***Gp.*** Dr. Kanhaiyalal Sharma, Prof. Radheshyam Kalavariya, Pt. Chandiprasadacharya, Prof. Acharya Vishvanatha Mishra. ***Bks.*** 02. Siddhānta Kaumudī, Kāraka Prakaraṇam. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Post No. 389, Rajani Vihar, Post Heerapura, Ajmer Road, Jaipur, Rajasthan – 302024. ***Ph.*** (0141) 2358689, 2706608, 09414323668. ***Spl. Ref.*** Maharshi Khadganath Award in Udaipur, (Raj.).

Sharma, Bal krishna. M.A., Ph.D. ***b.*** 24.02.1956, Prof. & Director, Sindhiya Oriental Research Institute, Vikram Univ. Ujjain, M.P. ***Gp.*** Pt. Bacchoolal Awasthi, Prof. Shriniwas Rath. ***Sp.*** Dr. Pawan Vyas, Dr. Swaminath Pandey. ***Bks.*** 03. Kāvya Prakaśa kā Darśanika Dharātala, Śivamahimnaḥ Stotaram Harsiddhi Tīkā (ed.). Paṇiniya śikṣā trinayanabhaṣyasya Cintāmaṇi Hindī Bhaṣāntaram. ***Ps.*** 20. ***Add.*** F-2/36, Vikram Univ. Campus, Ujjain, M.P. ***Spl.Ref.*** Bhoj Puruskar, Secretary, Kalidas Samiti.

Sharma, Bal Krishna. M.A., Ph.D. ***b.***01.04.1962. U.P. Asst. Prof. ***Bks.*** 01. Bhāratābhijñāna-Śatakam. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Lashkar, Gwalior (M.P.).

Sharma, Bamshi Dhar. Acharya, M.A., M.Phil. ***b.*** 13.10.1955, Kespur, Raipur, C.G. Principal. ***Gp.*** Vishwanath Pandey, Ramvadan Shukla, Ramkishor Shukla, Madhukar Pathak. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Ramchandra Sanskrit Pathshala, Nayapara, Raipur C.G. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Batuk Nath. M.A. ***b.***1895. Kashi. Asst. Prof., Sanskrit College & Arts College, Kashi. ***Gp.*** M.M. Pt. Ramavtar Sharma. ***Bks.*** 05. Pālī Jatakāvalī, Bhāmaha Kāvyālankāra (Ed.), Vararucikṛt Prākṛta-Prakāśa, Rasika Govinda aur unkī kavitā, Bharata-nātyaśāstra. ***Expired in*** 1944. ***Spl.Ref.*** Poet of Brij & Urdu Bhasha.

Sharma, Brahmadev Narayan. Acharya in Sāhitya. ***b*** 08.11.1944, Darua, Bihar. Prof., Diptt. of Pali Avam Thervad, S.S.V.V., Varanasi. ***Bks.*** 05. Vibhajyavāda, Saddhammopāyanam, Sīmā Vivāda, Sārṇyadīpanī Tīkā, Vibhaṅgamūla Tīkā. ***Ps.*** 30. ***Add.*** Awarded by U.P. Skt. Sansthan.

Sharma, Brahmanand. M.A., Ph.D. ***b.***1923. Ganganagar (RJ). Asst. Prof., Maharani Shrijaya College, Bharatpur, Director, RJ Prachya Vidya Pratishthan, Jaipur. ***Bks.*** 07. Vāstavālaṅkāra Drśanam, Abhinavarasa-mīmāṃsā, Satyānubhūtirātmā-Kāvyasya Tattvaṣa-akam, Gaṅgodayaḥ. ***Spl.Ref.*** Vishishtavidwat Samman by Rajsthan Sanskrit Academy. Poet of Sanskrit, Hindi and English.

Sharma, Brij Mohan. M.A.. ***b.*** 20.06.1956, Panchkula (Hry.), Manuscript Copyist, Institute of Sanskrit & Indological Studies (K.U.K.). ***Gp.*** Dr. Amar Singh. ***Add.*** D – 128, University Campus, (K.U.K.) – 136119. ***Ph.*** (01744) 239994.

Sharma, Brija Lal. Visarada, Karmakrishna Jyotiṣa. ***b.*** 02.04.1928, Punch, J&K. ***Gp.*** Pt. Ramakrishna Shastri, Pt. Rupalala Shastri. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Ward No. 7, Punch (J&K). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Sharma, Captain Rambhagat. Shastri. ***b.*** 15.06.1932. Mahendra Garh, Haryana. Rtd. Captain, Indian Army. ***Bks.*** 05. Bābārāma-dāsacaritam, Vāgdevī-mahimā, Mahābhārata-bhāratī. ***Add.*** Khudana, Mahendragarh, Haryana. ***Spl.Ref.*** Honour from Akhil Haryana Skt. Sabha, Haryana Skt. Academy. Haryana Sāhitya Academy etc.

Sharma, Chandrashekhar Mulampalli. Sāhityavidyapraveen, M.A. (Skt., Telugu),

Ph.D. *b.* Sangareddy, A.P. *Bks.* 05. Ānandanandinī, Bhārgavī, Rasadhiḥ. *Add.* 165. SRT Saidabad Colony, Hyderabad – 59. *Spl.Ref.* Uttam Sanskrit Pt. Samman.

Sharma, Chhatradhar. Acharya. *b.*1914. Toda, Jaipur (RJ). Teacher, Nagriya Secondary School, Sikar. *Bks.* 36. Rājabhūtiḥ Kāvyam, Ambāsāgara Varṇanam, Kumbharāyacarita-mahākāvyam, Rāyasiṃha-digvijaya-Mahākāvyam, Vārāhīstavanam. ***Expired in*** 1975. *Spl.Ref.* Awarded by Govt. of RJ.

Sharma, Chiranjeevi. Acharya, Ph.D. *b.*27.04.1959. Palpa, Lumbini, Anchal (Nepal). Acting Principal. *Bks.* 01. Yajurvedīyoccāraṇavidhivimarśaḥ. *Add.* Ved Bhavan, Shringeri math, Alopibagh, Allahabad (U.P.).

Sharma, D. D. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.*23.10.1924. Bhimtal. *Bks.* 55. Anaṅgaharṣakṛta Tāpasavatsarāja (ed.), Kālidāsa kī kalā aur Saṃskṛti, Saṃskṛta kā aitihāsika evam Smṛacanātmaka paricaya, Meghdūta kā śailīvaijñānika Viśleṣaṇa, Saṃskṛta Bhāṣā kā Itihāsa. *Ps.* 20. *Add.* Anand Dham, Nawabi Road, Haldwani–263141 Nainital, Uttarakhand. *Spl.Ref.* President Certificate of Honour - 2001, Sāhitya Shiromani Samman by Punjab Govt. -2004, Akhil Bharatiya Vidwat Saman, Delhi, Yugabda Vidwad Samman by S.S.V.V., Varanasi.

Sharma, Deepak Kumar. M.A., Ph.D. *b.*01.02.1961, Sondheli, Nalbari, Assam. Prof. & Director, Guwahati Univ. *Bks.* 05. Sesakṛṣṇās Pārijātaharanacampu A Study, Vṛttamālā of Kavikarṇapūra, Durgāsaptaśatī, Satī Jayanti of Bhavadeva Bhāgavati, Suvṛttatilaka of Kṣemendra.

Sharma, Devendra. Acharya in Veda, Ph.D. *b.*22.07.1981. Guest Asst. Prof., Maharshi Panini Skt. Univ. Ujjain. *Ps.* 05. *Add.* Rajalai, Jhalarapatan, Jhalawad, RJ. *Spl.Ref.* Veda Pandit Puruskar, U.P. Skt. Sansthan.

Sharma, Devi Datt. Ph.D, Skt. and Linguistics. *b.* 24.10.1924. Nanital, UK. Rtd. Prof. *Bks.* 30. *Ps.* 150. *Spl.Ref.* Urdu, Pharsi, French, German, Linguistics Skt., Jawaharlal Nehru Fellowship, Emeritus Fellowship, 20th Century Achievements award Cambridge London, International Men of the Year, President Awardee.

Sharma, Dhrubajit. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 24.04.1981. Asst.Prof., Tezpur, Sonitpur, Assam. *Bks.* 03. Moral and ethical values in the Rāmāyaṇa, Mahābhārata and its relegence the 21st Century, Some Observations on the Kālidāsa Purāna. *Add.* Mangalolai, No. 1, Darrang, Assam.

Sharma, Dhupal Harekrishna. Acharya in Sāhitya. *b.*01.01.1938. Sugo. *Ps.* 05. *Add.* Arya Nivas, S/60, Municipality Colony, Unit–III, Bhubaneswar, Orissa.

Sharma, Dinanath S. Ph.D. *b.*20.06.1960. Prof. Bhasha Sāhitya Bhawan, GJ University, Navrang Pura, Ahemdabad. *Ps.* 03. *Add.* 4 Lecturer House, GJ University Campus, Navrang Pura, Ahemdabad. GJ. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Sharma, Dipti. M.A., Ph.D. *b.*01.10.1956, Gorhat, Gorokhiadol, Korokatali, Assam. Asct. Prof. J.B. College, Gorhat, Assam. *Gp.* Dr. Maitheyee Borah. *Ps.* 03. *Add.*R.R.L. Gorhat, Dhapkata Borsatra, Assam.

Sharma, Dwijen. M.A., L.L.B. *b.*01.03.1967. Morigaon, Assam. HOD. *Ps.* 02. *Add.* Raha College Raha, Nagaon, Assam.

Sharma, Dwijendra Lal. M.A., Kāvyatīrtha. *b.*09.03.1917. Silhat, Bangladesh. Principal, Bhinmal College, Jaipur. *Bks.* 13. Mahīmaham, Ṛtukautukam Advaitāmṛta-sāraḥ, Alkāmilanam, Dvaitakāvyam. *Add.* D-117 Krishan Marg, Bapu Nagar, Jaipur 15. *Spl.Ref.* Awarded by 'Magh' puruskar by Rajasthan Sanskrit academy. Acharya Nawal Kishore kankar Veda vedang puruskar on & Navodita pratibha puruskar.

Sharma, Gajbhan Mukut. Ph.D. *b.*08.10.1967. Mathura (U.P.). *Bks.* 01. Bhaktitattvacintanerūpagosvāmī Karpatrī Tulnātmakamadhyayanam. *Add.* 34, New Mahavir Nagar, Outer Ring Road, Vikaspuri, New Delhi–110018.

Sharma, Ganesh Dutt. M.A., Ph.D., Shastri, Sāhityacharya. *b.* 08.01.1942. Visiting Prof. Hindu University of America, Orlando (2002), Principal Lajpat Rai Post Graduate College, Sahibabad (Ghaziabad), Director R.C.C.V.P.G. College, Ghaziabad, Honorary Directore Institute of Indology L.R.C. Sahibabad. ***Bks.10.*** Ṛgveda me Dārśanika Tattva, Nibandha Pārijātam, Vivekānandacaritam, Vaidika cintana Kī Dhāraṇāyen, Vaidika Ṛiṣiyon Kā Dārśanika cintana, ***Add.*** 10/98, Sector – III, Rajendra Nagar, Sahibabad, Ghaziabad, Pin–201005, ***Ph.*** (0120) 2631153, 2634946, 4380560. ***Spl. Ref.*** Attended many National & International Conferences, Contributed and strengthened the Literature and Research, Worked in Various Academic Bodies, Organized many Conferences and Seminars, He Achieved and honoured many Awards in his life.He awarded 11times by various institutions; few given- Sanskrit Academic award 1980,Lucknow. Sāhitya Manishi Puraskar 2003 Ghaziabad Lok Parishad, Sanskrit Seva Samman 2005, International Vidyaratnakar Sarasvt Samman 2007 Gurukul Kangri. France,Gremany, America, Holland, New Jersy, Boston, Nepal, Maryland. President Awardee.

Sharma, Ganesh Ram. Vidyabhushan, Jyotiṣopadhyaya, Sāhityaratna. ***b.*** 1908. Dungarpur. Lecturer, Shri Rajendra Inter College, Jhalawar. ***Bks.*** 10. Saṃskṛta Kathā Kuñjam, Jīvato'pi Pretabhojanam, Mūḍha-cikitsā, Māmakīno Jīvana Saṅgharṣaḥ, Śrī Mohanābhyudayam.

Sharma, Ganeshdutt. Vidyabhaskar, Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** Bulandsheher, U.P. Rtd. Principal, Lajpat Rai PG College, Sahibabad, U.P. ***Bks.*** 02. Darśanānandacaritāmṛtam, Vivekānandacaritāmṛtam. ***Ps.*** 80. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. Poet France, Germnay, Holland, America, Nepal.

Sharma, Ghanshyama. Shastri, B.Ed., M.A., Acharya, Ph.D.. ***b.*** 17.07.1956, Jaipur. Asst. Prof., Rajakiya Maharaja Acharya Sanskrit College, Gandhi Nagar, Jaipur (Raj.). ***Gp.*** Shri Chandradhar Ji Bhardwaja, Shri Anand Ji Purohit. ***Add.*** 296, Jaisinghpura, Khor – Jaipur, Ward No. 76. ***Ph.*** (0141) 2639158, 2706604, 9829892983. ***Spl.Ref.*** Veda.

Sharma, Giridhar Chaturvedi. b. Shastri (Veda, Purāṇa, Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana) 1881. Jaipur, HOD, B.H.U., Varanasi. ***Bks.*** 35. Gosvāmī Tulasīdāsa-śatakam, Kāvyakāraṇa-Śatakam, Kāvyaprayojana Śatakam, Vidyopārjan-śatakam, Sphūrti Saptaśatī. ***Ps.*** 100. ***Expired on*** 10-06-1966. ***Spl.Ref.*** 'Sanskrit Sāhitya Sammelan' is established by him. Received M.M. Award by British Govt. & 'Vidyavachaspati' Samman.

Sharma, Giridhar Navaratna. ***b.*** 1881. Harlapatan (RJ). ***Bks.*** 05. Amarasūkti- Sudhā, Jāpāna-Vijaya, Navaratna-Nīti, Rājasthāna-Vandana, Śram-Catūrviṃśatī, ***Expired on*** 30.06.1961. ***Spl.Ref.*** Expert of Languages – Hindi, English, Marathi, Sanskrit & Persian.

Sharma, Girija Prasad. ***b.*** 1932. ***Gp.*** Pt. Govindram Dattacharya. Shri Gangadhar Dwivedi. Pt. Jagdish Sharma, Shri Krishnachandra Shastri. ***Bks.*** 03. Jyotstavaḥ, Raṣtrastavaḥ, Bālagītāni.

Sharma, Govind Ram. M.A., B.Ed. ***b.*** 21.05.1956. Jammu. Master (Edu. Dept.). ***Ps.*** 06. ***Add.*** House No. – 33, Sector No. – 3, Pandoka, Paloura, Jammu.

Sharma, Gulab Chandra 'Patlendu'. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa). ***b.*** 1921. Shohpura. Asst. Prof., Maharaja Sanskrit College, Jaipur. ***Bks.*** 01. Karṇacaritāmṛtam.

Sharma, Gurumayum Krishna Chandra. Acharya (Navya, Vyākarṇam). ***b.*** 01.03.1946. Asst. Prof., Manipur Sanskrit Mahavidhyalaya, Imphal. ***Bks.*** Mukta Parenga, Phala-Saṃhitā, Yajurvedīya Saṃskṛta Karma Paddhati, Svapnavāsavadattam(ed.) ***Ps.*** 02. ***Add.*** Kangjabi Lampak Machin, Imphal.

Sharma, Hari Datt. M.A. ***b.*** 01.12.1918, Alampur, Ghaziabad, U.P. Rtd. Principal. ***Gp.*** Pt. Chhotelal Pandey. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri

Bilveshwar Sanskrit College, Ranjitpuri, Sadar, Meerut U.P. *Spl.Ref.* Navya Vyākaraṇa Śāstra.

Sharma, Hari Datt. Vyākaraṇa Shastri, M.A. *b.*01.01.1947, Jindaidi, Meerut, U.P. Teacher. *Gp.* Kumvar Prasad, Haridatt Sharma. *Ps.* 02. *Add.* Shri Bilveshwar Sanskrit College, Sadar Bazar, Meerut U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Sharma, Hari Dutt. M.A., Acharya, D.Phil., Dip. in German & Russian Language. *b.*08.01.1948. Hathras, U.P. Prof., Allahabad University. *Bks.* 11. Saṃskṛta Kāvyaśāstrīya Bhāvon kā Manovaijñānika Adhyayana, Nibandha-Nikuñjam, Gītakandalikā, Tripathagā, Utkalikā, Lasallatikā. *Ps.* 40. *Add.* T-5, University Professors Colony, M.N.N.I.T. Campus, Allahabad – 211004. *Spl.Ref.* Received Delhi Sāhitya Academy Award. Visiting Prof. of Shilpacorn Univ. Bangkok, Thailand.

Sharma, Hari Kishan. Acharya. *b.*02.02.1955, Brahmanavas, Jind, HR. Head & Teacher, Deptt. of Darśana. *Bks.* Vedānta-sāṅkhya-yogayoḥ Samīkṣātmakam Adhyayanam. *Add.* Shri Mahaveer Vishva Vidhyapeeth, Paschim Vihar, New Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Darśana & Sāhitya.

Sharma, Hari Krishna. Shastri, Acharya, Ph.D. *b.* 12.07.1937, Batra, Patiala, Punjab. Asct.Prof, Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, New Delhi. *Ps.* 05. *Add.* 261-D Pochet, Phase I, Mayur Vihar, Delhi.110091. *Spl.Ref.* Dharma Śāstra.

Sharma, Hari Ratan. Acharya in Sāhitya. *b.* 19.06.1932, Jasala, Muzaffarnagar, U.P. Rtd. Principal. *Gp.* Harinarayan Shastri, Purushottam Jha. *Ps.* 02. *Add.* Raj Colony, Kalsia Marg, Saharangpur U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Hari Shankar. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*06.07.1951. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* RZE-45, West, Sagarpur, New Delhi. 110046. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Hari Vansh. M.A. *b.*05.03.1939. Teacher, Govt. Higher Secondary Girl's School, Najafgarh, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* C-6A/ 18-B, Janakpuri, New Delhi.110058. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Harihar. Mīmāṃsāśiromaṇi. *b.* 25.05.1925, Shengalipuram, T.N. *Gp.* Vaidhnath Shastri. *Ps.* 02. *Add.* 64, Sarangapani Street, Kumbakonam, TN. *Spl.Ref.* Mīmāṃsā.

Sharma, Harihar. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.*28.01.1952, Kokal, Nepal. Asst. Prof. *Gp.* Harishankar Ojha, Dr. Shivkant Mishra. *Ps.* 02. *Add.* Shri Ramshankar Sangaved Vidhyapeeth, Kodra, Chandahar, Basti, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Harshpati Kakanvan. Acharya in Sāhitya, M.A., Sāhityaratna. *b.*04.05.1947. Principal. *Ps.* 03. *Add.* Jai Bharat Sadhu College, Haridwar, Uttrakhand. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Sharma, Hayagriv. M.A. *b.*08.05.1955. Asst. Prof. *Add.* Shri Venketeshwar University, Tirupati A.P. *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda, Vyākaraṇa.

Sharma, Hemanand. Vyākaraṇa charya, M.A. Prof. *Ps.* 03. *Add.* Shri Saraswati Sanskrit College, Khanna, Ludhiana Punjab. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Sharma, Hemraj. Acharya. *b.*1950, Ujwalnagar, Nepal. Prof. *Gp.* SuDarśanaacharya Tirpathi. *Ps.* 03. *Add.* C-6, University Area, University of RJ, Jaipur. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Sharma, Hiran. M.A., Ph.D. *b.*01.12.1957, Guwahati. Asct. Prof. *Ps.* 10. *Add.* 56, University Campus, Guwahati University, Assam – 781014.

Sharma, Hridaya Ranjan. B.A., M.A., Ph.D.. *b.* 26.07.1945, Sagar (M.P.). Prof.& Ex HOD Dept.of Veda,SVDV,BHU. *Ps.*65. *Add.* B 24/ 14, AIK, Kashmirigunj, Varanasi. *Ph.* 9415303513.

Sharma, Ishwar Das. Acharya, B.Ed., M.A. *b.*08.09.1956, Ajitgarh, Shikar (RJ). Asst. Prof. Rajkiya Shri Dhuleshvar Acharya Sanskrit Mahavidyalaya, Manoharpuram, Jaipur. *Ps.* 05. *Add.* 6-A, Aditya Nagar, Moriza Road, Choumu, (RJ).

Sharma, Jagadish. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.*01.05.1975. Tihu, Nalbari Assam. Asst. Prof. Dept. of Skt. *Ps.* 02. *Add.*Guwahaty Univ. Assam.

Sharma, Jagdish Chandracharya. M.A., L.L.B. *b.*12.07.1911. Valvad, Saurashtra (Gj.) Asst. Prof. ***Bks.*** 15. Govindagītāñjaliḥ, Makarandikā, Saṅgītalaharī, Mandākinī-mādhurī, Virahiṇī, Vāsudevacaritam. ***Ps.*** 20. ***Spl.Ref.*** Received 'Magh Puraskar - 1983', RJ Sanskrit Academy.

Sharma, Jagdish Raj. M.A., M.Ed., Ph.D. *b.*17.04.1952. Chowk, Choura (Jammu). Asst. Prof. ***Bks.*** 01. Upaniṣad Kālīna Śikṣā. ***Ps.*** 01. ***Add.*** R.Sk.S., Shri Ranbir Campus, Kot Bhalwal, Jammu.

Sharma, Jagdish. Acharya (Sāhitya, Nyāya, Vyākaraṇa) ***b.*** 1910. Principal, Vanasthali Vidyapeetha, RJ. ***Gp.*** Pt. Biharilal Sharma, M. M. Pt. Shivdutt Dadhimath, Pt. Vireshwar Shastri, ***Sp.*** Heera Lal Shastri. ***Bks.*** 04. Śivapratyabhijñā, Bihārī Smārikā, Vīreśvara Pratyabhījñā, Ānandanandanam. ***Expired on*** 09.01.1997. ***Spl.Ref.*** Rashtrapati awarded in 1983. Chief Editor of 'Bharti' Monthly Sanskrit Magzine, Jaipur.

Sharma, Jagdish. M.A., Ph.D. ***b.*** 31.08.1951. Dy. Director, Kalidas Skt. Academy, Ujjain. ***Gp.*** Pt. Devi Prasad Tripathi, Dr. Hiralal Shukla. ***Bks.*** 08. Ṣodaśī, Kālidāsa Ne Kaha tha, Kumārasambhava, Svarṇahaṃsa, Kālidāsa Sandarbha-kośa. ***Ps.*** 06. ***Expired on*** 10.08.2011. ***Spl.Ref.*** Coordinated Akhil Bhartiya Kalidas Samaroh from 30 years.

Sharma, Jaigopal. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. (Skt. Hindi) ***b.*** 15.10.1920. Rtd. Principal, Govt. Inter College, Rurki, U.P. ***Bks.*** 03. Abhimanyucaritam, Mahātmāgāndhicaritam, Bhāvavīcayaḥ. ***Add.*** 524. Ramnagar, Rurki, U.P. ***Spl.Ref.*** Sikshak Puraskar, U.P. Govt. U.P. Sanskrit Sāhitya Puraskar. U.P. Skt. Sansthan, 1997.

Sharma, Jawahar Lal. Acharya, B.Ed., Ph.D. ***b*** 27.04.1962. Chiuni. Principal, Adarsh Sanskrit College, Jangla. ***Bks.*** 01. Svaraśāstra-Jyotiḥ. ***Add.*** Chiuni, Lower Koti, Rohru, Shimla, H.P.

Sharma, Kailash Chandra. Acharya (Gaṇita & Phalita Jyotiṣa), Ph.D., M.A., B.Sc.. ***b.*** 06.08.1972, Jaipur (Raj.). Asst. Prof., J.R. Raj. Sanskrit University, Jaipur. ***Gp.*** Prof. Rampal Sharma, Prof. Vijay Kumar Sharma. ***Bks.*** 07. Utkīrṇalekhasaṅgraha, Golaparibhāṣā, Pañcāṅgavijñānam, Vaijayantīpañcāṅga-gaṇitam, Cārvākdarśanam. ***Ps.*** 09. ***Add.*** C – 28, Devnagar, Tonk Road, Jaipur – 18 (Raj.). ***Pin.*** 302018. ***Ph.*** (0141) 2707034, 9829 204498. ***Spl. Ref.*** Rajasthan Gaurava, Jagannath Sharma Samman.

Sharma, Kailash Narayan. Acharya in Sāhitya, M.A., Shiksha Shastri, Ph.D. ***b.***22.08.1953. ***Gp.*** Shivdutt Sharma, Rewa Prasad Dwivedi, Babulal Mishra. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 11, Magar Mukha, Ujjain M.P. ***Spl.Ref.*** Karma Kānda.

Sharma, Kalyan Datt. Acharya. (Jyotiṣa). ***b.*** 09.11.1920. Jaipur. Lecturer Maharaja Skt. College, Jaipur. ***Gp.*** Pt. Kedarnath Sharma. ***Bks.*** 06. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa, Śāstra Chudamani L.B.S. Rashtriya Skt. Vidyapetha, New Delhi, Visiting Prof. S.S.V.V., President Awardee.

Sharma, Kamal Nayan. Acharya (Mīmāṃsā, Dharmasastra) ***b.***15.09.1946, Patna, Bihar. Reader. ***GP.*** Kamesvara Simha, Dr. Gajanana Shastri Musalagamvakara; Dr. Narayana Misra. ***Ps.*** 10. ***Add.*** R.Sk.S., Jaipur Campus,Triveni Nagar, Jaipur. (RJ). ***Spl.Ref.*** Mīmāṃsā.

Sharma, Kanhaiya Lal. Sāhityacharya, M.A., Vidyavaridhi. ***b.***15.10.1925, Bhamode. Principal. ***GP.*** Dharmaraja Ramanarayana Caturvedi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Prachya Vidyapeetha. Shahpura Bagh. Amer Road, Jaipur (RJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Kedar Nath 'Gautama'. Acharya ***b.***28.10.1952. Lecturer. ***GP.*** Vaidyanatha Jha, Ramanuja Ojha, Ramayatna Sukla. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Kendriya Sanskrit Vidyapitha, Belihundi (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Sharma, Kesav Prapanna. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.***03.10.1947, Panduki, Aurangabad, Bihar. Reader in Vyākaraṇa. ***Bks.***. Paribhasavrtti aur Paribhasendusekhar ka tulanatmaka adhyayana, Mandukyakarika ki Hindi vyakhya, Nagesoktiprakasa ka samiksatmaka adhyayana.

Add. R.Sk.S., Shri Ranbir Campus, Kot Bhalwal, Jammu. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Keshav Ram. Acharya in Sāhitya. *b.*10.06.1940, Sudhera, Saharanpur, U.P. Lecturer. *Gp.* Acharya Purusottama Jha, Subhanatha Misra. *Ps.* 05. *Add.* Sri Sanatan Sanskrit Mahavidyalaya, Saharanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Keshav. Shastri, Sāhitya Ratna, M.A., M.Phil. *b.* 26.01.1933. Shimla, H.P. Secretary, Ratna Kumari Sanskrit Shodh Sansthan. *Bks.* 14. Sunṛtā, Vaijayantī, Jhanjhā, Śakti-Saurabham, Saṃskṛta Kośa Vāṅmayam. *Add.* Bharati Vihar, Mashobra, Shimla–171007, H.P. *Spl.Ref.* President Awardee.

Sharma, Keshavram. Acharya in Darśana, M.A., M.Phil. *b.* November, 1940. Shimla. H.P. *Bks.* 05. Śrībhuvaneśvarīcaritam, Śataka-catuṣ-ayam, Saṃskṛitakāvyāñjaliḥ. *Ps.* 50. *Spl.Ref.* Poet.

Sharma, Khagendra Nath. M.A., Ph.D. *b.* 01.09.1958, Kaitharkuchi, Kamrup, Assam. Asct. Prof. Bajali College Pathshala. *Ps.* 05. *Add.* Muguria (Milanpur) Pathshala, Barpeta, Assam.

Sharma, Khandavali Govind. Shiromani. *b.*15.08.1936, Hyderabad, (A.P.). Asst. Prof., Junior College, Rangareddi. *Ps.* 05. *Add.* 1/12/A, Navagrahvithi, Sita Ram Bagh, Hyderabad (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Khem Chand. M.A., Ph.D. *b.* 08.02.1941. Haryana. *Bks.* 05. The System of Nuclear Growth & Life, Grown up from Sad Brahma in Ṛgveda, Nuclear Physics in Advanced form in Ṛgveda. *Add.* A.B. 203, Shalimar Bagh, Delhi–110088.

Sharma, Khem Raj. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. *b.*09.12.1954, Kairsal, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Purushottm Jha, Ramkishor Sharma. *Ps.* 05. *Add.* Shri Sanatan Sanskrit Mahavidyalaya, Saharanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Kikkeri Gundappa Subrahmanya. M.A., *b.* 20.12.1947. Kikkeri, Krishnaraja Pettai. Karyadarsi, Adhyatmaprakasa Karyalaya. *Add.* No. 68, Block–02, Tyagaraja Nagar, Bangalore–560028 (KT.). *Spl.Ref.* Veda.

Sharma, Kiran. Madhyamā in Kāvya, M.A. in Sanskrit. *b.* 01.05.1935, Guwahati (Assam). Rtd. Vice Principal & Hd. of Sanskrit Dept., B Borooah College, Gwahati – 07. *Bks.* 12. Saṃskṛta – Assamese Dictionary (Pūrṇāṅga), Śukla Yajurveda (Ed.), Sāmaveda (Ed.), Īśādi Navopaniṣat, Rāmacarita Mānasa. *Add.* Chatraker, Uzan Bazar, M.G.Road, Guwahati–781001, Assam. *Ph.* 9954278808. *Spl. Ref.* Awarded special honour for contribution to the studies on Veda by Maharshi Sandipani Rashtriya Veda Vidya Pratishthan, Ujjain – 2001, Felicitation by His Holiness Swami Jayendra Saraswati, the Sankaracharya of Kanchi Kamakoti Peetham, Literary Pension by the Govt. of Assam, 1998.

Sharma, Kirti Kant. Acharya (Navyavyā-karaṇa) & Shasvar Vedadhyayan of Madhyandinya Shakha. M.A. (Grammer). *b.*05.03.1960, Bulandshahar, (U.P.). Research Officer, Indira Gandhi National Centre for the Arts, Janpath, New Delhi. *Gp.* Pt. Shri Mahashay ji, Pt. Vidyadhar Sharma Gaud, Pt. Balakram Agnihotri. *Sp.* Trained 25 Students with Sasvara Madhyandinya Shakha veda-patha. *Bks.* 02. Vāstuvidyā, Ādityahrdayastotram. *Add.* 46, Sangam Vihar Phase–1, Najafgarh, New Delhi – 43. *Spl.Ref.* Organized Vedacharya Ramji Lal Paliwal Sangaved Vidyalaya By Vaidik Samaj (Reg.) Najafgargh, New Delhi.

Sharma, Kobrailatapam Rajanikant. Smrti, Vyākaraṇa, Shastri. *b.*30.04.1915, Shagonaband, Manipur. Rtd. Teacher. *Gp.* Yuktagauramani Vidyasundara, Brajbihari Sharma. *Ps.* 05. *Add.* Rajkiya Sanskrit Vidyalaya, Imphal (Manipur). *Spl.Ref.* Darśana.

Sharma, Koteshvar R. Sāhitya Vidhyapravin, Nyāya Vidhyapravin. *b.*17.11.1923, Prakasham, (A.P.). Rtd. Principal, S.G.V. Oriental College. *Ps.* 05. *Add.* Dakshinamurty Veerappagadda, Uppal, Ranga Reddy, (A.P.). *Spl.Ref.* Nyāya & Sāhitya.

Sharma, Krishanlal Sudan. M.A. (Skt., Hindi), Ph.D., Dipl. in Russian and German. ***b.*** 24.03.1932. Attank. Now in Pakistan. Rtd. Prof. and HOD, Gurunank Dev V.V., Amritsar. ***Bks.*** 05. Bhaktasinghcaritāmṛtam, Nīhārikā Saṃsṛtiḥ, Syandanam. ***Add.*** 67, Jawahar Park, Behat Road, Saharanpur, U.P.

Sharma, Krishna Chandra. M.A., M.Ed. ***b.*** 02.07.1935. Teacher. Govt. Boys Senior Secondary School, Shalimar Bagh, Delhi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** C-7/10 A, Model Town, Delhi.

Sharma, Krishna Datt. Acharya in Āyurveda. ***b.*** 13.08.1918, Ahar, Karnal, HR. Principal. ***Gp.*** Ramesvaradatta Sarma. ***Add.*** Sri Totaram Sanskrita Mahavidyalaya, Ahar, Karnal (HR). ***Spl.Ref.*** Āyurveda.

Sharma, Krishna Kant. M.A., Ph.D. Acharya in Vyākaraṇa, ***b.***01.03.1952, Kamla Badi, Majuli, Jorhat, Assam. Reader. ***Gp.*** Dr. Sitarama Sastri; Dr. Ramadhina Caturvedi; Pt. Niriksanapati Misra; Dr. Srinarayana Misra; K. D. Tripathi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Sharma, Krishna Murari. M.A., Ph.D. ***b.***05.11.1950. Kamyavana, RJ. Research Associate. ***Gp.*** Hajarilala Mahesavari; Dr. B.R. Sarma. ***Add.*** V.V.S. & B. B. Anushilan Sansthan, Punjab University, Sadhu Asharam, Hoshiarpur–146021 (Punjab). ***Spl.Ref.*** Veda.

Sharma, Krishna Venkateshvar. B.Sc., M.A., D.Litt., Diploma French – German. ***b.*** 22.12.1919, Chengnnur, Kerala. Professor & Principal. ***Bks.*** 01. Jyotiśaśāstre Keralaprāntasyānudānam. ***Add.*** Adyar Library, Research institute, Adyar Madras – 600020. (TN). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa Vigyan, French - German Language.

Sharma, Krishna. M.A., Ph.D. ***b.***05.10.1945. Khanewal (Pakistan). Teacher. Army Public School, Delhi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 102, Sanskrit Nagar, Rohini, Sector–14, Delhi–110085. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Krishna. M.A., B.Ed. ***b.***24.01. 1965. Teacher, Nagar Palika Primary Vidyalaya, Sarojini Nagar, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 299, Masjid Moth, South Extention Part–II, New Delhi.

Sharma, Kulamani Mishra. Acharya in Dharmaśāstra & Sāhitya, Veda Sastri. ***b.***03.11.1911. Haldia, Bhagwanpur, Puri, Orissa. Principal. ***Gp.*** Ananda Misra Sarma; Vasudeva Misra Sarma; Ramacandra Ratha. ***Bks.*** Dharmsastra Sabdakosah. ***Add.*** Sri Jagannath University, Puri (Orissa). ***Spl.Ref.*** Dharma Sastra, Sāhitya. Veda.

Sharma, Kuldeep. Acharya, Net, M.Ed., M.Phil.. ***b.*** 08.10.1983, Jaipur, Rajasthan. Asst. Prof., Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow Campus, Lucknow. ***Gp.*** Dr. Ashok Tiwari, Dr. Rajdhar Mishra, Prof. Lok Manya Mishra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** H.No. 23, Govind Nagar, Near Heerapura Power House, Ajmer Road, Jaipur, Rajasthan – 302024. ***Ph.*** (0141) 2354033, 09369821262, 09610422233. ksrsks83@gmail.com.

Sharma, Kumud Prasad. M.A., Sāhityaratna. ***b.*** 04.02.1945, Abhari, Pauri. H.O.D. Dept. of Sāhitya. ***Gp.*** Vedananda Jha; Manasaramaji. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Paramartha Niketan, Swargashram, Rishikesh, Pauri Garhwal – 249304 (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Kunj Bihari. Shastri, Acharya in Veda. ***b.***08.01.1953, Lakhi Sarai, Mungher, Bihar. Prof., Atharvaveda. ***Gp.*** Gopalachandra Mishra, Vindhyeshvari Prasad Tripathi, Yugalkishor Mishra. ***Add.*** Dept. of Ved, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Veda. & DharmaŚāstra.

Sharma, Lakshmi Narayan. Vyākaraṇa, Dvaita Vedānta Vidvan, M.A., ***b.***03.11.1944, Padubadri, South Kannad, KT. ***Gp.*** K.T.Pandurangi, Bettu Shrinivasopaddhyay, Kunji Aleveru Sitaramacharya. ***Add.*** Todabali, Padubidri, South Kannad- 574111 KT. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra. Dvaita-Vedānta & Veda.

Sharma, Lala Ram. M.A. ***b.***15.07.1933. Teacher, Govt. Secondary Girls School, Karol, Bagh, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C-1/182, Janakpuri, New Delhi-110058. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Laxmi Chandra. M.A., Ph.D. *b.*07.12.1947, Khurja, Bulandshahar, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Parmanand, Kubair Dutt, Brahmanand Shukla. *Ps.* 03. *Add.* 1262-A, Sangtarashan Muhalla, Paharganj, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya, Sāṅkya & Yoga.

Sharma, Laxmi Kant. āyurvedaśiromaṇi, Vaidyavisharad. *b.*23.06.1918, Thanjavur, T.N. *Gp.* Ramchandracharya, Narayan Shastri. *Add.* D-76, III Singara Colony, Kumbakonam-612001 T.N. *Spl.Ref.* āyurveda.

Sharma, Laxmi Kant. M.A., Ph.D. *b.*12.06.1940, Raipur, (C.G.) Prof. *Ps.* 05. *Add.* Shri Durga mahavidhalaya, Raipur, (C.G.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Laxmi Narayan. Acharya. *b.* 05.07.1941. *Add.* Shri Dharma Sangh Mahividhyalaya, Delhi. *Spl.Ref.* Veda.

Sharma, Laxmi Narsingh. Vyākaraṇa, Vidhyapravin, Sāhitya Vidhyapravin. *b.*01.04.1921, Guntur, A.P. Asst.Prof. *Ps.* 02. *Add.* Sopan Paints, Begumpet, Hyderabad-500016. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Sharma, Lekh Ram. Darśanaacharya. *b.*19.02.1950, Ghala, Solan, H.P. Asst. Prof. *Gp.* Keshav Sharma, Pitambardutt Sharma. *Ps.* 02. *Add.* Govt. Sanskrit College, Solan-173212. H.P. *Spl.Ref.* Darśana.

Sharma, Madan Mohan. M.A., LLB, Shastri Prabhakar. *b.* 24.09.1924. Jaipur. Rtd. Asct. Prof. RJ, Univ. Guest Faculty Teacher Maharani College, Jaipur. *Bks.* 08. *Ps.* 50. *Add.* 1/54, S.F.S. Agrawal Farm, Mansarover, Jaipur – 20. RJ. *Spl.Ref.* Śāstra Chudamani, R.Sk.S., President Awardee.

Sharma, Madan. Kāvyateerth, Sāhityaratna, Shastri. *b.*1926. Sikar (RJ). Asst. Prof., Shri L.B.S.R.S.V., Delhi. *Bks.* 36. Uttaranaiṣadha-mahākāvyam, Sudāmnaś-caritam, Dūtamā-dhavam, Śrīrāmabhakti-kallolinī, Sūktiśata-kam, *Expired on* 12.07.1970. *Spl.Ref.* Famous Singar of Sanskrit Songs & Poems.

Sharma, Mahaveer Prasad. LT. Acharya, M.A. (Skt. Hindi), *b.* 21.09.1945. Jinda Haryana. Teacher, Govt. School Haryana. *Bks.* 09. Hariyānāgauravam, Saṃskṛtagītāñjaliḥ, Vairāvīracaritam, Ātmnepadam, Vijayapatram (Transl. of Japharanāmā). *Add.* 317, Sector 7, Arban State, Karnal, Haryana. *Spl.Ref.* Maharishi Ved Vyas Samman Skt. Poet.

Sharma, Mahendra Kumar. M.A. (Sanskrit, Hindi, English). *b.*11.12.1927. Teacher, Jain Sanskrit Girls Senior Secondary School, Kucha Seth, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 129, Arya Nagar, Ghaziabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Mahesh Dutt. M.A., Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, Ph.D. Asct. Prof. N.M.S.N. Dass Snatkottar Mahavidyalaya, Badaun (U.P.). *Bks.*01 The Kāśikāvṛtti and The Vaiyākaraṇa-siddhāntakaumudī : A Comparative Study. *Ps.* 20. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Sharma, Mahesh Prakash. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*05.10.1960. Trained Teacher. *Ps.* 03. *Add.* Shri Mahavir Vishvavidyapitham, Paschim Vihar, New Delhi.

Sharma, Mahesh. Acharya, Ph.D.. *b.* 13.10.1983, Jaipur. Asst. Prof., Prachya Vidyapeeth, Shahpura Bagh, Jaipur. *Gp.* Prof. Jaikant Sharma, Kalanath Shastri. *Bks.* 06. Pañcagaṅgā, Kūbā Carita, Stuti, Maṇimālā, Rāmānanda Saurabha. *Ps.* 03. *Add.* 36 – B, Saraswati Nagar, Sushilpura, Sodala, Jaipur. *Ph.* 2221354, 9214316999. *Spl. Ref.* Darśana Puraskar, Sanskrit Puraskar.

Sharma, Mahidhar Dauthiyal. M.A. *b.*08.02.1942, Kujani, Garhwal. Principal. *Ps.* 03. *Add.* Paviraniwas, Shastri Market, Rajpura Ward, Baran (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Mani Prasad. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya, M.A. *b.*04.12.1948. Mani, Rupan, Nepal. *Gp.* Ghananand ji, Mahanand ji, Kalikaprasad Shukla. *Ps.* 03. *Add.* Akhand Vedānta Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Sharma, Mani. M.A., M.Phil, Ph.D. *b.*26.11.1971, Mojikuchi, Sonitpur, Assam. Asst.Prof. & HOD, Nalbari College, Nalbari Assam. *Bks.* 01. Nivandhe Nicaya.

Sharma, Manju Lata. M.A. *b.*28.04.1949.

Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Tagore Garden, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* FD-17, Tagore Garden, New Delhi–110027. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Manju Lata. M.A., Ph.D., D.Litt., Vāstu Ratna. *b.*13.12.1959. Agra (U.P.) Asct. Prof., St. John's College, Agra (U.P.). *Bks.* 06. Purāṇo me Puruṣārtha Catuṣ-aya, Arvācīna Saṃskṛta Sāhitya Daśā aur Diśā, Mūko Rāmagirirbhūtvā (Hindi Tr.), Ādhunika Saṃskṛta Sāhitya ke Naye Bhāvabodha. *Ps.* 21. *Add.* 49, Kailash Vihar, Gailana Road, Agra–282005. *Spl.Ref.* Poet in Skt & Hindi Critic of Contemporary Skt. Literature.

Sharma, Mansa Ram. Acharya (Navya Vyākaraṇa, Vedānta, Sāhitya), M.A. *b.* 15.08.1922. Devalgarh, UK. Rtd. Principal Sri Bhagwan Das Adarsh Skt. Mahavidyalaya, Haridwar. *Spl.Ref.* Vedānta, Sāhitya, Vyākaraṇa, Śāstra Chudamani, Uttaranchal Skt. Academy Award – 2004 and Many other awards including President Award, Andhra Pradesh Govt. Award and Ministry of HRD.

Sharma, Manu Lata. M.A., Ph.D. *b.*11.01.1956. Varanasi. Asct. Prof., Arya Mahila Degree College, Varanasi. *Ps.* 04. *Add.* K 61/51, Bulanala, Varanasi, U.P.

Sharma, Mast Ram. Acharya, M.A. (Sanskrit & Hindi), Ph.D. *b.*06.01.1951, Kotla, Solan, (H.P.). Asst. Prof. *Gp.* Jnanachand, Diwakardatt, Saligram, Kapildevashastri. *Ps.* 03. *Add.* Govt. Sanskrit Mahavidyalaya, Nahan, Sirmor (H.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Mati Ram. Acharya. *b.*18.05.1956, Gwalkhet, Chamoli, (U.P.). Teacher. *Gp.* Acharya Rameshchandra Shukla. *Ps.* 03. *Add.* Shri Motinath Sanskrit Mahavidyalaya, Ramesh Nagar, New Delhi–110015. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Medavaram Mallikarjun. Vidwan, Sāhitya Shiromani. M.A. *b.*05.07.1948, Badapadu, Prakasham, (A.P.). Asst. Prof. *Gp.* M. Vishvanath Sharma, P. Venkatakrishn Sharma. *Ps.* 03. *Add.* Prachya Kalashala, Lepakshi–515331 (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Meena Prasad. Acharya in Sāhitya. *b.*04.12.1948, Mathigram, Nepal. Principal. *Gp.* Ghananand, Mahanand. *Ps.* 03. *Add.* Shri AkhandaVedānta Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Mithilesh Kumar. Achrya in Vyākaraṇa. *b.*10.11.1951, Bahilavara, Sitamarhi, Bihar. Asst. Prof. *Gp.* Ranganath Mishra, Krishna Sharma. *Ps.* 03. *Add.* 272, Purāṇaa Amer Road, Jaipur–2 (RJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Mohan Lal 'Pandey'. Acharya (Vyākaraṇa & Sāhitya) *b.*23.09.1934. Jaipur. *Bks.* 16. *Ps.* 03. *Add.* H.No.-2381, Pandey Bhawan, Khajane Walon ka Rasta, Jaipur. (RJ).

Sharma, Mohan Lal. Acharya in Sāhitya. M.A., B.Ed. *b.*01.04.1943. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* C-274/A, Gali No. 12, Bhajan Pura, Delhi – 110053.

Sharma, Mohini Devi. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., B.Ed. *b.*01.08.1960, Jaipur, RJ. Asst. Prof., Maharaja Sanskrit College, Jaipur. *Gp.* Meenanarayan, Chandiprasad. *Ps.* 05. *Add.* 210, Mangal Marg, Brahmapuri, Jaipur, (RJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Mukesh Kumar. Shastri, Acharya. *b.*08.02.1982. Shimla. *Ps.* 02. *Add.* Chuni, Loeas Road, Rahur, Shimla, H.P.

Sharma, Mukund Madhav. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 01.03.1934, Dibrugarh, Assam. V.C., Dibrugarh Univ. *Bks.* 54. Rājataraṅgiṇīra Galpa (Assamese), Svapna Vsavadatta (Assamese), Vyañjanā-prapañcasamīkṣā, Dr. Maheshvar Niyog - A Profile and Bibliography. *Add.* B-4 Rodali Apptt. Hatthigarh Chari Ali, Guwahati– 24 *Spl.Ref.* Sāhitya, Honourary Vidyavachaspati, President Awardee, Vishist Seva Swaran Padak from Governor of Assam etc. Visiting Prof., Indonesia.

Sharma, Munshi Ram. M.A. (Skt. & Hindi), Ph.D., D.Litt. *b.*28.11.1901, Agra (U.P.). Rtd. Asst. Prof. *Bks.* 04. Śruti saṅgitikā (Hindi), Sūradās aur bhagavadbhakti (Hindi),

Bhagavad Bhakti (Hindi), Bhāratīya Sādhanā aur sūrsāhitya. *Add.* 9/70, Arya Nagar, Kanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda. Received Sāhitya Vachaspati, Vedaratna, Sāhityavaridhi Awards.

Sharma, Muralidhar V., B.O.L., Dip. O.L., Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.*15.06.1960. Asst. Prof. *Ps.* 03. *Add.* Kendriya Sanskrit Vidyapith, Aliganj, Lucknow (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, ShikshaŚāstra.

Sharma, Murarilal. Acharya in Sāhitya, M.A. (Arthasastra), M.Com. *b.*01.07.1937. Jaipur, RJ. Rtd. Dy. Director, Rashtriya Sanskrit Sansthan. *Ps.* 02. *Add.* 21/23, Shakti Nagar, Delhi–11007. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, N. Rangnath. Kannad Vidwan, Kannad Pandit, Vyākaraṇa Śāstra, Alaṅkāra Śāstra. *b.* 07.04.1916. Karnataka. Rtd. Lecturer, Govt. Skt. Mahavidyalaya Bangalore. *Bks.* 21. Bāhubalivijayam, Ekacakram, Guruparamparākāvyam. *Add.* 831, 4th ,Main Vijay Nagar, Bangalore – 40. *Spl. Ref.* Skt. and Kannada.

Sharma, Nalini Ranjan. M.A., Ph.D. *b.*01.05.1942. Bherua, Darrang, Assam. Rtd. Prof., Guwahati Univ. *Bks.* 02. The Machanism of Vedic Accent, The Kāmaripu School of Dharmaśastra. *Add.* Sanjog Path, Gotanagar, Guwahati.

Sharma, Narottam Datt. M.A., Ph.D. *b.*01.12.1962. Bilaspur (H.P.). Principal. *Ps.* 01. *Add.* Gandhral, Swahan, Bilaspur–174310 (H.P.).

Sharma, Naveen. M.A., M.Ed.. *b.* 17.04.1983, Bilaspur (H.P.). Research Scholar. *Ps.* 04. *Add.* VPO. Kolka Balghar, Teh. Jhandutta, Dist. Bkaspur (H.P.) – 174031. *Ph.* 7607773307. astronaveen1983@-gmail.com.

Sharma, Neetu. M.A., NET. *b.* 23.06.1978 Lucknow. Asst. Prof., Jammu. *Gp.* Prof. Navjivan Rastogi, Prof. B.K.Shukla, Dr. Preeti Sinha, Pt. Dharmanand Shastri (Vyākaraṇa),Dr. D.K. Singhdev. *Ps.09.Add.* RSKS, Sri Ranbir Campus, Kot-Bhalwal, Jammu. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ogeti Parikshit. Bhasha Praveen, M.A. (Skt. English). *b.*20.08.1930, Yazeli, Baptala. Rtd. Asst. Director, *Bks.* 13. Akṣaya Gīta Mukundam, Kālāya Tasmai Namaḥ, Śrīmat Pratāparānāyam Mahākāvyam, Saundarya Mīmāmsā, Janapad Nātya Gīta Mañjarī, Yaśodhārā Mahākāvyam. *Add.* 10/11, Sakal Nagar, Banner Road, Pune – 07. *Spl. Ref.* Mahakavi, Geervan Geya Kavi, Kavi Mandal Chakravarti, Patrakarita.

Sharma, Om Prakash. Shastri, M.A.. *b.* 01.04.1958, Sirsal, Kaithal. Teacher, Govt. Senior Secondary School, Jyotisar. *Gp.* Lt. Shri Balkrishan Bhardwaj, Shri Krishn Sharma. *Sp.* Satish Sharma. *Add.* 1509/5, Jyoti Nagar, Kurukshetra – 136118. *Ph.* (01744) 293854, 9416407017.

Sharma, Padmanabh P.M. Shiromani. *b.*22.09.1917, Thanjavur, TN. *Gp.* M.M. Karunglam Krishnashastri, Subrahmanya Shastri. *Bks.* Ānandarāghavam, Yuddha-kāṇḍa-campūḥ (Rājacūḍāmaṇi Dīkṣitasya). Uttara kāṇḍacampū (Bhagavantarāya Sakhinaḥ). *Add.* 2281, Sakha Nayakan Street, Thanjavur (T.N.). *Spl.Ref.* Advaita Vedānta.

Sharma, Padmanabh. Acharya. *b.* 07.10.1929. President, Department of Sanskrit, Bharatiya Vidya Bhavan, New Delhi. *Add.* C-6A, 51-C, D.D.A. Flats, Janakpuri, New Delhi – 110058. *Spl.Ref.* Veda, Vyākaraṇa , Sāhitya, Mīmāṃsā, Advaita Vedānta.

Sharma, Parasar. Acharya, Sāhityaratna. *b.*15.10.1929. Teacher, Govt. Boys Sr. Secondary School, Kidwai Nagar. *Ps.* 05. *Add.* G.I. 871, Sarojini Nagar, New Delhi–110023. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Phurailatpam Krishna Chandra. Shastri (Kāvya, Vyākaraṇa & Karmakānda) *b.*01.08.1936. Uripok Huidrom Leikai. Asst. Prof., Sanskrit College, Imphal. *Bks.* 07. Śrī Gopāla Śahsranāma (Trans. in Manipuri), Anuvāda Candrikā (Trans. in Manipuri). *Add.* Uripok Huidrom Leikai, Imphal, West. Manipur. Pin–795001.

Sharma, Prabhu Dayal. Sāhityacharya. *b.* 01.07.1962, Ambarpur, Barelli, (U.P.). Teacher. *Gp.* Mahendra-narayan Shukla, Satanjiv Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Shri Chetan Jyoti Sanskrit Mahavidyalaya, Bhupatwala, Haridwar. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Prabhu Dutt 'Atreya'. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana), M.A. *b.*1921. Prapurna, Shunjhunu. Asst. Prof., Bhasha Vigyan, Shri Digambar Jain Sanskrit College, Jaipur. *Bks.* 11. Śrī Rāmeśvara-Caritam, Sustavakam, Bhattārikā, Prapatti-Pīyūṣā-rṇavaḥ, Jagadguru-Gauravam.

Sharma, Prabhu Narayan. M.A., Ph.D. *b.*11.01.1936, Rohua, Muzafarpur, Bihar. Asst. Prof., Dharmasastra Deptt. *Gp.* Ramakaran Sharma, Ramchandra Mishra, Madanmohan Jha. *Bks.* 05. *Ps.* 06. *Add.* Kameshwar Singh Darbhanga Sanskrit University, Darbhanga (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Sharma, Prakash Chandra. Sāhityacharya, M.A. *b.*01.01.1943. Teacher, Ramarshi Sanskrit Mahavidyalaya, Karala, Delhi. *Ps.* 04. *Add.* Karala, Delhi–110081. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Pramod Kumar. Acharya in NavyaVyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 09.05.1974. Asalpur, Firozabad, U.P. Asst. Prof. J.R. RJ Sanskrit Vishvavidyalaya, Jaipur. *Gp.* Shri Ram Prasad Tripathi. *Bks.* 06. Sāṅkhyakārikā (Sanskrit Comm.), Laghu-siddhānta-kaustubham, Paṇinīya Vyākaraṇe Prameya Samikṣā. *Ps.* 05. *Add.* H.No. 23, Vishvavidyalaya Parisar, RJ Sanskrit Vishvavidhyalaya, Madau, Bhankrot, Jaipur – 302026.

Sharma, Pramod. Shastri, Shiksha Visharad, Sāhityacharya. *b.* 04.03.1964, Nahan. *Guru Parampara.* Shri Mast Ram Sharma, *Shishya Parampara.* Anju Malik. *Add.* H. IV 158/3, Premi Niwas Mohalla Khatapur, Thanghar City, Kurukshetra – 13618. *Ph.* 292521, 9416772796.

Sharma, Prem Kumar. Acharya in Jyotiṣa. *b.*04.03.1961, Kayalar, Saparun, Solan, H.P. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Katwaria Sarai, New Delhi–110016. *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Sharma, Prem Kumar. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*07.11.1939, Baraura, Budaun, (U.P.). *Gp.* Ramajita Upadhyaya, Pt. Haridatta Sharma. *Ps.* 05. *Add.* 74, Thathera Bazar, Meerut (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Prem Lal. Shastri, Acharya. *b.*15.05.1956. Tehri, Garhwal. Prof., Punjab University, Hoshiarpur. *Ps.* 50. *Add.* 61. New Bank Colony, Una Road, Hoshiarpur (Punjab)-146021.

Sharma, Priya Vrat. A.M.S. *b.* 1920. Patna. Principal, Govt. Ayurved College, Patna. *Gp.* Pt. Satyanarayan Shastri. *Sp.* Pt. Kashinath, Pt. Gomati Prasad Mishra. *Bks.* 10. Dravya-guṇavijñāna, Abhinava Śarīrakriyāvijñāna, Vāgbha-avivecana, Carakacintana, Āyurveda kā Vaijñānika Itihāsa.

Sharma, Punit. M.A., Ph.D., Diploma in Linguistics. *b.*17.12.1960. *Ps.* 02. *Add.* 68-A, Pocket AG-1, M.I.G. Flats, Vikaspuri, New Delhi–110018.

Sharma, Purushottam Kar. Sāhityaratna, M.A. (Skt. & Hindi). *Bks.* 04. Satyārtha-prakāśa (Oriya Tr.), Bṛhadāraṇyakopaniṣad (Oriya Tr.), Bhaktipuṣpāñjaliḥ, Iha svargadvāre (Kāvyam). *Add.* Teacher, Bant High School, Bant, Balasore–756114 (Orissa). *Spl.Ref.* Sāhitya & Darśanaa.

Sharma, Purushottam. M.A., M.Ed., M.Phil., Ph.D. *b.*14.04.1953. Katra, Jammu. *Bks.* 01. Īśāvāsyopaniṣad (Comm.). *Ps.* 04. *Add.* P.G. Dept. of Sanskrit, University of Jammu (Tawi)

Sharma, Pushkar Datt. M.A., Ph.D. *b.*21.04.1927. Taranagar, Churu. Asst. Prof., Jain Vishvabharti Institute, Ladnu. *Bks.* 05. Saṃskṛta Pratīveśinī, Kṛtyamahārṇava, Rājasthānasyādhunika-kathālekhkāḥ, Saṃskṛta Sāhityetihāsah. *Ps.* 50. *Spl.Ref.* Famous Story & Essay writer.

Sharma, Pushkaracharya. Acharya, Shiksa-shastri. *b.*15.10.1955. T.G. Teacher, Rajkiya Uchchatar Madhyamik Senior Secondary

Vidyalaya No. 1, Najafgarh. *Ps.* 02. *Add.* 1620 B, Nawad Bazar, Najafgarh, New Delhi–110043. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Pushpa. M.A. (Sanskrit & Hindi), B.Ed. *b.*10.09.1931. Teacher (PGT), Shri L.N. Trust GJi Senior Secondary School, 9, Raj Niwas Marg, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* C/o Shri Santoshraj B-1, 1894, Timarpur, Delhi.

Sharma, Pushpendra Kumar. M.A., Ph.D., Shastri. *Age.* 50 yrs. in 1988, Deoband, Saharanpur, (U.P.). Asst. Prof. Delhi University. *Bks.* 01. Devīpurāṇa (ed.), *Ps.* 10. *Add.* Delhi University Avasa, B-29, Asct. Prof.'s Line, Maurice Nagar, New Delhi-07. *Spl.Ref.* Purāṇa, Sāhitya, SaktaDarśana.

Sharma, Pyare Mohan. Acharya in Sāhitya. *b.*1929. Jaipur. Director, RJ Sanskrit Academy, Jaipur. *Bks.* 07. Abhinavakāvyasaṅgrahaḥ, Abhinavakathā-saṅgrahaḥ, Chandaścayanikā. *Spl.Ref.* Editor of Svaramaṅgalā & Bhārtī Sanskrit monthly Magzine of Jaipur. He has awarded by Vidwatsamman by H.R.D. Delhi.

Sharma, R. C. Koteshwara. Nyāya Vidya Praveen, Bhasha Praveen, Sāhitya Vidya Praveen. *b.* 17.11.1923. Prakasham, AP. Rtd. Principal. *Bks.* 02. Gadādharīyasaṃśaya-pakṣatākrodapatram. *Spl.Ref.* Nyāya Vedānta, President Awardee.

Sharma, Rabindra Nath Dev. Vyākaraṇa Shastri & Kāvya Shastri, M.A. in Sanskrit, Ph.D.. *b.* 01.05.1955, Nalbari, Assam. Head in Sanskrit, D.K.D. College, Dergaon, Golaghat, Assam. *Bks.* 05. Śraddhātattva Vimarśaḥ, Megha-dūtam, Atharvaveda (Vol. – I), Kusamāñjali, Praśastimīlikā *Ps.* 05. *Add.* D.K.D. College, Dergaon, Golaghat, Assam. *Ph.* (0376) 2380299, *M.*9854720121.

Sharma, Radha Govind. M.A., Acharya, Ph.D. *b.*10.04.1930. Jaipur. Asst. Prof., Deedwana, Jodhpur Univ., Tonk (RJ). *Gp.* Pt. Nawalkishore Kankar, Prof. Praveen Chandra Jain, Swami Surjandas, Bhatt Mathura Nath Shastri. *Expired in* 1978.

Sharma, Radha Krishna V., Acharya, B.O.L., Ph.D. *b.*23.03.1932, Narsimhapur, A.P. *Bks.* 01. Śrīmadbhāgavatasya -īkā 'Sudhīsudhā. *Add.* Ecole, Francais de Scheme Orient, 27, Dumas Street, Pondicherry – 605001. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Radheshyam Vaidik. *b.* 01.02.1955, Deogarh, Sidhi, (M.P.). Teacher. *Gp.* Kedaranatha Dwivedi, Dr. Gopalachandra Mishra. *Add.* Govt. Higher Secondary School, Deogarh, Semaria, Sidhi (M.P.). *Spl.Ref.* Veda (Ṛgveda, śukla-yajurveda).

Sharma, Raghu Nandan. *b.*1921. Somayi, Aligarh (U.P.). *Gp.* Kaluram Gani. *Sp.* Shri Tulsi Gani, Shri Nathmal Bagaur, Shri Nathmal Muni, Shri Chandanmuni, Shri Doongarmal, Shri Sohanlal, Shri Champalal. *Bks.* 03. Śrī Tulasīmahākāvyam, Sādhuśatakam, Praka-ita-kāśmīram.

Sharma, Raghu Nath. Acharya. *b.*1899. Chhata, Balia (U.P.) *Gp.:* Pt. Achyut Tripathi, Shri Shankar Bhattacharya, Pt. Harinath Sharma. *SP:* Pt. Ramprasad Tripathi, Dr. Devswaroop Mishra, Jagannath Upadhyay, Pt. Vrijvallbh Dwivedi. *Bks.* 05. Citrani-bandhāvalī, Mahābhāṣya (Ṭippaṇī), Caitsukhī (Ed.), Pārvatī Pariṇaya Kāvyātmakavārtika-pratyākhyāna. *Expired in* 1989. *Spl.Ref.* Honoured by 'Padmashri' & 'Vishvabharti' award.

Sharma, Raghu Nath. M.A., Ph.D. *b.*23.09.1938, Kohat (in Pakistan). *Gp.* Svami Karapatri, Shyamlal Sharma. *Add.* 263, Kohat Enclave, Pitampura, Delhi – 110034. *Spl.Ref.* Vaiṣṇava-Darśana & Veda.

Sharma, Raj Kumar. M.A. *b.*19.07.1957. Nanouli, Saharanpur, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Purushottam Jha Sharma. *Ps.* 05. *Add.* Shri Devikund Sanskrit Mahavidyalaya, Deoband, Saharanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Rajanikant Dev. SmritiVyākaraṇa -tīrtha. *b.*12.09.1915, Dingdingi, Borbham, Assam. *Gp.* Shadanan Nyāyatarkatirtha, Laxmipati Tarkashastri. *Ps.* 05. *Add.* Bagaribari, Dhubri (Assam). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Smṛti, Ratnamala-Vyākaraṇa.

Sharma, Rajendra Kumar. M.A., B.Ed. *b.*20.07.1935. Teacher, Govt. Girls Secondary School, Seelampur, Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 10-A, Vijay Mohalla, Bhojpur, Delhi–110053. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Rajendra Kumar. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 08.02.1957. Hamirpur (H.P.) Prof., Punjab Univ. ***Ps.*** 26. ***Add.***E-2, Panjab University Teacher's Residence, Gautam Nagar, Una Road, Hoshiarpur–146021.

Sharma, Rajendra Kumar. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.*08.02.1957, Kale Amba. Research Asstt. ***Gp.*** Dharmendrakumar Gupta, Brajavihari Chaube. ***Ps.*** 05. ***Add.*** V.V.I.S. & I.S., University of Punjab, Hoshiarpur (Punjab). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Rajendra Nath. *b.*25.06.1939, Delhi. Asst. Prof., Hindu College, Delhi. ***Gp.*** Dr. Ramagopal, Dr. Satyavrata Shastri. ***Bks.*** 01. Mārkaṇḍeya-Viṣṇu-Garuḍa-Agni - Bhaviṣya-Brahmapurāṇam(ed.). ***Add.*** 13-A/U.A., Jawahar Nagar, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Purāṇa.

Sharma, Rajendra Nath. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.*26.07.1951, Varsarkuchi, Nalbari, Assam. Prof. ***Gp.*** Mukundamadhav Sharma, Priyanshu-prabal Upadhyaya. ***Bks.*** 09. ***Ps.*** 100. ***Add.*** H.No.– 14, Jibankrishna Path, Hengrabari, Guwahati – 781036. ***Ph.*** (0361) 2570532, 09435113513.. ***Spl.Ref.*** Mīmāṃsā, Vyākaraṇa.

Sharma, Rajendra Prasad. Acharya, Vidyavachaspati. *b.*15.10.1943, Chamoli, (U.P.). Principal. Shri Mahavir Vishvavidyapith, Pashchim Vihar, New Delhi. ***Gp.*** Vijayaprakash Sharma, Ramjit Sharma Upadhyaya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Abhinavabharati Bhawan, Subhash Muhalla, E-Block, Gali No. 5, North Ghonda, Shahdara, Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Sharma, Rajgopal V. Shiromani (Vyākaraṇa, Vedānta). *b.* 01.07.1914, Cheyyar, TN. ***Gp.*** Setu Madhavacharya, Ramacharya. ***Add.*** 17, Firewood Bank Road, Madras–600005 (T.N.). *Spl.Ref.* Veda, Vyākaraṇa , Vedānta.

Sharma, Rajgopal. Studied in Kṛṣṇyajurveda and Nyāya. *b.*1913. Kashi. ***Gp.*** Pt. Seetaram Shastri, Dr. Altekar. ***Bks.*** 07. Śrīmajjagadguru Śaṅkarama-ha Vimarśa, Kāśī me Kumbha-koṇama-ha-viṣayaka Vivāda, Satyānveśaṇa, Dakṣiṇāmnāyadharmapī-ha, Adyaśankarā-cārya prādurbhāvakāla.

Sharma, Ram Avtar. Kāvyatīrtha, Acharya in Sāhitya. *b.* 06. March. Chhapara, Bihar. Principal, Oriental College of Indology, B.H.U. Varanasi, U.P. ***Gp.*** Gangadhar Shastri. ***Sp.*** Dr. Rajendra Prasad. ***Bks.*** 05. Dhīranaiṣadham, Gopāla Basu Maulika Lecturer on Vedāntaism, Ūropīya Darśana, Hindī Satva, Hindī Vākaraṇa Aur Racanā kī Śikṣaṇa Paddhati. ***Expired on*** 13.04.1929. ***Spl.Ref.*** Received The Buch Mehaphysics Award for his book the 'Philosophy of the Purāṇaas.'

Sharma, Ram Bhajan, Acharya, *b.*12.11.1940, Delhi. Principal, Bhagwan Mahavir Sanskrit Vidyapith, Shakti Nagar, Delhi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Puthkhurd, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Vyākaraṇa.

Sharma, Ram Chandra. Sāhitya-Acharya. *b.*25.02.1943, Deva, Ghazipur, (U.P.). Asst. Prof., Swami Sahajanand Saraswati Vidyapith. ***Gp.*** Brahmadatta Dwivedi, Kedarnath Ojha. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Vivekirai Sharma Marg, Barha Bagh, Ghazipur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Ram Charan. M.A. *b.*28.12.1939. Teacher, V. R. Govt. Adarsh Higher Secondary School, Shahdara, Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 9/5039, Old Seelampur (E), Gandhi Nagar, Delhi–110031. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Ram Datt. M.A., B.Ed. *b.*02.01.1939. Teacher, Govt. Higher Secondary School, Krishna Nagar, Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 1/4360, Ramnagar Extn., Shahdara, Delhi–110032. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ram Datt. Acharya in Sāhitya, Ph.D., D.Litt. *b.*12.10.1941, Bhimsingh Mandha, RJ. Head, Deptt. of Sanskrit. ***Gp.*** Dr. Purushottamalal Bhargav. ***Bks.*** 02. Saṁskṛtakāvyesu paśavaḥ pakṣiṇaśca, Saṁskṛtaitihāsikamahākāvyeṣu samāja-citraṇam. ***Add.*** Dhaggevali Gali, Halu Bazar, Bhiwani (HR). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Ram Karan. Sāhityacharya, Shastri (AdvaitaVedānta, NavyaVyākaraṇa), M.A., Ph.D. *b.*20.03.1927, Shivpur, Saran, Bihar. Founder Director, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, V.C. Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi, Visiting Asst. Prof. (thrice) in the University of Colombia (USA), Member of the Bihar Administrative Service and Kendriya Hindi Sansthan (Vice Chairman). *Gp.* Ambikadatta Sharma, M.B. Emeaneu (USA). *Bks.* 40. Elements of Poetry in the Mahābhārata, Śivaśukīyam, Sandhyā (Sāhitya Akademi Award), Pātheyaśatakam, Madālasā, Caraka Saṃhitā English Translation, Śivasahasranāma, Sinīvālī, Gaganavāṇī *Add.* 63, Vigyan Vihar, Delhi – 110092. ramkaransharma@yahoo.com *Spl.Ref.* Sahtiya, Vyākaraṇa , Vedānta. Founder Director of Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi. Awarded by President Certificate of honour. Awarded by Delhi Sanskrit Academy. He is a well known contemporary Sanskrit poet. He has taught Sanskrit in Chicago, New York.

Sharma, Ram Kishan. M.A. *b.* 01.01.1943. Teacher. Dhanpatmal Birmani Higher Secondary School, Roop Nagar, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* C-6/154, Lawrence Road, Kshavpuram, Delhi–110035. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ram Krishna. Acharya in Sāhitya. *b.* 15.05.1936, Majyur U.K. Member, Sachivalaya, Kendriya Skt. Parishad, New Delhi. *Bks.*10. Vidambanam, Bāṅglā deśodayam, Artha-bhāskar, Ullāsinī. *Spl.Ref.* Awarded Śāstra Chudamani, Sāhityamahopadhyay, Vidhyava-chaspati, Kāvyaratnakar, Sāhitya Bharti, Rashtra Gauravam. He has written many papers in Hindi, English & Skt.

Sharma, Ram Kumar. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa, Purāṇa). *b.*20.05.1942, Dishawar Kheri, Rohtak, HR. Principal. *Gp.* Chajjuram Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Shri Ramarishi Sanskrit Mahavidyalaya, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa , Purāṇa.

Sharma, Ram Kumar. Acharya, M.A. Ph.D. *b.*28.12.1959. Chaparakh, Ichak. Hazaribagh (Jharkhand). Asst. Prof. R.Sk.S., Jaipur, RJ. *Gp.* Sabhapati Upadhyay, Damodar Mishra, Rangeshwarnath Mishra, Prof. Kashinath Mishra. Dr. Udayakant Jha. Prof. Meenakumari. *Sp.* Dr. Sanandankumar Tripathi, Surendra Mehato. Dr. Madhusudan Pandey. *Bks.* 05. Kāvyaprakāśa-rasagaṅgādharayostulanā, Bhārata-carita-mahāKāvyam, Pratyabhigñā- Pradīpaḥ, Kovidāṇḍavimarśiṇī, Vyakti-Viveka-Vimarśaḥ. *Ps.* 15. *Add.* 104, Bhagirathnagar, Gopalpura by Pass, Jaipur. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra, Well Traditional & Contemporary Poet.

Sharma, Ram Narayan. Sāhityacharya, M.A. *b.*14.04.1944, Kota, RJ. Senior Asst. Prof. *Gp.* Ramnarayan Sharma. *Ps.* 05. *Add.* V.A.S. Acharya Sanskrit Mahavidhyalaya, Banta, Kota (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ram Nihal. M.A., Ph.D. Sāhityacharya, *b.*05.07.1930, Kirwai, Rajim, (C.G.). Principal. *Gp.* Mahadev Shastri, Baladev Upadhyay. *Ps.* 03. *Add.* Govt. Shri Vaishnav Sanskrit Mahavidhyalaya, Raipur C.G. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ram Pal. Sāhityaratna, Acharya in Jyotiṣa. *b.* 08.12.1931, Bilamhi, RJ. HOD, Jyotiṣa. *Gp.* Vindhya Prasad Pandey, Kedarnath Sharma. *Ps.* 03. *Add.* C-28. Devnagar, Jaipur (RJ). *Spl.Ref.* Jyotiṣa & Sāhitya.

Sharma, Ram Prakash. Acharya in Vyakrana, M.A., Ph.D. *b.*14.08.1955, Etah, (U.P.). Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Gurulul Kangri University, Haridwar (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Ram Prasad, M.A. B.Ed. *b.* 13.04.1946. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School. Sarojini Nagar, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* C-134, Kidwai Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ram Roop. M.A., Ph.D. *b.*06.05.1942. Teacher, Govt. Higher Secondery Girls School, Janakpuri, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* C-1/82, Janakpuri, New Delhi- 110058. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ram Sevak. M.A. *b.*05.07.1934.

Teacher, Ramjas Higher Secondary School. Sitaram Bazar, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 47, Baldev Park, Krishnanagar Delhi-110051. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ram Swaroop. Acharya in NavyaVyākaraṇa. *b.*24.03.1934. Parsan, Gwalior, M.P. *Gp.* Narhari Shastri Dhatte, Anantram Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Krishnapuri, Murar, Gwalior M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Ram Swaroop. *b.*16.01.1919, Alwar, Rajsthan. President, Shri Sitaramji Govindram Trust Mandir, Alwar, Rajsthan. *Gp.* Sitaram Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Mishra Sadan, Alwar Rajsthan. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Sharma, Ram. M.A., M.O.L. Ph.D. *b.*15.10.1930. Dy. Director. *Ps.* 05. *Add.* 103-A, Kamla Nagar, Sabzi Mandi, Delhi- 110007. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Sharma, Ram. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.*20.05.1936, Agra, U.P. *Gp.* Shri Ramkrishna Ganesh Harsh. *Ps.* 05. *Add.* 18/162 (Bavli), Fatehabad Road, Tajganj, Agra U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Sharma, Rama Kant. M.A., Ph.D. *b.*13.07.1936, Hoshiarpur, Punjab. Asct. Prof. *Ps.* 05. *Add.* E-104, Sector 14, University Campus, Chandigarh (Punjab). *Spl.Ref.* Advaita.

Sharma, Rama Nath. B.A., M.A. (Hindi, Literature & General Linguistics), Ph.D.. Prof. & Chairman. Department of Hawaiian and Indo – Pacific Languages & Literatures, University of Hawaii at Manoa. *Bks.* 28. Indian Tradition of Linguistics and Pāṇini and Linguistics, The World Outside on the World Inside, Vaidika Vāṅgmaya kā Svarūpa, Spho-avāda, Standardization of Sanskrit Grammar. *Add.* Prof. of Sanskrit, Department of Indo – Pacific Languages and Literatures 2540 Maile Way, Spalding Hall 255, University of Hawaii at Manoa, Honolulu, Hawaii – 96822 (USA). *Ph.* (808) 956-3559, 395-2400, 395-7730. e.mail- rama@hawaii.edu.

Sharma, Raman Kumar. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.*07.10.1959. Asct. Prof., Dayal Singh College, Lodhi Road, New Delhi. *Ps.* 05. *Add.* C-275-A, Gali No. 12, Bhajanpura, Delhi-110053. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ramanugrah. M.A. *b.*26.09.1938. Gaya (Bihar). Śāstrachudamani Scholer in Govt. Sanskrit College, Ranchi. *Ps.* 02. *Add.* New Madhukam Road No. – 2, Ranchi. Jharkhand.

Sharma, Ramashray. M.A., Ph.D. *b.*15.11.1928. Prof., Zakir Hussain College, Ajmeri Gate, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 24, Vaishali, Pitampura, Delhi, 110034. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ramavatar Pandey. ***b.*** 06.03.1877. Saran. Prof., Patna College. Principal, Oriental College. *Bks.* 50. Vāṅmayārṇava, Paramārtha Darśana, Śrī Satyadeva Kathā. *Expired on* 03. 04.1929. *Spl.Ref.* He is a good Scholar of Latin, German, French, Bangla, English & Hindi.

Sharma, Ramavtar. M.A., Ph.D. *b.*17.05.1927, Musi, Gaya, Bihar. Chairman, Bihar Sankskrit Education Board. *Gp.* Pt.Ramesh Jha, Pt. Jatashankar Jha. *Add.* Prof.'s Colony, Shahganj, Patna-6 Bihar. *Spl.Ref.* Nyay, Sāṅkya, Yoga & Sāhitya.

Sharma, Ramchandra Gaur. Acharya in Sāhitya. *b.*1900. Jaipur. Asst. Prof. Maharaja Sanskrit College. Jaipur, RJ. *Gp.* Shri Bihari Lal Sharma. *Sp.* Devarshi Kalanath Shastri, Dr. Narayan shastri Kankar, Ramnarayan Chaturvedi. *Bks.* 22. Śrī Haribhaktacaritam, Śrīśukrade-vacarītam, Śrīnimbārkadeva-carītam, Śrībihārī-śatakam, Śrī Kalyāṇakaruṇaśtakam. *Expired on* 04.03.1980.

Sharma, Ramesh Chandra Das. Shastri, Acharya in Veda, Ph.D. *b.* Bugura, Ganjam, Orissa. Rtd. Prof. *Gp.* Gopalachandra Mishra, Kishor Mishra. *Add.* Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapith, Katwaria Sarai, New Delhi– 110016. *Spl.Ref.* Veda.

Sharma, Ramesh Chandra. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Sāhityabhushan. *b.*01.07. 1940, Rajghat, Bulandshahar, (U.P.). Asstt. Suptd. (Sanskrit Pathashalas), Nainital. *Gp.* Vijayaprakash, Bankelal, Ramajita. *Ps.* 05.

Add. Rajghat, Bulandshahar (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Ramesh Chandra. M.A. *b.* 15.05.1938, Mania, Dholpur. Head. *Gp.* Kailashachandra Mishra, Rajakumar Jain, Vrijmohan Chaturvedi. *Ps.* 05. *Add.* B. U. College, Patiala–143505 (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Rameshwar Datt. M.A., Ph.D. *b.*18.01.1934, Bhaklana, Hisar, HR. Asct.Prof. Rajkiya P.G. College, Bhivani. *Bks.* 05. Divyadṛṣṭiḥ, Hariyāṣā Saṃskṛta Vṛttam, Mahrṣī Dayānanda Vṛttam, Cirāyaloke śivamātanotu, Gīrvaṣabhāṣa Khalu Raṣtrabhāṣa.

Sharma, Rameshwar Dayal. Sāhityaratana, M.A. *b.*05.06.1935. Teacher, Govt.Higher Secondary Girls School, Sarojini Nagar, New Delhi. *Ps.* 05. *Add.* D-G- 956, Sarojini Nagar, New Delhi. 110023. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Rameshwar Dayalu. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya). *b.*15.05.1936. Asst. Prof. *Add. Ps.* 05. Shri Baba Kali Kamali Sanskrit Mahavidhyalaya, Ramnagar, Pashulok, Rishikesh. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Sharma, Rameshwar Dutt. M.A., Ph.D. *b.*18.01.1934. Bhaklan, Hisar. *Bks.* 08. Hariyāṇā Saṃskṛta Vṛttam, Divya Dṛṣti, Brāhmaṇa Samāja, Rādhikācaritam, Jīvana Saritā. *Add.* H.No.03, Vikas Nagar, Bhiwani.

Sharma, Rameswar Dutt. M.A., Ph.D. *b.* 18.01.1934. Hissar. Haryana. *Bks.* 05. Haryāṇāsaṃskṛtavṛttam, Anubhūtiḥ. *Add.* 3, Vikas Nagar, Bhiwani, Haryana. *Spl. Ref.* Sanskrit Poet.

Sharma, Ramgopal Bhagirath. Acharya in Sāhitya, Kāvyatīrtha, M.A. *b.*10.01.1933, Paher Goan, Hoshangabad, (M.P.). Asst. Prof. *Gp.* Vinayakaji, Govindalal, Shridhar Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Sanskrit Upadhi Mahavidyalaya, Indore (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Kāvya.

Sharma, Ramgopal. M.A., L.T. *b.* 21.05.1945. Teacher, Govt. Adarsh Higher Secondary School, Vivek Vihar, Delhi – 110032. *Ps.* 03. *Add.* 201-H, Gautam Nagar, New Delhi–49. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ramji Bhai Pyare lal. Ph.D. *b.*12.08.1940. Prof., Smt. Sadguna C.U. Arts College for Girls, Lal Darwaja Ahemdabad. *Ps.* 05. *Add.* Panini 10, Vejnath Society, Near Jal Tarang, Jivaraj Park, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Vyākraṇa & Sāhitya.

Sharma, Ramji Lal. Acharya in Sāhitya, M.A., B.Ed. *b.*27.09.1941. Teacher, A.S.V.J. Higher Secondary School, Daryaganj, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* V/14, Bhagavat Gali No. 1, Arvind Mohalla, Ghoda, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ramlal. Darśana-acharya. *b.* 28.02.1945, Patat, Rajouri, J&K. Principal. *Gp.* Mulraj, Parshuram Shastri, Jairam. *Ps.* 03. *Add.* Shri Raghunath Sanskrit Mahavidhalaya, Veerpur J&K. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Sharma, Ramlal. M.A. *b.*06.01.1939. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Tilak Nagar, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 122-X, Paschim Vihar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Sharma, Ramlal. Vyākaraṇa charaya. *b.* 15.01.1956, Bandhaura, Panna, M.P. Princ. *Gp.* Rajaram Dwivedi, Ramswaroop Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Govt. Sanskrit College, Gwalior M.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Sharma, Rampal. Shastri, Acharya. *b.* 08.08.1959, Kurukshetra. Asst. Prof., Jai Ram Viddhyapeeth. *Add.* H.No. 3/17, Maharana Pratap Chouk, Birla Mandir, Kurukshetra – 13649.

Sharma, Ratan Lal. *b.*13.04.1973, Bilaspur (H.P.) Asst.Prof. *Gp.* Pt. Sukhdev Chaturvedi, Pt. D. P. Tripathi. *Ps.* 10. *Add.* U. K. Skt. Univ. Haridwar.

Sharma, Ratan Lal. M.A. *b.*08.02.1909. Raipur. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Sudhakar Pandey. *Ps.* 05. *Add.* Bhaskar Vilas, Rani Bazar, Bikaner (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Rath Ganeshwar. Pandit of Sanskrit Literature. *b.*1898. Khalikote, Ganjam. Teacher in High School, Kalahaddi (Orissa). *Bks.* 02. Vratavidhānapadhhatiḥ. Caṇḍividhāna-padhhatiḥ. ***Expired on*** 30.01.1984.

Sharma, Rati Ram. M.A., M.Ed. *b.*09.12.1942. Teacher, Govt. Higher Secondary School, 2, Sarojini Nagar, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 449, Chirag Delhi, New Delhi–110017. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ratul. M.A. *b.*01.10.1980. Asst. Prof. P.B. Anchalik College Assam. *Ps.* 02. *Add.* Barsimalva, Athgharia, Nalbari, Assam.

Sharma, Ravi Shankar. Acharya, M.A. *b.*01.01.1959, Rampura, Narasimhapur, (U.P.). *Ps.* 02. *Add.* K-57/37, New Colony, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Ravi Shankar. Acharya in Vyākaraṇa. *Age.* 30 yrs. in 1987. Asst. Prof. *Ps.* 03. *Add.* Kedarnath Sanskrit Pathashala, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Rudra Radhe. Shaktivishist-dvaitavidvan. *b. Age* 80 yrs. Rtd. Prof. *Gp.* Narayan Trivedi, Vishvanath Pratap Varma. *Add.* Shri Siddhalingeshwar Sanskrit Mahapathshala, Siddhaganga, Kyansand, Tumkur- 574104 KT. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Veda & Vedānta.

Sharma, Runima. M.A., Ph.D. *b.* 01.03.1969 Mangaldai, Darrang. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Bajali College Pathshala, Barpeta, Assam.

Sharma, S. Nilabir Shastri. Shastri in Vyākaraṇa, HindiRatna. *b.*28.10.1927. Brahmapur, Imphal, Assam. Principal, Manipur Sanskrit Coiiege. *Bks.* 11. Ahing- Likla, Khongūom Tīrtha, Vasantī Carong, Ethak-Ipom, Tatkraba Punsileipul. *Add.* Brahmapur, Bhagabati Leikai. Imphal–795001. Manipur, Assam.

Sharma, S. Rangnath. Kṛṣṇayajurveda, Siromani (Sāhitya, Vyākaraṇa), Hindi Praveen, B.Ed. *b.* 09.10.1928. Director, Surbharti Vidyalaya. *Bks.* 02. Kavitāñjaliḥ, Sūkti-muktāvali. *Add.* 13, Indian Bank Colony Sillayur, Cheenai – 73. *Spl.Ref.* Honour Skt. Education Society Madras.

Sharma, S. Sriniwas. Sāhityaśiromaṇi, M.A., Ph.D. Kṛṣṇayajurveda. *b.* 15.09.1930. Rtd. HOD and Prof. *Bks.* 03. Śrīcandra-śekharendrasarasvatīvijayam, Kali-viḍambanam, Prakīrṇapadyapuṣpāñjaliḥ. *Add.* 337, Srivatsam Muthaianagar, Annamalli – 02. *Spl.Ref.* Veda, Literature, Manuscriptology, Title of Sāhitya Bhushan, Sahitivallabh, Skt. Sewadhurin.

Sharma, Sandeep. Shastri, M.A.. *b.* 08.02.1982, Kurukshtra. Teacher, Govt. Middle School, Jalkheri. *Guru Parampara.* Shri Atma Prakash Mishra. *Add.* Shri Satya Prakash, N.P.O. Babain. *Ph.* (01744) 280777, 9416135743.

Sharma, Saroj. M.A. (Hindi & Sanskrit), M.Ed. *b.* 05.08.1941. Hathras (U.P.). Asst. Prof. in Education. *Bks.* 02. Tulasī Kṛta Gītāvalī kā Bhāṣā Śāstrīya Adhyayana, Śikṣā Avaṃ Bhāratīya Samāja. *Ps.* 13. *Add.* 18–C, Govindpuri–A, Hawa Sadak, Bais Godam, Jaipur, RJ.

Sharma, Satish Chandra. M.A. Ph.D. *b.*01.01.1952. Pehowa, HR. Asst. Prof. *Bks.* 01. Pātañjala Yoga Darśana. *Add.* S. Haryana Sanskrit Vidyapeeth, Baghrla, Palwal, Faridabad, HR.

Sharma, Satya Narayan. Acharya in Sāhitya. *b.*26.06.1961, Ghanoli, Savai Madhopur. Principal, Prof., Sanskrit College, Manoharpura, Jaipur, RJ. *Gp.* Dr. Vaikuntha-natha Shastri. *Sp.* Chandramohan, Ramprasad. *Bks.* 04. *Ps.* 08. *Add.* Sanskrit College, Manoharpur, Jaipur. *Spl.Ref.* Trainer of Spoken Sanskrit, writter of Sanskrit poetry, songs.

Sharma, Satya Narayanan R. M.A. M.Phil. Ph.D. *b.*24.08.1969. Sulameni, Uthukkottai, Tiruvallur. Researcher, Ecole Francaise D' Extreme Orient (EFEO). Pondicherry. *Gp.*. Pullel Mahadeva Sastri, Goda Subrahmanya Sastri, K.V. Seshadrinatha Sasti, N.V. Deviprasada Sastri. *Bks.* 02. *Ps.* 06. *Add.* 19, Dumas Street. Post Box 151. Pondicherry–605 001.

Sharma, Savitridevi. M.A. (Skt. Hindi) Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya, Purāṇa), Ph.D., Hindi Sāhitya Visharat, Hindi Sāhitya Ratna. *b.* 15.04.1930. *Bks.* 02. Saṃskṛtakāvyāñjaliḥ,

Saṃskṛtagītāñjaliḥ. *Add.* 10. Kelabhag, Savitri Sadan, Barelli – 03. U.P.

Sharma, Seeta Ram. Acharya (Sāhitya, Vyākaraṇa), Shiksha Shastri, M.A. *b.*04.06.1964, Bandediya, Savai Madhopur (RJ). Asst. Prof., Rajkiya Shri Dhuleshvar Acharya Sanskrit Mahavidyalaya, Manoharpur, Jaipur. *Ps.* 02. *Add.* Vaishnav Sadan, 'Choru Mod' Pawer House Road, Chouth ka Barvada, Tahsil – Chouth ka Barvada, Savai Madhopuram (RJ).

Sharma, Seshachala. Alaṅkāraa Sastra, Vyākaraṇa sastra & Prachina Nyāya Vidwan, Kannad Pandit, Rastabhasha Visharad. *b.* 13.08.1930. Alalaghatta. Asst. Prof. *Bks.* 14. Mūkapañcaśatīkāvyam, Sidhāntakalpa-vallī, Garbhopaniṣat, Yajurveda-bhāṣyam. *Ps.* 04. *Add.* Vedamatha, 779/855, 8th Cross, IInd Phase, Giri Nagar, Bangalore – 560085. *Spl.Ref.* Title of Kannad Pandit Hindi Visharad, President Awardee – 2006.

Sharma, Sev Ram. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.* 11.07.1931. Saharanpur, U.P. HOD Sanskrit. *Gp.* Sundar Lal Sharma, Brahmadev Sharma, Dr. K.L. Sharma, Dr. Nirupan VidhyAlaṅkāra, Dr. Dharmendra Nath Shastri. *Ps.* 03. *Add.* B.S.M. P.G. College, Roorkee U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Shakti Kumar. M.A., Āyurveda Ratna, Ph.D.. *b.* 06.06.1953, Sawai Madhopur. Asct. Prof., Sāhitya Sansthanam (I.R.S.). *Gp.* Dr. Shrikrishna Ojha, Dr. Shivsagar Tripathi, Dr. Gangadhar Bhatt, Dr. Hariram Acharya. *Sp.* Ansuiya Gil, Mahesh Ameta, Pankaj Marmat, Teena Siyal, Anuradha Bhatnagar, Anil Tiwari, Mamta Prajapati, Rajnish Sharma. *Bks.* 15. Nārāyaṇa Vilāsa (Vol. – I), Bhāratīya Itihāsa ke Jain Srota, Yuga Yugīna Cittauda, Saṃskṛta Vyākaraṇa, Kāraka Darśanam. *Ps.* 05. *Add.* 4/122-123, Nidam, Rajasthan Avasana Mandal Colony, Goverdhan Vilas, Udayapura (Raj.)– 313002. *Ph.* (0294) 2641083, 2421964, 9351687023. *Spl. Ref.* Maharishi Khadag Nath Mishra Puruskar, Sanskrit Sevi Samman, 6th International Jain Sangoshthi Prashastipatra.

Sharma, Sharda. M.A. Ph.D. *b.* 07.05.1954. Allahabad. R.A. *Bks.* 02. Bṛhaspatī Sūktoṃ kā Adhyayan, Vadic Rutuals & Karma-kāṇḍa. *Ps.* 02. *Add.* J.P. 97, Maurya Enclave, Pitampura, Delhi–110034.

Sharma, Shashidhar. Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya, Purāṇa, Sāṅkya Yoga, Vedānta), M.A. (Sanskrit, Hindi), D.Litt. *b.* 14.09.1932. *Bks.* 03. Bhuvaneśīstavaḥ, Vīrataraṅgiṇī, Mallimarandaḥ. *Add.* Sri Sāhitya Sudha Sadnam. 349 Milk Colony, Dhanas, Chandigarh– 14. *Spl.Ref.* M.M. President Awardee.

Sharma, Shivani. M.A., M.Phill., Ph.D.. *b.* 02.02.1978. Principal, Shri Baba Hariduttgiri Sanskrit Mahavidyalaya, Dashnami Akhada, Sarhind, Punjab – 140406. *Bks.* 01. Kāvya Mañjarī. *Ps.* 10. *Add.* Patralaya, dhadharatha– Jind Hariyana – 126110. *Ph.* (01686) 251042. *Spl. Ref.* Received "Vishvakavi Sansad" Upadhi.

Sharma, Shri Krishna. M.A., Acharya, M.Phil., Ph.D., C.C. French. *b* 20.11.1954. Deoban, Kaithal, HR. Prof., Kurukshetra Univ., Kurukshetra, HR. *Bks.* 12. Ācārya Āpiśāli kī Kṛtiyon kā Samīkṣātmaka Adhyayana, Akṣaratantram, Śāradāmaṇi-līlācaritam, Triveṇī, Harivaṃśa-padānukramakośaḥ. *Ps.* 34. *Add.* 848-B, Professor Colony (west), Near Azad Nagar, Kurukshetra-136119. HR.

Sharma, Shri Krishna. M.A., M.Phil., Ph.D., Acharya in Vyākaraṇa & Nyāya. *b.*06.05.1952. Kishorpura (RJ). Prof. University, Jodhpur, RJ. *Bks.* 11. Vṛtti- Mīmāṃsā. *Ps.* 120. *Add.* V.C. Sector–2, Univ. Staff Colony, Jodhpur– 342011, RJ.

Sharma, Shri Ram. Sāhityaratna. *b.* 04.03.1957. Principal. *Gp.* Dr. Ramchaitanya Shastri, Dr. Dhanaraj Sharma. *Ps.* 03. *Add.* Shri Brahman Sanskrit Mahavidyalaya, Ramraya, Jind (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Som Datt. Achrya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.*15.03.1923, Saharanpur, U.P. Rtd. Asst.Prof. *Gp.* Purushottam Jha. *Ps.* 05. *Add.* Shri Sanatan Sanskrit College, Saharanpur U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Som Dev. M.A., Acharya in Sāhitya, B.Ed. *b.* 15.10.1929. T.G.T., Nutana Marathi Senior Secondary School, Pahar Ganj, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 324 A/25, Tri Nagar, Delhi.

Sharma, Som Prakash. M.A., Shastri. *b.* 15.01.1929, Manglur, Saharanpur, U.P. *Gp.* Sundar Lal Shastri. *Ps.* 02. *Add.* House No. 114, Patharonvali Gali, Roorkee, U.K. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Sharma, Somnath Das. Acharya in Sāhitya, DharamŚāstra, Purāṇa, āgama. *b.* 01.09.1922, Karada, Cuttack, Orrissa. *Gp.* Pt. Gangadhar Tripathi, Pt. Somnath Mahapatra, Navkishore Shastri, Haldhar Satpathi, Udaynath Das, Jagannath Shastri. *Add.* Awakash Lane, Gundicha Mandir, Puri Orissa. *Spl.Ref.* Sāhitya DharamŚāstra, Purāṇa & Veda.

Sharma, Sri Nivasa. M.A., Ph.D. *b.* 15.09.1930. Chidambaram. Asct. Prof. Annamalai Univ. *Bks.* 06. Urttamaṇīmālā, Kalīviḍambanam, Saṃskṛta Nātaka Ilākkīyā Vārālarū, Jagadgurū Śrīcanara Sekharendra Sārasyatī Vijaya-kāvyam, Stotra works of Śriśaṅkara-bhagavadpada. *Ps.* 155. *Add.* 337, Muthiah Nagar, Annamalai Nagar, Chidambaram, South Arcor, TN.

Sharma, Sthanu Dutt. Shastri, M.A., M.O.L. *b.* 1903, Kurukshetra, HR. *Gp.* Pt. Sitaram Shastri, Dr. Laxman Swaroop. *Add.* Chotala Mohalla, Kurukshetra HR. *Spl.Ref.* Veda, Vyākaraṇa & Sāhitya.

Sharma, Sudarshan Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 20.12.1935. Rtd. Principal, MR Govt. Mahavidyalaya, Punjab. *Bks.* 02. Śrīguru-nānakacaritam, Vikrāntacandraśekharam. *Ps.* 50. *Add.* HIG Block, 61-B-3, Sector VI, Parvanu, Punjab – 20.

Sharma, Sudesh Kumar. Acharya (Falita & Siddhānta Jyotiṣa), M.Ed., Vidyarasidhi. *b.* 15.06.1960. Birpur, Jammu. Prof., R.Sk.S., Jaipur Campus, RJ. *Gp.* Dr. Bihari Lal Shastri, Prof. Ramchandra Pandey, Prof. Shukdev Chaturvedi. *Sp.* Dr. Satish Kapur, Dhananjaya Mishra. *Bks.* 06. Prauḍhaśikṣā, Śaikṣika-pravidhiśāstram, Yantraprabodhinī. *Ps.* 20. *Add.* 38, Pushpanjali Colony, Mahesh Nagar Vistar, Jaipur–302015 (RJ).

Sharma, Sunder V. Sāhitya Siromani, BOL. *b.* 02.11.1923. Chituroopatan, A.P. Research Asstt., Sanskrit Academy Hyderabad. *Bks.* 08. Devīśatakam, Śambhuśatakam, Vāgdevī-śatakam, Chāyāpatiśatakam. *Add.* 52 shivpuri, Kapra, Hyderabad – 62. *Spl.Ref.* Sāhitya Academy Award, Sāhitya Ratan.

Sharma, Sunita. M.A., Ph.D.. *b.* 05.10.1964, Jaipur, Asst. Prof., Maharani's College, Rajasthan, Univ. Jaipur. *Bks.* 02. Smṛtiyon ke sāvana. *Add.* S – 49 – 50, Janta Colony, Jaipur – 302004. *Ph.* 2613687, 9828567766. AIR, Jaipur. Honor from Sāhitya Acadmy, Udaipur.

Sharma, Surendra kumar Shastri. *b.* 21.12.1944, Hira Nagar, J&K. Rtd. Asst. Prof., Shri Ranveer Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, Jammu. *Bks.* Śrī Rāmadeva Cirañjīva Bha--ācārya-viracitāyāḥ Vidvanmodataraṅ-giṇyāḥ Samālocanāt-makam Samīkṣātmakam Adhyayanam. *Add.* 5, Panchatantra Marg, jammu J&K. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Surendra Kumar. Acharya. *b.* 25.12.1947, Dausa (Raj.). Principal (Rt.). *Gp.* Pt. Dayanand Ji Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Shri Nilyanam, A – 277, Mahesh Nagar, Jaipur, (Raj.). *Pin.* – 302015. *Ph.* (0141) 2501613, 9887852472. *Spl. Ref.* Mauritius as a member of Sanskrit evam Sanskriti Sadbhava Mandal.

Sharma, Surendra Kumar. M.A., M.Phil. *b.* 17.12.1959. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 77-A, Kamla Nagar, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Surendra Kumar. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 11.07.1956, Madarpur, Muradabad, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Asharam Upaddhyay, Padmanarayan Tripathi, Harinarayan Dixit. *Ps.* 03. *Add.* Sanskrit College, Kashipur U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Suresh Chandra. Acharya in Prachīna Vyākaraṇa, M.A. (Skt., Hindi). Vidhya Bhaskar

Sāhityaratna. *b.* 20.09.1949. Dadri, G.B. Nagar, (U.P.). Lect. (Rt.). Govt. College, Gurgaon. *Add.* 951/7 ext. U.E., Gurgaon – 122001. *Ph.* (0124) 2251718.

Sharma, Sushma. M.A., Sangeet Parangat, Sangeet Visharad, NET (Music). *b.26.05.1983* Lucknow. Project Fellow RSKS, New Delhi. *Gp.* -Prof. A.K.Kalia, Prof. B.K. Shukla(Skt.),Pt. Dharmanand Sastri, Dr. Ramakant Pandey, Pt. V.Rao.(Gharana Edu. In music). *Ps.*09.*Spl.Ref.* Sangeet, Sāhitya.

Sharma, Svayambhu Narayan. M.A. *b.*05.01.1947, Lakshmanpur, Kashipur, U.P. Principal. *Gp.* Laxminarayan Mishra. *Ps.* 02. *Add.* 75, Hazrat Ganj, Lucknow, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Swayam Prakash. *b.*1917. Hoshiyarpur, Punjab. *Bks.* 02. Śrī-Bhagatasiṃha-Carītam, Indrayakṣīya-Kāvyam. *Expired in* 1983.

Sharma, Swayam Prakash. M.A., Acharya, (Jyotiṣa & Vyākaraṇa). *b.* 21.03.1917. Hosiyarpur, PB. Ministry of Defence *Bks.* 04. Indrayakśīyakāvyam, Amṛtamanthanam, Śrībhakatasinghacaritam, Japjiśatakam. *Add.* T/26/5, Rudki Road, Meerut Cantt. U.P. *Spl.Ref.* Ganganath Jha Puraskar, Geeta Puraskar, Honour from Haryana and U.P. Govt.

Sharma, Takhelchangbam Amusana. Shastri (Vyākaraṇa/Shiksha), Sāhitya- Sudhakar. *b.*03.11.1946. Asst. Prof. Manipur Sanskrit College, Imphal. *Bks.* 03. Dr. Hedagevār, ṚgVeda Gī Puruṣa Sūktam, Daśa Karma Saṃskāra Amasunga Dīkṣā Paddhatī. *Ps.* 03. *Add.* Singjamei Wangma, Pebiya Pandit Leikai, Singjamei, Imphal.

Sharma, Tangirala Bala Gangadhara. Sangtrivedacharya, DharamŚāstraabhigya, Vedanidhi, Veda bhashaya Visharad Nyāya Śāstra Alaṅkāra. *b.* 17.04.1922. Principal Sarvaraya Veda Pathshala East Godawari. AP. *Spl.Ref.* Ṛghveda, Kṛṣṇayajurveda, Atharvaveda, Honour by the title of Vedacharya and Ved Ratna, Honourary Doctorate and MM Title from USA and Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha, Tirupathi, President Awardee.

Sharma, Tara Chandra. Sāhitya, Acharya, M.A.. *b.* 01.05.05, Geong – Kaithal. Asst. Prof., Swami Chaitanya Bharati Sanskrit College, Krishna Dham. *Gp.* Shri Balkrishna. *Sp.* Azad Singh. *Add.* H.No. 1688/5, Jyoti Nagar, KKR. *Ph.* 9813155664.

Sharma, Tara Shankar Pandey. Acharya in Sahitya, Ph.D. *b.*05.08.1957, Jaipur (RJ). HOD. Of Sāhitya-Sankhaya, Jagadguru Ramanand Acharya RJ Sanskrit University. *Bks.* 17. Vṛttaratnākara(ed.), Tippaṇī on Padmīnī, Tippaṇī on Patradūtam, Svatantrasahayogīnaḥ, Saṃskṛtanātyapranetā – Pt. Harijeevanmishraḥ. *Ps.* 06. *Add.* H.No. 2381, Pandey Bhawan, Khajane Walon ka Rasta, Jaipur.

Sharma, Tribhuvan Kant. M.A., M.Ed., Sāhityacharya. *b.*01.06.1946. RJ. Prof. R.Sk.S. Jaipur Campus. *Bks.* 05. Raṇavīra Jyotirmahānibandha, Voetional Anxiety of Sanskrit Teacher, Śṛṅgāra Hārāvalī. *Add.* 61 – A, Bank Colony, Mahesh Nagar Ext. – B, Jaipur–302015, RJ.

Sharma, Uma Shankar Rishi. Sāhityacharya, M.A., D.Litt. *b.* 10.12.1938, Gaya (Arwal), Bihar. (Rt.) Prof. & HOD, Patna University. *Gp.* Dr. Satkari Mukerjee. *Bks.* 08. (06 Tr.). Saṃskṛta Sāhitya kā itihāsa, Saṃskṛta Vyākaraṇa meṃ Kārakatattvānuśīlan, Ṛgveda Samhitā, Sarvadarśana Saṅgraham, Nirukta of Yāska. *Ps.* 20. *Add.* Samsiddhi, V-33, Vidyapuri, P.O. Lohianagar (Kankarbagh), Patna. *Pin.* 800020. *Ph.* 09430212570. *Spl. Ref.* Gold Medals in M.A. & Workshops of NCERT.Kyoto & Hirosima, President Awardee.

Sharma, Umakant Dev. Shastri, Tarkatīrtha, Vyākaraṇa tīrtha. *b.*16.12.1944, Kaithal Kuchi, Nalbari, Assam. Teacher. *Gp.* Pt. Mahendra Shastri, Kali Kanta Shastri, Gosvami Manoranjana Shastri, Bisvabandhu Nyāyacharya. *Bks.* 10. *Add.* Assam Sanskrit Mahavidyalaya, Jalukbari, Guwahati (Assam). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Tarkasastra.

Sharma, Umesh. M.A. *b.* 19.08.1962. Teacher, Bala Bhavan Public School, Laksmi Nagar, Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 622, Ganesha Nagar, Shakarpur, Delhi–110092. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Usha Devi. M.A. L.T. *b.* 29.04.1940. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School No. 2, Najaf Garh, Delhi. *Ps.* 02. *Add.* A-116, Shankar Garden, New Delhi–110018. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Usha Rani. M.A., M.Ed. *b.* 13.03.1946. Teacher, Central School, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 3/595, Mehrauli, New Delhi – 110030. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Usha. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D.. *b.* 09.06.1950, Varanasi, (U.P.). Asst. Prof., Deptt. of Sanskrit, Banaras Hindu University, Varanasi. *Gp.* Dr. Virendrakumara Varma, Dr. Gopalachandra Mishra, Dr. Mahapradhulal Gosvami. *Ps.* 05. *Add.* 51/1, Kabir Nagar, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, V. Muralidhara. M.A., M.Sc., B.Ed., M.Ed.. *b.* 15.06.1960, Sicanderabad (A.P.), Professor, Rashtriya Skt. Vidyapeetha, Tirupati. *Gp.* Amaravadi Krishnamacharya, Sri Samudrala Srinivasacharya, Y. Ananda Rao, Peri Suryanarayana Shastri. Prof. Shridhar Vashishtha. *Bks.* 05. Uṇādikośa, Saṃskṛta Śikṣaṇa Samasyā, Saṃskṛta Vijñana-bhavanam(Part-I, II), Teaching Skills. *Add.* Flat No. 201, Venkata Sai Enclave, Chennareddy Colony, Tirupati- 517507.(A.P) *Spl.Ref.* Visit Russia to conduct an International Seminar on scientific views of ancient India & modern scientific knowledge sponsored by dept. of Science & Technology. Govt. of India on October 24, 2004.

Sharma, V. Shrinivasa. M.A., M.Phil., Ph.D.(Sanskrit), M.A., Ph.D. (Telugu), Ph.Dip. *b.* 10.12.1963. Gatlamallepally. *Bks.* 04. Saṃskṛtamārgopadeśikā, Vemabhūpāla-caritagarimā, Abhinava Tīrtha Yaśobhūśaṇam, Chandomañjarī, Saṃskṛtāndhravyutpttīkoṣaḥ. *Ps.* 23. *Add.* 09-08-49, Maruti Nagar, Opp. Santosh Nagar, Hydarabad–500059.

Sharma, Vachaspati Maudgalya. Acharya in Sāhitya, B.Ed., M.A. *b.* 07.01.1950. Teacher, Ramaratna Amirchandra Gita Co-Education Higher Secondary School, Shankar Nagar, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 9/306, Sector-3, Rajendra Nagar, Sahibabad, Ghaziabad- 201005 U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Vasant Lal. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 11.11.1913, Alampura, Jhunjhunu, RJ. Rtd. Asst.Prof., Birla Arts College, Pilani, Presently a journalist. *Bks.* Saṃskṛti Mālā (Hindi). *Add.* Near Police Station, Pilani-333031 RJ. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Vasudev Venkataraja. M.A., Vyākaraṇa MM. *b.* 11.07.1930. Tiruvanta-puram, Kerala. Honourary Prof. French Inst. of Pondicherry. *Spl.Ref.* Many of his students are working as Professor in different Universities in India, President Awardee.

Sharma, Vasudev. M.A. Acharya. *b.* 15.07.1929. Teacher, Marwari School, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* A- 84, Gujaranvala Town, Delhi- 110009. *Spl.Ref.* Acharya.

Sharma, Vasudev. Acharya in Phalita Jyotiṣa. Siddhānta Jyotiṣa. Ph.D. *b.* 08.11.1960. Hapud, U.P. Prof., R.Sk.S., Jaipur Campus, RJ. *Gp.* Pt. Yagyadutt Sharma, Pt. Krishnakant Sharma, Pt. Sankata Prasad Upadhyay, Prof. Shukdev Chaturvedi, Prof. Omkarnath Chaturvedi, Pt. Kalyandutt Sharma. *Sp.* Dr. Bhushan Sharma, Shubha Sharma, Dr. Manoj Shrimas. *Bks.* 05. Bhuvanadīpakam (Bhāyṣya), Bhāratīya Vedhaparamparāyaḥ Kramika Vikāsaḥ, Bhāratīya Vāstuśāstra Paricaya Pāthya-krama(Ed.). *Ps.* 38. *Add.* 120 – B, Krishna Vihar, Gopalpura Baipass, Jaipur–302018. RJ. *Spl.Ref.* Editor 'Yajñaśālā - Pañcāṅg' & 'Śrī Kṛśna Pañcāṅg'.

Sharma, Ved Prakash. M.A. (Hindi/Sanskrit), M.Ed., Diploma in Tamil History & Culture. *b.* 31.12.1961. Udhampur. *Ps.* 03. *Add.* Kendriya Vidyalaya No.- 2. Dhar Road, Udhampur, J&K.

Sharma, Ved Prakash. M.A. B.T. *b.* 13.07.1943. Teacher, Harcourt Butler Senior Secondary

School, Mandir Marg, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 3-E, Guest Housing Complex, B-3, Paschim Vihar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Ved Prakash. M.A., B.T. *b.* 15.10.1932. Teacher (P.G.T.), Govt. Senior Secondary School, Bakhtawarpur, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* B-50, Rajendra Babu Road, Adarsh Nagar, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Vedam Venkatraman. M.A. Sāhitya Vidhya Praveena. *b.* 07.07.1939, Nellore, A.P. Asst.Prof., Veda Sanskrit Kalashala, Singhpuri. *Gp.* D.Subbaram Shastri, P.Venkatkrishna Shastri. *Add.* 20/384, Panireddi Agraharam, Mulapet, Nellore, A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya & Veda.

Sharma, Vekuntbiharinand. Acharya, (Sāhitya, Mīmāṃsā, VishishtadwaitVedānta), Rashtra Bhasha Kohid. *b.* 27.11.1929. Katak, Orissa. Prof., Sadashiv Kenderiya Skt. Vidyapeetha, Puri. *Bks.* 01. Kīcakavadhakāvyam. *Spl.Ref.* Mīmāṃsā, President Awardee (2008).

Sharma, Velluri Subbarao. Rtd. Prof., Andhra Univ. *Bks.* 02. Sundarīmeghasandeśaḥ, Sundarītoṣiṇī (Comentary of Sundarī-meghasandeśaḥ)

Sharma, Vemuri Anjaneya. M.A., Ph.D. *b.* 19.12.1937. HOD. of Sanskrit. *Ps.* 05. *Add.* Shri Venkateshwer University, Tirupati A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Sharma, Venkat Raja. Mahamhopaddhyaya, M.A. *b.* 11.07.1930, Tiruvananthanpuram, Kerala. Research Associate. *Ps.* 05. *Add.* French Institute, Dumas Street, Pondicherry. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Sharma, Venktesh Shastri. Alaṅkāra Vidvān. *b.* 27.08.1920, Mattur, Shimoga. Teacher, Sakelespura Praudhashala, Hasan. *Gp.* Sankighatta Venkatacharya, Kalvela Keshav Shastri, Subrahamanyam Shastri, N. Krishnacharya. *Add.* No.10, Shatatara Tellam Colony, Timber Yard Lay Out, III Cross, Banglore, KT. *Spl.Ref.* Veda, Advaita-Vedānta, Alaṅkāra Śāstra.

Sharma, Vidhyabhushan Ramanand. Acharya in Āyurveda. *b.*01.05.1919, Lat, Bihar. Rtd. Vice-Principal. *Add.* Lat, Hulasganj, Jahanabad (Bihar). *Spl.Ref.* āyurveda.

Sharma, Vidyanath Acharya. Acharya in Purāṇa, Vyākaraṇa-shastri, Sāhitya-vidhya-pravin. *b.*12.11.1912. *Ps.* 03. *Add.* Gandhi Nagar, Berhampur, Ganjam, Orissa. *Spl.Ref.* Purāṇa, Sāhitya, Vyākaraṇa.

Sharma, Vijay Kumar. Acharya in Jyotiṣa. B.Ed. *b.* 31.10.1952, Bouli, RJ. *Ps.* 05. *Add.* Deptt. of Jyotiṣa, Maharaja Sanskrit College, Jaipur, RJ. *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Sharma, Vinod Kumar. Acharya (Jyotiṣa, NavyaVyākaraṇa), M.A., Ph.D.. *b.* 05.03.1968, Jaipur (Raj.). Asct. Prof. & Head. Jagadguru Ramanandacharya Rajasthan Sanskrit University, Jaipur. *Gp.* Pt. Rampal Sharma, Pt. Krishngopal Shastri. *Sp.* Dr. Kailash Chandra Sharma, Dr. Bhawani Shankar Sharma, Dr. Mahesh Sharma, Shri Anil Pratihasth, Prof. Shalini Saxena. *Bks.* 08. Vaidikasaṃhitāsu Jyotir Vijñānam, Vāstuvimarśa, Jyotirvijñānā-mṛtam, Yantramandira, Vedhaśālā Vaibhavam. *Ps.* 07. *Add.* Plot No. 19, Narayan Vihar, Opp. 30/118, Pratap Nagar, Sanganer, Dist. Jaipur, Rajasthan – 302030. *Ph.* (0141) 2792297, 09414350711.

Sharma, Vishnu Dutt. Acharya (Vyākaraṇa Sāhitya Darśana, Jyotiṣa), M.A. (Skt., Hindi), Sāhitya Ratan, Prabhakar, Ph.D. *b.* 05.06.1936, Meerut, U.P. HOD Deptt of Skt. NAS PG College. Merrut. *Gp.* Kuber Dutta Shastri, Brihmanand Shukla. *Bks.* 05. Gurunānakadevacaritam (Mahā-kāvyam), Śrīmatīindrāgāndhicaritam. *Add.* 110, Near Thana, Sadar Meerut U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana & Jyotiṣa, Alaṅkāra, Jyotiṣa Martant, UP Skt. Academy Honour.

Sharma, Vishwa Nath. Acharya, Ph.D. *b.*01.01.1940, U.P. HOD of Sanskrit. *Gp.* Dr. R. K. Acharya. *Ps.* 05. *Add.* S. R. K. College, Firozabad, Agra, U.P. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Sharma, Vishwa Nath. Vedānta Bhushan, Vedānta Shiromani. *b.*1911, Tripunittura, Kerala. *Gp.* B.A. Krishna Sharma, Acyuta

Potuval. ***Bks.*** Mādhavācārya, Bhāratīya Śāstra Darśana, Saṃskṛta Adhyāpanam. ***Add.*** Tamara Sadanam, Tripunittura Kerala. ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Sharma, Vitthal Dev Muni Sunder. R.A. Usmaniya Univ., Hydarabad. ***Bks.*** 05. Śrīnivāsaśatakam, Devīśatakam, Vīrāñjaneyaśatakam, Chāyāpatiśatakam, Śambhuśatakam (1983).

Sharma, Vrij Mohan. Acharya in Sāhitya, B.Ed. ***b.***15.02.1933, Alwar, RJ. Asst. Prof. ***Gp.*** Krishna Dutt Shastri. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Malakhera, Outside Darwaza, Meru Chabutara, Alwar, RJ. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sharma, Y. Subhramanyam. ***b.***1890, Banglore. ***Bks.*** 01. Mūlavidyānirāsaḥ (Śrī Śaṅkara-hṛdayam). ***Expired in*** 1930.

Sharma, Yash Paul. M.A., B.Ed., M.Ed. ***b.***01.01.1972, Jammu. Teacher. ***Ps.*** 03. ***Add.*** R/o Ghari Bishana, Tourian, Akhnoor, Jammu – 181202 (J&K).

Sharmopadhyay, Devdutt. Acharya Teerth, M.A., Ph.D. HoD., Govt. Sanskrit College, Varansi, U.P. ***Bks.*** 01. Tattvapariśuddhi (Comm.). ***Spl.Ref.*** 'Mīmaṃsā'-'Bhāṣhya' in Hindi. Prepared Cataloge of Manuscripts - 3000 at Saraswati Bhandar of Sanskrit College, Varansi with Dr. Mangaldev ji.

Shashirekha, P. M.A., Ph.D. ***b.***16.01.1952. Nizamabad (A.P.). ***Bks.*** 02. Ancient Indian Administration, Kautilya Penal Code. ***Ps.*** 18. ***Add.*** 307, Manohar Apartments, Vidya Nagar, Hyderabad–500044. (A.P.)

Shastri, Ambrish Kumar. Acharya, Ph.D.. ***b.*** 01.09.1967, Barabanki (U.P.). Asct. Prof. Jawahar Lal Nehru P. G. college. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Acharya Sadan, Azad Nagar, Barabanki – 225001. ***M.***9956182378.

Shastri, Amir Chand. ***b.*** 1918. Ahmedpurasyal, Punjab. Prof. in LBS Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha. ***Bks.*** 01. Gītakādambarī ***Spl. Ref.*** Poet, President Awardee.

Shastri, Amiya Chandra 'Sudhendu'. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. ***b.***07.01.1945. Tulagarhi, Rajagarhi, Mathura, U.P. Asst.Prof. Hindu Inter College, Mathura. ***Bks.*** 07. Śrī Paraśurāma-Vijayaśatakam, Buddha-carītam, Śivarāja-Vijayam, Halant-Prakraraṇam, Pāṇinīya-Śikṣā (Ed.). ***Add.*** Manikutiram Baipass, Kosikalan, Mathura. ***Spl.Ref.*** KāvyaŚāstra.

Shastri, Amrit Lal. M.A., Acharya in Sāhitya & Darśana. ***b.*** 07.07.1919, Vamrana, Jhansi U.P. Asst.Prof. Skt. Univ. Varanasi. ***Bks.*** 05. Varṇī Sūryaḥ, Gopāladaso Gurvekaiva, Dravyasaṅgraham, Candra-prabha-caritam.

Shastri, Ananthakrishnan Sivaramakrishna. Vidwan (Skt and Tamil), Rashtra Bhasha Praveen, Tradition in Yajurveda, Vedānta, DharamŚāstra. ***b.*** 03.10.1927. Tiruchirapalli, TN. Principal Shankarmath Vedapathshala TN. ***Bks.*** 06. ***Add.*** 66A, North Street, Thiruvanaikoil, Tirchirapalli – 05. TN. ***Spl.Ref.*** Yajurveda, Vednata, DharamŚāstra. Traditional Teaching, President Awardee.

Shastri, Anil Chandra Kailash Chandra. M.Phil. Ph.D. ***b.***25.09.1945. Asct. Prof., Uttar GJ University, Patan. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 15 Surabhi Tenament Hansapur, Unjha Road, Patan. ***Spl.Ref.*** Yoga.

Shastri, Arun Chandra Dev Shankar. Ph.D. ***b.***31.12.1931. Prof., M.T.B. Arts College Surat. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 20 Kadammba Palli Society, Nanpura, Surat. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Shastri, Ayodhyaprasad. M.A., Acharya (NavyaVyākaraṇa, Sāhitya), Hindi Sāhitya Ratna. Rtd. Lecturer, MG Inter College. ***Bks.*** 07. Ratnāvalīcaritam, Neharūdayam, Chandovaihavam. ***Add*** Acharya Kutir, Satynagar, Raibarelli, U.P.

Shastri, Badri Prasad 'Prapurna'. Acharya (Nyay/Vyākaraṇa/Vedānta). ***b.***1919. Khetri, Jhunjhuna, RJ. Peethadhyaksh(Vyakana), Jagadguru Ramanandacharya Rajastha Sanskrit Univ. ***Bks.*** 18. Śrīmañjunāthīyam, Mādhuryāṣ-kam, Prapattīpīyūṣārṇavaḥ, Śrījagadguru-Gauravam, Śrīrāmajanma. ***Spl. Ref.*** 'Magh Puruskar' awarded by RJ Sanskrit

Academy. Awarded by Governer of RJ. Sanskrit Ratnakar. Published his many Poems, Stories, Articles & Verses in 'Bhārtī' & 'Svaramaṅgalā' magazines.

Shastri, Badri Prasad. Acharya. *b.* 24.04.1919. Jhunjhunu, RJ. Chairman, Vyākaraṇa apeeth, JRR Skt. V.V. ***Bks.*** 15. ***Add.*** Vyākaraṇa apeeth, JRR Skt. VV. Jaipur – 26. RJ. ***Spl.Ref.*** Dwaitadwait, Vishishtadwait, KāvyaŚāstra, Vyākaraṇa a, Medha Puraskar by RJ Skt. Academy, President Awardee.

Shastri, Bal. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya, M.A. Ph.D.. *b.* 16.10.1954, Varanasi (U.P.). Asst. Prof., B.H.U., Varanasi. ***Gp.*** Acharya Guruprasad Shastri, Acharya Sitaram Shastri. ***Sp.*** Dr. P.N. Mishra. ***Bks.*** 11. Patañjali Mahābhāṣyam, Laghuśabdenduśekharaḥ, Tarksaṅgraha, Pañcatantram, Saṃskṛta Vāṅmaya kā Vṛhat Ithāsa. ***Ps.*** 05. ***Add.*** B 1/ 122, B – I, A – I, Dumraobag Colony, Assi, Varanasi – 221005. ***Ph.*** (0542) 2369765, 9415446968. ***Spl. Ref.*** Pt. Ambikadutt Vyas Puraskar by Rajasthan Sanskrit Academy.

Shastri, Baljit. Snātaka in Sanskrit. *b.* 31.10.1910. Bijnaur. District Information Officer, Meerut. ***Gp.*** Aryasamaj Tradition. ***Bks.*** 05. ***Spl.Ref.*** Sanskrit, Veda. An Eminent Scholar in Philosophy, Veda, Literature, Critics.

Shastri, Balveer Dutt. Acharya, (Sāhitya, āyurveda), BIMS, MAMS. *b.* 10.03.1930. Rtd. Prof., Director, Benda Ayurvedic Pharmacy, Faridabad. ***Bks.*** 06. Śrīdarśanānda Mahākāvyam, Hariścandramahākāvyam, Balidānakāvyam. ***Ps.*** 14. ***Add.*** Benda Ayurvedic Pharmacy, Faridabad, 1473/14 Faridabad, Haryana. ***Spl.Ref.*** Novel, Story, Drama Writer.

Shastri, Bhairavgiri Goswami. Kāvyatīrth, Sāṅkya Darśana Tirth, Ayurvedacharya. *b.* 1901. Saran, Bihar. Pracharya, Rajkiya Skt. Mahavidyala, Muzaffarpur. ***Bks.*** 02. Uttaranaiṣdhīyacaritam, Saryūśatakam Expired in 1974. ***Spl. Ref.*** āyurveda.

Shastri, Bhau. ***B.*** 18.09.1888. Varansi, U.P. ***Gp.*** Pt. Laxman Shastri. ***Bks.*** 03. Kāśītīhāsaḥ, *Expired on* 24.05.1953. ***Spl.Ref.*** Awarded by 'M.M.' & 'Pravachankesari'.

Shastri, Bhavani Dutt. M.A. *b.* 06.12.1911. Mandi, H.P. Rtd. Teacher, Govt. School H.P. ***Bks.*** 03. Himakusumāñjaliḥ, Himasumanoguccham, Vipāśālāsāḥ. ***Spl. Ref.*** Founder Sāhitya Sadan.

Shastri, Chajjuram. Shastri. *b.* Kurukshetra, Haryana. Rtd. Acharya, Sanathan Dharam Vidyalaya, Jindh. ***Bks.*** 03. Paraśurāmadigvijayam, Sultanacaritrakāvyam, Śivakāthāmṛtam Mahākāvyam. ***Spl.Ref.*** TarkŚāstra, Poet, Vidyasagar Title by Jagatguru Sankaracharya.

Shastri, Chamu Krishna. Shastri. *b.* 23.01.1956, Kedila, Bantwal Taluk, KT. Gen. Secretary, Skt. Bharti, New Delhi. ***Bks.*** 05. Saṅkramaṇam, jñāne Dharmaḥ Uta Prayoge, Parivartanam, Pariṣkāraḥ, Uttiṣ-hta, Māsvapta. ***Add.*** Skt. Bharti, Mata Mandir Gali, Jhandewala, New Delhi. 110055. Krishnashastry@hotmail.com. ***Spl.Ref.*** Full Time Volunteer for Sanskrit.

Shastri, Chhajju Ram. ***B.*** 1905. Hariyana. Asst.Prof. Kurukshetra. ***Bks.*** 02. Paraśurāma-Digvijaya, Śivakathāmṛtam.

Shastri, Chinna Swami. Kṛṣṇayajurveda, Vyākaraṇa-Dharma-KāvyaŚāstra, Mīmāṃsā. *b.* 1889. Mandakonnatur, North Aarkat, Chennai. Principal & Prof., Shri Venketashwar Oriental Sanskrit College, Tirupati. ***Gp.*** Shri Appaswami Shastri, Pt. Venkatraman Shastri, M.M. Pt. Kuppuswami Shastri, M.M. Pt. chandrashekhar Shastri, M.M. Pt. Venkat Subba. ***Sp.*** Swami Gangeshwaranand, Swami Bhagvatanand, Pt. Brahmdutt Jigyasu, Pt. Pattabhiram Shastri, Pt. Subrahmanya Shastri, Pt. Ramnath Dixit etc. ***Bks.*** 14. Sāravivecanī-Tīkā, Tantrasiddhānta-Ratnāvalī, Vaidika-Yajña-mīmāṃsā, Yajñatattva-Prakāśa, Tāṇḍyabrāhmaṇa. ***Spl.Ref.*** He was Chairman of Devabhashaparishad between 1936 to 1948 & Member of Education board of A.P & Lucknow. 'M.M.' awarded by British Government & 'Śāstraratnakar' degree awarded by Jagadguru Shankaracharya of Kanchikamkoti, Peethadhishwar in 1942.

Shastri, Damodar. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 15.11.1942. Chirawa, RJ. Prof., Jain Vishva Bharati, Ladnun, RJ. ***Bks.*** 10. Bhāratīya-Darśana-Paramparāyam Jaina Darśanābhimatam, Deva-Tattvam. ***Ps.*** 60. ***Add.*** H.No.-614, Jhankar Gali, Chirag, New Delhi–110017. ***Spl. Ref.*** M.M. Awardee.

Shastri, Devaki Nandan. Acharya (Vyākaraṇa/ Darśana). ***B.*** 1909. Jaipur, RJ. Asst.Prof. & Principal, Sanskrit College, Bharatpur, RJ. & Maharaja Sanskrit College, Jaipur. ***Bks.*** 02. Rāṣ-rabhaktapañcakam, Pañcadeva-stutiḥ. ***Expired in*** 1999. ***Spl.Ref.*** Poet, Writer, Fridom Fighter.

Shastri, Devarshi Kalanath. Acharya in Sāhitya, M.A. in Eng. ***b.*** 15.07.1936. Jaipur, Rajasthan. Chair person, Jagadguru Ramanandacharya Rajasthan Sanskrit University. ***Gp.*** M.M. Giridhar Sharma Chaturvedi, Bhatt Mathuranath Shastri, Pt. Pattabhiram Shastri. ***Bks.*** 42. Saṃskṛta Sāhitya kā Itihāsa, Saṃskṛta Kavitā Vallarī, Ākhyānavallarī, Saṃskṛta Nā-yavallarī, Saṃskṛta ke Gaurav Śikhar. ***Ps.*** 100. ***Add.*** Manju Nikunja, C/8 Prithvi Raj Road, C – Scheme, Jaipur, Rajasthan. ***Pin.*** – 302001. ***Ph.*** (0141) 2376008. kalanathshastry-@gmail.com. ***Spl.Ref.*** SāhityaŚāstra, President Awardee 1998, Sāhitya Academy 2004.Chief Editor Bharti Patrika.

Shastri, Dhansukh V. Ph.D. ***b.*** 02.11.1936. Prof., M.V. Mahila College Rajkot. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 102 Sagar Appartment 10 Manhar Plot Rajkot. ***Spl.Ref.*** Vedānta & Bhasha Vigyan.

Shastri, Dharamveer Kumar. Hindi Prabhakar, Sāhitya Ratna, Sāhitya Acharya, M.A. (Hindi, Skt.), B.Ed., Vidyanidhi. ***b.*** Bijnor, U.P. Lect., Salwan Higher School. ***Bks.*** 04. Maharṣimālyā-rpaṇam, Subhāṣacaritam, Vividhā. ***Add.*** B1/ 51, Paschim Vihar, New Delhi – 63. ***Spl.Ref.*** Vedic Vidwat Purskar 1995, Sanskrit Sāhitya Sewa Samman 1998-99.

Shastri, Dharma Chandra. Acharya in Jyotiṣaa. ***b.*** 13.12.1951, Sagar, M.P. ***Bks.*** 01. Acārya Śrī Dharmasāgarajī Maharāj kā Abinandana Gran-ha. ***Spl.Ref.*** Founder of Manav Shakti Pratishthan.

Shastri, Durga Dutt. Shastri. ***b.*** 28.08.1917. Naleti Kangra, H.P. ***Bks.*** 07. Prājñyamanoramā, Tarjanī, Madhu-varṣaṇam, Viyogavallarī, Bṛhatsaptpadī. ***Add.*** Naleti Distt. Dehra Gopipur, Kangra 177104 H.P. ***Spl.Ref.*** Prājñyamanoramā is commentary on Nyāyasiddhānt-muktāvalī. Pub. In Lahore, 1902, President Awardee 1990, National Unity Award or Banabhatta Puraskar, Poet & Writer.

Shastri, Dwarika Prasad. Shastri, M.A., Dharmaratna. ***b.*** 15.05.1930. Budanpur, Raibarelly, U.P. ***Bks.*** 12. Siddheśvarī-Vaibhavam. ***Spl.Ref.*** 'Maulik-Sunskrit- Rachana-Puruskar'.

Shastri, Dwarka Prasad. ***b.*** 15.05.1930. Raibarelli, U.P. ***Bks.*** 01. Rāmam Vende Jagatprabhum. ***Add.*** 475/1 Vrindavan, Shahtola, Raibarelli – 01. U.P. ***Spl.Ref.*** After Diksha He his known has Brahamchari Durgesh Swaroop Vanprashti.

Shastri, Dwijendra Nath. ***b.*** 1892. U.P. ***Bks.*** 01. Svarājyavijayamahākāvya. ***Expired in*** 1963.

Shastri, G. Anjaneya. M.A. (Nyāya Vidya Praveena, Darśana). POL,Vidyavaridhi. ***b.*** 15.08.1955. Asst. Prof., Banaras Hindu University, Varanasi. ***Gp.*** M.M. Manikya Shastri, Shri N.P. Pattabhirama Shastri, Shri S. Subramanya Shastry & D. Prabhakara Sharma. ***Sp. Bks.*** 05. Vyutpattivāda Rāmarudrīyam, Pañcalakṣaṇī Śatako-i, Mādhurīgadā- dharyormatabhedavimarśaḥ, Samāsakusumāvalī, Tarkāmṛtam with own Māṇikyaprabhā commentary. ***Ps.*** 40. ***Add.*** H.No. B5/295, Hanuman Ghat, Varanasi – 221002. ***Spl.Ref.*** Darśana, Veda,Arsh Vidya Bhushan, Sastra Vidwan Mani.

Shastri, G. Anjaneya. M.A. in Darśana, Nyāya Vidya Praveena, Ph.D. POL. ***b.*** 15.08.1955. Prof. B.H.U. Varanasi. ***Bks.*** 05. Vyutpattivāda Rāmarudrīyam, Pañcalakṣanī Satakoti, Māthurīgada Dharyor-matabheda-vimarśaḥ, Samāsakusumāvalī, Tarkāmṛtam with own

Maṇikya Prabhā commentary. ***Ps.*** 40. ***Add.*** H.No. B5/295, Hanuman Ghat, Varanasi – 221002. ***Spl.Ref.*** Awarded by Pushpagiri Peetham as 'Arshavidyabhushan' and by T.T.D. as 'Satravidvanmani'

Shastri, G.R. Ramachandra. Kṛṣṇa-yajurveda, Mīmāṃsā, NyayVyākaraṇa tarka, Vyākaraṇa a Siromani. ***b.*** 20.06.1914. Gudluur, TN. Asthan Vidwan Sri Aadisankarancharya Samarak Viman Mandap. ***Bks.*** 10. Saṃskṛta Sāhitya kā Itihāsa, Rāgadevatādhyānamañjarī. ***Add.*** 43/A Kalyamram Veethi, Kumbhghonam, Tanjour - 01. TN. ***Spl.Ref.*** Veda, Vedānta, Vyākaraṇa a, Traditional Teaching, President Awardee.

Shastri, Ganga Datt. Acharya (Skt., Hindi), Ph.D. ***b.*** 29.09.1920. Jammu-Tawi. Ex-Director Skt. College Kullu ***Bks.*** 16. ***Ps.*** 130. ***Spl.Ref.*** Veda and Vedic Literature. About 200 Radio Talks from A.I.R. President Awardee.

Shastri, Ganga Dutt. Vyākaraṇa-Jyotiṣa-Darśana-Śāstra, Mahabhashya. ***b.*** 1866. Belon, Bulandshahar. Acharya. Gurukul College, Jabalapur, M.P. ***Gp.*** Pt. Udaiprakash, Pt. Kashinath Shastri, Pt. Harnamdutt Bhashyacharya. ***Bks.*** 01. Tattvaprakāśikā. ***Expired in*** 1933. ***Spl.Ref.*** Established Gurukul Gujranwala.

Shastri, Gaurchandra 'Ashok'. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D., Diploma - Russian Linguistics & Distance Education. ***B.*** 08.01.1954. Varanasi, U.P. Asst. Prpf. R.S.K.S. Sringeri. ***Bks.*** 12. ***Ps.*** 12. ***Add.*** Rajiv Gandhi Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Sringeri, KT.

Shastri, Govindrai Acharya. Mahroni, Jhansi U.P. Asst.Prof. Syadvad College, Varanasi U.P. ***Bks.*** 05. Jaina Dharma kī Sanātanatā, Gṛhiṇī Charyā, Bundelakhaṇda Gaurava, Ācāra Sūtra, Kurala Kāvya. ***Spl.Ref.*** M.M. Rashtrapati Award, honored by 'Vidhyabhooshan'.

Shastri, Gyan Prakash. ***b.*** 09.03.1951, Aligarh. Prof,. G.K.V.Haridwar. ***Bks.*** 23. Vaidika Nirvacana Koṣaḥ, Dayānanda Sandarbh Koṣaḥ, Ācārya Durga kī Niruktavṛtti, Paṇini Pratyayārth Koṣaḥ. ***Spl.Ref.*** Veda & Vyākaraṇa.

Shastri, Har Swaroop. M.A., B.Ed. ***b.*** 15.11.1943. Teacher. D.A.V. Higher Secondary School, Patel Nagar, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Near Shiv Mandir, Community Centre, Ranjit Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Shastri, Hari Das. Acharya in Śāṅkara Vedānta. ***b.*** 01.07.1944, Alandi, Pune, MH. Asst. Prof. ***Gp.*** Ramvilas Shukla, Acharya Mansharam. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Bavadeshwar Sanskrit School, Bavada, Porbandar Gujrat. ***Spl.Ref.*** Advaita Vedānta.

Shastri, Hari Gopal. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.01.1949, Meerut, U.P. Principal. ***Gp.*** Dr. Haridatt Shastri, Manasram Shastri. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Gurukul College, Jwalapur, Haridwar, U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa. Established Yogic Science & Pharmacy Departments in Gurukul Campus.

Shastri, Hari Sambasiva. Vyākaraṇa a Siromani, Bhasha Praveen, M.A., Traditional System in Tark Vyākaraṇa , Mimāṃsā, Advait Vedānta. ***b.*** 13.06.1918. Eepur, Tenalitaluka, Guntur. AP. Asthan Vidwan, Push Giri Mahasansthan, Kadappa, AP. ***Ps.*** 100. ***Spl.Ref.*** Vedic Sāhitya, Title of Vidya Ratna, Sarva Tantra Savatantra, Sāhitya Ratna. He has to his credit a publication. 'Bharati Nirukti (in 2 Vols) in Telugu. Besides, he has also translated 'Adishankaracharya's Prakarana Granthas, Advaita Makaranda and Bhagwadgita Shankaratabhashya, President Awardee.

Shastri, Harisingh. M.A., (Skt. Hindi, Philosophy), Ph.D. Sāhitya Ratna (Acharya, NavyaVyākaraṇa, PrachinVyākaraṇa.) ***b.*** 14.05.1951. Gurgaon, Haryana. MLN Mahavidyalaya Haryana. ***Bks.*** 04. Nimbārkā-vasthānam Kvyam. ***Ps.*** 40. ***Add.*** Sanskrit Vibhag, MLN Mahavidyalaya Yamuna Nagar, Haryana.

Shastri, Heramba Nath Chatterjee. M.A. (Skt, Pali, Bengali), PRS, Ph.D., D.Phil., D.Sc. ***b.*** 01.03.1925. Barisal. Prof. Govt. Skt. College, Kolkata. ***Bks.*** 20. ***Ps.*** 70. ***Spl.Ref.*** Pali and Skt. Visiting Prof. in Oxford Univ., Lect. in Budapest Univ., Germany, Japan, America, Thailand, Srilanka, President Awardee.

Shastri, Jagdish Chandra. Vyākaraṇa-Nyāya-Sāhitya-Śāstra. Pilani, HR. Principal, Teekmani Sanskrit College, Varansi, U.P. *Gp.* Pt. Ramdutta Shastri, Pt. Padma Prasad Bhattrai. *Sp.* Dr. Ramrang Sharma, Dr. Goprajuram. *Bks.* 03. Dhvani Prasthāna meṃ Ācārya Mammata kā Avadāna, Vimalāloka-Vyākhyāna, Saṃskṛtaratnākar (Ed.)

Shastri, Jagdishchandra. Shastri. *b.* 1925. Hissar, Haryana. *Bks.* 01. Śrīparaṣurā-mavijayaḥ. *Add.* 4 Lohia Colony, Begu Road, Sirsa, Haryana. *Spl.Ref.* Poet.

Shastri, Janaki Vallabh. Acharya in Vedānta, Sāhitya, Vyākaraṇa, Sāhityaratna. *b.*09.01. 1916, Gaya, Bihar. Asst.Prof. Patna University. *Gp.* Ramanugraha Sharma. *Bks.* 150. Kākalī, Bandījīvana, Bhāratī-Vasanta-Gītīḥ, Rādhālāsyam, Bhramaragānam. *Expired in* 2010. *Spl.Ref.* Contemporary Sanskrit poet, great writer of Sanskrit Gazal & Geet.

Shastri, Jivan Lal. *b.*04.04.1935, Vidvasan, Sagar. M.P. Principal. *Ps.* 05. *Add.* Shri Syadvad Skt. College, Lalitpur, U.P. *Spl.Ref.* Vedic Pandit.

Shastri, Jogesh. Vyākaraṇa & Navya-Nyāya-Shastri. *b.*31.01.1930. Buraburi. Rtd. Head Master. *Ps.* 05. *Add.* Bharati Sanskri Vidyalaya, Rangjuli, Goalpara, Assam.

Shastri, Kaladi H. Subrahmanya. Acharya in Sāhitya. Advaita Vedānta Siromani. *b.*09.09.1902, Kizhambur, TN. *Gp.* Krishna Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Kailash Nath Koil Road, Kancheepuram (TN). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Kaladi Purushottamarya Shankar. Sāhitya Vidvān, Mīmāṃsā. Vedabhasya-vidvat. *b.*24.11.1911, Kaladi, Kerala. Rtd. Teacher. *Gp.*. Rama Shastri, Krishnashastri, Narasimha Ghanapathi. *Add.* Shankar Muth, Shivganga, (TN). *Spl.Ref.* Vedānta Darśana & Veda.

Shastri, Kalanath 'Devarshi'. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.*15.07.1936. Jaipur, Rj. Director, RJ Sanskrit Academy, Jaipur. *Bks.* 24. Saṃskṛta-Nā-ya-Vallarī, Kathānakavallī, Sudhī-Janavṛttam, Saṃskṛta Sāhitya kā Itihāsa, Prabandha- Parijātaḥ. *Ps.* 56. *Add.* Manju Nikunja, C/8, Prithviraj Road, C – Scheme, Jaipur, RJ. *Spl.Ref.* President's Award in 1998, RJ Govt. Award in 1999, Sāhitya-Shiromani Award, Sāhitya Academy Award, Delhi in 2004, Delhi Sanskrit Academy Award in 1997. Researcher of Bangla, Telgu & Gujrati Scripts. Editor, 'Bhārtī' & 'Svaramaṅgalā' magazines.

Shastri, Kalikinkar Saptatirtha. Kāvya Vyākaraṇa Sāṅkyatīrtha. *b.*22.07.1915, Akana, Gobra, Medinipur, W.B. Sanskrit Teacher. *Gp.* M.M. Kalipada Tarkachary, Purnadas Saptatirtha, Charukrishna Darśanaacharya. *Ps.* 05. *Add.* Akana, Gobra, Midnapur (W.B.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Vyākaraṇa.

Shastri, Kamal Kumar 'Kumud'. Shastri. *b.*01.12.1904, Khurai, Sagar, M.P. *Bks.* 05. Bhatāmara Mahākāvya, Gommatasāra Pūjā, Jinasaharanāma Pūjā, Jinendra Iitañjali, Mahāvīraṣ-aka Stotra Padyanuvāda. *Expired in* 1999.

Shastri, Kamala Pati. Acharya. *b.*04.01.1957, Josyuda, Nainital, (U.P.). Vice Principal. *Gp.* Rajaram Sharma, Bachchuram Semaval, Jagadishasharan Sharma. *Ps.* 05. *Add.* Rishikul Vidyapeeth, Haridwar (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Kapil Dev. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 10.12.1927, Gorakhpur. U.P. *Gp.* Pt. Brahmadatta Jijnasu, Dr. Suryakanta, Yudhisthira Mimāṃsāka. *Bks.* Pāṇinigaṇa-pā-hasyādhyayanam, Vaidika Kṛṣi ek Parisilana. *Add.* Acharya Dayanandapeetham, Kurukshetra University, Kurukshetra (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Karnadev Arya. Acharya in Sāhitya, M.A., B.Ed.. *b.* 31.10.1950. Teacher (Skt.), Shrimad Dayananda Guru Sanskrit Mahavidyalaya, Khed Khurd. *Ps.* 03. *Add.* 189-A, Street No. 5, Rameshwara Nagar, Azadpur, Delhi–110033. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Kashi Nath. Vyākaraṇa-Darśana-Śāstra. *b.*Chhata, Balia, U.P. Lect. Udaseen School, Varansi, U.P. *Gp.* Parameshwardutt Mishra, Pt. Madhvacharya, Pt. Seetaram Shastri 'Dravid', Brahmanand Swami, Pt. Nityanand

Shastri, *Sp.* Gangodutt Upadhyay, Radha Prasad Shastri, Pt. Ramapati Mishra, Vamdev Pandit, Pt. Narsingh Tripathi. Pt. ***Bks.*** 05. Anubhūti-Prakāśavyākhyā, Mahākāvya-Ratnāvalī-Vyākhyā. Caitasukhī, Pañcadaśī-Vyākhyā, Vimlā-Tīkā. *Expired in* 1938.

Shastri, Kelachant Ramankutti. Vidvān. *b.*17.01.1927, Pala, Kottayam, Kerala. *Gp.* V. K. Narayan, Krishnan Kutti Variyar, Ayyappan, B.A. Raghavan Nayar. *Bks.* 02. Upāsanā, Mañjarī. *Add.* Chintasseril, Pala, Kottayam (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vedānta.

Shastri, Kesav Dev. Pracina Vyākaraṇa Acharya. *b.*11.01.1905, Lauhi, Mathura, U.P. Acharya. *Gp.* Ramesacandra, Bhismadatta Vedapathi, Prabhasabhiksu, Balakarama Agnihotri. *Add.* R/B, M.C.D. Flats, Greater Kailash I, New Delhi. *Spl.Ref.* Freedom Fighter. Vyākaraṇa, Atharvaveda & Yajurveda.

Shastri, Keval Krishan. M.A., Ph.D. *b.*14.09.1944. Kot (Jammu). Asct.Prof., Shri Ramveer Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth. Bks. Rāvaṇārjuniyasya Kāvyalocanātmakam-adhyayanam. *Ps.* 08. *Add.* Kot, Jammu. *Expired.*

Shastri, Kirti Kumar Navanit Lal. M.A., B.Ed. *b.*07.06.1951, Navasari, Valsad, GJ. Asst. Teacher, D.M.G. Muni High School, *Ps.* 03. *Add.* Vaidya Street, Main Road, Navasari, Valsad (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Krishandutt Sharma. Kovid Sāhitya Ratna, LT, M.A. (Skt. Hindi). *b.* 15.07.1930. Gaziabad, U.P. Sub-Inspector Jila Vidyalaya. *Bks.* 08. Pratāpapraśastiḥ, Kṛṣāṇasainikau, Senānī Subhāṣaḥ. *Add.* 81, Jawaharganj, Hapur, Gaziabad – 01.

Shastri, Krishna Chandra Gauda. Acharya in Sāhitya, Shiksashastri, Shiksacharya. *b.*12.04.1960, Husenabad, Jaunpur, (U.P.). Director, Vivekanand Coaching Complex, Varanasi. *Gp.* Dr. Kailashpati Tripathi, Dr. Rajakishor Upadhyay. *Ps.* 04. *Add.* C-27/211-4/1, Vivekanand Nagar, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Krishna Chandra Somnath. Ph.D. *b.*28.12.1936. Prof., Bhawans Seth R.J. College Arts & Commerce College, Banpur, Ahemdabad. *Ps.* 05. *Add.* 12 Prof. Colony, Navrangpura, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Shastri, Krishna Chandra. Visharada, Sastri, Prabhakar. *b.*25.05.1920, Kathua. Rtd. Teacher. *Gp.* Parasurama Sastri; Kakarama Sastri; Lala Krsna Sastri. *Ps.* 03. *Add.* Sundervan, Rajouri (J&K). *Spl.Ref.* Darśanaa.

Shastri, Krishna Kishor. Veda Pandita. *b.* 01.11.1920. Rishikesh, Dehradun, U.K. Rtd. Teacher. *Gp.* Suryanarayana Sukla, Bodha Krissna. *Add.* Veda Maha Vidyalaya, Veda Marg, Rishikesh (U.K.). *Spl.Ref.* Veda. Honoured and Awarded by Uttar Pradesh Samskrta Akademi as Veda Pandita.

Shastri, Krishna Prasad. Acharya, M.A. *b.* 08.06.1950, Palyaporkani, Palya, Nepal. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* 39, Chandrashekhar Marg, Mayakund, Rishikesh (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Krishna. *b.*1870, Tirunelveli. Principal, Madras Sanskrit College, Madras. *Gp.*. Shri Harihar Shastri. *Bks.* Adhikaraṇacatuṣ-ayī, Brahma-sūtrānuguṇyasiddhiḥ. *Expired in* 1937. *Spl.Ref.* Mahamahopadhyaya Samman.

Shastri, Krishnamurti S. R. Vedāntaśiromaṇi, Nyāyaśiromaṇi. *b.*06.05.1915, Kanchipuram, TN. Researcher. *Gp.* K. Krishnashastri Panditraj, T.V. Ramchandra Dixit. *Add.* C/o Shankar-muth, 1, Salai Street, Kanchipuram–631502 (TN). *Spl.Ref.* Vedānta, Nyāya Darśana. *Awards.* President Award, 1974.

Shastri, Kshamadatt Vaidy. Shastri, Acharya in Āyurveda. *Age.* 96 yrs. in 1990. *Add.* Shiva Bhola Mandir, Dhauli Pyau, Najafgarh Road, New Delhi–110018. *Spl.Ref.* Āyurveda.

Shastri, Kuldeep Kumar. Acharya, Ph.D. *b.* 05.05.1969. Nunamag Jujhar, (H.P.) R.A. *Ps.* 02. *Add.* Plot. No. A-166., Flat No. 201, Street No. 24, Chattarpur Encleve, New Delhi–74.

Shastri, Kuppa Anjaney. Vyākaraṇa Bhaskar. *b.* 20.05.1901, Chiwaluru, Tenali, Guntur,

A.P. *Add.* House No. 23-27-24, Satynarayanpur, Vijayawada, Krishna Dist. (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa , Vedānta & Veda.

Shastri, Kuppa Shrinivas. Nyāya Vidhyapravin. *b.* 10.05.1960, Ananta-waram, Guntur, A.P. *Gp.* Kuppa Ramgopala Avadhani, Ramchandra Koteshvar Sharma. *Add.* Maharshi Ved. Vigyan Viswavidya-peetham, Maharshi Nagar, Gaziabad (U.P.). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda, Nyāya & Vedānta.

Shastri, L.N. Acharya in Nyāya, Darśana, Yajurveda, DharmaŚāstra, Ph.D.. *b.* 10.09.1968, Dhoulpur. HOD. Rajasthan Sanskrit College, Jaipur. *Gp.* Dr. S.N. Tatacharya, Dr. Kamal Nayana Sharma, Pt. Govind Narayana, Prof. C.L. Mishra, Pt. Shankar Prasad Shukla, Dr. K.S. Menan. *Sp.* Dr. Rajkumar Sharma, Dr. Mata Prasad Sharma. *Bks.* 05. Prajñāsatyavatī, Kāragila-yuddhe Huta Rājasthānam, Bagalāmukhī Tattva Vimarśa, Nyāya Siddhānta Ratnamālā. *Ps.* 20. *Add.* B – 23, Bhura Patel Nagar, Post– Hirapur, Ajmer Road, Jaipur– 302024. *Ph.* 09414228995. *Spl.Ref.* President, Rajsthan Vaidika Tantrika Sodha Sansthan, Sanskar Bharati Manav Kalyan Sansthan, Jaipur.

Shastri, Lakshmi Narayan M. Vidvān. *b.* 07.01.1914, Sivaganga, Bangalore, KT. Rtd. Teacher, Tirupati Vidyakendra. *Gp.* Mahamahopaddhyay Vidhyanath Shastri, P.K. Shankar Shastri, Tippa Shastri. *Bks.* Several Granthas in Sanskrit & Kannada Lauguage. *Add.* Harikatha Bhajan Samaj Marg. Basavangudi, Bangalore-560004. *Spl.Ref.* Pūrva Mīmāṃsā & Uttara Mīmāṃsā.

Shastri, Lalan Krishna. Acharya, Kāvyatirtha. *b.* 1920, Mathura, U.P. HOD DharmŚāstra. *Bks.* Anekapurāṇokta-vratodyāpana Paddhatiḥ. *Add.* IA/666, Nagargali, Mathura- 281001 U.P. *Spl.Ref.* DharmaŚāstra.

Shastri, Lalji Bhai Modha. Shankar Vedāntacharya, ShikshaShastri. *b.* 14.06.1928, Porbandar, Junagarh, GJ. Rtd. Principal, Rajakiya Sanskrit Pathshala, Jamnagar. *Gp.* Kamalkant Mishra, Venkat Raghvacharya. *Add.* Near Vibhaji High School. Nilkanth Mahadev, Jamnagar GJ. *Spl.Ref.* Advaita-Vedānta. National Teacher Award-1988.

Shastri, Laxmi Chandra. M.A., Ph.D., Veda Vachaspati. *b.* 13.04.1945. Director, Vedic Research Institute, Kanwash, Kotdwar, U.K. *Bks.* 25. Ingudī, Rīti Vṛatti Pravṛtti, Kālidasa, Saṃskṛta Poetry, Bhartṛhari Śatakam (ed.). Kālidasa, Saṃskṛta Poetry, Bhartṛhari Śatakam(ed.).

Shastri. Laxmi Dutt, Acharya in Jyotiṣa, Jyotiṣatīrtha. *b.* 1908, Indore, M.P. Rtd. Prof., Indore Sanskrit Mahavidhalaya. *Gp.* Ramsuchita Tripathi, Muralidhar Thakur. *Ps.* 05. *Add.* 50, Ahilyapur, Indore, M.P. *Spl.Ref.* Jyotiṣa Śāstra.

Shastri, Madhawacharya. Shastri. *Bks.* 05. Kabīracaritam, Ravidāsacaritam, Mīrācaritam, Ṭudesmṛtiḥ. *Spl.Ref.* TarkŚāstra, Title of Śāstrartha Maharathi, Sāhitya.

Shastri, Madhukar. Acharya (Sāhitya/ Mīmāṃsā). Ph.D. *b.* 1921. Rampuro Dabadi, Jaipur, RJ. Research Fellow, RJ Prachyashodh Pratishthan, Jodhpur. *Gp.* Pt. Patta-bhiram Shashtri, Pt. Dinanath Trivedi. *Bks.* 09. Pathika Kāvyam, Svapna, Milana, Dhārātmaja, Mahāvīra-Saurabham, Tulasīdās-Gauravam. *Spl.Ref.* 'Magh-Puruskar' by RJ Sanskrit Academy.

Shastri, Madhura Krishnamurti. Sanskrit Sāhitya, Vyākaraṇa , KhagolaŚāstra, Jyotiṣa Śāstra, VastuŚāstra, Dharma-Śāstra. *b.* 28.02.1928, Mukammala, West Godawari Dist. (A.P.). *Spl. Ref.* He received the titles of Jyotiṣa Vijnana Bhaskar from Nannaya Bhattarka Peetham, Tanuku in 1981, 'Kanaka-bhishekam' from sh. P. Venkata Subbaiah, the then Governor of Bihar in 1985, Rajiv Vijnana Puraskaram from SBSRCharitable Trust, Asthamur, 'Vastukala Nidhi' from Bharatiya Vijnana Samithi, Jaggayyapet and 'Ugadi Puraskar' from Madras Telugu Academy in 1988, 'Daivajna Siromani' from Lions club, Vishakhapatanam in 1999, and 'Vachaspati' from R.S. Vidyapeetham, Tirupati (Deemed

University) in 2000. He has 7 Published works to his credit. He participated in different conferences. He has been a famous almanac writer and scholar of Dharma Śāstra, Jyotiṣaa and Vastu, President Awardee.

Shastri, Madhusudan. Acharya in Sāhitya. *b.* 1903. Chiraba. Asst.Prof., Sanskrit College, Varansi. *Bks.* 05. Kāvyamimāṃsā, Vyaktiviveka, Rasa-gaṅgādhara, Nā-yaśāstra, Kāvyaprakāśa (All Hindi Tr.). *Expired on* 23.12.1986. *Spl.Ref.* Established Bhartiya Pandit Mahaparishad. Editor of 'Śri-Paṇdita' Manthly Sanskrit Magzine.

Shastri, Magdi Laxmi Narasimha. Tarkashastri, Vedāntashastri, Mīmāṃsā-shastri. *b.*21.05. 1914, Shivaganga, Bangalore, KT. Asst. Prof., Shri Shringerishankaramathiya Mahavidyalay, Bangalore. *Gp.* Tiptashastri, M.M. Venkates-shastri. *Add.* No. 55/11, H.B. Samaj Road, Bangalore–560004. *Spl.Ref.* Veda, Vedānta, Mīmāṃsā & Tarka.

Shastri, Mahabaleshvar Bhadati. Acharya in Sāhitya, Alaṅkāravidvān, Hindi Rastra-bhashavisharad. *b.*22.03.1917, Gokarn, Karwar, KT. Purohita (Priest). *Gp.* Devarushastri, Shivramshastri. *Add.* Kotitirtha Road, Gokarna – 581326 (KT.). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Sāhitya & Veda.

Shastri, Mahadev. Acharya. *b.* Bhabhua, Bihar. Principal, Oriental College, Varanasi. *Bks.* 04. Bhārataśatakam, Pūrṇāstavaḥ, Gaṅgāṣ-akam, Cārudevaśatakam. *Spl.Ref.* Title of Sarvatantra-Swatantra and Kavitarkik Chakravarti. After Diksha he is known as Sri Maheswaranand Saraswati.

Shastri, Mahalinga. B.L. M.A. *b.*31.07.1897. Tanjor (Madras). Lowyer & Asst.Prof. Madras. *Gp.* Sri Appaya Dixit. *Bks.* 12. Bhramara-Saṃdeśa, Bhāratī-Viśāda, Vanalatā, Ādi-kāvyodaya, Stutipuṣpahāra. *Expired on* 14.04.1967.

Shastri, Mahanand. M.A., B.Ed. *b.*30.07.1936. Teacher, A.S.V.J. Senior Secondary School, Daryaganj, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 33/2, Shakti Nagar, Delhi – 110007. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Mahashankar N. Trivedi. Acharya in Śāṅkar Vedānta, Kāvyatirth, Sāṅkya-yogatirth. *b.*02.09.1910, Jodiyabandar, Jamnagar, GJ. Rtd. Principal. *Gp.* Chaganlal Devaray Trivedi. *Ps.* 03. *Add.* Govt. Sanskrit Pathashala, K.V. Road, Jamnagar (GJ). *Spl.Ref.* Śāṅkar Vedānta, Kāvya, Sāṅkyayoga.

Shastri, Mahaveer Prabhachandra. M.A. (Skt., Prakrit), NET, JRF, Ph.D. *b.* 08.10.1974, Solapur, MH. Asstt. Prof. *Bks.* 15. *Ps.* 15. *Add.* Kalyan Bhawan, 75 East Mangalwar Path, Solapur – 02. MH. *Spl.Ref.* Prakrit, Manuscript Editing, Chief Editor Jain Bodhak, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Shastri, Mahendra Kumar. *b.* 1918. Meerut, U.P. Acharya Srimad Dayanand Updeshak Vidyalaya, Lahore. *Bks.* 03. Pitṛśatakam, Gurukulmahatvaśatakam, Manurbhava. *Expired.*

Shastri, Mahendra Nath Sharma. Vyākaraṇa-Mīmāṃsā-smṛti-shastri. Teacher. *Gp.* Govindnath Vyākaraṇa tīrtha, Laxmipati Tarkatīrtha, Acharya Manoranjan Shastri. *Add.* Sonitpur Prachya Vidyalaya, Parvati Nagar, Tejpur, Sonitpur (Assam). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Mīmāṃsā, Smṛti.

Shastri, Mahidhar Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.*15.10.1924, Maid, Garhwal. Teacher. *Gp.* Krishnalal Jha. *Ps.* 03. *Add.* Shri Jagadev Singh Snaksrit Maha-vidyalaya, Haridwar (Uttarakhand). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Manas Ram. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 1922, Pauri Garhwal, (U.P.). Teacher. *Gp.* Muralidhar Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Rishi Sanskrit Vidyalaya, Haridwar (U.K.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shastri, Mangalji Uddhavji. Acharya. *b.*1964, v.s. Datrana, Junagarh, GJ. *Gp.* Revashankar Shastri, Dayashankar Shastri, Nathuramji Sharma. *Add.* Vrindawan Shastri Society, S.T. Stand, Junagarh– 362001 (GJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Veda.

Shastri, Manikya Lal. Acharya in Sāhitya & Āyurveda, M.A., Shiksha-Shastri. *b.*15.08.1947.

Principal, Sanskrit College, Jaipur. ***Bks.*** 06. Daśakumāracaritam, Cāṇakya-Sūtra, Pratimānā-akam(All Ed.), Saṃskṛta-Kathāsudhā, Alaṅkāraśāstra Kā Itīhāsa. ***Spl.Ref.*** Āyurveda.

Shastri, Manjakudi Venkatarama K. *Age.* 59 years in 1988. ***Gp.*** T. Sitaram Ganpathi, V. Vaidyanath Shastri, Subramany Shastri. ***Bks.*** Saṅkṣepadharmaśāstram. *Add.* 75, Advaitamandiram, Bhaktpuri Agraharam, Kumbakonam (TN). ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇa-yajurveda, Advaitavedānta, Vedabhasya.

Shastri, Manoranjan. *b.*07.03.1911, Veruya, Darrang, Assam. Rtd. Prof. of Sāhitya, Govt. Sanskrit College, Guwahati. ***Bks.*** 06. Buddhacarita of Aśvaghoṣa (ed. with Assamese tr.), Sāhityadarpaṇa (ed. with Assamese tr), Asamera Baiṣṇava darśanera rūparekhā (Assamese), Ketakīkāvyam, Utaṅkabhaikṣam, Pātakāmraṇyaḥ. ***Add.*** Sanskrit College Road, Nalbari, Kamarup (Assam). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, DharmaŚāstra, Vedānta, Mīmāṃsā, Sāhitya. ***Awards.*** National Award for Teachers 1967, President's Certificate of Honour-1975.

Shastri, Mool Chandra. Nyāya, Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana, ***b.***1903. Asst.Prof., Shri Mahaveerji Adarsh Woman College. ***Gp.*** Pt. Ambadas Shastri. ***Bks.*** 03. Vacanadūtam, Vardhamānacampūkāvyam, Śrī-Lauṃkā-śāha-caritam. ***Expired in*** 1986.

Shastri, Mool Raj. Shastri. ***b.*** 16.07.1918. Jammu. Associated with Jammu Branch of Vishwa Skt. Parishthan. ***Bks.*** 04. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** He worked as Śāstra Chudamani under RSKS, President Awardee.

Shastri, Moti Ram. Acharya, Tradition in Darśana and Sāhitya. ***b.*** 10.10.1924. Rtd. Principal, Sri Durga Siddha Peetha Skt. Mahavidyalaya. ***Gp.*** Pt. Loknath Shastri, Pt. Vedyanath Chaturvedi. ***Bks.*** 01. Payaḥpānam. ***Add.*** Ramanagar, P.O. Lamheta Ghat, Jabalpur MP. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa a, Darśana, Honoured by MP Skt. Academy, MP Skt. Sāhitya Sammelan, President Awardee.

Shastri, Motilal. Vyākaraṇa, Vaidikavigyan. ***b.***1908. Asst.Prof., Maharaja Sanskrit College, Jaipur, Rj. ***Gp.*** Shri Chandrashekhar Prashnawa, Chandradutt Ojha, Pt. Giridhar Sharma Chaturvedi, Madhusudan Ojha. ***Bks.*** 06. Gītā Vijñāna Bhāṣya Bhūmikā, Śrāddhavijñāna Gran-thānūgata, Upniśada Vijñāna Bhāṣya Bhūmīkā, Śatapatha Brāhmaṇa - Hindī Vijñāna Bhāṣya. ***Expired on*** 20.09.1960. ***Spl.Ref.*** Established Manavashram for Publishing Books & Study.

Shastri, Mulchandra. Acharya in Sāhitya, M.A., LL.B., Ph.D.. ***b.*** 02.04.1930. Rtd. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapith, Katwariasarai, New Delhi–110016. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Shastri, Mullaivasal Krishnamurti Swaminath. Shiromani. ***b.***28.11.1927, Mullaivasal, Thanjavur, TN. ***Gp.*** K.S. Krishnamurti Shastri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 3, East Agrharam, Kodumudi, Periyar–638151 (TN). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Shastri, Muttukrishna R. Shiromani. ***b.***15.04.1909, Shachanuru, Thanjavur, TN. ***Bks.*** 01. Anubhūtiprakāśa-vyākhyā-śrutisa-ṁyojinī. ***Add.*** 66-A, North Street. Thiruvanailoil, Trichy (TN). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Shastri, N. S. Anant Krishna. Pūrva Mīmāṃsā and Uttara Mīmāṃsā. ***b.***1886. Murani (Palakka). Lecturer, Gita Vidyalaya, Mumbai. ***Bks.*** 11. Vedāntarakṣāmaṇiḥ, Advaitatatva-śuddhiḥ, Śatabhūṣaṇī, Advaitatatvasudhā, Vedānta-paribhāṣa Prakāśikā. ***Spl.Ref.*** Viśiṣ-ādvaita.

Shastri, Nardev. M.A., Ph.D., Sāhitya Ratna. ***b.*** 02.01.1944. Muzaffarpur, Bihar. Rtd. Principal and Honourary Chief Editor Sanskrit Pracharakam Monthly Magazine. ***Ps.*** 475. ***Add.*** 18/550, Vijay Park, Maujpur, Delhi–53. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa a, Linguistics, Darśana, Veda, He was honoured with 6 Academic Awards including by HH the governor of HP and President Award by Govt of India.

Shastri, Nityanand. ***b.***1889. Jodhpur, RJ. Asst.Prof. Mahaveer College, Mumbai. Editor,

Aatmanand Granthmala, Bhavna-gar. *Gp.* Madhav Kavindra. *Sp.* Jodhpur King Ummed Singh. *Bks.* 22. Rāmacaritabdhiratnam, Laghu-chandolaṅkāra-Darpaṇam, Hanumad-dūtam, Mārutistvaḥ, Āryamuktāvalī. ***Expired in*** 1961.

Shastri, Padma. Acharya in Sāhitya-āyurveda, Shikshashastri, Ph.D., Kavytirth, Sāhitya-Ratna, Diploma in Rasian. *B.* 17.12.1935. Singali, Pithauragarh, Almoda, Uttaran-chal. *Gp.* Pt. Badridutt Ojha. *Bks.* 29. Sinemāśatakam, Saṃskṛtakathā-Śatakam, Svarājyam, Lokata-ntravijayaḥ, Padyapañcatantram. *Spl.Ref.* Story-writer & 320 Stories are published in 'Bhārtī' Sanskrit monthly magazine. ***Awards.*** RJ Sāhitya Academy Award-1966, Govt. of U.P. Award- 1975, Soviet Land– Nehru Award-1975-1976.

Shastri, Pandit Loknath. Higher Education in Kashi. *b.* 1890. Puri controller of Durga Sidhpeeth Skt. Vidyalaya, Jabalpur. *Bks.* Dadastakam, Ganeshaslakam, Kṛsnāṣ-akam, Rāmāś-akam, Sitāṣ-akam, Śivāṣ-akam, Rādhāṣ-akam, Śārdāś-akam, Gāndhivijaya-mahākāvyam and Narmadātaraṅgiṇī, Tipura Congress Swagatanand Mahodadhi Kallola. *Spl. Ref.* Poet & Writer.

Shastri, Panduranga. Acharya. *b.* 24.07.1918, Shirali, Kanara, KT. *Gp.* Shanti Bhatt, M.R. Bhatt. *Ps.* 03. *Add.* C/o Manohar Sharolli, Bhasar, Adilabad-504101 (A.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Paramanand. *b.* 1926. Meruth (U.P.) Principal., Aligarha, Muslim Univ. *Bks.* 02. Janavijayam, Cīraharaṇam.

Shastri, Parameshwar Narayan. M.A., M.Ed., Ph.d. *b.* 01.06.1952. Jogabatrakeri. Prof., Dept. of Education, R.Sk.S. Bhopal Campus, M.P. *Bks.* 02. Tarkabhāṣya-Tattvabbodinī (Tīkā), Nyāyaśāstrānusāriṇī Śabda-bodhacintā. *Add.* Jogabatrakeri, Hasanagi, Yellapur, North Kanara–581347 KT.

Shastri, Parasuram Sarasvat. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 19.10.1907, Hamirpur, Jammu, (J & K). Rtd. Principal. *Gp.* Dandisvami Vasudev, Devanarayan Tivari, Rampratap Shastri. *Add.* Vishnu Bhawan, 222-A, Gandhi Nagar, Jammu (J & K). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Veda.

Shastri, Parmanand. *b.* 1925. Gaziabad. U.P. *Bks.* 10. Janavijayam, Cīraharaṇam, Paridevanam, Bhārataśatakam, Svarabhāratī. *Add.* Siddhart Sadan, Ram Mandir Marg, Aligarh. *Spl. Ref.* Kalidas Puraskar for Cīraharaṇam MahaKāvya, Poet in Brajbhasha Hindi, Urdu, Sanskrit.

Shastri, Parshu Ram. Shastri. *b.* 15.11.1922, Basadi, Kangra, H.P. *Bks.* 02. Jālandhara-pī-hadīpikā, Jālandhara-pī-hamāhātmyam. *Add.* Basadi, Kohala, Dehra, Kangra (H.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Pattabhiram. Acharya in Mīmāṃsā, Veda, Nyāya,Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.* 30.11. 1908. Nourth Aarkad, Chennai. HoD. Sampoornanand Sanskrit Univ. Varanasi, U.P. *Gp.* Ganapati Shastri, Chinnaswami Shastri, Pt. Ambadas Shastri, Shankar Tarkratna, Pt. Mahadev Shastri. *Bks.* 50. Vedaprakāśa-Tautātika-Mata-prakaranam, Jayavaṃśa-mahākāvyam, Pramāṇa-mañjarī, Adhvara-mīmāṃsākautuhalavṛttiḥ. *Add.* Director, Veda Mimāṃsā Rasearch Centre, 4/7, Hanuman-ghat, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Awarded by President of India in 1973, 'Padma-bhushan'(1981), 'Śāstra Ratnakar', & 'Vidyasagar'.

Shastri, Peri Surya Narayan. Vyākaraṇa Vidyapravina, Sāhitya Vidyapravina. *b.* 20.08.1910. *Add.* Chodavaram, Vishakha-patnam A.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa , Sāhitya. *Award.* President Award. Awarded by (U.P.) Samskrta Akademi & A.P Administration.

Shastri, Phula Chandra Sharma. Vyākaraṇa Shastri. *b.* 1915, Ayokupa, Manipur. *Gp.* Hemacharyadev Chattopa-dhyaya, Sanskrit Pandit. *Add.* Ayokupa, Thoubal (Manipur). *Spl.Ref.* Veda & Vyākaraṇa.

Shastri, Polak Ram. *b.* 1900, Nonnim Gram. *Gp.* Harihar Shastri, Dand pani Swami, Venkat

Ram Shastri. ***Bks.*** 03. Dravidatreyadarśanam, Caturmatasāma-rasyam. Ābhoga-ippaṇī. ***Expired in*** 1968.

Shastri, Prabhakar. M.A.(Hindi & Sanskrit), Acharya in DharmŚāstra, Sāhitya, Ph.D., D.Lit. ***b.***13.04.1939. Jaipur. Director, J.R.R.S.U., Jaipur, RJ. ***Gp.*** Pt. Jaichandra Jha, Pt. Vriddhichandra Shastri, Pt. Gangadhar Dwivedi. ***Sp.*** Prof. Vinod Shastri, Dr. Vinod Bihari Mishra, Dr. Sarvesh Kumar Sharma, Dr. Govindram Gharora. ***Bks.*** 20. ***Ps.*** 100. ***Add.*** 25-A, Shastri Sadan, Khunteto ka Rasta, Kishanpole Bazar, Jaipur – 302001. Rj. ***Spl.Ref.*** President awardee-2002. Editor 'Viśvambharā' magazine.

Shastri, Prabhat. Acharya in Sāhitya, D.Litt. ***b.*** 27.05.1916. Allahabad. ***Bks.*** 17. Sanatsujātiyadarśanam, Rāmagītagovindam, Bhagvadajjukam, Pratāpavijayam, Tāpasvatsrājam. ***Add.*** 523. Daraganj, Allahabad – 06. ***Spl. Ref.*** Freelancer in Skt. writing, President Awardee, Founder of Navgeet Prampara in Skt. Literature, President Vishvishrut Hindi Sāhitya Samellan Prayag.

Shastri, Prabhu Datt. ***b.***1949. Tatarpur, Alwar, RJ. ***Bks.*** 11. Gaṇapatisambhavam, Śrīmadbhagavadgītāvyaṅgyamandākinī, Gītāyāḥ Viśvarūpadarśanayogādhyāyaḥ, Saṃskṛta Vākya saundaryāmṛtam. ***Spl.Ref.*** Poet & 'M.M.' Awardee.

Shastri, Prahlad. Vedatīrtha, Kāvyatīrtha, Puratatvaratna. ***b.***07.01.1918, Ujjain, (M.P.). Rtd. Principal. ***Gp.*** Pt. Gopichandra Shastri. ***Add.*** Balawant Sanskrit Vidyalaya, Joshi Bhawan, Ramghat, Ujjain (M.P.). ***Spl.Ref.*** Veda, Kāvya.

Shastri, Prakash Chandra. Acharya in Vyākaraṇa & Sāṅkyayoga. ***b.***01.04.1946. Sanskrit Teacher, Rajakiya Senior Secondary Bala Vidyalaya No. 1, Lodhi Road, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 2804, Arya Samaj Mandir Street, Arya Samaj, Bazar Sitaram, Delhi–110006. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāṅkyayoga.

Shastri, Prakash Narayan. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. ***b.***15.07.1930, Baraur, Kanpur, (U.P.). Acharya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Principal. Shri Vyas Kshem Sanskrit Mahavidyalaya, Kanpur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Shastri, Prashasyamitra. Shastri, Acharya, M.A., Ph.D.. ***b.*** July 1948, Sivan (Bihar). Asct. Prof., Firoz Gandhi College, Raibarely (U.P.). ***Gp.*** Swami Satyanand Saraswati, Pt. Brahmadutt Ji Jigyasu, Pt. Yudhishthir ji. ***Bks.*** 06. Abhinavasaṃskṛtagītamālā, Acārya Mahīdhara evam Swāmī Dayānanda kā Yajurvedabhāṣya, Hāsavilāsaḥ, Vyaṅgyavilāsaḥ, Komalakaṇtakāvaliḥ. ***Ps.*** 02. ***Add.*** B – 29, Anand Nagar, Jail Road, Raibarely (U.P.) ***Pin.*** – 229001.

Shastri, Prem Chandra. Acharya, B.Ed. ***b.*** 15.08.1968. Purohita (Priest). ***Add.*** Arya Samaj Mandi, Basti Harfulsingh, Delhi– 110006. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Shastri, Prem Krishna. Acharya in Sāhitya, Vedānta. ***b.***05.06.1936, Sebas, Kanpur. (U.P.). HoD, of Darśana. ***Gp.*** Pt. Syamasundar Shastri, Pt. Vaikunthanath Shastri, Ayodhyaprasad Shastri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Baladev Sahaya Sanakrit Mahavidyalaya. 124, Cantt., Kanpur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Vedānta.

Shastri, Premanand. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya, M.A. ***b.***01.07.1946, Saini, Pithauragarh, (U.P.). Asst. Prof. ***Gp.*** Candiprasad Bahugun Mahananda Sharma, Trilokadhara Dwivedi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Almora Inter College, Almora (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Shastri, Prempal. Acharya in Vyākaraṇa. M.A. ***b.***10.08.1949. Purohita (Priest). ***Add.*** Arya Samaj Mandir, Shakti Nagar, Delhi – 110007. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Veda.

Shastri, Priyatam Chandra. Acharya, Ph.D. ***b.***02.04.1941. Jammu, J&K. Rtd. Principal, Ranbir Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth. ***Bks.*** 02. Vikramāṅkadeva-caritasya Sāhityikam Sarvekṣaṇam, Priyam-Candrikā. ***Add.*** 257 – Gangial, Jammu, J&K.

Shastri, Pt. Suryanarayan 'Kankar'. Acharya. ***b.***1919. Dudhva, Jhunjhuna. Principal, Rajkiya

Sanskrit College, Jodhpur. ***Bks.*** 01. Vīramatī. ***Spl.Ref.*** Shashtrachudamani at R.S.K.S., Jaipur, RJ. Taught Sanskrit Grammer to jain saints. 'Vishishtavidwat-Samman' by RJ Sanskrit Akademy in 1977. Awarded by Governer of RJ on Sanskrit Day.

Shastri, Purna Chandra. Acharya (Jyotiṣa). ***b.*** 21.10.1912, Katra, Jammu. Teacher of Astrology. ***Gp.*** Rshikesh Upadhyay. ***Add.*** Jyotir Bhawan, House No. 9, Kali Janni, Jammu (J&K). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa & Veda.

Shastri, Pyarelal. Acharya in Sāhitya, Kāvyatīrtha. ***b.*** 28.01.1910, Alwar, RJ. ***Gp.*** Pt. Ramachandra Bhatta. ***Add.*** Near S.T.C. School, Alwar (RJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Shastri, Radhakrishna. Acharya in Sāhitya & DharmaŚāstra. ***b.***07.02.1941, Parana, Tonk, RJ. ***Gp.*** Krishnachandra Shastri. Head, Deptt. of Sāhitya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Maharaja Sanskrit College, Jaipur (RJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Shastri, Radhakrishna. āyurvedaśiromaṇi. ***b.*** 30.09.1923, Thanjavur, TN. ***Gp.*** V.S. Venkatasubrahmany Shastri, K.G. Natesashastri. ***Bks.*** 03. Śaṅkaravijaya-makarandaḥ, Śaṅkarābhyudayakāvyam, Ānandakandaḥ (Āyurveda-saśātram). ***Add.*** Thanjavur (T.N.). ***Spl.Ref.*** Veda & āyurveda.

Shastri, Rajanna K. TarkŚāstra VedāntaŚāstra, MOL, M.A., Vidyapraveen, Ph.D. ***b.*** 02.06.1933. Dharampuri, Karim Nagar, A.P. Rtd., PG Mahavidyalaya Sikandarabad. ***Gp.*** Sri. Taribal Krishna Shastri, Sri Gollapalli Sambshiv Shastri, Shri P.V. Raj Shastri. ***Bks.*** 04. Sumanoñjalī, Vasumati Sudhākaram, Skt. Pathpradarśinī. ***Spl. Ref.*** Poet in Skt. and Telugu.

Shastri, Rajeshvar. Navya Nyāyavidvān. ***Age.*** 33 yrs. in 1988. Teacher. ***Add.*** Shri Jagadguru Shankaracharya Pathashala, Dharwad–580001 (KT.). ***Spl.Ref.*** Veda & NavyaNyāya.

Shastri, Rajeshwar 'Drawid'. Navyanyāya. ***Sp.*** Pt. Hariram Shukla, Pt. Ramchandra Khanang. ***Bks.*** 03. Vaidikasiddhāntarakṣiṇī (Comm.). ***Expired in*** 1979. ***Spl.Ref.*** Established Vallabhram Shaligram Sangved School at Ramghat Muballa, Varansi, U.P.

Shastri, Rajkishor Sundarji Modha. Acharya in Sāhitya, Āyurvedavisharad. ***b.*** 16.01.1933, Kavalaka. ***Gp.*** Jagadishaprasad Pandey, Bhagavatprasad Mishra. ***Add.*** Secretary, Vishw Sanskrit Pratishthan, Junagarh (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Āyurveda.

Shastri, Rakesh. Acharya (Sāhitya & Purāṇa). ***b.***20.03.1955, Daurala, Meerut, U.P. HOD Sankrit Deptt. Shri Govind Guru Govt. College, Banswara (RJ). ***Gp.*** Dr. D.N. Shastri. ***Bks.*** 40. Kālidāsa kī Kāvya Cetanā, Kālidāsa kā Upamā Yojanā, Nāgānandam, ***Add.*** 1-J-38 Housing Board Colony, Banswara (RJ). ***Spl.Ref.*** Sanskrit Sāhitya Puruskar, U.P. Sanskrit Sansthan (2000 – 2005), Maharana Mewar (Raj.) Harit Rishi Puruskar – 1998.

Shastri, Rakesh. M.A., Ph.D. Acharya in Sāhitya, D.Litt. ***b.*** 20.03.1955. Reader & HOD Skt. Deptt. Shri Govind Guru Rajkiya P.G. College Baswada, Rajasthan. ***Bks.*** 17. Ṛgveda ke Nipata, Ṛk sūkta chandrikā, Sugama Saṃskrita Vyākaraṇa, Madhu Kaṇikā, Saṃskrita nibandh Chandrīkā. ***Ps. 30. Add.*** 1, J.38-H.B. Colony, Baswada Raj. ***Ph.*** 09460308623. ***Spl.Ref.*** Veda, Purāṇaa, Sāhitya, Vyākaraṇa , Darśanaa. Editor of Gurukul Patrika. U.P.Skt.Sansthan Lucknow Award- 2000, 2005.

Shastri, Ram Chandra G. R. Vyākaraṇaśiromaṇi, Nyāyaśiromaṇi. ***b.*** 20.06.1914. Gudalur, Tanjavur, TN. Principal. ***Gp.*** Panditaraj Subrahmanya Shastri. ***Add.*** Shri Ram Mandir, Raddiyar Tank East, Kumbakonam–612001 (T.N.). ***Spl.Ref.*** Veda & Vyākaraṇa.

Shastri, Ram Chandra S. M.A. ***b.*** 23.03.1929, Mysore, KT. Rtd. Principal, Government College, Bangalore. ***Gp.*** Shivaram Shastri, P.C. Bhatta, M.A. Krishnaswami. ***Add.*** No. 5, Surasarasvati Sabha, Shankaramutt, Shankarpur, Bangalore–560004 (KT.). ***Spl.Ref.*** Veda, Advaita Vedānta & AlaṅkāraŚāstra.

Shastri, Ram Chandra. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.***08.05.1944, Sambanambhu. Rtd. Prof. Shri Ranavir Kendriya Sanskrit Vidyapitha, Kot Bhalwal, Jammu. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 153,

Ahata Panjwaktar, Shivaiya, Pani Waktar Road, Jammu (J&K) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Ram Gopal. Acharya. *b.*05.01.1923, Jaipur, RJ. Rtd. Dy. Inspector, Directorate of Sanskrit, Govt. of RJ. *Gp.* Pattabhiram Shastri, Bhatta Mathuranath Shastri. *Ps.* 03. *Add.* 1406, Gopal Kunj, Nahargarh Marg, Purāṇai Basti, Jaipur (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya, DharmaŚāstra.

Shastri, Ram Gopal. Acharya in DharmaŚāstra & Sāhitya. *b.*1921. Jaipur, RJ. Asst.Prof., Maharaja Sanskrit College, Jaipur. *Bks.* 06. Śikhariṇīvilāsaḥ, Gopālasahasranāma, Govind-granthamālā, Sudarśanakavacaṃ Traīlokya-maṅgalāñca. Nimbārka-Sahasranāma-Stotram. *Spl.Ref.* Awarded by 'Nimbarkbhushan'. Edited 'Bhārtī' & 'Svaramaṅgalā' Sanskrit Magazines.

Shastri, Ram Kishor. Acharya in Sāhitya, M.A., D.Phil. *b.*15.10.1949, Metuwa, (U.P.). Asst. Prof.. *Gp.* Rambandan Shukla, Shivanath Dwivedi. *Ps.* 06. *Add.* Deptt. of Sanskrit, University of Allahabad, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Ram Krishna. Achrya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.*15.05.1934, Onaur, Allahabad, (U.P.). Principal, H.G.S. Sanskrit Vidyalaya, Allahabad. *Gp.* Matarupa Mishra, Kantaprasad Pandey. *Ps.* 03. *Add.* 398/8, Mirapur, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* NavyaVyākaraṇa & Sāhitya.

Shastri, Ram Krishna. Sāhityacharya, Vidyavachaspati, M.A. *b.*27.03.1929. Vice-Principal, M.B.D.A.V. Senior School. *Ps.* 03. *Add.* 201 – H, Gautam Nagar, New Delhi – 110049. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Ram Narayana. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, M.A. (Skt. & Hindi). *b.* 27.02.1945, Principal, Prachya Viddhyapeeth, Shahpura Bagh, Amer Road, Jaipur. *Add.* 117, Arya Nagar (Murlipura), Jaipur – 302023. *Ph.* 9414493320.

Shastri, Ram Ratan. M.A. *b.*05.05.1944, Bharatpur, RJ. Principal. *Gp.* Ramanand Tiwari, Sampurnadutta Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Ray Bha. School, Vaurai, Bharatpur, Rajsthan. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Shastri, Ram Swaroop. Acharya in Āyurveda. *b.*02.05.1918, Sinkh, Karnal, Haryana. Rtd. Principal. *Add.* S. D. Sanskrit Maha-vidhyalaya, Jind Haryana. *Spl.Ref.* Received Ayurveda-Martanda award.

Shastri, Ram Swaroop. *b.*15.11.1904, Karanpur, Mathura, U.P. Editor, Balsanskritam. *Gp.* Laxman Shastri, Rajeshwar Shastri, Satyanarayan Ayurvedacharya. *Add.* Ghatakopar (W), Bombay MH. *Spl.Ref.* Sāhitya & Āyurveda.

Shastri, Ram Vilas. Acharya, Sāhityaratna, B.Ed. *b.*12.11.1961. Principal, I. D. Montessory School, New Rohtak Road. *Ps.* 03. *Add.* B-B-77, Shalimar Bagh, Delhi- 110052. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Ramashankar Pandey. Acharya, M.A., Vaidya Ratna. *b.* 01.02.1932. *Bks.* 01. Āñjaneyam. *Add.* Hatakoraon, Allahabad U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Ramdev. Acharya. *b.*08.09.1921. Alwar, RJ. Principal. *Gp.* Vrajamohan Shastri, Ramchandra Shastri. *Ps.* 03. *Add.* 114, Munshi Bazar, Berhriapari, Alwar (RJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shastri, Ramendranath Maninath. M.A. *b.* 07.12.1931, Vadodara, GJ. *Gp.* S.S. Bhave, Dr. N. Jani. *Ps.* 03. *Add.* Ghariyara Same, Ghajariyali Pol, Vadodara (GJ). *Spl.Ref.* Purāṇa.

Shastri, Ramkrishna Narayan. Advaita-Vedāntashiromani, NyāyaVedāntapravina, Sāhityaparisad. *b.*26.06.1913, Naga-pattanam, Thanjavur, TN. Teacher. *Gp.* Krishna Shastri, Parameshvar Shastri, Rajasubrahmanya Shastri. *Add.* 42, Shri Sanskara Math, Prathamavithi, Tanjavur – 614001 (T.N.). *Spl.Ref.* Veda, Vedānta, Sāhitya, Nyāya.

Shastri, Ramkrishna V. Jyotiṣa vidvān. *b.*01.01.1928, Mysore, KT. Astrologer. *Gp.* Navin Venkatesh Shastri, Venkatasubba Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Vani Vilas Mohalla, Ventikoppalu, Mysore–570002 (KT.). *Spl.Ref.* Jyotiṣa.

Shastri, Rammurti. Acharya. *b.*1923. Badaun,

U.P. *Gp.* Chandra Shekhar Shastri, Vaikunthanath Shastri. ***Bks.*** Śrīmadbhāgavata-sāptāhikakathā, Śrīmad-bhāgavatasya Gūḍhārthadīpiṇī Ṭīkā, Vedastutivyākhyā. ***Add.*** D-1/65, Lalita Ghat, Varanasi U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Purāṇa.

Shastri, Ranganath Balasubrahmanya. Vedāntashiromani. *b.* 19.08.1918, Radhamangalam, TN. Asst. Prof. in Veda. ***Add.*** 123, Habibulla Road, T. Nagar, Madras – 600017 (T.N.). ***Spl.Ref.*** Veda.

Shastri, Ravindra Nath Das. Vidyaratna, Vidyavachaspati, JyotirVedāntashastri, Prachyatattvavisharad, Sāhityacharya, Sāhityasri, Sāhityabharati, Kavibhushan, Bhaskaracharya. *b.* 1937. Rangoon (Burma). ***Bks.*** 04. Saṁskṛtasopānam, Devabhāṣāpraveśaḥ, Śrīsrībholānandagiri-gauravam, Atharvavedīya Śrīśrīcaitanyo-panīṣad (ed.). ***Add.*** Principal, Tripura Rajya Sanskrit College, Agartala–799001 (Tripura). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Jyotiṣa, Vedānta.

Shastri, Ritanand Swami. Sanskrit Vidvān, Acharya, Veda. *b.* 1866. Bijnaur. Former name-Rishinath. *Gp.* Aryasamaj Tradition, Dayanand Sarasvati Parampara. ***Bks.*** 05. ***Spl.Ref.*** Veda, Vyakarana, Indian Philosophy. An Eminent Scholar in Philosophy, Veda, Religion and Vaidika Karmakāṇḍa, Mandicant.

Shastri, Roop Kishor. M.A., M.Phil., Ph.D., D.Litt. *b.* 19.12.1957. Prof., Gurukul Gangdi Uviv. ***Bks.*** 15. Sāmavedīya Brāhmaṇa - Dārśanika Adhyayana, Jaiminīyopaniṣada Brāhamaṇa meṃ Nihita Dārśanika Siddhānta, Vaidika Vāṅmaya – Nirvacana Kośaḥ. Dayānanda Nirukti-Vyutpatti-Kośaḥ, Dharma Darśana Saṃskṛti. ***Ps.*** 30. ***Add.*** 36 Gandhi Ashram Colony, Singhdwar, Gurukul Kangadi, Haridwar–249404, Uttarakhand.

Shastri, Satya Narayan 'Kaviraj'. Vyākaraṇa, Sāhitya, Nyāya, Āyurveda. *b.* 1887. Varansi, U.P. Principal, Aayurved College, Varansi, U.P. *Gp.* M.M. Pt. Shivkumar Shastri, M.M. Gangadhar Shastri, Kaviraj Dharmadas, Pt. Nrmadacharan Kaviraj. ***Bks.*** 04. Saṃjñā-Samuccaya, Śivakośa, Śivaprakāśa, Hṛdaya-Padyāñjaliḥ. ***Expired on*** 23.09.1969. ***Spl.Ref.*** He was appointed as a personal Doctor of formar President, Govt. of India Dr. Rajendra Prasad in 1952 & awarded 'Padmabhushan' by President of India in 1955. Vaidya and Sanskrit Poet.

Shastri, Satya Narayan. Acharya, (Sāhitya & Āyurveda) *b.* 23.05.1929. Rajgarh, Rajasthan. Vaidya, Bhiwani. ***Bks.*** 06. Navoḍhāvilāsam, Nītisūktimuktāvalī, Stutikusumāñjaliḥ. ***Add.*** 30, Adarsh Nagar, Bhiwani, Haryana. ***Spl.Ref.*** Title of Sāhitya Martand, Bhishakratan, Vishist Award from Rajasthan Skt. Academy 1995.

Shastri, Satya Narayan. Sāhitya-Shastri, Kāvyatīrth. *b.* 16.11.1926. Ajamer, Rj. Asst. Prof., Govt. Sanskrit College, Ajmer. *Gp.* Krishanchaitany Shastri, ***Bks.*** 14. Candraśekhara-Mahākāvyam, Nāgakanyā - Sulocanā, Nimbārkodayam, Bhāratakuvalayam, Manovṛttisudhāram. ***Spl.Ref.*** Received 'Magh-Puruskar' in 1996. 'Pt. Haritajivan Mishra-Nā-ya Puruskar', 'Pt. Ambikadutt Vyas Puruskar', M.M. Samman. Famous Poet in Sanakrit, President Awardee–2008.

Shastri, Satyavrat. Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana. *b.* Sep.1930. HoD. Delhi Univ. *Gp.* Prof. Charudeva Shastri, Pt. Shukdev Jha, Dr. Siddheshwar Varma. ***Bks.*** 25. Śrī-Rāmkīrtimahākāvya, Discovery of Sanskrit Treasures. Gurū-Govinda-Singhacarita, Śarmanyadeśaḥ, Sūtraṃ Vihāti. ***Ps.*** 125. ***Spl.Ref.*** Received many Awards like - 'Sāhitya Academy Puruskar' in 1968, Gyanpeeth puruskar in 2006 for his contribution to Sanskrit Literature. Poet Critic. Visited Bangkok, West Germany, Belzium, Canada.

Shastri, Shankar Lal. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 01.07.1975 Kishorpura, Sikar, Rj. Director, RJ Sanskrit Research Sansthan, Shahpura, Jaipur, Rj. ***Bks.*** 07. Saṃskṛta- Kavimañjarī, Saṃskṛta Kāvyacandrikā, Saṃskṛta Gadyacandrikā, Saṃskṛta Sāhitya kā Samikṣā itīhās, Rājasthāna ke Saṃskṛta Kṛtikāra. ***Ps.***

15. *Spl.Ref.* Broadcast Kavypath, Speechs in 'Akshara', 'Saurbh', 'Manthan' Sanskrit Programs from DoorDarśana, Jaipur. Many articles Published in 'sauvarṇi', 'Dainika Bhāskara' & 'Dainika Navajyoti' Magzines. Awarded 'Pt. Harivansrai Puruskar' in 2001.

Shastri, Shri Vatsa. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 04.07.1959. Orissa. Asct. Prof, Motilal Nehru College, Moti Bag, New Delhi. *Bks.* 01. Saṃskṛta Vyākaraṇa ko Helarāja kā Yogadāna. *Ps.* 05. *Add.* 17/4, Shakti Nagar, Delhi–110007.

Shastri, Siddhasen. Madhyama, Shastri, M.A. in Vyākaraṇa , M.Phil. *b.* 18.11.1963 Shajapur (M.P.). *Ps.* 05. *Add.* Govt. Sanskrit College, Ujjain (M.P.) – 456001. *Ph.* 9977852318, 07342585451, 9617636340. *Spl. Ref.* Yoga & Paurohitya.

Shastri, Simili Venkatarama Radhakrishna. Ayurveda-Siromani. *b.* 23.09.1923. Tanjavoor, TN. President Skt. Education Society in Chennai. *Bks.* 29. *Spl.Ref.* Adwait Vedānta, Yoga, Uttam Skt. Vidwan, Braham Vidya Ratnam, Tantra Śāstra Nipuna, Fellowship by India Govt., President Awardee.

Shastri, Sitarama Krishnamurthi. Rigveda. *b.* 04.07.1926. Tiruvarur, TN. Presently he is teaching Śāstra Texts to the disciples in the field of Veda. *Gp.* S. Narsimha Shastri, V. Subramanyam Shastri, Sri Balkrihan Panikker. *Spl.Ref.* Veda, Jyotiṣa, Nyāya or Mīmāṃsā, President Awardee.

Shastri, Srinivas. Acharya in āyurveda. *b.* 1914. Lambi, Jaipur (RJ). Vaidya, Principal, Nohar Ayurved College, Bikaner, Kolkata. *Bks.* 04. Candramahīpatiḥ, Sūryaprabhā, Kṛṣṇatārā, Svayam vā Bhāratavaibhavam.

Shastri, Srisantram Kavitarkik. *b.* Moga, Punjab. Rtd. Lecturer, MDAS Higer Sr. School, Moga. *Bks.* 03. Vedamantrātmakam Kāvyam, Yajurvedamantrātmakam Kāvyam, Nirdhana-niketanam. *Add.* 394, Lane 6, New Town, Moga, Faridkot, Punjab.

Shastri, Subrahamanyam. *b.* 1879, Kavishari. *Gp.*. Venkat Shastri. *Bks.* 01. Brahma-sūtraratnāvalī. *Expired in* 1937.

Shastri, Subrahmanya A. L. Vidvaduttama, AlaṅkāraVidvanmadhyama, Kannada Pandita. *b.* 10.08.1919, Manchery, KT. Rtd. Sanskrit Teacher. *Gp.* K.P. Narayan Shastri, N.S. Tirunarayanacharya, V.S.Ramchandra Shastri. *Add.* Kaduru, Chikkamaglur KT. *Spl.Ref.* Veda & Advaita Vedānta.

Shastri, Subrahmanya K.S. *b.* 28.11.1933, Tirunelveli, T.N. Veda Teacher. *Add.* 10, M.B.S. Agrahara, Kulittalai T.N. *Spl.Ref.* Veda.

Shastri, Subrahmanya Potukuli. M.A., M.Litt. D.Litt. *b.* 22.01.1920, Tenali, A.P. *Gp.* Neelkanth Shastri, P.V. Das Shastri, C.Kunjan Raja. *Ps.* 03. *Add.* 59, Vidhya Vihar, Pratap Nagar, Nagpur MH. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Shastri, Subrahmanya V.H. Shiromani. *b.* 15.04.1912, Tripunithura, Kerala. Rtd. Principal, Madras Sanskrit College. *Bks.* Vālmīkikāṇḍa Rāman (Tamil), Sanskrit Literature. *Add.* 27, Chidambaraswami Road, III[rd] Street, Mylapore, Madras. *Spl.Ref.* Sāhitya & Vedānta.

Shastri, Sudhanshu Shekhar. Nyāya, Vedāntacharya, Ph.D. *b.* 03.10.1944. Rtd. Prof. Kashi Hindu Univ. Varanasi. *Gp.* Shri Shiv Shankar Bharti. *Bks.* 03. Darśana Sarvasvam (Tika), KhaṇḍanaKhaṇḍa- Khādyan (Part–I,II). *Ps.* 25. *Add.* Bharati-bhawanam, C.K. 34/39 Lahori Tola, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Awarded by Sanskrit Parishad.

Shastri, Sudhanshu Shekhar. Ph.D. *b.* 03.10.1944. Jaipur, RJ. Prof. *Bks.* 02. Darśanasarvasvam, Khaṇdan-khaṇda-khādyam (Ed.). *Ps.* 10. *Add.* Vaidik Darśana Vibhag, S.V.D.V. Sankay, K.H.V.V. Varanasi, & Bharati Bhavanam, C.K. 34/38, Lahoritola, Varanasi – 9, U.P.

Shastri, Sunanda Ben Y. Ph.D. *b.* 13.11.1953. Prof. Sanskrit Deptt. Bhasha Sāhitya Bhawan, Gujrat University, Ahemdabad. *Ps.* 03. *Add.* B-2 Jash Appartment Nehru Park Ahemdabad. *Spl.Ref.* Dharma Śāstra.

Shastri, Surendra Dev. Shiromani, Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1918, Mainpuri, U.P. Asct.

Prof., Deptt. of Sanskrit, S.M.M. Town College, Balia U.P. *Bks.* Viśākhadattaracita Mudrārākṣasa kī Ālocanātmaka Bhūmikā, Nā-yakalā kī Dṛṣ-ī se Kālidasa aur Bhavabhūti ke Nā-akoṃ kā Tulanātmaka Adhyayana, Kāvyamīmāṃsā(Ed.). *Add.* Jagatnagar, Bhongaon, Mainpuri U.P. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Shastri, Surya Narayan. Vidvān, Acharya. *b.*27.03.1914, Mungada, East Godawari, A.P. Chairman. *Ps.* 05. *Add.* Bharatiya Vidhya Niketan, Mungada A.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Alaṅkāra, Kāvya & Vedānta Śāstra.

Shastri, Surya Narayan. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*1883. Mahendragarh, HR. Prof. & HoD., Maharaja Sanskrit College, Jaipur. Rj. *Gp.* Pt. Madhusudan Ojha. Pt. Laxminath Shastri Drawid. *Sp.* Jaipur King Mansingh, Pt. Shyamsundar Sharma. Hiralal Shastri, Rajkumar Sharma. *Bks.* 24. Mānavavaṃśamahākāvyam, Udyogalaharī, Śambhusamārādhanam, Śrī-Annapūrṇasmaraṇam, Madanamahattvam. *Expired in* 1951. *Spl.Ref.* He was editor of 'Lokavāṇī' & Rāṣtradūta' daily newspaper of RJ and also edited in 'Saṃskṛta Ratnākara'. Awarded 'Sāhityabhushan' by bharat dharm mandal.

Shastri, Surya Prakash. Shastri, Purva Mīmāṃsā, Vidhyapravin. *b.*20.08.1920, Seetampetta, Rajmahendry, A.P. *Bks.* Vājapeyamīmāṃsā, Vedārtha Saṅgraha. *Add.* 17/12/3, Seetampetta, Rajmahendry A.P. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Shastri, Swami Dwarika Das. Acharya in Vyākaraṇa, Bauddha-Darśanaa, Pali, Ayurvedavisharad. *b.*01.12.1924, Rajapura, Bhivani, HR. Śāstrachudamani. *Gp.* Pt. Ramchandra Sharma, Vidhya-bhushan, Pt. Raghunath Sharma. *Add.* 2, Adhyapak Niwas, Jagatganj, Varanasi-2, U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, BauddhaDarśana, Pālī & āyurveda.

Shastri, Swami Shyamsundar Das. Acharya. *b.*20.02.1925, Meerut, U.P. Rtd. Principal. *Gp.* Murlidhar Mishra, Trilokdhar Dwivedi. *Ps.* 05. *Add.* Shri Garib Dasi Sevashram, Haridwar. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Swaminath M. K. Vyākaraṇa Shiromani. *b.*28.11.1927. *Add.* 3, East Agraharam, Kodumaudi, Periyar T.N. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Veda.

Shastri, T. Ganpati. *b.*1860, Tharuvai, Thirunelveli, TN. Rtd. Principal, Skt. College Thiruvananthapuram. Kerala. *Gp.* Neelkantha Shastri. *Bks.* 87. Iśanaśivagurudeva Paddhati of Iśanaśivagurudeva (Vol.–II), Arthaśastra of Kautilya (Vol.–III), Viṣṇu Saṃhitā (ed.), The Yājñavalkya Smṛti, Āryamañjūśrī Mūlakalpa (Vol.–III). *Expired in* 1926. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa, Vedānta, Tantra, Mantra, Dharma, Shilpa & Mimāṃsā. Honorary Member of Royal Asiatic Society, London. Received Ph.D. Award from Tubingen Univ., Germany & Maha Mahopadhyay Samman.

Shastri, Ugrasen. Acharya in Sāhitya. *b.*28.01.1912. Sanskrit Teacher, Commercial Uchattar Madhyamik School, Darya Ganj. New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* Sanskrit Prachrak Mandal, 5172, Basan Road, New Delhi – 110002. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Utukuru Subrahmanya Chandra Shekhar. *b.*30.09.1954, Palamaneru, Chittur, A.P. *Gp.* R. Krishnasvami Ayyanngara. *Add.* Shri Padmavati Devasthanam, Thiruchanuru–517503 (A.P.). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda.

Shastri, Vagish. Achayra, Vidyavaridhi, Vidya Vachaspati. *b.* 24.07.1934. Director, Research Institute, Varanasi, U.P. *Bks.* 03. Narmasaptaśatī. Śiṣ-ahāsya-vyaṅgyokti-virājitā, Ātaṅkavāda-Śatakam. *Add.* B3/131 A Shivala Varanasi – 01. *Spl. Ref.* Kalidas Samamn, Bhanbhatt Puraskar (U.P. Skt. Academy), Ved Vedānta Puraskar, Raj. skt. academy. Mahamahopadhyaya.

Shastri, Vagishwar. Acharya. *b.*20.07.1928, Ghoradi, Udhampur, J&K. Rtd. Teacher. *Gp.* Shivram Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Mohalla New Plot, H.No. 13, Near Shri Radhakrishna Mandir, Jammu Tawi. J&K. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Vaikund Nath. M.A., Ph.D. Acharya in Sāhitya, M.Ed. *b.*25.05.1940. Karouli, Sawai Madhopur, RJ. Rtd. *Gp.* Shri Navalkishore

Kankar, Shri Govind Narayana Vaiyapika. *Sp.* Hariprasad Vaidha, Satyanarayana Sharma, Prof. Chandraśekhar Tiwari. *Bks.* 08. Āstika Mahākāvyam, Kathā Kalpataruḥ, Aitihāsika Nātakam, Kathā Kaustubham, Hammīrotsarga Nātakam. *Add.* Kamala Nikunj, 67, Rajbagh, Sawai Madhopur RJ. *Spl.Ref.* Poet, story writer & Play-writer. Awarded by H'ble. Governor.

Shastri, Vamshi Dhar. M.A., Acharya (DharmŚāstra, Veda), Ph.D. *b.* 13.05.1931, Gwalior, M.P. Asct. Prof., Govt. Sanskrit Mahavidhyalaya, Indore. *Gp.* Gangadhar Shastri, Sitaram Shastri. *Add.* Ved Mandir, 17, Tilak Marg, Indore. M.P. *Spl.Ref.* DharamŚāstra & Veda.

Shastri, Vasudev. Acharya in Vyākaraṇa, Shastri. *b.*1915, Rorada, Samastipur, Bihar. Rtd. Prof. *Gp.* Abhedanand Saraswati, Ganesh Dutt Tripathi, Ramavtar Sharma, Vishvnath Shastri. *Add.* Gurukul College, Baidyanath Dham Bihar. *Spl.Ref.* Veda, Karmakanda, Vyākraṇa & Darśana.

Shastri, Ved Kumar. Shiromani, M.A. *b.* 01.06.1954. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Mayur Vihar, Delhi. *Ps.* 04. *Add.* J-115, Rajouri Garden, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Ved Prakash. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.*06.06.1945, Sarkara, Muradabad, U.P. Jt. Principal. *Gp.* Parmanand Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Near Narsingh Dham, Bhagavan Nivas, Shravan Nath Nagar, Haridwar U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Shastri, Vedpal. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., B.Ed. *b.*15.06.1928. Rtd. Principal, Ramjas Senior Secondary School, Daryaganj, Delhi. *Ps.* 04. *Add.* 10, Teachers Quarters, Anand Parvat, New Delhi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shastri, Veer Hanuman. Acharya (Sāhitya, Siddhanta Jyotiṣa), M.A. Ratna. *b.*13.04.1911, Lathi, Ganjam, Orissa. Asst. Prof., Jyotiṣa. Ganjam, Orissa. *Bks.* 03. Śastrīya-sandarbhasaurabhaṃ, Gadādharavidyā-bhūṣaṇaṃ, Bhūbhramavādaḥ. *Expired on* 19.07.1994.

Shastri, Venkat Ram V.N. Vedānta-Śiromaṇi. *b.*1909, Vellore T.N. *Gp.* K.S. Krishna Shastri. *Add.* 2, Valmiki Street, Shrinivas Nagar, Madras. *Spl.Ref.* Veda & Vedānta.

Shastri, Venkat Subrahmanya V.S. Shiromani. *b.*21.10.1911, Kanchipuram, T.N. Rtd. Principal, Venkataraman Ayurved College. *Gp.* M.M. Dandapani Swami Diksitar, A. Shivramkrishna Shastri. *Bks.*05. *Add.* Shri Sankaracharya Swami Math, Kanchi Kamakoti pith, 1, Salai Street, Kanchipuram. T.N. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Ayurveda, AdvaitaVedānta & Sāhitya.

Shastri, Vidhu Shekhar. Sāhitya. Darśana, Nyāya, Vedānta, D.Litt. *b.*1878. Harish-Chandrapur, Maldah. Asst.Prof., Shantiniketan, Kolkata. *Gp.* M.M. Kailash Chandra Shiromani, M.M. Subrahmanya Shastri, *Bks.* 13. Candraprabhā, Hariścandracaritra, Nyāyapraveśa. *Spl.Ref.* 'M.M.' Awarded by Govt. of India in 1936.

Shastri, Vidyadhar. Shastri, M.A. *b.*08.08.1901. Churu, RJ. HoD., Barahsaini College, Aligarh. *Gp.* Pt. Shridatt Shastri, Sachetaram Shastri. *Sp.* Dr. Krishnkumari Mehta, Dr. Brahmanand Sharma, Dr. Ved Prakash Sharma. *Bks.* 19. Śivapuṣpāñjalī, Haranāmāmṛtam, Viśvamāna-vījayakāvya, Nītiratnam, Sadgṛhajīvanam, *Spl.Ref.* Established Hindi Vishvbharti Institute at Bikaner. Awarded by President, Govt. of India. 'Vidyaratna' by Bharat-dharm Mahamandal. 'Vidyavachaspati' by all India Sanskrit Pracharak Mandal. 'kavi samrat & manishi' By RJ Sāhitya academy, Udaipur.

Shastri, Vijay Mitra. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.*03.04.1918, Ghosi, U.P. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Swami Tyaganand Saraswati. *Add.* C-27/211-4/1, Vivekanand Nagar, Varanasi U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Jyotiṣa, Darśana, Sāhitya, Mīmāṃsā & Veda.

Shastri, Vijaypal. Acharya in Dharmśāstra, M.A., Ph.D. *b.*26.03.1926. Vice- Principal. *Ps.* 03. *Add.* D.A.V. Naitik Shiksha Sansthan, Arya Samaj, Mandir Marg, New Delhi-110001. *Spl.Ref.* Sāhitya & Dharma-śāstra.

Shastri, Vishnu Bandhu. M.A., Ph.D. *b.*14.12.1935, Sirhind, Patiala, Punjab. Asst.Prof., D.A.V. College, Abohar. *Gp.* Vishvanath Shastri, Ramnath Gargi, Mohandev Panta. *Ps.* 03. *Add.* B-5/403, College Road, Abohar, Punjab. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shastri, Vishva Narayan. Kāvyatīrth, M.A., D.Litt. *b.* 1932, Assam. Principal, N.L. College, Vice-Chairmen, Assam Rajyojana Aayog. *Bks.03.* Avināśī (Novel), Mīmāṃsā Philosophy Kumārilabhatta, Kālikāpurāṇa, Nyāyavaiśeṣika Philosophy. *Add.* Ritayanam, Chandmari Red Cross Road, Guwahati – 03. *Spl. Ref.* Honour from Sāhitya Academy Delhi, Bhartiya Bhasha Parishad, U.P. Hindi Sansthan, President Awardee.

Shastri, Vishvambhar Nath. M.A. Ph.D. *b.* 01.04.1953, Badlighat, Dhundhikatra, Mirzapur U.P. Asst.Prof. *Ps.* 03. *Add.* C/o. Bajrangi Giri, Premdhana Marg, Badlighat, Mirzapur U.P. *Spl.Ref.* Nyāya & Sāhitya.

Shastri, Vishvanath Gopal Krishna. Vidhyapraveen, M.A., Ph.D. *b.*16.06.1949. Godawari, A.P. Principal, SGVPKJ College, Rajmahendri. *Ps.* 03. *Add.* House No. 20-16-57, Tummalava A.P. *Spl.Ref.* Nyāya.

Shastri, Vishvanath Gokul Das. Ph.D. *b.*08.03.1942. Prof. Shri Vikram Bhai Batwani Arts & J.V. Gokul Trust Commerce College, Radhanpur, Patan. *Ps.* 03. *Add.* 14, Chamunda Society, Kachcha Highway, Radhanpur, Patan, Gujrat. *Spl.Ref.* Vedānta, Vyākaraṇa & Purāṇa.

Shastri, Vishwa Murti. M.A., Ph.D. *b.*10.10.1946, Ramnagar, Kasuri, Udhampur, J&K. Prof. & Principal, R.Sk.S., Shri Ranvir Campus, Jammu. *Gp.* Madan Mishra, Kakaram Shastri. *Bks.* Saṃskṛtasāhityaśāstrasya Guṇavivecanam. *Add.* 3/127, Indiravihar, Old Janipur, Jammu, J&K. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra. Actor & Director of Sanskrit Plays. President Awardee.

Shastri, Vishweshwar. Vedānta Shiromani. *b.* 22.10.1922, Penukonda, Anantapur, A.P. Rtd. Asst. Prof. *Ps.* 03. *Add.* Panchangam Vithi, Penukonda, Anantpur A.P. *Spl.Ref.* Vedānta.

Shastri, Vriddhi Chandra. Acharya in Vyākaraṇa & Jyotiṣa. *b.*1904. Prof., Maharaja Sanskrit College, Jaipur. Mantri, RJ Sanskrit Sāhitya Sammelana. *Gp.* Giridhar Sharma Chaturvedi. *Sp.* Pt. Pravinchandra Jain, Dr. Mandan Mishra, Dr. Ramnarayan Chaturvedi, Devarshi Kalanath Shastri. ***Expired on*** 28.01.1964. *Spl.Ref.* Founded a Stechew at the birth Place of 'Mahakavi Magh'. Edited 'Bhāratī' magazine. Awarded 'Sāhityarnava' & 'Sāhityalaṅkāra'.

Shastri, Yashodev. Acharya (Darśana, Sāhitya), Hindi Prabhakar. *b.* 10.05.1913. Principal, Sri Saraswati Skt. Mahavidyala, Khanna, Punjab. *Bks.* 01. Bhāratasaṃskṛtigauravam. *Ps.* 05. *Add.* 150. Ward No. 16. Purāṇaa Bazar, Khanna, Ludhiana – 01. Punjab. *Spl. Ref.* President Awardee, Siromani Sāhityakar Samman, Govt. of Punjab.

Shastrigal, Vidya Nath. Traditional Degree. *b.*1912, Payyanur, Cannanore, Kerala. Parayankarta. *Add.* 51, Pachayaippa Street, Kumbakonam, T.N. *Spl.Ref.* Veda.

Shastrigal, C. Srinivasa. Veda Vidvān, Srautsmart Vidvān, Ved Bhashya Vidwan, Tradition in Karmakand and PurvaMimāṃsā. *b.* 17.10.1927. Tanjoor. Principal, Kanchi Kamkoti Peetham Pathshala, Kanchipur. *Spl.Ref.* Mīmāṃsā, Veda, Gṛhyasūtra, He has imparted Krishnayajurveda Samhita to more than 500 students many of who have setteled in various parts of India as Vedic Teachers, President Awardee.

Shastrigal, Minakshi Sundar S. Veda (Graduate), Vedānta Shiromani. *b.*21.10.1958, Kangayam, TN. *Gp.* S. Rajagopal Ganpatigal, R. Krishnamurti Shastrigal. *Add.* Sanskrit Vidwan, Kangayam (TN). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda & Advaita Vedānta.

Shastrigal, Ram Nath. *b.*03.04.1915, Thiruvarur, TN. *Gp.* Shankarnarayan Ghanapathigal, Ranganath Ghanapathigal. *Bks.* 03. Raghuvaṁśam(ed.), Kumārasambhavam(ed.), Saṁskṛta-pa-hanam. *Add.* 3, Javulikara Street, Thiruvarur, Thanjavur (T.N.).

Shastrigal, Subrahmanya Kuttanur Shringara. Vyākaraṇa Shiromani, Vedānta Visharada. *b.*15.03.1920, Tillai Nagar, Tiruchirapalli. ***Bks.*** 04. Rāmaśruti saptakam, Tridevīśruti, Mayūrasandeśam, Parāśaktistavam. ***Add.*** D-15/11 Cross, Tillainagar, Tiruchirapalli (TN). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Shastrigal, V. Raghunatha. Ṛghveda, Kṛṣṇayajurveda, Pada, Kram, Ghana, Lakshana, Mīmāṃsā, Sāhitya, Nyāya, Vedānta, Vyākaraṇa, Shiksha, Niruktakalpa. *b.* 19.03.1934. Principal Allur Ramaswami Rajalakshmi, Sri Veda Vedartha Srouta Vidyalaya. ***Bks.*** 03. ***Add.*** Allur Ramaswami Rajalakshmi, Sri Veda Vedartha Srouta Vidyalaya, Sritangam, Tiruchy – 06. ***Spl.Ref.*** Traditional Vedic Scholar, Title of Sri Srautha Ratnakar, Vividh Kalpagam, Sutra Prayog Marmagya, President Awardee.

Shastrigal, Varadraj A. R. Shastri. ***b.*** 13.04.1924, Kollengodu, Palakkad, Kerala. Teacher. ***Add.*** No. 95, Nangavaram Store, Teppakulam, P.O. Tiruchirapalli- 620992. ***Spl.Ref.*** Kāvya Śāstra & Veda.

Shastrigal, Venkatram G. ***b.***18.02.1916, Tiruvallur, T.N. ***Gp.*** T.N. Agorayajava. ***Add.*** Srinivas Ayyar Street, 14, West Mambalam, Madras. ***Spl.Ref.*** Darśana Śāstra & Veda.

Shastrigal, Venkatram P. V. ***b.***1906, Anangur, South Arcot, T.N. Teacher. ***Gp.*** Vyankatram Shastrigal, Krishnamurti, Parmeshwer Shastritgal. ***Add.*** C/o. R.A. Padmanabhan, 40/4, Sanatan Bhajananai Koyil Street, Villupuram. ***Spl.Ref.*** Veda, Sāhitya, Vyākaraṇa, Darśanaa.

Shastry, B.V. Venkatakrishna. ***B.***Sc., M.A., Ph.D. ***b.***13.08.1954. Devanaholli, Bangalore. Director, International Sanskrit Research Academy. ***Bks.*** 10. Kathā-ratnāvalī, Pratimānā-akam, Nibandha- Navanītam. ***Ps.*** 300. ***Add.*** 627, I–B, Main Road (Yediyur), 7th Block(West), Jayanagar, Bangalore–560082.

Shastry, Rani Narasimha. Tradition in Skt. Kāvya and Vyākaraṇa Śiromaṇi, Tarka, Vedānta Siromani. *b.* 16.08.1922. Narendrapuram. ***Spl.Ref.*** Title of MM by Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupathi. He has served as lecturer, Sr. Lecturer in various Sanskrit Colleges as well as Traditional Pathshalas and actively participated in conducting workshops, organizing Seminars, Conferences etc. President Awardee

Shastry, Shripada Lakshminarayana. Ācharya in Vyākaraṇa, Vyākaraṇa pandit, Bhashapraveen, Vyākaraṇa avidyapraveen, KāvyaŚāstra, DharamŚāstra. ***b.*** 15.03.1926. Modekuru, AP. Traditional Skt. Pt. & Śāstra Adhyapak, Skt. Institution, Guntur. ***Bks.*** 04. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, DharamŚāstra, KāvyaŚāstra, President Awardee.

Shastry, Vishnubhatla Subrahmanya. M.A., Ph.D., Tradition in Dharam Śāstra & Veda. *b.* 05.01.1941. Chitaram Agarharam, AP. Honourary Principal Veda Bhashya, Vigyan and Research Association Sikandrabad, AP. ***Bks.*** 02 Vājapeyī, Vidyāraṇyacaritra. ***Ps.*** 26. ***Add.*** Kamakotikrupa, Plot No 64/B H.No. 29-1361/5/2/1, Nerednet, Deendayal Nagar, Sikandarabad–56. ***Spl.Ref.*** Veda, DharmŚāstra, He was honoured many times by the organizations including Honourable Governor of AP. & President Awardee, Govt. of India.

Shatanshu, Somdev. M.A., M.Phil, Ph.D. ***b.***29.05.1959. Nuapali, Bargarh, Orissa. Prof., Gurukul Kangdi Univ. Haridwar, U.k. ***Gp.*** Swami Sampoornanand Saraswati, Swami Vivekanand Saraswati. ***Ps.*** 50. ***Add.*** 8 Purvi, Gurubaksha Vihar, Near Kushwah Nursary, Kankhal, Haridwar U.K. ***Spl.Ref.*** Editor – Pāvamānī Sodh Patrika – ISSN.

Shatapathy, Balaji. Paurohitya Acharya, ***b.*** 02.05.1976, Kodola (Orissa). ***Ps.*** 02. ***Add.*** Patharakata, Narayani Chaka, Langeleswar, Gunjam (Orissa). ***Spl.Ref.*** Vedic Priest.

Shatapathy, Bipin Bihari. M.A., B.Ed. ***b.***1950. Cuttack, Orissa. Sanskrit Teacher. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Ravenshaw Collegiate School, Cuttack, Orissa.

Shatapathy, Ladukeshwar. Shastri (Vyākaraṇa), Acharya (Sāhitya), B.O.L. (Sanskrit), M.A. (Sanskrit), D.Litt. *b.*20.11.1927, Vrindavanapur Shasan, Kavisurya Nagar, Ganjam, Orissa. Asst. Prof., Director of Research Project, Shri Sadasiva Kendriya Sanskrit Vidyapeetham, Puri. *Bks.* 06. Varṇaparivartanarahasyaṃ, Liṅgarājāyanaṃ. *Ps.* 10. *Spl.Ref.* Receipient of Rastrapati Award (1994), President of Nikhilotkaia Sanskrit Mahamadalam, President of Prachyavidya Pratisthan, Delhi.

Shatapathy, Rajeev. Jatak Bhushan, Jyotiṣaratna. *b.*29.10.1909. Santoshpur, Humma, Ganjam, Orissa. Astrologer. *Bks.* 02. Paṃjikā (1939 to 1985), Calender (1939 to 1989). *Expired on* 25.09.1988.

Shatavdhani, R. Ganesh. BE, M.Sc., M.A. *b.* 03.12.1962. Bangalore, KT. Director, Sanskrit Studies, Bhartiya Vidya Bhawan, Bangalore. *Bks.* 16. Śāradālaharī, Anyokti laharī, Madhusadma, Cātupe-ikā, Śaṅkaravivekīyam, Antaḥ Kāntiḥ. *Ps.* 100. *Add.* 1250 (30) 4, Main E Block, Rajaji Nagar, Bangalore – 10. *Spl.Ref.* Greek, Latin, Italian, Marathi, Pali, Prakrit, Editor of Pranav Vidya, Dharam Prabha, Kannad Dharmik Patrika, Badrayan Vyas Samman by the hand of President of India.

Shelat, Bharti Ben Kirti Kumar. Ph.D. *b.*05.02.1939. Prof., B.J. Vidhya Bhawan, H.K. College Compound Aashram Road, Ahemdabad. *Ps.* 03. *Add.* 9, Sneh Bandhan Appartment, Near Chandra Nagar, Bus Stand, Narayan Nagar Road, Paldi Ahemdabad. *Spl.Ref.* Apigraphy.

Shelat, Jagdish Bhai Narottam Das. Ph.D. *b.*05.09.1930. Prof., Smt. J.P. Sharaf Arts. College, Tithal Road, Valsad. *Ps.* 03. *Add.* C-1/2 Rina Park Tithal Road, Valsad. *Spl.Ref.* Apigraphy.

Shete, Vejyanti D. Ph.D. *b.*24.05.1950. Prof. Deptt of History M.S. University Varodara. *Ps.* 03. *Add.* 3-B, Sojanya Society Makarpura, Near Bhartiya Vidhya Bhawans School Varodara. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Shevade, Vasant Triyambak. M.A. *b.* 02.10.1917, Bombay, MH. *Bks.* Raghunātha-tārkikaśiromaṇicaritam, Vṛtta-mañjarī (Ed.), Śrīvindhyavāsinīvijaya- mahākāvyam, Śambhuvadhamahākāvyam, Stavamañjūṣā. *Add.* C/o. R.M. Saptarishi, B-4/17, Hanuman Chat, Varanasi, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya. Award-U.P Sanskrit Academy Kalidas Award.

Shevde, Vasant Tryambak. M.A. *b.* 02.10.1917. Mumbai, Maharashtra. *Bks.* 09. Vindhya-vāsinīvijayam, Śumbhavadha-mahākāvyam, Abhinavameghadūtam. *Add.* K-3016 Ghasi Tola, Varanasi – 01. *Spl. Ref.* Freelance writer in Skt.

Shikari, Prem. M.A., B.Ed. *b.*15.02.1945. Teacher (TGT) Sanskrit, Govt. Boys Senior Secondary School, Mayur Vihar, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 72-D/4, Mayur Vihar–I, Delhi–110091. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shirahatti, Shantisagar. M.A., Ph.D. Net. Ph.D. *b.* 01.06.1978. Research Fellow, National Institute of Prakrit Studies and Research Shravanbelagola KT. *Bks.* 02, *Ps.* 19. *Add.* Nandeshwar Tq. Athani D. Belguam Karnataka. *Ph.* 09980703105 *Email* shantisagar.shirahatti@gmail.com *Spl.Ref.* Research in Prakrit Jainology Manuscriptology and Peleography.

Shivacharya, Chandra Shekhar. Ph.D. *b.*1947. Dharvada, KT. *Gp.* Amareshwar Swami. *Bks.* 01. Śaktiviśiṣṭādvaitatattva-trayavimarśaḥ.

Shivacharya, Neelkantha. *b.*1900. *Bks.* 05. Śivādvaitaparibhāṣā, Śivānubhavadīpikā, Vīraśaivasiddhāntacūḍāmaṇi, Vijayadhva-javilāsaḥ, Surbhāratī Vilāsaḥ. *Expired in* 1971. *Spl.Ref.* Shivadaita Siddhanta.

Shreegith T.G. Acharya, B.Ed., Ph.D. *b.* 21.05.1981, Neeloor, Kerala. Asst. Prof., Ramakrishna Mission Vivekananda University. *Gp.* M.L.N. Murty, Dr. Gunapathi Bhatt, Dr. K.S. Sathushe. *Add.* Thalappolickal House, Hattathippara, Kottayam, Kerala – 686651. *Ph.* 9883243401. sreegit@gmail.com. *Spl. Ref.* Knowledge of six languages Sanskrit, English, Hindi, Malayalam, Telugu, Tamil.

Shri Anirvan. B.A., from Dhaka, and M.A. from Culcutta. *b.*08.06.1896 Mymensigh, Bangladesh. ***Bks.*** 05. Veda Mīmāṃsa, My Life with a Brahmin Family, Hindū Philosophy, Vedānta Jijnvāsā, Yogasamanvay Prasanga. *Expired on* 31.05.1978. ***Spl.Ref.*** Scholar, Writer, Bengali, Marxism, nuclear and gardening, Famous as a Saint.

Shri Bakul Bhushan Jaggu. ***b.***1902. Mysore. Asst.Prof., ***Bks.*** 15. Śṛṅgāralīlāmṛtam, Adbhutāṃśukaḥ, Pratijñākautilya. Pratijñāśantanava, Prasannakaśyapa.

Shri Jeev Nyāya Tirtha. Bengal, ***Gp.***. Panchanan Tarkaratna (Father). ***Bks.*** 35. Pāṇḍava Vikrama (Mahākāvya), Sārasvat Śatakam (Citrakāvyam), Ṛtucakra Cakramaṇam (Gītikāvya), Mahākavi Kālīdāsam, Vivekānandcaritam (Plays). ***Spl.Ref.*** Great poet of MahaKāvya, KhandaKāvya & NitiKāvya.

Shridevi, E.P. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.08.1957. Perumannoor. Asst.Prof., R.Sk.S., Sringeri. ***Bks.*** 07. Mahiṣamaṅgalā-Bhāṇaḥ , Ku-īya--a Nā-yakalā. ***Add.*** E-2, Humangad Pushpakam, Perumannoor, Chalissery, Palghat, Kerala-679536.

Shridhar, Mutukulam. Sāhitya Visharad, M.A. ***b.*** 23.01.1926. Alipi, Kerala, Reseach Officer, Sri Sankaracharya Skt. V.V. ***Bks.*** 09. Navabhāratam, Dharmasthalīyam, Nāyakābharaṇam, Aśrupūjā. ***Add.*** Sri Mandiram Utthel Kottakkakam, Chennithala Alipi, Kerala. ***Spl. Ref.*** Title of Pandit Ratanam, Kaviraj, Mahakavi, Bhasha, Panini.

Shrinivasa Rao, Yallam Raju. M.A., ***b.***15.06.1927, Markapur, Prakasham, A.P. Rtd. Principal. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 4/264, Gandhi Road, Prodduturu–516360 (A.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Shrinivasan, Raj Gopalan. Mīmāṃsā-shiromani, Sāhitya-shiromani. ***b.***13.08.1931, Mannaragudi, Thanjavur, TN. Asst. Prof. ***Add.*** Shri Malayalswami Sanskrit Kalashala, 4/329, Ashram Vithi, Proddutur–516361(A.P.) ***Spl.Ref.*** Veda, Mīmāṃsā & Sāhitya.

Shrinivasan, Rammurty Shastry. ***b.*** 08.04.1966, Kumbakonam, T.N. Veda-parayanakartta (Vedic exponent) ***Gp.*** Vijay Raghav Ghanpatigal. ***Add.*** Shri Venkateswar Swami Devasthanam, Tirumala-517504 A.P. ***Spl.Ref.*** Śuklayajurveda.

Shriramamurty, Pochamcharla. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.05.1934. Tammavaram (A.P.). ***Bks.*** 06. ***Ps.*** 60. ***Add.*** 4-112, Vidyut Nagar, Dayalbagh, Agra-282005, U.P.

Shrivaishnav, Harisharanacharya. Acharya in Sāhitya. ***b.***12.08.1937, Ayodhya, Faizabad, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Avdheshsharan Acharya, Rudraprasad Avasthi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Mohandas Gurukul Sanskrit College, Gopal Ghat, Sitapur U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Shrivaisnav, Rambhadra Das. Acharya (Navya Vyākaraṇa, Vedānta) ***b.***08.06.1941, Rupaidiha, U.P. HOD Nyāya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sri Sanatan Dharmik Adhyatma Sanskrit Mahavidyalaya, Arail, Allahabad U.P. ***Spl.Ref.*** Navya Nyāya, Vyākaraṇa, Vedānta.

Shriwastav, Bhavana. M.A., M.Phil., Ph.D., D.Litt. ***b.***15.08.1960. Bhopal, M.P. HoD., Govt. MLB Girls College, Bhopal M.P. ***Bks.*** 17. Bastara kī Halbī Bhāṣā meṃ Prayukta Saṃskṛta Śabdoṃ kā Jātīya Artha Vijñāna, Arthagauravam meṃ Bhāṣā Vijñāna, Kālidāsa ke Rūpakoṃ meṃ Āṅgika Abhinaya ke Svarūpa, Śreyasī. ***Ps.*** 15. ***Add.*** Satya Pushp, 55- Amaltas Phase – II, Chuna Bhatti, Kolar Road, Bhopal, M.P. ***Spl.Ref.*** State Level 'NSS' Award in 2001. 'Svayamsiddha' Award in 2008. 'Best Teacher' Award in 2008.

Shriwastav, Kaushal Kumar. M.A., D.Phil.. ***b.*** 22.02.1957, Faizabad, (U.P.). Asct. Prof. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 23/47/24, Labour Chouraha, Kidwai Nagar, Allapur, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Shriwastav, Suresh Chandra. Shastri, M.A., D.Phil. ***b.***02.11.1932, Allahabad, U.P. Asst.Prof., Allahabad University. ***Bks.*** Ācārya Vijñānabhikṣu aur Bhāratīya Darśana meṃ Unakā Sthāna, Yogasūtrakāvyasiddhiḥ. ***Add.*** 37/2, Baghambari Road, Daraganj, Allahabad U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa & Darśana.

Shriwastav, Sushma. M.A., B.Ed. ***b.*** 18.10.1942. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, J. J. Colony, Tegore Garden, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 114-A, D.D.A. Flats (MIG), Rajouri Garden, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Shriwastav, Vatsala. M.A., Ph.D. ***b.***19.10.1961. Bareilly (U.P.). Asst. Prof. Govt. P.G. College, Jhalawar, RJ. ***Bks.*** 02. Yayātīcaritam, Yayātikathā aur Yayāticarit. ***Ps.*** 15. ***Add.*** C-25/1 A-a Ramkatora Road, Varanasi.

Shrotriya, Suresh Prasad. Acharya in Navya Vyākaraṇa. ***b.*** 02.01.1959, Parasen, Gwalior, M.P. Teacher. ***Gp.*** Pt. Ramswaroop Sharma, Pt. Damodar Prasad Mishra. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Near Mateshwari Mandir, Krishnapuri, Murar, Gwalior M.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Shrotriya, Ved Prakash. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. ***b.***01.06.1952. Vedapracharak. ***Add.*** RZ-2692, Gali No. 30, Tughlakabad, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Veda.

Shukla, Abhinava. M.Phil. ***b.***08.10.1976. Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** R– 6, Vani Vihar, Uttam Nagar, New Delhi–110059.

Shukla, Amit Kumar. Acharya in Jyotiṣa, Ph.D. ***b.*** 07.07.1979, Jaunpur (U.P.). Asst. Prof., R.Sk.S., Lucknow Campus, Lucknow. ***Gp.*** Prof. Umashankar Shukla, Prof. Ramchandra Pandey, Pt. Kamalkanta Shukla. ***Bks.*** 03. ***Ps.*** 10. ***Add.*** R.Sk.S. Lucknow Campus, Lucknow. ***Ph.*** 9473691508.

Shukla, Aruna. M.A. in Pali, Ph.D.,***b.*** 13.07.1958, Gazipur. Asct. Prof. Sanskrit & Prakrit Languages, L.U. ***Bks.*** 01. Abhidharma Samuccaya Gūḍhārtha vivecanī. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 2/27, Sector "J" Janakipuram, Kursi Road, Near Gudumba Thana, Lucknow. ***Ph.*** 9956872526.

Shukla, Ashok Kumar. M.A. (Skt. Hindi), Shiksha-Shastri, Vidyavaridhi. Lecturer Kendriya Vidyalaya, Burnala, Punjab. ***Bks.*** 01. Paryāraṇakāvyam. ***Add.*** 36B, DDA Flat, Anand Vihar, Delhi – 92.

Shukla, Bali Ram. M.A., Ph.D. ***b.*** 28.03.1941. Varanasi, U.P. ***Bks.*** 05. Anumāna-Pramāṇa, Navya Nyāya ke Pāribhāṣika Padārtha. ***Ps.*** 80. ***Add.*** 48/3. Sai Moh, Ganesh Nagar, Vadgaon, Sheri, Pune.

Shukla, Bhagvat Sharan. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. ***b.***10.04.1956. Asct.Prof. Kashi Hindu Univ. Varanasi. ***Gp.*** Ved Harinath Dixit, Pt. Ramvadan Shukla, Dr. Madhukar Pathak. ***Bks.*** 05. Paribhāṣārtha Candrikā, Vācyapari-var--ana Siddhānta, Rāgārṇava Vyākhyāna, Sidhānta Kaumudī, Kāraka Prakaraṇa, Śābdika Sioddhānta Vimarśaḥ. ***Ps.*** 71. ***Add.*** Kuthiya Mohgak, Katni, M.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstrath Puruskar-1984 by M.P. Sanskrit Academy, Bhopal (M.P.), Sanskrit Sāhitya Puruskar-2005 by U.P. Sanskrit Sansthan, Patanjali Puruskar-2006 by M.P. Sanskrit Board, Veda Pandit Puruskar-1998 by U.P. Sanskrit Sansthan.

Shukla, Bhakti Nath Girindra Nath. Ph.D. ***b.***15.06.1938. HOD, Sanskrit. Sardar Patel University, Vallabh Vidha Nagar, Aanand. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 18, Avdhoot Society Nana Bazar, Vallabh Vidha Nagar GJ. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Shukla, Brahmanand. ***B.*** 1904. Muzafarnagar U.P. HOD Skt. Deptt. Sri Radha Krishan Skt. Mahavidyalaya. ***Bks.*** 03. Śrī-GāndhīcarItam, Neharūcarītam, Bhāratasuṣamā. ***Expired in*** 1970. ***Spl. Ref.*** Sāhitya Śāstra, Poetry.

Shukla, Brijesh Kumar. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D., D.Litt. (Skt. & Jyotirvijnana). ***b.*** 01.10.1962, Trilokpur, Barabanki (U.P.). Asst. Prof. & Hd. of Sanskrit & Prakrit Language Lucknow University. ***Gp.*** Shri Upendra Narayanachary, Prof. Ashok Kumar Kaliya. ***Sp.*** Dr. Prayag Narayan Mishra, Dr. Deepak Kumar, Dr. Shalini Mishra. ***Bks*** 23. Śrīmadbhārgavopapuranam adhyayanam Saṃpadanañca, Purāṇasāhityādarśaḥ, Ādyupapurāṇam, Alaṅkārasāraḥ, Alaṅkāra sārasamīkṣaṇa. ***Ps.*** 50. ***Add.*** 78 – A, Badshah Bagh, Lucknow University Campus (goharnath Road) Lucknow (U.P.) – 226007. ***Ph.*** (0522) 2740430, 9415425834. ***Spl. Ref.*** Namit Vyas

Puraskar (1998), Ramkrishna International Sanskrit Award (2001), Shikshashastri Sammana (2010).

Shukla, Chandra Kant. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.d., D.Litt. *b.*29.01.1949. Awadhpura, Saran, Bihar. Professor, Ranchi University. *Gp.* Pt. Jatashankar Jha, Pt. Brahmadatta Dwivedi, Pt. Ramachandra Mishra, Pt. Kedarnath Ojha, Prof. H.P. Dwiwedi, Prof. U.S. Sharma. *Sp.* Prof. Shyama Charan Dash, Dr. J.K. Shukla, Dr. Shailesh Kumar Mishra. *Bks.* 05. Saṃskṛta ke Dārśanika Nātakoṃ kā Saṃvidhānaka Tatva, Kālīdāsa Sāhitya evam Kāmakalā, Mudrārakṣasa–Pariśīlana. *Ps.* 30. *Add.* 16, Shivam Apartment, Karam Dahar (Jeevan Gali), Morabadi, Ranchi. *Spl.Ref.* Pt. M.M. Malaviya Sanskrit Sewa Samman by R.S. Prasad, Peris, Bokaro (2008), Higher Educational and Development Award 2004 at Delhi by National Association of Education for World Peace, Mahapatram by Orissa Sanskrit Academy at Raurkela (2004). Visited more than 20 countries including Australia & U.S.A. for attending World Sanskrit Conferences held in 1994, 1990 and 1984 respectively. Attended 33rd International Conference of Asian and North African Studies held at Torun (Canada) 1990.

Shukla, Chitra Ben P. Ph.D. *b.*27.04.1930. Prof., Sardar Patel University, Vallabh Vidha Nagar, Aanand. *Ps.* 05. *Add.* 85, A/2, Kunj Society Alkapuri Vadodra. *Sepl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Shukla, Dev Dutt. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 22.03.1949. HOD, Sadhubela Skt. College Shakarkand Gali Varanasi U.P. *Gp.* Dr. Pattabhiram Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Udar, Muriladih, Sonbhadra, U.P.

Shukla, Dina Nath. Acharya in Vedānta, Sāhityaratna, Ph.D. *b.*01.12.1955. *Gp.* Pt. Rajnarayan Shastri. *Sp.* Pt. Ratnesh Mani Tripathi, Pt. Prem Sagar Shukla. *Ps.* 01. *Add.* Majhigaon, Kaneel, Gorakhpur U.P.

Shukla, Giridhar. Acharya, Vidyavaridhi. *b.* 14.01.1952. Jaunpur. *Bks.* 15. Mukunda-smaraṇam, Jānākīkṛpāka-ākṣa, Śrīrāmānanda-siddhāntacandrikā, Arundhatī Mahākāvayam, Tulsī Sāhitya Me Kṛṣnakathā, Śrīnārada-bhaktisūtrasaya Rāghavakṛpā Bhāṣyam. *Add.* Amodvan Tulsi Peeth, Chitarkutt, Satna. *Spl.Ref.* After Dikhsha he's known as Swami Ram Bhadracharya, Vedvedang Śāstra, Kavi.

Shukla, Gopal Krishna. M.A. *b.*29.09.1982. Dhar, M.P. Asst.Prof. Vikram V.V., Ujjain. *Ps.* 01. *Add.* C/o Dr. Kedarnath Shukla, 61/8 Azad Nagar, Ujjain, M.P.

Shukla, H. Udayan. *b.*18.11.1944. Lakhatar (GJ). *Bks.* 03. *Ps.* 03. *Add.* Kaustubh B- 15, Vaibhav Society, Harani, RD.- Vadodara-390022, GJ.

Shukla, Harendra Lal Shankar. Ph.D. *b.*19.02.1959. Prof., Shri D.B. Rawal Arts & Commerce College, Halwad, Surendra Nagar. *Ps.* 05. *Add.* Shivalaya Radha Park Society, Near New Bus Stand, Morbi. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Shukla, Harish Chandra. Acharya. *b.*12.02.1954, Rajpur, Vatoura, Gonda, U.P. Head, Deptt. of Sāhitya. *Ps.* 05. *Add* Shri Tridandi Dev Sanskrit College, Katara, Ayodhya, Faizabad U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa Śāstra.

Shukla, Hiralal. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 05.08.1939, Amarpatan, Satna, M.P. Prof. & Head, Deptt. of Comparative Lit. & Culture. *Gp.* M.M. Dhakar. *Bks.* 70. Ādhunika Saṃskṛta Sāhitya, Ādivāsī Bhāṣā Vijñāna, Kālidāsakoṣaḥ, Dalitodayaḥ, Modern Sanskrit Litrature. Vilāpakāvyam, Madhupaḥ. Śaṅkaracarita-Mahākāvyam. *Add.* Barkatullah University, Bhopal, M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Shukla, Jayram Shastri. Nyāya, Vedānta, Mīmāṃsā. *b.*02.07.1913. Varanasi. Teacher, Balbhram Shaligram Sangved School, Varanasi, U.P. *Gp.* Bhikam Bhatt Patvardhan, Padmbhushan, Pt. Rajeshwar Shastri Drawid. ***Expired in*** 1988. *Spl.Ref.* Received 'Śāstra-ratna', 'Nyayratna', 'Vidyabhushan' 'Vidvatratna' & 'Nyāyālaṅkāra' Sammana.

Shukla, Kalika Prasad. Vachaspati, M.A.

b. 15.10.1921, Deoria, (U.P.). Rtd. Professor, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi. *Bks.* 03. Śrīrādhācarita-mahākāvyam, Sūrya-śatakam, Kāśikāvṛttiḥ (ed.). Citramīmāṃsā(ed.). *Ps.* 25. *Add.* B-26/118, Dharmasangha Shiksha Mandal, Durga Kund, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa. Received Uttar Pradesh Sanskrit Academy Award-1986.

Shukla, Kalindi Ben kartikeya. Ph.D *b.* 08.07.1967. Prof. Sardar Vallabh Bhai Arts College Ahemdabad. *Ps.* 05. *Add.* 2, Visva Bharti Society, Navragpura Near Telephone Exc. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shukla, Kamal Nayan. M.A., Ph.D.. *b.* 09.12.1955, Allahabad (U.P.). Professor, Rani Durgavati Vishvaviddhyalaya, Jabalpur. *Bks.* 06. Mādhurya Bhakti, Saṃskṛta Vāṅmaya meṃ Mānaviya evam Vaijñānika Cintana (Vol. – I), Saṃskṛta Vaṅmaye Vijñānam (ed.), Uccaśikṣā ke Paridṛśya (ed.). *Ps.* 65. *Add.* B– 81, A Priyadarshini Colony, Dumanaroad, Jabalpur (M.P.). *Ph.* 9425862993. *Spl. Ref.* Bharatiya Gyan Jyoti Award, New Delhi 2006.

Shukla, Kameshwar. M.A., B.Ed. *b.* 11.01.1969. Ondia, Bihar. *Ps.* 01. *Add.* K.K. Handigue Govt. Sanskrit College, Jalukbari, Guwahati, Assam-14.

Shukla, Kameshwar. Vyākaraṇa Shastri, M.A., B.Ed., Ph.D.. *b.* 11.01.1969, Vill. Bhalui, Dist. Siwan (Bihar). Asst. Prof. Gauhati University. *Bks.* 05. Reflections on Oriental Wisdom (Ed.), Stuti Praśasti mañjarī (Ed.), Sārasvata Samīkṣaṇa samuccayaḥ (Ed.), Pañcayajña Prakāśikā (Ed.), Śrī Gaṅgānāth Deva Śarma Śāstrī Jīvan Āru Kṛti. *Ps.* 11. *Add.* Asst. Prof., Dept. of Sanskrit, Gauhati University, Gopinath Bordoloi Nagar, Jalukbari Guwahati – 781014, Assam, India. *Ph.* 09435406412. Email. drkshuklagu@gmail.com, *Spl. Ref.* Participated in many national & international Conference & Seminars, working on many types of post in deferent sectors.

Shukla, Kamla Kant. *b.* 15.11.1911. Deorio, U.P. Rtd. Prof. S.S.V.V. *Bks.* 05. Saṅgrahamśiromaṇi, Vāstusaukhyam, Laghu-pārāśaram. *Ps.* 50. *Spl.Ref.* Honourary Title of Ach. by India Govt. Active Member of Sarvabhaum Skt. Prachar Sansthan, President Awardee.

Shukla, Kapil Dev. M.A., Ph.D.. *b.* 15.12.1950, Ambedkar Nagar (U.P.). Prof. & Head, D.D.U. Gorakhpur University. *Gp.* Prof. A.C. Banerjee. *Sp.* Km. Snehlata Dubey, Km. Vineeta, Km. Anju Jaiswal, Sri Dharmendra Mishra, Sri Etendra Dhar Dubey. *Bks.* 04. Āpastamba Śrauta Sūtra eka Adhyayana, Jalaplāvana Ākhyānam, Svaradīpikā, Ṛigveda Bhāṣya Bhūmikā. *Ps.* 15. *Add.* Vill. Mairwa, Post – Khalispur (Malipur), Distt. Ambedker Nagar (U.P.). *Ph.* (0551) 2202844, 9415385423. kdshukla53@yahoo.com. *Spl. Ref.* Awarded by Sayana Puraskar from Sanskrit Academy (U.P.), Many Radio Talks, Dramas, Participation in Various Seminars and Workshops.

Shukla, Kausal Kishor. Acarya in Sāhitya. *b.* 14.03.1961, Lucknow, U.P. Lecturer. *Gp.* Dr. Sivasekhara Misra, Dr. Bindaprasada Mishra. *Ps.* 05. *Add.* Mahavidyalaya, 103, Vidyanta Marg, Lal Kuan, Lucknow (U.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shukla, Kedar Nath. M.A. *b.* 08.07.1943. Ujjain. Prof., Vikram Univ., Ujjain, M.P. *Bks.* Sarasvatīkaṇ-hā-bharaṇaṃ kā Alaṅkāra Nirūpaṇa. Padyānuvāda of 'Parjanya-Sūkta', 'Vāksūkta' & 'Nāsadīya-Sūkta'. *Ps.* 25. *Add.* 61/8, Azad Nagar, Vishva-vidyalaya Marga, Ujjain, M.P. *Spl.Ref.* Editor of 'Mānasarovara', 'Vedavidyā' & 'Śiprāmitra' Magazines.

Shukla, Krishan Kant. M.A. (Skt. Hindi), Sāhitya Ratna. *b.* 15.01.1936. Bulandshahar, U.P. Principal, Rewri Nath Skt. Mahavidyalaya, Śāstra Chudamani Scholar. *Bks.* 03. Saṃskṛtagadhyamañjūṣā, Haravijayasya Sāhityikamadhyayanam. Expired in 23.05.1996.

Shukla, Krishna Kant. Vyākaraṇa Vedānta-

Acharya. *b.*15.10.1917, Patijiva, Basti, U.P. Rtd. Teacher. *Gp.* Buddhisagara Sarma; Sitarama Pathaka; Kamalakanta Misra. *Add.* 90A/5, Baghambari Bagh, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Veda & Vedānta.

Shukla, Kuber Nath. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. *b.*01.01.1911, Deoria, Gorakhpur, (U.P.). Rtd. Principal. Government Skt. College, Varanasi. *Bks.* 04. Vālmīkī Vacanāmṛta, Yogavāśiṣ-ha ke Rāma, Yogavāśiṣ-ha ke Ākhyānaka, Mahābhārata Sarvasvam. *Add.* J 11/81 A, Dhumchandi, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shukla, Lakshmi Shankar Gouri Shankar. Acharya in Vyākaraṇa, Kāvyatīrtha. *b.* 23.12.1916, Varodara, GJ. *Gp.* Gouri Shankar Shukla. Balkrishna Ghanpati, Shridhar Laxman Pade.Vitthalram Shastri, Laxminath Shastri, Balkrishna Miishra. *Bks.* Maṇḍa-pakuṇḍasiddhiḥ. *Add.* Ghantipara, Hargovind Bakra ka khancha, Vadodara. GJ. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya & Veda.

Shukla, Laxman Narayan. Acharya in Sāhitya, Tīrtha(Kāvya & Purāṇa), M.A.(Hindi, Sanskrit), Ph.D. *b.* 02.11.1927, Gwalior, M.P. *Gp.* Sitaram Shastri, Jagannath Shastri Dadhicha. *Bks.* Luṇ-hakājīvanam (MahaKāvyam). *Add.* 117, Nilkhanth Colony, Indore M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya, Purāṇa. Govt. of U.P. Awardee.

Shukla, Mahendra kumar Jagannath Bhai. Ph.D. *b.*22.11.1940. Prof. S.V. Arts College, Relief Road, Ahemdabad. *Add.* 9 B. Nava Wadaj Society, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Veda & Alaṅkāra Śāstra.

Shukla, Mahendra Narayan. Acharya. *b.*08.06.1948. Dungri, Chamoli, (U.P.). Principal. *Gp.* Harishankar Tripathi. *Ps.* 05. *Add.* Shribada Kalikamali Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh (Uttarakhand). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shukla, Mangal Datt. Acharya. *b.* 01.09.1958, Varatpharika, (U.P.). Asstt. Principal. *Ps.* 03. *Add.* Shri Ram Sanskrit Vidyalaya, Lahure, Charaka, Allahabad *(U.P.)*. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shukla, Mani Shankar. M.A. (Sanskrit & Hindi). *b.*1929. Jaipur, RJ. Asst.Prof., RJ Univ. *Spl.Ref.* Expert in Karmakand. Awarded by Govt. of Raj.

Shukla, Manik Chandra. Shastri, Ph.D. *b.* 02.01.1946. Visampur, Varanasi, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Dr. Ramsakal Pandey. *Ps.* 05. *Add.* SamPurāṇaanada Sanskrit Vishwavidyalaya, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shukla, Manoj Kumar. Achatya in Vyākaraṇa. *b.*05.02.1966, Kakoda, Allahabad (U.P.). Assistant Teacher. *Gp.* Ramkishor Tripathi, Purushottam Tripathi. *Ps.* 03. *Add.* Shri Samarth Sanskrit Vidyalaya, Samartheshvar Mahadev, Ellis Bridge, Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Navya Vyākaraṇa.

Shukla, Mohan Lal. Acharya. *b.*03.04.1942. Salempur, Fatehpur, (U.P.). *Gp.* Ramshankar Dwivedi, Dr. Adyaprasad Mishra. *Bks.* 02. Dhruvacaritam, Prahlādacaritam. *Add.* Sachha Adhyatma Sanskrit Mahavidyalaya, Arail, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shukla, Nalini. M.A. Ph.D. *b.*08.06.1940. Kanghesi. Itawa (U.P.). Asst.Prof., Acharya Narendradev Girls Univ., U.P. *Bks.* 03. Prakīraṇam, Bhāvāñjalī, Kathāsaptakam. *Spl.Ref.* Director of Sanskrit Plays for National and International Level.

Shukla, Narayan. *b.*1908. Khonda, U.P. Principal, Shri-Nath Sanskrit College, Hata, U.P. *Bks.* 02. Urmilīya-mahākāvyam, Kṛśnāyanam.

Shukla, Neelkanth Mahashankar. Acharya in Sāhitya. *b.* 02.01.1927. Surat. Rtd. Prof. & HOD Skt. Deptt. OH Nazar Ayurveda Mahavidyalaya, Surat. *Bks.* 05. Kṛṣṇā-rcanapaddhati, Jīvanaparāga, Yāga aur Devapratiṣ-hā. *Spl.Ref.* Śuklayajurveda, Title of Shuklayajurveda Pt., Dutt Peetha Aasthan Vidwan, Pt. Bhushan, Yagyik Visharad. He also traveled African states for propagation of Indian culture and religion. Presently, he is functioning as 'Acharya' in various ceremonies, cultural programmes, spiritual

discourses and other activities organized by socio-cultural organizations. President Awradee – 1999.

Shukla, Neetaben N. Ph.D. *b.*08.06.1960. Prof. Smt. Kusumben Kadkiya Arts & Commerce College, Hansota Road, Ankleshwar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 43, Sundarvan Appartments, G.I.D.C. Ankleshwar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Shukla, Niranjan C. Ph.D. *b.*26.10.1938. Prof., Sanskrit College, M.S. University Pratapganj, Varodara. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Chandra, Premanand, Rangmahal, Varodara. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa Śāstra.

Shukla, Parmeshwar Dutt. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 22.11.1953. Principal, Shri Ramanuj Skt. College, Mishrapokhra, Varanasi. ***Gp.*** Prof. Siddheshwar Bhattacharya. ***Sp.*** Bhola-Narayan Kheri, Vikas Chandra Tiwari. ***Bks.*** 03. Vayākaraṇa Siddhānta Kaumudī (ed.), Rasārṇava Sudhākara, Swapna-vāsavadattam (ed.). ***Ps.*** 10. ***Add.*** B-26/293 A-1 Nawabganj, Varanasi, U.P.

Shukla, Pradyumn Kumar Batukraj Shastri. Acharya in Sāhitya, Suddhadvaita Vedānta. *b.*04.11.1940, Baroda, GJ. ***Add.*** Narasinghaji Pole, Opp. Gopal Lalji Mandir, Baroda – 390001 (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Suddha DvaitaVedānta & Veda.

Shukla, Pratibha. B.A., M.A., M.Phil., Ph.D., *b.* 04.06.1963. Asct. Prof., ***Bks.*** 01. Veda me Hiraṇya Kā Pratīkavāda. ***Ps.*** 06. ***Add.*** Sanskrit Hindu Kanya Mahavidhyalaya, Sonipat, Hariyana – 131001.

Shukla, Radhe Shyam. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.*04.08.1954. Sultanpur, U.P. Managing-Director, Pratibha Prakashan, Delhi. ***Bks.*** 01. Dharma Śāstra ko Vijñānesvara kī Dena. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 29/5, Shakti Nagar, Delhi– 110007. ***Spl.Ref.*** Darśana & DharmaŚāstra.

Shukla, Raj Kumar. M.A., Shastri. *b.*15.01.1932, Allahabad, (U.P.). Asct. Prof., Deptt. of Sanskrit, Allahabad University. ***Add.*** 17, Tularam Bagh, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Darśana.

Shukla, Raj Kumar. Shastri. *b.*01.09.1954. Kotia, Faizabad, (U.P.). ***Add.*** Gali No. 11, E-5/A, Mandawali, Fajalpur, Delhi–110092. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Darśana.

Shukla, Raja Ram. Acharya in Nyāya, Ph.D., D.Litt.. *b.* 06.06.1966, Varanasi. Prof., B.H.U. Varanasi, (U.P.). ***Gp.*** Pt. Raj Rajeshwar Shastri dravid, Pt. Jayram Shastri Shukla. ***Sp.*** Shri Tulsidas, Dr. Vishnupad Mahapatra, Dr. Mahananda Jha. ***Bks.*** 19. Sāmānyanirukti Saugandhyam, Advaita Tattva Taraṅginī, Tattvacintāmaṇi Vivecanā. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 1/529, Fort Road, Ramnagar, Varanasi – 221008. ***Ph.*** 09935409724. ***Spl. Ref.*** Rashtrapati Award Vadrayana Vyas Award, Shankar Puraskar, U.P. Sanskrit Sansthan.

Shukla, Rajani Kant. M.A., B.Ed., M.Ed., Ph.D. *b.*10.09.1965, Gorakhpur. Asct. Prof., R.Sk.S., Tirupati, A.P. ***Bks.*** 03. Smūritī Siddhānta Candramā, Kārakaprakaraṇasthasūgāvyākhyānebhaḥ, Vyākaraṇa-śikṣaṇam. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Rashtriya Sanskrit University, Tirupati, A.P.

Shukla, Rajaram. Acharya in Navyanyāya, NET, Ph.D. *b.* 06.06.1966. Varanasi. Director, Research Institute S.S.V.V. ***Bks.*** 04. ***Ps.*** 08. ***Spl.Ref.*** Manuscriptology, Traditional Teaching, Madhusudan Saraswati Puraskar, Swarnanguliya Puraskar, Maharshi Badarayan Vyas Samman by President of India.

Shukla, Rajneesh Kumar. Ph.D. *b.*25.11.1966. Asst.Prof., Sampoornanand Skt. Univ., Varanasi. U.P. ***Gp.*** Acharya Revati Raman Pandey. ***Bks.*** 04. Saundarya Saṃskṛti Evam Darśana, Tattvabindu, An Introduction of Philosophy, Kān-a kā Saundarya Śāstra. ***Ps.*** 25. ***Add.*** Kankhoriya, Kasya, Kushinagar, U.P. ***Spl.Ref.*** Kant Trishatabdi Samman, Akhil Bhartiya Darśana Parishad.

Shukla, Rajnish. Net, JRF, Ph.D.. *b.* 18.11.1974. S.R.F.. ***Bks.*** 04. Śruta Sambardhinī Magazine, Jñānayānī Quarterly Magazine, Prākṛta Literature and Indian Traditions, Pāli Prākṛta Poetry. ***Ps.*** 31. ***Add.*** R.P.S. Colony, Opp. Ambedkar Nagar Bus Stop, M.B. Road, Khanpur, New Delhi – 110062. ***Ph.***

9910127475. rshuklaps@yahoo.com. *Spl. Ref.* Prakrit.Acharya Budhgosh Award, Acharya Svyambhu Award.

Shukla, Ram Bahadur. M.A., D.Phil. *b.* 01.02.1967. Beur, Citrakuta (U.P.). Asct. Prof., Univ. of Jammu, J&K *Bks.* 01. Naiṣadhīyacaritam kī Śāstīya Mīmāṃsā. *Ps.* 07. *Add.* Sanskrit Dptt., Sanskrit Jammu University, Jammu–18004.

Shukla, Ram Govind. Acharya in Navya-Vyākaraṇa, NavyaNyāya, DharmaŚāstra, Sāhitya. *b.*15.10.1926, Faizabad, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Suryanarayana Shukla, Padmaprasad Bhattarai. *Bks.* 03. Vyākaraṇadarśanapratibha, Vedasvarūpa-vimarśaḥ, Vākyapadīyam(ed.). *Add.* Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* NavyaVyākaraṇa, NavyaNyāya, Dharma-Śāstra, Sāhitya. Awarded - Sāhityalaṅkāra, Vidya-bhusana, Panditendra.

Shukla, Ram Kishor. Acharya in Vyākaraṇa (Navya & Prachina). *b.*10. 04.1942. Deoria, (U.P.). Rtd. Prof. & Pricipal, R.Sk.S., Jaipur Campuc. RJ. *Bks.* 11. Vyākaraṇa-śāstre Laukikanyāyānāmupayogaḥ, Satva- Mīmāṃsā, Mahābhāṣye Anubandhacatuṣ- -ayavimarśaḥ, Nyāyadarśana Meṃ Īśvara, Ādhyātmacarcā. *Add.* H.No. 28, Krishna Vihar Colony, Gopalpura By Pass, Jaipur 302015. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shukla, Ram Krishna. Acharya in Sāhitya. *b.*08.04.1944, Mohammadpur, Pratapgarh, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Dvijendranath Mishra, Mukund Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Inter College, Manikpurpatti, Pratapgarh (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shukla, Ram Yatna, Acharya (Vyākaraṇa, Vedānta, Sāṅkya-Yog). *b.*15.01.1932, Dhan Tulsi, Varanasi. HOD of Vyākaraṇa. *Gp.* Ramyasas Tripathi., Dr. Ramprasad Tripathi. *Sp.* Prof. Rammanohar Mishra, Kedar Nath Tripathi. *Bks.* 15. Sāṅkhya Darśana Meṃ Sṛṣti Prakriyā. *Ps.* 20. *Add.* Gargashram B-22/159-2 Shankudhara, Varanasi. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Vedānta, Sāṅkya-Yoga. Received Karpatra-Ratna-Award, Panini Samman. President Awardee, Govt. of India.

Shukla, Ramakant. M.A. (Hindi & Sanskrit), Acharya in Sāhitya & Shankhya-Yoga. Ph.D. *b.*24.12.1940. Khurja (U.P.). Rtd. Prof. Rajdhani College, New Delhi. Shastra Chudamani Scholar, RSkS, New Delhi. *Gp.* Vidyavachaspati Pt. Paramanand Shastri, Pt. Brahmanand Shukla, Kuberdutt Shastri, Ishwardutt Shastri, *Bks.* 15. Bhāti me Bhāratam, Paṇditarājīyam, Jaya- Bhārata-bhūme, Bhāratajanatāham, Sarvaśuklā, Amīnā (Tr.). *Ps.* 50. *Add.* Ramalaya, R–6, Vani Vihar, New Delhi –110059. sarvashukla@gmail.com M. 09560532392. *Spl.Ref.* Sāhitya. Contemporary Sanskrit Poet and Critic. Editor of 'Arvācīna-saṃskṛtam' – Qtly. Skt magazine from 33 years. 'Deva-Vāṇī-Suvāsa'(Vol.I-II)-A Abhinandan Granth is published for his contribution to Sanskrit. 'Bhāti me Bhāratam' (1980), poetry is well known in Indian & Abroad. Kalidas Samman (UP Skt. Sansthan, Skt. Sahitya Seva Samman (Delhi Skt. Academy), Skt. Rashtra Kavi, Skt. Pracharak Mandal, Geet 'Saraswati' (Lok Bhasha Prachar Samiti, Puri), 'Kaustubh' (Bhartiya Vidya Bhawan), President of Sanskrit Patrakarita Sangh, President Awardee, Govt. of India.

Shukla, Ramchandra Ghaneshwar. Ph.D. *b.*20.10.1933. Prof. Samaldas Arts College, BhavNagar. *Ps.* 05. *Add.* 2221 Pragya Society, Hill Drive, BhavNagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Shukla, Ramdhani. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.*02.01.1955, Khajuri, Allahabad, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Dr. Kalikaprasad Shukla, Dr. Ramyatna Shukla. *Bks.* 01. Vākya-padīyāntargatakriyākāla-samuddeśayoḥ samīkṣātmakam adhyayanam. *Add.* Shri Bavadeshvar Sanskrit Mahavidyalaya, Bavada, Porbandar (GJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Shukla, Ramesh chandra. Acharya. *b.*1909. *Bks.* 09. Gāndhī-gauravam Khaṇḍakāvyam, Indirā-yaśas-tilakam, Sugama-rāmāyanam, Śrīkṛsnacaritam, Bhāratacaritāmṛtam, Gīta-mahāvīram. *Add.* Devavani Parishad, Vani

Vihar, Uttam Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya. ***Awards.*** Delhi Sanskrit Academy Award.

Shukla, Rampal A. M.A. B.Ed. Ph.D. ***b.***01.06.1963. Prof., Varodara Sanskrit College, M.S. University, Varodara. ***Ps.*** 03. ***Add.*** B-41, Ravi park Society, Vasna Road, Varodara. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Shukla, Ramshashi. Acharya in Navya Vyākaraṇa. ***b.***14.04.1961, Karra, Parsouli. Teacher. ***Gp.*** Dr. Chandrika Prasad Dwivedi, Ramhari Prasad. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Govt. Sanskrit Mahavidhalaya, Gwalior M.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Shukla, Ramvadan. Navya Nyāya. ***b.***1911. Gorakhpur (U.P.). Rtd. Principal, Ramdeshik Sanskrit Mahavidyalaya, Prayag. ***Bks.*** 01. Candrikā-Tilaka (Comm. on Vedārtha Dīpikā). ***Expired in*** 1993. ***Spl.Ref.*** Honoured by Bhagavatsayuzya.

Shukla, Ramyatna. Acharya (Vyākaraṇa, Vedānta, Sāṅkya), Ph.D. ***b.*** 15.01.1932. Bhadohi, UP. Rtd. Prof. & HOD Deptt. of Vyākaraṇa a, SSVV ***Bks.*** 10. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Vedānta, Nyāya, Sāṅkya, Vyākaraṇa , President Kashi Vidvat Parishad, Visiting Prof. at Dakshinamurthi Skt. Mahavidyalaya, Varanasi, Saraswati Vradputra Samman. President Awardee.

Shukla, Ravi Shankar. Ph.D. ***b.***07.05.1971. Ambedkar Nagar, Delhi. Asst.Prof., S.L.B. S.R.S., New Delhi. ***Bks.*** 01. Madhusū-danyāṃ Tattvādhānam. ***Add.*** B-127, Katwaria Sarai, New Delhi–16.

Shukla, Rekha. M.A., Ph.D.. ***b.*** 10.07.1956. Asct. Prof., JPG. P.G. College. ***Bks.*** 07. ***Ps.*** 42. ***Add.*** 388, Rajendra Nagar (Behind T.B. Hospital), Hanuman Chauraha, Lucknow – 226004.***M.***09415914309. ***Spl.Ref.*** International American Biographical society 'Women of the year 2000' National Award Vagvidamvar by Prayag Hindi Sāhitya Sammelan, U.P. State Sanskrit Academy award on Bhamini Vilasa.

Shukla, Sadanand. Acharya, Ph.D. ***b.***05.11. 1957. HOD, Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. ***Gp.*** Prof. Avadh Bihari Tripathi, Prof. Krishna Chandra Dwivedi. ***Bks.*** 05. Gaṇaka-Taraṅgiṇī, Vṛhad Saṃhitā (ed.), Loghu-Jātaka, Jñānarājakṛta Siddhānta Sundaram (ed.), Ukarā. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Sidhuva, Padrona, Kushinagar (U.P.).

Shukla, Shali Gram. Acharya in Sāhitya, Ph.D. ***b.***01.07.1955. HOD, Shri Tikmani Skt. P.G. College, Sakarkand Gali, Varanasi. ***Gp.*** Dr. Rammanohar Mishra. ***Sp.*** Shiv Prakash Pandey, Prem Shankar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 51, Sindhuriya Colony, Shivdaspur Post Manduadih, Varanasi U.P.

Shukla, Sudhakar. ***b.***1913. Etava, M.P. Principal, Uttar Madhyamik Vidhyalaya. ***Bks.*** 03. Swāmicaritacintāmaṇī, Gāndhī-saugandhikam, Bhāratīyasvayaṃvaram. ***Expired in*** 1989. ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa.

Shukla, Surya Narayan. ***b.***1895, Faizabad, U.P. Lecturer, Sanskrit College, Varanasi. ***Gp.*** Pt. Rameshwardutta Shukla (his father), Pt. Vamacharan Bhuttacharya. ***Bks.*** 04. Mādhavamukhabhaṅga, Mādhava-bhrānti-nirāsaḥ, Khaṇḍanaratnamālikā, Nirvikalpa-vāda. ***Expired in*** 1944.

Shukla, Tribhuvan Nath. M.A., Ph.D. ***b.***13.07.1953, Karchana, Allahabad U.P. HOD & Languistics , Rani Durgawati Univ. Jabalpur, M.P., Presently working as Director, Sāhitya Academy Govt. of M.P. Bhopal. ***Bks.*** 27. Siddhahema Sabdāmuśasnam, Kālīdāsa ParyāyaKośa (II Vol.), Raṅga Śaptaka, Vidyāpati, Anūbandha. ***Ps.*** 50. ***Add.*** Sāhitya Academy, Banganga, Bhopal. ***Spl.Ref.*** Well know Prof of Hindi, Who has wildly Contributted to Skt.Lit. too. Received Vishva Tulsi Samman by Florida Univ. Miyami, U.S.A. Has been Director of Bhartiya Hindi Parishad, Allahabad U.P. Rashtriya Aahla Anusandhan Kendra, Jabalpur M.P. & Ramcharitmanas International Kendra, Chittrakut, M.P.

Shukla, Trigunananda. M.A., Kāvyatīrtha. ***b.*** 31.10.1916. Saran, Bihar. Acharya, Hazipur.

Bks. 01. Śrīsubhaṣacaritam. *Spl.Ref.* Śāstra-chudamani, Editor of Sanskrit Sanjeevan, Aryavarta, Dainik Rashtra Vani, U.P. Skt. Sansthan Samman.

Shukla, Triveni Prasad. Ph.D. *b.* 30.06.1944. Mirjapur, U.P. Serveyar, R.Sk.S., Lucknow Campus. *Bks.* 02. Gītamañjarī, Vālmīki-rāmāyaṇasya Kāvya-dṛṣ-ayānuśīlanam. *Add.* U.P. Sanskrit Sansthan, New Haidarabad, Lucknow.

Shukla, Udayan Kumar Hari Shankar. Acharya in Vyākaraṇa , Sāhitya. Shiksa Shastri. Ph.D. *b.*18.11.1944, Surendra Nagar, GJ. Prof., Varodara Sanskrit College, M.S. University, Varodara. *Gp.* Shobhita Mishra, Dr. Jainarayan Pathak, Pt. Laxmishankar Shukla, Hari Prasad Mehata. *Ps.* 05. *Add.* B-15, Vaibhav Society, Near Sangam Society, Harlani Road, Varodara. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Jyotiṣa.

Shukla, Uma Shankar. Acharya (Siddhānta Jyotiṣa, Falita Jyotiṣa) M.A. in maths. *b.* 05.07.1951. Jaunpur (U.P.). Prof., S.S.U. Varanasi. *Gp.* Pt. Mata Bheekh Shukla, H.N. Awadh Vihari Tripathi, Pt. Ganesh Dutt Pathak, Dr. Murarilal Sharma, Lt. Pt. Rajmohan Pandey. *Sp.* Prof. Sarvanarayan Jha, Dr. Krishn Kumar Pandey, Dr. Akhileshwar Mishra. *Bks.* 11. Muhurtacaintāmaṇī Tīkā, Vṛhata Jyotiṣa Sāra, Bhāvakautūhalam, Bhābhramarekhā-nirūpaṇama, Calana kalnam. *Ps.* 200. *Add.* B – 1, Acharya Nivas, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi – 221002. *Ph.* (0542) 2204995, 9415374480. *Spl. Ref.* Aryabhutt Upadhi, Rajbhavan Jaipur (by Pratibha Patil). Jyotiṣa Kovhid, Maharishi Mahesh Yogi Vaidik Vishvavidyalaya, Holand, Germany, Nepal etc.

Shukla, Umakant. Acharya (Vyākaraṇa Sāhitya), Ph.D.. *b.* 15.12.1983. Teacher *Ps.* 02. *Add.* Shri Kashi Vishwanath Ved Vidhyalaya, Meerghat, Varanasi – 221001. *Ph.* 08005130395, (0542) 2405476, 09454163138.

Shukla, Umakant. M.A.(Skt., Hindi), Acharya (Sāhitya, Sāṅkhya Yoga), Ph.D. *b.*18.01.1939. Rtd. Reader, SD College Shastra Chudamani, Muzaffar Nagar. *Bks.* 04. Maṅgalyā, Parīś-idarśanam, Caṅgerikā, Kuhā Sarasa Manohārī Saṅgraha. *Add.* 604, Sanjay Marg, Patel Nagar, Muzaffur Nagar, UP.

Shukla, Usha. M.A., Ph.D. *b.* 30.05.1965. Research Asst., Rashtriya Skt. Sansthan, New Delhi. *Bks.* 05, Jalantarhiteagniḥ, Agniśabda-syupattiḥ tasya vividhaḥ, Vyākhyāśca, Jala main Vidhyamana Agni, Vaidikāvañmaye Agnitattva saṃikśaṇam. *Add.* 06, Sharda Appartment 3, West Enclave Pithampura Delhi. *Ph.* 09868114985. *Spl.Ref.* Manuscriptology and Peleography.

Shukla, Usha. M.A., Ph.D. *b.*30.05.1965. Allahabad, U.P. Research Asociate, L.B.S., New Delhi. *Ps.* 10. *Add.* 45, Sharda Appartment, West Pritampura, Delhi.

Shukla, Vachaspati. Acharya in Sāhitya. *b.*01.01. 1951, Mahson, Basti, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Dr. Vidhyaniwas Mishra, Dr. Atul Chandra Benarji, Ramavadh Pandey, Dr. Parasnath Ram Tripathi. Dr. Umesh Chandra Pandey. *Ps.* 05. *Add.* Degree College, Pahi, Pratapgarh U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shukla, Ved Prakash. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*05.08.1960. Asst. Prof. *Add.* Rishikul Sanskrit Mahavidhyalaya, Bakoli, Delhi. *Spl.Ref.* Veda & Navya Vyākaraṇa.

Shukla, Ved Vyas. Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.*01.07.1944, Khoda, U.P. *Bks.* Sauprabham, Kaumāram, Gatiḥ, Sabhyācaraṇam. *Add.* Garg Prakashan, Khoda, Deoria U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Shukla, Veni Madhav. *b.*1850. Jaunpur, U.P. *Gp.* Shri Durgadutta Shastri, Jayadev Mishra. *Bks.* 05. Paṇiniya Sūtra Nyāsa Śastrarthakalā, Paribhāṣenduśekharaḥ, Bṛhat Śāstrārthakalā, Pariśkāra Darpaṇa, Kaumudīkalpalatikā (Com. Vaiyākraṇa-būṣaṇasāraḥ), ***Expired in*** 1953.

Shukla, Vijay Shankar. M.A., D.Phil. *b.*15.03.1960. Allahabad. Sr. Research Officer. IGNCA, New Delhi. *Gp.* Late Dr. Siddha Nath Shukla, Prof. G.C. Tripathi, Pt. Satkasi Mukhopadhyaya, Pt. Devdutt Shastri; Prof. Prakash Pandey. *Bks.* 01. Ṛgvedakālīna Samāja

evam saṃskṛti, Ṛgveda Maṇḍala III, Ṛgveda Maṇḍala – II, *Ps.* 06. *Add.* Indira Gandhi National Centre for the Arts, II Mansingh Road, New Delhi.

Shukla, Vinay Kumar. Acharya in Jyotiṣa (Siddhānta, Phalita), Sāhitya, Shiksha, M.A. (Sanskrit Sāhitya). ***b.*** 07.07.1980, Varanasi. *Gp.* Prof. Uma Shankar Shukla, Prof. Jayshankarlal Tripathi, Prof. Ramashankar Mishra. *Add.* B – I, Acharya Niwas, Sampurnanand Sanskrit Univ., Varanasi – 221002. ***Ph.*** 9889282965.

Shukla, Vishnu Kant. M.A. (Hindi, Skt.), Ph.D. Ayurveda Ratna, Sāhitya Ratna, Dipl. in Apabhrash. ***b.*** 29.10.1942. Khurja, U.P. HOD Hindi Deptt., JV Jain Mahavidyalaya, Saharnpur. *Bks.* 04. Sphā-ikamālā, Pūrṇakumbhaḥ, Nītiśatakam (Tika) *Add.* Vibhavna, Pradumna Nagar, Saharnpur. *Spl. Ref.* Skt. Poet and Critics.

Shukla, Vishwa Nath. M.A., Tīrtha. *b.*15.10.1932, Balipur, Varanasi, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Ram Sharma, Dinanath Tripathi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sanskrit College, 1, Bamkim Chatterji Street, Calcutta. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa, & Mīmāṃsā.

Siddhant, Vagish Haridas. ***b.***1876. Faridapur (Bangal). ***Bks.*** 03. Mivāra-pratāpa, Śivājīcarita, Baṅgīyapratāpa. ***Expired in*** 1961.

Siddhartha, Sundari. M.A., Ph.D. ***b.***01.04.1938. Madras. Asct.Prof. ***Bks.*** 01. Mamma-a Saṃskṛta Poetics. ***Add.*** E–2, Staff Flats, Indraprastha College, Shyam Nath Marg, Delhi–110054.

Silodi, Mahesh Prasad. Acharya in Sāṅkyayoga, B.Ed., Ph.D. ***b.***06.08.1958. Uttarakhand. Asct.Prof. L.B.S., New Delhi. ***Bks.*** 02. Yogāmrṛtam, Sāṅkhyasudhā. ***Ps.*** 12. ***Add.*** 4/ 14, L.B.S., New Delhi–16.

Singaramma, M.N. D.Litt. ***b.***1920. Mandya, KT. ***Bks.*** 20. Vaiśanava Bhaktī, Philosophy of Pañcaratna, Bhakti-Siddhāntaḥ. ***Ps.*** 80. ***Expired in*** 2006. ***Spl.Ref.*** Awarded the Mahatma Gandhi Hindi Award 1992. Sāhitya Ratna in Hindi, Sanskrit and Kannada.

Singh, Anamika. M.A., Ph.D., PG. Diploma in Agam Tantra. ***b.*** 25.05.1976. Asst. Prof., in Philosophy, Arya Mahila P.G. College, Varanasi U.P. ***Bks.*** 11. Vedānta me Bauddha Sandarbha, Vasubandhu Praṇīte Pañcaskandhaprakaraṇam Trisvabhāvanir-deśaśca, Tantra Vimarśa, Jaina Bauddha Darśana Vibhāgiya Paricaya Pustikā I – II, Darśana Mañjūṣā. ***Ps.*** 22. ***Add.*** Chandra Kutir, N – 16/56 – A, Kolhua Vinayaka, Varanasi– 211010. ***Ph.*** (0542) 2364230, 9453357489.

Singh, Daryao. M.A., M.Ed., ***b.***01.01.1965. Rorir. Asst. Prof. in Education, R.Sk.S., Jaipur Campus, RJ. ***Ps.*** 05. ***Add.*** R.Sk.S., Jaipur Campus, Triveni Nagar, Jaipur.

Singh, Fateha. M.A., M.Ed., Ph.D. ***b.***20.01.1959. Syana, Bulandshahar, U.P. Prof. R.Sk.S., Jaipur Campus. ***Bks.*** 05. Saṃskṛta- Śikṣaṇam, Śikṣā-Manovijñānam, Dakṣina-Bhāratīya-Saṃskṛta-Sikṣaṇam, Vidyālaya- Praśāsanam. ***Add.*** 105–C, Surya Nagar, Gopalpura By Pass, Jaipur, RJ.

Singh, Inder Mohan. M.A., Ph.D.. ***b.*** 19.07.1951, Amritsar. Prof. Valmiki Chair Punjabi University, Patiala (Pb). ***Bks.*** 10. Puñjābī Saṃskṛta Kośa, Grīṣma Samaya Śatakam, Hiraṇyaraśmi, Prītisaurabham, Śrī Gurunā-nakadeo-stavanam. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 67– E, Hira Nagar, Near 22 Phatak Patiala. ***Ph.*** 9815966287. ***Spl. Ref.*** Directed many Dramas.

Singh, Jagir. M.A., M.Phil., Ph.D. ***b.***15.01.1950. Mammichahranga. Asct.Prof., ***Bks.*** 03. Vedānta Aura Kaśmīra Advaita Śaiva Darśana Samīkṣā aura Pratyabhijñā Darśana, Utpaladevācārya Thatā Advaita Śaiva Bhakti. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Skt. Dept., Jammu University, Jammu.

Singh, K.P. Acharya, M.A., Ph.D.. ***b.*** 06.07.1939, Varanasi. Ex. Prof. B.H.U. Varanasi. ***Bks.*** 05. A critical Study of Kātyāyana - Śrauta – Sūtra, Vedic Deities -A Historical Study, Vedic Hymns, Vedic Interpretation, Nirukta A Study. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Plot No. 24, Ashutosh Nagar, Sarainandan. P.O. Mahimoorganj, Varanasi–221010. ***Ph.*** (0542) 2316310, 09838946412.

Singh, Kali Prasad. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* February 1941, Silchar, Kachar, Assam. Lecturer. *Gp.* Dr. K.P. Gosvami. *Bks.* Nyāyadarśanavimarśa, Śāṅkaravedānte tattvamīmaṃsā. *Add.* Teachers New Flats, Guwahaty University Campus, Guwahaty. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Singh, Kamla Prasad. M.A., Ph.D. Acharya in Vedanairukta. *b.* 06.07.1939, Varanasi, U.P. Vice Principal. *Gp.* Prof. Suryakanta; Dr. Gopalacandra Misra. *Add.* Kashi Hindu University, Varanasi–05 (U.P.). *Spl.Ref.* Veda.

Singh, Karna Acharya. Acharya, M.A., B.Ed. *b.* 18.06.1945. Teacher. Arsagurukula Samskrta Mahavidyalaya. *Ps.* 03. *Add.* Gurukul, Taresar, Jaunti, Delhi.

Singh, Karna. M.A., Ph.D. *b.* 10.11.1935, Dogari, Saharanpur. U.P. HoD, Sanksrit. *Bks.* Vaidik Sāhitya Kā Itihās. *Add.* Meerut College, Meerut (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Singh, Kripal. M.A., B.Ed. *b.* 22.07.1953. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School No. 1, Palam Enclave, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* RZ-400 A, Gali No. 6, Sadhunagar, Palam Colony, New Delhi.

Singh, Krishna Das. B.A., M.A. (Phil./Skt.), Ph.D. *b.* 15.01.1955. Jarailtali, Dailasha-har. Senior Deputy Magistrate, District Magistrate & Collector, Dhalal, Tripura. *Bks.* 01. Introduction to The Viṣhnupriyā Manipuris. *Ps.* 04. *Add.* TCS, Sr. Deputy Magistrate, C/o The DM & Collector, Dhalai District, Jawaharnagar, Ambassa, Tripura.

Singh, Kshemdhari. *Bks.* 01. Surathacaritam. *Expired.* 1961. *Spl.Ref.* Member of Mithila Raj Parivar, Poet.

Singh, Kunwar Narendra Pratap. Principal, Digvijaya Nath. PG College. Gorakhpur. *Bks.* 01. Pūrvasāvarakaracaritam. *Spl.Ref.* Hindi, Urdu, Sanskrit Poet.

Singh, Mahaveer Shastri. Shastri, Sāhitya-āyurvedaratna, Sāhityacharya. *b.* 15.10.1935. Gautam Buddha Nagar, Kot. Dadari, U.P. *Add.* 1, 1/134, Kranti Shastri Gali, Karaval Nagar, Delhi–94. *Spl.Ref.* āyurveda.

Singh, Man. M.A., Ph.D. *b.* 05.01.1937. Todakalyanpur, Haridwar, U.K. Rtd. Prof. Kurukshetra Univ. *Bks.* 05. *Ps.* 50. *Add.* Pushpa Kunj, 42 – B, Professors Colony, Kurukshetra, Haryana–136118.

Singh, Narayan. Acharya, M.Phil.. *b.* 01.02.1980, Ajmer, Rajasthan. T.G.T. Sanskrit. *Add.* Ren ka Darwaja, Kumhar Mohalla, Bhinay, Ajmer (Rajasthan) – 305622. *Ph.* (01466) 273533, 09896959866.

Singh, Narayana R. L. M.Phil., Ph.D. *b.* 28.07.1980. Nellore, A.P. Asst.Prof., R.Sk.S. Sringeri, KT. *Bks.* 01. Saṃskṛta-vāṅmaya-Praśnottaravidhi. *Ps.* 01. *Add.* C/o R. Padmanabha Rao, 24/01/443, Chammandivari Thanta, Mubpet, Nellor – 524003, A.P.

Singh, Priyasen. Ph.D. *b.* 12.09.1961. Asstt. Prof. *Bks.* 08. Pali Paricaya, Acharya Nagararjuna Krita Suhrllekha, Khuddaka Patha, The Spirit of Buddhism, Vinaya Pitaka, Bharat ke Pramukh Bauddha Tirtha Sathala, Ambedakar and It's Impact on Buddhism. *Ps.* 01. *Add.* 199, Vaishali Enclave, Pitampura, Delhi – 34. Ph. 011-27317683. priyasensingh @gmail.com *Spl.Reg.* Pālī Sāhitya, Baudha Darśana.

Singh, Rajeev Ranjan. M.A., Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.* 11.12.1949. HOD S.S.V.V., Varanasi. Asct., I.I.A.S., Rashtrapati Nivas, Shimla(H.P.). *Gp.* Siddheshwar Bhattacharya, Ramprasad Tripathi. *Sp.* Shashinath Thakur, Ravi Shankar Pandey. *Bks.* 02. Saraṇa-Vidyā, Keśavakṛta-nṛsiṃhacampū. *Ps.* 15. *Add.* Shri Sadanam Riga, Sitamadi Bihar.

Singh, Ram Vinay. M.A., Ph.D. *b.* 10.06.1970, Ragharapura, Sitamadhi Bihar. Asct. Prof. Dayanand Englo Vedic P.G. College, Dehradoon, U.K. *Gp.* Acharya Jankivallabh Shastri. *Bks.* 05. Śāśwatī, Muktāśatī, śevadhiḥ, Swarambharā. *Spl.Ref.* Contemporary famous Sanskrit Poet & Critics.

Singh, Ranvir. M.A., LL.B., Vidyadhikari, Vidyavinod, Vidy Alaṅkāra. *b.* 20.08.1953, Panipat, Haryana. Asst. Prof., Director, Kurukshetra University, Kurukshetra – 136119.

Gp. Prof. Gopikamohan Bhattacharya, Dr. Kapildeo Shastri, Dr. Shrinivas Shastri. *Sp.* Dr. Rajpal Koushik, Dr. Ramnivas, Dr. Rajveer, Dr. Nandi Devi, Dr. Radheshyam Sharma. *Bks.* 21. Mahābhārata Padānukramakoṣe Bhīṣmaparvakhaṇḍaḥ, Mahābhārata Padānukramakoṣe Uddyogaparvakhaṇḍaḥ, Mahābhārata Padānukramakoṣe Virā-aparvakhaṇḍaḥ, Mahābhārata Padānukramakoṣe Āraṇyakaparvakhandaḥ, *Ps.* 20. *Add.* F – 05, University Campus, Kurukshetra University, Kurukshetra, Haryana – 136119. *Ph.* (01744) 239573, 207179, 09416334660. Professor.ranvir@gmail.com. *Spl. Ref.* 59 Paper Presented at National Seminars: PPNS.

Singh, Ranvir. Shastri, Acharya, M.A., B.Ed.. *b.* 08.03.1969, Rohtak, Haryana. Principal, Jai Ram Viddhyapeeth. *Add.* 525/9 – A, Laxman Colony, Kurukshetra. *Pin.* 136118. *Ph.* 9996491551. 01744-290431.

Singh, Sanghasen. M.A. Pali & Skt. *b.* 03.07.1933. Allahabad. Rtd.Prof., HOD Deptt. of Buddhist Studies, D.U. *Bks.* 05. Bodhicaryāvatāra, Abhidharmakośa (Ed.). *Ps.* 50. *Spl.Ref.* Pali, Manuscriptology, President Awardee.

Singh, Satya Prakash. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.*01.02.1934. Jaunpur, U.P. *Bks.* 07. Śrī Aurobindo & Whitelead, Śrī Aurbindo & Jung, Śrī Aravinda Darśanam, Phlilosophy of Dīrghatamas Grahavaśi. *Ps.* 60. *Add.* 3/508, Begpur, Aligarh, U.P. *Spl.Ref.* President Awardee.

Singh, Satyavrat. Shastri, M.A., Ph.D., D.Litt.. *b.* 03.04.1913, Vill. Rewati, Dist. Balia (U.P.). Asst. Prof. & H.o.D. & Dean Faculty of Arts & V.C. of Sampurnanand Sanskrit University. *Gp.* Shrimadabhinava Ranganath Parakal Swami, Prof. K.A.S. Iyer. *Sp.* Matri dutta Trivedi, Prof. J.P. Sinha, Prof. A.K. Kalia, Dr. Brahma Mitra Awasthi. *Bks.* 10. Bhāravimadhikṛtya, Alaṅkār-sarvasvavimarśaḥ, Satyopdeśa-muktāvalī, Aghoradarśan-avimarśaḥ. *Add.* Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi. *Spl. Ref.* Ex. Director of Pauranic and Vedic Adhyayan aur Anusandhan Sansthan Naimisharanya, President, Director of Research Institute of A.B.S. Parishad Lucknow.

Singh, Shiv Mangal Suman. M.A., Ph.D., D.Lit. *b.*Rewa M.P. Prof. & Chairman of Kalidas Academy, Ujjain. *Gp.* Ramchandra Shukla, Keshav Prasad Mishra. *Bks.* 05. Prakṛti Puraṣa kalidāsa (Nākata), Mi--ī kī Bārāta (Nātaka), Mahādevī kī Kāvya Sādhanā, Hillola (Kāvya Saṅkalana). *Spl.Ref.* Great Poet in Hindi & also well known Critics of Skt. Literature & director of skt. Plays. *Expired.*

Singh, Siddharth. M.A. (Pali, Buddhist Studies), Ph.D. Asst. Prof. BHU. *Bks.* 01. *Ps.* 20. *Spl.Ref.* Pali, Buddhist Studies, He worked in Japan Foundation, Japan on the studies of Pali Literature, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Singh, Surat Narayan. M.A. *b.*08.07.1940. Dehribhar, Gorakhpur, U.P. Asct. Prof. *Gp.*Dr. Vidhyaniwas Mishra, Dr. Virmani Prasad Upaddhyay, Dr. D.N. Shukla. *Ps.* 05. *Add.* National Degree College (P.G.) Badahalganj, Gorakhpur U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Singh, Umesh Prasad. Modern. *b.* 01.07.1957, Mirzapur (U.P.). Prof., B.H.U., Varanasi. *Bks.* 05. Śuklayajurveda Prātisākhya ek Pariśīlana, Manusmṛti – II. *Ps.* 12. *Add.* B.H.U. Varanasi.*M.* 09455336652.

Singh, Veer Mahendra Prakash. *b.* 03.05.1966. Jawali, Meerut, U.P. Asst. Prof., Sharda Devi Sanskrit College, Delhi. *Ps.* 05. *Add.* B–1/8, Dyalpu, Shastri Gali, Delhi–94.

Singh, Vidyanand. M.A., Ph.D. *b.* 08.07.1952. Pitaunghia. Chairmen, Bihar Ragye Sanskrit Acedemy. *Bks.* 01. *Add.* Pitaunghia, Jamalpur, Gogary, Khagaria.

Singh, Virendra Kumar. M.A., D.Phil. *b.*14.09.1953, Faizabad, U.P. Asct.Prof, Deptt. of Sanskrit, Allahabad University. *Ps.* 05. *Add.* 10, Naya Manford Ganj, Allahabad. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Darśana.

Singhai, Shriyansh Kumar. Acharya, M.A.

b.21.08.1958. Khurai, Sagar, M.P. Prof., (Jain Darśana), R.Sk.S., Jaipur Campus, Rj. *Gp.* Parmeshvarlal Mishra, Dr. Gulab Chandra Jain, Narendra Bhisiker, Ratanchandra Bharilla, Mahadev Dhamskar, Gangadhar Dwivedi. *Sp.* Dr. Veersagar Jain, ***Bks.*** 05. Jaina Karma Siddhānte Bandha-mukti-vimarśa, Pravacana-sārabhāṣākavitta, Bhaktāmbara-śatadvai-kāvyam, Bundelakhaṇḍagauravam: Pt. Gorelāla Śāstrī. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 5/47, Malviya Nagar, Jaipur- 302017.

Singhal, Dinesh Kumar. M.A. (Sanskrit & Hindi). M.Phil., Ph.D. *b.*20.03.1955. Hasanpur, Saharanpur (U.P.). HoD., L.B. College, Panipat, HR. ***Bks.*** 02. Gadyacintāmaṇī Ek Samikṣātmaka Adhyayana, Śrī Munisubratakāvyam. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Aggarsain Colony, Assandh Road, Panipat, Haryana.

Singhal, Usha. M.A., Ph.D. *b.* 03.11.1943. Jagadhri (Hayrana). ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 15. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Kurukshetra Univ., Kurukshetra, Hayrana.

Singhavi, Sushma Ganga. M.A., Ph.D. Dip in French. *b.*12.12.1949, Jodhpur, RJ. Asct. Prof. Jodhpur University. ***Gp.*** Surjan Das Swami, Rasikbihari Joshi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 913, Third D Road, Sardarpura, Jodhpur RJ. ***Spl.Ref.*** Darśana Śāstra.

Singhdeo, Brajendra Kumar. M.A., Ph.D., Sāhityacharya. *b.*16.02.1969. Balasore (Orissa). Asst. Prof., Sāhitya. ***Gp.*** Prof. Radhavallabha Tripathi. Prof. Achyutanand Dash, Pt. Bachchoolal Awasthi. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Bhagwan Das Adarsh Sanskrit Mahavidyalay, Haridwar, U.K. ***Spl.Ref.*** Kāvya Śāstra & Morden Sanskrit Literature. Poet & writer of sort stories and plays.

Singhdeo, Dharmendra Kumar. M.A., M.Phil., Ph.D., Sāhityacharya, P.G. Dip. In Computational Linguistics. *b.*22.11.1971. Balasore (Orissa). Asst.Prof., R.Sk.S., Bhopal Campus, M.P. ***Gp.*** Pt. Bachchoolal Awasthi, Prof. Radhavallabha Tripathi. Prof. Achyutanand Dash. ***Sp.*** Sukhdev Sharma, Dr. Rishan Bhardwaj, Dr. Vishnu Prasad Meena. ***Bks.*** 07. Sarala Subhāṣita Mālikā, Ādhunika Saṃskṛta Sāhitya Sandarbha Sūcī (ed.), A New Bibliogaraphy of Alaṅkāraśāstra, Nā-yaśāstra – Ch.I (with Hindi vyākhyā), Punarjanma-Vimarśaḥ. ***Ps.*** 25. ***Add.*** Rashtriya Sanskrit Sansthan, Bhopal Campus, Bag sewania, Bhopal, M.P. ***Spl.Ref.*** Kāvya Śāstra & Nā-ya Śāstra, Development of material for Sanskrit studies. Computational work for Sanskrit. President Awadee (Maharshi Badarayana Vyas Samman–2011), Govt. of India. Devavanibhushanam 2011 by Devavani Parishad, New Delhi. Literary criticism. Email: drdksinghdeo@gmail.com

Sinha, Anil Kumar. M.A., D.Phil.. *b.* 30.05.1961. Asct. Prof. & Head, D.A.V. Post Graduate College, Kanpur. ***Bks.*** 01. ***Ps.*** 18. ***Add.*** H. Block–1332, Avas Vikas Scheme No. – 01. Kalyanpur, Kanpur.– 208017(U.P.) ***Ph.*** (0512) 2574045, 9889271660.

Sinha, Jagadamba Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D., LL.B.. *b.* 27.05.1933, Sitapur (U.P.). Asst. Prof. (Rt.) Lucknow Univ.. ***Gp.*** Prof. K.A.S. Iyer, Prof. K.C. Pandeya, Prof. S.V. Singh, Prof. D.N. Shukla, Pt. Rudra Prasad Awasthi, Pt. Anand Jha, Prof. A.C. Banerjea. ***Sp.*** Prof. Navajivan Rastogi, Prof. U.P. Rastogi, Prof. A.K. Kalia, Prof. K.K. Mishra, Prof. R.S. Mishra, Prof. O.P. Pandeya, Prof. B.K. Shukla, Prof. K.N. Mishra, Dr. Shshi Tiwari, & Dr. Priti Sinha. ***Bks.*** 13. The Mahābhārata – A Literary Study, Nalopākhyānam with Hindi Translation, Notes etc, Saṃsārasāgara-manthanam Part–I. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 'Samskrtam' 2/144, Vikas Khand, Gomti Nagar, Lucknow. ***Pin*** – 226010. ***Ph.*** (0522) 2393893, 9335544933. jpsinha_india@yahoo.com. ***Spl.Ref.*** President Awardee 2007,Vistist Puraskar From U.P. Skt. Sansthan. Nethreland,Italy.

Sinha, Mahavir. M.A. *b.*07.09.1955. Teacher, Saint Anthony Boys Senior School, Paharganj, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C/o Shyam Lal, House No. 28, Gali No. 3, Jwalanagar, Shahdara, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sinha, Mahipal. M.A. ***b.***23.11.1942. Teacher, Govt. Higher Secondary School No. 2, New Seelampur, Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** X-5/9, Teacher's Gali No. 2, Brahmapuri, Delhi–110053. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sinha, Parna Datt. Acharya in Sāhitya, Ph.D. ***b.***06.07.1952, Pilibhit (U.P.). Asct. Prof. ***Gp.*** Pt. Jyotisvarupacharya, Dr. Nandakishor, Dr. Krishnakant Shukla, Jaishankarlal Tripathi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Kashi Hindu Vishwavidyalaya, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sinha, Phatah. M.A. (Hindi & Sanskrit), D.Litt. ***b.*** July,1913. Pilibhit, (U.P.). Research Director, Veda Sansthan. ***Bks.*** 03. Bhāratīya Saundaryaśāstra kī bhūmikā (Hindi), Uttar-Dakṣiṇ kī sanātana ekatā (Hindi), Towards Global Unity of Man. ***Add.*** C-22, Rajouri Garden, New Delhi – 110027. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Sanskrit. Hajri Dalmia Award-1948 & U.P. Govt. Award- 1954.

Sinha, Priti. Acharya in Sāhitya, M.A., D.Phil., D.Lit.. ***b.*** 03.01.1950, Lucknow. Asct. Prof. Dept. of Sanskrit & Prakrit Languages, Lucknow University. ***Bks.*** 02. Karuṇa Rasa Siddhānta Tathā Prayoga, Rāma Bhadra Dīksita Viracita Varṇamālāstava Adhyayana Tatha Anuvāda. ***Ps.*** 30. ***Add.*** C-954/955, Sector 'B' Mahanagar Lucknow – 226006.

Sinha, Rajan. M.A., B.Ed. ***b.***18.07.1956. Teacher, Govt. Secondary Girls' School, Jheel Kuranja, Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** B079/B, Gali No. 9, Gandhi Nagar Extn., Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Sinha, Rajni. M.A., Ph.D. ***b.*** 07.01.1974 ***Ps.*** 18. ***Add.*** New Area Jakkanpur, Batukeshwar, Datt Lane Patna 800000, Bihar. ***Ph.*** 09696832673 (U.P.) ***Email*** dr.rajsi.bhu @gmail.com.

Sinha, Ramnirikshan. M.A., Kāvyatīrtha. ***b.*** Darbhanga Bihar. HOD, Skt. Deptt., Samastipur Mahavidyalaya. ***Bks.*** 01. Svādhīnabhāratam.

Sinha, Sadhusaran. ***b.*** Sitamadhi, Bihar. Engineer, Mumbai. ***Bks.*** 01. Sampreṣaṇīyā Vārtā. ***Add.*** Athari, Sitamadhi Bihar.

Siromani, Narayan Venkatraman. B.Com, Sāhitya Siromani. ***b.*** 27.09.1932. Tanjaur. T.N. Prof., Skt. Vidya Adhishthan, Tanjaur. ***Bks.*** 01. Kīrtanakusumāñjalī (Collection of 100 Kirtan) ***Spl. Ref.*** Kavitallaj by the Skt. Sāhitya Parishad Tiruchilla Palli, Manscriptology, Editor of Sanskrit Sri, Sudharma, Chandaswati Magazines, Poet.

Sisodiya, Rajesh. B.E., Acharya, Ph.D. ***b.*** 24.06.1968. Guest Asst.Prof. Maharshi Panini Skt. Uni. Ujjain M.P. ***Ps.*** 08. ***Add.*** 34, Sudama Nagar, Ujjain M.P.

Sneya, Vitthal S. Sanskrit Shiromani, Kannad Vidvan. ***b.***18.09.1905, Sanur, South Kannad, KT. Chief Medical Officer. ***Gp.*** K.V. Kamtha, K.S. Udupa, G.S.Mukti, Dr. U. Rav. ***Add.*** Mahalasa, Opp. Primary Vidyalaya, Kodikal, Manglore, KT.. ***Spl.Ref.*** āyurveda.

Sohuni, S. V. B.A. (History), M.A. (Economics), Elo. Tripos of Combridy Uni. 1938, and I.C.S. (1936). ***b.*** 19.05.1914, Vill age ayargule, Taruka & Dish. Ratnagiri, Chairman & V.C. Kameshwar Singh Darbhanga Sanskrit University, Bihar. World Buddhist Con. 1972. Life time Vice President Bihar Research Society Expert member of Sanskrit Commision, 1991 member RSKS, Delhi 1992-1999 VC, Tilak MH Vidyapeeth (1988-1993). ***Bks.*** (ed.) Maharamsa Tika, Revised the book 'Champarana me Mahatma Gandhi, Late Dr. Rajendra Prasad. ***Ps.*** 500. ***Add.*** Pune. ***Spl.Ref.*** Award Certificate of Honour in Sanskrit by predidant of India in 1988 – 89. Shrimant Nanasahab Pashawa Sansthan. Pune Awarded in 1983. Awarded Vidyavachaspati (Darbanga Sanskrit Univ.) Vidyavaridhi (Nalanda mahavihara). D.Litt. (Vikram Univ. Ujjain) and many other award. He was chief editor of Research Society Journal of Bihar member of Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi (1992 – 1999).

Solanki, Arjun Bhai Popat Bhai. Ph.D. ***b.***01.06.1962. Prof., S.S. Mehta Arts & M.M. Patel Commerce College Himmat Nagar, GJ. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Akshar Society, National Highway Himmat Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Solanki, Bharti Ben J. Ph.D. *b.*13.06.1968. Prof., Shri V.M. Mehta Municipal Arts & Commerec College, Jamnagar. *Ps.* 03. *Add.* Shakti Tenaments 2, Palace Road, JamNagar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Solanki, Bhawna ben N. Ph.D. *b.*02.02.1970. Prof. M.T.B. Arts & Science College, Nehru Marg, Surat. *Ps.* 03. *Add.* A. 103, Shantinath Complex, Near Sanskar Bharti School, Talwadi Surat. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Solanki, Girish Chandra K. Ph.D. *b.*20.05.1973. Prof. Umiya Arts & Commerce College For Girls, GandhiNagar Sarkhej Highway, Ahemdabad. *Ps.* 03. *Add.* 13/2, Near Old Post Office Sector 29, GandhiNagar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Śāstra.

Solanki, Hema ben S. Ph.D. *b.*26.11.1972. Prof. N.S. Patel Arts & Commerce College, Bhalege Road, Aanand. *Ps.* 03. *Add.* 18, Santram Society, Gopi Vidhya Nagar Road, Aanand. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Solanki, Shobhna Ben Narottum Das. Ph.D. *b.* 23.08.1963. Prof. Smt. J.P. Saraf Arts college Tithal Road Valsad. *Ps.* 03. *Add.* 1/2, Reena Park Society Tithal Road Valsad. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Solanki, V. A. M.A. *b.*13.11.1954, Valsad, Gujrat. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* S.M.S. High School, Dharampura, Valsad, Gujrat. *Spl.Ref.* Darśana Śāstra.

Somayaji, Kota Sitaram. Vidvat (Advait Vedānta, Alaṅkāra Śāstra, DharmaŚāstra). *b.*17.04.1927, Kota, South Kannada. Rtd. Teacher (Advaita Vedānta). *Gp.* Navin Venkatesh Shastri, Nilatajapalli Venkat Narasimha Ayyangar. *Add.* No. 1051, Devaparthiva Road, Chamrajapuram, Mysore–570004 (KT.). *Spl.Ref.* Advait Vedānta, AlaṅkāraŚāstra, DharmaŚāstra, Saivāgama & Veda.

Somayaji, P. S. Ananthanarayana. Kṛṣṇa Yajurveda (Nyāya, Mīmāṃsā, Advaita Vedānta). *b.* 05.01.1936. Pudukkottai, TN. *Gp.* Pt. Balkrishan Shastri. *Add.* 89/55 South, North Agarharam Musiri, Tiruchirapalli – 11. TN. *Spl.Ref.* Tradition of Krishan Yajurveda with Prakriti and Vikriti style of Chanting. Title of Vedabhashaya Ratan, Veda Nidhi, Sarutsmarta VedaŚāstra Sudhanidhi. Gurugangeswaranand Veda Ratna Puraskar, Mumbai, Founder of Veda Pathshala in his village and more than eighty student have already been benefited in this rarest of rare field of study, President Awardee.

Soni, Jyoti. B.A., M.A., Ph.D. Scholar. *b.* 20.09.1985, Datia (M.P.). *Add.* Nehar Wali Mata Road, Lashker – 474009. *Ps.* 01 *Ph.* 9301171464. vivek.soni2011@yahoo.-com.

Srihari, R. M.A. (Sanskrit, Telugu), Ph.D., PG Dipl in Applied Linguistics. *b.* 05.05.1943. HOD, Telugu Deppt., Hyderabad V.V. *Bks.* 20. Mātṛgītam, Prapañcapadī, Phiradausī. *Add.* Telugu Deptt., Hyderabad VV, Gachi Bauli, Hyderabad – 46. *Spl.Ref.* Sarvashreshth Skt. Pt. Paritoshik.

Srijeevan Yayatirth. M.A. *b.* Bhattapalli. Rtd. Principal, Bhattapalli Skt. Mahavidyalaya. *Bks.* 01. Sārasvataśatakam.

Srinigam, Bodhtirth Dandiswami. M.A., Acharya (Sāhitya Veda) Prabhakra, Kovid Ph.D. *b.* 09.02.1936. Rtd. Prof., Prachya Skt. Vibhag, Punjab Univ., Hosiyapur Centre. *Bks.* 03. Hariyāṇāvaibhavam, Śrīsaṅkarācāryacaritam. *Expired. Spl.Ref.* Kalidas Samman, U.P. Skt. Academy Etc.

Srinivasan, K. M.A., M.Phil, Ph.D., B.T. *b.*21.02.1923. Tiruvarur. Head Master, Hr. Sec. School, Madhubani, Bihar. *Bks.* 04. Social Studies, Vinatānanda Vyāyoga, Memories Of A Head Master. *Add.* K. Srinivasan C/o Srimathy Usha Sankar, 17 Mani Naicker Street, Ganapathypuram, Chromepet, Chennai – 44, TN.

Sriniwasacharya, S. D. Nyāyaśiromaṇi, Vedānta Vidvān. *b.* 25.04.1914. *Bks.* 06. Viprasandeśa, Tatvadarśanam, Matkuṇgītam, Dardur-śatakam, Śrīhanumatpariṇaya, Gaṅgā-vataraṇam. *Add.* 5. Laxmi Niwas, SuDarśana

Colony, Thane, East – 03. Maharashtra. ***Spl. Ref.*** Title of Aashukavi, Kavitamrit Sagar, Kavita Sudhakar, Skt. Prachar Chatur.

Sriniwasan, N. Vidvat Uttama, Agam Praveen, Agam Sarvajanik. ***b.*** 22.07.1968. Mailkotte, KT. Secretary and Ghanpathi, Sri Yoga Narsimha Skt. Pathshala, Mysore. ***Spl.Ref.*** Veda, Agam, Vedānta, Manuscriptology. As Asstt. Editor he edited Vishishtha Dwait Vedānta in 10 Vol. and contributed towards two vols. of Sri Bhashayam, He has also transcribed 10 Upanishads in Skt. and Kannada, He is associated in locating and Collecting Palm Leaf manuscripts for Library at academy of Skt. research Mailkotte. He has also been acitively participating in the IT enable research activities related to Phonetics and natural Language processing with Paninis base undertaking by academy of Skt. research, Mailkotte. Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Srivatsankacharya, Vasudeva. Nyāyaśiromaṇi, Vyākaraṇaśiromaṇi. ***b.*** 27.03.1936. Kanchipuram. Honourary Prof. French Institute, Pondicherry. ***Bks.*** 14. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** NyāyaVyākaraṇa a, His working on Two Projects on Vyākaraṇa a, President Awardee.

Subbarao, Keralapuram. Jyotiṣabhushan, VidyAlaṅkāra, Daivajnabhushanamani. ***b.*** 30.10.1908, Keralapura, KT. Astrologer. ***Gp.*** Ram Shastri. ***Add.*** P.T.I. Colony, Hasan – 573201 (KT.). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa & Veda.

Subbarayudu, K. B. Acharya, M.A., Ph.D. ***b.*** 01.06.1957. Peddamudiyam, Cuddapah, A.P. Prof. in AdvaitaVedānta. Acting Registrar, R.Sk.S., New Delhi. ***Gp.*** Diksha Guru Swami Vidyanand Giri, Vidyaguru Prof. Sudhanshu Shekhar Shastri. ***Sp.*** Rajesh Kumar, Dr. Ajit Kumar, Dr. Nair, Dr. Francice Father, Swami Sankarananda Saraswati, Dr. Steel Belock. ***Bks.*** 05 Sarvadarśanasamanvayaḥ, Sadguru-mahimāmṛtam, Śiṣyatrayam, Triśatī : (Dakṣiṇāmūrti Suprabhātam, Maṅgalā-śāsanam) ***Ps.*** 15. ***Add..*** Rashtriya Sanskrit Sansthan, 56-57, Inst. Area, D Block Janakpuri, New Delhi – 58. M. 09868219390. ***Spl.Ref.*** Vedānta Philosophy, Visiting Prof. MIU, Harward Univ., 3 Gold Medals from BHU, Vedavidya Nīdhi Award, WAVES, Florida, USA.

Subhash, Chandra. Acharya. ***b.***30.09.1961, Kamalpur, Jind, Haryana. Sanskrit Teacher. ***Gp.*** Badri Narayan Pancholi, Chandra Kant Dubey. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Govt. Higher Secondary School, Dharaudi, Jind Haryana. ***Spl.Ref.*** Sāṅkya Yoga.

Subhash, Chandra. M.A., B.Ed., M.Phil. ***b.***20.03.1957. Teacher, Govt. Higher Secondary School, Sultanpur, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** A-37, Kirti Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Subrahmanya Avadhani, Ramswami Avadhani Matturu. Taittirīya Kṛṣṇa Yajurveda-karmanta, DharmaŚāstravidwat. ***b.***1922, Mattur, Shimoga, KT. ***Gp.*** Sachchidanandendra Saraswati, Advaitanandendra Saraswati. ***Add.*** Krisivala, Mattur, Shimoga (KT.). ***Spl.Ref.*** Dharma-Śāstra & Kṛṣṇayajurveda.

Subrahmanya, K.P. Sāhityaśiromaṇi. ***b.*** 12.02.1922. ***Gp.*** Anandnarayan Shastri, Krishna Shastri. ***Add.*** 1/135, Alampallor, Kollengode, Kerala. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Veda.

Subrahmanyam S. M.A. ***b.***15.06.1955. Dwarapati, East Godawari, A.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Subrahmanya Shastri, Suryanarayan Shastri. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 6-1-103/21, Telugu University, Padmarayanagar, Secandrabad A.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Darśana, Alaṅkāra Śāstra.

Subrahmanyam V. M.A., M.Ed., Ph.D. ***b.*** 25.05.1978. Mehaboob Nagar, A.P. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Deputy Director, Sanskrit Academy. Hydrabad. ***Ph.*** 040 – 27070281.

Subrahmanyam, Nistal. M.A. (Alaṅkāraa, Vyākaraṇa , Darśanaa, Telugu,). Ph.D. ***b.***17.09.1953, Visakhapatnam. ***Bks.*** 28. Rasānandam, Caitanyānandam, Srī Bālā Tripura Sundarī Suprabhātamū, Kāvya Mañjarī, Swayamvara Kalā Stotram (with Telugu Comm.). ***Ps.*** 133. ***Add.*** 337. 02 No. Line. Shri Bhava Narayana Swami. Pet. Ponnur–522124. Guntur, A.P.

Subrahmanyam, P.V.B. Acharya in Jyotiṣaa (Siddhanta & Phalita), Ph.D. *b.*26.01.1975. Rajavommangi. Asst.Prof., R.Sk.S., Bhopal Campus, M.P. *Ps.* 11. *Add.* C–2. Yashoda Garden, Bagh Mughalia, Bhopal, M.P. *Spl.Ref.* Editor of BhojRaj Panchanga.

Subrahmanyam, R. Adavaita Vedānta Shiromani. *b.*25.01.1937, Panampattu, Villupuram, T.N. Sanskrit Pandit. *Gp.* Ayyasami Ganpati Subrahmanyam Shastri. *Add.* French Institute, Pondicherry. *Spl.Ref.* Kṛṣṇa-Yajurveda & Adavaita Vedānta.

Subramanayan, A. B. B.Sc., B.T, Dipl. in Social Work. *b.* 27.11.1924. *Bks.* 03. Kalpanā Saurabham, Navamuktāśatakam, Śriṅgāra-padyāvaliḥ. *Add.* 11/6 Almelumangpuram, Chennai – 04.

Subramanyam, K. H. M.A., Ph.D. *b.*15.06.1950. Vilayur, palakkad. HoD., Sanskrit Payyanur College. *Bks.* 18. Smarāmi Rājarājasya, Ālokam, Paryaveśaṇam, Cītranakṣatramālā. *Add.* Harikiranam, Odayammadam, Cherukunnu, Kunnur.

Sudesh, Bhagwati. Acharya (Dharma-Śāstra), Ph.D., M.Ed. *b.*01.01.1958. Sahnewal, Ludhiana (Punjab). Prof., R.Sk.S.,Jaipur Campus. *Gp.* Dr. Lallan Pandya, Dr. Harikrishan Shastri, Prof. Neena Dogra. *Bks.* 03. Karmakāla Dīpikā, Saṃsakāra Vimarśa, Dānasya Dharmaśās-trīyāvdhāranā. *Ps.* 10. *Add.* 38. Pushpanjaoli Colony, Mahesh Nagar Vistar, Jaipur–302015.

Sukumaran, Nilamperoor. M.A. (Sāhitya, Nyāya, Vyākaraṇa, Vedānta, Hindi, Malayalam, English.), B.Ed., M.Ed. Ph.D., D.Litt. *b.*16.02.1925. Neelampuram, Kerala. Prof., Govt. Traing Colleg. Trivendrum. *Bks.* 09. Saṃskṛta Suprabhātam, Saṃskṛta Suprabhātam – 2, Prāyogika Hindī, Ratna-Mālā, Kavitāmayasye. *Add.* S. Keshabchand M.A., Kesavamandiram, Nedumangad, Thiruvanantapuram, Kerala.

Suman Mahendru. M.A., Ph.D. *b.*13.07.1950, Delhi. Asst.Prof., R.P. College, Delhi & Indraprastha College, Delhi. *Gp.* Dr. Satyavrat Shastri, Dr. Vachaspati Upaddhyay, Ravishankar Nagar. *Ps.* 03. *Add.* A-192, Indrapuri, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Suman Sneha. M.A. *b.*12.08.1959. Secretory, Sarvadharma Sanskritpeeth, Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 10/17, Shakti Nagar, Delhi. *Spl.Ref.* Darśana.

Sundarajan. M.A. (Chemistry) *b.* 02.02.1935. Tanjor, Tamilnadu IAS. *b.* 07. *Spl. Ref.* Poet & Writer, Presently he is engaged in Skt. Literarly writing and is also the member of various literary bodies.

Sundarajan. M.A. (Chemistry) *b.* 13.09.1936. Tanjor, Tamilnadu IAS. *b.* 07. Śrījagannātha-suprabhātam Anyāni Stotrāṇi Ca, Abhāgabhāratam. *Add.* 21,VIP Colony Ekamra-vihar, Nayapalli, Bhuwaneswar – 15 *Spl. Ref.* Poet & Writer, Presently he is engaged in Skt. Literarly writing and is also the member of various literary bodies, Balkavi from Kanchi Shankaracharya. President Awardee.

Sundaram, L. S. Ph.D., Diploma in German. *b.*25.09.1926, Katteri (Nilgiris). *Bks.* 03 New Catalogus Catalogorum Volumes I to XII, A Bibliography of Modern Sanskrit Plays, Index for Volumes 1-40. *Ps.* 15. *Add.* C-2, Sriji Apartments 25. Raja Sekharan Street, Mylapore, Chennai–600004.

Sundaramayyar Muttukrishnan. *b.* 15.06.1945, Mahadanpuram, Tiruchi, TN. *Gp.* R. Mahalingasrautigal. *Add.* Shri Venkateshwaraswami Devasathanam, Tirumala, 189 E. Kotakommal Vithi, Tirupati– 517501 (A.P.). *Spl.Ref.* Samaved.

Sundararajan, S. *b.*13.09.1936. Devanatha-vilasa gram. I.A.S. *Bks.* 50. Jagannātha Suprabhātam. Śrī Jagannātha Stotram, Śrī Jagannātha Maṅgalāśasanam, Badrī śataraṅgiṇī, Surabhi Kāśmīram. *Spl.Ref.* Being a special chador I.A.S. contributed in several way to concrete the Sanskrit literature.

Sundareswaran, N. K. M.A. *b.*28.05.1964, Chittur, Palakkad, Kerala. *Gp.* Br. Shri N.R.

Krishna Shastry. *Bks.* 04. Contribution of Kelallur Nilakantha Somayaji to Astronomy, Saptaśatīsārasrvasva, Śrutyārthamuktāvalī, Saṃskṛta in Technological Age. *Ps.* 26. *Add.* Reader, Department of Sanskrit, University of Calicut, Kerala.

Sunita. B.A., M.A.. *b.* 04.12.1980, Kurukshetra. Teacher. *Gp.* Dr. Bhim Singh, K.U.K.. *Add.* Jat S.S. School, Kaithal – 136027. *Ph.* 9467420096.

Suraj kumar. *b.*08.08.1946. Teacher, Atmaram Sanatan Dharma Senior Secondary School, Ajmeri Gate, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* House No. 3846, Lohavali Gali, Chawri Bazar, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Surendra Kumar. Acharya in Sāhitya, Grammar, Philosophy, M.A. Skt. Hindi, Ph.D. *b.* 12.01.1951. Rohtak. Rtd. Principal Govt. PG College Gurgaon. *Gp.* Gurukul Jhajjar *Bks.* 05. Manusmṛti, Hindī kāvyo me Vaidika Ākhyāna, MaharṣI Dayānanda Varnita Śikṣā Paddhati. *Ps.* 135. *Add.* 429. Sector 7 Gurgaon 122001. M. 09818072108. *Spl. Ref.* Veda.

Surendra Kumar. M.A., M.Ed. *b.*06.07.1945 Teacher, Govt. Higher Secondary School, Kotla Mubarakpur, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* B-1/41, Lajpat Nagar, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Suresh Kumar. Acharya in Jyotiṣa, M.A. *b.* 17.07.1963. Kaithal. Skt. Teacher Govt. Middle School *Bks.* 01. Śrī Vaśhiṣ-ha Pañcāṅga *Add.* 461 Model Town Kaithal -136027. M. 09896852650.

Suri, Ramchandra Shastri. Vidvaduttama (Nyāya, Vedānta). *b.*16.05.1915, Karki, KT. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Shambhu Bhatta, Virupaksa Shastri. *Add.* Subrahmanya Prachya Vidyapeeth, Honnawar, Kavalakki, Bhaskari (KT.). *Spl.Ref.* Nyāya, Veda & Vedānta.

Surya Prakash, K. V. M.A., M.Phil. *b.*30.03.1976, Machilipatnam. Research Assistant. *Ps.* 02. *Add.* B-8, G.K. Emerald, Hanumanpet, West Malkajhini, Hyderabad.

Suryanarayan, H. S. Jyotiṣa Vidvān. *b.* 26.12.1958. Chikamaglur, KT. Astrology Teacher. *Gp.* Shriniwas Adiga. *Ps.* 02. *Add.* Kigga (R.S.Pura), Shringeri, Chikamaglur KT. *Spl.Ref.* Jyotiṣa Śāstra.

Suryanarayana, K.N. M.A. (Skt., Kannada), Alaṅkāraa and AdvaitaVedānta Vidwat, B.Lib. Sc., B.Ed.. *b.* 23.03.1956, Chikamagalor, Karnataka. Teacher. *Bks.* 01. Rāṣ-ranāyaka Ambedakara. *Add.* Kendriya Vidyalaya, 18th Cross, Malleswaram, Bangalore –560055. *Ph.* 23341454.

Sushma Rani. Shastri, M.A., B.Ed.. *b.* 06.11.1980, Karnal. Teacher, Govt. Middle School, Lakhmari, Kurukshetra. *Gp.* Smt. Parmod Sharma, Shri Krishna Dham Kurukshetra. *Add.* Vill. & P.O.-Babain, Near Old Post Office, Dist. Kurukshetra. Hariyana. *Ph.* (01744) 280777, 8059381993.

Suthar, Dalpat Bhai Ramnath. Ph.D. *b.* 09.08.1933. Prof. Shri M.R. Arts & Science College, Rajpipla, Narmada. *Ps.* 05. *Add.* 'Shruti' Parikh Khadki Rajpipana, Narmada. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Suthar, Ganesh Lal. M.A., Ph.D. *b.* 03.02.1947, Marwar Lohawat. Director, J.N. Vyas Univ. *Bks.* 14. Bhāsarvagya ke Nyāyasāra kā Samālocanātmaka Adhyayana, Anvīkṣikī-vimarśaḥ, Trayī, Aparavādaḥ of Paṇdita Ojhā, Vyomavādaḥ of Paṇdita Ojhā. *Ps.* 45. *Add.* Kesar Kunj' Plot No. – 08, Mahesh Nagar, Chainpura, Jodhpur–342304, RJ.

Suthar, Manu Bhai V. Ph.D. *b.*01.05.1959. Prof., S.T. Arts & Commerce College, Sant Rampur, Panchmahal. *Ps.* 03. *Add.* A/9, Rajshri Appartment Ambika Nagar, Near Bus Stop Kalol. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Swadesh, Mohan. VidhyAlaṅkāra, M.A., B.Ed. *b.*15.10.1944. Teacher, Maharshi Chunni Lal Saraswati Balmandir, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* B-1/49, Janakpuri, New Delhi.

Swain, Anam Charan. M.A., Ph.D. *b.* 03.01.1925. Jajpur, Orissa. Ex-Director, Research Deptt. Sri Jagannath Skt. Univ. *Bks.* 08. *Spl.Ref.* Indian Religion and Philosophy, President Awardee.

Swain, Braj Kishor. M.A., Ph.D. ***b.***07.02.1954. HOD DharmaŚāstra. ***Bks.*** 05. ***Ps.*** 20. ***Add.*** Shri Jagannath Puri Sanskrit University, Puri, Orissa. ***Spl.Ref.*** Dharma Śāstra.

Swami, Ayurveda Martand Laxmiram. Prof. & Director, Ayurved Nideshalay. ***Gp.*** Shrikrishn Ram Bhatt. ***Sp.*** Nandkishor Vaidya, Chandra Shekhar Vaidya. ***Expired in*** 1939. ***Spl.Ref.*** Sanskrit Liric & Āyurveda.

Swami, Balanand. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.***05.09.1905, Meerut (U.P.). Principal, Dadu Acharya Sanskrit College, Jaipur. ***Gp.*** Swami Vichardas, Pt. Ramdhari Shastri. ***Expired in*** 1992. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Ayurveda.

Swami, Bhagwatacharya Panditraj. b. Syalkot (Now in Pakistan) ***Bks.*** 04. Bhāratapārijātam, Pārijātāpahāraḥ, Pārijātasaurabham. ***Expired*** in 1977. ***Spl.Ref.*** Brahamchari.

Swami, Dayaram Shastri. b.1890. Sangroli, Harnal, HR. Principal, Brahma Sanskrit College, Karnal, Hariyana. ***Gp.*** Pt. Ramadhari Shastri. ***Expired in*** 1987. ***Spl.Ref.*** Dhvani Rupaks – Dūtavākyaṃ, Vidyapariṇaya, Anargharāghavam, Anangharsh-Caritam, Tapasvatsrajam Thess were Brodcosted from Jaipur DoorDarshana, RJ.

Swami, Hariharanand. b. 05.04.1942. ***Bks.*** 40. Śrīhanumaccaritravātikā, Daurvāsasyamasya Sarvādau, Śrīrāmahanumadīyam. ***Add.*** Ashram Sankirtananagar,Chandpur, Balia.U.P.

Swami, Mahant Bajarangadas. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya, Āyurveda, M.A. ***b.*** 01.06.1952, Ajmer. Principal, Shri Dadu Mahavidyalaya, Motidungari Jaipur – 4. ***Gp.*** Swami Balnand Ji Maharaj, Tiwari ji Banaras. ***Bks.*** 03. Savaiyā Grantha, Jñān Samudra va Sakṣī, Laghu Granthāvali. ***Add.*** B – 15, Varun Colony, Behind of Dadu Dayal Marriage Garden, New Sanganer Road, Mansarovar, Jaipur–302020. ***Ph.*** (0141) 2783534, 2623136, 9414361681. -bajarangdasswami@gmail.com.

Swami, Prabhudatta. Acharya in Sāhitya, Navya Vyākaraṇa shastri, Sāhityaratna. ***b.***09.05.1914. Kishanpura, Meerut, (U.P.). Rtd. Head of the Deptt. of Sāhitya. ***Gp.*** Pt. Ramnayan Mishra, Pt. Chotelal Pandey. ***Bks.*** 05. Devakīnandanam (Khaṇda Kāvya), Pūrva Bhāratam (Kāvya), Mauryacandrodayam (Mahākāvya), Rāmārcākusumāñjaliḥ. ***Add.*** 3, Manasarowar, Civil Lines, Meerut (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Vyākaraṇa , Hounoured by Ganganath Jha Samman, Kalidas Puraskar, Kavi Ratan. Śāstra Chudamani, Rashtriya Shiksha Samman.

Swami, Ramanuj P.S.S. Sāhitya, Vidhyapravina, Vidvan. ***b.***16.05.1916, Bobbili, Vijaynagar, A.P. Sanskrit Teacher. ***Gp.*** Appala Jagannath Shastari, K.V. Rammurti, P. Ramanuj Swami. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C/o. E.P. Ambar, D.No. 22-39-27, kamara Street, Vishakhapatanam- 530001. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Darśana.

Swami, Sitaram Acharya. M.A., Ph.D. ***b.***14.11.1967. GJ. Principal. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Jagadguru Shri Ramanandacharyapith, Kaushalendramath, Bhattha, Paldi, Ahmedabad, GJ.

Swami, Sri Bharatikrishantirth Krishanmaharaj. M.A. (Skt., Darśana, Math, History, Science, English) ***b.*** Madras Presidency Tamilnadu. Jagatguru Sanakracharya Sri Goverdhanmatha, Puri. ***Bks.*** 03. Stotrabhāratīkaṇ-hahāraḥ. ***Expired*** in 1960. ***Spl.Ref.*** Vedānta, Vedic Ganit, Saraswati Title from Madras Sanskrit Parishad in his earlier age.

Swami, Sudarsanaacharya Suman. Acharya in Sāhitya, M.A. ***b.***25.10.1946, Delhi. Teacher, Motilal Sanskrit College, Ramesh Nagar, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 3599, Sitaram Bazar, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Swami, Surya Das. Acharya (Sāhitya, Vedānta, Sāṅkya), M.A. Principal & Prof. Maharaja Sanskrit College, Jaipur (Rj.). ***Sp.*** Dayanand Ji, Balakram Ji, Dr. Shrinivas Shastri. ***Bks.*** 04. Pā-hyaswasti, Purāṇa Rahasya, Chandaḥ Samīkṣā, Rasa Siddhānta kī Śastrīya Samīkṣā. ***Expired on*** 04.08.1990. ***Spl.Ref.*** Editor of 'Bhāratī' Sanskrit Monthly Patrika of Jaipur. Editing Ved Bhashyas in Gangaishwaranand of Vrindawan.

Swami, Swaprabhanand. M.A. *b.* 17.07.1937. Principal, Adarsh Sanskrit College. *Gp.* Agamanand. *Add.* Ramakrishna Math, Arunapur, Palai, Kerala. *Spl.Ref.* Veda & Advaita Vedānta.

Swami, Vishnu Das. Acharya. *b.*04.08.1949, Varanasi, U.P. Teacher. *Gp.* Chakradhar Shastri. *Ps.* 02. *Add.* Shri Udasin Sanskrit College, Kankhal, Haridwar U.P. *Spl.Ref.* Vedānta.

Swami, Vishuddhanand. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*31.12.1932, Ernakulam, Kerala. Asct. Prof., Shri Baba Kali Kamali Sanskrit College, Rishikesh, Haridwar. *Gp.* Dukhharan Jha. *Add.* 172, Krishna Niwas, Mayakund, Rishikesh, U.K. *Spl.Ref.* Veda & Vyākaraṇa.

Swaminatha, C. R. M.A., M.Litt., Ph.D. *b.* 10.03.1927. Palakkad, Kerala. Rtd. Dy. Educational Advisor, Ministry of HRD, Govt. of India. *Bks.* 08. Jānakīharaṇa of Kumāradāsa *Spl.Ref.* Vedic Studies, Harit Rishi Award of Maharana Mewar Foundation, President Awardee.

Swaminathan, V. M.A. (Vyākaraṇa, Sāhitya), Tradition in Darśana, Kṛṣṇayajurveda. *b.* 30.04.1929. Vishnampet. Rtd. Principal, Kendriya Skt. Vidyapeetha, Guruvayoor, Emeritus Prof. Sri. Venkateswara Vedic Univ., Tirupathi. *Bks.* 01. A critical study and edition of Bhartṛhari's unpublished commentary on the Mahabhashya. *Ps.* 33. *Add.* D.No. 18-1-235 Dwaraka Nagar, K.T. Road, Tirupati – 07. *Spl.Ref.* Krishnayajurveda, Darshna, Vyākaraṇa, Mīmāṃsā, Vedānta, Member Secretary, ICPR, New Delhi. President Awardee.

Swamy, Siva Kumar M. M.A. (Skt., English), Ph.D. *b.* 10.02.1938. Davanagere, KT. Visiting Prof. Sri Sanskaracharya Skt. Univ. Kalady. *Bks.* 19. *Ps.* 70. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa Vedānta, Sāhitya. He developed comparative method of teaching vedic texts by introducing Vedic Grammar through Paninian rules and by combining the traditional methods of interpretation and the modern Philologic method. He has been honoured by the Jangamwadi Math, Varanasi and Ministry of Human Resorce Development, Govt. of India, President Awardee.

Swapna Devi. M.A., Ph.D. *b.* 30.06.1952, Thailu Tea Estate , Assam. Asct. Prof. Assam Univ., Silchar. *Bks.* 01. The Concept and Treatment of Dream in Skt. Literature. *Ps.* 11. *Add.* Hitesh Biswas Road, Ambikapatty, Silchar – 788004. *Ph.* (03842) 7083631318.

T

Tadakoda, Vadirajacharya Badrinarayana-charya. M.A., Ph.D. *b.*02.07.1957. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* I, Nekaraoni, Hosayellapuram, Dharwar–1 (KT). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tagare, Ganesh Vasudev. M.A., Ph.D. *b.*28.07.1911. *Bks.* 10. Karavīra Mahātmyam(ed.), Śrīmadbhāgavata (Eng. Tr.), Narada Karma Skanda (ed. with Eng. Tr.). *Ps.* 25. *Add.* C/o Dr. Tagore Hospital-4, Ashvini Nagar, Kolhapur–416008 (MH). *Spl.Ref.* Vishesh Gaurav Patra-1996 by MH Govt., Aacharya Hemchandra Suri Puraskar-2003.

Tailang, Girdharilal Sharma. *b.*1895. Alwar (RJ). *Gp.* Bhatt Purushottam, Gayadutt Shastri, Harivallabhacharya. *Bks.* 04. Sarasvatī Saṃdeśa, Śrīgovindagīti, Kāvyavaibhavam, Alvaranareśa-Kīrti-kalpalatā. *Spl.Ref.* Edited 'Bhāratīya Rīti Darpaṇa' of Puṣtimargīya Vallabha Sampradaya.

Tailang, Pt. Laxman Shastri. Vyākaraṇa, Darśana. *b.*1880. Varanasi. Asst. Prof., Sanskrit College, Varanasi. *Gp.* Pt. Yogeshwar Shastri, Nrisingh Shastri, Pt. Gangadhar Shastri. *Bks.* 03. Vetasvatī Sārthavāhaḥ, Hemantakumāraḥ, Śrī Jagadīśayātrā. ***Expired in*** 1949. *Spl.Ref.* Sāhitya, English, History . M.M. Awardee.

Tailanga, Gudambhatta. Acharya in Vyākaraṇa, KāvyaPurāṇatīrtha. *b.*09.09.1929, Acharla-

pur, Adilabad, A.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Sitarama Shastri, Anantaram Shastri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Government Girls Post Graduate College, Ujjain (M.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Kāvya, Purāṇa.

Tailanga, Ramshastri. Acharya (Sāhitya). ***b.***1870, Varanasi . Asst. Prof., Varanasi Raj Sanskrit Mahavidhyalaya, Varanasi. ***Gp.*** Nrisimha Shastri, Pt. Yogeshwar Ojha. ***Sp.*** Pt. Narayan Shastri Khiste. ***Bks.*** 06. Laxmīsahastra, Śadṛtuvilāsa Śivasvāghatī, Śrīgītiratna, Vijayṅagara Granthamālā. ***Ps.*** 07. ***Expired in*** 1925. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇa-yajurved, Vyākaraṇa, Mahabhashya, DharmŚāstra, Mimansa, Vedānta, English Litt. M.M. Awardee. Sāhitya Sudhakar Awardee.

Tailar, Jitendra Kumar Ishwar Bhai. Ph.D. ***b.***03.01.1967. Prof. Shri M.C. Rathva Arts College, Pavi Jetpur. Varodara ***Ps.*** 03. ***Add.*** B-13 Soni Colony Pavi Jaitpur, Varodara.

Talavara, T. M.A. (Skt & Hindi). ***b.***28.08.1935, Teacher (PGT), Govt. Girls Senior Secondary School No. 1, Kalkaji, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 1/ 129, Sector – I, Sadik Nagar, New Delhi.

Talluraya, Ananta. Sāhityaśiromaṇi. ***b.***19.06.1936. Subrahmanya, Sulya Taluk, KT. Manager. ***Gp.*** M. Raja Gopalacarya, K. Haridasopadhyaya. ***Ps.*** 03 ***Add.*** Subrahmanya Devasthan, Subrahmanya–574238, (KT). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Talur Vaddar, Madhavachan. M.A., ***b.*** 25.05.1977, Dronachellom, Kurnool (A.P.). Jr. Linguist, Sanskrit Academy, Osmania Univ., Hyderabad. ***Gp.*** Maludi Vidya Sanhacher, Shri Satyatava Tirtha. ***Sp.*** Vedavyasa, Vagocsha, Purushottam, Nakul. ***Bks.***05. Dharama Kośa, Īśā- vasyopaniṣad-Bhaṣya, Kathopaniṣad-Bhaṣya, Nirmayaratna, Mahābhārata Tātparya Nirṇaya. ***Add.*** Sanskrit Academy, Osmania Univ. Taraka, Hyd. (A.P.). madhavachar. tv9@gmai.com.

Tandel, Kantilal R. Ph.D. ***b.***22.12.1968. Prof., Shri M.P. Shah Arts & Science College, Surendra Nagar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Rajiv Society, Near Nari Kendra, Alkapuri, Surendra Nagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Tandon, Gopinath. HOD, Sanskrit, Ranvir Rananjaya P.G. college, Amethi, U.P. ***Bks.*** 01. Gajendramokṣam (KhandKāvya).

Taneja , Subhash, VedAlaṅkāra. M.A., Ph.D., VedAlaṅkāra. ***b.***13.04.1942, Jaipur. Prof. & HOD, Univ. of Rajasthan, Jaipur. ***Bks.*** 70. Svapnasundarī, Dakṣiṇāvartavilāsam, Rājasthānavilāsaḥ, Manīśakāvyam, Saṃskṛta-nibandha-Pārijāta. ***Ps.*** 150. ***Spl.Ref.*** Organized 55 Sanskrit Sambhashan Camps for Sanskrit spoken & 22 national and state level seminars. Awarded 'Ambikadatt Vyas' Puruskar by Rajasthan Sanskrit Academy, Jaipur.

Taneja, Kausala. M.A. ***b.*** 25.12.1948, Hindi Translator. ***Ps.*** 03. ***Add.***2/399, Subhash Nagar,New Delhi–110057. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Taneja, Pushplata. M.A. (Sanskrit), M.Lib. Science, Cert. in German. ***b.***19.04.1947. Asstt. Director, Central Hindi Directorate, Ministry of H.R.D., New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** A-603, Curzon Road Hostel, Kasturba Gandhi Marg, New Delhi–110001.

Taneja, Usha. M.A., B.Ed. ***b.***28.08.1951. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School, Khyala. ***Ps.*** 03. ***Add.*** D–237, West Patel Nagar, New Delhi–110008. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Taneja, Vimla. M.A., B.Ed. Teacher, Govt. Higher Secondary School, Adarsh Nagar, Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 812, Dr. Mukherji Nagar, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tankamoni, P. K. M.A. (Skt - Nyāya). Asst. Prof., Sanskrit Department, Kerala University. ***Add.*** Kerala University, Karyavattam, Tiruvanantapuram–695581 (Kerala). ***Spl.Ref.*** Veda, Darśana, Dharma Śāstra.

Tankamoni, Pisharatta. B.A.(Skt.), B.Ed. ***b.***02.06.1950, Perumpilli, Ernakulam, Kerala. Teacher. ***Gp.*** T.K. Ramachandra Ayyar. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Govt. Hr .Sec. School, Kottayi, Palakkad (Kerala). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tanna, Alka Chunnilal. Ph.D. ***b.***25.11.1947. ***Ps.*** 03. ***Add.*** S.3-58 Ekta Appartment, Ambrai wadi, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tantri, Ananta. Dvaita Vedānta. ***b.*** 25.02.1948. Bangalore, KT. Alaṅkāraasastra Teacher. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Purna Pragya Vidyapeetham. Purna Pragya Nagar, Bangalore–560028 (KT). ***Spl.Ref.*** Dvaita Vedānta, Alaṅkāra Sastra.

Tantri, Padmaabh S. Dvait Vedānta Vidvān, M.A., B.Ed. ***b.*** 11.07.1943, Kanjaru, Udupi, KT. ***Gp.*** Subraya Duranik, Ramkrishn Tantri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sanskrit Pathashal, Udupi, South Kannad–576101 (KT). ***Spl.Ref.*** Dvaita Vedānta.

Taradatta, Kandapala. Acharya (Sāhitya). ***b.*** 04.04.1955, Jayavas, Nainital. Principal. ***Gp.*** Dvijendranath Mishra. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Ram Sanskrit Pathashala, Kalital, Nainital.

Tarkacharya, Kalipada. b. 1888, Faridpur, Bangladesh. Unashiya, Kotalitada, Faridpur, Bangaladesh. Acharya Skt. Mahavidyalaya Kolkata. ***Gp.*** Haridas Tarkatirtha (Father). Principal, Sanskrit College. ***Bks.*** 05. Satyānubhavam (Poetry), Ālokatimirava-ibhavam(Poetry), Yogībhaktacarita(Poetry), Naladama-yantīyam(Play), Sindhunidhī-nām(Play). ***Expired in*** 1972. ***Spl.Ref.*** Nyāya Śāstra, Translated Gītāñjaliḥ in Sanskrit. He was awarded M.M. by British Govt. & 'Padmashree' by Govt. of India. An Eminent Scholar in Skt.

Tarkatirtha, Rajendra Chandra. Shastri. ***b.*** 07.06.1914, Haturkandi. ***Gp.*** Nabinchandra Dharmashastri, Akhilachandra Kavyatirtha. ***Add.*** Nabadu, Nadia–741302 (W.B.). ***Spl.Ref.*** Veda & Tarkashastri.

Tarkchudamani, Anyada Charan. Vyākaraṇa. Purāṇa. DharmŚāstra. Nyay. ***b.*** 1861. Sampada, Navakhali. Teacher. Ishwar-pathshala. Kedarghat. Head Pandit, Sanskrit School Navakhali. ***Bks.*** 14. Purāṇarahasyam, Dharma-śāstrakośa, Rāmābhyudayam, Mahāprasthā-nam, Sumanāñjaliḥ. ***Spl.Ref.*** Established Aarya Mahila College for woman. M.M. awarded by British Govt. in 1922.

Tarkratna, Panchanan. VyākaraṇaŚāstra. ***b.*** 1866. Bhatapara. Kolkata. Pandit, Varanasi. ***Gp.*** Pt. Nandlal Vidyaratna, Raghumani Vidyabhushan, Jairam Nyaybhushan, Shivchandra Sarvbhaum, Balanand ji. ***Bks.*** 18. Sarva-maṅgalodaya, Śokam, Prāṇadūtam. Prāyaścittavidhiḥ. ***Expired in*** 1946. ***Spl.Ref.*** M. M. awardee. KāvyaŚāstra. Sāṅkya. Smriti. Vedānta. Nyay. Yoga.

Tarkratna. Yadaveshwar. Vyākaraṇa, Sāhitya, Nyāya, Vedānta, Yoga Darśana. ***b.*** 1850. Itakumari, Rangpur. Teacher, Govt. High School, Rangpur. ***Gp.*** Hargovind Siddhant, Ishwar VidyAlaṅkāra, Pt. Kailashchandra Shiromani, Vishu-ddhanand Sarasvati, ***Bks.*** 20. Śokataraṅgiṇī, Vāṇīvijayam, Subhadrā-haraṇam, Aśrubindum, Gaṅgādarśana-kāvyam. ***Expired in*** 1924. ***Spl.Ref.*** M. M. awarded by English Govt. in 1905. 'Panditraj', 'Panditkeshari', 'Kavisamrat' upadhis. He was also honourary magistrate in Rangpur.

Tarkvageesha, Fani Bhushan. Nyāya, Vyākaraṇa. ***b.*** 1876. Talkhadi, Yashohar, (Bengal). Asst.Prof., Univ. of Kalkata. ***Gp.*** Pt. Jankinath Tarkratna, Vedāntavageesh. ***Sp.*** Prof. Gopinath Battacharya, Dr. Siddheshwar Bhattacharya, Dr. Dineshchandra Guha, Pt. Panchanan Bhattacharya, M. M. Pt. Umesh Mishra, Pt. Badrinath Shukla, Dr. Gourinath Shastri, Dr. Govind Gopal Mukhopadhyay. ***Bks.*** 03. Puṃkhanupuṃkha, Talasparśī, Nyāyaparicaya. ***Spl.Ref.*** Vedānta, Sāṅkyateertha, Kāvya. M.M. awarded by British Government in 1926. Chairman, Harinampradayini Sabha, Bangiy Sāhitya-parishad and Sanskrit Sāhitya parishad, Kolkata.

Tarlekar, G. H. M.A. (Skt., Hindi), Music, Ph.D. ***b.*** 07.05.1914. Kolapur. Rtd. Prof. in Skt. ***Bks.*** 09. ***Ps.*** 50. ***Spl.Ref.*** Skt. Music, President Awardee.

Tatachariar, N. R. Satakopa. Kṛṣṇa-yajurveda, Nyāya Śāstra, Mīmāṃsā, Dharam Śāstra, Ph.D. ***b.*** 11.06.1965 TN. Jagannath Skt. Univ. Orissa. ***Bks.*** 01. ***Ps.*** 05. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇajurveda, Mimāṃsā Dharam Śāstra, Maharshi Badarayan Vyas Samman by President of India.

Tatacharya, Deshik Tirumallai. ***b.***1894. Tiruvarangam, TN. ***Gp.*** Pt. Shri Nivasacharya, Pt. Kuppuswami Shastri. ***Bks.*** 01. Sugamāvṛtti on Vaiśeṣika Sūtras. ***Expired in*** 1974. ***Spl.Ref.*** His great contribution to Sanskrit is 'Darśana Kosh'. Sugamāvṛtti has been published by Research Journal of Ganganath Jha Kendriya Vidyapeeth, Allahabad.

Tatacharya, Devnath. ***b.***1896, A.P., ***Gp.*** Shri Narasingh Tatacharya (father). ***Bks.*** 05. Vedānta Vaijayantī, Nyāya Kusumāñjalī Vyākhyā, Akṣarārtha Commentory of Tattvamuktākalāpa, Sūtrānuguṇyasiddhi-vimarśa, Viśiṣṭādvaitasiddhi. ***Expired*** in 1988. ***Spl.Ref.*** Nyāya & Vedānta.

Tatacharya, Krishna K. Vidvan. ***b.***18.03.1903, Talakadu, Mandya, KT. ***Gp.*** Pt. Hemmige Shrinivas Ayyangar, Raghav Bhattacharya. ***Bks.*** Mahāvīra Vaibhavam (Campukāvya). ***Add.*** 7/2 Jaya Nagar, Bangalore–17(KT). ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Tatacharya, Laxmi M.A. Navya Nyay Vidhan, Alaṅkāra Vidvat. ***b.***26.02.1938, Mysore, KT. Joint Secretary. ***Gp.*** M.A. Alvara, Tirumala Ayyangara. K.K. Venkatacharya. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Sanskrit Research Academy, Malkote-571431 KT. ***Spl.Ref.*** Darśana, Alaṅkāraa Śāstra.

Tatacharya, N.S. Ramanuja. Mīmāṃsā, Nyāya, Vedānta, Vyākaraṇa , Ph.D. ***b.***15.04.1928. ***Bks.***10. Pañcalakṣa-Gādādharī-vyākhyā, Dīpikā Prakāśikā-vyākhyā Bālapriyā, Caturda-śalakṣaṇi-vyākhyā Vivaraṇam, Pakṣatā-gādādharī Vyākhyā. Avayavagādādhārī Vyākhyā. ***Ps.*** 60. ***Add.*** G-003. I Block, Jains Prakrti Appartments, K.R. Road, Jayanagha Block VII, Banglore–560082. ***Spl.Ref.*** Rashtrapati Award – Certificate of Honour in 1986, Sankar Puruskar – U.P. Sanskrit Academy in 1988 and other fifteen awards.

Tatacharya, Narasimha V. Nyāyaśiromaṇi, Vidvān (Mīmāṃsā, Vedānta). ***b.***15.07.1926, Kanchipuram, TN. Prof., Shri Chandrashekharendra Saraswati NyāyaŚāstra Mahavidyalay, Kanchi-puram, TN. ***Gp.*** A. Devanatha Tatacharya. ***Add.***73, Sannadhi Street, Kanchipuram – 631503 (TN). ***Spl.Ref.*** NavyaNyāya, Mīmāṃsā, Vedānta & Veda.

Tatu, Prema Ben Shrikant. Ph.D. ***b.***31.03.1937. Prof. Smt. Sadgun C.U. Arts College for Girls, Lal Darwaja, Ahemdabad. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Goyal Tower F-1, Near Jahanwi Restorent, Ambawadi Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Veda.

Taviyad, Khema Bhai V. Ph.D. ***b.***01.06.1966. Prof. Nalini Arvind Arts College, Vallabh Vidhya Nagar, Aanand. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Prathampur, Jatwad, Santram-pur, Panchmahal. ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Teerth, Bharti Krishna. ***b.***1884. Jagatguru Shankaracharya. Puri (Orissa). ***Bks.***02. Vaidika-Gaṇita, Śrīsanātana Vaidika Dharma Mahāmahimbhum Mīmāṃsā. ***Expired in*** 1960. ***Spl.Ref.*** Sanskrit, Hindi, English & Mathametics.

Teerth, Nigam Badha. ***b.***1936. Luhari, Jatugram. Lecturer, Chandigarh (Punjab). ***Bks.*** 02. Hariyānā Vaibhavam. Śrī Śaṅkarācāryacaritam.

Teerth, Vedanand (Dayanad). Veda & Darśana. Acharya, Dayanand Updeshak School, Lahore, Pakistan. ***b.***Ujjain (M.P.). ***Bks.***100. Swādhyāya Sumana, Swādhyāya Saṃdoha, Satyārtha-prakāśa Tīkā. ***Expired in*** 1956.

Tejomitra, Acharya. Vedacharya, Vyākaraṇa Nirukt, M.A., Vidyavaridhi, D.Phil. ***b.***15.10. 1939. Rtd. Prof. D.A.V. College, Deharadun (U.P.). ***Bks.*** 06. Ekāvalī, Śraddhā-nandabalidānam, Kathāyanam ***Add.***Vatayanam 217/1 DL Marg Dehradun 01. ***Spl.Ref.*** Veda, Nirukta, Sāhitya.

Tejprakash Acharya, M.A. ***b.*** 08.01.1981. Mohanlalganj. Research Scholar, Lucknow Univ. ***Gp.*** Prof. Binda Prasad Mishra ***Ps.*** 06. M. 09453370421.

Tera, Buddharakkita (Acharya). Traditional Degree. ***b.***12.03.1922, Imphal, Manipur. Founder President, Mahabodhi Society, Bangalore. ***Gp.*** Nanatiloka, Vitthalarupola Piyatissa. ***Add.***14, Kalidas Marg, First Main Road, Gandhi Nagar, Bangalore–560009 (KT). ***Spl.Ref.*** Bauddha Darśana.

Thaker Pankaj Krishnakant M.A., B.Ed., SLET.

b. 05.03.1976. Asstt. Prof. Deptt of Skt. KSKV Kachch Univ. *Bks.* 04. *Ps.* 15. *Add.* Deptt of Skt. KSKV Kachch Univ. Bhuj – Kachch 370001. Gujarat. M. 09898958898. pankaj.thaker@yahoo.ocm

Thakkar, Suman Ben Ashvin Kumar. Ph.D. *b.*12.09.1953. Prof. Sanskrit & Bharti Vidhya Vibhag, Hemchandracharya Uttar Gujrat University, Patan. *Add.* 11, Navdurga Nagar, Near Sitlamata Mandir, Patan, (GJ). *Spl.Ref.* Prakrit Sanskrit.

Thakkar, Vandna Ben S. Ph.D. *b.*10.08.1958. Prof. Smt. M. M. Shah Mahila Arts College Highway Road Kadi. *Ps.* 03. *Add.* 7-A Madhuban Society Nandasan Road Kadi, Mehsana. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Thakkar, Veenaben Vasan Ji. Ph.D. *b.*24.06.1959. Prof. Shri Jayendrapuri Arts & Science College, Bharuya. *Ps.* 03. *Add.* 22, Sardar Patel Society Near J. P. College, Bharuya. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Thakral, Amla. M.A. M.Phil. B.Ed. *b.*20.08.1956, Delhi. Teacher, Delhi Public School Delhi. *Ps.* 03. *Add.* E – 291. Greater Kailash – I. New Delhi–110048. *Spl.Ref.* Sanskrit Samvardhak Samman, Sanskrit Academy, Delhi.

Thakral, Chandu Lal Vanmali Das. Ph.D. *b.*12.06.1932. Prof. K. H. Madhwani Arts & Commerce College, Aerodrum Road, Porbander. *Ps.* 05. *Add.* Manjul Block No. 18, Shri Nath Park, Kalawadh Road, Rajkot. *Spl.Ref.* Dharma Śāstra.

Thakur, Sunita. M.A., M.Phil. b.11.05.1981. MIG -13, Vivekanand Nagar, Damoh, M.P. Teacher. *Gp.* Prof. R. V. Tripathi, Prof. Bhagchandra Jain. Ps. 01.

Thakur, Ajit Bhai. M.A., Ph.D. *b.* 14.05.1950, Aanand. HOD Sanskrit Deptt. Sardar Patel University, Vallabh Vidha Nagar, GJ. *Ps.* 03. *Add.* A 10 Chetanya Vihar, Vidha nagar Road, Aanand, Gujrat.

Thakur, Ajit Singh I. M.A., Ph.D. *b.*14.05.1950. HOD. Sanskrit Deptt. Sardar Patel University, Vallabh Vidhya Nagar. *Ps.* 05. *Add.* A-10, Chaitanya Vihar, Vidhya Nagar Road, Aanand. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Thakur, Ajitasimha Isvarasimha. M.A., Ph.D., *b.*14.05.1950, Vankaneda, Surat, GJ. Asst. Prof., Sanskrit Dept., M.T.B. College, Surat. *Bks.* Ālokaḥ. *Add.* Tarasadi Gaon, Kausamba, Surat (GJ).

Thakur, Ambalal Dhansukh Bhai. M.A. Ph.D. *b.* 06.06.1933. Prof., Seth P.T. Arts & Science College, Godhara, Panchmahal. *Ps.* 03. *Add.* 19, Shraddhey Society Godhara, Panchmahal. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Thakur, Anantalata. M.A., *b.*23.07.1916, Kotalipara, Faridpur, Bangaladesh. Asst. Prof. Asiatic Society, Calcutta. *Ps.* 05. *Add.* 59/1, Ram Manohar Sarani, Malir Bagan, Baidya Bati, Hugly–712222. *Spl.Ref.* Nyāya, Vaisheshik and Bauddha Darśana.

Thakur, Balwant Singh N. Ph.D. *b.*01.06.1965. Prof., Shri Arts & Commerce College, Sarbhan, Amod, Bharuya. *Ps.* 03. *Add.* "Prabhu Kripa" A-20, Jawahar Nagar Society, Near Overbridge Bharuya. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Thakur, Chandrika Ben Ramashankar. Ph.D. *b.*27.04.1957. Prof., B. Jahauddin Vinyan College, Junagarh. *Ps.* 03. *Add.* S/72-569, B. Jahauddin College Motibagh Road, Junagarh. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Thakur, Deepak Bhai. Ph.D. *b.*27.06.1959. Prof., Shri P. H. G. Municipal Arts & Science College, Ambika Highway Road, Kalol. *Ps.* 03. *Add.* 1. Indraprastha Flats, Vardhaman Nagar, Near Garden Kalol, Gandhi Nagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Thakur, Dinesh Chandra Jetha Lal. Ph.D. *b.*02.08.1950. Prof., Arts & Commerce College, Idar, Sambharkanta. *Ps.* 03. *Add.* Kadiya dara, Idar, Sambharkanta(GJ). *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Thakur, Gangesh. M.Sc. Acharya. L.L.B. Ph.D. D.Litt. *b.* 10.10.1952. Madhubani (Bihar). Prof. *Bks.* 01. SaṃgrāmaDarpaṇa. *Ps.* 15. *Add.* P. G. Deptt. of Jyotiṣaa, Kameshwar Singh Sanskrit University, Darbhanga, (Bihar).

Thakur, Girish Bhai J. Ph.D. *b.*23.02.1944. Prof. G. D. Modi Arts College Palanpur. *Ps.* 03. *Add.* 13, Vajra Bhoomi dairy Road, Palanpur. *Spl.Ref.* Sāṅkya & Yoga.

Thakur, Hasmukh Rai Magan Lal. Ph.D. *b.*03.01.1961. Prof. M. M. Gandhi Arts & Commerce College Kalol. *Ps.* 03. *Add.* 25, Swami Narayan Society, Station Road, Kalol, Panchmahal(GJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Thakur, Janki Nath. Sāhityacharya. *b.* 26.10.1921, Mithila. Teacher. *Gp.* Upendra Jha. *Ps.* 03. *Add.* Chanpura, Dhanukhi Chanpura, Madhubani (Bihar). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Thakur, Kripa Kant. Acharya (Vyākaraṇa , Sāhitya) Vidyavaridhi. *b.* 11.11.1924. Madhubani, Bihar. Rtd. Prof., J.N. Skt. P.G. College, Darbhanga. *Bks.* 02. Āñjaneya-caritamahākāvyam, Dūtoddhavam. *Add.* Lohana East, Madhubani, Bihar – 07. *Spl.Ref.* Śāstra Chudamani.

Thakur, Lalita Ben Daya Bhai. B.A. *b.*10.08.1955, Kochwata, Valsad, GJ. Teacher, S.M. School Dharapur. *Ps.* 02. *Add.* Hanuman Talia, Dharampur, Valsad, GJ. *Spl.Ref.* Darśana.

Thakur, Mahendra Nath. Sāhityacharya. *b.*21.06.1947, Rakhavari, Madhubani, Bihar. Asst. Prof. *Gp.* Vasudev Sharma Vedpathi, Vidyanand Ji Jijnasu, Ganesh Jha, Prabhudattaswami. *Ps.* 03. *Add.* Bilveshvara Sanskrit Mahavidyalaya, Sadar Bazar, Meerut (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Thakur, Manasingh Divaliban. M.A. *b.*22.10.1950, Valsad, GJ. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* S.M.S. High School, Dharampur, Valsad (GJ). *Spl.Ref.* Darśanaa.

Thakur, Om Prakash. Acharya in Sāhitya, M.A.(Skt.). *b.* 20.09.1934 Alipur, Mujaffarpur, Pakistan. Head Master, Rajkiya Vidyalaya, Delhi. *Bks* 03. Indradhanuḥ (Gītikāvya), Nītikathāmakarandaḥ, Gītimañjarī. *Add.* D-757 Saraswati Vihar Delhi 110034. *Spl. Ref.* Poet.

Thakur, Padma Ben Shri Natwar Singh. Ph.D. *b.*15.05.1965. Prof. M.R.D. Arts & Commerce College, Chikhli, Navsari. *Ps.* 03. *Add.* C/o Ashok Singh Ramsingh Parmar Quarter No. 261-B Valsad, Navsari. *Spl.Ref.* Vedānta.

Thakur, Parbhat Singh. M.A. Ph.D. *b.*02.03.1956. Mandi (H.P.) Asct. Prof., Punjab Univ. *Bks.* 02. *Ps.* 30. *Add.* University Quarter No.-06, Gautam Nagar, Una Road, Hoshiarpur (Punjab)–146021.

Thakur, Prabhat Singh. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.*02.03.1956, Bedhalu, H.P. Research Associate. *Gp.* Dr. Ramagopal, Dr. Ramamurti, Dr. Devidatta Sharma. *Ps.* 04. *Add.*V. V. Research Institute, Sadhu Ashram, Hoshiarpur (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Thakur, Ramji. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.* 13.05.1935. Fulgama, Nepal. HOD, Lalitnaryana Mithila V.V. *Bks.* 06. Rādhā-viraham, Bāṇeśvarī, Govinda-caritāmṛtam. *Add.* Dharampur, Lohana Road, Dharbhanga.

Thakur, Shurveer Singh Ishwar Singh. Ph.D. *b.*10.09.1965. Prof., Arts & Commerce College, Olpad, Surat. *Ps.* 03. *Add.* B-7, First Row House, Kalidas Road, Near Saraswati School, Surat. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Thakur, Sulabha Nishikant. *b.*Raghavendra Nagar, Sholapur, MH. *Gp.* Hirabhai Badodkar. *Bks.* Saṅgītam Saundarya-śāstram ca, Sāmavedasya Svaraniścitiḥ. *Add.* Surasangata, Raghav Nagar, Sholapur, MH. *Spl.Ref.* Sāhitya & Sangeet.

Thakur, Sunita. Shastri, M.A., M.O.L. *b.*23.03.1923. Teacher. *Ps.* 03. *Add.* 29, Patel Nagar (S) Market, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Thakur, Vidhya Nath. Acharya (Vyākaraṇa, Vedānta, Tantra). *b.* Govindpur, U.P. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Damodar Thakur, Shiv Shankar Jha. *Add.* Govindpur, Via Pratapganj, Sahara U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Vedānta & Tantra.

Thakur, Vimal. M.A. Ph.D., *b.* 06.05.1960, Narayanpur. Teacher. *Bks.* 01. Saṃskṛta-Darpaṇa. *Add.* East Champaran (Bihar). Karpoori Thakur. Govt. H.S. School, Kabirchauk, Darbhanga, Bihar.

Thapliyal, Ashok. M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1979, Joshimath, Uttarakhand. Asst. Prof., R.Sk.S., Bhopal Campus. *Gp.* Prof. Shukdev Chaturvedi, Prof. Omkarnatha Chaturvedi, Prof. Prem Kumar Sharma, Prof. Devi Prasad Tripathi, Pd. Ramdayal Maiduli. *Bks.* 01. Vāstū Prabodhini. *Ps.* 08. *Add.*R.Sk.S. Bhopal Campus, Sanskrit Marg, Bagsevaniya, Bhopal. E-mail: dr.ashokthapliyal @gmail.com

Thapliyal, Bhagat Ram. Acharya in Siddhānta Jyotiṣa. *b.* 1933, Tairi, Pauri, Garhwal. Rtd. Principal & HOD, Shri Badrinath Ved Vedang Skt. College, Joshimath, Chamoli, U.K. *Gp.* Pt. Awadh Bihari Tripathi, Pt. Mithalal Ojha. *Sp.* Prof. Devi Prasad Tripathi. Pt. J.P. Sati. *Ps.* 05. *Expired on* 30.04.1994. *Spl.Ref.* Siddhānta Jyotiṣa.

Thapliyal, Devendradatta. M.A. *b.*22.02.1946, Mukhem, Tehri, (U.P.) Teacher. *Gp.* Devendradatt Dabaral, Laxmidattji Shastri, Mahanandji Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Shri Sarasvati Sanskrit Vidyalaya, Jogathachaga, Varanasi.

Thapliyal, Jagadish Prasad. Acharya. *b.*21.08.1950, Brahmanthala, U.P. *Gp.* Sundaraprakasa Thapaliyala. *Ps.* 03. *Add.* Brahmanthala, Chamoli (U.P). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Thapliyal, Vishnu Dutt. Acharya in Sāhitya. *b.*04.08.1947. Asst. Prof. *Gp.* Devendra Dutta Dubral, Kumud Prasad Sharma. *Ps.* 03. *Add.* Near Shri Patitapavaneshwar Mahadev, Near Haribharati Netra Chikitsalaya, Sannyas Road, Kankhal, Haridwar, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Thiagarajan, R. M.A. Ph.D., *b.*02.12.1951, Injikkollai. Head, President College, Chennai. *Bks.*08. Cidambarā's Bhāgavata Campus Study. *Ps.* 50. *Add.* Head of The Postgraduate & Research Dept. of Sanskrit. Presidency College, Chennai-05.

Thirunalloor, Karunakaran. *b.*08.10.1924, Kollam (Quilon). Asst. Prof., Govt. Arts College and Univ. College, Kerala. *Gp.* Prof. Elamkulam Kunjan Pillai. *Bks.*20. Meghasandeśam, Abhijñānaśākuntalam (ed.), Rānī, Rathri, Grīṣmasandhyākāla. *Expired on* 05.07.2006. *Spl.Ref.* Awards: Aron Award-1984, Vayalar Award-1988, Mullor award-1992, Abudabi Shakti Award, Kerala Sāhitya Akademy Award of lifetime contribution-2000.

Thite, Ganesh. M.A., Ph.D. *b.* 02.05.1944, Pune, Asst. Prof., Bhandarkar Institute, Pune. *Bks.*05. Music in the Veda, History of Sanskrit Philosophy. *Add.* 21, Vrandawana Garden, Pune.

Thorat, Shivram Chotu Bhai. Ph.D. *b.*02.06.1968. Prof., Shri Parekh Arts College, Mahua, Bhav Nagar. *Ps.* 03. *Add.* Pipalkheda, Vasanda, Navsari. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Thuwal, Daya Krishna. Acharya in Sāhitya, Shikshacahrya, M.A. (Hindi). *b.* 01.05.1976. Nanital. Asst. Prof., Uttarakhand Skt. Univ., Haridwar. *Add.* Uttarakhand Skt. Univ., Haridwar. M. 09411324094. dthuwal@gmail.com

Timmappa-dikshit, Chennakeshav-dikshit Matturu. Taittiriya Kṛṣṇa Yajurveda-kramanta, DharmaŚāstravidvat. *b.*1923, Mattur, Shimoga, KT. *Gp.* Shrinivasava-dhani, Subrahmanya-bhatt. *Add.* Krisivala, Mattur, Shimoga (KT). *Spl.Ref.* Kṛṣṇa-yajurveda DharmaŚāstra, & Advaita-Vedānta.

Tirth, Kalidas. Kāvya Vyākaraṇaopadhi. *b.*03.03.1912, Karakona, Burdwan, W.B. Principal. *Gp.* Kripamai Vedāntatirtha. *Ps.* 05. *Add.* Burdwan Hari Seva Chatuspathi, Burdwan (W.B.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tirumananjeri, Shrinivasan Devanathan. *b.* 27.12.1948, Tiruvandipur, South Arcot, TN. *Gp.* A.V. Esambara Dixit, Shankar Narayana Sharma, Ved Parayankarta. *Add.* Shri Govindaraj Swami Devasthanam, Tirupati (A.P.). *Spl.Ref.* Sāmaveda.

Tiruvengadattan, A. M.A., Ph.D. *b.*27.06.1933, Alwaratirunagari, TN. Asst. Prof., *Gp.* Nallan Chakravarti vidvan. *Ps.* 03. *Add.* D. G. Vaishnava College, Madras – 600106. (TN). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tiwari, Asha. M.A. Ph.D. *b.*30.06.1969. Garhwal (Uttaranchal). Guest Lecturer. *Ps.* 10. *Add.*

226/3. R.K. Puram, New Delhi–22. *Spl.Ref.* Gold Medilist in M.A.

Tiwari, Bajrang Bihari. M.A., M.Phil., Ph.D. *b*.01.03.1972, Gonda. Asst.Prof., Deshbandhu College, New Delhi. *Bks.*01 Bhāratīya Sāhitya: eka Paricaya. *Ps.*10. *Add.* 204, II Floor, T-134/1, Begaumpura, Malviya Nagar, New Delhi-110017. M. *09868261895*. *Email.* bajrangtiwari001@rediffmail.com *Spl.Ref.* Bhavabhuti Alamkarana

Tiwari, Bal Krishna. Acharya in Sāhitya. *b*.01.07.1920. Balia, U.P. Rtd. Teacher, Samskrta Mahavidyalaya, Gorakhapur. *Gp.* Pt. Taracharana Bhattacharya, Pt. Mahadeva Upadhyaya, Pt. Vidyavilasa Sukla. *Ps.* 03. *Add.*F-2, Delhi Admini-stration Flats, Model Town, Delhi-09. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tiwari, Chandramouli. Acharya. *b.* 02.12.1984. Hoshangabad. M.P. Research Scholar, RSKS Lucknow Campus. *Gp.* Dr. Amit Kumar Shukla, Dr. Hansdhar Jha. *Ps.* 06. *Add.* Rashtriya Sanskrit Sansthan, Lucknow Campus, Vishal Khand-04 Gomti Nagar, Lucknow 226010. M. 09532098982.

Tiwari, Dagora. Sāhitya-Acharya, Paurohitya-Acharya. *b.*14.01.1941. Purohita (Priest). *Add.* 28/12, Shakti Nagar, Delhi. *Spl.Ref.* Veda, Sāhitya, Paurohitya.

Tiwari, Devendra Prasad. B.Sc., B.Ed., M.Sc., M.A. (Hindi, Skt. & Philosophy). b.04.11.1973. Pithoriya, Sagar, M.P. Lecturer. *Gp.* Pt. Premnarayan Dwivedi. *Ps.* 02. *Add.* Jain Stationary Mart, Sagar, M.P. *Spl.Ref.* Gold Medalist. E-mail: devendra tiwari40 @gmil.Com.

Tiwari, Dina Natha. Shastri, M.A., Ph.D. *b*.04.08.1936, Nawada, Madhubani, Bihar. *Gp.* Pt. Madanamohana Jha. *Ps.* 03. *Add.* Principal, Govt. Sanskrit College, Patna–4. *Spl.Ref.* Darśana.

Tiwari, Gauri Shankar. M.A., Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya), Ph.D. *b,* 05.01.1956. Lecturer, H.P.D. Men College, Aara. *Bks.* 03. Bājapeyī Śatakam, Siddhānta Kaumudī, Ātmanepadaprakaraṇa, Sūktimukti Saṅgraha. *Ps.* 16. *Add.* Ayodhyapuri, Aara, Bhojpur, Bihar. *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Tiwari, Hari Niwas Prabhat Kumar. Ph.D. *b.*26.10.1966. Prof., Arts & Commerce College, Sawli, Varodara. *Ps.* 03. *Add.* D-16 Shrinath Park, Vaghodia Road, Varodara. *Spl.Ref.* Kāvya Śāstra.

Tiwari, Hiraman. M.A., M.Phil. *b*.01.11.1961. Research Scholar, Deptt. of Sanskrit, University of Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 69, Vasudha Enclave, Peetampura, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tiwari, Jaya. M.A., B.Ed., Ph.D. *b.* 04.11.1963. Prof., Skt. Deptt. & Campus Head, Kumoun University. *Bks.* 03. *Ps.* 23. *Add.* Sleepy Hollow, Quarter No. 03. Malittal, Nanitaal Uttarakhand-263001. Ph. 05942231555. M. 09411196999. *Spl. Ref.* Darśana.

Tiwari, K. A. M.A., M.Phil. *b*.01.01.1950. Teacher (TGT), Sanskrit, G.A.D.A.V. Senior Secondary School, Nizamuddin Ext., New Delhi. *Ps.* 02. *Add.*H-389, Shrinivaspuri, New Delhi.

Tiwari, Kashi Nath. M.A., Sāhityacharya. *b.* 17.01.1940, Tivran, Allahabad, (U.P.). Rtd. Deputy Director, Correspondence Courses, Rastriya Sanskrit Sansthan. *Gp.* Dr. Adyaprasad Mishra, Prof. Laxmikant Dixit, Dr. Chandikaprasad Shukla. *Bks.* 03. Daṇḍī kī Sāhityasādhanā, Saṁskṛta - digdarśaka, Ākāśavānīta prasāritā ekoviṁśati Saṁskṛta-vārtā. *Spl.Ref.* Brodcasted 21 Sanskrit Varta from All India Radio.

Tiwari, Kripa Shankar. Acharya. *b*.09.07.1946, U.P. Asst.Ptof. *Ps.* 03. *Add.* Shri Rajagopal Sanskrit Mahavidyalaya, Ayodhya, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tiwari, Kripa Shankar. Acharya. *b*.09.07.1946. Asstt. Head of the Deptt. *Ps.* 03. *Add.* Shri Rajagopal Sanskrit Mahavidyalaya, Ayodhya, Faizabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tiwari, Leena. M.A., M.Ed. M.Phil. *b.*26.06.1981. Delhi. Asst.Prof., R.Sk.S., Bhopal Campus. *Ps.* 01. *Add.*101. Kunjan Nagar. Phase–I. Bhopal (M.P.). *Ph.* 09893073280.

Tiwari, Mahesh. Acharya, M.A. (Skt. & Pali). *b.*03.01.1929, Barja, Bhojpur, Bihar. *Gp.* Bhikshu Jagadish Kasyap, Prof. Satkadi Mukhopadhyay. ***Bks.*** 01. Nidānakathā. ***Add.*** 45, Uttrakhand Samuhik Grihanirman Samiti, Patparganj, Delhi–110092. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Pali. Received U. P. Sanskrit Parishad Award.

Tiwari, Markandey Nath. Ph.D. Sāṅkya– Yoga. *b.*10.07.1964. Varanasi. Asst. Prof., L.B.S. Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, New Delhi. ***Ps.*** 20. ***Add.*** 250/6. Mehrauli, New Delhi–30.

Tiwari, Munni Achary. Acharya. *b.*05.07.1931, Mohwa, (U.P.). ***Gp.*** Ratinath Pandey. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Baharul Olum Sanskrit Vidyalaya, Bahariyabad, Ghazipur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tiwari, Nand Vallabh. Yogacharya, Shiksa-shastri. *b.*08.06.1960. ***Add.*** Shri Durga Mandir Adhyatmika Yoga Kendra, Tagore Park, Model Town, Delhi. ***Spl.Ref.*** Yoga.

Tiwari, Narmadeshwar. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*01.05.1943, Mishrbalia, Ghazipur, U.P. H.O.D. of Vyākaraṇa. ***Gp.*** Brajabhushan Upadhyay, Bhupanarayan Jha, Shaligrama Mishra. ***Bks.***01. Śābdikanaye Kālasvarū-paparyālocanam. ***Add.*** Sadhuvela Sanskrit Mahavidyalay, C-K-34/24, Lahauri Tola, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tiwari, Nilabh. M.A., Acharya, M.Ed., M.Phil., Ph.D., P.G.D.C.A. *b.*20.07.1980, Dewas (M.P.). Asst. Prof., R.Sk.S., Bhopal Campus M.P. ***Gp.*** Prof. Mithila Prasad Tripathi, Acharya Vanshidhar Shastri Musalgavkar. ***Bks.***01. Saṃskṛta Prabodhinī. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 101. Kunjan Nagar. Phase–I. Bagsevaniya, Bhopal. ***Ph.*** 09827221055. ***Spl.Ref.*** Co–editor Research Jounaral 'Madhyama'.

Tiwari, Omkar Nath. M.A., Ph.D. *b.*20.03.1954, Suraundha, Bhojpur, Bihar. Asst. Prof. ***Gp.*** Pt. Jagadananda Pandeya. ***Add.*** H.O.D., Deptt. of Sāhitya, Govt. Sanskrit College, Patna – 800004 (Bihar). ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Tiwari, Purana Prasad. *b.*15.08.1927, Gwalior. Gp. Anant Ram Shastri, Baleshvar Rajaram Shastri. ***Bks.*** 01. Bṛhattrayī-cikitsāsūtram. ***Add.*** Garhve ki Goth, Mama ka Bazar, Lashkar, Gwalior (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya, & Āyurveda.

Tiwari, R. M. M.A., B.Ed. *b.*13.07.1935. T.G.T. (Teacher), Hercourt butler Senior Secondary School, Mandir Marg, Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** A/ 100, School Lane, Patapar Ganj, Delhi–110091. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tiwari, Ram Chandra. B.A., M.A., D.Phil., D.Litt. *b.*01.06.1935, Allahabad. Ex-Principal, Govt. Degree College, Bhopal, M.P. ***Gp.*** Dr. Baburam Saxena, Dr. Umesh Mishra, Prof. Kshetresh Chandra Chattopadhyaya, Dr. Adya Prasad Mishra, Prof. Laxamikanta Mishra. ***Bks.*** 05. Kālidāsa kī Tithi Saṃśuddhi, Śrīmadbhāgavata Purāṇa meṁ Prematattva, Devabhāṣā-Subodhinī, Advitīya-Aṣ-amūrti. ***Ps. 10. Add.*** 45- Patrakar Colony, Bhopal–3, M.P. ***Spl.Ref.*** Prooved - Date of Kalidas was 370–450 A.D. with 627 archeological evidences, 104 sculptures, 30 paintings and 493 inscriptional words. Sanskrit grammer and Transtation.

Tiwari, Ram J. J. Acharya in Vyākaraṇa, B.Ed. *b.*01.03.1953. Asst. Prof. ***Gp.*** Parasanath Shukla, Vishvanath Pathak, Dayashankar Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Adarsh Bharti Mahavidyalaya, Kheta Sarai, Jaunpur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tiwari, Ram Krishna. Shastri, Acharya, Ph.D. *b.*01.12.1943, Niyamatabad, Varanasi, (U.P.). Teacher. ***Gp.*** Avabhavihari, Dr. Krishnachandra Dwivedi. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Sanskrit Vidwan, Niyamatabad, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Tiwari, Ram Nayan. M.A., M.Phil, B.Lib.Sc. *b.*15.04.1937. Asct. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Library (Brail), University of Delhi, Delhi – 110007. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tiwari, Ram Niwas. Acharya, Dharmagam, M.A. (English, Skt.,) LLB, Ph.D. *b.* 01.08.1935, Gazipur. Guest Teacher, Deptt. of Dharmagam, SVDV, BHU. ***Bks.*** 03. Hindu Vidhiviveka, Bodhicaryāvatāra, English Translation of Śivsmahimna Stotra. ***Add.*** Deptt. of Dharmagama, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi-05. M. 09839966538.

Tiwari, Rama Shankar. Baliya(U.P.). Principal, Saket Mahavidyalaya, Faizabad (U.P.). ***Bks.*** 02. Vaidehyā Atītāvalokanam, Rādhāyā Atītāvalokanam, Kāvya Tatvavivekaḥ(ed.). ***Spl.Ref.*** Sanskrit, Hindi & English.

Tiwari, Ramji. M.A., NET, Ph.D. ***b.*** 04.01.1956. Principal SJK Mahavidyalaya Firozpur, Haryana. ***Bks.*** 01. Bhaviṣyapurāna eka Anuśīlana. ***Add.*** Neekhil Nilayam, Subabazar, Gorakhpur_273010.

Tiwari, Ranjan Prasad. Vyākaraṇa Sāhitya-charya. ***b.***01.08.1963. Principal. ***Gp.*** Purushottama Dwivedi, Satyanand Shukla. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Dharmadasa Jain Devanagari Sanskrit Vidyalaya, Kamboh Gate, Meerut (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Tiwari, Ranjeet Kumar. Acharya, Vidyavaridhi. ***b.*** 15.05.1978. Chapara. Bihar. Asst. Prof., Womens College Silchar. ***Gp.*** Prof. Radheyshyam Dhar Dwivedi, Dr. Rajneesh Kumar Shukla. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Skt. Deptt., Womens College, Silchar. M. 09706457391. tiwary_ranjeet@rediffmail.com ***Spl. Ref.*** Nepal.

Tiwari, Ravindra. Acharya, Ph.D.. ***b.*** 07.05.1957, Deoria, (U.P.). Asst. Prof. ***Gp.*** Adyaprasad Pandey. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Laxminarayan Sanskrit Mahavidyalaya. Laxmiganj, Deoria (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tiwari, Sachidanand. M.A (Skt., Hindi) Ph.D. ***b.*** 05.08.1956. Ex-Asstt. Prof. Gorakhpur and Delhi Univ., Dy. Director of Distance Education & Officer in Charge - Research, Publication & Scholarship Deptt., R.Sk.S., New Delhi. ***Gp.*** Prof. Vishvambhar Nath Tripathi, Prof. Devendra Mishra ***Sp.*** Keshav Dev, Ajit Singh, Tarun Kumar. ***Bks.***07. ***Ps.*** 10. ***Add.*** CF-278, Ansal Housing Golf link-1, Sector Omega-1, Greater Noida - 201308. ***M.*** 8802129002. ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Co-ordinating to Publishing of Major Research & Contemporary Skt. Books and study material for Distance Education. 'Sanskrit Vimarsh' Reserach Journal of R.Sk.S., New Delhi is publishing by his co-ordinating also.

Tiwari, Shashi. M.A. Ph.d. Proficiency in German ***b*** 16.10.1945 Lucknow, Asct. Prof., Maitreyi College, New Delhi, ***Bks*** 21, Muktakakhaṇda, Glimpses of Vedic & Ancient Indian Civilization, Kenopaniṣad, Vaidika Adhyayana/Vedic studies ***Ps*** 149. Add. 54 Saakashara Appartment, A-3 Paschim Vihar, New Delhi-110063. Ph. 011-25265237. M. 9810690322 E-mail Shashit_98@yahoo.com ***Spl.Ref.*** Vedic Study, Skt. Sāhitya Seva Samman, Vidya Alamkara etc. Italy, Canada, Nepal, USA,

Tiwari, Shashi. M.A., Ph.D. ***b.***16.10.1945. Lucknow. Asct. Prof., Maitreyi College, University of Delhi. ***Bks.*** 12. Ṛgvedīya Aprisūkta, Muṇdakopaniśad(ed.), Iśāvāsyopaniṣad(ed.), 'Sūrya Devatā' Vaidik Aur Vedottara Saṃskṛta Sūrya Stutiyoṃ Maiṃ, Indian Religion and Culture. ***Ps.*** 100. ***Add.*** 54, Saakshara Apartment. A–3, Pashcim Vihar. New Delhi–110063. Shashit_98@yahoo.com. ***Spl.Ref.*** Received- Sanskrit Shiksak Puruskar of Delhi Sanskrit Academy. Rajasthan Academy Award. U.P. Sanskrit Sansthan Award. U.P. Hindi Sansthan Award. Delhi Sanskrit Academy Award.

Tiwari, Shiva Darśana. M.A., Ph.D. ***b.***01.01.1940, Nanahal, Baliya, U.P. Prof. Govt. P. G. College, Damoh, M.P. ***Sp.*** Dr. Leena Patwa, Dr. Gayatri gupta. ***Bks.*** 03. Pāraskara Gṛhyasūtra (Bhāṣyānuvāda), Saṃskṛta Mahākāvyādarśa Vimarśinī. ***Ps.*** 21. ***Spl.Ref.*** Editor Ṛcā & Anāmikā Magazines.

Tiwari, Sriniwas. B.Sc., Acharya in Jyotiṣa, B.Ed., Ph.D. ***b.*** 18.01.1946. Rohtas, Bihar. Prof., Jyotiṣa Deptt, SVDV, BHU, Varanasi. ***Gp*** Prof. Rajmohan Upadhayaya. ***Sp.*** Dr Vijay Kumar Pandey, Dr. Subhash Pandey etc. ***Bks.*** 04. Āryabhatīyam, Karmaprakāśa, Keśavīyajātaka. ***Ps.*** 18. ***Add.*** Deptt of Jyotiṣa, Faculty of SVDV, BHU, Varanasi- 05. Ph. 0542-2310912. M. 09412832612. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Tiwari, Subhash Chandra. B.Ed., M.Ed., Ph.D. ***b.***09.11.1953, Sonari, Gazipur, U.P. Teacher. ***Gp.*** D.D. Tiwari, Vachaspati Dwivedi. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Sampurnanand Sanskrit Vishwa-vidhyalaya, Varanasi. U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tiwari, Surendra Prasad. M.A., M.Phil., Diploma in Computational Sanskrit. *b.*15.12.1983. Belkhedi, Batiyagarh, Damoh, M.P. JRF, Rashtriya Skt. Sansthan, Bhopal Campus, M.P. ***Gp***. Prof. R.V. Tripathi, Prof. Achutanand Dash, Prof. Kusum Bhuriya, Pt. Chandrabhan Tiwari, Dr. Ramakant Pandey. ***Bks***. 'Yoṣāsaptatikā' of Bachchoolal Awasthi with Hidni Trans. E-mail: sp.tiwri18 @gmail.com ***Spl.Ref***. Sāhitya & 'Bundeli' literature.

Tiwari, Urmila. M.A. *b.*01.08.1948. P.G.T., Govt. Girls Senior Secondary School, Adarsh Nagar, Delhi. ***Ps***. 03. ***Add***. F-02, Delhi Administration Flats, Model Town, New Delhi – 110009. ***Spl.Ref***. Sāhityam.

Tiwari, Vishram. Acharya in Sāhitya, M.A. (Skt., Prakrit), Ph.D. *b.* 01.05.1954. Palamu, Jharkhand. Asct. Prof., PG Deptt of Sāhitya, KSDS Univ., Dharbhanga. ***Gp***. Pt. Harideo Sharma, Dr. Jagannath Pathak, Pt. Rangeshwar Nath Mishra, V. V. Pt. Ramchandra Mishra, V. V. Pt. Bhawanidutt Sharma, Prof. Rajaram Jain. ***Bks***. 01. Ācārya Jinasen Kṛta Harivaḥshpurāṇa eka Adhayayana. ***Ps***. 13. ***Add***. PG Deptt. of Sāhitya, Kameshwar Singh Dharbhanga Skt. Univ., Dharbhanga-846008. Ph. 06135-277541. Email tiwari.vishram @yahoo.com ***Spl. Ref***. Sāhitya, Maithili, Magahi.

Tiwari, Yudhishthir. M.A., Sāhityacharya. *b.*01.07.1949, Ballia, U.P. ***Gp***. Siddheshvar Bhattacharya, Shrinarayan Mishra. ***Ps***. 03. ***Add***. Mishra Ballia Colony, Shaija, Gazipur (U.P.). ***Spl.Ref***. Sāhitya.

Topa, Ananta Narayan. Sāhitya Shiromani, Sikshashastri. *b.*23.03.1953, Nelluru, A.P. Research Assistant. ***Ps***. 03. ***Add***. Prachya Vidya Research Institute, Shri Venkateshwar Vishvavidyalaya, Tirupati, (A.P). ***Spl.Ref***. Sāhitya.

Topale, Dhundhiraj. Acharya(Nyāya), Kāvyateertha. *b.*1890. Principal, Nityanand Ved School. ***Gp***. Vamacharan, M.M. Shri Ambadatt Shastri. ***Bks***.38. Yuktivāda, Nyāyasiddhāntamuktāvalī(ed.), Ātma-tattva-vivekaḥ, Śabda-śakti-Prakāśikā, Ślokavārtika (tr.). ***Expired in*** 1967.

Trikha, Raj Kumari. M.A., Ph.D. *b.*09.04.1944, Delhi. Asct. Prof. ***Bks***.01. Alaṅkaras in the works of Bāṇabhatta. ***Ps***. 47. ***Add***. BF–95. Janakpuri. New Delhi– 110058.

Trikha, U. R. M.A., Ph.D., Asst. Prof., Sanskrit Deptt. ***Ps***. 03. ***Add***. Lady Shriram College for Women (Delhi Univ.), Lajpat Nagar, New Delhi–110024. ***Spl.Ref***. Drama & Kāvya.

Tripathi, Anant (Sharma). Acharya in Āyurveda, M.A., D.Litt. *b.*22.02.1904, Jagannathpur Shasan, Brahmapur, Ganjam, Orissa. Asst. Prof., ***Bks***.20. Charakasaṃhitā, (Tr.Oriya). Suśruta-saṃhitā (Tr.Oriya). Paribhāṣā-pradīpaḥ. Upaniṣatsaṃgrahaḥ(ed.). Artha-saṃgrahaḥ(ed.). ***Ps***. 20. ***Spl.Ref***. Sāhitya Shiromani, Mimansa Vidyapravina. Founder of Ananta Tripathi Sharma Ayurvedic College. A Versatile Scholar of Sanskrit Literature and Ayurveda Brought Ayurveda in to Practical Application.

Tripathi, Anila kumar. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*05.03.1962, Banda, U.P. Asst. Head. Dept. of Vyākaraṇa. ***Gp***. Dhruvamitra Tripathi, Bhola Jha, Harigopala Sastri. ***Ps***. 03. ***Add***. Sri Sirsawali Dharamashala, Kankhal, Haridwar (U.K.)

Tripathi, Aniruddh Prasad. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.*03.01.1949, Allahabad, U.P. Asst. Prof. ***Bks***. 01. Bhāratī-paricārikā. ***Add***. Sridharma Jnanopadesa Sanskrit Mahavidyalaya, Mahamana Malaviya Nagar, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref***. Sāhitya.

Tripathi, Aniruddha kumar. M.A. *b.*20.10.1959. Basti, U.P. Prof. of Vyakrana. ***Gp***. Dr. Ramayatna Shukla, Kalika Prasada Shukla. ***Ps***. 03. ***Add***. Mahavidyalaya, 103, Vidyanta Marg, Lal Kuan, Lucknow(U.P.). ***Spl.Ref***. Vyākaraṇa.

Tripathi, Asharam. M.A. (Hindi & Sanskrit), D.Phil. *b.*10.12.1941, Allahabad. Sahayak Kendra Director Aakashwani Lucknow ***Bks***.21. Gītāyanam, Hiraṇmayena pātreṇa, Arpaṇīyam–

Sadā Sundaram, Yajñna Aura Yājñavalkya, Citrakūta Śataka. *Add.* C 2/1. O Vishesh Khand-2. Gomati Nagar. Lucknow–226010(U.P.). *Spl.Ref.* Edited, Producer & Asst. Director – All India Radio, Lucknow (U.P.), Mahamantri, Sanskrit Shodh Parishad, Allahabad University (1962 – 64). Nirala Puruskar, Sanskrit Academy Award–1989, Govinddas Puruskar–1991, Awarded by Hindi Sansthan (U.P.) – 1993 & Sanskrit Sanstha (U.P.) – 1992, U.P. Ratna Award – 1996.

Tripathi, Avadh Bihari. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*1914, Sipahi, Arah, Bihar. *Gp.* Ramayasa Tripathi, Chandicharana Tarkatirtha, Siva Nandana Pandeya. *Ps.* 05. *Add.* Sipahi, Arah, (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Balaram. Sāhitya-Acharya, M.A., Ph.D. *b.*16.04.1923, Jabalpur, M.P. Ex. Principal, Sri Lokanatha Sanskrit Mahavidyalaya, Jabalpur. *Gp.* Dr. Krishnakanta Caturvedi. *Ps.* 03. *Add.* 280/2, Kotwali Ward, Hanumantal, Jabalpur (M.P.)

Tripathi, Banarasi. Navya Vyākaraṇa Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 30.04.1952. Kusi Nagar. Prof. Deptt of Skt., D.D.U. Gorakhpur Univ. *Bks.* 02. Ṛgvedīya Subanta Pado kā Vyutpatticintana. *Ps.* 12. *Add.* Deptt. of Sanskrit, D.D.U., Gorakhpur Univ. Gorakhpur-273009 U.P. Ph. 0551-2503181. Email banarasitripathi@gmail.com *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Bhagavat Prasad Sharma. Shastri in Vyākaraṇa & Alaṅkāra, Acharya in Sāhitya. *b.*21.09.1923, Cuttuck, Orissa. *Gp.* Ganeshwara Ratha, Narayana Mahapatra, Kaliprasada Misra, Ambikaprasada Upadhyaya, Niriksanapati Misra. *Bks.* Rasaniṣpatti-tattvāloka. *Add.* Markandeshwar Sahi, San Sangha Lane, Puri (Orissa).

Tripathi, Bhagirath Prasad. Nyay - Vyākaraṇa-Sāhitya - Purāṇa - Vedānta - Yoga - Veda – Darśana – Āyurveda – Jyotiṣa - DharmŚāstra-Sangeet. *b.*1934. Vilaiya, Sagar (M.P.). Director, Research Centre, Varanasi. *Gp.* Seetaram Shastri Sharma, Pt. Shukdev Jha, Pt. Raghunath Sharma, Dhundhiraj Shastri, Ugranand Jha, Kshetreshchandra Chattopadhyay. *Bks.*02. Dhātvarthvijñānam, Pāṇinīya Dhātupā-ha Samīkṣā, Nārya-Saptaśatī, Ātaṅkavāda-Śatakam. *Add.* Editor, Saraswati Sushama. Sampoornanad Sanskrit Univ., Varanasi.

Tripathi, Bharat Bhushan. Acharya, Vidyavaridhi *b.* 01.01.1972. Paryag. Asstt. Prof., RSKS Lucknow Campus. *Gp.* Pt. Ramprasad Tripathi. *Bks.* 03. Vyākaraṇa Matonmajjana Tīkā, Kārakacakram, Vādaratnam. *Ps.* 03. *Add.* Vikas Khand, 2/101 Gomti Nagar, Lucknow. M. 07499392926. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Bharat prasad. M.A. *b.* 17.08.1937, Saharvar, Bilaspur, C.G. *Gp.* Saraswatiprasada Chaturvedi, Deviprasada Tripathi. *Ps.* 02. *Add.* Chatideeh, Bilaspur (CG). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Bhaskaracharya. M.A. D.Phil. *b.*23.09.1942. Allahabad. Prof., Govt. Sanskrit College, Bhopal. Founder Deptt. of Prachay Skt. Rewa V.V., Chairmen M.P. Skt. Academy. *Bks.* 08. Mṛtkū-am, Bālarāmāyaṇam(ed.), Nilimpakāvyam, Sāket-saurabham (Maha-Kāvya), Nirjhariṇī, Lakṣmīlāñchanam, Ajāśatī, Gadyadvādaśī. *Ps.* 50. *Add.* F – 44/6. South T.T. Nagar. Bhopal – 02. *Spl .Ref.* Ex.Secretory of Sanskrit Academy, M. P. Famous Poet of 20th century. Awarded by Sāhitya Academy Samman, Bhoj Samman, Panditraj Samman, Charudev Samman. *Expired on* 03.12.2008.

Tripathi, Bhuvan Chandra. Acharya, Ph.D. *b.*01.01.1943, Shiloti, Nainintal. Principal. *Gp.* Madan Narayana Tripathi, Vijayaprakasha Sharma. *Ps.* 03. *Add.* Sri Mahadeva Giri Sanskrit Mahavidyalaya, Haldvani, Nainital (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Brij Bihari. Acharya in Vyākaraṇa , Darśanaa, Nyāya., Ph.D. *b.*05.01.1956. Principal, Shri Dakshina Murti Skt. College Mishrpokhara, Varanasi, U.P. *Gp.* Prof. Parasnath Dwivedi, Pt. Gayadeen Mishra, Ramsanmukh Dwivedi. *Sp.* Dr. Laxmikant

Trivedi, Dr. Sudhakar Mishra, Dr. Umashankar Tripathi. ***Bks.*** 05. Srīmadbhāgavata meṃ nimbārka Vedānta kā Samanvaya, Skanda-mahāpuraṇasya Vivecanātmakamadhyaya-nam, Sṛṇ-i Vimarśaḥ, Padma-purāṇeṣu Dārśanika Tatvānāṃ, Samīkṣaṇam. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Panchwati Mandir, Subhash Nagar, Maldahiya, Varanasi, U.P.

Tripathi, Chandra Bhanu. Acharya, Vyākaraṇa, Sāhitya. Ph.D., D.Litt., ***b.***1924. Ekadala, Fatahpur, U.P. Rtd. Prof. Deptt. of Skt. Allahabad Univ. & Śāstra Chudamani Scholar, RSKS. ***Gp.*** Rajivalochana Tripathi, Gayaprasada Mishra, Ramachandra Tripathi. ***Bks.*** 15. Ja-ā-Śekharaḥ, Rāmakīrti Kumudamālā Sudhā (Comm. on Kāśikāvṛttisāraḥ), Gītālī, Maṅgalyā, Sujātā (Nātikā), Urvaśī (Nātikā). ***Add.*** 38 Balrampur House, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa. U. P. Samakrta Akademi Award, President Awardee 1995.

Tripathi, Chimanalal Rasikalal. M.A. ***b.***22.04.1911, Sarakheja, GJ. Teacher, Brahmacharivadi Sanskrit Pathashala. ***Gp.*** M. M. Varanasivada V. Abhyankar, P. M. Apte. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C/o Vidyabhavan, Ahmedabad–380001(GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Chote Lal. Sāhityacharya, Ph.D. ***b.***01.07.1950. HOD, Sampoornanand Skt. Univ., Varanasi, U.P. ***Gp.*** Pattabhiram Shastri. ***Bks.***03. ***Ps.*** 26. ***Add.*** Motiyari, Nareni, Banda, U.P.

Tripathi, Chotelal. Acharya in Sāhitya, Vidyavaridhi. ***b.*** 01.07.1950. Banda, U.P. Acharya, Deptt. of Sāhitya Sampoorananand Skt. V.V., Varanasi. ***Gp.*** Pt. Pattabhirama Shastri. ***Sp.*** Ramakant Pandey, Bharat Bhushan. ***Bks.*** 03. Kāvyaprakāśa, Rāmacaritam. ***Ps.*** 27. ***Add.*** Motiyari, Naraini, Banda. M. 09956120053. ***Spl. Ref.*** Sāhitya Skt. Academy Award.

Tripathi, D. M.A., Ph.D. Asst. Prof., Sanskrit Deptt., Delhi University. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Miranda House, Delhi University, Patel Chest Marg, Delhi–110007. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Linguistic.

Tripathi, Daduram. ***b.***18.10.1936, Devkala, Jabalpur, M.P. Principal. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Shanti Niketan Jain Sanskrit Maha-vidyalaya, Katni, (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya & āyurveda.

Tripathi, Damodar Ram. M.A., Ph.D. ***b.***15.01.1948. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 4, Sleepy Halo, Mallital, Nainital (U.P.) ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Deena Nath. Kāvya, Vyākaraṇa, Sāṅkya, Vedānta, Nyāya, Darśana Tīrtha. Bhupati Nagar, Gram (Kalikata). ***Add.*** Dakshineshvar Ramakrishna Sangh, Adyapeetha Balkashram, Kalikata-76.

Tripathi, Deepti. M.A., Ph.D. ***b.***05.11.1950, Patna, Bihar. Prof. Dept. of Skt., Delhi University. ***Gp.*** Dr. Bechana Jha. ***Add.*** S/D 345, Vishakha Enclave, Pitampura, Delhi – 110034. ***Spl.Ref.*** Sanskrita Vyākaraṇa & Linguistic.

Tripathi, Dev Datt. Acharya in NavyaVyākaraṇa. ***b.***05.04.1943, Paigaha, Varanasi, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Baladeva Jha, Jvalaprasada Gauda. ***Ps.*** 02. ***Add.***Shri Chetan Jyoti Sanskrit Mahavidyalaya, Bhupatvala, Haridwar. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tripathi, Dev Narayan. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. ***b.***15.07.1932, Raibareli, U.P., H.O.D. of Vyākaraṇa. ***Gp.*** Ramaphala Tripathi, Rudra-prasada Awasthi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Jayabharat Sadhu Sanskrit Mahavidyalaya, Haridwar. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tripathi, Dev Nath. M.A, Ph.D. ***b.***01.01.1968, B–1/150, A-D, Asi, Varanasi. Asst. Prof., Pune. ***Add.*** CASS, University of Pune – 411007, Pune. deonathtripathi@gmail.com

Tripathi, Devaki Nandan. Acharya in Sāhitya. M.A. ***b.***05.07.1946, Silavati, Nainital. ***Gp.*** Madana Narayana Tiwari, Vijayaprakasha Sharma Gauda. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Rajakiya Inter College, Tanakpur, Nainital. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Devendra Nath. Acharya in Veda, M.A., Ph.D. ***b.***01.03.1959, Tiwaripur, Deoria, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Gopalachandra Mishra, Dr. Bindhyeshwari Prasad Tripathi. ***Add.*** S. D. Degree College, Mathalar, Deoria (U.P.). ***Spl.Ref.*** Veda, VedāntaDarśanaa & Vyākaraṇa.

Tripathi, Devendra Prasad. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*10.07.1952, Manka, Bargarh, Banda, U.P. Asst. H.O.D. *Ps.* 02. *Add.* Shri Dharmagyanopadesh Sanskrit Maha-vidyalaya, Mahamana Malviya Nagar, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Dhruv Mitra. M.A., Ph.D. *b.*16.11.1950, Banda, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Muralidhara Mishra, Bhupendrapati Tripathi. *Ps.* 04. *Add.* Shri Bhagwandas Sanskrit Mahavidyalaya, Haridwar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Dhruv Narayan. Acharya in Veda. *b.*13.01.1956, Motihari, Bihar. Veda-Teacher. *Gp.* Gopalachandra Mishra, Dr. Vindheshwari-prasada Tripathi. *Add.* Rajakiy Sanskrit High School, Bhistipara, Dhanabad (Bihar). *Spl.Ref.* Veda.

Tripathi, Dineshwar Nath. Vidyabhaskara. Sāhitya-Alaṅkāra, Sāhityaratna, M.A. (Hindi, Skt.). *b.*10.12.1930. *Ps.* 02. *Add.* Near Flood Office, Opp. Shantivan, Dariya Ganj, New Delhi – 110002.

Tripathi, Diparaj Mani. M.A., B.Ed. *b.*09.12.1934. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* R/200, Vani Vihar, Professors Colony, Uttam Nagar, New Delhi – 110059.

Tripathi, Dwarikadhish. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.*05.12.1949, Jaunpur, U.P. Asst. Prof. *Gp.* Rajakishor Shastri, Pt. Rajnarayan Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Rajakiya Inter College Jaurasi. Pithauragarh (U.P.). *Spl.Ref.* Rastra-bhasharatna .

Tripathi, Ganesh Prasad. Acharya (Sāhitya, Jyotiṣa), Ph.D. *b.*01.08.1954, Dayandhipur, Jamuni, Ganjam, Orissa. Principal, Ramadhin Sanskrit College, Brahmapur, Ganjam, Orissa. *Bks.* 03. Rāyayatirājācārya Racita Saṃskṛta-nā-akasya Samīkṣātmakam Sampādanam, Sāmavedīyakarmakāṇḍapa-ddhatiḥ, Viśva-śāntimahāyajñapaddhatiḥ. *Ps.* 10. *Add.* Ramahari Nagar, II Lane, Brahmapur-1, Orissa. *Spl.Ref.* Syndicate Member of Shrijagannatha Sanskrit University, Puri.

Tripathi, Gaya Charan. M.A., Ph.D., D.Litt. Prof. & Rtd. Principal, Ganganath Jha Sanskrit Vidyapeeth, Allahabad. *Bks.*01. Vaidika Devatā–Udbhava aur Vikāsa. *Spl.Ref.* Research in German Language. Purāṇa,Veda, Manuscriptology and Sāhitya. Gold Medal. Visiting Prof. of Berlin, German and British Columbia University, Canada. Received MM Upadhi from Hindi Sahitya Sammelan Prayag, UP Skt. Academy, Bihar Skt. Academy and Delhi Skt. Academy Awards, At Present he is join to IIAS, Shimla. President Awardee.

Tripathi, Gaya Prasad. Śāṅkara Vedānta Acharya. M.A., M.Ed. *b.*02.01.1929, Rewa, (M.P.). Principal, Government Sanskrit Higher School, Vidisha. *Gp.* Chintamani Malaviya, Tejbali Dubey, Ram Mishra Chaturvedi. *Ps.* 05. *Add.* 61, Sherpura, Vidisha (M.P.). *Spl.Ref.* Śāṅkara Vedānta.

Tripathi, Girija Datt. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.*13.10.1952, Jagadishpur, Gonda, U.P. Asct.Prof. *Gp.* Dr. Adyaprasad Mishra, Pt. Vaidyanatha Dwivedi, Pt. Ramanuja Ojha. *Bks.* 01. Dharmakītrikṛta-rūpāvatārasya Samīkṣātmakam-adhyayanam. *Add.* Shri Dwarikadhish Sanskrit Akademi and Indological Research Institute, Dwarika, Jamnagar (GJ). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Girish Chandra. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., Ph.D. *b.* 08.01.1952. Gopal Ganj. Editor, Dubhadhari Vachanamrita Patrika. *Gp.* Saligrama Mishra, Pt. Kantakanta Shukla. *Add.* Shri Dubhadhari Barphani Ashram, Bhupatawal, Haridwar. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Gokul Prasad. M.A., Acharya in Sāhitya, Ph.D. Prof. Maharaj Chhatrasal College Chhatarpur M.P. *Bks.* 03. Śrī Harṣa ke Rūpaka, Gokulagītāñjalī, Saṃskṛtasubodhinī.

Tripathi, Gokul Prasad. Vyākaraṇa charya. *b.*10.10.1944, Badach, M.P. H.O.D. of Vyākaraṇa. *Gp.* Bhupati Tripathi, Ram Gopal, Umapati. *Ps.* 03. *Add.* Government Venkat Sanskrit Mahavidyalaya, Rewa (M.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Gopal Datt. Acharya in Sāhitya. *b.*02.12.1955, Champhi, U.P. Principal. ***Gp.*** Madan Narayan Tripathi, Ramakrishna Sharma, Dr. Harinarayan Shikshita, Dr. Damodararam Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Sanatan Dharma Sanskrit Mahavidyalaya. Haldwani. Nainital (U.K.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Hadabandhu. Acharya in Jyotiṣa. *b.*19.06.1919. Dayanidhipur, Ganjam, Orissa. Teacher, Publisher of Panchanga. Ganjam, Orissa. ***Bks.***03. Viśvaśānti-mahāyajña-Paddhatiḥ(ed.), Sāmaveda-vratam(ed.). Vivāhapaddhatiḥ(ed.). ***Expired on*** 30.06.2001. ***Spl.Ref.*** Published Samant Khadiratna Panjika (Panchang) for over 53 years.

Tripathi, Hanuman Prasad. Acharya in Sāhitya. *b.*03.01.1962, Kamhiavan, Allahabad, U.P. Asst.Prof. ***Gp.*** Kamlapati Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shrinivas Sanskrit College, Bilaspur, C.G. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Tripathi, Hanuman Prasad. Acharya in Sāhitya. *b.*15.03.1936, Lakhanpur, Satna, M.P. Asst.Prof. ***Gp.*** Pt. Rameshwardayalu Tripathi, Pt. Vaikunthanath Sharma. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Bhitari, Sidhi M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Tripathi, Hare Ram. M.A., Acharya (NavyaNyāya, Sāṅkyayoga), Ph.D. *b.*01.08.1966. U.P. Prof., L.B.S. Vidyapeetham, New Delhi. ***Bks.*** 08. Hetvābhasavimarśaḥ, Tarkacandrikā, Navīnamatādi Vicāraḥ, Vidhirasāyanam, Īśvaravāda. ***Ps.*** 30. ***Add.*** A–04, Galaxy Apartment, Plot No. – 882, Word–06, Mehrauli, New Delhi–30. ***Spl.Ref.*** Received Maharshi Badarayana Vyas Samman by President, Govt. of India.

Tripathi, Hareram. Acharya (Navya -Nyāya), Vidyavaridhi. ***b.*** 01.08.1966. Kushinagar. Reader & Head Deptt. of SarvaDarśana, LBS Rashtriya Skt. Vidyapeetha, New Delhi ***Bks.*** 06. ***Ps.*** 10. ***Spl. Ref.*** NavyaNyāya, Shankar Puraskar, Manuscript Editing.

Tripathi, Hari Shankar. Acharya, M.A. *b.*01.07.1956, Vaijnathpur, Ghazipur, U.P. Office ***Gp.*** Kailashpati Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Tripathi, J.S.L. Acharya in Vyākaraṇa. M.A., Ph.D., D.Litt. Asct. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Deptt. of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa , Sāhitya. Darśanaa.

Tripathi, Jagadish Prasad. Acharya. *b.*02.07.1953. Bamanvas, Sawaimadhopur (RJ). Asst. Prof., Rajkiya Acharya Sanskrit Mahavidyalaya, Manoharpur, Jaipur. ***Gp.*** Pt. Sri Ramdev Sharma, Pt. Shri Suryanarayana Shastri, Pt. Shri Chandi Prasad Acharya. ***Sp.*** Udaylal Maidi, Ganesh Kumar Sharma, Dr. Suresh Gupta, Gopal Shastri, Dr. Mata Prasad Sharma. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 73, Atreya Farma, Goozar Ghati, Amer Road, Jaipur (RJ).

Tripathi, Jagat Narayan. M.A., Acharya. Ph.D. *b.*04.10.1960, Satna (M.P.). Astt. Prof., Govt. Hamidiya P. G. College, Bhopal. ***Gp.*** Lt. Dwejendra Nath Mishra, Lt. Amir Chandra Shastri, Lt. Shaligram Tripathi. ***Sp.*** Shri Brahmanand Sharma, Dr. Santosh Bhargava. ***Ps.*** 20. ***Add.*** F–1, Char Bunglow Road, Civil Line, Professor Colony, Bhopal (M.P.)

Tripathi, Jagdish Chandra. Achaya, Acharya in Sāhitya, M.A., Vidyavaridhi. ***b.*** 08.03.1958. Asct. Prof., Maryadapurushottama PG College, Mau. ***Bks.*** 01. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Maryada-purushottam PG College Ratanpur, Mau, U.P. ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa.

Tripathi, Jai Prakash Narayan. b. 20.07.1953. Prof. ***Gp.*** Devswaroop Mishra, Prof. Narendranath Pandey. ***Sp.*** Dr. Devnath Dixit, Mahanand Mishra, Satyanarayan Das. ***Bks.*** 01. Vedāntatattvabodhaḥ. ***Ps.*** 13. ***Add.*** Pracheen Adhyapakvas, 6 Sampoornanand Skt. Univ., Varanasi U.P.

Tripathi, Jay Shankar. D.Phil. ***b.***1929. Bedauli. Prof. & HOD Ishwarsharan Degree College, Allahabad (U.P.). ***Bks.***50. Saṃskṛta Sāhitya Racanā kā Itihāsa, Ācārya Daṇḍī Evaṃ Saṃskṛta Kāvyaśāstra kā Itihāsa darśana,

Sāhitya meṃ Kṣa, tra, jña, Sāhityaśāstra ke naye Praśna, Saṃskṛta Kaviyoṃ kā Racanā Sansāra. *Spl.Ref.* Well Known Thinker & Philosopher.

Tripathi, Jaya Shankar Lal. Acharya, M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 25.07.1941, Kannoj. Prof. & Ex-Head Deptt of Skt., Faculty of Arts, BHU. *Gp.* Murlidhar Mishra, Bal Krishna Pancholi, Dr. Hari Dutt Shastri, Prof. Siddheswar Bhattacharya, Prof. Dinesh Prasad Pandey. *Bks.* 24. Pramalaghu Mañjūsā, Kāśikā (Nyāsapadamañjarī Bhāva Bodhinī Hindi Commentary in Vol 10). Kādambarī, Kuvalayānanda (Rasikarañjinī with Hindi), Vyākaraṇa Mahābhāṣya. *Ps.* 10. *Add.* N-13/ 209. J-5 Brij Enclave, Sundarpur, Varanasi-05. Ph. 0542-2317122. M. 09935519720. *Spl. Ref.* Panini Puraskar 2001. Visista Puraskar 1985, 1998.

Tripathi, Jitendra Kumar. M.A., L.L.B. *b.*04.08.1934, Kanpur (U.P.). Additional Secretary, Akhil Bharatiya Sanskrit Parishad, Hazratganj Lucknow (U.P.). *Bks.*07. Saṃskṛtam Jīwati Kutra Pustakeṣū, Saṃskṛta Nideśālaya kī Sthāpanā-Jvalanta Samasyā, Rasavantī, Ghātīyantram, Mandira-Nirmāṇārth Bhūmi-Vivādaḥ. *Ps.* 02. *Add.* C – 24, Ka. J. Road, Mahanagar Extension, Lucknow-226006. (U.P.)

Tripathi, Kailash Chandra. Acharya in Sāhitya. *b.*27.05.1952, Bhataura, Banda (U.P.) Asstt. Teacher. *Gp.* Pt. Rameshvar Dayalu. *Ps.* 03. *Add.* Rishi Kumar Sanskrit Mahavidyalaya, Pilikothi, Chitrakut, Satna (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Kailash Nath. Acharya, Ph.D. *b.*01.01.1940. Assistant Teacher. *Gp.* Vasudeva Mishra, Kailasabihari Pandeya. *Ps.* 03. *Add.*Varahani, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Kailash Pati. Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 02.06.1933, Bhojpur, Bihar. Asst. Prof. *Bks.* NalaCampū (ed.). *Add.* Deptt. of Sāhitya, Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* The Scholar of Sāhitya, Vyākaraṇa , Vedānta & Linguistics. President Awardee.

Tripathi, Kalika Prasad Rama-Shankar. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.*15.07.1938, Ram Nagar, Pratapgarh, (U.P.). Principal. *Gp.* Vachaspati Guruprasad Shukla, Venkateshvar Dixit, Pt. Subrahmanya Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Mumba Devi Adarsh Sanskrit Mahavidyalaya, Bhartiya Vidya Bhavan, Bombay (MH). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya.

Tripathi, Kalika Prasad. Acharya (Vyākaraṇa & Sāhitya) M.A. *b.*11.09.1907, Ratnagarh, Rewa, (M.P.). Ex-Principal. *Gp.* Radharaman Dwivedi, Radhikaprasad Mishra, Kamalakant Mishra. *Ps.* 05. *Add.* Tagra Road. Pushparaj Nagar (Lakhauri Bagh), Rewa (M.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Tripathi, Kamal Kant. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa. *b.*01.08.1947, Majhiyari, M.P. Asstt. Teacher, Janaki Sanskrit Vidyalaya. *Gp.* Rambhajan Pandey. *Ps.* 03. *Add.* Old Lanka. Chitrakut, Satna. (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya & Vyākaraṇa.

Tripathi, Kamalesh Dutt. M.A., Acharya (Vyākaraṇa, DharmaŚāstra), D.Phil. *b.*4.08.1938 Allahabad. Rtd.Prof., Faculty of S.V.D.V., BHU. *Bks.*04, Amaruśatakam, A Chapter on Vedic Religion and Philosophy in History of Indian Philosophy, Saṃskṛta Threatre *Ps* 50, *Add.* 439 Mahamana Malaviya Nagar, Bharti Bhawan, Allahabad -03 Ph. 0542-3241862 Spl. Ref. Aesthetics, Nā-yasastra, Dharamsastra, Agama. Mamber of Several Academic Bodies including Bharat Bhawan, Kalidas Akademi, National school of drama etc. Sanskrit Poet and Writer Hindi Essayist. Founder Secretary of Kalidas Akadami, Director of many Skt. Plays Honour from Sampoornananda Skt. University, RSKS New Delhi ect. Holland, Japan, Austria, Polland, France etc. President Awrdee.

Tripathi, Kamlakant. Acharya in Sāhitya & Mimansa. *b.*14.11.1962. Gp. Pt. Vayunandan Pandey, Pattabhiram Shastri. *Bks.* 07. *Ps.* 25. *Add.* Chapai, Ramgarh, Sonbhadra.

Tripathi, Kamlesh Kumar. M.A., Ph.D. *b.* 07.12.1955. Asct. Prof., NS Mahavidyalaya, Jaunpur. *Bks.* 01. Dhvani evam Vakrokti. *Ps.* 04. *Add.* Deptt. of Skt., Nagrik PG Mahavidylaya, Joonpur. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Kamta Prasad. Acharya in Navya-Vyākaraṇa, M.A., Sāhityaratna, Vidyavachspati, Vidya sagar *b* 01.09.1947 Pratapgarh, Rtd. Prof., Dept. of Skt., Indra Kala Sangeet V.V. Kahairagarh, HOD Skt. Deptt. MG Gramodyog V.V. *Bks.* 07 Saṅgītasūryodaya, Yugavedanā, Rāmabhadrodbhavam, Lahrī Cālisā, Abhinavasvaraśāstram. *Ps.*40. Spl. Ref. Sāhitya, Vyākaraṇa , Sangeet, Poet, Honourary D.Lit. from Jagat guru Rambhadracharya Viklang V.V. Japan, Kāvyaratnakar, Siksha Samman etc. editor of Kalasaurabh research Journal.

Tripathi, Karuna Pati. M.A. (Hindi), SahityŚāstra. V.C., Sanskrit Univ., Varanasi. *Gp.* Pt. Keshavprasad Mishra. *Bks.*02. Pañcadaśī, Mahimnastava. *Expired in* 1990.

Tripathi, Kedar Nath. Acharya (Nyāya, Vedānta, Sāṅkyayoga). *b.*02.07.1929, Bishanpur, Bihar. Asct. Prof. and HOD, B.H.U. Varanasi *Gp.* Suryanarayana Shukla, Shri Hari Har Kripalu Dwivedi *Bks.* 01. Janmāntaravāda. *Add.* 84, Javahar Nagar, Varanasi (U.P.).

Tripathi, Kedar Nath. Acharya in NavyaVyākaraṇa. Ph.D. *b.*01.10.1953. Pratapgarh, (U.P.) Asst.Prof., S.S.V., Varanasi. *Gp.* Prof. Ramprasad Tripathi, Prof. Ramyatna Shukla. *Sp.* Dr. Ramakant Pandey, Dr. Dinesh Tripathi. *Ps.* 05. *Add.* Lalaganj, Pratapgarh U.P. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Kedar Nath. Acharya(NavyaNyāya, Vedānta, Sāṅkya) Kāvyatirth, Sāhityaratan, Vidyavachaspati. *b.* 02.09.1921. Prof., B.H.U. *Bks.* 02. Sri Bhuwneśvarīmahāstotram. Hanumatpraśastikāvyam. *Add.* B1/85/C 80. Varanasi – 05. *Spl.Ref.* Vice-Chairman. Kashi Vidwat Parishad, President Awardee.

Tripathi, Keshav. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*1925. Principal, Sanskrit Secondary School, Mehadaram, Raigarh, Siwan (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Jyotiṣa, Nyāya, Tantra.

Tripathi, Kriparam Abhiram. M.A., Ph.D. *b.* 04.08.1951. Balrampur, U.P. Prof., MLKPG Mahavidyala, Balrampur.*Bks.* 08. Taraṅga-dūtam, Kutajakusumāñjaliḥ, Kāvyamandākinī. *Ps.* 40. *Add.* Sanskrit Vibhag, MLKPG Mahvidyala, Balrampur U.P. -01. *Spl. Ref.* Sāhitya, Honour from U.P. Skt. Academy.

Tripathi, Krishna Chandra. Sāhityacharya. M.A. Ph.D. *b.*16.08.1958. Asst. Prof. *Ps.* 03. *Add.* F-220, Katawaria Sarai, New Delhi – 110016. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Krishna Gopal. Acharya in Vyākaraṇa Purāṇa & Āyurveda. *b.*15.12.1931, Pachnehi, Banda, (U.P.). Head of Deptt. *Add.* Shri Vamdev Sanskrit Vidyalaya, Banda(U.P.) *Spl.Ref.* Āyurveda.

Tripathi, Lalit Kumar. Acharya, VidyaVaridhi. *b.*15.02.1970, Calcutta. Asct. Prof., R.Sk.S., G.N.Jha. Campus, Azad Park, Allahabad. *Bks.*12. *Add.* C/o Rama Nath Tripathi 528A/ 321A, BHS, Allahpur, Allahabad. *Spl.Ref.* Editor of 'Teach yourself Samskrit' printed study meterials. Coordinated Samskrit spoken camps & Samskrit Teacher Trainng programs. Paninian Grammar & Computational Linguistics.

Tripathi, Laxmi Kant. Acharya (Sāhitya & Vyākaraṇa), M.A. *b.*05.01.1950, Duhia, Pratapgarh, U.P. *Gp.* Guruprasad Shukla, Tirthraj Pandey. *Ps.* 03. *Add.* Amapur Duhia, Pratapgarh U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya & Vyākaraṇa.

Tripathi, Madan Mohan. Acharya in Navya-Vyākaraṇa. *b.*08.04.1920, Balia, (U.P.). Rtd. Asst. Prof. *Ps.* 03. *Add.* Jagdishpur, Mahila Chikitsalaya Marg, Balia (U.P.). *Spl.Ref.* Navya-Vyākaraṇa.

Tripathi, Mamta. M.A. *b.*02.08.1966, Raibareilly. Programme Officer. *Gp.* Shivavaran Shukla. *Ps.* 03. *Add.* Sanskrit Research Institute, 31, Mahipal Nagar, Raibareilly (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Mandavi Sharan. Acharya in Vyākaraṇa. M.A. (Hindi), Ph.D. *b.*04.04.1949, Naikin, Khujuha, Rewa, (M.P.). *Ps.* 03. *Add.*

Naikin, Khajuha, Rewa (M.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Mani Ram. Sāhityacharya, M.A., Ph.D. *b.*12.01.1953, Pratapgarh, (U.P.). Assistant Principal. *Gp.* Trilokadhar Dwivedi, Devnarayan Tripathi. *Ps.* 03. *Add.* Shri Shambhugiri Ashram, Sannyas Marg, Kankhal, Haridwar.

Tripathi, Mathura Prasad. Acharya (Vyākaraṇa , Sāhitya, Ayurveda). *b.*01.01.1911, Sinhapur, Banda. Principal. *Add.* Rishikumar Sanskrit Mahavidyalaya. Pilikothi, Chitrakut, Satna (M.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya & Ayurveda.

Tripathi, Mayaprasad. M.A. *b.* 01.04.1927. Rtd. from Udayapratap Mahavidyala, PCS U.P. Govt. *Bks.* 11. Akṣaratṛṣā, Anyā Saraṇiḥ, Sindūrarāgavikiraṇam, Mitra Śabdasibire. *Add.* M-25 Vikas Pradhikaran Colony, Shivpur, Varanasi. *Spl.Ref.* Founder Reporter of Gandhivam. Emeritus fellowship Govt. of India 1987, President Awardee. His Poem Broadcasted and Telecasted from AIR & D.D.

Tripathi, Mithila Prasad. M.A., Āyurveda Ratna, Music, Ph.D. (Hindi, Skt.), D.Litt. Prof. (Sanskrit) Devi Ahiliya V.V., Ex-Director Kalidas Academy. V.C., Panini Skt. Univ., Ujjain. *Bks.* 29. Bhābamālā, Matpriyam Bhāratam, Bhārgavīyam, Svatantratā, Satanāmi Gauravam. *Ps.* 150. *Add.* 57 A Vaishali Nagar Indore 09. *Spl.Ref.* Sāhitya & Ayurveda. An eminent Skt. Scholar and Poet Broadcast and Telecast of Poems from A.I.R. and DoorDarshana.

Tripathi, Mridula. M.A., D.Phil. *b.* 04.07.1950, Mathura, (U.P.). Asct. Prof.. Deptt. of Sanskrit, Allahabad University. *Bks.* 01. Mahābhārat ke mukhya kathānaka meṁ rasa citraṇa (Hindi). *Add.* 25, Park Road, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Nagesh Pati. Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 15.07.1973. Lecturer, Magadh V.V., Bodhgaya. *Bks.* 01. Sāhityaśastrīyo Navonmeṣaḥ. *Ps.* 05. *Add.* B-1/148 A.T.-5 Assi, Varanasi U.P.*Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Narmadeshwar. Acharya in Navya Vyākaraṇa. *b.*01.05.1943. HOD, Sadhuvella Skt. College, Shakarkand Gali, Varanasi, U.P. *Gp.* Shaligram Mishra. *Ps.* 03. *Add.* Mishravaliya, Satamrganj Bazar, Bhadora, Ghazipur, U.P.

Tripathi, Narottam Prasad. Acharya, Kāvyatīrtha. *b.*31.01.1932, Jabalpur, M.P. Principal. *Gp.* Madhuvanprasad Tripathi, Ramavadan Shukla. *Ps.* 05. *Add.* Shri Narayan Sanskrit Mahavidyalaya, Katni, Jabalpur (M.P.)

Tripathi, Nilimp. M.A., Ph.D. *b.* 28.10.1973. Ambikapur. Asst. Prof. *Bks.*02. Madhyapradeśanām Saṃskṛta Sāhityam. *Ps.* 15. *Add.* F–44/6. South T. T. Nagar. Bhopal– 462003.

Tripathi, Nrisingh. Acharya in Vyākaraṇa, Nyāya & Sāhitya. Principal, Shrichandra College, Varanasi & Marwadi College, Varanasi. *Gp.* Pt. Devnarayan Tripathi. *Bks.* Muktāvalī-Prakāśa, Vākyapadīya-Brahmakāṇḍa-tīkā.

Tripathi, Padma Charan. Acharya in Jyotiṣa, Shastri in Sāhitya. *b.*05.03.1925, Bhagirathipur, Ganjam, Orissa. Principal, Ramadhin Sanskrit College, Brahmapur, Ganjam, Orissa. *Bks.*02. Śrutabodhaḥ-Manusmṛtiḥ (Tr.), Gṛhapraveśapaddhatiḥ. *Ps.* 10. *Expired on* 03.06.2007. *Spl.Ref.* Sāhitya & Jyotiṣa.

Tripathi, Paramanand. Acharya. *b.*01.09.1961, Allahabad, (U.P.). Teacher. *Ps.* 03. *Add.* Shri Ram Sanskrit Vidyalaya, Bahure Charak, Prayag, (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Patiram. Acharya in Prachina–navya-Vyākaraṇa, Ph.D. *b.*15.10.1937, Gorakhpur, (U.P.). Prof. Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi. *Gp.* Kaliprasad Mishra, Ramayasas Tripathi, Sukadev Chaturvedi, Rajanarayan Tripathi. *Bks.* 01. Sārasvatvyākaraṇa-vimarśaḥ. *Add.* 50 Assi, House No. B-1/16, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tripathi, Purna Chandra. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. *b.*15.04.1924, Mukundpur, Puri, Orissa. Rtd. Asst. Prof. *Gp.* Pt. Chintamani

Mishra, Pt. Girija Shankar Raya, Dr. Karunakaran. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Chitrakar Sahi, Puri–752001 (Orissa). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Tripathi, Purushottama. Acharya, Tradition in Sanskrit Vyākaraṇa. ***b.*** 01.09.1927. Allahabad, UP. Emeritus Teacher in S.S.V.V., Varanasi. ***Add.*** B-13/152, Sonarpura, Varanasi–01. UP. ***Spl.Ref.*** For his exellent teaching of Vyākaraṇa a, He was honoured by BHU & other organizations and institutes. He worked hard continuously for Spreading the knowledge of Sanskrit through Vidvat Sabhas, President Awardee.

Tripathi, Pushpa. Vaidyavisharad, Ayurveda Ratna, M.A., NET, Ph.D. ***b.*** 04.06.1971. Gorakhpur, UP. Associated with Sri Vidya Sadhnapeetha, Varanasi. ***Spl.Ref.*** Veda, Ayurveda, Editor and Publisher Shri Vidyavarata Quarterly Journal, Maharshi Badrayan Samman by President of India.

Tripathi, R.S. Acharaya (Vedānta, Purāṇa) M.A. (Skt.& Philosophy) Vidyavaridhi, ***b*** 01.08.1945, Prof. HOD, Visistadvaita Vdedanta Dept. Rashtriya Skt. Vidyapeeth, Tirupati. ***Gp.*** Guruparampara ***Bks*** 06 Śrī Veṅkateśa Pachasa, Yatindramatadipika with Hindi & Eng. Translation Yatindramata-dipika's Anjana Skt. Tika ***Ps.*** 50, ***Add.*** 17 Padamavati Apartment, KK Nagar, Tirupti-517501, A.P. Ph. 08772221606 M. 09885881780 Spl. Ref. Visistadvaita Vedānta, Poet, Lyricist, Contributions to AIR as a casual news reader cum translator cum editor and D.D., SVBC—TTD (1976-1987) hon. Director YDBRF Trirupti etc. Sri Mahanat and Chif Priest of Sri Narsingh Mandir, Founding President of SDASM. Founding Hon. Chancellor AUMBGYU, Delhi.

Tripathi, Radha Vallabh. M.A., Ph.D., D.Litt. ***b.*** 15.02.1949, Rajgarh (M.P.). V.C., Rashtriya Sanskrit Sansthan, Deemed University, New Delhi. ***Gp.*** Prof. Ramji Upadhyaya, Acharya Bachchoo Lal Avasthai. ***Sp.*** Prof. K.B. Panda, Dr. Ramakanta Pandeya, Dr. Bhagirathi Nand, Dr. P. C. Upadhyaya, Dr. D. K. Singhdeo, Dr. Sanjay Dwivedi. ***Bks.*** 150. Abhinava-kāvyālaṅkārasūtram, Nāṭyaśastra-viśvakośa, Sandhānam, Laharīdaśakam, Kāvyaśastra Tathā Kāvya, Saṃskṛta Kavitā kī Lokadharmī Paramparā. ***Ps.*** 300. ***Add.*** V.C., R.Sk.S., 56 – 57, Janakpuri, D-Block, New Delhi – 110058. ***Spl.Ref.*** Origional contribution to the study of Nā-yaŚāstra and SāhityaŚāstra. Prof. Tripathi has been running the SAP as Chief Coordinator from 1994-2008. He established a Manuscript Library as well as an E-Library. Prof. Tripathi has Visited Germany, Holand, Australia, Thaliland, UK and other Countries on Various academic and intellectual assignments. Has received more than 20 national and international awards and honors for his literary contributions including "Sāhitya Academy Award", "Shankar Puraskar" of K.K. Birla Trust for his Nā-yaŚāstra-vishvakosha–(in four Volumes), "Life Time Achievement Award" of Kalidas Sanskrit Univ. Nagpur and "Vedvyas-Award" by Smt. Purāṇadareshvari Devi, MOS, HRD, Govt. of India. He was deputed as visiting Professor (2002–2005) at silpakorn University, Bangkok (Thailand) by ICCR, New Delhi.

Tripathi, Raghu Nath. Acharya. ***b.*** 05.08.1945, Sudwar, Sidhi, (M.P.). Teacher. ***Gp.*** Ramanuja-charya, Nandakishor Acharya, Ramvadana Shukla, Ramnarayana Tripathi, Shaligram Mishra. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Abhayanand Rajakiya Sanskrit Mahavidyalaya, Shahdol (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Raghvendra Nath. Acharya (SarvaDarśana, Sāhitya), M.Lib. ***b.*** 02.10.1953. Siddharth Nagar Asst. Libraian, RSKS Lucknow Campus. ***Add.*** C-2/137. Vishesh Khand, Gomti Nagar, Lucknow-226010.

Tripathi, Rajendra. M.A. (Skt., Hindi), D.Phil. ***b.*** 12.03.1962. Asct. Prof., Allahabad Degree College, Univ. of Allahabad. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 50. ***Add.*** Rasraj Niwas, 2-A/1 Minto Road, Allahabad -211002. M. 09415645722. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Rajendra. M.A., D.Phil. *b.* 12.03.1962, Allahabad. Asst.Prof., Allahabad Degree College. ***Bks.*** 02. Rūpagosvāmī kī Nātya Kṛtiyoṃ kā Ālocanātmaka Adhyayana, Rasarāja-Taraṅgiṇi (Hindi Poems). ***Ps.*** 02. ***Add.*** 111/5–B, Tilak Nagar, Allahpur, Allahabad.

Tripathi, Rajkishore Mani. M.A. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhityacharya, Sāhitya Ratna. *b.* 15.01.1929. Director, Skt. Sewa Sansthan, Gorakhpur. ***Bks.*** 03. Rāghavendracaritam, Abhinavastutiḥ, Mūṣakavaiduṣyam. ***Add.*** Sanskrit Sewa Sansthan, C/189/159, Khurampur, Gorakhpur. U.P. ***Spl.Ref.*** Title of Pandit Raj, Honour from U.P. Skt. Academy Thrice, Founder Skt. Sewa Sansthan.

Tripathi, Rajnath: M.A., Ph.D. *b.* 1943. Deoria, U.P. Senior Fellow & Teacher. ***Bks.*** 04. Śāktāntarataraṅgiṇī. Ps. 100. ***Spl.Ref.*** Many Awarded by U.P. Skt. Sansthan, He has edited many magazines like Gāṇḍīvam, Rāṣ-rī, Saṅgamanī etc.

Tripathi, Ram Chandra. Acharya (Darsana, Nyāya, Advaita), M.A., Ph.D. *b.* 15.10.1934, Pakribabu, Deoria, (U.P.). Principal, Shri Ramanuja Sanskrit Mahavidyalaya. ***Gp.*** Vamcharn Bhattacharya, Badarinath Shukla. ***Ps.*** 05. ***Add.*** B-30/252, Nagwa, Varanasi (U.P.) ***Spl.Ref.*** Darśana, Nyāya, Advaita.

Tripathi, Ram Chandra. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 01.01.1920, Rampur, Ballia, (U.P.). Rtd. Asst.Prof., Deviprasad Sanskrit Mahavidyalaya, Ballia. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Rampur Mahabal, Khoripakarh, Ballia (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tripathi, Ram Khushi. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.01.1945, Gorakhpur (U.P.). Head, Deptt. of Sanskrit. ***Gp.*** Ramadhara Shastri, Ramakuber Malaviy. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Jnanopadesh Sanskrit Mahavidyalaya, Malaviyanagar, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Ram Kishore. Acharya in Navya Vyākaraṇa , Sāṅkhya & Vedānta. Ph.D., D.Litt. *b.* 05.03.1963. Rampurva, Banda, (U.P.). Rtd. Asst. Prof. Rishi Sanskrit Mahavidyalaya, Haridwar. ***Gp.*** Pt. Ramprasad Tripathi, Prof. Parasnath Dwivedi. ***Bks.*** 05. Vākyapadīyaṃ Brahmakaṇda (Saṃskṛta Avaṃ Hindī Tīkā), Vedāntasūtravṛtti (Hindī Tīkā & ed.), Mahāvidyā Viḍambanam (Hindī Tīkā &ed.), Upadeśasāhasrī (ed.), Vedānta-sūtramuktāvalī (Hindī Tīkā & ed.). ***Ps.*** 40. ***Add.*** Rampurva, Nareni, Banda, U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Darśana.

Tripathi, Ram Kripal. Acharya, M.A., Vidyavaridhi *b.* 03.01.1952. Sr. Grade Lecturer, Sri R.L.A. Skt. Mahavidyalaya, Vrindavan. ***Bks.*** 03. Prakāśitaḥ Nāma Uttama, Śaṅkarācharyasmṛti, Nātyatryī. ***Ps.*** 06. ***Add.*** Sri Mahamayapeetha, 237 Godhulipuram, Vrindavan- 281121 U.P.

Tripathi, Ram Kripal. Acharya. *b.* 03.01.1952, Maliha, Mau. Asst. Prof. ***Gp.*** Ramdayal Dube, Prabhudatt Sharma. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Rishi Sanskrit Mahavidyalaya, Kharkharhi, Haridwar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Ram Mani. M.A., Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna. *b.* 1933, Jagadishpur, Basti, (U.P.) Prof. Sharada Sanskrit Vidhyapeeth, Bikaner. ***Bks.*** Sādhanāśraṇyāstavaḥ, Divyadṛṣti (Hindi), Kāvyadīpaka (Alaṃkāra-śāstra). ***Expierd in*** 1973. ***Spl.Ref.*** Dharma Guru from 1965-71 at Muritious. Good Poet.

Tripathi, Ram murti, Acharya. *b.* 04.07.1943, Ondi Ratinathpur, Chandrikaganj. HOD. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Tridandi Dev Sanskrit Mahavidhyalaya Ayodhya, Faizabad U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra.

Tripathi, Ram Murti. M.A., Ph.D. *b.* 08.01.1929, Nivi Kala, Varanasi U.P. Prof. Vikram Univ. Ujjain, M.P. ***Gp.*** Pt. Gopiraj Kaviraj, Pt. Mahadev Dwivedi. ***Bks.*** 25. RasaVimarśa, Vyañjanā aur Navīna Kavitā, Lakṣaṇā aura Usakā Hindī Kāvya Meṃ Prasār, Tantra Aura Santa, Premacandra Kā Cintana apanī Jamīna. ***Ps.*** 80. ***Spl.Ref.*** He was a great scholar of Skt. Hindi, Indian Philosophy, Saundarya Śāstra, Agama & Nigama.

Tripathi, Ram Narayan. Acharya (Navya

Vyākaraṇa, Śāṇkara Vedānta, DharamŚāstra), Hindi Sāhitya Ratna, M.A. *b.* Pratipada, 1922. Prof., Skt. Deptt. Lucknow Univ. *Bks.* 03. Śaśikalā, Ṛtuvilāsaḥ, Kālīkalpadrumavallarī. *Ps.* 50. *Add.* B-1232 Indira Nagar, Lucknow. *Spl.Ref.* Poet, Śāstra Chudamani, Visiting Prof. Sampoorananad Skt. V.V., U.P. Skt. Academy Samman.

Tripathi, Ram Nath. M.A., B.Ed. *b.*15.10.1937, Dilraipur, Champaran, Bihar. Rtd. Principal. *Gp.* Jagadisha chandra Shastri. *Ps.* 03. *Add.* Sanskrit Vidwan, Kottayam (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tripathi, Ram Pal. Acharya (NavyaVyākaraṇa & Sāhitya). *b.*23.07.1920, Allahabad, U.P. Rtd. Principal. *Gp.* Narsimha Prasad Chaturvedi, Bhupendrapati Tripathi. *Ps.* 03. *Add.* 296, Atarsuia, Allahabad (U.P.) *Spl.Ref.* NavyaVyākaraṇa Śāstra.

Tripathi, Ram Prasad. Acharya (Navya Vyākaraṇa, Nyay), D.Litt. *b.* 15.12.1920. Jaunpur U.P. Rtd. Prof. Sampoornanand Skt. Univ., Varanasi. *Gp.* Pt. Raghunath Sharma, Harinarayan Tiwari, Pt. Keshav Dwivedi. *Sp.* Pt. Ramyatna Shukla, Pt. Ram Kishore Shukla. *Bks.* 05. Gaurvābhisandhiprakāśaḥ, Pāṇinī-yavyakaraṇe Pramāṇasamīkṣā, Siddhānt-acintāmaṇiḥ(Part-2), Shikṣā-saṇgraḥ, Vaiyā-karaṇasiddhāntalaghu-mañjūṣā(ed. with Saralā Hindī Tīkā). *Ps.* 30. *Add.* Pracheen Adhyapakavas, 6, Sampoornanand Skt. Uni. Varanasi U.P. *Spl.Ref.* President Awardee, Vishvabharti Awardee & Vachaspati-Samman by Varanasi Sanskrit Univ. Varanasi (U.P.).

Tripathi, Ram Prasad. M.A., Ph.D., Acharya (Sāhitya, BauddhaDarśana, Pali). *b.*25.10. 1948, Deoria, U.P., HOD Sāhitya, *Add.* Shri Mayanand Giri Sanskrit Mahavidyalaya, D-40/4, Lakshmanpur, Varanasi (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Darśana Śāstra.

Tripathi, Ram Raksha. Acharya in Sāṅkyayoga & Sāhitya, Ph.D. *b.*15.10.1980. Asst. Prof. Kendriya Uccha Tibbati Sansthan, Sarnath, Varanasi U.P. *Ps.* 02. *Add.* Navodhan, Doj, Varansi (U.P.)

Tripathi, Ram Sajiwan. M.A., Ph.D. *b.*01.08.1945, Panna, (M.P.) Prof. & HOD, R.Sk.S., Tirupati (A.P.). *Bks.* 02. Śrī Veṅka-eśa Pacāsā, Tirumalā Tirupati Devasthānam. *Ps.* 01. *Add.*17. Padmavati Aptt. K. K. Nagar, Tirupati.

Tripathi, Ram Shankar. Acharya, M.A., Vachaspati, Sāhitya Ratan. *b.*15.07.1938, Ramnagar, Deogarh, U.P. HOD Sāhitya. *Bks.* Mahesvarasmriti. *Add.* Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay MH. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa & Sāhitya.

Tripathi, Ram Shankar. Acharya in Darśana. *b.*15.10.1929, Sorhalpur, M.P. Asct.Prof., Sampurnanand Sanskrit University. *Gp.* Raghunath Sharma, Jagannath Upaddhyay, Badrinath Shukla. *Ps.* 05. *Add.* 6, Teachers Quarters, Sampurnanand Sanskrit University, Jagatganj, Varansi U.P. *Spl.Ref.* Darśana.

Tripathi, Ram Shankar. Acharya in Vedānta, Ph.D. *b.* 05.06.1951, Sameenadeeh, Basti. Asst. Prof. *Gp.* Adhyaprasad Mishra. *Ps.* 04. *Add.* Shri Hayagriva Ramanuja Sanskrit Mahavidhyalaya, Hanuman Kund, Ayodhya, Faizabad. U.P. *Spl.Ref.* Vedānta.

Tripathi, Ram Sharan. Acharya in Vyākarṇa, Ph.D. *b.*30.12.1908. Marka, Banda, U.P. Teacher, Shri Ramnam Sanskrit School, Chitrakoot. *Gp.* M. M. Tatya Shastri. *Bks.* 05. Siddhāntādarśa, Sarala-Jyotirvijñāna, Bhāva-bodhinī, Kaumudī-Kathā-Kallolinī. *Expired on* 04.12.1977. *Spl.Ref.* Pandit Ramsharan Shastri Smriti Visheshanka published by R.Sk.S., Ganganath Jha Campus, Allahabad.

Tripathi, Ram Yash. Acharya in Vyākaraṇa. *b.*1884, Nimaicha, Kona, Varanasi, U.P. Asst. Prof., Gayanaka Sanskrit College, Varanasi (U.P.). *Gp.* Damodar Shastri, Tatya Shastri, Vamacharan Bhattacharya, Laxman Shastri, Chinna Swami ji. *Sp.* Niranjandev Teerth, Devnayak acharya, Ramananda Saraswati, Murlidhar Upadhyay, Dr. Shrikrishanmani Tripathi. *Expired on* 23.01.1966. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Navyanyāya, Vedānta and Mīmāṃsā.

Tripathi, Ramashankar. Acharya (Purāṇa), Sāhitya Ratna, M.A. (Skt., Hindi) Vidyavaridhi, D.Litt. *b.* 25.07.1944. Jaunpur. Śāstra Chudamani Scholar, Deptt. of Dharmagama, SVDV, BHU. ***Bks.*** 02. Camatkāracintāmaṇi, Alaṅkāra Mañjūṣā. ***Ps.*** 50. ***Add.*** Deptt. of Dharmagama, Faculty of SVDV, BHU Varanasi-05. M. 09415234235. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Ramavtar. Acharya in Vyākaraṇa, Kāvyatīrtha, M.A. Ph.D. *b.*01.07.1937, Marhoudh, Banda, U.P. HOD. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Jawaharlal Nehru College, Banda, U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Tripathi, Ramchandra Shastri. Acharya, Ph.D. *b.*27.09.1926, Matkheran, Unnao, (U.P.). Rtd. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Kailasapati Tripathi, Mukundashastri Khiste. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Near Vinapani Shiksha Niketan, Bhadau, Rajghat, Varanasi–221009 (U.P.) ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Ramendra Nath, Shastri, Acharya, M.A. *b.*01.07.1952, Deoria, U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Vidhyeshwari Prasad Tripathi, Gopal Chandra Mishra, Raghveshmani Tripathi. ***Add.*** Gopal Krishna Gokhle Inter College, Bahiari Dhaghel, Deoria, U.P. ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Tripathi, Rameshwar Prasad, Acharya in Vyākaraṇa. *b.*05.01.1950, Gahbara, Chattarpur, M.P. Asst. Prof. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Shri Vamadev Sanskrit Mahavidhyalaya, Banda, U.P.

Tripathi, Ramhari. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.*02.01.1931, Khatwara, Banda, U.P. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Lashkar, Gwalior, M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Ramkrishn Laxminarayan. Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, Kāvyatīrtha. *b.*19.04.1926, Nagaur, RJ. Teacher. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Brahmakarmavarddhini Sankrit Mahavidyalaya, Itwari, Nagpur (MH). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Ramraj, Acharya (Vyākaraṇa, Advaita, Darśana) *b.*15.10.1924, Faizabad, U.P. Principal, Shri Sanatan Dharma Sanskrit Mahavidhyalaya, Godarnal, Basti. ***Gp.*** Rudra Prasad Avasthi. ***Add.*** Naresh Tiwari ka pura, Khaparhadeeh, Faizabad, U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Advaita Vedānta.

Tripathi, Ramvijay Nath. Acharya, Ph.D., *b.*20.01.1954, Deoria, U.P. Principal. ***Gp.*** Dr. Ramprasad Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shriram Sanskrit Mahavidhyalaya, Tailia, Deoria, U.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tripathi, Ranajit. Acharya. *b.*01.01.1948, Makhatiaraja, Deoria, (U.P.). Principal. ***Gp.*** Indradeva Acharya, Ramaprasad Tripathi. ***Bks.*** 01. Uṇādilakṣyalayayānām samīkṣaṇam-adhyayanam. ***Add.*** Shri Radhakrishna Sanskrit Mahavidyalaya, Laxminivas Bagh, Deoria (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Tripathi, Ranjan Kumar. Acharya, M.A., JRF, Ph.D. *b.* 12.07.1978. Gopalganj. Asstt. Prof. ***Bks.*** 07. Ādhunika Saṃskṛta. Sāhitya kā Itihāsa in Vol. 5. ***Ps.*** 09. ***Add.*** 49, Mahamanapuri, ITI Road, Varanasi 05. M. 09415951620. ***Spl. Ref.*** Sāhitya Śāstra, Member of E.C. in Bundelkhand University.

Tripathi, Ray Khushi. Acharya, Sāhityaratna. *b.*01.01.1945, Gorakhpur, U.P. HOD Sāhitya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Dharmaj gyanopdesh Sanskrit Maha-vidhalaya, Mahamana Malaviya Nagar, Allahabad. U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Reva Prasad. Acharya in Sāhitya & Āyurveda. *b.*17.12.1938, Jhaloun, Jabalpur, M.P. Principal, Shri Durga Siddhapitha Sanskrit Vidhyalaya. ***Add.*** Rishimuni Ashram, Shantinagar, Damohanaka, Shakti Chowk, Jabalpur M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya & Āyurveda.

Tripathi, Roop Narayan. M.A., Acharya in Sāhitya, Ph.D. *b.*1941. Chamolinagar,(U.P.). Asst. Prof., Rashtriya Sanskrit Sansthan, Jaipur (RJ) ***Bks.*** 01. Nalavilāsa. ***Ps.*** 10. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Rudra Dev. Acharya (Sāhitya, Sāṅkya, Yoga), Sāhitya Alaṅkāra, Sāhitya Ratna, Kāvyapurāntīrtha, M.A., B.Ed., Ph.D. D.Litt. *b.*23.09.1925, Mandsaur, M.P. Prof. LBS Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth New Delhi. ***Bks.*** 143. Saṃskṛta Sāhitya meṃ Śabdālaṅkāra,

Śabdālaṅkāra Sāhitya kā Samīkṣātmaka Sarvekṣaṇa, Patradūtam, Diḍḍimaḥ Vande Iṇḍiyām (Vinodacampūḥ), Citrālaṅkāra-candrikā, Mahāvīracaritāmṛtam, Abhinava-krīḍāntaraṅgiṇī, Rājendracandrodayacampūḥ, Indirākīrtikaumudī. *Ps.* 37. ***Add.*** 57/8, Grasim Staff Colony, Nagda, Distt. Ujjain (M.P.) ***Spl.Ref.*** Editor of many special number and felicitation volumes, Sanskrit and hindi journals like Mālava-mayūraḥ, Vidyā, Khilate-Phūla, Śikṣā-jyotiḥ, Jñana-raśmi, Śodha-prabhā etc. *Expired.*

Tripathi, Sadanand. Acharya in Sāhitya, M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 30.12.1964. Ujjain. Lecturer, Sri M.M. Ruiya Govt. Skt. Mahavidyalaya, Ujjain. *Gp.* Acharya Vayunandan Pandey, Shivji Upadha-yaya, Yadunandan Dixit. *Sp.* Kailashpati Tripathi, Rudardev Tripathi, Dr Bacchulal Awasthi. ***Bks.*** 05. Avantimāhātmya, Ujjayini Māhātmya. ***Ps.*** 50. ***Add.*** Sanatana Dharma Dham, 164 Rajiv Nagar Ujjain, M.P. 456001. Ph. 0734-2585451. M. 09406860124. ***Spl. Ref.*** Sāhitya, Manuscript Editing, Sri Krishan Sewa Samman- 2008.

Tripathi, Sanandan Kumar. Acharya, Ph.D. ***b.***02.05.1968. Manohar Basant, Saran (Bihar). Asst. Prof., R.Sk.S., Bhopal Campus. ***Gp.*** Pt. Shri Gananand Thakur, Lt. M. M. Kapildev Sharma, Prof. Vachaspati Sharma Tripathi, Dr. Udaykant Jha, Prof. Mithilaprasad Tripathi. ***Sp.*** Dr. Gangadhar Sharma, Dr. Sanjay Sharma, Vishvajeet Tripathi, Dhananjay Mishra. ***Bks.*** 03. Mṛacchakatikasya Dharmaśāstrīya Samīkṣā, Kāvyānumativivekaḥ, Triveṇi-kāvya Mīmāṃsā. ***Ps.*** 10. ***Add.*** B-7. Anand Nilayam, Yashoda Garden, Bag Mugalia, Bhopal–462016, (M.P.)

Tripathi, Sarla. M.A., Ph.D. ***b.***11.06.1944. Gobra, Allahabad, (U.P.) Prof., Govt. Girls College, Rewa (M.P.). ***Bks.***01. Mahākavi Someśvara Deva. ***Add.*** Bungalow No. 4, G.D.C. Campus, Rewa–486001, (M.P.)

Tripathi, Shaligram. M.A., M.Ed., Ph.D. ***b.***10.07.1945. M.P. Prof. ***Bks.*** 10. Educational psychology. ***Ps.*** 01. ***Add.*** B-9/259, Sect. 5, Rohini, Delhi–85.

Tripathi, Sharma, Brajabandhi. Kāvyatīrtha, Kāvyaratna, Āyurvedopadhyaya. ***b.*** 22.11.1995, Belaguntha, Ganjam, Orissa. Principal, Sanskrit School, Ganjam, Orissa. ***Bks.***03. Dravyaguṇa-Kalpadrumaḥ, Abhinava-cintāmaṇiḥ, Cikitsā-rṇavaḥ. ***Expired on*** 01.11.1970.

Tripathi, Shatrughna. Acharya in Jyotiṣa, Ph.D. ***b.***27.03.1975, Gopalganj (Bihar). Asst.Prof., B.H.U., Varanasi (U.P.). ***Bks.***03. Jyotirni-bandhadārśaḥ, Siddhānta-Śīromaṇi (Aspaṣṭā-dhikaraṇa). ***Ps.*** 07. ***Add.*** 26, Koshlesh Nagar, Sundarpur, Varanasi (U.P.). email – drstri-pathibhu@gmail.com

Tripathi, Sheetanshu. M.A., Ph.D. ***b.***03.09.1972. Sagar, M.P. ***Bks.*** 06. Catuṣ-ayī, Praśikṣaṇa Saṃdarśikā, Setu pa-hyakrama. ***Ps.*** 06. ***Add.*** 72, Dayanand ward, Sagar, M.P. ***Spl.Ref.*** Prant Mantri, Sanskrit Bharti, Mahakaushal Prant. Member, Sadharan & Karya Parishad, Maharshi Panjali Sanskrit Sansthan, M.P. Govt.

Tripathi, Shesh Narayan. M.A., D.Phil. ***b.*** 08.05.1961. Basti, U.P. Asstt. Prof., Janpad Shiksha Prashikshan Sansthan, Paudi. ***Bks.*** 07. Vāṇīpathīyam, Puśpadhanvā, Sadānīrā. ***Ps.*** 25. ***Add.*** Janpad Shiksha Prashikshan Sansthan, Chadigram, Paudi. ***Spl.Ref.*** Sanskrit Poetics.

Tripathi, Shiv Sagar. M.A. (Skt. & Hindi), Sāhityacharya, Sāhityaratna, Ph.D. Diploma in German Language. ***b.***02.07.1934, Sandeela, Hardoi, (U.P.) Prof. & HOD, Univ. of Rajasthan, Jaipur. ***Gp.*** Pt. Shivgovind Tripathi, ***Sp.*** Dr. Vekunth nath Sharma, Dr. Sunita Kumari Sharma, Dr. Seema Sharma. ***Bks.***20. Gāndhīgauravam, Prāṇāhutiḥ, Nirvacana-kośaḥ, Rāmāyaṇa-Mahābhāratayoḥ Śābdikam Vivecanam, Gītāvijñāna-bhāṣyam. ***Ps.*** 275. ***Add.*** Matrasharanam A-65, Janta Colony, Jaipur – 04. ***Spl.Ref.*** Ambikadutt Vyas Puruskar by Rajasthan Sanskrit academy in 2000. Awarded by Varanasi Sanskrit univ. in 1965, by Govt. of U.P. in 1975 & by Govt. of RJ. In 1977.

Tripathi, Shivgovind. ***b.*** Hardoi, U.P. Rtd. Lecturer, B.N. Inter College. ***Bks.*** 01.

Śrīgāndhigauravam (MahaKāvya). ***Expired*** 27.06.1975. ***Spl.Ref.*** Honour from U.P. Govt., Founder Deshbandhu Aushadhalaya, Sāhitya and Āyurveda.

Tripathi, Shrikant Mani. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. ***b.*** 1892, Bhithan, Gorakhpur, U.P. ***Gp.*** M. M. Pt. Damodar Shastri Bhardwaj, Pt. Rambhuwan Upadhyay, Pt. Deviprasad Shukla, Dr. Aurther Venis. ***Bks.*** 08. Bālagītam, Kavitākalāpaḥ, Śrīkānta-kavitākalāpaḥ, Vaṃśagāthā, Pari-devanā. ***Expired in*** 1949.

Tripathi, Sneh Prabha. Acharya. ***b.*** 07.09.1945, Bhitari, Sidhi, M.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Bhagirath Prasad Mishra. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Govt. Sanskrit College, Rewa M.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Sudhakaracharya. M.A., D.Phil. ***b.*** 03.11.1945, Pandar, Allahabad, U.P. Prof. & Head, C.C.S. Univ., Meerut (U.P.) ***Bks.*** 07. Ūrmilam, Pratīkam, Gītamādhurī Saṅgaram ***Ps.*** 50. ***Add.*** Department of Sanskrit, C.C.S. University, Meerut (U.P.)

Tripathi, Surendra Narayan. Acharya in Vyākaraṇa , M.A., Ph.D. ***b.*** 01.08.1928. Asct. Prof., Sanskrit Deptt. Rajdhani College, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** R-74, Vani Vihar, Uttam Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** President Awardee.

Tripathi, Tarakeshvar. Acharya in Jyotiṣaa. ***b.*** 07.12.1919, Bhojpur, Bihar. Principal, Bihar Sanskrit College. ***Gp.*** Balakrishna Jha. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Birwanpur, Bhagatpur (Bihar).

Tripathi, Tirtharaj. M.A., Ph.D., Acharya. (Navya Vyākaraṇa , Sāṅkyayoga) Asst. Prof., M. V. Mahavidyalaya, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** H-6/141, Malaviya Nagar, New Delhi–110017.

Tripathi, Triyugi Narayana. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 05.08.1960, Hanumangarhi, Faizabad, U.P. Asstt. Head of Deptt. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Shri Hanuman Sanskrit Maha-vidyalaya, Nirmani Akhara, Ayodhya(U.P)

Tripathi, Uma Pati. Acharya in Vyākaraṇa & Sāhitya. ***b.*** 15.08.1931, Sahabpur, Pratapgarh (U.P.). Principal, Shri Dharma Jnanopadesh Sanskrit Mahavidyalaya, Allahabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 191, C-06, Lava Kush Colony, Himmat Ganj, Allahabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa & Sāhitya.

Tripathi, Uma Rani. ***b.*** 07.06.1959. Allahabad, Prof., M. G. Varanasi Vidyapeeth, Varanasi, (U.P.) ***Gp.*** Prof. S.C. Srivastava, Prof. S.C. Panda, Prof. Rajendra Mishra. ***Bks.*** 02. Mahā Kavī Kālidāsa kī Dārśanikatā, Gītā Sarvasvam(ed.). ***Ps.*** 18. ***Add.*** 538 K/461, Tulasipuram, TriveniNagar, Phase–I, Lucknow.

Tripathi, Uma Shankar. M.A., Acharya in Sāhitya. ***b.*** 1922, Deoria, Asst. Prof., Varanasi. ***Gp.*** Ram Naresh Mani Tripathi. ***Bks.*** 13. Chatrapaticaritam, Umara-khayyāmabhāratī, Sūktāmṛtam, Ahaṃ Rāśtrī, Bhāratīgītam. ***Expired in*** 1982.

Tripathi, Umarani. M.A., D.Phil. ***b.*** 07.06.1959. Allahabad. Prof., Skt. Deptt., MG Kashi Vidyapeetha, Varanasi. ***Gp.*** Prof. Rajendra Mishra, Prof. S.C. Srivastava. ***Bks.*** 02. Mahākavi Kālidasa kī Dārśanikatā, Gītā Sarvasvam, Saṅgītakam. ***Ps.*** 60. ***Add.*** Skt. Deptt., MG Kashi Vidyapeetha, Varanasi. M. 09839397093. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Upendra Kumar. Acharya, Ph.D. ***b.*** 29.09.1978. Gopalganj. Asstt. Prof., Deptt. of Veda, SVDV, BHU. ***Bks.*** 01. Yajurveda me Paryāvaraṇa. ***Add.*** Ved-bhavanam B-1/150 E-1 Assi, Varanasi-05. Ph. 0542-2366715. M. 09452563991. Email dr.upendrabhu@gmail.com ***Spl. Ref.*** Veda, Ved Pandit Award by UP Skt. Sanshtan.

Tripathi, Vachaspati Sharma. M.A., Ph.D. ***b.*** 09.09.1943, Takkipur (Bihar). Prof. & HOD. (DharmŚāstra), K.D.S. Sanskrit Univ., Darbhanga, Bihar. ***Bks.*** 01. Prācīna Bhārata kī Daṇda-Vyavasthā. ***Ps.*** 10. ***Add.*** K.S.D. Sanskrit University, Darbhanga.

Tripathi, Vashishth. Acharya in NavyaNyāya. ***b.*** 15.10.1940. Prof., S.S.V., Varanasi, U.P. ***Gp.*** Pt. Vamacharan Bhattacharya, Vadrinath Shukla. ***Sp.*** Rampujan Pandey, Piyushkant Dixit, Hareram Tripathi. ***Bks.*** 03. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Rampur Shukla, Pathardeva, Deoria, U.P. ***Spl.Ref.*** President Awardee, International Himadri Award.

Tripathi, Vikram Jeet. Acharya. *b.*01.04.1948, Bhaliapur, U.P. Asst. Prof. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Hanuman Sanskrit Mahavidhyapeeth, Sikrara, Bhaliapur, Jaunpur, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Tripathi, Vinayak Vaidika. Acharya in Śulka-yajurveda, Ph.D. *b.*15.07.1935, Subikhar, Deoria, U.P. HOD of Veda & Principal. ***Gp.*** Bhagwat Prasad Mishra, Dr. Vindheshwari Prasad Tripathi. ***Bks.*** Agnicayanayāgavimarśaḥ. ***Add.*** Govt. Sanskrit Mahavidhyalaya, Rewa M.P. ***Spl.Ref.*** Veda.

Tripathi, Virendra Kumar. M.A. *b.*02.07.1953. Asst. Prof. ***Gp.*** Phanismani Tripathi, Ramkishor Shukla. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Ramachandra Sanskrit Pathshala, Nayapara, Raipur, (C.G.) ***Spl.Ref.*** Navya Vyākaraṇa.

Tripathy, Chandra Shekhar. M.A., M.Phil., Ph.D. *b.* 04.09.1974. Dumroan (Bihar). ***Bks.***01. Kavikaustubha. ***Add.*** C/o Dr. Raman Kr. Sharma, B II – 30, Sec – 18, Rohini, Delhi – 85.

Tripathy, Padmanav. M.A. ***b.***12.03.1962, Lalitagiri (Cuttack). ***Bks.*** 05. Abhinna-sundaraḥ, Prajñāprakāśaḥ. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Pragya-prakasa, Mangalog, Cuttack, Orissa.

Triveda, Pt. Deenanath, "Madhupa". Acharya (Vyākaraṇa, Sāhitya, Darśana, Nyāya). Asst. Prof., Maharaja Sanskrit College, Jaipur. ***Gp.*** Pt. Yamunadhar Shastri, Pt. Chandrashekhar Dwivedi, Pt. Govindnarayan, ***Bks.*** 01. Nārīmati Vaibhāvam (story). ***Spl.Ref.*** Awards – 'SāhityaAlaṅkāra' by Ayodhya Sanskrit office. 'Gold Medal' in Sanskrit essay competition in Rajasthan Sanskrit Sammelan. Editor of 'Bhārtī' monthly magazine.

Trivedi Neelam. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.01.1957, Kanpur. Asct. Prof., Dayanand Girls PG College, Kanpur. ***Bks.*** 03. Aucityasiddhānta aur Mahākavi Bhavabhūti kī Nāṭyakalā, Hitopadeśa, Matā Bhūmiḥ Putroham Pṛthivyāḥ. ***Ps.*** 39. ***Add.*** 4D/3 West Campus, HBTI Kanpur-208002. M. 09839208995. Email neelamtrivedi @rediffmail.com ***Spl. Ref.*** Sāhitya. Newzeland, USA, Canada.

Trivedi, Alka Ramchandra. M.A. Ph.D. *b.*23.01.1961. Prof. Vivekanand Art. College, Raipur Darwaja, Ahamdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 10/2, Bhima Nagar Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta.

Trivedi, Babu Prasad Somnath. Ph.D. ***b.*** 01.03.1944. Prof. Smt. L & C Mehta Arts College. Elisbridge, Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 9- Maruti Nandan vila Block 2, Sardar Patel, Ring Road, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Alaṅkāra.

Trivedi, Bhuvan Chandra. Acharya in Sāhitya. *b.*12.10.1951. Almora. U.P. Asst. Prof. ***Gp.*** Ganeshadatt, Ghanshyam Joshi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sir Mahadeva Giri Sanskrit Mahavidyalaya, Haldvani, Nainital.

Trivedi, Chaitanya Bhai Shiv Prasad. Ph.D. *b.*15.11.1945. Prof. Shri Swami Narayan Arts College, Gita mandir Road, Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 27 Hillora Residency, Vastrapur, Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Sāṅkya Yoga.

Trivedi, Chakra Pani. M.A., Acharya. ***b.*** 09.02.1942 Rohtas, Bihar. Ex-:Lecturer & Guest Faculty, Deptt. of Dharmagam, BHU, Varanasi. GN Mahavidyalaya, Rohtas. ***Gp*** Pt Mahadev Pandey, Dr. Shivdutt Sharma. ***Bks.*** Pāśupata-sūtram, Tattvasaṅgraha. ***Add.*** B-1/148 A-9 B-80 Assi, Varanasi -05. M. 09452562745. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Trivedi, Ganesh Datt. Sāhityacharya. *b.*23.12.1935, Shekhawati, Sikar, RJ. Asst. Prof. ***Gp.*** Ghanasyama Shastri. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Rishikul Vidyapeetha, Sikar (RJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Trivedi, Ghanshyam M. LLB, DLP, Acharya (Sāhitya & Purāṇa), Vidyavaak Bhushan. ***Bks.*** 02. Nūtanabhaktirasāyanam, Nūtanagītāñjaliḥ.

Trivedi, Girija Shankar. Sāhitya Shastri, M.A., D.Phil. *b.*11.05.1939. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 2, Dhamawala Bazar, Old Kotwali, Dehradun. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Trivedi, Gopilal. M.A., B.Ed., Kāvyatīrth, Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 07.07.1934. Sagar. Rtd. Principal. Govt. Girls High School, Guna, M.P. ***Spl.Ref.*** Veda.

Trivedi, Harihar. Acharya. *b.*15.08.1955, Gwalior, M.P. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, Katwaria Sarai, New Delhi. *Spl.Ref.* Vedānta.

Trivedi, Indravadan V. Ph.D. *b.*04.01.1936. Prof. Arts & Science College, Bhadran, Borsad, Kheda (GJ). *Add.* A-32 Surnam 6 Near Chandan Plot Satelite, Ahemdabad. *Spl.Ref.* Epigraphy.

Trivedi, Jhanhvi Ben A. Ph.D. Prof. Seth P.T. Arts & Science College Godhra. *Ps.* 05. *Add.*Brahman Faniyo, Deshar, Sawli, Varodara.

Trivedi, K. H. Ph.D. *b.*02.06.1933. Prof. N.A. & T.V.P. Arts College, Vallabh Vidha Nagar, Aanand. *Ps.* 05. *Add.* 7-B Arihant Society, Near Jalaram Society, Nana bazaar, Vallabh Vidhya Nagar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Trivedi, Karuna Ben. Ph.D. *b.*05.09.1960. Prof., T.M. Shah Mahila Arts College Idar, Sambharkanta. *Ps.* 03. *Add.* Shwetdeep Banlow Near Govt. Quarter Daljeet Nagar Idar. *Spl.Ref.* Alaṅkāra & Purāṇa.

Trivedi, Kashyap Mansukha Lal. Ph.D. *b.*26.10.1964. Prof., Shri R. R. Lalan College, Bhuj, Kacch. *Ps.* 03. *Add.* New Ummed Nagar, Block No. 557, Bhuj, Kacch. *Spl.Ref.* Vedānta.

Trivedi, Madhumalti Ben Gajendra Bhai. Ph.D. *b.*08.04.1941. Prof. Samandas College, Bhav Nagar. *Ps.* 05. *Add.* Plot No. 1225 Ghogha Circle, BhavNagar. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Trivedi, Mahendra H. Ph.D. *b.*18.06.1969. Prof., J. P. Dharuka Wala Arts & J.D. Gabani Commerce College, Surat. *Ps.* 03. *Add.* 68, Gokul Nagar, Rachna Society Surat. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Trivedi, Matri Dutta. Veda, Acharya in Sāhitya, Sāhityaratna, M.A, Ph.D. *b.* 31.07.1926 Unnao, U.P. Rtd. Reader, Deptt of Skt., Lucknow Univ. *Gp.* Prof. K.A.S. Iyer, Prof. K.C. Pandey, Prof. Satya Vrat Singh, Pt. Daya Prasad Dixit. Pt. Rudra Prasad Awasthi. *Sp.* Dr. Daya Shankar Shastri, Dr. Prema Awasthi, Prof. K.K. Mishra, Prof. O.P. Pandey etc. *Bks.* 02. Atharvaveda-A Literary Study, Viśākhadutta. *Ps.* 60. *Add.* 5/455 Vikas Nagar, Lucknow -226022. *Spl. Ref.* Veda and Sāhitya. Visista Puraskar from U.P. Skt. Sansthan 1997, Vedānta Puraskar 2003, Śāstra Chutamani Scholar. 142 Radio Talks and 20 TV Programmes in Skt. & Hindi in Lucknow, Skt. Poet.

Trivedi, Nityanand. Acharya in Sāhitya & Purāṇa. *b.*20.06.1947, Sikandarpur, Unnav, U.P. Asst. Prof., *Gp.* Harivamsadulare Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Shivprasad Sanskrit Mahvidyalaya, Chitavapur, Pajava, Lucknow (U.P.)

Trivedi, Pankaj Kumar Ghanshyam Bhai. Ph.D. *b.*05.12.1969. Prof., Smt. P.N.R. Shah Mahila Arts & Commerce College, Near Nagar Palika Palitana. *Ps.* 04. *Add.* Maa 40, Gayatri Nagar Guru Nanak Marg, Palitana. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Trivedi, Paresh Kumar Pradhuman Bhai. Ph.D. *b.*29.06.1971. Prof., Arts & Commerce College, Anaklav, Aanand. *Ps.* 03. *Add.* 27, Mahaveer Park Near Jakata Naka Aanand. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Trivedi, R. J. Ph.D. *b.*04.12.1942. Prof., Govt. Vinayan College, Sector 15, Gandhi Nagar. *Ps.* 05. *Add.* Plot No. 1352-2, Sector 7-D, GandhiNagar. *Spl.Ref.* Vedānta.

Trivedi, Radhe Shyam. M.A., Ph.D. *b.*14.07.1949, Sidhpur (GJ). Teacher, S.M. Higher Secondery School, Sarkhej. *Ps.* 04. *Add.*19. B/1. Pratap Kunj Society, Java Apartment, Sarkhej Road, Vasana, Ahmedabad, GJ.

Trivedi, Rajendra Kumar. Acharya in Sāhitya, M.A., Ph.D. *b.*10.05.1943, Jabalpur, (M.P.). Asct. Prof. *Bks.* 01. Upaniṣad Kālīna samāja evaṁ saṁskṛti. *Add.* Deptt. of Ṣanskrit, Pali & Prakrit, Rani Durgavati University, Jabalpur (M.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Trivedi, Raksha C. Ph.D. *b.*27.04.1965. Prof., Dharmendra Singhji Arts College Dr. Yagnik Road, Rajkot. *Ps.* 04. *Add.* Chandramoli 9, Sardar Nagar, Rajkot. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Trivedi, Rita Mahesh Kumar. Ph.D. *b.*05.04.1958. Prof., Navyug Arts College,

Radher Road, Surat. *Ps.* 05. *Add.* 903, Satyam Appartment Tarwadi, Surat. *Spl.Ref.* Vedānta.

Trivedi, Surachna. M.A.(Skt., Hindi), B.Ed., Ph.D. *b.*30.06.1969, Lakhimpur, Kheri. Asct.Prof. Kakhimpur Kheri B.A.K.P.G. College, Lakhimpur Kheri. *Bks.* 01. Surabhāratī Saparyā Kusumañjalī (ed.). *Ps.* 50. *Spl.Ref.* Skt.Poetry, Story Writing.

Trivedi, Upamanyu. Acharya in Veda. Teacher. *Add.* Shri Saraswati Sanskrit College. P.O. Khanna–141401, Ludhiana. (Punjab). *Spl.Ref.* Veda.

Trivedi, Vishnu Prasad C. Ph.D. *b.*18.09.1973. Prof., G. M. D. C. Arts & Commerce College, Nakhtrana, Kaccha. *Ps.* 03. *Add.* Junawas Control Nakhtrana, Kaccha. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Tulasi, Narasimhacharya. DvaitaVedānta Shiromani, Siksashashtri, Vidyavaridhi. *b.*18.06.1921, Adhawani, A.P. Rtd. Teacher. *Gp.* Shrirangam Ramachary, B. Shrinivasa-charya. *Add.*18/731, Bharati Nagar, Tirupati (A.P.) *Spl.Ref.* Veda & Vedānta

Tulasi, Savitri. M.A. *b.*10.10.1957, Adhvani, Kurnool, A.P. Project Assistant. *Gp.* B. Raghunandacharya, Shrikrishna Sharma. *Add.*18/731, Bhavani Nagar, Tirupati (A.P.). *Spl.Ref.* Veda & Vedānta.

Tuli, Prem. M.A., B.Ed. *b.*27.04.1938. Teacher, Govt. Senior Secondary School No. I. Roop Nagar, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* A-138, Saraswati Vihar, Pitampura, New Delhi–110034. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Tumkuru, Joyisa Shrinivasa Krishnamurti. M.A., Ph.D. *b.*29.07.1923, Tumkur, KT. Edu. Director, Vidyavardhaka Sangha, Rajaji Nagar, Bangalore. *Gp.* Prof. C.R. Narasimha Shastri, Prof. M. Laxminarasimhayya, Prof. N. Shivaram Shastri, Prof. V.T. Tirunarayana Ayyangara, Prof. S. Ramachandra Rava. *Add.* 74, East Park Road, Malleshvaram, Bangalore – 560003 (KT). *Spl.Ref.* Veda and Sāhitya.

Tungara, Narayan V. Kāvyatirtha. *b.* Talegere, Pune, MH. *Bks.* 03. Pālī-bhāṣāpraveśaḥ, Gāndhīstotram, Indirā-gāndhyamarastotram. *Add.* 408, Narayan Peth, Munjaba Lane. Pune–411030 (MH). *Spl.Ref.* Poetic and Pali literature.

Tyagi, Hari Singh. Acharya in Sāhitya. *b.*15.10.1924, Sisouna, Bijnor, U.P. Prof. *Gp.* Ramdatt Shastri, Ramkishore Shastri. *Ps.* 05. *Add.* Gurukul College, Jwalapur, Haridwar Uttrakhand. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Tyagi, Nisha Bala. Ph.D. *b.*19.01.1957, Delhi. Asct. Prof. *Bks.* 01. The Gandhian Way. *Add.* 5/3. University Road, Delhi University, Delhi–110007.

Tyagi, Ram Nivas. Acharya in Sāhitya, M.A., B.Ed. *b.*15.10.1941, PGT, Govt. Higher Secondary Co-educational School, Fatehpur, Delhi, *Ps.* 03. *Add.* 1043/2, Ward-8, Mehrauli, New Delhi-110030. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

U

Udayan, H. Shukla. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa. *b.* 18.11.1944, Lakhatar (GJ). Ex.Principal Baroda Sanskrit Maha-vidyalaya, M. S. Univ. of Baroda. Vadodara. *Bks.* 03. Puṣ-imārgīya Vaiṣṇava Pañcāṅga, Vāstu Saurabham. *Add.* Kaustubh B – 15, Vaibhav Society, Harani Rd. Vadodara – 390022 (GJ).

Udgat, Ganeshwar. Kāvyatīrtha. *b.* 1901. Dharakot, Ganjam, Orissa. Asst. Prof., *Bks.* 03. Ajavilāpaṃ, Vaidarbhī, Chātrabandhuḥ. *Expired on* 17.06.1986.

Udupa, Vinayak. Vedāntavidvattama. *b.* 31.10.1926, Nagra, Shimoga, Karnataka. Principal. *Add.* Shri Sadvidhya Sanjivani Sanskrit Vidhyapeeth, Shringeri Math, Sringeri (KT). *Spl.Ref.* Veda, Vedānta Śāstra.

Ukanda Variyara, K. V. Vyākaraṇa Bhushana. *b.* 03.07.1910, Kattukulam, Kerala. *Gp.* M.B. Shankar, Narayana Shastri, Pandit Rajan Tarkikatilaka. *Add.* Tekkupurathu Variyam, Anapuya, Kodungallur, Kerala. *Spl.Ref.* Veda, Vyākaraṇa.

Uma Devi. M.A., B.Ed. *b.* 16.09.1946. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School, Delhi. *Ps.* 05. *Add.* H.No. 1805, Chirakhana, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Umesh kumar. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* Shri Saraswati Sanskrit College, P.O. Khanna, Dist.Ludhiana, Punjab–141401. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Umrajwala, Pushpa Ben N. Ph.D. *b.* 27.09.1946. Prof. Shri Jayendrapuri Arts & Science College Bharuya. *Ps.* 01. *Add.* 23, Puneet Society Near New Civil Hospital, Bharuya. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Unadkar, Geeta Ben Amrit Lal. Ph.D. *b.* 04.01.1968. Prof. Veeram Bhai Ram Bhai Godania College. *Ps.* 02. *Add.* Neelkantha 1, Arvind Nagar Society, Shivaji Nagar, Porbander. *Spl.Ref.* Vedānta Śāstra.

Uniyal, Deviprasada Acharya. Acharya in Sāhitya, M.A. *b.* 08.08.1954, Bhatawara, Tehri Garhwal. Sāhitya Teacher. *Ps.* 02. *Add.* Shri Bholanand Sanskrit Vidyalaya, Haridwar. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Uniyal, Ghanasyam. Acharya in Vyākaraṇa. Ph.D.. *b.* 06.04.1942, Thapali, Garhwal. *Gp.* Trilokadhar Dwivedi, Dr. Baladeva Sinha. Asct. Prof., *Ps.* 05. *Add.* Punjab Univ., Sadhu Ashram, Hoshiarpur (Punjab). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Uniyal, Indra Dutt. M.A., Sāhityaratna. *b.* Mupalganva, Tihari Gadhval. Asst.Prof., Punjab Univ. *Bks.* 04. Saṃskṛtam, Jīvyāścirampriya Javāhara Lokabhūtyai, Vasantam Prati, Śabdārthapuṣpa Racita Saguṇā Sumālā. *Spl.Ref.* President Awardee.

Uniyal, Rajaram. Acharya in Sāhitya & Vyākaraṇa. *b.* 18.04.1938, Kothi, Tehri Garhwal. Asst. Prof. *Gp.* Brahmanand Shukla, Kuberadatta Shastri. *Ps.* 01. *Add.* Shri Bhagavandas Sanskrit Mahavidyalaya, Avadhut Mandalashram, Gurukul Kangri, Saharanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Unni, Damodaran V. N. Acharya in Sāhitya. *b.* 20.05.1955, Kannur, Kerala. *Gp.* S. Venkatakrishana, Shrinivasa Tatacharya. *Ps.* 02. *Add.* C.S.N. Skt. Mahavidyalaya, Kanchipuram – 3, TN. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Unni, Krishnan N. D. Sāhityaśiromaṇi. *b.*25.10.1908, Chhilikkavattam, Edapally, Kerala. Asst. Prof. *Gp.* Panditaraja K. Achyuta Potuval, Mantitta Shastri Sharma, K. Ram Variyar. *Bks.* 02. Trimadhuram, Harināma-Kīrtanam. *Add.* Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Purāṇaattukara. Trissur (Kerala). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Unni, Namboodripad Ottur. Ṛgveda, Kattvalur. *b.* 1904. Kerala. *Bks.* 01. Rādhā-kṛṣnara-sāyanam. *Spl. Ref.* Ṛgveda-Pada Krama, Jatā, Rathapatha.

Unni, N. P. M.A. (Skt., Malayalam) Ph.D., Dip. In German. *b.*26.01.1936, Ex. V.C., Sri Sankaracharya Sanskrit Univ. *Bks.*48 Kālidāsasarvasvam, Arthaśāstra of Kautilya, Tantra Literature of Kerala, Saṃskārasmṛti, The Wedding of Arjuna & Subhadrā. *Ps.*150. *Add.* T. C. 27/1348, Sreelasyam, Rishi-mangalam, Vanchiyoor, Thiruvanantapuram -695035, Kerla. *Ph* .0471-2474442, *M.*09495124984. *Spl. Ref.* Sanskrit scholar, President Awardee(2001), Sethu Parvati Bai Award(1991), Rajaprabhapuraskaram(2006). Italy (1992,1994), Neatherland as a Prof. (1995), Germany(1995), USA(2006). Chairman, Sri Rangalaxmi Adarsh Sanskrit Mahavidyalaya, Vrindavan & President, Ullor Memorial library and Research Institute.Trivendram.

Unnithiri, N. V. P. M.A., Ph.D.. *b.* 15.12.1945, Cheruthalam, Cannanore, Kerala. H.O.D. Dept. of Sanskrit, Calicut University. *Bks.* 03. Gaveṣaṇa Prabandhangal (Malayalam), Padapradīpikā of Vatsanārāyaṇa (ed.), Catalogue of manuscripts (English). *Add.* Calicut University, Kozhikode, Kerala – 673635. *Spl. Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Unnittan, Prasanna. Acharya in NavyaVyākaraṇa , M.A. *b.* 26.06.1951, Kollam, Kerala. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Guruvayur Kendriya Sanskrit Vidyapith, Purnaattukara, Trissur (Kerala). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Upadhyay, Baladev. M.A., Acharya in Sāhitya. *b.* 10.10.1899. Sonarvasa, Baliya, U.P.. President, U.P. Sanskrit Sansthan, Varanasi. *Bks.* 28. Bhārtīya Darśan, Saṃskrit Sāhitya kā Itīhās, Vaīdic Sāhitya kā Itīhās, Bodha Darśan Mīmāmsā, Bhāratīya Vāṅmaya me Śrīrādhā. *Spl.Ref.* Great Scholar, critics and writer of Sanskrit. Recipient of Padmabhushan (1983), Vishvabharti Puruskar, Manglaprasad Puruskar and Dalmiya Puruskar.

Upadhyay, Banshidhar Nandu Prasad. Ph.D. *b.* 27.11.1947. Prof. K.C. Seth Arts College Beerpur Distt. Kheda. *Ps.* 02. *Add.* 11, Nand nandan Maharshi Arvind Society Lunawada Distt. Panchmahal. *Spl.Ref.* Alaṅkāra Śāstra.

Upadhyay, Bhagvat Sharan. M.A., Ph.D. *b.* 1910, Vill. Ujayas, Baliya, U.P. Visiting Prof. Vikram Univ. Ujjain, M.P. *Bks.* 115. India in Kālidāsa, Kālidāsaṃ Namāmi (Śabdcitra), Hindī Viśva kośa (ed.), The Asiad World, Purātatva kā Ramāṃsa. *Spl.Ref.* He was Visiting Prof. in other countries. He visited America, Canada, England, Denmark, Holland for cultural study.

Upadhyay, Brahaspati. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 12.10.1916, Batiyamari, Sonitapur, Assam. *Gp.* Bipinachandra Goswami. *Ps.* 01. *Add.* Bhringeri, Dist. Sonitpur, Assam. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Upadhyay, Chandra Mauli. Acharya, Jyotiṣa Chakravarti. *b.* 01.11.1955, Varanasi. Prof., Dept. of Jyotiṣa, Faculty of SVDV, BHU. *Gp.*Prof. Rajmohan Upadhayaya. *Sp.*Dr. Jagdamba Prasad Tripathi etc. *Bks.*10. Golavimarśa, Muhurtamañjarī, Praśnavimarśa, Sāmudrika Jyotiṣa, Siddhānta Jyotiṣa. *Add.*B-30/1,N.G. Anjenaya Niketan, Gangabagh Colony, Lanka, Varanasi-221005. *Ph.*0542-2368111. *Email* cmupadhyay@sify.com *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Honored by the Title Jyotisa Martand, Jyotisaratna, Jyotisahansa, Jyotisa Srimoni, Kashiratna.

Upadhyay, Chandradhar. *b.* 1897. Rahtas, Bihar. *Gp.* Pt. Shivbalak Shukla. *Expired in.* 1970. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Jyotiṣa, Karmkanda, DharmaŚāstra.

Upadhyay, Durga Datt. Acharya in Sāhitya. *b.* 01.01.1936, Vindhyachal, Mirzapur, U.P. H.O.D. of Sāhitya Dept., Shri Sanatan Bhairava Shankara Brahma Samyutka Mahavidyalaya, Bariyaghat, Mirzapur. *Gp.* Ramaprasad Mishra, Sarayuprasad Upadhyaya, Kanhaiyalal Pandey. *Bks.* 01. Aṣ-aśa-akam. *Add.* Shri Sanatan Bhairava Shankara Brahma Samyutka Mahavidyalaya, Bariyaghat, Mirzapur, U.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Upadhyay, Ganga Ram. Vyākaraṇa Shastri. *b.* 15.10.1940, Sonitipur, Assam. Rtd. Teacher. *Gp.* Vipinachandra Goswami, Brhaspati Upadhyaya. *Ps.* 01. *Add.* Shri Laxminarayan Sanskrit Pathasala, Singiri, Sonitapur, Assam. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Upadhyay, Hari Krishna. M.A., Ph.D. *b.* 08.04.1951, Agra. Asct. Prof. & Head, R.B.S.College, Agra. *Ps.* 02. *Add.* "Krishna-chandrayana" 6/3, L – I, Shastri Nagar, Khandari, Agra – 282002. *Ph.* 0562 - 321856. *Spl.Ref.* Veda and Darśana.

Upadhyay, Hridyanand. Acharya. *b.* 04.06.1956, Bhagalpur Bihar. Teacher. *Add.* Shri Hanumat Sanskrit College, Hanuman Garhi, Nirvani Akhara, Ayodhya, Faizabad U.P. *Spl.Ref.* Navya Vyākaraṇa Śāstra, Vedānta Śāstra.

Upadhyay, Indu Prakash. Acharya. *b.* 1925, Nepal. Rtd. Principal. Shri Badrinath Veda Vedang Skt. College, Joshimath, U.K. *Sp.* Prof. D. P. Tripathi, Dr. Ashok Thapliyal. *Bks.* 05. *Add.* Dasnam Sanyas Ashram, Bhoopatwala, Haridwar, U.K. *Spl.Ref.* An extraordinary scholar in Vyākaraṇa Mīmāṃsā, Darśana & Sāhitya. Recipient of Rajyapal Award.

Upadhyay, Janakaray. Shastri. *b.* 12.02.1953, Naredi, Gujarat. Teacher (Veda). *Gp.* Laxmishvar Jha, Narayana Shastri, Manoharalal Dwivedi. *Add.* 1. Veda Bhawan Vidyalaya, Dwaraka. 2. 56 C.D. Veda Shala, Dwaraka, Dist. Jam Nagar , Gujarat. *Spl.Ref.* Veda.

Upadhyay, Kailash Chandra. Acharya in Sāhitya, ShiksaShastri. ***b.*** 15.12.1958. Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Samant bhadra Sanskrit Mahavidyalaya, Daryaganj. Delhi – 110002. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Kamala Kumari M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.***20.07.1957 Lectutrer, KSM College. ***Bks*** 02. Ādyāśakti Pārvatī, Sṛṣ-ikalpanā evam Devaśaktiyāna. ***Ps.*** 09.

Upadhyay, Kapur Chandra. Acharya. ***b.*** 10.07.1955, Karahal, Gorakhpur, U.P. ***Gp.*** Rajbhan Shukla, Shrinivasacharya. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Munishwar Vedanga Mahavidyalaya, Rishikesh, UK. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Kashi Ram. Acharya in Vyākaraṇa. ***b.*** 04.07.1919. Principal, Shri Bharat Sanskrit Mahavidhyalay, Rishikesh. ***Gp.*** Pt. Ram Bhushan Mishra. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Bharat Sanskrit Mahavidyalaya, Rishikesh, UK. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Upadhyay, Keshav Prasad. Acharya in Sāhitya, āyurveda. ***b.*** 20.12.1957, Phatakshila, Nepal. Asst. Prof. ***Gp.*** Dr. Narayana Muni Chaturvedi, Hari Gopal Shastri. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Gurukul Mahavidyalaya, Jwalapur, Haridwar. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Keyur Banshidhar. Ph.D. ***b.***05.01.1977. Prof. Arts College Fatehpura, Dahod. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 11, Maharshi Aravind Society Lunawada, Distt. Dahod. ***Spl.Ref.*** Darśana Śāstra.

Upadhyay, Khyaliram. Acharya, M.A. ***b.*** 15.10.1937, Bhaisikhet, Almora, (U.P.). Principal. ***Gp.*** Muralidhar Awasthi, Narsimha Dev, Trilokadhar Dwivedi. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 13, Mukharjee Marg, Rishikesh (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Lakshmi Prasad. Shastri (Vyākaraṇa, Purāṇa) Vyakaranvachaspati. ***b.*** 20.04.1915, Gameri, Sonitpur, Assam. Principal, Rakachandra Sanskrit College, Gameri. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Dighalipathar, Gameri- 789192. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Upadhyay, Lallan Prasad. M.A., Ph.D. ***b.*** 15.07.1950. Deoria, U.P.. Sr. Lect., D.A.V. College. ***Bks.*** 02. Sant Darpana, Mahā Veda Darpana. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Akataha, Patherdewa, Deoria, U.P.. ***Ph.*** 255641. ***Spl.Ref.*** Poetics.

Upadhyay, Laxmi Kant. Jyotiṣa-Acharya, Ph.D. ***b.*** 01.07.1953, Balua, Rampur, Shripal, Deoria, U.P. Asst. Prof. ***Gp*** Kamalkant Shukla. Krishnachandra Dwivedi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** B-1/ 195, Bhadaini, Varanasi U.P. ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa Śāstra.

Upadhyay, Madhav Prasad. Sāhityaratna, M.A., Ph.D. ***b.*** 02.06.1961, Phata Varanasila, Sindhupalcheuk, Nepal. Principal. ***Gp*** Swami Narayanamuni Chaturvedi. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Shri Mahanand Sanskrit Mahavidyalaya, Lakshagrih, Barnawa, Meerut – 25-345 (U.P.) ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Upadhyay, Madhav Sharan. NavyaVyākaraṇa-Acharya. ***b.*** 15.12.1955, Vrindavan, Mathura. Teacher. ***Gp*** Saligram Mishra. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Sadhuvela Sanskrit Mahavidyalaya, Samar-kand Gali, Varanasi (U.P.). ***Spl.Ref.*** NavyaVyākaraṇa.

Upadhyay, Maghvi Dilip kumar. Ph.D. ***b.***04.04.1974. Prof. Govt. Vingyan College, Gandhi Nagar. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Kamla 539/1 Mahaveer Society Sector 21, GandhiNagar. ***Spl.Ref.*** Vedānta Śāstra.

Upadhyay, Mahendra. Acharya. ***b.*** 18.03.1951, Kalwari, Jaunpur, (U.P.). Assistant Teacher. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Ramdahija Sanskrit Vidyalaya, Maiyandipur. Jaunpur (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Prabal Priyansu. M.A. (Vedānta, Nyāya, Sāhitya), Ph.D.. ***b.*** 08.05.1925, Dibrugarh, Assam. ***Bks.***01. Vedāntadarśane Brahma. ***Add.*** Vishaj Dibrugarh (Assam). ***Spl.Ref.*** Vedānta, Nyāya, Sāhitya, Vyākaraṇa.

Upadhyay, Prabhakar Mahadev. M.A., Ph.D. ***b.*** 07.01.1930, Urana, Raigarh, MH. Head, Mahavidyalay, Bombay. ***Gp.*** Dr. Karnik, Dr. H.D. Velankar, Dr. Harivallabh Bhayani. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 10, Snehavardhini, Sonavala Cross Road No. I, East Goregaon, Bombay – 400063. ***Spl.Ref.*** Vedānta, Jaina & Bauddha Darśana, Prakrita.

Upadhyay, Prabodh Chandra Mani Shankar. Ph.D. ***b.*** 22.11.1939. Prof. Navjeewan Arts & Commerce College Jhalod Road, Dahod. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 3, Panini Neelam Society Near Darpan Talkies Dahod. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa Śāstra.

Upadhyay, Prayag Raj. Acharya in Sāhitya, Shiksashastri. ***b.*** 21.12.1953, Bhumavari, Pithauragarh, (U.P.) Teacher. ***Gp.*** Pt. Ramadev Mishra, Pt. Rameshchandra Sharma, Dr. Vrajvasilal, ***Ps.*** 01. ***Add.*** Shri Raghunath Brahmacharyashram Adrash Sanskrit Mahavidyalaya, Chandausi – 202412 (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Puran Chandra. M.A., Ph.D. ***b.*** 25.10.1967. Bhadrak, Orissa. Asct. Prof. & HOD, Deptt. of Sanskrit, Govt. P.G. College Bhawani Mandi, RJ. ***Gp.*** Prof. R.V. Tripathi, Prof. A. Dash. ***Bks.*** 05. Cakrapāṇi Vijayam Mahākāvyam (Ed.), Śrī Kṛṣṇalīlāmṛtacaritam. ***Ps.*** 35. ***Add.*** Govt. P.G. College Bhawani Mandi, Jhalawara, RJ. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Kāvyasāstra. Organized many Skt. Spoken Course, Rajasthan State Co-ordinator of Non-Formal Skt. Education, Co-ordinated National Seminars, Poet and Critics.

Upadhyay, Radha Mohan. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. in Hindi, Shiksha Shastri. ***b.*** 15.01.1936. Baliya, U.P. Teacher Ambika Hindu Ucch Vidyalaya, Hawra. ***Bks.*** 01. Bhāratavijayam. ***Add.*** 82 Ramkrishanpur Marg, Shivpur, Hawrah - 02. W.B. ***Spl.Ref.*** Rashtra Nirmata Award 1993, Hindi Sevi Saheshrabdi Samman 2000.

Upadhyay, Rajdev. Vyākaraṇa shastri, Acharya in Vedānta. ***b.*** 15.03.1938, Kari, Varanasi, (U.P.) Asst. Prof.. ***Gp*** Arjun Pathak, Shukdevacharya. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Shri Sankirtan Brahmacharyasharam Sanskrit Mahavidyalaya, Jhusi, Allahabad (U.P.). ***Spl. Ref.*** Vyākaraṇa, Vedānta.

Upadhyay, Rajendra Kumar. Acharya in Sāhitya, Ph.D. ***b.*** 16.05.1950. Principal, Shri Tikmani Skt. P.G. College, Shakarkand Gali, Varanasi. ***Gp.*** Mahadev Upaddhyay, Vijendra Nath Mishra. ***Ps.***05. ***Add.*** Aadarsh Nagar, Nayi Basti, Varanasi U.P.

Upadhyay, Rajesh. M.A., B.Ed., Ph.D. ***b.*** 15.08.1960, Chanduri, Moradabad, (U.P.) Asst. Prof. ***Gp.*** R.K. Acharya, S.N. Mishra. ***Ps.*** 02. ***Add.*** S.R.K.P.G. College, Firozabad, Agra. Dist. (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Rama Kant. M.A., Ph.D. ***b.*** 05.08.1945, Ambala, Haryana. Asst. Prof., ***Gp.*** Suryakant, Dr. Shrinivas. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 267, Laxmi Bai Nagar, New Delhi – 110023. ***Spl.Ref.*** Veda.

Upadhyay, Rama Kant. Shastri. ***b.*** 1915. Sultanpur, U.P. ***Bks.*** 01. Śrīdayānandacarita Mahākāvyam. ***Expired on*** 08.07.1970. ***Spl. Ref.*** Śāstrathapa-u, Vyākaraṇa Śāstra.

Upadhyay, Ramapati. Sāhityacharya. ***b.*** 10.10.1946, Faizabad, (U.P.). ***Gp*** Baijanath Dwivedi, Talukadara Pandey. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Horilpur, Bewana, Faizabad (U.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Upadhyay, Ramji. D.Phil., M.A. in Sāhitya. Baliya, U.P. Rtd. Prof., Skt. Dept., Dr. H.S. Gour Sagar Univ. Sagar, M.P. ***Gp.*** M.M. Pt. Laxman Shastri Tailang, Dr. Baduram Saxena. ***Sp.*** Prof. Radha Vallabha Tripathi, Dr. Ramgopal Mishra, Prof. Kusum Bhuriya. ***Bks.*** 55. Bhāratasya Saṃskrītīko nidhiḥ, Nātyaśāstrī yānusandhānam. Dwā Suparṇa, Satyaharī-ścandrodayam, Madhyakālīn Saṃskrit Nātak. ***Ps.*** 150. ***Expired on*** 17.01.2011. ***Spl.Ref.*** Founder member of “Sagarika” Sanskrit Magazine. Influenced by Gandhiyan Thought, Well Known Poet & Critic of Sanskrit. Wrote in Sanskrit, Hindi & English. ***Expired in*** 2011.

Upadhyay, Ramraj. Vidyavaridhi. ***b.***24.02.1968, Chandkaimoor, Bihar. Asct. Prof., LBS Rashtriya Skt. Vidyapeeth. ***Bks.***04. Śāntividhānam, Pūjāvidhānam, Saṃskāra-vidhānam, Manobhilaṣita Vratānuvarṇanam. ***Ps.*** 28. ***Add.*** 882/6, Q.4, Galaxy Appt. Meharauly, New Delhi-30. ***Ph.***011-46060547, ***M.***09891975175 Email. ramrajupadhyay @yahoo.com. ***Spl.Ref.*** Veda, Pauhoritya.

Honoured by the Title of Vedapandita & Sayana.

Upadhyay, Sabhapati. Acharya in Jyotiṣa & Vedānta. *b.* 1882. Balia (U.P.). Pradhan Pandit, Raja baldevdas Birla Sanskrit Pathshala, Lalghat, Varanasi. *Gp.* Pt. Baburam Upadhyay, Pt. Ram Pathak, Pt. Devnarayan Tiwari, Damodar Shastri, Pt. Shivkumar Shastri. *Sp.* Pt. Ganpati shastri Mokoteji, Pt. Balkrishan Pancholi. Pt. Kalikaprasad Shukla. ***Bks.*** 04. Ratnaprabhā Tīkā of Laghūmanjūśā. Prabhā Tīkā of Praudmanorama with Śabdaratna, laxmī Vyākhyā of Sidhānta Kaumudī. Vaīdikadhar-mrahasya. ***Expired in*** 1964. *Spl.Ref.* Recipient of 'Mahamahadhyapak Padavi' by Bharatdharm Mahamandal and 'Shabdika Padavi' by Sangved School.

Upadhyay, Shitla Prasad. Acharya, Ph.D. ***b.*** 18.02.1956 Prof. & H.o.D. Sampoornanand Skt. Univ. Varanasi. *Gp.* Prof. Brijvallabh Dwivedi, Prof. Batuknath Shastri. ***Bks.*** 11. Śrī Kṛṣṇayāmalaṃ Mahātantram, Tripurārṇa-vatantram, Bhāskarāya Bhāratī dikṣita; Vyaktitva Evaṃ Kṛtitva, Jñānadīpavimarśinī, Nivyāṣoḍaṣikārṇava (Setubanda Tīkā Sahita). *Ps.* 45. *Add.* Vill. Payagpur, Post Raja Talab, Distt. Varanasi. *Spl.Ref.* Special Award, U.P. Skt. Sansthan.

Upadhyay, Shivji. Acharya, Ph.D. *b.* 03.03.1943, Mirzapur U.P. Prof. & Pro.V.C., Sāhitya Dept., Sampurnanad Skt. University, Varanasi U.P. *Gp.* Sarayu Prasad Upadhyaya, Pattabhiram Shastri. ***Bks.*** 15. Śrī Vindhyeśvari Stavaḥ, Sarvadarśana-vimarśaḥ, Abhirāma Campūḥ, Śauryam (Nātaka), Kālakū-am (Nātaka), Vyaktī Vimarśa. *Ps.* 50. *Add.* 16, Teachers Quarters, S.S.U. Varanasi. *Spl.Ref.* Recipient of 'President Award', 'Kalidas Award', 'Tulsi Puraskar', 'Kavikulratna' & 'Magh Puruskar,' for his outstanding contribution to Sanskrit Literature. Delivered at least 100 lectures on National & International level.

Upadhyay, Suresh Ambalal. *b.* 21.09.1932. Mumbai. Ex-Director, Bhartiya Vidya Bhawan. *Add.* 35 A Surya Kiran Pan Gali, B M Path, August Kranti Marg, Mumbai – 36. *Spl.Ref.* He was visiting Professor / Fellow in the Universities of Heidelberg and Tuebingen, Germany and supervised Ph.D. Students in the Urbaniana University, Rome, Italy and Stockholm University, Sweden. He has received Best Teacher Award from the Govt. of Maharashtra. He is the Author & Editor of several books. He has delivered several illuminating lectures on Indology in India and aborad, President Awardee.

Upadhyay, Tara Chandra. Acharya in Vyākaraṇa. *b.* 01.07.1929, Sukhpura, U.P.. Asst. Prof.. *Gp.* Raghunath Sharma, Hiralala Pancholi. *Ps.* 02. *Add.* G.T. Skt. Mahavidyalaya, August maidan, Bombay, Maharashtra – 400017. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Upadhyay, Uma. M.A., Ph.D., L.L.B.. ***b.*** 04.04.1941, Nainpur , Mandla. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 527. Mohan Niwas. Dixitpura. Jabalpur, M.P. *Pin.*- 482002. *Ph.* (0761) 342245.

Upadhyay, Vachaspati. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 01.08.1943. Sultanpur, UP. Ex-V.C. L.B.S. Rashtriya Skt. Vidyapeeth, Delhi. *Bks.* 40. *Spl.Ref.* Veda, Darśana, Dharma Śāstra, Sāhitya, Member Secretary Maharishi Sandeepani, Rashtriya Veda Vidya Pratishthan Ujjain Title of MM, President Awardee. *Expired in* 2011.

Upadhyay, Ved Prakash. M.A., Ph.D, D.Litt. *b.* 07.02.1947. Ex. HOD Skt. Punjab Univ. Chandigarh. *Bks.* 07, Hindu Vidhi Evam Srota, Ṛgvedika-sūkta-saṁgrahaḥ, Vaidika Sukta Saṅgrahaḥ, Vaidika Sāhitya Eka Vivecana, Veda Mīmāṃsā Aura Dayānanda Sarasvati. *Add.* 1573, Pushpa Complex Sector 49-B Chandigarh. ***Ph.*** 09915746560, 09316698035. *Spl.Ref.* Awarded international Gold Medal in Astrology and VāstuŚāstra Colombo - Srilanka, Total 32 Awarded.

Upadhyay, Vishveshwar. M.A. ***b.*** 08.12.1960. *Ps.* 02. *Add.* Govt. P.G. Sanskrit College, Raipur C.G. *Spl.Ref.* Sāhitya Śāstra.

Upadhyay, Yadu Nandan. ***b.*** 02.10.1912. South

Kulhadiya. Prayog Nagar. Prof., Sir Sundarlal Hospital Aayurvaidik College, Lahore. *Gp.* Pt. Keshav Prasad Upadhyay, Pt. Satyanarayan Shastri, Kaviraj Pratap Singh, Pt. Jagannath Prasad Vaipeyi, Dr. Ghanekar. *Sp.* M.M. Gannath Sen, Aacharya Yadav ji, Vedkhyali Ram ji, Aayurved Panchanan Pt. Jagannath Shukla. *Bks.* 03. *Ps.* 60. *Spl.Ref.* Recipient of President Award on occasion of swarnjayanti of vidwat vaidya parishad in 1986 – 87.

Uppili, Shrinivasan. *b.* 1923. *Add.* 24. Patrachariar Street, Kumbhakonam , Tamil Nadu. *Spl.Ref.* Veda (Krsnayajus, Laksananta).

Upreti, Jaya Datt. M.A., Acharya in Vyākaraṇa, Yajurveda, D.Phil., D.Litt. *b.* 02.05.1935, Rtd. Asct. Prof., Principal. Maharshi Dayanand Gurukul Almora. *Gp.* Virendra Shastri, Ananda Jha. *Bks.* 05. Veda meṃ Indra, Laghukāśikā, Siddhāuta Śatakam, Dirghāyu Rahasyam, Saṃskṛta Romānī Hindī Kośa. *Add.* Swastyayan, Talla Thapliye Almora 01 U.K. *Spl.Ref.* Recipient of President Award.

Upreti, Mansaram. M.A., Acharya in Sāhitya. Asst. Prof. *Ps.* 01. *Add.* R.B.L. Gagarmal Sanskrit College, Court Road, Amritsar (Punjab). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Upreti, Pushplata. M.A., L.T. *b.* 05.05.1936. Teacher (PGT), Govt. Boys Senior Secondary School, Delhi. *Ps.* 01. *Add.* 1367, Type II, Timarpur, Delhi – 110006.

Upreti, Thaneshvar. Acharya in Sāhitya. *b.* 15.05.1935, Banku, Pithauragarh, UK. H.O.D. of Sāhitya. *Ps.* 01. *Add.* Shri Vishwanatha Sanskrit Mahavidyalaya, Bela Road, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Usha, Satyavrat. M.A., Ph.D. *b.* 15.10.1934, Asst. Prof., Kamla Nehru College, Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 3/54, Roop Nagar, Delhi – 110007. *Spl. Ref.* Sāhitya, President Awardee.

Usha. M.A., Ph.D., LL.B.. *b.* 03.03.1951. Ahmedabad. Research Officer, Oriental Institute. *Bks.* 02. Index to Journal of Oriental Institute Vol. XXVI – L, (1976 – 2000). An Alphabetical List of Manuscripts in the Oriental Institute Baroda Vol. IV. *Ps.* 50. *Add.* Oriental Institute, Opp. Palace Gate Palace Road, Vadodara – Gujarat – 390001. *Ph.* (0265) 2784295, 2425121, 09898050179.

V

Vachaspati, Ved Prakash. M.A., Ph.D. *b.* 25.08.1921. Joint Director. *Ps.* 25. *Add.* V.V. Research Institute, Hoshiarpur Punjab. *Spl.Ref.* Sāhitya-śāstra.

Vachaspati. M.A., Ph.D. *b.* 27.04.1940, Lahore (now in Pakistan). Asct. Prof., Khalsa Evening College, Delhi. *Gp.* Dinanath Shastri, Ramchandra Dwivedi, Jagdish Dutt Dixit. *Ps.* 05. *Add.* 4943/3, Shivnagar, karol Bagh, New Delhi. 110005. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vadekar, Mukund Lal G. Ph.D. *b.* 09.02.1955. Prof. Prachya Vidhya Mandir, M.S. University, Varodara. *Ps.* 05. *Add.* Shri Ram Sankul Mangal Bazar Lahripura, Varodara. *Spl.Ref.* Vedānta-śāstra.

Vadekar, Mukund Lal. M.A., Ph.D. *b.* 09.02.1944, Vadodara, Gujarat. Asstt. Editor, Deptt. of Vishnu Purana, Oriental Institute, Vadodara. *Gp.* Arunodaya N. Jani, S.G. Kamtaval, Sulochana Nayane. *Ps.* 05. *Add.* Laharipur, Mangal Bazar, Koteshwar Mahadev, Vadodara (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vadhyar, Gopalakrishna K.S. Traditional Education. *b.* 02.04.1922, Lyada Chola, Mannarghat, Palakkad, Kerala. Rtd. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* 2/79, New Kalpathi, Palakkad (Kerala).

Vadhyar, Narayan P. *Age.* 38 yrs. in 1988, Tirunelveli, TN. *Gp.* Suddhapalli Subrahmanya Shastri, Ramchandra Shastri. *Add.* 33-A, Kanchi Kamakoti Math, Sannidhi Street, Rameshwaram (TN). *Spl.Ref.* Kṛṣṇayajurveda Kramanta, Parishilita Smarta.

Vaghani, Ishwar Bhai Savsi Bhai. Ph.D. *b.*

08.06.1962. Prof. Arts, Sicence & Commerce College, Pilwaya Vijapur. *Ps.* 03. *Add.* Near New Vandana Society, Vijapur Distt. Mehsana. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vaghela, Kishan Bhai Kanti Bhai. Ph.D. *b.*05.06.1970. Prof. Shri Vanraj Arts & Commerce College Dharampur Distt. Valsad. *Ps.* 02. *Add.* Shri Rangpur Kripa Society Nagariya Road, Dharampur Distt. Valsad. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vaghela, Mela Bhai Bhikha Bhai. Ph.D. *b.*09.06.1963. Prof. R.K.Parikh Arts & Science College Petlad. *Ps.* 02. *Add.* Vill. Jasapura, Post Caklasi Distt. Nadiyal. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vagish, Haridas Siddhant. Sāhityaśāstra. Acharya. *b.* 1876. Unshiya, Kotalipada, Faridpuram. *Gp.* Jeevanand Vidyasagar, Gangadhar Vidyalankara (Father). Lect. *Bks.* 14. Rukmiṇīharaṇam (mahākāvya), Kaṃsa-vadha, Jānakī Vikrama, Shānkarsambhava, Viyogavaibhava, Virajasarojinī. *Expired in* 1961. *Spl.Ref.* Famous Poet, well known play-writer.

Vagmi, Brahma Datt. Acharya, OT (Vyākaraṇa, Sāhitya). *b.* 19.12.1916. Gurgaon, Haryana. Acharya, Govt. College Haryana. *Bks.* 04. Pārthacaritāmṛtam (Mahākāvya), Adbhuta-pañcatākāvyam, Śrīstavarājaḥ. *Expired. Spl.Ref.* Honourary Doctor Title by Sanskrit Vidwat Goshti.

Vahi, Chanchal. M.A. B.Ed. *b.* 13.11.1933. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* B-317, Prashant Vihar, New Delhi. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Vahi, Prakash. M.A., B.Ed. *b.* 15.07.1937. Principal, Chandra Arya Vidya Mandir Senior Secondary School, East of Kailash, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* Type 3, Sector 11/75, Sadik Nagar, New Delhi – 110049. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vaidic, Vedwati. M.A., Ph.D. *b.* 09.04.1949, New Delhi. Reader, Sri Aurbindo College, New Delhi. *Bks.* 05. Śvetāśvatara Upaniṣad ke Bhāṣyon kā Adhyayana, Upaniṣadon ke Ṛṣi, Upaniṣadon ke Nirvacana, Upaniṣadyugīna Saṃskṛti. *Ps.* 15. *Add.* A-19 Press Enclave Saket, New Delhi-110017. Ph. 011-26517295. M. 09873901947. *Spl. Ref.* Delhi Academy Award, Sr. Fellow ICPF, Trinadad, USA, Maurititus, Nepal, China, Europe, Bhutan, Iraq, Turki, Afganistan, Iran, Thailand, Singapore.

Vaidya, Atmadev. Shastri, Āyurveda-brihaspati. *b.* 1908. Bhaisolapur, Ujjain, M.P. *Add.* Dharmarth Aushadhalay, Vacch Raj Dharmashala, Ujjain (M.P.). *Spl.Ref.* Āyurveda.

Vaidya, Kishor Kumar Ramakant. Acharya in Vyākaraṇa, B.S.A.M. *b.* 12.02.1954, Baroda, Gujarat. Asst. Prof. (Vyākaraṇa). *Gp.*. L.G. Shukla, S.Y. Mishra, J.R. Pathaka. *Add.* Sultanpur, Desayi Khancha, Baroda (Gujarat). *Spl. Ref.* Vyākaraṇa, Āyurveda.

Vaidya, Kshama Datt Shastri. Shastri, Acharya in āyurveda. *Age.* 96 yrs. in 1990. *Add.* Shiva Bhola Mandir, Dhauli Pyau, Najafgarh Road, New Delhi – 110018. *Spl. Ref.* Āyurveda.

Vaidya, Mahendra Someshwar. Ph.D. *b.* 16.05.1948. Prof. Arts & Commerce College Chikhli Distt. Valsad. *Ps.* 02. *Add.* Shri Ganesh Kripa 1st Sahayta Society, College Road, Chikhli. Distt. Valsad. *Spl.Ref.* Alaṅkāra śāstra.

Vaidya, Ramshastri Acharya. Acharya (Sāhitya, Āyurveda) *b.* 05.03.1950. Chief Physician. *Add.* Devakalpa Kutir, Sanskrit Nagar Group Housing Society, Plot No. 3, Sector-14, Rohini, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vaidya, Tara. M.A., B.T. Asst. Prof.. *Add.* Govt. Sanskrit New P.G. Girls College, Kila Maidan, Indore – (M.P.). *Spl.Ref.* Darśan śāstra.

Vaidya, Vasudev Shastri. Āyurveda, Acharya, Āyurvedabrihaspati. *b.* 1910, Dhokar, Ujjain, M.P. Āyurveda Physician. *Gp.* Pannalal Shastri, Chandrachud Shastri. *Bks.* Carakavacanāmṛtam. *Add.* Dharmarth Aushadhalaya, Vyayamashalavali Gali, Jawahar Marg, Ujjain M.P. *Spl.Ref.* Āyurveda śāstra.

Vaijapurakar, Ramchandra Govind. Acharya, M.A. *b.* 26.03.1955, Varanasi, (U.P.). Asst. Prof. *Gp.* Govinda Narahari Vaijapurakar, Shrinarayan Mishra. *Ps.* 10. *Add.* Shri Kashi Visvanath Sanskrit Mahavidyalaya, Ellis Birdge,

Sanyasashram, Ahmedabad (GJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vaishnav, Hemant Vinod Chandra. Ph.D. *b.*23.07.1968. Prof. Malvada Arts College, Tehsil Kadana Distt. Panchmahal. *Ps.* 02. *Add.* Vaishnavi Appartment Luharfani Near Nagarpalika Lunawada, Panchmahal. *Spl.Ref.* Economics.

Vaishnav, Kanu Bhai Deva Bhai. Ph.D. *b.*15.05.1966. Prof. Mr. & Mrs. P.K. Kotawala Arts College Rajmahal Road Patan, Gujrat. *Ps.* 02. *Add.* 2, Satyam Nagar Society Karmbhoomi Society Road Patan Uttar Gujrat. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vajapat, Nephade Vandana. M.A. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Govt. Old G.D.C., Moti Tabela, Indore M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vajapeyi, Manshankar. Acharya. *b.* 15.10.1924, Unnao, Kanpur, (U.P.). Teacher. *Gp.* Vishambharnath Sharma, Badarinarayana Trivedi. *Add.* Kallumal Sanskrit Mahavidyalaya, Chavalmandi, Kanpur (U.P.). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vajirbhai, Harkaniya. M.A, B.Ed. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Shri Vanaraja Arts & Commerce College, Dharampur, Valsad, Gujrat. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vajpayi, Ramavtar. NavyaVyākaraṇacharya. *b.* 03.07.1939, Patoura, Banda, U.P. Principal. *Ps.* 02. *Add.* Shri Vamadev Sanskrit Mahavidhayala, Kailapuri, Banda U.P. *Spl.Ref.* Navyavyākaraṇa.

Vakankar, Siddharth Yaswant. Ph.D. *b.* 16.01.1947. Prof. Oriental Institute M.S. University Near Rajmahal Darwaza Varodara. *Add.* I-5 Vrindavan Estate, Pashabhai Patel Park, Varodara.. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa śāstra & Manuscripts.

Vanjha, J. R. Ph.D. Prof. Govt. Vinyan College Gujrat College Ahemdabad. *Ps.* 02. *Add.* E/ 12, 10 Banglow, Govt. Quarter, Gulbai Tekri Ambawadi Ahemdabad.

Vankar, Babu Bhai Heera Bhai. Ph.D. *b.*01.05.1969. Prof. Prabhu Swami Science & H.D. Patel Arts College Kadi. *Ps.* 03. *Add.* 16 Veer Maya Nagar Sutajpura Road Kadi Distt. Mehasana. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vankar, Bhabhar Bhai Jetha Bhai. Ph.D. *b.* 12.03.1968 Prof. K.C. Seth Arts College, Vill Post Tehsil Bhirpur, Distt. Kheda. *Ps.* 02. *Add.* Mochi Wadia. Tehsil Lunawada. Distt. Panchmahal. *Spl.Ref.* Vedānta.

Vankar, Kantilal Bhana Bhai. Ph.D. *b.*12.04.1967. Prof. Arts & Commerce College Idar Distt. Sambharkanta. *Ps.* 02. *Add.* Sheelalekha Society, Near Jawanpura Idar Distt. Sambharkanta. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vankar, Mangal Bhai Gana Bhai. Ph.D. *b.*01.06.1969. Prof. Shri D.V. Rawal Arts Commerce College Halvad, Surendra Nagar. *Ps.* 02. *Add.* Near Bus Stand, Halvad Distt. Surendra Nagar. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vankhandeshwar, Peetambara peetha-dheeshwar. Studied in Vyākaraṇa. *b.* 26.03.1898. Vill. Rampur. Teh. Chakiya. Kashi. *Gp.*. Pt. Brahmanand Jha. *Bks.* 12. Śrībagalāmukhīrahasyam, Śarabhatantram, Reṇukātantram, Saptavimrśati-rahasyam, Chinnamastā Nityārcanam. *Expired on* 09.07.1929. *Spl.Ref.* Established Bhagawati Peetambara in 1935. Shriyantra and Bhagwan Parshuram Temple in 1933.

Varadachariar, Navalpakkam N. Nyāya Shiromani, Vedānta Siromani, Kṛṣṇa Yajurveda, Mīmāṃsā. *b.* 26.11.1926. Kanchipuram. TN. *Ps.* 30. *Add.* 2/9 Car Street, Tiruvandipuram, Cuddaloor – 01. *Spl.Ref.* Veda and Vedic Sanskrit Sāhitya, President Awardee, Title of M.M. by Sanskrit Vidyapeetha, Tirupati and Veda Vedānta Payonidhi by Ahobila, Matha.

Varadacharya, K. S. Navya Nyāya, Viśiṣ-ādvaita & Darśana Scholar. *b.* 18.10.1922. Chengalpet TN. Project Leader Academy of Skt. Research Melkote. *Gp.* Srimad Abhinav Rang Nath Brahmatantra, Atmakur Deekshachar *Bks.* 05. Tattvasaṅgraha with Commentary, Nyāya Mañjarī with Commentary. *Ps.* 50. *Spl. Ref.* Pandit Ratan by Kanchi Kam Kotepeeth.

Varadacharya. M.A., Ph.D., Diploma (French, German). ***b.*** 15.06.1914, Kanchipuram, T.N. ***Gp.***. M.M. Kuppuswami. ***Bks.*** Udayanakṛta Kāryāṇāmadhyayanam. ***Add.*** 115, 12, Cross Road, Rainbow Nagar, Pondicherry. ***Spl.Ref.*** Nyāya śāstra.

Varadarajan. M.A. B.Ed. ***b.*** 30.05.1943. Arsikare (KT). Teacher, Bharatiya Vidya Bhavan. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Ramaji Mandir. Opposite Govt. Press Baroda.

Varadraj, T. V. Veda Shastri, āyurvedaśiromaṇi. ***b.*** 15.01.1947, Tanjavur, T.N. Āyurvedaic Physician. ***Gp.*** Ramaswami Sharma, Anantram Shastri. ***Add.*** Tanjavur, T.N. ***Spl.Ref.*** Āyurveda, Kṛṣṇayajurveda.

Varadrajan, Kanta Ben. Ph.D. ***b.***01.03.1946. Prof. L.D. Arts College Navrang Pura Ahemdabad. ***Ps.*** 05. ***Add.*** 49, Nilam Park, Near Subhash Chauk Mem Nagar Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vedānta śāstra.

Varadrajan, S. Vyākaraṇa Shiromani, B.Ed. ***b.*** 24.02.1963, Pandur, T.N. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Sannidhi Street, Pandur, Villupuram- 606115 T.N. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa śāstra.

Varakhedi, Shrinivasa. M.A. (Skt,Darśana). Ph.D. ***b.*** 10.07.1973. (Bagalkot). Director. ***Bks.*** 10. Tarkanavanītam, Śaktivāda, Kārakavādaḥ, Kṣemendrakāvya-saṃgrahaḥ, Nyāyasudhā-nuvādaḥ. ***Add.*** H.No. 24/10. Temple Road. ITI Colony. Katriguppa. Main Road. Bangalore – 85.

Varalakshmi. K. M.A. M.Phil. Ph.D. ***b.*** 29.10.1969. Hyderabad. Deputy Director. Osmania University. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 16-2. 139/ 14, Dayanand Nagar. Malakpet. Hyderabad. Andhra Pradesh. ***Ph.*** 27070281. ***Spl.Ref.*** Double Gold Medalist.

Vardacharya, I. S. Mīmāṃsā, Nyāya. ***b.*** 30.06.1922, Kanchipuram, T.N. Rtd. Prof., Mysore Maharaja Sanskrit Mahavidhyalaya. ***Gp.*** T.V. Ramchandra Dixit. ***Bks.*** Śloka Vārtika Bhūṣaṇa, Tattvaloka, Śāstraloka Mīmāṃsā-bhūṣaṇa. ***Add.*** No. 332, D. Subbaiya Road, Chamraj Mohalla, Mysore- 570004. ***Spl.Ref.*** Mīmāṃsā. Nyāya śāstra.

Vardadesikan R. Vidvān, M.A., Shiromani. ***b.*** 07.02.1903, Kanchipuram, Chengalput. ***Bks.*** Pramāṇāni. ***Add.*** 18, 9th Cross, North Lane, Rainbow Nagar, Pondicherry. ***Spl.Ref.*** Sāhitya śāstra.

Vare, Anna Shastri. ***b.*** 1869, Nasik. ***Bks.*** 11. Śukla Yajurveda Karmakāṇda Pradīpa, Śukla Yajurvedaśānti-īkā, Pratiśatāsāraṇī-pradīpa, Gṛhyakārmakāṇdapradīpa, Srota-karmakāṇdapradīpa. ***Expired in*** 1939.

Variyar, K. Ramakrishna. Rashtra Bhasha Visharad, LLB. ***b.*** 1931. ***Bks.*** 01. Pāritoṣikam. ***Add.*** 16 RR Flat, 12 Marg, Ashok Nagar, Chennai – 83.

Variyar, P. S. ***b.*** 1869. Keral. ***Bks.*** 03. Aṣṭāṅgaśārīram. Bṛhacchārīraṃ. Anugra-hamīmāṃsā. ***Spl.Ref.*** Vaidya Ratna Dr. P.S. Variyar Arya Vaidyashala, Kottikal was established by him.

Varnekar, Sridhar Bhaskar. M.A., D.Litt. ***b.*** 31.07.1918. Nagpur, Maharashtra. Rtd. Prof., Nagpur V.V. ***Bks.*** 18. Śivarājyodayam, Vivekānandavijayam, Kālidāsarahasyam, Śramagītā, Tīrthabhāratam, Saṃkṛtavāṅmaya Kośaḥ. ***Add.*** 81, Abhyankar Nagar, Nagpur 10. Maharashtra. ***Spl. Ref.*** Poet, Music, Member of Maharastra Govt. Skt. Committee, Sāhitya Academy, Sāhitya Academy Award, Kalidas Puraskar, Sri Vani, President Awardee.

Varni, Ganesh Prasad. Nyāya-Acharya. ***b.*** 1931, Hansera, M.P. ***Gp.*** Pt. Ambadas Ji. ***Bks.***10. Samaya Sāra (Saṃskṛta Commentory), Vaṇī Vāṇī, Merī Jīvana Gāthā, Daśalakṣaṇa Dharma. ***Expered on*** 15.09.1961. ***Spl.Ref.*** Nyāya, creative writer.

Varyar, Keshav P. Dvaita Vedānta, Nyāya ***b.*** 16.02.1942, Asst. Prof. Purna Pragya Vidyapitha Sanskrit Mahapathashala. ***Ps.*** 02. ***Add.*** Purnapragya Nagar, Bangalore – 560028 (KT). ***Spl.Ref.*** Dvaita Vedānta, Nyāya.

Varyar, Venkatesh P. M.A. ***b.*** 13.08.1952. Asst. Prof. ***Ps.*** 03. ***Add.*** Poornapragya. Vidyapeetha, Kalyan Nagar, Banglore KT. ***Spl.Ref.*** Vedānta śāstra.

Vasant Lal. Shastri, M.A., M.Phil, Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Govt. Sanskrit College, Nabha-147201 Punjab. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vasant M. Acharya, B.Ed., Ph.D. *b.* 01.04.1959, Nenmanda, kozhikode, Kerala. Research Associate, Rashtriya Sanskrit Akademy. *Gp.* Chandra Shekhar, Radha Krishna. *Bks.* Advaitavedānte Bhāmatīprasthāna-vivaraṇa-prasthānayoḥ Tulanātmakadhyayanam. *Add.* Mekkaipad, Parannur, Narikkunu, Kozhikode Kerala. *Spl.Ref.* Advaita śāstra.

Vasantakumari, V. M.A. M.Phil. Ph.D. *b.* 18.05.1966. (Kerala). Asct. Prof. Shri Shankaracharya Univ. of Kerala. *Ps.* 16. *Add.* Vasudha. Puthenkavu Road. Kalady P.O. Ernakulam Dist. Kerala State. *Pin.* 683574. *Ph.* 0484 – 2463169.

Vashishth, Chittaranjan. M.A., Ph.D. *b.* 11.12.1920. Rtd. Prof. *Bks.* 03. *Spl.Ref.* Honourary Vachaspati by Tirupati Skt. Vidyapeetha, Gyan Ratna Title, He has taught in Bangaladesh for 13 Years and Ravindra Bharati Univ., Founder of the Centre of Indology Indian and Western Philosophy in his native Place. President Awardee.

Vashishth, Rajendra Prasad. M.A., M.Phil. Acharya in Vyākaraṇa, *b.* 23.03.1960, Lothvi, Lauhari, H.P. Asst. Prof. *Ps.* 02. *Add.* Shri Saraswati Sanskrit Degree College, Dangar, Bilaspur (H.P.). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Vashishth, Ravindra. M.A., Ph.D. *b.* 07.12.1952. Asst. Prof., Sivaji College, Ring Road, New Delhi. *Add.* B-B-77, Shalimar Bagh, Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vashishth, Satyadev. *b.* 24.08.1912. Jalandhar, Punjab. HOD, Āyurveda Deptt., Gurukul, Jhajjhar. *Bks.* 02. Satyāgrahanītikāvyam, Viṣṇukāvyam. *Expired* in 1998. *Spl. Ref.* Poet, Vaidya. Veda, Vyākaraṇa śāstra.

Vashishth, Shridhar. Acharya, M.A., M.Ed., Vidyavaridhi. *b.* 18.02.1936. Kohat (Now in Pakistan) Rtd. Prof. LBS Skt. Vidyapeetha. *Gp.* M.M. Parmeswaranand Pt. Parmanand, Dr. Hemraj Vaha, Dr. Deviraj Chanana. *Sp.* Prof. R. Devanathan, Prof. A.P. Sachidanand, Dr. Sudarshan Jha. *Bks* 03 Saṃkṛta Śikṣaṇavidhi. *Ps.* 25. *Add.* 429 Sec. 7 Gurgaon-122001. Haryana. Ph. 0124-2306823, M. 09350106546. *Spl. Ref.* President Awardee. Vyas Samman, Sāhitya Seva Samman, Nepal.

Vashishth, Vidhya Sagar. Acharya in Jyotiṣa, M.Phil *b.* 20.09.1960, Galasi, Damla, Bilaspur, Himachal Pradesh. Principal. *Add.* Shri S. Sanskrit Mahavidhyalaya, Dangar, Dhumari, Bilaspur (H.P.) *Spl.Ref.* Jyotiṣa śāstra.

Vashisth, Bihari Lal Shastri. Shastri, Jyotiṣa Acharya, Sāhityaratna, Vidyavaridhi. *b.* 16.01.1935, Lecturer. *Bks.* 03. Śrīvaiṣṇavavijayapañcāṅga, Jyautiṣaratnamālā, Vaidikasiddhāntajyautiṣa. *Add.* 23, Sriraghunathpuri, Jammu (J & K). *Spl.Ref.* Jyotiṣa, Sāhitya.

Vasudeva Yaji, Kota. Vidvān (Dharmaśāstra, Mīmāṃsā, Navya Nyāya, Jyotishalankar). *b.* 11.03.1928, Saligram, Udupi, KT. *Bks.* 01. Kṣayamāsa-mīmāṁsādayaḥ. *Add.* Manisha, 1469/1, 7 Cross, Krishnamurtipuram, Mysore (KT). *Spl.Ref.* Ṛgveda, Dharmaśastra, Nyāya.

Vasudeva, T. V. M.A. Ph.D. *b.* 29.09.1959. Chennai. Research Assistant. *Ps.* 01. *Add.* Plot No. – 39. Door No. – 6. II Lay Out. L.H. Nagar. 6th Cross St. Adambakkam. Chennai. – 600 088. *Ph.* (2454829).

Vasudevan, A Vasudevachri Annathur. Mīmāṃsāśiromaṇi, Shiksha Shastri, M.A., M.Ed., Ph.D. *b.* 08.03.1942. Chengalpatti (T.N.). Skt. Pandit. *Gp.* Naidruva, Madapoosi (Disciples of Sri Ahobila Muth). *Bks.* 05. Śrī Mukundamālā, Rāmāyaṇa Pañcaratnam, Candrāloka Mayūkha, Vṛttaratnākara. *Ps.* 05. *Add.* L/43-B Bharathidasan Colony KK Nagar, Chennai 600078. Ph. 040-24047546. M. 09490710253. malolanv@yahoo.com *Spl. Ref.* National Award for Teacher M/o HRD 1988, Skt. Pracara Chaturah Award 1989, Mīmāṃsā, Founder Sect. of Skt. Pandit Association Chennai.

Vasudevan, M. K. Vyākaraṇaśiromaṇi, Acharya in Sāhitya, B.Ed. *b.* 14.12.1954, Nachiyar Kovil,

Tanjavur Dist, T.N. *Gp.* P.N. Raghvacharya, K.V. Virarghavacharya, N.S. Ramanujatatacharya. *Ps.* 10 *Add.* 20 A, Mahatma Gandhi Marg, Pondicherry- 605001. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Sāhitya, B.Ed.

Vasudevan, T. M.A. M.Phil. Ph.D. B.Ed. *b.* 14.11.1955. Elamkulam (Kerala). Asst. Prof. *Bks.* 01. Āścarya Cūḍāmaṇi (1995). *Ps.* 02. *Add.* Dr. T. Vasudevan. Lecturer. Sāhitya. SSUS Lalady. *Ph.* 460279.

Vatsa, P. N. Acharya. M.A., L.L.B., Post – Diploma in Library Science, Ph.D. Asstt.Prof., Dy. Registrar I/c (Admn. & Finance). Rastriya Sanskrit Sansthan, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* 518, Mundaka, New Delhi – 110041. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vatsa, R. S. M.A. *b.* 10.08.1939. Rtd. Asct. Prof. *Ps.* 10. *Add.* Deshbandhu College, kalkaji, New Delhi. 110081. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vatsa, Uma Shankar. M.A. Sāhityaratna. *b.* 02.07.1924. Teacher. *Ps.* 02. *Add.* 420/9, Upper Anand Parvat, New Delhi – 110005. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Vatsala. M.A., Ph.D. *b.* 19.10.1961. Barilly. Selection Grade Lect., Govt. PG College, Jahalawar. *Bks.* 01. Yayāticaritam. *Ps.* 20. *Add.* C-25/1A-1 Ramkatora Road, Varanasi-221001. Ph. 07432-232315. M. 09414750220.

Vedacharya, B. Acharya. *b.*1930, Nayinar playam, Kallakurichi, T.N. *Gp.* Ramkrishna Shastri, Ramasubba Shastri. *Ps.* 05. *Add.* 987, Big Bazar Street, Karadikoyil Coimbatore-641001 T.N. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vedacharya, Ramesh Chandra. Acharya in Veda & Sahitya, M.A. *b.* 01.06.1948. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School, Ranjit Nagar, Delhi. *Add.* A-3/30, Hastasal Road, Uttam Nagar, Delhi – 110059. *Spl.Ref.* Veda, Sāhitya.

Vedacharya, S. M. S. Vyākaraṇa-Vedānta Vidvān. *b.* 05.04.1912, Saragur, Mysore, KT. Project Director, Vishishtadvaita Kosh. Sanskrit Research Academy, Melkote. *Add.* 1495, K.M. Puram. Dr. Ambedkar Marg, Mysore- 570004. Karnataka. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa, Vedānta & Veda.

Vedagiri, R. Sāhitya Shiromani, B.Ed. *b.* 22.08.1951, Pakshitirtham, Chengalpat Distt. T.N. Teacher. *Gp.* Gopalacharya, Tatacharya. *Add.* N.S.R. Oriental High School, Lepakshi A.P. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vedalankar, Jaidev. Vedālankāra, M.A. (Philosophy, Psychology), Ph.D., D.Litt. *b.* 05.12.1941. Rtd. Prof. & Head Deptt of Philosophy, Dean Faculty of Oriental Studies & Registrar, Gurukul Kangri V.V. *Bks.* 08. Vaidika Sāhitya kā Itihāsa, Vaidika Darśana, Maharshi Dayānanda kī Viśvadarśana ko dena, Bhārtīya Darśana : Tatva Avam Jñāna Mīmānsā ke Maulika Saṃpratyaya, Gurukula Kāṅgrī ke Sau Varṣo kā Itihāsa. *Spl. Ref.* Veda Vedang Rashi Puraskar 2000, Best Book in Phlosophy Awarded by ICPR 2001-02, Veda Ratna Rashi Puraskar 2004, Vishesh Puraskar by UP Skt. Academy 1999 etc.

Vedalankar, Kshitish Kumar. M.A., Vedālaṅkāra. *b.* 16.09.1916. Editor, Arya Jagat Weekly, Arya Samaj Anarkali, New Delhi. *Add.* D-81, Gulmohar Park, New Delhi – 110049. *Spl. Ref.* Sāhitya.

Vedalankar, Ramnath. Vedālaṅkāra, M.A., Ph.D. *b.* 07.07.1914. Faridpur, Bareilly. Ex-VC. Gurukul Kangadi Univ. Haridwar. *Bks.* 16. *Spl.Ref.* Veda, He was member of Research Committees Academic Councils of various Universites and Research Institutes, President Awardee.

Vedalankar, Subhash. M.A. Ph.D. *b.* 13.04.1942. Tonk. Pakistan. Guest Asst. Prof. Bharatiya Adhyayan Shankul. Maharishi Dayanand Saraswati Vishvavidhyalaya. Ajmer. *Bks.* 04. Amerikā Vaibhavam, Vijay Vallabhacaritam, Dakṣiṇāvarta Vilāsaḥ, Kalhaṇasya Rajataṃginyāṃ Citritā Bhāratīya Saṃskṛtiḥ. Jammū Kashmira Vilasaḥ. *Ps.* 05. *Add.* 74. Taneza Block. Adarsha Nagar. Jaipur – 302009. *Ph.* (0141) 2609050. 2788299. 09352862290.

Vedalankar, Sumedhamitra. Acharya, M.A. *b.* 09.08.1946, Marukiya, Madhubani, Bihar. Prof., Sanskrit Deptt. *Gp.* Brahmadatt Jijnasu, Dewswami, Pt. Devdutt. *Add.* Sarvodaya

College, Ghosi, Mau U.P. *Spl.Ref.* Vaidika Shahitya, Sanskrit Sāhitya, Prachin Vyakaran śāstra, Darśana śāstra. Written a number of papers including Ṛgvedasya Pañcama Maṇḍalasya Bhāṣāvaijñānika Adhyayanam.

Vedantacharya, Mohanlal. *b.* Gurudaspur, Distt. Punjab. *Bks.* 02. Khaṇḍanagarta Pradarśinī. Mahamohavidravaṇam. *Spl.Ref.* Khaṇḍanagart Pradarśinī is comentory of Khaṇḍana-khaṇḍakhādya.

Vedantaacharya, S. Satyanarayan. M.A. M.Phil. Ph.D. *b.* 22.04.1955. Kanaidighi. Medinipur. Asct. Prof. & Head. Bajkul Milani Mahavidyalaya. *Bks.* 02. Bhagavadgītā as Bhaktiśāstratatva Criticism, Vācaspater-maṇḍana-pṛṣ-ha-vimarśanam. Realisation of The Truth. *Add.* Bajkul Milani Mahavidyalaya. P.O. – Kismat Bajkul. Dist.– Medinipur. *Pin.* 721655. (W.B.). *Ph.* (03220) 74291.

Vedantam, Satya Srinivasa Ayyangar. M.A. Ph.D. M.A. *b.* 25.06.1955. Narasaraopet. Asct. Prof. *Bks.* 01. Saṃskṛta Vaṅgamaye Candraḥ. *Add.* 1 – 3 – 21/A. Burnpet – Narasaraopet– 522601. Guntor (Dt). A.P. India. *Ph.* (08647) 23935. *Spl.Ref.* Kāvya-śāstra Veda.

Vedantai, Ramkrishnacharya. Puran Vedānta-Acharya. Acharya in Sāhitya. Ph.D. *b.* 09.04.1944. Tulsi Nagar. Jila-Sagar. *Bks.* 01. *Ps.* 01. *Add.* Shrimad Bhagavat Ashram. Teacher Colony. Begamganj. Jila-Raisen. (M.P.)

Vedavati, Vaidika. M.A., Ph.D. *b.* 09.04.1947, Delhi. Asst.Prof., Arobindo College. *Bks.* Śvetāśvetara Upaniṣad kā Adhyayan. *Add.* A-19, Press Enclave, Saket New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vedia, Dashrathlal. M.A., Ph.D. *b.* 05.02.1938. Rtd.Prof. & śāstra Cūḍāmaṇī. *Bks.* 52. Limbajapurāṇa, Gautama Dharmasūtra with Maskari bhāṣya, Saṃvidhāna Brāhmaṇa, Viśvagunādarśacampū, Rambhāmañjarīnā-ikā. *Ps.* 100. *Add.* 4A, Nigam Society, Near Ghodasar Canal Smruti Mandir, Vatwa - 382445. Ph. 079-25891739. d.g.vedia@gmail.com *Spl.Ref.* Dharma śāstra, Purāṇa, Alaṅkāra Shastri.

Veer, Raghwan A. Nyāya Shiromani, Shikshashastri. *b.* 25.06.1963, Kumbakonam, Thanjavur, T.N. Research Scholar, Sanskrit Research Academy, Melkote. *Gp.* Govinda Ayyangara, Ranganarayan Jiyar. *Ps.* 03. *Add.* 8/21, Sannadhi Street, Tirunageswaram, Kumba-konam T.N. *Spl.Ref.* Nyāya, Darśana.

Veeraj, Uday Veer. M.A., Vedālaṅkāra. *b.* 07.11.1921. Bulandshahar, U.P. Hindi Adhikari. *Bks.* 01. Anīśopaniṣad. *Spl. Ref.* Skt. Scholar, Nepal, Bhutan, Bangladesh.

Veerraghavacharya, T. Uttumur. *Bks.* 02. Vaiśeṣika Rasāyanam (Vaiśeṣika Sūtrās Vṛttī), Paramārtha-Bhūṣaṇam, Nayadyumaṇi(Ed.). *Spl.Ref.* He was famous scholar of Nyāya, Mīmāṃsā and awarded by President Certificate of Honour.

Veezhinathan, Narayanaswami. M.A., Ph.D., Siromani, D.Litt. *b.* 24.06.1937. Tiruvarura. TN. Prof. Skt. Deptt., Madras Univ. *Bks.* 08. *Ps.* 52. *Spl.Ref.* Advaita Vedānta, Nyāya śāstra, Jawaharlal Nehru Research Fellowship, President Awardee.

Velankar, S. V. M.A., LLB. *b.* 22.06.1915 Maharashtra. Director, Central Ministry of Communication. *Bks.* 150. *Add.* Indiraniwas, AG Street Mumbai - 04. *Spl. Ref.* Skt, Hindi, English, Gujarati, Pali, Aardhmagdhi, German, French, Inventor of Pincode System, Director & Actor Skt. Rang, Rashehwar Award Sursingar Parishad, Mumbai, Bharat Bhasha Bhushan Award from Bhartiya Bhasha Sāhitya Sammelan, Mumbai.

Velankar, Shri Ram. Ratnagiri. *Bks.* 03. Rānī Durgāvatī (Nā-aka), Svātantrya Lakṣmī, Chatrapatī Śivājī. *Spl.Ref.* He has written seven Dramas.

Velankar, Shri V. M.A. *b.* 1915. Ratnagiri in MH. *Bks.* 12. Jīvanasāgara, Jayamaṅgala, Javāhara Cintanam, Saṃsārayātrā. Javāhara Jīvanam.

Venkat, Krishna. Nyāya Shastri, Acharya in

Sāhitya. *b.* 01.09.1914, Kanchipuram. ***Add.*** 78-B, Salai Street, Kanchipuram T.N. ***Spl.Ref.*** Nyāya, Sāhitya śāstra.

Venkatachalam, V. M.A., Shiromani, Dip. in German. *b.* 07.07.1925. Kovilpatti, Tamilnadu. V.C., Varanasi, Darbhanga V.V., LBS Skt. Vidyapeetha. ***Bks.*** 05. Bhāṣā, Vividhavidyā Vicāracatura, Kālidasa reflections, Bhoj and Indian Learning, Viśva Dṛṣṭiḥ. ***Add.*** 62, Madhuban Apptt., Dauji Complex, Sigra, Varanasi – 10. ***Spl. Ref.*** President Awardee, Padamsri, An Eminent Scholar, Special Research in Kalidas, Bhoj, Sankaracharya.

Venkataraman, B. V. Acharya (DvaitaVedānta, Nyāya, Vyākaraṇa), Vidyavaridhi. ***b.*** 07.07.1980. Anantpur AP. Asstt. Prof., Deptt. of Darśana, JRR Skt. Univ., Jaipur. ***Gp.*** Sri K Satya Narayana Shastri, Shri K.E. Devanathan, Shri D. Prahaladacharya, Sri Hari Dass Bhatt. ***Bks.*** 01. ***Add.*** No. 20 Staff Quarter JRR Skt. Univ., Jaipur-302026. Ph. 0141-3254576. M. 09928480622. Vyākaraṇaraman@yahoo.com ***Spl. Ref.*** DvaitaVedānta, Nyāya, Vyākaraṇa.

Venkataramanya, B. M.A., Vyākaraṇa Vidhya Praveen. ***b.*** 22.03.1924, Bandalpalam, Nellore, A.P. Asst.Prof. ***Gp.***. Gajulpalli Hanumat Shastri. ***Add.*** 4/309, Ashram Vithi, Prottatur, Cuddappa A.P. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Venkatnathacharya, N. S. M.A. Vidvān. ***b.*** 23.03.1925, Vill Nuggehali, Hasan, Distt. KT. ***Bks.*** 36. Kau-ilyārtha Śāstra, Kriyāsāra (Vīraśaiva Darśana Viṣayaka). ***Add.*** No. 5, Gangotri Lay Out, First Stage Saraswatipuram, Mysore, KT. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda, Navya Nyāya, Vyākaraṇa, Sāhitya śāstra.

Venkatram, V. R. Shiromani, B.Ed. ***b.*** 08.02.1952, Mannargudi, Thanjavur, T.N. Asst.Prof., Brahmavidya Pathshala, Vyasashram. ***Gp.*** Venkatraghvacharya, K.A. Balsubrahamanya Shastri. ***Ps.*** 01. ***Add.*** 17, Adhyapak Nivas, Yerpedu, Chittoor A.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya śāstra.

Venkatraman, S. Sāhitya Shiromani. ***b.*** 15.11.1933, Vallavanur, South Arcot, TN. Sanskrit Pandit. ***Add.*** French Institute, Pondicherry. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, Kṛṣṇayajurveda.

Venugopalacharya. M.A. ***b.*** 1904, Purisai, North Arcot, T.N. ***Gp.***. Purisai Raghavacharya, Purisai Shrinivasacharya. ***Add.*** 6, Anaikatti Street, Kanchipuram T.N. ***Spl.Ref.*** Kṛṣṇayajurveda.

Verma, A. R. Raja. ***b.*** 1863, Kerala. Asst. Prof. of oriental Languages of Maharaja's College. Trivendrum. ***Bks.*** 12. Meghadūta (Tr.), Kumāra saṁbhavam (Bhāṣya), Malayālam Śākuntalam, Mālavikāgnimitram (Bhāṣya). Cārudattam (Bhāṣya). Modern Indian Literature on Anthology. ***Expired in*** 1918. ***Spl.Ref.*** His Important works are keralā Pāṇinīyam, Bhāṣabhūṣaṇam, Bṛhat mañjarī and sāhitya sāhayam. The last of which introduced English – style punctuation to Malayalam.

Verma, Anandasimha. M.A., B.Ed. ***b.*** 26.03.1940. Bhashadhyapaka (Language Teacher). ***Ps.*** 02. ***Add.*** 764, Timarpur, Delhi–110007.

Verma, Aruna. M.A., Ph.D.. ***b.*** 22.02.1933. Lecturer, Sanskrit Department, Delhi University. ***Add.*** Miranda House, Delhi University, Patel Chest Marg, Delhi – 110007. ***Spl. Ref.*** Veda.

Verma, Damayanti. M.A., B.Ed., B.Lib.Sc. ***b.*** 10.10.1940. Teacher, Govt. Girls Senior Secondary School No. 1, Janakpuri, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C 3A/21 A, Janakpuri, New Delhi–110058.

Verma, Ganeshilal. Acharya in Vyākaraṇa. M.A. ***b.*** 01.03.1950. Language Teacher, Govt. Co-Education. Madhyamika Vidyalaya, E-Block, Nand Nagari, Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** D-2/14, Nand Nagari, Delhi – 110093. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Verma, K. N. Acharya in Sāhitya. Teacher & Physician. ***Ps.*** 02. ***Add.*** C- 945, Saraswati Vihar, New Delhi- 110034. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Verma, Laxman Singh. Acharya, Sāhityaratna, M.A., L.T. ***b.*** 15.12.1929. Teacher, Diwanchand Higher Secondary School, Lodhi Road, New Delhi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** F-60/C, M.I.G. Flats, G-

Area, Hari Nagar, New Delhi- 110064. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Verma, Madan Lal. M.A., Ph.D., Sāhitya Ratna Prabhakar Visharad. *b.* 16.05.1931, Talamba, Multan (in Pakistan). Rtd. HOD Kurukshetra V.V. *Gp.* Vinaymohan Sharma. *Bks.* 02. Sadānīrā, Kapiśā *Ps.* Several Articles. *Add.* 133-L/A, Basera, Model Town, Rohtak – 124001 (HR). *Spl. Ref.* Sāhitya, Hans Samman, Maharishi Balmiki Puraskar, Poetry in Hindi and Skt.

Verma, Mahaveer Singh. Shastri. Acharya in Sāhitya. Āyurvedaratna. Sāhitya-ratna. *b.* 15.10.1935. Kot. Dadari. Goutam Budda Nagar. *Add.* I. B – 1/8. Shastri Ji. Dyalpur. Patralaya – Gokulpur. Delhi – 110094. II. 134 – Karawal Nagar. Shastri Gali. Delhi – 94. *Ph.* 2854603. *Spl.Ref.* Āyurveda.

Verma, Nargis. M.A., Ph.D. *b.* 05.02.1945, Peshawar. Asct. Prof. *Bks.* 01. The Etymologies in the Śatapatha Brāhmaṇa. *Ps.* 25. *Add.* B.N.–44. Poorvi Shalimar Bagh. Delhi – 110052. *Ph.* 7493373. 7494733.

Verma, Om Prakash. M.A. (Sanskrit & Hindi). *b.* 07.06.1937. Director (Post & Telegraph Department), Patel Chowk, New Delhi. *Ps.* 02. *Add.* C-3 A/21, A, Janakpuri, New Delhi–110058. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Verma, Prem Chandrika. Bharati Bhushan. Sāhitya Ratna. *b.* 15.10.1937. Tigaon. (HR). *Ps.* 02. *Add.* 28. Krawal Nagar. P.O. Gokulpuri. Delhi– 94. *Ph.* 2842094.

Verma, Raj Ray. *b.* 1866. Prof. Trivendram Mahavidyalaya. *Bks.* 01. Gauravānī Vijaya. *Expired in* 1918.

Verma, Raja Laxmi. M.A., D.Phil. *b.* 18.10.1947, Allahabad, (U.P.). Asct. Prof., Deptt. of Sanskrit, Allahabad University. *Bks.* Research papers and Radio plays. *Add.* Saket, 4, Prayag Street, Allahabad (U.P.). *Spl.Ref.* Darśana.

Verma, Satya Dev. M.A. (Skt., Hindi), MOL. *b.* 12.12.1918. Yamuna Nagar, Haryana. Prof., Mukundlal Rashtriya Mahavidyalaya, Yamuna Nagar. *Bks.* 04. Sāṃskṛtam Kurānam, Keshavacaritam, Saṃskṛtakāvyacandrikā. *Expired* on 05.01.2000. *Spl.Ref.* Honour from Delhi and Maharashtra Govt.

Verma Satyavarat. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 13.10.1939. Kharvana, HR. Rtd. Principal PG College. *Bks.* 26 Navoḍhā Vilāsam, Nāgara Sarvasvam, Abhinava Kathā Mañjrī, Glimpses of Jaina Skt. Mahākāvyas, Lagusiddhānta Kaumaudī Prakriyā Bhāga. *Ps.* 200. *Add* 7/34 Chawla Chowk, Near Namdev Floor Milk, Sri Ganganagar, Rajasthan. Ph. 0154-2473343. *Spl Ref.* Urdu, Honoured Prof. Title from Vedic Shodh Sansthan, Hosiarpur. Vigyan Puraskar Rajasthan Skt. Academy Bhatt Mathuranath Shastri Award Rajasthan Skt. Academy, President Awardee.

Verma, V. K. M.A., Ph.D. Prof. *Bks.* Ṛgvedaprātiśākhyasya--īkā, Ṛgveda-prātiśākhya: Eka Parivartan, Śuklayajurveda-prātiśākhya--īkā. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Faculty of Arts., Banaras, Hindi University, Varanasi. U.P. *Spl.Ref.* Veda.

Verma, Vidya Sagar. M.A. *b.* 25.12.1944. Dajal. Ambassador I.F.S. (Rtd.). *Bks.* 02. Yoga Darśana Kāvya Vyākhyā, Lessons in Practising Yoga. *Ps.* 01. *Add.* D-63. I.F.S. Apartments. Mayur Vihar–I, Delhi– 91. *Ph.* 011) 22791640. 09871724733. *Spl.Ref.* Yoga & Ancient Indian Philosophy & Culture.

Vetal, Anand Anantaram. M.A., M.Phil., Shikshashastri. *b.* 1999. (v.s.). Teacher, Sri Sanatana Sarasvati Bala Mandir, Delhi. *Add.* U-U/179 C, Pitampura, Delhi-110034.

Vidani, Pushpa. M.A. (Sanskrit & Hindi), B.Ed.. *Age.* 44 years. PGT, Shri Sanatan Dharma Girls Senior Secondary School, East Patel Nagar, New Delhi. *Ps.* 03. *Add.* 11/A Pocket G.G., Vikaspuri, New Delhi – 110008.

Vidushi Hemlata. M.A., M.Phil. *b.* 10.03.1958. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Govt. Post-Graduate College, Bundi Rajasthan. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vidyabhushan, Sadashiv. Ashtavadhani. *b.* 07.02.1965. Brahmapur, Ganjam. *Bks.* 03.

Karṇaparva, Kṛṣṇajanma, Satīcarita Nā-akaṃ. *Expired on* 12.01.1930. *Spl.Ref.* Contributed to Sanskrit Literature and Oriya Literature, Being an Archive Member of Utkal Sammelan.

Vidyabhushanam, Anantacharya. Shastri Vidyabhushana. *b.* 1943, Chamoli, Garhwal, U.P. *Ps.* 10. *Add.* Sri Sidha Narsingh Badri Nath Mandir, Paltan Bazar, Almora (U.P.). *Spl.Ref.* Vedānta.

Vidyalankar, Anita. Vidyalankara. *b.* 15.12.1928. *Add.* J-56, Saket, New Delhi – 110017. *Spl.Ref.* Darśana & Veda.

Vidyalankar, Bharat Bhusan. Acharya in Veda, M.A., Ph.D.. *b.* 06.01.1943. Barelli, Uttar Pradesh. Asst. Prof. in Veda. *Gp.* Dr. Nigama Sharma. *Bks.* Ātharvaṇikārājanīti (in Hindi). *Add.* Gurukul Kangari Univ., Haridwar. *Spl.Ref.* Veda. Psychology.

Vidyalankar, Ganesh Prasad. Vyākaraṇa-tirtha. *b.* 1966, Midnapur, W.B. Principal. *Ps.* 03. *Add.* Sarvanga Chatuspathi, Midnapur (W.B). *Spl. Ref.* Sāhitya, Vyākaraṇa.

Vidyalankar, Hajari Lal. Shastri, Vidyālaṅkāra, Acharya in Sāhitya. *b.* 1915. Principal. Lajjaram Skt. College Pandu, HR, Akhil Bhartiya Gaud Brahman Skt. College, Rahatak. *Bks.* 05. Śivapratāpavirudāvalī, Saṃskṛta Mahākavi-divyopākhyānam, Indirā Vijaya Praśasti Śatakam, MahārṣI Dayānanda Śatakam, Śivaśatakam.

Vidyalankar, Jaidev. M.A., Ph.D. *b.* 17.01.1925, Jodhpur, RJ. Asst. Prof. *Gp.* Vagishavar Vidyalankara. *Add.* Maharishi Dayananda University, Rohtak (HR). *Spl.Ref.* Sāhitya and Veda.

Vidyalankar, Jaipal. M.A.. *b.* 13.03.1932. Asst. Prof., Hansraj College, Delhi. *Add.* 3, Adhyapak Niwas, Hansraj College, New Delhi – 110007. *Spl.Ref.* Sāhitya and Veda.

Vidyalankar, Mahesh. Vidyalankar, Acharya, Ph.D. *b.* 01.07.1949. Asst. Prof., Moti Lal Nehru College, Moti Bag – II, New Delhi. *Ps.* 05. *Add.* B-1, J-29, East Shalimar Bag, New Delhi–110052.

Vidyalankar, Narayan Shastri Kankar. Acharya (Vyakaran, Sāhitya, Sāṅkhyayoga), M.A., Ph.D. *b.* 13.07.1930. *Bks.* 08. Racanābhyudayam, Suvarṇana-kṣatramālikā, Hārdikodgā-rapañcāśikā. *Add.* 60 Sumerukanamarg, Ramganj, Dhanmandi, Jaipur – 03. *Spl.Ref.* President Awardee.

Vidyalankar, Subhash. Vidyālaṅkāra, M.A., LLB, Dipl. in Advance Russian. *b.* 15.01.1929. Moradabad. Ex-Vice-Chancellor Gurukul Kangri V.V. *Bks.* 08. Ha-hayoga trayī, Mahābhārata Sūktisudhā, Mahābhārata Navanīta, Yogaśabdakoṣa, Kālidāsa Sūkti Sudhā. *Ps.* 20. *Add.* D-6 Gulmoohar Park, New Delhi-110049. Ph. 011-26516339, M. 09560209779. *Spl. Ref.* Visited USA, Brittan, West Indies, New Zealand, China, Thiland, Kambodia, Singapore, Philippines.

Vidyalankar, Sumedha. Vidhyālaṅkāra, Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 21.04.1931, Rangoon. Asct.Prof., Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanksrit Vidhyapeeth. *Bks.* Mahābhārata meṃ Śāntiparva kā Ālocanātmaka Adhyayana. *Add.* B-22, Gulmohar Park, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya-Vyākaraṇa, Dharma-śāstra.

Vidyalankar, Vijay Veer. M.A., Ph.D. *b.* 13.07.1944, Mumbai. Princ. Usmaniya Univ., Dean Oriental Faculty Usmaniya Univ. Hyderabad. *Bks.* 12. Caturvedamanyānukrama Vivaraṇikā, Yajurveda Kāvyāmṛta, Vedāmṛta, Rasasiddhānta Vivecana, Vipañcikā. *Add.* Plot No. 54, H.No. 1-5-1063/5 Balyya Nagar, Old Alwal Sikandrabad A.P.

Vidyalankar, Vinay. Acharya in Vyākaraṇa, M.A., NET, JRF, Ph.D. *b.* 05.05.1972. Asct. Prof., Govt. PG College Nanital. *Bks.* 01. *Ps.* 10. *Add.* Deptt. of Skt., Govt. PG College, Ramnagar, Nanital-244715. Ph. 05947-271313, M. 09412042430. *Spl. Ref.* Rashtriya Vidya Saraswati Award Uttarakhand Gaurav Samman.

Vidyalankar, Vinay. Acharya in Vyākaraṇa, Ph.D. *b.* 05.05.1972, Aligarh, U.P. Asct.Prof. Govt.P.G.College Ramnagar, Distt. Nainital U.K. *Gp.*. Arsh Pathvidhi Punarudharak,

Guruvar Dandi Swami Virajanandasi. *Ps.* 05. *Add.* Govt. P.G. College Rammayar Distt. Nainital, U.K.

Vidyamartanda, Vibhumitra Shastri. Acharya, Sāhityaratna. Acharya, Gurukul, Gorakhpur, U.P. *Bks.* Saṃskṛta Anuvāda Prabodha (Hindi). *Add.* D.A.V. High School, Danapur Cantt. Patna (Bihar). *Spl.Ref.* Vyākaraṇa - Sāhitya śāstra.

Vidyapati, Gurram. M.A., M.Phil.. *b.* 08.07.1955, Nelluru, A.P. Asst. Prof.. V.R. College, Nelluru. *Gp.* Nalluru Krishnacharya, E.R. Shrikrishna Sharma. *Ps.* 05. *Add.* 16/2019, Vedvari Agraharam, Nellore – 524003 (A.P). *Spl.Ref.* Dharmaśāstra.

Vidyarthi, Ganesh Shankar. Acharya in Sāhitya. Shikshacharya. Ph.D. *b.* 01.06.1969. Basti (U.P.). *Bks.* 01. Saṃskṛtādhyāpanasya Mahattvam. *Add.* I. Vill. Bagheli. Siddharth Nagar. (U.P.). – 272206. II. 5/782. Viramkhand. Gomati Nagar. Lucknow – 226010.

Vidyavaridhi, Vijaypal. Acharya, Vidyavaridhi, Tradition in Jyotiṣa Āyurveda, Ṣad Darśana. *b.* 25.01.1929. Ghaziabad. Acharya. *Bks.* 13. *Spl.Ref.* Editor Veda Vani, Honour by Maharshi Valmiki Puraskar, Haryana Skt. Academy, President Awardee.

Vijayaraghavan, V. S. Nyāya, Sāhitya & Vedānta. Shiromani & Acharya (M.A.). *b.* 12.05.1963. Vadvvur (Tanjore). *Ps.* 03. *Add.* No. – 16. Adhyapak Nivas. Pratapganj. Vadodara – 390002. *Ph.* (0265) (R) 789216. (O) 795511. *Spl.Ref.* Veda and Vedānta.

Vijaylaxmi, Radha Krishnan. Acharya in Navya-Vyākaraṇa. *b.* 04.11.1956, Tozhiyur, Kerala. Research, Guruvayur Kendriya Sanskrit Vidhyapeeth, Puranattukara. *Ps.* 10. *Add.* West Vellanikara, Madakathara, Trissur Kerala. *Spl.Ref.* Vyākaraṇa.

Vijaylaxmi. M.A., NET, JRF, Ph.D. *b.* 01.11.1968. *Ps.* 30. *Add.* 25 Bara Pariwar, Gurukul Kangri V.V. Haridwar-249404. M. 09456888140. brahma63@gmail.com

Vijayraghavan, E. B. Vidvān. *b.* 20.09.1953, Tillainilayam, T.N. Veda Teacher. *Gp.* Subrahmanya Ghanpatigal. *Add.* Kamakshi Asharam, Salem- 636007 T.N. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra & Veda

Vijaysarathi, Sribhashyam. *b.*10.03.1936. Karim Nagar. A.P. Rtd. Prof., SVSA Mahavidyalaya, Varangal. *Bks.* 14. Mandākinī, Bhāratabhāratī, Dambhayugam, Parivādinī, Saṅgītamādhava. *Add.* Sripur Colony, Sai Enclave, Karim Nagar – 01. *Spl. Ref.* Sāhitya Academy Award, New Delhi and A.P.

Vijayshri. M.A., Ph.D. *b.* 23.12.1944, Delhi. Asst.Prof., Janki Devi College, Delhi. *Add.* 9/17, Patel Nagar (s) New Delhi- 110008. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vijayvargiy, Vimla. M.A. Asst. Prof. *Ps.* 05. *Add.* Deptt. of Sanskrit, Govt. Arts & Commerce College, Indore, M.P. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vijyan, K. M.A., Ph.D. *b.* 02.12.1947, Alappuzha, Kerala. Acharya. *Gp.* K. Balaram Phanikkar, Prof. Nilkant Shastri. *Bks.* Rasārṇava Sudhākara: A Critical Study. *Add.* 26/2031, Alira, Tutors Lane, Tiruvananthapuram-695001 Kerala.

Vikramdev. Acharya in Sāhitya, Vidhyavachaspati, M.A., M.O.L. *b.* 03.12.1933, Vice-Principal, D.T.E.A. Higher Secondary School. Mandir Marg, New Delhi. *Ps.* 05. *Add.* C- 3/280, Janakpuri, New Delhi- 110058. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vimala, V. P. M.A. M.Ed. M.Phil. Ph.D. *b.* 14.07.1961. (Kerala). Asst. Prof. Govt. Victoria College. Palakkad. Kerala. *Add.* Viswakalyan. N.K. Palayam. C.N. Puram. (P.O.) Palakkad. 5 – Kerala. *Ph.* 9446150119. *Spl.Ref.* First Rank in B.A. & M.A., UGC – JRF.

Vimla. M.A. SangeetVisharad. *b.* 26.07.1947, Bhilai, C.G. *Gp.* Prof. R.S. Harukar, Dr. R.N. Sharma. *Add.* C/o. Shri R.S. Date, 40, Sector 1, Palko T.S., Korba C.G. *Spl.Ref.* Sāhitya śāstra.

Vinod. M.A., B.Ed. *b.* 08.10.1948. Teacher, Govt. Higher Secondary Girls School Uttam Nagar, New Delhi. *Add.* E-C-153, Tagore Garden, New Delhi. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Virakar, Purushottam Narayan. M.A., B.T., T.D. *b.* 1911. Asst. Prof., Deptt. of Sanskrit, Tilak Maharashtra Vidyapeeth, Pune. ***Bks.*** 07. Saṁskṛtavihāraḥ, Saṁskṛtakaviśreṣ-haḥ (Marathi), Kokilakūjitāni, Saṁskṛta-nibandha-lekhanam, Sarasanā-ikā, Kiśorasaṅgitam, Kalpalatā (Marathi). ***Add.*** C-4/48-49, Laxmi Park, Pune – 411030 (Maharashtra). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Viramani, Kamalesh. M.A., Ph.D., Diploma German. *b.* 23.01.1944, Sargodha, (in Pakistan). Asst. Prof., Janaki Devi Mahavidyalaya, Delhi University. ***Gp.*** Dr. Dixit. ***Add.*** 1716/57 Hari Singh Nalawa Marg, Karol Bagh, New Delhi – 110005. ***Spl.Ref.*** Sāhitya, German.

Viravalli, Vasudevacharya. Shiromani. *b.* 15.06.1925, Uttaramerur, T.N. ***Gp.***. Kodavasala Swami Gosnipuram. ***Add.*** 11, Virapperumal Street, Uttaramerer, Chengalpat, T.N. ***Spl.Ref.*** Vedānta śāstra.

Virendra Kumar. Acharya in Sāhitya, Vidhya-vachaspati, Śikṣāśāstra. *b.* 15.01.1961. Asst.Prof., Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidhyapith, New Delhi. ***Ps.*** 10. ***Add.*** C-44-A, Nanhe Park, Om Vihar, Uttam Nagar, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhityaśāstra.

Virthare, Jagadish Pprasad. Acharya in Vyākaraṇa, M.A. *b.* 07.04.1954, Semakhedi, M.P. H.O.D. of Vyākaraṇa. ***Gp.*** Smt. Mira Gautama. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Sri Gautam Prachya Post Graduate Mahavidyalaya, Kasaganj, Etah (U.P). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Visalakshi, M. M.A. Ph.D. *b.* 12.04.1948. Thanjavur. Research Assistant, Madras. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Research Assistant. Dept. of Sanskrit University of Madras. ORI. Merina Campus. Chennai. ***Ph.*** 8444933.

Visalakshy, P. M.A. Ph.D. *b.* 25.02.1948. Tattaman Galam. ***Bks.*** 06. Development of Sanskrit Language from Mahābhāṣya to Kāśikā, Rāmavarmā Vijaya Campū Critical Edition, Alphabetical Index of Sanskrit Manuscripts (Vol. V-VI), Prakriyāsarvasva Candrakhaṇḍa. ***Ps.*** 24. ***Add.*** Poonuthura. Anupama Nagar. Pongummoodu. H.B. Colony. Medical College. P.O. Thiruvanantha-puram. ***Pin.*** 695011. ***Ph.*** (0471) 448958.

Vishnumurti, Manjitya K. Vidvaduttama. *b.* 16.10.1955. Asst.Prof., Dvaitavedenata Vidvan. ***Add.*** Purnaparagya Vidyapitham, Bangalore, KT. ***Spl.Ref.*** DvaitaVedānta.

Vishveshawar, Siddhant Shiromani. Nyāya, Sāhitya, Director Ramdas Darśana Peeth. Vrindavan. Gurukul (U.P.). ***Bks.*** 05. Nītiśāstram, Manovijñāna Mīmāṃsā, Sāhitya Mīmāṃsā, Vaidic Sāhitya Kaumudi. Pāścātyaṃ Tarkaśāstram.

Vishwa Prakash. M.A. Ph.D. *b.* 15.12.1935. Khada Distt. Kushi Nagar (U.P.). Asct. Prof., LBS, Rashtriya Skt. Vidyapeetha, New Delhi. ***Add.*** 0/39. Vijay Vihar. Uttam Nagar. New Delhi – 59. ***Spl.Ref.*** Veda & Sāhitya.

Vishwakarma, Hiralal. Acharya, M.A., Ph.D. *b.* 01.07.1952, Rasoolpur, U.P. Principal. ***Gp.*** Kapil Dev Mishra, Dr. Ramnath Dwivedi. ***Bks.*** Atharvavedacikitsāvijñānam. ***Add.*** A.D.N. Pharmacist Medical College & Hospital, G.T. Road, Mohan Nagar, Ghaziabad U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhityaśāstra, Āyurveda.

Vishwas, S. K. M.A., B.T. *b.* 01.01.1940. Principal, Govt. Boys Senior Secondary School No. 2, Moti Bagh, New Delhi. ***Ps.*** 02. ***Add.*** 23/14, M.B. Road, Sector-1, Pushpa Vihar, Saket, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhityaśāstra.

Viswajit Kumar. M.A., NET, Ph.D. *b.* 25.10.1970. Jahanabad, Bihar. Asst. Prof. Nava Nalanda Mahavihar, Nalanda. ***Bks.*** 02. ***Ps.*** 19. ***Spl.Ref.*** Pali, He has organized 21 Days Workshop of Pali Spoken Course Twice,

Vyas, Anand Swarup. Jyotiṣatirtha. *b.* Ujjain, M.P. ***Gp.*** Sanskrit Pt. Sharana Vyas. ***Bks.*** Bhaviṣya Ratnākara Patrika, Nārāyaṇa Vijaya MahākālaPañcāṅga. ***Add.*** Panchanga Office, Anand Bhavan. Bade Geneshji. Ujjain (M.P.). ***Spl.Ref.*** Jyautisa. ***Awards.*** M.P. Government Award.

Vyas, Ashok Kumar. M.A., Ph.D., b. 01.09.1975,

Shamgarh, M.P. Coordinator, Skt. SCERT, Bhopal. *Gp.* Prof. Balkrishna Sharma, Prof. M.M. Pathak, Prof. Somnath Nene. *Bks.* 10. Skt. Text books of School education (ed.). *Ps.* 05. *Add.* 12, Alaknanda Nagar, Ujjain, (M.P.) *Spl.Ref.* Sāhitya, Trainer for High school skt. Teachers.

Vyas, Bhanushankar Vasudev. Acharya in Jyotiṣa. *b.* 10.01.1951, Varodara, GJ. Asst. Prof. *Gp.* Laxmikant Jha, Paresh Shukla. *Ps.* 05. *Add.* 679, Vishal Nagar, Tarsali, Vadodara Gujarat. *Spl.Ref.* Jyotiṣa-śāstra.

Vyas, Bharat Kumar Bhikha Lal. Ph.D. *b.*31.05.1966. Prof. Arts & Commerce College Ambroli Distt. Surat. *Ps.* 04. *Add.* 69, Kailash Row House New Koshad Road, Ambroli Distt. Surat. *Spl.Ref.* Vedāntaśāstra.

Vyas, Bhola Shankar. M.A. Skt., Hindi, LLB, Ph.D., D.Litt. *b.* 1924. Bundi Rajasthan. Prof. & Head Rtd. Kashi Hindu Univ. Kashi. *Gp.* Shri Gavardhan Vyas (Father). *Bks.* 20. Śakti-Jayamahākāvyam, 'Nemidūtam' & 'Kālidasaḥ Tasya Kṛtittvam Ca'. *Ps.* 150. *Add.* 26 Sankatmochan Colony Lanka Varanasi 05. *Spl.Ref.* Poet & critics.

Vyas, Brahma Shankar P. M.A., Ph.D. *b.* 04.02.1935, Moradabad. Asct. Prof. *Ps.* 10. *Add.* -10, Giriraj, 6, Mabhaldarvari, Malad, Bombay– 400064 (MH). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vyas, Gopi Krishna. Kāvyatīrtha. *b.* 08.08.1915. Pokhran. Distt. Jaisalmer. Teacher. Govt. School. Jodhpur. *Bks.* 05. Sāmbasambha-vākhyam, Jayamallakāvya-kīrtilatā, Indirāna-kṣatraśatakam, Vainyacaritam, Amaranātha-darśanam. ***Expired on*** 31.10.1994. Jodhpur. *Spl.Ref.* Written – Sāmbsambhavam awarded by 'Magh' award of Rajasthan Sanskrit academy, Jaipur.

Vyas, Hitendra Govardhan Das. Acharya, B.Ed. *b.* 05.06.1963, Ishwariya, Rajkot, GJ. Teacher. *Gp.* Ramdas Kondinya, Bharatdev Rajgora. *Add.* Bhagwat Vidya Pitham, Varatantu Sanskrit College, 54, Sola, Ahemdabad, GJ. *Spl.Ref.* Sāhityaśāstra.

Vyas, Kirtida Banshilal. Ph.D. *b.*22.09.1970. Prof. Navjiwan Arts & Commerce College Dahod. *Ps.* 05. *Add.* Vajra Khadaytawad, Water Gate Dahod. *Spl.Ref* Vedāntaśāstra.

Vyas, Kishor Chandra Jayamanishankar. M.A. Shikshashastri. *b.* 06.02.1933, Surat, Gujarat. Asst. Teacher, Seth R.J.J. High School, Valsad, GJ. *Gp.* Satavelkaraji, Dr. Shastri., *Ps.* 10. *Add.* Mohitisa Chaul. Opp. Light House, Umargam, Valsad (GJ). *Spl.Ref.* Upaniṣhad. Alaṅkāra-śāstra.

Vyas, Kunvaralal Jain. Acharya, M.A., Ph.D.. Teacher, J.J. College. *Ps.* 05. *Add.* B-26, Dharma Colony, Nangloi, Delhi – 110041. *Spl.Ref.* Sāhitya.

Vyas, Madhusudan M. Ph.D. *b.* 10.05.1965. Prof. Arts College, Shambaji Distt. Sambharkanta. *Ps.* 05. *Add.* A- 203 Vrindavan Appartment, Navjiwan Chouk, Modsa Distt. Sambharkanta. *Spl.Ref.* Vedāntaśāstra.

Vyas, Mahesh Kumar. B.A.M.S., M.D. in Āyurveda, M.A. in Skt. & Philosophy, Ph.D. in Āyurveda. b. 19.12.1968, Shamgarh, M.P. Reader, Gujrat Āyurvedic Univ., Jamnagar, GJ. *Gp.* Prof. Balkrishna Sharma, Prof. M.M. Pathak, Prof. R. B. Sahgora, Dr. Shyamlal Sharma. *Ps.* 12. *Add.* 201, Shivam Plaza, 10, Patel Colony, Jam Nagar, (GJ). *Spl.Ref.* Āyurveda(Basic principle) & Sanskrit.

Vyas, Meena Ben Shanti Lal. Ph.D. *b.* 29.10.1964. Prof. Choudhary Mahila Arts College, Sector No. 7, Near S. T. Depo, GandhiNagar. *Ps.* 05. *Add.* 31-D Hari Nagar Row House, Wawol GandhiNagar. *Spl.Ref.* Purāṇa.

Vyas, Meeta Ben J. Ph.D. *b.* 31.01.1966. Prof. Shri M.P. Shah Arts, Science College Surendra Nagar. *Ps.* 04. *Add.* Anupam Kutir, Juni Manakwadi, BhavNagar. *Spl.Ref.* Vedānta śāstra.

Vyas, Nilesh. M.A., Acharya Jyotiṣa. *b.* 03.07.1980. Guest Prof., Maharshi Panini Skt. & Vaidik Univ. Ujjain M.P. *Gp.* Dr. Balkrishna Sharma. *Ps.* 01. *Add.* 61/11, Azad Nagar, Ujjain M.P.

Vyas, Pawan. M.A., Ach. Ph.D. ***b.*** 01.01.1978. Prof. Kalidas Skt. Academy Ujjain M.P. ***Gp.*** Dr. Balkrishna Sharma, Dr. Somnath Nene. ***Ps.*** 03. ***Add.*** 61/11 Azad Nagar, Ujjain M.P.

Vyas, Priti. Jodhpur (Rj.). ***Bks.*** 01. Kaṇ-hābharaṇam. ***Spl.Ref.*** Young Writer.

Vyas, Pt. Ambikadutt. Acharya (Sāhitya). English. ***b.*** 1858. Jaipur. (Rj.). Prof. Patna College. ***Gp.*** Pt. Durgadutt. Pt. Krishndutt. ***Bks.*** 91. Avatāra Mīmāṃsā Kārikā. Kathākusumam. Duḥkhadruma-ku-hāra, Sāmavatam, Śivarājavijayam. ***Expired in*** 1900. ***Spl.Ref.*** Awards – Bihar Bhushan. Bharat Bhushan. Bharat Ratna. Ghatikashatak. Shatavdhan. Sukavi. Gadyokavya Samrat. Poet. Established 'Sanskrit Sanjeevani' for Sanskrit Prachar. Dr. Shri Krishankumar Agrawal has done Ph.D. on his personality and works. Rajasthan Sanskrit Academy is honoring by name 'Pt. Ambikadutt Vyasgaya puraskar' every year on original prose book. He was a expert famous poet from his childhood and known as gadyakavya samrat. First time he wrote good poem in eight years age.

Vyas, Rajendra Prasad. Mahamahopadhyay. ***b.*** 29.08.1949, Bolundara, Sabarkant, Gujarat. Head, Deptt. of Jyotish, Maharaja Sayajirao University, Baroda. ***Ps.*** 10. ***Add.*** 6, Sahajanand Society, Near Subhash Park, Harsi Road, Baroda (GJ). ***Spl.Ref.*** Jyotiṣa.

Vyas, Rajesh Chunnilal. Ph.D. ***b.*** 20.08.1969. Prof. Seth P.T. Arts & Science College, College Road, Godhara. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Prasad 71, Vrindavan Nagar 2, Bamroli Road, Godhara . ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa śāstra.

Vyas, Ramakant Mohanlal. Acharya in Sāhitya, Shiksashastri. ***b.*** 10.08.1965, Kiwarali, Siradi, Rajasthan. Teacher. ***Gp.*** Ramadas V. Kaundinya. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Varatantu Sanskrit Mahavidyalaya, Bhagavata Vidyapith, Sola, Ahmedabad (GJ). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Vyas, Ramkrishn Tulajaram Vyākaraṇa-charya, M.A., Ph.D. ***b.*** 24.10.1934, Bolundra, Savarkantha, Gujarat. Director. ***Gp.*** Kantilala Yajnika, Balkrishn Pancholi. ***Bks.*** 01. Bṛhadāraṇyakopaniṣat (Ed.). ***Add.*** Oriental Institute, M.S. University, Baroda – 390002 (GJ). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Vyas, Rashmi Kant. M.A., Ph.D. ***b.*** 12.06.1949, Ujjain, (M.P.). Research Asstt., Birla Research Institute, Ujjain. ***Gp.*** Pt. Surya Kant Vyas (Father & Founder of Kalidas Akademi, Ujjain), Harindra-bhushan Jain. ***Ps.*** 05. ***Add.*** Bharati Bhawan, Mahakal, Ujjain (M.P.). ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

Vyas, Shridhar Sanatan Bhai. Ph.D. ***b.***02.02.1976. Prof. Smt. L. & C. Mehta Arts College, Near Love Garden Ahemdabad. ***Ps.*** 04. ***Add.*** 17/A Divya Jyoti Society Ramdev Nagar Satelite Road Ahemdabad. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇaśāstra.

Vyas, Surya Prakash. M.A., Ph.D. ***b.*** 15.08.1946. Prof., Kashi Hindu Univ. Varanasi. ***Gp.***. Prof. Ramchandra Dwivedi. ***Sp.*** Dr. Beena Agarwal, Dr. Anamika Singh. ***Bks.*** 25. Bauddha Vedānta Evaṃ Kāśmira Śaivadarśana, Bauddha Subhāṣita, Unmīlanam, Ācya ratinātha Jhā Racanāvalī, Tatra-vimarśa. ***Add.*** 128, Balaji Colony, Samne Ghat Road, Lanka Varanasi U.P.

Vyas, Ved. M.A., L.L.B. ***b.*** 01.09.1902. Asst.Prof., D.A.V. College, New Delhi. ***Add.*** 64, Golf Links, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya śāstra & Veda.

Vyas, Yogini ben H. Ph.D. ***b.***20.12.1957. Prof. Uma Arts & Nathiba Commerce Mahila College, Sector 23 GandhiNagar. ***Ps.*** 10. ***Add.*** Dehin 1435-C-1, Sector 2-B, Near Swami Narayan Mandir, GandhiNagar. ***Spl.Ref.*** Kāvya-śāstra.

Vyathit, Raghuvira Sharan. M.A., Ph.D. ***b.*** 01.04.1924, Khurja, (U.P.). Rtd. Asst. Prof., Shri Lalbahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapith, New Delhi. ***Bks.*** 01. Sañcārībhāvoṁ kā śāstrīya Adhyayana evaṁ rasa siddhāntakī ādhunika sandarbhoṁ meṁ sārthakatā. ***Add.*** S/485-86, Vivek Marg, School Block, Shakarpur, Delhi. ***Spl.Ref.*** Sāhitya.

W

Wadekar, Mukund. M.A., Ph.D. *b.* 09.02.1955, Vadodara. Prof. & General editor. *Bks.* 05. Aspects of Indological Studies, Sarvam Pratiṣ-hitam, Devīmahātmyam, Devalasmṛti reconstruction and critical study. *Ps.* 50. *Add.* 5/3, Shreeram Complex, Mangal Bazar, Opp. Koteshwar Temple, Vadodara – 390001. *Ph.* (R) 431035. (O) 425121. *Spl. Ref.* Scholar of Vedānta, Dharmaśāstra, Purāṇa, Manuscriptology.

Wakankar, Siddharth Yeshwant. M.A., Ph.D. *b.* 16.01.1947. 9/123, Shahade Sadan, Shivaji Park, Mumbai. Former deputy Director, Oriental Institute, M.S. Univ. of Baroda. Presently working as Director for ancient history and culture deptt., Jain university, Bangalore. *Gp.* Prof. Moreshvar Vinayak Mahashabde, Prof. Dr. Moreshvar Dinkar Paradkar and Prof. Dr. Govind Keshav Bhatt. *Sp.* Many Students from different fields like Literature, Dance, Architecture, Manuscriptology, Fine Arts etc. *Bks.* 05. Cetovinodanakāvyam of Dāji Jyotirvid, Yādavendramahodaya of Nilakan-ha. Literary Gems from Sanskrit. Gajaśastra of Palakapya Muni. Ānandakāvyam of Ānanda Śatapraśnottari. *Ps.* 100. *Add.* Tower A-1, Flat no. 1204, Gokulam Complex, Doddakallasandra Post 8th Lane Rangpur Road Bangalore- 560062. (Kar) Mob. 09427339942. *Spl.Ref.* First Scholar from Maharashtra to be awarded the Ramkrishna Sanskrit Award from Canadian world education Foundation, Canada. Internationally recognized Manuscriptologist. Famous scholar in Sanskrit Literature. First Scholar from Baroda to get springer Research Scholarship of the Bombay Univ. Invited by the Indian Institute of Advanced Study, Shimla, as a Visiting Professor to deliver Lectures.

Walli, Koshalya. M.A., D.Phil., D.Litt., Diploma in Russian & Bulgarian Language. *b.* 27.11.1935, Shrinagar, Kashmir. *Bks.* 04. Ahiṃsā is Indian Thought, Theory of Karma in Indian Thought, Tantrāloka and Cutural Heritage. *Add.* 20. Rajendra Nagar, Canal Road, Jammu Tawi (J&K). *Pin.* 180016. *Ph.* 543545. *Spl.Ref.* He has worked on Kaśmīra śaiadarśana, Awarded by President certificate of honour.

Y

Yadav, Baburam. Acharya, Ph.D., M.A., D.Litt. *b.* 10.06.1944, Jaunpur, U.P. Prof. & Head, Dayanand Mahavidyalaya, Ajmer. *Gp.* Pt. Dvijendranatha Mishra, Pt. Mahadeva Upadhyaya. *Bks.* 02. Kālidāsa ke lalita prayoga, Nāsadīya sṛṣ-ividyā. *Add.* Dayanand Vaidika Shodh Peetha, Dayanand Mahavidyalaya, Ajmer (RJ). *Spl.Ref.* Sāhitya.

Yadav, Dev Narayan. M.A. Ph.D. D.Litt.. *b.* 15.01.1960, Samastipur (Bihar) Director. Bihar Rajya Sanskrit Akademy. Bks. 01. Vālmīki Rāmāyaṇ me Gṛhastha Jīvana. *Ps.* 62. *Add.* 29. Kidway Puri, Patna-800001, Bihar. *Ph.* 365180.

Yadav, Dinesh Kumar. M.A., B.Ed., NET, Ph.D. *b.* 10.10.1975. Sr. Lect. Govt. Mahavidyalaya. U.P. *Ps.* 05. *Add.* Vill. Nahwanipur, P.O. Bankat, Varanasi- 221403 U.P.

Yadav, Prabhu Singh. M.A., Ph.D. *b.* 01.01.1955. Sr. Lect. Sampoornanand.Skt.V.V. Varanasi. *Bks.* 02. *Ps.* 07. *Add.* Vill. Narsirpur, P.O. Hurmujpur, Gazipur U.P.

Yadav, Pushpa. M.A., Ph.D., D.Litt. *b.* 06.07.1960. Asct. Prof. & HOD. Skt. Deptt., Mahila Mahavidyalaya, Kanpur. *Bks.* 03. *Ps.* 25. *Add.* 117/L/244, Naveen Nagar, Kakadeo, Kanpur-208025. Ph. 0512-2501051. pushpayadav_mmv@yahoo.co.in.

Yadav, Ram Sumer. M.A., Ph.D. ***b.*** 13.12.1958, Barohan Chhiwlah, Fatehpur (U.P.). Asst. Prof. in Sanskrit Deptt. Govt. P.G. College Uttarakashi. ***Bks.*** 01. Indira Saurabham (2001). ***Ps.*** 10. ***Add.*** Govt. P.G. College Uttarakashi. Uttaranchal. ***Ph.*** (01374) 23794.

Yadav, Ram Sumer. Acharya in Sahitya, M.A., LT, Ph.D. ***b.*** 13.12.1958. Fatehpur. Asct. Prof., Skt. Deptt., Lucknow Univ. ***Gp.*** Dr. Rajkishore Pandey. ***Sp.*** Pt. Ramkrishan Shastri. ***Bks.*** 04. Indirāsaurabham, Śūrpaṇakhā, Kabīra-vacanāmṛtam ***Ps.*** 70. ***Add.*** 502/133 Mankameswar Nagar, Daliganj, Lucknow. M. 09411185985. 07376081321. ***Spl. Ref.*** Skt. Sahitya Puraskar U.P. Skt. Sansthan 2005. Sahitya Mahopadhyaya 2008.

Yadav, Ramachal. M.A. ***b.*** 21.07.1983. Siddharth Nagar. Research Scholar ***Gp.*** Dr. Bhagwat Sharan Shukla. ***Ps.*** 04. ***Add.*** Vill & P.O. Kherabazar Siddharth Nagar 272205 U.P. M. 09918712743 ramachalbhu@rediffmail.com

Yadav, Ramlal. M.A., M.Ed., L.L.B. ***b.*** 08.07.1940, Makdawa Alwar, RJ. Asct Prof. ***Gp.*** B.V.Rao, R.C. Gouda. ***Add.*** Deptt. Of Shikshasastra, Shri Lal Bahadur Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapith, Katwaria Sarai, New Delhi. ***Spl.Ref.*** Gaṇita, Śikṣāśāstra.

Yadav, Rampyare, M.A. ***b.*** 15.7.1948, Dhinaya Mau, Jaunpur, (U.P.) Asst. Prof. ***Gp.*** Vagisa Shastri, Batuknath Shastri. ***Add.*** Sri Yadavesh Intermediate College, Noupedawa, Jaunpur (U.P.) ***Spl.Ref.*** Sāhityaśāstra.

Yadav, Seema. M.A, D.Phil. ***b.*** 02.04.1981, Singhpur, Varanasi (U.P.). Astt. Prof., M. Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi. ***Gp.*** Prof. Hardutt Sharma, Prof. Shankar Dayal Dwivedi, Prof. Nasreen, Prof. R.L. Verma, Prof. Mridula Tripathi. ***Ps.*** 03. ***Add.*** M. Gandhi Kashi Vidyapeeth, Varanasi (U.P.).

Yadav, Trivikram. ***b.*** 1881. Porbandar (GJ). ***Gp.*** Vaidya Trivikram (Āyurveda). Pt. Gauri Shankar Shastri, Hakim Ram Narayan (Yunani Treatment). ***Bks.*** 05. Madhukośa Vyākhayā, Āyurvedīya Vyādhivijñānaṃ, Rasāmṛtaṃ, Siddhayogasaṃgrahḥ, Dravyaguṇvijñanaṃ. ***Expired in*** 1956. ***Spl.Ref.*** Specialist in Āyurveda.

Yadunandan. Acharya in Vyākaraṇa, Sāhitya. ***b.*** 01.06.1917, Sangi, Madhubani, (Bihar). Principal. ***Gp.*** Triloknatha Mishra, Harinarayana Jha, Balakrishna. ***Ps.*** 01. ***Add.*** Sangi, Via Ghogaradiha, Madhubani (Bihar). ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa, Sāhitya.

Yaji, Kota Vasudev. Vidvān (Dharmaśāstra, Mīmāṃsā, Navyanyāya, Jyotiṣālaṅkāra). ***b.*** 11.03.1928, Saligram, Udupi, KT. ***Bks.*** 01. Kṣayamāsamīmāṁsādayaḥ. ***Add.*** Manisha, 1469/1, 7 Cross, Krishnamurtipuram, Mysore (KT). ***Spl.Ref.*** Ṛgveda, Dharmaśāstra, Mīmāṃsā, Nyāya, Jyotiṣa.

Yaksha, Pandit Dina Nath. ***b.*** 15.06.1921. Srinagar J&K. Rtd. Research Asct., Centre for Central Asian Studies, Kashmir Univ. & Shastra Chudamani. ***Spl.Ref.*** Kāśmīra Śaiva Darśana, Manuscriptologist. He has been activily engaged in the development of study of Skt. Language in Kashmir, President Awardee.

Yashpal, Sudhanshu. M.A., Vidyavachaspati, Vidyabhaskara. ***Age.*** 32 yrs. Editor, Āryasandeśa (Weekly), ***Add.*** Arya Samaj, Diwan Hall, Chandni Chowk, Delhi – 110006. ***Spl. Ref.*** Sāhitya.

Yatri, Jay Narayan Shastri, Prabhakar, Sahityachayra. ***b.*** 1930. Jind, Haryana. ***Bks.*** 03. Sumanobhilāṣam, Sāvitristotram, Kaṃsavadham (Mahākāvya).***Add.*** 3G School cum Canal Area, Nelokheri – 17, Karnal, Haryana. ***Spl. Ref.*** Poet, Writer in Hindi and English.

Yogi, Kamal Chandra. Acharya in Nyāya, Vyākaraṇā,M.A. ling., Ph.D. ***b.*** 10.07.1958, Sawai Madhopur, RJ. Asct. Prof. R.Sk.S., Rajiv Gandhi Campus, Srigeri. ***Gp.*** Khadganatha Mishra, Vriddhichandra Shastri. ***Bks.*** 02. Loka śokānuhāriṇī. ***Add.*** 23. Kailashpuri, Jagatpura. Jaipur – 302017. ***Ph.*** (0141) 759598. ***Spl.Ref.*** Vyākaraṇa.

Yogi, Mitranath. Nyāyācārya. ***b.*** 01.01.1941, Lumbini, Nepal. Principal. ***Gp.*** Vishvanath Shastri, Baliram Shukla, Dhiranand Mishra. ***Add.*** Shri Motinath Sanskrit Mahavidyalay, Ramesh Nagar, Delhi – 110015. ***Spl. Ref.*** Nyāya.

Yogi, Ramswaroop Shastri Amara. Kāvyatīrtha, Acharya (Sāhitya, āyurveda, Purāṇetihāsa). ***b.*** 15.10.1918, Talbehat, Lalitpur, Jhansi, U.P. Teacher. ***Gp.*** D.Vijendranath Shastri, Murlidhar Upaddhyay, Alakniranjan Pandey. ***Add.*** Bal-Mandal Sanskrit Vidhyalaya, Shri Yogashram, Talbehat, Jhansi, U.P. ***Spl.Ref.*** Sāhitya Śāstra, Āyurveda, Purāṇa.

Yogika, Mul Shankar Maniklal. ***b.*** 31.01.1886. Kheda, Gujarat. Principal, Sanskrit College. Badodara. ***Bks.*** 03. Pratāpa Vijaya, Saṃyogitā-svayamvara, Chatrapatisāmrājyam. ***Expired on*** 13.11.1965.

Yogimathathil, Cellahaka Sankara Kurup. ***b.*** 03.08.1909, Kasargode, Kerala. Principal, Mahakavi Kunjan Smarak Sanskrit Mahavidyalaya, ***Add.*** Ponmelam, Kasargode (Kerala). ***Spl.Ref.*** Āyurveda.

●●●

Bibliography

आमेर-जयपुर का संस्कृत वाङ्मय, प्रो. प्रभाकर शास्त्री, राष्ट्रिय संस्कृत साहितय केन्द्र, माली कालोनी जयपुर 2002

काशी की पाण्डित्य परम्परा, पं. बलदेव उपाध्याय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1994

जयपुर की संस्कृत परम्परा, डॉ. देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हंसा प्रकाशन जयपुर 2000

देववाणी-सुवासः (प्रथम एवं द्वितीय), डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, देववाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993

बींसवी शताब्दी का संस्कृत लघुकथा साहित्य, रुचि कुरूश्रेष्ठ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली-2008

राजस्थान गौरवतम्, डॉ. गंगाधर भट्ट 2001, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामतम् प्रथमो भाग, सङ्कलयिता सम्पादकश्च, मिश्रोऽभिराजेन्द्रः, दिल्ली-संस्कृत अकादमी, दिल्ली 2000

विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामतम् द्वितीयो भाग, सङ्कलयिता सम्पादकश्च, डॉ. चन्द्रभूषणझाः, दिल्ली-संस्कृत अकादमी, दिल्ली 2007-2008

शेवधि; डॉ. रामविनय सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशनम् उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वारम् 2010

संस्कृत अध्यापक परिचय पुस्तिका, संस्कृत अध्ययापक मण्डल, अहमदाबाद, 2006

संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (सप्तम खण्ड) आचार्य बलदेव उपाध्यय, उ.प्र. संस्कृत संस्थान 2000

संस्कृत साहित्य बीसवीं शताब्दी, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास, आचार्य जयशंकर त्रिपाठी, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद, 2002

सारस्वत सङ्गम, आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, ज्ञानभारती पब्लिकेशन शक्तिनगर, दिल्ली 2000

Bulletins of Investiture Ceremony of Recipients of President's Certificate of Honour, Department of Higher Education, Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi.

Who's who of Indian writers (End Century Edition) Vol-I,II Sahitya Academy, New Delhi, 1999

Who's who of Sanskrit Scholars in India 1991, साहित्य अकादेमी फिरोजशाह रोड़, नई दिल्ली 1994

कुलानन्द तन्त्रम्

kulAnanda tantram

sanskritdocuments.org

September 29, 2018

kulAnanda tantram

कुलानन्द तन्त्रम्

Sanskrit Document Information
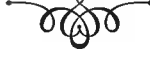
Text title : kulAnandatantra

File name : kulaanandatantra.itx

Category : tantra, devii, devI

Location : doc_devii

Transliterated by : Michael Magee <ac70 at cityscape.co.uk> 1997

Proofread by : Mike Magee <ac70 at cityscape.co.uk>

Latest update : July 4, 2011

Send corrections to : Mike Magee <ac70@cityscape.co.uk>

September 29, 2018

sanskritdocuments.org

कुलानन्द तन्त्रम्

ॐ नमो भैरवाय ।
कैलासशिखरासीनं देवदेव जगद्गुरुम् ।
परिपृच्छत्युमादेवी एकान्ते ज्ञानमुत्तमम् ॥ १॥

भेदनिमुत्तमभेदं यथा देहव्यवस्थितम् ।
कथयस्व पुराभेदं कुलानन्देषु चूत्तमम् ॥ २॥

स्थानान्तरविशेषण विज्ञानं कथयस्व मे ।
सद्यः प्रत्यकारकं यथा देहे व्यवस्थितम् ॥ ३॥

पाशस्तोभञ्च बेधनञ्च धूननं कम्पनं तथ ।
खेचरं समरसञ्चैव बलीपलितनाशनम् ॥

सर्वं तत्तु सुरेश्वर कथयस्व मम प्रभो ॥ ४॥

भैरव उवाच ।
श‍ृणु देवि प्रवक्ष्यामि पुरभेदं समुत्तमम् ।
एतत् कौलिकं ज्ञानं कुलानन्दे चाष्टोत्तमः ॥ ५॥

ब्रह्मस्थाने यत् कमलं चतुःषष्ठिदलान्वितम् ।
तत्रैव मनसा रोध्य लक्षयेद्दीपशिखान् व्रती ॥ ६॥

पश्यति सर्वदेहे तु दिव्यदृष्टिर्वरानने ।
तेन लक्षितमात्रेण जायते सिद्धिरुत्तमा ॥ ७॥

तस्योपरि नाभिन्नदवदा [?] विचक्षणे ।
तथा चोपरितिष्ठति देवो भैरवो जगत्प्रभुः ॥ ८॥

तस्याग्रे मनसारोप्य दृढभूतविचक्षणाः ।
जायते ध्वनिभिर्जातिं तत्र मरुद्विशेषतः ॥ ९॥

एतद् विज्ञानमात्रेण आवेषं जुरुते ध्रुवम् ।

जायते परमं स्थानं नात्र कार्य्यविचारणात् ॥ १०॥

अथान्यं परमं देवि सद्यः प्रत्याकारकम् ।
तं प्रवक्ष्यामि हे देवि श्रृणुष्वायतलोचने ॥ ११॥

अङ्गुल्यद्वितियं देवि यत् पूर्वं कथितं मया ।
तत्रैव स्थापयेद्वित्तं कथितं जायते ध्रुवम् ॥ १२॥

अतीतानागतञ्चैव वर्त्तमानं तथैव च ।
तत्रैवोत्पादयेत् सृष्टिं तिव्रज्योतिःसमकृतिः ॥ १३॥

हृदिसंस्थकमलं हित्वा मूर्ध्नि यान् प्रपूरयेत् ।
पाशस्तोभं करोत्येवं यदि विश्रमते मनः ॥ १४॥

अथान्यं परं देवि दिव्यदृष्टि प्रवर्त्तते ।
ज्वलज्वालनमध्यस्थं द्विजग्रन्थि निरीक्षयेत् ॥ १५॥

तत्रैव मनसा रोध्य चूलिकाग्रन्तु मानयेत् पुनः ।
सृष्टिं प्रवर्त्तन्ते देवि नात्र कार्य्यविचारणात् ॥ १६॥

देव्युवाच ।
तद्बेधञ्च शुद्धसारञ्च हितं मया न प्रकाशितम् ।
कथयस्व विशेषण यथा जानामि तत्क्षणात् ॥ १७॥

भैरव उवाच ।
श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि बेधसारं यथाक्रमम् ।
ब्रह्मस्थाने...पद्मं चतुःषष्टिदलान्वितम् ॥ १८॥

तत्रैवोत्पादयेत् सृष्टिः दण्डाकाराग्नितेजसा ।
भेदयित्वा महाग्रन्थिं द्विचक्रञ्च तथैव च ॥ १९॥

मूर्ध्निं कमलसंस्थानं ज्वलनाकारं विचिन्तयेत् ।
चलन्तं भ्रामयेत्तेन नियतं तु महितले ॥ २०॥

बेधये गिरिवृक्षाणि किं पुनः क्षुद्रजन्तवः ।
अथान्यं परमं देवि विज्ञानं भद्रकं श्रृणु ॥ २१॥

भ्रुवोश्चक्षुर्मध्यस्थं च कालावुना [?] .... विचिन्तयेत् ।
यावद्विश्रमते नित्यं भ्रमते चक्रवत् शिरः ॥ २२॥

दुराश्रवणविज्ञानं भूतदेतस्य [?] चिन्तयेत् ।

वामस्त्रोतं तु यावत् तिव्रतेजसमप्रभम् ॥ २३॥

देव्युवाच ।
बलीपलितक्षयं देव त्वया ख्यातं ममाग्रतः ।
एतन्मे संशयो देव कथयस्व मम प्रभो ॥ २४॥

भैरव उवाच ।
श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत् सुराणामपि दुर्ल्लभम् ।
द्वात्रिंशतिदलं पद्मं तिष्ठंति तन्मूर्ध्नि मध्यतः ॥ २५॥

तत्रैव भावयेदमृतं कलाषोडशसमन्वितम् ।
हृच्चक्रं पातयेद्वारं [?] यावदानाभिमण्डलम् ॥ २६॥

चिन्तयेत् कृष्णवर्णञ्च भेदं तु सकलं पुरः ।
पलितास्तम्भयेद्देवि मासमेकेन सुव्रते ॥ २७॥

अथान्यं परमं देवि गुह्यसंशयस्थितिकारकम् ।
यत्र चतुष्पथस्थानं तत्र सर्वासुरालयम् ॥ २८॥

तत्रैव स्थापयेच्चितं दिव्यबालप्रवर्त्तत [?] ।
अश्रुतां वदते बालां....दिव्य वरानने ॥ २९॥

विषप्रहारं कुरुते ज्वरव्याधिं विनाशयेत् ।
ततः परतरं स्थानं तत्र सर्वे प्रवर्त्तते ॥ ३०॥

अथान्यं परमं देवि दुराबेधं वदाम्यहम् ।
ज्वलज्ज्वलनसंध्यस्थं तत्रैव लक्षयेद्देवि ॥ ३१॥

तं त्रितकोटिसमप्रभा ऊर्ध्वं शक्ति निपातान्यतः [?] ।
बेधयेद्विचक्षणः बेधयित्वा तु तं लक्षयेत् ॥ ३२॥

ज्वलनाकाष्ठप्रभां उर्ध्वशक्तिं चक्रयित्व
अचलं भ्रामयेत् पुनः [?]
बेधयेत् सा मनःसहस्त्राणि समकानि तु का कथा ॥ ३३॥

एवं ज्ञात्वा वीरारोहे विचरेत यथासुखम् ।
देवासुर्मनुजानां दुर्लभो भवति साधकः ॥ ३४॥

देव्युवाच ।
धूननं कम्पनं देव यथाख्यातं ममाग्रतः ।

ततश्चापि संशयो देव कथयस्व मम प्रभो ॥ ३५॥

भैरव उवाच ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि धूननं कम्पनं स्थितम् ।
या सा महावहा नाडी कुचेल्याकारसंस्थिता ॥ ३६॥

तत्रैवोत्पादयेत् दृष्टिर्दण्डाकारसुतेजसा ।
हृच्चक्र... ... ... तिव्रशक्ति सुविग्रहा ॥ ३७॥

धूननं कम्पनं चैव नात्र कार्य्यविचारणात् ।
अथान्यं परमं देवि खेचरत्वं शृणु प्रिये ॥ ३८॥

या सा महावहा ना[डी] कुण्डल्याकारसंस्थिता ।
पदद्वन्द्वगता सा तु मूर्ध्निस्थं कमलं पुनः ॥ ३९॥

या वीरतये तज्ज्वलनाकारं सुभावयेद् बुधः ।
सर्वशक्तितो मध्यत खेचरत्व भवेद्धः
नवाहमभृतं ददैतः [?] ॥ ४०॥

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि महाव्याप्तिं वरानने ।
यावद्...स्थानेषु ख्याता तस्य मयाग्रतः ॥ ४१॥

तथैव मनसारोप्यं नासाग्रे पवनमानेन ।
मनसं तत्त्व बेधयित्वा निष्कलं योजयेद् बुधः ॥ ४२॥

महाव्याप्तिर्भवेद्देवि तवाहमनृतं वदेत् ।
अथान्य सम्प्रवक्ष्यामि येन सिद्धिर्भवेत् ध्रुवम् ॥ ४३॥

वर्गातीतस्य द्वितीयमनुलोम न सुव्रते ।
ज्वलनारूढं कृत्वा चतुर्थं स्वरसंयुतः ॥ ४४॥

बिन्दुमस्तकसम्भिन्नमादौ योजयेद् बुधः ।
वर्गातीतं पुनर्देवि षष्तस्वरविभूषितः ॥ ४५॥

स शिखे खरबिन्दुसंयुक्तं योगयेद्देवि तत् पुनः ।
यकारस्य पञ्चमं गृह्यं तं तृतीयस्वरसमन्वितम् ॥ ४६॥

स्वरं द्वितीयसंयुक्तं कारयेत् पुनः प्रियः ।
वर्गस्य प्रथमं बीजं सृष्टराद्यतो योजयेत् ॥ ४७॥

एतद्देवि समाख्यातं कुलविद्यासमन्वितम् ।

नित्यं तु योजयेद्देवि एकचित्तस्तु पण्डितः ॥ ४८॥

तस्य सर्वा भवेत् सिद्धिः सर्वज्ञनेषु सुन्दरि ।
न खेदयामि कस्य चित्तं शिष्येऽप्युक्त्वा वरानने ॥ ४९॥

अथान्यं परमं देवि कामेन विह्वलारकम् ।
भस्य मध्यस्थ भगमधो हुताशनम् ॥ ५०॥

प्रेरितः पवनः शक्त्या ज्वलनाकारतेजसा ।
विसन्तु चिन्तयेद्देवि सृष्टिकमलन्तु यावत् ॥ ५१॥

श्रवणं चिन्तयेदमृतं तेजोमार्गेण योगिनि ।
भवन्ति विह्वला नार्य्यः क्षनमेकेन सुव्रते ॥ ५२॥

अथान्यं परमं देवि फलपुषpआकथनं च ।
श्रृणुयात् पर्मादेवि अघोरविक्रमा ॥ ५३॥

आकर्षयेद् बुघो वायुं पिण्डस्थं रूपणमुच्यते ।
चक्षुषा योजयेद्देवि फलपुष्पन्तु चिन्तयेत् ।
तेजसार्कर्षयेत् तु...चित्तं सुसर्य्यतः ॥ ५४॥

देव्युवाच ।
सर्वत्र तु मया ज्ञानं भाषितं देव तत् पुरा ।
अद्यापि संशयो देवि कथयस्व मम प्रभो ।
संगमान्मोक्षहेतुकं *** *** ॥ ५५॥

भैरव उवाच ।
श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि तत् सुरैरपि दुर्लभम् ।
आसनं तु स्थितं कृत्वा...विश्व अनिवृत्तः ॥ ५६॥

अभावं भावयेद्देवि सर्वभावविवर्जितम् ।
चित्तं तत्र स्थितं कृत्वा खमध्ये विनियोजयेत् ॥ ५७॥

भावयेत् समरसं देवि प्रभुभृत्यं विचक्षणः ।
एतद्विज्ञानमात्रेण गियते तत्र मध्यतः ॥ ५८॥

दूराश्रवणविज्ञानं बेधस्तोभं मध्यतः ।
आवेषं दर्शनं दूरात् कम्पस्तोभं तथैव च ॥ ५९॥

परकायप्रवेशेन सम्प्रवर्त्तेत योगिनः ।

… … …तदभ्यासेन सुव्रते ॥ ६०॥

इति मत्स्येन्द्र-पादावतारितं कुलानन्दं समाप्तमिति ॥

शुभमस्तु सर्वजगताम् ।

Encoded by Mike Magee ac70@cityscape.co.uk

http://www.clas.ufl.edu/users/gthursby/tantra/kulanandtm

---

kulAnanda tantram

pdf was typeset on September 29, 2018

Lalbhai Dalpatbhai Series No 4.

HARIBHADRASŪRI'S

YOGAŚATAKA

WITH

AUTO-COMMENTARY

ALONG WITH HIS

BRAHMASIDDHĀNTASAMUCCAYA

Edited by

MUNIRĀJA ŚRI PUṆYAVIJAYAJĪ

LALBHAI DALPATBHAI
BHARATIYA SANSKRITI VIDYAMANDIRA
AHMEDABAD-9

Lalbhai Dalpatbhai Series

General Editors:
Dalsukh Malvania
Ambalal P. Shah

No. 4

HARIBHADRASŪRI'S

YOGAŚATAKA

WITH
AUTO-COMMENTARY
ALONG WITH HIS

BRAHMASIDDHĀNTASAMUCCAYA

Edited by

MUNIRĀJA ŚRI PUṆYAVIJAYAJĪ

LALBHAI DALPATBHAI
BHARATIYA SANSKRITI VIDYAMANDIRA
AHMEDABAD-9

First Edition : 500 Copies

1965

Text printed by Svami Tribhuvandas, Ramananda Printing Press, Kankaria Road, Ahmedabad and Introduction printed by Jayanti Dalal, Vasant Printing Press, Ghelabhai's Vadi, Gheekanta, Ahmedabad, and published by Dalsukh Malvania, Director, L. D. Institute of Indology, Ahmedabad-9,

Price Rupees 5/=

Copies can be had of

L. D. Institute of Indology, Ahmedabad-9,

Gurjar Grantha Ratna Karyalaya,
Gandhi Road, Ahmedabad-1.

Motilal Banarasidas
Varanasi, Patna, Delhi.

Sarasvati Pustak Bhandar
Hathikhana, Ratanpole, Ahmedabad-1.

Munshi Ram Manoharalal
Nai Sarak, Delhi,

श्रीहरिभद्रसूरिविरचितं

योगशतकं

स्वोपज्ञवृत्त्या सहितम्,

ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयश्च ।

•

संपादक :

मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी

लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर,

अमदावाद–९

PREFACE

'Samadarśī Ācārya Haribhadra' of Pt. Shri Sukhalalji and 'Śrī Haribhadrasūri' of Prof. H. R. Kapadia furnish us with the details of the life of Āc. Haribhadra who flourished in eighth century. He was the native of Citrakūṭa (present Cittaur) and was a Brahmin priest. He was well versed in Saṇskrit language and literature, and was proud of that. A Jain nun named Yākinī Mahattarā made him realise his lack of knowledge of Prakrit language and literature. Thus she indirectly suggested to him a course — that of being initiated in the Jain Order of Monks — for his making up this deficiency. On this account he considers himself a spiritual son of that nun. It is interesting to note that he blessed his devotees with the words – 'Exert yourself for the dissociation of mundane life'. As a result, people called him Bhavavirahasūri.

Āc. Haribhadra composed many works — some short and some voluminous. The death of his two dear pupils struck him with deep grief. He wanted to be free from it. So, he decided to engage himself in an activity demanding high mental concentration. This is one of the reasons why Āc. Haribhadra wrote so many works. Again, it is reported in Kahāvali that a merchant named Lalliga facilitated Ācārya's work by offering him necessary things.

Different works give different figures of the number of Ācārya's works. In some the figure given is 1400, in others it is 1440, in still others it is 1444. Though we may consider all these statements fraught with exaggeration, yet this much is certain that he all alone composed more than a hundred works on various subjects both in Sanskrit and Prakrit languages. As Āc. Haribhadra had composed a good number of works, later authors ascribed to him the authorehip of a very large number of works.

The aim that constantly remained before Āc. Haribhadra in composing all these works was to enhance the purity of conduct and thought. So, on the one hand, he wrote meaningful and tough philosophical works while on the other, he wrote works on ethics, didactic works, scientific works on Yoga and works embodying narrative stories. Moreover, he did unprecedented service of the Jaina canonical works through writing commentaries on them and editing and bringing into light the works thrown in oblivion. But this is not the proper place for acquainting the reader with the vast literature of Āc. Haribhadra.

In his time, many traditions and interpretations of Yoga (Science of Spiritual Discipline) were current. He collected cream from all these

traditions and interpretations, and utilised it in enriching the Jain Yoga literature. Out of his many works on Yoga, only Yoga-dṛṣṭisamuccaya, Yogabindu, Yogaviṁśikā and Ṣoḍaśaka etc. were known to us since long. But just a few years ago, Dr. Indukala Jhaveri edited Yogaśataka with the help of the then available single MS of that text; it was published in 1956. It is our good fortune that one MS of the auto-commentary on Yogaśataka has been found in Cutch. Hence, here in this work Yogaśataka is re-edited with this newly found auto-commentary. This auto-commentary has cleared off the doubts regarding the reading of the first edition. So, we are surely not wrong if we say that the present edition of Yogaśataka contains its original and true form. This work is edited by Rev. Muni Śrī Puṇyavijayajī and so this edition has got all the benefit of his deep learning. We are highly grateful to him for the time and energy he has devoted to the editing of this work.

This edition contains not only the texts of Yogaśataka and its auto-commentary but the English translation of Yogaśataka also. We are sure that this translation will help the reader in understanding the text. Thanks are due to Dr. K. K. Dixit for translating the text of Yogaśataka lucidly and in a very short time. Moreover, Dr. Indukala Jhaveri has written a learned introduction for this edition. I must thank her for this.

Another attractive feature of this edition is that one short treatise on Yoga, named Brahmasiddhānta-samuccaya, is also included in it. The story of the discovery of the MS of the text is really inspiring. It is well known that for the last so many years Rev. Muni Śrī Puṇyavijayaji has engaged himself in the work of arrangement and orientation of the Jain Bhandaras — libraries of old MSS. The owners or custodians of these Bhandaras collect the pieces of leaves, stray leaves etc. and put them in bag, only to throw them at some good place. But Rev. Puṇyavijayaji deems it necessary to preserve even this 'so-called' rubbish. He has collected and preserved the pieces of palm leaves. He has kept them in a bag. On the basis of the similarity of handwriting he took out some pieces from the bag and to his surprise he found that they form one treatise named Brahma-siddhānta-samuccaya. This treatise is here published for the first time. Rev. Puṇyavijayaji is of the opinion that this treatise too may be the work of Āc. Haribhadra. Hence, the publication of this treatise along with Yogaśataka. A block of two leaves, one of Yogaśataka-Vṛtti and one of Brahma-siddhānta-sammuccaya, is given here so that one may easily have the idea of the respective MSS.

L. D. Institute of Indology
Ahmedabad-9
1-1-'65.

Dalsukh Malvania
Director

श्रीलालभाईदलपतभाईभारतीयसंस्कृतिविद्यामंदिर. अमदावाद.

मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराजना संग्रहनी 'ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चय' नी विक्रमना १२मा शतकमां लखायेली ताडपत्रीय प्रतिनुं प्रथम तथा नवमुं पत्र।

॥ जयन्तु वीतरागाः ॥

प्रस्तावना ।

ला० द० भारतीयसंस्कृतिविद्यामन्दिरग्रन्थमालायाश्चतुर्थग्रन्थाङ्करूपेण याकिनी-महत्तरासूनुश्रीहरिभद्रसूरिप्रणीतं स्वोपज्ञटीकासहितं 'योगशतकप्रकरणम्' तथा खण्डिता-पूर्णरूपेण लब्धत्वाद् अज्ञातग्रन्थ-ग्रन्थकाराभिधानो ग्रन्थविषयविभागावलोकनेन श्रीहरि-भद्रसूरिप्रणीतः '**ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयः**' इति अस्माभिः परिकल्पिताभिधानो ग्रन्थश्चेति प्रकरणयुगलं प्रकाश्यते ।

तत्र **योगशतकं** मूलमात्रं डॉ० झवेरी इन्दुकलाभगिन्या पाण्डित्यपूर्णगूर्जरगिरानु-वादेन विस्तृतप्रस्तावनया च सह सम्पाद्य प्रसिद्धिं प्रापितम् । साम्प्रतं तदेव अद्यावध्य-ज्ञातया स्वोपज्ञटीकया समलङ्कृतं प्रसिद्धिं नीयते । अस्य किलैकैव ताडपत्रोपरि लिखिता-ऽतिप्राचीना शुद्धप्राया प्रतिः कच्छदेशान्तर्गतमांडवीनगरस्थखरतरगच्छीयजैनज्ञान-भाण्डागारे सुरक्षिताऽऽसीत् । सा च प्रतिस्तद्भाण्डागाररक्षक–मांडवीजैनश्रीसङ्घमान्य–महानुभाव–श्रेष्ठिवर्यश्रीमोहनलाल पोपटभाई शाहद्वारा समासादिता । अस्याः प्रतेः षट्त्रिंशत् पत्राणि । प्रतिपत्रं ताडपत्रपृथुलत्वानुसारेण कस्मिंश्चित् पत्रे चतस्रः यावत् कस्मिंश्चित् पत्रे सप्तापि पङ्क्तयो वर्त्तन्ते । प्रतिपङ्क्ति कचित् षट्षष्टिः सप्ततिः यावत् कचिदशीत्यक्षराण्यपि लिखितानि दृश्यन्ते । प्रतिरियं मध्ये छिद्रयुता विभागद्वयेन च लिखिता वर्तते । आयाम-पृथुलत्वे किलास्याः प्रतेः १३। × २। इंचप्रमितमस्ति । प्रतिरियं केनापि विदुषा मुनिप्रवरादिना साद्यन्तं वाचिता संशोधिता चेति शुद्धप्राया कचित् कचिच्च टिप्पणीयुताऽपि वरीवृत्यते । अस्याः प्रतेः प्रान्तभागे " संवत् ११६५ फाल्गुन सुदि ८ लिखितेति " इतिरूपा लेखनसमयावेदिका पुष्पिका वर्तते इति अस्याः प्रतेः लेखनकालः ११६५ वर्षरूपः स्पष्टमेव ज्ञायते ।

शुद्धप्रायाया अस्या एकस्या एव प्राचीनतालपत्रीयप्रतेराधारेणास्य स्वोपज्ञटीका-विभूषितस्य योगशतकप्रकरणस्य सम्पादनं संशोधनं च विहितमस्ति । यद्यपि प्रतिरियं सामान्यभावेन शुद्धरूपा वर्त्तते तथाप्यनेकानेकेषु स्थलेष्वशुद्धयो वर्त्तन्त एव इत्यतः तत्र तत्र स्थलेषु तत्तद्विषयकग्रन्थाद्याधारेणास्य ग्रन्थस्य सुचारुसंशोधनकृते प्रयतितमस्ति ।

ग्रन्थस्यास्य पाण्डित्यपरिपूर्णा प्रतिकृतिः (प्रेस कॉपी) भोजककुलमण्डनस्य गृहस्थ-भावेऽपि प्राप्तात्मरमणताधर्मस्य धर्मात्मनो गिरधरलालस्य पौत्रेण तथा आत्मरणतानिष्ठस्य धर्मभावनावासितान्तःकरणस्य मोहनलालस्य नन्दनेन अमृतलालपण्डितेनातिसावधानतया विहितेत्यस्य ग्रन्थस्य सम्पादने संशोधने चातिसौकर्यं सञ्जातम् ।

द्वितीयः किल खण्डितापूर्णलब्धत्वाद् अस्मत्कल्पिताभिधानो ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चय-नामा ग्रन्थोऽस्मिन् ग्रन्थाङ्के प्रकाश्यते। अयं किल ग्रन्थोऽणहिल्लपुरपत्तनीयशतशःखण्डी-भूततालपत्रीयग्रन्थराशिमध्यात् शीर्णविशीर्णतालपत्रखण्डरूपेण मयैव समुपलब्धो मम पार्श्वे एव वर्त्तते। इयं हि प्रतिः प्रतिपत्रं सञ्जातद्वित्रखण्डा द्वात्रिंशत्पत्रात्मिकाऽपूर्णा ४२३ श्लोकपर्यन्तमासादिताऽस्ति। प्रतिपत्रं चतस्रः पञ्च वा पङ्क्तयो वर्त्तन्ते। प्रतिपङ्क्ति पञ्चचत्वारिंशद् यावदष्टचत्वारिंशदक्षराणि लिखितानि निरीक्ष्यन्ते। प्रतिरियं प्रायः शुद्धैव वर्त्तते तथापि क्वचित् क्वचिदशुद्धयोऽपि दृश्यन्ते। अस्याः प्रतेरन्तिमं पत्रं नोपलब्धमिति निश्चिततया न ज्ञायते—कस्मिन् समये लिखितोऽयं ग्रन्थः? इति, तथापि लिपिताड-पत्रीयजातिलेखन-पद्धत्याद्यवलोकनेन इयं प्रतिः द्वादश्यां शताब्द्यां लिखितेत्यनुमीयते। प्रतिरियमायाम-पृथुलत्वे ११॥ × १॥। इंचप्रमाणा वर्त्तते। अस्याः प्रतेः द्वादशं पत्रं सर्वथैव नोपलब्धम्। तथा ७ तः १०, २२, २४, २६, २९ तः ३२ पत्राणामुत्तर-विभागो नष्ट इति नोपलब्धः।

अस्याः शीर्णविशीर्णखण्डखण्डीभूतापूर्णप्रतेराधारेणास्य ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयग्रन्थस्य सम्पादनं संशोधनं च विहितमस्ति। अस्यापि ग्रन्थस्य वैदुष्यपूर्णा प्रतिकृतिः (प्रेसकॉपी) पण्डितश्रीअमृतलालेनैवातिसावधानतया महता श्रमेण निर्मिताऽस्ति, येनास्यापि सम्पादने संशोधने च समधिकं सौकर्यमजनि।

किञ्च—अस्य ग्रन्थयुगलस्य संशोधनं केवलं मयैव विहितमिति नास्ति। किन्तु-पण्डितश्रीसुखलालजित्—ला० द० भा० सं० विद्यामन्दिरमुख्यनियामकदलसुख मालवणिया-पण्डितअमृतलाल-मुनिप्रवरश्रीजम्बूविजयजी—प्रज्ञांशमुनिवरश्रीकान्तिविजयप्रभृतिभिः स्थानस्थानेषु संशोधनं संसूचनं च विहितमस्ति। अपि च—पण्डितश्रीअमृतलालेन तु प्रतिकृतिविधानादारभ्य प्रुफपत्राद्यवलोकन-परिशिष्टविधानादिसमग्रकार्येषु दत्तचित्ततया साहाय्यं विहितमस्तीति समवधारयन्तु विद्वांसः।

ग्रन्थयुगलमप्येतद् योगविषयकं वर्तत इति तन्मार्गसिसाधयिषवो जिज्ञासवो वा मुनिवरा विद्वांसश्चावश्यमेवाऽऽसादयिष्यन्ति स्वेप्सितमेतद्ग्रन्थयुगलावगाहनेन।

ग्रन्थकारः

स्वोपज्ञटीकासमलङ्कृतस्यास्य योगशतकाख्यप्रकरणस्य प्रणेता याकिनीमहत्तरा-सूनुराचार्यश्रीहरिभद्रसूरिरेवेति तत्पुष्पिकाद्यवलोकनेन स्पष्टमेव ज्ञायते। प्रस्तुतग्रन्थकर्तुरा-चार्यस्य सत्तासमय-निवासस्थान-जीवन-पाण्डित्य-ग्रन्थनिर्माणादिविषये डॉ. याकोबी-

पण्डितसुखलालजी-श्रीजिनविजयजी-प्रज्ञांशश्रीकल्याणविजयजी-डॉ० झवेरीइन्दुकलाभगिनी-प्रभृतिभिरनेकैर्विद्वत्प्रवरैः सुबहु विचारितमुल्लिखितमपि चास्तीति नात्रार्थे कश्चित्प्रयासो विधीयते । केवलं श्रीहरिभद्रसूरिपादविरचितनवीनग्रन्थनामोल्लेखादिविषये किञ्चित् प्रयत्यते । तत्र तावत् प्रकाश्यमानैषा योगशतकप्रकरणस्य स्वोपज्ञटीका कच्छदेशीय-मांडवीनगरस्थितखरतरगच्छीयजैनज्ञानकोशात् साम्प्रतमेव प्राप्ताऽस्ति । न खल्वियं ग्रन्थ-रचनाद्य यावद् ज्ञातचराऽऽसीदिति । तथाऽस्यां स्वोपज्ञटीकायां "निर्लोठितं चैतदुपदेश-मालादिष्विति नेह प्रयत्नः" (पृ० २४) इत्युल्लेखदर्शनात् साम्प्रतं कुत्राप्यदृश्यमानः श्रीमद्भिर्विरचित उपदेशमालाख्यो ग्रन्थ आसीदिति निश्चीयते । एवमेव श्रीमद्भिर्मलयगिर्या-चार्यपादैः श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणचरणविनिर्मितसङ्ग्रहणीप्रकरणवृत्तौ श्रीहरिभद्रसूरि-पुरन्दरविहितायास्तद्वृत्तेः स्थानस्थानेषु उल्लेखः कृतोऽस्तीत्यतस्तत्संसूत्रिता सङ्ग्रहणी-प्रकरणवृत्तिरप्यासीदिति । उपलभ्यते हीयं जेसलमेरुभाण्डागार-मत्सङ्गृहीतज्ञानकोशा-दिष्विति । अपरं च श्रीमद्भिर्याकिनीमहत्तरासूनुभिः स्वकीयाऽऽवश्यकशिष्यहिताख्यलघुवृत्ति-प्रारम्भे "यद्यपि मया तथाऽन्यैः कृताऽस्य विवृतिस्तथापि सङ्क्षेपात् । तदुचितसत्त्वानु-ग्रहहेतोः क्रियते प्रयासोऽयम् ॥" इत्युल्लेखदर्शनाद् विदुषात्र तद् ज्ञातचरमेव यत्–श्रीमद्भिः पूर्वं आवश्यकसूत्रोपरि बृहद्वृत्तिर्विरचिता, तदनन्तरं शिष्यहिताख्या लघुवृत्तिरिति । तथा मलधारिश्रीहेमचन्द्रसूरिपादसंसूत्रितशिष्यहितावृत्तिटिप्पनकान्तर्वर्त्तिनः "यद्यपि मया वृत्तिः कृता" इत्येवंवादिनि च वृत्तिकारे चतुरशीतिसहस्रप्रमाणाऽनेनवाऽऽवश्यकवृत्तिर-परा कृताऽऽसीदिनि प्रवादः" इत्युल्लेखदर्शनाच्च सा बृहद्वृत्तिश्चतुरशीतिसहस्रश्लोकप्रमाणा-ऽऽसीदित्यपि विदितचरमेव प्रज्ञावतां प्राज्ञानामिति । तथापि 'तत्र बृहद्वृत्तौ तैः सूरि-शक्रैः के के पदार्थाः कथं व्यावर्णिताश्चर्चिता वाऽऽसन् ?' इत्यावेदकोऽतिगाम्भीर्यपूर्ण एक उल्लेखस्तैः स्वविरचितनन्दिसूत्रलघुवृत्तौ "साङ्केतिकशब्दार्थसम्बन्धवादिमतमप्या-वश्यके नयाधिकारे विचारयिष्यामः" (पृ० ६८) इतिरूपो निष्टङ्कितोऽस्ति । एतदेको-ल्लेखमात्रदर्शनादेतज्ज्ञायते यत्–श्रीमद्भिस्तत्र बृहद्वृत्तौ दार्शनिकजगदाश्चर्यकारका एतादृशः सङ्ख्यातीताः पदार्था वादिमताश्च व्यावर्णिताश्चर्चिता निरस्ताश्चापि भविष्यन्तीति । दुर्दैवमेतदास्माकीनं यत् सा चिरकालादेव दुःषमाकालेन कवलितेति ।

ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयकारः

मत्परिकल्पितनाम्नः प्रस्तुतस्य ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयाख्यस्यास्य प्रकरणस्यान्तिमं पत्रं तावन्नोपलब्धमिति तत्प्रणेतृ-तन्नामादिविषयकं किमपि प्रमाणं साक्षान्नास्तीति प्रागेवा-ऽऽवेदितम् । तत्र खण्डितापूर्णलब्धस्यास्य प्रकरणस्य 'ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयः' इति नाम

ग्रन्थाद्यश्लोकोक्तविषयानुसारेण मत्परिकल्पितमेव । निर्माता पुनरस्य प्रकरणस्यैतद्ग्रन्थगत-विषयादिविचारणेन याकिनीमहत्तरासूनुराचार्यश्रीहरिभद्रपाद आभाति । तथाहि—तत्र तावद् यथाऽन्येषु श्रीहरिभद्राचार्यविनिर्मितेषु योगदृष्टिसमुच्चयप्रभृतिग्रन्थेषु श्रीमहावीर-जिननमस्कारः प्रतिपाद्यविषयोल्लेखश्च दृश्यते तथाऽत्रापि ग्रन्थ इति । तथा योगदृष्टिसमुच्चय-योगबिन्दु-अष्टकप्रकरण-विंशतिविंशिकादिप्रकरणेषु यादृशी विषयविभागविचारणपरिपाटी यादृशश्च पारिभाषिकशब्दप्रयोगो वरीवृत्यते तथैवात्रापि ग्रन्थे तादृश्येव विषयविचारण-परिपाटी तादृश एव च पारिभाषिकशब्दादिप्रयोगो दृष्टिपथमवतरति । तथा ललित-विस्तरावृत्त्यादिवदत्रापि प्रकरणे 'आगमेनानुमानेन०' इति श्लोकोऽपि वर्तते । एवमेव योगबिन्दुप्रकरणे 'दानं भृत्याविरोधेन' इत्यत्र यथा 'भृत्याविरोध'वाक्यप्रयोगो वर्तते तथाऽत्रापि प्रकरणे 'भृत्यानामुपरोधेन' (श्लो० १९०) 'भृत्यानामुपरोधश्च' (श्लो० २००) इत्यत्र दृश्यते । तथैव षोडशकप्रकरणे 'अद्वेषो जिज्ञासा' इत्यादिपद्ये यथाऽष्टाङ्गानां निरूपणं तथाऽत्रापि 'अद्वेषश्चैव जिज्ञासा' (श्लो० ३५) इति पद्ये निरीक्ष्यते । ललित-विस्तरावृत्ति-योगदृष्टिसमुच्चयादिषु यथा इच्छायोगादीनां स्वरूपं वर्तते तथैवाऽत्रापि प्रकरणे १८९–९१ पद्येषु निरूप्यते । तथा योगदृष्टिसमुच्चये यथाऽनेद्यसंवेद्यपदवर्त्यपि मित्राद्याद्य-चतुर्दृष्टिगतविशिष्टगुणान्वितो व्यावर्णितोऽस्ति तथाऽत्रापि 'मिथ्यादृष्टिरपि ह्युक्तः स च तादृक्क्रियान्वितः' इति ५४ पद्ये व्यावर्णितोऽस्ति ।

एतानि पुनर्विशिष्टस्थानानि यान्यस्य प्रकरणस्य श्रीहरिभद्राचार्यकृतत्वमावेदयन्ति—

१. अत्राधिकारिणोऽप्युक्ता अपुनर्बन्धकादयः । त्रय एव०—श्लो० ३७ ।
अहिगारी पुण एत्थं विण्णेओ अपुणबंधगाइ त्ति ।—योगश० गा० ९.

२. न जानाति तामन्यो नष्टनाशनः—श्लो० १३६ ।
गुरुणो अजोगिजोगो० जोगिगुणहीलणाणट्ठणासणा०—योगश० गा० ३७.

३. देवताबहुमानेन—श्लो० १६३ ।
गुरु-देवयाहि जायइ—योगश० गा० ६२.

४. शिवज्ञानं य आसाद्य—इत्यादि २६३–६५ शिवागमश्लोकाः
एतीए एस जुत्तो सम्मं असुहस्स खवग मोणेओ ।—योगश० गा० ८५.

५. कायपातादिभावेऽपि शुभालम्बनयोगतः ।—श्लो० १७१ ।
तह कायपाइणो ण पुण चित्तमहिकिच्च बोहिसत्त त्ति । योगश० गा० ८८.

६. आश्चर्यभावतस्त्वाशु कश्चित् तेनैव जन्मना ।—श्लो० ४१३ ।
जइ तब्भवेण जायइ जोगसमत्ती—योगश० गा० ९२.

७. श्लो० ३९२ तः ९४ मृत्युज्ञानचिह्नानि।

णाणं चागम-देवय-पइहा-सुमिणंधरादऽदिट्ठीओ।—योगश० गा० ९७.

सङ्क्षेपेणैतेषामुपर्युल्लिखितानां प्रमाणानामनुसन्धानेनेदं ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चय-प्रकरणं श्रीहरिभद्राचार्यसंसूत्रितमेवाऽऽभाति। अपि चात्र मुख्यवृत्त्या योगशतकप्रकरणेनैव सह तुलना विहिताऽस्ति, किञ्च यदि श्रीहरिभद्रसूरिपादप्रणीतयोगबिन्दु-योगदृष्टिसमुच्चय-अष्टकप्रकरण-षोडशकप्रकरण-विंशिकाप्रकरणादिभिः सहास्य प्रकरणस्य तुलना विधीयेत तदाऽस्य प्रकरणस्य श्रीहरिभद्रकृतत्वनिश्चायकानि प्रभूतानि प्रमाणानि समुपलभ्येरन्नित्यत्र न कश्चित् सन्देहलेश इति। प्रयतिष्यते किलैतदर्थं समयान्तरे पृथग्लेखरूपेण।

अत्रैतत् किल ज्ञापनीयमस्ति यद्– इदं ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयाख्यं प्रकरणं द्वात्रिंशत्पत्रं ४२३ पद्यं यावच्च खण्डितापूर्णरूपेण सम्प्राप्तमस्ति तथाप्यस्य प्रकरणस्य प्रान्त-भागवर्त्ति एकं पत्रं पत्रद्विकमेव वा विनष्टं सम्भाव्यते, नाधिकमिति।

अपि चैतत्प्रकरणावलोकनेनैतदपि सम्भाव्यते यत्– श्रीमद्भिर्हरिभद्रसूरिचरणैः सर्वदर्शनसमन्वयसाधकान्यन्यान्यप्येतादृंशि भिन्नभिन्नानि प्रकरणानि संसूत्रितान्यवश्यमेव भविष्यन्तीति।

अन्ते तावदिदं निवेद्यते—येन कच्छमांडवीस्थखरतरगच्छीयजैनभाण्डागारप्रतिपाल-केन शाह मोहनलाल पोपटलालमहानुभावेन स्वोपज्ञटीकायुता योगशतकप्रकरणप्रतिरति-चिरकालं यावदस्मभ्यमौदार्यभावेन समर्पिता, यैश्च विद्वत्प्रवरैरेतद्ग्रन्थयुगलस्य संशोधने भिन्नभिन्नरूपेण महामूल्यं साहाय्यं वितीर्णं तेभ्यः सर्वेभ्योऽपि साभारं धन्यवाददानं न विस्मरति मम हृदयम्।

निवेदकः—

बृहद्गुरुप्रवर्त्तककान्तिविजयशिष्याणु—
गुरुप्रवरश्रीचतुरविजयचरणोपासकः
मुनिः पुण्यविजयः।

ग्रन्थानुक्रमः ।

INTRODUCTION

I. Preliminary

Haribhadra, a brahmin by birth and a Jain convert was not only a man of high intellectual powers but also a great visionary who brought about a unique revolution in the approach towards metaphysical and ethical thought. Here, however, we shall confine ourselves to the latter aspect and deal with his Yoga-works as the present work Yoga-Śataka relates to Jain Yoga. What is more, his works on Yoga are considered to be the best and the most outstanding amongst all his compositions. They do not delimit themselves merely to the exposition of the Jain Yoga but also comprehend a comparative study of the entire yoga in general.

However, for a proper evaluation of Haribhadra's contribution to Yoga, it is necessary to have some acquaintance with the different schools of Yoga (spiritual discipline) prevalent before Haribhadra's time. A brief outline of the same will, therefore, be not out of place here.

II. History of some Yogic terms and description of different Yogic traditions.

All the Indian philosophical systems attempt to analyse and understand the mysteries of the Universe in order to find the way out of the limitations of the worldly existence. They all unanimously aim at the perfect unfolding of the potentialities of the self with a view to achieving its innate purity. This purity is supposed to be defiled and distorted by passions in the state of worldly existence. These passions and their causes can be detected through introspection which eventually prepares the mind to overcome them. This attitude of the mind, directed on the right path, is termed 'Spirituality' (ādhyātmikatā). The ways and means or processes of realising this spirituality are many and varied; sometimes they appear to be different also. This is so because certain means or processes (leading to self-realisation) emphasise one aspect while others try to emphasise some other aspect. Even then, as these means and processes happen to have the same common goal of self-realisation, they all come under the general term 'Yoga'. To-day also we have many such schools of Yoga.

There have been in vogue from very early times two terms well-known to Indian Culture which comprehend all the stages of spiritual development. These terms are 'Tapas' and 'Yoga'. Of these two Tapas is even earlier and more comprehensive. Ancient Indian Culture comprises two cultural traditions — Śramaṇa and Brāhmaṇa. The Prākṛta form of Śramaṇa is Samaṇa. It means Vṛtti-Śamana - subsidence of passions; or it is derived from the root Śram meaning to exert, to observe austerity or penance. Moreover, terms like Tapasvi and Tāpasa are very well-known as synonyms and types of Śramaṇa. All this points to the fact that the Śramaṇa religion has its basis in Tapas; and this Tapas has always been the nucleus in the development and spread of the different schools of Śramaṇa religion.

Brahmanism, on the other hand, is rooted in 'Brahman' or 'Yajña'; in other word, the concept of Yajña has reigned supreme in the development and spread of Brahmanism. Nevertheless, the Vedic mantras[1] and the Brāhmaṇa texts[2] which are closely associated with Yajña do mention the word Tapas referring to its efficacy and glory. Besides, even the texts like Śatapatha Brāhmaṇa employ the root Śram in the context of Tapas.[3] In the Āraṇyakas and the Upaniṣads, however, the importance of the external aspect of Yajña (as sacrificial ritual) is fast fading out giving place to Jñāna and Tapas — its inner aspect.[4] Thus the Tapo-mārga has developed and spread not only independently of Yajña-mārga but also along with the Yajña-mārga as a part of it.

---

1. tvaṁ tapaḥ paritapyājayaḥ svaḥ / Ṛgveda X. 167. 1; X. 109. 4; X. 154. 2-4; Atharvaveda IV. 35. 1-2.

2. etad vai paramaṁ tapo / yad vyāhitas tapyate paramaṁ haiva lokaṁ jayati ... / Śatapatha XIV. 8. 11. Taittirīya Br. II. 2. 9. 1.

3. Prajāpatir ha vā idam agra eka evāsa / sa aikṣata kathaṁ nu prajāyeya iti so'śrāmyat sa tapo'tapyata ... / Śatapatha II. 2. 4. 1; IX. 5. 1. 2.

4. tapasā Brahma vijijñāsasva / tapo Brahma iti / sa tapo'tapyata / Taittirīya Up. III. 2. Cf. Taittirīya Up. I. 9; Mundaka I. 2. 11; I. 1. 8-9; Śvetāśvatara Up. I. 15.
   na cakṣuṣā gṛhyate nāpi vācā
   nānyair devais tapasā karmaṇā vā /
   jñānaprasādena viśuddhasattvas tatas tu
   taṁ paśyata niṣkalaṁ dhyāyamānaḥ // Mundaka Up. III. 1. 8.
   Cf. Chāndogya Up. III. 17. 4; Bṛhadāraṇyaka Up. I. 2. 6; III. 8. 10.

The Tapas in its initial and external form finds expression in the different methods of the mortification of body. But gradually, however, as the efficacy of such physical mortification in the spiritual regeneration came to be questioned there began a sort of revolt against it. As a result greater stress came to be laid, on the one hand, on the internal austerity (antastapas), while on the other hand an attempt was also made to harmonise the external or physical aspect of austerity with the internal or mental one. Nevertheless, along with these two traditions, there happened to be a very large circle of Tāpasas and Parivrājakas who were absorbed in the practice of physical austerity alone. The first tradition is represented by Tathāgata Buddha[1], the second one, by Dīrgha Tapasvī Mahāvīra[2] and the third, by a vast number of the rest of the Tāpasas.[3]

In the development and propagation of the different forms of Tapas, we find from the very beginning the same belief which worked in the development and spread of the Yajña, namely, that the Tapas or the Yajña concerned can successfully fulfil both the worldly and heavenly desires.

---

1. Buddha also practised intense physical austerity but could not achieve his objective through it; hence criticised such practices Cf. Majjhima-nikāya-Mahāsīhanādasutta I, 2, 2; Mahāsaccakasutta I, 4, 6. and Ariya-pariyesanasutta I, 3, 6.

   Similarly, in the Vedic tradition the concept of Yajña undergoes development from its external aspect to the internal one. The former is replaced by the latter in the form of dhyāna in the Āraṇyakas. Again, in the Bṛhadāraṇyaka, for instance, the horse is meditated upon as a symbol of the universe in place of the Aśvamedha sacrifice. The significance of jñāna and antas-tapas (mental tapas) is very obvious in the Upaniṣads. The Mahābhārata too distinguishes between physical and mental tapas and extols the latter (226, 4–5). Gītā has no place whatsoever for mere mortification; its emphasis on phala-tyāga, that is, antastyāga is very well known.

   For the development in the connotation of the word tapas, Cf. 'Encyclopœdia of Religion and Ethics', Part II, p. 87 onwards.
2. Mahāvīra considered the internal austerity like dhyāna and kaṣāya-jaya (conquest of passions) as important and primary, though he himself practised physical or external austerity like anaśana (fasting), śīta-ātapa-sahana (enduring extreme heat and cold) etc. cf. Ācārāṅga I; Uttarādhyayana 30, 30; Bhagavatī 25, 7. 802.
3. Bhagavatī 3. 1. and 11. 9. describes respectively the Tāmali Tāpasa and Śivarāja Tāpasa. Various types of Tāpasas are referred to here. A detailed account of the same is to be found in Aupapātika-sūtra.

The term 'Yoga' is used even in the mantras of the Ṛgveda[1] but there it does not connote the spiritual aspect or Samādhi. In the Upaniṣads too, especially in the earliest portions, the word does not seem to have any spiritual sense. It is only in the somewhat later Upaniṣads like the Katha and the Śvetāśvatara[2] that the term 'Yoga' attains spiritual meaning and significance. On the whole, it can be seen that the use of the term Tapas in the spiritual sense is more free and varied than that of the term Yoga in the Vedas and the Upaniṣads. Again even employed in the spiritual sense, it is primarily associated with the Sāṁkhya metaphysics and with some Yoga-School based on the Sāṁkhya. In the Mahābhārata including the Gītā, the term Yoga which finds frequent mention is closely connected with the Sāṁkhya School. The Gītā is rightly called the Yoga-śāstra because the word Yoga in its spiritual bearing is employed at a number of places[3]. In the earlier Jain Āgamas[4] too the term Yoga is found to have the spiritual sense but its use is not so frequent as that of the word Tapas. In the Bauddha Piṭakas, the word Yoga is not so widely and frequently employed as the word samādhi. From this it appears that the free use of the term Yoga in the spiritual sense and its frequent and effective employment in a poetic manner in the Gītā as Jñāna-Yoga, Bhakti-Yoga etc. contributed a great deal to establish its supreme significance in all the schools of spiritual discipline. Therefore, the Tapas of which Yoga and Samādhi earlier happened to be only the means, now itself become one of the means to Yoga in the Sāṁkhya-Yoga School.

Just as the words Tapas and Yoga are associated with the path of spiritual discipline, the words like Saṁvara, Dhyāna and Samādhi have also a special bearing on the discipline. Of these, Dhyāna and Samādhi are more or less common to all the traditions of spiritual discipline while it is not the case with Saṁvara. The use of Saṁvara is exclusive to the

---

1. Ṛgveda I, 34, 9; II, 8, 1; IX, 58, 3; X, 166, 5; I, 18, 7; I, 5, 3.
2. tāṁ yogam iti manyante sthirām indriyadhāraṇām /
   apramattas tadā bhavati yogo hī prabhavāpyayau // Kaṭha Up. II. 3. 11.

   tat-kāraṇam Sāṁkhya-yogādhigamyaṁ
   jñātvā devaṁ mucyate sarvapāśaiḥ / Śvetāśvatara Up. VI. 13.

   adhyātmayogādhigamena devaṁ
   matvā dhīro harṣaśokau jahāti / Kaṭha Up. I. 2. 12.
3. II, 4, 28; III. 3-4; V. 6-7; VI. 17 and 23, 29; VI. 4-6; VIII, 10-12.
4. Sūtrakṛtāṅga I. 16. 3; Uttarādhyayana VIII. 14; XI. 14,

Jain philosophical texts and it has been in free vogue from pre-Mahāvīra times[1]. We have noted above that the efforts of the Sāṁkhya sādhakas and also the efforts of Gītā helped to widen the status and significance of Yoga; ever since that time, all the śāstras dealing with spiritual discipline based on the Sāṁkhya metaphysics came to be known as the Yoga-śāstras. Even those which were supposed to have existed before the Pātañjala Yoga-śāstra[2] were also called the Yoga-śāstras. Although the term Saṁvara, so well known and common to the Jain tradition and the word Yoga, so commenly prevalent in the Yoga-śāstras have similar meaning and connotation[3], the words Yoga and Yoga-śāstra, at

---

1. The metaphysics and ethics accepted by Mahāvīra were handed down from Pārśvanātha. Cf, Cāra Tīrthaṁkara, p. 136.

2. Śaṅkarācārya in his refutation of Yoga-darśana (Brahmasūtra-bhāṣya) writes: "Yogaśāstre'pi 'atha tattvadarśanābhyupāyo yoga'iti samyagdarśanābhyupāyatvena yogo'ṅgīkriyate /" Now the sūtra 'atha tattvadarśanābhyupāyo yogaḥ' is not to be found in the Yoga-sūtra that is available to us. Pātañjala Yoga-śāstra commences with-'atha yogānuśāsanam.' Hence it is quite probable that the Yoga-śāstra referred to by Śaṅkarācārya may be one different from the Pātañjala Śāstra. Vācaspati does not enlighten us directly on the above quotation found in the Brahma-sūtra; but he expresses a similar thought by saying 'ata eve Yogaśāstraṁ vyutpādayitā'ha sma bhagavān Vārṣaganyaḥ... /' Thus he mentions Vārṣagaṇya as the originator of Yoga-Śāstra. Similarly, according to the twelfth chapter of the Ahirbudhnya-saṁhitā the Yoga-śāstra of Hiranyagarbha which existed before Pātañjala Yoga-śāstra was divided into two parts or saṁhitās. For details see 'Hinda Tattvajñāna no Itihāsa' Part I, p. 112-114.

3. The term Saṁvara, in Jainism, is defined as 'āsravanirodhaḥ' the control or restraint of Āsrava. Now the term Āsrava is defined as 'kāyavāṅmanaḥkarma yogaḥ / sa āsravaḥ /' that is, the activity (yoga) of the body, speech and mind is Āsrava. Thus the term Saṁvara comes to mean the restraint (nirodha) of the activity of the body, speech and mind. Similarly, the term Yoga is defined in the Yoga-sūtras as 'cittavṛttinirodhaḥ' the restraint of mental activity or modification. Thus both the terms Saṁvara and Yoga signify restraint, but while in the former the restraint is of Āsrava — the threefold activity, in the latter it is only of mental activity (citta-vṛtti). From this it can easily be seen that there is no essential difference between the two; for, the activity of the body and that

any rate, are more in vogue in all the schools of spiritual discipline; while the word Saṁvara is not so much known to the Vedic tradition.

When Tapas dominated the field of spiritual discipline, Dhyāna and Samādhi were mere means to Tapas; but with the increasing importance and wide prevalence of Yoga, the same Dhyāna and Samādhi served as means to Yoga. Thus all the literature pertaining to spiritual discipline seems to point to one thing, namely that some Sādhakas laid greater stress on some one means and considering it to be the final end they treated all the rest as means to that end; while certain others emphasised some other means as an end in itself and considered the rest as aids to it. For example, in earlier times Tapas happened to be the final end and hence Svādhyāya, Dhyāna, Samādhi etc. were subordinated to it[1]; on the other hand those who attached greater importance to Yoga regarded Tapas, Dhyāna, Samādhi etc. as means to it[2]. From all this it is easy to see that all the schools of spiritual discipline had much in common and the difference, if any, was one of emphasis and not of essence.

We have so far briefly noticed that the different paths of spiritual discipline were in vogue in India under different designations such as

---

of speech necessarily presuppose mental activity.

Yoga that is Āsrava, in Jainism is two-fold — sakaṣāya-yoga, and akaṣāya-yoga. The Yoga-śāstra mentions two types of cittavṛttis namely, Kliṣṭa (impure) and Akliṣṭa (pure). Now the two terms – Kaṣāya and Kleśa have precisely the same connotation.

Comparison of the terminological difference may be stated thus :-

Yoga-śāstra	*Jaina Darśana*
Avidyā	Mithyā-darśana
Asmitā, rāga, dveśa, abhiniveśa	Krodha, māna, māyā, lobha

According to Jainism, the sakaṣāya-yoga has first to be ended and then the akaṣāya-yoga. So, too, in the Yoga-śāstra, Kliṣṭa cittavṛttis have to be restrained first and then only the Akliṣṭa ones. It may be noted that this resemblance is not limited only to these two systems but is to be found in one way or the other in almost all the spiritual schools of philosophy. For a detailed comparative study of Saṁvara and Yoga — see my article in Baroda Uni. Journal, march 1961 p. 294.

1. In the Jain tradition, Svādhyāya, Dhyāna etc. are aids to Tapas.
2. tapaḥ-svādhyāya-īśvarapraṇidhānāni kriyāyogaḥ /
Yoga-sūtra II. 1.

Tapas, Yoga, Saṁvara or Dhyāna-Samādhi. We now propose to go a little deeper and study the fundamental unity that underlies the divergent traditions of spiritual discipline in regard to the following four philosophical postulates — (1) Independent existence of a Sentient Principle, Jīva or Ātman, (2) The innate purity of the Sentient Principle and the veil of ignorance and passions obscuring that purity, (3) Though the veil of ignorance and passions is beginningless, it can be removed by human endeavour, (4) Removal of ignorance and passions and the regaining of the innate purity by the Sentient Principle. If a sādhaka has no faith in these four principles or has any doubts about them, he can never tread the path of spiritual discipline; if at all he tries, he can not steadily progress and achieve his objective. A true sādhaka is bound to be firm and should have unflinching faith in the above-mentioned four doctrines; such a sādhaka is sure to realise his aspirations by means of rigorous discipline. These four basic principles are found recorded and indisputably recognised in the literature of every school of spiritual discipline. Even though there exist a number of schools of spiritual discipline, they can all be comprehended in the following four schools — (1) The Sāṁkhya-Yoga, (2) The Nyāya-Vaiśeṣika (3) The Bauddha and (4) The Jaina. We, therefore, give below a table presenting the afore-mentioned four fundamental doctrines as found in four schools referred to above :—

	Sāṅkhya-Yoga	*Nyāya-Vaiśeṣika*	*Bauddha*	*Jaina*
1	Independent existence of a pure sentient principle, called Puruṣa	Independent existence of a sentient principle, called Ātman	Independent existence of a sentient principle, called Nāma or Citta	Independent existence of a sentient principle, called Jīva or Ātman
2	Five-fold veil of avidyā, asmitā, rāga, dveṣa and abhiniveśa	Veil of mithyā-jñāna and passions-rāgadveṣa	Veil of avidyā and tṛṣṇā, called samudaya	Veil of mithyā-darśana and kaṣāya (passions) or darśanamoha and caritramoha
3	Right knowledge (samyag-jñāna) or viveka-khyāti and eight aids to it, called Yogāṅga	Samyag-jñāna and Yoga-mārga	Ārya-aṣṭāṅgika-mārga	Samyag-darśana, samyag-jñāna and samyag-cāritra, called saṁvara

4	Kaivalya and regaining the original state of the soul	Mukti-niśreyasa	Nirvāṇa	Mokṣa

In the important earlier Upaniṣads these very four doctrines find expression in different ways in the discussions centring around Brahman, Ātman, Avyakta, and Sat. It is true that the four basic principles have given rise to a number of other sub-doctrines and divergence of views amongst the Sādhakas and thinkers who critically evaluated them. Thus, for instance, some recognise only one Sentient Principle, while others recognise a multiplicity of such principles. Some believe it to be an invariable constant (kūṭasthanitya). Some regard it to be a variable constant (pariṇāminitya) while for some others it may be of the nature of a series (santati). Similarly, according to some, ātma-jñana may be the immediate cause of Mokṣa and yama-niyama (cāritra) may serve as aids to jñāna.[1] According to others, cāritra may be the immediate cause and samyak-jñāna, its accessory.[2] Howsoever varied and numerous such differences may be, their importance in the path of spiritual discipline is almost nil; because they are incapable of affecting the true sādhanā. Nevertheless, it is important to remember that if the sādhaka lacks conviction or faith in respect of the above four principles, the sādhanā never comes into existance and if at all it does, it proves infructuous. That is the reason why all the schools of spiritual discipline concentrate on the discussion of those four fundamental postulates.

To whatever philosophical school the sādhakas may belong — to the monistic one or the dualistic one like the Sāṁkhya or the Nyāya-Vaiśeṣika, they all unanimously acknowledge the spiritual discipline which is lucidly and almost completely embodied in the Pātañjala Yoga-śāstra. The latter may have been of a later date, yet it has found universal recognition as it happens to embody the gist of all the earlier yoga literature. So, for describing the different stages of spiritual discipline and its aids according to Vedic schools (Sāṁkhya-Yoga and Nyāya-Vaiśeṣika), we shall confine ourselves exclusively to the Pātañjala-Yogaśāstra. Tathāgata Buddha himself deviated from the prevalent yoga tradition and developed his independent and new path of spiritual discipline on the basis of his own experience. His sādhanā is described in his biography and Pāli Piṭakas. However Buddhaghoṣa in his Visuddhi-magga has described this sādhanā by summarising everything that is there in the Piṭakas and the

1. vivekakhyātir aviplavā hānopāyaḥ / Yogasūtra II. 27.
2. Samyagdarśana-jñāna-cāritrāṇi mokṣa-mārgaḥ / Tattvārtha-sūtra I. 1.

biographical accounts. Hence we shall refer to the Buddhist discipline according to the Visuddhi-magga. Although Mahāvīra followed the path of his predecessor Pārśvanātha, he improved upon it to a certain extent on the authority of his own experience. His code of discipline is preserved in the stray fragments found in the Āgamas like Ācārāṅga, Sūtrakṛtāṅga etc. The gist of all these has been systematised by Umāsvāti in his 'Tattvārtha-sūtra' under the name of Saṁvara and its means. Hence this text shall serve as a reference book for acquainting ourselves with this sādhanā.

The eight aṅgas (stages) of Yoga described in the Pātañjala Yoga-sūtra are as follows: Restraints or Vows (Yama), self-control or observance (niyama), posture (āsana), regulation of breath (prāṇāyāma), withdrawal of the senses (pratyāhāra), fixing of the mind (dhāraṇā), concentration (dhyāna) and trance or ecstasy (samādhi). Of these five yamas or great vows[1] constitute the bedrock of spiritual discipline. The niyama[2] is instrumental in strengthening the yamas. These two in turn help to minimize the intensity of the passions (kleśa), and to develop friendship (maitrī) and compassion (karuṇā) which enrich the life of the sādhaka. Āsana and prāṇāyama (Yogsūtra. II. 48) enable the sādhaka to withstand the dualities like heat and cold etc., while by means of pratyāhāra, dhāraṇā, dhyāna and samādhi (Yogsūtra II. 55), he is able to achieve a complete control over the senses and manifest a subtle and truth-revealing thought-power, technically called Ṛtambharā Prajñā. Patañjali also gives a general guidance to the sādhaka for realising these yogāṅgas according to his capacity, wherein study (abhyāsa) and detachment (vairāgya) are to be practised first and then muttering of mantras (japa), contemplation (bhāvanā) and concentration (dhyāna). (Yogsūtra I. 28, 32, 33, 39).

The Visuddhimagga gives a very lucid and elaborate description of the path of spiritual discipline, technically called the Ārya-aṣṭāṅgika-mārga[3]—the eightfold path comprised by the three broad divisions viz.

---

1. Non-violence (ahiṁsā), truthfulness (satya), non-stealing (asteya), continence (brahmacarya) and non-possession (aparigraha). (Yogsūtra II. 30).
2. Five niyamas are: (i) cleanliness (śauca), (ii) contentment (santoṣa), (iii) penance (tapas), (iv) study of religious books (svādhyāya) and (v) meditation of God (Īśvara-praṇidhāna). (Yogsūtra II. 32).
3. The eight-fold path includes: (i) right view (sammā-diṭṭhi) (ii) right resolution (sammā-saṁkappo), (iii) proper words (sammā-vācā), (iv) proper action (sammā-kammanto), (v) proper means of livelihood (sammā-ājīvo), (vi) proper exertion (sammā-vāyāmo), (vii) mindfulness

good conduct (Śīla), meditation (samādhi) and wisdom (prajñā). Of these Śīla may be compared to the Pātañjala Yama-niyama, Samādhi to Prāṇāyāma, Pratyāhāra, Dhāraṇā, Dhyāna and Samādhi, and Prajñā to Viveka-khyāti.

Umāsvāti in his Tattvārtha-sūtra describes the aids to Saṁvara which are as under: Self-control (gupti), self-regulation (samiti), moral virtues (dharma), contemplation (anuprekṣā), conquest of afflictions (pariṣaha-jaya), conduct (cāritra) and austerity (tapas).[1] Of these it is easy to see that Cāritra conforms to Pātañjala Yama and Buddhist Śīla. Internal austerity (ābhyantara tapas) like Dhyāna etc. resemble Pratyāhāra as recognised by Patañjali and Samādhi as accepted by Buddha. Similarly, external austerity (bāhya-tapas) like fasting (anaśana) etc. corresponds to the third Niyama given by Patañjali viz. Tapas. Internal austerity like study (svādhyāya) may be compared to the Pātañjala svādhyāya which constitutes the fourth of the five niyamas.

The above suggestive comparison is intended to show how a sort of fundamental unity underlies all the different traditions of spiritual discipline despite the differences of terminology and classifications. Spiritual aspirants may take recourse to any path of discipline, still there will always be a uniformity in their experience of the different stages of spiritual development, provided they possess a true spiritual attitude. This is amply testified by the earlier philosophical literature of the three traditions viz, the Vadic, the Jaina and the Bauddha. Thus, for example, the Sāṁkhya-Yoga describes the five stages of spiritual development, viz. the four Saṁprajñāta Samadhis and the fifth and final Asaṁprajñāta

---

in the right way (sammā-sati) and (viii) proper meditation (sammā-samādhi). —Saṁyutta-nikāya 5, 10 and Vibhaṅga 317–28.

1. Tattvārtha-sūtra, IX, 2–3

The Jainas admit austerity (tapas), both physical and mental or external and internal which effects stoppage (saṁvara). External austerity has six sub-classes – (1) Fasting (anaśana), (2) decreased diet (avamodarya), (3) Fixing the type of diet by the exclusion of all other types (vṛtti-parisaṁkhyāna), (4) giving up delicious diet (rasa-parityāga), (5) Selecting a lonely habitat (vivikta-śayanāsana), (6) mortification of the body (kāya-kleśa). Internal austerity has the following sub-classes :– (1) Expiation (prāyaścitta), (2) humility (vinaya), (3) service of worthy people (vaiyāvṛtya), (4) study (svādhyāya), (5) giving up attachment to the body etc. (vyutsarga), (6) concentration (dhyāna). Cf. Tattvārthasūtra, IX, 19–20

Samādhi.[1] Over and above these are described the four kinds of concentration (samāpatti) viz, Savitarka, Savicāra, Nirvitarka, Nirvicāra.[2] Similarly, the Buddhist texts describe the four stages of spiritual development such as Sotāpatti, Sakadāgāmi, Anāgāmi and Arhat; the four types of Dhyāna are Savitarka-vicāra-prīti-sukha-ekāgratā, Prīti-sukha-ekāgratā, Sukha-ekāgratā and Ekāgratā. The Jain tradition describes fourteen stages of spiritual development, beginning with the Mithyā-dṛṣṭi stage and four Dhyānas viz. Pṛthaktva-vitarka-savicāra, Ekatva-vitarka-avicāra, Sūkṣma-kriyā-pratipāti, Samucchinna-kriyā-nivarti.[3] The Yoga-Vāsiṣṭha enumerates fourteen stages of which seven are of ignorance and the other seven are of knowledge.[4] All this uniformity of description suggests to uniformity of spiritual experience. The self-same experience has sometimes been discribed briefly and at times elaborately, sometimes in old terminology and at other times in a new garb by the new sādhakas either in accordance with their aptitudes and capacities, or in accordance with the calibre of the audience before them. This is the reason why the Pāli Piṭakas treat of the four dhyānas whereas a fifth one was added later on[5]. Similarly in the beginning there happened to be four stages of Sotāpatti and the four types of fruits thereof. These eight got replaced by the ten stages viz. Pramuditā etc.[6] In the Jain tradition the fourteen steps of spiritual ladder (Guṇasthāna) were comprehended by the three broad divisions viz. the external self (Bahirātmā), internal self (Antarātmā) and the transcendental self (Paramātmā)[7].

In this way a vast bulk of Yoga literature had developed long before the times of Harībhadra and he was catholic enough to take notice of all this literature and utilise the same, as we shall presently see, in his own writings on Yoga.

1. vitarka-vicārānandāsmitārūpānugamāt samprajñātaḥ / Yoga-sūtra I. 17.
2. Yoga-sūtra, I. 42, 43, 44.
3. Tattvārtha-sūtra, IX. 39.
4. For a detailed and comparative study of the different stages of spiritual development and of the various types of dhyāna-Cf appendix no 5 of the 'Yoga-Śataka' pp. 128 to 141. (Gujarati edition published by the Gujarat Vidyā Sabhā).
5. Viśuddhi-magga p. 113.
6. The ten stages are : (1) Pramuditā, (2) Vimalā, (3) Prabhākari, (4) Arciṣmati, (5) Sudurjayā, (6) Abhimukhi, (7) Duraṁgamā, (8) Acalā, (9) Sādhumati, (10) Dharma-meghā. For an elaborate explanation Cf. appendix 5 of the Yoga-śataka (Gujarati edition).
7. Cf. Samādhi-Śataka of Pūjyapāda, from St. 4 onwards.

III. Haribhadra's works on Yoga.

The Jain philosophical literature before Haribhadra describes, as we have seen, the different stages of spiritual development under various designations — as fourteen Guṇasthānas, as four Dhyānas or as three stages of self viz the Bahirātma (the exterior self), Antarātma (the interior self) and Paramātma (the transcendental self). Haribhadra, for the first time, describes them as Yoga and employs altogether new style and a new terminology. What is more, he compares the Jain Yoga (and its terminology) with the Pātañjala and the Buddhist Yoga, bringing out thereby very ably and clearly the unity that underlies all these divergent traditions of Yoga. Thus not only the Jain Yoga literature, the whole of Yoga literature has been immensely enriched by his novel approach. This will be clear from a study of the following Yoga-works of Haribhadra.

Haribhadra's chief works on Yoga are four — Yogabindu, Yoga-dṛṣṭi-samuccaya, Yoga-śataka and Yoga-viṁśati. Certain chapters in the 'Ṣoḍaśaka' do pertain to Yoga but they do not give us any new information which is not given in the above four works. The first two works are written in Sanskṛta and the last two in Prākṛta. Yogabindu has 527 verses, Yoga-dṛṣṭi-sammuccaya has 227 verses, Yoga-Śataka has 100 gāthās and Yoga-viṁśati has 20 gāthās.

Yoga-bindu

That the souls from beginningless time have been wandering in the world under the sway of passions is an experienced fact. The question, therefore, is whether it is possible for them to achieve freedom from these passions and if so, by what means? The author replies that though the entanglement in the world is beginningless, it is not endless because it can be certainly ended by human endeavour. The achievement of the final goal is very difficult indeed; for, the means to it such as Adhyātma etc are extremely tough and abstruse and hence not easily available to each and every self. Only those who are in the Caramāvarta, that is, who have worked out the requisite purification of the self, are capable of practising Adhyātma etc. Such sādhakas are termed Śukla-pākśika, Bhinna-granthi[1], Cāritrī etc. (st. 72, 99). Conversely, men

1. The worldly existence of a soul falls into two periods, viz, dark (kṛṣṇa) and white (śukla). The soul in the period preceding the cutting of the knot (granthi-bheda) is known as belonging to the dark period (kṛṣṇapākṣika) and it is known as belonging to the white period (śukla-pākṣika) when it has cut asunder the knot. The duration of the white period is much shorter in comparision with

of opposite character who are in the Acaramāvarta, delight in the pleasures of the mundane existence as they are still overpowered by intense infatuation. These people are deemed incompetent for the Yoga-mārga and hance are truly called Bhavābhinandi by Haribhadra (st. 73, 85, 86, 97).

Haribhadra, then, describes the preliminary preparation necessary to qualify oneself for Yoga. It is technically called Pūrva-sevā by Haribhadra. The following are its constituent elements (i) Worship of preceptors, deities and the like (devagurupūjana) (ii) good conduct (sadācāra) (iii) penance (tapas) (iv) non-antipathy towards Mukti (mukti-adveṣa). These four things are described at length in about forty verses (109 to 149). These are the pre-requisites, so to say, for yogādhikāra.

The aforesaid Yogādhikāri Sādhakas have four gradations in accordance with the degree of purification of the self — (i) Apunarbandhaka[1] (ii) Samyag-dṛṣṭi or Bhinna-granthi, (iii) Deśa-virati, (iv) from Sarva-virati to perfect ones. A major portion of the present work is devoted to the discussion of the characteristics of these sādhakas as well as their religious performances.

Apunarbandhaka possesses characteristics quite opposite to those of Bhavābhinandi. Though not yet firm in the religious faith, he is in the direction of becoming so. He is ever ready to develop virtues like self-confidence (adainya), politeness (dākṣinya), detachment (bhavavairāgya) etc. and so he is able to gradually reach the stage of granthi-bheda (177, 178, 202).

The next adhikāri is Samyag-dṛṣṭi or Bhinna-granthi. He is ardently desirous of listening to Scriptures and has liking for Cāritra-dharma (right conduct — 253). Though immersed in the whirlpool of mundane existence, his mind is really inclined towards Mukti owing to the annihilation or suppression of Darśana-moha (ignorance). It is only his body that exists in Saṁsāra. That is why his Yoga is designated as Bhāva-

---

that of the dark period. The length of the white period is only less than even one pudgalaparāvarta while the length of the dark period covers an infinite number of such pudgala-parāvartas. A pudgala-parāvarta is the time required by a soul to absorb as karman at least once all the atoms of the universe and release them after they have come to fruition. (This passage is extracted from Dr. Tatia's 'Studies in Jain philosophy' p. 298).

1. For a detailed occount of Caramāvarta and Apunarbandhaka — see Appendix 1 and 2, of the Gujarati edition of the Yoga-śataka published by Gujarāta Vidyā Sabhā.

yoga (203, 205) and his activity is said to result from antarviveka — inner wisdom (248-49). On account of these special features, his Pūrva-sevā naturally assumes a higher excellence.

The Samyag-dṛṣṭi sādhaka, gradually annihilating his passions, attains in due course, the state of a Cāritrī (351-352). He is now firm in religious faith and never transgresses the path of righteousness (353).

In the description of the Cāritrī, Haribhadra gives an exposition of the five stages of Yoga, namely - Adhyātma or contemplation of truth accompanied by moral conduct, Bhāvanā or repeated practice in the contemplation accompanied by the steadfastness of the mind, Dhyāna or concentration of the mind, Samatā or equanimity and Vṛtti-saṁkṣaya or the annihilation of all the traces of karman; because a Cāritrī alone is capable of this Yoga in the real sense as he has worked out the requisite purification. It is said to be in an embriyonic form in Apunarbandhaka and samyag-dṛṣṭi owing to the predominating strength of Cāritra-moha (energy deluding karman) in them. Let us notice the nature of the five types of Yoga in brief: Adhyātma is meditation upon the truth accompanied by the observance of five vows and cultivation of universal friendship (maitrī), appreciation of merit (pramoda), compassion for the suffering (karuṇā) and indifference to the wicked (mādhyasthya). By these the soul is able to annihilate karman, reveal its spiritual energy and develop the power of self-concentration etc. The aspirant then becomes fit for the second stage called Bhāvanā. This stage is the consummation of the first. The soul now desists from bad thoughts and habits and develops good thoughts and good habits. In the third stage of Dhyāna, the mind concentrates deeply on some one worthy object. It enables the Sādhaka to acquire the steadiness of mind and annihilate ignorance and passions. In the fourth stage of equanimity, the soul evaluates correctly the desirable as well as the undesirable things and consequentiy develops detachment for them. By this Yoga, the soul overcomes sūkṣma-karman (residual) and attains supernormal powers though he may not attach any importance to them. In the fifth stage the soul completely eradicates the residual karman once for ever and attains omniscience. Then in due time, it attains final emancipation (358-367). According to Haribhadra, the first four and the last one are respectively comparable to the Saṁprajñāta and Asaṁprajñāta Samādhi as described by Patañjali[1]. (St. 419-21).

1. It should be noted here that in his Yogāvatāra-batriśi (St. 20), Yaśovijayaji, following Haribhadra, compares the first four stages viz. Ādhyātma etc. to the Pātañjala Saṁprajñāta and the last Vṛtti-saṁkṣaya, to the Asaṁprajñāta yoga. But when he writes a gloss

Yogadṛṣṭi-samuccaya

The description of the stages of spiritual development found in this work differs from the one found in the Yoga-bindu in regard to terminology, classification and style. It incorporates certain topics of Yoga-bindu in different words and it also adds certain other new topics. The outstanding feature of this work is that it records three novel classifications of yogic stages. The first consists of the three-fold Yoga viz., – Icchāyoga, Śāstrayoga and Sāmarthyayoga. The second classification records the eight types of Yoga-dṛṣṭis whose nature is adumbrated below. The third classification gives us the four categories of yogis. Now let us study these three classifications.

" A qualified yogic practitioner passes through a number of stages before he reaches the consummnation of the practice. Sometimes even inspite of his knowledge and will he falters in his practice on account of spiritual inertia (pramāda). This faltering practice is called icchāyoga. The practice of one who has revealed spiritual energy and does not falter in his yogic practices, strictly follows the scriptural injunctions, and has developed penetrating insight is called śāstrayoga. The practice of one who has fully mastered the scriptural injunctions and has developed the power to transcand them is called sāmarthya-yoga. (St. 3-5). This latter yoga, again, is of two kinds viz. (1) that which is accomplished by the dissociation of all the acquired virtues (dharmasaṁnyāsa) and (2) that which effects the stoppage of all activity (yogasaṁnyāsa). The first kind occurs at the time when the soul undergoes the process of apūrvakaraṇa for the second time in the ninth stage of spiritual development while the second occurs in the last stage of spiritual development immediately after which the soul attains final emancipation (St. 9-10). These viz. icchāyoga, śāstrayoga, and sāmarthayoga are the three broad divisions of all the possible stages of yoga. " The eight dṛṣṭis which are outlined below are only the elaboration of these three. (St. 12).

Dṛṣṭi means attitude towards truth. This attitude is wrong and perverse so long as the soul has not cut the knot and attained purification. The perverse attitude is known as dṛṣṭimoha or mithyātva or avidyā. The attitude of thesoul which has not cut the knot is known as oghadṛṣṭī (literally commonplace attitude). The opposite of this is Yogadṛṣṭi, that

on the Pātañjala Yoga-sūtra (I. 18), he includes even the Saṁprajñāta in the Vṛtti-saṁkṣaya. This means that he gives a wider connotation to Vṛtti-saṁkṣaya and extends its range from the fourth Guṇasthāna to the fourteenth one.

is, right attitude. The oghadṛṣṭi is held to be responsible for the origination of the mutually conflicting systems of thought (st. 14). The eight dṛṣṭis are as under: —(1) mitrā, (2) tārā, (3) balā, (4) dīprā, (5) sthirā, (6) kāntā, (7) prabhā, and (8) parā. They are all yogadṛṣṭis and not oghadṛṣṭis. Of course, of these eight the first four belong to those who have not cut the knot. But even then they are not oghadṛṣṭis in view of the fact that they are destined to lead to the yogadṛṣṭis. It is only those souls who are destined to cut the knot and attain final emancipation that are capable of these dṛṣṭis. The eight dṛṣṭis have respectively been compared to the sparks of straw-fire (tṛṇāgni), cow-dung fire, wood fire, the light of a lamp, the lustre of a gem, the light of a star, the light of the sun, and the light of the moon (st. 15). The first four dṛṣṭis are not attended with the knowledge of truth (avedyasaṁvedyapada) and are unsteady and fallible. It is only the last four dṛṣṭis that are attended with the knowledge of the truth (vedya-saṁvedyapada) and are steady and infallible (St. 19). The avedyasaṁvedyapada is to be transcended by means of the companionship of the virtuous and the study of the scriptures. These eight dṛṣṭis respectively correspond to the eight famous stages of yoga viz. vows (yama), self-control (niyama), posture (āsana), regulation of breath (prāṇāyāma), withdrawal of the senses (pratyāhāra), fixing of the mind (dhāraṇā), concentration (dhyāna), and ecstasy (samādhi), as found in the system of Patañjali. They are respectively free from inertia (kheda), anxiety (udvega), unsteadiness (kṣepa), distraction (utthāna), lapse of memory (bhrānti), attraction for something else (anyamud), mental disturbance (ruk), and attachment (āsaṅga). They are respectively accompanied with freedom from prejudice (adveṣa), inquisitiveness (jijñāsā), love for listening (śuśrūṣā). attentive hearing (śravaṇa), comprehension (bodha), critical evaluation (mīmāṁsā), clear conviction (pariśuddhā pratipatti), and earnest practice (pravṛtti) (St. 16). These are the general features of the dṛṣṭis."[1]

Haribhadra distinguishes the four types of yogins viz. gotrayogin, kulayogin, pravṛttacakrayogin and siddhayogin. Of these it is only the yogins of the second and the third type that need instruction in yoga. Those belonging to the first category are inherently incapable of emancipation, whereas the yogins of the fourth type have already achieved their objective and, therefore, they do not need any instruction or yogic discipline. (St. 208-212).

1. This extract has been reproduced from Dr. Nathmal Tatia's "Studies in Jaina Philosophy (1951 edition)" pages 300-302. For specific characteristics of these dṛṣṭis a reference may be made to this valuable work at pages 302 to 304.

The preliminary preparation described in Yoga-bindu finds here a somewhat detailed mention under Yoga-bīja. This preparation comprises a number of things, such as a mental attitude of high regard towards the Tīrthaṅkaras, preceptors, yogins etc., devotion and love for scriptures i. e. writing, worshipping, offering as a gift, listening to, publishing, reading, duly grasping, studying, pondering over etc., and lastly reverence to deity, Brahmins and mendicants, (St. 22, 23, 27, 28, 151).

Yoga-śataka

The subject matter of Yogaśataka closely resembles that of the Yogabindu and most of the topics found in it are summarised in the Yogaśataka.

This work opens with an exposition of the nature of Niścaya-yoga and Vyavahāra-yoga. The coming together in one soul the three attributes, viz. the right knowledge, the right belief and the right conduct is Niścaya-yoga, because it brings about connection or union (yoga) with Mokṣa, while those things which lead to and are thus the causes of these three viz. the right knowledge etc. constitute Vyavahāra-yoga. It includes such things as attendance on and worship of the preceptor, a desire to listen to the scriptural topics and the obeying of the scriptural injunctions and prohibitions as per one's capacities. Next, the question as to who are the persons qualified for yoga is discussed in the manner of Yogabindu in the Sāṁkhya and the Jaina terminology.

The preliminary preparation finds mention here in a different manner and not under the name of Purvaseva or Yogabīja. It is called "Laukika dharma", which comprises non-oppression of others, charity to the poor and helpless, worshipful treatment of the preceptor, the deities and the guests. (Stanzas 25–26).

The classification of the sādhakas into Apunarbandhaka and Samyagdṛṣṭi etc. as also their characteristics are described precisely in the same manner as in the Yogabindu (St. 9, 13-16). The spiritual discipline of each sādhaka is not described in detail, but it is broadly pointed out that the spiritual discipline of each sādhaka suitable to his own stage is nothing but Yoga because it is generally devoid of bad or evil thoughts (durdhyāna) and further because it satisfies the definitions of Yoga, as recognised in all the systems. (St. 21–22).[1]

Then Haribhadra describes certain rules, principles and means, both external and internal, by means of which the sādhaka can bring about

1. See the Gujarati edition of the Yoga-Śataka (published by Gujarat Vidyā Sabhā) for an explanation of these definitions, pp. 38–39.

his spiritual development from the existing stage to the next higher stages (38–50). One should decide the propriety or otherwise of one's own activity on the basis of introspection, on the basis of what other people say about him and on the basis of the purity of body, mind and speech (Śuddha-yoga). Further, he should keep company with those who are superior to him in spiritual development, should reflect on the nature of the worldly existence and the passions that bind the soul. He should resort to external means such as penances, self–surrender to the preceptor etc. for the removal of inauspicious karmas like fear etc. These are the means to be employed by the developed sādhakas. A novice, however, should first benefit from such means as the study of the scriptures (Śruta-pāṭha), going on a pilgrimage etc. (St. 51–52). After knowing the meaning of the scriptures he should take recourse to introspective self-inspection, to find out if there are, in his own self, the inner flaws like attachment (rāga), aversion (dveṣa), delusion or false belief (moha) etc. Further, Haribhadra gives an elaborate description of the method of reflection on the objects of rāga and dveṣa etc. and their results for securing a better concentration of the mind. (St. 59 to 80).

Lastly, Haribhadra gives us a glimpse into the mode of eating and drinking, proper for a sādhaka. This part of the work mainly describes the characteristics of the proper mode of begging alms from the householders (sarvasaṁpatkari-bhikṣā). (St. 81–82).

All the aforesaid means gradually bring about the annihilation of inauspicious or sinful (aśubha) karmas and eventually empancipation (mokṣa) through the acquisition of auspicious (śubha) karmas (St. 83-85).

Yoga-Viṁśikā

This work gives a very brief sketch of Yoga. It does not refer to the initial stages, but discusses only the advanced stages of spiritual development. All spiritual and religious activities are considered by Haribhadra as Yoga. But special importance should be attached, he says, to these five kinds of activities: "(1) practice of proper posture (sthāna), (2) correct utterance of sound (ūrṇa), (3) proper understanding of the meaning (artha), (4) concentration on the image of a Tīrthaṅkara in his full glory (ālambana), and (5) concentration on his abstract attributes (anālambana). Of these five, the first two constitute external spiritual activity (karma-yoga) and the last three internal spiritual activity (jñānayoga) (gāthā 1–2). These activities can be properly practised only by those individuals who have attained to the fifth or a still higher stage of spiritual development (guṇasthāna). One reaches the consummation of these activities in the following order. At the outset one develops an interest in these activities,

and comes to have a will (icchā) for practising them. Then he takes an active part in them, and begins actual practice (pravṛtti). Gradually he becomes steadfast in them and achieves stability (sthairya). Finally he gains mastery (siddhi) over the activities (St, 4). Each of the five activities is mastered in this order. First of all one is to master the posture (sthāna), then correct utterance (ūrṇa), then the meaning (artha). After that one should practise concentration upon an image (ālambana), and finally one should attempt at mastery over the concentration upon the abstract attributes of an emancipated soul. This is a full course of Yogic practice. One may practise these spiritual activities either out of love (prīti), or reverance (bhakti), or as an obligatory duty prescribed by scriptures (āgama or vacana), or without any consideration (asaṅga) (St. 18). When a spiritual activity is done out of love or reverance it leads to worldly and other-worldly prosperity (abhyudaya). And when it is done as a duty without any consideration whotsoever, it leads to final emancipation (St. 18). Of the five-fold activities mentioned above, the last two, viz. concentration of the mind upon the image of a Tirthaṅkara or upon the obstract attributes of him are the most important".[1] The word anālambana does not mean 'devoid of any ālambana (object) but only devoid of a concrete ālambana'. The soul in the anālambana stage is compared with an archer, the ladder of annihilation with the bow, the realisation of the self with the target and the concentration with the arrow. The anālambana Yoga lasts until the arrow is shot. The distinction, therefore, between the ālambana and the anālambana Yoga is that in the former one concentrates upon a rūpī object while in the latter on an arūpī (formless) object. Yaśovijayaji, following Haribhadra, says that this anālambana Yoga is known as Saṁprajñāta Samādhi in the Pātañjala Yoga (cf. his commentary on Yoga-viṁśikā, St. 19-20). The consummation of this anālambana concentration is omniscience which, according to Yaśovijayaji, is the state of a Samprajñāta Samādhi of Patañjali's system.

IV

Evaluation

After having acquainted ourselves with the contents of Haribhadra's Yoga-works, it will not be out of place to sum up the topics that are discussed for the first time in Jaina literature by Haribhadra.

The employment of the term 'Pūrva-sevā and the inclusion in it of the worship of preceptors, deities etc. — both these things are totally

1. Reproduced from Dr. Tatia's 'Studies in Jaina Philosophy' pp. 293-94.

new to the Jaina tradition. Next the classification of the Yogādhikāris into Apunarbandhaka, Samyag-dṛṣṭi etc. is quite traditional but all the three classifications viz. of eight dṛṣṭis, three Yogas and four types of Yogins, found in the Yoga-dṛṣṭi-samuccaya as also the whole of the terminology pertaining to it are Haribhadra's own. Similarly, the different types of practices (anuṣṭhāna); such as Viṣa, Gara etc. (Yogabindu), as also the classification of the religious discipline (sadanuṣṭhāna) into prīti, bhakti etc. (Yogaviṁśikā, Ṣoḍaśaka) are mentioned for the first time by Haribhadra. Last but not the least, are the two classifications of the different stages of Yoga into adhyātma, bhāvanā etc. (Yogabindu) and into sthāna, ūrṇa etc. (Yogaviṁśikā) which point to a new development in the Jaina Yogic literature.

The above account makes it clear that in describing the course of discipline Haribhadra has attempted to make as little use of traditional terminology as possible and has, instead, employed for the first time an altogether new terminology common to all Yoga. This is, doubtless, a valuable contribution of Haribhadra, but much more valuable and noteworthy is his original attempt to compare and harmonize the Jaina Yoga and the Jaina terminology with the Yoga and the terminology of other Indian philosophical systems. The following instances will amply testify to the truth of our statement.

In the Yogabindu (St. 101-103) referring to the view of an exponent of the Sāṁkhya system, named Gopendra, Haribhadra says that the Sāṁkhya terms nivṛttādhikāraprakṛti and anivṛttādhikāraprakṛti in essence correspond to the Jaina terms caramapudgalaparāvarta and acaramapudgalaparāvarta. In the same way Haribhadra compares the Jaina concept of Samyagdṛṣṭi with the Buddhist concept of a Bodhisattva (Yogabindu St. 267-69, 271, 273, 285-86) and shows how the two concepts are essentially similar. Haribhadra says that the fall of a sādhaka who has reached the stage of granthibheda (by cutting the knot), if at all it occurs, is only for the time being. His religious conduct may externally resemble that of a deluded soul (mithyādṛṣṭi), yet he does not incur a bondage of great intensity because his thought-activity is purer as compared to that of a mithyādṛṣṭi. A bodhisattva, too, does not commit an evil act from the depths of his heart, but if he does it at all, he does it only physically. There is no more spiritual degeneration (cittapātī). Both these now take interest exclusively in the well being of others, acquire wisdom, tread upon the right path, become noble and appreciate merits. (St. 272). Even the etymological meaning of the two terms samyagdṛṣṭi and bodhisattva is the same. Samyg-

darśana or the right attitude is nothing but bodhi and bodhisattva is one in whom this bodhi predominates (St. 273). On the first dawn of enlightenment, the determination of both these souls is also the same viz. " I will exert myself to redeem the world from its sufferings by means of the enlightenment ". (St. 285-286).

In the discussion about the concept of God and that of the fundamental ground of worldy existence (bhavakāraṇa), Haribhadra quotes the view of the Yogācārya Kālātīta in support of his statement. Kālātīta, overcoming the verbal differences, tried to see the fundamental unity of all thought. Haribhadra quotes his very words — 'That which is possessed of aiśvarya (power) is, in our opinion, Īśvara; we may call it by any name - Mukta, Buddha or Arhat. The distinctions such as ādi and anādi etc. as applied to Him in the different systems are all futile because a superficial thinker does not really know the truth but makes only conjectures about it. Secondly, the inference reveals only the general characteristics of things; hence such inference cannot correctly guide us in respect of the specific character of things. Thirdly, whatever be the philosophical belief, it does not make any difference in the final result, namely, the annihilation of passions, provided one is able to develop the right attitude (samyag-darśana). The same line of argument applies to bhava-kāraṇa, the fundamental ground of worldly existence. It is only expressed in different terms such as avidyā, kleśa, karma, vāsanā, pāśa etc. in different systems. The various distinctions such as those of mūrtatva-amūrtatva that are spoken of with reference to karma etc. are, for the very reasons stated above, absolutely meaningless.' In conclusion, Haribhadra avers that it is sheer dogmatism to maintain and magnify the verbal differences. For the real thinkers it is the purport or the spirit rather than the letter or the word that is of utmost importance (Yoga-bindu. St. 302 to 309). Every earnest student of philosophy has his own way of looking at the truth and the result is the origination of the different systems of philosophy. Haribhadra asks us to see the unity in difference.

Haribhadra's concept of Pūrva-Sevā and the wider connotation given to the word Guru are noteworthy and so they deserve a special mention. Haribhadra says that the mind of one who wants to progress spiritually should be catholic enough to include amongst the gurus not only the Dharma-guru but all the elders such as mother, father, kalācārya, jñāti-jana, Brāhmin etc. (St. 110). Similarly, even if a spiritual aspirant may have greater devotion for one particular deity, he should respect all the deities alike (Yoga-bindu, St. 117-118). Haribhadra's dispassionate

attitude is reflected when he asks to practise the various types of penance such as krcchra, cāndrāyana mentioned in the smṛti-works (Yoga-bindu, 131–35). In the discussion of the five stages of Yoga also, the detailed exposition of Adhyātma is so all-comprehensive as to include within its purview all sorts of training and discipline prevalent in the different schools of Yoga. The rigour of this discipline may vary in accordance with the capacity and the attitude of the aspirant. For instance, for an aspirant in the initial stage, Haribhadra advocates japa (the muttering of a mantra) recognised in Patañjali while for an advanced sādhaka he suggests a higher and difficult discipline such as aucityālocana (examination of the propriety or otherwise of the given situation), ātma-samprekṣana (introspection) and other bhāvanās like maitrī, karunā etc. which are also to be found in Patañjali (St. 381 to 404).

There are two other important topics discussed by Haribhadra in the Yoga-dṛṣṭi-samuccaya. One is that of Omniscience (sarvajñatva) and the other is of the ultimate end, namely, emancipation (mokṣa). A very great controversy was raging in the philosophic field in respect of these two points. Keeping that controversy in view, Haribhadra has contributed a lot by showing the true purport underlying these hair-splitting discussions. The gist of his whole discussion is this. Omniscience, in its general character, is accepted by almost all the philosophers. It is only in regard to its specific character that the divergence of views prevails. However, the specific character being supersensual (atīndriya) can never be known by one who has not realised the ultimate truth (chadmastha). Moreover, there may, possibly, be many reasons for the divergence found in the teachings of the different omniscient persons. They may have revealed the truth in accordance with the needs of the spiritual aspirants; or the self-same revelation may appear as different to different persons; or the different times and climes may have been responsible for the divergent teachings. If it is a fact that those who have revealed the truth had realised it there is no reason why there should be any controversy amongst them. The various revelations are, therefore, to be understood in their relevant contexts. They can in no way be considered as false assertions. Hence, it is not wise on our part to refute their views without thoroughly knowing their intentions. And had it been possible to conclusively decide such supra-sensual matter by means of mere logic, it would have been so decided by the talented people before long. One should, therefore, avoid mere logical argument in such matters (St. 103 to 109, 134 to 147).

The state of final realisation, though designated differently as Nirvāṇa, Sadāśiva, Para-brahma, Siddhātmā, Tathatā in different systems, is, in reality, one of uniform nature throughout—eternal, infallible (nirābādha) and absolutely devoid of defiling forces (nirāmaya) (St. 129 to 132). The truth is always one. It cannot be many. There is only the difference of terminology. In the Yoga-śataka too, Haribhadra has beautifully harmonised all the different definitions of Yoga.[1]

Before we end this evaluation, we should take note of one thing, namely that Haribhadra himself seems to have gradually developed spirituality culminating in the Yoga. This development is seen reflected in the following instances. The first one is of omniscience noted above. When Haribhadra composed works like Dharma-saṁgrahaṇī and Sarvajña-siddhi, his main aim was to establish on the strength of reasoning, the omniscience (sarvajñatva) as recognised in the Jaina tradition. This was quite common in the Tarka period; for, all the philosophical systems then tried to establish their position on the strength of reasoning and refuted at the same time the opponent's position. Haribhadra not only emphatically advocated his case but he further added that such omniscience is strictly limited to Ṛṣabha, Mahāvīra etc. and it is not to be found in Kapila, Sugata etc. Such belief was prevalent since the Āgamas and it was later on vehemently maintained by the Jaina logicians like Samantabhadra, Akalaṅka etc. Haribhadra too followed them in his earlier works. Nevertheless, when Haribhadra happens to deal with Yogic discipline, he boldly presents a view which is consistent with Yoga. In the discussion of the very topic of omniscionce, he later on goes far beyond the Jaina tradition and declares that whoever realises the ultimate truth Nirvāṇa is sarvajña, whether he be Kapila, Sugata or anyone else.

In a similar manner Haribhadra, in his dialectical works like the Anekāntajaya-patākā enters into a deep controversy following the tradition of other Jaina polemical works. However, when he takes to writing on Yoga, he in the manner of a true sādhaka, at once points out in strong terms the futility and the unsubstantiality of such polemics. He says, "Dialectics is never conclusive and hence can lead nowhere like the bull-in-an-oil-mill which moves round and round".[2]

---

1. See the Gujarati edition of the Yoga-Śataka, pp. 38-39.
2. vādāṁś ca prativādāṁś ca vadanto niścitāṁs tathā /
   tattvāntaṁ naiva gacchanti tilapīlakavad gatau //
   Yoga-bindu, 67.

The above examples make it clear that Haribhadra in his writings on Yoga does not succumb to any narrow-mindedness or prejudices, and his utterances are of a true Sādhaka. His dispassionate attitude and independent reflection reach climax in such works. That is why his Yoga works occupy a foremost place in the whole of his literature.

We have already seen that a lot of Yoga literature was in vogue in different circles before Haribhadra and much has been written on Yoga even by his successors. It cannot be gainsaid that all this bulk of Yoga literature is undoubtedly invaluable; but to our knowledge none has so far made such a brilliant, comparative and all-comprehensive study of Yoga as is done by Haribhadra. Thus Haribhadra's contribution to Yoga stands unparalleled even to this day.

H. K. Arts College,
Ahmedabad-9.
1-1-'65

INDUKALA JHAVERI

विषयानुक्रमः ।

* *

* *

ब्र. न. द्वि.
१५-३-७८

॥ जयन्तु वीतरागाः ॥

याकिनीमहत्तरासूनुश्रीहरिभद्रसूरिविरचितं

योगशतकम् ।

स्वोपज्ञटीकया समलङ्कृतम् ।

[१–द्वि०] ॥ ॐ नमः सर्वज्ञाय ॥ 5

योगशतकस्य व्याख्या प्रस्तूयते। इह चाऽऽदावेवाऽऽचार्यः शिष्टसमयप्रतिपालनाय विघ्नविनायकोपशान्तये प्रयोजनादिप्रतिपादनार्थं चेदं गाथासूत्रमुपन्यस्तवान्—

णमिऊण जोगिणाहं सुजोगसंदंसगं महावीरं ।
वोच्छामि जोगलेसं जोगज्झयणाणुसारेणं ॥१॥

तत्र शिष्टानामयं समयः, यदुत शिष्टाः क्वचिदिष्टे वस्तुनि प्रवर्तमानाः 10 सन्त इष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं प्रवर्तन्ते । अयमप्याचार्यो न हि न शिष्ट इत्यतस्तत्समयप्रतिपालनाय । तथा श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्तीति । उक्तं च—

"श्रेयांसि बहुविघ्नानि भवन्ति महतामपि ।
अश्रेयसि प्रवृत्तानां क्वापि यान्ति विनायकाः ॥" इति ।

इदं च योगशतकं सम्यग्ज्ञानहेतुत्वात् श्रेयोभूतं वर्तते, अतो मा भूद् विघ्न 15 इति विघ्नविनायकोपशान्तये "णमिऊण जोगिणाहं सुजोगसंदंसगं महावीरं" इत्यनेनेष्टदेवतास्तवमाह ।

प्रेक्षापूर्वकारिणश्च प्रयोजनादिशून्ये न प्रवर्तन्त इति प्रयोजनादिप्रतिपादनार्थं च "वोच्छामि जोगलेसं जोगज्झयणाणुसारेणं" इत्येतदाह । एष तावद् गाथाप्रस्तावः समुदायार्थश्च । अधुनाऽवयवार्थ उच्यते— 20

'नत्वा' प्रणम्य । कम् ? इत्याह— 'योगिनाथं' योगः—सज्ज्ञानादि-सम्बन्धरूपो वक्ष्यमाणलक्षणो निश्चयादिभेदभिन्नः, स विद्यते येषां ते योगिनः—मुनयः, तेषां नाथो योगिना[२– प्र०]थः, तथा च भगवान् वीतरागादीनां पश्चानुपूर्व्या अपुनर्बन्धकावसानानां तथातथोपकारकरण-पालनाद् नाथः तम् । 5 अयमेव विशेष्यते— 'सुयोगसन्दर्शकं' शोभनो योगः—औचित्यादिविशेषरूपतया एकान्ततः सानुबन्धफलहेतुः चित्रभेदो गुरुविनयादिरूप इति तस्य सन्दर्शकः—सम्यग्-आसेवनोपदेशद्वारेण दर्शकः सन्दर्शकः, तथा च भगवांश्चरमदेहतया कर्मवशिताया-मपि तथाविधविनेयानुग्रहाय जानानोऽपि विचित्रानभिग्रहानासेवितवान् इति तम् । कमेवम्भूतम् ? इत्याह— 'महावीरं' "शूर वीर विक्रान्तौ" इति, कषायादिशत्रुजयाद् 10 महाविक्रान्तो महावीरः । "ईर गति-प्रेरणयोः" इत्यस्य वा विपूर्वस्य विशेषेणेरयति कर्म याति वेह शिवमिति वीरः, महांश्चासौ वीरश्च महावीरः—वर्तमानतीर्थेश्वर-स्तम् । एवं नत्वा किम् ? अत आह— 'वक्ष्ये' अभिधास्ये । किम् ? इत्याह— 'योगलेशं' योगैकदेशम्, तत्त्वतो व्यापकत्वेऽप्यस्य ग्रन्थाल्पतया एवंव्यपदेशः कर्पूरादिलेशवदविरुद्ध एव । कुतो वक्ष्ये ? किं स्वमनीषिकया ? न, इत्याह— 'योगा-15 ध्ययनानुसारेण' योगाध्ययनं—प्रवचनप्रसिद्धम्, तदनुसारेण—तन्नीत्या ।

एवं चेह ग्रन्थकारस्य योगलेशाभिधानमनन्तरप्रयोजनम् । योगलेश एवा-भिधीयमानोऽभिधेयम् । [२–द्वि०] साध्य-साधनलक्षणश्च सम्बन्धः । श्रोतॄणां तु योगलेशज्ञानमनन्तरप्रयोजनम् । परम्पराप्रयोजनं तु द्वयोरपि मुक्तिरेव, तत्त्वज्ञान-पूर्विकत्वाद् मुक्तेः । न चास्य योगं मुक्त्वा अपर उपायः । यथोक्तम्—

20 "वादांश्च प्रतिवादांश्च वदन्तो निश्चितांस्तथा ।
तत्त्वान्तं नैव गच्छन्ति तिलपीलकवद् गतौ ॥

अध्यात्ममत्र परम उपायः परिकीर्तितः ।
गतौ सन्मार्गगमनं यथैव ह्यप्रमादिनः ॥

मुक्त्वाऽतो वादसङ्घट्टमध्यात्ममनुचिन्त्यताम् ।
25 नाविधूते तमस्कन्धे ज्ञेये ज्ञानं प्रवर्तते ॥

[योगबिन्दुः ६७–६९]

औचित्याद् वृत्तयुक्तस्य वचनात् तत्त्वचिन्तनम् ।
मैत्र्यादिसारमत्यन्तमध्यात्मं तद्विदो विदुः ॥

अतः पापक्षयः सत्त्वं शीलं ज्ञानं च शाश्वतम् ।
तथानुभवसंसिद्धममृतं ह्यद एव तु ॥"

[योगबिन्दुः ३५८–५९] इत्यादि ।

अध्यात्मं च योग इति यथोदितप्रयोजनसिद्धिः । पर्याप्तं प्रसङ्गेन । इति गाथार्थः ॥१॥

इह योगो द्विधा–निश्चयतो व्यवहारतश्चेति । अस्य लक्षणमाह— 5

निच्छयओ इह जोगो सण्णाणाईण तिण्ह संबंधो ।
मोक्खेण जोयणाओ णिद्दिट्ठो जोगिनाहेहिं ॥२॥

'निश्चयतः' निश्चयेन–अक्षेपफलं नियमफलं वाऽङ्गीकृत्य तद्भावेन । 'इह' लोके प्रवचने वा । 'योगः' धर्मविशेषः । 'सज्ज्ञानादीनां' सज्ज्ञानस्य सद्दर्शनस्य सच्चारित्रस्य च । सद्ग्रहणं मिथ्याज्ञा[३ – प्र०]नादिव्यवच्छेदार्थम् । एतेषां 10 त्रयाणां 'सम्बन्धः' मीलकः, एकात्मन्यवस्थानमित्यर्थः । त्रयाणामिति च न्यूनाधिकसंख्यानिरासार्थम्, त्रयाणामेव सम्बन्धो निश्चयतो योगः । कुतः ? इत्यन्वर्थमाह— 'मोक्षेण योजनात्' कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः, अपुनर्बन्धकत्वेनाऽऽत्मन आत्मन्येवावस्थानम्, तेन 'योजनाद्' घटनात् कारणात् । नेदं स्वमत्युत्प्रेक्षितं योग-लक्षणमित्याह— 'निर्दिष्टो योगिनाथैः' निर्दिष्टः – प्रतिपादितः, योगिनः–मुनयस्त- 15 न्नाथैः–वीतरागैरर्हद्भिरिति । अनेन मुक्तबाहुल्यमाह । तदद्वैते योगनैरर्थक्यप्रसङ्गात्, सदन्तरस्य सदन्तरत्वानुपपत्तेः तत्रैव लयासम्भवात् । इति गाथार्थः ॥२॥

सज्ज्ञानादिलक्षणमाह—

सण्णाणं वत्थुगओ बोहो, सद्दंसणं तु तत्थ रुई ।
सच्चरणमणुट्ठाणं विहि-पडिसेहाणुगं तत्थ ॥३॥ 20

'सज्ज्ञानं' सम्यग्ज्ञानं 'वस्तुगतः' वस्त्वाव(स्त्वा)लम्बनः 'बोधः' परिच्छेदः, निरालम्बनस्य बोधस्यासम्भवात्, सम्भवेऽपि सज्ज्ञानत्वायोगात्, मरुमरीचिकादिबोधे तथादर्शनात्, अन्यथा अस्य सदितरत्वाभाव इति । तथा 'सद्दर्शनं तु' सम्य-ग्दर्शनं पुनः 'तत्र' वस्तुनि 'रुचिः' श्रद्धा, "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" [तत्त्वार्थ० अ० १ सू० २] इति वचनात्, अन्यथा चेयं ज्ञानात्, आवरणभेदेन क्वचित् 25 तद्भा[३ – द्वि०]वेऽप्यभावादिति । तथा 'सच्चरणं' सम्यक्चारित्रम् 'अनुष्ठानं' क्रियारूपं 'विधि-प्रतिषेधानुगं' विधि-प्रतिषेधावनुगच्छति, आगमानुसारीत्यर्थः । 'तत्र'

इति वस्तुन्येव, अस्य महाव्रतरूपत्वात्, तेषां च बाह्यविषयत्वात्, "पढमम्मि सव्व-जीवा" [आव०नि०गा०७९१] इति वचनात्, अन्यथा अस्याभाव इति भाव-नीयम् । क्रमश्चायमेषाम्, निश्चयत इत्थमेव भावात् । तथाहि— नाज्ञाते श्रद्धा, अश्रद्धस्य वाऽनुष्ठानमिति । उक्तं च—

5 "यदि जानात्युत्पन्नरुचिस्ततो दोषान्निवर्तते ।"

अन्यत्र तु सम्यग्दर्शनोपन्यास आदौ व्यवहारमतेन कर्मवैचित्र्यात् तथाभाव-तोऽविरुद्ध एव । इति गाथार्थः ॥३॥

एवं निश्चयसारत्वाद् योगस्याऽऽदौ तन्मतेन लक्षणमभिधायाधुना व्यवहारमते-नाभिधातुमाह—

10 ववहारओ उ एसो विन्नेओ एयकारणाणं पि ।
जो संबंधो सो वि य कारण कज्जोवयाराओ ॥४॥

'व्यवहारतस्तु' सामान्येन फलं प्रति योग्यतामधिकृत्य 'एषः' प्रस्तुतो योगः 'विज्ञेयः' ज्ञातव्यः । किम्भूतः ? इत्याह—'एतत्कारणानामपि' सज्ज्ञानादिकारणानामपि गुरुविनयादीनाम् । अपिशब्दात् सज्ज्ञानादीनामपि सर्वनयभावाङ्गीकरणेन यः सम्बन्धः 15 सोऽपि च योगो विज्ञेयः । चशब्दादनन्तरोदितश्च । कथम् ? इत्याह—[४–प्र०] 'कारणे कार्योपचाराद्' योगकारणे–अनन्तर-परम्परभेदभिन्ने कार्योपचाराद्–योगोप-चारात् । दृष्टश्चायं प्रयोगो यथा–आयुर्घृतम्, तण्डुलान् वर्षति पर्जन्यः । इति गाथार्थः ॥४॥

प्रस्तुतयोगमेव स्वरूपत आह—

20 गुरुविणओ सुस्सूसाइया य विहिणा उ धम्मसत्थेसु ।
तह चेवाणुट्ठाणं विहि-पडिसेहेसु जहसत्तिं ॥५॥

'गुरुविनयः' पादधावनादिः, 'शुश्रूषादयश्च' शुश्रूषा-श्रवण-ग्रहण-विज्ञान-धारणोहा-ऽपोह-तत्त्वाभिनिवेशाश्च, 'विधिना तु' विधिनैव स्थानशुद्ध्यादिना, अविधेः प्रत्यवाय-हेतुत्वात्, अकृतोऽविधिकृतयोगाद् वरम्, असच्चिकित्सोदाहरणादिति भावनीयम् । 25 क्वैवं शुश्रूषादयः ? इत्याह—'धर्मशास्त्रेषु' आचारोत्तमश्रुतादिष्वित्यर्थः । तथैव 'अनुष्ठानं' क्रियारूपं 'विधि-प्रतिषेधयोः' धर्मशास्त्रोदितयोः । कथम् ? इत्याह–'यथा-शक्ति' करणा-ऽकरणयोः शक्त्यनुल्लङ्घनेन । इति गाथार्थः ॥५॥

कथं पुनरस्य निश्चययोगाङ्गता ? इत्याह—

एत्तो च्चिय कालेणं णियमा सिद्धी पगिट्ठरूवाणं ।
सण्णाणाईण तहा जायइ अणुबंधभावेण ॥६॥

'अत एव' गुरुविनयादेः कालेन गच्छता 'नियमात् सिद्धिः' अवन्ध्यकारणत्वेनावश्यन्तया निष्पत्तिः । केषाम् ? इत्याह—'प्रकृष्टरूपाणां' क्षायिकाणां सज्ज्ञानादीनाम् । तथा जायते । 'तथा' इति औचित्यप्रतिपत्तिपुरस्सरया सदाज्ञाराधनया तद्वृद्धिभावात् । तथा चाह—'अनुबन्धभावेन' तदुत्त[४–द्वि०]रोत्तराक्षेपेण, मार्गानुसार्याज्ञाविशुद्धानुष्ठानस्य सदनुबन्धत्वात् । इति गाथार्थः ॥६॥ 5

एवं च कृत्वा गुरुविनयादिमतोऽपि योगिव्यपदेशो न्याय्य एवेत्यत आह—

मग्गेणं गच्छंतो सम्मं सत्तीए इट्ठपुरपहिओ ।
जह तह गुरुविणयाइसु पयट्टओ एत्थ जोगि त्ति ॥७॥ 10

'मार्गेण' प्रापकपथा तात्त्विकेन गच्छन् 'सम्यक्' शकुनादिमाननादिना प्रकारेण 'शक्त्या' गमनसामर्थ्यरूपया 'इष्टपुरपथिकः' यथाभिलषितपुराध्वगो यथा प्राप्त्यविसंवादेनोच्यते तथा 'गुरुविनयादिषु' प्रागुपन्यस्तेषु प्रवृत्तः सन् विधिना 'अत्र' प्रक्रमे योगीत्युच्यते इष्टयोगप्राप्त्यविसंवादेन । इह च व्यवहितगाथायामत्र च विधिग्रहण-सम्यग्ग्रहणाभ्यां गृहीतमपि भेदेन शक्त्यभिधानं तत्प्राधान्यख्यापनार्थम् । दृष्टश्चायं न्यायः, यदुत "सामान्यग्रहणे सत्यपि प्राधान्यख्यापनार्थं भेदेनाभिधानम्, यथा—ब्राह्मणा आयाता वशिष्ठोऽप्यायातः" इति । प्राधान्यं तु सर्वत्र शक्तेरनुबन्धसाधकत्वेन । यथोक्तम्—"शक्तिः सफलैव सम्यक्प्रयोगात्" [ ] । इति गाथार्थः ॥७॥ 15 20

एवं योगपीठमभिधायाधिकार्यादिनिरूपणार्थमाह—

अहिगारिणो उवाएण होइ सिद्धी समत्थवत्थुम्मि ।
फलपगरिसभावाओ विसेसओ जोगमग्गम्मि ॥८॥

'अधिकारिणः' योग्यस्य 'उपायेन' तत्साधनप्रकारेण भवति 'सिद्धिः' कार्यनिष्पत्तिः 'समस्तवस्तुनि' सेवादौ फ[५–प्र०]लप्रकर्षभावात् । मुक्तिसाधनत्वेन 'विशेषतः' विशेषेण 'योगमार्गे' प्रस्तुते अधिकारिणि उपायेन सिद्धिः । इति गाथार्थः ॥८॥ 25

यत एवमतोऽत्राधिकारिणमाह—

अहिगारी पुण एत्थं विण्णेओ अपुणबंधगाइ त्ति ।
तह तह णियत्तपगईअहिगारो णेगभेओ त्ति ॥९॥

अधिकारी पुनः 'अत्र' योगमार्गे 'विज्ञेयः' ज्ञातव्यः 'अपुनर्बन्धकादिः' य इह
5 परिणामादिभेदादपुनर्बन्धकत्वेन तांस्तान् कर्मपुद्गलान् बध्नाति स तत्क्रियाविष्टोऽप्यपुन-
र्बन्धक उत्कृष्टस्थितेः । आदिशब्दात् सम्यग्दृष्टिश्चारित्री चाभिगृह्यते, इह प्रकरणे
एतदन्येषां सकृद्बन्धकादीनामभणनात् । अत एवाऽऽह—'तथा तथा' तेन तेन प्रकारेण
तज्जीवग्रहणसम्बन्धयोग्यतापगमलक्षणेन निवृत्तः—अपगतः प्रकृतेः—कर्मवर्गणारूपायाः
अधिकारः—विशिष्टविचित्रफलसाधकत्वलक्षणो यस्य स निवृत्तप्रकृत्यधिकारः अनेकभेदः ।
10 इति गाथार्थः ॥९॥

अयमेवाधिकारी, नान्य इ[५—द्वि०]त्याह—

अणियत्ते पुण तीए एगंतेणेव हंदि अहिगारे ।
तप्परतंतो भवरागओ दढं अणहिगारि त्ति ॥१०॥

अनिवृत्ते पुनः 'तस्याः' प्रकृतेः 'एकान्तेनैव' सर्वथैव 'हन्दि' इत्युपप्रदर्शने
15 'अधिकारे' उक्तलक्षणे 'तत्परतन्त्रः' प्रकृतिपरतन्त्रः "भवरागओ" त्ति संसाररागाद्
'दृढम्' अत्यर्थं सर्वतद्भेदप्राप्तेः अनधिकारीति । उक्तं चान्यैरपि योगशास्त्रकारैः—

"[1]अनिवृत्ताधिकारायां प्रकृतौ सर्वथैव हि ।
न पुंसस्तत्त्वमार्गेऽस्मिन् जिज्ञासाऽपि प्रवर्तते ॥
क्षेत्ररोगाभिभूतस्य यथाऽत्यन्तं विपर्ययः ।
20 तद्वदेवास्य विज्ञेयस्तदावर्तनियोगतः ॥
जिज्ञासायामपि ह्यत्र [2]कश्चिन्मार्गो निवर्तते ।
नाक्षीणपाप एकान्तादाप्नोति कुशलां धियम् ॥
ततस्तदात्वे कल्याणमायत्यां तु विशेषतः ।
मन्त्राद्यपि [3]सदाचारात् सर्वावस्थाहितं मतम् ॥

१. एतत् पञ्चश्लोकात्मकमुद्धरणं गोपेन्द्राचार्यीयं इति श्रीहरिभद्रसूरयः स्वयमेव योगबिन्दौ प्राहुः । तथाहि—"तथा चान्यैरपि ह्येतद् योगमार्गकृतश्रमैः । सङ्गीतमुक्तिभेदेन यद् गौपेन्द्रमिदं वचः ॥१००॥ —अनिवृत्ताधिकारायां०" ॥ २. 'कश्चित् सर्गो' इति योगबिन्दौ पाठः ॥ ३. 'सदा चारु' इति योगबिन्दौ ॥

द्वयोरावर्तभेदेन तथा सांसिद्धिकत्वतः ।
युज्यते सर्वमेवैतन्नान्यथेति मनीषिणः ॥"

[योगबिन्दुः १०१–५]

न च प्रकृति-कर्मप्रकृत्योः कश्चिद् भेदोऽन्यत्राभिधानभेदात्। इति गाथार्थः ॥१०॥

[६– प्र०] एतद्भावनायैवाह— 5

तप्पोग्गलाण तग्गहणसहावावगमओ य एयं ति ।
इय दट्ठव्वं, इहरा तहबंधाई न जुज्जंति ॥११॥

'तत्पुद्गलानां' कर्मप्रकृतिपरमाणूनां 'तद्ग्रहणस्वभावापगमतः' जीवग्रहणस्वभावापगमात् 'च'शब्दाद् जीवस्य च तद्ग्राहकस्वभावापगमात् कारणाद् एतन्नूनं निवृत्तप्रकृत्यधिकारित्वम्, एतत्पुरस्सरं च प्रस्तुताधिकारित्वम् 'इय" एवं द्रष्टव्यम् । 10 विपक्षे बाधामाह— 'इतरथा' यद्येवं नाभ्युपगम्यते, ततः किम् ? इत्याह— तथाबन्धादयो न युज्यन्ते, 'तथा' इति चित्रानन्तग्रहणप्रकारेण बन्धः । आदिशब्दाद् भूयोग्रहणा-ऽग्रहणरूपो मोक्षः । तथा एतन्निबन्धनाश्च विकारा दोष-गुणलक्षणा इति, एते न युज्यन्ते, अतत्स्वभावस्य तथाभवनाऽयोगात्, अतिप्रसङ्गादिति । तदयमत्र भावार्थः—ते परमाणवोऽनादित एव तथाऽनन्तशः तदात्मग्रहणस्वभावाः, 15 सोऽप्यात्मा एवमेव तद्ग्राहकस्वभाव इत्युभयोस्तत्स्वभावतया घटन्ते तथाबन्धादयः, अन्यथा मुक्तानामपि बन्धादिप्रसङ्गः, अत(ङ्गः, त)त्स्वभावत्व एवोभयोरपि तद्भावोपपत्तेरिति भावनीयम् । न चैवमपि स्वभाववाद एवैकान्तेन, तथाविधकालादेरप्यत्रोपयोगात्, तस्यैव तदाक्षेपकत्वात्, इतरेतरापेक्षित्वे प्राधान्यासिद्धेः, [६– द्वि०] सामग्र्या एव फलनिष्पादकत्वात् । निर्लोठितमेतदन्यत्र धर्मसारादौ । इति गाथार्थः ॥११॥ 20

दुर्विज्ञेयं चैतदित्याह—

एयं पुण णिच्छयओ अइसयणाणी वियाणए णवरं ।
इयरो वि य लिंगेहिं उवउत्तो तेण भणिएहिं ॥१२॥

'एतत् पुनः' अनन्तरोदितविधिसमायातमधिकारित्वं 'निश्चयतः' निश्चयेन अतिशयज्ञानी विजानाति, नवरं केवली, नान्यः । यद्येवम्, अनर्थक एवास्योपन्यास इत्याह— 25 'इतरोऽपि च' अनतिशयी छद्मस्थः 'लिङ्गैः' चिह्नैर्वक्ष्यमाणैः उपयुक्तः सन्, नान्यथा, 'तेन' अतिशयिना 'भणितैः' प्रतिपादितैः जानाति । इति गाथार्थः ॥१२॥

---

१. "उभयोस्तत्स्वभावत्वात् तदावर्तनियोगतः ॥" इति रूपं पूर्वार्द्धं योगबिन्दौ वर्तते ॥

कानि पुनस्तानि लिङ्गानि ? इत्याह—

पावं न तिव्वभावा कुणइ, ण बहुमण्णई भवं घोरं।
उचियट्ठिइं च सेवइ सव्वत्थ वि अपुणवंधो त्ति ॥१३॥

'पापम्' असदनुष्ठानं 'न तीव्रभावात्' न तीव्रभावेन करोति, करोति च
5 तथाविधकर्मदोषेण। तथा न बहुमन्यते चित्तप्रीत्या 'भवं घोरं' भवन्त्यस्मिन् कर्म-
परिणामवशवर्तिनः प्राणिन इति भवः—संसारस्तं रौद्रम्। तथा 'उचितस्थितिं च'
उचितव्यवस्थां च 'सेवते' भजते 'सर्वत्रापि' धर्मादौ मार्गानुसारित्वाभिमुख्येन मयूरशिशु-
दृष्टान्ताद् 'अपुनर्बन्धक इति' एवम्—एवम्भूतोऽपुनर्बन्धकोऽभिधीयते इति गाथार्थः ॥१३॥

सम्यग्दृष्टिलिङ्गाभिधित्सयाऽऽह—

10 सुस्सूस धम्मराओ गुरु-देवाणं जहासमाहीए।
वेयावच्चे णियमो [७–प्र०] सम्मदिट्ठिस्स लिंगाइं ॥१४॥

'शुश्रूषा' श्रोतुमिच्छा धर्मशास्त्रेषु, गेयरागिकिन्नरगेयशुश्रूषाधिका। तथा
'धर्मरागः' धर्माभिष्वङ्गः, सामग्रीवैकल्या[त् त]दकरणेऽपि चेतसोऽनुबन्धः, दरिद्रब्राह्मण-
विशेषहविःपूर्णरागसमधिकः। तथा 'गुरु-देवानां' चैत्य-साधूनां 'यथासमाधिना'
15 शक्त्याद्यनुरूपम्, नासद्ग्रहेण। किम्? इत्याह—'वैयावृत्त्ये' व्यावृतभावे नियमः,
गुणज्ञश्राद्धचिन्तामणिवैयावृत्यनियमाभ्यधिकः करोत्येवैतदित्यर्थः। सम्यग्दृष्टेः 'लिङ्गानि'
चिह्नानि, ग्रन्थिभेदेन तत्त्वे तीव्रभावात्। इति गाथार्थः ॥१४॥

चारित्रिलिङ्गान्याह—

मग्गणुसारी सद्धो पण्णवणिज्जो कियापरो चेव।
20 गुणरागी सक्कारंभसंगओ तह य चारित्ती ॥१५॥

मार्गानुसारी, चारित्रमोहनीयकर्मक्षयोपशमयोगात्; अस्य च तत्त्वावाप्तिं प्रत्य-
वन्ध्यकारणत्वात्, कान्तारगतविवक्षितपुरप्राप्तिसद्योगतासमेतान्धवत्। तथा श्राद्धः,
तत्त्वं प्रति तत्प्रत्यनीकक्लेशह्रासातिशयात्, सन्निध्यवाप्तिप्रवृत्ततद्धोक्तृतद्गतविधिश्राद्धवत्,
अनेनोत्तरयोगः पापयोगप्रतिबन्धकापगमहेतुरित्येतदाह। तथा प्रज्ञापनीयः, अत एव
25 कारणद्वयात् सन्निध्यवाप्तिप्रवृत्ततद्धोक्तृतद्गतविधिश्राद्धाप्तप्रज्ञापकवत्, सच्छ्रद्धाफलोप-
दर्शनार्थमेतत्। तथा क्रियापरश्चैव, उक्तलक्षणादेव हेतोः, अनेन मार्गानुसारित्वस्य

निजं कार्यमाह । उक्तं चान्यैरपि—

"ऊर्ध्वा-ऽधःसमाधि[७—द्वि०]फलः सास्रावाः समाधिः, न चास्य योगतो भेदः ।"

[ ] इति ।

एवं योगस्यानुषङ्गतो निजफलविधिमभिधाय लिङ्गान्तरमाह—गुणरागी, विशुद्धाशयत्वात् । तथा शक्त्या(? क्या)रम्भसङ्गतः, वन्ध्यारम्भभावनिवृत्तेः । 'तथा च चारित्री' 5 तथा चारित्री च एवंविधो भवति । इति गाथार्थः ॥१५॥

अयं च चारित्री देश-सर्वचारित्रभेदादनेकविध इत्यत आह—

एसो सामाइयसुद्धिभेयओ णेगहा मुणेयव्वो ।
आणापरिणइभेया अंते जा वीयरागो त्ति ॥१६॥

'एषः' चारित्री 'सामायिकशुद्धिभेदतः' इत्वरेतराङ्गीकरणेन 'अनेकधा' अनेक- 10 प्रकारो मन्तव्यः । सामायिकादिप्रतिमानुक्रमेण गृही, तथा सामायिक-च्छेदोपस्थाप्यादि-क्रमेणानगारः । कथम् ? इत्याह—आज्ञापरिणतिभेदात्, न मौनीन्द्रवचनपरिणतेरन्यत् शुद्धिकारणमिति कृत्वा । अन्ते यावत् सर्वभेदानां वीतरागः । तत्रापि क्षायिकवीत-रागः । इति गाथार्थः ॥१६॥

सामायिकस्यैकरूपत्वात् कथं शुद्धिः ? इत्याशङ्कापोहायाऽऽह— 15

पडिसिद्धेसु अदेसे विहिएसु य ईसिरागभावे वि ।
सामाइयं असुद्धं सुद्धं समयाए दोसुं पि ॥१७॥

'प्रतिषिद्धेषु' प्राणातिपातादिषु हेयेषु 'अद्वेषे' अमत्सरे, 'विहितेषु च' तपो-ज्ञानादिषु ईषद्—मनाग् रागभावेऽपि—औत्सुक्यकरणेन । किम् ? इत्याह—'सामायिकं' समभावलक्षणं तात्त्विकम् 'अशुद्धं' क्षयोपशमवैचित्र्यान्मलिनम् । 'शुद्धं' निर्मलं यथा- 20 वस्थितं 'समतया' मध्यस्थत[८—प्र०]या 'द्वयोरपि' विहित-प्रतिषिद्धयोः समतृण-मणि-मुक्ता-लेष्टु-काञ्चनसमशत्रु-मित्रभावरूपत्वादस्य । इति गाथार्थः ॥१७॥

यथैतदेवं भवति तथाऽभिधातुमाह—

एयं विसेसणाणा आवरणावगमभेयओ चेव ।
इय दट्ठव्वं पढमं भूसणठाणाइपत्तिसमं ॥१८॥ 25

'एतत् शुद्धं सामायिकं 'विशेषज्ञानात्' तात्त्विकाद् हेयोपादेयविषयाद् अहिदष्टाङ्ग-च्छेदाद्युदाहरणतोऽभिष्वङ्गविषत्याग-संवेदनादिगर्भाद् विहितमिति, एकान्तमनभिष्वङ्गानु-

ष्ठानं क्रियमाणं श्रेयः, "तत्त्वाभिष्वङ्गस्यापि तत्त्वतोऽतत्त्वत्वाद् वस्त्रादिशुद्धिविधावञ्जन-
कल्पत्वाद् धर्मरागादपि मुनिरमुनिः" इत्यन्यैरप्यभिधानात्। अनेन रूपेण तत्कार्त्स्न्या-
नाराधनात्, भगवति **गौतम**प्रतिबन्धो ज्ञातमप्यत्रेति, एवमादेर्विशिष्टश्रुतसमुत्थात्।
एतच्च प्रायः सर्वेषां चतुर्दशपूर्वधरादीनामित्यत आह—आवरणापगमभेदतश्चैव,
5 चारित्रमोहनीयावरणापगमविशेषाच्चेति भावः । किम् ? इत्याह—'इति द्रष्टव्यम्'
एतत् सामायिकं शुद्धमेवं द्रष्टव्यम्, परमार्थत उभयभाववृद्ध्या तात्त्विकमिति ।
यद्येवं माषतुषादीनामादौ . कथमेतत् ? इत्याह—'प्रथमं' सामायिकं छेदोपस्थाप्यादि-
कण्डकाधोवर्ति। [८—द्वि०] किम् ? इत्याह—'भूषणस्थानादिप्राप्तिसमं' रत्नालङ्कार-
करण्डकप्राप्तितुल्यम्, आदिशब्दाद् हिरण्य-वसनादिप्राप्तिपरिग्रहः। अत्र हि न किञ्चित्
10 तत्तदन्तर्यत्नावाप्तमोघेन, अथ च कालान्तरेणोपायतः तद्विशेषावाप्तिः । एवमोघ-
तोऽपि सामायिकावाप्तौ विशिष्टक्षयोपशमभावतस्तथाऽवन्ध्यबीजभावत्वेन कालोपाया-
न्तरापेक्षायामपि तत्त्वतस्तद्भेदावाप्तिसिद्धिः, अन्यथा सामायिकसामग्र्याऽयोगात्,
सर्वथा सर्वभावसमतायां आदित एव वीतरागत्वप्राप्तेः कर्मणस्तत्र परमार्थतोऽकिञ्चि-
त्करत्वात्, किञ्चित्करत्वे तु नोक्तन्यायातिरेकेण समग्रताऽस्येति परिभावनीयम्। तथा
15 ऽन्यैरप्युक्तम्—"सम्भृतसुगुप्तरत्नकरण्डकप्राप्तितुल्या हि भिक्षवः ! प्रथमसद्धर्मस्थानावाप्तिः"
[ ]। इति गाथार्थः ॥१८॥

यद्येवं समभावलक्षणं सामायिकं कथं तद्वतः क्वचित् क्रिया ? इत्यत्राह—

किरिया उ दंडजोगेण चक्कभमणं व होइ एयस्स ।
आणाजोगा पुव्वाणुवेहओ चेव णवरं ति ॥१९॥

20 क्रिया पुनः क्वचिद् भिक्षाटनादौ प्रवृत्तिरूपा दण्डयोगेन चक्रभ्रमणवद्
भवति 'एतस्य' सामायिकवतः आज्ञायोगात्, यथेह चक्रमचेतन[९—प्र०]त्वाद्
राग-द्वेषरहितं भ्रमणा-ऽभ्रमणयोस्तुल्यवृत्ति दण्डयोगाद् भ्रमति एवमयं सामायिकवांस्तथा-
क्लिष्टकर्मविगमाद् विशुद्धभावयोगेन भिक्षाटना-ऽनटनयोः समवृत्तिरेवाऽऽज्ञायोगाद-
टतीति हृदयम्। प्रवृत्तावाज्ञायोगेन तथाक्रियायामपि तद्योगे तु द्रव्यत्वप्रसङ्गात्,
25 एकदोपयोगद्वयाभावात्, वीतरागस्य वा तद्योगात् क्षायिकज्ञानोपपत्तेः, आज्ञायोगस्य
च क्षायोपशमिकत्वाद् न युक्तिमदटनादीति विभ्रमापोहायोपचयमाह—'पूर्वानुवेधतश्चैव'
दण्डयोगाभावेऽपि तत्सामर्थ्यविशेषतश्चक्रभ्रमणवदेवाऽऽज्ञायोगाभावेऽपि तत्पूर्वानुवेधत
एवाटनादि नवरमिति, एवं न कश्चिद् दोषः। इति गाथार्थः ॥१९॥

यत एतदेवं अत एव मुनिरेवंविध उक्त इत्याह—

वासी-चंदणकप्पो समसुह-दुक्खो मुणी समक्खाओ ।
भव-मोक्खापडिबद्धो अओ य पाएण सत्थेसु ॥२०॥

'वासी-चन्दनकल्पः' मध्यस्थः । "एकान्तसत्त्वहितः" इत्यन्ये, बाह्यापेक्षमेतत् । तथा समसुख-दुःखः, माध्यस्थ्येनोपयोगात्, सर्वत्र राग-द्वेषजयात्, आन्तरापेक्ष- 5 मेतत् । मुनिः समाख्यातः एवम्भूतः । तथा भव-मोक्षाप्रतिबद्धः, इच्छाऽभावात्, "केवलित्वात्" इत्यन्ये । अत ए[९–द्वि०]व कारणाद् यथोक्तसामायिकयोगेन 'प्रायः' बाहुल्येन 'शास्त्रेषु' षष्टितन्त्रादिषु । तथा चोक्तम्—

"औदासीन्यं तु सर्वत्र त्याज्योपादानहानितः ।
वासी-चन्दनकल्पानां वैराग्यं नाम कथ्यते ॥" 10

तथा—

"वासी-चन्दनकल्पत्वं या कल्याणैकशीलता ।
चन्दनच्छेददृष्टान्तात् सद्धर्मातिशयान्मुने ! ॥"

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतलोभ-भय-क्रोधः स्थिरधीर्मुनिरुच्यते ॥" 15

[भगवद्गीता—५६]

"मोक्षे भवे च सर्वत्र निस्पृहोऽयं सदाशयः ।
प्रकृत्यभ्यासयोगेन तथाशुद्धेर्नियोगतः ॥"

मोहादिच्छा स्पृहा चेयममोहश्च मुनिर्यतः ।
तन्नास्त्येयं क्वचिन्न्याय्या तत्प्राप्तिस्तु क्रियाफलम् ॥" 20

इति गाथार्थः ॥२०॥

एवमेतानभिधाय सर्वेष्वेवैतेषु प्रकृतयोजनामाह—

एएसिं णियणियभूमियाए उचियं जमेत्थऽणुट्ठाणं ।
आणामयसंयुत्तं तं सव्वं चेव योगो त्ति ॥२१॥

'एतेषाम्' अपुनर्बन्धकादीनां वीतरागान्तानां 'निजनिजभूमिकायाः' तथाविध- 25 दशायाः उचितं यदत्रानुष्ठानं तीव्रभावेन पापाकरणादिवीतरागकल्पान्तम् । किंविशिष्टम् ?

इत्याह—आज्ञामृतसंयुक्तम्, तथाविधकर्मपरिणतेरेव भावतस्तत्सिद्धेः। "तथाविधकर्मपरिणतिरेवाज्ञामृतसंयोगोऽन्तरङ्गमङ्गम्, बाह्याज्ञायो[१०–प्र०]गस्यापि तन्निबन्धनत्वात्" इति विद्वत्प्रवादः। ततः किम्? इत्यत आह—तदनुष्ठानं सर्वमेव परमार्थमधिकृत्य योगः। इति गाथार्थः ॥२१॥

5 एतत्प्रकटनायैवाह—

तल्लक्खणयोगाओ उ चित्तवित्तीणिरोहओ चेव।
तह कुसलपवित्तीए मोक्खेण उ जोयणाओ त्ति ॥२२॥

'तल्लक्षणयोगादेव' उचितानुष्ठानत्वेन योगलक्षणयोगादेव, "सर्वत्रोचितानुष्ठानं योगः" इति तल्लक्षणोपपत्तेः। तथा चित्तवृत्तिनिरोधतश्चैव सर्वत्र यथासम्भवम्, योग-10 लक्षणं चैतन्मुख्यम्, "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"[पातञ्जल० १–१] इति वचनात्। उभयत्रान्वर्थयोजनयोपसंहारः। 'तथा कुशलप्रवृत्त्या' तेन प्रकारेण कुशलप्रवृत्त्या हेतुभूतया मोक्षेण सह योजनात् कारणात्। अत एव प्रवृत्तिनिमित्ताद् योगः। इति गाथार्थः ॥२२॥

यद्यप्येतदेवं क्वचित् तथाप्येतानेवाधिकृत्य प्रायोगतं विधिमभिधातुमाह—

15 एएसिं पि य पायं वज्झाणायोगओ उ उचियम्मि।
अणुठाणम्मि पवित्ती जायइ तहसुपरिसुद्ध त्ति ॥२३॥

'एतेषामपि च' अपुनर्बन्धकादीनां तथाविधकर्मपरिणतिसमन्वितानामपि 'प्रायः' बाहुल्येन 'बाह्याज्ञायोगत एव' जिनवचनो[१०–द्वि०]पदेशलक्षणाद् 'उचिते' तीव्रभावेन पापाकरणादौ अनुष्ठाने प्रवृत्तिर्जायते चित्रा(? त्ता)नाभोगनिवृत्त्या तथा-20 सुपरिशुद्धा दार्ढ्येन भगवद्बहुमानतः। इति गाथार्थः ॥२३॥

यत एवमतः किम्? इत्याह—

गुरुणा लिंगेहिं तओ एएसिं भूमिगं मुणेऊण।
उवएसो दायव्वो जहोचियं ओसहाऽऽहरणा ॥२४॥

'गुरुणा' अन्वर्थव्यवस्थितशब्दार्थेन, गृणाति शास्त्रार्थमिति गुरुरित्यन्वर्थः। 25 'लिङ्गैः' प्रागुपदिष्टैः तीव्रभावेन पापाकरणादिभिः। 'ततः' तस्मात् कारणात् यस्मादनन्तरोदितगाथोक्तं तथेति। 'एतेषाम्' अपुनर्बन्धकादीनां 'भूमिकां' तत्तद्धर्मस्थान-

योग्यतारूपां मत्वा । किम् ? इत्याह—उपदेशो दातव्यः, प्रक्रमाद् धर्मविषयः । कथम् ? इत्याह—'यथोचितम्' इति क्रियाविशेषणम् औचित्यापेक्षया । 'औषधोदाहरणात्' इति औषधोदाहरणेन. यथेदं सदपि व्याध्याद्यपेक्षया मात्रादिना च दीयते, ततोऽन्यथा दोषभावात् । इति गाथार्थः ॥२४॥

साम्प्रतं यथा दातव्यस्तथा लेशत आह— 5

पढमस्स लोगधम्मे परपीडावज्जणाइ ओहेणं ।
गुरु-देवा-ऽतिहिपूयाइ दीणदाणाइ अहिगिच्च ॥२५॥

'प्रथ[११–प्र०]मस्य' अपुनर्बन्धकस्य 'लोकधर्मे' लोकधर्मविषयः परपीडा-वर्जनाद्यधिकृत्येति योगः । परपीडा न कर्तव्या, सत्यं वक्तव्यमित्यादि 'ओघेन' सामा-न्येन, न विक्षेपणि(?णी)कथाविशेषेण । तथा गुरु-देवा-ऽतिथिपूजाद्यधिकृत्य । तद्यथा— 10 गुरुपूजा कर्तव्या, देवपूजा कर्तव्या, अतिथिपूजा कर्तव्या, आदिशब्दात् सत्कार-सम्मानपरिग्रहः । तथा दीनदानादि चाधिकृत्योपदेशो दातव्यः–दीनेभ्यो देयम्, तपस्विभ्यो देयम्, आदिशब्दाद् रात्रिभोजनादि परिहर्तव्यम् । इति गाथार्थः ॥२५॥

किमित्येतदेवम् ? इत्याह—

एवं चिय अवयारो जायइ मग्गम्मि हंदि एयस्स । 15
रण्णे पहपब्भट्ठोऽवट्टाए वट्टमोयरइ ॥२६॥

'एवमेव' उक्तेनैव प्रकारेण अवतारो जायते 'मार्गे' सम्यग्दर्शनादिलक्षणे । 'हन्दि' इत्युपप्र-दर्शने । 'एतस्य' अपुनर्बन्धकस्य, विक्षेपाभावाद् गुणमात्ररागभावाद् विशिष्टबुद्ध्यभावाच्चे-ति । अत्रैव निदर्शनमाह– अरण्ये' कान्तारे 'पथप्रभ्रष्टः' मार्गच्युतः अवर्तन्या व्यवहारतः वर्तनीमवतरति व्यवहारत एव, निश्चयतस्तु साऽपि वर्तन्येव, तया तथा तदवतरणात् । 20 अत एवोक्तम्—"आभिप्रायिकी योगिनां धर्मदेशना उपेयसाधनत्वेन उपायस्य तत्त्वात्" । [११–द्वि०] तथा—"अचर्यैव चर्या बोधिसत्त्वानाम्, लक्षवेधिनोऽ-वन्ध्यचेष्टा ह्येते" । एवं च—

"सर्वदेवान् नमस्यन्ति नैकं देवं समाश्रिताः ।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा दुर्गाण्यपि तरन्ति ते ॥" 25

[योगबिन्दुः श्लो० ११८] इति ।

१ सर्वान् देवान् इति योगबिन्दौ ॥ २ °ण्यतितर° योगबिन्दौ ॥

एवमाद्यपि वीतरागे नमस्करणं प्रत्यप्रवृत्तस्य प्रवर्तकत्वात् चारिचरकसञ्जीवन्यचरकचारणन्यायेनादुष्टमेव । इति गाथार्थः ॥२६॥

बीयस्स उ लोगुत्तरधम्मम्मि अणुव्वयाइ अहिगिच्च ।
परिसुद्धाणायोगा तस्स तहाभावमासज्ज ॥२७॥

5 'द्वितीयस्य पुनः' उपन्यासक्रमप्रामाण्यात् सम्यग्दृष्टेः 'लोकोत्तरधर्मे' लोकोत्तरधर्मविषयः 'अणुव्रताद्यधिकृत्य' अणुव्रत-गुणव्रत-शिक्षापदान्याश्रित्य, उपदेशो दातव्य इति वर्तते । कथम् ? इत्याह—'परिशुद्धाज्ञायोगात्' त्रिकोटिपरिशुद्धाज्ञानुसारेणेति भावः 'तस्य' श्रोतुः 'तथाभावमासाद्य' अभिप्रायं ज्ञात्वा यद् यत् परिणमति । इति गाथार्थः ॥२७॥

10 अथ किमर्थं सुप्रसिद्धमादौ साधुधर्मोपदेशमुल्लङ्घ्यास्य श्रावकधर्मोपदेशः ? इत्याह—

तस्साऽऽसण्णत्तणओ तम्मि दढं पक्खवायजोगाओ ।
सिग्घं परिणामाओ सम्मं परिपालणाओ य ॥२८॥

'तस्य' श्रावकधर्मस्य 'आसन्नत्वाद्' गुणस्थानकक्रमेण भावप्रतिपत्तिं प्रति प्रत्या-
15 सन्नः, [१२–प्र०] यथोक्तम्—"सम्मत्तम्मि उ लद्धे पलियपुहत्तेण०" [विशेषा० गा० १२२२] इत्यादि, अत एव कारणात् 'तस्मिन्' श्रावकधर्मे 'दृढम्' अत्यर्थं 'पक्षपातयोगात्' आसन्ने हि भावतस्तत्त्वभावसम्भवेन पक्षपातभावात् । अत एव कारणात् 'शीघ्रं' तूर्णं 'परिणामात्' क्रियया परिणमनात्, तत्पक्षपाते तद्भावापत्तिरिति कृत्वा । तथा 'सम्यग्' यथासूत्रं 'परिपालनातश्च' परिणतिगुणेनेति । सुप्रसिद्धत्वं चाऽऽदौ
20 साधुधर्मोपदेशस्याणुव्रतादिप्रदानकालविषयम्, अन्यथोक्तविपर्यये दोषः। इति गाथार्थः ॥२८॥

तइयस्स पुण विचित्तो तहुत्तरसुजोगसाहगो णेओ ।
सामाइयाइविसओ णयणिउणं भावसारो त्ति ॥२९॥

'तृतीयस्य पुनः' उपन्यासक्रमप्रामाण्यादेव चारित्रिणः प्रक्रमाद् देशचारित्रिणः श्रावकस्य 'विचित्रः' नानाप्रकारः तदपान्तरालभूमिकोपेक्षया[1] 'तथा' तेन प्रकारेण
25 उत्तरसुयोगसाधको ज्ञेय उपदेशः । उत्तराः सुयोगाः तद्भूमिकानुक्रमागता एव प्रतिमानुरूपेण । साध्यमाह— 'सामायिकादिविषयः' अर्थनीत्या सामायिक-च्छेदो-

१ ०कापेक्षाया प्रतौ

पस्थ्याप्यादिगोचरः "प्रासादविषयः तन्मूल-पादशोधनादि" न्यायेन । कथं दातव्योऽयमुपदेशः ? इत्याह— "णयणिपुणं" इति क्रियाविशेषणम्, सद्भावानयनहेतुराक्षेपणादिरूपः प्रकार इह नयः, तन्निपुणम्, 'भावसारः' स्वतो वासितेनान्तःकरणेन संवेगसारः, प्रायशो भावाद् भावप्रसूतेः । इति गाथार्थः ॥२९॥

एतदुपदर्शनायाऽऽह—[१२–द्वि०] 5

सद्धम्माणुवरोहा वित्ती दाणं च तेण सुविसुद्धं ।
जिणपूय-भोयणविही संझाणियमो य जोगंतो ॥३०॥

सद्धर्मानुपरोधाद् भूमिकौचित्येन, तद्यथा— अणुव्रतधरस्य तावत् कर्मादानत्यागेन 'वृत्तिः' वर्तनमित्यर्थः । दानं च 'तेन सुविशुद्धं' सद्धर्मेणैव शक्तितः, श्रद्धा-सत्कार-काल-मतिविशेषाक्रामादिविषयैणवृत्यनन्तरं(?) नित्यमेतद् गृहिण इति ज्ञाप- 10
नार्थमेतत् । तथा 'जिनपूजा-भोजनविधिः' जिनपूजाविधिः भोजनविधिश्च, तद्यथा—
"द्रव्य-भावशुचित्वम्, कालाभिग्रहः, सन्माल्यादीनि, व्यूहे प्रयत्नः, कण्ड्वाद्यतिसहनम्, तदेकाग्रता, सत्स्तवपाठः, विधिवन्दनम्, कुशलप्रणिधानमिति । तथा—उचितदान-क्रियाभावे नियोगः, कीटिकाज्ञातम्, परिग्रहेक्षा, औचित्येन वर्तनम्, स्थानोपवेशः, नियमे स्मृतिः, अधिकक्रिया, व्रणलेपवद् भोगः" इति । तथा 'सन्ध्यानियमश्च' चैत्य- 15
गृहगमनादिः 'योगान्तः' चित्रभावनावसानः । इति गाथार्थः ॥३०॥

न गृहिणो योगसम्भवः इत्याशङ्कापोहायाह—

चिइवंदण जइविस्सामणा य सवणं च धम्मविसयं ति ।
गिहिणो इमो वि जोगो, किं पुण जो भावणामग्गो ? ॥३१॥

'चैत्यवन्दनं' "भुवनगुरुरयं वन्दनीयः सताम्, एतदेव तत् तत्त्वम्, सैषा गुणज्ञता, 20
महाकल्याणमेतत्, दुःखाचलवज्रम्, सुखकल्पपादपः, जीवलोकसारः, दुर्लभानां शेखरः एतच्चैत्यवन्दनम्" इति समुल्ल[१३–प्र०]सदसमसम्मदामोदम् । तथा 'यतिविश्रामणा च' "चारित्रिण एते एतदुद्यता इति नातः परं कृत्यम्, प्रकर्षोऽयं गुणानाम्, रक्ष्य एष काय आत्मनो नियोगेन, तदुत्सर्पणोऽयम्, बीजमेतद् भावस्य, महावीर्यमेतत्, उचिता विश्रामणा" इति महाविवेकसारसंवेगसारता । तथा 'श्रवणं धर्मविषयमिति' 25
"उत्तमः श्रुतधर्मः, मोहतमोरविः, पापवध्यपटहः, प्रकर्षः श्रव्याणाम्, सेतुः सुरलोकस्य, भावामृतमयम्, देशकः शिवगतेः, जिनभाववीजम्, अभिव्यक्तो जिनेन, नातः परं कल्याणम्" इति । विशिष्टशुश्रूषया 'गृहिणः' श्रावकस्य 'एषोऽपि' अनन्तरोदितव्यापारः

'योगः' अन्वर्थयोगाद् मोक्षेण योजनात् । किं पुनर्यो भावनामार्गः ? स बन्धुः परमध्यानस्य, स योग एव, अनुष्ठेयश्चायं श्रावकेण । तथा पुण्यदेशे सङ्क्लेश-विघाताय पद्मासनादिना गुरुप्रणामपूर्वमर्थसन्तानेन "असारो जीवलोक इन्द्रजालतुल्यः, विषकल्पा विषयाः, वज्रसारं दुःखम्, चलाः प्रियसङ्गमाः, अस्थिरा सम्पत्, दारुणः 5 प्रमादः महादौर्गत्यहेतुः, दुर्लभं मानुष्यं महाधर्मसाधनम् इति अलं ममान्येन, करोम्यत्र यत्नम्, न युक्ता[ऽत्रो]पेक्षा, प्रभवति मृत्युः, दुर्लभं दर्शनं सद्गुरुयोगश्च" इति प्रशस्तभावगतेन । एवं चास्ति गृहिणोऽपि योगसम्भव इति । उक्तं च—

योजनाद् योग इत्युक्तो मोक्षेण मुनिसत्तमैः ।
स निवृत्ताधिकारायां प्रकृतौ लेशतो [१२–द्वि०] ध्रुवः ॥

10 वेलावलनवन्नद्यास्तदापूरोपसंहृतेः ।
प्रतिस्रोतोऽनुगत्वेन प्रत्यहं वृद्धिसङ्गतः ॥

भिन्नग्रन्थेस्तु यत् प्रायो मोक्षे चित्तं, भवे तनु ।
तस्य तत् सर्व एवेह योगो योगो हि भावतः ॥

नार्या यथाऽन्यसक्तायाः तत्र भावे सदा स्थिते ।
15 तद्योगः पापबन्धश्च तथा मोक्षेऽस्य दृश्यताम् ॥

न चेह ग्रन्थिभेदेन पश्यतो भावमुत्तमम् ।
इतरेणाऽऽकुलस्यापि तत्र चित्तं न जायते ॥"

[योगबिन्दुः श्लोक २०१–५]

"सांसिद्धिकमनुष्ठानमत एव सतां मतम् ।
20 भावाढ्यं स्तोकमप्येतत् प्रतिबन्धविशेषतः ॥

अस्यापि तत्त्वतः सर्वमेतदेवंविधं यतः ।
नित्यकर्मनियोगेन ततो योग इति स्थितम् ॥"

इति गाथार्थः ॥३१॥

अपान्तरालाधिकारोपसंहारमाह—

25 **एमाइवत्थुविसओ गिहीण उवएस मो मुणेयव्वो ।**
जइणो उण उवएसो सामायारी जहा सव्वा ॥३२॥

---

१ आद्यं पद्यद्वयं गोपेन्द्रयोगशास्त्रगतमिति श्रीहरिभद्रपादैर्योगबिन्दावुक्तम् ॥ २ °संयुतः योगबिन्दौ ।

एवमादिवस्तुविषयः, आदिशब्दात् तत्प्रकृत्यपेक्षया अन्योऽपि व्रतसम्भवादि-सूक्ष्मपदार्थालम्बनो गृह्यते । 'गृहिणां' श्रावकाणामुपदेशो मन्तव्यः, उक्तहेतुभ्योऽस्य साफल्योपपत्तेः । अधुना सर्वचारित्रिणमधिकृत्याह— 'यतेः पुनः' प्रव्रजितस्य पुनः भावत उपदेशः, कः ? इत्याह— 'सामाचारी' शिष्टाचरितक्रियाकलापरूपा भवति सर्वा 'यथा' कर्मक्षयोपशमयोग्यतापेक्षया । इति गाथार्थः ॥३२॥ 5

एनामधिकृत्याह—

गुरुकुलवासो गुरुतंतयाय उचियविणयस्स करणं च ।
वसहीपमज्जणाइसु जत्तो तहकालवेक्खा[१४–प्र०]ए ॥३३॥

गुरुकुलवासो मूलगुणो यतेः, "सुयं मे आउसंतेण"[आचाराङ्ग श्रु० १ अ० १ उ०१ सू० १] इति वचनप्रामाण्यात् । कथमयमिष्यते ? इत्याह— गुरुतन्त्रतया' 10 गुरुपारतन्त्र्येण आत्मप्रदान-सत्यपालनेन । तथा 'उचितविनयस्य' ज्ञानविनयादेः 'करणं च' सेवनं च, भगवदाज्ञेति कृत्वा । तथा वसतिप्रमार्जनादिषु क्रियाभेदेषु यत्नः, आदिशब्दाद् उपधिप्रत्युपेक्षणादिग्रहः, तथाकालापेक्षया न तु यदृच्छाप्रवृत्त्या । इति गाथार्थः ॥३३॥

तथा— 15

अणिगूहणा बलम्मी सव्वत्थ पवत्तणं पसंतीए ।
णियलाभचिंतणं सइ अणुग्गहो मे त्ति गुरुवयणे ॥३४॥

'अनिगूहना' अप्रच्छादना बले शारीरे औचित्यप्रयोगेण, एतद्धि यदन्यथागतं गतमेव निष्फलमित्येतदालोच्य । तथा 'सर्वत्र' श्रमणयोगे उपधिप्रत्युपेक्षणादौ प्रवर्तनं प्रशान्त्या, क्षान्त्यादिमन्थरमित्यर्थः । निजलाभचिन्तनं सदा निर्जरा[१४– 20 द्वि०]फलमङ्गीकृत्य । 'गुरुवचने' गुर्वाज्ञायामिति सम्बन्धः । कथम् ? इत्याह— 'अनुग्रहो ममेति' यदयमित्थमाह 'इति' एवं दुर्लभाः खलु चित्ररोगाभिभूतानां सदुपदेशदातारः सुवैद्या इत्याद्युदाहरणैः । इति गाथार्थः ॥३४॥

तथा—

संवरणिच्छिड्डत्तं सुद्धुंछुज्जीवणं सुपरिसुद्धं । 25
विहिसज्झाओ मरणादवेक्खणं जइजणुवएसो ॥३५॥

'संवरनिश्छिद्रत्वं' आश्रवनिश्छिद्रत्वं यतेरुपदेशः। संवरच्छिद्रं हि गिरिशिखरात् पातालतलपातः। तथा 'शुद्धोञ्छजीवनं' आधाकर्मादित्यागेन सुपरिशुद्धं कल्पनीत्यनुसारतः। तथा 'विधिस्वाध्यायः' विधिना-वन्दनादिलक्षणेन वाचनाद्यनुष्ठानम्। तथा 'मरणाद्यपेक्षणं' मरण-प्रमादजकर्मफलाद्यपेक्षणं 'यतिजनोपदेशः'
5 इत्ययमेवम्भूतो यतिजनस्योपदेशः। इति गाथार्थः ॥३५॥

उपदेशानुपदेशे प्रयोजनमाह—

उवए[१५-प्र०]सोऽविसयम्मी विसए वि अणीइसो अणुवएसो।
बंधनिमित्तं णियमा जहोइओ पुण भवे जोगो ॥३६॥

'उपदेशः' अनन्तरोदितः सामान्येन वा 'अविषये' अपुनर्बन्धकादित्रयादन्यत्र
10 संसाराभिनन्दिनि अनुपदेश इति सम्बन्धः, तत्त्वावबोधादिकार्याकरणाद् विपर्ययसाधनाच्चेति। उक्तं च—

अप्रशान्तमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनम्।
दोषायाभिनवोदीर्णे शमनीयमिव ज्वरे ॥

[लोकतत्त्व० श्लो० ७]

इत्यनुपदेशः। तथा 'विषयेऽपि' अपुनबन्धकादौ 'अनीदृशः' उक्तविपरीतः क्षयोप-
15 शमानुगुण्याभावेन अनुपदेशः, पुरुषमात्रापुरुषवद् विशिष्टस्वकार्याकरणात्। अयं चैवम्भूत उपदेशोऽनुपदेशः। किम्? इत्याह—बन्धनिमित्तं नियमात्, श्रोत्रऽनिष्टापादनाद् आज्ञाविराधनाच्च, अत इत्थं न कार्यः। 'यथोदितः पुनः' आज्ञापरिशुद्धया भवति योगः, मोक्षेण योजनात्। इति गाथार्थः ॥३६॥

एवं सामान्येन उपदेशानुपदेशे प्रयोजनमभिधाय प्रत्यपायपरिजिहीर्षया
20 विशेषतोऽभिधित्सुराह—

गुरुणो अजोगिजोगो अच्चंतविवागदारुणो णेओ।
जोगिगुणहीलणा णट्ठणासणा ध[१५-द्वि०]म्मलाघवओ ॥३७॥

'गुरोः' आचार्यस्य योगिन इत्यर्थः, 'अयोगियोगः' अयोगिव्यापारो विपरीतोपदेशादिः अत्यन्तविपाकदारुणो ज्ञेयः अतिशयेन दारुण इत्यर्थः।
25 कुतः? इत्याह— योगिगुणहीलनात् कारणात्। एवं हि विडम्बकप्रतिपत्तिन्यायेन तद्गुणा हीलिता भवन्ति। "उत्तमपदस्थस्य तद्धर्माननुपालनमघोषणा विडम्बना" इति

वृद्धाः । तथा 'नष्टनाशनात्' नष्टा एते प्राणिनोऽयोग्यतया विपरीतोपदेशेन नाशिता भवन्ति । तथा 'धर्मलाघवात्' हेतोः विपरीतोपदेशाद्धि तत्त्वाप्रतिपत्त्या वितथासेवनेन धर्मलाघवम् । इति गाथार्थः ॥३७॥

एवं सप्रसङ्गमुपदेशविधिमभिधाय एतत्परिणत्युत्तरकालं यत् कार्यं तद्गतं विधिमभिधातुमाह— 5

एयम्मि परिणयम्मी पवत्तमाणस्स अहिगठाणेसु ।
एस विही अइणिउणं पायं साहारणो णेओ ॥३८॥

'एतस्मिन्' उपदेशे परिणते भावप्रतिपत्तिद्वा[१६–प्र०]रेण । किम् ? इत्याह— प्रवर्तमानस्य सतः । क्व ? इत्याह— 'अधिकस्थानेषु' औचित्यापेक्षया तदुत्तरोत्तरगुणरूपेषु । किम् ? इत्याह— 'एष विधिः' वक्ष्यमाणलक्षणः अतिनिपुणम् 10 क्रियाविशेषणमेतत् । 'प्रायः' वाहुल्येन, अपुनर्वन्धकादिव्यवच्छेदार्थमेतत्, अणुव्रतादेरारम्येति भावः । 'साधारणः' सामान्यो ज्ञेयः 'अतिनिपुणं' प्रारब्धसिद्धयङ्गतया, विपर्यये विपर्ययभावात् । इति गाथार्थः ॥३८॥

किंविशिष्टोऽयं विधिः ? इत्याह—

निययसहावालोयण-जणवायावगम-जोगसुद्धीहिं । 15
उचियत्तं णाऊणं निमित्तओ सइ पयट्टेज्जा ॥३९॥

'निजस्वभावालोचन-जनवादावगम-योगशुद्धिभिः' करणभूताभिः उचितत्वं ज्ञात्वा तत्तद्गुणस्थानकापेक्षया आत्मनस्ततः 'निमित्ततः' निमित्तात् कायिकादेः सदा प्रवर्तेत तस्मिंस्तस्मिन् गुणस्थानके इति । तत्र निजस्वभावालोचनम् – 'कीदृशो मम स्वभावः ? केन गुणस्थानके[१६–द्वि०]न संवादी विसंवादी वा ?' इत्येवंरूपम्, 20 न हि तत्स्वभावानानुगुण्ये तदङ्गीकरणं श्रेयः, तत्सिद्ध्यसम्भवाद् विडम्बनामात्रत्वात् । तथा जनवादावगमः – 'किं जनो मम वक्ति ? किं नु गुणस्थानकमङ्गीकृत्य योग्यतां सम्भावयति ?' तत्रैव प्रवृत्तिर्न्याय्या, नेतरत्र, अस्य माननीयत्वात् । तथा योगशुद्धिः – काय-मनो-वाग्व्यापारशुद्धिः, "कीदृशा मम योगाः ? कस्य गुणस्थानकस्य साधकाः ? न ह्येतत्प्रतिकूलमपि सर्वथा गुणस्थानकं प्रतिपत्तुं न्याय्यम्, उपहास्य- 25 प्रायमेतद् अनिष्टफलं च" इत्याचार्याः । अत एभिर्निजस्वभावालोचनादिभिः उचितत्वं ज्ञात्वा निमित्ततः सदा प्रवर्तेत । इति गाथार्थः ॥३९॥

तत्र योगशुद्धिमधिकृत्याह—

गमणाइएहिं कायं णिरवज्जेहिं, वयं च भणिएहिं ।
सुहचिंतणेहि य मणं, सोहेज्जा जोगसुद्धि त्ति ॥४०॥

'गमनादिभिः' गमना-ऽऽसन-स्थानैः 'कायं' देहम् । किम्भूतैः ? इत्याह—
5 'निरवद्यैः' अपापैः । वाचं च भणि[१७–प्र०]तैर्निरवद्यैरेव । 'शुभचिन्तनैश्च' धर्मा-विरोधिभिः साधकैर्वा मनः शोधयेत् । एषा योगशुद्धिः । तथा मध्यमादिभेदेन तत्तद्गुणस्थानापेक्षयेत्येवं निजस्वभावालोचन-जनवादावगमयोरपि शुद्धिः स्वबुद्ध्या द्रष्टव्या । इति गाथार्थः ॥४०॥

इहैव मतान्तरमभिधातुमाह—

10 **सुहसंठाणा अण्णे कायं, वायं च सुहसरेणं तु ।**
सुहसुविणेहिं च मणं, जाणेज्जा साहु सुद्धि त्ति ॥४१॥

'शुभसंस्थानात्' उन्मान-मान-गति-सारादिशुद्धात् , पुरुषलक्षणोपलक्षणमेतत् , 'अन्ये' तन्त्रान्तरीया एवं मन्यन्ते । कायं तद्योगोचितं जानीयादिति योगः । तथा वाचं च 'शुभस्वरेण' गम्भीर-मधुराऽऽज्ञापकादिभेदभिन्नेन तद्योगोचितां जानीयात् । तथा
15 'शुभस्वप्नैश्च' शुक्लस्वप्नरूपैः समुद्र-नदी-ह्रदप्रतरणादिभिः सन्ततेतरादिभेदभिन्नैर्मनो जानीयात् । तत्तद्योगौचित्यमङ्गीकृत्येति प्रक्रमः । 'साधु शुद्धिरिति' शोभनैव योगशुद्धिः । इति गाथार्थः ॥४१॥

एतदपि तन्त्रान्तरीयमतं साध्वेव, न ह्यमहापुरुषा योगिनो भवन्ति, योगस्य भावैश्वर्यादिरमहापुरुषाभावतोऽस्य गुरुतरत्वोपपत्तेः, दृश्यन्ते चैवंविधानामेव महा-
20 पुरुषाणां तदि[१७–द्वि०]तरमहापुरुषेभ्यो भावसारमनिन्दितप्रतिपत्त्यादीनि । कृतं प्रसङ्गेन । एवं तावदोघत एवौचित्यगतमिह विधिमभिधाय अत्रैव प्रतिपत्तिगतमभिधित्सुराह—

एत्थ उवाओ य इमो सुहदव्वाइसमवायमासज्ज ।
पडिवज्जइ गुणठाणं सुगुरुसमीवम्मि॰विहिणा तु ॥४२॥

25 'अत्र' औचित्ये सत्यधिकस्थानप्रतिपत्तौ 'उपायश्चायं' साधनप्रकारविशेषः, यदुत शुभं द्रव्यादिसमुदायं—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसंयोगं 'आश्रित्य' अधिकृत्य प्रतिपद्यते 'गुणस्थानं' देशसामायिकादि । क्व ? इत्याह— 'सुगुरुसमीपे' तदधिकगुणोपेत-

विधिज्ञमहापुरुषगुरुसकाशे, प्रायशो भावाद् भावप्रसूतिः, क्वचित् केवलादप्याज्ञाराधनाद् आज्ञासमये कर्मवैचित्र्याद् अङ्गारमर्दकुगुरु-शिष्यन्यायेन, अतः सुगुरुसमीपे प्रतिपद्यते इत्ययमुपायः । तथा 'विधिना' तत्रापि वन्दनशुद्ध्यादिलक्षणेन । न हि सुगुरोरविधिरिति विधिसिद्धावपि विधिग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थमदुष्टम् । इति गाथार्थः ॥४२॥ 5

अत एव विशेषतो विधिमभिधातुमाह —

वंदणमाई उ विही णिमित्तसुद्धी पहाण मो णेओ ।
सम्मं अवेक्खियव्वा एसा, इह[१८-प्र०]रा विही ण भवे ॥४३॥

वन्दनादिः पुनर्विधिः तुलादण्डमध्यग्रहणनीत्या क्षेत्रशुद्धि-तत्सत्कार-जिनपूजारूपः तथा चैत्यवन्दन-तद्वन्दन-निरुद्धादिरूपश्च गृह्यते । अयं च निमित्तशुद्धिप्रधान 10 एव ज्ञेयः, स्व-परगतकायिकादिनिमित्तशुद्धिप्रधान इत्यर्थः । 'भाविन इष्टादेः सूचकानि निमित्तानि' इत्येतच्छुद्धिरपेक्षणीया, अत एवाह— सम्यगपेक्षितव्या 'एषा' निमित्तशुद्धिः । 'इतरथा' तदनपेक्षायां विधिर्न भवति, आज्ञाविराधनात् । लेशाभिधानमेतत् , अत्र तु विशेषो विशेषग्रन्थानुसारत एव द्रष्टव्यः । सर्वथा नेदं लोकव्यवहारवद् यथाकथञ्चित्प्रतिपन्नं प्रतिपन्नं भवति, किन्तु शास्त्रानुसारत इति शास्त्रमे- 15 वानुसरणीयम् , अन्यथा प्रत्यपायभावादिति । उक्तं च—

उपदेशं विनाऽप्यर्थ-कामौ प्रति पटुर्जनः ।
धर्मस्तु न विना शास्त्रादिति तेत्राऽऽदृतो[१] भवेत् ॥

अर्थादावविधानेऽपि तदभावः परं नृणाम् ।
धर्मेऽविधानतोऽनर्थः क्रियोदाहरणात् परः ॥ 20

तस्मात् सदैव धर्मार्थी[२] शास्त्रयत्नपरो भवेत् ।
लोके मोहान्धकारेऽस्मिन् शास्त्रालोकः प्रवर्तकः ॥

शास्त्रं[३] चिन्तामणिः श्रेष्ठः, शास्त्रं कल्पद्रुमः परम् ।
चक्षुः सर्वत्रगं शास्त्रं, शास्त्रं धर्मस्य साधनम् ॥

---

१. तत्राऽऽदरो हितः इति योगबिन्दौ ॥ २. धर्मार्थी शास्त्रयत्नः प्रशस्यते इति योगबिन्दौ ॥ ३. पापामयौषधं शास्त्रं, शास्त्रं पुण्यनिबन्धनम् । चक्षुः सर्वत्रगं शास्त्रं, शास्त्रं सर्वार्थसाधनम् ॥ इति योगबिन्दौ ॥

[१८–द्वि०]न यस्य भक्तिरेतस्मिंस्तस्य धर्मक्रियाऽपि हि ।
अन्धप्रेक्षाक्रियातुल्या कर्मदोषादसत्फला ॥

[योगबिन्दुः २२२-२६]

इति गाथार्थः ॥४३॥

5 प्रतिपन्नाधिकगुणस्थानकस्य विधिमाह—

उड्ढं अहिगगुणेहिं तुल्लगुणेहिं च णिच्च संवासो ।
तग्गुणठाणोचियकिरियपालणासइसमाउत्तो ॥४४॥

'ऊर्ध्वम्' अधिकगुणस्थानप्रतिपत्तेरुत्तरकालं अधिकगुणैस्तुल्यगुणैश्च प्राणिभिरात्मापेक्षया नित्यं संवासः । संवासो नाम औचित्येन तदुपजीवनादिनिर्जराफलः ।
10 तथा 'तद्गुणस्थानोचितक्रियापालनास्मृतिसमायुक्तः' अस्मिन् गुणस्थानके व्यवस्थितेनेदं चेदं च कर्तव्यमिति स्मृतिसमन्वागतस्तदेव कुर्यात् । इति गाथार्थः ॥४४॥

उत्तरगुणवहुमाणो सम्मं भवरूवचिंतणं चित्तं ।
अरईए अहिगयगुणे तहा तहा जत्तकरणं तु ॥४५॥

उत्तरगुणबहुमानः, अधिकृतगुणस्थानकापेक्षया उत्तरगुणस्थानकगुणराग इत्यर्थः ।
15 तथा 'सम्यग्' वासितेनान्तःकरणेन संवेगक्रियासारं 'भवरूपचिन्तनं' संसारस्वभावालोचनं 'चित्रं' नानाप्रकारं कर्तव्यम् । तद्यथा – इह असारं जन्म, आश्रयो जरादीनाम्, व्याप्तं दुःखगणेन, चला विभूतयः, अनवस्थिताः स्नेहाः, दारुणं विषयविषम् , रौद्रः पापकर्म[१९–प्र०]विपाकः पीडाकरोऽनुबन्धेन, मिथ्याविकल्पं सुखम्, सदा प्रवृत्तो मृत्युरिति, न धर्माद् ऋतेऽत्र किञ्चित् कर्तुं न्याय्यम् इत्येवमादि ।
20 तथा अरतौ चाधिकृतगुणविषयायां चित्रकर्मोदयेन, किम्? इत्याह— 'तथा तथा' तेन तेन प्रकारेण भावशरणादिलक्षणेन 'यत्नकरणं तु' यत्न एव कर्तव्यः । इति गाथार्थः ॥४५॥

किमित्येतदेवम्? इत्याह—

अकुसलकम्मोदयपुव्वरूवमेसा जओ समक्खाया ।
25 **सो पुण उवायसज्झो पाएण भयाइसु पसिद्धो ॥४६॥**

अकुशलकर्मोदयपूर्वरूपम् 'एषा' अरतिरधिकृतगुणे यतः समाख्याता भगवद्भिः। यदि नामैवं ततः किम्? इत्याह— 'स पुनः' अकुशलकर्मोदयः उपायसाध्यः प्रायेण 'भयादिषु' भय-रोग-विषेषु प्रसिद्धः। इति गाथार्थः ॥४६॥

एतदेवाह—

सरणं भए उवाओ, रोगे किरिया, विसम्मि मंतो त्ति। 5
एए वि पावकम्मोवक्कमभेया उ तत्तेणं ॥४७॥

'शरणं' पुरस्थानादि 'भये' अन्यसमुत्थपीडारूपे 'उपायः' प्रक्रमात् तत्प्रत्यनीकः। तथा 'रोगे' व्याधौ चिरकुष्ठादौ 'क्रिया' चिकित्सोपायः। तथा 'विषे' स्थावर-जङ्गमरूपे 'मन्त्रः' देवताधिष्ठितोऽक्षरन्यासः। इत्युपायः पूर्ववत् तत्प्रत्यनीक एव। 'एतेऽपि' शरणादयः 'पापकर्मोपक्रमभेदा एव' भयमोहनीयादिपापकर्मोपक्रम- 10 विशेषा एव [१९–द्वि०] 'तत्त्वतः' परमार्थतः, कारणे कार्योपचारात्। इति गाथार्थः ॥४७॥

एवं दृष्टान्तमभिधाय दार्ष्टान्तिकयोजनामाह—

सरणं गुरू उ इत्थं, किरिया उ तवो त्ति कम्मरोगम्मि।
मंतो पुण सज्झाओ मोहविसविणासणो पयडो ॥४८॥ 15

शरणं गुरुरेव 'अत्र' कर्मभये। क्रिया तु 'तप इति' तप एव षष्ठादि, क्व? इत्याह—'कर्मरोगे' कर्मव्याधौ। मन्त्रः पुनः 'स्वाध्यायः' वाचनादिः, सामर्थ्याद् विषे। तथा चाह— 'मोहविषविनाशनः' कर्मजनिताज्ञानविषविनाशनः 'प्रकटः' अनुभवसिद्धः। इति गाथार्थः ॥४८॥

प्रक्रान्तासेवनाफलमाह— 20

एएसु जत्तकरणा तस्सोवक्कमणभावओ पायं।
नो होइ पच्चवाओ, अवि य गुणो, एस परमत्थो ॥४९॥

'एतेषु' अधिकृतशरणादिषु यत्नकरणादाज्ञानुसारेण 'तस्य' प्रक्रमादधिकृतारतिनिबन्धनस्य कर्मणः 'उपक्रमणभावतः' उपक्रमणस्वभावत्वात् 'प्रायः' बाहुल्येन, निरुपक्रमाकुशलकर्मभावे तु प्रायो गुणस्थानाप्यभावाद्, न भवति प्रत्यपायोऽधिकृतारतिसमुत्थः, अपि च गुणस्तदन्योपक्रमणानुबन्धच्छेदादिना, एष परमार्थः, अन्यथा पुरुषकारवैयर्थ्यादिति। 25

आह—पुरुषकारेण तर्ह्युपक्रम्यते, एवं च कृतनाशा-ऽकृताभ्यागमप्रसङ्गः, अन्यथावेदनीयस्वभावस्यान्यथावेदनात्, तथावेदनीयस्वभावत्वे त्वस्य पुरुषकारवैयर्थ्ये [२०-प्र०] तस्यैव तथास्वभावत्वेनास्य तेनैवाक्षेपादिति ।

उच्यते — यत्किञ्चिदेतत्, अभिप्रायापरिज्ञानात् । अनियतस्वभावं हि 5 कर्म सोपक्रमम्, तदेव च पुरुषकारविषय इत्युक्तदोषाभावः । एतच्च दार्वादौ प्रतिमादियोग्यताकल्पम्, तथाप्रमाणोपपत्तेः । न हि योग्यान्नियमेन प्रतिमादि, न च तदभावे सति अयोग्यमेतत्, तल्लक्षणविलक्षणत्वात्, तथाप्रतीतेः सकललोकप्रसिद्धत्वात् । प्रतिमादिकल्पश्च पुरुषकार इति भावनीयम् । न च दार्वेव प्रतिमाक्षेपकमिति न्याय्यम्, सर्वत्र तत्प्राप्तेः, योग्यस्यापि वाऽयोग्यत्वप्रसङ्गात्; तद्भेदस्य च नैश्चयि-10 कस्यालौकिकत्वात् । लौकिकत्वेऽपि तथाविधयोग्यताभेदात्, तथाविधयोग्यतातुल्यं च कर्मणोऽनियतस्वभावत्वम् । किञ्च — कर्मापि पुरुषकाराक्षेपकं तत्स्वभावतयैव, एवमेव पुरुषस्य तदुपक्रामणस्वभावतायां को दोषः ? पारम्पर्यतस्तथाभावस्योभयत्र तुल्यत्वात् ? । अत इह उभयतथाभावो न्याय्यः, कर्तृ-कर्मणोरुभयतथाभावतायां सर्वत्रेष्टफलसिद्धेः, अन्यथायोगादतिप्रसङ्गादिति । एवमुभयजेऽपि तत्त्वे तदुदग्रतादिरूप-15 तत्प्राधान्यादिनिबन्धना कर्म-पुरुषकारव्यवस्थेति सूक्ष्मधियाऽऽलोचनीयम् । निर्लोठितं चैतद उपदेशमालादिष्विति नेह[1] प्रतन्यते । इति गाथार्थः ॥४९॥

प्रस्तुतार्थसाधकमेव त्रिधिमभिधातुमाह—

चउसरणगमण दुक्कडगरहा सुकडाणुमोयणा चेव ।
एस गणो अणवरयं कायव्वो कुसलहेउ त्ति ॥५०॥

20 'चतुःशरणगमनम्' अर्हत्-सिद्ध-साधु-केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरणगमनम्, आचार्योपाध्याययोः सा[२०-द्वि०]धुष्वेवान्तर्भावात्, केवलिप्रज्ञप्तधर्मस्य चानादित्वेन पृथगुपादानात् । न ह्यतश्चतुष्टयादन्यच्छरण्यमस्ति, गुणाधिकस्य शरणत्वात्, गुणाधिकत्वेनैव ततो रक्षोपपत्तेः, रक्षा चेह तत्तत्स्वभावतया एवाभिध्यानतः क्लिष्टकर्मविगमेन शान्तिरिति । तथा 'दुष्कृतगर्हा' अनादावपि संसारेऽनाभोगादिना प्रकारेण 25 कायादिभिः करणभूतैः यानि दुष्कृतानि अर्हत्-सिद्धादिसमक्षं संवेगापन्नेन चेतसा तेषां जुगुप्सेत्यर्थः । भवत्यतस्तद्धेयत्वभावनयां अनुबन्धादिव्यवच्छेदः, शोभनश्चायं

१. 'नेह प्रयत्नत इति' प्रतौ ॥

महानर्थनिवृत्तेरिति । तथा सुकृतानुमोदना चैव, सकलसत्त्वसङ्गतं मोक्षानुकूलं यदनुष्ठानं अनेकभेदभिन्नं तस्य महता पक्षपातेन स्वभावचिन्तासारा प्रशंसेति भावः, तदुपादेयतायां तद्बहुमानविशेषे नियोगत इयम्, नान्यथा । एवं च महदेतत् कल्याणाङ्गं वनच्छेत्तृ-बलदेव-मृगोदाहरणेन सुप्रसिद्धमेवेति । 'एष गणः' चतुःशरणगमनादिः सर्व एव 'अनवरतं' प्रायः सर्वकालमेव 'कर्तव्यः' अनुष्ठेयः, भावनीय इति यावत् । 'कुशलहेतुः' अपायपरिहारेण कल्याणहेतुरिति कृत्वा । तथा च महती गम्भीरा चास्य कुशलहेतुता, भावसारतया तत्त्वमार्गप्रवेशात् । परिभावनीयमेतदचिन्त्यचिन्तामणिकल्पं भावधर्मस्थानम् । इति गाथार्थः ॥५०॥

प्रस्तुत एव योगाधिकारे विशेषमभिधातुमाह—

[२१-प्र०] घडमाण-पवत्ताणं जोगीणं जोगसाहणोवाओ ।
एसो पहाणतरओ णवर पवत्तस्स विण्णेओ ॥५१॥

'घटमान-प्रवृत्तयोर्योगिनोः' अपुनर्बन्धक-भिन्नग्रन्थिलक्षणयोः, निष्पन्नयोगिव्यवच्छेदार्थमेतत् । घटमान-प्रवृत्तयोरेव योगिनोः योगसाधनोपायः 'एषः' अनन्तरोदितो वक्ष्यमाणलक्षणश्च । निष्पन्नयोगस्य त्वन्यः, केवलिनः स्वाभाविकः शैलेशीपर्यन्तः । एवं च "सांसिद्धिको निष्पन्नयोगानामधिकारमात्रनिवृत्तिफलः" इत्येतदपि परोक्तमत्राविरुद्धमेव, अर्थतस्तुल्ययोग-क्षेमत्वात् । समुद्घातकरणशक्त्या हि कर्मवशितायां सत्यां तथादेशनादियोगः सं(सां)सिद्धिक ए[व] भगवत इति भावनीयम् । तथा 'एषः' वक्ष्यमाणलक्षणः प्रधानतरो नवरं प्रवृत्तस्य 'विज्ञेयः' ज्ञातव्यः तथातदधिकारस्वभावत्वात् । इति गाथार्थः ॥५१॥

एनमेवाभिधातुमाह—

भावणसुयपाढो तित्थसवणमसतिं तयत्थजाणम्मि ।
तत्तो य आयपेहणमतिनिउणं दोसवेक्खाए ॥५२॥

'भावनाश्रुतपाठः' रागादिप्रतिपक्षभावनं भावना, तत्प्रतिबद्धं श्रुतं भावनाश्रुतम्, रागादिनिमित्त-स्वरूप-फलप्रतिपादकमित्यर्थः, तस्य पाठः— विधिनाऽध्ययनम्, अन्यथा त्वन्यायोपात्तार्थवत् ततः कल्याणाभावात् । एवं पाठे सति तीर्थे श्रवणम्, पाठाभावे तन्निराकार्यक्लेशानपगमेन सम्यक्तदर्थज्ञानायोगात्, "अप[२१-द्वि०]रिपाचितमलस्रंसनकल्पं ह्यपाठं श्रवणम्"[ ] इति वचनात् । तीर्थम्-

अधिकृतश्रुता-ऽर्थोभयविद् अभ्यस्तभावनामार्ग आचार्यः, तस्मिन् श्रवणम्, अनीदृशात् तत्त्वतः संज्ञानासिद्धेः। एतच्च 'असकृत्' अनेकशः तीर्थश्रवणम्, कुज्ञानादाविह महाप्रत्यपायोपपत्तेः। एवं 'तदर्थज्ञाने सति' भावनाश्रुतार्थज्ञाने सति, किम्? इत्याह— 'ततश्च' तदनन्तरं च 'आत्मप्रेक्षणम्' आत्मनः प्रकर्षेण ईक्षणं — निरूपणमित्यर्थः। 5 कथम्? इत्याह— 'अतिनिपुणम्' इति स्वतः परतः स्वभावादिभिः। 'दोषापेक्षया' दूषयन्तीति दोषाः—रागादयः तदपेक्षया, किमहं रागबहुलो मोहबहुलो द्वेषबहुलः? अ(इ)त्युत्कटदोषप्रतिपक्षभावनाभ्यासोपपत्तेः। इति गाथार्थः ॥५२॥

इह दोषापेक्षयेत्युक्तं इति दोषाणामेव स्वरूपमाह—

रागो दोसो मोहो एए एत्थाऽऽयदूसणा दोसा।
10 कम्मोदयसंजणिया विण्णेया आयपरिणामा ॥५३॥

रागो द्वेषो मोह एते 'अत्र' प्रक्रमे आत्मदूषणा दोषाः, एते च स्वरूपतः कर्मोदयसञ्जनिता विज्ञेया आत्मपरिणामाः स्फटिकस्येव रागादय इति। तत्राभिष्वङ्गलक्षणो रागः, अप्रीतिलक्षणो द्वेषः, अज्ञानलक्षणो मोह इति, एते चात्म-कर्मपरमाणुतत्स्वभावतया तत्त्वतो द्वन्द्वजा धर्माः। इति गाथार्थः ॥५३॥

15 कर्मोदयसञ्जनिता इत्युक्तम् अतः कर्मस्वरूपमाह—

कम्मं च चित्तपोग्गलरूवं जीवस्सऽणाइसंबद्धं।
मिच्छत्तादिनिमित्तं णाएणमतीयकालसमं ॥५४॥

'कर्म च' ज्ञानावरणीयादि। किम्? इत्याह — 'चित्रपुद्गलरूपं' ज्ञानाद्यवबन्धकस्वभावविचि[२२–प्र०]त्रपरमाणुरूपं 'जीवस्य' आत्मनः 'अनादिसम्बद्धं' तत्त-20 त्स्वभावतया प्रवाहतोऽनादिसङ्गतमित्यर्थः। एतच्च मिथ्यात्वादिनिमित्तं "मिथ्यात्वाऽविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः" [तत्त्वार्थ अ० ८ सू० १] इति वचनात्, 'न्यायेन' नीत्या 'अतीतकालसमम्' अतीतकालतुल्यम्। इति गाथार्थः ॥५४॥

तद्भावनायैवाह—

अणुभूयवत्तमाणो सव्वो वेसो पवाहओऽणादी।
जह तह कम्मं णेयं, कयकत्तं वत्तमाणसमं ॥५५॥

'अनुभूतवर्तमानः' इति अनुभूतं–प्राप्तं वर्तमानत्वं येन सः, तथा सर्वोऽपि 'एषः' अतीतकालः प्रवाहतोऽनादिः, कालशून्यलोकासम्भवात् । 'यथा' इत्युदाहरणोपन्यासार्थः, तथा कर्म ज्ञेयमिति दार्ष्टान्तिकयोजना, प्रवाहतोऽनादीत्यर्थः । भावार्थमाह – कृतकत्वं कर्मणो 'वर्तमानसमं' वर्तमानतुल्यम् । यथा हि यावानतीतः कालस्तेन सर्वेण वर्तमानत्वमनुभूतम् अथ च प्रवाहापेक्षयाऽनादिः, एवं यावत् किञ्चित् कर्म तत् सर्वं कृतकम् अथ च प्र[२२–द्वि०]वाहापेक्षयाऽनादि । इति गाथार्थः ॥५५॥ 5

इहैवाऽऽशङ्काशेषपरिजिहीर्षयाह—

मुत्तेणममुत्तिमओ उवघाया-ऽणुग्गहा वि जुज्जंति ।
जह विण्णाणस्स इहं मइरापाणोसहादीहिं ॥५६॥ 10

'मूर्तेन' कर्मणा 'अमूर्तिमतः' जीवस्य, किम्? इत्याह— उपघाता-ऽनुग्रहावपि युज्येते, अन्यत्र तथोपलम्भादित्यभिप्रायः । निदर्शनमाह – यथा विज्ञानस्य 'इह' लोके 'मदिरापानौषधादिभिः' मदिरापानेनोपघातः, ब्राह्म्याद्यौषधादनुग्रहः । इति गाथार्थः ॥५६॥

प्रस्तुतनिगमनायाह— 15

एवमणादी एसो संबंधो कंचणोवलाणं व ।
एयाणमुवाएणं तह वि विओगो वि हवइ त्ति ॥५७॥

'एवम्' उक्तन्यायाद् अनादिरेष सम्बन्धः । निदर्शनमाह – काञ्चनोपलयोरिव, निसर्गमात्रतयोदाहरणम् । 'एतयोः' इति जीव-कर्मणोः यद्यप्येवम् 'उपायेन' सम्यग्दर्शनादिना तथापि वियोगोऽपि भवति, क्षार-मृत्पुटपाकादिना काञ्चनोपलयोरिव । इति गाथार्थः ॥५७॥ 20

एवं[२३–प्र०]व्यवस्थिते सति प्रस्तुतसौविहित्यमाह—

एवं तु बंध-मोक्खा विणोवयारेण दो वि जुज्जंति ।
सुह-दुक्खाइ य दिट्ठा, इहरा ण, कयं पसंगेण ॥५८॥

एवमेव बन्ध-मोक्षौ सकलसमयसिद्धौ 'विनोपचारेण' उपचारं विना द्वावपि 'युज्येते' घटेते, अकल्पितावित्यर्थः । सुख-दुःखादयश्च 'दृष्टाः' सकललोकसम्मताः 25

युज्यन्ते, मुख्यनिबन्धनोपपत्तेः । 'इतरथा' उक्तप्रकारव्यतिरेकेण 'न' इति न युज्यन्ते बन्धादयः, मुख्यनिबन्धनानुपपत्तेरिति भावनीयम् । 'कृतं प्रसङ्गेन' पर्याप्त-मित्थमप्रस्तुतेन । इति गाथार्थः ॥५८॥

प्रकृताभिधित्सयाह—

5 **तत्थाभिस्संगो खलु रागो, अप्पीइलक्खणो दोसो ।**
अंण्णाणं पुण मोहो, को पीडइ मं दढमिमेसिं ? ॥५९॥

तत्राभिष्वङ्गः खलु 'रागः' भावरागः, रञ्जनं राग इति कृत्वा । अप्रीतिलक्षणो द्वेषः, स्वरूपस्यैव लक्षणत्वाद् भावद्वेष एव । अज्ञानं पुनर्मोहः, मोहनं मोह इति कृत्वा । कः 'पीडयति' बाधते मां 'दृढम्' अत्यर्थम् 'अमीषां' रागादीनाम्, 10 एवमात्मप्रेक्षणमिति । सुज्ञानं चैतद् विदुषां शास्त्रानुसारतः क्षयोपशमविशेषात्, सुतमण्डितप्रतिबुद्धादर्शकदर्शनन्यायसिद्धमेतत् । अनीदृशस्य तु योगेऽनधिकार एव । इति गाथार्थः ॥५९॥

अनेन च विधिनैवं किम् ? इत्याह—

णाऊण ततो तव्विसयतत्त-परिणइ-विवागदोसे त्ति ।
15 **चिंतेज्जाऽऽणाए [२३-द्वि०] दढं पइरिक्के सम्ममुवउत्तो ॥६०॥**

ज्ञात्वा आत्मानं रागादिबहुलतया 'ततः' तदनन्तरं 'तद्विषयतत्त्व-परिणति-विपाक-दोषानिति चिन्तयेत्, तद्विषयः – रागादिविषयः स्त्र्यादिलक्षणः तस्य तत्त्वं–स्वरूपं कलमलादि, परिणतिः – तस्यैव रोग-जरादिरूपा, विपाकः – नरकादि, एत एव दोषाः, एतान् 'इति' एवमेव 'चिन्तयेत्' भावयेत् । 'आज्ञया दृढम्' 'आज्ञया' वीत-20 रागवचनलक्षणया हेतुभूतया, तस्यास्तत्त्वावगमादिहेतुत्वात्, 'दृढम्' अत्यर्थं "पइरिक्के" इति देशीपदं एकान्तार्थवाचकम्, एकान्ते – विविक्ते, तत्र व्याघाताभावात्, 'सम्यगुपयुक्तः' साकल्येन विहितक्रियासमेतः, सामग्रीसाध्यत्वाद् अभिप्रेतकार्यस्य । इति गाथार्थः ॥६०॥

इहैव विशेषमाह—

25 **गुरु-देवयापणामं काउं पउमासणाइठाणेण ।**
दंस-मसगाइ काए अगणेंतो तग्गयऽज्झप्पो ॥६१॥

गुरु-देवताप्रणामं कृत्वा तदनुगृहीतः तद्विषयतत्त्वादि चिन्तयेत् । कथम् ? पद्मासनादिस्थानेन कायनिरोधार्थं दंश-मशकादीन् काये अगणयन् स्ववीर्येण तद्गताध्यात्मः तत्त्वावभासनाय । इति गाथार्थः ॥६१॥

एष तावदधिकृतगाथाद्वयस्य समुदायार्थः । अवयवार्थं तु स्थूलोच्चयेन ग्रन्थकार एवाभिधातुमाह— 5

गुरु-देवयाहि जायइ अणुग्गहो, अहिगयस्स तो सिद्धी ।
एसो य तन्निमित्तो तहाऽऽयभावाओ विण्णेओ ॥६२॥

गुरु-देवताभ्यो जायतेऽनुग्रहः, [२४–प्र०] प्रणामादिति गम्यते । 'अधिकृतस्य' तद्विषयतत्त्वादिचिन्तनस्य 'ततः' अनुग्रहात् 'सिद्धिः' निष्पत्तिः । 'एष च' अनुग्रहः 'तन्निमित्तः' गुरु-देवतानिमित्तः 'तथात्मभावात्' तद्बहुमानालम्बनाद् 'विज्ञेयः' ज्ञातव्यः, 10 एवं तदा तद्भावेन तन्माध्यस्थ्यादौ । इति गाथार्थः ॥६२॥

एतद्भावनायैवाह—

जह चेव मंत-रयणाइएहिं विहिसेवगस्स भव्वस्स ।
उवगाराभावम्मि वि तेसिं होइ त्ति तह एसो ॥६३॥

यथैव मन्त्र-रत्नादिभ्यः सकाशाद् विधिसेवकस्य भव्यस्य प्राणिन उपकारा- 15 भावेऽपि 'तेषां' मन्त्रादीनां भवत्यनुग्रह इति, तथा 'एषः' गुरुदेवतानुग्रहः । इति गाथार्थः ॥६३॥

स्थानादिगुणानाह—

ठाणा कायनिरोहो तक्कारीसु बहुमाणभावो य ।
दंसादिअगणणम्मि वि वीरियजोगो य इट्ठफलो ॥६४॥ 20

'स्थानात्' पद्मासनादेः कायनिरोधो भवति । 'तत्कारिषु' अन्ययोगिषु गौतमादिषु बहुमानभावश्च, शुभाभिसन्धिना तच्चेष्टाऽनुकारात् । दंशाद्यगणनेऽपि सति वीर्ययोगः । चशब्दात् तत्त्वानुप्रवेशश्च 'इष्टफलः' योगसिद्धिफलः । इति गाथार्थः ॥६४॥

तद्गताध्यात्मगुणानाह—

तग्गयचित्तस्स तहोवओगओ तत्तभासणं होति ।
एयं ए[२४–द्वि०]त्थ पहाणं अंगं खलु इट्ठसिद्धीए ॥६५॥

'तद्गतचित्तस्य' तद्विषयतत्त्वादिगतचित्तस्य 'तथोपयोगतः' तेनैकाग्रताप्रकारेणो-
5 पयोगाद हेतोः, किम् ? इत्याह— 'तत्त्वभासनं भवति' अधिकृतवस्तुनः तद्भाव-
भासनमुपजायते । एतच्चात्र 'प्रधानमङ्गं' श्रेष्ठं कारणम् । 'खलु' इत्येतदेव ।
कस्याः ? इत्याह— 'इष्टसिद्धेः' भावनानिष्पत्तेः सकललब्धिनिमित्तसाकारोपयोगत्वेन ।
इति गाथार्थः ॥६५॥

प्राधान्यमेवोपदर्शयन्नाह—

10 एयं खु तत्तणाणं असप्पवित्तिविणिवित्तिसंजणगं ।
थिरचित्तगारि लोगदुगसाहगं बेंति समयण्णू ॥६६॥

'एतदेव तत्त्वज्ञानं' यदधिकृततत्त्वभासनम्, श्रुत-चिन्तामयनिरासेन भाव-
नामयमित्यर्थः । अत एव 'असत्प्रवृत्तिविनिवृत्तिसञ्जनकं' मिथ्याज्ञाननिबन्धनप्रवृत्ति-
निवर्तकमिति भावना । तथा 'स्थिरचित्तकारि' उपप्लवत्यागतो निष्प्रकम्पचित्तकारि,
15 विजयसमाधिबीजमित्यर्थः । अत एव लोकद्वयसाधकमौत्सुक्यनिवृत्ति-कुशलानुबन्धा-
भ्यामिहलोक-परलोकसाधकमिति हृदयम् । ब्रुवते 'समयज्ञाः' सिद्धान्तज्ञाः । इति
गाथार्थः ॥६६॥

व्याख्याता 'गुरु-देवताप्रणामं कृत्वा' इति द्वारगाथा[६१] । साम्प्रतं
'ज्ञात्वा [ततः] तद्विषयतत्त्व' इत्यादि[२५–प्र०]गाथा[६०] व्याख्यायते । आह—
20 एवमुत्क्रमदोषः, न. अर्थव्यापारेणोत्क्रमत्वासिद्धेः । आह— सौत्रोऽन्यथा किमर्थम् ?
अनन्तरसूत्रेण तथायोगात् , तथा हि— रागादिस्वरूपमभिधाय एतद् ज्ञात्वा तद्वि-
षयतत्त्वादि चिन्तयेदित्येतदेवाभिधातुं युज्यते, कथमिति विधिस्तु पश्चात् तन्ना-
न्तरीयकत्वात्, व्याख्यातः पुनरादौ विधिपुरस्सरत्वात् तद्विषयतत्त्वादिचिन्तनस्येति ।
तदेवमाद्यद्वारगाथावयवव्याचिख्यासयाह—

25 थीरागम्मी तत्तं तासिं चिंतेज्ज सम्मबुद्धीए ।
कलमलग-मंस-सोणिय-पुरीस-कंकालपायं ति ॥६७॥

स्त्रीरागे सति तत्त्वं 'तासां' स्त्रीणां चिन्तयेत् सम्यग्बुद्धया परमगुरुवचनगर्भया, अन्यथा तत्त्वचिन्तनायोगात् । किंविशिष्टं तत्त्वम् ? इत्याह—'कलमलक-मांस-शोणित-पुरीष-कङ्कालप्रायमिति' कलमलं – धात्वन्तरे जम्बालम् , मांस-शोणितादयस्तु प्रसिद्धाः, एतद्रूपमेव तत्त्वम् । इति गाथार्थः ॥६७॥

तथा— 5

रोग-जरापरिणामं णरगादिविवागसंगयं अहवा ।
चलरागपरिणतिं जीयनासणविवागदोसं ति ॥६८॥

रोग-जरापरिणामं तत्त्वं तासामिति वर्तते । तथा नरकादिविपाकसङ्गतमेतदेव तद्वोक्त्रपेक्षया । अथवा चलरागपरिणत्येतदेव । तथा जीवितनाशनविपाकदोषमिति, "विषं विरक्ता स्त्री" [ ] इति वचनात् । इति 10 गाथार्थः ॥६८॥

एवं सचेतने वस्तुनि रागमधिकृत्य तद्विषयतत्त्वादिचिन्तनमुक्तम् । अ[२५–द्वि०]धुना त्वचेतनमधिकृत्याह—

अत्थे रागम्मि उ अज्जणाइदुक्खसयसंकुलं तत्तं ।
गमणपरिणामजुत्तं कुगइविवागं च चिंतेज्जा ॥६९॥ 15

अर्थ्यत इति अर्थः, अर्थविषये पुना रागे अर्जनादिदुःखशतसङ्कुलं तत्त्वम्, अर्थस्य चिन्तयेदिति योगः, अर्जन-रक्षण-क्षय-भोगा ह्यर्थस्य लोकद्वयविरोधिनो दुःखाय । तथा गमनपरिणामयुक्तं अर्थस्य तत्त्वम्, पादरजःसमो ह्ययम् । एवं कुगतिविपाकं चैतत् काष्ठकीटोदाहरणेन चिन्तयेत् । इति गाथार्थः ॥६९॥

एवं रागप्रतिपक्षभावनामभिधाय साम्प्रतं द्वेषमधिकृत्याह— 20

दोसम्मि उ जीवाणं विभिण्णयं एव पोग्गलाणं च ।
अणवट्ठियं परिणतिं विवागदोसं च परलोए ॥७०॥

द्वेषे पुनः सति जीवा-ऽजीवविषये, किम् ? इत्याह – जीवानां विभिन्नतां चिन्तयेत् , अनुरागविषयोपरोधिनि प्रतिहतिर्द्वेष इति ज्ञापनार्थमेतत्, अनुरागविषयोऽपि विभिन्नस्तदुपरोध्यपि भिन्न इति भावयेत् । एवं पुद्गलानां च तत्सम्बन्धिनामेव 25 देह-तदुपघातकपुद्गलापेक्षया प्राग्वद् भावनेति । तथा अनवस्थितां परिणतिं जीव-

पुद्गलानामेव चिन्तयेदिष्टेतरादिभावेन । एवं 'विपाकदोषं च' परलोके द्वेषस्यैव सर्वस्यामनोरमत्वादिरूपम् । इति गाथार्थः ॥७०॥

इदानीं मोहमधिकृत्य प्रतिपक्षमभिधातुमाह—

चिंतेज्जा मोहम्मी ओहेणं ताव वत्थुणो तत्तं ।
5 उप्पाय-वय-धुवजुयं [२६–प्र०] अणुहवजुत्तीए सम्मं ति ॥७१॥

चिन्तयेद् मोहे सति 'ओघेन' सामान्येन तावदादौ 'वस्तुनः' जीवादेः 'तत्त्वं' तद्भावम् । किम्भूतम् ? इत्याह— उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं निमित्तभेदेन 'अनुभवयुक्त्या सम्यक्' अनुभवप्रधाना युक्तिस्तया 'सम्यग्' व्यवहारनिबन्धनत्वेन चिन्तयेत् । इति गाथार्थः ॥७१॥

10 अनुभवयुक्तिमेव लेशत आह—

नाभावो च्चिय भावो अतिप्पसंगेण जुज्जइ कयाइ ।
ण य भावोऽभावो खलु तहासहावत्तऽभावाओ ॥७२॥

नाभाव एव सर्वथा भावो युज्यते 'कदाचित्' इति कालावधारणम् । अतिप्रसङ्गेन हेतुना । यदि ह्यसदेव सद् भवेत् ततोऽसत्त्वाविशेषात् सकलशक्त्यभावाद् 15 विवक्षितसत्त्ववद् अविवक्षितमपि भवेद् हेत्वविशेषादिति युगपद् [विवक्षिता-ऽ]विवक्षितघट-पटादिभावापत्तिः,अनुपयोगिनी चेह तदन्यहेतुपरिकल्पना, असज्जननस्वभावत्वेन तस्या अप्युक्तदोषानतिवृत्तेः, अवध्यभावे तद्विशेषकल्पनायोगादिति । एवं च —

असदुत्पद्यते तद्धि विद्यते यस्य कारणम् ।
शशशृङ्गाद्यनुत्पत्तिर्हेत्वभावादितीष्यते ॥

20 इति वचनमात्रमेव । तथा न च भाव एकान्तेन अभाव एव युज्यते कदाचित्, अतिप्रसङ्गेन हेतुनेति वर्तते । यदि हि सदेवासद् भवेत् ततः सत्त्वाविशेषा-[२६–द्वि०]त् सकलशक्त्यभावाद् विवक्षितासत्त्ववद् अविवक्षितमपि भवेत्, हेत्व-विशेषादिति समं घट-मृदाद्यभावापत्तिः, अनुपयोगिनी चेह तदन्यमृदादिपरिकल्पना, सतोऽसद्भवनस्वभावतया हेतुत्वेन तस्या अप्युक्तदोषानतिवृत्तेः, अवध्यभावे स्वभावान्त-25 रकल्पनायोगादिति, एवं च—

सतोऽपि भावेऽभावस्य विकल्पश्चेदयं समः ।
न तत्र किञ्चिद् भवति न भवत्येव केवलम् ॥

इत्यपि वचनमात्रमेव । ग्रन्थत एव हेतुद्वयासिद्धत्वपरिहारमाह—'तथास्वभावत्वाभावादिति' उभयत्रातिप्रसङ्गो व्यवस्थितः, तथास्वभावत्वाभावात् । तथाहि— यदा अभावो भावो भवति तदा तथास्वभावत्वस्य—विवक्षितभावभवनस्वभावत्वस्य तत्राभावो निःस्वभावतयेति प्रकटम्, यदाऽपि भाव एवाभावो भवति तदाऽपि तथास्वभावत्वस्य—स्वाभवनस्वभावत्वस्य तत्राभावो निःस्वभावतयैवेति भावनीयम् । 5 इति गाथार्थः ॥७२॥

एवं विपक्षे बाधकप्रमाणमभिधाय स्वपक्षसिद्ध्यर्थमाह—

एयस्स उ भावाओ णिवित्ति-अणुवित्तिजोगओ होंति ।
उप्पायादी णेवं अविगारी वऽणुहवविरोहा ॥७३॥

'एतस्य पुनः' तथास्वभावत्वस्य 'भावात्' कारणाद् निवृत्त्यनुवृत्तियो[२७— 10 प्र०]गतो हेतोर्भवन्ति । के ? इह 'उत्पादादयः' उत्पाद-व्यय-ध्रौव्याणि, प्रकारान्तरेणोक्तवदुत्पादाद्ययोगात् । नैवं प्रक्रमात् पुरुषः अविकार्यपि, अपिशब्दाद् विकार्यपि, अनुभवविरोधात्, एकान्तैकस्वभावेऽनुभवभेदायोगादिति हृदयम् । एतदुक्तं भवति - यदैव विवक्षितभावभवनस्वा(? स्व)भावोऽभावः तदैव स्वभावभावाद् जहाति सर्वथा भावत्वम्, यदाऽपि च स्वनिवृत्तिस्वभावस्तदाऽप्येवंविधस्वभावभावात् स्वनिवृत्तिमिति 15 सूक्ष्मधियाऽऽलोचनीयम् । एवं चानुवृत्ति-व्यावृत्तिस्वभावं वस्तूत्पादाद्यात्मकमिति सिद्धम् । उक्तं च—

"घट-मौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पाद-स्थितिष्वयम् ।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥
पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोऽत्ति दधिव्रतः । 20
अगोरसव्रतो नोभे, तस्मात् तत्त्वं त्रयात्मकम् ॥"

[शास्त्रवार्त्ता० स्त० ७ श्लो० २-३]

इति गाथार्थः ॥७३॥

आज्ञयेति द्वारं व्याचिख्यासुराह—

आणाए चिंतणम्मी तत्तावगमो णिओगओ होति । 25
भावगुणागरबहुमाणओ य कम्मक्खओ परमो ॥७४॥

'आज्ञया' परमगुरुवचनरूपया हेतुभूतया चिन्तने अधिकृतस्य वस्तुनः 'तत्त्वावगमः' तत्त्वपरिच्छेदः 'नियोगतो भवति' अवश्यं भवतीति, रागादिवि[२७—द्वि०]षं

प्रति परममन्त्रकल्पत्वादाज्ञायाः । अत एवाहुरपरे—"अमन्त्रापमार्जनकल्पा फलं प्रत्यनागमा क्रिया" [ ] इति । तथा 'भावगुणाकर-बहुमानाच्च' तीर्थंकरबहुमानाच्चाऽऽज्ञासारया प्रवृत्त्या कर्मक्षयः परमः, स्थानबहुमानेन तुल्यक्रियायामेवाऽऽज्ञाराधन-विराधनाभ्यां कर्मक्षयादिविशेषात् । इति गाथार्थः ॥७४॥

5 विविक्तदेशगुणानाह—

पइरिक्के बाघाओ न होइ पाएण योगवसिया य ।
जायइ तहापसत्था हंदि अणब्भत्थजोगाणं ॥७५॥

"पइरिक्के" विविक्ते—एकान्ते व्याघातो न भवति अधिकृतयोगस्य 'प्रायेण' बाहुल्येन, विक्षेपनिमित्ताभावात् । 'योगवशिता च' योगाभ्याससामर्थ्यलक्षणा 10 जायते तथाप्रशस्ता, विधिप्रवृत्तेरसद्ग्रहाभावात् । 'हन्दि' इत्युपप्रदर्शने । 'अनभ्यस्तयो-गानाम् ' आदियोगानाम् । इति गाथार्थः ॥ ७५ ॥

चरमसुपयोगद्वारं व्याचिख्यासुराह—

उवओगो पुण एत्थं विण्णेओ जो समीवजोगो त्ति ।
विहियकिरियागओ खलु अवितहभावो उ सव्वत्थ ॥७६॥

15 उपयोगः पुनः 'अत्र' प्रक्रमे विज्ञेयो यः 'समीपयोगः' सिद्धेः प्रत्यासन्न इति । स चायमित्याह—'विहितक्रियागतः खलु' स्थानादिक्रिया[२८-प्र०]विषय इत्यर्थः । 'अवितथभावस्तु' यथोक्तभाव एव 'सर्वत्र' स्थानादौ । एतल्लिङ्ग एव बोधः पर-लोकपक्षपातो भगवद्बहुमानश्च, भावनीयमेतत् । इति गाथार्थः ॥ ७६ ॥

उपसंहरन्नाह—

20 **एवं अब्भासाओ तत्तं परिणमइ चित्तथेज्जं च ।**
जायइ भवाणुगामी सिवसुहसंसाहगं परमं ॥७७॥

'एवम् ' उक्तेन न्यायेन अभ्यासाद् हेतोः तत्त्वं परिणमति रागादिविषय-सम्बन्धि । तथा 'चित्तस्थैर्यं च' आनन्दसमाधिबीजं जायते । किंविशिष्टम् ? इत्याह—'भवानुगामि' जन्मान्तरानुगमनशीलं 'शिवसुखसंसाधकं' पारम्पर्येण मोक्ष-25 सुखसाधकमित्यर्थः । 'परमं' प्रधानं चित्तस्थैर्यं शिवाध्वविजयदुर्गावाप्तिलक्षणम् । इति गाथार्थः ॥ ७७ ॥

इहैव विध्यन्तरमाह—

अहवा ओहेणं चिय भणियविहाणाओ चेव भावेज्जा ।
सत्ताइएसु मेत्ताइए गुणे परमसंविग्गो ॥७८॥

'अथवा' इति प्रकारान्तरप्रदर्शनार्थः । 'ओघेनैव' सामान्येनैव भणितविधानेनैव स्थानादिना 'भावयेत्' प्रणिधानसारमभ्यस्येत् । क्व कान् ? इत्याह—'सत्त्वादिषु' सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाऽविनेयेषु 'मैत्र्यादीन् गुणान्' मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यलक्षणान् 'परमसंविग्नः' लब्धि-पूजा-ख्यात्याद्याशयरहितः । इति गाथार्थः ॥७८॥　5

एतदेव विशेषेणाभिधातुमाह—

सत्तेसु ताव मेत्तिं, तहा पमोयं गुणाहिएसुं ति ।
करुणा-मज्झत्थत्ते किलिस्समाणाऽविणेएसु ॥ [२८-द्वि०]७९ ॥　10

सत्त्वेषु सर्वेष्वेव तावदादौ 'मैत्रीं' प्रत्युपकारानपेक्षसम्बन्धां सुखरूपां भावयेत् । तथा 'प्रमोदं' बहुमानाशयलक्षणं 'गुणाधिकेषु' इति स्वगुणाधिकेषु सत्त्वेषु । तथा 'करुणा-मध्यस्थत्वे' कृपोपेक्षारूपे यथासंख्यमेतत् 'क्लिश्यमानाऽविनेययोः; क्लिश्यमानेषु करुणा; अविनेयेषु माध्यस्थ्यम् । इति गाथार्थः ॥ ७९ ॥

क्रमान्तराशङ्कापोहायाह—　15

एसो चेवेत्थ कमो उचियपवित्तीए वण्णिओ साहू ।
इहराऽसमंजसत्तं तहातहाऽठाणविणिओया ॥८०॥

'एष एव' अनन्तरोदितः 'अत्र' भावनाविधौ 'क्रमः' प्रवृत्तिप्रस्ताररूपः उचितप्रवृत्तेः कारणाद् वर्णितः 'साधुः' शोभनः तीर्थकर-गणधरैः । तथाहि—सामान्येन सत्त्वेषु मैत्री एवोचिता, प्रमोदो गुणाधिकेष्वेव, क्लिश्यमानेष्वेव करुणा, अविनेयेष्वेव माध्यस्थ्यम् । इत्थं चैतदङ्गीकर्तव्यम् इत्याह—'इतरथा' अन्यथोक्तक्रमबाधायाम् 'असमञ्जसत्वं' सन्न्यायविरुद्धं भवति । अत्र हेतुः तथातथाऽस्थानविनियोगादिति, सत्त्वादिषु प्रमोदादिकरणे अस्थानविनियोगो मिथ्याभावनात्मकः प्रत्यवायायेति भावनीयम् । गुणाधिकज्ञानं च क्षयोपशमविशेषाद् रत्नादाविव मार्गानुसारिणाम् । इति गाथार्थः ॥ ८० ॥　20　25

अत्रैव सामान्यविधिमाह—

साहारणो पुण विही सुक्काहारो इमस्स विण्णेओ ।
अण्णत्थओ य एसो उ सव्वसंपक्करी भिक्खा ॥८१॥

साधार[२९-प्र०]णः पुनर्विधिः सर्वावस्थानुगत इत्यर्थः, शुक्लाहारोऽस्य विज्ञेयः। शुद्धानुष्ठानसाध्यः शुद्धानुष्ठानहेतुः स्वरूपशुद्धश्च शुक्ल इति। 'अस्य' योगिनः एवम्भूतो विज्ञेयः, तदन्यस्य योगाङ्गत्वानुपपत्तेः, न ह्यपथ्यान्नभुजो देहाद्यारोग्यसिद्धिः। अन्वर्थतश्चैष पुनः शुक्लाहारः सर्वसम्पत्करी भिक्षेति विज्ञेयः। सर्वसम्पत्करणशीला 5 सर्वसम्पत्करी दातृ-ग्रहीत्रुभयलोकहिता, पौरुषघ्नी-वृत्तिभिक्षाव्यवच्छेदार्थमेतत्। अत्र बहु वक्तव्यं तत् तु नोच्यते, गमनिकामात्रत्वात् प्रारम्भस्य। इति गाथार्थः ॥८१॥

अत्रैव विशेषमाह—

वणलेवोवम्मेणं उचियत्तं तग्गयं निओएणं।
एत्थं अवेक्खियव्वं, इहराऽयोगो त्ति दोसफलो ॥८२॥

10 'व्रणलेपौपम्येन' सकललोकसिद्धेन उचितत्वं 'तद्गतम्' आहारगतं 'नियोगेन' अवश्यन्तया 'अत्र' प्रक्रमे अपेक्षितव्यम्, 'इतरथा' अन्यथा 'अयोगः' असम्बन्ध इति कृत्वा व्रणलेपवदेवाऽऽहारो दोषफल इति। एतदुक्तं भवति—यथा व्रणः स्वरूपभेदात् कश्चिन्निम्बतिलोचितः कश्चिच्चिक्कशोचितः कश्चिद् गवादिघृतोचित इति, तत्र विपर्ययलेपदाने दोषः; एवं कश्चिद् यतिकायः[२९-द्वि०] कोद्रवाद्यो-15 दनोचितः कश्चित् शाल्योदनाद्युचितः कश्चिद् हविःपूर्णाद्युचित इति, अत्रापि विपर्ययदाने दोषः, गम्भीरबुद्ध्या परिभावनीयमेतत्। इति गाथार्थः ॥८२॥

कथमुचितस्य लाभः? इत्याशङ्कानिरासार्थमाह—

जोगाणुभावओ च्चिय पायं ण य सोहणस्स विं अलाभो।
लद्धीण वि संपत्ती इमस्स जं वण्णिया समए ॥८३॥

20 'योगानुभावत एव' योगसामर्थ्यत एव तत्प्रतिबन्धककर्मनिवृत्तेः 'प्रायः' बाहुल्येन। न च 'शोभनस्यापि' आहारस्य हविःपूर्णादेः अलाभः, किन्तु लाभ एव। कुतः? इत्याह—'लब्धीनामपि' रत्नादिरूपाणां योगानुभावत एव योगसामर्थ्यात् 'सम्प्राप्तिः' शोभना प्राप्तिः परोपकारफला 'अस्य' योगिनः 'यत्' यस्मात् कारणाद् वर्णिता 'समये' सिद्धान्ते। इति गाथार्थः ॥८३॥

25 लब्धीनां स्वरूपमाह—

रयणाई लद्धीओ अणिमादीयाओ तह य चित्ताओ।
आमोसहाइयाओ तहातहायोगवुड्ढीए ॥८४॥

रत्नाद्या लब्धयः, "स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्ग-स्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्" [पात० योग० ३-५१] इति वचनात् । अणिमाद्याश्च तथा 'चित्राः' "अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिः प्रा[३०-प्र०]काम्यं ईशिता वशिता यत्कामावसायिता च"[ ] इति वचनात् । तथा 'आमर्षौषध्याद्याः' "आमोसहि विप्पोसहि खेलोसहि०" [आव० नि० गा०६९] इति वचनात् । एताश्च तथातथा- 5 प्रकारेण उत्तरोत्तरपरिशुद्धवृद्धिरूपेण योगवृद्धेः सकाशाद् भवन्ति । तच्छोभनाहारो लब्धी मात्रा । इति गाथार्थः ॥८४॥

अधिकृतावस्थाफलमाह—

एतीए एस जुत्तो सम्मं असुहस्स खवग मो णेओ ।
इयरस्स बंधगो तह सुहेणमिय मोक्खगामि त्ति ॥८५॥ 10

एतया' योगवृद्ध्या भावनया वा 'एषः' योगी 'युक्तः' घटितः । किम् ? इत्याह—'सम्यग्' अपुनर्वन्धकत्वेन अशुभस्य कर्मणः क्षपको ज्ञेयः । 'मो' इति अत्र स्थानेऽवधारणार्थो निपातः, एतयैव, अन्यथा क्षपणस्यापि भूयोऽधिकभावेनाक्षपणत्वात् । इतरस्य' शुभस्य कर्मणः विशिष्टदेश-कुल-जात्यादिनिमित्तस्य बन्धकः, ज्ञेय इति वर्तते । 'तथा' तेन प्रकारेणानुवन्धानः शुभ-शुभतरप्रवृत्त्या प्र[३०-द्वि०]- 15 कृष्टफलदानरूपेण । एवं किम् ? इत्याह—'सुखेनैव' सुखपरम्परया 'मोक्षगामी' भवान्तकृत् । इति गाथार्थः ॥८५॥

साम्प्रतमधिकृतभावनासाध्यमेव वस्तु तन्त्रान्तरपरिभाषया अन्वय-व्यतिरेकतः खल्वविरोधि इति प्रदर्शयन्नाह—

कायकिरियाए दोसा खविया मंडुक्कचुण्णतुल्ल त्ति । 20
ते चेव भावणाए नेया तच्छारसरिस त्ति ॥८६॥

एवं पुण्णं पि दुहा मिम्मय-कणयकलसोवमं भणियं ।
अण्णेहि वि इह मग्गे नामविवज्जासभेएणं ॥८७॥

तह कायपाइणो ण पुण चित्तमहिकिच्च बोहिसत्त त्ति ।
होंति तहभावणाओ आसययोगेण सुद्धाओ ॥८८॥ 25

एमाइ जहोइयभावणाविसेसाउ जुज्जए सव्वं ।
मुक्काहिनिवेसं खलु निरूवियव्वं सबुद्धीए ॥८९॥

चतस्रोऽप्येकप्रघट्टकप्रतिबद्धाः । आसां व्याख्या—'कायक्रियया' आगमवाधयाऽसद्भावतो भावशून्यया 'दोषाः' रागादयः क्षपिताः सन्तः, किम्? इत्या-[३१-प्र०]ह—मण्डूकचूर्णतुल्याः इति, यथा माण्डूकचूर्णे चूर्णावस्थायां माण्डूकक्रियाक्षयः सन्नप्यक्षयकल्पः, प्रावृडादिनिमित्तयोगतः तदधिकभावात्, एवं काय-5 क्रियया वचनबाधोपेतया तथाविधानुष्ठानसमभिव्यङ्ग्यो दोषक्षयोऽक्षय एव, जन्मान्तरादिनिमित्तयोगतस्तदधिकभावादिति। उक्तं च— "क्रियामात्रतः कर्मक्षयः मण्डूकचूर्णवत्, भावनातस्तु तद्भस्मवत्" [ ] इत्यादि । अपथ्यद्रव्ययोगवेदनाक्षयोपलक्षणमेतत् । एवं दोषाः 'भावनया' वचनगर्भया चित्तवृत्त्या, क्षपिता इति वर्तते, ज्ञेयाः। किंविशिष्टाः? इत्याह—'तत्सा(? च्छा)रसदृशाः' मण्डूकभस्म-10 तुल्याः, पुनरभावात् । भावना ह्यत्राग्नितुल्या वर्तते, इयं च वचननिमित्तैवेति । तद् "एतयैवैष युक्तः सम्यगशुभस्य क्षपको ज्ञेयः"[गा० ८५] इति एतदनुपात्येव एतदिति परिभावनीयम् । इति प्रथमगाथार्थः ॥८६॥

एवं पुण्यमपि 'द्विधा' द्विप्रकारम् । कथम्? इत्याह— 'मृण्मय-कनककलशोपमं भणितम्' एकं मृण्मयकलशोपमं क्रियामात्रजन्यमफलं सत् तत्फलदानस्वभावं 15 वा, [३१-द्वि०] अन्यत् कनककलशोपमं विशिष्टभावनाजन्यं तथातथाफलान्तरसाधनेन प्रकृष्टफलजनकस्वभावमिति । एतद् भणितम् 'अन्यैरपि' सौगतैः—"द्विविधं हि भिक्षवः! पुण्यम्—मिथ्यादृष्टिजं सम्यग्दृष्टिजं च । अपरिशुद्धमाद्यम्, फलं प्रति मृद्घटसंस्थानीयम् । परिशुद्धमुत्तरम्, फलं प्रति सुवर्णघटसंस्थानीयम्" [ ] इति वचनात् । 'इह मार्गे' योगधर्ममार्गे 'नामविपर्यासभेदेन' 20 अभिधानभेदेन, एतदपि "इतरस्य बन्धकः तथा सुखेनैव मोक्षगामीति"[गा०८५ एतदनुपाति तत्त्वतः । इति द्वितीयगाथार्थः ॥ ८७ ॥

तथा कायपातिनः, न पुनश्चित्तमधिकृत्य पातिनः 'बोधिसत्त्वाः' बोधिप्रधानाः प्राणिन इति भवन्ति । तथाभावनातः सकाशाद् 'आशययोगेन' चित्तगाम्भीर्यलक्षणेन शुद्धा[श]या इति। तथा चार्षम्— "कायपातिनो हि बोधिसत्त्वाः, न चित्त-25 पातिनः, निराश्रवकर्मफलमेतत्" । इति तृतीयगाथार्थः ॥ ८८ ॥

एवमादि, आदिशब्दाद् "विजया-ऽऽनन्द-सत्क्रिया-क्रियासमाधयः प्रवृत्तादीनाम्; तथा वितर्कचारु क्षुभितं प्रथमम्, प्रीत्युत्प्लावितमानसं द्वितीयम्, सुखसङ्गतमातुरं तृतीयम्, प्रशमैकान्तसुखं चतुर्थमेतत्" इत्यादि प्रगृह्यते । [३२-प्र०] तदेवमादि यथोदितभावनाविशेषात् सकाशाद् 'युज्यते सर्वं' घटते निरवशेषम्, तत्त्व-

मधिकृत्य योगवृद्धेः, अधिकृतभावनायाश्च एवंस्वरूपत्वात् । 'मुक्ताभिनिवेशं खलु' इति सावधारणं क्रियाविशेषणम्, मुक्ताभिनिवेशमेव निरूपयितव्यं स्वबुद्ध्या, अभिनिवेशस्य तत्त्वप्रतिपत्तिं प्रति शत्रुभूतत्वात्, युक्तेरपि वैतथ्येन प्रतिभासनात् । उक्तं चात्र—

"आग्रही बत ! निनीषति युक्तिं तत्र, यत्र मतिरस्य निविष्टा ।
पक्षपातरहितस्य तु युक्तिर्यत्र, तत्र मतिरेति निवेशम् ॥ 5
साध्वसाध्विति विवेकविहीनो लोकपक्तिकृत उक्तिविशेषः ।
बालिशो भवति नो खलु विद्वान्, सूक्त एव रमते मतिरस्य ॥"
[ ]

इत्यलं प्रसङ्गेन । इति चतुर्थगाथार्थः ॥ ८९ ॥

एवं प्रासङ्गिकमभिधाय 'एतयैष युक्तः' इत्येतद्गाथा[८५]सम्बद्धामेव प्रकृतयोजनागाथामाह— 10

एएण पगारेणं जायइ सामाइयस्स सुद्धि त्ति ।
तत्तो सुक्कज्झाणं, कमेण तह [३२—द्वि०] केवलं चेव ॥९०॥

एतेन प्रकारेण अनन्तरव्यावर्णितस्वरूपेण, किम् ? इत्याह— 'जायते' निष्पद्यते 'सामायिकस्य' मोक्षहेतोः परिणामस्य 'शुद्धिः' विशेषाभिव्यक्तिरिति । 15 परिभावितमेवैतत् प्राक् । 'ततः' सामायिकशुद्धेः 'शुक्लध्यानं' पृथक्त्ववितर्कं सविचारमित्यादिलक्षणं जायते इति वर्तते । 'क्रमेण' तथाश्रेणिपरिसमाप्तिलक्षणेन 'केवलं चैव' केवलज्ञानं च जायते । इति गाथार्थः ॥ ९० ॥

सामायिकस्यैव प्राधान्येन मोक्षाङ्गतां ख्यापयन्नाह—

वासी-चंदणकप्पं तु एत्थ सिट्ठं अओ च्चिय बुहेहिं । 20
आसयरयणं भणियं, अओऽण्णहा ईसि दोसो वि ॥९१॥

'वासी-चन्दनकल्पमेव' सर्वमाध्यस्थ्यरूपम् 'अत्र' व्यतिकरे 'श्रेष्ठं' प्रधानम् । अत एव कारणाद् 'बुधैः' विद्वद्भिः 'आशयरत्नं भणितं' चित्तरत्नमुक्तम्, 'जो चंदणेण बाहं आलिंपइ" [उपदेशमाला गा० ९२] इत्यादिवचनेन । अतोऽन्यथा' अपकारिण्येवोपकार्याशयकल्पनायामाशयरत्न[३३—प्र०]स्य, किम् ? इत्याह— 25 'ईषत्' मनाग् दोषोऽपि तदपायानिरूपणेन । तथा चोक्तम्—

"सामायिकं च मोक्षाङ्गं परं सर्वज्ञभाषितम् ।
वासी-चन्दनकल्पानामुक्तमेतन्महात्मनाम् ॥१॥

निरवद्यमिदं ज्ञेयमेकान्तेनैव तत्त्वतः ।
कुशलाशयरूपत्वात् सर्वयोगविशुद्धितः ॥२॥

यत् पुनः कुशलं चित्तं लोकदृष्ट्या व्यवस्थितम् ।
तत् तथौदार्ययोगेऽपि चिन्त्यमानं न तादृशम् ॥३॥

5 मय्येव निपतत्वेतज्जगद्दुश्चरितं यथा ।
मत्सुचरितयोगाच्च मुक्तिः स्यात् सर्वदेहिनाम् ॥४॥

असम्भवीदं यद् वस्तु बुद्धानां निर्वृतिश्रुतेः ।
सम्भवित्वे त्वियं न स्यात् तत्रैकस्याप्यनिर्वृतौ ॥५॥

एवं च चिन्तनं न्यायात् तत्त्वतो मोहसङ्गतम् ।
10 साध्ववस्थान्तरे ज्ञेयं बोध्यादेः प्रार्थनादिवत् ॥६॥

अपकारिणि सद्बुद्धिर्विशिष्टार्थप्रसाधनात् ।
आत्मम्भरित्वपिशुना तदपायानपेक्षिणी ॥७॥

एवं सामायिकादन्यदवस्थान्तरभद्रकम् ।
स्याच्चित्तं तत् तु संशुद्धेर्ज्ञेयमेकान्तभद्रकम् ॥८॥"

15 [हारिभद्रीयमष्टकम् २९] इति ।

परैरप्यस्य प्रविभागो गीतः । यथोक्तम्—

"धर्मधातावकुशलः सत्त्वनिर्वापणे मतिम् ।
क्षेत्राणां शोधने चैव करोति वितथा च सा ॥

आदिधार्मिकमाश्रित्य सज्ज्ञानरहितं यथा ।
20 इष्टेयमपि चाऽऽर्याणां सदाशयविशोधनी ॥

[३३—द्वि०] इत्यादि । कृतं प्रसङ्गेन । इति गाथार्थः ॥ ९१ ॥"

महाफलोपसंहारमाह—

जइ तब्भवेण जायइ जोगसमत्ती अजोगयाए तओ ।
जम्मादिदोसरहिया होइ सदेगंतसिद्धि त्ति ॥९२॥

25 यदि 'तद्भवेन' तेनैव जन्मना 'जायते' निष्पद्यते । का ? इत्याह— योगसमाप्तिः सामग्रीविशेषेण । ततः किम् ? इत्याह— 'अयोगतया ततः' शैले-

1. तदेवं चिन्तनं हरिभद्राष्टके ॥

स्यवस्थारूपया 'जन्मादिदोषरहिता' जन्म-जरा-मरणवर्जिता भवति । का ? इत्याह— 'सदेकान्तसिद्धिः' सती — अपुनरागमनेन एकान्तविशुद्धिर्मुक्तिः । इति गाथार्थः ॥ ९२ ॥

यदि तु योगसमाप्तिर्न जायते ततो यद् भवति योगिनां तदाह—

असमत्तीय उ चित्तेसु एत्थ ठाणेसु होइ उप्पाओ । 5
तत्थ वि य तयणुवंधो तस्स तहऽब्भासओ चेव ॥९३॥

असमाप्तौ च पुनः तद्भवेन योगस्य । किम् ? इत्याह— 'चित्रेषु' नानाप्रकारेषु 'अत्र स्थानेषु' देवच्युतौ मानुष्ये विशिष्टकुलादिषु । किम् ? इत्याह— 'भवत्युत्पादः' जायते जन्मपरिग्रह इत्यर्थः । 'तत्रापि' जन्मपरिग्रहे, किम् ? इत्याह— 'तदनुबन्धः' योगधर्मानुबन्धः 'तस्य' योगिन इति । कुतः ? इत्याह— 10 'तथाऽभ्यासत एव' प्रणिधानतोऽविच्युत्यभ्यासत एव, प्रणिधान-[३४—प्र०]प्रवृत्ति-विघ्नजयप्राप्तीनामित्थमेव भावात् । इति गाथार्थः ॥ ९३ ॥ गीता ब्वनेन समानमेतत्

अधिकृतवस्तुसमर्थनायैवाह—

जह खलु दिवसऽब्भत्थं रातीए सुविणयम्मि पेच्छंति ।
तह इहजम्मऽब्भत्थं सेवंति भवंतरे जीवा ॥९४॥ 15

'यथा खलु' इति यथैव 'दिवसाभ्यस्तम्' अध्ययनादि 'रात्रौ' रजन्यां 'स्वप्ने' निद्रोपहतचित्तव्यापाररूपे पश्यन्ति तथानुभवापेक्षया । एष दृष्टान्तः । साम्प्रतं दार्ष्टान्तिकयोजना — 'तथा' तेन प्रकारेण 'इहजन्माभ्यस्तम्' अधिकृतजन्मासेवितं कुशलादि सेवन्ते 'भवान्तरे' जन्मान्तरे 'जीवाः' प्राणिनः तत्स्वाभाव्यात् । इति गाथार्थः ॥ ९४ ॥ 20

यस्मादेवं तस्मात् किम् ? इत्याह—

ता सुद्धजोगमग्गोच्चियम्मि ठाणम्मि एत्थ वट्टेज्जा ।
इह-परलोगेसु दढं जीविय-मरणेसु य समाणो ॥९५॥

'तत्' तस्मात् 'शुद्धयोगमार्गोचिते' आगमाद् निरवद्ययोगमार्गानुरूपे 'स्थाने' संयमस्थाने सामायिकादौ अत्र वर्तेत साम्प्रतजन्मनि । कथम् ? इत्याह— इह- 25 परलोकयोः 'दृढम्' अत्यर्थम्, तथा जीवित-मरणयोश्च 'समानः' सर्वत्र तुल्यवृत्तिः, परं मुक्तावस्थाबीजमेतत् । इति गाथार्थः ॥ ९५ ॥

न भावतः सदाऽनौचित्यवृत्तेः पर्यन्तौचित्यावाप्तिरिति तद्गतं विधिमाह—

परिसुद्धचित्तरयणो चएज्ज देहं तहंतकाले वि ।
आसण्णमिणं णाउं अणसणविहिणा विसुद्धेणं ॥९६॥

परिशुद्धचित्तरत्नः स सर्वत्रानाशंसया, किम् ? इत्याह— 'त्यजेद् देहं' जह्यात् कायम्। तथा .... [३४-द्वि०]तसंयुक्तशुभलेश्याप्रकारेण 'अन्तकालेऽपि' 5 क्रमागतमरणकालेऽपि आसन्नम् 'एनं' मरणकालं ज्ञात्वा, कथं त्यजेत् ? इत्याह— 'अनशनविधिना' अनशनप्रकारेण 'विशुद्धेन' कवचज्ञाततः आगमपरिपूतेन। इति गाथार्थः ॥ ९६ ॥

मरणकालविज्ञानोपायमाह—

णाणं चाऽऽगम-देवय-पइहा-सुमिणंधराद्ऽदिट्ठीओ ।
10 णास-ऽच्छि-तारगादंसणाओ कण्णग्गऽसवणाओ ॥९७॥

ज्ञानं चाऽऽसन्नमरणकालस्य, कुतः ? इत्याह— 'आगम-देवता-प्रतिभा-स्वप्ना-ऽरुन्धत्याद्यदृष्टेः' आगमाद्–मरणविभक्त्यादेः नाडीसञ्चारादिना। यथाऽऽहुः समयविदः—

"उत्तरायणा पंचाहमेगनाडीसंचारे तिण्णि समाओ जीवियं, दसाहमेगनाडी-15 संचारे दो, पण्णराहमेगनाडीसंचारे एगं, वीसाहमेगनाडीसंचारे छम्मासा पंचवीसाह-मेगनाडीसंचारे तिण्णि, छव्वीसाहमेगनाडीसंचारे दो, सत्तवीसाहमेगनाडीसंचारे एगो, अट्ठावीसाहमेगनाडीसंचारे पण्णरस दियहा, एगूणतीसाहमेगनाडीसंचारे दस, तीसाह-मेगनाडीसंचारे पंच, एगतीसाहमेगनाडीसंचारे तिण्णि, बत्तीसाहमेगनाडीसंचारे दो, तेत्तीसाहमेगनाडीसंचारे दिवसो जीवियं।"

20 तथा अन्यैरप्युक्तम्—

पञ्चाहात् पञ्चवृद्धया दिवसगतिरिहाऽऽरोहते पञ्चविंशात्
तस्मादेकोत्तरेण त्रिगुणितदशकं त्र्युत्तरं यावदेतत्।
काले पौष्णे समास्तास्त्रि-नयन-शशिनः, षट्-त्रि-युग्मेन्दवो ये,
मा[३५-प्र०]सास्तेऽहानि शेषास्तिथि-दिगिषु-गुण-द्वीन्दवो जीवितस्य ॥

25 [ ]

१. "समसप्तगते सूर्ये चन्द्रे जन्मर्क्षमाश्रिते। स कालः पौष्ण उद्दिष्टः कुर्यास्तत्र विचारणाम्॥ आदौ कृत्वा दिनार्धं सकलदिनमथाहर्निशं चोत्तरेण, पश्चादहद्वयं च त्रिदिनमथ चतुर्वासराणि क्रमेण। प्राणो नाड्याश्रितो यो भवति दिनपतेरुद्गमात् सव्यहीनः, तत्रैतान् धारणाब्दान् मनुरवि-विदिशो मण्डलाः षट् चतस्रः॥" इत्येषा आदर्शगता टिप्पणी॥

एवं देवतातः — देवताकथनेन, चारित्री देवतापरिगृहीतो भवति तस्योचितमन्यदपि देवता कथयत्येव । एवं प्रतिभातः— प्रातिभमप्यस्याविसंवाद्येव भवति, व्यवहारोपयोगिन्यपि तथोपलब्धेः । एवं स्वप्नाद्–मृतगुर्वाह्वानादेः * मृतगुर्वाह्वान-बालदेहभाव-भोगसन्दर्शनं योगिनोऽन्तकाले सिद्धः चित्तविभ्रम इति । अरुन्धत्याद्यदृष्टेः । यथोक्तम्— 5

प्रध्मातदीप[गं] गन्धमल्पायुर्नैव जिघ्रति ।
स्फुटतारावृते व्योम्नि न च पश्यत्यरुन्धतीम् ॥

[　　　　　　　　]

तथा 'नासा-ऽक्षितारकाऽदर्शनात्' इति नासिकाऽदर्शनं अवष्टब्धाऽक्षिज्योतिस्ताराऽदर्शनं चाऽऽसन्नमृत्युलिङ्गम् । तथा 'कर्णान्यश्रवणाद्' अङ्गुष्ठापूरितकर्णान्तरागन्यश्रवणं आसन्नमृत्युलिङ्गं समुद्रध्वनिश्रवण-दशग्रन्थिस्फुरण-द्वादशाक्षरानुपलम्भाद्युपलक्षणमेतत् । इति गाथार्थः ॥ ९७ ॥ 10

एवमेनं ज्ञात्वा किम् ? इत्याह—

अणसणसुद्धीए इहं जत्तोऽतिसएण होइ कायव्वो ।
जल्लेसे मरइ जओ तल्लेसेसुं तु उववाओ ॥९८॥ 15

अनशनशुद्धाविह कवचोदाहरणेन य[३५–द्वि०]त्नोऽतिशयेन भवति कर्तव्यः, फलप्रधानाः समारम्भा इति कृत्वा । किमेतदेवम् ? इत्याह— यल्लेश्यो म्रियते यतः प्राणी भावलेश्यामधिकृत्य तल्लेश्येष्वेवामरादिषूपपद्यते, "जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ" [　　　　　　] इति वचनात् । न चास्यामवस्थायामेवं मतः स्वप्राणातिपातः, विहितकरणात्, वचनप्रामाण्याद् माध्यस्थ्योपपत्तेः, अन्यथा दोषभावाद् 20 वचनविरोधात् । एवमेवमेव हि तदाशयपरिपुष्टेः तत्सङ्कल्पभावानुरोधात् । इति गाथार्थः ॥ ९८ ॥

एवमिह लेश्यायाः प्राधान्यमुक्तम्, न चैतावतैव एतच्चारु भवतीत्याह—

लेसाय वि आणाजोगओ उ आराहगो इहं नेओ ।
इहरा असतिं एसा वि हंतऽणाइम्मि संसारे ॥९९॥ 25

लेश्यायामपि सत्याम्, किम् ? इत्याह—आज्ञायोगत एव, दर्शनादिपरिणामयोगादेवेत्यर्थः । आराधकश्चरणधर्मस्य 'इह ज्ञेयः' इह प्रवचने ज्ञातव्यः, नान्यथा ।

---

१. अस्य ग्रन्थस्य ताडपत्रीये मूलादर्शे एतत्पुष्पिकास्थाने एतादृग् × हंसपदं वर्त्तते, किन्तु उपरि अधो वा पाठो लिखितो नास्तीति संशोधकविदुषोऽत्र पाठलेखनविस्मृतिः सम्भाव्यते ॥

एतदेवाह— 'इतरथा' एवमनभ्युपगमे सति, किम्? इत्याह— 'असकृत्' अनेकशः 'एषाऽपि' शुभा लेश्या प्राप्ता सौधर्माद्युपपातेन "हन्त सम्प्रेषण-प्रत्यवधारण-विवादेषु" इति [इह 'हन्त'] सम्प्रेषणेऽवसेयः, अनादौ संसारे, अतिदीर्घ इ[३६-प्र०]त्यर्थः, न चाऽऽराधकत्वं सञ्जातम्, तस्माद् यथोक्तमेव तत्त्वं प्रतिपत्तव्यम् । इति
5 गाथार्थः ॥ ९९ ॥

प्रकरणोपसंहारार्थमेवाह—

ता इय आणाजोगे जइयव्वमजोगअत्थिणा सम्मं ।
एसो चिय भवविरहो सिद्धीए सया अविरहो य ॥१००॥

यस्मादेवं तस्माद "इय" एवम् 'आज्ञायोगे' आगमव्यापारे, किम्? इत्याह—
10 'यतितव्यं' यत्नः कार्यः । केन? 'अयोगतार्थिना' शैलेशीकामेन सत्त्वेन 'सम्यग्' अविपरीतेन विधिना । यस्माद 'एष एव' आज्ञायोगः 'भवविरहः' जीवन्मुक्तिः संसारविरहो वर्तते, कारणे कार्योपचारात्, यथाऽऽयुर्घृतमिति । तथा 'सिद्धेः' मुक्तेः 'सदा' सर्वकालं अविरहश्चैष एव, आजीविकमतमुक्तव्यवच्छेदार्थमेतत्, मुक्तस्य कृतकृत्यत्वेनेहागमनायोगाद् अविरहः । इति गाथार्थः ॥ १०० ॥

15 ॥ योगशतकटीका समाप्ता ॥

॥ कृतिर्धर्मतो याकिनीमहत्तरासूनोराचार्यहरिभद्रस्य ॥

॥ ग्रन्थाग्रमनुष्टुप्छन्दसोदेशतः श्लोकशतानि सप्त सार्धानि ॥ ७५० ॥

योगशतकस्य टीकां कृत्वा यदवाप्तमिह मया कुशलम् ।
तेनानपायमुच्चैर्योगरतो भवतु भव्यजनः ॥१॥

*

* *

संवत् ११६५ फाल्गुन सुदि ८ लिखितेति ॥

वहुसम्भाव्यमानतया

श्रीहरिभद्रसूरिविरचितः

[ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयः ।]

॥ जयन्तु वीतरागाः ॥

बहुसम्भाव्यमानतया

याकिनीमहत्तराधर्मसूनुश्रीहरिभद्रसूरिविरचितः

[ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयः]

[१ – द्वि०] ९ ॥ नमः ॥

नत्वा जगद्गुरुं देवं महावीरं परं शिवम् ।
ब्रह्मादिप्रक्रियां वक्ष्ये तत्सिद्धान्तानुसारतः ॥१॥

ब्रह्माण्युपासनामेषां दीक्षां देशादिसंज्ञिताम् ।
तद्भावलिङ्गं स्पष्टार्थं फलं चेति समासतः ॥२॥

बृहत्त्वाद् बृंहकत्वाच्च ब्रह्माण्याहुर्महर्षयः । 10
सुखारम्भादिसंज्ञानि पञ्च तान्यत्र शासने ॥३॥

सुखारम्भं तथा मोहपराक्रममथापरम् ।
मोहघ्नं परमज्ञानं सदाशिवमनुत्तरम् ॥४॥

सम्यग्दृष्टिगतं ह्याद्यं विरतस्थमतः परम् ।
तृतीयमप्रमत्तस्थं सर्वज्ञस्थं ततो मतम् ॥५॥ 15

अष्टकर्मकलातीतसिद्धस्थं पञ्चमं तथा ।
चतुर्दशमहालोकमूर्द्धमुक्तिपदेश्वरम् ॥६॥

प्रक्षीणतीव्रसङ्क्लेश[मोह]ग्रन्थिविभेदतः ।
आस्तिक्यादिगुणोपेतः सम्यग्दृष्टिरुदाहृतः ॥७॥

आस्ति[२ - प्र०]क्यादनुकम्पाऽस्य ततो निर्वेद इत्यपि । 20
तस्मात् संवेगसंसिद्धिरतः प्रशम इत्यलम् ॥८॥

अतः क्रमादमी भावा जायन्तेऽस्य महात्मनः ।
क्षायोपशमिकाः पूर्वं तदनु क्षायिका अपि ॥९॥

आविर्भाव-तिरोभावावाद्यानां स्तो नियोगतः ।
इतरेषां तु विज्ञेयः सदाऽऽविर्भाव एव हि ॥१०॥

एतद्योगान्महात्माऽयं परार्थोद्यतमानसः ।
पशुभावमतिक्रान्तो मिथ्यात्वविगमादिति ॥११॥

5 असत्प्रवृत्तिहेतोश्च यः क्षयोपशमात् तथा ।
कर्मणो विरतः पापचेतसा विरतस्त्वसौ ॥१२॥

चेतसा विरतस्यैवं न प्रवृत्तिः कदाचन ।
बाह्याऽपि जायते तत्र तत्पूर्वेयं यतो मता ॥१३॥

बाह्ये[ऽ]प्रवृत्तिमात्रं तु विरतिर्नैव तत्त्वतः ।
10 चेतसाऽविरतस्यैवं [२–द्वि०] तथा तच्छक्तियोगतः ॥१४॥

सामग्र्यभावतो वह्निरदहन्नपि दाहकः ।
यथा तच्छक्तियोगेन तथाऽयमपि पापकृत् ॥१५॥

तच्छक्तिप्रतिबन्धे तु यथेन्धनगतोऽपि न ।
दाहकोऽसौ, तथैवात्मा विरतः पापभागपि ॥१६॥

15 स्वल्पावरणभावेन स्ववीर्योत्कर्षयोगतः ।
नित्योपयुक्तः सत्कृत्ये त्वप्रमत्त इति स्मृतः ॥१७॥

कर्ममल्लं समाश्रित्य जयकक्षाव्यवस्थितः ।
सिद्धिक्रियायामुद्युक्तो धैर्यौदार्यसमन्वितः ॥१८॥

असङ्गशक्त्या सर्वत्र वर्ततेऽयं महामुनिः ।
20 यत्नतो वृत्तिरप्यस्य न बन्धायेति तद्विदः ॥१९॥

तदेतत् परमं धाम विद्याजन्मोद्भवं तु यत् ।
महासमाधेः सद्बीजं गीयते सिद्धयोगिभिः ॥२०॥

प्रशान्तवाहिता सैषा तद्धि तत्तत्फलं परम् ।
सन्नद्यम्भोधिसंयोग[३–प्र०]सम्प्रज्ञातो महानयम् ॥२१॥

25 सर्वं धर्मादि यः साधु . . . . तः ।
रागादिरहितश्चैव स सर्वज्ञः सतां मतः ॥२२॥

. . . त्रिकलोपेतक्षीणसार्द्धचतुष्कलः । . .
सत्त्वार्थनिरतः श्रीमान् नृ-सुराऽसुरपूजितः ॥२३॥
अन्वर्थयोगतश्चायं महादेवोऽर्हंस्तथा[? गतः] ।
बुद्धश्च गीयते सद्भिः प्रशस्तैर्नामभिः सदा ॥२४॥
अचिन्त्यदिव्यनिर्माणो महातिशयसङ्गतः । 5
धर्मकल्पद्रुमो मुख्यः स्वर्ग-मुक्तिफलप्रदः ॥२५॥
महासमाधिकामानां सद्वृत्तानां तपस्विनाम् ।
एष प्रणवयोगेन योगिनां जपगोचरः ॥२६॥
सर्वथाकृतकृत्यश्च सूक्ष्मोऽव्यक्तो निरञ्जनः ।
सर्वकर्मफलाभावात् संसिद्धः सिद्ध उच्यते ॥२७॥ 10
परमाक्षररूपोऽयं स्वयंज्योतिरयं मतः ।
[३–द्वि.] अचन्द्रचन्द्रिकाकारो नादातीतः परः शिवः ॥२८॥
भवाऽभवनिमित्तं च जगतोऽनाशयं परम् ।
विद्वेषेज्यादियोगेन ततस्तद्भावसिद्धितः ॥२९॥
अनादिनिधनो ह्येष देहस्थोऽपि न गम्यते । 15
मतिज्ञानादिभिः साक्षात्, केवलेन तु दृश्यते ॥३०॥
चतुर्दशानां स्थानानामूर्द्ध्वं धामाऽस्य शाश्वतम् ।
स्थानानि भुवनान्येके, गुणस्थानानि चापरे ॥३१॥

एतानि पञ्च ब्रह्माणि परमा(? परा)ण्याहुर्महर्षयः । 20
एतत्प्रयोगतोऽवश्यं जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥३२॥
यथाऽमृतार्पितः पुंसां महाकल्याणभागिनाम् ।
सिध्यन्ति सर्वकार्याणि चारु[शील]प्रयोगतः ॥३३॥
ब्रह्माप्तेस्तद्वदेवेह ध्रुवं नानाप्रयोगतः ।
तीव्रभक्तिप्रभावेन सर्वसिद्धिं विदुर्बुधाः ॥३४॥ 25
अद्वेषश्चैव जिज्ञासा शुश्रू[४-प्र.]षा श्रवणं तथा ।
बोध ईहा सुविज्ञप्तिः प्रतिपत्तिस्तथैव च ॥३५॥
. . . . [? त्र] चैतेषामधिकारिविभेदतः ।
. . . . या सत्स्थानाभिनिवेशतः ॥३६॥

अत्राधिकारिणोऽप्युक्ता अपुनर्बन्धकादयः ।
त्रय एव समासेन शेपास्त्व[नधिकारिणः] ॥३७॥

अपुनर्बन्धकस्याथ द्वि[वि]धोपासना मता ।
सम्यग्दृष्टेः सुविज्ञप्तिः प्रतिपत्तिश्चरित्रिणः ॥३८॥

5 ब्रह्मश्रुतावबज्ञा . . . . दाहृतः ।
अतोऽन्यः पुनरद्वेषः शुभाशयनिबन्धनः ॥३९॥

जिज्ञासाद्यास्तथैतेषां न ह्युपादेयतां विना ।
उत्त . . . . तदेता लघुकर्मणः ॥४०॥

अतत्त्वाभिनिवेशो यन्मिथ्यात्वात् सं . . . . ।
10 . . . . . विज्ञ[४-द्वि.]प्तिर्भ्रान्तिरेव सतां मता ॥४१॥

ग्रन्थिभेदादतः सम्यग्दृष्टेरेव नियोगतः ।
सुविज्ञप्तिर्यथाभव्य . . . . ॥४२॥

चारित्रमोहनीयेन कर्मणाऽभिभवे सति ।
प्रतिपत्तिर्न साध्व्येषु द्रव्यप्राया भवत्यपि ॥४३॥

15 तत्क्षयोपशमादस्य . . . . क्षया ।
परमार्थेन निर्दिष्टा प्रतिपत्तिश्चरित्रिणः ॥४४॥

आद्यद्वयस्य दीक्षायामधिकारो न विद्यते ।
अ . . . . त्क्रियाहेत्वभावतः ॥४५॥

आशयस्फीतताहेतुरप्रमादपरेह यत् ।
20 चरित्रमोहोपेतस्य दृढं सा च न विद्यते ॥४६॥

. . . . ह्यं तत्क्रियाप्रतिपालकम् ।
. . . . ॥४७॥

. . . . [५-प्र.]च्छास्त्रबाधया ।
अस्याबाधा यतो धर्मो बाधा . . . . . . ॥४८॥

25 अतस्तु भावसंसिद्धिं मन्यन्तेऽन्ये विचक्षणाः ।
असुन्दरा तदन्ये तु पत्रेभ्यो वृक्षजन्मवत् ॥४९॥

अयं ह्यबद्धमूलत्वाद् भ्रम्यते येन केनचित् ।
स्वस्थानादेवमेतद्वान् भावमूले तथासति ॥५०॥

मूलजन्मा त्वयत्नेन भ्रम्यते नैव केनचित् ।
एतद्वत्युपमैषैव भावमूलसमन्विते ॥५१॥
न तस्माद् भावसंसिद्धिरतस्त्वनधिकारिणः ।
अस्य त्वेतन्नियोगेन भावसङ्गतमेव हि ॥५२॥
सदन्धसङ्गतिसमं गीतं चास्येदमाखिलम् । 5
सद्भावनेत्राभावेऽपि तथामार्गानुसारिणः ॥५३॥
अपुनर्बन्धको यस्माद् गुणस्थानकमेव हि ।
मिथ्यादृष्टिरपि ह्युक्तः स च तादृक्क्रियान्वितः ॥५४॥
तदस्य द्रव्यतो ज्ञेयं तत्क्रियाप्रतिपालनम् ।
योग्य[५-द्वि.]तामधिकृत्येह तदन्यत् त्वप्रधानकम् ॥५५॥ 10
किं तत्त्वमिति जिज्ञासा या सर्वत्राऽऽग्रहं विना ।
सौघात् तद्भावतस्तत्त्वप्रतिपत्तिः सतां मता ॥५६॥
सम्यक्त्वजननी सैषा लोकसंज्ञाऽचलाशनिः ।
दिदृक्षा चलनावस्था सैषा प्रकृतिमोक्षणी ॥५७॥
मारक्षोभकरी सेयं प्रणिधानक्रिया परा । 15
लोकोत्तरपदाकाङ्क्षा सेयं प्रमुदितास्पदम् ॥५८॥
ब्रह्मसङ्गकरी चैव तथा भवपलायनी ।
कल्याणधेनुः परमा सर्वसम्पत्करीति च ॥५९॥
प्रथमा गीयतेऽवस्था मुक्तिसाधनवादिभिः ।
दुरापा पापसत्त्वानामवन्ध्या मुक्तिसिद्धये ॥६०॥ 20
समयाख्याऽत्र दीक्षाऽस्य तद् ब्रूयाद् यस्य तात्त्विकी ।
सद्रत्नशुद्धिप्रा[प्तिवन्निर]र्गला नियोगिनः ॥६१॥
आगमेनानुमानेन योगाभ्यासरसेन च ।
त्रिधा प्र[६-प्र.]कल्पयन् प्रज्ञां लभते तत्त्वमुत्तमम् ॥६२॥
ज्ञेया समयदीक्षा या दीयमा . . . . न । 25
साधकस्य तथा . स . . . . ॥६३॥
. . . . धिकारित्वमतश्चास्योपजायते ।
आस्तिक्यादिगुणाप्तिश्च क्रमेणैव यथोदिता ॥६४॥
विपर्ययस्य व्यावृत्तिरेवमेवापरैरपि ।
इष्टाऽत्रान्तर एवेति पञ्चभेदस्य तत्त्वतः ॥६५॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धः स एव च ।
विपर्ययो हि जीवानामतो भ्रान्तिर्भवार्णवे ॥६६॥
श्रेयःप्रवृत्तिकामस्य तदन्यत्र प्रवर्तनम् ।
सिद्धान्तानादराद्ध्येतत् तम आहुर्मनीषिणः ॥६७॥
5 देहादिष्वात्मबुद्धिर्या मुक्तिमार्गोपरोधिनी ।
तत्राभिष्वङ्गभावेन सा मोह इति कीर्त्यते ॥६८॥
बाह्येषु तु ममत्वं यद् देहभावेऽप्यभाविषु ।
केवलं भावसंसिद्ध्यै महामो[६-द्वि.]हस्तदाहितम् ॥६९॥
भाव्याभाव्येषु सर्वेषु नियमेन तथातथा ।
10 भवन् स्वात्मापकाराय क्रोधस्तामिस्र उच्यते ॥७०॥
संसारे मरणं जन्तोर्नियमेन व्यवस्थितम् ।
तत् प्रतीत्य भयं ह्यन्धतामिस्रः परिकीर्तितः ॥७१॥
एवं विपर्ययादस्मादतत्त्वे तत्त्वबुद्धितः।
कुकृत्येष्वपि मूढानां बहुमानः प्रवर्तते ॥७२॥
15 निष्कलाख्याश्रुतेस्त(? स्त्व)स्य शुभबिम्बोपलब्धितः ।
तथाभव्यत्वतश्चैव क्वचिदेष निवर्तते ॥७३॥
निवर्तमान एतस्मिन् महासत्त्वश्च जायते ।
पक्षपातो गुणेष्वेव भवादुद्वेग एव च ॥७४॥
उद्विग्नः स भवाद् धीमान् विपर्ययवियोगतः ।
20 मार्गानुसारिविज्ञानात् तत्त्वमित्थं प्रपद्यते ॥७५॥
शरीराद्यात्मनो भिन्नं मूल्याप्तशकटोपमम् ।
. . . . ॥७६॥
[७-प्र.]मानुष्यरत्नमुत्कृष्टं भवाब्धावतिदुर्लभम् ।
लब्ध्वैतच्छूवणं युक्तं न कर्तुमसमञ्जसम् ॥७७॥
25 . . . . ।
सिद्धान्तालोचनान्नित्यं श्रेयस्येव प्रवर्तते ॥७८॥
शरीराद्यात्मनो भिन्नं मूल्याप्तशकटोपमम् ।
. . . . ॥७९॥

गेहाः परिजनो वित्तं कलत्रं मित्रमेव च ।
स्वप्नेन्द्रजालसदृशमनर्थायैव केवलम् ॥८०॥

. . . . वारणेः ।
मिथ्याविकल्पवायूत्थस्तत्त्वदर्शनबाधकः॥८१॥

मरणं तु महाघोरं सदाऽऽगाम्येव दे[हिनः] । 5
. . . . विमुक्तये ॥८२॥

सा च लोकोत्तरात्यै(?ऽन्यै)वाहिंसा वैराग्यलक्षणा ।
. . . . [७-द्वि.]रतात्मनः ॥८३॥

हिंसा-रागोद्भवं कर्म तत्क्षयान्मुक्तिरिष्यते ।
निदाने[ऽ]सति हिंसादौ तत्क्षयो न्याय[सङ्गतः] ॥८४॥ 10

. . . . वृत्तिर्नाम समञ्जसे ।
सदैव दीक्षितस्येह हेत्वभावो[प]पत्तितः ॥८५॥

यथाप्रवृत्तकरणादेत . . . . ।
. . . . वोद्वेगो हि नान्यथा ॥८६॥

एतदालोचनं तीव्रं वज्रशूचीभिदासमम् । 15
नातोऽन्यद् भवदप्येवं शूलासे . . . . . ॥८७॥

. . . . स्मादपि ध्रुवम् ।
विशिष्टद्रव्यपर्याये ग्रन्थिभेदः कदाचन ॥८८॥

वज्रशूच्याऽश्मनो भेद इह . . . . . . ।
. . . . ॥८९॥ 20

समाधिरेष वि . . . . ।
[रत्ननिधा][८-प्र.]नसम्प्राप्तिसमोऽवञ्चक उच्यते ॥९०॥

हितमापक एपोऽन्य उत्त . . . . . . ।
. . . . ॥९१॥

गीतो मुक्तिपुरस्यायं खण्डिपातसमस्ततः । 25
तत् सम्यग्दर्शनं चैव क . . . . ॥९२॥

. . . . ।
इदं तद् योगिहृदयं पाशत्रुटनमित्यपि ॥९३॥

लोकोत्तरमिदं चेतः . . . . ।
. . . . ॥९४॥
मृत्योर्मृत्युपदं चैव ब्रह्मदीपः सनातनः ।
सदनङ्गसुखारम्भो . . . . ॥९५॥
. . . . ।
प्रशान्तवाहितोत्पीडो जात्यन्धाक्ष्याप्तिरेव च ॥९६॥
एतद्योगान्महात्मा . . . . ।
. . . . [८–द्वि.]श्रुते ॥९७॥
प्राप्तं प्राप्तव्यमेतेन ज्ञातं कृत्यमतः परम् ।
तत् करोत्युचितं स . . . . ॥९८॥
. . . . सति ।
न कश्चिद् बाध्यते जन्तुः प्रायशः क्षुत्-तृडादिभिः ॥९९॥
परम . . . . ।
. . . . चिदपि जायते ॥१००॥
न च चित्रमिदं त्वस्य क्षया[त्] क्लिष्टस्य कर्मणः ।
. . . . ॥१०१॥
. . . . प्राप्तं न हेमध्यामलं यथा ।
जातवेधं च सद्रत्नं तथाऽयमपि . . . ॥१०२॥
. . . . ।
. . . पि तद्भावेऽतिप्रसङ्गो निवारितः ॥१०३॥
न चैतद्विगमेऽप्यस्य त . . . . ।
. . . . ॥१०४॥
[९-प्र.]सद्योगबीजसम्प्राप्तौ वज्रतन्दुलवत् स्थिरः ।
. . . . ॥१०५॥
. . . . यः ।
सद्योगबीजयोगेन तथैकाज्ञानवान् नरः ॥१०६॥
<u>मयूराण्डरसे</u> . . . . ।
. . . . दयः ॥१०७॥

एकाज्ञानिन आस्तिक्यं स्वग्रहत्यागतो भृशम् ।
तादृश्ये . . . . ॥१०८॥
. . . . तत्त्वतो धर्मरागिता ।
अतस्तु मुख्यः संवेगो गुणिस्तोतृत्वसूचितः ॥१०९॥
. . . . ।   5
. . . . लोच्यं त्यक्तमत्सरैः ॥११०॥
श्रोत्रियस्य सतो जाता सुमतेरत एव हि ।
. . . . ॥१११॥
. . . [९-द्वि.]च्चैर्ब्राह्मणार्थविनिश्चयात् ।
स्व-परज्ञानपर्यन्तव्यवहारफलैव हि ॥११२॥   10
. . . . ।
. . . . वं सम्यग्धर्मविधानतः ॥११३॥
सत्यं यज्ञास्तपो ध्यानमेतद् धर्मस्य साधनम् ।
. . . . ॥११४॥
. . . . यनं ज्ञेयं सत्यशास्त्रानुगत्वतः ।   15
आद्याश्रम इहानेन तत्प्रधाने . . . . ॥११५॥
. . . . ।
. . वा . ल्ययुक्तानि परिशुद्धानि शास्त्रतः ॥११६॥
तपो वैखानसं कर्म शक्ति . . . . . . ।
. . . . ॥११७॥   20
[ध्या]नं स्थिरं मनः प्रोक्तं तच्च सत्कृत्यगोचरम् ।
अं . . . . ॥११८॥
. . . . ।
[१०-प्र.]अन्यथा प्रत्यपायः स्यान्नियमाच्छास्त्रबाधनात् ॥११९॥
. . . . ।   25
. . . . ॥१२०॥
तात्त्विकज्ञेयविषयमसम्मोहनिबन्धनम् ।
आत्मज्योतिः स्थिरं शु . . . . ॥१२१॥
. . . . ।
सर्वबन्धनविच्छेदाद् द्रुतं मोक्षोऽधिगम्यते ॥१२२॥

तत्राशरीर एकान्ता . . . . ।
. . . . व: ॥१२३॥
सद्योगबीजयोगेन प्रतिपद्यैवमेव च ।
कृत्वैतद् सुमति . . . . ॥१२४॥
5 . . . . किल्विपः ।
अनिवर्त्याप्तितश्चैवं शुभभावोऽभिजायते ॥१२५॥
कल्याणे . . . . ।
. . . . [१०-द्वि.]समाधिरभिधीयते ॥१२६॥
गुणप्रसूतिरेपोऽन्यैर्योगिधर्मोत्करावहः ।
10 . . . . ॥१२७॥
. . . . . जानाति पुण्यादेवात्मनोऽपरम् ।
तथा च वर्तते तस्मिन् यथा भद्रं . . . ॥१२८॥
. . . . ।
. . . द्योगतः श्रीमान् निधानादिव वञ्च्यते ॥१२९॥
15 तदस्यापि तु विज्ञेयं . . . . ।
. . . . ते परम् ॥१३०॥
वाचनाद्यधिकारित्वमतश्चास्योपजायते ।
उचितं सूत्रस . . . . ॥१३१॥
. . . . भावाभिसंस्कृतः ।
20 बुध्यते वचनं जैनं रूपं स . . . . . . ॥१३२॥
. . . . [११-प्र.]गतमानसः ॥१३३॥
गम्भीरदेशनां श्रोतुं शक्नोत्ये . . . . . ।
. . . र्न ततो धीमान्नयत्नोऽस्यात् पटुरत्नु(?) ॥१३४॥
पन्थानमपि यस्तज्ज्ञः स प्रष्टव्यो विजानता ।
25 न पुनस्तत्स्थ इत्येव प्राणिसाधर्म्यमात्रतः ॥१३५॥
सत्सूरेरित्थमेवेह श्रोतव्या धर्मदेशना ।
गम्भीरार्था, न जानाति तामन्यो नष्टनाशनः ॥१३६॥
स पुनर्जायते तावदाचारात् सज्जनश्रुतेः ।
आत्मबोधविशेषाच्च पुण्याच्चेत्याह सर्ववित् ॥१३७॥

गुणोत्कर्षेण सर्वत्र प्रवृत्तिर्युज्यते सताम् ।
वाधाऽदर्शनतश्चैव तथा चायं प्रवर्तते ॥१३८॥
मिथ्यादर्शनयोगेन तदन्यस्त्वन्यथा जडः ।
व्यभिचारसमाशङ्की स्वां जातिं वाधते तया ॥१३९॥
एवं ह्यस्याप्रवृत्तिः स्यान्न च साऽप्युपपद्यते । 5
तत्रापि च सदाशङ्का यत् तन्न्यायात् प्रव[११-द्वि.]र्तते ॥१४०॥
पर्यन्तेऽपि ततश्चैष प्रवृत्तौ सर्वथा क्रमः ।
आदौ मार्गानुसारित्वात् तमयं प्रतिपद्यते ॥१४१॥
देशना पुनरस्यैवं गम्भीरार्थोचिता परा ।
प्रायेण सूक्ष्मवुद्धित्वान्नान्यथाऽऽक्षिप्यते ह्ययम् ॥१४२॥ 10
धर्माधर्मव्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकम् ।
तदुक्तसेवनाद् धर्मः, अधर्मस्तद्विपर्ययात् ॥१४३॥
तत्कर्त्राप्तप्रतीत्यादि तदवज्ञादिसम्भवम् ।
उत्तमं कारणं ह्येतद् विज्ञेयमुभयोरपि ॥१४४॥
तुच्छं वाह्यमनुष्ठानं तन्त्रयुक्त्योभयोः स्थितम् । 15
अभव्य-मरुदेव्यादिमुक्ति-ग्रैवे[यकाप्ति]तः ॥१४५॥
तदत्र यत्नः कर्तव्यः सच्छास्त्रश्रवणात् परः ।
मुक्तिवीजप्रकरणमेतदाहुर्मनीषिणः ॥१४६॥
यावत् किञ्चिच्छुभं . . . . यते ।
ज्ञानादिभावतः क्षिप्रमिति तत्त्वविदो विदुः ॥१४७॥ 20
दोषात्तु . . . . ।

[अत्र द्वादशं पत्रं विनष्टम् ।]

. . . . [१३-प्र.] द्रव्यतोऽप्यानयत्ययम् ।
देवतावहुमानेन निवेदयति चानघम् ॥१६३॥
मनःक्रिया प्रधाना तु मनःशुद्ध्याप्तसाधना । 25
परतत्त्वगता सम्यग् द्वितीया परिकीर्तिता ॥१६४॥
त्रैलोक्यसुन्दरं सर्वं साधु सम्पादयत्ययम् ।
परतत्त्वाय तद्ध्याना[त्] तद्भावं चापि (?धि)गच्छति ॥१६५॥

सामान्येनैवमाख्याता तृतीया त्वचरित्रिणः ।
न भवत्येव नियमादित्याहुस्तत्त्ववेदिनः ॥१६६॥

नाविशुद्धं मनो न्यस्य तथौदार्यात् प्रवर्तते ।
मुक्त्यासन्नेषु भावेषु व्यक्तं चारित्रमोहतः ॥१६७॥

5 भृङ्गवन्मालतीगन्धसमाकृष्टः प्रयात्यलम् ।
चारित्रिणस्तु सद्धर्मादुत्तरोत्तरवस्तुषु ॥१६८॥

समारोपस्त्वसत्कामाक्षोभादिभ्योऽवगम्यते ।
मुद्रा-रक्षादियोगस्य तत्र वन्ध्यत्वदर्शनात् ॥१६९॥

चारित्रिणस्तु सद्भावे तथैवाऽऽपतिते सति ।
10 क्षुद्रैर्वि[१३-द्वि०]नायकैः प्रायोऽवग्रहोऽपि न भिद्यते ॥१७०॥

भावस्तु नियमादेव भिद्यते नैव केनचित् ।
कायपातादिभावेऽपि शुभालम्बनयोगतः ॥१७१॥

चिन्तारत्नानुगं चित्तं न स्वतोऽन्यत्र वर्तते ।
तद्गुणज्ञस्य दौर्गत्यादुद्विग्नस्य तथा ह्ययम् ॥१७२॥

15 द्वयाभ्यासात् पुनर्धीमान् यतश्चारित्रभाग् भवेत् ।
अक्षेपेण ततश्चैवमुपन्यासोऽपि युक्तिमान् ॥१७३॥

दानं सुदात(?न)मनयोर्महादानं च कीर्तितम् ।
दातुर्हितं सुदातं(नं) स्यान्महादानं द्वयोरपि ॥१७४॥

न्यायार्जितं ददात्येक औद्धत्यरहितस्तथा ।
20 पात्रादिगतवित्तश्च पश्चात्तापादिवर्जितः ॥१७५॥

तदन्योऽप्येवमेवेति शास्त्रार्थगतमानसः ।
. . . . स्वनुकम्पादिमान् दृढम् ॥१७६॥

त्यागात्तु पुण्यजनकमाद्यमन्ये विदु[१४–प्र०]र्बुधाः ।
सहैतेन द्वितीयं तु परिभोगोत्थकारणम् ॥१७७॥

25 लाभोऽपि चानयोर्ज्यायानेवमेवोपपद्यते ।
परोपतापरहितः शुभानुष्ठानसङ्गतः ॥१७८॥

पद्मनाथेन संयोगः शङ्खेन तु न जातुचित् ।
लोकद्वयहितो ह्याद्यस्तदन्यस्त्वहितो मतः ॥१७९॥

निषिद्धकर्माभावेन न दूषयति चाशयम् ।
एवं सञ्जायते चाद्यो द्वितीयस्तु विपर्ययात् ॥१८०॥

एवमभ्यासतः सम्यक् क्षयोपशमयोग्यताम् ।
कालेनाप्नोति नियमाच्चारित्राप्तिनिबन्धनम् ॥१८१॥

चारित्रलब्धिरेषा सा संयमश्रेणिरुत्तमा । 5
भवद्रुमानल[१४-द्वि०]ज्वाला क्लेशानां प्रलयक्रिया ॥१८२॥

परा निवृत्तिः प्रकृतेर्दिदृक्षाभवनक्रिया ।
संयोगशक्तिव्यावृत्तिकैवल्याप्तेश्च सत्स्थितिः ॥१८३॥

बोधमण्डकरी चैव रागादिनिधनक्रिया ।
भवान्तप्राप्तियात्रा च स्कन्धाभावक्रियेति च ॥१८४॥ 10

प्रशान्तवाहिता चैव गीयते मुख्ययोगिभिः ।
भवाब्धिवेलाव्यावृत्तिर्घातिकर्मजरेति च ॥१८५॥

अस्यामयमवस्थायां निर्वाणार्थं तु चेष्टते ।
भावेनैकान्ततो धीमान् द्रव्यतस्तु विकल्पतः ॥१८६॥

प्रकृत्ये[?च्छा]दियोगानां यत् कार्यमनुवर्तते । 15
क्षयोपशमसामर्थ्यादिति तत्त्वविदो विदुः ॥१८७॥

[१५-प्र०]नमस्कारादिको योगः सर्वोऽपि विविधो मतः ।
सदिच्छा-शास्त्र-सामर्थ्ययोगभेदेन तत्त्वतः ॥१८८॥

प्रमाद . . . . पि यः क्वचित् ।
नमस्कारादिरुच्छ्वास इच्छायोगोऽभिधीयते ॥१८९॥ 20

शास्त्रयोगः पुनर्ज्ञेयो यथाशास्त्रं स एव हि ।
कायादिसंयमोपेतः अव्याक्षिप्तस्य भावतः ॥१९०॥

शास्त्रोक्तं विधिमुल्लङ्घ्य विशेषेण शुभाशयात् ।
सामर्थ्ययोगोऽसावेव तीव्रावाच्यगुणोदयः ॥१९१॥

यथाभव्यं प्रतिज्ञादि प्रोक्तमस्य विमुक्तये । 25
अन्यथा प्रत्यपायाय जडानामुपजायते ॥१९२॥

नित्यकर्मादिविज्ञानयोग्यताऽप्यस्य विद्यते ।
तत एव न तद्बाधा प्रवृत्तस्योपपद्यते ॥१९३॥

नित्यनैमित्तिके कुर्वन् प्रतिषिद्धानि वर्जयन् ।
[१५-द्वि०] सञ्चितं चोपभोगेन क्षपयन्मुच्यते नरः ॥१९४॥

शुभाशयादियोगेन चितं सञ्चितमुच्यते ।
उपभोगात् क्षयश्चास्य किन्तु धर्मानुबन्धदः ॥१९५॥

5 विरेकास्थासमं ह्येतत् प्रतिवन्धकमप्यलम् ।
विशिष्टगुणसम्प्राप्तेर्हन्त तत्फलमेव हि ॥१९६॥

तीव्रसंवेगभावेन महाशयकरं ह्यदः ।
महावलभवे यद्वच्छ्रूयते तु जगद्गुरोः ॥१९७॥

ऊर्ध्वदेहक्रियाज्ञानयोग्यताऽप्यस्य तात्त्विकी ।
10 लोकव्यवस्थामाश्रित्य लोकोत्तरपदावहा ॥१९८॥

भृत्यानामुपरोधेन यः करोत्यूर्ध्वदेहिकम् ।
तद् भवत्यसुखोदर्कं जीवतश्च मृतस्य च ॥१९९॥

भृत्यानामुपरोधश्च ज्ञेयो लोकद्वयानुगः ।
गुरुलाघवभावेन धर्मपीडानिवन्धनम् ॥२००॥

15 तस्माद् भव्यानुमत्यैव . . . . ।
. . . . [१६-प्र०]त्ययोगेन कार्यमेतन्महात्मना ॥२०१॥

पुण्यान्तरायतोऽप्येषामुपरोधो भवत्यलम् ।
दीनादिभावतश्चैव तदेतदु . . . . (पपादये)त् ॥२०२॥

एवं दुःखादिविज्ञानयोग्यताऽप्यस्य विद्यते ।
20 सर्वथा सर्वपापौघनिवृत्तेः परमास्पदम् ॥२०३॥

दुःखाङ्गपरिहारज्ञस्तदपोहाय वर्तते ।
सम्यग् न पुनरज्ञोऽपि कण्टकज्ञानतस्तथा ॥२०४॥

विपर्यस्तश्च वालश्च जडश्चैव यथाक्रमम् ।
प्रतिपत्त्यङ्गमत्रेति कालशूकरिकादयः ॥२०५॥

25 वाह्यसङ्गरतिः कामी धर्मव्यामूढ एव च ।
दार्ष्टान्तिकार्थपक्षेऽपि योजनीया विचक्षणैः ॥२०६॥

वाह्यस्वभाव [१६-द्वि.] एकस्य तदन्यभवनोत्सुकः ।
सोऽप्येवमिति नाशाय काष्ठकीटे तथेक्षणात् ॥२०७॥

एषेह योग्यता ज्ञेया धर्मराज्यप्रसिद्धये।
चक्रवर्तिपदप्राप्तौ मानुषत्वाप्तिसन्निभा ॥२०८॥
अवन्ध्यधीफलो ह्येष द्वितीयोपासनार्जितः।
निधिग्रहणतुल्यस्तु समाधिस्तद्वतां मतः ॥२०९॥
अधिमुक्त्यर्थकृत्संज्ञं निरवद्यगुणालयम्।
नृपेन्द्रजन्माप्तिसममेनमन्ये विदुर्बुधाः ॥२१०॥ 5
एतद्युक्तो महात्मेह सर्वथा शास्त्रचोदितम्।
उत्तमं हितमाप्नोति सानुबन्धमसंशयम् ॥२११॥
तिर्यक्सत्त्वो यथा योग्यश्चक्रवर्तिपदस्य न।
अनीदृशस्तथा ध[१७-प्र०]र्मराज्यस्यापीति तद्विदः ॥२१२॥ 10
तस्मादेवंविधस्यैव दीक्षा कार्या विधानतः।
देश-सर्वाभिधानेति यथाभव्यं नियोगतः ॥२१३॥
देशदीक्षोत्तरा यस्मात् सर्वदीक्षा प्रवर्तते।
आदौ संक्षेपतस्तस्मादसावेवाभिधीयते ॥२१४॥
गुरुणेयं विधातव्या ज्ञेयो गुणगुरुश्च सः ॥ 15
ज्ञानादिमान् प्रसिद्धश्च वत्सलः कुलजो महान् ॥२१५॥
गुणानां पालनं चैव तथा वृद्धिश्च जायते।
यस्मात् सदैव स गुरुर्भवकान्तारनायकः ॥२१६॥
व्रतारोपणमत्रादौ तदर्थज्ञापने सति।
आदित्सोः सूत्रनीत्यैव वणिक्पुत्रोपमानतः ॥२१७॥ 20
स्थिरव्रतस्य तदनु देशसामायिकं महत्।
दीयतेऽस्मै विधानेन प्रधानं धर्मसाधनम् ॥२१८॥
शोभनेऽहनि शुद्धस्य निमित्त-व्रतयो[१७-द्वि०]गतः।
अभिवासनमस्योक्तं सूरिमन्त्रेण यौगिकम् ॥२१९॥
स्वान्तिकेऽस्य मतः स्वापस्तन्मन्त्रार्पणमेव च। 25
स्वतोऽपि तज्जपः सम्यक् चेष्टारूपणमेव च ॥२२०॥
उत्तमं चात्र समवसरणं मण्डलं मतम्।
तत्र पुष्पादिपातेन ज्ञेयं स्थानादि चास्य तु ॥२२१॥

तस्मिन्नवगते सम्यक् ततश्चारोप्यते पुनः ।
सुवास-गुरुयोगाभ्यामस्मै सामायिकं हितम् ॥२२२॥
सवित्तं स पुनर्धीमान् संविग्नेनान्तरात्मना ।
आत्मानं गुरवे सम्यग् निवेदयति हृष्टधीः ॥२२३॥
5 तदेतत् तात्त्विकं प्रोक्तं महादानं सनातनम् ।
दत्त्वैतन्न पुनर्जन्तुर्याचको जायते क्वचित् ॥२२४॥
सदा सर्वन्ददः श्रीमांश्चारित्र्यपि ददाति यत् ।
अनुत्तरं महापुण्यं भिक्षादिग्रहणादिना ॥२२५॥
गुरुस्तद्भावशुद्ध्यर्थं तथैव प्रति[१८-प्र०]पद्यते ।
10 असङ्गयोगयुक्तात्मा न परिग्रहवानतः ॥२२६॥
धर्माज्ञया तु सततं तेनैव हि महात्मना ।
कालोचितं पुनः सर्वं सन्नीत्या कारयत्यलम् ॥२२७॥
समानधार्मिकादीनां ततः पूजा प्रवर्तते ।
वित्त-शक्त्यनुसारेण विचित्रौचित्ययोगतः ॥२२८॥
15 कृपणेभ्योऽपि दातव्यमनुकम्पापुरःसरम् ।
तीर्थकृज्ज्ञाततः किञ्चिच्छासनोन्नतिकारणम् ॥२२९॥
ततश्च सुमयाख्यानं भवरूपादिचिन्तनात् ।
शुभं भावं समासाद्य सम्यग्योगाङ्गमुत्तमम् ॥२३०॥
त्रिसन्ध्यमेतत् कर्तव्यं बहुशो वेति धीमता ।
20 गुरुवन्दनयोगेन चित्तरत्नविशोधनम् ॥२३१॥
[१९-द्वि०]देशदीक्षासमासेन कथितेयं जिनोदिता ।
पापक्षयकरी शस्ता तथा पुण्यविवर्धनी ॥२३२॥
स एवं दीक्षितः पश्चादधिकारित्वयोगतः ।
सर्वत्र चेष्टते धन्यः सम्यग् निर्वाणसिद्धये ॥२३३॥
25 बृहत्कण्या(?न्या)वरण्या(?न्या)यात् पुण्यमस्यानुषङ्गिकम् ।
अधिकारनियोगेन तथेष्टार्थप्रसाधकम् ॥२३४॥
देवकर्मक्रिया चास्य तृतीयैवोपजायते ।
किन्तु बाह्याङ्गसापेक्षा तद्भावश्चाप्ययत्नतः ॥२३५॥

देवकर्मरतो नित्यं गुरुपूजापरायणः ।
सत्त्वार्थं सम्प्रवृत्तश्च भावेनैष सदैव हि ॥२३६॥
द्रव्यतस्त्वन्यथापि स्याच्चित्रकर्मविपाकतः ।
वन्ध[१९–प्र.]स्तत्रापि चाल्पोऽस्य शुभभावसमाश्रयात् ॥२३७॥
. . . . यथाशक्ति नियोगतः । 5
यच्च . . . तः श्रीमान् भावसारं यथाविधि ॥२३८॥
पुष्णाति कुशलान् धर्मान्नित्याहारादिवस्तुनः ।
त्यागानुष्ठानभेदस्तु पोषधो जिनभाषितः ॥२३९॥
द्रव्योपवासे नो यत्नो ह्यस्य शास्त्रबहिष्कृते ।
यत्नो भावोपवासे तु लोकद्वयहितावहे ॥२४०॥ 10
उपावृत्तस्य दोषेभ्यः सम्यग्वासो गुणैः सह ।
उपवासः स विज्ञेयो न तु देहस्य शोषणम् ॥२४१॥
अमोघगुरुयोगादिकरणेन करोति च ।
अमोघादिसमाधीनामुपादानं महामतिः ॥२४२॥
अमोघोऽमोघपाशश्च अजितश्चापराजितः । 15
वरदो वरप्रदोऽकालमृत्युप्रशमनस्तथा ॥२४३॥
एते समाधयः श्रेष्ठा ज्ञेया अस्येष्टसिद्धये ।
[१९–द्वि.]लब्धिहेतव एते यत् परिणामाः सतां मताः ॥२४४॥
आद्यस्य हेतुर्विज्ञेयो गुरुकृत्येष्वमोघता ।
तत्पाशेष्वपरस्यापि सम्यग्धर्मकथादिषु ॥२४५॥ 20
तृतीयस्य पुनः क्रोधजयाभिग्रह एव तु ।
विषयाधिकवृत्तित्वं चतुर्थस्यात्र कीर्तितम् ॥२४६॥
याच्ञासाफल्यकरणं पञ्चमस्येति तद्विदः ॥
तदाधिक्यप्रदानं तु षष्ठस्य शुभभावतः ॥२४७॥
रक्षा स्वजीवितेनापि प्राणिनां सप्तमस्य तु । 25
एतैः समन्वितो ह्येष परार्थं कुरुते सदा ॥२४८॥
पञ्चमण्डलयागं तु यथाविधिसमाहितः ।
योगोत्तमं करोत्येष मन्त्र-मुद्रासमन्वितम् ॥२४९॥
पूजा सर्वोपचाराऽत्र यथाशक्त्युपपादनात् ।
पुष्पादेस्तदभावे तु जपशुद्धा परा मता ॥२५०॥ 30

सम्पाद्यते समाधानादप्राप्यं पञ्चभिर्जपैः ।
अल्पं मङ्गलमस्या[२०-प्र०]त्र चतुर्विंशतिभिर्महत् ॥२५१॥
ध्येयः स . . . . ।
. . . . ॥२५२॥
5 जीवतत्त्वादिभेदेन विज्ञेयोऽयं स्वरूपतः ।
सर्वथावहितैश्चारुधीमद्भिः पुरुषोत्तमैः ॥२५३॥
. . . . त्रितत्त्वपरिनिष्ठिता ।
स्वरवर्गयकारादिभेदात् सर्वैव मातृका ॥२५४॥
सिद्धतत्त्वस्य चरमं ज्ञानं वर्गान्त्यसंयुतम् ।
10 . . . . . तच्चोर्ध्वमत्रोक्तं प्रथमाक्षरम् ॥२५५॥
तुर्यं तु सिद्धतत्त्वस्य जीवतत्त्वोत्तरान्वितम् ।
अन्त्यान्त्यसचिवं चैवं द्वितीयः . . . . . ॥२५६॥
अष्टमं सिद्धतत्त्वस्य विन्दुमत् पञ्चमेन तु ।
जीवतत्त्वेन संयुक्तं तृतीयं स्यादिहाक्षरम् ॥२५७॥
15 एतदेवेह नि . . . . . [२०-द्वि.] न्त्यपुरस्सरम् ।
चतुर्थमक्षरं सम्यगक्षरज्ञैर्महात्मभिः ॥२५८॥
एतज्ज्येष्ठं पुनः प्राप्तमन्त्यान्त्योपान्त्यमेव तु ।
एभि[ः सर्वा]र्थसिद्ध्यर्थमिह पञ्चममक्षरम् ॥२५९॥
ज्ञान[?त]तत्त्वस्य यन्न्यूनं तस्यैवैकादशं तथा ।
20 रहितं जीवतत्त्वेन तदत्र चरमाक्षरम् ॥२६०॥
स . . . . विज्ञेयः सर्वेषामेकयौगिकः ।
सम्पूर्णरूप एवेह मन्त्रराजः सनातनः ॥२६१॥
पञ्चाक्षरादिरूपस्तु क्रमेण . . . . षु ।
साधुष्वेकाक्षरो यावत् प्रतिलोमव्यवस्थया ॥२६२॥
25 अत्र चैकाक्षरं वीजं ध्यायन् मन्त्री दिने दिने ।
. . . मध्यम . . . . . त्मा त्वहर्निशम् ॥२६३॥
अक्ष्णोर्वक्त्रे हृदि नाभौ गुह्ये चैव शिवं शुभम् ।
. . . . ॥२६४॥
[२१-प्र.]पश्यत्यसौ विद्यां देवीरूपव्यवस्थिताम् ।
30 स्वप्नेऽधिमुक्ति . . . प्रत्यक्ष . . . . . ॥२६५॥

. . . . ।
सिद्धिमाप्नोति विद्यां च दिवा पश्यति साधकः ॥२६६॥

जपंस्त्र्यक्षरमप्येनां द्विस . . . . . . ।
सिद्धिमाप्नोति वाचा च विद्यातो लभते वरम् ॥२६७॥

चतुरक्षरमप्येनां त्रिसप्ताहं जपन् बुधः ।
सिद्धिमाप्नोति साक्षाच्च विद्यातो लभते वरम् ॥२६८॥

जपन् पञ्चाक्षरं चैवं मासमात्रं जितेन्द्रियः ।
विष्णुसिद्धिमवाप्नोति महात्मा साधकः परम् ॥२६९॥

जपन् षडक्षरं चैवं मासत्रयमहर्निशम् ।
शिवसिद्धिमवाप्नोति शुभां वै साधकोत्तमः ॥२७०॥

पद्मासनं समाधिश्च विद्यायोगो वराभया ।
अञ्जलिश्चेति पञ्चात्र महामुद्रा यथाक्रमम् ॥२७१॥

नामा[२१–द्वि०]दिभेदभिन्नाश्च एता ज्ञेया महात्मभिः ।
यथाभव्यं प्रयोगः स्यादासां सम्पूर्ण एव तु ॥२७२॥

सद्धारणाश्रयो ह्येष व्यवहारः सतां मतः ।
तदस्यैव वि(? व)शित्वेन सत्फलो नापरस्य तु ॥२७३॥

श्रवणादेरपि ह्युक्तमद्वेषादेर्महर्षिभिः ।
भव्यत्वबीजाधानादि फलमात्रं तु तन्मतम् ॥२७४॥

तथापि श्रवणाद्यस्य तदन्यस्यापि युक्तिमत् ।
प्रतिपत्तिक्रियातीतमिति तन्त्रार्थनीतितः ॥२७५॥

अयं पुनर्महात्मा यदुक्तवद् क्षीणकिल्बिषः ।
तत् समग्रं करोत्येव शुभभावसमन्वयात् ॥२७६॥

अ . . . . न विरुद्धोऽत्र वस्तुनि ।
आद्याधि. . . . यत् त्र्यद्धोऽयं परिकीर्तितः ॥२७७॥

यथाविभवमेवात्र. . . . . ।
. . . . ॥२७८॥

. . . [२२-प्र०] प्रणव नमः सम्पुटं स्फुटवर्णवत् ।
फलवानत्र मन्त्रः स्यात् तद्वर्णाद्यु . . . . ॥ २७९ ॥
. . . . ।
. . . . समाख्यातो यथोक्तं कल्पसंग्रहे ॥ २८० ॥
5 उरः-शिरः-शिखावर्म हेति . . . . ।
. . . . ॥ २८१ ॥
. . . . महापापं त्याज्यं लोकोत्तरं तु तत् ।
तथा विश्रम्भघातादि लौकिकं . . . . . ॥ २८२ ॥
. . . . ।
10 [दुःखि]तेष्वनुकम्पा च द्विधाऽन्यानुपघाततः ॥ २८३ ॥
अविधित्यागतः किञ्चि . . . . ।
. . . . ॥२८४॥
इतरः पूर्वयागं तु कुर्वन् पापैर्विमुच्यते ।
यतः कल्याणमाप्नोति . . . . ॥२८५॥
15 . . . . [२२-द्वि०]त्यलम् ।
सत्सूक्ष्मार्थकथं चैव महासंवेगमातरम् ॥२८६॥
वाक्-तन्त्र-मन्त्र-शस्त्रा . . . . ।
. . . . च्यते ॥२८७॥
प्रसवाय समर्थानां बीज-कन्दक-वीरुधाम् ।
20 फलानां च ध्रुवं ह्ये . . . . ॥२८८॥
. . . . यबृंहकम् ।
हितादिभाषणं काले सत्यव्रतमुदाहृतम् ॥२८९॥
एतदन्यप्रदे . . . . ।
. . . . बाध्यते ॥२९०॥
25 देवादिव्याजयोगेन गुणारोपणतस्तथा ।
अदत्तत्याग ए . . . . ॥२९१॥
. . . . पि च ।
तदर्थचेष्टया चैव बाध्यते मनसापि हि ॥२९२॥

दिव्यादि . . . . ।
. . . . ब्र[२३-प्र०]ह्मचर्यव्रतं मतम् ॥२९३॥

चिन्तने श्रवणे दृष्ट्यामालापे . . . . . ।
. . . क्रविसर्गे च सम्मोहाद् वाध्यते ह्यदः ॥२९४॥

निवेद्य गुरवे सम्यगात्मानं शुद्धचेतसः ।
तदुक्तपालनान्नित्यं व्रतं स्यादपरिग्रहः ॥२९५॥

अशुद्धाहारसम्भोगादयुक्तोपधिधारणात् ।
स्वातन्त्र्यवृत्त्या सर्वत्र मूर्छया चास्य बाधनम् ॥२९६॥

विशिष्टज्ञान-संवेग-शमसारः शुभाशयः ।
सर्वथा व्रतमित्युक्तमङ्गं वाह्ये क्रिया-ऽक्रिये ॥२९७॥

देशनापि यथोक्तेयं दोषाः संसारकारणम् ।
मोहो निदानमेषां च त्याज्योऽयं शास्त्रयोगतः ॥२९८॥

[? न] भोगेष्वभिलाषोऽतः सर्वापायां . . मस्तु ।
विचार्यमाणासारेषु क्ष्णं स्यात् किमतः परम् ॥२९९॥

[२३-द्वि०]भोगसाधनहेतोर्यद् धर्मानुष्ठानमप्यलम् ।
तत् कण्डूव्याधिदुःखार्ततृणयत्नोपमं मतम् ॥३००॥

सति तद्घातके हेतौ तत्र यत्नो यथा हितः ।
तथैव धर्मानुष्ठानं भवव्याधिनिवृत्तये ॥३०१॥

तन्निर्वाणाशयो धर्मस्तत्त्वतो धर्म उच्यते ।
भवाशयस्त्वधर्मः स्यात् तथामोहप्रवृत्तितः ॥३०२॥

लक्षणं पुनरस्येदं न भवान्तर्गतैरयम् ।
विकल्पैर्वाध्यते रूढस्तल्लेश्यातिक्रमादिति ॥३०३॥

तत्सन्निधौ न वैरं स्याद् वन्ध्यवाक्त्वं तथाऽस्य च (?न) ।
रत्नोपस्थानमनघं वीर्यलाभश्च सुन्दरः ॥३०४॥

सन्तोषामृततृप्तिः स्यात् तत्रैताः सिद्धयः पराः ।
असङ्गशक्तियोगश्च महायोगफलप्रदः ॥३०५॥

अतः कोलोपमां धर्मां . . . . ।
[२४ प्र०]ततो यतित्वमाप्नोति चारुशीलेऽप्यरागतः ॥३०६॥

. . . . ।
. . . . ॥३०७॥

5 निर्वाणाशयतो धर्मः शास्त्रयोगादयं पुनः ।
तदत्र यत्नः कर्तव्यो. . . . . ॥३०८॥

. . . . मयोग्यता ।
जायते द्रुतमेवास्य सच्चारित्राप्तिकारणम् ॥३०९॥

भवाम्भो. . . . . ।
10 . . . . णी चापराजिता ॥३१०॥

प्रधानविजयावस्था तात्त्विकी शान्तता तथा ।
. . . . ॥३११॥

. . . . . . चैव परा दोषविषण्णता ।
मुक्तिपत्तनसम्प्राप्तिर्भ्रान्तिव्यावृत्ति . . . ॥३१२॥

15 . . . . ।
भवप्रपञ्चविरतिर्घातिकर्मसृतिस्तथा ॥३१३॥

अस्यामयमवस्थाया. . . . . ।
. . . . [२४–द्वि०]तः ॥३१४॥

स एष द्रव्यमाख्यातो धर्मकायाश्रयः परः ।
20 प्रव्रजत्ययमे. . . . . ॥३१५॥

. . . . क्वचित् ।
नासंयतः प्रव्रजति भव्यजीवो न सिद्ध्यति ॥३१६॥

भाव. . . . . ।
. . . . तथापि भरतस्थितेः ॥३१७॥

25 प्रधाना पुनरेषैव द्रव्यदीक्षां विनापि. . . . ।
. . . . ॥३१८॥

. . . . नं पूर्वोक्तं सविशेषं तु तद् भवेत् ।
इहापि सर्वदीक्षायां सर्वसं . . . . . ॥३१९॥

. . . . ।
. . वा राज्यसम्प्राप्तौ सदैवास्ते सुरेन्द्रवत् ॥३२०॥

स यथा से. . . . . ।
. . . . [२५–प्र०] महामुनिः ॥३२१॥

कायेन वाचा मनसा चेन्द्रत्वाच्चारु चेष्टते ।
यतित्वाद . . . .भवौत्सुक्यनिवृत्तितः ॥३२२॥

अनिवृत्ति. . . . . थाज्ञाखण्डनाद् ध्रुवम् ।
बाह्यसंयमभावेऽपि ज्ञेया नैकान्ततो हिता ॥३२३॥

चौरानिष्काषकपाटपिधानज्ञातमत्र तु ।
न्याय्यमन्यै . . . . . .पापाय केवलम् ॥३२४॥

भवौत्सुक्योद्भवः पापश्चौरश्चात्र मनोरथः ।
भवधर्मानुगः क्षुद्रो मिथ्याचारविधायकः ॥३२५॥

. . . . . संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥३२६॥ गीता

प्रत्यपायफलश्चैष महानिकृति . . . . ।
. .[२५–द्वि०]शातनतश्चैव विषयोत्कर्षतस्तथा ॥३२७॥

न चान्तवाहिताभावे सत्येतदुपपद्यते ।
लोकदृष्टिव्यवच्छेदो लेशतो दर्शि. . . ॥३२८॥

. वृत्तिमात्रं नोपायस्तत्सिद्ध्यै योग्यतां विना ।
अभव्यदीक्षाक्रीडावदुक्तमायमिदं पुरा ॥३२९॥

अस्य तूक्तवदेवोच्चैः . . . . ।
शमामृतरसास्वादतल्लाम्पट्यादि चानघम् ॥३३०॥

समाधिरेतदाख्यातं तृतीयोपासनार्जितः ।
यथोक्तनिधिसम्प्रा . . . . . . साधकः ॥३३१॥

स्थानेऽनाभोगतः स्वल्पमपि संज्ञोत्तराशयम् ।
सद्धर्म . . . नादि तत्फलं स . . . . ॥३३२॥

शुद्धा . . . . . मृ[२६-प्र०]दु-मध्यादिना युतम् ।
सान्तराद्ययनं यावद्ध्या . . . . ॥३३३॥

5 . . . . ।
. . . . नं कृपौ सामान्यधान्यवत् ॥३३४॥

तत्रैव च यथा बीजं तत्प्ररोहादि . . . ।
. . . . ॥३३५॥

. . . .दिफलदमनेन क्रियते ध्रुवम् ।
10 बाधकाभावतः सम्यक्तन्त्रगर्भे . . . . ॥३३६॥

. . . . ।
[? निर्वा]णार्थं विहायोच्चैश्चेष्टते न कदाचन ॥३३७॥

पथि गच्छन् यथा कश्चि. . . . . ।
. . . . ॥३३८॥

15 स्थितये सापि तत्सिद्ध्यै न तत्रैवाभियोगतः ।
अभियोगः. . . . . ॥३३९॥

. . . . शुभयोगतः ।
निर्वाणं जायते तद्वदेतस्याप्यत एव तत् ॥३४०॥

. . . . ।
20 . . . . [२६-द्वि०]स्यान्महालेश्याविधानतः ॥३४१॥

उक्तं मासाद्यपर्यायवृद्ध्या द्वादश. . . . ।
. . . . ॥३४२॥

. . . . .यत् स्थानमिह किञ्चिन्न विद्यते ।
आशयो ह्यस्य निर्वाणे ततोऽन्या. . . . . ॥३४३॥

25 . . . . ।
. . . . . ष्ठ निर्जित्य तदिष्टं फलमाप्यते ॥३४४॥

प्रतिपातेऽप्ययं के. . . . . ।
. . . . वतः ॥३४५॥

अन्ये निराश्रवत्वेन प्रतिपातो न विद्यते ।
भूमिकाक्रमसङ्घा. . . . . ॥३४६॥

. . . . दतः ।
क्षयोपशमजत्वेन क्षायिकत्वेन चा . . त् ॥३४७॥

सर्वसामायि . . . . [?प्नुया] ।
. . . .[२७–प्र०]दि काञ्चनः ॥३४८॥

यथोक्तदीक्षया चायं प्राय. . . . . . . ।
धर्माधर्मक्षयकरी न्याय्ये . . परा ततः ॥३४९॥

एतदेव समाश्रित्य गीतमन्यैरपि ह्यदः ।
धर्माधर्मक्षयकरी दीक्षेयं पारमेश्वरी ॥३५०॥

यथोक्तभावयुक्तश्च परेषामपि दीक्षितः ।
तत्त्वागमं समाश्रित्य तथा चोक्तमिदं हि तैः ॥३५१॥

वर्णौ गृहक्रमैर्यद्वन्मानुष्यं प्राप्य सुन्दरम् ।
तत्प्राप्तावपि तत्त्वेच्छा न पुनः सम्प्रवर्तते ॥३५२॥

विद्याजन्माप्तितस्तद्वद्विपर्ययेषु महात्मनः ।
तत्त्वज्ञानसमेतस्य न मनोऽपि प्रवर्तते ॥३५३॥

महापथप्रवृत्तोऽयं सर्वत्र विगतस्पृहः ।
पशुभावमतिक्रान्तः शिवकृत्यपरायणः ॥३५४॥

पद्मिनीपत्रसदृश[२७–द्वि०]स्तत्त्वज्ञानसमन्वितः ।
विषयोदकयोगेऽपि तदसङ्गः स्वभावतः ॥३५५॥

सदाशिवसमावेशी महाध्यानाभिनन्दितः ।
अधिकारवशाच्छेषवृत्तिमात्रोपभोगकृत् ॥३५६॥

एवंविधस्वभावस्तु यत् सामायिकवानपि ।
तदत्र तत्त्वतो भेदो नैव कश्चन विद्यते ॥३५७॥

इत्थं चैतदिहैष्टव्यं यदस्या अधिकार्यपि ।
विशिष्ट एव गदितस्तैरेवोक्तमिदं यतः ॥३५८॥

तीव्रभोगाभिलाषस्य व्रतविघ्नस्य भोगिनः ।
स्थूरबुद्धेः कृतघ्नस्य गुरावबहुमानिनः ॥३५९॥

5 त्रिशक्ति . . . नस्य परयोगारतेस्तथा ।
नैव दीक्षाधिकारः स्यादधिका . . . [२८–प्र०]स्य तु ॥३६०॥

यथोक्तगुणभावेऽपि शुद्धैः समधिकैर्गुणैः ।
. . . . ३६१॥

. . . . प्रदेशान्तर इत्यपि ।
10 इष्टार्थसाधकं स्पष्टं यत एतत् तथव हि ॥३६२॥

शिवज्ञानं य आसाद्य वि . . . . ।
. . . . मेव गच्छति ॥३६३॥

यस्त्वेतदपि चासाद्य विषयान् पुनरीहते ।
अक्षीणपशुभावोऽसौ तामे(ने)वाप्नोति सुन्दरान् ॥३६४॥

15 . . . . भूयोऽनेनैव वर्त्मना ।
अधिकारक्षयात् सम्यग् मुक्तिमप्येष यास्यति ॥३६५॥

एवमादीनि भूयांसि वचनानि शिव . . ।
. . . . न्युच्चैस्तदेतत् सिद्धमेव नः ॥३६६॥

ज्ञेयं तद् भावलिङ्गं च हन्तास्याः पारमार्थिकम् ।
20 उक्तानुक्त . . . . [२८–द्वि०]समन्वितम् ॥३६७॥

आदरः करणे प्रीतिरविघ्नः सम्पदागमः ।
जिज्ञासा तज्ज्ञसेवा च सदनुष्ठानलक्षणम् ॥३६८॥

. . . . वेऽत्रैव व्यवस्थिते ।
विशिष्टभावसम्बन्धादयत्नेनैव योगिनाम् ॥३६९॥

25 असङ्गस्नेह एषो यत् स्वाभाविक इहात्मनः ।
. . . . योग्यानां हितवस्तुनि ॥३७०॥

इतरस्मादपि स्नेहादसदालम्बनेऽपि हि ।
दृढा प्रवृत्तिरेतेपां य . . . . ॥३७१॥

. . तान्यपि यत्नेन चक्षुः श्रोत्रं मनस्तथा ।
स्नेहस्यालम्बनं यत्र तत्र यान्ति पुनः [पुनः] ॥३७२॥

. . . . ।
न भेदतः . . . . ॥३७३॥

. . . . [२९–प्र०] आगतः ।
अम्भोधिवेलोपमया शेषस्रोतो . . . . ॥३७४॥

. . . . ।
. . . . ये तथा तदुपयोगतः ॥३७५॥

रोगोचितक्रियाभावादारोग्यं गम्य . . . ।
. . . . ॥३७६॥

. . . व्याध्यपीडा च विशिष्टज्ञानसम्भवः ।
आधिक्यं चेतसो धैर्यं दीक्ष . . . . ॥३७७॥

. . . . ।
. . भयसमायोगे क्षुदल्पैवोपजायते ॥३७८॥

अत एवास्य नो व्याधि . . . . ।
. . . . सदा ॥३७९॥

प्रातिभं जायते ज्ञानमविसंवादि तात्त्विकम् ।
. . . . [२९–द्वि०]नामयमेव तु ॥३८०॥

गम्भीराशययोगाच्च परिशुद्धाद् भवत्यलम् ।
. . . . ॥३८१॥

. . . . . निर्वाणमत्रान्यत् त्वानुषङ्गिकम् ।
देवत्वाप्त्यादिकं चित्तं योगसिद्ध्यन्तशु . . ॥३८२॥

. . . . ।
[वैमानि]कसुरत्वं च परत्रातिमहोदयम् ॥३८३॥

जात्यन्धास्याप्तिसदृशं तत्त्व . . . . ।
. . . . ॥३८४॥

नास्मिन् सति विपर्यासः कदाचिदुपजायते ।
शक्त्यादिरूपाश्च . . . . ॥३८५॥

. . . . नुगः परः ।
प्रणिधानं सदा शुद्धं सर्वकल्याणकारणम् ॥३८६॥

मार्गा . . . . ।
. . . . [३०-प्र०] शुभाहितफलोदया ॥३८७॥

विशुद्धभावनासारं त . . . . ।
. . . . ॥३८८॥

. . . . त्सनातनपदावहम् ।
ब्रह्मयागविधानेन शास्त्र उक्तं . . . . ॥३८९॥

. . . . ।
. . . . स्यात् तद्योगो विकलस्ततः ॥३९०॥

औचित्यावन्ध्यता चा . . . . ।
. . . . ॥३९१॥

. . . कालमप्येवं जानाति प्रातिभादिना ।
विशुद्धादागमाच्चेति . . . . ॥३९२॥

. . . . ।
. . [३०-द्वि०]नि नेक्षते यस्तु वर्षादूर्ध्वं न जीवति ॥३९३॥

जिह्वा च नासिका चैव. . . . . ।
. . . . ॥३९४॥

मृत्युञ्जयास्मृतिश्चैव जपशैथिल्यमेव च ।
तथा . . . . ॥३९५॥

. . . . रान्वितः ।
हंसान्त्यश्चाघनाश्येष मृत्युञ्जय उदाहृतः ॥३९६॥

. . . . ।
. . . . याति सुरालयम् ॥३९७॥

दिव्यो विमाननिवहो ह्न . . . . ।
. . . . ॥३९८॥
. . . . . .[३१-प्र०]सद्भावकलादाक्षिण्यसङ्गताः ।
स्व . . . . ॥३९९॥
. . . . ।
. . .थाश्च त्रिविधाः पद्महंसादिसङ्गताः ॥४००॥
दि . . . . ।
. . . . ॥४०१॥
. . . सत्त्वो धर्मात्मा सत्सामग्र्याऽनया सदा ।
नि. . द . . . . ॥४०२॥
. . . . .तजन्मनाम् ।
करोति विधिना सम्यग्भक्त्या न दि. . . ॥४०३॥
. . . . ।
. . . .[३१-द्वि०] . .निर्वाणसाधनम् ॥४०४॥
शोभनोऽयं परो धर्मो विज्ञप्त्य. . . . . ।
. . . . ॥४०५॥
. . . . .रु नर्तनं च जिनान्तिके ।
करोति चतुरो दा . . ह्रा. . . . . . . ॥४०६॥
. . . . ।
. . . . . . बिम्बानां महापूजां करोति च ॥४०७॥
परिवारं त . . . . ।
. . . . ॥४०८॥
. . . . .नतः प्रायो भोगानप्येष सेवते ।
अतो . . . . ॥४०९॥
. . . . ।
. . [३२-प्र०]शुद्धिश्च रागादिरहितत्वं मुनिर्जगौ ॥४१०॥
. . . . ।
. . . . ॥४११॥

. . गतिद्वयेऽप्येष परार्थोद्यतमानसः ।
तथा . . . . ॥४१२॥

. . . . ।
आश्चर्यभावतस्त्वाशु कश्चित्तेनापि जन्मना ॥४१३॥

सिद्धिर्ब्रह्माल . . . . ।
. . . . तिः ॥४१४॥

सा पुनर्गम्यमानत्वाल्लोकान्तक्षेत्रलक्षणा ।
. . . . ॥४१५॥

. . . . त्यन्तमनोरमा ।
उत्तानच्छत्रसंस्थाना चन्द्रकान्तसमद्युतिः ॥४१६॥

. . . . ।
. . . . [३१-द्वि०]द्भागे सिद्धानामवगाहना ॥४१७॥

तत्त्वतस्त्वात्मरूपैव शुद्धावस्थ . . . . ।
. . . . ॥४१८॥

. . . वोपमर्देऽपि तत्स्वभावत्वयोगतः ।
न तस्याभाव एवेति क . . . . ॥४१९॥

. . . . ।
नाभावो न च नो मुक्तो व्याधिना व्याधितो न च ॥४२०॥

अन . . . . ।
. . . . सुखी परः ॥४२१॥

हत्वाद्योपेक्षया तुर्यं तथा च द्व . . . . ।
. . . . ॥४२२॥

. . . . योजनीयमिदं बुधैः ।
अष्टकर्मक . . . . ॥४२३॥

YOGA-ŚATAKA

Translator's Note

The following translation of Haribhadra's Yoga-Śataka is primarily meant to be a paraphrase of the Prakrit Gāthās that constitute the original text, but some use has also been made of the valuable supplementations provided by the author in his Sanskrit autocommentary. Barring a few unimportant exceptions, the material inserted within brackets, only this much material and the whole of this material is derived from the autocommentary. The major exceptions occur at those places where a bracketed portion expresses the translator's own urge to supply a point of clarification, the minor exceptions need no special mention.

In preparing this translation a substantial source of help has been Dr. Indukala Jhaveri's Gujrati edition of Yoga-Śataka (published by Gujarat Vidyasabha, Ahmedabad) which, apart from containing an illuminating Introduction, offers us a fairly accurate translation and a thoroughly competent elucidation of the Gāthās in question. In most cases inaccuracies in Dr. Jhaveri's translation had cropped up because a correct reading of the text was not available to her. It is only as a result of the discovery (made after Dr. Jhaveri's edition was out) of the Sanskrit autocommentary that we are in possession of an almost entirely correct reading of the text. In any case, the autocommentary enables us to correct all those parts of Dr. Jhaveri's translation where the author's intention had been misunderstood or but partly understood. That there must be such cases was only to be expected, that there are so few of them is really surprising.

●

1. Having bowed to Mahāvīra, a lord of yogins (i. e. one who helps and protects those practising yoga) and one who has well demonstrated as to what properly constitutes yoga, I proceed on to narrate the essentials of yoga in line with the scriptural treatment of the same.

2. From the definitive standpoint yoga (lit. that which connects) has been here described by the lords of yogins as the coming together (in one soul) of the three (noble) attributes, viz. right understanding etc. (i. e. right understanding, right faith, right conduct); for it is this

(coming together of right understanding etc.) that brings about (the concerned soul's) connection with mokṣa.

3. Right understanding stands for an apprehension of the (true) nature of things, right faith for a belief in the same, while right conduct stands for such activity in relation to things as is in conformity to the scriptural injunctions and prohibitions.

4. From the practical standpoint a soul's relation with (i. e. its possession of) the respective causes of right understanding etc. is also to be understood as yoga; this usage follows from the figurative treatment of cause as effect.

5. (Yoga as thus understood from the practical standpoint comprises) attendence on the preceptor, a desire to listen to the scriptural topics and the allied practices all duly performed, as also the obeying of the scriptural injunctions and prohibitions as per one's capacities.

6. Through this itself (i. e. through yoga as understood from the practical standpoint) there invariably comes about, in due course and as a result of gradual accumulation, the realization of right understanding etc. of the most perfect type (i. e. realization of yoga as understood from the definitive standpoint).

7. Just as a man who is properly traversing the path (that leads to his desired city) is called a traveller to his desired city owing to his sure capacity (to reach there) the man who is (properly) performing the (above-enumerated) practices like attendence on the preceptor is here called a yogin (owing to his sure capacity to realize right understanding etc., that is, to become a yogin in the literal sense of the term).

8. It is a case with all action that an authorized agent employing appropriate means realizes the aim in view through a gradual intensification of the process of fruition; this is particularly a case with (a journey on) the path of yoga.

9. In this case (i. e. in the case of journey on the yoga-path) the authorized agent is an Apunarbandhaka* or the like, i. e. a person in relation to whom karmic matter has, in this manner or that (i. e. to this extent or that), lost its capacity to dominate (i. e. to cause bondage) and who is of various types.

10. The person in relation to whom karmic matter has not in the least lost its capacity to dominate is under the sway of this karmic matter and is absolutely unauthorized (to practise yoga) owing to his attachment to the worldly life.

* A technical term to be explained in Gāthā 13.

11. It has to be understood that this (i. e. karmic matter losing its capacity to dominate one and thus one's becoming authorized to practise yoga) is due to the karmic matter-particles giving up their nature of being grasped by one's soul (and one's soul giving up its nature of grasping the karmic matter-particles); for otherwise bondage etc. as thus posited (i. e. as posited by the Jaina tradition) will make no sense.

12. A definite knowledge to this effect (i. e. as to whether one is authorized to practise yoga) is possible on the part of an omniscient alone; however, such knowledge can be had also by one who is well taught in the signs set forth (as characterizing this or that type of yoga-seeker) by an omniscient.

13. An Apunarbandhaka is one who commits a sinful act with not much strong feeling, who attaches not undue value to this frightful worldly life, and who maintains proprieties in whatever he does.

14. And here are the signs of a Samyagdṛṣṭi: a desire to listen to scriptural discourses, a sense of attachment for things religious, a vow to offer — as far as it lies in one's competence etc. — humble services to the preceptor and the deities.

15. A Cāritrin traverses the path (meaning the path of mokṣa which, however, is the same thing as the path of righteousness),* is possessed of faith, is capable of being roused to perform noble deeds, is active, is attached to things virtuous, and is used to taking up jobs that are within his competence.

16. This Cāritrin is to be understood as being of numerous types corresponding to the various types of purity acquired by one's sāmāyika or sense of equality, this variety, in its turn, being due to a variety in the types of obeying scriptural injunction. And at the top of these various types stands the one called Vītarāga (lit. one free from all attachment whatsoever).

17. For even in case antipathy against the prohibited things is lacking but there obtains attachment, howsoever slight, towards the enjoined things the sāmāyika remains impure; on the other hand, a pure sāmāyika implies an identical attitude (i.e. an attitude of neither-antipathy-nor-attachment) towards both (the prohibited and enjoined things).

18. This (i. e. the pure type of sāmāyika) is to be recognized as such through a special type of knowledge and a specific type of removal of (karmic) coverage that characterize it; on the other hand, the first

* As contrasted to him the earlier two types of yoga-seekers have simply set their eye on the mokṣa-path.

(i. e. the relatively impure) type of sāmāyika is to be viewed as something like the arrival (i. e. mere arrival) at a place containing ornaments.

19. Activity on the part of such one (i. e. one in possession of the pure type of sāmāyika) takes place simply because that is scriptural injunction just as the potter's wheel whirls simply because it is in conjunction with the stick; moreover, it takes place merely due to the persistence of a past habit (just as the potter's wheel whirls due to the momentum acquired from an antecedent contact with the stick).

20. That is why the ascetic has often been described in the scriptural texts as one who accords an identical treatment to the man striking him with an axe and one smearing him with sandal-paste,* as one who adopts an identical attitude towards pleasure and pain, as one who develops attachment neither towards the worldly life nor towards mokṣa.

21. These various types of conduct appropriate to the various stages of spiritual development, since they are mingled with the nectar of scriptural injunction (i. e. since even if undertaken spontaneously they happen to be enjoined by scriptures), are all yoga.

22. They are yoga because they satisfy the definition of the term 'yoga' (i. e. the definition that all proper conduct is yoga), because all of them (somehow) involve a cessation of (certain) mental modes ('the cessation of mental modes' being Patñjali's definition of yoga), because they connect the soul with mokṣa (i. e. they lead it to mokṣa) as a result of its thus tending to perform virtuous acts (this broadly covering both the earlier definitions of yoga).

23. Even in the case of these (various types of yoga-seekers) it is quite often an external (i. e. scriptural) injunction that is responsible for the tendency towards a proper type of conduct — a tendency that is thus (i. e. on account of its being accompanied by a deep faith in scriptural injunctions) rendered very pure.

24. Hence the preceptor should administer befitting discourses to these (various types of yoga-seekers) after having estimated through the above-mentioned signs their respective stages of spiritual development — just as the physician administers appropriate medicines (to his patients after having diagnosed their respective ailments through various symptoms).

* The phrase 'vāsī-candana-kalpa' can also be interpreted as 'one akin to the sandal-tree sought to be chopped off by an axe.' In that case the idea sought to be conveyed here will be that just as the axe that seeks to chop off the sandal-tree is made fragrant by this tree the man who seeks to harm the ascetic is sought to be benefitted by this ascetic.

25. One belonging to the first type is to be taught secular duties through a general (i. e. straightforward) instruction in virtues like non-oppression of others, those like a worshipful treatment of the preceptor, the deities and the guests, those like charity to the poor.

26. It is in this very manner that he (i. e. the first type of yoga-seeker) subsequently enters the path (to mokṣa) — as if one who had lost his way in the forest has given up what was no path and has taken up what is a path (more strictly, has given up what was not itself a direct path but simply a by-path leading to this direct path and has taken up what is a direct path).

27. One belonging to the second type is to be taught supra-secular duties through an instruction in aṇu-vratas (i. e. the five basic vows – viz. non-injury, truth-speaking, non-stealing, sex-control, non-greed — in case they are meant to be implemented on a rather limited scale) etc.; this instruction should cover all the aspects that ensure the purity of a scriptural injunction (e. g. as regards the prohibited things the yoga-seeker is to be told that he ought not to do them himself, nor get them done through others, nor approve of them when done by others) and it has to be imparted after the suitability of the yoga-seeker's inclination has been ascertained.

28. (These house-holder's virtues are to be taught before the monk's virtues because the former) stand nearer to the concerned yoga-seeker's experience, because his inclination in their favour is rather firm, because he is soon in a position to practise them, and because it is thus (i. e. because it is by following this order of exposition) that the scriptural injunction is properly followed.

29. One belonging to the third type is to be instructed — by ably adopting the appropriate methods of discourse and with a heart full of fervour — in sāmāyika* etc.; this instruction has to be of multifarious kinds (corresponding to the various sub-stages through which this type of yoga-seeker is to pass) and such as can well be conducive to the higher stages of spiritual development.

30. Earning one's livelihood without violating scriptural injunctions, practising charity that is pure owing to its being enjoined by scriptures, following regulations that pertain to divine worship and to diet, performing daily religious rites — these (house-holder's virtues) culminate in yoga (i. e. in spiritual enlightenment of various types).

---

* In this case sāmāyika is the name of one of the accessory vows to be taken by a Jaina house-holder; it consists in desisting from vices for a definite period of time.

31. Even things like caitya-worship (i. e. prayer, contemplation etc. in dedication to a revered personage or deity), providing resting-place to monks, and listening to scriptural discourses are yoga to a house-holder. What to say of the path that consists of (i. e. culminates in) spiritual enlightenment ?

32. Things like these are the subject-matter of instruction that is to be imparted to a house-holder; on the other hand, a monk is to be instructed in all those things that constitute his proper life-routine.

33. Thus a monk must stay with the preceptor and under his supervision, he must attend on the preceptor in a manner that is proper, and he must perform at due time his (daily) duties like sweeping the residence.

34. Furthermore, he must not make secret of his capacities and must in every case act with a feeling of tranquillity; again, a command given by the preceptor should always be regarded by him as something that is in his best interests, as something that is a great favour done to him.

35. His observance of discipline must be without lapses, he must live on pure diet received through begging conducted purely (i. e. conducted in accordance with scriptural injunctions), he must duly undertake self-study and must remain in a mood of readiness in relation to death etc. All these constitute the subject-matter of instruction that is to be imparted to a monk.

36. To impart the above-enumerted instructions to unfit persons (i. e. to persons not authorized to enter the yoga-path) or to impart a different set of instructions to fit ones constitutes no proper instruction and is invariably a cause of bondage; on the other hand, a piece of properly imparted instruction constitutes yoga (inasmuch as it leads to mokṣa).

37. Behaviour unbecoming of a yogin on the part of the preceptor is to be treated as conducive to extermely evil consequences; for owing to such behaviour the qualities that go with a yogin are held in contempt, these persons (i. e. these pseudo-yogins) who are already in a state of. (spiritual) loss become further losers, and there is a reduction in the observance of religious practices.

38. After a piece of instruction (belonging to one of the above-enumerated types) has resulted in spiritual enlightenment and the yoga-seeker concerned is on way to the higher stages of spiritual development it is usually (i. e. leaving aside the case of the most

elementary stages) incumbent on him to scrupulously practise the following regulations.

39. The yoga-seeker must always proceed further in a due fashion, that is to say, after having ascertained his suitability through an observation of his own nature, through finding out as to what others say about himself, through determining as to how pure are his life-operations (i. e. bodily, vocal and mental operations).

40. One should purify his body through blameless movements etc., his speech through (blameless) utterances, while he should purify his mind through noble thoughts. All this is what constitutes purification of operations.

41. Some say that body is known (to be fit for yoga) by its pleasing constitution, speech by its pleasing tone, while mind is known (to be fit for yoga) by its invoking pleasing dreams. (According to these people) it is this what constitutes purification (of operations).

42. Here (i. e. in case suitability is present there) the way to proceed on to a higher stage of spiritual development lies in taking recourse to appropriate material etc. (i. e. to appropriate material, place, time etc.) and doing things in the presence of a competent preceptor and to the accompaniment of due ceremonies (like salutation etc.)

43. The chief thing to be understood about the ceremonies like salutation etc. is that they should be performed under pure external conditions (i. e. under conditions laid down in the scriptures). This purity of external conditions must be properly ensured, for otherwise the ceremonies in question will be no proper ceremonies.

44. Afterwards (i. e. after the yoga-seeker has reached a higher stage of spiritual development) he should keep company with those who are either superior to himself in perfection or equal to himself; besides, he should ever keep in mind the practical injunctions that are obligatory on one belonging to the stage of spiritual development attained by himself.

45. He should develop an attitude of high regard for the stages of spiritual development higher than the one attained by himself, he should meditate over the nature of the worldly life properly (i. e. with a heart full of fervour) and in various ways, and whenever there arises in him a feeling of apathy for the stage of spiritual development attained by himself he should adopt different kinds of measures (in order to overcome this feeling).

46. For this (feeling of apathy) has been described (in scriptures) as arising when the past (evil) deeds are coming to fruition; but then

such a phenomenon is usually remediable through appropriate measures, just as fear etc. are well known to be remediable that way.

47. Thus a place of protection is a remedial measure aginst fear, a medical operation a remedial measure against disease, a spell a remedial measure against poison; really speaking, these (place of protection etc.) are but several types of wholesale eliminations (more correctly, causes of wholesale elimination) of the past (evil) deeds.

48. In the case under consideration the preceptor is like a place of protection (in relation to the past evil deeds viewed in the form of fear), penance like a medical operation in relation to the past (evil) deeds viewed in the form of disease, while self-study is like a spell obviously capable of annihilating delusion (born of the past evil deeds) viewed in the form of poison.

49. The truth of the matter is that there is usually the obviation of an obstacle — nay, there is rather the derivation of a positive benefit — as a result of endeavouring for these (i. e. for the preceptor etc. which are likened to a place of protection etc.); for this (i. e. the past deed responsible for the concerned feeling of apathy) is after all capable of elimination. [Had the past deed in question been incapable of elimination — as some deeds certainly are — all endeavour to seek their elimination would have been an unnecessary source of worry.]

50. The fourfold seeking of protection (i. e. seeking protection at the hands of the Jaina tīrthaṅkaras, the liberated souls, the ascetics of the Jaina order, and Jaina religion), disparagement of the evil deeds (ever performed), a hearty approval of the noble deeds (performed by whatever person) — this group of performances ought to be constantly undertaken under the conviction that it is conducive to desirable consequences.

51. The just mentioned means of yoga-realization (as also the following ones) are to be treated as appropriate for two types of yogins — viz. those who have just entered the yoga-path and those who are in the process of becoming accomplished yogins — (i. e. appropriate for all yogins except the accomplished ones)*; however, it is only for the latter of these two types that the following ones are the most suitable means of yoga-realization.

52. One must properly study the scriptural texts pertaining to spiritual cogitation headed under the technical title 'bhāvanā') and he

---

* To be explicit, the first type includes the Apunarbandhakas, the second the Samyagdṛṣṭis and Cāritrins.

must frequently listen to the discourses of an accomplished teacher (i. e. a teacher well-versed in the relevant topics); when as a result of all this one has grasped the meaning of the texts in question he should undertake self-observation most carefully and with a view to detecting the defilement vitiating his soul.

53. In this context attachment, aversion and delusion are the defilements that manage to vitiate a soul; they are to be treated as a soul's modifications born owing to the fruition of its karma (i. e. past deeds).

54. And karma is of the form of matter-particles of various types that have been associated with a soul since beginningless time; its external conditions (i. e. the external conditions of its association with a soul) are wrongfulness etc. (i. e. the undesirable spiritual traits that are supposed by the Jaina tradition to be the cause of a soul's bondage)* and, logically speaking, it is something akin to past time.

55. Just as all past time (i. e. each and every moment of what we now call 'past time') was once something present and it constitutes a beginningless series, so also is the case with karma whose "being done" is akin to (a moment of) time "being present"; (i. e. all karma was once something being done and it constitutes a beginningless series).

56. The idea of an incorporeal entity (like soul) being hindered or helped by a corporeal entity (like karmic matter is tenable); it is just like our common experience of a man's consciousness being affected (unfavourably or favourably) by his taking wine, medicine etc.

57. Thus the association of these two (i. e. of soul and karmic matter) is beginningless like that of gold and rocky substances (which are an ingredient of gold-ore); even then there are means (viz. right understanding etc. in the former case, the appropriate chemical processes in the latter) through which the two are dissociated from each other.

58. Both bondage and mokṣa (that are posited by all systems of spiritualism) thus find an explanation without a resort to figurative expression, and so also do the pleasures and pains of our everyday experience; this is not possible otherwise (i. e. on any other metaphysical hypothesis). This much (metaphysical argumentation which is of the nature of a) side-discussion must suffice.

* The word-compound used here might also mean that karma is an external condition of wrongfulness etc. But this idea is already implicit in the preceding Gāthā.

59. Here attachment is to be defined as a feeling of attraction, aversion as a feeling of antipathy, while delusion is to be defined as ignorance. One has to think out as to which among these afflicts him rather intensely.

60. After it (i. e. the defilement in question) has been detected one—holding firm in his faith in scriptural injunctions, seated in a lonely place, and having properly got ready (i. e. having performed the totality of prescribed rituals)—must ponder over the essential nature, the immediate consequence and the ultimate consequence of its object (i. e. of the object of the defilement in question), essential nature etc. which constitute the defects of this object.

61. Having paid his homage to the preceptor and the deities one must sit in padmāsana posture* or the like, unmindful of the presence of gadflies, mosquitoes etc. on his body and with his mind centred on the subject-matter concerned (i. e. on the object of the defilement under review).

62. From the preceptor and the deities the yoga-seeker receives favour and thereby he accomplishes the task at hand (i. e. he realizes the essential nature etc. of the object of the defilement afflicting him); this favour originating from them (i. e. from the preceptor and the deities) should be recognized as such by the yoga-seeker's own noticing that he has become equal to the task at hand.

63. Just as spells, (magically activated) precious stones etc. bestow favour on the worthy one who duly performs the prescribed ceremonies and this they do without physically assisting the person in question, so also is the case with the favour shown by the preceptor and the deities (i. e. they too do not assist the yoga-seeker physically).

64. as a result of adopting an appropriate posture one's body is disciplined and one comes to develop an attitude of high regard for those who are known to have adopted the posture in question. Similarly, as a result of being unmindful of gadflies etc. one comes to acquire the capacity to exert himself well; this leads to the yoga-seeker attaining his ultimate aim (viz. success in yoga) as well (i. e. as also to the yoga-seeker attaining his immediate aim — viz. realizing the nature of the objects of a spiritual defilement).

65. One who has set his mind on it (i. e. on the object of a spiritual defilement) and has bestowed concentrated attention on it comes to realize its true nature; certainly, this (realization of the true

* Padmāsana etc. are the postures enumerated and technically defined in Yoga literature.

nature of spiritual defilement) is here the chief cause of the yoga-seeker attaining his ultimate aim (i. e. of yoga-realization on his part).

66. The realization of the essential nature of the object under review causes the annihilation of evil tendencies, makes one's mind steady, and is beneficial in this world as also hereafter — this is the declaration of those who are an authority on doctrinal matters.

67. In case one's attachment has some woman for its object he should — with a properly trained mind — ponder over the essential nature of a woman, that is, over the fact that she is almost but an aggregate of abdomenal impurities, flesh, blood, excreta, skeleton.

68. Again, he should ponder over the fact that as a matter of short run the woman is susceptible to disease and old age while as a matter of long run she is responsible for (the man) being thrown in hell etc., or that as a matter of short run she is fickle in her attachment (for a man) while as a matter of long run she is responsible for (the man's) death even.

69. In case one's attachment has wealth for its object he should ponder over the essential nature of wealth, that is, over the fact that it is attended by hundreds of troubles in the course of earning etc. (i. e. by those troubles which arise when it is sought to be earned, those which arise when it is sought to be protected, those which arise when it perishes), that as a matter of short run it is liable to depart while as a matter of long run it leads to a contemptible next birth.

70. In case one is afflicted with aversion he should ponder over the mutual separateness of souls as also that of matter-particles; (i. e. he should ponder over the fact that the person whom he loves and the one whom he hates are both different from himself; similarly, he should ponder over the fact that things which he finds pleasing and those which he finds displeasing are both different from his body). Furthermore, he should ponder over the fact that as a matter of short run their states (i. e. the states of souls as well as those of matter-particles) are of a fleeting character while as a matter of long run aversion leads to evil consequences in the life hereafter.

71. In case one is afflicted with delusion he should, duly resorting to a logic based on experience, ponder over the general nature of things which consists in their being characterized by origination, cessation and permanence.

72. It is not proper to hold that what is non-existent is at the same time something existent, for that leads to undesirable contingencies; and for the same reason it is not proper to hold that what is existent

is at the same time something non-existent. (These positions are not proper) because each attributes to things a nature which does not in fact belong to them.

73. On the other hand, when we attribute to things a nature that in fact belongs to them they are found to be characterized by origination etc. (i. e. by origination, cessation and permanence); thus a real entity (in this context, a soul) is not something absolutely changeless (nor something absolutely changing), for that goes counter to our common experience.

74. When one ponders over the nature of things in conformity to the scriptural injunctions one does invariably realize this nature of things; besides, on account of his having exhibited a great reverence for those repositories of noble attributes (viz. Tīrthaṅkaras) he experiences the most perfect type of elimination of karmas.

75. For those who are not much versed in the practice of yoga a lonely place usually proves to be free from disturbances and one where they succeed in gaining such mastery over yoga-practice as is praiseworthy (on account of its being accompanied by a due observance of scriptural injunction).

76. The due performance of the totality of prescribed rituals (which has been enumerated above as the third acceleratory condition of practising yoga) is to be called 'upa-yoga' (lit. that which stands close) because it stands close to yoga-realization (i. e. because it is a proximate cause of yoga-realization),

77. Through a constant practice there occurs the realization of the true nature of things and there also arises such a steadiness of mind as accompanies the soul even in future births and is chiefly instrumental in the attainment of the bliss of mokṣa.

78. Alternatively, applying a technique (of concentration) that is broadly the same as described above one should make, attentively and in a most sincere fashion, the living beings etc. an object of a spirited feeling of friendliness etc.

79. To wit, one should evince a feeling of friendliness towards the living beings in general, that of joy (i. e. of reverence) towards those who are superior to oneself in perfection. that of compassion towards those who are in a state of suffering, and that of neutrality towards those who are incorrigible.

80. In this connection (i. e. while describing the respective objects of the noble feelings in question) the order here adopted has been

declared (by the Tīrthaṅkaras etc.) to be proper, for a correct course of action follows in case this order is followed; on the other hand, to follow a different order will involve improprieties of various types and will thus result in a topsy-turvy course of action.

81. as a matter of general rule, the yoga-seeker should live on a pure diet (i. e. on a diet that is pure in itself, has been acquired through pure means and yields pure results). Such a diet is 'sarvasampatkarī bhikṣā' (lit. alms acquired through begging that is beneficial to all concerned) in a literal sense of the phrase.

82. The appropriateness of the diet taken must be ensured without fail, just like the appropriateness of the ointment applied on a wound; for otherwise this diet (just like a mis-applied ointment) is unsuitable for the task at hand and leads to a defective result.

83. As a result of the possession of the yogic powers there is usually no dearth of things pure (i. e. of pure diet); this must be the case because the doctrinal tradition tells us that one in possession of such powers comes to acquire even supra-natural capacities (which are certainly a much higher achievement than mere pure diet).

84. Thus numerous types of supra-natural capacities — like that for procuring precious stones, or that for adopting an extremely minute bodily size, or that for healing patients by sheer touch — are a result of this or that type of increment in yogic powers.

85. Possessed of these ever-increasing yogic powers one invariably and properly annihilates the evil karmas and accumulates the good ones; in this way it becomes easy for one to gradually move towards mokṣa.

86. Defilements annihilated through bodily performances are like a frog cut into pieces (which pieces again become frogs when rain-water falls on them) while the same annihilated through spiritual enlightenment are like a frog burnt to ashes (which ashes never again become frogs).

87. Similarly, others too have proclaimed — and this proclamation of theirs differs only in words from what we are maintaining — that in this yoga-path the meritorious acts are of two types, viz. those like an earthen jar (which ceases to be of any value when broken into pieces) and those like a golden jar (which retains its value even when broken into pieces).

88. Again, for Bodhisattvas (i. e. for the beings who are in possession of a spiritually enlightened understanding) it is possible to commit a wrong bodily but it is never possible for them to do so mentally, and that is so because the minds of these beings become pure as a result of the spiritual enlightenment of the type described above.

89. It is tenable to hold that things like these happen as a result of the spiritual enlightenment of a suitable type; one must think over the matter himself and with a mind free from all prejudice.

90. In this manner one's sāmāyika becomes pure; thereafter one is able to perform meditation of the śukla type* and gradually making progress he attains omniscience.

91. It is merely because of this (i. e. merely because of the just mentioned ultimate consequences) that the vāsīcandanakalpa person (i. e. the person who does not discriminate between those doing evil to himself and those doing good to himself) has been described by people who are expert in these matters as a possessor of the noblest type of mind; for otherwise there is even a slight harm in developing a mind like this (that being so because such a mind glosses over the evil propensities of the vicious person).

92. If one's yoga is completed in this very life he first realizes the state of freedom from all bodily, vocal and mental operations and ultimately the state (of mokṣa) that is free from the defects like birth etc. and is of an absolutely pure type.

93. However, in case one's yoga is left incomplete in this life one (even if he were a god in this life) is next born as a human being belonging to one of the numerous types; but in this new life too the man's interest in yoga continues on account of his constant practice of the same in his earlier life.

94. Just as people see in dreams at the night-time those very things which they had frequently encountered during the daytime, the souls are to resume in the course of a next worldly life what they have frequently practised in the course of this one.

95. Hence in one's present birth one should adopt such a course of life as is suitable for a pure type of yoga-journey, and while doing so one should firmly adopt an identical attitude towards the life here and hereafter, towards life and death.

96. Possessed of a pure, noble mind one should — through a pure fast duly undertaken — give up his body at the end of one's life-span, an end that one has ascertained to be imminent.

97. And the time of death is ascertained through an indicative sign mentioned in some authoritative text on the subject, through a deity (i. e. through the deity that presides over the body of an

* The technical name given by the Jaina Yogic tradition to the highest type of meditation — a type further divided into four sub-types.

advanced yoga–seeker), through a piece of intuition, through a dream, through a non–observation of the star Arundhati etc., through a non–observation of one's nose–tip or of one's eye–ball, through a non–hearing of the auditory fire (i. e. non–noticing of the inner functioning of the auditory sense–organ, a functioning comparable to the burning of live fire).*

98. In this connection an extreme precaution has to be taken as to the purity of one's fast, for one's mind at the time of next birth is of the very same colouring as his mind at the time of this death.

99. Of course, even when a desriable type of mind–colouring is present there one should be treated as a proper practiser (of yoga) because of his obeying the scriptural injunctions (and not because of his possessing the mind–colouring in question), for so far as this type of mind–colouring is concerned one must have acquired it frequently enough in the course of a beginningless series of births and deaths experienced by oneself.

100. Hence one who aspires after the complete cessation of bodily, vocal and mental operations must endeavour for a proper implementation of the scriptural injunctions, for this verily is what constitutes a departure of the worldly life and a permanent non–departure of mokṣa (more strictly, what constitutes a cause of this departure and this non–departure).

* Alternatively, non–hearing on the part of the auditory fire (i. e. on the part of the auditory sense–organ — whose functioning is comparable to the burning of live fire).

प्रथमं परिशिष्टम् ।

योगशतकमूलगाथानामकारादिक्रमः ।

गाथादिः	गाथाङ्कः	गाथादिः	गाथाङ्कः
अकुसलकम्मोदयओ	४६	एवं तु बंधमोक्खा	५८
अणसणसुद्धीए इहं	९८	एवं पुण्णं पि दुहा	८७
अणिगूहणा बलम्मी	३४	एसो चेवेत्थ कमो	८०
अणियत्ते पुण तीए	१०	एसो सामाइयसुद्धि-	१६
अणुभूयवत्तमाणो	५५	कम्मं च चित्तपोग्गल-	५४
अत्थे रागम्मि उ अज्ज-	६९	कायकिरियाए दोसा	८६
असमत्तीय उ चित्तेसु	९३	किरिया उ दंडजोगेण	१९
अहवा ओहेणं चिय	७८	गमणाइएहिं कायं	४०
अहिगारिणो उवाएण	८	गुरुकुलवासो गुरु-	३३
अहिगारी पुण एत्थं	९	गुरुणा लिंगेहिं तओ	२४
आणाए चिंतणम्मी	७४	गुरुणो अजोगिजोगो	३७
उड्ढं अहिगगुणेहिं	४४	गुरुदेवयापणामं	६१
उत्तरगुणबहुमाणो	४५	गुरुदेवयाहि जायइ	६२
उवएसोऽविसयम्मी	३६	गुरुविणओ सुस्सूसा-	५१
उवओगो पुण एत्थं	७६	घडमाणपवत्ताणं	५१
एएण पगारेणं	९०	चउसरणगमणदुक्कड-	५०
एएसिं णियणियभूमि-	२१	चिइवंदण जइविस्सा-	३१
एएसिं पि य पायं	२३	चिंतेज्जा मोहम्मी	७१
एएसु जत्तकरणा	४९	जइ तब्भवेण जायइ	९२
एतीए एस जुत्तो	८५	जह खलु दिवसब्भत्थं	९४
एत्तो च्चिय कालेणं	६	जह चेव मंतरयणा-	६३
एत्थ उवाओ य इमो	४२	जोगाणुभावओ च्चिय	८३
एमाइजहोइयभावणा-	८९	ठाणा कायनिरोहो	६४
एमाइवत्थुविसओ	३२	णमिऊण जोगिणाहं	१
एयम्मि परिणयम्मी	३८	णाऊण ततो तव्विसय-	६०
एयस्स उ भावाओ	७३	णाणं चागमदेवय-	९७
एयं खु तत्तणाणं	६६	तइयस्स पुण विचित्तो	२९
एयं पुण णिच्छयओ	१२	तग्गयचित्तस्स तहो-	६५
एयं विसेसणाणा	१८	तत्थाभिस्संगो खलु	५९
एवमणादी एसो	५७	तप्पोग्गलाण तग्गहण-	११
एवं अब्भासाओ	७७	तल्लक्खणयोगाओ	२२
एवं चिय अवयारो	२६	तस्सासण्णत्तणओ	२८

द्वितीयं परिशिष्टम्।

योगशतकस्वोपज्ञवृत्त्यन्तर्गतानामवतरणानामकारादिक्रमः।

तृतीयं परिशिष्टम् ।

योगशतकतत्स्वोपज्ञवृत्त्यन्तर्गतानां ग्रन्थ-ग्रन्थकृदादिविशेषनाम्नामनुक्रमः ।

चतुर्थं परिशिष्टम् ।

ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयश्लोकानामकारादिक्रमः ।

१. श्लोकस्यास्योभयत्राप्युत्तरार्धं विनष्टम् ॥

पञ्चमं परिशिष्टम् ।

ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयान्तर्गतानां त्रुटितादिभागश्लोकानामकारादिक्रमः ।

षष्ठं परिशिष्टम् ।

ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयान्तर्गतानां विशिष्टशब्दानामकारादिक्रमः ।

सप्तमं परिशिष्टम्

ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयान्तर्गतानां विशेषनाम्नामकारादिक्रमः ।

अष्टमं परिशिष्टम् ।

ब्रह्मसिद्धान्तसमुच्चयान्तर्गतानि मतान्तरावेदकानि स्थानानि ।

शुद्धिपत्रकम् ।

पत्रम्	पङ्क्तिः	अशुद्धम्	विशोध्यम्
७	८	°पुद्गलानां	°पुद्गलानां
,,	१४	इति, एते	इति एते
,,	२८	पूर्वाद्धं	पूर्वार्द्धं
९	२	सास्रावाः	सास्रवः
,,	२६	'एतत्	'एतत्'
१०	६	परमाथत	परमार्थत
१२	१	°परिण	परिण-
,,	१७	प्रायः'	'प्रायः'
१३	१९	अरण्ये'	'अरण्ये'
,,	,,	माग°	मार्ग°
,,	२१	°देशना	°देशना,
१७	१०	गुरु°	'गुरु°
१८	१५	अपुनव°	अपुनर्व°
२५	२७	तीर्थम्-	तीर्थम्—
२८	शीर्षके	गा०६९	गा०५९
३२	२१	वतते	वर्तते
३६	११	°तव्यग्	°तव्यम्
३७	१४	इतरस्य'	'इतरस्य'
३८	२६	°दीनाम्;	°दीनाम्'',
,,	२७-२८	'वितर्कचार' इत्यत आरभ्य 'चतुर्थमेतत्' इत्येतत्पर्यन्तो गद्यपाठः वृत्तं ज्ञेयम् ।	
३९	२३	'जो	''जो
५२	१५	निष्कलाख्या°	निष्कलाख्या(?ख्य)°
६०	२२	°ज्ञानत°	°ज्ञातत°
६२	२१	°दीक्षास°	°दीक्षा स°
,,	२४	सम्य	सम्यग्
६४	११	तुय	तुर्य
,,	१५	[०	[२०
,,	१९	°[?त]°	°(?त)°
,,	२९	पश्य°	[?दिवा] पश्य°
७२	१०	तथव	तथैव

—०—

लालभाई दलपतभाई ग्रन्थमाला

प्रकाशितग्रन्थनामावली

१. सप्तपदार्थी— शिवादित्यकृत, जिनवर्धनसूरिकृतटीका सह ४–००
2. CATALOGUE OF SANSKRIT AND PRAKRIT MANUSCRIPTS: MUNI SHRI PUNYAVIJAYJI'S COLLECTION, PART I. 50-00
३. काव्यशिक्षा–विनयचन्द्रसूरिकृत १०–००

संप्रति मुद्र्यमाणग्रन्थनामावली

१. शब्दानुशासन— आचार्य मलयगिरिकृत
२. कल्पलताविवेक–कल्पपल्लवशेषवृत्ति— अज्ञातकर्तृक
३. निघण्टुशेष–सवृत्तिक— श्रीहेमचन्द्रसूरि श्रीवल्लभोपाध्यायकृत टीका
4. CATALOGUE OF SANSKRIT AND PRAKRIT MANUSCRIPTS, PART II
५. विशेषावश्यक–स्वोपज्ञवृत्ति सह— श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण
६. रत्नाकरावतारिका— रत्नप्रभसूरिकृत, टिप्पण–पञ्जिका–गूर्जरानुवाद सह
७. गीतगोविन्दकाव्य— मानाङ्कनृपकृत टीका सह
8. THE NATYADARPANA OF RAMACANDRA AND GUNACANDRA: A CRITICAL STUDY.
9. YOGADRSTISAMUCCAYA OF HARIBHADRA, WITH AUTO COM. AND TRANSLATION AND EXPLANATION BY K. K. DIXIT

* अध्यात्म निरूपण योग रहस्य *

इस अमूल्य के पुनर्संस्करण के लिये

मूल्य १)

कमला प्रेस, सोहरापाव

* ॐ *
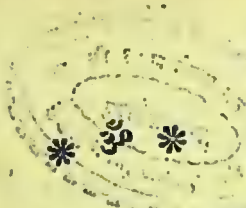
* अथ अध्यात्म निरुपण योग रहस्य *

लेखकः- श्री शम्भूनाथ-श्री गुरु स्वामी रामस्नेही जी से प्राप्त कर प्रकाशित किये।

स्थान पत्रालय नीवी दूबे (गोरखपुर)

इस के सम्पादक
श्री महाशय अक्षर मात्रा भाषा का परिवर्तन करें अति श्रेय है
किन्तु भावार्थ को त्रुटी किंचित मात्र न करें।

॥ श्री गुरुये नमः ॥

भूमिका -

इस पुस्तक में सत्तावन प्रश्न हैं अपने ज्ञान स्वरूप गुरु के प्रति निवेदन से प्राप्त किया उस प्रश्न प्रश्नोत्तर का समाधान पढ़ने से अविद्या रूप भय का अभाव कैसे प्रतीत है, जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार। अतः अनुभव से पठन करने योग्य है।

विषय सूची

"अथ अध्यात्म निरूपण योगरहस्य"

प्रार्थना

हे भगवन धन्य है आपकी कृपा और अकृपा दोनों को नमस्कार है। अर्थात् जैसे सूर्य का प्रकाश छाया विषें भिन्न उसके असंग से भिन्न प्रतीत है तथा 'अ' की संधि क ख इत्यादि विषें भिन्न उन अक्षरों के असङ्ग से भिन्न प्रतीत है वैसे आपका प्रकाश गुण सहित माया विषें भिन्न और गुण रहित अमाया विषें भिन्न प्रतीत है, सो एक ही दो भेद से, जैसे किसी का भेष महासाधु उसका कार्य महा ठग का, वैसे अमाया से कृपा और माया से अकृपा है, एक धर्म रूप निर्बंधन एक अधर्म रूप बन्धन है। आप समदर्शी हैं जिससे कृपा अकृपा सबों के प्रति भ्रमण करती रहती हैं, जहाँ कृपा अचल वहां से अकृपा हट जाती है, जहां अकृपा अचल वहाँ से कृपा हट जाती है। हितोपदेश मान लेना कृपा की स्थिति है न मानना अकृपा की स्थिति है। जैसे बाल्मीकि, तुलसी इत्यादि के प्रति अनुभूत है। इसी कृपा अकृपा का रूप ज्ञान भूमिका अज्ञान भूमिका है, एक ऊपर को ले जाती एक नीचे को जैसे प्राण गति ऊपर को, अपान गति नीचे को, अर्थात् अपान और अज्ञान और अकृपा इन तीनों का एक स्वभाव है और प्राण और ज्ञान और कृपा इन तीनों का

एक स्वभाव है। यही ज्ञान-अज्ञान, सुर-असुर का विरोध है, परन्तु जैसे प्राण के स्थान अपान जाने से प्राण का रूप बन जाता है और अपान के स्थान प्राण जाने से अपान का रूप बन जाता है, वैसे जहाँ शुभ इच्छा वहीं ज्ञान भूमिका है और जहाँ अशुभ इच्छा है वहीं अज्ञान भूमिका है, जिससे पंडित को मूर्ख और मूर्ख को पंडित होने में विलम्ब नहीं होता है, इसी कारण सर्वत्र बन्धन-निबन्धन है, जैसे जहँ गुण रहित वहीं मोक्ष और जहँ गुण वहीं बन्ध है। अतः जैसे गुण-अगुण की समानता विज्ञान है वैसे कर्ता-अकर्ता की समानता प्रधान है, इससे है सर्वरूप नमस्कार है। किन्तु कृपा मूल है—इसका मूल उपदेश, सो सत्संग तथा गुरु करके सिद्ध है। परन्तु जिन पर विश्वास है उनका मिलना कठिन है, अन्य पर विश्वास नहीं। अतः उन महात्माओं का ग्रन्थ पढ़ना श्रेय है। गुण प्रकट अवगुण त्याग—तीनों भेद का सत्संग समान है, जैसे तीनों भेद से गुरु, अर्थात सबों का प्रधान गुरु 'श्री' जिसके बिना सब असमर्थ। इस करके सुगम से सर्वस्व सिद्ध है, ऐसे ही गुरु सत्त्व गुण से उत्तम हैं। किन्तु वाल्मीकि के प्रति सात ऋषि और बलि के प्रति शुक्राचार्य—ऐसे गुरु रजोगुण हैं। अर्थात्, महाऋषियों ने सोचा कि दुष्ट को मंत्र का उपदेश अनुचित है—परन्तु शरण आए की रक्षा न हो तब भी अनुचित है, इससे मरा मरा का उपदेश निश्चित है। ऐसे ही जहाँ पति

राजा तीन पग दान देना निश्चित किया वहाँ शुक्राचार्य भी सोचा–जिसमें ज्ञान अथवा भक्ति नहीं है सो कर्म बंधन है, अर्थात् जिस ज्ञान से कर्म क्षय होता सो भी बलि में नहीं, जानने की चेष्टा भी नहीं करता है, चेष्ठा बिना उपदेश भी अनुचित है, हरि विषें आत्म निवेदन भी नहीं करता है जो धर्म कर्म का समर्पण है, शिष्य बंधन होने से गुरु को भी भय है, इससे शुक्राचार्य श्राप द्वारा सिद्ध किये हे बलि तुम्हारा सर्वस्व क्षय हो । ऐसही जहाँ बंधन निबन्धन का विचार नहीं है सो गुरु तमोगुण हैं । परन्तु जहाँ गुण-अगुण का बोध है वहां तीनों भेद के गुरु समान हैं। ऐसे महागुरु का चरण विष्णु रूप कच्छप के समान अचल करने योग्य है । अर्थात् यद्यपि सुर-असुर एकत्र हो समुद्र मथने को उद्यत भये, मन्दराचल को मथानी, वासुकी नाग को रस्सी बना कर दोनों ओर से मथने लगे, जब पर्वत नीचे जाने लगा तब विष्णु भगवान कच्छप बन पीठपर धारण किये, अतः गुरु का चरण प्रथम अचल करने योग्य है, ज्ञानेन्द्रियाँ देव गण–कर्मेन्द्रिया राक्षस गण मन्दर रूपी मन, वासुकि रूपी बुद्धि–म शब्द का पौरुष देव गण को–र शब्द राक्षस गण को–म के सन्धि का पौरुष अपने विषें होते ही विचार उदय है जैसे मरा-मरा का सीधे राम । इस यत्न से सातों को एक ही बार मथने में सुगम से सुखप्रद है वहां सर्वस्व का कोष प्राप्त करने योग्य है । अतः हे महागुरु यत्न सिद्ध साधक को

आप ही परम सहायक हैं आपको नमस्कार है।

प्रश्न १—हे गुरुजी योग क्या है। जिससे योगी सर्वोत्तम हैं।

उत्तर—यद्यपि युक्त संज्ञा योग—जैसे चित्त को युक्त करना, परन्तु व्रत इत्यादि छोटे-बड़े सब योग हैं, जैसे छोटी-बड़ी नदी अनेक हैं। नदी पर्वत से, योग वेद रूपी पर्वत से। नदी समुद्र के प्रति, योग आत्मा के प्रति। समुद्र के प्रति से नदी की उल्टी गति नहीं, आत्मा के प्रति से योग की उल्टी गति नहीं। नदियों में गंगा, जमुना, सरस्वती, त्रिवेणी रूप—योगों में कर्म ज्ञान भक्ति त्रिवेणी रूप हैं। समुद्र के प्रति उल्टी-सीधी नदी सब समान हैं, आत्मा के प्रति उल्टे-सीधे सब योग समान हैं। अतः अक्षयवट रूपी धर्म, गङ्गा रूपी भक्ति, जमुना रूपी कर्म, सरस्वती रूपी ज्ञान, विन्ध्यवासिनी रूप कुण्डलिनी शक्ति समुद्र रूपी आत्मा अनुभव करने योग्य है।

प्रश्न २—हे गुरुजी इसे क्रम-क्रम से कहिए जिसे हम भी समझ जायँ, नदी सुगम योग कठिन, समानता कैसे, नदियों का आदि-अन्त प्रगट है, इसका कैसे है, धर्म क्या है, आत्मा क्या है, जहां योग सब अस्त हैं।

उत्तर—चतुरों को योग सुगम, मूर्खों को नदी सुगम है, अर्थात शरीर के असमर्थ में नदी कठिन, योग सर्व काल सुगम है, दोनों की एकता समानता है। मुक्त होने की चेष्टा

स्वधर्म है मुक्त स्वरूप अचल धर्म है अन्यथा अधर्म है जैसे कामना युक्त कर्म कुयोग और कामना बिना निश्काम योग है, मानो वही शुद्ध पथिक हैं। गुण रहित जीव वही शिव आत्मा पुरुष है किन्तु गुण रूप प्रकृति ओ पंचतत्व से शरीर हैं सो स्त्री वर्ग है, जिसमें छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष ब्रह्मा शिव इत्यादि अपने-अपने आत्मा में परायण रहते हैं, यही अपना स्वरूप ज्ञान है, इसी का नाम प्रकृति पुरुष अर्ध नारीश्वर है, मानो नाम रूप से रहित आधा भाग पुरुष और नाम रूप से आधा भाग स्त्री का, यही सर्वोत्तम आद्य पद है, इसी का नाम माया जीव, आत्मा भक्ति है, तथा गुण मयी माया और गुण रहित अमाया, काष्ठ के समान गुण रूप और अग्नि के समान आत्मा है। मानो कार्य रूप ब्रह्मांड का यही कारण रूप है, सर्वकाल निर्विकार है किन्तु गुण करके अन्य प्रतीत होता है, जैसे अक्षरों विषें सन्धि, परन्तु असङ्ग से, अ तथा सन्धि एक हैं, जैसे घट के अभाव में घटाकाश महाकाश एक है। वही सन्धि स्वरूप, जीव ब्रह्म, धर्म मोक्ष, ज्ञान भक्ति की एकता है, जैसे ब्रह्मांड के अभाव में अक्षयवट और ब्रह्म की स्थिति, परन्तु विवेक का सिद्धान्त अनुभव के योग्य है, अर्थात नाम रूप से रहित अक्षयवट और ब्रह्म का सिद्धान्त एक है, जैसे बोध मात्र तुरिया, सिद्धान्त तुरिया तीत है। इसी को समानता, विषमता कहा जाता है, अर्थात जहाँ आत्मा अनात्मा परात्मा—तीन भेद हैं, जैसे घटाकाश

प्रति बिम्बाकाश महाकाश है, वहाँ दो के अभाव में एक शेष है उसे विषमता रूप निर्वाण कहा जाता है। परंतु कार्य ही बंधन यही अनात्मा है, इस अनात्मा के अभाव में आत्मा परात्मा की एकता वही समानता रूप निर्वाण है। अतः अपने आत्मा में सावधान होना श्रेय है, जैसे अपने गुरु के प्रति सर्वस्व सिद्ध होने से गुरु के गुरु प्रति जाना नहीं बनता है। इसी स्वरूप ज्ञान को सबों के कल्याण हेतु ब्रह्माजी निरधारित किये हैं। अर्थात् यज्ञादिक कर्मों को उपदेश करके विचार किये—कर्म ही बंधन हम इसी का विस्तार किये हैं, अतः निर्बंधन रूप ज्ञान को सिद्ध किये। इसी को सबों के कल्याण हेतु शिवजी भी यत्न शिद्ध से अपने ललाट में, धारण किये, शिव स्वरूप चिन्ह है इससे सो सबों के प्रति सिद्ध है जैसे ओम्कार के ललाट में; उसी के ऊपर स्त्रियों करके बिन्दु-पुरुषों करके तिलक होता है, उसका मर्म जानने से जल ही का तिलक शोभा है— जैसे कुब्जा द्वारा कृष्ण के ललाट में, निश्चय बिना जड़ता लिपे जड़ता का लेपन है— जैसे कुब्जा द्वारा कंश के ललाट में। इसी का भावार्थ गीता में स्पष्ट है, सर्वाणींद्रिय कर्माणि प्राण कर्माणि चापरे, आत्म संयम योगाग्नौ जुह्वति ज्ञान दीपिते। अर्थात् इसे निश्चय करना यही संयम है-- समानता रूप की स्थिति वह योगाग्नि है— विषमता रूप की स्थिति वह ज्ञान दीप्ति है जो ब्रह्मा शिव दोनों का सिद्धान्त है, इन्द्रिय प्राण मन इत्यादि सबों का

कर्म आत्मा के प्रति हवन है। तथा स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवोः, प्राणापानौ समौ कृत्वा नाशाभ्यंतर चारिणौ। अर्थात्, शब्द स्पर्श रूप रसगंधादि विषयों को त्याग कर मुख्य नाशिका नेत्र जो त्रिकुटी है—इसके ऊपर भौंहों के मध्य नेत्र करके अन्यत्र से रहित—नाशिका के भीतर जो प्राण अपान संचार करते हैं इनको शम करे। नाशिका का अग्र वही भौंहौं ललाट दोनों स्पष्ट है। इसी को और भी दृढ़ किया जाता है, ललाट में आज्ञा चक्र जो दो दल का है उस पर दो अक्षर "हः क्षः" क्षय अक्षय दोनों भाव से हैं, इनके अधिष्ठाता शिव शक्ति हैं। अतः दोनों को निश्चय करना समानता सो अक्षय है किन्तु एक को निश्चय करना सो विषमता रूप क्षय है, इसी विषमता को तुरीयातीत तथा विदेह कहा जाता है, इसी विदेह मुक्ति में अहं त्वं- दूर समीप-सत असत- उदय अस्त- यह चारों भेद नहीं बनता है, अर्थात् अहं त्वं यही द्वैत है, इस अहं के अभाव में एक जो शेष है उसे दूर अथवा समीप इत्यादि बनाने को अन्य नहीं है। जैसे ब्रह्म के सिवाय अन्य मिथ्या है तब भी अद्वैत है यदि सब ब्रह्म है तब भी अद्वैत है। अर्थात् कर्म का रूप प्राण चिन्ता जिस करके योगाग्नि और ज्ञान का रूप आत्म चिन्ता जिस करके ज्ञान-दीप्ति, दोनों का सिद्धांत एक है, यद्यपि विषमता से पृथक—समानता से एकत्र- जैसे रावण से पृथक हनुमान से एकत्र, परंतु बंधन जो कार्य है उसके अभाव में एक रूप

सिद्ध है, मानो इसी के बोध निमित्त च श ज्ञ है, अर्थात् च के प्रति श मानो दोनो हाथ जोड़ कर खड़ा है—जैसे रावण के प्रति विभीषण कि अपना स्वभाव त्याग कर ज्ञ से एकता करो, न मानने से श उस ज्ञ से एकता कर लिया, यही जड़ता रहित संधि स्वरूप की एकता छठवाँ निर्वाण है जैसे "५" ।

अब यहाँ गंगा जमुना सरस्वती—कर्म ज्ञान भक्ति इन त्रिवेणियों का आदि मध्य अन्त अनुभव के योग्य है । अर्थात् कर्म के आदि में एक कार्य के निश्चय बिना अभिष्ट से क्या करूँ कहाँ चलूँ कौन कार्य करूँ विचित्र अनुभूत है, इस कर्म के मध्यावस्था में एक कार्य का दृढ़ संकल्प होता है, इसके अन्तावस्था में उस कार्य में आसक्त, जैसे जमुना का जन्मतरु आदि—मध्य अक्षयवट का स्थान—अन्त आद्य पद । वैसे ज्ञान के आदि में मुक्त होऊँ यह अनुभूत होता है, इसके मध्यावस्था में कर्म को अस्त करना यह निश्चित होता है, इसकअन्तावस्था में पंचभूत सहित इन्द्रियादिक कर्म सब असत प्रतीत होता है जैसे तत्त्व विचार से जगत मिथ्या । तथा सरस्वती का आदि अक्षयवट यहाँ उदय होते ही जमुना आच्छादन कर लीं, जैसे मुक्त होऊँ यह स्वधर्म से उदय होते ही क्या करूँ कहाँ चलूँ यह कर्म आच्छादन कर लेता है, यही कर्म ज्ञान का विरोध है जैसे जमुना सरस्वती का, जहाँ भगीरथ द्वारा गंगा आकर अक्षयवट के स्थान यत्न में तत्पर हो दोनों का विरोध शांत करके एकता कीं, जैसे विचार

द्वारा भक्ति स्वधर्म के स्थान यत्न में तत्पर हो कर्म ज्ञान का विरोध शांत करके एकता करती है । अर्थात् भक्ति का आदि निश्काम इस करके कर्म का रहना न रहना समान है, वैसे भक्ति के मध्यावस्था में हरि विषें कर्म समर्पण से कर्ता अकर्ता की समानता से दोनों का विरोध शांत है, वैसे भक्ति के अन्तावस्था में आत्म निवेदन से दोनों का विरोध शांत है जिससे तीनों की एकता सिद्ध है । यद्यपि जमुना सरस्वती के अयुक्त से गंगा अज्ञान रूप हैं—जैसे कर्म ज्ञान के अयुक्त से भक्ति अज्ञान रूप है और दोनों के युक्त से दोनों विज्ञान रूप हैं, तथा आदि में पृथक मध्य में पृथक अन्त भी पृथक, जैसे गंगा का आदि विराट का चरण—मध्य अक्षयवट का स्थान—अन्त समुद्र के प्रति, तथा सरस्वती का आदि अक्षयवट—मध्य शिवपुरी—अन्त कपिलदेव के स्थान, जैसे कर्म का अन्तिम ब्राह्म पद-ज्ञान का अन्तिम विदेह—भक्ति का अन्तिम हरि से समानता, परन्तु आत्म स्वरूप के निश्चय से तीनों का सिद्धांत एक है पृथक हों अथवा एकत्र, जैसे हम हमार अज्ञान—न किसी का मैं न कोई हमारा सो ज्ञान—हरि का मैं हरि मेरे सो विज्ञान, परन्तु अनन्य के बोध से तीनों का सिद्धांत एक है। जैसे तुम्हारे चार प्रश्नों का समाधान हुआ अब जो कहना हो उसे कहो ।

प्रश्न ३—हे गुरुजी यद्यपि गंगा उस जमुना को अस्त कीं—वैसे निश्काम भी सकाम को सो कुछ दूर में,

परन्तु जैसे वाल्मीक की इच्छा सो अनिच्छा और वलि का अहं सो अनहं होते ही जड़ता का स्वभाव अस्त है—वैसे आप का समाधान है, अतः सत्य दया दान तप—चारों धर्म के अङ्ग—इसमें आप क्या कहते हैं, तथा तत्त्व विचार से जगत कैसे मिथ्या है इसे भी कहिये।

उत्तर—हे प्रिय धर्म रूप आत्मा जो अगुण करके अनङ्ग है उसका अङ्ग कैसे कौन होता है, यद्यपि गुण रूप शरीर भार्या के समान प्रतीत है जैसे देह विषे वस्त्र, परन्तु सत जो आत्मा है उसे सत्य मानना और असत जो प्रपंच है इसे मिथ्या जानना वही धर्म और धर्मात्मा है, किन्तु इसे उलटा करना वही अधर्म और अधर्मी है, मानो इसी के बोध निमित्त अधर्म की भार्या मिथ्या है। अतः इस धर्म के निश्चय में अचल रहो इस करके सुख सम्पदा सहित सुर समूह की स्थिति गुण पक्तियों की खानि असत सो शून्य सत सो अचल अनायास आकर उपस्थित होता है, इसी के बोध निमित्त मुक्त रूप से अचल अक्षयवट हैं वैसे ठंठ काष्ठ अनंग अनुभूत हैं--मानो तत्त्व विचार का स्वरूप हैं। अर्थात् आकाश वायु तेज जल जड़--इन्ही पाँच तत्व से नाम रूप करके ब्रह्मांड सो जड़ कर के सिद्ध है, इन्ही द्वारा आकाश रूप अन्तःकरण वायु रूप मन तेज रूप बुद्धि जल रूप चित्त जड़ रूप अहंकार है। आकाश रूप व्यान वायु सब देह में--वायु रूप प्राण हृदय में- तेज रूप समान वायु नाभि में- जल रूप

उदान वायु कंठ में जड़ रूप अपान वायु गुदा में। आकाश रूप श्रवण वायु रूप नाशिका तेज रूप नेत्र जल रूप जीभ जड़ रूप त्वचा-यह ज्ञान इन्द्रिया। आकाश रूप वाणी वायु रूप हाथ तेज रूप चरण जल रूप लिंग जड़ रूप गुदा--यह कर्म इन्द्रिया। शब्द स्पर्श रूप रस गंध--उसी पाँच से यह भी इन्द्रियों का विषय। वायु रूप परा वाणी नाभि में--तेज रूप पश्यंती वाणी हृदय में--जल रूप मध्यमा वाणी कंठ में-जड़ रूप वैखरी वाणी बाहर को। अतः जड़ कर के जड़ सो सब मिथ्या होने ही योग्य है।

प्रश्न ४—हे गुरुजी इस करके मोह का मूल नष्ट भया, परन्तु प्राण अपान कैसे शम होते हैं तथा अपान के प्रति प्राण का हवन और प्राण के प्रति अपान का हवन-तथा दोनों की गति अवरुद्ध और कैसे प्राण के प्रति प्राण का हवन है, इसे भी कहिये।

उत्तर—नाशिका का दाहिना छिद्र बंद से बायें अपान के स्थान प्राण भी है- जैसे सब में रमण करने हार राम उस रावण में भी हैं गुप्त रूप से। यदि बायाँ छिद्र बन्द हो वहाँ भी दाहिने प्राण के स्थान अपान भी है- जैसे राम विषें रावण गुप्त रूप से। अतः हवन और शम दोनों सिद्ध हैं। परन्तु जैसे यत्न विनो निरंतर शम और हवन होता रहता है इसे भी अनुभव करने योग्य है, अर्थात्, चेष्टा बिना शांत रूप से प्राण हृदय में सत्त्व गुण से हैं जैसे हरि, वैसे चित्त भी

है जैसे हरि के प्रति थी। चेष्टा होवे ही नाभि में अपान को उदय करके स्थित होता है, मानो नाभि में अपान- हृदय में प्राण-दोनों की स्थिरता वही सन्धि काल प्रथम का कुंभक है जो अवरुद्ध गति। ज्योहीं प्राण ऊपर अपने ललाट स्थान में जाता-ज्योहीं अपान भी नीचे अपने गुदा स्थान में जाता है, वहाँ प्राण अपने अस्त होने के प्रथम कठ स्थान में अपान को उदय कर देता है वैसे नीचे अपान भी अपने अस्त होने के प्रथम लिंग स्थान में प्राण को उदय कर देता है, नीचे भी दोनों की स्थिरता-ऊपर भी दोनों की स्थिरता अवरुद्ध गति सन्धि काल है। ज्योहीं प्राण लिंग स्थान से हृदय स्थान में जाता-त्योहीं अपान भी कंठ स्थान से नाभि विषें स्थित होता है, यहाँ भी प्रथम की भाँति दोनों की स्थिरता अवरुद्ध गति सन्धि काल यही चौथा कुंभक है, अर्थात् एक ऊपर एक नीचे दो मध्य में। नाभि स्थान से अपान जब प्राण के स्थान हृदय में जाता है सो कैसे प्रतीत है जैसे अमावस्या को चन्द्रमा सूर्य से एकता करते हैं, यहीं प्राण विषें प्राण का हवन बनता है, अर्थात् गुण रहित सन्धि प्राणेश्वर है जैसे गुण रहित हरि, यह सन्धि स्वरूप है, जैसे गुण रुप प्राण वही गुण रहित अप्राण है, चेष्टा से भ्रमण चेष्टा बिना शांत है, गुण बिना अचल है ऐसे गुण करके पूरक कुंभक रेचक भिन्न भिन्न हैं किन्तु गुण रहित सन्धि के प्राप्त निर्वाण रूप से समान हैं। प्राण अपान

का उदय अस्त वही आठ प्राणायाम है, चार प्राण गति से चार अपान गति से। ललाट में प्राण अस्त—कंठ में अपान उदय—गुदा में अपान अस्त—लिंग स्थान में प्राण उदय-हृदय में प्राण उदय-नाभि में अपान अस्त-नाभि में अपान उदय-हृदय में प्राण अस्त। एक के प्रति एक का हवन-दोनों के प्रति दोनों शम है। अर्थात् अपाने जुह्वति प्राणं प्राणे पानं तथा परे, प्राणापान गति रुद्धा प्राणायाम परायणा। अपरे नियता हाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति। अयत्न से उदय अस्त हैं और यत्न से उदय सो अस्त वर्जित और अस्त सो उदय से वर्जित होता है। षट चक्र के अन्तर्गत आठो प्राणायाम हैं। प्राण अपान की गमन शीलता वही रेचक पूरक है। अर्थात् हृदय से नाभि में प्राण का पूरक-नाभि से गुदा में अपान को पूरक-गुदा से लिंग स्थान में अपान का रेचक-लिंग स्थान से हृदय में प्राण का रेचक—हृदय से ललाट में प्राण का रेचक—ललाट से कंठ में प्राण का पूरक—कंठ से नाभि में अपान का पूरक—नाभि से हृदय में अपान का रेचक है। दो रेचक दो पूरक प्राण का और दो रेचक दो पूरक अपान का है। निम्न गति पूरक—उर्ध्व गति रेचक अनुभव के योग्य है। तीन प्राण का चक्र उसका दल कमल-तीन अपान का चक्र उसका दल कुन्द-प्राण सूर्य रूप—अपान चन्द्रमा रूप है परस्पर अपने दल को विकसित उसके दल को संकुचित करते रहते हैं प्राण के चक्र का दल नीचे नाल ऊपर है जिससे यह अपने दल को उठाते हुए ऊपर को जाता

है—अपान के चक्र का दल ऊपर नाल नीचे है जिससे यह यह अपने दल को उठाते हुए नीचे को जाता है। लिंग स्थान हृदय स्थान ललाट स्थान यह तीन प्राण का चक्र है, गुदा स्थान-नाभि स्थान कंठ स्थान यह तीन अपान का चक्र है। गुदा स्थान में मूलाधार चक्र चार दलका है—लिंग स्थान में स्वाधिष्ठान चक्र छव दल का है—नाभि में मणि पूरक चक्र दश दल का हृदय में अनाहत चक्र बारह दल का—कंठ में विशुद्ध चक्र सोलह दल का ललाट में आज्ञा चक्र दो दल का है। इन पचास दलों पर पचास अक्षर हैं शेष दो अक्षर "अ और ह" मानो श्री हरि तथा संधि स्वरूप के स्वभाव से हैं। अर्थात् सहस्र मुख से शेष नाग-सहस्र दल से ब्रंह्म रंध्र-चित्त प्राण के एकता से सहस्रों की ब्रंह्म रूपता होती रहती है—जैसे श्री हरि के एकता से। यद्यपि' श्री करके हरि और हरि करके श्री-तथा चित्त गति से प्राण और प्राण गति से चित्त सिद्ध हैं, परन्तु जो ऊपर जाता वही नीचे को—जैसे प्राण ऊपर को वही अपान होकर नीचे को मानो युक्त सो अयुक्त और अयुक्त सो युक्त होता है—दोनों से रहित शांत पद है। जैसे गुण करके सातो में भेद गुण रहित से अभेद है, सातो महा पवित्र -जैसे सात महर्षि-देखने में भिन्न-सिद्धांत एक- जिससे सातो समान हैं।

प्रश्न ५—हे गुरुजी इस करके महान भ्रम नष्ट भया-परन्तु अर्ध रेचक पूरक-तथा आभ्यंतर का तथा बाहर

का कैसे है कृपा सहित इसे भी कहिये।

उत्तर—हे प्रिय हृदय से ललाट में और ललाट से हृदय में-हृदय से लिंग स्थान और लिंग स्थान से हृदय में यह प्राण का अर्ध रेचक पूरक है। नाभि से कंठ में और कंठ से नाभि में-नाभि से गुदा में और गुदा से नाभि में यह अपान का अर्ध रेचक पूरक है। गुदा के नीचे से नीचे जाने में अपान समर्थ है वही अपान के बाहर का पूरक है ललाट के ऊपर से ऊपर प्राण जाने में समर्थ है वही प्राण के बाहर का रेचक है। कंठ स्थान के ऊपर अपान का जाना वर्जित है, उसके ऊपर छठां प्राण का स्थान है। लिंग स्थान के नीचे प्राण का जाना वर्जित है, उसके नीचे अपान का चक्र स्थान है। इसी का महा पंडित अहिरावण जो राम लक्ष्मण को अपान के रेचक द्वारा ऊपर आकाश गर्त में ले गया और प्राण के पूरक से नीचे पाताल गर्त में ले गया। हनुमान के श्रम से राम असमर्थ-मन के श्रम से साधक असमर्थ, हनुमान के श्रम रहित से राम समर्थ-मन के श्रम रहित से साधक समर्थ कुंभक के इस पार से उस पार प्राण अपान का आना जाना वही दोनों के आभ्यंतर का रेचक पूरक है। बायें से अपान का निरोध होकर दाहिने से रेचक यथार्थ है किन्तु दाहिने से निरोध बायें रेचक वर्जित है। अतः जिस करके आठो स्थान में प्राण अपान उदय अस्त होते रहते हैं वही गुण रहित संधि चिदात्मा है वही योगियों का प्राण प्रद निर्मल आत्मा है उसी

की उपासना सबों से सिद्ध है, उसमें तुम भी सावधान होकर आत्मपरायण होओ।

प्र० ६–हे गुरु जी ऊपर के चक्र से नीचे के चक्र में जाना सो पूरक है प्राण का अथवा अपान का इसे समझ लिया, परन्तु पाचवें चक्र के ऊपर अपान और दूसरे चक्र के नीचे प्राण कैसे जाते होंगे इसे भी कहिये।

उत्तर–अपने स्थान से अन्यत्र दोनों का आना जाना नहीं बनता है, अतः दूसरे चक्र से प्राण रेचक द्वारा ऊपर जाके अपान का रूपधारण करके नीचे जाता है, वैसे अपान भी पाचवें चक्र से नीचे जाके प्राण का रूपधारण करके ऊपर जाता है, जिससे आकाशचारी सिद्ध ऊपर जाकर नीचे गिरते हैं, न कि अन्य स्थान के समान तथा स्वभाविक पथिक के समान, किन्तु घूम कर दोनों आने जाने में समर्थ हैं। इसी का नाम योगयुक्ति बिना कुयोग बन जात है। जैसे युक्ति बिना गृद्धसंपाती सो पंखहीन भया और वही उपदेशक भया, अर्थात हे वानर गण पृथ्वी के ऊपर आकाश के प्रथम श्रेणी में कबूतर ऐसे पक्षी जाने में समर्थ हैं उसके ऊपर नहीं दूसरे श्रेणी मे काक ऐसे पक्षी, तीसरे में क्रौंच तथा बटेर ऐसे, चौथे मे बाज ऐसे, पाचवें में हम जैसे गृद्धों की जात, छठवें में हंसों की जात जहाँ सूर्यरूप विवेक का स्थान है, सातवें में गरुड़ ऐसे सुभट जो कर्ता अकर्ता के समानता से सिद्ध है, यद्यपि पांच जड़ता रूप छठवां जड़ता से रहित और सातवां

दोनों करके है, परन्तु सातो स्थान जड़ प्रकृति है जिससे प्राण की अन्तिम नाड़ी शेष का रूप इसी के अतर्गत है इसी के बोध निमित्त विराट जी के दो चरण में नीचे से ऊपर तक सिद्ध है, किन्तु जड़ता रहित आठवाँ है जैसे पंच बाण से रहित छठवाँ निर्वाण है, इसी पांच करके नीचे से ऊपर तक है जिससे गुण करके भेद गुण रहित से सर्वत्र समान है।

प्र०७-हे गुरु जी आप के युक्ति द्वारा वाक्य को सूर्योदय के समान प्रथम से निश्चित किया हूँ। अतः यद्यपि सो आत्मा रूप धर्म ठुंठ काष्ठ के समान अनंग है परन्तु जैसे यत्न युक्ति से एकता होती है वैसे सत्य दया दान तप से कैसे होती है इसे कहिये।

उत्तर-तुम्हारे समान बुद्धि आत्म स्वरूप को निश्चय करती है, अन्यथा से अन्यत्र भटकती है, उसे प्रतीत होता कि हम तथा जीव कहीं आते जाते हैं, यही महा अज्ञान उन्हें अभिष्ट कियाहै, यदि अहं सो मिथ्या और जीव सो अचल अनुभूत हो तब उनमें अज्ञान कहाँ है किन्तु अज्ञान ही आता जाता है उसी का नाम भावना कल्पना इत्यादि है, यदि ऐसे ही निश्चित करो तब भी मिथ्या को मिथ्या जानने से सत्य सो सत्य है, जैसे अनेक जन्म भया अज्ञान से जीव बंध है उसे मुक्त करने का निश्चय होना वही महान दया है न कि अन्यथा अन्य विषें भी दया है जो महात्मावों करके प्रसिद्ध है वही आत्मघाती है, वही अधर्म है किन्तु उस विषें दया सो धर्मात्मा है वही सर्वस्व का करता है। आत्मा तथा हरि विषें सर्वस्व को समर्पण करना

वही महादान है इस बिना कुदान बन जाता है, जैसे देह और आत्मा की एकता से अज्ञान बन जाता है किन्तु देह के संग से असंग करना वही महा तप है जिससे ज्ञान के समान अन्य तप इत्यादि नहीं है, अतः सो ज्ञान रूप असंग ठुंठ काष्ठ के समान होने ही योग्य है, वैसे तुम भी शांत रूप से स्थित रहो, यही एकता है, परन्तु जड़ सो चेतन नहीं और चेतन सो जड़ नहीं उसी का नाम सिद्धान्त है।

प्र०८-आप के कृपा से अंधकार नष्ट भया परन्तु अज्ञान गति अपान गति की एकता और ज्ञान गति प्राण गति की एकता कैसे है।

उत्तर-ऊपर कपाल स्थान में जहाँ से अपान वायु गिरने को उद्यत है वही अज्ञान भूमिका का नाम बीज जाग्रत है, वहाँ से नीचे ललाट स्थान में अपान के साथ अज्ञान भूमिका का नाम जाग्रत है, वहाँ से नीचे कंठ स्थान में तीसरी का नाम महा जाग्रत है, उसके नीचे हृदय में चौथी का नाम स्वप्न है, उसके नीचे नाभि में पाचवीं का नाम स्वप्न जाग्रत है, उसके नीचे लिंग स्थान में छठवीं का नाम जाग्रत स्वप्न है,उसके नीचेगुदा स्थान में सातवीं का नाम सुषुप्ति वहीं अपान और अज्ञान भूमिका अंत है। इसी गुदा स्थान से ज्ञान भूमिका और प्राण गति ऊपर को चलते हैं, यहीं प्रथम की ज्ञान भूमिका शुभेच्छा है, यहीं प्राण का बीज प्रद है जैसे अंकुर, इसके ऊपर लिंग स्थान में प्राण के साथ

दूसरी ज्ञान भूमिका विचारणा है, इसके ऊपर नाभि में तीसरी तनु मान्सा है,इसके ऊपर हृदय में चौथी सत्त्वापत्ति है, इसके ऊपर कंठ में पाचवीं असंसक्त मानसा है, इसके ऊपर ललाट में छठीं पदार्थ भावनी है, इसके ऊपर कपाल स्थान में सातवीं तुरीया है, यही सातो स्थान दोनों पक्ष के आने जाने का मार्ग हैं।

प्र०६—हे गुरु जी अपान गति का नाम गुण समझ लिया परन्तु चक्र और ज्ञान गति का गुण स्वभाव कहिये।

उत्तर- हे शिष्य जैसे सबों का मूल भी मानों वैसे मूलाधार है, अशुभ का अस्त शुभ का उदय इस करके शुभेच्छा है। दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान मानो अपना आधार है, सत असत के विचार का ग्रहण इस करके विचारणा है। तीसरा चक्र मानों मणियों का कोष है इससे मणि पूरक है, तन मन से एकता करना इससे तनु मान्शा है। चौथा चक्र अना हत मानो मरण से रहित है, सत्त्व गुण के स्थिति से चौथी सत्त्वा पत्ति है पाचवाँ चक्र विशुद्ध मानो विशेष शुद्ध है, असत से असंग सत से संग इस करके असंसक्त मान्शा है। छठवां चक्र आज्ञा मानो अज्ञानका अस्त ज्ञानका उदय है, इसी कारण छठवीं पदार्थ भावनी है। सातवां चक्र ब्रह्म का भवन इससे ब्रह्म रंध्र है, इसी कारण सातवीं तुरीया है।

प्र० १०- आप के कृपा से इसे भी समझ लिया

परन्तु यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि यह आठ कैसे कहाँ हैं इनका भी गुण स्वभाव कहिये।

उत्तर—मूलाधार में अज्ञान भूमिका अस्त ज्ञान भूमिका उदय - जैसे अशुभ को यमराज शुभ को धर्मराज इस करके प्रथम वहाँ यम है। दूसरे चक्र में नियम मानों विचार के नियम से रहना। तीसरे चक्र में आसन सो यद्यपि शिव से चौरासी आसन सिद्ध - प्रत्येक आसन से लच लच योनियों का निर्माण है परन्तु मन करके समता का आसन प्रधान है, तिस पर भी प्राण के युक्ति से अपान यहाँ कुण्डलिनी के स्थान उपस्थित होता है अतः तीसरे स्थान आसन है। चौथे चक्र में प्राण का निवास है वैसे चेष्टा बिना प्राणायाम भी करने योग्य है, प्राण का प्रयोग हो अथवा अपान का जैसे युद्धमें राम का प्रयोग अथवा लक्ष्मण का परन्तु हनुमानके समान मन की स्थिति दोनों के प्रति समान है। पाचवें चक्र में प्रत्याहार सो सर्वत्र से मन निवारण किन्तु आत्म चिन्ता प्राण चिन्ता में मन रहे जैसे पाचवीं ज्ञान भूमिका से यहां असत का असङ्ग सत का संग है। छठवें चक्र में धारणा सो पदार्थभावनी के समान आत्मा को धारण करना, अर्थात् ज्ञान गति प्राण गति में एक ही सो है किन्तु भ्रम से गुण रहित सन्धि में गुण रहित हरि में भेद होता है जैसे यहाँ भ्रम है शिव शक्ति का मेल नहीं बनता है,जिसे तुम ऐसे क्यों छठें चक्र में सन्धि स्वरूप को एक करते हैं यहीं

ललाट स्थान है। सातवें चक्र में ध्यान-सो जैसे अहं और ब्रह्म के एकता में द्वैत है-तथा जगत और ब्रह्म के एकता में द्वैत है वैसे ध्यान और ध्याता में द्वैत है, किन्तु आठवां समाधि विषें मृतक तथा मिथ्या के समान द्वैत का अभाव है जिससे ध्यान और तुरीया एक स्वभाव से और समाधि तथा तुरियातीत एक स्वभाव से हैं, इसी के बोध से समाधि और व्यवहार नीचे तथा ऊपर सर्वत्र समान है।

॥ प्र० ११-हे गुरु जी इस करके सुगम से समझ गया-परन्तु सात चक्रों के प्रति सात समुद्र तथा अधिष्ठाता किसके कौन हैं।

॥ उत्तर-मानो समुद्र को तर जाय उसे शूर नहीं मानता हूं-किन्तु इन चक्रों को बुद्धि से तर जाय सो शूरवीर है, जैसे संसार को पराजित करे सो शूर नहीं किन्तु अहं को अनहं करे सो महावीर है। वैसे अधिष्ठाता सर्वत्र हैं परन्तु मुख्य अनुभव के योग्य हैं। मूलाधार में ब्रह्मा चार वेद तथा गणेश-मानो चार दल इसी कारण से वहां चार समुद्र है। दूसरा चक्र छव दल का-षटमुख षटशास्त्र षटविचार वहां क्षीर सागर है। तीसरा दस दल का वहां चेतन शक्ति मानो दशो दिशा के ऐश्वर्य से सम्पन्न है जिससे मणि पूरक इसका नाम है वहीं दधि समुद्र है। चौथा चक्र द्वादश दल का वहां सूर्य और हरि हैं जिससे द्वादश कला की स्थिति है वहां मधु समुद्र है। पांचवां चक्र षोडश दल का-मानो अज्ञान से

सोलह विकार वहीं से उदय हैं वहीं मद्य समुद्र है जिससे तीसरी अज्ञान भूमिका महा जाग्रत है—जो पांचवीं ज्ञान भूमिका से शांत होते हैं, जिससे इसका नाम विशुद्ध है. यहीं चन्द्रमा के पूर्ण कला की स्थिति है। छठवां चक्र दो दल का इसके अधिष्ठाता शिव शक्ति हैं वहीं ईषरस का समुद्र और [illegible] स्वः से समानता विषमता दोनों भाव सिद्ध है। सातवाँ सहस्र दल का वहां स्वच्छ जल समुद्र है यहाँ जैसे ब्रह्म रूपता होती रहती है वैसे अपान गति गिरती रहती है, अर्थात् अहंकार सहित चित्त प्राण चक्र इत्यादि सब प्रकांत स्वरूप जड़ हैं सो जड़ ही ब्रह्म का भौन हैं जैसे समुद्र का जड़ रूप तट निवास है, जो सबको अनुभूत है गृह के अभाव में महेश्वर को ठौर कहाँ है, वहीं आठवां समाधि महेश्वर का रूप है, अतः उस गृह शून्य महेश्वर को सर्वत्र समान होने ही योग्य है।

❀ प्र० १२–हे गुरुजी इस करके अपर जो अपार भ्रम है सो सब नष्ट भया—परन्तु कहाँ विन्ध्यवासिनी और कहाँ कुण्डलिनी शक्ति इन दोनों की एकता भी कहिए।

❀ उत्तर—हे प्रिय प्रथम श्री के समान कामधेनु को हरि के समान कल्प वृक्ष को—नंदिनी गौ के समान विन्ध्यवासिनी और कुण्डलिनी को—दिलीप के समान साधक को निश्चित करने योग्य है। अर्थात् जहां श्री की उपासना विस्मरण है जैसे कामधेनु का विस्मरण दिलीप को वहाँ

विन्ध्यवासिनी और कुण्डलिनी के प्रसन्नता से सर्वस्व की प्राप्ति होती है जैसे नंदिनी के प्रसन्नता से दिलीप को। योगियों का आधार प्राणप्रद दोनों हैं जिससे दोनों समान हैं। भेद अभेद कैसे प्रतीत है जैसे ज्ञानेन्द्रियों में तेज रूप नेत्र और कर्मेन्द्रियों में तेज रूप चरण है, हरि के नेत्र से सरजू और हरि के चरण से गङ्गा हैं, सरजू सन्यास रूप-गङ्गा साधु रूप-सन्यास अनम्र जैसे नेत्र ऊपर, साधू नम्र जैसे चरण नीचे है, सन्यास गुण रहित और साधु सत्त्व गुण से हैं, यद्यपि साधु सत्त्व गुण से प्रधान हैं परन्तु इनके अधिष्ठाता जो विष्णु भगवान हैं सो गुण अगुण के समानता से प्रधान हैं न कि केवल गुण युक्त से, इसी कारण गङ्गा गुण रहित निर्वाण को सिद्ध करके सरजू से एकता की, यहाँ दोनों समान हैं, जैसे इस करके साधु और सन्यास समान हैं, ऐसे ही विन्ध्यवासिनी और कुण्डलिनी समान हैं, साधक को दोनों से आठ नव सुख प्रद है, अर्थात् यत्न विषें आठ गुण से अष्ट सिद्धी और अयत्न विषें नव गुण से नवनिधि, सर्वस्व की प्राप्ति दोनों से है अर्थात् मुक्ति भुक्ति। विन्ध्य-वासिनी के स्थान साधु रूप गङ्गा का वेग प्रबल-कुण्डलिनी के स्थान गङ्गा रूप साधु का वेग प्रबल है, नीचे तथा ऊपर को मुख करने में दोनों महा चतुर हैं। अर्थात् जिस समय योगमाया कंश के हाथ में है सो कन्या रूप कुछ स्थूल है, जैसे दूसरे चक्र को प्राण, कंश के हाथ से छूटते समय कुछ

सूक्ष्म हो गई, जैसे दूसरे से चौथे चक्रमें प्राण, इसके पश्चात कुछदूर में और सूक्ष्म भई, जैसे चौथे चक्र से कुछ ऊपर प्राण, चौथे स्थान को योगमाया आकाश के समान सूक्ष्म है, जैसे छठवें चक्र में प्राण आकाश रूप से प्रतीत है, आकाश तक योगमाया को चार भेद और छठें चक्र तक प्राण का चार भेद अनुभव करने योग्य है। उस आकाश से अपने स्थान विन्ध्यगिरि की ओर योगमाया चलने को उद्यत भई, जैसे छठें चक्र में प्राण अस्त होकर अपान रूप से मूलाधार की ओर चलता है, आकाश से पर्वत तक स्थूल रूप में भी चार भेद है, जैसे मूलाधार तक चार भेद अपान का भी है, पर्वत में पूर्णरूप उसका-मूलाधार में पूर्णरूप इसका भी है, जिससे साधक को पर्वत के समान अचल की सिद्धाई मूलाधार में होती है, जैसे सूक्ष्मता छठें चक्र में। प्राण अपान का अधार दोनों हैं, चार कार्य प्राण गति से-चार अपान गति से है, माधी के समान धारण में दोनों समर्थ हैं, अतः साधक को दोनों की समानता अनुभव के योग्य है।

प्र०१२—हे गुरु जी यह भी महान भ्रम नष्ट भया परन्तु प्राणायाम द्वारा कुण्डलिनी कैसे जाग्रत है।

उत्तर-प्रथम ब्रह्मांड के समान शरीर को और भूलोक के समान नाभि को निश्चित करने योग्य है। अर्थात् जैसे भूलोक से सात लोक ऊपर और सात नीचे है वैसे नाभि स्थान से सात ऊपर सात नीचे है। जैसे विराट

भगवान के दोनो चरणके समान प्राण अपान, परंतु जैसे कारण वहाँ विराट के चरण का कारण बलि हैं वैसे प्राण अपान का कुण्डलिनी है, दशो दिशा के ऐश्वर्य से सम्पन्न बलि-वैसे कुण्डलिनी है, भूलोक मे बलि-नाभि मे कुण्डलिनी जिससे तीसरा चक्र दशदल का है, सिंहासन पर बलि वैसे सोभी है, सिंहासन पर नीचे को मुख किये बलि हैं-वैसे नीचे को मुख किये सो भी है, जहाँ वामन जी के समन नीचे दूसरे चक्र मे खड़ा होकर प्राण निवेदन करता है। मानो दान का कुश लेते ही वामन जी विराट रूप से हैं, वैसे प्राण भी स्वाँसगति सगर्भ कुम्भक द्वारा चौथे मे जाकर शीघ्रकुण्डलिनी के स्थान अपान रूप से उदय है, कुण्डलिनी वहाँ समझती जो दूसरे चक्र मे था वही आ उपस्थित है, शीघ्र मुख को ऊपर करती यही उसका जागृत होना है पुनः मुख को नीचे नहीं करती है। वहाँ अपान को देख वैसे लज्जित है जैसे विराट को देख बलि, सच्चित्व भाव को देख जैसे माया, यही वामन के समान प्राण की युक्ति है जिससे सामर्थ रूप से ऊपर होती है जड़ता मूलाधार में, जैसे जीत जाने पर बलि पाताल में। यद्यपि बलि के सर्वस्व का कारण वामन हैं जैसे प्राण, परन्तु बलि की प्रीति वामन से है, वैसे कुण्डलिनी की प्रीति प्राण से है जड़ता रहित होने पर जैसे बलि वामन ज्ञान रूप से समान हैं वैसे कुण्डलिनी और प्राण ज्ञान रूप से समान हैं। बलि को बाँधने निमित्त गरुड़ हैं-वैसे मन का निश्चय गरुड़

है। वामन के युक्ति से विराट द्वारा बलि का सर्वस्व इन्द्र के प्रति है—वैसे प्राण के युक्ति से अपान द्वारा कुण्डलिनी का सर्वस्व अहंकार के प्रति है। वामन का भ्राता इन्द्र—वैसे प्राण का अहंकार है। यहाँ साधक इस कार्य के सिद्ध से उसी कुम्भक द्वारा चौथे चक्र में आकर प्राण के रेचक से छठवें चक्र में ऋषि स्वरूप आत्मा के प्रति निर्द्वन्द होता है, जैसे विराट के पश्चात् वामन भी हरि रूप से सिद्ध हैं। इसे यत्न कहा जाता—अर्थात् प्राण ऊपर को अपान नीचे को सदैव रहते हैं सो दोनों अयत्न है, किन्तु प्राण नीचे को अपान ऊपर को हों सो दोनों यत्न का रूप है, जैसे प्राण और कुण्डलिनी के सन्मुख में यत्न और विमुख में अयत्न है, जैसे नदी और वायु के सन्मुख में जल निर्मल और विमुख में मलिन अनुभूत है। अर्थात्, वायु और प्राण योग रूप हैं—नदी और कुण्डलिनी गुण रूप हैं, यद्यपि प्रकृति रूप दोनों यत्न है जैसे दोनों पक्ष का आत्मा एक ही सिद्ध है किन्तु प्रकृति ही के गुण रूप में भेद है जिससे रचना की विचित्रता है, जैसे प्राण यही अपान और अपान वही प्राण, यथा स्त्री वही पुरुष और पुरुष वही स्त्री, परन्तु जब तक अपने स्थान है तब तक अन्यथा असमर्थ है जैसे सर्प के एकता बिना सूक्ष्मता स्थूलता असमर्थ है, इस करके सब सुगम है जैसे श्वास के स्थिरता से, वैसे प्राण द्वारा जागृत और अपान से असमर्थ है, मानो शीत से शीत का प्रभाव नहीं है। अतः सो अपान बायें से आकर दूसरे चक्र में प्राण रूप से

जागृत करता है, इसी घुमाव के कारण प्राण को नीचे दूसरे चक्र में नियुक्त करना अति सुगम है, यद्यपि चौथा और छठवाँ भी प्राण का चक्र है, परन्तु कुण्डलिनी का मुख नीचे और पीठ ऊपर है, अतः दूसरे चक्र बिना सातो स्थान असमर्थ हैं, सो जैसे इस चक्र के सिद्ध से आठो महा सिद्ध हैं वैसे उस सन्धि के निश्चय से सर्वस्व सुगम है, यद्यपि सो सन्धि सर्वत्र है परन्तु जो राजा को जीत लेता वही अधिष्ठाता है जैसे शिव, इस कारण नाशिका का अग्र वहि सन्धि स्वरूप पताका है, यहाँ मन होते ही सिद्धाई सब तृण के समान हैं।

प्र० १४—हे गुरु जी और भी प्राणायाम कितने प्रकार का है कृपा करके उसे भी कहिये।

प्रश्नो०—जैसे विराट भगवान का बायाँ पग नीचे पाताल तक–सो लौटने पर दाहिना पग ऊपर ब्रह्म धाम तक–सो भी लौटने पर बलि के प्रति दोनों पग की स्थिरता है, ऐसे ही अपान वायु बायें से पग के तलवे तक जाके पुनः प्राण वायु हो कर दाहिने से ऊपर ब्रह्म रंध्र तक जाके सो भी लौट प्रथम की भाँति सन्धि काल में दोनों की स्थिरता होती है जैसे नाशिका का दोनों छिद्र बंद से उस कुम्भक में होता है। अपानगति नीचे सो पूरक है–प्राण गति ऊपर सो रेचक है, यह बिना मिनट में आठ बार निरंतर इस प्रकार होते रहते हैं, जैसे यह बिना बलि सो इन्द्र और इन्द्र सो सुदामा–कहीं नीचे कहीं ऊपर–कहीं नीच कहीं ऊँच–कहीं

दुखी कहीं सुखी–इस प्रकार बहत्तर प्रकार–वह सहस्र बार जन्म
मरण होने पर शिव के समान आत्मरूपता को धारण
करते हैं जैसे शिव अर्धनारी स्वरूप से हैं, भ्रम समूह
नष्ट करके स्थित होते हैं, मानो अनेक चक्र में कोई एक
होते हैं ऐसे अनेक और होते हैं इसी का नाम घुड़ाक्षर न्याय
चेष्टा बिना यत्न से शांत होते हैं चेष्टा होने से प्रथम
भांति भ्रमण करते हैं इसी का नाम पुनि प्रत्यूह है। ऐसे
छत्तीस सहस्र नाड़ी में अपान और छत्तीस सहस्र नाड़ी
प्राण भ्रमण करके सन्धि द्वारा हृदय में प्राण रूप से स्थित
होता है जैसे विराट के पश्चात् वामन जी हरि रूप
स्थित होते हैं, तथा जैसे अहं ब्रह्म अनुभूत होता है। जिसको
साधु योगी जन चेष्टा से रहित हृदय में प्राण को अचल रखते
हैं। चेष्टा होते ही भ्रमण शील होता है जैसे अनेक सृष्टि
अनेक बलि अनेक वामन होते रहते हैं, मानों सबों के बोध
निमित्त तीन पग यहाँ तीन मुट्ठी यहाँ–दो पग में यहाँ सि
दो मुट्ठी में यहाँ–तीसरा पग में यहां निवास तीसरी मुट्ठी
यहां–अनुभव करने योग्य है, जैसे यह अचल का प्राण याम
एक प्रकार यह भी है।

ऐसे ही जहां कपाल स्थान में प्राण वायु अस्त होकर अपान
रूप से नीचे मूलाधार चक्र में अस्त होकर प्राण रूप से पुनः
ऊपर को अस्त है इसे भी अचल कहा जाता यह भी मिनट में
आठ बार आने जाते हैं। जैसे नासिका का दाहिना छिद्र

करके बायें से स्वांस गति नीचे मूलाधार में मन से निश्चित अर्थात मरते समय अथवा जीते समय मन के निश्चय में की स्थिरता है, उस मूलाधार में अपान का पूरक अस्त वहां स्वांस गति समक्ष कुम्भक का आश्रय है, अर्थात् नों छिद्र बंद, इस कुम्भक में मन से निश्चित कि दूसरे चक्र प्राण उदय है, स्वांस गति समक्ष रेचक का आश्रय है र्थात बायां छिद्र बंद दाहिना खुला है, इस प्राण को रेचक रा छठवें तथा सातवें में मन के निश्चय से शांत हो, अर्थात प्रथम की भांति होता रहता है, जिससे साधु योगी जन अथवा कुम्भक तथा रेचक मे सन्धि के प्रति अचल ते हैं। एक प्रकार यह।

ऐसे ही दाहिना छिद्र बंद बायें मे अपान तीसरे चक्र में स्थित हो, वहीं अथवा कुम्भक तथा नकसे ऊपर संधि विषे शांत हो, एक प्रकार यह।

से ही दाहिना बंद बायें से अपान मूलाधार विषें हो, उसी ान संधि विषें शांत हो अथवा कुम्भक तथा रेचक द्वारा ंत हो, शांत करना यह अशांत रहना अयन है परन्तु सन्धि तीनों के प्रति निश्चित करने योग्य है, एक प्रकार यह से ही दाहिना बंद-बायें अपान उसी पाचवे चक्र मे अथवा म्भक रेचक से शांत हो एक प्रकार यह।

से ही दाहिना बंद-बाये से अपान मूलधार मे स्थित हो, पूरक मे स्वांस समक्ष कुम्भक हो इसमें भी स्वांस समक्ष

अपान का रेचक पाचवें चक्र मे हो-पुनः पूरक पुनः कुम्भ
पुनः रेचक इसी प्रकार होता रहे जैसे दाहिना छिद्र
ही नकि खुला, यही चन्द्रमा की कला अपान का र
है, नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे इस करके शीतलता
चार प्राणायाम इसमे भी है दो अस्त दो उदय, अर्थात् प्र
से तीसरे मे-तीसरे से प्रथम मे, पाचवें से तीसरेमे-ती
से पाँचवें में-इसे बल कहा जाता परन्तु सन्धि स
निश्चित रहे, एक प्रकार यह।

अब यहाँ बायाँ छिद्र बंद किन्तु दाहिने से प्राण वायु
चक्र में निश्चित हो, स्वांस समझ कुम्भक का आश्रय
इसमे भी स्वांस समझ रेचक का आश्रय-इसमे भी स
समझ पुनः पूरक हो-इसी प्रकार होता रहे बायाँ
बंद ही रहे नकि खुला, यही सूर्य की कला प्राण का र
मानो कुण्डलिनी को प्रसन्न करता है, चार प्राणायाम इसमे
है दो उदय दो अस्त, अर्थात् दूसरे से चौथे मे चौथा से
में, चौथा से छठवें में छठवें से चौथा में, सन्धि का निश्
सर्वत्र रहे-एक प्रकार यह भी है।

ऐसे ही बाँया बंद दाहिने से प्राण पूरक द्वारा चौथे में-रेच
छठवें में अब यहाँ दाहिना बंद हो बायें से अपान मूल
में हो वहाँ अपान का ही रेचक पाचवें चक्र में दाहिना
ही रहे, पुनः सो अपान पाचवें से पूरक द्वारा तीसरे
यही सातवाँ द्वार जयंती का स्थान है, यहाँ से कुम्भक

चौथे में प्राणरूप से स्थित होता है जहाँ आठवाँ द्वार अपरा-
जिता का स्थान है। आठ प्राणायाम यत्नहूत इसमे भी है
स्वांस और सन्धि अर्न्तत्र अनुभव के योग्य है, एक प्रकार यह।
ऐसे ही बांया बंद दाहिने से प्राण पूरक द्वारा दूसरे चक्र मे
हो-कुम्भक द्वारा चौथे मे वहीं अथवा छठवें मे शांत हो
एक प्रकार यह।
ऐसे ही भाखिक प्राणायाम अनुभव के योग्य है, अर्थात् मुख
बंद नासिका के दोनों छिद्र से स्वांस भीतर करे, स्वास समझ
नाशिका से वाहर करे, भीतर करना पूरक—स्थिरता-कुम्भक-
बाहर करना रेचक है, एक प्रकार यह।
अथवा नासिका बंद मुख द्वारा स्वांस भीतर करे, यह पूरक
है, मुख नाशिका दोनो बंद कुम्भक है, नाशिका बंद मुख
द्वारा वाहर करे रेचक है। एक प्रकार यह।
अथवा मुख नासिका दोनो से स्वांस भीतर करे, स्वास
समझ बाहर करे जैसे समुद्र गङ्गा का जल एक साथ भाटा
ज्वार समानता होता रहता है, परन्तु जैसे ज्वार विषे
समानता और भाटा विषे समानता है, वैसे तीनों, विषे
सन्धि को निश्चित करने योग्य है, किसी एक प्राणायाम
को लव मात्र करने से मन इन्द्रियादिक स्वच्छ रहते
हैं, सृष्टि का मूल प्राण है। इसकरके श्रेय है जिसपर
भी आत्म चिन्ता प्राण चिन्ता में एक ही आधार सन्धि है,
स्वास्थ भी शुद्ध होता है बाहर का स्वच्छ वायु भीतर और

भीतर का अस्वच्छ वायु बाहर होता है, नदी अथवा तालाब तथा बगीचा के प्रति अधिकतर श्रेय है, छोटे बड़े याग सब सामान हैं जैसे ग्यारह रुद्र द्वादश कला-वैसे बारह प्रकार प्राणायाम उन सबों का सिद्धान्त एक अतः सब समान हैं।

प्रश्न १४—हे गुरु जी प्राणभिन्नआत्मा भिन्न-तिसपर भी प्राण जड़ आत्मा अजड़, अतः दोनों का सिद्धांत एक कैसे है।

प्रश्नो—जैसे अज्ञान दशा मे बलि और वामन भिन्न हैं-वही ज्ञान दशा में समान हैं, तथा अज्ञान करके कर्म का करना और न करना-प्राण का गमना गमन भिन्न हैं वही ज्ञान करके दोनो भाव समान है, जैसे राहु प्रथम भिन्न वही देवविषै समान हैं, तथा सोहं और अह अंश-कृष्ण चद्र मेघ विद्युत्-विवेक और विवेकी एकत्र हैं जैसे गुण अगुण की समानता! मानो आत्मा और प्राण इन दोनों की चिन्ता प्रथम जड़ता विषै जड़ रूप से थी-वही एकत्र हो सिद्धांत की ओर चलतीं हैं, जसे प्रथम अपान गति अज्ञान गति नीचें की ओर वहीं प्राण गति ज्ञान गति ऊपर की ओर चलतीं हैं। मानो यह दोनो उसी का रूप हैं। परन्तु जहां विषमता रूप है उस सिद्धांत के प्रति नाम रूप सूक्ष्म स्थूल जड़ अजड़ भेद अभेद कहां हैं जहाँ ध्याताध्यानधेय सहित सब त्रिभेद शांत है, सो सिद्धांत अनुभव से सिद्ध है जैसे सर्पका चरण सर्पसे निश्चित है। उसी के बोध निमित्त कहना सुनना लिखना पढ़ना सर्वत्र है। जैसे

सोहं में प्रथम सः पश्चात् अहं, अहंब्रह्म मे प्रथम अहं पश्चात् ब्रह्म है, मानो दोनों ओर जड़ता से परे है। उसे अठवाँ कहो अथवा छठवाँ इत्यादि कहो किन्तु सर्वत्र सिद्ध है। जैसे दुग्धरूप सः और जलरूप अहं इसके निमित्त-हंस गति है, अहं मिथ्या-ब्रह्म सत्य इस निमित्त संत गति है, परंतु तुम जैसे को दोनो का सिद्धांत एक है। जैसे आदि में श्रवण भक्ति-अन्त आत्मनिवेदन-किन्तु जो सिद्धांत यहाँ वही वहाँ है, ऐसे ही सृष्टि और प्रलय तथा माया और देह-बीज और वृक्ष के समान कार्यरूप एक है, इस कार्यका आधार सन्धि रूप जीव सो कारण है, इन दोनों का आधार सो सिद्धांत निरकारण है जैसे बोधमात्र "अ" इसका कारण अन्य नहीं है, सो दोनों के असंग से विषमता है और कार्य के अर्थात में दो की एकता समानता है, अतः भ्रमभय शान्त करने योग्य हैं जैसे जमुना यमराज सूर्य को देख नम्र होते हैं।

प्रश्न १६—हे गुरु जी इस करके महान भ्रम नष्ट भया और ब्रह्मांड रूप शरीर का आधार अपने आत्मा राम को समझ लिया, मानो ऊपर भी अकर्ता और नीचे भी अकर्ता किन्तु मध्य में सन्धि भंग से कर्ता अभंग से अकर्ता है, मानो सिंह रूप प्राण के ऊपर वही सवार है, अथवा से इसका नाम ग्राहक भी है, इस बिना प्राण निर्जीव है, इस करके प्राण अंश रूपता भी करता है, किंतु सत असत के निर्णय में बीज अंकुर वृक्ष तीनों कार्य रूप जड़ हैं वहाँ भी

आत्मा असङ्ग है जिससे सो मध्य में भी सदा अकर्ता है, मानो अमृत के सिंचने से तीनों भेद का जड़ जीवित है, इस बिना मृतक हैं, इस कारण अमृत रूप सामर्थ सर्वरूप है सो यद्यपि सर्वत्र है परन्तु प्राण उसका स्थान है जिससे प्राण के होते हुए और इन्द्रियां छिन्न-भिन्न होती रहती हैं, उसी के एकत्व से प्राण को पुरुष और अक्षर भी कहा जाता है किन्तु पृथक से प्राण और शरीर दोनों क्षर करके जड़ हैं, इस कारण पुरुष और अक्षर सो सन्धि रूप जीव है अतः क्षर अक्षर दोनों से परे पुरुषोत्तम करके सिद्धांत है। जिसे आप विषमता रूप सिद्ध करते हैं, मानो गृह शून्य होने पर सो महेश्वर यही है शून्य करने का सहायक इनका साथी भी विराग है जैसे राम का साथी बन्दर, जिससे दोनों पक्ष समान हैं जैसे दो एकता में समानता सो सिद्ध है, इसे भी समझ लिया। अत नासिका के अग्र संधिस्वरूप को निश्चित करता हूं। परन्तु गुण प्रवाह कैसे है कृपा सहित इसे भी कहिये।

उत्तर—हे महा प्रिय ऐसे ही अनुभव से सुगम होता है जैसे यह नवगुण प्रवाह। अर्थात् हृदय से प्राण जब नाभि में जाता है वहाँ सत्वगुण का सतोगुण है। वहाँ से मूलाधार में सतोगुण का तमोगुण है, अस्त होते ही शुद्ध तम है। वहाँ से दूसरे चक्र में तम का रजोगुण है, वहाँ से हृदय में रज का सतोगुण है, वहां से छठवें चक्र में सतोगुण का तमोगुण है अस्त होने ही शुद्ध तम है। वहाँ से पांचवें चक्रमे तम का रजो

गुण है, यहां से नाभि में रजोगुण का सतोगुण है, यहाँ से चौथे में प्रथम की भांति शुद्ध सतो गुण है। तीन भेद मध्य मे-तीन भेद आदि मे-तीन भेद अन्त मे, जैसे गंगा का सतोगुण जमुना सरस्वती मे और उन दोनों का रज तम गङ्गा विपें है, जमुना का तम सरस्वती विपें और सरस्वती का रजोगुण जमुना विपें है। छव भेद इस करके तीन भेद जमुना सरस्वती गङ्गा सहित, अतः नव गुण नव योग दोनों त्रिभेद विपें है, अर्थात, यद्यपि अयत्न विपें गुणयोग अठारह और यत्न विपें गुणयोग सोलह हैं, जैसे प्रत्येक देह मे प्रत्येक जीव, यथार्थ मे एक ही गुण रूप से देह और एक ही योग रूप से जीव सर्वत्र सिद्ध है, जैसे गुण रूप मेघ और योग रूप विद्युत-तथा गुणरूप कृष्ण और योग रूप चन्द्र है, यद्यपि मेघ बिना विद्युत और कृष्ण बिना चन्द्र की प्रतीत नहीं है जैसे शरीर बिना जीव की, परन्तु गुण के भाव अथवा अभाव इन दोनों विपें सो सिद्धांत अचल है, इसी सिद्धांत से नवोयोगेश्वर समान है न कि एक दूसरे विपें निश्चित करते हैं किन्तु अपने ही विपें सव आत्मपरायण हैं। इस करके स्वधर्म के तट गुणङ्गना कैसे प्रतीत होती है--जैसे अक्षयवट के तट गङ्गासहित त्रिभेद की एकता। इस स्वधर्म का सहायक साक्षी अध्यात्मक है अतः यही साधु का रूप धर्मात्मा है इस बिना अनात्म सो असाधु अधर्मी हो जाता है। इसी निमित्त कृष्ण इत्यादि प्रकट होते हैं जिनके शङ्ख के समान

अनात्म, चक्रके समान अध्यात्म से पृथक् होता है, इस वि
दुर्वासा के समान अपने चेष्टा का अन्यत्र दौड़ना-चक्र
समान स्वधर्म पछेद करता रहता है किन्तु अम्बरीष के सम
भक्ति के प्रति स्थिरिता होती है।

ॐ प्रश्न १७-हे गुरु जी नाभि स्थान अपान का मध्य
और हृदय स्थान प्राण का मध्य है इस करके मध्यमें तीनों मे
सतो गुण हैं, मानो जैसे मध्य अवस्था का स्वभाव है। मूला
धार मे अपान अस्त है इससे यहाँ तम है। छठवें चक्र
प्राण अस्त है इससे यह भी तम है। दूसरे चक्र मे प्रा
उदय है इससे यह रजोगुण है। पांचवें चक्र में अपान उद
है इससे यह रजोगुण है। मानो आदि अन्त अवस्था
स्वभावसे नीचे ऊपर हैं। तथा आदि सो अन्तमें और अन्त
आदि मे कैसे प्रतीत हैं जैसे दो सज्जन में दोनों का शीश दोन
के चरण मे नम्र हैं, जिसे समझ लिया, परन्तु त्रिभेद कित
हैं इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर —यद्यपि त्रिभेद सर्वत्र हैं जिससे तीन
नव करके सबों की देह है, परन्तु मुख्य अनुभव के योग्य है
अर्थात्, आदि मध्य अन्त-ब्रह्मा हरि शिव वेद शास्त्र पौराण
चन्द्रमा सूर्य अग्नि-प्राण आपान कुण्डलिनी-प्राण अपा
अहंकार-मन बुद्धि विचार-पूरक कुम्भक रेचक कर्मज्ञानभक्ति
ज्ञान अज्ञान विज्ञान-कर्म विकर्म अकर्म संकल्प विकल्प
निर्विकल्प-गङ्गा जमुना सरस्वती-ईडा पिंगला सुषुम्ना

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, भाटा ज्वार समानता, सत रज तम इत्यादि। किन्तु सिद्धांत के बोध बिना त्रिभेद के पृथक् मे कुयोग है, जैसे कर्मरूप रावण भक्तिरूप जानकी ज्ञानरूप राम, तथा मन बुद्धि विचार का रूप तीनों हैं परन्तु निर्वाण का निश्चय तीनों विषें एक है जिससे सिद्धांत का बोध सिद्ध है जैसे अगुणके प्रति सब त्रिभेद समानहैं। दो के एकता में योग है, अर्थात् कर्म ज्ञान एकत्र हों अथवा कर्म भक्ति तथा ज्ञान भक्ति हों, विरोध बिना तीनों की एकता श्रेय है जैसे आचार अनाचार विरोध बिना महाश्रेय है। अर्थात् जैसे कृष्णके प्रति युधिष्ठिर सहित पांचो समान हैं वैसे छठवां विचार के प्रति पञ्च विचार समान हैं। ऐसेही यद्यपि भीम अर्जुन एक पक्ष हैं और नकुल सहदेव एक पक्ष हैं। जैसे वायु तेज से सुविचार आचार एक पक्ष हैं और जल जड़ से कुविचार अनाचार एक पक्ष हैं। परन्तु जैसे युधिष्ठिर के प्रति वह चारो समान हैं वैसे आकाश के प्रति यह चारो समान हैं। यही आकाश रूप पांचवां विचार है। इस विचार बिना कभी आचार सिंह रूप से उस अनाचार रूप मृग कोमारदेताहै, कभी यह उसे मार देता है, जैसे रेचक पूरक तथा ज्ञान अज्ञान का विरोध है। किन्तु समानता से विरोध बिना एक साथ है जैसे कुंभक में, मानो राम रूपी विचार से यही-मृग सिंह की समानता है। जैसे विज्ञान, अर्थात् ज्ञान के सम्बन्ध से अज्ञान ही विज्ञान बन जाता है और ज्ञान अपने स्वभाव ही से रहता

है जैसे जमुना अस्त होकर गंगा विषे विज्ञान रूप हैं और सरस्वती अपने स्वभावही से हैं, अतः उस संधि स्वरूप छठवां के प्रति आकाश के समान सूक्ष्म और पर्वत के समान स्थूल दोनों समान हैं। इसी के निश्चय बिना विरोध होता है जैसे ब्रह्माजी के लेख में पंच प्राण की स्थिति है न कि छठवां जो अलख अलेख है। जिसे तुम ऐसे उस अमृत के सम्बन्ध से विष भी अमृत मय सिद्ध करते हैं, इस बिना भ्रम से लेख विषे होनी अनहोनी प्रतीत होती है अतः त्रिभेद अनुभव करने योग्य है।

प्रश्न १८ ❀ हे गुरुजी असंग रूप ज्ञान को समझ लिया, परन्तु ईड़ा पिंगला सुषुम्ना कैसे हैं।

उत्तर ❀ बांये ओर प्रधान नाडी ईडा और दाहिने ओर प्रधान नाडी पिंगला, किन्तु नीचे से ऊपर तक मध्य में सन्धि रूप सुषुम्ना है, मानो शिव के समान प्राण अपान का आधार है, जिससे सन्यासी, महात्मा दंड के रूप में आश्रय लेते हैं।

प्रश्न १९ ❀ हे गुरुजी जिन बहत्तर सहस्र नाड़ियोंमें प्राण अपान भ्रमण करते हैं सो कैसे और कहां से हैं, इसे भी कृपा करके कहिये।

उत्तर ❀ हे प्रिय प्रथम ब्रह्माण्ड, शरीर, घड़ी, इन तीनों की एकता अनुभव करो। मानो सेकेन्ड रूप अपान जैसे ब्रह्मा, मिनट रूप प्राण जैसे हरि, घंटा रूप अहंकार जैसे शिव यद्यपि चतुर्युग सहस्राणि दिनमेकं पितामहः, इसी दिन के प्रमाण से शत वर्ष की अवधि ब्रह्माजी का है, परन्तु जैसे शिव

के अवधि में छत्तीस सहस्र हरि होते हैं वैसे एक हरि के अवधि में छत्तीस सहस्र ब्रह्मा होते हैं, हरि का रूप वही प्राण की नाडी है और ब्रह्मा का रूप वही अपान की नाडी है मानो चित्रकार से चित्र चित्रित है। जैसे दूसरे चक्र से छत्तीस सहस्र प्राण की नाडी छठवें चक्र तक है और पांचवें चक्रसे मूलाधार तक छत्तीस सहस्र अपान की नाडी है। जब छत्तीस सहस्र ब्रह्मा हो जाते हैं तब ब्रह्मा उस हरि के स्थान जाते हैं और हरि उस ब्रह्मा के स्थान जाते हैं। जैसे अपान उस प्राण के स्थान और प्राण उस अपान के स्थान। इसी प्रकार होते-होते जब छत्तीस सहस्र हरि हो जाते हैं तब दोनों शिव विषे शांत होते हैं, जैसे अहंकार विषें प्राण अपान, मानो अहं ब्रह्म। परन्तु जैसे सबों का दिन रात्रि समान है वैसे इनका भी है, अतः शिव का दिन व्यतीतसो उतने ही रात्रि है जिसे अहो रात्राणि तथा महा महा प्रलय कहा जाता है। मानो जड़ता रहित आद्य पद वही है जिसे अर्धनारीश तथा सन्धि स्वरूप कहा जाता है उसी भाँति पुनः दिन पुनः रात्रि-आदि सो मध्य में मध्य सो अन्त में अन्त सो आदि में भ्रमण करते हैं-मानो यत्न बिना यह भी अयत्न है। यद्यपि एक शिव के अत्र में अनेक ब्रह्मा ब्रह्मांड हैं, अर्थात् जितने ब्रह्मा उतने ब्रह्मांड। परन्तु छत्तीस सहस्र में छत्तीस सहस्र के गुणनफल से जो संख्या होती है उतने ही ब्रह्मा और उतने ही नाडियों की संख्या है। किन्तु प्राण की नाडी छत्तीस सहस्र है इसके

अधिक उन सब नाडियों का विस्तार अपान द्वारा है
सेकेण्ड का विस्तार अनुभूत है । परन्तु छत्तीस सहस्र
के पश्चात् दोनों का हेर-फेर है जिससे बहत्तर सहस्र से
अपान की समानता निश्चित् है । यद्यपि इस त्रिभेद
विस्तार ब्रह्माहरि शिव करके है किन्तु इन तीनों का
कोष्ट है जिससे श्री शिव की एकता वही कृष्ण रूप को
करती है जैसे श्री हरि के एकता से होती है वैसे चित्त
की एकता सर्वत्र है। परन्तु निश्चय जो ज्ञान है और अवि
जो अज्ञान है इस करके उलटा प्रतीत होता है-जैसे अज्ञा
को शिव की अवधि सो दिन और व्यतीत सो रात्रि प्र
है-वही ज्ञानी को जगत का अन्त सो दिन और उदय
रात्रि करके है, जिससे तुम जैसे को जो सिद्धांत सु
अन्त में है वही उदय मे है वही वर्तमान में भी है । तथा
हो गुणरूप श्री और एक ही गुण रहित शिव-अतः रात्रि
श्री दिनरूप शिव-किन्तु गुण अगुण का भेद है, इसी
निश्चय में शान्ति और इसी के अनिश्चय में भ्रान्ति से वि
है, जैसे ऊपर के कोष्ट में आदि ब्रह्मा मध्य हरि अन्त शि
उसके नीचे के कोष्ट में आदि गणेश मध्य सूर्य अन्त
उसके नीचे में आदि भक्त मध्य मनुष्य अन्त सर्प—मानो
के समान तीनों कोष्ट सबों के देह में भी हैं, जैसे ऊप
नृत्यकार तीन है और मध्य में जितने शिव के प्रवा
ब्रह्मा होवे हैं-परन्तु नीचे के कोष्टमें गणना सो करे जो सगु

तरंगों की गणना करे, अथवा जो सर्वकाल अपने स्थान रहने को निश्चित करे। यद्यपि चिरञ्जीवी अनेक हैं सो ब्रह्मा की समानता करते हैं और भी कितनेक हरि से समानता करते हैं, परन्तु शिव रूपी महा पताका में सब असमर्थ हैं। अतः तुमको उचित है नासिका के अग्र वही है उसमें सावधान रहो।

प्रश्न २०-हे गुरुजी इसे समझ लिया, परन्तु बहुतों करके बहत्तर सहस्र एक शत एक नाडी हैं सो कैसे हैं इसे कहिये, तथा सेनापतियों में षट्मुख प्रधान कैसे हैं, सेना क्या है इसे भी कहिये।

उ० जिन महाशय को सुषुम्ना और शिव नाडी करके प्रतीत है वही उस एक को मानते हैं, परन्तु जो अनुभव से देखते हैं शिव और सुषुम्ना नाडी नहीं हैं किन्तु जिसमें प्राण अपान भ्रमण करते हैं सो नाडी है इस कारण सो एक नहीं मानते हैं। ऐसेही जिनको अधिक मास अधिक प्रतीत है सो शत नाडी प्रतीत करते हैं, अर्थात् अधिक मास के समान शिव के अवधि में पचास हरि और हरि के अवधि में पचास ब्रह्मा बढ़ जाते हैं, परन्तु जो अनुभवी हैं सो अधिक मास की पूर्ती उसीके अन्तर्गत अस्त कर देते हैं, सो एक शत एक निकाल कर बहत्तर सहस्र नाडी निश्चित करते हैं। ऐसेही तुमको भी निश्चित करने योग्य है कारण कि सार वस्तु अनुभव से सिद्ध है न कि दृष्टिगोचर से। ऐसेही षट्मुख भी अनुभव से सिद्ध होने योग्य हैं न कि विवाद से। अर्थात् यद्यपि सुर असुर

प्राण अपान के समान पृथक और नाडी भी पृथक है जिस ब्रह्माजी शिवजी से षटमुख को भूमि से उत्पन्न कराये, पार्वती के गर्भ से हों तब सुर असुर को समान देखेंगे, कारण कि दोनों पक्ष के सभाजी समान और एक हैं, कभी नीचे कभी ऊंचे कभी सुर कभी असुर अनेक भेष से भी शिव को प्रसन्न करते हैं, इन संतों में बड़े बड़े महारथी सेनापती हैं, किन्तु सब का कल्याण हेतु शास्त्र रूप विचार है मानो सबका रखवार है जिस करके सुर असुर नीच ऊंच सबों में उत्तमता अनुभूत है इस बिना मानना और निषेध अनुभूत है जैसे यथार्थ बिना कृत्य भी तुच्छ प्रतीत होता है परन्तु सो भी विचार से अनुभूत है। अतः सो षटमुख शास्त्र के रूप हैं, समाज सेना रूप है उसमें वेद इत्यादि गणेश इन्द्र सहित अग्नि इत्यादि यद्यपि सेनापति हैं किन्तु षटमुख इनका भी सेनापति महेश्वर हैं, इसी कारण गीता में प्रसिद्ध है दूसरा चक्र भी इन्हीं से प्रधान है। अतः प्रिय जैसे षटमुख और विचार जड़ता का अभाव करके शिव के प्रति निर्द्वंद हैं वैसे वहीं तुम भी निर्द्वंद बनों वही सबों का सिद्धान्त है।

प्रश्न २१— हे गुरुजी यह भी महा भ्रम नष्ट भया—तथा जिस अज्ञान विषे रात्रि है और जिस ज्ञान विषें दिन है तथा जिस सामान्यता विषें दोनों की प्रतीति है इसे भी समझ लिया, जैसे कर्म गृहाश्रम और ज्ञान सन्यास दोनों से युक्त वही सिद्ध रूप गृहस्थ है। परन्तु जिस शा

विचार से उत्तमता है उस करके मद्य-मांस कैसे उलंघन होता है, जिस बिना समानता नहीं और समानता बिना निरन्यन नहीं है, कृपा करके इसे कहिये।

उत्तर—हे प्रिय इसी का नाम बोधाभ्यास है- ऐसे ही अनुभव से सुगम होता है-किन्तु जैसे इस बिना उलटा प्रतीत होता है वैसे शास्त्र के मर्म बिना सुगम सो कठिन प्रतीत है। मानो इसी निमित्त बासी अन्न मांस-गुरु दिखा बिना उसके हाथ का जल मद्य समान है, ऐसे ही अनेक वस्तु हैं जैसे मर्याकार चिचिढा, जो सब उस समानता से स्वीकार होते हैं इस मर्म बिना तिरस्कार होते हैं। जैसे इसी शास्त्र के युक्ति से देवताओं से सुरा स्वीकार है अतः सुर कहे जाते हैं-इसके बिना असुर कहे जाते हैं। इसी शास्त्र युक्ति से मन्दोदरी भी पराशर जी से स्वीकार है-वैसे ही युक्ति से राग बिना विराग भी अचल रखते हैं वही विचार रूप महापुरुष कहे जाते हैं, जिससे ब्रह्म रमानके चेष्टा बिना हरि के समान पुत्र विषें राग से रहित आत्मा की स्थिति अचल रखते हैं जहां तीनों गुण सभान से शांत हैं। अतः तुम भी सर्वकाल अपने स्वरूप ज्ञान में स्थिति रहो जहाँ भ्रम किंचित् भी नहीं है, किन्तु इसी बिना उस समानता रूप विचार को (आचार अनाचार-सुविचार, कुविचार) यह चारों बुद्धि को भ्रमिष्ट करके दीनता रचते हैं, किन्तु स्वरूप ज्ञान का निश्चय होवे ही सूर्योदय के समान अन्धकार सब नष्ट होता है। जैसे

रावण से राम-कंस से कृष्ण-कलियुग से कल्कि-अविचार विचार अच्छादन हैं, परन्तु स्वरूप ज्ञान के निश्चय से चा को चारो शांत करके अपने विषें समान रूपसे सिद्ध किए न कि प्रथम की भाँति जो शास्त्र से विशेष हैं, जिस विच को तुम जानने में महा चतुर हो, जैसे कि आत्मस्वरूप समान राम-विराग के समान वन्दर-अहंकारके समान राव इसी समानता से सुगम है।

प्रश्न २२—हे गुरुजी जिसे गुरु मिले अ ऐसे ही-मानो चन्द्र मंडल से युतियां अमृत की वर्षा कर हैं, अतः श्री के समान कुण्डलिनी भी सो कैसे सुगम से सि होती है।

उत्तर—जैसे गङ्गा अपने तट पर साधु ज को देख कर प्रसन्न होतीं हैं-वैसे दूसरे चक्र में विचार को दे सो भी प्रसन्न होता है, मानो दोनों के सन्मुख में प्रसन्नता इस बिना महाअहंकार को शान्त करना कठिन है, जे । मह रावण को शान्त करना राम से कठिन है। अर्थात आकाश और आकाशज जैसे का तैसे-किंतु सबों को सवत्र भेजने में समर्थ हैं वैसे महाअहंकार महारावण भी हैं-मानो वा एक समान सूक्ष्म और मूल हैं। उसी के हेतु राम अपनी सहायक सेना लेकर अयोध्या से चले जैसे विचार अपने सहायक मन इंद्रियादिकों को एकत्र करके दूसरे चक्र स चलता है। जहाँ वह दोनों शून्य स्थान में हैं, यद्यपि दोनों

सर्वत्र समर्थ हैं-परंतु ऊपर आकाश विषें वह और अंतष्करण में महा अहंकार है, जैसे वीर्य विषें स्थूल अहंकार और लङ्का में स्थूल रावण है, यदि अहमित होते ही अनहं से निवारण हैं वहाँ मानो अंकुर शांत है, किन्तु अहं होते ही मानो वृक्ष का विस्तार हो चुका। यद्यपि आधार संधि पृथक् है—जैसे वहाँ राम के सेना साथ जानकी नहीं हैं और विचार के सेना साथ कुण्डलनी नहीं है, मानो जड़ चेतन के पृथक् का ज्ञान सब को उपदेश करतीं हैं, जिसे अनुभव करने योग्य है-जैसे वहाँ राम महारावण का अनुभव करते हैं और विचार महा अहंकार का, वैसे सो भी दोनों इन दोनों का अनुभव करके हँसते हैं, अर्थात् सेना का पौरुष सेना के साथ नहीं है, किन्तु नीचे अयोध्या मे जानकी और नाभि में कुण्डलिनी है, वैसे यह भी दोनों नीचे से हँसतीं हैं, मानो राम और विचार को अपना नाटक दिखातीं हैं। जिससे अनायास अपने-अपने सेना सहित राम और विचार गिरजाते हैं, जैसे उस आधार-रूप सन्धि बिना इन्द्रियादिक सहित शरीर अनुभूत है। इसी भाँति अनेक बार आते जाते हो गया जैसे शोध बिना रेचक पूरक। अतः राम को थकित देख जानकी महा रावण को शांत करि राम को प्रसन्न करि राम के प्रति स्थित भई। जैसे विचार करते-करते विचार के थकित मे कुण्डलिनी महा अहंकार को शांत करके विचार विषें सामर्थ रूप से स्थित होती है जिसे निश्चित करने योग्य है। अर्थात्, सर्वों के

योध निमित्त महापुरुषोंका आगमन होता है, जैसे वसुदेव भी अनेकों वार जमुना के आर-पार आते जाते थे, किन्तु जिस दिन कृष्ण को लेकर चले उसी दिन यत्न सिद्ध का रूप है, परन्तु अबोध वसुदेव को इसका मर्म नहीं है यदि होता तो प्राणरूप कृष्णको नीचे करते जैसे दूसरे चक्रमें किया जाता है मानो वह भी वहाँ नाटक देखते हैं। किन्तु ऐसे साधु स्वभाव को भगवान सहायता करते हैं जैसे प्राणके समान कृष्ण अपना अङ्ग नीचे करके जमुनाको शांत किए, वसुदेव भी सुख से पार गये, जैसा इस यत्नके साधक सुखसे पार होते हैं। ऐसे ही नेउलाका प्रमाण भी अति सुगम है-अर्थात् नेउलके समान विचार- कुण्डलिनी सो सर्पिणी के समान- वाम्बी के समान नाभि अनुभव के योग्य है। मानो नेउला अपने नाशिका में औषधको चिन्तन करते रहता है जिससे नेउला की हार कभी नहीं होती है, वैसे अपने नाशिका के अग्र जो महा औषध है उसका चिंतन करते रहने से विचार की हार कभी नहीं होती तथा जैसे आगे पीछे दोनों ओर से युक्ति युद्ध में नेउला महा चतुर है वैसे दूसरे चक्रमें आगे से-तीसरे चक्रमें पीछेसे विचार का युक्ति युद्ध अनुभवके योग्य है। तथा जैसे सर्पिणी को जीत कर बगुला का अंडा भी खाकर वृक्ष के नीचे ऊपर नेउला निर्द्वन्द रहता है - वैसे विचार भी निर्द्वन्द होता है अर्थात् निर्वाण के निश्चय बिना आकाशगमन आकाशचारी की चेष्टा सो अंडा है इस चेष्टा करके सो बगुला है। इसे वृक्षके समान

त्याग कर विचार निर्वाण को निश्चित करता है, यही साधु स्वभाव और औषध सर्वस्व है उसे सुगम होने ही योग्य है।

प्रश्न २३—हे गुरुजी अपूर्वसे अपूर्व इसे निश्चित करता है, परन्तु सो जानकी लङ्कामें दीन भावसे मुखको नीचे की हैं जैसे कुण्डलिनी - इसका कारण कहिये।

उत्तर—यद्यपि सूक्ष्म स्थूल में एक सन्धि है- जैसे सूक्ष्म पुर्य्यष्टक और स्थूल देह में, तथा स्त्री पुरुष में जिससे उलट-पलट होने में विलम्ब नहीं होता है, जैसे नीचे से मुख ऊपर को, किन्तु चेष्टा के कारण विलम्ब होता है जैसे अहं सूक्ष्म इस स्वभाव को ब्रह्मा धारण किए, अहं प्रकृति इस भाव को शिव, अहं ब्रह्म इस भाव को हरि धारण किए जिससे पुरुषोत्तम करके प्रसिद्ध हैं। सो राम उस महारावण को प्रकृति रूप से मारने में समर्थ हैं न कि अहं सूक्ष्म अहं ब्रह्म से, अतः अपना स्वभाव यदि रामत्याग करते हैं तब सब पुरुषाकार को स्त्री होने में विलम्ब नहीं है, अर्थात् इस पुरुषत्व का अधिष्ठाता हैं। ऐसे ही रहस्य जानकी के प्रति लङ्का मे है, सो भी स्थूल रावण को अहं ब्रह्म से मारने मे समर्थ हैं न कि प्रकृति रूप से, अतः जानकी भी यदि अपना स्वभाव त्याग करें तो सब स्त्रीकार को पुरुष होने में विलम्ब नहीं है अर्थात् यह भी इस स्वभाव का अधिष्ठाता हैं, जैसे कर्म का अधिष्ठाता रावण, मानो तीनों अपने स्वभाव के महा पंडित हैं अर्थात् दिन की छाया दिन के आतप से शांत होती है और

रात्रि की छाया रात्रि के आतप से न कि प्रतिकूल से, तथा जैसे चन्द्रमा के सन्मुख चन्द्र कान्तमणि और सूर्य के सन्मुख सूर्य कान्तमणि होती हैं, जैसे चार योगिनी चन्द्रकांत के स्वभावसे अपान के स्थान हैं और चार योगिनी सूर्य कांत के स्वभाव से प्राण के स्थान हैं सो उन्हीं से तद्रूपता होती न कि प्रतिकूल से। वैसे ही चन्द्रमा रूप जानकी और चन्द्रमा रूप आद्य पद है यह दोनों प्रकृतिरूप हैं इन्हीं का प्रतिभाष महारावण महा अहंकार हैं इसी कारण शिवका प्रतिभाष अहंकार है सो इसी द्वारा शांत हैं न कि अहंब्रह्म राम से। वैसे सूर्य रूप राम और सूर्य रूप अहंब्रह्म है-इसका प्रतिभाष स्थूल रावण स्थूल अहंकार हैं, सो इस द्वारा शांत होते न कि प्रतिकूल से। इसी कारण राम मानो वहाँ असमर्थ हैं और जानकी मानो वहाँ असमर्थ हैं। जिससे तुम ऐसे चतुर जन गुण रहित सन्धि के प्रति गुणरूप प्रकृति को सुगम से शांत करते हैं। जैसे अहं प्रकृति अहं सूक्ष्म अहंब्रह्म-यह तीनों भेद अनहं से समान हैं। अतः मूर्ख को कठिन चतुर को सुगम होने ही योग्य है, परन्तु इसकर के दोनों को अति सुगम है।

प्रश्न—२४ हे गुरुजी अपार भ्रम नष्ट भया— परन्तु आठ स्थान में आठ योगिनी कैसे हैं।

उत्तर—हे प्रिय जब तक चित्त अहंकार ऊपर रहते हैं तब तक कण्ठ में मध्यमावाणी अमृत मय से शोभा नहीं देती है, अतः विचार दोनों को नीचे करता है।

अर्थात चित्त के निरोध से उदान वायु कंठ में है सो भी अना-यास नीचे गिर जाती है जैसे अनहं से अहंकार, अर्थात चित्त उदान दोनों जल रूप हैं, जिससे विचार सर्व श्रेय और सुगम है। अतः मूलाधार में अपान के स्थान अलम्बुपा योगिनी और अहंकार को निश्चित करने योग्य है। दूसरे चक्र में प्राण के स्थान उत्पला योगिनी और चित्त को। तीसरे चक्र में अपान के स्थान परावाणी और जया योगिनी को। चौथे चक्र में प्राण के स्थान विजया योगिनी और पश्यन्ती वाणी को। पांचवें चक्र में अपान के स्थान रक्ता योगिनी और मध्यमा वाणी को। छठवें चक्र में प्राण के स्थान भिद्धा योगिनी और वैखरी वाणी को। पुनः तीसरे चक्र में अपान के स्थान जयन्ती योगिनी और मन को- यही सातवां द्वार है। पुनः चौथे चक्र में प्राण के स्थान अपराजिता योगिनी और बुद्धि को-यही आठवाँ द्वार है। अर्थात जया विजया जयन्ती अपराजिता यह मध्य में हैं। रक्ता भिद्धा अन्त में। अलम्बुपा उत्पला आदि में हैं। दो दो का जोड़ा और पृथक भी हैं। जैसे मन बुद्धि चित्त अहंकार, परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरी, चार प्राण गति में चार अपान गति में हैं। मानों सब चौबीस कार्य रूप हैं जैसे चौबीस तत्व। जिसे दत्तात्रेय जी चौबीस गुरु करके उपदेश करते हैं। किन्तु शून्य पच्चीसवां आकाश रूप है। अतः जैसे आकाश के प्रति सब शांत हैं वैसे गुण रहित संधि जो छठवां है उसके प्रति आकाश सहित सब शान्त हैं अर्थात शुद्ध रति ज्ञान दीपिनी, जो अक्षोभ का

भी सुगम है। अर्थात आकाश सतोगुण-वायु तेज रजो गुण जल जड़ तमोगुण- इसी का नाम गुण प्रकृति है। इसे तीन से पांच कहो अथवा पांच से तीन कहो इसी का नाम तीन पांच है। जो विचार से सब शून्य हो जाते हैं किन्तु गुण रहित अशून्य वही संधि स्वरूप है।

ॐ प्र० २५-हे गुरु जी आप की युक्ति सब मनोहर हैं सो धारण करनेही योग्य है, परन्तु जय सो प्राण और विजय सो अपान-ऐसेही दोनों के प्रति जया विजया भी होने योग्य हैं सो विपरीत होने का कारण क्या है।

ॐ उत्तर-हे प्रिय ब्रह्मा जी की चतुरता चतुर जन अनुभव करते हैं, यदि जय के प्रति जया और विजय के प्रति विजया हों तब एक पक्ष प्रबल और एक पक्ष निर्बल से विषमता है, अतः अपान के प्रति जया और प्राण के प्रति विजया से दोनों पक्ष समान से समानता रूप निर्वाण है, जिससे विचार रूप राम विजया के स्थान हैं।

ॐ प्र० २६-हे गुरु जी यद्यपि कार्य रहित विवेक सर्वश्रेष्ठ निश्चित है परन्तु विवेक युक्त कार्य का आश्रय भी श्रेय है अतः उन आठों का गुण स्वभाव कहिये।

ॐ उत्तर-जहां विजया के स्थान मन बुद्धि विचार एकत्र हैं-वहां से अपान जब जया के स्थान जाता है वहां मन कैसे प्रतीत हैं जैसे विराट के साथ गरुड़, बलि के समान अहंकार का मुख नीचे होता है। यहां से अलम्बुषा के स्थान मन उस

अहंकार के साथ अपान से मित्र भाव सिद्ध करता है। वहां से रक्षा के स्थान अपान कैसे अनुभूत है जैसे सुग्रीव और विभीषण-सो मन हनुमान के समान राम रूपी रक्षा से मित्र बना कर राज्य पर स्थापित करता है। वहां से जयन्ती के स्थान मन द्वारा अपान मानों पूर्ण कला को धारण करता है सो मन चार कार्य अपान द्वारा करके समानता से अपान के साथ पुनः विजया के स्थान प्राण रूप से सिद्ध करता है, जैसे अमावस्या को सूर्य चन्द्र हैं। अब यहां उत्पला के स्थान बुद्धि द्वारा प्राण कैसे प्रतीत है जैसे अवद्ध रूप से कृष्ण। यद्यपि यहीं वर्षा काल जल रूप चित्त है, परन्तु बुद्धि मानों चक्र होकर जल समूह को शून्य करती है। सिद्धा के स्थान बुद्धि द्वारा प्राण सर्वस्व सिद्ध करता है। जैसे अपराजिता के स्थान पर अपर सुगम से सिद्ध है अर्थात् शून्य अशून्य। यद्यपि उस पार मन द्वारा-इस पार बुद्धि द्वारा है, किन्तु प्रथम की भांति विचार सहित तीनों की एकता वही स्थिरता है, जैसे नाम सदृश आठों का गुण-और हनुमान के समान मन की समानता सर्वत्र श्रेय है।

❀ प्र० २७-हे गुरु जी चन्द्रमा की पूर्ण कला पांचवें चक्र में सब मानते हैं, अतः जैसे अमावस्या को चन्द्रमा का स्थान शून्य है वैसेही जयन्ती का स्थान है, वहां अपान की पूर्ण कला कैसे है इसे कहिये।

❀ उत्तर-आठों प्रभाव शाली हैं एक ओर मार कर असम्भव करती हैं-एक ओर जीवित करके प्रसन्न करती हैं- क्षण में

दोनों ओर प्रसन्न करती हैं। चन्द्रमा में सूर्यदीप्ति सूर्य में चन्द्र दीप्ति प्रगट करती हैं, रात्रि में दिन और दिन में रात्रि का विकास करती हैं, जिससे साधु जन निर्जन स्थान में जयन्ती योगिनी का आश्रय लेते हैं। इसी करके कृष्ण भी जयन्ती रूप जाम्बवती को पाकर पूर्ण कला को धारण किये, अतः आठों का नाम गुण अनुभव के योग्य है

ॐ प्र० २८-हे गुरु जी इस करके भ्रम रहित हूं, परन्तु इन्द्र द्वारा वृन के ऊपर सात दिन वर्षा का कारण क्या है।

ॐ उत्तर-हे प्रिय इन्द्र के आधीन सातही समुद्र सातही जल राशि हैं, जैसे अज्ञानी को सात चक्र जो जड़ प्रकृति है वही अनुभूत होता है न कि जड़ता से रहित जो आठवाँ इन सातों का आधार है। अतः इन्द्र उस कृष्ण की परीक्षा करते हैं कि आठवाँ बड़वाग्नि का रूप है अथवा नहीं, यदि होंगे तो जल समूह को भस्म करेंगे अथवा डूब कर मर जांयेगे। जैसे कुण्डलिनी साधक की परीक्षा करती कि योग की चेष्टा है अथवा भोग की, अर्थात जिसे जो रुचता है उसे वह देती है।

ॐ प्र० २९-हे गुरु जी कुण्डलिनी का मुख नीचे होने का क्या कारण है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर—जैसे गुण रहित संधि उस गुण रूप असंधि का विस्तार करके मौन हो मयोगविषें स्थित है, वैसे यह भी मानो प्राण के भोग निमित्त नवो द्वार अपना द्वार बंद करके नीचे को मुख किये योग विषें स्थित है। अर्थात योग विषें भोग नहीं रचता और भोग विषें योग नहीं रचता है। अतः प्राण भी भोग से विमुख योग विषें युक्त होकर जागृत करके एक-ता करता है। इस समानता बिना विषमता से असमर्थ है, जैसे नीचा मुख तपस्विनी के प्रति ठहरने में पवन असमर्थ है। अर्थात उन दोनों का एक रूप है जैसे प्राण और पवन का एक रूप है, किन्तु स्थान का भेद है जैसे नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे को उलट पलट होता रहता है। यद्यपि सो संधि इस असंधि से असंग है जैसे कृष्ण से चन्द्र-मेघ से विद्युत-इस शिव से सो शिव- ओम्कार से चन्द्रकार-ऐसेही अहं से धारण प्रतीत है। परन्तु सर्वों का सिद्धांत सर्वों के प्रति वही है जिससे सब अपने ही विषें आत्म परायण हैं, अर्थात जिस अपने आत्मा विषें ब्रह्मा हरि शिव श्री नया इत्यादि हैं वही प्राण अहंकार इत्यादि कुण्डलिनी विषें है जिससे सब योग युक्त और सबों को सुगम है। जैसे उसी आत्म स्वरूप से बलि बावन समान हैं किन्तु निरन्तर से अनन्त अनिश्चय से चक्र प्रतीत है, जैसे योग से समानता भोग विषें विषमता है वैसे जड़ विषें जड़ प्रतीत है।

ॐ प्र० ३०-हे गुरूजी आप की युक्ति समझने बिना बुद्धि मानो सूक्ष्म रहती है-जैसे दो तट के मध्य सो संधि, किन्तु समझने से बुद्धि सब विशाल बन जाती है, जैसे तट रूप

असंधि के अभाव में संधि सो आत्मा है, जो हम ऐसे अबोध को भी सुगम है। परंतु सूर्य के समान प्राण पृथक भी है उससे कुण्डलिनी से प्रयोजन क्या इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर०—जैसे पृथक में कुयोग-दो की एकता योग-तीनों की एकता श्रेय है। वैसे प्राण अपान कुण्डलिनी इन तीनो की एकता महा शांक्रांति है जैसे चद्रमा सूर्य अग्नि करके है। अर्थात सूर्य की सोम संक्रांति-सोम की सूर्य संक्रांति-सूर्य की अग्नि संक्रांति अग्नि की सूर्य संक्राति है, जैसे अपान विषें प्राण-प्राण विषें अपान-संधि विषें दोनो और दोनो विषें संधि है। अतः तीनो से सम्बंध है किन्तु संधि के निश्चय से पृथक हो अथवा एकत्र वहाँ चिन्ता नहीं है, परंतु इस विना प्रति भाप द्वारा प्रत्यक्ष प्रतिबंध होता है। जैसेमन द्वारा स्वरूप-साधक द्वारा सिद्ध तथा जानकी द्वारा राम अनुभूत है। वैसे कुण्डलिनी द्वारा प्राण का प्रतिबंध है, छुड़ाने विना प्राण अपान की एकता नहीं होती है जिससे जागृत करना श्रेय है। जो नहीं कर पाते वह सन्यस्त करके अपान रूप शिषा प्राण रूप सूत्र को त्याग कर सुषुम्ना रूपदंड का आश्रय लेते हैं, बहुत से सत्यसंग द्वारा भ्रम का अभाव करते हैं। जो तीनो में असमर्थ हैं, तिनकी शिखा पकड़े हुए जगत में यमोटती है जैसे कृष्ण द्वारा कंश, अर्थात् सबो के बोध निमित्त महा पुरुषों का आगमन होता है।

ॐ प्र० ३१-हे गुरूजी यद्यपि इस अमृत से शोक शंताप शान्त है, परंतुनिर्भयता कैसे होती है इसे भी कहिये।

ॐ उ०-हे प्रिय मार्ग निष्कर्मता मुक्ति निर्भयता सर्वों करके निश्चित हैं। सो बुद्धि के भ्रम से दीनता और भ्रम के अभाव से निर्भयता होती है, जैसे परिक्षित से अनुभूत है, अर्थात अनर्थ का मूल अहं जो इस करके दीनता थी उस में को मिथ्या समझ गये, मानो तत्व विचार को, किन्तु जीव विषें भ्रांति जो मुक्त अमुक्त की थी उसे भी अचल समझ गये, इस जीव के गमना गमन का भ्रम मिट गया। अर्थात गमना गमन करने हार मो भ्रम से कल्पना अहं करके होती है वह मिथ्या निश्चित है। परिक्षित की प्रसन्नता निर्भयता देख कर शुकदेव भी प्रसन्न हुए, मानो ऐसे ही श्रोता समझने के योग्य हैं, जैसे यह दीनता निर्भयता अनुभव के योग्य है।

ॐ प्र० ३२-हे गुरु जी श्री हरि और चित्त प्राण में भेद अभेद क्या है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर०-जैसे गुण रहित से ब्रह्मांड सब अभेद है वैसे गुण करके भिन्नता का भेद है, इसी गुण रूप का श्री हरि अभिष्ठता है-इहीं दोनों का प्रतिभाप चित्त प्राणसर्वत्र है, जिससे श्री हरि सबों का पूज्य हैं।

ॐ प्र०३३-श्री हरि में अन्तर क्या है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर ०-हे प्रिय गुण रहित संधि दोनों के प्रति एक है जिससे श्री से हरि और हरि से श्री होने में विलम्ब नहीं होता है। सो दोनों जैसे अगुण से अभेद हैं वैसे गुण करके अभेद हैं। वैसे ही सर्वत्र चित्त प्राण को अनुभव करने योग्य है।

जैसे गुण रूप प्रकृति और प्रकृति रूप ब्रह्मांड-उसी द्वारा शिव अहंकार उसी में भिन्न भिन्न भेद है, परंतु जैसे उस ब्रह्मांड में कंटक रावण, वैसे देह में अहंकार है, सो राम से शांत भये राम मानो अनेक यज्ञ से शोभित हैं- वैसे अहंकार के शांत से विचार अनुभूत है, अतः अनहं होने योग्य है।

ॐ प्र० ३४-हे गुरु जी सब भेष में कौन प्रधान है जिसे धारण किया जाय।

ॐ उत्तर-जैसे मन वचन शरीर से किया भया मंत्र तंत्र यज्ञ इत्यादि आत्मा के प्रति सब समान हैं वैसे अभेद जो आत्मा है उसके प्रति सब भेष समान है, किन्तु राग से रुचि विराग से अरुचि वस्त्र करके भेष अनुभव के योग्य है।

ॐ प्र० ३५-हे गुरु जी इस करके भ्रम रहित हूं, परंतु ज्ञान विराग की एकता और कर्म ज्ञान का भावार्थ तथा ज्ञान भक्ति का सिद्धांत कृपा करके कहिये।

ॐ उत्तर०-हे प्रिय आत्म देव के समान आत्मा-धुंधुली के समान जड़ भक्ति-उस गौ के समान स्वतंत्र भक्ति-धुंधुंकारी के समान विराग-गो कर्ण के समान ज्ञान निश्चिन करने योग्य है, जैसे देह से दुखी देह बिना सुखी सबों के प्रति सिद्ध है। परंतु अति समीप गोकर्ण-जैसे ज्ञान अपने समीप, किन्तु प्रीत प्रतीत बिना धुंधुकारी प्रेत-हो गया-जैसे ज्ञान बिना विराग अनुभूत, प्रीत प्रतीत होने ही दोनों, दोनों से एकता सिद्ध है। वैसे अनहं के बोध से स्वतंत्र भक्ति है जैसे रावण के असंग होते ही विभीषण को तिलक से [illegible] का शीघ्र सुगम में सिद्ध है, इसी

तिलक स्वरूप विना स्वतंत्र भक्ति नहीं बनती है, अर्थात नाशिका के अग्र वही है इस विना अहं त्वं से जड़ भक्ति है। ऐसेही द्रोपदी और प्रह्लाद का सिद्धांत अनुभव के योग्य है। अर्थात् जहाँ सभा में द्रोपदी का वस्त्र हरण होने लगा वहाँ सो निश्चित करती-पंच प्राण रूप पाँचो पति मिथ्या हैं, सहकारी भी मिथ्या हैं, ब्रह्मांड सहित अपने भी मिथ्या बन गई, जैसे अहंकार सहित प्राण इत्यादि देह मिथ्या प्रतीत है। किन्तु एक सत् स्वरूप का आश्रय अनुभव मात्र सिद्ध है। मानो अनुभव मात्र जानना ही ध्यान है-शम संतोश पुष्प है-नमस्कार महा पूजा है। ऐसेही प्रह्लाद भी जो वस्तु अपने में खड्ग में खंभ इत्यादि में निश्चित किये थे वही नृसिंह में भी निश्चित करते हैं जिससे महा अबद्ध रूप से निर्भय हैं। अतः कर्म का भाव द्रोपदी से ज्ञान का भाव प्रह्लाद से दोनो का भावार्थ एक से भ्रम रहित होने योग्य है। परंतु सो सिद्धांत अहंकार और वाणी का विषय नहीं है, उसे यदि कहा जाय मैं हूं सो नहीं बनता है जैसे अपने कंधे पर चढ़ते नहीं बनता है, यदि मैं का अभाव करके अनहं हो सो बोध रूप जानने मात्र है, इसी का नाम ज्ञान दीपक है, अर्थात् विस्मरण होते ही दीपक के समान बुझ जाने का भय है-सर्व काल स्मरण कठिन है। उसे यदि त्वं करके अनहं हो सो भक्ति का रूप बन जाता है, सो आश्रय भाव मणि के समान बुझने का भय नहीं और सुगम भी है जैसे दूसरे के कंधे पर चढ़ना अति सुगम है. किन्तु सुगम और और कठिन का

अन्तर है सिद्धांत दोनो का एक है। परन्तु कंधे पर चढ़ने हार भई सो कर्म ज्ञान भक्ति- इन तीनो में नहीं है जिससे अनई होते ही तीनो का सिद्धांत एक है। जो अबोध को भी अति सुगम है, अर्थात् सिद्धांत रूप सन्धि सबों के प्रति सर्वत्र सिद्ध है, जैसे नाशि काग्र विषें त्वं पद सुगम से बन जाता है।

ॐ प्र० ३६-हे गुरु जी आप का सिद्धांत मानो अमृत का कुन्ड है-यतः गंगा भक्ति की एकता भी कहिये।

ॐ उत्तर-अर्थ विना दूसरे के अर्थ से गंगा भक्ति दोनो हैं, निम्न गति नम्रता भी समान है, चेष्टा विना दोनो सिद्धांत विषें अटल हैं, पंच विचार से अच्छादित और इससे छुटकारा दोनो से सिद्ध है। शिवपुरी मे गंगा निर्वाण को सिद्ध की, छठवें चक्र में भक्ति भी सिद्ध करती है। अर्थात् आचार रूप ब्रह्मा का कमंडल-अविचार रूप शिव की जटा, कारण कि रहना न रहना सो सम रूप भक्ति सो समानता है इस विना विषमता है। कुविचार रूप पर्वत जहाँ एरावत द्वारा छेदन भेदन है, सुवि-चार रूप जन्हु मुनि हैं, पाचवें विचार से अक्षय वट जिससे गुरु-भाव से गंगा निश्चित की, अर्थात, प्राण रूप ज्ञान रूप दोनो करके सरस्वती सो अक्षय वट द्वारा हैं, विंध्यवासिनी के स्थान गंगा का वेग प्रबल, कुण्डलिनी के स्थान भक्ति का है, छठवां शिव पुरी-जैसे छठवां चक्र है। जहां प्राण रूप सरस्वती सो दाहिने ओर हैं और अपान रूप जमुना सो बायें भई जिससे वहां गंगा का नाम उर्ध्व वाहनी है, जैसे प्राण स्वरूप विषें

और आपान मूलाधार की ओर छठवें चक्र से होता है। सरजू से एकता करके गंगा उस सातवें स्थान गई, जैसे कर्म का सन्यंस्त करके सातवें स्थान भक्ति जाती है, अर्थात् पांच कर्ता छठवां अकर्ता है, जैसे पंच विचार रूप युधिष्ठिर सहित पांच उन पांचों से विमुख कर्ण हैं छठवां का रूप। इस कर्ता अकर्ता के समानता से सतवाँ स्थान है, परंतु बलराम के समान वहां अहंकार भी है जो विचार को प्रमिष्ट करके भक्ति को अपनी ओर ले जाता है-जैसे भगीरथ के भेप में पद्मा राक्षस गंगा को अपनी ओर ले गया, वैसे अहं ब्रह्म इस वेप में अहंकार अपनी ओर भक्ति को ले जाता है। अतः हे प्रिय ब्रह्मा जी की चतुरता तुम जैसे चतुर जन अनुभव करते हैं, अर्थात् नदियों का जड़ समूह गंगा के साथ जाना वहां अनुचित है, जैसे गुण समूह भक्ति के साथ आत्मा के प्रति अनुचित है, इस करके नदियों का समूह पद्मा नदी में प्राप्त भया, जैसे जड़ता का समूह अहंकार के पीछे होता है जिससे जड़ समूह अनहं से शांत होता है। जब भगीरथ स्मरण किये गंगा कहां गई, उसे गंगा भी समझ गई भगीरथ यह नहीं किन्तु वह है, जैसे विचार करके भक्ति भी समझ जाती अहं ब्रह्मा नहीं किन्तु अनहं से सो है। परन्तु जैसे वहां गंगा सहित सवों का अस्त और गंगा का रहना भी सिद्ध है, वैसेही आत्मा के प्रति भक्ति सहित सवों का अस्त और भक्ति का रहना भी सिद्ध है। जैसे समानता विषमता का रूप है। इसी के बोध से समाधि व्यवहार समान है, वहां गंगा

भक्ति के एकता में भ्रम कहां है जहां अस्त रूप विषमता में एक ही है जैसे "अ,, किन्तु समानता में दोनों हैं जैसे "प,, तथा जड़ समूह मानो 'स, भक्ति मानो 'त्र, ज्ञान मानो ,ज्ञ' अतः ज्ञान के सर्वत्र समान से समाधि व्यवहार समान होने ही योग्य है।

ॐ प्र०३७-हे गुरु जी इसी भांति सुगम से प्रकृति का स्वभाव भी कहिये।

ॐ उत्तर-प्रकृति करके प्राकृतिक वस्तु जो अनुभूत है वह सर्वों के बोध निमित्त है इसे प्रथम अनुभव करने योग्य है। जैसे अ से अः तक सोलह अक्षर हैं-क से म तक पचीस अक्षर-य से ज्ञ तक ग्यारह अक्षर हैं-यदि अक्षर से अक्षर का बोध न हो तब कहा दोनों निरक्षर हैं वहां का बोध होना कठिन है। अर्थात् सोलह करके इच्छादि सोलह विकार अस्त है। जैसे नशिका का दाहिना छिद्र बंद बायें से अपान के पूरक में भी होता है जिससे पूरक में सोलह बार ओम्कार का जप है। पच्चीस करके पांचो पंचक अस्त-जैसे नाशिका का दोनो छिद्र बंद उस कुंभक में भी होता है जिससे कुंभक में चौंशठ बार ओम्कार का जप है। मानो आठ विद्या छप्पन अविद्या जैसे शुभ अशुभ दोनो कर्म शांत हैं। ग्यारह करके आत्म रूपता शिव रूपता है-जैसे बायां छिद्र बंद दाहिने से प्राण के रेचक में भी होता है जिससे रेचक में बत्तीस बार ओम्कार का जप है मानो पूरक का रेचक दुगुण है। जिसे चेतन शक्ति सर्वों को शब्द द्वारा शिक्षा देती

रहती है, अर्थात मर तुम परम मार हो। लव-सूक्ष्मता धारण करो। सख-शुभसे सखित्व भाव करो। सह-सहकारता करो। क्षत्रज्ञ-विस्तार सहित आदि मध्य अंत मेरा ही रूप है। यद्यपि रामं विद्धि परं ब्रह्म-परन्तु वैसेही-मां विद्धि मूल प्रकृतिं, रामो न गच्छति न तिष्ठति-मय्यैव चरितमन्यपि। अर्थात् मैं कर्ता सो अकर्ता। अतः अहं प्रकृति होते ही आद्य पद सर्वोत्तम सो सुगम है। जिसपर भी प्रत्यक्ष प्रमाण- कमल के समान विश्व-जल के समान मैं-सूर्य के समान सो अतः जल विना कमल-शुभ विना विश्व शुष्क सबों को अनुभूत है। किन्तु सूर्य जल दोनों से कमल की प्रसन्नता है-वैसे शुभ और सो इन दोनों से विश्व की प्रसन्नता है यही समानता है। किन्तु एक को निश्चय करना वही विषमता है। जिससे गंगा भक्ति का अस्त और रहना भी दोनों भेद सिद्ध हैं।

ॐ प्र० ३८-हे गुरू जी आप के कृपा से मैं भी कृतार्थ हूँ, अतः सत का रहना किन्तु असत का रहना समान से समाधि व्यवहार समान है इसे समझ लिया, परंतु समाधि में अन्न जल से प्रयोजन नहीं वहां सुवर्ण मिट्टी समान होने योग्य है किन्तु व्यवहार में सुवर्ण मिट्टी कैसे समान है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर अन्याय पूर्वक सुवर्ण सो मिट्टी के समान है और न्याय पूर्वक मिट्टी सो सुवर्ण के समान है, इस राम रूपी विचार से सुगम है।

ॐ प्र० ३९-कल्प वृक्ष और विवेक की एकता कैसे है।

ॐ उत्तर-नीच ऊँच शत्रु मित्र दोनों को समान हैं-जो जाता सो सुगम से प्राप्त करता है। परन्तु धर्म को अर्थ-मोक्ष को काम प्रतिबन्ध किये रहता, अतः अर्थ को पूर्ण करके अर्थ को निवारण करता है जिससे दोनों में एकता हो, अर्थात् पुनः अर्थ के चेष्टा को निवारण करता है इस करके दोनों में एकता कैसे प्रतीत है जैसे अर्थ रूप शत्रुघ्न धर्म रूप भरथ से है। वैसे-कामना को पूर्ण करके इसे भी निवारण करता है जिससे इनमें भी एकता हो, जैसे काम रूप लक्ष्मण और मोक्ष रूप राम से है। इस करके सिद्ध से अर्थ काम एकत्र किन्तु धर्म मोक्ष एकत्र होते हैं, जैसे भरथ से राम और शत्रुघ्न से लक्ष्मण मिलते हैं अतः चारो समान से धर्म मोक्ष की एकता और जड़ता रहित संधि स्वरूप की एकता अनुभव के योग्य है।

ॐ प्र० ४०-हे गुरु जी कर्म ज्ञान भक्ति-इन तीनो की एकता सुगम से कैसे बनता है कृपा करके इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-शरीर के किसी अंग से कार्य हो वही कर्म है, उसके साथ हरि का नाम गुण मंत्रों का स्मरण वही भक्ति है, शरीर से पृथक आत्मा को निश्चय करना वही ज्ञान है। जैसे वल्मीक की जीभ मरा मरा से शुद्ध और स्वरूप विषे मन की स्थित. अतः तीनो की एकता सुगम से सिद्ध है जिससे मुनि के गुण में पूर्ण शक्ति की सिद्धाई बन गई। इस महा कारण को धारण करने योग्य है।

ॐ प्र० ४१-हेगुरु जी मन वचन शरीर-इन तीनों के कर्म

मौन से मुनि है-अतः उसमें कर्तापन कैसे बनता इसे कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय यथार्थ से अमौन-किन्तु अयथार्थ से मौन सो मुनिनाथ हैं, यदि दोनों से मौन हो तो आकाश के समान शून्य उसे मुनि नाथ कैसे कहा जायेगा। अतः ब्रह्मा हरि शिव इत्यादि इसी करके सब महा श्रेय हैं, इसी करके वाल्मीक के स्थान जानकी का निवास भी प्रतिष्ठित है, इसी करके हरि भी अनेक रूप धारण से प्रतिष्ठित हैं, साधु जन भी इसी करके भ्रम भय से रहित हैं। जैसे वाल्मीक से तुलसी-उन्हें विष्णु यशा होने में आश्चर्य क्या है, उनकी स्त्री जो कारण के समान प्रतीत है उसे सुमति नाम से कल्कि भगवान की माता होने में आश्चर्य क्या है, जैसे हरि का मैं हरि मेरे इसके सिद्ध से हरि का पुत्र और हरि का पिता बनने बनाने में आश्चर्य क्या है, वैसे ही गुण अगुण के समानता से त्रिभेद विषे उदय अस्त होते हैं। सो सब जैसे गत दिन का अशुभ जो अयथार्थ है उसे आज दिन का शुभ जो यथार्थ है इससे शांत करते हैं। किन्तु तुम जैसे को अशुभ जो प्रपंच है और शुभ जो आत्मा है इसके प्रति उसे आज का अभी शांत करके अचल होने योग्य है।

ॐ प्र०४२- हे गुरु जी कैसे और कहाँ शांत रूप से मन अचल रहता है।

ॐ उत्तर- जैसे अर्जुन और कृष्ण द्वारा रथ के पताका पर हनुमान हैं- वैसे बुद्धि और विचार द्वारा नासिका के अग्र विषे मन अचल होता है। इस बिना अन्यत्र भटकते रहता है,

इस पर होते ही इससे रुचि अन्यत्र से अरुचि अचल होती है। वहां तीनों का लक्ष्य एक से सब त्रिभेद एकत्र होते हैं। जैसे वेद शास्त्र पौराण-तथा शास्त्र गुरु अपना एक लक्ष्य होता है, तथा जैसे शुभ अशुभ शान्त से साधु सन्यास पंडित-तीनों का लक्ष्य एक है। यद्यपि मन के विषमता में बुद्धि विचार की एकता करना पड़ता है और बुद्धि के विषमता में मन विचार को और विचार के विषमता में मन बुद्धि को- परंतु प्रथम वहां मन रहना श्रेय है।

ॐ प्र०४३-हे गुरु जी यद्यपि गंगा भक्ति दोनों अति निर्मल हैं, परंतु आप की युक्ति मानो दोनों का इष्ट देव है। अतः यत्न युद्ध की एकता कृपा करके कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय रथ के समान शरीर-पताका के समान नाशिकाग्र-हनुमान के समान मन-अर्जुन के समान बुद्धि-कृष्ण के समान विचार- दोनों अश्व के समान प्राण अपान दोनो ओर के सेना समान प्राण अपान के नाड़ियों का समूह अनुभव करने योग्य है। जैसे अनुभव से भीष्म महा प्रसन्न, अर्थात् जैसे बाण का लक्ष्य निर्वाण का लक्ष्य दोनों का आचार्य द्रोणाचार्य हैं वैसे वह भी हैं। किन्तु विषमता करके दश दिन महा प्राक्रम से हैं, जैसे विषमता से दश रुद्रों की भांति इन्द्रियां प्रबल रहतीं हैं, परंतु मन के समानता से शिथिल हो जाती हैं, जैसे हनुमान के अचल से भीष्म। पाण्डव दल कम-कौरव दल अधिक-जैसे प्राण के तीनों चक्र पर बीस दल और अपान के तीनों

चक्र पर तीस दल हैं। किन्तु पताका के प्रति कृष्ण का लक्ष्य होते ही दोनो दल समान रूप से शांत हैं, जैसे नासिका के अग्र विचार का लक्ष्य होते ही इन्द्रियादिक सहित शुभ अशुभ शांत होते हैं। अश्व दाहिने होते हैं तब भी एक साथ-बायें होते हैं तब भी-नीचे ऊपर होते हैं तब भी प्राण अपान के समान एक साथ हैं। किन्तु विषमता से पृथक होते हैं जैसे संधि स्वरूप के निश्चय विना मन बुद्धि विचार पृथक होते हैं जो सबको अनुभूत है, संधि के निश्चय विना यत्न युद्ध बना रहता है। जैसे अज्ञान दशा में स्थूल शरीर के अभाव में शेष पुर्य्यष्टक बना रहता जिसे जीव कोष कहा जाता है जिससे नीचे ऊपर भ्रमण और स्थूल भी होते रहता है। अर्थात् भूमि रापो नलोऽवायुःखं मनो बुद्धि रेवच, अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृति रष्टधा। जड़ जल तेज वायु आकाश तथा मन बुद्धि अहंकार-इसी आठ का नाम पुर्य्यष्टक है। जैसे अज्ञान दशा में महाभारत उसके अन्त में-पांच तत्व का रूप युधिष्ठिर सहित पांच और तीन के रूप से कृतवर्मा कृपाचार्य अश्वत्थामा यह आठ शेष हैं मानो ब्रह्मा का प्रतिभाप बुद्धि हरि का मन-शिव का अहंकार-यह तीन गुण के स्वभाव से पांच विर्गे स्थित हैं। जिससे ब्रह्मा हरि शिव के समान सन्तों की स्थिरता नहीं है। परंतु जिस ज्ञान दशा में सूक्ष्म स्थूल दोनों जड़ करके एक हैं वहा उस संधि प्रति सब असंधि समान हैं. जैसे कृष्ण के प्रति तीन पांच सब।

ॐ प्र० ४४-हे गु जी युद्ध में अंग बचाने को कवच है-

इस यत्न में क्या है इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-शरीर से जो कुछ कार्य हो सो सब आत्मा के प्रति समर्पण करना यही महा कवच है और जैसे युद्ध में मारण निवारण दोनो करके श्रेय है वैसे यत्न में कर्ता अकर्ता दोनो करके श्रेय है जिसे कर्म ज्ञान कहा जाता है तथा प्राण अपान की एकता है। दोनो हाथ के युद्ध समान नेत्र मन से पठन स्मरण-इन्द्रियों करके निश्चित हैं।

ॐ प्र० ४५-हे गुरु जी चेतन विना पांचो तत्व जड़ करके हैं-जैसे कृष्ण विना युधिष्ठिर सहित पांचो अनभूत हैं और पांच विना चेतन से कार्य नहीं बनता है, जैसे उन पांच विना कृष्ण से नहीं बनता है, इस करके दोनो पक्ष में छव होते हैं। अतः किस एक विना कार्य के साधन में पांच ही हैं, अर्थात न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।

ॐ उत्तर-प्रिय जैसे युद्ध में कृष्ण सहित भीम अर्जुन नकुल सहदेव-यही पांच न्याय अथवा अन्याय करें, परंतु अयत्न रूप से युधिष्ठिर असंग हैं। वैसे चेतन सहित वायु तेज जल जड़-यही पांच यत्न के कर्तापन में हैं किन्तु अयत्न रूप से आकाश असंग है। अर्थात् अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्, विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्। अधिष्ठान् शरीर-कर्ता जीव-इन्द्रिय कर्म तथा पंच प्राणों की चेष्टा क्रम-पाचवां दैव सो चेतन है-जैसे वहां कृष्ण हैं। अतः यत्न में पांच किन्तु अयत्न में आकाश सहित छव हैं। जैसे वह युधिष्ठिर सहित छव हैं। परंतु निष्क्रिय रूप से विधि दोनो विध

एक है यत्न हो अथवा अयत्न। जैसे वहाँ यत्न अयत्न का आधार कारण प्रतीत हैं। अर्थात् एक हो वहां भी अनेक वहां भी किन्तु सो आधार मात्र सर्वों के प्रति स्थित है।

ॐ प्र०४६-हे गुरु जी किसी करके जीव कर्ता-किसी करके शरीर-किंसी करके दोनो कर्ता हैं इसमें आप क्या निश्चित करते हैं।

ॐ उत्तर-हे प्रिय वायु तेज से सुविचार आचार सुर स्वभाव हैं जिसे पिष्ट कहा जाता है। जल जड़ से कुविचार अनाचार असुर स्वभाव है जिसे अनिष्ट कहा जाता है। आकाश सदृश समानता जिसे मिश्रित कहा जाता है। सो तीनो भेद यही तीनो गुण का रूप हैं, अतः तीनो गुण का कर्म पांच ही विषें है, जिससे गुण रहित के प्रति तीनो भेद समान हैं, वही संधि रूप जीव तथा शिव है, सो पांच के संग से करता और असंग से अकर्ता है। यद्यपि जड़ता विषें जड़ और चेतन विषें चेतन प्रतीत है जैसे तृण, किन्तु दोनो से युक्त अयुक्त है, जैसे संधि से जरासंधि वज्र के समान हैं संधि बिना वही तृण के समान है अतः जैसे असंग से जीव महा अकर्ता है-वैसे जड़ता के कारण पंच भूत महा अकर्ता है-वैसे पंचभूत से शरीर भी अकर्ता है, जिससे जड़ चेतन के संग को निश्चित करना उसे अज्ञान कहा जाता है, किन्तु दोनो को असंग करना उसे ज्ञान कहा जाता है। है। परन्तु विज्ञान जो अबोध विषें ज्ञान से प्रधान प्रतीत होता है सो अन्यथा है, अर्थात अज्ञान जो है वही विज्ञान बनता है और वही अज्ञान बनता है, जैसे नीचे से ऊपर और ऊपर

से नीचे, वही युक्त अयुक्त मिश्रीत है, परंतु असंग रूप का ज्ञान सर्वत्र अपने स्वभाव से अचल है उसी का नाम ज्ञान स्वरूप जीव शिव है ! अतः जो कुछ विवाद है सो सब अविवेक में है जैसे तुम्हारे तीन प्रश्न के समान त्रिभेद का विस्तार अज्ञान से उदय है ज्ञान से शांत हैं, जिससे विवेक सर्व काल निर्विवाद है। जैसे सुर स्वभाव रजोगुण वही ब्रह्मा है, असुर स्वभाव तमोगुण सो शिव हैं, आकाश रूप सतोगुण सो हरि हैं, सो तीनों भेद पांच तत्व के रूप हैं न कि अन्यत्र से, वैसे कुंभक सतोगुण-रेचक रजोगुण-पूरक तमोगुण है, परन्तु गुण रहित होते ही उसे हरि शिव जीव आत्मा में भ्रम भेद कहां है, किन्तु नाम रूप से रहित उसका नाम करण करना भी अज्ञान है।

ॐ प्र० ४७-हे गुरु जी यद्यपि आप की युक्ति महा बोध रूप है, परन्तु जैसे जल को जलकी में कोई घेर लिये है सो हटाने पर भी पुनः आकर घेर लेती है वैसे ही जगत जीव की स्थिति प्रतीत है, अतः इसकी उपाय सुगम से कहिये।

ॐ उत्तर-यद्यपि श्रवण विषें गोचरी मुद्रा शब्द के ज्ञान को अचल करती। भूचरी मुद्रा नाशिका विषें स्वरूप ज्ञान को अचल करती है। चांचरी मुद्रा नेत्र विषें अदृश्य को अचल करती है। खेचरी मुद्रा मुख विषें प्रसन्नता को अचल करती है। उन्मनी मुद्रा नाभि में सिद्धाई को अचल करती है। परन्तु एक मन करके सब सुगम है, जैसे मन के प्रसन्न से मुख विषें प्रसन्नता है-इस बिना उदासीनता है, सो मन आत्मा के प्रति

होते ही जगत न जाने कहां गया, जैसे दूर फेकने से काई, इस विना घेरे रहती है, इसी का नाम राम पलट है, अर्थात् आत्मा के सन्मुख- जगत से विमुख। यद्यपि पन्द्रह दिन के उपास समान शत प्राणायाम है और सहस्त्र प्राणायाम के समान क्षण मात्र हरि का स्मरण है, सो हरि आत्मा एक ही हैं, मानो तिल रूप हरि तेल रूप आत्मा, जिससे आत्मा अति सुगम जो सबको अनुभूत है, जैसे गुण रूप तिल गुण रहित तेल है। यद्यपि र अ म,, की एकता आत्म स्वरूप के समान अवद्ध दशा को प्राप्त करती है, किन्तु आदि में श्री अंत में राम इसकी एकता से महा अवद्ध बन जाता है, मानो जहां इसके पूर्ण रूप की स्थित है उसी की प्रधानता होती है, जैसे श्री हरि वहां हरि हैं-अन्त में श्री शिवः वहां शिव हैं। ऐसे ही सर्वत्र हैं सो सब एक मन के निश्चय से सुगम हैं, अतः आत्मा के प्रति मन को अचल करो।

ॐ प्र० ४८-हे गुरु जी यद्यपि मन करके सुगम हैं-जैसे नेत्र करके दृष्य, परन्तु उस आत्मा के प्रति मन इत्यादि सर्वों का कर्म स्वाहा के समान है तब कार्य का साधन कैसे बनता है जो आप जैसे स्वरूप ज्ञान में होते हुए साधन करते रहते हैं-इसे भी कहने की कृपा कीजिये।

ॐ उत्तर-जैसे भोजन किया हुआ शरीर में क्षय होता है-परन्तु भोजन की सत्ता देह में प्रगट होती है, वैसे कार्य की सत्ता प्रकट होती है जिससे साधन समर्थ होता है। जैसे कार्य के सिद्ध असिद्ध में सम रहने से निर्बंधन और मन भी प्रसन्न

रहता है।

ॐ प्र० ४९-हे गुरु जी सुर स्वभाव असुर स्वभाव दोनो की गति प्राण अपान के समान हैं अथवा अन्य भी है सो कहिये।

ॐ उत्तर-हेमिय नीचे पृथ्वी मद रूप से-ऊपर मेघ जल रूप से-इसके ऊपर सूर्य मानो दोनो को दबाये रहते हैं, जैसे चित्त अहंकार को विचार दबाये रहता है। इस कारण असुर स्वभाव के प्राणी मरने पर मेघ मंडल के ऊपर जाने में असमर्थ हैं, जैसे पांचवें चक्र के ऊपर अपान जाने में असमर्थ है, वहां से गिर गिर के नीचे जलचर थलचर योनियों में जन्मते मरते रहता है, जैसे अपान नीचे से नीचे जाता और लौट कर पांचवे तक आता भी है जब तक प्राण के स्थान नहीं जाता है, जैसे असुर स्वभाव त्यागे बिना सुर स्वभाव धारे बिना सो। अर्थात् आसुरी योनिमा पन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि। परंतु वस हरि रूप संधि के प्रति मन होते ही कैसे समर्थ है जैसे सुर स्वभाव के प्राणी सूर्य विषें तथा ऊपर से ऊपर जाते-सो कदापि नीचे नहीं गिरते हैं, जैसे दूसरे चक्र के नीचे प्राण कदापि नहीं जाता है। अतः मन को संधि विषें स्थित करने योग्य है, इसी बिना नीचे ऊपर होते रहना है जैसे उसके स्थान सो और उसके स्थान सो।

ॐ प्र० ५०-हे गुरु जी चार गुण ब्रह्मा विषें-पांच गुण शिव विषें होने से हरि गुण रहित हैं, परन्तु सो हरि सनो गुण कैसे हैं, जब नव गुण से नव पुर की देह सर्वत्र सिद्ध है, इसे

कृपा सहित कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जैसे प्रयत्न में नव गुण हैं वैसे यत्न में आठ गुण हैं-अतः उस एक के वचन से हरि सत्व गुण से हैं जिससे हरि गुण अगुण से हैं, जैसे गुणरहित संधि वही गुण रूप असंधि होती है जिससे तुम ऐसे गुण अगुण के समानता को धारण करते हैं। परन्तु गुण रहित के बोध बिन सो समानता कदापि नहीं बनती है, अर्थात् विस्मरण होते ही जड़ता का संग बन जाता है-जैसे स्मरण होते ही अकस्मात सर्व त्याग बन जाता है जैसे नेत्र के खोलने से, अर्थात् वही दृश्य जाने बिना सांच किन्तु जानते ही मिथ्या प्रतीत होता है, अतः प्रत्येक प्राणी का देह सूक्ष्म हो अथवा स्थूल सब असंधि रूप हैं वैसे सर्वों के प्रति संधि है इस विषें मन होते ही उस असंधि से असंग हो जाता है जिससे संधि भी असंग और हरि भी गुणातीत हैं वैसे सर्वों के प्रति निश्चित हैं। जिससे सब गुणातीत हैं किन्तु भ्रम से गुण युक्त हैं। अतः भ्रम रहित होते ही संधि के प्रति इन असंधियों का स्वभाव मानो थक कर बैठ जाता है। कारण कि जैसे महात्मावों का वर शाप अचल होता है वैसे ज्ञान अज्ञान प्रशंसा जी का अचल किया है, मानो संधि करके ज्ञानी असंधि करके अज्ञानी हैं इन दोनों के हंसने निमित्त बनाये हैं। अतः अपने मन को संधि स्वरूप पताका पर अचल करो जहां मन सहित सब प्रसन्न रहते हैं।

ॐ प्र० ५१-हे गुरुजी इस करके महान भ्रम नष्ट भया-परन्तु सम संतोष सत्संग विचार-इन चारो का एक सिद्धांत कैसे हैं इसे भी कहिये ।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जो सिद्धांत सर्वों के प्रति हैं वही चार के प्रति है जिससे वेद शास्त्र पौराण इत्यादि सर्वों का सिद्धांत एक है । जैसे देह में दो कर्ण-दो नेत्र दो नाशिका एक मुख एक लिंग एक गुदा, इस नव पुर को तथा नव गुण को तथा नवधा भक्ति को तथा नौ योगेश्वर को-नव कहा जाय अथवा एक-किन्तु नाम रूप से भिन्न भिन्न हैं परन्तु सो सिद्धांप रूप संधि सर्वों के प्रति एक है । वही पौरुष रूप पुरुष है, जैसे गुण रूप प्रकृति सो अवला जो सबको अनुभूत है एक पुरुष को अनेक स्त्री हैं-मानो सर्वों के बोध निमित्त कृष्ण से प्रसिद्ध हैं, तथा वही सिद्धांत जीव नाम से उसे अनेक शरीर ग्रहण त्याग प्रतीत हैं, किन्तु स्त्री मात्र को एक पति हैं । जैसे श्रवण अपने पति के प्रति हैं, नाशिका अपने पति के प्रति, वैसे नेत्र इत्यादि मन बुद्धि प्राण अहंकार इन्द्रिय समूह सब अपने अपने पति के प्रति हैं, जैसे नवधा भक्ति नव योगेश्वर देखने में भिन्न भिन्न हैं परन्तु अपने अपने सिद्धांत रूप पति में परायण हैं न कि एक दूसरे विषें, मानो इसी ज्ञान भक्ति के बोध निमित्त पुरुष रूप कृष्णऔर अवला रूप स्त्रियां अनभून हैं । यद्यपि पुरुष द्वारा असंग सो ज्ञान रूप विपयता प्रतीत है और स्त्री द्वारा संग सो भक्ति रूप समानता प्रतीत है, किन्तु संग असंग दोनो विषें है ऐसे ही

ज्ञान में भी सम भक्ति में भी सम है जिससे चारों में प्रथम सम है। जैसे सम रूप राम संतोष रूप कृष्ण सत्संग रूप कल्कि विचार रूप शिव हैं। परन्तु चारों का सिद्धांत एक है, अर्थात आत्मा के सिवाय अन्य का रहना न रहना समान से वही समानता है उसे सर्वत्र समान होने ही योग्य है। वैसे आत्मा के सिवाय अन्य से अरुचि जैसे इन्द्र इत्यादि के भोग रूप पदवी से, किन्तु आत्मा से रुचि, वही परमसंतोष है। वैसे सत्स्वरूप आत्मा के सिवाय अन्य से असंग वही सत्संग है। वैसे जहां आत्मा अचल और अन्य सो चल निश्चित है वही निर्मल विचार हैं।

ॐ प्र० ५२-हे गुरु जी महा भ्रम नष्ट हुआ, परन्तु महीनों में अगहन ऋतु में वसंत किस कारण श्रेय हैं।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जैसे किसी को एक शत तत्व निश्चित है, किसी को पचास, किसी को तीस, किसी को पचीस, किसी को चौबीस, किसी को बीस, किसी को पांच, किसी को चार, किसी को एकही आकाश मूल है। जैसे एकही गुण एकही अगुण, वैसे यह भी है जो सबको अनुभूत हैं। अर्थात अगहन में वृक्ष इत्यादि सबों का रस संकुचित होकर अन्तर्मुख होता है, जैसे संकुचित से बलि के प्रति वामन जी प्रतीत हैं। वसंत ऋतु होते ही बहिर्मुख होता है, जैसे बलि के हाथ से कुश वामन जी के हाथ पर होते ही विराट अनुभूत हैं। मानो अनहं रूप वामन और अहं रूप विराट हैं, वैसे अनहं रूप अगहन और अहं

रूप वसंत है। अतः शून्यता से अगहन प्रधान है और अहं ब्रह्म से विराट के समान वसंत प्रधान है। अर्थात ज्ञान बिना अज्ञान सो अज्ञान करके है, जैसे अगहन वसंत आकाश। परन्तु ज्ञान का सम्बन्ध होते ही विज्ञान हो जाता है, किन्तु ज्ञान अपने स्वभावही से रहता है, जैसे प्रह्लाद के सम्बन्ध से खड्ग खम्भ हिरण्यकशिपु प्रतीत हैं, परन्तु प्रह्लाद अपने स्वभावही से हैं। तथा जाग्रत रूप कार्तिक-स्वप्न रूप माघ-सुषुप्ति रूप वैशाख-तुरीया रूप अधिक मास-किन्तु शून्यता तुरीयातीत है।

कै प्र० ५३-हे गुरु जी आप की युक्ति मानो ज्ञान का रूप है जिसे समझ कर मन की प्रसन्नता मन ही जानता है जैसे आश्चर्यवत आत्म स्वरूप जिसे निश्चित करता हूं। अर्थात गुण रहित ब्रह्म से गुण रहित संधि सो दोनों समान होते हुए जीव ब्रह्म कहे जाते हैं, जैसे वायु रूप प्राण और वायु रूप मन एक होते हुए दो भेद से प्रतीत हैं, मानों इसी के बोध निमित्त 'अ' और इसकी संधि है। अतः जैसे नाम रूप से रहित तथा स्त्री पुरुष के भेद से रहित ब्रह्म अनिर्वचनीय है वैसे सो संधि रूप जीव है, जिससे सबों के प्रति समान है। असंग होते हुए प्रपंच विषें उपाधि से संग प्रतीत होता है, चेष्टा से रहित किन्तु दोनों ओर चेष्टा से प्रतीत होता है, मानों उधर की चेष्टा ब्रह्म भाव को सिद्ध करती है और इधर की चेष्टा उपाधि को सिद्ध करती है। अतः सबों के बोध हेतु ब्रह्म के समान ब्रह्मा जी और जीव के समान कश्यप जी अनुभूत हैं। अर्थात अद्वैत

की भांति अदिति और द्वैत की भांति दिति हैं सो कस्यप जी दोनों ओर सिद्ध करते हैं ऐसेही मानो शुभ अशुभ इच्छाही जीव की भार्य्या हैं। परन्तु जैसे कस्यप जी को दोनों पक्ष समान और संग होते हुए असंग हैं और मुक्त स्वरूप अबद्ध हैं, ऐसे जीव भी निश्चिन्त है। यद्पि अद्वैत से निर्बन्धन और द्वैत से बन्धन प्रतीत हैं, जैसे अदिति और दिति से। परन्तु द्वैत जो भेद है वही भेद भक्ति है सो भेदही उस अद्वैत को सिद्ध करता है, जिससे बलि इत्यादि नीचे और इन्द्र इत्यादि उपर सो दोनो पक्ष समान से अबद्ध हैं। यद्यपि उसी गुण के उपाधि में तीनो कोष्ट हैं, मानो अहंकार सो शिव-प्राण सो हरि-अपान सो ब्रह्मा, वही त्रिभेद सर्वत्र है, किन्तु सो संधि रुप जीव सबों के प्रति असंग और अबद्ध है। अर्थात् देही नित्य मवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत। अतः हे गुरु जी प्राण अपान के समान जय विजय कैसे कहां से हैं इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-हे महा प्रिय इसी भांति मन बुद्धि के रगड़ से विचार होतेही क्षण मात्र में भ्रम को नष्ट करके संधि सरुप को एक करता है। अर्थात गुण रहित होतेही जीव शिव संधि हरि इत्यादि में भ्रम भेद कहां है, जैसे प्राण द्वारा प्राणायाम सो भी उसी संधि को सिद्ध करता है और ज्ञान द्वारा विचार सो भी उसी संधि को सिद्ध करता है, जिससे संधि प्राणेश्वर है, इसी कारण हरि भी प्राणेश्वर हैं, जैसे कर्मों में संध्या। उसी को आत्मा शिव जीव धर्म अचल सनातन श्री सनातन

भी कहा जाता है, अतः उस संधि के समीप जिनका मन है उसे सर्वत्र समीप है इस बिना अन्यत्र पृथक रहता है जैसे धर्म से विमुख अधर्म और सत्य से विमुख मिथ्या। अतः उपाधि सो मिथ्या और उपाधि रहित सत्य सो सर्वत्र सिद्ध है। परन्तु भोग की चेष्टा से उलटा होते ही नीचे ऊपर होनेही योग्य हैं, जैसे भक्ति का अधोकार नीचे और ऊर्ध्वाकार ऊपर है मानो हरि का मैं नीचे और हरि मेरे ऊपर है। उस नीचे का भाव जहां अचल होता है वहां अन्य होते हुए नहीं के समान हैं, जैसे लव कुश और जय विजय के प्रति बड़े बड़े लक्ष्मण हनुमान इत्यादि अनुभूत हैं। वैसे जहां ऊपर का भाव अचल होता है सो श्री हरि को पुत्र पतोहू बनाने में समर्थ हैं जैसे दशरथ विष्णु यशा इत्यादि अनुभूत हैं। परन्तु जैसे प्राण रूप जय अपान रूप विजय हैं, वैसे ऊपर में दशरथ विष्णु यशा प्राण रूप हैं और जनक विहद्रथ अपान रूप हैं, मानों दोनों पक्ष समान हैं-जैसे प्राण दाता पिता ज्ञान दाता गुरु-किन्तु अन्य दाता के समान गुणअगुण से अन्य भी प्रतीत हैं। कभी नीचे कभी ऊपर कभी इधर कभी उधर, मानों गीदड़ से शिक्षा लिये हैं, जैसे अबद्ध का स्वभाव वामन जी और वामन का स्वभाव अबद्ध पाते हैं। अर्थात् नीचे अथवा ऊपर जिधर को मुख करना है वहां अपने आधार शाखा का आश्रय लिये रहता है किन्तु जाने विना अबोध है, बोध होनेही सो गीदड़ भी अबद्ध होने में समर्थ हैं, जैसे शाखा रूप नासिका आधार रूप संधि है। यद्यपि यह मन

जहां से जाता और जहां उपस्थित होता है और जहां ठहरता है वहीं वहीं संधि सर्वत्र है, जैसे जिधरही मुख उधरही सो है किन्तु नासिका के अग्र महा संधि है। यहां मन होते ही जीव ब्रह्म एकत्र होते हैं जैसे विवेक रूप विश्वामित्र के आतेही जानकी सहित सब एकत्र हैं। यहां अपर समूह शांत होनेही योग्य हैं, जिससे उसी का आश्रय सब लेते हैं। जैसे भादों शुदी तीज को कल्कि जी का गर्भाधान और वैशाष शुदी द्वादशी को जन्म तिथि है, आठ महीना नव दिन, जैसे यत्न में आठ अयत्न में नव, परन्तु सिद्धांत रूप संधि दोनों विषें एक है, मानों इसी महा संधि के बोध हेतु कल्कि भी प्रगट होते हैं, अतः निश्चित करने योग्य है। उन्हीं कल्कि जी के दोनों पुत्र जय विजय हैं। सो वही नहीं किन्तु ऐसेही कल्कि ऐसेही जय विजय अनेक और अनेकों बार होते रहते हैं। अतः अपने आत्मा में सावधान रहो, यद्यपि इधर की चेष्टा चल से उपाधि है जैसे अनेक कल्पना से विकल्प है. उधर की चेष्टा अचल है जैसे एक आत्म स्वरूप का दृढ़ संकल्प. परन्तु नृसिंह जी को खम्भ मानों देख रहा है उसे किंचित भी चेष्टा नहीं है जैसे नृर्विकल्प, वहां स्थिति बोधा श्याम ब्रह्मा श्यास हैं। उसी स्थिति में गमन शीलता और कर्त्तापन भी नहीं के समान है वहां समाधि व्यवहार भी समान है. वही शांत पद है जहां मन इत्यादि सहित विचार भी अस्त है। वही अनुभव मात्र सबों का सिद्धांत है जो तुम जैसे को अति सुगम है किन्तु अनुभव बिना कठिन प्रतीत होता है। अतः है

प्रिय शरीर यदि तिल मात्र काट डालो अथवा काष्ठ पाषाण के समान बना डालो तब भी बोध बिना जड़ है जैसे खम्भ परन्तु एक तत्व विचार का आश्रय होतेही अनायास खम्भ इत्यादि सब मिथ्या बन जाते हैं, जिससे तत्व वेत्ता सर्व श्रेय और वही तत्वदर्शी है।

ॐ ५४-हे गुरु जी जैसे बड़वाग्नि द्वारा तीनों भेद का जल उदय अस्त होता रहता है वैसे संधि द्वारा तीनो काण्ड उदय अस्त होते रहते हैं, परन्तु बड़वाग्नि और संधि अपने स्वभाव से असंग रूप से स्थिति हैं। जैसे कर्म का समर्पण अपने मन द्वारा तीन भेद से प्रतीत होता है किन्तु संधि जो आत्मा है सो तीनों भेद से निस्पृह और असंग है, भ्रम से अन्यथा प्रतीत होता है जैसे संधि और आत्मा में भ्रम होता है। परन्तु जैसे युद्ध में कवच रहने से निर्भय और न रहने से भयभीत रहता है वैसे अर्पण से सनमुख और न करने से विमुख प्रतीत करता है इसे निश्चित करता हूँ। परन्तु सो कल्कि जी कैसे होते हैं बोध निमित्त इसे भी कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय जैसे ब्रह्मा से विष्णु और विष्णु से शिव अनुभूत हैं, वैसे ब्रह्म यशा का पुत्र विष्णु यशा और विष्णु यशा का पुत्र कल्कि जी हैं इसी प्रकार होते रहते हैं। यद्यपि उस पक्ष में समाजी सो तीन हैं उन्हीं तीन से सब नाड़ियों की पूर्ती होती है और इस पक्ष में नाड़ियों के समान समाजी बहुत हैं जिससे सब समाजियों करके नीचे ऊपर की सब नाड़ियों की

पूर्ती होती है, अतः जैसे उस पक्ष में आदि अन्त सहित नाड़ियों के सहायता से विष्णु बनते हैं, वैसे इस पक्ष में आदि अन्त सहित अपने नाड़ियों के सहायता से विष्णु यशा होते हैं, मानों मुनि का गुण-संत का गुण-अवद्ध का गुण-इन तीनों के एकता से विष्णु और विष्णु यशा में समान से समानता होती है न कि अन्य स्थान के समान सुगम से कल्कि जी प्रगट होने योग्य हैं। अतः जैसे भ्रम से आत्मा और हरि में भेद होता है वैसे चेष्टा से स्त्री पुरुष में होता है, जिससे विष्णु यशा की स्त्री सुमति नाम से होती हैं तिनके गर्भ से कल्कि जी होते हैं। वैसे बृहद्रथ की स्त्री कौमुदी नाम से होती हैं तिनके गर्भ से श्री स्वरूप पद्मा प्रगट होती हैं। जैसे ज्ञान के प्रति शुभेच्छा और प्राण के प्रति सुमति, इसी भांति सबों के प्रति होने योग्य हैं किन्तु इस स्वभाव बिना विपरीत होता है जैसे चेष्टा से चल और चेष्टा बिना अचल होता है। मानो इसी कारण श्री हरि के समान चित्त प्राण में भेद है जिससे विष्णु यशा के प्रति कमलिनी के समान शुमति और बृहद्रथ के प्रति कुमुदनी के समान कौमुदी हैं। यथार्थ में जैसे आत्म चिंता प्राण चिंता एक हैं वैसे शुमति और शुभेच्छा तथा प्राण अपान एक हैं। ऐसे ही जहां एकही गुण रहित आत्मा और एकही गुण रूप अनात्मा निश्चित है उसे सर्वत्र निर्भयता प्रतीत होती है। इसी के बोध निमित्त कितने एक सोऽहं-ओंकार तथा आदि अन्त का स्मरण करते हैं यथार्थ में मन वचन शरीर का सब कार्य आत्मा के

प्रति समान है, वैसे ही प्रत्येक भिन्नता का भेद जो अनात्मा है सो सब उस आत्मा के प्रति एकही अभेद है ।

ॐ प्र० ५५-हे गुरु जी ब्रह्मा से चींटी परयंत इच्छा से उद्‌य अनिच्छा से अस्त हैं, जैसे संधि विषें अचल अन्यत्र से चल होता है । परन्तु प्रत्येक समाजियों का मार्ग बहत्तर सहस्र नाडी रूप हैं उसमे नीच ऊँच की नाडी कैसे कौन हैं इसे भी कृपा सहित कहिये ।

ॐ उत्तर-हे प्रिय प्रथम तुम्हें बोध दृष्टि धारण करने योग्य है । अर्थात् वही नृत्य अबोध को हँसने निमित्त है और वही ज्ञानी को बोध निमित्त है, जैसे गीदड़-सूर्पणखा-नेउला इत्यादि अनुभूत हैं । तथा अज्ञानी अपने नाशिका को देखते रहते हैं और ज्ञानी इस जड़ता से परे उस आत्मा को मन से निश्चय करते हैं न कि नेत्र से, तथा अज्ञानी अपना दोनों श्रवण बंद करके मन को मृग के समान नाद शब्द में उन्मत्त करते हैं परन्तु ज्ञानी मन विचार से सार वस्तु को सिद्ध करते हैं । जैसे जड़ता का मूल आकाश और वायु को सब ज्ञानी मानते हैं इसे राम भी निश्चित्त किये हैं, अर्थात् आकाश रूप श्रवण वायु रूप नासिका है, दोनों से परे सो आत्म पद सिद्ध है । सो आकाश वायु बड़े बड़े चतुरों को आच्छादन किये रहता है तब सूर्पणखा को भ्रम होने में आश्चर्य क्या है, किन्तु नासिका श्रवण निपात होनेही जिस प्रयोजन से राम के प्रति गई थी सो सिद्ध है, परन्तु विलम्ब के कारण इसका परिज्ञान उसे नहीं है जैसे सिद्धों का

अनुमान अज्ञानी के समझ में नहीं आता है। ऐसेही उस नाड़ियों के मार्ग में नीच ऊच की स्थिति है, जैसे भक्ति का रूप मन्दोदरी उसे विचार रूप पराशर का सम्बन्ध होते ही गंगा के स्थान हैं। तथा माया रूप जानकी भी रावण के प्रति और सूर्पणखा राम के प्रति-परन्तु जैसे वहां शुद्ध जानकी दोनों ओर का नाटक चतुरता से देख रही हैं वैसे गुण रहित संधि तीनों कोष्ट का नाटक देखने में महा चतुर हैं। ऐसेही तुम्हें भी अनुभव करने योग्य हैं, जैसे माया रूप जानकी सो रुक्मिणी और रावण सो शिशुपाल- मानों यह रावण जब जय विजय से थे तब यह यहां जया विजया से थीं, अतः नृत्य के कारण निवारण से इसके पश्चात् दोनों से एकता होती है, जैसे राम के पश्चात् सूर्पणखा और कृष्ण से सिद्ध हैं। ऐसेही पृथक एकत्र समानता विषमता होती रहती है, जैसे कृष्ण के राशलीला में प्रत्येक के प्रति प्रत्येक से दो दो बार का संग असंग हैं, जिससे ऊपर के कोष्ठ में तीनों के स्थान तीनों होते हैं, वैसे नीचे के दोनों कोष्ट में होते रहते हैं, मानों स्थान के समान बहत्तर सहस्र नाड़ी और पथिक के समान प्राण अपान के समाजी सब हैं। उस नाड़ियों के अन्तर गत नीच से नीच और ऊँच से ऊँच का रूप है, जैसे ऊपर ब्रह्मरंध्र विषें प्राण और नीचे पाताल विषें अपान-दोनों को समान करके सम रूप भक्ति विचार के पीछे पीछे चलती हैं, जैसे भगीरथ के पीछे गंगा प्रतीत हैं। अतः हे प्रिय जैसे सत् असत् का विचार करते हो वैसे मुक्त होने की चेष्टा धर्म और

अमुक्त की चेष्टा अधर्म इसे प्रथम अचल करो। यही ज्ञानी जनों का धर्म रूपी यन्त्र है इसी को अचल रखते हैं। यदि तुम्हें कोई बलात्कार से अन्यत्र कहीं ले जाता है वहां तुम स्वधर्म में निर्दोष हो किन्तु अन्यत्र की चेष्टा दूषित है। अतः पथिक अनेक आते जाते हैं परन्तु स्थान सर्व काल जैसे का तैसे रहता है। जिससे पथिक के समान अनेक ब्रह्मा हरि शिव उदय अस्त होते रहते हैं, वैसे मध्य और नीचे के कोष्ठ में होते रहते हैं, जैसे जल का तरंग कौन प्रथम का कौन अभी का है यह कहना कठिन है। अर्थात जहां ज्ञान द्वारा आत्मा के प्रति मन प्राण इत्यादि मृतक के समान हैं वहां सो पुनः करके कदापि नहीं बनना है जैसे आकाश के समान आत्मा का जन्म मरण आना जाना कदापि नहीं बनता है। किन्तु आत्मा के चमत्कार से मन द्वारा चेष्टा होती है, जन्म के पश्चात् अथवा मरण के पश्चात् हो चेष्टाही अनर्थ का मूल है। सो यदि अपने तथा भक्ति के वशीभूत से उदय की चेष्टा होती है वहा नाड़ियों की गति अनायास बन जाती है। जैसे अस्त बिना उदय से अर्जुन को रावण-हनुमान को महा रावण-कर्ण को विभीषण-प्रह्लाद को मेघनाद-युधिष्ठिर को हरिश्चन्द्र-द्रोणाचार्य को विश्वामित्र-होने में किंचित् भी भ्रम नहीं है। अर्थात् आदि में गणेश मध्य में सूर्य अन्त में शेष-इमां के अन्तर गत सुर असुर नीच ऊँच नाड़ियों की स्थिति है मानों सबों के आने जाने का स्थान है। जैसे खटमुख यदि अपने स्थान से उस अन्तिम नाड़ी शेष के रूप तक चलें तब इस प्राण के

नाड़ी का रूप वही छत्तीस सहस्त्र बार जन्म मरण की व्यवस्था हैं, वैसेही वहां से नीचे गणेश के रूप तक छत्तीस सहस्त्र नाड़ी रूप जन्म मरण की व्यवस्था इस अपान गति में भी है, जिससे बहत्तर सहस्त्र के अन्तरगत में आदि गणेश मध्य सूर्य अन्त शेष हैं। अतः जैसे हनुमान के साथ बन्दर गिरि गुहा में प्रवेश करते प्रतीत हैं, वैसे भक्ति के साथ विराग युक्त षट्मुख के स्थान जाना बनता है जिससे वहां जाने निमित्त प्रथम की ज्ञान भूमिका शुभेच्छा हैं, ऐसेही अस्त बिना उदय से सर्वत्र निश्चित है। यद्यपि वेद का रूप सनकादिक सो विष्णु द्वारा षट्मुख के रूप में गिराये जाने अनुभूत हैं, जैसे उस सनकादिक द्वारा जय विजय प्रतीत हैं, सो सब अपने स्वधर्म में चेष्टा बिना निर्दोष हैं। अतः हे प्रिय तुम्हारा परम कल्याण हो किन्तु जन्म और मरण दोनों के चेष्टा से रहित बनो, जैसे उदय सो अस्त से वर्जित और अस्त सो उदय से वर्जित है, शांत स्वरूप आत्मा के प्रति स्थिति रहो। अर्थात सो आत्मा चेतन होते हुये सर्वत्र सबों के प्रति होते हुए शांत रूप से अचल है, परन्तु अहं रूप तुम तथा मन इन्द्रिय सहित जड़ और मिथ्या होते हुए चंचल और चल हो-इससे बढ़ कर अधिक आश्चर्य क्या है-इसी का नाम भ्रम माया अविद्या उपाधि है, जिसे देख कर विवेकी जन हँसते हैं, अतः तुम जैसे जड़ के समान हो वैसे ठूंठ काठ के समान चेष्टा बिना अचल रहो। यदि कहो सो चेतन में ही हूँ तब तो अधिक श्रेय है, किन्तु जैसे मन्दराचल वासुकिनाग कच्छप

इत्यादि सुर असुर अपने अपने स्थान चले जाने पर क्षीर सागर शांत रूप से स्थिति होता भया, वैसे मन बुद्धि इन्द्रियादिक जिस पंचभूत से आये हैं उन्हें उस विषें नियुक्त करके शांत रूप से अचल रहो। परन्तु सत का भाव और असत का अभाव दोनों पक्ष में सिद्ध हैं, जैसे राम रावण का नाटक आत्मा और अहंकार के बोध निमित्त निश्चित हैं।

ॐ प्र० ५६-हे गुरु जीआप के युक्ति वाक्य मानों दोनों को दोनों ओर से बांध कर सिद्ध कर देते हैं-जैसे वाल्मीक के प्रति सात महा ऋषियों के युक्ति वाक्य अनुभूत हैं। इस करके जड़ चेतन दोनों अचल होनेही योग्य हैं-किन्तु भ्रम से दोनों ओर चंचलता की प्रतीत होती है-जैसे शांति अशांति का मूल वायु और मन हैं भ्रम बिना दोनों अचल हैं। परन्तु जैसे तीनों प्रकृति एक से तीनों कोष्ट एक हैं-वैसे तीनों को पृथक करके सुगम से कहिये।

ॐ उत्तर-हे प्रिय तुम्हारे जैसे बुद्धि की तीक्ष्णता प्रशंसा के योग्य है। अतः नीचे का कोष्ट स्थूल प्रकृति है जैसे क्ष. मध्य का सूक्ष्म प्रकृति है जैसे त्र, ऊपर का कोष्ट चेतन प्रकृति है जैसे ज्ञ। परन्तु जड़ प्रकृति के कारण नीचे का दोनों कोष्ट एक हैं, जिसमें अपान की अन्तिम गति नीचे पाताल तक और प्राण की अन्तिम गति ऊपर ब्रह्म रंध्र तक है-मानों इसी के बोध निमित्त विराट जी के दो चरण में जड़ प्रकृति समाप्त है। जैसे ज्ञान द्वारा सूक्ष्म पुर्यष्टक और स्थूल शरीर दोनों जड़ भान से एक

है-किन्तु 'ज्ञ' के समान जीव है। अतः जीव जो ज्ञान स्वरूप चेतन है और जड़ प्रकृति अचेतन जो अज्ञान स्वरूप है इस दोनों की एकता वही चेतन प्रकृति का रूप है-मानों इस विना कार्य नहीं-उस विना चेतनता नहीं है। यही जड़ चेतन की ग्रन्थि है इसे जाने विना अनेक जन्म में पृथक नहीं होती है, अनुभव होतेही क्षण मात्र में पृथक हैं, यही जीव जगत की एकता है, यही गुण अगुण की समानता भी है, अर्थात् आकाश जो सूक्ष्म और चारों भूत स्थूल-यही दोनों जड़ प्रकृति हैं, इसी जड़ स्वरूप में जड़ स्वरूप का तीन गुण हैं-अर्थात चेष्टा विना शून्य आकाश वही सत्व गुण की स्थिति है-वायु तेज रजो गुण-जल जड़ तमोगुण है। अतः उसे जड़ता रहित जीव कहो अथवा गुण रहित जीव कहो, जैसे उस जीव को शिव कहो अथवा आत्मा ब्रह्म कहो, किन्तु जानना जो ज्ञान है इस विना भ्रम भेद बना रहता है, जैसे इसी तीन गुणमें चार भेद होकर ब्रह्मा हरि शिव कृष्ण हैं। तथा सत्व गुण से ब्राह्मण-सत्वरज से क्षत्रीय-रजतम से वैश्य-तम से शूद्र। यथार्थ में नीचे से ऊपर तक एकही गुण रहित आत्मा है और एकही सो गुण रूप की प्रकृति है। इसी के बोध निमित्त प्रथम सो जड़ भक्ति अपने अधिष्ठाना आकाश की ओर चलती है-जो समानता रूप सत्व गुण की स्थिति है, जैसे गंगा के आश्रय से साधु सन्त तीर लिये चलते हैं, सो भी वहां जाते हैं अर्थात् अंग षट्गुरु-षट्शास्त्र-षट्चक्र- षट् विचार-कुंभक और कुंभा-सात चक्र सात पुरी समान हैं-ऐसे गंगा भक्ति

समान हैं। अतः जहां आकाश रूप अखंड ज्ञान अखंड विचार अखंड भक्ति अखंड प्रीति है, वहां इसे पाकर चेतन की ओर चलते हैं, जहां ईश्वरी सम्पदा है। अर्थात् अक्षय ज्ञान-पूर्ववत ज्ञान- तथा अंश के उदय अस्त की शक्ति, मानों अखंड और अक्षय की एकता वही ब्रह्माकाश है। इसी तन्मयता को समानता रूप संधि तथा स्वतंत्र भी कहा जाता है किन्तु गुण के असंग को गुणातीत कहा जाता है, यही सर्वत्र सबों के प्रति सिद्धांत रूप से सिद्ध है। इसी चेतन के सम्बन्ध से आकाश रूप ब्रह्मा सबों के प्रति हैं मानों सबों को मुक्त करनेही निमित्त आते जाते प्रतीत होते हैं, परन्तु सो आकाश मोक्ष रूप है। वैसेही संधि रूप से हरि-जीव रूप से शिव सबों के प्रति निश्चित् है। यद्यपि गुण अगुण से तीनों समान हैं किन्तु शिव की स्थिति प्रधान और सुगम है, मानों भूल कर भी कोई अमुक्त नहीं रहता है जैसे अनहं होतेही मानो शिव रूपी महा पजात्रा हो गया। अतः हे प्रिय जैसे सूर्य के उदय से तीनों भेद की रात्रि अस्त होकर न जाने कहां चली जाती है वैसे नाम रूप से रहित जो आधा भाग शिव है उसके शिवाय अन्य जो आधा भाग है सो सब त्रिभेद सहित न जाने क्या हो जाता है, इसी अर्धाकार से ब्रह्माड भर सब हैं। किन्तु जैसे सूर्य के होते हुए ओट होने से रात्रि की प्रतीत है वैसे सो शिव होते हुए ओट से नीचे का भाग रात्रि के समान अज्ञान है, जिससे नासिका के अग्र आत्मा का निश्चय मन में होनेही मानों सूर्य उदय हो गये, उस निश्चय

से विमुख होतेही मानों रात्रि आ गई, अतः तुम सबों के समान दोनों की चेष्टा न करो किन्तु रात्रि के चेष्टा बिना दिन के चेष्टा से महान प्रशंसा है। परन्तु जैसे इस विषमता को समझ गया वैसे सो समानता भी निश्चित करने योग्य हैं जहां चन्द्रमा सूर्य दोनों अनुभूत हैं वैसे कार्य रूप अज्ञान बिना संधि स्वरूप की स्थिति है वही ज्ञान भक्ति तथा कारण निष्कारण की प्रतीत है, जैसे पंचबाण सहित काम क्षय होने पर रती और प्रद्युम्न अनुभूत होते हैं। यही अमृत मय संधि स्वरूप आत्मा का निश्चय है जिसके प्रति मंथन और कंठ इस दोनों भेद का अमृत तुच्छ प्रतीत होता है अर्थात् सो आत्म स्वरूप इन दोनों का अधिष्ठाता है, इसी दृढ़ निश्चय से शिव जी चिन्ता से रहित हैं कि कब ब्रह्मा हरि के स्थान जाते हैं और सो हरि कब ब्रह्मा के स्थान जाते हैं, जैसे कब ज्वार कब भाटाहै यह चिन्ता समुद्र को भी नहीं है किन्तु अपने आत स्वरूप के निश्चय से। वैसे तुम्हारे भी कब अपान के स्थान प्राण और कब प्राण के स्थान अपान होता है इसकी चिन्ता आत्म स्वरूप के निश्चय से कदापि न होगी वहां स्वतः प्राण अपान की एकता हो जाती है। इसी के बोध निमित्त धर्म के नाम से अनेक मत अनेक सम्प्रदाय अनेक भेष अनेक कल्पना का मार्ग होता रहता है, परन्तु विचार से सबों का सिद्धांत आत्माही सिद्ध है। 'सर्व धर्मान् परि त्यज्य मामेकं शरणं व्रज, यही भावार्थ है। इसी के बोध बिना अन्यथा भ्रमण करते हैं जैसे नाड़ियों में, अतः आत्मा में अचल रहो।

ॐ ५७-हे गुरु जी मानो उपप्न अविद्या के कारण हमको चपप्न प्रश्न करना पड़ा, सो विद्या अविद्या दोनों को एकही समाधान से स्थगित करने में समर्थ हैं, जो आपही जैसे महात्मा सिद्धांत और गुण स्वभाव को शिष्य विषें अचल करते हैं। जिससे आत्मज के समान एकता प्रतीत होती है, जैसे एकता से एकही सूर्य है, किन्तु पृथक से चद्रमा सूर्य दोनों हैं, वैसे गुरु शिष्य और संधि स्वरूप हैं। यद्यपि उत्तपति स्थान ब्रह्मा-प्रलय स्थान शिव-पालन स्थान हरि-जिससे हरि सबों का परमहित हैं। परन्तु आप जैसे गुरु उनसे भी अधिक हित हैं, जिसे निश्चित करता हूं, किन्तु सहायक संगी सधु जन कहे जाते हैं। यदि ऐसे महा गुरु कहीं अन्यत्र हों- उनकी उपासना कैसे होने योग्य है इसे भी कृपा सहित कहिये।

ॐ उत्तर-हे महा प्रिय जैसे युक्ति और सिद्धांत को ग्रहण करना वही महा श्रेय है-वैसे गुरु कहीं हों मन से उनके चरण का स्मरण- वचन से धन्यवाद सिर से नमस्कार-यही महा-पूजा है। जैसे आत्मा की होती है, सो दोनों समान हैं जैसे आत्मा और हरि तथा जीव और शिव किन्तु गुण करके भेद है-गुण रहित होतेही एकही सिद्ध हैं। जैसे इस अध्यात्म के संग बिना अन्यथा और संग से दुर्जन भी साधु होने योग्य है जिससे अध्यात्मही महा साधु और यही परम संगी साथी है, इस बिना कैसे कौन हो सकता है इसे अनुभव करने योग्य है।

प्रार्थना-हे महा गुरु अनन्त नमस्कार हैं- श्री गुरवेनमः

चेतावनीः–

आदरणीय श्री गुरु की चेतावनी निश्चित करने योग्य है, अर्थात् तिलक रूप राजा विना प्रजाही प्रजा का लुटेरू बन जाते हैं, सो तिलक रूप राजा आत्मा है, पंच भौतिक रूप ब्रह्माण्ड सब प्रजा है, उस राजा के प्रतीत विना विपरीत होनेही योग्य है इसका उपाय अध्यात्म है इस विना अनात्म भ्रमिष्ट करके असाधु अधर्मी बना देता है जैसे युद्धस्थल में अर्जुन को, इस कारण कृष्ण ने अध्यात्म का उपदेश करके साधु रूप धर्म में युक्त किये, अर्थात् अध्यात्मही महा साधु रूप धर्म है और अनात्म महा असाधु रूप अधर्म है, इसी के सुधार निमित्त महा पुरुषों आगमन होता है इस करके वही महा पुरुष अनेक यज्ञों का करता है। जैसे विचार शील वर्ण और आश्रम से युक्त रहते हैं किन्तु विचार विना कुयोगी अयुक्त रहते हैं, यद्यपि सम रूप भक्ति विषें असंग प्रतीत होता है परन्तु विचार शील वहां भी युक्त करते हैं जिससे भक्ति की स्थिरता सब में सर्वत्र है वैसे भक्ति में भी निश्चित है। अतः उस साधु भेष में तुलसी दास भी सन्यास आश्रम में थे जैसे चेष्टा से संग और चेष्टा विना असंग है, वैसे सो विचार किये ब्रह्मचर्य, गारहस्त-वान-प्रस्त-इन तीनों से असंग है अतः सन्यास से युक्त रहना उचित है। अर्थात् सम और विराग से अनायास उस साधु भेष में बन जाता है जिससे सबों को चेतावनी देते हैं कि वर्ण और आश्रम जो वेद पथ है यह कुयोगियों से प्रतिकूल होता है जैसे

विराग विना सन्यास । वैसेही ग्रहण जो गृहाश्रम-त्याग जो सन्यास दोनों आनायास भक्ति विषें मिल जाते हैं जैसे गंगा विषें यमुना सरस्वती अनुभूत हैं । इसी का भावार्थ गीता में है-तस्मात् योगी भवार्जुन । मानों पचास दल पचास अक्षर यमुना समान कर्म हैं- इसका निवारण सरस्वती के समान ज्ञान है-दोनों को सम करना गंगा के समान भक्ति है-तीनों की एकता वही योगारूढ़ है, यही शत पुस्ति का पवित्र कारक है, इसी विना कल्पवृक्ष चारही फल का अधिकारी है जैसे यत्न विना अयत्न । यद्यपि देवतों के अधिकार में होता तथा असुरों के परन्तु अपने स्वभावही से रहता है जैसे ज्ञान । वही जब नाड़ी द्वारा अपने विष्णुयशा के रूप में जाता है तब हरि का मैं हरि मेरे इस नीचे ऊपर सहित सर्वत्र का अधिकारी होता है जैसे राम जहां असमर्थ प्रतीत हैं वहां भी हनुमान समर्थ हैं । अतः बहत्तर सहस्र नाड़ी जो स्थान के समान हैं उस विषें नीच ऊच सहित पथिक के समान कल्पवृक्ष और विष्णुयशा एक कोष्ट में एक हैं किन्तु ऊपर का कोष्ट सो इसका अधिष्ठाता महा कल्पवृक्ष है मानों हरि रूप कृष्ण । परन्तु जैसे सो इसे अपने आंगन में रखने को समर्थ हैं वैसे यह भी उन्हें रखने में समर्थ है जिससे विष्णु और विष्णुयशा से समानता है । जैसे अखंड ज्ञान अखंड विचार अखंड भक्ति अखंड प्रीति समान हैं, परन्तु अन्त में जो प्रीति है इस विना सर्वत्र शून्य है जैसे संधि विना असंधि का समूह । यद्यपि राग से प्रीति विराग से

अप्रीति सर्वत्र निश्चित है, किन्तु आत्मा से प्रीति अन्यत्र से अप्रीति यही सर्वों का सिद्धांत है, इसी स्थिति में विचार जब देखता है हरि हमारे पुत्र होने को उद्यत हैं वहां सो आदर निरादर के चेष्टा बिना आत्मा में सावधान रहता है न कि अज्ञानी के समान आसक्त होता है, अर्थात सो भी चेष्टा बिना योग युक्त से प्राप्त होते हैं न की चेष्टा युक्त कुयोग से, अतः यहां भी आत्मा सिद्ध है। यद्यपि सूर्य से आत्मा का प्रमाण है जिससे अबोध विषें प्रतीत होता कि सूर्य के समान आत्मा कहीं एक स्थान से प्रकाश करता है, परन्तु बोध विषें आकाश के समान सर्वत्र है, यही बोध को सुगम और समीप है किन्तु अबोध को दूर और कठिन है। मानो बोध विषें आत्मा का चमत्कार जो मन इत्यादि में होता है सो सत् असत् दोनों पक्ष अचंचल है किन्तु अबोध विषें चंचल है, इसका उपाय अध्यात्म का मनन और आत्मा का शरण- इसी का भावार्थ है ईश्वरः सर्व भूतानां- तमेव शरणं गच्छ। अतः मन इत्यादि मिथ्या होतेही ब्रह्मांड मिथ्या प्रतीत होता है, उसे अक्षय स्वभाव की प्रीति प्रतीत अनुभूत होती है इसी का भावार्थ है- मद्‌भक्ति लभते पराम्। जैसे स्वप्न जो देखता उसी को भान होता- भ्रम बिना दृश्य विषें नृत्य इत्यादि जड़ भक्ति है। अतः आत्म बोध से नाड़ियों का मार्ग अनभूत होता है जैसे जाना हुआ मार्ग अपने स्थान से। उन नाड़ियों में जाने की चेष्टा कदापि नहीं होती-जैसे जाने हुए गड्ढा में गिरने नहीं बनता है, वहीं विचार युक्त बुद्धि की

स्थिरता जैसे आत्मा सर्वस्व है। यद्यपि गुण रूप सगुण-गुण रहित निगु ण-दोनों पक्ष समान सब कहते हैं, परन्तु बन्धन अविचार-निबन्धन विचार है-एक से जगत उदय एक से शांत है, जैसे रावण विषें सन्यास भेष होनेही असुर स्वभाव अस्त है, अतः विचार बिना अहंकार नाड़ियों का विस्तार कर देता है जैसे रावण और शिव से अनुभूत है, अर्थात् तीनों ब्रह्मांड का महेश्वर हैं किन्तु त्रिभेद के समान भेद है जैसे बगलाश्च-लोमश काकभुशुन्ड-तथा खर दूषण त्रिशरा-चन्द्रमा सूर्य अग्नि, तीनों त्रिभेद में तीनों गुण होते हुए समानता है। जिससे जय विजय को तीन जन्म असुर योनि का शाप है जैसे मुनि संत अवद्ध इन तीनों का तीन रूप है, कहीं एकही जन्म में उदय अस्त है, जैसे कहीं मुनि संत अवद्ध का तीनों रूप एकत्र है। जो अबोध विषें एक ओर अज्ञान-एक ओर विज्ञान प्रतीत होता है, परन्तु बोध विषें अज्ञानही विज्ञान और विज्ञानही अज्ञान होता है किन्तु ज्ञान सर्व काल शांत स्वरूप है। तथा यद्यपि आठ योगिनी विद्या रूप- प्रति एक के सात सात सखी सो छप्पन अविद्या रूप-दोनों चौंसठ। शिव और विवेकियों के प्रति सर्वदा योग रूप से रहती हैं न कि कुयोग से, परन्तु अपना प्रभाव बढ़ाने निमित्त उलटा मार्ग भैरव जी को पूजा करके पार्वती को मार भोजन के रूप में शिव के आगे रख दी, शिव की सर्वज्ञता समझ पार्वती को जीवित कर शिव के साथ विवाहित करके शिव को प्रसन्न कीं। इस कारण दूसरे कल्प में कृष्ण और राधिका से

वियोग किन्तु रुक्मिणी इत्यादि आठो भोग रूप से युक्त भईं, अतः छप्पन करोड़ वहां भी अनुभूत हैं। मानों राधिका के प्रसन्न हेतु दूसरे कल्प में कल्कि जी की स्त्री जो पद्मा हैं उनकी प्रिय सखी होती भईं। विमला-मालिनी-लोला-कमला-कामकन्दला-विलासिनी-चारुमती-कुमुदे त्यष्ट नायिका। किन्तु नाम रूप का भेद है। उसी स्थान पद्मा के स्वयम्बर में आये हुए राजा सब स्त्री भाव को प्राप्त भये- दोनों पक्ष समान हैं जैसे आदि स्थान है। उसी सच्छिन्न भाव में रुक्मिणी और शिशुपाल की समानता है, मानों जहां से वियोग वही संयोग है, जैसे संधि से उदय संधि विषें शांत होता है। शांत बिना तीनों कोष्ट भ्रमण शील होता है जैसे घन्टा मिनट सेकेन्ड प्रतीत है। अतः जिस प्रकार अहो रात्रादि के पश्चात् पुरुष भक्त पुरुषाकार को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार पद्मा के स्वयम्बर में आये हुए राजा जो स्त्री भाव को प्राप्त भये सो कल्कि द्वारा पुरुषाकार प्राप्त होते भये। परन्तु जब कल्कि जी से विदा होकर घर की ओर चले सो कैसे अनुभूत होते हैं जैसे ब्रह्मधाम से अपान वायु के समान नीचे को गिरना प्रतीत होता है। तथा पथिक जैसे इस धाम से उस धाम को जाते हैं। तथा कल्कि जी का शुक सो हनुमान और कल्कि जी का ज्येष्ठ भ्राता कवि सो भरत और दूसरे भ्राता प्राज्ञ सो लक्ष्मण- तीसरे सुमंतक सो शत्रुघ्न- चौथे कल्कि सो राम-पद्मा सो जानकी होते प्रतीत हैं, वैसे माया रूप जानकी काम रूप रावण से रती और काम के रूप में एकता होती है।

अर्थात् यद्यपि गुण रहित आत्मा के प्रति तीनों कोष्ट समान हैं जिससे चेतन सो आत्मा देह सो जड़ है दोनों के सम्बन्ध से चेतन प्रकृति का रूप सब हैं, किन्तु इस गुण रूप प्रकृतिही में तीन कोष्ट का भेद है, अतः ऊपर का कोष्ट अधिष्ठाता और नीचे का दोनों कोष्ट जड़ प्रकृति में है, इसी जड़ प्रकृति में जय विजय जया विजया रावण हनुमान रुक्मिणी इत्यादि सब- नृत्यकार के समान नीचे ऊपर होते रहते हैं। यद्यपि गुण अगुण की समानता भी है जैसे दो भेद से मदारी, परन्तु गुण रहित की स्थिति सुख दुख से रहित अव्यय पद स्वतंत्र है- किन्तु गुण की स्थिति सुख दुख से युक्त व्यय पद परतंत्र है। इसी सार असार के निर्णय को कवि कहा जाता है जैसे कवी नां शुशना कविः। यद्यपि कृपा शक्ति से उलट पलट करने को सिद्ध कहा जाता है, परन्तु सत् सो असत् और असत् सो सत् न हो यही निर्मल विचार ज्ञान स्वरूप है। यद्यपि कृपा शक्ति ज्ञान शक्ति दोनों समान हैं जैसे सगुण और निर्गुण किन्तु सिद्धांत रूप संधि विषें समान हैं- अतः यहां भी सिद्धांत रूप आत्मा है जैसे ना उदय ना अस्त! इसी के निश्चय बिना उदय अस्त होता रहता है, अर्थात गुण रूप चल-गुण रहित अचल- गुण रूप अहंकार- गुण रहित आत्मा- गुण रूप अविचार- गुण रहित विचार- एक बद्ध- एक अबद्ध। यद्यपि दोनों पक्ष समान से गुण योग की एकता है, जैसे गुण रूप- देह सो गृहाश्रम- गुण रहित आत्मा सो सन्यास-दोनों के युक्त

से अहंकार गृहस्त है, जिससे राहु और अहंकार दोनों ओर पूज्य हैं- परन्तु गुण रूप असुर कुल से दोनों हैं न कि गुण रहित देव कुल से। अतः भेद रूप ज्ञान- भेद रूप भक्ति दोनों का सिद्धांत एक- ना उदय ना अस्त वही महा अवद्ध स्वरूप आत्म पद है इसी का नाम अभेद अद्वैत है। परन्तु जिसे सुख दुःख रुचता है सो उदय अस्त होता है जिसे नहीं रुचता है सो दोनों से रहित आत्मा के प्रति शांत होता है, अतः दोनों विषै सम दोनों महा वीर हैं जैसे आत्मा के बोध से समाधि व्यवहार समान है परन्तु जैसे आत्म बोध से दोनों समान हैं वैसे आत्मा से रुचि अन्यत्र से अरुचि इस निर्वासनिक से दोनों महावीर बनते हैं। इसी कारण सुर असुर इत्यादि सबों करके आत्मा के प्रति वासना का बलिदान महा पूजा है न कि अनेक अन्य का इसी का नाम निस्पृह सर्व त्याग है, जिसे अनुभव करने योग्य है। श्री गुरवे नमः

लेखक श्री शम्भूनाथ-नीदी दूबे (गोरखपुर)

श्री सम्वत् २०१६ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को पूर्ण भया।

इस के सम्पादक श्री महाशय- अक्षर मात्र भाषा परिवर्तन करें अति श्रेष्ठ है, किन्तु भावार्थ की त्रुटी कदाचित न हो।

उलटा को सीधा साधु जाने जो
किन्तु सीधा को उलटा ज्ञानी
अतः यह पालक मुमुक्षु भा-
प्राप्त करना है।

योग और तत्त्वज्ञान

साधु श्रीप्रज्ञानाथजी

ॐ
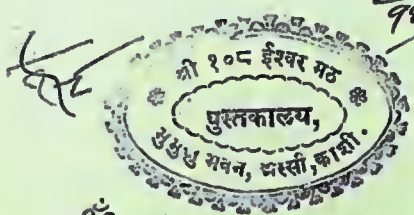
पूज्यपाद श्री १०८ स्वामि घनश्यामानंदजी
महाराजकी सेवामें समर्पित १.६.४५.

योग और तत्त्वज्ञान

साधु श्रीप्रज्ञानाथजी

योग और तत्त्वज्ञान

साधु श्रीप्रज्ञानाथजी महाराज प्रणीत

पो. अ. उत्तरकाशी, योगाश्रम-ज्ञानसू
टेंहरी गढ़वाल स्टेट (हिमालय)

प्रकाशकोंके नाम और पता—

१ श्रीमत् शेठ रतीलाल वर्धमानजी (राणपुर)
२ „ „ मनोरदास पानाचंदजी („)
३ „ „ भगत उजमशी सोमचंदजी („)
४ सविताबाई श्रीमान सेठ रतीलाल भानजीकी लड़की
भावनगर मामाकोठा रोड (काठियावाड़)
५ श्रीमत् शेठ जेठानंद धनराजमल कराचीवाला,
चन्द्र चौक, आठवी गली, मूळजी जेठा मार्केट, बम्बई नं. २

वि० सं० २००० चैत्र

श्री १०८ स्वामी प्रज्ञानाथजी, गंगोत्री

योगभूमिका ।

योगशास्त्र बहुत पुरातन और श्रुतिमूलक होनेसे सर्व आस्तिक तथा हिन्दुधर्मावलम्बियोंसे गृहीत हुआ है । योग शब्दकी बहुत स्थानों में नाना भावों के अर्थके साथ व्याख्या मिलती है । गीतामें विषाद का भी नाम योगनामसे प्रथमाध्यायके अन्तमें मिलते हैं । यथा, विषादयोग, बुद्धियोग, कर्मयोग, ज्ञानकर्मसंन्यासयोग, परमसंन्यासयोग, अध्यात्मयोग, ज्ञानविज्ञानयोग, अक्षरब्रह्मयोग, राजविद्याराजगुह्ययोग, विभूतियोग, विश्वरूपदर्शनयोग, भक्तियोग, क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोग, गुणत्रयविभागयोग, पुरुषोत्तमयोग, देवासुरसम्पद्विभागयोग, श्रद्धात्रयविभागयोग और मोक्षसंन्यासयोग—ये अष्टादशयोगों के नाम मिलते हैं। उनको साधारणतया तीन मार्गों में विभक्त किया जा सकता है । जैसे कि—कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग; उनमें भी प्रथमयोग द्वितीयका और द्वितीय तृतीय भक्तियोगका सहकारी होकर अङ्गभूत होते हुए सब योग केवल ज्ञानयोगकेही वास्ते कहे गये हैं । विना ज्ञानके आत्यन्तिक दुःखोंकी निवृत्ति न होनेके कारण ही सर्व दार्शनिकोंने ज्ञानोत्पत्त्यर्थ अनेक भिन्न २ उपाय रूप दर्शन शास्त्र बनाये हैं । दर्शनशास्त्रों की संख्या अधिक होने से भी आस्तिक हिन्दु दर्शनोंके बीचमें षड्दर्शनों की ही प्रसिद्धि है । उनमें भी सांख्यदर्शनका परिपूरक रूपसे पातञ्जलदर्शन; वैशेषिक दर्शनका परिपूरकरूपसे गौतमका न्याय, और पूर्वमीमांसाका परिपूरक रूपसे उत्तरमीमांसा की प्रवृत्ति हुई है, इसप्रकार विदित होते हैं । दर्शनाचार्य जो कपिल, उन्होंने अपने सांख्य दर्शनमें ईश्वरकी अस्तित्वता स्वीकार नहीं की । वे भागवतमें कहे देवहूतीके पुत्र 'कर्दमात्मज' जो कपिल थे वे है कि नहीं इस विषयपर बहुत लोगोंको संशय होता है । भागवतोक्त कपिलजीने कालको ही ईश्वर माना है । उनके सांख्यशास्त्र में ईश्वरका स्थान है क्यों कि वे भगवान के अवतार थे । वे अवतार होकर ईश्वरको अस्वीकार नहीं कर सकते । सांख्यकार कपिलने प्रधानको

ही जगत्का उपादान कारण माना है। पुरुष उदासीन असङ्ग द्रष्टा होनेसे निमित्त या उपादान कारण नहीं हो सकता। वह केवल सान्निध्यमात्र करके ही उपकारी हैं। महर्षि पतञ्जलिके मत में ईश्वर जगत्का निमित्त कारण है। सांख्यप्रोक्त २४ तत्त्व प्रधानसे उत्पन्न हुए हैं। यह मत पतञ्जलि महर्षिको भी मान्य है। अतएव पातञ्जल दर्शन को सांख्यका प्रवचन कहा जाता है।

"एतेन योगः प्रत्युक्तः।" २।१।३॥ ब्र० सू०।

इस सूत्रमें भगवान् व्यासजीने ब्रह्म सूत्रके द्वितीयाध्यायमें सांख्यका खण्डन करके योग भी खण्डित हुआ माना है।

उन्होंने सांख्यके साथ वेदान्तमतका जिस २ विषयमें तत्त्वगत वैषम्य देखा है उसीको ही खण्डित किया, याने उसकाही खण्डन किया। किसीका मत यह है कि ब्रह्मसूत्रकार व्यासजी ही पातञ्जल योगदर्शन के भाष्यकार हैं। योगशास्त्र का यदि उन्हें खण्डन करना होता तो उसका भाष्य ही क्यों करते? श्रुतिविरुद्ध बहु-जीववाद, प्राकृतिक स्वातन्त्र्यवाद, अचेतन प्रधानसे जगत् की उत्पत्ति वाद—प्रभृति विषय ही महर्षि वेदव्यासके खण्डनका विषय हैं। अष्टांगयोग तथा योगसिद्धियां उनके खण्डनका विषय नहीं है। अन्यदर्शनोंसे योगदर्शनकी विशेषता ये है कि जीवित काल में ही साधक योगज-अलौकिक सिद्धिका अनुभव करके दुःख से बच सकता है। व्यासभाष्यके तृतीयपादमें भाष्यकार उपहास करके पण्डकोपाख्यानसे कहते हैं कि पण्डककी स्त्री अपने पतिको पूछती है कि आर्यपुत्र! मेरी बहिन पुत्रवती है, और मेरा पुत्र नहीं है, इसका क्या कारण है? तब पण्डक कहता है कि प्रिये! निश्चित रहो सोच मत करो मैं ही मरकर तेरा पुत्र उत्पन्न करूंगा। इस आख्यानका तात्पर्य यह है कि जीवितकालमें ही जिसके दुःखकी निवृत्ति नहीं हुई तो फिर क्या फिर दुःखकी निवृत्ति मरने बाद मानी जायेगी? कभी नहीं।

योगसे जीवित शरीरमें ही मोक्ष होता है । एवं योगज सिद्धियां पुरुषकारसे साधक अपने जीवनमें ही अनुभव करके कृतार्थ हो सकता है । लौकिक उपायद्वारा योगज सिद्धियां नहीं मिल सकती । अतएव वह अलौकिक कही गई और वह लोकसाध्य नहीं ऐसा नहीं हैं— किन्तु सब लोककरके असाध्य हैं ।

महर्षि पतञ्जलिके बारेमें ऐसी किंवदन्ती सुनी जाती है कि भगवान् शंकरने सहस्रानन शेषनाग को पृथ्वीपर अवतार लेनेके लिये प्रेरणा की थी । तब उन्होंने उपयुक्त स्थान ढुंढते २ गोनर्द देशमें किसी गोनिका नाम्नी तपस्विनीको पुत्रके निमित्त सूर्यकी आराधना करती हुई देखी । उसमें निरुपम तेज तथा भक्ति देखकर अपनी माता मानकर सूर्यार्घ्य-दान कालमें उसकी अञ्जलिमें प्रवेश किया । सूर्यार्घ्य समर्पण करतेही तपस्वीका रूप धारण करके अनन्तजी जलके साथ ही भूमि में गिर पडे । उनकी तेजोमय आकृति देखकर यह मेरा पुत्र है, इस प्रकार मानकर माताने अञ्जलिसे गिरा जानकर उनका नाम पतञ्जलि रक्खा । क्रमशः बडे होकर लोकोपकार-दीक्षित पतञ्जलिने पाणिनीयाष्टाध्यायीका महा-भाष्य निर्माण किया—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥

इस श्लोकसे जाना जाता है कि व्याकरणके महाभाष्यकार वैद्यशास्त्रके प्रणेता और योगदर्शनके रचयिता एक ही पतञ्जलि हुए । उन्होंने शरीर शुद्धिके उपाय रूपसे वैद्यशास्त्रको, वाणीमल दूर करनेको व्याकरण महाभाष्य और मनके मल दूर करनेके लिये योगशास्त्र बताया । इस विषयमें बहुजन संशय होनेपर भी योगशास्त्र स्वतन्त्र रूपसे मोक्षका साधनोपाय है, इसमें किसीका भी मन द्वैधी (भावगत) नहीं है । वह उपासनाका ही मार्ग है । श्रुतिमें इसका विशेष वर्णन देखा जाता

है। ईश्वरार्पण बुद्धिसे कर्म करके चित्तशुद्धि संपादन करनेके बाद वैराग्य प्राप्ति क्रमसे मोक्षके साधन होनेमें भी कोई बाधा नहीं है। योगमें सर्व मनुष्यमात्रका अधिकार है। सबही ज्ञानके अधिकारी नहीं हो सकते। किन्तु विरक्त और संन्यासी के लिये ही ज्ञानमार्ग सुगम है। जो विशेष आसक्त व अनासक्त न हो ऐसे मुमुक्षुके लिये ही योगमार्ग है। आसक्त पुरुषके लिये कर्मकाण्डोक्त सकाम कर्मोंकी व्यवस्था की गई। इसलिये योगशास्त्र मध्यम अधिकारीके लिये ही निर्मित हुआ।

योगद्वारा मनोमल दूर होनेसे विवेक ख्याति (ज्ञान) उत्पन्न होता है। उससे वैराग्य और परम वैराग्यसे संसारसे मुक्ति होती है। यह मैं पहले ही कथन कर चुका हूं कि पातञ्जलदर्शन सांख्यका प्रवचन है। अतएव सांख्यशास्त्रका सामान्य रूपसे परिचय न होनेसे इस शास्त्रका मर्म समझना अति कठिन है।

सांख्य शास्त्रमें छः अध्याय हैं। वहां प्रथमाध्यायमें हेय, हेयहेतु, हान, हानहेतु ये चार हेतु प्रतिपादन किये गये। दुःख हेय, दुःखका कारण अविवेक, त्रिविध दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति हान, और प्रकृति तथा प्रकृतिजन्य कार्यके साथ पुरुषका सम्यक् ज्ञान या भेद ज्ञान हानका हेतु है। द्वितीयाध्यायमें प्रकृति और उसके कार्यका परिचय दिया है। तृतीयाध्यायमें संसारका कारण बतलाया है। चतुर्थमें विवेक ज्ञान साधनका उपदेश किया है। पञ्चमाध्यायमें शङ्का समाधानसे दूसरे मतका खण्डन किया। एवं षष्ठाध्यायमें उपसंहार किया है। आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक ये त्रिविध दुःखोंका नाम ही बन्ध है। और उनकी निवृत्तिका नाम ही मोक्ष है। यह बन्ध पुरुषका स्वाभाविक दोष नहीं है। यदि स्वाभाविक हो तो फिर कभी उससे निवृत्ति नहीं हो सकती। तथा उसके निमित्त उपदेश भी फजुल हो सकते हैं। सांख्यका पुरुष विभु-निष्क्रिय नित्य शुद्ध बुद्ध और नित्य मुक्त है। बिना प्रकृतिके सम्बन्धसे पुरुषको बन्ध या दुःख नहीं हो सकता और प्रकृति

पुरुषका संयोग फिर अविवेक करके होता है। और वह होना भी है। पुरुषप्रकृतिके साथ अविभक्त भावसे जो अवस्थान करता है वही पुरुषके बन्धन व संसारके बन्धनका कारण है। बुद्धिसत्त्वका जो प्रतिबिम्ब पुरुषमें पडता है उससे पुरुष अपनेको सुखी दुःखी और मूढ मानकर काल्पनिक दुःखादिसे बन्धनको प्राप्त होता है। विवेकसे ही अविवेक का नाश होता है। प्रकृतिका अविवेक ही सारे अविवेक का कारण है। अतएव प्रकृतिका अविवेक नष्ट हो तो सारे अविवेक नष्ट हो जाते हैं। विवेक साक्षात्कार जबतक नहीं होता तबतक दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं होती। विवेकरूप पदार्थोंके सम्यग्ज्ञानसे याने २५ तत्त्व पदार्थोंका स्वरूप साक्षात्कार करके दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। उत्तम अधिकारी को तो उक्त विवेक श्रवण मात्रसे ही हो जाता है। मध्यम अधिकारीको श्रवणके बाद मनन करनेसे वस्तु विवेक ज्ञान होता है। और अधम अधिकारीको तो श्रवण, मनन, निदिध्यासनसेही तत्त्वज्ञान होता है। सांख्यके ये २५ तत्त्व हैं—प्रकृति-महान-अहंकार-शब्दतन्मात्र-स्पर्शतन्मात्र-रूपतन्मात्र-रसतन्मात्र-गन्ध-तन्मात्र-श्रोत्र-त्वचा-चक्षु-रसना-घ्राण-वाक्-पाणिपाद-पायु-उपस्थ-मन-आकाश-वायु-तेज-जल-पृथ्वी। योगशास्त्रके मतमें अविद्या आदिक पांच क्लेश पुरुषको दुःखरूप होनेसे उसकी निवृत्तिके लिये पुरुष हरवक्त प्रयत्न करता है। अविद्या ही सर्व क्लेशोंका मूल है। क्लेश रहनेसे वासनात्मक धर्माधर्मरूप कर्माशय होता है। क्लेशकर्म और कर्मसे जाति-आयु-भोग चक्रकी तरह घुमते रहते हैं। पुण्यकर्मसे अज्ञानीको सुख और पाप कर्मसे दुःख होता है। विवेकी पुरुषके लिये तो सभी दुःखरूप है। क्यों कि परिणाममें ताप संस्कार और गुणवृत्तिका विरोध करके विवेकी सबमें दुःख ही मानता है। जो दुःख अभी नहीं आया वह ही हेय हैं अर्थात् भावि दुःख निवृत्तिके लिये ही यत्न होना है। द्रष्टा और दृश्यका अर्थात् पुरुष और बुद्धिका

भोक्तृत्व और भोग्यत्व लक्षण रूप संयोग विशेष ही दुःखका कारण है। पुरुष वस्तुतः द्रष्टा न होनेसे भी बुद्धि वृत्तिमें प्रतिबिम्बित होकर द्रष्टा की तरह प्रकाशमान होता है। प्रकाश स्वभाव सत्त्व, और क्रियाशील रजो गुण यह दोनों को रोकनेवाला तमः—ये त्रिगुणात्मक जो भूतेन्द्रिय और करण हैं उन्हीको दृश्य कहा जाता है। पुरुषको भोग व अपवर्ग देना दृश्यका उद्देश्य हैं। गुणकी विशेष अविशेष लिङ्ग मात्र और अलिङ्ग—ये चार अवस्थायें हैं। पृथिव्यादि भूत और इन्द्रियां ये विशेष अवस्थायें हैं। तन्मात्र अर्थात् सूक्ष्मभूत और अहङ्कार अविशेष अवस्थायें हैं। मूलप्रकृतिका पहला परिणाम बुद्धितत्त्व या महत्तत्त्व या लिङ्गावस्था और प्रकृतिको ही अलिङ्गावस्था कहा है। द्रष्टा और दृश्यका संयोगके कारण अविद्या है। विद्यासे ही अविद्याका अभाव होता है। अविद्याके अभावसे ही उसका कार्य संयोग भी नहीं रहता। इसीका नाम ही हान तथा पुरुष का कैवल्य है।

विवेक ख्याति ही हान का उपाय है। अष्टाङ्गयोग यदि यथाविधि किया जाय तो उक्त विवेक ख्याति की अभिव्यक्ति होती है। बाह्य पदार्थ चित्तका प्रकाश्य हैं और वह (चित्त) आत्माद्वारा प्रकाशित होता है। बाह्य पदार्थ इन्द्रियप्रणालीसे चित्तमें उपरक्त न होनेसे प्रकाशित नहीं होता, किन्तु पुरुष या आत्मा के पास चित्त वैसा ज्ञेय नहीं है। चित्त हरवक्त पुरुषके ज्ञेय हैं। अर्थात् पुरुष हरवक्त चित्तको जानता है। चित्त परिणाम स्वभाववाला है। अतएव उसकी क्षिप्तादि अवस्था तथा प्रमाणादि वृत्तियां जब उसमें उदित होती हैं तभी पुरुषमें उसका प्रतिफलन व प्रकाश होता है। चित्त परिणामशील, पुरुष अपरिणामी। चित्त चित्तका दृश्य नहीं हो सकता; यदि ऐसा हो तो अनवस्थापत्ति होगी। एवं स्मृतिसंकर दोषापत्ति भी हो जायगी। चित्त संहत्यकारी अर्थात् सहकारीयोंके साथ मिलकर या अङ्गाङ्गी भावसे उत्पन्न होता है। जो ऐसा होता है वह अन्यकी प्रयोजन सिध्यर्थ ही होता है। पुरुष

चित्तको भोगता है अथवा चित्तही पुरुषको भोग करायता है। पुरुष जब प्रकृतिसे अपनेको अत्यन्त पृथक् जानकर अपरोक्ष ज्ञान लाभ करता है तब उसको आत्म-जिज्ञासा नहीं रहती है। उसवक्त उसका चित्त विवेकमार्गवाही होता है। विवेकसाक्षात्कार करनेके लिये भी जिसकी आकांक्षा नहीं रहती, उसकी ही धर्ममेघ समाधि होती है। उससे अविद्याकी निवृत्ति होती है। अविद्या निवृत्तिसे क्लेशकर्म और उससे समुत्पन्न जो अदृष्ट हैं—उन सबका अभाव होता है। बुद्धि-सत्त्वका आवरण नष्ट हो जानेसे योगी सर्वज्ञ होता है। तब गुणका परिणाम क्रम भी समाप्त हो जाता है। उस योगी पुरुषका दूसरा जन्म नहीं होता। इसीको ही कैवल्य कहा है।

संक्षेपसे योगका परिचय दिया गया। इस ग्रन्थों में खाली समाधि और साधन पादकी ही टीका की गई। क्यों कि साधनको विशेष करके इतनेकी ही आवश्यकता होती है। परवर्ति दो पाद फलरूप हैं। जो ही साधन करेगा उसको क्रमशः मालूम होगी। ज्योतिषशास्त्रका जैसे गणितभाग अभ्रान्त सत्य है, एवं चन्द्रसूर्यादि जिसमें प्रमाण हैं, इसी तरह योगशास्त्रका साधन और समाधि पाद साधन कालमें ही योगीको दुःखसे बंचाकर प्रत्यक्ष फल देता है। ज्योतिष-शास्त्रका फलित ज्योतिष जैसे सर्वत्र फल नहीं देता वैसेही योगकी विभूति आदिक सर्वत्र देखनेमें नहीं आती, और वे मिथ्या हैं ऐसी भी नहीं कही जा सकती हैं। इसलिये उस विषयमें कुछ न कहना ही सङ्गत है। त्रिकालज्ञयोगी यदि किसीको भाग्यसे मिल जाय तो वही इस बातमें प्रमाण दे सकता है। लेखकको सिद्धिके बारेमें जाननेकी स्पृहा नहीं है क्यों कि सिद्धियां योगकी अन्तराय (बाधक) होनेसे उस विषयकी ओर उदासीन रहना ही श्रेयः मानते हैं। साधारणतः योग चार प्रकारका देखा जाता है। यथा—मन्त्रयोग–हठयोग–लययोग–राजयोग। इनका प्रत्येकशः परिचय देता हूं। ये सब योग केवल मनयोगके लिये ही हैं।

मन्त्रयोगः ।

मनही मनुष्यके बन्ध और मोक्षका कारण है। मन जब चञ्चल होकर संसार भोगमें आसक्त होता है तब वह बन्धका कारण हो जाता है। और निश्चल होकर आत्मा के साथ जब मनका एक भाव हो जाता है तब वह मोक्षका कारण हो जाता है। चित्त या मनको ही स्थिर करनेके लिये सर्व शास्त्रोंमें अनेको उपाय उल्लिखित हैं। उनमें मन्त्र भी एक सुगम उपाय है। उपनिषदोंमें भी उसका बहुत प्रमाण मिलते हैं। महाराज मनुने मनुस्मृति के द्वितीयाध्यायमें जपकी विशेष प्रशंसा की है। महर्षि पतञ्जलिने भी आसन्न समाधिके उपाय रूपसे ईश्वर प्रणिधानकोही बतलाया है। इष्टदेवताओंका साक्षात्कार होता है, यह बात उन्होंने स्पष्टतया स्वीकार की है। प्रणवही वेदका मूल मन्त्र है। प्रणवका ही अर्थ पहले गायत्री रूपसे प्रकाशित हुआ। इसलिये गायत्री जप ही सर्व हिंदु समाजमें प्रतिष्ठा लाभ किया। स्त्रीशूद्रादियोंका उसमें अधिकार न होनेसे परवर्तिकालमें ऋषियोंने कृपा करके उनको भी जिस प्रकार कल्याण हो, उनके लिये भगवान् के नाम स्मरणमात्र मन्त्र रूपसे प्रकट किया। नामके खाली उच्चारण मात्रसे जप नहीं होता। किन्तु उसके साथ श्रद्धादिक मानसिक क्रियाका संयोग होना अत्यावश्यक है। श्रद्धापूर्वक मन्त्रजप करने परभी जहां यथोक्त फल नहीं होता। वहां नामापराधको यथाशक्ति त्याग करके नामजप करना अच्छा है। दस प्रकार नामापराध ये हैं—परनिन्दा—हरिहर और देवीमें भेददृष्टि—क्रूरदृष्टि और प्रवृत्तिवालेको नाम बतलाना—वेदमें अविश्वास—शास्त्रोंमें अविश्वास—गुरुवाक्यमें अश्रद्धा—नामके माहात्म्यमें अविश्वास—नाम जपके वक्त नाम जपके भरोसेसे निषिद्ध कर्म करना—नामके उपर भरोसा करके नित्यकर्मको छोड बैठना—और अपने साधनके साथ दुसरे साधनों की तुलना करना। उपर्युक्त दश नामापराधोंको त्याग करके जप करनेसे फल अवश्य दिखाई पडता है।

गायत्रीमन्त्र विधि अनुसार सुयोग्य ब्राह्मणसे ग्रहण करनेका नियम अनादि कालसे भारतवर्षमें चला आ रहा है। शैव तथा वैष्णवादि सम्प्रदायोंमें दीक्षादि रीति भी चल रही है। उसकी उपेक्षा करके मनमाने किसी नाम जपसे कोई फल देखनेमें नहीं आता। अतएव विधिपूर्वक मन्त्र ग्रहण करके जपमें प्रवृत्त होना सर्व श्रेष्ठ है। जबतक मन्त्रदाता गुरु नहीं मिलते है, तबतक गायत्री या प्रणव जप करके भगवान्‌के निकट सद्गुरुके निमित्त प्रार्थना करनी चाहिये। वह परमेश्वर ही स्वयं उपयुक्त गुरु मिला देंगे। जिस स्थानमें मन्त्रजप करना होगा उस स्थानका परमनीय तथा यथासम्भव निर्जन होना परम लाभकारी है। तथा परम आवश्यक भी है। स्नान करके भस्म या गंगामिट्टीसे तिलक करना चाहिये। एवं "चैलाजिनकुशोत्तरम्"—इस वाक्यके अनुसार आसन बिछाकर पूर्व या उत्तर दिशाको मुख करके बैठना ही लाभकारी है। पहले इष्ट देवताओंको नमस्कार करके आसनमें बैठना चाहिये। नित्यकर्म समाप्त करके सूर्यको अर्घ्य देना, बादको पत्रपुष्पादिसे गुरुका पूजन करना। और गुरुमन्त्रसे ही अपने इष्ट देवताका भी पूजन करना चाहिये। इसके बाद देवतामन्त्र तथा ध्यान स्तोत्रादि पाठ करके स्वस्तिकादि आसनमें बैठना और न्यूनातिन्यून तीन प्राणायाम अवश्य करना चाहिये। गुरुमन्त्रके एकबार उच्चारण कालमें जो समय व्यतीत होता है उतना कालतक प्राणवायुको बाहरसे भीतरकी ओर पूरक विधिसे खींचना, पीछे दोनों नथुनोंको बन्ध करके तीन दफे उस मन्त्रका जप करना। और एक मन्त्रोच्चारणमें जो वक्त लगता है, भीतरके कुम्भक वायुको धीरे २ उतने वक्त "रेचक" छोड़ना। अनन्तर यथाशक्ति माला या करमालासे गिनतीपूर्वक जप करना चाहिये। बादको इष्टदेवता व गुरुको जल समर्पण कर देना चाहिये। एवं अपने भजनके अनुकूल शास्त्रका कुछ पाठ करना। जपका भी कुछ प्रकार भेद हैं, जैसे कि—नित्यजप, नैमित्तिक जप, काम्यजप, निषिद्धजप, प्रायश्चित्तजप,

अचलजप, चलजप, वाचिकजप, उपांशुजप, मानसिकजप, अखण्डजप, अजपाजप, इत्यादि जपके साथ अजपाका (सोऽहं मन्त्र) श्वास-प्रश्वास के साथ धारा वाहिकरूपसे अभ्यास करनेसे विनाप्राणायामके भी मन स्थिर हो सकता है। इस अभ्यासके फलरूपसे नादानुसन्धान उत्पन्न होकर नाद सुना जाता है। कमसे कम कोटि जप अवश्य हो जाना चाहिये। नादानुसन्धानका विशेष विस्तारमें लिख चुका हूं।

हठयोग।

हठयोगका विशेषत्व यह है कि इस योगसे पहले षट्कर्मद्वारा शरीरको शुद्ध करके प्राणायामसे कुण्डलिनीको जगाकर अपनी इच्छासे प्राणवायुको सुषुम्ना के बीचमें प्रविष्ट करके ब्रह्मरन्ध्रतक ले जाकर योगी बहुत कालतक समाधिस्थ रह सकता है।

षट् कर्म और कुण्डलिनीका जागरण ही इस योगका प्रधान अंग है। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि इस योग में भी करनी पड़ती है। किन्तु प्रकार में कुछ भेद है। अब पहले षट् कर्मका कथन करता हूं—लोली, अग्निसार "अथवा त्राटक" वस्ती, नेती, धौति और कपालभाति—इन षट् कर्मद्वारा शरीरको शोधन करना चाहिये। नहीं तो योगसे रोग होनेकी आशङ्का है। मलिन तथा असंयत शरीरसे योगमें जो प्रवृत्त होता है वह केवल रोगी ही बनेगा। औषध व्यवहारसे पहले जैसे जुलाब लेकर शरीरको शुद्ध करके मल दूर किया जाता है ऐसे ही योग में भी षट्कर्मद्वारा शुद्ध करना परमावश्यक है। शोधन प्रणाली इस प्रकार है।

१ लोली—दाहिने-बायें-सामने-पीछे-ऊपर-नीचे-पेटको जोरसे चलाना चाहिये। पीछे पेटको मध्य भागको कुम्हारके चक्रवत् घुमाना चाहिये। यह लोली कही जाती है। इससे पेटके सर्व रोग नष्ट हो जाते हैं। सब अङ्गों की चालना होती है, कुण्डलिनी भी संचलिता होती है। तथा जठराग्नि की भी काफी वृद्धि होने लगती है।

२ अग्निसार—नाभिग्रन्थिको मेरुदण्डकी तरफ तथा सामने की और वारंवार जोरसे निक्षेप करनेसे भी उदरावर्त नष्ट होजाता है तथा जठराग्नि भी बढ जाती है।

३ वस्ती—जल में बैठकर नाभिपरिमित जल में डूबा रहे और उत्कट आसन में बैठकर गुदासे जल खींचकर पेटमें भर लेना, इससे प्रमेह मन्दाग्नि और आमवात नष्ट होते हैं।

४ नेती—एक सूतली की डोरीको पाका कर, नाकके नथुने में भरके कण्ठके मध्य तक पहुंचाकर मुखसे निकालना। इससे नासिका और आंखका मल दूर हो जाता है और आंख निर्मल होती है।

५ धौती—सोलह हाथ लम्बा और चार अङ्गुल चौडा एक बारीक पगडी (वस्त्र) को मुख में चावकर पेट में समेटता जाय (सूखा वस्त्र) गेरणा ही अच्छा है यदि कण्ठद्वारा पेट में न घुंटा सिर्फ एक त्रिधत शेष रक्खे। बादको गलेमें से धीरे २ खींच कर धोवे। कोई कोई गुदासे भी इस धोतीको निकाल देता है। इससे छातीके अन्दर जो श्लेष्मा रहती है वह निकल जाती है। तब फिर श्लेष्मा सम्बन्धी कोई बिमारी नहीं होती।

६ कपालभाती—इडासे वायुपूर्ण करके पिङ्गलासे रेचक करे फिर पिंगलासे पूर्ण करके इडासे रेचन करे। यथाशक्ति बार २ ऐसा करनेसे कपालभाती होती है। इससे सर्व नाडीयां शुद्ध होती हैं। वात, पित्त, कफ सम्बन्धी सर्व कफादि दोष कपालभातीसे सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। तब ही वात, पित्त तथा कफकी समतासे ही शरीर नीरोग होकर योगके लिये योग्य हो जाता है।

तब ही शरीरकी उपयोगिता में प्राणायाम करना चाहिये। किन्तु विना आसनके स्थिरकिये प्राणायाम करना ठीक नहीं है। सिद्धासन में बैठकर अनायास जब साढे तीन घण्टा बैठा जाय, तभी प्राणायामकी योग्यता जाननी चाहिये। नाडी शुद्धिके बाद प्राणायाम करना उचित

है। खाली कपालभातीसे भी नाडीशुद्धि हो सकती है। नाडीशुद्धिके ये लक्षण हैं—शरीर कृश हो जायगा, आरोग्यता रहेगी, श्वासप्रश्वास की अल्पता होगी। अनाहत नाद सुनाई देगी फिर ज्योतिका दर्शन होगा। मुख प्रसन्न होगा, तथा जठराग्नि प्रबल होगी और स्वप्नदोष भी नहीं होगा, आंख निर्मल होगी—ये लक्षण देख व जानकर नाडीशुद्धि जान लेना चाहिये।

कुम्भक।

दाहिने हाथके अङ्गुठासे दाहिना छिद्र नाकका बन्ध करके बायें छिद्रसे पेटतक वायु भरे। फिर कनिष्ठा और अनामिकासे वाम छिद्र बन्ध करके यथाशक्ति कुम्भक करे। पूरकके बाद और कुम्भकके सुरुमें उड्डीयान बन्धको करे। पीछे दाहिने नथूनेसे धीरे २ वायुका रेचन करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे दाहिने छिद्रसे वायुका पूरण करे। एवं मध्यमें यथाशक्ति कुम्भक करने बाद वाम नाथूनेसे वायुका रेचन करे। यही सहित कुम्भक होता है। इस क्रियासे भी नाडीशुद्धि होती है। रेचक पूरकके विना केवल कुम्भकसे पूर्ण कलश की तरह अवस्थान होनेसे केवल कुम्भक होता है। प्राणायामसे जब नाडियां शुद्ध हो जाती हैं, तब साधकको स्वयं ही यह केवल कुम्भक खुद ही स्वाभाविक होने लगता है। परम उपशम–आरोग्यता नादप्रकाश इत्यादिक इसके चिह्न हैं।

मुद्रा।

१ जालन्धर—कण्ठको यत्नपूर्वक संकुचित करके चिवुक (ठुंडी) को हृदयमें लगाना, इसीको ही जालन्धर मुद्रा कहते हैं। इससे कण्ठ कूप बन्ध होनेसे मस्तिष्क से गिरा हुआ अमृतजल अधोगामी नहीं हो सकता। इससे देह और मन शीतल और सुस्थिर होता है। एवं सुधासे शरीर पुष्ट होता है। पूरकके बाद कुम्भकसे पहिले इस जालन्धर मुद्राको करना चाहिये।

२ उड्डीयानबन्ध—पांवकी एडीसे गुदाको दबाकर योनीके द्वार खींचकर वायुको उपर ले आवे, जैसे पक्षी उडता है तैसे ही यह मुद्रा है, अतएव इसे उड्डीयान कहा है। रेचकके पहले और कुम्भकके बाद यह मुद्रा करनी चाहिये। इससे भगन्दर–बवासीर आदि रोग आराम होते हैं।

३ मूलबन्ध—अपान वायुको खींचकर उपर ले आवे, और प्राणके साथ मिलाकर हृदय में स्थिर करे, फिर धीरे २ अन्दरके वायुका त्याग करे इसको भी कुम्भकके बाद रेचकके पहला करे।

कुण्डलिनीजागरणम्।

प्राणायामके अभ्यासमे जब प्राणवायु की परिचय अवस्था प्राप्ति होती है तब यह जठराग्निके साथ मिलकर कुण्डलिनीको पीडित करता है। उस पीडनसे कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्रका द्वार छोडकर हृदय में जा सोती है। और प्राणवायु चित्तके साथ सुषुम्ना नाडीमें प्रवेश करने के बाद पञ्चभूतों की धारणा करनी चाहिये।

यह इस प्रकार है:—

धारणा—पांवसे जानु तक पृथ्वीका स्थान है। पृथ्वी चतुष्कोण–पीतवर्णात्मिका है। लकार इसका बीज है। पृथ्वीमें आरोप करके 'ल' वर्णके साथ चतुर्भुज हिरण्मय पुरुषकी पांचघडी धारणा करनेसे पृथ्वी जय होती है। तब पृथ्वीसे इस योगी जन की मृत्यु नहीं हो सकती। जानुसे पायु (गुदा) तक जलका स्थान है। जलका आकार अर्ध-चन्द्राकृति है। शुक्ल वर्ण है। वकार इसका बीज है। वकार के साथ जल में वायुका आरोपन करके किरीटकुण्डलवाले नारायणके स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। दो घण्टे ऐसी धारणा करनेसे जलजय होता है। तब जलसे योगीकी मृत्यु नहीं होती। पायुसे हृदयतक अग्निका स्थान है। अग्नि रक्तवर्णात्मक रेफ बीजवाला है। अग्निमें वायुका आरोप करके

भस्मभूषित भगवान् रुद्रका ध्यान पांचघडी करनेसे उस योगी को फिर अग्निसे मृत्यु नहीं हो सकता है। वायु षट् कोण और कृष्ण वर्ण है। यकार इसका बीज है। यकारके साथ सर्वज्ञ ईश्वरकी वायुस्थानमें पांच घडी धारणा करनेसे फिर योगीको वायुभय नहीं हो सकती और मृत्यु भी वायुसे नहीं होती है। भ्रूमध्यसे मूर्धातक आकाशका स्थान है। आकाश धूम्रवर्ण वर्तुलाकार है। हकार इसका बीज है। आकाश में वायुको आरोप करके हकारके साथ शङ्करको बिन्दुरूप करके सदाशिव जानकर ध्यान करनेसे आकाश जय होता है। पांच घडी ऐसी धारणासे योगी चाहे जिस स्थानों में जहां भी रहे सुखपूर्वक वहीं योगीकी स्थिति हो सकती है।

ध्यान।

पायु और उपस्थ-इन्द्रियके मध्य में एक त्रिकोणाकार स्थान है। उसे मूलाधार भी कहते हैं। मूलाधारसे असंख्य नाडीयां उत्पन्न होकर सर्व शरीर में व्याप्त हो रही हैं। इन में तीन नाडीयां प्रधान हैं। उनके नाम ये हैं—इडा-पिंगला-सुषुम्ना। इडा वायीं, पिंगला दाहिनी और सुषुम्ना ठीक मेरुदण्डके बीच में रहती है। इसी सुषुम्ना नाडाके मध्य में एक चित्रा नामक नाडी है। उस चित्राके अन्दर फिर ब्रह्मनाडी रहती है। मूलाधारमें जो सुन्दर सुवर्ण सदृश ज्योतिर्मय स्थान है, उसीको मूलाधार चक्र कहते हैं। कुण्डलिनी साडेतीन पेंच देकर सुषुम्ना को लपेटकर ब्रह्मनाडीका द्वार रोककर सोई रहती है। इसीको हीं जगाना चाहिये। यहां चतुर्दल पद्म है। चारों दलों में व-श-ष स ये चार वर्ण हैं। योगी पहले इसी चक्रका ध्यान करे। मूलाधारसे उपर उपस्थ मूल में षट् चक्र है। इस में षड् दल हैं। ब-भ-म-य-र-ल ये प्रति दलों में वर्ण हैं। इसके उपर नाभी के नीचे मणिपुर चक्र है। मेघसदृश इसका वर्ण है। यह दशदल पद्मचक्र है। ड-कारसे फकारतक क्रमशः उन दस दलों में ये दश वर्ण हैं। इससे नीचे जो षड्दल चक्र है उसका नाम स्वाधिष्ठान

चक्र है। हृदयमें जो चक्र है उसका नाम अनाहत चक्र है प्रवाल मूंगे की तरह इसका वर्ण है। इसमें द्वादशदल पद्म है। उन पद्म-दलों में 'क' से लेकर 'ठ' तक द्वादश अक्षर हैं। कण्ठदेश में एक धूम्र वर्ण पद्म है। उसका नाम विशुद्धचक्र है। उसमें कोई अक्षर नहीं होते। भ्रूमध्य में एक द्विदल चक्र है। उस में 'ह' कार और 'क्ष' कार ये दो वर्ण हैं। यह जीवात्माका स्थान है। इसका नाम आज्ञाचक्र है। साधक कुण्डलिनीशक्तिको वायुकी सहायतासे इन सब चक्रों में घुमा करके आधारसे लेकर द्वादश चक्रके उपर जो शिवस्थान है उस में ले जाकर शिवशक्तिका मिलान करके अतुलानन्दप्राप्त करता है।

लययोग।

लययोगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुञ्जन् ध्यायेन् निष्कलमीश्वरम् ॥
(योगतत्त्वोपनिषद्)

चित्तलय करनेके लिये जितने उपाय शास्त्रों में वर्णित हैं उन उपायों की गणना करके समाप्ति करना भी सुकठिन है। तथापि साधारण रीतिसे मनके लय करनेके नादानुसन्धानको ही भगवान् भाष्यकारने मुख्य माना है। कार्यको कारण में लय करना ही लय योगका साधन है। क्यों कि कारण में कार्य अव्यक्त रहता है। और कार्य में अनुस्यूत होता है। एकको छोड़कर दूसरा नहीं ठाहर सकता है। अविद्या ही कार्यरूप में परिणत होकर, अहङ्कार, बुद्धि, मन, इन्द्रियां और शरीर ये पांच अवस्था प्राप्त हुई है। इन में भी पहिला पहिलाको उत्तरोत्तरका कारण माना जाता है। अविद्या ही सबका मूल है। पञ्चमहाभूतों में भी पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पूर्व पूर्वके उत्तरोत्तरका कार्य है। अतएव—पृथ्वीको जल में, जलको तेज में, तेजको वायु में, वायुको आकाश में, आकाशको अविद्या में लय चिन्तन करके, अविद्याका अधिष्ठान जो आत्मा है, उस आत्मा में मन, अविद्या

आदिक जितने दृश्य पदार्थ हैं उन सबको लय करके तन्मय (आत्ममय) होकर अवस्थान करने का नाम ही लय योग है। कोई उन्मनीसे कोई प्रणवोपासनासे कोई चतुर्विंशति तत्त्वों के (कार्यको कारणरूपसे) विचारद्वारा लय करके, तथा कोई दृश्य और द्रष्टाका स्वरूप विचार करके दृश्यको बोध करके द्रष्टाके स्वरूप में अवस्थानरूप लय योगसे समाधि सिद्धि करता है। यथाहोपनिषत्तथा हठयोग प्रदीपिका में कहा है—

इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः स लयो नादमाश्रितः॥

अर्थ यह है—इन्द्रियों का स्वामी मन है, मनका स्वामी प्राण है, प्राणका स्वामी लय है और वह लय नादके आश्रित है। नादबिन्दूपनिषद में भी नादानुसन्धानके अभ्याससे मन प्राण दोनों स्वयं ही नाद में लय हो जाते हैं। नाद ज्योति में एक हो जाता है। नादको जो कुछ अवशिष्ट रहता है वही ब्रह्म है। मनको मनसे देखनेसे भी मनका लय हो जाता है। नादानुसन्धानके लिये हमें पहला नाथयोग लिख चुका हूं—इसलिये उनके लिये यहां पुनः वर्णन करना अनावश्यक है। नादबिन्दु हंसोपनिषदादि उपनिषदों में, हठयोग प्रदीपिका, गोरक्षसंहिता, घेरण्डसंहितादिक ग्रन्थों में इसका विस्तार वर्णन किया है। जिन्हें इच्छा हो वहांसे देख सकते हैं।

राजयोग।

हठयोग प्रदीपिकाकारके ग्रन्थके आदिमें मुक्तकण्ठसे यह स्वीकार किया गया है कि—"केवलं राजयोगाय हठयोगोपदिश्यते।" खाली राजयोगके लिये ही हठयोगका उपदेश किया जाता है। वहां और भी कहा है कि—राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी। अमरत्वं लयस्तत्त्वं शून्या शून्यं परं पदम्॥ १॥ अमनस्कं तथाऽद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम्। जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्यगा चेत्येकवाचकाः॥ २॥ याने राजयोग—समाधि—उन्मनी—मनोन्मनी—अमरत्व—

लयतत्त्व–शून्याशून्य– परम्पद– अमनस्क– अद्वैत– निरालम्ब– निरञ्जन– जीवन्मुक्त–सहजावस्था–तुर्यगा ये सब एक समाधिके ही वाचक हैं। राजयोगस्य माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वतः । ज्ञानं मुक्तिः स्थितिः सिद्धिर्गुरुवाक्येन लभ्यते ॥ १ ॥ तात्पर्य यह है कि राजयोगके माहात्म्यको कौन जान सकता है। राजयोगसे ज्ञान, मुक्ति, और सिद्धियां सिर्फ गुरुवाक्यसे ही मिल सकती हैं। राजयोगके फल भी उन्होंने वहां प्रदर्शित किये हैं—अस्तु वा नास्तु वा मुक्तिरत्रैवाखण्डितं सुखम् । लयोद्भवमिदं सौख्यं राजयोगादवाप्यते ॥ १ ॥ राजयोग मजानन्तः केवलं हठकर्मिणः । एतानभ्यासिनो मन्ये प्रयासफल-वर्जितान् ॥ २ ॥ आशय ये है कि—लययोगसे जो सुख उत्पन्न होता है वह राजयोग करके भी होता। राजयोगको न जानकर खाली हठयोग करनेवालेका सिर्फ प्रयास मात्र के विना कुछ सुख नहीं होता। उपर्युक्त श्लोकसे तथा स्वानुभावसे मालूम होता है कि—मन्त्र–हठ–और लययोगका फल ही राजयोग है। उनका ही नाम भिन्न २ शास्त्रों में सुना जाता है। जैसे—आत्मयोग, अध्यात्मयोग, महायोग, अस्पर्श-योग, सांख्ययोग, राजगुह्यराजयोग इत्यादिक।

ज्ञानयोगका साधन वेदान्तशास्त्र में इस प्रकार कहा है। कि—सदसद्वस्तुविवेक, इहामुत्रफलभोगविराग, शमादि षट्साधन सम्पत्ति और मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, महावाक्य, (तत्त्वमस्यादि) वाक्यों का विचार—ये आठ अंग ज्ञानयोग या राजयोगोंके साधन हैं। तेजोबिंदूपनिषद में राजयोगके १५ अंग बतलाये हैं। ये इस प्रकारके हैं–

१ यम—उसीको कहते हैं कि सर्वत्र सब कुछ ब्रह्ममय ही है, इस प्रकार सब इन्द्रियों को संयमन करके जो जाना जाता है वही यम है।

२ नियम—अहं ब्रह्मास्मि वृत्तिद्वारा दूसरी वृत्तिका तिरस्कार करके स्वजातीय वृत्तिके प्रवाह करनेको ही नियम कहते हैं।

३ त्याग—अनात्मवस्तुका चिन्तन न करनेका नाम त्याग है।

४ मूलबन्ध—सर्वका जो मूल है तथा चित्त निरोध करनेका जो मूल है उस मूलवस्तु आत्माको ही मूलबन्ध कहते हैं।

५ सम—हस्तपादादिक सबको जो ब्रह्म जानता है वही ब्रह्म में लीन जानना। खाली मेरुदण्ड ग्रीवा आदिको सीधा रखनेसे समता नहीं होता।

६ मौन—ब्रह्म मनवाणीका अविषय है। तथा अनात्म वस्तु ही वाणी योग्य है। ऐसा निश्चय करनेका नाम मौन है।

७ निर्जन—जिस में कोई प्रपंच नहीं है जो सबका अधिष्ठान है तथा हरवक्त विद्यमान है ऐसे आत्माको ही निर्जन कहते है।

८ काल—सर्व प्राणिमात्रकी जिस में क्षणभर में कल्पना होती है उसी अखण्ड आनन्दरूप ब्रह्मको ही काल कहा है।

९ आसन—जिस भाव में स्थिरतापूर्वक बैठकर सुखसे ब्रह्मचिन्तन हो उसीका नाम आसन है।

१० दृष्टि—ज्ञानदृष्टिसे ब्रह्ममय जगत्को देखना ही उदारदृष्टि है। खाली नासिकाग्रभागका अवलोकन ही योगदृष्टि नहीं है।

११ प्राणायाम—चित्त आदि सर्व भावोंको ब्रह्मरूपसे चिन्तन करके सर्व वृत्तियोंको निरोध करनेका नाम प्राणायाम है।

१२ प्रत्याहार—अनात्म विषयको आत्मा में विलय करके विषयासक्त मनको हठाकर ब्रह्माकार अभ्यास करनेका नाम ही प्रत्याहार है।

१३ धारणा—जहां भी मन जाय वहां ब्रह्मदर्शन मानकर दर्शन करना ही उत्तम धारणा है।

१४ ध्यान—मैं ब्रह्म हूं इस सद्वृत्तिको लेकर निरालम्ब में मनको स्थिर करनेका नाम ही ध्यान है।

१५ समाधि—पहले मनको निर्विकार करके पश्चात् ब्रह्माकार करना फिर सर्व वृत्तियोंका निरोध करके वृत्तिका विस्मरण होना ही समाधि है।

मन्त्रयोगका फल।

मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत्।
क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादि गुणान्वितम्॥
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः।
सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा॥
एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसंभवा॥

(योगतत्त्वोपनिषत्)

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः।
हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा॥
षट्शतानि दिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशति।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।
अस्याः सङ्कल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति॥

(योगचूडामण्युपनिषत्)

यस्य द्वादशसाहस्रं प्रणवं जपेदन्वहम्।
तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते॥

(संन्यासोपनिषत्)

जपेनैव तु संसिद्ध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः।

(मनुस्मृति २ अ० ८७ श्लो०)

तस्य वाचकः प्रणवः॥ २६॥ तज्जपस्तदर्थभावनम्॥२७॥
ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च॥ २८॥

(प्रथम अ० २६–२८ सू०)

हठयोगका फल ।

योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम् ।
योगोऽपि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि॥(योगतत्त्वोपनि.)
योगशिखां महागुह्यां यो जानाति महामतिः ।
न तस्य किञ्चिदज्ञातं त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ (योगशिखोपनि.)
ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्मज्ञोऽपि जितेंद्रियः ।
विना योगेन देवोऽपि न मुक्तिं लभते प्रिये ॥ (योगबीज)
सर्वदा भावयेद्योगी शीतली कुम्भकं शुभम् ।
अजीर्णकफपित्तश्च नैव तस्य प्रजायते ॥ (गोरक्षसंहिता)
नाभ्याधारो भवेत्पद्मस्तत्र प्राणं समभ्यसेत् ।
स्वयमुत्पद्यते नादो नादतो मुक्तिरन्ततः ॥ (योगस्वरोदयः)
प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः ॥
हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरः कर्णादिवेदना ।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात्॥ (सिद्धियोगः)

लययोगका फल ।

सदाशिवोक्तानि सपादलक्ष, लयावधानानि वसन्ति लोके ।
नादानुसन्धानसमाधिमेकं, मन्यामहे मान्यतमं लयानाम् ॥१॥
नादानुसन्धान नमोऽस्तु तुभ्यं, त्वां मन्यामहे तत्त्वपदं लयानाम्।
भवत्प्रसादात्पवनेन साकं, विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥ २ ॥
सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा ।
नाद एवानुसन्धेयो योगसाम्राज्यमिच्छता ॥ ३ ॥
भगवत्पादस्य (योगतारावलिः)

सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टाविवर्जितः ।
नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते ॥
नादासक्तं सदा चित्तं विषयं नहि काङ्क्षति ॥
(नादबिन्दूपनिषत्)

यदि शैलसमं पापं विस्तीर्णं बहुयोजनम् ।
भिद्यते ध्यानयोगेन नान्यो भेदः कदाचन ॥
(ध्यानबिन्दूपनिषत्)

राजयोगका फल ।

रजसो रेतसो योगाद्राजयोग इति स्मृतः ।
(योगशिखोपनिषत्)

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥
(कठोपनिषत् १।२-१२)

यथैव बिम्बं मृदोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम् ।
तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवति वीतशोकः ॥
यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ॥
(श्वे. उ. ३. द्वि. १२ श्लोकः)

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं लभेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ।
(मैत्र्येय्युपनिषत्)

---

१०८ उपनिषदों में नीचे लिखी हुई २० उपनिषदों में योगका ही केवल वर्णन मिलता है (उन उपनिषदोंको भित्ति आधार) करके पिछले मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोगके बहुत ग्रन्थ रचित हुए। त्रिपाद्विभूतिनारायणोपनिषत्–रामतापन्योपनिषत्–अन्नपूर्णा–सूर्य–सावित्री–गणपति–हयग्रीव–दत्तात्रेय–कलिसन्तरण–सरस्वतीरहस्योपनिषदोंमें मन्त्रयोगकी विधियां अच्छी तरहसे मिलती है। पुराण, इतिहास और धर्मशास्त्र मनुस्मृत्यादि तथा वेदके संहिता भाग में मन्त्रयोगका विधान है। घेरण्डसंहिता–शिवसंहिता–गोरक्षसंहिता आदिक ग्रन्थों में हठयोग दर्शाया है। वेदान्त ग्रन्थों में राजयोगका विशेष वर्णन मिलता है। पातञ्जलादि ग्रन्थों में लययोगका वर्णन है। परन्तु योगदर्शन में महर्षि पातञ्जलिने जैसी युक्तिसे योगका प्रतिपादन किया है, परवर्ति काल में किसी योगशास्त्र कर्ताने वैसा नहीं दर्शाया। अतएव योगकी युक्तिके लिये योगी मात्रको ही महर्षि पतञ्जलिके पास ऋणी होना पडता है। भगवान् व्यासजीने भी इसी लिये योगशास्त्रका भाष्य बनाया है ऐसी मालूम होती है।

योगोपनिषदोंके नाम—अद्वयतारक, अमृतनाद, अमृतबिन्दु, क्षुरिका, तेजोबिन्दु, त्रिशिखी ब्राह्मण, दर्शनोप, ध्यानबिन्दु, पाशुपत ब्राह्मण, ब्रह्मविद्या, मण्डलब्राह्मण, महावाक्य, योगकुण्डलि, योगचूडामणि, योगतत्त्व, योगशिखा, वराह, शाण्डिल्य, हंस, कठ, श्वेताश्वतर, मुण्डक उपनिषदों में ज्ञान चर्चा अधिक पाई जानेसे भी साथ ही साथ योगका परिचय पाया जाता है। परवर्तिग्रन्थकारोंने उपनिषदोंके श्लोक लेकर तथा उनका आशय लेकर अपने २ ग्रन्थों में भर दिया है। उन ग्रन्थों के देखनेसे विदित होता है कि उनका योगशास्त्र स्वनिर्मित नहीं है। किन्तु सबके मत या पंथ भिन्न २ हैं। कोई कुण्डलिनीको जगाकर योग में प्रवृत्त हुए हैं, किसीने षडङ्गाभ्यासले योग दिखलाया है, किसीने मन्त्र जपसे ही सिद्धियां दिखलाई है। पुराण तथा इतिहास

ग्रन्थों में योगका बहुत प्रमाण मिलते हैं। महाभारत में जनक और कपिलसंवादसे योगके गुह्य रहस्यका पता लगता है। अतएव योग भी मोक्षका प्रतिपादक है। इस बातपर किसी भी आर्यग्रन्थकारों का मत द्वैध नहीं है। बौद्ध, जैन, इशायी, पार्शी आदि धर्मों में भी योग तथा सिद्धियां दिखाई देती हैं। अतएव योग सर्ववादी सम्मत मोक्ष शास्त्र है। ॐ तत्सत्।

विद्वज्जनानुगत

साधु प्रज्ञानाथ।

तत्त्वज्ञान

अखिलशास्त्रार्णवसन्तरणकुशलेन भगवता विद्यारण्येन मुमुक्षूणां हितार्थायोपनिषदां सारमादाय पञ्चदशीति नामधेयो प्रकरणग्रन्थो व्यरचि। तत्र प्रायशः सर्वाणि प्रकरणानि संक्षेपेण तेन निबद्धानि, परन्तु शृङ्खलाभावान्न तेन शास्त्र-गुरु-हीनानां ज्ञानं जायते । पञ्चदश्युक्तानां विषयानां सुखबोधायैषा भूमिकाऽस्माभिर्लिख्यते । एतेन पाठकानां विषयज्ञानं, अध्याय–सम्बन्ध–बोधः, ग्रन्थ-प्रतिपाद्यविषयोपपत्तिः, ब्रह्मज्ञानं च सुखेन भविष्यति । ब्रह्मैवाखिलवेदप्रतिपाद्यविषयत्वेनाचार्यैः स्वीक्रियते। तदेव सर्वेषां पुरुषार्थत्वेन कल्प्यते। तदधिगमाय सर्वे शास्त्रग्रन्थाः प्रवृत्ताः । अखिलविज्ञानज्ञाने-

---

भाषान्तरः—जितने शास्त्रसमुद्र हैं उनको सन्तरण करने में (पढने में) कुशल भगवान् विद्यारण्यजीने मुमुक्षूके हितके लिये उपनिषदोंका सार लेकर पंचदशी नाम ग्रंथ बनाये हैं। उन में प्रायः करके सारे वेदांतोंका प्रकरण संक्षेपसे उन्होंने निबद्ध किये हैं, परन्तु शृंखलाके अभावसे जिनका शास्त्र गुरु सहायक नहीं है, उनको ज्ञान नहीं हो सकता। पंचदशी में लिखा हुआ विषयोंका जैसे सुखपूर्वक बोध हो सके उसके लिये हम इस भूमिकाको लिखते हैं। इससे पाठकोंका विषयज्ञान, अध्यायोंका संबंध और ग्रंथों में प्रतिपाद्य विषयोंका ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान सुखपूर्वक होयंगे। जितने शास्त्र हैं उन्होंने ब्रह्मको ही सारे वेदका प्रतिपाद्य विषय रूपसे स्वीकार किये हैं। और उसीको ही सबसे बडा पुरुषार्थ रूपसे कल्पना किया है। ब्रह्मको जाननेके लिये ही सारे शास्त्र ग्रन्थों की प्रवृत्ति हुई है। सारे जडविज्ञान जाननेसे भी किसीका थोडा

नापि न केषांचित् किंचिच्छाश्वतं फलमत्र दृश्यते, नापि शोकमोहौ वा निवर्तेते। ब्रह्मापरोक्षबोधेन तु शोकमोहनिवृत्ति-रधिकारिणामत्र भूयो भूयो दृश्यते। अतो जडविज्ञानचर्चां विहाय मुमुक्षूणां ब्रह्मचर्चैव कर्तव्या, येन दुःखस्यात्यन्तिक-निवृत्तिः पराशान्तिश्चाधिगम्यते।

तच्च ब्रह्म श्रुतिषु सच्चिदानन्दरूपमिति श्रूयते, तस्य सद्रूप-मत्र विचार्यते।

आकाशादीनि भूतानि सर्वेषां दृष्टिगोचराणि सन्ति, तेषा-मवश्यं किञ्चित्कारणं भवितव्यं, तत्कारणमेव सदिति शब्देना-भिधीयते। नासत उत्पत्तिः संभवति कस्यचन वस्तुनः। नात्र कोऽपि खपुष्पं घ्रातुं शक्नोति। असतश्चेदुत्पत्तिः स्यादसतः

भी नाश रहित फल दिखाई नहीं पडता। न कि उन्हों की शोक मोह की निवृत्ति भी कभी होती है। परन्तु ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञानसे अर्थात् साक्षात्कारसे अधिकारी पुरुषों की शोकमोहकी निवृत्ति बहुत स्थानों में देखी गई है। इस लिये जडविज्ञान चर्चाको छोडकर मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि ब्रह्मचर्चा ही करें, जिससे दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति हो सके। वह ब्रह्म शास्त्रों में सच्चिदानन्दरूप है इस प्रकार सुना जाता है। उनके सद्रूपका यहाँ विचार किया जा रहा है।

भाषान्तरः—आकाशादि जितने भूत हैं वे सब दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उनका कोई कारण अवश्य होगा। उस कारणको ही सत् शब्दोंसे कथन किया जाता है क्यों कि असत्से किसी भी वस्तुकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। आकाशकुसुमका घ्राण कोई नहीं ले सकता। असत्से किसीकी उत्पत्ति हो तो वह सब जगह में सुलभ होनेसे हरेक पदार्थको

सर्वत्र सुलभत्वात्सर्वत्र सर्वदा सर्वस्मात्पदार्थात्सर्वेषां वस्तूना-मुत्पत्तिः स्यात् । परन्तु नैवं दृश्यते, अतोऽसन्नकारणम् ।

शङ्का—सद्ब्रह्म चेत्कारणं नित्यत्वाद्ब्रह्मणः कथं न शाश्वती-सृष्टिरिति चेदुच्यते। यस्माद्यस्योत्पत्तिस्तस्मिंस्तदनुस्यूतं तिष्ठति, यथा घटे मृत्तिका । आकाशादि नाम सच्चेत्कारणं स्यात्तेष्वसतो-ऽनुवृत्तिरवश्यमेव स्य। त् असदाकाशं इत्येवं रूपं अभिधानमपि स्यात् । किन्तु आकाशोऽस्तीति व्यवह्रियते जनैर्न सदाकाश इति सदस्ति च पर्यायवाचकः आकाशादीनामुत्पत्तितः प्राक् सदासीत्पश्चादपि सत्स्थास्यति । "आत्मन आकाशः सम्भूत" इत्यादिश्रुतिरपि सत्कार्यवादिनी, अतो यथा सदाकाशादीनां कारणं न तथाऽसत् ।

हर वक्त उत्पत्ति हो सकती है। परन्तु ऐसा दिखाई नहीं पड़ता इसलिये असत जगत्का कारण नहीं हो सकता।

शंका:—सत् ब्रह्मको तुम कारण मानोगे तो ब्रह्म, सत् और नित्य होनेसे हरवक्त ब्रह्मसे सृष्टि क्यों नहीं होती है !

समाधान:—जिससे जिसकी उत्पत्ति होती है उस में वह अनुगत रहता है—जैसे घट में मिट्टी। आकाशादिओंका असत् कारण होता तो आकाशादि में अवश्य अनुवृत्ति होती थी अर्थात् असत् आकाश इस प्रकार कथन भी हो सकता था, परन्तु सब लोग बोलते हैं 'आकाश है'।

आकाशका होना और सत्रूप एक ही अर्थका प्रकाशक हैं। आकाशादिकी उत्पत्तिके पहले सत्रूप था पीछे भी सत्रूप रहेगा।

आत्मासे आकाशकी उत्पत्ति हुई है, इस प्रकार श्रुति भी सत् कारणका ही प्रतिपादन कर रही है। इस लिये जैसा सत् आकाशादिका कारण है, असत् वैसा कारण नहीं है।

केषांचिन्मते आकाशो नित्यः परन्तु नैतत्सतां ग्राह्यं श्रुतौ आकाशोत्पत्ति-श्रवणादुत्पन्नस्य च नाशदर्शनात् । अत आकाशस्य सत्ता ब्रह्मसत्तावन्न निरपेक्षिका । सत्तामन्तरेणाकाशो न प्रतीयते किन्तु आकाशमन्तरेणापि सत्तोपलभ्यते । शून्य-बुद्धिमपि तिरस्कृत्य यदा तूर्ष्णीं स्थीयते तदा यदनुभूयते तदेव सद्रूपम् । अथवाऽवकाशदानमेवाकाशस्य स्वभावः । कार्योत्पत्तेः प्रागवकाशदानं न संभवति यतो वस्तुहीनोऽवकाशो न कुत्रापि दृश्यते । अतः सर्वकल्पनाश्रयत्वेन लाघवात्सद्रूपमेव कल्पनीयम्, तदेव ब्रह्म । तस्यैव जगत्कारणत्वमुक्तम् । ब्रह्म जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणं न तु नैयायि-

---

भाषान्तरः—किसीके मत में आकाश नित्य है परन्तु यह मत सत्पुरुषोंका ग्रहणीय नहीं है क्योंकि श्रुति में आकाशकी उत्पत्ति सुनी जाती है । और जो जो पदार्थ उत्पन्न होता है उसका नाश भी देखाई पडता है । इसलिये आकाशादिकी सत्ता ब्रह्म सत्ताके समान निरपेक्ष नहीं है अर्थात् सापेक्षिक है । सत्ताको नहीं लेकर आकाशकी प्रतीति नहीं हो सकती परन्तु आकाशको नहीं लेकर सत्ताकी उपलब्धि हो सकती है जैसे शून्य बुद्धिको भी तिरस्कार (छोड) करके जिस वक्त चुपचाप बैठा जाता है । उस वक्त जो कुछ अनुभूत होता है वही सद्रूप है अथवा अवकाश देना ही आकाशका स्वभाव है । कार्योत्पत्तिके पहले अवकाशदान असंभव है क्योंकि वस्तु है ही नहीं और अवकाश दे रहा है । इस प्रकार कोई भी स्थान में देखाई नहीं पडता । इसलिये सारी कल्पनाओंकी आश्रय और लाघवताके लिये सद्रूप कल्पना करना ही अच्छा है । वही ब्रह्म है । उसको ही जगत्का कारण बोला गया है । ब्रह्म जगत्का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है । नैयायिक

केश्वरवत्केवलं निमित्तकारणं सांख्यानां प्रकृतिवदुपादानं वा। घटस्य निमित्तकारणम्। कुम्भकारो यथा घटाद्भिन्नस्तिष्ठति न तथेदं निमित्तकारणम्। घटे मृत्तिकावद्ब्रह्म जगदुत्पत्तेः प्राक् पश्चान्मध्ये चानुस्यूतं तिष्ठति। अतोऽस्योपादानत्वमपि स्वीक्रियते। घटे नष्टे न कुम्भकारेऽसौ लीयते, अतो निमित्तकारणं स उच्यते न तु उपादानकारणम्। आकाशादि पञ्चभूतात्मकं जगत्कदाचिदपि सत् स्वरूपं न जहाति। सद्रूपस्याविनाशित्वान्न क्रिया, अनाश्रितत्वान्न धर्मः त्रिकालाबाध्यत्वान्न जातिः। सदसद्भिरहव्यापकत्वमपि नास्य विद्यते, सतोऽस्य जन्म सद्रूपेणास्य स्थितिः सति चास्य लयं दृष्ट्वा सदेवास्य कारणं नाणुः प्रकृतिर्वा। उभयोर्जडत्वात्। जडवस्तुनः स्वतः

लोग जैसे ईश्वरको निमित्त कारण मानते हैं और परमाणुओंको उपादान कारण मानते हैं अथवा सांख्य लोग जैसे प्रकृतिको उपादान कारण मानते हैं, ब्रह्म वैसा कारण नहीं है। घटका निमित्त कारण कुम्हार जैसे घटसे भिन्न रहता है वैसा यह निमित्त कारण नहीं है। घट में जैसा मिट्टी वैसा जगत् उत्पत्तिके पहले, पीछे और मध्य में भी ब्रह्म अनुगत रहता है। इस लिये उसका उपादानपणा भी स्वीकार किया जाता है। घट नष्ट होनेसे कुम्हार में उसका लय नहीं होता। इसलिये कुम्हार को निमित्त कारण बोला जाता है और वह उपादान कारण नहीं हो सकता। आकाशादि पंचभूतात्मक शरीर कभी भी सत् स्वरूपको नहीं छोडता। सत्‌रूप अविनाशी होनेसे क्रिया नहीं है। तीन काल में अबाध्य होनेसे जाति भी नहीं है। सत्, असत्, दोनोंसे भिन्न रूप भी यह नहीं है। सत्से इसकी उत्पत्ति, सद्‌रूप में स्थिति और सत् में इसका लय देखकर सत् ही जगत्का कारण अनुमान किया जा सकता है। अणु और प्रकृति दोनों जड होनेसे जगत्का उपादान कारण नहीं

प्रवृत्तिर्न दृश्यते। दृश्यते चेत् चुम्बकलोहयोः न सा बुद्धिपूर्विका प्रवृत्तिरिति विज्ञेयम्। जगत्यस्मिन्नानाबुद्धिमत्ता दृश्यते विचित्रता च। अतोऽणूनां जडप्रकृतेर्वा यादृच्छिकप्रवृत्तेः कार्यमिदमिति न संभाव्यते।

यथा सत्स्वरूपं ब्रह्म जगत उपादानं कारणं तथा चिद्रूपं अस्य निमित्तकारणं, अतोऽभिन्ननिमित्तोपादानं ब्रह्म जगतः कारणं जगद्दृष्ट्वा अनुभूयते।

॥१॥ "तदैक्षत बहु स्याम् प्रजायेय" इत्यादि श्रुतिवाक्येषु ब्रह्मणः ईक्षणं श्रूयते, तच्च न प्रकृतेर्नाणूनां वा संगच्छते अतश्चिद्रूपस्य ब्रह्मण एव सर्वज्ञत्वं चिद्रूपत्वं च सिद्ध्यति।

हो सकता। जडवस्तु आपही प्रवृत्त होती है ऐसी कोई स्थान में देखाई नहीं पडती। ऐसा कहो कि चुम्बक और लोह दोनों जड होते हुए भी प्रवृत्ति होती है तो वह प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक नहीं होती ऐसा जानना चाहिये। इस जगत् में नाना प्रकारकी बुद्धिमत्ता और विचित्रता देखाई पडती हैं। इसलिये जड अणु अथवा प्रकृतिके ख्याम खयाल प्रवृत्तिसे यह जगत् हुआ है इस प्रकार बोला नहीं जा सकते।

भाषान्तरः—जैसे सत्स्वरूप ब्रह्म जगत्का उपादान कारण है वैसे चिद्रूप इसके निमित्त कारण है अतः अभिन्न निमित्त उपादान जगत्का कारण है। जगत्को देखकर अनुमान किया जा सकता है। ब्रह्मके चिद्रूपका यहाँ विचार किया जा रहा है।

भाषांतरः—"तदैक्षत बहु स्याम् प्रजायेय" अर्थ यह है कि ब्रह्म ईक्षण किया और सोचा मैं बहु होकर जन्म लूँगा। इस श्रतिके वाक्यसे ब्रह्मका ईक्षण (दृष्टि) सुनी जाती है। परन्तु वह ईक्षण प्रकृति अथवा अणुके नहीं हो सकते। इसलिये चिद्रूप ब्रह्मको ही सद्रूपता और सदनुगता सिद्ध होती है।

॥ २ ॥ आकाशादि पदार्थाः स्वं वाऽन्यं वा न प्रकाशयितु-मर्हन्ति, परन्तु ते प्रकाशन्ते। यस्मादेतेषां प्रकाशस्तद्ब्रह्म चिद्रूप-मेव स्वीकरणीयमन्यथाप्रकाशाभावाज्जगदान्ध्यप्रसंगः स्यात्।

॥ ३ ॥ अणूनां मिलनाच्चिद्रूपं यदि उत्पद्येत सिकतास्वपि तैलं विन्देत। यथैकोऽन्धो न पश्यति तथा पञ्चानां समवायेऽपि ते न पश्यन्ति। अणूनां स्वप्रकाशार्थमपि चिद्रूपं स्वीकरणीयम्।

॥ ४ ॥ नित्यत्वाच्चिद्रूपस्य सृष्टेः प्राक् तद्विषया आलोच-नाऽपि संगच्छते। ये तु चितः प्रागभावं मन्यन्ते ते प्रष्टव्याः-चित् स्वयमेवात्मानं अनुभवति परेण वानुभूयते। नान्यः चिदन्यस्य जडत्वात्। जडस्यानुभवः कुत्रापि न दृश्यते। नापि

भाषान्तरः—आकाशादि जितने पदार्थ हैं वे अपनेको और दूसरे को प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। परन्तु जिससे प्रकाशित हैं उस ब्रह्मको चिद्रूपही मानना पड़ेगा नहीं तो प्रकाशके अभावसे जगदान्ध्य अर्थात् जगत् में किसी वस्तुका भी प्रकाश नहीं होगा।

भाषान्तरः—अणुओंके मिलनसे चिद्रूप उत्पन्न हो जाय तो रेतीसे भी तेल निकाल सकेगा। जैसे एक अंधा नहीं देख सकता वैसे पांच अंधे इकट्ठे होनेसे भी नहीं देख सकेंगे। अणुओंको अपने प्रकाशके लिये भी चिद्रूपका स्वीकार करना चाहिये।

भाषान्तरः—चित्‌रूप नित्य होनेसे सृष्टिके पहले भी सृष्टिविषयक आलोचना हो सकती है। जो लोग चित्‌का प्रागभाव मानते हैं, उनको पूछना चाहिये "चित् आपही आपको अनुभव करता है अथवा दूसरा करके अनुभूत होता है।" शेष पक्ष तो नहीं बनता क्यों कि चित्‌को छोड़कर और सब जड़ हैं। इसलिये जड़का अनुभव कभी दिखाई नहीं

प्रथमः कर्तृकर्मविरोधात् । चिदा चिदनुभूयते चेदत्र प्रष्टव्यः । तच्चिदात्मनो भिन्नमभिन्नं वा । प्रथमे अद्वैतहानिः, तत्स्वीकरणेऽपि चित्प्रतियोगिकाभावश्चिद्रूपग्रहणमन्तरेण न गृह्यते, गृहीतश्चेत्तदपि घटादिवदचिद्रूपमेव स्यात् । द्वितीये कर्तृकर्मविरोधत्वाच्च चिदा चिद्ग्रहणम् ।

॥ ५ ॥ चिच्चेन्न स्वतः सिद्धं, तदा वक्तव्यमेतदपरेण प्रकाशितम् सत् विषयं प्रकाशयतीति । वाक्यान्तरेण परप्रकाश्यमप्रकाशं वा स्यात् । स्वयमप्रकाशं सत् स्वविषयं चित्प्रकाशयतीति न समीचीनं भाति, यद्येवं स्याच्चिद्विषये प्रमाणाभावा-

---

पडते । पहले पक्ष भी नहीं बनता क्यों कि उस में कर्ता कर्मका विरोध (जो कर्ता है वही कर्म है) यह असंभव हो जाता है । चित् ही चित्को अनुभव करता है । ऐसा कहो तो मैं तुमको पूछता हूँ—यह चित् अपनेसे भिन्न या अभिन्न है । पहले पक्ष में अद्वैतकी हानी होगी। कोई प्रकारसे स्वीकार भी किया जाय तो चित् प्रतियोगिक जो अभाव है वह चित् रूपको ग्रहण नहीं करके गृहीत नहीं होते । और उसका भी ग्रहण हो जाय तो वह भी घटादिकके समान अचित्रूप ही हो जायगा । द्वितीय पक्ष में कर्ता कर्म विरोध दोष होनेसे चित्से चित् का ग्रहण नहीं हो सकता ।

भाषान्तरः—चित् स्वतः सिद्ध नहीं हो तो बोलना चाहियेः—यह चित् दूसरेसे प्रकाशित होकर विषयको प्रकाश करता है अथवा अप्रकाशित रहकर विषयको प्रकाशित करता है । दूसरे वाक्यसे चित् पर प्रकाश्य अथवा अप्रकाश्य होगा । आप खुद अप्रकाशित होकर अपने विषयको प्रकाशित करेंगे यह बात तो ठीक नहीं मालूम पडती । ऐसा हो तो चित् विषयमें कोई प्रमाण नहीं रहनेसे उसका स्वरूपको ही

चस्य स्वरूपासिद्धिः । स्वरूपासिद्धं वस्तु न विषयान्तरसाधकम् । पदार्थस्य सत्ता निश्चयार्थं प्रकाशमपेक्षते । अतोऽज्ञातं सत् चिद्विषयस्य साधकं भवेदिति रिक्तं वचः । न वा चित्परप्रकाश्यं सत् विषयं साधयितुमर्हति । यतः पूर्वचिदपि अपरेण प्रकाशितं सत् विषयं प्रकाशयेत् द्वितीयं च तृतीयेन इत्यनेनानवस्थाप्रसङ्गः । अत्रायं निष्कर्षः—चिच्चेन्न स्वप्रकाशं स्यात्तस्य जडत्वं जायतेऽसत्त्वापत्तिरपि अनिवार्या स्यात्, परप्रकाशस्वीकारे अनवस्थाप्राप्तिः । अनवस्थाप्राप्तौ प्रथमचिति असिद्धौ जगदान्ध्यप्रसङ्गः । अतश्चिद्रूपमवश्यं स्वप्रकाशं स्वीकरणीयमिति । यथा दीपः स्वप्रकाशाय प्रकाशान्तरं नापेक्षते तथा चिद्रूपं ब्रह्मस्वप्रकाशत्वान्नान्यमपेक्षते । यतः स्वप्रकाशं ब्रह्मातो

सिद्धि नहीं होगी । जिसका स्वरूपही असिद्ध है वह विषयान्तरका साधक नहीं हो सकता । पदार्थके सत्ताका निश्चय करनेके लिये प्रकाशकी अपेक्षा है । चित्‌के प्रकाश नहीं हो तो चित् हो इसमें प्रमाण क्या होगा ? इस लिये चित् के सत्ता (अस्तित्व) का निश्चय करनेके लिये प्रकाशपणाकी अपेक्षा है । इस लिये चित् अज्ञात होकर विषयको साधक होगा । इस प्रकार वचन झूठा है । और चित् परप्रकाश्य होकर भी विषयको साधक नहीं हो सकता, क्यों कि पहले चित् भी दूसरे प्रकाशसे प्रकाशित होकर विषयको प्रकाशित करेगा, दूसरा चित् तिसरासे, इस प्रकार अनवस्था दोष प्राप्त हो जायगा । दूसरेसे प्रकाशित हो तो अनवस्था प्राप्त हो जायगी । अवस्था प्राप्ति होनेसे जब पहले चित् ही असिद्ध हो गया तब जगदान्ध्य प्रसंग हो जायगा । इस लिये चिद्‌रूपको अवश्य ही स्वप्रकाशित मानना पडता है । जैसे दीप अपने प्रकाशके लिये दूसरे प्रकाशकी अपेक्षा नहीं रखते वैसे ही चित् रूप

नाप्रकाशं कदाचिद्व्रजेत् । यद्वस्तु कदाचिदप्रकाशं स्थातुमर्हति न तस्य स्वप्रकाशत्वमपि संगच्छते । नच तत्प्रकाश्यं ग्राहकान्तराभावाच्चिदविषयम् । अविषयस्य प्रकाशान्तरापेक्षाऽपि नास्ति अतो न चानवस्थाप्राप्तिः ।

विषयस्य सत्ता, भानं च युगपद्भवतः । सत्तामन्तरेण भानं, भानान्तरेण वा सत्ता न कदाचिदुपलभ्यते । सा सत्ता स्वकीया परकीया वा भवेन्नात्र विचारणा, परन्तु सत्ताभावेन भानं न सम्भवति । सत्ताभानं च यद्यपि शब्दमात्रेण विभिद्यते न तु स्वरूपतः । अन्योन्यसहायत्वात्तयोर्न भिन्ना स्थितिः यदन्तरेण यन्न स्थातुमर्हति तदपि तत्स्वरूपमेव । यथा सूर्यः

ब्रह्म अपने प्रकाशके लिये दूसरे प्रकाशकी अपेक्षा नहीं रखते । इससे यह प्रमाण हुआ—ब्रह्म स्वप्रकाश होनेसे कभी भी अप्रकाश नहीं रह सकता । जो वस्तु कभी अप्रकाश ठहरता है उसके अप्रकाशपणा भी सिद्ध नहीं हो सकता । चित् दूसरेसे प्रकाशित भी नहीं है क्यों कि उसका ग्राहक दूसरा कोई नहीं है । ग्राहकके अभावसे ही चित् अविषय है । जो वस्तु अविषय होता है उसको प्रकाशान्तरकी अपेक्षा भी नहीं है । इस लिये अनवस्था दोष भी प्राप्त नहीं होता ।

विषयकी सत्ता और भान एक साथ ही होते हैं । सत्ताको छोडकर भान, और भानको छोडकर सत्ता कोई स्थान में भी उपलब्ध नहीं होता । वह सत्ता अपनी व परायी है, इस विषय में विचार करना फजुल है । परन्तु सत्ताके अभावसे भान नहीं हो सकता । सत्ता और भान यद्यपि शब्द मात्रसे अलग हैं परन्तु स्वरूप करके नहीं है । एक दूसरेका सहायक होनेसे वे अलग नहीं ठहर सकते । जिसको छोडकर जो नहीं ठहर सकता वह भी तत्स्वरूप ही है, जैसे सूर्य और उसका प्रकाश ।

प्रकाशश्च । सच्चिद्रूपविचारेण ज्ञायते ते ब्रह्मणः स्वरूपे, आकाशादिपदार्थेषु घटे मृत्तिकावदवतिष्ठते । इदानीमानन्दस्वरूपमपि विचार्यते ।

ब्रह्मविषये श्रुतिरेव प्रबलं प्रमाणम् । युक्तिरनुभवश्च तस्य सहायकौ श्रुत्यनुकूले न तयोः प्रामाण्यं न तु स्वातंत्र्येण, अतीन्द्रियब्रह्मविषये युक्तेरनुभवस्यापि न स्वातंत्र्येण प्रामाण्यं, अनवस्थाप्रसङ्गात् । न तावद्ब्रह्म स्वर्गादिवच्छास्त्रवेद्यम् । यद्येवं स्यान्न तस्य स्वर्गादिवदपरोक्षज्ञानं कदाचित्संगच्छेत । परन्तु तस्यापरोक्षज्ञानमस्त्येव तेन दुःखास्यात्यन्तिकनिवृत्तिरपि दृश्यते श्रूयते च । अतो नैतत्केवलं शास्त्रगम्यं, युक्त्यनुभवगम्यञ्च ।

सत् चित् रूपका विचार करनेसे माल्म होता है वे ब्रह्मके स्वरूप हैं। आकाशादि पदार्थों में घट में मृत्तिका के न्याय वे रहते हैं । अब आनन्द स्वरूपका मैं यहाँ विचार कर रहा हूँ ।

ब्रह्मके विषय में श्रुति ही प्रबल प्रमाण है । युक्ति और अनुभव श्रुति की ही सहायता करते हैं । श्रुति के अनुसार ही प्रमाणता है न कि स्वातंत्र्यसे । अतीन्द्रिय ब्रह्म विषय में युक्ति और अनुभवका स्वातंत्र्य प्रामाण्य नहीं है क्यों कि ऐसा माना जाय तो अनवस्था प्राप्त हो जायगी । और ब्रह्म स्वर्ग नरकादिके समान खाली शास्त्रों से जाना जायगा, ऐसा भी नहीं । ऐसा होता तो ब्रह्मका स्वर्गादिके न्याय अपरोक्ष ज्ञान कभी भी नहीं हो सकता था । परन्तु ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान होता है और दुःखकी आत्यंतिक निवृत्ति भी उससे दिखाई पडती है और सुना जाता है । इस लिये ब्रह्म खाली शास्त्रगम्य नहीं है । युक्ति और अनुभवसे भी ब्रह्मको जाना जा सकता है ।

"आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्" इत्यादि श्रुति-वाक्येभ्य आनन्दाद्विश्वस्योत्पत्तिः श्रूयते। परन्तु विश्वं प्रायशो दुःखमेव दृश्यते। यदि ब्रह्म आनन्दस्वरूपमेव स्यात्। तस्य कार्यत्वाज्जगत्यपि आनन्दः प्रतीयेत। अन्यथा कार्ये कारण-स्वरूपस्याविद्यमानत्वान्न कार्य-कारण-भावः। अतः सच्चिद्वत् कार्ये आनन्दोऽपि सर्वदा स्थातव्यः। ब्रह्मणि चेत्सुखं भवे-त्सर्वत्र सर्वदा तदुपलभ्येत। न चोपलभ्यते अतो ब्रह्मणि सुखं नास्तीति चेन्न ब्रह्मणि सुखं नास्ति चेन्मास्तु परन्तु ब्रह्म सुख-स्वरूपमेव। स्वप्रकाशं ब्रह्म पूर्वमेव प्रतिपादितम्। स्वप्रकाश-स्वरूपस्य सिद्धये नान्यत्प्रमाणमपेक्षते। स्वकीयानुभव एवात्र

भाषान्तरः—"आनन्दसे ये सारे भूतोंकी उत्पत्ति हुई है। कौन खा सकता था और कौन प्राण धारण कर सकता था। यह आकाश आनन्दमय नहीं होता तो" इत्यादिक श्रुति वाक्यसे भी आनन्दसे विश्वकी उत्पत्ति सुनी जाती है। परन्तु संसार में दिखाई पडती है प्रायः करके सब दुःखी है। ब्रह्म आनन्द स्वरूप होता तो उसका कार्य जगत् भी आनन्दमय होना था। ऐसा नहीं हो तो कार्य में कारणका स्वरूप अविद्यमान रहनेसे कार्यकारण भाव ही नहीं हो सकता। इस लिये सत् चित्‌के न्याय कार्य में भी आनन्द हरवक्त रहना चाहिये। ब्रह्म में सुख हो तो हरवक्त हरेक स्थान में उसको उपलब्धी क्यों नहीं होती? इस लिये ब्रह्म में सुख है ही नहीं ऐसा मानो; ऐसा कोई प्रश्न करे तो उसको बोलना चाहिये—ब्रह्म में सुख नहीं हो तो नहीं होने दो, परन्तु ब्रह्म सुख स्वरूप ही है। ब्रह्म स्वप्रकाशरूप है यह बात मैं पहले विचार करके आया हूँ। स्वप्रकाश स्वरूपकी सिद्धिके लिये दूसरा प्रमाणकी अपेक्षा नहीं है। अपने अनुभव ही इस में एकमात्र प्रमाण है। सुषुप्ति में

प्रमाणमस्तु । सुषुप्तिकाले यत्सुखमनुभूयते, कस्य तत्सुखम् ? येन सुखमनुभूयते तत्साधनं किञ्चिदप्यत्र न विद्यते । अपि तु सुषुप्तौ सुखानुभवाय विषयग्राम्यसुखं तत्रोपेक्षते । सुखमहमस्वाप्सम् न किञ्चिदवेदिषमित्यादि सुप्तोत्थितस्य परामर्शदर्शनात्सुषुप्तौ सुखमनुभूतमिति ज्ञायते । नाननुभूतस्य स्मृतिर्भवति; सुखं चेन्नानुभूतमासीन्न तस्य स्मरणं सम्भवति । सुखमज्ञानं च स्मृत्यानुमीयते । नैतत्सुखं विषय-जन्यं इन्द्रिय-जन्यं वा तत्र तेषामदर्शनात् । नापि अज्ञान-जन्यं तत्सुखं जडत्वात् । ब्रह्मातिरिक्तं नान्यस्य तत्सुखं केनाप्युपायेन कल्पयितुं शक्यम् । जाग्रत्स्वप्नकाले चित्तं विषयान्तरेण विक्षिप्तत्वान्न तयोः सुखभानम् ।

जो सुख अनुभूत होता है वह सुख किसका है ? जिससे सुख अनुभूत होता है उसका साधन थोडा भी वहाँ कुछ नहीं है । परन्तु सुषुप्ति के सुख लेनेके लिये स्त्रीआदिक ग्राम्य सुखों की लोग उपेक्षा करते हैं । 'मैं सुखपूर्वक सो गया था । कुछ भी नहीं जाना ।' इस प्रकार सुषुप्ति से उठा हुआ पुरुषकी स्मृतिसे सुषुप्ति में सुख अनुभूत हुआ था, इस प्रकार जाना जाता है । जिस पदार्थको अनुभूति नहीं होती उसकी स्मृति भी नहीं बनती । सुख अनुभूत नहीं होता तो उसका स्मरण भी नहीं हो सकता था । सुख और अज्ञान स्मृतिसे अनुमित होते हैं । वह सुख विषयसे उत्पन्न नहीं है और इन्द्रियोंसे भी जन्य नहीं है क्यों कि उस वक्त विषय और इन्द्रियां सब लीन थे । और अज्ञानसे उत्पन्न भी नहीं माना जा सकता है क्यों कि अज्ञान जड है । जडका आनन्द कोई कल्पना नहीं कर सकता । इस लिये ब्रह्म व आत्मासे भिन्न दूसरेका सुख कोई भी उपायसे कोई कल्पना नहीं कर सकता । जाग्रत् और स्वप्न काल में चित्त दूसरे विषय में विक्षिप्त रहनेसे सुखका भान नहीं रहता ।

चंचले चित्ते सुखस्वरूपस्य ब्रह्मणः प्रतिबिम्बो नाभासते। चंचले जले मुखबिम्बवत्। स्थिरे चित्ते तु सुखस्य भानं अनुभवश्च जायते। यथा, सूर्यप्रतिबिम्बः समं सर्वत्र पतितोऽपि दर्पणादिषु प्रतिबिम्बतें नान्यत्र स्पष्टं प्रकाशते, तथा ब्रह्मानन्दः सर्वत्र स्थितोऽपि शुद्धान्तःकरणे तस्य प्रकाशो जायते नान्यत्र। अथवा अग्निजले यदा संक्रामति तदा तस्योष्णतैव तत्र प्रतीयते न तु तस्य स्वाभाविकः प्रकाशस्तथा जडचेतनेषु ब्रह्म सर्वत्रास्तिभातिरूपेण वर्तमानमपि जडे तस्य सत्तायाः चेतने तस्य सच्चिद्रूपयोः शुद्धान्तःकरणे सच्चिदानन्दस्य प्रकाशो जायते। अन्धः सूर्यं न पश्यति न तेन यथा सूर्याभावोऽनुमी-

---

चंचल चित्त में सुख स्वरूप ब्रह्मका प्रतिबिम्ब नहीं भासता। जैसे हिले हुए जल में मुखका प्रतिबिम्ब नहीं भासता है। जल जब स्थिर होता है तब मुखका भान और अनुभव दोनों होते हैं। जैसे सूर्यका प्रतिबिम्ब सारे पदार्थपर पडते हुए भी जलदर्पणादिक में उसका प्रतिबिम्ब भासता है और दूसरी जगह में उसका स्पष्ट प्रकाश नहीं होता; वैसे ही ब्रह्मानन्द सब जगह में होते हुए भी शुद्ध अंतःकरण में उसका प्रकाश होता है दूसरे चित्त में नहीं। अथवा जल में जब अग्निका संक्रमण होता है तब उसकी उष्णता उस में प्रकाशित होती है। परन्तु उसका स्वाभाविक प्रकाश जल में प्रकाशित नहीं होता, वैसे जड चेतन सारे पदार्थों में ब्रह्मकी अस्ति और भातिपणाका वर्तमानत्व होते हुए भी जड में उसकी सत्ताकी, चेतन में उसके चिद्रूपकी और अंतःकरण में सच्चिदानंद रूपके प्रकाश होते हैं। अन्ध सूर्य को देखता नहीं है इस लिये नहीं माना जा सकता है कि सूर्य है ही नहीं, वैसे ही अज्ञान

यते तथैवाज्ञानतिमिरान्धस्य ब्रह्मानन्दो न भासते नैतावता तस्यासत्तापत्तिः ।

सुषुप्त्यवस्था जीवस्य ब्रह्मप्राप्तेः स्थानं, तदासौ पार्थिवदुःखैर्नाभिभूयते । तदा अन्धोऽनन्धो भवति, रोगी नीरोगी भवति, महापातक्यपि तदा सर्वपापेभ्यः प्रमुच्यते । सुषुप्त्यवस्थायां मुक्त्यवस्थायां च न किञ्चिद्भेदस्तत्रोपलभ्यते । सुषुप्तिकाले चेदज्ञानं न तिष्ठेत्तदा सर्वे मुच्येरन्, पुनः संसारप्राप्तेः सम्भावनाऽपि न भवेत् । गुरुशास्त्रोपदेशमन्तरेण अज्ञानं न निवर्तते, सुषुप्त्यवस्थाऽपि न कस्यचित्स्वेच्छया आगच्छति । अतो जाग्रदवस्थायामपि सुषुप्तिसुखानुभवलाभाय प्रबलपुरुषकारो यत्नश्चाधेयः ।

अंधारीसे अंधे हुए मूर्ख के पास ब्रह्मानंद नहीं भासता, इससे ऐसा नहीं मानना कि ब्रह्मानंद है ही नहीं ।

सुषुप्ति अवस्था जीवकी ब्रह्मप्राप्तिका स्थान है । उस वक्त जीव सांसारिक दुःखसे अभिभूत नहीं होता । अन्ध भी सुषुप्ति में अनन्ध हो जाता है, रोगी नीरोगी हो जाता है, महापातकी भी महापातकसे उस वक्त छूट जाता है । सुषुप्ति अवस्था में और मुक्ति अवस्था में, इन दोनों में थोडासा भी भेद नहीं है । सुषुप्ति काल में अज्ञान नहीं होता तो सब लोग मुक्त हो जाते थे । और फिर संसार प्राप्तिकी संभावना भी नहीं होती थी । परन्तु गुरु और शास्त्र उपदेश छोडकर किसीका अज्ञान नहीं छूटता । और सुषुप्ति अवस्था भी किसीकी कभी भी अपनी इच्छासे नहीं आ सकती । इस लिये जाग्रत् अवस्था में भी सुषुप्तिके सुखको अनुभव करनेके लिये प्रबल पुरुषार्थ (प्रयत्न) करना चाहिये ।

समाधिपाटवेन तत्सुखं निरन्तरं योगिनां भवितुमर्हति। ननु, सुषुप्तौ यथा दुःखं नास्ति तथा सुखमपि नास्ति लोष्ट्र-प्रस्तरादिवज्जडतैव तत्रानुभूयते इति चेन्न। तदा सुप्तपुरुषस्य मुखकान्ति दृष्ट्वा तस्य सुखमेवात्रानुमीयते सा प्रसन्नता लोष्ट्रा-दिष्वदर्शनाच्च तद्वज्जाड्यमात्रमत्रानुमीयते। मुखस्य दैन्यादि-लिङ्गेन यथा परदुःखमनुमीयते, तादृशदैन्यादिभावः प्रस्तरा-दिष्वदर्शनाच्च तेषु सुखं दुःखं वा कल्पयितुं शक्नोपि। सुखं दुःखं च स्वेनैवानुभूयेते, अनुभवेन च सुषुप्तौ सुखं अनु-भूयते, न दुःखमिति च स्वकीयानुभववेद्यम्। सुषुप्तौ चेत्सुखं न स्यात्किं सुकोमलशय्यादिसंग्रहेण आरामायेति चेदस्तु रोगिणां तन्न तु सुस्थकायस्य नीरोगस्य तत्समीचीनं भाति।

समाधिके अभ्याससे यह सुख हरवक्त योगीओंको हो सकता है।

शंका:—सुषुप्ति में जैसे दुःख नहीं है वैसे सुख भी नहीं है। वहाँ तो मिट्टी पत्थरके समान खाली जडताका ही अनुभव होता है।

समाधानः—उस वक्त सुषुप्त पुरुषकी मुख कांति देखकर उस में सुखका ही अनुमान होता है। यह प्रसन्नता मिट्टी पत्थरादिक में दिखाई नहीं पडनेसे सुख दुःखका अनुमान नहीं किया जा सकता है। दूसरेके मुखकी मलीनता देखकर जैसे उसके दुःखका अनुमान होता है वैसे मलिनतादिक भाव पत्थरादिक में नहीं होनेसे उस में सुख दुःखकी कल्पना भी नहीं कर सकते हो। सुख और दुःखको आप ही अनुभव कर सकते हैं। अनुभवसे सुषुप्ति में सुख जाना जाता है और दुःख नहीं है यह भी अपने अनुभवसे ही जाना जाता है। सुषुप्ति में सुख नहीं होता तो कोमल शय्यादिक साधनका संग्रह करनेकी क्या जरूरत थी? ऐसा कहो कि आराम के लिये। तो यह रोगीके लिये तो ठीक है परन्तु सुस्थ शरीरवाले और निरोगी पुरुषके लिये यह बात नहीं बनती।

साधनजन्यसुखं तु निद्रायाः प्रागनुभूयते निद्रावस्थायां यत्सुखमनुभूयते तत्तु न शय्यादिसाधनजन्यमपि तु स्वरूपसुखमेवेति ।

सुषुप्त्याद्यक्षणे सुखाभिमुखिनीबुद्धिवृत्तौ चिद्बिम्बप्रतिफलितं यत्सुखमनुभूयते तत्तु विषयसुखमिति भण्यते । अत्रापि त्रिपुटीविद्यमानत्वान्न स्वरूपसुखं लभ्यते, अतो जीवः सुखार्थी सन् श्रमापनोदनायात्मनि सुखमिच्छन् तेन सहैकीभूतः स्वयमेव सुखरूपो भवति ।

शकुनश्येनकुमारमहाराजमहाब्राह्मणादिदृष्टान्तेन श्रुतिरापामरविदुषां ब्रह्मानन्दप्राप्तिं प्रदर्शयति, पिता अपिता भवतीत्यादिवाक्येन जीवस्य जीवत्वं वारयति । पितृत्वाद्यभिमान

साधनसे उत्पन्न हुआ जो सुख वह निद्राके पहले ही अनुभूत होता है। निद्रावस्था में जो सुख होता है वह शय्यादिकसे नहीं होता । इस लिये उसको स्वरूप सुख ही मानना पड़ेगा ।

सुषुप्तिके किंचित् काल पहले सुषुप्तिके तरफ मुख करनेवाली बुद्धि वृत्ति में चित्–बिम्ब प्रतिफलित होकर जो सुखका अनुभव होता है उसको भी विषय सुख ही कहते हैं । वहाँ भी त्रिपुटी विद्यमान रहनेसे स्वरूप सुखका अनुभव नहीं होता । इस लिये जीव सुखकी इच्छा करके अपने श्रमको दूर करनेके लिये आत्माके साथ एक होकर खुद ही सुखरूप हो जाता है ।

शकुन श्येन कुमार, महाराज महाब्राह्मणादि दृष्टान्तसे श्रुति, पामरसे लेकर विद्वान् तक सबको ही सुषुप्ति में ब्रह्मानंद की प्राप्ति देखाई रही है । उस वक्त पिता अपिता हो जाता है इत्यादि वाक्यसे जीवका जीवत्व वहाँ निषेध कर रहा है । पितृपणादि अभिमान ही जीवके

एव सुखदुःखादिसंसारप्राप्तेर्हेतुः । अभिमाने शान्ते शोक-मोहादिसंकुलः संसारः क्षिप्रमेव विलीयते ।

सुषुप्तौ ज्ञात्रभावात्कः सुखमनुभवतीति प्रश्नो न संगच्छते । अज्ञानप्रतिबिम्बितचिदेवात्र भोक्तृपदवाच्यः । सुषुप्तिसुखं कर्मजन्यत्वान्न तस्यात्र स्वातन्त्र्यं विद्यते । तथा च श्रुतिः—"स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता स्वमायया कल्पितजीवलोके। सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति । पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः । पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवस्ततः सुजातं सकलं विचित्रम् ॥" अतः प्रत्यहं ब्रह्मानन्दं परित्यज्यापि जीवो जाग्रत्स्वप्नेषु सुख-दुःखाधीनो भवति । सुषुप्तेः प्राक्पश्चाच्च कियत्कालं यावत्

सुखदुःखादि संसार प्राप्तिके हेतु हैं । सुषुप्ति में अभिमान शांत हो जानेसे शोक मोह आदिक संसार जल्दी ही विलीन हो जाता है ।

सुषुप्ति काल में जाननेवालेका अभाव होनेसे सुखका अनुभव कौन करता है, इस प्रकार प्रश्न नहीं बनता, क्यों कि अज्ञान प्रतिबिम्बित चित् ही वहाँ भोक्ता नामसे कहा जाता है । सुषुप्तिका सुख कर्मसे उत्पन्न होनेसे उस में उसका स्वातंत्र्य नहीं है । श्रुति कहती है:—"जीव लोग में (संसार में) जीव स्वप्न में सुख दुःखको अपनी मायासे कल्पित वृत्तिसे भोग करते हैं । और सुषुप्ति काल में सारी वृत्तियां विलीन हो जानेसे अज्ञानसे अभिभूत (आच्छादित) होकर सुखरूप हो जाता है । फिर जन्मान्तरके कर्मभोगसे वह जीव स्वप्न में वा जाग्रत् में आ जाता है । जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन पुर में (स्थान में) जो खेल करता है उससे सारे विचित्र जगत् की उत्पत्ति होती है।" इस लिये रोजरोज ब्रह्मानंदको छोडकर भी जीव स्वप्न और सुषुप्तिके अधीन होता है । सुषुप्ति

ब्रह्मानन्दस्य संस्कारो वर्ततेऽतोविषयाभावेऽपि प्रबुद्धः स्वल्पकालं तूष्णीमवतिष्ठते। पश्चाद्विषयकर्मसु व्यापृतः संस्तत्संस्कारो विलीयते।

शङ्का—तूष्णीं स्थिते यदि ब्रह्मानन्दानुभवोऽस्तु अलसानामपि ब्रह्मानन्दलाभ इति चेन्न। यदि ब्रह्मज्ञानान्तरं कोऽपि तूष्णीं स्थातुमर्हति तस्य ब्रह्मानन्दलाभोऽस्माभिः स्वीक्रियते, परंतु गुरुशास्त्राभ्यां विना ज्ञानं न भवति। अलसस्तु तयोरभावाद्वृथा कालक्षेपं करोति। ज्ञानिमूढयोस्तु एतावानेव भेदः ज्ञानी ब्रह्म विज्ञाय सत्त्वगुणोत्कर्षात्स्वरूपसुखमनुभवति, अलसस्तु तामसगुणोत्कर्षात् निद्रादितामसवृत्त्या तेषु जाड्यमेवानुभवति न तु सुखं प्रसन्नतां वा।

के पहले और पीछे थोडा काल तक ब्रह्मानंदका संस्कार रहता है और विषय नहीं होते हुए भी प्रबुद्ध पुरुष थोडा काल चुप करके स्थित रहता है। पीछे विषय कर्म में लिप्त होनेसे उस संस्कार विलीन हो जाते हैं।

शंका:—चुपचाप बैठनेसे ही ब्रह्मानंदका अनुभव हो तो आल्सी आदमीको भी ब्रह्मानंदका अनुभव होना चाहिये।

समाधान:—ब्रह्मज्ञानको लाभ करके कोई चुपचाप ठहर सके तो उसको ब्रह्मानंद लाभ होगा, यह मैं भी स्वीकार करता हूँ। परन्तु गुरु और शास्त्र छोडकर ब्रह्मानंद किसीको भी नहीं हो सकता। आलसी आदमीको शास्त्र और गुरु नहीं होनेसे वह वृथा ही काल खोता है। ज्ञानी और मूढ में इतना ही भेद है कि ज्ञानी ब्रह्मको जानकर सत्त्व गुणकी वृद्धिसे अपने स्वरूप सुखका ही अनुभव करता है। और आल्सी आदमीको तमोगुणकी वृद्धिसे निद्रादिक तामसिक वृत्तिसे जडताका ही अनुभव करता है। उसके सुख और प्रसन्नता दोनों नहीं होते।

जीवो विषये सुखं विकल्प्य तदेवेच्छति, विषयप्राप्तौ क्षण-कालं चित्तं इच्छोपरमादन्तर्मुखी भूत्वा तूष्णीमवतिष्ठते तस्मिन्मनोवृत्तौ चित्प्रतिबिम्बपातेन तत्र क्षणिकं सुखमनुभूयते। मूढास्तु तत्प्रतिबिम्बितं सुखं विषयजन्यमिति मत्वा विषया-न्प्रति धावन्ति । विषये चेत्सुखं स्याद्विषये विद्यमाने विषया-न्तरं व्यापृतचित्तस्य तदा दुःखं न स्यात् ।

जीवानां प्रत्यहं त्रिविधावस्था स्वभाववशादायाति याति च । यथा सुखदुःखोदासीनावस्थाश्चेति । तत्र सुखावस्था शुभकर्मजन्या । यदा शुभकर्मफलदानोन्मुखं भवति तदा हर्षाकारा चित्तवृत्तिर्जायते सुखं चानुभूयते । अशुभकर्मफल-दानोन्मुखे सति इच्छाभिघातजन्या द्वेषवृत्तिर्जायते तया च

जीव विषय में सुख कल्पना करके उसकी इच्छा करता है । विषय प्राप्त होनेसे थोडा काल तक चित्त इच्छाकी उपशमतासे अंतर्मुख होकर चुप रहता है । उसी चित्त वृत्ति में चित् प्रतिबिम्ब पडकर वहीं थोडा सुख अनुभव होता है । मूर्ख उस प्रतिबिम्बित सुखको विषयसे उत्पन्न हुआ जानकर विषयके तरफ ही दौडता है । विषय में सुख होता तो उस विषय वर्तमान होते हुए भी जब चित्त दूसरे विषयों में लगा रहता है उस वक्त भी उसका दुःख नहीं होता था ।

रोज जीवकी तीन अवस्थायें स्वभावसे आती जाती हैं जैसे सुख-दुःख और उदासीन, ये तीन अवस्थायें हैं । इन में शुभकर्म जब फल देने को तैयार होता है (फल देनेको उन्मुख होता है) तब सुखावस्था आती है । और हर्षाकार चित्तकी वृत्ति भी होती है । उस वक्त सुखका अनुभव होता है । जब अशुभ कर्म फल देनेको उन्मुख होता है तब इच्छा में बाधा पडनेसे द्वेष वृत्ति होती है । उससे दुःखका अनुभव

दुःखमनुभूयते। द्वे सुखदुःखाकारे वृत्ती मनोजन्यत्वात्क्षणस्थायिन्यौ। उदासीनवृत्तिस्तु जीवस्य स्वाभाविकैव तस्यां सुखदुःखाभावाद्ब्रह्मानन्द एवानुभूयते।

ब्रह्माकारा विषयाकारावृत्तिश्च जीवस्य स्वभाववशादेव भवति। तयोर्ब्रह्माकारोदासीनवृत्तिस्तु स्वत एव भवति विषयाकारावृत्तिस्तु प्रयत्नेनाभ्यासवशादुत्पद्यते दीर्घकालेन।

यथोत्पद्यमाने घटे आकाशः स्वयमेव पूर्यते, तण्डुलजलादिना पूरणं तु प्रयत्नसाध्यं तेषामपसरणेऽपि नाकाशोऽपसर्यते। तथा, सुखदुःखकारा वृत्तिः प्रयत्नसाध्यं कर्मणः फलं, ब्रह्मानन्दस्तु न कर्मजन्योऽतो न स कर्मसाध्यः। सुखं दुःखं च मनोधर्मः, शान्ते मनसि सुषुप्तौ वा नानुभूयते। अतो मनोनिरोधेन सुखदुःखो-

---

होता है। सुख दुःखकी दोनों वृत्तियां मनसे उत्पन्न होनेसे क्षणिक हैं। परन्तु उदासीन वृत्ति जीवकी स्वामाविक है। उस में सुख और दुःखका अभाव होनेसे ब्रह्मानंदका ही अनुभव होता है। स्वामाविक ही जीवको कभी ब्रह्माकार और विषयाकार वृत्ति होती है। उन में ब्रह्माकार उदासीन वृत्ति स्वभावसे होती है परन्तु विषयाकारा वृत्ति प्रयत्न करके और दीर्घकालके अभ्याससे उत्पन्न होती है।

जैसे जब घट उत्पन्न होता है वह आकाशसे स्वभावसे ही भर जाता है। उस में चावल ज्वार भरना अपने प्रयत्नसे होता है और उनको निकाला भी जा सकता है परन्तु आकाशको कोई नहीं निकाल सकता वैसे ही सुख और दुःखाकार वृत्तियां प्रयत्न साध्य और कर्मका फल होनेसे उसको निकाला जा सकता है। परन्तु ब्रह्मानंद कर्मसे उत्पन्न नहीं हुआ, इस लिये पुरुषकारसे उसको नहीं निकाला जा सकता। सुख और दुःख दोनों मनके धर्म हैं। मन जब शान्त हो जाता है और सुषुप्तिकाल में लीन रहता है तब सुख दुःखका अनुभव

त्तरणाय प्रयत्नः कर्तव्यः । स्वतःसिद्धस्य ब्रह्मानन्दस्य स्वभावजन्यत्वान्न यत्नेन कृतेन वोत्पत्तिः वरं कर्मनिचयं ब्रह्मानन्दस्यैव परिपन्थि ।

उदासीनवृत्तौ अहंकारस्य वर्तमानत्वान्न ब्रह्मानन्दलाभः । तत्र निजानन्द एवानुभूयते । यावती यावती अहंकारविस्मृतिस्तावती तावती निजानन्दानुभूतिर्जायते । सम्यग्विस्मृतौ समाधिर्भवति, लयाभावान्नासौ निद्रा, द्वैताभासाभावान्न जाग्रत् स्वप्नो वा । अतस्तस्यामवस्थायां यत्सुखमनुभूयते स एव यथार्थो ब्रह्मानन्दः ।

सच्चितोरेकता प्रदर्शिता चिद्विहाय आनन्दो नावतिष्ठते, अतोऽभिन्नौ चिदानन्दौ । सुषुप्तौ यदि चिन्न स्वीक्रियते,

---

नहीं होता। इसलिये मनके निरोधसे जाग्रत् अवस्था में भी सुख दुःखोंसे बचनेके लिये प्रयत्न करना कर्तव्य है। ब्रह्मानंद स्वरूप होनेसे और स्वाभाविक ही उत्पन्न होनेसे प्रयत्नसे उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, बल्कि जितने कर्म हैं वे सब ब्रह्मानंदके विरोधी हैं (रोकनेवाले हैं)।

उदासीन वृत्ति में अहंकार वर्तमान रहनेसे उसको ठीक ब्रह्मानंद बोला नहीं जा सकता। उसको निजानन्द कहते हैं। अहंकार जितना क्षीण वा विस्मरण होते जायगा उतना ही निजानन्दका अनुभव होते जायगा। बिल्कुल विस्मृत हो जानेसे समाधि अवस्था में उसका लय हो जाता है। उस अवस्था में (समाधि में) लय नहीं रहनेसे उसको निद्रा नहीं बोली जा सकती। प्रपंचका अभाव रहनेसे उसको जाग्रत् वा स्वप्न भी नहीं बोला जा सकता। इस लिये उस अवस्था में अर्थात् समाधि में जो सुख अनुभूत होता है वही यथार्थ ब्रह्मानंद है।

सत् और चित् की एकता मैं पहले ही बता चुका हूँ। चित् को छोड़कर आनंद नहीं ठहर सकता। इस लिये चित् और आनंद दोनों

तस्याः साक्षी को भवेत्। साक्ष्यभावाच्च स्मृतिरपि संभाव्या। स्मृतिर्भवति तत्कार्येण च साक्षि चिदनुसन्धेयमिति।

सत् चित् आनन्दश्च ब्रह्मणो विभिन्नं लक्षणम्। असद्व्यावृत्तये सत्, जडत्वव्यावृत्तये चित्, दुःखादिव्यावृत्तये आनन्दपदं देयम्। ब्रह्म तु स्वरूपतः एकमेवाद्वितीयं स्वजातीय–विजातीय–स्वगत–भेदरहितम्। तथैव श्रुतौ असत्य (मिथ्या) व्यावृत्तये सत्यं, एकदेशनिवृत्तये पूर्णं, परिच्छिन्नत्वनिवृत्तयेऽनन्तं पदमुक्तम्।

अतः सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, सच्चिदानन्दं ब्रह्म इत्यादि ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणज्ञापकं वाक्यम्। "जन्माद्यस्य यतः" सृष्टिस्थितिलयकारणम् ब्रह्मेति वाक्यं ब्रह्मणस्तटस्थलक्षणं

अलग नहीं है। सुषुप्ति में चित् (ज्ञान) स्वीकार नहीं किया जाय तो उसका साक्षी कौन होगा? और साक्षीका अभाव होनेसे स्मृति भी नहीं हो सकेगी। स्मृति होती है इसके कार्यसे साक्षीका भी अनुमान हो सकता है। वह साक्षी चित् रूप है।

सत् चित् और आनन्द तीन ब्रह्मकें लक्षण हैं। असत्से अलग करनेके लिये सत्पद दिया गया। जडसे अलग करनेके लिये चित् पद दिया गया। दुःखसे अलग करनेके लिये आनन्द पद दिया गया है। परन्तु ब्रह्मस्वरूप करके "एकमेवाद्वितीयं" अर्थात् स्वजातीय विजातीय और स्वगत भेदसे रहित है। वैसे ही श्रुति में असत्योंसे अलग करनेके लिये सत्यपद दिया है। एक देशसे अलग करनेके लिये पूर्णपद दिया है। परिच्छिन्नतासे अलग करनेके लिये अनन्त पद दिया गया है।

अनुवादः—इस लिये सत्यज्ञान अनन्तरूप ब्रह्म, सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म इत्यादिक ब्रह्मके स्वरूप लक्षण बतानेवाले वाक्य हैं। इस जगत्की सृष्टि जहाँसे हुई है सृष्टि स्थिति लयका कारण ब्रह्म है। इत्यादिक वाक्य

ज्ञापयति । सृष्टिस्थितिलयेषु ब्रह्म समं तिष्ठति । हिरण्यगर्भस्य सुषुप्तिरेव महाप्रलयः । सुषुप्तौ निद्रादोषमाश्रित्य यथा स्वप्नो झटित्येव भासते, अथवा शीतर्तौ नष्टशुष्कमण्डूकचूर्णादपि वर्षादौ मण्डूकानां प्रादुर्भावस्तथाऽचिन्त्यशक्तियोगेन महाप्रलयान्ते सृष्ट्यादौ च ब्रह्मणि ईक्षणं (सृष्टिविषयकालोचनं) झटित्येव जायते । माया तु तस्य कारणं नान्यत् । इन्द्रजालिकशक्तिवत्सा माया ब्रह्मणि कथं केन रूपेण तिष्ठतीति दुर्विज्ञेयं, कार्यं दृष्ट्वा शक्तिरनुमायते, कार्यस्य प्राक् शक्तिरव्यक्ता कर्मकर्तुरनन्या तिष्ठति । अग्नेर्दाहिका शक्तिवत् मायाशक्तिः ब्रह्मणि अभिन्नरूपेण तिष्ठति, अतो न द्वैतापत्तेरवसरः ।

ब्रह्मके तटस्थ लक्षण जनानेवाले हैं । सृष्टि, स्थिति और लय में ब्रह्म एकरूप ही रहता है । हिरण्यगर्भके सुषुप्ति ही महा प्रलय है । सुषुप्ति में निद्रादोषको आश्रय करके जैसे झटपट स्वप्न आ जाता है, अथवा शीतकाल में सुखा मेण्डकके चूर्णसे वर्षाके आदि में मेण्डकका उद्भव होता है वैसे ही महाप्रलयके अन्त में अचिन्त्य शक्तियोगसे सृष्टिके आदि में ब्रह्म में भी ईक्षण (सृष्टिविषयक आलोचन) झटपट आ जाते हैं । माया ही उसका कारण है । दूसरा कोई कारण नहीं है । बाजीगरकी शक्ति जैसे उस में रहती है किसीको भी मालूम नहीं है । कार्य देखकर शक्तिका अनुमान होता है । कार्य होनेके पहले शक्ति अव्यक्तरूपसे कर्म करनेवालेसे अपृथक् रहती है । जैसे अग्निकी दाहिका शक्ति अभिन्नरूप में रहती है मायाशक्ति भी वैसे ही ब्रह्म में अभिन्नरूप में रहती है । इस लिये माया और ब्रह्म भिन्न नहीं होनेसे द्वैतापत्ति होनेका अवसर नहीं है । अर्थात् ब्रह्म अद्वैत ही है । मायाकी सत्ता स्वतंत्र नहीं है । ब्रह्मकी सत्ता ही मायाकी सत्ता है । मायाका कोई

मायाया न स्वतन्त्रा काचित्सत्ता विद्यते, ब्रह्मसत्त्वैव तस्याः सत्ता सा तु स्वयं निस्तत्त्वा, कार्यगम्या सदसद्भ्यामनिर्वचनीया ।

शक्तेः कार्यस्य जगत उत्पत्तेः प्राक् एकमेवाद्वितीयमासीत् । ईक्षणमात्रेण मनो जायते । यथा शक्त्या मन उत्पद्यते तां त्रिधा विभज्य गुणत्रयं तस्या असावकल्पयत् । यथा भित्तौ चित्रकारो विविधानि चित्राणि मनसा कल्पयति तथा मायावी मायाशक्तिबलेन आकाशादीनि पंचभूतानि स्वात्मनि कल्पयति । अवकाश–स्वभाव आकाशस्तु तस्य प्रथमा कल्पना, आकाशाद्वायुः, वायोस्तेजः, तेजसः जलं, जलात्पृथिवी क्रमेणासौ कल्पयामास । निद्राशक्तिः स्वप्ने साधनमन्तरेणापि यथा विचित्रसृष्टिं रचयति, तथा मायाशक्तिर्ब्रह्मण आकाशादीन्

तत्त्व भी नहीं है। कार्यसे जाना जाता है इस लिये उसको सत् या असत् कहा नहीं जा सकता। वेदान्तों में इसीको ही अनिर्वचनीय कहा है।

शक्तिका कार्य जगत् की उत्पत्तिके पहले ब्रह्म एक और अद्वितीय था। ईक्षण मात्र करके मन हुआ। जिस शक्तिसे उसकी उत्पत्ति हुई उसके तीन गुणकी कल्पना भी मनने ही किया। जैसे दिवार में चित्रकार हरकिसीम चित्रोंको मनसे कल्पना करता है, वैसे ही मायावी मायाशक्ति बलसे आकाशादि पंचभूतोंको अपने में ही कल्पना करती है। अवकाश स्वभाववाला आकाश, उसकी पहली कल्पना है। आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथ्वी क्रम करके उन्होंने बनाये हैं। ब्रह्मके साथ आकाशादिओंकी अभिन्नता भी उसने ही कल्पना की। निद्राशक्ति स्वप्न में दूसरा कोई साधन नहीं होते हुए भी जैसे विचित्र सृष्टि रचती है, वैसे ही मायाशक्ति आकाशादिकको ब्रह्म में

सृष्ट्वा तेषां पृथक् पृथक्सत्त्वांशेभ्यः पंचज्ञानेन्द्रियाणि, राजसांशेभ्यः पंचकर्मेन्द्रियाणि तेषां देवताश्च स्वस्वभोगेभ्यः कल्पयामास पंचसत्त्वांशस्य समष्टितः स मनः राजसांससमष्टितश्च प्राणमसृजत्। तामसांशेभ्य एकैकं भागं द्विधा विभज्य, पुनः प्रथमं भागं चतुर्धा विभज्य स्वस्व अर्धभागेन मिलयित्वा पञ्चीकृतं पंचभूतानि चकार तेभ्यश्चाखिलब्रह्माण्डम्। ब्रह्माण्डस्य सत्ता ब्रह्मणो न पृथग्विद्यते। यथा मायाया सृष्टिकारिणी शक्तिरस्ति तथा मोहिनी शक्तिरपि। अतो ह्येषा सृष्टौ ब्रह्म प्रवेशयित्वा ब्रह्मभावमाच्छाद्य जीवत्वमापादयत्। माया मुग्धब्रह्मैव जीवभावमुपागतः। वस्तुतो जीवब्रह्मणोर्न भेदः। यावच्च प्रबुद्धस्तावदेव स्वप्नदृश्यं पृथगनुभूयते प्रबुद्धस्तु तानि

कल्पना करके उनके अलग अलग सत्त्वांशसे पंचज्ञानेन्द्रियाँ, राजस अंशसे पंचकर्मेन्द्रियाँ और उनके देवता अपने अपने भागोंसे कल्पना किये हैं। पाँच सत्त्वांशकी समष्टिसे उन्होंने मनको बनाया। और पाँच राजस अंशोंकी समष्टिसे प्राणको बनाया है। तामस अंशोंसे एक एक भागके दो भाग करके, पहले भागके फिर चार भाग करके, अपने अपने आधे भागके साथ मिलाकर पंचीकृत पंचमहाभूतोंको बनाये हैं। पंचीकृत महाभूतसे ही सारे ब्रह्मांडकी कल्पना की है अर्थात् बनाया है। सारे ब्रह्मांडकी सत्ता ब्रह्मसे अलग नहीं है। जैसे स्वप्नकी सृष्टि स्वप्न देखनेवालेसे अलग कुछ नहीं है; जैसे मायाकी सृष्टि करनेवाली शक्ति है, वैसे उसकी मोहिनी शक्ति भी है। इस लिये यह ब्रह्मको सृष्टि में घुसाकर ब्रह्म भावको आच्छादित करके जीव बनाया है। माया मुग्ध ब्रह्म ही जीवभावको प्राप्त हुआ वास्तवसे जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। जबतक जाग्रत नहीं हुआ तबतक स्वप्नके दृश्य अलग अलग

स्वप्नदृश्यानि नात्मनः पृथग् मन्यते,—तथैव जीवः सच्चिदानंद-स्वरूपः सन्नपि मायया मुग्धः सन् आत्मानं मूढं मत्वा शरीरादिष्वहं ममेति वृथाभिमानं कृत्वा दुःखशोकान्वितो भवति। अहं ममेति बुद्धिरेव जीवस्य बन्धः सत्त्वज्ञानकल्पितः।

इयं कल्पनैव सृष्टिरित्यभिधीयते।

भासते हैं। जाग्रत् हुआ पुरुष स्वप्नदृश्योंको अपनेसे अलग नहीं देखता अथवा मानता; वैसे ही जीव सच्चिदानंद स्वरूप होते हुए भी मायासे अपनेको और शरीरादि में—मैं, मेरा—इस प्रकार मिथ्याभिमान करके सुखदुःखसे व्याकुल होता है। मैं, मेरा, इस प्रकार बुद्धि ही जीवका बन्धन है। वह बन्धन अज्ञान-कल्पित है, इस कल्पनाको ही सृष्टि कहते हैं।

॥ ईश सृष्टि यहाँ तक है ॥

॥ ॐ तत् सत् ॥

जीवस्वरूपम्

जीवस्वरूपमत्र विचार्यते। जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयो जीवस्य त्रिविधावस्थाः जाग्रद्दशायां शब्द-स्पर्श-रूप-रसादयो भिन्नाविषयाभिन्नेन इन्द्रियेण गृह्यन्ते, परन्तु तेषां ज्ञानं न भिद्यते। यद्यथा आकाशादुत्पन्नं श्रोत्रं तद्गुणं शब्दं गृह्णाति, वायोरुत्पन्नं स्पर्शं त्वग् गृह्णाति, तेजस उत्पन्नं चक्षुस्तद्गुणं रूपं गृह्णाति, जलोत्पन्नं रसनं तद्गुणं रसं गृह्णाति, पृथिव्या उत्पन्नं घ्राणं तद्गुणं गन्धं गृह्णाति। सजातीय एव सजातीयं गृह्णाति नान्यं, यथा घ्राणेन्द्रियं रूपं न गृह्णाति।

अनुवाद—जीवके स्वरूपका यहां विचार किया जा रहा है। जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति जीवकी ये तीन अवस्थाएँ हैं। जाग्रत् अवस्था में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पाँच विषय हैं। और पाँच इन्द्रिय इनके ग्राहक हैं। परन्तु उनके ज्ञान में कोई भेद नहीं है। शब्दज्ञान, स्पर्शज्ञान एकरूप ही है। जैसे आकाशसे उत्पन्न हुआ श्रोत्र (कान) उसका गुण शब्दको ही ग्रहण कर सकता है। वायुसे उत्पन्न हुआ स्पर्श त्वचासे ग्रहण किया जाता है। तेजसे उत्पन्न हुआ चक्षु तेजका गुणरूपको ही ग्रहण कर सकता है। जलसे उत्पन्न हुई जिह्वा जलका गुण रसको ही ग्रहण कर सकती है। पृथ्वीसे उत्पन्न हुई नासिका (घ्राणेन्द्रिय) उसके पृथ्वीका गुण गन्धको ही ग्रहण कर सकती है। स्वजातीयसे स्वजातीयका ही ग्रहण हो सकता है। एक इन्द्रिय दूसरेको ग्रहण नहीं कर सकती जैसे घ्राण इन्द्रिय रूपको ग्रहण नहीं कर सकती।

यद्यपि शब्दस्पर्शादयः परस्परं भिन्नास्तथापि, शब्दज्ञानं, स्पर्शज्ञानं च ज्ञानांशेनैकरूपमेव भवति। स्वप्नेऽपि विषया भिद्यन्ते परन्तु तेषां ज्ञानं न भिद्यते। जाग्रत्स्वप्नयोर्भेदः कालभेदेन, जाग्रच्चिरमवतिष्ठते स्वप्नस्तु क्षणमेवावतिष्ठते। मिथ्यात्वमुभयत्र समानमेव।

एतज्ज्ञानमेव जीवात्मा, तिसृषु अवस्थासु वर्तमानत्वादेष नित्यः। तत्तदवस्थाभासकत्वात्स्वप्रकाशश्च। परमप्रेमास्पदत्वात् प्रियतमत्वाच्च परानन्दस्वरूपः।

तस्य प्रेमास्पदत्वं च मानाभुवं भूयासमिति जीवजातस्यानुभवेन ज्ञायते। "न वा अरे पुत्रस्य कामाय पुत्रः प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति।" इत्यादि

अनुवाद—यद्यपि शब्द स्पर्श आदिक परस्पर भिन्न हैं तथापि शब्दज्ञान और स्पर्शज्ञान ज्ञानांश में एकरूप ही है। स्वप्न में भी विषयके भेद होते हैं। परन्तु उसके ज्ञानका भेद नहीं होता। जाग्रत् और स्वप्नका भेदकाल भेदसे होता है। जाग्रत् अवस्था बहुत देर तक रहती है और स्वप्न अवस्था थोडा काल ही रहती है। मिथ्यापणा दोनों में ही समान है। इस ज्ञानको ही जीवात्मा कहते हैं। तीनों अवस्था में ज्ञान वर्तमान रहनेसे ज्ञान नित्य है। और उस अवस्थाका भासक (प्रकाशक) होनेसे वह स्वप्रकाश है। परम प्रेमका स्थान होनेसे और प्रियतम होनेसे ज्ञान परमानन्द स्वरूप भी है।

वह जो परम प्रेमका स्थान है उस में यह प्रमाण है कि हमारा अभाव कभी न हो। इस प्रकार सारे जीवोंके अनुभवसे जाना जाता है कि अपने जीनेके लिये इच्छा स्वाभाविक है। श्रुति भी बोलती है:— हे मैत्रेयि! पुत्रके सुखके लिये कोई कामना नहीं करता परन्तु आत्म

श्रुतिरपि आत्मनः परमप्रेमास्पदत्वे प्रमाणम् । आत्मार्थमेव पुत्रभार्यादयः प्रियाः भवन्ति । आत्मनः सुखाय यदा ते न स्युस्तदा परित्यक्ता भवन्ति । सुखसाधनरूपेण अन्नपानादयः प्रिया भवन्ति, नात्मा सुखसाधनरूपेण प्रियः । यत आत्मातिरिक्तो नान्यो भोक्ता अत आत्मा न साधनरूपेण प्रियः भोगसाधनानि तु परार्थानि भवन्ति । आत्माऽपि चेत्साधनं स्यात्तस्यापि भोक्ता कल्पनीयः परन्तु नेदृशो भोक्ता दृश्यते । आत्मा एकं विषयं त्यक्त्वा विषयान्तरं गृह्णाति, किन्तु आत्मा न च गृह्यते न वा त्यज्यते । अतो वैषयिके सुखे त्याज्ये-ग्राह्ये सत्यपि आत्मसुखं न कदाचिद्व्यभिचरति। न वा उपेक्ष्यः उपेक्षितुः। स्वस्वरूपत्वान्न स्वेनैव स्वस्योपेक्षा संभाव्यते । यत्र

कामके लिये ही पुत्र प्रिय होता है। इस श्रुति वाक्य भी आत्माके प्रेमास्पद प्रेमरूप में प्रमाण है। आत्माके लिये ही पुत्रभार्यादिक सब प्रिय होते हैं। आत्मसुख में जब वे विघ्न करते हैं तब उनको त्याग दिये जाते हैं। सुखके साधनरूपसे ही अन्नपानादिक सब प्रिय होते हैं। परन्तु आत्मा सुखके साधनरूपसे प्रिय नहीं है क्योंकि आत्मासे भिन्न दूसरा कोई भोक्ता नहीं है। इस लिये आत्मा साधन रूपसे प्रिय नहीं है। भोगके साधन दूसरेके लिये ही होते हैं। आत्मा भी साधन हो जाय तो उसका भी भोक्ता कल्पना करना पडेगा। परन्तु ऐसा भोक्ता दूसरा कोई नहीं है। आत्मा एक विषयको छोडकर दूसरे विषयको ग्रहण करता है परन्तु आत्माका त्याग या ग्रहण दोनों नहीं हो सकते। इस लिये विषयके सुख त्याज्य ग्राह्य होते हुए भी आत्म-सुखका व्यभिचार नहीं होता। आत्मा उपेक्ष्य भी नहीं है क्यों कि जो उपेक्षा करेगा, उसका आत्मस्वरूप होनेसे, आप ही आपकी उपेक्षा करे ऐसा कोई स्थान में दिखाई नहीं पडती। रोगादिसे पीडित होकर

रोगादिना पीडितस्य, आत्मघातः श्रूयते तत्रापि शरीरं दुःखस्य कारणं मत्वा तदेव जिहासति, नतु स्वात्मानं, पारलौकीय सुखे स्पृहादर्शनात् । तीर्थादिषु मृत्युकामनापि तथैवोन्नेया । शास्त्रेषु पुत्रादिषु यदात्मत्वं श्रूयते तत्तु गौणं न मुख्यम् ।

मुमूर्षुर्न स्वकीयं धनसम्पदं रक्षितुमर्हति ततस्तत्रात्मज एव स्वशरीरात्कार्यक्षमः । अत एवोक्त "आत्मा त्वमसि"—न तु मुख्येन । पञ्चकोशाद्विविक्तोऽपि आत्मा अध्यासात्तेषु कोशेषु स्वात्मानं भ्रान्त्या तदेवात्मेति मन्यते । एष एव मिथ्यात्मा । अन्नमयादि पञ्चकोशेषु आध्यासिकतादात्म्यसम्बन्धेन सम्बद्धत्वादात्मा आत्मत्वमारोपयति । तत्र पञ्चीकृतपञ्चभूतोत्पन्नो

जो आत्मघातादिक करते हैं, वहाँ दुःखका कारण शरीरको ही जानकर उसको ही छोडना चाहते हैं । वहाँ आत्माका नाश करनेका उद्देश्य नहीं है क्यों कि परलोक में सुखकी कामना रहनेसे, बिना आत्मासे उसकी सिद्धि नहीं हो सकती । तीर्थादिक में मरने की इच्छा भी वैसी ही जान लेना । शास्त्रादिक में, पुत्रादिक में जो आत्मपणा सुना जाता है वह गौण है न कि मुख्य ।

मरनेवाला खुद धनसंपत्तिकी रक्षा नहीं कर सकता । वहाँ अपने पुत्र अपने शरीरसे कार्य करने में समर्थ है । इस लिये पुत्रको कहा है—'तुम मेरा आत्मा हो' मुख्य वृत्तिसे नहीं है । पंचकोशोंसे अलग होते हुए भी आत्मा उन्होंके साथ अध्यस्त होनेसे उन उन कोषों में भ्रांति करके उन उन कोषवाले अपनेको मानते हैं—इसको ही मिथ्यात्मा कहते हैं । अन्नमयादिक पंचकोषों में आध्यासिक-तादात्म्य संबंध करके, आत्मा उन उन कोषों में अपनेको आरोप करता है । पंचीकृत पंचभूतोंसे उत्पन्न हुआ देहको अन्नमय कोश कहते हैं । पंच-

देहोऽन्नमयः कोशः पञ्चकर्मेन्द्रियैः सह पञ्च प्राणाः प्राणमयः कोशः। पञ्चज्ञानेन्द्रियैः सह मनो मनोमयः कोशः। पञ्चज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमयः कोशः। अज्ञानमेवानन्दमयः कोशः।

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां विचारिते सति तेषु आत्मत्वभ्रान्तिर्मृषैव प्रतिभाति। स्वप्नावस्थायां स्थूलदेहस्य भानमपि न विद्यते, तथापि आत्मा विद्यते स्वप्नश्चानुभूयते अतः स्थूलदेहो नात्मा। मातृपितृशोणिते नैष उत्पन्नः अन्नेन परिपुष्टः सन् अन्ने लीयते नास्य आत्मता संभवति। देहश्चेदात्मा देहमन्तरेण कुतः स्वर्गभोगः? अभावान्न भावोत्पत्तिर्नहि असद्देहात्पुनरुत्पत्तिरिति वा वाच्यं कर्मफलसांकर्यात्।

कर्म इन्द्रियके साथ पंचप्राण मिलकर प्राणमय कोष होता है। पंच ज्ञानेन्द्रियके साथ मन मिलकर मनोमय कोष होता है। पंचज्ञानेन्द्रियके साथ बुद्धि मिलकर विज्ञानमय कोष होता है। अज्ञानको ही आनन्दमय कोष कहते हैं।

अन्वयव्यतिरेक रूपसे विचार करनेसे उस में आत्मत्व भ्रांति मिथ्या जाना जाता है। स्वप्न अवस्था में स्थूल देहका भान भी नहीं रहता। वहाँ भी आत्मा रहता है और स्वप्नोंका अनुभव करता है। इस लिये स्थूल देह आत्मा नहीं हो सकता। माता-पिताके शुक्र और रक्तसे यह देह उत्पन्न हुआ है, अन्नसे पुष्ट होता है और अन्नमय पृथ्वी में इसका लय होता है। इस लिये अन्नमय कोष आत्मा नहीं हो सकता। देह ही आत्मा हो तो विना देहसे स्वर्गका सुख कैसे हो सकता था? अभावसे कभी भावकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस लिये असत् देहसे पुनरुत्पत्ति होगी ऐसी भी कल्पना नहीं की जा सकती है। ऐसा हो तो कर्म फल में भी संकर हो जायगा।

प्राणः शरीरे बलं ददाति, इन्द्रियाणि च स्वस्वकर्मणि प्रेरयति, जडत्वान्न तस्यापि आत्मता प्रशस्ता। संकल्पविकल्पात्मा अहंममाभिमानि मनोऽपि नात्मा सुषुप्तौ लीयते अतो विज्ञानमयकोशोऽपि नात्मा। मनोमयविज्ञानमययोरेतावानेव भेदः; बुद्धिः कर्त्रीरूपेणान्तः परिणमते, मनस्तु करणरूपेण बहिः परिणमते इति।

कदाचित्पुण्यभोगकालेऽन्तर्मुखिनीवृत्तौ चित्प्रतिबिम्बपातेन पुण्यफलभोगदानान्ते भोगशान्तौ निद्रारूपेण यो लीयते स एवानन्दमयः कोशः। प्रतिबिम्बरूपत्वान्नैप मुख्यात्मा। बिम्बभूत आनन्द एव मुख्यात्मा। पञ्चकोशातिरिक्तं न किमप्यनुभूयते इति न वाच्यम्। पञ्चकोशस्य भावाभावज्ञाता, साक्षी, बोध-

---

प्राण शरीर में बल देता है और सब इन्द्रियोंको अपने अपने काम में लगाता है। खुद जड होनेसे वह भी आत्मा नहीं हो सकता। संकल्प विकल्प करनेवाला मन भी आत्मा नहीं हो सकता क्यों कि सुषुप्ति में मनका भी लय हो जाता है। बुद्धि भी सुषुप्ति में लीन हो जाती है, इस लिये विज्ञानमय कोष भी आत्मा नहीं है। मनमय और विज्ञानमय कोष में इतना भेद है; बुद्धि कर्त्रीरूप में भीतर में परिणाम प्राप्त होता है। और मनका करण रूपसे बाहिर में परिणाम होता है।

पुण्य फल भोग जब आ जाता है उस वक्त अन्तर्मुख चित् वृत्ति में चित्के प्रतिबिम्ब पडकर पुण्यफलके भोग दान करनेवाली सुखाकारा वृत्ति हो जाती है। भोग शान्त होनेसे निद्रा रूप में जिसका लय होता है उसको ही आनन्दमय कोष कहते हैं। प्रतिबिम्बरूप होनेसे वह भी मुख्य आत्मा नहीं है। बिम्ब रूप आनन्द ही मुख्य आत्मा है। ऐसा कहना भी उचित नहीं है कि:—पंच कोषसे अलग और कुछ भी अनुभूत नहीं होता है।

रूपात्मा कोषमन्तरेणापि राजते । स्वस्य वर्तमानत्वे कः स्वात्मानमपलपितुमर्हति । य आत्मा नास्तीति वदति स स्वस्य जिह्वा नास्तीति वदति । असदेव स भवति योऽसदात्मेति वदति ।

पूर्वोक्तविचारेण मिथ्यात्मनः मुख्यत्वं निवार्यते, इदानीं प्राकृतानां प्रवृत्तिं दृष्ट्वाऽपि मिथ्यात्मनः हेयत्वं प्रतिपाद्यते । सर्वे जना ज्ञानेन्द्रियाणां रक्षार्थं कर्मेन्द्रियं त्यजन्ति, यथा शरीररक्षार्थं सर्पदष्टामङ्गुलिं त्यजन्ति; राजदण्डेन केषांचित्प्राणदण्डे सति चक्षुर्दानेन प्राणरक्षार्थं चेष्टन्ते; स्वीय-मान-रक्षार्थं च प्राणानपि युद्धे त्यजन्ति, निश्चयात्मिकया बुद्ध्या मनो जित्वा समाधौ यतन्ते; तत्र बुद्धिमपि आत्मसुखलाभाय

पंचकोषका होना, नहीं होना, दोनोंको जो जानता है वह साक्षी बोधरूप आत्मा विना कोषसे भी रह सकता है । आप खुद वर्तमान होते हुए भी कौन अपनेको 'नहीं है' ऐसा बोल सकता है ? जो कहता है:— आत्मा नहीं है; वह ऐसा बोलता है कि उसको जिह्वा नहीं है तो भी बात कर रहा है। जो आत्माको असत् बोलता है वह खुद ही असत् है।

पूर्वोक्त विचारसे मिथ्यात्मा जो मुख्य नहीं है वह स्थिर हुआ । अब साधारण लोगोंकी प्रवृत्ति देखकर भी मिथ्यात्माको त्याग करनेके लिये योग्यताका प्रतिपादन किया जा रहा है । देखा जाता है कि सारे लोग ज्ञानेन्द्रियकी रक्षाके लिये कर्मेन्द्रियको छोडते हैं; जैसे अंगुलि में सर्प काटे तो अंगुलिको काटकर शरीरको बचानेकी कोशीष करते हैं । किसीको राजदण्डसे प्राणदण्ड हो जाय तो वह कहता है:—मुझे अंधा पा दीजिये और प्राणकी रक्षा कीजिये । अपने मान बचानेके लिये युद्ध में जाकर प्राणतक छोड देता है । निश्चयात्मक बुद्धिसे मनको

विस्मरन्ति। आत्मसुखे समाहितस्तु न किञ्चिदन्यद्याचते। एतेन देहेन्द्रियाभ्यो मनो मनसो बुद्धिः, बुद्धेरात्मा गरीयानिति स्पष्टं प्रतीयते। पूर्वोक्त-विचारेण आत्माऽपि सच्चिदानंद-स्वरूप एवेति प्रदर्शितः। अनात्मदेहादि पञ्चभूतोत्पन्नं जडं च प्रमाणितम्।

परन्तु जडचेतनयोः कथं संवन्धो जायते स एवात्र विचार्यते। ऐश्वरी शक्तिर्जगन्नियामिकेति पूर्वमेवोक्तं, सा चानिर्वचनीया भावरूपा च कथिता। अस्या आवरणविक्षेपात्मिका द्विविधा शक्तिर्विद्यते। तयोरावरणात्मिका शक्तिरस्तु तस्मिन्विश्व-जगत्कल्पयति। एका माया समष्टि-शरीराभिमानमा-

---

जितकर समाधि में लगानेकी कोशीश करता है, वहाँ आत्मसुख लाभके लिये बुद्धिको भी भूल जाता है। आत्मसुख में जिसकी बुद्धि समाहित हो गई है वह कुछ भी नहीं चाहता है। इससे जाना जाता है:—देह और इन्द्रियादिकसे मन, मनसे बुद्धि, और बुद्धिसे आत्मा श्रेष्ठ है यह स्पष्ट प्रतीत होता है। जो विचार किया गया उससे आत्मा भी सच्चिदानंद स्वरूप है वह प्रमाणित हुआ। अनात्म देहादिक पंचभूतोंसे उत्पन्न होनेसे जड है यह भी प्रमाणित हुआ।

अनुवादः—परन्तु जड और चेतन ये दोनोंका संबंध कैसे होता है उसका ही विचार यहाँ करना चाहिये। मैं पहले लिख चुका हूँ:—जगत्का नियमन करनेवाली ईश्वरी शक्ति है वह अनिर्वचनीया है। कार्यसे उसका अनुमान होता है और वह भावरूप है। उसके आवरण और विक्षेप दो प्रकारकी शक्ति हैं। उन में आवरणात्मक शक्ति सारे जगत्के ज्ञानको आवृत करके ब्रह्मको मोहित करती है। और विक्षेपात्मिका शक्ति उस में सारे जगत्की कल्पना करती है। एक ही

स्थयेश्वरपद्वाच्यो भवति, व्यष्टि-शरीराभिमानेन जीव इति उच्यते। शरीराभिमान एव माया अविद्येति वा कथ्यते। ब्रह्म तु जगत्साक्षी न तु नियामकम्। सर्वपदार्थनियामिका चिच्छक्तिरेव। चिच्छक्तिश्चेज्जगत्कार्यं न नियम्येत अन्योन्य-धर्म-सांकर्याद्विप्लुवेत जगत्खलु विशृङ्खला चोत्पद्येत। परन्तु जगति सुष्ठु शृङ्खला परिलक्ष्यते, तस्या नियन्त्री चिच्छक्तिरेव। सा च चैतन्यस्य छायापातेन चेतनवत् क्रियाशीला भवति।

यथा भित्तौ प्रतिबिम्बग्राहिणी शक्तिर्न विद्यते किन्तु तत्र जलसिञ्चनेन सा प्रतिबिम्बधारणसमर्था भवति, तथा चिच्छक्तिः स्वयं जडस्वभावाऽपि ब्रह्मप्रतिबिम्बपातेन चेतनवत् कार्यकारिणी भवति तां शक्तिमाश्रित्य ब्रह्म ईश्वरपद्वाच्यो भवति

माया समष्टि शरीर में अभिमान करके ईश्वर रूपसे कही जाती है और व्यष्टि शरीर में अभिमान करके जीव कहा जाता है। शरीर अभिमानको ही माया या अविद्या कहते हैं। ब्रह्म जगत्का साक्षी है, जगत्का नियामक नहीं है। सारे पदार्थोंका नियमन करनेवाली चित्शक्ति ही है। चित्शक्ति जगत्के कार्योंका नियमन नहीं करती हो तो एकके धर्म दूसरे में जाकर संकर उत्पन्न करके जगत्का महा अनर्थ होता था। और विशृंखला भी होती थी। परन्तु जगत् में अच्छी शृंखला दीखाई पडती है। उसका कारण नियमन करनेवाली चित्शक्ति ही है। वह चैतन्यकी छायापातसे चेतनके समान क्रिया करनेवाली होती है।

अनुवाद:—जैसे दिवाल में प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेकी शक्ति नहीं है परन्तु उसके उपर जल सिंचन करनेसे वह प्रतिबिम्ब धारण करनेवाली हो जाती है, वैसे ही चित् शक्ति खुद जड स्वभाववाली होनेसे भी ब्रह्मके प्रतिबिम्ब पडनेसे चेतनके समान कार्य करनेवाली होती है।

यथा एक एव पुरुषः पितामहदृष्ट्या पौत्रः पितृदृष्ट्या पुत्रः पुत्रदृष्ट्या च पिता भवति, तथा समष्ट्यभिमानेनैकमेव ब्रह्म ईश्वरः, व्यष्ट्यभिमानेन च जीव इत्युच्यते । पुत्रपौत्रादिदृष्टिं त्यक्त्वा यथा पिता पितामहादिभावो न सम्भवति शक्तिकोशाद्युपाधिं त्यक्त्वा तथैव ब्रह्म, न वा जीवो नेश्वरो भवति । न च सा शक्तिर्ब्रह्मणः पृथग्गृह्यते । यथा दाहिकाशक्तिरग्नेर्न पृथग्गृह्यते, तथा शक्तिब्रह्मणी न पृथग्गृह्येते । न चैषा ब्रह्मणोऽभिन्नेति वा वक्तुमर्हति, यतः प्रतिबध्यते । प्रतिबन्धश्चेदस्या न भवेत् । न कोऽपि मायाया मुच्येत । यथाऽग्निर्मन्त्रौषधिना प्रतिबद्धः सन्न दहति तथा महावाक्यादिशास्त्रीयोपायैर्माया

उस शक्तिका आश्रय करके ब्रह्मका नाम ही ईश्वर होता है। और कोषोंके आश्रय करके जीव नामसे कहा जाता है। जैसे एक ही पुरुष पितामहकी दृष्टि में पौत्र, पिताकी दृष्टि में पुत्र और पुत्रकी दृष्टिसे पिता होता है, वैसे ही समष्टि अभिमान करके एक ही ब्रह्म ईश्वर और व्यष्टि अभिमान करके जीव कहा जाता है। पुत्रपौत्रादि दृष्टिको छोडकर जैसे पिता, पितामह आदि भाव नहीं हो सकता, वैसे शक्ति और कोष उपाधिओंको छोडकर ब्रह्म, ईश्वर और जीव भी नहीं हो सकता। वह शक्ति ब्रह्मसे अलग नहीं है। जैसे दहन करनेकी शक्ति अग्निसे अलग नहीं हो सकती वैसे शक्तिको ब्रह्मसे अलग नहीं किया जा सकता। और ब्रह्मसे यह शक्ति अभिन्न है ऐसा भी नहीं बोला जा सकता क्यों कि शक्तिके प्रतिबन्ध होते हैं। उसके प्रतिबन्ध नहीं होते तो मायासे कोई मुक्त नहीं हो सकता और इस लिये शास्त्रकी प्रवृत्ति भी सब वृथा हो जाती थी। जैसे अग्नि मणि मंत्र और औषधिसे प्रतिबन्ध हो तो दहन नहीं कर सकता है, वैसे महावाक्य विचार आदिक शास्त्रीय

प्रतिवध्यते । ब्रह्म तु अप्रतिवध्यम् शक्तेरेव प्रतिबन्धः कल्पनीयः । कार्यमन्तरेण शक्तिर्न कुत्रापि दृश्यते । तत्र प्रतिबन्ध एव स्वीकरणीयः । यथा दाहनमेवाग्नेः कार्यं यत्र प्रज्वलितेऽपि अग्नौ तत्रस्थ शरीरादि न दह्यते तत्रोत्तम्भकमणिमन्त्रादिप्रतिबन्धः स्वीक्रियते इति ।

सा च शक्तिर्मनुष्यादिषु चिच्छक्तिर्वायोः स्पन्दशक्तिः प्रस्तरेषु काठिन्यं, जले द्रवशक्तिरग्नौ दाहिका शक्तिराकाशेऽवकाशशक्तिर्ध्वंसे विनाशशक्तिरूपेण सर्वत्र विद्यते । सा च शक्तिर्यथाकाले देशे च बीजाङ्कुरादिवत् प्ररोहति । पुनर्वृक्षादिषु बीजवत् ब्रह्मण्येवावतिष्ठते । सा शक्तिर्ब्रह्मण आधारभूतस्य पृथक् विलक्षणा च । यथा दाहिका शक्तिस्तस्या

उपाय करके मायाकी निवृत्ति होती है । ब्रह्म में प्रतिबन्ध माना नहीं जा सकता । इस लिये शक्तिका ही प्रतिबन्ध (बाध) कल्पना किया जा सकता है । कार्यको छोड़कर शक्ति कोई स्थान में दिखाई नहीं पड़ती । जहाँ शक्ति होते हुए भी कार्य नहीं होता है वहाँ प्रतिबन्ध स्वीकार करना पड़ता है । जैसे दहन करना ही अग्निका कार्य है । जहाँ प्रज्वलित अग्नि होते हुए भी अग्नि में खड़ा हुआ पुरुषके शरीरादि दग्ध नहीं होते वहाँ मणिमन्त्रादिक प्रतिबन्ध स्वीकार किया जाता है ।

अनुवाद—वह शक्ति मनुष्यादिक में चित् शक्ति, वायु में स्पन्दशक्ति, पत्थर में काठिन्यशक्ति, जल में द्रवशक्ति, अग्नि में दाहिका शक्ति आकाश में अवकाश शक्ति और ध्वंस में विनाशशक्तिके रूप में सब जगह में रहती है । वह शक्ति उपयुक्त देशकाल पाकर बीजांकुरके तरह उगती है । फिर वृक्षादि में बीज जैसे रहता है वैसे ही ब्रह्म में जाकर ठहर जाती है । वह शक्ति उसके आधार ब्रह्मसे अलग और

आश्रयादङ्गारात् तस्याः कार्यात् स्फोटकाच्च विलक्षणा एव भवति तद्वत् । घटस्य स्थूलवर्तुलाद्याकारो न शक्तौ विद्यते, मृत्तिकाया शब्दस्पर्शाद्यपि गुणाः न शक्तौ विद्यते । अतो हि शक्तिरनिर्वचनीयेति कथ्यते । घटोत्पत्तेः प्राक् सा शक्तिर्मृत्तिकादौ गूढा तिष्ठति, कुम्भकारचक्रदण्डादियोगेन विकाराकारं भजते । स्थूलत्ववर्तुलत्वावपि घटस्य विकारौ शब्दस्पर्शोदयस्तु मृद्विकाराः उभे मिथुनीकृत्य घट इति जनैर्व्यवह्रियते । कुम्भकारव्यापारात्प्राक् नैप घट उच्यते । नैप मृत्तिकायाः भिन्नो यतो मृदि लीयते, न चाभिन्नो मृत्पिण्डादिदशायामदर्शनात् । अतो घटोऽपि शक्तिवदनिर्वचनीय एव । अव्यक्तावस्थायां शक्तिर्व्यक्तावस्थायां स एव घटः। आकाशादिपदार्थाश्च

विलक्षण है । जैसे दाहिका शक्ति उसके आधार अंगार (कौला) और उसका कार्य स्फोटकसे विलक्षण होता है वैसे ही शक्ति ब्रह्मसे अलग और विलक्षण है । घटका स्थूल वर्तुलादि आकार शक्ति में नहीं है । मृत्तिकाके शब्द स्पर्शादि गुण भी शक्ति में नहीं हैं। इस लिये शक्तिको अनिर्वचनीय कहते हैं । घट उत्पत्तिसे पहले वह शक्ति मृत्तिकादिक में छिपी हुई रहती है । कुम्हारके चक्रदण्डादिकके संयोगसे विकार आकार प्रगट होता है । स्थूलपणा और गोलपणा आदि घटके विकार हैं । लोग ये दोनोंको मिलाकर इसको घट कहते हैं । कुम्हार जबतक कोई प्रयत्न नहीं करता है तबतक उसको घट नहीं कहा जा सकता है । वह घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं हैं क्यों कि मृत्तिका में उसका लय होता है और अभिन्न भी नहीं है क्यों कि अभिन्न होता तो मृत् पिंडों में घट दिखाई पड़ना था। इस लिये शक्तिकी न्याय घट भी अनिर्वचनीय है। अव्यक्त अवस्था में जिसको शक्ति कहता है; व्यक्त अवस्था में वह घट है ।

घटवच्छक्तिकार्यत्वादनिर्वचनीयाः । इदमेवानिर्वचनीयत्वं वेदान्तेषु मिथ्येति परिभाष्यते । न तदसत् । असद्वन्ध्यापुत्रादिर्न दृश्यते, मायाकार्यं जगच्च दृश्यते, अतो नेदमसत् । बाध्यत्वान्न वा सत् । "सदसदादिरूपेण यन्न निरूपणार्हं तदेव मिथ्येति ज्ञेयं," आकाशादि पञ्चमहाभूतानि पञ्चकोषात्मकं शरीरं च तथैव मायाकार्यत्वान्मिथ्यैव । न सा शक्तिः शिवशक्तिवत्स्वतन्त्रा समसत्तावती वा ।

जडचेतनयोर्मध्ये चेतनं स्वप्रकाशत्वान्न पराधीनं (परसत्तायाः सत्तावत्) नापरभास्यं पराश्रितं च, किंतु जडं तद्विपरीतं, अतो जडचेतनयोः सत्ता न समा । चेतनमवस्था-

---

इस प्रकार आकाशादिक जितने पदार्थ हैं, वे भी शक्तिकार्य होनेसे सब घटकी तरह अनिर्वचनीय हैं । इस अनिर्वचनीयताको ही वेदान्तों में मिथ्या कहते हैं । यह असत् है क्यों कि असत् वन्ध्यापुत्रादिको कोई नहीं देखता है परन्तु मायाका कार्य जगत् दिखाई पडता है । इस लिये वह असत् नहीं है। और बाध होता है इस लिये वह सत् भी नहीं है । सत् असत् आदि रूपसे जिसका निरूपण नहीं किया जा सकता है उसको ही मिथ्या कहते हैं । आकाशादि पञ्चभूत और पञ्चकोषात्मक शरीर वैसा ही मायाका कार्य होनेसे मिथ्या है । वह शक्ति शिवकी शक्तिकी न्याय स्वतन्त्र और सम सत्तावाली नहीं है ।

अनुवाद—जड और चेतन दोनोंकी बीच में चेतन स्वप्रकाश होनेसे पराधीन नहीं है । दूसरेकी सत्तासे सत्तावाला भी नहीं है । दूसरेसे इसका प्रकाश भी नहीं है । परन्तु जड इससे विपरीत है । इस लिये जड और चेतन दोनोंकी सत्ता समान नहीं हो सकती । चेतन अवस्थाका प्रकाशक है और निर्विकार है । और जड अवस्थाके भेदसे

प्रकाशकं निर्विकारं च, जडं अवस्थाभेदेन विकारवत्। यदि समा सत्ता स्वीक्रियते तदा प्रष्टव्यः, सा किं चेतनसत्ताया-भिन्ना तत्सदृशा तदन्तर्गता वा। एतेषां पक्षाणामेकपक्षोऽपि क्षोदक्षमो न विभाति। यतश्चेतनसत्ताया जडस्य सत्ता भिन्ना चेत्तस्य प्राकाश्यमेव न स्यात् चेतनसत्तारूपा चेन्न पृथग्भा-नम्। अन्तर्गता चेन्नोभयोर्भेदः। अतो जडचेतनयोर्न सम-सत्ता। चेतनाज्जडस्य सत्ता नाभिन्ना, आध्यासिकतादात्म्य-सम्बन्धेन चेतनाद्भिन्नरूपेण निर्दिश्यते। गत्यन्तराभावात्सापेक्षं जडं चेतनसत्तायोगेन सत्तावत्, तत्प्रकाशेन च प्रकाशितं न्यूनसत्ताकं चावश्यमेव स्वीकरणीयमिति। न्यूनसत्ताकत्वान्न चेतनाधिष्ठानस्य स्वरूपभूतं, यतोऽध्यस्तपदार्थादधिष्ठानं विषम-

---

विकारवाला है। दोनोंकी समान सत्ताका स्वीकार किया जाय तो पूछना चाहिये:—वह सत्ता चेतन सत्तासे भिन्न है, उसके सदृश है अथवा उसके अन्तर्गत है? इन पक्षोंके बीच में कोई पक्ष भी ठीक नहीं है। चेतन सत्ताकी साथ जड सत्ता भिन्न हो तो उसका बाध नहीं होगा। चेतन स्वरूप हो तो उसका अलग भान नहीं होगा। उसके अन्तर्गत हो तो दोनोंका भेद नहीं होगा। इस लिये जड और चेतन दोनोंकी समसत्ता नहीं हो सकती। चेतनसे जडकी सत्ता अभिन्न भी नहीं है। आध्यासिक तादात्म्य सम्बन्धसे चेतनसे भिन्न रूप में इसकी प्रतीति होती है। इस लिये दूसरा कोई उपाय नहीं होनेसे सापेक्ष जडचेतन-सत्ताके योगसे सत्तावाला है, और उसके प्रकाशसे प्रकाशित है। और जडकी सत्ता चेतनकी सत्तासे थोडी है यह भी अवश्य स्वीकरणीय है। थोडी सत्तावाला होनेसे चेतन अधिष्ठानका स्वरूप भूत भी नहीं है क्यों कि अध्यस्त जो पदार्थ होता है उसको अधिष्ठानसे विषम सत्ता-

सत्ताकमेव भवति । चेतनस्य समसत्ताकन्न किमपि द्रव्यं शक्तिरूपेण कल्पयितुमतः शक्यते ।

न वा सा शक्तिश्चेतनस्य धर्मः । स्वप्रकाशं चेतनं चेतसधर्मकः स्यात्तस्य धर्मो जडोऽजडो वा स्यात् । उभयमपि न संगतम् । यतः स्वप्रकाशान्तर्गतं चेज्जडं, अस्वप्रकाशमिति न वाच्यं, यत्स्वप्रकाशं तन्न परप्रकाश्यं स्यात् न वा पराधीनं, जडस्य प्रकाशात्मकत्वं तु पराधीनमेव । यत्स्वयमेव पराधीनं तत्कथं स्वप्रकाशान्तर्गतं स्यात् ? अतो जडं न स्वप्रकाशचेतनस्य धर्मः । विषय-विषयीभावसम्बन्धेनापि, चिज्जडयोर्धर्म-धर्मिभावो न संगच्छते । जडं चेतनस्य विषयम् । विषयीभूतं तु न कदापि विषयिणः स्वरूपभूतं भवितुमर्हति, विषयश्चेद्विषयिणः स्वरूपभूतं स्यात्तस्य विषयत्वं हीयते । अतो जडं स्वप्रकाशज्ञानस्य न धर्म इति सिद्धम् ।

वाला ही दिखाई पडता है । इस लिये चेतनकी समसत्तावाली कोई भी द्रव्यशक्तिरूपसे कल्पना नहीं किया जा सकता है ।

वह शक्ति चेतनका धर्म भी नहीं है क्यों कि स्वप्रकाश चेतन धर्मवाला हो तो उसका धर्म जड वा अजड होगा । दोनों ही नहीं हो सकते क्यों कि जड स्वप्रकाशके अन्तर्गत हो तो उसको अस्वप्रकाश बोला नहीं जा सकता । जो स्वप्रकाश होता है वह दूसरेसे प्रकाशित नहीं होता, न कि पराधीन होता है । और जडका जो प्रकाश है वह पराधीन है । जो खुद ही पराधीन है वह स्वप्रकाशके अन्तर्गत कहाँसे हो सकता है । इस लिये जड स्वप्रकाश चेतनका धर्म नहीं है । विषय और विषयी भाव संबंधसे भी चित् और जडका धर्मधर्मीभाव नहीं हो सकते हैं । जड चैतन्यका विषय है । विषय विषयीके स्वरूपभूत भी नहीं हो सकता । विषय विषयीका स्वरूपभूत हो तो उसका विषयपणा ही नहीं बनेगा । इस लिये जड स्वप्रकाश ज्ञानका धर्म नहीं है वह सिद्ध हुआ ।

स्वप्रकाशो ज्ञानस्वरूपस्य धर्मः स्वप्रकाश इत्यपि न । यतः स्वप्रकाशं निरपेक्षं, तच्चेत्सापेक्षं भवेत्तस्य स्वप्रकाशत्वं न भवेत् । धर्मस्तु नियमेन सापेक्षो भवेत् । परस्परसापेक्षत्वाद्धर्म-धर्मिणोरुभयोः स्वप्रकाशत्वं न युज्यते । अतः यत्स्वप्रकाशं तन्न धर्मी धर्मो वा—निर्धर्मकमिति स्थितम्। निर्धर्मक इति शब्देन वास्तवधर्मो निषिध्यते न तु आरोपितधर्म इति बोध्यम् ।

न वा सा शक्तिर्गुणः । द्रव्येण सहैकत्वमापन्नो गुणः प्रतीयते । गुणगुणिनोः सर्वदा पृथक्त्वं न सिद्ध्यति । शुक्ल पट इत्यादिस्थले गुणगुणिनोः समानाधिकरण्यं प्रतीयते । नैष भ्रमः यतः, रूपादिगुणसाधकशुक्लपटादि प्रत्यक्षं गुणि तादात्म्यरूपेण गुणादिविषयकं स्यात् । स चेद्भ्रमस्तदा न गुणत्व-

---

स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूपका धर्म स्वप्रकाश होगा—यह भी कहा नहीं जा सकता क्यों कि स्वप्रकाश निरपेक्ष है । वह सापेक्ष हो तो उसका स्वप्रकाशपणा ही नहीं रहेगा । और धर्म स्वभावसे सापेक्ष होता है । धर्म धर्मीकी परस्पर सापेक्षता रहनेसे दोनों स्वप्रकाश नहीं रह सकते । इस लिये जो स्वप्रकाश है वह धर्मी वा धर्म नहीं हो सकता अर्थात् स्वप्रकाश चेतन निर्धर्मक है यह सिद्ध हुआ । निर्धर्मक शब्दसे वास्तव धर्मका ही निषेध किया गया है, आरोपित धर्मका नहीं ।

वह शक्ति गुण भी नहीं है । द्रव्यके साथ एक होकर गुणकी प्रतीति होती है । गुण और गुणीका अलगपणा हरवक्त सिद्ध नहीं होता । सफेद वस्त्र इत्यादिक स्थल में गुणीका समानाधिकरण्य प्रतीत होता है । इसको भ्रम नहीं बोल सकते हो क्यों कि रूप आदिक गुणका साधक सफेद वस्त्रादि गुणीके साथ तादात्म्य रूपसे गुणादि विषयक होता है, यह प्रत्यक्ष दिखाई पडता है । इसको भ्रम माना जाय तो

सिद्धिः । यतः गुणमात्रगोचरप्रत्यक्षं न कुत्रापि दृश्यते । धर्मिणा सह गुणस्य प्रत्यक्षं स्यात् । अतः प्रत्यक्षं गुणिभेदो न सिध्यति । अतो गुणो न गुणिनो भिन्नः । न वाऽभिन्नः यतोऽभिन्नेन रूपान्तरं स्यात्, रूपान्तरे च नाभेदः ।

नाऽपि अभेदो नाम कश्चित्संबन्धः । अतो नोभयोर्भेदः । समानसत्ताकभेदाभेदपक्षोऽपि युगपच्चैकत्र स्थातुमर्हति । अत उभयोस्तादात्म्यसम्बन्ध एव स्वीकरणीयः । गुणे गुणिनस्तादात्म्यं विद्यते गुणिनस्तु गुणाभिन्नत्वं, परन्तु गुणिनोऽभिन्नं गुणस्य सत्त्वं विद्यते । यथा घटादिपदार्थः दण्डादिभ्यो यथा भिन्नस्तथा मृत्तिकादिभ्यः, किन्तु घटमृदोः भेदे वर्त-

---

गुणकी सिद्धि ही नहीं होगी क्यों कि गुणविषयक प्रत्यक्ष कभी भी दिखाई नहीं पडता । धर्मीके साथ गुणका प्रत्यक्ष होता है, इस लिये प्रत्यक्ष प्रमाणसे गुणीके साथ गुणका भेद सिद्ध नहीं होता । इस लिये गुण गुणीसे भिन्न नहीं है और अभिन्न भी नहीं है क्यों कि अभिन्न होता तो रूपान्तर नहीं होता था । और रूपान्तर होता तो अभेद नहीं होता ।

अभेद नामवाला कोई सम्बन्ध भी नहीं है । इस लिये दोनोंका भेद नहीं है । समान सत्तावाला भेद और अभेद पक्ष भी एक ही काल में एक ही स्थान में नहीं ठहर सकते, इस लिये दोनोंका तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करना पडता है । गुण में गुणीका तादात्म्य रहता है और गुणीके साथ गुणका अभिन्नपणा रहता है । परन्तु गुणीसे अभिन्न गुणका रहना मानना पडता है । जैसे घटादिक पदार्थ दण्डादिकसे भिन्न है वैसे मिट्टीसे भी भिन्न है । परन्तु घट और मिट्टी दोनों में भेद

मानेऽपि न तयोः सत्ता भिद्यते। अतो नैष भेदः सन्। यो भेदः सत्ताभेदकोऽसावेव सन्। यथा दण्डघटयोर्भेदः। मृत्तिका-घटादिषु तस्याभावान्नान्यत्वसिद्धिः।

उपादानोपदेयभावविचारेण उपादानात् कार्यस्य भिन्नमभिन्नं भिन्नाभिन्नं वा न निरूपणार्हमिति निश्चितं किन्तु उपादानसत्ताया भेदाभावादपि कार्ये भेद उपपद्यते। ईदृशस्थले तादात्म्यसम्बन्धो युज्यते। यतः सत्ता न भिद्यते, अतो भेदोऽनिर्वचनीयः। यदि कार्ये भेदो यथार्थे न स्यादुक्त-भेद-सत्तावच्छेदकत्वात्कार्यकारणयोः सत्ता प्रभिन्ना स्यात्। अतोऽपि कारणाभिन्नसत्ताकत्वरूपं तादात्म्यं अयुक्तं स्यात्। अतो द्वयोरनिर्वचनीयत्वमपेक्षते। सच्चिदानन्दमेव यदि कार्य-प्रपञ्चस्योपादानं कारणं स्यात्तदा तस्य कार्यं तद्भेदश्च सत्यः

होते हुए भी उनकी सत्ता में भेद नहीं होते हैं। इस लिये दोनोंका भेद सत् नहीं है। जो भेद सत्ताको भिन्न करनेवाला है वही सत् है। जैसे दण्ड और घटका भेद। मिट्टी और घट आदिक में उसका अभाव होनेसे दोनोंका अन्यपणा नहीं होता।

उपादान और उपादेय भावके विचारसे भी उपादानसे भिन्न कार्यका भिन्न और अभिन्न रूपसे निश्चय नहीं किया जा सकता। उपादान सत्ताके भेदका अभाव होनेसे भी कार्य में भेद हो सकते हैं। इस प्रकार इस स्थान में तादात्म्य-सम्बन्ध माना जाता है क्यों कि सत्ताके भेद नहीं होते हैं। इस लिये भेद अनिर्वचनीय है। कार्य में भेद यथार्थ होता तो दोनों भेदकी सत्ताका अवच्छेदक होनेसे कार्य और कारणकी

स्यात् । परन्तु कार्यकारणयोः कारणभिन्नसत्ताकत्वरूपानुभव-सिद्ध-तादात्म्यसिद्धये कार्ये तद्भेदे चानिर्वचनीयत्वमपेक्षते ।

उक्तानिर्वचनीयत्वनिर्वाहणाय कार्यप्रपञ्चोपादानं किञ्चिदनिर्वचनीयमेवान्वेष्टव्यम् । अनिर्वचनीयोपादानत्वे सति कार्ये तद्भेदे चानिर्वचनीयता सम्भवति । सैवानिर्वचनीयाभावरूपा सत्ता मायेति कथ्यते । सा माया सर्वकार्यानुगतजाड्यरूपा, अज्ञानान्न भिद्यते । उक्तानिर्वचनीयं कारणं यद्यपि कार्यदृष्ट्या शक्तिरित्यभिधीयते, तथापि चेतनदृष्ट्या विचारिते सा चित्स्वरूपेति न कथंचन न भण्यते । यतो नैषा चेतनस्य समसत्तावती स्वरूपभूता वा । साऽनिर्वाच्या जडा च, तस्याः

सत्ता अलग होती थी । इस लिये कारण अभिन्न सत्तारूप-तादात्म्य अयुक्त है । इस लिये दोनोंकी अनिर्वचनीयताकी अपेक्षा है ।

कार्य प्रपञ्चोंका उपादान कारण सत्य हो तो उसका कार्य और उसका भेद सत्य होता । परन्तु कार्य और कारणका अभिन्नपणारूप अनुभव-सिद्ध, तादात्म्य-सिद्ध करनेके लिये कार्य और उसके भेद में अनिर्वचनीयताकी अपेक्षा है । उस अनिर्वचनीयताके निर्वाहके लिये कार्य प्रपञ्चका उपादान कुछ अनिर्वचनीय ही ढूंढना पडता है । उपादान अनिर्वचनीय होनेसे ही कार्य और उसके भेद में भी अनिर्वचनीयता हो सकता है । उस अनिर्वचनीयताको ही भावरूप माया सत्ता कहते हैं । वह माया सर्व कार्यों में अनुगत जडतारूप अज्ञानसे भिन्न नहीं है । उस अनिर्वचनीय कारणको यद्यपि कार्य दृष्टिसे बोला जा सकता है (शक्ति कहा जा सकता है) । तथापि चेतन दृष्टिसे विचार करनेसे उसको चित् स्वरूप कोई प्रकारसे भी नहीं बोला जा सकता क्यों कि वह चेतनके समसत्ताशली नहीं है और स्वरूपभूत भी नहीं

कार्यजातमपि जडम् । जडप्रपञ्चं चेतनस्यात्मभूतं, परिणामभूतं, अंशभूतं, विशेषणभूतं वा न स्यात् । अजडस्य स्वरूपं गुणो, विकारो धर्मो वा यतो न विद्यते, अतो जडपदार्थो नैव तत्त्वतः चेतनस्यान्तर्भूतः । अतः कार्यप्रपञ्चो मायापरिणामः चेतनस्य विवर्त इति प्रोक्तम् । ब्रह्मणः परिणामोपादानत्वमारम्भोपादानत्वं च न संगच्छते । परिणामोपादानत्वे वस्तुरूपान्तरं प्राप्नोति यथा दुग्धं दध्याकारेण परिणमते ।

न वाऽऽरम्भवादिनः कार्यवत् कारणाद्भिन्नं वा वर्तते । आरम्भवादी तन्तुकार्यं पटं तन्तोः पृथक् मन्यते । न तथा जगद्ब्रह्मणः पृथक् । अपितु साकारपदार्थस्यैव परिणामता आरम्भकता च सम्भवति, निराकारनिर्विकारत्वाद्ब्रह्मणः उभयकारणता न संगच्छते । अतो जगद्ब्रह्मणो विवर्त इति

है । वह अनिर्वचनीय और जड है । उसके जितने कार्य हैं वे भी जड हैं । इस लिये जड प्रपञ्च चेतनका आत्मरूप, परिणामरूप, अंशरूप, और विशेषणरूप नहीं हो सकता । अजड स्वरूप जो पदार्थ है उसको गुण विकार या धर्म नहीं होते । इस लिये जड पदार्थ चेतनके अंतर्भूत नहीं हो सकता । अतः कार्य प्रपञ्च मायाके परिणाम और चेतनका विवर्त कहा गया है । ब्रह्मका परिणाम उपादानपणा और आरम्भ उपादानपणा नहीं हो सकता क्यों कि परिणाम उपादान में वस्तु दूसरा रूप प्राप्त हो जाता है, जैसे दूध दही रूप में परिणत हो जाता है ।

और आरम्भवादी जैसे कारणसे कार्यको भिन्न मानता है वैसा भी नहीं है । आरम्भवादी बोलते हैं:—तन्तुका कार्यपट तन्तुसे अलग नहीं है । और भी साकार पदार्थका परिणाम अथवा आरम्भ हो सकता है । निर्विकार निराकार ब्रह्मका दोनों ही नहीं हो सकते । इस लिये जगत्को ब्रह्मका

स्वीक्रियते । यथा रज्ज्वां सर्पः प्रतीयते तथैव ब्रह्मणि जगद्भासते । भानं प्रतीतिश्च पर्यायवाचकम् । यथा निरंशेऽप्याकाशे प्राकृता जना नीलिम संकल्पयन्ति तथा निरंशे आनन्दस्वरूपे ब्रह्मणि मायाशक्तिर्जगत् कल्पयति । मृच्छक्तिवद्ब्रह्मशक्तिरसंख्यं मिथ्या नामरूपं कल्पयति । स्वप्ने यथा निद्राशक्तिर्नाना असारां असम्भवां च सृष्टिं कल्पयति तथा मायाशक्तिर्ब्रह्मणि सकलं विकारात्मकं जगत् कल्पयति । यद्यपि आकाशादिपञ्चभूतानां चतुर्दशब्रह्माण्डानां शिलादिविकाराणां च जननी माया, तथापि प्राणिजातस्य बुद्धि-प्रतिबिम्बिता चिच्छाया चेतनं, शिलाद्याश्चाचेतनमिति कथ्यते । त्रिगुणात्मिका सा माया सत्त्वांशान्मायाशरीरं रजस्तमोंशाच्चाविद्याशरीरं कल्पयति । अविद्याशरीरावच्छिन्नचेतनं च जीव इत्युच्यते । सत्त्वगुणप्रधानत्वादीश्वरः स्वरूपं न विस्मरति माया तं विमो-

---

विवर्त माना जाता है । जैसे रज्जु में सर्पकी प्रतीति होती है वैसे ही ब्रह्म में जगत् भासता है । भान और प्रतीति दोनोंका अर्थ एक ही है । जैसे निराकार आकाश में मूर्ख लोग नीलिमाकी कल्पना करते हैं वैसे ही आनन्द-स्वरूप ब्रह्म में माया शक्ति जगत्की कल्पना करती है । मिट्टीकी शक्ति जैसे घट शराव आदिकी कल्पना करती है वैसे ही ब्रह्मशक्ति असंख्य नामरूपकी कल्पना करती है । स्वप्न में जैसे निद्रा शक्ति नाना किसीम असार और असम्भव सृष्टिकी कल्पना करती है वैसे माया शक्ति ब्रह्म में विकारात्मक सारे जगत्की कल्पना करती है । विद्या शरीर में अवच्छिन्न चेतनको ईश्वर; और अविद्या शरीर में अवच्छिन्न चेतनको जीव कहते हैं । सत्त्वगुण प्रधान होनेसे ईश्वर अपने स्वरूपको नहीं भूलता अर्थात् माया उनको भूला ही नहीं सकती ।

हयितुं न शक्नोति जीवस्तु रजस्तमःप्रधानशरीरे आवद्धः सन् स्वात्मस्वरूपं विस्मृत्यात्मानं दीनं हीनं च मन्यते, भाग्यक्रमेण विद्याशरीरी कश्चिद्गुरुर्यदाऽधिगम्यते तस्मादुपदेशमादाय स्वस्वरूपं च ज्ञात्वा तत्प्रसादाद्विमुच्यते।

ईक्षणादिप्रवेशान्ता ईशसृष्टिः पूर्वमेवोक्ता इदानीमत्र जीवसृष्टिरुच्यते। ज्ञान-कर्मभ्यां जीवः सप्तान्नानि सृजति। तेष्वेकं मनुष्यान्नं, द्वे देवान्ने। एकं पश्वन्नं त्रीणि च निजान्नानि। तत्र धान्यादि मनुष्यान्नं, दर्शपूर्णमासे देवान्ने, दुग्धं पश्वन्नं, मनो वाक् प्राणाः त्रीणि आत्मान्नानि श्रुतौ प्रोक्तानि।

यद्यप्येतानि ईशसृष्टानि तथापि जीवो ज्ञानकर्मभ्यां तेषु भोग्यतां प्राप्नोत्। यथा कन्या पितृजन्या अपि तु स्वामि-

---

परन्तु जीव रज तम प्रधान शरीर में आबद्ध होकर अपने स्वरूपको भूलकर अपनेको दीन हीन मानने लग जाते हैं। भाग्यक्रमसे विद्या शरीरवाला कोई गुरु उसको मिल जाय तो उनसे उपदेश पाकर अपने स्वरूपको जानकर गुरुप्रसादसे मुक्त होते हैं।

ईक्षणसे लेकर सृष्टि में प्रवेश तक ईश्वरकी सृष्टि, पहले बोल आया हूँ। अब जीव सृष्टिको कहता हूँ। ज्ञान और कर्मसे जीव सात प्रकार अन्नको बनाता है। उस में मनुष्यका एक अन्न है। देवताके दो अन्न हैं। पशुके अन्न एक है और आत्माके तीन अन्न हैं। उस में धान्यादिक मनुष्य अन्न है। दर्श पूर्ण मास देव अन्न है, दुग्ध पशुका अन्न है। मन वाक् और प्राण ये तीन आत्माके अन्न हैं। श्रुति में इसका कथन किया है।

यद्यपि ये अन्न ईश्वरने बनाये हैं तथापि जीव ज्ञान और कर्मसे उन में भोग्यत्व प्राप्त हुआ है। जैसे कन्या पितासे उत्पन्न होती है और

भोग्या भवति तथैव ईशसृष्टान्येतानि जीवभोग्यानि भवन्ति। मायावृत्त्यात्मकेश-संकल्पो यथा सृष्टेः साधनं तथा मनोवृत्त्यात्मकजीवसंकल्पो भोगसाधनमिति। ईशनिर्मितं भोग्यमेकरूपमपि भोक्तुः रुच्यनुसारेण भोग्यपदार्था बहुविधा दृश्यन्ते। यथा अन्नमेकरूपमपि भोक्तृ रुच्यनुसारेण सूपादिभेदेनोपयोगो भिद्यते। भोग्यवस्तुप्राप्तिः यद्यपि ज्ञानकर्मसापेक्षा, तथापि भोगविषये जीव-स्वातंत्र्यं विद्यते। एका स्त्री कस्यचिज्जननी, कस्यचित्स्वसा, कस्यचिद्दुहिता स्त्रीत्वेनैकरूपापि भोग्यत्वेन नानाविधा। भोग्यत्वप्रकारभेदेन न वस्तुभेदः इत्यपि न साधु। मांसमयी स्त्र्येकाऽपि मनोमयी स्त्री नाना। मांसमयी मूर्ति र्यद्यपि न कस्यचिद्बन्धाय भवति, तथापि मनोमयी मूर्ति-

---

स्वामी उसका भोग करता है वैसे ही ईश्वरसे बनाये हुए ये अन्न जीव भोग करता है। माया वृत्यात्मक ईश्वरका सङ्कल्प जैसे सृष्टिका साधन है वैसे ही मन वृत्यात्मक जीव सङ्कल्प भोगका साधन हैं। ईश निर्मित भोग्य एकरूप होते हुए भी भोक्ताकी रुचि अनुसार भोग्य पदार्थ बहुत होते हैं। जैसे अन्न एकरूप होते हुए भी भोक्ताकी रुचि अनुसार कोई मंड कोई सूप आदिक भेदसे उसको उपयोग करता है। भोग्य वस्तुको मिलना और नहीं मिलना यद्यपि ज्ञान कर्मकी अपेक्षा है तथापि भोग में जीवकी स्वतंत्रता है। एक ही स्त्री किसीकी मा, किसीकी लडकी, किसीकी बहन होती है। स्त्री रूपसे एक होते हुए भी भोग्यके भेदसे नाना प्रकार होती है। भोग्यत्वके प्रकारभेदसे वस्तुका भेद नहीं होता यह भी नहीं कहा जा सकता। मनुष्य में स्त्री एक हुई भी मनोमयी स्त्री बहुत हैं। मांसमयी मूर्ति यद्यपि किसीके बन्धके कारण नहीं होती तथापि मनो मूर्ति बन्धके कारण होती है। मुशा में डाला हुआ तरल

न्धाय भवति । मूषानिक्षिप्तद्रवसुवर्णादि यथा तद्रूपाकारेण परिणमते, रूपादिसम्बन्धेन द्रुतचित्तमपि तथैवाकारं भजते । बुद्धिस्थचिदाभास एवान्तःकरणवृत्तिरूपतां प्राप्य चक्षुरादीन्द्रियद्वारेण निर्गत्य बहिर्विषयपर्यन्तं गत्वा विषयावरणमुद्भाव्य तदाकारेणाकारितो भवति । एवं भूतबुद्धौ विषयस्य यः प्रतिबिम्बो भासते स एव मनोमयी मूर्तिः ।

बहिर्घटादयश्च मृण्मया उच्यन्ते । एतावानेव तयोर्भेदः— मृण्मयो घटो बुद्धिस्थचिदाभासभास्यः प्रमाणवेद्यश्च मनोमयी मूर्तिस्तु साक्षिभास्य एव । तयोर्मनोमयी मूर्तिर्जीवस्य दुःखहेतुः, मांसमयी मूर्तिर्नैवम् । बहिः पदार्थाभावादपि जीवः स्वप्ने सुखदुःखान्यनुभवति किन्तु समाधिसुषुप्त्यादौ पदार्थानां बहिरविद्यमानत्वेऽपि न सुखं दुःखं वानुभवति । अतोऽन्वय-

---

सुवर्णादिक जैसे उसके आकार प्राप्त होता है वैसे रूपादिकके संबंधसे द्रवीभूत हुआ चित्त उस आकार में आकारित हो जाता है । बुद्धि में जो चिदाभास है वही अंतःकरणरूप प्राप्त होकर इन्द्रिय द्वारसे निकलकर बाहर में विषयतक जाता है । और विषयका आवरण भंग करके उसके आकार में आकारित होता है । इस प्रकार बुद्धि में विषयका जो प्रतिबिम्ब भासता है उसीको ही मनोमयी मूर्ति कहते हैं ।

बाहिर में जो घटादिक हैं उनको मृण्मय कहते हैं । दोनों में इतना भेद है कि मृण्मय घट बुद्धि में जो चिदाभास है उससे प्रकाशित होता है और प्रमाणसे जाना जाता है । परन्तु मनोमय मूर्ति साक्षीसे प्रकाश्य है । उन में मनोमयी मूर्ति जीवके सुखदुःखके हेतु है । मांसमयी मूर्ति किंतु सुखदुःखका हेतु नहीं है । बाहिर में पदार्थ नहीं होते हुए भी जीव स्वप्न में सुखदुःखका अनुभव करता है परन्तु समाधि और सुषुप्ति

व्यतिरेकाभ्यां ज्ञायते, मन एव सुखदुःखयोः कारणम् ।
ईशसृष्टं जगन्न केषांचिद् बन्धाय । अतोऽस्य विनाशाय न प्रयत्नः कर्तव्यः, रागद्वेषाभिभूतः सन् यः शत्रुहननादिषु यतते सोऽपि भ्रान्त एव । यतः कामादयोऽन्तः शत्रवो यावत्तिष्ठन्ति तावदन्तः शत्रव उत्पद्यन्ते विलीयन्ते च । अत ईश-सृष्ट-द्वैत-नाशाय प्रयत्नो मोघ एव । पुरुषार्थत्वाभावात् । द्वैत-पदार्थस्य मिथ्यात्वनिश्चय एव परमपुरुषार्थः । तत्सिद्धौ बाह्यपदार्थे वर्तमानेऽपि चित्ते सुखं वा दुःखं न जनयति । ईशद्वैतविनाशेन चेत्केषां चिन्मुक्तिः सुषुप्तिमहाप्रलयादौ सर्वे मुच्येरन् । गुरुशास्त्रज्ञानाभावान्न तदा द्वैतस्य मिथ्यात्वनिश्चया-

---

अवस्था में बाहिर में सारे पदार्थ होते हुए भी सुख और दुःखका अनुभव नहीं होता है। इस लिये अन्वय और व्यतिरेकसे जाना जाता है:—मन ही सुख और दुःखका कारण है। ईश्वरने बनाई हुई जो सृष्टि है वह किसीके बन्धके कारण नहीं है। इसके नाशके लिये भी प्रयत्न करना भी फजूल है। राग द्वेषादिसे पीडित होकर जो लोग शत्रु हननादि में यत्न करते हैं, वे भी भ्रान्त ही हैं क्यों कि कामादिक अन्तः शत्रु जबतक भीतर में हैं तबतक अनन्त शत्रु उत्पन्न होयेंगे और नाश भी होयेंगे इस लिये ईश्वरकी सृष्टिको नाश करनेका प्रयत्न फजूल है। उस में कोई पुरुषार्थ नहीं है। द्वैत पदार्थका मिथ्यात्व निश्चय ही परम पुरुषार्थ है। उसकी सिद्धिसे बाहिर में पदार्थ होते हुए भी चित्त में सुख और दुःख नहीं होते। ईश्वरसे बनाया हुआ द्वैतके विनाशसे किसीकी मुक्ति होती तो सुषुप्ति और महाप्रलयादिक में सब मुक्त हो जाते थे। गुरु और शास्त्रज्ञानके अभावसे उस अवस्था में किसीकी मुक्ति नहीं होती। द्वैतके मिथ्यात्व निश्चयसे ही मुक्ति होती है न कि द्वैतके

-देव मुक्तिर्न तु द्वैतविनाशेनेति स्थितम् । ईशनिर्मितं द्वैतं मुक्तेः साधकम् न तु बाधकम् ।

जीवनिर्मितं द्वैतमेव मुक्तेर्बाधकम् । जीवद्वैतं तु शास्त्रीयाशास्त्रीयभेदेन द्विविधम् । आबोधाच्छास्त्रीयं द्वैतं सेवनीयं बोधात्परं तदपि हेयम् । अशास्त्रीयं द्वैतमपि मन्दतीव्रभेदेन द्विविधम् । तत्र कामक्रोधादयस्तीव्रा मनोराज्यं च मन्दम् । तत्त्वबोधात्प्रागुभयमेव हेयम् । कामादेः वर्तमानत्वे कोऽपि न मुच्यते । संकल्पादेव कामो जायते, संकल्पत्यागादेव तस्य क्षयः । संकल्पत्यागाय दीर्घप्रणवोच्चारणं, सविकल्पनिर्विकल्पसमाधेरभ्यासः, ईश्वरप्रणिधानं, ईश्वरभक्तिः, निष्कामकर्म च यथाशक्ति करणीयम् । गुरुसेवामन्तरेण कामादेर्न प्रतीकारो-

---

-विनाशसे—यह बात सिद्ध हुई । ईश्वरसे बनाया हुआ जो जगत् है वह मुक्तिके साधक है न कि बाधक है ।

जीवसे बनाया हुआ द्वैत ही मुक्तिको बाधक है । जीवसे बनाया हुआ द्वैत शास्त्रीय और अशास्त्रीय भेदसे दो प्रकार हैं । जबतक ज्ञान नहीं होता तब तक शास्त्रीय द्वैतको सेवन करना चाहिये । बोध होनेके बाद उसको भी छोड देना चाहिये । अशास्त्रीय द्वैत भी मंद और तीव्र भेदसे दो प्रकारके हैं । उन में काम-क्रोधादिक तीव्र हैं और मनोराज मन्द है । तत्त्वबोधसे पहले दोनोंको ही त्यागना चाहिये । कामादिके वर्तमान होते हुए कोई भी मुक्त नहीं होता । संकल्पसे ही कामकी उत्पत्ति होती है । और संकल्पके त्यागसे ही कामका क्षय होता है । सङ्कल्प त्यागके लिये दीर्घ प्रणवका उच्चारण, सविकल्प निर्विकल्प समाधिका अभ्यास, ईशभक्ति, निष्काम कार्य अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये । जो गुरुसेवा नहीं करता है उसके कामकी निवृत्ति

पायः । तेनैवान्तःकरणस्य मलदोषो निवार्यते । दृश्यपदार्थ-मात्रमेवासदिति चिन्तया वासनात्यागाच्च शनैः शनैः मनो वशमभ्येति । पुनः पुनः विचारेण मिथ्यापदार्थे प्रयोजनाभावान्मनो विषयान् नैव काङ्क्षते कामादींश्च परित्यजति । भोगद-प्रबल-संस्कारवशाद्यद्यपि कदाचिद्विक्षिप्यति, दृढाभ्यासात् अभ्यासजसंस्कारप्राबल्याच्च दुर्बलं प्रारब्धं जीत्वा चित्तचाञ्चल्यं क्षिणोति शान्तिकरी वृत्तिश्च वर्धते । यस्य विक्षेपो नास्ति स ब्रह्मरूप एव । अतो जीवद्वैतपरित्यागेन जीवस्य मुक्तिः ।

ननु कामादिमानसद्वैतत्यागेन यदि मुक्तिः स्यात् अलं विचारेण, योगेनापि तत्सिद्धेः । नैवं, योगस्तु मनोवृत्तिनिरो-

---

होना असम्भव है । उससे (गुरुसेवासे) अंतःकरणके मलदोषकी निवृत्ति होती है । जितने दृश्य पदार्थ हैं सब असत् हैं । इस प्रकार चिन्तासे और वासना त्याग देनेसे मन धीरे धीरे वश में आ जाता है । बारंबार विचारसे जब मिथ्या पदार्थका निश्चय हो जाता है तब प्रयोजनके अभावसे मन विषयकी आकाङ्क्षा नहीं करता है और कामादिको भी छोड देता है । भोग देनेवाला प्रबल संस्कारके बलसे यद्यपि कभी भी विक्षेप प्राप्त होता है तब अभ्यास प्रबल हो जाय तो अभ्याससे उत्पन्न हुआ जो संस्कार है उस प्रबलताको हटाकर दुर्बल प्रारब्धको जीतकर चित्तकी चंचलताको क्षीण होने लग जाती है और शांति देनेवाली वृत्ति बढती है । जिसको विक्षेप नहीं है उसको ब्रह्मरूप ही जानो । अत एव जीव-द्वैत त्यागसे ही जीवकी मुक्ति होती है ।

शंकाः—कामादि मानस द्वैतको त्याग करनेसे यदि मुक्ति हो तो विचारकी जरुरत क्या है ? योगसे ही तो मन निरोध सिद्ध हो सकता है ।

धाय नात्यन्तिकदुःखनाशाय । प्राणायामौषधादिसेवनेनापि तात्कालिकदुःखनिवृत्तिर्भवति परन्तु महावाक्यविचारमन्तरेण केवलं निरोधोपायेन योगेन न तत्त्वज्ञानं सम्भवति । ये तु योगेन सह महावाक्यं विचारयन्ति तेषां तत्त्वज्ञानं मनोनाशेन च समं भवति । मानसिकं दुःखं न तान् पीडयितुमर्हति । मनोनाशमन्तरेण केवलतत्त्वज्ञानेनापि वर्तमानदेहे भोगद-कर्मणां सत्त्वात्प्रारब्धानुसारेण सुखदुःखानि निवर्तन्ते । अतो येन केनचिदुपायेन मानसिकद्वैतं निवर्त्य तत्त्वज्ञाने यत्नं कुर्यात् । वस्तुतन्त्रत्वात्तत्त्वज्ञानस्य न साधनापेक्षा । गुरुमुखा-न्महावाक्यश्रवणमात्रेणापि तत्त्वज्ञानं श्रूयते । पद-पदार्थस्य-ज्ञानाभावाद्विचारशक्तेर्दुर्बलत्वाच्च शतशः श्रुतमपि महावाक्यं

समाधानः—नहीं ऐसा नहीं है । योग तो मनकी वृत्तिको निरोधके लिये है । आत्यन्तिक दुःखोंका नाश नहीं हो सकता । प्राणायामसे अथवा औषधादिक सेवनसे भी तात्कालिक दुःखकी निवृत्ति होती है । परन्तु महावाक्यके विचार छोडकर खाली चित्तनिरोधरूप उपायसे तत्त्व-ज्ञान नहीं हो सकता । जो लोग योगके साथ महावाक्यके विचार करते हैं उनके तत्त्वज्ञान और मनोनाश एक साथ ही होते हैं । मानसिक दुःख उनको तपाई नहीं सकते । मनोनाशको छोडकर खाली तत्त्वज्ञानसे वर्तमान शरीर में भोग देनेवाला कर्म रहनेसे प्रारब्धके अनुसार सुख-दुःखरूप फलका होना नहीं छूटता । इस लिये जो कोई उपायसे मान-सिक द्वैतको हटाकर तत्त्वज्ञानके लिये ही यत्न करना चाहिये । तत्त्वज्ञान वस्तुतन्त्र होनेसे अर्थात् वस्तुके अधीन होनेसे साधनकी अपेक्षा नहीं रखते । गुरुके मुखसे एक दफा महावाक्य सुनते ही किसी किसीको तत्त्वज्ञान सुना जाता है । परन्तु पद और पदार्थके ज्ञान नहीं होनेसे और विचार शक्ति दुर्बल होनेसे सैंकडों दफे सुना हुआ महावाक्य भी

तत्त्वज्ञानं न जनयति। पदपदार्थस्य ज्ञानं पूर्वमेवास्माभिरुदाहृतम्।

तेन तत्त्वंपदयोर्वाक्यार्थमवगम्य भागत्यागलक्षणया तत्पदस्योपाधिर्माया तत्कार्यं सृष्टिस्थिति-लयादि वाच्यार्थं, त्वंपदस्योपाधिरविद्या तत्कार्यं त्रिविधं शरीरं त्रिविधावस्थां च परित्यज्य उभयपदस्य लक्ष्यार्थे सच्चिदानन्दांशे एकता विधीयते। तदेव सच्चिदानंदरूपं सर्वत्र सर्ववस्तुनि अनुस्यूतत्वान्नामरूपपरित्यागेन तस्यैवानुसन्धानं करणीयं, तेन नामरूपे विलीयेते। नामरूपमेव संसारः। तयोरनादरेण असन् संसारोऽपि निवर्तते। नामरूपनिवृत्तेरुपायस्त्वत्र दीयते। (१) नामरूपयोः किमपि तत्त्वं न विद्यते। उत्पत्तेः प्राग्द्रव्यस्य नामरूपे

तत्त्वज्ञानको नहीं उत्पन्न कर सकता। पद और पदार्थोंका ज्ञान पहले ही हम लोग बोल आये हैं।

उससे तत् और त्वंपदोंका वाक्यार्थ जानकर भागत्याग लक्षणासे तत् पदकी उपाधी माया और उसकी कार्य सृष्टि स्थिति, लयादि वाच्यार्थ है। त्वम् पदका उपाधि अविद्या और उसके कार्य तीन प्रकार शरीर और तीन प्रकार अवस्थाओंको छोडकर दोनों पदोंके लक्ष्यार्थ में अर्थात् सच्चिदानंद अंश में एकताका विधान किया है। वही सच्चिदानंदरूप सर्वत्र हरेक वस्तु में अनुगत होनेसे वस्तुका नामरूप छोडकर सच्चिदानंदका ही अनुसंधान करना चाहिये। उस में नामरूप विलीन हो जायंगे। नामरूप ही संसार है। उसके अनादरसे संसार भी निवृत्त हो जाता है। नामरूप निवृत्तिके (त्यागनेके) उपाय यहाँ दिया जा रहा है। (१) नाम और रूपका कुछ भी तत्त्व नहीं है। उत्पत्तिसे पहले द्रव्यका कोई नामरूप नहीं होता है। व्यवहारकी सिद्धिके लिये मनुष्य

न विद्येते, व्यवहारसिद्ध्यर्थं नरो नामरूपे कल्पयति। व्यक्ति-नाशेऽपि नाममात्रेणासौ परिचीयते। नाम्नासौ निरूप्यते, अतोऽव्यक्त इत्युच्यते। यथा घटो यदा उत्पद्यते तदा स्थूल-वर्तुलाद्याकारोऽस्य जायते, वस्तुतः तेषां सत्ता न विद्यते ध्वंसात्पश्चादपि न स्थास्यति। अतो घट इति शब्दमात्रमेव जनैः कल्प्यते। तन्नाम च देशजात्यादिभेदेन भिद्यते। अतो व्यभि-चारित्वान्मिथ्या तस्याधिष्ठानं मृत्तिका तु घटोत्पत्तेः प्राक् घटे वर्तमाने ध्वंसात्पश्चादपि वर्तते। अत आपेक्षिकसत्यता तस्या विद्यते; अर्थात्—यद्यप्येषा ब्रह्मवन्न सत्या तथापि सृष्टिपर्यव-सायित्वादापेक्षिकं सत्यं तस्याः स्वीकरणीयम्। नामरूपे च प्रातिभासिकरज्जुसर्पवत्क्षणविध्वंसित्वान्मिथ्या।

नामरूप कल्पना करते हैं। व्यक्तिके नाश होनेसे पीछे भी वह नाम-मात्रसे ही परिचित होता है। और नामसे ही उसका निरूपण होता है। इस लिये इसको व्यक्त कहते हैं, जैसे, घट जब उत्पन्न होता है तब उसका स्थूल वर्तुलादि आकार होता है परन्तु उनकी कोई सत्ता नहीं होती। नाशसे पीछे भी वे नहीं रहेंगे। इस लिये घट शब्द मात्रसे ही लोग कल्पना करते हैं। उस नाम अर्थात् घट भी देश जाति आदिक भेदसे भिन्न होता है। इस लिये व्यभिचारी (कोई स्थान में होना कोई स्थान में नहीं होना) होनेसे मिथ्या है परन्तु उसका अधिष्ठान मिट्टी घट उत्पत्तिसे पहले, घट वर्तमान होते और घटके नाशसे पीछे भी रहता है। इस लिये उसकी आपेक्षिक सत्यता है अर्थात् यद्यपि वह ब्रह्मकी तरह सत्य नहीं है तथापि जबतक सृष्टि रहेगी तबतक उसकी सत्ता रहेगी। इस लिये आपेक्षिक सत्य है ऐसा मानना पड़ेगा। नाम और रूप जो हैं वे प्रतिभासिक होनेसे और रज्जु सर्पकी तरह क्षणक्षण में नाश होने-वाला होनेसे मिथ्या ही है।

ननु नामरूपे चेन्मिथ्या रज्जुदर्शने यथा सर्पभ्रमो निवर्तते तथा ब्रह्मज्ञानान्तरं नामरूपनिवृत्तौ ज्ञानिनो व्यवहारोऽपि न सिद्ध्येत। परन्तु नैवं दृश्यते, अतो नामरूपे न मिथ्या नामनामिनोरभेदादुभयमपि सत्यमिति चेन्न।

नामरूपस्य सत्यत्वभ्रमनिवृत्तिरेवात्र मिथ्येति परिभाष्यते। निरुपाधिकभ्रमस्थले रज्ज्वादिस्वरूपबोधेन सर्पादिभ्रमो निवर्तते परन्तु सोपाधिकभ्रमे द्रव्यस्य सत्यत्वबुद्धिरेव निवर्तते न तु स्वरूपेणास्य निवृत्तिः। यथा, आकाशे नीलिमा नास्तीति विचारेण जानन्नपि ज्ञानिनोऽज्ञानिनो वा समं नीलिमा भासते तथा विचारेण नामरूपयोः सत्यत्वबुद्धिं विनापि जगद्व्यवहारो यथावत्प्रवर्तते।

शंका:—नामरूप मिथ्या हो तो रज्जुके ज्ञानसे जैसे सर्पकी भ्रान्ति दूर हो जाती है वैसे ब्रह्मज्ञान होनेके बाद नामरूपकी निवृत्ति होनेसे ज्ञानीके व्यवहारकी सिद्धि भी नहीं हो सकती, परन्तु ऐसा तो कोई स्थान में दिखाई नहीं पडता। इस लिये नामरूपको मिथ्या न कहकर नाम और नामीका अभेद होनेसे दोनोंको ही सत्य मानना चाहिये।

समाधान:—नामरूपका सत्यत्व भ्रांतिकी निवृत्ति ही मिथ्या नामसे कहा जाता है। जहाँ निरुपाधिक भ्रम होता है वहाँ द्रव्यकी सत्यत्व बुद्धि ही छूट जाती है। स्वरूप करके द्रव्यकी निवृत्ति नहीं होती। जैसे विचारसे जब मालूम होता है, आकाश में नीलिमा है नहीं, इस प्रकार जाननेवाला, नहीं जाननेवाला दोनोंको ही नीलिमा भासती है वैसे ही नामरूप मिथ्या होनेसे भी विचारसे उसका मिथ्यात्व निरूपण करके सत्यत्व बुद्धिको छोडकर भी जगत्का व्यवहार जैसेका वैसा चल सकता है।

॥ २ ॥ पटे चित्रमिव ब्रह्मणि नामरूपे अवतिष्ठेते, नामरूपे उपेक्ष्य ब्रह्मबुद्धिरेवावतिष्ठते । यथा स्वस्य मुखप्रतिबिम्बः जलस्थेऽधोमुखे दृष्टेऽपि तमुपेक्ष्य तीरस्थे स्वदेह एव तात्पर्यमवधार्यते तथैव नामरूपे भासमानेऽपि उपेक्ष्य ब्रह्मण्येव तात्पर्यमवधारय ।

॥ ३ ॥ यथा सहस्रशो मनोराज्ये वर्तमानेऽपि तदुपेक्ष्यते जनैस्तथा नामरूपयोरुपेक्षा करणीया ।

॥ ४ ॥ अस्ति भाति प्रियं नामरूपं चेति पंचांशाः सर्ववस्तुनि विद्यन्ते तेषु नामरूपे मिथ्या व्यभिचारित्वात् । परन्त्वव्यभिचारित्वात्सच्चिदानन्दस्वरूपं सत्यमेव । आकाशादिप्रपंचस्य नामरूपे सृष्टेः प्राङ्नासीत्, न वा ध्वंसान्ते

॥ २ ॥ पट में जैसा चित्र रहता है वैसे ब्रह्म में नामरूप रहता है । नामरूपको उपेक्षा करके ब्रह्मबुद्धि रहती है । जैसे अपने मुखके प्रतिबिम्ब जल में देखनेसे अधोमुख (नीचोंके तरफ) मालूम होता है, उसकी उपेक्षा करके तीर में खडा हुआ अपने देह में, जैसे लोग अपनेको नीचुके तरह नहीं मानते वैसे ही नाम और रूप भासते हुए भी उनको उपेक्षा करके ब्रह्म में तात्पर्य निश्चय करो ।

॥ ३ ॥ हजार हजार मनोराज हो रहे हैं । उपेक्षा करके जैसे लोग अपने मनोराजको अधीन नहीं होते वैसे ही नामरूपकी उपेक्षा करनी चाहिये ।

॥ ४ ॥ "अस्ति भाति प्रियनामरूप" ये पाँच अंश हरेक वस्तु में विद्यमान रहते हैं । उन में नाम और रूप अलग अलग होनेसे व्यभिचारी और मिथ्या है । परन्तु सत् चित् आनंदका कोई स्थान में भी व्यभिचार नहीं होनेसे सत्य है । आकाशादि प्रपंचोंके जो नाम रूप हैं

स्थास्यति, आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथेति न्यायेन ते नामरूपे रज्जुसर्पादिवन्मिथ्या, अनया दिशा वाय्वादिभूतानामपि नामरूपे मिथ्या । नामरूपयोरनन्तेऽपि सच्चिदानन्दरूपमेकमेव । तच्च मृत्तिकावत्सत्यं, तस्मिन्सच्चिदानन्दरूपे दृष्टे नामरूपे न तिष्ठतः । नामरूपयोरुपेक्षा यदा यदा क्रियते तदा तदा सच्चिदानन्दरूपं प्रकाशते, अतो ब्रह्मदृष्ट्या नामरूपे त्यजनीये, तत्कथनं तच्चिन्तनं तदालोचनं च ब्रह्माभ्यास उच्यते। दीर्घकालं निरन्तरं तपसा ब्रह्मचर्येण योऽभ्यस्यति तस्य वासनाः क्रमशो नश्यन्ति ।

यथा दर्पणे आकाशनक्षत्रमण्डलादि सर्वं प्रतिभासते दर्पणमदृष्ट्वा तु न ते दृश्यन्ते तथा सच्चिदानन्दघने आकाशादि सर्वं

वे सृष्टिके पहले भी नहीं थे। और उनके नाशके पीछे भी नहीं रहेंगे। जो पदार्थ आदि और अन्त में नहीं है वह वर्तमान में भी नहीं रहता है। इस न्यायसे वह नामरूप रज्जुसर्पकी न्याय ही मिथ्या है। ऐसा ही वायु आदि भूतोंका नामरूप भी मिथ्या है। नामरूप अनन्त होते हुए भी सत् चिदानंदरूप एकरूप ही है। वह मिट्टीकी तरह सत्य है। उस सच्चिदानन्दरूप में दृष्टि लगानेसे नामरूप नहीं रहते हैं। जब जब नामरूपकी उपेक्षा रहती है तब तब सच्चिदानन्दरूप भासने लग जाते हैं। अतएव ब्रह्मदृष्टिसे नामरूप छोडना चाहिये। ब्रह्मका ही कथन उसका ही चिंतन और उसका ही आलोचनको ब्रह्माभ्यास कहते हैं। बहुत दिनतक निरंतर तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य पालनसे जो इस अभ्यासको करता है उसकी वासना धीरे धीरे नाश हो जाती है।

अनुवाद—जैसे शीशा में आकाश और नक्षत्रमण्डलादि सारे पदार्थ प्रतिफलित होकर प्रकाशते हैं, दर्पणको नहीं देखकर उस प्रपंचको

प्रतिविम्बते, सच्चिदानन्दमदृष्ट्वा तद्द्रष्टुं न शक्यते। नामरूपे परित्यज्य न तेषां काचित्सत्ता विद्यते। अतः सच्चिदानन्दरूपे मनो निवेश्य नामरूपयोस्तिरस्कारः कर्तव्यः। अनेन नामरूपयोर्लये सति "अहं ब्रह्मास्मीति" बोधो दृढो भवति। स एव तत्त्वसाक्षात्कारः॥ साधन-चतुष्टयसम्पन्नस्यैव तस्मिन्नधिकारो नान्यस्य। अनधिकारिणां शतसहस्रकृत्वो महावाक्यविचारं कुर्वतोऽपि न तत्त्वज्ञानं जायते। चित्तस्य भयं मोहः शोकः दुःखं वा न निवर्तते। अतः पूर्वमेव साधनानि यत्नेन सम्पादनीयानि। तत्र सदसद्वस्तुविवेकः, इहामुत्रफल-भोग-विरागः, शमादिसाधनषट्सम्पत्तिः, मुमुक्षुता चेति साधनचतु-

---

कोई नहीं देख सकता है, वैसे ही सच्चिदानन्द घन दर्पण में आकाशादि सब पदार्थोंका प्रतिबिम्ब भास रहा है; सच्चिदानन्द को नहीं देखकर उसको कोई नहीं देख सकता है। नामरूपको छोड़कर उसकी और दूसरी कोई सत्ता भी नहीं है। इस लिये सच्चिदानन्दरूप में मनको लगाकर नामरूपका तिरस्कार करना चाहिये। इस प्रकारसे नामरूपका लय होनेसे "मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार बोध दृढ़ होता है। इसका नाम ही तत्त्व साक्षात्कार है। जिसके पास साधन चतुष्टय हैं उसका ही उस में अधिकार है। दूसरोंके नहीं। जिसका अधिकार नहीं है वह सैंकड़ो दफे भी महावाक्यके विचार क्यों न करें, उसको तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता और उसके भय, मोह, सुखदुःख आदि भी नहीं छूटते। इस लिये यत्नसे उन साधनोंको सम्पादन करना चाहिये। साधन चतुष्टय ये हैं:—(१) सत् असत् वस्तुविवेक (२) इहामूत्र फलभोग विराग (३) शमादिषट् सम्पत्ति (४) मुमुक्षुता—

साधन षट् सम्पत्ति ये हैं:—शम अर्थात् भीतरके इन्द्रियोंका निरोध,

ष्यम् । साधनषट्सम्पत्तिस्तु शमः (अन्तरिन्द्रियनिरोधः) दमः (बहिरिन्द्रियनिरोधः) उपरतिः (अनासक्तिः) तितिक्षा (शीतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता) समाधानं (एकाग्रता) श्रद्धा (शास्त्रगुरुवाक्येषु विश्वासः)। मनोनिरोधे सज्जनसङ्गः, सद्ग्रन्थपाठः, वासनात्यागः, प्राणायामाश्च प्रसिद्धा उपायाः, बहिरिन्द्रियाणां मध्ये वागुपस्थौ दुर्दमनीयौ । रसनाजयेन स्वादत्यागेन च तयोर्जयः सुसाध्यः ।

वैराग्यमन्तरेण शास्त्रमधीत्य न किंचित्फलमधिगम्यते, अतो वैराग्यहीनस्य शास्त्रचर्चा सज्जनसङ्गतिश्च भुक्तये न च मुक्तये। वैराग्योदये संन्यासं कृत्वा गुरुसन्निधौ महावाक्यं श्रुत्वा विचारयेत् । वैराग्यहीनस्य सज्जनसेवा विरक्तपुरुषस्य सङ्गः गुरूप-

---

दम अर्थात् बाहर इन्द्रियोंका निरोध, उपरति अर्थात् अनासक्ति, तितिक्ष अर्थात् शीत-उष्णादिके सहन, समाधान अर्थात् एकाग्रता और श्रद्धा अर्थात् शास्त्र और गुरुवाक्य में विश्वास । मनको निवृत्त करनेके लिये सज्जनोंका सङ्ग, सद्ग्रन्थोंका पाठ, वासनाका त्याग और प्राणायाम ये प्रसिद्ध चार उपाय हैं। बाहरे दस इन्द्रियोंके बीच में जिह्वा और उपस्थ ये दो बडी कठिनाईसे कबजे में आनेवाले हैं । रसनाको अर्थात् जिह्वाको संयम करनेसे और स्वाद छोड देनेसे उसका जय सुसाध्य होता है ।

अनुवाद—जब तक वैराग्य नहीं होता तब तक शास्त्र पढकर थोडा भी फल नहीं मिलता। इस लिये वैराग्यहीनकी शास्त्रचर्चा और सज्जनोंकी संगति खाली भोगके लिये ही होती है। मुक्तिके लिये नहीं । जब वैराग्य उदय होता है तब संन्यास लेकर गुरुके पास महावाक्य सुनकर उसका ही विचार करें। वैराग्य नहीं हो तो सज्जनकी सेवा, विरक्त पुरुषका सङ्ग और गुरु जैसा बतावें वैसा ही शक्ति अनुसार विचार करना चाहिये।

दिष्टमार्गेण कर्तव्यः स्ववर्णाश्रमधर्मपालनेन श्रद्धया गुरुसेवनाच्च विषये वैराग्यं जायते । विचारेऽसमर्थस्य ॐकारोपासना कर्तव्या तस्मिन्नपि यो न समर्थः स गायत्रीं (द्विजश्चेत्) भगवन्नाम वा जपेत् । तेन सह सत्यं ब्रह्मचर्यं, दानं, दयां, परोपकारं, क्षमां, अक्रोधं, यथाशक्ति पालयेत् तस्मिन्नप्यनधिकारी गुरुमेव यावज्जीवं सेवेत । ज्ञानमन्तरेण न जन्मशतैरपि मुक्तिः सिध्यति । शिष्यप्रज्ञैव बोधस्यासाधारणकारणं, गुर्वादयस्तु तस्य सहायकाः ।

ज्ञानस्य साधनानि गीतायां यथोक्तानि तथा सेवनीयानि । अमानित्वादीनि साधनत्वेनाध्यात्मिकरामायणेऽप्युक्तानि । अतो ज्ञानेप्सूनां तान्येवानुष्ठेयानि । यथा तस्य जीवश्च परमात्मा च

अपने वर्णाश्रमके पालन करनेसे तथा श्रद्धापूर्वक गुरुकी सेवा करनेसे विषय में वैराग्य होता है । विचार करने में जो असमर्थ है उसको ॐकारकी उपासना करनी चाहिये । उस में भी जो असमर्थ हो और ब्राह्मण आदि तीन वर्ण हो तो गायत्री जप करें और नहीं हो तो रुचिके अनुसार भगवत्नाम जप करें । उसके साथ सत्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान, दम, दया, परोपकार, क्षमा और अक्रोधको यथासाध्य पालन करें। उस में भी जो अनधिकारी है वह चीरजीवन गुरुकी ही सेवा करें विना ज्ञानसे हजार हजार जन्म लेकर भी मुक्ति नहीं होती । शिष्यकी बुद्धि ही बोधके असाधारण कारण है । गुरु और शास्त्रादिक उस में सहायता करते हैं ।

अनुवाद—ज्ञानके साधन अमानित्वादिक गीता में जो बताये हैं वैसे ही साधन करना चाहिये । आध्यात्मिक रामायण में भी इस प्रकार कहते हैं । इस लिये ज्ञानके लिये जिसकी इच्छा है उसको ऐसा ही अनुष्ठान करना चाहिये । रामजी कहते हैं:—"जीवके ज्ञानके लिये

पर्यायो नात्र भेदधीः ॥ मानाभावस्तथा दम्भहिंसादि परिवर्जनम् । पराक्षेपादिसहनं सर्वत्रावक्रता तथा ॥ मनोवाक्काय-सद्भक्त्या सद्गुरुपरिसेवनम् । बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सत्क्रियादिषु ॥ मनोवाक्कायदण्डश्च विषयेषु निरीहता । निरहंकारता जन्मजराद्यालोचनं तथा ॥ असक्तिः स्नेहशून्यत्वं पुत्र-दारधनादिषु । इष्टानिष्टागमे नित्यं चित्तस्य समता तथा ॥ मयि सर्वात्मके रामे ह्यनन्या विषया मतिः । जनसंबाधरहित-शुद्धदेशनिषेवनम् ॥ प्राकृतैर्जनसंघैश्च ह्यरतिः सर्वदा भवेत् । आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थावलोकनम् ॥ उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः । (अरण्यकाण्डे चतुर्थसर्गे ।)

में साधन बता रहा हूँ।" तुम सुनो :—जीव और परमात्मा दोनों पर्याय-वाचक शब्द हैं । उस में भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये । मानका अभाव, दंभ, हिंसादि, त्याग, दूसरोंको टोकना सहन, हरवक्त सरलता, मन, वाक्य और शरीरसे भक्तिके साथ सद्गुरुकी सेवा, बाहिर और अन्तरके शौच, सत्क्रिया में स्थिरता, मन वाक्य और शरीरका दंड और विषय में निरीहता (चेष्टारहित), अहम्कारका अभाव, जन्म मृत्यु आदिकके अस्थिरताका चिंतन, आसक्तिरहितपणा, पुत्र, दारा, धनादिक में ममता नहीं रखना, इष्ट और अनिष्ट दोनोंमें चित्तकी समता रखना, मैं सर्वात्मक जो राम हूँ उन में अनन्य भक्ति रखना, बहुत जन जहाँ इकट्ठे हो वहां नहीं जाना, शुद्ध देश में निवास करना, मूर्खका सङ्ग नहीं करना । आत्मज्ञानके लिये हरवक्त यत्न करना और वेदान्तोंका अवलोकन करना, ये सब ज्ञानके साधन हैं । उनसे ज्ञान होता है । इनके विपरीत चलनेसे ज्ञान नहीं होता ।

[अरण्यकाण्ड चतुर्थ सर्ग]

— ॐ तत् सत् —

योग और तत्त्वज्ञानके शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	४	का भी नाम	को भी ×
३	१५	होनेक	होनेके
३	२२	देवदूतके	देवहुतीके
४	२५	फिर क्या फिर	फिर क्या ×
५	२४	मन द्वेषी	मत द्वेषी
७	१८	अंदिक	आदिक
९	१२	साधनको	साधकको
११	३	राति	रीति
११	२२	कमालासे	करमालासे
११	२६	निय जप	नित्य जप.
१२	६	विस्तारमें	विस्तार में
१२	२२	पेटको	पेटके
१३	१२	विधत	विपत
१६	५	भूमध्यसे	भ्रूमध्यसे
१७	१८	कार्यमें अनु-	कार्यमें कारण अनुस्यूत
१८	५	दृश्यको बोध	दृश्यको बाध
२३	१७	देवं	देवं
२५	४	बोद्द	बौद्ध
२८	५	आकाशादि नाम	आकाशादीनाम्
२८	७	सदाकाश	असदाकाश
२८	१८	अवश्य अनुवृत्ति	अवश्य असत्‌की अनुवृत्ति
३०	२	निमित्तकारणं । कुम्भकारो	निमित्तकारणं कुम्भकारो
३०	४	चानूस्यूतं	चानुस्यूतं
३०	२५	जगत्का उपादान	जगत्का स्वतंत्र उपादान
३१	२४	सद्रूपना	सद्रूपपना
३४	१४	चित् हो	चित् है

पृष्ठः	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४	२३	स्वप्रकाशित	स्वप्रकाश
३५	१३	अप्रकाशपणा	स्वप्रकाशता...सकती
३६	५	श्रुत्यनुकूले न तयोः	श्रुत्यनुकूले तयोः
३८	३	तत्रोपेक्षते	तत्रोपेक्ष्यते
३९	१२	सय	जय
४४	१२	सुषुप्तिके पहले और पीछे	सुषुप्तिके पीछे
४८	२४	इत्यादिके	इत्यादिक
४९	८	शक्तिरनुभायते	शक्तिरनुमीयते
५०	४	प्राक् एकमेवा	प्राक् ब्रह्म एकमेवाद्वितीयं
५०	५	यथा	यथा
५१	२	स्वस्वभोगेभ्यः	स्वस्वभागेभ्यः
५२	४	सस्वज्ञान	स स्वज्ञानकल्पितः ।
५५	११	उपेक्षितुः । स्वस्वरूप-	उपेक्षितुः स्वस्वरूप–
५६	१०	आत्मा आत्मत्वमा-	आत्मा तेषु आत्मत्वमा-
६०	२	देहेन्द्रियाभ्यो	देहेन्द्रियादिभ्यो मनः
६०	९	शक्तिरस्तु	शक्तिस्तु
६५	१३	यह असत् है	यह असत् नहीं है
६९	४	यतोऽभिन्नेन	यतोऽभिन्ने न
७१	७	ज्ञानाय	अज्ञानाय
७१	९	कथंचन न भण्यते	न कथंचन भण्यते
७१	२१	दृष्टिसे योल्य जा	दृष्टिसे शक्ति योल्य जा
७२	२२	तन्तुसे अलग नहीं है	तन्तुसे अलग है
७३	३	नीलिम संकल्पयति	नीलिमसं कल्पयति
७५	५	भेदेनोपयोगो	भेदेनोपभोगो
७५	२२	मनुष्यमें	रक्तमांसवाली
७५	२४	मनो मूर्ति	मनोमयी मूर्ति
७६	५	एवं भूतयुद्धो	एवंभूतयुद्धो

पृष्ठः	पंक्तिः	अशुद्ध	शुद्ध
७६	१२	बहिरविद्यमान॰	बहिर्विद्यमानत्वे
७७	१०	तदा द्वैतस्य	तदा मुक्तिः; द्वैतस्य
७८	१४	मुक्तिको	मुक्तिके
८०	७	दुःखानि निवर्तन्ते	दुःखानि न निवर्तन्ते
८०	१३	आत्यन्तिक दुःखोंका	उसे आत्यन्तिक दुःखका

प्रकाशक—श्रीमान-सा० रतीलाल वर्धमाण, पो. राणपुर, काठियावाड.
मुद्रक—के. ता. शेट्ये, तत्त्वविवेचक छापखाना, भायखला, बम्बई नं. ८

॥ ॐ श्रीश्रीविश्वनाथाय नमः ॥

योगतत्त्वसंग्रहः

परमहंस-परिव्राजकाचार्य-

दण्डिस्वामिश्रीशान्ताश्रम-

विरचितः

॥ ॐश्रीश्रीविश्वनाथाय नमः ॥

योगतत्वसंग्रहः

परमहंस-परिव्राजकाचार्य्य-

दण्डिस्वामिश्रीशान्ताश्रम-

विरचितः

॥ श्रीश्रीसरस्वत्यै नमः ॥

प्रस्तावना.

सुविदितचरमेतद् भारतभूषणभूतानामृषिकल्पानां समेषां वेदुषां यज्जन्ममृत्युव्याध्यादिसङ्कुले प्रतिक्षणपरिवर्त्तिन्यस्मिन्नसारे संसारे सन्त्यसंख्येयानि सनातनहिन्दुधर्मगौरवभूतानि श्रुतितन्मूलकानि शास्त्ररत्नान्यनादिकालात् सर्वप्रतिपक्षनिराकरणेनाप्रतिद्वन्दितया सर्वत्र प्राणिकल्याणाय प्रख्यातानि; तेषां चाधिकारितारतम्यकृतपरस्परविरुद्धमतभूयिष्ठेऽपि साक्षात्परम्परया वा सर्वदुःखनिवृत्तिलक्षणो मोक्ष श्चरमलक्ष्यः; बन्धनिवृत्त्यपरपर्यायः सोऽपि मोक्षो निष्कामकर्मणा सत्वशुद्धिं विनोपासनया च तदेकाग्रतामन्तरेणानुपपन्न; स्तत्प्राप्तिसाधनं तु मुख्यं योगशास्त्रमेवेति । हिरण्यगर्भादिप्रवर्तितं निःश्रेयसहेतुभूतं तच्छास्त्रमपि प्राधान्येन करालकालकवलितम् । पतञ्जल्यादिप्रणीतं यत्किञ्चिदिहावशिष्टं तदप्यतिदुर्गमतया सुकोमलमतिबालानां नालं बुद्धिवैशद्यायेति मत्वा मया भाष्यादितः सर्वतः सारं संगृह्य पातञ्जलसूत्रानुसारेण यत्किञ्चित् तेषां कल्याणायाऽत्रोक्तम् । यद्यनेन कस्याप्युपकारः स्यात् कृतार्थः

स्याम्, मत्परिश्रम श्च सफलो भवेत् । द्विविधोऽत्र योगः प्रधानतो व्यपदिष्टो ज्ञानयोगः क्रियायोग श्चेति । तत्र संस्कृतचेतसां ज्ञानयोगेन प्रथमपादे साफल्यसिद्धिमभिधाय द्वितीये मन्दाधिकारिणां कृते क्रियायोगमुपवर्ण्य प्रत्याहारान्तानामष्टाङ्गयोगानां स्वरूपं फलं च निर्णीय तृतीये योगविभूतीः प्राधान्येन प्रदर्श्य तुरीये कैवल्यस्वरूपं व्याकृतम् । प्रासङ्गिकमन्यदपि च वर्णाश्रमविषयकं किञ्चिदुक्तम् । तत्सर्वं ग्रन्थादेवावगन्तव्यम् । दोषगुणविचाराय विद्वांस स्तु प्रभवः । यद्यत्र कश्चन गुणो, गुरूणां सः, दोष स्तु मदीयः । विनामूल्यं वितरणाय पुस्तकमिदं मुद्रापितं, सन्त्यत्र संशोधकदोषादसंख्याता अशुद्धयः—यदर्थं शुद्धिपत्रमपि दत्तम् । सहृदयाः पाठका स्तु संशोध्य पठिष्यन्तीत्याश्यते । साम्प्रतं यैः खलु धनदानादिना साहाय्यमाचरितं—तानाशीर्वचनकुसुमै र्भूषयित्वा तेभ्य श्च शतशो धन्यवादं दत्वा विरमामः ।

निवेदकः

दण्डिस्वामि श्रीशान्ताश्रमः

॥ श्रीः ॥

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

शुद्धिपत्रम्

पृष्ठाङ्कः	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१	१३	वुध्द्वा	बुद्ध्वा
२	४	व्युत्पत्या	व्युत्पत्या
,,	५	वह्नी	वह्नीः
,,	७	रज्जकत्वादि	रञ्जकत्वादि
,,	९	पशुखि	पशुरिव
४	१०	आक्रमः	आक्रमेः
,,	११	स्वास्थं	स्वास्थ्यं
,,	१२	भूल	मूल
५	५	निष्यत्तेः	निष्पत्तेः
,,	७	निर्वेशनम्	निवेशनम्
६	३	प्रतिपादाते	प्रतिपाद्यते
,,	८	मवान्स्यासि	मवाप्स्यासि
९	१३	श्वेत्	श्वेत्

पृष्ठाङ्कः	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
७	९	रमावः	रभावः
,,	१०	कश्चन	कश्चन
,,	१४	घर्मिणमिति	धर्मिणमिति
,,	१७	घढते	घटते
८	२	निरुध्यन्ते	निरुद्ध्यन्ते
,,	३	श्चित्त	श्चित्त
,,	११	यात्मा	ध्यात्मा
,,	,,	वुध्यादौ	वुद्ध्यादौ
,,	१९	कण्यते	कल्प्यते
९	३	तास्मिरत्तद्	तास्मिस्तद्
,,	८	पञ्चष्वेव	पञ्चष्वेव
,,	९	निद्रस्मुति	निद्रास्मृति
,,	१२	जाथमाना	जायमाना
,,	१४	हेतुभति	हेतुमति
,,	१६	स्तिविधं	स्त्रिविधं
१०	४	नदीवृध्या	नदीवृद्ध्या
,,	१६	प्रमाणभिति	प्रमाणमिति
१०	१७	स्वप्राभाण्ये	स्वप्रामाण्ये

पृष्ठाङ्कः	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
११	३	तत्कत्तः	तत्कर्त्तुः
१४	१२	प्रसं	प्राप्तं
१५	१७	जनवावा	जनवाधा
१६	६	प्रतिविध्यते	प्रतिषिद्ध्यते
१९	१०	भक्तिः	भक्तिः श्रवणकीर्त्तनादिः
२४	७	कालेनावच्छिद्यते	कालेनावच्छिद्यन्ते
२५	१	मतिप्रिय	मतिप्रियं
,,	१०	तज्जपं	तज्जपः
२९	२	कालचर्यन्त	कालपर्यन्त
३२	७	स्वप्रेऽपि	स्वप्नेऽपि
३९	११	सिद्ध्यत्	सिद्ध्येत्
४४	७	रागद्वैषौ	रागद्वेषौ
४८	३	स्थापी	स्थायी
,,	१०	ऽम्पि	ऽपि
,,	१२	उद्वंजयति	उद्वेजयति
५०	१६	पलन्धिहेतुः	पलब्धिहेतुः
५१	१४	निवृत्ते	निवृत्तौ
५५	८	इप्यादिना	इत्यादिना

पृष्ठाङ्कः	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
६०	३	समाधायम्	समाधेयम्
६१	१	निवर्त्तत	निवर्त्तेत
६२	२	द्वन्द	द्वन्दः
६३	१	तस्यत्र	तस्यात्र
,,	१०	जीवन	जीवनं
,,	१८	रेषां	तेषां
६५	१०	भवितव्यामि	भवितव्यमि
,,	११	अस्यते	आस्यते
६७	३	स्वाभानिको	स्वाभाविको
७२	७२	त्रिशावर्त्ते	त्रिरावर्त्ते
७३	११	भिमुच्यते	विमुच्यते
,,	१८	माचार्यो	माचार्यो
७८	१४	ध्यत्	ध्यातृ
,,	१९	व्युत्थित	व्युत्थितम्
८०	११	व्दुत्थान	व्युत्थान
,,	१३	दार्ध्ये	दार्ढ्यें
८७	१६	करोपि	करोति
८९	१०	ब्रह्म	ब्राह्म

पृष्ठाङ्कः	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
९०	१२	सपिर्दधि	सर्पिर्दधि
९३	४	दुरसे	दुरसि
९४	५	रत्यत्त	रत्यन्त
९५	३	त्युक्त	त्युक्तं
९६	२	श्रवण	श्रावण
,,	६	प्रतिभा	प्रातिभा
९७	१	शन्कयात्	शक्नुयात्
,,	६	वृत्ति	वृत्ती
१०७	४	तज्जान	तज्ज्ञान
१०९	४	धर्माधर्मो	धर्माधर्मौ
११०	३	तत	तत्
१११	१४	उक्त	उक्तं
,,	१५	याज्ञवक्लेम	याज्ञवल्केन
११२	१	चक्रण	चक्रेण
११३	१४	मनुष्योन्मो	मनुष्यजन्मो
११४	१५	पृच्छ्येत	पृच्छयेत
११८	२	वह्य	वाह्य
११८	१७	फेन	केन

पृष्ठाङ्कः	पङ्क्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
११८	१७	प्रकश्यं	प्रकाश्यं
१२१	१६	तत्यर	तत्परं
१२३	७	स्ववसतं	स्ववसतिं
,,	४	असंख्या	असंख्य
,,	१०	चिमुत्त	चित्तमुपभुङ्क्ते
१२४	३	निवर्त्तत	निवर्त्तेत
१२७	१०	धर्ममेधो	धर्ममेघो
११९	७	यत्त	यत्तु
,,	९	तस्मत्	तस्मात्
१३०	१४	अस्थुल	अस्थूल
१३२	१९	कर्मानुसरेण	कर्मानुसारेण
१३३	१४	व्यवस्थ	व्यवस्थाः
,,	१६	निरूपितं	निरूपिता
,,	,,	विज्ञेयम्	विज्ञेया
१३४	९	व्यवस्था	व्यवस्थाः
,,	,,	स्मिन्नादि	स्मिन्नादि
,,	११	स्तमोगयी	स्तमोमयी
१३९	२	व्यवस्थ	व्यवस्था

॥ श्री श्री.परमात्मने नमः ॥

योगतत्वसंग्रहः

तापत्रयाग्निशमनीं भवरोगवैद्याम्
वाणीं भजामि भवपाशनिकृन्तनाय ।
सांसिद्धिकाननसरोरुहसार्वभौमीम् ।
श्रेयस्करीं श्रुतिनिकेतनकल्पवल्लीम् ॥

वन्दे शिवं सुखं शान्तं तुहिनद्युतिशेखरम् ।
वामाङ्के गिरिजां नित्यं वहन्तं विश्वमातरम् ॥
शूलंवाद्यंचवै हस्ते दधानंप्रलयङ्करम् ।
भूतिभूषितसर्वाङ्गं विश्वेशं कृत्तिवाससम् ॥

नौमि शेषं तथा व्यासं भाष्यसूत्रकृतं बुधम्
विश्वेश्वरजगन्नाथवासुदेवां श्च सद्गुरून्
यत्कृपलिशमात्रेण महोडुपेन सागरम्
तरेयं भवनामानं विज्ञाय परमं पदम् ॥

पतञ्जलिमतं बुध्वा सारं संगृह्य सर्वतः
बालानां सुखबोधाय क्रियते तत्वसंग्रहः ॥

तत्वनिरूपणम्
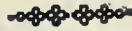
श्रौते दर्शने सामान्यतो द्विविधं तत्त्वं जडं चेतनं चेति। तत्र तावज्जडं प्रकृतितत्कार्यात्मकम्। प्रकृतिः प्रधानमित्यनर्थान्तरम्। सा च सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था। प्रकरोति जगत्सर्वं प्रधीयते जगदस्मिन्निति वा व्युत्पत्त्याऽब्रह्मस्तम्बान्ताविश्वप्रपञ्चभूतकारणमिति गम्यते। उक्तं च श्वेताश्वतरे-अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णवर्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपामित्यादिना। अमूलत्वमत्राजात्वप्रयोजकम्। लोहितादयः शब्दा रञ्जकत्वादिसाधर्म्यात् सत्वादिगुणत्रबोधकाः। गुणत्वं तु सत्वादीनां पुरुषपशुबन्धनोपकरणत्वान्नात्र नैयायिकानामिव चतुर्विंशतिगुणेष्वन्यतमत्वमभिप्रेतम्। रज्जुभिरेतै र्गुणैः पशुरिव निर्लेपोऽपि स्वभावतः पुरुषो बद्धः कर्तृत्वभोक्तृत्वभाक् संसारं भजते। सेयं प्रकृति र्महादादिक्रमेण जगत् प्रसूते। प्रकृते र्महान् ततोऽहङ्कारान्मनः प्रभृतीनि—एकादशेन्द्रियाणि तन्मात्राणि रूपरसादीनि च पञ्च, तन्मात्रेभ्य आकाशादिसञ्ज्ञकानि पञ्च महाभूतानि। एषु केचन प्रकृतिविकृतयो यथा महदादयः। विकृतिपदाभिलप्यानि मनः प्रभृतीनीन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि च। अविकृतिः प्रकृतिः। गोघटादीनां पृथिवीविकृतित्वेऽपि तत्वान्तरत्वाभावात् केवलविकृतित्वमेव। पुरुषो न

प्रकृति र्न तथा विकृति र्ज्ञानस्वरूपोऽमलः। ईश्वरोऽपि तथा। पुरुषः प्रकृतिसंयोगादिहलोकपरलोकगामी जीव इत्युच्यते। ईश्वरस्तु सदैव मुक्तो नास्य बन्धकोटिः। स्वस्वार्थाभावेऽपि लौकिकवैदिकसंप्रदायप्रवर्त्त-कत्वेन संसाराङ्गारे तप्यमानानामनुग्राहकत्वेन च तत्सिद्धिः सर्वत्र जेगीयते। अत्र बहुधा विप्रतिपत्तिसद्भावेऽपि सर्वे आस्तिका नास्तिका श्च साक्षात् परम्परया प्रायशः कमपीश्वरतयामन्यन्त एव। तथाच "यः सर्वज्ञः सर्ववित्," "एष सर्वेश्वरः सर्वज्ञः:," "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" इत्यादयः श्रुतिस्मृतिवादा अपि सङ्गच्छेरन्। एवं च जडचेतनभेदेन द्विविधं भाव्यमभिहितम्। तत्र चतुर्विंशतितत्वानि जडानि प्रकृत्यादीनि। चेतनौ जीवेश्वरौ। मिलित्वा षड्विंशति तत्वानि प्रमेयकोटिप्रविष्टानि सांख्यप्रवचनेऽस्मिन् योगशास्त्रे। अन्येषामप्याविरुद्धानि। सांख्यप्रवचनत्वमप्यस्य शास्त्रस्य तत्वैक्याद् विज्ञेयम्। तत्वप्राधान्यात् कापिलस्य दर्शनस्य सांख्यसंज्ञा। योगप्राधान्यात् त्वस्य शास्त्रस्य योगसंज्ञा। केचन तत्वालोचनया सर्वदुःखनिवृत्तिलक्षणं परमपुरुषार्थं मन्यन्ते केचन वाऽष्टाङ्गयोगेन तत्त्वन्यत्। सत्कार्यवाद उभयत्रादृतः। प्रकृते र्महदादिरूपेण यः परिणामः स सन्नेव नासन् नवा विवर्त्तः। कार्यकारणभावे चतुर्धा विप्रतिपत्तिः प्रसरति। असतः सज्जायत इति सौगताः। ते हि सर्व-भावरूपं वस्तु क्षणिकमिति मन्यन्ते। क्षणिकभावयो र्मध्ये न कार्य-

कारणभावः कार्यक्षणे कारणस्य कारणक्षणे च कार्यस्यासत्त्वात्। अतः पूर्वक्षणिकभावस्य विनाश एवोत्तरक्षणिककार्यस्य कारणम्। नैयायिकादयः सतोऽसज्जायत इति संगिरन्ते। उत्पत्तेः पूर्वमसद्घटादिकार्यं सतो मृदादिकारणकलापाज्जायते—इत्याशयः। सतो विवर्त्तः कार्यजातं न वस्तु सदिति वेदान्तिनः। तन्मते कार्यं जगन्मूलकारणस्य ब्रह्मणो विवर्तो न तु परिणामः। विवर्त्तत्वात् तदाभासमात्रं न तु पारमार्थिकम्। सुखदुःखमोहात्मकस्य प्रपञ्चस्य तथाविधकारणावधारणात् सतः सज्जायत इति परिणामवादिनः सांख्याः। मतवैषम्यमपि यत्परः शब्दः स शब्दार्थ इति न्यायात् समाधेयम्। सर्वदुःखनिवृत्तिरूपपरमपुरुषार्थे न कस्यापि विप्रतिपत्तिः। आविदुषः आकृमः स्वास्थ्यं मे भूयाद् दुःखं मा भूदित्याशीर्दर्शनात्। मतभूयस्त्वमधिकारिभूयस्त्वे हेतु न तु विवादाय। मोक्षरूपकल्पवृक्षस्य मूलस्कन्धशाखादिस्थानीयत्वेन सर्व एनमुपकुर्वन्ति। इत्यास्तामन्यत्र विस्तरः।

योगस्वरूपविचारः
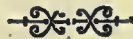
भाव्यमभिधाय यद्बलात् कृतकृत्यता जीवस्य साभावनाऽधुना निगद्यते। चिकित्साशास्त्रवद् योगशास्त्रमपि चतुर्व्यूहम्। यथा चिकि-

स्साशास्त्रं रोगो रोगोहेतु भैंषज्यमारोग्यमिति । तथेदमपि संसारः संसारहेतु र्मोक्षो मोक्षोपाय इति । तत्र दुःखमयः संसारो हेयः । प्रधानपुरुषयोः संयोगो हेयहेतुः । तस्याऽत्यन्तिकी निवृत्ति र्हानम् । तदुपायस्तु प्रकृतिपुरुषविवेकसाक्षात्कारः । स च योगाङ्गानुष्ठानदिव वक्ष्यमाणः । योग स्तु समाधिः । समाध्यर्थकयुज्धातुत स्तन्निष्पत्तेः । समाधिरेव भावना साच भाव्यस्य विषयान्तरपरिहारेण चेतासि पुनः पुनः निवेशनम् । ननु संयोगार्थकयुज्धातुतो योगशब्दानिष्पत्तेर्योगः संयोगवचनो न तु समाधिवचनः । संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्म-परमात्मनोरिति याज्ञवल्कोक्तेरितिचेन्न । परजीवयोः संयोगे कारण-स्यान्यतरकर्मादेरसंभवात् । अजसंयोगस्य कणभक्षाक्षचरणादिभिः प्रतिक्षेपाच्च । तथाहि—संयोग स्त्रिविधः । अन्यतरकर्मज उभयकर्मजः संयोगज श्चेति । तत्राद्यः श्येनपतनक्रियया शैलश्येनयोः । द्वितीयो मेषयोः । तृतीय स्तु हस्तपुस्तकसंयोगात् कायपुस्तकसंयोगः । अत्र तु परजीवयो र्विभुत्वेन चलनक्रियाया असंभवान्न न्यतरकर्मज उभय-कर्मज श्च संभवति । अत एव न तृतीयोऽपि । जीवप्रदेशेष्वपि चलन-क्रियाया असंभवात् । एवंच समाधिवचनो योगशब्दो न तु संयोग-वचनः । नापि याज्ञवल्कवचनव्याकोपः ।

समाधिः समतावस्था जीवपरमात्मनोः ।
ब्रह्मण्येव स्थिति र्या सा समाधिः प्रत्यगात्मनः ॥

इति तेनापि योगशब्दस्य समाधिवचनत्वाङ्गीकारात् । नापि पूर्वापरवाक्ययो र्विरोधः । संयोगः सम्यग्योगः साम्यावस्थारूपो योगः समाधिरित्युच्छते । औपाधिकान् कल्पितान् धर्मान् परित्यज्य स्वाभाविकेनासङ्गरूपेन जीवस्य परमात्मन इवावस्थानं साम्यावस्था । इयमेव मुक्तिः " निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति (मु ३-१-३) इत्यादिश्रुतिषु प्रतिपाद्यते । " अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति " (का २-१२), " समाधावचलाबुद्धि स्तदा योगमवाप्स्यसि " (गी. २-५३) इत्यादयः श्रुतिस्मृतिवादा अपि योगस्य समाधिवचनत्वे चरितार्थाः स्युः । योगः समाधिरिति भागवता व्यासेनाप्युक्तत्वात् समाधिवचनो योगशब्दो न तु संयोगवचन इति फलितम् । चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणः सोऽयं योगः । ननु सोऽयं चित्तवृत्तिनिरोध स्तदभिमतो यत्किञ्चिद्वृत्तिनिरोधः सकलवृत्ति-निरोधो वा । आद्यः पक्ष श्चेत् सुषुप्त्यादौ क्षिप्तमूढादिचित्तवृतीनां निरोधाद् योगत्वप्रसङ्गः । चित्तं हि कदाचित्क्षिप्तं कदाचिन्मूढं कदाचिद्विक्षिप्तं कदाचिदेकाग्रं कदाचिन्निरुद्धमिति पञ्चवृत्तिकम् । रजोगुणोद्रेकात् तेषु तेषु विषयेषु क्षिप्यमाणं नितान्तमस्थिरं चित्तं क्षिप्तम् । ईदृशं चित्तं दैत्यदानवानां सदैव । तमोगुणोद्रेकात्कार्याकार्य-विचारविकलं क्रोधाद्युपहतं निद्रावृत्तिमन्मूढं चित्तं सदैव रक्षःपिशाचा-दीनाम् । सत्वरजोगुणोद्रेकात्केवलसुखसाधनेषु शब्दादिष्वेव प्रवृत्तं

कदाचित् किञ्चित्कालपर्यन्तं स्थिरं चित्तं विक्षिप्तं क्षिप्ताद् विशिष्टमिति यावत् प्रायः सदैव देवानाम् । एकतानं चित्तमेकाग्रमुच्यते । वृत्ति-शून्यं संस्कारमात्रशेषं चित्तं निरुद्धम् । एकतानं निरुद्धं च चित्तं सदैव योगिनाम् । एवं च सुषुप्तौ मूढवृत्तेरुदयात् क्षिप्तविक्षिप्तवृत्त्यो-रभावः । जागृतौ मूढवृत्तेरभावः । एकाग्रनिरुद्धाख्यवृत्तिद्वयस्याभावस्तु प्रायो बद्धजीवस्य सदैव । तथाचात्र क्लेशादेरप्रहाणात् सकलवृत्तिनि-रोधस्य योगत्वमभिमतम् । ननु संप्रज्ञातसमाधौ विवेकख्यातेः सद्भावेन सकलवृत्तिनिरोधस्याभावात् तत्राव्याप्तिरिति चेन्न क्लेशकर्मादिपरिपन्थि-वृत्तिनिरोधस्याभिमतत्वेनादोषात् । विवेकख्यातेः क्लेशादिविरुद्धैक-स्वभावत्वेन नात्र कश्चन दोषोऽवतरति । वृत्तय स्तु वक्ष्यमाणाः । ननु वृत्तीनां निरोधस्य योगत्वे तासां ज्ञानत्वेनात्माश्रयतया तन्निरोधोऽपि तदाश्रयः स्यात् । प्रागभावप्रध्वंसयोः प्रतियोगिसमानाश्रयत्व-नियमात् । तत श्च स विनाश स्वाश्रये—आत्मनि कमपि विकारं जनयेदेव । उपयन्नपयन् धर्मो विकरोति हि धर्मिणमिति न्यायेन; नहि कथमप्यविकृते धर्मिणि धर्मविनाशः सम्भवः । तथाच वृत्ति-विनाशकाल आत्मनो विकारापत्त्या कौटस्थ्यमात्मनो भज्येतेतिचेत् । तदपि न घटते । कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृति र्ह्री र्धी र्भीरित्येतत्सर्वं मन एव (बृ. १–५–३) इति श्रुते र्निरोधपरि-पन्थिभूतानां तासामन्तःकरणधर्मत्वाङ्गीकारेणाऽपरिणामिन्या श्चिति-

शक्त विज्ञानधर्माश्रयत्वाभावात् निरोधी नात्र प्रध्वंसाद्यभावपदवेदनीय स्ततो भावरूपसाक्षात्कारोदयात् । किन्तु निरुध्यन्तेऽस्मिन् प्रमाणाद्या श्चित्तवृत्तय इति व्युत्पत्त श्चित्तावस्थाविशेष एव । अन्यथाऽभावाद् भावोत्पत्तिप्रसक्तौ सर्वत्र सर्वपदार्थसंभवः स्यात् । एवं च निरुक्तलक्षणो भावनापरपर्यायः समाधिः सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन द्विविधः । तदा- जीवस्य स्वस्वरूपे चिन्मात्ररूपेण स्थितिः । इयमेव स्थितिः कैवल्य- पदवेदनीया । यतो गिरिशिखरच्युता ग्रावाण इव सर्वदुःखानि समूलंकाषं काषितानि भवन्ति, कृतकृत्यता चास्य कर्त्तव्यान्तराभवात् जन्ममृत्युलक्षणकः संसार श्च निवर्त्तते कारणाभावात् । कारणम- विवेकः । अविवेकोऽन्योन्यतादात्म्याध्यासमूलकः । यद्बलादविकारोऽ 'प्यात्मा परिणामिन्यर्थे बुध्यादौ प्रतिबिम्बित इव तद्वृत्तिमनुपतति बुद्धि श्च पुरुषे प्रतिबिम्बिता तं सुखदुःखभांज करोति । अन्तःकरणं बुद्धि श्चित्तमित्येते पर्यायाः । वृत्ति र्हि तस्य विषयाकारः परिणामः । वृतिरेव ज्ञानम् । निष्क्रियोऽप्ययस्कान्तमणि यथाऽयस आकर्षक एवमयस्कान्तमणिकल्पा विषया अयःसधर्मकं चित्तमिन्द्रियप्रणा- लिकयाऽभिसंबध्योपरञ्जयन्तीति विषयोपरक्तं चित्तं परिणामीत्युच्यते । बुद्धिवृत्तौ विषयाकारसमर्पणमेव ज्ञातृत्वम् । विषयाकारोपरक्तबुद्धिवृत्ति श्च चिच्छक्तौ प्रतिबिम्बते । पुरुषे प्रतिबिम्बसामर्थ्ये च वृत्तिमच्चित्तस्यैव फलबलात् कल्प्यते । यथाजलादौ प्रतिबिम्बनसामर्थ्यं रूपवत्स्थूल-

पदार्थस्यैव तद्वत्। तदानीं बुद्धिवृत्ते र्भेदेनाग्रहात् तादृशबुद्धिवृत्त्य-विभागापन्ना चिच्छक्ति रर्थमनुभवतीति व्यवहारः। उक्तरीत्याऽतस्मिंस्तद्बुद्धिरूपोऽध्यासः। स चान्योऽन्यस्मिन्निति फलबला-त्कल्प्यते। तथाच चिच्छायापत्त्या दृश्यस्य भानं चितिशक्तेरपि ज्ञानित्वादिकमुपपद्यते। अतो भगवता फणिपतिना वृत्तिसारूप्य मितत्रेति यदुक्तं तत्तु स्थान एव। चित्तस्य विषयसम्पर्केणेन्द्रियद्वारा परिणामो वृत्तिः।

प्रमाणादिवृत्तिनिरूपणम्

वृत्तीनामसंख्येयत्वेऽपिताः पञ्चस्वेवान्तर्भवन्ति। तासां पञ्चविध-त्वमपि प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतिभेदेन। तत्र प्रमाकरणं प्रमाणम्। अबाधितार्थावगाही बोधः प्रमा यथार्थज्ञानमितियावत्। प्रमाणं त्रिविधं प्रत्यक्षमनुमानं शब्द श्चेति। तत्र—इन्द्रियसम्बन्धद्वारा चित्तस्य विषयेण सह सम्बन्धे सति विषयदेशे जायमाना विषयाकारा वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणम्। सा च वृत्ति स्तत्रैवात्मनि प्रतिबिम्बते। तादृशवृत्तिप्रतिबिम्बावच्छिन्नचैतन्यं प्रत्यक्षप्रमा। हेतुमति हेतुदर्शनात् साध्यविशिष्टपक्षाकारा वृत्तिरनुमानम्। तादृशवृत्तिप्रतिबिम्बावच्छिन्नं चैतन्यमनुमितिप्रमा। अनुमानं पुन स्त्रिविधं पूर्ववत्—शेषवत्—

सामान्यतोदृष्टं चेति । तत्र कारणदर्शनात् कारणज्ञानाद्वा यत्कारण-लिङ्गकमनुमानं तत्पूर्ववत् । यथामेघोन्नत्या वृष्टिरनुमीयते । कार्य-दर्शनात् कार्यज्ञानाद्वा यत्कार्यलिङ्गकमनुमानं तच्छेशवत् । यथा नदीवृद्ध्या वृष्ट्यनुमानम् । कार्यकारणातिरिक्तकेवलव्याप्यवस्तुदर्शनात् तज्ज्ञानाद्वा व्यापकवस्तुविषयकज्ञानं सामान्यतो दृष्टमनुमानम् । यथा पृथिवीत्वादिहेतुना द्रव्यत्वादिजात्यनुमानम् । अनु पश्चान्मीयते ज्ञायते यत् तदनुमानम् । रसवत्यां वन्हिधूमयोः सहचारदर्शनेन पर्वतादौ धूमादिलिङ्गप्रत्यक्षजन्यपरीक्षवन्हिप्रभृतिसाध्यानां याद्विलक्षणं ज्ञानं तदनुमानप्रमाणमिति निष्कर्षः । अत्र लिङ्गलिङ्गिनोः । हेतुसाध्ययोर्वा सम्बन्धदर्शनंरूपं व्याप्तिज्ञानं प्रथमप्रत्यक्षम् । द्वितियं तु पक्षे लिङ्गदर्शनम् । उक्तयोर्द्वयोः परामर्शः तृतीयम् । ततो यत्साध्यज्ञानं तदनुमानमिति संक्षेपः । सुकुमारमतिवालानां बुद्धिचाञ्चल्यभयान्नात्र वहु प्रतन्यते । आप्तवाक्यज्ञानजन्या श्रोतुर्या तदर्थविषया तदाकारा वा या वृत्तिः सा शब्दप्रमाणम् । तत्प्रति-विम्वावच्छिन्नं चैतन्यं शाब्दज्ञानम् । यथार्थवक्तार आप्ताः । ते खलु–ऋषयो वेदा श्च । ते वेदाः स्वतः प्रमाणमिति केचन वदान्ति केचन परतः प्रमाणमितिच । स्वप्राभाण्ये प्रमाणान्तर निरपेक्षत्वं प्रमाणस्य स्वतस्त्वम् । अनुमानादिसाधनमूलकत्वेन तु परतस्त्वम् । तत्रापि स्वतः प्रामाण्यवादिनो निश्वासितन्यायतो वेदस्यावुद्धिपूर्वकृतत्वेनापौ-

रुषेयत्वं मन्यन्ते । अपरे तु कार्यमात्रस्य सर्वस्य बुद्धिपूर्वकत्वेन पौरुषेयत्वमाचक्षते । मीमांसकादयो वेदस्यापौरुषेयत्वं मन्यन्ते । नैयायिकादयस्तु तस्य पौरुषेयत्वमिति भेदः। तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्। सांख्या स्तस्यापौरुषेयत्वमामनन्ति। प्रमातत्करणविषय उक्तं चाचार्यैर्यथा—

> प्रमाता चेतनः शुद्धः प्रमाणं वृत्तिरेव च ।
> प्रमाऽर्थाकारवृत्तीनां चेतने प्रतिबिम्बनम् ॥
> प्रतिबिम्बितवृत्तीनां विषयो मेय उच्यते ।
> वृत्तयः साक्षिभास्याः स्युः करणस्यानपेक्षणात् ॥

एषु त्रिष्वेव तन्त्रान्तरप्रसिद्धानां सर्वेषामुपमानादीनामन्तर्भावान्न तेषां पार्थक्येण प्रामाण्यमिष्यते । अन्तर्भावप्रकार स्तु वाचस्पत्यग्रन्थादेवावगन्तव्यः। प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणं यथार्थज्ञानसाधनमितिदेहात्मवादिन श्चार्वाका मन्यन्ते । बौद्धा आर्हता श्च प्रत्यक्षमनुमानं चेति प्रमाणद्वयमिच्छन्ति। वैशेषिका अपि तथा । नैयायिका स्तु प्रत्यक्षमनुमानमुपमानं शब्द श्चेति प्रमाणंचतुष्टयमभ्युपगच्छन्ति । उक्तप्रमाणचतुष्टयमर्थापत्ति श्चेति प्रमाणपञ्चकं मीमांसकविशेषाः प्राभाकरा मन्यन्ते । अनुपलब्ध्या सह षट्प्रमाणानि—इति भाट्टा आमनन्ति। भगवत्पूज्यपादश्रीशङ्कराचार्यमतानुयायिनोऽद्वैतवादिनोऽप्येवमेव । संभवैतिह्याभ्यां सह प्रमाणाष्टकं पौराणिकानां मतम्।

चेष्टापि प्रमाणान्तरमिति तान्त्रिका वदन्ति । उपमानादीनां स्वरूपं तु तत् तद् ग्रन्थादेव विज्ञेयम् । प्रकृतेऽनुपयोगात् सुकुमारमतिबालानां बुद्धिवैषम्यभयाच्च नात्रोच्यते । विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् । बाधितज्ञानं भ्रम इति यावत् । मिथ्यात्वं बाधितत्वमपि वा तस्याऽतद्रूपप्रतिष्ठत्वात् । यस्य यत्पारमार्थिकं रूपं तस्मिन् प्रतिष्ठाभावान्मिथ्यात्वमिति विवेकः । रज्जुसर्पादीन्यस्य निदर्शनानि । अर्थशून्यः केवलकल्पनामयं आहार्यज्ञानरूपः प्रत्ययो विकल्पः । यथा सूर्योऽयं ब्राह्मणः, शशशृङ्गं, पुरुषस्य चैतन्यमित्यादिः । शशशृङ्गादिपदार्थाभावेऽपि तज्जन्या मनोवृत्तिः विकल्पपदवेदनीयेतिभावः । विपर्ययवद्बाधाभावात् ततो भेदः । प्रकाशस्वभावसत्त्वगुणावरकतमोगुणोदयाद् या मनोवृत्ति सा निद्रा । तमोऽज्ञानं वा निद्रावलम्बनम् । यदा तदालम्बना निद्रोदेति तदा सत्त्वगुणाभिभवे न किञ्चित्प्रकाशते । अतः प्रतिबुद्धो ब्रवीति मूढोऽहमस्वाप्स्यं न किञ्चिदवेदिषमिति । उक्तं च माण्डूक्ये—

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते
न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तमिति ।

इतरवृत्तिवत् सुखदुःखमोहात्मकत्वेन समाधिप्रतिपक्षत्वेन च निद्राया उपदेशः । पूर्वानुभूतसंस्कारजन्यमनोवृत्तिः स्मृतिः । प्रबोधे यद् यद् दृश्यते श्रूयते वा तत्तद्विषयकज्ञानस्य चित्ते सूक्ष्मतयावस्थानं

संस्कारः । उद्बोधकसद्भावात् पुन स्तादृशमनोवृत्तिः स्मृतिरिति व्यपदिश्यते । ता वृत्तयः पुनः क्लिष्टाक्लिष्टभेदेन द्वेधा । क्लेशफलाः क्लिष्टा अविद्यादयः । तद्विपरीता अक्लिष्टाः । तत्राद्याः सर्वदैवहेयाः । अक्लिष्टा स्तूपादेयाः । योगकाले ता अपि हेयाः । तद्धाने—उपायस्तु अभ्यासो वैराग्यं च । तत्रैकाग्रताप्राप्तिनिमित्तमासनप्राणायामादियोगाङ्गानामनुष्ठानमभ्यासः । स चाभ्यासो गुरूपदिष्टमार्गेण दीर्घकालं व्याप्यायथासमयं श्रद्धादिपूर्वकः प्रतिदिनं क्रियमाणो दृढः फलदः । वैराग्यं द्विविधं परं चापरं चेति । तत्रापरवैराग्यपूर्वकं परवैराग्यम् । ऐहिकपारात्रिकविषयदोषदर्शनलक्षणमपरवैराग्यम् । वैराग्यविषया द्विविधा ।

वैराग्यनिरूपणम्

दृष्टादृष्टभेदेन । स्तक्चन्दनवनितादयो दृष्टाः । स्वर्गोऽप्सरः-प्रभृतयोऽदृष्टाः । सन्ति तत्र तत्र दोषाः क्षयिष्णुत्वादयः प्रसिद्धाः । महतायासेन स्वर्गगतोऽपि पुण्यक्षयात् पुनरावर्त्तते । अत्रागत्यापि कर्मवशात्—धनधान्यादिभागपि चिरं तान् नोपभुङ्क्ते इति संस्कृत-चेतसां दोषदर्शनजं वैराग्यम् । निष्कामकर्मणा शुद्धचित्तस्य सर्वत्रानित्यत्वबुद्धौ वैराग्यं कदाचिज्जायते । वैराग्यस्य नान्तरीयकं

कैवल्यम् । वैराग्यनिमित्तः सततं महान् यत्न आस्थेयः । विना वैराग्यं नैकाग्रता नापि निरोध इति । सन्ति यतमानादिसञ्ज्ञका अपरेऽपि भेदा अपरवैराग्यस्य, तेऽप्यत्र निर्दिश्यन्ते बुद्धिवैशद्याय । चित्तस्य विषयानुरागनाशाय चेष्टा यतमाननाम्नी प्रथमा भूमिका । जितान्येतानीन्द्रियाणि जेतव्यानि शिष्टानीति चिकित्सकवद्विवेचना व्यतिरेकसञ्ज्ञा द्वितीयभूमिका । तृतीयभूमिका चैकेन्द्रियसञ्ज्ञा विषयानुरागसंस्कारमात्रशेषा । चतुर्थी भूमिका तूक्तपूर्वा वशीकारनाम्नी । आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तसर्ववस्तुतृणीकार एतद्वैराग्यस्य परमोऽवधिः । आत्मसाक्षात्काराद् गुणवैतृष्ण्यं परवैराग्यम् । गुणशब्देन प्रकृतिरुच्यते । सा हि गुणानां साम्यावस्था । यस्यामवस्थायामिदं सत्वमिदं रज इदं तम इति वक्तुं न शक्यते सा साम्यावस्था । एवं चापरवैराग्यमभ्यस्यतो योगिन आत्मसाक्षात्काराद् यथोक्तगुणेषु प्रकृतौ वा तृष्णाराहित्यं तत्परवैराग्यम् । ज्ञानप्रसादमात्रं तत् । यल्लाभात् प्राप्तं प्राप्तव्यं क्षीणा श्च क्लेशा स्युः । जनित्वा न म्रियते मृत्वा च न जायते । उक्तं च गीतायां भगवताऽर्जुनप्रश्नप्रतिवचनवेलायां —

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

इति । अत एव भगवता पतञ्जलिना यदुक्तं "अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः". इति तत्तु नाकाण्डे । जन्मजन्मान्तरीय-

वासनाचित्रितं चित्तं विना वैराग्यं विना चाभ्यासं नैकाग्रताभिमुखं नापि निरोधाभिमुखं स्यात् । अभ्यासवैराग्यसिद्धये युक्ताहारस्य युक्तस्वप्नावबोधयोरप्यावश्यकता । अन्यथा योगो वियोगायैव स्यात् । उक्तंच भगवता गीतायाम् ।

नात्यश्नत स्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

एतत्सर्वमनुपदमग्रे वक्ष्यते । आदौ स्थानं ततः कालो मिताहार स्ततः परमित्यभियुक्तोक्तेः स्थानमप्युत्तममपेक्ष्यते । यत्र कुत्रचिदभ्यासो न स्यात् । कृतेऽपि सङ्गदोषात् स शिथिलीभवेत् । तस्मात् प्रच्यवेतापि वा । गिरिगुहादिस्थानं प्रशस्तमन्यस्थानं मनोऽनुकूलमपि नेत्यत्र न कश्चन नियमः । न सर्वे मादृशाः सन्यासिनो यत स्तेऽरण्यमेव गच्छेयुः । न वा सर्वेषां तत्रास्ति गमनेऽधिकारः सामर्थ्यं च । ननु—अग्रे गृहस्था अपि महर्षयः पुत्रदारान् परित्यज्य कदापि तपस्यायै हिंस्रजन्तुसंकुलं वनं गच्छन्ति स्म । सत्यं गच्छन्ति स्म, परन्तु के धर्मदेशनायै प्रादुर्भूता महानुभावा दिगन्तव्यापिकीर्त्तयो मन्त्रद्रष्टार ऋषयः के च वयं चलचित्ता अल्पबुद्धयः । गुञ्जाया हेम्नैकतुलारोहे किं तेन तुल्यता ? तस्मात् सति सम्भवे गिरिगुहादयोऽप्याश्रयणीयाः । अन्यथा त्याज्याः । मनोऽनुकूलं स्थानं तु सर्वथा प्रशस्तम् । यत्रजनबाधानस्यात् । यत्राहारसौलभ्यं यत्र च सतां

सङ्ग एवंभूतं स्थानं योगाभ्यासायानुकूलम् । उक्तं च " मनोऽनुकूले " इत्यादिना श्वेताश्वतरोपनिषदि । एवं च तत्स्थानं गृहमेव स्यात् परग्रामो वाऽथवाऽन्यत्किमपि । न तु नगरम् । तत्र पूर्वोक्तदोषसद्भावात् । तथाकालोऽप्यपेक्ष्यते । न हि सर्वदा योगोऽभ्यस्यते । रात्रौ वसन्ताद्यृतौ योगाभ्यासः प्रशस्तः । दिवाभागेऽन्यर्त्तौ वा स्वल्पतया क्रियमाणोऽभ्यासो नि प्रतिषिध्यते । अवस्थास्थैर्ये तु सर्वदापि भवेत् । अभ्यासकाले यमनियमादयोऽप्यवश्यं पालनीयाः । अन्यथा ब्रह्मचर्यादीनामभावे चित्तचाञ्चल्याद् यथाकथञ्चित् क्रियमाणोऽप्यभ्यासो भ्रंशेत । दुश्चिकित्स्यो नानाप्रकाररोग श्च स्यात् । अभ्यासोऽपि शनैः शनै र्वर्द्धणीयो यथा धातुप्रकोपो न स्यात् । उक्तं च बृहदारण्यके विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनेति । एवंच मनोऽनुकूले स्थाने स्थित्वा शास्त्रोक्तमार्गेण मिताहारं कृत्वा यथाकालं क्रमशो योगमभ्यस्यतः परापरनामकं वैराग्यमुपजायते । जातवैराग्यस्य चित्तंसमाधीयते ।

सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातसमाधिनिर्वचनम्

तत्रापरवैराग्येणैकाग्रतायां दृढायां सम्प्रज्ञातसमाधि र्भवति । परवैराग्येन सर्ववृत्तिनिरोधे तु–असम्प्रज्ञातः समाधिः स्यात् । तत्र

सम्यक् संशयविपर्यासराहित्येन यत्र भाव्यस्य स्वरूपं ज्ञायते स सम्प्रज्ञातः समाधिः । स च वितर्कविचार नन्दास्मितायुक्ताच्चतुर्विधः । स्थूलालम्बने चित्तस्य साक्षात्कारवती प्रज्ञा वितर्कः । योगबलाद् यत् पश्चात् साक्षात्क्रियते तदालम्बनम् । तत्तु चतुर्भुजादिकं षड्विंशति-तत्त्वसघातो वा । तथाचैकस्मिन्नालम्बने क्रमश श्चतुष्प्रकारः सम्प्रज्ञातो भवति । तत्रापि स्थूलालम्बनं प्रथमं लक्ष्यम् । पश्चात् सूक्ष्मालम्बनम् । स्थूलं सूक्ष्मं च प्रत्येकं द्विविधम् । बाह्यं स्थूलमाध्यात्मिकस्थूलं, बाह्यसूक्ष्ममाध्यात्मिकसूक्ष्मं चेति । तत्र क्षित्यादीनि पञ्चमहाभूतानि बाह्यस्थूलानि । इन्द्रियाण्याध्यात्मिकस्थूलानि । तत्कारणीभूत-तन्मात्रादिपरमाण्वन्तानि तत्त्वानि बाह्याध्यात्मिकसूक्ष्मतया यथाक्रमं प्रथितानि । एवं च बाह्यस्थूले प्रज्ञा वितर्कः । बाह्यसूक्ष्मे साक्षात्कारवती प्रज्ञा विचारः । आध्यात्मिकस्थूले सा प्रज्ञाऽनन्दः । अन्तःकरणावच्छिन्नजीवात्मनि तादृशी प्रज्ञाऽस्मिता । परवैराग्या-भ्यासपाटवात् पूर्वपूर्वसंस्कारनाशक्रमेण सर्ववृत्त्यभावरूपो निरालम्ब-नामधेयोऽसम्प्रज्ञातसमाधिः । एतस्यामवस्थायां वितर्कादिसर्ववृत्ती-नामभावे चित्तमभावप्राप्तमिव सुषुप्तमिव वा स्यात् । कोऽपि वृत्त्युदय स्तदा न स्यात् । अस्य समाधेरुपाय स्तु परवैराग्यमेव । अयमेव निर्बीजसमाधिरिति व्यपदिश्यते । अयमपि समाधि र्भवप्रत्ययोपाय प्रत्ययभेदेन द्विविधः । तत्र भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ।

भूतानामिन्द्रियाणां चान्यतमस्मिन् विकारेऽनात्मन्यात्मबुद्ध्या देह-पातानन्तरं–भूतेषु–इन्द्रियेषु वा लीना विदेहाः । अव्यक्तमहद-हङ्कारतन्मात्राणि प्रकृतय स्तत्र तत्रात्मभावनया लीनाः प्रकृतिलयाः । अनात्मन्यात्मबुद्धिरूपमेवाज्ञानं तत्र कारण् । भूतादिषुलीना दीर्घकालं कैवल्यपदमिवानुभवन्तः पुनर्यथाकर्म यथाश्रुतं मनुष्या-दिलोकेषु जायन्ते । तत्राप्यात्यन्तिकदुःखनिवृत्यभावाद्धेयोऽयं समाधिः सर्वथा । श्रद्धावीर्यसमाधिप्रज्ञा उपायाः । तत्र गुरुणोपदिष्टयोगतत्फ-लेषु विश्वासाच्चित्तस्य प्रसन्नता श्रद्धा । सा च सर्वमूलम् । जननीव हि कल्याणी योगिनं पाति । श्रद्धावान् लभते ज्ञानमिति स्मृतेः । वीर्यमुत्साहो यत्नो वा । स्मृति ध्यानम् । समाधिरेकाग्रता । जीवब्रह्मान्यतरात्मतत्त्वसाक्षात्काररूपो विवेकः प्रज्ञा, यया यथार्थं वस्तु विजानाति । तथाच श्रद्धावतो वीर्यं जायते । सञ्जातवीर्यस्य स्मृति रुपातिष्ठते । स्मरणसामर्थ्याच्च चेतः समाधीयते । समाहित एव भाव्यं जानाति । तदभ्यासात् तद्विषयाच्च वैराग्यादसम्प्रज्ञातः समाधि र्भवति । समाधिरपि संवेगतारतम्येनासन्न आसन्नतर आसन्नतम श्च स्यात् । संवेग स्तु क्रियाहेतु र्दृढतरः संस्कारः । तत्र मृदुसंवेगस्यासन्नः । मध्यसंवेगस्यासन्नतरः । अधिमात्रसंवेगस्या-सन्नतमः । अधिमात्रमतितीव्रम् । तेषांतु समाधिलाभः समाधिफलं च कैवल्यमतिशीघ्रं भवति । मृदुमध्यादीनामन्येऽपि विशेषाः सन्ति भाष्या-

दितोऽवगन्तव्याः । नात्र ते प्रतन्यन्ते विस्तरभयात् । संसारेऽपि मृदुप्रभृत्युपायविशिष्टानां कर्मफलं तारतम्येन प्रसिद्धम् । एकमेव कर्म केचन मासेन कुर्वन्ति केचित्तु वत्सरेणापि कर्तुं न शक्नुवन्तीति दर्शनात् । तस्मात् सुष्ठूक्तं भगवता शेषेण " तीव्रसंवेगानामासन्नः " " मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः इति । समाधिहेतवः श्रद्धादयो यस्यातिप्रबला स्तेषां समाधितत्फलं चात्यासन्नमिति भावः । प्रधानपुरुषातिरिक्तेश्वरप्रणिधानादपि योगिन आसन्नतमः समाधिलाभ तत्फलं च भवति । प्रकर्षेण हृदये निधानं स्थापनमुपासना । भक्तिरेवोपासना । परानुरक्तिरेव भक्तिः साध्यसाधनलक्षणा । तत्र साधनलक्षणा भक्तिः । उक्तं च भागवते भगवताव्यासेन—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।

इत्यादिना । साध्यलक्षणा तु फलरूपा प्रेमलक्षणा । सा च पराकाष्ठा व्रजगोपिनीनाम् । यदुदये पुरुषः फलानपेक्षया सर्वाणि कर्माणि तस्मिन् परमगुरौ समर्पयेत् । तया भक्त्या प्रसन्नः परमात्मा समनुगृह्णाति । तत श्च योगिन आसन्नतमसमाधितत्फललाभोभवति । उक्तं च गीतायाम् ।

" मत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् "।

" भक्त्या लभ्य स्त्वनन्यया ";

इत्यादिना। भक्ते गौणमुख्यादिभेदेनाऽन्येऽपि भेदाः सन्तिः। तत्र केचना केचन जिज्ञासवः केचिदर्थार्थिनः केचित्तु ज्ञानिनः। उक्तं च गीतायाम्—

चतुर्विधा भजन्ते मां जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीच भरतर्षभ॥

इति। व्याध्यादिपीडित आर्त्तः। ब्रह्मस्वरूपज्ञानेच्छावन्तो जिज्ञासवः। धनधान्यादिनश्वरविषयकाङ्क्षिणोऽर्थार्थिनः। फलकामनाऽनु प्रयुक्तसंसारापवर्गरूपफलभेदात् तेषां भेदः। परमेश्वरस्तु जीवकर्मानुरूप फल ददाति।

समाधिनिर्णयप्रसङ्गे–ईश्वरनिरूपणम्

क्लेशकर्मविपाकाशयैःकालत्रयेऽपि यस्य संस्पर्शो नास्ति स ईश्वरः पुरुषविशेषः। क्लेशा अविद्यादयः। कर्माणि विहितप्रतिषिद्धानि

कुशलाकुशलानि ज्योतिष्टोमब्रह्महननादीनि । विपाका विपच्यन्ते कर्मभिः साध्यन्ते—इति जात्यायुर्भोगाः । जाति जन्म । आयुर्जीवन-कालः । दुःखसुखमोहात्मकशब्दादिवृत्ति भोगः । अत्र भोग एव मुख्यं फलं तन्नान्तरीयके च जन्मायुषी । आफलविपाकाच्चित्तभूमौ शेरत इत्याशया—धर्माधर्मसंस्काराः । पुरुषविशेषत्वमप्यस्य कालत्रयेऽपि बन्धाभावात् । तथा पुरुषस्य प्रकृतिसम्बन्धादौपचारिकोऽपि बन्धोऽस्ति तथा नेश्वरस्य । सतु सदैव मुक्तः सदैव शुद्धो न कदापि दुःखभाक् । तस्मिन् बहुधा मतभेदः श्रूयतेसोऽस्ति नास्तीति, बौद्धाः सर्वज्ञं बुद्धमीश्वरं मन्यन्ते । जैनमते तु सर्वज्ञोऽर्हन्मुनिरेवेश्वरः । नैयायिका वैशेषिका माहेश्वरा श्चेश्वरो जगतो नोपादानकारणम् । किन्तु केवलं निमित्तकारणमिति मन्यन्ते । कर्मफलदाता तु स एव । सांख्या श्च जीवातिरिक्तमीश्वरं न मन्यन्ते । ईश्वरासिद्धेरित्यादिना तत्सूचनात् । मीमांसकमते तु कर्मैव फलं ददाति न तु तदतिरिक्त-ईश्वरः कश्चित् । अद्वैतवादिनां मते परमात्मा निर्विशेषो निर्लेपो निर्गुण एक पारमार्थिको न जगत उपादानकारणं नापि निमित्तका-रणम् । जगत स्तात्त्विकी सत्तैव नास्ति दूरे तत्कारणप्रथा । जगतःसत्ता तु केवलं व्यवहारिकी । तादृशजगतः कारणं तु मायोपहितः पर-मात्मा । अयमेवेश्वर इति तेषां निश्चयः । अयंच मायाविशिष्टो लूताकीटवत् स्वप्राधान्येन जगतो निमित्तकारणं मायाप्राधान्येन तु

जगतः परिणाम्युपादानकारणं च भवति । मायाश्रय श्चापरो जगतो विवर्त्तकारणम् । जीवकृतकर्मणां फलानि च तत्तत्कर्मानुसारेणाय-मेवेश्वरो ददाति । पातञ्जलमते त्वीश्वरो जीवापेक्षया भिन्नः । स च निर्विशेषो निर्लेपो जगतो नोपादानकारणं नापि निमित्तकारणम् । एवमीश्वरविषये तैर्थिकाः स्वस्वमतानुगुण्येन श्रुतिं युक्तिं वा द्रढयन्तः केचन तं मन्यन्ते केचन न वा मन्यन्ते । "स वा एष महानजोऽन्नादो वसुदानः" (बृ), "एष सर्वेश्वरः सर्वज्ञः सर्वा-न्तर्यामी" (माण्डूक्य) । "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" इत्यादिश्रुतिस्मृतिवाक्यात् कर्मफलदातृत्वेन जीवानुग्राहकत्वेना-न्तर्यामित्वेन चेश्वरास्तित्वमवश्यमङ्गीकरणीयमेव । मन्मते तु सयदि न स्यात् कः खलु पापपङ्कनिमग्नान् जीवानुद्धरेत्, को वा साधून् परित्रायेत । को वा दुष्कृतान् दण्डयेत् । कश्च धर्मस्तम्भभूतां वर्णा-श्रममर्यादां संरक्षेत् । उक्तं च गीतायाम्.

> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
> धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥
>
> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

इत्यादिना । स निर्माणकायमास्थायैकोऽपि बहु भूत्वा जीवानुपकरोति । अस्मिन् मते जीवात्मानो बहवो जन्ममृत्यु-

व्यवस्थासिद्धये। अन्यथैकस्मिन् मृतेऽन्योऽपि म्रियेत। जाते चान्यो जायेत। नाप्यद्वैतश्रुतिविरोधः। जातिपरत्वेन तत्र तत्रैकत्वाङ्गीकारात्। उपाधिबहुत्वात्तद्बहुत्वाभ्युपगमे तद्विभुत्वेन न पूर्वोक्तदोषान्निष्कृतिः। जीवस्वरूपेऽपि वादिनो बहुधा विवदन्ते। चार्वाकमते चैतन्यविशिष्टो देह एव जीवात्मा जडबोधस्वरूपः। कर्त्ता भोक्ता च स एव। तस्य मूलस्वरूपं तु भूतचतुष्टयपरमाणवः। यदा भूतचतुष्टयस्य देहरूपेण परिणामो भवति तदा तादृशपरिणामविशेषान्मदशक्तिवत् तत्र चैतन्यमुपजायते—इति तेषां सिद्धान्तः। बौद्धेषु माध्यमिकानां मते क्षणिकविज्ञानस्वरूपो जीवात्माऽनित्यः। जैनमते देहपरिमाणो देहातिरिक्तो जीवात्मा। यथा यथा देहो वर्द्धतेऽपचीयते च तदनुरोधेन जीवात्मापि तथा तथा भवति। तथा च वृद्धिह्रासभाक्त्वाज्जीवः परिणामिनित्यो न कूटस्थनित्यः। यः सदैकेनस्वरूपेण तिष्ठति स कूटस्थनित्यः। तद्विपरीत स्तु परिणामिनित्यः। नैयायिकानां वैशेषिकानां मते जीवात्मानो बहवः। जीव श्च कर्त्ता भोक्ता ज्ञानादिगुणवान् विभुः। मनःसंयुक्तात्मनि ज्ञानस्य जन्यत्वेन जडमेव तस्य स्वरूपम्। मुक्तौ ज्ञानाभावे पाषाणकल्पा आत्मान इति ते वदन्ति। मीमांसकविशेषा भाट्टा आत्मानमंशभेदेन ज्ञानस्वरूपं जडस्वरूपं चेच्छन्ति। वेदान्तिनः सर्वे सांख्याः पातञ्जला श्चात्मा ज्ञानस्वरूप इति संगिरन्ते। स च कूटस्थनित्यः। औपाधिकं तस्य कर्त्तृत्वादिकम्।

तथाच सुखदुःखादिमर्ज्जीवानुग्राहकत्वेनेश्वरसिद्धिः । " यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः " इत्यादिश्रुतिस्वारस्यात् तत्र निरतिशयं सर्वज्ञत्वबीजम् । तरतमभावरहितत्वं निरातिशयत्वम् । सर्वेषु जीवात्मसु अतीतानागतविषयकं ज्ञानं स्वल्पं स्वल्पमस्त्येव । तत्सद्भवेऽपि केचनाल्पज्ञाः केचन बहुज्ञाः इति दृश्यन्ते । अधिकज्ञेषु–अपि यः सर्वापेक्षयाऽधिकज्ञः स ईश्वर एव निश्चेतव्यः । स ब्रह्मादीनामपि गुरुः । ब्रह्मादयो हि सृष्टिकर्त्तारः कालिनावच्छिद्यते । कालावच्छेदश्च जन्मादिः । न तथेश्वरः । स तु तेषामपि सृष्टिकर्त्ताऽनादिरनन्तः । स च तान् विसृज्य सृष्टिविषयकं ज्ञानमुपदिदेशेतितेषांगुरुः । तथा च तत्र निरतिशयं सार्वज्ञ्यमिति फलितम् । प्रणव स्तस्य वाचकः । वाचको नाम । प्रकर्षेण नूयते स्तूयते येन स प्रणव ॐ कारः । तेन वाच्य ईश्वरः । इश्वरोङ्कारयो र्वाच्यवाचकलक्षणः सम्बन्धः । यथा शृङ्गलाङ्गुलत्वादिविशिष्टपशुविशेषेण सह गोशब्दस्य सङ्केतः सम्बन्धा वा तथा प्रणवेन सहेश्वरस्योक्तपूर्वसम्बन्धो नित्यः । तथा च प्रणवशब्दश्रवणादीश्वर एव चकास्ति सदैव हृदये येन स आहूतः शीघ्रं प्रसीदति । प्रसन्न श्च भक्तमनोवाञ्छां पूरयति । उक्तं च शास्त्रे—

अदृष्टविग्रहो देवो भावग्राह्यो मनोमयः ।
तस्योङ्कारः स्मृतो नाम तेनाहूतः प्रसीदति ॥

इति । सत्सु बहुष्वपि नामसु नामेदमतिप्रियं तस्य । अत स्तानीतराणि विहायैतन्नामोल्लेखो विज्ञेयः । उक्तं च काटके—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

इति । अधिकारिविशेषाणां कृतेऽन्यनामान्यप्युच्चारितानि न प्रतिषिद्ध्यन्ते । तेषां च तत्प्रभावाद् यथाश्रद्धं फलं च भवत्येव । योगिनामालम्बनं तु प्रायशः प्रणव एव । परापरब्रह्मरूपः प्रणवः । सदैव निर्गुणस्वरूपत्वेऽपि तत्स्वरूपोपासनायाः क्लेशाधिकतरत्वेन साधकानां हितार्थाय रूपकल्पनं शास्त्रेषु दृश्यते । उक्तं च काटके— "एतद्धै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः । एतेनैवाय-तनेनैकतरमन्वेति " इत्यादिना । एवं च सोपानारोहणन्यायेन सगुणोपासनया क्रमशो निर्गुणस्वरूपे स्थितिः स्यादेव । तज्जपं मनसि—ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेति तदर्थचिन्तनं च पौनःपुन्येन चेतसि निवेशनमुपासना । उपासनाफलं तु चित्तकाग्र्यम् । तस्मिन् सत्य-न्तरात्मसाक्षात्कारो भवति । अन्तराया श्च समूलघातं हता भवन्ति । अन्तरायस्तु विघ्नः । राजमार्गे तस्करा इव पथिकस्य योगमार्गे बहवो विघ्नकारका योगिनः सन्ति । तत्प्रशमस्तु—अर्थानुसन्धानपुरःसरं प्रणवं जपतो भवति । अर्थानुसन्धानप्रकार स्तु गुरुमुखाद् विज्ञेयः ।

आचार्यवतः पुरुषस्य सर्वार्थसिद्धिश्रवणात् । जपादिना योगावस्था-प्राप्तस्यान्तरायाभावः श्रूयते । उक्तं च श्वेताश्वतरे—

"न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीर-मित्यादिना ।"

योगान्तरायनिरूपणम् ।
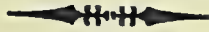
व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वा-नवस्थितत्वसञ्ज्ञका अन्तरायाः । तत्र पित्तादिदोषनिमित्तो ज्वरादिः व्याधिः । अकर्मण्यता योगानुष्ठानाक्षमत्वं वा स्त्यानम् । स्थाणु र्वा पुरुषो वेत्यादिभावाभावविरुद्धकोटिद्वयावगाहिज्ञानं संशयः । समाधि-साधनानामननुष्ठानं प्रमादः । तमोगुणोदये शरीरवाक्चित्तगुरुत्वात् कर्मण्यप्रवृत्तिरालस्यम् । विषयाभिलाषोऽविरतिः । अतस्मिंस्तद्बुद्धिः भ्रान्तिदर्शनम् । केनापि प्रकारेण समाधिभूमेरलाभोऽलब्धभूमिकत्वम् । समाधिभूमय स्तु मधुमत्यादयोऽग्रे वक्ष्यमाणाः । अयमेव श्रेयोमार्गोऽयं नेत्याकारिकाऽस्थिरता—अनवस्थितत्वम् । तत्तु यत्किञ्चिद्भूमिलाभेऽपि भवति, ते खलु चित्तविक्षेपकारकत्वादन्तरायाः । विक्षेप स्तु—अस्थिरता । तेच चित्तं ध्येयात् प्रच्याव्य श्रेयोमार्गपरिपन्थिविषयेषु क्षिपन्तीति ते

प्रणवजपेन योगाङ्गानुष्ठानेनवा प्रयत्नतो निवारणीयाः छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्तीति न्यायेन विक्षिप्तचित्तस्य दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वास-प्रश्वासाख्या अन्येऽपि सहचरा सन्ति। तत्र प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्। तत्तु–आध्यात्मिक–माधिभौतिकमाधिदैविकं चेति त्रिविधम्। तत्राध्यात्मिकं दुःखं शारीरं मानसं चेति द्विविधम्। व्याध्यादिजन्यं दुःखं शारीरम्। कामक्रोधाद्युत्थं दुःखं मानसम्। मनः शरीरं चाधिकृत्य प्रवर्त्तत इति व्युत्पत्तिवललभ्यम्। भूतान्यधिकृत्येतिव्युत्पत्तेः सिंह-व्याघ्रादि भूतजन्यमाधिभौतिकम्। देवानधिकृत्येति व्युत्पत्ते र्यक्षरक्षः पिशाचद्युत्थमाधिदैविकम। इच्छाविघातान्मनसः क्षोभो दौर्मनस्यम्। अङ्गकम्पनमङ्गमेजयत्वम्। आसनस्य चित्तस्थैर्यस्य च प्रतिबन्धकम। प्राणो यद्बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः। कोष्ठयवायुरेचनं प्रश्वासः। अस्वाभाविकौ श्वासप्रश्वासावात्र ग्राह्यौ। तौ हि चित्तस्थैर्यप्रतिबन्धकौ। एतेष्वन्यतमस्यापि सद्भावे चित्तं न कदाचित् स्थिरतां लभते। अत स्तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वमभ्यसनीयं सततम्। रामकृष्णादीनां मध्येऽन्यतममेकतत्वम्। न तु स्त्रीमूर्त्यादिकम्। कामाद्युपहतं हि चित्तं न स्थिरं स्यात्। एवंभूतमेकतत्वमभ्यस्यं येन सत्वगुणोदयः स्याद् रजगुण-स्तमोगुण श्च स्वाधिपत्यविस्तारायावकाशं न प्राप्नुयात्। एवं च सततमाहारविहारादौ रामादिविग्रहं चिन्तयतो योगिनः सर्वेऽन्तराया स्तिरोहिता भवन्ति, रजस्तममलापेतं प्रत्यर्थानियतं चित्तं च स्थिरं

स्यात् । चित्तं खलु स्वभावतो विषयप्रवणम् । विषयप्रवणत्वमप्यस्य रागद्वेषादिपुरःसरम् । तथाच स्वापेक्षयाऽधिकगुणवत्सु–ईर्षा दुःखितेषु द्वेषः पुण्यवत्स्वसूया परद्रव्येषु राग श्च तस्य स्यादेव । रागद्वेषादय एव तस्य मलाः । रजस्तमोगुणप्रभवा स्तु रागादयः । मलदिग्धं चित्तं यथा प्रतिबिम्बग्रहणसमर्थमेवं चित्तमपि सूक्ष्मवस्तुग्रहणक्षमं स्यादेव । उपायविशेषेण तस्य परिकर्मापरपर्यायं मलापनयनं चेत् कर्तुं शक्येत तच्चित्तं तु रजस्तमोमलरहितं शुद्धं भवेत् । तदुपाय स्तु सुखितेषु मैत्रीं दुःखितेषु करुणां पुण्यवत्सु मुदितां पापेषु चौदासीन्यं भावये-दिति । एवमस्य भावयत श्चित्तं शुद्धं स्यात् । तत स्तु तत्प्रसीदति । प्रसन्नमेकाग्रंस्थिरपदं लभते । उक्तं च गीतायाम् ।

> रागद्वेषवियुक्तै स्तु विषयानिन्द्रियै श्चरन् ।
> आत्मवश्यै र्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
> प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।

इति । प्राणायामाभ्यासेनापि चित्तं योगिनः स्थितिपदंलभते । प्राणस्य स्वाभाविकीं गतिं निरुद्ध्य प्रयत्नविशेषेण शास्त्रोक्तरीत्या-तत्संचारः प्राणायामः । स्वाभाविकगति स्तावदेकैकस्यां नाड्यां सूर्योदयमारभ्य सार्द्धघटिकाद्वयकालपरिमिता । मिलित्वाऽहर्निशं श्वासप्रश्वासाः षट्शताधिकैकविंशतिसहस्राणि सम्पद्यन्ते । नाड्य स्तु

पिङ्गलाद्याः। प्राणिनां दक्षिणा नाडी पिङ्गला, वामात्विडा, मध्ये सुषुम्णा। तत स्तत्कालपर्यन्तमिडया भवति। पुन स्तावत्कालपर्यन्तमेव पिङ्गलया ततः पुनरिडयेत्येवमहर्निशं घटीयन्तवन्नाडीद्वयेन वायु र्वहति। एकैकस्या घटिकाया श्च पलानि षष्टिः। एकैकस्मिन् पले षट् श्वासप्रश्वासा भवन्ति। यथा चैकस्यां घटिकायां षष्टयधिकशतत्रयसंख्यायां सार्द्धघटिकाद्वये नवशतानि। सूर्योदयमारभ्य पुनः सूर्योदयपर्यन्तं श्वासप्रश्वासाः शट्शताधिकैकविंशतिसहस्रसंख्याकाः सम्पद्यन्ते। प्राणायामा स्तु रेचकपूरककुम्भकलक्षणाः। गुरूपदेशतो नासिकया बाह्यं वायुमाकृष्य मध्ये तं निरुद्ध्य पुनः शनैः शनै स्तत्त्याग एवोक्तलक्षणः प्राणायाम इतिभावः। प्राणनिरोधेतु सर्वनिरोधाच्चित्तमप्यनाकुलं स्यात्। प्राणाधीनं हि सर्वेन्द्रियकार्यम्। प्राणः श्वासप्रश्वासद्वारा देहयन्त्रं परिचालयति, इन्द्रियाणि स्वस्वव्यापारप्रवणानि करोति, देहस्वास्थ्यं बलं च संरक्षयिष्यन् खाद्यद्रव्याणि रुधिराद्याकारेण परिणमयन् तत्सर्वं सर्वेष्वङ्गेषु च समर्पयति। प्राण एव मनःप्रेरकः। स च तच्चाञ्चल्यकारणम्। प्राणचलने मन श्चलनम्। तन्निरोधे तन्निरोधः। तथाच ये कामादयो मनोदोषाः प्राणगतिदोषजन्या स्तेऽपि प्राणनिरोधे निरुद्ध्यन्ते। अतः शास्त्रेषु प्राणायामोपदेशा दृश्यते। उक्तं च मनुना प्राणायामै र्दहेद् दोषान् धारणाभि श्च किल्बिषमिति। एवं च प्राणायामाभ्यासेन चित्तं यदा

निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं शान्तं शुद्धं च स्यात् तदा कस्मिन्नपि विषये तच्चेत् स्थाप्येत तद्विषयकं ज्ञानमनायासेनैव स्यात् । यदि सूर्ये यदि वा चन्द्रे तद्विषयकं ज्ञानंतत्क्षणादेव स्यात् । योगिनः प्रथमतः परीक्षार्थं स्वदेहे तद् धारयन्तोऽनेकान्याश्चर्यतत्त्वानि प्रत्यक्षीकुर्वन्ति । तथा च नासिकाग्रे धारयतो दिव्यगन्धज्ञानम् । जिह्वाग्रे दिव्यरसज्ञानम् । जिह्वामध्ये दिव्यस्पर्शज्ञानम् । ताल्वग्रे दिव्यरूपज्ञानं च जायते । तत् तत् साक्षात्काराद् योगे तत्फले च श्रद्धा दृढा स्यात् । जातश्रद्धस्य शीघ्रं चित्तमेकाग्रं स्यात् । तथाच विषयवती प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनीति यदुक्तं भगवता सूत्रकारेण तत्तु समीचीनमेव । साधनपादे सफलः सोपायश्च प्राणायामो वक्ष्यते । किञ्च हृदयपुण्डरीके भास्वरमाकाशकल्पं बुद्धितत्त्वं, तत्र चित्तं धारयतः सूर्यप्रभासदृशं मणिप्रभादृशं चन्द्रप्रभासदृशं वा सात्त्विकं ज्योतिः प्रत्यक्षीक्रियते । तत्प्रक्षादपि चित्तं स्थिरीभवेत् । तत्तु प्रशान्तं निर्मलं शुभ्रं च । तद्दर्शनाच्च शोक स्तिरोभवति । तस्मादिदं ज्योतिः विशोकशब्देनाभिधीयते । विशोकाः खलु परित्यक्तविषयाभिलाषा वीतरागाः शुकसनकादयः तेषां वीतरागाचित्तं धारयत श्चित्तस्थैर्यं स्यात् । किमिदं वैराग्यमहो–एतेषां यत्प्रभावदिते शान्तादान्ता जीवन्मुक्ता इति । किमपि सदालम्बनमावश्यकं चित्तस्थिरतायै । तंदालम्बनं ज्योतिरेव दिव्यगन्धादिज्ञानं तथा वीतरागाचित्तं वा भवतु तत्र न

कोऽपि विशेषः । एतेष्वेकंकिमपि ग्राह्यमेव । किम्वा यथाभिमत-ध्यानादपि चित्तप्रसादनम् । यथाभिमतध्यानं तु बाह्ये चन्द्रादावा-भ्यन्तरे नाडीचक्रादौ वा । एवं च पूर्वोक्तमैत्रीभावनादीनामभ्यासेन यदा चित्तनैर्म्मल्यं स्यात् तदा सूक्ष्मतमपरमाणुतो बृहत्तमपरमात्म-पर्यन्तमस्य सर्वं प्रकाश्यं वश्यंवास्यात् । सूक्ष्मे धारयतः परमाण्वन्तं स्थितिपदं चित्तस्य । स्थूले परममहत्त्वान्तं च सर्वं वश्यं स्यात् । कुत्रापि न प्रतिहतं स्यादितिभावः ।

समाधिलक्षणनिरूपणम् ।

अथ लब्धस्थितिकस्य चेतसो भूतेन्द्रियेषु पुरुषे च स्थापितस्य तादाकारापत्तिः समाधिरुच्यते । यथा स्फटिको जपाकुसुमाद्युपाधि-विशेषात् तत्तद्रूपोपरक्त उपाधिरूपाकारेण प्रतीयते । तथा निर्मलमपि चित्तं भूताद्युपरक्तं तत्तदाकारेण प्रतिभासते । चित्तस्य स्वत एव सर्वार्थसाक्षात्कारसामर्थ्यमस्ति विषयान्तरसम्पर्क-दोषादेव तत्प्रतिबद्ध्यते । प्रतिबन्धविगमे स्वत एव तदाकारापत्तिः स्यादेव । स्थूलं सूक्ष्मं च द्विविधं ज्ञेयम् । तत्रापि प्रथमतः स्थूलेऽ-भ्यासो विधेयः पश्चान्मनोबुद्ध्यहङ्कारेषु चित्तलयः । ततः परमात्मन्यपि

स्यादेव । सोपानारोहणन्यायेन लय स्तु क्रियमाणः फलदः । सहसा हि परमात्मनि चित्तं न समाधीयते । धानुष्को यथा स्थूलं लक्ष्यं भेत्तुं यतते पश्चात् सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतरं विद्ध्यति । तथात्राप्यभ्यास-पाटवात् क्रमशः परसूक्ष्मे दुर्विज्ञेयेऽपि परमात्मनि चित्तं लीयते। ततः पुनरभ्यासकृतं परिकर्म नापेक्ष्यते । कृतकृत्यो भवति जन्ममृत्यु-संसारबन्धनान्मुच्यते । असङ्गोऽस्मि, शुद्धोऽस्मि बुद्धोऽस्मि नमे जन्म नमे मृत्युर्नाहं शोकदुःखभाक् । नमे प्रकृतिसङ्गः स्वप्नेऽपि । सेयम-वस्था मुक्तिपदवेदनीया । तत्साक्षात्साधनं समाधिरिति सर्वत्र गीयते । सोऽयं समाधिः श्रुतिषु " यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसासह । बुद्धि श्च न विचेष्टति तमाहुः परमां गतिम् । तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् " इत्यादिना व्यपदिष्टः । सोऽप्यत्र सामान्यत उक्तपूर्वोऽपि विशेषबुभुत्सूनां कृते सवितर्कादिरूपेण विस्पष्टं निगद्यते । शब्दार्थज्ञानविकल्पै स्तर्कणं वितर्कः । विकल्प श्च परस्परभिन्नानामपि-गौरिति शब्दो गौरित्यर्थो गौरितिज्ञानमिति शब्दार्थज्ञानानामभेदेन प्रतिभासः । यदा बाह्यस्थूलभूतेषु वा शब्दार्थज्ञानविकल्पैः सङ्कीर्णा चित्तैकाग्रता जायते सा सवितर्कः सम्प्रज्ञातसमाधिरिति व्यपादिश्यते । विकल्पज्ञानाभावात् तु ध्येयाकारमात्रनिर्भासो निर्वितर्कः । सविचारो निर्विचार श्च समाधि स्तन्मात्रादिसूक्ष्मविषयकः । सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्—अलिङ्गं तु कुत्रापि न लीयते—इति प्रकृतिः ।

तत्र हि निरतिशयं सूक्ष्मत्वम् । शब्दार्थविकल्पसहितत्वेन देशकालधर्मावच्छिन्नः सूक्ष्मोऽर्थो यत्र प्रतिभाति स सविचारः । देशकालधर्मादिरहितो धर्मिमात्रतया सूक्ष्मोऽर्थो यत्र प्रतिभाति स निर्विचारः । अनुभवगम्या एते समाधयः केवलशब्दजालविस्तारेण सम्यक्तया न बोधयितुं शक्यते । सद्गुरुमुपगम्य तदुपदेशं यथा-यथमाकर्ण्य दीर्घकालमविच्छिन्नाभ्यासपाटवात् कः समाधिः केन च स भवतीति सम्यक्तया ज्ञातुं शक्यते । एते सर्वे समाधयः सबीजाः । बीजमालम्बनम् । तत्तु महाभूतान्यारभ्य प्रकृतिपर्यन्तम् । एषु समाधिषु सर्वापेक्षया निकृष्टः सवितर्कः समाधिः । निर्वितर्कः समाधिस्तु तदपेक्षया श्रेष्ठः । सविचारो निर्वितर्कापेक्षयोत्तमः । निर्विचारश्च तदपेक्षयोत्तमः । तन्नैर्मल्ये—आत्मज्ञानं योगिनां भवति । सततमभ्यस्यमानोऽयं योगो द्रढयति चित्तस्य स्वच्छस्थितिप्रवाहम् । न किमपि मालिन्यं तदा स्यात् । तथा सति—आत्मज्ञानम् । तदा समाहितचित्तस्य या प्रज्ञा जायते सा ऋतम्भरेतिगीयते । सत्यमेव बिभर्ति न तत्र विपर्यासगन्धोऽपि—इति । यद्बलाद् योगि सूक्ष्मं व्यवहितं विप्रकृष्टं च जानाति । एवं सति सेयं प्रज्ञा विशेषार्थत्वाच्छ्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया । आगमेनानुमानेन च सामान्यविषयकं ज्ञानं स्यात् । न हि तेन तेन विशेषमभिधातुं शक्यते । चित्तनैर्मल्ये तु य प्रज्ञा जायते सा विशेषाभिधायिनी । चित्तं व्यापकं प्रकाश-

स्वभावं स्वतः सर्वार्थग्रहणक्षममपि दर्पणवद् रजस्तमोमलोपेतं सन्मानमपेक्ष्याल्पविषयं भवति न सूक्ष्मवस्तुप्रकाशकम्। योगाभ्यासेन मलेऽपनीते तत् सर्वपदार्थप्रकाशकं भवति। तस्मात् तन्मलापनयनार्थं ग्रन्थ आग्रहातिशय्यं दृश्यते। तथा च मलनाशाय प्रयतमानस्य योगिनः क्रमशो या प्रज्ञा जायते सा सर्वार्थग्रहणक्षमा भवति। तदुक्तम्।

> प्रज्ञाप्रासादमारुह्याऽशोच्यः शोचतो जनान्।
> भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥

सा च प्रज्ञा—ऋतम्भरापदवेदनीया। समाधिप्रज्ञाप्रतिलम्भे तज्जो नवो नवः संस्कारो जायते। स च संस्कारो व्युत्थानसंस्कारप्रतिबन्धकः। निर्विचारसमाधिं पुनः पुनरभ्यस्यमानस्य योगिनः क्रमशः समाधिप्रज्ञोदये पूर्वकालाभ्यस्तसमुदागज्ञानसंस्कारो नश्यति। तन्नाशे समाधिप्रज्ञैव केवलमवशिष्यते। कालक्रमेण सोऽपि निरुद्ध्यते। तन्निरोधे तदभ्यासजन्यसंस्कारः कियत्कालं शिष्यते। न तदा किञ्चिच्चित्तविचेष्टितं न क्लेशो न कर्त्तव्यान्तरम्। चित्तं हि ते संस्काराः स्वकार्यादवसादयन्ति न पुनरधिकारविशिष्टं कुर्वन्ति। सम्प्रज्ञातसमाधेः सा पराकाष्ठा। तस्यापि निरोधे सर्वासां चित्तवृत्तीनां स्वकारणे प्रविलयान्निर्बीजः समाधिरुत्पद्यते। चित्तमपि तदा स्वप्रकृतिमाश्रयते।

प्रकृतिरपि स्वतन्त्रा स्यात्। सच्चित्प्रकाशस्वभावः पुरुष श्च प्रकृति-बन्धनान्मुच्यते। न स जनित्वा म्रियते न च मृत्वा जायते। औपचारिकमपि यज्जन्म मृत्यु श्चासीत् तदपि निवर्त्तते न पुनः शोकादिभाक्। तदा लोके स जीवन्मुक्त इति गीयते। प्रारब्धक्षया-भावे जीवन्मुक्तता, तत्क्षये तु कैवल्यम्। न खलु मुक्तौ किञ्चिदपि पार्थक्यम्। अन्यथा जीवन्मुक्तस्यापि पुनः संसारापत्तिः। सेयं मुक्तिः "विमुक्त श्च विमुच्यते" इत्यादिना शास्त्रेष्वभिलप्यते। प्रकृति-सङ्गनाज्ञाननिबन्धनं कर्त्तृत्वादिकमेव दुःखं चेज्ज्ञानेन नष्टं स्यात् तर्हि न कदापि दुःखलवोऽपि-आकङ्क्षयेत, उक्तं च गीतायाम्।

ज्ञानेन तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥

इत्यादिना।

मुक्तौ मतवैषम्यप्रदर्शनम्।
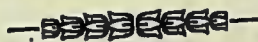
मुक्तावपि तैर्थिकानां मतभेदो दृश्यते। सोऽप्यत्र निगद्यते बुद्धिवैशद्याय। तथाहि–स्वातन्त्र्यं मृत्यु र्वा मोक्ष इति चार्वाकाः। आत्मोच्छेदो मोक्ष इति शून्यवादिनः माध्यमिकाः। आवरणाभावे

जीवस्य सततोर्द्धगमनं मोक्षः इति जैनाः । पारदरसेन देहस्थैर्ये जीवन्मुक्तिरेव मोक्ष इति रसेश्वरवादिनः । अशेषविशेषगुणोच्छेदो मोक्ष इति वैशेषिकाः । आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिरेव मोक्ष इति नैयायिकाः । स्वर्गादिप्राप्तिः मोक्ष इति मीमांसकाः । परानामिकाया वाचः साक्षात्कारो मोक्ष इति पाणिनीयाः । सर्वदुःखात्यान्तिकनिवृत्तिः परमः पुरुषार्थ इति सांख्याः । तत्वमस्यादिवाक्योत्थज्ञानेन मूलाज्ञाननिवृत्तौ स्वस्वरूपाधिगमो मोक्ष इत्यद्वैतवादिनो वेदान्तिकाः । पुरुषस्य निरुपाधिकस्वरूपेनवस्थानं मोक्ष इति योगिनः पातञ्जलाः । अत्र तु द्वयी मुक्तिरिष्यते । प्रथमोक्ता । अपरा तु वक्ष्यते । चार्वाकमतेन मुक्ति श्चेदिष्येत तर्हि विनायासेन तत्सिद्धौ श्रुतिस्मृतिसिद्धकर्मोपासनादीनामानर्थक्यं प्रसज्येत। स्वनाशाय पुरुषार्थाभावादात्मोच्छेदो न मोक्षः । शक्तिनाशे पुनरागमनध्रौव्यात् सततोर्द्धगमनं न मोक्षः । देहस्य विकारित्वेन तत्स्थैर्ये मोक्षकल्पनमुनमत्तप्रलपितमेव। सामान्यगुणसद्भावेऽपि मुक्ति श्चेत् पाषणादयोऽपि मुक्ताः । एवं ये यथैव मोक्षं प्रतिपादयन्तु—आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिं विनाऽनुपपन्न एव मोक्षः । चेतनस्याचेतनेन सह सम्बन्धो बन्धः । स एव दुःखमूलम् । आविद्यकसम्बन्धाभावे बन्धाभावात् सर्वदुःखनिवृत्तौ स्वस्वरूपेणावस्थानं मोक्ष इति मुख्यसिद्धान्तः । तत्रादावधिकृतस्य योगस्य लक्षणमभिधाय चित्तवृत्तिनिरोधे विप्रतिपत्तिं निराकृत्य प्रमाणादिवृत्ती र्निरूप्य योगो-

पायद्वयस्याभ्यासवैराग्याख्यस्य स्वरूप भेदं च यथायथं निर्णीय सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातभेदेन योगस्य मुख्यभेदमुक्त्वा विस्तरेणोपायान् प्रदर्श्य सुगमोपायप्रदर्शनपरतयेश्वरस्वरूपमाख्याय तत्र विप्रतिपत्ति निर्दिश्य प्रसङ्गक्रमेण जीवस्वरूपे मतभेदान् संकीर्त्य चित्तविक्षेपतत्प्रतिषेधोपायानुपवर्ण्योसंहारद्वारेण च समाधेः सामान्यलक्षणमभिधाय सबीजपूर्वको निर्बीजसमाधिरुक्तः ।

इति योगतत्त्वसंग्रहे प्रथमः पादः समाप्तः ॥

द्वितीयपादः

क्रियायोगनिरूपणम् ।

प्रथमे पादे सफलः सविशेष श्च समाधिः संस्कृतचेतसाम-भिहितः । तस्य ये येऽन्तराया, यथा यथा च तेषां निवृत्तिर्येन येनो-पायेन च तल्लाभः सोऽपि निर्दिष्टः । " मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धय " इत्यादि न्यायेन न खलु सर्वे संस्कृतचेतसो यत एक एव प्रकारः सर्वत्राद्रियेत । व्युत्थितचेतसोऽपि सन्ति, तेषामपि समाधि तत्फलं च यथा स्यादस्मिन् पादे—आपादसमाप्ते र्विस्तरतोऽभिधास्यते । तत्र ये खलु पूर्वपूर्वजन्मार्जितपुण्यबलात् संस्कृतचित्ता स्तेऽभ्यासवैराग्याभ्यां योगप्रतिपक्षवृत्ती र्निरुद्ध्य धारणाध्यानसमाधि-रूपज्ञानयोगानुष्ठानात् कृतकृत्याः स्युः । न तेषां बहिरङ्गानुष्ठाना-पेक्षा । उक्तं च गीतायाम् ।

> आरुरुक्षो र्मुने र्योगः कर्म कारणमुच्यते ।
> योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

इत्यादिना । मन्दाधिकारिणां कृतेऽस्ति चित्तशुद्धै क्रियायोगावश्यकता । स च क्रियायोगः तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानंचेति त्रिविधः तत्र व्रतानियमाद्यनाष्ठनिन शरीरेन्द्रियशोषणात्मकं तपः । ब्रह्मचर्यसत्यमौनद्वन्दसहनमिताहारचान्द्रायणादीनि व्रतानियमादीनि प्रसिद्धानि । उक्तं च याज्ञवल्केन.

विधिनोक्तमार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं प्राहु स्तपसां तप उत्तमम् ॥

जन्मजन्मान्तरार्जितविषयवासनाऽन्तरेण तपो न तनुतामापद्येतेतितदुपादानम् । योगान्तराया विषयवासनाः । तपसा तन्नाशः स्यात् । अतो नातपस्विनोयोगः सिद्ध्यति " इतियद् भगवता व्यासेनोक्तं तत्तु नाकाण्डे । तत्तपोऽपि यथा चित्तप्रसादविरोधि न स्यात् तथा प्रयत्न आस्थेयः । चित्तक्षोभे हि तदेकाग्रता न स्यादिति । गुरुतः शास्त्रत श्च केन तपसा योगः सिद्ध्यत् तदाकर्ण्य मृदु तपः सततमासेव्यम् । प्रणवादिमन्त्राणां जपो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं वा स्वाध्यायः । ते च मन्त्रा द्विविधा वैदिका स्तान्त्रिका श्च । द्विविधा वैदिकाः प्रगीता अप्रगीता श्चेति । तत्र प्रगीताः सामानि । अप्रगीता ऋचश्छन्दोबद्धाः । यत्र न पादव्यवस्था नापि गीति स्तादृशा स्तद्विलक्षणा याजुषाः । उक्तं च जैमिनिना.

"तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था"
"गीतिषु सामाख्या"
"शेषे यजुः शब्दः"

इति। तान्त्रिकाः पुनः स्त्रीपुंनपुंसकभेदात् त्रेधा। तत्र स्वाहान्ताः स्त्रीमन्त्राः। नमोऽन्ताः नपुंसकाः। शेषाः पुमांसः प्रसिद्धा वश्यादिकर्मणि। ईश्वरप्रणिधानं नाम सर्वासां क्रियाणां परमगुरौ परमेश्वरे फलानपेक्षतया समर्पणम्। सर्वकर्मफलसन्न्यासो वा। उक्तं च गीतायाम्।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

इत्यादिना। क्रियाफलसन्न्यासोऽपि प्रणिधानान्तःपातिभक्तिविशेष एव। फलानभिसन्धानेन कर्मकरणात्। गीयते च गीतायां भगवता—

कर्मण्येवाधिकारोऽस्ति मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

इत्यादिना सा च क्रिया योगसाधनत्वादायुर्वै घृतमितिवल्लक्षणया योगत्वेन व्यपदिश्यते। एवं च सततं "न कर्मणामनारम्भा-

नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते" इति न्यायेन निष्कामकर्मयोगेन कालमति-
वाहयतां क्लेशाः क्षीणा भवन्ति समाधि श्च भवति ।

क्लेशनिरूपणम्

क्लेशहेतुकत्वात् क्लेशाः । ते हि चेतसि वर्त्तमानाः समाधिं-
निरुन्धन्ति गुणाधिकारं च द्रढयन्ति । ते च क्लेशा अविद्याऽस्मिता-
रागद्वेषाभिनिवेशभेदेन पञ्चधा । तत्राऽविद्या रागादीनां मूलकारणम् ।
तत्सत्वे तत्सत्वं तदभावे तदभाव इति । ते क्लेशाः पुनः सदा न
समानाकारतया तिष्ठन्ति । कदाचित् ते प्रसुप्ताः कदाचित् तनवः
कदाचिद्विच्छिन्ना उदारा श्च भवन्ति । शक्तिरूपेणावतिष्ठमानाः
प्रसुप्ताः । वीजे वृक्षशक्तिवच्चेतसि वर्त्तमानाः सदैव विदेहप्रकृति-
लयानाम् । वीजाद् यथाकालं यथाऽङ्कुरोद्गमः स्यात् तथा वीजभाव-
मुपगतेभ्य स्तेभ्यः संसाराङ्कुर उद्गच्छति—इति ते प्रसुप्ताः । वासना-
रूपेण स्थिता दग्धवीजभावकल्पाः शक्तिहीनाः सूक्ष्मा स्तनवः ।
ये च केनचिद् वलवताऽभिभूता स्तिष्ठन्ति ते विच्छिन्नाः । स्वकार्ये-
रता लब्धवृत्तिका क्लेशा उदाराः । यथैवते तिष्ठन्तु तेषां क्रियायोगेन
यथा नाशः स्यात् तथा प्रयतनीयम् । अमरा देवा इत्याद्यनित्येषु

नित्यत्वबुद्धिरशुचौ स्त्रीकाये शुचित्वबुद्धि भाविदुःखे भोगे सुखकरत्व-बुद्धिरनात्मनि देहादावात्मत्वबुद्धिरविद्या । कायस्याशुचित्वं भगवता व्यासेनापि वर्णितम् । तद् यथा—

> स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निस्यन्दनान्निधनादपि ।
> कायमाधेयशौचत्वात् पण्डिता ह्यशुचिं विदुः ॥

इति । वस्तुत स्तु न देवा अमरा, न कायः शुचि, र्न भोगः सुखहेतुको, न देहा आत्मानः । तत्र तत्र तत्तद्विपरीतबुद्धिः यत्प्र-भावाद् भवति साऽविद्या । उक्तं च—

> अनात्मनि देहादावात्मबुद्धि स्तु देहिनाम् ।
> अविद्या तत्कृतबन्ध स्तन्नाशो मोक्ष उच्यते ॥

इति । ननु केयमविद्याश्रीयते । पूर्वपदार्थप्राधान्येनऽमाक्षिकं वर्तन इति वत् । उत्तरपदार्थप्राधान्येन वा राजपुरुष इति वत् । अन्यपदार्थप्राधन्यिन वाऽमाक्षिको देश इति वत् तत्र नाद्यः । विद्या-भावस्याविद्यात्वेऽमानरूपाया स्तस्या रागादिकारणत्वानुपपत्तेः । अभावस्य भावकारणत्वे सर्वत्र सर्वसौलभ्याच्च । नवा भावाभावयोः सामानाधिकरण्यं कुत्रचन दृष्टचरम् । तस्मान्न विद्याभावोऽविद्या । न द्वितीयः । रागादिष्वन्यतमस्य कस्यचिदभविन युक्ताया विद्याया रागादिबीजत्वानुपपत्तेः । न तृतीयः । नास्ति विद्या यस्याः साविद्या

विद्यारहिता बुद्धिरिति समासार्थसिद्धौ तस्या विद्याभावमात्रेण रागादिनिदानत्वाभावात्। स्वतन्त्रपदार्थद्वयाभावान्नात्र द्वन्दसमासः शक्यशङ्कः। न च पक्षत्रयेऽप्यविद्याशब्दसिद्ध्यभावान्नास्ति सेति गम्यत इति वाच्यम्। पर्युदासमाश्रित्याविद्याशब्देन विद्याविरोधिमिथ्याज्ञानस्याभिधानात्। पर्युदासो भेदः तत्र च क्वचिद्विरुद्धोऽर्थोऽपि स्यात्। यथाऽधर्मशब्दस्य धर्मभिन्नो धर्मविरोधी पापरूपोऽर्थः। तथा विद्याशब्दस्य विद्याभिन्नं विद्याविरुद्धं मिथ्याज्ञानमर्थः। उक्तं च वृद्धैः—

नामधात्वर्थयोगे तु नैव नञ् प्रतिषेधकः।
वदत्यब्राह्मणाधर्मावन्यमात्रविरोधिनौ॥

इति। एवमविद्या न विद्या नापि विद्याभावः किन्तु विद्याविपरीतं ज्ञानान्तरम्। बुद्धिपुरुषयोरेकस्वरूपापत्तिस्तादात्म्यविभ्रमो वाऽस्मिता। अत्यन्तविविक्तयोस्तयोर्लोहितस्फटिकयोरिवाविद्ययाऽविभागप्राप्तिः स्यात्। पुरुषे बुद्धिवृत्तेः पुरुषस्य च बुद्धिवृत्तौ प्रतिबिम्बनादविभागप्राप्तिस्ततस्तु पुरुषोऽस्मिन्—शास्त्रे दृक्छक्तिरिति व्यपदिश्यते बुद्धिश्च दर्शनशक्तिरिति। एवं च बुद्धितः परमार्थतः पृथग्भूतस्य पुरुषस्य सुखदुःखादिज्ञानाश्रयोऽहमित्येक एव प्रत्ययस्तयोरेकत्वारोपे प्रमाणम्। सा चास्मिता

रागस्य कारणम् । सुखाभिज्ञस्य तत्सजातीयसुखतत्साधनेषु स्पृहाऽसक्ति स्तृष्णा वा रागः । सकृच्चेत् सुखमनुभूयेत तत्तु कालान्तरे स्मृतिपथारूढं सत् यां भोगेच्छां जनयेत् सा रागशब्देन व्यपदिश्यमाना । अभिलषितवस्तुप्राप्तिप्रतिबन्धके सति रागाद् द्वेष उपजायते । दुःखाभिज्ञस्य दुःखतत्साधनेषु तदनुस्मृतिपूर्वकोयोऽयमनभिलाषः स द्वेषः । दुःखप्राप्तौ दुःखाभिज्ञस्य या ताञ्जिहासा तत्प्रति क्रोधोवा वितृष्णा वा द्वेषः । रागद्वेषौ यस्य चेतसि बद्धमूलौ तस्याभिनिवेशः स्यात् । पूर्वानुभूतमरणदुःखस्य जन्तुमात्रस्य तद्विषयकः त्रासोऽभिनिवेशः । मरणं हि दुःखस्यावधि । तत्तु यस्य पूर्वजन्मन्यनुभूतं तस्याऽशिशोः सर्वस्य मारकप्रयत्नविलोकनाद् भवति खलु या मनोवृत्ति र्मा मे मृत्यु र्भूयात् किन्तु जीव्यासमिति सोऽभिनिवेशः । एतेन पूर्वजन्मसद्भावे प्रमाणमपि दर्शितम् । येन पूर्वजन्मनि मरणमनुभूतं तस्येहजन्मनि तद्विषयक स्त्रासः स्यादिति । अनुभवस्यैव संस्कारद्वारा स्मृतिजनकत्वात् । सर्वत्र रूढोऽयमभिनिवेशः । विद्वानपि मा मे शरीरवियोगः स्यादिति मरणाद्बिभेति । देहादौ हि जीवोऽविद्यया तत्र तत्रात्मबुद्धिं विधायाऽहन्ताममतापाशबद्ध स्तत्तद्वियोगात् त्रस्यति । एवं चाविद्यैव जननी समेषाम् । अविद्यासद्भावेऽस्मिता ततो रागो रागाद् द्वेषो द्वेषादभिनिवेश इति । ते चयोगपरिपान्थिन इति क्रियायोगस्यावश्यकता । प्रथमत स्ते क्रियायो-

गेन तनूकृता वा सूक्ष्मा वा संस्काररूपमापन्ना वा भवन्ति । पश्चादष्टाङ्गयोगाभ्यासेन समाधिलाभे चित्तस्य कर्त्तव्यान्तराभावात् स्वकारणे लये ते हेयाः स्युः । स्थूलाः क्लेशवृत्तयः सुखदुःखमोहात्मिका स्तु ध्याननाश्याः । लब्धवृत्तिका उदारा वा क्लेशाः स्थूलत्वेन व्यपदिश्यमानाः । ते च सुखदुःखादीन्—जनयन्ति । तेषां नाश स्तु ध्यानेन । तदपि ध्यानं न सकृत् किन्तु दीर्घकालं नैरन्तर्येणासकृत् क्रियमाणं फलदम् । एवं च प्रक्षालनेन क्षारसंयोगेन निर्णेजनेन च यथा वस्त्रमला अपनीयन्ते तथा क्रियायोगेन तनूकृताः सुखादयो ध्यानेन हेया भवन्ति । क्लेशानां स्थूला वृत्तयः स्वल्पप्रतिपक्षाः । सूक्ष्मा स्तु महाप्रतिपक्षाः । ते चेत् क्रियायोगेन ध्यानेन च न नाश्या स्ततो नापि समाधिर्नापि मुक्तिः । तर्हि सूक्ष्माः कर्मप्रवृत्तिहेतवः । तत श्च पुण्यापुण्यकर्माचरणात् सूक्ष्माः संस्कारा जायन्ते ते कर्माशयशब्देन व्यपदिश्यन्ते । कर्माशयः संस्कारो वासना इत्येते पर्यायाः । उत्कटानुत्कटभेदेन तेषां द्वैविध्यं शास्त्रतः प्रत्यक्षानुभवत श्च प्रतीयते । ब्राह्मणहननेन साधूनामप्रियाचरणेन गुरुतल्पादिगमनेनोत्कटतपस्यादिना च ये पुण्यापुण्यकर्मसंस्कारा स्ते खलु त्रिभि र्मासै स्त्रिभिः पक्षै स्त्रिभि र्वत्सरै स्त्रिभि र्दिनै र्वेहैव सद्यः पच्यन्ते । यथा नन्दीश्वर स्तीव्रतपस्यया परमेश्वरमाराधयन्निहैव देवत्वमवाप । विश्वामित्रनामकः क्षत्रियराजा तीव्रतपःप्रभावेन ब्राह्मणत्वं दीर्घायुष्यं

च लेभे। नहुषो देवानामिन्द्र ऋषीणामपराधं कुर्वन् स्वकं परिणामं हित्वा तत्क्षणादेव सर्पो बभूव। अहल्यानाम्नी साध्वी-ऋषिपत्नी पाषाणमयी संजाता। एवमनेकान्युदाहरणानि शास्त्रेषूपलभ्यन्ते। प्रत्यक्षतोऽपि दृश्यते ये यथा यस्मिन् विषये प्रयतन्ते ते तत्र तत्र परिश्रमानुरूपं फलं शीघ्रं विलम्बेन वा प्राप्नुवन्ति। एवं तीव्रपुण्यापुण्यकर्मस्तु प्रत्यक्षमेव फलं दृश्यते। अनुत्कटा स्तु जन्मान्तरवेदनीया न सद्यः परिपच्यन्तेनापि कालनियमः। तथाचोत्कटा दृष्टजन्मवेदनीया अनुत्कटा श्च जन्मान्तरवेदनीयाः इतिफलितम्। क्लेशे सति शुभाशुभकर्मप्रवृत्तिः कर्माचरणाच्च विपाकः। जात्यायुर्भोगा विपाकाः। जाति र्जन्म। आयु र्जीवनकालो। भोगः सुखदुःखान्यतरसाक्षात्कारः। तत्र न तावदेकं कर्म-एकजन्मकारणम्। सञ्चितकर्मणां साम्प्रतिकस्य च फलक्रमानियमात् कर्मस्वनाश्वासप्रसङ्गः स्यादिति। न चैकं कर्मानेकस्य जन्मनः कारणम्। अनेकेषु सत्सु-एकस्य तथात्वेऽवशिष्टानां विपाककालाभावः प्रसक्त इति। नाप्यनेकं कर्मानेकस्य-जन्मनः कारणम्। अनेकजन्मनां क्रमेण वाच्यत्वे प्रथमपक्षोक्तदोषप्रसङ्गः इति। तस्मात्-जन्मप्रायणान्तरे कृतोऽनेककर्मजन्यसंस्कारप्रचयो गुणप्रधानभावेनावस्थितो मरणकाले प्रारब्धभोगसमाप्त्या लब्धावसर एकप्रयत्नेन मिलित्वा मरणं प्रसाध्यैकमेव जन्म सम्पादयति। आयुर्भोग श्च तत्तत्कर्मानुरूपमेव भवति तस्मिन्-जन्मनि।

केन कर्मणा का जातिः स्यात् तत्तु गहना कर्मणो गतिरिति न्यायेन वक्तुमशक्यम् । पुण्यकर्मणा पुण्यलोकप्राप्तिः पापकर्मणा तिर्यग्-योनिलाभः, पुण्यापुण्यकर्मणा मनुष्यलोकावाप्ति निष्कामकर्मणा तु चित्तशुद्धौ ज्ञानलाभान्मुक्तिरिति शास्त्रसिद्धान्तः । तस्मान्निष्कामकर्मानुष्ठानाय प्रयत्नः करणीयो येन न जन्म नायुर्नोऽपि भोगः स्यात् । अन्यथा पुण्यं कृत्वा स्वर्गं वा गच्छेत् कोऽपि क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं गच्छन्तीति न्यायेन पुनरागमनध्रौव्यात् सुखदुःख-भोग स्तादवस्थ्य एव । यत्र कुत्रापि जायमानो दीर्घायुष्यमल्पायुष्यं वा लभेत, दिव्यरमनीरत्नमपि प्राप्नुयात्, प्रचुरधनधान्यादिभाक् च भवेत्; कुत्रापि पुण्यहेतुकसुखतः पापहेतुकदुःखत श्च नापि निस्तारः । विषयसुखतो राग स्ततो द्वेष स्तत श्च कर्माचरणप्रवृत्तिः कर्माचरणाच्च पुण्यापुण्यकर्माशयप्रचय स्ततः स्तुः पुनः पुनः सुरनरतिर्यग्योनिषु जन्ममृत्युधारापरम्परा विवेकिनां योगिनां दुःखायैव । भोगमात्रस्य हि परिणामदुःखता तापदुःखता संस्कार-दुःखता सत्वादिगुणवृत्तिविरुद्धता च तेषां सर्वत्र दुःखबोधे बीजम् । " न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति " इति-इन्द्रियाणां भोगाभ्यासेन वैतृष्ण्यं न स्यात् । योऽयं चेतनाचेतनसाधनाधीनो भोग स्तत्र तत्र सुखानुभवेन भवति रागः । रागोऽपि पुनः पुनः स्तत्प्रेप्सया वर्द्धते । काम्यलाभेऽपि भोगे रोगभयमितिन्यायेन व्याधिना

था दुःखं भवेत्। भोगसंकोचेऽपि दुःखम्। अत एवास्ति भोगस्य परिणामदुःखता। यदि भोगो नश्येत् तर्हि किं स्यात्, तत्प्रतीकारोपायोवा कः। कथं स चिरस्थायी वर्द्धेत कथं वा कदापि तस्य व्याघातो न स्यादिति चिन्ता। तथा भोगान्यथाभयाद् दुःखं भोगबाधकेषु च द्वेषः समुत्पद्यत एव। स एव तापः। एवं च भोगस्यास्ति तापदुःखता। भुज्यमान स्तु भोगः संस्कारमारभते संस्काराच्च पुन र्भोगप्रवृत्ति रित्येवं क्रमेणास्ति संस्कारदुःखता भोगस्य। क्षणात् सुखोत्पादकतया क्षणाद् दुःखोत्पादकतया क्षणाद्वा मोहापादकतया प्रकाशप्रवृत्तिस्थितिशीला, सत्वादिगुणवृत्तयः परस्परानुग्रहतन्त्रिणोऽपि—अभिभाव्याभिभावकभाविनावस्थानात् परस्परविरोधिनः। अत एव सर्वं दुःखं विवेकिनो नेतरेषाम्। अक्षिपात्रकल्पा हि योगिनः। यथा ऊर्णातन्तु रक्षिपात्रे न्यस्त उद्वेजयति नान्यत्र गात्रावयवेषु। एवमेवैतानि दुःखान्यक्षिपात्रकल्पं योगिनमेव दुःखयन्ति नेतरम्। यद् दुःखं भोगेन क्षपितं यच्च भोगारूढं तद्धानाय न प्रयासः। किन्तु संसारबीजं यद्भावि दुःखं तदेव हेयकोटिप्रविष्टम्। योगिनं तदेव क्लिश्नाति। तद्धानमपि तद्बीजसद्भावे न स्यात्। तद्बीजं तु द्रष्टृदृश्ययोः संयोगः। द्रष्टाऽत्मा दृश्यं तु बुद्धिसत्वम्। सुखदुःखमोहा बुद्धिविकाराः। बुद्धिसत्वमन्तःकरणं वा यदेन्द्रियप्रणालीकया घटपटादिविषयाकारतया सुखाद्याकारतया वा परिणमेत

तदा तस्मिन् परिणामे वृत्तिपदाभिलप्ये यच्चित्प्रोज्ज्वलनं तत्–शास्त्रेषु चित्प्रतिसंक्रमतया चिच्छायापत्तितया वा व्यपदिश्यते। लौकिका स्तु तदेव दर्शनं ज्ञानमुपलब्धिरिति व्यपदिशन्ति। एवं च दृश्यं परिणामस्वभावबुद्धिसत्त्वमन्तःकरणं वा। द्रष्टा चापरिणामी तत्सान्निधिस्थ आत्मा। तयो र्यः संयोग एकीभावो मेलनं वा हेयस्य-दुःखस्य हेतुः। वस्तुत स्तु न पुरुषे संयोगः–स हि–असङ्गः। ततो नापिदुःखम्। दृश्यगतं दुःखमाविवेकसंयोगेन तत्रोपचर्यते। स च तत्फलस्य भोक्ता। त्रिगुणं भूतेन्द्रियात्मकं भोगायाऽपवर्गाय च दृश्यम्। गुणत्रयात्मिका प्रकृति स्तदुत्पन्नानि भूतभौतिकानि च भोगापवर्गप्रयोजकानि विवेकिनां मोक्षमविवेकिनां भोगं च जनयन्ति। सा च त्रिगुणा प्रकृति श्चतुरवस्था। विशेषावस्थाऽविशेषावस्था लिङ्गावस्थाऽलिङ्गावस्थेति। तत्र विशेषाः प्रकृतितो व्यावृत्ता भूतेन्द्रि-यादयः षोडशविकाराः। अविशेषा विकाराणां प्रकृतय स्तन्मात्राण्य हङ्कार श्च षट्। लिङ्गं प्रकृते राद्यं कार्यं महत्तत्वम्। या सूक्ष्मा-दपि सूक्ष्मतमा बीजावस्था यतो महदादिभेदभिन्नं जगदुत्पद्यते साऽ-लिङ्गावस्था। एतत्सर्वमुक्तपूर्वमपि बुद्धिवैशद्याय प्रकारान्तरेणो-पन्यस्यते। आपाततो यो द्रष्टेति प्रतीयते स स्वभावतो ज्ञानस्वरूपः शुद्धः बुद्धिवृत्तौ प्रतिबिम्बनात् तस्य द्रष्टृत्वम्। स पुरुषो न बुद्धेः सरूपो नात्यन्तं विरूपः। ज्ञाताज्ञातविषयत्वेन परिणामिनी बुद्धिः।

येन सहेन्द्रियसन्निकर्ष स्तस्य ज्ञातत्वं येन सह न तस्याज्ञातत्वम् । पुरुष स्तु सदा ज्ञातृत्वेनापरिणामी । परार्था बुद्धिः स्वार्थ स्तु पुरुषः । त्रिगुणा प्रकृति स्ततोऽचेतना । गुणानामुपद्रष्टा पुरुष श्चेतनः । अतोन सरूपो नापि विरूपः । यतो हि स बौद्धं प्रत्ययमनुपश्यन्न-तदात्मापि तदात्मा सम्पद्यते । एवं च तस्य बुद्धिवृत्तिप्रतिबिम्बनाद् द्रष्टृत्वं प्रतिबिम्बाधारत्वेन प्रकृतितत्कार्याणां दृश्यत्वम् । दृश्यानां विशेषादिरूपेण परिणामः पुरुषभोगापवर्गप्रयोजनाय । जडं लौहं यथा स्वत श्चलनरहितमपि–अयस्कान्तमणिसान्निध्यतः प्रचलति । तथा प्रकृतिरपि पुरुषसान्निधानवशात् सुखदुःखाद्याकारेण परिणता पुरुषस्य भोगं सम्पादयति । यः पुरुषो योगाभ्यासेन प्रोक्तं परिणामतत्वं जानाति स विवेकी पुन स्तत्परिणामं न पश्यति किन्तु मुच्यते । नर्त्तकी नाट्यं दर्शयित्वा यथा रङ्गभूमिं पुनर्नोपसर्पति तथा प्रकृतिरपि भोगापवर्गौ सम्पाद्य विरतव्यापारा कृतार्थं पुरुषं नोपगच्छति । नापि प्रकृतिनाशो यतः सर्वमुक्तिः सम्भाव्येत । नित्या हि सा । कृतार्थं प्रति नष्टाऽपि–अकृतार्थं प्रति न तथा । योऽयं संयोगो हेयहेतुतया व्यपदिष्टः स स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः । स्वं दृश्यं तस्य शक्ति र्जडत्वेन दृश्यत्वयोग्यता । स्वामी पुरुष स्तस्य शक्ति श्चेतनत्वेन द्रष्टृत्वयोग्यता । तयोः स्वरूपयो र्या क्रमाद् भोग्यत्वेन भोक्तृत्वेन च प्रतीति स्तस्य हेतुः संयोगः स्वस्वामिभावाख्यः कार्यगम्यः सम्बन्धः ।

एवं च नायं संयोगो घटकुड्यादिवद् वेदितव्यः किन्तु यया रीत्या जडा प्रकृति श्चेतन श्च पुरुषो दृश्यत्वेन द्रष्टृत्वेन च प्रतीयते तादृशरीतिविशेषोऽत्र संयोगपदाभिलप्यः । स एव संयोग आविद्यकः । सत्यामविद्यायां संयोगः । अविद्या भ्रान्तिज्ञानं भ्रान्तिज्ञानसंस्कारो वा। तत्स्वरूपं तूक्तपूर्वम् । योगाभ्यासेन चित्तनिरोधे संयोगनाशो भवेत् । तादृशनाश एव हानं यच्चतुर्व्यूहान्तःपातित्वेन प्रागुपदिष्टम् । तद्धानमेव दृशेः पुरुषस्य कैवल्यम् । पुरुषस्य चिद्रूपतयाऽवस्थानं कैवल्यम् । तद्धानस्योपायस्तु विवेकख्यातिरविप्लवा । अन्या प्रकृतिरन्य श्च पुरुष इतिज्ञानं विवेकख्यातिः । नाहं शरीरमिन्द्रियं मनोऽहङ्कारो वा किन्तु निर्लेप श्चिद्रूपः सदाशिवः–इति दृढप्रतीतो तज्जन्या याऽभूतपूर्वा प्रज्ञा सा विवेकख्यातिः । ततः सुखदुःखबीजे मिथ्याज्ञानमपि नश्यति । तन्नाशे गुणै रसंयोगः पुरुषस्य । एवमविच्छिन्ना सा विवेकख्यातिर्हानोपायः । ननु–एवंज्ञानादेव सर्वदुःखनिवृत्ते कृतं तर्हि निर्बीजसमाधिनेति चेन्न । परवैराग्योत्थासम्प्रज्ञातयोगस्यापि तद्द्वारतया मोक्षहेतुत्वाशयात् । अपरवैराग्याद्विवेकख्यातौ सुस्थितायां गुणवैतृष्ण्यरूपपरवैराग्योदयेऽसम्प्रज्ञातयोगस्तत स्तु सर्वदुःखोपरम इति परम्परया हानोपायः ख्यातेः । एवंख्यातिमतो योगिनः सप्तप्रकाराः प्रज्ञा भवन्ति । ज्ञातव्यं सर्वं ज्ञातं न किञ्चिदवशिष्यते–इत्येका । हातव्या बन्धहेतवः सम्प्राति तु सर्वे

हता न किञ्चिद्धेयमस्तीति द्वितीया । प्राप्तं प्रापणीयं न किञ्चिदिदानीं प्राप्तव्यमस्तीति तृतीया । सर्वं कृतमनया ख्यात्या न किञ्चित्कार्यान्तरमस्तीति चतुर्थी । एताः कार्यविमुक्तिसञ्ज्ञिकाश्चतस्रोऽवस्थाः । अतः परं चित्तविमुक्तिः त्रिधा । तत्र कृतार्था मे बुद्धिरित्येका । बुद्ध्यादिरूपा गुणा अपि मे गिरिशिखरच्युता ग्रावाण इव च्युता न पुनः स्वभूमौ स्थितिं यास्यन्तीति द्वितीया । सात्मीभूत श्च मे समाधिः शीघ्रमहं स्वरूपप्रतिष्ठः स्यामिति तृतीया । एतां सप्तविधां प्रज्ञामनुपश्यन् पुरुष कुशल इत्याख्यायते । श्रद्धया योगाङ्गानुष्ठानात् क्रमशो रागादयोऽशुद्धयः क्षीयन्ते, क्षयक्रमानुसारेण ज्ञानं च विवर्द्धते । सा च विवृद्धि र्यदा परां काष्ठां प्राप्नुयात् तदैव विवेकख्याति रुदेति । योगाङ्गानुष्ठानं तु चित्तमलप्रतिबन्धकनिवृत्तिद्वारा तत्प्राप्तिकारणम् ।

अष्टाङ्गयोगस्वरूपनिर्वचनम् ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिभेदेनाष्टविधानि योगाङ्गानि । तत्र कानिचिद् योगस्य साक्षादुपकारत्वेनाऽन्तरङ्गसाधनानि यथा धारणादीनि । कानिचन च योगप्रतिपक्ष-

निरासद्वारेण बहिरङ्गानि । यथा यमादीनि । आसनादीनामुत्तरोत्तरोपकारकत्वम् । यथा सत्यासनजये प्राणायामस्थैर्यमिति । एतत्सर्वमभिधास्यमानमुपरिष्टात् सविस्तरम् । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमपरिग्रह श्चेति यमाःपञ्चधा । कायेन मनसा वाचा सर्वभूतानामपीडनमाहिंसा । केनापि कर्मणा कस्यापि पीडा यथा न स्यात् तथा चेत् प्रयतेत तदैवाहिंसा सिध्द्येतन केवलं प्राणिवधनिवृत्तिमात्रेण । उत्तरे ते सत्यादयो यमानियमा स्तन्मूला इति योगशास्त्रेषु सा प्रथममुपादीयते । शौचादौ तुक्षुद्रजन्तुहिंसाऽपरिहार्या । प्राणायामेन तज्जन्यपापदाहे साऽहिंसैव स्यात् । यथादृष्ट यथा श्रुतं यथानुभूतं च तथा चेद् वचसोच्येत मनसा च संकल्प्येत तत्सत्यम् । वागुक्ता यदि न वञ्चिता भ्रान्ताऽर्थशून्या वा स्यात् सा भूतोपकाराय भवेत् । अन्यथा सत्यमपि यदि भूतोपघाताय तर्हि तत् पापाय भवेत् । तेन पुण्याभासेन नरकं च गच्छेत् । तस्मात् सर्वभूतहितं परीक्ष्य सत्यं ब्रूयात् । अन्यथा मौनमेव वरम् । अप्रियसत्यस्थलेऽपि प्रथा तादृशी । उक्तं च—

" सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् "

इति । परद्रव्यापहरणं स्तेयम् । तदभावोऽस्तेयमस्पृहारूपम् । मनसाऽपि कदाचित् स्तेयसंकल्पो न स्यात् तदेव तत्सिद्धिः । ब्रह्मचर्यं वीर्यधारणम् । तत्पूर्वकं वेदाध्ययनार्थं व्रतपरिपालनं वा ।

तदपीन्द्रियसंयमं विना न संभवति । उक्तं च दक्षसंहितायाम् ।

> श्रवणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
> संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
> एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
> विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः ॥

इति । केनापीन्द्रियेण यदा श्रवणादिकं न स्यात् तदाऽष्टाङ्ग-मैथुनत्यागो भवेत् । सात्त्विकेन मिताहारेण युक्तविहारेण धार्मिक-संसर्गेणेन्द्रियाणि वशीकर्त्तुं शक्यन्ते । तत स्तु सर्वथामैथुनत्यागो भवेत् । तत्त्यागेन वीर्यधारणं स्यात् । तदेव ब्रह्मचर्यम् । तदपि न सर्वेषां समानम् । ब्रह्मचारिप्रभृतीनां सर्वथा मैथुन त्यागः प्रशस्तः । गृह-मेधिनां तु स सामयिकः । वीर्यं शरीरस्थितिकारणम् । चित्तस्थैर्यमपि तन्निदानम् । शरीरे तच्चेदविकृतं तिष्ठेत् ततः सर्वेन्द्रियाणां शक्तिरपि वर्द्धेत । कामक्रोधादयोऽपि तद्बलाद् वश्याः स्युः । विषयाणामर्जने रक्षणे क्षये दोषदर्शनात् देहरक्षातिरिक्तभोगसाधनास्वीकारोऽपरिग्रहः । एवमेतेऽहिंसादयो जातिदेशादिविचारमकृत्वा सातत्येनानुष्ठीयमाना महाव्रताय सम्पद्यन्ते । ब्राह्मणं न हन्यां, पुण्ये तीर्थे न हन्यां संक्रान्त्यादौ पुण्ये कालेऽपि तथा । ब्राह्मणार्थे वा हनिष्यामि नान्य-त्रेत्यादिना याऽहिंसा तया व्रतमात्रं भवति । सर्वथा हिंसादित्याग स्तु महाव्रतम् । व्रतमात्रं सर्गादिप्रापकम् । महाव्रतं त्वानन्त्याय कल्प्यते ।

निवृत्ति स्तु महाफलेति मानवं वचोऽपि तदुपोद्बलकम् । तथाच व्रतमात्रापेक्षया महाव्रतस्य सर्वदुःखनिवारणनिदानत्वात् तद् यथाऽनुष्ठातुं शक्यते तथा प्रयतनीयमेव । तत्प्रयतनमपि न सुसाध्यं किन्तु क्रमश आश्रमादाश्रमान्तरं गत्वा तुरीये—आश्रमे सर्वथा तत् साफल्यं लभते । इतर आश्रमा स्तु प्रवृत्तिधर्माणः । तत्र तत्र हि यज्ञादिना हिंसादयः स्यु रेव । यज्ञादीन्यवश्यमेव करणीयानि चित्तशुद्धिकराणि हि तानि । गीतायां भगवताप्युक्तम् ।

"यज्ञो दानं तप श्चैव पावनानि मनीषिणाम्" । इत्यादिना । अत्राप्यग्रे स्फुटीभविष्यति । न केवलमुपासनया न वा कर्मणा समीहितासिद्धिः । अस्ति तत्र तत्र द्वयोरेवावश्यकता । भिन्नफले हि ते । निष्कामकर्मणा शुद्धं चित्तमुपासनया समाधीयते । अत एवैकैकनिन्दा शास्त्रेषु श्रूयते । "अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते" इत्यादिना । अस्तु प्रकृतमनुसरामः । योगाभ्यासकालेऽहिंसादिफलं तु वैरत्यागादिकं चित्तशुद्धि श्च । यत्फलं योगशास्त्रेषु सिद्धितयोपवर्ण्यते । कायेन मनसा वाचाऽनुष्ठीयमानाऽहिंसा यदा प्रतितिष्ठेत् तदा तस्य योगिनः सन्निधौ सहजविरोधिनामप्याहिनकुलादीनां निर्मत्सरतयाऽवस्थानं स्यात् । न ते योगिनं । हिंसन्ति । तदा योगिनो हिंस्रव्याघ्रादिसंकुलेषु गिरिगह्वरेषु निर्भीकतया स्थित्वा चित्तं समाधातुं शक्नुवन्ति । स्वहृदये हि हिंसावर्ज़ि

परत्र हिंसाबोधसंक्रान्तये निदानम् । अयमेव मे शत्रु स्तं हन्यामित्येवं यदि हिंसा न स्यात् तर्हि तेषां हिंस्राणां हिंसाजन्यभयाभावात् सर्वत्र ऽहिंसैव स्यात् उक्तं च महाभारते—

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा य श्चरते मुनिः ।
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित् ॥

इत्यादिना । सत्यमपि सम्यक्तयाऽनुष्ठीयमानं वाक्सिद्धिदम् । स्वर्गं याहीति स्वर्गं याति । त्वं भस्मसाद् भवेति भस्मीभवति । मिथ्यागन्धानाघ्रातं हि सत्यं यथोक्तफलदम्, नान्यथा । अस्तेयप्रकर्षे योगिनां सन्निधौ विनाप्यभिलाषं सर्वाणि मणिमाणिक्यादीनि रत्नान्युपतिष्ठन्ते । स्वप्नेऽपि चौर्याभिलाषाभाव एवास्तेयप्रकर्षः । ब्रह्मचर्यमुक्तपूर्वं, तत्प्रतिष्ठायां निरतिशयसामर्थ्यलाभः । स्वप्ने जागरणे वा कामोदयाभावाद् रेतः क्षरणाभावेऽणिमादिलक्षणं सामर्थ्यं जायते । तदा यत्र यदुपादिश्येत तत् साफल्यमण्डितं भवेत् । चित्तं च स्थैर्ययोग्यतां लभेत । अपरिग्रहस्थैर्येऽतीतानागतवर्त्तमानजन्म-प्रकारज्ञानम् । कथमयं जन्मपरिग्रहः कोऽहमासं, कथमहमासं, के वा भविष्यामः, कथं वा भविष्याम इत्यादिजन्मप्रकारज्ञानं तस्य भवति । अभ्यासेन शरीरादिभोगोपकरणेषु भोग्यबुद्धिनाशात् सर्वत्र विशिष्टं चित्तमेकत्र स्थितं सत् तत्तद्विजानाति । शौचसन्तोषतपःस्वाध्या-

यश्वरप्रणिधानभेदेन नियमा स्तु पञ्चधा। तत्र शौचं नाम शुद्धत्वम्। वाह्याभ्यन्तरभेदेन तद् द्विविधम्। तत्र मृज्जलगोमयादिना शरीरक्षालनं मत्स्यमांसपलाण्डुलशुनादिभक्षणनिरपेक्षबुद्धिवर्द्धकसात्त्विकान्नाशनं च वाह्यम्।

अन्नभक्ष्याभक्ष्यविचारः

अन्नमपि सात्त्विकादिभेदेन त्रिविधम् शास्त्रेषु निर्दिष्टम्। तत्र घृतदुग्धादीनि सात्त्विकानि। अतिकट्वम्लादीनि राजसानि। अमेध्यानि तामसानि तु पलाण्डुलशुनादीनि। उक्तं च गीतायाम्—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाःस्थिराःहृद्या आहाराः सात्विकाप्रियाः॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकमयप्रदाः॥
यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

इति। दुर्गन्धादिद्वाराऽशुद्धिकरत्वेन राजसानि तामसानि सर्वथा त्याज्यानि। तदभावात् सात्त्विकानि तूपादेयानि। तत्रापि

हविष्यमन्नमत्यन्तशुद्धिकरत्वेन योगानुकूलमेव । उक्तं च—

" मेध्यं हविष्यं प्रोक्तं प्रशस्तं सात्विकं लघु । "

इत्यादिना । तिलमाषनिवारव्रीहियवशालीक्षुमुद्गदुग्धघृतादीनि हविष्याणि । तेष्वेकं सर्वाणि वा स्वस्वस्वास्थ्यानुकूल्येन ग्राह्यानि। योगशास्त्रेषु योगारम्भकाले वर्ज्याणि संक्षेपत उक्तान्यपि बुद्धिवैशद्याय विस्तरत उच्यन्ते । तद् यथा—

अथ वर्ज्यं प्रवक्ष्यामि योगविघ्नकरं परम् ।
अम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सर्षपं कटु ॥
बाहुल्यभ्रमणं प्रातः स्नानं तैलं विदाहकम् ।
स्तेयं हिंसा परद्वेष आहङ्कारमनार्जवम् ॥
उपवासमसत्यं च मोहं च प्राणिपीडनम् ।
स्त्रीसङ्गमाग्निसेवां च बह्वालापं प्रियाप्रियम् ॥
अतीवभोजनं योगी त्यजेदेतानि निश्चितम् ।
कट्वम्ललवणं तिक्तं भृष्टं च दधितक्रकम् ।
शाकोत्कटं तथा मद्यं तालं च पनसं तथा ॥
कुलत्थं मसुरं पाण्डुं कुष्माण्डं शाकदण्डकम् ।
तुम्बी कोलं कपित्थं च कण्टाबिल्वं पलाशकम् ॥
बिल्वं कदम्बजम्बीरं लकुचं लशुनं विषम् ।
कामरङ्गं पियालं च हिङ्गुं वा मणिकेतकम् ॥

योगारम्भे वर्जयेच्च परस्त्रीवह्निसेवनम् ।
काठिन्यं दुरितं चैव सूष्णं पर्युषितं तथा ॥
अतिशीतं चातिचोष्णं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ।
प्रातः स्नानोपवासादि कायक्लेशविधिं तथा ॥
एकाहारं निराहारं प्राणान्तेऽपि न कारयेत् ।
निषिद्धानि कानिचित् तामसानि कानिचिच्च ॥

तामसानि राजसानि प्रायशो गरिष्ठानि । तेषामशनेन योगान्तराया नानारोगा उत्पद्यन्ते । कदाचिद् रोगाभावेऽपि शरीरादीनां गुरुत्वात् स्वकर्मणि शैथिल्यमुपजायते । क्रमश श्च कामलोमादिपरो योगी योगाच् च्यवेत । तन्माभूदिति सात्त्विकं हविष्यान्नं सर्वत्रेष्टम् । एतस्मिन् विषयेऽस्ति भीष्मयुधिष्ठिरयोः संवादो महाभारते । सोऽप्यत्र विव्रीयते परोपकाराय तद् यथा—

आहारान् कीदृशान् कृत्वा कानि जित्वा च भारत ।
योगी बलमवाप्नोति तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥

भीष्म उवाच ।

कणानां भक्षणे युक्तः पिण्याकस्य च भारत ।
स्नेहानां वर्जने युक्तो योगी बलमवाप्नुयात् ॥

भुञ्जानो यावकं रूक्षं दीर्घकालमरिन्दम ।
एकाहारो विशुद्धात्मा योगीबलमवाप्नुयात् ॥

अखण्डमपि मासं सततं मनुजेश्वर ।
उपोष्य सम्यक् शुद्धात्मा योगी बलमवाप्नुयात् ॥

कामं जित्वा तथा क्रोधं शीतं च वर्षमेव च ।
भयं शोकं तथा श्वासं पौरुषानपि विषयां स्तथा ॥
अरतिं दुर्जयां चैव घोरां तृष्णां च पार्थिव ।
स्पर्शं निद्रां तथा तन्द्रां दुर्जयां नृपसत्तम ॥

दीपयन्ति महात्मानः सूक्ष्ममात्मानमात्मना ।

अत्र कणशब्देन शालिचूर्णं गोधूमचूर्णं च विज्ञेयम् । पिण्याकशब्द श्च तिलकल्कवाचकः । शिष्टं स्पष्टम् । उपवासोऽप्यत्र कुत्तचिद् विहित कुत्रचिन्निषिद्धः । एतद् वैषम्यमवस्थाभेदेन समाधेयम् । योगारम्भे-उपवासो नादरणीयः । अन्यथा गुरूपदेशेन स चेत् क्रियेत न दोषाय । मैत्र्यादिभावनया रागद्वेषादिचित्तमलानां निवर्त्तनमाभ्यन्तरं शौचम् । मैत्र्यादिभावना तूक्तपूर्वाः । द्विविधमपि शौचं सम्यक्तया यथाविधि क्रियमाणमशेषविशेषसिद्धिदं भवति । तथाहि—बाह्यशौचाद् द्विविधा सिद्धिः स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्ग श्चेति । शतशो धौतमपि मलमूत्रपूर्णं शरीरं न शुद्ध्यतीति या स्वशरीरे घृणा सा स्वाङ्गजगुप्सा । तत श्च परसंसर्गेच्छा स्वतो निवर्त्तते । स्वपरदेहेषु

सुखकरत्वबुद्धि र्बन्धाय सा चेन् निवर्त्तेताऽनायासेन योगी योगसाधना-नुष्ठानाय प्रभवतीति बाह्यशौचस्य महती प्रयोजनीयता। आभ्यन्तर-शौचात् पञ्चधा सिद्धिरुपजायते सत्त्वशुद्धिः सौमनस्यमेकाग्रतेन्द्रियजय आत्मदर्शनयोग्यत्वं चेति। सत्त्वस्य सुखप्रकाशमयवस्तुनः शुद्धिः रजस्तमोभ्यामनभिभवः सत्त्वशुद्धिः। मानसी प्रीतिः सौमनस्यम्। चित्तस्थैर्यमेकाग्रता। विषयविमुखानामिन्द्रियाणामात्मन्येवावस्थान-मिन्द्रियजयः। आत्मसाक्षात्कारक्षमत्वमात्मदर्शनयोग्यत्वम्। क्षालित-चित्तमलस्य सत्त्वोद्रेको भवति। ततः स्वत आनन्द उपजायते। अविक्षेपाज्जातानन्दस्यैकाग्र्यम्। तत इन्द्रियाणि वशीभवन्ति। तत स्तु—आत्मसाक्षात्कारयोग्यत्वमित्येतानि क्रमेणाभ्यन्तरशौचात् प्रादु-र्भवन्ति। अलं बुद्धिः सन्तोषः। पर्याप्तमेतावत् स्वजीविकानिर्वाहा-येत्येवंरूपा चित्तवृत्तिरिति भावः। तत्प्रकर्षे निरतिशयमनिर्वचनीयं सुखं प्रादुरस्ति। तृष्णाक्षय एव तत्प्रकर्षः। उक्तं च।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

इत्यादिना। इदं मे स्यादिदं मे भविष्यतीदमतिमनोरममित्येवं-रूपोऽभिलाष स्तृष्णा। सा चेन्निवर्त्तेत तर्हि स्वत एव विषयेन्द्रिय-संयोगानिरपेक्षं सुखं स्यात्। वैषयिकं यत्सुखं तत्सुखाभासमात्रं

विवेकवैराग्यवतो दुःखायैवेति प्रागुपदिष्टम्। द्वन्दसहनं चान्द्रायणादिकं च तपः। द्वन्द शीतोष्णे, सुखदुःखेऽशनापिपासे काष्ठमौनाकारमौने च। चान्द्रायणादीनि स्मृतिप्रसिद्धानि। तदेवपुनः तपः शारीरं वाचिकं मानसं चेति त्रिविधम्। तत्र देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनादिकं शारीरम्। अनुद्वेगवाक्यकथनादिकं वाचनिकम्। मनः प्रसादादिकं मानसिकम्। सात्विकादिभेदेनैतत्सर्वमपि प्रत्येकं त्रिविधम्। श्रद्धया फलाकाङ्क्षाराहित्येन च क्रियमाणं तपः सात्विकम्। मानपूजाभिलाषेण दम्भेन चैव यत्तप स्तद्राजसम्। पराहितेच्छया मोहाद् यत् क्रियते तत् तामसम्। उक्तं च गीतायाम्।

श्रद्धया परया तप्तं तप स्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्विकं परिचक्षते॥
सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्॥
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्॥

इति। यमनियमयो रुभयो र्मध्ये तपस उपादानात् पाचकपाठकादिन्यायेन तस्योभयार्थता वेदितव्या। पाचकोऽपि पाठकः किं

न स्यात् । तस्य त्र पृथग्ग्रहणं विना तपः किमपि सिद्धं न भवतीति दर्शनार्थं वेदितव्यम् । तपसः पार्थक्येण ग्रहणाभावे तत्रैव जनो मनो दध्यात्—न च चान्द्रायाणादीनि कुर्यादिति तदुपादानं वा । तपसो दृढतायां सत्यामधर्माः क्षीयन्ते । तत्क्षयादणुत्वादिसामर्थ्यरूपा कायसिद्धिः सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टवस्तुग्रहणसामर्थ्यरूपेन्द्रियसिद्धि श्चाविर्भवति । वेदादिमोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवादिमन्त्राणां जपो वा स्वाध्यायः । स्वाध्यायप्रकर्षे स्वाभिलषितदेवा दर्शनसंभाषणादिना योगिनं तर्पयन्ति । अतो वेदे "स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यं" "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां सर्वे" इत्येवंरूपः स्वाध्यायोपदेशो दृश्यते । स्वाध्यायो हि जीवन त्रैवर्णिकानाम् । स्वाध्यायाद् योगसाधनेषु श्रद्धोपजायते, जातश्रद्धस्य क्रमश स्ततो मोक्षोऽपि भवति । इष्टदेवता-दर्शनादे स्तु कथा का । तस्मात् प्रतिदिनं यथाविधि स्वाध्यायोऽ-ध्येतव्यः । परमगुरौ परमेश्वरे सर्वकर्मार्पणमीश्वरप्राणिधानम् । प्रथमपादे तदर्थभावनरूपं प्रणिधानं व्याख्यातमत्र तु सर्वकर्मसमर्पणरूपम् । तत्र प्रथमं ध्यानरूपमन्तरङ्गसाधनं द्वितीयं तु बहिरङ्गसाधनं योगस्येति भेदः । सन्निपत्योपकारकमन्तरङ्गम् । आरादुपकारकं बहिरङ्गम् । त्रयमेकत्र संयम इत्युक्ते ध्यानं साक्षादुपकारकं, नियमा स्तु-आसनप्राणायामादिनिष्पादनद्वारोपकारका इति तेषां बहिरङ्गत्वम् । तथा च सर्वकर्मार्पणमेवात्र मुख्यतो ध्येयं न तु—ईश्वरतत्त्वम् । न च

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानां द्वितीयपादादावुक्तत्वादत्रतुपौनरुक्त्यमिति वाच्यम्। तपआदित्रयेणापि तीव्रतरेण योगो भवतीति तत्र सूचयितुमिष्टत्वात्। ननु स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानं च तत्वज्ञानेश्वरानुग्रहाभ्यां योगोपकारकं देहेन्द्रियशोषणात्मकं तपस्तु चित्तक्षोभकत्वेन कथमुपकारकमिति चेन्न। मृदुतपसोऽशुद्धिक्षयद्वारेण योगसाधकत्वात्। पापाख्या अशुद्धय स्तु विना तपो न तनुतामापद्यन्त इति तपसो ग्रहणं नानर्थकम्। नचेश्वरप्रणिधानादेव योगनिष्पत्तौ–इतरङ्गवैयर्थ्यमिति वाच्यम्। अन्याङ्गानामीश्वरप्रणिधानद्वारा योगनिष्पादकत्वात्। मिलितानां शीघ्रं कार्यसम्पादकत्वाच्च। इतराङ्गानां स्वतो न तादृशी शक्तिरित्याशयेनेश्वरप्रणिधानस्यैव प्राधान्येन समाधिसाधकत्वम्। अतः "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्" इति सूत्रकारवचनं नाकाण्डे। एते यमनियमा अपि विष्णुपुराणादिषु दर्शिताः। तद्यथा—

> ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यास्तेयपरिग्रहान्।
> सेवेत योगी निष्कामो योग्यतां मनसो नयन्॥
> स्वाध्यायशौचसन्तोषतपांसि नियतात्मवान्।
> कुर्वीत ब्रह्मणि तथा परस्मिन् प्रवणं मनः॥

इत्यादिना। यमनियमाभ्यासकाले योगिनः पूर्वसंस्कारबलादन्तरान्तरा हिंसादयो वितर्का उद्भवन्ति। तद्बाधने प्रतिपक्षचिन्तन-

मवश्यमेव कार्यम् । तद्विरोध्यहिंसादिवृत्युद्भावनं प्रतिपक्षभावनम् । तत्स्वरूपं तु वितर्का हिंसादय स्तावत् स्वयं कृता अन्येन कारिता-अनुमोदिता श्चेति त्रिधा । कृतादयोऽपि प्रत्येकमस्य मांसेन मे तृप्ति र्भविष्यतीति लोभपूर्वकत्वेनाऽस्यवधेन मे धर्मो भविष्यतीति मोहपूर्वकत्वेनाऽपकृतमनेनेति क्रोधपूर्वकत्वेन च त्रिधा । तेऽपि लोभादयः सर्वदा न समाः किन्तु कदाचिन्मृदवः कदाचिन्मध्याः कदापि च तीव्राः । तथा च ते हिंसादयो येन केन प्रकारेण वानुष्ठिता नरकप्राप्तये स्थावरत्वलाभाय चेति चिन्तनम् । संसाराङ्गारे पच्यमानेन सहसा प्राप्तोऽयं तारको योगधर्मो गुरुकृपया न मया पुन स्ता आददानेन वान्तलेहिश्ववद्भवितव्यमित्यसकृच्चिन्तनमहिंसादिप्रतिष्ठामूलम् । क्रमप्राप्तमासनं वक्ष्यामः । अस्यते–उपविश्यतेऽनेनेत्यासनम् । शास्त्ररीत्या करचरणाद्यङ्गविन्यासविशेषेणोपवेशनमासनम् । तद् यदा स्थिरमुद्वेगरहितं च भवेत् तदा योगाङ्गतां भजते । तदासनमपि सिद्धासनपद्मासनादिभेदेन बहुविधम् । उक्तं च योगशास्त्रे—

> पद्ममर्द्धासनं चापि तथा सिद्धासनादिकम् ।
> आस्थाय योगं युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि ॥
> समः समासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ।
> संवृत्यास्य समाचस्य सम्यग् विष्टभ्य चाग्रतः ॥

५

पाणिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन् प्रयतः स्थिरः ।
किञ्चिदुन्नमिताशिरा दन्तै र्दन्तानसंस्पृशन् ॥

संपश्यन् नासिकाग्रं स्वं दिश श्चानवलोकयन् ।
कुर्याद् दृढं पृष्ठवंशमुड्डीयानं तथोत्तरे ॥

उत्तानौ चरणौ कृत्वा उरुसंस्थौ प्रयत्नतः ।
दक्षिणोरुतले वामं पादं न्यस्य तु दक्षिणम् ॥

उरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी पद्मासनं त्विदम् ॥
दक्षिणोरुतले वामं पादं न्यस्य तु दक्षिणम् ।
वामोरुपरि संस्थाप्यमेदद्धासनं मतम् ॥

पार्ष्णिं तु वामपादस्य योनिस्थाने नियोजयेत् ।
वामोरुरुपरि स्थाप्य दक्षिणं सैद्धमासनम् ॥

आसनेषु सिद्धासनं पद्मासनं च विशेषतो योगोपकारकम् । अतस्ते आसने योगशास्त्रे विहिते । इतरासनानि तु कायस्थैर्यादिसाधकानि । निर्जने मनोऽनुकूले स्थाने मठं कृत्वा तत्स्थानं गोमयेनोपलिप्य त्रिकालस्नायी सितभस्मधरः कुशासनोपरि मृगचर्म व्याघ्रचर्म वा संस्थाप्य तदुपरि चैलखण्डमेकमास्तीर्य तस्मिन्नासने–उपविश्य गुरुं प्रणम्य यथोपदेशं सिद्धासनं पद्मासनं वा विधाय प्रतिदिनं सायं प्रातः निशीथे रात्रिशेषे च योगी योगमभ्यस्येत् । प्राणायामाभ्यासकालः

सायं प्रात र्ध्यानकाल स्तु रात्रिशेषे च विज्ञेयः। निशीथे रात्रिशेषे च सन्धयोरुभयो रपीति वचनात्। पूर्वोक्तमासनमपि तदेव स्थिरं सुखंचस्यात्—यदा बाल्याभ्यस्तः स्वाभाविके पवेशनप्रकारः परित्य-ज्येत चित्तं चाकाशादिगतमहत्त्वे सन्निविष्टं स्यात्। दीर्घकालं यदाऽ-सनं कृत्वा नोद्वेगो नापि किमपि कष्टं स्यात् तदाऽऽसनस्थैर्यं भवेत्। तत स्तु योगी शीतोष्णादिद्वन्द्वै र्नाभिभूयते प्राणायामाभ्यासाय च प्रभवति। श्वासप्रश्वासयो र्गतिविच्छेदः प्राणायामः। पूरके बाह्यवायु-राचम्यान्तर्धार्यते तत्रास्ति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः। एवं कुम्भके-ऽपि। रेचके कोष्ठ्यो वायुर्विरिच्य बहिर्धार्यते तत्रास्ति तयो र्गति-विच्छेदः। प्राणायामसामान्यलक्षणं त्वेतत्। वस्तुत स्तु रेचकपूरक-कुम्भकात्मको देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः प्राणायामः। देशो नासामारभ्य द्वादशाङ्गुल्यादिपरिमितं बाह्यं स्थानम्। रिच्यमानो वायुः स्वल्पं दूरं चेद् गच्छेत् स सूक्ष्मोऽन्यथा दीर्घः। पूरककाले कुम्भककाले चाभ्यन्तरं सर्वं स्थानं वायुना पूर्णं चेत् स दीर्घोऽन्यथा सूक्ष्मः। पिपीलिकासंचारसदृशः स्पर्श श्चेदनुभूयेत तर्हि वायुपूर्णमिदं विजानीयात्। रेचको यथा यथा सूक्ष्मः, पूरकःकुम्भक श्च दीर्घ स्तथा प्रशस्यो योगोपकारकः स्यात्। क्षणानामियत्तावधारणेनावच्छिन्नः कालेन परिदृष्टः। निमेषस्य चतुर्थभागः क्षणः। एतावता क्षणेन रेचकः पूरकः कुम्भक श्च

कर्त्तव्य इति निर्णीताः कालपरिदृष्टा इत्यर्थः। षट्त्रिंशदादिमात्राभिर्नियमिताः संख्यापरिदृष्टाः। यद्यपि संख्याभिरपि कालनियम एव क्रियते तथापि प्रकारभेदाद् भेदः। देशाद्यन्यतमनियमेन प्रत्यहमभ्यस्यमानः क्रमेण कालवृद्ध्या दीर्घकालव्यापित्वेन दीर्घो भवति वायुसञ्चारस्यातिसूक्ष्मतया च सूक्ष्मो भवति। यत्र नास्ति रेचको नापि पूरकः स केवलकुम्भक श्चतुर्थः। अयमत्र मुख्यः प्राणायामः। पूर्वोक्तः कुम्भकः स्तम्भवृत्तिर्वा रेचकपूरकयोरन्तराले वर्त्तते। अयं तु न तथेति विशेषः। उक्तं च वाशिष्ठसंहितायाम्—

प्रस्वेदं जनयेद य स्तु प्राणायामो हि सोऽधमः।
मध्यमः कम्पनात् प्रोक्त उत्थानं चोत्तमे भवेत्॥

पूर्वं पूर्वं प्रकुर्वीत यावदुत्तमसंभवः।
निश्वासप्रश्वासकौ देहे स्वाभाविकगुणावुभौ॥

तथापि नश्यत स्तेन प्राणायामोत्तमेन हि।
तयो र्नाशे समर्थः स्यात् कर्त्तुं केवलकुम्भकम्॥

रेचकं पूरक त्यक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम्।
प्राणायामोऽयमित्युक्तः स वै केवलकुम्भकः॥

सहितं केवलं वापि कुम्भकं नित्यमभ्यसेत्।
यावत्केवलसिद्धिः स्यात् तावत्सहितमभ्यसेत्॥

केवले कुम्भके सिद्धे रेचकपूरकवर्जिते।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते॥

प्राणायामस्य सगर्भागर्भविशेषाः पुराणादिषु द्रष्टव्याः। जपध्यानयुतो गर्भः त्वगर्भ स्तद्विवर्जित इत्यादिवाक्यैः। गुरुसन्निधाने स्थित्वा तदादेशतः क्रमेण सेव्यमानोऽसौ सिद्धिदः। ततः सर्वव्याधिक्षयोऽपि भवेत्। अन्यथा पुस्तकं दृष्ट्वा स्वमनीषया क्रियमाणः श्वासकासाद्यशेषरोगकारको भवेत्। हठान्निरुद्धः प्राणो रोमकूपादिषु निसृत्य देहं विदारयन्नशेषान् रोगान् जनयेत्। वन्यगजो गजारि र्वा यथाक्रमेण वश्यतामियात् प्राणोऽपि तथा। उक्तं च—

न प्राणं नाप्यानं वा वेगै र्वायुं समुत्सृजेत्।
येन शक्तून् करस्थां श्च श्वासवेगै र्न चालयेत्॥

शनै र्नासापुटे वायुमुत्सृजेन्न तु वेगतः।
न कम्पयेच्छरीरं तु स योगी परमो मतः॥

शनैः शनैः प्राणमाचम्य शनैः शनैः श्चोत्सृजेत्। येन शरीरं न कम्पेत न वाऽस्य स्वाभाविकगतावपि वैषम्यं स्यात्। प्राणायामभ्यासकाले—आहारविहारादावपि संयमो विधेयो येनास्य स्वाभाविकगति र्न भज्येत शरीरं च शीघ्रं न नश्येत्। उक्तं च स्वरोदये—

देहाद्विनिर्गतो वायुः स्वभावाद् द्वादशाङ्गुलिः।
गायने षोडशाङ्गुल्यो भोजने विंशति स्तथा ॥
चतुर्विंशाङ्गुलिः पान्थे निद्रायां त्रिंशदङ्गुलिः।
मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम् ॥
स्वभावेऽस्य गते मूले परमायुः प्रवर्द्धते।
आयुःक्षयोऽधिके प्रोक्तो मारुते चान्तरोद्गते ॥

अयं प्राणायामोऽपि घ्राणपीडनेन तदपीडनेन च भवति। तत्राद्य स्तु प्राथमिकः। बालानां कृते सा प्रथा कदाचिदाद्रीयते। गुरूपदेशगम्य स्तु द्वितीयो येन शीघ्रं प्राणस्थैर्यं स्यात्। चतुर्विधोऽयं प्राणायामो दीर्घकालं यदा विना क्लेशं हितं मितं योगशास्त्रोक्तमाहारं कृत्वा यथाविधानमभ्यस्यते ततः प्रकाशावरणं क्षीयते। बुद्धिसत्वं हि स्वभावतः सर्वव्यापकं सर्ववस्तुप्रकाशकं च रागद्वेषादिमनोदोषेण पापेन वावृतं नष्टशक्तिकं प्राणायामाभ्यासेन तदावरणभङ्गः स्यात्। धारणाशक्ति रपि ततः सम्पद्यते। अतो महती खलु तदभ्यासावश्यकता। ननु "यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" (गी), "जप्येनैव तु संसिद्धेत्" (मनुः) इत्यादिन्यायेन मन्त्रयोगाभ्यासेनैव तत्तत्साफल्यसिद्धौ कृतं प्राणायामेनेति चेन्न। मन्त्रयोगाभ्यासेनापि स्वतः प्राणायामसिद्धौ तदभ्यासनिवारणानुपपत्तेः। अस्ति खलु योगिनामनुभवो यन्मन्त्रयोगाभ्यासकालेऽपि तद्दृढतायां स्वतः कुम्भक

स्तत श्च क्रमशश्चित्तनिरोधो भवतीति । प्राणायामाभ्यासेन शीघ्रं तन्निरोधोऽन्यथा तु विलम्बेनेति विशेषः । मन्त्रयोगादिषु कोऽपि योगोऽनुष्ठीयेत वायुस्थैर्यसिद्ध्येऽस्ति सर्वत्र प्राणायामावश्यकता । अस्ति चतुर्विधो योगो मन्त्रयोगो हठयोगो लययोगो राजयोग श्चेति.

चतुर्विधयोगनिरूपणम्

प्रणवादिमन्त्रजपेन देवताराधनया यो मनोलयः स मन्त्रयोगः। भृगुकश्यपदधीचिजगदग्निप्रभृतयोऽस्योपदेष्टारः । षडङ्गयोगाभ्यासेनाऽष्टाङ्गयोगाभ्यासेन वा यो मनोलयः स योगो हठसञ्ज्ञकः । अस्योपदेष्टारौ गोरक्षमार्कण्डेयौ । गोरक्ष आसनादिसमाध्यन्तानि योगाङ्गान्यभ्यस्य सिद्धिमवाप । गोरक्षमते यमनियमयोः कालान्तरीयतया न योगाङ्गेष्वन्तर्भावः । मार्कण्डेय स्तु अष्टावङ्गानि योगस्य मन्यत इति भेदः । मूलाधारादिनवस्वेव चक्रेषु मनोलयं कृत्वा लयसञ्ज्ञको योगः साध्यते उक्तंच—

कृष्णद्वैपायनाद्यै स्तु साधितो लयसञ्ज्ञितः ।
नवस्वेव हि चक्रेषु लयं कृत्वा महात्मभिः ॥

वेदव्यासादयोऽस्योपदेष्टारः । एषां मते लययोगादस्यं शक्तिद्वयचालनेन मध्यशक्तिप्रबोधनमेव । ऊर्द्धशक्तिरधःशक्ति श्चेति शक्ति-

द्वयम् । शक्तिद्वयचालनं तु गुरूपदेशगम्यम् । शक्तिस्थानं तु योग-
शास्त्राद्विज्ञेयम् । तद् यथा—

प्रथमं ब्रह्मचक्रं स्यात् त्रिशावर्त्तं भगाकृति ।
अपाने मूलकन्दाख्यं कामरूपं च तज्जगुः ॥

तदेव वह्निकुण्डं स्यात् तत्र कुण्डलिनी मता ।
तां जीवरूपिणीं ध्यायेज्ज्योतिस्कां मुक्तिहेतवे ॥

स्वाधिष्ठानं द्वितीयं स्यात् चक्रं तन्मध्यगं विदुः ।
पश्चिमाभिमुखं तच्च प्रवालाङ्कुरसन्निभम् ॥
तत्रोड्डीयानपीठे तु तद् ध्यात्वाऽकर्षयेज्जगत् ।
तृतीयं नाभिचक्रं स्यात् तन्मध्ये भुजगी स्थिता ॥

पञ्चावर्त्त मध्यशक्ति श्चिद्रूपा विद्युदाकृतिः ।
तां ध्यात्वा सर्वसिद्धीनां भाजनं जायते बुधः ॥

चतुर्थं हृदये चक्रं विज्ञेयं तदधोमुखम् ।
ज्योतिरूपं च तन्मध्ये हंसं ध्यायेत् प्रयत्नतः ॥

तं ध्यायतो जगत्सर्वं वश्यं स्यान्नात्र संशयः ।
पञ्चमं कालचक्रं स्यात् तत्र वाम इडा भवेत् ॥

दक्षिणे पिङ्गला ज्ञेया सुषुम्ना मध्यतः स्थिता ।
तत्र ध्यात्वा शुचिज्योतिः सिद्धीनां भाजनं भवेत् ॥

षष्ठं च तालुकाचक्रं घण्टिकास्थानमुच्यते ।
दशमद्वारमार्गं तु राज्यदं तत्र तं जगुः ॥
तत्र शून्ये लयं कृत्वा मुक्तो भवति निश्चितम् ।
भ्रूचक्रं सप्तमं विन्दुस्थानं च तद्विदुः ॥
भ्रुवो मध्ये वर्त्तुलं च ध्यात्वा ज्योतिः प्रमुच्यते ।
अष्टमं ब्रह्मरन्ध्रं स्यात् परं निर्वाणसूचकम् ॥
तद् ध्यात्वा सूचिकाग्राभं धूमाकारं विमुच्यते ।
तच्च जालन्धरं ज्ञेयं मोक्षदं लीनचेतसाम् ॥
नवमं ब्रह्मचक्रं स्याद् दलैः षोडशभिर्युतम् ।
संच्चिद्रूपा च तन्मध्ये शक्तिरूर्द्धा स्थिताऽपरा ॥
तत्र पूर्णां मरुपृष्ठे शक्तिं ध्यात्वा विमुच्यते ।
एतेषां नवचक्राणामेकैकं ध्यायतो मुनेः ॥
सिद्धयो मुक्तिसहिताः करस्थाः स्यु र्दिने दिने ।
कोदण्डद्वयमध्यस्थं पश्यति ज्ञानचक्षुषा ॥
कदम्बगोलोकाकारं ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ॥
ऊर्द्धशक्तिनिपातेन ह्यधः शक्ते र्निकुञ्चनात् ।
मध्यशक्तिप्रबोधेन जायते परमं सुखम् ॥

मनोवायुस्थिरीकरणं राजयोगः । तत्स्थीरिकरणमाचार्योपदेशतः चक्रभेदनप्रक्रियया सुसाध्यम् । दत्तात्रेयादयोऽस्याऽनुष्ठातारः । एषां

चतुर्विधानामपि योगानामाधिकारिभेदेन फलं भिद्यते। व्याधिता दुर्वला वृद्धा निःसत्वा मन्दोत्साहा ये तेषामेकावस्थापि द्वादशभि र्वर्षैः सिद्ध्यत्यथवा न सिद्ध्यति। ये मध्योत्साहा मध्यरागा मध्यविक्रमा स्तेषामष्टभि र्वर्षैरेकऽवस्था प्रसिद्ध्यति। वीर्यवन्तः क्षमावन्तो महोत्साहा महाशया ये तीव्रा स्तेषां षड्भि र्वर्षैरेकाऽवस्था सिद्ध्यति। ये च सर्वशास्त्रकृताभ्यासा अतितीव्रा स्तेषां त्रिभिः संवत्सरै रेका-वस्था प्रसिद्ध्यतीति योगशास्त्रविदामाशयः। यमानियमाद्यभ्यासेन शरीरं मन श्च यदा संस्कृतं स्यात् तदा प्रत्याहारोऽनायासेन सिद्ध्यति। चक्षुरादीन्द्रियाणां बाह्यगतिं निरुद्ध्य ध्येयरतचित्तानुवर्त्तित्वमेव प्रत्या-हारः। यथा यथा चक्षुरादीन्द्रियाणि स्वस्वरूपादिविषयदेशं गच्छेयु स्तथा तथा तानि ततः प्रचाल्य पुनः पुन श्चित्तानुगत्यकरणेन प्रत्याहारः स्यात्। उक्तं च विष्णुपुराणे—

शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्।
कुर्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः॥

प्रत्याहारफलमिन्द्रियजयः। शब्दादिसंप्रयोगः स्वेच्छया। चित्तैकाग्र्यादप्रतिपत्ति र्वेन्द्रियजयः। यस्येन्द्रियाणि वश्यानि तस्य नास्तीह किञ्चिदलभ्यम्। उक्तं च गीतायाम्:—

“ वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठितेति ”

तत्रादौ समाधिफलं क्लेशतनुकरणफलं च क्रियायोगमभिधाय क्लेशानां लक्षणं निर्णीय कर्मणां भेदं प्रदर्श्य विपाकस्य स्वरूपं कारणं चोक्त्वा त्याज्यत्वेन क्लेशादीनां हानादिचतुर्व्यूहानुपदिश्य विवेकख्यातेः कारणभूतानां परस्परोपकार्योपकारकभावेनावस्थितानां प्रत्याहारपर्यन्तानां योगाङ्गानां स्वरूपं फलं च व्याकृतम् ।

योगतत्त्वसंग्रहे द्वितीयपादः समाप्तः

तृतीयपादः

धारणादिसमाध्यन्तयोगाङ्गनिर्वचनम्

उक्तानि द्वितीयपादे यमादीनि समाधेर्बहिरङ्गानि साधनानि । अधुनाऽत्र तस्याऽन्तरङ्गसाधनानि धारणाध्यानसमाधिप्रख्यानि वक्तव्यानि । यतोऽयं योगो यमादिभिः प्राप्तबीजभाव आसनादिभिरङ्कुरितः प्रत्याहारादिभिः कुसुमितो धारणादिभिः फलिष्यति । आध्यात्मिके नासिकाग्रादौ बाह्ये चन्द्रसूर्यादौ—ईश्वरदेवतादिध्यानदेशे वा चित्तस्य स्थापनं धारणा । उक्तं च गारुडे ।—

> प्राङ्नाभ्यां हृदये चाथ तृतीये च तथोरसि ।
> कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु ॥
> किञ्चित् तस्मात् परस्मिं श्च धारणा दश प्रकीर्त्तिताः ।

जीवेश्वरव्यञ्जकस्य लिङ्गशरीरस्य मुख्यस्थानत्वादुक्तान्येतानि धारणायाः प्रकृष्टस्थानानि । द्वादशप्राणायामपरिमितकालपर्यन्तमेकत्र कुत्रापि स्थापनं धारणा । अन्यथा स्वल्पसमयमात्रेणापि धारणापत्तिः । उक्तं च गारुडे—

प्राणायामै र्द्वादशभि र्यावत्कालः कृतो भवेत् ।
स तावत्कालपर्यन्तं मनो ब्रह्मणि धारयेत् ॥

धारणासाध्यं ध्यानम् । तत्तु यत्र चित्तं धृतं तत्र विषयान्तरपरिहारेण चित्तवृत्तेरेकविषयता । तस्यैव द्वादशप्राणायामकालपर्यन्तं चिन्तनं ध्यानम् । उक्तं च गारुडे—

" तस्यैव ब्रह्मणि प्रोक्तं ध्यानं द्वादशधारणेत्यनेन " ।

तदेव ध्यानं ध्यातृध्यानवृत्तिशून्यं ध्येयमत्रैकगोचरं समाधिः । ध्यानपरिपाकदशायां यत्र नास्ति ध्यानज्ञानं नापि ध्यातृज्ञानं ध्येयस्वरूपमात्रमवभासते स समाधिः । ध्यानद्वादशकालपर्यन्तकालः समाधिः । उक्तं च गारुडे —

ध्यानं द्वादशपर्यन्तं मनो ब्रह्माणि योजयेत् ।
तिष्ठेत् तल्लयतो युक्तः समाधिःसोऽभिधीयते ॥

ध्यातृध्यानध्येयाकलनावद् ध्यानं, ध्येयमात्रगोचरं तु समाधिरिति तयो र्विशेषः । देशघटितत्वेन नायं समाधिः सम्प्रज्ञातः किन्तु ध्यानविशेष एव । तथाचेदं समाधिसामान्यलक्षणमिति गम्यते । अत्र चिन्त.रूपतया निःशेषतो ध्येयस्वरूपं न भासते । सम्प्रज्ञाते

साक्षात्कारोदये समाध्याविषया अपि भासन्त इत्यङ्गाङ्गिनो समाध्यो भेदः । तल्लक्षणं तु शास्त्रेषु दृश्यते तद् यथाः—

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ।
निस्तरङ्गपदप्राप्तिः परमानन्दरूपिणी ॥

निश्वासोच्छ्वासमुक्तो वा निःस्पन्दोऽचललोचनः ।
शिवध्यायी सुलीन श्च समाधिस्थःउच्यते ।

न शृणोति यत्रा किञ्चिन्न पश्यति न जिघ्रति ।
न च स्पर्शं विजानाति स समाधिस्थ उच्यते ॥

न च सुषुप्त्यादावपि श्रवणाद्यभावात् तत्र समाधिलक्षणमतिव्याप्तमिति वाच्यम् । विवेकख्यातितदभावाभ्यां तयोः परस्परं भेदसत्वात् । विवेकख्यात्यादिपूर्वकः समाधिः सुषुप्ति स्तु न तथेति विशेषः । एवं चाऽष्टाङ्गयोगानां फलद्वयं सम्प्रज्ञातयोग स्तद् द्वाराऽसंप्रज्ञातयोग श्चेति । अत्रायं विभागः–विजातीयवृत्तिच्छिन्ना धारणा । अविच्छिन्नं ध्यानं तच्च ध्यातृध्येयध्यानगोचरम् । तद् यदा ध्येयमात्रगोचरं स समाधिः । स एव दीर्घकालव्यापी सम्प्रज्ञातः समाधिः । सोऽपि यदा ध्येयज्ञानशून्यो भवति तदाऽसम्प्रज्ञातः । एकविषयकमेतत् त्रयं संयमः । कस्मिन्नप्यालम्बने प्रोक्ता स्तिस्रो मानसक्रिया धारणाध्यानसमाध्याख्या प्रयुज्यमाना स्तासां संयम

इति तान्त्रिकी सञ्ज्ञा। स एव संयमो यदा श्वासप्रश्वासवत् स्वाभाविको भवेत् तदा महाचित्तनैर्मल्यमुपजायते। यत्प्रभावाद् योगी सर्वमतीतानागतसूक्ष्मविप्रकृष्टविषयं ज्ञातुं शक्नोति, वक्ष्यमाणा अणिमादयोऽपि विभूतय स्तस्य प्रादुर्भवन्ति। अजगरो यथैकत्राऽवस्थायापि स्वाभिलषितभक्ष्यं सम्मुख अवलोकयति योग्यपि तथा। प्रवलेच्छाशक्तिविशेषोऽयं संयमः। अयमपि सहसा न सुसाध्यः स्वाभाविको भवति। किन्तु सोपानारोहनन्यायेन क्रमशो भूमिजयात् सिद्धो भवति। प्राक् स्थूले विषये संयमं विधाय सा स्थूला भूमिरभ्यासेन विजेया पश्चात् सूक्ष्मे चित्तं निवेशनीयम्। नहि प्राक् स्थूलमसाक्षात्कृत्य सूक्ष्मं साक्षात्कर्तुं शक्यम्। अत स्तस्य भूमिषु विनियोग इति यत् सूत्रकृतं तत्तु स्थाने। यमनियमाद्यपेक्षयाऽयमेव संयमः सम्प्रज्ञातसमाधेरन्तरङ्गसाधनम्। यमादय श्चित्तस्थैर्यादिद्वारा परम्परयोभयकारणमयं तु साक्षात्साधनम्। अतो यैः पूर्वजन्मनि यमादयोऽनुष्ठिता स्तेषामिह तदननुष्ठानेनापि सिद्धि जडभरतादिषु दृश्यते। विघ्नरूपा हि ते तदाभवन्ति। तदप्यन्तरङ्गसाधनत्रयं निर्वीजस्य समाधे र्वहिरङ्गसाधनम्। विवेकख्यातिपरवैराग्यद्वारा परम्परया हेतुत्वेन साक्षादनुपकारकत्वसद्भावात्। परवैराग्यहेतुको निरोधपरिणामो निर्वीजस्य समाधे र्निदानम्। चित्तं यावन्निवृत्तिकं न भवेत् तावत् तच्चित्तं व्युत्थितम्।

गुणमयत्वेन प्रतिक्षणपरिणामि चित्तम् । चित्तस्य क्षिप्त्यादिराजसिक-
परिणामो व्युत्थानम् । वृत्तिसद्भावात् सम्प्रज्ञातसमाधिरपि व्युत्थान-
मेव । चित्तस्य विशुद्धपरिणाम स्तु निरोधः । चित्तं यदा यदा येन येन
रूपेण परिणमते तदा तदा तज्जन्यो भविष्यपरिणामबीजतया संस्कार
स्तस्मिन् तिष्ठति । चित्तं तस्य धर्मि स एव धर्मः । परवैराग्याभ्यास
पाटवहेतुकनिरोधसंस्कारोदयजन्यव्युत्थानसंस्कारतिरोभावाच्चित्तस्य
यन्निर्वृत्तिकतयाऽवस्थानं तदेव निरोधपरिणामः । स्वरूपप-
रिणामः स्थैर्यं वाऽनर्थान्तरम् । चित्तस्य विसदृशः परिणामो
व्युत्थानम् । स्वरूपपरिणाम स्तु निरोधपरिणाम इति
तयो र्भेदः । निरोधवासनाप्रचयाच्चित्तस्य निरस्तसमस्त-
व्युत्थानसंस्कारमलस्य निश्चलनिरोधधारावाहित्वं भवति । अतो
निरोधसंस्कार स्तत्प्रादुर्भाव श्चावश्यमेष्टव्यः । यदा यदा निरोध-
संस्काराय प्रयत्न स्तदा तदा तद्दार्ढ्ये चित्तस्य सदृशपरिणामिता
स्यादितिभावः । सर्वार्थताक्षयहेतुक एकाग्रतोदय श्चित्तस्य समाधि-
परिणामः । सर्वविषयकं विक्षिप्तं चित्तं सर्वार्थम् । एकवस्तुविषय-
तैकाग्रता । अभ्यासेन प्रथमाभिभवे द्वितीयस्य यदोदय स्तदैव
चित्तस्यैकवस्तुविषयक एकाकारो यः परिणामः स समाधिपरिणाम
इत्यभिधीयते । अतीतोत्पद्यमानौ—एकाकारप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता-
परिणामः । नष्टो यादृशो ध्येयाकारप्रत्यय स्तादृशः प्रत्यय स्तत

वृदुदियात् स एकाग्रतापरिणामः । समाहितचित्तस्याऽसमाधिभङ्गाद् धारावाहिक एकाकारप्रत्ययसन्तान एकाग्रताबोधक इति भावः । एतेन चित्तवद् भूतेन्द्रियाणामपि धर्मलक्षणावस्थाभेदात् त्रिविधा परिणामा व्याख्याता वेदितव्याः ।

त्रिविधपरिणामनिरूपणम् ।

धर्मिणः पूर्वधर्मतिरोभावे धर्मान्तरप्रादुर्भावस्य धर्मपरिणामत्वम् । तत्तु व्युत्थानधर्माभिभवे निरोधधर्मप्रादुर्भावाद् व्यक्तम् । अवस्थितस्य धर्मस्याऽनागतादिलक्षणत्यागे वर्त्तमानादिलक्षणलाभो लक्षण-परिणामः । स च परिणामो निरोधस्यानागताध्वत्यागेन वर्त्तमाना-ध्वत्यागेऽतीताध्वप्रवेशाद् दर्शितः । लक्षणस्यैव नवत्वपुरातनत्वादिनाऽवस्थापरिणामः । यथा तत्र निरोधक्षणेषु निरोधसंस्कारा बलवन्तो भवन्ति दुर्वला व्युत्थानसंस्कारा इति । एवं भूतादिषु ते परिणामा योजनीयाः । मृल्लक्षणस्य धर्मिणः पिण्डरूपधर्मपरित्यागेन घटरूप-धर्मान्तरोत्पत्ति र्धर्मपरिणामः । तत्र यो घटस्यानागताध्वपरित्यागेन वर्त्तमानाध्वप्रवेश स्तत्परित्यागेन चातीताध्वपरिग्रहः स तस्य लक्षण-परिणामः । लक्षयति कार्यरूपं धर्मं व्यावर्त्तयतीति व्युत्पत्तेः । एवं

लक्षणपरिणामस्य नवत्वपुरातनत्वादिव्यवहारहेतुना साऽवस्थापरिणामः। एतेन भूतादिषु धर्मधर्मिभेदात् त्रिविधः परिणामो व्याख्यातः। वस्तुत स्त्वेक एव परिणामः। धर्मस्य धर्मिस्वरूपमात्रत्वात्। नहि सुवर्णस्य कटकादिना यः परिणाम स्तेन मात्रान्यथात्वं विना स्वरूपान्यथात्वं भवति। एवं च धर्मिणो धर्मः परिणामः। धर्माणां लक्षणैः परिणामः। लक्षणानां चावस्थाभि र्यः परिणामोऽभिहित स्तैः परिणामैः शून्यं न क्षणमपि गुणवृत्तमवतिष्ठते। द्रव्यस्य पूर्वधर्मापाये धर्मान्तरोत्पत्तिः, परिणामः। अतीतानागतवर्त्तमानधर्मानुपाती धर्मी। नियतकार्यकारणरू पतया योग्यतावच्छिन्ना शक्ति रेव धर्मः। तत्रातीताः कृतव्यापाराः, व्यापाराविष्टा वर्त्तमानाः। शक्तिरूपेण स्थिता अनागता व्यपदेष्टुमशक्याः। सर्वेषां कार्याणां कारणे शक्तिरूपेणावस्थानादव्यपदेश्यं कारणमात्रसम्भावितं चेति सर्वं कारणं सर्वकार्यशक्तिमदित्यनुमीयते। दृश्यते हि दावदग्धवेत्रबीजात् कदलीकाण्डोत्पत्तिः। नहि तत्राऽसत उद्भवः सम्भवति। देशकालकर्मादीनामभिव्यञ्जकानां वैचित्र्यादेव क्वचित् किञ्चिदुद्भवति किञ्चिच्च नोद्भवतीति कार्यकारणावस्थायाः स्थिति र्दृढायते। योगिनां तु देशादिप्रतिबन्धकाभावात् सर्वस्मादेव सर्वसम्भवः। अतो नात्र विवदितव्यम्। तान् त्रिविधान् धर्मान् योऽन्वयित्वेन स्वीकरोति स धर्मी यथा मृत्सुवर्णादि श्चूर्णपिण्डघट रुचका द्यन्वयी तथाऽन्योऽपीति

द्रष्टव्यम् । परिणामनानात्वं तु क्रमान्यत्वात् प्रतीयते । सर्वे भावा नियतेनैव क्रमेण प्रतिक्षणं परिणममानाः परिदृश्यन्ते । यथा मृत्कणातो मृत्पिण्ड स्ततः कपालानि तेभ्य श्च घटा इत्येवं रूपेण सर्वाणि द्रव्याणि परिणमन्त इति परिणममानानामेव भेदो न तु द्रव्याणाम् । यो यस्य धर्मस्य समनन्तरो धर्मः स तस्य क्रमः । एवं पिण्डाद् घटोत्पत्तौ धर्मपरिणामक्रम स्ततो लक्षणपरिणामक्रम स्तत श्चावस्थापरिणामक्रम इति क्रमस्य हेतुत्वं परिणाममात्रे व्यवस्थापितम् । त एते क्रमा धर्मधर्मिभेदे सति प्राप्तस्वरूपाः । धर्मोऽपि धर्मी भवति—अन्यधर्मस्वरूपेक्षया । यदा तु परमार्थधर्मिणि प्रधानेऽभेदोपचारेण निमित्तेन सर्वोऽपि धर्मः स एवाभिधीयते तदायं क्रम एकनिष्ठत्वेनैव प्रतीयते । उक्तानि विस्तरतो ज्ञानसाधनानि योगाङ्गानि चित्तस्य परिणामरूपा योगावस्था श्च दर्शिताः । अतः परमाऽपादसमाप्ते र्योगिभि र्जिज्ञासितानामर्थानां साक्षात्काराय विभूतिकामस्य यमनियमादिसाधनसम्पन्नयोगिनो यत्र संयमाद् यादृशी सिद्धि र्भवति तत्सर्वं विशिष्योपक्षिप्यते । संयम स्तूक्तपूर्वो धारणादित्रयलक्षणकः । तत्र पूर्वोक्तधर्मादिपरिणामत्रये संयमादतीतानागतज्ञानं भवति ।

योगविभूतिप्रदर्शनम्

अस्य धर्मिणोऽयं धर्मपरिणाम स्तस्य चायं लक्षणपरिणामो लक्षणस्य चायं नवत्वपुरातत्वाद्यवस्थापरिणाम इत्येवं परिणामत्रये परिहृतविक्षेपतया संयमात् साक्षात्कारे किञ्चिदतिक्रान्तमुत्पत्स्यमानं च तत्सर्वं योगी जानाति ॥

शब्दार्थज्ञानानां प्रविभागसंयमात् सर्वभूतशब्दज्ञानम् । शब्दो वर्णरूपः पदरूपो वाक्यरूप श्च वागिन्द्रियेणोत्पद्यमानः श्रोत्रग्राह्यः । अर्थ स्तद्वाच्यो जातिगुणक्रियादिः । ज्ञानं तदाकारा बुद्धिः । व्यवहारकाले परस्परभिन्नानामप्येतेषामविभक्तप्रत्ययो भवति । एषां यो विभागज्ञो, वर्णव्यङ्ग्यं पदं पदव्यङ्ग्यं वाक्यं शक्त्यादिवृत्या बोधकमिति शब्दतत्वम् । अर्थो द्रव्यगुणजात्यादि र्वाच्यो लक्ष्य श्चेत्यर्थतत्वम् । शब्दादन्योऽर्थविषय श्चित्तस्थप्रत्यय इति ज्ञानतत्वमिति तत्र संयमादिममेवार्थमिमे वदन्तीति सर्वेषां भूतानां पशुपक्ष्यादीनां यः शब्द स्तत्र ज्ञानं योगिनां भवति ॥

संस्कारसाक्षात्कारात् पूर्वजन्मज्ञानम् । अनुभवजाः कर्मजा श्चेति द्विविधा वासनारूपाः संस्कारा श्चित्तस्य । तत्रानुभवजाः स्मृतिफलाः । कर्मजा स्तु धर्माधर्मरूपाः सुखदुःखादिफलाः । संयमेन तेषु

साक्षात्कृतेषु स्वीयपरकीयजन्मपरम्परानुभवो योगिनां भवति । जीवः पूर्वजन्मनीह जन्मनि वा यत्किञ्चित् करोति यत्किञ्चिच्चानुभवति तत्सर्वं चित्तेऽतिसूक्ष्मतया वीजेऽङ्कुरवत् स्थित्वा वासनापदाभिलप्यं संस्कारपदवेदनीयं वा भवति । तेषु येऽनुभवमात्रनिष्पादिता ज्ञानजा स्ते स्मृतिहेतवो न ततो जात्याद्यात्मका विपाकाः । तदन्ये ये शुभाशुभकर्मानुष्ठानजन्याः कर्मजा स्ते विपाकदायिनः । तेषां च शास्त्रेषु धर्माधर्मतया पुण्यपापतया शुभाशुभादृष्टतया च व्यपदेशो दृश्यते । सोऽयं संस्कारो न प्रत्यक्षगोचरः । गुरूपदेशतः शास्त्रतोऽनुमानत श्च तदुभयसंस्कारस्वरूपावधारणं भवेत् । तत स्तत्र संयमो विधीयते । संयमे परिपक्वे विद्युत्प्रकाशवत् पूर्वोक्ताः संस्काराः प्रतीयन्ते ॥

धर्माधर्मसाक्षात्कारे पूर्वजन्मविवरणं योगिभिः स्मर्यते । तदानीं स्मृतिहेतूद्बोधकाभावेऽपि योगजधर्मबलात् पूर्वानुभूतं पूर्वानुष्ठितं च स्मृतिपथारूढं स्यात् । अस्ति पुराणे काचनाऽऽख्यायिकैतद्विषयिणी । तथाहि—आसीत् कस्मिन्नपि काले जैगीषव्यनाम्ना प्रसिद्धः कश्चन महायोगी । स खलु संयमबलाद् धर्माधर्मादीन् साक्षात्कृत्य दशसु महाकल्पेषु जन्मपरिणामक्रममनुपश्यन् विवेकज्ञानं लेभे । एकदा—आवट्यनामको लिङ्गशरीरमात्रविहारी कश्चन तनुधरो महर्षि स्तमुपगम्य पप्रच्छ भगवन् !—अनभिभूतबुद्धिसत्त्वेन भवता दशसु महा-

कल्पेषु सुरनरतिर्यग्योनिषूत्पद्यमानेन कुत्र कीदृशं सुखदुःखमनुभूतं कुत्र वा तदाधिक्यं तत्सर्वं विज्ञातुमिच्छामि । जैगिषव्य उवाच–आयुस्मन् मया पुनः पुन र्देवमनुष्यपश्वादिषूत्पद्यमानेन यत्किञ्चिदनुभूतं तत्सर्वं दुःखमेव नास्ति कुत्रापि सुखलेशमात्रम् । आवट्यः-प्राह यदिदं प्रकृतिवशित्वमनुत्तमं च सन्तोषसुखं तदपि किं दुःखकोटौ निविष्टम् । जैगिषव्य उवाच लौकिकसुखापेक्षयाऽनुत्तममपीदं कैवल्यापेक्षया तु दुःखमेव । तृष्णैव सर्वत्र दुःखबीजम् । तृष्णासमुच्छेदाद् यत् कैवल्यं तदेवानुत्तमं सुखमिति । अस्याः कथाया स्तात्पर्यं तु सर्वेऽपि पूर्वजन्मवृत्तान्तज्ञानाय श्रद्धालवो भूत्वा संयमेन तत्साक्षात्कर्त्तुं प्रभवेयुरिति ॥

केनाचिन्मुखरागादिना परचित्तं सामान्यतो ज्ञात्वा तत्र संयमेन साक्षात्करणात् परचित्तस्य ज्ञानं भवति । परन्तु तज्ज्ञानं तु निरालम्बनम् । कस्मिन् तद् रक्तं तन्न जानातीति । अतः संयमेन परचित्तमात्रं साक्षात्कृत्याऽस्येदानीं किमालम्बनमिति स्वचित्तं यदा प्रणिधीयते योगिना तदेव तस्य तात्कालिकमालम्बनं ज्ञातुं शक्यते ॥

कायरूपे संयमात् तत्कायप्रत्यक्षताहेतुस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासंयोगेऽन्तर्धानम् । पञ्चात्मकः कायो रूपवत्तया चाक्षुषो भवति । तत्र यदा रूपे संयमविशेषः क्रियते नास्ति मे काये रूपमिति तदा

रूपवत्कायप्रत्यक्षताहेतुः स्तभ्यते परकीयचक्षुःप्रकाशासंयोगोऽपि जायते । तस्मिन् सति परकीयचाक्षुषज्ञानाविषयत्वरूपमन्तर्धानं योगिकायस्य भवति । अयमाशयः—योगिभि र्यदा नास्ति मे काये रूपमिति निषेधमुखेन संयमः क्रियते तदा रूपस्य ग्राह्यशक्तिलोपात् तत्र योगिकाये दर्शकानां चक्षुःप्रकाशासंयोगेऽदृश्यो योगीति व्यपदेशो भवति ॥

रूपसंयमवच्छब्दादिषु संयमात्—शब्दान्तर्धानं स्पर्शान्तर्धानं रसान्तर्धानं गन्धान्तर्धानं च जायते । न तेषां गन्धः प्राप्यते न वा तेषां वाक्यान्यपि श्रूयन्ते । न च तान् स्प्रष्टुमपि शक्नोति कश्चन । अयमाशयः—यदा कायस्य शब्दस्पर्शरूपरसगन्धसंयमात् तेषां ग्राह्य-शक्तिः स्तभ्यते तदा श्रोत्रादिसान्निकर्षप्रतिबन्धाद् योगिनः शब्दादिकं बधिरेणेव केनापि न श्रूयते ॥

सोपक्रमे निरुपक्रमे च कर्मणि संयमात् स्वपरमृत्युज्ञानम् । फलदानोन्मुखं कर्म सोपाक्रमम् । निरुपाक्रमं तु तद्विपरीतम् । एत-स्मिन् द्विविधे कर्मणि यः संयमं करोपि तस्य योगिनोऽमुस्मिन् देशे काले च मरणं भविष्यतीत्येवं साक्षात्कारो भवति । अरिष्टेभ्योऽपि मृत्युज्ञानं भवेत् । आध्यात्मिकादिभेदभिन्नानि त्रिविधान्यरिष्टानि । तत्राध्यात्मिकं पिहितकर्णः स्वदेहे घोषं न शृणोति । नेत्रेऽवष्टब्धे ज्योति

नं पश्यति । तथाधिभौतिकं–यमपुरुषान् पितॄनतीतांश्च पश्यति । एवं च बहून्यरिष्टानि योगशास्त्राद्विज्ञेयानि । यज्ज्ञानादुपस्थितो मे मृत्युकाल इति ज्ञानं जायते । मृत्युकालज्ञानाच्च योगी शीघ्रं प्रारब्ध-कर्मसमाप्तये यतते ॥

मैत्र्यादिषु संयमाद् बलानि । मैत्रीमुदिताकरुणाख्या स्तिस्रो भावना उक्ताः । तासु संयमान् मैत्रीबलं करुणाबलं मुदिताबलं च लभन्ते योगिनः । यल्लाभाद् योगी प्राणिमात्रस्य सुखदः सुहृद् दुःखा-दुद्धर्त्ताऽपक्षपाती च भवेत् । पापशीलेषु मैत्र्यादिशून्यतारूपोपेक्षा न तु भावना । ततश्च न तत्र समाधिरपेक्षितः । एवं च न बलमुपेक्षातः ॥

हस्त्यादिबलेषु संयमात् तत्तद्बलानि भवन्ति । हस्तिबले वायुबले वैनतेयबले च संयमाद् वायुबलं हस्तिबलं वैनतेयबलं च लभन्ते योगिनः ॥

प्रथमपादोक्ताया ज्योतिष्मत्या आलोकं सूक्ष्मे परमाण्वादौ व्यवहिते भूम्यन्तर्गते विप्रकृष्टे मेरुपार्श्वस्थादौ विन्यस्य सूक्ष्मव्यव-हितविप्रकृष्टज्ञानं जायते । अयमाशयः–हृदये ज्योतिष्मती प्रवृत्ति र्यदा प्रोज्ज्वलिता स्यात् तदा चित्त एवंभूता प्रकाशशक्तिरुत्पद्यते

यद्बलाद् योगी यदेव द्रष्टुं वाञ्छति तदेव तक्षणात् पश्यति । लोके च स दिव्यचक्षुरिति गीयते ॥

सुषुम्णाद्वारके सूर्यमण्डले योगी संयमं विधाय भुवनज्ञानं लभते । सूर्यमण्डले सुषुम्णां नाडीं संयुज्य योगी समाहितो भवतीति तन्मण्डलं सुषुम्णाद्वारतया व्यपदिश्यते । व्यासमम्मतभुवनविस्तार स्तु—अधस्तादुपवर्ण्यते । तत्रावीचेः प्रभृति मेरुपृष्ठं यावदित्येष भूर्लोकः । मेरुपृष्ठादारभ्याऽध्रुवाद् ग्रहनक्षत्रताराविचित्रोऽन्तःरिक्ष-लोकः । तत्परः स्वर्लोकः पञ्चविधो माहेन्द्र स्तृतीयलोकः । चतुर्थः प्राजापत्यो महर्लोकः । त्रिविधो ब्राह्मः—यद् यथा—जनलोक स्तपो-लोकः सत्यलोक इति । ब्राह्म स्त्रिभूमिको लोकः प्राजापत्य स्ततो महान् । माहेन्द्र श्च स्वरित्युक्तो दिवि तारा भुवि प्रजा इति संग्रह-श्लोकः । तत्रावीचेरुपर्युपरिनिविष्टाः षट्—महानरकभूमयो घनसलि-लानलानिलाकाशतमःप्रतिष्ठाः—महाकालाम्बरीषरौरवमहारौरवकाल-सूत्रान्धतामिस्राः । यत्र स्वकर्मोपार्जितदुःखवेदनाः प्राणिनः कष्टमायु र्दीर्घमाक्षिप्य जायन्ते । ततो महातलरसातलातलसुतलवितलतल-तलपातालाख्यानि सप्तपातालानि । भूमिरियमष्टमी सप्तद्वीपा वसुमती । यस्याः सुमेरु र्मध्ये पर्वतराजः काञ्चनः । तस्य राजतवैदूर्यस्फटिक-हेममणिमयानि शृङ्गाणि । तत्र वैदूर्यप्रभानुरागात्—नीलोत्पलपत्र-श्यामो नभसो दक्षिणो भागः, श्वेतः पूर्वः, स्वच्छः पश्चिमः, कुरण्ड-

काम उत्तरः, दाक्षिणपार्श्वे चास्य जम्बूः—यतोऽयं जम्बूद्वीपः तस्य। सूर्यप्रचाराद् रात्रिन्दिवं लग्नमिव विवर्त्तते । तस्य नीलश्वेतशृङ्गवन्त उदीचीना स्त्रयः पर्वता द्विसहस्रायामाः, तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नवनवयोजनसाहस्राणि—रमणकं हिरण्मयमुत्तराकुरव इति । निषध-हेमकूटहिमशैलाः दाक्षिणतो द्विसहस्रायामाः । तदन्तरेषु त्रीणि वर्षाणि नवनवयोजनसाहस्राणि—हरिवर्षं किम्पुरुषं भारतमिति। सुमेरोः प्राचीना भद्राश्वा माल्यवत्सीमानः, प्रतीचीनाः केतुमाला गन्धमादनसीमानः। मध्ये वर्षमिलावृतम् । तदेतद् योजन-साहस्रं सुमेरो र्दिशि तदर्द्धेण व्यूढं, स स्वल्वयं शतसहस्रायामो जम्बू-द्वीप स्ततो द्विगुणेन लवणोदधिना वलयाकृतिना वेष्टितः । ततश्च द्विगुणा द्विगुणा शाककुशक्रौञ्चशाल्मलमगधपुष्करद्वीपाः सप्तसमुद्रा श्च सर्षपराशिकल्पाः सविचित्रशैलावतंसा इक्षुरससुरासर्पिर्दधिमण्ड-क्षीरस्वादूदकाः सप्तसमुद्रवेष्टिता वलयाकृतयो लोकालोकपर्वतपरिवाराः पञ्चाशद्योजनकोटिपरिसंख्याताः । तदेतत् सर्वं सुप्रतिष्ठितसंस्था-नमण्डपमध्ये व्यूढम् । अण्डं च प्रधानस्याणुरवयवो यथाकाशे खद्योतः । तत्र पाताले जलधौ पर्वतेष्वेतेषु देवनिकाया असुरगन्धर्व-किन्नरकिम्पुरुषयक्षराक्षसभूतप्रेतपिशाचापस्मारकाप्सरोब्रह्मराक्षसकू-ष्माण्डविनायकाः प्रतिवसन्ति, सर्वेषु द्वीपेषु पुण्यात्मानो देवमनुष्याः, सुमेरु स्त्रिदशानामुद्यानभूमिः । तत्र मिश्रवनं नन्दनं चैत्ररथं सुमान-

सामित्युद्यानानि । सुधर्मा देवसभा, सुदर्शनं पुरं वैजयन्तः प्रासादः ग्रहनक्षत्रतारकास्तु ध्रुवे निबद्धा वायुविक्षेपानियमेनोपलक्षितप्रचाराः सुमेरोरुपर्युपरिसान्निविष्टा विपरिवर्त्तन्ते । माहेन्द्रनिवासिनः षड् देवनिकायाः । त्रिदशा अग्निष्वात्ता याम्याः तुषिता अपरिनिर्मितवशवर्त्तिनः परिमितवशवर्त्तिन श्चेति । सर्वे संकल्पसिद्धा अणिमाद्यैश्वर्योपपन्नाः कल्पायुषो वृन्दारकाः कामभोगिन औपपादिकदेहा उत्तमानुकूलाभिरप्सरोभिः कृतपरिवाराः । महातिलोके प्राजापत्ये पञ्चविधोदेवनिकायः, कुमुदाः ऋभवः प्रतर्दना अञ्जनाभाः प्रचिताभा इति । एते महाभूतवशिनो ध्यानाहारा कल्पसहस्रायुषः प्रथमे ब्रह्मणो जनलोके चतुर्विधो देवनिकायो ब्रह्मपुरोहिता ब्रह्मकायिका ब्रह्ममहाकायिका अमरा इति । एते भूतेन्द्रियवशिनः । द्वितीये तपसि लोके त्रिविधो देवनिकायः, अभास्वरा महाभास्वराः सत्यमहाभास्वरा इति । एते भूतेन्द्रियप्रकृतिवशिनो द्विगुणाद्विगुणोत्तरायुषः सर्वे ध्यानाहारा ऊर्द्धरेतस ऊर्द्धमप्रतिहतज्ञाना अधरभूमिषु–अनावृतज्ञानविषयाः । तृतीये ब्रह्मणः सत्यलोके चत्वारो देवनिकायाः, अच्युता शुद्धनिवासाः सत्याभाः सञ्ज्ञासाञ्ज्ञिन श्चेति । अकृतभवनन्यासाः स्वप्रतिष्ठा उपर्युपरिस्थिताः प्रधानवशिनो यावत्सर्गायुषः । तत्राच्युताः सवितर्कध्यानसुखाः, शुद्धनिवासाः सविचारध्यानसुखाः, सत्याभा आनन्दमात्रध्यानसुखाः । सञ्ज्ञासाञ्ज्ञिन श्चास्मितामात्रध्यानसुखाः । तेऽपि त्रैलक्यमध्ये प्रतितिष्ठन्ति । त एते

सप्तलोकः सर्व एव ब्रह्मलोकाः। विदेहप्रकृतिलया स्तु मोक्षपदे वर्त्तन्ते न लोकमध्ये न्यस्ता इति। एतद् योगिना साक्षात्कर्त्तव्यं सूर्य्य-द्वारे संयमं कृत्वा। ततोऽन्यत्रापि। एवं तावदभ्यस्येद् यावदिदं सर्वं दृष्टम् ॥

चन्द्रे संयमात्—नाक्षत्रसन्निवेशज्ञानं जायते। ननु सूर्ये संयमाद् भुवनज्ञानसत्त्वे कृतं तावच्चन्द्रसंयमेनेति चेन्न। सौरतेजसा तारकाणामभिभूतत्वेन तदानीं तज्ज्ञानाभावे पार्थक्येन निर्देशात्। एवं चन्द्रे संयमात् तद्व्यूहज्ञानमात्रं न तद्गतिज्ञानम्। तद्गति-जिज्ञासया ध्रुवे संयमो विधेयः। ततस्तु तद्गतिज्ञानं स्यात्। निश्चल-नक्षत्रेषु यत् प्रधानं तद् ध्रुवनक्षत्रम्। तत्र संयमं विधायेयं ताराऽयं ग्रह इयता कालेनामुं राशिमिदं नक्षत्रं यास्यतीति सर्वं योगी विजानाति ॥

नाभिचक्रे संयमात् कायसन्निवेशज्ञानं स्यात्। शरीरमध्यभागे यन्नाभिचक्रं तत्र संयमं विधाय तदभ्यन्तरे यत्किञ्चिदस्ति योगी तत्सर्वं विजानाति ॥

कण्ठकूपे संयमात् क्षुत्पिपासानिवृत्तिः। जिह्वाधःस्थस्य तन्तो-र्मूलादारभ्योरःपर्यन्तं छिद्रं कण्ठकूपः कूपाकारं छिद्रमिति। तत्र

संयमेन साक्षात्कारे क्षुत्पिपासानिवृत्तिरूपा सिद्धि र्भवति । भावना-प्रकार स्तु गुरुमुखात् प्रत्येतव्यः ॥

कूर्मनाड्यां संयमाच्चित्तस्थैर्यम् । कुण्ठकूपादधस्तादुरसि कुण्डलितसर्पवदवस्थिततया कूर्माकारं हृदयपुण्डरीकाख्यं यन्नाडीचक्रं तत्र कृतसंयमो योगी स्थिरां चित्तवृत्तिं लभते । द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्त्तिनामितरादृश्यानां दिव्यपुरुषाणां साक्षात्कारो मूर्द्धज्योतिषि संयमात् स्यात् । शिरः कपाले ब्रह्मरन्ध्राख्यं छिद्रमस्ति । यथा गृहाभ्यन्तरस्थमणेः प्रचरन्ती प्रभा कुञ्चिता ताद्विवरदेशे संघटते तथा हृदयस्थः प्रकाशः सुषुम्णायोगाद् विप्रसृत स्तत्रैव संपिण्डितो भवति तदेव मूर्द्धज्योतिरित्याख्यायते योगिभिः । यदेतज्ज्योतिः संयमेन साक्षात्क्रियते तदा सिद्धपुरुषाणां दर्शनं भवति ॥

प्रातिभज्ञानाद्वा सर्वं जानाति योगी । नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धिः प्रतिभा । ऊह स्तर्को वा प्रतिभा । तदुत्थं ज्ञानं प्रातिभम् । प्रकृतिपुरुषयो र्विवेकज्ञानस्य पूर्वं रूपं तत् संसारनिस्तारकम् । यथा सूर्योदयात् प्राक् प्रादुर्भूतया प्रभया सर्वं दृश्यते तद्वत्–विवेकप्राक्कालिकेन तेन मनोमात्रजन्येन प्रातिभेनेतरसंयमं विना प्रकृतिप्राकृतिकवस्तुजातं ज्ञायते ॥

हृदये संयमात्-चित्तज्ञानं स्यात् । स्वपराचित्तगतान् रागादीन् योगी विजानाति ॥

पुरुषसिंहासनकल्पे चित्ते ज्ञाते तद्विवेकेन पुरुषसाक्षात्कारो भवति । तद्विवेकोपायस्तु सूत्रकृतोक्तम् । तद् यथा—

" सत्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषाद् भोगः परार्थत्वादन्यस्वार्थसंयमात् पुरुषज्ञानम् " ।

भोग्यभोक्तृत्वेनात्यन्तभिन्नयो र्बुद्धिपुरुषयोः प्रत्ययद्वयाविवेको भोगः । स च पुरुषस्य चिन्मयस्यार्थः शेषभूतः । तस्मादन्य श्चित्स्वभावो यो विम्बभूतः स च स्वार्थो नान्यशेषः । तयोः स्वार्थपरार्थप्रत्यययो र्मध्ये परार्थाद्विवेकेन स्वार्थे संयमात् पुरुषज्ञानं स्यात् । अयमाशयः—प्रकाशरूपं सुखादिस्वभावकं बुद्धिनामकमन्तःकरणद्रव्यं सत्वं, तच्चेतयिता चैतन्यपदार्थः पुरुषः । सुखाद्याकारेण परिणतायां बुद्धौ पुरुषप्रतिविम्बनात्-बौद्धपरिणामा अपि चैतन्याकाराकारिता स्युः । यथा चन्द्रप्रतिविम्बितं स्वच्छं जलं तदाकारतामियात् तद्वत् पुरुषप्रतिविम्बिता बुद्धिवृत्तिरपि तदाकारा स्यात् । बुद्धिवृत्ते स्तादृशाकारापत्ति रेव भोगः । बुद्धिपरिणामात्मको भोगो बुद्धिधर्मः पुरुषे स्तस्य निमित्तकारणम् । अतः स भोगः परार्थः । तदतिरिक्त श्चान्यः स्वार्थप्रत्ययः । पुरुषमात्रावलम्बनः निर्विकारबुद्धिसत्त्वे यदा-

पुरुषः प्रतिविम्बते तदैव सावस्था स्वार्थप्रत्ययवाच्या भवति । तस्मिन् प्रत्यये कृतसंयमो योगी पुरुषज्ञानं लभते । ननु पुरुषज्ञानं भवतीत्युक्तं तत्पुरुषज्ञानं किं बुद्धिसत्त्वस्य किं वा पुरुषस्य भवति ? आद्ये बुद्धेरपि चेतनत्वापत्तिः । अन्त्ये स्वस्य स्वज्ञेयत्वेन कर्मकर्त्तृविरोधः, सदैव ज्ञानप्रसङ्गश्च । किं तर्हि न तज्ज्ञानं स्यात् ? स्यादेव । सत्त्वस्य जडत्वाद् तद्धर्मेण पुरुषो न दृश्यते, किन्तु पुरुष एव बुद्ध्यारूढमात्मानं पश्यति । न चात्र कर्मकर्त्तृविरोधः । कर्मकर्त्तृरोधे हि स्वस्मिन् स्वसम्बन्धानुपपत्तिरेव वीजं प्रकाशसम्बन्धस्यैव प्रकाश्यरूपत्वात् । अनुभवप्राप्त्योरेकार्थत्वाच्च । स च सम्बन्ध एकस्मिन्नपि विम्बप्रातिविम्बाख्यरूमभेदेनोपपन्न इति । नन्वेवमपि परसमवेतक्रियाफलभागित्वरूपं कर्मलक्षणं पुरुषे न घटत इति चेन्न । विशिष्टाविशिष्टरूपेण ज्ञातृज्ञेययो र्भेदसत्त्वात् । आत्माकारवृत्त्यवच्छिन्नस्य ज्ञातृत्वात् केवलस्य चज्ञेयत्वात् । चेतनात्मा स्ववेदन एवेति स्मृत्यनुसारेण स्वप्रकाशत्वमात्मनः स्वज्ञेयत्वमेव । तथाच तज्ज्ञेयत्वमपि नानुपपन्नम् । "विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" इत्यादयः श्रुतयोऽपि पुरुषस्य स्वज्ञेयत्वमेव समर्थयन्ति । अज्ञेयत्वे च विज्ञातारं को विजानीयादित्येवोच्येत । इत्यास्तामन्यत्र विस्तरः ॥

तादृशस्वार्थसंयेन योगिनः प्रातिभज्ञानं श्रावणज्ञानं वेदनाज्ञानमादर्शज्ञानं स्वादज्ञानं वार्त्ताज्ञानं चोत्पद्यते । प्रातिभज्ञानमुक्तपूर्वं येन

सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टातीतानागतवर्त्तमानज्ञानं स्यात्। दिव्यशब्दानुभवः श्रावणज्ञानं येन योगी दिव्यशब्दं शृणोति, दिव्यस्पर्शानुभवो वेदना, यया दिव्यस्पर्शमनुभवति। चाक्षुषज्ञानमादर्शज्ञानं येन दिव्यरूपं पश्यति। रासनज्ञानं स्वादज्ञानं येन तेषां दिव्यरसानुभव भवति। गन्धज्ञानं वार्त्ताज्ञानं, येन स्वर्गीयं पुण्यगन्धमानुभवति योगी। तथा च मनआदीनां प्रातिभादिसञ्ज्ञिकाः सामर्थ्यविशेषरूपा सिद्धयो भवन्ति यत्सामर्थ्यात् तत्तज्ज्ञानं स्यात्। वेदनाद्या स्तु सञ्ज्ञाः —त्वक्चक्षूरसनघ्राणानां सामर्थ्येषु बोध्याः॥

ते प्रातिभादयः समाधिकाल उत्पद्यमाना हर्षविस्मयादिजनकत्वेनान्तराया व्युत्थानापेक्षया तु सिद्धयः। अहो मे सामर्थ्यमेते जना मामनुवर्त्तन्ते पूजयन्ति च देववत्। न मे समोऽस्ति इत्यादिभावनाभावितो योगी योगाच्च्यवेत संसारे च निमज्जन् पुनः पुनर्जन्म मृत्युं च लभते। अत स्ते समाधिनिष्पत्तौ विघ्नरूपाः॥

कर्मबन्धक्षयात् स्वशरीरे स्वचित्तस्य प्रवेशनिर्गमज्ञानात् परशरीरप्रवेशः। सर्वगामिनोऽपि चित्तस्य धर्माधर्मनिमित्तमेकत्रावस्थानं बन्धः। स एव यदा समाधिबलात्—शैथिल्यमापद्यते। अनया नाड्यैवं प्रकारेण चित्तं शरीरे प्रविशति निर्गच्छति चेति यदा समाधिबलाज्ज्ञानाति योगी तदा स चित्तं स्वशरीरान्निष्कृष्य

शरीरान्तरे निक्षेप्तुं शक्नुयात् । राजानुकारिभृत्यवच्च् चित्तमनुवर्त्तन्त इन्द्रियाणि । तत्र प्रविष्टो यथापूर्वमाहारादिकं करोति स्वशरीरवच्च व्यवहरति ॥

संयमेनोदानवायौ स्वाधीने जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च स्वाधीना स्यात् । वृत्तिद्वयं समस्तानामिन्द्रियाणां बाह्यमाभ्यन्तरीणं च । तत्र बाह्या वृत्ति रूपाद्यालोचनलक्षणा । आभ्यन्तरी च जीवनशब्दवाच्या । तस्या एव प्राणादिलक्षणा पञ्चतयी क्रिया । तत्र प्राण आनासिकात आ च हृदयादवस्थितः । समं नाडिषु रसानां नयनात् समानः । हृदयादारभ्य नाभिपर्यन्तमस्य वृत्तिः । मूत्रपुरीषगर्भादीनामपसरणहेतुरपानः । अस्याऽनाभेः पादतलपर्यन्तं वृत्तिः । रसादीनामूर्द्ध्वं नयनादुदानः । अस्य नासिकाग्रमारभ्य ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं वृत्तिः । सर्वदेहव्यापिवृत्तिको बलवत्कर्महेतुको व्यानः । एषु मुख्यः प्राण स्तदुत्क्रमे सर्वोत्क्रमश्रुतेः । तत्रोदानवायु र्यदा संयमेन स्वायत्तः स्यात्त् तदा जलपङ्कादीनामुपरि सञ्चरत स्तेष्वसङ्गः स्यात् । मरणवेलायामार्चिरादिमार्गेण गमनाय स्वेच्छया मरणं च स्यात् ॥

समानजयात् तेजोविशेषलाभः । समानस्य वायोः संयमेन वशीकरणात् कायाग्नेरद्भूततेजसा प्रज्वलन्निव दृश्यते योगी ॥

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धे कृतसंयमस्य योगिनो दिव्यं श्रोत्रं स्यात्। शब्दग्राहकमिन्द्रियं श्रोत्रं, तच्चाहङ्कारिकम्। वास्यादिकरणसाध्या यथा च्छिदादिक्रिया तद्वदिह शब्दग्रहणक्रियाऽपि करणसाध्या भवितुमर्हति, तत्करणं तु श्रोत्रम्। नात्र चक्षुरादीनां करणत्वं, तेषां सद्भावेऽपि बधिरेण शब्दाश्रवणात्। आकाशं श्रोत्राधिष्ठानं शब्दगुणकम्। श्रोत्रेण सह शब्दतन्मात्रजाताकाशस्याऽस्ति कश्चन सम्बन्ध आधाराधेयभावलक्षणः। आकाशं तस्याऽधारः श्रवणं त्वाधेयम्। योगिनो यदाऽकाशेन सह श्रोत्रस्य तादृशं सम्बन्धं शास्त्रतो गुरुमुखाद्वा विज्ञाय तत्र संयमं कुर्यु स्तदा दिव्यं श्रोत्रं लभेरन्। तदानीं तेषां श्रवणेन्द्रियमेतादृशं तीव्रं स्याद् यद्बलात् ते सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टशब्दजातमनायासेन शृणुयुः। एतेन वायुना सह त्वगिन्द्रियस्य तेजसा शह चक्षुषः, जलेन सह रसनेन्द्रियस्य पृथिव्या सह घ्राणस्य चाऽधाराधेयभावसम्बन्धं ज्ञात्वा तत्र च सयमं विधाय योगिनो दिव्यं स्पर्शादिकं लभन्त इत्यपि व्याख्यातं भवति

एवं कायाकाशयोः सम्बन्धे संयमात्–लघुतूलादिषु समापत्तेराकाशगमनम्। आकाशस्याऽवकाशदातृत्वाद् यत्रासनादौ शरीरं तिष्ठति तेन सह तस्य सम्बन्धः प्राप्तिः। तत्र कृतसंयम स्तत्सम्बन्धं स्वेच्छाधीनं कृत्वा लघुषु तूलादौ परमण्वादौ च वा समापत्तिं लब्ध्वा

लघु भवति । ततः पृथिव्यामिव जले सञ्चरति, क्रमेणोर्णनाभतन्तुषु पश्चादादित्यरश्मिषु—अनन्तरं च यथेष्टमाकाशे विहरति ॥

एवं चाहंज्ञानाभावे बहिरकल्पितवृत्तितः प्रकाशावरणक्षयः । द्विविधा खलु बहि वृत्तिः कल्पिताऽकल्पिता च । तत्राद्या शरीराद्बहिरस्तु मे मन इति कल्पनया या मनसो देहाद्बहि वृत्तिलाभः सा कल्पितविदेहाख्या धारणा । या चाहंभावे त्यक्ते स्वत एव बहिर्वृत्तिः साऽकल्पिता महाविदेहाख्या धारणा । तत्र कल्पिताऽकल्पितायाः कारणम् । तत्र संयमात् सात्विकस्य चित्तस्य प्रकाशप्रतिबन्धकीभूतक्लेशकर्मादीनां नाशः स्यात् परशरीरेऽनायासेन प्रवेशोऽपि सुलभो भवेत् ॥

पृथिव्यादीनां स्थूलादिधर्मेषु संयमाद् भूतजयः । पृथिवी जलं तेजो वायु राकाशमिति पञ्चमहाभूतानि । तेषां स्थूलसूक्ष्मान्वयार्थवत्वभेदेन धर्माः सन्ति । गन्धरूपरसाद्याधारतयाऽवस्थितत्वं तेषां स्थूलधर्मवत्वम् । काठिन्यं स्नेह औष्ण्यं प्रेरणं सर्वगामित्वं चैषामेकैकस्य यथाक्रमं स्वरूपम् । सत्वादित्रिगुणव्याप्तत्वमन्वयवत्वम् । भोगापवर्गप्रदानसामर्थ्यमेषामर्थवत्वम् । एकैकस्मिन् धर्मे संयमात् क्रमशः सर्वसाक्षात्कारे सर्वाणि भूतान्याज्ञावशवर्त्तीनि भवन्ति ।

यदा येन यत्कार्यं सम्पादयितुमिच्छन्ति तत्सिद्धं भवति । पृथिव्यां नास्ति तादृशं कार्यं यद् भूतजयिना न कर्तुं शक्यते ॥

भूतजयाद् योगिनोऽणिमाद्यैश्वर्यलाभः कायसम्पत् तद्धर्मानभिघात श्च भवति । अणिमा लघिमा महिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं वशित्वमीशित्वं यत्र कामावसायित्वं चेत्यष्टैश्वर्याणि । तत्र भूतानां स्थूलधर्मजयादणिमा लघिमा महिमा प्राप्ति श्चेति चतस्रः सिद्धयो भवन्ति। स्वरूपसंयमात् प्राकाम्यं, सूक्ष्मसंयमाद् वशित्वम् । अन्वयसंयमादीशित्वम् । अर्थवत्त्वसंयमाद् यत्र कामावसायित्वम् । महतोऽपि परमाणुतुल्यक्षुद्रभवनसामर्थ्यमणुत्वम् । तूलवल्लघुभवनशक्ति र्लघिमा, येन तूल इव योगी नभसि विहरति । अल्पोऽपि नगनागगगनपरिमाणो भवतीति महिमा । इच्छामात्रेण सर्वभावसान्निध्यं प्राप्तिः । यथा भूमिष्ठोऽपि स्पृशतिचन्द्रमसमङ्गुल्यग्रेण । इच्छानभिघातः प्राकाम्यम् । येन पर्वताभ्यन्तरे भूमध्ये वा प्रविविक्षा चेत् तत्क्षणात् सा सिद्ध्येत् । भूमावुदके वोन्मज्जति च । येन सामर्थ्येन भूतभौतिकानि वशीभवन्ति तद्वशित्वम् । भूतभौतिकोत्पत्तिविनाशसामर्थ्यमीशित्वम् । सत्यसंकल्पता यत्रकामाववसायित्वम् । यद्बलान्मृतं जीवयति जीवितं च मारयति योगी । रूपलावण्यवज्रतुल्यदृढशरीरलाभः कायसम्पत् । कायधर्माणां रूपादीनामनाश स्तद्धर्मानभिघातः । येनाग्निना न दह्यते जलेन वा क्लिद्येत, सिद्धानमपि—अदृश्यो भवति योगी । ननु—एतादृशं

सामर्थ्यं यदि योगिनः स्यात् स धर्ममप्यधर्मं जलमपि तेजः कुर्यादिति चेन्न। पूर्वपूर्वयोगिव्यवहारनुसारेण तदाचरणात्। अन्तर्यामिना तादृश एव सिद्धः प्रेर्यते येन पदार्थविपर्यासो न भवति। अथवा जगदुत्पत्तिस्थितिनाशव्यापारातिरिक्तसामर्थ्यं योगिनां स्यात्। येन पदार्थविपर्यासो न भवेत्। अन्यथैकस्य स्थित्यै संकल्पवत्त्वेऽपरस्य च तद्वैपरीत्ये—उभयो र्मध्ये—एकतरस्याप्यसिद्धौ तेषामैश्वर्यव्याघातो भवेत् ॥

इन्द्रियाणां ग्रहणादिधर्मेषु संयमात् तज्जयः। भूतपञ्चकव-दिन्द्रियपञ्चकस्यापि सन्ति चतस्र अवस्था ग्रहणस्वरूपास्मितान्व-यार्थतत्वाभिधेयाः। इन्द्रियाणां विषयाभिमुखी वृत्ति र्ग्रहणम्। तदेवैषां प्रथमं रूपम्। ग्राह्यवस्तुप्रकाशकत्वमेषां स्वरूपम्। तच्च तेषां द्वितीयं रूपम्। त्रिगुणव्याप्तत्वमन्वयः। स एवैषां तुरीयधर्मः। भोगप्रदानसामर्थ्यमर्थवत्वम्। तदेव पञ्चमं रूपम् तेषु धर्मेषु क्रमशः संयमेन साक्षात्कारे वशीभवन्तीन्द्रियाणि योगिनः। तत स्तु मनोवद् योगिकायस्याऽव्याहतगतिशक्तिलाभः। अविकरणभावः प्रकृतिवश्यता च स्यात्। मनो यथा स्वेच्छया सर्वत्र गन्तुं शक्नुयात्, तथा योगि-कायोऽपि सर्वत्राऽव्याहतगति र्भवति। शिलामध्ये प्रविविक्षा चेत् सापि सिद्ध्येत्। देहनिरपेक्षाणामिन्द्रियाणां दूरवाह्यार्थज्ञानसामर्थ्य-मविकरणभावः। तत्तदर्थज्ञानाय तत्र तत्र शरीरस्य नावश्यकता किन्तु

–एकत्रावस्थायाऽपि तत्तज्जानन्ति योगिनः। इन्द्रियाणामन्वयनामक-चतुर्थधर्मे जये प्रकृति स्तदाज्ञाकारिणी भवेत्। तदेव प्रधानजयशब्देन व्यपदिश्यते। करणपञ्चकधर्मजयाद् या स्तिस्रः सिद्धयोऽधिगम्यन्ते ता मधुप्रतीका उच्यन्ते॥

बुद्धिपुरुषयोः पार्थक्यज्ञाने संयमात् सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च स्यात्। योगभ्यासेन यदा रजस्तमोमलापेतं बुद्धिसत्वं स्वच्छं स्यात् तदा तद्वश्यं स्यात्। तस्मिन् सति यो बुद्धिपुरुषयो विवेकसाक्षात्कार स्तत्र संयमे प्रकृतितत्कार्यात्मका भावा भोग्यत्वेनो-पतिष्ठन्ते योगिनम्। शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मोपेतगुणयाथात्म्यज्ञान-लक्षणं सर्वज्ञातृत्वं च स्यात्। एषा चास्मिन्–शास्त्रे परस्यां वशीकार-सञ्ज्ञायां प्राप्तायां विशोका नाम सिद्धिरुच्यते॥

सत्वपुषान्यताख्यातौ तस्या श्च यथोक्तसिद्धौ वैराग्येऽसम्प्रज्ञात-योगेन रागद्वेषादिनिखिलदोषबीजभूताया अविद्याक्षये पुनर्गुणासंयोग-रूपं कैवल्यम्। तदा स्वरूपप्रतिष्ठा चितिशक्तिः स्यात्। परवैराग्या-वस्थायां समाप्तपुरुषार्थानां क्लेशादिरूपेणाभिव्यक्तस्वभावकानां गुणानां मनसा सह लये सति पुरुषस्यात्यन्तिको गुणवियोगः कैवल्याख्यो भवति॥

कैवल्यसाधने प्रवृत्तस्य योगिनः सन्निधौ यदा स्वर्गस्थानिनो महेन्द्रादयो देवा स्तं प्रलोभ्य स्वर्गलोकनयनाय चेष्टन्ते तदा परवैराग्यबलेन तत्र प्रीतिं विस्मयं चाहो ममायं योगप्रभाव इत्यकृत्वा यदि योगी स्वकर्मणि निरतः स्यात् तर्हि तस्य कैवल्यलाभो भवेत् । अन्यथा ततः प्रच्युतः संसारं चाधिगच्छेत् । चत्वारः खलु योगिनो भवन्ति प्रथमकल्पिको मधुभूमिकः प्रज्ञाज्योतिरतिक्रान्तभावनीय श्चेति । तत्र संयमाभ्यासरतेन येन न कापि सिद्धिः प्रत्यक्षीकृता किन्तु स्वल्पज्ञानाविकाशमात्रमनुभूतं स योगी प्रथमकल्पिकः । इमामवस्थामतिक्रम्य य ऋतम्भर–प्रज्ञः स द्वितीयः । भूतेन्द्रियजयी तृतीयः । इमामवस्थामतिक्रम्य यः खलु विवेकज्ञानसम्पन्नो य श्च विवेकज्ञानोत्थसिद्धौ विरक्तो, न यस्य समाधौ कश्चन विघ्न, एतादृशो जीवनमुक्तो योगी–अतिक्राम्तभावनीयः । तत्र तावत् प्रथमभूमिकायां महेन्द्रादिदेवानां नैतादृशोऽनुग्रहः । तृतीयचतुर्थभूमिकयो स्तु देवा उपेक्षणीया भवन्ति । पारिशेष्याद् द्वितीयायां भूमिकायां भवति निमन्त्रणम् । निमन्त्रणप्रकार स्तु–इहाऽस्यतामप्सरोभी रम्यतां कमनीया इमा कन्याः, इदं नन्दनवनं । इदं वैहायसं यानं, दिव्ये श्रोत्रचक्षुषी वज्रोपमः काय इत्येतत्सर्वं प्रतिपद्यतामिति । तत्र तत्र सङ्गदोषान् भावयित्वा न लोभो विस्मयो वा कार्यः । स्वप्नोपमाः कृपणजनप्रार्थनीयाः खलु विषयाः । मयाऽसादितोऽज्ञानतिमिरनाशको योगप्रदीपः कथमहं

विषयमृगतृष्णिकया वञ्चित आत्मानं संसाराग्नेरिन्धनीकुर्यामिति निश्चितमति स्तत्र तत्र सङ्गं स्मयं चाकृत्वा विवेकज्ञानोपयिकं समाधिं चेत् सम्यक्तया भावयेत् कैवल्यं लभेत ॥

विवेकजं ज्ञानं क्षणतत्क्रमयोः संयमात् स्यात् । बुद्धिपुरुषयोः पार्थक्येण यज्ज्ञानं तद्विवेकजं ज्ञानम् । तत्तु क्षणतत्क्रमयोः संयमात् सम्पद्यते । भौतिकद्रव्याणां परमाणु र्यथा निरतिशयः सूक्ष्म स्तथा मुहूर्तप्रभृतिस्थूलकालस्य सूक्ष्मोऽशंः क्षणः । पौर्वापर्येण तत्प्रवाहाविच्छेदः क्षणानन्तर्यात्मा क्रमः । अयं कालक्षणोऽमुस्मात् कालक्षणादुत्तरोऽयमस्मात् पूर्व इत्येवंविधक्षणतत्क्रमयोः संयमेन साक्षात्कारात् पूर्वोक्तं विवेकजं ज्ञानमुत्पद्यते । योगी सूक्ष्मं परमाण्वादिकमन्यदपि महदादिकं विवेकेन जानाति ॥

जातिलक्षणदेशैः परस्परपार्थक्यज्ञानेऽपि यदा तै स्तत्र स्यात् तदा विवेकजज्ञानस्योपयोगः । जाति र्गोत्वादिः, कृष्णपीतत्वादिभिरितरव्यावर्त्तकत्वज्ञापकं लक्षणम् । देशः स्थानम् । गोगवयो र्देशलक्षणसारूप्येऽपि जातिभेदः पार्थक्यहेतुः । द्वयो र्गवो र्जातिदेशसारूप्येऽपि लक्षणमन्यताया हेतुः । द्वयोरामलकयो र्जातिलक्षणसारूप्येऽपि देशभेदोऽन्यत्वकर इदं पूर्वमिदं परमिति । एवं कुत्रापि जात्या कुत्रापि लक्षणेन कुत्रापि वा देशेन भेदधीः स्यात् । यत्र तु तै

जात्यादिभि र्न पार्थक्यज्ञानं तदा विवेकज्ञानेन तत् स्यात् । यथा द्वयोरामलकयोः स्थानव्यत्यासे जाते किं पूर्वं किमपरमित्यस्मदादिभि र्न ज्ञातुं शक्यते किन्तु योगिभिः क्षणतत्क्रमयोः संयमाद् ज्ञातुं पार्यते । अपरे वर्णयन्ति, परस्परभेदकधर्मविशेषोऽस्ति विशेषपदार्थनामको नित्यद्रव्यवृत्ति र्येन परमाण्वादीनां मध्येऽन्यताप्रत्ययः स्यादिति । तत्रापि जात्यादयोऽन्यत्वहेतवः, क्षणभेद स्तु योगिबुद्धिगम्य एवेति किं विशेषपदार्थकल्पनेन । तदेव क्षणतत्क्रमोत्थं ज्ञानं सर्वत्र दोष-साक्षात्कारेण परवैराग्यद्वारा संसारमहोदधितारकं सर्ववस्तुविषयम-तीतानागतादिसर्वावस्थाबोधकं करामलकवत्–युगपत् सर्वसमूहालम्बनं च । उत्पन्नमात्रमेतज्ज्ञानं सर्वपदार्थान् सर्वपदार्थसमूहं च विषयी-करोति संसारसागराच्च परवैराग्योडुपेन तारयति ॥

विवेकज्ञानप्रभावेन सत्वशुद्धौ पुरुषस्य गुणाभिमानराहित्ये च कैवल्यम् । बुद्धिनिष्ठा रजस्तमोगुणा यदा दग्धकल्पा स्तदा निर्वृत्तिकं बुद्धिसत्वं सत्वशुद्धिनाम्नाऽभिधीयते । सत्वशुद्धौ नित्यशुद्धात्मनः कल्पितभोग स्तिरोभवति । तादृशभोगनिवृत्तिरेवात्माशुद्धिनाम्ना संसारे प्रथिता । तथा च सत्वशुद्धावात्मशुद्धौ च कैवल्यापरपर्यायो मोक्षः स्यात् । तदा पुरुषस्य जीवस्य वा चैतन्यरूपेणावस्थानम् । न भोगो नापि किञ्चिद् दुःखं, संसारेऽस्मिन् पुनरागमनराहित्यं च भवेत् । न च तदा किञ्चित्कर्त्तव्यान्तरमवशिष्यते । लोके स जीवन्मुक्त इति गीयते ॥

अस्मिन् पादेऽन्तरङ्गं योगाङ्गत्रयमभिधाय तस्य च संयमसञ्ज्ञां विधाय संयमप्रभावोत्थाः सिद्धीरुपदर्श्य समाध्युपयोगिभूतजयादिप्रकारं व्याख्याय विवेकज्ञानोत्पत्तये तां स्तानुपायान् प्रदर्श्य तारकस्य स्वरूपमभिधाय समाधित श्चित्तसत्वस्य स्वकारणेऽनुप्रवेशात् कैवल्यमुत्पद्यत इत्याभिहितम् । इति ।

योगतत्वसंग्रहे तृतीयपादः समाप्तः ॥

कैवल्यपादः

प्रथमे पादे समाधिलक्षणं सविस्तरमुपवर्ण्य द्वितीये तत्साधनं प्रदर्श्य तृतीये समाधेरन्तरङ्गसाधनं निर्णीय संयमस्य विषयप्रदर्शनार्थं परिणामत्रयमुपपाद्य समाधावास्थोपपत्तये सिद्धीरुपाक्षिप्य विवेक- तज्ज्ञानोपयिकं कैवल्यं सामान्यतोऽभिधाय विस्तरतः कैवल्यं साम्प्रतं निगद्यते । तत्रादौ कैवल्यभागीयं चित्तं निर्धारयितुं पूर्वोक्ताः सिद्धयः पञ्चप्रकारत्वेनाभिधीयन्ते । पञ्चप्रकारत्वं त्वासां जन्मत औषधित स्तपसा समाधित श्चेति । तत्र जन्मजाः सिद्धयः पक्ष्यादीनामाका- शगमनादयो यथा वा कापिलादीनां ज्ञानादयः । पातालादिषु रसायन- सेवनादौषधिजाः सिद्धयो माण्डव्यादीनाम् । मन्त्रजपान्मन्त्रजाः सिद्धयो गालवादीनाम् । तपसा सिद्धय स्तु विश्वामित्रादीनाम् । एता श्चतुप्रकाराः सिद्धयो जन्मान्तराभ्यस्तयोगजा एव जन्मदिनिमित्तेन व्यज्यन्त इति विशेषः । समाधिजाः सिद्धय स्तूक्तपूर्वाः ॥

जात्यन्तरपरिणामवर्णनम्

केषाञ्चित्तु जात्यन्तरपरिणाम इहैव स्यात् प्रकृत्यनुग्रहेण तदवयवानुप्रवेशात् । यदा तीव्रतपस्यया धर्मबलं प्रवृद्धं स्यात् तदाऽधर्मलक्षणप्रतिबन्धकनाशे तस्मिन् – जीवदेहे देवशरीरोपादानानुप्रवेशः स्यात् । पृथिव्यादयः शरीरप्रकृतयः । इन्द्रियप्रकृति स्तु–अस्मिता । प्रोक्तं तत्वद्वयं सर्वशरीरेन्द्रियारम्भकम् । सेयं प्रकृति धर्माधर्माभ्यां क्षोभिता सती परिणान्तरमुत्पादयति । काष्ठानामश्मां च शिलात्वेन परिणतिस्तु प्रत्यक्षसिद्धा । नन्दीश्वरनामको मानववटु स्तपःप्रभावेन शिवानुचरोऽभूदिति के न जानन्ति । एवं चैकं शरीरं शरीरान्तरं प्राप्नुयात् प्रकृत्यवयवानुप्रवेशादिति निर्विवादम् । अयमेव प्रकृत्यवयवानुप्रवेशः प्रकृत्यापूरतया शास्त्रेष्वभिधीयते । लोके यथा कणपरिमिताग्नि स्तत्सजातीयप्रकृत्यापूराद्वनादौ बहुतृणमण्डलव्यापित्वं दृष्ट तथा मानवदेहोऽपि देवदेहतया परिणमते । अयमापूरः प्रकृतीनां यः श्रुतः स न धर्मादिनिमित्तः किन्तु स्वाभाविकः । धर्मादिनाऽवरणभङ्गमात्रं प्रकृतेः स्यात् । धर्मोऽधर्मपरिणामस्य प्रतिबन्धकोऽधर्मो धर्मपरिणामस्य च । धर्मेणाऽधर्मेऽभिभूतेऽधर्मेण च धर्मेऽभिभूते देवशरीरे तिर्यक्परिणामः – तिर्यक्छरीरे च दैवपरिणामः स्यात् । निम्नगमनस्वभावं जलं सेतुना

षद्धं दृष्ट्वा कृषीवलो यथा सेतुमात्रं भिनत्ति; तत उच्चतारूपप्रतिवन्धकनाशे जलं स्वयं प्रवहत् केदारं प्लावयेत्, तथा प्रतिवन्धकनाशे निकृष्टं शरीरमुत्कृष्टशरीरत्वेन परिणमते । तथा च प्रकृतिरेव जात्यन्तरपरिणते मूलं, धर्माधर्मौ तु प्रतिवन्धकनाशेन तस्य सहायकौ । प्रतिवन्धकनाशे प्रकृत्यापूराद् यथा जात्यन्तरपरिणामः, संकल्पमात्रेण योगिनां कायव्यूहसृष्टिरपि तादृशी । योगी यदा शीघ्रं स्वप्रारब्धकर्म क्षपयितुमिच्छति तदा तदिच्छाशक्तिप्रभावेन स बहूनि शरीराणि सृजेत् । वहुकायसृष्टिरियं कायव्यूहशब्देन व्यपादिश्यते । तत्तच्छरीरस्थानि तानि चित्तानि तत्कारणास्मितामात्रात् प्रादुर्भवन्ति । योगिनामिच्छासामर्थ्यमेतादृशं प्रवलं येन तदास्मितायां प्रयुज्यमानं संख्यातीतमनःसृष्टौ कारणत्वं भजते । तेषां चित्तानां प्रेरकं तु योगिसहजातं चित्तमेव । स यथा स्वीयशरीरे मनश्चक्षुरादीनि प्रेरयति तथा कायान्तरेष्वपि । तत स्तु तेषामवान्तरचिन्तानां प्रवृत्तिः । तथा च तेषां समाधिपरिस्कृतं सहजातं चित्तं यदा यादृशमिच्छेत्—इच्छासृष्टानि तानि चित्तान्यपि तथैवानुकुर्युः । तत्र समाधिजं चित्तं कैवल्यभागीयं स्यात् । जन्मौषिधमन्त्रतपःसमाधिसिद्धयोगिषु समाधिसिद्धोयोगी कैवल्यभाग् भवेद् रागाद्यभावात् । इतरेषां तु रागादिसद्भावाद् भवति संसारे गमनागमनम् ॥

कर्मचातुर्विध्यनिरूपणम्

कर्मैवात्र कारणम् । कायेन मनसा वाचा यत्किञ्चिदनुष्ठीयतेऽनुभूयते च तेषां चित्ते यत् सूक्ष्मरूपेणावस्थानं तदेवसंस्कार।मिलथं कर्मेति वाऽदृष्टमितिवाऽभिधीयते । तत कर्म चतुर्विधं कृष्णं, शुक्लकृष्णं, शुक्लमशुक्लकृष्णं चेति । प्राणिहिंसादिहेतुकं कृष्णं कर्म दुरात्मनाम् । वाङ्मनःसाध्यं सुखैकफलदं शुक्लं तच्च तपःस्वाध्यायवताम् । सुखदुःखमिश्रफलकं कर्म शुक्लकृष्णं यागादिरतानाम् । तत्र शुक्लं कर्म भविष्यदुन्नतये कृष्णं कर्माधोगतये शुक्लकृष्णं च मनुष्ययोनिप्राप्तये कारणं भवति । उक्तत्रितयकर्मभिन्नं तु—अशुक्लकृष्णं कर्म । भगवदर्पणबुद्ध्या कर्माचरणात् संस्काराजनकत्वेन तदेवाऽशुक्लकृष्णकर्मतयाऽभिधीयते । तत्कर्म योगिनां सन्न्यासिनां वा स्वाभाविकम् । तदेव कर्मेतरेभ्यो ज्यायः । ततः कैवल्यप्राप्तेः । एवं च कर्मणैव संसिद्धिमास्थिता जनकादय इति भगवद्वचनं तु स्थान एव । इतरेभ्यः कर्मतो जायते शुभाशुभकर्माशयः । अशुक्लकर्मनो न तथा । सङ्गफलत्यागेन तदाचरणात् । अत स्तत्कर्म सात्विकं कैवल्यमार्गीयम् । उक्तं च गीतायाम्—

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः ॥

इत्यादिना । तत्र तत्र राजसतामसकर्मसु सुखकरत्वबुद्ध्या प्रवर्त्तमानो जीवो यदा शुभप्रारब्धोदयेऽयमेव सन्मार्ग इति केनचन करुणानिधिनोपदिष्ट स्तदा स तेषु रागद्वेषबहुलेषु स्वपुरुषकारेणास्थां विहाय सात्विककर्माणि निष्कामतयाऽचरितुमारभते ।

दैवपुरुषकारमीमांसा

न च "सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृते ज्ञानवानपि" इति न्यायेन जीवस्य प्रारब्धानुसारित्वेन पुरुषकारो व्यर्थ इति वाच्यम् । तयो र्न वशमागच्छेदितिन्यायेन पुरुषकारस्यात्यावश्यकत्वात् । अन्यथा पापक्षयोद्देश्येन क्रियमाणं प्रायश्चित्तादिकं तद्विषयकं वेदादि-शास्त्रं च निष्फलमेव स्यात् । दैवपुरुषकारावितरेतरसापेक्षौ फलं निष्पादयतः । पूर्वदेहकृतं कर्म फलोन्मुखं सद् दैवपदवाच्यं भवेत् । तस्यापि स्वसिद्धये पुरुषप्रयत्नापेक्षा स्यादेव । दैवानुकूल्यतो दैवप्रा-तिकूल्यतो वा पुरुषप्रयत्नसत्त्वेऽपि फलतारतम्यं भवति, तत्स्वन्यत् । यथा क्षेत्रोप्तं बीजं धरणीसलिलसेकादितोऽङ्कुरितं भवेदन्यथा नश्येत् । तथा प्राक्तनमपि कर्म प्रयत्नेन साफल्यमियात् । उक्तं च भगवता याज्ञवल्क्येन—

यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य गतिर्न भवेत् ।
तद्वत् पुरुषाकारेण विना न दैवं सिद्ध्यति ॥

इत्यादिना । ईश्वरोऽपि कृतकर्मसापेक्षः फलदाता, न स प्रारब्धकर्मातिक्रमितुं प्रभुः । अन्यथा तत्र वैषम्यनैर्घृण्यदोष आपतेत् । पर्जन्यन्यायेन तत्प्रवृत्तिः सर्वसम्मता । वर्षति पर्जन्ये फलतारतम्यं यथा बीजादिगुणदोषजन्यं तद्वद् राजरङ्कादिव्यवस्था स्वस्वप्रारब्धानुसारत एव । प्रारब्धानुसारिणी च तद् दया स्थानलाभाय शान्तिप्राप्तये च भवति । कर्मणां जडत्वेन तत्प्रेरकतया तत्सिद्धिरावश्यकी । "एष त आत्माऽन्तर्यामी" इत्यादिना तद्बोधनात् । उक्तं च गीतायामपि भगवता—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥

इत्यादिना । एवं च प्रारब्धवेगतः सर्वस्य सर्वत्र प्रवृत्त्यसद्भावात् केचन राजसतामसानि कर्माण्यनुतिष्ठन्ति, केचन वा सात्त्विकानीत्यपि कस्य न तिरोहितम् ॥

वासनावैचित्र्यवर्णनम्

तस्मात् त्रिविधकर्मण स्तद्विपाकानुगुणानामेव वासनानामभि-
व्यक्तिः स्यात् । फलकाले कृतकर्मविपाकानुरूपा वासना अभिव्यज्यन्ते
ऽवशिष्टा तु न । अयोगिनः शुक्लं कृष्णं मिश्रं वा कर्माऽनुतिष्ठन्तु
तत्फलं तु नैककालिकं नवैकरूपकं भवति । तेषु कानिचन जात्या-
युर्भोगफलानि कानिचन च स्मृतिमात्रफलानि तत्तज्जात्युपयुक्तस्मृति-
मुपस्थापयन्ति । जन्मान्तरसञ्चितकर्मवासनासु काश्चन मरणकालेऽभि-
व्यक्ताः पुनर्जन्मारम्भिकाः । मनुष्याणां या या मनोवृत्तयो रुचितया
भोगेच्छातया वाऽभिधीयन्ते तासां मनोवृत्तीनां कारणं पूर्वसञ्चिताः
कर्मवासना एव । एवं च पूर्वसञ्चितकर्मवासनाः कर्मसंस्कारा वाऽस्मिन्
–जन्मन्युद्बुद्धाः प्रवृत्तितया रुचितया वाऽभिलप्यन्ते । एहिक्यः
कर्मवासना श्चास्मिन्–जन्मन्युद्बुद्धाः स्मृतिनामिकाः प्रत्यभिज्ञाना-
मिका वा स्युः । तथाचाऽभिव्यक्ताः पूर्वसंस्काराः प्रवृत्ति र्वा रुचि
र्वैतत्सर्वमनर्थान्तरम् । प्रवृत्तिनामकानां पूर्वसंस्काराणामभिव्यक्ति
स्तत्तज्जात्यानुकूल्येनैव भवति । मनुष्यजन्मोचितं कर्म मनुष्यजन्मकालेऽ-
भिव्यज्यतेऽन्यत्र तु तत्प्रसुप्तमिव तिष्ठति । मनुष्यदेवपशुपक्ष्यादि-
शरीराणि क्रमशोऽनुभूय पश्चात् कश्चन चेन्मनुष्यशरीरं लभेत तर्हि
व्यवहितमनुष्यजन्मकर्मवासना एवास्मिन् मनुष्यजन्मन्युद्बुद्धा

भवन्ति शिष्टा स्तु प्रसुप्ताः सन्ति । अतो न तासां ज्ञानमस्मिन्-जन्मनि स्यात् । भविष्यति कश्चन चेत् तत्तद् देहं प्राप्नुयात् तदा तत्तत्कर्मवासना उद्बुद्धा भविष्यन्ति तदन्या स्तु प्रसुप्ताः स्थास्यन्तीति नियमः सार्वत्रिकः । एवं च मानवादिजात्या स्वर्गादिदेशेन युगादिकालेन च व्यवहितानामपि वासनानां वर्त्तमानजन्मनि स्मृतिद्वारा भोगहेतुत्वं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् । यद्विषयकः संस्कार स्तद्विषयका स्मृतिरिति संस्कारस्यैव स्मृतिरूपेण परिणतत्वात् तयोः स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वम् । जीवस्तु यद् यत् पश्यति शृणोति मनुते ध्यायति वा तत्सर्वं चित्ते सूक्ष्मतयाऽवतिष्ठते । तदेव संस्कारपदाभिलप्यं वासनापदवेद्यं वा स्यात् । चित्तसामर्थ्यविशेषरूपा स्ते संस्कारा भाविजन्मपरिणामवीजभूताः । तत स्तु तत्तत्कर्मानुरूपाङ्कुरोत्पत्ति स्ततः पुन स्तत्सदृशकर्मवीजमुत्पद्यत इत्यनिशं जीवः संस्कारचक्रे परिभ्रम्यमानो दृश्यते । ननु संस्कारस्य स्मृतिजनकत्वे प्रथमजीवस्य प्रथमप्रवृत्तिः कथमुदपद्यत तत्पूर्वसंस्कारस्याभावादिति चेत् पृच्छ्येत, तर्हि तदुत्तरतया ब्रूमः, संसारस्यानादित्ववत् संस्काराणामप्यनादित्वान्नायं प्रश्नः संगच्छत इति । सदाहं भूयासमित्याशिषः प्रार्थनाविशेषस्य मरणत्रासस्य वा नित्यत्वं संस्कारानादित्वे प्रयोजकम् । एवमेकं वीजमन्यवीजस्य कारणं यथावैकस्तरङ्गोऽन्यतरङ्गजनकः । तद्वदेकर्मवासनाऽन्यवासनाजनिका ।

बीजाङ्कुरयोः परस्परकारणत्वे निर्णीतेऽपि बीजस्यादित्वं किम्वाङ्कु-स्यादित्वं यथा निर्णेतु न शक्यते तथा जीव आदिरथवा कर्मादौ-स्वपि दुर्ज्ञानमेव। य एवाऽदिजीवतयाऽभिलप्यते वस्तुत स्तु तस्य नादित्वम्। मरणत्रासादिना तस्य पूर्वजन्मानुमानात्। जातमात्रस्य शिशोरपि मरणत्रासः पूर्वजन्मावेदकः। यदनुभूयते तत्स्मर्यते। अनुभूतं तेन पूर्वजन्मनि दुर्विषहं मरणदुःखं सर्वदुःखमूर्द्धण्यं यतः स बिभेति मरणात्। एवं च सर्ववासनानामनादित्वं सिद्धम्॥

वासनानां सञ्चय स्तु हेतुफलाश्रयावलम्बनै रेषाममावे तदमावः। वासनानां हेतुः क्लेशादिः। जातिरायु र्भोग श्च फलम्। चित्तमेव तदाश्रयः। रूपादि विषया स्तदालम्बनम्। जीव स्तत्प्रभावेन वासना-जालजडितो जन्मनो जन्मान्तरमनुभूय भोगेषु पुनः पुनः प्रवर्त्तते। तत स्तु धर्माधर्मसंस्काराः। तत स्तु पुन र्भोगवृक्ष इत्यहर्निशं परिवर्त्तमानं संसारचक्रम्। अविद्यैव मूलमस्य संसारस्य। ज्ञानयोगाभ्यां तन्नाशे चित्तादिनाशाद् वासनानाशः स्यात्। निर्मूलत्वाद् वासना न प्ररोहन्ति, न कार्यमारभन्त इति तासामभावः। न निरन्वयनाशः कस्यचन पदार्थस्यास्मिन् तन्त्रेऽभ्युपगम्यते। किन्तु धर्मपरिवर्त्तनेनाऽतीतानागतादिव्यवहारः स्यात्। तै स्तैः परिणममानो धर्मी सदैक-रूपतया तिष्ठति। धर्मा स्तु त्र्यध्यकत्वेन स्वास्मिन् स्वास्मिन्नध्वनि व्यवस्थिता न स्वरूपं त्यजन्ति। विनाशवादिनां मते नश्वरं सर्वं

वस्तु । योगिनां मते तन्न किन्तु धर्माणामवस्थैव परिवर्त्तनशीला यत स्तु लोके जन्मनाशव्यवहारः । असत उद्भवाभावात् सतो विनाशाभावाच्च । घटनामकवस्तुनो घटाकारधर्मेऽतीतेऽध्वनि प्रविष्टे घटो नास्तीति व्यवह्रियते । अनागताध्वनि घटो भविष्यतीति व्यवहारः । वर्त्तमानाध्वनि च घटोऽस्तीत्युच्यते । एतेन धर्मपरिणामविशेष एवोत्पत्तिस्थितिलयभाग् भवेदिति ज्ञायते । तथाच यन्नासीद् यद्वा भविष्यतीत्युच्यते तन्नोत्पत्तेः प्रागसदासीत् । तस्मात् सदेव वस्तुस्वरूपं ततः सद्धर्माभिव्यक्तिरिति निश्चप्रचम् ॥

अतीतानागतयो विंषयसद्भावस्थापनेन वैनाशिकमतखण्डनम् ।

—————

सत्त्वरजस्तमःस्वरूपाः सर्वे भावपदार्था व्यक्ताः सूक्ष्मा श्च । व्यक्ता वर्त्तमानाध्वानः, सूक्ष्मा अतीतानागताध्वानः । तथाच मृदादिधर्मिणि शक्तिरूपेणावस्थितस्य घटाकारादिधर्मस्य कारणव्यापारेण वर्त्तमानाध्वनिप्रवेशाद् व्यक्तता । धर्मस्य स्वाश्रये सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतमरूपेणावस्थानं सूक्ष्मत्वम् । एवं च सूक्ष्मविचारेणैतन्निर्णीयते यदतीतादिधर्मविशेषाणामाश्रय एकः स च स्थायी । तदाश्रयभूत-

धर्मिणो विविधा धर्मा आविर्भवन्ति तिरोभवन्ति च। न कस्याप्युत्पत्ति र्नापि ध्वंसः। एतन्मते जीवचित्तमप्येकं स्थायि च। उपायविशेषेण तच्चित्तं चेदतीतेऽध्वनि प्रवेशितं तन्न पुनरावर्त्तते। तदा न जीवस्य जीवत्वं किन्तु चिदात्मतयाऽवस्थानमेव स्यात्। अनेन प्रकारेण वस्तुधर्मेऽतीतेऽध्वनि प्रविष्टे स सूक्ष्मोऽव्यक्त इति वोच्यते। वर्त्तमानाध्वनि स व्यक्त इत्युच्यते। तथा च महत्तत्वादिघटाद्यन्तं सर्वं वस्तुजातं व्यक्तं सूक्ष्मं च। तच्च गुणमयम्। सत्वरजस्तमांस्येव तत्तदाकारेण परिणतानि तत्तदाख्यां प्राप्नुवन्ति। त्रिगुणविकारत्वात् सर्वं त्रिगुणम्। यद्यपि त्रयो गुणा स्तथापि तेषामङ्गाङ्गिभावलक्षणपरिणामस्यैकत्वाद् वस्तुतत्वमेकमेव। यथा वर्त्तितैलादीनामेको दीपपरिणाम स्तद्वदेषामपि—अङ्गाङ्गिभावेनोपकार्योपकारकभावेन वा परिणामैकत्वं न पृथक् पृथक् परिणामः। वस्तुतत्वैकत्वेऽपि तदवस्था तु नाना। यथैका मृत्तिका किन्तु घटादिलक्षणाऽवस्था तु नाना। एवं चित्तमेकं तस्य धर्मो वाऽवस्था वा नाना। तथा च वस्तुनोऽवस्थान्तरप्राप्तत्वे तस्यान्यथात्वं स्वीक्रियते न तूत्पत्ति विनाशो वा। अत श्चित्तस्यावस्थापरिवर्त्तनमवलोक्य न तस्य क्षणविनाशित्वं न वा नानात्वमभ्युपगम्यते। ये खलु विज्ञानाभिन्नवाह्यपदार्थास्तित्वं न मन्यन्ते तेषां मते धर्मधर्मिणो रुभययो र्विज्ञानत्वम्। न विषयो नाम कश्चन पृथक्पदार्थो विज्ञानात्। योगिनां मते तु न विज्ञानविज्ञेययो

रेकत्वम् । तौ हि परस्परं भिन्नौ । विज्ञानस्य विज्ञेयमन्तरेणोदया-भावात्–व ह्यवस्त्वस्तित्वाकल्यनं भ्रान्तिविलसितम् । विज्ञानं चेद् विज्ञेयाकारेण परिणमेत तर्हि–एकस्मिन् विज्ञाने व्यक्तिभेदेन नाना विज्ञानं नोदियात् । दृश्यते चैका स्त्री यदेकस्य यादृशविज्ञानविज्ञेया तादृशी नान्यस्य । विज्ञानविज्ञेययो र्भेदो यदि न स्यात् तर्हि नैवं स्यात् । वस्तुसाम्येऽपि यथा विज्ञानस्य भिन्नता प्रतीयते तथा विज्ञान-विज्ञेययोरपि भिन्नताऽस्त्येव । पूर्वमेवोक्तमेकं वस्तु किन्तु तन्निष्ठः परिणामस्तु नाना परिवर्त्तनशील श्च । अत एकस्यां नार्यां तत्स्वामिनः सुखविज्ञानं, तामलब्ध्वाऽन्यस्य दुःखविज्ञानं, उदासीनस्य तूपेक्षा-विज्ञानम् । तथा च विज्ञेयस्यैकत्वेऽपि तदपेक्षितविज्ञानस्य नानात्वान्न विज्ञानविज्ञेययोरेकत्वम् । किञ्च ज्ञानस्य प्रकाशकत्वे । ज्ञेयस्य च प्रकाश्यत्वे सर्वप्रत्यक्षासिद्धे न तयोरेकत्वम् । जडप्रकाशयो र्भेदो न केनाङ्गी क्रियते ? ननु ज्ञानस्य प्रकाशस्वभावत्वे कथं युगपन्नं सर्वं वस्तु प्रकाश्यते–इति चेत्, सत्यम् । चित्तस्य वस्तूपरागापेक्षितत्वात् किञ्चिज् ज्ञातं स्यात् तदभावादज्ञातम् । चित्तस्य प्रकाशस्वभावत्वेऽपि तदिन्द्रियप्रणालीकया बहिर्निर्गत्य यदाकारेणाकारितं स्यात् तदेव चित्तप्रकाश्यं नान्यदिति वस्तुस्थितिः । अयमाशयः–इन्द्रियद्वारा येनार्थेन चित्तस्योपराग स्तस्मिन्नर्थे चित्तं स्वनिष्ठचित्प्रतिविम्ब-स्वरूपां स्फूर्तिं धत्ते तमर्थं स्वाकारवृत्तिद्वारा बुद्धिस्थप्रातिविम्वद्वारा वा

पुरुष श्चेतयते नान्यमिति वस्तु ज्ञातमज्ञातं च भवति। अत एव चित्तं तदर्थोपरागमपेक्ष्य कदाचित् किञ्चिज् जानाति कदाचिन्न जानाति। एवं च चित्तस्य परिणामित्वाद् वस्तुज्ञाताज्ञातं स्यादिति सिद्धम्। पुरुषस्यापरिणामाच् चित्तवृत्तयः सदैव ज्ञाताः। चित्तस्य प्रकाशस्वभावत्वेऽपि तज्ज्ञातृत्वेन पुरुषसिद्धिः। चित्तं यथा बाह्य-वस्तुज्ञातृ—आत्मापि तथा चित्तस्य ज्ञाता। परन्तु नात्मा चित्तव-उज्ञाता। इन्द्रियसाहाय्यमन्तरेण न किमपि चित्तस्य ज्ञेयम्। पुरुषसन्निधौ चित्तं तु सदैवज्ञेयम्। अतः सुखदुःखादय श्चित्तावस्था स्तत्क्षणादात्मनि प्रकाशिता भवेयुः। अनेनैतत्प्रतीयते परिणामि चित्तमात्माऽपरिणामीति। तथाच परिणामित्वाद् दृश्यत्वाद्वा न चित्तं स्वयंप्रकाशमित्यपि सिद्धं भवति। यत्किल दृश्यं तद्द्रष्टृवेद्यं यथा घटादि। वेद्यं च चित्तं तस्मान्न स्वप्रकाशम्। आत्मनि सुखदुःखादिचित्तवृतीनां प्रातिबिम्बपात एव तस्य ज्ञातृत्वम्। एतेन चित्तचैत्तयो र्युगपदावधारणासंभवेन तयोः परस्परं भिन्नता-सिद्धौ विज्ञानवादिमतमप्यपास्तम्। चित्तेन सह विषयस्याऽऽत्मना च चित्तस्य यदि परस्परं भिन्नता न स्यात् तर्हीदं ज्ञेयमिदमेव तद्विषयकं ज्ञानमित्येवंप्रकारकः पृथगनुभवो न भवेत्। मदीयं चित्तमित्याकार-कोऽनुभवोऽपि भिन्नताबोधकः। किञ्च घटमहमद्राक्षमित्याकारक-स्मरणज्ञानेऽपि घटतद्विषयकं ज्ञानं भासते न वा। यदि भासेत तर्हि

तयोः पार्थक्यं सुनिश्चितमेव। तथा च चित्तचैत्यात्मानः परस्पर-पृथक्पदार्थाः। चैत्यं हि चित्तेन प्रकाश्यते चित्तं चात्मना। आत्मा तु स्वयंप्रकाशः। ननु यथा चित्तेन चैत्यं प्रकाश्यते तथा चेच्चित्तमपि चिन्तान्तरेण प्रकाश्येत तर्हि किमात्मकल्पनेनेति चेन्न। स्मृतिसङ्करादिदोषापत्तेः। तथाहि चित्तं चेच्चित्तान्तरेण प्रकाश्येत तर्हि तद्ग्राहकं बुद्ध्यन्तरं कल्पनीयं तस्याप्यन्यदित्यनवस्थानात् पुरुषायुषेणापि कस्याप्यर्थस्य प्रतीति र्न स्यात्। यावद्धि ज्ञानस्य ज्ञानं नानुभूयेत तावत् किमपि ज्ञानं न सिध्द्येत्। एवं च ज्ञानप्रत्यक्षं प्रति नान्यज्ञानस्य न वा बुद्धेः कारणता किन्तु—आत्मन एव। यदा किमपि ज्ञानं जायताऽत्मैव तज्ज्ञाता। किञ्च स्मृतिसङ्करोऽपि भवति। रूपरसादिषु समुत्पन्नायां बुद्धौ तद्ग्राहिकानामनन्तानां बुद्धीनां समुत्पत्ते र्बुद्धिजनितैः संस्कारै र्यदा युगपद् बह्वः स्मृतयः क्रियन्ते तदार्थबुद्धेरपर्यवसनाद् बुद्धिस्मृतीनां युगपदुत्पत्तेः कस्मिन्नर्थे स्मृतिरियमुत्पन्नेति ज्ञातुमशक्यत्वात् स्मृतीनां सङ्करादियं रूपस्मृति रियं च रसस्मृतिरिति न भेदेन ज्ञायते। तथाच बुद्धे र्ग्राहिका नान्या बुद्धिः किन्तु—आत्मैव। ननु विषयस्थले चित्तस्य सञ्चारात् तदाकारापरिणामाच्च यथा विषयग्रहणं दृष्टं तथा पुरुषस्य सञ्चाराभावत् कथं स्वबुद्धिसंवेदनमिति चेत् सत्यम्। चिते स्तदाकारापत्तावेव तत्संवेदनमिति ब्रूमः। त्रिगुणा प्रकृति स्तत्प्रसूता बुद्धि श्च यथा

रूपान्तरिता भवति न तथा पुरुषः। स सदैवाविकृतोऽपरिणामी च। सूर्यो यथा निर्मलजले प्रतिबिम्बितो भवति स्वसन्निधिस्थबुद्धिसत्त्वे पुरुषोऽपि तथा। अविवेकिदृष्ट्या सूर्यप्रतिबिम्बितजलांशः सूर्याकारेण दृष्टः सूर्यपरिमित इव प्रतीयते पुरुषप्रतिबिम्बितं बुद्धिसत्त्वमपि चेतनतया तथा। बुद्धेश्चैतन्याकारता चैतन्यव्याप्तताऽऽत्मनोबुद्धिसंवेदनं वेति सर्वमेकार्थवाचकम्। अत एव चित्तमात्मवेद्यं नान्यबुद्धिवेद्यमित्यपि

बिम्बप्रतिबिम्बभावनिरूपणम्

सिद्धम्। ननु भवतु चितेः स्वबुद्धिसंवेदनं शब्दादिसंवेदनं तु कथं भवतु? बुद्धिवच्छब्दादीनामपि चिति प्रतिबिम्बसामर्थ्याङ्गीकारे सर्वदैव सर्वार्थभानप्रसङ्गात्। कथं वा चितेः स्वसंवेदनम्। पुरुषस्य पुरुषान्तरवेद्यत्वे चित्तवदनवस्था, स्वेन स्ववेद्यत्वे कर्मकर्तृविरोधोऽपि स्यादिति चेन्न। द्रष्टृदृश्योभयाकारं हि चित्तं सर्वार्थग्रहणसमर्थम्। तथा च शब्दादिपुरुषोभयाकारा बुद्धिवृत्तिः पुरुषे प्रतिबिम्बिता भासते। इदमेव शब्दादेः पुरुषस्य च दृश्यत्वं बुद्धेर्दृश्यत्ववदित्यतो न पुरुषदर्शनार्थं द्रष्ट्रन्तरापेक्षा, नापि कर्मकर्तृविरोधोऽन्तःकरण-

द्वारत्वात् । निर्मलस्फटिको यथा प्रतिबिम्बग्राही तथा रजस्तमउपद्रवशून्यं चित्तसत्त्वं शुद्धत्वाच्च चिच्छायाग्रहणसमर्थं सर्वार्थप्रकाशकं च भवति । यथाऽयस्कान्तसान्निधिस्थलौहे क्रियाशक्तिराविर्भवति तथोपद्रवशून्ये चित्तेऽपि चैतन्यसान्निध्यतः परिपूर्णाक्रियाशक्तिः । नित्यचैतन्यस्वरूप आत्मा स्वच्छे चित्ते प्रतिबिम्बितः स्यादित्यज्ञा अविवेकत श्चित्तमात्मत्वेन मन्यन्ते परन्तु शास्त्रतः स भ्रमो दूरीभवेत् । कोऽपि पदार्थः कस्मिन्नपि स्वच्छे पदार्थे यदोपरक्तोऽभिव्यक्त स्तदाकारेण दृष्टो वा भवेत् तदा सोऽभिव्यज्यमानो बिम्बतुल्यत्वात् प्रतिबिम्ब इति व्यपदिश्यते । वस्तुतः स प्रतिच्छायैव न स्वतन्त्रः । जलादिषु सूर्यादिप्रतिबिम्बतः पातस्थाने तदाकारेण दृष्टे बिम्बगतगुणाः सामान्यतः प्रतिबिम्बे प्रतीयत इत्यनुमीयते । बुद्धिसत्त्वे तथा नित्यचैतन्यस्य या छाया सापि तत्सदृशी शास्त्रेषु—अभिव्यङ्गचेतनतयाऽभासचेतनतया वाभिधीयते । एवं चास्मिन्—शास्त्रे नित्यचैतन्यमभिव्यङ्चैतन्यं चेति चैतन्यं द्विविधम् । इदमेवाभिव्यङ्चैतन्यं पौराणिकानां जीवात्मा सुखदुःखभोक्तृ संसारिपुरुषः । नित्यचैतन्यं तु परमात्मा परमपुरुष श्च । मतान्तरे तत्परब्रह्मेति गीयते । ननु—अपेक्षाकृतनिर्मलस्य परिमितस्यैव सावयवपदार्थस्य कस्मिन्नपि निर्मले परिमितपदार्थे प्रतिबिम्बदर्शनात् सर्वव्यापकपदार्थस्य बुद्धिरूपे स्वल्पाधारे प्रतिबिम्बपातो न युक्तियुक्त इति चेन्न । अपेक्षाकृतानिर्मल-

जले वृहत्तमस्य सूर्यस्याऽकाशस्य वा प्रतिविम्बदर्शनात् । जले आका-शादिप्रतिविम्बवच्चित्तसत्वे नित्यचैतन्यस्यापि प्रतिविम्बनं सिद्ध्येत् । ननु चिच्छायाक्रान्ताचित्तात् सर्वव्यवहारोपपत्तौ कथं प्रमाणशून्यो द्रष्टाऽभ्युपगम्यते--इति चेन्न । असंख्यावासनाचित्रितस्य चित्तस्य देहेन्द्रियादिभि र्मिलित्वा पुरुषभोगादिकार्यकारित्वात् । यत्किल मिलित्वा कार्यकारि तत्परार्थं यथा गृहादि । नहि यथा स्तम्भादिभिः संहत्य गृहं स्ववसतं करोति किन्तु परस्मै देवदत्ताय । एवं गुणा अपि बुद्ध्यादिकं परार्थं कुर्वन्ति । चित्तं सत्वादिगुणत्रयसंघातेनोत्पद्यते तेषां साहाय्येन च सुखदुःखादिकं जनयतीति तत् संहत्यकारित्वेन परस्य भोगापवर्गसाधकम् । पर एव पुरुषः । स एव विमुक्तभूङ्क्ते । तथा च चित्तमेव यदि पुरुषभोग्यं तर्हि चिच्चित्तयोः पार्थक्यप्रतीतौ सत्यां तयोरेकत्वभ्रमो न स्यात् ॥

विवेकज्ञाननिरूपणम् ।

एवं च मातृमानमेयात्मकस्याखिलस्य प्रपञ्चस्य तप्तायःपिण्ड-वदेकीभावापन्नस्य यथोक्तप्रकारैः परस्परं पार्थक्यं साक्षात्कुर्वत कोऽहमासं कथमहमासं के भविष्याम इत्याद्याः स्वसत्वजिज्ञासा

निवर्त्तन्ते । तथा च श्रुतिः—एतं ह वाव न तपति किमहं साधु नाकरवं किमहं पापमकरवमित्यादिः । अज्ञानात् खलु चिच्चित्तयो स्तादाम्यभ्रमो विवेकज्ञानेन यदा निवर्त्तत तदा विशेषदर्शिन ईप्सितार्थसिद्धौ नात्मभावभावना । चिच्चित्तयो विवेकज्ञाने दृढे परिसमाप्तमस्याऽऽत्मदर्शनं नान्यत्किञ्चिज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

तदा तच्चित्तं विवेकालम्बनं कैवल्याभिमुखं स्यात् । यत्प्रागज्ञानालम्बनं शब्दादिविषयाभिमुखमासीत् तद्विवेकज्ञाननिम्नं कैवल्याभिमुखं भवेदिति भावः ॥

न चोत्पन्नमात्रेण विशेषदर्शनेन कृतकृत्यता स्यात् । पूर्वसंस्कारवशादन्तराऽन्तराऽस्मीतिवा ममेतिवा जानामीति वा व्युत्थानसंस्काराः प्रादुर्भवन्ति ॥

सूक्ष्मक्लेशानां तत्वज्ञानचित्तलयाभ्यां दाहनाशौ यथोक्तपूर्वौ तथैषां संस्काराणामपि । यथा सम्प्रज्ञातयोगिनो व्युत्थानदशायां पूर्वसंस्कारजाः क्लेशा अविद्यावृत्तयो दग्धबीजतुल्याः सत्यो न संस्कारं जनयन्ति तथा पूर्वसंस्कारा अपि सम्प्रज्ञातजनितेन निष्ठारूपेण ज्ञानाग्निना दग्धबीजकल्पाः सन्तः प्रत्ययं न जनयन्ति ॥

सर्वभावाधिष्ठातृत्वरूपायां सिद्धावप्यलुब्धस्य सर्वथा विवेकख्यात्युदयाद् धर्ममेघसमाधिः । स च संप्रज्ञातयोगस्य परा काष्ठा । सर्वभावाधिष्ठातृत्वलक्षणसिद्धिकविवेकसाक्षात्कार एव शास्त्रेषु प्रसंख्यानतयाऽभिहितः । क्लेशकर्मादीनां निःशेषेणोन्मूलकं धर्मं मेहति वर्षतीति धर्ममेघः । प्रकृतितत्कार्यस्वरूपं पूर्वोक्तप्रकारैर्ध्यायतः प्रकृतिपुरुषयोः पार्थक्यज्ञानमुपजायते । तज्ज्ञानस्य शास्त्रीयं नाम प्रसंख्यानम् । तस्मिन्नुपस्थिते योगी तत्र चेदलुब्धो तदुदये सचेष्टोऽपि न भवेत् तर्हि सर्वोत्कृष्टं वैराग्यं स्यात् । तद्वैराग्यमेव परवैराग्यम् । अत्रैव च सर्वं चित्तचेष्टितं समाप्तं स्यात् । अत्रैव च चित्तं निरन्तरं धर्ममेघसमाधौ रतं भवेत् । अयमेव समाधिः सर्वसाधनफलरूपोऽलौकिकसामर्थ्यविशेषो योगिनाम् । यद्बलादेते संसारसमुद्रमनायासेन तरन्ति । अयमेव सामर्थ्यविशेषरूपत्वाद् धर्मः कैवल्यफलंवर्षणाच्च मेघ इत्यभिधीयते । यदुदये संसारकारणविपर्ययशब्दवाच्या अविद्यादयः क्लेशाः समूलकाषं कषिता भवन्ति । तन्मूलका शुभाशुभाश्च प्रारब्धातिरिक्ताः कर्माशयाः समूलघातं हता भवन्ति । प्रारब्धकर्मणां तु भोगादेव क्षय इष्यते ।

जीवन्मुक्तिविवेकः

तथाच " तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये " इति श्रुतेः स जीवन्नेव मुक्तो भवति । ननु " न ह वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्तीति न्यायेन जीवतो दुःखसद्भावे कथं दुःखात्यन्तनिवृत्तिलक्षणा जीवनमुक्तिरिति चेन्न । दुःखकारणाभावात् तत्सिद्धेः । नेयं श्रुति मुक्तविषयिका येन क्षीणविपर्ययस्यापि जन्मापादयेत् । नहि क्षीणक्लेशः कश्चिज्जातो दृश्यते । तदुक्तं गौतमाचार्यैः " वीतरागजन्मादर्शनादिति । कारणनाशेन कार्यनाशात् कथं दुःखम् । तथाच स क्षीणविपर्ययो जीवन्मुक्तः प्रारब्धवशात् पुण्यं पापं वाचरतु न ततः संस्कारः संस्कारत श्च जन्म स्यात् । न चाविद्याभावात् कथं तस्य पापादौ प्रवृत्तिरिति वाच्यम् । " सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्यां ", " हत्वापि स इमाँल्लोकान् " इत्यादिन्यायेन बलवत्प्रारब्धहेतुकपुण्यादौ प्रवृत्तिसद्भावात् । पुण्यपापहेतुकं मानवशरीरं विद्वदविदुषोः समानम् । तत श्च तच्छरीरधारणजन्यं सुखदुःखमवश्यमेव भोक्तव्यम् । ज्ञानेनापि प्रारब्धातिरिक्तकर्मणां नाशः स्यात् । न च " दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः " इति गौतमसूत्रोक्तन्यायेन मिथ्याज्ञानापाये रागादि-

दोषक्षय स्तत स्तु प्रवृत्तिनाशः प्रवृत्तिनाशे जन्माभाव स्तस्मिन् सति दुःखनाश श्चेत् तर्हि कथं शरीरसत्वे निःशेषतो दुःखनिवृत्तिरिति वाच्यम् । भाविजन्माभिप्रायकतदुक्तित्वेन दोषाप्रसक्तेः । जीवन्मुक्तस्यापि प्रारब्धजन्यं यद्दुःखं तदाभासमात्रं विषयेषु कर्तृत्वाद्यभावात् । धर्ममेघसमाधिना क्लेशकर्मनिवृत्तौ तदावरणमलापेतस्य बुद्धिसत्वस्यानन्त्यादक्लेशेन सर्वं ज्ञेयं स्यात् । प्रकाशस्वभावचित्तस्यावरण मविद्यादि, तच्चेन्नष्टं स्यात् तत् स्वरूपप्रतिष्ठितं षड्विंशतितत्वानि प्रत्यक्षीकुर्वत् परितृप्यति । तथाच तत् सर्वज्ञं भवतीति भावः ॥

भोगापवर्गसाधकत्वेन कृतार्थानां गुणानां सृष्टावानुलोम्येन, प्रलये च प्रातिलोम्येन यः परिणामक्रम स्तस्यापि समाप्तिः स्यात् । धर्ममेधोदयात् क्लेशकर्मनिवृत्त्या ज्ञानस्यानन्त्ये सति परवैराग्येण पुरुषार्थसमाप्तौ कृतार्थान् पुरुषान् प्रति सत्वादीनां गुणानां वक्ष्यमाणपरिणामक्रमः समाप्यत इति भावः ॥

क्षणयोः पौर्वापर्यं क्रमः । स च पिण्डघटकपालचूर्णकणानां प्रत्यक्षपरिणामाणां पूर्वान्तः पिण्डोऽपरान्तः कण इति पूर्वोत्तरावधिग्रहणेन निश्चित्य ग्राह्यो भवति । पिण्डानन्तरं घट इति क्रमोऽत्र प्रत्यक्ष एव । क्वचिच्च सुरक्षितवस्त्रादौ पुरातनत्वदर्शनेन पूर्वान्तनवत्वपरिणाममारभ्य प्रतिक्षणं पुरातनतायाः सूक्ष्मतमसूक्ष्मतर-

सूक्ष्मस्थूलस्थूलतरस्थूलतमत्वेन जायमानाया भेदं ज्ञात्वा नवत्वानन्तरं सूक्ष्मतमपुरातनता तदनन्तरं सूक्ष्मतरपुरातनतेतिक्रमोऽनुमेयः ॥

समाप्तभोगापवर्गाणां पुरुषोपकरणानां च गुणानां स्वकारणेऽत्यन्तविलय श्चितिशक्ते वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ स्वस्वरूपमात्रेणावस्थानं वा कैवल्यम् । उपाध्युपाधिमतो रुभययोरेव केवलतैकाकितावेति द्वे एव कैवल्ये लक्षिते । तत्राद्यं व्युत्थानसमाधिपरवैराग्यसंस्कारा मनसि लीयन्ते मन श्चास्मितायां । सा च महति तच्च गुणेष्विति क्रमेण । एतदेव प्रधानस्य ज्ञानिपुरुषं प्रति कैवल्यम् । जपापाये स्फटिकस्य स्वरूपप्रतिष्ठावत् प्रधानस्य पुरुषेण सदासंयोगात् तस्य यच्चिन्मात्रतयावस्थानं तद्द्वितीयं कैवल्यम् । पुरुष स्तु न बध्यते न मुच्यते नापि संसरति स सदैव केवलः । प्रकृतिरेव नानाश्रया तत्तदवस्थां लभते । वस्तुत स्तु तया सह यः पुरुषस्यात्यन्तिको वियोगः स एव केवलीभावः ।

आत्मस्वरूपे विरोधपरिहारः

ननु—आत्मनो नित्यचैतन्यरूपत्वे सुप्तमूर्च्छितादीनामपि चैतन्यं स्यात् । न तु तद् दृश्यते । ते पृष्टाः सन्तो नासीत्किञ्चित्

तदा ज्ञानमिति ब्रुवन्ति । स्वस्थावस्थायां तु तदुपलभ्यते । तस्मादग्निघटसंयोगजरोहितादिगुणवदात्ममनःसयोगजमागन्तुकमात्मचैतन्यमिति चेन्न। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" अनन्तरोऽवाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवेत्यादिश्रुत्या तस्य नित्यचैतन्यस्वरूपत्वावगमात् । अयौक्तिकत्वाच्च । यद्यागन्तुकं चैतन्यं तस्य तर्हि सृष्ट्यादौ मनआदीनामभावात् कथमीक्षणादिना तच्चैतन्यं श्रूयेत । को वा वुद्ध्यादीन् स्वभासा भासयेत्, यदि नित्यचैतन्यस्वरूप एवात्मा न भवेत् । यत्त सुप्तादौ चैतन्यराहित्यं तत्तु तदा "यद्वै तं न पश्यति पश्यन् वै न पश्यति" इतिन्यायेन विषयाभावाभिप्रायकम् । तस्मात्–"असुप्तः सुप्तानभिचाकशीति" (वृ ४–३–११), "अयं पुरुषः स्वयं ज्योति र्भवति" (वृ ४), "न हि विज्ञातु विज्ञाते र्विपरिलोपो विद्यते" (वृ ४–३) इत्यादिश्रुते र्नित्यचैतन्यस्वरूप एवायमात्मेति फलितम् । आनन्दस्वरूपत्वमपि तस्य सर्वदुःखाभावाभिप्रायकम् । विद्ययाऽज्ञाननाशात् सर्वदुःखनिवृत्तावर्थाक्षिप्तानन्दसद्भावे तद्रूपत्वकल्पनापेक्षया तस्य चिन्मात्रत्वकल्पनं वरम् । अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेदितिन्यायेन तस्य चिन्मात्रत्वप्रतिपादनादेव सर्वार्थसिद्धावानन्दरूपत्वकल्पनं महद् गौरवम् । तथा च मस्तकाद् भारापगमे सुखीति लौकिकन्यायोऽपि संगच्छेत । एतेन चिदाचिद्रूपताऽपि तस्य निरस्ता वेदितव्या । विरोधादश्रौतत्वाच्च । तद्

रूपतैव चेदभ्युपगम्येत भावाभावयोः कुत्रापि विरोधो न स्यात्। न वा विभुद्वयसंयोग एव पूर्वोक्तरीत्या युक्तियुक्तो येन तस्य तथात्वं स्यात्। एकेन केनापि तादृशः संयोग उररीक्रियेत चेद् बहूनामनुरोधेन तत्र विरोधप्रदर्शनं सर्वसम्मतम्। अथवा विवादास्पदत्वादेतस्य विषयस्य न तयोः संयोग आग्रह आस्थेयः। एवं च संयोगाभावाच्चिदचिद्वादो भ्रान्तिविलसित एव। न चावच्छेदकभेदेनापि तदभ्युपगमः शक्यसम्भवः। एकस्मिन्नधिकरणे भावाभावावस्थानानङ्गीकारात्। न च श्रुत्यादिषु सद्भावात् तस्य तथात्वमुपलभ्येतेति वाच्यम्। उपक्रमादिना श्रुत्यादिषु चिन्मात्रत्वावधारणात्। श्रुत्यादिषु तदसद्भावेऽपि तत्कल्प्येतेति चेत् कल्प्यश्रुत्यपेक्षया साक्षाच्छ्रुते बलाबलाधिकरणन्यायेन सर्वथा बलीयस्त्वात् तत्कल्पनमन्याय्यमेव। आचार्येणापि पातञ्जलसूत्रेषु तस्य तावन्मात्रत्वप्रतिपादनात् तद्विरुद्धकल्पनं बालोन्मत्तप्रलपितमेव। न च "सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वगन्धः सर्वरसः" (छा. ३–१४–२), "अस्थुलमणव्ह्रस्वमदीर्घम्" (बृ. ३–८–८) इत्यादिना श्रुतिषु सविशेषनिर्विशेषरूपाभ्यामुभयलिङ्गत्वसमर्थनात् तस्य तथात्वं शक्यशङ्कम्। सविशेषरूपस्यौपाधिकत्वेन तत्र श्रुतितात्पर्याभावात्। न हि स्वच्छः सन् कोऽपि स्फटिकादिपदार्थो जपाकुसुमाद्युपाधियोगादस्वच्छस्वभावको भवेत्। उपाधिविगमे तस्य तथात्वानिश्चयात्। एतत् सर्वमस्माभिः शक्तिभाष्य-

तिमिरभास्करग्रन्थे विस्पष्टं व्याख्यातम् । स्याच्चेत् कस्यचन तद्विजिज्ञासा तत एवावगन्तव्यम् । न च कस्यापि कृते चिद्वादस्य शक्यत्वेऽपि—अधिकारिविशेषाणां कृते चिदचिद्वादाभ्युपगमात् साफल्यसिद्धिरिति वाच्यम् । सर्वत्र चिद्रूपेणावस्थानस्य सर्वदुःख-निवृतिरूपमुक्तित्वेन प्रतिज्ञानात् । एतेन क्षणिकविज्ञानवादः शून्य-वाद श्च निराकृतो वेदितव्यः । आत्मन स्त्रिक्षणस्थायित्वरूप-क्षणिकत्वाभ्युपगमेन विनाशित्वापत्त्योपासकानां तत्रानास्थासद्भावा-दुपास्योपासकभावानिवृत्तौ सर्वशास्त्रवैयर्थ्यप्रसङ्गो दुर्वारः । सूत्रभाष्य-काराभ्यामेतद्वादस्य ग्रन्थमध्येऽसारत्वप्रतिपादनान्नात्र वहु प्रतन्यते । आकाशापरपर्यायस्य शून्यपदार्थस्यापि जडतन्मात्रकार्यत्वेनात्मत्वानु पपत्तिः । रथादिस्थले सर्वत्र चेतनस्यैवाधिष्ठातृत्वदर्शनेन तस्य जडत्वकल्पनं भ्रान्तिविलसितमुपर्युक्तदोषप्रसञ्जनं च । आधिष्ठात्र-धिष्ठेयभावस्य सर्वत्र चिज्जडाभ्यां नैयत्येनोभययो र्जडत्वकल्पनं वालिशताज्ञापकमात्रमेव । येषां च शरीरपरिमाणो नित्यसंकोच-विकाशशाल्यात्मा मुक्तिरपि सततमूर्द्धगमनेनाऽलोकाकाशेऽवस्था-नरूपा तेषामभिप्रायस्यात्यन्तयुक्तिविरुद्धत्वेनानुकम्पनीया स्ते । तस्मान्निर्गुणो नित्योपलब्धिस्वरूप एवात्मा तद्रूपेणावस्थानमेव मुक्तिरिति सिद्धम् । एवं चास्मिन् पादे सर्वसिद्धिमूलभूतां समाधि-सिद्धिमभिधाय जात्यन्तरपरिणामरूपसिद्धिविशेषे प्रकृत्यापूरस्य

कारणत्वेन धर्मादीनां तत्र प्रतिबन्धकनिरासायैवोपयोगं प्रदर्श्य निर्माणचित्तानामस्मितामात्रोद्भवानां योगिचित्तमेकं प्रयोजकमुक्त्वा योगिकर्मणामलौकिकत्वं प्रतिपाद्य व्यवहितानां वासनानामानन्तर्यमुपपाद्य विज्ञानवादनिराकरणेन साकारवादं च व्यवस्थाप्य पुरुषज्ञातृत्वाच्चित्तद्वारेण सकलव्यवहारनिष्पत्तिमुपपाद्य पुरुषसिद्धौ प्रमाणमुपवर्ण्याऽन्ते–इतरमतनिराकरणेन वृत्तिसारूप्यनिवृत्तौ चिदात्मनावस्थानलक्षणं कैवल्यं निर्णीतम् । योगशास्त्रमिदं हिरण्यगर्भेण प्रवर्तितं शिष्यपरम्परया याज्ञवल्क्यादिभिः क्रमशः संसारेऽस्मिन् प्रचारितम् । तत्पुनः करालकालभक्षितमवलोक्य भगवता देवकीनन्दनेन श्रीकृष्णेण पार्थायोपदिष्टं, साम्प्रतं वर्णाश्रमव्यवस्थाशैथिल्यान्नष्टप्रायं सञ्जातम् ।

वर्णाश्रमधर्मविवेकः

विदितचरमेतच्छास्त्रतत्वविदां समेषां सज्जनानां यत्खलु चत्वार एव ब्राह्मणादयो वर्णा श्चत्वारो ब्रह्मचर्यादयः श्चाश्रमा वेदादिशास्त्रसमर्थिता इति । तत्र वर्णाः "तद् ये इह रमणीयाचरणा अभ्यासो ह रमणीयां योनिमापद्यन्ते ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा," "तद् य इह कपूयाचरणा अभ्यासो ह कपूयां योनिमापद्यन्ते श्वयोनिं वा शूद्रयोनिं वा चण्डालयोनिं वा" (छा. ३) इत्यादिन्यायेन पुर्वजन्मार्जितकर्मतारतम्याधीना एव न तु वर्त्तमानजन्मगुणकर्मपरवशाः । ये खलु वर्त्तमानजन्मनो गुणकर्मानुसारेण वर्णव्यवस्था मन्यन्ते ते प्रष्टव्याः स्वस्वजन्मनि सर्वेषां पुर्व-

संस्कारानुसारेण कदाचित् क्रमशो ब्राह्मणादिभावापत्तौ कथं तेषां मते सा व्यवस्था घटत इति। अद्य यो ब्राह्मण इति परिचितः श्वः परश्वो वा वैश्यक्षत्रियोचितगुणकर्मानुसारी पुनश्च तदन्यः पुनश्च तद्विपरीतश्चेत् स स्यात् तर्हि स किंवर्णः किं वक्तुं शक्यते ? वर्त्तमानगुणकर्मानुसारेणव्यवस्थोपपत्तौ पुत्रादिभिः सह कस्याप्येकत्र वासो न सम्भवेत् तेषां परस्परविरुद्धगुणकर्मवत्त्वात्। शास्त्रमते तु पूर्वजन्मार्जितगुणकर्मानुसारेण ब्राह्मणादियोनिषु जन्मलाभात् सा व्यवस्था सगच्छेत। अत उक्तं च शास्त्रकारेण—

तपः श्रुतं च योनिश्चैतद् ब्राह्मणकारणम्।
तपःश्रुताभ्यां हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥

इत्यादिना। न च वर्त्तमाणगुणकर्मानुसारेणापि सहभोजनादिना दोषाभावादेकत्र वासोपपत्तौ वर्णव्यवस्थोपपद्यत इति वाच्यम्। संसर्गजा दोषा गुणा भवन्तीतिन्यायेन दोषतादवस्थ्यात्। ये यथैव चौरेण मद्यपेन वा संसर्गं कुर्वन्तु स्वल्पेन कालेन ते तथैव भवन्तीति प्रत्यक्षेण प्रतीयमानत्वान्न काचनानुपपत्तिः। एवं च यस्य येन सह या भोजनादिव्यवस्थः शास्त्रेषु विहिता सा सर्वथा न्याय्यत्वेनानुसरणीयाः श्रेयोऽर्थिभिः। यजनयाजनाध्ययनाध्यापनादिव्यवस्थापि यस्य यथा निरूपितं वेदादिशास्त्रेषु तस्य तथैव विज्ञेयम्। व्यत्ययेन कृतायामपि व्यवस्थायां न साफल्यसिद्धिरिति प्रत्यक्षीक्रियते। नहि कदापि गर्दभस्ताडनेनाऽश्वो भवति। न वाऽम्रवृक्षात् तालफलोत्पत्तिः कुत्रापि दृष्टचरः। जन्मादिषु जन्मन एव प्राधान्यात् पूर्वपूर्वसंस्कारानुसारेण तत्तज्जात्युचितगुणकर्मानुवृत्तिरप्यनायासेन भवति।

यत्र नानुवृत्तिः स व्रात्योऽपाङ्क्तेयोऽविवाह्योऽनधाप्य श्च भवेत्। ये च मन्दमतयो मनुष्यत्वेन सर्वेषामेकत्वाद् वर्णव्यवस्था न मन्यन्ते तेऽनुकम्पनीयाः सदैव। जात्येकत्वेनापि नीलत्वादिना व्यक्तिभेदा हि यथा गवादिषु दृश्यते तथाऽन्यत्राप्यूह्यम्। अन्यथा मातृभार्ययोरपि पार्थक्यं न स्यात्। वर्णव्यवस्थायां पूर्वपूर्वजन्मसंस्कार एव नाभ्युपगम्येत राजरङ्कादिव्यवस्था कथं स्यात्। यदि राजादिव्यवस्था पूर्वकर्मानुसारिणी वर्णव्यवस्थाऽपि तथा विज्ञेया। जातमात्रस्य शिशोः स्तन्यपाने प्रवृत्तिदर्शनात् पूर्वजन्मानुमेयम्। अनुभवस्यैव संस्कारद्वारा स्मृतिजनकत्वेन प्रवृत्त्युपपत्तेः। तस्माद् वर्णव्यवस्था संसारेऽस्मिन्नादिकालात् प्रसृताः प्राकृता न केनचन कृताः। प्रकृति र्हि सत्वरजस्तमोमयी, तत स्तु सत्वादिप्राधान्येन ब्राह्मणादिव्यवस्थाऽपि स्यात्। प्राकृतो यो भेदः स न कथञ्चनोच्छिद्यते। न केवलं मनुष्येषु सा वर्णव्यवस्था प्रथिता, सूक्ष्मविचारेणान्यत्राप्युपलभ्यते। मृत्तिकासु श्वेतत्वादिना वृक्षेष्वश्वत्थादिना पशुषु च्छागत्वादिना एवमन्यत्रापि भेदो वर्णव्यवस्थाया गमकः। न च "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः" इति न्यायेन वर्णव्यवस्था भगवता कृतेति वाच्यम्। यथापूर्वमकल्पयदिति न्यायेन सृष्टेः पूर्वकल्पानुसारित्वेन तदपूर्वताया अभावात्। न हि भगवताऽपूर्वं किञ्चित् सृष्टं किन्तु पूर्वकल्पानुसारेण ये यथा सत्वस्वभावा रजआदिस्वभावा वा सूक्ष्मतया प्रकृतौ लीना आसंस्तान्—तथैव गुणविभागशः कर्मविभागश्चोत्पादयामास। अन्यथा कृतनाशाकृताभ्यागमदोषः केन वार्येत। सृष्टेरप्यनादित्वेन केनापि वक्तुं न शक्यते कस्मिन् काले वर्णव्यवस्था प्राक् संबभूवेति।

सर्वदुःखनिवृत्तिहेतुभूतकर्मज्ञानानुष्ठानाश्रयतयाऽश्रमशब्दार्थस्यापि गुणोत्पत्तिबललभ्यत्वेन वर्णव्यवस्थावदाश्रमव्यवस्थाऽप्यनादिरित्यनुमीयते। सर्वदुःखनाशो हि सर्वजन्तूनां लक्ष्यः। स च सहसाऽनादिकालसञ्चितवासनानां निःशेषतः प्रविलयं विना न सम्भवः किन्तु क्रमश इत्याश्रमचातुर्विध्यमपि संघटते। एवं सति प्रथमाश्रमे गुप्तेन्द्रियस्य संयमं विधाय गुरुशुश्रूषादिना स्वाध्यायमधीत्य, द्वितीयेऽग्निहोत्रादीनि कर्माण्यनुष्ठाय, तृतीये तपसा पूर्णचित्तशुद्धिमवाप्य, तुरीये ज्ञानप्राप्तौ कृतकृत्यता स्यात्। ते चाश्रमा न सर्वेषां समानाः। "एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः" (मनुः), "चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्य त्रयो राजन्यस्य", इत्यादिन्यायेन ब्रह्मचर्यादय श्चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्य, वानप्रस्थान्ताः क्षत्रियस्य, वैश्यस्य गार्हस्थ्यब्रह्मचर्यौ द्वौ, शूद्रस्य तु गार्हस्थ्य एव। आश्रमादाश्रमान्तरं गत्वा निश्रेयससिद्धिरिति सामान्यनियमः। येषां च प्रतिबन्धकसद्भावेऽत्र ज्ञानं न जातं, तेषां परजन्मनि तन्नाशे प्रथमे द्वितीये वाश्रमे तज्जायत इति विशेषः। वामदेवादयोऽत्रोदाहार्याः। ये च ज्ञानसहभुवो व्यासवसिष्ठादय स्ते न सामान्यनियमान्तर्भूक्ताः। तेषां धर्मदेशनायै संसारेऽस्मिन् प्रादुर्भावात्। एतेनैकाश्रम्यवादमपि ये केचन पण्डितंमन्या मन्यन्ते तेऽपि निरस्ता वेदितव्याः। अन्यथा वेदादिशास्त्रविहित श्चातुराश्रम्यवादो व्यर्थ एव स्यात्। न च ज्ञानप्राप्तौ--आश्रमविकल्पः कुत्राप्यस्ति येनैकाश्रम्यपक्षोऽपि स्वीकार्यो भवेत्। तस्मादनादिकालप्रसिद्धा वर्णा आश्रमा श्च चत्वार इति सिद्धम्। एवं च यः खलु गुरुशुश्रूषणरतः कृतविद्यः प्राग् गार्हस्थ्याश्रमे यमनियमादीनभ्यस्य

पश्चान्मनोऽनुकूलं निर्जनं देशं फलमूलोदकाचितं गत्वा तत्र सुशोभनं मठं विधाय त्रिकालस्नायी शुचि र्भूत्वा प्रत्यहमिष्टदेवं प्रणम्य योगासनमारुह्य समग्रीवाशिरःकायः संयतास्यः सुनिश्चलो यथोक्तं योगमभ्यस्येत् स क्रमशो विवेकज्ञानमवाप्याऽसंप्रज्ञातसमाधौ स्थितः स्वस्वरूपप्रतिष्ठो भवेदिति शम् ।

बहूनां योगशास्त्राणां सर्वोपनिषदां तथा ।
सतां च यत्र तात्पर्यं सोऽर्थः संक्षेपतो मया ।
व्याख्यातो वै यथाशक्ति हिताय प्राणिनां मुदा ।
एतेन प्रीयतां कृष्णो य आत्मा सर्वदेहिनाम् ॥

इति भगवत्पूज्यपादपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्री १०८ दण्डिस्वामिवासुदेवाश्रमशिष्यस्वामिशान्ताश्रमकृतौ योगतत्त्वसंग्रहस्य चतुर्थपादः समाप्तः

सम्पूर्णं श्च ग्रन्थः ।